श्रीः

माधुरी

हिंदी-जगत् में सर्वश्रेष्ठ, सचित्र

मासिक पत्रिका

वर्ष ६, खंड १

श्रावण-पौष, ३०४ तुलसी-संवत् (१९८४ वि०)

अगस्त-जनवरी, (१९२७-२८ ई०)

संपादक

पं० कृष्णविहारी मिश्र बी० ए०, एल्-एल्० बी०

श्रीयुत प्रेमचंद

मैनेजिंग एडीटर—पं० रामसेवक त्रिपाठी

अध्यक्ष—

श्रीविष्णुनारायण भार्गव

नवलकिशोर-प्रेस, लखनऊ।

वार्षिक मूल्य ६॥)] [छमाही मूल्य ३॥)

लेख-सूची

१—पद्य

२—गद्य

लेख-सूची (गद्य)

चित्र-सूची

१—रंगीन

२—व्यंग्य चित्र

गजेन्द्र-मोक्ष

(१)

ग्राह के गहे ते अति व्याकुल बिहाल भयो :
  प्रान परमान रह्यो एक ही उसास को।
गनापति तहाँ महाराज बिना और कौन :
  धाय आय सकै रे सहाय होय दास को।
गाढ़े मे गयंद गरुड़ध्वज के पूजिबे को,
  जौ लौ कोऊ कमल लपकि ल्यो पास को।
तौ लौ ताही बार नहिं बारन के हाथ पर्‌यो :
  कमल के लेत हाथ कमलानिवास को।

(२)

जोरि जलचर अति क्रुद्धे जुरि जुद्ध कर्‌यो ;
  बारन को परी आनि बार दुख दंद की।
ह्वै के नकबानी दीन बानी को सुनाई जौलौं :
  लै के कर पानी पूजा करै जगबंद की।
तौ लौं दौरि दास की पुकार लग्यो दीनबंधु :
  सेनापति प्रभु मन ही की मति मंद की।
जानी न परति न बखानी जाति कछू देखौ :
  पानी ही तैं प्रगट्यो कि बानी मैं गयंद की।

—महाकवि सेनापति

प्रलय काल

(१)

लोकन की सत्ता औ महत्ता महा-भूतन की,
प्रलय महान विकराल कर लूटैगो।
अंतक, अनंत की अनंतता को अंत ह्वै है
टूक टूक ह्वैहै तें छपाकर न छूटैगो।
हरिऔध हर के अकांड-तांडवों के भय,
भांड के समान गोलो ब्रह्मांड फूटैगो।
अनल-प्रचंड-मारतंड खंड खंड ह्वै है,
परम उदंड यम-काल-दंड टूटैगो॥

(२)

कर को प्रहार तारकावलि को लोप कै है, दिवि को दलैगो दिवापति को मिटावैगो।
नाना-अंग-चालन दिगंतन को कैहै चूर धरा के धरातल को धूरि मैं मिलावैगो।
हरिऔध होत महा-काल विकराल-नृत्य, सहस-बदन-व्याल श्वसन बिलावैगो।
लात लगे टूटि है अतल तल पत्ता सम पल मैं पताल हू को लत्ता उड़ि जावैगो॥

(३)

धाम देव-धाम तोंते मरे ह्वै अमर जैहैं
कोटि कोटि मनजात कीट जैसे मारे हैं।
धूरि माहि मिलि हैं सुमेरु से धराधर हू,
बारिद प्रलै के तूल-पिंड जैसे धारे हैं।
हरिऔध त्रिपुरारि-नयन-तृतीय खुले,
तीनों लोक तूल के अँगार जैसे जारे हैं।
काल कोप-पौन के हिलाये व्योम-तरु-तोम
फल के समान तारे-तोर झरि परे हैं॥

—हरिऔध

अद्वैतवाद *

(१)

जटिल प्रश्न

येयं प्रेते विचिकित्सा मनुष्येऽ
स्तीत्येके नायमस्तीति चैके ।
एतद्विद्यामनुशिष्टस्त्वयाऽहं
वराणामेष वरस्तृतीयः ।

(कठ १।२०)
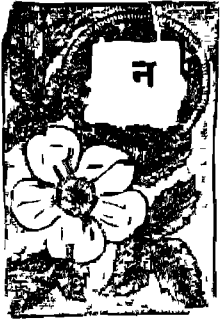
चिकेता को गुरु आज्ञा देते हैं कि तुम तीन वर मांगो। नचिकेता दो साधारण वर माँगकर तीसरा मुख्य वर यह मांगता है कि "मनुष्य के मरने पर यह संदेह होता है कि आत्मा है या नहीं है, मैं आपसे इसीका ज्ञान प्राप्त करना चाहता हूँ।" इस प्रश्न को सुनकर गुरु नचिकेता को बहुत से प्रलोभन देते हैं।

ये ये कामा दुर्लभा मर्त्यलोके
सर्वान्कामांश्छन्दतः प्रार्थयस्व ।
इमा रामाः सरथाः सतूर्या
न हीदृशा लम्भनीया मनुष्यैः ।
आभिर्मत्प्रत्ताभिः परिचारयस्व
नचिकेतो मरणं मानुप्राक्षीः ।

(कठ १।२५)

कि संसार में जो जो दुर्लभ भोग्य पदार्थ हैं, उन सबको मैं दे सकता हूँ, परन्तु तुम मृत्यु के प्रश्न को मत पूछो।

परन्तु नचिकेता बुद्धिमान शिष्य है। वह भोग्य पदार्थों को नहीं चाहता। वह कहता है—

श्वोभावा मर्त्यस्य यदन्तकैतत् ,
सर्वेन्द्रियाणां जरयन्ति तेजः ।
अपि सर्वं जीवितमल्पमेव ,
तवैव वाहास्तव नृत्यगीते ।

(कठ १।२६)

कि भोग्य पदार्थ तो क्षणिक हैं। मैं इनको लेकर क्या करूँगा। संसार के प्रलोभन और नाच गान केवल मौत के लिये हैं। स्थायी जीवन का इनसे कुछ भी लाभ नहीं होता। इसलिये मुझको मूल तत्व का उपदेश करो।

वस्तुतः पशु और मनुष्य में यही भेद है। पशु वर्तमान के भोगों पर दृष्टि रखता है, परन्तु मनुष्य भूत और भविष्य का भी विचार करके अपने भविष्य को उज्ज्वल बनाना चाहता है।

मनुष्यों में भी जो पाशविक वृत्तियों के आधीन हैं, वह खाने-पीने की वस्तुओं को पाकर ही तृप्त हो जाते हैं। परन्तु उच्चश्रेणी के पुरुषों की इतने से तृप्ति नहीं होती। वह संसार के जटिल प्रश्नों पर सर्वदा विचार करते रहते हैं। "मैं क्या हूँ ?", "आत्मा क्या है ?", "संसार क्या है ?", "पहले क्या था ?" और "फिर क्या हो जायगा ?" आदि प्रश्न उसके मस्तिष्क में चक्कर लगाया करते हैं।

प्रत्येक युग और प्रत्येक देश के मनुष्यों में मूल तत्त्व के खोजने की तीव्र इच्छा पाई जाती है। भिन्न-भिन्न विद्वानों ने भिन्न-भिन्न प्रकार से इसकी खोज की है और उनके परिश्रमों के परिणाम भी एक नहीं हैं, तथापि उन सबमें एक बात सामान्य है अर्थात् "इन प्रश्नों के समाधान का प्रयत्न।" यह प्रश्न आदि सृष्टि में भी ऐसे ही गूढ़ थे, जैसे आज हैं। दस हज़ार वर्ष पहले भी इतने ही विवादास्पद थे, जैसे इस समय हैं। पिछले युगों में भी ऐसे ही मनोरंजक और शिक्षाप्रद थे, जैसे वर्तमान काल में हैं।

सभ्य और असभ्य, उन्नतशील तथा अवनतशील जातियों और व्यक्तियों की पहचान ही यह है कि उन्होंने इन प्रश्नों का किस प्रकार समाधान किया है अथवा इनके समाधान करने में कितना प्रयत्न किया है। इसमें संदेह नहीं कि मनुष्य की प्रथम आवश्यकताएँ शरीर से संबंध रखती हैं। बच्चा आँख खोलते ही पहले दूध मांगता है। भूखा मनुष्य या भूखी जातियां कुछ भी सोच नहीं सकतीं, जब तक कि उनकी उदरपूर्ति न हो जाय। परन्तु इसमें भी संदेह नहीं कि जहाँ शरीर-संबंधी आवश्यकताएँ पूरी हुईं, वहीं 'मूलतत्त्व'-संबंधी गूढ़ प्रश्न भी स्वभावतः ही उठने आरंभ हो जाते हैं।

और क्यों न हो ? क्योंकि शरीर ही मनुष्य का सर्वस्व नहीं है। यह तो आत्मोन्नति और आत्म-शांति का साधन-मात्र है।

* लेखक की आज्ञा बिना किसी को इसके छापने का अधिकार नहीं है

न वा अरे वित्तस्य कामाय वित्तं प्रियं भवत्यात्मनस्तु कामाय वित्तं प्रियं भवति ।

(बृहदारण्यक २।४।५)

धन धन के लिये प्यारा नहीं होता किंतु अपने लिये प्यारा होता है ।

न वा अरे सर्वस्य कामाय सर्वं प्रियं भवत्यात्मनस्तु कामाय सर्वं प्रियं भवति ।

(बृ० २।४।५)

कोई वस्तु उस वस्तु के कारण प्रिय नहीं होती, किंतु अपने लिये ही प्रिय होती है । इसीलिये कहा है कि

आत्मा वा अरे द्रष्टव्यः श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्यो मैत्रेय्यात्मनो वा अरे दर्शनेन श्रवणेन मत्या विज्ञानेनेदꣳ सर्वं विदितम् ।

(बृ० २।४।५)

अर्थात् हे मैत्रेयि "आत्मा" (अपनपा) के विषय में ही देखना, सुनना और विचार करना चाहिए । यही ज्ञान का साधन है ।

परंतु प्रश्न यह उठता है कि यह "अपनपा" क्या है ? हम जब कहते हैं कि "हम अपने लिये अमुक कार्य करते हैं," अथवा "हमको अपनी उन्नति करना चाहिए" तो इन 'अपना', 'अपनी' आदि शब्दों का हम क्या अर्थ लेते हैं ? महामूर्ख से लेकर उच्चकोटि के विद्वान् तक सभी 'अपने' शब्द का प्रयोग करते हैं । परंतु कितने ऐसे हैं, जो इस बात को सोचने का प्रयत्न करते हों कि 'अपने' का क्या अर्थ है ? और यदि प्रयत्न भी करते हैं तो कितने ऐसे हैं, जिन्होंने इस संबंध में कुछ सफलता प्राप्त की है ? वस्तुतः इसीका समाधान हो जाने पर फिर कुछ सोचने के लिये शेष नहीं रहता । यह मनुष्य के ज्ञान की पराकाष्ठा है । इसीके लिये मनुष्य का प्रयत्न आरंभ होता है और यहीं समाप्त हो जाता है ।

"मैं क्या हूँ" इस विषय में भिन्न-भिन्न विद्वानों के भिन्न-भिन्न मत हैं । परंतु 'मैं हूँ' इस विषय में सभी सहमत हैं । यदि वस्तुतः देखा जाय तो एक यही ऐसा विषय है जिसमें किसी को संदेह नहीं । फ्रांस के प्रसिद्ध दार्शनिक डिकेर्ट (Descartes) का कथन था कि "कोजीटो अर्गो सम्" (Cogito ergo sum) अर्थात् "मैं सोचता हूँ" । अतः सिद्ध है कि "मैं हूँ ।" परंतु मेरे विचार से इसके लिये साध्य, साधन तथा सिद्धि की भी आवश्यकता नहीं । मुझे यह जानने के लिये कि "मैं हूँ", "मैं सोचता हूँ" रूपी साधन की आवश्यकता ही नहीं । प्रत्येक पुरुष यह अनुभव करता है कि "मैं हूँ"—चाहे वह यह जाने या न जाने कि वह क्या है ।

ह्यूम आदि संदेहवादियों, हैकल आदि अनात्मवादियों तथा शून्यवादी बौद्धों का यह मत अवश्य है कि मैं कोई स्थायी तत्त्व नहीं हूँ । परंतु यह तो "क्या" शब्द की मीमांसा का मतभेद है । जहाँ तक इस प्रश्न का अस्तित्व से संबंध है, उनको भी इसके मानने में कोई संकोच नहीं है । उनको भी यह अनुभव अवश्य होता है कि चाहे "मैं कुछ हूँ" परंतु हूँ "अवश्य" ।

इस 'मैं' के मूल-तत्त्व की खोज दार्शनिकों का पहला कर्तव्य है, संसार के जटिलतम प्रश्नों में सबसे पहला यही प्रश्न है । परंतु इसके अतिरिक्त एक और प्रश्न इतना ही जटिल है । वह यह कि मेरे अतिरिक्त कोई और वस्तु भी है या नहीं । और यदि है तो कितनी ?

मनुष्य का, कम से कम विद्वान् मनुष्य का, एक और स्वभाव है । वह यह कि, यदि उसका संसर्ग कई वस्तुओं के साथ होता है, तो वह प्रयत्न करता है कि उन कई वस्तुओं में समानताओं का अन्वेषण करके उनका एकीकरण करे, अर्थात् उस एक तत्त्व को जानने की कोशिश करे, जो उन सबके भीतर विद्यमान है । वस्तुतः विद्या इसी का नाम है । हम राम, मोहन, शीतल आदि सौ दो सौ व्यक्तियों को देखते हैं । उनमें समानताएँ और असमानताएँ दोनों हैं । परंतु समानताओं को देखकर हम यह परिणाम निकालते हैं कि यह सब पुरुष हैं । इसी प्रकार सीता, लक्ष्मी, सावित्री, सुशीला आदि सौ दो सौ अन्य व्यक्तियों को देखकर कहते हैं कि यह स्त्रियाँ हैं । प्रथम हमारा संसर्ग 'रामत्व', 'मोहनत्व', 'शीतलत्व', से था । यह भिन्न-भिन्न पदार्थ प्रतीत होते थे । परंतु अब हम समझने लगे कि यह सब व्यक्ति "पुरुष" हैं । अर्थात् उनमें 'पुरुषत्व' रूपी तत्त्व विद्यमान है, इसी प्रकार 'सीतात्व', 'लक्ष्मीत्व', 'सावित्रीत्व' से चलकर हम 'स्त्रीत्व' तक पहुँचे । परंतु हमारी एकीकरण की वृत्ति यहीं पर संतुष्ट नहीं हो जाती । 'पुरुषत्व' और 'स्त्रीत्व' में फिर एकीकरण आरंभ होता है और हम दो भिन्न-भिन्न शब्द प्रयुक्त करने के बजाय एक शब्द 'मनुष्य' या 'मनुष्यत्व' का प्रयोग करने लगते हैं ।

इधर हमने कुछ व्यक्तियों को 'मनुष्य' कहा। उधर अन्य व्यक्ति-समूह को 'कुत्ता' कहा। एक ओर अन्य समूह को 'बिल्ली', अन्य को 'गाय', अन्य को 'घोड़ा' आदि नाम दिए। इतना एकीकरण करके हमने फिर 'मनुष्य', 'कुत्ता', 'बिल्ली', 'घोड़ा' आदि का भलीभाँति निरीक्षण किया। हमारे मस्तिष्क में यह प्रश्न चक्कर लगाने लगा कि "क्या यह सब भिन्न-भिन्न हैं?" क्या इनमें कोई समानता नहीं? क्या इनका एकीकरण नहीं हो सकता? हाँ, अवश्य हो सकता है, मनुष्य, कुत्ता, घोड़ा आदि सभी 'जीवधारी' है।

परंतु 'जीवधारी' व्यक्तियों के अतिरिक्त हमको 'निर्जीव' व्यक्ति भी दिखाई पड़ते हैं। अब 'सजीवों' और 'निर्जीवों' का एकीकरण किस प्रकार किया जाय। क्या यह सर्वथा भिन्न-भिन्न है या इनका भी एकीकरण संभव है?

इस प्रश्न ने बड़े-बड़े दार्शनिकों को चक्कर में डाल रक्खा है। कुछ का मत है कि संसार का मूलतत्त्व दो पदार्थ हैं—एक पुरुष और दूसरा प्रकृति। पुरुष चेतन है और प्रकृति जड़ है। पुरुष असंख्य है और प्रकृति एक सर्वव्यापक जड़ तत्त्व है। इन्हीं चेतन और अचेतन के संयोग से संसार का निर्माण होता है। यह सांख्य मत कहलाता है।

कुछ का मत है कि प्रकृति कोई एक वस्तु नहीं है, किन्तु असंख्यों परमाणुओं का एक समूह है। यह परमाणु (परम-अणु) लघुतम जड़ व्यक्तियां है। और पुरुष अर्थात् जीव चेतन व्यक्तियां है। इन असंख्यों चेतन और असंख्य जड़ व्यक्तियों से ही संसार बनता है। यह वैशेषिक और न्याय मत के नाम से प्रसिद्ध है।

इन मतों में कुछ दूर तक तो एकीकरण हो सकता है। परन्तु आगे चलकर एकीकरण असंभव हो जाता है। इनके अनुकूल जब तक एकसे अधिक पदार्थ न माने जायँ संसार के निर्माणकी यथार्थ व्याख्या हो ही नहीं सकती।

परंतु कुछ दार्शनिक इतने से संतुष्ट नहीं होते। उनकी एकीकरण करनेवाली वृत्ति उनको उस समय तक चैन लेने नहीं देती जब तक वह किसी एक ऐसे मूल-तत्त्व का पता लगा सकें जिससे समस्त सृष्टि की उत्पत्ति की व्याख्या हो सके।

इन सब दार्शनिकों को हम अद्वैतवादी कह सकते हैं। अद्वैतवाद का अर्थ है "दो वस्तुओं को न मानना।" परंतु वस्तुतः इससे आशय है "एकतत्त्ववाद" का। अद्वैतवाद के स्थान में इसको 'एकवाद' कहना चाहिए। हमने यहाँ 'एकवाद' शब्द का इसलिये प्रयोग नहीं किया कि इस वाद के धुरंधर नेताओं ने अपने सिद्धान्त के लिये 'अद्वैतवाद' की उपाधि ही पसंद की है। और दीर्घ काल से प्रयुक्त होते-होते यह शब्द इतना रूढ़ि हो गया है कि हमको इसकी व्युत्पत्ति की मीमांसा करने की आवश्यकता प्रतीत नहीं होती।

एकवाद या अद्वैतवाद के सिद्धांतों की नींव 'न्यूनतम कारण' के नियम (Law of parsimony of causes) पर रक्खी गई है। इस नियम को सभी विद्वानों ने सभी युगों में स्वीकार किया है। परंतु इससे आगे चलकर भिन्न-भिन्न लोगों ने भिन्न परिणाम निकाले हैं। असंख्यवादी या अनेकतत्त्ववादी भी इस नियम को अस्वीकृत नहीं करते। यदि करते तो वह एकीकरण करने में कुछ भी सफल न होते। परंतु उनका सिद्धांत आगे चलकर वही नहीं रहता जो अद्वैतवादियों का है।

न्यूनतम-कारण का नियम क्या है? वह यह है कि यदि हमको किसी घटना का कारण मालूम करना हो और उस घटना की व्याख्या एक कारण से हो सकती हो तो हम को उसके स्थान में एक से अधिक कारण नहीं मानने चाहिए। अर्थात् किसी घटना की मीमांसा करने के लिए जहां तक हो सके कम से कम कारणों को मानना आवश्यक है। इस नियम का आधार इस मत पर है कि सृष्टि में मितव्यय (Economy of Nature) का पराकाष्ठा है। जो काम चार वस्तुओं से निकल सकता है, उसके लिये पांच वस्तुएँ काम में नहीं लाई जाती, जिस काम में दो वस्तुएँ पर्याप्त है, उसके लिये तीन वस्तुओं का व्यय नहीं किया जाता। सृष्टि की मितव्ययिता का नियम मानवी-प्रकृति में इतना प्रविष्ट हो गया है कि मानवी-जीवन के प्रत्येक व्यवहार में इसकी साक्षी मिलती है। यदि मेरे भोजन के लिये आधसेर आटा चाहिए और मैं उसके स्थान में सेर भर पकवान मांगूं, तो मूर्ख कहलाऊंगा। यदि मेरा काम दस नौकरों से निकल सकता है और मैं उनके स्थान में ग्यारह नौकर रखता हूं, तो लोग मुझे बुद्धिमान नहीं कहते। विद्या और बुद्धि की पहचान ही यह है कि कम से कम व्यय में अच्छे से अच्छा कार्य्य कर दिया जाय। सृष्टि में भी हम

इसी मानवी-नियम का प्रचार देखते हैं। मेरा काम एक सिर से निकल सकता है, अतः मुझे दो सिर नहीं दिए गए। दो हाथों से निकल सकता है, अतः तीन हाथ नहीं बनाए गए। एक नाक से निकल सकता है, अतः एक से अधिक नाकें बनाना व्यर्थ होता। मनुष्य-शरीर से बाहर अन्य विभागों का भी यही हाल है।

इस मित-व्यय के नियम पर न्यूनतम-कारण के नियम का आश्रय है। और न्यूनतम-कारण का नियम ही दार्शनिक एकवाद या अद्वैतवाद की आधार-शिला है। जब 'एक मूल-तत्व' से सृष्टि की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय की पर्याप्त व्याख्या हो सकती है, तो एक से अधिक मूल-तत्वों को माना ही क्यों जाय। वृक्ष का मूल एक होता है। सृष्टि का मूल भी एक ही है। दर्शन-शास्त्र का प्रयत्न यह होना चाहिए कि जिस प्रकार हो सके इस बात की मीमांसा करे कि एक मूल-तत्व से सृष्टि की उत्पत्ति कैसे हो गई?

जो लोग एक से अधिक मूल-तत्व मानते हैं, उनके विषय में भी कई अड़चनें बताई जाती हैं। अर्थात् यदि मान लिया जाय कि पुरुष और प्रकृति या जड़ और चेतन के मेल से सृष्टि बनती है, और यह दो पदार्थ मौलिक हैं, तो प्रश्न यह उठता है कि इन दोनों का परस्पर क्या संबंध है, और एक दूसरे को क्यों कर प्रभावित करते हैं? चेतन पुरुष पर अचेतन प्रकृति कैसे प्रभाव डालती है या अचेतन प्रकृति चेतन पुरुष को कैसे प्रभावित करती है? यह बड़ा जटिल प्रश्न है, और द्वैतवादियों ने इस अड़चन को दूर करने के भिन्न-भिन्न साधन निकाले हैं।

परंतु अद्वैतवादियों ने एक बात से इस समस्त रोग का प्रतीकार कर दिया है। वह कहते हैं कि हम जड़ और चेतन दो वस्तुएँ मानें ही क्यों? क्यों न एक ही मूल तत्व माना जाय, जिससे एक के दूसरे पर प्रभाव डालने का प्रश्न ही न उठ सके। न दो होंगे और न झगड़ा होगा। ताली एक हाथ से नहीं बज सकती।

द्वैतवादी या अनेकवादी कहते हैं कि यह तो ठीक है कि ताली एक हाथ से नहीं बज सकती। परंतु यहाँ ताली तो बजती ही है। इसीलिये तो हम द्वैत को मानते हैं। यह झगड़ा हमारा उत्पन्न किया हुआ तो नहीं है। संसार का प्रपंच तो हम देखते ही हैं, दार्शनिकों को तो केवल इसकी व्याख्या मात्र करने का अधिकार है। वह ताली बजते हुए सुन ही रहे हैं, उनको पता तो इस बात का लगाना है कि इस ताली के लिये एक से अधिक हाथों की आवश्यकता है या केवल एक की।

न्यूनतम कारण का नियम तो हम भी मानते हैं, परंतु हम उसके नाम में कुछ परिवर्तन करना चाहते हैं। न्यूनतम कारण (Law of Parsimony of cause) का नियम एक कारण (Law of one cause) नहीं है। न मितव्यय का अर्थ अपर्याप्त-व्यय है। कंजूसी उतनाही दोष है जितना अपव्यय। यदि संसार में हम अपव्यय नहीं पाते तो अपर्याप्त व्यय भी नहीं पाते। जहाँ एक सिर से काम चल सकता था और दो नहीं बनाए गए, वहाँ केवल एक नेत्र देखने के लिये अपर्याप्त होता। इसलिये दो नेत्र बनाने की आवश्यकता हुई। दो भुजाओं या दो टाँगों के स्थान में एक भुजा या एक टाँग बनाने से सृष्टि प्रबंधक की कंजूसी प्रकट होती। अतः उसने ऐसा नहीं किया। इसी प्रकार शरीर में दाँत तथा पसलियों की संख्या दो से भी अधिक है। इससे न्यूनतम कारणवाद (Parsimony of causes) का खंडन तो नहीं होता, परंतु एक कारणवाद (Law of one cause) का खंडन अवश्य हो जाता है। जो काम दस पुरुषों से हो सकता है, उसके लिये ग्यारह रखना मूर्खता है, परंतु नौ रखना उससे भी अधिक मूर्खता है। जहाँ ग्यारह रखने से एक पुरुष की शक्ति व्यर्थ नष्ट होती है, वहाँ नौ रखने से वह काम ही नहीं हो सकता और नौ पुरुषों की शक्ति का अपव्यय होता है। इस प्रकार दस के स्थान में नौ रखने वाला ग्यारह रखने वाले की अपेक्षा अधिक मूर्ख है। इसलिये हम न्यूनतम-कारण (Law of Parsimony of causes) के नियमकी अपेक्षा पर्याप्त कारणके नियम (Law of sufficient causes) के अधिक मानने वाले हैं। और न्यून तम-कारण का अर्थ भी हम यही लेते हैं।

कुछ लोगों का विचार है कि न्यून-तम संख्या एक है। अतः न्यून-तम-कारण का नियम हमको एक ही कारण मानने के लिये बाधित करता है। इसको कुछ लोगों ने पूर्ण कारण (Sufficient cause) माना है जिसके मानने से अन्य किसी कारण के मानने की आवश्यकता नहीं पड़ती।

यदि वस्तुतः एक कारण से संसार की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय की व्याख्या हो सके तो अधिक कारण

मानने की क्या आवश्यकता है। परन्तु इसके लिये यह सिद्ध करना होगा कि एक कारण से बहु-संख्यक वस्तुएँ बन सकती हैं, यदि एकत्व बहुत्व को उत्पन्न कर सकता है, तो ठीक है। यदि नहीं कर सकता तो जिसको हम पूर्ण कारण कहते हैं, वह अपूर्ण सिद्ध हो जाता है। यदि पहले पूर्ण कारण मानकर यह सिद्ध किया जाय कि चूँकि वह पूर्ण कारण है, अतः उससे अवश्यमेव बहुत्व की उत्पत्ति हो जायगी, तो यह बड़ी धींगाधींगी होगी। क्योंकि हम एकतत्व को पूर्ण कारण ही उस समय मान सकते है, जब पहले यह सिद्ध हो जाय कि एक कारण संसार की समस्त घटनाओं के लिये पर्याप्त हो सकता है। किसी वस्तु के नाम रखने से पहले उसके गुणों का सिद्ध कर लेना आवश्यक है न कि पहले नाम रख लिया जाय और फिर उस नामके अनुसार गुण आरोपित किए जाँय।

यदि एकत्व मे यह गुण है कि वह बहुत्व को उत्पन्न कर सके तो भला। यदि नहीं तो एकत्व की सिद्धि हो ही नहीं सकती।

कुछ लोग एकत्व के इसलिये ग्राही हैं कि दर्शन-शास्त्र की संतुष्टि इसके बिना नहीं होती। एकत्व की खोज करना ही समस्त दर्शन-शास्त्र अर्थात फ़िलासफ़ी का अंतिम उद्देश्य है। परंतु एक बात हमारी समझ मे नहीं आती। वह यह कि दर्शन शास्त्र का यह उद्देश्य किसने ठहराया। क्या द्वैतवादी या अनेकवादी उसी प्रकार दार्शनिक नहीं है जैसे एकवादी अथवा अद्वैतवादी? दर्शन-शास्त्र का मुख्य उद्देश्य तो यह है कि मूल तत्वों की खोज की जाय। यदि मूल तत्व एक ही है तो एक की खोज, और यदि अनेक हैं तो अनेको की खोज। दर्शन-शास्त्र का उद्देश्य सत्यान्वेषण होना चाहिए न कि एकवाद या अनेकवाद का पक्षपात। वस्तुतः दार्शनिक पुरुषों को यह शोभा नहीं देता कि वह अन्वेषण करने से पूर्व ही एकत्व अथवा बहुत्व की कल्पना कर बैठें।

कुछ लोगों का कथन है कि यदि संसार का मूलतत्व एक न होता तो मनुष्य में एकीकरण की स्वाभाविक प्रवृत्ति न होती। परतु, यदि, विचार करके देखा जाय तो प्रतीत होगा कि एकीकरण की यह प्रवृत्ति मनुष्य को बहुत्व का निषेध करने पर बाधित नहीं करती। वस्तुत एकीकरण एक वस्तु का नहीं हो सकता, अनेक वस्तुओं का ही हो सकता है।

एकीकरण का क्या अर्थ है? यही न कि अनेक व्यक्तियों में जो सामान्य बातें अर्थात् समानताएँ हों, उनकी अलग कल्पना करली जाय। जैसे अनेक मनुष्यों को देखकर हम मनुष्यत्व रूपी एकत्व का विचार करते हैं। जिन असंख्य व्यक्तियों को हम 'मनुष्य' नाम से पुकारते हैं उन सबमें 'मनुष्यत्व' व्यापक है। 'मनुष्यत्व' क्या है—वह तत्व जो सब मनुष्यों में सामान्य है। इसलिये इस तत्व की खोज का नाम ही एकीकरण है। इस एकीकरण से ही बहुत्व की सिद्धि होती है। कोई ऐसा व्यक्ति संसार में नहीं है जिसमें केवल उतने ही गुण पाए जाते हों, जिनको हम 'मनुष्यत्व' कहते हैं—न कम, न अधिक। 'मनुष्यत्व' कई व्यक्तियों में पाया जाता है, एक में नहीं। यदि एकही मनुष्य होता तो 'मनुष्यत्व' का वह अर्थ न होता जो इस समय है। इस समय चूँकि मनुष्य बहुत हैं, अत. वह गुण जो सब व्यक्तियों में सामान्य नहीं हैं, किंतु प्रत्येक व्यक्ति में भिन्न-भिन्न हैं, 'मनुष्यत्व' के अंतर्गत नहीं समझे जाते। मनुष्य-रूपी एक व्यक्ति में सामान्य और विशेष दोनों हैं। 'मनुष्यत्व' में सामान्य को लिया गया है, विशेष को छोड़ दिया गया है। अतः सिद्ध है कि एकीकरण का नियम हमको बहुत्व पर विश्वास करने के लिये बाधित करता है।

कुछ लोगों ने एकत्व और बहुत्व के झमेले को दूर करने का एक और उपाय सोचा है। वह कहते है कि 'एकत्व' सत्य है और 'बहुत्व' कल्पित है। वह कहते हैं कि 'एकत्व' 'बहुत्व'को उत्पन्न नहीं कर सकता, परतु 'बहुत्व' है ही कहाँ, जिसके उत्पादक की तुम तलाश करते फिरते हो? वस्तुत: जिसको तुम 'बहुत्व' कहते हो वह माया या छलावा मात्र है। वह धोखा है, सत्य नहीं है। जिस प्रकार स्वप्न में एक मनुष्य एक होता हुआ भी अनेको घोड़े, हाथी, सेना आदि देखता है, परतु जागने पर उसे मालूम होता है कि वस्तुतः मैं अकेला था, इसी प्रकार संसार का हाल है। जिस प्रकार जादूगर तमाशा करते समय कभी आम, कभी सेब, कभी नारंगी दिखा देता है, परतु वास्तव में उसके पास वह पदार्थ नहीं होते, इसी प्रकार संसार में बहुत्व की प्रतीति मात्र होती है।

इसमें संदेह नहीं कि बहुत्व को छलावा मानकर बहुत से प्रश्नों के उत्तर से बच जाते है। परतु यह नहीं समझना चाहिए कि जटिल समस्या का यह एक संतोषजनक समा-

धान है । प्रथम तो इसको सिद्ध करना ही कठिन है । दूसरे जिस प्रकार यह समझ मे नही आता कि चेतन और अचेतन दो मूल-तत्व मानने से चेतन अचेतन को और अचेतन चेतन को किस प्रकार प्रभावित कर सकते हैं, उसी प्रकार यह भी समझ मे नही आता कि इस छलावे की उत्पत्ति तथा स्थिति का कारण क्या है । स्वप्न का दृष्टांत उस समय तक लागू नहीं हो सकता, जब तक यह सिद्ध न कर दिया जाय कि हम वस्तुतः स्वप्न अवस्था मे है । और यदि सिद्ध भी हो गया कि हम स्वप्न अवस्था मे है, तो फिर भी यह प्रश्न शेष रह जाता है कि हमको स्वप्न क्योंकर होता है ? यही कारण है कि संसार को प्रतीति या छलावा मात्र मानने वालों के भी कई भेद हो गए है, और भिन्न-भिन्न विद्वानों ने इस उलझन को भिन्न-भिन्न रीति से सुलझाने का यत्न किया है। परंतु मेरे विचार से यह उलझन अब भी ज्यों की त्यों बनी है, और, शायद, सृष्टि के अंत तक ऐसी ही रहे । यह दूसरी बात है कि कुछ व्यक्तियों को एक समाधान से संतुष्टि हो जाय, और कुछ को दूसरे से । संभव यह भी है कि कुछ आत्माएँ असंतोष की अवस्था में ही इस संसार से चल बसें, जैसे बहुत से चलबसे हैं, क्योंकि उनको कोई समाधान भी संतुष्ट नही कर सका ।

हम भी अगले लेखो मे इस उलझन के सुलझाने का यथाशक्ति प्रयत्न करेंगे ।

गंगाप्रसाद उपाध्याय

सरिता-तट पर

संध्या समय खड़ा हूँ आकर, इस विशाल सरिता-तटपर ।
बस अङ्कित होते है सुन्दर से विचार मानस पटपर ॥
जल का कल-कल नाद श्रवण कर,
पाता हूँ बस पूर्णानंद ।

* * *

वृक्षावली दीखती सन्मुख सुंदर मन हरने वाली ।
पंक्ति दूसरे तट पर उनकी शोभित सुख भरने वाली ॥
और चल रहा है सुंदर सी—प्यारी
बस समीर कुछ मंद ॥

* * *

दग्ध-हृदय को तनिक न छेड़ो, प्रज्वलित है उसमें इक आग ।
शांत न होगी किये तुम्हारे, ए लहरो के शीतल झाग ॥
मुझे दीखती नहीं यहाँ से ,
कही शांति थल की वह कोर ।

* * *

मंद पवन के झोके से है लहरें टकराती तट पर ।
बार-बार भर आता है सुख में हो दुखी, हृदय-घट पर ॥
श्रांत पथिक हूँ, श्रम से केवल ,
भटक गया हूँ मैं इस ओर ॥

* * *

अवध बिहारी माथुर

अद्भुत मिलन

एक बार मैं बड़ी शोचनीय और अप्रिय स्थिति मे पड़ गया था । उन दिनों मैं बड़ी अकिंचन दशा मे था । घूमते-फिरते मैं एक ऐसे नगर मे पहुँचा जहां किसी प्राणी को जानता भी न था । पास एक टका न था । भूख के मारे बेहाल था । रात कहां काटूँगा, यह प्रश्न सामने था ।

पिछले पांच-चार दिनों के भीतर मैं अपने वे सभी वस्त्र बेच चुका था, जिनके बिना किसी प्रकार काम चल सकता था । मैं नगर की गलियों मे घूमता रहा । कुछ देर बाद नदी की ओर पहुँचा । अक्टूबर का महीना ख़त्म हो रहा था । इन दिनो नदी में किश्तियां और अग्निबोट नहीं चल सकते । व्यापार बंद रहता है । जिन दिनों मे व्यापार चलता रहता है, नदी तट पर बड़ी चहल-पहल रहती है । सैकड़ो छोटी बड़ी दुकाने खुली रहती है । परंतु इस समय वहां सन्नाटा था ।

मैं बालू के फ़र्श पर पैर घसीटता हुआ चल रहा था । वह भी नम और ठंडा था । मेरी आंखे चारों ओर दौड़

रही थीं। शायद कहीं क्षुधा शांत करने का कोई ढंग निकल आवे। मैं अकेला ही था। छोटी-छोटी बंद दूकानों और गोदामों के बीच से होकर आरहा था : यही सोच रहा था कि पेट की आग कैसे बुझाई जाय।

अपनी वर्तमान सभ्यता में हम एक ऐसी स्थिति पर पहुँच गये हैं जब कि पेट की क्षुधा शांत कर सकने के मुक़ाबिले में हम अपने मस्तिष्क की क्षुधा ज्यादा आसानी के साथ शांत कर सकते हैं। गलियों मे घूमिये ; अच्छी-अच्छी हवेलियाँ बनी हुई हैं। बाहर से देखने में कैसी भली मालूम होती हैं। अनुमानत. भीतर से भी अच्छी सजी होंगी। निर्माण-कला, स्वच्छता तथा अन्य बहुत से विषयों पर ऊँचे ऊँचे विचार मन में दौड़ेंगे। सड़कों पर अच्छे-अच्छे गर्म कपड़े पहिने हुए नर-नारियों को घूमते देखिये। कैसे सभ्य हैं, कैसे भद्र लोग हैं। आपसे बाल-बाल बचकर निकल जायँगे, उनके नम्र आचरण को देखकर जी खुश हो जायगा। पग-पग पर विचार करने की सामग्री मिलेगी। भई, इसमें संदेह नहीं कि भूखे आदमियों की अक़्ल ज्यादा तेज़ होती है. उन्हें सूझती बड़ी दूर की है। मैं तो यही कहूँगा। आप जो चाहें इससे परिणाम निकालें।

हां, इस समय तो मैं एकाकी ही पैर घसीट रहा था। सन्ध्या होरही थी ; बूँदें पड़ने लगी थीं और उत्तरी हवा बड़े ज़ोरों से चल रही थी। वह हड्डियों के भीतर तक चुभती हुई मालूम पड़ती थी। सुनसान दूकानों में, ख़ाली सरायों की खिड़कियों में हवा गूंजकर एक अद्भुत शब्द उत्पन्न कर रही थी। नदी की छोटी-छोटी लहरें बालू के तट पर बड़े वेग से थपकियां लगा रही थी, और उनमें फेन निकल रहा था। नदी के धुंधले छोर से ये लहरें एक दूसरे से होड़ करती हुई तट की ओर आरही थीं। जान पड़ता था कि इस बात से डर कर कि उत्तरी हवा उन्हें रात में बर्फ़ से जकड़ न दे, ये लहरें घबरा कर तट की ओर भागी चली आरही हैं। आकाश घिरा हुआ था। अंधकार फैल रहा था। मैं ऐसे स्थल पर पहुँच गया था जहां पर दो-एक दरियाई पेड़ थे और उन्हीं की जड़ से बँधी हुई एक डोंगी उलटी हुई बालू पर पड़ी हुई थी।

इस डोंगी का पेंदा भी टूटा हुआ था। वृक्षों में हवा की सनसनाहट गूंज रही थी। चारों ओर सन्नाटा और उजाड़ था। आकाश मेरी हालत पर धार-धार आंसू बहा रहा था। मृत्यु का सन्नाटा था—मुझे छोड़कर और कोई भी जीवित प्राणी वहां न था और यह निश्चय था कि भूख और ठंड के मारे मेरे प्राण भी न बचेंगे!

उस समय मेरी अवस्था अठारह वर्ष की थी—कैसी उम्र है! मैं ठंडे भीगे हुए बालू के फ़र्श पर चला आ रहा था। ठंड के मारे मेरे दांत कटकटा रहे थे। मैं कह चुका हूं कि मेरी आंखें चारों ओर दौड़ रही थीं। मैंने एक बड़ासा बक्स देखा। यह आधा बालू में गड़ा हुआ था। उसके पीछे निगाह गई तो देखता क्या हूं कि कोई घुटनों के बल बैठा हुआ है। पहिनावे से जान पड़ा कि कोई स्त्री है। वर्षा से भीगे हुए उसके कपड़े उसके झुके हुए कंधों पर चिपक रहे थे। उसके पास पीछे से खड़े होकर मैंने देखना चाहा कि यह क्या कर रही है। ऐसा जान पड़ा कि वह अपने हाथों से बालू खोद रही है—उसी पीपे के नीचे से। मैंने और भी पास जाकर पीछे से पूछा, "यह क्या कर रही हो?"

वह चौंक कर फ़ौरन उठ खड़ी हुई और अपनी बड़ी-बड़ी भूरी आँखों से मुझे देखने लगी। उसकी आँखों से उसका भय प्रकट हो रहा था। मैंने देखा मेरी ही उम्र की लड़की थी। बड़ा भोला और सुंदर चेहरा था, परंतु मुँह पर तीन बड़े नीले निशान पड़े हुए थे। दो तो दोनों आँखों के नीचे थे और तीसरा माथे पर ठीक नाक के ऊपर था।

मुझे देखकर उसकी आँखों से धीरे-धीरे भय जाता रहा। उसने अपने हाथों से बालू झाड़ डाला। सिर का वस्त्र सँभाल कर ठीक किया और धरती पर बैठ गई।

बोली, "जान पड़ता है तुम भी भूखे हो? अच्छा तो तुम्हीं खोदो! मैं थक गई हूं। हां, यहीं पर खोदो। इसमें कुछ खाने को ज़रूर मिल जायगा। रोटियों के साथ कुछ थोड़ी-सी चटनी भी शायद मिल जाय। इस दूकानदार ने अपनी दूकान अभी उठाई नहीं है।"

मैं भी बालू को हाथ ही से खोदने लगा। कुछ देर तो वह चुप बैठी मेरी तरफ़ देखती रही। फिर मेरे पास आ बैठी और मेरी सहायता करने लगी।

हम लोग चुपचाप अपने काम में लगे हुये थे। मैं इस समय यह नहीं कह सकता कि उस समय मुझे दंड का भय अथवा चोरी का ख़याल आया था कि नहीं, अथवा मन में नैतिक ग्लानि उत्पन्न हुई कि नहीं। सच पूछा जाय तो मैं उस समय अपने धंधे में ऐसा निमग्न था कि सिवाय इसके कि इस बक्स के नीचे क्या है—मुझे दूसरा ध्यान ही नहीं था।

रात होती आ रही थी। भूरा, घना, ठंढा कुहरा हमारे चारों ओर छाया हुआ था। लहरों की गूँज कुछ कम जान पड़ती थी। परंतु उस बक्स पर पानी की बूँदों की पड़पड़ाहट और भी ज़ोर से सुनाई पड़ती थी। दूर पर रात के चौकीदार की तीक्ष्ण आवाज़ भी कान में पड़ जाती थी।

उस लड़की ने पूछा, "इस बक्स में पेंदा भी है?"

मैं प्रश्न समझ नहीं सका, इससे चुप रहा।

"मैं पूछती हूँ, इस बक्स में पेंदा है कि नहीं? अगर है, तो हमारा इसे खोदना व्यर्थ है। हम लोग इसका पेंदा न तोड़ पावेंगे। इससे तो अच्छा यही हो कि इस बक्स में जो ताला लगा है उसी को तोड़ डालें। रद्दी-सा ताला लगा है।"

स्त्रियों की सूझ-बूझ का मैं क़ायल नहीं हूँ। लेकिन कभी-कभी इनको भी सूझ जाती है। मैंने इस सूझ से लाभ उठाने का प्रयत्न किया, क्योंकि मैं अच्छे विचारों को व्यर्थ नहीं जाने देता।

मैंने ताले को हाथ में लिया। दो-चार बार झटका देकर मैंने उसे बिल्कुल उखाड़ लिया।

उस चौखूटे बक्स का ज्योंही मैंने ढकना उठाया, त्योंही मेरी संगिनी साँप की भाँति रेंग कर उसके अंदर हो ली और वहीं से धीमी आवाज़ में मुझे शाबाशी देने लगी।

"हो पक्के!"

आज दिन मैं स्त्री द्वारा प्राप्त तनिक भी प्रशंसा पर फूल जाता हूँ। पुरुष चाहे जितना बड़ा वक्ता हो उसकी प्रशंसा में वह आनंद ही नहीं आता। परंतु उस समय यह प्रशंसा मुझे उतनी अच्छी न लगी। मैंने उस पर ध्यान न दिया। बड़ी उत्सुकता से परंतु धीमे स्वर से मैंने केवल इतना पूछा, "कुछ हाथ भी लगा?"

उसने एक-एक करके गिनाना शुरू किया

"एक टोकरी में बोतलें भरी हैं, मोटे लबादे हैं, एक छतरी है, एक लोहे की बाल्टी है।"

क्षुधा-निवारण का कोई सामान इनमें न था। मेरी आशायें प्रयाण करने लगीं। परंतु अचानक उसने उत्तेजित स्वर में कहा—

"अहा, यह लो!"

"क्या है?"

"रोटी, एक रोटी है, भीग गई है, लो!"

मेरे पैर के पास एक बड़ी पाव रोटी आ गिरी। उसके साथ ही साथ मेरी संगिनी भी कूद कर आ गई। मैं इतना भूखा था कि रोटी के गिरते ही मैंने उसे उठा लिया। उसका एक टुकड़ा दाँत से काट लिया और मुँह चलाने लगा।

मेरी संगिनी ने कहा, "अकेले खाओगे? इसमें मेरा भी हिस्सा है। यहाँ ठहरना ठीक नहीं है। कहाँ चलोगे?"

उसने चारों तरफ़ निगाह दौड़ाई। अंधकार था, वर्षा की बूँदें थीं, वायु का प्रकंपन था। बीच-बीच में बिजली चमक उठती थी।

"देखो, वहाँ पर एक डोंगी उलटी हुई पड़ी है। आओ वहीं चलें!"

"अच्छा चलो। जल्दी आओ।"

हम लोग रोटी चबाते हुये उसी ओर चले। पानी और भी ज़ोर से पड़ने लगा। नदी का गर्जन बढ़ गया। कुछ दूर से बड़े ज़ोर से सीटी की आवाज़ सुनाई दी। कैसा तीक्ष्ण स्वर था! मेरा हृदय बड़े वेग से धड़कने लगा। परंतु मैं मुँह चलाये जा रहा था। मेरी बगल में वह ढीठ लड़की भी रोटी खाती हुई बराबर चल रही थी।

न जाने किस भाव से प्रेरित होकर मैंने पूछा—"तुम्हारा नाम क्या है?"

संक्षेप में "नटाशा" कह कर वह रोटी चबाती रही।

मैं उसके मुख की ओर देखता रहा। मेरा हृदय न जाने क्यों मसोस रहा था। इसके बाद मैं अंधकार में देखता रहा। मुझे जान पड़ा कि मेरा भाग्य मेरे ऊपर एक ठंढी और रहस्यमय हँसी हँस रहा है।

डोंगी के पटरों पर वर्षा की धार से एक मंद आवाज़ हो रही थी, जिससे मन में गंभीर भाव उठ रहे थे। डोंगी के पेंदे में एक छेद था। उसीके भीतर से हवा डोंगी के नीचे आती थी, तो सीटी की-सी आवाज़ होती थी। वह भी बहुत बुरी मालूम होती थी। नदी का जल कगारों से वेग के साथ टकराता था। उसकी ध्वनि में वर्षा की ध्वनि मिलकर एक वेदना-पूर्ण स्वर बन जाती थी। संपूर्ण वायु-मंडल उसासें भरता जान पड़ता था। उस सुनसान स्थल में वायु भी निरंतर चल रही थी। सरिता उसकी थपकियाँ ले रही थी और बदले में उसे संगीत सुना रही थी।

उस डोंगी के नीचे हम लोगों की स्थिति बड़ी कष्ट-कर थी। जगह तंग थी, नीचे नमी थी, टूटे हुए पेंदे से छन-

छन कर वर्षा की बूँदें ऊपर गिरती थीं। रह-रह कर ठंडी हवा उसमें घुसकर शरीर को कँपा देती थी। हम लोग चुपचाप बैठे थे और सर्दी से काँप रहे थे। मुझे याद आता है कि मुझे नींद भी लग रही थी। नटाशा एक कोने में सिमट कर गोल बनी हुई अपने दोनों घुटनों को हाथों से दबाए और उसी पर ठुड्डी रक्खे हुए बैठी थी। डोंगी के एक टूटे हिस्से के पास उसका सिर था। अपनी बड़ी-बड़ी आँखों से वह नदी की ओर देख रही थी। बिजली बीच-बीच में चमक कर उसके मुख को आलोकित कर देती थी। उसका मुँह कैसा सुन्दर था। आँखों के नीचे काले-काले निशान थे, इससे उसकी आँखें और भी बड़ी जान पड़ती थीं। वह निस्पन्द बैठी हुई थी, न शरीर हिलता था, और न कुछ बोलती ही थी। यहाँ तक कि उसकी स्थिरता तथा मौन ने मेरे मन में भय का भाव उत्पन्न किया। मैं उससे बातें करना चाहता था, लेकिन यह समझ में न आता कि क्या बातें करूँ।

कुछ देर बाद वह आप ही बोली। उसने स्पष्ट शब्दों में कहा—"यह ज़िन्दगी भी कैसी बुरी बला है!" उसका स्वर एक ध्यान में डूबे हुये व्यक्ति का स्वर था। उसके उद्गार में गम्भीरता थी, विकलता का नाम भी न था। उसमें दुःख और उलाहना नहीं था, केवल एक लापरवाही थी।

उस सरल प्राणी के हृदय में जिस प्रकार के भाव भरे थे, उन्हीं से वह अपने मन में परिणाम निकालती थी और उसे ही स्पष्ट और ऊँचे स्वरों में कह रही थी। मैं उसकी बात काटना नहीं चाहता था। मैं चुप था और वह भी इस भाँति स्थिर बैठी हुई थी मानो उसने मुझे देखा हो न हो।

"हम अपनी जान भी दे दें। तो भी क्या?" जान पड़ता था कि वह इस प्रकार सोच-सोच कर अपने जीवन का सिंहावलोकन और अपनी निस्सहाय दशा पर विचार कर रही है। परन्तु इसमें भी शिकायत का चिह्न न था। विचार में डूबे हुये प्राणी का, प्रसन्नता-रहित, वेदना-रहित उद्गार मात्र था।

इस विचार-शृंखला की मेरे हृदय पर गहरी चोट पड़ी। मेरे मन में इतना दुःख भर गया कि मैं यदि कुछ समय तक और मौन रहता तो निस्संदेह रो पड़ता, और एक स्त्री के सम्मुख रोना विशेषकर जब वह स्वयं न रो रही हो, कैसी लज्जा की बात थी! मैंने निश्चय किया कि मैं अवश्य बोलूँगा।

मैंने पूछा, "यह तुम्हें किसने मारा है, जिससे तुम्हारे मुँह पर काले-काले निशान पड़ गये हैं।" मैं उस समय कोई दूसरी बात न सोच सका।

उसने धीमे अविचलित स्वर में उत्तर दिया—"यह सब पाश्का की कारस्तानी है।"

"कौन पाश्का?"

"मेरा प्रेमी।... वह एक नानबाई है।"

"क्या वह तुम्हें अक्सर पीटा करता है?"

"जब कभी नशे में रहता है, ऐसा करता है। यह बात अक्सर होती रहती है।"

अचानक वह मेरी ओर घूम गई और मुझसे अपना और पाश्का का, दोनों के संबंध का, हाल सुनाने लगी। पाश्का एक लाल मूछों वाला नानबाई था। सितार अच्छा बजाता था। वह नटाशा से बहुधा भेंट किया करता। बड़े अच्छे और साफ सुथरे कपड़े पहना करता। नटाशा का जी उससे लग गया। वह उस पर मोहित हो गई। फिर तो वह धीरे-धीरे नटाशा से रुपये-पैसे उधार लेने लगा। अपनी कमाई से तथा मित्रों से जो रुपये पैसे नटाशा को मिलते, उन्हें वह माँग ले जाकर शराब में उड़ा देता और फिर आकर नशे में नटाशा को पीटता भी। परन्तु इसका नटाशा को उतना सोच नहीं था। नटाशा को सोच इस बात का था कि वह अब दूसरी लड़कियों के पीछे फिरने लगा था—और वह भी नटाशा के सामने ही।

नटाशा कहने लगी "अब तुम्हीं बताओ, इसमें मेरा अपमान होता है कि नहीं? मैं दूसरों से कुछ बुरी नहीं हूँ। सच बात तो यह है कि वह बड़ा पाजी है, मुझे चिढ़ाना चाहता है। अभी परसों मैं अपनी मालकिन से ज़रा देर की छुट्टी लेकर उससे मिलने गई। देखती क्या हूँ कि डिमका उसके पास बैठी हुई है। आप भी वह नशे में चूर था और डिमका की भी वही हालत थी। मैंने कहा 'बदमाश क्या कर रहा है?' बस, मुझ से चिमट गया। मुझे बहुत ही मारा। मेरे सिर के बाल पकड़ कर मुझे घसीटा, और सब से बुरा यह किया कि जो कुछ कपड़ा लत्ता मैं पहिने हुई थी, सब नोच-खसोट कर सत्यानाश कर डाला। जिस हालत में मुझे देखने

हो, यह हालत मेरी उसीने बनाई है। अब मैं अपनी मालकिन के सामने कैसे आऊँगी। मेरी सभी चीज़ें तो नाश कर दी हैं। मेरा जाकेट अभी बिल्कुल नया था। पूरे दामों लिया था। मेरे सिर में बाँधने का रूमाल चिथड़ा कर दिया। हे ईश्वर! अब मेरा क्या होगा ?"

यह कहते-कहते उसकी साँस बंध-सी गई। उसके स्वर में इस समय बड़ी वेदना थी।

वायु और भी प्रचंड वेग से चलने लगी। मेरे दाँत फिर कटकटाने लगे। वह भी सर्दी से बचने के लिये और भी सिकुड़ गई और मेरे अत्यंत निकट आ गई। उस अँधेरे में भी मुझे उसकी चमकती हुई आँखें दिखाई पड़ती थीं।

"तुम सभी मर्दों का यही हाल है, बड़े नीच होते हो। मेरा बस चले तो सबों को काट कर भट्टी में झोंक दूं। किसी की जान भी निकलती रहे, तो ज़रा सा तरस न खाऊँ। मुँह में थूक दू। नीचो! तुम लोग हम लोगों के पीछे पीछे फिरते हो, कुत्तों की तरह दुम हिलाते हो। हम लोग भी ऐसी मूर्ख हैं कि तुम्हारी बातों में आ जाती हैं। फिर तो हमारा सत्यानाश हुआ जानो। तुम हमें अपने पैरों तले कुचल डालते हो। हत्यारे कहीं के! भिखमंगो! चाडालो!"

हम लोगों को वह खूब कोसती रही, परंतु उसके कोसने में न तो तीव्रता थी, न घृणा, न कुटिलता। जो कुछ भी बक रही हो, उसके स्वर में उत्तेजना न थी—बल्कि एक स्थिरता और शांति थी।

तो भी उसके उद्‌गार का मुझ पर बड़ा असर पड़ा। मैंने इस विषय पर अनेकों आग उगलने वाली पुस्तकें पढ़ी हैं, और कुछ उस समय भी पढ़ी हुई थीं। परंतु जैसा असर उसके कहने का हुआ, उन पुस्तकों का न हुआ था। मरते हुये आदमी की वेदना जितनी तीव्र और स्वाभाविक प्रभाव डालने वाली होती है, उतना उस मृत्यु का वर्णन नहीं हो सकता—वह चाहे जितना अच्छा और चमत्कार-पूर्ण क्यों न हो।

मेरे मन में बड़ी ग्लानि थी। उधर शीत के कारण मैं और भी तंग था। मैं दाँत पीसने लगा और मेरे मुँह से धीमा कराहने का शब्द निकल पड़ा।

ठीक उसी समय मुझे जान पड़ा कि मेरे गले में दो छोटे-छोटे हाथ पड़े हैं। एक तो मेरी गर्दन को स्पर्श कर रहा था, दूसरा मेरे मुख को। एक प्रेमभरी मीठी वाणी में चिंता-पूर्ण भाव से नटाशा ने पूछा—

"तुम्हें क्या तकलीफ़ है ?"

मुझे एक क्षण के लिये यह विश्वास नहीं पड़ा कि यह स्वर उसी नटाशा का है, जो अभी अभी सभी पुरुष-जाति को चांडाल, हत्यारा, और भिखमंगा बताकर कोस रही थी, और पुरुषमात्र का सत्यानाश चाह रही थी। परंतु यह थी वही। जल्दी जल्दी कुछ उत्तेजित होकर कह रही थी।

"अरे, तुम्हें क्या तकलीफ़ है? सर्दी लग रही है! ठिठुरे जाते हो? अरे, तुम भी कैसे अनोखे आदमी हो, चुपचाप घुग्घू की तरह बैठे हो। मुझसे पहले ही क्यों न कहा कि ठंढ लग रही है। आओ, यहाँ ज़मीन में पैर फैला कर सो रहो। मैं भी यहीं तुम्हारे पास सोई जाती हूं। यह लो, अब ठीक है न? अपने हाथों को मेरे ऊपर रख लो, और कसकर! अब ठीक है न? अभी ज़रा देर में तुम गर्म हो जाओगे। फिर हम लोग पीठ से पीठ मिला कर सो रहेंगे। रात मज़े में कट जायगी, सच कहती हूँ, देख लेना। मैं पूछती हूँ—क्या तुम भी शराब पीते रहे हो? नौकरी से छुटा दिये गये हो क्या? ख़ैर, इसकी चिंता न करो।"

इस प्रकार वह मुझे ढाढ़स और सुख देती रही।

मेरे ऊपर भगवान का कोप हो!! इस ज़रा सी घटना में कितनी विडंबना भरी हुई थी, ध्यान देने की बात है! कहाँ मैं, समाज-शास्त्र और राजनीति-शास्त्र का विद्यार्थी, जिसका मस्तिष्क अनेकों कुटिल विद्वत्ता-पूर्ण ग्रंथों के अनुशीलन से फिर गया हो—ऐसे ग्रंथों से जिनकी गहनता स्वयं उनके लेखक-गण नहीं समझ सके।... मैं सामाजिक-पुनर्संगठन और राजनीतिक-क्रांति का स्वप्न देखने वाला आदमी। मैं जो यह समझ रहा था कि मैं भी कुछ हूं। इस संसार में बड़प्पन प्राप्त करने का मुझे भी अधिकार है। मैं भी ऐतिहासिक महत्व रखता हूं। आज मेरे शरीर को एक पतित, निस्सहाय, दुखिया स्त्री, जिसका कि जीवन में कुछ भी मूल्य नहीं है, अपने शरीर के संपर्क से गर्म कर रही है—ऐसी स्त्री जिसकी सहायता का मेरे हृदय में ध्यान भी न आया था। और यदि ध्यान भी आता तो मैं उसकी सहायता भी कैसे करता। वही मुझे आश्वासन दे रही थी, मेरे शरीर की रक्षा कर रही थी!

मुझे तो ऐसा जान पड़ता था कि मैं स्वप्न देख रहा हूं—एक दुःखद अप्रिय स्वप्न देख रहा हूं।

परंतु ऐसा विचार व्यर्थ था, क्योंकि मेरे ऊपर रह रह कर पानी की बूँदें टपक रही थीं और मेरी स्थिति की यथार्थता जता रही थीं। वह स्त्री मुझसे चिमटी हुई थी और उसकी गर्म सांस मेरे मुँह पर हवा कर रही थी। यद्यपि इसमें कुछ मदिरा की बू थी, तथापि मुझे अच्छी लगती थी।

बाहर वायु का गर्जन था; पानी बरस रहा था, लहरें टक्कर मार रही थीं। भीतर हम लोग एक दूसरे के आलिंगन में पड़े हुये भी सर्दी से कांप रहे थे। यह तो यथार्थ की बातें थीं, स्वप्न की नहीं। इस यथार्थ के ऐसा घोर स्वप्न भी किसी ने देखा होगा।

नटाशा बराबर कुछ न कुछ कहती जा रही थी—बड़े प्रेम और सहानुभूति के साथ, जैसा केवल स्त्रियों के लिये संभव है। बातें कर रही थी। उसके मीठे स्वर और दयापूर्ण शब्दों के प्रभाव से मेरे हृदय में एक आग सी उत्पन्न हो गई और इस आग में मैं ने अपने हृदय को पिघलते पाया।

मेरी आंखों से आंसू की धार बह रही थी। उसके जल से मेरे हृदय की बहुत सी संचित बुराइयां—मूर्खता, वेदना और पंक धुल गये। नटाशा मुझे आश्वासन देती रही।

"बस, बहुत हुआ, नन्हे आदमी! अपने जी को बहुत न दुखाओ! शांत हो! ईश्वर सब अच्छा ही करेगा। दूसरी जगह मिल जायगी तुम भी सुधर जाओगे फिर सब ठीक ही होगा।"

वह मेरे मुख को चूमती रही। कई बार उसने मेरा चुंबन लिया—कितना जलता हुआ चुंबन! मेरा उस पर अधिकार कुछ भी न था।

इससे पूर्व मुझे कभी किसी स्त्री से चुंबन न प्राप्त हुआ था। न वैसा चुंबन बाद ही में प्राप्त हुआ, बाद के चुंबनों का मुझे बड़ा अधिक मूल्य देना पड़ा, और उसके बदले मुझे कुछ भी न मिला।

"भले आदमी, क्यों इतने दुखी होते हो! तुम्हें कोई जगह न मिली तो मैं कल तुम्हारे लिये कोई प्रबंध कर दूंगी।" उसकी मंद, आश्वासन-पूर्ण वाणी मुझे स्वप्न में सुनी हुई आवाज़ की तरह प्रतीत होती थी।

इस प्रकार हम लोगों ने रात काट दी।

जब सवेरा हुआ तो हम डोंगी के नीचे से बाहर निकले और नगर में चले गये... इसके बाद हम प्रेम-पूर्वक विदा हुये। तब से फिर हम लोगों की भेंट न हुई। मैं ६ महीने तक कोने-कोने में उस नेक नटाशा को ढूंढता रहा, जिसके साथ मैंने यह न भूलने वाली रात काटी, परंतु उसका पता न चला।

मैं नहीं कह सकता कि नटाशा इस समय जीवित है। यदि वह मर चुकी हो, तो उसके लिये अच्छा है, तो उसकी आत्मा को शांति मिले! यदि वह जीवित है, तो भी मैं कहूंगा कि, उसकी आत्मा को शांति मिले।*

रामचंद्र टंडन

बंगीय रंगमंच
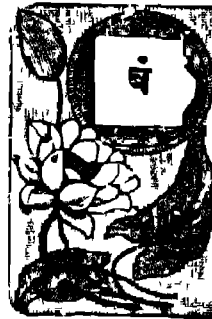
बंगाली लोग स्वभावतः बड़े साहित्यानुरागी और भावुक होते हैं। अपनी मातृ-भाषा पर उनकी बड़ी ममता है। उन्हें अपने साहित्य पर इतना अधिक गर्व है कि वह, एक प्रकार से, अवगुण बन गया है, उसके कारण उनमें संकीर्णता और प्रांतीयता आ गई है। यहां तक कि बंगाली नेता भी इस दोष से खाली नहीं हैं। उनकी भी यही धारणा है कि बंगला के समान उन्नत साहित्य किसी भारतीय भाषा का नहीं है, और बंगला ही सबसे अधिक मृदु-मंजु-मधुर भाषा है। भले ही कुछ अंशों में यह उनकी भ्रांत धारणा हो।

किंतु इस विवादास्पद विषय पर विचार करना इस लेख का उद्देश्य नहीं है। हां, इतना स्वीकार करने में किसी सहृदय को विशेष संकोच नहीं हो सकता कि उनका गर्व सर्वथा निराधार नहीं है। उसके मूल में कुछ तत्त्व अवश्य है।

यहाँ प्रसंगानुसार केवल नाटक का ही लीजिए, जो साहित्य का एक आवश्यक अंग माना जाता है। उसमें भी बंगालियों ने अब तक जैसी कुछ उन्नति कर दिखाई है, वह निस्संदेह प्रशंसनीय है। यहाँ बंगालियों के लिये अच्छे नाटक ग्रंथों की चर्चा अनावश्यक है।

* मैक्सिम गार्की की एक रूसी कहानी का अनुवाद।

उनसे हिंदी-प्रेमी बहुत-कुछ परिचित हैं। हाँ, उनका अभिनय-कौशल जिसने कभी देखा है, वह सहज ही कह सकता है कि नाट्य-कुशलता में वे दक्षिणी और गुजराती लोगों से अगर आगे नहीं बढ़े हैं, तो पीछे भी नहीं हैं।

दक्षिण-भारत में नाट्य-कला की ओर लोगों की अच्छी प्रवृत्ति है। लखनऊ के गत पंचम हिंदी-साहित्य-सम्मेलन के सभापति कविवर पंडित श्रीधर पाठक जी ने अपने भाषण में इसकी ख़ासी चर्चा की थी। बँगलोर सिटी से 'कर्णाटक-रंगभूमि' नाम का एक नाटक-संबंधी सचित्र मासिक-पत्र निकलता है। उसके देखने से भी यह पता चलता है कि सुदूर दक्षिण-भारत में भी नाटकाभिनय की ओर शिक्षित-समाज का झुकाव ख़ूब है। मराठी-भाषा के 'चित्रमय-जगत्' और 'मनोरंजन' नामक सचित्र मासिक-पत्रों में नाटकाभिनय-संबंधी अनेक चित्र निकला करते हैं— 'हिंदी चित्रमय जगत' के हिंदी-प्रेमी पाठक इससे अवश्य ही परिचित होंगे; क्योंकि उसमें मराठी-मंच के दृश्यों के चित्र प्रायः छपा करते हैं। कहने का तात्पर्य यह कि मराठे लोग भी नाट्य-कला-निपुणता प्राप्त करने में सोत्साह संलग्न हैं। पूना सिटी की कई रंगशालाओं में पठित-समाज की वैसी ही ख़ासी भीड़ होती है, जैसी कलकत्ते के बंगीय नाट्य-मंदिरों में प्रायः देखने में आती है। पूने की किर्लोस्कर संगीत नाटक-मंडली ने आज से कुछ वर्ष पहले उत्तर-भारत के प्रधान नगरों में भ्रमण कर यह दिखला दिया था कि महाराष्ट्र-अभिनेता हिंदी के नाटकों को भी बड़ी सफलता के साथ खेल सकते हैं। उस मंडली के कई हिंदी-अभिनय मैंने कलकत्ते के मिनर्वा थियेटर-मंच पर देखे थे। उसमें संगीतज्ञों और नाट्य-कलाविदों का अच्छा जमघट था। उनके गायन और नाट्य-नैपुण्य ने धूम मचा दी थी। क्या हिंदीवाले कभी हिंदी-प्रचार की दृष्टि से भी दक्षिण-भारत में अपनी कोई नाटक-मंडली ले गये हैं?

ख़ैर, किर्लोस्कर कंपनी से भी अच्छी नाटक-कंपनियाँ पूने में हैं, जिनके पात्र-पात्रियों का अभिनय-कौशल देखकर मन में यह अभिलाषा उत्पन्न होती है कि हिंदी का वह दिन कब आवेगा, जब कि इनके-जैसे दो-चार अभिनेता भी हिंदी के रंगमंच पर उतरेंगे। महाराष्ट्र के सुप्रसिद्ध नाट्याचार्य 'बालगंधर्व' की तो बात ही निराली है, सामान्य रीति से प्रसिद्ध किसी अभिनेता को भी पूने के रंगमंच पर अपने साहित्य की श्रीवृद्धि करते देखकर अनायास मन में यही भाव उठता है कि अपने साहित्य की गौरव-वृद्धि करने के लिये जिस प्रकार बंगालियों को कलकत्ता, गुजरातियों को बंबई और मराठों को पूना-जैसे विशाल उर्वर क्षेत्र मिले हैं, उसी तरह क्या हिंदीवालों को लाहौर, अमृतसर, दिल्ली, आगरा, जबलपुर, नागपुर, लखनऊ, कानपुर, प्रयाग, काशी, पटना आदि बड़े-बड़े जनाकीर्ण नगर नहीं मिले हैं। फिर क्या कारण है कि इन प्रमुख नगरों में कहीं भी कोई ऐसी हिंदी-प्रधान नाटक-कंपनी नहीं है, जिसकी तुलना उनसे की जा सके? क्या हिंदी-प्रेमी जनता में जीवन ही नहीं है, या साहित्य और संगीत-कला में अभिरुचि ही नहीं है, या हृदय में रसानुभूति का लेश ही नहीं है, या उन्होंने पारसी कंपनियों को ही इसका ठेका दे रखा है?

अफ़सोस! झीकते हुए कहना पड़ता है कि हम हिंदी-वालों में अभी वह जीवन की ज्योति ही नहीं जगी है, जिसके प्रकाश से हम अपने दृश्य काव्य-जगत को आलोकित कर सकें। मेरी इस निराशावादिता पर कुछ लोग हँसेंगे, और मेरी अज्ञानता को कोसेंगे भी; पर मैं उनसे विनयपूर्वक कहूँगा कि वे शांत-भाव से इस बात पर विचार करें। मैं मराठी, गुजराती और बँगला के रंगमंचों पर अच्छे-अच्छे अभिनेताओं के अभिनय बड़े ध्यान से देख चुका हूँ, और हर जगह मेरे हृदय में इस बात की घोर लज्जा और असह्य ग्लानि उत्पन्न होती रही है कि हिंदी के रंगमंच पर ऐसे अभिनेता क्यों नहीं दीख पड़ते। मुझे अत्यंत खेद के साथ कहना पड़ता है कि मराठी, गुजराती, बँगला आदि प्रांतीय भाषाओं के मुट्ठी-भर हिमायती जिस उत्साह और तत्परता से नाट्य-कला में सिद्धि प्राप्त करते जा रहे हैं, उसे यदि एक बार भी अपनी आँखे आजकल हिंदीवाले अच्छी तरह देख लें, तो उनका यह गर्व खर्व हो जाय कि हम राष्ट्र-भाषा-भाषी हैं— हमारे संख्या-बाहुल्य के सामने उन मुष्टिमेय प्रांतीय-भाषा-भाषियों की हस्ती ही क्या है!

जनाब! कितने शोक की बात है कि गुजराती भाषा की परम प्रसिद्ध पत्रिका 'बीसवीं सदी' में, 'गुजरात' में, 'स्वर्णमाला' में, 'श्रीदक्षिणामूर्ति' में गुजराती अभिनेताओं के अभिनय-कौशल के चित्र प्रकाशित हुआ करें, फिर

उसी प्रकार बँगला के 'शिशिर', 'वसुमती', 'बंगवाणी' आदि में भी बंगीय मंच के दृश्यों के चित्र छपें, और हमारी हिंदी की सर्व-श्रेष्ठ कहलाने वाली 'माधुरी', 'सरस्वती' आदि पत्रिकाओं में कभी भूले-भटके भी किसी हिंदी-मंच के दृश्य या किसी कुशल नाट्यकार का कोई चित्र देखने में न आवे! क्या हिंदी-संसार कुशल अभिनेताओं से शून्य है? क्या हिंदी-संसार के किसी रंगमंच पर आज तक ऐसा कोई सुंदर अभिनय ही नहीं दीख पड़ा, जिसका चित्र प्रकाशित किया जा सके?

हाँ, एकबार, 'हिंदूविश्वविद्यालय' शीर्षक सचित्र लेख में पंडित रामाज्ञा द्विवेदी, एम०ए० 'समीर' (वर्तमान 'कादंबरी'-सम्पादक) ने विश्वविद्यालय की छात्र-नाट्य-समिति के एकाध अभिनेताओं के चित्र 'माधुरी' में दिए थे। उसके सिवा मैंने और कभी किसी पत्र में किसी हिंदी रंग-मंच के दृश्य का चित्र नहीं देखा। लहेरियासराय के सचित्र मासिकपत्र 'बालक' में दिअरा-राज्य के बालक राजकुमारों का एक अभिनय-चित्र छपा था, पर उसमें कोई नाट्य-कौशल-संबंधी विशेषता न थी। संभव है, कहीं और कोई कभी प्रकाशित भी हुआ हो और मेरी निगाह से न गुज़रा हो, पर जहाँ तक मेरा अनुमान है, कहीं कोई छपा ही नहीं। शायद पं० माधव शुक्ल के महाभारत-नाटक (पूर्वार्द्ध) में 'क्रुद्ध भीम और चकित-स्तब्ध कौरव-सभा' के दृश्य का एक चित्र मैंने देखा था, और फिर काशी की नागरी नाटक-मंडली की सन १९२४ ई० की रिपोर्ट में भी दो-चार चुने दृश्यों के चित्र छपे देखे हैं।

किंतु, यह बात नहीं है कि हिंदी-नाटकों के अभिनयों के फ़ोटो लिए ही न जाते हों। फ़ोटो तो ज़रूर लिए जाते हैं—कई ऐसे फ़ोटो कई जगहों में मैंने ख़ुद देखे भी हैं, (खेद है कि इच्छा रहते हुए भी मैं उनमें से एक चित्र भी इस लेख में इस समय नहीं दे सका) पर सामयिक साहित्य-पत्रों में उनका प्रकाशन न होने से उस विषय की चर्चा फैलने नहीं पाती—आंदोलन नहीं हो पाता; सर्व-साधारण का ध्यान आकृष्ट नहीं होता; जनता की रुचि को तद्विषयक उत्तेजन नहीं मिलता। अतएव, साहित्य में नाटक का अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान समझकर, हिंदी के सचित्र पत्रों के सम्पादकों को चाहिए कि न केवल नाटक-संबंधी लंबे-चौड़े सिद्धांत-पूर्ण लेख ही छापकर संतुष्ट हो जायँ, बल्कि हिंदी की जो छोटी-मोटी या भली-बुरी नाटक-समितियाँ इस समय जिस-किसी अवस्था में वर्तमान हैं, उनके कुशल अभिनेताओं का सचित्र परिचय और चुने हुए उत्तम दृश्यों के चित्र प्रकाशित करें। इससे अभिनेताओं को विशेष प्रोत्साहन प्राप्त होगा, नाटक-मंडलियों की प्रसिद्धि होगी, जनता में नाटक के प्रति जो उदासीनता है, वह बहुत-कुछ धीरे-धीरे दूर होगी। सब से बढ़कर आश्चर्य और दुःख का विषय तो यह है कि हिंदी पत्रों में अनेक नये शीर्षकों और स्तम्भों की सृष्टि होती जा रही है; पर कहीं 'रंग मंच' के दर्शन नहीं होते। बँगला के सचित्र 'नाच-घर' अथवा 'कर्णाटक-रंगभूमि' की तरह हिंदी में आज तक कोई नाटक प्रधान पत्र भी नहीं निकला। नाटक की यह उपेक्षा निंदनीय है या दयनीय?

मैं ने लखनऊ के पंचम हिंदी-साहित्य-सम्मेलन के अवसर पर नाट्य-कुशल पं० माधव शुक्ल की प्रयागस्थ नाट्य-परिषद द्वारा अभिनीत 'सत्यहरिश्चंद्र' देखा था। उसमें स्वर्गीय पं० बालकृष्ण भट्ट के ज्येष्ठ सुपुत्र स्वर्गीय पं० महादेव भट्ट का किया हुआ 'पाप' का पार्ट और 'चांडाल' की भूमिका धारण करके अपने अत्यंत स्वाभाविक नाट्यकौशल से साहित्यिक-वृन्द को मुग्ध करने-वाले मुक्तिकाप्रसाद नामक नवयुवक (जो शायद अब इस संसार में नहीं हैं!) का पार्ट इतना सुंदर हुआ था कि आजतक वह दृश्य आँखों के सामने नाच रहा है। वे हमारे हिंदी के अनमोल लाल काल के गाल में चले गए, पर उनके उस नाट्य-कौशल की याद करते हुए किसी हिंदी पत्रकार की लेखनी ने आँसू की एक बूँद भी नहीं टपकाई। इसका क्या कारण है? शायद यही कि अभिनय-मंच से हटकर वे नेपथ्य के अंदर चले गए, बस साहित्य-संसार की आँखों से ओझल हो गए! क्या उनके अभिनय-कौशल को तालियाँ पीटकर उड़ा दिया गया? यही है साहित्यिकों की गुणग्राहिता अथवा इतिकर्त्तव्यता?

फिर, प्रयाग के षष्ठ हिंदी-साहित्य-सम्मेलन के अवसर पर पं० माधव शुक्ल की मंडली ने ही 'महाभारत' का अभिनय दिखाया था, जिसमें शुक्लजी का भीम का पार्ट और पं० रासबिहारी शुक्ल का दुर्योधन का पार्ट बड़े ग़ज़ब का हुआ था। हाँ, उपर्युक्त पं० महादेव भट्ट ने भी

धृतराष्ट्र की भूमिका में ख़ूब कमाल दिखाया था। मैंने बँगला के उच्च रंगमंच पर भी 'महाभारत' का अभिनय देखा है; पर कभी पं० रासबिहारी शुक्ल जैसा 'दुर्योधन' और भट्टजी जैसा 'धृतराष्ट्र' नहीं देखा। वह स्वाभाविकता आजभी हृदय-पट पर वैसी अंकित है—तनिक भी रंग फीका नहीं पड़ा है। किंतु, हिंदी के रेकर्ड में इस बात का कहीं पता भी है? सम्मेलन की रिपोर्ट में सफलतापूर्वक नाटक खेले जाने पर धन्यवाद दे देने ही से साहित्य का उपकार नहीं हो सकता। पं० रासबिहारी शुक्ल जैसे होनहार अभिनेता का नाम भुला देने से हिंदी-रंगमंच पर नाट्य-कला का कुछ विशेष गौरव नहीं बढ़ जायगा।

हिंदी रंग-मंच पर सफलतापूर्वक अभिनय करनेवाले वर्तमान साहित्यिकों में कुछ सज्जनों को मैं जानता हूँ। जैसे—हास्यरसावतार पं० जगन्नाथप्रसादजी चतुर्वेदी, श्रीयुत जी० पी० श्रीवास्तव, बी० ए०, एल्-एल्० बी०, पं० माधव शुक्ल, मनोरंजन-मूर्ति पं० ईश्वरी प्रसाद शर्मा * ('हिंदू-पंच'-संपादक), पं० सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' आदि। किंतु ऐसे प्रसिद्ध साहित्यिकों के किसी अभिनय का कोई चित्र भी आजतक कहीं हिंदी-पत्रों में देखने को नहीं मिला। क्या यह चिन्त्य विषय नहीं है?

कुछ सज्जन मेरे इस लेख को पढ़कर यही कहेंगे कि विषयानिरपेक्ष बातें लिखकर व्यर्थ ही छोटी-मोटी बातों को अनावश्यक महत्त्व दिया गया है। किंतु मैं स्वयं ऐसा नहीं समझता। मैं तो कहता हूँ कि छोटी-ही-छोटी बातों को अत्यधिक महत्त्व प्रदान कर बंगालियों ने अपने रंगमंच की शोभा और ख्याति बहुत बढ़ाली है। कभी कलकत्ते जाकर उनकी रंगशाला तो देखिए। कहीं द्विजेंद्रलाल राय, कहीं गिरीशचंद्र घोष, कहीं अमृतलाल बसु आदि के बड़े-बड़े तैल-चित्र मुख्य द्वार पर शोभायमान हैं। क्या आपके यहाँ भी कहीं भारतेंदु हरिश्चंद्र, पं० प्रतापनारायण मिश्र, राजा लक्ष्मणसिंह, लाला शालग्राम, लाला सीताराम, बाबू जयशंकरप्रसाद, पं० बदरीनाथ भट्ट, बी० ए०, आदि के चित्र एकत्र देखने को मिलेंगे? फ़ोटो ही सही—कहाँ, किस रंगशाला में? कोई ख़ास तौर से बनी हुई हिंदी की अपनी रंगशाला भी तो हो। मदन थियेटर कंपनी भले ही बेताबजी और जौहरजी जैसे प्रसिद्ध साहित्यिकों से मनोनुकूल हिंदी नाटक लिखवाकर पारसी-मंच उर्फ़ हिंदी-मंच पर लचक-मचक के साथ खेल ले; पर उसे भारतेंदु हरिश्चंद्र और पं० प्रतापनारायण को अपनी रंगशाला में सादर स्थान देने से क्या मतलब। उसे तो बुद्धुओं को बुलबुल बनाकर तोड़े ऐंठने हैं—चाहे हिंदी की हत्या हो या साहित्य का संहार।

सबसे बढ़कर दुःख का विषय तो यह है कि जिस कलकत्ते में कई हिंदी-प्रधान सुव्यवस्थित नाट्य-समितियाँ हैं, जहाँ हिंदी प्रेमी करोड़पतियों के गरोह बसते हैं, वहाँ भी हिंदी की अपनी रंगशाला नहीं है। ख़ैर, रंगशाला की बात छोड़िये। कलकत्ते में वहाँ के लगभग सभी हिंदी-नाटक-मंडली वाले प्रायः बँगला-नाटकों के अभिनय देखा करते हैं, पर वे भी वहाँ के पारसी थियेटरों के पात्रों का ही अनुकरण करते हैं—बँगला-रंगमंच की ख़ूबियों और बारीकियों पर शायद ध्यान नहीं देते। हाँ, पारसी-मंच की लचक-मटक का अर्क़ ख़ूब खींच लाते हैं। फिर स्वाभाविकता रह नहीं जाती। नौकरशाही जैसे 'न्याय का नाटक' खेलती है, वैसे ही वे 'नाट्य का नाटक' खेल लेते हैं।

किंतु, केवल वहीं के नहीं, और कई जगहों की हिंदी-नाट्य-समितियों के अभिनय में भी, मैंने पारसीपन की उत्कट गंध पाई है। कलकत्ते से काशी आने पर मुझे काशी की दो सुप्रतिष्ठित नाटक-मंडलियों के अभिनय देखने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है। यहाँ भी वही पारसी तर्ज़ देखा। हाँ, एकबार 'भारतेंदु-नाटक-मंडली' के दो तीन पात्रों का अभिनय-कौशल देखकर मेरे मन में यह भाव उठा था कि ऐसे होनहार अभिनेता यदि किसी बँगला-मंच पर उतरे होते, तो इतना प्रोत्साहन और उत्तेजन मिलता कि उन्हें नाट्य-कुशलता प्राप्त करने की धुन सवार हो जाती। किंतु हिंदी के साहित्यिक तो नाटकों का अभिनय देखना भी बहुत कम पसंद करते हैं। फिर वे उत्साही नवयुवकों की तत्संबंधी त्रुटियाँ क्या सुधारेंगे।

उदाहरण के तौर पर मैं काशी की नागरी-नाटक-मंडली को पेश करता हूँ। यह मंडली ख़ूब संपन्न है—आर्थिक अवस्था और व्यवस्था बहुत अच्छी है। यद्यपि कलकत्ता लक्ष्मी का लीलास्थल है, मारवाड़ी-कोटिध्वजों का क्रीड़ा क्षेत्र है, तथापि वहाँ की कोई हिंदी-नाटक-मंडली ऐसी

* शोक कि आप अब इस संसार में नहीं हैं!—संपादक

संपन्न नहीं है । जहाँ तक हिंदी की नाटक-मंडलियों का मैं पता पा सका हूँ, मुझे एक भी ऐसी सुसंपन्न मंडली नहीं मिली है । किंतु खेद है कि सब तरह के साधन होने पर भी मंडली के पात्रों का अभिनय अभी बहुत-कुछ त्रुटि-पूर्ण है । काशी में हिंदी के बड़े-बड़े धुरंधर साहित्यिक पुरुष रहते हैं, पर कोई इस पर ध्यान नहीं देता । यदि ऐसी पूँजीवाली सार्वजनिक नाटक-मंडली बंगालियों के हाथ में होती, तो वे कुछ करके दिखा देते । काशी में ही बंगालियों की जो नाटक-मंडली है, उसके अभिनय से मिलान करके देखने पर आप ही अंतर मालूम हो जायगा । तारीफ़ तो यह है कि जहाँ कहीं बंगाली रहते हैं, उनका एक गुट्ट-सा बँधा रहता है—ख़ासकर साहित्यिक विषयों में तो उन प्रवासी बंगालियों की सहयोगिता देखकर ईर्ष्या उत्पन्न होती है । लखनऊ उर्दू का क़िला है न ? वहाँ भी अमीनाबाद पार्क के एक कोने पर बंगालियों का एक संगीत-नाटक-समाज है ; और फिर पटना तथा प्रयाग में भी देखा । इतना ही नहीं, बंगाल से बाहर अन्य प्रांतों के स्कूलों और कालेजों के बंगाली-विद्यार्थी तक अपना अलग 'अमेच्युर क्लब' रखते हैं । ऐसे क्लबों की चर्चा मैंने कई बार बँगला के 'नाचघर' नामक नाटक-प्रधान सचित्र पत्र में देखी है ।

श्रीकृष्ण और द्रौपदी—

श्रीइन्दुभूषण मुखोपाध्याय और श्रीमती विभावती

आज से कुछ वर्ष पूर्व मैंने गया की समाधिगता 'लक्ष्मी' में नाटक-संबंधी एक साधारण लेख लिखा था, जिसमें हिंदी-संसार की अनेक नाटक-विषयक चर्चा थी । उसे पढ़कर मेरे कुछ साहित्यिक मित्रों ने बड़ी गहरी चुटकी ली थी । किंतु उससे मैं हतोत्साह अथवा हताश नहीं हुआ—इस विषय में, अवकाशानुसार, बड़ी दिलचस्पीसे छान-बीन करता रहा । जब 'मतवाला' की सेवा में रहते समय कलकत्ते के बँगला-रंगमंचों के दृश्य देखने का सौभाग्य प्राप्त हुआ, तब मैं इसमें और भी दिलचस्पी लेने लगा । किंतु, एक बार, निज संपादित 'मारवाड़ी-सुधार' के कार्य-वश बंबई जाने पर मैंने गुजराती रंगशाला में 'कादंबरी' का अभिनय देखा था, तो मन में यह बात बैठ गई थी कि इससे अच्छा अभिनय अब न देख सकूँगा । परंतु वंगीय रंगमंच पर 'कर्णार्जुन', 'सीता', 'बंग विजेता', 'आलमगीर', 'किन्नरी' आदि के अभिनय देखकर मेरी बद्धमूल धारणा शिथिल हो गई । अपनी छोटी समझ के अनुसार मुझे मन-ही-मन मान लेना पड़ा कि मराठों और गुजरातियों से बंगालियों का अभिनय-कौशल किसी प्रकार निम्न श्रेणी का नहीं है ।

आलमगीर—

श्रीशिशिरकुमार भादुड़ी, एम० ए०

कलकत्ते के मिनर्वा थियेटर में 'हिंदू-पंच'-संपादक श्रद्धेय पं० ईश्वरीप्रसादजी शर्मा (अब स्वर्गीय 'सम्पा०') के साथ, और उन्हीं के विशेष अनुरोध से बँगला-रंगमंच पर मैंने सब से पहला अभिनय प्रोफ़ेसर क्षीरोदप्रसाद विद्या-विनोद की 'किन्नरी' का देखा था। 'किन्नरी' के अभिनय में बड़ा आकर्षण था। फिर क्या, चस्का लगा। कई नाटकों के अभिनय देखे। इसी बीच स्टार थियेटर के रंगमंच पर श्रीअपरेशचंद्र मुखोपाध्याय के 'कर्णार्जुन' का अभिनय आरंभ हुआ। कलकत्ते के बँगला और अँगरेज़ी पत्रों में धूम-सी मच गई। कर्ण, अर्जुन, शकुनि, भीम, नियति, पद्मावती आदि के विशेषता पूर्ण स्वाभाविक अभिनय की भूरि-भूरि प्रशंसा होने लगी।

भीम—श्रीननि गोपाल मल्लिक

अर्जुन—श्रीअहीन्द्र चौधुरी

वास्तव में, जब 'कर्णार्जुन' देखा, तो अवाक् हो गया। श्रीनरेशचंद्र, बी० ए०, बी० एल० ने शकुनि की भूमिका में रंगमंच पर अवतीर्ण हो कर दर्शकों को मुग्ध कर दिया। उनका अभिनय सर्वश्रेष्ठ रहा। फिर श्रीतिनकौड़ी चक्रवर्ती ने कर्ण की भूमिका में बड़े ही गज़ब का कौशल प्रदर्शित किया।

लोग चित्र-लिखे-से रह गये। हाँ, श्रीअहींद्र चौधुरी ने भी अर्जुन के पार्ट में ख़ूब निपुणता दिखाई। मैंने देखा, वीरता के आवेश में उनके तमतमाये हुए चेहरे की उभड़ी हुई नसें साफ़ खिंची हुई देख पड़ती थीं मानों 'रन-रस-बिटप पुलक मिस फूला।' जिस समय भगवान श्रीकृष्ण ने उन्हें अभिमन्यु-वध की याद दिलाई, उस समय उन्होंने ऐसा सुन्दर नाट्य प्रदर्शित किया, मानों किसी ने सुप्त मृगेंद्र को ठोकर मारकर जगा दिया, भीषण भुजंग को छेड़कर ललकार दिया। वह उनका क्रोध कंपित कलेवर, वह शौर्य तेजोदीप्त मुखश्री आज तक मानो आँखों के सामने फिर रही है। पुन... के भुजदंडों की तनी हुई शिराएँ, उनका फूत्कार-पूर्ण सामर्ष अधर-दशन, उनके स्फुलिंगमय नेत्र, उनका गुरु-गदा-परिचालन देखकर कौन ऐसा पुरुष था, जो अपने स्थान पर बैठे-ही बैठे क्रोध से काँप न उठा हो। भीम की भूमिका में श्रीनमिगोपाल मल्लिक उतरे थे।

द्रौपदी—श्रीमती चित्रावती

नियति (भाग्य) श्रीमती नीहारबाला

किंतु नीहारबाला नाम की अभिनेत्री ने 'नियति' की भूमिका में जो कमाल दिखाया, वह दर्शक-मंडली के चित्त पट पर अमिट रंगीन रेखा की तरह खिंच गया। उसकी स्वाभाविक एवं मर्मतलस्पर्शिनी किंतु पवित्र और कारुण्य पूर्ण भावभंगियों ने रंगशाला में जादू की लहर उमड़ा दी। ख़ासकर उसका यह निम्नलिखित गान और उस समय का उसका नाट्य-नैपुण्य – अहा! जिसने सुना और देखा है, उसी का हृदय अनुभव कर रहा होगा कि रंग-शाला की उस पाषाण-रेखा 'नियति' के विकट-दारुण हास्य में भी निष्ठुर परिणाम को छिपानेवाली कैसी मनोज्ञ मधुरिमा थी। ख़ैर, उस रहस्य की पुतली "दैवायत्तं कुले जन्म, ममायत्तं तु पौरुषं" कहनेवाले कर्ण के पीछे लगी फिरनेवाली उस

निर्ममता की मूर्ति का यह दर्शक-वृंद-विमोहक गीत सुनिये—

काल प्रवाह चले धीरे-धीरे ।
जीवन मरण छाया भासे कारण-नीरे ॥
कभू कुसुम-वितान ,
कुहु-कुहु पाखी करे गान,
रोदन ध्वनि कभू छाय गगन घिरे ।
हास-हासे, कभू शिहर तरासे,
उन्मादिनी घेरे फिरे अकूल तीरे ॥

रंगशाला में अवतीर्ण होते ही उसका सबसे पहला गीत कितना सुंदर और कैसा भावपूर्ण है—

आमाकि न नो। कोन गई नाइक ठिकाना ।
थाका साथ-साथे, पथे कि विपथे,
चिरदिन अचेना अजाना ।
ललाट-पटे कालेर रेखा ,
अदेय आखर रहि गो लेखा ,
नाहीं नाम धाम, चला अविराम ,
पड़े रहे पाछे स्मृतिर निशान ॥

कलकत्ते में 'कर्णार्जुन' की तूती बोल गई । शकुनि और नियति के अत्यंत स्वाभाविक नाट्य-कौशल तथा कर्ण और अर्जुन के लोमहर्षण वीरोचित अभिनय ने बंगाल के कोने-कोने से दर्शक खींच मँगाए । कलकत्ते के प्रसिद्ध अँगरेज़ी दैनिक "The Servant" ने लिखा था—

"In dealing with the characters of the play, the first to deserve notice is that of Shakuni. It is a most important character in the Mahabharata and Mr Naresh Chandra Mitra, B. L, who appeared in the role of Shakuni, left nothing to be desired in representing the part in a masterly way Karna and Arjun respectively deserve to be mentioned next and it is difficult to say who was the better of the two"

फलत कलकत्ते में मेरे रहने समय तक कर्णार्जुन के लगभग तीन सौ अभिनय लगातार हुए । प्रत्येक सौवें अभिनय की रात्रि में बड़े समारोह से किसी प्रसिद्ध साहित्य-महारथी की अध्यक्षता में विराट साहित्यिक महोत्सव मनाया जाता था । प्रथम-शताभिनय-रजनी

द्रौपदी चीर-हरण

महोत्सव खूब धूमधाम से सफल हुआ था। स्वर्गीय देशबंधु चित्तरंजन दास ने सभापति का आसन ग्रहण किया था। बड़े-बड़े नाटककार और अभिनय-कुशल साहित्यसेवी आमन्त्रित किए गए थे। अहा! कैसा उत्साह था, कैसी शोभा थी! व्यवसाय के साथ साहित्य का सुखद सम्मिश्रण और उसमें ऐसी विजय-गर्वोल्लास-भरी सफलता! धन्य बंगालियों का साहित्यानुराग!

इस प्रकार, इधर 'कर्णार्जुन' की धूम 'स्टार थियेटर' में थी, उधर 'मनोमोहन-नाट्य-मंदिर' में 'सीता' की। यहाँ तक कि एक प्रकार से दोनों थियेटरों में होड़-सी लग गई। जो दर्शक दोनों ही के अभिनय देख चुके थे, उनके लिये किसी-किसी दिन यह निर्णय करना बड़े असमंजस का काम हो जाता था कि, दोनों में से किसे देखने जाया जाय। कारण, 'सीता' की प्रसिद्धि भी पराकाष्ठा को पहुँच गई थी। श्रीशिशिर कुमार भादुड़ी की 'राम' की भूमिका, श्रीमती प्रभा की 'सीता' की भूमिका और श्रीमनोरंजन भट्टाचार्य की 'वाल्मीकि' की भूमिका में वस्तुतः इतनी स्वाभाविकता एवं आकर्षण-शक्ति थी कि लोग बेतरह लट्टू हो रहे थे। एक बार, कलकत्ते के सुप्रसिद्ध अँगरेज़ी-दैनिक 'अमृत बाज़ार पत्रिका' ने अपने 'Behind the screen' नामक स्थायी स्तंभ में लिखा था—"Ram" is one of the greatest achievements of Mr. Bhaduri satisfying even the most exacting critic and we believe and believe strongly that in "Ram" stage-goers have undoubtedly seen something the like of which can rarely be met with. Next in importance is Manoranjan Babu's 'Balmiki' which has already left a very lasting impression on the theatre-goers and has won from them the unequivocal praise for the Artist Miss Prabha in her

राम और सीता-पुत्र लव

राम—शिशिरकुमार भादुड़ी

लव—श्रीजीवनभूषण गंगोपाध्याय

famous role of "Seeta" has got greatest attraction and brilliant success.

फिर 'नाच-घर' के एक अंक में श्री देशबंधु दास की यह अमूल्य सम्मति प्रकाशित हुई थी—

"आमि आमार कयेकजन अंतरंग बंधुर मुखे शुनिया छिलाम जे श्रीमान् शिशिरकुमार भादुड़ी जगतेर श्रेष्ठ अभिनेता देर मध्ये अन्यतम। आज आमि रामेर भूमिकाय ताँहार अभिनय देखिया बूझिते पारिलाम जे ताँहारा अति सत्य कथाई बलिया छिलेन। रामेर भूमिकाय ताँहार अभिनय अपूर्व हइया छे। आमि पूर्वे साधारण रंगमंचे जे सकल अभिनय देखियाछि से अभिनये अप्रधान चरित्रगुलि कोनउ दिनई आमार दृष्टि आकर्षण करिते पारे नाई किंतु शिशिरकुमारेर सम्प्रदायेर एई अभिनयेर अप्रधान अंशगुलिर अधिकांशई आमाके मुग्ध करिया छे। सीतार चरित्रे जे अभिनेत्री अवतीर्ण हइया छिलेन शिशिरकुमारेर सहित तुलनाय ताँहार अभिनय अनेक निरेश हइलेउ साधारण रंगालयेर अभिनेत्रीदेर तुलनाय ताँहार अभिनय श्रेष्ठ उ सुंदर हइया छे मञ्चेर उपर अभिनय आमार एत भाल लागिया छिल जे आमार शरीर अस्वस्थ थाका सत्त्वेउ अभुक्त अवस्थाय शेष पर्यन्त ना देखिया फिरिते पारिनाई।"

श्रीयुत बाबू सुरेंद्रनाथ घोष (दानी बाबू)

जिस दिन 'सीता' के प्रथम उद्बोधन-अभिनय का आरंभिक महोत्सव था, उस दिन बंगाल के वृद्ध-वसिष्ठ नाट्याचार्य श्रीअमृतलाल वसु ने कहा था—

"सारा जीवन धरे आमि एइ कलार साधना करे एसेछि, शेषे आमार एइ वृद्ध वयसे नाट्य-कलार एइ अवनति देखे अत्यंत दुःखेर सगे आमाके एइ पृथिवी थेके विदाय निते हच्छिल। किंतु आज जाँरा बाँगलार नाट्यशिल्पे नवयुग एने छेन—आर्ट थियेटरे जाँरा अभिनय करछेन (दानी बाबू), एवं विशेष करे शिशिर बाबु ई एइ नव-युगेर प्रवर्त्तक। जे व्यथा निये आमार इहलोक थेके विदाय निते हच्छिल से वेदना थेके एँरा आमाय मुक्ति दिये छेन। आमि भाव छिलुम, ईश्वर कि आमाके रंगालयेर एइ हीन अवस्था देखबार जन्य जीवित रेखे छेन! किंतु आज आमि मुक्तकंठे स्वीकार करछि, एँरा आमाय से आशंका थेके मुक्ति दिये छेन।"

कहाँ तक प्रशंसात्मक सम्मतियाँ उद्धृत करूँ! भादुड़ी महाशय को 'राम' की भूमिका में जिसने नाट्य करते देखा है, वही उनके उस अविरल अभिनय का आनंद अनुभव कर सकता है। वर्णनात्मक शब्दों अथवा स्तुति-पूर्ण उद्धरणों द्वारा उस आनंद का प्रकृत अनुभव कराना असंभव है। उनकी नाट्य-पटुता ने बंगीय-रंग-मंच पर युगांतर उपस्थित कर दिया है। उनमें दर्शक के कानों और आँखों को एक कर देने की अद्भुत क्षमता है। 'राम' की भूमिका में वह सहृदय दर्शक की भावुकता के अंतस्तल तक पैठ जाते हैं। उसे ऐसा आत्मविस्मृत कर देते हैं कि, वह कोई उनका अभिन्न मित्र ही क्यों न हो, उन्हें आदर्श महापुरुष श्रीरामचंद्र समझने के सिवा कभी भादुड़ी के रूप में नहीं याद रख सकता। तभी तो वह बंगीय रंग-मंच पर नवयुग-विधायिनी क्रांति की सृष्टि करने में समर्थ हो रहे हैं।

किंतु केवल 'राम' ही की भूमिका में नहीं, अन्य अभिनयों में भी भादुड़ी महाशय एक-सा कमाल दिखाते हैं। गत वर्ष 'अमृत-बाज़ार-पत्रिका' ने लिखा था—

"But the greatest attraction that is in store for Calcutta is Ravindra Nath's 'Bisarjan', Mr

Bhaduri playing the role of 'Raghupati' In this role the audience is sure to see something which is only possible in Mr Bhaduri and him alone."

फिर, बँगला की प्रभावशालिनी पत्रिका 'आत्मशक्ति' ने भी, एक दूसरे नाटक के अभिनय के विषय में, लिखा था—"गत शनिवार 'अज्ञातवासेर' अभिनये शिशिर-कुमार (भादुड़ी) ताँर शक्तिर आर एक नूतन परिचय दिये छेन। से दिन भीम, बृहन्नला ओ ब्राह्मण—नाटकेर एइ तिन टि कठिनतम ओ संपूर्ण परस्पर विरोधी भूमिकाय अवतीर्ण हये 'नवयुगेर एइ श्रेष्ठ नट' जे अपरूप अभिनय कारूर विकाश देखियेछेन ता हृदय दिये अनुभव ओ उप-भोग करबार जिनिश।"

कहाँ तक उद्धरण देकर बताऊँ। मेरे पास ऐसी प्रशंसा-त्मक संमतियाँ काफी संग्रहीत हैं, जिन्हें पढ़कर बंगालियों के साहित्यानुराग पर ईर्ष्या उत्पन्न होती है। यहाँ मैंने केवल भादुड़ी महाशय के विषय में ही लोकमत उद्धृत किया है, जो आधुनिक वंगीय रंगमंच के नूतन रत्न प्रदीप

आल्हाद (दानी बाबू)

है। यदि यहाँ प्रसिद्ध बंगला नाटककार स्वर्गीय श्रीगिरीश चंद्र घोष के सुपुत्र श्रीसुरेंद्रमोहन घोष (दानी बाबू) की प्रशंसाओं का भी उल्लेख करूँ, तो लेख का अनावश्यक विस्तार हो जायगा। दानी बाबू वंगीय रंगमंच के लब्ध-कीर्ति प्राचीन अभिनेता हैं, और अनेक वर्षों के पश्चात् उन्होंने अपने एकांत कीर्तिक्षेत्र में भादुड़ी जैसे सफल प्रतिद्वन्द्वी को अवतीर्ण होते देखा है। दानी बाबू जिस समय रंगमंच पर अवतीर्ण होते हैं, उस समय दर्शक भित्ति-चित्र से बन जाते हैं। उनके चेहरे पर प्रसंगानुकूल भावों का चमत्कारपूर्ण परिवर्तन देखते ही बनता है। उनकी नायकता भी दर्शकों को नतजान कर छोड़ती है। उनकी वीरता का अभिनय ऐसा रोमांचकारी होता है कि सहृदय दर्शक पनस-फल बन जाते हैं। वृद्ध होने पर भी वह अपने वीरोचित सम्भाषण और गर्जन से रंगभूमि को प्रकम्पित कर देते हैं। कहीं-कहीं उनके अभिनय में स्वाभाविकता की इतनी अति-शयता हो जाती है कि उसके मर्म को न समझने-वाला साधारण श्रेणी का दर्शक पारसी रंगमंच का शौक़ीन झुँझला उठता है। ऐसा मैंने स्वयं देखा है।

भय (दानी बाबू)

किंतु बँगला की नाट्यशालाओं में ऐसा अमर्मज्ञ दर्शक प्रायः भावुक और मुग्ध दर्शकों के लिए कंटक-स्वरूप हो जाया करता है, क्योंकि वह अपनी अज्ञता-जनित व्याकुलता से उनकी तल्लीनता में बाधा पहुँचाता है, और कभी-कभी भाव-विभोर बंगालियों से 'खोट्टा' (Up country man) का ख़िताब भी पा लेता है!!

सुनता था, अँगरेज़ लोग नाट्यकला में बड़े प्रवीण होते हैं। कला (Art) की दृष्टि से उनका अभिनय बड़े महत्व का होता है। किंतु, एक बार कलकत्ते के 'ग्रैंड-ओपेरा-हाउस' (ग्लोब थियेटर) के रंगमंच पर एक नवागत विलायती कंपनी द्वारा अभिनीत "सीता" (The Queen of the East) का ही अभिनय देखकर मैं यही निष्कर्ष निकाल सका कि यह बँगला रंगमंच की "सीता" के पासंग-बराबर भी नहीं है। उस अभिनय में 'मतवाला'-संपादक सेठजी और 'मतवाला'-मंडल के अन्यतम सदस्य मुंशी नवजादिकलालजी श्रीवास्तव भी गये थे। उन लोगों ने भी यही कहा कि 'दूर के ढोल सुहावने होते हैं'। उसमें Patrick O'Donnell ने 'राम' का और Rita Ainseley ने 'सीता' का पार्ट किया था। मालूम नहीं, भारतीय-आदर्श को यथातथ्य प्रदर्शित करने की यथेष्ट क्षमता न रखने पर भी किस साहस से वे लोग सात समुद्र पार कर पाश्चात्य जगत की कला-मर्मज्ञता का जौहर दिखाने आये थे। उनसे तो कहीं अच्छा, बल्कि इतना अच्छा कि पटतर देना व्यर्थ है, एक बार, कलकत्ते के अल्फ्रेड थियेटर में, अंध-बधिर विद्यालय के नेत्र-हीन छात्रों ने "मेवाड़-पतन" का अभिनय किया था। उपर्युक्त 'मतवाला'-मंडलाधीशों के साथ मैं भी अंध-अभिनेताओं के उस अभिनय में गया था। वास्तव में यह परखना कठिन था कि अभिनेता अंधे हैं या आँखवाले। बड़े ही कौशल से, सराहनीय सफ़ाई के साथ, अभिनय सफल हुआ। एक प्रहसन भी अभिनीत हुआ। वह तो ऐसा सुशिक्षा-पूर्ण, मनोरंजक और विशुद्ध था कि वैसा निर्दोष प्रहसन हिन्दी-रंगमंचों पर शायद ही देखने में आता है। क्यों न हो, जहाँ विश्व-कवि रवींद्रनाथ स्वयं सपरिवार रंगमंच पर अवतीर्ण होकर अपने साहित्य की गौरव-वृद्धि करते हैं, वहाँ के अंधे अभिनेता भी अगर कमाल दिखायें, तो कोई अचम्भे की बात नहीं।

किंतु हमारे यहाँ—हिन्दी-समाज में—अभिनेता होना बड़ी लज्जा की बात है। जो नाटकों में अभिनय करने में जितनी ही अधिक दिलचस्पी लेता है, वह उतना ही बड़ा आवारा समझा जाता है। काशी की जिस नागरी नाटक-मंडली की चर्चा हम ऊपर कर चुके हैं, उसके पास सम्पत्ति और सामग्री की कमी नहीं है, पर इसके सदस्यों से मुझे मालूम हुआ है कि उसे अच्छे अभिनेता बहुत कम मिलते हैं, और जो काम-चलाऊ मिलते भी हैं, वे अपने घर वालों और पड़ोसियों के धिक्कार-फटकार से घबराकर नाट्यकला का नियमित अभ्यास नहीं कर पाते। यदि उन्हें अवसर और उत्साह मिलता, तो अपना शौक़ पूरा करने के साथ-साथ वे अपने साहित्य और स्वदेश का बहुत-कुछ उपकार करते। यही हाल प्रायः सभी हिंदी नाटक-मंडलियों का है। ख़ास कर 'फ़ीमेल पार्ट' करने के लिए तो बहुत ही कम पात्र मिलते हैं। मूँछ मुड़ा कर अभिनेत्री बने कि 'गुंडा' प्रसिद्ध हुए!! साड़ी पहन कर रंग-मंच पर उतरना क्या है, मानो राह-चलतों को भी आवाज़ कसने का मौक़ा देना है! न जाने हिंदी-समाज के लोगों के विचार इतने भ्रष्ट और पतित क्यों हो गये हैं! केवल नाटक में पार्ट करने से ही कोई युवक या छात्र बदमाश निकल जायगा या पढ़ना-लिखना छोड़ कर मटरगश्ती करने लगेगा, यह धारणा हिंदी-समाज में ऐसी बद्धमूल हो गई है कि हिंदी की कितनी ही नाटक-मंडलियाँ, अन्य सब साधनों से सम्पन्न होकर भी केवल सुयोग्य अभिनेताओं के अभाव से, अपनी भाषा, अपने साहित्य, अपने समाज और स्वदेश का कुछ हित नहीं कर पातीं।

बंगाल रंगमंच पर तो 'फ़ीमेल पार्ट' करने-वाली वेश्याएँ भी बड़े आदर की दृष्टि से देखी जाती हैं। बँगला की प्रसिद्ध अभिनेत्री 'तारा सुंदरी' जिस समय कोई प्रधान पात्री बनकर स्टेज पर आती है, कोई उसे वेश्या नहीं कह सकता। यहाँ तक कि पुरुष की भूमिका में उतरने पर उसे परखना कठिन हो जाता है। फ़ीमेल-पार्ट में तो बूढ़ी होने पर भी रंगमंच पर दीपक की तरह बलने लगती है। उसके अभिनय-कौशल की प्रशंसा करते बंगाल के बड़े-बड़े प्रतिष्ठित पत्र नहीं अघाते। उसका चित्र छापने में भी किसी को संकोच नहीं होता। कभी किसी को यह कहने का अवसर नहीं मिलता कि वेश्या से आदर्श देवी का पार्ट

क्यों कराया जाता है । भादुड़ी महाशय (राम) के साथ जब मिस प्रभा सीता के वेश में रंगमंच पर आती है, तब कोई घोर छिद्रान्वेषी भी नहीं कह सकता कि वह वेश्या है । उसकी मंजुल मुखश्री, शांत भाव-भंगिमा, विमल नेत्र-कांति, सरल गंभीरता, मृदु मंद-मुस्कान, मंथरगति और मधुर वाणी—सब कुछ 'सीता' के आदर्श के रंग में शराबोर होता है । उसे वेश्या-रूप में पहचानने वाला भी अभिनय के समय उसे प्रत्यक्ष 'सीता' के रूप में ही देखता है । क्यों न देखे, स्वाभाविकता और आदर्श के पीछे जब स्वयं अभिनेत्री अपने व्यक्तित्व को भूल जाती है, तो फिर सहृदय दर्शक कैसे मुग्धमान हुए बिना रह सकता है । पारसी थियेटर की मिस पुटी भी तो 'सीता' की भूमिका में कलकत्ते के अल्फ्रेड-करिंथियन रंगमंच पर उतरती है । नेपथ्य से रंगमंच पर आते-आते तक न जाने कितनी बार उसकी कमर बल खा जाती है । प्रत्येक 'प्रस्थान' और 'प्रवेश' में वह क़लह-रंची लचक-मटक दिखाती है कि कितने ही छापा-तिलकधारी रामभक्तों का ईमान डोल जाता है । बड़े-बड़े धर्मात्मा सेठ भी आर्चेस्ट्रा मे बैठे ही बैठे ऐंठने लग जाते है । उसकी एक-एक चंचल चितवन मे सीता के आदर्श की हत्या और हर-एक मनहर मुस्कान में राम की मर्यादा की अवहेलना होती है ।

और, वहा के राम भी बड़े रसीले होते है। नेपथ्य की ओर जाते समय ऐसी तिरछी निगाहों के साथ सीता को अपनी लटपटी गलबाहियों मे समेट लेजाते है कि तालियों की गड़गड़ाहट के मध्य उन्हे बारबार 'प्रस्थान' और 'प्रवेश' करना पड़ता है । कहिये, कहां छमाछम और कहा आदर्श ! क्यों न समझदारों को इस बात का एतराज़ हो कि वेश्याओं से देवियों के पार्ट न कराये जायँ ? रंगमंच तो वास्तविकता, स्वाभाविकता और आदर्श के प्रकृत प्रदर्शन का स्थान है, यारों के फँसाने का शिकारगाह नहीं । अपने हुनर और नखरे का इश्तहार चिपकाने के लिए पोस्टर-बोर्ड नहीं । किंतु इसे समझे कौन ? हमारे समाज की जनता ही ऐसी बुद्धू है कि नाटक को

श्री दुर्गादास बंद्योपाध्याय
(दुःशासन की भूमिका में)

वेश्या-नृत्य की तरह सिर्फ़ दिलबस्तगी का एक सामान समझती है । ख़ैर, ख़ास तौर से इस विषय पर फिर कभी लिखूँगा । प्रकरणवश यहाँ इतना लिख देना ज़रूरी था ।

आशा है, इस लेख को पढ़कर नाटक-प्रेमी सज्जन टुक विचार करेंगे और बंगालियों के नाटक-प्रेम से कुछ सबक़ भी सीखेंगे । हमारी तो ईश्वर से यही प्रार्थना है

द्यूत क्रीड़ा का दृश्य

कि नाटक-जैसे साहित्य के उत्तमांग पर हम हिंदी वालों का पूर्ण अनुराग और श्रद्धा हो। साथ ही पत्र-संपादकों से प्रार्थना है कि जब तक हिंदी में ख़ास तौर से कोई नाटक-संबंधी पत्र नहीं निकलता, तब तक प्रधान एवं प्रसिद्ध पत्र-पत्रिकाओं में इसके लिए वे कृपा करके विशेष स्तंभ निश्चित कर दें, या एतद्विषयक सचित्र अचित्र लेख-संवादादि को प्रश्रय दिया करें, ताकि इस विषय के हर एक बाजू पर सदा प्रकाश पड़ता रहे। एवमस्तु।

शिवपूजन सहाय

मेघ

(१)

कौन तुम सुकुमार श्यामल कनार बांध ,
झूमते गगन पथ पर धन्त्र-धार से ,
सुंदर सलिल बिंदु बनकर आते छूट ,
तृषिता वसुंधरा की व्याकुल पुकार से।
ललित लता बदन धोकर हज़ार बार ,
कवि का मलार राग सुन अति प्यार से ,
कोमल कुसुम हार से बिखर जाते तुम ,
हे जलद जाल ! कैसे मारुत प्रहार से ?

(२)

एक ओर मेघदूत बन रति आगन में ,
मौज से बरसते मदन रूप धर कर ;
एक ओर विधवा विलोचन में छिप-छिप ,
गर्म-गर्म आंसुओं से करते हृदय तर।
एक ओर स्वर्ग तज गिरि प्राण से बहक ,
तुम बह जाते आप बन सिंधु की लहर
एक ओर विद्युत की मद मुसुकान छोड़ ,
झरते अझोर तुम झर-झर-झर झर।

(३)

सरल तरंगिणी तरंग अंग पर लेट ,
छल छल जल वेग लीन है लगन में ;
कूदते कुरंग उड़त विहग खेल खुन ,
नाचते दिगंबर मयूर मधुबन में।
छाई है बहार रसमय नवयौवन में ,
मदिरा भरी है माधुरी की चितवन में ;
बरसो सघन घन ! बरसो सुजान श्याम !
भाव भर दो नवीन भोग में भजन में।

"गुलाब"

वाल्मीकीय रामायण का सार

(रामचरित मानस के पाठकों के लिये)

हमारे देश में आजकल गोस्वामी तुलसीदास की रामायण का उचित ही अच्छा प्रचार है। फिर भी रामचन्द्र की सबसे पुरानी कथा महर्षि वाल्मीकि ने ही सातवीं शताब्दी सवत पूर्व में, आज से प्रायः २६००वर्ष पहिले, लिखी थी जो 'आदि काव्य' कहलाती है। महर्षि वाल्मीकि – व्याकरणाचार्य पाणिनि तथा भगवान बुद्ध के पूर्ववर्ती थे । इन्हीं बातों से इनके रामायण का समय विचारा गया है । पंडित-समाज में यह दृढ़तापूर्वक माना जा चुका है । महर्षि वाल्मीकि इक्ष्वाकु-वंशी किसी राजा के यहां रहते थे । यह वाल्मीकि राम के समकालीन वाल्मीकि से इतर थे। पंडितों का मत है कि वाल्मीकीय रामायण में बाल तथा उत्तर कांड न थे, और इन्हें तीसरी शताब्दी सवत पूर्व के किसी पंडित ने जोड़ा । असली रामायण में प्रतिमा-पूजन और अवतार का कथन नहीं है । रामायण के देखने से पंडितों ने तात्कालिक इतिहास का भी बहुत कुछ पता लगाया है। इन विचारों का सारांश हम अपने भारतवर्षीय इतिहास में लिख चुके हैं। रामायण के देखने से तात्कालिक भारतीय सभ्यता का जो पता लगता है, उसका भी दिग्दर्शन हमारे इतिहास ग्रंथ में हो चुका है । अनेकानेक भारतीय स्थानों नदियों, पहाड़ों आदि के प्राचीन नाम इस ग्रंथ में हैं । इनके वर्तमान नाम जानने के लिये पंडितों ने प्रचुर श्रम करके एक ऐतिहासिक भारतीय भूगोल का कोष बनाया है जिससे रामायण तथा इतर प्राचीन ग्रंथों के भौगोलिक नामों का अच्छा पता लगता है । फिर भी कहीं कहीं संदेह भी रह जाता है, यहां तक कि लंका तक के विषय में संदेह है। बहुत से पंडित लंका को वर्तमान सीलोन मानते हैं, किंतु कुछ लोगों का यह भी विचार है कि लंका कोई और द्वीप या अथवा मध्य-भारत में कोई स्थान था । इन बातों पर कोई वाद-विवाद न उठाकर इस लेख में हम वाल्मीकि-कृत रामायण की कथा के केवल उन भागों का संक्षेप देते हैं जिनका जानना तुलसीकृत रामायण पढ़नेवालों के लिये रुचिकर हो सकता है । इसीलिये कथा के रूप में कुछ न कहकर हम घटनाएँ मात्र अपने लेख में यहां पर लिखना उचित समझते हैं।

१ बालकांड (७८ अध्याय)

भरद्वाज वाल्मीकि के शिष्य थे । नारद ने वाल्मीकि को रामायण संक्षेप से सुनाई । दशरथ के आठ मंत्री थे (अ० ७)। दशरथ ने अश्वमेध तथा पुत्रेष्टियज्ञ ऋष्य-शृंग से कराया । उधर देवताओं ने ब्रह्मा से रावण-कृत कष्ट का वर्णन किया और विष्णु ने अवतार लेना स्वीकार किया। ॥) पिंड कौशल्या को मिला, ।=) सुमित्रा को तथा =) कैकई को। ब्रह्मा की आज्ञा से देवताओं ने वानर भालु होकर जन्म लिया । राम तथा भरत पहिले दिन हुए और लक्ष्मण एवं शत्रुघ्न दूसरे दिन । विश्वामित्र ने राम को दशरथ से तुरंत न पाने पर क्रोध किया । ताड़का सुंद की स्त्री तथा मारीच, सुबाहु की मां थी । सुंद के मरने पर उसने अगस्त्य ऋषि से ब्याह करना चाहा और इनकार पर उन्हें खाने दौड़ी । तब उन्होंने शाप देकर उसे राक्षसी कर दिया । युद्ध में लक्ष्मण ने उसकी नाक तथा कान काटे । कारण यह था कि स्त्री समझकर राम उसे मारना नहीं चाहते थे, वरन् डराकर भगा देना उचित मानते थे। जब नाक-कान कटने पर भी वह लड़ती ही रही और महर्षि विश्वामित्र ने हठ किया अथच विरोचन की पुत्री मंथरा तथा भृगु की स्त्री के मारे जाने का उदाहरण दिया तब राम ने विवश होकर ताड़का को मारा। उसे ६०००० हाथियों का बल था सो अबला न होकर वह वास्तव में प्रबला थी। इस संकोच से रामचंद्र का भी महत्व सूचित होता है कि ऐसी सबला को भी वह अबला मानते थे । ताड़का के यहां से चलकर राम ने अदिति का आश्रम देखा जिसका नाम सिद्धाश्रम है। वहां अदिति ने तपस्या करके वामन को पुत्र पाने का वरदान पाया था। छः रात दिन रामचंद्र विश्वामित्र का यज्ञ बचाने को जागते रहे। छठे दिन राक्षस आए। मारीच और सुबाहु ने वहां आकर रुधिर बरसाया । मारीच सौ योजन भेजा गया तथा सुबाहु मारा गया। कुशांब ने कौशांबी बसाई, कुशनाभ ने महोदय (कन्नौज)

और वसु ने वसुमती। महादेव के वीर्य से अष्टधातु हुई। सगर ने ३०००० वर्ष राज्य किया। भगीरथ मंत्रियों पर राज्यभार छोड़कर गोकर्ण चले गए, जहाँ उन्होंने एक हज़ार वर्ष तप किया। गंगा जब महादेव के सिर पर गिरीं तब उनकी सात धाराएँ हो गईं। ह्लादिनी, पावनी, नलिनी, सुचक्षु, सीता, सिंधु और महानद—उनके नाम थे। पैंतालीसवें अध्याय में यह वर्णन है कि कश्यप, दिति और अदिति के साथ, विशालापुरी में रहते थे। इक्ष्वाकु के लड़के विशाल ने इसे बसाया था। रामचंद्र के समय में विशालवंशी सुमति विशालापुरी के राजा थे। राम ने रात को वहाँ विश्राम किया। दूसरे दिन मिथिला के लिये चलने पर अहिल्या के आश्रम पर पहुँचे। अहिल्या शिला के रूप में न थी, वरन् वायु भक्षण करती और उसी आश्रम में अदृष्ट रहती थी। इन्हें पैर आदि से उसे छूना न पड़ा वरन् इनके वहाँ जाने मात्र से वह पवित्र हो गई और इन्होंने उसका पूजन ग्रहण किया। अनंतर गौतम ऋषि उसी आश्रम में आकर एवं उसे ग्रहण करके उसके साथ वहीं रहने लगे। उसका सौंदर्य अद्वितीय था। उसे पवित्र करके रामचंद्र उसी दिन मिथिला पहुँचे। विश्वामित्र का वर्णन करने में वशिष्ठ की गऊ से युद्ध करने को पल्हव, शक, यवन और कांबोजों का आना कहा गया है, जिन्होंने कौशिकी दल को हराया। महादेव से अस्त्र सीखकर विश्वामित्र फिर भी हारे। तब हविस्पद, मधुस्पंद, दृढनेत्र तथा महारथ नामक अपने पुत्रों को राज्य देकर तपार्थ जंगल चले गए। ब्रह्मा ने इन्हें राज्यर्षि पद दिया। जब वशिष्ठ तथा उनके पुत्रों ने त्रिशंकु को यज्ञ न कराया तब उसने क्रोध करके कहा कि वह दूसरे ऋषि से यज्ञ कराएगा। इसपर वशिष्ठ के पुत्रों ने उसे शाप दिया कि वह चांडाल हो जाय। चांडाल रूप देखकर इनसे प्रजा तथा मंत्री दूर भागे। तब विश्वामित्र ने यज्ञ कराया। जब वशिष्ठात्मज उसमें न आए तब विश्वामित्र ने उन्हें शाप दिया कि तुम कुत्ते का मांस खानेवाले हो जाओ। इसी यज्ञ में विश्वामित्र को देवताओं ने ऋषि की पदवी दी तथा त्रिशंकु के लिये नया लोक रचा गया। (६०वाँ अध्याय) अनंतर दक्षिण में कष्ट पाकर विश्वामित्र पश्चिम को चले गए। अंबरीष ने पशु-मेध यज्ञ किया और उसके लिये ऋषि ऋचीक के लड़के शुनःसेप को खरीदा। पुष्कर में विश्वामित्र के निकट वे लोग ठहरे। विश्वामित्र ने अपने चार पुत्रों से कहा कि तुम में से एक शुनःसेप के बदले में चला जाय। जब वे न गए तब विश्वामित्र ने उन्हें शाप दिया। फिर शुनःसेप के साथ विश्वामित्र अंबरीष के यज्ञ में गए। वहाँ इनके दिए हुए मंत्र से शुनःसेप बच गया। पीछे आपने मेनका-संगम के अनंतर कौशिकी नदी पर तप किया। तब ब्रह्मा ने इन्हें मुख्य ऋषि की पदवी दी। बाद को इन्हें ब्रह्मर्षि का पद मिला। निमि के जेठे पुत्र देवरात को महादेव से शैव-पिनाक मिला था। जो धनुष चढ़ाएगा उससे सीता का ब्याह होगा, ऐसा प्रण था। राजाओं ने जनकपुर घेर लिया और जनक को हराया, किंतु पीछे से वे सब हार गए। ५००० आदमी आठ चक्के की गाड़ी पर धनुष लाए। वह अष्टधातु का था। इक्षुमती नदी के पास सकाश्य नगरी में कुशध्वज राज्य करते थे। वे बुलाए गए और रामादि चार भाइयों के ब्याह हुए। ब्रह्मा से राम तक पीढ़ियाँ गिनाई गईं। अनंतर जनक का वंश आदि से गिनाया गया। जनक ने सुधन्वा को जीतकर अपने भाई कुशध्वज को सकाश्य का राजा बनाया था। विवाह के पीछे भरत के मामा युधाजित मिथिला आए और बारात के साथ अयोध्या चले गए। परशुराम ने कहा कि इसी टूटनेवाले अजगू धनुष से शिव ने त्रिपुरासुर को मारा था। परशुराम के जाने पर, अयोध्या आकर भरत शत्रुघ्न युधाजित के साथ ननिहाल चले गए। रामचंद्र १२ वर्ष अयोध्या में रहे।

२—अयोध्याकांड (११६ अध्याय, १ अध्याय प्रक्षिप्त)

६वें अध्याय में दंडकारण्य के समीप वैजयंतपुर में तिमिध्वज उपनाम शंबर रहता था। उससे इंद्र हार गए। तब दशरथ लड़ने गए और युद्ध में मूर्च्छित हुए। उस काल दो बार प्राण बचाने से उन्होंने कैकेई को दो वर देने को कहा। द्रविड़, सिंधु, सौवीर, सौराष्ट्र, दक्षिणापथ, बंग, अंग, मगध, मत्स्य और काशिकोशल तक दशरथ का प्रभाव था। कैकेयी ने कहा कि शिवि ने कपोत के लिये प्राण दिए तथा अलर्क ने ब्राह्मण के लिये नैन दिए। आप भी दृढ़ हूजिए। सुमंत ज़नाने में गए और राम को बुला लाए। दशरथ विलाप करने लगे। कौशल्या प्राण देने को तैयार हुईं तो राम ने समझाया। लक्ष्मण ने कहा कि मैं बलपूर्वक राज्य ले सकता हूँ और यदि भरत के मातृ-पक्ष वाले कुछ कहें, तो उन्हें भी जीत सकता हूँ।

कौशल्या ने भी कहा कि यदि राम योग्य समझें तो ऐसा करें। राम ने कहा कि पिता के वचन मानना ठीक है। गुरु, राजा, पिता और वृद्ध हर्ष, काम या क्रोध वश भी चाहे जैसे कुछ कहें तो भी मानना चाहिए। बाईसवें तथा तेईसवें अध्याय में लक्ष्मण तथा कौशल्या को राम ने समझाया। तेईसवें में लक्ष्मण ने फिर क्रोध किया। २६वें में सीता के यहाँ राम गए। २६वे में सीता ने वन जाने की आज्ञा माँगी। सुयज्ञ ऋषि को सीता ने अपने कुल आभूषण दे दिए। राम ने अगस्त्य और कौशिक को अपना सब धन दे दिया। कुछ चित्ररथ सूत को भी दिया। त्रिजट ब्राह्मण ने सरजू नदी के उस पार तक डंडा फेंक दिया। राम, सीता और लक्ष्मण सुमन्त्र से विज्ञप्ति कराकर राजा के पास गए। राजा राम को देखकर मूर्छित होगए। जब चेत में आए तब बोले कि हे राम ! मैं कैकेयी के वचन से मोहित हूँ, तुम मेरा निग्रह करके राजा हो जाओ। राम ने यह स्वीकार न किया। समझाया कि भरत आपको आराम से रखेगा। राजा ने राम का आलिंगन किया और फिर वे मूर्छित होगए। कैकेयी को छोड़ सब रानियाँ रोने लगीं। पैंतीसवें अध्याय में सुमंत्र ने कैकेयी को दुर्वचन कहे। बोले कि हम लोग तथा ब्राह्मणादिक तेरा राज्य छोड़ कर चले जायेंगे, तब तुझे क्या सुख होगा ? कैकेयी के पिता पशु-पक्षियों की भाषा समझते थे। उन्होंने हठ करने पर कैकेयी की माता को निकाल दिया था। दशरथ ने कहा कि धन-धान्य तथा सब सामान राम के साथ भेज दो, केवल राज्य भरत को दो। कैकेयी ने कहा कि ऐसा राज्य लेकर मेरा लडका क्या करेगा ? रामने यह सब सामान, सेना आदि लेने के विषय में अस्वीकृति प्रगट की। तब कैकेयी के दिए हुए वल्कल वसन राम, सीता और लक्ष्मण ने पहने। सब लोग रोने लगे। इस पर वशिष्ठ ने कहा कि सीता को राज्य करना चाहिए। यदि सीता जायगी तो हम सब सामान सहित उसके साथ चले जायँगे। भरत भी राज्य न लेंगे। राम ने दशरथ से कहा कि मेरी माता की रक्षा करना और वे चल दिए। ४०वें अध्याय में रामने राजा की प्रदक्षिणा की। दशरथ ने १४ आभूषण वनवास संख्या के लिए दिए और कहा कि आज ही से वनवास आरंभ हुआ। उस दिन रामचंद्र के मित्रों ने भोजन नहीं किया। दशरथ ने कैकेयी से कहा कि तू मेरी स्त्री नहीं है, और यदि भरत राज्य ग्रहण करे तो वह मेरा पुत्र नहीं है। कौशल्या के यहाँ आकर दशरथ ने उच्चस्वर से विलाप किया। रामने प्रजा को समझाया कि मेरे ऊपर जो प्रीति है सो भरत पर करना। वह गुणाकर हैं और तुम्हारे साथ अच्छा व्यवहार करेंगे। जब पौरगण साथ चले तब राम उतर कर उनके साथ पैदल चलने लगे। तमसा से खोज मार कर रथ हँकवाया और उत्तर कोशल पार करके गंगा पार की। वहाँ से सुमन्त्र को समझाकर वापस किया। फिर न्यग्रोध (बरगद) का दूध लगाकर राम लक्ष्मण ने जटा बनाई। अनन्तर चलते हुए वत्सदेश में पहुँचे। वहाँ राम लक्ष्मण ने विलाप किया। फिर प्रयाग में भरद्वाज आश्रम में पहुँचे। भरद्वाज ने चित्रकूट में रहने की सलाह दी और कहा कि वह प्रयाग से दस कोश पर है। रामने प्रयाग में एक रात वास किया। एक कोस राम को पहुँचा कर भरद्वाज वापस गए। लकड़ियों का बेरा बनाकर राम यमुना के पार हुए। उनके साथ एक पेटारी थी। ५६वें अध्याय में वनशोभा एवं चित्रकूट-सौंदर्य का वर्णन है। वहाँ वाल्मीकि का आश्रम था। वहीं पर्णकुटी बनाई गई। चित्रकूट से गुहनिषाद के दूत लौट गए। ५७वें अध्याय में सुमंत अयोध्या पहुँचे। लक्ष्मण ने क्रोध करके कहा था कि यदि आज्ञा हो तो दशरथ को बाँध लेवें। यह बात सुमन्त्र ने राजा से कही। राम के जाने के छठे दिन की आधीरात को दशरथ ने कौशल्या से विलापपूर्ण बातें कीं और श्रवणोपाख्यान कहा। श्रवण की माता शूद्रा थी और पिता वैश्य। ६४वें अध्याय में राजा मर गए। कौशल्या ने कैकेयी से दुर्वचन कहे। फिर एक सभा हुई जिसमें वशिष्ठ, मौद्गल, वामदेव, कश्यप, कात्यायन, जाबालि, गौतम इत्यादि ऋषि तथा मन्त्री आदि थे। केकय देश को दूत भेजे गए। राजा का शरीर तेल में रक्खा गया। दूतों ने मालिनी नदी लाँघकर, हस्तिनापुर में गंगा पार कर, पांचाल, कुरु, जांगल, कुलिंग देशों में होकर, इक्षुमती लाँघकर, अंजलिपान ब्राह्मणों से मिलकर वाल्हीक देश में सुदामा पर्वत, सुदामापर्वतस्थ विष्णु-पद को देखकर, विपाशा, शाल्मलि नदियों को तिरकर रात्रि में केकय देश में पदार्पण किया। भरत ने कई दु:स्वप्न देखे। ७०वें अध्याय में दूतों ने भरत शत्रुघ्न से चलने को कहा। मातामह ने विदाई में प्रचुर धन, चित्र, कंबल,

बड़े कुत्ते आदि दिए। २०००), सौ घोड़े, नौकर, हाथी (ईरावत पर्वत के पैदा हुए), खच्चर आदि भी दिए। दूतों के जल्दी करने पर भरत को खेद हुआ । नव सुदामा नदी, ह्लादिनी, शतद्रु, एलधान ग्राम की नदी को लाँघकर, आग्नेय, शल्यकर्षण पर्वत को देखकर सरस्वती गंगा को पारकर भारंडवन मे पहुँचकर, कुलिंग देश की नदी लाघकर, यमुना, भागीरथी पारकर (प्रागवटपुर के पास क्योंकि अंशुधान के पास वह चौड़ी अधिक थी) कुटिकोष्ठिका नदी लाघकर, धर्मवर्द्धनपुर, तोरननगर, जंबुप्रस्थ, वरुथनगर होकर, उज्जहाना नगरी में कटिका तथा लोहित्यदेश मे कपीवती नदी तिरकर, एकशालपुर में स्थाणुमती पारकर, विनत मे गोमती, कुलिंगनगर होकर सात रात इस प्रकार मार्ग मे बिताकर भरत अयोध्या मे पहुँचे। वहाँ अशुभ लक्षण देखते हुए भरत ने पितृग्रह मे प्रवेश किया। (७१वा अध्याय।)

जब पिता अपने भवन मे न मिले तब वह माता के यहाँ गये। सब हाल जानकर भरत ने माता से दुर्वचन कहे। फिर कौशल्या के यहाँ गए तो उन्होंने कटुवाक्य कहे, किंतु भरत ने शपथ खाकर अपना निर्दोषत्व प्रकट किया। युद्ध मे भागनेवाले की गति मुझे हो जो मेरा समत हो। तेरहवे दिन पितृ-चिता के पास विलाप किया। फिर ससैन राम से मिलने चले। गुह निषादपति को संदेह हुआ। उसे समझाकर गंगा पार करके भरद्वाज आश्रम को गए। भरद्वाज ने पहले कटूक्ति कही, किंतु हाल जानकर भरत का ससैन आतिथ्य किया। कहा कि यहाँ से राम ढाई योजन पर चित्रकूट मे है। भरत की सेना जानकर लक्ष्मण ने कोप किया। राम ने समझाया कि भरत कभी अनुचित बात न करेंगे (६६वा अध्याय) पिता का देहांत सुनकर राम मूर्छित होकर पृथ्वी पर गिरे तथा सीता एवं लक्ष्मण ने रुदन किया । फला-दिक के पिंड पिता को दिए। भरत, जाबालि और वशिष्ठ ने राम को राज्य लेने के लिये कई प्रकार से समझाया एवं प्रार्थना की। राम ने कहा कि भरत को राज्य दिया गया है सो उन्हे करना चाहिये। समझा बुझाकर तथा पादुका देकर वापस कर दिया। कोई रूखी बात न कही। भरत ने नंदिग्राम मे पादुका सिंहासन पर रक्खीं और उसी पर छत्र, चमर आदि चलाए। सब राज-काज पादुकाओं से निवेदन करके करते थे। तीर्थों का जल तथा भरत कूप आदि का कोई वर्णन नहीं है। तपस्वियोंने राम से खरादि के उत्पात का वर्णन किया। सीता अनुसूया के पास गईं। उन्होंने सीता को पति-भक्ति बताई। फिर कुछ आभूषण प्रीति-दान में दिए। सीता जी जनक को हल-जोतते हुए मिली थीं। यह विदित है कि वे पृथ्वी के अंदर से निकली थी। दंडकारण्य सर्पों से व्याकीर्ण है और राक्षस ऋषियों को खा लेते है। राम से कहा गया कि यदि आप उन्हे मार सकें तो जायँ। राम ने सोचा कि चित्रकूट मे बहुत से आदमी मिलने आया करेंगे, इस लिये ये तीनों दंडकारण्य चले गए।

३—आरण्यकांड (कुल ७५ अध्याय हैं)।

ऋषियों ने राम से कहा कि आप पूज्य हैं, इस कारण से कि दंडधारी राजा गुरु समान होता है और इंद्र का चतुर्थांश है। सिंह और चीते दोनों उस बन में फिरते थे। राम ने विराध राक्षस को देखा। उसने सीता को गोद में उठा लिया। राम विलाप करने लगे कि कैकेई का विचार आज सिद्ध हुआ। विराध का पिता जावक और माता शतहदा थी। शस्त्र से न मरे, न अंग कटे न टूटे – ऐसा ब्रह्मा से वर पा चुका था। राम ने उसे सात बाणों से भेद दिया। तब वह सीता को छोड़ शूल ले दौड़ा। राम लक्ष्मण को उठाकर ले भागा। राम लक्ष्मण ने उसके दोनो हाथ काट डाले पर वह मरा नहीं। विराध ने कहा कि मै तुंबुरु नामक गंधर्व था, किंतु कुबेर के शाप से राक्षस हुआ। रंभा पर आसक्त होने से देर से पहुचा इससे शापित हुआ। लक्ष्मण ने गढ़ा खोदकर उसे गाड़ दिया। तब वह मरा। (४ अध्याय) अनन्तर शर-भंग के आश्रम को गए। शरभंग के आश्रम मे इंद्र रथ पर आकाश मार्गसे चले गए। राम को सुतीक्ष्ण के आश्रम पर जानेका उपदेश करके शरभंगने अग्नि मे प्रवेश कर शरीर त्याग दिया। तब भगवान वहाँसे चल दिए और मार्ग में इन्हें वैखानस, बालखिल्या, मरीचिपा, अश्मकुट्टा, पत्राहारा, दंतोलूखली आदिक ऋषि मिले। ऋषियों ने निशाचरों का उपद्रव बतलाया और तब राम ने प्रण किया कि पृथ्वी निशाचरहीन करदूँगा। अनंतर आप सुतीक्ष्णाश्रम पर गए। सुतीक्ष्ण ने पंचवटी जाने को राम को उपदेश किया। सीता ने राम से कहा कि निशिचरों से निःकारण बैर करने का आपको पाप लगता है। इसलिये आपको दंडकवन को न जाना चाहिये, क्योंकि वहा निशिचरों से विरोध होगा।

राम ने उत्तर दिया कि निशिचर ऋषियों को दु:ख देते हैं, इससे वे वध्य हैं। अनंतर आप पञ्चाप्सर तड़ाग पर गए। इधर उधर विचरण करते हुए राम को वहीं दश वर्ष बीत गए। फिर सुतीक्ष्ण के पास वापस आए। उन्होंने कहा कि यहां से बीस कोस पर अगस्त्याश्रम है। इल्वल तथा वातापि राक्षस ऋषियों को मारते थे। वातापि मेष बनाकर खिलाया जाता था और फिर पेट फाड़कर निकल आता था। अगस्त्य ने उसे पचा लिया और हुंकार से इल्वल को भी भस्म कर दिया। भगवान् को चलते-चलते अगस्त्याश्रम देख पड़ा। अगस्त्य ने विंध्य का बढ़ना रोका था। जो तपस्वी अतिथि सत्कार न करे उसे झूठी गवाही देने का पाप लगता है। अगस्त्य ने राम को अक्षयतूण, खड्ग, विष्णुधनु और बाण दिए। अगस्त्य ने कहा कि यहां से आठ कोस पर पंचवटी है, वहां बसो। पहिले महुओं का बन मिलेगा, फिर बरगद का बन और तब पंचवटी। चौदहवें अध्याय में जटायु गीध राम से मिला। जटायु ने देवासुर उत्पत्ति बतलाई। जटायु और सपाति अरुण के पुत्र थे। उसने कहा कि मैं सीता की रक्षा किया करूंगा। मैं दशरथ का मित्र हूं। आप फलादि से मेरा सहाय करना। अब इन लोगों ने पंचवटी में पदार्पण किया। वहीं लक्ष्मण ने कुटी बनाई। लक्ष्मण ने कैकेई की निंदा की तो राम ने रोका। (१६वां अध्याय) शूर्पणखा-विरूपकरण हुआ। अनंतर खर ने १४ राक्षस भेजे, जिनको राम ने मारा। तब दूषण सेनापति को खर ने आज्ञा दी कि १४,००० सेना सजाओ। दल साज कर खर, दूषण और त्रिशिरा चले। लक्ष्मण सीता को कंदरा में लेगए। युद्ध में राम ने सबको मारा। तब अकंपन ने लंका जाकर रावण से हाल कहा। रावण मारीच के पास गया और उसने राम का बल तथा राक्षसों का अपराध समझाकर उसे लंका वापस कर दिया। अनंतर शूर्पणखा रावण के पास गई, तब वह फिर राम को जीतने चला। वह मारीच के यहां गया। (पैंतीस अध्याय पूर्ण)।

मारीच ने कहा कि राम ने एक बाण से मुझे १०० योजन फेंक दिया था। मारीच के जाने से इनकार करने पर रावण ने आधा राज्य देने को कहा। जब वह इस पर भी न माना तब रावण ने कहा कि आज्ञा न मानेगा तो तुझे मार डालूंगा। इस पर मारीच राज़ी हुआ और रावण के साथही उसी रथ पर चढ़कर चला। मारीच एकबार और साधारण मृग बनकर राम के पास आया था, पर उन्होंने भगा दिया था। इस बार स्वर्णमृग बनकर गया। जब सीता ने उसे मांगा तब राम ने बतलाया कि यह मृगरूप मारीच है, मृग नहीं है। सीता ने हठ किया। तब सीता को लक्ष्मण और जटायु की सुपुर्दगी में रखके राम उसके पीछे दौड़े। दूर जाने पर उसे मारा और उसने हा लक्ष्मण! हा सीते! चिल्लाकर प्राण छोड़े। सीता के क्रोध करने पर लक्ष्मण चले गए। तब रावण सन्यासी बनकर सीता के पास गया। सीता ने कहा कि बनवास के समय राम २५ वर्ष के थे और सीता १८ साल की। ४९वें सर्ग में रावण ने दश शिर, बीस भुजायें प्रकट कीं। फिर वह सीता को लेकर भागा। जटायु ने भारी युद्ध किया, किंतु रावण ने खड्ग से उसके पंख और पैर काट दिए। (५१वां अध्याय समाप्त) रावण ने सीता को लाकर गुप्तरूप से महल में रक्खा। कहा कि ३२ करोड़ राक्षसों का राजा हूं। जब सीता ने न माना तब अशोक वाटिका में भेजा। ५६ व ५७ अध्यायों के बीच में एक अध्याय क्षेपक है, जिसमें लिखा है कि १००० वर्ष क्षुधा तृषा न व्यापने वाला हव्य देवताओं द्वारा सीताको खिलाया गया। सीता ने उन देवतों को पृथ्वी पर पैर न छूने तथा पलक न लगने के चिह्न से पहचाना। उधर लक्ष्मण को देखकर राम ने क्रोध किया। उन्होंने कहा कि सीता ने कहा था कि तुम गुप्त रूप से भरत के भेजे हुए आए हो और हम लोगों का नाश चाहनेवाले शत्रु हो। यह बचन सुनकर मुझे आना पड़ा था। राम ने कहा कि तुम स्त्री के बचन सुनकर क्रोधकर चले आए इससे तुम्हारा कर्म निंद्य है। जटायु ने कहा कि रावण सीता को हर लेगया है। राम ने जटायु की धूल जटाओं से झाड़ी। उसके मरने पर उसका दाह कर्म किया। आगे बढ़ने पर अयोमुखी राक्षसी लक्ष्मण से लिपट गई और बोली कि मैं तुम्हारी स्त्री हुई। लक्ष्मण ने उसकी नाक, कान, स्तन काट डाले। वह भाग गई। कबंध राक्षस की दोनों भुजाएँ काट डालीं। इंद्रवज्र के लगने से उसका सर धड़ में घुस गया था और चार कोश की बांह होगई थी। उसके मरने पर रामने उसे जलाया। मरने पर दिव्यरूप धारण करके उसने राम को सुग्रीव की मित्रता करने की सलाह दी। एक रात बसकर राम शबरी के यहां गए। शबरी अग्नि में शरीर जला कर मर गई। अनंतर पंपासर पर गए। (७५ वाँ अध्याय)।

४—किष्किधा कांड । (६७ अध्याय हैं ।)

पंपा की शोभा देखकर राम ने विलाप किया । लक्ष्मण ने समझाया । मतंग ऋषि के शाप से बाली ऋष्यमूक पर नहीं जाता था । हनुमान भेद लेने को भिक्षुक के वेष में गए । हनुमान को देव वाणी में बात करते देख राम प्रसन्न हुए । लक्ष्मण ने कहा कि हम स्वयं सुग्रीव की तलाश में हैं और उससे मित्रता करेंगे । दोनों को पीठ पर चढ़ा हनुमान सुग्रीव के पास गए और दो काठ रगड़कर, अग्नि निकाल कर उसकी साक्षी से मित्रता कराई । उसी काल बाली, रावण और जानकी के वाम नेत्र फड़के । लक्ष्मण ने कहा कि मैं सीता जी के केवल नूपुर पहिचानता हूं, किंतु बाहु-भूषण तथा कुंडलों को नहीं जानता । राम ने सुग्रीव से पूँछा कि रावण कहां रहता है, तब सुग्रीव ने कहा कि मैं नहीं जानता किंतु पता लगाऊंगा । सुग्रीव ने बाली से अपने बैर का हाल कहा । दुंदुभि का पुत्र मायावी था । बाली से उसका बैर स्त्री निमित्त हुआ । बाली उसके पीछे गुफा में घुस गया और सुग्रीव से कह गया कि जब तक न आऊं तब तक यहीं रहना । सुग्रीव वहां एक साल रहा । जब सुग्रीव राजा हुआ तब बाली ने मंत्रियों को क़ैद कर लिया और एक धोती देकर सुग्रीव को निकाल दिया तथा उसकी स्त्री छीन ली । राम ने प्रतिज्ञा की कि तुम्हें राज्य दिलाऊंगा । दुंदुभि को भी बाली ने मारा था । वह भैंसे के रूप में लड़ा था । उसका खून देखकर मतंग ने शाप दिया कि बाली या उसके सहायक यहां योजन भर के भीतर आने से क्षय को प्राप्त होंगे । सुग्रीव ने कहा कि बाली एक ताल की जड़ पकड़ कर सातों को हिला देता है । राम ने दुंदुभि अस्थि-पिंजर पैर से दश योजन फेंक दिया और एक बाण मारा सो सातों ताल तोड़ पर्वत फोड़ पृथ्वी में धँस गया । अस्थि से सुग्रीव को विश्वास न हुआ किंतु ताल भेदन से हुआ । बाली और सुग्रीव को समान देखकर राम पहचान न सके । जब दूसरी बार बाली सुग्रीव से लड़ने चला, तब तारा ने रोका और कहा कि अंगद द्वारा सुना गया है कि दशरथ के दो पुत्र सुग्रीव के सहायक हैं । बाली ने न माना । युद्ध होने लगा और सुग्रीव को निर्बल देख राम ने बाण मारा, जिससे बाली तड़प कर गिर गया । बाली ने राम को देखकर कहा कि मैंने आपका कोई दोष न किया, न तुम्हारे राज्य में कोई गड़बड़ किया है । यदि मुझसे कहते तो रावण को बाँधकर तुम्हारे सामने लादेता । रामने कहा कि मेरे पूर्वजों ने सारी पृथ्वी जीती थी, सो मैं तुमसे छीन सकता हूं । अनुज-वधू-रमण के कारण तुम बध्य हो । मृग होने के कारण तुम्हें मैंने छिप कर मारा । तब अंगद को राम को सौंपकर बाली मौन होगया । तारा आकर रोने लगी । अनंतर बाली ने अंगद को सुग्रीव को सौंप दिया और प्राण छोड़ दिए । बाली ने गोलभ गंधर्व से १५ वर्ष लड़कर सोलहवें वर्ष उसे मारा था । (२२वां अध्याय समाप्त) ।

इंद्र ने त्वष्टा के पुत्र विश्वरूप * को पुरोहित बनाया था । फिर उनको राक्षसों का मित्र जानकर मार डाला । ब्रह्म-हत्या का पाप लगा । वह चार जगह बाँटा गया । सुग्रीव ने बहुत विलाप किया । अंगद ने बाली की क्रिया की । राम ने सुग्रीव को राजा और अंगद को युवराज बनाया । (पुर शोभा तथा वर्षा ऋतु का वर्णन है) । सीता को खोजने जानेवाले सेनापति से कहा कि जो १५ दिन में न आवेगा उसे बध दंड दूंगा । (शरद वर्णन) । सुग्रीव की स्त्री रोमा थी । पहले वानर क़िले के इर्द गिर्द युद्धोन्मुख खड़े हुए, पीछे वानरों ने गल्ला करके सुग्रीव को सचेत किया । तब उन्होंने मंत्रियों को भेजा जो लक्ष्मण को बुला ले गए । सुग्रीव को स्त्री-समाज में देखकर लक्ष्मण क्रुद्ध हुए । फिर उनसे सब हाल बताया गया कि वानर १५ दिन की अवधि पाकर खोजने गए हैं । (३६वां अध्याय) ।

सुग्रीव ने हनुमान से कहा कि महेंद्राचल, हिमालय, पांडुशिखर, कैलाश शिखर, मंद्राचल और पंचशैल आदि पर जो जो कपि हों सब बुलाए जाएँ । दूत भेजे गए । सब वानर आए । सुग्रीव मुख्य वानर लेकर राम के पास गए । संख्याएँ बहुत बड़ी हुई हैं । तारा के पिता सुषेण के साथ हज़ार करोड़ वानर थे । ऐसे ही औरों के साथ थे । केसरी हनुमान के पिता थे । धूम्र रीछों के राजा थे । शतवली, सुषेण, रोमा के पिता केसरी, गवाक्ष, धूम्र, पनस, नील, गवय, दरीमुख, मइंद, द्विविद, गज, जाम्बवान, रुमण, गंधमादन, अंगद, इंद्र, रंभ, दुर्मुख, हनुमान, सरभ, कुमुद, वन्हि और रंभ प्रधान सेनापति थे । अन्तिम चार काम रूपी भी थे । आज्ञा मिली कि चारों दिशाओं को खोजो । देशों के नाम सूची में हैं । एक मास की अवधि दी गई । कहा कि जो न आएगा, मारा जायगा ।

* (विश्वरूप वृत्रासुर का बड़ा भाई था—महाभारत) ।

दक्षिण में गए वानरों में मुख्य सुहोत्र, नील, हनुमान, जांबवान, शरारि, शरगुल्म, गज, गवाक्ष, गवय, सुषेण, वृषभ, मइंद, द्विविध, गंधमादन, उल्कामुख, अनंग और दुर्मद थे। विशेष कार्य्य-सिद्धि दक्षिण में जान मुख्य लोगों को उधर भेजा था। राम ने हनुमान को स्वनामांकित अंगूठी दी। सुग्रीव बाली के भय से दुनिया भर में भागता फिरा था। इसीसे सब देशों का हाल जानता था। तीनों दिशाओं से लोग वापस आए, पर दक्षिण वाले न आए। हनुमान ने सुग्रीव की बताई विंध्य गुफा खोदी। जल, कंद जीवादि रहित देश में पहुंचे। यह देश कंडु के शाप से ऐसा हो गया था। एक घोर असुर मिला जिसे अंगद ने मारा। आगे चलकर रजताचल मिला। प्यासे हुए तो जलपूर्ण बिल में घुसे। भीतर उजेले में एक मृगचर्मासीन स्त्री मिली। यह बिल मय का रचा हुआ था। जब वह हेमा अप्सरा पर आसक्त हुआ था, तब इंद्र ने उसे मारा था। हेमा को यह स्थान ब्रह्मा ने दिया था और यहीं वह रहती थी। मृगचर्मासीन स्त्री उसकी सखी थी। हनुमान ने उसे सब हाल सुनाया। वहां वानरों को एक मास लगा। फिर सखी ने कहा कि यहाँ से बिना मरे कोई बाहर नहीं जा सकता, किन्तु राम के कारण तुम्हें क्षमा करनी है। जब उन्होंने आंख मूँदी तब वे बाहर निकाले गए और स्त्री ने कहा - देखो एक ओर विंध्याचल है दूसरी ओर समुद्र। यह कहकर वह चली गई। (५३वां अध्याय)

गुफा से निकल कर वानरों ने प्रस्रवणगिरि देखा। वहां अंगद ने विफलता के कारण मरण भय से सुग्रीव की निंदा की। हनुमान ने समझाया। इतने में संपाति आया। उसे देख सब डरे। जटायु का हाल सुन उसने कहा कि मुझे पर्वत के नीचे उतारो। जब उतारा गया तब बातचीत होने लगी। (सूर्य के निकट उड़ने की कथा)। संपाति का अपने पंखों से जटायु के पंखों की रक्षा करनी और उन से ढककर उनको जलने से बचाना कथित है। संपाति का पुत्र सुपार्श्व उसे भोजनादि देता था। पंख जलने पर संपाति छः दिन बेचैन रहा, फिर निशाकर मुनि के पास गया। वानरों से बात करते करते संपाति के पर जम आए। अंगद ने पूछा कि कौन समुद्र पार हो सकता है? यह बातचीत बिलकुल तुलसीकृत की भांति है। हनुमान का सूर्य्य को पकड़ना और इंद्र के वज्र से इनकी ठोढ़ी का टूट जाना भी लिखा है। हनुमान ने लंका जाना स्वीकार किया। (६७ अध्याय)।

सुग्रीव के देखे हुए स्थान। पूर्व यात्रा—कालिंदी, यमुना, सरस्वती, सिंधु, सोनभद्र नदियाँ। देश—ब्रह्म-माला, विदेह, मालव, काशी, कोसल, मगध, महाग्राम, पुंड्र, अंग, रेशमी कीड़ों का देश, चांदी की खानों का देश, मंदर के निकट-वर्ती देश, जिनके कान अधर पर्य्यंत हैं, एक पैर के लोग, टापुओं के, किरात, बड़े बाल वाले, सुवर्ण समान दीप्ति वाले। किरात देश में कच्ची मछली खाते हैं। नीचे भाग में मनुष्य तथा ऊर्द्ध में जल-मध्य निवासी व्याघ्र थे। मंदराचल के आगे शिशिर पर्वत है। फिर समुद्र के पार सिद्धचारण सेवित लाल जल वाला सोन नद मिलता है। फिर समुद्र दिखता है। इक्षु समुद्र में ब्रह्मा की आज्ञा पाए हुए असुर परछाहीं ग्रहण करके मनुष्य का भक्षण करते हैं। इक्षु समुद्र के पार लाल रंग का लोहित सागर मिलता है। वहां शाल्मली वृक्ष है जिससे वह शाल्मली द्वीप कहाता है। वहां मंदेह नामक राक्षसगण नीचे को मुख किए हुए लटकते रहते हैं। वे सूर्य्य द्वारा तीन बार मारे जाते हैं, किंतु प्रतिदिन जीकर फिर लटकने लगते हैं। इनको प्रतिदिन ब्राह्मण लोग मारते हैं। तीन बार मरने से कदाचित् त्रिकाल-संध्या का प्रयोजन हो। कदाचित् यहां रूपक द्वारा अंधकार का कथन हो। इससे आगे क्षीरसागर है, जिसके बीच में श्वेत ऋषभ नामक पर्वत है। वहां किन्नरादि विहार करते हैं। फिर जलोद सागर है। वहां हय नामक राक्षस है, जिनसे लोग बहुत डरते हैं। फिर स्वादु समुद्र है और उसके उत्तर तीर में १३ योजन विस्तार वाला एक पर्वत है। वहां शेष नाग रहते हैं, जो शिखर पर बैठे हैं। इंद्र ने वहां एक वृक्ष सीमा के लिये बनाया है। आगे उदयाचल है जो एक करोड़ योजन चौड़ा है। अनन्तर सुवर्णमय शृंग है। उदयाचल के आगे अंधकार है, और वहाँ कोई जा नहीं सकता। यहां पूर्व यात्रा का वर्णन समाप्त होता है। ४० वे सर्ग से दक्षिण यात्रा का वर्णन चलता है। प्रथम सहस्र शिखर वाला विंध्याचल, फिर नर्मदा, सर्पवाली, गोदावरी, कृष्णा, वेणी, मेखल नदी, उत्कल, दशार्णदेश, आब्रवन्ती तथा अवन्ती पुरियाँ, विदर्भ, ऋष्टिका माहिषक देश, मत्स्य, कलिंग, कौशिक, दंडकारण्य, गोदावरी, आंध्र, पुंड्र, चोल, पांड्य, केरल, अयोमुख देश

और कावेरी मिलती है । मलय के अग्रभाग में अगस्त्य ऋषि थे । ताम्रपर्णी के पार चंदन के पेड़ बहुत हैं । फिर पाण्ड्यवंशियों का फाटक हेममय दिव्य मुक्तामणि-विभूषित है । वहाँ से यात्री समुद्र के निकट पहुँचता है । फिर टापू में एक पर्वत है । इसके दूसरी पार १०० योजन वाला द्वीप है, जिसमें सीता है । वहीं रावण है । छाया-ग्राहिणी का नाम अंगारिका था । लंका के उस पार पुष्पितक पर्वत है, जिसमें सिद्ध चारण रहते हैं । उस पर्वत के आगे यात्री सूर्यवान पर्वत पर जाता है । यह १४ योजन का है । आगे वैद्युत पर्वत है । उसमें कंद, मूल, फल, मधु तथा मैफर हैं । अनंतर कुंजर पर्वत है । वहाँ विश्वकर्मा ने अगस्त्य का भवन बनाया । वहाँ सर्प बहुत हैं । वहीं भोगवती पुरी है, जो वासुकी की राजधानी है । फिर ऋषभ पर्वत मिलता है । यहाँ गोरोचन, पद्मक तथा हरिश्याम हैं । उस वन की रक्षा रोहित गंधर्व करता है । आगे पितृलोक है, जहाँ अंधकाराच्छन्न संयमिनी पुरी है, जो यम की राजधानी है । (४१वाँ अ०) । पश्चिम यात्रा—सौराष्ट्र देश, वाल्हीक देश, कुक्षी (जहाँ पुन्नाग-वन, बकुल, उद्दालक, केतक आदि हैं), पश्चिम समुद्र (वहाँ भी रावण के देश हैं) मुर्चीपत्तन, जटापुर, अवंती, अंगलेपा, पुरिया तथा अलक्षित वन पड़ते हैं । आगे सिंधु नद है, जहाँ सिंह-पक्षी हाथियों को भी पंजे में पकड़ता है और खा जाता है । फिर पारियात्र पर्वत की ऊँची चोटी है । अनंतर वज्र पर्वत और चक्रवान नगर है । यहीं विश्वकर्मा ने सहस्र आरे का चक्र बनाया था, और यहीं विष्णु ने पंचजन और हयग्रीव को मारा था तथा शंख चक्र लिए थे । आगे वराह पर्वत है जहाँ प्राग्ज्योतिषपुर है । वहाँ किसी समय नरकासुर रहता था । तदनुमेघ पर्वत है, जहाँ इंद्र को सुर-राज का अभिषेक हुआ था । फिर मेरु पर्वत मिलता है । अनंतर अस्ताचल पर्वत पर सूर्य पहुँचते हैं । फिर वरुण का स्थान है । आगे मेरु है जहाँ सावर्णि तपस्वी रहते हैं । वहाँ से सूर्य अस्त हो जाते हैं । इससे आगे कोई नहीं जा सकता । (४२वाँ अध्याय) । उत्तरयात्रा म्लेच्छ, पुलिंद, शूरसेन, प्रस्थल भरत, कुरुमद्रक, कांबोज, दरद, यवन और शकों के नगर पड़ते हैं । फिर हिमालय लोध्रपद्मक और देवदारु वन सोमाश्रम (देवता गंधर्व वहाँ रहते हैं), काल पर्वत, सुदर्शन नगर, देव सखा पर्वत १०० योजन लंबा मैदान और कैलाश पर्वत आते हैं, जहाँ कुबेर का भवन है । फिर क्रौंच गिरि, कामशैल, मान-सरोवर और मैनाक पर्वत हैं । यहाँ पर मय दानव का स्थान है और अश्वमुखी स्त्रियाँ तथा बालखिल्य हैं । आगे वैखानस सरोवर है, जहाँ कुबेर का सार्वभौम हाथी रहता है । वहाँ शैलोदा नदी और कीचक बाँस हैं और मुक्तामणियों से पूर्ण देश है । गंधर्व, किन्नर, सिद्धनाग, विद्याधर वहाँ विहार करते हैं । सोम पर्वत पर सूर्य का प्रकाश नहीं है, परंतु सोम पर्वत का प्रकाश है । वहाँ एकादश रुद्र और ब्रह्मा ब्रह्मर्षियों के साथ बसते हैं । कुरु के उत्तर देश में न जाना चाहिए, क्योंकि वहाँ मनुष्य नहीं जा सकता । सोमगिरि पर देवता तक नहीं जा सकते । (४३वाँ अध्याय समाप्त) । इन स्थानों के वर्तमान नाम निकाल कर इस विषय पर कथनोपकथन करना बहुत कठिन नहीं है, क्योंकि भारत का ऐतिहासिक भूगोल वर्तमान है । फिर भी कहीं कहीं मतभेद रह जाता है । यहाँ पर केवल वाल्मीकि के कथनों का सार दिया जाता है । उन पर विचार समयांतर पर किया जायगा ।

५—सुंदर कांड (कुल ६८ अध्याय)

हनुमान को देख मैनाक ऊपर उठा । इन्होंने छाती का धक्का लगाया, जिससे पर्वत समुद्र में दब गया । आप जल्दी के कारण पूजा न ग्रहण करके चले गए । देवताओं ने नागमाता सुरसा भेजी । उसके मुँह में घुस कर आप निकल गए । फिर सिंहिका छायाग्राहिणी ने पकड़ा तो इन्होंने इसे मारा । लंब पर्वत से त्रिकूट पर गए । राक्षसों का बड़ा प्रबंध देखा । रात्रि में लंका में गए । लंका राक्षसी को मारा । राक्षसों को मंत्र जपते व वेद पढ़ते देखा । रावण के घर में घुस गए । इतने में चंद्रमा उग आया । कई सरदारों के मकान देखकर रावण के यहाँ गए थे । पुष्पक का स्थान देखा । रावण के घर में सीता न मिलीं । उसकी शयनशाला देखी । (इसका वर्णन बहुत रोचक है) । वहाँ की सब स्त्रियाँ उस पर मोहित थीं । वहाँ दो बाहु व एक मुख वाला रावण सोता था । (१०वाँ अध्याय) । मृग, महिष, शूकर, कुक्कुट, तथा वराह का मांस रावण के यहाँ रक्खा था । आसवादि भी थे । हज़ारों खंभों वाले प्रासाद के निकट अशोक वाटिका में जानकी को देखा । अकस्मात वहाँ गए थे । विभीषण ने नहीं बतलाया था । राक्षसी उनको डरा रही थीं । रात को राक्षस वेद पढ़ते थे । रावण वहाँ आया । सीता को समझाया । दश महीने सीता वहाँ रह चुकी थीं । रावण की आज्ञा हुई कि दो

महीनों तक यदि सीता न मानेगी तो रसोइया उनको खंड-खंड करदेंगे और वे खा डाली जायँगी। राक्षसियों को भय देखाने को कहकर रावण चला गया। उन्होंने दिक़ करना शुरू किया। तब त्रिजटा ने डांटा तथा स्वप्न कहा। जानकी ने पेड़ से फांसी लगानी चाही। हनुमान ने प्राकृत मे बात की। रावण शुद्ध सस्कृत बोलता था। अँगूठी दी गई। सीता प्रसन्न हुई। विभीषण ने रावण को समझाया था। विभीषण की कन्या कला ने सीता से हाल कहा था कि अविध्य मत्री ने भी रावण को समझाया था। हनुमान ने बडा शरीर प्रकट किया और सीता से कहा, मेरी पीठ पर चली चलिए। सीता ने अस्वीकृति प्रकट की। शक्रसुत-कथा की सुरत कराने को कहा और चूडामणि स्मरण को दी। फिर हनुमान ने अशोक-वाटिका उजाडी। राक्षसियों ने सीता से पूछा कि यह वानर कौन था तो उन्होंने न बताया। ८० हज़ार राक्षस रावण ने लडने को भेजे। प्रहस्त का पुत्र जबुमाली गधों के रथ पर आया। कुछ युद्ध के पीछे हनुमान ने परिध से उसे मारा। केसरी ने शंभसादन असुर को मारा था। (४४वा अध्याय समाप्त)।

तब रावण ने मत्री के सात पुत्र भेजे। हनुमान ने उन सब को मार डाला। अनन्तर रावण ने विरूपाक्ष, यूपाक्ष, दुर्धर्ष, प्रघर्ष और भासकरण नामक सेनापतियों को यह कह कर भेजा कि वानर को मारो मत, बाधलो। हनुमान ने पाचों को मारडाला तब अक्षयकुमार आया और वह भी मारा गया। पीछे रावण ने मेघनाद को भेजा। उसने ब्रह्मास्त्र से इन्हे चेतना-रहित कर दिया। हनुमान ब्रह्मास्त्र को निष्फल कर सकते थे, किंतु उन्होंने ऐसा किया नहीं। तब निशिचरों ने इन्हे रस्सों से बाध लिया। ये रावण की सभा में लाए गए, जहा इन्होंने उसे १० शिर तथा २० भुजा वाला देखा। नदी का मुख एक समय वानर का-सा था। उन्हें देखकर रावण हँसा था। तब उन्होंने शाप दिया था कि वानरो द्वारा उसका सहार होगा। रावण की ओर से प्रहस्त ने पूछा। तब हनुमान ने कहा कि रावण का दर्शन अन्य प्रकार से दुर्लभ था, इसलिये मैंने उत्पात किए। हनुमान ने राम का यश कहा। रावण ने बध की आज्ञा दी, किंतु विभीषण के कहने से उसे बदल कर पूछ जलाने की रक्खी। लोग हनुमान की पूंछ जलाकर उन्हें पुर मे फिराने लगे। सीता की प्रार्थना से इन्हे आग ठढी लगी। फिर फाटक पर चढ़कर वहाँ रक्खी हुई लोहे की गदा से आपने राक्षसो को मारा। अनतर मत्रियो तथा रावण के घर आग लगाई। फिर समुद्र मे कूद पडे। इन्हे सदेह हुआ कि कहीं सीता न जल मरी हो, किंतु चारणो द्वारा पता पाया कि वे बची हैं। तब सीता के पास गए और बिदा होकर वापस आ, महेद्र पर्वत पर साथियो से मिले। सब प्रसन्न हुए। इन्होंने सब हाल विस्तार से सुनाया—पॉच छ अध्यायो मे। सीता ऐसी ही कृश है जैसे पड़िवा को पढ़ने वाले विद्यार्थी की विद्या। सब लोग वापस आकर धोवन बन मे आए और वह उजाड़ा गया तथा मद पिया गया। इन्होंने वन-रक्षक सुग्रीव के मामा दधिबल को घसोटा और मारा। सुग्रीव यह सुनकर कार्य-सिद्धि के विचार से प्रसन्न हुए। अब सब प्रस्रवण गिरि पर जाकर राम से मिले। (६८वा अध्याय समाप्त।)

६—लका काड (अध्याय १३०)।

हनुमान ने राम को युद्धार्थ उत्तेजना दी। लका के चारो दरवाज़ो पर उपल यत्र (पत्थर फेंकने के यंत्र) तथा शतघ्नियां रक्खी है। किले के चारो ओर जलचर सेवित खाई हैं। अगाध यत्र द्वारा जल चढाने से शत्रु सेना डूब सकती है। लका मे एक करोड पचीस लाख योद्धा है। राम हनुमान पर चढ़कर चले और लक्ष्मण अगद पर। चार दिन बसकर महेद्राचल पर समुद्र के पास पहुंचे। सेना भी साथ थी। रावण ने हनुमान के कर्मो के कारण दु खित हो मत्रियो से मत्र लिया, उन्होंने रावण की विजयो का हाल कहकर उसे ढाढ़स बधाया। यह सुन विभीषण ने समझाया कि युद्ध न हो तो अच्छा। यह भी कहा कि राम दशरथ के पुत्र है तथा उनके साथ हनुमान देशकालज्ञ है। फिर सभा भग हुई। अनतर विभीषण ने रावण को घर पर भी समझाया कि सीता के आने पर अशकुन हुए है। रावण क्रोधित हुआ। फिर सरदारो की सभा हुई, जिसमे कुभकर्ण भी थे। यह कहा गया कि कुभकर्ण छ मास सोते है। रावण ने सबसे सहायता मागी। कुभकर्ण ने कहा कि राम का कोई अपराध नहीं है, किंतु युद्ध मे मैं आपकी सहायता अवश्य करूगा। विभीषण ने बहुत प्रकार से समझाया। जब रावण ने न माना तब विभीषण ने कहा कि आपका शीघ्र ही नाश होगा। यह कहकर वे अपने चारो मत्रियो

सहित सभा से उठ गए और सीधे राम के पास चले गए। रावण ने उन्हें साधारण दुर्वचन कहे थे और प्रहार नहीं किया था। वानरों ने उन्हें देखकर शंका की और राम ने सबकी सलाह ली। लोगों ने कहा कि छल है। किंतु हनुमान ने कहा कि छल आपही उघर आता है, उन्हें आने दीजिए। (१७वाँ अध्याय)।

हनुमान का विचार हुआ कि जैसे सुग्रीव को राज्य मिला था, वैसे ही लेने के विचार से विभीषण आया होगा। राम ने कहा कि चाहे रावण तक शरण आवे तो उसे भी न मारूँगा। तब सुग्रीव ने विभीषण को बुलाया और विभीषण आकाश से उतरे। विभीषण ने शरण माँगी और राम ने उन्हें मित्र कहा और रावण के बध की युक्ति पूछी। विभीषण ने कहा कि ब्रह्मा के वर से रावण उरग, गंधर्व, देवादि से अवध्य है। कुंभकर्ण ने कैलाश पर मणिभद्र नामक शैवगणों को हराया था। प्रहस्त सेनापति है। वह भी बड़ा पराक्रमी है। मेघनाद हाथों में गोधा (गोह) चर्म का अंगुलि-त्राण पहिनता है। वह इंद्र को जीत चुका है और युद्ध में अदृश्य भी हो जाता है। रावण के पास दश कोटि निशाचर हैं। राम ने कहा कि मैं रावण को जीतकर तुम्हें राज्य दूँगा। विभीषण ने कहा कि राम सागर के शरण जावें तो सगर के नाते वह शायद मार्ग देवे। राम समुद्र-तट पर गए उधर रावण ने शुक को भेज कर गुप्त रूप से सुग्रीव से कहला भेजा कि तुम राम के साथ क्या लाभ पाओगे, इससे घर चले आओ। शुक पक्षी बन कर गया, किंतु सुग्रीव ने न माना और शुक बन्दी हुआ। लोगों ने मारना आरम्भ किया तो रामने मारने से मना किया। तीन दिन याचना करनेसे समुद्र न आया, तब रामने अमोघ-बाण धनुष पर रक्खा जिससे उत्पात होने लगे। तब समुद्र आया और विनती करने लगा। समुद्र के कहने से राम ने वह बाण मरुकांतार बन में छोड़ा जिससे वह मरुस्थल होगया। विश्वकर्मा के पुत्र नल सेतु रचें, ऐसा समुद्र ने कहा। पाँच दिन में पुल बन गया। सेना लंका में सुवेल पर्वत के पास पहुँची। वहाँ शुक छोड़ दिया गया। शुक ने रावण से संधि करने को कहा तो उसने न माना और शुक सारण को भेद लेने भेजा। विभीषण ने उन्हें बंदी कर लिया। राम ने छोड़ दिया। उन्होंने भी संधि की सलाह रावण को दी। रावण ऊँचे स्थान पर चढ़कर शुकसारण से वानरों का हाल पूछने लगा। छः अध्यायों में (२५-३०) इसका वर्णन है। उन्होंने फिर भी संधि की सलाह दी तो रावण ने डाँट बतलाई और महोदर को भेद जानने को भेजा। कुछ लोगों के साथ महोदर जाकर बंदी होगया, किंतु रामने छुड़वा दिया। महोदर ने उनका बल रावण से कहा और संधि की सलाह दी। तब रावण ने मंत्रियों से मंत्र किया और विद्युज्जिह्व को बुला कर सीता को मोहित करने को कहा। उसने राम का सिर बनाया जो रावण ने सीता को दिखलाया। जानकी ने बड़ा विलाप किया। रावण से कहा कि मेरे पति का शरीर मिला दे तो मैं भी प्राण त्याग दूँ। इतने में एक निशाचर दौड़ा आकर रावण से बोला कि मंत्री आपको जल्दी बुलाते हैं। रावण चलागया। तब राम का शिर और धनुष बाण अन्तर्धान हो गए। इस पर सभी ने जानकी को समझाया कि यह माया मात्र है। (३३वाँ अध्याय समाप्त)

वृद्ध लोगों तथा रावण की माता ने सीता को वापस देने को कहा तो रावण ने न माना। माल्यवान के समझाने पर रावण उसपर क्रुद्ध हुआ। प्रहस्त पूर्व फाटक पर रहा, महापार्श्व तथा महोदर दक्षिण पर, इंद्रजीत पश्चिम पर और उत्तर पर स्वयं रावण। शुकसारण राम की सेना के सामने रहे और विरूपाक्ष मध्य देश में। पनस सपाति, अनिल और अनल ये चारों विभीषण के मंत्री थे। ये पक्षी बनकर रावण का हाल देख आए। विभीषण का हुक्म था कि ये चारों मंत्री, स्वयं वह तथा राम लक्ष्मण को छोड़ कोई अन्य व्यक्ति युद्ध में मनुष्य का रूप न धरे। सुवेल गिरि पर रात को बसे। किला १० योजन चौड़ा तथा २० योजन लंबा था। सुग्रीव ने रावण के पास जाकर दुर्वचन कहे तथा उसके मुकुट नीचे फेंक दिए। फिर दोनों में मल्ल-युद्ध हुआ और तब सुग्रीव सेना में चले आए। राम ने कहा कि राजा को ऐसा साहस न करना चाहिए। नील, द्विविद और मयंद पूर्व दिशा में रहे, राम लक्ष्मण उत्तर में, दक्षिण में अंगद तथा पश्चिम में हनुमान। अनंतर अंगद को दूत बनाकर रावण के पास भेजा। अंगद ने कहा सीता को दे दो, नहीं तो मारडाले जाओगे और तुम्हारे पीछे विभीषण का प्रताप होगा। रावण ने कोई उत्तर न दिया और राक्षसों को हुक्म दिया कि इसे पकड़लो या मार डालो। लोग

ऐसा करने को दौड़े, तब अंगद ने महल पर चढ़कर कँगूरा गिरा दिया, जिससे कई राक्षस मर गए। अनंतर ये राम के पास चले आए।

आगे युद्ध होने लगा। रात को भी युद्ध होता रहा। मेघनाद ने राम को बाणों से बेध दिया, नागपाश से बाँध लिया और इन्हें मृतक जानकर वह लंका चला गया। पिता से सब हाल कहा। सुग्रीव विलाप करने लगे तो विभीषण ने समझाया। वानरों ने रामको सब ओर से घेर कर उनकी रक्षा की। रावण ने पुष्पक-यान द्वारा सीता को राम को बँधा हुआ दिखलाया। सीताने विलाप किया और त्रिजटा ने समझाया। राम ने सचेत हो लक्ष्मण की दशा देखकर विलाप किया। वानरों तथा सुग्रीव से कहा कि सब लोग किष्किधा चले जाओ, क्योंकि जीत नहीं हो सकती। इतने में गरुड़ ने आकर नाग-पाश काटे तथा राम लक्ष्मण को बचाया। यह देख वानर नाद करने लगे। तब रावण ने सोच करके धूम्राक्ष को भेजा। धूम्राक्ष पश्चिम द्वार पर आया और हनुमानने शिला से उसे मारा। तब रावण ने वज्रदंष्ट्र को भेजा, जो दक्षिण आकर अंगद द्वारा मारा गया। अकंपन को हनुमान ने मारा, तब प्रहस्त, नरांतक, कुंभ, हनु, समुन्नत और महानाद को लेकर आया। युद्ध होते-होते नील ने इन सबको मारा। तब रावण स्वयं लड़ने आया। उसने बहुतों को घायल किया, किंतु हनुमान की लात से वह बेहोश होगया। फिर चेत में आकर हनुमान की प्रशंसा की। आग्नेय अस्त्र से नील मूर्छित हुए। रावण ने ब्रह्मदत्त शक्ति लक्ष्मण को मारी, जिससे वे मूर्छित होगए। रावण ने लक्ष्मण को उठाना चाहा तो वे न उठे। हनुमान के मुक्के से रावण मूर्छित हो गया। तब हनुमान लक्ष्मण को राम के पास ले गए और वे चेत में आगए। राम हनुमान पर चढ़कर रावण से लड़ने आए। रावण मलिन बदन होकर लंका चला गया। सोचा कि ब्रह्मा तथा अनरण्य के शापसे मुझे मनुष्य तथा अनरण्यवंशी से भय है। रंभा, वरुण-कन्या पुंजकस्थली, नंदी और पार्वती के शापों का स्मरण करके रावण सशोच हुआ, तब कुम्भकर्ण जगाया गया। हाथी, घोड़े तक जगाने से हार गए। तब हज़ारों हाथी उस पर चलाए गए, जिससे वह जागा। वारुणी पीकर युद्ध के लिए जाने को रावण के पास गया। यम को इसने हराया था। इसे शाप व वरदान था कि छः मास सोवेगा और एक दिन जगेगा। विभीषण ने कहा कि वानर कुंभकर्ण को देख कर भागेंगे, सो उनसे कह दिया जाय कि यह मनुष्य नहीं है, वरन् रावण का बनाया हुआ यंत्रमात्र है। कुंभकर्ण ने कहा कि युद्ध बेजा है, किंतु अब आपकी इच्छा है, तो जाता हूँ। रावण ने कुंभकर्ण से कहा कि तुम आचार्य गुरु के समान पूज्य हो। यह कह माला, अँगूठी आदि देकर बिदा किया। (६५ अध्याय समाप्त)

कुंभकर्ण को देख सब वानर भागे। अंगद ने कहा कि यदि भागोगे भी तो सुग्रीव से न बचोगे, तब सब लड़ने लगे। कुंभकर्ण उनके अस्त्र शूल से काटता गया और वानरों को खाता गया। मुख, नाक से बहुतेरे निकल भागते गए। सुग्रीव को काँख में दबाकर चला। उन्होंने नाक कान काट लिए। लक्ष्मण की प्रशंसा कर राम से लड़ने गया, किंतु व्याकुल होकर फिर वानरों से लड़ने लगा। ताल भेदनेवाले और बाली को मारनेवाले बाण कुंभकर्ण पर निष्फल हुए। युद्ध तुलसीदास के समान है। कुंभकर्ण के मरने पर रावण विलाप करने लगा। त्रिशिरा ने उत्तेजना दी। फिर युद्ध होने लगा। नरांतक को अंगद ने और देवांतक को हनुमान ने मारा। महोदर को नील ने मारा। हनुमान ने त्रिशिरा को मारा और ऋषभ ने महापार्श्व को। अतिकाय रावण का धान्य-मालिनी से पुत्र था। बड़ा युद्ध हुआ और लक्ष्मण ने उसे ब्रह्मास्त्र से मारा। तब मेघनाद ने अग्निशाला में यज्ञ करके भारी युद्ध किया। राम, लक्ष्मण तथा अन्य लोग अचेत होगए, केवल विभीषण और हनुमान बचे। मेघनाद आसमान से लड़ता था। वह सबको मरा जान लंका चला गया। उसने छै घड़ी में ६७ करोड़ वानरों को मारा। जाम्बवान ने हनुमान से कहा कि ऋषभ और कैलास के बीच में संजीविनी, विशल्यकरणी, सुवर्णकरणी और संधानकरणी ओषधियाँ हैं, सो लाओ। हनुमान गए और दवा न पहचान कर सारा पर्वत उखाड़ लाए। वैद्य सुषेण का नाम नहीं आया है। हनुमान और विभीषण ने जांबवान के उपदेश से दवा की। सब जी उठे। निशाचरों के शव समुद्र में डाल दिए जाते थे, सो वे न जिए। तब लंका में आग लगाई गई। रावण ने यूपाक्ष, शोणिताक्ष, प्रजंघ, कंपन, कुंभ और निकुंभ (दोनों कुंभकर्ण के पुत्र) को युद्धार्थ भेजा। पहले चारों को अंगद, द्विविद और मयंद ने मारा। कुंभ ने अंगद को मूर्छित कर दिया।

तब सुग्रीव ने उसे मारा और हनुमान ने निकुंभ को। अनंतर रावण ने खरात्मज मकराक्ष को भेजा और राम ने उसे मारा। तब रावण ने इंद्रजीत को फिर भेजा और वह यज्ञ करके आया। युद्ध करके सबको उसने विकल किया। फिर लंका वापस गया और माया की सीता को रथ पर चढ़ाकर पश्चिम द्वार पर आया। वहाँ उसे मार डाला और वानरों से कहा कि अब घर लौट जाओ। यह कह कर लंका वापस गया। राम विलाप करने लगे, किंतु विभीषण ने समझाया कि यह माया है। तब विभीषण, अंगद, हनुमानादि को लेकर लक्ष्मण निकुंभिला गए। सारथी के मरने पर मेघनाद रथ हाँकता और युद्ध करता रहा। अंत में लक्ष्मण द्वारा मारा गया। रावण ने विलाप किया और फिर सीता को वह मारने गया। सुपार्श्व के समझाने से न मारा। (९३ अध्याय समाप्त)। राक्षसों ने युद्ध में हज़ार हज़ार राम देखे। पराजित राक्षस शूर्पणखा की निंदा करने तथा रोने लगे। महापार्श्व महोदर (दूसरे) और विरूपाक्ष युद्धार्थ गए। विरूपाक्ष को सुग्रीव ने मारा और महोदर को भी। अंगद ने महापार्श्व को मारा। तब राम रावण का घोर युद्ध हुआ। रावण ने विभीषण पर दो शक्तियाँ चलाईं, किंतु लक्ष्मण ने काट दीं। तब अमोघ शक्ति से लक्ष्मण बेहोश हुए। राम ने लक्ष्मण के शरीर से निकाल कर शक्ति तोड़ डाली। लक्ष्मण हनुमान की दवा से जिए। इंद्र ने मातलि द्वारा रथ भेजा, जिस पर राम चढ़े। इंद्र-दत्त शक्ति से रावण मूर्छित हुआ। अगस्त्य ने राम को विजयार्थ आदित्य-हृदय सुनाया। फिर युद्ध होने लगा और रावण को पराजय का भय हुआ। शिर काटने पर भी रावण के नये शिर जम आते थे। तब अगस्त्य का दिया हुआ ब्रह्मास्त्र रामने मारा, जिससे रावण मर गया। विभीषण ने विलाप किया। लक्ष्मण का नीति सीखने रावण के पास जाना नहीं लिखा है। अंतःपुर में विलाप होने लगा। विभीषण ने रावण की दाह-क्रिया की। (११३ वाँ अध्याय।)

समुद्र के जल में राम ने विभीषण का अभिषेक किया। जानकी को आते देख राम को रोम-हर्ष हुआ। वानरों को सीता के मार्ग से राम ने हटने न दिया। कहा कि परदा की आवश्यकता नहीं है। सीताजी दूर ही से पालकी से उतर कर बुलाई गईं। रामने कहा कि तुम मेरे योग्य अब नहीं हो। इसमें लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न, सुग्रीव या विभीषण के यहाँ, जहाँ रहना हो, रहो। राम की आज्ञा से लक्ष्मण ने अग्नि जलाई। उसमें जानकी ने प्रवेश किया। ब्रह्मा, इंद्र, महादेव आदि आए और बोले कि जानकी पवित्र है। अग्नि ने भी ऐसा ही कहा। तब राम ने कहा कि लोगों द्वारा कलंकित होने से बचने के लिये मैंने ऐसा किया। महादेव ने रथ पर चढ़े हुए दशरथ को दिखलाया। राम लक्ष्मण ने प्रणाम किया। दशरथ ने राम को गोद लिया और कहा कि घर लौट जाओ और राज्य करो। जो केकई को दशरथ ने सपुत्र छोड़ा था, सो राम के कहने से माफ़ कर दिया। इंद्रने वानरों को जिलाया। विभीषण ने वानरों को वस्त्राभूषण बाँटे। विभीषण, सुग्रीव, अंगद, हनुमान आदि सहित पुष्पक पर चढ़कर राम अयोध्या चले। मार्ग में सीता से शिवलिंग स्थापना का हाल कहा। तारा तथा रोमा को भी पुष्पक पर चढ़ा लिया। भरद्वाज से अयोध्या का हाल पूछा। हनुमान ने नंदिग्राम में दीन भरत को चीर जटा धारण किए देखा। भरत ने हनुमान से एक लाख गौएँ, सौ ग्राम और १६ कन्या ग्रहण करने को कहा। इसके आगे विषयांतर आगया। हनुमान ने सब हाल सुनाया। भरत ने राम को पावड़ी पहनाईं और राज्य ग्रहण करने को कहा। सबों ने जटा मुड़वाई और पुष्पक विमान कुबेर के यहाँ भेज दिया गया। एक अध्याय में राम विष्णु के अवतार कहे गए हैं। सुग्रीव ने वानरों द्वारा चारों समुद्र तथा ५०० नदियों का जल मँगवाया। वामदेव आदि ने अभिषेक किया। उत्सव हुआ। रामने लक्ष्मणसे युवराज होने को कहा, तो उन्होंने इनकार किया। तब भरत को युवराज पद मिला। वानरों को उपहार में गहने मिले। राम-राज्य की महिमा भी कथित है। दश हज़ार वर्ष राज्य करके राम ब्रह्मलोक को गए। एक अध्याय में ग्रंथ श्रवण का माहात्म्य कथित है। (१२०वाँ अध्याय समाप्त।)

५— [illegible]

राम के पास बहुत से ऋषि आए। मेघनाद के वध पर ज़्यादा ज़ोर दिया। पुलस्त्य सत्ययुग में थे। मेरु के बगल तृणबिंदु के आश्रम के पास पुलस्त्य ने तप किया। कन्याओं ने विघ्न किया। तब पुलस्त्य ने शाप दिया कि जो मेरे सामने आवेगी गुर्विणी हो जावेगी। राजा तृणबिंदु की पुत्री इस प्रकार गुर्विणी हुई और विश्रवा पैदा हुए। भरद्वाज की कन्या देववर्णिनी का विवाह विश्रवा से

हुआ, जिससे कुबेर पुत्र उत्पन्न हुए। ब्रह्मा ने इन्हें धनाध्यक्ष बनाया। हेति और प्रहेति प्रधान राक्षस थे। प्रहेति विरक्त हो गया। हेति ने काल की बहन भया से विवाह किया जिससे विद्युत्केश पुत्र हुआ। इसने सध्या की पुत्री शालकटकटा से विवाह किया जिससे सुमाली, माल्यवान और माली नामक तीन पुत्र हुए। इन्होंने मेरु पर तप करके ब्रह्मा से वरदान लिया। नरमदा गंधर्वी ने तीनों को कन्याएँ विवाहीं। सुमाली के प्रहस्त, कपन, धूम्राक्ष, सुपार्श्व आदि पुत्र थे। माली के पुष्पोत्कटा, राका, कुभीनसी और कैकसी कन्याएँ हुईं तथा अनल, अनिल, हर और संपाति पुत्र हुए। ये समय पर विभीषण के मंत्री हुए। माली आदि लंका बनाकर उसमें बसे। अनंतर विष्णु से हारकर माली आदि पाताल चले गए और लंका कुबेर को मिली। सुमाली ने एक रात कैकसी को विश्रवा के पास भेजा। इससे रावण कुंभकर्ण, शूर्पणखा और विभीषण उत्पन्न हुए। रावणादि ने ब्रह्मा से वर पाया। प्रहस्त ने रावण को कुबेर से लंका छीनने को कहा। तो रावण ने भाईपन के कारण इनकार किया। प्रहस्त ने फिर समझाया तब रावण ने कुबेर के पास दूत भेजा और कुबेर ने पिता से कहा तो उन्होंने रावण को दुष्ट और अपने वश न होना कहकर कुबेर को लंका छोड़ अलकापुरी जाने की सलाह दी। उन्होंने ऐसा ही किया और रावण को बिना लड़े लंका मिल गई। शूर्पणखा का विवाह विद्युज्जिह्व से हुआ। मंदोदरी की माता हेमा थी और पिता मय दानव। वैरोचन की पुत्री वज्रज्वाला कुंभकर्ण को व्याही गई और शैलूप गंधर्व की कन्या विभीषण को। कुबेर की एक आँख पार्वती पर बुरी दृष्टि डालने से फूट गई थी। कुबेर ने रावण को समझाया कि देवताओं से न लड़ो तो वह कुबेर ही से लड़ पड़ा और पुष्पक छीन लाया। रावण का पुष्पक महादेव के क्रीडा-स्थल पर रुक गया। रावण ने कैलास उठा लिया तो महादेव ने अँगूठे से दबा दिया जिससे रावण के हाथ दब गए। विनती करने पर शिव ने छोड़ा। बृहस्पति की पोती वेदवती तपस्या करती थी। रावण ने उसके बाल तलवार से काट लिए। वह आग में जल गई और शाप दे गई कि मैं ही अवतार लेकर तेरा नाश कराऊँगी। वही सीता हुई। मरुत के यज्ञ में रावण गया तो संवर्त ने दीक्षा के कारण मरुत को युद्ध न करने दिया। ऋषियों का रुधिर पीकर रावण वापस आया। दुष्यंत, सुरथ, गाधि, गय और पुरूरवा को रावण ने हराया। अयोध्यापति अनरण्य को मारा। रावण ने यम को जीता, पाताल में नागपुरी जीती और मणिपुर में निवात कवचियों से वह साल भर लड़ा और फिर संधि हो गई। वहाँ रावण ने माया सीखी। अश्मपुर में कालकेय दैत्य रहते थे। वहां रावण ने बिना चीन्हे युद्ध में अपने बहनोई विद्युज्जिह्व को मारा। वरुणपुरी को भी जीता। (२३वां अध्याय।)

शूर्पणखा की शिकायत पर कहा कि उसके पति को गलती से मारा। कपिल से लड़ा था। सहस्रार्जुन और बाली से हारा। श्वेत द्वीप में एक स्त्री ने रावण को समुद्र में फेंक दिया। इंद्र ने रावण को घेर लिया किंतु मेघनाद ने छुड़ाया। मेघनाद की क़ैद से इंद्र को ब्रह्मा ने छुड़ाया। फिर प्रजा का विचार सुनकर राम ने सीता को वाल्मीकि आश्रम में छुड़वा दिया। वाल्मीकि ने पर्णशाला में उन्हें मानपूर्वक रक्खा। (४६ अध्याय।)

विष्णु ने भृगु की पत्नी को मारा था, इससे भृगु ने शाप दिया था कि तुम मनुष्य का अवतार धर कर स्त्री वियोग से पीड़ित होगे। सुमंत द्वारा संचालित रथ पर लक्ष्मण सीता को छोड़ने गए थे। नृगोपाख्यान राम ने कहा। नृग राम के समय गिरगिट के ही रूप में थे। निमि की कथा आई है। अगस्त्य और वशिष्ठ घड़े से हुए। मित्र और वरुण दोनों के कारण उत्पन्न होने से अगस्त्य मैत्रावरुण कहलाते थे। उत्तर कांड में रावण की कथा उन्होंने कही है। ययाति का भी वर्णन आया है। कुत्ते की कथा और ब्राह्मण को मठपति करने की कथा क्षेपक है। वह कालिंजर का पूजक नियत हुआ। मधुकैटभ की कथा भी क्षेपक में है। (क्षेपक समाप्त)। लवण को मारने को पहले भरत उठे, किंतु शत्रुघ्न ने कहा कि भरत एक बार राज्य कर चुके हैं, अब मुझे आज्ञा हो। तब राम ने शत्रुघ्न को अभिषिक्त करके भेजा। जिस दिन शत्रुघ्न वाल्मीकि के आश्रम पर थे उसी दिन कुश लव का जन्म हुआ। वाल्मीकि ने कल्माष पाद की कथा कही और शत्रुघ्न को उसका आश्रम दिखलाया। फिर शत्रुघ्न ने लवण को मार मथुरा बसाई और वहाँ राज्य किया। बारह वर्ष वहाँ रहकर सात दिन को राम से मिलने अयोध्या गए और फिर वापस आए। मृत पुत्र लेकर राम के यहां ब्राह्मण का आना और शूद्र मुनि

शंबूक का मारा जाना कथित हैं। मृतपुत्र का जीवित होना भी लिखा है। (७८वाँ अध्याय समाप्त।)

सूर्यवंशी राजा दंड मधुमानपुर (विंध्य और शैवल के मध्य) में राज्य करते थे। वे शुक्र-कन्या अर्जा पर मोहित हुए। इस पर शुक्र ने उनके राज्य को शून्य होने का शाप दिया। उन्हीं राजा के नाम पर दंडकारण्य का नाम पड़ा। राजसूय यज्ञ का होना राजाओं के भावी बध के कारण भरत ने रोका। तब अश्वमेध का विचार हुआ। वृत्रासुर की कथा आई है। अश्वमेध यज्ञ से वह हत्या छूटी। कर्दम के पुत्र इल थे। वेही इला होगए। पीछे अश्वमेध करने से स्त्रीत्व से छूटे। पहले एक मास स्त्री रहते थे और एक मास पुरुष। रामने नैमिष में यज्ञ करने की सलाह की। बाल्मीकि जनक के मित्र थे। इससे वे राम के यहां भोजन न करते थे। कुश लव ने राज-सभा में रामायण का गान किया। पहचाने गए। जानकी बुलाई गईं। जानकी ने शपथ की। पृथ्वी फट गयी और वे समा गयीं। पीछे अयोध्या में तीनों माताएँ मर गईं। केकय देश से गार्ग्य संदेशा लाए कि युधाजित ने सिंधु के निकटवासी गंधर्वों को जीतने की राम से प्रार्थना की। राम ने भरत और पुष्कल और तक्ष को ससैन भेजा। गंधर्व जीते गए। पुष्कलावत में पुष्कल का अभिषेक हुआ और तक्षशिला में तक्ष का। राज्य दृढ़ करके पांच वर्ष में भरत दोनों लड़कों को वहीं छोड़ अयोध्या वापस आए। लक्ष्मण के पुत्र चंद्रकेतु को चंद्रकांत नगर का राज्य मिला और अंगद को कामरूप में अंगदिया नगरी का। दश हज़ार वर्ष जब राम राज्य कर चुके, तब काल मुनि का वेष रखकर उनके पास आया। उसके कथनों में अवतारों का कथन है। दुर्वासा के आने पर लक्ष्मण को आज्ञा भंग करनी पड़ी। राम से त्यक्त होने पर वे गुप्तारघाट में जाकर डूब गए। इस पर राम ने आत्म-हत्या का विचार किया। तब शत्रुघ्न ने अपने पुत्र सुबाहु को मथुरा का राजा किया और शत्रुघाति को विदिशा का। रामने कुश को कुशावती का राजा बनाया और लव को श्रावस्ती का। भरत को अयोध्या का राज्य देने को कहा, किंतु उन्होंने कहा कि बिना आपके हम जी न सकेंगे। सुग्रीव ने अंगद को राज्य दिया। भगवान् ने हनुमान को अमर किया। जामवंत, द्विविद और मयंद बचे रहे। शेष सब सुग्रीव, राम तथा उनके भाइयों सहित गुप्तारघाट में डूब मरे। बहुत से अयोध्यावासी डूब मरे। अयोध्या उजाड़ सी हो गई। (१११ अध्याय समाप्त।) ग्रंथ समाप्त।

मिश्रबंधु

अनेकांतवाद

न सब वस्तुओं को अनेकांत मानते हैं, अर्थात् किसी वस्तु के लिये यह नहीं कहते हैं कि वह सर्वथा ऐसी ही है; क्योंकि भिन्न-भिन्न अवस्थाओं और व्यवस्थाओं में वस्तुओं के भिन्न-भिन्न रूप होते हैं। जब हम यह कहें कि यह गिलास सुवर्ण का है, तो उससे हमारा अभिप्राय है कि वह परमाणुओं का समुदाय-रूप है, और यही द्रव्य है—आकाश द्रव्य नहीं है, अर्थात् सुवर्ण का गिलास केवल एक अर्थ में द्रव्य है—सब अर्थों में द्रव्य नहीं है। आकाश अथवा काल द्रव्य पृथक् है और सुवर्ण द्रव्य पृथक् है। यह द्रव्य तो केवल परमाणुओं का समूह है। इस प्रकार एक ही समय में सुवर्ण द्रव्य भी है, और द्रव्य नहीं भी है। वह पृथ्वी-परमाणुओं का बना हुआ है—जल-परमाणुओं का नहीं। पृथ्वी-परमाणुओं से बने हुए होने का अर्थ यह है कि सुवर्ण पृथ्वी के धातुरूप का विकार है न कि पृथ्वी का, अथवा और कोई विकार है—जैसे कि मृत्तिका, पत्थर आदि। धातु परमाणुओं से बने होने का आशय यह है कि वह सुवर्ण के परमाणुओं से बना है—लोहे के परमाणुओं से नहीं। सुवर्ण के परमाणुओं से भी अभिप्राय पिघलाए हुए और शुद्ध सुवर्ण के परमाणुओं से है, न कि खान के, बिना शुद्ध किए हुए, सुवर्ण के परमाणुओं से। फिर पिघलाए हुए और शुद्ध सुवर्ण से बना होने का अभिप्राय उस सुवर्ण से है, जिसे देवदत्त सुनार हथौड़े से पीटकर किसी रूप में लाया है न कि यज्ञदत्त सुनार। फिर पूर्वोक्त प्रकार से परमाणुओं से बने होने का अर्थ यह है कि वह गिलास के रूप में बना है—घट रूप में नहीं। इस प्रकार जैन कहते हैं कि वस्तुएँ केवल किसी विशेष सीमा तक सत्य

कही जा सकती हैं—सर्वथा सत्य नहीं। जैनो का कथन है कि वस्तुओं के अनंत धर्म हैं, जिनमें से प्रत्येक को सत्य किसी विशेष अर्थ में कह सकते है। घट जैसी साधारण वस्तु को अनंत धर्मों का विषय बना सकते हैं, और असंख्य दृष्टियों से उसे असख्य धर्मों का रखनेवाला कह सकते हैं, जो किसी विशेष रूप में सत्य है, पर सब अवस्थाओं मे सत्य नहीं। दरिद्रता मे धन होना नहीं कह सकते, लेकिन यह कह सकते हैं कि इस दरिद्री मनुष्य के पास धन नहीं है। दरिद्री मनुष्य विध्यात्मक अर्थ में धन नहीं रखता है। इस प्रकार किसी-न-किसी सबध मे कोई चीज़ किसी अन्य चीज़ के विषय में कही जा सकती हैं, लेकिन दूसरे सबधों में वही चीज़ उसके विषय में नहीं कही जा सकती है।

भिन्न-भिन्न दृष्टियाँ, जिनके कारण वस्तुओं मे यह अथवा वह धर्म कह सकते हैं, अथवा उन्हें इस या उस सबंध में स्थित बता सकते है, नय के नाम से पुकारी जाती हैं।

नयसिद्धात

वस्तुओ के विषय में व्यवस्था देने के लिये हमारे लिये दो मार्ग हैं. पहला यह कि हम किसी वस्तु के विविध गुण और धर्मों को देखे, पर उन्हे उसी वस्तु मे एकत्रित हुए माने। उदाहरण—जब हम कहे कि यह पुस्तक है तो हम उसके धर्मों को उससे पृथक् नही देखते हैं, बल्कि उसमे सम्मिलित देखते है दूसरा मार्ग है कि हम वस्तु के गुण और धर्मों को वस्तु से पृथक् देखे और वस्तु को शून्यता माने, जैसे कि बौद्ध लोग मानते है। इस दृष्टि से हम पुस्तक के धर्म और गुणों को पुस्तक से पृथक् देखेगे और कहेंगे कि सिर्फ ये गुण ही दिखाई देते हैं, पुस्तक जिसमे ये गुण हैं दिखाई नही देती, इसलिये पुस्तक इन गुणो से पृथक् वस्तु नहीं है। इन दोनो दृष्टियो के नाम द्रव्यनय और पर्यायनय हैं, यानी पहला मार्ग द्रव्यनय कहलाता है और दूसरा पर्यायनय। द्रव्यनय तीन प्रकार का है और पर्यायनय चार प्रकार का, जिनमें से पहला प्रकार हमारे मतलब का है। और बाकी तीनो का काम व्याकरण और भाषा के सबध मे पड़ता है, इसलिये इनका उल्लेख यहाँ नहीं किया जा सकता है।

द्रव्यनय के तीनो प्रकारो को नैगमनय, सग्रहनय और व्यवहारनय कहते है।

अब हम सर्वसाधारण दृष्टि से किसी वस्तु को देखते हैं, तो हम अपने विचारों को स्पष्ट और यथार्थ नहीं कहते हैं। मैं अपने हाथ में एक पुस्तक ले लूँ, और जब कोई पूछे कि क्या तुम्हारा हाथ खाली है, तो जवाब दूँ कि नहीं, मेरे हाथ में कुछ चीज़ है, या मै यह कहूँ कि मेरे हाथ में पुस्तक है। पहले उत्तर में मैं ने पुस्तक को अत्यत विस्तृत और सामान्य दृष्टि से देखकर उसे चीज़ कहा और दूसरे उत्तर में मैंने पुस्तक को उसके विशेषरूप में बताया। मै किसी पुस्तक का एक पृष्ठ पढ़ रहा हूँ। किसी ने पूछा—क्या कर रहे हो? मैने जवाब दिया कि पुस्तक पढ़ रहा हूं, लेकिन वास्तव मे मैं पुस्तक का एक पृष्ठ पढ़ रहा था। मै कुछ खुले कागज़ो पर लिख रहा हू, और कोई पूछे तो कहूँ कि यह मेरी जैनदर्शन-सबधी पुस्तक है—वास्तव मे कोई पुस्तक नहीं है, सिर्फ़ कुछ खुले हुए कागज़ हैं। हमें जैसी चीज़ें दिखाई दें वैसी ही उन्हे कहना नैगम-दृष्टि कहलाती है। वस्तु में अत्यंत सामान्य धर्म भी होते हैं और अत्यत विशेष धर्म भी। हम चाहे उसे पहले रूप में देखे या दूसरे मे. जब हम एक रूप में देखें तो उसका दूसरा रूप छिपा रहता है। जैसे मेरे हाथ में पुस्तक है तो किसी के कहने पर मैं कहता हूँ—मेरे हाथ में कुछ चीज़ है। यह पहली दृष्टि है, और जब मै कहूँ कि मेरे हाथ मे पुस्तक है, तो यह दूसरी दृष्टि है। जैनो की संमति मे न्याय और वैशेषिक शास्त्र अनुभव को इसी दृष्टि से देखते है।

सग्रहनय द्वारा हम वस्तुओ को अत्यत व्यापक और साधारण दृष्टि से देखते है। जैसे हम सब पृथक् पृथक् वस्तुओं को एक व्यापक दृष्टि से कहे कि वे सत्ता वाली है। जैनो के मतानुसार यह वेदात-शास्त्र की दृष्टि है।

व्यवहार दृष्टि इस प्रकार है—किसी पुस्तक को लो। उस पुस्तक मे और दूसरी सब पुस्तको मे कुछ लक्षण एक से ज़रूर है, लेकिन इसमे कुछ विशेष लक्षण भी हैं, जो दूसरी पुस्तको में नहीं हैं। इसके परमाणुओं मे निरंतर परिवर्तन होता रहता है। लेकिन इस परिवर्तन होने पर भी वह कुछ भूतकाल से पुस्तक के रूप मे चली आई है और भविष्यत् मे भी कुछ काल तक पुस्तक रहेगी। हमारे प्रतिदिन के अनुभव की पुस्तक का साराश ये लक्षण ही हैं। इनमे से किसी लक्षण को पृथक् नहीं कर सकते, और कह सकते कि यह लक्षण पुस्तक का रूप है। जैनो के मतानुसार यह सांख्यशास्त्र की दृष्टि है। वस्तु का

वास्तव में जैसा अनुभव होवे, उसी दृष्टि से उसे देखना वस्तु का असली रूप है। इसमें सामान्य और विशेष दोनों लक्षण आ जाते हैं, जो पहले से बने हैं और आगे भी बने रहेंगे। इनके होने पर भी कुछ-कुछ परिवर्तन होता रहता है, जो परिवर्तन हमारे काम के हजारों तरह से हैं।

पर्याय नय की पहली दृष्टि का नाम ऋजुसूत्र है। यह बौद्धों की दृष्टि है, जिनके अनुसार वस्तु न भूतकाल में थी और न भविष्यत्काल में रहेगी। लेकिन यह बताती है कि वस्तु केवल लक्षणों के समुदाय का नाम है, जो किसी निर्दिष्ट क्षण में कार्य उत्पन्न करते हैं। प्रत्येक नए क्षण में नए गुणों के नए समुदाय होते हैं, और ये ही वस्तुओं के रूप के असली तत्त्व हैं।

नय वस्तुओं को देखने के दृष्टिकोण हैं, और इस प्रकार संख्या में अनंत हैं। उपर्युक्त चार नय इनके मुख्य भेद हैं। जैनों का कथन है कि न्याय, वैशेषिक, वेदांत सांख्य और बौद्ध दर्शन ने अनुभव की व्यवस्था पूर्वोक्त चार नयों की दृष्टि से की है और हरेक अपनी दृष्टि को सर्वथा सत्य और दूसरों की दृष्टि को सर्वथा असत्य समझता है। यह उनका नयाभास है। क्योंकि प्रत्येक नय उन अनेक नयों में से एक है, जिसके द्वारा वस्तुएँ देखी जा सकती हैं। किसी एक नय की दृष्टि से वस्तु की सत्यता केवल किसी सीमा तक और किसी अवस्था में हो सकती है—सर्वथा सत्यता नहीं हो सकती है। वस्तुओं के विषय में असंख्य सत्य वाक्य असंख्य दृष्टियों से हो सकते हैं। वस्तुओं के विषय में किसी एक नय से सत्य वाक्य कहना सर्वथा सत्य नहीं हो सकता है क्योंकि दूसरे नयों से उन्हीं वस्तुओं के विषय में बिलकुल विरुद्ध व्यवस्था दी जा सकती है।

प्रत्येक वाक्य की सत्यता केवल अवस्थापेक्ष है। यह नहीं कह सकते हैं कि सब अवस्थाओं में सदैव यही सर्वथा सत्य है। भूल न होवे इसलिये प्रत्येक वाक्य के पहले 'स्यात्' शब्द लगा देना चाहिए। इसका यह अर्थ होगा कि यह वाक्य केवल सापेक्ष है और किसी एक नय से और किसी विशेष अवस्थाओं में किसी प्रकार कहा गया है, लेकिन किसी प्रकार सर्वथा सत्य नहीं है। कोई व्यवस्था वा वाक्य ऐसा नहीं है जो सत्य ही होवे और न कोई ऐसा वाक्य है जो सर्वथा असत्य होवे। सब वाक्य किसी एक अर्थ में सत्य होते हैं और दूसरे अर्थ में असत्य। इस संबंध में जैन धर्म के प्रसिद्ध सिद्धांत स्याद्वाद का उल्लेख करना आवश्यक है।

स्याद्वाद

असंख्य प्रकार के विरुद्ध लक्षण किसी वस्तु के साथ हो सकते हैं। ऐसी दशा में किसी एक नय की दृष्टि से जो कुछ कहा जाय, एकांत सत्य नहीं हो सकता है।

१ स्यादस्ति
२ स्यान्नास्ति
३ स्यादस्ति स्यान्नास्तिच
४ स्यादवक्तव्य
५ स्यादस्ति चावक्तव्यश्च
६ स्यान्नास्ति चावक्तव्यश्च
७ स्यादस्ति स्यान्नास्ति स्यादवक्तव्यश्च

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि घट है, लेकिन स्यात् घट है, यह कहना अधिक ठीक होगा। क्योंकि हरेक वस्तु का होना एकांत मान लिया जावेगा तो उसका अर्थ यह भी हो सकता है कि मट्टी का ढेला है, खंभ है, पट है अथवा अन्य कोई वस्तु है। यहाँ तो घट शब्द से होना संबद्ध है। घट का अर्थ एकांत अस्तित्व नहीं है, बल्कि उतना ही अस्तित्व माना गया है जितना घट रूप से संबंध रखता है। घट का होना ही माना गया है, सर्वथा अस्तित्व नहीं माना है, नहीं तो घटोऽस्ति से वृक्षोऽस्ति, पटोऽस्ति इत्यादि भी समझे जा सकते हैं। घटोऽस्ति कहने से जगत् में जितनी वस्तुएँ हैं, उन सबका अभाव माना गया है। घट का प्रत्येक लक्षण जैसे रक्तता होना माना गया है और नाना प्रकार के अन्य वर्णों से जैसे—काला, नीला पीलादि का अभाव माना गया है। घट से भिन्न जितने अनेक धर्म हैं, उन सबका अभाव माना गया है। जब हम 'घट है' यह कहें तो यह मतलब है कि घट के सिवा और कुछ नहीं है। एक दृष्टि से देखने से कि घट है उसका अस्तित्व सिद्ध होता है, लेकिन दूसरी दृष्टि से देखने से उसका अभाव सिद्ध होता है। अर्थात् घटोऽस्ति का अर्थ है कि घटरूप तो है पर वह पटरूप तथा वृक्षरूप नहीं है। इसलिये घट अपने रूप में तो है लेकिन दूसरे के रूप में नहीं है। इस प्रकार घटोऽस्ति और घटोनास्ति दोनों वाक्य दो भिन्न-भिन्न दृष्टियों से ठीक हैं, एक दूसरे के विरुद्ध नहीं हैं। दूसरे प्रकार से यह भी कह

सकते हैं कि जो घट यहाँ है वह है, वह वहाँ नहीं है; यानी घट अपने क्षेत्र में है, पर-क्षेत्र में नहीं है।

इन दोनों वाक्यों को मिलाने से तीसरा वाक्य बनता है—स्यादस्ति स्यान्नास्ति। इसका अर्थ है कि घट अपने रूप और अपने क्षेत्र में है और पर-रूप और पर-क्षेत्र में नहीं है।

यदि हम तीसरे वाक्य का अर्थ इस प्रकार नहीं माने तो चौथा वाक्य होगा यानी स्यादवक्तव्य। यानी घट ऐसी वस्तु होगा जिसके विषय में हम कुछ कह नहीं सकते हैं।

पांचवां वाक्य होता है—स्यादस्ति स्यादवक्तव्यश्च

छठा वाक्य है—स्यान्नास्ति अवक्तव्यश्च

सातवां वाक्य है—स्यादस्ति, स्यान्नास्ति स्यादवक्तव्यश्च

जैनों का कथन कि कोई एकांत सत्य नहीं है—प्रत्येक अपने परिमित अर्थ में सत्य है और प्रत्येक में सप्तभंगी-नय लग सकता है। जैन कहते हैं कि दूसरे हिंदू शास्त्र अपनी दृष्टि से एकांत सत्य बताते हैं और कहते हैं कि जिस दृष्टि से हम कहते हैं वही दृष्टि सत्य है, अन्य दृष्टियां सत्य नहीं हैं। वे नहीं जानते कि सत्य इस प्रकार का है कि प्रत्येक वाक्य की सत्यता आपेक्षिक है और विशेष दशाओं और परिस्थितियों में ही ठीक है—सर्वत्र और सर्वथा ही ठीक नहीं है। इसलिये किसी वाक्य की सत्यता विश्वव्यापी और एकांत रूप से नहीं हो सकती क्योंकि उसके विरुद्ध वाक्य की सत्यता भी किसी दूसरी दृष्टि से सिद्ध हो जायगी।

सब सत्यता द्रव्यरूप से कुछ नित्य है और पर्यायरूप से कुछ अनित्य है, क्योंकि पहले धर्म जाते रहते हैं और नवीन धर्म आते रहते हैं। इसलिये सत्यता के विषय में सारे सब वाक्य सापेक्षक सत्य और असत्य हैं। भाव, अभाव, अवक्तव्यत्व, ये नय के तीनों पदार्थ प्रत्येक वस्तु के लिए किसी न किसी रूप और किसी न किसी दृष्टि से एक से लग सकते हैं। भाव और अभाव सर्वथा नहीं हैं और सब वाक्य केवल सापेक्षक ठीक हैं। स्याद्वाद का संबंध नय सिद्धांत के साथ इसलिये यह है कि किसी वस्तु का निर्णय किसी नय के अनुसार इतनी तरह से हो सकता है जितनी तरह स्याद्वाद में बताई गई है। इसलिये किसी भी वाक्य की सत्यता केवल सापेक्षक है। किसी नयानुसार वाक्य के निर्णय में यह बात याद रखनी चाहिए, तभी उस नय का सदुपयोग होगा। यदि किसी विशेष नयानुसार वाक्यों का एकांत सत्य होना कहा जावे और स्याद्वाद सिद्धांतानुसार दूसरे नयों पर ध्यान न दिया जावे तो इन नयों का दुरुपयोग, जैसा कि अन्य दर्शनों में होता है, होगा और ये वाक्य असत्य होंगे, और इसलिये इन्हें नयाभास कहना चाहिए।

सप्तभंगी-नय

जैनशास्त्रज्ञ इसी नय के द्वारा संसार की समस्त चेतन, अचेतन वस्तुओं का निर्णय करते हैं—विशेषतः नव-तत्वों का अधिगम (ज्ञान) प्रमाण और नय के द्वारा होता है। जिससे तत्वों का संपूर्ण रूप से ज्ञान हो, वह प्रमाणात्मक अधिगम है, और जिसके द्वारा इनके केवल एक देश का ज्ञान हो, वह नयात्मक अधिगम है।

ये दोनों भेद सप्त-भंगीनय में विधि और निषेध की प्रधानता से होते हैं, अतः यह नय प्रमाण सप्तभंगी और नय सप्तभंगी दोनों कहलाता है।

सप्तानां भङ्गानां वाक्यानां समाहारः समूहः सप्तभङ्गी

सात वाक्यों के समूह को सप्तभंगी कहते हैं। भंग का अर्थ वाक्य है। एक वस्तु में अनेक धर्म रहते हैं। वे एक दूसरे के विरुद्ध नहीं होते, जैसे देवदत्त पिता, पुत्र भाई, ससुर, साला, पति इत्यादि सभी है—अपने लड़के का पिता है, अपने पिता का पुत्र है, अपने भाई का भाई है, अपनी लड़की के पति का ससुर है, अपनी बहिन के पति का साला है, अपनी स्त्री का पति है। यद्यपि ये सब धर्म-विरुद्ध दिखाई देते हैं, तदपि एक देवदत्त में विद्यमान हैं और अविरुद्ध हैं और ये सब धर्म एक ही नय या दृष्टि से नहीं देखे जाते हैं, अनेक दृष्टियों से अवलोकनीय हैं। इन अविरुद्ध नाना धर्मों का निश्चय ज्ञान सप्तभंगी-नय के सात वाक्यों द्वारा होता है। संशय हो सकता है कि इस नय के सात ही वाक्य क्यों हैं, अधिक या न्यून क्यों नहीं? तो उत्तर है कि, जिज्ञासु को किसी वस्तु के निश्चय करने में सात संशयों से अधिक नहीं हो सकते, इसलिये इस नय में सात वाक्य हैं, जो इन सात संशयों के निवारक हैं। इस नय के सात भंग ये हैं—

१ स्यादस्ति घट

स्यात् घट है।

२. स्यान्नास्ति घट।

स्यात् घट नहीं है।

३. स्यादस्ति नास्तिच घटः ।

स्यात घट है, और नहीं भी है।

४. स्यादवक्तव्यो घटः ।

स्यात घट अवक्तव्य है, अर्थात ऐसा है कि उसके विषय मे कुछ कह नही सकते ।

५ स्यादस्ति चावक्तव्यश्च घटः ।

स्यात घट है और अवक्तव्य भी है।

६ स्यान्नास्ति चावक्तव्यश्च घटः ।

स्यात घट नहीं है और अवक्तव्य भी है।

७ स्यादस्ति नास्तिचावक्तव्यश्च घटः।

स्यात् घट है, नही भी है और अवक्तव्य भी है।

इन वाक्यो में स्यात् शब्द अनेकांत रूप अर्थ-बोधक है। इसके प्रयोग से वाक्य मे निश्चयरूपी एक अर्थ ही नही समझा जाता है, बल्कि उसमें जो दूसरे अंश मिले हुए हैं उनकी ओर भी दृष्टि पड़ती है।

इन वाक्यों मे अस्ति शब्द से वस्तु मे धर्मों की स्थिति सूचित होती है। यह स्थिति अभेदरूप आठ प्रकार से हो सकती है, अर्थात १ काल, २ आत्मरूप, ३ अर्थ, ४ संबंध, ५ उपकार, ६ गुणिदेश, ७ संसर्ग, ८ शब्द ।

प्रत्येक स्थिति का उदाहरण देखिये—

काल—घट मे जिस काल मे अस्तित्व धर्म है, उसी काल में उसमें घट-नास्तित्व अथवा अवक्तव्यत्वादि धर्म है इसलिये घट मे इन सब अस्तियों की एक समय ही स्थिति है, अर्थात् काल द्वारा अभेद स्थिति है।

आत्मरूप—जैसे घट अस्तित्व का स्वरूप है, वैसे ही वह और धर्मों का भी स्वरूप है— उसमे अस्तित्व के सिवा और धर्म भी है। धर्म जिस स्वरूप से वस्तु मे रहते है वही उनका आत्मरूप है।

अर्थ—जो घटरूप द्रव्य पदार्थ के अस्तित्व धर्म का आधार है, वही घट द्रव्य अन्य धर्मों का भी आधार है।

संबंध—जो 'स्यात्' संबंध अभेदरूप अस्तित्व का घट के साथ है, वही स्यात संबंध रूप आदि अन्य सब धर्मों का भी घट के साथ है।

उपकार—जो अपने स्वरूपमय वस्तु को करना उपकार अस्तित्व का घट के साथ है, वही अपना वैशिष्ट्य संपादन उपकार अन्य धर्मों का भी है।

गुणिदेश—घट के जिस देश मे अपने रूप से अस्तित्व धर्म है, उसी देश में अन्य की अपेक्षा से नास्तित्व आदि संपूर्ण धर्म भी हैं।

संसर्ग—जिस प्रकार एक वस्तुत्व-स्वरूप से अस्तित्व का घट मे संसर्ग है, वैसे ही एक वस्तुत्व-रूप से अन्य सब धर्मों का भी संसर्ग है।

शब्द—जो 'अस्ति' शब्द अस्तित्व धर्मस्वरूप घट आदि वस्तु का भी वाचक है उसी वाच्यत्वरूप शब्द से सब धर्मों की घट आदि पदार्थों मे अभेदवृत्ति है।

इस प्रकार द्रव्यार्थिक नय की प्रधानता से वस्तु में सब धर्मों की अभेदरूप से स्थिति रहती है, और पर्यायार्थिक नय की प्रधानता से यह स्थिति अभेदोपचार के रूप से रहती है। अनेकांतवाद की सूचना इन दोनों के द्वारा होती है।

पूर्वोक्त सात वाक्यों मे घट वस्तु ही है। इसके चार रूप हैं अर्थात निजरूप, पररूप, द्रव्यरूप और पर्य्याय रूप। इनमें से भी वस्तु का निजरूप चार प्रकार से होता है, अर्थात— नाम, स्थापना, द्रव्य और भाव। उदाहरण—

घट का नाम घट है, कूँडी, नांदी आदि नहीं है। घट की स्थापना वही क्षेत्र है, जहाँ वह धरा है, दूसरा क्षेत्र नही।

घट का द्रव्य मृत्तिका है, सुवर्ण नही।

घट का काल वर्तमान है, भूत भविष्यत नही।

घट की मृत्तिकादि उसका द्रव्यरूप अर्थात निज-रूप है। मृत्तिका से जो सैकड़ो चीज़े बनती हैं जैसे कूँडी, मटकना, नांदी आदि, ये उसके पर्य्यायरूप हैं।

सप्तभंगी-नय के सप्तक वाक्य का स्पष्ट विवरण—

१ - स्यादस्तिघटः। स्यात घट है— इसका अर्थ है कि घट अपने निजरूप से है अर्थात नाम स्थापना (क्षेत्र), द्रव्य और भाव (काल) से है। टेढ़ी गर्दनरूप से घट का नाम है। मृत्तिका इसका द्रव्य है। जहाँ वह धरा है वह स्थान उसका क्षेत्र है। जिस समय में वह वर्तमान है वह इसका काल है। इन चीज़ों के रहते घट है। स्यात् इस बात को बताता है कि घट मे केवल ये ही चीज़े नही हैं जो प्रधानता से बताई गई हैं, बल्कि और भी हैं। यह अनेकांतार्थ-वाचक है। इस वाक्य मे सत्ता प्रधान है।

२—स्यान्नास्तिघटः। स्यात घट नहीं है—इसका अर्थ है कि घट पर-नाम, पर-रूप, पर-द्रव्य, पर-क्षेत्र और पर-काल से नहीं है। घट का निजरूप तो टेढ़ी गर्दन

थी, लेकिन इस रूप से पृथक् जो रूप है, जैसे चपटा लम्बा आदि वह इसमें नहीं है। जैसे पट वृक्षादि का रूप। घट का द्रव्य मृत्तिका है लेकिन परद्रव्य सुवर्ण, लोहा, पत्थर, सूत इत्यादि है, जो घट में नहीं हैं। घट का क्षेत्र तो वही स्थान था जहाँ वह रक्खा था यानी पटा या पत्थर, दूसरा स्थान पृथिवी, छतादि जो नहीं है। घट का निज काल तो वर्तमान था, दूसरा काल भूत या भविष्यत् काल है। इसमें असत्ता प्रधान है। परंतु यह नहीं समझना चाहिए कि इसमें घट का निषेध है। नहीं कहने से घट का अस्तित्व चला नहीं गया, बल्कि गौण हो गया और पर-स्वरूप की प्रधानता हो गई है।

वह वाक्य पहले वाक्य का निषेधरूप से विरुद्ध नहीं है, बल्कि इसमें असत्ता प्रधान है और सत्ता गौण है।

३—स्यादस्ति नास्ति च घटः। स्यात् घट है और नहीं भी है—पहले घट के निजरूप की सत्ता प्रधान होने से घट का होना बताया है और फिर घट के पर-स्वरूप की असत्ता प्रधान होने से उसका नहीं होना बताया है। घट के निज-रूप को देखा जाय तो घट है और पररूप को देखा जाय तो घट नहीं है।

४—स्यादवक्तव्यो घटः। स्यात् घट अवक्तव्य है—घटके निज-रूप की सत्ता और उसके पररूप की असत्ता—इन दोनों को एक ही समय में प्रधान समझा जाय तो घट अवक्तव्य हो जाता है अर्थात् ऐसी वस्तु होजाता है जिसके विषय में कुछ कह नहीं सकते हैं। एक ही समय में असत्ता और सत्ता की प्रधानता मानने से घट का रूप अवक्तव्य होजाता है।

५—स्यादस्ति चावक्तव्यश्च घटः। स्यात् घट है और अवक्तव्य भी है—द्रव्यरूप से तो घट है, लेकिन उसका द्रव्य और पर्याय रूप एक काल में ही प्रधान भूत नहीं है। सत्तासहित अवक्तव्यता की प्रधानता है। घट के द्रव्य अर्थात् मृत्तिकारूप को देखे तो घट है, परन्तु द्रव्य (मृत्तिका) और उसके परिवर्तन-शील रूप दोनों को एक समय में ही देखें तो वह अवक्तव्य है।

६—स्यान्नास्ति चावक्तव्यश्च घटः। स्यात् घट नहीं है और अवक्तव्य भी है—घट अपने पर्यायरूप की अपेक्षा से नहीं है, क्योंकि वे रूप क्षण क्षण में बदलते रहते हैं लेकिन प्रधानभूत द्रव्य पर्याय उभय की अपेक्षा से वह अवक्तव्यत्व का आधार है। इसमें असत्तासहित अवक्तव्यत्व की प्रधानता है।

७—स्यादस्ति नास्ति चावक्तव्यश्च घटः। स्यात् घट है, नहीं भी है और अवक्तव्य भी है—द्रव्य पर्याय पृथक्-पृथक् की अपेक्षा से सत्ता असत्ता सहित मिलित तथा साथ ही योजित द्रव्य पर्याय की अपेक्षा से अवक्तव्यत्व का आश्रय घट है। मृत्तिका की दृष्टि से घट है। उसके क्षण-क्षण में रूप बदलते हैं, इस पर्याय दृष्टि से घट नहीं है। इन दोनों को एक साथ देखो तो घट अवक्तव्य है।

साराश—जब किसी वस्तु का निर्णय करना है तो उसे केवल एक दृष्टि से देखकर ही व्यवस्था नहीं देनी चाहिये, प्रत्येक वस्तु में अनेक धर्म होते हैं—उन सभी धर्मों को देखना चाहिये। जैन-सिद्धांत के अनुसार प्रत्येक वस्तु सात दृष्टियों से मुख्यतः देखी जा सकती है। इनमें से प्रत्येक दृष्टि सत्य है, पर पूरा ज्ञान तभी हो सकता है जब ये सातों दृष्टियां मिलाई जायें।

जैसे प्रत्येक वस्तु में 'अस्ति' लगाकर वाक्य बनाते हैं, वैसे नित्य, अनित्य, एक, अनेक, शब्द भी लगाये जाते हैं, जैसे स्यात् घट नित्य है (द्रव्य रूप से)

स्यात् घट अनित्य है (पर्यायरूप से)

स्यात् घट एक है (द्रव्यरूप से) क्योंकि द्रव्य एक है और सामान्य है।

स्यात् घट अनेक हैं (पर्यायरूप से—क्योंकि रस, गंधादि अनेक पर्यायरूप है)

एकांत और अनेकांत

एकांत दो प्रकार का है—सम्यक् और मिथ्या। इसी तरह अनेकांत भी दो प्रकार का है।

एक पदार्थ में अनेक धर्म होते हैं, उनमें से किसी एक धर्म को प्रधान कर कहा जाय और दूसरे धर्मों का निषेध नहीं किया जाय तो सम्यक् एकांत है।

यदि किसी एक धर्म का निश्चय कर अन्य सब धर्मों का निषेध किया जाय तो वह मिथ्या एकांत है। सम्यक् एकांत नय है और मिथ्या एकांत नयाभास है।

एक वस्तु में प्रत्यक्ष, अनुमान और आगम प्रमाणों से अविरुद्ध अनेक धर्मों का निरूपण करना सम्यक् अनेकांत है।

एक वस्तु में प्रत्यक्षादि प्रमाणों से विरुद्ध अनेक धर्मों की कल्पना करना मिथ्या अनेकांत है।

सम्यक् अनेकांत प्रमाण है और मिथ्या अनेकांत प्रमाणाभास है।

सप्तभंगीनय मे सम्यक् एकात और सम्यक् अनेकात दोनो मिले है।

पहला वाक्य एकात की अपेक्षा से है।

दूसरा वाक्य अनेकात की अपेक्षा से है।

तीसरा वाक्य एकात और अनेकात दोनो की अपेक्षा से है।

चौथा वाक्य एकात और अनेकात की एक काल मे योजना की अपेक्षा से है।

पाँचवा वाक्य एकात और उभयवाद की एक काल मे योजना की अपेक्षा से है।

छठा वाक्य अनेकात और उभय की एक काल की योजना की अपेक्षा से है।

सातवाँ वाक्य एकात और अनेकात और उभयवाद की एककाल मे योजना की अपेक्षा से है।

इस नय मे मूल भूत भग पहले के दो वाक्य 'अस्ति' और 'नास्ति' है। आगे के ३ से ७ तक वाक्य इन्हीं की योजना से होते है।

जैनमत के विद्वानो का कथन है कि अन्य मत एकात को मानते है और जैनमत सम्यक् एकात और सम्यक् अनेकांत को मानता है। इनके कथनानुसार साख्यमत केवल द्रव्य को ही तत्त्व मानता है, उसकी पर्य्याय को नहीं। इसलिये उसकी दृष्टि से इस नय का एक ही भग सत्य है। परतु पर्य्याय भी अनुभव सिद्ध है अत यह मत ठीक नही है। बौद्ध इस नय के दूसरे भग को ही सत्य मानते है—यानी इनके मतानुसार पर्य्याय ही तत्त्व है और कोई मुख्य द्रव्य तत्त्व नहीं है। लेकिन घट पदार्थ मे मृत्तिका द्रव्य है और उसके पर्य्याय अनेक है। ऐसे ही सुवर्ण द्रव्य है और कुडल कटकादि उसके पर्य्याय है। ये अनुभव सिद्ध है, अत यह मत भी ठीक नही है।

वेदाती इस नय के तीसरे वाक्य को सत्य मानते है। वे कहते है कि वस्तु सर्वथा अवक्तव्यरूप ही है। जब वे अवक्तव्य शब्द से वस्तु को कहते हैं तो सर्वथा अवक्तव्यता नहीं हुई। कोई कहे कि मैं सदा मौन व्रत धारण करता हूँ। यदि सदा मौन है तो 'मैं मौन हूँ' यह वाक्य कैसे कहा। इसलिये यह भी ठीक नहीं है।

इसी प्रकार अन्य मतो के विषय मे भी जैनो का कहना है।

अनेकांत सिद्धांत को सम्यक् रीति से विचार करने पर यह बात समझ मे आना कठिन है कि जैनो की दृष्टि से अन्य मत ठीक नही है। अनेकांत के अनुसार तो सभी मत ठीक हो सकते हैं, क्योकि उनको किसी न किसी दृष्टि से देखने पर सत्य का अंश अवश्य ही प्रकट होगा। यदि हम अन्य मतो को अपनी दृष्टि से ठीक नहीं समझे तो यह भी तो मिथ्या एकात हुआ, जिसका जैन-शास्त्र ने निषेध किया है। इसमे कोई सशय नहीं कि अनेकात सिद्धात बडा उदार और विस्तृताशय है, लेकिन जब जैन-शास्त्रज्ञ उसे दूसरो के मत-खंडन में लगाते है, तो मालूम होता है, उसका समुचित उपयोग नही करते। उसके अनुसार तो सभी मत ठीक हो सकते है, न कि कोई एक। क्योकि प्रत्येक वस्तु मे अनेक धर्म होते है। उसके एक धर्म को देखकर निश्चय कर लेना और अन्य सब धर्मों का विचार न करना सकुचित एकातवाद है।

अनेकातवाद एक ऐसी अद्भुत और अनूठी वस्तु है जिसके द्वारा धार्मिक वादविवाद, जो शताब्दियो से चले आये है, दूर हो सकते है। क्योकि सत्य किसी एक मत की पूँजी नही है। वह तो विश्वव्यापी है और ससार मे जहा कही भी धर्म-विचारो का उदय हुआ है, जहा कहीं भी तत्त्वज्ञान-गवेषण हुआ है, कुछ न कुछ सत्य की प्राप्ति अवश्य हुई है। सत्य को द्रव्य माना जाय तो वह नित्य है और उसके विविध रूप का माना जाय, जो ससार के नाना धर्मों मे अभिव्यक्त हुए है, तो, वे उसके पर्य्यायरूप है, जो अनित्य है। सत्य द्रव्यरूप से है और पर्य्यायरूप से नही है। ससार के अनेक धर्मो मे एक जैन धर्म भी है। यदि सब धर्मो मे सत्य के पर्य्यायरूप है, तो जैनधर्म मे भी सत्य का वही पर्य्यायरूप है। सत्य द्रव्यरूप से तो नित्य और अकाट्य और अपने नाना पर्य्यायरूपो मे अनित्य और परिवर्तनशील है। यदि अनेकातवाद से हम इस नतीजे पर आवे तो अनुचित नही होगा। निष्कर्ष यह है कि ससार के सभी मत किसी न किसी दृष्टि से ठीक है। एक मत दूसरे मत को असत्य नही कह सकता है। यदि कहे तो वह अनेकातवाद के सिद्धात का दुरुपयोग करता है।

इसके सिवा यह भी दिखाया जा सकता है कि अन्य शास्त्रो के मत भी वास्तव में अनेकातवाद ही है। देखिए—

सांख्य—प्रकृति, सत्त्व-रज —तमोगुणो की साम्यावस्था का नाम है।

लाघव, शोष, ताप, वारण भिन्न-भिन्न स्वभाववाले अनेक स्वरूप पदार्थों का एक प्रधान स्वरूप करते हो से एक अनेक स्वरूप पदार्थ स्वीकृत हो चुका। एक पदार्थ है लेकिन स्वरूप उसके अनेक है। तीनों गुणों का समूह ही प्रधान है, तथापि एक वस्तु को अनेकात्मक स्वीकार करना अखंडित है।

नैयायिक द्रव्यादि पदार्थों को सामान्य विशेषरूप स्वीकार करते है। अनेक में एक व्यापक नियम होने से सामान्य और जो अन्य पदार्थों से एक को पृथक् करे, वह विशेष है। जैसे गुण द्रव्य नहीं है, कर्म द्रव्य नही है। एक ही को सामान्य विशेष माना है। ऐसे ही गुणत्व, कर्मत्व भी सामान्य विशेष रूप है।

बौद्ध मेचकमणि के ज्ञान को एक और अनेक मानते है। पाच रंग रूप रत्न को मेचक कहते है। इसका ज्ञान एक प्रतिभास-रूप नहीं है। एक ज्ञान भी नहीं है और अनेक भी नहीं, बल्कि एक पदार्थ के नानाधर्म है, जिसमे अनेकात और एकात दोनों मिलवा ज्ञान होता है।

मीमांसक—प्रमाता प्रमीत प्रमेयाकार एक ही ज्ञान होता है। घट को मै जानता हूं - इसमे अनेक पदार्थ विषयता सहित एक ही ज्ञान स्वीकार किया है। यह भी अनेकानतवाद ही हुआ।

चार्वाकादि—पृथिवी, जल, तेज, वायु चार तत्वों से चैतन्य बना मानते है। जैसे कोद्रव आदि से मादिकशक्ति है। उनका सिद्धान्त है कि पृथिवी आदि अनेक स्वरूप एक ही चैतन्य है। इसलिये यह भी एकात अनेकातवाद हुआ।

अनेकान्तवाद पर आक्षेप

कोई कहता है कि अनेकानवाद छल-मात्र है। यह ठीक नहीं है। क्योंकि छल-योजना मे एक ही शब्द के दो अर्थ होते है, जैसे—'नव' शब्द के दो अर्थ 'नव कंबलोऽयं देवदत्त' वाक्य मे हैं। एक अर्थ है नया और दूसरा अर्थ है नौ। ऐसा दो अर्थवाला शब्द अनेकानतवाद मे नहीं है। इसलिये यह आक्षेप व्यर्थ है।

कोई कहते है अनेकानतवाद मे आठ विरोध दोष है। आठ दोष ये है —१ विरोध, २ वैयाधिकरण्य, ३ अनवस्था, ४ संकर, ५ व्यतिकर, ६ संशय, ७ अप्रतिपत्ति और ८ अभाव।

१—अस्ति नास्ति एक पदार्थ में विरोध दोष कहा जाता है, लेकिन यह बात नहीं है। विरोध का साधक अभाव है, जैसे एक वस्तु में घटत्व और पटत्व दोनो विरोधी हैं, परन्तु द्रव्य को छोड़ दिया जाय और केवल उस वस्तु के रूप ही देखे जाय तो इन रूपों मे विरोध नहीं है। द्रव्य की दृष्टि से वस्तु की सत्ता है, परन्तु रूपों में विरोध है। इस तरह एक वस्तु में भाव-अभाव दोनो हो सकते हैं। निज रूप से भाव और पर रूप से अभाव।

२—अस्ति नास्ति का एक पदार्थ मे होना एक अधिकरण मे होना है, लेकिन यह दोष नहीं है। एक वृक्ष अधिकरण मे चल अचल दोनो धर्म है। एक वस्तु मे रक्त, श्याम, पीला कई रंग हो सकते हैं। इसी प्रकार अनेकातवाद है।

३—अस्ति एक रूप से है, नास्ति पर रूप से है—दोनों एक रूप से होने चाहिये, नहीं तो अनवस्था दोष आता है। इसका उत्तर यह है कि अनेक धर्म स्वरूप वस्तु पहले ही सिद्ध हो चुकी है। फिर कहने की आवश्यकता नही। यहा अप्रामाणिक पदार्थों की परंपरा की कल्पना का सर्वथा अभाव है और बिना उसके अनवस्था होती नही है।

४—एक काल मे ही एक वस्तु मे सब धर्मों की व्याप्ति संकर दोष है, और वह अनेकात मे है। इसका उत्तर है कि अनुभवसिद्ध पदार्थ सिद्ध होने पर किसी भी दोष का अवकाश नहीं है। जब पदार्थ की सिद्धि अनुभव से विरुद्ध होती है तब इस दोष का विषय होता है।

५—स्वरूप से सत्त्व और पर रूप से असत्त्व अनुभव-सिद्ध होने से संकर तथा व्यतिकर दोष नहीं है।

६—एक ही वस्तु सत्त्व, असत्त्व, उभय रूप होने से यह निश्चय नहीं है कि यह क्या है, इसलिये संशय दोष हुआ। इसका उत्तर यह है—संशय होने मे सामान्य अंश का प्रत्यक्ष, विशेष अंश का अप्रत्यक्ष और विशेष की स्मृति होना आवश्यक है। जैसे कुछ प्रकाश और कुछ अंधकार होने के समय मनुष्य के समान स्थित खंभ को देखकर, लेकिन उसके और विशेष अंशों को नहीं देखकर, (जैसे उसमे पक्षियों के घोसले अथवा मनुष्य के हाथ पैर वस्त्र शिखा आदि) और मनुष्य के और अंशों को याद कर उसमे मनुष्य का भ्रम करना। परंतु यह बात

अनेकांतवाद में नहीं है, क्योंकि स्वरूप पर-रूप विशेषों की उपलब्धि से अनेकांतवाद संशय का हेतु नहीं है।

७—संशय होने से बोध का अभाव है। इसलिये अप्रतिपत्ति दोष है। उत्तर है कि जब संशय ही नहीं है, जैसा कि ऊपर कहा है, तो वस्तु के बोध का अभाव कैसा? इसलिये अप्रतिपत्ति दोष नहीं है।

८—अप्रतिपत्ति होने से सत्त्व असत्त्व स्वरूप वस्तु का ही अभाव भान होता है, इसलिये अभाव दोष है। उत्तर है कि जब अप्रतिपत्ति दोष ही नहीं है, तो अभाव कैसा। क्योंकि अप्रतिपत्ति होने से ही सत्त्व असत्त्व स्वरूप वस्तु का अभाव भान होता है।

सारांश यह है कि जो-जो दोष अनेकांत में बताये जाते हैं, वे उसमें नहीं हैं। पक्षपात से कोई कुछ भी कहे, लेकिन अनेकांत सिद्धांत दोष-रहित है।

अब आश्चर्य यह है कि श्रीशंकराचार्यजी ने अपने शांकर-भाष्य में सप्तभंगीनय का खंडन किया है, और कहा है कि ठंड और गर्मी की तरह एक ही वस्तु में एक ही साथ सत्त्व असत्त्व आदि विरुद्ध धर्मों का होना संभव नहीं है। इन्होंने अस्तित्व और नास्तित्व को विरुद्ध धर्म बतलाते समय 'स्वरूप से' और 'पर-रूप से' इन दो महत्व के शब्दों को छोड़ दिया है। यही उनकी भूल मालूम होती है। श्रीशंकराचार्य जैसे अद्वितीय और प्रकांड विद्वान् के लिये इस प्रकार अनेकांतवाद का उपहास करना ठीक नहीं मालूम होता है। लेकिन धर्म-विषय में ऐसी बातें क्षम्य हैं। यदि प्रत्येक संप्रदाय का आचार्य दूसरी संप्रदाय के सिद्धांतों को भली भाँति समझ कर लेखनी उठावे तो उसे खंडन करने का अवसर ही नहीं रहता। जैनाचार्यों ने हिंदू-धर्म के विषय में जो खंडन किया है, वह भी इसी प्रकार का है। यदि वे अनेकांत सिद्धांत का पूरा उपयोग करें तो उन्हें किसी धर्म या मत पर आक्षेप करने का कोई अवसर ही नहीं रहता।

हमें चाहिये कि पहले किसी सिद्धांत को अच्छी तरह समझ लें, तब उसके खंडन की चेष्टा करें, पर यह बात प्राचीन काल के धर्माचार्यों की प्रथा के प्रतिकूल है। धार्मिक-झगड़ों की जड़ यही असहिष्णुता है। अस्तु।

कन्नोमल

मन के धब्बे

छुटा दे धब्बे दूँगी मोल।

धोबी! अपनी चुँदरी लेकर आई तेरे घाट,
देख कहीं लौटा मत देना मेरा मैला पाट।
लगा दे अपना अद्भुत घोल।
छुटा दे धब्बे दूँगी मोल।

साबुन, रीठा, रेह लगाये बैठ नदी के कूल,
पर, ये ज्यों के त्यों ही पाये ना जानूँ क्या भूल?
कि है कुछ ढंग ही डावाडोल?
छुटा दे धब्बे दूँगी मोल।

जिनके पीछे छींटे खाये वे करते उपहास,
दुनिया दूर भगा देती है पाकर मेरी बास;
पिटा है मैलेपन का ढोल;
छुटा दे धब्बे दूँगी मोल।

पटक न देना पत्थर पर तू इसमें गहरी मार,
एक एक कर बिखर जायँगे वरना झीने तार;
निरख लेना तह इसकी खोल।
छुटा दे धब्बे दूँगी मोल।

प्रियतम के घर जाऊँगी मैं सार इसी की लाज,
कर दे तनिक सहारे में तू मुझ दुखिया का काज
परख आई हूँ सबकी पोल।
छुटा दे धब्बे दूँगी मोल।

जीवन भर में बचा सकी हूँ दाने जो दो चार,
वही गाँठ में बाँध चली हूँ देने को उपहार;
इन्हीं को रख ले जी में तोल।
छुटा दे धब्बे ले ले मोल।

गोकुलचंद शर्मा

मृत्यु दूत

वैद्य.—"अहं गदहाऽस्मि"।
रोगिणी—"कथं गदहाऽसि"?
वैद्यः—"गदं (रोगम्) हन्तीति "गदहा"।

समाचार-पत्र

(ऐतिहासिक दृष्टि-बिंदु)

संसार के वर्तमान वातावरण में समाचार-पत्रों का स्थान कितना महत्त्वपूर्ण है, यह बतलाने की आवश्यकता नहीं। भारतवर्ष की बात तो मैं नहीं कहता, किंतु विदेशों में बड़ी-बड़ी संधियाँ करवा देना और बड़े-बड़े युद्ध छिड़वा देना वहाँ के समाचार-पत्रों का एक आसान-सा काम होता है। इसीलिए विदेशों में, ख़ास कर यूरोप में, राष्ट्र के प्रसिद्ध तीन अंगों—पूँजी-पतियों, पुरोहितों और जन-साधारण के समुदायों के अतिरिक्त एक चौथा अंग समाचार-पत्र समुदाय माना जाने लगा है। इसका प्रभाव दिनो-दिन वृद्धि कर रहा है। इँगलैंड, अमेरिका, जापान आदि देशों के लिए तो यहाँ तक कहा जाता है कि "वहाँ के राष्ट्रों को उसी पथ पर चलना पड़ता है, जिस पथ पर वहाँ के समाचार-पत्र उन्हें चलाना चाहते हैं।" जो हो, इसमें कोई संदेह नहीं कि, समाचार-पत्रों का स्थान बहुत ऊँचा है और राष्ट्रों के बिगड़ने बनने से उनका भारी सरोकार रहता है। भारतवर्ष में भी इनकी महत्ता धीरे-धीरे बढ़ रही है। देश के सब श्रेणी के मनुष्यों को अब इनकी महत्ता और उपयोगिता प्रतीत होने लगी है। अभी तक सत्ताधारी लोग कुछ उपेक्षा सी करते थे। वे समाचार-पत्रों का पढ़ना और अपने संबंध के कोई समाचार उनमें छापने के लिए भेजना अपनी शान के ख़िलाफ़ समझते थे। किंतु, अब यह बात नहीं रही। अब तो समाचार-पत्रों का पढ़ना बड़े-बड़े सत्ताधीश और भी आवश्यक समझने लगे हैं। क्योंकि उन्हें सदा इस बात की चिंता रहती है कि कहीं कोई समाचार ऐसा तो प्रकाशित नहीं हो रहा है जो उनकी स्थिति के संबंध में कोई भ्रम फैला रहा हो। और, जब इस प्रकार का कोई समाचार प्रकाशित होता है, तब वे शीघ्रतापूर्वक उसका विरोध प्रकाशित करवाते हैं। इस प्रकार समाचार-पत्रों की महत्ता अब प्राय सभी मानने लगे हैं।

इन पंक्तियों में इसी महत्त्वपूर्ण विषय पर कुछ लिखने का प्रयत्न किया जायगा। वह समाचार-पत्रों का एक ऐतिहासिक-पर्यालोचन सा होगा। किंतु विषय में प्रवेश करने के पहले, इस स्थान पर, "समाचार-पत्र" शब्द पर थोड़ा-सा प्रकाश डाल देना अनुचित न होगा। समाचार-पत्रों का नाम समाचार-पत्र ही क्यों पड़ा, समाचार-ग्रंथ, समाचार-पुस्तक, समाचार-लेख आदि नाम इसे क्यों न दिये गये, यह एक जानने योग्य बात है। समाचार-पत्र नाम की संपत्ति हमने अंग्रेज़ी शासकों से प्राप्त की है। अंग्रेज़ी में समाचार-पत्रों को न्यूज़ पेपर्स के नाम से पुकारते हैं। हिंदी में न्यूज़ पेपर्स का अर्थ समाचार-पत्र होता है। हमने वही शब्द अपने लिए ग्रहण कर लिया है। इसलिए हिंदी में इस शब्द के इतिहास में कोई रहस्य नहीं, किंतु अंग्रेज़ी में इस शब्द का ख़ासा मनोरंजक इतिहास है। पहिले अंग्रेज़ी में समाचार-पत्रों का नाम न्यूज़ पेपर नहीं था। जैसा आगे के वर्णन से मालूम होगा कि पहिले समाचार-पत्रों का जन्म विशेष कर्मचारियों या संवाददाताओं द्वारा अधिकारियों के पास भेजे जाने वाली चिट्ठियों से हुआ है। ये चिट्ठियाँ एक-साथ जिल्द बाँध कर सार्वजनिक मिसल (Public Record) की भाँति रक्खी जाती थीं। इसलिए पहिले इनका नाम न्यूज़ बुक (समाचार-ग्रंथ) रक्खा गया। फिर जब एक संवाददाता अनेक अधिकारियों के पास समाचार-चिट्ठियाँ भेजने लगा तब इसका नाम न्यूज़ लेटर (समाचार-चिट्ठी) तथा कुछ और आगे चलकर न्यूज़ शीट (समाचार-पत्रिका) रहा। इसके बाद धीरे-धीरे समाचार-पत्रों की विशेष उन्नति हुई, और इनका नाम न्यूज़ पेपर (समाचार-पत्र) पड़ा। हिंदी ने इसी नाम को अपना लिया।

समाचार-पत्रों के जन्म के संबंध में कहा जाता है कि पहिले जब समाचार-पत्र न थे, तब यह चलन था कि राष्ट्र के बड़े-बड़े अधिकारी अपने आदमी विशेष स्थलों पर नियुक्त कर जाते थे। ये लोग अपने स्थान की ख़ास-ख़ास बातें पत्र के रूप में लिखकर अधिकारियों की सूचना के लिए भेजा करते थे। धीरे-धीरे व्यय-भार से बचने के विचार से एक से अधिक अधिकारी एक ही आदमी से समाचार मँगवाने लगे। दूसरी ओर ऐसे आदमी भी यह प्रयत्न करने लगे कि वे अकेले ही कई अधिकारियों को समाचार भेज कर अधिक धन उपार्जन करें। इस प्रकार

काम करने से एक ओर तो अधिकारियों को लाभ हुआ—वे अलग अलग आदमी रखने का अधिक व्यय उठाने से बचने लगे, दूसरी ओर इस प्रकार के संवाद-दाताओं को कई अधिकारियों से थोड़ी-थोड़ी सहायता मिलने के कारण इनकी आमदनी भी बढ़ गयी। इसका परिणाम यह हुआ कि इस प्रकार के संवाद-दाताओं की संख्या बढ़ने लगी। एक-एक संवाद-दाता के पास कई अधिकारियों का काम आ जाने से एक ही समाचार कई बार लिखने की ज़रूरत पड़ने लगी। और इसी प्रकार जब चिट्ठियों की संख्या बहुत अधिक हो गयी और छापेखानों का आविष्कार हो गया, तब संवाद-दाता-गण अधिक परिश्रम से बचने के लिए चिट्ठियाँ छपवाकर अधिकारियों के पास भेजने लगे। इन्हीं चिट्ठियों ने आगे चलकर समाचार-पत्रों का रूप धारण किया। इन चिट्ठियों में लड़ाई की ख़बरें, चुनाव की बातें, खेल-कूद की सूचनाएँ, आग आदि दुर्घटनाओं के समाचार भेजे जाते थे। ये चिट्ठियाँ सार्वजनिक मिसलों के रूप में सुरक्षित रीति से रखी जाती थीं। कभी-कभी तो यह भी होता था कि एक प्रांत के अधिकारी दूसरे प्रांत के अधिकारियों को सूचना देने के विचार से इन चिट्ठियों को भिन्न-भिन्न स्थानों से भेजते भी थे। इस प्रकार पत्रों के विभिन्न स्थानों से भेजने की भी नींव पड़ गयी थी, और समाचार-पत्रों के अनुरूप सब सामान तैयार हो गया था। फिर अनुकूल समय पाकर समाचार-पत्र वास्तविक समाचार-पत्रों के रूप में सामने आए। अब समाचार-पत्र केवल अधिकारियों के पास भेजी जानेवाली चिट्ठियाँ ही नहीं रहे वरन् वे एक सार्वजनिक संपत्ति हो गए हैं।

समाचार-पत्र की परिभाषा भिन्न-भिन्न लोग भिन्न-भिन्न रूप में करते हैं। इंगलैंड का न्यूज़ पेपर लायबल रेजिस्ट्रेशन एक्ट इसकी परिभाषा इस प्रकार करता है —

Any paper containing public news intelligence or occurrences or any remarks or observations therein printed for sale and published periodically or in parts or numbers at intervals not exceeding 26 days अर्थात् कोई भी पर्चा समाचार-पत्र कहा जायगा, यदि उसमें सार्वजनिक समाचार, सूचनाएँ या घटनाएँ हों। अथवा इन समाचारों के संबंध में कोई टीका-टिप्पणी हो, और वे एक निश्चित अवधि के बाद, जो २६ दिन से अधिक की न हो, बिक्री के लिए प्रकाशित होते हों।

ब्रिटिश पोस्ट आफ़िस के नियमों में समाचार-पत्रों की यह परिभाषा दी गयी है —

Any publication printed and published in numbers at intervals not more than seven days consisting wholely or in parts of political or other news or of articles relating thereto or to other current topics with or without advertisement. अर्थात् ऐसे परचे, जो निश्चित अवधि के बाद, जो ७ दिन से अधिक की न हो, प्रकाशित होते हों और जिनमें राजनीतिक या अन्य प्रकार के समाचार या उनके संबंध के लेख प्रकाशित होते हैं, समाचार पत्र माने जायँगे, चाहे उनमें विज्ञापन हो या न हो।

भारतीय प्रेस एक्ट में समाचार-पत्रों की परिभाषा इस प्रकार दी गयी है —News paper means any periodical work containing public news or comments on public news. अर्थात् समाचार-पत्र ऐसे किसी भी सामयिक पत्र को कहते हैं, जिसमें सार्वजनिक समाचार होते हैं या सार्वजनिक समाचारों पर टीका-टिप्पणी दी हुई होती है। साधारण व्यवहार में समाचार-पत्र उस पत्र को कहते हैं जो रोज़ाना या अधिक से अधिक हफ्तावार प्रकाशित होता है और जिसमें प्रधानतया प्रचलित घटनाओं के समाचार या उन पर की गई टीका-टिप्पणी आदि छपी रहती है। सप्ताह से अधिक अवधि में प्रकाशित होनेवाले पत्र समाचार-पत्र नहीं कहलाते। उन्हें पाक्षिक, मासिक, त्रैमासिक आदि पत्र के नाम से पुकारा जाता है, और उनमें समाचारों की अपेक्षा विशेष विषयों पर लिखे गए लेखों का बाहुल्य होता है। समाचार-पत्र और सप्ताह की अवधि से अधिक समय के बाद प्रकाशित होनेवाले पत्रों में यह अंतर होता है कि समाचार-पत्रों का महत्त्व अधिकांश में अल्पकालिक होता है और उनका स्थायी।

समाचार-पत्रों के इतिहास के आदि-काल के संबंध में कोई बात निश्चित रूप से सामने नहीं आयी। कौन-सा समाचार-पत्र पहिले निकला, इसका कोई सप्रमाण उत्तर नहीं मिलता। पं० नंदकुमारदेव शर्मा अपनी "पत्र-संपादन कला" नाम की पुस्तक में उस किंवदंती को अधिक मान्य समझते हैं, जिसके अनुसार कहा जाता है

कि सबसे पहिले चीन का 'किंगचाउ' नामक समाचार-पत्र प्रकाशित हुआ। एनसाइक्लोपिडिया ब्रिटेनिका के 'न्यूज़ पेपर' शीर्षक लेख के लेखक 'चाइनीज़ पेकिंग गज़ट' और 'रोमन एक्टा डिअोरना' (Roman Acta Diorna) नामक पत्रों को सबसे पुराने पत्र मानते हैं। किंतु वे निश्चित रूप से किसी विशेष पत्र की प्राचीनता नहीं सिद्ध कर सके। जहाँ तक प्राचीनता सिद्ध करने की बात है, वहाँ तक पंडित नंदकुमारदेवजी भी असफल ही रहे हैं। उन्होंने इसके सिद्ध करने की चेष्टा ही नहीं की। शायद उसकी आवश्यकता भी नहीं। एनसाइक्लोपिडिया ब्रिटेनिका के उपर्युक्त लेखक महाशय ने 'मथली पेकिंग न्यूज़' नामक पत्र का पता लगाया है। कहते हैं, यह पत्र छठी शताब्दी में चीन की राजधानी पेकिंग से निकला था। इसके बाद 'पेकिंग गजट' नामक पत्र की खोज मिलती है। इस पत्र का समय एनसाइक्लोपिडिया ब्रिटेनिका के अनुसार ६१८—९०५ है। परंतु पं० नंदकुमारदेव शर्मा अपनी पुस्तक में, जो संवत् १९८० में प्रकाशित हुई है, लिखते हैं, कि पेकिंग गजट 'एक' वर्ष से निकलता है। मुझे शर्माजी की पुस्तक में छापे की कुछ ग़लती मालूम होती है। इसका सबसे सबल कारण यह है कि शर्माजी आगे चलकर लिखते हैं कि इस पत्र के सत्रह संपादक अब तक फाँसी पर लटकाए जा चुके हैं। एक साल की अवधि में १७ संपादकों को फाँसी देने की बात समझ में नहीं आती। अस्तु। समाचार-पत्रों का सुदूर भूतकालिक इतिहास अंधकारमय है। पहिले नियमित रूप से समाचार-पत्रों का कोई प्रबंध भी नहीं था। उनका वास्तविक जन्म छापेख़ाने के आविष्कार के साथ हुआ। किंतु पहिले पहल वे कहाँ से प्रकाशित हुए, इस संबंध में मत-भेद है। कुछ लोग यूरोप को और कुछ चीन को पत्रों का प्रथम जन्म-स्थान मानते हैं। इस संबंध में चीन का पक्ष अधिक सबल है। चीन में सन् ९०१ तक से जब छापेख़ाने का आविष्कार भी नहीं हुआ था, समाचार-पत्रों का पता लगता है। उस समय 'कियल्ट' नाम का अच्छा समाचार-पत्र निकलता था। कहते हैं, यह समाचार-पत्र, बीच का थोड़ा सा समय छोड़कर, जब यह किसी कारण से बंद हो गया था, तीन चार सदियों तक चला और पिछले दिनों में तो दिन में तीन-तीन बार तक प्रकाशित होता रहा। योरप में इतनी जल्दी कोई समाचार-पत्र प्रकाशित नहीं हुआ। वहाँ पर सबसे पहले इटली और जर्मनी में समाचार-पत्रों का जन्म होना बताया जाता है, किंतु वहाँ भी इतने पहिले से समाचार-पत्र निकलने की कोई बात मालूम नहीं पड़ती। जर्मनी और इटली के बाद फ्रांस का नंबर आता है। यहाँ पर सन् १६३१ के पहिले किसी प्रकार के समाचार-पत्रों का सुराग़ नहीं लगता। सन् १६३१ में वहाँ के एक प्रसिद्ध डाक्टर अपने रोगियों को बहलाने के विचार से काग़ज़ पर इधर-उधर के समाचार लिखकर सुनाया करते थे। धीरे-धीरे ज्यों-ज्यों लोगों में इस प्रकार के समाचार पढ़ने की रुचि बढ़ी, त्यों-त्यों डाक्टर साहब ने वह पर्चा और अधिक संख्या में प्रकाशित करना शुरू कर दिया, और उसकी क़ीमत भी मुक़र्रर करदी। फिर यही पर्चे समाचार-पत्र के रूप में निकले और बाज़ार में आम-तौर से बिकने लगे। कहते हैं कि इसी प्रकार वहाँ समाचार-पत्रों का जन्म हुआ। एक मरतबा एक फ्रांसीसी सज्जन ने समाचार-पत्र निकालने के संबंध में बड़े ज़ोरदार शब्दों में कहा था —

"Suffer yourself to be blamed, imprisoned, condemned; suffer yourself even to be hanged, but publish your opinions. It is not only a right but it is a duty." 'समाचार-पत्र निकालने के कारण चाहे कोई कोसे, चाहे जेल में डाले, चाहे निंदा करे और चाहे फाँसी तक की सज़ा दे दे, किंतु तुम अपनी राय अवश्य प्रकाशित करो। यह तुम्हारा अधिकार ही नहीं कर्तव्य भी है।" कहते हैं, लोगों में फ्रांसीसी सज्जन के इस कथन का बड़ा गहरा प्रभाव पड़ा और वे समाचार-पत्र निकालने की ओर अधिक ध्यान देने लगे। अँगरेज़ी भाषा का सबसे पुराना समाचार-पत्र 'आक्सफ़र्ड गज़ट' माना जाता है। इसका प्रकाशन १६६५ ईसवी में हुआ। किंतु इस प्रकार के यत्र-तत्र प्रकाशित होनेवाले समाचार-पत्रों के होते हुए भी जिस रूप में आजकल समाचार-पत्र प्रकाशित होते हैं, उस रूप में उनका वास्तविक प्रकाशन १८वीं शताब्दी से शुरू हुआ। इसी शताब्दी में लंदन के 'टाइम्स' नामक विख्यात पत्र का भी जन्म हुआ था।

भारतवर्ष में अँगरेज़ों के शासन-काल से पहिले समाचार-पत्रों का कोई पता न था। सबसे पहिले अँगरेज़ी शासन-काल में और अँगरेज़ अधिकारियों द्वारा ही समाचार-पत्र निकाला गया। इस पत्र का नाम 'कलकत्ता गज़ट' था। स्वतंत्र रूप

से पहिला पत्र सन् १७८० ईसवी में 'दि कीज़ बंगाल गज़ट' के नाम से प्रकाशित हुआ। किंतु ये अख़बार अंग्रेज़ी भाषा में निकलते थे। देशी भाषा में सबसे पुराना समाचार-पत्र "समाचार दर्पण" बताया जाता है। इसे ईसाइयों ने १८१८ ईसवी में रायपुर से प्रकाशित किया था। वर्तमान पत्रों में देशी भाषा का सबसे पुराना समाचार-पत्र गुजराती का 'बबई समाचार' नामक पत्र है। इसका जन्म १८२२ में हुआ था। उर्दू की अख़बार-नवीसी का इतिहास सन् १८३३ ईसवी से शुरू होता है। कहते हैं कि इस सन् में देहली से उर्दू का एक समाचार-पत्र प्रकाशित हुआ था। किंतु उस पत्र के नाम के संबंध में कोई बात सप्रमाण नहीं मिलती। स्व० बा० बालमुकुंद गुप्त ने अपनी निबंधावली में उसे 'उर्दू अख़बार' के नाम से याद किया है। दूसरा पत्र, जिसके संबध में कुछ बातें मालूम होती हैं, लाहौर से प्रकाशित होनेवाला 'कोहेनूर' नामक पत्र है। यह पत्र सन् १८५० में प्रकाशित हुआ था। इसके बाद 'अवध अख़बार', 'अख़बारे आम' 'अवध पंच' और उर्दू के कई अन्य समाचार-पत्र प्रकाशित हुए और इस समय अनेक पत्र प्रकाशित हो रहे हैं। उर्दू के अधिकांश पत्र पंजाब से प्रकाशित होते हैं। युक्त प्रांत से भी कई पत्र उर्दू में निकलते हैं।

हिंदी समाचार-पत्रों का इतिहास सबसे ताज़ा है। बंगला, गुजराती, मराठी, उर्दू आदि देश की प्रायः सब प्रमुख भाषाओं में जब समाचार-पत्र निकल चुके थे, तब हिंदी में उनका नाम लिया गया। काशी-निवासी श्रीराधाकृष्ण दास ने हिंदी समाचार-पत्रों का एक इतिहास लिखा था। प्रारंभिक समाचार-पत्रों के इतिहास का वही आधार स्वर्गीय बा० बालमुकुंद गुप्त ने भी लिया है। अपने इतिहास ग्रंथ में श्रीराधाकृष्ण दास ने "बनारस समाचार" नामक पत्र को सबसे पुराना हिंदी का पत्र माना है। यह पत्र राजा शिवप्रसाद सितारे-हिंद ने १८४५ ईसवी में प्रकाशित करवाया था। इसके संपादक एक महाराष्ट्र सज्जन थे, जिनका नाम श्री गोविंद रघुनाथ थत्ते था। कहते हैं कि इस पत्र की भाषा बहुत त्रुटिपूर्ण थी। भाषा का सुधार वास्तव में भारतेंदु बाबू हरिश्चंद्र के समय से हुआ। इसके पहिले श्रीलल्लूलालजी ने गद्य लिखने का श्रीगणेश कर दिया था। किंतु भारतेंदु बाबू के समय से उसकी अधिक उन्नति हुई। भारतेंदु बाबू ने प्रारंभ में 'कवि वचन सुधा' नामका एक मासिक पत्र निकाला। सन् १८६८ में इस पत्र का पहिला अंक सामने आया। 'कवि वचन सुधा' में पहिले प्रायः प्राचीन कवियों की कवितायें प्रकाशित होती थीं। धीरे-धीरे भारतेंदु बाबू का ध्यान गद्य की ओर गया और उन्होंने अपने पत्र में गद्य को स्थान देना शुरू किया और उसे मासिक से क्रमशः पाक्षिक और अंत में साप्ताहिक समाचार-पत्र बना दिया। इस पत्र में राजनीति, समाज-शास्त्र, साहित्य आदि विषयों पर लेख प्रकाशित होते थे। इस पत्र के तीन साल बाद अलमोड़ा से 'अलमोड़ा समाचार' नाम का एक समाचार-पत्र प्रकाशित हुआ। यह पहिले ही से साप्ताहिक रूप में सामने आया। उसके बाद सन् १८७२ ईसवी में बाकीपुर से 'बिहारबंधु' नामक साप्ताहिक पत्र प्रकाशित हुआ। इसके प्रकाशन में पं० केशवराम भट्ट और पं० साधोराम भट्ट का उद्योग विशेषरूप से उल्लेखनीय है। इन पत्रों के अतिरिक्त स्वर्गीय ला० श्रीनिवासदास के प्रयत्न से दिल्ली से 'सदादर्श' नामका पत्र सन् १८७४ में निकला। सन् १८७६ में अलीगढ़ से बा० तोताराम वर्मा के प्रयत्न से 'भारतबंधु' नामक साप्ताहिक समाचार-पत्र प्रकाशित हुआ। और फिर धीरे-धीरे नवीन प्रणाली के समाचार-पत्रों का प्रादुर्भाव हुआ। मित्र-विलास, सार-सुधानिधि, उचितवक्ता, भारतमित्र, आदि कई समाचार-पत्र सामने आये, और इस समय तो समाचारपत्रों की, आवश्यकता से अधिक, भरमार है।

'आवश्यकता से अधिक' कहने से मेरा अभिप्राय बहुत कुछ वैसा ही है, जैसा कि प्रथम संपादक सम्मेलन के सुयोग्य सभापति पं० बाबराव विष्णु पराडकर ने अपने भाषण में एक स्थान पर व्यक्त किया है। वास्तव में हिंदी जनता समाचारों के लाभों का अनुभव नहीं कर रही है। उसे उनकी आवश्यकता प्रतीत नहीं होती। किंतु समाचार-पत्र एक प्रकार से ज़बरदस्ती उनके सर मढ़े जाते हैं और उन्हें समाचारों की महत्ता अनुभव कराई जा रही है। इसीलिए मैं 'आवश्यकता से अधिक' भरमार का जिक्र करता हूं। वैसे तो भारतवर्ष जैसे विशाल देश के लिए, और हिंदी जैसी व्यापक भाषा के लिए, इससे कई गुने अधिक समाचार-पत्र भी हों, तो भी थोड़े ही सिद्ध होंगे। 'आवश्यकता से अधिक भरमार' कहने में मेरा एक अभिप्राय यह भी है कि हिंदी में कुछ इने-गिने ही समाचार-

पत्र ऐसे हैं, जो देश के लिए हितकर, अत: आवश्यक, सिद्ध हो सकते हैं, अन्यथा अधिकांश में अनावश्यक समाचार-पत्रों की ही भरमार है।

इस कथन से मेरा मतलब यह नहीं है कि हिंदी में कोई ऐसे समाचार-पत्र है ही नहीं, जो देश की बलशाली सम्पत्ति हो। इसके प्रतिकूल बात यह है कि हिंदी में कई पत्र ऐसे हैं जो किसी भी भाषा के उच्च कोटि के पत्रों से मुक़ाबिला कर सकते हैं। दैनिक पत्रों में—आज, स्वतंत्र, हिंदू-पंसार आदि, साप्ताहिक पत्रों में—प्रताप, कर्मवीर, सैनिक, श्रीकृष्ण-संदेश, विश्वमित्र, अभ्युदय, तरुण-राजस्थान, मतवाला आदि तथा मासिक पत्रों में—सरस्वती, माधुरी, मनोरमा, चाँद, बालक आदि पत्र ऐसे ही उच्च कोटि के पत्रों की गणना में गिने जाने योग्य हैं। इन पत्रों के अतिरिक्त दैनिक विश्वमित्र, वर्तमान, भारतमित्र, बंगवासी, अर्जुन, आर्यमित्र, जयाजी प्रताप आदि पत्र-पत्रिकाएँ भी अपने-अपने ढंग से देश और जाति की सेवाएँ कर रही हैं। यहाँ पर मैंने म० गांधी के हिंदी नवजीवन का ज़िक्र नहीं किया। इसका कारण यह है कि वह इन पत्रों में से किसी की श्रेणी में नहीं आता। वह अपना एक विशेष स्थान रखता है, और उसकी शोभा अलग ही रहने में है। इस पत्र की एक त्रुटि अवश्य खटकती है। वह है भाषा-संबंधी। कुछ समय को छोड़कर, जब पत्र का संपादन भार पं० हरिभाऊ उपाध्याय के हाथ में था, इसकी भाषा सदा त्रुटिपूर्ण रही है। आज भी उसकी यही दशा है। इसमें भाषा की ओर अधिक ध्यान देने की ज़रूरत है।

जनता की भिन्न-भिन्न रुचियों की तृप्ति करने के विचार से समाचार-पत्र कई विभिन्न विषयों में अपनी-अपनी अलग नीति के साथ प्रकाशित होते हैं। साहित्य, राजनीति, धर्म, मनोरंजन, देशी राज्य, खोज, स्त्री, बालक आदि अनेक विषयों के पत्र अलग-अलग प्रकाशित हो रहे हैं। साहित्यिक पत्रों में—सरस्वती, माधुरी, मनोरमा, साहित्यसमालोचक आदि पत्र; धार्मिक पत्रों में—आर्यमित्र, भारतधर्म, वीर आदि पत्र; राजनीतिक पत्रों में आज, स्वतंत्र, हिंदू-संसार, वर्तमान, विश्वमित्र, प्रताप, सैनिक, कर्मवीर आदि पत्र हैं। इस श्रेणी के पत्रों में प्रभा का स्थान विशेष-रूप से उल्लेखनीय था। मासिक-पत्रों में राजनीति की वही एक मासिक-पत्रिका थी। उसके बंद हो जाने से हिंदी-संसार की बड़ी हानि हुई है। मनोरंजन संबंधी पत्रों में मतवाला, हिंदूपंच आदि पत्र; (इस विषय के अकेले मासिक-पत्रों में हिंदी मनोरंजन का उठ जाना भी बहुत खटकने की बात है), देशी राज्यों के संबंध में—मालवमयूर, तरुण राजस्थान, जयाजी-प्रताप आदि पत्र, खोज-संबंधी पत्रों में नागरी-प्रचारिणी-पत्रिका आदि पत्र; स्त्र्युपयोगी पत्रों में चाँद, स्त्री-दर्पण, गृह-लक्ष्मी आदि पत्र, और बालकोपयोगी पत्रों में बालक, शिशु, खिलौना आदि पत्र विशेष-रूप से उल्लेखनीय हैं। इन पत्रों में अपने निश्चित विषय को अधिक स्थान मिलता है।

इन भेदों के अतिरिक्त समाचार-पत्रों के और भी कई भेद हैं। यह बतलाने की आवश्यकता नहीं कि समाचार-पत्रों का राजनीतिक प्रगति से बहुत घनिष्ठ संबंध है। इसके कारण समाचार-पत्र दो स्पष्ट श्रेणियों में विभक्त हो गये हैं। एक साधारण समाचार-पत्रों की श्रेणी है, और दूसरी दलबंदीवाले समाचार-पत्रों की। राजनीतिक जगत में मत-भेद होने के कारण जब दलबंदियाँ होने लगीं, तब प्रत्येक दल को, अपने मत के प्रचार के लिये, और देश में उसके अनुकूल एक वातावरण तैयार करने के लिये, समाचार-पत्रों की आवश्यकता पड़ी और प्राय: प्रत्येक दल ने अपना एक मुख-पत्र प्रकाशित किया। इस प्रकार के पत्र अनेक भाषाओं में प्रकाशित हुए। हिंदी में भी वे समान रूप से प्रकाशित हुए। दल-विशेष का समर्थन करने के लिए कुछ तो नये पत्र प्रकाशित हुए और कुछ पुराने पत्र ही दल विशेष का समर्थन करते-करते उसके मुखपत्र बन गए। अब तो दलबंदी का रोग इतना अधिक बढ़ गया है, कि बहुत ही कम समाचार-पत्र इस रोग से मुक्त रह पाए हैं, और साधारण पत्रों की श्रेणीवाले पत्रों की संख्या कुछ इनी-गिनी ही रह गयी है। राजनीतिक दलबंदियों के अतिरिक्त धार्मिक, साहित्यिक आदि और दलबंदियाँ भी हैं, और उनके समर्थन में भी हिंदी में अलग-अलग समाचार-पत्र प्रकाशित होते हैं। इस प्रकार समाचार-पत्रों के कई भेद हो गये हैं।

इन भेदों से समाचार-पत्र संसार को नुकसान ही हुआ हो, यह बात नहीं है। दलबंदी के दल-दल में फँसे रहने पर भी कई समाचार-पत्र अन्य सब बातों में समाचार-पत्रोचित सामग्री जुटाने में कोई कोर-कसर नहीं रखते। इस प्रकार सामूहिक रूप से समाचार-पत्रों की उन्नति ही हुई है। अब भी ज्यों-ज्यों लोग सामयिक आवश्यकताओं

और आविष्कारों से परिचित होते जाते हैं, त्यों-त्यों समाचार पत्रों में नये-नये सुधार होते जाते हैं। सबसे पहिले समाचार-पत्र बहुत मामूली ढँग से, हलके से कागज़ पर, लिथो आदि की छपाई से, प्रकाशित होते थे। धीरे-धीरे छापेखानों में टाइप से छापे जाने लगे और उनमें अच्छा कागज़ लगाया जाने लगा। सुंदरता, छपाई, सफ़ाई, आदि की ओर जनता का ध्यान आकृष्ट हुआ और पत्र-सचालक उसकी पूर्ति के लिये आगे आये। और सुधार भी हुए। कुछ समाचार-पत्रों ने पाठकों की जानकारी बढ़ाने के विचार से, कुछ ने उनके मनोरंजन के विचार से और कुछ ने दूसरों की देखा-देखी ही धीरे-धीरे पत्रों में चित्र, कार्टून आदि देना शुरू किया। यह भी पत्रों की उन्नति का एक अंग हुआ। इस समय हिंदी के मासिक पत्रों में तो प्राय सब प्रमुख पत्र सचित्र प्रकाशित होते हैं, इनके अतिरिक्त, स्वतंत्र, विश्वमित्र, भारतमित्र, प्रताप, सैनिक, मतवाला, दिदृ-पच, हिंदी बंगवासी आदि बहुत से दैनिक और साप्ताहिक समाचार-पत्र भी समय-समय पर चित्र और कार्टून प्रकाशित करते रहते हैं। इतना होते हुए भी पत्रों की कीमत कम रखने की ओर विशेष रूप से ध्यान रखा जाता है। पहिले पत्रों की कीमत बहुत अधिक होती थी। छोटे-छोटे और खराब कागजों पर छपे हुए पत्रों की कीमत तक छ:-छ: सात-सात रुपये रखी जाती थी। इसीलिए श्रीराधाकृष्ण दासजी को अपनी पुस्तक में समाचार-पत्रों के मूल्य की अधिकता की शिकायत करना पड़ा था। किंतु इस समय यह बात नहीं। अब छपाई, कागज, सफाई आदि सुधारों के साथ-साथ कीमत की कमी पर भी ध्यान दिया जाता है। भारतवर्ष जैसे दीन देश के लिए मूल्य का कम होना बहुत बड़ी बात है। प्रसन्नता की बात है कि समाचार-पत्र सब प्रकार उपयोगी बनने के लिए आगे बढ़ रहे हैं। इनमें से अनेक अपने उद्देश्य में सफल भी हो रहे हैं। फिर भी अभी और भी आगे बढ़ने की आवश्यकता है। हिंदी भाषी जनता में समाचार जानने की उत्सुकता अभी पर्याप्त परिमाण में जाग्रत नहीं हुई, इसलिए इस बात की भी आवश्यकता है कि समाचार-पत्र, जहाँ तक संभव हो, अधिकाधिक आकर्षक और उपयोगी बनाए जायँ।

विष्णुदत्त शुक्ल

अंतर से

(१)

मेरे उर-प्रदेश में आकर
पथिक ! देख मत आग लगा,
सोती अमर वेदना को,
सो जाने दे, क्षण भर न जगा।

(२)

कहीं भूल कर भी दुखिया से
पूछ न पड़ना सुख का नाम,
इस अभाव की शांति-गोद में,
लेने दे मुझको विश्राम।

(३)

जीवन-ज्योति जगाने को,
इस शून्य हृदय में देख कहीं,
जला-जला कर दीप हमारे,
जले हृदय को देख नहीं।

(४)

पिरो-पिरो कर आशा की—
लड़ियों का हार न पहनाना,
लगा कठोर ठेस उससे तुम,
व्यथा न दूनी कर जाना।

श्रीश्यामापति पांडेय 'श्याम'

डाक-रोग

(१)

धुरी के वाचकवर्ग इस रोग से स्वयं ग्रस्त हैं—मैं भूलता हूँ, प्रत्येक ग्राहक, चाहे वह किसी समाचार-पत्र का ग्राहक क्यों न हो, अवश्य ही इस रोग से ग्रस्त है। मैं तो यहाँ तक कहने के लिए उद्यत हूँ कि, पृथ्वी भर में कदाचित् ही कोई शिक्षित पुरुष होगा जो इस रोग से पीड़ित न हो। यह सांक्रामक रोग अब अर्द्ध-शिक्षित, अशिक्षित लोगों में भी पहुँच गया है।

(२)

प्राचीन समय में यह रोग था तो सही, किंतु इस वर्त्तमान रूप में—इस भयकर रूप में—नहीं था। चरक, सुश्रुत, वाग्भट, माधवनिदान इन आयुर्वेदिक ग्रंथों में इस रोग का वर्णन अथवा निदान कहीं भी देखने को नहीं मिलता। यूनानी हकीम भी कहते हैं, कि उनके ग्रंथों में भी इसका कहीं वर्णन नहीं है। एलोपैथी, हैड्रोपैथी, होमियोपैथी, कोमियोपैथी अथवा लुई कोहिनी के ग्रंथों में भी इस रोग का वर्णन नहीं मिलता। प्राचीन समय में यह 'डाक रोग' होगा तो सही किंतु निरुपद्रव होगा—इससे किसी की कुछ भी हानि न होती होगी—तभी तो इस का वर्णन कहीं नहीं मिलता; नहीं तो इतने बुद्धिमान् प्राचीन लोग इसीके विषय में क्योंकर मौन साधन करते।

(३)

जिनके राज्य में सूर्य कभी अस्त नहीं होता, जिनके साम्राज्य में शेर और बकरी एक घाट पानी पीते हैं जब से इनका साम्राज्य हुआ है, तभी से भारतवर्ष में इस रोग का प्राबल्य हुआ है। जब से एक पैसे के कार्ड में समस्त भारतखंड में कुशल-समाचार पहुँचने लगा—मैं भूलता हूँ, अब दो पैसे में पहुँचता है—जब से दो पैसे के लिफ़ाफ़े में—मैं फिर भूल गया, अब चार पैसे में पहुँचता है—घर बैठे अपने सुदूरवर्त्ती इष्ट-मित्र, बंधु-बांधवों के समाचार मिलने लगे, तभी से इस रोग की प्रबलता नित्य-प्रति बढ़ती ही चली जाती है।

(४)

गुरुवार के दिन मैंने रमेश के पास पत्र डाला था वह अवश्य ही रविवार के दिन पहुँच गया होगा। रविवार को छुट्टी का दिन है, यदि उसके पास कार्ड लिफ़ाफ़ा न होगा, तो उसने सोमवार को पत्र डाला होगा, जो कि मुझे यहाँ आज गुरुवार को मिलना चाहिये। देखें, डाकिया आता होगा।

* * *

डाकिया आया और दूसरों की चिट्ठियाँ बाँट कर चला गया। आज रमेश का पत्र नहीं आया, कल आ जायगा। कल नहीं आयगा तो उसके पास एक रजिस्टर्ड पत्र भेजूँगा। संभव है मेरा पत्र उसको न मिला हो। वह बोर्डिंग में रहता है, वहाँ चिट्ठियों की ऐसी ही गड़बड़ी रहती है। लड़के एक दूसरे की चिट्ठी ले लेते हैं, कहीं रख के भूल गये, तो बस हो गया।

* * *

और तो और, आज हमारा दैनिक 'लीडर' भी नहीं आया, कभी-कभी दो इकट्ठे ही आते हैं, कल एक साथ दो अंक मिलेंगे। हमारी मासिक 'माधुरी' भी आती ही होगी।

* * *

नहीं मालूम, हमारे अख़बार बीच में ही कौन उड़ा ले जाता है। ये डाकिये भी निरे पशु हैं, कभी-कभी किसी का पत्र किसी को दे आते हैं। ये डाक-मुंशी लोग भी पूरे हज़रत हैं, अख़बारों के कवर निकालकर, पढ़कर, फिर कवर को जैसा का तैसा चढ़ाकर चिपकाकर, डिलिवरी करते हैं। पोस्टमास्टर को लिखता हूँ। लिखने से क्या लाभ? वह लिख देगा कि डाकख़ाने में आया ही नहीं।

* * *

अच्छा मैनेजर को लिखता हूँ। मैनेजर भी चतुर पुरुष ठहरे। वे लिख देंगे कि हम बड़ी जाँच-पड़ताल के पश्चात् पत्र भेजते हैं, वहाँ पोस्ट आफ़िस को लिखिये। अच्छा, पोस्टमास्टर जनरल को लिखता हूँ, वह सबको ठीक करेगा। लो उसने भी सूखा उत्तर दे दिया—"हम जाँच पड़ताल कर रहे हैं।"

*

यदि एक दिन भी हमारा "डेली" नहीं मिलता, तो दिन सूना सा चला जाता है। रोज़ नई ख़बरें पढ़े बिना चैन कहाँ। जैसे मद्यप को मद्य की हुड़क उठती है अथवा जैसे टुक्केबाज़ को तमाखू की अथवा अफ़ीमची को अफ़ीम की—इसी प्रकार मुझे इस डाकरोग के कारण पत्रों की, अख़बारों की, मासिक-पत्रिकाओं की ज़बरदस्त हुड़क उठती है। भला कुछ ठिकाना है इस डाक रोग के कारण बेचैनी का!

(५)

जिस दिन 'डाकिया' भरी-पूरी डाक ले आता है—जिसमें एक दो डेली, दो-चार वीकली, एकाध मंथली हों, दस पाँच कार्ड हों, दो-चार लिफ़ाफ़े हों, इसके अतिरिक्त दो एक रजिस्टर्ड लेटर हों, तब अपने-राम को ऐसा हर्ष होता है, जैसे कोई रियासत बख़शिश मिल गई। यदि डाकिया एकाध ही चिट्ठी लाया तो, बस प्राण-पखेरू

उड़ने को ही हो जाता है। किसी दिन डाकिया न आया तो ऐसा शोक छा जाता है, जैसे नानी मर गई हो। कहो 'माधुरी' के वाचको, तुम्हें भी इस डाक रोग ने पछाड़ा है कि नहीं ?

(६)

आज-कल जिसकी 'डाक' नहीं आती, वह मनुष्य नहीं साक्षात् पशु समझा जाता है—क्लबों में, समाजों में, सोसाइटी में, उसको बैठने का अधिकार नहीं, और इन पोस्ट-आफ़िस के पशुओं की शरारत देखो, जिसकी जैसी ज़बरदस्त डाक आती है, उसको वैसा ही बड़ा आदमी समझकर उसका दर्जा क़ायम कर लेते हैं। इष्ट-मित्र, बंधु-बांधव भी उसीको 'मनुष्य' समझते हैं, जिसकी डाक ज़बरदस्त होती है।

(७)

जैसे 'डाक' के न आने से मनुष्य मरा तुल्य होजाता है, उसी प्रकार जब 'पत्र' आवे और उसको लेने वाला कोई न मिले तब वह 'पत्र' भी मर जाता है, और वह मरा हुआ 'पत्र' डेड् लेटर आफ़िस (मृत-पत्र कार्यालय) में जाकर, अनेक स्टैंपों से सुभषित अथवा विभूषित होकर, बेचारा मरा-मराया फिर भेजने वाले के पासही पहुँचता है। हा ! डाक रोग !!

(८)

यदि पत्र लिखने के लिए पास पैसे न हों—पास पोस्ट-कार्ड लिफ़ाफ़ा न हो, तो आप 'पत्र' को 'बेरंग' भेज सकते हैं। दो पैसे वाला कार्ड चार पैसे वाला लिफ़ाफ़ा पहुँचे, न भी पहुँचे, किंतु यह बेरंग पत्र घर के तहख़ाने तक में पहुँच जाता है। दिन के दिन समाचार पहुँचाना और सुनना चाहो तो बारह आने में तार धड़का दो। यदि यह चाहो कि जवाब देनेवाले को पैसे न देने पड़ें, तो डेढ़ रुपया ख़र्च करो—समझे ?

(९)

पत्र अथवा समाचार जितना दूर भेजना हो उतना ही अधिक दाम ख़र्च करना होगा। हाँ, भारत भर में एक-सा नियम है। विदेशों के लिए अन्य नियम है। और एक बात सुनो—सबका दादा प्रेस तार, केब्ल् आदि तो कमाल करते हैं। हज़ारों मील पर कुद् हुई कि यहाँ फट् हुई ही समझिये। बिना तार का तार, रेडियो, ब्राडकास्ट आदि के कारण डाकरोग दिन-प्रति-दिन विकराल होता जाता है। यदि वायुयान से पत्रादि आने लगेंगे तो और भी तमाशा देखियेगा !

(१०)

अपने-रामको तो एक दिन रोटी न मिले तो भी इतना अंदेशा नहीं, किंतु प्रति-दिन डाक के पुलिंदे के बिना नहीं सरता। जिस दिन डाक नहीं आती उस दिन भोजन अच्छा नहीं लगता, नींद भी अच्छी नहीं आती, घरवालों से, इष्टमित्रों से मिलने को जी नहीं चाहता। हाँ, जिस दिन ख़ूब पुलिंदा आता है, उस दिन हम सिर पर आसमान लेकर नाचने लगते हैं। जिस दिन शून्याकार रहता है उस दिन डाकिया और उसके मातृकुल और पितृकुल की कई पीढ़ियों को शाप और अभिशाप दे छोड़ते हैं। कहो 'माधुरी' के वाचकवृंद, आपका क्या अनुभव है ?

(११)

मैं सच्ची बात लिखूं ?

'सच तो है यह आदमी,
तक़दीर से मजबूर है'

नहीं तो सारे भारतवर्ष की डाक—चाहे मेरी हो या अन्यों की—सब अपने पास मँगाता और दिन भर उसी ढेर की उधेड़बुन में पड़ा हुआ सुख-सागर में गोते खाता। पर यह कैसे हो। *

मेरे पास इतने नौकर-चाकर हैं, किंतु मैं अपने पत्र अपने हाथों से लेटर-बक्स अथवा पोस्ट-ऑफ़िस में छोड़ा करता हूँ। वाचकवृंद, मैं ही ऐसा अकेला पागल नहीं हूँ। मैंने शिमला, मसूरी आदि पर्वतों में स्वयं देखा है कि अँगरेज़ लोग अपनी विलायती-डाक अपने हाथ से पोस्ट ऑफ़िस में छोड़ आते हैं और जिस दिन विलायत की डाक आती है, एक दो घंटे समय के पूर्व ही डाकख़ाने को घेरकर खड़े होजाते हैं। जिस उत्सुकता से डाक लेते हैं, जिस उत्सुकता से पढ़ते हैं, वह एक देखने की बात है।

* * *

ये लोग विलायती डाक के दिन दो-दो घंटे पूर्व डाकख़ाने में पहुँचकर धपला मचाते और हल्ला करते थे, इसलिए बंबई आदि नगरों में यह आज्ञा है कि जब तक झंडा (पोस्ट ऑफ़िस का) न गिराया जाय, तब तक कोई न आवे। पोस्टवाले जब डाक सॉर्ट कर लेते हैं, तब झंडा

* आश्चर्य है आप संपादक होकर भी इस रोग से गला न छुड़ा सके ! संपादक

गिराते हैं—वह भी एक देखने की बात और डाकरोग का तमाशा है !

* *

और एक तमाशा देखिये डाकरोग के बिल देखिये। पोस्टमैन डाक देने को आते ही हैं, किंतु अब लक्ष्मी-पुत्रों तथा व्यापारियों ने पोस्ट ऑफ़िस के सिर पर ही अपने लेटर बक्स ताले-ताले-सहित लगा दिये हैं। लाहौर, देहली, प्रयाग, लखनऊ, पटना, कलकत्ता, नागपुर, बंबई, पूना, मदरास आदि के जनरल पोस्ट ऑफ़िस में जाकर देखो, लेटर बक्सों की अच्छी ख़ासी नुमायश है।

* *

यह डाक रोग इतना बढ़ गया है कि किसी-किसी व्यापारी के डाक के थैले सीधे रेल से उसके यहाँ पहुँचते हैं। संस्थाओं में, कंपनियों में, बैंकों में, प्रेसों में जहाँ चाहें अपना पोस्ट ऑफ़िस खुलवाकर सदैव के लिये डाक रोग के दास बनिये—अपने सामने थैली खोलिये और अपने सामने बंद कीजिये ! वाह रे डाकरोग !!

(१२)

वाचकवृंद ! कहिये, मैंने इस डाक रोग का ठीक-ठीक निदान किया या नहीं ? जब, पिछले दिनों—दो वर्ष पूर्व की बात है—गंगाजी में बाढ़ आई थी और, देहरादून, हृषिकेश आदि का रास्ता सर्वथा बंद हो गया था, तब आठ दिन तक डाक नहीं मिली। मिलती कहाँ से—डाकबंद, तार बंद, मार्ग बंद, रेल बंद, करते ही क्या। उन आठ दिनों में डाक रोग-पीड़ित-जनता की जो अवर्णनीय दुर्दशा थी, उसको किन शब्दों में वर्णन किया जाय। ऐसा प्रतीत हो रहा था कि हम संसार से पृथक् होगए हैं—नहीं, नहीं—हम संसार में रहे ही नहीं ! एक कोलाहल था !! जब नव दिन डाक के गट्ठर मिले, तब अपने-राम ने समझा कि पुनर्जन्म हुआ—तब अपने राम ने जाना कि फिर संसार में आगये। यदि ब्रिटिश सरकार पोस्ट ऑफ़िस का महकमा बंद करदे, तो समझ लीजिये कि ईश्वर कृत महाप्रलय जब आयेगा या होगा तब होगा, उसी दिन अपनी आँखों से महा-प्रलय देख लीजियेगा।

(१३)

सैकड़ों संस्थाओं, कंपनियों, व्यापारियों, बैंकों का उसी दिन दिवाला निकल जायगा। प्रेस तथा समाचार-पत्रों के कार्यालयों में गरुड़ पुराण की कथा प्रारंभ हो जायगी। ग्रामवाले तो किसी प्रकार सुखी रहेंगे, क्योंकि इनको डाक रोग अभी उतना नहीं लगा है, किंतु शहरियों तो सोलह आने बरबाद होंगे। अब भई, यह डाक रोग भारतवर्षीय जन-समुदाय के शरीरों का एक अंग हो गया है। इसका मिटना अब असंभव-सा हो गया है। माधुरी के पाठको ! चुप क्यों हो ? बोलते क्यों नहीं ? मैं ठीक लिख रहा हूँ कि नहीं ?

(१४)

डाक रोग से अलग रहना चाहो तो अफ़रीका की किसी जंगली जाति की बस्ती में जाकर रहो—नहीं तो प्रति-दिन दो एक पत्र अवश्य लिखा करो, जिससे प्रति-दिन एकाध पत्र तो डाक में आया करे। यदि पत्रों के न पहुँचने की शिकायत हो तो रजिस्टर्ड पत्र। और साक्षात् पत्र पानेवाले के हस्ताक्षर देखने हों तो रिप्लाई रजिस्टर्ड भेजा करो। कभी इनश्योर करा दिया। कभी पार्सल भेज दिया। कभी तार खटका दिया। इस तरह बराबर धूम-धाम रक्खा करो। नहीं तो यह मनुष्य जन्म व्यर्थ ही समझिये। हाँ, मैं भूल गया। चाहे खाने-पीने में तंगी रक्खो, किंतु सोसाइटी की दृष्टि में और पोस्ट ऑफ़िस वालों की नज़र में ऊँचा रहना चाहें, तो एक डेला जरूर-जरूर मँगाओ। अँगरेज़ी न आती हो तो हिंदी का ही सही—पर मँगाइए ज़रूर। दो एक साप्ताहिक हों, एकाध मासिक फिर आप थोरो (पूरे) जेंटिलमेन बन जाओगे—नहीं तो पड़े-पड़े सड़ा करो अपने घर और गली-कूचों में। पूछता ही कौन है !

(१५)

देखिये न, चार पैसे में इतनी बड़ी मोटी ताज़ी 'माधुरी' घर बैठे पहुँचती है, 'मनोरमा' आती है, 'सरस्वती' दर्शन देती है। और आप क्या चाहते हैं ? ये सब डाक की बदौलत है न ? इस रोग में स्वाद भी बड़ा है, पर जान भी ख़तरे में रहती है। प्राण निकाल लेनेवाली बेचैनी के कारण यह डाक रोग जितना दुःख पहुँचाता है, उतना ही सुख भी देता है।

(१६)

अपने-राम तो अब इस डाक रोग से ऊब गए। वे सुखी हैं, जो अख़बार नहीं पढ़ते। वे स्वर्ग में हैं, जिनको डाक की चिंता नहीं रहती। वे पुण्यशाली हैं, जिनको किसीकी प्रतीक्षा नहीं करनी पड़ती। यदि यह रोग निवृत्त होजाय तो मन भी शांत होसकता है। वह स्वस्थ

रह सकता है, आत्मा भी निश्चिन्त होकर प्रसन्न होसकता है। और कुछ हो या न हो, यदि डाक न रहे तो कम-से-कम संपादकों से लेखकों का पीछा छूटकर वे सुख समाधान से अपने घर में बैठ सकते हैं—न संपादकजी लेखकों से लेखों के लिए तक़ाज़ा कर सकेंगे और न लेखक के लेख ही उनके पास पहुँचेंगे। उस दशा में संपादकों की जो सुदशा अथवा दुर्दशा होगी, उसको वे जानें—(इति डाकरोग निदानम्)।

नरदेव शास्त्री वेदतीर्थ

उषा से

रजनि में कलरवमय संसार,
क्षुब्ध हो, हो जाता है शांत।
स्वप्न की परियों का शृंगार,
बिखर जाता है जब, विश्रान्त—

जगत को मधु का परिचय नाथ,
कली जब देती है उर खोल।
प्रणय की पहिली काली रात,
बता क्या सकती उसका मोल।

पहिन तारांबर की साड़ी,
नवोढ़ा-सी लज्जित सुकुमार।
चमकती छिपती किधर चली,
अरी करने क्या कृष्णाभिसार ?

नभचरी मालिन सी सुंदर
सजाई कब तूने थाली,—
अछूते वैभव को ले-ले,
भरी यह मोती की डाली।

ले रवी शिशु-रवि की मुसकान,
और शिशु शशि के शुचि आस।
उदित तुम हुई नक्षत्र समान,
कहीं मुसकान, कहीं आस।

धरा पर धर सोने के पाँव,
उतर आई तुम थी जिस काल।
जगत ने तुम पर मोहित हो,
तुम्हें पहिनाया था वरमाल।

तुम्हारे आने से हे सजनि !
शान का मिला क्रांति संदेश।
विहग-कुल ने यह पहिचाना,
अन अब हुआ निशा का शेष।

किसी माली ने गूथा था,
इन्हें करके अनंत उपचार;
आज ये पड़े उपेक्षित से,
स्वर्ण सुमनों के बिखरे हार।

उन्हीं में पड़ी दमकती हो,
प्रथम निशि से ही तुम, सुकुमारि।
वस्त्र-अंचल का तेरा छोर,
कहाँ है प्यारी स्वर्णकुमारि ?

श्रीसूर्यनाथ तकरू

भूत-रहस्य

कुछ मनुष्यों का कथन है कि ईश्वर को छोड़कर मनुष्य ही सब जीवों और प्राणियों में श्रेष्ठ 'अशरफुल-मख़लूक़ात' है। किंतु ऐसा प्रतीत होता है कि यह भ्रांति आधुनिक विज्ञान-वेत्ताओं द्वारा सर्वथा दूर हो रही है। प्राचीन यूरोपियन भूतादि में विश्वास रखते थे; सनातनी हिंदू लोग तो अबतक मनुष्येतर उच्चतर योनियों में विश्वास रखते हैं। मध्यम-कालीन यूरोपियन-समाज बहकने लगा था, किंतु अब सर ऑलिवर लाज सदृश पश्चिमी पंडित प्राचीन विचारों से टक्कर खाते हुए, 'डेली मेल' के 'दि वर्ल्ड बियांड' नामक लेख में लिखते हैं·—

Man is not the highest being of which we have cognizance, but there are a multitude of intelligences otherwise and more highly endowed than ourselves with which gradually we may come into touch

---

विलियम शेक्सपियर कवि ने अपने जूलियस सीज़र और हेमलेट नामक नाटकों में भूतों का कुछ वर्णन किया है।

बाइब्ल् में सूली के उपरांत ईसा (Christ) का प्रादुर्भूत होना भी विचारणीय विषय है। Bible New Testament, St. Mark's gospel, Chapter XVI.

अर्थात् मनुष्य उन प्राणियों में उच्चतम नहीं जिनका हमको ज्ञान है, किंतु बहुत से ऐसे भी प्राणी हैं, जो हम से अधिक विज्ञ हैं, जिनके साथ हमारा व्यवहार शनैः-शनैः हो सकता है।—पश्चिमी विद्वानों का अनुमान भूत प्रेत पिशाचादिक तक ही सीमाबद्ध है। भारतीय योनि-गणना अधिक व्याप्त है। अमरकोष का वचन है —

'विद्याधरोऽप्सरोयक्षरक्षोगन्धर्वकिंनराः

पिशाचो गुह्यकः सिद्धो भूतोऽमी देवयोनयः ।'

हिंदुओं में एक ओर तो आर्यसमाजी हैं, जो इन योनियों में विश्वास नहीं करते, दूसरी ओर अर्ध-शिक्षित सनातनी हैं जो अँधेरे में श्वेत वस्त्र को, दुपहरी में बबूले को, रोग में मूर्च्छा को देखकर पद-पद पर पिशाच, चुड़ैल, पीर का आभास ग्रहण करने लगते हैं। 'अति सर्वत्र वर्जयेत्'— सिद्धांत के पोषक वैज्ञानिकों का मत ही सर्वथा ग्राह्य है और साधारण-जनता के ज्ञान के हेतु उसीका विवेचन यहाँ अभीष्ट भी है।

सीज़र लोम्ब्रोज़ो † ने भूतों के लक्षण जिस तरह के बताए हैं, उनका संक्षेप वर्णन इस प्रकार है —

भूत बहुधा भाप तथा ज्योति के रूप में प्रकट होते हैं। कभी-कभी मनुष्य के रूप में भी—किंतु पूर्ण मनुष्याकार में बहुत कम। मनुष्याकृति उनका वास्तविक स्वरूप नहीं होता है। अपने को प्रकट करते समय वे ऐसा आकार ग्रहण करते हैं, जिससे मर्त्य उनको पहचान सकें। प्रेतात्माएँ ‡ बहुधा उन्हीं घर व श्मशान आदि स्थानों में वास करते हैं, जहाँ वे मृत्यु से पूर्व वास करते थे। वे उग्र प्रकाश के सामने इस प्रकार अंतर्धान हो जाते हैं, जिस प्रकार उष्णता के समक्ष मोम। उक्त स्थानों में वे बिना प्रयोज्य (medium) के रात्रि में विचरते हैं, किंतु बिना प्रयोज्य के दृष्टिगोचर नहीं होते। जिस शीघ्रता से वे इतस्ततः घूमते हैं, उसकी गणना असंभव-प्राय है। उनकी गति अनुमानतः १२०० मील प्रति घंटा प्रतीत होती है। वे अपने को वाणी द्वारा प्रकट करने के कम इच्छुक होते हैं। बहुत बोलने पर वे संकेतों का प्रयोग करते हैं। वे कभी किसी को अपना प्रयोज्य बनाने की कामना से व्यक्तियों पर आक्रमण भी कर बैठते हैं और उसीके द्वारा अन्य मनुष्यों से बातचीत करते हैं। यद्यपि उनको मनुष्यों से इस प्रकार संबंध रखने की अभिलाषा होती है, तथापि अपने नाम को बताना अभीष्ट नहीं होता। साधारणतः ऐसा प्रतीत होता है कि जो प्राणी अचानक मर जाते हैं, वे प्रेत होकर भी ऐसे कार्य करते रहते हैं, जिनका उन्हें पूर्व जीवन में अभ्यास था। वे सांसारिक-कुवासनाएँ प्रयोज्य द्वारा ही तृप्त करते हैं, और काँच की वस्तुओं को तोड़ने के बड़े शौक़ीन होते हैं। विक्षिप्त प्रेतों की प्रयोज्य द्वारा वार्ता भी विक्षिप्त होती है। कुछ प्रेतों से बातचीत द्वारा पता चला है कि वे इस संसार की वर्तमान अवस्था से अनभिज्ञ होते हैं, क्योंकि वे बहुधा अपने इष्ट-मित्रों की वार्ता पूछने के बड़े उत्सुक होते हैं। कोई-कोई तो भविष्य की बात भी जानते हैं। यह निश्चय-सा है कि वे पूर्व-जन्म की विचित्रताओं का पालन करते रहते हैं, क्योंकि उग्र स्वभाव वाले मरणांतर भी प्रचंड स्वभाव के पाए जाते हैं, * भूत-

* भूत प्रेत आदि शब्दों से उन सूक्ष्म शरीर-धारियों का अर्थ ग्रहण किया जाता है, जो मानवीय-जीवन में पृथ्वी पर कदाचार में जीवन व्यतीत कर चुके हैं। किंतु हम अपने लेख में इनका अर्थ मृत्यु के उपरांत सूक्ष्म-शरीर धारी ही ग्रहण करते हैं।

[इनकी व्युत्पत्ति इस प्रकार है —

भूत=भू+क्त। प्रेत=प्र+इ+क्त=one dead and gone]

† After Death what ? Biology of the Spirits pp. 329 & infra by Cesare Lombroso.

‡ प्रेतात्मा शब्द अँगरेज़ी के शब्द Spirit 'स्पिरिट' का अनुवाद है। हिंदू-दर्शनों में मोक्षावस्था के अवसर पर ही आत्मा प्रकृति से अलग होजाता है। भूत-प्रेत आदि प्रकृति से मुक्त नहीं हैं। वे स्थूल शरीर से ही मुक्त हैं, सूक्ष्म से नहीं। वास्तव में 'आत्मा' शब्द का पर्याय पश्चिमी दर्शन में दुष्प्राप्य है।

* मरणांतर में मानसिक-भावों का बना रहना उतना आश्चर्यजनक नहीं जितना कि शरीर के चिन्हों का मरणांतर में बना रहना। अलवर के श्रीयुत सुंदरलालजी, एम० ए०, आई० ई० एस० ने सितंबर सन् १९२० के दैनिकपत्र 'लीडर' में ग्वालियर के पटवारी काशीराम और धर्मपुर के सूबेदार भैरवसिंह के उदाहरण इस प्रकार दिए हैं —

I have come across in my investigations which are of still more remarkable character in asmuch as the children thus born have brought back not only the memory of their past life but have also reproduced in their bodies the marks of the wounds which are the

शिशु अपने बचपन के हाव-भाव प्रकट करते हैं। यदि उनको मरे अधिक समय बीत जाता है तो वे बड़े आदमियों का-सा आचरण करते हैं। काल और दिक् के विषय में या तो उनको ज्ञान ही नहीं होता अथवा इस विषय में वे भूल अधिक करते हैं। हमारे और उनके वस्तु ज्ञान में भी भिन्नता होती है, क्योंकि उनके इंद्रिय-व्यापार हमारे इंद्रिय-व्यापार से गुण और परिमाण में असदृश होते हैं (कारण कदाचित यही है कि हमको स्थूल शरीर उपलब्ध है, उनको नहीं), अतएव अपने इंद्रिय-व्यापार को मानुषीय इंद्रिय-व्यापार बनाने के हेतु उनको प्रयोज्य का आश्रय लेना पड़ता है। प्रथमतः प्रयोज्य का उपयोग कष्टकर किंतु पश्चात सरल प्रतीत होता है। उपयुक्त प्रयोज्य का प्राप्त कर लेना अवश्य कठिन कार्य है। वे लिख सकते हैं, और अपना हस्ताक्षर भी कर देते हैं, और लिखने में ऊटपटांग अशुद्धियाँ भी कर बैठते हैं, जैसे hospital को latipsoh लिखना।

डाक्टर हेअर * ने प्रेतात्माओं के सवाद से उनके रहन-सहन के बारे में जो खोज की है, उसका साराश निम्न प्रकार है:—

पृथ्वीतल से लगभग ६० मील की दूरी पर प्रेतलोक आरंभ होता है। उसमें † सप्त मंडल हैं, जिनके भी पुनः षट् विभाग होते हैं। उन मडलों में प्रेतात्माओं की गति सदाचारादि गुणानुसार होती है। जैसे-जैसे वे शौच, दया, ज्ञान में उन्नति करते जाते हैं, वैसे ही उन्हें उन्नततर मडल में प्रवेश करने का अधिकार प्राप्त होता जाता है। दुराचारी, अपवित्र और अज्ञानी उन्नततर मडल में प्रविष्ट नहीं हो सकते। पापियों को दड-रूप में ऊपरी मडलों से च्युत कर निम्नतर मडलों में भेज दिया जाता है। कोई भी उन्नततर मडल में प्रवेश करने की अनधिकार चेष्टा नहीं कर सकता, किंतु सभी निम्नतर मडलों में इच्छानुसार जा सकते हैं। उस लोक में भले-बुरे की पहचान द्युतिचक्र (halo-aura) के रंग ‡ द्वारा की जाती है। उन्नत-मडलवासी निम्न मडलवासियों पर अधिकार रखते हैं, और उन्हें पृथ्वी के कार्यों में हस्तक्षेप करने से रोकते रहते हैं। अलाउद्दीन के लेम्प वाले प्रेत (जिन) के सदृश पवित्रात्माओं को सदभिलाषाओं को पूर्ण करने का साधन प्राप्त होता है। नारकीय मडल को छोड़कर अन्य मंडलों में व्यापारादि व्यवहार की आवश्यकता नहीं होती, क्योंकि आवश्यकीय वस्तुएँ सबको उसी प्रकार उपलब्ध होती है,

---

cause of their death in the preceding life. These marks have been identified and corroborated by the reference to the personal descriptions of the dead bodies as given in the police diaries of investigation which was undertaken at the time of the occurrence on the spot.

In one instance at Nonera Zila Bhind in Gwalior, the fingers of the right hand of a Patwari Kishan ... which were tragically and spitefully cut off by the murderer (an aggrieved Zamindar) have been found missing in the body of the child Sukhlal of Besalpur Bhind in Gwalior and one of the ribs which had been broken still bears the marks of malunion. I enclose a photograph of the child for illustration with a brief marginal description.

There is another case of a Subedar (Bheron singh) at Dholpur in which a spear thrust and a long sword cut across the stomach which were the cause of death in the previous life in the village of Dihpura in that State are still present.

* Quoted by J. Arthur Hill in his Psychical Investigations Chap 13, pp 262—267

† थियोसोफिकल सोसाइटी की अधिष्ठात्री श्रीमती एनी बीसेंट ने अपनी थियोसोफी नाम की पुस्तिका में एक मानचित्र द्वारा क्रमागत स्थूल काम, मनस, बुद्धि, आत्मा, अनुपादक और आदि नाम सप्तमडलों तथा स्थूल, सूक्ष्म, मानसिक, कारण, बुद्धि, परमाणु आदि शरीरों व चेतना के तारतम्य आदि (अधिकाश में हिंदु-विचारों) का वर्णन किया है।

Theosophy by Annie Besant, p 25

‡ लोहित, गुलाबी, हरा, पीला, सोसिया, आसमानी, नारंगी, सुनहरी, नीललोहित और श्वेत—क्रमश क्रोध, प्रेम, ईर्षा, मत्सर, शोक-दुःख, कला-विज्ञान, दुनियादारी, आनद-ज्ञान, बल और शैशव के द्योतक है।

—Ghost I have seen by Violet Tweedale, p 296

जिस प्रकार इस लोक मे वायु, आकाश आदि मनुष्यों को। सप्तम मंडल को प्राप्त होने के पश्चात् स्वर्ग मे देवदूतों (angels) के पास पहुँचने का अधिकार मिल जाता है। वैवाहिक-संबंध उन लोकों मे हो सकते हैं और ब्रह्मचर्य भी निबाहा जा सकता है। उनके विषय-भोगादि सुख मानवीय कल्पना के बाहर है। शिशु उसी प्रकार बढ़ते रहते हैं, जैसे पृथ्वी पर। उनके लिए पालन-पोषण और शिक्षण का प्रबंध भी होता है। उक्त डाक्टर महोदय के पिता ने मरणांतर अवस्था मे यह बात भी बताई है कि प्रेत-लोक के लिए एक दूसरा ही किंतु सहकेंद्री (concentric) सूर्य है, जिसकी किरणें उस लोक मे पहुँचती है।

एक अज्ञातनामा ग्रंथकार लिखते हैं* — मनुष्य प्राय प्रेत-संवाद के लिए तत्पर नही रहते, क्योंकि उनका आत्मा शरीर मे बद्ध रहता है, तिसपर भी बुद्धिरूपी ताला पड़ा रहता है। किंतु कुछ व्यक्तियों का बनाव इस प्रकार का होता है कि वे या तो जन्मत अथवा किसी शारीरिक-व्याधि के कारण प्रेत-संवादों को ग्रहण करने के योग्य हो जाते है — अथात् प्रेत व देव-संवाद-ग्रहण-पात्र हो जाते है। शरीरबद्ध आत्मा पर इन प्रेरणाओं का प्रभाव पड़ता है, जिससे हानि लाभ दोनो ही संभव है। क्योंकि बुरे प्रेतात्माओं का उद्देश बुरा और अच्छों का भला होता है। [आयतों का उतरना और देवमंत्रों का दर्शन करना क्या बात है ?] उक्त प्रकार के मनुष्यों को बुरी प्रेरणा का सामना करने के लिये सोते जागते सदैव सतर्क रहना चाहिए।

भूत सत्ता अब केवल वादविवाद पर निर्भर नहीं है। प्रेतों के फ़ोटो भी लिए जाते है। भारतीय श्री विश्वनाथ दामोदर ऋषि, बी० ए०, एलएल० बी० इस विषय के प्रमुख वेत्ताओं मे से है। साज़र लोम्ब्रोज़ो† इस प्रकार लिखते है —

मार्च १८६१ ई० मे मिस्टर ममलर जो विजली कंपनी मे नक़्क़ाशी का काम करते थे, अपने अवकाश (फ़ुरसत) को फ़ोटोग्राफ़ी मे व्यतीत करते थे। एक दिन उन्हें अपने 'प्रूफ़' पर एक ऐसा आकार मिला जिसकी सत्ता चित्र लेते समय विचार-मात्र में भी न थी। उन्होंने उस समय यह विचार स्थिर किया कि कदाचित् वह प्लेट और प्लेटों से मिलगई हो। पर द्वितीय 'प्रूफ़' लेने पर भी वही बात, किंतु और भी स्पष्टता से, मिली। उसमे मानवीय आकार स्पष्ट दृष्टिगोचर हुआ। संभव है कि ममलर महाशय का वह चित्र सर्व प्रथम प्रेत-चित्र हो। बोस्टन के प्रसिद्ध फ़ोटोग्राफ़र मि० ब्लेक ने ममलर महाशय के प्रेतचित्रों की खूब परीक्षा की और उन्हें प्रेत-चित्र ही माना। पीछे ममलर महाशय का बहुत से लोग अनुकरण करने लगे। यथाः—गुपी, रीज़ारसेल, स्लेटर, वेग्नर, हार्टमैन आदि। क्रिस्टन के मि० जॉन वार्था भी प्रामाणिक व्यक्तियों में से है। उक्त साज़र महोदय ने कई प्रेत-चित्र अपनी पुस्तक मे उदाहरण रूप से दिए है, जिनका उल्लेख स्थानाभाव से यहाँ अभीष्ट नहीं है। हमको भी अनायास एक ऐसा चित्र मिला था, जिसमें पति द्वारा एकांत मे लिया हुआ फ़ोटो था, किंतु साथ ही तीन आकार और आए, उनमें से एक स्पष्ट, दूसरा शिर-विहीन और तीसरा अस्पष्ट था। हमारा विचार था कि उसकी एक प्रति लंदन की साइकिकल रिसर्च सोसाइटी मे जाँच पड़ताल के लिए भेजें, किंतु एक मित्र की असावधानी से वह चित्र ही खो गया।

लंदन के लब्ध-प्रतिष्ठ बिशप डा० विनिंगटन इनग्रम का कथन है कि बाइबल् के अनुसार आत्मा की, मरने के लगभग पाँच मिनट पीछे, अनुमानत वही अवस्था होती है जो मरने से पाँच मिनट पहिले कदाचित् थोड़ा सा अनुभव और भी बढ़ जाता है। मृत्यु के उपरांत वृत्त (चरित्र) Character बना ही रहता है। मनुष्यों तथा स्थानों की पहचानने वाली स्मरण शक्ति मरणांतर भी बनी रहती है। जिस संसार को हम मरते समय छोड़ते है, उससे मरणांतर भी चाव (उत्सुकता) रखते है। जे० आर्थर हिल* यद्यपि ऐसी बातों से भले ही सहमत हों, किंतु उनका विचार है कि बाइबल् मे प्रतिकूल विचार के भी पाठ मिल सकते हैं; अतएव अनुभव और घटनाएँ ही अधिक प्रामाणिक समझनी चाहिये। प० महावीर-प्रसाद द्वारा संपादित अद्भुत आलाप मे 'परलोक मे प्राप्त

* A Psychic Vigil in three watches, pp 208-209 published by Methuen & Co., LTD., London

† After Death What ? Chap XI p 258 & infra by Cesare Lombroso

* Spiritualism & Psychical Research Introduction p 17 by J. Arthur Hill

हुए पत्र' नामक अध्याय में लार्ड कालिंगफड परलोक से भेजे पत्र में अपने विचार इस प्रकार प्रकट करते हैं —

मृत्यु से लोग घबराते क्यों हैं? वह एक स्थिति-परिवर्तन मात्र है— एक स्थिति से दूसरी स्थिति में जाना मात्र है। जिसको लोग मृत्यु कहते हैं, उसके बाद अब भी मैं वही मनुष्य हूँ जैसा कि पहले था। हाँ, मेरा पार्थिव अंश वहीं पृथ्वी पर रह गया है, लेकिन जिसके कारण उस अंश का संयोग मुझ से हुआ था, वह बना हुआ है। मृत्यु का आना तक मुझे नहीं मालूम हुआ। मैं मानो सो गया और जब जागा तब मैंने अपने को अपने अनेक मित्रों के पास पाया, जिनको मैंने समझा था कि फिर कभी न मिलेंगे।

मिस्टर इलियट ओ'डोनेल * का विचार है कि कभी कभी हमको ऐसे भूतों का दर्शन होता है जिनका आकार निरे पशुओं और अन्य मनुष्येतर प्राणियों का सा अथवा मनुष्य तथा जंतु मिश्रिताकार होता है। सम्भव है कि ये आकार ऐसे मृत मनुष्यों के हों, जिनकी पूर्व जन्म में चित्त-वृत्तियाँ पशु-वृत्ति के सदृश हों। अपने इस सिद्धान्त की पुष्टि में उन्होंने कई उदाहरण दिए हैं। किंतु आपका निश्चय है कि पशु-पक्षि-गण भी मरकर प्रेत बन जाते हैं और जनश्रुति के आधार पर उन्हें विश्वास है कि अब भी पर्वतीय जंगलों तथा मरुभूमि में क्रूर प्रकृति के मृत जन्तुओं के प्रेतात्मागण मारधाड़ में प्रवृत्त रहते हैं'। हिंदु-समाज में 'सिर कटा' आदि विचित्र नाम प्रायः सुने जाते हैं। उक्त महोदय और भी विचित्र बात बताते हैं—मुझे विश्वास है कि वृक्षों में आत्मा होता है, क्योंकि प्रत्येक बढ़ने वाली वस्तु में आत्मा होता है, जो कभी नष्ट नहीं होता, किंतु रूपान्तर में परिणत हो जाता है। उद्भिज्जों के प्रेत-शरीर सब स्थानों में होते हैं, किंतु हममें से कुछ ही व्यक्ति उनको देख पाते हैं। पदाति और शकट से भरे हुए, वाष्प तथा धूम से धूसरित और जन-समुदाय-जन्य अशुद्धियों से पूरित घटापथ में कभी-कभी मैं सहसा ही वायु-मंडल में एक अनिर्वचनीय अद्भुत प्रकार का परिवर्तन अनुभव करने लगता हूँ। यथा ऐसे पुष्पों की सुगन्धियाँ, जो दूर-दूर के प्रदेशों में भी अप्राप्य हैं, सूघने लगता हूँ। उक्त महोदय ऐसे अनुभवों का विस्तृत वर्णन करने के पश्चात कहते हैं कि ये अनुभव कल्पना मात्र नहीं हैं, क्योंकि यदि मैं कल्पना वशीभूत हूँ तो क्यों नहीं मैं कभी-कभी चट्टानों को इधर-उधर घूमते हुए तथा मेज़ों को अपने द्वार पर टकराते अनुभव कर सका। मैं स्वयं मानता हूँ कि पेड़ों में इन्द्रियाँ होती हैं जो जानवरों की इन्द्रियों के सदृश तो उन्नतावस्था में नहीं होतीं, किंतु उनमें इन्द्रियाँ होती अवश्य हैं। अतएव मेरे विचार से तो उन्हें भी अन्य जानवरों के समान भूतों की समीपता का आभास हो जाता है।

भूत-प्रेत-चरित्रों तथा उनकी अवस्थाओं की चर्चा जनता में बड़े डर और चाव से होती है। अनेकानेक दंतकथाएँ भी प्रचलित हैं, जिनमें से ९९ प्रतिशत मन-गढ़ंत और भ्रमपूर्ण आख्यायिकाएँ हैं। बहुत सी प्रामाणिक घटनाएँ छायादर्शन तथा उन पुस्तकों में, जिनका अब तक यहाँ पर उल्लेख हो चुका है, मिलती हैं। मि० हेनरी केरिंगटन ने अपनी साइकिकल रिसर्च * नामक पुस्तक में अपने स्वर्गीय माता-पिता से बातचीत का विशदतम वर्णन किया है, साथ ही उन चिन्हों, आकारों और लिपि के चित्र भी दे दिए हैं, जिनका उनके पिता ने प्रयोग किया था। इस प्रकार की घटनाएँ अन्यान्य नित्य-प्रति प्रकाशित पुस्तकों में भी मिलती रहती हैं। +

भूत प्रेतों का प्रभाव दूर करने के लिए भिन्न-भिन्न उपायों का अवलंबन भिन्न-भिन्न जातियों द्वारा किया जाता है। अभिमन्त्रित चक्र-निर्माण, मार्जन (झाड़ा-फूँकी) जप, होम इत्यादि प्रधान उपाय हैं। ईसाई लोग क्रास और बाइबिल का प्रयोग करते हैं। चीनी लोग वेदी बनाकर होम करते हैं। हिंदु लोग दुर्गा सप्तशती और हनुमान-चालीसा का पाठ करते हैं। मन्त्र जाप कराते हैं तथा 'कील' 'गढ़ंत' आदि बहुत से उपायों का प्रयोग करते हैं। किन्हीं-किन्हीं का विचार है कि तलवार, कुक्कुट, ताड़ आदि जंतु और वस्तुओं में भूत को भगाने की शक्ति है।

* Byways of Ghostland by Elliott O Donnell Ch. V & VI pp 56-109

* The Problems of Psychical Research by Hereward Carrington pp 95-163

+ यहाँ पर हमारे एक मित्र के पुत्र पर किसी 'टिंपिल' नाम के प्रेतात्मा का आवेश हो गया था। अलमोड़े के एक तांत्रिक ने उस प्रेतबाधा को दूर किया। बालक यद्यपि छठी कक्षा का विद्यार्थी था तथापि मूर्छावस्था में वेग से अंग्रेज़ी बोलता था।

इलियट ओ'डोनेल का अनुभव है कि प्रचंड ज्योति के समक्ष भूत नहीं ठहर सकता ।*

जिस प्रकार भूत भगाए जा सकते हैं, उसी प्रकार बुलाए भी जा सकते हैं। भारत में ये उपाय अब मंत्रादिक हैं। शाक्त और वाममार्गी इस विषय के अच्छे जानकार होते हैं। पश्चिमी उपाय टेबल्-टर्निंग है, जिसका स्पष्ट वर्णन श्रीयुत प्रो० वैजनाथ कोटी ने अपने मासिक पत्र 'योगी' (कला १, किरण १, पृष्ठ १६) में किया है। उसीका संक्षिप्त-विवरण इस प्रकार है —

एकांत अनलंकृत, किंतु पुष्प धूपादि द्वारा सुरभित, कमरे में एक गोल तख्तेवाली ऐसी मेज़ लो, जिसके बीचो-बीच नीचे एक डंडा हो और उस डंडे के नीचे से तीन पाए तीन ओर को फूटे हों, जो पृथ्वी पर रक्खे जाते हैं। उस मेज़ को उस कमरे के बीचो-बीच रक्खो और उसके नीचे एक शुद्ध-स्वच्छ गिलास में निर्मल पवित्र जल भरकर रख दो। यदि मेज़ ऊँची न हो तो मेज़ की अगल-बगल में ही जलपूर्ण गिलास को रख दो। इस गिलास के पास ही एक दियासलाई का बक्स भी रख देना चाहिए। फिर एक साधारण काच की चिमनी वाला लैंप या मोटी मोम-बत्ती लो और उसे जलाकर कमरे में किसी ताक पर रख दो। यदि लैंप हो तो उसे इतना धीमा करदो कि, उसका प्रकाश एक मोमबत्ती के प्रकाश के बराबर ही रह जावे। नीरव रात्रि के दस बजे तीन मनुष्य स्नानादि पवित्रता पूर्वक मेज़ के पास इस प्रकार बैठें कि प्रयोक्ता का मुख उत्तर की ओर तथा अन्य जनों का मुख किसी और ओर हो। तीनो व्यक्ति अपने दोनो हाथों की हथेली मेज़ पर इस प्रकार रक्खें जिसमें रहस्य-मंडल के समान मेज़ के तख्ते पर चक्र बन जावे, अर्थात्— तीनों में से प्रत्येक के दाहिने हाथ के पंजे की छोटी उँगली अर्थात् छिगुनी उसके दाहिने बैठे हुए मनुष्य के बाएँ हाथ की छिगुनी को छूती रहे और प्रत्येक मनुष्य के दोनों हाथों के अँगूठों के सिरे भी आपस में एक दूसरे को छूते रहें। इस प्रकार एक चक्र बन जावेगा। अब प्रयोक्ता को चाहिए कि वह अपने दोनों साथियों को अत्यंत शांतिपूर्वक दृढ़-चित्त से यथा-संभव एकटक उस मेज़ के केंद्र भाग को देखने के लिए प्रार्थना करे और स्वयम् भी ऐसा करे। यदि उस गोल मेज़ का केंद्र भाग निर्दिष्ट न हो तो अनुमानतः उस स्थानपर एक पुष्प रख देना चाहिए। प्रयोग काल तक सब चिंताएँ दूर रखनी चाहिए। कुछ काल तक इसी प्रकार चक्र बनाए बैठा रहना चाहिए। मेज़पर हाथ ढीले रहने चाहिए। कोई किसी ओर अधिक बल न दे। मेज़ इधर उधर उठे, हिले तो उसके इन कार्यों में कोई बाधा न पड़े। सभी शांतचित्त बैठे रहें। दस ग्यारह मिनट पश्चात् ही मेज़ के तीनो पायों में से कोई सा एक कुछ ऊँचा उठ कर पृथ्वी पर टक्कर मारेगा। मानो यह संकेत है जिसके द्वारा तुम्हें यह सूचना मिलती है कि मेज़ में कोई असाधारण परिवर्तन होगया है और उसमें कोई नवीन शक्ति आगई है। तभी प्रयोक्ता यह कहे —'यदि मेज़ पर किसी आत्मा का प्रभाव होगया हो तो मेज़ का एक पाया टक्कर मारे।' यदि कथनानुसार मेज़ टक्कर लगावे तो जानलेना चाहिए कि उस पर किसी आत्मा का प्रभाव है। अभीष्ट संकेतों द्वारा बातचीत हो सकती है। प्रार्थना करने से आत्मा का तीनों में से किसी एक व्यक्ति पर भी आना हो सकता है। प्रयोक्ता प्रयोज्यकी दोनों भौंहों के केंद्र पर दृष्टि लगादे और प्रयोज्य फूल की ओर देखता रहे। कुछ समय पश्चात् सनसनी के साथ आत्मा का आवेश प्रयोज्य पर हो जायगा। तब अभीष्ट बातें भी हो सकती हैं। यदि मनुष्य पर आविष्ट आत्मा का प्रभाव उस मनुष्य से हटाना अभीष्ट हो तो केवल इतनी प्रार्थना पर्याप्त होगी —'मेज़ पर आई हुई आत्मा कृपा करके मनुष्य से अपना प्रभुत्व हटाकर फिर मेज़ में आजावे।' फिर मेज़ पर से भी उसका इस प्रकार विसर्जन करना चाहिए— 'आत्मा कृपा कर मेज़ से बिदा होजाय।' कभी ऐसा भी होता है कि आत्मा को विसर्जन होना अभीष्ट नहीं होता। ऐसे अवसर पर हरि-कीर्तन, भजन, पवित्रगान, ईश्वर स्मरण महौषधियाँ हैं। यदि आत्मा बोलना न चाहे तो पेंसिल द्वारा उससे लिखवाने का प्रयत्न करना चाहिए। इस कार्य में पहिले कठिनता फिर सरलता होती है। आत्मा यदि बहुत शीघ्र ही जाना चाहे, तो उसे टिकाने के हेतु नम्र आग्रह भी करना चाहिए। प्रयोग-काल में यदि दीपक किसी भी कारण से बुझ जाय तो डरना न चाहिए बल्कि और भी दृढ़तापूर्वक बैठे रहना चाहिए अथवा लैंप वा मोमबत्ती जला देना चाहिए।

भूत, प्रेत साधारणतः भयकारी शब्द हैं। इनके नामसे

* Byways of Ghostland by Elliott O'Donnell pp. 192-197

कदाचित बालक-बच्चे इतने न डरते हों जितने कि युवक और वृद्ध; कभी तो डर निर्मूल ही होता है, जैसे रात में रज्जु से सर्प भय। उसी प्रकार रात में महाकाय, विकृत व श्वेत पदार्थों से भूत-भय उत्पन्न हो जाता है। अब तक इस विषय में जो ज्ञात हुआ है, उससे प्रतीत होता है कि भूत-प्रेत भी ईश्वर के सुव्यवस्थित राज्य में विनीत प्रजा हैं। देवदूत (Guardian angels) सदा भलाई के लिए उद्दतात्माओं के ताड़न में तत्पर हैं। हाँ, कभी-कभी कोई दुष्टात्मा किसी व्यक्ति विशेष पर आक्रमण कर देता है। ऐसा तो संसार में भी होता है कि पापिष्ठ एक दूसरे का गला काट देते हैं, किंतु इस बात का यह तात्पर्य नहीं कि वे मानवीय वा ईश्वरीय दंड से वञ्चित रहें। ऐसा असंभव है। जो जैसा करता है, वैसा भोगता है।

प्रस्तुत विषय इतना गहन है कि अपनी ओर से कोई बात लिख देना मानो भूल और भ्रम को निमंत्रण देना है। अचेतन मन (unconcious mind) की क्रीड़ा, विकल्प (hallucination) भूल-भ्रम (illusion, delusion) स्वप्न की प्रगाढ़ स्मृति (deep fresh memory of dream) असंकल्पित शारीरिक गति (automatic motor activity) आदि 'बड़ाखों" के नाममात्र से बहुत सी अपरिचित अद्भुत बातों का खंडन हो जाता है। किंतु यह चर्चा अब अनुमानादि का विषय न रहकर प्रयोग और प्रत्यक्षानुभव का विषय होगयी है। अतएव इतनी बात तो पक्की प्रतीत होती है कि मरणांतर में भी जीव की कोई अवस्था अवश्य रहती है। संभव है मृत्यु के पश्चात मानसिक अवस्था में शीघ्र ही कोई परिवर्तन न होता हो। इन अवस्थाओं के प्राणि-समुदाय में भी ईश्वरकृत सुव्यवस्था का होना युक्ति-संगत है, क्योंकि ईश्वर सर्वत्र और सर्व-शक्तिमान् हैं। अतः उनमें क्रमशः भेदभाव भी उचित ही है। अंतिम अवस्था भले ही किसी प्रकार की मोक्षावस्था हो, जिसके वर्णन में दर्शन भी एक दूसरे से टकराते हैं। प्रस्तुत विषय अभी अधूरा ही है, कदाचित – जैसा कि फोर्ड साहब का विचार है। एक दिन वह था और संभवतः आगे आवे भी, जब कि उक्त बातें प्रत्यक्षानुभवगम्य थीं और हों। यह पढ़ा और सुना है कि नारद मुनि और दशरथ महाराज इंद्र सदृश अमानुषीय प्राणियों के हितार्थ स्वर्ग आते-जाते थे।

अभी तो पृथ्वी पर ही एक प्रदेश का दूसरे प्रदेश से संबंध सम्यक् रूप से स्थापित नहीं हुआ है। यद्यपि ऐसा होने के लक्षण टेलीपैथी, रेडियोफोन, टेलीविज़न, वायु-यान, बे तार के तार आदि के आविष्कारों से प्रकट होने लगे हैं। हिंदू लोगों ने तो मृत्यु-तिथिश्राद्ध, नांदीमुख श्राद्ध, ऋषि-देव-तर्पण आदि द्वारा परलोक से भी संबंध जोड़ रखा है।

कुछ विचारणीय प्रश्न भी उठते हैं। यदि मृत्यु के उपरांत **प्रेतावस्था अवश्यभावी है, तो फिर पुनर्जन्म कैसा?** दोनों अवस्थाओं में विरोधाभास है, जिसका दूर करना कठिन है, क्योंकि प्रस्तुत विषय अधूरा है, और वैज्ञानिक लोग किसी निश्चित-निर्णय (clear cut) पर नहीं पहुँचे हैं। दूसरा प्रश्न है जिस प्रकार इस लोक में मनुष्य की सौ वर्ष की अवस्था होती है, क्या वहाँ पर भी कोई समय निश्चित है? संभव है कि जिस प्रकार इस लोक में सौ से कम वा अधिक अवस्था होती है, उसी प्रकार वहाँ भी हो। संभव है कि प्रेतावस्था के कुछ काल पश्चात ही उचित शरीर की प्राप्ति होती हो। योग्यतानुसार विलंब हो तो हो। बहुत से संसार में आना चाहते भी नहीं, उनके लिए पुनर्जन्म आवश्यकीय न होता हो। हिंदु-समाज में संन्यासियों व मुमुक्षुओं के श्राद्धादि वर्जित हैं* ऐसा प्रतीत होता है कि वे प्रेत-लोक न जाकर किसी और लोक को जाते हों। छांदोग्य उपनिषद् ने भी पितृयान

* "Things that are now for us insoluble problems, such as where we existed before our birth and whither we go after death were then known to all. Everything touching the secret of life was known. ... Some day we shall acquire sufficient knowledge to see and understand the eternal life of the universe, for example, even what happens on other planets."

Henry Ford's Faith in Reincarnation (Exclusion) —— The Leader, August 26 1926

*एकोद्दिष्टयते र्नास्ति त्रिदण्डग्रहणादिह।
सपिण्डीकरणाभावात् पार्वणं तस्य सर्वदा॥
प्रचेता (निर्णयसिन्धौ)

और देवयान मार्गों* का वर्णन किया है। आधुनिक भारतीयों का ध्यान इधर अभी कम है। विदेशी लोग बड़े वेग से उन्नति कर रहे हैं। आशा है, भारत में भी ऐसी खोज के लिए संस्थाएँ शीघ्र बन जायँगी।

रामदत्त भारद्वाज

नँदनंदन पधारिहैं

सकुन अनंदकंद होन ही लगे हैं आज,
गोकुल के इंदु यदुनंदन पधारिहैं।
मोकौं पाद-पंकज की दासी जानि मेरी ओर,
नेह-भरे नैनन तैं "मोहन" निहारिहैं।
मधुर सुधा से बैन बोलि ब्रजचंद आली
प्यास मेरे स्रौनन की पूरन निवारिहैं।
मंद-मंद हासन तैं मोकौं निज अंक भरि
मेरे सब अंगन की तपनि उतारिहैं।

* * *

कोकिल, मयूर, कीर आदिक बिहंगन कौ,
डर ना मधुरगान जो पै ये उचारिहैं।
फूले फूले कुंजन में भृंगन की गुंज अरु,
त्रिविध समीर मेरो कछु ना बिगारिहैं।
पापी या मयंक की ना रंचक चलैगी अब,
"मोहन" सकल कला जो पै यह धारिहैं।
तुमहू अनंग अब मोद सों उमंग भरो,
आज सुखकंद नंदनंदन पधारिहैं।

—राजा रामसिंह, सीतामऊ-नरेश

---

* मासेभ्य संवत्सर ७ संवत्सरादित्यमादि यचन्द्रमस चन्द्रमसो विद्युत तत्पुरुषोऽमानव स एनान्ब्रह्म गमयत्येष देवयान पथा इति ।। छांदोग्य-उपनिषद् ४ । १० ।

अथ य इमे ग्राम इष्टापूर्ते दत्तमित्युपासते ते धूममभिसंभवन्ति धूमाद्रात्रि ७ रात्रेरपरपक्षमपरपक्षाद्यान्षड् दक्षिणैति मासा ७ स्तान्नैते संवत्सरमभिप्राप्नुवन्ति । छांदोग्योपनिषद् ।५। १०। ३

प्रिया प्रकाश

(समालोचना)

१—परिचय

कवि करोति पद्यानि, लालयन्त्युत्तमा जनाः,
तरुः प्रसूते पुष्पाणि, मरुद्वहति सौरभम् ।
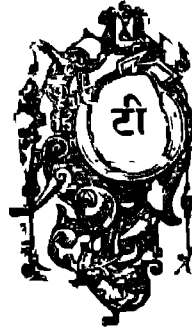
काकार या भाष्यकार बड़े सौभाग्य से मिलते हैं। वह कवि और कविता धन्य है जिसे सुयोग्य टीकाकार मिल जावे। बड़े-से-बड़े प्रतिभाशाली कवि जिस समय काव्य रचते हैं, या कविता करते हैं, उन्हें स्वप्न में भी यह ख़याल नहीं होता कि उनकी रचना कितनी गंभीर है, उसमें कितने-कितने सुंदर भाव अन्तर्निहित हैं, संसार में वह कैसे-कैसे चमत्कार दिखा सकती है। वह तो किसी एक भाव, एक कल्पना, एक विचार या एक आदर्श को ही लेकर उसे छंदोबद्ध करते हैं। पर टीकाकार—सुयोग्य टीकाकार, उन्हीं अक्षरों उन्हीं शब्दों और उन्हीं पंक्तियों में से वह वह भाव, वह वह चमत्कार उत्पन्न कर देते हैं कि स्वयं कवि भी एक बार आश्चर्य-चकित रह जाता है। समुद्र के गर्भ में छिपे रत्नों को यदि गोताख़ोर न निकालें तो संसार के सामने समुद्र खारे पानी का एक ढेर ही रहे उसे रत्नाकर कौन कह सकता है? पुष्प के सौरभ को यदि वासंती पवन लेकर दिशाओं में न फैलावे, तो मधु-लोभी भ्रमर किसके गुणानुवाद से दिगदिगंतों को गुँजावें और कौन उनको पतियाय। ठीक इसी प्रकार कविता के भीतर छिपे सुंदर, अलौकिक, अमूल्य चमत्कारी भावों को, उसके मर्म को यदि टीकाकार व्यक्त नहीं करें तो उस कविता को सहृदय रसिक-गण कैसे अपना सकते हैं और उसके कर्ता कवि की कीर्ति चारों ओर कैसे फैल सकती है।

हमारे दौर्भाग्य और केशवदास के मंद भाग्य के कारण केशव को अभी तक ऐसे टीकाकार नहीं मिले जो उनके कवित्व और पांडित्य की सुगंधि द्वारा उनकी कीर्ति-कौमुदी को संसार में फैलाते। सौभाग्य से अब इस दुरूह काम का बीड़ा हिंदी-साहित्य के मर्मज्ञ श्री लाला भगवानदीनजी ने

अपने दुर्बल कंधों पर उठा लिया है। केशवदास-कृत "रामचन्द्रिका" पर "केशवकौमुदी" लिख ही चुके हैं। रसिक प्रिया की टीका की घोषणा भी हो चुकी है। "केशव कौमुदी" की समालोचना हम "प्रभा" और "कवीन्द्र", कानपुर से निकलनेवाले मासिक-पत्रों, में गत वर्ष कर चुके हैं। आज तक "दीन" जी ने उनका कोई उत्तर नहीं दिया है। आज हम अपने सहृदय पाठकों के सामने लालाजी की "प्रिया प्रकाश," जो कि 'कवि-प्रिया" की टीका है, की कुछ आलोचना करने का प्रयत्न करेंगे, और आशा करेंगे कि साहित्य-मर्मज्ञ लोग इस पर कुछ ध्यान अवश्य देंगे। इस आग्रह का एक विशेष कारण यह भी है कि लालाजी ने "प्रिया प्रकाश" की भूमिका में लिखा है कि अब समय आ गया है कि यह पुस्तक कालेजों, महाविद्यालयों की पाठविधि में रक्खी जायगी, पर आजकल के नव्य-भाव-भरित अध्यापकों को इसके पढ़ाने में बड़ी कठिनता होगी और विद्यार्थी समझ भी नहीं सकेंगे। इसीलिए आपने केशव के ग्रंथों की टीका करने का बीड़ा उठाया है। विद्यार्थियों और अध्यापकों की हित चिंता में जो कष्ट लालाजी उठा रहे हैं, उसके लिए धन्यवाद देते हुए तथा उत्तरदायित्व की विषमता को अनुभव कर हम सब इस बात की छान-बीन करेंगे कि लालाजी ने जो अर्थ किए हैं, वह कहाँ तक ठीक हैं।

२—प्रारंभ

यहाँ पर जो उद्धरण दिए जायँगे, वह 'प्रिया प्रकाश" के पृष्ठानुसार होंगे—देखिए प्रारंभ में ही गड़बड़ी मालूम होती है। मंगलाचरण करते हुए केशव ने गणेश के दंत की अद्भुत स्तुति की है। उस छंद के विचारणीय अंतिम दो चरण इस भाँति हैं—

> पूरण को पकास, वेद विद्या को विलास किधौं,
> जस को निवास केसोदास जग जानिये।
> मदन कदन सुत बदन रदन किधौं,
> बिघन बिनाशन की बिधि पहिचानिये॥ ३॥
> पृष्ठ ३, प्रथम प्रभाव

आप इसका अर्थ करते हुए लिखते हैं—

"अथवा शिवपुत्र (गणेश) के मुख का दाँत है या विघ्नों के नाश करने की युक्ति है"। इन "अथवा" और "या" शब्दों द्वारा स्पष्ट प्रतीत होता है कि कवि की उत्प्रेक्षणीय वस्तु कोई दूसरी ही है, अन्यथा गणेश के दाँत के लिये "अथवा शिवपुत्र के मुख का दाँत है" यह कल्पना कवि कदापि नहीं करता। यदि दीनजी का 'अथवा"वाला यह अर्थ ठीक मान लिया जाय, तो क्या लालाजी बतावेंगे कि वह वस्तु इस छंद में कहाँ है, जिस पर केशवदास ने इतनी उत्प्रेक्षाओं का ढेर लगा दिया है? हमारी सम्मति में हम "अथवा" को एक दम दूर कर देना चाहिए और अर्थ इस प्रकार करना चाहिए जिससे स्पष्ट पता लगे कि यह "मदन कदन सुत बदन रदन" का वर्णन है, अन्य का नहीं।

मंगलाचरण से लेकर दूसरे प्रभाव की समाप्ति तक केशवदास ने अपना, अपने आश्रयदाता राजा इंद्रजीत तथा अपनी प्रिय शिष्या, जिसको पढ़ाने के लिए इस ग्रंथ की रचना की गई है, उन पात्रों का ऐतिहासिक वर्णन किया है। आगे तीसरे प्रभाव से ग्रंथ का अभीष्ट विषय प्रारंभ होता है। इस तीसरे प्रभाव का तीसरा दोहा इस भाँति है—

> सगुन पदारथ अर्थयुत, सुवरनमय सुभ साज।
> कंठमाल ज्यों कविप्रिया, कंठ करो कविराज॥
> ३। पृ० २४

'दीन' जी का भावार्थ इस भाँति है—

"हे कविराजगण इसे (कविप्रिया को) कंठ में पहन लो (ज़बानी याद कर लो) इसमें काव्य-गुण ओज, माधुर्य और प्रसाद का ही डोरा है। काव्यार्थ ही मणि-माणिक है "और अच्छी तरह से सजाई गई है (अच्छी तरतीब से सोने की गुरियाँ और जवाहरात इसमें गुहे गए हैं)"

केशव के "कंठ करो" इस सरल, सुबोध और श्लिष्ट मुहावरे का जो भाष्य हुआ है, सो तो ठीक ही है, पर (कंठ में पहनलो, या ज़बानी याद कर लो के स्थान पर यदि कवि-प्रयुक्त मुहावरे का ही प्रयोग करते तो उत्तम होता) ख़ैर, जो किया अच्छा ही किया; पर 'इसमें काव्य-गुण ही ओज, माधुर्य और प्रसाद का डोरा है"—यह आपने क्या लिख डाला है। यह डोर में डोरा कैसा डाल दिया! बेचारे ओज, माधुर्य और प्रसाद को इस डोरे में क्यों लटका दिया। दीनजी! काव्य-गुण और ओज, माधुर्य तथा प्रसाद आदि क्या भिन्न भिन्न वस्तुएँ हैं? यह काव्य-गुण कैसा डोरा है, जिसे ओज, माधुर्य आदि से निकाला गया है। दीनजी का यह डोरा तो नव मन का

सुलझी हो गई हैं, जिसे जितना सुलझाओ उलझती ही जाती है। इतना ही नहीं, अंत में, आपने एक कोष्ठक के भीतर लिखा है "(अच्छी तरतीब से मोती की गुरियाँ और जवाहरात इसमें गुहे गए है)"। इस वाक्य में यह "इसमें" शब्द किसके लिए आया है? कठी के लिए तो है नहीं, क्योंकि पूर्वापर देखने से कहीं उसका पता नहीं मिलता है, तो फिर अगत्या "कविप्रिया" के लिए मानना पड़ेगा जो कि सर्वथा असंगत होगा। दीनजी से, इस दोहे का भावार्थ लिखने में, बहुत गड़बड़ी हो गई है। हमारे विचार से इसका अर्थ इस प्रकार होना चाहिए था—

हे कविराजगण! तुम इस कविप्रिया ग्रंथ को कंठमाला (कंठा) के सदृश कंठस्थ करलो। सुंदर डोरोंवाली मणि-माणिक्य की सुंदर गुरियों से सजाई हुई माला को जिस प्रकार कविराजगण अपने कंठ में धारण करते हो, उसी प्रकार ओज, माधुर्य और प्रसाद आदि काव्य-गुणों से युक्त पद और अर्थ जिसमें विद्यमान हैं तथा (अर्थयुत) अभीष्ट अर्थ से अर्थात् काव्य के गुण, दोष, रचना, अलंकार तथा वर्ण्यावर्ण्य आदि काव्य या कविता-संबंधी ज्ञेय विषयों से जो परिपूर्ण है, जिसमें सरल, सुबोध क्रम से सुंदर शब्दों द्वारा सब विषय सजाया गया है, इस "कविप्रिया" ग्रंथ को कंठस्थ करलो। कंठाभरण के सदृश ही "कवि-प्रिया" कविराजों की शोभा के लिए उपादेय वस्तु है।

३—पाठ-परिवर्तन और मनमाना अर्थ

"प्रियाप्रकाश" को देखने से और प्राचीन किसी भी एक पुस्तक को देखने से स्पष्ट मालूम हो जाता है कि लालाजी ने अपनी इच्छानुसार पाठ-भेद भी कर लिए हैं। हम यह नहीं कहते कि लालाजी के ऐसा करने से सब जगह ही गड़बड़ हुई है, या यह कविता अधिक सुबोध नहीं हो गई है, पर हम यह अवश्य कहना चाहते हैं कि इस प्रकार यदि लोग प्राचीन कवियों की कविताओं को शुद्ध करने लग जायेंगे, तो घोर अनर्थ की संभावना है। साथ ही भाषा के विकास तथा भाषा के साथ संबंध रखनेवाले ऐतिहासिक अन्वेषण का काम एक बारगी ही असंभव नहीं तो अत्यंत कठिन हो जायगा। "दीन"जी को यदि यह करना था तो वह कर सकते थे, पर, यदि, मूल-पाठ या पाठांतर भी साथ साथ लिख देते तो पुस्तक अधिक उपादेय और पूर्ण हो जाती, पढ़नेवाले भी जानते कि केशव के समय किस प्रकार की क्रिया और विभक्तियों का प्रयोग हुआ करता था। इन पाठांतरों के न लिखने के कारण एक अनर्थ जो हो गया है, वह पाठकों के सामने रखता हूँ। पृष्ठ ४१ में हीन-रस दोष का उदाहरण केशवजी ने निम्न-लिखित छंद दिया है—

"दै दधि, दीनों उधार हो केशव, दानी कहा जब मोल लै खैहै।
दीन्हे बिना तो गई जु गई, न गई न गई घर ही फिरि जैहै॥
गो हित बैरु कियो, हित हो कब, बैरु किए बरु नीके ही रहै।
बैर कै गोरस बेचहुगी, अहो बेच्यो न बेच्यो तो ढारि न देहै॥
प्र० ३, न० ३१

इस छंद में कृष्ण और दही बेचने के लिए जाती हुई एक ग्वालिन के मनोरंजक प्रश्नोत्तर हैं। इसके प्रथम चरण का अर्थ दीनजी ने इस भाँति किया है—

कृष्ण—हमको दही दो।

गोपी—उधार तो हम दे चुकी (उधार न दूँगी, नगद दाम देकर ले सकते हो)।

कृष्ण—तो हम दानी कैसे, जो मोल लेकर खावें—हम जगात में लेते हैं। अगर न देगी तो मथुरा को जा चुकी। बिना दिए हम आगे न जाने देंगे।

इसमें "दानी कहा जब मोल लै खैहै"—इस वाक्य का जो अर्थ हो सकता है, लालाजी ने वही किया है। पर, उसने अनर्थ कैसा कर दिया है। दान देने वाला लोक में दानी कहलाता है, पर यहाँ लेने वाला भी दानी बनने का दावा करने लगा। कृष्णजी कहते हैं कि वह दानी कैसे जो मोल लेकर खाय—अर्थात् मोल न लेकर दान माँग कर या छीन झपटकर खानेवाला दानी होता है। स्वाग्य!

इस अनर्थ की जड़ लालाजी की स्वयं शुद्ध पाठ लिखने की प्रवृत्ति है। नवलकिशोर छापेखाने में छपा एक कविप्रिया है, जिसमें हरिचरणदासजी की टीका है। लालाजी ने उसका नामोल्लेख भूमिका में किया भी है। उस पुस्तक में इस छंद का पाठ निम्नलिखित है—

"दै दधि, दीनो उधार हो केशव, दान कहा अरु मोल लै खैहै"

अर्थात् "दानी" के स्थानपर "दान" और "जब" के स्थानपर "अरु" पाठ है। इस पाठ में इस छंद का अर्थ अधिक स्पष्ट और चमत्कारी हो जाता है। अर्थात् जब गोपी कहती है कि उधार तो वह देने से रही, तब कृष्ण कहते हैं कि अच्छा फिर दान ही दे दो। इस पर वह गोपी कहती है "और क्या मोल लेकर थोड़ा ही खाओगे, उधार माँगोगे या दान माँगोगे 'जैसे नाग-नाथ वैसे साँप-

नाथ, हम तो नगद लेंगी नगद, और तभी देंगी।"

चतुर्थ प्रभाव के प्रारंभ में केशव ने तीन प्रकार के कवियों का वर्णन करते हुए लिखा है—

है अति उत्तम ते पुरुषारथ जे परमारथ के पथ सोहैं।
केशवदास अनुत्तम ते नर मनन स्वारथ सयुत जो हैं।
स्वारथ हू, परमारथ भोगन म यम लोगनि के मन मोहैं।
भारत पारथमित्र क्यों परमारथ स्वारथहीन ते को हैं॥

पृ० ४८, प्र० ४, छ० ३

इस छद के शब्दार्थ मे मध्यम शब्द का "अतिनीच" अर्थ करके "दीन" जी ने तीसरे चरण का इस प्रकार अर्थ किया है—

'और अतिनीच कवि वे है, जो भड़ौआ कविता करके लोगो का केवल मनोरंजन तो करते है, पर जिससे न तो धन की प्राप्ति होती है और न परलोक ही बनता है' इत्यादि"। दीन जी को मध्यम शब्द का अतिनीच अर्थ क्यों करना पड़ा, ऐसी किस विपत्ति मे वह पड़गए थे, यह हमारी समझ मे नहीं आता। इस छद से पूर्व केशव का एक दोहा है—

उत्तम, म यम, अधम कवि, उत्तम हरि रस लीन।
म यम मानत मानुषनि, दोषनि अधम प्रवीन॥२॥

इस दोहे मे उत्तम मध्यम और अधम तीन ही कवियो के भेद कहे गए है, इनमे से "अति उत्तम" और "अनुत्तम" नामसे 'उत्तम' और 'मध्यम' श्रेणी के कवियों की परिभाषा तो छद के प्रथम दो चरणों मे हो चुकी है। इसलिए अवशिष्ट "अधम" की ही व्याख्या प्रकरण-प्राप्त है, जिसे कवि ने प्रश्नवाचक रूप मे "ते को है" कहके छोड़ दिया है। इसलिए (मध्यम) शब्द का अतिनीच अर्थ करना सर्वथा असगत, अशुद्ध और व्यर्थ है। वस्तुतः मध्यम शब्द अपने वाच्य अर्थ के साथ "लोगनि" का विशेषण है। "मध्यम लोगनि" मध्यम श्रेणी, अर्थात 'साधारण श्रेणी के लोगों की', यह इसका अर्थ होता है, जो कि समुचित और युक्ति-सगत भी है।

अब पाचवे प्रभाव का "वर्णालंकार" प्रकरण उठाकर देखिए। आचार्य्य केशवजी ने जो कुछ लिखा है, उसकी समालोचना हम किसी अन्य समय पाठकों के सामने रखेंगे। यहाँ पर तो केवल केशव के अनन्य भक्त टीकाकार "दीन" जी की टीका के ही सबध मे लिखेंगे। हमारे खयाल से टीकाकार का यह धर्म है कि जिस पुस्तक की वह टीका करे उसके पूर्वापर विरुद्ध या विवादास्पद विषयों का समाधान या कम से कम अपनी सम्मति उस विषय मे अवश्य लिखे। पर लालाजी ने समाधान और सम्मति तो दूर, ऐसे विषयों को छुआ तक नहीं। ख़ैर, यह उनकी मर्ज़ी, मगर हम तो उन्हें इधर खींचेगेही।

प्रिया प्रकाश के पृष्ठ ६० और ६८ पर श्वेत तथा पीत रग की वस्तुओं की गणना मे केशव के निम्नलिखित दो दोहे हैं—

श्वेत वर्णन

कीरति, हरिहय, शरद घन, जोन्ह, जरा, मदार।
हरि, हर, हरगिरि, सर, शशि, सुधा, मोध, घनसार॥५॥पृ० ६०

पीत वर्णन

हरिवाहन, विधि, हरजटा, हरा, हरद, हरताल।
चपक, दीपक, वीररस, सुरगुरु, मधु, सुरपाल॥१६॥पृ० ६८

प्रथम दोहे मे आए "हरिहय" शब्द का अर्थ लालाजी ने "इंद्र" लिखा है। अर्थात् इंद्र का श्वेत रग माना गया है। पर पीले रग की वस्तुओं के वर्णन मे एक शब्द, सबसे अन्त मे, "सुरपाल" भी आया है। लालाजी ने इसे सरल समझकर अपनी प्रतिज्ञानुसार इसका अर्थ नहीं लिखा। वास्तव मे इस समस्त "सुरपाल" शब्द का अर्थ सरल ही है – और वह है "देवताओं का रक्षक" अर्थात् "इंद्र"। इसके अतिरिक्त और कोई सर्वसाधारण-प्रचलित इसका अर्थ नहीं है। तो क्या हम पूछ सकते है कि "हरिहय" शब्द द्वारा जिस इंद्र का रग सफ़ेद वर्णन किया गया है "सुरपाल" शब्द क्या उस इंद्र का वाचक नहीं है? यदि है, तो यह दुरंगा गिरगिट सा रग बदलने वाला इंद्र किस पुराण का है? यदि नहीं, तो वह दूसरा इंद्र कौन सा है, और उसकी व्याख्या कैसे छूट गई? कहीं अवस्था-भेद से बीमार इंद्र का पीला रग तो नहीं वर्णन किया गया? वास्तव में यह "सुरपाल" शब्द जैसा दीन जी ने छपवाया है, समस्त एक शब्द नहीं है। "सुर" और "पाल" दो पृथक्-पृथक् शब्द हैं। सुर का अर्थ देवता और पाल का अर्थ पाल मे पकी वस्तु है। पाल में रखी वस्तु का रग पीला होना ही है। इस प्रकार कोई आपत्ति भी नहीं रहती और दो नए पदार्थों का वर्ण-वर्णन भी हो जाता है।

अच्छा, अब इस "पीत वर्णन" के उदाहरण को भी विद्वान् पाठक देखें और अर्थ-वैचित्र्य की परीक्षा करें।

उदाहरण

मंगल ही जु करी रजनी विधि, याही ते मंगली नाम धर्यो है।
दामिनि दामिनता दई सवारि, उड़ाय दई गगन जाय बर्यो है।
रोचन को रचि केतकि, चम्पक फूल ते अंग सुबास भर्यो है।
गौरी गोराई के मन्दिर लैकरि हाटक ते करहाट कर्यो है॥

पृ० ६८, छं० २६

सहृदय रसिकगण, केशव की कविता का चमत्कार देखिए। उक्त गौरी की गुराई का क्या वर्णन किया है! अब ज़रा लालाजी का भाष्य भी देखिए "मंगल = (पार्वती का एक नाम 'मंगला' भी है), अतः मंगल-कारी गुण मांगल्य गुण"। यह तो हुआ मंगल शब्द का गड़बड़-कारी शब्दार्थ, अब भावार्थ देखिए—

"पार्वतीजी के मांगल्य गुण से ब्रह्मा ने हल्दी बनाई, इसीसे उसका नाम 'मंगली' रक्खा"। देखा पाठको, यह गुण से गुणी कैसा बना दिया। दूसरे इस छंद में गौरी की गुराई का वर्णन है या मांगल्य गुण का? फिर "मांगल्य गुण" यह क्या वस्तु है? और गौरी या हल्दी के पीलेपन से इसका क्या संबंध है? जितना सोचो उतना ही अर्थ शिथिल होता जाता है। वास्तव में लालाजी ने इसका अर्थ करने में अनर्थ कर दिया है। इसका सीधा अर्थ इस प्रकार होना उचित था—

ब्रह्मा ने संसार के कार्यों की मंगल-कामना से पार्वती की गोराई लेकर "रजनी" हल्दी बनाई। (यज्ञादिक सभी शुभ कर्मों में हल्दी का प्रयोग होता है) इसलिए ही अर्थात् मंगल का कारण होने के कारण ही इसका नाम "मंगली" रक्खा गया है। मंगल और मंगली शब्द के कारण पार्वती के "मंगला" नाम का ध्यान साहित्यज्ञों को स्वाभाविक ही हो जाता है। यदि उसे गौरी का पर्याय मान कर "मंगला" शब्द से संबंध जोड़ना चाहें तो भी यही हो सकता है कि यह मंगलकारिणी (रजनी) हल्दी मंगला की गोराई से बनाई गई है, इसीलिए उसका नाम "मंगली" रक्खा गया है।

अब लालाजी-कृत इस छंद के दूसरे चरण का भी अर्थ देखिए

"उनकी कांति से दामिनी बनाई, पर उसे अब चंचला समझ कर आकाश की ओर उड़ा दिया, उसीसे अब तक बादल जल रहे हैं।" क्या खूब! गौरी की कांति क्या हुई, फ़ास्फ़रस की टिकिया होगई जो जल के स्पर्श से स्वयं जल उठती है और दूसरों को भी स्वाहा कर देती है!! क्यों लालाजी, गौरी कभी नहाती-धोती भी थीं कि नहीं? उस कांति ने उन्हें तो कहीं नहीं जला दिया? न हुए केशव नहीं तो देखते कि उनके भक्त उनकी कवितालता-कुंज में कैसी आग लगा रहे हैं! इस पद का सीधा और सरल अर्थ यह है, और होना चाहिए था—

गौरी की देह-द्युति से दामिनी खूब सँवार कर बनाई और उसे ऊपर उड़ा दिया। उसने जाकर बादलों को (बर्यो) बर लिया, स्वीकार कर लिया। वह विद्युत् रूप से बादलों में रहने लगी। बर्यो का अर्थ जलाना नहीं, वरन् स्वीकार करना ही उचित था और है।

लालाजी समालोचकों को बुलाते हैं, पर उनकी सम्मति की न तो सुनवाई करते हैं और न अपने अनर्थों से हाथ ही खींचते हैं। जिस छंद की आलोचना अब हम पाठकों के सामने रखना चाहते हैं, वह वास्तव में "रामचंद्रिका" का है, यहाँ उदाहरण के रूप में केशव जी ने उसका उद्धरण कर दिया है। इसकी समालोचना हम "राम-चंद्रिका" की लालाजी-कृत टीका 'केशवकौमुदी' की समालोचना में कर चुके हैं। पर लालाजी ने उसे या तो देखा नहीं अथवा हठात् फिर वही अनर्थ किया है। इसलिये हमें फिर उसकी आलोचना यहाँ करनी पड़ी है। सीताजी के स्वरूप की अलौकिकता में केशव ने यह छंद कहा है—

को है दमयन्ती, इन्दुमती, रति, राति दिन,
होहिं न छबीली छन छबि जो सिंगारिये।
केशव लजात जलजात, जातवेद ओप
जातरूप बापुरो बिरूप सो निहारिये।
मदन निरूपम निरूपन निरूप भयो,
चन्द बहुरूप अनुरूप कै बिचारिये।
सीताजी के रूप पर देवता कुरूप को हैं,
रूप ही के रूपक तौ वारि वारि डारिये॥ ४२॥

खड्गप्रसाद पृष्ठ १००

पाठको! अपनी आँखों पर कांचित् से पुते शीशे की ऐनक चढ़ाकर इस ओर देखिएगा, नहीं तो बिजली की चकाचौंध में आँखें चौंधिया जायँगी। लालाजी कहते हैं "दमयंती, इंदुमती और रती (सीता के रूप के सामने) क्या हैं (तुच्छ हैं)। यदि उन्हें रातो-दिन बिजली से सिंगारते रहें, तो भी उतनी सुंदर न होंगी (जितनी

सीताजी हैं)।" क्या कहना है! केशवदासजी स्वर्ग में इन (नव्य-भाव-भरित) अर्थों को देखकर पुलकित हो रहे होंगे। इन अद्भुत चकाचौंध करनेवाले अर्थों की उन्होंने कभी कल्पना भी न की होगी। जी चाहता होगा, एक बार टीकाकारजी के शिष्य होकर अपने ही ग्रंथ उनसे बिजली की रोशनी में पढ़ें!

इस "छनछबि" शब्द का सत्यानाश हो, जिसने यह अनर्थ बेचारे लालाजी से करवाया है। बिजली से मकानों का शृंगार तो देखा और सुना है, पर मनुष्यों—पुरुषों वा स्त्रियों—का न देखा न सुना ही है। हाँ, एक बार किसी नाटक-कंपनी की एक नर्तकी को बिजली का एक छोटा-सा लैंप सिर में जड़े और नाचते ज़रूर देखा है। क्या केशवजी दमयंती, इंदुमति और रति इत्यादि से ऐसा ही शृंगार कराना चाहते हैं? क्या बिजली द्वारा मनुष्य-शृंगार का वर्णन कवि संप्रदायाभिमत है? और क्या बिजली मानवीय-सौंदर्य में वृद्धि कर सकती है? हमारी समझ में तो चकाचौंध उत्पन्न करने के कारण वह वस्तु के वास्तविक रूप देखने में बाधक ही सिद्ध होगी। वास्तव में इसका अर्थ यों होना चाहिए—

सीताजी के सौंदर्य के सामने दमयंती, इंदुमति और रति का सौंदर्य भी तुच्छ है। वह यदि रातो-दिन लगकर भी अपना शृंगार करें, तो सीताजी के क्षणभर के शृंगार-सौंदर्य को नहीं पा सकतीं। —"छन-छबि" का "छिन छबि" पाठांतर भी मिलता है। कोई भी पाठ क्यों न हो, यह शब्द समस्त नहीं है। "छन" और "छबि" दोनों पृथक्-पृथक् हैं।

इसके आगे तीसरे चरण का अर्थ देखिए—शब्दार्थ में "अनरूपक" शब्द का अर्थ (प्रतिमा) करके आप लिखते हैं—"बदन का निरूपण करते समय अनुपम वस्तुएँ भी बदसूरत जचने लगीं। चंद्रमा तो अनेक रूपधारी बहुरूपिया (स्वाँग भरनेवाला) की प्रतिमा ही विचार में आया।" बहुरूपिया की क्या सुंदर प्रतिमा बनाई है, अच्छा हुआ कि वह कुछ जँची नहीं, अन्यथा एक और प्रतिमा पूजन होने लगता। इस अर्थ में कवि के चमत्कार का खून कर दिया गया है। वस्तुतः इस पादार्ध का अर्थ यह है—"बहुरूपिया चंद्र तो सीता के मुख के (अनुरूप) सदृश हो ही क्या सकता है?"।—चंद्रमा का एक स्थिर रूप नहीं। कभी क्षीण होता है, कभी बढ़ता है। वह सीता के एक-रस रहनेवाले रूप-लावण्य की तुलना में कैसे कहा जा सकता है। चंद्र जो सबका उपमान है, उससे भी सीता का मुख कहीं बढ़-चढ़कर है। इसी छठे प्रभाव में आगे चलकर "मंडल वर्णन" में केशवजी ने एक छंद लिखा है। उसकी टीका भी देखिए—

मंडल वर्णन

> मणिमय आलबाल जलज जलज रवि,
> मंडल में जैसे मानि मोहैं कविनान की।
> जैसे सविशेष परिवेश में अशेष रेख,
> शोभित सुवेश सोम सीमा सुखदान की।
> जैसे बकलानानि कलित कर कंकनानि,
> बाँनन ललित द्युति प्रकट प्रमानि की।
> केशोदास ऐसे राजे रास में रसिकलाल,
> आसपास मंडली विराजे गोपिकान की।
>
> पृ० ५१, छं० ६

रसिकलाल की रासमंडली का क्या सुंदर वर्णन है। पर टीकाजी का अर्थ भी निराला ही है। भावार्थ में लिखते हैं—"रासमंडल के बीच में श्रीकृष्ण हैं, इर्द-गिर्द गोपियाँ घेरे हैं। यह दृश्य ऐसा देख पड़ता है जैसे मणिमय थाला में कोई पौधा खड़ा हो। या जैसे पूर्ण परिवेष में सुंदर भेषवाला और पूर्ण आनंददायक चंद्रमा ... इत्यादि"

मणिमय थाला में क्या सुंदर आबनूस (तमाल) का ठूँठ लाखड़ा किया है! छछूँदर के सर में चमेली का तेल! यह चमत्कार लालाजी की लेखनी ही का काम है!! इस छंद का अर्थ करने में लालाजी ने कई भूलें की हैं। प्रथम तो "रविमंडल" शब्द का कहीं अर्थ आया ही नहीं, मानो लालाजी की दृष्टि में वह अन्यथा सिद्ध हो। दूसरे "रसिकलाल" जैसे प्रसिद्ध शब्द का तो शब्दार्थ में सरल अर्थ "श्रीकृष्ण" दिया गया है, पर (परिवेष) शब्द का अर्थ समझाने की उन्होंने आवश्यकता ही नहीं समझी। शायद इसे वह अत्यंत सरल, प्रति-दिन व्यवहार में आनेवाला, शब्द समझते हों। तीसरे मूल छंद में तो "जलज" पाठ छपवाया है, पर शब्दार्थ में प्रथम (जलज) के स्थान पर (थलज) करके उसका अर्थ (कोई पौधा और यहाँ तमालवृक्ष) किया है। चौथे "सविशेष" का अर्थ आपने (अखंडित, पूर्ण) किया है।

रवि-मंडल और परिवेष शब्द का अर्थ लिखने से पूर्व

हम (थलज) और (सविशेष) शब्दों के अर्थों पर विचार करना चाहते हैं।

दूसरी पुस्तकों में प्रथम (जलज) के स्थान पर (थलज) ऐसा ही पाठ मिलता है, और हम इस पाठ को ही अधिक ठीक मानते हैं। पर इसका जो अर्थ (तमालवृक्ष) लालाजी ने किया है, वह ठीक नहीं है, "थलज" शब्द के आगे ही (जलज) शब्द पड़ा है, इस शब्द-सान्निध्य से (थलज-जलज) इस शब्द का अर्थ (स्थल मे उत्पन्न होनेवाला कमल) अर्थात् स्थल-कमल होना चाहिए। स्थल कमल का कवि लोग वर्णन करते ही हैं और उसके लिये यदि मणिमय थाला रचा गया हो तो उचित ही होगा, अनुचित नहीं।

(सविशेष) शब्द का अर्थ (अखंडित या पूर्ण) मान लेने पर उसमें कोई विशेषता नहीं रहती। क्योंकि (परिवेष) शब्द का अर्थ ही (पूर्ण मंडल) है। कवि का अभिप्राय यहाँ (सविशेष) शब्द से तभी कुछ चमत्कारी हो सकता है, जब सब ऋतुओं के चंद्र-मंडल का नहीं पर विशेष अर्थात् शरद् ऋतु के चंद्र-मंडल का वर्णन हो, इसलिये (सविशेष) का अर्थ (शरद्-ऋतु विशेष का) है।

इस प्रकार शब्दार्थ करने पर छंद का अर्थ इस भाँति हो जायगा—मणिमय थाला में जैसे स्थल कमल हो, अपने मंडल के बीच में जैसे सूर्य हो और शरद् ऋतु के पूर्ण मंडल के बीच में जैसे पूर्णबिंब या पूर्णिमा का चंद्र हो इत्यादि

छठे प्रभाव के बाद दशम प्रभाव तक केशव ने अलंकारों का वर्णन किया। इन चारों प्रभावों की टीका पर किसी अन्य समय विचार किया जायगा। लेख का कलेवर बढ़ जाने के भय से उसे यहीं छोड़कर दो-चार छंदों की टीका पर ही विचार करके विराम करेंगे।

११वें प्रभाव का २२वाँ छंद इस प्रकार है -

"एक थल थित पै बसत प्रतिजन जीय,
ढिकर पै देश देश करको धरतु है।
× × ×
केशोदास इंद्रजीत भूतल अभूत, पंच-
भूत की प्रभूति भवभूति को शरनु है ॥२२॥
प्रि० प्र० पृ० २३७

छंद बहुत बड़ा है और हमें केवल दो चरणों के अर्थों पर विचार करना है, इसलिए वही दो चरण उद्धृत किए हैं। इसमें राजा इंद्रजीत का वर्णन है। विरोधाभास के कारण इसमें अपूर्व चमत्कार आगया है, पर लालाजी के अर्थ ने सब मिट्टी कर दिया है। आप लिखते हैं -

"राजा इंद्रजीत रहते तो एक स्थान पर हैं, परंतु प्रत्येक जीवधारी के जी में वास किए हुए हैं। उनके हैं तो दो ही हाथ, पर देश-देश के लोगों के हाथों को पकड़े हैं (मित्रता किए हैं) केशवदास जी कहते हैं कि राजा इंद्रजीत जी इस पृथ्वी पर एक अभूतपूर्व राजा हैं, क्योंकि वे पंचतत्व से बनी सृष्टि के रक्षक हैं।"

देखा टीका का चमत्कार! राजा इंद्रजीत को कैसा अप-टू-डेट साहब बहादुर बनादिया! सहस्रबाहु के चाचा भी यदि इस प्रकार शेकहैंड करने लगे, तो बस राज-काज तो कर चुके! दिन भर देश-देश के लोगों के हाथ ही पकड़ा करो। इतना ही नहीं उन्हें अभूतपूर्व राजा इसलिए बनाया गया है, क्योंकि वह पंचतत्व से बनी सृष्टि के रक्षक हैं!! क्यों लालाजी, वह स्वयं कितने तत्वों से बने थे, या बिलकुल निस्तत्व निराकार को ही उपज थे! या दूसरे राजा कितने तत्वों से बनी सृष्टि की रक्षा करते हैं?

वास्तव में "करको" शब्द का अर्थ यहाँ "हाथ" नहीं प्रत्युत "लगान या राज्य कर" है। राजा इंद्रजीत का चक्रवर्ती साम्राज्य, उसका विश्व-व्यापक प्रभुत्व, देश-देश के राजाओं का उसको राज्य-कर देना, इत्यादि सब बातें लालाजी के अर्थ में, न जाने, कहाँ उड़ गई हैं! बस, हाथ पकड़-पकड़ कर दोस्ती करने के लिए अभूतपूर्व राजा को गद्दी पर बैठा दिया है! अब चौथे चरण का अर्थ लिखिए — क्या शब्दार्थ, क्या भावार्थ और क्या भावार्थ, सबका सत्यानाश कर दिया है। इस पद का अर्थ यह होना चाहिए -

"केशवदास कहते हैं कि राजा इंद्रजीत इस लोक में एक अभूतपूर्व राजा हैं, पंचभूतों की यह (प्रभूति) विशाल, अत्युत्कृष्ट विभूति है, क्योंकि है तो पंचभूतों से उत्पन्न, पर "भवभूति" संसार की विभूति के रक्षक हैं।" यह "करको" और "इंद्रजू" वाला अर्थ नहीं अनर्थ है।

एक छंद और देख लीजिए। इस छंद के आगे के छंद का प्रथम चरण यह है—

"दरशन छुर से नरेश सिरनावैं नित,
षट दर्शनही को सिरनाइयतु है।
× × ×
२३। प्रि० प्र० पृ० २३८

लालाजी लिखते हैं—"राजा इंद्रजीत के सामने देव सम राजा सिर नवाते हैं, पर वह उनकी ओर देखता तक नहीं, केवल षट्-दर्शन ही को अपना सिर नवाता है।"

वह राजा, जिसे पहले ही छंद में देश-देश के लोगों के हाथ पकड़े बैठा आए थे, यहाँ इतना गँवार साधारण-शिष्टाचार-शून्य बना दिया कि, देवताओं के तुल्य राजा शिर नवाते हैं, और वह उनकी ओर देखता तक नहीं! और वेद, उपनिषद् भागवत् तथा देवी-देवताओं को छोड़कर षट्दर्शनों के आगे सिर नवाने की बात इससे पहिले हमने न कहीं सुनी, न देखी और न पढ़ी ही।

इस छंद का एक पाठ-भेद ऐसा मिलता है, जिसमे "दरशन" के स्थान पर दो शब्द "दर सैन" लिखे हैं। इसका अर्थ "दर" थोड़ा "सैन" संकेत अर्थात् आँखों या सिर के हिलाने आदि संकेत द्वारा वह उनका उत्तर देता था—यह होता है। और यह अर्थ उचित और योग्य भी है। इसी प्रकार "षट्दर्शन" शब्द का भी यहा छ दरशन शास्त्र अर्थ नहीं है। प्रत्युत ६ प्रात दर्शनीय पुराणाभिमत लोक-प्रसिद्ध व्यक्ति है। अर्थात—वैष्णव, ब्राह्मण, योगी, सन्यासी, जगम और सेवार। जहाँ ६ वस्तुओं की गणना केशवजी ने कराई है, वहा षड्दर्शन शब्द का सबही टीकाकारोंने, स्वय दीनजी ने भी, यही अर्थ किया है। अब इसका अर्थ स्पष्ट होगया कि "सुर समान नरेश जब राजा इंद्रजीत को सिर नवाते हैं, तब वह नत्रों और सिर के संकेत से उनका मुजरा लेते हैं, उनको सिर नहीं झुकाते। सिर तो इंद्रजीत का केवल उपरिलिखित छ प्रात दर्शनीय व्यक्तियों के सामने ही झुकता है।"

अधिक न लिखकर हम इस लेख को यहीं समाप्त करते हैं। हमने इस लेख मे गम्भीर या अधिक विवादास्पद विषयों को छोड़ दिया है, केवल मोटी बातों की ही विवेचना की है! हमारी सम्मति मे जबतक साहित्य-मर्मज्ञ विद्वान् किसी पुस्तक के विषय में भलीभांति छान-बीन करके उसे महाविद्यालयों मे पढाने योग्य न ठहरादें, तब तक किसी पुस्तक को पाठ-विधि में रखना उचित नहीं है।

सहृदय पाठक मेरे इस लेख पर विचार करें और लाला भगवानदीन जी से भी मेरा साग्रह अनुरोध है कि वह इस ओर ध्यान दें। टीकाकार का उत्तर-दायित्व बड़ा है। कविता का रसास्वाद सहृदयों को टीकाकार ही करा सकता है। कवि की दुरूह और कल्पनातीत बातों को सरल करके टीकाकार ही दूसरों तक पहुँचा सकता है। और तो क्या, स्वय कवि से बढ़कर कविता का रसास्वाद सहृदय विद्वान् ही कर सकते हैं। किसी ने क्या ही ठीक कहा है—

"कवि: करोति पद्यानि, स्वाद जानन्ति पण्डिता।
सुन्दर्या अपि लावण्य, पतिर्जानाति नो पिता॥"

भूदेव शर्मा विद्यालंकार

सौभाग्य की संजीवनी

सूधी गज गौनि सूधी नैननि की नोनि तैसी सूधी ही चितौनि है हितौनि पिय राग की।
सूधी चारु बोलनि त्यों लोलनि कपोलनि की सूधे ही सिँगार हार सूधे अनुराग की।
आहट न होत मुसकाहट चलत हू मैं चित अनखाहट न सोहैं बड भाग की,
सीवनि है गुन की सु पीवनि अधर अमी जीवनि है पिय की सजीवनि सुहाग की।

—स्वर्गीय महाराज यशवंतसिंह

आराधना
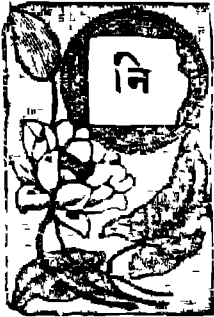
निरंतर पंद्रह वर्ष से देवीदीन सड़क के किनारे पीपल के छतनार वृक्ष के नीचे खोंचा लगाता था। ज़माना बदल गया — कितनी ही गगन-चुंबी अट्टालिकायें धराशायी होगईं, कितने झोंपड़े महल बन गए, कितने ही ऐश्वर्यशाली निर्धन हो गये, कितने दरिद्र धनवान। किंतु विश्व के परिवर्तनशील विधान में देवी का आज भी वही स्थान था, जो पंद्रह वर्ष पूर्व था। सवेरे से शाम तक अब भी वह खोंचे से वैसेही मक्खियां उड़ाता रहता था जैसे पहले। उसके दुर्बल शरीर पर आज भी वैसी ही मैली धोती, वैसी ही मैली मिरजई थी जैसी पहले दिखाई देती थी। हां, एक मुद्दत से बराबर जल में पड़ी रहने के कारण नाव पुरानी अवश्य हो चली थी। उसकी उम्र ढल रही थी — आंखों की रोशनी घट चली थी, चेहरे पर झुर्रियां पड़ गई थीं सिर और मूंछों की स्याही में सफ़ेदी दिखाई देने लगी थी। मुहल्ले की कर्महीन दार्शनिक-मंडली ने अक्सर देवीदीन को वाद-विवाद का विषय बनाया, किंतु यह न तय कर पाई कि उसके अस्तित्व का क्या अभिप्राय है।

दिन का तीसरा पहर था। बाज़ार में आलस्य छाया हुआ था। बैठे, लेटे या ऊंघते हुए दूकानदार आतुर प्रेमिकाओं की भांति प्रेमी ग्राहकों की बाट देख रहे थे। देवी घर से भोजन करके लौटा, बैठने के स्थान पर लगे हुए ढेर के ऊपर का टाट हटाया, ढेर की चीज़ें इधर-उधर सजाकर रक्खीं, फिर टाट बिछाकर बैठ गया, खोंचे के ऊपर की चादर हटाई और ताड़ की एक टूटी पंखी लेकर मक्खियां उड़ाने लगा। इस 'खट-पट' से बिंदा महाजन की आती हुई नींद उचट गई। बिंदा ने करवट बदल कर कहा - 'आ गये क्या देवी ?'

"हां दादा।"

महाजन का कर्तव्य पूरा हो गया (खोंचे को इसी की देख-रेख में छोड़कर देवीदीन भोजन करने जाता था)। बिंदा ने फिर करवट ली, आंखें बंद कीं और रूठी हुई निद्रा-देवी को मनाने लगा।

गरीब पंखी उस चंद्राकार मार्ग में अपनी बूढ़ी हड्डियाँ घसीटने लगी। इस प्रकार केवल दस मिनट बीते होंगे कि उसकी गति मंद होने लगी; शासक को आलस्य घेरने लगा। देवीदीन का हाथ रुक गया, आंखें स्वयं बंद हो गईं, खूंटियों से ढकी हुई ठुड्डी सीने से मिलने के लिये आतुर हो उठी। शत्रु को बेख़बर पाते ही मक्खियों की असंख्य सेना ने चारों ओर से आक्रमण कर दिया।

हाथ अपने काम में अभ्यस्त थे। अक्सर देवीदीन लोगों से बातें किया करता था, बाज़ार के दृश्य देखा करता था, पर उसके हाथ, खोंचे में किसी प्रकार की गड़बड़ी किये बिना, पंखी चलाते रहते। लेकिन नींद के सामने किसकी चलती है ?

सहसा एक ओर शोर-गुल होने लगा। देवी ने चौंक कर पंखी चलाते हुए देखा - जोखू चार-पांच उपले लिये भागा जा रहा है, पांच सात आदमी ठट्ठा कर हँस रहे हैं, और एक उपली बेचनेवाली दोनों हाथों से सिर का बोझ सँभाले हुए गालियां दे रही है। देवी हँसता हुआ प्रश्न-सूचक दृष्टि से जोखू की ओर देखने लगा। देवी के जोखू के साहस पर क्यों न प्रसन्नता होती ? क्या जवानी में उसने भी ऐसे ही उत्पात नहीं किये ? और, फिर होली में क्या नहीं माफ़ होता ? आज उसे उस समय की बातें याद आने लगीं, जब उसके शरीर में भी बल था, जब उसके रक्त में भी यौवन की स्फूर्ति थी, जब होली में लकड़ी इकट्ठा करने के लिये हमजोलियों के साथ सारा रात गलियों में चक्कर काटा करता था जब उसके ऊपर भी आदर, सम्मान एवं प्रशंसा की पुष्प-वर्षा होती थी। एक बार जब वे सब एक खेत में एक पेड़ काट रहे थे, किसान जग पड़ा और लाठी सँभालता हुआ इन लोगों का पीछा किया। अधकटा पेड़ छोड़कर वे सब जान लेकर भागे थे। समय की अनंत सीमा लांघ कर उसे आज भी उन सबों की हांफ स्पष्ट सुनाई देती थी। आज वे साथी कहां हैं ? वह समय कहां है ? वह बल कहाँ है ? वह पौरुष कहां है ?

झगड़े का शीघ्र निपटारा हो गया, क्योंकि उपली बेचनेवाली होली के इस चक्र-व्यूह में अपने को अकेली पाकर सामने की गली में ग़ायब हो गई। स्मृति निद्रा का रूप धारण कर रही थी, झपकियों के हमले शुरू हो गये थे, इसी समय बगल की गली से एक अधेड़ स्त्री पैरों के झॉंझ से 'छम-छम' करती हुई बाहर निकली। देवी ने

फिर चौंक कर मक्खियाँ उड़ाते हुए सिर उठाया। उसका मुख प्रसन्नता से खिल उठा। देवी ने मुसकिराते हुए पुकारा—'भौजी, ओ भौजी !'

उस स्त्री ने देवी की ओर मुड़कर देखा, फिर वह

उस स्त्री ने देवी की ओर मुड़कर देखा—

मुसकिराते हुए समीप गई। "क्यों भौजी, होली के ज़माने मे ऐसे नज़र बचाकर निकल जाना चाहिये ?" दुलारी मंदिर की सीढ़ी पर देवीदीन के समीप बैठकर बोली—"नहीं, लाला, यह भी कोई बात है। ज़रा जल्दी मे थी, इस कारण तुम्हें देख नहीं पाई।"

"नहीं, अब हम क्यों देखोगी ? बुढ़ाई मे सब साथ छोड़ देते है। अब हम मे वह बात कहाँ है ?"

"तुम अपने को जो चाहो समझो, हमारे हिसाब तो तुम वही हो।"

"क्यों बात बनाती हो।"

"गंगा-कसम, लाला। झूठ नहीं कहती।"

"अरे-अरे, क़सम खाने की क्या ज़रूरत ? क्या हमें विश्वास नहीं है ?"

दोनों एक क्षण चुप रहे, फिर देवीदीन ने मुसकिरा कर पूछा—"यह सज के कहाँ जाती हो ?"

"एक जगह गवनई है, वहीं जाना है। अब जाने दो लाला, देर हो जायगी।"

दुलारी उठ खड़ी हुई।

"अच्छा, एक बात तो बताये जाव। अब की तो हम से होरी खेलोगी न ?"

"काहे नहीं ? ज़रूर—ज़रूर।" दुलारी चली गई। इतने मे दो-तीन छोटे-छोटे लड़के गुड़ के सेव और पपड़ी खरीदने आ गये। देवीदीन तराज़ू उठाकर तौल मे अपनी कला-निपुणता और सफ़ाई दिखाने लगा।

आध घंटे के बाद बिंदा महाजन की स्त्री चद्दर ओढ़े अपनी दूकान से उतरी। देवीदीन ने पूछा—"कहाँ जाती हो, चाची ?"

"कहीं नहीं बेटा। बहिन की बिटिया ससुराल से आई भई है—ज़रा भेंट-मुलाक़ात कर आऊँ," रामरती ने देवीदीन की ओर ध्यान से देखकर कहा।

देवीदीन का कौतूहल अभी दूसरा प्रश्न करने ही जा रहा था कि रामरती आगे बढ़ गई। ज़बान पर आई हुई बात लौट गई।

(२)

रामरती उन अमूल्य स्त्री-रत्नों मे थी जिनके हृदय असाधारण मातृ-वात्सल्य से परिपूर्ण होते हैं, जिनकी गोद सारे संसार को अपनाने के लिये खुली रहती है, जो दूसरों के दुख मे दुखी होती हैं, दूसरों की पीड़ा मे पीड़ित। उनमें स्वार्थ से परमार्थ प्रबल होता है, अपनों की अपेक्षा दूसरों की चिंता अधिक होती है। अन्याय ऐसी स्त्रियों से सहा नहीं जाता—चाहे वह उन पर किया जाय या दूसरों पर। दूसरों के लड़कों को बिगड़ते देख कर उन कर्मनिष्ठा रमणियों को वैसा ही दुःख होता है, जैसा अपने बच्चों को कुराह चलते देखकर होना स्वाभाविक है। किंतु उनकी अलभ्य-कर्मण्यता उनकी सरल-बुद्धि से अनुचित लाभ उठाती है। उनकी स्वाभाविक पर चिंता लाभदायक अधिक होती है अथवा हानिकर, यह संदेहात्मक है। ईश्वर उन्हें सब कुछ देता है, पर विनोद की निश्चिंतता से वंचित रखता है।

रामरती का यों कुसमय बाहर निकलना इस बात का प्रमाण था कि वह किसी-न-किसी आवश्यक काम से जा रही है, क्योंकि वह अपने सुदृढ़ गढ़ से यों सहज में

निकलनेवाली न थी । दूसरों को अकारण इधर-उधर आते-जाते देखकर उसे घोर हार्दिक दुख होता था, यद्यपि वह प्रायः नित्य अपने दस-पाँच कृपापात्रों के घर गये बिना किसी तरह न रह सकती थी । उसकी इस कृपा से उसके कृपापात्र प्रसन्न होते थे अथवा अप्रसन्न—यह भी संदेहात्मक ही है । परोपकारी उपकार करता है, उसे लाभ-हानि के बखेड़े से क्या प्रयोजन ?

सामने की गली में थोड़ी दूर चलकर रामरती ने एक बाड़े में प्रवेश किया । उस बाड़े में, जो हेमंत के असह्य शीत में, ग्रीष्म की कड़ी धूप में, वर्षा के तूफ़ान में थोड़े से धन-हीन लोगों का एकमात्र आश्रय था । किंतु यहाँ ग़रीब ही नहीं मुद्रा-देव के वे उपासक भी रहते थे, जिन्हें ग़रीब बने रहने में ही सुभीता होता है । बाड़े के बीच में थोड़ी-सी खुली हुई जगह थी और किनारे-किनारे दस-पंद्रह कोठरियाँ बनी हुई थीं । एक-एक कोठरी में एक पूरा ख़ानदान गुज़र-बसर कर लेता था । ऐसी ही एक कोठरी के सामने देवीदीन की स्त्री, सुंदरी, बर्तन माँज रही थी। रामरती को देखते ही सुंदरी बोली—"आओ, चाची, आओ बहुत दिनों में फेरा किया ।"

"हाँ, क्या करूँ दुलहिन, काम-धंधे के मारे छुट्टी बहुत कम मिलती है ।"

सुंदरी ने जल्दी जल्दी एक पीढ़ा धोया, उसे अंचल से सुखाया और रामरती के सामने रखकर बोली—"बैठो चाची ।"

पीढ़े पर बैठकर रामरती ने कहा—"कैसा जी है, दुलहिन, दुबली दिखाई पड़ती हो ?"

"हाँ, जी तो अच्छा नहीं है । पाँच-सात दिन से ज़ुकाम हो गया है ; सिर में दर्द भी रहता है ।" दोनों हाथों से अंचल के छोर पकड़े हुए सुंदरी ने रामरती के पैर छुए ।

"खुश रहो । कुछ उदास भी दिखाई देती हो । क्या बात है ?"

"और कोई बात तो नहीं है । बस, जी ख़राब है," सुंदरी ने थाली मलते हुए उत्तर दिया ।

"मैं डरी थी कि कहीं भय्या से झगड़ा तो नहीं हो गया । आजकल कैसा व्यवहार करते हैं । कुछ कहते सुनते तो नहीं ?"

"नहीं, चाची, ऐसी तो कोई बात नहीं है," सुंदरी ने सिर नीचा करके कहा ।

"नहीं, बिटिया, देवी का रंग-ढंग तो आजकल ठीक नहीं दिखाई देता ।"

हाथ का मँजना सामने रखकर सुंदरी रामरती के मुख की ओर आश्चर्य से देखने लगी । वह रामरती का मतलब कुछ न समझ सकी ।

रामरती ने सिर हिलाते हुए कहा—"देवी को मैं इतने दिनों से जानती हूँ, उसे कभी कुराह चलते नहीं देखा था । मुदा, अब लच्छन अच्छे नहीं दिखाई देते ।"

सुंदरी अवाक् थी, उसका हृदय ज़ोर-ज़ोर से धड़क रहा था ।

"दुलहिन, दुलारी को जानती हो ? वही कुलच्छनी जिसने अपना सरबस बोर दिया, इज़्ज़त गँवा दी । आज भैया उससे हँस-हँसकर बातें कर रहे थे । बड़ी देर तक दोनों न जाने क्या फुस-फुस करते रहे । जब वह चलने लगी तो भय्या ने उसे एक दोना मिठाई दी । बिटिया, मुझे तो पूरा सक है कि उन दोनों में कुछ साँठ-गाँठ है ।"

सुंदरी पर वज्र गिरा । बर्तन जैसा-का-तैसा छोड़ कर वह उठी और रामरती के पैरों से लिपटकर फूट-फूटकर रोने लगी । सुंदरी का सिर उठाकर अपने आँचल से आँसू पोंछते हुए रामरती ने कहा—"रोओ न, दुलहिन । तुम अपना भला-बुरा ख़ुद समझ सकती हो । तुम्हें जता देना मेरा धरम था । मैंने अपना करतब समझा—जता दिया ।"

सुंदरी के आँसू फिर उमड़ने लगे । आँचल में मुँह छिपाकर वह विलाप करने लगी—'हाय राम ! मैं क्या करूँ ? मैं इनको ऐसा नहीं समझती थी । हाय ! मैं तो कहीं की न रही । तभी इतनी रात तक ग़ायब रहते हैं ।"

रामरती फिर समझाने लगी—'धीरज धरो, बिटिया । रोने-धोने से क्या होगा ? हाँ, ज़रा अब भैया पर निगाह रखना । वह कसबी जो न करे, थोड़ा है । कैसा मटक-मटक कर चलती है ! मैं तो अपने दरवाज़े उसे खड़ी नहीं होने देती ।"

आँसू-भरी आँखों से रामरती की ओर देखकर सुंदरी ने कहा—'चाची, मैं अब क्या करूँ ? वह तो ऐसे नहीं थे । इस डाइन ने क्या कर दिया ?"

"साँपिन है साँपिन ! उसका मुँह देखना भी पाप है ! देखो दुलहिन, घबड़ाव न । सबर करो । तुम्हें अपने गुरु महाराज के यहाँ ले चलूँगी । कोई उपाय कर देंगे, तो सब ठीक हो जायगा ।"

"हाँ, चाची, कोई जोग-जोग करा दो । बड़ा जस मानूँगी।"

"मैं सब ठीक करा दूँगी, बिटिया । तुम सबर करो । हाँ, जरा कड़ी रहा करो । मर्द के साथ ढिलाई ठीक नहीं होती । अच्छा, अब चलूँ, देर हो रही है ।"

"अब कब आओगी, चाची ? जरा खोज-खबर रखना ।"

"नहीं, दुलहिन, निसाखातिर रहो । बन पड़ेगा तो कल ही आऊँगी ।"

सुंदरी ने फिर रामरती के पैर छुए । रामरती ने आशीर्वाद दिया, चादर सँभाली ; फिर वह धीरे धीरे बाड़े के बाहर हो गई ।

सुंदरी ने अध-मले बर्तन उठाकर कोठरी के कोने में डाल दिए और उस खाट पर पड़ रही जिस पर वह उस समय से विश्राम करती थी जबसे, विवाह के बाद, उसने इस घर में पैर दिए । इस समय उसमें इतनी शक्ति भी न थी कि वह जूठे बर्तन तो साफ़ कर डालती । उस पुरानी खाट पर पड़ी-पड़ी वह छप्पर की ओर शून्य दृष्टि से ताकने लगी । उसके हृदय में ज्वाला दहक रही थी । विश्वास और संदेह का संग्राम था । विश्वास बार-बार कहता था —वह तो ऐसे न थे । किंतु संदेह अधिक बलवान था , उसकी सहायता के लिये एक विश्वासपात्र का आँखों-देखा प्रमाण था ! उसे ऐसा जान पड़ने लगा मानो उसका सर्वस्व लुटा जा रहा हो । जिस नाविक ने आज से पचीस वर्ष पूर्व उसकी नाव को पार लगाने का भार लिया था, उसे सागर की विकट लहरें निगलती हुई दिखाई दीं ! किंतु उसे लहरों पर ही क्रोध न था, नाविक पर भी था । सीधा मार्ग छोड़ कर उस टेढ़े रास्ते में आना, जहाँ जल अशांत है भयानक जल-जंतु हैं, छिपी हुई चट्टानें हैं, कहाँ की बुद्धिमानी है !

(३)

रात के दस बज गए थे, बाज़ार सूना हो चला था, इधर-उधर दो-एक को छोड़कर प्रायः सभी दुकानें बंद हो गई थीं । दो घंटा पहले सड़क पर जो चहल-पहल थी, अब उसका कहीं नाम-निशान तक न था । कहीं एक-दो आदमी आते-जाते दिखाई देते, कहीं एक-दो इक्के । देवीदीन भी अपना खोंचा बढ़ाने में लगा हुआ था । उसने 'गल्ले' के ऊपर से तराज़ू हटाई और आज की आमदनी का हिसाब लगाने लगा । उस ताँबे, निकेल और चाँदी के ढेर को वह बड़ी देर तक और कई-कई तरह गिनता रहा । फिर उसने कमर से बसनी खोली और एक बार फिर गिनकर ढेर को उसमें रखा । बसनी कमर में बाँधकर उसने खोंचे की बची हुई चीजें सजाईं । थाल में लगी हुई ढिबरी बुझाई और खोंचा उठाकर घर की ओर चला । इस समय उसके मुख पर संतोष झलक रहा था ।

बाड़े में पहुँचकर देवीदीन ने देखा, उसकी कोठरी में अंधकार छाया हुआ है । उसने समझा कि सुंदरी कहीं किसी पड़ोसी के घर गई होगी, ज़ोर से आवाज़ दी—"कहाँ है रे—चल ?"

कोई उत्तर न मिला । देवी ने फिर आवाज़ लगाई—"कहाँ गई—रे ?"

फिर किसी ने उत्तर न दिया । तब उसे संदेह हुआ कि सुंदरी सो न गई हो । उसने अपने सिर, बगल और हाथों के बोझ सँभाल कर दालान में रख दिए, फिर मिरजई की जेब से दियासलाई निकालकर खोंचे की ढिबरी जलाई । ढिबरी के प्रकाश में उसने देखा, उसकी कोठरी के किवाड़ खुले हुए हैं और सुंदरी एक मैला लिहाफ़ ओढ़े हुए खाट पर पड़ी है । देवी का माथा ठनका—'इसे हो क्या गया ? अभी दोपहर को तो भली-चंगी थी !' उसने बाहर पड़ा हुआ सामान भीतर ले जाकर उचित स्थान पर रख दिया और कोठरी में चारों ओर ध्यान से देखने लगा । जूठे बर्तन जैसे के-तैसे पड़े थे । चौका-चूल्हा पुता हुआ साफ़ । 'तो क्या इस समय इसने खाना भी नहीं बनाया ? क्या मामला है !' वह खाट के समीप गया और सुंदरी के मुख से लिहाफ हटाकर पूछा—"क्यों पड़ी है ? जी बहुत खराब है क्या ?"

सुंदरी सो नहीं रही थी, आँखें बंद किए पड़ी थी । उसने नेत्र खोलकर एक बार पति के चेहरे की ओर ध्यान से देखा, फिर करवट बदल ली । 'क्या यह अपराधी का चेहरा हो सकता है ? आँखों में तो झिझक नाम को भी नहीं है !' उसका संदेह कुछ शिथिल पड़ने लगा ।

निरीक्षण का प्रभाव अभी अपना काम कर ही रहा था कि देवी फिर बोल उठा—"बोलती क्यों नहीं ? क्या मामला है ? जब देखो नखरा करके पड़ जाती है ।"

सुंदरी के शरीर में आग-सी लग गई, कड़ककर बोली—"जाव-जाव, वहाँ जाव जहाँ मजेदारी है ! यहाँ क्या धरा है ?"

देवी के आश्चर्य का वारापार न था, बोला—"यह तू क्या बक रही है ?"

सुंदरी तैश में आकर उठ बैठी, फिर रोषपूर्ण स्वर में बोली—"बक रही हूँ! झूठ कह रही हूँ क्या? कहती तो हूँ, जाव, उसी के पास जाव, जिसके साथ हँस-हँसकर बातें करते हो, गुलछर्रे उड़ाते हो, जिसे मिठाई के दोने खलाते हो!"

देवी ने किवाड़ का सहारा लिया। इस संग्राम के लिये वह तैयार होकर नहीं आया था। उसे स्वप्न में भी आशंका न थी कि घर पहुँचते ही ऐसा भीषण युद्ध छिड़ जायगा। वह आँखें फाड़े स्त्री की ओर देखता हुआ बोला—"यह तू क्या कह रही है? मैं किसके साथ गुलछर्रे उड़ाता हूँ?"

"उसी दुलरिया नाती के साथ! मौसी को पा जाऊँ तो कच्ची चबा जाऊँ! हाय राम!" फिर वह अंचल में मुँह ढाँपकर ज़ोर-ज़ोर से सिसकने लगी।

देवी की कुछ समझ में न आता था कि क्या करे, कैसे सफ़ाई दे! ऐसा लांछन उसे आजतक कभी नहीं लगा था। दो-तीन मिनट चुप रहकर उसने गंभीरता से कहा—"यह सब झूठ है। मैंने उसके साथ कोई ऐसी बात नहीं की कि मुझ पर दोष लगे।"

सुंदरी की सिसकियाँ एकाएक बंद हो गईं। उसने सिर ऊपर उठाया और अश्रु-पूर्ण नेत्रों से पति के चेहरे की ओर देखती हुई बोली—"झूठ है! सारा जग झूठा है, बस तुम अकेले सच्चे हो! अगर तुम आधी गंगा में पैठकर कहो, तब भी मैं अब तुम्हारा एतबार न करूँगी! हाय! मैं तो कहीं की न रही!" सुंदरी फिर सिसकने लगी।

युद्ध अब कठिन हो गया था, और प्रतिघात का कोई साधन भी न था। इसलिये रणक्षेत्र से टल जाना ही उचित जान पड़ा। कदाचित् इसे कायरता नहीं कह सकते। देवी ने नारियल उठाया, चिलम ली, एक टीन के डिब्बे से थोड़ी-सी तबाकू निकाली और चिलम में तबाकू जमाता हुआ वह घर के बाहर हो गया।

देवी जब घर से बाहर निकला तो उसके चेहरे पर उस भाव का कोई चिह्न न था जो घर आते समय उसे प्रफुल्लित कर रहा था। जिस जीवन-मार्ग से वह कल तक निश्चिंत चला आता था, वहाँ आज उसे पहली बार ठोकर लगी। देवी अधीर हो उठा। स्त्रियाँ ऐसी अन्यायिनी हो सकती हैं—इसका अनुमान आज उसे पहली बार हुआ। साधारण विनोद का ऐसा कुटिल मतलब लगाया गया! आख़िर, उससे कहा किसने? कहीं यही तो उस तरफ़ नहीं गई थी? और मैंने दुलारी को मिठाई कब खिलाई? परमात्मा! क्या दुनिया से इंसाफ़ बिलकुल उठ गया?—ऐसे ही विचारों में मग्न देवी दुर्गा के मंदिर के पासवाले कुएँ पर पहुँच गया।

इसी स्थान पर देवी की मित्र-मंडली नित्य एकत्र होती थी। इस समय भी कुएँ की जगत पर तीन-चार आदमी जमा थे। उनमें से एक देवी को देखतेही बोला—"आओ देवी, आओ आज बड़ी जल्दी की। आज जल्दी ही बढ़ा दिया क्या?"

देवीदीन एक ओर बैठ गया। पसपन ने पूछा—"खा पी चुके देवी?"

"खा क्या चुके? जब क़िस्मत में लिखा हो, तब तो!" देवी के स्वर में अपार वेदना थी।

दुक्खी ने आश्चर्य से पूछा—"क्या हुआ देवी? भौजी से कजिया भई है क्या?"

"हाँ, भैया। जब देखो एक-न-एक लगाए रहती है। आग है?"

"हाँ, है। उधर अँगीठी में है। जाव, लै लो।"

देवीदीन उठकर चिलम भरने लगा। बूढ़े बब्बू ने सिर हिलाते हुए पूछा—"काहे कजिया भई, देवी?"

"देवी ने चिमटे से चिलम में आग रखते हुए उत्तर दिया—कुछ नहीं। बेवक़ूफ़ है। बेबात-की-बात करती है।"

पसपन—"आख़िर, क्या बात थी?"

"अरे कुछ नहीं। कहा तो, बेवक़ूफ़ है।"

देवी को विवश करने के लिये दुक्खी ने कहा—"तो हम लोग अब गैर हो गए, देवी?"

देवी दुक्खी की ओर मुँह फेरकर बोला—"नहीं दुक्खी, यह बात नहीं है। अच्छा जो बताए देता हूँ, कहती थी—"दुलारी से नजर लड़ाते हो!"

सब ठट्टाकर हँस पड़े। जब हास्य का वेग कम हुआ तो पसपन ने गंभीर होकर कहा—"यह अब तुम्हें बुढ़ाई में क्या सूझी है, देवी?"

बुद्धू (हँसते हुए)—"हाँ भैया! यह का कुछ ठिकाना नहीं! जोरू, थोड़ा है!"

फिर सब हँस पड़े।

दुक्खी—"अच्छा रामों राम कहना देवी, यह बात सच है न?"

देवीदीन ने चिलम नारियल पर चढ़ाई और समीप आकर कहा—"अच्छा तुम लोग अपनी हँसी बंद करो तो एक बात पूछूँ।"

सब चुप हो गये। देवी ने अपनी कठिनाई पेश की—"अगर औरत झूठा अपराध लगावे तो मर्द क्या करे ?"

पसपत—"बड़ा गहिरा सवाल है, भाई !"

दुक्खी—"देखो मैं जवाब देता हूँ, उसका तलुआ सुहलावे, भैया !"

सब फिर ठट्टा देकर हँसे।

देवीदीन बैठ गया और दम पर दम खींचने लगा। जब लोगों की हँसी का वेग कम हुआ तो उसने कड़े होकर कहा—"मैं तो तुम लोगों से एक बात पूछ रहा हूँ और तुम लोग दिल्लगी कर रहे हो !"

सब समझ गये कि सीमा पहुँच गई ! पसपत ने गम्भीर होकर कहा—"तुम तो हो बेवकूफ,देवी। मैं होता तो दो धौल लगाता, सीधी हो जाती। सीधे का मुँह कुत्ता चाटता है।"

बुद्धसाह ने अपने अनुभव का गम्भीरता से समर्थन किया—"ठीक कहते हो, पसपत। बगैर कुटाई किये औरत काबू में नहीं रहती।"

देवी (सरलता से)—"भाई मुझ से तो यह नहीं होता कि उसे मारूँ।"

दुक्खी—"तुम अलम के अनाने हो !"

थोड़ी देर तक ऐसी ही बातें होती रहीं। फिर सभा विसर्जित हुई।

निराशा और दुविधा से घिरा हुआ देवीदीन घर की ओर चला। उसे मित्रों से सान्त्वना की आशा थी। पर, उसे मिला क्या—परिहास ! देवी यदि अपने मित्रों के स्थान में होता, तो क्या वह मज़ाक़ न उड़ाता ? खूब कहकहे लगाता, खूब चोटें करता। किंतु मानव-स्वभाव विचित्र है—जिस अवस्था में उस समय उसे हँसी ही हँसी सूझती, उसमें आज उसे रुलाई आ रही थी। अपने इस घरू झगड़े में उसे विनोद के लिये कोई गुंजाइश नहीं दिखाई देती थी। लेकिन अपने साथ संसार तो नहीं रो सकता ! देवी सोचता चला जाता था—अच्छा बखेड़ा खड़ा हो गया। न जाने उसने खाना बनाया कि नहीं। उसे जब क्रोध आता है, तो बिलकुल पागल सी हो जाती है, न कुछ सोचती है, न समझती है। मैं दुलारी से बातें न करता तो यह सब क्यों होता ? मेरी अकिल भी मारी गई है।

घर आ गया, देवी ने देखा, द्वार बंद है किंतु साँकल नहीं चढ़ी है। धीरे से किवाड़ खोलकर उसने भीतर प्रवेश किया। अपना क्षीण, करुण प्रकाश फैलाती हुई ढिबरी अभी तक आहें भर रही थी। लिहाफ़ ओढ़े हुए सुंदरी वैसी ही खाट पर पड़ी थी। देवी कुटाई करने का पक्का इरादा करके आया था; पर घर में प्रवेश करते ही इरादा पलट गया। उसने नारियल एक कोने में दीवार का सहारा लगा कर रख दिया, कच्चे फ़र्श पर एक चटाई बिछाई, फिर ढिबरी बुझा दी, साँकल चढ़ाई, और अपना पुराना फटा कम्बल ओढ़कर करवटें बदलने लगा। ख़ाली पेट नींद भी जल्दी नहीं आती। कोठरी के अंधकार में वह बड़ी देर तक छप्पर की ओर ताकता रहा। इधर-उधर, भीतर बाहर—चारों ओर चूहों की दौड़ लगी हुई थी। अन्त में निद्रा देवी को दया आगई।

(४)

दूसरे दिन जब देवीदीन की नींद खुली तो दिन चढ़ आया था। देवी आँख मलता हुआ उठ बैठा, फिर उसने कोठरी में चारों ओर नज़र दौड़ाई। उसे ऐसा जान पड़ा मानो वह पहले का देवी नहीं है, मानो रात भर में वह बिलकुल बदल गया है। किंतु कोठरी में कोई परिवर्तन न दिखाई दिया। सारी चीज़ें अपने-अपने स्थान पर रक्खी हुई थीं, किसी की सूरत नहीं बदली थी। छप्पर से छन-छन कर सूर्य की किरणें उसके उस छोटे से घर को आलोकित कर रही थीं, जैसे नित्य करती थीं। हाँ, सुंदरी वहाँ नहीं थी। भिड़े हुए किवाड़ खोलकर देवी बाहर झाँका। उसके पड़ोसी सब अपने-अपने काम में लगे हुए थे, जैसे नित्य लगे रहते थे। संसार अपनी सुव्यवस्थित गति से चला जाता था। परिवर्तन कहीं नाम को भी न था। देवी को आश्चर्य हुआ, ऐसा आश्चर्य जैसा उसने कभी अनुभव नहीं किया था। फिर सुंदरी की अनुपस्थिति ने उसका ध्यान आकृष्ट किया। वह गई कहाँ ? देवी उठकर बाहर दालान में गया, पर सुंदरी कहीं दिखाई न दी। वह फिर अंदर चटाई पर जा बैठा। भाँति-भाँति की शंकायें उसे तंग करने लगीं। इसी प्रकार आध घंटा बीत गया, पर सुंदरी न लौटी। तब उसने नारियल उठाया, चिलम में तम्बाकू जमाई, कुंडी चढ़ाई और एक पड़ोसी के यहाँ आग लेने चला गया।

दस बजे जब देवी खोंचा लेकर सड़क पर पहुँचा, तो बिन्दा महाजन ने पूछा—"आज बड़ी देर करदी, देवी ? देर तक सो गए थे क्या ?"

देवी ने अपने बैठने के स्थान पर झाड़ू लगाते हुए उत्तर दिया—"नहीं, दादा कल रात से घरवाली महनामथ मचाए हुए है। आज सबेरे ही से न जाने कहाँ गायब है।"

महाजन ने बुद्धिमत्ता से सलाह दी—"ज़रा डाट-डपट रक्खा करो। कहीं गई होगी, आ जायगी, औरत को सिर चढ़ाना अच्छा नहीं होता।"

इतने में एक ग्राहक आगया। महाजन का ध्यान उस ओर बँट गया। देवी खोंचा सजाने लगा। बिदा की बेमाँगी सलाह ने कल रात की सारी बातें ताज़ा कर दीं। वह मन ही मन खीझ उठा।

अन्य दिनों की भाँति देवी आज दोपहर को घर भोजन करने नहीं गया। उसे पता चल गया था कि सुंदरी आ गई है। किंतु वह नहीं गया। क्या वह मान करना नहीं जानता? आख़िर, वह भी तो आदमी ही है। आज उसने भुने हुए चनों पर ही संतोष किया। बड़ी भूख लगी हुई थी, चने बड़े स्वादिष्ट मालूम हुए। चने चबाकर उसने लोटा भर पानी पिया और फिर [illegible]ली लेकर मक्खियाँ उड़ाने लगा।

चार बजे का समय था। देवी ग्राहकों की प्रतीक्षा कर रहा था। सहसा एक ओर 'छम-छम' की आवाज़ हुई। देवी ने एक बार उस ओर देखा, फिर मुख दूसरी ओर फेर लिया। आज यह शब्द सुनकर उसे वह हर्ष नहीं हुआ, जो कल हुआ था। यह दुलारी के पैरों की ही झंकार थी। किंतु देवी इस झंकार से जितनी दूर रहना चाहता था, वह उतनी ही निकट आती जाती थी। अंत में किसी ने बिलकुल समीप आकर पूछा—"क्या देख रहे हो लाला?"

विवश होकर देवी ने प्रश्नकर्ता की ओर मुख फेरा—दुलारी खड़ी मुसकिरा रही थी।

देवी ने अन्यमनस्कता से उत्तर दिया—'कुछ नहीं।'

दुलारी के आश्चर्य की सीमा न रही—कहाँ वह कल का स्वागत, कहाँ यह शुष्कता! लेकिन वह टली नहीं, देवीदीन के समीप शिवालय की सीढ़ियों पर बैठ गई। दुलारी क्षणभर देवी के मुख की ओर ध्यान से देखती रही, फिर बोली—"कैसा जी है, लाला?"

"अच्छा है" देवी ने दूसरी ओर मुख किए हुए उत्तर दिया। उसे दुलारी पर असाधारण क्रोध आ रहा था। यह अभागिन फिर आ टपकी—नीचों को मुँह लगाना कितना बुरा होता है।

भाग्यवश इसी समय एक ग्राहक आगया। देवी उधर आकृष्ट हुआ। दुलारी ने उठकर कहा—"चलती हूँ, लाला" और बिना उत्तर की प्रतीक्षा किए एक ओर चली गई। देवी ने संतोष की साँस ली।

आज देवीदीन ने ग्यारह बजे खोंचा बढ़ाया। घर जाने के विचार से उसे भय-सा लग रहा था। इसी कारण वह देर करता रहा। मैं उसके सामने कैसे जाऊँगा? वह क्या कहेगी? मैं क्या उत्तर दूँगा? इसी प्रकार के विचार उसे विकल करते रहे।

देवीदीन को आशा थी कि सुंदरी सो गई होगी। सत्य तो यह है कि इसी आशा ने उसे घर जाने का साहस दिलाया था। किंतु बाड़े में प्रवेश करते ही उसने देखा, उसके घर का दरवाज़ा खुला हुआ है और कोठरी में प्रकाश भी फैला हुआ है। इस प्रकाश ने आशा पर पानी फेर दिया। उसके साहस का अंत हो गया। इस प्रकाश की अपेक्षा अंधकार कितना प्रिय होता। यह प्रकाश शांति के स्थापित होने की घोषणा न थी, यह सूचित कर रहा था कि प्रतिद्वंद्वी युद्ध के लिये तैयार है। देवी के क्षुधा-पीड़ित शरीर में प्रति-घात की शक्ति न थी। उसके जी में आया कि लौट जाय। पर जाय कहाँ? उसे इस समय कहाँ ठिकाना मिलेगा? वह कई क्षण संकल्प-विकल्प की दशा में खड़ा रहा, फिर अपना बचा-बचाया साहस एकत्र करके आगे बढ़ा। उसके मुख पर वह विकट गंभीरता थी जो दुस्साहस की सीमा है।

खोंचा लिए हुए देवी ने घर में प्रवेश किया। सुंदरी चटाई पर, खुले हुए किवाड़ों की ओर मुख किये, बैठी थी। उसने पति के चेहरे पर एक बार दृष्टि डाली, फिर दूसरी ओर मुँह फेर लिया। उसके नेत्रों में अपार तिरस्कार भरा हुआ था। देवी के बदन में आग सी लगी। ऐसा घोर अपमान! उसका हृदय असाधारण क्रोध से आंदोलित हो उठा, नेत्रों से ज्वाला निकलने लगी। उसने अपना बोझ ज़मीन पर धमाके के साथ रख दिया, खुले हुए द्वार की ओर चला, चौखट पर खड़ा-खड़ा क्षण भर कुछ सोचता रहा, फिर जल्दी-जल्दी बाड़े से बाहर चला गया। स्त्री ऐसी कठोर, ऐसी निर्दय, ऐसी हृदयहीन हो सकती है—यह उसे आज ज्ञात हुआ। सारा नारी-समाज आज उसकी दृष्टि में अपराधी था! आज उसे ऐसा जान पड़ता था, मानो महा-निद्रा के बाद उसकी आँखें खुली हों।

सारी रात सुंदरी पति की प्रतीक्षा करती रही। रामरती के गुह की दी हुई जड़ी खाट में बाँधे अपने भाग्य को रोया की। पति के घर से बाहर निकलते ही उसका माथा ठनका था; किसी ने उसके मन में कहा था—'वह न लौटेंगे।' उसके हृदय में प्रबल प्रेरणा हुई थी कि वह देवी के पीछे दौड़े, उसके पैरों से लिपट जाय और मनाकर घर लिवा लावे। किंतु, न जाने, किस अज्ञात शक्ति ने उसके पैरों में बेड़ी डाल दी थी। उसने पति को झिड़कियाँ दी थीं, उसका अपमान किया था, तिरस्कार किया था—केवल इसीलिये कि वे अपने थे। क्या उनका यों रूठ जाना अन्याय नहीं है? इसी तरह वह सारी रात रोती पछताती रही। पर देवी नहीं लौटा।

दूसरे दिन भी देवी का कहीं पता नहीं लगा। सुंदरी का सौभाग्य-सूर्य अस्त हो गया!

(५)

दस वर्ष बीत गये। वह पीपल का वृक्ष जैसा का तैसा खड़ा है। उसमें हर साल नये पल्लव निकलते हैं, हर साल सूखकर गिर जाते हैं। उसकी अगणित डालियों पर आज भी पक्षी विश्राम करते हैं, घोंसले लगाते हैं। उसकी शीतल छाया में आज भी बटोही आराम करते हैं। उसके नीचे आज भी खोंचा लगता है। किंतु खोंचा लगाने-वाला आज कोई मर्द नहीं है, एक दुर्बल, क्षीण-काय स्त्री है। वह है देवीदीन की स्त्री, सुंदरी। सुंदरी की उम्र ढल चुकी है; पति की प्रतीक्षा में उसका एक एक बाल पक गया है। लेकिन उसका उत्साह क्षीण नहीं हुआ। कोई उससे बारबार कहता है—'वे आयेंगे, अवश्य आयेंगे।'

देवी के चले जाने के पश्चात सुंदरी को शौक़ और शृंगार की सारी चीज़ों से अरुचि होगई। उसका पति कृपण अवश्य था, किंतु सुंदरी को पूरी आज़ादी थी—वह जो कुछ चाहती, खर्च करती; जो शौक़ चाहती, पूरा करती। पर, अब वह मोटा खाती है, मोटा पहनती है। इन दस वर्षों में उसे किसी ने किसी से लड़ते-झगड़ते नहीं देखा। अब वह किससे लड़े, किसके बल पर? अपनों ही से तो लड़ा जाता है। जब से देवी गया, वह खाट पर नहीं सोई। दिन भर खोंचा लगाती है, और रात को रूखा-सूखा खाकर चटाई पर पड़ रहती है। किंतु उसके पति की सेज निरंतर सजी रहती है। उस पुरानी खाट पर उसके हाथ की गूथी हुई एक मोटी कथरी बिछी रहती है और उसके ऊपर एक सफ़ेद चद्दर। सिरहाने एक सफ़ेद तकिया भी रखा रहता है। कभी-कभी उस स्वच्छ सेज पर सवेरे बेला और जुही के मुरझाए फूल भी दिखाई देते हैं। उस सेज पर न वह कभी पैर रखती है, न किसी और को रखने देती है। वह अपने पति की स्मृति की पुजारिन है। उपासिका अपने आराध्य-देव का अपमान कब देख सकती है।

साँझ हो चली थी। सुंदरी ने चिमनी जलाई, फिर उसने हाथ जोड़कर सिर झुकाया और रजनी का अभिवादन किया। जब उसने नेत्र खोले तो सहसा उसकी दृष्टि सामने पड़ी। उसने देखा, एक बूढ़ा साधु गेरुए रंग का वस्त्र पहने, गले में रुद्राक्ष की माला डाले, हाथ में बड़ा-सा चिमटा लिये, सामने खड़ा हुआ उसकी ओर ध्यान से देख रहा है। साधु के सिर, मूछों और दाढ़ी के बाल सन की तरह सफ़ेद थे। सुंदरी की आँखों में प्रेमाश्रु छलक आये। क्या उसने साधु को नहीं पहचाना? क्या वह उसे कभी भूल सकती है—जिसकी देव-मूर्ति उसके हृदय-पटल पर अंकित है, जिसकी वह नित्य आराधना करती है? सुंदरी अपने स्थान से उठी और साधु की ओर चली। किंतु वह जल्दी-जल्दी आगे बढ़ गया। जब साधु नेत्रों से ओझल हो गया, तो सुंदरी आँचल में मुँह छिपाकर फूट-फूट कर रोने लगी।

(६)

उपर्युक्त घटना के पश्चात् कई मास बीत गये। सुंदरी इन दिनों अपनी और अपने पति की कमाई के धन से एक मंदिर बनवा रही है। अब उसका धर्मानुराग पूर्ण-रूप से जग पड़ा है। सवेरे गंगा-स्नान करना और मंदिरों में दर्शन-पूजन करना अब उसका नित्य का नियम है। लेकिन अपना काम उसने नहीं छोड़ा, वह नित्य खोंचा लगाती है। समय निकालकर वह मज़दूरों का काम भी देख आती है। अब उसके हृदय में केवल एक लालसा है—'एक बार उनसे फिर भेंट हो जाती!' और उसे पूर्ण आशा थी कि उसकी इच्छा अवश्य पूरी होगी।

क्वार का महीना था। चारों ओर ज्वर का प्रकोप था। कोई ऐसा घर न था, जहाँ दो-चार प्राणी बीमार न पड़े हों। सुंदरी भी एक सप्ताह से पड़ी हुई थी। रामरती अभी जीवित थी। वही उसे सवेरे शाम बनफ़शा पकाकर पिला जाती थी।

उषा की लालिमा पूर्व आकाश को रक्त-रंजित करने

लगी थी। पक्षियों का स्वागत-गान आरंभ हो गया था। इसी समय सुंदरी की आँख खुली। उसका जी आज कुछ हलका था। उसे गंगा-स्नान की धुन सवार हो गई। उसने उठकर पहले पति की सेज के सम्मुख मस्तक झुकाया, फिर चादर ओढ़ी, पीतल की डोलची उठाई, उसमें पूजा की सामग्री रखी, धोती ली, और लाठी टेकती हुई बाहर निकली। साँकल चढ़ाई, ताला लगाया और धीरे-धीरे बाड़े के बाहर हो गई।

हाँपते-काँपते, उठते-बैठते, किसी-न-किसी तरह सुंदरी दो घंटे में त्रिवेणी के तट पर पहुँच गई। किनारे हड़-बोंग मचा हुआ था। पंडे सुंदरी को देखते ही चीखने लगे—"माई इधर", "माताजी इधर", "बाईजी इधर"। भक्त-जनों की भीड़ थी। कुछ नहा रहे थे, कुछ नहाकर आ रहे थे, कुछ नहाने आ रहे थे। सुंदरी ने अपनी लाठी, धोती और चादर एक चौकी पर रख दी, कुछ देर बैठी सुस्ताती रही, फिर डोलची उठाई और तट पर आकर डोलची और पूजा के पात्र रेत से रगड़-रगड़ कर साफ़ करने लगी।

वह गिरती-पड़ती तट की ओर दौड़ी!

डोलची साफ़ करके उसने पूजा के पात्र उसमें यथास्थान सजा दिये। डोलची घाटिये को सौंप कर वह जल में पैठ कर स्नान करने लगी। जब वह चार-पाँच डुबकियाँ लगा चुकी, तो, घुटने भर जल में खड़े-खड़े, अंजली में भर-भर कर उसने सूर्य को जल चढ़ाया, फिर माँ जाह्नवी से एक प्रार्थना की। उसने तट की ओर मुँह मोड़ा। उसका शरीर काँप रहा था। उसे ऐसा जान पड़ा मानो उसका साधु पति तट पर खड़ा हुआ उसकी ओर ध्यान से देख रहा है। वह गिरती-पड़ती, गीली धोती सँभालती हुई, तट की ओर दौड़ी! जब वह किनारे पहुँची, तो साधु अदृश्य हो गया था। वह मूर्च्छित होकर गीले तट पर गिर पड़ी। उसकी वह मूर्छा फिर नहीं टूटी। उसकी वह साध, वह लालसा, जिस पर उसका जीवन अवलंबित था, पूरी हो गई!

राजेश्वरप्रसादसिंह

सोवियट रूस में शिक्षा-प्रचार
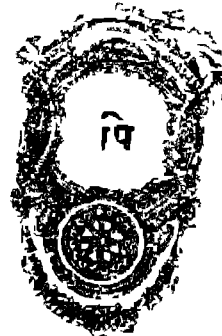
पिछले दिनों रूस की सोवियट सरकार के विषय में भले और बुरे दोनों प्रकार के मत प्रबल हो रहे थे। एक ओर जहाँ पूँजीवाद के समर्थक खोज-खोजकर उसकी बुराइयाँ प्रकट कर रहे थे, वहीं दूसरी ओर गुणग्राही जन-समाज ने उसकी अच्छाइयों पर भी प्रकाश डाला, और इस प्रकार संसार में उसकी सम्मान-रक्षा की। इस पारस्परिक स्पर्धा में सोवियट सरकार की जिन विशेषताओं का पता लगा, उनमें वहाँ की शिक्षा-प्रचार की पद्धति का स्थान मुख्य है, क्योंकि प्रत्येक राष्ट्र या जन-समाज का उत्कर्ष उसकी शिक्षा पर ही विशेष रूप से अवलंबन करता है। इस दृष्टि से हम कह सकते हैं कि सोवियट रूस की शिक्षा केवल उसके तीन या चार वर्षों का ही परिश्रम है। क्योंकि इसके पूर्व तो वहाँ ज़ारशाही का राज्य था, जिसका प्रधान उद्देश्य जनता को अशिक्षित बनाए रखकर मनमानी लूट का बाज़ार गर्म रखना ही था। फलतः हमें वर्तमान सोवियट सरकार की शिक्षा का

वास्तविक स्वरूप जानने के लिये भूतपूर्व ज़ार सरकार की शिक्षा-योजना पर ध्यान देना होगा।

यह एक प्रसिद्ध बात है कि इस शताब्दी के आरंभ में रूस शिक्षा की दृष्टि से बहुत पिछड़ा हुआ था, यही नहीं बल्कि ज़ारशाही ने तो इस विषय में एकदम ही उदासीनता धारण करली थी। क्योंकि उस समय शिक्षा केवल उच्चवर्ग के लिये ही आवश्यक मानी जाती थी। अतएव किसान और मज़दूर-वर्ग के बालकों की शिक्षा में बड़े-बड़े विघ्न उपस्थित होते थे। ज़ार ऐलेक्जेंडर के समय में शिक्षा-विभाग के एक अधिकारी ने कहा था कि—"ज्ञान का उपयोग नमक की तरह थोड़े प्रमाण में किया जाना ही लाभप्रद हो सकता है।" इसी तरह प्रायः वहां की सभी शिक्षा-संस्थाओं पर सरकारी निरीक्षकों का दबाव भी बेहद रहता था। बेचारे शिक्षकों को पेट-रूपी गड्ढा भरने तक के लिये भी पूरा वेतन नहीं मिलता था और उच्च-शिक्षा की संस्थाओं में विद्यार्थियों पर कठोर नियन्त्रण रक्खा जाता था। उस समय के कुछ नियम इस प्रकार थे —

"विश्वविद्यालय के भवन या उसके अधिकार की भूमि पर विद्यार्थियों के वाचनालय, भोजनालय अथवा नाट्यशाला एवं सभा-समाज अथवा गान-वाद्यादि के रूप में सम्मेलन करने का निषेध किया जाता है। इसी प्रकार सब लोगों के एक साथ बैठकर विचार-विनिमय करने या सार्वजनिक विषयों पर भाषण करने के लिये भी विद्यार्थी लोग प्रयत्न न करें, और न किसी प्रकार का चंदा या सहायता के लिये द्रव्य एकत्रित करने का उद्योग किया जाय। जिन निजी संस्थाओं के उद्देश्य बुरे न हों, उनमें भी युनिवर्सिटी के अधिकारी लोग प्रत्येक अवसर पर बिना आज्ञा लिये सम्मिलित न हों।"

इन कठोर नियमों के विरुद्ध आंदोलन उठाया जाना विद्यार्थियों के लिए स्वाभाविक ही था। कदाचित् ज़ारशाही का मनोरथ इसमें यह हो कि नई प्रजा स्वतन्त्रता-पूर्वक विचार ही न कर सके। किंतु इसमें तो खुद उसी की जड़ हिल गई, और अन्त में आज उसे नाम-शेष हो जाना पड़ा है। सारांश, ज़ारशाही के साथ साथ उसकी शिक्षा भी नष्ट हो गई, और तब आकर जिन हज़ारों मनुष्यों के लिये सरस्वती के द्वार बंद हो रहे थे, वे जैसे-तैसे विद्या-मंदिर में प्रविष्ट हो सके। किंतु इतने विशाल जन-समाज की इच्छा-पूर्ति के लिये सोवियट सरकार को बड़ी-बड़ी योजनाएँ करनी पड़ी हैं।

सोवियट सरकार एकदम नई थी, अतएव इसके पास द्रव्य का भी अभाव ही सा था; इधर देश में ख़ून-ख़च्चर भी बंद न हो पाया था, दुर्भिक्ष के कारण अन्न कष्ट से प्रजा भी त्राहि-त्राहि पुकार रही थी; किंतु फिर भी केवल तीन वर्ष में सोवियट सरकार इन विपत्तियों को पार कर आगे बढ़ी, और अपने देश की समग्र प्रजा को शिक्षा-प्रदान करने का उसने प्रबंध कर दिया। क्योंकि उसने देखा कि जिस स्वाधीनता के लिये वह खुद कष्ट उठा रही है, उसे सुरक्षित रखने के लिये प्रत्येक प्रजा-जन का शिक्षित होना परमावश्यक है। अर्थात् इस भावना के द्वारा उसने शिक्षा-विषयक वर्णभेद को एकदम नष्ट कर दिया। इसके लिये सर्व प्रथम उसने देवालय और पाठशाला के बीच का परापूर्व संबंध तोड़ दिया। क्योंकि ज़ारशाही के ज़माने में पादरियों ने शुद्ध शिक्षा पर जो आवरण डाल दिया था, उसे हटाना आवश्यक था। अतएव उसने धर्म-शिक्षा के नाम पर चलनेवाले ज़ारशाही के दौर-दौरे को नष्ट करने के लिये शिक्षा को ही देवालय से पृथक् कर दिया।

आज रूस में प्रत्येक प्रांत अपनी शिक्षा का निर्माण स्वतन्त्रता-पूर्वक करता है; और संपूर्ण रूस उसकी सामान्य नीति में समता रखने का यत्न करता है; क्योंकि वहाँ की मध्यवर्ती सत्ता भी इतनी अविचारी नहीं है, जो इन विभिन्न शिक्षा संस्थाओं की स्वाधीनता को नष्ट कर दे। अर्थात् अन्य सभी विषयों में वहाँ के प्रांत ही नहीं बल्कि प्रत्येक छोटे-से-छोटा गाँव भी अपने शासन और व्यवस्था के लिये स्वाधीन है।

रूस में इस समय शिक्षा के लिये जो प्रयत्न किए जा रहे हैं वे इन चार भागों में विभक्त किए जा सकते हैं —

(१) बालकों की शिक्षा (२) प्राथमिक शिक्षा [श्रमजीवी पाठशाला] (३) उद्योग-शालाएँ (४) उच्च शिक्षा-संस्थाएँ (कॉलेज, युनिवर्सिटी, इंस्टीट्यूट आदि)। इन सब विभागों पर हमें क्रमशः विचार करना चाहिए।

बालकों की शिक्षा

इसमें तीन से लगाकर आठ वर्ष की अवस्था तक के बालकों की शिक्षा का समावेश होता है। रूस की जनता इसे 'विद्यालय में जाने से पूर्व का समय' (Pre-school Period) कहते हैं। क्योंकि अभी रूस के शिक्षा-शास्त्री छोटे बच्चों की शिक्षा के लिये यथेष्ट ध्यान नहीं दे सकते हैं, अतएव यह क्षेत्र विशेष रूप से विकसित

नहीं हो सका है। किंतु फिर भी इस अवस्था वाले देश के समस्त बालकों की शिक्षा के लिये वे प्राणपन से चेष्टा कर रहे हैं।

इसके लिये सर्व प्रथम सोवियट सरकार विभिन्न किंडरगार्टन शालाओं के रूप में उद्योग करती है। और इसके लिये जहाँ जैसा स्थान और साधन मिल जाता है, उसी के द्वारा किंडरगार्टन स्कूल खोलकर नवीन प्रजा का संगोपन किया जाने लगता है। कितनी ही शालाएँ उनमें बहुत ही सुंदर हैं। किंतु अभी ये संस्थाएँ विशेषकर बालकों के खेलने के लिये खुली जगह, सुंदर पोशाक और अच्छी पंगति एवं माता-पिता के जंजाल से बचाकर बच्चों को आराम पहुँचाने आदि के उद्देश्यों से ही चलाई जा रही हैं।

किंतु इस शिक्षा-क्षेत्र में और भी एक प्रवृत्ति उल्लेखनीय कही जा सकती है। वह यह कि रूस के शिक्षा-शास्त्री ज़ोरों के साथ नवीन बाल-साहित्य निर्माण करने में तत्पर हो गए हैं। भारतवर्ष की ही तरह रूस में भी भूतकालीन देवी-देवताओं तथा राजा-रानी और परियों की कहानियाँ प्रचलित हैं। इसी प्रकार वहाँ भी अनेक रसिक राजकुमार और वीर सेनापति हो गए हैं। किंतु यह सब भूत-कालीन साहित्य अब किस काम आ सकता है? क्योंकि देवी-देवताओं की कल्पित कहानियाँ केवल मनोरंजन ही कर सकती हैं। अतएव यदि रूस के राजकुमार और वीर सेनापतियों की कहानियाँ (जोकि ज़ारशाही के कृपापात्र थे) बालकों के सामने रक्खी जायँ, तो इससे ज़ारशाही फिर ज़ोर पकड़ सकती है, और सोवियट सरकार अपने बालकों के सम्मुख नई दुनिया का आदर्श रखना चाहती है, तथा वह भी देवी-देवताओं के रूप में कल्पित नहीं, बल्कि यथार्थ और प्रत्यक्ष। इसी लिये वर्तमान कला और विज्ञान दोनों को दृष्टि-पथ में रखकर वहाँ नवीन बाल-साहित्य निर्माण करने की तैयारी हो रही है। यह संपूर्ण प्रयोग जितना गंभीर है, उतना ही आकर्षक भी है। भूतकाल पर से पैर हटाकर वर्तमान में आ खड़े होने और भविष्य का निर्माण करने के विषय में सोवियट रूस के प्रयत्न को देख लोग भले ही हँसते रहें, किंतु इस नई प्रजा के सदुपयोग में सच्ची लगन और आंतरिक श्रद्धा होने से कभी इनकार नहीं किया जा सकता। क्योंकि इस समय तो सच्ची दुनिया बालकों के ही सामने खड़ी की जानी आवश्यक है, और वह भी आधुनिक विज्ञान एवं कला की दृष्टि को सामने रखकर। उसी दशा में शिक्षा लाभप्रद हो सकती है।

इस प्रकार रूस के तीन से लगाकर आठ वर्ष तक के बालकों के लिये सोवियट सरकार किंडरगार्टन-शालाओं द्वारा पौष्टिक भोजन, आराम और खेल-कूद के स्थान, कला-कौशल का परिचय, प्रकृति का ज्ञान तथा वर्तमान संसार और सामाजिक-संस्थाओं का परिचय देकर भावी शिक्षा की नींव डाल रही है।

प्राथमिक-शिक्षा (श्रमजीवी शाला)

रूस में नियमबद्ध पाठशालाएँ आठ वर्ष की अवस्था वाले बालकों से प्रारंभ की जाती हैं। ये पाठशालाएँ मज़दूर या श्रमजीवी-शालाएँ कही जाती हैं। हमारी प्राथमिक-शालाओं से ये बहुत कुछ मिलती-जुलती होती हैं। किंतु देश के प्रत्येक बालक को आठ वर्ष की अवस्था होते ही अनिवार्य रूप से इन शालाओं में भर्ती होना ही पड़ता है।

ये शालाएँ दो भागों में विभक्त रहती हैं। एक विभाग आठ से बारह वर्ष की अवस्था तक के लिये, और दूसरा बारह से लगाकर पंद्रह, सोलह या सत्रह वर्ष की अवस्था तक के लिये होता है। किंतु अभी इस विषय में रूस में मतभेद है कि विशेष प्रकार की औद्योगिक शिक्षा पंद्रह वर्ष की अवस्था से आरंभ की जाय या सत्रहवें वर्ष से, अतएव इस शाला में पंद्रह से सत्रह वर्ष की अवस्था तक रहना पड़ता है।

इस प्रकार की शालाएँ अधिकतर देहातों में ही होती हैं। क्योंकि सन् १९२४ ई० में ऐसी शालाएँ प्रतिशत ८७ देहातों में और शेष १३ के प्रमाण से शहरों में थीं। किंतु छोटे-छोटे गाँवों में ऐसी शालाएँ बड़ी ही कठिनाइयों के बीच टिक पाती हैं। क्योंकि वहाँ स्थान तो मिल जाता है, किंतु साधनों का बहुधा अभाव ही होता है। बेचारे देहाती सर्वथा अशिक्षित होते हैं, और घरू कामों के लिये वे प्रायः अपने बालकों को इधर-उधर आस-पास के गाँवों में भेज देते हैं; और ख़ासकर फ़सल के वक़्त तो स्कूल एकदम ख़ाली हो जाते हैं। किंतु इन सब कठिनाइयों का सामना करते हुए तरुण-रूस शिक्षा-पथ में बराबर आगे बढ़ता जा रहा है। यहाँ तक कि नई और पुरानी शिक्षा का अंतर देश के अँधेरे कोने में भी अपना प्रकाश फैला

चुका है। एक ग्रामीण अध्यापिका, जो आज दश वर्ष से यह कार्य कर रही है, अपना अनुभव इस प्रकार प्रकट करती है:—

"प्राचीन पद्धति सरल थी। हम लिखना-पढ़ना और थोड़ा-सा गणित सिखातीं और सारी कक्षाएँ एक साथ खड़े होकर कविताएँ सुनातीं तथा कंठस्थ करती थीं। अध्यापक का काम केवल इतना ही था कि वह पुस्तक को खोलकर उस यंत्र को चला दे। किंतु आज तो पुस्तकों का कहीं भी पता नहीं है। बच्चों के लिये अपने घर-द्वार, मुहल्ले और गाँव की व्यवस्था आदि देखने का काम ही मुख्य हो गया है। मेरी पाठशाला के बालकों ने सारे गाँव की स्वच्छता की जाँच की, और अंत में जाकर वे इस निर्णय पर पहुँचे कि, लोगों को गंदा पानी पीना पड़ता है, इसका ठीक उपाय होना चाहिए। सारांश, इस समय तो शिक्षा का मुख्य आधार अवलोकन और तुलना पर ही है, पुस्तकों की अब कोई आवश्यकता नहीं रह गई है। शिक्षक को प्रतिदिन शिक्षा की तैयारी करके ही स्कूल में आना पड़ता है, और उसे अपने विषय का सूक्ष्मता-पूर्वक अध्ययन करना पड़ता है किंतु हमें इस बात का अभ्यास न होने से बड़ी कठिनाई का सामना करना पड़ रहा है। कितने ही अध्यापक तो मारे भय के इस नये प्रयोग को आज़माते तक नहीं। मैं भी पहले तो बहुत डरती रही, किंतु एक बार जैसे ही मैंने उसे आरंभ किया कि मेरा भय दूर होकर तत्काल उस पर दृढ़ विश्वास हो गया। और अब तो मुझे यही प्रतीत होता है कि इस नई पद्धति में ही शिक्षक के लिए वास्तविक कार्य करने का अवसर प्राप्त होता है, साथ ही विद्यार्थियों के लिए विकास की सुविधा भी इसीमें रहती है।"

इसके बाद हमें ऐसी ही एक ग्रामीण शाला पर दृष्टिपात करने से ज्ञात होगा कि यहाँ के विद्यार्थियों के पास पुस्तकें नहीं हैं। बालकों ने सितंबर मास में ही स्कूल में आना शुरू किया है; और तभी से उन्होंने वृक्षों के पत्ते, बीज, फल-फूल आदि संग्रह करना शुरू कर दिया है। शिक्षा के बाद बचे हुए समय में वे इन वस्तुओं को इकट्ठा करते और पाठशाला में पहुँचने पर इनके विषय में चर्चा करते हैं। इसी प्रकार ऋतुओं के अनुरूप पक्षी आदि भी उन्होंने मिट्टी के बना लिये हैं। ये बालक यहाँ आने से पहले किसी भी किंडरगार्टन स्कूल में नहीं गये हैं; और आजकल की तरह पुस्तकों द्वारा स्कूली-शिक्षा आरंभ करने के बदले उन्होंने अपने ग्रामीण-जीवन से ही शिक्षा का प्रारंभ कर प्रकृति-रूपी पुस्तक से ज्ञान-संग्रह का उद्योग किया है। ऐसी दशा में वे क्योंकर अशिक्षित रह सकते हैं? हम समझते हैं कि देहाती पाठशालाओं के ये नमूने पर्याप्त होंगे।

यद्यपि शहरों की प्राथमिक शालाएँ विशेष समृद्ध अवश्य होती हैं; किंतु फिर भी आधुनिक शिक्षा शास्त्र की दृष्टि से तो वे सर्वथा अपूर्ण ही कही जायँगी। जो हो, किंतु विषय, पद्धति और विद्यार्थी इन तीन विषयों में ये शालाएँ विशेष रूप से लोगों का ध्यान आकर्षित करती हैं।

शिक्षा के विषयों का चुनाव विद्यार्थी के जीवन-क्रम को देखकर किया जाता है और इस जीवित विषय में से वे शिक्षणीय वस्तु को खोज निकालते हैं। कोई स्कूल यदि देहात की स्वच्छता का विषय चुनता है, तो कोई आसपास की खदान की जानकारी आरंभ कर देता है, और कोई इसी तरह किसी अन्य विषय को हाथ में ले लेता है। विषय को चुन लेने के बाद वे, उससे संबंध रखनेवाले, अभ्यास-क्रम को बाँधते हैं। यदि एक श्रमजीवी-शाला के आचार्य के शब्दों में कहा जाय, तो "हम स्कूल के काम काज और नागरिक जीवन को संबद्ध करना चाहते हैं। हम न तो किसी विषय विशेष की शिक्षा देते हैं और न गणित, भूगोल या ऐसे ही किसी गूढ़ विषय में बालक को उलझा देते हैं, बल्कि प्रत्येक कक्षा में हम किसी भी एक वस्तु (Problem) का अध्ययन, मनन और विवेचन करवाते हैं। और वह वस्तु भी बाहर की नहीं, वरन् अपने ही आसपास की सामग्री में से चुनते हैं।"

हम शिक्षा-शास्त्र में जिसे Project Method कहते हैं, उसी ढंग पर ये श्रमजीवी-शालाएँ शिक्षा देती हैं। शिक्षा के विषय केवल चित्त को भाँति-भाँति का स्वल्प-व्यायाम देने की ही दृष्टि से चुने जाते हैं तो कुछ ही दिनों में, जीवन से उनका संबंध छूट जाने पर, चित्त फिर पूर्ववत् शिथिल होने लगता है, और वह संपूर्ण शिक्षा कृत्रिम बनजाती है। इसीलिए उपर्युक्त श्रमजीवी शालाओं में शिक्षा के विषय मनुष्य के जीवन-क्रम में से ही पसंद किये जाते हैं, और उनके संबंध में जो कुछ सीखना होता है, उसीसे थोड़ा बहुत मानसिक-व्यायाम हो जाता है।

इस प्रकार विषय और पद्धति दोनों परस्पर संबद्ध होते हैं। यद्यपि रूस के कितने ही शिक्षा-शास्त्रियों के मता-

नुसार यह "प्रोजेक्ट मेथॅड" प्रारंभ के तीन चार वर्षों के लिए ही विशेष उपयोगी हो सकता है; किंतु फिर भी अभी तक वे इस विषय में किसी निश्चित निर्णय पर नहीं पहुँचे है। क्योंकि आज भी वे उन सब श्रमजीवी शालाओं मे इस प्रयोग का अनुभव ही कर रहे हैं। संभव है कि शीघ्र ही वे किसी अच्छे परिणाम पर पहुँच जायें। यदि ऐसा हुआ तो शिक्षा-संसार मे एक विचित्र क्रांति उत्पन्न हो जायगी।

उक्त शालाओं की तीसरी विशेषता विद्यार्थियो के संबंध की है। रूस की तमाम मजदूर शालाओं तथा अन्य शिक्षा संस्थाओं में विद्यार्थी बड़े सम्मान के साथ रक्खे जाते हैं। नगर की इन शालाओं मे प्रत्येक कक्षा मे तीन-तीन विद्यार्थियों की एक समिति बनी होती है; जिसका एक मंत्री भी होता है। स्कूल की प्रबंध-समिति में इस मंत्री की सम्मति भी ली जाती है। सारे स्कूल में विद्यार्थियों की समस्त प्रवृत्तियाँ केवल विद्यार्थियों के ही हाथ मे रहती हैं। स्वच्छता, व्यायाम, खेल-कूद आदि विभाग के मंत्री भी उसी स्कूल के विद्यार्थी होते हैं। किंतु इन सबमें अधिक महत्त्वपूर्ण कार्य विद्यार्थियों के नियमन का है सो वह भी इन्हीं के हाथ में रहता है। अध्यापक लोग उसमें ज़रा भी हस्तक्षेप नहीं करते। किंतु इससे यह न समझ लेना चाहिए कि उन स्कूलों मे बड़ी अव्यवस्था मच जाती होगी, किंतु वहाँ के विद्यार्थी तो कक्षा बदलते समय भी बड़ी ही शांति से काम लेते हैं। क्योंकि रूस में शिक्षा का मूल सिद्धांत ही विद्यार्थियों का स्वराज्य माना गया है, और वहाँ के प्रायः सभी शिक्षक इस पर मुग्ध हैं।

विद्यार्थी गण अपने सहयोगी भंडार चलाते हुए सामाजिक शिक्षा प्राप्त करते हैं। विद्यार्थी-मंडल की स्वाधीनता, अध्यापक और विद्यार्थियों के बीच एक मत, स्कूल-कमिटी में विद्यार्थियों का स्थान, निरीक्षण-कर्ताओं को पाठशाला की संपूर्ण जानकारी करा देने के विषय में कर्मचारियों का उत्तरदायित्व, आदि कारणों से विद्यार्थी रूस की शालाओं को अपना ही मानते हैं, और स्वयं उसके एक सजीव अंग के रूप में बन कर रहते हैं।

ये तीनों विशेषताएँ केवल श्रमजीवी शालाओं में ही नहीं देखी जातीं, बल्कि सोवियट रूस की प्रत्येक शाला में ये प्रत्यक्ष दिखाई देता है, और रूस का अनुभव बतलाता है कि आठ से पंद्रह या सत्रह वर्ष की अवस्था वाले विद्यार्थियों के प्रत्येक स्कूल में इन बातों का बड़ी ही आसानी के साथ अमल किया जा सकता है।

उद्योग-शालाएँ

उक्त श्रमजीवी शालाओं के बाद रूस की उद्योग-शालाओं (Professional Schools) का नंबर आता है। क्योंकि उक्त श्रमशाला से निकलने के बाद विद्यार्थियों को किसी औद्योगिक शाला में भर्ती होना पड़ता है, जहाँ उन्हें चार वर्ष रहना पड़ता है। ये शालाएँ इस समय वहाँ तीन प्रकार की हैं.—(१) कृषिशाला (२) शिल्प-शाला (३) यंत्रकला-विद्यालय। इन स्कूलों में चार घंटे पढ़ाई और चार घंटे परिश्रम (मज़दूरी) करने का नियम होता है। रूस के विभिन्न व्यापारी-मंडल इन स्कूलों के विद्यार्थी-वर्ग को अपने-अपने हित की दृष्टि से उत्साहित करते और इस कार्य में उचित भाग लेते हैं। यंत्रकला के विद्यालयों में दो प्रकार के विद्यार्थी भर्ती किए जाते हैं। एक तो वे उम्मेदवार जो कि आगे चलकर किसी कारखाने में काम करना चाहते हैं, दूसरे वे कारीगर, जोकि कारखानों में काम करते करते बड़े हो चले हैं, किंतु अभी तक जिन्हें हस्त-कौशल के सिवाय किसी विषय का संस्कार-युक्त सैद्धांतिक ज्ञान प्राप्त करना आवश्यक जान पड़ता है।

इन दोनो प्रकार के विद्यार्थियों को उद्योग-शालाओं में योग्यतानुसार शिक्षा दी जाती है। इस प्रकार की शालाओं के विषय में एक प्रिंसिपल महाशय लिखते हैं कि—"व्यापार की दृष्टि से देखते हुए हमें एक उत्तम और काम करने वाले कारीगर की आवश्यकता है, और सामाजिक दृष्टि से हम एक उत्तम नागरिक की आवश्यकता अनुभव करते हैं, यही कारण है कि इन शालाओं का अभ्यास-क्रम हमें ऐसा बनाना पड़ता है, जो इन दोनों उद्देश्यों की पूर्ति कर सके।"

रूस की औद्योगिक शालाएँ निम्न विषयों में विशेष रूप से सर्व-साधारण का ध्यान अपनी ओर आकर्षित करती हैं.—

प्रथम तो यह कि विद्यार्थी लोग यथार्थ में काम करके कमाने लगते हैं, अर्थात् वे शारीरिक-श्रम द्वारा ही निर्वाह करना सीखते हैं। इसी कारण विद्यालय से शिक्षित होकर निकलने के बाद वे नौकरी की तलाश में दौड़ नहीं

लगाते, बल्कि देशके जीवन में अपना स्थान निश्चित कर लेते हैं; साथही वे एक उत्तम नागरिक के नाते अपने कर्तव्य से भी नहीं चूकते, जो कि शिक्षा और समाज-सेवा का मूल-मंत्र है।

उच्च शिक्षा-संस्थाएं

सोवियट सरकार के शिक्षा-रूपी सोपान पर वहां की उच्च शिक्षा देने वाली संस्थाएं तीसरी सीढ़ी कही जा सकती है। ई० सन् १९२५ में उच्च शिक्षा प्रदान करने वाली संस्थाएं इस प्रकार थीं —

डाक्टरी विभागकी ६६, शिक्षा-शास्त्र की २३१, कृषि-विभाग की १५२, कला-कौशल की २१६, अर्थ-शास्त्र और समाज-शास्त्र की ४३ तथा संगीत और कला की ६२।

इनमें कई संस्थाओं के भवन और साधनों पर दृष्टिपात करने से उनकी दरिद्रावस्था का प्रत्यक्ष परिचय होजाता है। किंतु उनकी प्रयोग-शालाओं और पुस्तकालयों की अवस्था बड़ी संतोष-जनक कही जा सकती है। साथ ही उन्हें अधिक सम्पन्न बनाने का प्रयत्न भी किया जा रहा है।

उपर्युक्त उच्च श्रेणी की शिक्षा देने वाली संस्थाओं के विषय में क्रमशः विचार करते हुए सर्व प्रथम हमारी दृष्टि वहां के कालेजों पर जाती है। किंतु वहां के कालेज हमारे आर्ट कालेजों की तरह नहीं हैं, बल्कि वहां के उच्च कलाभवन (Technical Schools) कहलाते हैं। स्टेलीनोव में इस प्रकार का एक कालेज है जिसकी जानकारी प्राप्त करलेने से ऐसी संस्थाओं के विषय में ठीक अनुमान किया जा सकता है।

स्टेलीनोव के इस कला भवन में २८० विद्यार्थी हैं उनमें से आधे तो खदानों का काम सीखते हैं और शेष आधे मेकेनिकल इंजीनियरिंग के प्रयोग करते हैं। संस्था की ओर से शिक्षा की व्यवस्था, रहने के लिए स्थान और विद्यार्थी के लिए भोजनादि के व्यय का भी कुछ प्रबंध किया जाता है। इसके अतिरिक्त प्रतिमास विद्यार्थियों को पर्याप्त रूबल (रूसी सिक्के) भी दिए जाते हैं। इस भवन की इमारतें आलीशान तो नहीं हैं, किंतु वे सादी, सुंदर और मज़बूत एवं हवा और प्रकाश-युक्त अवश्य हैं।

कॉलेज

इन कला-भवनों में प्रविष्ट होने वाले विद्यार्थियों के लिए किसी व्यापारी मंडल के प्रमाणपत्र की आवश्यकता होती है। इसी प्रकार संस्था में भर्ती होने से पहले विद्यार्थी के लिए किसी एक व्यवसाय में वर्ष भर काम करके अनुभव प्राप्त करलेना भी अनिवार्य होता है। क्योंकि बिना इसके वह संस्था में प्रविष्ट नहीं हो सकता। कला भवनों में बड़ी-बड़ी छुट्टियां होने पर भी कम से कम दो महीने के लिए विद्यार्थियों को, अपनी रुचि के अनुकूल, व्यवसाय में लगा रहना पड़ता है। इन दृष्टियों से हम यहाँ के कालेजों को औद्योगिक-शालाएं ही कह सकते हैं। क्योंकि इन संस्थाओं में भर्ती होने के लिए जब कभी कोई विद्यार्थी आता है तो वह किसी व्यवसायी मंडल का अंग बन कर ही आता है, और जब तक वह कला भवन में रहता है, तबतक केवल हाथ पैर के श्रम से बचकर दिमागी श्रम पर ही आधार नहीं रखता। यही कारण है कि संस्था से निकलने पर वह निरे यंत्र की तरह नहीं, बल्कि एक विचारशील व्यवसायी के रूप में ही सामने आता है।

इसके अतिरिक्त एक बात और भी विचारणीय है, वह यह कि रूस की श्रम-शालाओं में जहां विद्यार्थी का स्थान गौरवास्पद मानागया है, वहीं वह नए विद्यार्थी के नाते, कलाभवन में प्रविष्ट होते ही, 'विद्यार्थि-स्वराज्य' का सदस्य भी मान लिया जाता है, और उसे कला-भवन की सम्पूर्ण व्यवस्था में हाथ बँटाने का अधिकार भी प्राप्त होजाता है। दो अध्यापकों के पीछे एक विद्यार्थी के प्रमाण से उनके प्रतिनिधित्व की गणना होती है, और कलाभवन की प्रत्येक विभाग की व्यवस्था में उसकी सम्मति का आदर किया जाता है। इस प्रकार, यथार्थ में यदि देखा जाय तो, विद्यार्थी लोग इन कला भवनों के अंग-भूत बन जाते हैं, और इसीलिए वे इन संस्थाओं को भी आत्म-भाव से देखते हैं।

कला भवन के विद्यार्थियों में गृहस्थी के बंधन से बंधा हुआ छात्र शायद ही कोई होगा, अथवा गृहस्थ बनने की इच्छा भी उनलोगों में विरले ही किसी के मनमें होगी, क्योंकि प्रायः वे सब श्रम-जीवी समाज के ही बालक होते हैं, अतएव वे विभिन्न व्यवसायों में निपुण बनने की ही विशेष उत्सुकता दिखलाते हैं। सारांश, ये सब विद्यार्थी इस समय तो रूस के भूत-काल से विमुख हैं, और देश का भविष्य निर्माण करने के लिए जी-जान से कोशिश कर रहे हैं।

स्टेलीनोव के कलाभवन में विद्यार्थी गण कठिन श्रम-युक्त जीवन बिताते हैं। बड़े-बड़े निवास-भवनों में मोटे तख़्तों पर चटाइयाँ बिछाकर सोते हैं। उनका भोजन भी बहुत सादा और आडंबर-हीन होता है। जीवन के ऐश-आराम वहाँ नाम को भी नहीं दिखाई देते। किंतु इतने पर भी वहाँ के विद्यार्थी और अध्यापक वर्ग उल्लासयुक्त जीवन बिताते हैं, क्योंकि इस समय देश-भर ने यही ढंग पसंद कर लिया है और इसीमें उन्हें जीवन के वास्तविक आनंद का अनुभव भी होता है।

इन कलाभवनों का एक विशेष विभाग होता है, जहाँ अधिक अवस्था के कारीगर नए ज़माने की तालीम पाते हैं। इस विभाग का नाम "रबफक" रखा गया है। जो कारीगर इस समय विभिन्न उद्योगों में लगे हुए हैं, किंतु जिन्हें उन व्यवसायों की शिक्षा नहीं मिल सकी है, वे ही इस "रबफक" में तालीम पाते हैं। इस प्रकार इन विभागों के द्वारा जब सभी पुराने कारीगर तालीम पा चुकेंगे, तब ये अपने आप बंद हो जायँगे। इन शालाओं का संचालन भी ठीक कलाभवन की ही तरह किया जाता है। हाँ, यह अवश्य होता है, कि जहाँ कुछ "रबफक" दिनमें चलाये जाते हैं वहाँ कुछ रात में भी तालीम देते हैं। साधारणतः जिस व्यवसायी ने किसी न किसी व्यवसाय में तीन वर्ष काम किया है, वही इन "रबफक" में प्रविष्ट हो सकता है।

यूनिवर्सिटियाँ (विश्वविद्यालय)

रूस के कालेजों के बाद वहाँ की यूनिवर्सिटियों का नंबर आता है। किंतु भारत या अन्य देशों में ये संस्थाएँ जिस आशय से स्थापित हुई हैं, उससे रूस का उद्देश्य सर्वथा भिन्न है। यही नहीं, बल्कि वहाँ तो यूनिवर्सिटी शब्द तक से लोगों को चिढ़ उत्पन्न हो गई है। क्योंकि पुरानी यूनिवर्सिटियाँ किसी न किसी रूप में ज़ारशाही की ही पोषक थीं और उस ज़माने में वे केवल उच्चश्रेणी के बालकों को शिक्षा प्रदान करने ही के लिए निर्मित हुई थीं। यही कारण है कि आज न तो उस धनिक-वर्ग का ही पता है, और न उनकी यूनिवर्सिटियों का ही कोई नाम लेता है। जिस समुदाय के लोगों का जीवन सुखमय था, वे ही अब तक इन संस्थाओं में तालीम पाते थे, किंतु जब सोवियट रूस ने उस समुदाय को ही जड़ से मिटा दिया, तब उनके उपयोग की यूनिवर्सिटियों का अनायास लोप हो जाना स्वाभाविक ही था। सारांश, इस समय तो जो लोग किसी व्यवसाय विशेष में प्रवीण होना चाहते हैं, उन्हींके लिए ये संस्थाएँ चलाई जाती हैं। इनके अतिरिक्त जो विद्यार्थी विज्ञान, तत्त्वज्ञान आदि विषयों का गहरा अध्ययन करना चाहते हैं, वे रूस की "इन्स्टीट्यूट" (Institutes) में भर्ती होते हैं। किंतु इस समय तो सोवियट रूस में हमारी यूनिवर्सिटियों जैसी स्वतंत्र संस्थाएँ बिलकुल ही नहीं हैं। प्रत्येक व्यवसाय के विषय में जो कुछ खोज करनी होती है, उसके लिए स्वतंत्र विश्वविद्यालय खोल कर खर्चा बढ़ाने की अपेक्षा उस व्यवसाय के कारखाने के साथ ही अनुसंधान कार्य की योजना कर देने से दो प्रकार का लाभ होता है—प्रथम तो खर्च कम लगता है, दूसरे जो कुछ भी खोज होती है, वह दृढ़ता के साथ हो सकती है। यद्यपि रूस के प्राचीन प्रतिष्ठित स्थानों में वही पुरानी यूनिवर्सिटियाँ अभी तक चल रही हैं, किंतु फिर भी नवीन युग का प्रभाव चारों ओर दिखाई देता है।

इन्स्टीट्यूट्स।

प्राथमिक शालाएँ, उद्योग शालाएँ और कला भवन के पश्चात् यथाक्रम इन्स्टीट्यूट का नंबर आता है। हमारे विश्वविद्यालयों में जैसे Post Graduate work है, उसी श्रेणी का कार्य इन संस्थाओं में होता है। सोवियट सरकार इन संस्थाओं को तीन उद्देश्यों से चला रही है प्रथम यह कि सोवियट सरकार की आर्थिक, राजनीतिक और सामाजिक प्रवृत्ति के नेताओं को यथानियम शिक्षा प्राप्त हो सके, दूसरे यह कि उच्च शिक्षा के कलाभवन एवं विश्वविद्यालयों के लिए अध्यापक तैयार हो सकें, और तीसरे यह कि मनुष्य की मर्यादा में आनेवाले समग्र ज्ञान-क्षेत्र में उपस्थित नानाविधि प्रश्नों का प्रयोग शालाओं द्वारा निराकरण होता रहे।

इस प्रकार यथार्थ में ये इन्स्टीट्यूशन शिक्षा-संस्थाओं के रूप में नहीं बल्कि अनुसंधान कार्यालय की ही तरह होते हैं। यद्यपि अभी ये संस्थाएँ पूर्ण शक्ति के साथ कार्य नहीं कर सकी हैं, तथापि मनुष्य के ज्ञान को मानव-समाज के उपयोग में लाने के लिए समग्र रूस के नेता लोग एक मत होकर उपाय योजना कर रहे हैं। इसी उद्देश्य को सामने रखकर वे संसार भर के ख्यात-

नाना विद्वानों को अपने इंस्टीट्यूट के लिए आमन्त्रित करते और प्रत्येक गूढ़ प्रश्न की अनेक प्रकार से छान-बीन कर अंतिम निर्णय करने पर ही रुकते हैं।

इस अध्ययन-काल में अध्यापकों की दृष्टि रूस की चहार-दीवारी तक ही परिमित नहीं रह जाती, बल्कि किसी प्रश्न का अध्ययन और निराकरण करते समय वहाँ वैज्ञानिक अथच शास्त्रीय दृष्टि को ही प्रधानता दी जाती है। इसी कारण वह निर्णय भी एकांगी न होकर सार्वदेशीय बन जाता है।

यहाँ तक हमने रूस की शिक्षा के विभिन्न अंगों पर संक्षेप में विचार किया है; किंतु अब हम संपूर्ण शिक्षा-पद्धति पर दृष्टिपात करते हुए कुछ विशेष सिद्धांतों पर विचार करेंगे।

रूस के बालकों की शिक्षा के विषय में वहाँ के शिक्षा-शास्त्रियों का उद्देश्य केवल इतना ही है कि, "व्यवसायी और कृषक-समाज के बालक प्राचीन प्रथानुसार अपने समाज और व्यवसाय को छोड़कर बड़े बनने के लिए, अथवा केवल बौद्धिक-व्यवसायी बनने के लिए अब स्कूलों में नहीं आते हैं, बल्कि अपने ही समुदाय में अगुआ बन कर चलनेवालों तथा नवीन रूस के निर्माण-कर्ताओं के साथ रहने के ही लिए वे इन संस्थाओं में भर्ती होते हैं। यही कारण है कि शिक्षा के संपूर्ण कार्यक्रम का मूल-सिद्धांत मनुष्य के परिश्रम और उसके सदुपयोग का अध्ययन ही रक्खा गया है।"

शिक्षा क्रम की रचना में प्रारंभ से अंत तक विद्यार्थियों को इस परिश्रम की ही तालीम मिलती है। अर्थात् वे परिश्रम के लिए ही शिक्षा पाते हैं; और आगे चल कर तो वे उस परिश्रम में अपने ज्ञान का समुचित उपयोग भी करते हैं।

आठ वर्ष की अवस्था से लेकर इंस्टीट्यूट के शिक्षा-काल तक मनुष्य के लिए स्वावलंबन और शारीरिक-श्रम का सिद्धांत अबाध्य रूप से सम्मुख उपस्थित रहता है। यही कारण है कि वह इस रूप में नवीन रूस के जीवन का आदर्श भलीभाँति प्रतिबिंबित कर सकता है।

यद्यपि प्राथमिक शालाओं में पठन-पाठन और लेखन तथा गणित के लिए कोई विशेष स्थान नहीं रखा गया है, तथापि ये विषय दूसरे रूपमें स्वयमेव ही विद्यार्थी लोग सीख लेतेहैं। इसी कारण अध्यापक लोग केवल छात्रों को उनके जीवन के प्रधान उद्देश्य से परिचित करने के लिए प्रयत्न करते हैं, और इस कार्य में, आवश्यकता के अनुसार, लेखन, पठन एवं गणित की शिक्षा अनायास मिल जाती है।

इस प्रकार शिक्षा के विषय के परिवर्तन के साथ-साथ ही दूसरा एक आवश्यक परिवर्तन वहाँ की शिक्षा-पद्धति का है। सोवियट रूस की संपूर्ण शिक्षा-पद्धति को हम एक प्रयोग के रूप में कह सकते हैं। क्योंकि वहाँ के विद्यार्थी गण अपने निकटवर्ती जीवन-क्रम में से किसी एक प्रश्न को लेकर उसी पर शास्त्रीय दृष्टि से विचार करने लगते हैं। अनेकों बार विद्यार्थी लोग किसी बहु-मुखी प्रश्न को ही हाथ में लेकर सब एक साथ उसके शास्त्र-सिद्ध निर्णय पर पहुँचने का यत्न करते हैं। और इस प्रकार काम करने से वे लोग अनायास ही अन्यान्य विषयों का पारस्परिक संबंध भी जान लेते हैं, इसी कारण उनका अध्ययन सर्वांग-पूर्ण होता है।

किंतु सोवियट रूस की शिक्षा का सबसे अधिक महत्व-पूर्ण अंग तो वहाँ के विद्यार्थियों की स्वतंत्रता और संस्था के प्रबंध में उनका स्थान है। सोवियट शिक्षा-शास्त्री लोग पाठशालाओं में विद्यार्थियों के इस स्वराज्य के विषय में जो विचार रखते हैं, वे इस प्रकार हैं—

'प्राचीन ढंग की पाठशालाओं में एक ही शिक्षक पूरी कक्षा के विद्यार्थियों का स्वामी बनकर काम करता है; और शिक्षा एवं इसी प्रकार की अन्य युक्ति-प्रयुक्ति (पुरस्कार आदि) की योजना भी वह (शिक्षक) अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए ही करता है। बेचारे बालक अध्यापक की शरण में रहते हैं, और वही उन्हें उत्साहित या प्रताड़ित कर सकता है। इसी कारण बच्चे उसे अपना शत्रु समझ कर कभी-कभी सामना करने के लिए भी तैयार होजाते हैं। वे शिक्षक के बतलाये हुए नियमों के विरुद्ध आचरण कर उन्हें तोड़ने का यत्न करते और इसके लिए अपनी गुप्त मंडलियाँ भी खड़ी कर लेते हैं। सारांश उस समय शिक्षक एक प्रकार से राजसत्ता के प्रतिनिधि के रूप में होता है, अतएव उससे लड़ना मानों राजसत्ता के सम्मुख खड़ा होना है। किंतु इस प्रकार का विरोध करनेवाले सैकड़ों विद्यार्थी होजाते हैं, और अपने प्रयत्न के बल पर वे इस सत्ता को शिथिल कर देते हैं। इस प्रकार शिक्षक और विद्यार्थी के बीच एक गहरी शत्रुता जड़ जमा लेती है, जो कभी अभीष्ट नहीं है। अस्तु।

"इस प्रकार की शत्रुता को सदैव के लिए नष्ट कर देने और अध्यापक की प्रतिष्ठा बढ़ाकर कक्षा की व्यवस्था और संस्था के नियमों का पालन कराने का भार विद्यार्थियों पर डाल देने के लिए ही पाठशाला में विद्यार्थियों को स्वतंत्रता दी जानी चाहिए।

"यद्यपि अमेरिका जैसे देशों में भी विद्यार्थियों को स्वतंत्रता प्राप्त रहती है, किंतु वह दूसरे प्रकार की होती है। अर्थात् वहाँ की राज-पद्धति में जिस प्रकार का संगठन है, उसीका अनुकरण पाठशाला के प्रबंध में भी किया जाता है। अतएव निर्वाचन, न्यायालय, कारागार आदि सब काम भी वहाँ होते रहते हैं। इस प्रकार अमेरिकन विद्यार्थियों को, एक विशेष प्रकार की स्वाधीनता प्राप्त रहने पर भी, उसका मूल उद्देश्य तो अमेरिकन प्रजा-सत्तात्मक राज के अंगों को खड़ा करना ही है।

"इसके विरुद्ध हमारी शिक्षा-संस्थाओं का उद्देश्य मनुष्य-समाज के एक ऐसे उपयोगी अंग का निर्माण करना है, जो कि सदैव प्रसन्नचित्त, उत्साही, बलवान, उद्योगी, सामाजिक-वृत्तियों से भलीभाँति परिचित, ठीक ढंग से काम करने और विश्व एवं समाज में अपने स्थान को पहचाननेवाला तथा संसार की प्रगति के साथ दौड़ लगा सकने और आत्म-पुरुषार्थ का आदर्श पाठ पढ़ाकर भावी नव समाज का निर्माण करनेवाला हो।

"इसी प्रकार हमारी शालाओं में दी जानेवाली स्वाधीनता का उद्देश्य भी केवल यही होता है कि विद्यार्थी आदर्श रूप में अपना जीवन बितावें और अच्छे ढंग से काम करना सीखें। न कि केवल पाठशाला या अन्य विषयों में उच्च प्रकार के प्रबंधक बन जायँ, और व्यावहारिक जीवन में सर्वथा उच्छृंखल बने रहें।"

सोवियट रूस की शिक्षा का चित्र यहाँ समाप्त होता है। बहुत संभव है कि, इस सारे लेख को पढ़ कर लोग यह प्रश्न करें कि इसमें रूस ने नई बात क्या की है? क्या इससे भी अधिक उच्च आदर्श वाली संस्थाएँ यूरोप या अमेरिका में नहीं हैं?

हम कह सकते हैं कि इन देशों में ऐसी संस्थाएँ अवश्य हैं, क्योंकि इस संसार में शिक्षा-विषयक अनेक प्रयोग किये जा रहे हैं, और संसार के उत्तमोत्तम शिक्षा-शास्त्री नई-नई संस्थाएँ भी चला रहे हैं, किंतु ये सब इनी-गिनी संस्थाएँ बहुत बड़े खर्च के साथ चलाई जाती हैं, किन्तु रूस संसार भर के सब देशों से अधिक प्रजा के प्रत्येक बालक के लिए इस प्रकार के स्कूल, अध्यापक, भवन आदि साधनों का प्रबंध करके शिक्षा के सर्वथा नवीन आदर्शों से काम ले रहा है। यूरोप और अमेरिका की छोटी-छोटी संस्थाओं की तुलना में, जबकि समग्र रूस खुद ही इसके लिए प्रयोग क्षेत्र बन चुका है, इसके लिए देश भर के शिक्षा-शास्त्री सिर खपा रहे हैं; बिना अंतिम निर्णय हुए ठहरने के लिए तैयार नहीं हैं, तो फिर क्यों कर उस (रूस) के इस उद्योग को सर्वश्रेष्ठ न माना जाय?

यह ठीक है कि सोवियट रूस की शिक्षा आज भी अनेक प्रकार से त्रुटि-पूर्ण है, और संभव है कि आधुनिक प्रयत्नों में उसे कई प्रकार से असफल भी होना पड़े, किंतु जिस ज़ोर-शोर के साथ सोवियट राज के नेता लोग अपने नवीन रूस का निर्माण करना चाहते हैं, वह अवश्य प्रशंसनीय है। यदि और किसी से उसे सहायता न भी मिले तो केवल यह लगन ही उसके मार्ग में आनेवाली समस्त बाधाओं को नष्ट-भ्रष्ट कर देगी।

जो प्रजा अपने भविष्य का निर्माण करने के लिए इसी प्रकार की लगन दिखा सकती है, वह राजनैतिक-स्वाधीनता सदृश मामूली वस्तुको तो बातकी बात में हथिया सकेगी।

आज रूसी जनता राजनीतिक विषयों में स्वाधीन है, किंतु फिर भी वे लोग चुप नहीं बैठ गये हैं, क्योंकि उन्हें नवीन रूस का निर्माण करना है, और इसके लिए वे सारे देश को प्रयोग-शाला के रूप में बनाते हुए भी नहीं हिचकते। उन्हें विश्वास होगया है कि जो प्रजा आगे दीर्घकाल तक जीवित रहना चाहती है, और अपने ख़ास ढंग पर जीना चाहती है, उसके लिए अपना स्वतंत्र-शिक्षा निर्माण करना अनिवार्य है। यदि इसके लिए उसे अपना सर्वस्व भी अर्पण कर देना पड़े, तो कोई हानि नहीं।

क्या हम आशा करें कि, हमारे देश की राष्ट्रीय शिक्षा के विचारक इस उदाहरण से लाभ उठाकर देश के भावी समाज का मार्ग प्रशस्त करने की ओर ध्यान देंगे? *

गोपीवल्लभ उपाध्याय

---

* श्री दक्षिणामूर्ति के एक लेख की छाया।

[चित्रकार — श्री रामनाथ गोस्वामी]

तुलसी

(१)

जाकी मंजु कृति पै पुरंदरपुरी में बैठि,
    आजहूँ प्रमोद उर धरै मातु हुलसी।
मानसचरित कहि सौरभित कीन्हीं निज,
    कीरति कलित कमनीय कंज-कुल-सी।
भव-सिंधु-दुख को हरे को उतरे को कियो,
    राम-भक्ति पूरन सप्रेम पुण्य-पुल-सी।
नागरी गुनागरी के नागर 'व्रजेश' वेश,
    जै-जै श्रीमहानुभाव राम-दास तुलसी।

(२)

पावन है पुजनीय परम प्रशंसित है,
    राम रँगराते है बचाते दीह दुख तें।
मानसचरित के है सोधक 'व्रजेश' वेश,
    सेवन छुड़ावै भव-राग-रोग-रुख तें।
नागरी सुमति हितू साधु बल दल दोऊ,
    सौरत अभव्य भाव नासत वपुख तें।
दास तुलसी में तुलसी में है अमीसे गुन,
    आवै जौन हाँ मैं कहि आवै पै न मुख तें।

श्रीराघवेंद्र शर्मा त्रिपाठी, 'व्रजेश'

पुनर्जन्म

(१)

धीरे-धीरे संसार में पुनर्जन्म के मानने वालों की संख्या बढ़ती ही जाती है। यूरोप में इस समय प्रेतात्म-वादियों का खासा ज़ोर है। ये लोग अबतक पुनर्जन्म न मानते थे, पर अब कुछ प्रेतात्म वादियों का कहना है कि परलोक से हमें जो संदेश मिले हैं, उनमें से कुछ ऐसे भी हैं, जिनमें पुनर्जन्म के सिद्धांत की पुष्टि होती है। पाश्चात्य देशों के अधिकांश विद्वान् यद्यपि पुनर्जन्म नहीं मानते हैं, परंतु इस विषय की खोज से वे कभी पराङ्मुख नहीं रहते हैं। यही कारण है कि पुनर्जन्म के सिद्धांत को न मानते हुए भी यूरोप और अमेरिका ऐसी-ऐसी पुस्तकें प्रकाशित कर सके हैं, जिनमें पूर्वजन्म की बातों को बतलाने वाले लोगों के विस्तृत वृत्तांत वर्णित हैं। इधर भारत सदा से पुनर्जन्म में विश्वास करता आया है। हिंदू-धर्म की कई विशेषताओं में से कर्म सिद्धांत की महत्ता सारा संसार स्वीकार करता है। कर्म सिद्धांत और पुनर्जन्म में अन्योन्य प्रति-पूरक का-सा संबंध है। पुनर्जन्म को माने बिना कर्म-सिद्धांत लँगड़ा है, और कर्म-सिद्धांत को स्वीकार किये बिना पुनर्जन्म की आवश्यकता नहीं प्रतीत होती है। पुनर्जन्म सिद्धांत को मानने वाले विद्वान् उसके समर्थन में निम्न-लिखित दलीलें पेश करते हैं १—नीचे दर्जे के प्राणी जैसे, चींटी, कौआ, लोमड़ी आदि आज से हज़ारों वर्ष पहले जैसे थे वैसे ही अब भी हैं, पर मनुष्य उन्नति-शील है। पूर्वस्मृति को स्थिर रखे बिना उन्नति नहीं हो सकती है, और पूर्व-स्मृति की रक्षा पुनर्जन्म से ही हो सकती है। २—एक कुटुंब-विशेष के लोग आकार-प्रकार और अपनी संस्कृति में विशेषता रखते हैं। उस कुटुंब में आगे होने वाली संतान में भी ये वंश-क्रमागत विशेषतायें होनी चाहिये। पर कभी-कभी ऐसा देखा जाता है कि बड़े ही शिक्षित, सुशील और सच्चरित्र कुल में वज्र-मूर्ख, उजड्ड और दुराचारी मनुष्य उत्पन्न हो जाता है, और इसके विपरीत महान् अधम कुटुंब में कभी-कभी किसी बड़े पुण्यात्मा के दर्शन हो जाते हैं। यह पुनर्जन्म और कर्म-सिद्धांत के सहारे ही समझाया जा सकता है। ३—बालक का अत्यंत छोटी अवस्था में विशेष प्रतिभा का परिचय देना तथा किसी विषय-विशेष के समझने में ऐसी सिद्धहस्तता दिखलाना, मानो वह उस विषय में पहले से अभ्यस्त था, यह सब बातें पुनर्जन्म की सत्यता प्रमाणित करती हैं। ४—एक ही समय, एक ही स्थान और एक ही परिस्थिति में पलने वाले मनुष्यों में जो असमानता पाई जाती है, उसका कारण भी पुनर्जन्म को मानने से ही स्थिर किया जा सकता है। यहाँ तक देखा गया है कि यमज लड़कों में भी अवस्था बढ़ने पर इतनी अधिक चारित्रिक विष-मता आ जाती है कि उसे देखकर आश्चर्य होता है। ५—वृक्ष आदि ऋतु-परिवर्तन के समय अपनी पत्तियाँ गिराकर नई ग्रहण करते हैं। वृक्ष वही रहता है, पर पत्तियाँ नई आ जाती हैं। इसी प्रकार से मनुष्यत्व-रूपी वृक्ष का तना बना रहता है, पर शरीर-रूपी पत्तियाँ झड़ा

करती है, और नई उत्पन्न होती रहती है। यही पुनर्जन्म है।
६—कुछ विश्वास-पात्र आदमी अपने पूर्वजन्म का वृत्तांत बतलाते हैं। इस प्रकार के कुछ वृत्तांत ऐसे भी हैं जिनकी जाँच हो सकती है। जाँच करने पर कुछ वृत्तांत बिलकुल सत्य प्रमाणित हुए हैं। इससे भी पुनर्जन्म की पुष्टि होती है।

हर्ष की बात है कि भारतवर्ष में पुनर्जन्म की खोज का काम हो रहा है। जिन लोगों को अपने पूर्वजन्म का वृत्तांत याद है, उन्हें चाहिये कि वे उसे सर्व-साधारण के सामने प्रकट करें और पुनर्जन्म की खोज के मामले में सहायता दें। बरेली के प्रसिद्ध वकील कुँवर केकईनंदन सहायजी इस मामले में बड़ी दिलचस्पी ले रहे हैं। उन्होंने पूर्वजन्म की अनेक कथाओं को 'लीडर' पत्र में प्रकाशित कराया है। स्वयं उनके पुत्र चि० जगदीश को अपने पूर्वजन्म का हाल याद है। कुँवर साहब ने उसके कथनों की जाँच भी की है। अब तक कुँवर साहबने पुनर्जन्म के सात वृत्तांतों को प्रकाशित कराया है। 'माधुरी' के पाठकों पर कृपा करके कुँवर साहब ने उन सबको हिंदी में प्रकाशित करने की हमको इजाज़त दे दी है। तदनुसार आज हम पुनर्जन्म लेखमाला का प्रथम लेख 'माधुरी' के पाठकों के सामने रखते हैं। आशा है, इस लेखमाला को 'माधुरी' के पाठक चाव से पढ़ेंगे। इस माला में अभी कई लेख निकलेंगे। प्रथम लेख में पुनर्जन्म के जो वृत्तांत जा रहे हैं, उनमें से चार सचित्र हैं। चित्रों का यह ब्लॉक भी हमें कुँवर केकईनंदनसहायजी की कृपा से ही प्राप्त हुआ है।

१—जगदीशचन्द्र का वृत्तांत

मैं अपने गाँव कामा को गया हुआ था, वहाँ मुझे समाचार मिला कि मेरी पत्नी सख़्त बीमार है। मैं ६ जून को बरेली लौट गया और छ दिन तक घर पर ही रहा। कचहरी भी नहीं गया। मेरी स्त्री को बड़े ज़ोर का बुखार था, जिसके कम होने में कई दिन लग गए। ६ तारीख़ को जगदीशचंद्र ने मुझसे एक मोटर लाने के लिए कहा। मैंने कहा, अभी लिए आता हूँ। मैंने उससे पूछा "कहाँ से मोटर लाना चाहिए?" उसने कहा—"आप मेरा मोटर ले आइए।" मैंने पूछा—"तुम्हारा मोटर कहाँ है?" उसने उत्तर दिया—"वह बबुआजी के घर पर है।" मैंने उससे पूछा कि—"बबुआजी कहाँ रहते हैं?" तो उत्तर में उसने कहा कि "वह बनारस में रहते हैं और मेरे पिता हैं।" कुछ बातों का ठीक-ठीक पता लगा लेने के बाद मैंने नीचे लिखा पत्र भेजा, जो तारीख़ २७ जून १९२६ के "लीडर" में पृष्ठ ११ पर छपा है। वह इस प्रकार है—

पूर्व-जन्म की विचित्र कहानी

काशी-निवासी बबुआजी पांडे के संबंध में जाँच।

(श्री संपादकजी, 'लीडर')

प्रिय महाशय,

मैं आपका बड़ा ही कृतज्ञ होऊँगा, यदि आप नीचे लिखे हुए आश्चर्य-जनक वृत्तांत को अपने अमूल्य पत्र में शीघ्रातिशीघ्र प्रकाशित करने की कृपा करेंगे।

मेरे पुत्र जगदीशचंद्र ने, जिसकी अवस्था इस समय तीन वर्ष की है, अपने पूर्व जन्म के वृत्तांत को, शृंखला-बद्ध रूप में, इस प्रकार बतलाया है—वह अपने पिता का नाम बबुआजी पांडे बतलाता है। निवास-स्थान बनारस। बनारस में बबुआजी के मकान का विवरण देता है, और एक बड़े भारी फाटक, एक बैठक के कमरे, तथा एक तहख़ाने का, जिसमें एक दीवार में एक लोहे की अलमारी लगी हुई है, विशेष रूप से उल्लेख करता है।

वह उस चौक का भी वर्णन करता है, जिसमें बबुआजी शाम के वक़्त बैठा करते हैं। बतलाता है कि बबुआजी तथा वे लोग, जो वहाँ जमा होते हैं, भंग पीते हैं। बबुआजी अपने शरीर पर मालिश कराते हैं और प्रातः समय स्नान के पूर्व मुँह धोने पर अपने मुँह पर मिट्टी लगाते हैं। वह दो मोटर और जोड़ी समेत एक फिटन बतलाता है, और कहता है कि बबुआजी के दो पुत्र और एक स्त्री थी, और अब उन सबकी मृत्यु होगई है। बबुआजी बिलकुल अकेले हैं। बनारस में मेरे कोई मित्र अथवा रिश्तेदार नहीं हैं और मेरी स्त्री वहाँ कभी नहीं गई है। मैंने इससे पहले बबुआजी के बारे में कभी कुछ नहीं सुना। बरेली के नीचे लिखे सज्जनों ने लड़के से बातें की हैं, और उससे बहुत से प्रश्न भी किए हैं—

१—सय्यद यूसुफअली, बी० ए०, एलएल० बी०, वकील तथा म्युनिसिपल कमिश्नर। २—बा० ब्रह्म-नारायण, बी० ए०, एलएल० बी०, वकील तथा म्युनि-सिपल कमिश्नर। ३—बाबू मुकुटबिहारीलाल, बी० ए०, एलएल० बी०, वकील। ४—पंडित रामस्वरूप शर्मा बी० ए० एलएल० बी०, वकील, । ५—बाबू छैलबिहारी कपूर, बी० ए०, वकील तथा भूतपूर्व मेंबर

लेजिस्लेटिव कौंसिल। ६—बाबू जयनारायण चौधरी, बी० ए०, वकील तथा मेंबर लेजिस्लेटिव कौंसिल, युक्त-प्रांत और सैक्रेटरी बार एसोसियेशन बरेली। ७—रायसाहब डा०श्यामस्वरूप सत्यव्रत, एल० एम० एस०।

इस विषय से दिलचस्पी रखनेवाले सभी सज्जनों को मैं अपने पुत्र द्वारा वर्णित वृत्तांत की सत्यता की वैज्ञानिक ढंग से परीक्षा करने के लिए आमंत्रित करता हूँ।

केकईनन्दनसहाय, वकील, बरेली

मैंने नीचे लिखा पत्र छपने के लिये भेजा, जो ५ जुलाई सन् १९२६ के 'लीडर' में, पृष्ठ ६ पर, प्रकाशित हुआ।

पूर्व-जन्म का वृत्तांत

(श्रीयुत् सम्पादकजी, 'लीडर')

प्रिय महाशय,

मैं बड़ा ही आभारी होऊँगा, यदि आप इस नीचे लिखे समाचार को अपने अमूल्य एवं सुविख्यात पत्र के तुरत प्रकाशित होनेवाले अंक में स्थान देने की कृपा करेंगे।

मेरे पास कई स्थानों से उस वृत्तांत के संबंध में पूछ-ताछ के पत्र आए हैं, जो मेरे पुत्र जगदीशचंद्र ने अपने पूर्व-जन्म के संबंध में बतलाया है, जिसका थोड़ा-सा विवरण आपके तारीख़ २७ जून के 'लीडर' पत्र में प्रकाशित हो चुका है।

इस संबंध में वैज्ञानिक-ढंग से भली-प्रकार जाँच की जा सके, इसके लिये मैंने नीचे लिखी कार्यवाही आरंभ की। लड़के ने तारीख़ ६ जून से अपनी आत्म-कथा आरंभ की, और जो-जो प्रश्न मैंने उससे किए, उनका उत्तर देते हुए उसने ११ तारीख़ को उसे समाप्त किया। इसके पश्चात् मैंने बरेली के दूसरे वकीलों तथा अपने अन्य मित्रों से इन बातों की परीक्षा करने और मुझे इस बात की सलाह देने का आग्रह किया कि इस मामले में आगे कोई परिशोध करने की आवश्यकता है या नहीं। वकील तथा मित्र आने लगे और उस बालक से बराबर बातें करते रहे, और अंत में तारीख़ १६ को यह निश्चय हुआ कि बनारस कोई अपना आदमी भेजने की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि जो लोग ऐसी बातों में विश्वास नहीं रखते, उनको इस बात से अविश्वास करने के लिये एक अच्छा मौक़ा मिल जायगा। वे कहेंगे कि मकान तथा बनारस की अन्य बातों के संबंध में बहुत-सी बातें बालक को दूत के द्वारा पहले से ही बतला दी गई होंगी। इसलिये बनारस म्यूनिसिपेल बोर्ड के चेयरमैन के पास एक पत्र भेजा गया और उसका उत्तर मिलने पर समाचार-पत्रों के पास पत्र भेजे गए। मैंने देश के कुछ नेताओं से भी इस बात की प्रार्थना की थी कि वे अपने-अपने प्रतिनिधि भेजें, जिससे बालक उनके साथ बनारस भेजा जाय और वहाँ जाकर वह, जिन-जिन बातों को उसने बतलाया है, उनको दिखला सके। चूँकि बालक ने बहुत सी बातें मुझे बतलाई हैं जिनका कई एक ऐसे सज्जनों के पास से आए हुए पत्रों द्वारा समर्थन हो जाता है, जिनसे मेरा कोई परिचय नहीं है। इसलिये मुझे इस बात का विश्वास हो गया है कि बालक स्थान पर पहुँच कर बहुत-सी बातें बतला सकेगा, जिससे अन्वेषकों का बहुत कुछ शंका-समाधान हो सकेगा। उन पत्रों को नीचे उद्धृत किया जाता है—

मुंशी महादेवप्रसाद, एम्० ए०, एल्एल्० बी०, ऐडवोकेट, चेयरमैन, म्यूनिसिपेल बोर्ड, बनारस, लिखते हैं.—

"आपका पत्र मिलने पर मैंने यथेष्ट जाँच की और अंत में इस नतीजे पर पहुँचा कि जो बातें आपके लड़के ने बतलाई हैं, उनमें से बहुत-सी सत्य हैं। वास्तव में वे सब सही-सही बतलाई गई हैं, सिवाय इस बात के कि बबुआजी पांडे के पुत्र, जयगोपाल, की मृत्यु हुए लग-भग ढाई बरस के हुआ। बाक़ी सारी बातें सही हैं; जैसे—फ़िटन, इक्का, घोड़ा, मालिश, गुड़े, भंग तथा आराम आदि की बातें। बबुआ पांडे से—जिन्हें आपके लड़के ने बबुआजी बतलाया है—मैं भली-भाँति परिचित हूँ, क्योंकि गत कई वर्षों से वह मेरे मुवक्किल रहे हैं, और आपका पत्र पढ़ते ही मैं यह समझ गया कि यही व्यक्ति है, जिनसे आपके लड़के का अभिप्राय है। इस कारण मैंने आवश्यक जाँच-पड़ताल के लिये अपना आदमी बबुआ पांडे के पास भेजा। इस बात की ख़बर पाते ही बबुआ पांडे के आदमी आए और वह पत्र मेरे पास से ले गए। संभव है, वे इस बात की जाँच करने और उन सारी बातों को स्वयं प्रमाणित करने के लिये इस समय बरेली जा रहे हों। बबुआ पांडे का यहाँ पर दूसरा नाम पंडित मथुराप्रसाद पांडे है, और वह बनारस शहर में पांडे घाट पर रहते हैं।"

पंडित उमाकांत पांडे, वकील, बनारस, लिखते हैं—

"मैंने आज के 'लीडर' में आपका पत्र देखा। बबुआ

पांडे मेरे मित्र हैं। मैंने उस लड़के को देखा है, जिसने आपके घर में जन्म लिया है। जो बातें उसने बतलाई हैं, वे मुख्यतः सही हैं। पांडेजी के कोई मोटर नहीं है, यद्यपि वह एक दो मोटर से काम लिया करते थे। मैं इस बालक के संबंध में उन्हें खबर कर रहा हूं, और बहुत जल्द हम लोग आपके यहाँ इस बालक को देखने के लिये रवाना होंगे।"

मेरे पुत्र जगदीशचंद्र के जन्म की तारीख ४ मार्च सन् १९२३ ई० है। मैंने रजिस्टर फौत में जयमंगल और जयगोपाल दोनों की मौत के इंदराज की नक़लों के लिये चेयरमैन, म्युनिसिपल बोर्ड, बनारस और रजिस्टर पैदाइश में जगदीशचंद्र की पैदाइश के इंदराज की नक़ल के लिये बरेली म्युनिसिपैलिटी को दरख्वास्त दी है। इन दोनों का मिलान करने पर वैज्ञानिक अन्वेषकों को बहुत-सी बातें मालूम होंगी। मैं शीघ्रातिशीघ्र इन सारी बातों को निश्चित करने के लिये लोगों से कह रहा हूं, क्योंकि पुराने लोग मुझसे बराबर यह कहते आए हैं कि ऐसी बातें सिर्फ थोड़े समय तक ही याद रहती हैं।

इस समय बालक को सब बातें स्मरण हैं। संभव है, थोड़े समय के बाद वह सब भूल जाय।

केकईनंदनसहाय, वकील हाइकोर्ट,

बरेली, ३० जून सन् १९२६ ई०।

समाचार-पत्रों में मेरे लेख प्रकाशित हो जाने के बाद से जनता इस मामले में बहुत बड़ी दिल-चस्पी लेने लगी है। पर दो महीने तक मेरे पास सवेरे-शाम अच्छी संख्या में दर्शक लोग आते रहे, जो बालक के मुख से ही उसकी आत्म-कथा सुनना चाहते थे। बालक इस बात से बहुत परेशान हो गया और, इसलिये, लोगों से मिलने अथवा उनके सामने बात करने से इनकार करने लगा। इसलिये मैंने इस बालक के साथ बनारस के लिये प्रस्थान करने से पहले, श्रीयुत बी० एन० मेहता, आई० सी० एस०, डिस्ट्रिक्ट मजिस्ट्रेट, बनारस को एक पत्र लिखा कि आप मेरी सहायता करें। मुझे इस बात का भय था, कि बनारस पहुंचने पर बड़ी भीड़ हो जायगी और इससे बच्चा बहुत अधिक परेशान होगा। उन्होंने कृपा-पूर्वक सहायता करने का वचन दिया। मैं तारीख १३ अगस्त को दोपहर के बाद बनारस के लिये रवाना हुआ और दूसरे दिन सवेरे वहाँ पहुँचा। मैंने पहले से (अपने आने की) लोगों को कोई सूचना नहीं दी और नदेसर में ठहरा, जो बबुआ पांडे के मकान से कोई २½ मील की दूरी पर है। मैं समझता था, कि मुझे भीड़ की परेशानी उठानी न पड़ेगी। दुर्भाग्यवश खबर चारों ओर फैल गई, और मेरे मकान पर सवेरे से एक बहुत बड़ी भीड़ जमा हो गई। इस भीड़ को हटाने के लिये मुझे पुलीस बुलानी पड़ी, परंतु पुलीस के आने पर भी भीड़ न हटी। बा० हनुमानप्रसाद, सब जज, डा० गंगाप्रसाद, इनकम टैक्स अफसर, मि० टंडन, तथा कई एक अन्य सज्जन हम लोगों से मिलने आए। पंडित लक्ष्मीकांत पांडे, वकील, भी हमें देखने के लिये आए। बालक ने फ़ौरन् उन्हें पहचान लिया। पहले तो बालक ने कहा कि यह उमाकांत हैं। उनके इनकार करने पर उसने कहा तो फिर यह लक्ष्मीनारायण हैं, क्योंकि दोनों भाई शकल-सूरत में एक ही जैसे थे। इस समय लगभग १०० दर्शक मकान घेरे हुए थे।

बालक ने वह रिश्ता भी बतलाया जो पंडित लक्ष्मीकांत का बबुआ पांडे के साथ था। यह बात पूरी तो नहीं, पर किसी अंश तक सही थी। संध्या के समय मि० बी० एन० मेहता, कलक्टर आफ़ कान्स्टेब्ल तथा शहर कोतवाल को साथ लेकर हमारे आगे-आगे बबुआ पांडे के मकान गए। बबुआ का मकान नदी के क़रीब है और सड़क वहां से दो फर्लांग की दूरी पर है। उनके मकान तक पहुँचने के लिये एक चक्करदार रास्ते से होकर जाना पड़ता है। लड़का इस चक्करदार गली से दौड़ बबुआ के मकान तक पहुँच गया। वहां पहुँचते पहुँचते भीड़ की संख्या एक हजार तक पहुँच गई। स्वयं बबुआ के कमरे में, बालक ने देखा कि, क़रीब ३५ आदमी पास-ही-पास बैठे हुए हैं। तब वह भड़क गया और जवाब देने से इनकार कर दिया। थोड़ी देर के बाद मि० मेहता वहाँ से चले गए, क्योंकि उन्हें एक दूसरी जगह काम था। इसके बाद वह लड़का एक दूसरे मकान को ले जाया गया, जहां जाकर उसने वह स्थान बतलाया जहाँ भंग तैयार की जाती थी। इसके बाद श्रीमती मेहता भी चली गईं। लड़का जनाने के अंदर गया। वहाँ जाकर उसने अपनी चाची की ओर इशारा किया और कहा—'हम इनके घर आए हैं।'

चूँकि बहुत देर तक भीड़ हम लोगों को घेरे रही,

इसलिये यह निश्चय हुआ कि किसी दूसरे दिन लड़का, बिना पहले से कोई इत्तिला दिए हुए, लाया जाय।

इस पर मैं तारीख १८, मंगलवार को दोपहर के बाद उस बालक को बबुआ के मकान ले गया। उस दिन बनारस में दुर्गाजी का मेला था। बहुत से लोग उसे देखने गए थे। श्राज जगदीश ने बबुआ पांडे से बात-चीत की, पूरी कहानी कह सुनाई और बबुआ से कहा कि आप जो प्रश्न चाहें, पूछें। बबुआ ने कोई प्रश्न नहीं पूछा।

लड़का दशाश्वमेध घाट पर ले जाया गया, जिसे उसने दूर से ही पहचान लिया। उसने एक पंडा की गोद में बैठे-बैठे दो बार बड़े हर्ष के साथ स्नान किया। इस पंडे को लड़के ने देखते ही पहचान लिया था। अगस्त महीने में गंगाजी के बढ़े हुए आकार को देखकर वह बिलकुल भयभीत नहीं हुआ। उस समय गंगाजी बड़े वेग से घोर हाहाकार करती हुई बह रही थीं। गंगाजी के इस आकार का उस पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा और उसका आचरण एक ऐसे आदमी का जैसा मालूम होता था, जो उस स्थान से बिलकुल परिचित हो। उस पंडा ने जगदीश को एक पान दिया, पर उसने यह कहकर उसे न लिया कि मैं बड़ा पंडा होने के कारण अपने से छोटे पंडे के हाथ का पान नहीं ले सकता। लड़के ने विश्वनाथजी के मंदिर, हरिश्चन्द्र घाट और डफ़रिन ब्रिज को भी पहचाना। बनारस के लिये रवाना होने से पहले उसने मि० ज० नाट-बोवर, डिस्ट्रिक्ट सुपरिंटेंडेंट पुलीस, बरेली, के पूछने पर इस पुल का उल्लेख किया था। मैं उसे बनारस हिंदू यूनिवर्सिटी ले गया, जिसकी बाबत उसने कहा कि यह विश्वविद्यालय है, और कहा कि मेरे समय में यह बन रहा था। पंडित लक्ष्मीकांत पांडे, बी०ए०, एल्-एल्० बी०, वकील, बनारस, ने पत्र-व्यवहार द्वारा यह बतलाया कि वह बबुआ के बहुत पुराने पड़ोसी हैं और उनके संबंध की बातों की अच्छी जानकारी रखते हैं। बनारस के लिये रवाना होने के पहले नीचे लिखी बातें उनको लिखी गईं, और उन्होंने उनके सही होने की तस्दीक़ की :—

१—यह कि बबुआजी की स्त्री को लोग चाची कहते थे।

२—यह कि चाची घरवालों के लिये भोजन बनाती थीं, यद्यपि बबुआजी की रसोइया नौकर रखने की काफ़ी हैसियत थी।

३—यह कि यद्यपि चाची एक बड़ी-बूढ़ी स्त्री थीं, फिर भी वह अपने घर में बहुत पर्दा करती थीं और एक बहुत बड़ा घूँघट निकालती थीं। जगदीश ने कहा कि चाची उसी समय घूँघट निकालती थीं जब गुंडे लोग मकान के अंदर आते थे।

४—चाची अपनी कलाई और कानों में सोने के ज़ेवर पहनती थीं।

५—चाची के चेहरे पर शीतला (चेचक) के दाग़ थे, इसकी तस्दीक़ बेचू ने की है।

६—यह कि बबुआजी को रबड़ी पसंद है।

७—यह कि बबुआजी रोज़ अफ़ीम खाते थे।

८—यह कि बबुआजी अपनी उँगलियों में सोने की अँगूठी पहनते थे।

९—यह कि बबुआजी के पुत्र जयमंगल की मृत्यु विष खिला दिए जाने के कारण हुई थी, और इस बात का संदेह मृत्यु के समय पैदा हुआ था।

बबुआजी की स्त्री ने बेचू-नामक एक आदमी को अगस्त के महीने में बरेली भेजा, जो मेरे पास यह निमंत्रण लेकर आया था कि मैं बनारस जाकर उन्हें इस लड़के को दिखला आऊँ। इससे पहले बबुआजी के पास से भी इस आशय के कई एक पत्र आए थे। इस बेचू ने जगदीश से बात-चीत की, और नीचे लिखी बातों को स्वीकार किया,—

१—यह कि बबुआजी हर रोज़ अपना मुँह धोने के बाद मुँह पर मिट्टी लगाते थे।

२—यह कि बाईं ओर की दीवार में लोहे की अलमारी लगी हुई है।

३—यह कि घर में भिन्न-भिन्न अवसरों पर काम-काज में नाचने-गाने के लिए भगवतिया रंडी बुलाई जाती थी। उसने इस बात की भी तस्दीक़ की कि भगवतिया का रंग सांवला और आवाज़ ऊँची थी, जैसा कि जगदीश ने बयान किया है।

जगदीशचन्द्र का बयान श्रीयुत रामबाबू सक्सेना, एम० ए०, एल्-एल्० बी०, मजिस्ट्रेट दर्जा अव्वल, बरेली ने तारीख़ २८ जुलाई सन् १९२६ ई० को लिया। वह नीचे उद्धृत किया जाता है—

"मेरा नाम जयगोपाल है। मेरे बाप का नाम बाबू पांडे। शहर का नाम बनारस। गंगाजी मेरे मकान के

पास है। जैसा फाटक कुंवरपुर मे है, वैसा ही उसका फाटक है। मेरा भाई जयमंगल था। वह मुझसे बड़ा था। वह ज़हर खाकर मर गया। चाची ने जयमगल को क़ै कराई थी। मैं बाबू पांडे को बाबूजी कहता हूँ, चाचा नही कहता हूँ। चाची मेरी मां है। दरवाज़े पर सिपाही रहता है। बाबू पांडे का रुपया लोहे की अलमारी मे रहता है। वह बाए हाथ की तरफ़ है। वह दीवार मे लगी है। वह गड्ढे में है। बहुत ऊँची है। बाबूजी को रबड़ी पसद है। शाम को लोग भग पीते हैं। जब बाबूजी मुह धोते है, तो वह अपने मुँह पर मिट्टी की मालिश करते हैं। उनके पास सवारी फ़िटन है। दो घोड़े लगते है, और मोटरकार है। चाची सोने के कड़े पहिनती है। कानों मे बुंदे पहिनती हैं। बाबूजी अँगूठी पहनते है। चाची बहुत बड़ा घूँघट निकालती हैं। दशाश्वमेध घाट है। गंगा जी उसके पास हैं। चाची रोटी करती हैं। मैं तिकोनी पहनकर नहाता था। उमाकांत, जयमंगल के बाप के साले है। विश्वनाथजी के मंदिर में मैं जाता था। बाबूजी के पास काला चश्मा है। बाबूजी भगौती रंडी का गाना सुनते हैं।"

मुझे पंडित लक्ष्मीकांत से मालूम हुआ कि जयगोपाल की मृत्यु सन् १६२२ के अक्तूबर मे हुई थी। जैसा कि पहले कहा जा चुका है, जगदीश का जन्म ४ मार्च सन १६२३ ई० मे हुआ था। उसकी अवस्था क़रीब दस-ग्यारह वर्ष की थी। इसके अतिरिक्त पंडित लक्ष्मीकांत जी का कहना है कि यह लड़का बाबू पांडे का नाती—उनकी लड़की का लड़का—था, जो उन्हीं के मकान में रहती थी और इस बच्चे के लालन-पालन का भार बबुआजी के ऊपर डाल कर मर गई थी।

२—विश्वनाथ का वृत्तांत

१२ अगस्त सन् १६२६ ई० के 'लीडर' के पृष्ठ ७ पर प्रकाशित लेख का अनुवाद

(श्रीयुत सपादकजी 'लीडर')

माननीय महाशय,

मैं आपका बड़ा ही कृतज्ञ होऊंगा, यदि आप नीचे लिखे वृत्तांत को, जिसे पांच वर्ष छ: मास की आयु के एक बालक ने अपने पूर्व-जन्म के संबंध मे बतलाया है, प्रकाशित करने की कृपा करेंगे। जिस समय से मेरे पुत्र, जगदीशचंद्र के पूर्व-जन्म की कथा और उसके समर्थन-संबधी पत्र आपके समाचार-पत्र में प्रकाशित हुए हैं, उस समय से मुझे ऐसी घटनाओं के संबध में बराबर समाचार मिलते रहते हैं। मै उनकी सत्यता के संबध में प्रमाण संग्रह करने का प्रयत्न कर रहा हू, और मेरे इस परिश्रम का जो कुछ भी परिणाम होगा उसे सर्व-साधारण की जानकारी के लिए, समय-समय पर, आपको सूचित करता रहूँगा। विश्वनाथ का जन्म ७ फ़रवरी सन् १६२१ ई० को मुहल्ला खन्न्, बरेली, मे हुआ था। जिस समय वह क़रीब डेढ़ साल का था, उसने पीलीभीत के बारे में पूछ-ताछ शुरू की। वह यह पूछने लगा कि पीलीभीत और बरेली के बीच का फ़ासला क्या है, और यह भी जानना चाहा कि पिताजी उसे पीलीभीत कब ले जायँगे। जब वह तीन साल का हुआ, तो अपने संबध की बहुत-सी विस्तृत घटनाएं बतलाने लगा। उसके माता-पिता डरे और इन विचित्र घटनाओं को छिपाने का प्रयत्न करने लगे। इस प्रकार का मिथ्या-विश्वास फैला हुआ है, कि ऐसे लड़के दीर्घ-जीवी नहीं होते, इसलिए जितनी जल्दी ये इन बातों को भूल जायँ, उतना ही अच्छा है। मुझे हाल ही मे इस घटना का हाल ठाकुर मोतीसिंह, वकील, भूत-पूर्व सभासद, व्यवस्थापक सभा, ने बतलाया था, इसलिये २६ जून को मैं बा० रामगुलाम और विश्वनाथ को देखने के लिए गया। मैंने बा० रामगुलाम को पीलीभीत जाकर इन बातों की जाँच करने के लिए राज़ी किया और वे मेरे साथ पीलीभीत जाने को तैयार हुए। इस प्रकार हम लोग ता० १ अगस्त को पीलीभीत चल दिए। हम सीधे गवर्नमेंट हाईस्कूल, पीलीभीत, गए। इस स्कूल को लड़का पहचान न सका। स्कूल की वर्तमान इमारत नई है और अभी हाल ही मे बनी है। मैंने राय साहब बाबू अशर्फ़ीलाल, हेडमास्टर, से इस विषय मे जाँच करने के संबध में सहायता देने के लिए प्रार्थना की, जिसे उन्होंने स्वीकार कर लिया और भिन्न-भिन्न स्थानों को मेरे साथ गए।

मैंने पहली बार ही विश्वनाथ से मुलाक़ात होने पर उसकी सारी कथा लिख ली थी, और उसके बारे में मुझे सिर्फ़ नीचे लिखी बातों की जाँच करनी रह गई थी। उसने अपने चचा का नाम हरनारायण, क़ौम कायस्थ, मुहल्ला गज, शहर पीलीभीत और उनकी अवस्था २० वर्ष की बतलाई थी। उसने कहा कि मेरा विवाह

होगया था। उसने कहा कि मेरे पड़ोसी लाला सुंदरलाल थे, जिनके एक हरा-हरा फाटक था, उनके पास एक तलवार और एक बंदूक थी, और वह अपने मकान के चौक (आँगन) में नाच कराया करते थे। उसने कहा, मेरा मकान दो-मंज़िला है और उसमें स्त्रियों और पुरुषों के लिए अलग-अलग मकान बने हुए हैं। उसने नाच-पार्टी और दावतों का भी वर्णन किया, जो उसके मकान पर अक्सर हुआ करती थीं। उसने अपने विलासिता-मय जीवन के संबंध में भी बातें बतलाईं। उसने कहा, मेरे पिता ज़मींदार थे और मुझे बड़ा प्यार करते थे। वे मुझे पहिनने को हमेशा रेशमी कपड़े और जेब-ख़र्च के लिए रुपए देते थे। उसने कहा, मुझे मद्य, रोहू मछली और रंडियों का बड़ा शौक़ था। उसने कहा, मैंने गवर्नमेंट स्कूल में, जो कि नदी के क़रीब है, छठे दर्जे तक शिक्षा पाई थी और उर्दू, हिंदी तथा अंग्रेज़ी जानता हूँ। उसने अपने मकान में एक ठाकुर-द्वारा बतलाया। जब हम लोग स्वर्गीय साहू श्यामसुंदरलाल के फाटक पर पहुँचे, तो लड़का तांगे से उतर पड़ा और कहा कि यही सुंदरलाल का हरा फाटक है। उसने उस चौक की तरफ़ भी इशारा किया, जहाँ पर मुजरा हुआ करता था। पड़ोस के दूकानदारों ने इस बात का समर्थन किया। मैंने स्वयं भी उस फाटक को देखा। उसके ऊपर हरी वार्निश लगी हुई थी, जो अधिक समय हो जाने के कारण फीकी पड़ गई थी। इसके बाद हम लोग स्वर्गीय लाला देवीप्रसाद जी रईस के मकान पर गए, जिसे पहचान कर उस लड़के ने कहा, यही मेरा मकान है। उसने बड़े ज़ोर से चिल्ला कर कहा—यह मकान हरनारायण का है। हरनारायण लाला देवीप्रसाद के पुत्र थे। इस बहुत बड़े और पुराने मकान का कुछ अंश गिर गया है, और उसके मालिकों ने वह मकान छोड़ दिया है। पड़ोसवालों का कहना है कि उस स्थान में अब बहुत बड़ा परिवर्तन होगया है। लड़के ने फाटक पर की इमारत और उस स्थान को पहचाना जहाँ पर वे शराब पिया करते थे, रोहू मछली खाया करते थे, और रंडियों का गाना सुना करते थे। लड़के से ज़ीने की बाबत पूछा गया, जिसे उसने, बहुत-सी ईंटों और मलबे के ढेर के बीच में, बिल्कुल ठीक-ठीक बतला दिया। इसके बाद उसने ज़नाना मकान भी पहचाना और ऊपरवाली मंज़िल के एक कमरे का विशेष रूप से उल्लेख किया, जिसमें स्त्रियाँ रहती थीं। उस परिवार के एक-मात्र जीवित व्यक्ति, बा० ब्रजमोहनलाल ने, जो एक दूसरे मकान में रहते हैं, लाला हरनारायण और उनके पुत्र का एक पुराना और धुँधला-सा फ़ोटो लाकर दिखलाया। बहुत-से आदमियों की भीड़ के सामने उस लड़के ने झट लाला हरनारायण के फ़ोटो पर अपनी उँगली रखदी और उस फ़ोटो में एक कुर्सी पर बैठे हुए एक लड़के की फ़ोटो की ओर संकेत करके बोला—"यह देखो, मैं हूँ और यह देखो लाला हरनारायण हैं।" यह बात बड़े ही मार्के की थी और इससे तुरंत इस बात का निर्णय हो गया कि, वह बाबू हरनारायण का लड़का लक्ष्मीनारायण है।

इसके बाद हम लोग उसे पुराने गवर्नमेंट हाईस्कूल ले गए, जिसे उसने फ़ौरन् पहचान लिया और कहा कि यही मेरा स्कूल है। वह उसके चारों ओर घूम आया। वह जल्दी-जल्दी उस ज़ीने पर चढ़ने लगा, जो दाहिनी ओर कोने में बना हुआ था। हम लोग भी तीन आदमी उसके पीछे-पीछे चले। सबसे ऊपरी छत पर पहुँचकर उसने अपने मकान की तरफ़ इशारा किया जो वहाँ से दिखाई पड़ता था और डिउहा नदी की ओर भी अंगुलि-निर्देश किया, जो पीछे की ओर बह रही थी।

इसके बाद उस लड़के से पूछा गया कि तुम्हारे समय में छठा दर्जा कहाँ पर लगता था। उसने एक कमरे की ओर संकेत किया, जिसे उसके दर्जा ६ के दो पुराने सह-पाठियों ने (बा० विश्वम्भरनाथ, जिनके पुराने फ़ोटो को उस लड़के ने पहचान लिया था, तथा पीलीभीत के बाबू रामगुलाम, जो भीड़ से बाहर निकल आए) ठीक बतलाया। उन पुराने सहपाठियों ने उससे अध्यापक का नाम पूछा। उसने कहा कि वह एक मोटा-मोटा और दाढ़ीवाला आदमी था जिसका नाम भीड़वालों ने मुंशी मुईनुद्दीन शाहजहाँपुरी बतलाया। अपने मकान में उसने पुराने ठाकुर-द्वारे को ठीक-ठीक पहचान लिया। इसका हाल उसने पहले ही बतलाया था।

लड़के को एक तबले की जोड़ी दी गई जिसको वह बड़ी आसानी से बजाने लगा। लड़के के पिता बाबू रामगुलाम ने मुझे बतलाया कि, इसने अपने जीवन में कभी तबला नहीं देखा है। जिस ढंग से उस लड़के का

अपने पहिले जन्म में संबध था, उसका नाम लोगों ने उससे कई बार पूछा। उसने बड़ी ही अनिच्छा-पूर्वक 'पद्मा' का नाम लिया, जिसे लोगों ने सही बतलाया। इस मामले की सूचना डिस्ट्रिक्ट सुपरिंटेंडेंट (कप्तान) पुलिस और सिविल सर्जन को भी दे दी गई थी। कप्तान साहब ने स्वयं आकर उस लड़के को देखा और उसे अपने मोटरकार पर बिठला कर घुमाने ले गए। जिस समय हम लोग चलने लगे, उस समय रेलवे-स्टेशन के प्लैटफ़ार्म पर काफ़ी आदमियों की भीड़ जमा होगई थी। प्लैटफ़ार्म पर उपस्थित ख़ास-ख़ास लोगों में रायबहादुर लाला रामस्वरूप तथा रायसाहब बाबू अशर्फ़ीलाल थे। केकईनंदनसहाय

३० अगस्त सन् १९२६ के 'लीडर' में पृष्ठ १३ पर प्रकाशित लेख का अनुवाद इस प्रकार है—

पूर्व-जन्म का वृत्तांत

(श्रीयुत सम्पादकजी, 'लीडर')

माननीय महोदय,

मैं आपका बड़ा ही अनुग्रहीत होऊँगा, यदि आप तारीख़ २२ अगस्त के अपने पत्र में श्रीयुत नागर तथा कई एक अन्य व्यक्तियों के, पत्र द्वारा, पूछे गए प्रश्नों के उत्तर में नीचे लिखी बातों को प्रकाशित करने की कृपा करेंगे—

बाबू हरनारायण के पुत्र बा० लक्ष्मीनारायण की तारीख़ १५ दिसम्बर सन् १९१८ ई० को छ बजे सवेरे ज्वर तथा फेफड़े की बीमारी से शाहजहाँपुर में मृत्यु होगई। मृत्यु के समय उनकी आयु ३२ वर्ष ११ दिन की थी। लगभग पाँच मास की लगातार बीमारी के पश्चात् उनका देहांत हुआ। मैं उपर्युक्त समाचार के लिए बा० लक्ष्मीनारायण के मामा बा० उपेंद्रनारायण का बड़ा कृतज्ञ हूँ। उनका यह भी लिखना है कि बालक विश्वनाथ ने बहुत-सी घटनाओं का वर्णन किया है, जिन्हें उसके परिवार के लोग भूल गए हैं। उनका कहना है कि सबसे बड़े मार्के की बात तो यह है कि बालक लक्ष्मीनारायण को पीलीभीत में भी अपने पूर्व-जन्म का वृत्तांत छ वर्ष तक की अवस्था तक स्मरण रहा। वह कहता था कि वह जहानाबाद से आया है। परंतु, चूँकि उसके माता-पिता ने सोचा कि इन बातों का प्रकाशित करना बालक के जीवन और उसके कल्याण के लिए अहितकर होगा, इसलिए ये सब बातें गुप्त रखी गई और उनकी सत्यता की कोई जाँच नहीं की गई। अतएव इस समय हमको यह मालूम हुआ कि बरेली का विश्वनाथ शाहजहाँपुर का लक्ष्मीनारायण है, जो जहानाबाद का कोई और व्यक्ति था।

लक्ष्मीनारायण स्वभाव से बड़ा ही हँस-मुख था। उसे शराब, मछली और स्त्रियों से बड़ा प्रेम था। पीलीभीत के सिविल सर्जन इस बालक को देखने के लिए नहीं आए, क्योंकि उनको कहीं दूसरी जगह काम था और वह ख़ाली न थे।

मैं इस संबंध में विश्वास न रखनेवाले व्यक्तियों तथा रायबहादुर बा० श्यामसुंदरलाल, सी० आई० ई० का परम उपकृत होऊँगा, यदि वे ऐसे मामलों के संबंध में परिशोध करने के लिए एक भारतीय तत्वान्वेषण सभा का संगठन करने के संबंध में कोई व्यवहार्य योजना उपस्थित करने की कृपा करेंगे।

यदि किसी ऐसी संस्था की स्थापना कीगई, तो इस संबंध में मैं बड़ी प्रसन्नता के साथ हर प्रकार की सहायता देने के लिए तैयार हूँ।

बरेली, २५ अगस्त। केकईनंदनसहाय, वकील

लक्ष्मीनारायण जी की माता अपने भाई बा० उपेंद्रनारायण के साथ बरेली में रहती है। यह बालक उनके पास ले जाया गया और उन्होंने उसकी परीक्षा करने के लिए नीचे लिखे प्रश्न बालक विश्वनाथ से पूछे, जिस पर उन्हें यह यक़ीन होगया कि यह बालक उन्हीं के मृत पुत्र का अवतार है—

(१) प्रश्न—क्या तुम पतंग उड़ाते थे?

उत्तर—हाँ।

(२) प्रश्न—तुम्हारी पतंग की लड़ाई किससे होती थी?

उत्तर—मेरी लड़ाई हर एक ऐसे पतंग-बाज़ के साथ होती थी जिसकी पतंग हमारी तरफ़ आजाती थी, लेकिन ख़ास कर हमारी लड़ाई सुंदरलाल के साथ होती थी।

(३) प्रश्न—क्या तुमने कोई अचार फेंका था?

उत्तर—मैंने कोई अचार तो नहीं फेंका था, लेकिन यह कैसे संभव था कि हम कीड़े खाजाते। तुम

पुनर्जन्म की स्मृति

मुझे कीड़े खिलाना चाहती थीं, इसीलिए मैंने अचार फेंक दिया।

[नोट—माँ का कहना है कि एक बार उनका अचार खराब होगया था और अचार के बर्तन में कीड़े पड़गए थे। उन्होंने कीड़े निकाल कर फेंक दिए और अचार धूप में रख दिया। लेकिन लक्ष्मीनारायण ने अचार फेंक दिया, जिससे वह बहुत खफ़ा होगई थीं।]

(४) प्रश्न—क्या तुमने कभी कोई नौकरी की ?

उत्तर—हाँ, मैंने थोड़े समय ओ० आर० आर० में नौकरी की थी।

(५) प्रश्न—तुम्हारा नौकर कौन था ?

उत्तर—हमारा नौकर मैकुआ था, जो एक काला-काला नाटा आदमी और जाति का कहार था। वह मेरा बड़ा ही मुँह-लगा खानसामा था।

(६) प्रश्न—तुम बिना बिस्तरे के बांस की चारपाई पर सोया करते थे ? (यह प्रश्न बरेली ज़िले के बा० बलवीरसिंह ने पूछा।)

उत्तर—आपने कभी मेरा पलंग देखा ही नहीं। मेरे पास एक बहुत अच्छा पलंग था, जिसके सिरे पर एक बहुत ही ख़ूबसूरत नक़्क़ाशीदार तख्ता लगा हुआ था और उस पर एक कालीन पड़ा रहता था, और मैं एक तकिया सर के नीचे रखता था और दो पैरों के नीचे।

(७) प्रश्न—मैं पीलीभीत में क्या पढ़ाता था ? (यह प्रश्न मास्टर सीताराम ने पूछा, जो इस समय गवर्नमेंट स्कूल बरेली में अध्यापक हैं, और पहिले पीलीभीत में अध्यापक थे।)

उत्तर—आप हिंदी पढ़ाते थे।

तार्ईदी शहादत।

१—बा० ज्वालाप्रसाद, वकील बरेली ने अपनी डायरी देखी, तो उनको मालूम हुआ कि १९१८ ई० में ताज़ीरात हिंद की दफ़ा १९३ के एक फौजदारी जुर्म में पीलीभीत के लक्ष्मीनारायण की ओर से उन्होंने पैरवी की थी, जो एक दूसरे मामले की शाखा-स्वरूप था। यह घटना पन्ना रंडी के मकान पर हुई थी, जिसमें लक्ष्मीनारायण का भी भाग था। शहादत उसीमें लीगई थी।

२—पीलीभीत में १ अगस्त को नीचे लिखे सज्जनों ने लड़के को देखा:—

१—राय बहादुर लाला रामस्वरूप, रईस, पीलीभीत, (रेलवे प्लेटफ़ार्म पर)।

२—राय साहब बा० अशर्फ़ीलाल, हैडमास्टर, गवर्नमेंट हाईस्कूल, पीलीभीत।

३—पंडित रामदत्त जोशी, असिस्टेंट मास्टर, गवर्नमेंट हाईस्कूल, पीलीभीत।

४—कृष्णविहारीलाल, ड्रिल मास्टर, गवर्नमेंट हाईस्कूल, पीलीभीत।

५—श्यामविहारीलाल, बी० ए०, टीचर गवर्नमेंट हाईस्कूल।

६—एन० एल० खन्ना, बी० ए०, टीचर, गवर्नमेंट हाईस्कूल।

७—बा० रामगुलाम खत्री।

८—बा० विश्वम्भरनाथ खत्री, ज़मींदार, पीलीभीत।

९—बा० ब्रजमोहन, ज़मींदार।

१०—मि० लाहिरी, सुपरिंटेंडेंट पुलीस, पीलीभीत।

३—हीराकुंवरि का वृत्तान्त

बा० श्यामसुंदरलाल, स्टेशनमास्टर, हलद्वानी आर० के० आर० ने तारीख़ ३१ अगस्त सन १९२६ को मुझे दर्शन देने की कृपा की और अपनी पुत्री हीराकुंवरि को भी अपने साथ लेते आए। इस कन्या का जन्म सितंबर सन १९१९ ई० में बरेली में हुआ था और उसने एक बड़े ही विचित्र ढंग से अपने पूर्व-जन्म के मकान की शिनाख़्त की। यह एक बड़ा ही आश्चर्य-जनक मामला है, क्योंकि इसमें एक पुरुष ने स्त्री के रूप में पुनर्जन्म लिया है। पूर्व-जन्म में यह कन्या एक बालक थी, जिसकी अवस्था १२ वर्ष की थी, और जो, गोकुल, जिला मथुरा का रहनेवाला था, और सन् १९१८ ई० के अक्टूबर मास में मरा था।

दुर्भाग्य से मृत्यु के ठीक समय के बारे में निश्चय नहीं किया जा सका, क्योंकि उस परिवार का एक मात्र अव-शिष्ट व्यक्ति एक वृद्धा स्त्री थी। बा० श्यामसुंदरलाल सन् १९२२ ई० के अगस्त मास में तीर्थ-यात्रा करने के

नोट—(१) यह लड़का हरनारायण को नाऊ कहता था। उसी मुहल्ले में एक सज्जन रहते हैं, जिन्हें सब लोग हर-नारायण नाऊ कहते हैं।

(२) लड़का सा० श्यामसुंदरलाल को सुंदरलाल करके जानता है।

लिए मथुरा गए हुए थे । उन्होंने मथुरा मे गोकुल आने के लिए एक नाव की । गोकुल मे, जिस समय वह उस स्थान से होकर गुज़र रहे थे, जिसे यात्री लोग अब भी नंद और यशोदा का प्राचीन निवास-स्थान बतलाते है, तो यह छोटी सी बालिका ज़बरदस्ती नौकर की गोदी से उतर पड़ी । इसी ऐतिहासिक गृह के समीप एक छोटा सा मकान था, जिसके दरवाज़े पर एक वृद्धा स्त्री बैठी हुई थी । बालिका मकान के अदर तेज़ी के साथ घुसती चली गई और उसकी मां भी उसके साथ-साथ चल दी । यहा पर वह लड़की बातें करने लगी, मानो वह लड़का है । उसका पहला सवाल उस तख़्ती के बाबत था, जिसपर वह लिखा करती थी । उसने अपनी क़लम के बारे मे भी पूछा जिसे, वह तख़्त के नीचे छोड गई थी । दूसरी चीज़ जिसके बारे मे उसने पूछा, वह चौकी थी, जिसके ऊपर वह लिखने के लिए बैठा करती थी । इन प्रश्नो को सुनते ही वह बुढ़िया रोने लगी । तब उस बालिका ने बुढ़िया से कहा कि हमारी मा को पान दो और सुपारी हमारे पीतल के सरौते से काट लो । इसके बाद उसने अपनी माँ से कहा कि तुम चली आओ, क्योंकि मैं अपने घर आगई हूँ, लेकिन जाने के पहिले पान ले लो । हीरा कुवरि की माँ ने नौकर को इशारा किया, और उसने झट उस बालिका को मकान मे खींच कर बाहर किया ।

इसके बाद सब लोग जमुनाजी की ओर चले गए और वहां पहुंच कर उन्होने कछुओ को चने और लाई चुनाई । कछुओ को देखकर हीराकुवरि ने कहा - "तुमने पहिले मुझे डुबा दिया था और इस बार फिर वही करने के लिए आए हो ।" यह सुनते ही, जो बुढ़िया साथ मे आई थी, वह फिर फूट-फूटकर रोने लगी । आगे और पूछने पर उस बालिका ने वह स्थान भी बतलाया, जहा पर वह नहाते समय फिसल पडी थी और डूब कर मर गई थी । बुढ़िया ने बालिका की सारी बातो का समर्थन किया और कहा कि, क़रीब चार साल हुए, मेरा एक बारह वर्ष का लड़का इसी स्थान पर डूब गया था ।

४—सुंदरलाल उपनाम हसलाल

मैं कमालपुर ज़िला सीतापुर के श्रीमान् राजा सूर्य-बख़्शसिंह साहब का बडा ही उपकृत हूं, जिन्होंने इस मामले मे आचकर सब बातो का ठीक-ठीक पता लगाने में मेरी सहायता की । मेरे प्रार्थना करने पर उन्होंने अपने आदमी भेजकर बाक़ायदा लोगों के बयान लिए । पाठकों के लाभार्थ मैं उन सब बयानो की नक़ल यहा पर देता हूं ।

पुत्तूलाल, बाप का नाम ठाकुरप्रसाद, ब्राह्मण, उम्र ४८ साल, साकिन हीरपुर, तहसील सिधौली ज़िला सीतापुर, ने राजा साहब के सामने नीचे लिखा बयान दिया —

"मैं १२ साल तक कमालपुर के अस्पताल मे कपाउडर रहा हूँ । क़रीब तीन साल से मैंने पेंशन ले ली है, और घर चला आया हूँ । मेरे पाच लडके और एक लडकी है । सबसे छोटे लड़के की उम्र १४ साल है । जिस समय यह लड़का पैदा हुआ था, उस समय मै कमालपुर अस्पताल के क्वार्टरो मे रहता था । मेरा मँझला लडका सावन के महीने मे अपनी मा को लेकर अयोध्या गया हुआ था । इसके ६ महीने बाद मेरे इस सबसे छोटे लडके का जन्म हुआ, जिसका नाम मैंने सुदरलाल रक्खा । जिस समय यह लडका ढाई वर्ष का हुआ, और अच्छी तरह से बात-चीत करने लगा, तो अपने को सुदरलाल कहा जाना नापसद करने लगा, और कहा कि हसलाल कहो । उसने कहा कि हमारा नाम हसलाल है और हम फ़ैज़ाबाद, मुहल्ला कटरा-फ़टा के रहने वाले है । उसने अपना नाम और अपनी जाति लाला बतलाई । उसने कहा, मेरे दो बच्चे और एक स्त्री है । जब उससे पूछा गया कि तुम फ़ैज़ाबाद से कैसे आए ? तो उसने कहा कि जिस समय मेरा शव सरयू नदी मे फेका गया था और मेरी वर्तमान माता स्नान कर रही थीं, उस समय मै उनके साथ चला आया । कमालपुर मे इस कपाउडर के क्वार्टर से रेलवे स्टेशन बहुत नज़दीक है । इस लड़के को अक्सर राहगीर लाग लोटा लाते थे, जिन्हें वह स्टेशन की तरफ़ जाते हुए दिखाई पडता था । पूछने पर वह कहता था कि मैं फ़ैज़ाबाद मे अपने घर जाने के लिये गाडी पर आ रहा हूँ । जब तक वह ४, ५ वर्ष का रहा, उसे ये सब बाते याद रहीं । मेरी स्त्री इस बात को पसंद न करती थी, क्योंकि यह समझा जाता है कि जिन बच्चों को अपने पूर्व-जन्म की बातें स्मरण रहती हैं, उनका जीवन कम होता है । उसे ये सारी बातें भुलाने के लिये हमको मंत्र-तंत्र का आश्रय लेना पड़ा, और धीरे-धीरे वह सब बातें भूल गया । मैं

अपने जीवन मे सिर्फ़ एक बार, सन् १६२४ मे, फ़ैज़ाबाद गया था। इससे पहिले कभी नहीं गया। मैंने इस वृत्तात के सबध में कोई पूछताछ नहीं की।"

राजा साहब सूर्यबख़्शसिंहजी ने अपने यहा के ख़ज़ांची को इस मामले की जाँच करने को फ़ैज़ाबाद भेजा। उनकी रिपोर्ट इस प्रकार है—

"मैं तारीख़ १२ सितंबर सन् १६२६ ई० को ४½ बजे शाम की गाड़ी से कमालपुर से चला और २ बजे रात को फ़ैज़ाबाद पहुँचा। मैं कुँवर प्रतापविक्रम शाह साहब, आई० सी० एस०, ज्वाइंट मजिस्ट्रेट, फ़ैज़ाबाद, के बँगले पर गया। मैं एक इक्का करके अयोध्या गया, क्योंकि फ़ैज़ाबाद मे मुझे कटरा-फूटा का सिवाय इसके और कोई पता न मिला कि वह अयोध्या का एक मुहल्ला है। मैं मुहल्ला कटरा-फूटा पहुँचा, और वहा आनकीप्रसाद सोनार तथा मुहल्ले के दूसरे लोगों से जाँच-पड़ताल की।

उन सब लोगों ने इस बात की तस्दीक़ की कि लाला हब्बेलाल नाम के एक आदमी यहाँ रहते थे। वह लड़कों को पढ़ाया करते थे। वह कायस्थ थे। वह, क़रीब चौदह-पद्रह वर्ष हुए, श्रावण के महीने में प्लेग से मर गए थे। उनके एक विधवा स्त्री, एक पुत्र और एक कन्या है। मुहल्ला वालों ने उनके शव का सरयूजी मे प्रवाह कर दिया। आनकीप्रसाद सोनार उन लोगों मे से है, जिन्होंने हब्बेलाल के शव का प्रवाह किया था और रथी ले गए थे। हब्बेलाल की स्त्री और बच्चों ने बीमारी की हालत मे ही उन्हे छोड़ दिया था, और कोई क़रीबी रिश्तेदार ऐसा नहीं रह गया था, जो उनका क्रिया-कर्म करता। हब्बेलाल के मकान का दरवाज़ा पूरब की ओर है। उस का कुछ हिस्सा गिर गया है, क्योंकि उसमे कोई रहता नहीं है। जब अयोध्या में कोई पर्व-स्नान होता है, तो हब्बेलाल की स्त्री अब भी यह मकान देखने आती है। कहा जाता है कि वह पास ही के एक मौज़े मे अभी ज़िंदा है, लेकिन मौज़े के नाम का ठीक पता न लग सका। हब्बेलाल की मृत्यु ४५ वर्ष की अवस्था मे हुई थी।"

५—चमेला का वृत्तांत

राजा सूर्यबख़्शसिंह साहब, कमालपुर, ज़िला सीतापुर, ने पंडित कालिकाप्रसाद वल्द पंडित रामनारायण अग्निहोत्री, साकिन परगना महोली, तहसील मिथिख, ज़िला सीतापुर, ज़िलेदार राजासाहब कसमडा, का बयान लिया—"मैं जो कुछ बयान कर रहा हूँ, उसे मैंने अपनी आँखों देखा है। पंडित भिखारीलाल, जो प० उमाकात पाडे के पुत्र है, मेरे पड़ोसी हैं। उनके २० वर्ष की एक कन्या थी, जिसका नाम चमेला था। उसका विवाह नहीं हुआ था। भिखारीलाल ने इस कन्या की बलात्रनलाल सुकुल के लड़के के साथ मँगनी कर दी थी, जिसकी अवस्था सिर्फ़ ११ वर्ष की थी। घर लौटने पर भिखारीलाल ने लोगों से कहा कि गरीबी के कारण मुझे अपनी कन्या के लिए उसकी अवस्था का कोई वर न मिल सका। चूंकि बराबर अवस्था के लड़के बहुतसा धन दहेज में माँगते थे, इसलिए हमें थोड़ी अवस्था का सिर्फ़ यह एक अनाथ बालक मिल सका।

लड़की ने यह बात-चीत सुनी, लेकिन उसने कुछ कहा नहीं। उसने भोजन बनाया और सब घरवालों को खिलाया। जब सब लोग सो गए, तो वह पास ही एक तालाब मे कूद पड़ी और डूब कर मर गई। उसने अपने चारों ओर एक कम्बल लपेट लिया था, जो दूसरे दिन सवेरे, जब उसके लिए तलाश की गई, उस तालाब के किनारे एक लकड़ी के पाटा के नीचे पाया गया। उसकी लाश दूसरे दिन सवेरे ८ बजे के क़रीब मिली। उसने अपने लहँगे की लाग बाँध ली थी और कुरता पहिने हुए थी। ठा० गौरीशंकरसिंह, सब-इंस्पेक्टर थाना महोली ने पचायत-नामा तैयार कराया था। सब-इंस्पेक्टर साहब अब रिटायर हो गए हैं, और सीतापुर मे रहते हैं। भिखारीलाल के मकान के पास सजन के लड़के कामताप्रसाद बक्काल, मुदर्रिस, कसमडा-स्कूल, रहा करते थे। इस समय वह बरग्होंली तहसील मिथिख, ज़िला सीतापुर, मे मुदर्रिस है। उनके चम्पा नामकी एक कन्या है। इस समय उसकी अवस्था १२ वर्ष की है। जिस समय यह लड़की पाच वर्ष की थी, उस समय वह कहा करती थी कि मैं पंडित भिखारीलाल की लड़की हूँ, और यह कि मैंने तालाब में डूब कर अपने प्राण दे दिए थे। उसने अपने मुहल्ले वालों की और भी बातें बतलाई। यह लड़की, जिस समय कि वह चमेला थी, मेरे घर आया करती थी, और मुझे बाबा कहा करती थी। इस समय भी, जब कि वह चम्पा है, वह मेरे घर आती है। वह अब भी मुझे बाबा कहती है, हालाँकि गावँ के रिवाज के मुताबिक़ उसे मुझे चाचा कहना चाहिए। उसने यह भी

कहा कि यद्यपि मैं बनियों के घर पैदा हुई हूँ, मैं घर में सबके खा चुकने के बाद थाली में किसी का बचा हुआ खाना नहीं खाती हूँ।

जब चंपा की अवस्था क़रीब ४ वर्ष की थी, तो मैंने उसका क़िस्सा सुना और उससे कहा कि तुम हमको अपने पूर्व-जन्मवाले मकान में ले चलो, और अपनी चीज़ें दिखलाओ, जो अब भी वहाँ मौजूद हों। वह मेरे साथ भिखारी लाल के घर गई। उसने मुझे अपना पलँग और लकड़ी का बक्स दिखलाया और कहा कि मैं जो कपड़े और चीज़ें बक्स में छोड़ गई थी, वह अब उसमें नहीं हैं। उसने वह कोठरी भी ठीक-ठीक बतलाई जिसमें वह रहा करती थी। उसका रूप-रंग सब चमेली के रूप-रंग जैसा ही है। नाम भी बिलकुल वैसा ही है। उस लड़की का अब भी कहना है कि, वह अपना ब्याह करना नहीं चाहती, और चाहती है कि डूबकर अपनी जान दे दे। लड़की के माता-पिता ने इस साल उसकी मँगनी मौला बक़ाल, सा० वज़ीरनगर, तहसील मिश्रिख, ज़िला सीतापुर, के साथ कर दी है। मैं रियासत कसमंडा का ज़िलेदार हूँ और वज़ीरनगर में मेरी तैनाती है। मैंने वही बातें बयान की हैं, जो मैंने अपनी आँखों से देखी हैं और कोई भी ऐसी बात नहीं कही गई है, जिसे मैंने स्वयं न देखा हो।"

६—व्रजचंद्रशरण का वृत्तांत

सन् १९०६ ई० की बात है, जब मुझे पहले-पहल आवागमन तथा पुनर्जन्म के सिद्धांत की सत्यता के संबंध में विश्वास हुआ। मेरे चचेरे भाई श्रीयुत नंदनंदन-सहाय, बी० ए०, का १८ वर्ष की अल्प आयु में ही मिर्ज़ापुर में स्वर्गवास हो गया। उनकी मृत्यु का कारण हैज़ा था। परिवार के लोगों तथा मित्रों में भारी शोक छा गया, क्योंकि वह एक सार्वजनिक वक्ता, एक कुशाग्र-बुद्धि विद्यार्थी, एक सुचतुर खिलाड़ी होने के कारण सर्व-प्रिय बन गए थे। उन्हें तैरने और घोड़े की सवारी का भी शौक़ था। मृत्यु के समय उनकी स्त्री के दो मास का गर्भ था। उसे बड़े भयंकर स्वप्न दिखलाई पड़ते थे, और एक बार उसने स्वप्न में देखा कि उसका पति आया है, और कहता है कि मैं तुम्हारे यहाँ तुम्हारे पुत्र के रूप में जन्म लूँगा। उसने (पति ने) यह भी कहा कि तुम एक दूध पिलाने वाली धाय का प्रबंध कर लेना, क्योंकि मैं तुम्हारा दूध न पीऊँगा। और अगर इसका प्रबंध न किया जायगा तो मैं भूखों मर जाऊँगा। उन्होंने यह भी कहा कि हमारे सर पर पहचान के लिए एक दाग़ होगा।

उनकी स्त्री ने यह स्वप्न घर के दूसरे लोगों को बतलाया और धाय का प्रबंध कर लिया गया, जो बच्चा पैदा होने के समय पर वहीं बनी रही। बच्चा नर था, उसके सर की पीठ पर एक इंच भर का दाग़ था और बच्चे ने माँ का स्तन नहीं दाबा। तब माँ का दूध अलग एक चम्मच में लिया गया, और उस बच्चे के गले में ज़बरदस्ती डाला गया। बच्चे ने फ़ौरन कै कर दी, और उसका दूध न पिया, यद्यपि वह घर में दूसरी स्त्रियों का दूध पी लेता था। जब वह बच्चा पाँच वर्ष का हुआ, तो उसने एक दिन चुपके से अपनी माँ से कहा, कि मैं तुम्हारा पति हूँ, मेरा बाबा, मेरा बाप और दादी मेरी माँ हैं। इससे उसे बड़ी परेशानी होती थी। उसकी माँ ने लड़के की इन बातों को घर के और आदमियों पर प्रकट किया। तीसरे दिन लड़के को बुख़ार आ गया, जो बाद में बहुत भयंकर रूप धारण कर गया और जाकर २१ दिनमें उतरा। इसके बाद से इस संबंध में उस बच्चे से कोई बात न करता था, और उस क़िस्से को भुला दिए जाने की कोशिश होने लगी। इस समय वह लड़का बढ़कर जवान हुआ है और कालेज में पढ़ता है। उसका नाम व्रजचंद्रशरण है। उसकी मुखाकृति बिलकुल अपने बाप की जैसी है, और उनके फ़ोटो से बहुत मिलता-जुलता है। उसके बाल एक तरह के घूमे हुए हैं, जैसे कि उसके बाप के थे।

गवाह— केकईनंदनसहाय, वकील, बरेली। पं० गिरिधारीलाल साहब, रिटायर्ड सब जज पटवा स्ट्रीट, बरेली। बा० आदिनारायणसहाय, ओवरसियर पी० डब्ल्यू० डी० मुरादाबाद। बा० गोपीबिहारीसहाय, क़ायम-मुक़ाम डिप्टी कमिश्नर, प्रतापगढ़। राय लालबिहारी सहाय, रिटायर्ड तहसीलदार, पटवा स्ट्रीट, बरेली।

७—बजरंगबहादुर का वृत्तांत

बजरंगबहादुर वल्द मुंशी रामचरणलाल, अरायज़-नवीस, साकिन मुहल्ला सैदपुरिया, बरेली का जन्म सन् १९१८ ई० में हुआ था। उसके माता-पिता सब साँवले रंग के हैं, परंतु वह बड़ा गोरा है, बाल भूरे और आँखें अँगरेज़ों की जैसी हैं। उसके शरीर पर गोली के जैसे दो गोल-गोल निशान हैं। एक तो गर्दन की दाहिनी ओर है, और दूसरा खोपड़ी के ऊपर है। उसको गत वर्ष तक

अपने पूर्वजन्म का हाल याद था, जब कि उसने उसे बा० शकंबरीदाससिंह, ज़मींदार, ज़कार्ता मुहल्ला, बरेली को कह सुनाया। अब वह उसे भूल गया है। चार वर्ष की अवस्था तक वह छुरी और काँटे से खाना खाता था, मेढक की तरह कूदता तथा ऐसे ही दूसरे विचित्र-विचित्र खेल खेलता था। वह खेल में फ़ौजी ढंग से चलने लगता और फ़ौजी इशारों में बातें करने लगता। उसके माता-पिता पुराने रंग के आदमी हैं, जिनका विश्वास है कि ऐसी बातें याद रहने से ज़िंदगी कम हो जाती है। वे अँगरेज़ी नहीं जानते हैं। उन्होंने, जो बातें लड़का बतलाता था, प्रकट नहीं कीं। खेद है कि ऐसे अच्छे और शिक्षाप्रद मामले को लोगों ने अंध-विश्वास में बिगाड़ दिया। उसके दो भाई और माँ हैं। वह अपना नाम आर्थर बतलाता है, और कहता है कि वह एक गोरा सिपाही था, जो जर्मनी की लड़ाई में काम आया था। कुछ समय बीता जब उसका पिता मर गया था।

मृत्यु के समय उसकी अवस्था २८ वर्ष की थी। रामचरणलाल के एक दूसरा लड़का पैदा हुआ, और उसका भी रंग गोरा था। बजरंग ने कहा कि वह मेरा दूसरा भाई है।"

पुनर्जन्म के ऊपर जो सात वृत्तांत दिए गए हैं, उनमें से प्रथम और द्वितीय की काफ़ी जाँच भी हुई है। श्री बबुआ पांडे ने चि० जगदीश की बातों पर अविश्वास प्रकट किया है। कुँवर केकईनंदनसहायजी का कहना है कि जगदीश ने श्री बबुआजी के चरित्र-संबंध में कुछ ऐसी बातें प्रकट की हैं, जिनको श्री बबुआ पांडेजी समाज में सच माना जाना कभी पसंद नहीं कर सकते हैं, इसीलिये उनका यह ऊपरी अविश्वास है। विश्वनाथ का वृत्तांत तो ऐसा है कि उसमें संदेह करने का बहुत कम अवसर है। हीराकुँवरि के वृत्तांत की फिर से जाँच होनी चाहिए, और लड़के के डूबने के ठीक समय का निश्चय होना चाहिए। पूर्व-जन्म के लड़के का इस जन्म में लड़की होना आश्चर्य-जनक है। सुंदरलाल (हसेलाल) हमारे गंधौली गाँव से ढाई-तीन कोस पर रहता है। इसी साल ज्येष्ठ में उसका यज्ञोपवीत हुआ है। अब उसको अपने पूर्व-जन्म का हाल भूल गया है। उसका भाई सिधौली डाकघर में पोस्टमैन है। वह हमारे यहाँ डाक लेकर प्रायः आता है। उसका कहना है कि ऊपर उसका जो वृत्तांत छपा है, वह सब, वह कहा अवश्य करता था, पर अब धीरे-धीरे भूल गया है। यदि हो सका तो इस सुंदरलाल का चित्र हम 'माधुरी' में प्रकाशित करेंगे। चमेली और बजरंगबहादुर के मामले की जाँच हमारी राय में इतनी संतोषदायिनी नहीं है, कि उसपर अविश्वास करने के लिये किसी प्रकार की गुंजाइश ही न हो। श्री ब्रजचंदशरण का वृत्तांत अवश्य ही संतोष-दायक रीति से विश्वसनीय जान पड़ता है।

कृष्णविहारी मिश्र

कर्षी

किस दुखिया का हृदय फटा यह कड़का बादल कैसा !
बिजली बनकर तड़प रहा है—कोई घायल कैसा !
किसके आँसू बहे आज ये—पानी बरस रहा है ?
नभ में चारो ओर दुःख ही दुख क्यों दरस रहा है ?
इंद्र-धनुष को उठा लिया है, किसने आज कुपित हो ?
तारों ने हैं मीचीं आँखें, जिससे हृदय-व्यथित हो।
घमासान घन उमड़ रहे हैं—सेना यह बढ़ती है।
किस दुखिया घायल पर फिर फिर धावा कर चढ़ती है !
नभ में छाई है यह लाली—किसका रक्त बहा है ?
बीरबहूटी बन करके जो, भूपर टपक रहा है !

देवीप्रसाद गुप्त, 'कुसुमाकर'

आत्म-संगीत

(१)

धी रात थी। नदी का किनारा था। आकाश के तारे स्थिर थे और नदी में उनका प्रतिबिंब लहरों के साथ चंचल। एक स्वर्गीय संगीत की मनोहर और जीवन-दायिनी, प्राण-पोषिणी ध्वनियाँ इस निस्तब्ध और तमोमय दृश्य पर इस प्रकार छा रही थीं—जैसे हृदय पर आशाएँ छाई रहती हैं, या मुख-मंडल पर शोक।

रानी मनोरमा ने आज गुरु-दीक्षा ली थी। दिन-भर दान और व्रत में व्यस्त रहने के बाद मीठी नींद की

गोद में सो रही थी। अकस्मात उसकी आँखें खुलीं और ये मनोहर ध्वनियाँ कानों में पहुँचीं। वह व्याकुल हो गई—जैसे दीपक को देखकर पतंग; वह अधीर हो उठी जैसे खाँड की गंध पाकर चींटी। वह उठी और द्वारपालों, चौकीदारों की दृष्टियाँ बचाती हुई राजमहल से बाहर निकल आई—जैसे वेदना-पूर्ण क्रंदन सुनकर आँखों से आँसू निकल आते हैं।

सरिता-तट पर कँटीली झाड़ियाँ थीं। ऊँचे कगारे थे। भयानक जंतु थे और उनकी डरावनी आवाज़ें। शव थे और उनसे भी अधिक भयंकर उनकी कल्पना। मनोरमा कोमलता और सुकुमारता की मूर्ति थी। परंतु उस मधुर संगीत का आकर्षण उसे तन्मयता की अवस्था में खींचे लिए जाता था। उसे आपदाओं का ध्यान न था।

वह घंटों चलती रही, यहाँ तक कि मार्ग में नदी ने उसका गति-रोध किया।

(२)

मनोरमा ने विवश होकर इधर-उधर दृष्टि दौड़ाई। किनारे पर एक नौका दिखाई दी। निकट आकर बोली—माँझी, मैं उस पार जाऊँगी, इस मनोहर राग ने मुझे व्याकुल कर दिया है।

माँझी—रात को नाव नहीं खोल सकता। हवा तेज़ है, लहरें डरावनी। जान जोखिम है।

मनोरमा—मैं रानी मनोरमा हूँ। नाव खोल दे, मुँह माँगी मज़दूरी दूँगी।

माँझी—तब तो नाव किसी तरह नहीं खोल सकता। रानियों का इस नदी में निबाह नहीं।

मनोरमा—चौधरी, तेरे पाँव पड़ती हूँ। शीघ्र नाव खोल दे। मेरे प्राण उस ओर खिंचे चले जाते हैं।

माँझी—क्या इनाम मिलेगा?

मनोरमा—जो तू माँगे।

माँझी—आपही कह दें, मैं गँवार क्या जानूँ, रानियों से क्या चीज़ माँगनी चाहिए। कहीं कोई ऐसी चीज़ न माँग बैठूँ जो आपकी प्रतिष्ठा के विरुद्ध हो।

मनोरमा—मेरा यह हार अत्यंत मूल्यवान् है। मैं इसे खेवे में देती हूँ। मनोरमा ने गले से हार निकाला। उसकी चमक से माँझी का मुख-मंडल प्रकाशित हो-गया—वह कठोर और काला मुख, जिसपर झुर्रियाँ पड़ी हुई थीं।

अचानक मनोरमा को ऐसा प्रतीत हुआ मानों संगीत की ध्वनि और निकट होगई। कदाचित् कोई पूर्ण ज्ञानी पुरुष आत्मानंद के आवेश में उस सरिता-तट पर बैठा हुआ उस निस्तब्ध-निशा को संगीत-पूर्ण कर रहा है। रानी का हृदय उछलने लगा। आह! कितना मनोमुग्ध-कर राग था। उसने अधीर होकर कहा—माँझी, अब देर न कर, नाव खोल; मैं एक क्षण भी धीरज नहीं कर सकती।

माँझी—इस हार को लेकर मैं क्या करूँगा?

मनोरमा—सच्चे मोती हैं।

माँझी—यह और भी विपत्ति है। माँझिन गले में पहनकर पड़ोसियों को दिखाएगी, वह सब डाह से जलेंगी, उसे गालियाँ देंगी। कोई चोर देखेगा, तो उसकी छाती पर साँप लोटने लगेगा। मेरी सुनसान झोंपड़ी पर दिन-दहाड़े डाका पड़ जायगा। लोग चोरी का अप-राध लगाएँगे। नहीं, मुझे यह हार न चाहिए।

मनोरमा—तो जो कुछ तू माँग, वही दूँगी। लेकिन देर न कर। मुझे अब धैर्य नहीं है। प्रतीक्षा करने की तनिक भी शक्ति नहीं है। इस राग की एक-एक तान मेरी आत्मा को तड़पा देती है।

माँझी—इससे अच्छी कोई चीज़ दीजिए।

मनोरमा—अरे निर्दयी! तू मुझे बातों में लगाए रखना चाहता है। मैं जो देती हूँ, वह लेता नहीं; स्वयं कुछ माँगता नहीं। तुझे क्या मालूम, मेरे हृदय की इस समय क्या दशा हो रही है। मैं इस आत्मिक पदार्थ पर अपना सर्वस्व न्योछावर कर सकती हूँ।

माँझी—और क्या दीजिएगा?

मनोरमा—मेरे पास इससे बहुमूल्य और कोई वस्तु नहीं है, लेकिन तू अभी नाव खोल दे, तो प्रतिज्ञा करती हूँ कि तुझे अपना महल दे दूँगी, जिसे देखने के लिये कदाचित् तू भी कभी गया हो। विशुद्ध श्वेत पत्थर से बना है, भारत में इसकी तुलना नहीं। अब एक क्षण की भी देर न कर।

माँझी—(हँसकर) उस महल में रहकर मुझे क्या आनंद मिलेगा। उलटे मेरे भाई-बंधु शत्रु हो जायँगे। इस नौका पर अँधेरी रात में भी मुझे भय नहीं लगता। आँधी चलती रहती है, और मैं इस पर पड़ा रहता हूँ। किंतु वह महल तो दिन ही में फाड़ खायगा। मेरे घर

के आदमी तो उसके एक कोने में समा जायँगे। और आदमी कहाँ से लाऊँगा। मेरे नौकर चाकर कहाँ? इतना माल-असबाब कहाँ? उसकी सफ़ाई और मरम्मत कहाँ से कराऊँगा। उसकी फुलवारियाँ सूख जायँगी, उसकी क्यारियों में गीदड़ बोलेंगे और अटारियों पर कबूतर और अबाबीलें घोंसले बनाएँगी।

मनोरमा अचानक एक तन्मय-अवस्था में उछल पड़ी। उसे प्रतीत हुआ कि संगीत निकटतर आ गया है। उसकी सुंदरता और आनंद अधिक प्रखर हो गया था—जैसे बत्ती उकसा देने से दीपक अधिक प्रकाशमान हो जाता है। पहले चित्ताकर्षक था, तो अब आवेशजनक हो गया था। मनोरमा ने व्याकुल होकर कहा—आह! तू फिर अपने मुँह से क्यों कुछ नहीं माँगता। अहा! कितना विराग-जनक राग है, कितना विह्वल करनेवाला। मैं अब तनिक भी धीरज नहीं धर सकती। पानी उतार में जाने के लिये जितना व्याकुल होता है, श्वास हवा के लिये जितनी विकल होती है, गंध उड़ जाने के लिये जितनी उतावली होती है, मैं उस स्वर्गीय संगीत के लिये उतनी व्याकुल हूँ। उस संगीत में कोयल की-सी मस्ती है, पपीहे की-सी वेदना है, श्यामा की-सी विह्वलता है, इसमें झरनों का-सा ज़ोर है, और आँधी का-सा बल। इसमें वह सब कुछ है, जिससे विवेकाग्नि प्रज्वलित, जिससे आत्मा समाहित होता है, और अंतःकरण पवित्र होता है। माँझी, अब एक क्षण का विलंब मेरे लिये मृत्यु की यंत्रणा है। शीघ्र नौका खोल। जिस सुमन की यह सुगंधि है, जिस दीपक की यह दीप्ति है, उस तक मुझे पहुँचा दे। मैं देख नहीं सकती, इस संगीत का रचयिता कहीं निकट ही बैठा हुआ है, बहुत निकट।

माँझी—आपका महल मेरे काम का नहीं है, मेरी झोपड़ी उससे कहीं सुहावनी है।

मनोरमा—हाय! तो अब तुझे क्या दूँ। यह संगीत नहीं है, यह इस सुविशाल क्षेत्र की पवित्रता है, यह समस्त सुमन-समूह का सौरभ है, समस्त मधुरताओं की माधुरी है, समस्त अवस्थाओं का सार है। नौका खोल। मैं जब तक जिऊँगी, तेरी सेवा करूँगी, तेरे लिये पानी भरूँगी, तेरी झोपड़ी बहारूँगी, हाँ, मैं तेरे मार्ग के कंकड़ चुनूँगी, तेरे झोंपड़े को फूलों से सजाऊँगी, तेरी माँझिन के पैर मलूँगी। प्यारे माँझी, यदि मेरे पास सौ जानें होतीं, तो मैं इस संगीत के लिये अर्पण करती। ईश्वर के लिये मुझे निराश न कर। मेरे धैर्य का अंतिम बिंदु शुष्क हो गया। अब इस चाह में दाह है, अब यह शिर तेरे चरणों में है।

यह कहते-कहते मनोरमा एक विक्षिप्त की अवस्था में माँझी के निकट आकर उसके पैरों पर गिर पड़ी। उसे ऐसा प्रतीत हुआ मानो वह संगीत आत्मा पर किसी प्रज्वलित प्रदीप की तरह ज्योति बरसाता हुआ मेरी ओर आ रहा है। उसके रोमांच हो आया। वह मस्त होकर झूमने लगी। ऐसा ज्ञात हुआ कि मैं हवा में उड़ी जाती हूँ। उसे अपने पार्श्व देश में तारे झिलमिलाते हुए दिखाई देते थे। उस पर एक आत्म-विस्मृति का भावावेश छा गया और तब वही मस्ताना संगीत, वही मनोहर राग उसके मुँह से निकलने लगा। वही अमृत की बूँदें उसके अधरों से टपकने लगीं। वह स्वयं इस संगीत का स्रोत थी। नदी-पार से आनेवाली ध्वनियाँ, प्राणपोषणी ध्वनियाँ उसीके मुँह से निकल रही थीं।

मनोरमा का मुख-मंडल चंद्रमा की तरह प्रकाशमान हो गया था, और आँखों से प्रेम की किरणें निकल रही थीं।

प्रेमचंद

राजपूताने के इतिहास को भ्रष्ट करने का प्रयत्न

(१)

शिक्षित-समाज को यह बतलाने की आवश्यकता नहीं है कि संसार के साहित्य में इतिहास का स्थान बहुत ऊँचा है, क्योंकि देशों और जातियों के उत्थान एवं पतन पर उसका बहुत कुछ प्रभाव पड़ता है। साहित्य के ऐसे उपयोगी अंग के संबंध में हमारे यहाँ महाभारत के युद्ध के पीछे से लेकर मुसलमानों का इस देश पर अधिकार करने से पूर्व तक का शृंखला-बद्ध लिखित इतिहास नहीं मिलता, जिसके कई

कारण हैं। उनमें से मुख्य यह है कि मुसलमानों के शासन-काल में अन्यान्य विषयों के अनेक ग्रंथों के साथ-साथ इतिहास के ग्रंथ भी नष्ट कर दिए गए, और, यदि, लोगों के पास कुछ बच भी रहे, तो, उन्हें विद्वानों को बतलाने मे उनके स्वामियों को सकोच रहने के कारण वे प्रसिद्धि मे न आसके। इस देश पर अँगरेज़ों का अधिकार जमने पर मुसलमानों के राज्य-समय से साधारण जनता में विद्या-सबधी जो शिथिलता आ गई थी, उसमे पुन नव-जीवन का सचार होने लगा और पाश्चात्य प्रणाली से शिक्षा का नवीन प्रबंध हुआ, जिसका कालातर मे सारे भारतवर्ष मे प्रचार हो गया। जिस समय से अँगरेज़ विद्वानों ने सस्कृत का पठन-पाठन आरभ किया, तभी से उनको इस देश के प्राचीन गौरव का यथार्थ अनुमान होने लगा और भारत की पुरातन सभ्यता एव इतिहास का अन्वेषण करने के लिये वे एतद्देशीय पडितों की सहायता लेकर कार्य-क्षेत्र मे अवतीर्ण हुए।

मुसलमानों के समय मे नष्ट-भ्रष्ट होते हुए जो शिला-लेख, दान-पत्र, सिक्के एव प्राचीन ग्रथ आदि बचने पाए, उन पर इनकी दृष्टि पड़ी, परतु प्राचीन होने के कारण उनकी लिपियाँ नहीं पढ़ी जाती थी, जिससे इन्होंने उनको बड़े श्रम और धैर्य-पूर्वक पढकर उनका आशय जानने का प्रयत्न किया। अँगरेज़ों के बतलाए हुए मार्ग का अनुकरण कर हमारे यहा के कई एक विद्वान् भी प्राचीन इतिहास की खोज मे प्रवृत्त हुए। इस प्रकार अनेक यूरोपियन और भारतीय विद्वानों के अगाध परिश्रम से हमारे देश के, जिसमे अनेक स्वतत्र राज्य थे, और जहा एक राज्य का उदय तथा दूसरे का अस्त समय-समय पर हुआ ही करता था, पुरातन इतिहास के अधकार पर नवीन प्रकाश पडने लगा, जिससे आज हम सौ से अधिक राज-वशों का कुछ-कुछ प्राचीन इतिहास जानने मे समर्थ हुए हैं परतु वह भी बहुत थोडा है, और अभी उसका विशेष अनुसधान करने की बडी आवश्यकता है। इतिहास के सबध मे राजपूताना एक तरह से भारतवर्ष का केंद्र रहा है, जिसके किसी-न-किसी भाग पर प्राचीन-काल से ही मौर्य, मालव, यूनानी (ग्रीक) अर्जुनायन, क्षत्रप, कुशन, गुप्त, वरीक, हूण, गुहिल यादव, गुर्जर, वम, चाप (चावडा), प्रतिहार, परमार, राष्ट्रकूट, चौहान, नाग, यौधेय, तँवर, दहिया, दाहिमा, निकुंप, डोडिया, गौड़ आदि अनेक वंशों या जातियों ने समय-समय पर अपना अधिकार जमाया, और अंत मे मुसलमानों ने तो इसे पद-दलित ही कर दिया। ऐसे विस्तीर्ण देश का, जहा भारतवर्ष के अन्य प्रांतों की अपेक्षा विद्या का प्रचार कम रहा, इतिहास का अभाव हो, इसमे आश्चर्य की कोई बात नहीं है।

बादशाह अकबर के राज्य-समय मे हिंदू राजा उसके दरबार मे रहने लगे, और बादशाह की आज्ञा से जब अबुलफ़ज़ल ने आइने-अकबरी लिखना आरंभ किया तब उसको अकबर के राज्य के प्रत्येक सूबे का एव वहा के भिन्न-भिन्न राज-वशों का उस समय तक का सक्षिप्त इतिहास लिखने की आवश्यकता हुई। इसीसे उन प्रदेशों के इतिहास का अनुसधान होने लगा, परतु पहले का लिखित इतिहास न होने के कारण भाटों आदि से भिन्न-भिन्न प्रदेशों के राज-वशों का जैसा कुछ इतिहास उसे मिल सका, वैसा ही उसने अपने ग्रथ में उद्धृत किया, जिसको आजकल के कई पुरातत्त्वान्वेषी विद्वान् बहुधा कृत्रिम एव निस्सार समझते हैं।

मुसलमानों मे क्रमबद्ध इतिहास लिखने की प्रणाली बराबर चली आती थी, जिससे ससार मे जहा-जहाँ उनके राज्य रहे, उनमे से प्रत्येक का काल-क्रम के अनुसार शृखलाबद्ध इतिहास आज भी विद्यमान है। राजपूतों का इस ओर ध्यान ही न था। अकबर के राजत्व-काल मे जब उनसे उनका इतिहास मागा गया, तब उन्होंने बडवों (भाटों) की शरण ली। प्राचीन इतिहास का ज्ञान न होने के कारण भाटों ने प्रत्येक वश की सैकड़ों कल्पित पीढ़िया धर दी और अपने आश्रय-दाताओं को रिझाने के लिये अनेक मनमानी बाते लिख दीं। इनकी पुस्तकों मे प्राचीन-काल के भिन्न-भिन्न राज-वशों के राजाओं की कृत्रिम नामावलिया, राणियों, कुँवरों तथा राज-कुमारियों के बनावटी नाम और कृत्रिम सवतों के साथ भिन्न-भिन्न राजाओं ने जो कुछ उन्हें दिया, उसका अति-शयोक्तिपूर्ण वर्णन मिलता है। विक्रम सवत की सातवीं से चौदहवीं शताब्दी तक के प्रसिद्ध-प्रसिद्ध राजाओं के नामों मे से तो थोड़े-से ही, जो जन-श्रुति से सुनने मे आते थे, असबद्ध रूप मे लिखे हुए मिलते हैं, शेष सब अधिकाश में कल्पित है। भाटों की पुस्तकों में दिए हुए नामों मे से चौदहवीं शताब्दी से पूर्व के तो कुछ ही नाम

शुद्ध मिलते हैं। बबवों की सौ से अधिक ख्यातों की हमने प्राचीन शोध की कसौटी पर जाँच की, तो पंद्रहवीं शताब्दी तक के नाम संवत् आदि अधिकतर कृत्रिम ही पाए गए। भाटों ने इस बात को अपनी जीविका समझ कर १६वीं शताब्दी के आस-पास से ठीक नामों का लिखना आरंभ किया, परंतु शिक्षित न होने के कारण ये लोग नाम तक शुद्ध नहीं लिख सकते थे; और इतिहास का ज्ञान तो इनको था ही नहीं इसी से भिन्न-भिन्न घटनाओं का ऐतिहासिक शैली से उल्लेख करना ये जानते ही नहीं थे। अपने स्वामियों की ख्याति करने की दृष्टि से लिखी जाने के कारण भाटों की पुस्तकें राजपूताने में 'ख्यात' कहलाती हैं। मुसलमानों के लिखे हुए इतिहास-ग्रंथों में, और विशेषतः मुगलों के इतिहास में, राजपूताने के संबंध की अनेक घटनाओं का उल्लेख मिलता है। मुसलमान लेखकों ने अपने ऐतिहासिक ग्रंथ चाहे जितने पक्षपात और धर्मद्वेष के साथ लिखे हैं और उन्होंने उनमें मुसलमानों की कितनी ही प्रशंसा तथा हिंदुओं की निंदा की है, तो भी ऐतिहासिक दृष्टि से वे भाटों की पुस्तकों की अपेक्षा किसी प्रकार अधिक उपयोगी हैं, क्योंकि उनमें घटनाएँ काल-क्रम से लिखी हुई मिलती हैं।

विक्रम संवत की १७वीं शताब्दी के अनंतर मुसलमानों की देखा-देखी राजपूताने के राजाओं में भी अपने-अपने राज्यों का इतिहास लिखवाने की रुचि बढ़ी, परंतु मुसलमानों जैसे विद्वान् इतिहास-लेखकों के अभाव में उनके यहाँ यह कार्य मामूली अहलकारों के सुपुर्द किया जाता था, जिसमें उन लोगों ने प्राचीन इतिहास तो भाटों की ख्यातों से ही लिया और पिछला कुछ दफ्तरों के कागज़ों तथा सुनी-सुनाई बातों के आधार पर लिखा है। राजपूताने के बहुधा प्रत्येक राज्य की तथा कई एक सरदारों के ठिकानों की भी ऐसी अनेक ख्यातें मिलती हैं। इतिहास से अनभिज्ञ ख़ुशामदी लोगों की लिखी हुई होने के कारण इनमें अपने-अपने स्वामियों का महत्व बतलाने का भरसक प्रयत्न किया गया है। यह निस्संदेह कहा जा सकता है कि केवल उनके आधार पर इतिहास लिखने की चेष्टा बहुधा निष्फल ही होती है। इतिहास के अंधकार में उन लोगों ने कैसी-कैसी निराधार कथाएँ इतिहास के नाम से उनमें भर दी हैं, और खेद है कि राजपूत जाति अब तक उन्हीं पर विश्वास करती चली आ रही है। वास्तव में वे देशी और विदेशी विद्वान् बड़े धन्यवाद के पात्र हैं, जिनके शोध ने भारत के प्राचीन इतिहास पर प्रकाश डालकर उसे किसी प्रकार अंधकार में से निकाला है।

इन ख्यातों में सबसे प्राचीन ख्यात जोधपुर राज्य के दीवान मुहणोत नैणसी की लिखी हुई है, जो विक्रम संवत १७०४ और १७२२ के आस-पास तक संग्रह की गई थी। कई एक भाटों तथा विभिन्न राज्यों के प्रतिष्ठित पुरुषों आदि के यहाँ से जो कुछ ऐतिहासिक बातें लिखी हुई मिलीं, उनका नैणसी ने अपनी ख्यात में संग्रह किया है। इसमें भी भाटों की ख्यातों से जो पुराने नाम आदि उद्धृत किए गए हैं, वे तो वैसे ही हैं जैसा ऊपर बतलाया जा चुका है। पिछला इतिहास किसी प्रकार ठीक होने से दूसरी ख्यातों की अपेक्षा विशेष आदरणीय है। फिर भी उसमें कई एक अशुद्धियाँ एवं त्रुटियाँ हैं, जो प्राचीन शोध के आधार पर ठीक हो सकती हैं। राजपूताने के इतिहास के संबंध में यही पहला प्रयत्न था, जो वास्तव में आदरणीय है, क्योंकि उससे बहुत-सी बातों का पता लग सकता है।

राजपूत जाति और राजपूताने का ऐतिहासिक-शैली से इतिहास लिखने का पहला प्रयत्न एक विदेशी नवयुवक विद्वान् सैनिक कर्नल जेम्स टाड ने, आज से १०० वर्ष पूर्व, किया था। उस समय प्राचीन शोध के कार्य का प्रारंभ ही हुआ था, और राजपूताने के इतिहास की जितनी सामग्री आज मिल रही है, उसका अंशमात्र भी उस समय दुष्प्राप्य था। इसी कारण राजपूताने के मुख्य सात राज्यों से जो कुछ वृत्तांत मिल सका और जो जो बातें लोगों से सुनी, उन्हीं के आधार पर उक्त कर्नल ने अपने इतिहास की नींव डाली, तो भी जो फारसी तवारीख़ें या शिलालेखादि उस समय प्राप्त हो सके, उनकी सहायता से टाड ने कई भ्रम-पूर्ण विषयों के निराकरण का प्रयत्न किया। इतना परिश्रम करके उस समय राजपूत जाति का इतना विस्तृत इतिहास लिखना टाड जैसे महानुभाव के लिये ही संभव था। टाड-कृत 'राजस्थान' में अनेक त्रुटियाँ और अशुद्धियाँ रहते हुए भी उसकी जितनी प्रशंसा की जाय थोड़ी है। कर्नल टॉड के अगाध इतिहास प्रेम से आकर्षित होकर ही हमने अपने राजपूताने के इतिहास की पहली जिल्द उक्त महा-

नुभाव की पवित्र स्मृति को समर्पित की है। आधुनिक शोध के आधार पर टॉड के इतिहास में बहुत कुछ परिवर्तन करने की आवश्यकता हुई है। कुछ वर्ष पूर्व खड्गविलास प्रेस, बाकीपुर के स्वामी बाबू रामदीनसिंहजी (स्वर्गस्थ) ने कर्नलटाड के 'राजस्थान' का हिंदी अनुवाद प्रकाशित करने का विचार कर उसकी त्रुटियाँ दूर करने का हमसे आग्रह किया और चौदह प्रकरणों पर हमने टिप्पण भी किए। फिर कई कारणों से वह कार्य बंद हो गया। प्रसिद्ध इतिहासवेत्ता मुन्शी देवीप्रसादजी ने ईसवी सन् १९१६ के अगस्त मास की 'सरस्वती' (पृष्ठ ८३) में लिखा है—

"कर्नल टाड् ने अपना इतिहास लिखने के लिये जो सामग्री इन सातों रजवाड़ों से मांगी थी, उसकी सूची देखने से ज्ञात होता है कि वे सब काव्य-ग्रंथ थे। उनमें कवियों ने सातों रजवाड़ों की वंशावलियाँ और ऐतिहासिक घटनाओं को साहित्य-शास्त्र की शैली के अनुसार चुना-चुनी से बना-बना कर वर्णन किया है। इससे टाड् साहब के इतिहास में बहुत अशुद्धियाँ रह गई हैं, क्योंकि कवि लोग, जो वास्तव में गप्पी होते हैं, राई का पर्वत और पखड़ी का फूल बना देते हैं।

टाड् के राजस्थान के यथार्थ अनुवाद में उन अशुद्धियों को शुद्ध करने में जो परिश्रम मेरे मित्र पंडित गौरीशंकरजी ओझा को उठाना पड़ा है, उसको मैं ही जानता हूँ। इस अनुवाद के ग्राहकों में से विरले ही कोई महाशय जानते हों तो जानते हों।"

परंतु मैं यह नहीं कह सकता कि मैं उस कार्य में कहाँ तक सफल हुआ, क्योंकि राजपूत जाति का इतिहास एक ऐसा गहन विषय है कि उसका यथेष्ट ज्ञान प्राप्त करने के लिये उम्रभर गवेषणा करने, अनेक आपत्तियाँ सहकर असंख्य प्राचीन स्थलों का निरीक्षण करने, हज़ारों शिलालेखों, ताम्रपत्रों तथा सिक्कों को पढ़ने और सैकड़ों हस्तलिखित प्राचीन ग्रंथों का अवलोकन करने की आवश्यकता रहती है, जिसकी लेशमात्र भी पूर्ति करने को मैं समर्थ न था।

कर्नल टाड का 'राजस्थान' प्रकाशित होने के बाद राजपूताने के संबंध में कई छोटे-बड़े ऐतिहासिक ग्रंथ लिखे गये, उनमें से जो-जो किसी प्रकार उपयुक्त पाये गये उनका उल्लेख हमने राजपूताने के इतिहास की पहली जिल्द की भूमिका में किया है। उनके अतिरिक्त राजपूताने के राज्यों अथवा राजाओं के संबंध में और भी कई पुस्तकें हिंदी भाषा में समय-समय पर प्रकाशित हुई हैं। वे अधिकांश में ऐसे पुरुषों की लेखनी से निकली हैं जो इतिहास-वेत्ता एवं शोधक किसी प्रकार से नहीं कहे जा सकते। इसीलिये उनके ग्रंथों में गवेषणा और निष्पक्षता का परिचय नहीं मिलता। अपनी विद्वत्ता का आडंबर दिखलाने या खुशामद के कारण लिखे हुए होने से वे ग्रंथ इतिहास की कोटि से बाहर हैं। यही जानकर हमने उन ग्रंथों का अपने इतिहास की भूमिका में उल्लेख नहीं किया। इस लेख में हमने यहाँ तक जो कुछ लिखा है, उससे पाठकों को प्रारंभिक काल से लेकर अब तक की राजपूताने के इतिहास की दशा का अत्यल्प परिचय हो जायगा।

दो वर्ष पूर्व हमने अपने राजपूताने के इतिहास का पहला खंड और गत फ़रवरी मास में दूसरा खंड प्रकाशित किया। हिंदी भाषा में राजपूताने का शोध-पूर्वक विस्तृत इतिहास लिखने का पहला ही प्रयत्न होने के कारण इसमें अनेक त्रुटियाँ, बहुतसी अशुद्धियाँ और कई दोष रहे होंगे; तो भी यूरोप और भारत के अनेक पुरातत्त्ववेत्ताओं, इतिहास-प्रेमियों तथा पत्र-पत्रिकाओं ने इसका यथेष्ट आदर किया। यह हमारे लिये कुछ संतोष की बात है, और कहना न होगा कि आठ मास के भीतर ही हमारे इतिहास का प्रथम खंड अप्राप्य होगया और दूसरे खंड की भी कुछही प्रतियाँ रहगई हैं।

माधुरी वर्ष ५, खंड २, संख्या ४ के पृष्ठ ६१४—६१८ में श्रीयुत विश्वेश्वरनाथजी रेऊ का "राजपूताने का इतिहास और मारवाड़ के राठौर-नरेश"-शीर्षक एक लेख प्रकाशित हुआ है, जिसके प्रारंभ में ही निम्नलिखित उर्दू शेर छपा है—

बहुत शोर सुनते थे पहलू में दिल का
जो चीरा तो इक क़तरए ख़ूँ न निकला।

इस शेर का आशय हम यही समझते हैं कि दिल की धड़कन का शोर तो बहुत सुना जाता था, क्योंकि वह ख़ून से भरा हुआ था, परंतु जब उसे चीर कर देखा तब (आश्चर्य है) उसमें से ख़ून का एक क़तरा भी न निकला। यह लेख हमारे राजपूताने के इतिहास के संबंध में लिखा गया है, अतः लेख के प्रारंभ में लिखे

हुए उपर्युक्त शेर का हमारे ग्रंथ के संबंध में यही अर्थ हो सकता है कि इस इतिहास के लिये पहले (अर्थात् प्रकाशन से पूर्व) आशा तो बहुत की जाती थी, परन्तु पढ़ने पर यह ग्रंथ सर्वथा निकम्मा ही निकला। रेऊजी जैसे इतिहास के प्रकाण्ड विद्वान् एवं उद्भट समालोचक का, जिनके ऐतिहासिक-ज्ञान तथा ग्रंथों का परिचय आगे दिया जायगा, हमारे ग्रंथ के संबंध में उपर्युक्त कथन अक्षरशः यथार्थ ही होगा। क्योंकि हमारे इस इतिहास में गवेषणा की कहीं बू तक नहीं, ऐतिहासिक शुद्धता का लेश-मात्र भी नहीं, प्राचीन अशुद्धियों तथा त्रुटियों को शुद्ध करने का श्रीगणेश भी नहीं, प्राचीन शिला-लेख, ताम्र-पत्रादि के अवतरणों का नाम-निशान तक नहीं, प्रमाणों के तो कहीं दर्शन ही नहीं, और मिथ्या कल्पनाओं का बोलबाला तथा झूठी खुशामदों की ही सर्वत्र भरमार है। काशी के हिंदू विश्वविद्यालय ने माधुरी के उक्त समालोचक महाशय की आदरणीय सम्मति लिये बिना ही हमारी 'भारतीय प्राचीन लिपिमाला' तथा इस राजपूताने के इतिहास को एम्० ए० परीक्षा के पाठ्य-ग्रंथों में स्थान दिया है, इसे निस्संदेह वहाँ के अधिकारियों की भारी भूल समझना चाहिये। हिंदी-प्रेमियों में इतिहास के वास्तविक विद्वान् इने-गिने ही हैं। हमारे इतिहास में जो-जो अशुद्धियाँ तथा त्रुटियाँ रह गई हों, उन्हें, यदि, कोई सुयोग्य इतिहास-वेत्ता हमें प्रमाण-सहित सूचित करे तो हम बड़ी प्रसन्नता से उनको द्वितीय संस्करण में शुद्ध करने को उद्यत हैं, क्योंकि हमें किसी बात की हठ-धर्मी नहीं है। इसीलिये हम अपने इतिहास की पहली जिल्द की भूमिका (पृष्ठ ४६) में पहिले ही लिख चुके हैं कि—"इतिहास-प्रेमी पाठकों से हमारा सविनय निवेदन है कि इस ग्रंथ में जो-जो ऐतिहासिक त्रुटियाँ उनके दृष्टि-गोचर हों, उनकी सप्रमाण सूचना यदि वे हमारे पास भेजने की कृपा करेंगे, तो इसके द्वितीय संस्करण में, जो शीघ्र ही प्रकाशित होगा, हम उन्हें सहर्ष स्थान देंगे। परंतु जो प्रमाण हमारे पास आवें, वे ऐसे हों कि ऐतिहासिक-कसौटी पर जाँच करने से उनकी सचाई पर हमें विश्वास हो जाय।" परंतु इतिहास न जाननेवालों के प्रमाण-शून्य वाक्चापल्य का उत्तर देने के लिये हमारे पास न समय है, और न हम ऐसा करना पसंद करते हैं। माधुरी में प्रकाशित उपर्युक्त लेख प्रमाण-शून्य, आडंबरपूर्ण तथा स्वार्थ-परायणता से लिखा हुआ है, जैसा कि हम आगे चलकर बतलावेंगे। व्यर्थ के वाद-विवाद में उतरना हम कभी नहीं चाहते, और, यदि, हमारे विरुद्ध भी कोई कुछ लिख डाले, तो भी हम उसका उत्तर देने के इच्छुक नहीं हैं। इसीलिये रेऊजी के इस लेख का उत्तर लिखना हम सर्वथा अनुचित समझते हैं, परंतु लेखक महाशय का उद्देश्य राजपूताने के इतिहास को नष्ट-भ्रष्ट करने का होने के कारण ही हमें विवश होकर उसकी तथा उसके लेखक की वास्तविकता प्रकट करने की आवश्यकता हुई है।

अब हम लेखक महोदय की विचारणीय बातों का विवेचन करते हैं—

माधुरी के पृष्ठ ६१४ में लेखक महाशय लिखते हैं—"मारवाड़ के इतिहास से कान्हा का जन्म वि० सं० १४६५ में सिद्ध है।"

मुंशी देवीप्रसादजी के यहाँ के जन्म-पत्रियों के संग्रह में, जो नागरी-प्रचारिणी-पत्रिका (त्रैमासिक) के प्रथम भाग में "पुरानी जन्म-पत्रियाँ"-शीर्षक में प्रकाशित हो चुका है, कान्हा की जन्म-पत्री नहीं है। मारवाड़ के प्रसिद्ध ज्योतिषी चंडू के यहाँ की जन्म-पत्रियों के संग्रह में भी, जो इस समय हमारे पास विद्यमान है, और जो जन्म-पत्रियों के ज्ञात संग्रहों में सबसे बड़ा है, कान्हा की जन्म-पत्री नहीं मिलती। 'मारवाड़ की ख्यात' तथा वीर-विनोद में भी कान्हा के जन्म-संवत् का कहीं उल्लेख नहीं है। कान्हा के जन्म-संवत् के संबंध में किसी शिलालेख, ताम्र-पत्र, प्राचीन ऐतिहासिक संस्कृत काव्य अथवा किसी प्रामाणिक ग्रंथ का तो प्रमाण देने का लेखक महाशय ने कष्ट उठाया ही नहीं, और यही लिख डाला कि मारवाड़ के इतिहास से कान्हा का जन्म वि० सं० १४६५ में "सिद्ध" है। "मारवाड़ का इतिहास"-नामक कोई स्वतंत्र प्रामाणिक ग्रंथ हमने अब तक न देखा और न सुना। शायद मारवाड़ के इतिहास से रेऊजी का अभिप्राय उनके लिखे हुए 'भारत के प्राचीन राजवंश' के तृतीय भाग से हो, जिसमें मारवाड़ के राठोड़ों का इतिहास लिखते हुए कान्हा के वृत्तांत में पृष्ठ १३६ में यह संवत् दिया है, परंतु खेद है कि साथ में ग्रंथ-कर्त्ता ने वहाँ भी इसका कोई प्रमाण नहीं दिया, और अपना नाम न देकर अपने ही लिखे हुए ग्रंथ के प्रमाण-शून्य एवं मन

माने संवत् को रेऊजी "सिद्ध" संवत् मानने का साहस कर सकते हैं। रेऊजी की उक्त पुस्तक में छपा हुआ मारवाड़ के राठोड़ों का इतिहास अधिकांश में मारवाड़ की ख्यात का ही हिंदी में संक्षेपमात्र है, और उसकी भी कई बातें उलट-पुलटकर लिखी गई हैं, तथा कई घटनाएँ छिपा भी दी गई हैं। जब यह ग्रंथ शुद्धि-पत्र सहित प्रकाशित हो गया और इसकी समालोचना में टीका-टिप्पणियाँ होने लगीं, तब रेऊजी को उसे शुद्ध कराने की आवश्यकता प्रतीत हुई। इस पर पंडित रामकर्णजी से उसकी ऐतिहासिक अशुद्धियाँ शुद्ध कराकर एक लंबा-चौड़ा नया शुद्धिपत्र छपवाकर ग्रंथकर्ता को अलग वितरण करना पड़ा। यही बात रेऊजी के उक्त इतिहास की वास्तविकता को सहज ही प्रकाश में लाती है। इस ग्रंथ के प्रकाशक हमारे विद्वान् मित्र बंबई-निवासी नाथूरामजी प्रेमी ने इसकी समालोचना लिखने का हमसे आग्रह किया, तो हमने उन्हें यही लिख दिया कि इस ग्रंथ को मैं इतिहास की कोटि में नहीं गिनता और इतनी ऐतिहासिक भूलें इसमें भरी पड़ी हैं, कि यदि वास्तविक समालोचना लिखी जाय, तो इसकी सारी पोल खुल जाय, और यह मुझे कदापि अभीष्ट नहीं है। इसीलिये हमने प्रेमीजी के सम्मुख इस ग्रंथ की समालोचना लिखने में अपनी असमर्थता प्रकट की। इसके अनंतर एक ऐतिहासिक ने इस पुस्तक के कुछ अंश की जाँच कर, २५ फुल्स्केप पृष्ठ भरकर इसकी मोटी-मोटी अशुद्धियाँ हमारे पास यह बतलाने के अभिप्राय से भेजीं कि आजकल राजपूताने में इतिहास का प्रवाह किस ओर और कैसा चल रहा है।

जोधपुर राज्य के इतिहास-कार्यालय के सहकारी अध्यक्ष मुंशी देवीप्रसादजी ने, जो मारवाड़ के इतिहास के सबसे बड़े ज्ञाता थे, अपने स्वर्गवास से दो वर्ष पूर्व मारवाड़ के प्रत्येक राजा की रानियों, कुँवरों तथा राजकुमारियों के नाम और विवरण की ८८ पृष्ठ की एक पुस्तक तैयार कर हमारे संग्रह के लिये भेजी, जिसमें कई एक संवत् भी दिये हैं। उसके पृष्ठ १७ में कान्हा के पिता राव चूँडा का संवत् १४६५ में तुर्कों से लड़कर काम आना लिखा है। जब राव चूँडा ने अपने ज्येष्ठ पुत्र रणमल को अपना उत्तराधिकारी न बनाकर अपने छोटे पुत्रों में से कान्हा को राज्य देने का प्रबंध किया तब रणमल अप्रसन्न होकर मेवाड़ के महाराणा लाखा के दरबार में चला गया और अपनी बहिन हंसबाई का विवाह उक्त महाराणा के साथ कर दिया, ऐसा सभी ऐतिहासिक मानते हैं। यहाँ पर विचारणीय बात यह है कि, जिस संवत् को मुंशीजी चूँडा की मृत्यु अर्थात् कान्हा की गद्दीनशीनी का बतलाते हैं, उसी को रेऊजी कान्हा का जन्म-संवत् मानते हैं। वीरविनोद के अन्तर्गत मारवाड़ के इतिहास में लिखा है कि—"चूँडा (कान्हा का पिता) भाटी राजपूत और सिंध के मुसलमानों से लड़कर मारा गया। उसके मारे जाने का संवत् मुंशी देवीप्रसाद ने १४६५ लिखा है।" कान्हा का वास्तविक जन्म-संवत् अब तक ज्ञात ही नहीं हुआ, इसलिये रेऊजी को कान्हा का जन्म संवत् विक्रम संवत् १४६५ में सिद्ध मानने के लिये प्रथम तो मुंशीजी के कथन का सप्रमाण खंडन करना चाहिये था, और फिर अपने माने हुए "सिद्ध" जन्म-संवत् की पुष्टि में प्रमाण देने चाहिये थे। परंतु वे ऐसा न कर सके। दूसरी बात यह है कि चूँडा ने अपनी मृत्यु से कितने वर्ष पूर्व अपने चौदह पुत्रों में से सातवें (मुंशीजी के कथनानुसार आठवें) कान्हा को अपना उत्तराधिकारी स्थिर किया, यह भी अब तक अज्ञात ही है। ऐसी स्थिति में रेऊजी का माना हुआ कान्हा का कल्पित "सिद्ध" जन्म-संवत् किसी प्रकार विश्वास-योग्य नहीं कहा जा सकता, क्योंकि विवाद-ग्रस्त बात को सिद्ध कह देने के लिये तो सदैव पग-पग पर पुष्ट प्रमाणों की आवश्यकता रहती है, जिसकी इस विषय में हमारे समालोचक महोदय अणु-मात्र भी पूर्ति नहीं कर सके। अतः कहना न होगा कि, 'प्रथमग्रासे मक्षिकापातः।'

ज़रा से आगे चलकर रेऊजी लिखते हैं — "रणमल का सोजत की तरफ़ होते हुए जल्दी-से-जल्दी वि० सं० १४६६ के क़रीब मेवाड़ में जाना प्रतीत होता है।" निम्नलिखित पंक्तियों में हम इस कथन की समीक्षा करते हैं।

यह बात निर्विवाद है कि राव चूँडा के कान्हा को गद्दी देने का निश्चय कर लेने पर उसका ज्येष्ठ पुत्र रणमल्ल मेवाड़ में आकर महाराणा लाखा की सेवा में रहा। जब कान्हा का जन्म-संवत् ही अज्ञात है, और रणमल के मेवाड़ में जाने का निश्चित संवत् भी मालूम नहीं हुआ; ऐसी दशा में रणमल के जल्दी-से-जल्दी मेवाड़ में आने का कोई भी संवत् मान लेना—जैसा कि रेऊजी ने किया है—केवल कपोल-कल्पना है। इसीलिये रेऊजी के माने हुए रणमल के "जल्दी-से-जल्दी" मेवाड़ में आने के

संवत् १४६६ पर, जो कान्हा के कल्पित "सिद्ध" जन्म-संवत् १४६५ के आधार पर माना गया है, और जिसका कान्हा के जन्म-संवत् से कोई संबंध नहीं है, हम कदापि विश्वास नहीं कर सकते। रणमल के मेवाड़ में जाने का निश्चित संवत् ज्ञात न होने से ही हमने अपने राजपूताने के इतिहास में (जिल्द २, पृष्ठ ५७७) कोई निश्चित संवत् न देकर इतना ही लिखा है कि—"मंडोवर के राठोड़ राव चूंडा ने अपनी गोहिल-वंश की राणी[1] पर अधिक प्रेम होने के कारण उसके बेटे कान्हा को, जो उसके छोटे पुत्रों में से एक था, राज्य देना चाहा। इस पर अप्रसन्न होकर उसका ज्येष्ठ पुत्र रणमल ५०० सवारों के साथ महाराणा लाखा की सेवा में आ रहा। महाराणा ने चालीस गाँव देकर उसे अपना सरदार बनाया।"

जिस इतिहास के आधार पर रेऊजी ने कान्हा का "सिद्ध" जन्म-संवत् १४६५ दिया है उसी रेऊजी-रचित इतिहास में राव चूंडा के वृत्तान्त में (पृष्ठ १३८) लिखा है—"इन्होंने (राव चूंडा ने) मरते समय अपने ज्येष्ठ पुत्र रणमलजी से प्रतिज्ञा करवाली थी कि वे (अर्थात् रणमल) इनका (चूंडा का) राज्य स्वयं न लेकर अपने छोटे भाई कान्हाजी को दे दें।"

पृष्ठ १३८ में रेऊजी लिखते हैं—"चूंडाजी ने अपने पुत्रों को तो नगर से बाहर भेज दिया और स्वयं यवन-सेना से लड़कर वि० सं० १४८० की चैत्र सुदी ३ को भाटी केलहण के हाथ से मारे गए।"

आगे चलकर उसी पुस्तक में राव रणमल के वृत्तान्त (पृष्ठ १४०) में लिखा है—"पिता की मृत्यु के समय ये (रणमल) नागोर में थे। इसके (अर्थात् मृत्यु के) बाद ये वहां से चलकर सोजत पहुँचे और कुछ समय बाद लौटते हुए सलीमखाँ को नैश आक्रमण में मारकर चित्तौड़ में राणाजी के पास चले गए।"

रेऊजी की पुस्तक से उद्धृत किये हुए उपर्युक्त तीनों अवतरणों को पढ़ने से यही सारांश निकलता है कि वि० सं० १४८० में राव चूंडा का देहांत हुआ, देहांत के समय उसने राज्य का स्वामी अपने ज्येष्ठ पुत्र रणमल को न बनाकर छोटे पुत्र कान्हा को बनाया, जिसके (अर्थात् संवत् १४८० के) पीछे किसी समय वह (रणमल) मेवाड़ के महाराणा की सेवा में जा रहा।

महाराणा लाखा ने रणमल को चालीस गाँव की जागीर दी और वहाँ रहने समय उसने अपनी बहिन हंसबाई का विवाह उक्त महाराणा के साथ किया, जिसके गर्भ से मोकल का जन्म हुआ था। रेऊजी के कथनानुसार हंसबाई का विवाह वि० सं० १४८० के बाद मानना पड़ेगा। संवत् १४८० से पूर्व ही राणा लाखा मर चुका था, और वि० सं० १४७८ में तो मोकल राज्य कर रहा था, ऐसा मोकल के शिलालेख से ही, जिसका मूल अवतरण हमने अपने इतिहास के पृष्ठ ५६१ में दिया है, निश्चित है। आज से अनुमान डेढ़ साल पूर्व, अर्थात् दिसंबर सन् १९२५ ईसवी में, जब रेऊजी का 'भारत के प्राचीन राजवंश' का तृतीय भाग छपकर प्रकाशित हुआ, उस समय तो वे सं० १४८० के बाद रणमल का मेवाड़ में जाना मानते थे। डेढ़ वर्ष के भीतर ही ज्येष्ठ १९८४ वि० सं० की माधुरी में अपना लेख लिखते समय रेऊजी न जाने रणमल के मेवाड़ में जाने का समय संवत् १४६६ के करीब कैसे मानने लग गये? दोनों संवतों में अंतर भी कम न होकर चौदह वर्ष का है! यदि रणमल के मेवाड़ में जाने का संवत् डेढ़ वर्ष में ही बदलने की रेऊजी को आवश्यकता हुई, तो हम नहीं कह सकते कि, क्या समझकर उन्होंने अपने मन में इतना शीघ्र परिवर्तन करने का कोई सप्रमाण कारण नहीं बतलाया, और अपने लिखे हुए उसी उपर्युक्त ग्रंथ के आधार पर कान्हा का "सिद्ध" जन्म-संवत् १४६५ बतलाने को उद्यत हो गये? जैसा कान्हा का माना हुआ "सिद्ध" जन्म-संवत् सर्वथा निर्मूल है, वैसा ही रणमल का मेवाड़ में जाने का संवत् भी है, क्योंकि रणमल के मेवाड़ में जाने का समय अब तक अनिश्चित ही है।

कुछ आगे चल कर रणमल की बहिन हंसबाई के राणा लाखा के साथ होने वाले विवाह के संबंध में रेऊजी अपने लेख में लिखते हैं—"यदि इस घटना का समय जल्दी-से-जल्दी वि० सं० १४६७ मान लिया जाय, तो हंसाबाई के गर्भ से वि० सं० १४६८ में मोकल का जन्म हुआ होगा।"

---

[1] छापते समय प्रेस की असावधानी से मोहिल की जगह गोहिल छप गया है, जैसे रेऊजी के लेख में एका के स्थान पर राणा कई बार छपा है।

अब प्रश्न यह है कि हंसबाई के विवाह का समय जल्दी-से-जल्दी वि० सं० १४६७ में किस प्रमाण के आधार पर मान लिया जाय ? यदि ऐसा मानने के लिये कोई प्रबल प्रमाण न हो, तो फिर निराधार कल्पना का इतिहास मे कोई मूल्य नहीं होता। ऐतिहासिक निर्णय करने के लिये तो स्थल-स्थल पर अकाट्य प्रमाणों की आवश्यकता रहती है, परंतु रेऊजी प्रमाण देने का कष्ट नहीं उठाना चाहते। कान्हा का जन्म वि० सं० १४६५ में "सिद्ध" होना मान कर ही यह कल्पना की गई है, परंतु जब रेऊजी का बतलाया हुआ कान्हा का "सिद्ध" जन्म-संवत् सरासर झूठा है, तथा निश्चित संवत् ज्ञात ही नहीं हुआ, और रणमल के मेवाड़ मे जाने का कोई समय अब तक निश्चित नहीं है, ऐसी स्थिति मे झूठे संवत के आधार पर हंसबाई के विवाह के जल्दी-से-जल्दी होने के संवत् की कल्पना कैसे की जा सकती है ? जब कोई संवत् ही निश्चित नहीं है, तब प्रत्येक व्यक्ति उसके लिये अपना मनमाना कृत्रिम संवत् लिख सकता है। जिस इतिहास मे रेऊजी ने कान्हा के जन्म का 'सिद्ध' संवत् १४६५ दिया है, उसके अनुसार तो राणा लाखा के देहांत के कम-से-कम दो वर्ष बाद हंसबाई का विवाह उक्त महाराणा के साथ होना चाहिये, और मोकल का जन्म भी अपने पिता के स्वर्गवास से कई वर्ष बाद मानना पड़ेगा। पाठक देखें कि रेऊजी के कथन में कितनी ऐतिहासिक शुद्धता है। दूसरी बात यह है कि जब हंसबाई के विवाह-संवत का निश्चय ही नहीं हो सका, तब मोकल का जन्म-संवत् किस आधार पर स्थिर किया जा सकता है ? उसके (मोकल के) जन्म-संवत् का निश्चय न होने से ही हमने अपने इतिहास के पृष्ठ ५८३ के टिप्पण (१) में स्पष्ट शब्दों में लिख दिया है कि—"राज्याभिषेक के समय मोकल की अवस्था कितने वर्ष की थी, यह अनिश्चित है।" इसीसे पाठक जान जावेंगे कि मोकल का जन्म-संवत् अब तक अनिश्चित ही है। रेऊजी की इस प्रकार की मनमानी कल्पित बातें किसी प्रकार ऐतिहासिक नहीं कही जा सकतीं, चाहे भाटों की ख्यातों में उनको कोई कितना ही महत्त्व क्यों न दे दे।

अपने इतिहास के पृष्ठ ५८३, टिप्पण (१) में हमने लिखा है कि हमारे अनुमान से *राज्याभिषेक के समय मोकल की अवस्था कम-से-कम १२ वर्ष की होनी चाहिये,* अर्थात् १२ वर्ष से अधिक ही होगी। रेऊजी को हमारा कथन असंभव प्रतीत होता है, परंतु उसके असंभव प्रतीत होने का उन्होंने कोई प्रमाण नहीं दिया। यदि कोई प्रमाण है तो कान्हा के उसी झूठे "सिद्ध" जन्म-संवत के अनुसार की हुई गणना, जिसे हम किसी प्रकार स्वीकार नहीं कर सकते। इसके संबंध मे हम पर्याप्त विवेचन कर चुके हैं। टॉड और नैणसी ने उस समय मोकल की अवस्था ५ वर्ष होना बतलाया है, जो भाटों की ख्यातों से ही लिया हुआ होने के कारण मान्य नहीं हो सकता। टॉड ने तो मोकल की गद्दीनशीनी का समय ईसवी सन् १३९७ (वि० सं० १४५३) में बतलाया है, परंतु हमने प्राचीन शिलालेखादि के आधार पर उसकी गद्दीनशीनी वि० सं० १४७६ के आस-पास होना माना है, क्योंकि वि० सं० १४७५ तक तो मोकल के पिता का जीवित रहना उसीके शिलालेखों से निश्चित है। हम रेऊजी को यह भलीभाँति बतला देना चाहते हैं कि टॉड और नैणसी के जो-जो कथन ऐतिहासिक शोध की कसौटी पर ठीक न निकले, वे नहीं माने जा सकते।

इसके बाद उसी पृष्ठ ६१४ मे रेऊजी ने लिखा है—"रणमल ने राज्य का प्रबंध बड़ी ही खूबी से संभाला और अनेक युद्धों में महाराणा की विजय-पताका फहराई। इसके प्रमाण में उक्त इतिहास के पृष्ठ ५८५ मे, उद्धृत वि० सं० १४८५ के शिलालेख ही पर्याप्त होंगे।"

यह वाक्य लिखते समय तो रेऊजी ने इतिहास न जाननेवालों की आँखों मे धूल डालने मे कोई कसर नहीं रक्खी। हमने इस बात का लेशमात्र भी उल्लेख नहीं किया और न पृष्ठ ५८५ मे उद्धृत शिलालेखों मे, जिनका हवाला रेऊजी ने दिया है, किसी स्थल पर रणमल के विजय-पताका फहराने की बात है। और तो क्या कहें इन शिलालेखों में कहीं रणमल का नामोल्लेख भी नहीं है, विजय-पताका फहराने की बात तो दूर रही। उक्त शिलालेख मे तो इतना ही लिखा है कि 'स्वयं महाराणा (मोकल) ने उत्तर के मुसलमान नरपति पीरोज (फ़ीरोज़ख़ाँ) पर चढ़ाई कर लीला मात्र से युद्ध क्षेत्र में उसके सारे सैन्य को नष्ट कर दिया।' रेऊजी का यह सारा मिथ्या कथन रणमल का झूठा गौरव बतलाने के लिये ही खड़ा किया गया है। रणमल तो महाराणा के अनेक सरदारों में से एक था, इसलिये यह कहना असंगत होगा

कि उसने अनेक युद्धोंमे महाराणाकी विजय-पताका फहराई। इसके बाद पृष्ठ ६१४-१५ में रेऊजी लिखते है—"जिस समय यह प्रशस्ति लिखी गई थी, उस समय महाराणा की आयु १७ वर्ष के क़रीब थी। अत पक्षपात-रहित पुरुष के सामने रणमल्ल की नेकनीयती और सुप्रबंध की सराहना करना सूर्य को दीपक दिखाना है।"

हमारी राय में यह कथन सूर्य को दीपक न दिखाकर उसको तिमिराच्छन्न करने की चेष्टा है। वि० सं० १४८५ में जब यह प्रशस्ति लिखी गई थी, उस समय मोकल की आयु १७ वर्ष के क़रीब मानना भी हमको वैसा ही कपोल-कल्पित प्रतीत होता है, जैसा कि कान्हा का 'सिद्ध' जन्म-संवत १४६५ मानना। यह ऊपर कहा जा चुका है कि मोकल की गद्दीनशीनी एव जन्म का सवत् अनिश्चित है। जब यह अनिश्चित है तो सवत् १४८५ मे उसकी आयु का निर्णय किस आधार पर किया जाय? रेऊजी ने वि० सं० १४८५ मे मोकल की आयु का निर्णय हसबाई के "जल्दी-से-जल्दी" विवाह होने के कल्पित सवत् १४६७ से गणना करके किया है। हसबाई के विवाह के सवत १४६७ मे होने की निर्मूलता पहले ही बतलाई जा चुकी है, अत उसे यहाँ दुहराने की आवश्यकता नहीं है। स्वय रेऊजी के इतिहास के कथनानुसार तो राणा लाखा की मृत्यु के बाद हसबाई का विवाह उस के साथ मानना पडता है। क्या इस कथनानुसार भी मोकल की आयु का निर्णय रेऊजी कर सकते है?

दूसरी विचारणीय बात यह है कि वि० स० १४९० में जब मोकल का स्वर्गवास हुआ, उस समय उसके सात पुत्र विद्यमान थे और उनमे से ज्येष्ठ कुभा बिलकुल बालक ही न था, जैसा कि आगे चलकर बतलाया जायगा। इसलिये मोकल की १७ वर्ष की आयु होने के रेऊजी के कथन को हम निर्मूल समझते है, क्योंकि इस आयु का हिसाब कान्हा के 'सिद्ध' जन्म-सवत् की झूठी गणना के अनुसार ही लगाया गया है।

पृष्ठ ६१५ मे रेऊजी का कथन है कि—"यदि महाराणा मोकल की १६-१७ वर्ष की अवस्था मे ही उनके ज्येष्ठ पुत्र कुंभा का जन्म मान लिया जाय, तो भी मोकल की मृत्यु के समय वह ५-६ वर्ष से अधिक बड़ा नहीं होगा।"

अब तक यह बतलाया जा चुका है कि रेऊजी के दिये हुए राजाओं की आयु तथा जन्म-सबधी यहां तक के सब संवत् प्रमाण-शून्य एव कल्पित है। इसी तरह वि० स० १४९० में कुंभा की आयु ५ वर्ष की मानना भी असभव है। प्रथम तो कुभा का निश्चित जन्म-संवत् अभी तक ज्ञात ही नहीं हुआ। दूसरी बात यह है कि कुभा के जन्म-सवत् का अनुमान करने के लिये यदि कोई साधन हो सकता है, तो उसका बनवाया हुआ चित्तोड का कीर्तिस्तभ है। वि० स० १५०५ माघ सुदि १० को महाराणा कुभा का निर्माण कराया हुआ कीर्तिस्तभ सपूर्ण हुआ, जैसा कि उक्त स्तभ की प्रशस्ति के श्लोक १८५ से पाया जाता है, और जिसका मूल अवतरण हमने अपने इतिहास के पृष्ठ ६२२ के टिप्पण (१) में दिया है। उसकी दूसरी मज़िल मे एक आली के ऊपर के भाग मे वि० स० १४९६ फाल्गुन सुदि ५ का एक लेख खुदा हुआ है, जिसमें कीर्तिस्तभ के बनानेवाले शिल्पी (सूत्रधार) जैता और उसके दो पुत्रो—नापा और पूजा—का निकटस्थ समिद्धेश्वर महादेव को प्रणाम करना लिखा है। इस लेख से निश्चित है कि कीर्तिस्तभ की दूसरी मज़िल वि० स० १४९६ मे बन चुकी थी। बाक़ी की छ मज़िले और उन पर की छत्री बनकर पूरा स्तभ वि० स० १५०५ मे समाप्त हुआ। इससे जान पडता है कि दूसरी मज़िल से ऊपर का सारा कार्य ९ वर्षों मे पूर्ण हुआ होगा, अतएव प्रत्येक मज़िल के बनने में अनुमानत एक-एक वर्ष लगा होगा। इस हिसाब से कीर्तिस्तभ के नीचे की १२ फुट ऊँची वेदी तथा उस पर की दो मज़िलें तैयार होने में दो वर्ष लगे होंगे। इसलिये कीर्तिस्तभ का प्रारभ वि० स० १४९७ मे होना चाहिये। यही सवत् हमने अपने इतिहास की जिल्द १, पृष्ठ ३५५ मे दिया है। वेदी के ऊपर से कीर्तिस्तभ की ऊँचाई १२२ फ़ुट है। समस्त भारत मे ऐसा विशाल, भव्य और सुदर खुदाई वाला तथा हिंदुओं की कीर्ति का स्मारकरूप यह एक ही स्तभ है, जिसमे खुदाई के सुदर काम के अतिरिक्त हिंदुओ के अनेक पौराणिक देवी-देवताओं तथा रामायण, महाभारत के पात्रो आदि की सैकड़ो मूर्तियाँ प्रत्येक के नाम सहित खुदी हुई हैं। महाराणा कुंभा के इस कीर्तिस्तभ को भारतीय मूर्तिशास्त्र का अमूल्य कोष कहने में कोई अतिशयोक्ति न होगी। यह कोष उसके निर्माता—महाराणा कुंभा—की शिल्पप्रियता तथा महत्त्वाकांक्षा का प्रत्यक्ष उदाहरण है। (क्रमशः)

गौरीशंकर हीराचंद ओझा

भूल-चूक

प्रहसन

पात्र और पात्री

पात्र—

१ शक्कीमल—पार्वती का शक्की पति
२ डॉक्टर साहब—सुशीला का पिता
३ रामदास—सुशीला का प्रेमी
४ भोंदूराम—रामदास का नौकर
५ कम्पाउडर—डाक्टर साहब का नौकर

पात्री—

१ पार्वती—शक्कीमल की स्त्री
२ सुशीला—डाक्टर साहब की विधवा लड़की
३ महरिन—पार्वती की दासी
४ मुहल्ले की औरतें और कुछ आदमी

अंक—१

दृश्य—१

(शक्कीमल के मकान के सामने)

पार्वती—(अपनी खिड़की पर अकेली) आज महरिन मुहल्ले की कुछ औरतों के साथ गंगा-स्नान को गई है, मगर अभी तक लौटकर नहीं आई। बड़ी देर लगाई। घंटे भर से उसका आसरा देख रही हूँ। मगर अब तक दिखाई नहीं पड़ी। मुई डूब तो नहीं गई। वह आ रही है।

(महरिन और सुशीला का आना)

सुशीला—(महरिन से) अच्छा, अब तुम जाओ, मैं चली जाऊँगी।

महरिन—कहो तो बहिनी तुम्हें घर तक पहुँचा आऊँ।

सुशीला—नहीं, कोई ज़रूरत नहीं। हमारी महराजिन और हमारी दादीजी उस सड़क से आकर वह चौराहे पर खड़ी मेरा आसरा देख रही हैं।

(सुशीला का तेजी से प्रस्थान)

पार्वती—(खिड़की पर से) अरी महरिन, तुझे कुछ काम-धंधे की भी फ़िक्र है? अभी तक घर में झाड़ू भी नहीं लगी और तू इधर-उधर घूम रही है। भला कब चौका लगेगा और कब रोटी बनेगी?

महरिन—आई सरकार।

(महरिन घर के भीतर जाती है। पार्वती खिड़की पर से ग़ायब हो जाती है। और जिधर से सुशीला और महरिन आई थी उधर से रामदास और भोंदूराम आते हैं।)

रामदास—भोंदूराम।

भोंदू—जी सरकार।

रामदास—किधर गई, किधर?

भोंदू—इहउ जाने।

रामदास—यहाँ तक आई, और उसके बाद एक दम ला पता।

भोंदू—जान तो यही पड़त है।

गाना

रामदास—इधर गई उधर गई,
हाय! किधर धाय गई।
छबि दिखलाय मुसकाय गयी।
चितवन से बरछी चलाय गयी।

भोंदू—(अलग) मोहे जान पड़त,
इनका तो उल्लू बनाय गई।

रामदास—हाय! किधर धाय गई।

भोंदू—(प्रकट)—भल भवा वह भाग गई।
काहे करत हाय! दई।
पाप कटा छुट्टी मिली—
जाय दो बलाय गई।

रामदास—इधर गई, उधर गई,
हाय! किधर धाय गई।

रामदास—तो बता अब किधर चलें।

भोंदू—यही तो हम आपसे पूछित है।

रामदास—तब तू देखता क्या था?

भोंदू—जौन आप देखत रहेन।

रामदास—हाय! मैं तो उसकी सूरत ही देखता रह गया। मुझे क्या ख़बर कि वह किधर निकल गई। ये बातें तुझे जाननी चाहिये थीं।

भोंदू—वाह! सरकार! आसिक भयेन आप। अउर आप नाहीं जान पायेन कि वह सररररर से केहर भाग गई फिर हम कसस जानित? हमहू का ओपर आसिक भयेन रहा। राम! राम! अस उल्लू हम नाहीं हन।

रामदास—तो क्या उल्लू मैं हूँ?

भोंदू—हम का जानी? आपै कहित है। मुल जे आँखी फाड़-फाड़ घन्टन निहारै और फिर कुछू देख न पावै ओका का कहत हैं सरकार?

रामदास—चुप बे। देखा क्यों नहीं ? खूब देखा। हाय ! हाय ! उसकी नन्हीं-नन्हीं हथेलियां कितनी प्यारी हैं।

भोंदू—तो कौने काम के—न गोबर पाथे लायक, न बरतन माँजे लायक।

रामदास—अजब गवार है। उन फूल से भी कोमल हाथों से मैं कहीं गोबर पथाऊँगा या बरतन मजाऊँगा ?

भोंदू—तो फिर का ओमे आपन मोछिया उखड़वइहो ?

रामदास—अबे, यह क्या बकता है वाहियात।

भोंदू—हो लेयो ! अरे सरकार झूठ नाहीं, धरम सास्तर लिखा है तौन कहित है।

रामदास—क्या लिखा है ?

भोंदू—यही कि दइउ मेहरारू के हाथ काम करे के लिये बनाइन हैं और मरदन के हाथ मारे पीटे के लिये दिहिन है। तब्बे तो लोग मेहररुवन से गोबर पथावत हैं, बरतन मजावत हैं, रोटी पोवावत हैं, कुटौनी पिसौनी करावत हैं और न कुछ भा तो अँगरखे सीयावत हैं।

रामदास—अगर कोई औरतों से यह सब काम लेना गवारा न करे ?

भोंदू—तो आपन खोपड़ी पर हाथ धर के रोवे। काहे वास्ते कि काम काज हाथ बिना कुछ न कुछ किहे रह नाही सकत है। जो उनसे काम न लीन जाए तो वए दुइ दिन मा मरदन के खोपड़िये साफ़ कइदे चाहे मोंछिये उखाड़ ले। बस यही दुई काम तो मेहररुवे सुनार पाय अपने मन से करत हैं और कौनो नाहीं। तब्बे तो देखो सहरिया मां कहू मोछ हाली दिखाइ पड़त है ?

रामदास—बस बस, रहने दे। अपने धर्म-शास्त्र को चूल्हे में झोंक। कहां राम राम, कहां टें टें। भला तू क्या जाने उन हाथों की क़द्र करना ? वह हाथ हैं कि, बस आंखों से लगा ले। वह सूरत है कि, सामने बिठाल कर पूजा करें। वह आंखें हैं कि, उन पर हज़ारों दिल निछावर कर दे। वह रंग है—

भोंदू—कि दुई कौड़ी का।

रामदास—यह क्यों ?

भोंदू—का बताई। धरम सासतर तो आप मानित नाहीं हन। नाहीं तो आपका मालूम होत कि जेह के बदन मां तनि का उजर दाग होत है वह से तो मनई दूर भागत है; और जेह के कुल अंग उजर-उजर होय वह से केतिक दूर भागे के चाही ?

रामदास—वाह ! वाह ! वाहरे तेरा धर्म शास्त्र ! अबे उल्लू, यह वह सफ़ेदी नहीं थी जिसे तू समझता है। क्या तूने उसके गालों की लाली नहीं देखी ?

भोंदू—देखेन काहे नाहीं। तब्बे तो जुरतिन जान लीन।

रामदास—क्या जान लिया ?

भोंदू—यही कि वह कहूँ खूबे मारी गई है।

रामदास—मारी गई है ?

भोंदू—और नाहीं तो का ? रंग कइसो होए मुल सरकार बिना तमाचा पड़े गाल लाल नाहीं होय सकत है। यह हमार अजमाई बात है।

रामदास—चुप रह कमबख्त। अब जो बकेगा तो तेरी ख़ैरियत नहीं !

भोंदू—आपे तो पूछित है, हम का करी ?

(महरिन खिड़की पर से कूड़ा फेंकती है और वह रामदास और भोंदू के सर पर गिरता है।)

रामदास—अरे ! सर पर यह कूड़ा कहां से फट पड़ा ! धत्तेरे की ! तमाम कपड़े ख़राब होगए।

भोंदू—राम ! राम ! हमरो आंखी मे किनका पड़ गवा। (खिड़की पर महरिन को टोकरी झाड़ते देखकर) कौ हरामजादी भलामानुस देख के नाहीं फेंका जात है।

महरिन—(खिड़की पर से) भलेमानुस ही देख के तो फेंका है।

भोंदू—और ऊपर से फारसी भूकत है। रह तो हरामज़ादी। (खिड़की पर से महरिन गायब होजाती है।) अस ढीला तान के मरिहीं कि खोपड़ी दुई होइ जाए। का कहीं हीया ससुर एको ककड़ो नाही दिखाई पड़त है। (रामदास के सर से फेल्ट-कैप उतार कर खुली हुई खिड़की के भीतर फेंक देता है।)

रामदास—अबे यह क्या किया तूने ?

भोंदू—सरकार गड़बड़ न करो। हम पहिलवें कह चुकेन है कि मरदन के हाथ मारे पीटे वाला होत है। तब भला मौक़ा पाय के हम कहू चूक सकित है ? जहां चूकेन तहां फिर यह हाथ, हाथ न रहिजाई। तब यह खाली मागे सवारे लायक और मेहररुवन के तरवा मे तेल लगावे लायक होए जाई। अउर कौनो करम लायक नाहीं, हा अउर का। सासतर के बात झूठ नाहीं होइ सकत है। तब्बे तो अब मर्द कहूं हेरे मिलत है ? सबे

मेहरवन अस मांग पट्टी सँवारे मटकत घूमे लागे तो वए मर्द कहां रहिगए ? आपे बताईं ?

रामदास—अबे शास्त्र के बच्चे पहिले तू तो बता कि तूने मेरी टोपी क्यों फेंकी ?

भोदू—का करित ? कौनो हथियार बाँध के चले के हम पचन का हुक्मै नाहीं है, तो हमहू जून पर जौन चीज पाय जाइत झट वही का हथियार बनाय लेइत है।

रामदास—तो क्यों बे गधे, उसके लिये मेरी ही टोपी थी ?

भोदू—सरकार रिसिया न पड़ी। हमार पगिया मूड़े पर राख लेईं। (अपनी पगड़ी उतार कर रामदास के सर पर रखता है।) आहाहा ! भल नीक लागत है। अब अलबत्ता आप मनई मालूम होइत हैं। ऊ खजड़ी अस टोपी राम ! राम ! कवने काम के रही। नीको मनई जो पहिन ले तो ससुर मेहरा बन जाए। राम दे।

रामदास—(अपने सर से पगड़ी फेंक कर) धत्तेरे की ! जले पर नमक छिड़कता है। बेवक़ूफ़ कहीं का। तेरी पगड़ी और मेरे सर पर ? और ऊपर से मुझे मेहरा बनाता है।

भोदू—(पगड़ी जमीन से उठाता हुआ) यह नेकी के बदला होय। अच्छा सरकार तनि आपन अँगौछा देईं।

रामदास—अँगौछा ?

भोदू—अरे ! वहा एतना बड़ा चिथड़ा जौन आप जेबिया मां ठूँसे हन।

रामदास—अबे वह चिथड़ा है कि रूमाल ?

भोदू—हा, वही वही। तनी दे देईं।

रामदास—क्या करेगा ?

भोदू—पगिया के तनी गर्दा झाड़ लेईं।

रामदास—बदतमीज़, बेहूदा कहीं का। हमारे रेशमी रूमाल से अपनी पगड़ी साफ़ करेगा ? क्यों बे इतनी हिम्मत ? बचा, मेरी टोपी दिलवाओ, नहीं तुम्हारी ख़ैरियत नहो। सात रुपये की 'फ़ेल्ट-कैप' आज ही ख़रीदी और आज ही गायब। घर पर क्या मुँह दिखाऊँगा ?

भोदू—जब यही सोच रहा तब सरकार यू गली मे पाव काहे धरेन। हम तो पहिलवे कहा रहा कि आसनाई की गली बड़ी जोखिम होत है।

रामदास—हाय ! हाय ! तूने फिर मुझ उसकी याद दिला दी। उसे अब कहा पाऊ ? किधर ढूँढने जाऊ। हाय ! उसे भी खोया, और टोपी से भी हाथ धोया। क्या करू ? ओहो ! बगल मे लड़का और शहर में ढिंढोरा। अरे ! भोदू राम ! मिल गया, मिल गया उसका पता मिल गया।

भोदू—(चौंक कर) हम तो डेराय गएन। आप एक लागे इतने जोर से अस बलबलाय उठेन कि हम जाना कि आपके सिर पर कौनो चुड़ैल आगई।

रामदास—अबे चुड़ैल के भतीजे (लड़की की तरफ़ इशारा करके) उधर देख।

भोदू—का देखी ? खिड़किया खुली है।

रामदास—अजब गधा है। तू तो कुछ भी नहीं समझता। सुन, यह औरत जिसने अभी कूड़ा फेंका है—

भोदू—हा, हा, पूर हरामज़ादी है।

रामदास—अबे, यह मेरा मतलब नहीं है। मैं तो तुझे यह याद दिलाना चाहता हू कि यह उसी के साथ थी। क्यों थी न ?

भोदू—हा, होई। बदमास बदमासे के साथ तो रहेन है।

रामदास—जबान सम्हाल के बात नहीं की जाती ? इसे तूने बदमाश कहा, तो कहा, मगर उसे तूने बिना जाने कैसे बदमाश कह दिया ?

भोदू—अकिल से सरकार। अकिल से मनई दुइउ का चीन्ह लेत है तो, हम का एक छोकड़ी नाहीं पहचान सकित है ? एकर बदमासी तो आप देखबै कीन। फिर एकरे सगत मे जे रही तौन बदमास न होई तो का भलामानुस होई। यही लिये हमार दादा मरत-मरत कहगए रहा कि बेटा अपने ऊपर बदनाम के परिछाहा न पड़े दीहो नाहीं तुहूँ वइसे होए जावो।

रामदास—धत्तेरे दादा की ऐसी-तैसी ! तू काम करने के लिए नौकर है या राय देने के लिए ? कमबख़्त बात-बात मे गुस्सा दिलाता है। जो कहता हूँ उसे कान लगा के सुनता क्यों नहीं ?

भोदू—बहुत अच्छा सरकार। कहीं, कहीं।

रामदास—इस कूड़ा फेंकनेवाली औरत को बुलाओ। बस, सब काम बन जायगा और टोपी भी मिल जायगी।

भोदू—अच्छा तो पुकारित है। अरे कूड़ावाली—

रामदास—(अपने हाथ से भोदू का मुँह बन्द करके)

अरे ! चुप बेवकूफ़ ! शोर मत मचा। चुपके से बुला। इशारों से बुला।

भोंदू—बाहर होय तब तो चुप्पे से बुलाई।

रामदास—खिड़की में से झाँक के बुला।

भोंदू—तो एके लिए सीढ़ी कहाँ पाई।

रामदास—अच्छा तो तू खिड़की के पास खड़ा होजा। मैं तेरे कन्धे पर सवार होकर उसे बुलाऊँ।

भोंदू—हाँ, हाँ, सरकार पीठ मे हाथ न लगायो।

रामदास—क्यों ?

भोंदू—मेहरारू जस आपन पेट नाही छुए देत हैं वैसे मरदन के चाही कि आपन पीठ न कोई से छुवावें। तब्बे तो झाँसी के रानी अपने मर्दे के पीठ पर घाव देख के निकार बाहर कै दिहिस रही। मुल अब बस धरम के जनइया कहाँ रहिगए ?

रामदास—अजब मुशकिल है। इसकी फिलासफी के आगे मेरी एक नहीं चलने पाती। अच्छा तू ही मेरे कंधे पर चढ़।

भोंदू—कौन, हम ? नाहीं सरकार, अस कहूँ होय सकत है ?

रामदास—अबे हम ज़रा भी बुरा नहीं मानेंगे। क्योंकि ज़रूरत के वक्त लोग गधे को भी बाप बनाते हैं।

भोंदू—आप बुरा मानी चाहे न मानी। मुल दुई टाँग क जनावर पर भला कहूँ सवारी कीन जात है ? कि हमही सवार होई ?

रामदास—हाय ! इस कमबख़्त के मारे न इस करवट चैन है और न उस करवट, अच्छा भई तेरी खातिर मैं चार टाँग का भी जानवर बनूँगा। क्या करूँ। गरज़ अजब चीज़ है। (खिड़की के पास अपने चारो हाथ पैर से जानवरों की तरह खड़ा होता है।) अब तो मेरी पीठ पर खड़ा होकर खिड़की के भीतर झाँकेगा ?

भोंदू—नाहीं सरकार, हाथ जोड़ित है। हमसे न होई।

रामदास—अबे चल इधर।

भोंदू—दोहाई सरकार की। हमार जीव डरात है।

रामदास—फिर नहीं सुनता।

भोंदू—हमार जीव छाँड़ी। हम दिहाती मनई हन। कहूँ खाले ऊँचे पाँव पड़जाई।

रामदास—हाय ! हाय ! क्यों इतना परेशान कर रहा है ?

भोंदू—सरकार कहा मानी। हमार बोझा बहुत है। आप रोय देब।

रामदास—आता है कि अब उठकर एक दम मारना शुरू कर दूँ।

भोंदू—हाय ! दादा कौने जंजाल मा पड़ेन। आपन घरे चनी कोदों खाए मुल कब्बों नौकरी न करे। (पीठ पर पैर रखता हुआ) कहूँ गिर पड़ी तो घरे मेहरारू जियते राँड़ होइ जाए। देखो सरकार, हाल्यो डोल्यो ना। (रामदास की पीठपर दर्शकों की तरफ मुह करके डरते-डरते खड़ा होता है।)

रामदास—देखा ?

भोंदू—का देखी ? आपन कपार ? हमें तो रोआई आवत है।

रामदास—क्यों ?

भोंदू—एको मर्द तो नाहीं दिखाई पड़त है। देखवा ससुर बिलाय न तो होय का ?

रामदास—अबे बेवक़ूफ़, मैंने तुझे उसे बुलाने के लिए खड़ा किया है, या कौंसिल की मेम्बरी के लिए ? मेरी पीठ है, या नेतागीरी का प्लेटफ़ार्म ?

भोंदू—तो का करी ? अँखिया फोड़ लेई ?

रामदास—अबे, तू किधर देख रहा है ?

भोंदू—(दर्शकों की तरफ बताकर) एहर।

रामदास—अजब उल्लू का पट्ठा है। अबे गधे, तुझे उधर देखने के लिए किसने कहा ?

भोंदू—आपे तो मुह एहर किये रहेन। हम का करी ? सवारी पर सोझे चढ़ा जात है। नवाबी मे जो कोई अपराध करत रहा ऊ अलबत्ता गधा पर उल्टा चढ़ावा जात रहा। मुल हम थोड़ कौनो अपराध कीन है ?

रामदास—अबे, चुप बेहूदे, घूमकर खिड़की के भीतर झाँक।

भोंदू—यह तो बहुत कठिन है, फाँसी के तख्ता पर खड़के हम नाच नाहीं सकित है। आपे घूमी।

रामदास—हाय ! हाय ! इस हरामजादे ने मुझे कोल्हू का बैल बना दिया। (घूमना चाहता है)

भोंदू—अरे ! रुको-रुको। हमका बैठ जाए दो। नाहीं तो गिरपड़ब। (भोंदूराम, रामदास की पीठ पर बैठ जाता है। रामदास थोड़ा सा धम पड़ता है। उसका सर जो पहले सामने की तरफ था, अब दाहिनी या बाईं तरफ होजाता है।)

हाँ, अब कुछ ठिकान। अच्छा अब ठाढ़ होइत है। सम्हारे रहो। (खड़ा होता है) तनि अउर ऊँच तो होइजाई। बस, बस।

रामदास—अबे, मेरा दम निकला जा रहा है। जल्दी से उसे बुला।

भोंदू—हम पहिलवे कहा रहा। (खिड़की के भीतर झाँकता हुआ) मुल कोठरिया माँ तो कोई दिखाई नाहीं पड़त है; टोपिया अलबत्ता पलँगा पर पर्डी है।

(शक्कीमल का आना)

शक्कीमल—अरे! यह मेरे मकान में क्या देख रहा? ज़रा मैं भी तो देखूँ।

(झपट कर भोंदू का कन्धा पकड़ना है, और खिड़की के भीतर झाँकने के लिये अपना एक पैर रामदास की पीठ पर रखता है—वैसे ही तीनों गिर पड़ते हैं।)

रामदास—अरे! बाप रे बाप कमर टूट गई।

भोंदू—हाय! दादा मर गयन।

शक्की—उफ़ ओ! सर फूट गया।

भोंदू—भागो सरकार, नाहीं अउर कवनो आफत फाट पड़ी।

(रामदास छिपकली की तरह अपने दोनों हाथों के सहारे अपना पिछला धड़ ज़मीन पर घसीटता हुआ प्रस्थान करता है, भोंदू बैठा-बैठा खुसकता हुआ जाता है, और शक्कीमल अपनी खोपड़ी सहलाता हुआ उठता है।)

शक्की—अरे! यहाँ तो कोई नहीं है। चलकर घर के भीतर तो देखूँ कि कुशल है कि नहीं। अरी महरी, जल्दी से दरवाज़ा खोल।

(दरवाजा खुलता है और शक्कीमल भीतर जाता है)

[पट परिवर्तन]

दृश्य—२

शक्कीमल का भीतरी दालान

शक्कीमल—(रामदास की टोपी हाथ में लिए हुए अकेला।) बाहर मैंने क्या देखा—एक आदमी किसी चीज़ पर खड़ा होकर मेरी खिड़की के भीतर झाँक रहा था। नहीं वह भीतर किसी से बातें कर रहा था। मैंने आते ही उस चीज़ पर पैर रखा और उसके पास खड़ा होकर भीतर देखना चाहा। वैसेही ऊपर से चिल्लाहट सुनाई पड़ी और नीचे से भी। उसके बाद धमाके की आवाज़ हुई। मालूम हुआ मेरा सर फूट गया। आँखें खोलीं तो देखा मैदान ख़ाली है। भीतर आया तो यह टोपी मिली। और कहाँ? मेरी स्त्री की चारपाई पर। यह किस साले की है? और यह मेरी स्त्री के पलँग पर क्यों पड़ी मिली? उफ़! यह सोचते ही कलेजा जला भुना जा रहा है। हाय! मैं नहीं जानता था, वह हरामज़ादी ऐसी है। मुझसे छिप-छिप कर यह बातें! ऐसी बदमाशी, ऐसी दग़ाबाज़ी! उफ़! यही जी चाहता है कि जाकर अपनी हरामज़ादी जोरू का गला घोंट दूँ। उसके कलेजे का ख़ून पीलूँ। उसकी नाक काट-कर एक दम घरसे बाहर निकाल दूँ। मगर पहले ज़रा मामले को महरिन से जाँच लूँ। वह घर में बराबर रहती है। उसको इस टोपी का भेद ज़रूर मालूम होगा। मगर इस बात को उससे किस तरह पूछूँ? कुछ नहीं, बस इस टोपी को पहनकर उसे दिखाऊँ, फिर तो वह टोपी को देखते ही घबड़ा उठेगी और मारे डरके आपसे आप सारा हाल उगल देगी। अगर इस तरह न काम चलेगा तो ख़ुशामद, लालच और धमकी से भी काम लूँगा। वह लो, महरिन तो ख़ुद ही इधर आरही है।

(महरिन का आना)

महरिन—बाबूजी नहाने का पानी रखा है।

शक्की—(रामदास की टोपी पहनकर) अच्छा अच्छा, मगर ज़रा एक बात तो सुनो।

महरिन—कहिए।

शक्की—पहिले ज़रा मुझे एक नज़र से देखो तो सब कुछ कहूँ।

महरिन—बाबूजी, आज आपके मुँह से ऐसी बात?

शक्की—ऐसी बात वैसी बात न करो। बस ज़रा मेरी तरफ़ आँख उठा के देख लो।

महरिन—सरकार, मैं आपकी परजा हूँ। मुझ पर दया कीजिये।

शक्की—(अलग) ओहो! बिना देखे ही घबड़ाने लगी। है दिल में चोर। (प्रगट) मत घबड़ाओ। जानवर तो मैं हूँ नहीं, कि तुम्हें काट खाऊँगा। मैं तो सिर्फ़ इतना कहता हूँ कि तुम मेरी तरफ़ ताक दो। बस इतने ही में तुम सब जान जाओगी।

महरिन—सरकार, आप बड़े आदमी हैं और मैं नौक-रनी हूँ। आपको ऐसा नहीं चाहिये।

(जाना चाहती है)

शक्की—अरे! कहाँ चली? अभी न जाओ। ज़रा मेरी बात सुन जाओ।

महरिन—नहीं सरकार, मुझे आपके पास डर लगता है।

शक्की—(अलग) अब डरने भी लगी। है दाल में काला। आखिर वही बात निकली। (प्रगट) तुम्हें क़सम है जो आगे क़दम रक्खो।

महरिन—हाय! राम! अच्छा जो कुछ कहना चाहते हैं, वहीं से कहिये।

शक्की—(टोपी अपने सर पर तिरछी करके) बस मेरी तरफ़ एक दफ़े आँख भर के देख लो। बस, यही कहना है।

महरिन—यह बहूजी से कहिए।

शक्की—(अलग) आ रही है रंग पर। मेरा मतलब कुछ-कुछ समझ गई है। तभी कहती है कि बहूजी से कहिये। (प्रगट) उससे तो मैं निपट लूँगा। मगर इस वक़्त तो तुम से कह रहा हूँ। (टोपी आड़ी और तिरछी करके) अच्छा, अब तो देखो।

(पार्वती का झाँकना)

पार्वती—(झाँकती हुई अलग) आज इतनी देर से महरिन से यह क्या बातें कर रहे हैं। ज़रा मैं भी तो छिपकर सुनूँ।

महरिन—कहिये तो बहूजी को भेज दूँ।

शक्की—(अलग) मेरा मतलब ताड़ गई है, तभी यह बार-बार बहूजी का नाम ले रही है। (प्रगट) क्या तुम मेरा मतलब समझती हो?

महरिन—आज आपको क्या हो गया है? आपको शर्म नहीं मालूम होती?

शक्की—हाँ, हाँ, बेशक मेरे लिये डूब मरने की बात है। तभी तो मेरी आज यह हालत हो रही है।

पार्वती—(झाँकती हुई अलग) अरे! यह मैं क्या देख रही हूँ? क्या सुन रही हूँ? हाय! हाय! मैं इनको स्वप्न में भी ऐसा नहीं जानती थी।

महरिन—मुझे आपके हाल पर अफ़सोस मालूम होता है।

शक्की—(अलग) मेरी हालत पर अफ़सोस भी करती है। बस, बस वही बात है; और यह उसे ख़ूब जानती है। अब ख़ुशामद, लालच और धमकी से काम लूँ। (प्रगट) अफ़सोस कहाँ तक करोगी? बस, अब कह डालो।

महरिन—कौन सी बात?

शक्की—वही, जो तुम्हारे दिल में है और मेरे दिल में भी, देखो मैं हाथ जोड़ता हूँ। (हाथ जोड़ता है)

पार्वती—(छिपी हुई अलग) हाय! अब नहीं सहा जाता, बस यही जी चाहता है इनका मुँह नोच लूँ।

महरिन—बाबूजी, देखिये यह अच्छी बात नहीं है।

शक्की—अच्छा तो रुपया ले लो। (अपना जेब से रुपया निकाल कर दिखाता है)

(पार्वती गुस्से में घूसा तानती है)

महरिन—बस, ख़बरदार! बहुत हो चुका।

शक्की—टर्राती हो तो मैं भी फिर ज़बरदस्ती से काम लूँगा। चली कहाँ? (लपक कर हाथ पकड़ता है)

महरिन—(हाथ छुड़ाती हुई) मैं बहूजी को बुलाती हूँ।

शक्की—तू मुझे समझती क्या है। उस हरामज़ादी को तो नाक कान काट कर और मुँह में कालिख लगा-कर आज ही घर से निकालता हूँ।

पार्वती—(गुस्से में भरी अपने छिपे हुए स्थान से निकल कर शक्कीमल की पीठ पर दुहत्थड़ जमाती हुई) मैं हरामज़ादी हूँ, मैं घर से निकाल दी जाऊँ, ताकि तुम बेखटके इसके साथ मौज करो।

महरिन—बहूजी मैं बिल्कुल बेगुनाह हूँ। इन्होंने ही मेरा ज़बरदस्ती हाथ पकड़ लिया था।

पार्वती—हाँ, हाँ, इन्हीं का क़सूर है। मगर तू खड़ी-खड़ी क्या कर रही है? इनके मुँह पर कालिख क्यों नहीं लगा देती? बल्कि झाड़ू मार, झाड़ू।

महरिन—(अलग) बाप रे बाप! बहुत गरम हैं। अब खिसक आऊँ यहाँ से। (चल देती है)

शक्की—अरे! अरे! यह तो उलटे मुझी को मारने लगीं। क्यों री हरामज़ादी, इस ढंग से तू अपना ऐब छिपाना चाहती है?

पार्वती—और तू आँखें दिखाकर अपना दोष मिटाना चाहती है। यह बेहयाई।

शक्की—यह बदमाशी! मैं तेरे बदन की खाल खींच लूँगा।

पार्वती—और मैं तुझे जीते ही कच्चा चबा जाऊँगी।

शक्की—मैंने तुझ ऐसी बेहया औरत नहीं देखी।

पार्वती—हाँ, बेशक मैं बड़ी बेहया हूँ कि तेरी रँगरेलियों में फट पड़ी। मैं नहीं जानती थी कि तू ऐसा नीच है।

शक्की—सच तो यह है कि मैं नहीं जानता था कि तू ऐसी आवारा है।

पार्वती—चुप रह। तू किस मुँह से बोलता है? तेरी कुकर्मी तो मैंने खुद अपनी आँखों से देखी है।

शक्की—देखो इसकी बदमाशी। झूठा कलंक लगाकर मुझको दबा लेना चाहती है। अरी हरामजादी, तेरी आवारगी का सबूत यह दे रहा है, यह। (अपना लोपड़ा की तरफ इशारा करता है)

पार्वती—(दुहत्थड़ जमाकर) फिर ऐसी बात मुँह से निकालेगा? निर्लज्ज, पापी कहीं का। और ऊपर से हाथ मटकाता है। क्या मिरगी आ गई? (मारता है)

शक्की—हाय! हाय! सबूत की तरफ तो देखती है नहीं और दनादन धुनती ही चली जा रही है।

गाना

पार्वती—शरम नहीं आवे, न आँख मिलावे,
चल दूर हो, आवारे, नाकारे।
शक्की—हाय! हाय! देखो यह तिरिया चरित्तर।
पार्वती—अरे! जा! चुल्लू भर पानी में डूब मर।
शरम नहीं आवे—
शक्की—चोरी करे आप और मुझको लगावे।
पार्वती—धत्तेरी ऐसी-तैसी, कैसी बात बनावे।
शरम नहीं आवे—
शक्की—उलटा चोर कोतवाल को डाँटे।
पार्वती—पड़े पड़े इसके मुँह पर चाँटे।
शरम नहीं आवे—

(शक्कीमल घबड़ा कर भागता है और उसे मारती हुई पार्वती जाती है।)

[पटपरिवर्तन]

(क्रमश)

जी० पी० श्रीवास्तव

पेंसिल स्केच

(अ)

इसके बाद ३ दिन तक वह और जीवित रहा।

रात के बारह बजे थे। छत पर, जहाँ वह लेटा हुआ था, चंद्रिका छिटकी हुई थी। मंद-मंद मारुत का एक-आध झोंका कुंदन के केश-पाश से टकराकर जगदीश के शरीर को छूकर निकल जाता था। वायु के झोंके के साथ सेंट की सुगंधि की जो लपट आती थी, इस समय वह कुंदन को बहुत खटक रही थी।

जगदीश ने एक आह खींचकर और फिर कुछ ठहरकर कहा—"कुंदन यह जीवन तो अब गया! हम लोगों ने क्या सोचा था?—क्या हो रहा है!" कुंदन ने उत्तर में सिर नीचाकर लिया—कुछ कहा नहीं।

जगदीश ने फिर कहा—"मैंने जिस दिन तुम्हें पहले पहल देखा था उस दिन ।"

जगदीश की आँखों से आँसुओं की बूँदें टप-टप करके गिरने लगीं, गला भर आया। कुंदन चुप-चाप उठकर एक कमरे में चली आयी। वहाँ जगदीश के सामने जी भरकर वह रो भी नहीं सकती थी।

१० मिनट के बाद कुंदन फिर जगदीश के निकट बैठी थी। जगदीश मुसकुराकर कह रहा था—"परंतु यदि यही बात मुझे पहले ज्ञात हो जाती तो कितना अच्छा होता, कुंदन!"

जगदीश अभी बिलकुल युवा था, परंतु इसके शरीर पर मांस नहीं रह गया था—अस्थि-पंजर के बीच में जीवन की कुछ घड़ियाँ और बिताने के लिए अथाह वेदना से भरा हुआ हृदय भर जीवित था। कपोल पचक कर गड्ढे बन गये थे। इस मुसकुराहट का कुंदन के हृदय में एक चित्र सा खिंच गया। उसके हाथ में "प्रदीप" नाम का एक काव्य-ग्रंथ था। कुंदन ने उसका एक पन्ना उलट दिया। जगदीश ने कहा—"मेरा पहला चित्र देखती हो न? इस समय कौन विश्वास करेगा कि यह मेरा चित्र है!"

जगदीश ने देखा, कुन्दन चित्र को बड़े मनोयोग से देख रही है। वह कुछ सोचने लगा। कुन्दन ने उसी समय जगदीश के मुँह की ओर देख-देखकर उसका एक पेंसिल स्केच ले लिया। जगदीश का इस ओर ध्यान न था।

तीसरे दिन जगदीश ने सदा के लिए अपनी आँखें मूँद लीं।

(ब)

उपर्युक्त घटना के २५ वर्ष बाद—

कुन्दन आज पुत्र-पुत्री की माँ है। पुत्री का नाम कल्याणी है। कल्याणी के विवाह की बात-चीत जिस युवक के साथ होने को थी, वह एक कालेज में प्रोफ़ेसर है। उसकी अवस्था ३० वर्ष की है। वह अभी तक अविवाहित है। कल्याणी के भाई बाबू शारदाचरण एक वकील हैं। शारदा बाबू अब इस विवाह से सहमत नहीं हैं। उन्होंने अब कल्याणी के लिए एक दूसरा वर ढूँढ़ लिया है। वह डाक्टर है। कुछ दिनों से कुन्दन अस्वस्थ रहती है। शरीर सूख गया है। कल्याणी की एक सखी है। उसका नाम है यमुना। यमुना एक गर्ल्स हाईस्कूल में अध्यापिका है। वह कुन्दन के मन-बहलाव के लिए प्रायः उससे बातें करने आ जाती है। इस समय यमुना कुन्दन के निकट बैठी हुई बात-चीत कर रही है।

कुन्दन ने कहा—यमुना बेटी, कल्याणी का विवाह एक दूसरी जगह तय हो रहा है।

यमुना—कहाँ माँ?

कुन्दन—कानपुर में डाक्टर कौशल का एक लड़का है जो अभी इसी साल विलायत से डाक्टरी पास कर आया है। लड़का सुंदर, सुशील और स्वस्थ है। उसका फ़ोटो देखेगी?

यमुना—कहाँ है? देखूँ।

कुन्दन ने फ़ोटो यमुना के हाथ में रख दी।

यमुना बोली—निस्सन्देह वर कल्याणी के योग्य है। पर एक बात यदि मैं तुमसे कहूँ, तो, बुरा तो न मानोगी माँ?

कुन्दन—नहीं बेटी, इसमें बुरा मानने की कौन सी बात है। मैं तो इस विषय में तुम्हारी सम्मति जानने की इच्छुक भी थी।

यमुना—इस विषय में कल्याणी की सम्मति क्या है, यह तुम्हें कुछ मालूम हुआ है?

कुन्दन—नहीं तो। अभी कल ही तो फोटो आई है।

यमुना—अच्छा मैं बतला दूँ। कल्याणी इस नवीन आयोजन से सहमत नहीं है। क्यों सहमत नहीं है; इसका कोई कारण जानने की आवश्यकता नहीं है।

कुन्दन—परन्तु बेटी, यह वर तो बहुत ही अच्छा है। अच्छा तू उसे समझा देगी तो मुझे विश्वास है कि वह मान लेगी। परन्तु उसे यह न बतलाना कि इस विषय में मेरी निजी राय क्या है। मैं उसकी सच्ची राय जानना चाहती हूँ। वह यदि इसे पसन्द करले तो क्या ही अच्छा हो।

यमुना—मैं इसके लिए प्रयत्न करूँगी। परन्तु मुझे स्वयं इस बातपर विश्वास नहीं है कि, वह इसे स्वीकार कर लेगी।

(स)

कुन्दन ने शारदा बाबू को बहुत समझाया, परन्तु वे किसी तरह से डाक्टर वर से सम्बन्ध न करने पर सहमत नहीं हुए। अन्त में यही सम्बन्ध करना निश्चित हो गया।

परसों बरात आने को है, कल्याणी के विवाह की तैयारी बहुत धूमधाम के साथ हो रही है। मंडप-स्थापन-संस्कार होने जा रहा है। कुन्दन एक आभूषण निकालने के लिए अपना एक पुराना ट्रंक खोल रही है। ट्रंक के भीतर की सामग्री को देखकर वह उसी में एक ओर रखती जाती है। परन्तु बहुत खोजने पर भी आभूषण नहीं मिल रहा है। यकायक एक ओर कोने में पड़े हुए एक खुले लिफ़ाफ़े पर उसकी दृष्टि दौड़ गयी। कुन्दन उसे उठाकर देखने लगी। एक मोटा काग़ज़ उसमें सुरक्षित रूप से रखा हुआ है। ज्योंही उस काग़ज़ के टुकड़े को कुन्दन ने ध्यान से देखा, तो वह पेंसिल स्केच था। उसका सिर घूमने लगा। २०-२५ वर्ष की स्मृतियाँ एक-एक करके उसके सामने आगईं। रह-रहकर उसे याद आरहा था—"यदि यही बात पहले मालूम हो जाती तो कितना अच्छा होता कुन्दन!" रह-रहकर एक वेदना-सी उसके हृदय में उठने लगी।

कुन्दन ने एक दासी से कहा—भैया को ज़रा बुलाना तो, मेरा जी जाने कैसा हो रहा है।

थोड़ी देर में शारदाचरण ने आकर देखा, माँ एक पलँग पर अचेतन दशा में लेटी हुई हैं। उनकी बहू उनपर पंखा झल रही है। जो स्त्रियाँ मंडप-स्थापन-संस्कार के लिए आई थीं, वे सब भी एकदम घबराई हुई हैं।

आध घंटे के बाद कुन्दन ने आँखे खोल दीं। शारदा ने पूछा—माँ, कैसा जी है ?

कुन्दन ने कहा—जी तो अच्छा नहीं है। मुझे ऐसा मालूम हो रहा है कि इस विवाह से कल्याणी सुखी न होगी। पूर्व निश्चित वर ही ठीक है।

शारदा—यह कैसे जाना जा सकता है, मा ! यह तो भविष्य की बात है।

कुन्दन—यह मेरी चला-चली का समय है। यदि तुम यह चाहते हो कि मैं सुख से मरूं, तो तुम्हें मेरी यह बात माननी होगी।

शारदा ने देखा, मा का मुख एकदम उतरा हुआ है। उसने माँ के शरीर पर हाथ रखकर देखा तो वास्तव में उसके शरीर में विषम ज्वर था। बोले—अरे, तुम्हें तो ज्वर भी आ गया है !

कुछ घंटों के बाद कुन्दन की दशा और भी गिर गई। शारदा बाबू माँ के निकट बैठे हुए थे।

कुन्दन ने कहा—कल्याणी को तुम्हें सौंपे जाती हूं। उसका विवाह प्रो० रामकृष्ण के साथ ही करना।

शारदा बाबू—ऐसा ही होगा माँ। मैंने तार देकर यह विवाह रोक दिया है। कुन्दन ने गद्‌गद कंठ से कहा—तूने मेरी बात मान ली। चलो अच्छा हुआ। भगवान तेरी समस्त अभिलाषाएँ पूर्ण करेगा।

इसके पश्चात् कुन्दन ने कल्याणी को बुलाया। वह एक ओर खड़ी-खड़ी आँसुओं की वर्षा करती हुई सिसक रही थी, मा के निकट आकर रोने लगी।

कुन्दन ने उसकी ओर देखा। बोली—बेटी, जन्म-मरण तो जीवन में लगा है। तू व्यर्थ रो रही है।

पुन. थोड़ी देर बाद बोली—कल्याणी, मैं तेरी मा हूँ, फिर भी आज संकोच छोड़कर मैं तुझसे यह कहे जाती हूँ कि हृदय की बात सदा छिपाये रखने की ही वस्तु नहीं है, कभी-कभी उसे अपने आत्मीयों से प्रकट कर देने में ही अपना और अपने समाज का कल्याण-साधन होता है। मुझे विश्वास है कि भगवान तुझे सुखी करेगा। यह कहते कहते कुन्दन ने कल्याणी का हाथ चूमकर उसे अपनी छाती से लगा लिया—आँखें मूँद लीं। इसके बाद फिर कुन्दन ने आँखें नहीं खोलीं।

भगवतीप्रसाद वाजपेयी

हस्त-रेखा विज्ञान

पूर्व-कथन

ईश्वरीय रचना में कोई बात निष्प्रयोजन तथा व्यर्थ नहीं है। छोटे से छोटे और नीचातिनीच कीट से लेकर महान् और विशालकाय हाथी तक सभी प्रयोजनीय तथा उपयोगी हैं। उसकी रचना-चातुरी की यह एक मोटी मिसाल है। उसकी सूक्ष्म कृतियों की विवेचना के लिए हमें चारों प्रकार की सृष्टि—उद्भिज, स्वेदज, अंडज और पिंडज—पर एक दृष्टि डालनी पड़ेगी। पहिले उद्भिज सृष्टि को ही ले लीजिए। इसमें सहस्रों प्रकार के वृक्ष, लता, पुष्प आदि की रचना है। प्रत्येक ही एक दूसरे से आकार-प्रकार में भिन्न है। पत्रों और पुष्पों में यथावश्यक नम्रता और कठोरता, विभिन्न रंगों का समावेश आदि उस जगन्नियंता के रचना-चातुर्य का अच्छा नमूना हो सकता है। स्वेदज और अंडज सृष्टि में भी अनेक रंग और आकार के पक्षी, कीड़े-मकोड़े आदि का उत्पादन है। सभी एक दूसरे से रंग-ढंग में विभिन्नता रखते हैं। कोई जल के अंदर रहकर जीवित रह सकता है तो कोई उसके स्पर्श से ही प्राणों पर संकट पाता है। कोई अग्नि के ऊपर रह सकता है तो कोई उसको स्पर्श तक नहीं कर सकता। ऐसी अद्भुत बनावट कम चातुरी की बात नहीं है। अब उसकी रचना के एक विशेष तथा उत्कृष्ट अंग पिंडज अथवा जरायुज सृष्टि को ले लीजिए। इसमें उसकी विशेष प्रक्रिया की प्रचुर सामग्री पाई जाती है। अतः सभी रचनाओं में श्रेष्ठ तथा उपयोगी है। इसके रूप-रंग और आकार के अतिरिक्त अंग-प्रत्यंग के रोम और रेखाओं में उसकी चातुरी का प्रचुर मसाला मौजूद है।

हमारे शरीर का प्रत्येक रोम उपयोगिता और आवश्यकता से खाली नहीं है। ऐसे ही शरीर के अंग-प्रत्यंग में रेखाएँ और चिह्न हैं। आज हम अंग के ऐसे अन्य चिह्नों को छोड़कर केवल करतल के विषय में ही अपने कुछ विचार प्रकट करेंगे। आशा है, पाठकों के मनोरंजन के साथ-साथ ये उनकी मनन-सामग्री होंगे, और

साथ ही यह भी विश्वास है कि कोई विशेषज्ञ महानुभाव आगे इस विषय पर अपने विचार प्रकट करेंगे तथा मृत-प्राय और एक मात्र टके पैदा करने योग्य परित्यक्त हमारे प्राचीन ऋषि-महर्षियों की आविष्कृत इस विद्या को पुन जागृत करेंगे।

भाग्य या अदृष्ट

हस्त-रेखाओं और चिह्नों को देखकर मनुष्य का भाग्य कथन किया जा सकता है। इसमें भूत, भविष्य और वर्तमान तीनों कालों का हाल होता है। भाग्य क्या है, पहिले इसे ही सुलझा देना ठीक होगा। भाग्य या अदृष्ट वह शक्ति है, जिसके अनुसार मनुष्य का गुण, कर्म और स्वभाव बनता है। यह अनुभव से बोधगम्य होता है। यह अपरिवर्त्तनीय है। अपने अच्छे-बुरे कर्मों के अनुसार इसका वैसाही गठन होता है। इसी भाग्य या अदृष्ट का पाठ हस्त-रेखा-विधायक-गण करते हैं।

प्राचीन काल में हस्त रेखा-विज्ञान तथा ज्योतिष पर लोगों का अच्छा विश्वास था और इनके ज्ञाताओं को लोग श्रद्धा की दृष्टि से देखते थे। परंतु आजकल—इस वैज्ञानिक युग में—लोगों का इन पर विश्वास उठना-सा दिखाई देता है। वे भाग्य को कुछ मानते ही नहीं। भविष्य-कथन पर तो उनका तनिक भी विश्वास नहीं। धर्म के लिए तो वे यहां तक कह बैठते हैं कि यह स्वय-निर्धारित दंड है, स्वय-जनित व्याधि है, और इसका गुण पागलपन है। लेकिन उन्हें इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि उनके ऐसे विचार बड़े भ्रामक हैं। सच पूछा जाय तो उनके सभी कार्य अचिरस्थायी और अनुकरण मात्र होते हैं और उनसे उन्हें उतना ही सुख और शांति मिल सकती है जितना एक चतुर बालक को अपने घिरौंदे के अंदर प्रासाद तैयार करके। ईश्वरीय कार्य सभी चिर-स्थायी और सृष्टि के अनादि काल से समान रूप में चले आते हैं। उनमें किसी प्रकार का परिवर्तन न तो हुआ है, और न होने की गुंजायश ही रखी गई है। यही इस रचना की विशेषता है।

आजकल विकास-वाद का समय है, प्राय सभी इसको मानते हैं। साथ ही सतान पर, परंपरा से पैतृक गुणों का प्रभाव भी माना जाता है, जो इसी प्रकार होते-होते उस जाति का आचरण बन जाता है। यदि यह विचार सत्य माना जाय, जो कि अनुभव-सिद्ध होने पर मानना ही पड़ेगा, तो यह भी मानना होगा कि भाग्य भी कोई चीज़ है। मानव-जीवन कुछ नियमों के आधार पर होता है। मनुष्य अपनी पैतृक-बुद्धि तथा पूर्व-जीवन के कर्मानुसार अपने भाग्य या अदृष्ट की परिधि के अंदर काम करने पर बाध्य होता है। उसके शरीर पर कुछ चिह्न या निशान समय-समय पर पैदा होते है, जो अनुभव से उसके कर्मों के परिचायक पाये गए हैं। हस्त-रेखा-विज्ञान या पामिस्ट्री (Palmistry) इन्हीं चिह्नों और रेखाओं का सार-युक्त विचार है।

मानव-प्रकृति बड़ी अन्वेषक होती है। मनुष्य जब से उत्पन्न हुआ वह अविराम भाव से अपने भाग्य के भेदों को खोलने का इसलिए प्रयत्न करता है कि वह उन शक्तिशाली और अदृष्ट शक्तियों का पता लगाए जो उसके क्षणिक सुख-दुख का कारण हैं। उसी समय से एक विचार-धारा बहने लगी। उसमें सफलता हुई, जिसका परिणाम हमारे सामने है।

मनुष्य अपने भाग्य का स्वय निर्माता है—वह उसे स्वय बना बिगाड़ सकता है। उसके छोटे-बड़े सभी काम उसके भाग्य की भित्तियाँ तैयार करते हैं और उनके होते हुए उसे अदृष्ट शक्तियों से अपने अपराध की क्षमा-याचना अथवा सुकर्म का पारितोषिक माँगने की आवश्यकता नहीं होती। एक बात और भी है, जैसा हम ऊपर कह चुके हैं, कि मानव-जीवन अपने पूर्व-जीवन की पुनरावृत्ति होती है। मनुष्य अपनी स्मरण-शक्ति द्वारा अपने विगत जीवन का स्मरण कर सकता है। यह किन परिस्थितियों में सभव है, यह निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता। लेकिन इसके प्रमाण और उदाहरण आज भी उचित सख्या में मिलते है, जिससे अबोध अवस्था में ही लोगों ने अपने पूर्व-जन्म का हाल कहा है।

हमारे शरीर में एक अद्भुत शक्ति काम करती है, जो हमारी इच्छा-अनिच्छा, प्रेम और क्रोध इत्यादि को नाल-ततुओं द्वारा इसके प्रत्येक भाग में प्रेरित किया करती है। मनुष्य के मन में जैसा भी, अच्छा या बुरा, भाव होगा, उसका चित्रण उसके मुख और मस्तक पर तुरंत परिलक्षित होता है। एक शराबी का सुर्ख चेहरा और एक विद्वान् का शांत और दिव्य मुख-मंडल उसके हृदयोद्गार की कुंजी है। एक दयालु हृदय पुरुष की मुखाकृति का क्या प्रभाव होता है? कहने का मतलब

यही है कि हमारे शरीर का प्रत्येक कार्य, यहाँ तक कि बेपरवाही का हँसना और बोलना तक, चेहरे पर अंकित हो जाता है, और एक बुद्धिमान् तथा इस कार्य मे विशेषज्ञ मनुष्य इसको ठीक-ठीक जान सकता है। एक-एक चीज़, जो उसके हृदय मे होती है, बता सकता है। लोगो ने इसका अभ्यास किया है, और इसमे वे सफल भी हुए हैं। सफलता यहाँ तक मिली है कि आप भोजन करके बैठे है, वह पुरुष बता देगा कि आपने अमुक-अमुक पदार्थ खाए हैं। इससे हमारा यही अभिप्राय है कि हमारा प्रत्येक विचार और कार्य कुछ अद्भुत और अदृष्ट शक्तियो के अनुसार होता है और वे बिना किसी सूचना के हमारी हथेली, ललाट और मुख-मडल पर उसका चित्रण किया करती है। सामुद्रिक-शास्त्र के ज्ञाता इन्हीं के द्वारा हमारे आचरण और भूत, भविष्य तथा वर्तमान का कथन करते हैं। ऐसे ही शारीरिक चिह्नो से चतुर वैद्य शरीर के अदर का हाल जान जाते है, और किसी रोगी की व्यवस्था सहज ही मे कर सकते है। योग्य हस्त-रेखा-पाठक भी अपने असामी के रोग-विषयक इतिहास को पढ सकता है।

यद्यपि शरीर के प्रत्येक अग मे हमारे मनोविचार-बोधक अविधान उपस्थित होते हैं, परतु विशेष और स्पष्ट रूप मे हथेली पर ही पाए जाते है। प्रकृति के अनुसार हाथ को विशेषता देने का एक और भी कारण है। हमारे सारे काम हाथ से ही होते है। हमारे सभी बुरे और भले कामो का यही करनेवाला है। तो फिर इसी के ऊपर चित्रण करना अनुचित नहीं कहा जा सकता। इसके साथ ही एक और भी बात है। यदि मनुष्य मे योग्यता और अनुभव हो तो वह अपना हाथ स्वय अन्य अगो की अपेक्षा आसानी से देख सकता है। ऐसा किसी अन्य अग से सभव नहीं है। इसीसे कर को बड़ा महत्व दिया गया है, और कहा जाता है कि—

कराग्रे बसते लक्ष्मी, कर मध्ये सरस्वती,
कर मूले स्थितो ब्रह्मा, प्रभाते कर दर्शनम्।

इसका भाव यह है कि कर-द्वारा हमें सभी सिद्धियाँ प्राप्त हो सकती हैं, इससे शुभ समझ कर प्रभात काल मे इसका दर्शन करना चाहिए।

इतिहास

इस विज्ञान के इतिहास के विषय में कुछ कहने के लिए हमारे पास कोई सामग्री तथा साधन नहीं है। जो है भी वह पाश्चात्य पडितों की खोज के आधार पर है, जो हमे उसकी सत्यता के विषय में भ्रम में डालते हैं। अस्तु, इसका जन्म कब और किस परिस्थिति में हुआ—ठीक नहीं कहा जा सकता। यह तो मानी हुई बात है कि इसके जन्म देने का सौभाग्य भारतवर्ष को ही हुआ था। इसको इसके विशेषज्ञ अग्रेज़ विद्वानो ने भी माना है। यहाँ से चीन और फिर ग्रीस मे इसका प्रचार हुआ। ग्रीस से फिर यूरोप के अन्य भागों में इसका विस्तार हुआ। ग्रीस से ही अन्य भागों में प्रचार होने का एक प्रमाण यह है कि इसके नाम जो व्यवहार मे आते है, प्राय. ग्रीक भाषा के ही हैं। विद्वानो का अनुमान है कि ईसा के लगभग ३००० वर्ष पूर्व चीन में और २००० वर्ष पूर्व ग्रीस में इस विद्या का प्रचार था। इससे यह भी अनुमान किया जा सकता है कि हमारे यहाँ और भी प्राचीन काल से इसका प्रचार रहा होगा।

हस्त-रेखा विज्ञान सामुद्रिक-शास्त्र का एक मुख्य अग है। सामुद्रिक ज्योतिष का एक अग है, और ज्योतिष षट्-शास्त्रो मे से एक है। सामुद्रिक-शास्त्र मे शारीरिक सभी प्राकृतिक चिह्नो—जैसे तिल, लहसुना, हस्त-रेखा, ललाट तथा अन्य रेखायें, स्वप्न, छींक इत्यादि पर विवेचनापूर्ण विचार है। सर्वांगपूर्ण सामुद्रिक आजकल अप्राप्य-सा हो रहा है। आजकल तो इधर-उधर से जो मसाला मिला, जोडकर लोग उसे सामुद्रिक शास्त्र के नाम से प्रचार करते है। वाल्मीकि रामायण, महाभारत, अग्नि पुराणादि मे यत्र-तत्र इसके उद्धरण पाये जाते है। लोगों का यह अनुमान है कि कर्नाटक और तेलंग देश में अब भी इसके प्राचीन ग्रथ है। परतु सत्यता कहा तक है, यह हम नहीं कह सकते। यह बात अवश्य है कि उक्त प्रांतो और पजाब के कुछ भागो मे अब भी इसके ज्ञाता अधिकता से पाये जाते हैं। वे लोग कभी-कभी यहाँ तक दौरा करते है और पैसे के लालच मे लोगो के हाथ देखा करते हैं।

यूरोप में लगभग ४०० वर्ष से इसका सुसबद्ध इतिहास मिलता है। अब तो वहाँ काफी सख्या मे और अनुभवी विद्वानों के एक-से-एक उत्तम ग्रंथ मौजूद हैं। अमेरिका में भी अब इसका प्रचार हो रहा है। भारत भी इस विषय मे अब जागता-सा मालूम पड़ता है। बगाली तथा मराठी

साहित्य में इस पर कई सुंदर ग्रंथ मौजूद है। अंग्रेज़ी में भी कई विद्वानों ने ग्रंथ लिखे हैं। दक्षिणी विद्वानों तथा मासिक-पत्रों में भी अब इसकी चर्चा होने लगी है। हिंदी में अब तक हमें केवल एक ही पुस्तक देखने में आई है। वह है रतलामनिवासी ज्योतिषी श्रीनिवास महादेव पाठक कृत 'हस्तपरीक्षा'। यह लगभग ४०० पृष्ठ की है। इसमें पाश्चात्य और पौर्वात्य सिद्धांतों को अलग-अलग दिखलाया गया है। पुस्तक परिश्रम के साथ लिखी गई है और उपादेय है।

हस्त-रेखा विज्ञान के साथ ज्योतिष का घनिष्ठ संबंध है। मनुष्य के स्वभाव और कर्म पर ग्रहों और नक्षत्रों का पूरा प्रभाव पड़ता है। रेखाओं की भाँति हमारी हथेली में इनका भी उद्बोधन और विचार होता है। सूर्य, चन्द्र, मंगल, बुध, बृहस्पति, शुक्र और शनि, ये सात ग्रह हैं। अश्विनी, भरणी, कृत्तिका, रोहिणी, मृगशिरा, आर्द्रा, पुनर्वसु, पुष्य, आश्लेषा, मघा, पूर्वा-फाल्गुनी, उत्तरा-फाल्गुनी, हस्त, चित्रा, स्वाति, विशाखा, अनुराधा, ज्येष्ठा, मूल, पूर्वाषाढ़, उत्तराषाढ़, अभिजित, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिष, पूर्व-भाद्र, उत्तर-भाद्र और रेवती ये २८ नक्षत्र होते हैं। हमारे हाथ में इनके स्थान और चिह्न माने जाते हैं। इसी प्रकार मेष, वृष, मिथुन, कर्क, सिंह, कन्या, तुला, वृश्चिक, धन, मकर, कुंभ और मीन ये बारह राशियें हैं। इनके भी स्थानादि निश्चित हैं। हमारी प्रकृति पर इनका पूरा प्रभाव पड़ता है।

साधारण नियम

हस्त-रेखा-पाठक को चाहिए कि प्रथम उत्तमोत्तम ग्रंथों के अध्ययन और मनन से इसका ज्ञान प्राप्त करे। प्रायः देखा गया है कि ऐसे ग्रंथों में परस्पर कुछ मत-भेद रहता है। उसको अपनी बुद्धि और अनुभव से निश्चय करे। अध्ययन के उपरांत अनुभव प्राप्त करना चाहिए। अनुभव बहुत से हाथों के देखने से हो सकता है। विशेष-घटना-संपन्न हाथों को ध्यान से देखना और मिलाना चाहिए। प्रथम भूतकाल की बातों पर ही ध्यान देना ठीक होगा। जब इसका पूरा अभ्यास होजाय तो भविष्य-कथन का प्रयास करना चाहिए। क्योंकि ऐसा न करने से बड़ी हानि की संभावना है।

परीक्षक को शांत चित्त होकर, स्नानादि प्रातःकृत्य से निवृत्त हो, प्रातःकाल ही हस्त-परीक्षा करनी चाहिए। परीक्षार्थी भी वैसे ही पवित्र तथा शांत चित्त होकर अपना हाथ दिखावे। मध्याह्न काल, भोजन के उपरांत, अधिक शीत और गर्मी में, परिश्रम के बाद तथा मादक पदार्थों के सेवन के उपरांत हाथ कभी न दिखाना चाहिए। ऐसे समय में स्वाभाविकता में अंतर आ जाता है, जिससे परिणाम भी वैसा ही होगा।

परीक्षा के समय दोनों हाथों की रेखाओं को देखना और उनका आपस में मिलान करना चाहिए। जो बात अधिकांश में जैसी हो, कथन करना चाहिए। ऐसा करने पर भी पुरुष के दाहिने और स्त्री के बायें हाथ को विशेषता देनी चाहिए। क्योंकि ये विशेष प्रभाव-सूचक होते हैं। चौदह वर्ष की आयु तक मनुष्य की रेखाओं में परिपक्वता नहीं आती। अथवा यों कहिए कि उसमें इस समय तक स्वतंत्रताधिकार प्रायः नहीं होता। ऐसी हालत में उसके बायें हाथ को ही प्रधानता देनी चाहिए। इसके अतिरिक्त भी स्त्री-पुरुष की प्रकृति जानकर, उसके अनुसार हाथ को प्रधानता देनी चाहिए। जैसे नपुंसक अथवा हिजड़ों के बायें और स्वाश्रित-जीवी पुरुषार्थी स्त्रियों के दाहिने हाथ को प्रधानता देनी उचित है।

हस्त-परीक्षा कैसे करनी चाहिए

ग्रहों, राशियों और नक्षत्रों के परिवर्तन के साथ-साथ यथाफल हमारी रेखाओं में भी परिवर्तन होता रहता है। उनके प्रभाव के अनुसार जो घटना अवश्यभावी होती है, उसीका संकेत हमारे शरीर में प्रकट हो जाता है। यही बात करस्थ रेखाओं में भी होती है। इनके रंग-रूप में परिवर्तन हो जाता है, जिससे हमारे भाग्य में तबदीली का संकेत हो जाता है। ग्रहों और नक्षत्रों का प्रभाव केवल हमारे ही अंग पर नहीं पड़ता, प्रत्युत जड़ पदार्थों पर भी पड़ता है। जैसे सूर्य-ग्रहण के समय खान में पड़े हुए सोने का रूप-रंग वैसा नहीं रह जाता जैसा सिंह-राशि के समय होता है। ऐसे ही चंद्र-ग्रहण के समय चाँदी का रूप वैसा नहीं रह जाता जैसा कर्क-राशि के चंद्र के समय होता है।

आगे हस्त-परीक्षा-संबंधी कुछ विशेष बातें हम थोड़े में लिखेंगे। क्योंकि फलाफल के साथ इनकी विस्तृत विवेचना करना इस छोटे से लेख में असंभव है। हाँ, यदि, यह पाठकों को रुचिकर प्रतीत हुआ तो आगे चलकर क्रमशः इनकी विस्तृत विवेचना की जायगी।

ऊपर हम कह चुके हैं कि परीक्षक और परीक्षार्थी दोनों को शांत और पवित्र चित्त होकर यह कार्य करना या कराना चाहिए। पाठक को फिर भी अधिक ध्यान से कार्य करना होगा। सर्व-प्रथम उसे अपने असामी की प्रकृति का ज्ञान प्राप्त करना होगा। क्योंकि बिना प्रकृति जाने फल-कथन के कार्य की सफलता में संदेह रहेगा। प्रकृति-ज्ञान तीन प्रकार से हो सकता है। पहले, असामी के आते ही उस की गति और चेहरे को देखकर ही उसकी प्रकृति का अनुमान किया जाय। यद्यपि प्रथम इस कार्य में असफलता अधिक होगी, लेकिन अभ्यास से सफलता मिल सकती है। दूसरे, जन्म-ग्रह जान कर ज्योतिष की सहायता से प्रकृति जानी जा सकती है। प्रकृति का जितना ठीक अनुमान इस प्रकार हो सकता है, उतना अन्य विधि से नहीं। फिर यथास्थान बैठ जाने पर हाथ के स्पर्श करने के प्रथम ही पंजे की आकृति देखनी चाहिए। पंजा नुकीला, वर्गाकार, चौड़ा, चपटा, विषम, वैज्ञानिक और मिश्रित इनमें कैसा है, ध्यानपूर्वक देखा जाय। विभिन्न प्रकार के हाथों के विभिन्न लक्षण होते हैं, और उनका प्रभाव भी वैसा ही होता है। इनसे भी प्रकृति का अनुमान होता है। इस प्रकार पूर्व दोनों प्रकार से निर्धारित प्रकृति की परिपुष्टता पंजे की आकृति से निर्धारित प्रकृति से मिलान करने पर हो जाती है। यदि तीनों का सम परिणाम हो तो पाठक को समझ लेना चाहिए, कि उस असामी के विषय में उसकी धारणा ठीक है। यदि विषमता हो, तो अपनी भूल ठीक कर लेनी चाहिए। नहीं तो कर-पाठ करने के समय इन भूलों के कारण गड़बड़ी हो जाने की संभावना है। यह प्रारंभिक प्रक्रिया इतनी आवश्यक है कि इसकी सफलता पर पाठक की आधी से अधिक सफलता निर्भर है।
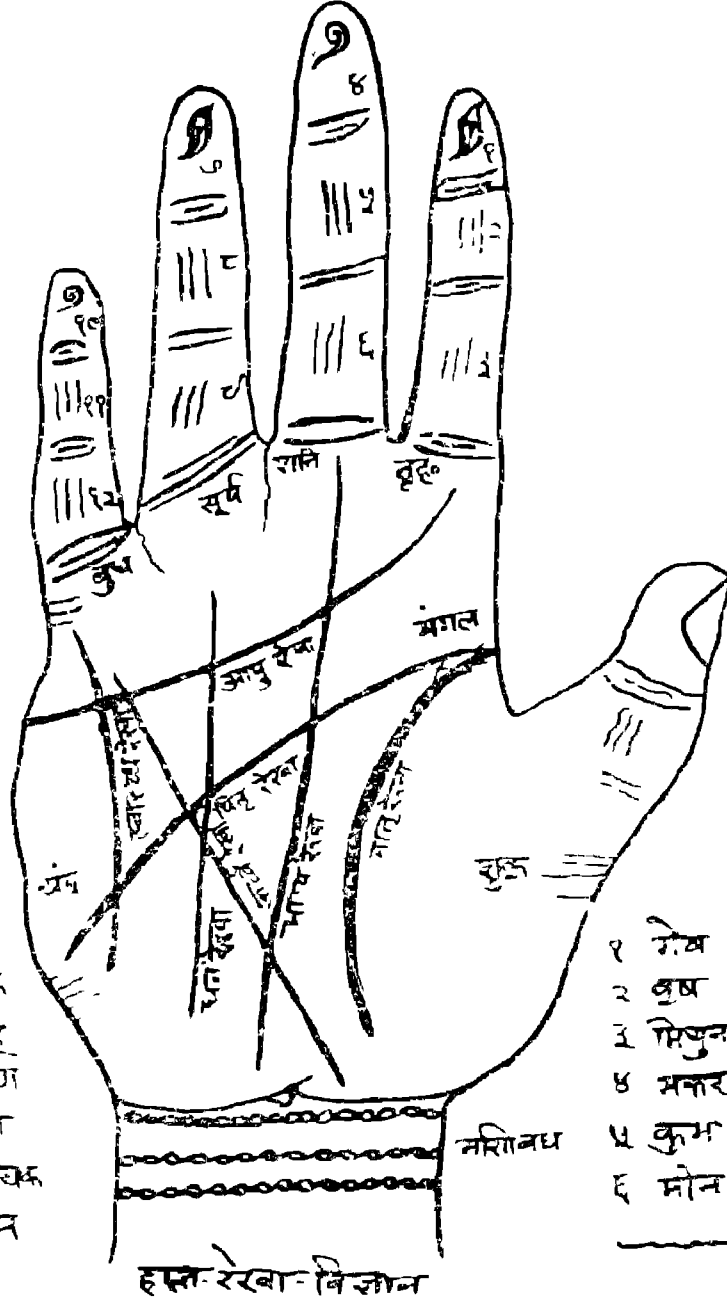
हस्त-रेखा-विज्ञान

इस प्रकार प्रकृति का पूरा अनुमान कर लेने पर पाठक को अपने असामी का कर स्पर्श करना चाहिए। स्पर्श से उसकी कठोरता और नम्रता का अनुभव करना चाहिए। इससे असामी की स्थिति और शारीरिक श्रमका कुछ अनुमान हो सकेगा। प्रकृति के बाद स्थिति का अनुमान कर लेने पर पाठक के भविष्य का कार्य और आसान हो जाता है।

इसके अनंतर कर-दर्शन आरंभ करना चाहिए। प्रथम कर का पृष्ठ भाग देखना चाहिए। पृष्ठ भाग चपटा है, उठा हुआ है, नसों का उभाड़ कैसा है, आदि बातें देखनी होती हैं। रोम और रोम-कूपों का भी विचार होता है। फिर उंगलियों के पोटों के रोमों का विचार और तदनन्तर नाखूनों का मुख्य विचार होता है। नाखूनों में रंग, आकार और चिह्न ये तीन बातें देखनी होती हैं। इन सबका भिन्न विचार और फलाफल होता है। विशेषज्ञों ने लगभग ४० प्रकार के नाखूनों का वर्णन किया है। इनके द्वारा व्यावहारिक जीवन तथा मृत्यु का विचार होता है।

पृष्ठ भाग के बाद हाथ उलट कर क्रमश मणिबंध, उंगलियां और हथेली देखनी होगी। मणिबंध (कलाई) में जंजीरदार एक से तीन रेखाएँ होती हैं और उनमें सुख-सम्पत्ति-विषयक विचार होता है। मणिबंध के बाद उंगलियों का विचार करना ठीक होगा। इनकी लंबाई, मुटाई, पोटों के जोड़ रेखाओं और शंख चक्रादि के विचार के अतिरिक्त राशियों के स्थानादि का विचार है। १२ राशियां में प्रत्येक उंगली के प्रत्येक पोटे पर एक-एक राशि का स्थान माना जाता है।

इसके बाद हाथ का मुख्य भाग हथेली (Palm) का विचार है। इसमें मुख्यत तीन बातों का विचार होता है। रेखाएँ, प्राकृतिक चिह्न और ग्रहादि का स्थान। रेखाओं का विचार करने के प्रथम इस बात को देख लेना होगा कि वे अधिक हैं या कम। किसी-किसी के हाथ में तीन या चार रेखाएँ ही होती हैं और बाकी हाथ साफ़ होता है, और किसी-किसी हाथ में जालीदार, छोटी-बड़ी, कटती-पिटती अनेकों रेखाएँ होती हैं। इससे मतलब यह है कि जितनी ही कम रेखाएँ होंगी और हाथ साफ़ होगा, उतना ही अधिक वह पुरुष भाग्यशाली होगा। हथेली में मुख्यत सात रेखाओं का विचार होता है। इनमें भी पितृ रेखा, मातृ रेखा, आयु और भाग्य रेखा ये चार प्रधान हैं, और स्वास्थ्य रेखा, चन्द्र रेखा और धन रेखा इनको मिलाकर सात होती हैं। इनके अलावा भी स्त्री, सन्तान, मित्र, शत्रु, विचार, आकांक्षा, धर्माधर्म आदि की रेखाओं का भी स्थान माना जाता है।

चिह्नों में त्रिकोण, चतुर्भुज, वृत्त, बिंदु, क्रास, जाली और नक्षत्र इत्यादि के विचारों के अतिरिक्त गज, रथ, मत्स्य, ध्वजा, पताका आदि चिह्नों का भी विचार होता है। पाश्चात्य विचार-पद्धति में पर्वतों के विचार पर विशेष ध्यान दिया जाता है। ग्रहों का स्थान हथेली पर मानकर उस स्थान को उसीका पर्वत कहते हैं। इनमें उंचाई, निचाई और समता का विचार होता है। एक दूसरेकी उंचाई, निचाई और साथ का भिन्न प्रभाव होता है, तथा उन पर यदि कोई चिह्न यव, त्रिभुज आदि आकर पड़जाता है, तो उसका दूसरा ही फल होता है। लेकिन ऐसी हालत में भी प्रधानता ग्रहों की ही होती है, क्योंकि वे अधिक बलवान होते हैं।

इन्हीं उपर्युक्त तीनों बातों के विचार में हमारे भूत, भविष्य और वर्तमान की सभी राम-कहानी का समय-समय पर चित्रण होता रहता है। इन्हींमें हमारा दुःख-सुख, उदारता-अनुदारता, रोग-मरण, स्त्री-पुत्रादि तक का सभी विचार हो जाता है। रेखाओं की लंबाई-चौड़ाई का विचार करके चतुर पाठक किसी घटना विशेष के लिए वर्ष, मास, तिथि का समय तक निर्धारित कर देते हैं। यही हस्त-रेखा विज्ञान का सार भाग है। यहां हम एक चित्र देते हैं, जिससे पाठकों को मुख्य-मुख्य रेखाओं और पर्वतों के स्थान का अनुमान हो जायगा। इनका फला-फल, जैसा हम ऊपर कह चुके हैं, आगे फिर कभी देंगे।

सुरेंद्रनाथ तिवारी

मंगलामुखी

जलती समूल जिसमें है सुख-शांति-बेलि,
प्रबल अनल ऐसा उर में लगाती है।
रौरव के तुल्य है बनाती नर जीवन को
कुल कुल-गौरव को धूल में मिलाती है।
मन में कुभावना के भाव उपजातीं सदा,
चित्त को फँसातीं वर वित्त को नसाती है।
मङ्गल में वे सदैव करती अमङ्गल हैं,
फिर क्यों भला वे मङ्गलामुखी कहाती हैं॥ १॥

गोपालशरण सिंह

पतिता

आह ! निर्दोष सौन्दर्य की यह कली ,
अर्चना-योग्य जो देवतो के रही ।
आज पावों-तले दानवों के पड़ी ,
हेय होकर विवश ठोकरें खा रही ॥
स्वर्ण-संयोग पाता कहाँ यह रतन ,
फैलती चौगुनी चारु इसकी प्रभा ।
कीच के संग से मोल इसका घटा ,
कान्ति कमनीय मिट्टी हुई जा रही ॥
भाव-मन्दाकिनी के लिए सर्वथा ,
जो पतित-पावनी भूमि उपयुक्त थी ।
आज उसमें नरक-ज्वाल-माला-मयी ,
वासना-धार उमड़ी चली आ रही ॥
रूप-लावण्य-माधुर्य की यह छटा ,
मत्तता-पूर्ण, उद्दाम यौवन-घटा ।
शांति की अटवियाँ भस्म करती हुई ,
पाप की आग है आज बरसा रही ॥
जो सरलता-मयी चारु चितवन विमल ,
प्रेम की ज्योति से जगमगाती कभी ।
रंग में घोर निर्लज्जता के रँगी ,
काम के विष-बुझे बाण बरसा रही ॥
स्वर्ग-संगीत-चंचल मनोहर अधर ,
जो सुधा-माधुरी-सिक्त होते कभी ।
आज उनमें सुरा-राग की लालिमा ,
तप्त अङ्गार-सी चित्त झुलसा रही ॥
जो मराली न चुगती कभी भूलकर ,
मंजु मुक्तावली के सिवा और कुछ ।
तोड़ मर्याद पापी उदर के लिए ,
आज कीड़े-मकोड़े वहाँ खा रही ॥
जिस विमल व्योम में उच्च-आदर्श की ,
चाँदनी ज्ञान-आलोक विस्तारती ।
है अँधेरा वहाँ अन्ध-आवेश का,
घोर वीभत्सता की घटा छा रही ।
जिस मनोमुग्ध-कर मानसर में कभी ,
खेलती हंस की मंडली मोद से ।
आज उसमें अधम ऊधमी जन्तुओं ,
की धमा-चौकड़ी गन्दगी ला रही ॥
जो मनोवृत्ति ही पुण्य की पुत्तली ,
स्वर्ग-संसार की सृष्टि करती कभी ।
फाँसने के लिए पंछियों को नए ,
व्याधिनी-सी कपट-जाल फैला रही ॥
वस्तु महनीय जो है अलौकिक परम ,
स्वर्ग-सम्पत्ति भी मोल जिसका नहीं ।
आज बाज़ार उसका लगाया गया ,
बेधड़क कौड़ियों में लुटी जा रही ॥
विश्व की दृष्टि से दूर होकर जिसे ,
डूब मरना कुएँ में कहीं श्रेय था ।
कामियों की कुटिल दृष्टि का केन्द्र बन ,
मुसकुराती हुई, हाय ! इठला रही ॥

श्यामसुंदर खत्री

रेखा

(१)

रेखा जीवन की ! —
अयि प्रथम परिचय की प्रिया ! —
ज्योति में अपनी जब
स्वप्न एक सुप्ति की सजल,
चिर-चन्द्रिका, कुमारी तू
नग्न-पद,
आई अयि चंचल,
हृदय के सब सुप्त दल खुल गये,
अन्ध अन्तर में वह प्रथम प्रभात आया ।
विकसित हृदय के स्थिति-लोहित सरोज पर
स्थित-पद अम्लान-मुख,
देवी-सी, प्रथम अपनत्व की
अति मधुर दृष्टि से
देखती हुई मुझे अपनाया ।
चिरकालिक अंधता
अपनी विभूति की,
मलिनता प्रेम की,
नश्वरता शाश्वत की
घृणा निज अंगों से
दूर हुई,
ज्योति में तेरी प्रिय

परिचय अपना हुआ,—
उसी दिन देखा था मैंने ऐश्वर्य निज,
शक्ति निज,
निज अमूल्य वैभव का फैला संसार
और समझा था,
मेरी ही अनघता ने
अनघ रक्खा था इन्हें—
मेरा वसन्त वह
आती दिगन्त से है कूक कोकिल की जहाँ,
मेरी क्रमावस्था वह
जीव हैं निर्जीव जहाँ
जड़ पिंडवत् पड़े,
लुप्त बुद्धि, हृदय में
बहता है घोर मोह,
देखा था मैंने वह
भीतर बाहर का साम्य,
भीतर के कलुष की
बाहर आकृति खड़ी,
भीतर के प्रेम का
बाहर परिपुष्ट रूप ।
सहम गया मैं देख
चारों ओर अपना भाव ।
अपरिचित वैभव से व्याकुल हुए जब प्राण
देखा उन नयनों को,
चेतन, सुकुमार,
मृदुल मुख की तरंगों पर,
छूटी भाषा से वह एक टक दृष्टि ही
याद अब तक है मुझे ।
　　　प्रथम ही मेरा विकास था ।
सदियों तक लगातार,
पीड़ित पद-दलित मैं एक ओर पड़ा हुआ,
आँसू बहाता चुपचाप,
था सहता जो अत्याचार,
अपने ही ताप से, तनु, मुरझाया हुआ,
दीनता के अंक पर शीर्ण था पड़ा हुआ
"क्षमा करो, दया करो" धर्म था,
कर्म था क्रन्दन,
मुख-मौन एक महाज्ञान,
पूर्वजों के मान पर दंभ अस्तित्व था,
दास्य थी जीविका,
अपनों से ईर्ष्या प्रभु-भक्ति थी,
शक्ति थी जर्जर पर अविचल पाद-प्रहार,
जीवन पर-निन्दा थी
धर्म-ढोंग निष्ठा दृढ़,
दूसरों की शक्ति थी अपना उपाय एक,
अन्ध-परम्परा बस एक लक्ष्य जीवन का,
मृत रीति नीतियाँ ही अपना उद्धार-पथ ।
क्षणिक प्रवाह में बह गया अन्धकार,
लुप्त अस्तित्व,
भासमान एक मात्र ज्ञान, उज्वल आनन्द,
मुख-पूरित प्रभात,
केलि रश्मियों की रह गई ।*

'निराला'

गोस्वामी जी और हिंदू जाति

बल-वैभव-विक्रम-विहीन यह जाति हुई जब सारी;
जीवन-रुचि घट चली; हट चली जग से दृष्टि हमारी,
प्रभु की ओर देखने जब हम लगे हृदय में हारे
तब पथ कुछ चले दिखाने 'वह तो जग से न्यारे'।
उस वैराग्य-गिरा से आहत मन गिर गया हमारा।
अंधकारमय लगा जगत् यह, रहा न कहीं सहारा।
अटपट बानी ने जीवन की खटखट से खटकाया,
लोकधर्म के रुचिर रूप पर चटपट पट फैलाया,
जिसके तानों में फँस कर मति गति थक चली हमारी,
मर्य्यादा मिट चली लोक की, गई वृत्ति वह मारी
होना है अभ्युदय जाति का फिर फिर जिसके द्वारा,
हरती है जो सकल हीनता, भरती है सुख सारा।
　जाय वीरता, मान न उसका यदि मानस से जावे;
जाय शक्ति, पर भक्ति शक्ति की यदि जन-मन न भगावे;
जाय ज्ञान विज्ञान, भाग्य भी जड़ता का यदि जागे,
पर न भारती-पाद-पद्म तज पूज्य बुद्धि यदि भागे;
कितनी ही पर ताप तप्त तनु पिस कर पीड़ा पावे
पर यदि दुष्ट-दमन पर श्रद्धा मन में कुछ रह जावे;

* (अप्रकाशित 'रेखा' से)

लोकरक्षिणी शक्ति उदय तो अपना आप करेगी,
विद्या, बल, वैभव वितरित कर सब सन्ताप हरेगी।
पर जनता के मन से ये शुभ भाव भगानेवाले
दिन दिन नए निकलते आते थे मन के मतवाले।

इतने में सुन पड़ी अतुल सी तुलसी की वर वानी
जिसने भगवत्कला लोक के भीतर की पहचानी।
शोभा-शक्ति-शील-मय प्रभु का रूप मनोहर प्यारा
दिखा लोक-जीवन के भीतर जिसने दिया सहारा,
शक्ति-बीज शुभ भव्य भक्ति वह पाकर मंगलकारी
मिटी खिन्नता, जीने की रुचि फिर कुछ जगी हमारी।

जिस दंडकवन में प्रभु की कोदंड-चंड-ध्वनि भारी
सुनकर कभी हुए थे कंपित निशिचर अत्याचारी,
वहीं शक्ति वह झलक उठी झंकार सहित भयहारी,
दहल उठा अन्याय, उठी फिर मरती जाति हमारी।

प्रभु की लोक रंजिनी छवि पर जब तक भक्ति रहेगी
तब तक गिर गिर कर उठने की हम में शक्ति रहेगी।
रंजन करना साधुजनों का, दुष्टों को दहलाना,
दोनों रूप लोक रक्षा के हैं, यह भूल न जाना।
उभय रूप में देते हैं जिसमें भगवान् दिखाई
वह प्राचीन भक्ति तुलसी से फिर से हमने पाई।
यही भक्ति है जगत बीच जीना बतलानेवाली,
किसी जाति के जीवन की जो करती है रखवाली।
वीच धीरता, विद्या, बल पर से जो भक्ति हमारी
अपनी ओर फेर करते हो लोकधर्म से न्यारी,
हमें चाहिए उनसे अपना पीछा आप छुड़ावें,
तुलसी का कर ध्यान न उनकी बातों में हम आवें।

रामचन्द्र शुक्ल

देवीदास

हिंदी मे देवीदास नाम के कई कवि हो गए है। शिवसिंह-सरोज मे एक देवीदास का समय १७४२ दिया हुआ है, और विवरण इस प्रकार लिखा है —

"ये महान् कवि नाना-ग्रंथ बनाय संवत् १७४२ मे भया रतनपालसिंह यादव वंशावतंस करौला अधिपति के इहाँ जाय महा मान पाय आजन्म पर्यंत उसी जगह रहे और उन्हींके नाम प्रेम-रत्नाकर नाम एक ग्रंथ महाअपूर्व रचा है जो हमारे पुस्तकालय मे मौजूद है। नीति-संबंधी इनके कबित्त हर एक मनुष्यों का जानना अवश्य है।"

इनकी कविता के उदाहरण मे वे ही कवित्त दे दिए गए है जो प्राय देवीदास के नाम से प्रचलित है।

काशी नागरी-प्रचारिणी सभा की हस्त-लिखित पुस्तको की खोज की रिपोर्ट मे तीन देवीदासो का ज़िक्र है। पहले बुंदेलखंड-निवासी के ग्रंथ का नाम "राजनीति का कबित्त" दिया है, जो साफ-साफ राजपूतानी नाम है। मालूम नहीं, किस आधारपर इस ग्रंथ के कर्त्ता को बुंदेलखंडी लिखा है। दूसरे देवीदास वही है जो शिवसिंह-सरोज मे वर्णित है। तीसरे एक कोई अज्ञात कवि है।

सं० १७४२ वाले देवीदास कोई और होगे। क्योंकि वे अकबर के समकालीन नहीं हो सकते। और तीसरे देवीदास तो भक्त और प्रेमी कवि जान पड़ते है। उनसे हमे मतलब ही नहीं। हा, पहले देवीदास, जो बुंदेलखंडी प्रसिद्ध है और जिनके ग्रंथ का नाम "राजनीति का कबित्त" दिया हुआ है, वही देवीदास हो सकते हैं, जिनका ज़िक्र इस लेख मे आगे किया जायगा।

माधुरी की वैशाख सं० १९८४ की संख्या मे गुजरात के हिंदी-कवियो मे एक देवीदास का नाम आया है और उनका समय सं० १७५० दिया हुआ है। पर उनका नाम गुजराती-साहित्य मे व्यर्थ ही घसीट लाया गया है। वे गुजराती नहीं थे। जो कवित्त उदाहरण मे दिया गया है, वह उन देवीदास का है, जिनकी चर्चा हम इस लेख मे करेगे।

इनका ज़िक्र हमे सीकर (जयपुर राज्यान्तर्गत) के इतिहास मे मिलता है। ये ही वे देवीदास है, जिनकी राजनीति प्रसिद्ध है, ये जाति के वैश्य थे। यद्यपि सीकर के इतिहास मे इनके जन्म-मरण, वंश और जन्मस्थान का कुछ वर्णन नहीं है, पर इनकी कविता की भाषा से यह जाना जाता है कि ये युक्त-प्रदेश मे व्रज वा व्रज के आस-पास के रहनेवाले थे, और मारवाड़ मे जा बसे थे।

देवीदास राव लूनकरनजी के मंत्री थे। राव लूनकरनजी
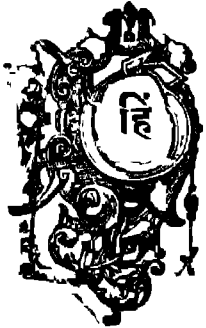
का संबंध बीकर राज-वंश से है। ये सम्राट अकबर के समकालीन थे। कहा जाता है कि एक दिन रावजी और मंत्री देवीदास में यह विवाद उठ खड़ा हुआ कि बुद्धि बड़ी या लक्ष्मी? रावजी लक्ष्मी को बड़ी बतलाते थे और देवीदास बुद्धि को। विवाद बढ़ते-बढ़ते कटुता की सीमा तक पहुँच गया और रावजी ने ताना मारते हुए कहा कि—यदि तुम बुद्धि को ही बड़ी बतलाते हो तो, रायमल के पास लाख्याँ चले जाओ और अपने कथन को प्रमाणित करो। रायमल राव लूनकरनजी के छोटे भाई थे और लाख्याँ गाँव में जागीर पाकर वहीं रहते थे। देवीदास को भी अपनी बात का हठ हो गया था। वे रावजी को प्रणाम करके रायमल के पास चले आए। रायमल ने देवीदास को सम्मान-पूर्वक अपने यहाँ रखा। देवीदास को तो केवल अपने सिद्धांत को सच करके दिखाने की चिंता थी। वे रायमलजी को लेकर अकबर की सेवा में दिल्ली पहुँचे।

रायमलजी बादशाह की नौकरी पाने के लिये उद्योग में लगे ही थे कि यकायक भारत पर अफ़ग़ान पठानों के एक सरदार कतलख़ाँ का हमला हुआ। उसे परास्त करने के लिये, दिल्ली से शाही फ़ौज भेजी गई। देवीदास की प्रेरणा से रायमलजी शाही फ़ौज में भरती होकर लड़ाई पर चले गए। देवीदास भी साथ गए थे। लाहौर में दोनों ओर की फ़ौजों से मुठभेड़ हुई। शाही फ़ौज शाहज़ादा सलीम के मातहत थी। एक बार मौक़ा पाकर अफ़ग़ान सरदार ने शहज़ादे पर हमला कर दिया। शाहज़ादे के बहुत से सिपाही काम आए और निकट था कि शहज़ादा शत्रुओं के हाथों में आ रहता, इतने में रायमलजी ने अपने प्राणों पर खेल कर बड़ी वीरता से लड़कर अफ़ग़ान सरदार का सिर काट लिया। सरदार के मारे जाने से उसके सिपाही मैदान छोड़ भागे। सलीम की विजय हुई।

शाही फ़ौज विजयी होकर दिल्ली लौटी। सलीम ने अकबर को लड़ाई का सब समाचार सुनाने के साथ ही यह भी कहा कि एक बार हम शत्रु के घेरे में ऐसे फँस गए थे कि एक राजपूत सरदार ने बढ़कर शत्रु को न मार गिराया होता तो मेरी जान ही न बचती।

देवीदास की सम्मति से रायमलजी ने अपने को प्रकट न होने दिया। पर गुणग्राही अकबर को उस वीर राजपूत का पता लगाने की बड़ी चिंता थी। उसने विजय की ख़ुशी में वीर सिपाहियों को पुरस्कृत करने के लिये एक प्रीति-भोज दिया, और सबको उसी वेश में अपने सामने से निकलने की आज्ञा दी, जिस वेश में वे युद्ध में लड़े थे। नीतिज्ञ देवीदास ने रायमलजी से कहा कि आज आप की खोज हो रही है, आप भी जाइए। ज्योंही रायमलजी बादशाह के सामने से गुज़रे, सलीम ने झट पहचान लिया कि यही वह राजपूत है। बादशाह ने रायमलजी को पास बुलाया और उनके मुँह से युद्ध की बातें सुनकर उसने यह निश्चय किया कि शहज़ादे को बचानेवाला यही वह वीर राजपूत है।

बादशाह को जब यह मालूम हुआ कि रायमलजी नौकरी की खोज में दिल्ली आए हैं, तब उसने उनकी वीरता का आदर करते हुए उन्हें १२५० का मनसब और दरबारी ख़िताब देकर सम्मानित किया। उनका भाग्य दिनोंदिन चमकता गया। वे विश्वासी समझे गए और उन्हें ज़नानी ड्योढ़ी का काम सौंपा गया। ज़नानी ड्योढ़ी का कार्यभार ग्रहण करने पर देवीदास ने उनके लिये यह नियम बना दिया कि वे धोती के नीचे पीतल का कच्छा पहनकर तब काम पर जाया करें। कच्छे में ताला लगाकर चाबी देवीदास अपने पास रख लेते थे। किसी तरह यह बात अकबर को मालूम हुई। उसने कौशल से देवीदास से चाबी माँग लाने के लिये दूत भेजा। चतुर-चूड़ामणि देवीदास ने चाबी नहीं दी। इससे अकबर बहुत प्रसन्न हुआ। उसने रायमलजी की सच्चरित्रता की बड़ी प्रशंसा की और उन्हें १० परगनों के साथ विंडेले का भी पट्टा दे दिया। यह घटना टाड ने भी अपने राजस्थान के इतिहास में लिखी है। रायमलजी हल्दीघाटी की लड़ाई में भी थे।

इस प्रकार देवीदास ने लक्ष्मी से बुद्धि की श्रेष्ठता प्रमाणित कर दी। राव लूनकरनजी को भय था कि ये दोनों, समय पर मेरा अनिष्ट करेंगे। पर, जब अवसर पाकर रायमलजी और देवीदास राव लूनकरनजी से मिले और उनको उपर्युक्त चिंता का पता लगा तब देवीदास ने कहा—हमें तो बुद्धि की श्रेष्ठता प्रमाणित करनी है। वह बुद्धि अब भी हमारे पास है। आप बड़े हैं, पूज्य हैं, हम आपका अनिष्ट सोचेंगे तो बुद्धि की श्रेष्ठता कहाँ रह जायगी।

इतिहास में देवीदास का इतना ही पता है। इससे यह तो निश्चित ही है, कि वे राजनीति के पंडित थे। कविता के रूप में उन्होंने अपने ज्ञान का जो दान हम लोगों के लिये छोड़ा है वह उनकी अतुलनीय उदारता का परिचायक है। देवीदास की कविता की भाषा बड़ी सरल और सरस है। अब से तीन सौ वर्ष पहले वे ऐसी सुंदर हिंदी में कविता लिख सके, यह उनकी प्रतिभा के लिये बड़े गौरव की बात है। उनकी भाषा तो युक्त-प्रांत की ही है, पर उसमें कहीं-कहीं मारवाड़ी शब्द और मुहावरे भी मिलते हैं, जो मारवाड़ में जाकर बसने वाले के लिए स्वाभाविक ही है।

शिवसिंह-सरोज में हमें देवीदास का एक ऐसा कवित्त मिला है, जिसमें बहुत से स्थानों के नाम हैं। सम्भव है, इसी में उनके जीवन का कुछ इतिहास भी ग्रथित हो। हम कवित्त के कुछ चरणों का ठीक-ठीक अर्थ नहीं समझ सके। सम्भव है, माधुरी के पाठक इस पर कुछ प्रकाश डालें, इसलिए हम उसे यहाँ उद्धृत करते हैं —

बासी बर उर के उदासी भये मोरग ते,
पाती गति अनत ही आनम पिरार में।
परनाम लाजे मो सुगागपर देवादास,
कविता के दिना ही गुणागेर बिचार में॥
बिजपर कीन्हे भाग नागर हमारे आज,
काश्मीर तिलक है ललित लिलार में।
अमना के लागे लाल ओव में मिल ही मोहि,
पटना समान उर उमगि निहार में॥

हमें देवीदास के राजनीति के कवित्त बहुत पसन्द हैं। हम बहुत दिनों से इनकी कविता की खोज में हैं। अब तक इनके पचास से अधिक कवित्त हमें मिले हैं। इनका लिखा कोई ग्रन्थ हमारे देखनेमें अभी तक नहीं आयाहै।

इनके कुछ चुने हुये कवित्त नमूने के तौर पर यहाँ दिये जाते हैं। राजनीति की आवश्यकता बतलाते हुए देवीदास ने क्याही सुंदर उदाहरण दिया है,—

मूसे पर साप राखे साप पर मोर राखे,
बेल पर सिंह राखे वाको कहा भीति है।
पूतनि को भूत राखे भूत को बिभूत राखे,
छ मुख को गजमुख यह बड़ी रीति है॥
काम पर बाम राखे विष को अमृत राखे,
आग पर पानी राखे सोई जग जीति है।
'देवीदास' देखो ज्ञानी शंकर की सावधानी,
सब विधि लायक पै राखे राजनीति है॥

राजा के कर्तव्य के विषय में देवीदास का यह कवित्त उन राजाओं को विशेष ध्यान से पढ़ना चाहिए, जो दोपहर तक सोते हैं और बाक़ी दिन तथा सारी रात खाने-पीने, गप-शप और ऐशो आराम में बिताते हैं —

कौन यह देस कौन काल कौन बैरी मेरो,
कौन मेरो हितू ताहि ढिंग ते न टारिबो।
केतो निज आमद खरच केते केतो बल,
तेहि उनमान बैन मुँहते निकारिबो॥
सम्पति के आवन को कौन मेरो साधन है,
ताहू को उपाव अरु दाँव उर धारिबो।
राजनीति राजन को प्रतिदिन 'देवीदास',
चारि घरी राति रहे इतनो बिचारिबो॥

इसी विषय का एक कवित्त और भी है। यह पहले कवित्त से अधिक महत्त्व का है —

छोटे-छोटे पेड़नि को सूरन* की बारि करो,
पातरे से पोधा पानी पोखि प्रति पारिबो।
फूले-फूले फूल सब बीनि एक ठौर करो,
घने-घने रूख एक ठौर ते उखारिबो॥
नीचे गिरिगए तिन्हें दै-दै टेक ऊँचे करो,
ऊँचे चढ़ि गये ते जरूर काटि डारिबो।
राजन को मालिन को प्रतिदिन 'देवीदास',
चारि घरी राति रहे इतनो बिचारिबो॥

राज-दरबार में बात करने की निपुणता से प्रायः लोग ऊँचे पद पर पहुँच जाया करते हैं। देवीदास इस कला की महिमा इस प्रकार बतलाते हैं —

कीरति को मूल एक रैनदिन दान देबो,
धरम को मूल एक साँच पहिचानिबो।
बढ़िबे को मूल एक ऊँचो मन राखिबो है,
जानिबे को मूल एक भली बात मानिबो॥
व्याधि मूल भोजन, उपाधि मूल हाँसी, 'देवी',
दारिद को मूल एक आलस बखानिबो।
हारिबे को मूल एक आतुरी है रन माँझ,
चातुरी को मूल एक बात कहि जानिबो॥

मित्रता रखने और खोने के संबंध में देवीदास ने

---

* सूरन = शूल, बबूल के काँटे। सम्पादक

जो अनुभव की बातें कही हैं, उन्हें प्रत्येक मित्र वाले व्यक्ति को कठस्थ कर लेनी चाहिए —

पहले विवाद व्यवहार धन को न कीजे,
जाचिये न तापै आय मागे ताहि दीजिये ।
मित्र के घरे मे घरनी सो मिलि बैठिये न ,
हसिये न दरि बैठि बात छोरि लीजिये ॥
कोऊ भेद पाये तो न भले 'देवीदास' कहे,
मनकी दुराइये न ताते भये खाजिये ।
प्रीति खोयो चाहिये तो कीजिये परे सो प्रीति,
प्रीति राख्यो चाहिये तो इतनो न कीजिये ॥

राज-दरबारों मे कभी-कभी अयोग्य आदमी सम्मान-नीय स्थान प्राप्त कर लेते हैं और योग्य व्यक्ति नीचे ही रह जाते हैं । उनको संबोधन करके देवीदास कहते हैं —

एरे गुनी गुन पाइ चातुरी निपुन पाइ ,
कीजिये न मैलो मन काहू जो कछू करा ।
बीरन बिराने द्वार गये को सुभाव यहै ,
मान अपमान काहू रे करा कि जू करा ॥
कूर औ कबिंद चले जात हे सभाके बीच ,
तो को जो हटकि 'देवी' काहू पलटू करी ।
दरवाजे गज ठाढे कूकरी सभा के मध्य ,
कूकरी सा कूकबा औ तू रेरा सो न करी ॥

असंतोषियों के लिये देवीदास कहते हैं —

जो कछु विधाने लिख्यो करिकै लिलाट पाट,
ताही पर अपनो अमल आप करि ले ।
सोने के सुमेरु मात्र मारू बारू माहि जानि,
घटै बढै नाहि यह निहचे मे धारि ले ॥
'देवीदास' कहै जोई होनहार सोई दे है ,
मन मे सतोष रैन-दिन अनसारि ले ।
बापी सर सरिता भरे ह मान सागर पे ,
तू तो तेरे बासन समान पानी भरि ले ॥

मनुष्य-जीवन की सार्थकता के संबध में देवीदास की यह उक्ति कैसी चित्ताकर्षक है —

कै तो नेह पाइ धरे धरम के पग पाइ ,
आमन र-इ लेइ जात परद्दन को ।
कै तो करि उद्दम अपार धन जोरि कोटि-
सूर्जो तू कराइ काम करत सपूत को ॥
कै तो मनकामना अभेय सुख भोगवे को ,
मूरति को मिलो तेरा पाग पाचभूत को ।
इनमे ते एकहू न बने तो जनम पाइ ,
छेरी के गरे को थन दूध को न मूत को ॥

बहुत से शत्रुओं के बीच में एक व्यक्ति को कैसी साव-धानी से रहना चाहिए और फिर कैसे उन शत्रुओं को परास्त करना चाहिये, इसपर देवीदास ने एक बड़ी ही अनूठी उक्ति दी है —

आपुन अकेले आस पास सब बैरी तब,
दॉतनि मे जीभ जमे तैसी भाति रहिये ।
जानिये निकस पैठ चलिये नरम ह्वै के,
नेह करे तो प वा सनेह सो न बहिये ॥
अनमिल मिल्यो सो दिखाइ परे, 'देवीदास,'
एते पै सताबे तो समय पाय सहिये ।
दाउ परे एक बोल ऐसो बोलकर बाग,
औरनि के हाथ दात जेर करयो चाहिये ॥

किसके साथ कौन नहीं होता, इस विषय मे देवीदास का अनुभव इस प्रकार है —

नट को न धाम न नपुंसक को काम,
नाहि ऋणी को आराम बाम वेश्या न महेलरी ।
ज्वारी का न साच मासहारा को न दया होत,
कामी को न नातो गात लाग्यो न सहेलरी ॥
'देवीदास' बसुवा मे बनिक न सुनो सा..,
कूकर को धीरज न साथी है महेलरी ।
चोर को न यार बटमार का न प्रीति होत,
लाबर न मीत हीन गात न सहेलरी ॥

राजा के आसपास खुशामदियों की ओर लक्ष्य करके देवीदास कहते हैं —

बातान बहनहार चित्त के लहनहार,
अतर मे और और उपर न गोरे ह ।
जानियो उन्हीं ये दिन के रहनहार,
देकरि कुमत स्वामी सकट मे बोरे है ॥
ताहिन अनीति कै गहनहार हम देरो, (?)
पारि कै रहनहार बामन है भोरे है ।
राजनि के बिन के गहनहार घने, पर,
'देवीदास' हित के कहनहार थोरे हे ॥

राजनीतिज्ञ, साहसी पुरुष चाहे देश हो चाहे विदेश, सर्वत्र सुख और सम्मान प्राप्त कर लेते हैं, पर गुणहीन घर मे ही बैठे रहते है । इस विषय मे देवीदास कहते हैं —

जिनके उदार चित्त गाँव बीच मीत पूरे,
गुनवन्त सबही के 'देवी' सुखदात हैं।
रूप के उजारे नैन-तारानि में राखि लीजे,
बोलनि में मोल लेन ऐसे मुख बात हैं॥
साथ लागे सुख फिरें धन हाथ जोडे खडो,
भाग खुले जहाँ को तहाँई चलि जात हैं।
कापुरुष गुनहीन दीन-मन नीच नर,
ताव की तलाई बीच बैठे कीच खात हैं॥

अजा प्रजा की तुलना करके देखिये, देवीदास ने राजाओं को कैसा बहुमूल्य उपदेश दिया है।—

मूढ नृप जो अजा प्रजाहि मारि खायो चहै,
ताको एक बारही तो तृपति निदान है।
बुद्धिमान ह्वै के परिनाम का विचार चित्त,
अजा प्रजा बीच तो अनेक खान पान है॥
'देवीदास' कहै भूप पालत हैं पोष दे के,
अजा प्रजा बिरधे तें जानत सुजान हैं।
आमिष मा दूध सों अघावे केऊ बार तातें,
राजनि को पालिबो अजा प्रजा समान हैं॥

कजूस लोग धन तो जमा करते हैं, पर सुख नहीं भोगते। उनकी ओर लक्ष्य करके देवीदास कहते हैं —

ऊजरे महल नाहिं पालकी बहल नाहिं,
चहल पहल नाहिं होम की हवन सी।
माते गजराज नाहिं माँगते कों लाज नाहिं,
कवि को समाज नाहिं दीसै अरवन (?) सी॥
देह नाहिं लाड़ नाहिं जोरन अघाइ नाहिं
'देवीदास' कहै वह वस्तु है वमन सी।
धने दुःख जोरि घने दुःख माहिं राखत है,
ऐसे जो पै सम्पदा तो आपदा कवन सी॥

रामनरेश त्रिपाठी

उपन्यास और नाटक

वाणी-विजय—लेखक और प्रकाशक, श्रीआनंदविहारी पांडेय; कुसुमांजलि मुद्रण-कार्यालय, मोतिहारी; मूल्य ॥=), पृष्ठ-संख्या १२२।

यह ड्रामा है, और मौलिक है। पात्रों में सरजूराय ही मुख्य है और उनका चित्रण सुंदर है। मूर्खता की अवस्था से असहयोग करने तक उसके चरित्र में क्रमशः जो परिवर्तन हुआ है, वह बहुत ही स्वाभाविक है। उसकी बिहारी-भाषा स्वयं विनोद की सुंदर सामग्री है। मगर कथानक शृंखला-हीन-सा है। भाषा और मुहावरों की अशुद्धियाँ कम नहीं—दो सखुन बातें, नकसानी आदि। लक्ष्मी और सरस्वती, सौभाग्य और दुर्भाग्य, का मानवी-रूप में आना, जब कि नाटक सामयिक है, सर्वथा असंगत है।

× × ×

गंगाजमुनी—लेखक, श्रीयुत जी० पी० श्रीवास्तव; प्रकाशक, हिंदी-पुस्तक एजेंसी, २०३, हेरिसन रोड, कलकत्ता; मूल्य २।), पृष्ठ-संख्या २२८।

नाटक और प्रहसन के क्षेत्र में अमर कीर्ति लाभ करने के बाद अब लेखक महोदय ने 'गल्प' के क्षेत्र में कदम रक्खा है। यह पुस्तक आपकी ४ कहानियों का संग्रह है। कहानियाँ ज़रा बड़ी हैं। इनमें शृंगार की प्रधानता है। प्रेम के रहस्य, उसकी घातें और चोटें, इंतज़ार की बेताबी और जुदाई के दर्द, शोखी और शर्म, आशा और दुराशा, सितम और अदा आदि का बड़ा ही सजीव और सुंदर चित्रण किया गया है। हमें इन कहानियों में जूलियट सबसे अच्छी लगी। चंचल, अगर एक रंगीले युवक की नज़र-बाज़ियों की दास्तान है, तो जूलियट, एक कोमल, प्रेमोन्मत्त युवती-हृदय की आंतरिक प्रेम-वेदना का रोमांचकारी रुदन, जिसे सुनकर दिल हाथों से थाम लेना पड़ता है।

× × ×

भारतेंदु-नाटकावली—लेखक, स्वर्गीय भारतेंदु बाबू हरिश्चंद्र; संपादक, रायसाहब बाबू श्यामसुंदरदास, बी० ए०। प्रकाशक, इंडियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग; पृष्ठ-संख्या ८५० के लगभग। मूल्य ३॥); छपाई और कागज़ उत्कृष्ट। प्रकाशक से प्राप्य।

इंडियन प्रेस ने भारतेंदु बाबू हरिश्चंद्र की नाटकावली को इस रूप में निकालकर बड़ा काम किया है। एक ऐसे संस्करण की बहुत बड़ी आवश्यकता थी। इस संस्करण के प्रारंभ में ८६ पृष्ठ की एक विस्तृत प्रस्तावना है। इसे रायसाहब बाबू श्यामसुंदरदासजी ने लिखा है। इसमें भारतेंदुजी की कविता, उनकी जीवनी तथा जिस समय में उन्होंने कविता की है, उस समय की देश-दशा और परिस्थिति पर विचार किया गया है। प्रस्तावना विद्वत्ता-पूर्ण है और भारतेंदुजी तथा उनके नाटकों के संबंध में जिन बातों के जानने की इच्छा एक आलोचना-प्रिय

जिज्ञासु को हो सकती है, उन सबके बतलाने का प्रस्तावना में स्तुत्य प्रयत्न किया गया है। नाटकावली के अंत में परिशिष्ट-रूप में भारतेंदुजी का लिखा नाटक-नामक ग्रंथ भी दे दिया गया है। नाटकावली का यह संस्करण बहुत बढ़िया बन पड़ा है। एतदर्थ हम रायसाहब बाबू श्यामसुंदरदास, बी० ए० और इंडियन प्रेस के स्वामी को बधाई देते हैं। हम आशा करते है कि भारतेंदुजी की रचनाओं के प्रेमी इस संस्करण को अवश्य अपनावेंगे। हिंदी के प्रत्येक पुस्तकालय में नाटकावली का यह संस्करण रहना चाहिए। कृ

× × ×

कसौटी—मूल लेखक, स्व० माइकेल मधुसूदनदत्त; अनुवादक, श्रीरामलोचन शर्मा कंटक; मूल्य ।=); पृष्ठ संख्या ८३।

माइकेल मधुसूदनदत्त बंगाल के अमर कवि थे। यह पुस्तक उन्हींके रचे हुए 'शर्मिष्ठा'-नामक नाटक का अनुवाद है। इसकी रचना एक पौराणिक आख्यान के आधार पर हुई है। हमें तो इस नाटक में कोई ऐसा चमत्कार न दिखाई दिया, जिससे वह अनुवाद करने योग्य समझा जाता, हाँ, इसकी रचना पुरानी शैली के अनुसार हुई है, और यही इसका गुण है। अनुवाद सरल है।

२ कविता

सौरभ—लेखक, प्रोफेसर श्रीरामाज्ञा द्विवेदी, 'समीर', एम० ए० (आनर्स), एम० आर० ए० एस०; प्रकाशक, हिंदी-पुस्तक भंडार, लहेरियासराय, दरभंगा (बिहार) आकार छोटा; कागज और छपाई सुंदर; मूल्य १); प्रकाशक से प्राप्य; पृष्ठ-संख्या ६८।

श्रीरामाज्ञाजी द्विवेदी हिंदी के उत्साही लेखक और कवि हैं। समालोच्य 'सौरभ' में उनकी ब्रज भाषा एवं खड़ी बोली की कविताओं का संग्रह है। कुल कविताओं की संख्या ६६ है। उदाहरण के लिये दो कविताएँ नीचे लिखी जाती है—

(१)

मन मनि अँधियारो परो, मोह पाहरू कौन।
चतुर चोर मोहन तऊ चोरी अजहुँ चलौन॥
मो कारो मन तै लियो रिनि निज कारो गात।
बृंदक करावत स्याम हौ, करज न अजौं चुकात॥

(२)

नहीं हैं प्रभु ये मेरे छंद,
आँसुओं के केवल हैं बुंद—
ध्यान में चिंतन में अथवा,
तुम्हारे ही जो ढलक पड़े।
हैं सभी खारे किंतु प्रभो,
हृदय का क्रंदन उनमें है—
सुहँसना कभी, दुखभरा कभी—
तुम्हारे ही हैं दोनों, लो।

द्विवेदीजी की कोई-कोई रचना बड़ी ही सुंदर बन पड़ी है। हमारा विश्वास है कि द्विवेदीजी के द्वारा हिंदी की अच्छी सेवा हो सकेगी। 'सौरभ' में कहीं-कहीं छंदोभंग, यति-भंग, और कविता के प्रचलित नियमों का उल्लंघन हुआ है, पर वह द्विवेदीजी की जानकारी में हुआ है, अज्ञान का परिणाम नहीं है। नियमों का इस प्रकार से उल्लंघन उचित है या अनुचित, यह विवादास्पद विषय है, इस पर यहाँ हम कुछ न लिखेंगे। कृ

× × ×

बालकांड का नया जन्म—लेखक, बाबू श्यामलाल, कलारजी का राम-मंदिर, चौक, लखनऊ के पते से लेखक से प्राप्य; मूल्य दो रुपया; आकार मझोले का; पृष्ठ-संख्या २३४। छपाई और कागज साधारण से कुछ अच्छा।

बाबू श्यामलालजी ने इस पुस्तक के लिखने मे बड़ा परिश्रम किया है। तुलसीदास की रामायण मे बहुत से क्षेपक मिलाए गए हैं, यह सभी लोग मानते है। बाबू श्यामलालजी का कहना है कि प्रचलित क्षेपकों के अतिरिक्त रामायण मे और भी बहुत-सा ऐसा विषय है, जो गोस्वामी तुलसीदासजी का लिखा माना तो जाता है, पर असल मे है नहीं। आपने अपने पक्ष के समर्थन में कुछ दलीलें भी दी हैं। रामायण के लज्जित और सुहावने अंश बाबू साहब की राय मे तुलसीकृत नहीं हैं। हम बाबू साहब की इस राय से सहमत नहीं हैं, पर उनके परिश्रम की मुक्तकंठ से प्रशंसा करते है। भूमिका में आपने अपने पूर्ववर्ती टीकाकारों (रामायण के) के कुछ दोष दिखलाए है, वे बहुत अंशों मे ठीक हैं। समालोच्य बालकांड डबल कालम छपा है। एक कालम में मूल है और दूसरे मे टीका है। बाबू श्यामलालजी की टीका अच्छी है। गोस्वामीजी का भावार्थ आपने अच्छे ढँग से समझाया

है। यह हर्ष की बात है कि अब भिन्न-भिन्न दृष्टि-कोणों से रामचरित-मानस पर विचार किया जा रहा है। कृ

× × ×

काव्य कल्पद्रुम—लेखक, सेठ कन्हैयालाल पोद्दार ; प्रकाशक, श्रीनागरी प्रचारिणी सभा, आगरा ; पृष्ठ संख्या ५६८, मूल्य २॥), कागज और छपाई अच्छी ; प्रकाशक से प्राप्त।

संवत् १६५५ में सेठ कन्हैयालालजी ने 'अलंकार-प्रकाश' नाम से एक ग्रंथ प्रकाशित किया था। इसमें अलंकार-शास्त्र का विवेचन था। यह ग्रंथ अपूर्व था। यही 'अलंकार-प्रकाश' अब संवर्धित होकर और काव्य-शास्त्र के अन्य प्रयोजनीय विषयों से समन्वित होकर 'काव्य-कल्पद्रुम' नाम से प्रकाशित हुआ है। हमने इस ग्रंथ को ध्यान से पढ़ा है, और हमारा कहना है कि इधर अलंकार-शास्त्र को समझाने वाले जितने ग्रंथ हिंदी गद्य में निकले हैं, उन सबमें यह अच्छा है। इसमें संस्कृत के आचार्यों के मत का प्रतिपादन अधिक हुआ है, और हिंदी के आचार्यों का कम। हम इस बात को मानते हैं कि काव्य-शास्त्र का जैसा विशद विवेचन संस्कृत में हुआ है वैसा हिंदी में नहीं है ; फिर भी जब हिंदी का व्यक्तित्व अलग है, जब वह एक स्वतंत्र भाषा है, तब ख़ास हिंदी-कविता के आचार्यों ने काव्य-शास्त्र से संबंध रखने वाले जो ग्रंथ बनाये हैं, उनकी उपेक्षा करना ठीक नहीं है। कोई हरज नहीं होता, यदि सेठजी हिंदी कविता के आचार्यों की सम्मति न मानते, यदि उनकी सदोषता दिखलाते अथवा उनकी कठोर से भी कठोर आलोचना करते, पर हिंदी काव्य-शास्त्र के व्यक्तित्व के लिये, उसके स्वातंत्र्य के लिये, इस बात के लिए कि हिंदी काव्य-शास्त्र का भी कोई पृथक् अस्तित्व है, उसके आचार्यों की सम्मतियों का विस्तार के साथ उल्लेख होना परमावश्यक है। हमारी सेठजी से प्रार्थना है कि यदि वे उचित समझें तो काव्य-कल्पद्रुम के दूसरे संस्करण में इस पर ध्यान दें। एक प्रार्थना और है। स्पष्ट कथन के लिये सेठजी मुझे क्षमा करें। मैं चाहता हूँ कि 'काव्य-कल्पद्रुम' में सेठजी अपने बनाये अथवा अनुवादित पद्यों की कमी करें। सेठजी उच्च श्रेणी के काव्य-मर्मज्ञ हैं, पर उसी कोटि के कवि नहीं हैं। 'काव्य-कल्पद्रुम' में कवि राजा मुरारिदान की कतिपय गर्वोक्तियों का उत्तर बड़ी ही सुंदर रीति से दिया गया है। काव्य-कल्पद्रुम ग्रंथ अनुपम है। इसकी जितनी प्रशंसा की जाय, थोड़ी है। हम सेठजी को इसके प्रकाशन के लिये बधाई देते हैं। कृ

× × ×

मेरे फूल—रचयिता, श्रीयुत वंशीधर विद्यालंकार ; प्रकाशक हिंदी-ग्रंथ-रत्नाकर कार्यालय, बंबई ; मूल्य ॥) ; पृष्ठ संख्या ७२ ; सुंदर जिल्द, कागज़ और छपाई उत्तम।

कविवर वंशीधरजी खड़ी बोली और आधुनिक शैली के होनहार कवि हैं। उनके पद्यों में रस, भाव, चोट सभी गुण हैं। भाव उन्नत आत्मा के हैं, रस एक सहृदय युवक का, और चोट एक कोमल हृदय की।

समानता का स्वप्न देखते हुए कवि कहता है—

> जैसे तारे एक गगन में जमे झिलमिल करते हैं,
> फूल असंख्य जिस तरह मिलकर, एक भूमि पर खिलते हैं।
> इस निस्सीम विश्व में वैसे ही मनुष्यता फूलेगी,
> तरस रहीं है आँखें किस दिन, मधुर दृश्य ये देखेंगी।

'आगे आगे' शीर्षक कविता में बड़े ही सुंदर भावों का प्रवाह है। देखिए —

> अपना कौन, कौन बेगाना ?
> कहाँ ठहरना, कहाँ ठिकाना ?
> परिचयहीन विश्व में तुझको आगे-आगे चलना होगा।

मगर इन गुणों के होते हुए भी इन कविताओं में एक बड़ा अभाव है। इनमें संगीत नहीं है। संगीत कविता की जान है। संगीत-हीन कविता सौरभहीन पुष्प है।

पुस्तक के आदि में सुकवि हरींद्रनाथ चट्टोपाध्याय ने एक सारगर्भित भूमिका अँगरेज़ी में लिखी है।

× × ×

मानस-हंस अथवा रामायण रहस्य—लेखक, संपादक और प्रकाशक, श्रीमत यादवशंकर जामदार, जहागीरदार, नागपुर (महाल), हिंदी अनुवादक, पायत जा० केशव लक्ष्मण साखरे, एल० एम० एस०, एल० एम० एस०, नागपुर (इतवारा) ; पृष्ठ संख्या ३०० के लगभग ; कागज़ और छपाई साधारण ; मूल्य २) ; प्रकाशक से प्राप्त।

मानस-हंस के रचयिता श्रीमत यादवशंकरजी तुलसी-दास के परम भक्त हैं। उन्होंने रामचरित-मानस का मराठी भाषांतर भी किया है। रामचरित मानस की शोभा हंस के बिना नहीं है, सो आपने मराठी में एक मानस-हंस भी लिख डाला है। मराठी मानस-हंस का ही अनुवाद यह समालोच्य ग्रंथ है। पर मूल से इस

अनुवाद में कुछ कमीबेशी कर दी गई है। इस पुस्तक के अंत में 'तुलसी-सुभाषित' शीर्षक से गोस्वामीजी की कुछ चुनी हुई उक्तियाँ भी दे दी गई हैं। इस ग्रंथ में कवि-परिचय, काव्य-समालोचना, लोक-शिक्षा, पात्र-परिचय, उपसंहार और पश्चात् शीर्षकों द्वारा सारे रामचरित-मानस की कई प्रकार से समालोचना की गई है। समालोचना में मतभेद का तो सदा ही अवसर रहता है, पर यह कहने में किसी को संकोच नहीं हो सकता है कि 'मानस-हंस' ग्रंथ बड़ा सुंदर बन पड़ा है, और इस से 'रामचरित-मानस' के यश का और भी रमणीय विस्तार होगा। एक महाराष्ट्र सज्जन ने हिंदी के एक कवि का इस प्रकार से आदर किया है, इसलिये हम उनके विशेष कृतज्ञ हैं। पुस्तक की भाषा अवश्य ही संशोधन के योग्य है। उसमें प्रायः सर्वत्र मराठीपन भरा हुआ है। फिर भी 'रामचरित-मानस' के पाठकों से हमारा अनुरोध है कि वे इस 'मानस-हंस' की परीक्षा एक बार अवश्य करें। कृ०

× × ×

३ अर्थ-शास्त्र

विदेशी विनिमय — लेखक, श्रीमान् पं० दयाशंकरजी दुबे। प्रकाशक, गंगा-पुस्तकमाला कार्यालय, [illegible]-३०, अमीनाबाद पार्क, लखनऊ।

विदेशी विनिमय-संबंधी दुबेजी के कतिपय लेख, जो मासिक पत्रों में प्रकाशित हुए थे, यह उन्हींका संग्रह है। लेखक ने इन लेखों को प्रयाग विश्वविद्यालय में आर्थिक लेक्चर देते समय तैयार किया था। हिन्दी में कोसी, मुद्रा और एक्सचेंज पर कई पुस्तकें निकल चुकी हैं, किन्तु दुबेजी की पुस्तक नवीनता लिए है। इसे विदेशी विनिमय की प्राइमर भी कह सकते हैं। लेखक ने इस अध्यायों में विदेशी विनिमय-संबंधी सभी आवश्यक बातें संक्षेप में प्रकट की हैं। इतना होते हुए भी विदेशी विनिमय का गणित और उसके प्रभाव से अन्यान्य बाज़ारों की अवस्था का वर्णन लेखक से छूट गया है। सराफ़े का विषय भी विशेष रूप में लिखा जा सकता था। ये विषय व्यापारियों के अलावा विद्यार्थियों के लिए भी अत्यंत आवश्यक हैं, जिनके लिए यह पुस्तक ख़ास तौर पर लिखी गयी है। हमें आशा है कि लेखक महोदय अगले संस्करण में इन बातों की अवश्य पूर्ति कर देंगे। लेखक ने कई उपयोगी परिशिष्ट भी दिये हैं। पाँचवें परिशिष्ट में पारिभाषिक शब्दों की सूची दी गई है। इस सूची के शब्दों पर हम यहाँ विचार नहीं करते। पर इस प्रकार की सूची प्रत्येक आर्थिक ग्रंथ में नहीं दी जा सकती। इसकी पूर्ति के लिए एक प्रामाणिक कोष ही तैयार किया जा सकता है। दुबेजी अर्थ-शास्त्र के विद्वान् हैं और उसी विषय के अध्यापक हैं। उनके पास आर्थिक पुस्तकों के संग्रह का भी अभाव नहीं हो सकता। किन्तु, हमने देखा है कि, अनेक लेखक परिशिष्ट में लम्बी सूची देकर व्यर्थ ही कागज़ काले करते हैं। कारण, वे कभी भी उतनी पुस्तकों का अध्ययन नहीं करते। जिन पुस्तकों से वस्तुतः सहायता ली हो, उन्हींका उल्लेख करना उपयोगी है। हिन्दी-संसार में इस पुस्तक का अच्छा आदर होना चाहिए। इस समय यह आवश्यकता है कि आर्थिक विषय के सभी ग्रंथों की अच्छी खपत हो। प्रत्येक व्यापारी और विद्यार्थी के पास इसकी एक प्रति अवश्य होनी चाहिए। सम्मेलन की विशारद परीक्षा और व्यापारी विद्यालयों की पाठ्य पुस्तकों में भी इसे स्थान मिलना चाहिए। अर्थ-शास्त्र के विद्यार्थी जितनी जल्दी सब बातें इसके पढ़ने से मालूम कर सकते हैं, उतनी उन्हें अंग्रेज़ी के कई ग्रंथ अवलोकन करने पर बड़ी कठिनाई से ज्ञात होंगी।

डॉ० एम० पथिक, बी० ए०, बी० काम०

× × ×

४ यात्रा

भू-प्रदक्षिणा — मूल लेखक, बाबू चन्द्रशेखर सेन। अनुवादक, पं० रुद्रनारायण पाण्डेय। प्रकाशक, इंडियन प्रेस लिमिटेड, प्रयाग। मूल्य नहीं लिखा। पृष्ठ संख्या लगभग ८००, सजिल्द।

महाशय चन्द्रशेखरसेन ने १८८६ में यूरोप और अमेरिका की यात्रा की थी। उसीका इस पुस्तक में वृत्तांत है। अन्य हिंदोस्तानी पर्यटकों की भाँति आपने भी इंगलैंड का ही विशद वर्णन दिया है। फ्रांस, जर्मनी, रूस, स्पेन, इटली और अमेरिका आदि देशों का उड़ता हुआ वृत्तांत दे दिया गया है। इस यात्रा को लगभग ४० वर्ष हो गए। तब से संसार में बहुत कुछ परिवर्तन हो गया है। वास्को डी गामा, कुक, कोलम्बस आदि नाविकों के यात्रा-वृत्तांत में स्थायित्व है। उनमें यात्रा का वृत्तांत मुख्य वस्तु नहीं, यात्रियों का साहस, धैर्य और अध्यवसाय ही मुख्य है। उस समय मार्ग की कठिनाइयों

का उन्होंने जिस दिलेरी से सामना किया, वह आज भी कितने हिम्मत हारनेवालों के लिये ज्ञानदीपक का काम देती है। इस वृत्तांत में वह बात कहाँ। फिर भी यात्रा-वृत्तांत में मनोरंजन की सामग्री विशेष मात्रा में रहती है, और उससे यह पुस्तक भी खाली नहीं। बहुतसे सादे चित्र भी दिए गये हैं।

× × ×

५ विज्ञान

भाषा-विज्ञान—लेखक, श्रीनलिनीमोहन सन्याल, एम० ए०, 'भाषातत्त्व-रत्न', प्रकाशक, इंडियन प्रेस, प्रयाग। छपाई और कागज उत्कृष्ट, मूल्य कागज की बढ़िया जिल्द का २॥); पृष्ठ संख्या ३०० के लगभग प्रकाशक से प्राप्य।

इस पुस्तक की भूमिका डाक्टर श्रीयुत आई० जे० एस० तारापुरवाला, बी० ए० (कैन्टाब), पीएच० डी० (वर्ज), बार-ऐट-ला ने लिखी है। सन्याल महोदय भाषा-विज्ञान के विशेषज्ञ हैं। कलकत्ता विश्वविद्यालय में आप हिंदी भाषा और उसके साहित्य के अध्यापक हैं। समालोच्य ग्रंथ १४ परिच्छेदों में विभक्त है। प्रारंभ में ३४ पृष्ठों द्वारा पुस्तक में प्रतिपादित विषय का प्रारंभिक परिचय है, फिर क्रम से भाषा-विज्ञान, उसका इतिहास, वाक्-शक्ति का विवर्तन, भाषा की उत्पत्ति और विकास तथा भिन्न-भिन्न प्रकार से उनका श्रेणी-विभाग, ध्वनि-तत्त्व, ध्वनिविकार, उपभाषाओं की उत्पत्ति, लेखनोत्पत्ति, शब्दार्थ-तत्त्व और भाषा में सादृश्य शीर्षक विषय का परिचय और विवेचन है। पुस्तक के अन्त में ३६ पृष्ठों में शब्द-सूची दी गई है, और सबसे अंत में भाषा-विज्ञान विषयक कुछ पुस्तकों की सूची है। यूरोपीय लेखकों की नाम-सूची तथा अँगरेज़ी शब्दों के हिंदी प्रतिशब्दों की सूची भी दी हुई है। इन सूचियों से पुस्तक की उपयोगिता बहुत कुछ बढ़ गई है। भाषा-विज्ञान एक बड़ा ही गंभीर विषय है। भारत में अभी इस शास्त्र के विशेषज्ञ इने गिने ही हैं। हिंदी में भाषा-विज्ञान विषयक पुस्तकों की बहुत ही कमी है। इने-गिने दो चार ग्रंथ निकले हैं। अभी इस विषय के बहुत-से ग्रंथों की ज़रूरत है। हम भाषा-विज्ञान के पंडित नहीं हैं, इसलिये इस पुस्तक के गुण-दोषों की पूर्ण विवेचना करने में असमर्थ हैं, पर साधारण रूप से पुस्तक पढ़ने से हमारी धारणा यही हुई है कि हिंदी साहित्य के लिये यह पुस्तक परमोपयोगी है तथा इस कोटि की पुस्तकों के प्रकाशन से हिंदी-साहित्य का यथार्थ गौरव है। कृ

× × ×

६. इतिहास

ब्रजेन्द्र-वंश भास्कर—लेखक पं० गोकुलचन्द्र दीक्षित प्रकाशक, श्री हिंदू सरस्वती सभा, आगरा। पृष्ठ-संख्या १६१। कागज और छपाई साधारण से कुछ अच्छी। सचित्र चित्र संख्या ८। मूल्य १); प्रकाशक से प्राप्य।

इस पुस्तक में भरतपुर राज्य का इतिहास लिखा गया है। पुस्तक स्वर्गीय पं० नन्दकुमारदेव शर्मा को समर्पित की गई है। शर्माजी का चित्र और चरित्र भी पुस्तक में दिया गया है। भरतपुर राज्य का इतिहास २३ अध्यायों में वर्णित है। इतिहास भाग के लिखने में काफ़ी परिश्रम किया गया है। खोज का काम अच्छा हुआ है। यह इतिहास एक हिंदू के दृष्टिकोण से लिखा गया है। और कदाचित् कहीं कहीं पर जाट नरेशों की प्रशंसा में अतिरंजना से काम लिया गया है। फिर भी इससे ग्रंथ की उपयोगिता नहीं घटी है। ब्रजेंद्र-वंश-भास्कर ग्रंथ लिखने के उपलक्ष्य में हम पं० गोकुलचन्द्र दीक्षित को बधाई देते हैं, और आशा करते हैं कि उनके इस ग्रंथ का हिंदी-संसार में आदर और प्रचार होगा। कृ

× × ×

७ दर्शन

पाश्चात्य दर्शनों का इतिहास—लेखक, बाबू गुलाबराय, एम० ए०, एल्-एल्० बी०; प्रकाशक नागरी-प्रचारिणी सभा, काशी; पृष्ठ-संख्या ४०० से ऊपर; छपाई और कागज उत्कृष्ट, कागज की जिल्द सर्मान्वित; मूल्य २॥), प्रकाशक से प्राप्य।

यह ग्रंथ प्राचीन, माध्यमिक और आधुनिक इन तीन खंडों में विभक्त है। प्राचीन दर्शन में तीन अध्यायों में सुक़रात एवं उसके पूर्वकालीन तथा यूनानी-रूमी दर्शन का हाल है। थोड़े में विषय बहुत अच्छी तरह से समझाया गया है। माध्यमिक दर्शन दो अध्यायों में दिया गया है। इसमें आगस्टिन से लेकर हाब्स तक के विचारों का वर्णन है। आधुनिक दर्शन के दो भाग किये गये हैं। प्रथम-भाग में दश अध्याय हैं, जिनमें अवसरवाद, अनुभववाद, प्रत्ययवाद, प्रत्यक्षज्ञानवाद और विकासवाद आदि का विवेचन है। दूसरे भाग में चार

अध्याय हैं, और उनमें नवीन प्रत्यक्षवाद, क्रिया-प्रधान दर्शन, नवीन वस्तुवाद और यूरोपीय दर्शन की वर्तमान स्थिति और उसके भविष्य पर प्रकाश डाला गया है। इस प्रकार से यह स्पष्ट है कि इस ग्रन्थ मे अधिक विचार आधुनिक दर्शन पर ही किया गया है, और यह सर्वथा उचित भी है। बीस वर्ष से अधिक हुए जब साहित्याचार्य पांडेय रामावतार शर्मा, एम० ए० ने नागरी-प्रचारिणी सभा काशी द्वारा 'यूरोपीय दर्शन' पुस्तक प्रकाशित कराई थी। उक्त पुस्तक का अधिकांश भाग इस पुस्तक में आगया है। पाश्चात्य दर्शनों का इतिहास बड़े महत्त्व की पुस्तक है। हमारे वे विद्वान्, जो संस्कृत साहित्य के प्रकाण्ड पंडित हैं, और जिनको अपने यहाँ के षड्-दर्शन हस्तामलक हो रहे हैं, वे, यदि, इस पाश्चात्य-दर्शन के इतिहास को भी पढ़ जाँय तो उनका विचार-क्षेत्र अधिक व्यापक और उपादेय हो जाय। हम इस कोटि की पुस्तकों का प्रकाशन हिंदी के लिये बहुत अच्छा समझते हैं। उच्च कोटि के गंभीर साहित्य के बिना हिंदी-साहित्य गौरवान्वित नहीं हो सकता है। क्र

× × ×

= फ़टकर

दुनियाय अफ़साना—लेखक, मुहम्मद अब्दुलक़ादिर सरवरी, एम०ए०; प्रकाशक, उसमानिया विश्व-विद्यालय, हैदराबाद दक्खिन; पृष्ठ संख्या ० ०८। मूल्य १)।

उर्दू मे इधर अच्छी-अच्छी पुस्तकें प्रकाशित हो रही हैं। चारों ओर साहित्यिक स्फूर्ति के चिन्ह नज़र आ रहे हैं। हिन्दी मे अभी तक मिश्रबंधु विनोद के सिवा एक भी हिन्दी भाषा का इतिहास नहीं है। उर्दू में इधर तीन उच्च कोटि की पुस्तकें प्रकाशित हो गई—(१) गुलेराना, (२) सैरुलमुसन्निफ़ीन (३) उर्दू साहित्य का इतिहास। हिन्दी मे नाटकों पर अभी तक कोई ऐसी पुस्तक नहीं लिखी गई है, जिसमे नाट्य-कला पर संसार-व्यापक दृष्टि डाली गई हो। उर्दू मे 'नाटक सागर' निकल आया। 'उपन्यास-रचना' पर भी हिन्दी में अब तक कोई स्वतंत्र पुस्तक नहीं है। उर्दू ने प्रस्तुत पुस्तक निकालकर यह कमी पूरी कर ली। अंग्रेज़ी मे इस विषय की कई पुस्तकें हैं। इस पुस्तक की रचना उन्हीं के आधार पर हुई है, किन्तु उदाहरण सब उर्दू साहित्य से लिए गए हैं, जिससे विदेशीयता का दोष मिट गया। पुस्तक निष्पक्ष भाव से लिखी गई है और वर्तमान उपन्यासकारों की आलोचना बहुत विचारपूर्ण है। गल्पों पर भी दो अध्याय हैं। पुस्तक बड़े काम की है।

× × ×

गीता डायरी—प्रकाशक, गीता प्रेस, गोरखपुर; खद्दर की जिल्द; मूल्य ।-)।

गीता प्रेस ने यह डायरी निकाल कर गीता-प्रेमियों पर बड़ा एहसान किया है। इसमें प्रत्येक पृष्ठ के ऊपर गीता के श्लोक दिए गए हैं। आदमी कितनाही कम-फ़ुरसत हो, पर, रोज़ाना डायरी लिखते समय, वह साल भर में कम-से-कम एक बार तो संपूर्ण गीता का पाठ कर-ही सकता है। आदि के पृष्ठों में गोपालन की विधि, प्राकृतिक चिकित्सा और कृषि-सम्बन्धी उपयोगी बातें बताई गई हैं। एक दिन का वेतन निकालने का नक़्शा भी दिया गया है। कागज़ चिकना, जिल्द मज़बूत।

× × ×

The Vrihad Dharma Purana—अनुवादक, श्रीश्यामाचरण बनर्जी; प्रकाशक, नवलकिशोर बुकडिपो लखनऊ; मूल्य १।)

पौराणिक कथाओं में यद्यपि धार्मिक-तत्त्व छिपे हुए हैं, लेकिन उनकी शैली कुछ इस प्रकार की है कि नई रोशनी वालों को बहुधा उनके पढ़ने में आनंद नहीं आता। एक ही बात का बार-बार दोहराया जाना, लंबे-लंबे उपदेशों का समावेश और अप्रासंगिक विषयों का बीच मे आजाना, ये सब इस अरुचि के कारण हैं। अंग्रेज़ विद्वानों ने पुराणों के अनुवाद अंग्रेज़ी में किए हैं, पर शिक्षित जनता मे उनका बहुत कम प्रचार है। बनर्जी महाशय ने वृहद धर्म पुराण का अनुवाद करते हुए इन बातों का ध्यान रखा है। उन्होंने केवल अनुवाद ही नहीं किन्तु इसका संपादन भी किया है। इस रूप मे पुस्तक और भी मनोरंजक हो गई है। इसके पढ़ने से अच्छे उपन्यास का आनंद आता है। हमे आशा है, जो लोग पुराणों के आकार से घबरा उठते हैं, उन्हें यह पुस्तक देखकर आश्वासन होगा। थोड़े से पृष्ठों में उन्हें पुराण की बहुत-सी कथायें मालूम हो जायेंगी। मैट्रिक्युलेशन क्लासों के लड़कों के लिये यह किताब बड़े काम की है। अंग्रेज़ी भाषा के साथ वे अपने धर्म का ज्ञान भी प्राप्त कर सकेंगे। अनुवाद सरल और मुहावरेदार है।

दास-पुष्पांजलि—लेखक, श्रीयुत गोपालदासजी 'दास' और प्रकाशक, हीरालाल पन्नालाल जैन, बड़ा दरीबा, दिल्ली। पृष्ठ-संख्या ६४; मूल्य चार आने।

जैन-धर्म-संबंधी पद्य भिन्न-भिन्न विषयों पर हैं। संगठन और एकता आदि की अपील है। साधारण जैन बंधुओं के योग्य हैं।

× × ×

पाँच बाल ब्रह्मचारी तीर्थंकरों की पूजा—लेखक श्रीभोलानाथजी मुख्तार 'नायकवि'। प्रकाशक पूर्वोक्त, पृष्ठ-संख्या १४; मूल्य ⅃।

हिंदी के बिलकुल मामूली पद्यों में जैन तीर्थंकरों की पूजा का विधान है।

× × ×

श्राद्ध-गुण-विवरण—लेखक, बाबू श्राद्ध्यानालजी वर्म्मा; प्रकाशक, श्रीआत्मानंद जैनट्रैक्ट सोसायटी, अम्बाला के मंत्री। पृष्ठ-संख्या ४७; मूल्य ≶)

नाम से मालूम होता है कि यह कोई 'तृप्य-ताम्' की सोसायटी होगी। किंतु वह बात नहीं है। इसमें सौम्यता और परोपकारिता आदि सद्गुणों की श्रेष्ठता और पवित्रता उपदेश-वाक्यों और कहानियों द्वारा समझायी गयी है। सुंदर है।

× × ×

५. बालोपयोगी

मोहनभोग—लेखक श्रीरामलोचनजी शर्म्मा 'कंटक' और प्रकाशक, हिंदी मंदिर, शीतलपुर पो० एकमा, जि० सारन। पृष्ठ-संख्या ४४; मूल्य ≶)

"पवन और सूरज" आदि बारह शीर्षकों में पद्यों द्वारा बालकों को मनोरंजक चुटकुले दिये गये हैं। मोहन-भोग में लड़के आनन्द पायेंगे। बनाने वाले को ज़रा सावधानी चाहिए थी, क्योंकि—

'धरती लगी तावा सी जलने,
तपने लगी फूल की सेज।'

इस पद्य में 'तवा' का 'तावा' कैसे बन गया? फिर, धरती को धमाधमकने पर फूल की सेज का तपना कौन-सी विशेषता रखता है? सेज भी फूलों की नहीं, फूल की। तो भी पुस्तक बालकों के लिये बड़ी अच्छी है।

× × ×

रसाल—लेखक, श्रीरामोदितसिंह सिंह, एल० टी०, वर्तनिकार; प्रकाशक उपर्युक्त; पृष्ठ-संख्या ४२; मूल्य ≶)

इसमें भी बारह शीर्षकों में मनोहर पद्य हैं। सब बात ऊपर जैसी है। मोहनभोग से रसाल हमें अच्छा लगा। ये दोनों पुस्तकें 'बालविलासोद्यान' के द्वितीय और तृतीय पुष्प हैं।

१ नारी-शक्ति चर्चा

म्प्रति दो पाश्चात्य महिलाओं ने दौड़-प्रतियोगिता में विशेष पारदर्शिता दिखलाई है। मिस ई० ट्रिकी इंग्लैंड में हज़ार मीटर लंबी दौड़ में प्रथम हुई हैं। ये अँगरेज़ महिला हैं। एक जर्मन महिला ने भी एक दौड़ प्रतियोगिता में प्रथम स्थान प्राप्त किया है। ये ११०४ सेकंड में १०० मीटर तक दौड़ी थीं। इनका नाम मिस जाम्कार कासेल है। वाशिंगटन विश्वविद्यालय के राइफ़ल दल की एक और दूसरी महिला की ख़बर पाई गई है। राइफ़ल चलाने में इन्होंने अद्भुत निपुणता का परिचय दिया है। इनका नाम मिस एलिज़ाबेथ फ़्राइज़ है। पाश्चात्य देशों में ही क्यों, अब तो हमारे भारतवर्ष में भी महिलाएँ शारीरिक उन्नति में विशेष भाग लेने लगी हैं।

इस समय महिला-संसार में एक प्रकार का युगांतर हो रहा है। अभी तक स्त्रियाँ अबला, कोमलांगी और पुरुष के विलास की सामग्री मात्र थीं। बाहर की हवा और धूप लगने से वे कुम्हला जाती थीं और हल्की चोट से भी वे मूर्छित हो पड़ती थीं। घर के एक कोने में उनका साम्राज्य था तथा सन्तान-पालन और पुरुष की दासता में पड़े रहना ही उनके कर्तव्य की इतिश्री। यही धारणा अभी तक पुरुषों की थी। किंतु अब वे दिन नहीं रहे। परिवर्तन के प्रबल प्रवाह में अनेक दिनों का अंध-विश्वास जाता रहा। इतने दिनों के बाद आत्मविस्मृता नारी स्वतंत्र संसार की स्वतंत्र वायु का उपभोग करने के लिये उन्मत्त की नाईं व्याकुल हो उठी है। शारीरिक शक्ति में वे पुरुष की प्रतियोगिता करने के लिये अग्रसर होने लगी हैं।

मिस्र में बहु-विवाह

तेरहसौ वर्ष पहले अरब देश में स्त्रियों की संख्या बेहद बढ़ गई थी। अविवाहितावस्था में नैतिक-पतन की आशंका से प्रेरित हो हज़रत मुहम्मद साहब ने बहु विवाह की अनुमति दी थी। किंतु इससे ऐसा समझना भूल होगी कि इस्लाम में बहु विवाह की बात लिखी है। इस्लाम बहु-विवाह का समर्थन नहीं करता। मुस्लिम सभ्यता के स्वर्ण-युग में मुसलमान समाज बहु-विवाह को अत्यंत हानिकारक समझता था। भाग्य-चक्र के फेरे में जिस दिन से मुसलमान बहु-विवाह को धर्म का एक अंग समझने लगे, उसी दिन से उनका पतन होना प्रारंभ हुआ। कई शताब्दी पहले मुस्लिम-संसार में बहु-विवाह एक फ़ैशन माना जाने लगा था। फल यह

हुआ कि बादशाह के हरम से लेकर फ़क़ीर की कुटी तक सौतिया-डाह का विषमय प्रभाव विस्तृत हो उठा। संतोष की बात है कि वर्तमान समय में टर्की आदि देशों में बहु-विवाह की प्रथा अनेकांशों में उठ-सी गई है, और उठती जा रही है। अभी हाल ही की बात है कि चाइना कोरियर (China Courier) के कैरो-स्थित सम्वाददाता ने सूचना दी है कि मिस्र-सरकार बहु-विवाह बंद करने की चेष्टा जी-जान से कर रही है। इस प्रथा को मिटा देने के लिये जो कमिटी नियुक्त हुई है, उसने यह नियम प्रचारित किया है कि अब से सरकार की बिना आज्ञा लिए जो दूसरा विवाह किया जायगा, वह ग़ैर-क़ानूनी समझा जायगा। प्रथम पत्नी की अनुमति लिये बिना कोई भी दूसरा विवाह नहीं कर सकेगा।

मिस्र सरकार को इतने दिनों के बाद यह युक्ति सूझी, यह जानकर हम वास्तव में प्रसन्न हैं। यदि सरकार इस प्रकार समाज-रूपी शरीर के आहत स्थान को अस्त्रोपचार द्वारा आराम किया करे तो देश शीघ्र ही उन्नति के शिखर पर आरूढ़ हो जाय; इसमें किंचिन्मात्र भी संदेह नहीं।

अर्थोपार्जन में महिलाओं की प्रगति

यूरोप तथा अमेरिका आदि देशों में स्त्रियाँ नौकरी और मज़दूरी करके प्रचुर द्रव्योपार्जन करती हैं। इससे परिवार को आर्थिक सहायता तो मिलती ही है, साथ ही स्त्री-समाज में आत्म-विश्वास तथा आत्म-निर्भरता की वृद्धि अनेक गुनी बढ़ जाती है। किंतु हमारे देश की अवस्था बिलकुल विपरीत है। पुरुष अर्थोपार्जन करता है और स्त्री बैठी-बैठी खाती है, यही भारतवर्ष की प्रचलित प्रथा है। जो लोग बड़े हैं, उनकी चर्चा नहीं करता। जो गरीब हैं, जिनके ऊपर लक्ष्मीजी की कृपा नहीं है, उन्हीं की बात लिखता हूँ। हमारे देश में कितने ही पुरुषों को जी-तोड़ परिश्रम करके अपने बड़े परिवार का भरण-पोषण करना पड़ता है। ऐसी अवस्था में यदि स्त्रियाँ थोड़ा द्रव्य भी उपार्जन कर सकें, तो अनेकांशों में पुरुषों का बोझ हलका हो जायगा। इसके अतिरिक्त हमारे देश में भिन्न-भिन्न वयस की विधवाओं की संख्या भी कम नहीं है। अधिकतर ये विधवाएँ अपने संबंधियों के सिर पर भार बनकर अपना जीवन यापन करती हैं। इनकी अशांति तथा दुर्दशा की बात याद आते ही पत्थर का हृदय भी द्रवित हुए बिना नहीं रह सकता।

मुस्लिम नारी-समाज विशेषतः निराश्रय विधवाओं के दुख दूर करने के लिये पंजाब में वीमेंस होम्स सोसाइटी (Women's Homes Society) नामकी एक संस्था श्रद्धेया फ़ातिमा बेगम और रज़िया बेगम की अध्यक्षता में खुली है। सिलाई का काम, पाक-प्रणाली, मिष्टान्न बनाने तथा और अनेक प्रकार की द्रव्योपार्जनोपयोगी शिक्षा देने के लिये लाहौर में उन्होंने एक स्कूल खोल रक्खा है। यदि उनकी चेष्टा सफल हुई तो पंजाब की स्त्रियों में एक नवीन स्फूर्ति आ-जायगी।

अबला की वीरता

स्यालदा के पुलिस मैजिस्ट्रेट राय सुरेंद्रचंद्रसिंह बहादुर के इजलास में एक डकैती के मुकदमे का विचार हुआ है। मामला इस प्रकार है—शैलेंद्र आदि दस डाकुओं ने छुरा, लाठी, रिवाल्वर प्रभृति अस्त्र-शस्त्र लेकर १०, श्रीनाथ मुकर्जी लेन के बा० विभूतिभूषण नंदी के घर में प्रवेश किया। विभूति बाबू ने शैलेंद्र को छुरा के साथ पकड़ तो लिया, किंतु अब उससे पिंड छुड़ाना असाध्य-सा हो गया, क्योंकि उसके और साथी भी शैलेंद्र की मदद करने को आ पहुँचे। ठीक इसी समय उनकी स्त्री ने आकर दिलेरी के साथ डाकू के हाथ से छुरा छीन लिया और इस प्रकार अपने पति की रक्षा की। तदनंतर बहुत से पड़ोसी आ पहुँचे और डाकू पकड़ लिए गए।

इस सु-समाचार को सुनकर हम अत्यंत आनंदित हुए हैं। एक समय था, जब भारत की महिलाएँ नंगी तलवार लेकर युद्ध-क्षेत्र में जातीं और शत्रु-दल में खलबली मचा देती थीं। किंतु, आजकल नारी-समाज की बड़ी दुर्दशा हो रही है। युद्ध की तो बात ही क्या, बंदूक़ की आवाज़ सुनकर कितनी ही वीरांगनाओं को मूर्च्छा हो जाती है। नारी-इतिहास में उपर्युक्त महिला ने जिस वीरता का परिचय दिया है, उसके लिये हम उन्हें बधाई देते हैं। भारत में वह शुभ दिन शीघ्र ही आवे जब घर-घर वीरांगनायें पैदा होने लगें।

गोपीनाथ वर्मा

× × ×

२. हितोपदेश

सुनले जो तवज्जुह से बुजुर्गों का नसीहत ।
फिर काने-जवाहर नहीं उस कान मे बेहतर ।

हे ईश्वर ! तूने सारी सृष्टि उत्पन्न की है । मनुष्य को विशेष बुद्धि तथा विवेक प्रदान करके मानवीय जगत को सम्पूर्ण सृष्टि मे श्रेष्ठ ठहराया है । हमारे लिए तूने सख्यातीत वस्तुएँ सिरजी हैं । वृक्षों को हरित-परिधान, चंद्रमा को चित्ताकर्षक ज्योत्स्ना, अग्नि को दाहक और जल को प्रवाहक शक्तियां तूने दी है । वृक्षों के पत्ते हिल-हिल कर, कलिकाएं चटक-चटक कर और समुद्र की तरग-मालाएं परस्पर टकरा-टकरा कर तेरी ही प्रशंसा के गीत गा रही है, तेरी करुणा और कृपा का प्रतिपादन कर रही है । तूने मानवीय जगत को विवेकात्मक-बुद्धि दान देकर कर्तव्य की कसौटी पर कसा है । परोपकार की पर्याप्त शिक्षा देकर तूने मनुष्य के लिए स्वर्ग का द्वार सदा ही खोल रखा है । जगत के कण-कण मे तेरी विभूति का आविर्भाव भासमान है । चराचर मे तेरी ईश्वरता का दिग्दर्शन है । एक ओर माया का मोहिनी मोहजाल है, तो दूसरी ओर वैराग्य का अनुपम भडार है । तिल की ओट पहाड है । अस्तु, प्रत्येक मनुष्य का धर्म है कि वह अपने दैनिक कार्यो की जाच पडताल रखे, कड़ी निगाह रखे । चारो ओर जाल बिछे हुए है, दाने के लालच मे कहीं फँस न जाना ।

लालची ऐसा न बन वरना तू दाम मे फस जायगा
मुर्ग-दाना पर नजर फसता है दाना देखकर ।
'जेबा'

हमारे लिए अनेक शिक्षाओं का भडार विद्यमान है । पर उसे हम एक कान से सुनकर दूसरे कान से निकाल देते है । इसीलिए ससार-सागर मे गोते खाते है, क्लेश भोगते है, और सदा चिन्ताग्रस्त रहते है । जीवन के असली उद्देश्य का कोई उपभोग नहीं कर पाते । यहा पर पाठिकाओं के लिए कुछ चुने हुए उपदेश वाक्य दिए जाते है, यह समान रूप मे सदैव ही हितकारी सिद्ध होगे—

१ प्राणी मात्र को स्नेह की दृष्टि से देखो, क्योंकि परम पिता सब का एक ही है ।

२ विपत्ति पडने पर घबड़ाकर अश्रुपात न करो, किन्तु ईश्वर का स्मरण करो, वही सुध लेगा ।

३. विपत्ति-ग्रस्तों को हाथ लगाकर अपनी दयालुता का परिचय दो ।

४. बिना परिश्रम के सुख और सम्पत्ति नहीं मिल सकती ।

५ जिस धन से दीनो का प्रतिपालन न हुआ, वह धन किस काम का ।

६. लोकापवाद मृत्यु से भी अधिक है ।

७ अभिमान करना है तो ऐसे कर कि—'सबसे बड़ा अपराधी मै हू' ।

८ ससार का सबसे बड़ा रोग जन्म और मरण है, और उसकी सर्वोत्तम ओषधि हरिस्मरण है ।

९ सबसे उत्तम आभूषण शील और क्षमा है, तथा सर्वोत्तम व्रत अभिमान का परित्याग है ।

१० धन का अपव्यय न करो और व्यर्थ के विचारों में मस्तिष्क-शक्ति न खोओ ।

११ यहा दो दिन रहना है, आयु बड़ी तीव्र गति से दौड़ रही है, कोई अच्छा स्मारक छोड़ जा ।

१२ ऐ पुरुष ! इस अनित्य जीवन पर इतना न इतरा ।

१३ ऐ नश्वर जीवधारी, सदुपदेशो को ग्रहण कर और खोटी इच्छाओं को परित्याग ।

१४ विचारो का तू उत्तम प्रयोग नहीं करता, ऐसा न हो यही विचार तुझे महानीचकाश मे जा बिठाये ।

१५ सोना-चादी, रुपया-पैसा का नाम धन नहीं है, सच्चा और वास्तविक धन तो विद्या है ।

१६ जो मनुष्य समय पर यथार्थ न कह सके वह गूगा है, जो सदुपदेश न सुने वह बहरा है, और जो ससार की अलौकिक कारीगरी को देखकर भी ईश्वर को न माने वह अधा है ।

१७ साहसी और कर्मशील के लिए कुछ भी असभव नहीं ।

१८ तेरी आत्मा मे वह शक्ति है, कि तू एक कटक मे पुष्पोद्यान और तृण से रसायन बना सकता है ।

१९ ऐ सन्यासी, किसी के आगे हाथ न फैला नहीं तो तेरे संन्यास की द्युति जाती रहेगी ।

२० ऐ सन्तोष-हीन, अधिक हाथ न फैला, तेरे लिए इतना ही पर्याप्त है ।

२१. मूर्ख और दुष्टों का साथ करके नरक-पथ-गामी न बन ।

२२ संसार के सामने योग्य ठहर चाहे अयोग्य, पर देख ! उस ईश्वर के समक्ष अयोग्य न ठहरना ।

२३ संसार में दुर्लभ वस्तु सद्गुरु, सत्संगति और ब्रह्म-विचार है, तथा दुर्जय कामदेव है ।

२४ कभी-कभी रोगियों के निकट भी बैठ जाया कर ताकि आरोग्यता के मूल्य की अटकल होती रहे ।

२५ अहंकार, क्रोध और लोभ नरकाग्नि की भयानक ज्वाला है, देख ! कहीं जल न जाय ।

२६ धन, युवावस्था और आयु बिजली के समान नाशवान हैं, इन पर गर्व न कर ।

२७ चित्त मोती के सदृश है, इसको दुर्विचारों के मल से मलिन कर इसका मूल्य न खोओ ।

२८ परिश्रम कभी व्यर्थ नहीं जाता, ए चित्त ! अभी कृतकार्यता नहीं हुई, तो हताश न हो ।

२९ जिन पदार्थों को एक दिन परित्याग करना है, उनका एकत्रित करना मूर्खता नहीं तो और क्या है ?

३० सब इच्छाएँ पूर्ण हो जावें यदि तू चित्त से इच्छाएँ निकाल दे ।

३१. कुछ करते रहो, विद्वान् कुछ-न-कुछ किया ही करते हैं । वास्तव में आलसी मनुष्य पृथ्वी पर एक भार है ।

३२ साहस उसी का नाम है कि पग पीछे न पड़े । न्यून साहसी किसी कार्य में सफल नहीं होते ।

३३ अपराधी यदि सच्चे जी से क्षमा याचना करता है तो दे दो ।

३४ अपराध का सबसे बड़ा प्रायश्चित्त सच्चे हृदय से किया हुआ पश्चात्ताप है ।

३५ अभिमानी अलिकचन्द्र (अलेक्जेंडर) संसार से क्या ले गया—अपूर्ण इच्छाओं की चिंता ।

३६ ए विलास-प्रिय ! स्मरण रख, जितनी अधिक तृष्णा उतना ही अधिक दुःख ।

३७ यहाँ आकर सबसे बड़ा चिन्तन यह कर कि संसार मिथ्या और भ्रम है, केवल ईश्वर सत्य और अमर है ।

३८ सूर्य अस्त हो जायगा, चन्द्रमा विलीन हो जायगा । शेष रहेगा केवल ईश्वर का नाम । इसलिए भगवान को कभी न भूलो ।

३९ कार्य वही अच्छा जिसका अन्त अच्छा । अस्तु, करने के पहले सोच लो कि परिणाम क्या होगा ?

४० ए लालची ! दमभर ठहर जा, एक घड़ी तो सुख से काट ले ।

४१ अपने कार्यों के सिक्कों को सचाई के कार्यालय में ढालो, ऐश्वर्यवान हो जाओगे ।

४२ रत्नों का विनिमय प्रस्तर कणों से करके अपनी मूर्खता का परिचय न दो ।

४३ भोजन के समय को घड़ी में न पूछो, किन्तु आमाशय की क्लाक से ।

४४ संसार में सबसे बड़ा नाता स्वार्थ का है, यदि यह छूट जावे तो संसारी कष्ट न भोगने पड़ें ।

४५ मनुष्य के लिए ईर्षा तो अच्छी है, पर द्वेष उसके मंगल नष्ट होने की धधकती हुई आग है । इससे दूर रह ।

४६ अच्छे-बुरे कर्म ही मनुष्य के साथ जाते हैं, इसलिए जरा सोच समझ कर हाथ बढ़ा ।

४७ कौन शत्रु मित्र तुल्य प्रतीत होते हैं ? पुत्रादिक — क्योंकि इन्हीं के लिए मनुष्य सब कुछ करता है ।

४८ कठिनता आ पड़ने पर वीर पुरुषों के जीवन-चरित्र पढ़कर चित्त को शान्त कर ।

४९ संसार सबसे बड़ा बन्दीगृह है, पर मृत्यु मुक्ति वारंट है, फिर हम उससे इतने भयभीत क्यों होते हैं ?

५० शिराओं का कोढ़ा पर कोड़ा लग रहा है, परन्तु ए चित्त, तू उन्हीं का दास हो रहा !

[संगृहीत]

लीलावती देवी

× × ×

२. [illegible]

वर्तमान परिस्थिति पर नजर डालने से स्पष्टतया ज्ञात होता है कि, सब किसी के दिल और दिमाग में स्वतन्त्र होने की उत्कट उत्कंठा लगी है । समाज के सामने स्वतन्त्र अपनी स्वतन्त्र राय प्रकट करना मानो साधारण-सी बात हो गई है । अस्तु । ऐसी दशा में स्त्री-समाज का क्या कर्त्तव्य है ? इस विषय पर कुछ कहने का प्रयास अप्रासंगिक न होगा । यद्यपि सम्प्रति स्त्री-समाज भी उक्त विषय से सर्वथा अनभिज्ञ नहीं है, तथापि उनके काम की कुछ बातों की चर्चा करना यहाँ मेरी तुच्छ मति में समुचित जँचती है । एतावता, कहूँ तो स्पष्ट शब्दों ही में कह सकता हूँ कि, स्त्री-समाज का

प्रधान कर्त्तव्य पति-सेवा ही है। कहना न होगा कि इस सद्गुण से रहित नारियाँ समाज की दृष्टि से गिर जाती हैं; या यों कहिये कि वह समाज में सर्वथा हेय समझी जाती हैं। मेरा अभिप्राय यह कदापि नहीं कि स्त्री-समाज अन्धकार में ही रहकर पुरुष-वर्ग की काम-लिप्सा पूर्ति करने ही में व्यस्त रहे, प्रत्युत यह कि वह आलोक में आकर बड़ी तत्परता से स्वकर्त्तव्य का विवेचन शीघ्रातिशीघ्र करने का कष्ट स्वीकार करें मैं देखता हूँ कि स्त्री-समाज के बीच यह आंदोलन छिड़-सा गया है कि पुरुषों के तुल्य ही स्त्रियां भी सब कामों में प्रायः अपना समान अधिकार चाहें और यही प्रस्ताव भी वह सामने लाती हैं। यद्यपि स्त्री-समाज के लिये इस प्रस्ताव को मैं दूषण समझता हूँ, और इसे सदा हेय दृष्टि से देखता हूँ, तथापि कहना यह है कि अब वह समय न रहा जब कि पुरुष-वर्ग की ख़ासी आध्यात्मिक उन्नति थी, एवं कर्त्तव्याकर्त्तव्य के विचार-विवेचन में वे सर्वथा सुदक्ष थे। समय आया है उन कूपमंडूकों का, जो अपने ही स्वार्थ-साधन में लगे रहते हैं। उनको कुछ सूझता ही नहीं, अपनी काम-लिप्सा की पूर्त्ति में सदैव व्यस्त रहते हैं। अस्तु, ऐसी हालत में स्त्री-समाज का यह कर्त्तव्य होना चाहिये कि, वह अपने मार्ग का ठीक-ठीक पता लगाने में प्रयत्नशील बने। स्त्री-समाज के लिये यह कदापि वांछनीय नहीं है कि, वह अप्राकृतिक ढंग से अपनी उन्नति की योजना में संलग्न रहे, प्रत्युत जैसा उसका वास्तविक कर्त्तव्य है, उसपर अविलम्ब कार्य कर देश और समाज का उद्धार करे। पुरुषों ही के समान अधिकार-प्राप्ति की चाहना को मैं अप्राकृतिक एवं अस्वाभाविक कहता हूँ, जिसमें समय का अपव्यय और सफलता में पूरी आशंका है। अस्तु, स्त्रियों के लिये स्त्रियोपयोगी कार्य का साधन ही सर्वथा श्रेयस्कर है। कहना न होगा कि, आज प्रातःस्मरणीया महारानी सीता को कौन नहीं जानता? सावित्री का नाम क्या कभी कोई विस्मरण कर सकता है? दमयन्ती के पवित्र चरित्र से भला आज कौन नहीं अवगत है? यही क्यों, सहस्रों ऐसी सुनारियों के नाम से हमारा पूर्वकालीन इतिहास सुअलंकृत है। उन सतियों में भला कौन-सा अपूर्व सद्गुण का संमिश्रण था, जिससे उनका शुभ नाम आज दिन भी अमिट अक्षरों में लिखा मिलता है। मैं कहूँगा, उन साध्वी ललनाओं में पति-सेवा, लज्जा, विनय, सुमिष्ट भाषण एवं सत्यवादिता प्रभृति देव-दुर्लभ सद्गुण सर्वथा मौजूद थे। पुनः मैं ज़ोरों के साथ यह भी कहूँगा कि जबतक स्त्री-समाज में उक्त सद्गुणों का समावेश न होगा, एवं उसकी आधुनिक निन्द्य धारणा न बदलेगी, तबतक स्त्री-समाज का कल्याण होना कदापि सम्भव नहीं है। हाँ, आधुनिक 'जेंटिलमैनों' की तो बात ही निराली है। वे तो एक-मात्र यूरोपीय साँचे ही में ढालकर स्त्री-समाज का उद्धार करना चाहते हैं। कहना न होगा कि पर्दा-प्रणाली को उठाकर पुरुषों के समान ही अधिकार दिलाना उन 'जेंटिलमैनों' की एक विशेष राय हो रही है। क्या उनकी यह सम्मति सर्वथा निन्द्य वा उपहासास्पद नहीं है? मैं कहूँगा, स्त्री-समाज को उन्नत बनाने का यह उपाय बहुत ही ठीक है कि पहले उसको उसके योग्य ही काम करने की शिक्षा देवे; एवं लज्जा, विनय, पति-सेवा प्रभृति की स्पष्ट परिभाषा का ज्ञान उसे सिखाने का अथक आयास करे। हमारे देश की यही परिपाटी है, सनातन-शास्त्र की यही आज्ञा है। और, सच पूछिये तो, इसीको स्त्री-सुधार का प्राकृतिक ढंग भी कहते हैं। हम अप्राकृतिक ढंग से स्त्री-समाज का सुधार करने के इच्छुक हैं, जो सर्वथा दुस्साहस है। दुस्साहस करना समाज में मानों विष वपन करना है। भला, यह क्या न हो, जबकि हमारी बोल-चाल की भाषा भी वैदेशिक होगई है। इसी का यह कुफल है कि हमारी पुण्य-मति भी बदल सी गई है। इसलिए हम जो कुछ कहें एवं जिस किसी उपाय से नारी-समाज का उद्धार करना चाहें, सब थोड़ा ही है। पाठिकाओ! आप भ्रम में न पड़ें, नई जागृति में पड़कर ऐसा अनुचित कार्य न कर बैठें, जिससे कुल में कलंक की कालिमा लग जावे। आपका उद्धार और कल्याण तभी अवश्यम्भावी है, जब आप प्राकृतिक-ढंग से अपने मार्ग का अन्वेषण करने की पूरी चेष्टा करेंगी अन्यथा सुधार और कल्याण शब्दों की टेर लगाना ही हाथ आवेगा। जिस पर्दा-प्रणाली को नई रौशनी वाले आजकल दूषित बताते हैं, उसीको कतिपय यूरोपीय महिलाएँ अब बहुत ठीक और समुचित बता रही हैं।

अस्तु, केवल विदेशीय भाषा का जानकार होकर भला भारतीय कर्त्तव्याकर्त्तव्य का विवेचन करना दुस्साहस नहीं तो और क्या है ? पाठिकाओ ! अपने घर की बात सीखने में ही मन लगाओ एवं लज्जा, सहन-शीलता, पति-सेवा प्रभृति दैवी-सम्पत्ति-सम्पन्न बनकर अपना मस्तक ऊँचा करो। स्मरण रक्खो, अमित कष्टों की कोई परवाह न कर जिस देव-दुर्लभ सद्गुण प्राप्ति के लिये महारानी श्रीजनकनन्दिनी ने अविच्छिन्न रूप से चौदह वर्ष पर्य्यन्त वन वन का पात तोड़ा था, फलतः जिसने सतीत्व का उज्वल उदाहरण संसार के सामने रक्खा, उसी देव-दुर्लभ पवित्र सद्गुण को हम सहज ही में ठुकरा कर, मनमानी करने की अपनी सम्मति देकर, स्त्री-कुल को कलंकित करने का अनधिकार प्रयत्न करते हैं। कहना न होगा कि स्त्रियों के लिये पातिव्रत-धर्म्म का सर्वदा पालन सुधा-सदृश फल-प्रद है। इससे उनकी सारी उन्नति सहज ही सम्भव है। स्थल-संकोच के कारण अधिक न लिखकर उपसंहार में अपनी पाठिकाओं से मैं यह नम्र निवेदन करूँगा कि आप सुशिक्षिता न बनें, इसमें कोई बड़ी हानि नहीं, आप अपने चरित्र को निष्कलंक रखने की पूर्ण चेष्टा करें। अस्तु; स्त्रियों में यह सद्गुण अवश्य होने चाहिये—

अपने पति से सदा निष्कपट व्यवहार करना, पति से स्वप्न में भी कभी असत्य भाषण न करना, सदा स्वपति से मंद-मंद हास्य एवं प्रफुल्लित हृदय से मिलना और प्रेमालिङ्गन की चेष्टा रखना, इत्यादि उपचार पति को प्रसन्न रखने की अचूक युक्ति है। और यह सुंदर, सुलक्षण-सम्पन्न ललनाओं ही का काम है। स्त्री-समाज को यह कदापि भूलना न चाहिए कि, स्वधर्म्मपालन में हम से कोई गलती तो नहीं हो रही है। इसलिए नित्य का यह सुंदर अभ्यास होना चाहिये कि, आज दिन-रात में हमसे कौन निज धर्म्म का काम सम्पादन हुआ है एवं अपने सतीत्व-रक्षा के लिये बराबर नियम-पूर्वक ईश्वर से प्रार्थना करनी चाहिए। स्व-धर्म्मपालन में तो सदा गिरि-सदृश अचल और अटल रहने ही में सफलता मिल सकती है। वस्तुतः 'देवी' नाम सम्बोधन योग्य तो वही नारियाँ हो सकती हैं, जिनको धर्म्म में अटल अनुराग है। संक्षेप में ऊपर "स्त्री कर्त्तव्य" की चर्चा हुई है, उसका अनुसरण करना सुनारियों ही का काम है। स्त्री-समाज सुशिक्षित बनकर दिन दूनी रात चौगुनी अपनी समुन्नति करे, यही इन पंक्तियों के लेखक की विनीत प्रार्थना उस कृपालु जगत्पिता से है। अस्तु, अब प्रातःस्मरणीय महात्मा गोस्वामी तुलसीदासजी के शब्दों ही में कुछ कहकर विश्राम लेता हूँ, और आशा करता हूँ कि स्त्री-समाज का इस तुच्छ निबन्ध पर समुचित ध्यान आकृष्ट होगा। तथास्तु।

एकै धर्म्म एक व्रत नेमा,
काय बचन मन पति पद प्रेमा।
बिन श्रम नारि परम गति लहई,
पतिव्रत धर्म्म छाँड़ि छल गहई।

कामेश्वरनारायण शर्म्मा

१. शाम का एक दृश्य

अब शाम आ रही है, चिड़ियाँ लगीं उतरने ।
दिनभर थके हुए से, पत्ते लगे ठहरने ॥
कहने लगीं उँचाई, किरनें पहाड़ियों की ।
गाने लगी कतारें, गुंजान झाड़ियों की ॥
रमणीक बस्तियों को, साथी सुहृज्जनों को ।
सुंदर सरोवरों को, फूले फले बनों को ॥
कुंजों पहाड़ियों को, प्यारे नदी-तटों को ।
तजकर तथा भुलाकर, सुख और संकटों को ॥
बीसों प्रलोभनों में, राही निकल रहे हैं ।
घर की सुरत सँभाले, चुपचाप चल रहे हैं ॥
लौ है लगी वतन की, देती उन्हें न थकने ।
सुधि का नशा निराला, देता नहीं बहकने ॥
कोई पहुँच रहा है, कोई पहुँच चुका है ।
कोई भटक रहा है, कोई कहीं रुका है ॥
लाखों बटोहियों के, दिल को तरह-तरह से ।
यह शाम रँग रही है, चिंता खुशी विरह से ॥
रवि का पता नहीं है, उन्माद में विनय सा ।
दिन अस्त हो चला है, संदेह में प्रणय सा ॥

रामनरेश त्रिपाठी

× × ×

२. पढ़ो और हँसो

किसी गाँव में रामू नाम का एक लड़का रहता था। पढ़ने-लिखने में उसका जी ज़रा भी नहीं लगता था। घर से वह प्रति-दिन गुरुजी की पाठशाला को ज़रूर रवाना होता, किंतु उसका सारा दिन शहर की गलियों में खेलने ही में बीत जाता था। जब उसके पिता को इस बात का पता लगा, तब उन्होंने उसे बहुत डाँटा-डपटा, किंतु रामू की आदत नहीं छूटी। एक दिन उस पर बड़ी मार पड़ी, इसलिए वह अपनी माँ के संदूक से कुछ पैसे चुराकर घर से भाग निकला। रास्ते में जब उसे भूख लगी, उसने कुछ मिठाई खरीदी और एक तालाब के किनारे जाकर भोजन करने लगा। वहीं एक धोबी कपड़े धो रहा था और पास ही उसका छोटा लड़का खेल रहा था। रामू ने कुछ मिठाइयाँ धोबी के लड़के को भी दीं। लड़के ने मिठाई कभी नहीं खाई थी, मिठाइयाँ उसे बड़ी अच्छी लगीं। वह और माँगने लगा, किंतु इतने में रामू का भी भोजन शेष हो चुका था—वह देता तो कहाँ से? मिठाई न मिलने के कारण लड़का रोने लगा।

धोबी अपना कपड़ा धोना छोड़ लड़के को चुप कराने लगा, किंतु जितना ही वह उसे चुप कराने की चेष्टा करने लगा उतना ही वह अधिक रोने लगा। धोबी बड़े असमंजस में पड़ा। रामू के पूछने पर उसने कहा—"उस बागीचे में बहुत से फल पके हुए हैं, उनमें से मैं कुछ तोड़ लाया था। कुछ तो तुम्हारे लड़के को दिये और कुछ आप खाये। यदि तुम्हारा लड़का चुप होना नहीं चाहता, तो तुम उसके लिए कुछ फल तोड़कर ला दो, तब तक मैं तुम्हारे कपड़ों को देखता रहता हूँ।" धोबी को यह मालूम नहीं था कि रामू ने उसके लड़के को खाने के लिए क्या दिया था, इसलिए रामू की बातों में वह आ गया। उसकी भोली-भाली सूरत देखकर रामू पर उसे विश्वास भी हो गया। इसलिए उसने मन-ही-मन अपने कपड़ों को रामू की देख-रेख में छोड़कर बागीचे में लड़के के लिये फल तोड़ ला देने का निश्चय किया। इस मतलब से उसने रामू से पूछा—"बाबू, तुम्हारा नाम क्या है?" रामू ने बिना किसी प्रकार की हिचकिचाहट के उत्तर दिया—'कल-परसों।"

धोबी ने कहा—'अच्छा कल-परसों, तुम मेरे कपड़ों को देखते रहो, तब तक मैं अपने लड़के के लिये बागीचे में कुछ फल तोड़ लाता हूँ।" रामू राजी हो गया। धोबी अपने लड़के के साथ बागीचे की ओर चला। बागीचे में पहुँचकर वह लड़के को तरह-तरह के फल तोड़कर देने लगा, किंतु लड़का सबको केवल चखकर फेंक देता और रोने लगता। कहता—'हमने इससे भी बढ़िया मीठा फल खाया है, मैं वसा ही लूँगा।" किंतु क्या मिठाई कहीं बागीचे में फलती है? धोबी अपने लड़के को साथ लेकर दूसरे-तीसरे बागीचे में फल की खोज में गया। इधर रामू ने धोबी के आँख ओझल होते ही, उसके कपड़ों से चुनचुनकर अच्छे कपड़ों का एक छोटा-सा गट्ठर बाँधा, धोबी का लोटा, जो वहीं पड़ा था, उठाकर चलता बना।

धोबी अपने लड़के को ले बहुत हैरान हुआ, किंतु लड़के के इच्छानुकूल 'फल' नहीं मिला। अंत में रोते हुए लड़के को लेकर वह घाट को लौट आया। किंतु वहाँ पहुँचते ही रामू को न पाकर उसे शक हुआ। उसने अपना गट्ठर देखा तो उसमें अच्छे-अच्छे कपड़े गायब थे, लोटा भी नदारद था। उसने शोर मचाया, आस-पास के लोग आकर जमा हो गए। एक ने पूछा—किसने कपड़े चुराए? दूसरे ने पूछा—कब कपड़े चोरी हुए? तीसरे ने पूछा—उस समय तुम कहाँ थे?

धोबी ने कहा—"हाय! मेरे कपड़ों को कल-परसों चुरा ले गया।" लोगों ने उसकी बात न समझकर कहा—"अरे भले आदमी, तुम्हारे कपड़े जब कल-परसों चोरी हुए, तब आज क्यों गुहार मचाकर नाहक दूसरों को भी तंग कर रहे हो?" धोबी ने अब अपनी भूल समझी और पछताने लगा।

(२)

रामू धोबी के कपड़ों से जो उसके शरीर में आए उन्हें पहन जेंटिलमेन का रूप धर आगे बढ़ा। रास्ते में उसे एक घुड़सवार मिला। घुड़सवार को बड़े ज़ोरों से प्यास लगी हुई थी। उसने रामू के हाथ में पानी का लोटा देखा और उससे अपने घोड़े को पकड़ने तथा लोटा देने का आग्रह करने लगा। पहले रामू राज़ी नहीं होता था, किंतु बहुत आरज़ू-मिन्नत करने पर राज़ी हो गया। घोड़े की लगाम रामू के हाथ में देने के पहले घुड़सवार ने उसका नाम पूछा। रामू ने तुरत उत्तर दिया—'क़र्ज़ देना।"

घुड़सवार ने कहा—"भाई क़र्ज देना, हमारे घोड़े को थोड़ी देर के लिये पकड़ो, तब तक मैं पानी पी लेता हूँ।"

रामू—"हाँ, हाँ, मैं पकड़े रहता हूँ।"

ज्योंही घुड़सवार पानी पीने बैठा त्योंही रामू ने घोड़े पर चढ़कर उसकी पीठ पर कोड़ा जमाया। घोड़ा हवा से बातें करने लगा। घुड़सवार ने पहले समझा कि वह शायद घोड़े पर चढ़ने का शौक़ मिटा रहा है, किन्तु जब उसके लौटने का कोई चिन्ह न दिखाई देने लगा, तब तो उसे शक हुआ और उसने हो-हल्ला मचाया। बहुत से लोग जमा हो गए। पूछने पर उन्हें ज्ञात हुआ कि 'कर्ज देना' घोड़ा लेकर भाग गया है। अब लोग उस घुड़सवार को बेवकूफ बनाने लगे। उन्होंने कहा—"जब उसने कर्ज दिया था तब तो उसको कर्ज वसूल करने का हक़ भी था। कर्ज के बदले में घोड़ा ले भागा तो उसने कौन-सा खराब काम किया?" घुड़सवार भी धोबी की भाँति पछताता रह गया।

(३)

रामू घोड़ा दौड़ाता हुआ भागा जा रहा था शाम होते-होते एक शहर में पहुँचा। वहाँ एक सराय में रात बिताने के लिये चला गया। सराय की भटियारिन ने दरवाजे पर भलेमानस के भेष में खड़े हुए एक मनुष्य को देखकर समझा कि वह कोई धनी आदमी होगा, इसलिये बड़ी आवभगत में रामू को अंदर लिया गया घोड़े के बाँधने का भी प्रबंध कर दिया।

हाथ-पाँव धो लेने के बाद रामू ब्यालू के लिये सामान खरीदने निकट ही के एक दूकानदार के यहाँ गया। आटा, घी, मसाला, तरकारी तथा घोड़े के लिये चना आदि खरीदा और दूसरे दिन सराय में जाकर उससे दाम ले आने को कहा। दूकानदार ने रामू को अच्छी पोशाक में देखकर उस पर विश्वास कर लिया, किंतु उसके जाते समय उसने उसका नाम पूछा। रामू ने उत्तर दिया "मैं था।"

सराय में लौटकर रामू खाना बनाने बैठा। उसे रोटी आदि बनानी तो आती थी नहीं, किसी प्रकार कुछ कच्ची और जली रोटी बनाई। खाने के समय भटियारिन रामू का हुलिया लेने लगी। रामू इधर-उधर की बातें बनाने लगा। नाम पूछे जाने पर उसने कहा—"अबे, तू ही तो था।" खैर, खा-पीकर वह पत्तल को फेंकने का स्थान ढूढने लगा, किंतु आलस्य के कारण बाहर न जाकर वहीं एक कोने में पत्तल फेंक दी। अब वह यह सोचने लगा कि यदि सुबह को दूकानवाला दाम माँगने आवेगा तथा लोगों को यह ज्ञात हो जावेगा कि, उसने घर ही में जूठी पत्तल फेंकी है, तो उसकी बड़ी दुर्गति होगी। इसलिये उसी समय घोड़े पर चढ़कर उसने घर का रास्ता लिया। संयोग से जहाँ उसने पत्तल फेंकी थी, वहाँ रुई रक्खी थी।

भोर होने पर भटियारा, जो जाति का धुनिया था, रुई धुनने बैठा। रुई की यह दुर्गति देखकर भटियारे को बड़ा क्रोध आया। जिस मुंगरी से वह रुई धुन रहा था, उसे लेकर अपनी स्त्री पर पिल पड़ा। वह पूछने लगा—"बता, रात में किसको इस घर में ठहराया था, जिसने जूठन फेंककर रुई को गंदा कर दिया रुई भी खराब की और मेरा हरज भी किया। बता, जल्दी बता, नहीं तो अभी तेरा सिर फोड़ डालूँगा।" रामू ने अपना जो नाम बतलाया था उसे ही भटियारिन दुहराने लगी—"अबे, तू ही तो था।"

भटियारा जितनी ही बार नाम पूछता उतनी ही बार भटियारिन कहती—"अब, तू ही तो था।" भटियारे ने समझा कि स्त्री उससे मज़ाक कर रही है, इसलिये उसका क्रोध और बढ़ गया। उसने अंतिम बार कहा—"ठीक-ठीक बता, नहीं तो तेरे सिर की ख़ैर नहीं।" इतने में बाहर से दूकानदार ने पुकारा—"मैं था, मैं था।" धुनिए ने समझा कि दूकानदार ने ही रुई ख़राब की है, क्रोध का पारा चढ़ा था ही, वह अपनी स्त्री को छोड़ उसी पर टूट पड़ा और लगा मारने दनादन। बनिया कुछ बात न समझ चिल्लाने लगा। उसकी आवाज़ सुन बहुत से लोग जमा हो गए। धुनिए को पकड़ कर अलग किया। पीछे असली बात मालूम होने पर सभी अछताते-पछताते रह गए।

श्रीरमेशप्रसाद, बी० एस्सी०

× × ×

३. प्रार्थना

नाथ तुम हो दयानिधे

पतितपावन भक्तवत्सल, दीनबन्धु हरे हरे,
करुणासागर सब-गुण-आगर, पीत बसन बदन धरे।
शीश जटा अरु बाहु विशाल, विशाल हृदय उपवीतधरे,
पीठ मनोहर तूण कसे, जेहि तीरन दुष्टन प्रान हरे॥

सच्चिदानन्द सहाय

× × ×

४. धीरज का फल

(एक कहानी)

बाबू लक्ष्मीनारायण एक नामी ज़मींदार थे। वे बहुत धनी थे। उन्हें जानवरों का बहुत शौक़ था। उनकी पशुशाला में बहुत से पशु पाले गये थे। उनकी वे स्वयं निगरानी करते थे। उन्होंने कई तरह की चिड़ियाँ भी पाल रखी थीं। सब पशु उन्हें बहुत प्यार करते थे। उन्होंने पशुओं के नाम भी रखे थे। जब उन्हें वे नाम लेकर पुकारते तो वे दौड़कर उनके पास चले आते थे।

लक्ष्मीनारायण को शिकार से भी शौक़ था। वे बरसात के दिनों में घड़ियाल का शिकार करते थे, और जाड़े तथा गरमी में जंगली जानवरों का। एकबार जंगल में उन्हें संयोगवश एक बाघ का बच्चा मिल गया। वे उसे घर ले आये और अपनी पशुशाला में रखा। उसे नित्य खाने के लिए बकरी का मांस मिलने लगा। वे जहाँ रहते वहाँ उसे लिये रहते थे। वह बाघ का बच्चा उनसे बहुत हिलमिल गया था। धीरे धीरे वह सयाना हुआ, परन्तु तोभी उसे लक्ष्मीनारायण बाबू ने पींजरे में नहीं रखा, क्योंकि मनुष्यों से वह बहुत हिलमिल गया था। वह किसी की हानि नहीं करता था। परन्तु तो भी लोग उससे बहुत डरते थे। आख़िर वह बाघ ही तो था। वह लक्ष्मीनारायण बाबू के कहने में बहुत रहता था। उनके निकट बैठकर कभी पूँछ हिलाता, कभी उनका पैर चाटता और कभी चुपचाप उनके मुँह की ओर देखता रहता। बाबू लक्ष्मीनारायण को भी इस बात का बड़ा घमंड था कि एक बाघ उनकी आज्ञा मानता है, और वे उससे उसी प्रकार व्यवहार करते हैं जैसा लोग अपने पाले हुए कुत्ते के साथ किया करते हैं।

एक दिन लक्ष्मीनारायण बाबू कुरसी पर बैठे हुए अख़बार पढ़ रहे थे। उनका वह स्वामिभक्त बाघ आया और नित्य की भाँति कुरसी के पीछे लटकते हुए उनके हाथ को चाटने लगा। संयोगवश उस दिन वह बहुत देर तक चाटता ही रह गया।

उसकी खुरदरी जीभ से जमींदार साहब के हाथ का चमड़ा छिल गया। बाबू साहब अखबार पढ़ने में मशगूल थे इसलिए इस ओर उनका ध्यान नहीं गया था ; परन्तु जब हाथ दुखने लगा तो उन्होंने हाथ अपनी ओर खींचा। हाथ के खींचते ही बाघ बहुत ज़ोर से गुर्राया। ऐसा मालूम होता था कि वह आज लक्ष्मीनारायण बाबू को मारकर खा जायगा। आज उसने मनुष्य का खून चख लिया था। अब भला वह अपने स्वामी को कैसे पहचाने। जो बाघ इतने दिनों से स्वामिभक्त था, जमींदार बाबू के इशारों पर चलता था, आज वही उनका प्राण लेने पर उतारू हो गया। पहले तो बाबू साहब घबराये, परन्तु पीछे उन्होंने धीरज से काम लिया। उन्होंने झट अपने हाथ को जैसे का तैसा कुरसी के पीछे लटका दिया। बाघ उनका हाथ पूर्व की भाँति चाटने लगा। फिर उन्होंने अपने नौकर को बुलाया और इशारे से उसे पीछे से गोली मारने को कहा। नौकर ने ऐसा ही किया। बाघ मार डाला गया। इस प्रकार जमींदार साहब के प्राण बचे। यदि उन्होंने धीरज से काम न लिया होता तो आज वह बाघ उन्हें मारकर अपनी पशु प्रवृत्ति को अवश्य चरितार्थ कर देता।

श्रीजगन्नाथप्रसाद सिंह

---

१. मलाई का बर्फ और हैजा

मलाई के बर्फ का प्रचार भारत मे नित्यप्रति बढ़ता जाता है। उष्ण-प्रधान देश मे यह रुचिकर भी अधिक प्रतीत होता है। बर्फ जमाने की सस्ती तथा उपयोगी मशीनो के बन जाने से अब गांवो मे भी मलाई का बर्फ मिल जाता है। दूध से बनाये गये पदार्थों मे कोई भी इतना अधिक हानिकारक नहीं है जितना मलाई का बर्फ। बासी दूध के जो दुर्गुण होते हैं, वे सभी इसमें मिलते है। मलाई के बर्फ मे यदि बासी दूध का प्रयोग किया जाय, जैसा कि प्राय किया जाता है, तो उसमे बासीपन का पता जिह्वा तथा नासिका को सुगमतापूर्वक नहीं चलता। इस कारण बर्फ बनाने मे प्राय दूषित दूध ही काम मे लाकर जनता को ठगा जाता है। अनेक रोगो के कीटाणु दूध मे पहुंचकर बडी शीघ्रता से बढ़ते हैं, और इन कीटाणुओ से दूषित दूध के सेवन से हैजा, सग्रहणी, दस्त तथा आव की बीमारी, डिफथीरिया (Dyphtheria) बच्चो के दस्त, खसरा (Typhoid) आदि अनेक रोग हो जाते हैं। कलकत्ते मे मलाई के बर्फ के कारण हैजे से कई मनुष्य पीडित हुए हैं। लखनऊ मे भी इसीके कारण दो चार मनुष्यो को यदा-कदा हैजा हुआ है। मलाई के बर्फ के नमूनो मे इन कीटाणुओ की परीक्षा करने पर यह पाया गया है कि कई प्रतिशत नमूनों मे इन रोगो के कीडे रहते है। वैसे तो दूध मे ही अनेक कीटाणुओ का वास होता है, परन्तु साधारणतया उबालकर पीने से ये कीटाणु मर जाते है और प्राय कोई हानि नहीं पहुंचाते। परन्तु, यदि, दूध का बर्फ जमाया जाता है तो उसमे स्थित कीटाणुओ का शीत के कारण प्राय नाश नहीं होता। इसी कारण इसके सेवन से हैजे आदि रोग खूब फैले है। सन् १६१५ के हरिद्वार के कुंभ मे इस मलाई के बर्फ से हैजा खूब फैल गया था। मलाई के बर्फ मे इन रोगो के कीटाणुओ का प्रवेश निम्नलिखित प्रकार से होता है –

१ बासी दूध के प्रयोग से,
२ मशीन के बारबार न धोने से,
३ मशीन को अशुद्ध जल से धोने से,
४ अशुद्ध जल का दूध मे मेल करने से, और
५ मक्खियो द्वारा।

मनुष्य के मल मे जो कीटाणु पाये जाते हैं, उनमे से कई मिथिलीन ब्लू (Methylene blue) के नीले रग को मिटा देते हैं। इस तथ्य के आधार पर ही दूषित मलाई के बर्फ की परीक्षा सुगमतापूर्वक की जा सकता है। यदि यह रग मिट जाय तो अनुमानत. उस बर्फ मे दोकरोड से अधिक कीटाणुओं का वास है। यदि रग न मिट तो इसका यह तात्पर्य नहीं कि वह बर्फ दूषित नहीं है, किंतु सभव है, उसमे दोकरोड से कम कीटाणु हो। अन्य प्रकारो से भी इन कीटाणुओं की परीक्षा की जा सकती है, परतु वे रीतियां कष्ट-साध्य तो अवश्य हैं, परंतु विश्वस्त नहीं।

सफाई के अभाव से होनेवाली हानि से बचने का एक मात्र यही उपाय है कि, म्यूनिसिपैलिटी द्वारा यह घोषणा कर दी जाय कि बिना लायसेंस के कोई भी इसे न बनावे और न बेचे। यह लाइसेंस केवल उन्हींको दिया जाय जो शुद्धता का विचार करें और बासी दूध का प्रयोग न करें। जब तक क़ानून द्वारा यह उपाय काम में नहीं लाया जाता, तबतक जहांतक सम्भव हो, या तो इसका सेवन नहीं करना चाहिये, या केवल विश्वस्त बेचने वालों से ही ख़रीदा जाय।

× × ×

२. चार घड़ों द्वारा पानी शुद्ध करने की रीति

चार घड़ों द्वारा पीने का पानी शुद्ध करने की रीति को प्रायः सभी जानते हैं। परन्तु साधारणतया जो रीति प्रचलित है, उससे हानि होने की बहुत सम्भावना है। इस कारण इसका प्रयोग न किया जाय तो अच्छा हो। अनुचित रीति से प्रयोग करने से आत्मा को स्वस्थता का झूठा सन्तोष होता है। इस प्रकार से पानी शुद्ध करने की साधारण रीति यह है कि चार घड़े एक दूसरे के ऊपर एक तिपाई पर रख दिये जाते हैं। ऊपर के तीन घड़ों में छेद होता है, जिनमें कपड़ा लगा दिया जाता है, जिससे बूँद-बूँद पानी नीचे के घड़े में गिरता है। सबसे ऊपर के घड़े में अशुद्ध जल भरा जाता है, दूसरे में पिसा हुआ कोयला और तीसरे में ईंट के अथवा पत्थर के छोटे छोटे टुकड़े, और उसके ऊपर सूक्ष्म कण की रेती अथवा बालू होती है। दूसरे तथा तीसरे घड़े इन पदार्थों से केवल आधे ही भरे जाते हैं। छना हुआ शुद्ध जल सबसे नीचे के चौथे घड़े में एकत्र किया जाता है। यह बात सर्वथा स्मरण रखनी चाहिये कि इस रीति से पानी सर्वदा शुद्ध नहीं होता। इस कारण इसके प्रयोग से स्वास्थ्य ख़राब होने की पूरी आशंका है। फिर भी जो सज्जन इसका प्रयोग करते हैं, उनको चाहिये कि इस प्रकार से जल शुद्ध करने के नियमों पर पूर्ण रीति से ध्यान दें। निरंतर पानी के छनने से इन घड़ों में रोगकारी कीटाणुओं की संख्या बढ़ती ही जाती है। कुछ समय बाद ये कीटाणु इतनी संख्या में हो जाते हैं, कि छानने वाले छिद्र बिलकुल अट जाते हैं। तब छनने की मात्रा भी कम हो जाती है और शुद्ध जल में कीटाणु भी आ जाते हैं; तथा यह छना हुआ पानी अशुद्ध जल से भी अधिकतर अशुद्ध हो जाता है। इस रीति का नियमपूर्वक पालन करना कुछ कष्ट-साध्य है और गड़बड़ प्रयोग करना अत्यंत हानिकर। इस कारण कुछ वैज्ञानिकों की राय में इसका प्रयोग ही न करना चाहिये। फिर भी जो इसको काम में लाते हैं, उनके लिये कुछ आवश्यक नियम यहां दिये जाते हैं —

१ घड़े चिकने तथा पालिश किये हुए न होने चाहिये, कारण कि इस प्रकार के घड़ों के छिद्र बंद होते हैं।

२ सबसे ऊपर के घड़े के मुँह पर मलमल का शुद्ध कपड़ा होना चाहिये, जिससे उस घड़े में मिट्टी, घास आदि पानी के साथ न जा सके।

३ घड़ा नंबर २ और ३ यथासम्भव हिलाये न जायँ।

४ कालपी की रेती इस कार्य के लिये बहुत अच्छी होती है।

५ कोयला साफ़ होना चाहिये और सप्ताह में एक बार अवश्य बदल देना चाहिये।

६ बालू हर पन्द्रहवें दिन धोकर सुखा लेनी चाहिये।

७ जब बालू धोकर पानी पुनः छाना जाता है, तो दो दिवस तक छने हुए पानी को न पीना चाहिये, और उसे फेंक देना चाहिये, कारण कि दो-तीन दिन बाद पानी ठीक-ठीक छनता है।

८ घड़े दो महीने में अवश्य बदलने चाहिये।

इस रीति से जल शुद्ध करने में सावधानता की बड़ी आवश्यकता है और यह विश्वास भ्रान्तिपूर्ण है कि, इसमें घड़ों की अथवा बालू की सफ़ाई की आवश्यकता नहीं है।

× × ×

३ बुरे अथवा बासी अंडा की साधारण पहचान

भारत विशेष कर शाकाहारी मनुष्यों का देश है। परन्तु यह बात आश्चर्यजनक प्रतीत होगी कि अन्य देशों में तो धीरे-धीरे शाकाहारियों की संख्या बहुत-कुछ बढ़ रही है, परन्तु इस देश के शिक्षित-समुदाय में मांस का प्रचार बढ़ रहा है। अभी यह कहना सम्भव नहीं कि इस प्रकार की गति देश के लिये हानिकर है अथवा लाभप्रद। वैज्ञानिकों में मत-भेद है, परन्तु नये-नये अन्वेषणों से, सम्भव है, यह समस्या शीघ्र ही हल हो जाय। जो मांस खाना आरम्भ करते हैं, वे पहले अंडे पर ही टूट कर अपना धर्म भ्रष्ट करने का साहस करते हैं, और इसके इतने प्रेमी हो जाते हैं कि, वे हानिकारक

अंडों को भी साफ़ कर जाते हैं। इस प्रकार के अंडों को पहचानने की साधारण रीति ये है—

१ यदि अंडे को प्रकाश की ओर रखकर दूसरी ओर से देखा जाय तो अच्छे और ताज़े अंडे के मध्य भाग से कुछ प्रकाश प्रवेश होता दिखाई देगा, कारण कि ऐसे अंडों के मध्य भाग प्रकाश के लिये पारदर्शी होते हैं, और बासी अंडे का ऊपरी सिरा पारदर्शी होता है, तथा मध्य भाग के भीतर प्रकाश का प्रवेश नहीं होता।

२ यदि १० छटाक पानी में छटाँक भर नमक डाल दिया जाय, तो उसमें ताज़ा अंडा डूब जाता है और बासी अंडा तैर जाता है।

भवानीशंकर याज्ञिक

× × ×

४. ज़ुकाम

(१)

ज़ुकाम या सर्दी इतनी लोक-प्रचलित बीमारी है कि इसका विशेष परिचय देने की आवश्यकता नहीं। वर्तमान समय में शायद ही कोई ऐसा आदमी होगा, जिसे यह रोग न हुआ हो।

ज़ुकाम या सर्दी क्या है

इस बीमारी के आरंभ होते ही छींकें आने लगती हैं। नाक से पतला और काफ़ी मात्रा में, पानी के समान कफ गिरने लगता है। नाक के अन्दर जलन पैदा हो जाती है। यह कफ़ कुछ समय के पश्चात् किसी क़दर गाढ़ा होने लगता है और इसका रँग भी सफ़ेद पीला होने लगता है। रोगी की आवाज़ भारी होजाती है। शरीर कुछ गरुआ (भारी) मालूम होने लगता है और हलका-सा बुख़ार बराबर बना रहता है। शरीर टूटता है, काम करने की इच्छा नहीं होती, चित्त मन्द होजाता है सूँघने की शक्ति जाती रहती है; क्योंकि नाक की झिल्ली सूज जाती है, उसके ऊपर कफ की तह जम जाती है और घ्राण-शक्ति के तन्तु इस तह के अंदर दब जाते हैं। नाक का एक स्वर बन्द हो जाता है। छिनकते-छिनकते नाक का ऊपरी हिस्सा लाल हो जाता है; और, चूँकि जो कफ नाक से गिरता है, उसमें नमक की मात्रा ज़्यादा होती है, इस-लिये नाक चारों ओर चिरचिरा जाती है। यह बीमारी बहुत कष्ट-कर होती है, क्योंकि नाक की सूजन जब सिर की ओर बढ़ती है तो सिर में पीड़ा होने लगती है। अक्सर यह पीड़ा असह्य होजाती है। जिस समय आदमी झुकता है उसके सिर में एकदम वेदना मालूम होने लगती है। नाक और मुँह बन्द करके साँस ऊपर खींचने पर सिर में दर्द मालूम होता है। आँखें कुछ लाल होजाती हैं। सिर के रक्त की नाड़ियाँ भरी हुई मालूम होती हैं। नाक की जड़ को अगर दो अँगुलियों से दबाइये तो बेहद पीड़ा मालूम होती है।

उसके चिह्न

कभी यह होता है कि नाक की सूजन सिर की ओर बढ़ने के अलावा कण्ठ की ओर भी बढ़ती है। उस समय खाँसी पैदा हो जाती है। यह खाँसी वास्तव में कई स्थानों के दूषित होजाने से पैदा हो जाती है। वह स्थान नाक, कण्ठ, कौआ और फेफड़े की नाली है। इन सब अवयवों की रचना और उसके आपस के सम्बन्ध को सविस्तर बयान करना इस स्थान पर सम्भव नहीं है। परन्तु संक्षेप में इतना बता देना आवश्यक है कि जो हम साँस लेते हैं, वह नाक द्वारा फेफड़े में जाती है, किन्तु कंठ, कौए और फेफड़े की नाली में होकर। नाक के ऊपर की झिल्ली एक तरह से कौए से और कंठ से मिली रहती है और कंठ से फेफड़े की नाली और फेफड़े का सम्बन्ध रहता है। इसलिये दूषित कफ़ के संसर्ग से और ज़ुकाम के विष के फैलने से जब नाक की झिल्ली की सूजन बढ़ती है, तो या तो कौआ सूज जाता है, या कंठ सूज जाता है, या फेफड़े की नाली में सूजन पैदा हो जाती है। इन तीनों अवस्थाओं में रोगी को खाँसी आने लगती है। सूजन ज्यों-ज्यों अन्दर बढ़ती जाती है, खाँसी का प्रकोप भयंकर होता जाता है, और अगर ज़ुकाम बिगड़ गया तो फेफड़ों तक में विष पहुँच जाता है।

साधारणतया अगर कोई दवा न की जाय और अन्य-परिस्थिति अनुकूल हो तो सर्दी दो-तीन दिन में आप-ही आप जाती रहती है, लेकिन कुपथ्य से, बदपरहेज़ी से रोग बढ़ सकता है, और शरीर के अन्य भाग में अन्य अवयवों को भी दूषित कर सकता है।

अगर ज़ुकाम बिगड़ गया तो इसके अनेक रूप हो जाते हैं। एक तो यह कि, ज़ुकाम पुराना हो जाय और बराबर बना रहे। बराबर छींकें आती रहें। नाक से रंगीन गाढ़ा कफ़ गिरता रहे।

पुराना ज़ुकाम

खाँसी आती रहे, सर में हलका दर्द बना रहे। ऐसी अवस्था में नाक की झिल्ली इतनी दूषित हो जाती है कि या तो वह फूल जाती है या जीर्ण हो जाती है। रक्त का सचय इसमें कम पड़ जाता है।

पेट की सूजन

अगर ज़ुकाम का विष पेट की ओर बढ़ा तो पेट की झिल्लियों को सुजा देता है और रोगी भोजन करने के पश्चात् अपने शरीर को भारी अनुभव करता है। पेट में गुड़-गुड़ होने लगती है। वायु पैदा होजाती है। जी मचलाने लगता है, सर में दर्द हो जाता है। प्यास बहुत लगती है। जीभ पर मैल जमा हो जाता है। यह रोग दो-तीन दिन में अच्छा हो सकता है, और यह भी सम्भव है कि स्थायी हो जाय।

आंतों का सूजन

अगर यह रोग पेट से और आगे बढ़ा तो बड़ी अंतड़ियों पर प्रभाव कर सकता है। बड़ी आँतें सूज जाती हैं। ऐसी अवस्था में रोगी के पेट में एकदम दर्द होने लगता है। दस्त आने लगते हैं। कभी-कभी क़ै भी होने लगती है। बुखार और चित्त मन्द हो जाता है। पाखाने में आँव गिरता है और कभी-कभी ख़ून भी।

स्त्रियों में ज़ुकाम बिगड़ कर प्रदर पैदा कर देता है।

पीनस

ज़ुकाम के बिगड़ जाने से और नाक में गन्दे कफ़ के इकट्ठा हो जाने से पीनस का भी रोग हो सकता है।

खाँसी

ज़ुकाम से खाँसी का आना अर्थात कंठ की झिल्ली और वहाँ की ग्रन्थियों का फूल जाना तो साधारण सी बात है। अँगरेज़ी में इन ग्रन्थियों को टॉन्सिल कहते हैं। इस रोग से गले में दर्द होता है और खुश्की मालूम होती है। खाँसी बराबर आती रहती है।

अडीनायड

बच्चों में ज़ुकाम बिगड़ कर अडीनायड पैदा कर सकता है। इस रोग में नासिका रंध्र के अन्त और कण्ठ के आरम्भ होने के स्थान की ग्रन्थियाँ फूल जाती हैं। परिणाम यह होता है कि बच्चा नाक से सांस नहीं ले सकता, बल्कि मुँह से सांस लेता है। इस रोग का असर यह भी होता है कि कान बहने लगे, कान में पीड़ा होजाय और आदमी बहरा तक हो सकता है।

बहरापन

ज़ुकाम के बिगड़ जाने से आदमी का बहरा हो जाना कोई असाधारण बात नहीं है।

ज़ुकाम, इसलिये, एक ओर तो बिगड़ जाने पर भयंकर परिणाम पैदाकर सकता है और दूसरी ओर यह मनुष्य की हलकी से हलकी बीमारी है।

इसके कारण

ज़ुकाम कई कारणों से पैदा होता है। कुछ डाक्टरों का मत है कि ज़ुकाम के कीड़े होते हैं, जो नासिका की झिल्ली में पहुँच कर सूजन पैदा कर देते हैं और दो-तीन दिन के बाद जब यह कीड़े स्वाभाविक ही मरजाते हैं, तो ज़ुकाम अच्छा हो जाता है। नाक के अन्दर बाल मौजूद होने की मन्शा ही यह है कि नासिका की झिल्ली ऐसे विषैले कीड़ों के आक्रमण से बची रहे। इसलिये नाक के बालों का कटा डालना इन डाक्टरों के मतानुसार बुरा है। ज़ुकाम होजाने पर सँघने के लिये यूकलिप्टिस आयल इसी उद्देश्य से दिया जाता है कि नासिका-रन्ध्रस्थ सर्दी के विषैले कीड़े मर जायें।

किन्तु, कुछ डाक्टरों को यह मत मान्य नहीं मालूम होता। इनके मतानुसार साधारण सर्दी पैदा करने का कोई कीड़ा अभी तक मिला ही नहीं है, इसलिये इन डाक्टरों का विचार है कि किसी विशेष कीड़े से ज़ुकाम पैदा नहीं होता। सर्दी का विष बाहर से नहीं आता। सर्दी का विष मनुष्य स्वयं अपने शरीर में पैदा कर लेता है। अस्वाभाविक रहन-सहन से मनुष्य के शरीर में अनेक अप्राकृतिक रस पैदा हो जाते हैं। इन रसों की शरीर को कोई आवश्यकता नहीं होती। यही नहीं बल्कि शरीर को क़ायम रखने के लिये इन रसों का शरीर से निकल जाना आवश्यक होता है। प्रकृति इन रसों के निकालने के लिये ज़ुकाम पैदा करती है और कफ द्वारा यह विषैला माद्दा शरीर से निकल जाता है।

जन-साधारण की हैसियत से हम डाक्टरों के मत-भेद के चक्कर में नहीं पड़ सकते। हम तो केवल उतना ही विचार कर सकते हैं, जितने पर विशेष मत-भेद न हो। सभी डाक्टर यह मानते हैं कि ज़ुकाम पैदा होने के अनेक कारणों में से निम्नलिखित भी मुख्य कारण हैं—

(१) क़ब्ज़, बहुभोजन, हानिकर पदार्थों का भोजन।

(२) शरीर की दुर्बलता।

(३) रहने के स्थान का गन्दापन—ऐसी जगह पर रहना जहाँ शुद्ध वायु न पहुँचती हो, गर्द बहुत हो, तथा अन्य प्रकार की गन्दगी हो।

(४) शराब, तम्बाकू आदि नशों का अति सेवन।

(५) चिन्ता-ग्रसित मन, विक्षिप्त चित्त, और शान्ति का अभाव।

साधारण तौर से यह समझा जाता है कि ठण्डक लग-जाने से आदमी को सर्दी हो जाती है। ठण्डे और नंगे पैर रहने से, ठण्डी हवा के झोंके लगजाने से ज़ुकाम पैदा होता है, इसलिये सर्दी से बचने के लिये अक्सर लोग शुद्ध ठण्डी हवा में निकलने से डरते हैं और कमरा बन्द किये हुए, ज़रूरत से ज्यादा कपड़े पहने हुए, बैठे रहते हैं। किंतु यह विचार ठीक नहीं है। शुद्ध और स्वच्छ वायु के लगने से ज़ुकाम नहीं होता और न ठण्डक से सर्दी होती है। पानी में देर तक भीगने से, गरम कमरे से एकदम ठण्डी हवा में निकल पड़ने से ज़ुकाम शुरू हो सकता है। किन्तु, ज़ुकाम का मुख्य कारण इसे नहीं कह सकते हैं। मुख्य कारण तो शरीर की निर्बलता या उसमें विषैले माद्दे की मौजूदगी है, जो सर्दी को पाकर बह निकलता है।

ज़ुकाम का एक मुख्य कारण भोजन की ख़राबी है। **भोजन की ख़राबी** यह ख़राबी कई सूरतों में हो सकती है। या तो हम भोजन इतनी अधिक मात्रा में खाते हैं कि उसका मुनासिब पाचन नहीं होता, या हम ऐसी चीज़ें खाते हैं, जो कफ़ पैदा करनेवाली हैं। अगर हमारे भोजन में रक्त को शुद्ध करनेवाले रस नहीं पाये जाते, तो रक्त के कमज़ोर होने की वजह से भी ज़ुकाम हो जाता है। अगर हमें बराबर क़ब्ज़ रहता है, तो समझ लेना चाहिये कि हम ज़ुकाम को बराबर निमंत्रण दे रहे हैं।

भोजन किस मात्रा में करना चाहिये, कौन पदार्थ कफ़ज हैं, कौन नहीं हैं, किस से रक्त शुद्ध होता है, किस से नहीं, क़ब्ज़ क्यों रहता है, और कैसे मिट सकता है इत्यादि प्रश्न स्वयं इतने विस्तृत हैं कि उन पर विचार करने के लिये अलग ही पुस्तक होनी चाहिये। किन्तु इस स्थान पर संक्षेप में कुछ ज़रूरी बयान कर देना होगा।

प्रकृतिवादी डाक्टर लोगों का मत है कि सभ्यता के **क्या खाना चाहिए** चक्कर में पड़कर मनुष्य का भोजन बहुत दूषित हो गया है। मनुष्य वास्तव में कन्दमूल फल खाने वाला प्राणी है। किन्तु सभ्यता के चक्कर में फँस कर वह मांस, मछली, हलवा तथा अन्य अस्वाभाविक भोजन करने लगा है। परिणाम जिसका यह हुआ है कि वह अनेक रोगों से ग्रसित रहता है और वायु के बहुत ही साधारण प्रकोप में किसी मर्ज़ का शिकार हो जाता है। मनुष्य जिह्वा के स्वाद के लिये अपने पेट को भुनी और तली, गरिष्ठ और बहुत चिकनी चीज़ों से भरता रहता है, जो कि पेट में जाकर ठीक तौर से हज़म नहीं होता। गाजर, मूली, टमाटर, अमरूद, अंगूर, किशमिश इत्यादि स्वाभाविक भोजन के पदार्थों की बहुत कम मात्रा वह अपने पेट में डालता है। जिन पदार्थों में प्राण-तत्त्व का विशेष अंश होता है, और जिनमें रोगों के विषों के मारने की ख़ास शक्ति होती है, वह मनुष्य की रसोई से निकलते जा रहे हैं, और यही कारण है कि, वह आज नाना प्रकार की बीमारियों का शिकार है।

मनुष्य के भोजन में निम्नलिखित पदार्थों का होना आवश्यक है। अर्थात शरीर को क़ायम रखने के लिये निम्नलिखित चीज़ें खानी ज़रूरी हैं—

(१) प्रोटीन—यह तत्त्व शरीर में मांस की वृद्धि करता है और परिश्रम से नष्ट होनेवाले मांस-तत्त्वों को फिर से पूरा करता है।

(२) चिकनई (Fat) शरीर में चर्बी पैदा करने के लिये है। चर्बी वास्तव में शक्ति का सञ्चय है। शरीर में रहने से शरीर इसको समय पड़ने पर गला कर इससे काम लेता है।

(३) कार्बोहाइड्रेट—इस तत्त्व से शरीर में शक्ति पैदा होती है। यदि कार्बोहाइड्रेट ज़रूरत से ज़्यादा पेट में पहुँच जाता है, तो वह 'चिकनई' की सूरत में जमा हो जाता है।

(४) नमक—मनुष्य को नमक की भी आवश्यकता होती है।

(५) पानी—शरीर के दोषों को बहा ले जाने के लिये पानी की आवश्यकता होती है।

(६) विटामिन (प्राणतत्त्व)—यह तत्त्व बहुत आवश्यक है। शरीर में वास्तविक शक्ति सञ्चय के लिये अर्थात

रोग के प्रकोप को शमन करने के लिये इस तत्व की आवश्यकता पड़ती है।

भोजन के लिये उपर्युक्त ६ तत्वों की आवश्यकता होती है, किंतु एक विशेष अनुपात और मात्रा में। यदि हम केवल ऐसे पदार्थ खाते रहें, जिनमें केवल एक ही तत्व पाया जाता है, तो शरीर क़ायम नहीं रह सकता। यदि हमारे भोजन में ऊपर कहे हुए किसी एक तत्व का भी अभाव है, तो भी शरीर क़ायम नहीं रह सकता। यदि हमारे भोजन के पदार्थ ऐसे हैं, कि जिनमें ऊपर कहे हुए तत्व मौजूद तो हैं, किन्तु अनुपातत इन तत्वों की पारस्परिक मात्रा अनुपयुक्त है, तो भी शरीर में अनेक प्रकार की व्याधियाँ पैदा हो जायँगी। उदाहरणार्थ—यदि हमने चिकनई की मात्रा ज़्यादा करदी तो क़ब्ज़, दस्त इत्यादि पैदा हो सकते हैं। यदि विटामिन खाया, या कम खाया, तो हम रोग के शिकार हो सकते हैं। एक बात हमें और ध्यान में रखने की है, कि ऊपर लिखे हुए तत्वों से बने हुए भोज्य-पदार्थ को पेट में डाल लेना ही काफ़ी नहीं है। जब तक यह पदार्थ हज़म होकर शरीर में पैवस्त नहीं हो जाते, पेट में तत्व-युक्त पदार्थों के डाल लेने से कोई लाभ नहीं।

ज़ुकाम पैदा करने का एक मुख्य कारण यह हो जाता है कि रोगी प्रोटीनयुक्त भोजन विशेष मात्रा में करता है। मांस, मछली, दाल, अंडे इत्यादि ऐसी वस्तुएँ हैं, जिनमें प्रोटीन विशेष मात्रा में पाया जाता है। अगर इन्हें ज़रूरत से ज़्यादा खा लिया जाय तो शरीर में सम्मिलित न होकर ये टाक्सिन (Toxin) नाम के विष बन जाते हैं और अन्त में शरीर से निकलने के लिये प्रकृति देवी को ज़ुकाम या सर्दी का सहारा लेना पड़ता है। मिठाई और चावल के खाने से भी कफ़ का अंश बढ़ता है और तर चीज़ें भी कफ़ पैदा करनेवाली होती हैं। जिन लोगों को ज़ुकाम अक्सर हो जाता है, उन्हें कफ़ पैदा करनेवाली चीज़ों से बचना चाहिये। सफ़ेद शकर, नमक और घी तेल इत्यादि कफ़ज हैं। मांस, मछली इत्यादि भी कफ़ पैदा करते है, चाय और काफ़ी भी ज़ुकाम के लिये इसी कारण नुक़सान करती है। (क्रमशः)

शीतलसहाय वर्मा

---

१. गोस्वामी तुलसीदास तथा उनके धार्मिक विचारों पर कारपेन्टर साहब की सम्मति।

ण्टन यूनिवर्सिटी के "Doctor of Divinity" की परीक्षा के लिये रेवरेन्ड कारपेन्टर साहब (Rev T N. Carpenter, P D) ने "The Theology of Tulsi Das" नामक पुस्तक लिखी है। यह पुस्तक Christian Literature Society ने प्रकाशित की है। लेखक तथा प्रकाशक समिति के नाम से यह बात एक दम प्रगट होजायगी कि यह पुस्तक किस दृष्टि से लिखी गई है। लेखक भी क्रिश्चियन है, समिति का उद्देश्य भी ईसाई-धर्म का समर्थन करनेवाली पुस्तकें प्रकाशन करना है, और उसी धर्म ही की एक परीक्षा के लिये यह पुस्तक लिखी गई है। लेखक से जितनी उदारता की आशा नहीं की जाती थी, उन्होंने उससे कहीं अधिक उदारता दिखलाई है; तिस पर भी वे अपने मज़हबी चश्मे को बिलकुल उतारने में समर्थ नहीं हुए हैं। इस लेख में उन्हींकी उक्त पुस्तक की समालोचना की जायगी।

पुस्तक का उद्देश्य

इस पुस्तक के उद्देश्य के विषय में स्वयं लेखक महाशय भूमिका में कहते हैं —

"For, it is of the essence of Christianity to propagate the light given to it. Together with the recognition of this duty will come to us the deepening appreciation of the light of God when we see how flickering and uncertain is the light of other faiths.

अर्थात —"ईसाई धर्म का यह मूल तत्व है कि जो प्रकाश उसको दिया गया है, उसे फैलाया जावे। इस कर्त्तव्य-ज्ञान के साथ ही साथ जब हम यह देख लेंगे कि दूसरे धर्मों के प्रकाश कितने मंद और अनिश्चित हैं, तब हमें अपने ईश्वरीय प्रकाश पर अधिक श्रद्धा उत्पन्न होगी।"

इससे स्पष्ट मालूम होता है, कि लेखक का यही उद्देश्य है, कि हिंदू-धर्म और उसकी मूलाधार तुलसीकृत रामायण के सिद्धान्तों की क्षुद्रता सिद्ध की जाय, जिसमें क्रिश्चियन धर्म की श्रेष्ठता सिद्ध हो।

तुलसीदास—धार्मिक-सुधारक

किंतु गुसाईंजी पर सम्मति प्रगट करते हुए आपने कहीं-कहीं उचित उदारता से काम लिया है। उनका जीवन-चरित्र लिखकर आपने कहा है·—

"Tulsi Das was not a reformer he founded no sect and gave rise to no new doctrine and his religious position lies rather in his being the mouth-piece of the Ramanandi teaching and is especially due to his having incorpo-

rated it in the vernacular in simple poetic language which by its beauty has won its way to supremacy in the hearts of the common people a supremacy unchallanged by the passing of three centuries and a half."

अर्थात्—"तुलसीदास कोई सुधारक नहीं थे। उन्होंने कोई पन्थ नहीं चलाया और न किसी नये मत का प्रचार ही किया। वे रामानन्दी मत के एक प्रचारक थे। इसका कारण यह था कि उन्होंने रामानन्दी उपदेशों को प्रचलित भाषा (हिंदी) की सीधी-सादी कविता में ग्रथित किया। इसने अपनी सुन्दरता के कारण साधारण लोगों के हृदय में अपना प्रभुत्व जमा लिया है, जिसे ३½ शताब्दी का दीर्घकाल भी कम करने में समर्थ नहीं हुआ।"

यद्यपि तुलसीदासजी ने कोई नया पंथ अपने नाम से नहीं चलाया, परन्तु वे सच्चे सुधारक थे। उन्होंने शैव, वैष्णवों का वैमनस्य, आदि कई प्रचलित कुरीतियों और कुसंस्कारों के सुधार का उपदेश दिया है। पादरी साहब आगे लिखते हैं—

As a teacher he was liberal-minded even for a Ramanandi and for a time he was a Smarta Brahmin—he to some extent worshipped Mahadeva."

भावार्थ—"वे (गुसाईंजी) रामानन्दी होते हुए भी उदारचेता उपदेशक थे। वे कुछ समय तक स्मार्त ब्राह्मण रहे हैं। इसीलिये किसी हद तक वे शिवपूजक भी थे।"

रामायण की लोकप्रियता

रामायण की इतनी अधिक ख्याति का कारण बतलाते हुए पादरी सा० ने कितनी सच्ची राय दी है:—

"The popularity of his work is due in the first place to his meeting the sense of desire for communication with God but more largely to his abondoning the sacred Sanskrit and using the vernacular."

अर्थात—"इस ग्रन्थ (रामचरितमानस) के जनसमाज में प्रचार होने का पहला कारण यह था, कि उन्होंने ईश्वर-प्राप्ति की इच्छा-पूर्ति का उपाय बता दिया। किन्तु इससे भी अधिक मुख्य कारण यह है कि उन्होंने पवित्र संस्कृत भाषा को छोड़कर लोक-भाषा हिन्दी का उपयोग किया।"

गुसाईंजी के तात्विक विचार

आपने क्रिश्चियन पाठकों को केवल तुलसीदासजी के विचारों से परिचित कराया है। उनके विरुद्ध कोई प्रबल प्रमाण न देकर भी आप हिन्दू-धर्म के प्रकाश की मदता दिखाना चाहते हैं। आपने कहीं-कहीं एक दो तर्क उपस्थित करने का प्रयत्न किया भी है, पर गुसाईंजी के विचारों का पूर्ण ज्ञान न होने के कारण वे नितांत असफल हुए हैं। इसकी सत्यता पाठकों को आगे विदित होजायगी।

यह पुस्तक निम्न-लिखित अध्यायों में विभक्त है—

प्रथम भाग (१) तुलसीदास के तात्विक विचारों का मूलाधार—साधारण हिंदू-धर्म।
(२) अवतार और भक्ति
(३) राम की उपासना
(४) तुलसीदास
(५) रामायण के मुख्य विषय

द्वितीय भाग—सर्वोपरि ईश्वर
प्र० अ०—ईश्वर के गुण धर्म
द्वि० अ०—हिंदू त्रिमूर्ति
त्रि० अ०—अन्य देवता
च० अ०—राम
प० अ०—अवतार
ष० अ०—भक्ति
स० अ०—माया
अ०अ०—पाप और मुक्ति।

इन सब पर हम क्रमशः विचार करेंगे—

प्रथम भाग के पहिले अध्याय मे वेदों, उपनिषदों, मंत्र-शास्त्रों, ब्राह्मणों आदि में वर्णित धार्मिक-सिद्धांतों का साधारण संक्षिप्त परिचय कराया गया है।

दूसरे अध्याय मे अवतारवाद तथा भक्ति-मार्ग का उदय और प्रचार का विवरण देकर उसके मूल-तत्त्व का संक्षेप वर्णन है।

तीसरे अध्याय मे राम-भक्ति के प्रचार तथा रामानुज और रामानन्द के विचारों का दिग्दर्शन है।

चौथे अध्याय मे तुलसीदास के उदय तथा उनके जीवन वृतांत का संक्षिप्त परिचय है।

पांचवे अध्याय में मानस के सातों कांडों की कथा बहुत थोड़े मे लिखी गई है।

दूसरे भाग से असली विषय आरंभ होता है।

प्रथम अध्याय में मानस में कथित ब्रह्म के निर्गुणरूप नेतिनेति, भगवान, सच्चिदानन्द आदि स्वरूपों पर विचार किया गया है।

दूसरे अध्याय में हिंदू त्रिमूर्ति अर्थात् ब्रह्मा, विष्णु, महेश को जो स्थान तुलसीदासजी ने अपने ग्रन्थ में दिया है, इनका आपस में तथा ब्रह्म से जो संबंध है, तीनों में कौन ऊंचा नीचा है, राम के साथ इनका क्या दर्जा है, तथा जिन २ घटनाओं के संबंध में इनका उल्लेख किया गया है, इन बातों पर बड़ी खोज के साथ विचार किया गया है।

आपने मानस से उद्धरण देकर बताया है कि कहीं तो त्रिमूर्ति एक ब्रह्म के रूप माने गये हैं और कहीं अलग अलग। कहीं विष्णु से शिव श्रेष्ठ माने गये हैं तो कहीं शिव सबके नायक बनाये गये हैं। किन्तु ब्रह्मा को सदा निम्न स्थान ही दिया गया है। राम कभी शिव की उपासना करते हैं, तो कभी शिव राम की भक्ति का उपदेश देते हैं।

तीसरे अध्याय में इंद्र देवताओं की तुलसीदास ने जिस प्रकार निंदा की है, और अन्य देवताओं की प्रार्थना कराते हुए भी राम को जिस प्रकार सर्व श्रेष्ठ स्थान दिया है उसका वर्णन है।

चौथे अध्याय में राम के स्वरूप तथा त्रिमूर्ति आदि से उनका जो संबंध तुलसीदास ने बताया है, उसका विवेचन है। आपने प्रमाण देकर बताया है कि यद्यपि राम को निर्गुण ब्रह्म का अवतार कई जगह कहा गया है, किंतु असल में वे विष्णु के ही अवतार माने गये हैं।

पांचवें अध्याय में अवतार-वाद, दशावतार विशेष कर रामावतार के कारणों और उद्देश्यों का दिग्दर्शन है।

छठे अध्याय में तुलसीदास के विचारानुसार भक्ति तत्त्व का विवेचन है। इसमें भक्ति का स्वरूप, ज्ञान, भक्ति का संबंध तथा योगादि अन्य मार्गों से भक्ति की श्रेष्ठता आदि गुसाईंजी के सिद्धांतों का दिग्दर्शन कराया गया है।

सातवें अध्याय में तुलसीदासजी के अनुसार माया का स्वरूप राम तथा माया का संबंध, मायावाद, परिणाम-वाद तथा एकेश्वरवाद का संबंध, माया की प्रबलता आदि बातों पर विस्तृत विचार किया गया है।

अन्तिम अध्याय में मानस के अनुसार पाप पुण्य की व्याख्या तथा उससे मुक्ति मिलने के उपायों पर संक्षिप्त विचार प्रगट कर पुस्तक समाप्त होती है।

कारपेन्टर साहब ने उक्त विषयों पर जो विचार प्रगट किये हैं, उन पर अब हम उनकी आलोचना कर अपनी सम्मति प्रगट करना चाहते हैं।

वैदिक-धर्म तथा अन्य धर्म

विलियम्स की Hinduism नामक पुस्तक से आपने एक अवतरण दिया है। उसमें कहा गया है— The Hinduism has taken something from every religion अर्थात "हिंदूधर्म ने सब धर्मों से कुछ न कुछ बातें ली हैं।" यदि विलियम्स साहब इसी बात को बिलकुल उलटकर इस प्रकार कहते तो वह सचमुच सच उतरती कि— "सब धर्मों ने हिंदू धर्म से कुछ न कुछ बातें ली हैं।" यह बात मोक्षमूलर तथा रमेशचंद्र दत्त आदि ने सिद्ध करदी है, अत अधिक कुछ कहने की ज़रूरत नहीं।

वैदिक-धर्म तथा हिंदू-धर्म

पादरी सा० एक जगह कहते हैं कि— The conception of the God has completely passed away from India अर्थात—"हिंदुस्थान में वैदिक देवताओं का ज्ञान बिलकुल ही लुप्त हो गया है।"

द्यौ, पितर, अदिति आदि वैदिक देवताओं की पूजा अवश्य ही भारत में लुप्त हो गई है, पर बहुत से वैदिक देवता अब भी पूजे जाते हैं। रामायण में इनकी आराधना कई जगह की गई है।

इसी अध्याय में आप फिर कहते हैं— Vishnu is the only member of the Hindu Triad mentioned in the Vedas अर्थात—"हिंदू-त्रिमूर्ति में से विष्णु ही एक ऐसे हैं, जिनका उल्लेख वेदों में किया गया है।" केवल विष्णु ही नहीं किंतु तीनों मूर्ति का उल्लेख वेदों में किया गया है, यह कई लेखकों ने सिद्ध कर दिया है।

तुलसीदास के तत्त्व-ज्ञान का आधार

अगले अध्याय में कारपेंटर साहब ने शंकर के अद्वैतवाद और रामानुज के विशिष्टाद्वैत में अंतर बतलाया है। आपने दिखाया है कि किस प्रकार श्रीशंकराचार्य के अद्वैतवाद की जगह पर रामानुज ने सगुण ईश्वर की भक्ति का प्रचार किया, जिसे बाद में रामानंद ने रामभक्ति का स्वरूप दिया। आपने बतलाया है कि उसीको गुसाईंजी ने अपना लिया।

इसके बाद एक अध्याय में आप रामायण की मूल कथा संक्षेप से कहकर दूसरे में तुलसी-कथित ईश्वर के बारे में रामायण के अवतरण देकर लिखते हैं कि—"तुलसीदास के तत्त्व विचार (Theology) का यही सबसे मुख्य अंश है। उनके इन विचारों की उच्चता और ईश्वर-प्रतिपादन को देखते हुए कहना पड़ता है कि उन्होंने सच्चा ईश्वर-ज्ञान प्राप्त कर लिया था।" आपको उनके कुछ विचार ग़लत भी समझ पड़ते हैं, पर इसके कारण गुसाईंजी के पवित्र विचार भुलाना नहीं चाहते।

तुलसी का ईश्वर-वाद [Theology]

Nor must his erroneous ideas which he has added to his pure belief blind us to the light he had attained.'

अर्थात्—"तुलसीदास ने अपने इस पवित्र विश्वास में जो कुछ ग़लत विचार जोड़ दिये हैं, उनके कारण हमें उनके प्राप्त किए हुए ज्ञान को न भुला देना चाहिये।"

परंतु रेवरेंड महोदय ने "ग़लत विचारों" के विषय में कुछ भी नहीं कहा कि वे कौन से हैं, और क्यों हैं।

निर्गुण ब्रह्म के विषय में रामायण से चौपाइयाँ उद्धृत करके उनका अँगरेज़ी अनुवाद देकर आप कहते हैं कि—"तुलसीदास ने ब्रह्म शब्द को, जो कि वेदांत में निर्गुण ईश्वर के लिये उपयोग में आता है, सगुण ईश्वर या भगवान् के अर्थ में व्यवहृत किया है, और उन्होंने ब्रह्मा शब्द का इसीलिये उपयोग नहीं किया कि कहीं 'ब्रह्म' और 'ब्रह्मा' में भ्रम उत्पन्न न हो जाय।"

निर्गुण और सगुण

असल बात यह है कि यहाँ भी वही ग़लत-फ़हमी प्रगट होती है। तुलसीदास ने श्रीराम को सगुण और निर्गुण दोनों रूपों से माना है, परंतु जब उन्होंने राम के निर्गुण रूप का वर्णन किया है तब 'ब्रह्म' शब्द का ही उपयोग किया है जैसे—"ब्रह्म राम ते नाम बड़।" यहाँ ब्रह्म निर्गुण और राम सगुण के लिये आया है। ब्रह्मा को गुसाँईंजी ने ब्रह्म नहीं माना, बल्कि राम-ब्रह्म का एक सेवक मात्र माना है।

पादरी साहब का यह कहना भी उसी प्रकार भ्रमपूर्ण है—'Tulsi Das stands quite clear in his repudiation of the impersonal God or Brahma of Shankar' अर्थात्—"तुलसीदास शंकराचार्य के अव्यक्त ईश्वर को नहीं मानते थे, यह बात स्पष्ट है।" वे अव्यक्त ईश्वर को मानते हैं, पर शंकराचार्य से तुलसी का इतना ही मत-भेद है कि वे ईश्वर को अव्यक्त के साथ व्यक्त भी मानते हैं।

हिंदू त्रिमूर्ति से आपको क्रिश्चियन "पवित्र त्रिमूर्ति" (Holy Trinity) से समता दिखानी है। परंतु ब्रह्मा, विष्णु, महेश और क्रिश्चियन धर्म की त्रिमूर्ति (Holy Father, Holy Ghost, Christ) में बिलकुल ही समानता नहीं है। हमारी त्रिमूर्ति एक ही परब्रह्म के तीन भिन्न-भिन्न कार्यों के अनुसार तीन रूप मात्र हैं। क्रिश्चियन Trinity ऐसी नहीं है, ईसामसीह ईश्वर के पुत्र माने गये हैं।

त्रिमूर्ति

(क्रमशः)

ब्योहार राजेन्द्रसिंह

× × ×

२. वर्ण-व्यवस्था बनाम संतरामजी

बूट डासन ने बनाया, मैंने एक मज़मूँ लिखा ;
मुल्क में मज़मूँ न फैला और जूता चल गया।
जिसमें मिलती थी उन्हें दिल में बुज़ुर्गों के जगह ;
वह अदब लड़कों के दिल से आजकल जाता रहा।

'अकबर'

'माधुरी' के पाठकों ने विगत वैशाख के अंक में 'हिंदू-जाति और वर्ण-व्यवस्था' शीर्षक एक छोटा-सा नोट पढ़ा होगा। उसमें दिखाया गया था कि संगठन किसी भी जाति के उत्थान के लिए अचूक मंत्र है। परंतु हिन्दू जाति का संगठन वर्ण-व्यवस्था को भुलाकर या मेटकर करना भारी भूल होगी। अंत में यह स्पष्ट शब्दों में लिख दिया गया था—"हाँ, इतना अवश्य होना चाहिए कि समय की प्रगति के अनुसार कोरी कट्टरता तथा धार्मिक ढकोसलों को परित्याग कर, वर्णाश्रम-धर्म को क़ायम रखते हुए, हम हिंदू कहलाने का अधिकार रखने-वालों को अपना भाई समझें और उनके सुख में सुखी एवं दुःख में दुखी हों।" सहृदय तथा विचारवान पाठक हमारी उपर्युक्त पंक्तियों से हमारे विचारों का सहज में ही अनुमान लगा सकते हैं। परन्तु, लाहौर के जात पाँत तोड़क मंडल के मंत्री तथा अछूतों के एक मात्र स्वयंभू नेता श्री-संतरामजी, बी० ए० के क्रोध का पारा, हमारे उस नोट को पढ़कर, थर्मामीटर से बाहर निकल पड़ा। उसका

प्रतिवाद आषाढ़ की 'माधुरी' में आपने "बुलबुलशाह और वर्णव्यवस्था" शीर्षक लेख के अंतर्गत दे डाला। श्री संतरामजी ने आवेश और क्रोध के वशीभूत होकर अकारण ही ब्राह्मणों को कोसने का जो कष्ट उठाया है, उसके लिए मुझे हार्दिक खेद है। ठीक वही दोष, जो एक ब्राह्मण के नाते उन्होंने मेरे ऊपर मढ़ा है, उनके ऊपर भी, एक अब्राह्मण के नाते, बिला रू-रिआयत लगाया जा सकता है। मैंने इन पंक्तियों को लिखने के प्रथम अपने तथा श्री० संतरामजी के लेखों को कई बार पढ़ा। पढ़ने के उपरांत यह नतीजा निकला कि—'सवाल दीगर, जवाब दीगर'। हम अपने जगन्मान्य ऋषियों की शिक्षा का आधार लेते हैं, तो आप बुलबुलशाह का तराना गाते हैं। हम भारत में हिंदुओं का संगठन इसी देश की जलवायु, रहन-सहन, आचार विचार के साथ करना चाहते हैं, तो आप पाश्चात्य सभ्यता का राग अलापते हैं। हम कहते हैं कि पहले प्रतिमा का पूजन कीजिए और उसके पश्चात् श्रद्धा, भक्ति और अटल विश्वास होने पर निराकार को ध्यान करने का प्रयत्न कीजिए, तो आप एकदम निराकार का डंका पीटते हैं। ख़ैर, अपनी खंजड़ी लेकर अपना राग अलापने का आपको सर्वथा अधिकार है। परन्तु, डार्विन की थ्योरी को, यह कहकर कि हमारे बुज़ुर्ग बंदर थे, धीरे धीरे उन्नति करके हम मनुष्यता की इस सीमा पर पहुँचे हैं, सफलीभूत बनाने का निष्फल प्रयास करके अपने पैरों पर आप कुठाराघात न कीजिए।

मुझे आपके लेख में प्रारम्भ से लेकर अंत तक यही गंध मिली कि इस देश की अवनति के कारण ब्राह्मण ही हैं। इससे स्पष्ट है कि, आपको ब्राह्मणों से अकारण ही बैर करने का हठ है। ऐसा क्यों? यह तो श्री० संतरामजी या भगवान ही जानें।

आप ब्राह्मणों का सम्मान नहीं देख सकते। बतलाइए, इसमें बेचारे ब्राह्मणों का क्या दोष? उन्होंने सदा स्वार्थ को लात मारी। पठन-पाठन उनका काम रहा। निःस्वार्थ अन्य जातियों को उचित शिक्षा दी, और जो रूखा-सूखा मिला उसीमें सन्तुष्ट रहे। विपत्तियों में सदा आगे रहे। मुसलमानों ने जब ज़ुल्म की हद की, उन्होंने सब कुछ सहा, पर हिन्दू जाति को समूल नष्ट नहीं होने दिया। कभी इस्लाम धर्म के आगे सर नहीं झुकाया, और आज भी हमारा दावा है कि हर बात में त्याग की वेदी पर चढ़नेवालों में अधिकतर ब्राह्मण ही दिखाई देंगे। क्षत्रियों को राज्य दिया। वैश्यों को व्यापार दिया और स्वयं दूसरों के मुहताज रहे। उनके निःस्वार्थ त्याग का फल उन्हें क्या मिला? कोरा सम्मान। वह भी हमारे ही भाई नहीं देख सकते तथा उलटा उन्हीं को दोषी बनाते हैं। बतलाइए, इसमें ब्राह्मणों ने क्या क़ुसूर किया?

अब रहा यह कि, सब दोष ब्राह्मण वर्ण में ही हैं, अन्य वर्ण इससे बरी हैं; यह तो अधाधुंध एकतरफ़ा डिगरी का सा मामला है। आपने अछूतों की ओर से जो शाब्दिक वकालत की है, वह प्रशंसा की बात है, गौरव का विषय है। परन्तु, दुःख है कि उस बहस में भूलों के सिवा दानों का कहीं पता भी नहीं है। आपने मरीज़ के दुख दूर करने के लिए नुस्ख़ा खोजने में जो तत्परता और हितकामना प्रदर्शित की है, वह तो सराहनीय है, किंतु, रोग के निदान की तशख़ीस में आप फ़ेल हो गए। फिर यह तो वही बात रही कि—

> क्यों सिविल-सर्जन का आना रोकता है हमनशीं,
> इसमें है एक बात आनर की शिफ़ा हो या न हो।
>
> 'अकबर'

आप जातपाँत तोड़क मंडल के मंत्री हैं, बी० ए० का दुमछल्ला लगाए हैं, पंजाब के निवासी हैं, और पश्चिमीय सभ्यता के पुजारी हैं। तब, यदि आपकी लेखनी वर्णव्यवस्था के साथ बुलबुलशाह का तराना गाने के लिए चहक उठे, तो उसमें आपका दोष ही क्या? हमारी समझ में यह अब तक नहीं आया कि वर्णव्यवस्था का बुलबुलशाह की घटना से क्या संपर्क है?

हमारी शिक्षा, हमारा रहन-सहन, हमारा धर्म, हमारे आचार-विचार सभी पश्चिमीय सिद्धांतों पर आधारित होते जा रहे हैं। शिक्षा-क्रम ही गैरों का है, फिर हम गैर हो जावें तो क्या आश्चर्य! कविवर 'हाली' के शब्दों में—

> अब न तो दिन ही रहा और न रही रात अपनी,
> जा पड़ी गैर के हाथों में हर एक बात अपनी।

नई रौशनी में जिसे देखो पश्चिम की ओर आँख मूँद कर दौड़ने की चेष्टा करता है। फलाफल का विचार नहीं।

अभी तो चैन से गुज़रती है,
आक़बत की ख़ुदा जाने।

इस देश में बड़े बड़े विदेशी लोग आए। शिक्षाएँ ग्रहण कीं। ग्रन्थ पढ़े। प्रत्येक बात का अध्ययन किया। और यहाँ की सभ्यता, यहाँ के नियमों को सर्व प्रधान माना।

[क्रमशः]

रामसेवक त्रिपाठी

× × ×

३ तुलसी-संवत्

तुलसी-संवत् २६६ में 'माधुरी' निकली थी। इसके तात्कालिक संपादक श्रीदुलारेलालजी भार्गव ने पत्रिका में यही संवत् लिखा था, जो अब तक इसमें बराबर छपता है। इस क्रम से, अब विक्रमाब्द १६८४ की श्रावण शुक्ला सप्तमी से, ३०४ तुलसी-संवत् प्रारम्भ होता है। परन्तु, श्रीदुलारेलालजी की ही 'सुधा' में ३०५ तुलसी-संवत् छपा है! यह क्या गड़बड़ है? एक ही क़लम से संवत् जैसे विषय में अनेकता की ऐसी भयङ्कर भूल! यह क्या बात है? आशा है, 'सुधा' या 'माधुरी' द्वारा इस भ्रम को भार्गव जी दूर करने की चेष्टा करेंगे।

तुलसी-भक्त

मेघ मल्हार

ठाठ—काफ़ी
जाति—षाडव
समय—वर्षा ऋतु में पिछली रात
वादी—खरज
सम्वादी—पञ्चम

मेघ-राग-ध्यानम्

१ कदम्बवृक्षस्थितदिव्यमूर्तिमेघरवाहः करवारिपात्रः ।
हरितवस्त्रो बहुनीलवर्णः स मेघरागः कथितो मुनीन्द्रैः ॥
(नारद)

२ नीलोत्पलाभवपुरिन्दुसमानवक्त्रः पीताम्बरस्तृषितचातकयाच्यमानः ।
पीयूषमन्दहसितो घनमध्यवर्ती वीरेषु राजति युवा किल मेघरागः ॥
मेघः पूर्णो धन्यश्च स्यादुत्तरायनमूर्च्छनः । विकृतो धैवतो ज्ञेयः शृंगाररसपरकः ॥
(संगीत-दर्पण)

षड्जे धैवतिककाकलि षड्जतारममस्वरः ।
मेघरागो मन्द्रहीनो ग्रहांशन्यासधैवतः ॥
(संगीत-रत्नाकर)

श्याम बसन है मेघ को गहे हाथ पै वारि
अति आतुर चातुर खरा गावत सुरति बिचारि
(राग—रत्नाकर)

सवैया

मेघ मल्लार महा द्युति सुन्दर इन्द्रहि की छबि आप बनो ।
पहिर पट श्याम गहे कर वारि जु ग्रन्थन में यहि भाँति भनो ।
जैसो जहाँ चहिए सोई अंग सु नैसिय भाँति सों ठीक ठनो ।
काम को आतुर है अति हो तिय के रति का चित चाव घनो ॥

यह काफ़ी ठाठ का षाड़व राग है, और आरोही व अवरोही में धैवत वर्जित है। षड्ज वादी स्वर है और पंचम संवादी है। रिषभ पर आंदोलन है। गंधार गुप्त रहती है, अथवा सिर्फ़ कण गंधार का लगाते हैं। एक मत से गंधार व धैवत यह दोनों स्वर इसमें वर्जित हैं, और इसी मत के अनुसार सूरदासी इस राग से बिलकुल अलग हो जाता है। सूरदासी मलार में सारंग का अंग अधिक है, सो इस राग में धैवत व गंधार का वर्जित करना अति आवश्यक है। यह चतुर पंडित का मत है। बहुधा धैवत भी गंधार के साथ वर्जित करके मेघ गाया जाता है। इसी राग में जब धैवत भी मिला लेते हैं तो इसे सूरदासी मलार कहते हैं। मध्यम व रिषभ की संगत इस राग में रहती है तथा इसी राग की मूरत दिखाई देती है। इस राग का स्वभाव बहुत स्थिर है, इसलिए इसको विलंबित लय में और तार स्थान व मध्य स्थान के स्वरों से गाते हैं। यह राग वर्षा-ऋतु में अधिक प्रिय लगता है।

आरोही—स रे म प नी स

अवरोही—स नी प म रे स

गीत लक्षण

चतुर नर गाय अब मेघ मलार को
'नी स रे म म प नी प नी स' मेल कर हार को
सारंग धर अंग 'स' को गमक युत तार सुर
'म मं रे सं रे नी सं नी नी प'
मध्यम सो संचार 'म प' से 'नी प' कर
भूलत रिषभ स्वर धैवत छुपायो
आड़ान को रूप उत्तर धरत अंग
वर्षा-ऋतु गायो राग मलार को

ध्रुपद—चौताला

बरसत घन साथ बूंद कारे कारे,
उमँड़ घुमँड़ घुमँड़ उमड़ छाइ घटा श्याम सेत,
बरन बरन गगन घिरि आये मतवार
गरज गरज बरस बरस तर तराय झर झराय,
बादल गरजे बिजुली चमके पछी घटा तिलक बीच,
कोयल हू कूक करत पपिहा पीउ पीउ रटत,
झींगुर झिंकार रहे भँवरा भँवराय रहे,
दादुर करत शोर मोर हू पुकारे।

स्वरलिपि और ताल चिह्न

(१) मंद्र स्थान स्वर— म, प, ध, नी,
(२) मध्य स्थान स्वर— स, रे, म, प, नी,
(३) तार स्थान स्वर—स, रे, म,
(४) शुद्ध स्वर स, रे, म, प, नी,
(५) कोमल स्वर— नी, ध, रे, ग,

मेघराग का चित्र

(६) कई स्वर एक मात्रा में लिखने का चिह्न—रेमपनी, सरे, संरेंसं

(७) मींड का चिह्न— प म ग, स ध स, गर मर ग

(८) अदोलित स्वर चिह्न—र र र
रे प म ध

(९) कन का चिह्न—ग, प ग, सग म

(१०) सम का चिह्न ×

(११) खाली का चिह्न ०

स्थायी

×		०		२		०		३		४	
धा	धा	धि	ता	क	ड़ागे	त्रिं	ना	तिट	कत	गदि	गिन
										ग	
स	स	र	र	र	र	र	प	म	म	र	र
ब	र	स	न	घ	न	खा	ऽ	थ	बूं	ऽ	द
म	—	र	—	स	रम	पन	संर	मर	सन	पम	रस
का	ऽ	रे	ऽ	ऽ	काऽ	ऽऽ	ऽऽ	ऽऽ	ऽऽ	ऽऽ	रेऽ

अंतरा

र	स	रम	म	म	प	प	प	म	म	प	न
उ	मं	ड़ऽ	घु	म	ड़	घु	म	ड़	उ	मं	ड़
प	स	म	सं	न	—	प	म	र	म	र	स
छा	ऽ	ई	घ	टा	ऽ	श्या	ऽ	म	सें	ऽ	म
										ग	
र	स	र	न	स	र	र	प	म	म	र	—
ब	र	न	ब	र	न	ग	ग	न	घि	री	ऽ
म	—	र	—	म	रम	पन	मंर	मरं	सन	पम	रम
आ	ऽ	ये	ऽ	ऽ	मऽ	तऽ	बाऽ	ऽऽ	रेऽ	ऽऽ	ऽऽ
र	स	र	र	र	र						
ब	र	स	त	घ	न						

आभोग

म	प	प	न	प	म	न	सं	म	स	मर	र
ग	र	ज	ग	र	ज	ब	र	म	ब	रऽ	स
							प				गं
सं	स	सरं	म	र	स	सं	पन	प	प	प	गंरं
त	र	तऽ	रा	ऽ	थ	झ	रऽ	झ	रा	ऽ	यऽ
संरं	र	मरं	र	मर	र	म	र	न	मं	सं	स
बऽ	द	लऽ	ग	रऽ	जे	बि	जु	ली	च	म	के
								ग			
सं	—	न	प	प	—	प	म	र	म	र	स
प	ऽ	खो	घ	टा	ऽ	ति	ल	क	बी	ऽ	च

सञ्चारी

रे	स	नस	रे	म	रे	म	—	प	न	प	म
को	ऽ	यऽ	ल	हू	ऽ	कू	ऽ	क	क	र	त
न	प	—	नपं	रें	—	मं	रें	सं	मंरें	संन	पम
प	पी	ऽ	ऽहा	पी	ऽ	उ	पी	उ	रऽ	टऽ	तऽ
(ग) रे	म	प	न	प	—	न	सं	न	प	प	म
भिं	ऽ	गु	र	भिं	ऽ	का	ऽ	र	र	हे	ऽ
प	(म ग) रे	—	रे	स	रमपन	सं	—	न	प	सं	—
भ	व	ऽ	र	भ	वऽऽऽ	रा	ऽ	य	र	हे	—
स	—	नप	म	—	न	प	—	म	प	न	प
दा	ऽ	हुऽ	र	ऽ	क	र	ऽ	त	शो	ऽ	र
म	पन	मप	(स) न	स	स	नप	मर	मप	नसं	नप	म
मो	ऽऽ	रऽ	हू	ऽ	पु	काऽ	ऽऽ	ऽऽ	ऽऽ	ऽऽ	रे

राजाराम भार्गव

१ टेलिविज़न

[अ]सम्भव को सम्भव बनाने में विज्ञान दिन-पर दिन जो सफलताएँ प्राप्त कर रहा है, उसे देख हम भारत-वासियों का होश दंग हो जाता है। अघट घटनाएँ घट रही हैं, और दिन-दिन प्रकृति पर हमारा अधिकार बढ़ता ही जाता है। कहा जाता है कि रावण ने अपने राजत्व-काल में सूर्य, चन्द्र, वायु आदि देवताओं को अपने वश में कर लिया था। किंतु, हमें जहाँ तक विश्वास होता है, वह यह है कि उस समय विज्ञान उस उन्नतावस्था को पहुँचा हुआ था, जब प्रकृति पर मनुष्यों का पूर्ण अधिकार था, और वह जिस प्रकार चाहता था प्रकृति से काम लिया करता था। हम लोग भी प्रकृति पर विजय प्राप्त करने की चेष्टा कई वर्षों से कर रहे हैं और इस समय हमें जो सफलता मिली है, उसे सन्तोष-जनक ही कहा जा सकता है।

ऐलेक्ज़ेन्डर ग्रेहम बेल ने तार द्वारा अपने पहले शब्द को भेजकर, मारकोनी ने बेतार द्वारा प्रसिद्ध अक्षर 'S' को ऐटलान्टिक के पार भेजकर जैसी हलचल संसार में उपस्थित कर दी थी वैसी ही हलचल आज टेलिविज़न की यथार्थता सिद्ध होने पर पाश्चात्य जगत् में मच रही है।

आज से प्रायः बीस वर्ष पहले, जब पहले-पहल मनुष्यों ने वायुयान में बैठकर आकाश की सैर की थी, उस समय के बाद यदि कोई वैसा ही महत्त्व-पूर्ण आविष्कार हुआ है, तो वह है टेलिविज़न। टेलिविज़न की आविष्कार-सम्बन्धी एक विशेषता यह है कि उसे किसी एक मनुष्य ने आविष्कृत नहीं किया है, इसलिए आविष्कार का सेहरा किसी एक के सर नहीं बँध सकेगा। कई स्वार्थत्यागी वैज्ञानिकों ने मिलकर भिन्न-भिन्न दिशाओं से इसका आविष्कार किया और अन्त में अपने विचारों को एक साथ सम्बद्ध कर टेलिविज़न को संसार के सामने ला रखा है। इस समय ये ही वैज्ञानिक इसे व्यावहारिक बनाने और साधारण मनुष्यों के काम के उपयोगी बनाने में लगे हुए हैं। आज भी अमेरिका के नौ भिन्न-भिन्न मनुष्य और कंपनियाँ टेलिविज़न में और भी सुधार करने में लगी हुई हैं। इन में मुख्य हैं—नवयुवक स्काच आविष्कारक जान एल० ब्लायड, जेनरल इलेक्ट्रिक कंपनी के डा० ई० एफ० डब्लयू० एलेक्ज़ेन्डरसन, वाशिंगटन के आविष्कारक सी० फ्रैंसिस जेनकिंस, और बेल टेलिफ़ोन प्रयोगशाला के वैज्ञानिक।

टेलिविज़न है क्या चीज़? जिस प्रकार 'टेलिफ़ोन' द्वारा दूर-दूर बैठे हुए दो मनुष्य आपस में बातें कर सकते हैं, उसी प्रकार दूर बैठे हुए किसी मनुष्य को या किसी दृश्य को देखना टेलिविज़न कहलाता है। किंतु

टेलिफ़ोन में जिस प्रकार तार व्यवहृत होते हैं, उस प्रकार टेलिविज़न में तार की आवश्यकता नहीं। बेतार द्वारा, रेडियो द्वारा दूरस्थ पदार्थों या दृश्यों को देखना टेलिविज़न ही ने संभव कर दिया है। इसके द्वारा कांग्रेस के सभापति की वक्तृता को हम अपने ही घरों में बैठकर सिर्फ़ सुनही नहीं सकते किंतु उनके चेहरे, हाव-भाव, अंग-सञ्चालन को भी देख सकते हैं। बड़े लाट की बड़ी व्यवस्थापक सभा में बोलते हुए हमलोग टेलिविज़न द्वारा बम्बई या कलकत्ते से भी देख सकते हैं। चीन में आजकल घमासान लड़ाई हो रही है। उस सम्बन्ध के जो समाचार आते हैं, उनमें कुछ सत्य, कुछ अर्ध-सत्य और ज़्यादातर झूठे होते हैं, किंतु, यदि, कुछ साल पहले टेलिविज़न का आविष्कार हुआ होता, तो आज हम अपने बैठकख़ानों में गप्प लड़ाते समय वहाँ का सारा दृश्य देख सकते। कल तक अच्छे-अच्छे वैज्ञानिकों को टेलिविज़न मे विश्वास नहीं था। यद्यपि इसकी चर्चा बहुत दिनों से सुनी जा रही थी, तथापि लोगों का कहना था कि भला यह कब संभव है कि बिना किसी पदार्थ की सहायता के दो दूरस्थ मनुष्य एक दूसरे को देख सके। उस दिन जब 'बेल टेलिफ़ोन लैबोरेटरी' ह्विपेनी (Wheppiny) में साठ बड़े-बड़े वैज्ञानिक तथा इंजीनियरों को वाणिज्य मन्त्री हरबर्ट हूवर का चित्र, जो वाशिंगटन से बातें कर रहे थे, दिखलाया गया, तब लोगों ने दांतों तले अपनी अँगुली दबाई। यह चित्र टेलिविज़न द्वारा उन मनुष्यों के सामने टंगे हुए पर्दे पर पड़ रहा था। हूवर ने अपना संदेश दिया, लोगों ने उनके हिलते हुए होठों तक को देखा। संदेश ख़त्म हो जाने पर पर्दे पर वाशिंगटन के 'स्विचबोर्ड' के पास बैठी हुई 'टेलिफ़ोन-बालिका' दिखलाई पड़ी। ह्विपेनी की एक स्त्री ने हास्योत्पादक बातें कह लोगों को ख़ूब हँसाया। इस प्रकार न्यूयार्क ने वाशिंगटन को और वाशिंगटन ने न्यूयार्क को देखा! टेलिविज़न की प्रथम परीक्षा इस प्रकार सफल हुई।

कहना नहीं होगा कि टेलिविज़न की कार्यवाही समझने के लिए उच्च विज्ञान का ज्ञान होना आवश्यक है। साधारण लोग जो विज्ञान के मामूली सिद्धांतों को भी नहीं जानते, उनके लिए टेलिविज़न एक रहस्यमय पहेली है। किंतु तो भी कुछ शब्दों में इसका विवरण देना आवश्यक जान पड़ता है। मै ऊपर लिख आया हूँ कि टेलिफ़ोन से इसकी कार्यवाही का निकट संबंध है। टेलिफ़ोन से क्या होता है? भिन्न-भिन्न शक्ति के शब्द-तरंग वैद्युतिक धक्के (Electrical impulses) में परिणत होकर भेजी जाती हैं। ये धक्के ग्रहण करने के स्थान में पुनः शब्द-तरंगों में परिणत हो जाते हैं और इन्हीं शब्दों को हम सुन पाते हैं। टेलिविज़न में भिन्न-भिन्न शक्ति के प्रकाश-तरंग वैद्युतिक धक्कों में परिणत होते हैं, और ये पुनः प्रकाश-तरंग बन जाते हैं, जिन्हें दूसरे सिरे के लोग देख सकते हैं। इस काम को एक अद्भुत वैद्युतिक नेत्र (Electrical eye) संपादित करता है। यह मैशीन प्रकाश ग्राहिका होती है। जब इस पर प्रकाश पड़ता है, तब वह विद्युत्-धारा में परिणत हो जाता है। यह विद्युद्धारा प्रकाश के परिमाणानुसार धीमी या तीव्र होती है। इस प्रकार यह मैशीन भिन्न-भिन्न प्रकार की प्रकाश-तरंगों को वैद्युतिक धक्कों में परिणत कर देती है। तेज़ रोशनी बड़ा धक्का और छाया छोटा धक्का पैदा करती है। ये धक्के 'ईथर' या तार द्वारा एक स्थान से दूसरे स्थान को भेजे जाते हैं।

ग्राहक-स्थान पर ये धक्के एक विशेष प्रकार की व्यवस्था द्वारा पुनः प्रकाश के रूप में दृष्टिगोचर होते हैं और अंत में मनुष्य की प्रति-आकृति या किसी दृश्य की हू-ब-हू छाया दीख पड़ती है। तार द्वारा भी फ़ोटो भेजे जाते हैं; इसका विवरण इन कालमों में हो चुका है। उसमें और रेडियो द्वारा चित्र भेजने मे यदि कोई फ़र्क़ है तो गति का। तार द्वारा किसी चित्र को भेजने और ग्रहण करने मे कई मिनट लग जाते हैं, किंतु टेलिविज़न मे प्रति सेकेंड १८ चित्र भेजे जाते हैं। जिन लोगों को चल-चित्रों का सिद्धान्त ज्ञात है, वे जानते हैं कि किसी भी पदार्थ का दृष्टि ज्ञान ⅛ सेकेंड तक रहता है। इस लिए यदि एक सेकेंड में हम ८ चित्रों को देखें तो उनके देखने में जो समय का व्यवधान होता है, उसका हमें ज्ञान नहीं होता। इसीलिए, सेकेंड में १८ चित्रों को पर्दे पर देखने से भी हमें वे चित्र निरंतर दीखते जान पड़ते हैं। एक मनुष्य के देखने के लिए पर्दे छोटे और अनेक मनुष्यों के लिए बड़े होते हैं। ग्राहक स्थान पर एक 'ब्राडकास्टिंग' सेट भी रहता है, जिसके द्वारा गृहीत शब्द ऊँचे होकर सबको सुनाई पड़ते हैं। इससे यह फ़ायदा है कि दूर के लोगों को देखने के अतिरिक्त उनकी बातें भी

सुन सकते है । कुछ लोगों का कहना है कि घर मे बैठकर हम लोग थिएटर, क्रीकेट, फुटबाल मैच, घोड़ों की दौड़ आदि देख सकेंगे ।

यदि पाठक इस विषय मे अधिक जानना चाहे तो मेरे पास लिखें । मै प्रसन्नतापूर्वक इस विषय मे अधिक बाते लिख भेजूँगा ।

× × ×

रेडियो द्वारा तीनसौ मील की दूरी तक चित्र भेजना सम्भव है ।

२. एक घंटे मे दोसौ मील

सबसे तेज़ वायुयान की गति घंटे मे २७८ मील है । किंतु वायुयानों की बात छोड़ देने पर, अन्य प्रकार के स्थल या जल यानों मे ऐसा कोई भी नहीं है, जिसकी गति घंटे मे दोसौ मील हो । हाल मे मोटरों की एक दौड़ हुई थी, जिसमे मेजर एच० ओ० डी० सेग्रेव की मोटर ने प्रति घंटा २०७ मील की दौड़ लगाई । आपका कहना है कि यह बात मुझे तब तक मालूम नहीं हो सकी, जब तक दौड़ ख़त्म न हुई । क्योंकि "हमे प्रति क्षण अपने सामने के आधे मील के रास्ते को देखते रहना पड़ता था । यदि मैं एक क्षण के लिए भी अपनी आँख को रास्ते पर से हटाता तो हमारे और मोटर के पक्ष मे ख़तरा अवश्यम्भावी था । इसलिए मै 'स्पीडो मीटर' की ओर एक बार भी नहीं देख सका ।"

स्थल-यानों की द्रुतगति का बाधक हवा का रुकाव Wind resistance है । किसी यान की गति को दुगुना करने मे दुगुने शक्ति-शाली एंजिन की आवश्यकता नहीं होती, किंतु अठ-गुने शक्तिवाले एंजिन की । सेग्रेव की मोटर को ही लीजिए । इसे चलाने के लिए ९०० अश्व शक्ति वाला एक एंजिन लगा था, इसकी प्राय आधी शक्ति वायु के दबाव का, जो २०० मील की गति पर चलने से आधे टन के बराबर होता है, सामना करने में ख़र्च हुई । इसलिये द्रुत गति से चलने वाली मोटरें साधारण मोटरों सी न होकर ख़ास तरह की होती हैं जिनमे हवा की रुकावट यथासंभव कम होती है । ऐसी मोटरों मे टायर भी विशेष प्रकार के लगाए जाते है । ऊपर के मोटर मे जो टायर लगाया गया था, उसे बनाने मे आविष्कारक ने डेढ़ साल व्यतीत किया था । क्योंकि यदि दौड़ के बीच मे अकस्मात टायर फटता तो चालक की तुरंत ही मृत्यु हो जाती । इसलिए टायरों पर भी विशेष ध्यान रखा जाता है ।

कहा जाता है कि सेग्रेव जिस गति से अपनी मोटर पर चला है, उस गति से आजतक स्थल पर कोई भी नहीं चल सका है । वाष्प-एंजिन घंटे मे १२० मील से तेज़ नहीं चलता । किंतु, साथ ही यह भी प्रश्न उठता है— क्या तीव्र-गति का अंत हो गया ? क्या इस गति से भी तेज़ गतिवाला कोई यान बन सकेगा ? उत्तर मिलता है कि अठारह महीने के अन्दर ही अमेरिका का एक कारीगर एक ऐसी मोटर ससार के सामने ला रखेगा, जो सेग्रेव की मोटर को भी पीछे छोड़ देगी । उसकी चाल सेग्रेव की मोटर की चाल से—२०७ मील से अधिक होगी ।

× × ×

३. रोग निवारक सूर्य-रश्मि

जहाँ जिस पदार्थ की अधिकता होती है, वहाँ उसका कुछ भी मूल्य या क़द्र नहीं होती । भारतवर्ष मे सूर्य प्रकाश की कमी नहीं है, इसलिए हम लोग इसके रोग-निवारक गुण से बहुत कम लाभ उठाते है । सूर्य-रश्मि के तीव्र बैगनी Ultra violet rays हिस्से में बहुत से रोगों को दूर करने, अनेक दुष्टाणुओं को नष्ट करने और प्राणियों को स्वास्थ्यवान बनाने की शक्ति है । प्राचीनकाल ही से सूर्य-किरण बहुत से रोगों को दूर करने के काम में लगाई जा रही है, किंतु इधर हम लोग इसके गुणों को धीरे-धीरे भूलते जा रहे है । मगर पाश्चात्य देश वालों में इसके गुणों का बड़े ज़ोरों से प्रचार हो रहा है । लुई कूने का Sun bath काफ़ी प्रसिद्धि पा चुका है । स्विट्ज़रलैंड के ऊँचे-ऊँचे पहाड़ों पर सूर्य-चिकित्सा के कई
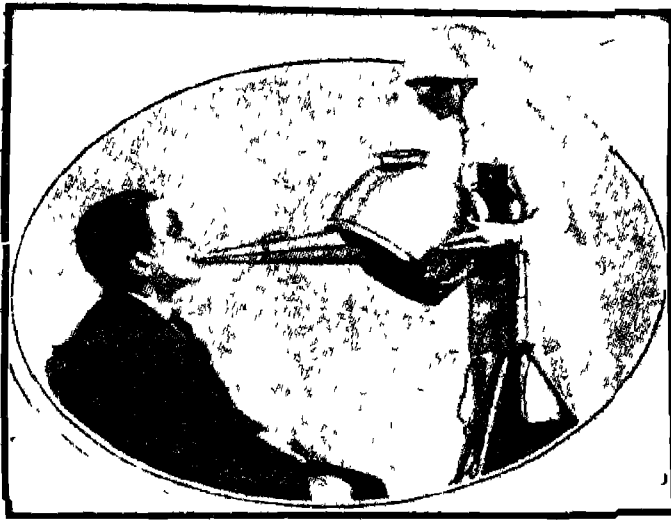
कृत्रिम प्रकाश पैदा करने वाली मैशीन

औषधालय बन चुके है। किंतु पाश्चात्य देश वालों को वे सुविधाएँ उपलब्ध नहीं हैं, जो इस देश वालों को है, क्योंकि यहां जैसा सूर्य-प्रकाश वहाँ सब समय नहीं मिलता। इसलिये उन्हें कृत्रिम प्रकाश पैदा करना पड़ता है। चित्र में जो मैशीन दिखलाई गई है, वह नील बेंगनी प्रकाश तैयार करती है, इसे पीकर लोग बहुत से रोगों से मुक्ति पा रहे है। यह मैशीन लन्दन के एक अस्पताल में दिखलाई गई थी। आशा की जाती है कि इसके प्रचार से पाश्चात्य देश के रोगी लाभ उठावेंगे। क्या भारतवासी सूर्य-प्रकाश के गुणों को समझेंगे, और उससे लाभ उठावेंगे ?

× × ×

४. मनुष्य-शरीर क्या है

शायद आप समझते है कि आपका शरीर धूल-कणों से बना हुआ है। किंतु बात ऐसी नहीं है। आप सरेस (Glue) के बने हुए हैं, अंतत आजकल के प्रधान वैज्ञानिकों का यही मत है। जिस पदार्थ के आप बने हुए हैं, उसका वैज्ञानिक नाम "कोलायड" (Colloid) है। यह लुआबदार पदार्थ है, जिसमें पदार्थ झूलता रहता (Suspended) है। हम लोगों ने सीखा है कि पदार्थ तीन प्रकार के—ठोस, तरल और वायव्य—होते है। इस श्रेणी में एक और पदार्थ का समावेश हुए बहुत दिन नहीं हुए। इसे "कोलायड" कहते हैं। हमारे शरीर के पुट्ठे, रग-रेशे, आदि सभी इसी पदार्थ के बने हुए है। वैज्ञानिकों का ऐसा ही विचार है।

कीचड़, दूध तथा प्राय. सभी खाद्य पदार्थ, जिसे पशु या पौधे तैयार करते हैं, इस श्रेणी के ही पदार्थ हैं। कोलंबिया विश्वविद्यालय के डा० एच० एल० फ़िशर ने अमेरिकन केमिकेल सोसाइटी के सामने वक्तृता देते समय कहा है कि 'मनुष्य और रबर में यदि कुछ फ़र्क़ है, तो सिर्फ़ इतना ही कि रबर कृत्रिम उपाय से तैयार किया जा सकता है और मनुष्य नहीं।' पेनसिलवेनिया विश्वविद्यालय की एक परीक्षा में एक जीवित कोष को काटकर अणुवीक्षण यंत्र के नीचे रखा गया। उससे पता लगा कि कोष में का 'प्रोटोप्लाज्म' रबर की भांति बढ़ता और पुनः अपनी अवस्था को प्राप्त हो जाता है। इससे तो यही निष्कर्ष निकलता है कि मनुष्य भी रबर है। कैसा आश्चर्यजनक सिद्धांत है !

× × ×

५. उड़न-खड़ाऊँ

लड़कपन में उड़न खड़ाऊँ की कई कहानियाँ मैंने सुनी थीं, उसकी कल्पना भी मैंने अपने मन में कर ली थी, किंतु उस कल्पना से आज जिस खड़ाऊँ के विषय में लिख

उड़न खड़ाऊँ

रहा हूँ, वह भिन्न है। जर्मन इंजीनियर गेबहार्ट बहुत दिनों से छोटी-छोटी मोटरों से परीक्षाएँ कर रहा था। उसने हाल में जो मोटर बनाई है, वह ऐसीटलीन गैस से चलती है; छोटी और हलकी है। यह मोटर १८ से २२ मील प्रति घंटे के हिसाब से, यदि छ घंटे तक चलती रहे, तो सिर्फ़ चार पैसे ख़र्च होंगे। गेबहार्ट ने ऐसी ही एक मोटर एक छोटे वायुयान में लगाई। वायुयान को चलाने में वही ख़र्च पड़ता है, जो एक मोटर साइकिल को चलाने में। इसके बाद आपने एक जोड़ा खड़ाऊं बनाया और उसके साथ इस मोटर को लगा दिया। अब इस खड़ाऊँ पर चढ़कर आप मज़े से १८ से २२ मील प्रति घंटे के हिसाब से चल सकते हैं। हाँ, "बेलेंस" दुरुस्त करने में शायद आपको कुछ समय लगेगा। ख़र्च के विषय में तो ऊपर लिखा ही जा चुका है। कम ख़र्च और बालानशीं। इस खड़ाऊँ के प्रचार से मोटर, मोटर साइकिल, साइकिल आदि की उपयोगिता कम हो जायगी, इसमें शक नहीं। खड़ाऊँ में नीचे पहिए लगे हुए हैं। उन्हीं पर वह दौड़ता है, उसमें स्वयं तेल दिया जाता है और पानी द्वारा ठंडा किया जाता है। यदि इस प्रकार के खड़ाऊं सस्ते दामों बाज़ार में बिकने लगें, तो बिकते देर न लगेगी।

× × ×

६. गीत गानेवाली मछलियाँ

संसार विचित्रताओं का भांडार है। इस पृथ्वी पर न मालूम कितने आश्चर्यजनक पदार्थ और प्राणी पड़े हुए हैं, जिनके विषय में सुन-सुनकर दाँतों तले अँगुली दबानी पड़ती है। अभी-अभी घोंसले में रहनेवाली मछलियों का पता लगा है, और अब पता लगता है कि लंका के पास गीत गानेवाली मछलियाँ रहती हैं। आश्चर्य तो तब होता है, जब हम सुनते हैं कि इन मछलियों के न तो गला होता है और न शब्दोत्पादक नली (Vocal cords)। कैसा आश्चर्य है!

× × ×

७. कागज़ के बर्तन

हाल में इँगलैंड में एक ऐसी प्रथा पेटेन्ट कराई गई है, जिसके द्वारा मोटे कागज़ (दफ़्ती) को दबाकर रसोई पकाने के भिन्न भिन्न प्रकार के बर्तन बनाए जा सकते हैं। इस प्रथा द्वारा बने हुए बर्तन न तो पानी में गलते हैं, न उन पर तेज़ाब का प्रभाव ही पड़ता है, और न आग में जलते ही हैं। इस प्रकार कागज़ के बर्तन बनाकर उन्हें ऐस्फ़ालट, राल, चपड़ा और स्पिरिट के घोल में डाल दिया जाता है, और उन्हें सूखने दिया जाता है। इससे बर्तनों में कुछ और विशेष गुण आ जाते हैं। इसके, मज़बूत और सस्ते होने के कारण इनका प्रचार होना कठिन नहीं है।

× × ×

८. दुबला बनाने की मशीन

जब सभी कामों के लिए मशीनें बन रही हैं, तब मोटे लोगों को दुबला-पतला बनाने की मशीन क्यों न बने। अभी उस दिन ठिंगने मनुष्यों को लम्बा बनाने की मशीन बनी थी, अब मोटे लोग ख़ुशी मनावें, वे इच्छानुसार दुबले बन सकेंगे। दवा खाने की ज़रूरत नहीं; सिर्फ़ अपनी ख़ुराक कम कीजिए। यह मशीन कोलम्बिया विश्वविद्यालय की बालिका-विद्यार्थियों के मस्तिष्क की

मोटा मनुष्य दुबला किया जा रहा है

उपज है। किसी मोटे मनुष्य को लिटा दीजिए, उसके मुँह पर रबर का 'माउथ पीस' लगा दीजिए और उसकी नाक को चिमटी से दबा दीजिए। 'माउथ-पीस' रबर की एक नली से लगा रहता है, जिससे हवा इले-

निट्रुक ऐसिड् द्वारा बाहर निकाली जाती है। एक घड़ी (Dial) हवा के दबाव को दस मिनट तक बतलाती रहती है। इससे यह पता लग जाता है कि उस मनुष्य को जीवित रखने के लिए कितनी 'कलोरीज़' या भोजन की कम-से-कम आवश्यकता होती है। इसके बाद का काम है उसका भोजन घटाकर सिर्फ़ उतना ही कर देना जितने से वह जीवित रह सके। भोजन कम हो जाने से मुटाई स्वयं कम होने लगेगी। किंतु, कोई भी मनुष्य अपना भोजन कम करना नहीं चाहेगा, इसलिए क्रियों की यह चेष्टा शायद व्यर्थ ही जायगी।

× × ×

९. पीतल का मस्तिष्क

वाशिङ्गटन की एक प्रयोग-शाला में कई महीनों से पीतल का एक मस्तिष्क काम आ रहा है। उसका काम है, कल का और कल से सौ वर्ष बाद का, संसार के किसी भी बन्दरगाह में ज्वार-भाटे के जल की ऊँचाई को सूचित करना। कहा जाता है कि यह मैशीन ६० गणित-ज्ञों का काम किया करती है। इसके हिसाब फ़ी-सैकड़े ठीक निकलते हैं। इस समय यह मैशीन संसार के सिर्फ़ ८९ बन्दरगाहों के ज्वार-भाटे को ही बतलाती है, किन्तु इन भविष्यद्वाणियों के आधार पर वैज्ञानिक अन्य ३५०० बन्दरगाहों के ज्वार-भाटे की ऊँचाई को दो साल पहले भी बतला सकते हैं। आर० ए० हैरिस ने इस मैशीन को खोज निकाला था, और ई० जो० फ़िशर ने इसे पन्द्रह सालों में बनाया। इसके १५,००० हिस्से हैं और सब पीतल के ही हैं। इसीलिए इसका नाम 'पीतल का मस्तिष्क' रखा गया है। मैशीन गणना करते समय 'लीप ईयर' का भी ख़याल रखती है, इससे भूल होने का डर सर्वथा जाता रहता है।

× × ×

१०. संसार की सबसे बड़ी पुस्तक

न्यूयार्क में संसार की सबसे बड़ी पुस्तक प्रदर्शित हुई है। वज़न में वह ४०० पौंड या सवा५ मन है। इसका नाम है—"The story of the South in the Building of the Republic." इसमें कुल दो हज़ार शब्द हैं। इस महत्काय पुस्तक के सफ़े बिजली द्वारा उलटे जाते हैं।

श्रीरमेशप्रसाद, बी० एससी०

१ जुताई
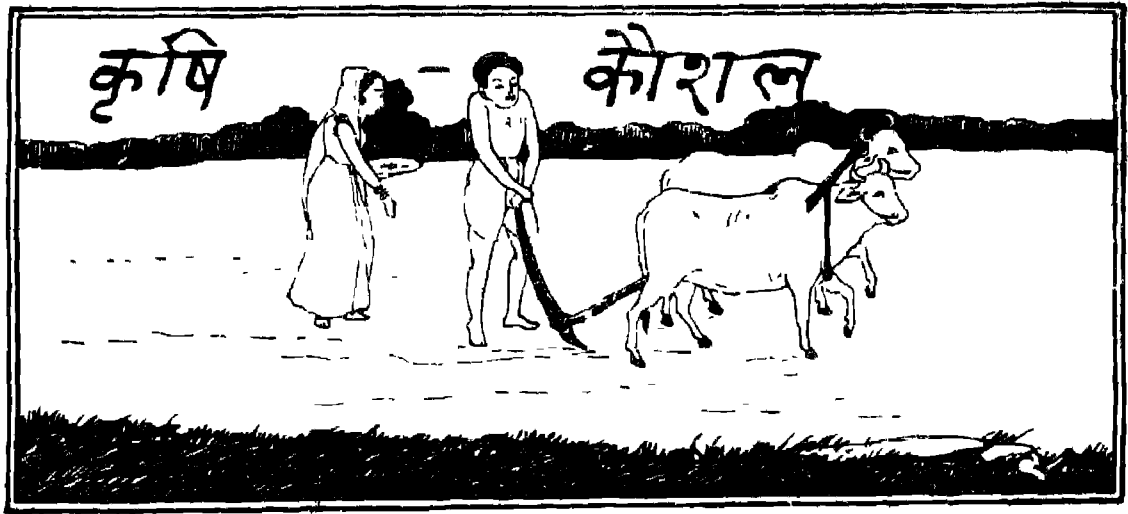
त में बीज बोने के पहले जुताई करने की आवश्यकता होती है। हल, बखर, हैरो आदि चलाकर खेत की मिट्टी को ढीली करने की क्रिया को ही 'जुताई' नाम दिया गया है। पौधे की बाढ़ के लिए मिट्टी का ढीला किया जाना बहुत ही ज़रूरी है। अच्छी तरह से ढीली की हुई मिट्टी में पौधे को ज्यादा खुराक मिलती है, जिससे वह खूब फूलता-फलता है और पैदावार ज्यादा होती है।

खेतों की मिट्टी चट्टानों के महीन चूर्ण और वनस्पति के सड़े हुए पदार्थ के मिश्रण से बनी होती है। पौधे को अपने जीवन में जितनी भी भोजन की ज़रूरत होती है, वह सब उसे ज़मीन में से ही प्राप्त होता है। खेत की मिट्टी में मिले हुए जैव और खनिज तत्त्व ही पौधे के भोज्य-पदार्थ हैं। जड़ें इन पदार्थों को ग्रहण कर पौधे के अवयवों में पहुँचाती हैं। पत्तों में पाचन-क्रिया सम्पन्न होकर आहार-रस सभी अवयवों में फैला दिया जाता है। पौधे की जड़ों के वृद्धिशील अग्रभाग पर महीन रोयें होते हैं। ये रोयें महीन नलों के समान पोले होते हैं। इन रोओं पर मिट्टी के कण चिपके रहते हैं। रोयें इन्हीं कणों में से खुराक ग्रहण करते हैं। ज्यों-ज्यों जड़ें बढ़ती जाती हैं, वे नये-नये कणों से भोजन ग्रहण करते रहते हैं। यह क्रिया किस तरह से सम्पन्न होती है, इस पर यहाँ कुछ नहीं लिखा जा सकता। किसी दूसरे लेख में इस पर विचार किया जायगा।

मिट्टी के कण जितने ही अधिक छोटे होंगे, पौधों की जड़ों को उतनी ही अधिक जगह (Surface) खुराक ग्रहण करने को मिलेगी और इस प्रकार वे अधिक भोज्य-पदार्थ ग्रहण करने में समर्थ हो सकेंगी। इस पर से यह बात साफ़ तौर से मालूम हो जाती है कि खेत की मिट्टी का महीन (स्मरण रहे, आटे जैसा महीन नहीं) करना बहुत ही ज़रूरी है। और इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए खेतों में जुताई की जाती है।

जुताई से और भी कई प्रकार के लाभ होते हैं। उनमें से मुख्य-मुख्य नीचे दिए जाते हैं

१ खेत की मिट्टी में के अधिकांश भोज्य-पदार्थ अघुलनशील अवस्था में रहते हैं। वे पानी में घुलने योग्य नहीं होते। और जब तक ये पदार्थ पानी में घुलकर शरबत का रूप ग्रहण नहीं कर लेते, तब तक पौधे की जड़ों पर के महीन रोयें उन्हें सोख नहीं सकते हैं। जुताई से खेत में मिट्टी ढीली होजाती है, और मिट्टी उलट-पुलट भी होती है, जिससे हवा, प्रकाश और आतप के प्रभाव से अघुलनशील द्रव्य जल में घुलने योग्य होजाते हैं।

२ मिट्टी के उलटने से खर-पतवार की जड़ें और फ़सल को नुकसान पहुँचानेवाले कीड़ों के अंडे आदि ज़मीन की सतह पर आजाते हैं, जिससे धूप के कारण वे मर जाते हैं। कीड़ों के अंडे आदि को पक्षी भी चुनकर खा जाते हैं।

३. बखर, हैरो आदि से मिट्टी ढीली करने से ज़मीन के अन्दर की तरी भाप बनकर नहीं उड़ पाती है, और बरसात के पानी का एक बड़ा भाग खेत की मिट्टी के अन्दर संचित किया जा सकता है। यह पानी तब रबी की फ़सलों के काम में आ सकता है।

४ ज्वार, मक्का, कपास आदि के बोने के बाद फसलों के चार-पाँच इंच बढ़ जाने पर दो क़तारों के बीच की मिट्टी बखर आदि से ढीली करने से फ़सल की जड़ों को ऑक्सिजन (प्राणप्रद-वायु) मिलता रहता है, जिससे पौधों को रोग नहीं लगने पाता।

ऊपर जुताई के उद्देश्य और उसके लाभों पर संक्षेप में लिख आए हैं। अब इस बात पर विचार किया जायगा कि जुताई किस प्रकार की जानी चाहिए।

फ़सल की जड़ें ढीली ज़मीन में अधिक गहराई तक जाती हैं। इसलिए यह ज़रूरी है कि गहरी जुताई की जाय। देशी हलों से यह काम हो नहीं सकता, क्योंकि ये हल ज़मीन में पाँच-छः इंच से अधिक गहरे नहीं लगते और दो चासों के बीच में ज़मीन बिना जुता रह जाती है। परिणाम यह होता है कि खेत में बहुतसी ज़मीन ढीली नहीं हो पाती और खर-पतवार नष्ट नहीं होते। मेस्टन, रैनसम, किर्लोस्कर आदि नाम के लोहे के हलों का उपयोग करने से थोड़े परिश्रम और ख़र्च से मिट्टी खूब ढीली होजाती है। ये हल ज़मीन में आठ-नौ इंच की गहराई तक घुसते हैं। लकड़ी के हल ज़मीन चीरते हैं, काटते नहीं। लोहे के हल मिट्टी काटते हैं। इसके अलावा एक खास बनावट के कारण लोहे के हल से मिट्टी पलटती भी है और ढेले भी कुछ-कुछ टूट जाते हैं। इन हलों का उपयोग करने से दो चासों के बीच में ज़मीन भी छूटने नहीं पाती। लोहे के हल के जुदे-जुदे भाग तैयार मिलते हैं। ज़रूरत पड़ने पर देहाती किसान भी, बिना बढ़ई लोहार की सहायता के, आसानी से एक भाग निकालकर उसकी जगह दूसरा जमा सकते हैं। लोहे के हलों का उपयोग करने से जुताई के अधिकांश उद्देश्य पूरे होजाते हैं।

हलों के बाद बखर, हैरो आदि का उपयोग करते हैं। इनसे खेत की सतह पर की दो-तीन इंच की गहराई तक की मिट्टी ढीली रहती है, जिससे बरसात का अधिकांश जल मिट्टी में ही संचित होता रहता है और ज़मीन में संचित किया हुआ जल भाप बन कर उड़ नहीं पाता। सतह की तीन-चार इंच गहराई तक की मिट्टी ढीली रहने से उसमें हवा खेला करती है, जिससे ज़मीन में का पानी सतह तक नहीं आ पाता है। इसके अलावा बार-बार बखर, हैरो आदि देते रहने से खेत में खर-पतवार भी नहीं उग पाते हैं। अगर खेत में खर-पतवार उगे रहेंगे, तो उनके पत्तों द्वारा अधिकांश जल भाप बनकर वातावरण में मिल जायगा।

रबी की फ़सलों में डौरे, हो आदि चलाने का रिवाज कम है। सिंचाई की फ़सलों में खुरपी से निराई करते हैं। कहीं-कहीं हाथ से चलाए जानेवाले 'हो' से सतह पर की मिट्टी ढीली करने का रिवाज है।

भारत के कई प्रान्तों में ख़रीफ़ की फसलें क़तारों में बोई जाती है। इन क़तारों के बीच की मिट्टी ढीली करने के लिए डौरे, हो आदि का उपयोग किया जाता है। डौरे बैलों से चलाए जाते हैं। पहले फ़सल की क़तारों में उगे हुए खर-पतवार को खुरपी से छील डालने पर डौरों से दो क़तारों के बीच के खर-पतवार छीले जाते हैं। इससे समय और द्रव्य की बचत होती है और सतह की मिट्टी ढीली होजाने से पौधे की जड़ों को ऑक्सिजन मिलती रहती है, जिससे वे खूब बढ़ते हैं और रोग भी नहीं लगने पाता।

इस लेख में जुताई के मुख्य सिद्धान्तों पर ही विचार किया गया है।

शंकरराव जोशी

× × ×

२ हड्डियों की खाद

लेखक ने कृषि-प्रयोगशाला पूसा में जिस प्रकार हड्डियों का गंधक के साथ सड़वा कर खाद बनवाई, और उसकी परीक्षा फ़सल पर की, इसका सारा विवरण गत अखिल-भारतीय वैज्ञानिक सम्मेलन के कृषि-विभाग में पढ़ा जा चुका है। यह लेख उसीके आधार पर लिखा जाता है।

फ़सल की उपज बीज, जलवायु खेत की जुताई, खाद, सिंचाई, आदि बातों पर निर्भर है। यद्यपि न्यूनाधिक उपज के लिये ये सभी कारण उत्तरदायी हैं, तथापि खाद का यथेष्ट और पर्याप्त परिमाण में व्यवहार अनिवार्य है। अपने परिश्रम का पूरा-पूरा फल प्राप्त करने की

इच्छा रखने वाले कृषकों को इसकी ओर ख़ूब ध्यान देना चाहिये।

फ़सल तथा पौधों को किन-किन तत्वों की आवश्यकता है और कौनसा तत्व किस रूप में उन्हें पहुँचाया जा सकता है, इत्यादि विषयों का वर्णन गत संख्याओं में विस्तारपूर्वक हो चुका है। अतः यहाँ पर यही बतला देना उचित होगा कि भारतवर्ष की मिट्टी के लिये अत्यंत आवश्यक नत्रजन और स्फुर हैं।

नत्रजन की पूर्ति तो रासायनिक खाद (जैसे—Ammonium sulphate, Nitrate of soda, Cyanamide इत्यादि), सजीव पदार्थों की खाद (जैसे—गोबर की खाद, खली, पत्ते, कूड़ा-कर्कट, मैला इत्यादि) अथवा हरी खाद (जैसे—green manuring, सन इत्यादि हरी फ़सलों का गाड़ दिया जाना) द्वारा अल्प मूल्य में हो सकती है। इनके सिवाय एक प्रकार के सूक्ष्म जंतु भी (Nitrogen fixing organisers) वायुमंडल को नत्रजन का थोड़ा बहुत संचय मिट्टी में करते रहते हैं, परंतु स्फुर की पूर्ति के लिये ऐसे कोई साधारण साधन नहीं मिलते।

स्फुर की पूर्ति खेतों में सुपरफ़ासफ़ेट स्फुर की मिट्टी (Rock phosphate) या हड्डियों के चूर्ण द्वारा हो सकती है। इनमें से पहले का मूल्य अधिक होने के कारण साधारण कृषक उसका उपयोग नहीं कर सकते, दूसरा सब जगह प्राप्य नहीं। सिर्फ़ तीसरा पदार्थ ऐसा है जो सब जगह मिल सकता है, और जिससे कृषक लाभ उठा सकते हैं। इसको यदि महीन पीसकर खेतों में डाला जाय, तो कुछ लाभ तो अवश्य होता है, परंतु जितना चाहिये उतना नहीं, क्योंकि इसका स्फुर घुलनशील नहीं होता। यदि इस खाद से पूर्ण लाभ उठाना हो तो इसके स्फुर को घुलनशील बनाकर खेतों में डालना चाहिये। इसको घुलनशील बनाने के लिये या तो गंधक के अम्ल के साथ हड्डियों को गला दिया जाय या महीन गंधक के साथ सड़ा दिया जाय।

प्रथम रीति से घुलनशील बनाने में बड़े-बड़े भवनों (कारख़ानों), बहुमूल्य यंत्रों तथा रासायनिक पदार्थों की आवश्यकता पड़ती है, परंतु दूसरी रीति से बनाने में एक पर्णकुटी और थोड़े से गंधक की ही आवश्यकता है। जिस कार्य-सम्पादन के लिये कारख़ानेवालों को कई न्यूनाधिक वैज्ञानिकों की आवश्यकता पड़ती है, वह इस पर्णकुटी में सूक्ष्म जंतुओं द्वारा सम्पादित हो सकता है। यदि इन सूक्ष्म जंतुओं को यथा-समय जल मिला करे तो दिन-रात अपने कर्तव्य-पथ पर आरूढ़ रहकर अल्प मूल्य में हड्डियों के स्फुर को घुलनशील बना देते हैं।

सूक्ष्म जंतुओं द्वारा हड्डियों के स्फुर को घुलनशील बनाने की रीति इतनी सरल है कि प्रत्येक कृषक इसको सुगमता से बना सकता है। एक नियत परिमाण में हड्डी, गंधक, बालू और जल का मिश्रण बनाकर उसे सड़ा लेना है। इस मिश्रण में गंधक से गंधक का अम्ल बनाने वाले सूक्ष्म जंतुओं को भी छोड़ना पड़ता है। इसके लिये एक मन ढेर के पीछे एक सेर पुराना सड़ा हुआ मिश्रण, जो पूसा के सूक्ष्म जंतु विभाग से बिना मूल्य प्राप्त किया जा सकता है, डाल देना चाहिये।

मिश्रण बनाने के प्रथम निम्नलिखित बातें भी जान लेना अनुचित नहीं होगा, क्योंकि सफलता इन्हीं पर निर्भर है—

(१) हड्डियों का चूर्ण कितना महीन होना चाहिए।

(२) जल तथा हवा की उचित परिमाण में पूर्ति।

(३) वर्षा के जल तथा गर्मी की गर्म हवा से खाद का बचाव।

१ हड्डियों का चूर्ण—

कई प्रयोगों से यह सिद्ध हुआ है कि जितना महीन चूर्ण इस कार्य में लाया जाय, उतना ही अच्छा है। महीन चूर्ण पर सूक्ष्म जंतुओं द्वारा बनाए हुए अम्ल का असर शीघ्र होता है। प्रयत्न ऐसा करना चाहिए कि जिसमें ३/१६ इंच से बड़ा टुकड़ा न रहे।

हड्डियों का चूर्ण हड्डी पीसने वाले कारख़ानों से भी प्राप्त किया जा सकता है, परंतु यदि ऐसे कारख़ाने निकट न हों, तो चूना या सुर्ख़ी पीसने वाली चक्कियों से भी काम चल सकता है, जिनमें एक जोड़ी बैल और एक आदमी ही की आवश्यकता है।

२. जल और हवा की पूर्ति—

(क) प्राणी-मात्र के लिये जल की आवश्यकता है। और, चूँकि, सूक्ष्म जंतु भी जीवधारी हैं, इनके लिये भी जल अवश्य चाहिए। पहले यह बतलाया जा चुका है कि न्यूनाधिक जल से भी सूक्ष्म जंतुओं के कार्य में बाधा पहुँचती है, इसलिये इस मिश्रण में २५ से ३० प्रतिशत

जल से अधिक नहीं होना चाहिए। जल की मात्रा पहचानने की सरल रीति यह है कि थोड़े से मिश्रण को यदि मुट्ठी में लेकर दबाया जाय तो गोला बन जाना चाहिए और फिर थोड़े से दबाव से यदि तोड़ना चाहें तो गोला टूट जाना चाहिए। यदि ढेला अच्छा बने या बनने पर शीघ्र टूटे, तो समझना चाहिए कि जल न्यूनाधिक है।

(ख) हवा—इस कार्य के कर्ता सूक्ष्म जन्तुओं के लिये ओषजन-मिश्रित स्वच्छ वायु होना चाहिए, क्योंकि वायु के ओषजन से ही गंधक का तेज़ाब बनता है। ढेरी में वायु का आगमन भलीभाँति होता रहे, इसलिये हड्डी और गंधक के मिश्रण में मिट्टी या बालू मिला देना चाहिए। लेखक के प्रयोगों से यह सिद्ध हुआ है कि मिट्टी की अपेक्षा यदि बालू मिलाई जाय, तो स्फुर जल्दी घुलनशील होता है।

३. वर्षा के जल तथा गर्मी काल में खाद का बचाव— गर्मी की गर्म हवा से खाद सूखने न पाए, इसलिये खाद का किसी घिरे हुए छायादार स्थान में रखना चाहिए। वर्षा से बचाने के लिये छाया भी होनी चाहिए। फ़र्श जल को अधिक न सोख ले, इसलिये उसे मोरम (कंकड़ आदि से) में खूब पिटवा देना चाहिए। सीमेंट किये हुए फ़र्श से पानी तो अवश्य रोका जा सकता है, परन्तु गंधक से जो अम्ल बनता है, वह फ़र्श को खा जाता है। इसलिये मोरम से पीटा हुआ फ़र्श ही अच्छा होगा। उत्तम तो यही होगा कि मोरम के फ़र्श पर मिट्टी की दीवारें खड़ी करली जाय और ऊपर फूस का छप्पर डलवा दिया जाय।

कई मिश्रणों में से जो मिश्रण उत्तम निकले, उनमें भिन्न-भिन्न पदार्थ निम्नांकित मात्रा में लिये गए थे। जो कृषक लाभ उठाना चाहें, इस हिसाब से बना सकते हैं।

हड्डी का चूर्ण	१०० भाग
गंधक	२५ भाग
बालू	१०० भाग
जल	४० भाग

कुछ और प्रयोगों से यह सिद्ध हुआ है कि इस मिश्रण में यदि शतांश पिसा हुआ कोयला मिला दिया जाय तो स्फुर जल्दी घुलनशील हो जाता है। ऊपर बतलाए हुए मिश्रण को छः-सात महीने तक सड़ाकर खेतों में डालना चाहिए। तीसरे-चौथे दिन खाद पर जल छिड़कवाना तथा महीने में दो-एक बार उसे चलवा देना भी अच्छा होता है।

इस रीति से तैयार किए हुए खाद की परीक्षा आलू पर की गई और उससे जो लाभ प्राप्त हुआ, वह निम्न-लिखित सारिणी से पाठकों को विदित होगा।

स्फुर की खाद ५० सेर अर्थात् लगभग छः मन हड्डी प्रति एकड़ के हिसाब से डाली गई थी।

खाद देने की उत्तम रीति यह है कि उसे आलू लगाते समय ही मिट्टी में मिला देना चाहिए।

परीक्षा सन् १९२४-२५ की फ़सल से—

नाम खाद	उपज आलू प्रति एकड़ मन	खाद से विशेष लाभ
हड्डी, गंधक और बालू का सड़ाया हुआ मिश्रण	१६८	४२ प्रतिशत
हड्डी और बालू का सड़ाया हुआ मिश्रण	१३२	१२ ,,
सुपर फ़ॉसफ़ेट (कारख़ाने में तैयार किया हुआ स्फुर का खाद)	१५९	३५ ,,
खाद नहीं दिया	११८	

यदि सुपर फ़ॉसफ़ेट का मूल्य ९०) फ़ी टन और हड्डी के खाद का मूल्य १२०) फ़ी टन और गंधक १४५) फ़ी टन के हिसाब* से समझा जाय तो २०), २४) और ३१) प्रति एकड़ के हिसाब से खाद का मूल्य पड़ता है। परंतु स्मरण रहे कि हड्डियों का चूर्ण यदि ऊपर बतलाई हुई रीति से बनाया जाय तो हड्डी का या हड्डी-गंधक-मिश्रित खाद का मूल्य बहुत कम हो सकता है। यदि आलू का मूल्य २॥) फ़ी मन के हिसाब से लगाया जाय तो जो आय प्रति एकड़ होती है, वह निम्नलिखित है—

नाम खाद	मूल्य आलू प्रति एकड़	खाद का मूल्य	खाद से लाभ
हड्डी-गंधक का चूर्ण	४२०)	३१)	९४)
हड्डी का चूर्ण	३३०)	२४)	११)
सुपर-फ़ासफ़ेट	३९७)	२०)	८२)
खाद नहीं दिया	२९५)		

* इस प्रयोग के लिये खाद इस हिसाब से खरीदी गई थी।

ऊपर के अंकों से यह भलीभाँति साबित होता है कि हड्डी और गंधक का चूर्ण ही विशेष लाभदायक है।

परीक्षा १९२५-२६ ई० की फ़सल से—

नाम खाद	उपज आलू प्रति एकड़ मन	खाद से विशेष लाभ प्रतिशत
हड्डी-गंधक का मिश्रण	९२.५	३८
हड्डी की खाद	८८	३१
सुपर फ़ॉसफ़ेट	८६	२८
खाद नहीं दिया गया	६७	

इन अंकों से भी हड्डी-गंधक का मिश्रण ही लाभदायक प्रमाणित होता है। अतः हड्डियों के चूर्ण से पूरा लाभ उठाना हो तो उन्हें गंधक के साथ ही सड़ाकर डालना चाहिए।

अन्य फ़सलों पर जैसे—मिर्च, सरसों, प्याज़, तमाखू, अई आदि पर इस खाद की परीक्षा चल रही है। फल प्राप्त होने पर पाठकों के समीप उपस्थित किया जायगा।

नारायण दुलीचंद व्यास

× × ×

[illegible] [illegible] का बटवारा

भारतवर्ष में आम रिवाज है कि पिता के मर जाने पर, उसकी दूसरी जायदाद के साथ, खेतों का भी बटवारा कर दिया जाता है। परिणाम यह होता है कि दो-दो, तीन-तीन एकड़ ज़मीन के छोटे 'खाते' बन जाते हैं। साम्पत्तिक दृष्टि से ऐसा होना ठीक नहीं है।

भारतवर्ष में अधिकांश किसानों के खेत पास-पास नहीं होते। कितने ही किसान तो दो-दो तीन-तीन गावों में खेती करते हैं। इसमें समय, मिहनत और पैसे का बहुत ज्यादा नुकसान होता है, और अन्त में लाभ का परता कम बैठता है।

एक गाव ही मे या जुदे-जुदे गावों मे बिखरे हुए खेत रखना फ़ायदेमंद नहीं है। मान लीजिए कि किसी किसान के पास २५ बीघा ज़मीन है। कुल पाँच खेत हैं। ये खेत गाव से दूर-दूर चारों ओर फैले हुए हैं। अब अगर एक खेत की जुताई क़रीब चार बजे शाम को खत्म हो गई, तो किसान को उस दिन शेष दो तीन घंटे निठल्ला ही रहना पड़ेगा। क्योंकि दूसरे खेत, उस खेत से मील दो मील दूर होने से, वहाँ तक जाने मे ही शाम हो जायगी। इसी प्रकार निराई, फ़सलों की कटाई, आदि के लिए लगाए हुए मज़दूर भी एक खेत का काम ख़त्म होने पर घर चले जायँगे, या दूसरे खेत में आते-आते शाम कर देंगे। अगर खेत तीन-तीन, चार-चार मील की दूरी पर हुए, तो फिर कहना ही क्या। इस प्रकार कितना समय और रुपया ख़राब हो जाता है, इसका विचार हमारे अधिकांश कृषक बिलकुल ही नहीं करते। इसके अलावा एक और महत्व की बात है, जिस पर किसान लोग विचार नहीं करते। बिखरे हुए खेतों की रखवाली भी अच्छी तरह नहीं की जा सकती। और जिन प्रांतों मे सुअर, नीलगाय आदि जंगली जानवरों की अधिकता है, वहा तो फ़सल की रखवाली में बहुत ज़्यादा ख़र्च पड़ता है। किंतु भारत के अधिकांश काश्तकार ग़रीब हैं। इसलिए फ़सल की रखवाली के लिए नौकर रख नहीं सकते। इन ग़रीब काश्तकारों की फ़सल जंगली जानवर नष्ट कर डालते हैं, जिससे बेचारों की मिहनत, बीज, निराई आदि के लिए ख़र्च किया हुआ पैसा व्यर्थ जाता है, और लगान भी गाठ से देना पड़ता है। राजस्थान के काश्तकारों को इसका कटु अनुभव है।

ऊपर लिखे हुए विवरण से यह बात साफ़ हो जाती है कि छोटे-छोटे और बिखरे हुए खेतों का होना फ़ायदेमंद नहीं है। इसलिए हरएक भारतीय काश्तकार को, जहाँ तक हो सके, पास पास खेत रखने का प्रयत्न करना चाहिए। यदि सरकार खाते की ज़मीन का संतति में बाँटा जाना बंद कर दे, तो बहुत कुछ लाभ हो सकता है। क्योंकि दो-दो, चार-चार बीघे ज़मीन पर खेती करने से काश्तकार को कोई लाभ ही नहीं हो सकता। अधिकांश किसानों को इसका अनुभव है।

सरकार को भी चाहिए कि अमेरिका की तरह २५-२५ एकड़ के टुकड़ों में ज़मीन बाटकर काश्तकारों को दे दे। इसमें प्रारंभमें असुविधा तो होगी, किंतु इससे किसानों को अवश्य लाभ होगा।

शंकरराव जोशी

१. बम्बई के सूती कारखाने
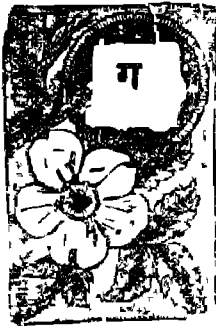
गत वर्ष जून महीने में श्रीयुत एफ़. नायस की अध्यक्षता में बम्बई के सूती कारखानों की शोचनीय अवस्था की जाँच के लिये भारत सरकार ने अपनी ओर से एक विशेष टैरिफ़ बोर्ड की नियुक्ति की थी। इस बोर्ड ने कई लाख रुपए खर्च कर गत जून महीने में अपनी रिपोर्ट प्रकाशित की। भारतवासियों का इन *सरकारी कमीशनों पर कोई विश्वास नहीं है*, क्योंकि आजतक उनकी सिफ़ारिशें भारतीय-हितों की रक्षा करने वाली नहीं हुईं। यह सब अवस्था जानते हुए भी बम्बई के कारखानों के मालिकों ने सदस्यों की नियुक्ति पर कोई आक्षेप नहीं किया। उन्होंने देखा कि सरकार उनकी बात नहीं मानेगी। इन सूती कारखानों के मालिकों ने अपनी ओर से इस टैरिफ बोर्ड की हर प्रकार से सहायता दी। पर, इस बार सरकार की कलुषित भावना इतनी अधिक बढ़ गई थी कि वह टैरिफ़ बोर्ड के किसी मत को भी स्वीकार न कर सकी। भारत सरकार ने अपने शासन-विधान में पहली बार अपने ही नियुक्त किये हुए कमीशन की रिपोर्टको अस्वीकार किया। सरकार की दृष्टि से आजतक भारतवासियों ने कमीशनोंकी प्रकाशित रिपोर्टों की अवहेलना की, पर आज क़ानून से बँधी हुई सरकार ही टैरिफ़ बोर्ड की सिफ़ारिशों को एकदम ठुकराती है।

अक्सर यह कहा जाता है कि भारतवर्ष को आर्थिक-स्वाधीनता प्रदान की गई है। यद्यपि भारत सरकार के शासन-विधान में इस स्वाधीनता का कोई उल्लेख नहीं है; किन्तु पार्लामेंट की संयुक्त कमिटी ने भारतवर्ष को आर्थिक-स्वाधीनता देने की सिफ़ारिश की थी। सेलबोर्न कमिटी ने भी भारतवर्ष की आर्थिक-स्वाधीनता को स्वीकार किया था। भारतवासियों के असन्तोष को बढ़ते हुए देखकर ब्रिटिश पार्लामेंट ने चालाकी चली। उसने भारत मन्त्री के अधिकारों को भारत सरकार के हाथ में सौंप कर यह प्रकट किया कि देखो भारतवासियो, सरकार कितनी उदार है, तुम्हारा कितना हित चाहती है कि वह भारत सरकार के हाथ में आर्थिक प्रश्नों के निर्णय का अधिकार देती है, अब आगे से अंग्रेज़ों की मनोभावना में सन्देह न करना। इसके उपरान्त भारत मन्त्री के हाथ से आर्थिक प्रश्नों का नियन्त्रण हटाकर भारत सरकार के हाथ में सौंपा गया। आज भारत सरकार कमिटी नियुक्त करती है। उसके सदस्यों को चुनती है, उसके विषयों को निर्धारित करती है, और अन्त में स्वयं ही निर्णय कर देती है, चाहे व्यवस्थापिका परिषद् उसे स्वीकार करे या न करे। परिषद को इतना अधिकार नहीं है कि वह भारत सरकार के निर्णय को जब रद्द करदे, तब उसीके मुताबिक़ कारवाई हो। वस्तुतः जब तक वायसराय और उनकी कौंसिल के हाथ से आर्थिक प्रश्नों के निर्णय का पूर्ण अधिकार परिषद् को नहीं प्राप्त होता, तब तक भारतवर्ष की आर्थिक-स्वाधीनता कोसों दूर

है। अभी तो भारतवर्ष की आर्थिक अवस्था का ज्ञान रखनेवाला प्रत्येक भारतीय यह जानता है कि किस प्रकार भारतवर्ष में टेरिफ नीति का संचालन होता है। आज भारतवर्ष को आर्थिक-स्वाधीनता मिल गयी होती तो देशवासियों के निश्चय ही अनेक दुःख दूर हो गए होते। इतना ही नहीं, भारतवर्ष को आधा स्वराज्य मिल गया होता। पर इँगलेंड के हित के लिए भारतवर्ष को आर्थिक स्वाधीनता कहाँ रखी है? वह तो, शायद, पूर्ण राजनीतिक अधिकारों के प्राप्त होने पर भी नहीं मिलेगी। यदि सरकार के वक्तव्य के अनुसार भारतवर्ष को अपने टेरिफ़ पर पूर्ण अधिकार है, तो कम से कम श्रीयुत नायस की सिफ़ारिश ही स्वीकार की जानी चाहिए थी। सरकार पार्लामेंट की सिफ़ारिशों को क्यों सारहीन बनाते है? परिषद् के सदस्य जब ज़ोर देंगे कि सरकार अपने हठ को त्याग दे, तब वह उनसे यह कह देगी कि अभी तो भारतवासी टेरिफ नीति का पूरा अनुभव नहीं रखते हैं। पर, इस कमीशन के निर्णय को ठुकराकर सरकार ही बतावे कि वह भारतवासियों को पत्थर का टुकड़ा दे रही है, या रोटी का टुकड़ा; अथवा आज तक मिलनेवाली दो रोटियाँ भी ज़बरदस्ती छीन रही है। सरकार अपने इन कामों से साबित करती है, कि वह विदेशी हितों की रक्षा के लिए भारतवर्ष के उद्योग और व्यवसाय को नष्ट कर सकती है। भारतवर्ष का वस्त्र व्यवसाय सरकार ने ही नष्ट किया, और आजतक नष्ट करती आ रही है। अंग्रेज़ी उद्योग-धंधों की रक्षा के लिए भारतवर्ष के राज-कर को सदैव घाटा पहुँचा है। भारतवर्ष के बाज़ारों में अंग्रेज़ों की प्रधानता रखने के लिए सरकार ने नीचातिनीच उपायों से काम लिया। भारतीय उद्योग-धंधों की रक्षा के लिए सरकार ने टेरिफ़ लगाने में सदैव निर्बलता प्रकट की। यदि सरकार ने इस ओर भारतीय-हित का अनुराग रखकर टेरिफ़ नीति का संचालन किया होता, तो भारतवर्ष के इस महत्वपूर्ण उद्योग की ऐसी दुर्दशा न होती। संसार के सभी देशों में टेरिफ से राज-कर में अधिक-से-अधिक वृद्धि की जाती है, पर भारतवर्ष में इसकी सदा से उपेक्षा की गई। आजतक के अंग्रेज़ी शासन का इतिहास इस बात का साक्षी है कि किस प्रकार विदेशियों के स्वार्थ के लिए सरकार अपने कर्तव्य से विमुख हुई है। यूरोपीय युद्ध के समाप्त होने पर जब सरकार को बजट में अधिक घाटा हुआ, तब उसके लिए विदेशी कपड़े पर आयात-कर बढ़ाना ही एक उपाय रहा। यदि कोई दूसरा उपाय होता तो सरकार कभी आयात-कर नहीं बढ़ाती। पर चारों ओर से अपनी असमर्थता देखकर ही जिन लार्ड रीडिंग ने १९२३ में नमक-कर अपने विशेष अधिकारों से क़ायम रखा था, उन्होंने ही विदेशी कपड़े पर आयात-कर लगाना स्वीकार किया था। सरकार ने राज-कर बढ़ाने के लिए ७½ प्रति-सैकड़ा से ११ प्रति सैकड़ा आयात कर बढ़ा दिया था। उस समय लंकाशायर वालों ने बड़ी अप्रसन्नता प्रकट की थी। पर सरकार शासन-शकट चलाने के लिए मजबूर थी। उसने लंकाशायर की अप्रसन्नता अपने मस्तक पर लेकर केवल राज-कर बढ़ाने के लिए आयातकर बढ़ाया। उस समय भी सरकार ने भारतवर्ष के कारख़ानों को रक्षा देने के लिए आयात-कर नहीं बढ़ाया था। तब, फिर वह कैसे इस बार भारतवर्ष के महत्वपूर्ण उद्योग की रक्षा के लिए चार प्रति-सैकड़ा आयात-कर बढ़ाती। टेरिफ़ बोर्ड ने बीस-पचीस प्रति-सैकड़ा आयात-कर बढ़ाने की तो कभी सिफ़ारिश नहीं की। भारतीय कारख़ानों को संरक्षण तभी मिल सकता है, जबकि इतना आयात-कर बढ़ाया जाय। यदि संरक्षण देने की आवश्यकता न होती, तो भी चार प्रति-सैकड़ा कर बढ़ाना अनुचित नहीं था। पर, सरकार क्यों बढ़ाती? वह लंकाशायर का अहित कभी नहीं सोच सकती।

लंकाशायर और मेनचेस्टर के हित के कारण भारत सरकार का राज-कर इतना न्यून होता है, कि उससे राष्ट्र-निर्माण के कामों में बाधा पड़ती है। राष्ट्रीय दृष्टि से राज-कर की वृद्धि के लिए संरक्षक करों में अत्यधिक वृद्धि होनी वाञ्छनीय है। पर, आजकल भारत सरकार के प्रमुख कार्यकर्ता सर बेसिल ब्लेकेट हैं। उन्होंने बोर्ड के विभिन्न मत को नहीं बल्कि सर्वसम्मत मत को भी नहीं माना है। बहुमत ने तीन वर्ष के लिए चार प्रति-सैकड़ा आयात कर बढ़ाया और ३२ नम्बर से ऊँचे सूत पर एक आना प्रति पौंड बाउटी देने की सिफ़ारिश की। पर श्रीयुत नायस ने चार प्रति-सैकड़ा केवल जापानी कपड़े पर आयात-कर बढ़ाने की राय दी। उन्होंने यह भी कहा कि जापान को छः महीने की सूचना देकर यह आयात-कर बड़ी आसानी से बढ़ाया जा सकता है। टेरिफ़ बोर्ड ने एकमत

से यह राय दी है कि, भारतीय वस्त्र-व्यवसाय का उद्योग विदेशियों की अनुचित प्रतिद्वन्द्विता का भयंकर सामना कर रहा है। इस अनुचित प्रतिद्वन्द्विता को भारत सरकार ने भी स्वीकार किया है। सरकार ने स्पष्ट शब्दों में कहा है कि जापान में अधिक घण्टे काम होने से भारतीय कारखाने अधिक हानि सहते हैं। पर लंकाशायर के कारखानों को १२½ सैकड़ा बाउंटी देने के लिए वैदेशिक विनिमय की दर १८ पेंस निश्चित करनेवाले सर बेसिल ब्लेकेट महाशय ने हिसाब लगाकर यह बतला दिया कि ११ प्रति-सैकड़ा के भीतर जापान की प्रतिद्वन्द्विता आजाती है, इससे जापान से डरने की कोई बात नहीं। सरकार यह क्यों नहीं साफ़ कह देती कि वह लंकाशायर और चीन के युद्ध के कारण लंकाशायर को अप्रसन्न नहीं करना चाहती। फिर यह कहा जाता है कि बम्बई के कारखानों को ही केवल शिकायत है, क्योंकि अन्य स्थानों के सूती कारखाने बड़े मज़े में चलते हैं। पर, यह गरानी सभी जगह है। बम्बई को तो विशेष सुविधा यह है कि वह मिस्र और अमेरिका की रुई बड़े सुभीते से आयात करता है। यदि उसे कुछ विशेष सुविधा दी जाय, तो वह अच्छा कपड़ा तैयार करने में तरक्की कर सकता है, जिसमे बम्बई और अन्य स्थानों के कारख़ानों में रहा-सहा अन्तर भी नहीं रहेगा। बहुमत ने बड़े विचार से यह राय दी कि केवल जापानी कपड़े पर आयात-कर बैठाकर भारतवर्ष उसे अप्रसन्न नहीं करना चाहता, वे तो सभी विदेशी कपड़े पर आयात-कर बढ़ाना चाहते हैं।

जापान भारतवर्ष से निर्यात होनेवाली रुई का आधा हिस्सा ख़रीदता है, इसलिए जब वह देखेगा कि उसके लिए ही विशेष तौर से यह कारवाई की गयी है, तो वह बदले में भारतवर्ष से रुई न मँगाकर अमेरिका से मँगाने लगेगा। इसके अलावा जापानियों ने यह भी कह दिया था कि, यदि आयात-कर बढ़ाया गया तो जापानी सिंडीकेट भारतवर्ष में ही अपने नये कारख़ाने खोलेगा और वर्तमान कारखानों को ख़रीदेगा। सरकार ने सूती कारख़ानों के कल-पुर्ज़ों और स्टोर पर से आयात-कर एकदम हटा दिया है। यह संरक्षण भारतीय कारखानों को नहीं अपितु अंग्रेज़ी कारख़ानों को प्राप्त हुआ है। इस कर के हटाने से भारतीय कारख़ानों की कोई रक्षा नहीं हुई। स्टोर पर कर घटाने से उत्पादन के अष्टमांश मूल्य पर भी प्रभाव नहीं पड़ेगा। सरकार ने इस उद्योग से राजकर में लाखों-करोड़ों रुपए वसूल किये हैं। इसलिए, उसका यह नैतिक कर्तव्य है कि वह पुराने से भी पुराने उद्योग को उस कर से आर्थिक सहायता करे। यह संतोष की बात है कि बोर्ड ने उन शिकायतों को दूर कर दिया, कि बम्बई के कारख़ानों के मालिक बेईमानी से काम करते हैं, और अपने कर्तव्यों का पालन नहीं करते। इस समय बम्बई के सूती कारख़ानों की रक्षा का प्रश्न देश के सामने है। इस महत्त्वपूर्ण उद्योग की रक्षा के लिए सभी विचार के भारतवासियों को प्रयत्न करना चाहिए। इसलिए महात्मा गांधी ने सूती कारख़ानों के हित के लिए आयात-कर बढ़ाने की राय दी है। यदि महात्मा गांधी का खादी का कार्य-क्रम और सूती कारख़ाने आपस में समझौता कर काम करें, तो वर्तमान परिस्थिति में सुधार हो सकता है। कारण, सरकार के इस निर्णय से बम्बई के कारखानों के मालिक घबड़ा गये हैं, और थोड़ी पूंजी वाले कारखाने अपना कारबार बंद करने की चिंता में हैं।

जी० एस० पथिक

× × ×

भारत में तेल का व्यवसाय

भारत में तेलहन बहुत ज्यादा पैदा होता है। भारतवर्ष में एक साल में पैदा हुए तेलहन की क़ीमत क़रीब ७५ करोड़ रुपया होती है। किन्तु, दुःख के साथ कहना पड़ता है कि, अधिकांश तेलहन विदेशों में भेज दिया जाता है। सरकारी रिपोर्टों के अनुसार नीचे तेलहन के निर्यात का ब्यौरा दिया जाता है :—

साल	वज़न टन में
१९२३	१११७०००
१९२४	१२५५०००
१९२६	१३२८०००

'दि इण्डियन ट्रेड जरनल' के अनुसार वर्तमान काल में २३५०० वर्ग मील क्षेत्रफल में तेलहन की खेती की जाती है। संसार में भारत ही एक देश है, जहां इतने अधिक क्षेत्रफल में तेलहन की खेती होती है।

भारतवर्ष में लकड़ी के कोल्हू से तेल निकाला जाता है। इन कोल्हुओं से बहुत-सा तेल खलों में रह जाता है। भारत में खली का भी उतना उपयोग नहीं किया जाता है। अधिकांश खली विदेशों में भेजी जाती है। विदेशी

लोग भारत की खली को यंत्रों में डालकर तेल निकाल लेते हैं, और तब उसे पशुओं को खिलाते हैं। ऐसा करने से विदेशियों को बहुत लाभ होता है।

भारत में यंत्रों द्वारा भी तेल निकाला जाने लगा है। किंतु भारत की गरम आबहवा आदि के कारण पाश्चात्य पद्धति से तेल निकालने के व्यवसाय में भारत को सफलता नहीं मिली है।

भारत के तेलहन में कितना प्रतिशत तेल निकलता है, इसका ब्यौरा नीचे दिया जाता है—

नाम जिंस	प्रतिशत तेल
नारियल	६७
तिल, खस, मूँगफली	४७
राई, अलसी	४३
सरसों	३२
महुआ	४०
रमतिली	३६
कपास	१७

बाप-दादों के वक़्त से चली आने वाली घानी से तेलहन में पाये जाने वाले तेल का क़रीब ७२ सैकड़ा भाग ही निकाला जा सकता है।

भारत में वानस्पतिक तेलों की अत्यधिक माँग है और यहाँ के निवासी ज़्यादा तेल खाते भी हैं। और, यही कारण है कि भारत में तेल की अधिक माँग है। परन्तु भारतीय व्यवसायियों ने इस ओर बहुत कम ध्यान दिया है। इसका कारण भी है। अभी कुछ वर्ष पहले तक ऐसी किसी मशीन का आविष्कार नहीं हुआ था, जो भारतीय आबहवा में, भारतीय तेलहन से तेल निकालने में सफलतापूर्वक काम दे सकती हो। इधर कुछ वर्षों से 'एक्सपेलर' नामक मशीन बनी है, जो कम पूँजी और कम ख़र्च में अच्छा काम देती है, और मिहनत की बचत भी होती है। इस मशीन में एक गुण यह भी है कि साबित बीज भी काम में आ सकते हैं और चूरा किए हुए बीज भी।

तेलहन को दो बार दबाने से ज़्यादा तेल निकलता है। पहले बीज ज्यों-के-त्यों मशीन में डाल दिए जाते हैं, जिससे क़रीब ६० प्रतिशत तेल निकल आता है, और तब खली का महीन चूरा करके दुबारा मशीन में डालते हैं। ऐसा करने से रहा-सहा तेल भी निकल आता है। यह पद्धति यूरोप में सफलतापूर्वक काम में लाई जा रही है, और भारत में भी इससे अच्छा फ़ायदा नज़र आया है।

भारत में एक्सपेलर नामक मशीन ख़रीद कर तेल निकालने के कारख़ाने जारी करना फ़ायदेमंद है और इस व्यवसाय के लिए एक विस्तीर्ण क्षेत्र ख़ाली पड़ा है। यदि जिनिंग फ़ैक्टरी, आटे की चक्की आदि के कारख़ानों में एक-एक एक्सपेलर जोड़ दिया जाय, तो कम ख़र्च में बहुत लाभ हो सकता है।

एक्सपेलर से २४ घंटे में क़रीब ५ टन (१४० मन) तेलहन से तेल निकाला जा सकता है, और एक एक्सपेलर के लिए सिर्फ़ सात घोड़ों की ताक़त की शक्ति दरकार होती है।

भारतीय कारख़ानों के असफल होने का मुख्य कारण यह है कि तैयार माल की सुघरता पर विशेष ध्यान नहीं दिया जाता। यही बात तेल के व्यवसाय पर भी लागू होती है। अकसर देखा जाता है कि एक लम्बे समय तक तेल को पड़ा रहने देने से गाद आदि नीचे जम जाती है और तब ऊपर का तेल निथार कर बेच दिया जाता है। किंतु, यह तेल उतना साफ़ नहीं होता। तेल साफ़ करने का सबसे बेहतर तरीक़ा यह है कि आधुनिक फ़िल्टर मशीनों का उपयोग किया जावे। क़रीब ३०-४० घानियों पीछे एक फ़िल्टर मशीन काफ़ी होगी। फ़िल्टर से छानने से तेल का रंग चमकीला और स्वच्छ हो जायगा, जिससे बाज़ार में तेल की अच्छी क़ीमत आवेगी।

ऊपर लिखे आए हैं कि भारत से खली भी विदेशों को भेजी जाती है। इससे देश को बहुत हानि सहनी पड़ती है। अकसर कहा जाता है कि भारतीय पशुओं की हालत बहुत ही ख़राब है। दिन-पर-दिन उनकी नस्ल ख़राब होती जा रही है। खली का विदेश में भेजा जाना भी इसका एक कारण हो सकता है। यदि खली गाय-बैल आदि को खिलाई जावे, तो वे हट्टे-कट्टे और पुष्ट रहेंगे एवं उनके गोबर से उत्तम खाद तैयार होगी, जिससे फ़सलें अच्छी होंगी।

कुछ तेलहन ऐसे भी हैं, जिनकी खली ढोरों को तो नहीं खिलाई जा सकती, किंतु खली एक उत्तम खाद है। इस तेलहन का तेल तो विदेशों में भेजा जाया करे

और खली खाद के काम में लाई जाती रहे, तो देश को कितना लाभ हो सकता है।

भारत में गोबर से उपले बनाकर जलाए जाने का रिवाज है, जिससे खाद की कमी हो रही है, और खाद न मिलने के कारण ज़मीन का उपजाऊपन दिन-पर-दिन घटता जा रहा है। यदि खली की खाद काम में लाई जाने लगे और काश्तकारों को खली का उपयोग सिखा दिया जावे, तो खली की माग बहुत बढ़ सकती है।

तेल निकालने का व्यवसाय थोड़ी पूँजी से शुरू किया जा सकता है। इस व्यवसाय में पूँजी लगाने से देश का भी भला होगा और मुनाफ़ा भी खासा रहेगा। आशा है, हमारे व्यापारी भाई इस पर विचार करेंगे *।

शंकरराव जोशी

---

* एक अँगरेजी लेख के आधार पर।—लेखक

१ भारत की राष्ट्र-भाषा और हिंदी का स्टाइल

युक्त-प्रांत के गवर्नर सर विलियम मैरिस ने भाषा-साहित्य की उन्नति के लिये 'हिंदुस्थानी एकेडेमी' स्थापित कर सचमुच बड़ा उपकार किया है। हिंदी और उर्दू—दोनों भाषाओं के विशिष्ट विशेषज्ञों की एक संयुक्त समिति स्थापित कर सरकारी प्रेरणा से, गवर्नमेंट की सहायता से दोनों भाषाओं के साहित्य की अभिवृद्धि करने का मार्ग खोल दिया। अब देखना केवल यही है कि दोनों भाषाओं के विशेषज्ञों में से कौन अच्छा और ठोस उद्योग कर एक दूसरे से शीघ्र कृत-कार्यता प्राप्त करता हुआ बाज़ी मार ले जाता है। यह अंश अवश्य ही जुदा है, किंतु इस समय हमें विचार यह करना है कि हिंदी-भाषा का स्टाइल कैसा हो और किस स्टाइल को उक्त समिति ग्रहण करेगी। इसमें संदेह नहीं कि जैसा कुछ स्टाइल ग्रहण किया जाय वह सर्व मान्य होना चाहिए और इसके लिये उक्त समिति के सामने एक कठिन प्रश्न यह भी है कि वर्तमान स्टाइल को बदलकर उक्त समिति संसार के प्रवाह को रोक नहीं सकती है।

यह कठिन समस्या है और इसे हल करने का जैसा प्रयत्न हिंदी के बड़े-बड़े धुरंधर विद्वान् आज तक करते आए हैं वैसा ही श्रीमान् गवर्नर महोदय ने भी किया है। आपका कहना है कि—

"उन्नति का प्रयत्न ऐसा न होना चाहिए कि भाषा की उन्नति करने की धुन में समाज की अवनति के बीज बो दिए जायें। हिंदी और उर्दू यदि एक दूसरे से दूर होती जायेंगी तो हिंदू और मुसलमान भी एक दूसरे से दूर होते जायेंगे। अतएव भाषा के इस भेद-भाव को अधिक न बढ़ाकर उसे सदा कम करने की चेष्टा करना चाहिए। ऐसे भेद-भाव की वृद्धि राजद्रोह (Treason) अवश्य है।"

आपका कहना यथार्थ है, और, जैसे हिंदी के अन्यान्य महारथी इस प्रकार का उपदेश देते आए हैं, वैसा ही मेरे श्रद्धेय मित्र पंडित महावीरप्रसादजी द्विवेदी ने भी दिया है। लखनऊ की नवजात 'सुधा' इस समय मेरे सामने है, और उसीकी प्रथम संख्या में द्विवेदीजी महाराज का ऐसा उपदेश भी है। किंतु मैं नहीं जानता कि जब तक इस प्रकार की संशोधित और परिमार्जित भाषा का कोई नमूना न दिखलाया जाय ऐसी सलाह से लाभ क्या हो सकता है? आपके इस लेख में सत्परामर्श, अंतर्गत,

अवतरण, अभिवृद्धि आदि बीसों ऐसे शब्द हैं, जिनके लिये गवर्नर महोदय के उद्देश्य की सिद्धि में बहुत अधिक योग्यता वाले उर्दू-भाषी को भी कोश का सहारा लेना पड़े। हाँ, आप उर्दूवालों की रिआयत करने के लिये इस समूचे लेख में फ़ारसी का एक 'रायज' शब्द अवश्य जड़ गए हैं। जैसा श्रीमान् ने इस समय कहा है, वैसा ही बड़े-बड़े देश-हितैषी राजनीति का दम भरनेवाले अनेक बार कह चुके हैं। हिंदी के नामी-गिरामी विद्वानों का मत भी इससे भिन्न नहीं है। महात्मा गांधी अपने 'नवजीवन' में ऐसा ही प्रयत्न करते हैं, किंतु समस्त लेख में फारसी के दो-चार क्लिष्ट शब्दों का प्रयोग कर देने के अतिरिक्त हिंदी-जनता के सामने किसी ने ऐसा नमूना खड़ा नहीं किया जिसे रास्ता मानकर हिंदी के वर्तमान लेखक उस पर चलने का प्रयत्न करें।

मैंने संवत् १९८३ के श्रावण की "माधुरी" में "भारत की राष्ट्र-भाषा" शीर्षक से एक वृहत लेख लिखकर विद्वानों से हिंदी का कोई इष्ट स्टाइल नियत करने का अनुरोध किया है। काशी-नागरी-प्रचारिणी सभा के सर्वस्व और उक्त हिंदुस्थानी एकेडेमी के सदस्य रायसाहब बाबू श्यामसुंदरदासजी, बी० ए० और साहित्य सम्मेलन के कर्त्ता-धर्त्ता वर्तमान प्रधान मंत्री पंडित रामजीलाल शर्मा से पत्राचार कर उनसे निवेदन किया है। मैं चाहता हूँ कि हिंदी-साहित्य-सम्मेलन के आगामी अधिवेशन में इस विषय का कोई मंतव्य पास होकर विद्वानों की एक कमिटी नियत की जाय जो हिंदी-भाषा-भाषी जनता के अतिरिक्त बँगला, गुजराती, मराठी, पंजाबी और इस तरह भारतवर्ष की समस्त अन्यान्य भाषाओं के विद्वानों का मत संग्रह करे कि अन्य भाषा-भाषियों के लिये हिंदी सीखने में कौन-सा स्टाइल अनुकूल है, सरल है। अथवा वे संस्कृत-मिश्रित हिंदी को शीघ्र समझ सकते हैं, या फारसी-मिश्रित को, अथवा ठेठ हिंदी को?

मेरा मत यह है कि हिंदी केवल संयुक्त-प्रांत, पंजाब और मध्य-प्रांत तथा राजपूताने की ही भाषा—प्रांतीय भाषा नहीं है। इसे भारतवर्ष की सार्वजनिक-भाषा होने का आसन ग्रहण करना है। प्रायः सब ही विद्वानों ने, देशी और विदेशी देश-हितैषियों ने, स्वर्गीय और विद्यमान विद्वानों ने इस बात को स्वीकार कर लिया है। ऐसी स्थिति में फ़ारसी की ओर ढलना हानिकारक है, इसे राष्ट्रीय भाषा का पद दिलाना विघातक है, यह मेरा निज का अनुभव है। मैं दृढ़ता-पूर्वक कह सकता हूँ कि किसी भी देश भाषा के विद्वान् के लिये भिन्न भाषा सीखने में संस्कृत-मिश्रित भाषा अधिक सरलता से, सुगमता से सीखी जा सकती है। गुजराती मेरी मातृ-भाषा सही, किंतु मराठी मैंने इसीलिये सीख पाई है कि उसमें संस्कृत का संमिश्रण अधिक होता है। कोई भी मराठी या बँगला जाननेवाला हिंदी सुलेखक ठेठ मराठी या ठेठ बँगला समझने में अवश्य हिचकेगा। फिर, संस्कृत शब्दों का प्रचलित हिंदी में प्रयोग न करना संस्कृत से दूर-दूर हटते जाने का प्रयत्न करना है। और संस्कृत पढ़ना हमारे लिये आवश्यक है, उपयोगी है। और प्राचीन साहित्य, हिंदूपन और स्वदेश के नाते भी हमें उसे छोड़ना न चाहिए। जिस समय अँगरेज़ी शिक्षा, पश्चिमी सभ्यता की चकाचौंध हमें अंधा बना रही है, उस समय हम जितना ही संस्कृत के निकट पहुँचे, हमारा कल्याण है।

इसका अवश्य ही यह अर्थ होता है कि ऐसा करने से हम मुसलमानों से दूर हट जायँगे। हिंदी और उर्दू के बीच में जितनी खाई चौड़ी होगी, उतनी ही देश की हानि है—हमारा नुकसान है, किंतु उर्दू लेखक भी इस खाई को चौड़ा करने में जी-जान से लगे हुए हैं। इतना लिखने से मेरा प्रयोजन यह नहीं है कि हम अपने मुसलमान भाइयों से अलग हट जायँ। श्रीमान् का उपदेश सचमुच श्लाघ्य है। उनका कथन अक्षरशः सत्य है, और इसीलिये मैंने श्रावण संवत् १९८३ की 'माधुरी' में इस विषय को उठाया है, और अब भी मेरा निवेदन है कि इन पंक्तियों के साथ उक्त लेख को पढ़कर, आगे के लिये किस प्रकार उद्योग किया जाय, इस विषय का कर्तव्य स्थिर करना चाहिए।

लज्जाराम शर्मा

× × ×

२. अतृप्त मनोरथ

(१)

जब न मिले थे, मिल जाने की,
　　दिन दूनी थी अभिलाषा।
सम्मुख पथ पर लगी हुई थी,
　　सजल लोचनों की आशा॥

(२)

कला-कला बढ़कर ज्यों होती,
चन्द्रकला विधिवत पूरण।
साध रुचिर नित नूतन होकर,
पाया प्रियतम-प्रेम-मिलन ॥

(३)

हाय विनाम-सूत्र में गुहकर,
यौवन-मोती की माला।
बार-बार न्योछावर करके,
उनके चरणों पर डाला ॥

(४)

हृदय समर्पण में विशेषतम,
मैंने मिलन-सौख्य पाया।
किन्तु विरह की मृदुल वेदना—
का उसमें न स्वाद आया ॥

(५)

प्रियतम रहे, विरह भी उनका,
मिलन-स्मृति का मंजुल योग।
मिल जावें मेरे हित दोनों,
हो जावे संयोग—वियोग ॥

शम्भुदयालु सक्सेना, 'साहित्यरत्न'

× × ×

३ हृदय-रंजन

गुन-साबुन सों छल-मैल घनो तदबीर के नीर धोवावहिंगे।
सुखराय के संजम-आतप मैं कछु आगिलो काम चलावहिंगे।
सतज्ञान को है रँगरेज खरो अनुराग के रंग बोरावहिंगे।
अनि चोखो चढ़े यही भाँति हमैं हियचीर भलो रँगवावहिंगे।

कृष्णबिहारी मिश्र

× × ×

४ 'बसन्तसेना'

सूरति सुधा की बसुधा की रति, रूपरासि,
कीरति उदार जब तेरी मन लाइ है।
नेह-नीर, संजम-सरोज छवि हेरि हेरि,
मानस निहारो नव सुरभि सराहि है।
दामिन दुखद घन नारि पंक बाम बीच,
प्रेम अभिसार सुनि सब सुख पाइ है।
गविन बसन्तसेना चारिन बसत सम,
तेरो कवि चंचरीक कुंज कुंज गाइ है ॥

गुरुप्रसाद पांडेय

× × ×

५ 'समुद्र-लंघन'

जीवधारी उड़न-खटोला चला अंबर में,
लंका पर याकि लाल गोला चला बमका।
अथवा न मान पाकशासन के शासन को,
भागा गिरि गैरिक यहाँ पै आके चमका।
किंवा बढ़ा भौम अग्रदूत बन मंगल का,
याकि रक्त पुच्छल नक्षत्र धर धमका।
वायु के समान वायुनंदन 'अनूप' बढ़ा,
अंजन समान अंजनी का पुत्र लमका ॥

'अनूप'

× × ×

६. इंद्र-धनुष

घुमड़-घुमड़ नभ में घन घोर,
छा जाते हैं चारों ओर
विमल कल्पना से सुकुमार
धारण करते हो आकार!
अस्फुट भावों का प्राणों में,
तुम रख लेते हो गुरु भार!!
उन भावों का रूप सजीव,
तुम में होता प्रगट अतीव
त्रिविध विमल रंगों में तान,
किसके उर के प्रिय उद्गार,
तुम से उद्गम हो जाते हैं,
हे अजान! निश्छल अविकार!
तुम हो किसकी छवि का रूप,
अहे अभिनव! मेरे अनुरूप?
मैं हूँ तुम-सा ही अजान,
मुझे नहीं है अपना ज्ञान,
नहीं जानता किसकी छवि का
सार मिला है मुझको दान!

मंगलप्रसाद विश्वकर्मा

× × ×

७ अनुभूति

(१)

यह असीम है आज हृदय में बना हुआ मतवाला।
और यहाँ है पड़ा हुआ खाली प्राणों का प्याला।
मिल जाने दो प्रिय! ज़मीन में आसमान की कड़ियाँ।
भरने चलो पात्र मेरी है बेहोशी की घड़ियाँ।

ये स्फुलिंग जो खेल रहे हैं आकर्षण का खेल।
आज न करने पायेंगे नभ का कम्पन बेमेल॥

(२)

है यौवन बेहोश और ऋतुएँ सारी दीवानी।
मृत्यु आज जीवनमय होकर नाच रही मनमानी।
विश्व कोप है रहा विकल सा चरण बढ़ा दो स्वामी।
आज प्रगट हो तुम मेरे अंतर में अन्तर्यामी।
तारे टूट जायँ, नभ का सब बिखर जाय शृंगार।
आज बजा दो इस पगली वीणा के टूटे तार॥

श्रीरामनाथलाल 'सुमन'

× × ×

८ बालुके !

(१)

बता, बता, अयि विकल-बालुके!
जलते हैं क्यों तेरे प्रान?
अरी विजन की विमल-बालिके!
बिखरे हैं क्यों तेरे गान?

(२)

झंझा के झोंकों में उड़कर
भरती न क्यों दीर्घ उसास?
तुझे प्रेम से आलिङ्गन कर
कहता अह! कैसा बातास!!

(३)

सखि! तेरे इस उज्ज्वल-तट पर
सरिता का बहता हिम-धार,
इसमें हा निज हृदय सींचकर
मिटा न ले तू तपन अपार!

(४)

"अरे, कभी क्या मिट सकता है
साधक उर की भीषण-दाह?
नयनों की सरिता में भी तो
सदा बनी रहती है—'आह'!!"

(५)

अरी अनाथिनि! अरी विषादिनि!
क्षुब्ध न हो तू यों तत्काल,
भाग्यचक्र की शीतल किरणें
कभी करेंगी तुझे निहाल।

शान्तिप्रिय द्विवेदी

× × ×

९. कृष्ण-आवाहन

(१)

विकलविह्वल है अन्नविहीन, तुम्हारी जन्मभूमि गोपाल!
दुग्ध-सिंचित थी जो भरपूर, होरही अब कैसी पामाल!
हीन-वसना हैं गोपी, खेद, म्लानमुख तेरे प्यारे ग्वाल,
हाय! भारत के पूत-सपूत, दिखाई देते हैं कंगाल!

(२)

हो रहा गौओं का बलिदान, शक्ति का खून हो रहा आज।
धर्म-मंडित भारत में देव, छा रहा पाप पूर्ण सम्राज!
करोड़ों नंगे, भूखे भिक्षु, भटकते, भूले सारा काज।
न लेना उनकी कोई त्राण, प्राण पर बन आई, ब्रजराज!

(३)

भग्न हो गया बंधु-सद्भाव, अछूतों को दुतकारा दूर।
धर्म के कोरे ढोंग प्रहार, जाति को करते चकनाचूर!
सहस्रों ललनाएँ कुल-कान त्यागतीं, जातीं हमसे दूर।
न होता वज्रपात क्यों हाय! न फटती पृथ्वी कैसी क्रूर!

(४)

हज़ारों नन्हे-नन्हे बाल, न पाते मातृ-प्रेम का मोद।
बिलखतीं माताएँ, हा दैव, देखकर अपनी खाली गोद!
रोजही होता यहां अकाल, काल-कवलित प्रिय शिशु-समुदाय।
कुसुम-कलियों का कोमल हार, सजाता भूतल गोदी, हाय!

(५)

पढ़ाओ गीता का फिर पाठ, सिखाओ कर्मक्षेत्र का ज्ञान।
बचाओ भारत मा की लाज, बनाओ धीर, वीर, बलवान!
दौड़कर आओ दीनानाथ! लगाओ टूटा बेड़ा पार।
सुनाओ मुरली की वह तान, मुग्ध हो उठे सकल संसार!

रामसेवक त्रिपाठी

× × ×

१० मृदुल-झाँकी

दीप-शिखा की अनुपम ज्योति—
सुरभित-सुमन-ओज की आभा, शीतल पर्वत हिम में,
नवजीवन-कारी वसन्त के प्रति पल्लव कुसुमों में।
नव-विधु-विध शुभ बदन बना है कला-ज्योति छिटकाता,
विधु-बदनी-सौंदर्य-कमल-कलिका हित विमल प्रभाता।
कोकिल की रसमयी कूक में तेरी बंशी बाजे,
पंकज बीच द्विरेफ सुखकारी तेरी प्रभा विराजे।
भागीरथी-पुण्य-जीवन की मुक्तिदायिनी माया,
प्रलय-काल के उग्र नाम की तू ही सुंदर छाया।
दीप-शिखा की०—

मङ्गलदेव शर्मा

कुकवि-कीर्तन

गणयन्ति नापशब्दं न वृत्तभङ्गं क्षयं न चार्थस्य ।
रसिकत्वेनाकुलिता वेश्यापतयः कुकवयश्च ॥
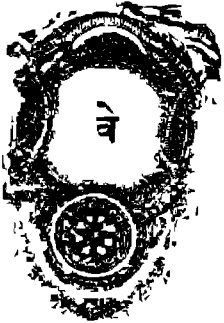
वेश्यागामी पुरुषों और कुकवियों में अद्भुत समानता होती है। वे दोनों ही रसिकता के नशे से व्याकुल रहते हैं—इतने व्याकुल कि उनके होशो-हवास कभी ठिकाने नहीं रहते। वेश्यागामी मनुष्य अपशब्दों (गालियों) को कुछ समझता ही नहीं, वृत्तभंग (शील-संहार) की परवा ही नहीं करता, और अर्थक्षय (धननाश) से होनेवाली अपनी हानि की ओर ध्यान ही नहीं देता। यही हाल कुकवि का भी है। न वह अपशब्दों की परवा करता है, न वृत्तभंग ही (छंदोभंग ही) से बचने की चेष्टा करता है और न अर्थक्षय की ओर ही दृक्पात करता है। क्यों, समता है न ?

*

हठात्कृष्टानां कतिपयपदानां रचयिता
जनः स्पर्धालुश्चेदहह कविना वश्यवचसा ।
भवेदद्य श्वो वा किमिह बहुना पापिनि कलौ
घटानां निर्मातुस्त्रिभुवनविधातुश्च कलहः ॥

बड़े-बड़े विश्व-विश्रुत कवियों की नकल उतारते—उनकी बराबरी करने की चेष्टा में रत होते—कुछ कुकवियों को देखकर एक काव्य-रसिक कहता है—इधर-उधर से कुछ शब्दों को ओर-बटोर कर, हठपूर्वक दस-पाँच पंक्तियाँ लिख देनेवाले मनुष्य यदि सिद्ध सरस्वतीक कवियों की बराबरी करने की तैयारी करेंगे, तो हम यही समझेंगे कि आज कल में, कभी-न-कभी मिट्टी के घड़े बनानेवाला कुम्हार भी त्रिभुवन की रचना करनेवाले ब्रह्मदेव के सामने खम ठोककर उससे भी मल्लयुद्ध करने को तैयार हो जायगा। क्योंकि इस पापी कलिकाल में सभी कुछ सम्भव है। अतएव क्या आश्चर्य जो कुम्हार भी ब्रह्मा बन जाना चाहे ?

*

स्वाधीनो रसनाञ्चलः परिचिताः शब्दाः कियन्तः क्वचित्
क्षोणीन्द्रो न नियामकः परिषदः शान्ताः स्वतन्त्रं जगत् ।
तद्यूयं कवयो वयं वयमिति प्रस्तावनाहुंकृति—
स्वच्छन्दं प्रतिसद्म गर्जत वयं मौनव्रतालम्बिनः ॥

किसी की जिह्वा कीलित तो कर ही नहीं दी गई किसीके मुँह में लगाम तो लगा ही नहीं दी गई; कुछ इने-गिने शब्दों से परिचय है ही; राजा ने कोई क़ानून तो ऐसा बना ही नहीं दिया कि कुकवि या अकवि कविता न किया करें; जिन सभाओं या संस्थाओं को ऐसे मामलों में दख़ल देना चाहिए वे सब-की-सब शान्त हैं ही। जहाँ तक अपने आपसे संबंध है, जगत भी स्वतन्त्र ही है। फिर, डर किसका ? अतएव आप लोग अब निःशंक, घर-घर जाकर, हुंकार करते हुए गरजते फिरें कि—कवि हैं तो हम, कविवर हैं तो हम, महाकवि हैं तो हम, और कोई नहीं ! रह गये

मैं, सो हे कविचक्र-चूडामणे ! मैंने तो आज से चुप रहने ही का व्रत धारण कर लिया। आप स्वयं कविता कीजिए, मैं न बोलूँगा। 　　महावीरप्रसाद द्विवेदी

× × ×

२ बिम्ब प्रतिबिम्ब भाव

संस्कृत

यस्य गुणगीतं त्वया गीतं मम मोहनाय,
श्यामरूपदर्शनं च कुञ्जे यस्य कारितम्।
केलिभवनमानीतो यश्च रजनीषु तेन,
सङ्गतं मयापि नैव किमपि विचारितम्॥
यातिं हरि मेव हा सपत्नीगृह मद्य सदा,
तस्य गुप्तगमनं त्वया न किं निवारितम्।
कुसुममृमालिकामिषेणमम कण्ठदेशे,
आलि! त्वया भुजगशरीरस्त्रितिधारितम्॥

हिंदी

जाको गुन गीत गाय मोहि ललचाई पुनि,
कुंजन में जाको स्याम रूप दिखराई तू।
करिके उपाय बहु केलि भौन ल्याई जाहि,
विप्रचंद दोउन में प्रीतिहू कराई तू॥
सोई तजि कान्ह मोहि सौति बस ह्वै गो अब,
जानति है काहे तब पीर न पराई तू।
आली री दगा दै कहि फूलमाल मेरे गर,
विषधर व्याल आनि हाय पहराई तू॥

संस्कृत

श्यामलं मनोज्ञमतिसुन्दरतरं च रूपं,
वृन्दावनमञ्जुकुञ्जे ऽकस्मादवलोकितम्।
तत्क्षणमारभ्य तेन मिलितुमजायतेहा,
गत्वा गत्वा यत्र तत्र शीघ्रतयान्वेषितम्॥
स्थित्वा विश्रम्य च विश्रम्य च द्रुतमेत्य भृशं,
क्वापि यदा नालभत सुखदं तदीहितम्।
व्याकुलं मनो मे तदा सहसा समेत्य हन्त,
विरहसमुद्रमध्येऽभज्जदतिदुःखितम्॥

हिंदी

साँवरो सो सुंदर सलोनो वा रसीलो रूप,
औचकही मेरे हिय आय चकि चैबिगो।
अमित बढ़ी है चाह मिलिबे की ना छिनते,
विप्रचंद ठाम ठाम ढूंढन को खैबिगो॥
उठि उठि बैठि बैठि भ्रमि भ्रमि दौरि दौरि,
पायो नाहि थाह जब आकुल ह्वै ऊबिगो।
बहु दुख पाय घबराय तब धाय आय,
विरह-समुद्र मध्य मेरो मन डूबिगो॥

संस्कृत

यदुनाथ! यापिता मयायामिनी सुखेन यत्र,
तत्रैवाद्य सम्मदेन वासरोऽपि रम्यताम्।
कपटप्रणाममत्र मा कुरु सपत्नीप्रिय,
सर्वसुखदायिनी सदैव सा प्रणम्यताम्॥
अञ्चलं ममाशु मुञ्च मुखमपि मैव चुम्ब,
रसिक! मदीयमेकवचनं निशाम्यताम्।
बहुवरबालावदनारविन्दमकरन्द—
चुम्बक मधुप कृष्ण! तत्रैवाशु गम्यताम्॥

हिंदी

जायके जहाँ पै लाल सुखसों बिताई रैन,
आनँद सों दिनहूँ तहाँई पै बितावो तू।
झूठोहू प्रणाम मोको नाहीं करो सौति प्यारे!
सब सुखदानि सौतिही को सीस नावो तू॥
छोड़ो मोर अंचल न चूमो अब मेरो मुख,
रसिक हमारी एक बात चितलावो तू।
अगणित बाला मुखपंकज के चुंबन को,
लोभी भौंर कान्हर तहाँई चलिजावो तू॥

संस्कृत

जाने सखि! माधवसमागममहं तेऽवश्य—
मत एव मन्दगतिरेषा ते प्रशस्यते।
नवचोलबन्धनं च भग्नं त्रुटिता च माला,
सहजमुखश्रियापि किञ्चिदिव नश्यते॥
स्वेदकणभरितं कपोलयुगलं तथैव,
नयन युगं ते फुल्लकमलैर्निरस्यते।
धौतं नेत्रकज्जलं विलुप्तोऽप्यधरस्य रागः,
आलि! दृढबद्धवेणी शिथिलेव दृश्यते॥

हिंदी

जानतिहौं मोहन मिल्यो है आज कुंज बीच,
ताकी दई नूतन छटा को तू छिपाय लै।
विप्रचंद त्योंहीं कल कजल अधर मध्य,
नैनन मे पीक लीक ताके कै मिटाय लै॥
कोमल कपोलन पै दंतन को लाग्यो दाग,
डारि मुख अंचल तें तुरत छिपाय लै।
कंचुकी फटी है मुक्तमाल उलटी है सीस—
बेनीहू छुटी है ताहि वेगिहि बनाय लै॥

अक्षयवट मिश्र (विप्रचंद)

१. नवीन वर्ष
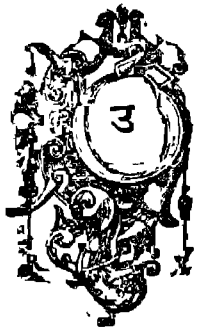
स परम पिता जगदीश्वर को सहस्र बार धन्यवाद है, जिसकी अपार अनुकंपा से आज 'माधुरी' अपने जीवन के पाँच वर्ष व्यतीत करके छठे मे पदार्पण करती है। इन पाँच वर्षों मे 'माधुरी' ने हिंदी-साहित्य की जो कुछ सेवा की है, उसके विषयमे हमे कुछ नहीं कहना है। पर, इतना हम जानते हैं, कि हिंदी के प्रतिष्ठित कवियो और लेखको का जैसा कुछ सहयोग हमे प्राप्त रहा है, उससे यदि हम यह निष्कर्ष निकालें कि 'माधुरी' पर हिंदी-संसार की कृपा है तो कदाचित यह बात अनुचित न कही जायगी। इधर चैत्र मे, जिस समय हम लोगों ने 'माधुरी' का संपादन-भार ग्रहण किया था, तो हमे अपने मार्ग मे उपस्थित विघ्न-समूह का बहुत बड़ा भय था। अपनी त्रुटियों से परिचित होने के कारण पद-पद पर हमे यह शंका बनी रहती थी कि कहीं हमारे द्वारा 'माधुरी' का अहित न हो जाय। पर करुणा-वरुणालय परमेश्वर की कृपा से विघ्न-समूह छिन्न-भिन्न हो गया। अब हमारा मार्ग एक प्रकार से परिष्कृत हो गया है, और ज्यों-ज्यों अनुभव प्राप्त होता जाता है, त्यों-त्यों अपनी त्रुटियों को दूर करते हुए हम लोग 'माधुरी' को उन्नति के पथ पर विशेष आयोजन के साथ लाने का उद्योग कर रहे हैं। हमारा दृढ़ विश्वास है कि ईश्वर हमारे इस प्रयत्न मे भी हमारी सहायता करेगा। इन तीन-चार महीनो मे 'माधुरी' कैसी निकली, इसका परिचय हमे उन समालोचनाओं से मिलता है जो इस बीच मे निकलनेवाली 'माधुरी' की भिन्न-भिन्न संख्याओं के संबंध मे निकली हैं। हम अपने दोनो ही प्रकार के—अनुकूल तथा प्रतिकूल—समालोचकों के कृतज्ञ हैं। अनुकूल समालोचको से हमें प्रोत्साहन मिला है, तथा प्रतिकूल आलोचकों की दिखलाई त्रुटियों मे से कइ को सुधार कर हम 'माधुरी' का हित कर सके हैं। हमे यह सूचित करते हुए बड़ा हर्ष है कि 'माधुरी' के ग्राहकों की कृपा उस पर जैसी पहले थी, अब उससे बढ़कर है। इन तीन-चार महीनो मे 'माधुरी' की ग्राहक-संख्या मे यथेष्ट वृद्धि हुई है। इधर 'माधुरी' मे 'संगीत-सुधा' का प्रकाशन बंद कर दिया गया था, पर ग्राहकों के विशेष आग्रह से इस अंक से हम उसका प्रकाशन फिर प्रारंभ करते हैं। इसके अतिरिक्त इस संख्या से १ जीवन-सुधा, २ ज्ञान-ज्योति, ३ कृषि-कौशल, ४ व्यवसाय और वाणिज्य, ५ सुभाषित और विनोद तथा ६ चित्र-चर्चा नाम के नए स्तंभ भी खोले जाते हैं। 'जीवन-सुधा' में स्वास्थ्य-सुधार, शरीर-रक्षा, व्यायाम और खेल आदि से संबंध रखनेवाले लेखों का समावेश रहेगा। 'ज्ञान-ज्योति' में ऐसे गवेषणापूर्ण लेखों का संग्रह होगा, जिनमे या तो खोज की गुंजाइश होगी या वाद-विवाद को आश्रय मिल सकेगा। शेष स्तंभों के

शीर्षकों से ही उनका आशय प्रकट है। हमारा विचार है कि वसंत-पंचमी के अवसर पर हम 'माधुरी' का एक और 'विशेषांक' प्रकाशित करें। संभव है, तब तक हम कुछ और नए स्तंभ भी माधुरी में खोल सकें।

भविष्य में 'माधुरी' की नीति क्या होगी, इस विषय पर भी यहाँ दो-चार शब्द लिखे जाते हैं। 'माधुरी' साहित्य-प्रधान पत्रिका है। वह भारत की प्रचलित राजनीतिक दलबंदी से अलग रहेगी। वह किसी महत्त्व-पूर्ण राजनीतिक प्रश्न पर विचार कर सकती है, पर राजनीति उसका प्रधान विषय नहीं है, इसलिये 'माधुरी' के प्रेमी पाठक उसमें अधिक राजनीतिक बातें न पाने से असंतुष्ट न हों। साहित्य-संबंधी सभी अंगों पर 'माधुरी' प्रकाश डालेगी। उसे साहित्य के किसी अंग विशेष का पक्षपात नहीं है। खड़ी बोली और व्रजभाषा दोनो ही प्रकार की कविताओं को 'माधुरी' सहर्ष प्रकाशित करेगी। पहले के समान अब भी वह व्रजभाषा-कविता के प्रति उचित आदर के भाव प्रकट करेगी।

'माधुरी' हिंदू-धर्म और हिंदू-जाति की सेवा करने में अपना अहोभाग्य समझेगी। उन सभी प्रकार के आंदो-लनों से 'माधुरी' की सहानुभूति होगी, जिनका उद्देश्य हिंदू-धर्म और हिंदू-जाति की रक्षा करना है। स्पष्ट शब्दों में 'माधुरी' हिंदू-संगठन और शुद्धि के विशुद्ध और उचित रूप का निस्संकोच समर्थन करेगी। यह बात इतनी स्पष्ट इसलिये लिख दी गई है कि कुछ लोगों में यह भ्रम फैला या फैलाया गया है कि 'माधुरी' हिंदू-हित-रक्षा के मामले में या तो विरोधी-भाव रखती है, या उदासीन। यह बात बिलकुल मिथ्या है। 'माधुरी' हिंदू-हित-रक्षा के उचित रूप का पूर्ण बल के साथ समर्थन करेगी।

पाठकगण इस संख्या को पढ़कर देखेंगे कि पहले के समान गंभीर लेखों को प्रकाशित करते हुए भी 'माधुरी' हास्य-रस पूर्ण लेखों के प्रकाशन में भी प्रयत्नशील है। आजकल परलोक-विद्यावाद की चर्चा बड़े ज़ोरों पर चल रही है। 'माधुरी' में इस वर्ष इस विषय से संबंध रखने-वाले खंडनात्मक और मंडनात्मक दोनो ही प्रकार के लेख प्रकाशित किए जायँगे। व्रजभाषा के हज़ारों काव्य ग्रंथ अब तक अप्रकाशित पड़े हैं। इन ग्रंथों में कोई-कोई कविता बड़ी ही सुंदर और सरस है। विचार यह है कि, यदि 'माधुरी' के पाठकों ने पसंद किया, तो, पुराने कवियों के अनेक अप्रकाशित छंद 'माधुरी' में प्रकाशित किए जा-यँगे। 'माधुरी' के प्रबंध-संपादक महोदय इसकी छपाई, सफ़ाई, काग़ज़ और रूप-रंग में भी उन्नति करने का प्रयत्न कर रहे हैं। उनके इस प्रयत्न का कुछ परिचय इस अंक से पाठकों को मिलेगा। पर नए टाइप का ठीक परिचय तो दो ही तीन महीनों में मालूम हो सकेगा। प्रबंध-संपादक महोदय की ओर से इतना लिख देने में हम कोई हानि नहीं समझते हैं कि वे 'माधुरी' की सौंदर्य-वृद्धि करने में कोई बात उठा न रक्खेंगे।

अंत में 'माधुरी' के प्रेमी लेखकों, कवियों, पाठकों और ग्राहकों से सविनय निवेदन है कि वे 'माधुरी' पर पूर्ववत अपनी कृपा बनाए रखकर हमें यह अवसर दें कि हम विशेष उत्साह, विशेष परिश्रम और विशेष लगन से उसकी सेवा कर सकें। अपनी सहयोगिनी पत्रिकाओं और सहयोगी पत्रों से भी प्रार्थना है कि हिंदी-माता की सेवा में वे हमें भी अपने साथ लिये चलें, जिससे हम सब मिलकर माता को विशेष रूप से प्रसन्न कर सकें। अंत में अपनी त्रुटियों के लिये क्षमा माँगते हुए हम अपने इस नम्र निवेदन को समाप्त करते हैं।

× × ×

२ सेनापति का रामचरित चित्रण

हिंदी-साहित्य-संसार में महाकवि सेनापति का जो आदरणीय स्थान है, वह किसी से छिपा नहीं। पुराने ढंग के कवियों में सेनापति की प्रतिभा अनूठी थी। उनकी एक विशेषता यह भी है कि विलासिता के ज़माने में कविता करके उन्होंने अपनी संपूर्ण प्रतिभा केवल शृंगार रस को ही नहीं समर्पित कर दी, वरन् भक्ति को भी अपनाया। यह बड़े ही खेद की बात है, कि सेनापतिजी का एक मात्र ग्रंथ 'कवित्त-रत्नाकर' अबतक अप्रकाशित है। एक बार सुनने में आया था, प्रयाग विश्व-विद्यालय की ओर से इस ग्रंथ का एक उत्तम संस्करण प्रकाशित किया जायगा। परंतु इसका भी अबतक कोई परिणाम देखने में नहीं आया। सेनापतिजी अनूपशहर के रहनेवाले, कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे, और संवत् १७०६ में इन्होंने अपना ग्रंथ समाप्त किया। इनके कवित्त-रत्नाकर में पाँच तरंगें हैं। पहिली तरंग में ६४ छंद हैं, जिनमें अधिकांश में श्लेष-मूलक कविता है। द्वितीय तरंग में ७४ छंद हैं, और इसमें शृंगार-रस का सत्कार हुआ है। तृतीय तरंग में ५६ छंद

है, और इनमें षट् ऋतुओं का विशद वर्णन किया गया है। यह वर्णन बहुत सुंदर बन पड़ा है। सेनापतिजी का ऋतु-वर्णन केवल शृंगार-रस के उद्दीपन की सामग्री नहीं है, वरन् उसमें सच्ची प्राकृतिक छटा का चित्रण है। सेनापतिजी के ऋतु-वर्णन के संबंध में कई लेख हिंदी की पत्र-पत्रिकाओं में निकल भी चुके हैं।

चौथी तरंग में रामायण का वर्णन है। यह वर्णन ७६ छंदों में समाप्त हुआ है। सेनापतिजी ने श्रीरामचंद्रजी की पूरी कथा सिलसिलेवार नहीं लिखी है। उन्होंने विशेष-विशेष प्रसंगों के रमणीय वर्णन किए हैं। पाँचवीं तरंग में ८४ छंद हैं। इसमें भक्ति से संबंध रखनेवाले २१ फुटकर छंद हैं। शेष भाग में चित्र-काव्य आदि के उदाहरण हैं। हम अपने इस नोट में 'माधुरी' के पाठकों को चौथी तरंग के रामचरित्र-संबंधी छंदों का परिचय देंगे।

सेनापतिजी संपूर्ण रामकथा वर्णन करने में अपने को असमर्थ पाते हैं, और अपनी असमर्थता का कैसे अच्छे ढंग से वर्णन करते हैं—

गाय चतुरानन सुनाय रिषि नारद को,
संख्या सतकोटि जाहि कहत प्रवाने हैं।
नारद ने सुनी बालमीकि बालमीकि ने,
सुनी भगवान जे भगति रसमाने हैं॥
ऐसी रामकथा ताहि कैसे के बखानें नर,
जौन ये विमल बुद्धि ज्ञान के विहीने हैं।
सेनापति याते कथा क्रम को प्रमान करि,
कहूँ काहू ठौर के कवित्त कछु कीने हैं॥

श्रीरामचंद्रजी ने धनुष तोड़ डाला, सीताजी उन्हें जयमाल पहनाने आती हैं। देखिए, इस दृश्य का वर्णन सेनापतिजी कैसे अच्छे ढंग से करते हैं—

तोर्यो है पिनाक नाकपाल बरषत फूल,
सेनापति कीरति बखाने रामचंद की।
लैके जयमाल हिय बाल है त्रिलोकी छवि,
दसरथलाल के बदन अरविंद की॥
परी प्रेमफंद उर बाढ़ो है अनंद अति,
आछी मंद-मंद चालु चलति गयंद की।
कनक बनक बनी बानक बनक आई,
झनक मनक बेटी जनक नरिंद की॥
देखि चरनारबिंद बदन करयो बनाय,
उर की बिलोकि विधि कीनी आलिंगन की।
मन के परम ऐन राखे करि नैन नेक,
निरखि निकाई इंदु सुंदर बदन की॥
मानो एक पतिना की व्रतकी पतिव्रत की,
सेनापति सीता तन मन अरपन की।
लाय रघुराई जू को माल पहिराई लोन,
राई करि वारी सुदराई त्रिभुवन की॥

देखिये, सीताजी के कंकण खोलने की बात को लेकर कवि अपने आराध्य देव श्रीरामजी से कैसा मधुर परिहास करता है। बड़ी ही रमणीय और रसीली उक्ति है—

मात जू महरानी को बुलाओ महराज हू को,
लाजै मतु केकई सुमित्रा हू के जिय को।
रानि के सपत रिषिहू के बीच बिलसत सुना,
उपदेस ना अरुंधती के पिय को॥
सेनापति भिरत में बखाने बिस्वामित्र नाम,
गुरु बोधि त्रभिय प्रबोध कर हिय को।
खोलिये निमक यह धनुख न सकर को,
कवरि मयंकमुखी कंकन है सिय को॥

श्रीरामजी और सीताजी द्यूतक्रीड़ा कर रहे हैं, सीताजी हीरक-जड़ित पहुँचियाँ पहिने हुये हैं। उनमें राम और सीता का प्रतिबिंब दिखलाई पड़ता है। श्रीराम और सीता दोनों इस प्रतिबिंब के देखने में ही मग्न हो जाते हैं। द्यूतक्रीड़ा भूल जाती है। कैसे अच्छे ढंग से दंपति का अनुराग दिखलाया गया है—

सीता अरु राम जुआ खेलत जनक धाम,
सेनापति देखि नैन नेकहू न मटके।
रूप देखि देवि हारी बारि फेरि पिय पाती,
प्रीति सों बलाय लेति कैयो बार चटके॥
पहुँची के हीरन में दंपति की झाईं परी,
चंद्राबिंब मानो सुभग मुकुर निकट के।
भूलि गयो खेल दोऊ देखत परसपर,
दुहुन के रूप प्रतिबिंबन में अटके॥

सीता जी की सुंदरता का भी एक छंद देखिये—

तीन लोक ऊपर सरूप पारबती जाने,
सम्भु सग रंग अरधंग प्रीति पाई है।
नाहीं पारबती के अछत मोहिनी के रूप,
मोहि के महेश मति महा भरमाई है॥
सोई राम मोहिनी के रूप को धरनहार,
जाके रूप मोह्यो और बाल बिसराई है।
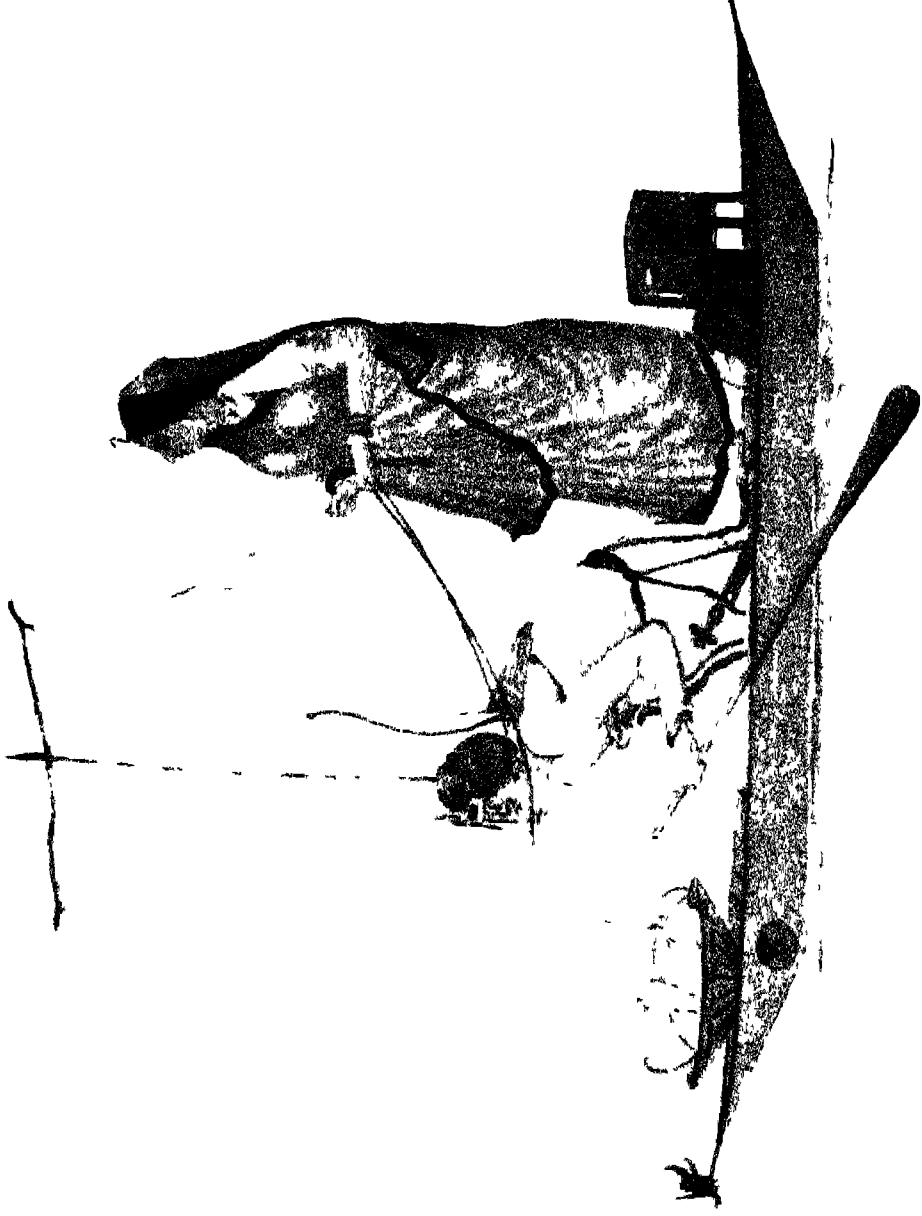
सेनापति याते सुर नर सुदरीन हू ते,
सुंदर परम सिय रानी की निकाई है ॥

परशुरामजी के प्रचंड रूप का वर्णन सेनापति ने खूब किया है। देखिए—

भीजो है रुधिर भर मांस घनघोर धार,
जाको सतकोटि हू ते कठिन कुठार है।
छत्रियन मारि के निछत्तरी करी है छिति,
बार यकईस तेज पुंज को अधार है ॥
सेनापति कहत कहाँ है रघुबीर कहाँ,
छाम भरो लोह करिबे को निरधार है।
परत पगनि दशरथ को न गनि आयो,
अगनि सरूप जमदगनि कुमार है ॥

इन्हीं परशुरामजी की सम्मान-रक्षा का कारण सेनापतिजी यों बतलाते हैं—

लीन्हे हू निदान अभिमान सुभटाई हू को,
छाई रिपि रीति हू न रानी कहूनेऊ की।
डारि रे हथ्यार मारु मारु करें आयो धरें,
उद्यत कुठारु सुद्धि बुद्धि न मनेऊ की ॥
सेनापति राम गाय विप्र को धरें प्रनाम,
जाके उर लाज है बिरद अपनेऊ की।
आज जमदगनि को जानते धरी में राजु,
होती जो न ज्यारी यह जिरह जनेऊ की ॥

श्रीहनूमानजी समुद्र पार करते हैं। उनका वेग कितना प्रबल है, उनकी गति कितनी तीव्र है, इसका वर्णन भी सेनापतिजी ने बहुत सुंदर किया है। एक क्षण के लिए आँखें बंद कर लीजिये और फिर उन्हें खोलकर सूर्य्य की ओर देखिए, बस! सूर्य्य को देखने में जितनी देर आप को लगेगी, उतनी ही देर में श्रीहनूमानजी ने समुद्र पार कर लिया था। स्वयं सेनापति के शब्दों में पढ़िए—

चल्यो हनुमान रामबान के समान जानि,
साना सोधि काज दसकंधर नगर को।
रामको जुहारि बाहुबल को सम्हारि करि,
सबहीं के समय दूर दूरि डार डर को ॥
लागी है न बार फांदि गयो पारावार पार,
सेनापति कविता बखाने बेगि बर को।
खोलत पलक जैसे एक ही पलक बीच,
दगन के तारे दौरि मिले दिनकर को ॥

श्रीहनूमानजी ने लंका में जो अग्निकांड उपस्थित किया था, उसका भी सेनापतिजी ने बड़ा विकराल दर्शन किया है। इस अग्निकांड की उपमा बड़वानल से देते हुये सेनापति ने कैसी पते की बात कही है—

"आगम बिचारि राम बान को अगाऊ किधौं,
सागर ते परयो बड़वानल निकसि के।"

इसी प्रकार कवि की यह सूझ भी बड़ी ही सुंदर है कि लंकादाह के कारण जो गर्मी उत्पन्न हुई थी, उसीको तापने के लिए शीत-ऋतु में उत्तर से भग कर सूर्य्य दक्षिणायन होजाते हैं, मानो वह गर्मी अबभी बनी है—

"शीत गाभ उतरते भाजि भानु दच्छिन में,
अजा नाईं तासु ही के आसरे रहतु है।"

समुद्र पर कोप करके उसे सोखने के लिए श्रीरामचन्द्रजी ने जब बाण संधान किया था, तो कैसा भयंकर दृश्य उपस्थित हुआ था, उसे कवि के शब्दों में सुनिए—

सेनापति राम बान पावक बखाने कान,
जैसी सिख दीन्हीं सिंधुराज को रिसाय के।
ज्वालन के जाल जाय पजरे पताल हूत,
छै गयो गगन गयो सूरजो समाय के ॥
परे मुरझाय ग्राह मकर फरफराय,
सुर कहें हाय को बचावे नद नाय के।
ग्रद न्यो तवा को नची कमठ की पीठ पर,
छार भयो जाय छार सिंधु उननाय के ॥
सेनापति राम बान पावक अपार अति,
डारयो पारावार हू को गरब गवाँय के।
को सके बरनि ग्रति गरमि री बरनि नभ,
भगियो भगनि गयो सूरजो समाय के ॥
जेते जल जीव बड़वानल के त्रास भाजि,
एकन रहे हैं सिंधु सोरे नार आय के।
तेई बान पावक ते भाजि के तुषार जानि,
आलि के परन बड़वानल में धाय के ॥

बाण से उत्पन्न अग्नि, बड़वानल से इतनी अधिक तीव्र है कि उससे बचने के लिए जल-जंतु बड़वानल का आश्रय लेना अधिक उपयुक्त समझते हैं। इस विकरालता का कुछ ठिकाना है!

अब सेतु-बंधन का दृश्य देखिये। वानर-यूथ पत्थरों से समुद्र पाट रहा है, जल में पत्थरों के गिरने से वह ऊपर को उछलता है। जल का इस प्रकार उछलना कवि

की कल्पना-शक्ति को उत्तेजन देना है। उसे ज्ञात पड़ता है कि पत्थरों के प्रहार से विकल होकर सागर आसमान की ओर भागने का उद्योग कर रहा है। स्वयं सेनापति के शब्दों में सुनिये—

पब्बय परत पयपूर उछरत भयो,
सिंधु के समान आसमान सिंधु गन को।
मानहु पहार के पहार ते उपि करि,
छाँड़ि के धरनि चल्यो सागर गगन को॥

रावण की सभा में जाकर अंगद ने किस प्रकार से अपना पैर स्थापित किया था, उसका वर्णन भी सेनापति के शब्दों में सुनिये—

धरो पग पेलि दससीस के सभा पर,
जोगे आय हत्थ समत्थ बाहु बल मैं।
यह कहि कोपि के कपीस पाव रोपि करि,
सेनापति वीर विरुझान्यो बैरि दल मैं॥
क्रम है फनिन्द गयो पब्ब चकचूर भयो,
दिग्गज गरद टल दारुन टहल मैं।
पाय विकराल के धरत ततकाल गयो,
सपत पताल फूटि पापर सो पल मैं॥

और भी सुनिए—

बालि को सपूत कपि कुल पुरहूत,
रघुवीर जू को दूत धरिरूप विकराल को।
जुद्ध मद गाढ़ो पाँव रोपि भयो ठाढ़ो,
सेनापति बल बाढ़ो रामचन्द्र भूमिपाल को॥
कच्छप कहलि रह्यो कुंडली टहलि रह्यो,
दिग्गज दहलि त्रास परो चकचाल को।
पाँय के धरत अति भार के परत भयो,
एक ई परत मिलि सपत पताल को॥

श्रीरामचन्द्रजी युद्ध में संलग्न हैं। इनके इस युद्ध दृश्य का भी वर्णन विशद है। सेनापति जी कहते हैं—

काटत निसंग ते न राधन सरासन में,
खैंचत चलावत न बान देखियतु है।
श्रवन में हाँथ कुंडलन में धनष बाँच,
सुंदर बदन एक टक लेखियतु है॥
सेनापति कोप आप ऐन हैं अरुन नैन,
सबर दलन मैन सो विशेषियतु है।
रह्यो नत ह्वै के अग ऊपर को समर मैं,
चित्र कैसो लिख्यो राजाराम देखियतु है॥

भीमकाय महाबली कुंभकर्ण का रण-तांडव बड़ा ही विकराल है। सेनापतिजी का कहना है कि यदि श्रीरामजी उसकी समर्थ बाहों को काट न डालते तो निश्चय ही वह सूर्यमंडल को उखाड़ लेता और फूल के समान उसे रामचन्द्र पर फेंकता—

जुद्ध मद अंध दसकंधर को महाबली,
वीर महाबली डारे बंदर विदारिकै।
कहूँ तुंग शृंगनि उतंग भूधरनि कहूँ,
जोई हाँथ परै सो चलावत उखारिकै॥
जो कहूँ नरिन्द सेनापति रामचन्द्र ताकी,
बाहु अर्धचन्द्र सो न डारे निरवारिकै।
तो तो कुंभकरन चलाइबे को फूल जिमि,
लेतो मारतंड हू को मंडल उचारिकै॥

इसी विकराल महाबली कुंभकर्ण का जब शिरच्छेद हो गया तो उसके मुण्ड के संबंध में सेनापतिजी एक अद्भुत हास्य-पूर्ण युक्ति की कल्पना करते हैं। उनका कहना है—

चंडिका रमन मुंडमाल मेरु करिबे को,
मुंड कुंभकरन को भाज्यो चित चायकै।
सेनापति संकर के कहे अनगन गन,
गरब सों दोरे दूर बर सब धायकै॥
जोरकै उठायो जुरि मिलि कै सबन ज्योंही,
गिरिहूँ ते गरुओ गिरो है डगुलायकै।
हाली भुव गगन को चाली चपि चूर भई,
काली भाजी हँसी है के पाली है हरायकै॥

युद्ध के उपरान्त सेनापतिजी ने एक छंद में श्रीहनुमानजी की भक्ति का बड़ाही भव्य वर्णन किया है। उनका कथन है—

भये है भगत भगवन के भजन रत,
ह्वै रहे विवेकी जग जान्यो जिय सपनो।
सेवा ही के बल सेवा आपनी कराई पुनि,
पायो मनोरथ सब काहू आपु अपनो॥
यह अदभुत सेनापति है भजन कोऊ,
कह्यो ना बनत तन मन को अरपनो।
जैसो हनुमान जान्यो भजन को रस जिन,
राम के भजन ही लौं जीबो माँग्यो अपनो॥

आगे किसी नोट में हम सेनापति की भक्ति-संबंधी कविता की कुछ विशेष छानबीन करेंगे।

× × ×

३. अंग्रेजी साम्राज्य—महासमर के बाद

यूरोपीय महासमर वास्तव में इँगलैंड और जर्मनी की प्रतिद्वन्द्विता का संग्राम था। जर्मनी के पराजय ने इँगलैंड को सर्वशक्तिमान बना दिया। संसार में उसका कोई सानी न रहा। जर्मनी के उपनिवेशों का सिंह-भाग उसके हाथ में लगा, जर्मनी के व्यापार का बड़ा भाग उसके अधिकार में आगया। परिस्थितियों से ऐसा भासित होता था कि अब इँगलैंड भूमंडल का छत्रपति होगा। लेकिन राज्य-विस्तार चाहे जितना हो गया हो, और व्यापार में चाहे जितनी उन्नति हुई हो (हालांकि इस विषय में भी सन्देह है), मगर आज संसार की राजनैतिक परिषद् में इंगलैंड को वह प्राधान्य कदापि प्राप्त नहीं है, जो संसार की सबसे बलवान शक्ति की हैसियत से उसे होना चाहिए। उसे क़दम-क़दम पर मुँह की खानी पड़ रही है, और आज उसके रोब-दाब का सूर्य जितना राहु-ग्रसित है उतना लड़ाई के पहले न था।

सबसे पहली ज़क इँगलैंड को रूस में उठानी पड़ी जब उसने केरेन्सकी की सहायता से बाल्शेविक सरकार का मूलोच्छेद करना चाहा। केरेन्सकी की सहायता में एड़ी चोटी का ज़ोर लगाया गया, बाल्शेविकों के मुँह पर खूब कालिमा पोती गई, उनकी पराजय की कथाएँ बड़े मोटे-मोटे अक्षरों में प्रकाशित हुईं, लेकिन अन्त में बाल्शेविकों ने अपने देश के द्रोहियों का वारा-न्यारा कर दिया। बाहरी हार केरेन्सकी की हुई, पर वास्तविक हार इँगलैंड की हुई।

दूसरी हार इँगलैंड को टर्की से मिली। यूनान और टर्की में ज़िंदगी और मौत की लड़ाई छिड़ी हुई थी। विजयी यूनान विजय के गर्व में फूला हुआ टर्की को पीस डालना चाहता था। इँगलैंड का स्वार्थ टर्की को निर्बल और अशक्त कर देने में ही था। यूनान वाले शहरों को जलाते, गाँवों को उजाड़ते और नरहत्या के पैशाचिक कांड दिखाते हुए चले आते थे कि यकायक कमाल पाशा का अभ्युदय हुआ। पाँसा पलट गया। जीती हुई बाज़ी पट पड़ गई। हारे हुए जीत गए। इंगलैंड ने यूनान को बहुत सँभाला, लड़ाई के सामान, धन, यहाँ तक कि सैनिक अफ़सरों से भी मदद की, मगर यूनान के क़दम न जमे। ऐसा दुम दबाकर भागा कि आज तक पीछे फिर कर न देखा। टर्की ने अपनी खोई हुई साख फिर प्राप्त कर ली। टर्की के सूरमाओं के सामने इँगलैंड के बमगोले और नौकाएँ कुछ न कर सकीं। टर्की के मुट्ठी भर सिपाहियों के सामने इँगलैंड की विशाल शक्ति को खड़े होने का हौसला न हुआ। विरली ही किसी वीर जाति ने ऐसे अपमान को इतनी निर्लज्जता के साथ सहन किया होगा।

तीसरी हार इँगलैंड को ईरान और अफ़ग़ानिस्तान में उठानी पड़ी। इँगलैंड का स्वार्थ इन दोनों मुसलमानी राज्यों के निर्बल और ऋणी रहने में था। लेकिन उसका पुराना शत्रु रूस यहाँ भी उसके ख़याली क़िलों को ढाने के लिये ताल ठोंके खड़ा था। अब यह पहले का रूस न था, जो ईरान के बटवारे और मंगोलिया के प्रलोभन में पड़ कर अंग्रेज़ों से सन्धि करके महासमर में कूद पड़ा था। यह ऊँचे आदर्शों वाला रूस था—जिसने दीन राष्ट्रों को सहारा देने का प्रण किया था, जो संसार से साम्राज्यवाद का निशान मिटा देना चाहता है। उसके दबाव से ये दोनों मुसलमानी राज्य पूर्ण स्वतंत्र होकर आज इंगलैंड के पहलू के काँटे बने हुए हैं। अफ़ग़ानिस्तान का सैनिक संगठन और ईरान की नई राज्य-व्यवस्था देख-देख कर इँगलैंड के प्राण सूख रहे हैं।

सबसे बड़ी हार इँगलैंड को चीन में मिली है। जिस राष्ट्र को वह अपना शिकार समझता था, आज वही पीछे से फिरकर उस पर सींगों से चोट कर रहा है और पुराने शिकारी को कहीं भागने का रास्ता नहीं मिलता। बेचारे ने मित्र राष्ट्रों को प्रलोभन दिया, पर दुर्भाग्य से किसीने उसके सत्परामर्श पर ध्यान न दिया। रूस और चीनके आदर्शों में विरोध होने पर भी दोनों में सहानुभूति है। चीन ही इँगलैंडकी साम्राज्य-कल्पना में बाधक होरहा है। रूस की इच्छा केवल इतनी है कि चीन सबल होकर इंगलैंड का सामना कर सके। वह चीन में इंगलैंड की साम्राज्य-शक्ति को तोड़ना चाहता है। चीन को अपनी सद्भावनाओं का विश्वास दिलाने के लिये उसने मास्को में डा० सनयात सन के नाम से एक महाविद्यालय खोल रखा है, जिसमें चीन के हज़ारों युवक शिक्षा लाभ कर रहे हैं। यह सब केवल इसलिये कि चीन इंगलैंड के चंगुल से निकल आवे। उधर इँगलैंड अपनी शक्ति के घमंड में यह समझ रहा है कि अपने बल-प्रदर्शन से वह चीन को क़ाबू में करलेगा। इसके साथ ही वह संसार को यह भी दिखाना चाहता है कि चीन उसके स्वत्वों को छीन लेना और विदेशियों का

बहिष्कार करना चाहता है। मगर वस्तुतः चीन को इँगलैंड से कोई शत्रुता नहीं। जर्मनी, इटाली, जापान आदि देशों के निवासी चीन में शांति-पूर्वक जीवन व्यतीत कर रहे हैं। न उन्हें जान का भय है, न माल का। फिर, इँगलैंड से चीन को क्यों शत्रुता होगी। इसका कारण है कि अन्य जाति वालों ने अपने को परिस्थितियों के अनुकूल बना लिया है। वे चीन के न्याय-विधान पर विश्वास रखते हैं और प्रजा की भाँति वहाँ के नियमों का पालन करते हैं। इँगलैंड वहाँ की नीति का पालन करने में अपना अपमान समझता है। वह वहाँ विजेता बनकर रहना चाहता है और चीन अपने ही देश में परतंत्र बनकर रहना स्वीकार नहीं करता। यह सबसे बड़ा आघात है, जो इँगलैंड को सहना पड़ रहा है। सारांश यह कि यूरोपीय समर में विजय पाकर इँगलैंड ने जो प्रभुत्व प्राप्त किया था, वह मंत्रिमंडल की अदूरदर्शिता के कारण उसके हाथ से निकलता जा रहा है। यदि इन परिस्थितियों में इँगलैंड ने विशाल बुद्धिमत्ता का परिचय न दिया और अपने परतंत्र राष्ट्रों में असंतोष के कारणों को दूर करने की व्यवस्था न की, तो उसे अवश्य ही पछताना पड़ेगा।

× × ×

४. रंगीला रसूल का मुक़दमा

रंगीला रसूल के फ़ैसले के विरुद्ध मुसलिम-आंदोलन ने जितना विस्तृत और उग्र रूप धारण किया, उतना असहयोग आंदोलन के बाद, और किसी घटना ने न किया था। किसी संप्रदाय के प्रात:स्मरणीय सत्पुरुषों के चरित्र पर आक्षेप करना अत्यन्त घृणित और निन्द्य है। यदि एक संप्रदाय ऐसी भयंकर भूल करे तो दूसरे सम्प्रदाय को प्रतिकार की धुन में अपनी चिरसंचित सहिष्णुता का परित्याग करके उसी भूल को दोहराना उचित नहीं। कृष्ण, बुद्ध, राम, ईसा, मुहम्मद इन महान् आत्माओं ने संसार को परिष्कृत किया है। इन आत्माओं की ज्योति ने संसार को आलोकित न किया होता, तो आज पृथ्वी-मंडल अंधकार में पड़ा होता। उन महान् पुरुषों का उद्देश्य केवल एक था—अधर्म को मिटाना और धर्म का डंका बजाना। उनके आदर्शों में विरोध हो, पर उनकी नीयत पाक थी। उन सभी ने अपने जीवन को धर्म पर बलिदान किया। मनुष्य-समाज, अपनी भक्ति के अनुसार, उनमें किसी न किसी के आगे सिर झुकाता है, उनके उपदेशों में शांति का अनुभव करता है, उसे अपनी मुक्ति का पथ-प्रदर्शक समझता है। सभी सम्प्रदायों और समाजों में देवता-पुरुष और नर-पिशाच होते आए हैं, और होते रहेंगे। नेकी और बदी, धर्म और अधर्म किसी विशेष सम्प्रदाय के हिस्से में नहीं पड़े हैं। वर्तमान सम्प्रदायों का चाहे जितना पतन हो गया हो, उनका जीवन मौलिक नियमों से कितना ही विचलित हो गया हो, पर यह उन सम्प्रदायों के पूज्य संस्थापकों का दोष नहीं, उनके स्वार्थी अनुयायियों का दोष है। राजनीतिक विवाद में उन पूज्य आत्माओं पर लज्जा-जनक आक्षेप करना हम जैसे दुर्बल और क्षुद्र प्राणियों को शोभा नहीं देता—नहीं, इसे असभ्य धृष्टता समझना चाहिए। लेकिन जब हम किसी पूज्य आत्मा को कलंकित करें तो हमें भी उसके भक्तों द्वारा उन महात्माओं की निंदा सुनने के लिये तैयार रहना चाहिए। अगर एक सम्प्रदाय सहिष्णुता को खो बैठता है, तो दूसरे से यह आशा कैसे की जा सकती है कि, वह शांति और धैर्य से काम ले। शांति स्वर्णपथ होते हुए भी दुर्लभ वस्तु है। जिन लोगों ने "बीसवीं सदी के ऋषि" की रचना की, उन्हें "विचित्र जीवन" और "रंगीला रसूल" जैसे प्रतिउत्तरों के लिये तैयार रहना चाहिए था। पर, मुसलमानों ने ऐसी उदारता न दिखाकर कुँवर दलीपसिंह के फ़ैसले के विरुद्ध जो अभूतपूर्व आंदोलन किया, वह उच्च धार्मिक-आदर्शों के सर्वथा प्रतिकूल है। जस्टिस दलीपसिंह हिंदू नहीं हैं, और हिंदुओं के प्रति पक्षपात करने का उन्हें कोई कारण न था। उन्हें यह खूब मालूम था कि मुसलमान इस फ़ैसले को पसन्द न करेंगे, और यह जानते हुए भी, यदि, उन्होंने अभियुक्त को निर्दोष सिद्ध किया, तो इसका कारण यही था कि वह दफ़ा इस अभियोग पर घटित न हो सकती थी। सर सदाशिव ऐयर ने इस विषय पर अपनी सम्मति प्रकट करते हुए लिखा है कि उस दफ़ा में कुछ इस आशय के शब्द बढ़ा देने चाहिए, जिससे धर्म-संस्थापकों की निंदा भी उस दफ़ा में आ जाय। मुसलमान यदि इसी बात पर ज़ोर देते तो किसी को उनसे शिकायत न होती, पर मौलाना मुहम्मद अली जैसे ज़िम्मेदार आदमी का इस हद तक आवेश में आ जाना कि महामान्य राजपाल की उदारता की क़द्र न करके यह धमकी देना कि,

यदि उक्त महाशयजी ने रँगीला रसूल को फिर प्रकाशित किया होता, तो वह उनका सिर काट लेते, अत्यन्त दूषित मनोवृत्ति का परिचायक है। जब ऐसे लोग भी आवेश में आकर अपनी ज़िम्मेदारियों को भूल जाते हैं, तो साधारण जनता की तो बात ही अलग है। यह दुरावेश प्रकट करके मौलाना ने अपने सहधर्मियों की दृष्टि में चाहे जितना सम्मान प्राप्त कर लिया हो, पर उस क्षेत्र के बाहर वह अपने स्थान से बहुत नीचे गिर गए हैं। महाशय राजपाल यदि रँगीला रसूल का दूसरा एडीशन निकालें तो वह नैतिक दृष्टि से चाहे कितना ही बड़ा अपराध करें, न्याय की दृष्टि में वह सर्वथा निर्दोष हैं। वह किताब अगर किसी को आपत्ति-जनक प्रतीत होती है, तो क्या उसे क़ानून को अपने हाथ में लेने के लिये तत्पर हो जाना चाहिए? हिंदुओं को गोहत्या से उतना ही कठोर आघात पहुँचता है, जितना किसी मुसलमान को रँगीला रसूल के प्रकाशन से पहुँच सकता है। क्या उसके लिये प्रत्येक हिंदू को न्याय के बदले तलवार हाथ में ले लेनी चाहिए? यदि हिंदू ऐसा करें तो इसका उत्तरदायित्व मौलाना मुहम्मदअली जैसे मुसलिम नेताओं पर होगा।

× × ×

५. दक्षिण भारत में हिंदी प्रचार

गत ८ वर्षों में दक्षिण मे हिंदी-प्रचार को जो सफलता प्राप्त हुई उसके लिये 'संतोषजनक' का शब्द काफ़ी नहीं। यह अदम्य उत्साह और निस्स्वार्थ सेवा की अपूर्व कथा है। उसकी रिपोर्ट इस समय हमारे सामने है। उसे पढ़कर हमे हर्ष नहीं, विस्मयपूर्ण आनन्द प्राप्त हुआ। दक्षिण मे हिंदी प्रचार की चर्चा सुनते रहने पर भी हमे उस उन्नति का अनुमान न था, जो हम देख रहे हैं। इस संस्था का बीजारोपण, हिंदी के प्रेमी पाठक जानते हैं, पूज्य महात्मा गांधी के हाथों सन् १६१८ में इंदौर में हुआ था। और सबसे पहला हिंदी वर्ग मदरास शहर में १६१८ के जून महीने मे खोला गया। श्री देवदासजी इस प्रचार कार्य के पहले मिशनरी थे। स्वामी सत्यदेव भी शीघ्र ही मदरास पहुँच गए। इन्हीं दोनों महानुभावों की "डाली हुई दृढ़ नींव पर आज दक्षिण भारत में राष्ट्रभाषा हिंदी के प्रचार का विशाल राष्ट्रीय भवन तैयार होकर खड़ा है।" शीघ्र ही हिंदी प्रचारकों की समस्त प्रांत में इतनी मांग हुई कि १६२१ मे राजमहेन्द्री में एक प्रचारक विद्यालय खोला गया। प्रांत के अन्य भागों से ३० विद्यार्थी हिंदी की विशेष शिक्षा प्राप्त करने के लिये प्रयाग विद्यापीठ भेजे गए। एक ही साल मे प्रचार का क्षेत्र इतना विस्तृत होगया कि सन् १६२२ में तामिल और केरल प्रान्तों मे १४१८ और आंध्रदेश मे १६४५ विद्यार्थी नियुक्त प्रचारकों से हिंदी सीखते थे। हिंदी-प्रचारक कार्यालय इस समय ट्रिप्लीकेन में है। उसके पास एक हिंदी प्रचार प्रेस है, जिसमें लगभग १५०००) लग चुके हैं। पुस्तक प्रकाशन का एक विभाग है, जिसमे अबतक ३० पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। यह पुस्तकें इस विचार से लिखी गई हैं कि तेलगु, तामिल द्वारा हिंदी सीखने में सुगमता हो। स्वर्गीय श्री प्रतापनारायण वाजपेयी, श्री हृषिकेशजी तथा श्री प० हरिहर शर्मा आदि सज्जनों ने इस विषय में बहुत ही सराहनीय कार्य किया है। इस संस्था ने एक परीक्षा विभाग भी स्थापित किया है, जिसमे (१) प्राथमिक, (२) प्रवेशिका, (३) राष्ट्रभाषा, और (४) हिंदी प्रचारक परीक्षायें साल में दो बार ली जाती हैं। एक रामायण परीक्षा भी होती है। "दक्षिण भारत की हिंदी प्रेमी जनता मे समाज के सभी श्रेणी के स्त्री-पुरुष, बालक-बालिकाएँ, कालेजों के छात्र, व्यापारी, शिक्षक, वैद्य, देहाती किसान, सबने बड़े प्रेम से इन परीक्षाओं को अपनाया है।" गत ६ वर्षों में इन परीक्षाओं में ४५६७ परीक्षार्थी उत्तीर्ण हो चुके हैं। इनमे ४७१ देवियाँ भी हैं। प्रत्येक परीक्षा में प्रथम स्थान पानेवालों को यथेष्ट पुरस्कार दिया जाता है। इस संस्था की ओर से 'हिंदी-प्रचारक' एक मासिक-पत्र भी प्रकाशित होता है, पर उसकी ग्राहक-संख्या संतोषजनक नहीं है।

सन् १६२२ में राष्ट्रीय भावों की एक लहर सी उठी। उस समय हिंदी-प्रचारकों की माँग इतनी बढ़ी कि आंध्र-प्रांत के नैलूर ज़िले मे प्रचार कार्यालय की एक शाखा खोलनी पड़ी। १६२४ में इस आंध्र कार्यालय के अधीन ८१ प्रचारक काम करते थे। उनमे से केवल १६ प्रचारक कार्यालय की ओर से काम करते थे। शेष स्वतंत्र रूप से हिंदी-प्रेमी जनता से वृत्ति पाकर कार्य संपादन करते थे। सन् १६२३ मे त्रिचनापल्ली मे दूसरा प्रांतीय प्रचार कार्यालय खोला गया, लेकिन आर्थिक कारणों से उसके कार्य मे अच्छी सफलता नहीं हुई।

यह तो हुआ इस प्रचार-कार्य का इतिहास। अब उसकी वर्तमान दशा को लीजिए। दक्षिण में हिंदी-प्रचार का उत्साह राजनैतिक आंदोलन के साथ जाग्रत हुआ था। राजनैतिक आंदोलन के शिथिल पड़ जाने से जनता मे हिंदी के प्रति भी अब वैसा उत्साह नहीं रहा। प्रचारकों की संख्या आंध्र-प्रांत को मिलाकर इस समय २५ है। हिंदी सीखनेवालों की संख्या २६२८ है, और आंध्र-प्रांत में ३५०। अबतक इस कार्य का संपादन हिंदी-साहित्य सम्मेलन प्रयाग की निगरानी मे होता था। लेकिन, अब वह स्वाधीन हो गई है और उसका नाम "दक्षिण भारत हिंदी-प्रचार सभा" रक्खा गया है। हमारे विचार मे इस संस्था को स्थायी बनाने के लिये यह परिवर्तन आवश्यक था। दक्षिण की जनता अबतक शायद यह समझती थी कि इस संस्था का भार दूसरों पर है। अब वह अपने उत्तरदायित्व को समझेगी और धन का प्रबंध करने की चेष्टा करेगी।

इसमें संदेह नहीं कि हिंदी-प्रचार के इस विस्तार पर हम जितना गर्व करें, थोड़ा है। जहाँ कोई हिंदी का नाम न जानता था, वहाँ अब हज़ारों ऐसे युवक हो गए हैं, जो माधुरी, चाँद, सरस्वती आदि पत्रिकाएँ शौक़ से पढ़ते हैं, हिन्दी में पत्र-

व्यवहार करते हैं और हिन्दी में बातचीत करने की कोशिश करते हैं । लेकिन मद्रास जैसे प्रांत में कुल ३ हज़ार शिक्षार्थियों का होना कदापि संतोष-जनक नहीं है । इसके लिये दक्षिण भारत ही को नहीं उत्तर भारत को भी यत्न करना पड़ेगा । वर्तमान परिस्थिति में यह आशा करना कि हम बंबई, बंगाल आदि प्रान्तों में हिन्दी-प्रचार की पताका लहरा सकेंगे, ख़याली पुलाव सा मालूम होता है, लेकिन कम-से-कम मद्रास की ओर से तो हमें निराश न होना चाहिए । यद्यपि उस संस्था का साहित्य-सम्मेलन से अब कोई आर्थिक संबंध नहीं रहा, पर आत्मिक संबंध अवश्य है । हम आशा करते हैं यह संबंध चिरस्थायी होगा । दक्षिण के हिन्दी प्रेमियों को भी अपनी गति को और तेज़ी से बढ़ाने की चेष्टा करनी चाहिए ।

× × ×

६. सिंध और गुजरात में जल प्रकोप

हमारे राजा-रईसों का व्यवहार-वैषम्य सर्व प्रसिद्ध है । जिससे ख़ुश होकर गले मिले बस समझ लो कि, उसकी एक न एक दिन शामत आवेगी । किसी की एक बात पर ख़ुश होगए तो हीरों से दामन भर दिया, और नाराज़ होगए तो गधे पर सवार कराके शहर से निकाल दिया । जब मसारी राजों के यह ठाठ हैं, तो राजा इंद्र तो स्वर्ग-लोक के राजा हैं, उनके व्यवहार-वैषम्य का पूछना ही क्या । कहीं जनता एक बूँद पानी के लिए तड़प रही है, इंद्र को प्रसन्न करने के लिये यज्ञ किए जा रहे हैं, और कहीं प्रांत के प्रांत जल-मग्न हो रहे हैं । बड़ोदा, सिंध और गुजरात को तो प्रलय ही का सामना करना पड़ा । तीन-चार दिन में ४० इंच पानी गिरना प्रलय नहीं तो और क्या है । कहीं कहीं तो १०० इंच की वर्षा हुई है । कई साल हुए, युक्त-प्रांत के उत्तरी भाग में १० इंच पानी गिरा था । उसका फल यह हुआ था कि सैकड़ों ही घर गिर पड़े थे, और सैकड़ों ही गाँव बह गए थे । फिर, जहाँ ४० और १०० इंच वर्षा हो वहाँ की दशा कैसी कुछ भयंकर न होगी ! उस हानि की गणना करोड़ों के हिसाब से मन को समझाने के लिये चाहे कर लीजिए, पर उस हानि का वास्तविक अनुमान नहीं किया जा सकता । आज लाखों आदमी बे-घर मारे-मारे फिर रहे हैं । उनका सब कुछ जल की भेंट होगया । न झोंपड़ा बचा, न पशु, न नाज ; खेत में जो बीज डाले थे वह सड़ गए । अभी तक लाखों एकड़ भूमि जल-मग्न पड़ी हुई है । गुजरात का हरा भरा लहलहाता हुआ उद्यान उजड़ गया । जो प्रांत सदैव अन्य प्रांतों की सहायता के लिये तत्पर रहता था, आज स्वयं भिक्षा के लिये हाथ फैलाए हुए है । पंजाब के कुछ भागों में भी भयंकर वर्षा हुई है, और उड़ीसा से भी चिंताजनक सूचनाएँ आ रही हैं । हम अपने उन निस्सहाय भाइयों के साथ सहवेदना प्रकट करते हैं । उनकी सहायता के लिये धन की जितनी ज़रूरत है, उतनी ही जन की, और सबसे अधिक सेवाभाव की । महात्मा गांधी ने गुजरात की सहायता के लिये चंदे की अपील की है, और हर्ष की बात है कि जनता अपने कर्तव्य को समझ रही है । ६ लाख से अधिक चंदा हो चुका है । सेवा समितियाँ उद्धार कार्य में लग गई हैं । सरकार ने भी तक़ावी देना स्वीकार कर लिया है । लेकिन जहाँ कई करोड़ की हानि हुई है, वहाँ अभी कितने धन की आवश्यकता होगी, इसका अनुमान करना कठिन नहीं । प्रत्येक नगर में पीड़ितों के सहायार्थ चंदा होना चाहिए । प्रत्येक प्राणी का धर्म है कि, वह अधिक से अधिक जो दे सके, इस पुण्य कार्य में दे । इससे बड़ा और कोई पुण्य नहीं है । हमें आशा ही नहीं विश्वास है कि, उत्तर भारत कर्तव्य के पथ में पीछे न रहेगा । हम यह जानते हैं कि, समय अनुकूल नहीं—सारे धंधे पट पड़े हुए हैं, सब अपनी-अपनी चिन्ता में पड़े हुए हैं ; पर, हम यह भी जानते हैं कि अगर प्रत्येक गृहस्थ एक सप्ताह तक पान और सिगरेट का ख़र्च कम करदे तो एक सप्ताह में करोड़ों रुपए जमा हो सकते हैं । क्या हम इतने हृदय-शून्य होगए हैं कि अपने भाइयों का कष्ट दूर करने के लिये इतना क्षुद्र त्याग भी नहीं कर सकते ।

बड़ी-बड़ी दुर्घटनाओं में अगर चारों ओर सघन अंधकार दिखाई देता है, तो कहीं-कहीं स्वर्ण-रेखा की झलक भी मिल जाती है । समर-काल में हम जितने कर्तव्य-शील, धर्म-चेता, पुरुषार्थी हो जाते हैं, उतने सामान्य दशा में रह सकें तो यह मर्त्यलोक स्वर्ग बन जाय । उस आपत्काल में हम अलौकिक साहस, देवोचित उत्सर्ग दिखाने लगते हैं । एक आहत सैनिक की प्राण-रक्षा के लिये गोलियों के सामने कूद पड़ना खेल नहीं । गुजरात के

प्रलयकाल में भी सेवा और साहस की अद्भुत मिसालें नज़र आईं। बड़ोदा में एक क़ैदी सामने के डूबते हुए गाँव के प्राणियों की रक्षा के लिये और कोई रास्ता न पाकर तार पर चढ़ कर गया। कितना अद्भुत साहस था! ज़रा पाँव फिसल जाता तो नीचे अथाह जल किसी भयकर जंतु की भाँति मुँह फैलाए उसकी घात मे बैठा था। पैरो मे बेड़ियाँ पहने पतले तार पर चलना कितना कष्ट-साध्य था, पर उस क़ैदी को उस समय अपने प्राणों की चिंता न थी, धुन थी केवल अपने भाइयों को मौत के मुँह से बचाने की। राज्य के दीवान ने यह खबर पाते ही उस क़ैदी को मुक्त कर दिया। ऐसाही एक दूसरा कांड भी हुआ। रेलवे का एक गोरा अफ़सर कई बहते हुए प्राणियों की रक्षा के लिये हहराते हुए जल प्रवाह मे कूद पड़ा और उन अभागो को बचा लिया। उस धारा मे कूदना मौत के मुँह मे कूदना था, पर उस वीर पुरुष ने अपने प्राणों की तृण बराबर भी परवा न की। सेवा-समितियों को यही आदर्श अपने सामने रखना पड़ेगा।

× × ×

७ गाँवों मे स्वास्थ्यरक्षा

लगभग तीन साल हुए, बबई सरकार ने गाँवों की स्वास्थ्यरक्षा के लिये एक नए विधान का प्रचार किया था। यह तो स्पष्ट ही है कि गाँवों मे वैद्यों और डाक्टरो का अभाव है। लोग बीमार पड़ने पर भाग्य के सहारे बैठ रहते हैं। जिसको जीना होता है जीता है, जिसको मरना होता है मरता है। गरीब देहाती में इतना सामर्थ्य कहाँ कि वह शहर से किसी उपचारक को बुलावे। इसके साथ ही देहातों में सफ़ाई आदि का प्रबध बिलकुल न होने के कारण प्लेग, हैज़ा, मलेरिया आदि सक्रामक रोगों का ताँता बँधा रहता है। दरिद्रता और भी घातक है। इन कारणों ने देहातों को बीमारी का अड्डा बना रखा है। इस दशा को सुधारने के लिये बबई सरकार सराहनीय उद्योग कर रही है। पूना और बीजापुर के अस्पतालों में देहाती मदरसों के अध्यापकों को चिकित्सा के प्रारंभिक सिद्धातो का ज्ञान प्राप्त करने का प्रबध किया गया। ऐसे ३० अध्यापक पूना, बीजापुर, शोलापुर और धारवाड़ के जिलो में १००० से १५०० तक की आबादी वाले गाँवों में नियुक्त किए गए। ये अध्यापक साधारण बीमारियों में ग्रामीणों की सहायता करते हैं। कष्टसाध्य रोगियों को वे बड़े अस्पताल में भेज देते हैं। इन तीन वर्षों के अनुभव से ज्ञात होता है कि यह विधान सफल सिद्ध हो रहा है। गत १६ महीनों मे उपचारकों ने लगभग २३००० रोगियों को पूना ज़िले में, ४४००० को बीजापुर मे, २०००० को शोलापुर मे और २४००० को धारवाड़ में सहायता पहुँचाई। इससे विदित होता है कि गाँवों के निवासी कितनी तत्परता से इस प्रकार की सहायता स्वीकार करते हैं। इस अनुभव के सामने यह कौन कह सकता है कि देहाती अंग्रेज़ी दवा खाना अधर्म समझते हैं। यह सत्य है कि ये अध्यापक केवल सामान्य कष्टों को ही दूर कर सकते हैं, जैसे फोड़े-फुसी, कान या आँख का दर्द। लेकिन अस्पतालों मे भी तो सामान्य रोगियों की ही सख्या अधिक होती है। यह हर्ष की बात है कि सिविलसर्जनों, ज़िला अधिकारियों और बोर्डों के अफ़सरों ने इस विधान की मुक्त-कठ से प्रशसा की है। देहातियों को बहुधा फोड़ों या घावों की पट्टी के लिये साफ़ कपड़ा तक नहीं मिलता, बेचारे मक्खियों से बचने के लिये गदे चिथड़े या पत्ते लपेट लेते हैं। गदी पट्टियों का नतीजा यह होता है कि, घाव सड़ जाता है और एक सप्ताह मे अच्छा होजाने के बदले वर्षों मे पीछा छोड़ता है। कभी-कभी तो वह असाध्य होजाता है।

हम बबई सरकार की इस कर्तव्य-परायणता की सराहना करते हुए बड़े खेद के साथ यह कहने को बाध्य हैं कि हमारी प्रांतीय-सरकार ने अभी तक ग्रामीणों की सहायता के लिये कोई प्रबध नहीं किया। शहरों मे आप कितने ही अच्छे चिकित्सालय बनवा दीजिए, देहातों को उससे कोई लाभ नहीं पहुँच पाता। अब, सुन रहे हैं कि, देहातो मे सक्रामक रोगो के फ़िल्म दिखाए जावेंगे, जो तैयार कराए जा रहे हैं। किसी किसी ज़िले मे चूहों को मारने की आयोजना हो रही है। ये परीक्षाएँ अभी एक युग लेंगी, तब तक हमारे ग्राम्य निवासी भाग्य के भरोसे बैठे रहें। क्या हमारी प्रांतीय सरकार बंबई सरकार के अनुभव से लाभ नहीं उठा सकती? देहाती इतने दरिद्र हैं कि, एक पैसे की दवा भी उनके सामर्थ्य के बाहर है। हमारा यह अपना अनुभव है। हमारे गाँव में एक किसान को ज्वर आने लगा। हमने एक दिन उसे धूप में लेटे देखा। पूछा तो मालूम हुआ कि उसे ज्वर आता है। वह गाँव का सम्पन्न किसान समझा जाता था। इसलिये

हमने उसे बाज़ार से कुनैन मँगवा कर खाने की सलाह दी। हमने समझा, उसने कुनैन मँगवाकर खाई होगी। लेकिन कई दिन के बाद उसे फिर धूप में पड़े देखा। पूछा तो मालूम हुआ कि अभी कुनैन नहीं आई, कोई लानेवाला न मिला। हमने कहा, हमारे यहाँ पैसे भिजवा देना, हम स्वयं मँगवा देंगे। पैसे न आए, हमें भी दोबारा तक़ाज़ा करने की याद न रही। कई दिन के बाद किसान महाशय को फिर धूप में पड़े देखा। तुरत कुनैन की याद आ गई। पूछा, कुनैन मँगवाई? किसान तो न बोला, उसकी स्त्री रो पड़ी। हम कुनैन के न आने का कारण समझ गए। उसी दिन बाज़ार से कुनैन मँगवा कर दी और तीन चार दिन में किसान चंगा हो गया। और यह कोई नई बात नहीं है। बंबई के स्वास्थ्य-रक्षक विधान से सरल, कम-ख़र्च और जन-प्रिय विधान सोचना कठिन है। हाँ, यह प्रश्न है कि हमारे ग्रामीण अध्यापक यह काम करना पसंद करेंगे? उनमें अधिकांश द्विजाति हैं, जो शायद फोड़े फुंसी की मरहम-पट्टी करना अपनी शान के ख़िलाफ़ समझें, या नीच जाति के रोगियों के स्पर्शमात्र से अपने धर्म का अंत समझ लें। पर, हमें ऐसी शंका नहीं। वर्तमान जाग्रति का प्रभाव देशव्यापी है, और छूत-छात के बंधन ढीले पड़ गए हैं। हमें विश्वास है कि यह स्कीम इस प्रांत में भी सफल हो सकती है, और ख़र्च भी ऐसा ज्यादा नहीं।

× × ×

= गोस्वामी तुलसीदास

संसार-साहित्य के मुकुट-मणि गोस्वामी तुलसीदासजी की मृत्यु हुए ३०४ वर्ष हो गए। पर ज्यों-ज्यों समय बीतता जाता है, त्यों-त्यों उनका यश और भी उज्ज्वल दिखलाई पड़ता है। उत्तरी भारत में तुलसीकृत रामायण का जैसा प्रचार है वैसा किसी भी ग्रंथ का नहीं है। जब तक छापाख़ाना न था, तब तक लेखक रामायण की प्रतियाँ लिखकर ख़ूब रुपया कमाते थे, पर जब से प्रेस खुल गए हैं, तब से रामायण के हज़ारों संस्करण निकले हैं, और निकलते रहते हैं। रामायण के पढ़नेवालों की संख्या में अणुमात्र कमी नहीं हुई है, वरन् वह बढ़ती ही जाती है। रामायण को प्रकाशित करने के कारण किसी भी प्रेस के स्वामी को कभी भी किसी प्रकार का घाटा नहीं हुआ है। तुलसीदास के अनुपम काव्य रामायण ने भारत में भक्ति-रस का जो सागर लहराया है, उसमें मग्न होकर साधारण सांसारिक व्यक्ति भावना-जगत् में बहुत ऊपर उठ जाता है। रामायण में लोक-शिक्षण के साथ-साथ सदाचार की पुष्टि जिस प्रकार से की गई है, उसकी सराहना किस मुँह से की जाय, यह समझ में नहीं आता है। तुलसी-रामचरित-मानस हिंदू-समाज का सर्वस्व है। उसकी प्रशंसा के लिये प्रचलित कोशों में पर्याप्त शब्द ही नहीं हैं। तुलसीदासजी की मृत्यु-तिथि के संबंध में बहुत मत-भेद है। कुछ लोग उसे श्यामातीज और कुछ लोग श्रावण शुक्ला सप्तमी को मानते हैं। कौन ठीक है, यह निश्चय-पूर्वक नहीं कहा जा सकता। गोस्वामीजी का एक चित्र काशी की नागरी-प्रचारिणी सभा ने प्रकाशित करवाया है। दूसरा चित्र महाराज किशनगढ़ के पुस्तकालय में मिला है। इस चित्र के प्रकाशित करने का भी आयोजन हो रहा है। इन दोनों चित्रों में अधिक प्रामाणिक कौन है, यह बात भी विवाद से ख़ाली नहीं है। सुनते हैं काशी के क्वींस कालेज में गोस्वामी तुलसीदासजी के हाथ की लिखी एक प्रति वाल्मीकीय रामायण की है। यदि यह बात ठीक हो तो इस प्रति के एक पन्ने का फ़ोटो प्रकाशित होना चाहिए। कहा जाता है कि राजापुर और मलिहाबाद में स्वयं गोस्वामीजी के हाथ की लिखी रामायण की प्रतियाँ हैं। पर, इन प्रतियों को कुछ लोग प्रामाणिक नहीं बतलाते। हमारी राय है कि जिस प्रकार इंगलैंड में Shakespeare Museum है, उसी प्रकार से भारत में एक Tulasi Museum बनना चाहिए। इस म्यूज़ियम में तुलसीदास के संबंध की सभी वस्तुओं का संग्रह होना चाहिए। इस म्यूज़ियम की स्थापना या तो श्रीअयोध्याजी में होनी चाहिए या श्रीकाशीजी में। हमारी यह भी राय है कि तुलसी-जयंती के दिन समग्र उत्तरी भारत में छुट्टी होनी चाहिए। उस दिन कचहरी, स्कूल और बैंक आदि बंद होने चाहिए। जैसे शिवाजी की मृत्यु-तिथि को बंबई प्रांत में छुट्टी रही, उसी प्रकार से संयुक्त-प्रदेश में तुलसी-जयंती के दिन छुट्टी होनी चाहिए। इसके लिये प्रमुख व्यक्तियों के एक डेपुटेशन को गवर्नर से मिलना चाहिए। प्रांतीय कौंसिल में इस आशय का प्रस्ताव उपस्थित किया जाना चाहिए। हम लोगों को अपने कवियों का आदर करना सीखना चाहिए। आगामी वर्ष तुलसी-

जयन्ती के दिन यदि हम लोग छुट्टी करवा सकें तो इससे तुलसीदास की रचनाओं के संबंध में जनता में ख़ासी जागृति हो सकती है । काशी की नागरी-प्रचारिणी सभा तथा प्रयाग के हिंदी-साहित्य-सम्मेलन को इस मामले में सबसे अधिक दिलचस्पी लेनी चाहिए । कम-से-कम हिंदू-विश्वविद्यालय जैसी संस्थाओं में तो उस दिन ज़रूर ही छुट्टी होनी चाहिए । यद्यपि कुछ लोग ऐसे भी हैं, जो गोस्वामी तुलसीदासजी को भारत की बड़ी भारी हानि करनेवाला मानते हैं, पर अधिकांश विद्वानों का तो यही ख़याल है कि उन्होंने हिंदू-जाति का जो उपकार किया है, उससे वह कभी भी उऋण नहीं हो सकती । हमारा भी यही ख़याल है । ऐसी दशा में हमें तुलसीदासजी के यशोविस्तार के लिये भरपूर प्रयत्न करना चाहिए ।

× × ×

२. जसवंत जसोभूषण

आज से ३४ वर्ष पूर्व संवत् १९५० में जोधपुर महाराज के आश्रित कवि मुरारिदानजी ने 'जसवंत जसोभूषण' ग्रंथ की रचना की । संवत् १९५४ में यह ग्रंथ बड़ी सज-धज के साथ प्रकाशित हुआ । बड़े ही सुंदर काग़ज़ पर, सुंदर अक्षरों में, बड़े आकार के प्रायः पाँच सौ पृष्ठों में यह बड़ा ग्रंथ प्रकाशित हुआ, और महाराज जोधपुर की ओर से प्रतिष्ठित साहित्य-सेवियों को बिना मूल्य दिया गया । इसका एक संक्षिप्त संस्करण 'जसवंत-भूषण' नाम से भी निकाला गया । इतना ही नहीं, महाराज ने 'जसवंत जसोभूषण' का संस्कृत अनुवाद भी करवाया और 'यशवंत यशोभूषण' नाम से वह भी वैसी ही सज-धज के साथ प्रकाशित हुआ । इस ग्रंथ में अलंकार शास्त्र का वर्णन है, और इसकी सबसे बड़ी विशेषता यही है कि प्रत्येक अलंकार के नाम से ही उसका लक्षण निकाला गया है । महाराज जसवंतसिंह ने इस ग्रंथ के संपूर्ण और संक्षिप्त दो संस्करण तो हिंदी में निकाले और इसी का एक अनुवाद संस्कृत में निकाला । इसमें प्रचुर धन व्यय हुआ, फिर भी महाराज ने ग्रंथ के रचयिता कविराजा मुरारिदानजी को भी एक लक्ष का पुरस्कार दिया । शायद कविराजा मुरारिदान के परवर्ती और किसी हिंदी कवि को एक लाख का पुरस्कार नहीं मिला है । खेद की बात है कि इस समय न तो इस ग्रंथ को पुरस्कृत करने वाले महाराज जसवंतसिंह ही वर्तमान हैं, और न ग्रंथ के रचयिता मुरारिदानजी ही । फिर भी जब तक 'जसवंत जसोभूषण' ग्रंथ वर्तमान है, तब तक दोनों ही अमर हैं, दोनों का ही यशः-काय जराग्रस्त होने से सदा के लिये सुरक्षित है । कविराजा मुरारिदानजी के हस्ताक्षर से संयुक्त उनके एक पत्र का चित्र 'माधुरी' के इस अंक में प्रकाशित किया जाता है ।

कविराजा मुरारिदानजी के पांडित्य के हम प्रशंसक हैं । अपने ग्रंथ में उन्होंने अलंकारों का जिस ढंग से विवेचन किया है, उसमें बीसों स्थल ऐसे हैं जहाँ ग्रंथ-कर्ता से हमारा घोर मत-भेद है, पर इस मत-भेद के कारण हम कविराजाजी की मौलिकता की उपेक्षा नहीं कर सकते । अलंकार शास्त्र के अतिरिक्त इस ग्रंथ-रत्न के आदि में काव्य-शास्त्र से संबंध रखनेवाली और भी बहुतसी बातों का सुंदर वर्णन किया हुआ है । इससे ग्रंथ की उपयोगिता और भी बढ़ गई है । यह कहना तो उचित ही है कि, शायद हिंदी-गद्य में अलंकार-शास्त्र की विवेचना पहले-पहल कविराजा मुरारिदानजी ने ही की है । पर कविराजाजी अपने शास्त्र के जैसे पंडित थे, उनमें जैसी विद्वत्ता थी वैसी कवित्व शक्ति उनमें न थी । उनके छंदों में न तो प्रतिभा का विशेष चमत्कार है और न सरसता की अधिकता है, फिर भी वे सदोष नहीं हैं । कविराजाजी की एक बात हमें और भी खटकती है । अपने ग्रंथ में उन्होंने आत्म-प्रशंसापूर्ण गर्वोक्तियों का प्रयोग कुछ अधिक किया है । एक स्थान पर वे कहते हैं —

> भोज समय निकसी नहीं भरतादिक की भूल ।
> सो निकसी जसवंत समय सो भाग्य अनुकूल ।

हर्ष की बात है कि अपने 'काव्य कल्पद्रुम' ग्रंथ में सेठ कन्हैयालालजी पोद्दार ने इस गर्वोक्ति का युक्तिपूर्वक खंडन किया है । सेठजी ने अपने ग्रंथ में इस प्रकार का जो खंडनात्मक विवेचन किया है, उससे हम सर्वथा सहमत हैं । क्या ही अच्छा हो कि, सेठजी स्वयं 'जसवंत जसोभूषण' ग्रंथ की एक समालोचना 'माधुरी' के लिये लिखें । सेठजी ने अपनी विवेचना में यह भी उल्लेख किया है कि, 'जसवंत जसोभूषण' ग्रंथ के निर्माण में श्री सुब्रह्मण्य शास्त्री का भी हाथ था । यदि यह बात ठीक हो तो इससे कविराजाजी के यश को बहुत बड़ा धक्का

जा सकता है; पर पूछना यह है कि क्या सेठजी के पास इस कथन का कोई प्रमाण है ? कविराजजी तो शास्त्रीजी की केवल इतनी ही सहायता स्वीकार करते हैं कि उन्होंने हिंदी ग्रंथ का संस्कृत में अनुवाद कर डाला। यथा—

क्रम भ्रम किय व्याकरन में नीरस जान मुरार ;
औ अशक्त यह हित करन शुभ सुरबानि उचार ।
याते किय सुब्रह्मण्य ने इनहीं को अनुवाद ;
नृप आज्ञा सुबानि में सो सब लहैं स्वाद ।

× × ×

१०. पं० ईश्वरीप्रसाद शर्मा का स्वर्गवास

'हिंदू-पंच'-संपादक प० ईश्वरीप्रसादजी शर्मा के अचानक स्वर्गवास के कारण हिंदी-संसार को जो हानि हुई है, उसका वर्णन करना संभव नहीं है। जिस समय विगत मास की 'माधुरी' में हमने उनको मुक़द्दमा जीतने के उपलक्ष्य में बधाई दी थी, उस समय हम यह कल्पना भी न कर सके थे कि, दूसरे मास में हमें उनकी स्वर्ग-यात्रा के संबंध में नोट लिखना पड़ेगा। पं० ईश्वरीप्रसादजी की असामयिक मृत्यु से हिंदी संसार क्षुब्ध है। हम शर्माजी के कुटुंबियों के साथ इस घोर विपत्ति में सहानुभूति प्रकट करते हैं। शर्माजी का स्मारक स्थापित करने का जो उद्योग चल रहा है, उसके साथ भी हमारी सहानुभूति है। आगामी अंक में हम बाबू शिवपूजनसहायजी लिखित शर्माजी की जीवनी प्रकाशित करेंगे।

× × ×

११. राजपूताने के दो नरेशों का स्वर्गवास

बड़े ही शोक की बात है कि, राजपूताने के दो नरेशों का दस दिन के अंतर में स्वर्गवास होगया। बूँदी के नरेश रावराजा सर रघुवीरसिंहजी २६ जुलाई को स्वर्गवासी हुए और करौली के महाराज भँवरपालजी ने ४ अगस्त को अपना यह नश्वर शरीर छोड़ा। बूँदी-नरेश की अवस्था मृत्यु समय ८८ वर्ष की थी और करौली-नरेश की ६६ वर्ष की। बूँदी का राज-घराना चौहान क्षत्रियों का है, और करौली वाले यादव राजपूत हैं। करौली-नरेश ने अपने राज्य में कई कुएँ और सरोवर बनवाकर भलीभाँति से प्रजारंजन किया था। वे हिंदी, उर्दू और अँगरेज़ी तो जानते ही थे, पर साथ-साथ संस्कृत का उन्हें बड़ा अच्छा अभ्यास था। बूँदी-नरेश भी प्रजा-प्रिय थे। राजपूताने के प्राचीन रीति-रिवाज और ठाट-बाट की उन्होंने भलीभाँति रक्षा की थी। वे साहित्य-प्रेमी भी थे। महाकवि मतिराम के 'ललित-ललाम' ग्रंथ की 'ललित कौमुदी' टीका उन्होंने ही श्री गुलाब कवि से

स्वर्गीय प० ईश्वरीप्रसाद शर्मा

बनवाई थी । इन दोनों नरनाथों के स्वर्गवास से राजस्थान में सन्नाटा छा गया है। हम इनकी मृत्यु के उपलक्ष्य में शोक प्रकट करते हैं। यदि हो सका तो किसी अगली संख्या में इनका विशेष परिचय दिया जायगा।

× × ×

१२. स्त्री-संरक्षक गृहों की आवश्यकता

यों तो स्त्री-संरक्षक गृहों की आवश्यकता सदैव ही रही है, पर वर्तमान परिस्थिति में वे अनिवार्य हो गए हैं। आर्थिक, सामाजिक, पारिवारिक, कितने ही ऐसे कारण हैं, जिन्होंने वैधव्य-जीवन को जटिल बना दिया है। कितनी अनाथ कन्याएँ विजातियों के हाथ पड़ जाती हैं। कितनी ही रमणियाँ सामाजिक अविचार या अत्याचार से पीड़ित होकर सदा के लिये हिंदू-समाज से निकल जाती हैं। इन सब अनाथों की रक्षा करने के लिये हमें स्त्री-संरक्षक गृहों की आवश्यकता है। इस प्रांत में काशी के सुयोग्य कलेक्टर मि० वी० एन० मेहता के सदुद्योग से हाल ही में एक वनिता-भवन खुल गया है। कानपुर में भी एक अनाथालय मौजूद है। पर हमें ऐसे कई गृहों की ज़रूरत है। प्रत्येक बड़े नगर में ऐसा एक गृह होना चाहिए। नगर निवासियों को ही उसके संचालन का भार सँभालना चाहिए। म्युनिसिपैलिटियों को इस कार्य में उदारता से सहायता देनी चाहिये। अनुभव ने हमें सिखलाया है कि ऐसे गृहों को खोल देना उतना कठिन नहीं है जितना उन्हें सुचारुरूप से चलाना। ऐसी संस्थाओं के लिये हमें निष्ठावान, सच्चरित्र पुरुषों की ज़रूरत है। और, यदि स्त्रियाँ स्वयं इस कार्य का सम्पादन कर सकें तो और भी अच्छा। अब सुशिक्षित महिलाओं की संख्या बढ़ती जाती है, प्रायः वे अपनी अभागिनी बहिनों का कुछ उपकार भी करना चाहती हैं।
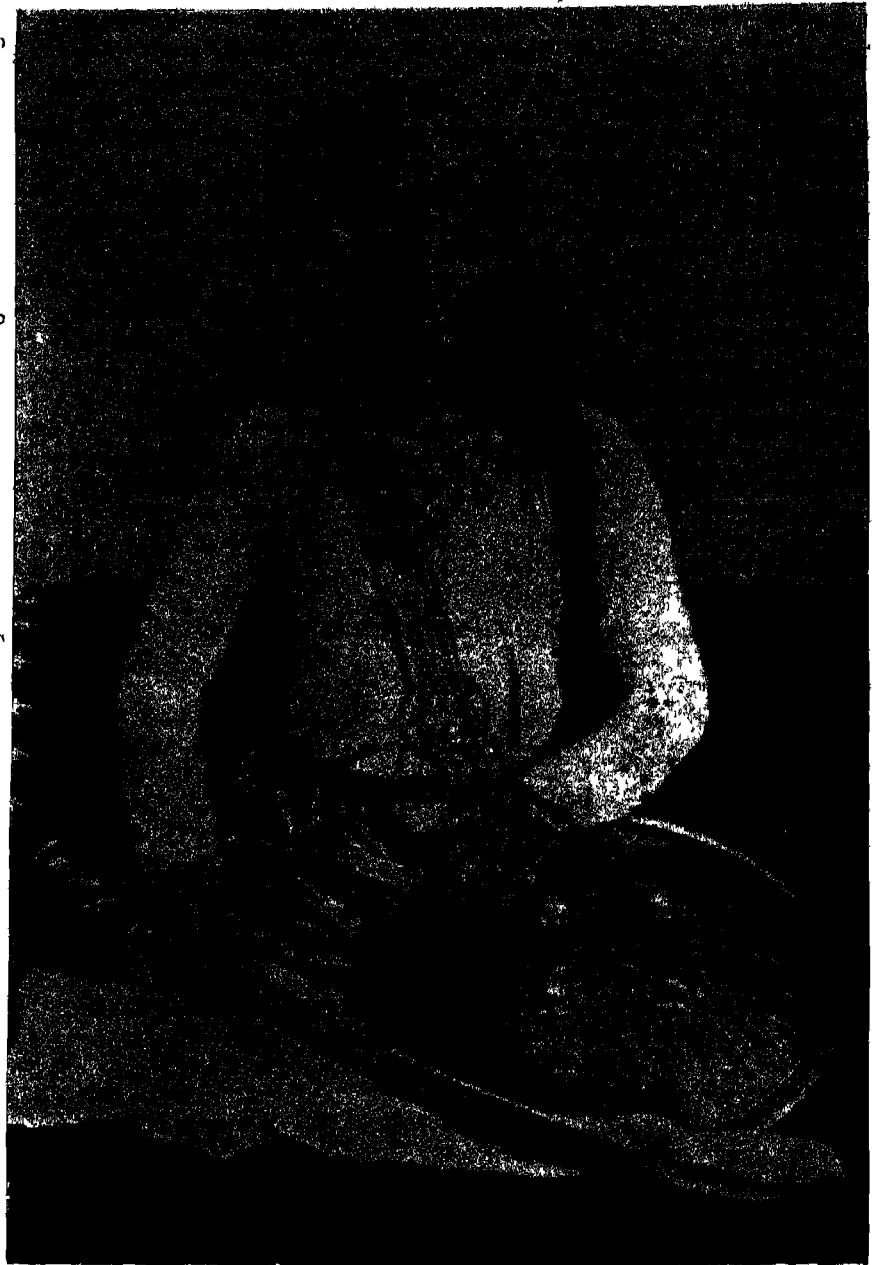
स्वर्गीय बूँदी-नरेश महाराजा रघुवीरसिंहजी

पर, इसका कोई अवसर न पाकर उनका उत्साह शिथिल पड़ जाता है। हमें विश्वास है, प्रत्येक बड़े नगर में ऐसी सेवा-शील, उदार, महिलाओं की काफ़ी संख्या है, जो इस भार को सहर्ष ग्रहण करेंगी। सहयोगी 'चाँद' ने अपने इसी मास के अंक में ऐसे गृहों के स्थापन और सञ्चालन की एक स्कीम प्रकाशित की है। हमने उस स्कीम को बहुत ध्यान से देखा। सहयोगी 'चाँद' का यह सदुद्योग बहुत ही प्रशंसनीय है, पर उसने कठिनाइयों की ओर काफ़ी ध्यान नहीं दिया है। ऐसी संस्थाओं में जो स्त्रियाँ आती हैं, वे इतनी सुशीला और कुशाग्रबुद्धि नहीं होतीं, जैसा सहयोगी ने समझा है। वे साल भर में सिलाई या बेलबूटे से इतना काम करलेंगी कि उनके पालन-पोषण का ख़र्च निकल आवे—ज़रा कठिन प्रतीत होता है। फिर, हिंदू घरों में इन गृहों के प्रति इतनी सहानुभूति होना कि, वे अपने कपड़े—चाहे वे ख़राब ही क्यों न सिलें—इन गृहों में ही सिलवायें, उस आशावादिता का प्रमाण है, जो कठिनाइयों का विचार ही नहीं करती। हम सहयोगी से अनुरोध करते हैं कि वह इस प्रकार की अन्य संस्थाओं से परामर्श करके कोई स्कीम तैयार करे, तभी वह विचारणीय होगी।

× × ×

वज्रपात !

हमें यह सूचित करते हुए महान् शोक होता है कि नवलकिशोर इस्टेट एवं माधुरी के अध्यक्ष श्रीविष्णुनारायणजी भार्गव की सती-साध्वी धर्मपत्नी ने विगत १७ अगस्त को इस नश्वर शरीर को त्याग कर स्वर्ग-यात्रा कर दी। श्रीमतीजी के इस प्रकार अकस्मात् स्वर्ग-पयान से जो शोक छा गया है, उसका क्या वर्णन किया जाय। शोकाभिभूत पति और अल्पवयस्क बच्चों का श्रीमतीजी के वियोग में क्या हाल है, यह लिखने की बात नहीं है। हम दुःखी कुटुंब के साथ और विशेष कर श्री विष्णुनारायणजी भार्गव के साथ इस महान् विपत्ति में हार्दिक समवेदना प्रकट करते हैं, और परलोकगत आत्मा की सद्गति के लिये ईश्वर से प्रार्थना करते हैं। शोक-संतप्त हमारी लौह लेखनी इस संबंध में कुछ और लिखने का साहस ही नहीं कर पाती है।

१३. हिंदी-साहित्य के आलोचक

साहित्य का विकास बहुत कुछ सद् समालोचकों की सुरुचि, सुबुद्धि और सहृदयता पर निर्भर होता है। साहित्य के उत्थान के लिये, अगर उच्चकोटि के कवियों और लेखकों की आवश्यकता है, तो सुविज्ञ समालोचकों की आवश्यकता उससे कम नहीं है। बल्कि, हमारा विचार तो यह है कि, समालोचक ही साहित्य का कर्णधार होता है, वह उसे जिस ओर चाहता है फेरता है, उसे पेचीदा रास्तों पर भटकने से बचाता है। यूरोपीय साहित्य में आलोचकों का नाम भी उतने ही आदर से लिया जाता है, जितने आदर से लेखकों का। आरनल्ड, मेकाले, टेन, गास आदि ने अँगरेज़ी साहित्य के साथ जो उपकार किया है, उसे सभी जानते हैं। पर समालोचना के लिये पहली योग्यता सहृदयता है। लेखक के लिये यदि अनुभव सबसे महत्व की वस्तु है, तो आलोचक के लिये सहृदयता। जिस आलोचक में इस गुण का अभाव है वह आलोचक बनने के सर्वथा अयोग्य है। और जब आलोचना द्वेष या दिल का गुबार निकालने के लिये की जाती है, तब तो वह साहित्य के लिये कलंक बन जाती है। दुर्भाग्य-वश आजकल हिंदी पर ऐसे ही एक-दो आलोचकों की कृपा-दृष्टि हो रही है। इसी मास के 'माडर्न रिव्यू' में एक महाशय ने नवीन हिंदी-साहित्य को एक सिरे से रद्दी और हेय ठहरा दिया है। श्री अयोध्यासिंहजी उपाध्याय का प्रिय-प्रवास, जो वर्तमान हिंदी-साहित्य के लिये गर्व का विषय है और श्री मैथिलीशरणजी गुप्त की ओजस्विनी रचनाएँ, जो हिंदी-साहित्य की विपुल सम्पत्ति हैं, उक्त आलोचक की दृष्टि में तुकबंदियाँ हैं। और 'प्रेमचंद' के उपन्यास तो किसी काम के भी नहीं। इसका कारण? यही कि उनमें 'उद्देश्य' है, वे किसी सामाजिक व्यवस्था पर लक्ष्य करके लिखे गए हैं। आपने इस नए सत्य

का आविष्कार किया है कि कला का सर्वोच्च आदर्श मानवी-हृदय के भावों को व्यंजित करना है। हम समझते हैं कि जार्ज बरनार्डशा, एच० जी० वैल्स, टाल्सटाय, टुर्जेनीफ़, इबसेन, ब्रियो, आदि यूरोपीय साहित्य के रत्न इस अश्रुत-पूर्व तत्त्व से अनभिज्ञ होंगे, नहीं तो वे अपनी रचनाओं का कोई उद्देश्य क्यों रखते। आप फ़रमाते हैं 'प्रेमाश्रम' में किसानों की वर्तमान कठिनाइयों का चित्र दिखाया गया है, इसलिये भविष्य में जब इन कठिनाइयों का अंत हो जायगा, तो इस पुस्तक का केवल ऐतिहासिक महत्त्व शेष रह जायगा। तो इससे साहित्य की क्या हानि है? ला मिज़रेब्ल का महत्त्व अब केवल ऐतिहासिक है, तो क्या इस कारण उसका आदर साहित्य में कुछ कम हो गया है? डिकेन्स की अधिकांश रचनाओं के विषय अब शेष नहीं रहे, तो क्या उनका महत्त्व कम हो गया है?

आलोचकों का एक दूसरा दल है, जिसको सदा यही चिंता पड़ी रहती है कि किसी सफल लेखक पर आक्षेप करके जल्दी से ख्याति प्राप्त करलें। अगर सच पूछिये तो ख्याति लाभ करने का इससे सुगम उपाय दूसरा नहीं है। यह कह देना कितना आसान है कि अमुक रचना अमुक अंग्रेज़ी पुस्तक पर आधारित है। समस्त संसार में जीवन का व्यापार समान रीति से चलता है, वही स्त्री पुरुष, वही मरना-जीना, वही रोना-हँसना—सब जगह है। इन्हीं आधारों पर यह आलोचक दल लेखक की सारी कीर्ति को, सारे परिश्रम को, धूल में मिला देना चाहता है। और, दुर्भाग्य की बात यह है कि लोग उस पर विश्वास भी करने लगते हैं। जिन्होंने अंग्रेज़ी साहित्य देखा है, वे तो ऐसी आलोचनाओं को देखकर हँसते हैं, पर जो बेचारे अंग्रेज़ी से अनभिज्ञ हैं, या केवल काम-चलाऊ अंग्रेज़ी जानते हैं, उन्हें इन मिथ्या आक्षेपों पर विश्वास आजाता है। उन्होंने अबतक हिंदी साहित्य में केवल अनुवादों की भरमार देखी है। उनकी समझ में हिंदी-साहित्य में किसी मौलिक पुस्तक का निकलना अचंभे की बात है। ज़रूर इसमें कोई न कोई रहस्य है! एक महाशय चट ताल ठोककर बाहर निकल आते हैं, और इस रहस्य को खोल देते हैं, और साहित्य की गर्दन पर कुठाराघात करके, उसकी भावी उन्नति के मार्ग को रोक कर, आप अपनी साहित्य-सेवा पर फूले नहीं समाते। जैसी संकीर्णता, जैसी असहृदयता, हिंदी-साहित्य में है, वैसी शायद ही संसार के किसी साहित्य में हो। अन्य भाषाओं में गुणों की परख होती है, हिंदी भाषा में गुणों को कोई नहीं पूछता। यहाँ केवल अवगुणों की परख होती है। अगर लेखक का कोई चरित्र, कोई कल्पना, कोई शब्द-योजना, कोई भाव, किसी अन्य भाषा के लेखक से मिल गया, तो बस उसपर चोरी, डाके, लूट का दोषारोपण कर दिया जाता है। ये आलोचक अपनी समझ में साहित्य का चाहे उपकार कर रहे हों, पर वास्तव में वे उसका गला घोट रहे हैं। हिंदी-साहित्य अभी इस अवस्था को नहीं पहुँचा है कि लेखक केवल पुरस्कार के लोभ से अपने मस्तिष्क को मथने पर तैयार होते हों। प्रतिष्ठा और उपकार का भाव ही लेखकों को प्रोत्साहित करता है। जब वे गुणग्राहकता का अभाव देखते हैं, तो साहित्य-सेवा से उनका मन विरक्त हो जाता है। कवि को जब दाद भी न मिले, तो फिर वह क्यों खून के आँसू रोये? जब हर ऐरा गैरा नत्थू ख़ैरा समालोचक बनने पर तुला हुआ हो, और पत्रिकाओं को, लेखों के अभाव के कारण, छापने को कुछ और न मिलता हो, तो साहित्य की ईश्वर ही रक्षा करे!

× × ×

१४. 'श्रीकृष्ण-संदेश'

यह बड़े ही हर्ष और संतोष की बात है कि पं० लक्ष्मण-रावजी गर्दे के संपादकत्व में कलकत्ते से 'श्रीकृष्ण-संदेश' पत्र फिर निकलने लगा। 'श्रीकृष्ण-संदेश' हिंदी का एक बहुत सुंदर साप्ताहिक पत्र है। इसकी छपाई-सफ़ाई तो अच्छी है ही, साथ ही इसमें जो पाठ्य-सामग्री दी जाती है वह बहुत बढ़िया होती है। ऐसा जान पड़ता है कि एक अच्छे अंग्रेज़ी साप्ताहिक पत्र का आदर्श सामने रख कर 'श्रीकृष्ण-संदेश' के संपादन का प्रारंभ किया गया है। यह ठीक है कि एक अच्छे अंग्रेज़ी साप्ताहिक पत्र की समता 'श्रीकृष्ण-संदेश' अभी किसी भी बात में नहीं कर सकता है, पर, यदि उसे हिंदी-संसार ने अपनाया और उसके संपादक और स्वामी को पर्याप्त प्रोत्साहन मिला, तो यह कोई असंभव बात नहीं है कि, निकट भविष्य में 'श्रीकृष्ण-संदेश' कम-से-कम हिंदी-संसार में एक आदर्श साप्ताहिक का स्थान प्राप्त करले। 'श्रीकृष्ण-संदेश' के पुनः प्रकाशन से हम बहुत संतुष्ट और प्रसन्न हैं और हृदय से उसकी उन्नति-कामना करते हैं। पत्र के स्वामी और संपादक दोनों महोदयों को हम इस पत्र को फिर से प्रकाशित करने के उपलक्ष्य में बधाई देते हैं।

चित्र-चर्चा

१. राधाकृष्ण

वृंदावन की एक कुंज में श्रीराधाकृष्ण का प्रेम सम्मिलन हुआ है। मुरली का बजाना भूलकर श्रीकृष्णजी एकटक श्रीराधाजी को देख रहे है। श्रीराधाजी की निगाह यद्यपि सामने नहीं है, फिर भी वे सारी परिस्थिति से परिचित है और इस अनुपम प्रेम-लीला में अपना उचित भाग लेने को तैयार हैं। श्रीरामेश्वरप्रसाद वर्मा की चित्र रचना-चातुरी का इस चित्र मे अच्छा विकास है।

× × ×

२ सुंदरी-विनोद

लालित्य की मूर्ति एक सुकुमार ललना अपने पलुये तोते के साथ विनोद कर रही है। अपनी मोतियों की माला में ललना ने रक्तवर्ण मणि को सुमेर बना रखा है। यह मणि पके हुये कुंदरू फल के समान जान पड़ती है। सुंदरी इस मणि को तोते के सामने ले जाती है, उसका उद्देश्य यह है कि शुक भ्रम में पड़कर उसे अपनी चोंच में दबाले। शुक भी बड़ा चतुर है। वह अपनी ग्रीवा को मोड़कर बड़े गौर से मणि को देख रहा है। ललना तोते के इस भाव को देखकर मुग्ध हो रही है। श्रीरामेश्वर-प्रसादजी वर्मा ने इस चित्र के बनाने में अपनी चित्र-कला-मर्मज्ञता का अच्छा परिचय दिया है। इस चित्र में सौंदर्य की अच्छी झाँकी है।

३ हंस-दूत (नं० १)

हंस-दूत संस्कृत का एक काव्य है। उसी ग्रंथ के स्थल विशेष का चित्रण श्रीरामनाथजी गोस्वामी ने बड़े अच्छे ढंग से किया है। श्रीराधाजी विरह-विह्वला होकर कालिंदी के कूल में पड़ी हुई हैं। उनके चरण-युगल सूरसुता के शीतल जल में धुल रहे हैं। उनका शरीर कमल के सुकोमल पत्तों पर पड़ा है। सखियाँ हरे-हरे शीतल कमल के पत्तों से वायु कर रही है। परंतु श्रीराधाजी अचेतनावस्था मे पड़ी हैं। ऐसे ही अवसर पर एक सखी की दृष्टि एक हंस पर पड़ती है। वह तत्काल हंस के पास जाती है और उससे प्रार्थना करती है कि कृपा करके आप हम लोगों के दूत बन जायं और श्रीराधा की विरह-विकलता का परिचय श्रीकृष्णजी तक पहुँचा दें। यही दृश्य इस चित्र में दिखलाया गया है।

× × ×

४ कमला

पुराणों मे कमला का जैसा रूप वर्णित है, वैसा ही इस चित्र में दिखलाया गया है। कमलादेवी हाथ में कमल लिये कमल पर बैठी हैं। दूसरे हाथ मे शंख है। लक्ष्मीजी का वाहन उलूक अपनी भयावनी सूरत से डराता हुआ बैठा है। इस चित्र के चित्रकार श्रीशारदा-चरणजी उकील हैं। आप एक प्रसिद्ध चित्रकार हैं।

× × ×

५. मिर्ज़ा के द्वारा हुमायूँ का उद्धार

इस चित्र में ऐतिहासिक दृश्य अंकित है। आज से

लगभग ४०० वर्ष हुये, जब शेरशाह सूर के मुक़ाबिले में बाबर-पुत्र मुग़ल-सम्राट् हुमायूँ को भागना पड़ा था। उसकी सेना बिलकुल तितर-बितर हो गई थी। हुमायूँ अपने घोड़े पर बेतहाशा भाग रहा था, पीछे से शेरशाह के सैनिक उसका पीछा कर रहे थे। आख़िर घोड़ा भी काम आया। अब हुमायूँ अकेला रह गया। सामने गंगाजी कल-कल प्रवाह करती हुई बड़े वेग से बह रही थीं। भयंकर बाढ़ के कारण उनका पाट बहुत विस्तृत हो रहा था। यह दृश्य देखकर हुमायूँ किंकर्तव्य-विमूढ़ हो गया। पास ही एक भिश्ती था। अपने प्राण बचाने के लिये—प्राण बचाने को—दिल्लीश्वर ने इसी भिश्ती की प्रार्थना की कि अपनी मशक पर मुझे गंगा के उस पार पहुँचा दे। भिश्ती मान गया। बड़ा साहस करके हुमायूँ फूली मशक पर चढ़कर गंगा पार करने लगा। पीछे से शेरशाह के सैनिकों ने बाण-वृष्टि करके मशक में छेद करने अथवा हुमायूँ को मार डालने का बहुत कुछ उद्योग किया, पर ईश्वर की कृपा से हुमायूँ बच गया। वह सकुशल पार पहुँच गया। कहते हैं, भिश्ती के इस उपकार को हुमायूँ कभी नहीं भूला, तथा जब भिश्ती ने एक दिन के लिये दिल्ली के सिंहासन पर आसीन होने का प्रस्ताव हुमायूँ से किया, तो उसने उसे सहर्ष स्वीकार किया। यह भी कहा जाता है कि उसने एक दिन के राजत्व-काल में भिश्ती ने चमड़े का सिक्का चलाया था। जो हो, इस चित्र में भिश्ती के द्वारा हुमायूँ के उद्धार का सुंदर दृश्य है।

× × ×

६ जीवन-नद के केवट

यह एक व्यंग्य चित्र है। इसमें सामाजिक-जीवन का काल्पनिक दृश्य है। गृहस्थी रूपी नौका को जीवन-सागर में खेते-खेते पुरुष केवट की कमर झुक गई है, पर गृह-स्वामिनी उन्हें सर नहीं उठाने देती है; बराबर खेते रहने का उपदेश देती है और इस उपदेश को पूर्ण कराने के लिये हाथ में चाबुक लिए खड़ी है। इतना ही नहीं, उन्होंने केवटजी के लगाम भी लगा रक्खी है, इसलिये वे संपूर्णतया श्रीमतीजी के वश में हैं। इस चित्र का मूल भाव है पत्नी का पति पर शासन!

माधुर्य

वर्ष ६
खण्ड १

भाद्रपद, ३०४ तुलसी-संवत (१९८४ वि०)
सितंबर, सन् १९२७ ई०

संख्या २
पूर्ण संख्या ६२

श्रीराम-स्तुति

(१)

[illegible] रहत [illegible] घाम मे [illegible]

पालत बिपति [illegible] कृपा रस भीनो है

तन को बसन [illegible] भरा है [illegible], [illegible]

पानी हेत मन बिन मागे आनि दीनो है,

[illegible] नाहीं हेतु, कवि हेतु है गरुड़ केतु,

हौं तौ सुख सेवत, न सेवा परवीनो है।

आलस की निधि बुधि बाजिस जगतपति,

सेनापति सेवक कहा धौं जानि कीनो है।

(२)

कुपथ चलाओ, सुधि आपनी भुलाओ मोहि,

मोह मे मिलाओ तऊ कोऊ रखवारो है;

जन्म सुधारो, भव-सिंधु ते उबारो आपु,

उर पाउ धारो तौ न बरजन वारो है;

सेनापति मो पै मेरो कछु न कृपानिधान,

आन प्रान तन मन राजरे तिहारो है;

हौं तो हौं बिचारो जिय आपु हो बिचारो देह,

देह हो को कहा मेरो कहा चारो है।

—सेनापति

सामाजिक व्यवस्था के मूलतत्त्व

मनुष्य और अन्य प्राणियों मे जो अनेक भेद हैं, उनमें से एक बहुत महत्वपूर्ण भेद यह है कि मनुष्य समाज-प्रिय प्राणी है, अन्य प्राणी नहीं हैं। इस पर कोई कहेगा कि कई अन्य प्राणियों मे भी कम अधिक अंश मे सामाजिकता दीख पड़ती है। कई प्राणी लगभग जन्मभर स्त्री-पुरुष की तरह नर मादे के जोड़े बनाकर रहते हैं, और अपने बच्चों को यथेष्ट काल तक पालते-पोपते हैं। कई प्राणी झुंड बनाकर रहते हैं और सामूहिक ढंग से कई काम करते है। हाँ, यह सब सत्य है, तथापि मनुष्य के निम्नतम वर्ग मे भी जितनी सामाजिकता दीख पड़ती है, उतनी अन्य प्राणियो के उच्चतम वर्ग मे भी नहीं है। बहुत कम प्राणी है जिनमें कुटुम्ब-व्यवस्था है। जहा कहीं है, वहा केवल नर और मादा एकत्र देख पड़ते हैं, और अपने भरण-पोषण के योग्य होने तक उनके बाल-बच्चे उनके पास रहते है। शासन-व्यवस्था अन्य प्राणियों मे नाम को भी नही दीख पड़ती। सामूहिक कार्यो मे केवल शत्रु मे बचाव करने का कार्य कुछ प्राणियों मे, और वह भी कभी-कभी, सपन्न होता सा देख पड़ता है। मनुष्य मे जो चरम सामाजिकता दीख पड़ती है, उसके कारण कदाचित उसकी सर्वश्रेष्ठ बुद्धि, विकसित वाचाशक्ति, परावलंबन, स्वार्थपरता आदि हो। इन कारणों का विचार हम यथास्थान करेंगे। यहा पर हमें पहले-पहल इसी बात पर ज़ोर देना है कि मनुष्य ही को वास्तव मे हम सामाजिक प्राणी कह सकते हैं, अन्य प्राणियो को नहीं।

अब हम प्रश्न कर सकते है कि मनुष्य में इतनी सामाजिकता विकसित होने का क्या कारण है। इसका प्रधान उत्तर यह है कि मनुष्य को जितने अधिक काल तक अपने बच्चों का भरण पोषण करना पड़ता है, उतना अन्य प्राणियों को अपने बच्चों का नहीं। यह तो कह नहीं सकते कि अन्य प्राणियों मे वात्सल्य प्रेम की मात्रा रहती ही नहीं। ईश्वर ने अथवा प्रकृति ने सब प्राणियों मे ऐसी कुछ वात्सल्य-भावना रख दी है कि, जब तक किसी प्राणी का बच्चा भरण-पोषण के लिए माता पर अथवा माता-पिता दोनों पर अवलंबित रहता है, तब तक उस की माता अथवा उसके माता-पिता उसका भरण-पोषण और रक्षण स्वभावत. ही करते है। उसका भरण-पोषण और रक्षण करने की प्रवृत्ति माता अथवा माता-पिता मे स्वभावत. यानी प्रकृति-जन्य अथवा ईश्वर-दत्त ही होती है। यह काम करने के लिये उन्हें बतलाने या समझाने की किसी को आवश्यकता ही नहीं रहती। यदि अन्त:-प्रवृत्ति उनमें न रहे तो उनकी जाति के नष्ट होने मे विशेष देरी न लगेगी। क्योंकि इसीके साथ एक यह विचित्रता भी देखी जाती है कि जिनमें यह अंत:प्रवृत्ति जिस अंश मे होती है, उनके बाल-बच्चे एक बार और सारे जन्म मे उतनी ही कम संख्या मे पैदा होते है। जो-जो प्राणी जीवन संग्राम मे अब तक टिक सके है, उनमे प्रकृति ने कुछ ऐसी व्यवस्था कर रखी है या पैदा हो गई है, कि भरण-पोषण और रक्षण की आवश्यक प्रवृत्ति माता अथवा माता पिता मे अवश्य दीख पड़ती है। सारांश प्रकृति के अवलोकन से हमें यह स्पष्ट देख पड़ता है कि, सामाजिकता का मूल कारण आत्मरक्षा है यानी सामाजिकता का विकास रक्षण की आवश्यकता के कारण हुआ है, और होता है। जबतक लड़के-बच्चे परावलंबी रहते है, तब तक उनकी माता अथवा माता-पिता स्वभावत. ही उनकी रक्षा मे लगे रहते है। जब बच्चे निजी रक्षा आदि करने योग्य हो जाते है, तब ही किसी प्राणी के बच्चे माता अथवा माता-पिता से अलग होते है।

इस प्रकार सामाजिक-व्यवस्था का प्रथम मूलतत्त्व आत्म-रक्षा है। पर यह भी स्पष्ट है कि आत्म-रक्षा के भी कई प्रकार और भेद हो सकते है। जिनमें सामाजिकता का कुछ भी अंश नहीं देख पड़ता, उनकी भी रक्षा होती अवश्य है, अन्यथा वे नाम-शेष हो जाते या उनके नाम का पता हमे न मिलता। जिनमें सामाजिकता कम अधिक अंश मे है, उनकी भी रक्षा होती ही है। फिर मनुष्य मे ही क्यों सामाजिकता का चरम विकास देख पड़ता है। इसके दो कारणों का हम ऊपर उल्लेख कर चुके है। मनुष्य अपनी बुद्धि के कारण मा-बाप और अपने लड़के बच्चों को ही नहीं पिता

के, माता के और अपनी सहचरी के भिन्न-भिन्न जन्म-संबंधियों को और इन जन्म-सम्बन्धियों के अन्य जन्म-संबंधियों को, और इस प्रकार सारे रिश्तेदारों को पहिचान सकता है, उनसे वह परावलबन-काल बीत जाने पर भी सहायता ले सकता है, और सहायता दे सकता है। रक्षा के लिये सामूहिक-शक्ति का उपयोग आवश्यकतानुसार कम अधिक कर सकता है, अपनी वाचा शक्ति और बुद्धि के कारण अपनी आवश्यकताओं को दूसरों पर प्रकट कर सकता है और दूसरों की आवश्यकताओं को जान सकता है, और इस प्रकार सहकारिता का भरपूर उपयोग और विकास कर सकता है। इन्हीं सब बातों से मनुष्य की विकसित कुटुंब-पद्धति, ग्राम-व्यवस्था, प्रांत-व्यवस्था, देश-व्यवस्था, इनके अन्तर्गत शासन-व्यवस्था, और भिन्न-भिन्न प्रकार के छोटे-छोटे संघ, समाज, संस्थायें आदि पैदा होती हैं। इसी बुद्धि के कारण उसका स्वाभाविक वात्सल्य, और इस कारण भिन्न-भिन्न प्रकार के संबंध का प्रेम, आजन्म बना रहता है। जिस समाज में निज संबंधियों के लिये, ग्राम के लिये, प्रांत के लिये, देश के लिये, अपने राज्य के लिये जितना अधिक स्वार्थ-त्याग व्यक्ति करते हैं, उतना ही उस समाज में अधिक वात्सल्य प्रेम अथवा संबंध प्रेम देख पड़ता है। क्योंकि सारे प्रकार के प्रेमों का मूल कारण वात्सल्य-प्रेम ही है। हम तो यहां तक कह सकते हैं कि, मनुष्य के पत्नीव्रत और पतिव्रत का भी मूल उसके चरम वात्सल्यप्रेम में ही है। यदि मनुष्य में इतना अधिक वात्सल्य-प्रेम न रहता तो पुरुष न तो पत्नीव्रती हो सकते और न स्त्रियां पतिव्रता। दोनों को सदैव के लिए जकड़ कर बांधनेवाला वात्सल्य-प्रेम ही है। और इस चरम वात्सल्य-प्रेम का कारण बुद्धि है। यदि बुद्धि न रहती तो वह अपने लड़के-बच्चों को और माता-पिता को न पहचान सकता, और फिर उनसे वह भावना न रह जाती जो मनुष्य में दीख पड़ती है। इस भावना के बिना अन्य संबंधियों की कल्पना भी न रह जाती। फिर, मनुष्य में जो अनेक प्रकार के संघ, समाज, संस्थायें दीख पड़ती हैं, उनका नाम न रह जाता। इस प्रकार सामाजिकता की मात्रा अनेक अन्य प्राणियों के समान न्यूनतम हो जाती। वह अपने लड़के-बच्चों की परवाह अन्य प्राणियों के समान केवल उनके परावलम्बन-काल तक ही करता। इसलिये आज की सामाजिकता उसमें न दीख पड़ती। मनुष्य भी इस दृष्टि से अन्य प्राणियों के वर्ग में पहुँच जाता। इस दृष्टि से उसकी पदवी अन्य प्राणियों से कुछ ही ऊँची रहती। पर उसकी बुद्धि लड़के-बच्चे और माँ-बाप की पहचान जन्म भर नहीं भूलने देती। इस कारण ऊपर दिखाये अनुसार मनुष्य प्राणी अनेक प्रकार की सामाजिक व्यवस्थायें उत्पन्न करता है। तथापि, जैसा ऊपर कह चुके हैं, इन सब व्यवस्थाओं के मूल में रक्षण का तत्व ही रखा है। कुटुंब-व्यवस्था, ग्राम-व्यवस्था, प्रांत-व्यवस्था, देश-व्यवस्था, भिन्न प्रकार के अनेक संघ, समाज और संस्थाओं का मूल हेतु आत्मरक्षा ही है। मनुष्य प्राणी अपनी शक्ति और शरीर-योजना की दृष्टि से कई प्राणियों से हीन है। पर, वह इस संसार को भिन्न-भिन्न वस्तुओं का तथा अन्य मनुष्यों का उपयोग अपनी रक्षा के लिये कर सकता है, और इसी कारण वह सब प्राणियों का शासक बन बैठा है। उसकी बुद्धि यदि निकाल ली जाय तो अन्य प्राणियों के सामने उसका टिकना असंभव हो जावे। अत्यन्त निम्नतम प्रकार का मनुष्य अन्य उन्नततम प्राणियों से बुद्धि में बहुत अधिक होने के कारण ही अपनी रक्षा इस संसार में कर सकता है। सारांश, सारी सामाजिक व्यवस्थाओं का मूल उद्देश रक्षा ही है।

परन्तु हम ऊपर एक स्थान पर कह चुके हैं कि, आत्म-रक्षा के लिये ही उसे प्रेम बढ़ाना पड़ता है। इस प्रेम का वास्तविक स्वरूप है स्वार्थ-त्याग। बिना स्वार्थ-त्याग के प्रेम नहीं हो सकता। जहाँ प्रेम है वहां स्वार्थ-त्याग अवश्य है। इससे यह सिद्ध है कि जिसमें जितने व्यक्तियों और समाजों के प्रति प्रेम की मात्रा जितनी अधिक होगी, उतना ही उसका स्वार्थ-त्याग अधिक होगा। इससे यह कह सकते हैं कि, मनुष्य में केवल आत्म-रक्षा की नहीं किंतु स्वार्थ-त्याग की भी प्रवृत्ति अवश्य रहती है। कोई इस पर यह कहे कि आत्म-रक्षा की प्रवृत्ति आंतरिक, सहज, स्वाभाविक होती है, पर, स्वार्थ-त्याग की प्रवृत्ति, मूल में बुद्धि से उत्पन्न होने के कारण, स्वाभाविक नहीं कही जा सकती, क्योंकि बुद्धि-मूलक कार्य स्वाभाविक नहीं कहे जा सकते। इसका उत्तर यह है कि, माना कि स्वार्थ-त्याग की प्रवृत्ति उसी अंश में स्वाभाविक नहीं है, जिस अंश में कि आत्म-रक्षण प्रवृत्ति है; (यदि मनुष्य के विकास का संपूर्ण इतिहास हमें अवगत हो सके तो हमें यह स्वीकार करना होगा कि

स्वार्थ-त्याग की प्रवृत्ति उसमें धीरे-धीरे ही विकसित हुई है) पर, इस संबंध में एक-दो बातें न भूलनी चाहिये। विकासवाद के अनुसार मनुष्य प्राणी इतर प्राणियों से विकसित हुआ है। जिनसे वह विकसित हुआ है, उनमें कई ऐसी प्रवृत्तियाँ नहीं हैं जो मनुष्य में हैं, या उन प्रवृत्तियों का उनका विकास इतना अधिक नहीं हुआ है जितना मनुष्य में है। तथापि यदि हम इन प्रवृत्तियों को 'स्वाभाविक' कहते हैं तो स्वार्थ-त्याग की प्रवृत्ति को भी स्वाभाविक कहना होगा। क्योंकि थोड़े बहुत अंश में यह प्रवृत्ति अन्य प्राणियों में भी दीख पड़ती है। क्योंकि उनमें बालावलंबन की कम अधिक मात्रा के अनुसार कम अधिक वात्सल्य भाव रहता है। दूसरे, मनुष्य ने अपने इतिहास के प्रारंभ में भले ही किसी समय स्वार्थ-त्याग के कार्य को कम अधिक अंश में बुद्धि-पूर्वक बढ़ाया हो, पर उसका मूलांकुर अवश्य ही पहले से था और तदनंतर उस ओर उसका इतना अधिक अभ्यास हो गया है कि उसे अब कृत्रिम कहना अनुचित जान पड़ता है। क्योंकि अब स्वार्थ-त्याग के कार्य के समय बुद्धि की मात्रा बहुत कम दीख पड़ती है। लड़के-बच्चे भले ही अपने पैरों पर खड़े होने लायक़ हो जायँ, पर हम उनके लिए अपना सर्व सुख होम देने को सर्वत्र तयार रहते हैं—उस समय हम न तो यह सोचते हैं कि यदि हम लड़कों की परवाह न करेंगे तो लड़के भी हमारी परवा न करेंगे और न यह कि इस कार्य से हमें अंत में सुख होगा या दुःख। हमारे सामने यही बात रहती है कि हमें भले ही कष्ट हो जाय पर हमारे भरसक लड़के-लड़कियों को लेश-मात्र भी कष्ट न हो। बुद्धि ने तो हमें कुछ और ही बताया होता। साराश, स्वार्थ-त्याग की भी प्रवृत्ति मनुष्य में स्वाभाविक सी ही हो गई है। उसे अब हम कृत्रिम नहीं कह सकते। उसे हम कृत्रिम कहें तो मतलब यह होगा कि हम उसे आदतों की तरह बदल सकते हैं। पर, आज कोई भी यह न मानेगा कि मनुष्य-जाति अपने प्रेम भाव को या वात्सल्य भाव को बदल सकती है। अत उसे हमें स्वाभाविक ही मानना पड़ता है। मनुष्य को जब हम नैतिक प्राणी कहते हैं, तब हमारा बहुधा यही भाव रहता है कि मनुष्य में स्वार्थ-त्याग की प्रवृत्ति स्वाभाविक है। उसकी नीति का मूल यही भाव है। दया जैसे कुछ भाव उसमें ऐसे हों जो स्वाभाविक से देख पड़ते हों, पर सबके मूल में प्रेम भाव ही है, जिसका मूल वात्सल्य भाव है। नीति की अन्य भावनायें कम अधिक अंश में कृत्रिम यानी बुद्धि-जन्य हैं, लाभालाभ की दृष्टि से वे नियम पाले जाते हैं। इस स्वार्थ-त्याग की प्रवृत्ति जिसमें जितनी अधिक होगी, उतना ही उसका नैतिक-विकास अधिक माना जायगा। इसी प्रकार मनुष्य का नैतिक-विकास मापा जा सकता है।

इसीके साथ मनुष्य, अपनी बुद्धि के कारण, इस संसार की कार्य-कारण-परंपरा का भी विचार करता आया है। इसी विचार ने ईश्वर और धर्म की कल्पना को उत्पन्न किया है। वह ईश्वर और धर्म की कल्पना में इतना तल्लीन हो गया है कि अपने ऐहिक सुखों को वह इन कल्पनाओं की सिद्धि के लिये पूर्णतया छोड़ देने को तैयार हो जाता है। उसके ज्ञान की यह एक भारी विशेषता है। ऐहिक सुख-भोग से उसकी बुद्धि की तृप्ति नहीं होती। वह इस सृष्टि के रहस्यों को जानने के लिये शारीरिक सुखों को तिलांजलि देने को तैयार हो जाता है। उसके मानसिक विकास का यह भी एक स्वरूप है। हम ऊपर कह चुके हैं कि जिसमें स्वार्थ-त्याग की मात्रा जितनी अधिक होगा उसका उतना ही अधिक नैतिक-विकास समझा जावेगा, और अब हम कह रहे हैं कि धर्म का भी स्वरूप स्वार्थ त्याग ही है। तो प्रश्न यह है कि, क्या नीति और धर्म का सामंजस्य हो सकता है? इस पर हमारा निजी उत्तर यह है कि, हाँ, ऐसा सामंजस्य अवश्यमेव हो सकता है। क्योंकि सारे धर्मों का स्वरूप ऐहिक सुखों का त्याग ही है। और स्वार्थ-त्याग यानी ऐहिक सुखों का त्याग, नीति का मूल है। इसलिये विना अधिक विवेचन के हम सिद्धांत निकाल सकते हैं कि नीति और धर्म का उद्देश एक ही है वह है मनुष्य मन का उच्चतम नैतिक-विकास। ईश्वर विषयक झगड़े बहुत काल से चले आ रहे हैं, और उसकी प्राप्ति के मार्गों के झगड़े तो इतने अधिक हो गये हैं कि कई लोग इस कल्पना से होनेवाली हानियों को देखकर उसकी उपयोगिता पर ही कुठाराघात करने लग गये हैं। ईश्वर का मनुष्य को इन्द्रिय-जन्य ज्ञान न हो सकने के कारण उसे सिद्ध करना मनुष्य के लिये असंभव है। पर, इस कल्पना से धर्म की कल्पना पैदा होती है। और हम बता चुके हैं कि धर्म की कल्पना ऐहिक स्वार्थ-त्याग की

कल्पना ही है। इसके सिवा ईश्वर और धर्म की कल्पना से अनेक सामाजिक बंधनों के पालन की भी आवश्यकता पैदा होती है। और ये सामाजिक बंधन बहुधा सामाजिक नीति के नियम ही होते हैं। इस संसार की दृष्टि से निर्ममत्व, वसुधैव-कुटुम्बकत्व, साम्य-भाव, अनासक्ति, स्थितप्रज्ञता आदि धर्म और नीति दोनों के उच्चतम उद्देश हैं। जो नीति के विकास के मार्ग से इन उद्देशों पर पहुँचा है, वह धार्मिक कहला सकता है। और जो धर्म के विकास के मार्ग से इन पर पहुँचा है, वह उच्चतम नीति को पहुँचा-सा कहा जा सकता है।

तथापि यह तो स्पष्ट है कि न तो धर्म का विकास समाज के बाहर हो सकता है, और न नीति का। स्वयं ये कल्पनायें समाज से प्राप्त होती हैं, और उनका बहुतसा प्रारंभिक परिपोषण समाज में ही होता है। इतना ही नहीं, बल्कि उनके विकास की वास्तविक कसौटी समाज ही है। समाज के बिना किसी के धार्मिक अथवा नैतिक-विकास की जाँच नहीं हो सकती। त्याग किसी दूसरे के लिये है, त्याग का अर्थ कार्य-शक्ति का अवरोध अथवा नाश नहीं है। स्वार्थ त्याग का मतलब यह नहीं कि हम संसार के झगड़े-झमेलों से भागकर कहीं जंगल में जा बसें। वास्तव में बहुत ही कम लोग ऐसा कर सकते हैं, क्योंकि प्रकृति या परमेश्वर ने आच्छादन, भोजन-मैथुन की आवश्यकता के कारण मनुष्य को परावलंबी बना दिया है। इन बातों को त्यागनेवाले विरले ही होते हैं, और इनकी पूर्ति समाज के बिना नहीं हो सकती। अतः वह समाज से अथवा कम अधिक कुछ व्यक्तियों से बंधा रहता है। नीति और धर्म का उद्देश भले ही परिपूर्ण स्वार्थ-त्याग हो, पर मनुष्य अपनी आवश्यकताओं के कारण पूर्ण ऐहिक त्याग नहीं कर सकता। फलतः सच्चा धार्मिक नैतिक मार्ग यही बताता है कि अपनी ऐहिक आवश्यकताओं की पूर्ति अवश्य करो, पर समाज में यानी सामाजिक नियमों में रहकर। इसी तरह से तुम धर्म अथवा नीति के मार्ग पर धीरे-धीरे चलना सीखोगे, और आवश्यकताओं की पूर्ति थोड़ी बहुत होने के कारण कुछ काल के पश्चात् उनसे बहुत-कुछ किंवा पूर्णतया दूर हो सकोगे। इससे यह सिद्ध होता है कि समाज और नीति का मार्ग 'बीच बस्ती' से है। वह न तो एकदम पूर्ण ऐहिक त्याग पर जा पहुँचता है, और न तुम्हें ऐहिक विलासों की अक्षय वाटिका में ही ले जाता है। दोनों से तुम्हें और समाज दोनों को भारी हानि हो है। समाज में रह कर ही, सामाजिक नियमों के पालन से ही, हम नीति और धर्म के मार्ग पर चलने लायक और अंत में उनके अंतिम उद्देशों के स्थान पर पहुँचने लायक हो सकते हैं। जो समाज के बंधनों को शिथिल करता है, वह अपना और समाज का घातक है। वह न तो अपनी और समाज की रक्षा करता है और न अपने को और समाज को उच्चतम उद्देश की ओर, धर्म और नीति के मार्ग पर, ले जाता है। समाज की आवश्यकता रक्षा से अवश्य प्रारंभ हुई, पर उसकी सिद्धि होने पर उसे अपना स्वरूप अवश्य उच्चतम करने की इच्छा होती है। क्योंकि बिना समाज के कोई उच्चतम उद्देश सिद्ध नहीं हो सकता। इसलिये प्रारंभिक सामाजिक व्यवस्था होने पर और रक्षा की सिद्धि की संभावना होने पर मनुष्य धीरे-धीरे अपनी सामाजिक व्यवस्थाओं द्वारा दूसरे उद्देश को, धर्म और नीति के लक्ष्य स्थान को, प्राप्त करने की ओर अग्रसर होता है। इसका सारांश यह है कि धार्मिक या नैतिक विकास मनुष्य की सामाजिक व्यवस्था का दूसरा उद्देश है, और सामाजिक व्यवस्था होने पर रक्षा का उद्देश, बहुत कुछ बिना कष्ट के सिद्ध होने के कारण, दूसरा उद्देश ही उसका प्रधान यानी उच्चतम उद्देश बन बैठता है। फिर हम कहने लगते हैं—

> आहारनिद्राभयमैथुनानि सामान्यमेतत् पशुभिर्नराणाम्।
> धर्मो हि तेषामधिको विशेषो धर्मेण हीनाः पशुभिः समानाः॥

जो धर्म और ईश्वर को मानता हो, वह भले ही धर्म के स्थान में नीति शब्द रख लें, पर इससे मनुष्य की उच्चतम मानसिक आवश्यकता में कोई परिवर्तन नहीं होता—यह उच्चतम नैतिक आवश्यकता छोटे-बड़े सब में बनी ही है। उसकी शक्ति इतनी अधिक है कि कुछ थोड़े से समाजहीन मनुष्यों को छोड़ दें तो हम कह सकते हैं कि मनुष्य को इस उच्चतम उद्देश के पीछे पड़े बिना जीवन शून्य-सा जान पड़ता है। हाँ, शर्त यह है कि रक्षा के साधन प्राप्त करने में उसका पूरा-पूरा समय न लग जावे और सारा समय लगाकर भी वह अकिंचन न बना रहे। हम पहले ही बता चुके हैं कि जीवन में रक्षा प्रथम है, और नीति या धर्म की ओर प्रवृत्ति तदनंतर

आती है। एस्किमो जैसी जाति में धर्म या नीति के विकास की आशा करना वृथा है। भौतिक रक्षण के बाद ही यह उच्च कल्पना सूझती है और फिर मनुष्य अपने समाज की कम अधिक रचना उसकी सिद्धि के लिये करने लगता है।

इस विवेचन से हमें समाज की उत्तमता की कसौटियाँ मिल गईं। हम उसी समाज को उत्तम कहेंगे जहाँ व्यक्ति की भरपूर रक्षा होती है, और जहाँ रह कर वह अपने जीवन के उच्चतम उद्देश को प्राप्त कर सकता है। ये दो उद्देश ऐसे हैं जो वास्तव में सब कायदों के और सब नियमों के परे हैं। जहाँ आत्म-रक्षा नहीं होती वहाँ कोई भी वहाँ के नियमों को ताक पर रख देकर अपनी रक्षा की सिद्धि कर सकता है। और, संसार में सारे लोग आत्म-रक्षा की आवश्यकता को इतनी पूर्णता से मानते भी हैं कि यदि कोई पुरुष किसी के शरीर की हत्या करना चाहे या चोट भी पहुँचाना चाहे, तो आत्म-रक्षा के लिये जितनी हानि उस आघातक पुरुष को पहुँचाना आवश्यक है, उतनी पहुँचाने में समाज के कायदों का उल्लंघन हुआ सा नहीं समझा जाता। इतना ही नहीं किंतु आत्म-रक्षा के निमित्त सर्व सामान्य नैतिक नियमों का उल्लंघन भी अनुचित नहीं समझा जाता—उस स्थिति में यह उल्लंघन करने पर समाज अपने नियमों का शासन ही ढीला कर देता है। जिस प्रकार आत्म-रक्षा के लिये सामाजिक बंधनों की शिथिलता सर्वमान्य होती है, उतने ही अंश में नैतिक या धार्मिक उद्देश्य के लिये सामाजिक बंधनों की शिथिलता मानी नहीं जाती। इसका एक प्रधान कारण यह है कि बहुधा सब समाजों में धार्मिक या नैतिक विकास प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष समाज और व्यक्ति का उद्देश समझा जाता है। इसलिये यह मानना कठिन है कि, समाज में कभी धार्मिक या नैतिक विकास के लिये सामाजिक बंधनों की शिथिलता या उनके उल्लंघन की आवश्यकता प्रतीत हो सकती है। दूसरा कारण यह है कि धार्मिक या नैतिक विकास के लिये सामाजिक बंधनों के पालन की आवश्यकता और तन्निमित्त स्वार्थ-त्याग ही अधिक प्रतीत होते हैं। यह कहना ही कि धार्मिक या नैतिक विकास के लिये सामाजिक नियमों की शिथिलता की या उनके उल्लंघन की भी आवश्यकता होती है, कुछ भद्दा-सा देख पड़ता है। पर, इस विषय में मत-भेद हो सकते हैं और समयानुसार इस संबंध के नियम भी बदलते रहते हैं। यदि किसी को मूर्तिपूजा से धर्म-सिद्धि न होती जान पड़े, और समाज के नियम से ईश्वरोपासना के लिये मूर्तिपूजा आवश्यकीय बना दी गई हो, तो, उसे इस नियम का उल्लंघन करना ही होगा। वास्तव में इस उल्लंघन के लिये समाज को उसे दंड देने का अधिकार न होना चाहिए। पर, इतिहास यह बताता है कि कई देशों में इस उल्लंघन के लिये लोगों को कड़े दंड मिले हैं। यदि किसी को जान पड़े कि देश विजय के लिये मनमाने युद्ध करना धर्म या नीति के विरुद्ध है, तो उनमें योग न देने के लिये उसे दंड न मिलना चाहिए। पर इतिहास यह भी बताता है कि कई राज्यों ने, इस विषय की राजकीय आज्ञा न पालने के कारण, अपनी प्रजा को दंड दिया है। ढूँढ़ने से इसी प्रकार के अनेक उदाहरण मिल सकते हैं कि, जब धर्म अथवा नीति के लिये सामाजिक बंधनों की अवज्ञा आवश्यक प्रतीत हुई है, होती है और आगे भी होगी, जब या जहाँ यह आवश्यकता प्रतीत होती है, तब और वहाँ समाज गिरा हुआ सा समझना चाहिये—यह समझना चाहिये कि समाज में कुछ बुराई आ गई है इसलिये व्यक्ति को अपने उद्देश की सिद्धि के लिये समाज के नियमों के भंग करने की आवश्यकता जान पड़ती है। अतः यह सिद्ध है कि आत्मरक्षा और धार्मिक या नैतिक विकास की सिद्धि समाज की उत्तमता की दो खासी कसौटियाँ हैं।

अब हम साराश में देख सकते हैं कि समाज अपने उद्देशों की सिद्धि के लिये किस-किस प्रकार की व्यवस्था करता है। सबसे पहली आवश्यकता आत्म-रक्षा होने के कारण, मनुष्य कुटुंब बनाकर रहता है। मनुष्य की खाद्य-सामग्री नितांत स्वाभाविक अवस्था में कम मिलने के कारण, और बहुत सी खाद्य-सामग्री बुद्धि के द्वारा प्राप्त कर सकने के कारण, तथा मनुष्य के बच्चे की रक्षा अन्य प्राणियों के बच्चों से अधिक होने के कारण मनुष्य-जाति में स्त्री और पुरुष को यथासंभव एकत्र रहकर एक उद्देश में लगे रहने की आवश्यकता होती है। मनुष्य के इतिहास के प्रारंभ से देख पड़ता है कि भोजन प्राप्त करने का तथा स्त्री और बच्चों की रक्षा का अधिकांश भार पुरुष पर रहा है, और स्त्री खाद्य-सामग्री को भोजन में परिवर्तित करती, बच्चों का पालन-पोषण करती तथा जीवन को अन्य

आवश्यक वस्तुएं बनाती रही है। ऊपर कह ही चुके हैं कि बुद्धि के कारण मनुष्य अपने लड़के-बच्चों को बड़े होने पर और माँ-बाप को उनके बूढ़े होने पर पहचान सकता है। इस कारण उनका भी कुटुंब में सम्मिलित होना स्वाभाविक है। पर भारत जैसे कुछ समाजों में इनके अतिरिक्त अन्य संबंधी भी कुटुंब में सम्मिलित होते रहे हैं। कौटिलीय अर्थशास्त्र में स्पष्ट नियम लिखा है कि— "अपत्यदारान् माता-पितरौ भ्रातॄन् प्राप्त-व्यवहारान् भगिनीं कन्यां विधवाश्चाविभ्रन् शक्तिमतो द्वादशपणो दण्डः अन्यत्र पतितेभ्यः। अर्थात्—लड़के-बच्चे, स्त्री, माता-पिता, नाबालिग भाई, अविवाहिता तथा विधवा बहिन आदि का जो पुरुष सामर्थ्य रखते हुए भी पालन-पोषण न करे उसे बारह पण दंड दिया जाय। परंतु ये पतित न हुए हों।" पाश्चात्य-संसार में माता-पिता भी 'कुटुंब' के बाहर समझे जाते हैं, फिर दूसरों की कथा ही क्या! परंतु कोई भी विचारवान् पुरुष यह मानेगा कि नीति की दृष्टि से कौटिल्य का नियम अत्यंत उचित है। पाश्चात्य-संसार का नियम, नीति के बदले स्वार्थ अधिक सिखाता है। कौटिल्य का नियम स्वार्थसिद्धि के बदले स्वार्थ-त्याग अधिक सिखाता है। नीति-पोषक सामाजिक-बंधनों का यह एक उदाहरण है। कुटुंब का उद्देश केवल निज के नाबालिग लड़के-बच्चों और अपनी स्त्री की ही रक्षा न होना चाहिये, वरन उसमें उन सबका रक्षा का प्रबंध होना चाहिये, जो स्वतः अर्थार्जन नहीं कर सकते। यह स्पष्ट ही है कि कौटिल्य के नियम में ऐसेही मनुष्य हैं। साथही यह भी शर्त है कि वे नीति के बंधनों में रहें। नीति के बंधनों का उल्लंघन करने पर उनकी रक्षा करने की आवश्यकता नहीं रह जाती।

कुटुंब-व्यवस्था-संबंधी पहला प्रश्न यह हो सकता है कि कुटुंब पुरुष के नाम से चले अथवा स्त्री के—यानी वह पितृमूलक रहे या मातृमूलक? आस्ट्रेलिया के कुछ मूल-निवासियों को छोड़ दें, तो सारे संसार में और समस्त इतिहास में यह देख पड़ता है कि कुटुंब-व्यवस्था पितृमूलक रही है, और है।

यह प्रश्न सिद्ध होने पर विवाह के नियमों के और पति-पत्नी के परस्पर के प्रति-कर्तव्य और अधिकार के प्रश्न तथा कुटुंब के लोगों के परस्पर के प्रति-अधिकार और कर्तव्य के प्रश्न उपस्थित होते हैं। इसीसे संबंध रखनेवाला महत्त्व का प्रश्न जायदाद का है। इस प्रकार कुटुंब-व्यवस्था से संबंध रखनेवाले अनेक प्रश्न उपस्थित होते हैं। इन सबको हल करते समय यह देखना चाहिये कि इन प्रश्नों के संबंध के सब नियमों से व्यक्ति के मूल उद्देश सिद्ध होते हैं या नहीं? हम समझते हैं कि अभी संसार में जो भिन्न समाज हैं उनके एतद्विषयक नियमों की जाँच इस दृष्टि से नहीं की गई है, अन्यथा उनमें इतनी अधिक विभिन्नता न दीख पड़ती। माना कि भौतिक परिस्थिति के अनुसार इन विषयों के नियमों में थोड़ा भेद देख पड़ना स्वाभाविक है, तथापि हमारा मत है कि यदि इन सब नियमों की जाँच व्यक्ति के अंतिम उद्देशों की दृष्टि से की जाय, तो उनमें जो आज अत्यंत अधिक विभिन्नता दीख पड़ती है, वह बहुत कुछ दूर हो जावेगी। पर साधारण लोग तो—'गतानुगतिको लोकः, न लोकः पारमार्थिकः' नामक नियम के अनुसार ही चलते हैं। इसलिये इन बातों में अब इतनी अधिक विभिन्नता दीख पड़ती है कि अपनी और अपने कुटुम्ब की रक्षा के लिये प्रत्येक मनुष्य कुछ न कुछ धंधा करता है, या अपने नियमों द्वारा उसके धंधे का निश्चय कर देता है। भारत की प्राचीन जाति-व्यवस्था दूसरे प्रकार की थी। इसमें समाज व्यक्ति के जीवन के धंधे का स्वरूप निश्चित कर देता था। बाप का धंधा बेटा भी करता चला जाता था। आजकल व्यक्ति अपना धंधा स्वतंत्रता से निश्चित करते हैं। परन्तु एक तत्व दोनों प्रकार की व्यवस्था में सदैव से बना रहा है। वह यह है कि धन्धे का एक स्वरूप व्यक्ति से सम्बन्ध रखता है, तो दूसरा स्वरूप समाज से। एक ओर उसके धंधे से उसका भरण पोषण होता है, तो दूसरी ओर उससे समाज-सेवा होती है। अर्थार्जन-सम्बन्धी कोई ऐसा कार्य नहीं जिसमें ये दोनों स्वरूप विद्यमान न हों। इसीलिये सरकारी नौकरों को जो आजकल Public Servant कहते हैं, वह बहुत ही ठीक है। प्राचीन भारत में लोग अपनी जाति का काम करके आत्म-रक्षण ही नहीं किन्तु उसके साथ ही समाज-सेवा भी करते थे। हम लोग आजकल यह भूल-से गए हैं कि हमारे धन्धों का भला-बुरा परिणाम समाज पर भी होता है। इसलिये हम अपने धन्धों को केवल स्वार्थ की दृष्टि से चलाने लगे हैं। पर, हमें यह सदैव स्मरण रखना चाहिये कि किसी धन्धे

से केवल पेट नहीं भरता, समाज की सेवा भी होती है, इसलिये उसे हमें इस ढंग से करना चाहिये कि जिससे ये दोनो उद्देश सफल हों। यदि धन्धे इस दृष्टि से किये या चलाये जायँ, तो उनकी आजकल की बहुतेरी बुराइयाँ दूर हो जावेगी।

समाज-व्यवस्था का एक बड़ा भारी और बहुत महत्त्व का अंग शासन-व्यवस्था है। इसका महत्त्व इतना अधिक है, और उसकी शक्ति इतनी अधिक होती है, कि उसके सामने समाज स्वयं बिलकुल नाचीज़ होजाता है। शासन-व्यवस्था का सूत्र एक के हाथ में रहे, अथवा अनेकों के अथवा सबके—यह कोई महत्त्व का प्रश्न है नहीं। महत्त्व का प्रश्न यह है कि शासन-व्यवस्था से सबको एकसा लाभ पहुँचता है या नहीं—सबकी एकसी रक्षा होकर वे अपने-अपने जीवन के कार्यों मे अग्रसर हो सकते है या नहीं? सारे राज्य-विज्ञान का हमे यहाँ निचोड़ जान पड़ा है कि राज्य-शासन की आत्मा ही महत्त्व की बात है, शासन-सूत्रों का एक अथवा अनेक अथवा सामवायिक दृष्टि से प्रत्येक के हाथ मे होना महत्त्व की बात नहीं है। प्राचीन हिंदू-राज्य एकतंत्री होने पर भी सच्चे लोकसेवी थे। इतिहास बताता है कि कई नामधारी लोक-तंत्रो ने लोगों पर मनमाना अत्याचार किया है। शासकों के सामने अपने कार्यों के उद्देश स्पष्ट रीति से न बने रहे तो शासन लोक-तंत्र होने पर भी लोगों पर अत्याचार हो सकता है। इसलिये आवश्यक यह है कि व्यष्टि और समष्टि दोनों के उद्देश एकसे हों और तदनुसार शासन और समाज-व्यवस्था हो।

कभी-कभी समाज-व्यवस्था मे सामाजिक रीतियो और रूढ़ियों को भी शामिल कर लेते है। इसी कारण सामाजिक रीतियों, रूढ़ियो और व्यवहारों को अंग्रेज़ी मे Institution (संस्था या व्यवस्था) कहा है। और, एक दृष्टिसे देखा जाय तो, इनका यह नामकरण अनुचित भी नहीं है। क्योंकि व्यवस्था से व्यक्ति के सामाजिक आचरण का निश्चय होता है, और सामाजिक रीतियों, रूढ़ियो और व्यवहारों से भी वही होता है। देखना यही चाहिये कि इनसे व्यक्ति और समाज के उद्देश सिद्ध होते है या नहीं?

किसी लोक-समाज मे भिन्न-भिन्न प्रकार के जो संघ या समाज होते हैं, वे भी सामाजिक-व्यवस्था के अन्तर्गत है। पर इनके विषय में एक दो बातें ध्यान में रखनी चाहिये। इनकी आवश्यकता स्थान विशेष के अनुसार होती है। इस कारण उनकी संख्या और उनके उद्देश किसी काल या देश मे सुनिश्चित नहीं हो सकते। समयानुसार किसी स्थान मे भिन्न-भिन्न संघ, समाज, मंडल आदि बनेगे और उनके उद्देश समयानुसार और देशानुसार भिन्न-भिन्न होंगे। इसीसे यह भी सिद्ध होता है कि वे दीर्घ-स्थायी हों या न हों। हाँ, यह बात उनपर भी लागू होती है कि उन सबसे मनुष्य के अन्तिम उद्देश प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष अवश्य सिद्ध हों।

समाज-व्यवस्था के अन्तर्गत अनेक प्रकार की और व्यवस्थाएँ आती है। मनुष्य को बाल-पशु की दशा से प्रौढ़ शिक्षित मनुष्य की आवश्यकता है, फिर उसे एक सहचरी ढूँढ़कर कुटुम्ब स्थापन करने की आवश्यकता है, और तदनन्तर स्वाभाविक ही मनुष्य का मन ऐहिक भोग विलास से विरत होने लगता है, और साधारण शब्दों मे बताया जाय, तो यह कहेंगे कि धर्म की ओर लगने लगता है। इन तीनों बातों के लिये तीन प्रकार की व्यवस्थाएँ चाहिये। आजकल शिक्षा-संस्थाओं से पहली बात की सिद्धि होती है, उपजीविका से दूसरी बात की, पर तीसरी बात के लिये कोई उचित प्रबंध नहीं है। प्राचीन भारत मे जाति-व्यवस्था और आश्रम-व्यवस्था से इन तीनों बातों की सिद्धि की योजना की गई थी। उस समय कदाचित् जाति-व्यवस्था की आवश्यकता थी और इसीने उसे अधिकांश मे जन्म दिया था। अब उसका उपयोग जाता रहा। पर मनुष्य के अन्तिम उद्देश के लिये सुनिश्चित समाज-व्यवस्था बहुत कम देशों मे रहगई है। विज्ञान युग के प्रारंभ होने के पहले क्रिश्चियन और मुसलिम धर्म के देशों मे मसजिद, गिर्जाघर और मठों से इस उद्देश की कुछ सिद्धि होने की संभावना थी। पर आधुनिक काल मे उनका महत्त्व जाता रहा है। भारत मे आश्रम-व्यवस्था छिन्न-भिन्न होगई है। इससे अनेक बुराइयाँ पैदा हुई हैं। मनुष्य का अपनी मृत्यु तक ऐहिक भोग-विलास मे बने रहने से अनेक बुराइयाँ पैदा हुई हैं, और लोगों की बहुत अधिक नैतिक अधोगति होगई है। लोग चिल्लाया करते है कि बूढ़ों को फिर विवाह के चक्कर मे न पड़ना चाहिये। हमारा ऐसा मत है कि केवल इस चिल्लाने से काम न चलेगा। आवश्यकता इस बात की है कि इन

वृद्धों का श्रम और समय ऐसे काम मे लगा दिया जाया करे कि वे न तो अपनी बुराई कर सकें और न समाज की, प्रत्युत समाज को और अपने को मनुष्य के उच्चतम उद्देश की ओर ले जाने में सहायक हों। वानप्रस्थाश्रम और संन्यास से प्राचीन भारत मे इन उद्देशों की सिद्धि हो सकती थी। इन आश्रमों का पुनरुद्धार उसी प्राचीन रूप मे करने की आज आवश्यकता है, पर, वैसा कर सकना संभव नहीं। तथापि समाज मे कुछ ऐसी योजना अवश्य चाहिये कि जिससे उपरिलिखित उद्देश सिद्ध होसकें। किसी सामाजिक-व्यवस्था मे उसके उच्चतम उद्देश की सिद्धि के लिये कोई सुनिश्चित योजना न रहना व्यक्ति और समाज दोनों के लिये हानिकारक है।

गोपाल दामोदर तामस्कर

प्रलयकाल

(१)

टुकरत बैल के बलूले लौं बिलाने लोक,
फुकरत फणि के अनन्त-ओक जरिगे।
प्रकटे त्रिलोचन-त्रिशूल के दुरत-दव,
सारे प्राणी दावा मे पतंग सम परिगे।
हरिऔध कहै प्रलयंकर-प्रकोप भये,
मरिगे अमर बारि-धार-वारे बरिगे।
गरे के गरल ते अँगारे झरे अनल पे,
नयन उघारे नारे पावक ते भरिगे।

(२)

शृंग-नाद सुने घोर-डमरू-डिमिक भये,
कोपे महा-काल के सुरासुर सिहरिगे।
उच्छलत-बारिधि को बारि विचलित भयो,
धसक्यो धरा-तल धराधर बिदरिगे।
हरिऔध चौदहो भुवन भय-भीत बने,
काँपे पंचभूत दसो-दिग्गज भभरिगे।
कोल गयो डोल काठ मारिगो कमठहू को,
बेल बिललानो व्याल-बदन बिहरिगे।

—हरिऔध

शर्त

शरद् ऋतु की अंधेरी रात थी। नगर का प्रसिद्ध वृद्ध महाजन अपने पठनागार में ध्यान-निमग्न एक कोने से दूसरे कोने का चक्कर लगा रहा था। उसके मस्तिष्क मे आज से ठीक पंद्रह वर्ष पूर्व की घटना फिर रही थी। उस समय उसने एक बड़ी दावत दी थी। नगर के बहुत से नामी और प्रतिष्ठित व्यक्ति निमंत्रित होकर आये थे। उस दावत के अवसर पर अभ्यागतों मे बड़ा मनोरंजक वार्तालाप हुआ था। प्रसंग-वश प्राण-दंड के नैतिक अंग पर भी चर्चा छिड़ी थी। अधिकांश अभ्यागतों ने—जिनमे कई प्रतिष्ठित विद्वान और संपादक भी थे—प्राण-दंड की प्रथा का प्रतिवाद किया था। उनका मत था कि प्राण-दंड की प्रथा वर्तमान सभ्यता के अनुपयुक्त है, नीति-विरुद्ध है, तथा ईसामसीह के धर्मावलंबियों को शोभा नहीं देती। उनमे से कई का विचार था कि प्राण-दंड की प्रथा उठाकर उसके स्थान पर आजन्म कारावास का दंड प्रचलित कर देना चाहिये।

उस समय महाजन ने कहा था—"मैं आप लोगों से सहमत नहीं हूँ। यों तो न मुझे प्राण-दंड का निजी अनुभव है, न आजन्म कारावास का, परंतु, यदि, अनुमान से काम लिया जा सकता है, तो मैं कहूँगा कि प्राण-दंड आजन्म कारावास की अपेक्षा नैतिक दृष्टि से श्रेष्ठतर है, तथा विशेष दया-पूर्ण है। प्राण-दंड क्षण भर मे मनुष्य के जीवन का अंत कर देता है। आजन्म कारावास मनुष्य का धीरे-धीरे हनन करता है। उन दो जल्लादों मे आप किसे पसंद करेंगे—एक तो क्षण भर मे जान ले लेता है, दूसरा धीरे-धीरे वर्षों में कष्ट देकर ?"

एक अतिथि ने कहा—"वास्तव मे दोनों प्रकार के दंड नीति-विरुद्ध है—क्योंकि अंत दोनों का एक ही है—अर्थात जीवन का हनन। राष्ट्र परमेश्वर नहीं है। जिस वस्तु को वह अपनी इच्छा से प्रदान नहीं कर सकता उसे उसको अपहरण करने का क्या अधिकार हो सकता है ?"

अभ्यागतों में एक क़ानून-पेशा, पचीस वर्ष का नवयुवक भी था। उसकी सम्मति पूछी गई तो उसने कहा—"प्राण-दंड तथा आजन्म कारावास दोनों ही नीति के घातक हैं। यदि मुझ से पूछा जाय कि तुम अपने लिये इन दोनों में से किसे अधिक पसंद करते हो, तो मैं निस्संदेह कहूँगा कि इनमें से दूसरे को पसंद करता हूँ। मरने की अपेक्षा तो, चाहे जिस तरह हो जीना ही अच्छा है।"

इस पर आपस में तर्क होने लगा था। उस समय महाजन इतना वृद्ध नहीं था। वह जोशीला आदमी भी था। तैश में आ गया। मेज़ के ऊपर अपनी मुट्ठी ज़ोर से मार कर क़ानून-दाँ से कहने लगा—

"क्यों व्यर्थ बकते हो? कारावास में पाँच वर्ष भी टिको तो मैं दो लाख हारता हूँ।"

क़ानून-दाँ ने उत्तर दिया—"अगर अपनी बात के पक्के हो तो मैं पाँच क्या पंद्रह वर्ष की क़ैद स्वीकार करने के लिये तैयार हूँ।"

"पंद्रह? अच्छा रही!!"—कह कर महाजन चिल्ला उठा। बोला, "सज्जनो, मैं दो लाख की शर्त लगाता हूँ।"

क़ानून-दाँ ने उत्तर दिया—"मुझे मंज़ूर है। तुम्हारी ओर से दो लाख की बाज़ी है। मैं अपनी स्वतंत्रता से बाज़ आता हूँ।"

इस प्रकार यह अनोखी और बेतुकी शर्त लग गई। महाजन पचीसों लाख का आदमी था। उसे धन की परवा न थी। मनकी आदमी था। उसे कुतूहल सूझ रहा था। दावत समाप्त होते समय उसने क़ानून-दाँ नवयुवक से हँसी में कहा—

"भले आदमी, अब भी खैरियत है। ख़ूब सोच समझ लो, तब यह शर्त करो। पीछे से शिकायत न करना। मेरे लिये दो लाख बहुत बड़ी रकम नहीं है। तुम अलबत्ता अपनी ज़िंदगी के तीन-चार अत्यंत उपयोगी वर्ष खोओगे। तीन चार मैं इसलिये कह रहा हूँ कि इतने दिनों तक भी तुम्हारा चलना मुश्किल हो जायगा। फिर, यह भी सोचलो कि इच्छा से कारावास में रहना मजबूरी के कारावास से कहीं कठिन होता है। यह विचार कि हमें हर समय स्वतंत्र होने का अधिकार प्राप्त है, जीवन को प्रतिक्षण विषमय बना देता है। मैं तो तुम पर सच-मुच तरस खाता हूँ।"

यह पूरी घटना महाजन के मस्तिष्क में इस समय पठनागार में टहलते हुये हरी हो रही थी। वह अपने मन में सोच रहा था—

"मैंने आख़िर क्यों यह शर्त लगाई? इससे क्या लाभ हो सकता है? मेरा क़ानून-दाँ मित्र अपने जीवन के पंद्रह मूल्यवान वर्ष नष्ट करता है, और मैं भी दो लाख व्यर्थ में फेंकता हूँ। कहीं इससे लोग यह समझ लेंगे कि प्राण-दंड की अपेक्षा आजन्म कारावास अच्छा है? नहीं, कदापि नहीं, यह सब नितांत मूर्खता की बातें हैं। मेरे पक्ष में धन-मद था और मेरे मित्र के पक्ष में धन-लोभ—इसी कारण यह शर्त लगाई गई!!"

महाजन उपरोक्त दावत के बाद की बातें भी सोचता रहा।

निश्चय यह हुआ था कि, नवयुवक महाजन ही के बाग़ के एक कमरे में क़ैद रहे और उस पर महाजन की ओर से कड़ी निगरानी रखी जाय। इसके अतिरिक्त यह भी तय हुआ कि नवयुवक न किसीसे बातचीत करे, न किसीसे मिल पावे, न किसी से पत्र का उत्तर मँगावे, और न समाचार-पत्र देख पावे। पत्र लिखने की, पुस्तकें पढ़ने की, बाजा बजाने की, शराब और तंबाकू पीने की उसे स्वतंत्रता थी। उसके कमरे में एक खिड़की विशेष कर लगा दी गई थी। बाहरी लोगों को वह उसी खिड़की की राह से देख सकता था, परंतु उनसे बातचीत करने की आज्ञा नहीं थी। आवश्यक वस्तुएँ, पुस्तक, गाने की पुस्तकें, शराब इत्यादि, जिस वस्तु की उसे आवश्यकता हो, चिट्ठी लिखकर उसी खिड़की की राह से माँग सकता था। शर्तनामे में प्रत्येक बात विस्तार से लिख दी गई थी। कारावास एकाकी था और क़ानून-दाँ नवयुवक सभी शर्तों को कड़ाई के साथ मानने के लिये पाबंद था। यह तय हुआ था कि १४ नवंबर सन् १८७० के बारह बजे से लेकर १४ नवंबर १८८५ तक यह क़ैद रहेगा। यदि नवयुवक किसी भी अंश में इन शर्तों की अवहेलना करेगा या निश्चित समय से पहले यहाँ से निकलने का प्रयत्न करेगा, वह चाहे दो मिनट पहले ही क्यों न हो—तो महाजन दो लाख देने के वचन से मुक्त समझा जायगा।

कारावास के प्रथम वर्ष में तो, जहाँ तक उसके पत्रों से निश्चित किया गया, वहाँ तक यह जान पड़ा कि

नवयुवक को अकेला रहना बहुत अखर रहा है। उसके कमरे से रातदिन पियानो बाजे की आवाज़ सुनाई पड़ा करती थी। उसने शराब और तवाकू का परित्याग कर दिया। उसने लिखा था—"शराब वासनाओं को जाग्रत करती है, और वासनायें ही क़ैदी की मुख्य वैरिणी हैं। इसके अतिरिक्त अच्छी शराब अकेले पीने से आनंद भी नहीं आता।" तबाकू के विषय में उसका कथन था कि यह कमरे के वायु मंडल को बिगाड़ देता है। पहिले वर्ष तो उसने गंभीर पुस्तकें छुई नहीं। प्रेम-संबंधी, पाप-संबंधी और कुतूहल-जनक उपन्यास तथा कहानियां और सुखांत नाटक इत्यादि पढ़ता रहा।

दूसरे वर्ष से पियानो की आवाज़ बंद हो गई—नहीं सुनाई देती थी, और वह केवल लब्ध-प्रतिष्ठ साहित्य का अवलोकन करता रहा। पाचवें वर्ष फिर गीत सुनाई दिया—उसने शराब भी मांगी। जो लोग उसका निरीक्षण करते थे, उनका कहना है कि प्राय साल भर तक उसने खाने-पीने और बिस्तर पर पड़े रहने के सिवा कुछ नहीं किया। वह अक्सर जँभाई लिया करता था और अपने आप आवेश में न जाने क्या बड़बड़ाया करता था। पुस्तकें तो वह पढ़ता न था। कभी-कभी रात्रि के समय बैठकर कुछ लिखा करता था, बड़ी देर तक रात में लिखता रहता और जो कुछ भी लिखता उसे सवेरे फाड़ डाला करता था। कई बार वह रोता देखा गया।

छठे वर्ष के उत्तरार्द्ध में क़ैदी ने भाषाओं का अभ्यास तथा दर्शन-शास्त्र और इतिहास का मनन आरंभ किया। वह इन विषयों का इतने चाव से मनन करने लगा, और उसकी पुस्तकों की मांग इतनी अधिक होगई, कि महाजन को यथासमय काफ़ी पुस्तकें जुटाना कठिन हो गया। चार वर्ष के भीतर उसने ६०० ग्रंथ मँगवाए। जिन दिनों भाषाओं के अभ्यास का जोश था, उन दिनों क़ैदी ने एक पत्र इस आशय का लिखा —

"मेरे क़ैद करनेवाले! मैं ये पंक्तियां चार भाषाओं में लिख रहा हूँ। इन्हें उन भाषाओं के विशेषज्ञों को दिखलाना। उनसे इन्हें पढ़वाना। यदि वे लोग इनमें एक भी अशुद्धि न पा सकें, तो मैं तुमसे अनुरोध करता हूं कि अपने बाग में एक बंदूक़ छोड़ने की आज्ञा दे देना। उसकी आवाज़ से मैं समझ लूँगा कि मेरा प्रयास असफल नहीं रहा है। भिन्न-भिन्न देश के तथा भिन्न-भिन्न काल के महापुरुष भिन्न-भिन्न भाषाओं का व्यवहार कर गए हैं, परंतु उन सबके हृदयों में एक ही ज्योति जला करती था। अहा! आज मैं कितना प्रसन्न हूँ कि मैं उन सबको समझ सकता हूँ।"

क़ैदी की इच्छा पूरी की गई। महाजन की आज्ञा से बाग में बंदूक़ की दो आवाज़ें की गईं।

इसके बाद दसवें वर्ष से क़ैदी अपनी मेज़ पर स्थिर बैठकर केवल एक पुस्तक—नई इंजील—का मनन किया करता था। महाजन को बड़ा आश्चर्य होता था कि वह मनुष्य, जिसने चार वर्ष में छ सौ बड़े गंभीर ग्रंथ पढ़ डाले, सालभर से केवल एक सरल और वह भी छोटे से ग्रंथ के मनन में लगा रहा है। नई इंजील के बाद धर्मशास्त्र तथा धर्मों के इतिहास का मनन करता रहा।

अपनी क़ैद के अंतिम दो वर्षों में क़ैदी ने फिर बहुत-सा साहित्य देखा। परंतु अब की बार उसके पढ़ने में कोई क्रम नहीं था। अनेकों विषयों की पुस्तकें देखीं; कभी वह जीव-विज्ञान का अध्ययन करता, कभी शेक्सपियर और बाइरन के ग्रंथों का। कभी-कभी उसके पत्र आते, जिनमें एक साथ ही एक भौतिक-विज्ञान की, एक चिकित्सा के ग्रंथ की, एक उपन्यास की, एक दर्शन अथवा धर्म-शास्त्र की पुस्तक की मांग रहती। ऐसा आभास होता था कि वह एक अथाह सागर में तैर रहा है, और अपनी जीवन-रक्षा के लिए जिस किसी वस्तु को पाता है, ग्रहण कर लेता है।

महाजन इन सब बातों को याद कर रहा था।

उसने सोचा, "कल बारह बजे वह स्वतंत्र हो जायगा। शर्तनामे के अनुसार मुझे उसे दोलाख देने पड़ जायँगे। अगर मैं देता हूं, तो मैं तबाह हो जाऊंगा—मेरा सर्वनाश हो जायगा।"

पन्द्रह वर्ष पहले महाजन की पचीसों लाख की हैसियत थी। परंतु इस समय जितनी उसकी संपत्ति थी, उतना तो उस पर क़र्ज़ हो रहा था। बाज़ार में बदनी कर-करके उसने अपने को तबाह कर दिया था। अब उसमें वह उत्साह, वह निश्चितता नहीं रह गई थी। बाज़ार-भाव के घट-बढ़ जाने का उसे सदा भय लगा रहता था। वह केवल एक साधारण स्थिति का महाजन रह गया था।

वृद्ध महाजन ने अपने सिर के बालों को खसोटते हुए कहा—"उफ़! बुरा हो इस शर्त का, अरे! यह आदमी मर क्यों नहीं गया? अभी उसकी उम्र केवल चालीस वर्ष की है। यह तो मेरी पाई-पाई बिकवा लेगा। आप ब्याह करेगा, चैन करेगा, व्यापार करेगा। मैं भिखमंगा बना फिरूँगा। किसी दिन मुझ से ही कहेगा—"मेरे पास जो कुछ है, आप ही की कृपा का फल है। मेरी सहायता स्वीकार कीजिए।" नहीं, यह नहीं हो सकता! मेरी तबाही और बेइज़्ज़ती की एक मात्र बचत का उपाय यही है कि, यह मनुष्य किसी प्रकार मर जाय।"

घड़ी में इसी समय तीन का घंटा बजा। महाजन कान लगाए हुए था। घर में कोई जाग नहीं रहा था। केवल बाहर वृक्षों की सनसनाहट सुनाई देती थी। महाजन ने बड़े आहिस्ते से अपना लोहे का सन्दूक खोला और उसमें से उस दरवाज़े की कुंजी निकाली जो पन्द्रह वर्षों से खुला नहीं था। अपना ओवरकोट पहन कर वह बाहर निकला। बाग में अच्छी ठंड पड़ रही थी और अंधकार छाया हुआ था। पानी भी पड़ने लगा। ठंडी हवा ज़ोरों से चल रही थी और वृक्षों के बीच में होती हुई उन्हें कँपा रही थी। महाजन अपनी आँखें फाड़-फाड़ कर देख रहा था, लेकिन अँधेरा इतना घना था कि न तो वृक्ष दिखाई देते थे, न बाग में रखी हुई संगमरमर की बड़ी मूर्ति और न क़ैदी का कमरा ही। वह अँधेरे ही में कमरे की ओर बढ़ा। निकट पहुँच कर उसने दो बार चौकीदार को पुकारा। कोई उत्तर नहीं मिला। जान पड़ता था कि पानी बरसने के कारण वह कहीं चौके में अथवा दूसरी जगह जाकर पड़ रहा था और सो गया था।

वृद्ध मनुष्य ने अपने मन में सोचा, "यदि साहस करके मैंने यह काम कर डाला तो सबसे पहले चौकीदार पर शुबा जायगा।"

अंधकार में सीढ़ियाँ टटोलता हुआ, एक पतले रास्ते से होकर वह क़ैदी के कमरे के द्वार पर पहुँचा। एक दियासलाई जलाई। कोई दूसरा प्राणी उस समय वहाँ नहीं था। एक खाट रास्ते में पड़ी हुई थी, परन्तु उस पर बिस्तरा नहीं था; एक कोने में एक लोहे का चूल्हा भी रखा हुआ था। क़ैदी के कमरे की मुहर जैसी-की-तैसी लगी हुई थी।

जिस समय दियासलाई बुझी, वृद्ध महाजन काँप रहा था; उसका सिर चक्कर खा रहा था। उसने खिड़की से झाँक कर जी कड़ा करके क़ैदी को देखा।

क़ैदी के कमरे में एक मोमबत्ती का धीमा प्रकाश हो रहा था। क़ैदी स्वयं मेज़ के सामने बैठा हुआ था। केवल उसकी पीठ, उसके हाथ और उसके सिर के बाल दिखाई दे रहे थे। मेज़ पर खुली हुई पुस्तकें फैली हुई थीं। पास की दो कुर्सियों और फ़र्श पर भी इसी भाँति पुस्तकें छितरी हुई थीं।

पाँच मिनट बीत गए, परन्तु क़ैदी मूर्ति की तरह बैठा रहा—तनिक भी हिला नहीं। पन्द्रह वर्षों के एकांतवास ने उसको इस प्रकार स्थिर बैठे रहने की बान डाल दी थी। महाजन ने खिड़की को अपनी अँगुलियों से खट-खटाया, परन्तु क़ैदी का ध्यान उधर आकर्षित न हुआ—वह ज्यों-का-त्यों बैठा रहा। महाजन ने बड़ी सावधानी से दरवाज़े से मुहर तोड़ दी और ताले में कुंजी लगाई। ज़ंग खाए हुए ताले ने ज़रा-सी आवाज़ की, दर्वाज़ा भी जाम पकड़ गया था, चरचराया। महाजन समझता था कि क़ैदी चौंक पड़ेगा और उठेगा। तीन मिनट और बीते परन्तु भीतर पहले की भाँति सन्नाटा बना रहा। महाजन ने अंदर जाना निश्चय किया।

मेज़ के सामने क़ैदी बैठा हुआ था। उसकी आकृति में इतना परिवर्तन हो गया था कि वह साधारण मनुष्य नहीं जान पड़ता था। सूख कर पिंजर मात्र रह गया था। उसके बाल घुँघराले और स्त्रियों के बालों की भाँति बढ़े हुए थे। इसी प्रकार उसकी दाढ़ी भी बहुत बढ़ गई थी। उसके मुख का रंग पीला, मिट्टी जैसा जान पड़ता था। गाल बैठ गए थे। वह अपने हाथ का सहारा देकर सिर रखे हुए था। उसके हाथ इतने पतले हो गए थे कि उन्हें देखकर बड़ी वेदना होती थी। उसके बाल भूरे हो चले थे। उन्हें देखकर तथा उसके मुख को देखकर कोई भी नहीं कह सकता था कि इसकी अवस्था अभी केवल चालीस वर्ष की थी। उसके झुके हुए सिर के सामने मेज़ पर कागज़ के एक तख़्ते पर बहुत छोटे अक्षरों में कुछ लिखा हुआ रखा था।

महाजन ने मन में सोचा, "बेचारे की क्या दशा हो गई है! सो गया है, और कदाचित् लाखों के स्वप्न देख रहा हो। इस अधमरे आदमी को बिस्तर पर फेंकने से

क्या लगेगा। मुँह पर तकिया रखकर इसका दम बात की बात में घोंट दिया जा सकता है। चाहे जितनी बारीकी से जाँच की जाय कोई जान भी न पावेगा कि इसकी मृत्यु अस्वाभाविक रीति से हुई है। परंतु, देखें तो, इस पत्र में क्या लिखा हुआ है।"

महाजन ने मेज़ पर से काग़ज़ उठा लिया। उसमें जो कुछ लिखा हुआ था, वह यह है:—

"कल आधीरात को, बारह बजे मैं स्वतंत्र हो जाऊँगा, मुझे लोगों से मिलने का अधिकार प्राप्त हो जायगा। परंतु इसके पूर्व कि मैं यह कमरा छोड़ूँ और सूर्यभगवान के दर्शन करूँ, मैं यह आवश्यक समझता हूँ कि तुम्हें ये कतिपय शब्द लिखूँ। अपने अंतःकरण को साक्षी देकर और परमेश्वर को सम्मुख जानकर मैं कहता हूँ कि मैं स्वतंत्रता, जीवन, स्वास्थ्य तथा उन सभी वस्तुओं का, जो संसार की दृष्टि में मूल्यवान हैं, तिरस्कार करता हूँ।

"पंद्रह वर्षों तक मैंने परिश्रम से सांसारिक-जीवन का मनन किया है। यह सत्य है कि मैंने न दुनिया देखी न उसके लोगों से मिला। परंतु तुम्हारी पुस्तकों द्वारा मैंने जी प्रसन्न करनेवाली शराबें पीयी हैं, गीत गाये हैं, जंगलों में हिरन और सुअर का शिकार किया है, स्त्रियों से प्रेम किया है। तुम्हारे कवियों की जादू-भरी कल्पना द्वारा उपस्थित की गई सुंदरियाँ रात्रि में हलके बादलों की भाँति उड़कर मेरे पास आई हैं, और अनोखी कहानियों से उन्होंने मेरे सिर को चक्कर में डाल दिया है। तुम्हारी पुस्तकों द्वारा ही मैं एल्बुर्ज़ और माँटब्लैंक पहाड़ों के शिखर पर चढ़ा हूँ और वहाँ की सैर की है। वहाँ का सूर्योदय देखा है, वहाँ की संध्या के आकाश की अरुणिमा का अनुभव किया है—समुद्र और पहाड़ियों को स्वर्ण-रंजित पाया है। मैंने हरे-भरे जंगल और खेत देखे हैं, नदियाँ, झीलें और शहर देखे हैं; वन-देवियों का गान सुना है और परियों के सुंदर परों को छुआ है। तुम्हारी पुस्तकों द्वारा मैंने अपने को समुद्र की तह में फेंक दिया है, बड़ी-बड़ी करामातें की हैं; नगरों को जलाकर उनका विध्वंस किया है, नये-नये धर्मों की शिक्षा दी है, देशों को विजय किया है।

"तुम्हारी पुस्तकों ने मुझे ज्ञान सिखाया है। मानव-जाति की सदियों की कल्पनायें मेरे मस्तिष्क में एक छोटे से पिंड की तरह रखी हुई हैं। मैं जानता हूँ कि मैं तुम सभी लोगों की अपेक्षा अधिक चतुर हूँ।

"और, मैं तुम्हारी पुस्तकों से घृणा करता हूँ; दुनिया की सभी बरकतों को, दुनियाँ के सभी ज्ञान को घृणा की दृष्टि से देखता हूँ। सभी वस्तुयें शून्य हैं, तुच्छ हैं, कपोल-कल्पित हैं, मृगतृष्णा की भाँति धोखा देनेवाली हैं। तुम गर्ववान हो, बुद्धिमान हो, सुंदर हो माना,—परंतु मृत्यु एक दिन पृथ्वी के नीचे रहनेवाली चुहिया की भाँति तुम्हें भी संसार से नष्ट कर देगी। तुम्हारा यश, तुम्हारा इतिहास, तुम्हारे विद्वानों की अमरता—यह सब नाश हो जायँगे।

"तुम पागल हो, गलत रास्ते पर चल रहे हो। तुम असत्य को सत्य मान रहे हो, कुरूप वस्तु को सुंदर समझ रहे हो। यदि अचानक सेव और नारंगी के वृक्षों में मेंढक और छिपकलियाँ फलने लगें तो तुम्हें कितना आश्चर्य होगा? यदि सुंदर गुलाब के फूल में घोड़े के पसीने की दुर्गंध आवे तो तुम्हें कितना आश्चर्य होगा? इसी प्रकार, मुझे तुम लोगों पर आश्चर्य होता है। हाँ, तुम लोगों पर—जिन्होंने इस पृथ्वी के फंद में पड़कर स्वर्ग की उपेक्षा की है। मैं तुम्हारी बातों को समझना ही नहीं चाहता।

"जिस वस्तु के लिये तुम जीते हो, उसी को मैं तुच्छ समझता हूँ, और अपने इस विचार को कार्यरूप में दिखाने के लिये मैं उन दोनों लाख को छोड़े देता हूँ, जिन के स्वप्न को मैं स्वर्गतुल्य समझता था—धन से मैं घृणा करता हूँ। उन रुपयों पर मेरा कुछ भी अधिकार न रह जाय, इस विचार से मैं निश्चित समय से पाँच मिनट पहले अपने कारावास से निकल कर शर्त को तोड़ दूँगा।"

महाजन ने इस काग़ज़ को पढ़ने के उपरांत इसे मेज़ पर फिर रख दिया और इस अद्भुत आदमी के मस्तक को चूमकर रोने लगा। वह कमरे के बाहर चला गया। उसने अपने को इस समय से अधिक तुच्छ कभी न समझा था। वह घर पर चला आया। विकलता और आँसुओं के कारण बड़ी देर तक सो न सका।

दूसरे दिन सबेरे बेचारा चौकीदार दौड़ता हुआ महाजन के पास आया और कहने लगा कि बाग के और लोगों ने क़ैदी को खिड़की के रास्ते बाग़ में निकलते

और फिर फाटक तक जाकर ग़ायब हो जाते देखा है। महाजन उसी वक़्त क़ैदी के कमरे में पहुँचा। उसके भाग जाने के समाचार को पक्का किया। बाद में मेज़ पर से वही लिखा हुआ काग़ज़ उठा लाया और इस विचार से कि बाद में लोगों को कुछ संदेह न हो, उसे बड़े यत्न से अपने लोहे के मज़बूत बक्स में बंद कर दिया। *

रामचंद्र टंडन

मनुष्य

जिसे काव्य-संगीत-कला का नहीं ज्ञान है,
जिसके उर में भरा नहीं देशाभिमान है।
जिसे आत्म-सम्मान, सुरुचि का नहीं ध्यान है;
जिसमें अपने पुरुषार्थों के प्रति न मान है।
वह मनुष्यता का वृथा दम भरता रहता सदा।
यह शुभ पद उसके भला कहाँ भाग्य में है बदा॥ १॥

जिसमें बुद्धि-विवेक नहीं, जो दयाहीन है,
जिसका कलुषित है चरित्र, जो हयाहीन है।
जिसका हृदय उदार नहीं औ मन मलीन है
तजकर जो निज धर्म, सदा दुष्कर्म-लीन है।
सदा जिसे निज बांधवों का खलता उत्कर्ष है।
दुखी और को देख कर होता जिसको हर्ष है॥ २॥

मित्रो! जो है छद्म-मग्न लंपट लबार है,
जिसे न धर्माधर्म आदि का कुछ विचार है।
जिसमें नहिं सौजन्य विनय औ सदाचार है,
जो न देश का उन्नायक है वरन भार है।
क्यों मनुष्य-कुल में वृथा भला जन्म उसने लिया।
प्रसव-कष्ट उसने वृथा क्यों निज माता को दिया॥ ३॥

पारस क्या वह जो न सार को स्वर्ण बनावे
वह मनुष्य क्या जो न और का कष्ट मिटावे।
गिरे हुये को प्रेम सहित ऊपर न उठावे,
दुखी-दीन का जो न विपद में हाथ बटावे।
भरा हुआ हो उदधि यदि चातक के क्या काम है।
चाह स्वाति जल की उसे रहती आठो याम है॥ ४॥

हो सकता है मनुज बड़ा पंडित बन जावे,
हो सकता है उपाधियाँ वह नाना पावे।
सम्मुख उसके भय से जनता शीश झुकावे,
चारो दिशि में विजय-केतु उसका फहरावे।
पर, मनुष्य बनना नहीं सुगम मित्रवर! काम है।
वह मनुष्य है वस्तुतः जिसका चरित ललाम है॥ ५॥

मणिराम गुप्त

* [प्रसिद्ध रूसी लेखक एण्टन चेकाफ़ की एक कहानी। —अनुवादक]

हिंदुओं में सामाजिक संगठन की कल्पना

'जागृति' अत्याचार की प्रथम पुत्री है। जहाँ अत्याचार यौवन पर पहुँचा, वहाँ 'जागृति' का उत्पन्न हो जाना स्वाभाविक है। जागता हुआ व्यक्ति पीड़ा को, सोते हुए की अपेक्षा, अधिक अनुभव करता है। पीड़ा का अनुभव नींद को दूर भगा देता है, और टूटी हुई नींद में तकलीफ़ पहले से ज़्यादा मालूम होने लगती है। जागृति के आते ही नींद का आना कठिन हो जाता है। जागृति का हलका-सा झोंका आँखों को पूरी तरह खोल कर ही छोड़ता है।

भारतवर्ष में अँगरेज़ों के अत्याचारों से ऊँघते हुओं की नींद टूटी। ज्यों-ज्यों देश जागता गया त्यों-त्यों छोटा-सा अत्याचार भी भारी मालूम पड़ने लगा। जागृति इस अवस्था तक पहुँच गई कि जिन अत्याचारों को हम सुख से सह रहे थे वही विकराल रूप धारण कर हमारी आँखों में चुभने लगे। अँगरेज़ों की हरएक बात के विरुद्ध देश में असन्तोष उत्पन्न हो गया। "अँगरेज़ों का राज्य बुरा है, इसमें हमारे जन्मसिद्ध अधिकारों को पाँवों-तले कुचला जाता है"—इन विचारों ने आबालवृद्ध सबके मन में घर कर लिया। देश में स्वतन्त्रता के लिये तूफ़ान उठ खड़ा हुआ। जिसे देखो, स्वराज्य की रट लगा रहा है। आंदोलन यहाँ तक पहुँच गया कि १९२१ के दिसम्बर की ३१ तारीख़ की रात को बहुत लोग इस आशा से सोए कि अगले दिन देश के कोने-कोने में स्वराज्य का झंडा लहरायगा। परन्तु, १९२२ की जनवरी का

प्रथम दिन निराशा का दिन था। हमने आश्चर्य से देखा कि जो सेनाएँ शत्रु के गढ़ में घुस गई थीं, वे एकदम शत्रु से लड़ना छोड़कर आपस में लड़ने लगीं और शत्रु के घर में चैन की बंसी बजने लगी। हमारी सेना के सिपाही आपस में ही एक-दूसरे पर वार करने लगे और एक भयंकर घरेलू युद्ध छिड़ गया।

स्वतन्त्रता के इस अभिनय में यह पट-परिवर्तन क्यों? इसका उत्तर शायद पहले इतना समझ में नहीं आ सकता था। अब, मालूम पड़ता है कि, जिस जागृति ने हमारा अंग्रेज़ों से युद्ध जारी किया उसीने जनता में पहुँच कर सामाजिक रूप धारण कर लिया। जबतक वह जागृति अंग्रेजी पढ़े-लिखों तक परिमित थी, तबतक तो अंग्रेजों और बाबुओं की जंग छिड़ी रही। गँवार लोग भी यह समझते रहे कि अंग्रेज उनके शत्रु हैं। तबतक देश में जागृति का समुद्र पूर्ण रूप से नहीं उमड़ा था। परन्तु असहयोग आंदोलन के समय से तो रेलगाड़ी से बीस मील दूर जंगल के एक कोने में हल चलाता हुआ कृषक भी देश की विकट समस्याओं पर अपनी सम्मति रखने लगा है। जागृति के, इस प्रकार अनपढ़ लोगों तक में पहुँच जाने का परिणाम यह हुआ कि करोड़ों की माया स्वराज्य युद्ध में हमसे जुदा होकर खड़ी हो गई। हमने जिन्हें अपने अधिकारों की पुकार मचाने के लिये, अपने स्वार्थों के लिये, जगाया, वे जाग कर अंग्रेजों के अत्याचारों को इतना अनुभव नहीं कर रहे, जितना अपने भाइयों द्वारा किये गये अत्याचारों को। आज तो अपने घर के अत्याचार इतने भयंकर मालूम पड़ रहे हैं कि परदेशियों के अत्याचारों को हम भूल-से रहे हैं। आजादी की तरफ लम्बे-लम्बे डग बढ़ाता हुआ देश खड़ा हो गया है। बाहर शत्रु के साथ जो युद्ध छिड़ा हुआ था, वह बन्द हो गया है, घरेलू-युद्ध छिड़ गया है, और जिस सरकार की नाकों दम आ गया था, वह खुली साँस ले रही है।

अत्याचारी के अत्याचार को सहन किया जा सकता है, परन्तु अत्याचार के विरुद्ध आवाज़ उठाने वाले के अत्याचार को सहना कठिन होता है। भारत की शिक्षित जनता की तरफ़ से अंग्रेजों के अत्याचारों के विरुद्ध आवाज उठी थी, परन्तु अंग्रेजों के अत्याचारों को दूर करने से पहले इस 'शिक्षित जनता' ने अपने अत्याचारों को दूर नहीं किया था। मुट्ठी भर पढ़े-लिखे चाहते थे कि सारा देश उनके अधिकार दिलाने में उनकी मदद करे, परन्तु अत्याचार-पूर्ण सामाजिक-संगठन से जो अनुचित अधिकार उन्हें प्राप्त थे, उन्हें छोड़ने को वे तैयार न थे। वे अछूतों को अपने साथ मिलाकर शत्रु की सेना पर धावा बोलना चाहते थे, परन्तु अछूतों को अपने साथ छूने तक का अधिकार देने में कतराते थे। ऐसी विषम अवस्था कब तक रह सकती थी? जागृति का ख़मीर तो लग ही चुका था; अंग्रेजों से अधिकार लेने का युद्ध तो कुछ समय के लिये स्थगित हो गया, उसके स्थान में एक नया युद्ध जारी हो गया। अछूत अपने अधिकार माँगने लगे, शूद्र अपने अधिकारों के लिये लड़ने लगे, अब्राह्मण अपनी पुकार मचाने लगे और देश में अधिकारों की पुकार मच गई।

वैसे तो हिंदुओं के वर्तमान सामाजिक-संगठन में अत्याचार के अनेक बीज विद्यमान हैं, परन्तु सबमें मुख्य उनके वर्ण-विभाग को कहा जा सकता है। देश की जागृति का रुख मुख्यतः वर्णों की स्वार्थ-पूर्ण दुर्भेद्य चट्टान के टुकड़े-टुकड़े करने की तरफ बढ़ रहा है। इसी सामाजिक-संगठन से अछूतों को पददलित किया जा रहा है, इसीसे अब्राह्मणों को तरफ से अधिकारों से वंचित किया जा रहा है। इस समय जात-पात को तोड़ डालने के लिये प्रत्येक जागृति का प्रेमी व्याकुल हो रहा है। लोग समझ रहे हैं कि जात-पात की रचना कुछ स्वार्थियों ने अनुचित अधिकारों पर एकाधिपत्य जमाने के लिये की थी। यह ब्राह्मणों के दिमाग की उपज है। इससे उन्हींको अखंड अधिकार प्राप्त होते हैं। हिंदू-समाज की रक्षा तभी हो सकती है, जब इस अत्याचारपूर्ण प्रथा का अंत कर दिया जाय। इसी विचार को मुख्यतया दृष्टि में रखकर पंजाब में, जहाँ जात पात के बंधनों को पहले से काफ़ी ढीला किया जा चुका है, जात-पात-तोड़क मंडल स्थापित है। दयानंद शताब्दी के शुभ समारोह पर 'आर्य विद्वत्परिषद्' में मैंने इसी दृष्टि से इस आशय का प्रस्ताव रखा था कि आगामी सौ साल तक कम-से-कम कोई आर्यसमाजी अपने को ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य या शूद्र कुछ न कहे। इसे भुला दिया जाय, हिंदू बालकों के मस्तिष्क से मिटा दिया जाय, लुप्त कर दिया जाय, इतिहास की वस्तु बना दिया

जाय। वर्ण-व्यवस्था से आज हमारे देश में जो अन्याचार हो रहे हैं, उन्हें दूर करने का यही तरीक़ा है।

जात-पाँत के विरुद्ध पंजाब में जो लहर उठ रही है उससे कहीं प्रचंड लहर मदरास में दिखाई दे रही है। पंजाब में ब्राह्मणों का ज़ोर नहीं, इसीलिये ब्राह्मणों के अत्याचार भी वहाँ कम दिखलाई देते हैं, और उनके विरुद्ध आवाज़ भी उतनी प्रबल नहीं। दक्षिण भारत, ब्राह्मण-व्यवस्था के अत्याचारों को समझने के लिये, अच्छा क्षेत्र है। आज से आठ वर्ष पूर्व, जब मैं महाराष्ट्र में गया, मुझे वहाँ की राजनैतिक दशा विचित्र दिखाई दी। जहाँ उत्तरीय भारत के लोग तिलक महाराज को देवता करके पूजते थे, वहाँ दक्षिण में ऐसे व्यक्तियों की संख्या कम दिखलाई न दी जो उन्हें प्रतिदिन प्रातःकाल उठते ही भर-पेट गालियाँ देते थे। ये लोग अब्राह्मण थे। उनका कहना था कि तिलक ब्राह्मण हैं और उनके स्वराज्य के लिये प्रयत्न का उद्देश्य ब्राह्मणों का राज्य स्थापित करना है। ब्राह्मणों ने हम पर काफ़ी से ज़्यादा अन्याचार किये हैं, और, यदि, स्वराज्य से ब्राह्मणों के अत्याचार और अधिक बढ़ते हैं, तो हमें ऐसा स्वराज्य भी न चाहिए। महाराष्ट्र से आगे मैं ज्यों-ज्यों दक्षिण की तरफ़ बढ़ता गया, मैंने इस भाव को भी बढ़ते पाया। मदरास तक पहुँचते पहुँचते तो ब्राह्मण तथा नान-ब्राह्मण का झगड़ा ऐसा विकट दिखलायी दिया जैसा उत्तरीय भारतवर्ष में हिंदू मुसलमानों का झगड़ा। नान-ब्राह्मण यह कहते सुने गये कि वे किसी भी ऐसी वस्तु को स्वीकार नहीं कर सकते जिसका ब्राह्मणों के साथ किसी प्रकार का भी संबंध हो। दक्षिण भारत के अब्राह्मण जनेऊ, यज्ञ, वेद आदि शब्दों से घृणा करते हैं, और जब उनके सामने आर्यसमाज के मंतव्य रखे जाते हैं तो वे उनमें भी ब्राह्मणत्व की बू पाकर उनसे दूर हटते हैं। ब्राह्मणों का प्रभुत्व तोड़ने के लिये दक्षिण में 'सत्य शोधक समाज' नाम की संस्था पिछले ५०० वर्ष से कार्य कर रही है, और इसकी शाखा-प्रशाखाएँ सारे दक्षिण में इतस्ततः बिखरी हुई हैं। ये लोग ब्राह्मणों को खूब गालियाँ देते हैं, उनकी खूब ही निंदा करते हैं। धार्मिक दृष्टि से ब्राह्मणों के अधिकार छीनने के लिये, अथवा ब्राह्मणों के हाथों से अपने अधिकार सुरक्षित करने के लिये, 'सत्य-शोधक-समाज' की स्थापना हुई है; राजनैतिक दृष्टि से 'नान-ब्राह्मण पार्टी' अब्राह्मणों के अधिकारों के लिये लड़ रही है। सत्य-शोधक-समाज में केवल हिंदू ही हैं, परंतु नान-ब्राह्मण पार्टी में ईसाई, मुसलमान, जैन, लिंगायत, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र सब सम्मिलित हैं। नान-ब्राह्मण पार्टी का मुख्य पत्र 'जस्टिस' है, जो मदरास से प्रकाशित होता है, और इसी पत्र के नाम से इस दल को 'जस्टिस'-पार्टी भी कहा जाता है। पहले इस दल के नेता सर त्यागराय चेटी थे, परंतु उनकी मृत्यु के बाद अब पानगल के राजा इनके नेता हैं। इन्होंने मदरास में Religious Endowment Act पास कराया है, जिसके अनुसार मदरास के वे मंदिर, जो ब्राह्मणों की संपत्ति समझे जाते थे, पंचायतों के आधीन हो गये, और उनकी आय का व्यय करना उसी पंचायत के हाथ में आ गया। यह आंदोलन लगभग उत्तर-भारत के अकालियों के आंदोलन के समान था। जिस समय यह प्रस्ताव बिल के रूप में था, इसका विरोध करने के लिये महाराजा दरभंगा तथा बड़े-बड़े ब्राह्मण वायसराय तक पहुँचे, ताकि यह बिल पास न हो सके, परंतु मदरास के नान-ब्राह्मणों के ज़ोर से यह पास होकर ही रहा। इसी आशय का एक बिल जोशी बिल के नाम से कोल्हापुर के दीवान रावबहादुर लाठे ने असेंबली में पेश किया था। जोशी ब्राह्मणों को कहते हैं। दक्षिण में यह नियम चला आता है कि ब्राह्मण लोग चाहे पुरोहिताई का काम करें या न करें, उनकी बँधी हुई दक्षिणा उन्हें मिलनी ही चाहिये। जस्टिस रानाडे के सम्मुख एक केस आया था, जिसमें उन्होंने यही फ़ैसला किया था कि, ब्राह्मण की दक्षिणा उसे मिलनी ही चाहिये। इस समय, क्योंकि नान-ब्राह्मणों ने ब्राह्मणों को अपने संस्कारों से अलग कर दिया है, और उनकी जगह अब्राह्मण पुरोहितों से काम ले रहे हैं, इसलिये उन बेचारों को दुगुनी दक्षिणा देनी पड़ रही है। इसीलिये जोशी बिल पेश किया गया। परन्तु यह बिल 'कौंसिल आफ़ स्टेट' में श्रीनिवास शास्त्री आदि ब्राह्मणों के विरोध से गिर गया।

ब्राह्मणों तथा अब्राह्मणों का विरोध दिनो दिन बढ़ता चला जा रहा है। दक्षिण भारत के ब्राह्मण नान-ब्राह्मणों की अपेक्षा अधिक शिक्षित हैं, इसलिये वहाँ प्रायः सब प्रकार के सार्वजनिक कार्यों में अगुआ रहते

है। कांग्रेस के कार्य में भी प्रायः सभी ब्राह्मण हैं, इसलिये सभी अब्राह्मण कांग्रेस के विरोध में रहते हैं, और उसके मुकाबिले में 'नान-ब्राह्मण कानफ्रेंस' किया करते हैं। ब्राह्मणों के विरुद्ध आवाज़ इतनी ऊँची होती जाती है कि अब्राह्मणों ने कई जगह ब्राह्मणों की हजामत करना छोड़ दिया है, उनके हाथ का भोजन नहीं करते, पानी नहीं पीते। ब्राह्मणों से पूजा तक कराना छोड़ा जा रहा है। अब्राह्मणों ने अपनी ही पाठशालाएँ खोल कर अपने बच्चों को पुरोहिताई सिखाना शुरू कर दिया है, और उन्हींसे पूजा-पाठ कराते हैं। कई ब्राह्मण होटलों पर 'For Brahmins only' का तख्ता टँगा रहता है, इसलिये कई अब्राह्मणों ने अपने होटलों पर 'केवल नान-ब्राह्मणों के लिये' की तख्ती टाँगनी शुरू कर दी है। कह नहीं सकते कि दक्षिण में ब्राह्मणों तथा ब्राह्मणेतरों के इस विरोध का अन्त क्या होगा। परन्तु इतना ज़रूर दिखाई देता है कि दिनोंदिन विद्वेषाग्नि प्रचण्ड रूप धारण करती जा रही है। सतारा से 'प्रकाश' नाम का एक पत्र निकलता है। इस पत्र में 'परशुरामियन' नाम से एक ब्राह्मण का लेख प्रकाशित हुआ। उसने लिखा कि रामकृष्ण की पूजा छोड़ देनी चाहिये; वे क्षत्रिय थे, इस लिये ब्राह्मणेतर थे और ब्राह्मणेतर की पूजा करना पाप है। परशुरामियन ने लिखा कि परशुराम ब्राह्मण थे, अतः उन्हीं की पूजा होनी चाहिये, उन्हीं को अवतार माना जाना चाहिये। इन महाशय ने यहाँ तक लिख डाला कि शक-शालिवाहन अब भी ब्राह्मणेतर सम्वत् है, इसकी जगह भी ब्राह्मण परशुराम का सम्वत् ही जारी करना चाहिये। सब ब्राह्मणों को परशु धारण करना चाहिये, क्योंकि यह शस्त्र परशुरामजी सदा धारण किये रहते थे। इस प्रकार ब्राह्मणों के हृदय में ब्राह्मणेतरों के प्रति घृणा बढ़ती जाती है, और ब्राह्मणेतरों के हृदय में ब्राह्मणों के प्रति। दोनों एक दूसरे के शत्रु हो रहे हैं, और इस सबका मूल कारण है वर्तमान प्रचलित वर्ण-व्यवस्था या जात पात।

इस अवस्था को देख कर स्वाभाविक प्रश्न उठता है कि हमारा सामाजिक संगठन हमें किधर ले जा रहा है? क्या इसी वर्ण-व्यवस्था के हम गीत गाया करते हैं? क्या वर्ण-व्यवस्था सचमुच इतनी बुरी चीज़ है?

इसमें सन्देह नहीं कि वर्तमान प्रचलित वर्ण-व्यवस्था ऐसी ही है जिससे उपर्युक्त घृणित परिणाम निकल रहे हैं। समाज इसके असह्य बोझ से दबा जा रहा है। हिन्दू समाज को जितनी जल्दी इससे छुटकारा मिले, उतना ही अच्छा है। परन्तु इसका यह अभिप्राय नहीं कि प्रारम्भ से ही वर्ण-व्यवस्था के गर्भ में ये दुष्परिणाम छिपे हुए थे। वर्ण-व्यवस्था का प्रारम्भ बड़े गहन सिद्धान्तों पर है, और, सम्भवतः यही कारण है कि, इतनी सदियाँ बीत जाने पर भी संसार के अन्य सब सामाजिक संगठनों की अपेक्षा यही संगठन अबतक अचल दिखाई देता है। वे सिद्धांत क्या हैं?

यह एक सर्वविदित सिद्धांत है कि, मनुष्य सामाजिक प्राणी है—वह अकेला नहीं रह सकता। हमारी वैयक्तिक आवश्यकताएँ अकेले रहने हुए पूर्ण नहीं हो सकतीं, इसीलिये पारस्परिक सहायता के लिये मनुष्य समूह-रूप में मिलकर समुदाय उत्पन्न कर लेता है। उन सस्थानों के नागरिक अनेक होने के कारण अपनी-अपनी इच्छा तथा प्रवृत्ति के अनुसार काम को आपस में बाँट लेते हैं। इस प्रकार श्रम-विभाग तथा परस्पर सहयोग से काम चल निकलता है। ज्यों-ज्यों एक आदमी एक ही काम के लिये अपना समय देता है, त्यों-त्यों वह उसे दूसरों की अपेक्षा अधिक कुशलता तथा आसानी से कर लेता है।

मनुष्य की प्राथमिक आवश्यकताएँ खाना-पीना, कपड़ा और मकान ही होती हैं, इसलिये प्रारम्भ में श्रम-विभाग का अभिप्राय भौतिक आवश्यकताओं के पूर्ण करने के लिये ज़रूरी श्रम के विभाग से ही होता है। प्रारम्भिक श्रम-विभाग एक प्रकार से पूँजी का विभाग ही है। यदि समाज को ऐसे ही विकसित होने दिया जाय, उसके विकास के लिये मनुष्य की तरफ से अच्छा-बुरा किसी प्रकार का प्रयत्न न हो, श्रम-विभाग का सिद्धांत ही समाज का विकास करता चला जाय, तो समाज का संगठन मनुष्य की भौतिक आवश्यकताओं को ही दृष्टि में रख कर होगा। पाश्चात्य देशों में समाज का विकास इसी प्रकार हुआ है। उनके समाज का प्रधान विषय 'अर्थ-शास्त्र' है।

भौतिक आवश्यकताओं को पूर्ण करना मनुष्य-जीवन के लिये आवश्यक है, परन्तु मनुष्य-जीवन इन्हीं में समाप्त

नहीं हो जाता। भौतिक-विकास एकांगी विकास है और इसका परिणाम समाज के लिये भयंकर होता है। भौतिक-विकास से पूंजी का असमान-विभाग हो जाता है। श्रम-विभाग का आवश्यक परिणाम पूंजी का असमान विभाग है। जिस समाज में पूंजी का असमान-विभाग होगा, उसमें पूंजी का समान विभाग करने के लिये समय-समय पर साम्यवाद के भयंकर उत्पात मचते रहेंगे तथा पूंजीपतियों और श्रमियों के झगड़े भी उठते रहेंगे। पाश्चात्य-देश, जहां समाज का संगठन श्रम-विभाग पर है, बालशेविज़्म तथा समाज-विद्रोह के लिये अच्छी उपजाऊ भूमि हैं, क्योंकि श्रम-विभाग (Division of labour) का पूंजी से जो असमान विभाग हो जाता है, उसका निपटारा करने के लिये गरीबों का खौलता खून ही सर्वोत्तम साधन है। जो समाज श्रम-विभाग के भौतिक सिद्धांत पर आश्रित होगा, उसमें श्रम-विभाग की स्वाभाविक बीमारियों का इलाज करने के लिये प्रकृति अपने उपायों का अवलंबन अवश्य करेगी चाहे उसे खून की नदियां ही क्यों न बहानी पड़ें।

भारतीय समाज-शास्त्रियों ने अपने समाज का विकास अंधी प्रकृति पर नहीं छोड़ा था। उनके समाज की रचना केवल भौतिक आवश्यकताओं को दृष्टि में रख कर श्रम-विभाग के सिद्धांत के अनुसार नहीं हुई थी। समाज-विषयक उनकी दृष्टि एकांगी या अधूरी न थी। उन्होंने समाज का विकास अंधी प्रकृति के हाथ में छोड़ने के स्थान पर अपने हाथों में लिया था। इसमें संदेह नहीं कि उन्होंने भी भौतिक आवश्यकताओं को पूर्ण करने के प्रयत्न से ही अपने समाज-निर्माण को प्रारंभ किया था। परंतु उनके लिये जीवन का अभिप्राय भौतिक आवश्यकताओं को पूर्ण करने मात्र से बहुत कुछ अधिक था। वे समझते थे कि समाज का केवल पूंजीपति तथा श्रमी - इन दो भागों में विभक्त कर देना समाज के अंधे विकास (Unconscious development of Society) का परिणाम है, जिसका अंत श्रेणी-युद्ध तथा समाज विप्लव में होता है। वे यह भी समझते थे कि समाज के विकास को अपने हाथ में लेकर इस प्रकार चलाया जा सकता है, जिससे समाज के किसी सदस्य को किसी प्रकार का भी असंतोष न हो। समाज के इसी विकास को सुप्त नहीं परंतु जागृत विकास को प्राचीन काल में वर्ण-व्यवस्था का नाम दिया गया था, और मेरा दृढ़-विश्वास है कि आजतक समाज-शास्त्र में समाज की रचना के लिये इससे उत्तम सिद्धांत नहीं सोचा गया।

समाज के विकास को अपने आप न चलने देकर, हाथ में लेलेने का नाम वर्ण-व्यवस्था है। वर्ण-व्यवस्था में मनुष्य को आर्थिक-प्राणी मात्र न समझ कर, उसके सब पहलुओं पर दृष्टि रखते हुए, समाज की रचना की जाती है। वर्ण-व्यवस्था का उद्देश्य समाज के सब व्यक्तियों की स्वाभाविक शक्तियों का पता लगा कर तदनुसार पेशे का निश्चय करना है। आज हमारे शिक्षणालय हज़ारों विद्यार्थियों को उच्च शिक्षा देकर उन्हें समाज के समुद्र में डूब जाने के लिये फेंक देते हैं। जीवन-संग्राम में कौन व्यक्ति कौन-सा हथियार चला सकता है, इसका विचार किये बगैर हर-एक को लड़ना होता है, और इसी कारण दुःख की मात्रा बढ़ती जाती है। समाज के भले के लिये ज़रूरी है कि ऐसे उपाय का अवलंबन किया जाय जिसके अनुसार जीवन-संग्राम का संघर्ष कम होजाय और प्रत्येक व्यक्ति के सुख की वृद्धि होकर संपूर्ण समाज के सुख में वृद्धि हो जाय। यह तभी हो सकता है जब भिन्न-भिन्न व्यक्ति के स्वभाव को देखकर तदनुसार जीवन का निश्चय किया जाय। यह व्यवस्था राज्य की तरफ़ से होनी चाहिये, और इसी व्यवस्था को वर्ण-व्यवस्था कहते हैं। इसी आशय को सम्मुख रख कर मनुस्मृति में लिखा है --

'कल्पयित्वाऽस्य वृत्तिं च रक्षेदेनं समन्ततः'

राजा का कर्तव्य है कि प्रजा-जन की प्रवृत्ति के अनुसार वृत्ति का निर्धारण करे, और फिर सबको अपने-अपने व्यवसाय में चलाये। ऐसा न करने से आज जीवन संग्राम की विषमता बढ़ती चली जा रही है। जो लोग जिस प्रवृत्ति के हैं उन्हें वैसी वृत्ति नहीं मिल रही-- वे दूसरी जगह टक्करें मारते फिरते हैं। इसका स्वाभाविक परिणाम यह होता है कि वे उस काम को कृतकार्यता से कर नहीं सकते, और जो कर सकते हैं उन्हें अपने योग्य कार्य में रिक्त स्थान न मिलने के कारण भटकना पड़ता है। इससे बेकारी का प्रश्न और बढ़ता है। वर्ण-व्यवस्था समाज के अंध विकास (Unconscious process of social progress) का उलट है, इसीलिये इसमें बेकारी, बलवा आदि सामाजिक विषमताओं का स्वाभाविक प्रतिबंध हो जाता है।

प्राय वर्ण-व्यवस्था की तुलना श्रम-विभाग के सिद्धांत (Principle of division of labour) से की जाती है। मेरी सम्मति में यह तुलना अशुद्ध है। जैसा पहले लिखा जा चुका है, श्रम-विभाग के सिद्धात को पेशों तथा व्यवसायों से जोडा जाता है. श्रम-विभाग को दृष्टि में रखते हुए जीवन को आर्थिक-समस्या मात्र समझा जाता है; श्रम-विभाग का सिद्धात समाज के अंधे अथवा जड विकास का अवश्यम्भावी परिणाम है। इसके विपरीत वर्ण-व्यवस्था चार पेशे तथा व्यवसाय नहीं, अपितु चार प्रकार की मनोवैज्ञानिक प्रवृत्तियां हैं। वर्ण-व्यवस्था के अनुसार मनुष्य के आर्थिक पहलू को ही नहीं अपितु सम्पूर्ण मनुष्य को देखा जाता है। वर्ण-व्यवस्था का सिद्धान्त समाज के ध्येय को सन्मुख रखते हुए उसके अभीष्ट विकास का सिद्धान्त है। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र को चार पेशे समझना भूल करना है। क्या प्राचीन आर्यों में चार ही प्रकार के पेशे या व्यवसाय थे? पेशे तो अनन्त हो सकते हैं। वास्तव में ये चार विभाग वृत्तियों के नहीं अपितु प्रवृत्तियों के विभाग हैं। इन्हीं में एक प्रवृत्ति वैश्य की भी है। मनुष्य की वैश्य प्रवृत्ति ही श्रम-विभाग (Division of Labour) के रूप में प्रकट होती है। इस प्रवृत्ति का व्यक्ति व्यापारिक दृष्टि से देखता है और जीवन के आर्थिक प्रश्नों को हल करने में लगा रहता है। वैश्य के जीवन को ही पेशे या व्यवसाय का जीवन कहा जा सकता है, इसीलिये वैश्य-प्रवृत्ति और श्रम-विभाग का सिद्धान्त एक ही वस्तु है। परन्तु, क्योंकि, वैश्य-प्रवृत्ति वर्ण-व्यवस्था का चौथाई हिस्सा है, इसलिये श्रम विभाग का सिद्धात भी वर्ण-व्यवस्था के केवल चौथाई हिस्से का प्रतिनिधि है। वर्ण-व्यवस्था ही श्रम-विभाग नहीं है, इस बात को दृष्टि में रखते हुए यह समझना आसान हो जायगा कि प्राचीन काल में भी केवल चार ही पेशे न थे, अपितु आजकल की तरह हजारों पेशे थे, परन्तु उन सबको एक वैश्य नाम से पुकारा जाता था। 'वर्ण' का अर्थ पेशा या व्यवसाय नहीं है, इसका अर्थ है—वृज् वरणे—वरण करना, चुनना। चुनने का अभिप्राय प्रवृत्ति अथवा स्वभाव के अनुकूल अपने जीवन-पथ के चुनने से है। वर्ण पेशा या वृत्ति नहीं, स्वभाव या प्रवृत्ति था। ये प्रवृत्तियाँ चार समझी जाती थीं, जिनमें से आर्थिक प्रवृत्ति एक थी। वेद पढ़ाने अथवा सेना में भर्ती होने का उद्देश्य भी यदि रुपया कमाना होता, तो वह वैश्य प्रवृत्ति में ही गिना जाता, ब्राह्मण तथा क्षत्रिय प्रवृत्ति में नहीं। प्रवृत्ति ही मुख्य वस्तु थी, क्योंकि वही आंतरिक और वास्तविक थी, वृत्ति तो प्रवृत्ति का ही बाह्य-रूप था। समाज का विकास जड सिद्धान्तों पर चलता हुआ श्रम-विभाग के आर्थिक नियम (Economic Principle) को पैदा कर देता है। श्रम-विभाग से पूंजी का असमान विभाग हो जाता है। पूंजी के असमान विभाग से बना हुआ समाज टूट जाता है और क्रांति तथा विप्लव की आंधी से टुकडे-टुकडे हो जाता है। वहीं सामाजिक विकास मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तों पर चलता हुआ वर्ण-व्यवस्था के गहरे तथा विस्तृत नियमों पर समाज की रचना करता है, जिसका परिणाम शान्ति, सहयोग तथा समृद्धि होता है। श्रम-विभाग तथा वर्ण-व्यवस्था में यह मूलभूत भेद है। इसमें संदेह नहीं कि वर्तमान वर्ण-व्यवस्था में इस भेद को भुला दिया गया है। इस समय हमारे समाज का विभाग भी, पाश्चात्य समाज की तरह, श्रम-विभाग पर ही हो रहा है, और इसीलिये भारत में भी श्रम-विभाग से उत्पन्न होनेवाला असंतोष तथा अन्य दुष्परिणाम दृष्टिगोचर हो रहे हैं। इस समय बहुत से पेशे जाति या वर्ण बन गए हैं। पारसियों में Readymoney (रेडीमनी) एक जाति है। इसी प्रकार गुजरात में मर्चेन्ट, बर्फीवाला, दलाल, मेहता, वकील, डाक्टर, पंडित आदि जाति है। वास्तव में इनका वर्ण से किसी प्रकार का संबंध नहीं। मर्चेन्ट किसी की जाति कैसे हो सकती है, यह पेशा हो सकता है; बर्फीवाला भी जाति कैसे हो सकता है, यह पेशा हो सकता है; वकील और डाक्टर भी जाति कैसे हो सकते हैं, ये पेशे ज़रूर हो सकते हैं। वर्ण-व्यवस्था का संबंध जन्म से तो है ही नहीं। जितना है वह आगे बतलाया जायगा, परन्तु इसका संबंध पेशे से भी नहीं है। यदि पेशे ही वर्ण होते तो उन्हें चार में बांट कर एक अनावश्यक तथा अस्वाभाविक विभागके उत्पन्न करने की कोई आवश्यकता न थी। जब भिन्न-भिन्न पेशों का नाम लेने से सुगमता से काम चल जाता है, तब पेशों के विभाग होते हुए, उन्हीं पेशों को फिर से चार विभागों में बांटा गया हो, यह समझ में नहीं आता। इसी तरह का विभाग कल्पित कर लेने का परिणाम है कि, उसे

सामाजिक अत्याचार का आधार बना लिया गया और एक-एक विभाग 'दल' का रूप धारण कर अन्यों पर अत्याचार करने लगा, जिसका उल्लेख प्रारंभ में किया जा चुका है। यदि हमारे समाज के कर्णधार इस बात को याद रखते कि वर्ण-व्यवस्था का अभिप्राय प्रवृत्तियों का विभाग है, तो न तो वे इसे जन्म-मात्र से चलने देते और न कर्ममात्र से। और, इन दोनों के कारण जो वर्ण-व्यवस्था में अत्याचार छिपा है उसे न होने देकर, समाज के विकास को मनुष्य की भिन्न भिन्न प्रवृत्तियों पर आश्रित रखते।

यदि समाज के विकास को अपने हाथ में न लेकर स्वयं होने दिया जाय, तो थोड़े ही काल के अनंतर 'श्रम-विभाग' का सिद्धान्त स्वयं कार्य करता दिखलाई देगा; 'वर्ण-व्यवस्था' तो उस विकास को अपने हाथ में लेकर, उसके उद्देश्यों को निर्धारित कर, उनकी तरफ समाज को ले जाने का नाम है। इसीलिये वर्ण-व्यवस्था में श्रम-विभाग तो आ ही जाता है, परन्तु श्रम-विभाग में वर्ण-व्यवस्था नहीं आती। वर्ण-व्यवस्था बड़ी वस्तु है, श्रम-विभाग छोटी। श्रम-विभाग का आधार मनुष्य की शारीरिक अथवा आर्थिक आवश्यकताएँ हैं। वर्ण-व्यवस्था का आधार शारीरिक, मानसिक तथा आत्मिक आवश्यकताएँ हैं। श्रम-विभाग की दृष्टि पेशों तथा व्यवसायों पर पड़ती है; वर्ण-व्यवस्था की दृष्टि उन सिद्धान्तों पर, जिनसे पेशे निश्चित किये जाते हैं। श्रम-विभाग की दृष्टि भौतिक तथ वर्ण-व्यवस्था की दृष्टि आध्यात्मिक है।

इस सारे प्रपंच का यही अभिप्राय है कि वर्ण-विभाग पेशों का विभाग न होकर प्रवृत्तियों का विभाग है। अव्यवस्था के कारण मनुष्य पेशा बदल सकता है, परन्तु प्रवृत्ति नहीं बदलती, इसीलिये वर्ण-विभाग क्षण-क्षण में बदलनेवाली वस्तु नहीं अपितु सत्य वस्तु है। इसमें सन्देह नहीं कि शूद्र ब्राह्मण हो सकता है और ब्राह्मण शूद्र हो सकता है, परन्तु इसका यह मतलब नहीं कि जीवन में बीसियों बार, अपने पेशे के अनुसार, मनुष्य शूद्र तथा ब्राह्मण बनता रहता है। "शूद्रो ब्राह्मणतामेति ब्राह्मणश्चैति शूद्रताम्। क्षत्रियाज्जातमेवं तु विद्याद्वैश्यात्तथैव च" का अभिप्राय यही है कि शूद्र का पुत्र, अपनी प्रवृत्ति के अनुसार, ब्राह्मण भी बन सकता है, परन्तु प्रवृत्ति के अनुसार जो वर्ण दिया जाता है, वह फिर, पेशे बदलने के कारण, नहीं बदलता। तभी कहा है —

'आचार्यस्त्वस्य यां जातिं विधिवद् वेदपारग
उत्पादयति सावित्र्या सा सत्या साऽजरामरा।'

आचार्य अपने शिष्य के मानसिक विकास को वर्षों तक देखकर, उसकी प्रवृत्ति को देख कर, जो वर्ण निश्चित कर देता है, वह सत्य है, अजर है, अमर है। उसमें पेशे के बदल जाने पर भी परिवर्तन नहीं होता। जो लोग समझते हैं कि वर्ण बदल नहीं सकता वे भी गलती पर हैं। जो समझते हैं, कि यह पेशे के अनुसार रोज बदलता रहता है, वे भी गलत हैं। वर्ण-विभाग तो प्रवृत्ति-विभाग का नाम है, और प्रवृत्ति १४ साल तक शिक्षा प्राप्त करने के बाद जो बन जाती है, वह प्रायः बनी रहती है, उसमें बहुत कम परिवर्तन होता है।

प्रवृत्तियों का विभाग संसार के मौलिक तत्त्वों पर किया गया है। सांख्य के अनुसार सत्तामात्र के आधार में सत्व, रज तथा तम ये तीन मौलिक तत्त्व हैं। सृष्टि-रचना के यही सूक्ष्म तत्त्व मन की रचना करते हैं, जिनसे मन सात्त्विक, राजसिक तथा तामसिक कहाता है। भारतीय समाज-शास्त्रियों ने मनोविज्ञान के इसी तत्त्व को लेकर समाज का विभाग सात्त्विक, राजसिक तथा तामसिक प्रवृत्तियों की दृष्टि से ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र के रूप में कर दिया है। ये चारों पेशे नहीं, परंतु मनुष्य की प्रवृत्तियों के चार मुख्य विभाग हैं; संसार भर के पेशे इन विभागों में से वैश्य विभाग के अन्तर्गत हो जाते हैं। भारतीय अध्यात्म-तत्त्व Metaphysics में ही भारतीय मनोविज्ञान Psychology ने अपने सिद्धांतों को स्थिर किया है। इसी मनोविज्ञान को आधार में रखकर भारतीय समाज-शास्त्र Sociology ने समाज के ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र—ये चार विभाग किये हैं। ब्राह्मण तथा क्षत्रिय अपने कार्यों को इसलिये नहीं करते क्योंकि यह उनका पेशा है। वे इन कार्यों को इसलिये करते है, क्योंकि समाज-सेवा के उच्च आदर्श उन्हें अपने मस्तिष्क तथा पौरुष से सेवा के कार्य में प्रेरित करते हैं। उनकी इस निष्काम सेवा का फल उन्हें बड़े-बड़े वेतनों के रूप में नहीं मिलता। समाज उनकी केवल भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति करता है। यही तो मुख्य कारण है कि ब्राह्मणत्व तथा क्षत्रियत्व को पेशा नहीं कहा जा सकता। सात्त्विक प्रवृत्तिवाला व्यक्ति, जिसकी जीवन के विषय में आध्यात्मिक दृष्टि रहती है, ब्राह्मण

कहाता है। वह रोटी कमाने के जीवन-संग्राम में पड़कर अपने उच्च आदर्श को ख़राब नहीं करता। उसके लिये तो यहाँ तक कह दिया गया है कि वह समाज-सेवा करता हुआ भूखा मरने लगे तो 'शिल' तथा 'उञ्छ' संबंधी अन्नों से निर्वाह करले, परन्तु मांगे नहीं—'शिलो-ञ्छमप्याददीत विप्रोऽजीवन्यतस्ततः'। बहुत दिनों की भोजन-सामग्री इकट्ठी करके भी न रखे। स्वाधीन रहता हुआ निष्कामवृत्ति से समाज की सेवा करे। गरीबी में ही अमीरी समझे। सतोगुण तथा रजोगुण का सम्मिश्रण क्षत्रिय का जीवन है। उसे भी धन की लालसा नहीं होती। वह भी निष्काम भाव से समाज की सेवा करता है। उसका पालन भी समाज ही करता है। रजोगुण तथा तमोगुण का जीवन वैश्य का है। वह भी समाज की सेवा ही करता है, परन्तु उसकी सेवा निष्काम भाव से प्रेरित होकर नहीं होती। तमोगुणी जीव शूद्र कहाता है।

इसी विचार को दूसरी तरह भी प्रकट किया जा सकता है। जीव दो प्रकार के होते हैं—उद्बुद्ध तथा अनुद्बुद्ध। उद्बुद्ध जीव तीन प्रकार के होते हैं—ज्ञान-प्रधान, क्रिया-प्रधान, इच्छा-प्रधान। जो मस्तिष्क से समाज की सेवा करते हैं वे सात्विक जीव ज्ञान-प्रधान होने के कारण ब्राह्मण कहाते हैं जो हाथ से समाज की सेवा करते हैं वे राजस जीव क्रिया-प्रधान होने के कारण क्षत्रिय कहाते हैं, जो उरु—उदर से समाज की सेवा करते हैं, वे तमोप्रधान राजस जीव इच्छा के प्रबल होने के कारण वैश्य कहाते हैं और जो अनुद्बुद्ध अवस्था के जीव होते हैं वे जड़ता अथवा तमोगुण के प्रधान होने के कारण शूद्र कहाते हैं। इसी दृष्टि से समाज में पुरुष की कल्पना करके वेद ने कहा है—

ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद् बाहू राजन्यः कृतः।
ऊरू तदस्य यद्वैश्यः पद्भ्यां शूद्रोऽजायत॥

मनुष्य का ज्ञान-प्रधान, क्रिया-प्रधान तथा इच्छा-प्रधान—Knowing Willing Feeling—की दृष्टि से सत्वरजस्तमात्मक जो विभाग हो सकता है, उसी पर वर्ण-व्यवस्था की आधार-शिला रखी गई है। इसकी रचना में अध्यात्म-शास्त्र तथा मनोविज्ञान-शास्त्र के गहन-तम सिद्धान्त कार्य कर रहे हैं। समाज का यह विभाग जान-बूझकर उसे अपने हाथ में लेकर विकसित करते हुए किया गया है, पश्चिम की तरह अपने आप नहीं हो गया। यह वर्णों को मानवीय प्रवृत्तियों की व्यवस्था का उनके पारस्परिक संघर्ष को बचाने का एक मात्र उपाय है।

भारतीय समाज-शास्त्रियों ने यह सोचा कि समाज में स्वार्थ-बुद्धि तथा परार्थ-बुद्धि दोनों ही काम करती है। न समाज को स्वार्थमय बनाया जा सकता है, न परार्थमय। पश्चिम ने समाज का विकास आर्थिक आधारों पर करते हुए उसे स्वार्थमय बनाने का प्रयत्न किया, यह सहज भी था। परिणाम यह हुआ कि वहाँ ब्राह्मण भी व्यापारियों के हाथों बिक गये। सबसे ऊँची बोली देने वालों के पास उन्होंने अपने दिमाग को नीलाम कर दिया। क्षत्रिय शक्ति भी इस समय यूरोप में वैश्यों के हाथ में है, क्योंकि वहाँ हरएक बात में टका प्रधान है। भारतीय समाज-शास्त्री इस बात को समझते थे। उन्होंने समाज का विकास आर्थिक आधारों पर, स्वार्थ की भित्ति पर, नहीं होने दिया। इसमें सन्देह नहीं कि आर्थिक दृष्टि की वे सर्वथा अवहेलना नहीं करते थे, परन्तु उसे जीवन में नीचा स्थान अवश्य देते थे। वे जानते थे कि जीवन को आमूलचूल परार्थमय बना देना असम्भव है; तथापि परार्थ की प्रवृत्ति को मुख्य तथा स्वार्थ की प्रवृत्ति को गौण स्थान अवश्य दिया जा सकता है। निष्कामभाव की प्रवृत्ति परार्थ-प्रवृत्ति है, सकाम-भाव की स्वार्थ-प्रवृत्ति। इसीलिये ब्राह्मण तथा क्षत्रिय, जो निष्काम तथा परार्थ-भाव से समाज की सेवा करते हैं, उन्हें भारतीय समाज-शास्त्र में वैश्यों तथा शूद्रों से ऊँचा दर्जा मिलता है, उन्हें वैश्य अथवा व्यापारी लोग रुपये से खरीद नहीं सकते। चारों प्रवृत्तियों के लोगों के लिये आवश्यक है कि वे समाज की सेवा करें—ब्राह्मण ज्ञान से, क्षत्रिय क्रिया से, वैश्य इच्छा से, शूद्र शारीरिक सेवा से। यह उनका "कर्तव्य" है। इन कर्तव्यों के साथ उन्हें कुछ "अधिकार" भी दिये जाते हैं। ये अधिकार समाज-सेवा के "पारितोषिक" के रूप में हैं।

संसार में "अधिकार" अथवा "पारितोषिक" चार प्रकार के होते हैं—इज़्ज़त, हुकूमत, दौलत, खेल-कूद। भारत के समाज-शास्त्रियों ने इन चारों का विभाग कर दिया था। सब से ब्राह्मण को इज़्ज़त दी जाती थी। परन्तु इज़्ज़त से दिमाग न बिगड़ जाय, इसलिये इज़्ज़त देते हुए साथ ही कह दिया जाता था—'सम्मानाद्ब्राह्मणो

नित्यमुद्विजेतविषादिव'—सन्मान से ब्राह्मण डरता रहे, अपमान ही को पसंद करे। सच्चे क्षत्रिय को हुकूमत दी जाती थी। परन्तु हुकूमत से दिमाग न बिगड़ जाय, इस लिये दण्ड देने की शक्ति देते हुए उसे साथ ही कह दिया जाता था—'दण्डो हि सुमहत्तेजो दुर्धरश्चाकृतात्मभि ; धर्माद्विचलितं हन्ति नृपमेव सबान्धवम्'—धर्म से विचलित होने वाले राजा का यही हुकूमत बन्धु-बान्धवों सहित सर्वनाश कर देती है। वैश्य को दौलत मिलती थी। परन्तु, जैसे भोजन के पेट में ही पड़े रहने से बीमारी हो जाती है, सम्पूर्ण सम्पत्ति के वैश्य के पास जमा होजाने से समाज का शरीर रुग्ण न हो जाय, इसलिये वैश्य को सम्पत्ति देते हुए कहा जाता था—'दद्याच्च सर्व-भूतानामन्नमेव प्रयत्नत'—वैश्य लेता जाय, परन्तु साथ ही देता जाय। शूद्र, क्योंकि समाज की अपनी किसी मानसिक शक्ति द्वारा सेवा नहीं कर सकता, इसलिये उसे अपने 'कर्त्तव्यों' के पुरस्कार में छुट्टी, खेल-कूद, तमाशा—ये चीज़ें मिल जाती हैं, परन्तु शूद्र अपनी सबसे निचली स्थिति देखकर कहीं दुःखी न हो, इसलिये उसे कह दिया जाता था—'शूद्रेण हि समस्तावद् यावद्वेदेन जायते', 'शूद्रो ब्राह्मणतामेति ब्राह्मणश्चैति शूद्रताम्'—शूद्र भी अपनी प्रवृत्तियों को उन्नत कर ब्राह्मण बन सकता है, जब तक वह उन्नत नहीं होता तभी तक वह शूद्र है। इस प्रकार की व्यवस्था में जहाँ अधिकार हैं, वहाँ साथ ही कर्त्तव्य भी हैं ; जहाँ स्वतन्त्रता है, वहाँ बंधन भी है। इस समय सब लोग सब प्रकार के अधिकार चाहते हैं। ब्राह्मण चाहते हैं उन्हें इज़्ज़त, हुकूमत, दौलत, खेल-कूद सब कुछ मिले ; क्षत्रियों की यही अभिलाषा है वैश्य भी इसीके शिकार हैं। वर्तमान सामाजिक संगठन में तो वैश्य ही बाज़ी मारे ले जा रहे हैं। उन्हींको दौलत के साथ-साथ इज़्ज़त और हुकूमत मिल रही है, वही खेल-कूद में समय बिताते हैं, मज़दूर बेचारे तो काम के मारे मरे जाते हैं। इसी गिरावट का परिणाम है कि शुद्ध ब्राह्मणत्व तथा शुद्ध क्षत्रियत्व से संसार की जो उच्च अवस्था चित्रित की जा सकती है, वह कहीं देखने को नहीं मिलती। वैश्यत्व के बोझ से मानव-समाज की आत्मा कराह रही है और चारों तरफ़ दुर्व्यवस्था का अखण्ड राज्य दिखलाई देता है। बाबू भगवानदासजी का, जिनके वर्ण-व्यवस्था-संबंधी विचारों से इस लेख में बहुत सहायता ली गई है, विचार है कि—"इन सिद्धान्तों को पूरे तौर से मान लेना उतना ही संभव, आवश्यक और उचित है जितना कि विवाह की पद्धति का स्वीकार करना और बरतना। . . . . . प्रचलित बेईमानी और स्वार्थपरता इख़्तियार का बद इस्तेमाल और उपाधि अर्थात् सम्मानसूचक ख़िताबों का बेचना और अत्यन्त विलास प्रियता, इन सबका आंतरिक कारण यह है कि सब कोई सब 'आकांक्षाओं' को रख सकता है, और सब कोई सब पारितोषकों का अधिकारी बन सकता है और सब कुछ ख़रीद सकता है। इसका परिणाम यह है कि धनके संचय की ओर सब कोई रत हैं, और धन अन्ततोगत्वा किसी-किसी के पास अत्यधिक इकट्ठा हो जाता है। इसी कारण से सांसारिक आवश्यकताएँ सबको उचित प्रकार से नहीं मिल सकतीं। यदि दुष्कारण ही हटा दिया जाय, यदि क़ानून से मनुष्य एक ही प्रकार की "आकांक्षा" रखने पावे, जैसे कि वह प्रायश एक ही पत्नी का पाणिग्रहण कर सकता है, तब यह सब दुष्परिणाम आप-ही-आप दूर हो जायँ और मनुष्य की समानता अधिक दिखाई पड़ने लगे, अर्थात् अत्यन्त धनी, अत्यन्त दरिद्र आदि का अत्यंत भेद कम हो जाय, मनुष्य-मात्र स्नेह की सांकल में बंध जायँ, और संसार भी आनन्दमय हो जाय।"

वर्ण-विभाग का अर्थ प्रवृत्तियों, आकांक्षाओं का बँटवारा है। ज्ञान-प्रधान व्यक्ति को उसी प्रकार के जीवन बिताने की सोचनी चाहिए और उस 'आकांक्षा' को रखते हुए उसे उसका उचित 'पुरस्कार' मिलना चाहिए। इसी प्रकार क्रिया तथा इच्छा-प्रधान व्यक्तियों को करना चाहिये। ब्राह्मण को इज़्ज़त मिलेगी, हुकूमत और दौलत नहीं, क्षत्रिय को हुकूमत मिलेगी, इज़्ज़त और दौलत नहीं ; वैश्य को दौलत मिलेगी, इज़्ज़त और हुकूमत नहीं। संसार के सारे अनर्थ इसीलिये होते हैं, क्योंकि इज़्ज़त, हुकूमत और दौलत एक ही व्यक्ति के पास आ जाते हैं—इन्हें एक जगह न जुटने दिया जाय, अलग-अलग रखा जाय तो समाज में अव्यवस्था हो ही नहीं सकती और ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य को उनके 'कर्त्तव्यों' के पुरस्कार स्वरूप जो 'अधिकार' दिये जावेंगे, उनका दुरुपयोग हो ही नहीं सकता। इस समय जो सब के वैश्य बनने की प्रवृत्ति

बढ़ती जा रही है, उसका कारण भी यही है कि वैश्य के पास प्रतिष्ठा, शक्ति तथा धन तीनों हैं। इन तीनों को अलग कर वैश्य को प्रतिष्ठा तथा शक्ति न देकर यदि केवल धन दिया जाय, प्रतिष्ठा तथा शक्ति धन से ख़रीदी जासकने वाली चीज़ें न समझी जाँय, तो सब लोग वैश्य बनने का प्रयत्न भी न करें और इसीलिये, जीवन-संग्राम की विषमता बहुत अंश तक कम हो जाय। इस समय तो संपूर्ण मानव-समाज वैश्य बन रहा है। इसका यह अभिप्राय नहीं कि सबको धन की इतनी आवश्यकता है। वैश्य बनने के लिये यह घुड़दौड़ इसीलिये हो रही है, क्योंकि दौलत से ही आज इज़्ज़त तथा हुकूमत मिलती है। आज यदि धन की इस विषैली शक्ति को निकाल दिया जाय, तो वैश्यों की श्रेणी ही आधी से कम होजायगी। वर्ण-व्यवस्था का यही पहलू संसार की रक्षा कर सकता है, अन्यथा संसार धन-संग्रह करता-करता ही मिट्टी का ढेर होजायगा। इस समय कितने होनहार युवक केवल इज़्ज़त और हुकूमत पाने के लिये रुपया बटोरने में पसीना बहा रहे हैं। उनमें ज्ञान है, क्रियाशीलता है, पर उन शक्तियों से वे समाज को कोई लाभ नहीं पहुँचा रहे। संसार की आधी अमूल्य शक्ति का नाश ही नहीं दुरुपयोग किया जा रहा है, जो कि वर्ण-व्यवस्था के चल पड़ने से रुक सकता है।

'आकांक्षाओं' और 'पारितोषकों' अथवा 'कर्तव्यों' और 'अधिकारों' को चार हिस्सों में ठीक-ठीक बाँट देने का नाम 'वर्ण-व्यवस्था' है, और ऐसा न होने का नाम 'वर्ण-संकरता' है। जब ज्ञान-प्रधान सात्विक जीव ज्ञान से समाज की सेवा कर केवल प्रतिष्ठा या इज़्ज़त चाहता है—हुकूमत और दौलत की तरफ़ नज़र नहीं उठाता—तब वर्ण-व्यवस्था होती है। जब वह इज़्ज़त, हुकूमत और दौलत तीनों को पाना चाहता है तब वर्ण-संकरता। यही नियम क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र पर लागू है। प्रवृत्तियों का विभाग हो जाने पर उसे क्रियात्मक रूप देना राज्य का काम है। राज्य को यह देखना चाहिये कि ब्राह्मण तथा क्षत्रिय प्रवृत्तियों और आकांक्षाओं के व्यक्ति भूखे तो नहीं मरते, उनकी भौतिक आवश्यकताएँ तो पूर्ण होती हैं, उन्हें उचित प्रतिष्ठा तथा सन्मान मिलता है। इस प्रकार व्यक्तिरूप से जब सब लोग अपनी प्रवृत्तियों को नियमित रखेंगे और समष्टिरूप से राज्य उनके नियमन में सहायक होगा, तब 'वर्ण-व्यवस्था' का सिद्धान्त क्रियात्मक रूप धारण करेगा। जो व्यक्ति जिस कार्य के योग्य हो, जिस कार्य को कर सकने की उसकी प्रवृत्ति हो, उसके लिये वैसी वृत्ति देना राज्य का कर्तव्य है, और राज्य से वैसी वृत्ति की आशा रखना प्रत्येक व्यक्ति का अधिकार है। प्रवृत्तियों और वृत्तियों में समता रखना राज्य का ही कर्तव्य है। वर्ण-व्यवस्था यह भी बतलाती है कि इस व्यवस्था में ब्राह्मण तथा क्षत्रिय प्रवृत्तियों को, जहाँ तक हो सके, राज्य की तरफ़ से उत्तेजन मिलना चाहिये। इस प्रकार की समता रखने से वर्तमान समाज के आधे से ज़्यादा प्रश्न स्वयं हल हो सकते हैं। इस कार्य में असावधानी करने से समाज में अव्यवस्था उत्पन्न हो जाती है, जिसे प्राचीन भारत के शब्दकोष में वर्ण-संकरता कहा जाता था। इसकी ज़िम्मेवारी राज्य पर है। ब्राह्मण प्रवृत्तियों का व्यक्ति बाज़ार में तराज़ू लेकर बैठा हो और वैश्य प्रवृत्तियों का व्यक्ति स्कूल-मास्टर बना हुआ हो—ये वर्ण-संकरता की निशानियां हैं और यही अवस्था वर्तमान समाज में अधिकता से दीख पड़ती है। इन घटनाओं से वर्ण-व्यवस्था की अक्रियात्मकता सिद्ध नहीं होती। इनसे यही सिद्ध होता है कि समाज की व्यवस्था टूट जाने से वर्ण-संकरता की अवस्था आ सकती है। वर्ण-संकरता की अवस्था किसी भी राज्य की सबसे कड़ी समालोचना है, क्योंकि इसे हटाना ही तो राज्य का कर्तव्य है। जो राज्य वर्ण-व्यवस्था के सिद्धान्तों को समाज के जीवन में नहीं घटा सकता, उसे जगाने वाले उसी समाज में से ही निकल आते हैं।

पहले यह दर्शाया जा चुका है कि 'श्रम-विभाग' का सिद्धान्त आर्थिक आधारों पर आश्रित होने के कारण समाज के सम्पूर्ण विकास में सहायक सिद्ध नहीं हो सकता। कइयों की यह सम्मति भी हो सकती है कि श्रम-विभाग को संकुचित अर्थों में न लेकर विस्तृत अर्थों में लेना चाहिये। श्रम में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र चारों आ सकते हैं। चारों वर्ण चार श्रम हैं, पेशे हैं। इस अवस्था में पेशे या श्रम का संकुचित अर्थ नहीं लिया जायगा। ब्राह्मण, क्षत्रिय के निःस्वार्थ-जीवन के भी पेशे हैं। ये लोग निःस्वार्थ-भाव को ही अपना स्वार्थ समझने लगते हैं, परोपकार को ही अपना पेशा बना लेते हैं, वही इनकी

आजीविका है । वर्ण-व्यवस्था का यही तकाज़ा है कि त्याग भाव को, निवृत्ति को जीवन में मुख्य स्थान मिलना चाहिये। स्वार्थ भाव को, प्रवृत्ति को गौण । यदि यह भाव 'श्रम' तथा 'पेशा' शब्दों के प्रयुक्त होते हुए भी रह सकता है, तो मुझे कोई आपत्ति नहीं। परन्तु, फिर भी श्रम-विभाग तथा वर्ण-विभाग में इतना अन्तर तो रह ही जाता है कि श्रम-विभाग वह सिद्धान्त है जो बे-जाने-बूझे, स्वयं समाज के अन्धे विकास में अपने-आप काम कर रहा होता है, और वर्ण-व्यवस्था वह सिद्धान्त है जिसके अनुसार समझ-बूझ कर, समाज को अपने हाथ में लेकर, आध्यात्मिक लक्ष्य को सन्मुख रखकर उसे विकसित किया जाता है । इसमें सन्देह नहीं कि वर्तमान समाज-शास्त्र में श्रम-विभाग भी ऐसा सिद्धान्त बनता चला जा रहा है, जो मनुष्य के क़ाबू में आ रहा है और स्वयं अपनी अन्धी दौड़ नहीं दौड़ रहा । परन्तु पश्चिम के समाज ने जहां इसे अपने हाथ में लिया है वहां इसका सकुचित आर्थिक अभिप्राय (Economic Consideration) ही लिया है, और, यदि अब धीरे-धीरे मनुष्य के सम्पूर्ण विकास को श्रम-विभाग में अन्तर्गत किया जा रहा है, तो समझ लेना चाहिये कि, पश्चिम कितनी देर में भारत के वर्ण-व्यवस्था के आदर्श की तरफ़ आ रहा है, जहां भारत कभी का पहुँच चुका था । दोनों सिद्धान्तों से परिणाम भी लगभग एक-से ही निकलते हैं । भेद उतना ही रहता है जितना किसी काम को आगा-पीछा जानकर करने अथवा उसे स्वयं होने देने में होता है । श्रम-विभाग के सिद्धान्त से भी समाज के, वर्ण-व्यवस्था की तरह के ही, चार विभाग हो जाते हैं । इस समय यूरोप में भी क्लर्जी, सोल्जर, मर्चेंट तथा लेबरर—ये चार विभाग ही हैं, और सर्वदा सर्वत्र सब देश-काल में मनुष्य-समाज के यही चार भेद स्वाभाविकतया हो सकते हैं । वर्ण-व्यवस्था के अनुसार समाज के इस विभाग को नियमित कर दिया गया है । इस विभाग से जो सहज दोष उत्पन्न हो सकते हैं, उन्हें दूर करने का प्रयत्न किया गया है। वर्ण-व्यवस्था के विचार से ही मिलता हुआ विचार ग्रीस के प्रसिद्ध दार्शनिक प्लेटो का था। उसने अपनी पुस्तक Republic में इस प्रकार लिखा है.—

"समाज के मुखिया Guardians या 'रक्षक' कहायँगे । उनका जीवन इस प्रकार हो जहां तक संभव हो कोई निजी सम्पत्ति न बना सकें । उनके घर में किसी का प्रवेश निषिद्ध न हो— उनका भंडार सबके लिये खुला हो। संयमी तथा उत्साही लोगों को, जो युद्ध करने में दक्ष हों, जिस चीज़ की ज़रूरत हो वह उन्हें निश्चित रूप से समाज की तरफ़ से मिला करे, क्योंकि वे समाज की सेवा करते हैं । उन्हें जो कुछ मिले, वह न ज्यादा हो, न कम । वे एक ही भोजनालय में भोजन करें और ऐसे रहें जैसे कैम्प में रहा करते हैं । उन्हें मालूम होना चाहिये कि उनके हृदयों में परमात्मा ने दैवीय-धन रखा हुआ है इसलिये उन्हें सोने चांदी की आवश्यकता नहीं है । पार्थिव सम्पत्ति उनके आत्मिक-धन को अपवित्र ही बनायगी क्योंकि संसार के सिक्के ने ही असंख्य उपद्रव खड़े किये हैं । उनके लिये सोने-चांदी को छूना पाप है, जिस मकान में ये धातुएँ हों उसमें जाना पाप है, इनके आभूषण पहनना और इन धातुओं के बर्तनों में पानी पीना पाप है । यदि वे इन नियमों का पालन करते रहेंगे तो वे अपनी तथा अपने समाज की रक्षा कर सकेंगे । जब वे सम्पत्ति जोड़ लेंगे, जब उनके पास ज़मीन, घर तथा रुपया हो जायगा, तो वे 'रक्षक' होने के स्थान पर घर-बार वाले व्यापारी हो जायँगे, और अपने समाज के सहायक होने की जगह उसे दबाने वाले स्वामी बन जायँगे। उनका जीवन घृणा करने तथा घृणा किये जाने में, षड्यंत्र करने तथा षड्यंत्रों का शिकार बनने में बीत जायगा। समाज नष्ट हो जायगा। 'गार्जियन्स' के लिये इसी प्रकार का राज-नियम होना चाहिये।"

प्लेटो ने भी समाज के वही विभाग किये हैं जो हमारे यहां पाये जाते हैं – गार्जियन्स (फ़िलासफर्स), सोल्जर्स और आर्टिज़न्स । जिस प्रकार वर्ण-व्यवस्था के समाज-शास्त्रीय सिद्धान्त का आधार मनोवैज्ञानिक प्रवृत्तियां हैं, उसी प्रकार प्लेटो ने भी अपने विभाग का आधार मनोविज्ञान ही रखा है । Republic की चतुर्थ पुस्तक में लिखा है:—

"क्या आत्मा की तीन प्रकार की प्रकृति होती है ? क्यों नहीं, यदि समाज के तीन प्रकार के विभाग हैं, तो ये ज़रूर आत्मा की प्रकृति के विभाग होंगे, क्योंकि समाज में ये तीनों गुण व्यक्तियों के गुणों ही से आते हैं।"

भिन्न-भिन्न प्रवृत्तियों वाले व्यक्तियों का उत्कट वृत्तियों में पड़ जाना वर्ण-संकरता है, और इसी अवस्था को प्लेटो

भी सामाजिक-अव्यवस्था कहता है। उसका कथन है कि इस अव्यवस्था को दूर करना राज्य का कार्य है। Republic की चतुर्थ पुस्तक के ४३४ पृष्ठ पर लिखा है:—

"जब ऐसा व्यक्ति, जो प्रकृति के अनुसार 'आर्टिज़न' अथवा वैश्य-प्रवृत्ति का है, धन के घमंड में आकर 'वारियर' अथवा क्षत्रिय-श्रेणी में प्रविष्ट होना चाहता है; जब 'वारियर' अपने से ऊँची श्रेणी के योग्य न होता हुआ 'सीनेटर', 'गार्जियन' अथवा ब्राह्मण-श्रेणी में आना चाहता है जब एक ही व्यक्ति सबके काम करना चाहता है, तब समाज मे दुर्व्यवस्था फैल जाती है। किसी भी राज्य मे सुशासन होने के लिये आवश्यक है कि भिन्न-भिन्न व्यक्तियों को अपने-अपने धर्म मे ही लगाया जाय और अव्यवस्था न होने दी जाय।"

प्लेटो का यह कथन हमारे सम्मुख वर्ण-व्यवस्था-सम्बन्धी एक आवश्यक प्रश्न को उपस्थित कर देता है। क्या ब्राह्मण, क्षत्रिय हो सकता है अथवा क्या शूद्र ब्राह्मण हो सकता है, अर्थात—*वर्ण-व्यवस्था जन्म से है अथवा कर्म से ?*

वर्ण-व्यवस्था के जिस स्वरूप का हमने प्रतिपादन किया है, उसे दृष्टि मे रखते हुए 'जन्म' अथवा 'कर्म' का प्रश्न निरर्थक है। वर्ण-व्यवस्था पेशे अथवा लेबर का बँटवारा नहीं परंतु प्रवृत्ति का विभाग है। इसमें संदेह नहीं कि पेशा तो 'कर्म' से ही निश्चित किया जा सकता है, 'जन्म' से नहीं। परंतु प्रवृत्ति भला कर्म से कैसे निश्चित हो सकती है ? प्रवृत्ति के अनुसार ही कर्म होना चाहिये जिस समाज मे ऐसा होगा उसमे वर्ण-व्यवस्था होगी, जिसमें ऐसा न होगा उसमे वर्ण-संकरता होगी: जितना प्रवृत्ति कर्म का, पेशे का निश्चय करती है, उतना कर्म प्रवृत्ति का निश्चय नहीं करता।

तो फिर प्रवृत्ति का निश्चय कैसे होता है ? प्रवृत्ति के निश्चय करने के दो सिद्धांत है। वैज्ञानिक लोग इन सिद्धांतो को Law of Heredity और Principle of Spontaneous Variation कहते है। 'ला ऑव् हॅरिडिटी' का अभिप्राय यह है कि उत्पत्ति अपने उत्पादक के सदृश होती है, 'वेरियेशन' के सिद्धांत का अभिप्राय यह है कि सदृश होती हुई भी विसदृश हो जाती है। सादृश्य मे विसादृश्य बीज रूप से छिपा हुआ है। पुत्र, पिता के अनुरूप होता हुआ भी विरूप होता है। इस नियम के अनुसार प्रवृत्ति का अधिकतर निश्चय माता-पिता ही करते हैं, इसका निश्चय 'जन्म' से ही होता है, परंतु 'जन्म' से निश्चित प्रवृत्ति में बदलने के बीज भी रहते है, क्योंकि विकास में 'हॅरिडिटी' और 'वेरियेशन' दोनों सिद्धांत काम करते हैं। कुछ विसदृशता जन्म से ही आती है, और वही Environment अथवा परिस्थिति से घट-बढ़ जाती है। विसदृशता अर्थात 'प्रवृत्ति मे परिवर्तन' 'प्रिंसिपल ऑव् स्पाटेनियस वेरियेशन' से होती है और 'एनवायर्नमेंट' उसमे सहायक है। यह विसदृशता 'कर्म' से होती है, अतः वर्ण-व्यवस्था अर्थात् प्रवृत्तियों का विभाग 'जन्म' तथा 'कर्म' दोनों से होता है, जिसमें जन्म प्रधान है। इस समय हम लोग भी इस बात को स्वीकार करते है। जब हम किसी जन्म के ब्राह्मण तथा कर्म के रसोइये के पुत्र के लिये कहते हैं कि इसका पुत्र ब्राह्मण नहीं है, तब हमारा यही अभिप्राय होता है कि इसके पिता मे रसोइये की प्रवृत्तियाँ काम करती रही है, अतः इसके पुत्र की प्रवृत्ति भी वैसी ही होनी चाहिये। क्या यह जन्म से वर्ण-व्यवस्था को स्वीकार करना नहीं है ? असल बात यह मालूम पड़ती है कि जिस समय वर्ण-व्यवस्था का अर्थ प्रवृत्तियों का विभाग समझा जाता होगा, उस समय "वर्ण-व्यवस्था जन्म से होती है" यह बात भी चल पड़ी होगी, और जो श्लोक वर्ण-व्यवस्था के जन्मपरक होने मे पाये जाते हैं, उनका यही अभिप्राय होगा।

विचारपूर्वक देखा जाय तो वर्ण-व्यवस्था का जन्मपूर्वक होना ही उचित है। इसमे क्या संदेह है कि पिता की जैसी प्रवृत्तियाँ रही हैं, पुत्र की स्वभावतः वही होती हैं। पिता ब्राह्मण प्रवृत्ति का होगा तो पुत्र उस प्रवृत्ति को और भी आगे ले जा सकेगा और क्योंकि, पेशा प्रवृत्ति के अनुसार ही होना चाहिये, अतः, यदि पुत्र अपने पिता के पेशे को ही हाथ लगायेगा तो उसमे अधिक उन्नति कर सकेगा। इस प्रकार प्रत्येक कार्य मे दक्षता (Efficiency) बढ़ेगी। परंतु इसका यह अभिप्राय नहीं कि पिता के पेशे को करने की पुत्र मे प्रवृत्ति न हो, तो भी उसे उसी काम के लिये बाधित किया जाय। मूल तत्व तो प्रवृत्ति है, पेशा नहीं, और पिता का पेशा पुत्र को तभी करना चाहिये जब उसकी उधर प्रवृत्ति हो, अन्यथा नहीं।

यही वर्ण-व्यवस्था है, इससे भिन्न अवस्था का नाम वर्ण-संकरता है।

वर्ण-व्यवस्था का अर्थ यदि प्रवृत्ति का विभाग ही समझा जाय, तब तो यह मुख्यतः 'जन्म' से और गौणतः कर्म से होती है। वर्ण-व्यवस्था जीवन का स्थिर सूत्र है; आज, कल और परसों के पेशों से बदलने वाली चीज़ नहीं। प्रवृत्ति स्थिर होती हुई भी कभी-कभी बदल जाती है, अतः जब भी प्रवृत्ति बदल जाय तभी वर्ण बदल जाता है—इस जन्म मे भी बदल सकता है, अगले जन्म में भी। वर्ण-व्यवस्था का अर्थ यदि Division of Labour (पेशों का बँटवारा) समझा जाय, जैसा कि वास्तव में नहीं है, तब यह 'कर्म' से ही हो सकता है। आज यदि आर्यसमाज कहता है कि, वर्ण-व्यवस्था कर्म से होनी चाहिये तो इसी दृष्टि से कहता है, क्योंकि हिन्दु समाज ने पेशों को ही वर्ण समझ रखा है—क्योंकि आज चार वर्ण, जो कि प्रवृत्तियों के विभाग थे, नहीं रहे और उनकी जगह हज़ारों पेशे आ गये हैं। ये पेशे हिन्दु समाज में बाधित भी किये जाते हैं। इन पेशों के कारण कइयों से घृणा की जाती है। वर्ण-व्यवस्था के इसी कुत्सित स्वरूप को देखकर आर्यसमाज कहता है कि यदि पेशों को देखकर ही वर्णों का विभाग करते हो, तो प्रत्येक व्यक्ति को अपना पेशा चुनने की स्वतंत्रता दो और जन्म के बन्धनों में हिन्दु समाज को न बाँध कर, जो जिस कर्म को करे उसे उसका अधिकारी समझो। मुझे निश्चय है कि यदि वर्ण-व्यवस्था के असली तत्त्व को समाज के जीवन में घटाया जाय, और वर्ण-व्यवस्था को पेशों का बँटवारा न समझ कर प्रवृत्तियों का विभाग समझा जाय, तो आर्यसमाज को भी वर्ण-व्यवस्था के जन्म से होने के विषय में उन विचारों से असहमति न हो, जिनका अभी उल्लेख किया गया है। इसी दृष्टि को सन्मुख रखकर प्लेटो ने उपर्युल्लिखित उद्धरण में कहा है कि, किसी भी राज्य में सुशासन होने के लिये आवश्यक है कि भिन्न-भिन्न व्यक्तियों को अपने-अपने धर्म में ही लगाया जाय तथा आर्टिज़न को वारियर और वारियर को गार्जियन न बनने दिया जाय, क्योंकि इससे अव्यवस्था हो जाती है। इस प्रकार की वर्ण-व्यवस्था केवल हिंदुओं में ही नहीं मनुष्य-समाज में घटायी जा सकती है।

हिंदुओं के वर्तमान सामाजिक-संगठन में अत्याचार ओत-प्रोत है, और इसे तबतक दूर नहीं किया जा सकता जबतक प्रचलित वर्ण-व्यवस्था के बन्धन शिथिल नहीं होते। यह व्यवस्था अथवा संकरता अपने प्रतिकूल लहरों को उत्पन्न कर रही है, जो कि उत्तर तथा दक्षिण भारत में बड़े स्पष्ट रूप में दिखलायी दे रही है। सामाजिक अत्याचार प्रतिक्रिया के बिना नहीं रहेगा, और भविष्य में देखनेवाला वर्ण-व्यवस्था के विशाल प्रासाद को खँडहरों के रूप में अभी से देख सकता है। परन्तु, यदि वर्ण-व्यवस्था का प्रचलित रूप टूटेगा, तो उसका यह मतलब हर्गिज़ नहीं कि वर्ण-व्यवस्था बुरी चीज़ है। जैसा दर्शाया जा चुका है, वर्ण-व्यवस्था प्रत्येक देश तथा काल के सामाजिक-संगठन का सर्वोत्तम उपाय है। प्राचीन आर्यों ने इसी सिद्धांत पर अपने समाज की रचना की थी और आज-का टूटा-फूटा हिंदु समाज इसी की ओर संकेत कर रहा है। समाज-शास्त्र में सामाजिक संगठन पर अबतक जितनी भी कल्पनाएँ (Theories) बनी हैं, उनमें हिंदुओं की वर्ण-व्यवस्था ही सामाजिक संगठन की सर्वोत्तम कल्पना है।

सत्यव्रत, सिद्धान्तालंकार

बेकार वकील

(ठलुआ क्लब की दूसरी बैठक में पढ़ा हुआ एक लेख !)

से तो मैं अपने को ठलुओं की संज्ञा में स्वीकार करना महा पाप समझता हूँ, और, यदि, कोई दूसरा मुझे इस संज्ञा में घसीटना चाहता तो मैं उसपर मान-हानि की नालिश कर अपनी बेकारी को कुछ दिनों के लिये विदा कर देता। अदालत में भी यदि कभी सब जज महोदय कृपान्वित हो मुझे कमीशन देने की बात-चीत चलाते, तो दो-चार बार कोरी डायरी के पन्ने उलटे-पलटे बिना मैं सहसा उत्तर नहीं देता। तथापि "यारों न चोरी न पीरों दग़ाबाज़ी।" मित्रों से मिथ्या भाषण करना इस पेशे तक के लोगों को शोभा नहीं देता। आप लोगों से पैसा तो मिलना

नहीं, केवल सहृदयता ही की आशा हो सकती है। झूठ बोलूँ तो उसके भी हाथ से जाने का खटका है। मुझे आशा है कि आप लोगों को कभी किसी वकील की आवश्यकता न पड़ेगी। इस कारण, और कुछ न सही तो, ठलुओं ही के सन्मुख सत्य बोलने का दुर्लभ श्रेय क्यों न प्राप्त करूँ।

ए० बी० से मैंने अँगरेज़ी शिक्षा का प्रारंभ किया था और बी० ए० पर पहुँचकर उसकी इतिश्री करने का विचार था, लेकिन उस परम पद पर पहुँचते-पहुँचते मेरी अवस्था २६ वर्ष की हो चुकी थी। मैं सरकारी नौकरी के लिये वृद्ध हो चुका था। डाक्टर लोग चाँदी को रसायन द्वारा मुझे बुड्ढे से जवान बना सकते थे, किंतु मेरे मन में बाल्य-काल से स्वतन्त्रता के भाव भरे हुए थे। सरकारी नौकरी मिलने की असंभावना को मैंने देश-सेवा करने का ईश्वर-दत्त अवसर समझा। देश-सेवा का रथ केवल भावों के पहिए पर नहीं चल सकता, उसके लिये चाँदी-सोने के पहिये चाहिए—वह बिना रोज़गार के कहाँ ? बहुमत से यह बात स्वीकार कर ली गई है कि वकालत ही एक ऐसा पेशा है, जिसमें धनोपार्जन के साथ देश-सेवा भी हो सकता है, क्योंकि हर एक वकील के नाम हिंदुस्तान का वकालत-नामा लिखा हो रहता है। अत मैंने एक स्थानीय स्कूल में नौकरी कर ली, और कालेज में ला लेक्चर्स भी एटेंड करना शुरू कर दिया था। भविष्य में मुझे वकालत का पेशा इख्तियार करना था, इसलिये मैंने अपनी हाज़िरी भी दूसरों की वकालत से करानी शुरू कर दी। कभी-कभी मेरे वकील जब छुट्टी लेना चाहते, तो क्लास में मैं भी उनकी वकालत कर आता। ला क्लास सुरसा के मुख की भाँति दिन दूना रात चौगुना बढ़ता जाता था और हनुमानजी की भाँति बिना लघु-रूप रखे उसकी थाह मिलना कठिन है और न्यायाचार्य ला प्रोफ़ेसर महोदय को लघुरूप धारण करना उनकी गुरुता के प्रतिकूल प्रतीत होता था।

मेरे प्रोफ़ेसर भी प्रतिनिधित्व-संबंधी सिद्धांत के ऐसे श्रद्धालु थे कि मेरे बिना कष्ट के ही साल भर की हाज़िरी पूरी हो गई। इम्तिहान की फ़ीस भेज दी गई, किंतु अभाग्यवश उसमें प्रतिनिधित्व से काम नहीं चलता है। मालूम नहीं, आजकल के ज़माने में, जहाँ सब काम प्रतिनिधि द्वारा चल जाते हैं, इम्तिहान में प्रतिनिधि क्यों नहीं स्वीकार किए जाते। बहुत करें प्रतिनिधि द्वारा जो परीक्षाएँ हों, उनकी कुछ अधिक फ़ीस ले लिया करें। मेरी राय संसार की राय को नहीं पलट सकती थी। अस्तु, इम्तिहान की तैयारी के लिये तीन महीने की छुट्टी ली। लेकिन साल भर का काम तीन महीने में कैसे तैयार हो। ख़ासकर मुझ ऐसे आलस्य-भक्तों से। लेकिन 'जब तक सांस तब तक आस।' एक पार्क में जाकर शॉर्ट गाइड में घोटा लगाना शुरू कर दिया और इम्तिहान के दिन गिनने लगा। परीक्षा देने प्रयाग गया। इतना संतोष अवश्य था कि यदि पास न हुआ तो भी विशेष हानि नहीं। त्रिवेणी स्नान तो हो जावेंगे और घर की सम्पत्ति में बाल-बच्चों के लिये दो एक टूक अधिक छोड़ मरूँगा। इसके अतिरिक्त दूसरे साल के लिये लेक्चर्स एटेंड करने की बाधा से मुक्त हो जाऊँगा।

बड़े शकुन-सायत से परीक्षा-भवन में जाता था। थोड़ा-बहुत देव नाम भी स्मरण कर लेता था। पहले रोज़ का पर्चा मेरी समझ में अच्छा हुआ, सोचा कि शायद नामस्मरण का हो फल हो। एक रोज़ और ऐसे ही कट गया। लेकिन 'बकरे की माँ कब तक ख़ैर मनावेगी।' तीसरे रोज़ लुटिया डूब ही गई। पर्चा बिगड़ गया, लेकिन तब भी आशा-पाश से नहीं छूटा। परीक्षक की दयालुता का भरोसा तो हमेशा लगा ही रहता है, और स्वार्थ-वश कभी-कभी ऐसी असंभव कथाओं में भी विश्वास हो जाता था कि परीक्षक लोग आधे पर्चे उठाकर एक तरफ़ रख देते हैं और उनके ऊपर 'पास' लिखकर शेष को 'फ़ेल' कर देते हैं। परीक्षा ख़त्म हो गई। नतीजा आया। 'रोने जानेवाले मरे की ही ख़बर लाते' हैं। स्कूल की नौकरी तो छूटी नहीं थी, फिर भय किस बात का ? फिर एक साल उसी तरह तीन महीने की छुट्टी लेकर यत्न किया। इस साल कुछ हाल का परिश्रम और पारसाल का अनुभव काम आगया। प्रीवियस में पास होगया, फ़ाइनल की तैयारी हुई। फ़ाइनल भी एक साल के गोता खाने के बाद पास कर लिया। भले आदमी बिना पैर रगड़े, आगे क़दम नहीं रखते। ख़ैर, अब क्या है, अब तो मेरी पिछली असफलताओं की लज्जा ऐसी दूर हो गई, जैसे गधे के सर से सींग।

जिनके पास मैं भूलकर भी नहीं जाता था, उनको

बधाई स्वीकार करने के निमित्त उनके घर के चार-चार चक्कर लगाने लगा। स्कूल से इस्तीफ़ा दे दिया। अब वकीलों के दाँव-पेच सीखने की ज़रूरत पड़ी। जहाँ मुक़दमे-मामले की बात सुनता, वहाँ अपनी टाँग अड़ा देता। उनके साथ कचहरी जाता, जिरह को ध्यान से सुनता, उर्दू का भी काम-चलाऊ अभ्यास कर लिया। एक गुडेशियल आफ़िसर ने एक सार्टिफ़िकेट भी दे दिया। एनरोलमेंट की दरख़्वास्त भी भेज दी गई। एनरोलमेंट हो जाने पर पहिले मुक़दमे की फ़िकर पड़ी। 'नाई के लड़के को सिखाने के लिये कौन अपनी खोपड़ी ख़राब करेगा।' पंडितों से पहला मुक़दमा लेने की साइत पूछी गई। मेरी सायत साधने के लिये कोई साहस न करता था। आख़िर एक सहृदय वकील ने उस रोज़ मेरी सायत साधने के लिये एक मुक़दमे में अपने वकालतनामे के साथ मेरा भी वकालतनामा दाख़िल कर दिया। मुक़दमा तो जीत गया, किंतु उसमें कुछ यश लाभ न हुआ। दूसरे की छत्र-छाया में रहकर यश-लाभ कहाँ से हो। वह वकील मुझे अपने साथ रखने को तैयार थे, किंतु मैं अपने को उनसे अधिक प्रतिभाशाली समझता था। उनका यश बहुत था, किंतु उनके पास काम बहुत साधारण-सा प्रतीत होता था। यशस्वी लोग एक दूसरे के तेज को सहन नहीं कर सकते। उत्तर रामचरित में ठीक ही कहा है—

> "न तेजस्तेजस्वी प्रसृतमपरेषां प्रसहते
> स तस्य स्वो भावः प्रकृतिनियतत्वादकृतकः।
> मयूखैरश्रान्तं तपति यदि देवो दिनकरः
> किमाग्नेयो ग्रावा निकृत इव तेजांसि वमति"
>
> —भवभूति

मैं यशस्वी तो न था, किंतु यशस्वी होने की महत्वाकांक्षा रखता था, इसलिये उसके मार्ग में भी चलना चाहता था। इसी कारण बड़े वकील साहब की कृपा से लाभ उठाना मैंने अनुचित समझा। आत्म-विश्वास और आत्म-साहाय्य का पाठ अपने छात्र-जीवन में भलीभाँति अध्ययन कर चुका था। दूसरे के सहारे खड़ा होना मुझे लज्जाजनक प्रतीत होता था। स्कूल की नौकरी में जो कुछ बचाकर संग्रह किया था, उसको वकालत की दूकान जमाने में ख़र्च कर देना निश्चय किया। घोड़ा गाड़ी इत्यादि रखना तो मैंने अपनी सामर्थ्य से बाहर समझा। एक काला कोट पहनकर रोज़ बाइसिकल पर कचहरी की यात्रा करता। मेरे मुहर्रिर महोदय किराए के इक्के पर बस्ता ले कचहरी पर उपस्थित हो जाते और नीम के नीचे दूकान जमा देते। मैं स्वयं या तो अदालत में जाकर वकीलों की बहस सुनता, और जब उससे जी ऊब जाता तो बार रूम में जाकर अख़बार पढ़ता या मिट्टी के कुल्हड़ों में बरफ़ का पानी पीता। मैं अपने को इसी बात में धन्य समझता था कि, और कुछ नहीं तो, वकील हो जाने से बार रूम में बैठना, पंखे की हवा, ठंढा पानी और 'लीडर' अख़बार, ये सब सुख एक रुपया ख़र्च करने पर ही मिल जाते हैं, और बेकार भटकना नहीं पड़ता, और न पुलिस को अपनी बेकारी की कैफ़ियत देनी पड़ती है। पहिले तो मैं यही समझता था कि कचहरी में बैठने की ही देर है, मुवक्किल लोग, जिस प्रकार गर्मियों में जलते हुए चिराग के ऊपर पतंगे आ टूटते हैं, उसी प्रकार वह लोग मेरा घर घेर लेंगे। किंतु दो-तीन महीने में मेरा यह भारी भ्रम दूर हो गया और कुछ ही दिनों में रोटी-दाल का प्रश्न उपस्थित होने लगा। ख़ाली पेट ठंढा पानी और पंखे की हवा बुरी लगने लगी। मुझे अपनी बुद्धि पर पूर्ण विश्वास था, लेकिन किया क्या जाय, हर साल सैकड़ों वकील तैयार हो जाते हैं और जगह एक भी ख़ाली नहीं होती। वकील लोग कुछ पेंशन तो लेते ही नहीं, मरकर अवश्य स्थान ख़ाली कर सकते हैं, किंतु नये वकीलों के दुर्भाग्य से पुराने वकीलों को कुछ अमरौती-सी मिल गई है—वह मरने ही नहीं। और, यदि कोई मर भी गया, तो उसके भाई-भतीजे कूद कर उसके आसन पर विराजमान हो जाते हैं। इन सब कठिनाइयों के होते हुए भी मेरे आत्म-विश्वास ने मुझे जवाब नहीं दिया। मैंने सोचा कि आख़िर सिंह तक को पशुओं के पकड़ने में उद्योग करना पड़ता है, तो मैं भी क्यों न उद्योग करूँ—'यत्ने कृते यदि न सिद्ध्यति कोऽत्र दोषः'।

मैंने अपने मुहर्रिर महोदय को हर प्रकार से उत्तेजित किया। यहाँ पर मैं यह कह देना आवश्यक समझता हूँ कि मेरे मुहर्रिर मुझ से भी अधिक सज्जन थे। बेचारे प्रातःकाल आते, वकालतख़ाने को झाड़-बुहार कर साफ़-सुथरा कर देते। मुवक्किलों का तो अभाव था ही, उनके स्थान में वह मेरे लड़के-बच्चों को एकत्र कर पढ़ाने लगे

जाते। मैंने सुबह के वक्त लड़के-बच्चों का तो पढ़ाना बंद कराके यह काम सायंकाल के लिये रख दिया और गाँव से दो एक मुक़द्दमेबाज़ रिश्तेदारों को बुला लिया। वह सुबह के वक्त आते और मुक़द्दमेबाज़ी की चर्चा करने लग जाते। मैं अपनी बैठक के सब दरवाज़े खुले रखता, जिससे कि आते-जाते लोगों को मेरी मेज़ पर की किताबों का ढेर और कृत्रिम मुवक्किलों का जमघट दिखाई पड़े। उन्हीं रिश्तेदारों में से एक सज्जन सायंकाल को सराय में चक्कर लगा आते कि कोई भूला-भटका मुवक्किल हाथ लग जावे। इन युक्तियों से कुछ मुवक्किल आने तो लगे, किंतु जितना रिश्तेदारों पर ख़र्च करना पड़ता था उसकी अपेक्षा आमदनी चतुर्थांश भी नहीं होती थी। सफलता ने भी मेरा बहुत पक्षपात नहीं किया, जिसके कारण शहर में ख्याति पा जाता।

कहते हैं कि बारह बरस में घूरे का भी भाग्य जगता है। महात्मा गांधी के असहयोग की हवा चली और कई वकीलों ने वकालत करना छोड़ दिया। मेरे लिये भी यह समस्या उपस्थित हुई कि देश-सेवा के जो भाव मेरे हृदय में बाल्यकाल से भरे हुए थे, उनकी पूर्ति करूँ या ऐसे स्वर्णमय सुअवसर में कुछ अपनी पेट-पूर्ति का साधन करलूँ। अस्तु, इस सुअवसर को छोड़ना मैंने भाग्य के साथ कृतघ्नता समझी। असहयोग के दिनों में वकीलों की कमी के साथ थोड़ी-बहुत मुक़द्दमेबाज़ी में भी कमी होगई। तो भी जबतक इसकी लहर रही, तब तक मेरी भी थोड़ी बहुत लहर पटी। किंतु भाग्य ने बहुत दिन सहारा न दिया। थोड़े ही दिनों में वकील लोग अपने-अपने स्थान पर आ टपकने लगे और ख़ाली तख्त फिर से भरगए। एक-एक करके लौटे हुए वकील मेरी आँखों में खटकने लगे, और मैं उनकी 'आँख की किरकिरी' बन गया। अपने ठलुआ-पथी के दिनों की कमी को पूरा करने के निमित्त वह लोग भूत की भाँति धन कमाने पर उतारू होगए। इस कठिन कम्पिटीशन की बाढ़ में मेरे पैर उखड़ चले और मेरा मन इधर-उधर चलायमान होने लगा। कहीं क्रासवर्ड पज़ल (Crossword Puzzle) के कम्पिटीशन में अपना सिर खपाने लगा, और कहीं लाटरियों में रुपया भेजने लगा। कभी रुई के सट्टे में भाग्यपरीक्षा करने के विचार से ज्योतिषियों का परामर्श लेनेलगा, किंतु लक्ष्मी-देवी का कृपापात्र बनने का कोई राज-पथ मुझे न मिल सका। ऐसी ही खींचा-तानी की अवस्था में मेरे एक मित्र ने कह दिया कि—'व्यापारे वसते लक्ष्मी'।

शुरू से ही देशभक्त और श्रद्धालु होने के कारण मेरे मन में सबही संस्कृत शब्द वेद-वाक्य का प्रभाव रखते थे। बस, मैं व्यापार की उधेड़-बुन में लग गया। अभाग्य से एक वैद्य जी मेरे पड़ोस में रहते थे। उन्होंने कहा कि देशी दवाइयों के प्रचार करने में देश का हित और धनोपार्जन—'गोरस बेचन और हरिमिलन' का सा 'एक पथ दो काज' हो जावेगा। दो-एक मित्रों ने मुझे और भी पट्टी पढ़ा दी। उन्होंने कहा कि देशी दवाइयों से तो वास्तविक रसायन बनती है। सोने की राख तो बिरले ही बनाते हैं, किंतु राख का सोना हरेक वैद्य बना लेता है। अपनी विज्ञापन देने की शक्ति में तो विश्वास था ही और वैद्यजी पड़ोस में ही रहते थे, बस सारा बानक बन गया। लोकहित औषधालय के नाम से एक औषधालय स्थापित कर दिया गया। इतने ही में मुझे एक रिश्तेदार के काम से दो हफ्ते के लिये प्रयाग जाना पड़ा। मेरे मित्र वैद्यराज ने मेरी अनुपस्थिति में मेरे नाम से अनेकानेक औषधियों के विज्ञापन जारी कर दिये। वह तो यह समझते थे कि वह लोकहित के साथ मेरा भी हित कर रहे हैं, किंतु मेरे लिये तो 'नादान दोस्त से दानिशमंद दुश्मन बेहतर होता है'—इस कहावत को सिद्ध कर वह पूरे यमराज के सहोदर भ्राता बन गए। इलाहाबाद से लौटने पर दूसरे ही दिन जज साहब ने मुझे बुलवाया और बड़े आदर-सत्कार से बैठाया। उन्होंने देशी दवाइयों की प्रशंसा करनी शुरू कर दी। इस विषय में मेरी जानकारी बहुत बढ़ी-चढ़ी थी, तुरत ही मैं डाक्टर पी० सी० राय की हिंदू केमिस्ट्री के पन्ने और लाइनें बतलाकर प्रमाण देने लग गया। जज साहब ने मेरे औषधालय तथा औषधियों की प्रशंसा करनी शुरू कर दी, और कहने लगे कि तुम्हारी जीवनबटिका ने मेरे हैड क्लार्क बाबू की माँ की जान बचा दी। आत्म-ख्याति का माया-जाल बड़ा दुर्भेद्य है। इससे निकलकर भागना कठिन है। मैंने भी कह दिया कि मेरा औषधा-लय संसार में नाम कर दिखायगा। और मेरे जीवन का एक मात्र उद्देश्य ही यह है कि देशी दवाइयों का उद्धार करूँ। जज साहब ने इन सब बातों को सुनकर

नोट कर लिया। एक महीने बाद यह हुक्म आगया कि साल भर के लिये आपसे वकालत करने का अधिकार छीना जाता है। इस अवसर में आप यह निश्चय कर लीजिए कि आप वकालत द्वारा लोकहित करेंगे या औषधालय द्वारा। यद्यपि वकालत में अधिक लाभ न था, किंतु डिबार (Debar) होने की बदनामी से बचने के लिये हाईकोर्ट तक गया। वहाँ से भी यही उत्तर मिला कि जजसाहब ने बहुत रिआयत की। वकालत तो साल भर के लिये हाथ से गई, अब यह समस्या आ खड़ी हुई कि दवाइयों का रोज़गार छोड़ूँ या रक्खूँ। दवा से भी आर्थिक-लाभ तो कुछ न था, केवल इतना ही फ़ायदा था कि लड़के-बच्चों को दवा मुफ्त मिल जाती थी और घर पर कोई बीमार हुआ तो बिना मूल्य के ही उनकी चिकित्सा हो जाती। केवल इस सुख के लिये बार एसोसियेशन की ठंढी हवा और सोडा पानी छोड़ने के लिये जो नहीं चाहता था। डिबार होकर बार रूम में जाना अपमानजनक था। सिवाय इस ठलुआ क्लब के कोई ऐसा सहृदय मंडल न था जिसमें मेरा स्वागत हो। इसी की शरण ली। यहाँ की गप्पाष्टकें पूर्ण बेफ़िकरी की हैं। न कोई वकालतनामे पर दस्तख़त कराने के लिये मेरी सुख-निद्रा को भंग करता है, और न कोई पेशी के लिये जल्दी चलने को तंग करता है।

जय हो इस ठलुआ क्लब की, कि इसने मेरी बेकारी के दिन काट दिए। अब वकालत शुरू करने को एक ही महीना शेष है, लेकिन इस क्लब की मेंबरी न छोड़ूँगा। इसने मेरे बुरे वक़्त में सहायता की है। इसकी मेंबरी के लिये मुझे कोई डिबार न करेगा। बेकार वकीलों के लिये तो रोज़गार से इस क्लब की मेंबरी भली। यह रोटी देती नहीं तो छीनती भी नहीं। सौभाग्य की बात है कि इस क्लब का हाल अधिकारी जनों के सिवाय और सबों से गोपनीय रहस्य रखा गया, यह अच्छा ही हुआ। ऐसा न होता तो सारा नहीं तो आधा बार एसोसिएशन यहाँ उठ आता और एक्ट और नज़ीरों की दुर्गंध से स्वर्ग को नरक बनादेता। इस क्लब के वही अधिकारी है, जो कि नीचे लिखे गुणों में से एक या एक से अधिक गुण रखते हों—

(१) दुखी हों, किंतु रोते नहीं, और यदि रोवें, तो रोने में हँसने का आनंद लें।

(२) अपने सिवाय सारे संसार को मूर्ख मानें। धन कमा लेने के कौशल को मूर्खता नहीं तो कम-से-कम धूर्तता समझें।

(३) भूखों मरते हों, किंतु स्वाभिमानवश भिक्षा के लिये हाथ न पसारें। पसारें भी तो अपने दाता की ओर सिंह के समान गुर्राते रहें।

(४) धनवान हों, तो इतने कि बिना हाथ पैर चलाए उनके घर में सोने चाँदी के ढेर लगे रहें, किंतु हिसाब-किताब करते समय उनका सर दर्द करने लगे।

(५) विद्वान हों, किंतु उनका आदर-सम्मान न हो। न वह किसी विश्वविद्यालय के परीक्षक हों और न उनकी कोई किताब किसी स्कूल में पढ़ाई जाती हो।

(६) नौकर-पेशा, जिनकी नौकरी छुट गई हो, अथवा छुटनेवाली हो · किंतु जिन्हें भविष्य में नौकरी न मिलने की आशा हो।

(७) बीमार हों, किंतु शैय्या-सेवी न हों। आसन्न-मृत्यु न हों, परंतु जीने की भी दृढ़ आशा न रखते हों।

(८) घर-बार से छुट्टी पाचुके हों, किंतु किसी के प्रेम-पाश में न फँसे हों, और इसके साथही ताश और शतरंज खेलना जानते हों।

(९) भंग पीते हों, किंतु पेट भरने लायक़ धन कमाने की धर्तता रखते हों।

(१०) वैज्ञानिक गवेषणा करते हों, किंतु भारतवर्ष के शिक्षा-विभाग में न हों।

(११) बातूनी हों, किंतु रुपया पैसा कमाने की बात करने को असभ्यता समझते हों।

गुलाबराय

गोपिका गीत

साँवरी रैन घिरे घन साँवरे हुके हियो सुख को नहि साँवरो,
साँवरो रंग न देखो चहै 'कुसुमाकर' त्रास चहूँ दिसि साँवरो।
साँवरीकोयल साँवरोकाग बिभासो सबै मिजि लेनहै दाँवरो,
साँवरो स्याम गयो जबते तबते हौं लख्यो सिगरो जग साँवरो॥

कुबेरनाथ सुकुल

मि० ग्रेजुएट

जब मि० ग्रेजुएट को कुछ काम न मिला, तब बेचारे हिंदी क
लेखक बनने का ही प्रयत्न करने लगे !

आर्यों की गो-कुल-चिंता

न कुर्वाता मनस्त्राण
गोरक्षा तु शक्तित ॥
मनु ११।११३
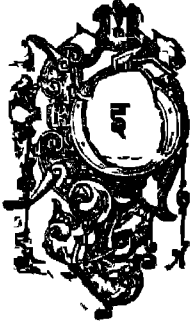
इस समय भारत मे न तो उन भारतीय विद्वानो की ही कमी है, जो भारतीय तथा विदेशीय साहित्य के भिन्न-भिन्न विभागो के पंडित हैं, और न उन धनवानो की ही कमी है, जो इस गए-बीते समय में भी अकेले लाखों रुपयों का दान देते रहते हैं। हाँ, कमी और घाटा है तो उन्हीं भारतीय विद्वानो तथा धनवानो का, जो भारतीय शिखा-सूत्र-धारी जनता के सात्विक भोज्याओं तथा गव्य पदार्थों की दिनोदिन घटती हुई उपज की तनिक भी चिंता नहीं करते। जो वस्तु जिसके लिये अत्यंत आवश्यक हो, और वह उसके घर अर्थात् देश मे ही सुविधा के साथ पर्याप्त मात्रा मे पैदा की जाती हो, उसकी भीषण ऊनता और महँगाई के कारणों की ओर वहाँ के साक्षर और सधन लोगो का ध्यान न जाना, जितना उनके लिये लज्जाप्रद है, उससे कहीं अधिक वह उनके लिये दुःख और कष्टप्रद होता है।

थोड़े से भारतीय विद्वान, जो अँगरेजी भाषा द्वारा उच्च शिक्षा पाकर उच्च-उच्च सरकारी नौकरियाँ पा गए हैं, वा वकालत बैरिस्टरी कर रहे हैं, वा उन्हीके समान भारत-श्री-नाशक वाणिज्य-व्यवसाय नाम-की दलाली कर धनवान बने हैं, वे अपनी बढ़ी-चढ़ी आय के कारण भारत के उत्तरोत्तर क्षीण होते हुए भोज्यान्नो के प्रश्न की जिस प्रकार उपेक्षा और अवहेलना कर रहे हैं, उन्हे यह बात ध्रुव सत्य मान रखनी चाहिए कि उनकी निन्द्य उपेक्षा के कारण भारत की धरती जब सर्वथा ऊसर होजायगी, तब अमेरिका और आस्ट्रेलिया को कृषि उन्हे उतने भी सात्विक भोज्यान्न और गव्य पदार्थ नहीं दे सकेगी, जितने भारत की कृषि वर्तमान उपेक्षित दशा मे भी उन्हे दे रही है। समय रहते वे लोग अपनी इस भूल को समझलें, तो उनका तथा उनके वर्तमान और भावी बाल-बच्चों का बहुत-कुछ कल्याण और मंगल हो सकता है।

भारत के आदिम निवासी आर्य विद्वानों और धनवानो ने अपने प्राणों के मूलाधार—सात्विक और पौष्टिक भोज्यान्नो की ऐसी उपेक्षा कभी नहीं की जैसी उनकी वर्तमान संतान, हम हिंदू लोग, कर रहे हैं। आज हमारा एक भाई हाईकोर्ट का चीफ़ जस्टिस वा एडवोकेट हो जाता है, तो वह अपनी नेकटाई और जूतों के फ़ीतो को सँवार कर बाँधने में जितना ध्यान देता है, उससे न्यूनातिन्यून अंश मे भी उस दूध और मक्खन की ओर वह ध्यान नहीं देता कि वे चीज़े किस दूषित प्रणाली से पाली हुई गौ द्वारा पैदा हुई हैं। भारत के उन बड़े-बड़े नगरों में, जहाँ सरकारी रिसाले रखे जाते हैं, वहाँके ग्वाले उन रिसालों के घोड़ो की लीद, सस्ती होने के कारण, ख़रीद कर अपनी दूध देनेवाली गौओं को खिलाते हैं। उस लीद से बने हुए दूध को नगर के बड़े-बड़े विद्वान्, धनवान् म्युनिसिपलिटी के चेयरमैन और हेल्थ आफ़िसर आदि बड़ी रुचि के साथ चाय मे पी-पीकर अपने स्वास्थ्य को प्रतिदिन नष्ट करते जाते हैं, पर उक्त दूषित प्रथा को बंद करने की ओर बिंदु मात्र भी ध्यान नहीं देते। जब उनकी उच्च कोटि की विद्वत्ता तथा धनाढ्यता ही उन्हें आत्म-हित के इस प्रश्न पर विचार नहीं करने देती, तब मुझ जैसे एक अल्पज्ञ की बात उनके समीप कैसे आदर पा सकती है। मेरी बात को वे भले ही न मानें, पर उन्हें आत्म-हित गौरवार्थ स्मृतिकार श्रीअत्रिजी की निम्नलिखित बात पर अवश्य ही विचार करना चाहिए—

अजा गावो महिष्यश्च अमेध्य भक्षयन्ति याः
दुग्धं हव्ये च कव्ये च गोमयं न विलेपयेत् ।
।।२१८

अर्थात् जो बकरी, गौ और भैंस अपवित्र चीज़े खाती है, उनका दूध देवपितृ की पूजा में नहीं लेना चाहिए। उसी प्रकार उनके गोबर से चौका नहीं लगाना चाहिए।

कहना नहीं होगा कि भारत के प्राचीन आर्य विद्वान व्यास, वसिष्ठ, गौतम, मनु, शुक्राचार्य और चाणक्य आदि दार्शनिक, राजनीतिक और पौराणिक ग्रंथों को लिखते समय अपने भोज्यान्नों के प्रश्न की उतनी उपेक्षा

नहीं करते थे, जितनी वर्तमान आहार, सबल और समर्थ भारतवासी कर रहे हैं। उनकी सावधानी का फल उनको मिला। वे अपने समय में ध्रुव, प्रह्लाद और अभिमन्यु जैसे दृढ़प्रतिज्ञ और शूरवीर बालकों को पैदा कर सके। हम लोगों के नामी-गिरामी लोगों तक को अपने भोज्यान्नों की विषमता का ज्ञान ही नहीं हो पाता। जब उसका ज्ञान ही नहीं हो पाता, तब उसे दूर करने की बात तो बहुत दूर की वस्तु है।

अब यहाँ माधुरी के विज्ञ और मननशील पाठकों के विचारार्थ आर्य-साहित्य के ग्रंथों से थोड़े से अवतरण दिए जाते हैं। इन अवतरणों से उन्हें ज्ञान हो जायगा कि आर्यविद्वानों ने, अपने-अपने विषयों के उद्भट विद्वान् होने पर भी, गो-परिपालन की कितनी चिंता की है— उसके लिये कितना आग्रह किया है।

इस समय भारत के पास जो साहित्य वर्तमान है, केवल उसमें ही नहीं, किंतु संसारभर के साहित्य में ऋग्वेद प्राचीनतम माना जाता है। उस समय से भारतीय विद्वान् गोवंश के असामान्य गुणों से परिचित हैं। उसके गुणों और उपकार-परंपरा पर मुग्ध होकर ही वे ईश्वर से कहते हैं—

गौर्मे माता वृषभः पिता मे,
दिवं शर्म जगती मे प्रतिष्ठा।

उक्त मंत्र का भावार्थ यह है कि जिन सात्त्विक भोज्यान्नों और गव्य पदार्थों की सहायता से मैं संसार सुख भोगकर अपने को कल्याण का अधिकारी बना सकता हूँ, वे गौ और बैल की सहायता ही से मिल सकते हैं। अतः गौ मेरी माता है और बैल मेरा पिता है। उन्हींसे मेरी प्रतिष्ठा हो। अर्थात् मुझे बलवान् और मेधावी बनाने के लिये वे मुझे प्रचुर संख्या में मिलते रहें।

यह बात नहीं है कि ऋग्वेद काल के जिन ऋषियों को गौ के उपकारों का ज्ञान हुआ था, उस ज्ञान का उनके उत्तरवर्ती लोगों ने, हम वर्तमान भारतवासियों की नाईं अपमान कर, उसे भुला दिया हो। नहीं, उनके उत्तर-वर्ती ब्राह्मण-कालीन, स्मृति-कालीन और पुराण-कालीन ऋषिगण गोवंश का आदर करते आये हैं।

ऋग्वेद के ऐतरेय ब्राह्मण में लिखा है:—

'आज्यं वै देवानां, सुरभिघृतं मनुष्याणाम्।
आयुतं पितृणां नवनीतं गर्भाणाम्॥

इस मंत्र में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि घी, दूध और मक्खन देवता, मनुष्य, पितर और बालक सबके लिये एकसा हितकर है। अतः उनका पर्याप्त मात्रा और शुद्ध रूप में पैदा करते रहना अत्यन्त आवश्यक है।

स्मृतिकारों में भगवान् मनु शीर्ष-स्थानीय हैं। सात्त्विक भोज्यान्नों तथा गव्य पदार्थों की आवश्यकता के विषय में उनके पूर्ववर्ती विद्वानों ने जो कुछ लिखा था, उसका आदर करते हुए वे अपनी स्मृति के प्रथम अध्याय में लिखते हैं कि श्रम-विभाग के महत्त्वानुसार वैश्यों को गो-परिपालन विशेष रूप से करना चाहिये। यथाः—

पशूनां रक्षणं दानमिज्याध्ययनमेव च।
वणिक्पथं कुसीदं च वैश्यस्य कृषिमेव च॥९०॥

अर्थात् वैश्यों को गवायुर्वेदका अध्ययन कर तदनुसार गो-परिपालन करना चाहिए। गो-परिपालन के लिये जो-जो उपाय अनुकूल और लाभदायक हों, उनके करने में धन ख़र्च करते रहना चाहिए। उसमें कृपणता कभी नहीं करनी चाहिये। गोवंश की सहायता से कृषि द्वारा उत्पन्न किये हुए उद्भिज पदार्थों का वाणिज्य कर तथा ब्याज से धन कमा कर देश को धन-धान्य-संपन्न बनाये रखना ही वैश्यों का प्रधान कर्त्तव्य-कर्म है।

खेद का विषय है कि आजकल के वैश्य मिल और कपड़े आदि की दलाली से जो धन कमाते हैं, उसीको वे अपना परम पुनीत कर्तव्य-कर्म मानते हैं। उस कार्य में उन लोगों ने अपने आपको यहाँ तक मग्न कर रक्खा है कि उन्हें गो-परिपालन की चर्चा सुनना तक नहीं सुहाता। इसे समय की बलिहारी और भारत के खोटे दिनों का कड़आ फल ही मान लेना चाहिए।

श्रम-विभाग के महत्त्वानुसार मनुजी ने जो वर्ण-व्यवस्था की है, और प्रत्येक वर्ण के जो कर्तव्य-कर्म निश्चित किये हैं, उनके सफलतापूर्वक सम्पादन करने के विषय में आप लिखते हैं:—

बुद्धिवृद्धिकराण्याशु धन्यानि च हितानि च।
नित्यं शास्त्राण्यवेक्षेत निगमांश्चैव वैदिकान्॥४।१९॥

अर्थात् प्रत्येक मनुष्य को अपने कर्त्तव्य-कर्म का ज्ञान बढ़ाने तथा उस बढ़े हुए ज्ञान से अपना हित संपन्न करने के लिये जो शास्त्र बनाये गये हैं, उनका उसे सदा अध्ययन करते रहना चाहिये। क्योंकि—

यथा यथा हि पुरुषः शास्त्रं समधिगच्छति ।
तथा तथा विजानाति विज्ञानं चास्य रोचते ॥४।२०॥

ज्यों-ज्यों मनुष्य शास्त्रों के रहस्यों को जानता जाता है, त्यों-त्यों उसे अपने अभीष्ट विषय का विज्ञान प्राप्त होता जाता है और उसके अधिकाधिक प्राप्त करने में उसकी रुचि बढ़ती जाती है।

जिस गो-परिपालन और कृषि के लिये भगवान् मनु ने गवायुर्वेद और कृषि-विज्ञान के निरंतर अध्ययन की आवश्यकता बताई है, उन्हें हम अपने निरक्षर किसानों के हाथ सौंपकर भर-पेट सात्विक भोज्यान्न तथा गव्य पदार्थों को पाने की इच्छा करते हैं। इससे बढ़कर हमारा अज्ञान और अविवेक क्या हो सकता है। कांग्रेस, कौंसिल, भिन्न भिन्न विषयक साहित्य आदि के पीछे पागल बनकर वर्तमान भारतीय जन लाखों और करोड़ों रुपये भले ही फूंक दें, पर जबतक वे अपने जीवनाधार गोधन और कृषि की रक्षा तथा संप्रवृद्धि के हेतु धन खर्च करने में क्लीवता और कृपणता प्रदर्शित करते रहेंगे, तबतक उनका पुनरुत्थान शंका-संपुटित ही रहेगा। यह ध्रुव सत्य है।

गोरक्षा के विषय में उसके पारगामी पंडित मनुजी यहाँ तक लिखते हैं कि अपने अखिल कल्याणों की आदि जननी गौ के दुःखों को जबतक भारतीय सुधी दूर न कर लेवे तबतक वह आत्म-रक्षा न करे। कारण स्पष्ट ही है। आत्म-दुःख से त्राण पाने पर उसे प्राण-प्रतिष्ठक भोज्यान्न नहीं मिलेंगे, तो वह क्या खाकर जियेगा। व्याकरण के सूत्र या काव्यामृत उसकी भूख और प्यास को शांत नहीं कर सकेंगे। उक्त समुचित भावनाओं से प्रभावान्वित होकर मनुजी निम्नलिखित वाक्य में जो कुछ कहते हैं, वह बहुत ही मन्य और हित-प्रद है—

आतुरां मार्गशरतां वा, चोरव्याघ्रादिभिर्भयैः ।
पतितां पङ्कलग्नां वा, सर्वोपायैर्विमोचयेत् ॥
उष्णे वर्षति शीते वा, मारुते वाति वा भृशम् ।
नकुर्वीतात्मनस्त्राणं, गोरकृत्वा तु शक्तितः ॥
११ । ११०, ११

अर्थात गौ यदि रोग से पीड़ित हो, चोर और व्याघ्रादि से भयभीत हो, ऊँचे स्थान से गिर पड़ी हो, कीच में फँस गई हो, ग्रीष्म, वर्षा, और शीत अथवा वात से पीड़ित हो, तो जबतक उसका उक्त दुःखों से उद्धार न किया जाय तबतक कोई आर्य-संतान अपने आपको अपने दुःखों से मुक्त करने की चेष्टा न करे।

मनुजी के समय में, आजकल की नाईं, भीषण गो-वध नहीं किया जाता था। अतः उक्त साधारण दुःखों से गौ की रक्षा करने के लिये आर्य-जन को आत्म-सुख की बलि देने की आज्ञा दी है। वर्तमान समय के शिखा-सूत्रधारी गो-भक्त नित्य सुना और कोई-कोई देखा भी करते हैं कि इस समय भारत में प्रतिवर्ष गो-वंश के लगभग एक करोड़ प्राणियों का वध द्वारा नाश किया जाता है, तो भी उनके कान पर जूं नहीं रेंगती। वे अपने आमोद-प्रमोद में मग्न रह कर गो-कुल की तनिक भी चिंता नहीं करते। उनसे जब गोरक्षा के उचित उपाय गो-साहित्य के प्रचार की चर्चा की जाती है, तब गो-साहित्य के प्रचार को अपमानकारक बताकर उसके वितरण की अनिच्छा प्रकट करते हैं। कोई-कोई धना-भाव का बहाना बनाकर गो-साहित्य के प्रचार से मुँह मोड़ते हैं। लंदन में शिवमंदिर की स्थापना के लिये आधे लाख के दान को प्रतिष्ठाप्रद समझना, कौंसिल-प्रवेश तथा सर और रायबहादुरी आदि थोथी उपाधियों को अमृत समान मानकर उनके ख़रीदने में लाखों रुपया ख़र्च करना जो वर्तमान भारतीय उचित समझते हैं, वे मनुजी की उक्त आज्ञा का उपहास ही करेंगे। वे मनुजी की उक्त आज्ञा का उपहास भले ही करें, पर वह है बहुत सारगर्भित तथा हितप्रद।

खेद का विषय है कि शताब्दियों से परतंत्रता में फँसे हुए भारतवासियों को जिस प्रकार स्वतंत्रता के सुखों का ज्ञान नहीं हो पाता, ठीक उसी प्रकार दीर्घकाल से भूले हुए गवायुर्वेद के महत्त्व का भी ज्ञान उन्हें नहीं हो पाता। ऐसी परिस्थिति में सुधी गोभक्तों को, सधन और साक्षर तथा साधिकार शिखा-सूत्र-धारियों की उपेक्षा से हतोत्साह न होकर, तदर्थ यत्नशील बनेही रहना चाहिये। प्रयत्न करते रहने पर, बहुत संभव है कि, किसी-न-किसी भारतीय सधन के मन में यह बात स्थान पाही जायगी कि भारतीय गोधन का त्राण तभी होगा जब भारतीय शिखा-सूत्र-धारी जनता में गो-परिपालन की शिक्षा का यथेष्ट प्रचार गो-साहित्य तथा आदर्श गोशाला द्वारा किया जायगा।

मनु महाराज के उत्तरवर्ती जिन ऋषियों ने गो-परिपालन का आग्रह किया है, उनकी स्मृतियों से नीचे और भी थोड़े से अवतरण दिये जाते हैं :—

दानमध्ययनं वार्त्ता, यजनं चेति वै विशः ।

अत्रि १ । १५

अर्थात् वैश्य को उचित है कि वह वार्त्ता अर्थात् गो-परिपालन, कृषि और वाणिज्य की रक्षा के लिये सदा शास्त्रों का अध्ययन करता और दान देता रहे ।

अत्रि ऋषि अपनी स्मृति में यह भी लिखते हैं कि जिसके घर एक भी पयस्विनी गौ नहीं होती वह न तो मंगल का ही अधिकारी हो सकता है, और न कल्याण का ही । यथा :—

यस्यैकापि गृहे नास्ति, धेनुर्वत्सानुचारिणी ।
मंगलानि कुतस्तस्य, कुतस्तस्य तमः क्षयः ॥

विष्णु ऋषि अपनी स्मृति में लिखते हैं—

वाणिज्यं कर्षणं चैव गवां च परिपालनम् ।
ब्राह्मणक्षत्रसेवा च वैश्यकर्म्म प्रकीर्त्तितम् ॥

५ । ११६

अर्थात् वैश्यों का यह पुनीत कर्त्तव्य कर्म है कि वे गो-परिपालन, कृषि और वाणिज्य करके देश को सदा हरा-भरा रखा करें । गो-परिपालन और कृषि की उन्नति के उपायों को सीखने तथा उनका प्रचार करने में धन खर्च करते रहा करें ।

गोरक्षां कृषिवाणिज्यं, कुर्याद्वैश्यो यथाविधि ।
दानं देयं यथाशक्त्या, ब्राह्मणानां च भोजनम् ॥

हारीत १ । ६

अर्थात् वैश्य लोग विद्वानों को दान देकर उनसे गो-परिपालन, कृषि और वाणिज्य की शिक्षा पूर्णरूप से प्राप्त कर उन कर्मों को यथाविधि करें । हारीत मुनि का क्रम तथा 'यथाविधि' शब्द का प्रयोग बहुत ही साधु और समीचीन है । उन पर माधुरी के मर्मज्ञ पाठकों को गंभीर-भाव-पूर्वक विचार करना चाहिये ।

लाभकर्म तथा रत्नं, गवां च परिपालनम् ।
कृषिकर्म च वाणिज्यं वैश्यवृत्तिरुदाहृता ॥

पराशर १ । ६८

व्यासजी के पिता पराशरजी कहते हैं कि वैश्यों को सबसे पहले गोवंश का उत्तमतया पालन करना चाहिये । क्योंकि कृषि की सफलता गोवंश की वृद्धि पर ही अवलंबित है । कृषि द्वारा उत्पन्न किये हुए उद्भिज पदार्थों तथा रत्नों का व्यापार करना वैश्य की वृत्ति है ।

पराशरजी और भी आज्ञा देते हैं । वे कहते हैं कि ब्राह्मणों को षट्‌कर्म का अधिकारी बनकर कृषि कराना चाहिये । यथा :—

षट्‌कर्म्मसहितो विप्रः, कृषिकार्य्यं च कारयेत् ।

२ । २

खेद का विषय है कि भारत के वर्तमान विद्वज्जन पराशर मुनि के उक्त उपदेश का अनादर कर अपने हाथों अपने पावों पर कुल्हाड़ी मार रहे हैं । पाश्चात्य जगत के वर्तमान विद्वज्जन पराशर मुनि के उक्त वचन का अक्षर-अक्षर मान सम्मान और आदर कर रहे हैं । पराशर मुनि से नहीं तो पाश्चात्य जगत के आधुनिक विद्वानों से ही भारतीय साक्षर लोगों को आत्महित की शिक्षा ग्रहण करनी चाहिये ।

कृषिगोरक्षवाणिज्यं विशश्च परिकीर्तितम् ।

शंख १ । ४

शंख मुनि कहते हैं कि गो-परिपालन कृषि और वाणिज्य वैश्य के कर्म्म हैं ।

वैश्यस्याधिकं कृषिवणिक्पाशुपाल्यकुसीदम् ।

गौतम १० । ३

वैश्य को ज्ञान प्राप्ति के लिये, अध्ययन और दानादि के सिवा, गोपरिपालन, कृषि, वाणिज्य और देनलेन का व्यापार भी करना चाहिए ।

एतान्येव त्रीणि वैश्यस्य, कृषिर्वाणिज्यं पाशुपाल्यं कुसीदं च ।

वसिष्ठ २ । २३

वैश्य अपने कर्त्तव्य-धर्म्म गो-परिपालन, कृषि, वाणिज्य और व्याज आदि को सुचारु रूप से सपन्न करने के लिये दानाध्ययनादि कर्मों को निरंतर करता रहे ।

अब आगे थोड़े से अवतरण पुराण ग्रंथों से दिये जाते हैं ।

श्रीरामचन्द्रजी जब बन में थे और श्रीभरतजी उन्हें अयोध्या लौटा लाने के अभिप्राय से वहाँ उनके पास गये थे, तब श्रीरामचंद्रजी उनसे पूछते हैं —

कच्चित्ते दयिताः सर्वे, कृषिगोरक्षजीविनः ।
वार्तायां संश्रितस्तात, लोकोऽयं सुखमेधते ॥

अयोध्याकांड

अर्थात् हे तात, प्रजाजनों के सुखार्थ मैंने वार्त्ता अर्थात् गो-परिपालन, कृषि और वाणिज्य की सक्रिय शिक्षा का

जो प्रबंध किया था, वह संपन्न होते रहने के कारण उसपर आजीविका करनेवाला वैश्य समाज तुमसे प्रसन्न तो रहता है ?

श्रीरामचंद्रजी का उक्त प्रश्न इस बात को तारस्वर से घोषित कर रहा है कि भारत के आर्य राजा महाराजा, स्वयं घोर विपत्ति में फँसे रहने पर भी, देश का कल्याण करनेवाली वृत्तियों को—गो-परिपालन, कृषि और वाणिज्य की —कितनी चिंता किया करते थे ।

यही बात महाराज धर्मराज के विषय में भी पाई जाती है—

कच्चिदनुष्ठिता तात, वार्त्ता ते साधुभिर्जन ।

महाभारत

नारदजी महाराज युधिष्ठिर से पूछते हैं—हे तात, तुमने अपने राष्ट्र के लिये सात्त्विक भोज्य पदार्थ पैदा करने का काम जिन देशभक्त वैश्य सज्जनों को दे रक्खा है, वे उसे ज्ञान-बुद्धिपूर्वक संपन्न तो करते रहते हैं ?

एक महाराजा युधिष्ठिर के समय के नारदादि विद्वान थे, जो राजा महाराजाओं से मिलने पर उन्हें गो-परिपालन और कृषि आदि का महत्त्व समझाकर उन्हें तदर्थ उत्साहित करते रहते थे, और एक भारत के वर्तमान नेता और देशी नरेशगण हैं, जो कभी भूलकर भी गोपरिपालन की चिंता नहीं करते । विलायत जाकर कुत्ते पालना और खरीदना सीख आते हैं, पर वहाँ की गो-परिपालन विधि की ओर भूलकर भी ध्यान नहीं देते। यही दशा धनवान वैश्यों की है । वे थोथी गोरक्षा के नाम पर कीर्ति-लोभवश कुछ भले ही दे डालें, पर गो-परिपालन की शिक्षा के प्रचारार्थ उनसे फूटी कौड़ी तक नहीं दी जाती । ऐसे भाव उसी देश के साक्षर और सधन लोगों में पैदा होते हैं, जिसके उत्थान में बहुत विलंब रहा करता है ।

अग्निपुराण में जो राजधर्म वर्णित है, उसमें कहा गया है –

गोविप्रपालनं कार्य्यं, राज्ञा गोशान्तिरेव च ।
गावः पवित्रा माङ्गल्या, गोषु लोकाः प्रतिष्ठिताः ॥
शकृन्मूत्रं परं तासां, अलक्ष्मीनाशनं परम् ।
गवां कण्डूयनं वारि, शृंगस्यार्घावमर्दनम् ॥

अर्थात् जनता को भर-पेट अन्न मिले और उसमें सदा शांति बनी रहे, ऐसी शिक्षा देने की शक्ति जिन विद्वानों तथा कृषि को पूर्ण रूप से सफल करने की शक्ति जिस गोवंश में रहती है, उन दोनों का राजा को बड़ी निपुणता के साथ पालन करते रहना चाहिये । संसार में गौ को छोड़ कर जनता का उपकार करनेवाला ऐसा कोई प्राणी नहीं है, जिसका गोमय और मूत्र तक सात्त्विक भोज्यान्नों की उपज बढ़ाने में अद्वितीय है । यही कारण है कि संसार के विद्वान्मात्र गौ को पवित्र और मंगल की खानि मानकर उसकी सेवा करना उचित और आवश्यक मानते हैं ।

गौ की जिस उपयोगिता का संक्षिप्त वर्णन अग्निपुराण में उक्त प्रकार किया गया है, उसका वर्णन महाभारत के अनुशासन पर्व्व में निम्नलिखित प्रकार से, कुछ विस्तार के साथ, किया गया है —

यज्ञाङ्गं कथिता गावो यज्ञ एव च वासव,
एताभिश्च विना यज्ञो, न वर्तेत कथंचन ॥
धारयन्ति प्रजाश्चैव पयसा हविषा तथा,
एतासां तनयाश्चापि कृषियोगमुपासते ॥
जनयन्ति च धान्यानि बीजानि विविधानि च,
ततो यज्ञाः प्रवर्तन्ते, हव्यं कव्यं च सर्वशः ॥

८३ । १७–१९

पयसा हविषा दध्ना शकृता चाथ चर्मणा ।
अस्थिभिश्चोपकुर्वन्ति शृंगैर्वालैश्च भारत ॥

६६ । ३८

भीष्म पितामह इंद्र से कहते हैं कि हे इंद्र, गौएँ यज्ञों का—मनुष्यों के समस्त कर्त्तव्य कर्मों का—अंग ही नहीं किंतु साक्षात् कर्त्तव्य-धर्म ही है । क्योंकि इनकी सहायता बिना मनुष्य का न तो कोई देवकार्य ही हो सकता है और न पितर कार्य ही—पारलौकिक कार्य ही हो सकता है और न ऐहिक कार्य ही । ऐहिक और पारलौकिक कार्यों के संपादनार्थ मनुष्यों को जिस शारीरिक और आत्मिक बल की अत्यंत आवश्यकता होती है, वे बल नाना प्रकार के धान्य और बीज स्वरूप भोज्यान्नों तथा गव्य पदार्थों पर अवलंबित रहते हैं, उन्हें ये गौएँ और इनके पुत्र कृषि द्वारा पैदा किया करते हैं । इतना ही नहीं, किंतु गोवंश के प्राणी मर जाने पर भी अपने चमड़े से मनुष्यों के पावों की तथा सींगों और हड्डियों आदि से धरती की उर्वरा शक्ति की रक्षा और वृद्धि करते रहते हैं ।

तात्पर्य गोरक्षा के उक्त लाभ तथा अन्यान्य अगणित उपकारों के मर्मों को जान और समझकर ही भारत के प्राचीन आर्य्य विद्वानों ने उसके परिपालन और संरक्षण का आग्रह किया है। भारत के प्राचीन आर्य्य विद्वानों का निम्नलिखित कथन अक्षर-अक्षर सत्य है—

यावद् गावाब्राह्मणाः सन्ति तावत् पृथ्वी च सुस्थिरा।
तस्मात् पृथ्वीरक्षणार्थं, पूजयेत् द्विजगोसती॥
विप्रो गावो ब्राह्मणाश्च, पृथिव्या मंगलत्रयम्।
एतेषां दूषकश्चास्तु स मंगलपरिच्युतः॥

अर्थात् कोई देश तभीतक समुन्नत रह सकता है जब-तक उसके विद्वानों तथा गोधन का यथेष्टरूप से परिपालन और संरक्षण किया जाता हो। अतः जो लोग आत्मोन्नति के प्रेमी हैं, उन्हें उचित है कि वे अपने देश के विद्वानों तथा कल्याणी गौ के वंश की रक्षा में सदा तत्पर रहा करें। इस संसार में कल्याणी गौ, स्त्री, और इन दोनों की पर्य्याप्त रक्षा के लिये उचित उपदेश देनेवाले विद्वज्जन—ये ही तीन मंगलों के आदि कारण हैं। जिस देश के लोग उक्त तीनों की सावधानीपूर्वक रक्षा और वृद्धि करते रहते हैं, वे ही उन्नत होकर सुख समाधान का उपभोग करते हैं। जो लोग उनसे विमुख और पराङ्मुख रहा करते हैं, वे उन्नति की छाया तक नहीं पासकते : तो फिर उसके उपभोक्ता बनना तो दूर की वस्तु है।

यहाँ तक ऊपर अति संक्षेप में जो कुछ लिखा गया है, उससे स्पष्टतया जाना जाता है कि प्राचीन भारत के ब्रह्मविद्या-पारंगत, राजनीति-विशारद तथा अन्यान्य विषयों के धुरंधर पण्डित भारतीय गोधन की कितनी चिंता किया करते थे। उनकी तुलना में वर्तमान भारतीय अपने गोधन की बिंदुमात्र भी चिंता नहीं करते। जिन थोड़े से लोगों का ध्यान गोरक्षा की ओर यदा-कदा चला जाता है, वे अविवेकी लोगों द्वारा विकलांग और विकृत कर तजे हुए गोकुल के प्राणियों की प्राणरक्षा में ही अपनी धार्मिकता और धन खर्च करते रहते हैं। उनकी इस गो-सेवा से गोवध का स्रोत बिंदुमात्र भी बंद नहीं हो सकता। उलटे उसका क्षेत्र दिनोंदिन बढ़ता जाता है। आजकल समूचे भारत के गोभक्त गोरक्षा के नाम पर प्रतिवर्ष पंद्रह-बीस लाख रुपये ख़र्च करते रहते हैं, तब भी भारत में इस समय प्रतिवर्ष गोवंश के लग-भग एक करोड़ प्राणियों का केवल वध द्वारा नाश किया जाता है। परिपालन के अनौचित्य के कारण जिन प्राणियों को असमय में ही काल के गाल में जाना पड़ता है, उनकी भीषण संख्या उक्त संख्या से अलग है।

भारत में इस समय जो थोड़े से सधन कीर्तिलोलुप गोभक्त हैं, वे अवसर पाते ही सरकार से कहने लगते हैं कि सरकार क़ानून बनाकर गोवध बंद करे और गोवंश के चरने के लिये गोचरभूमि को कर-मुक्त करे। बस, इतनी चिल्लाहट के साथ वे अपनी गोभक्ति की इतिश्री कर देते हैं। भारत के सधन गोभक्तगण उक्त पुकार के साथ-साथ भारत की शिक्षा सूत्रधारी जनता में गवायुर्वेद-मूलक गो-परिपालन की शिक्षा का प्रचार आरंभ कर देवें और साथ-ही-साथ वर्तमान गोशालाओं को आदर्श गोशालाएँ बना देवें, तो भारतीय गोधन की रक्षा का श्रीगणेश होसकता है, और उसके साथ भारत के पुनरुद्धार का भी श्रीगणेश हो सकता है। इसके विपरीत सब ढकोसला ही है।

माधुरी के विवेकी और विज्ञ पाठकों में से एक सज्जन का भी ध्यान गो-परिपालन की शिक्षा के प्रचार द्वारा भारतीय गोधन की रक्षा और संप्रवृद्धि की ओर, इस लेख के पाठ से, जायगा तो मैं अपने परिश्रम को सफल मान लूँगा।

गंगाप्रसाद अग्निहोत्री

राठौर राजवंश

(आषाढ़ की संख्या से आगे)

मोघवर्ष का पुत्र १२—कृष्णराज (दूसरा) अपने पिता के जीवन-काल में वि०सं० ६३२ के पूर्व राज्य करने लगा था। इसका विरुद "अकालवर्ष" था, और इसने गंगातट तक के देशों पर चढ़ाइयाँ की थीं। इसका विवाह चेदीदेश के "हैहय" (कलचुरि) वंशी राजा कोकल की पुत्री महादेवी से हुआ था। यह

इसके मामा की लड़की थी[१]। इससे अनतुंग नामक पुत्र हुआ था। इस अनतुंग का विवाह हैहयवंशी राजा कोकल्ल के पुत्र रणविग्रह की पुत्री लक्ष्मी से हुआ था। परंतु अनतुंग का देहांत कृष्णराज के सामने ही होगया था। कृष्णराज के समकालीन इब्न खुर्दाद ने हिजरी सन् ३०० (वि० सं० ९६९=ई० स० ९१२) के क़रीब अपनी पुस्तक "किताबुलमसालिक वउलममालिक" में लिखा है कि—"हिंदुस्तान में सबसे बड़ा राजा बल्लहरा है। इसकी अँगूठी पर यह खुदा हुआ रहता है कि—'जो काम दृढ़ता से शुरू किया जाता है। उससे कामयाबी होती है।'"

कृष्णराज के पुत्र जगतुंग का देहांत उसके (कृष्णराज के) समय में ही हो गया था। इसलिये जगतुंग का पुत्र १३—इंद्रराज (तीसरा) अपने दादा (कृष्णराज) के पश्चात् शायद वि० सं० ९७० में गद्दी पर बैठा। इसने कन्नौज के परिहार राजा महीपाल (क्षितिपाल) से उसकी राजधानी कन्नौज छीन ली थी। परंतु कुछ समय के बाद महीपाल पुनः कन्नौज का राजा बन गया था। इंद्रराज का विवाह हैहय-वंशी राजा कोकल्लदेव के पौत्र और अर्जुन के पुत्र अम्मण की कन्या विजांबा से हुआ था। यह बड़ा दानी था। इसके वि० सं० ९७१ (= ई० स० ९१४) के ताम्रपत्र में इनका चंद्रवंशी यादव सात्यकी के वंश में होना लिखा है, परंतु विद्वानों का अनुमान है कि वास्तव में ये लोग सूर्यवंशी ही थे। भावनगर (काठियावाड़) के गोहिलों (गहलोतों) की तरह गुजरात के संबंध के कारण इन पर वैष्णव मत का प्रभाव पड़ गया। इंद्रराज (तृतीय) के बाद उसके पुत्र १४—अमोघवर्ष (दूसरा) के हाथ राज्य की बागडोर आई। उसने वि० सं० ९७३ के क़रीब केवल एक वर्ष राज्य किया। पश्चात् उसका उत्तराधिकारी उसका भाई १५—गोविंदराज (चौथा) हुआ। इसने

अपने सं० ९९० वि० (ई० स० ९३३) के दान-पत्र में अपने को चंद्रवंशी अथवा यादवों की एक शाखा में होना प्रकट किया है—"वंशः सोमांत्रयस्त्रिभुवनकमलाग्राह-सौधाद्रुपेतः। वंशो बभूव भुवि सिंधुनिभो यदूनाम्।" खारेपाटन और वर्धा के ताम्र-पत्रों से पाया जाता है कि यह राजा बड़ा बदचलन और अय्याश था। इससे वह सं० ९९४ के लगभग शीघ्र ही मर गया। इसके बाद इंद्रराज (तीसरे) का भाई १६—बद्दीग (अमोघवर्ष तीसरा) राज्य का स्वामी हुआ। इसका विवाह हैहय-वंशी राजा युवराज की बेटी कुंदकदेवी से हुआ था, जिससे ४ राजकुमार—कृष्णराज, जगत्तुंग, खोटिग और निरुपम हुए। ज्येष्ठ पुत्र १७—कृष्णराज (तीसरा) बड़ा पराक्रमी हुआ था। इसने कई लड़ाइयाँ लड़ी थीं। हिमा-

मारवाड़ का एक राठौर राजपूत

लय से लंका तक के और पूर्वी समुद्र से पश्चिमी समुद्र तक के राजा इसके मातहत थे। इसका राज्य गंगा की सीमा को भी पार कर गया था। तक्कोल की लड़ाई में

-Indian Antiquary Vol XII, Page 249

१—जिस प्रकार अर्जुन का विवाह अपने मामा वसुदेव की कन्या सुभद्रा से, प्रद्युम्न का राजा रुक्म की पुत्री से और अनिरुद्ध का रुक्म की पौत्री से हुआ था, उसी प्रकार दक्षिण के राठौरों में यहाँ भी कई विवाह मामा की लड़कियों के साथ हुए थे। दक्षिण, गुजरात और काठियावाड़ में अब-तक चारों वर्णों में यह प्रथा प्रचलित है, परंतु उत्तर भारत में यह बुरी समझी जाती है।

चोल के राजा राजादित्य को मार कर इसने बड़ा नाम कमाया था, और चेदी देश के राजा सहस्रार्जुन को भी जीता था। इसके समय के शिलालेख आदि वि० सं० ६६७ से सं० १०१८ तक के मिले हैं। इसके वि० सं० १०१४ के करडागांव वाले ताम्रपत्र (दान-पत्र) में लिखा है कि यादव वंश में रट्ट नाम का राजा हुआ। उसके पुत्र राष्ट्रकूट के नाम से यह वंश राष्ट्रकूट प्रसिद्ध हुआ[१]। इसके समकालीन अलमसऊदी ने हिजरी सन ३३२ (वि० सं० १००१ = ई० स० ६४४) में "मुरजुल-अहब" नामक ग्रंथ लिखा है। उसमें वह लिखता है कि—"इस समय हिंदुस्तान के राजाओं में सबसे बड़ा और प्रतापी मानकेट (मान्यखेट) नगर का राजा बल्लहरा (राठौड़) है। बहुत से राजा इसे अपना सरदार मानते हैं। उसके पास बड़ी भारी सेना है, जिसमें हाथी भी बहुत से हैं, किंतु पैदल अधिक हैं, क्योंकि उसकी राजधानी पहाड़ों में है। उसके यहाँ की भाषा कीराया (कनाड़ी) है[२]।

कृष्णराज (तीसरा) के बाद उसके छोटे भाई १८—खोट्टिग ने राज्यभार ग्रहण किया था, परंतु मालवा के परमार राजा श्रीहर्ष (सीयक) ने वि० सं० १०२६ (ई० स० ६७२) में उसको हटाकर उसकी राजधानी मान्यखेट को लूटा। इसी युद्ध में खोट्टिग काम आया। इसके बाद इसका भतीजा १९—कर्कराज दूसरा (अमोघ-वर्ष चौथा) गद्दी पर बैठा। पर इससे वि० सं० १०३० (ई० स० ६७३) में सोलंकी राजा तैलप ने राज्य छीन लिया। इस प्रकार दक्षिण में राठौड़ों का महाप्रतापी साम्राज्य नष्ट होगया और उनकी छोटी शाखाओं की जो जागीरें कायम हुई थीं, वे चालुक्यों (सोलंकियों) के मातहत होकर बनी रहीं। कुछ शाखाएँ इसके पहले से गुजरात, मध्यप्रांत, मालवा, हस्तुंडी (मारवाड़ में) और कन्नौज आदि की तरफ चली गई थीं, और उन्होंने उधर छोटे बड़े राज्य जमा लिये थे।

दक्षिण से चलकर राष्ट्रकूटों ने कन्नौज में कुछ समय तक निवास किया। करीब ६० वर्ष के बाद राष्ट्रकूटों की गहड़वाल (गहरवार) शाखा के चंद्रदेव ने कन्नौज में अपना राज्य स्थापित किया। इन गहड़वालों के करीब ६० ताम्रपत्र मिले हैं। इनमें इनको सूर्यवंशी और गहड़-वाल लिखा है। राठौड़ या रट्ट शब्द का प्रयोग इन किसी में भी नहीं किया गया। इस कारण कुछ लोग ऐसी शंका करते हैं कि जोधपुर के राठौड़ राजा अपने को कन्नौज के गहरवार राजा जयचंद के वंशज बतलाते हैं। इसी कारण कन्नौज के गहड़वालों को भी राठौड़ मान लिया गया है। किंतु ऐसी बात नहीं है। क्योंकि, यदि खोज की जाय तो, राठौड़ और गहड़वालों के एक होने के प्रमाण मिल सकते हैं। कन्नौज विजय करने-वाले गहड़वाल राजा चंद्रदेव के बाद उसका ज्येष्ठ पुत्र मदन-पाल तो कन्नौज का स्वामी हुआ और छोटे पुत्र विग्रहपाल को कन्नौज के निकट ही बदायूँ की जागीर मिली। इस विग्रह-पाल के वंशजों की वंशावली का शिलालेख बदायूँ के पुराने किले के दक्षिणी दरवाज़े के खंडहर से मिला है। उसमें कन्नौज के प्रथम राजा चंद्रदेव से लगाकर लाखणपाल तक की वंशावली है, और इसमें राष्ट्रकूट लिखा है। इससे स्पष्ट है कि जिस प्रकार एक ही वंश के होने पर भी गुहिल और सिसोदिया, हाड़ा, देवड़ा, खीची और चौहान, यादव और भाटी अलग २ नामों से प्रसिद्ध हैं उसी प्रकार राठौड़ और गहड़वाल भी एक ही हैं, परंतु शाखा-भेद से भिन्न भिन्न नामों से पुकारे जाते हैं। अर्थात् गहड़वाल राठौड़ों की एक शाखा है। उत्तर भारत में आज भी जो गहड़वाल हैं, वे अपने को राठौड़ बतलाते हैं। यही नहीं, राठौड़ों से विवाह नहीं करते। इसके सिवाय जिला मिर्जापुर के मांडा और विजयपुर के राजा—जो कन्नौज के गहड़वाल महाराजा जयचंद्र के भाई माणिक-चंद्र के वंशज हैं—वे अपने को राठौड़ वंश से बतलाते हैं। इस प्रकार कन्नौज से निकले हुए राजपूतों में से कोई अपने को राठौड़ बतलाते हैं, कोई गहड़वाल। इसका कारण यह है कि यह दोनों एकही वंश के हैं।

ऊपर दक्षिण के राष्ट्रकूटों के वृत्तांत में हम लिख आये हैं कि ध्रुवराज ने वि० सं० ८४० और ८५० के बीच प्रयाग में उत्तरकोशल (अयोध्या) तक अपना शासन फैला दिया था। कृष्णराज दूसरे का राज्य (वि० सं० ६३५—६६८) गंगातट तक था। और कृष्णराज तीसरे ने (सं० ६६७—१०१६) गंगातट से भी परे अपने राज्य की सीमा बढ़ा दी थी। इससे संभव है कि वि० सं० ८४० और १०१६ के बीच दक्षिण के राष्ट्रकूटों

१—Epigraphia Indica Vol IV, Page 281

२—History of India (Sir H. Elliot) Vol I P. 24

से से किसी के कनिष्ठ पुत्र को गंगातट की ओर का प्रांत अधिकार में मिला हो और उसके वंश में कन्नौज-विजेता चन्द्रदेव हुए हों और उसी घराने में गहड़वाल शाखा भी चली हो।

कन्नौज विजेता चन्द्रदेव (चन्द्रादित्य) के वि० सं० ११४८ के चन्द्रावती में मिले ताम्रपत्र में लिखा है कि "अनेक सूर्य-वंशी राजाओं के स्वर्ग चले जाने बाद साक्षात् सूर्य समान तेजस्वी और उदार १—यशोविग्रह नामक राजा हुआ। यशोविग्रह का पुत्र यशस्वी २ महीचन्द्र हुआ। इसका दूसरा नाम महितल या महियाल भी था। यशोविग्रह और महीचन्द्र कन्नौज के राज सिंहासन पर नहीं बैठे। महीचन्द्र का पुत्र ३ चन्द्रदेव ही अपनी भुजाओं के बल से पड़िहारों से कन्नौज छीन वहाँ का राजा हुआ। वि० सं० ११३० के लगभग यह कन्नौज के राज सिंहासन पर बैठा होगा। काशी, इन्द्रप्रस्थ, अयोध्या और पांचाल देश इसके अधिकार में थे। वि० सं० ११५४ के एक ताम्रपत्र से ज्ञात होता है कि इसने अपने जीवन काल में ही अपने बड़े पुत्र ४ मदनपाल को राज्याधिकार सौंप दिया था। इसके दूसरे पुत्र का नाम विग्रहपाल था जिससे बनारस की शाखा चली। मदनपाल बड़ा विद्वान् था और उसे महाराजाधिराज की उपाधि प्राप्त थी। मदन विनोद निघंटु नामक ग्रंथ इसने बनाया था। इसके चाँदी और सोने के सिक्के मिले हैं।

मदनपाल देव और गोविन्दचन्द्र देव के सिक्के

मदनपाल का बड़ा पुत्र ५ गोविन्दचन्द्र उसके पीछे उसका उत्तराधिकारी हुआ। यह शायद वि० सं० ११६६ में गद्दी पर बैठा होगा। इसके सोने और ताँबे के सिक्के मिले हैं।

इसकी उपाधि "विविध विद्या विचार वाचस्पति" थी। इसके समय में मुसलमान लोग लाहौर तक आ पहुँचे थे और वहाँ से दक्षिण की ओर बढ़ने का प्रयत्न कर रहे थे। इसलिये गोविन्दचन्द्र को इनके विरुद्ध शस्त्र उठाने पड़े। गोविन्दचन्द्र का उत्तराधिकारी ६ विजयचन्द्र भी बड़ा पराक्रमी था। इसको मल्लदेव भी कहते थे। इसकी रानी का नाम चन्द्रलेखा था। यह राजा परम वैष्णव था और इसने विष्णु के कई मंदिर बनवाए थे। इसने गज़नी के म्लेच्छों को कई बार परास्त किया था। सं० १२२४ के इसके ताम्रपत्र से ज्ञात होता है कि वृद्धावस्था में इसने अपने पुत्र जयचन्द्र को युवराज बना दिया था।

कन्नौजपति महाराजा जयचन्द्र गहड़वार

७ महाराजा जयचंद्र का राज्याभिषेक वि० सं० १२२६ के आषाढ़ सुदि ६ रविवार (२१ जून ११७० ई०) को हुआ था। इसके पास सेना बहुत थी। प्रसिद्ध

१—Epigraphia Indica, Vol. [illegible], P. [illegible]

ग्राहकों के आर्डरों की भरमार !
बड़ी सजधज से !
अमूल्य सामग्री लेकर !!
हिन्दी पत्रिकाओं में अभूतपूर्व
'माधुरी' का विशेषांक
प्रकाशित होगया ।
पृष्ठ संख्या २१६—नयनाभिराम ६ तिरंगे चित्र,
आर्ट पेपर पर छपी हुई कविताएँ और हस्तलिपियाँ ।
विशेषांक पर विद्वानों की सम्मतियाँ भी अगले पेजों में पढ़िए ।
धुरंधर विद्वानों के लेख और कविताएँ—सफ़ाई-छपाई-गठन दर्शनीय ।
विशेषांक का मूल्य केवल एक रुपया ।
शीघ्रता कीजिए !
तुरंत ग्राहक बनिए !!
केवल ८०० प्रतियां शेष हैं ।
कहीं दूसरे संस्करण का इंतिज़ार न करना पड़े ?
अस्तु, आज ही १) भेजकर मँगाइए
या—६॥) भेज कर एक वर्ष के ग्राहक बनकर मुफ़्त लीजिए ।
इस मास बाद हम एक कापी भी न दे सकेंगे ।
प्रेमी पाठकों और ग्राहकों की राय—
[अबतक रोज़ाना आए हुए लगभग १५०० पत्रों का सार]
"ऐसा सर्वांग सुंदर और इतना सस्ता विशेषांक आज तक किसी हिन्दी पत्रिका ने नहीं निकाला ।
"बालक-वृद्ध, स्त्री-पुरुष सभी के योग्य उपयुक्त सामग्री है—
सभी आवश्यक विषय मौजूद हैं ।
"माधुरी' लेकर दूसरी पत्रिका लेने की ज़रूरत नहीं रहती । विशेषांक से ग्राहक बना लीजिए ।"
निवेदक, मैनेजर—माधुरी, लखनऊ ।

डा० विश्वम्भरसिंह जी रईस, वाइस चेयरमैन डि०-बोर्ड कानपुर—

'माधुरी' का विशेषांक मिला। लेख और विषय अप-टु-डेट, छपाई-काग़ज़ उत्तम, रमणीय चित्र, उपयोगी नोट तथा कौशलपूर्ण संपादन आदि सभी बातें दर्शनीय हैं—कुछ नवीन स्तंभों का समावेश अत्यंत सराहनीय है। मुख-पृष्ठ का चित्र माधुर्यता का द्योतक है। चारों ओर मधुरता बरस रही है। मैं 'माधुरी' की मुक्तकंठ से प्रशंसा करता हूँ और उसकी हृदय से उन्नति चाहता हूँ। 'माधुरी, हिंदी पत्रिकाओं की महारानी है।

कविवर 'नागा' —

> विविध विषय पूर्णा ज्ञान-उन्मेष-कारी, अतिशय हर्षकारी, चित्र-माला-समेता।—
> अमित-मधुरता-की खानि धारा सुधा की, सकल-हृदय-रानी— 'माधुरी' आज आई॥ १॥
> अलिगन हृद मोही पाठकों के मनों की, तम-अमित हटाती, ज्ञान की रश्मियों-सी—
> आनि चित बहलाती स्वर्ग की सुंदरी-सी, अननि-चरण-सेती—'माधुरी' आज आई॥ २॥

प० आह्लादनजी ठाकुर, एम० ए०

आज 'माधुरी' के विशेषाङ्क के दर्शन हुए। उसे देखकर चित्त में जो आह्लाद हुआ है उसका वर्णन करना लेखनी की शक्ति के बाहर है। वास्तव में यह अङ्क मातृ भाषा-हिन्दी का मुख उज्ज्वल करेगा। हिन्दी संसार में यह सर्वथा अभूतपूर्व वस्तु है। छपाई सफ़ाई काग़ज़ आदि तो अत्यन्त मनोमोहक हैं ही, लेख, चित्र कविताओं का चुनाव भी सर्वथा आप लोगों के अनुरूप ही हुआ है। इसके लिये हम हृदय से आप लोगों की भूरि भूरि सराहना करते हैं और आप लोगों के इस नवीन पथ प्रदर्शित करने के लिये अभिनन्दन करते हैं। यथार्थ में इसकी प्रशंसा शब्दों में करना इसका अपमान होगा, क्योंकि शब्दों में इतनी सामर्थ्य नहीं है कि उसके यथार्थ स्वरूप का वर्णन कर सके। इसलिये, हम केवल आनन्दोन्मग्न होकर मौनावलम्बन करना ही उचित समझते हैं।

पं० रामनारायण मिश्र, एम० एस-सी० (असि० प्रोफ़ेसर, एग्रीकल्चरल कॉलेज) नागपुर—

माधुरी के विशेषांक के लिये अनेक धन्यवाद। माधुरी अपने पिछले पाँच वर्षों में इतने ठाट-बाट, इतनी शानो-शौकत और इतने लोचनाभिराम सौंदर्य से युक्त होकर कभी प्रकट नहीं हुई थी। आवरण-पृष्ठ पर छपा हुआ सुनहला चित्र अध्ययन, संगीत, पूजन, व्यायाम और वात्सल्य के आदर्शों को सम्मुख रखता है। इतने अधिक रंगीन चित्रों, विज्ञतापूर्ण लेखों और सरस भावमयी कविताओं का एकीकरण शायद ही किसी भारतीय भाषा की, किसी पत्रिका में, कभी हुआ हो। इस अंक में कई नवीनताएँ नज़र आ रही हैं। इस अंक में कई नवीन स्तंभों का समावेश है। इतना सब होते हुए भी मूल्य केवल एक रुपया...धन्य है! मैं माधुरी कार्यालय को और विशेषतः कुशल सम्पादकों को ऐसा सर्वांगपूर्ण बढ़िया अंक निकालने के लिये बधाई देता हूँ। यह अनवरत परिश्रम, धनव्यय और अदृढ़ अध्यवसाय का ही परिणाम हो सकता है।

B. Ram Ganesh Prasad B A., LL.B. (Vakil High Court), Rupkalakunj, Ayodhya —

Thanks for the special number. It is really a valuable fervour. Its contents are worth Visheshank and printing, paper, get-up etc. are remarkably good.......

Babu Awadh Kishore Sahai Varma, M A. (Ben.), B. E. D. (Pat.), Ranchi —

I have the honour to convey my heartfelt gratitude for your special issue, which is really very charming and instructive.

नोट—समयाभाव के कारण इस अंक में थोड़ी ही सम्मतियाँ दी जा सकी हैं। अगले अंक में हम अन्य महानुभावों की राय प्रकाशित करेंगे।

निवेदक—व्यवस्थापक 'माधुरी' लखनऊ।

काव्य "नैषधीय-चरित" का कर्ता कवि श्रीहर्ष उसकी राज-सभा का रत्न था। इसने कई क़िले बनवाए थे। इनमें से एक तो कन्नौज में, दूसरा इटावा ज़िले के आसई क़स्बे में, और तीसरा गंगा के किनारे कुर्रा में था। कुर्रा के किले पर मुसलमानों और जयचंद्र के बीच घोर युद्ध हुआ था, जिसमें कई मुसलमान सरदार मारे गए। इस स्थान पर अब भी कई मुसलमान सरदारों की क़ब्रें इस घटना का परिचय दे रही हैं। ख़ास इटावे में जमुना के किनारे एक टीले पर कुछ खँडहर हैं, जिन्हें वहाँ वाले जयचंद्र के क़िले का बचा अंश बतलाते हैं।

जयचंद्र में ईर्षा की मात्रा कुछ अधिक थी। इससे दिल्ली के महाराजा पृथ्वीराज चौहान और इसमें अनबन रहती थी, जो दिनोंदिन बढ़ती ही गई। वि० सं० १२३[illegible] में जयचंद्र गहड़वाल ने "राजसूय यज्ञ" किया और उसके साथ ही अपनी कन्या संयोगिता के स्वयंवर विवाह की तैयारी की। दूर-दूर के राजाओं को निमंत्रित करके बुलाया पर दिल्लीपति पृथ्वीराज चौहान ([illegible]) का अपमान करने को उसकी एक मूर्ति बनवाकर मंडप के द्वार पर खड़ी कर दी। संभव है इसमें कुछ रहस्य भी हो। पृथ्वीराज संयोगिता से विवाह करना चाहता था और संयोगिता भी उसकी वीरता आदि गुणों पर मोहित थी। चौहानराज को जब यह हाल मालूम हुआ, तो वह बड़ा क्रुद्ध हुआ, और स्वयंवर के दिन घोड़े पर सवार होकर थोड़ी-सी सेना सहित रंगभूमि में जा पहुँचा। इसके बाद पृथ्वीराज का संयोगिता को लेकर भागना और जयचंद्र का, बदला लेने के लिये शहाबुद्दीन ग़ोरी को न्योता देना, इतिहास की मामूली बात है। फिर जयचंद्र की भी बारी आई और मुसलमानों ने उसका भी सर्वनाश कर डाला।* इस आपस की फूट का फल यह हुआ कि उस समय के भारत के प्रतापी और समृद्धिशाली दोनों राज्य नष्ट हुए और हिंदुओं के देश में मुसलमानों का झंडा फहराने लगा।

जयचंद्र के इस प्रकार काम आजाने पर उसका ज्येष्ठ पुत्र हरिश्चंद्र १८ वर्ष की आयु में वि० सं० १२५० में कन्नौज के राजसिंहासन पर बैठा। यद्यपि कन्नौज मुसलमानों द्वारा लुट चुका था और उसका प्रभाव घट गया था, तथापि वहाँ का राज्य बहुत [illegible] ३३ वर्ष तक जयचंद्र के वंश में बना रहा था। यह "ताजुल मआसिर" आदि फ़ारसी तवारीखों से साफ़ ज्ञात होता है। यही नहीं, वि० सं० १२५३ के पौष सुदि १५ के एक दान-पत्र में हरिश्चंद्र की उपाधियाँ उसके पूर्वजों के समान ही "परमभट्टारक, महाराजाधिराज परमेश्वर परममाहेश्वर, अश्वपति, गजपति नरपति राजत्रयाधिपति विविध विद्या विचार वाचस्पति" लिखी हैं। इस हरिश्चंद्र के

राव संतरामजी राठौर

* [illegible] पर [illegible] । [illegible] यह कहा जाता [illegible] एक सुंदर [illegible] पर [illegible] थी। [illegible] अपना पासवान [illegible] महाराजा से [illegible] पर [illegible] माता ने [illegible] मुसलमान बनाना चाहा। परंतु महाराजा ने स्वीकार नहीं किया। इस पर पासवान [illegible] ने [illegible] (पंजाब) को और अपने [illegible], जो मुसलमानों की [illegible] लाए। [illegible] पहली [illegible] जयचंद्र ने [illegible] दिया। परंतु दूसरी बार (वि० सं० १२५० में) वह मारा गया।

दूसरे उपनाम हर्ष, प्रहस्त, और बरदाईसेन भी मिलते हैं। वि० सं० १२८३ (ई० स० १२२६) के क़रीब, जब कन्नौज पर बादशाह शम्सुद्दीन अलतमश ने चढ़ाई कर क़ब्ज़ा कर लिया, तब हरिश्चंद्र ने अपने कुटुबवालों को साथ लेकर फ़र्रुख़ाबाद ज़िले के गाँव "महुई" में डेरा डाला। महाराजा हरिश्चंद्र के एक कुमार का नाम "सेतराम" था, जो शायद छोटा पुत्र था। सेतराम का ही पुत्र सीहा था[1]। इसने वहाँ पर काली नदी के तट पर एक क़िला बनवाया था, जो आज खँडहर के रूप में मौजूद है। कुछ समय बाद फ़र्रुख़ाबाद ज़िले पर भी मुसलमानों का क़ब्ज़ा हो गया। तब सीहाजी ने उस स्थान को छोड़ दिया और द्वारिका (गुजरात) की ओर अपने दल-बल सहित चल दिये। मार्ग में जब वह पुष्कर तीर्थ पर ठहरे हुए थे, तब वहाँ पर तीर्थयात्रा को आये हुए भीनमाल (अब मारवाड़ में) के ब्राह्मणों से इनकी भेट हुई। उन दिनों अकसर मुलतान के मुसलमान भीनमाल पर चढ़ाई कर लूट-खसोट किया करते थे[2]। इसलिये सीहाजी को दल-बल सहित देख कर इन ब्राह्मणों ने उनसे सहायता माँगी। सीहाजी ने स्वीकार कर भीनमाल में पहुँचकर मुसलमानों को मार भगाया। इस विषय का यह दोहा मारवाड़ में प्रसिद्ध है—

भीनमाल लीधी भड़े, सीहे सेल बजाय।
दत दीधो सत संग्रह्यो, ओ जस कदे न जाय॥

अर्थात्—सीहाजी ने तलवार के ज़ोर से भीनमाल पर अधिकार कर उसे ब्राह्मणों को दान में दे जो पुण्य का संचय किया है, उनका यह यश सदा संसार में अमर रहेगा।

भीनमाल से सीहाजी द्वारिका गये और तीर्थयात्रा से लौटते हुए कुछ दिन अनहिलवाड़ा पट्टन में ठहरे। ख्यातों में लिखा है कि वहाँ सीहाजी ने सोलंकी राजा मूलराज की बेटी से शादी की। किंतु यह संभव नहीं, क्योंकि मूलराज वि० सं० ९९८ (ई० स० ९४१) में अनहिलवाड़ा पट्टन की गद्दी पर बैठा और वि० सं० १०५२ में मर गया। और सीहाजी जयचंद्र गहड़वाल से ४थी पीढ़ी में था। जयचंद्र वि० सं० १२५० में मरा, तो जयचंद्र से २०० वर्ष पहले मूलराज का समय होता

राव सीहाजी राठौर

१—सीतामऊ राज्य (मालवा) के मुरारि कविलालजी ने एक सोरठा लिखा है, जिसमें राव सेतराम के दो पुत्र बतलाये गये हैं—

वीर अर्जुन, कमधज सेतराम सुत दो भये।
सियोजी मरुधर देश वनराज दक्खिन गया॥

अर्थात् कीर्तियुक्त राठौड़पति सेतराम के दो पुत्र हुए जिनमें से सियोजी (सीहाजी) तो मारवाड़ देश में गए, जिनके वंश में जोधपुर, बीकानेर, ईडर, सीतामऊ, रतलाम आदि राज्य हैं, और दूसरे पुत्र वनराज, जो दक्षिण में गये, जिनके वंशधर [illegible] और बाद में होल [illegible] में वास करने से होलकर कहलाये।

२—इन मुसलमानों की चढ़ाइयों से तंग आकर ही यहाँ के पुष्करणा और श्रीमाली ब्राह्मण यहाँ से चलकर मारवाड़, जैसलमेर, बीकानेर और गुजरात की ओर गये थे। देखो मारवाड़ राज्य की रिपोर्ट सन् [illegible] ई०, पृष्ठ [illegible], पंक्ति [illegible]

है। शायद सीहाजी ने भीमदेव सोलंकी की कन्या से विवाह किया हो।

अनहिलवाड़ा पट्टन में कुछ समय तक ठहर कर सीहाजी मारवाड़ के पाली नगर में पहुँचे। अनुमान से वि० सं० १३०९ (ई० स० १२५२) के लगभग वह इधर आये होंगे। उस समय पाली नगर वाणिज-व्यापार की बड़ी मंडी थी, और फारस, अरब आदि पश्चिमीय देशों और भारत के बीच होनेवाले व्यापार की सामग्री यहां से होकर आगे आया करती थी। इससे यह धन-धान्य से पूरित बहुत बड़ा नगर था। कहते हैं कि इसमें एक लाख घर तो केवल आदि-गौड़ ब्राह्मणों के ही थे, जो बाद में निवास-स्थान के कारण "पालीवाल (पल्लीवाल) ब्राह्मण" कहलाये। यह ब्राह्मण सब धनिपति और धनी थे। इनमें उस समय इतना संगठन, समानता और आतृत्व था कि जो कोई नया गौड़ ब्राह्मण बाहर से आता था, उसे प्रत्येक घर वाले एक एक रुपया और एक एक ईंट देते थे जिससे वह लाख घरों से लाख रुपए पाकर लखपति हो जाता, तथा लाख ईंटों से हवेली बनवा लेता था। यहां की भूमि उस समय इनको मंडोवर के परिहार राजों की दान-पुण्य में दी हुई थी। इन पालीवाल ब्राह्मणों को आसपास के जंगलों में रहनेवाले मीणा, भील और मेर (मेद) आदि लुटेरे मौका पाकर लूटा-मारा करते थे। क्योंकि उनका कोई रक्षक नहीं था। मारवाड़ी कहावत में कहा गया है कि—"मूसल के अणी नहीं और बामण के धणी नहीं" यानी मूसल के नोक नहीं होती और ब्राह्मण के धणी (स्वामी) नहीं होता। इसलिये पल्लीवाल ने सीहाजी से सहायता मांगी और उन्होंने स्वीकार कर वहां रह कर समय-समय पर जंगली लुटेरों से लड़ाई कर ब्राह्मणों की रक्षा करने लगे। धीरे-धीरे आसपास के गांवों पर भी राव सीहाजीका कब्जा होगया[१]। इस समय पाली से ६० मील लूनी नदी के किनारे खेड़ राजस्थान पर गुहिल (गहलोत) क्षत्रियों का राज्य था। सीहाजी ने इस राज्य पर चढ़ाई की, किंतु उसी समय पाली पर मुसलमान चढ़ आये। अतः समाचार पाते ही रावजी खेड़ की तरफ से लौटकर पाली पहुंचे। बिठूगांव में घोर युद्ध हुआ। अंत में खेत मुसलमानों के हाथ रहा और राठोड़ राव सीहाजी बड़ी वीरता से वि०सं० १३३० की कार्तिक बदि १२ सोमवार (ई० स० १२७३ ता० ९ अक्टूबर) को काम आये। उनकी तीन रानियां सोलंकी पार्वतीबाई, रानी चौहानजी और भटियानीजी सती हुई।

सीहाजी ने पाली में सोमनाथ का मंदिर बनवाया था, जो अबतक विद्यमान है। सोलंकी रानी पार्वती से आप के राजकुमार आसथान तथा अज और चावड़ी रानी सोहागदे से राजकुमार सोनग था। इनमें से ज्येष्ठ पुत्र २—आसथानजी गद्दी पर बैठे। इन्होंने राज-कार्य हाथ में लेते ही पाली से ५ कोस पश्चिम के गोदोज नामक स्थान को अपने रहने के लिये चुना और खेड़ के शकरशाह ओसवाल महाजन को, जो पाली में माल खरीदने आया करता था, अपना कृपापात्र बनाया। कुछ समय पश्चात इसी शकरशाह से यह भेद पाकर कि खेड़ के गुहिल राजा से उसके मुसाहिब (प्रधान) डाभी क्षत्रिय

१—मारवाड़ में राठोड़ों का यहां पहला आगमन नहीं था। क्योंकि बाली परगने के गांव हस्तकुंडी (हथूंडी) के वि० सं० १०५३ माघ सुदि १३ रविवार और सं० ९९६ के माघबदि ११ के शिलालेखों में स्पष्ट है कि राठोड़ वंश के पांच पुरुषों ने १०वीं सदी में हथूंडी में राज्य किया और वे दक्षिण के राष्ट्रकूटों के वंशज माने जाते हैं। इनके नाम यह हैं —

१—हरिवर्मा
२—विदग्धराज सं० ९७३
३—मम्मटराज सं० ९९६
४—धवलराज सं० १०५३
५—बालप्रसाद

राष्ट्रकूटों का दूसरा राज्य हथूंडी (मारवाड़) से प्रायः २०० साल पूर्व इस तरफ हटकर शाहपुरा (मेवाड़) राज्य के धनोप गांव में था। वहां से दो शिलालेख सं० ९३० वि० में मिले हैं। एक में तो संवत नहीं है, पर राजा दन्तिवर्मा और उसके बेटे बुधराज के नाम दर्ज हैं। दूसरे में सं० १०६३ और राष्ट्रकूट-वंशी राजा मनाल, उसके पुत्र दन्तिवर्मा और दन्तिवर्मा के पुत्र बुधराज और गोविन्दराज का नाम है।

उपर्युक्त शिलालेखों और अन्य सामग्री से इन राजाओं का अबतक यह इतिहास नहीं मिलता है कि इनका राज्य हथूंडी और धनोप में कब हुआ, कब गया तथा इन्होंने किससे लिया था, और इनसे किसने लिया।

नाराज़ है, आसथानजी ने डाभी क्षत्रियों (यादव) को मिला लिया। डाभियों ने कहा, कि हमें बचालो तो हम आपको खेड का राज्य दिला देंगे। आसथानजी के वचन देने पर उन्होंने गोहिल राजा प्रतापसिंह[1] को राज़ी करके आसथानजी राठोड के पास सगाई (मँगनी) का नारियल भिजवाया। आसथानजी ने खेड में जाकर विवाह किया और दूसरे दिन गोठ (प्रीतिभोज) हुई। डाभियों के षड्यंत्र से गोहिलों के मारने का वही दिन ठहरा था। आसथानजी ने डाभियों से पूछा कि तुम्हारे बचने का क्या संकेत होगा। उन्होंने कहा कि गोठ में हम आपके डावी (बाईं) तरफ़ बैठेंगे और गोहिल जीवणे (दाहिनी) तरफ़ बैठेंगे। रात को जब गोठ में शराब चली और गोहिल शराब में धुत हो गये, तो पहिले आसथानजी ने उठकर गोहिल राजा को मार डाला और बाद में उनके राठोड वीर "डावी डावा ने गोहिल जीवणा" कहते-कहते गोहिलों का काम तमाम कर दिया। बचे हुये गोहिल और राजा के पाटवी पुत्र झाझराव का बेटा सेजक प्राणों के भय से जूनागढ़ (काठियावाड़) के राजा महीपाल के पास चला गया। इस प्रकार राठोडों ने खेड को अपनी राजधानी बनाया।

इसी समय गुजरात प्रांत के ईडर राज्य पर भील राजा सामलिया सोड राज करता था। वह अपने एक नागर ब्राह्मण मंत्री की रूपवती कन्या पर मोहित हो उससे अपना विवाह करना चाहता था। इससे मंत्री नाराज़ हो इन राठोडों में मिल गया, जिन्होंने मौक़ा पाकर राव आसथानजी की अध्यक्षता में ईडर पर हल्ला बोल दिया और वहाँ के राजा को उसके मंत्री के षड्यंत्र से मारकर वहाँ का राज्य आसथानजी ने अपने छोटे भाई सोनिग को दे दिया। रावजी के दूसरे भाई अज ने द्वारिका के पास के उखामंडल प्रदेश के चावड़ा राजा भोजराज को मारकर उस देश पर अपना क़ब्ज़ा कर लिया।

सं० १३४८ में जब दिल्ली के बादशाह जलालुद्दीन फ़ीरोज़शाह द्वितीय की फ़ौज ने पाली पर चढ़ाई की, तब राव आसथानजी बड़ी वीरता से शत्रुओं से लड़ते हुए १४० क्षत्रियों सहित काम आए। इनके ८ पुत्र—धुहड़, धांधल[1], चाचक, आसल, हरडक, खीपसा, पोहड़ और ओपसा नामक थे।

जगदीशसिंह गहलोत

[1] —किसी किसी ख्यात में महेशदास गोहिल (गहलोत) नाम लिखा है।

[1] —इसका बेटा प्रसिद्ध वीर पाबू राठोड गायों की रक्षा करता हुआ जाँदराव खीची के हाथ से सं० १३—३ के मार्गशीर्ष वदि ? को गाँव देछू (परगना फलोदी) में मारा गया था। इसको लोग देवता की तरह पूजते हैं और राजस्थान के जूझारों (धर्मवीरों) में गिनती करते हैं।

वर्षा-बहार

उलदि उलदि धाए जलद गंभीर घन,
मंद मंद डोलि पौन पूरित पराग भो।
झूमि झूमि लोनी लागी लतिका ललन तरु,
मानो मन मए उपजत अनुराग भो।
बोरि जग सकल 'सरोज' के अमल निज,
पावस प्रबल त्यों अतन सिर पाग भो।
रोगिन को राग भयो भोगिन के जागे भाग,
मौनिन बिराग मुख सौगिन सुहाग भो।

डा० त्रिभुवननाथसिंह 'सरोज'

भ्रम

(१)

त सन् १९२० की है। उस वर्ष परीक्षा देने के अनंतर मैंने और आनंदभाई ने सैर करने की सोची। आनंदभाई मुझसे दो साल बड़े थे और कालेज में भी एक साल सीनियर। उनके पिताजी की पोस्टिंग आज दो वर्ष से लखनऊ में ही थी, किंतु आनंदभाई होस्टल में ही रहते थे। घर पर बोर्डिंग के मज़े कहाँ ? हाँ, कभी-कभी हम दोनों उनके घर पर भोजन करने ज़रूर चले जाया करते थे। हम काश्मीरियों को भोजन के स्वादिष्ट होने की ज़्यादा परवा

होती है, भला होस्टल के नीरस भोजन से हम लोगों को कहाँ तृप्ति हो। अस्तु, हम लोगों ने हरद्वार जाने की ठहराई। सोचा, गुरुकुल काँगड़ी का सालाना जलसा भी देखते आवेंगे। इससे आप यह न समझें कि हम लोगों को आर्यसमाज अथवा उसके सिद्धांतों से कोई सहानुभूति थी। नहीं, हम काश्मीरियों को किसी सम्प्रदाय-विशेष से कुछ मतलब नहीं। हम केवल चाहते इतना हैं कि हिंदू-संसार हमको हिंदू मानता रहे, चाहे हम मुसलमान के साथ खाएँ, चाहे ईसाई के, और चाहे सन्ध्या करें, चाहे न। आप लोग हमारे पूर्व पुरुषों की दोहाई न दें। यह न कहें कि काश्मीर में ही वैदिक सभ्यता और संस्कृत-साहित्य का विकास हुआ। हा, हुआ होगा। उसका हमको गर्व है। हम 'पंडित' भी उन पण्डितों की सतान हैं, परन्तु हम मौक़ा देखकर काम करते हैं। संस्कृत-साहित्य और हिंदू सभ्यता अब गई गुज़री दुनिया की बातें हैं। आज उनमें कोई लाभ नहीं। कम-से-कम हमको उनसे कोई सरोकार नहीं। हा, तो, गुरुकुल देखने की उत्सुकता हमको केवल एक बात से हुई। अभी थोड़े ही समय पूर्व राउलेट ऐक्ट के प्रतिरोध के समय गुरुकुल के संस्थापक स्वामी श्रद्धानंद गुरखे सिपाहियों के आगे छाती खोलकर खड़े हो गए थे और कहा था 'हा, आओ, सगीन से छेद दो।' ऐसी सत्य निष्ठा रखनेवाले वीर की स्थापित संस्था में अवश्य ही कुछ-न-कुछ दर्शनीय होगा। फिर, सुना था कि इस वर्ष गांधीजी, लाला लाजपतराय तथा लोकमान्य तिलक भी पधारेंगे। हम लोगों ने सोचा—चलो, देश के इन अग्रगण्य नेताओं के दर्शन भी होजावेंगे।

हम दोनों के साथ आनन्द की छोटी बहिन किशन भी हो ली। वह मुझ से खूब परिचित थी। आप लोगों को शायद यह मालूम ही होगा कि हम लोगों में आपस में पर्दा नहीं होता। किशन अभी अविवाहिता थी। उसकी आयु अभी १७-१८ वर्ष की ही थी। रूप रंग का कहना ही क्या? उसको इन सबका गर्व था। वह तो कभी-कभी कहती—"देखो, हम लोगों में और अंगरेज़ों में क्या अन्तर है। रंग वही, स्वास्थ्य वही, देश भी ठंढा; हा, केवल बोली का अंतर है—वह अँगरेज़ी बोलते हैं और हम हिंदोस्तानी।" मुझको यह तुलना बड़ी बुरी लगती। मैं कह उठता—"हाँ, एक और बात है—वह हैं स्वतंत्र और हम दासता की बेड़ी में जकड़े हुए।" इस पर वह चुप होजाती। एक माननीय सरकारी कर्मचारी की पुत्री होने पर भी उसके हृदय में देश के लिए प्रेम था, और जाति की हीन दशा के लिए शोक।

मुझे और किशन दोनों को मालूम था कि हम लोगों को एक ही सूत्र में, विवाह करके, बाधने की तय्यारी हमारे बुज़ुर्ग लोग कर रहे हैं। हम दोनों में परस्पर विशेष अनुराग था। मेरे प्रेम को उत्तेजित करने के लिए ही शायद किशन मुझे कभी-कभी चिढ़ाया करती थी, बहुधा मेरे कहने के विरुद्ध काम करती थी। मुझ से काम लेने का तो उसे खास शौक़ था। इस सफ़र में भी, टिकट मैं ही लाया, कुलियों से मैं ही निपटा। गाड़ी रुकने पर दौड़ कर बर्फ़ के डिब्बे से लाइमजूस के ग्लास में ही लाया। रात को उसके सोने के लिए ऊपर की सीट पर बिछौना मैंने ही लगाया। आनन्द भाई को वह इन कामों के लिए उठने ही न देती थी। मुझे भी उसकी उंगली के इशारे पर नाचने में विशेष सुख मिलता था।

(२)

हरद्वार हम लोग सबेरे तड़के पहुँचे। लक्सर से ही ठंढी हवा और विशेष हरियाली से मालूम होता था कि हम लोग किसी देवमार्ग के पथ पर हैं। गुरुकुल के यात्रियों की इस वर्ष काफ़ी भीड़ थी। काँगड़ी जाने के लिए तांगों और बैलगाड़ियों का प्रबन्ध था। मैंने कहा, एक तांगा कर लिया जाय, किशन पैदल नहीं चल सकेगी। किंतु किशन तांगे पर चलने को राज़ी न हुई। अस्तु, हम लोगों ने एक बैलगाड़ी पर सामान रखा, और पैदल ही चल खड़े हुए। गाड़ीवाला बोला, "बाबू, आप चलें, मैं अभी आता हूँ"। कनखल पार करके हम लोगों को मार्ग की कठिनाई का अनुभव हुआ। बराबर बालू और कंकड़ पत्थर पर चलना असह्य होने लगा। कोई दो मील जाकर मुझे किशन थकी हुई-सी जान पड़ी। मैंने कहा, "क्या थक गई?" उसने कहा, 'नहीं।' मैंने कहा, चलो सुस्ता कर चलेंगे, परन्तु वह राज़ी न हुई। भला मनस्विनी लड़की अपनी हार कैसे अंगीकार करती? कोई आध मील आगे चलकर मैं बैठ गया। मैंने कहा, "भाई, मैं तो थक गया, अब बिना कुछ खाए-पिए मुझसे तो एक क़दम भी आगे न बढ़ा

जायगा।" इस बात को सुनकर किशन खिलखिलाकर हँस पड़ी। बोली, "वाह जनाब, आप तो बड़े बहादुर बनते थे।" मैंने अपनी हार मान ली। मन में कहा, "सरले! तुम इस हार का मर्म क्या समझो!" हम लोगों ने कोई आध घंटे गाड़ी के आने की प्रतीक्षा की। इस बीच में भूख और भी लग गई थी। इधर-उधर निगाह दौड़ाई तो थोड़ी दूर पर एक कुटिया दिखाई दी। हम लोग उसीकी ओर चल पड़े। उस कुटी में एक सन्यासी महात्मा से साक्षात् हुआ। वह एक कुशासन पर ध्यानमग्न थे। उनकी मूर्ति भव्य, शरीर हृष्ट पुष्ट, लम्बा क़द, तेजस्विनी आकृति थी। आयु अभी २५-३० की ही जान पड़ती थी। कुटिया बड़ी साफ़-सुथरी थी। एक चौकी पर शीतलपाटी बिछी थी। यही, शायद, सन्यासी का बिस्तर था। पास ही एक रस्सी पर गीले गेरुए वस्त्र सूख रहे थे। चौकी के एक ओर एक खूब मँजे हुए ताँबे के गगरे में जल था, और उस पर कमण्डलु। एक ओर छोटी चौकी पर कुछ पोथियाँ क़ायदे से रक्खी थीं। वहाँ कोई ऐसी वस्तु नहीं थी, जिससे शान्ति और भक्ति का प्रादुर्भाव न होता हो।

थोड़ी देर उपरान्त सन्यासी ने आँख खोली। हम लोगों ने झुककर प्रणाम किया। उन्होंने हम लोगों का बड़े प्रेम से स्वागत किया। खाने के लिए कुछ फल और भुने हुए चने दिए। हम लोगों ने उसी प्रसाद से क्षुधा शान्त की। फिर इधर-उधर की बातें करते रहे। हम लोगों को वह दूसरे साधु-सन्यासियों से भिन्न मालूम हुए। वह राजनीति, धर्म, शिक्षा आदि के जटिल प्रश्नों पर अपने विचार रखते थे। हम लोगों की उन पर श्रद्धा होगई। मुझे केवल एक बात खटकी, और वह थी उनकी किशन पर नज़र। मुझे ऐसा जान पड़ा कि उनको किशन के साथ बातें करने में विशेष उत्साह था। उसके प्रश्नों का बड़े स्वाद से उत्तर देते, और उसके बारे में तरह-तरह की बातें पूछते। किशन भी उनसे चिर-परिचित की भाँति बातचीत कर रही थी, इसलिए मुझे कुछ ईर्षा मालूम हुई। उस बेचारी को क्या मालूम था कि वही बात, जो स्त्री की दृष्टि में निर्दोष खेल है उसके प्रेमी के लिए हृदय का बाण है।

सन्यासी महाशय हमें दूर तक पहुँचा गए। लौटकर फिर आने का अनुरोध करते गए। सड़क पर आकर हम लोगों को अपनी गाड़ी मिली। मैं कुछ खिजा हुआ था ही, गाड़ी वाले को आड़े हाथों लिया। इस पर किशन भीगी बिल्ली की तरह आकर दुबक कर गाड़ी में बैठ गई। गाड़ी वाला बोला—"हुज़ूर! मैंने दो एक यात्रियों का और सामान रख लिया। सोचा, ग़रीब आदमी को चार-छ आने और पैसे मिल जायेंगे। बाबू, इसीसे देर हो गई। आइए, अब जल्दी पहुँचाए देता हूँ"। हम लोग गाड़ी के साथ होलिए।

(३)

कांगड़ी के उत्सव का मैं विशेष उल्लेख नहीं करूँगा। उस पुण्यभूमि में पहुँचकर मेरे ऐसे नास्तिक की भी आत्मा पर धर्म का कुछ प्रभाव पड़ा। किशन को भी जान पड़ा कि हाँ सादे जीवन में भी कुछ तत्त्व है। आनन्दभाई की तो मानो भक्ति उमड़ पड़ी। कहते, "देखो यह त्याग है, यह हमारी सभ्यता है। क्या ऐसी सादगी कहीं और है"। साधु, सन्यासी को देखकर ही बोल उठते—"कहाँ इनका मुक़ाबिला पोप और बिशप से, या मौलानों मुल्लाओं से। यह आदर्श उनके पास कहाँ। सचमुच हमारी आर्य-सभ्यता के आदर्श सर्वोच्च हैं।" यात्रियों में अधिकतर लोग पंजाब के थे। उनका सरल, निष्कपट व्यवहार, परदे का अभाव और छुआछूत का एकदम परित्याग देखकर हम लोग वाहवाह करते। खाने का अच्छा प्रबंध था। तंदूर पर की चपातियों में और पंजाबी पराठों में जो स्वाद था उसका कहना ही क्या? हम लोगों की भूख भी दूनी चौगुनी होगई थी। खूब खाते और खूब घूमते। रात को पयाल पर बिस्तर लगाकर ख़र्राटे लेते। स्वयं-सेवकों के पहरे के कारण चोरों का डर तो था ही नहीं।

इस तरह दो दिन घंटों की तरह कट गए। अभी दो दिन और जलसा बाक़ी था। नेतागण अभी नहीं आए थे। किन्तु, तीसरे दिन सबेरे ही मुझे घर से माँ की बीमारी का तार मिला। तुरन्त मैंने घर के लिए प्रस्थान कर दिया। आनन्दभाई का जी अधबीच में चलने को बिलकुल नहीं चाहा, निदान किशन भी रुक गई।

लौटती बार रास्ते भर मैं इधर-उधर की सोचता रहा। हठात् सन्यासी के किशन की ओर सतृष्ण नेत्रों का ध्यान आजाता था। उनकी कुटिया नज़र आते ही मेरे पैर उसकी ओर मुड़ गए। इस बार स्वामीजी ध्यान-

मग्न नहीं थे। मुझको देखकर ही उठ पड़े और आदर-पूर्वक अन्दर लिवा लेगए। मेरे बैठ जाने पर भी उनकी दृष्टि द्वार की ओर थी, वह किसी की प्रतीक्षा में थे। मैं समझ गया। जला-भुना तो पहले से था ही, बोल उठा— "सांसारिक पदार्थों से विरक्त स्वामीजी! जिसकी आपको प्रतीक्षा है, वह मेरे साथ नहीं आई है।" यह सुनकर संन्यासी का मुख लज्जा से झुक गया, ऐसा मालूम हुआ, जैसे उनकी अन्तरात्मा में कुछ उथल-पुथल हो रहा हो। मुख का रंग कभी लाल हुआ, तो कभी पीला। दो-चार मिनट वह ऐसी ही अवस्था में रहे। फिर बोले—"भाई! तुम भी पुरुष हो और मैं भी। यदि आपको मेरा सारा हाल मालूम होता, तो मुझको व्यङ्ग न सुनाकर मुझसे सहानुभूति करते।"

स्वामीजी की दशा देखकर मैं मन-ही-मन अपने को अपनी अशिष्टता के लिए धिक्कार रहा था। उनके करुण वाक्य सुनकर मुझे और भी आत्मग्लानि हुई। मैंने धीरे से कहा—"मुझे आपको क्षुभित देखकर बड़ा पश्चात्ताप हो रहा है, आप मुझे क्षमा करें।" वह बोले, "नहीं भाई, मैं तुम्हारी बात का बुरा क्यों मानूँ? मुझ से नीच मनुष्य को कोई कुछ भी कहे वह थोड़ा है। तुमने मेरी कमज़ोरी प्रकट ही ली है, तो मैं अब सब बातें कहे देता हूँ। एक बार जी का बोझ, कहकर हलका करलें।" संन्यासी महात्मा कहने लगे—

(४)

मेरा जन्म एक श्रेष्ठ ब्राह्मण कुल में हुआ था। मेरे पिता की गिनती नगर के धनी-मानी पुरुषों में थी। वह अपनी मेधा-बुद्धि और उदार-प्रकृति के लिए विशेष प्रसिद्ध थे। दो-तीन वर्ष घर पर ही पढ़ा कर उन्होंने मुझे ८ वर्ष की अवस्था में स्कूल में भरती करा दिया। सदा परिश्रम करके पढ़ने का वह मुझे उत्साह दिलाया करते थे। दो-तीन वर्ष में ही मैंने अच्छी उन्नति कर ली। अच्छे नंबर लाने के लिए होड़ का मुझे चस्का-सा पड़ गया था। पिताजी भी मौक़े-मौक़े पर पुरस्कार स्वरूप नाना प्रकार की वस्तुएँ देकर इस चस्के को और भी उत्तेजित किया करते थे। छठे दर्जे तक पहुँचते-पहुँचते मैं अनायास ही सब लड़कों में अव्वल रहने लगा। इस समय मेरी अवस्था लगभग १२ वर्ष की थी। किंतु, इसी समय से मुझे अपने में एक नई वृत्ति का अनुभव हुआ। न जाने किस कारण से दर्जे के सुंदर-सुंदर बालकों की ओर मेरा चित्त आकर्षित रहता। यदि इनमें से कोई अच्छे नंबर से पास होता, तो उसपर विशेष स्नेह हो जाता। ऐसे साथियों के पास बैठने में, उनसे बात-चीत करने में, उनके साथ हँसने-खेलने में मुझे अलौकिक आनंद मालूम पड़ता। धीरे-धीरे यह वृत्ति और भी विकसित हुई। अब मैं अपने चुने हुए लड़के की ओर भी परवाह करने लगा। कभी उसको सुंदर लेख लिखना सिखाता, तो कभी उसके हिसाब की कापी ठीक कर देता। कभी-कभी उसको टेनिस खिलाने लेजाता। यदि उससे अगले वर्ष किसी कारण से विछोह हो जाता तो उसकी जगह कोई और ले लेता। कक्षा में सर्व-श्रेष्ठ विद्यार्थी का इस कृपा का भाजन प्रायः प्रत्येक विद्यार्थी बनना चाहता। इस कारण बहुधा सुंदर बालकों में वैमनस्य रहता। दसवें दर्जे तक पहुँचते-पहुँचते मेरा समय अपने प्रेमागार का ध्यान करने में अधिक बीतने लगा। बार-बार यही इच्छा होती कि वह हर समय मेरे साथ होता।

एंट्रेंस पास करके मैं कालेज में पहुँचा। अब होस्टेल में रहने की नौबत आई। यहाँ काव्य-मर्म में गति प्राप्त कर लेने के कारण तथा मित्रों की हँसी-दिल्लगी के कारण मेरा यह सौंदर्योपासना का व्यसन और भी बढ़ा। अब तो यही दिन-रात लड़कों की ही संगति थी। अब एक को छोड़कर उसी की उपासना, आराधना करने से तृप्ति न होती थी। हर समय कोई-न-कोई मेरे पास बैठा होता, अथवा मैं किसी-न-किसी का ध्यान करता होता। इन लोगों को भी शायद मुझे सताने में कुछ मज़ा मिलता था। यदि किसीसे मैं विशेष स्नेह दिखाता, तो वह बहुधा मुझसे खिंचा-खिंचा रहता। किंतु ज्योंही मैं उसको मनाने की कोशिश करता, उसके पास बैठना-उठना छोड़ता, तभी वह मेरी ओर झुकता। इस तरह इनसे पिंड छुटना मुश्किल था। मेरा बहुतसा समय इन्हीं बातों का चिंतन करने में बीतता। 'आज अमुक मुझसे नाराज़ है, उसे खुश करने के लिए उसे थियेटर दिखाने ले चलना चाहिए। आज वह मेरी अवहेलना की शिकायत कर रहा था, वह सचमुच मुझको प्यार करता है।' अस्तु; मेरे दो ही व्यसन थे—एक यही सौन्दर्योपासना और दूसरा परीक्षा में अच्छे नम्बर से

पास होना। एंट्रेंस में मैं अव्वल रहा ही था, एफ्० ए० में भी अव्वल रहा।

बी० ए० में मुझे अनुभव होने लगा कि मेरा स्वास्थ्य कुछ बिगड़ रहा है। दिमाग चक्कर-सा खाता रहे। शरीर में निर्बलता जान पड़े। एक दिन मैंने एकांत में अपनी दशा पर विचार किया। क्या यह प्रेम है? नहीं, प्रेम तो एक व्यक्ति के लिए होता है। प्रेम भ्रमर की तरह दौड़कर कभी इस पुष्प पर और कभी उस पुष्प पर तो नहीं बैठता। वह तो व्यक्ति-विशेष पर टिक जाता है। पुंडरीक जन्म-जन्मांतर तक महाश्वेता पर अनुरक्त रहा, मजनूँ लैला पर कुर्बान होगया, फ़रहाद ने शीरीं पर जान देदी, रोमियो जूलियट के ही चक्कर में पड़ारहा। फिर, मेरा प्रेम इससे उस पर, उस पर से किसी और पर दौड़ता क्यों फिरता है, अथवा एक समय में एकही पर संतोष क्यों नहीं करता? मैंने मन में निश्चय किया कि इस भँवर से छूटूँगा। एक दम सब मित्रों से नाता तोड़ दिया, कमरा बंद करके पढ़ा करता, टहलने भी अकेले ही निकल जाता। क्लास में भी बहुत कम बोलता। तब भी हृदय पर काबू नहीं हुआ, हृदय से उन लोगों का का ध्यान न हटता। किसी अनुभवी से मालूम हुआ कि पौष्टिक पदार्थ खाने से ऐसी दुर्वासनाएँ हुआ करती हैं। तदनुसार मैं भोजन कम करने लगा। घी, दूध, मांस का सेवन छोड़ा। उबली हुई भाजी, दाल और चपाती से संतोष करने लगा। प्राणायाम का भी अभ्यास डाला। यह सब देखकर संगी-साथी चुटकियाँ लेने लगे। कोई कहता, 'अमुक की प्राप्ति के लिए चान्द्रायण-व्रत रक्खा जा रहा है।' हताश सुन्दर सहपाठियों ने कहा, 'अमुक के साथ असिधारा व्रत निभाया जा रहा है'। कोई कहता 'विवाह के लिए तय्यारी है।' कोई कुछ कहता, कोई कुछ। मैंने इस दिनचर्या का कोई दो मास पालन किया, किन्तु मुझे इससे स्वास्थ्य में हानि ही दिखाई दी। अन्तत मेरे मन पर मेरे हृदय की ही विजय हुई। सौन्दर्योपासना मुझसे नहीं छूटी, नहीं छूटी। आत्मा कलुषित होकर, हार मान कर बैठ गई।

एम्० ए० में आकर मैंने अपने को और भी ढील दे दी। अब मैं अपने हृदय को ही सर्वथा अपना पथ-प्रदर्शक मानने लगा। यदि कभी पढ़ने के समय वह किसी के साथ पार्क में टहलने जाने को अथवा गैलरी में लेटकर गप-शप करने को कहता, तो मैं उसीका कहना मानता। साथियों के मज़ाक़ का भी मैं अब प्रतिरोध न करता—उलटा उनके साथ मैं भी अपने ऊपर हँस लेता था। अधोगति की शायद यह चरम-सीमा थी।

ज्यों-त्यों करके एम्० ए० पास किया। इस बार चिर परिचित फ़र्स्ट डिवीज़न ने साथ छोड़ दिया, हाथ लगा सेकण्ड डिवीज़न। अब मुझे अपनी भूल का कुछ आभास हुआ। अच्छे विद्यार्थी के लिए अच्छा क्लास न पाना फ़ेल हो जाने से भी बुरा होता है। यह धक्का मुझे असह्य-सा जान पड़ा। उसी साल मेरे कालेज में एक सहायक प्रोफ़ेसर की जगह ख़ाली हुई। गंगोली और मैं, दोनों इस को चाहते थे। गंगोली मेरा साथी था, वह एंट्रेंस में आठवाँ, एफ्० ए० में पाँचवाँ और बी० ए० में तीसरा आया था। बराबर अपने को मुझसे कम मानता था। किन्तु एम्० ए० में उसको मिला था फ़र्स्ट डिवीज़न। वह जगह उसीको मिली। यह मुझे दूसरा धक्का लगा। मैं अब अपनी भूल पर बार २ पछताया करता। साथियों के सामने मुँह दिखाने का हिम्मत न पड़ती। इसी समय दूरवर्ती मध्यप्रदेश के नागपुर कालेज में एक जगह ख़ाली हुई। अपने प्रोफ़ेसरों की सहायता से वह मुझे मिलगई। मैं तो अपनी शर्म छिपाने को एकान्त चाहता ही था। यह जगह तुरन्त स्वीकार करली। मन में निश्चय कर लिया कि अब स्नेह-जाल में न फसँगा, विद्यार्थी जीवन की असफलता का बदला प्रोफ़ेसरी में नाम पैदा करके लेगा। उस समय नहीं मालूम था कि मेरे भाग्य में यह भी नहीं है।

(५)

नागपुर में मैं तीन ही मास के भीतर 'स्कालर प्रोफ़ेसर' के नाम से मशहूर होगया। किसीसे मिलने जाना तो दूर, बँगले पर यदि कोई मिलने आजाए, तो मैं उस से भी न मिलता था। प्रोफ़ेसरों के बैठने के कमरे में मैं दो एक बार से अधिक नहीं गया। कालेज में भी मुझे कम ही काम था। एफ़० ए० का प्रथम वर्ष और बी० ए० का प्रथम वर्ष, इन दो कक्षाओं को प्रतिदिन एक-एक घंटा पढ़ाना पड़ता था। इसके अतिरिक्त एफ़्० ए० के कुछ विद्यार्थियों को अनुवाद और निबन्ध-रचना की शिक्षा देनी पड़ती थी। इसके लिए विद्यार्थी दो-दो एक-एक

करके मेरे बैठने के कमरे में बारी-बारी से आते थे। इतना काम करके मैं सीधे बँगले का रास्ता पकड़ता था। घर पर मेरा सारा समय अध्ययन में ही बीतता था।

मेरी निबन्ध-वाली कक्षा में १२ विद्यार्थी थे, इनमें दो लड़कियाँ थीं। दोनों बड़ी पटु थीं। उनको जबतक गलती क्या है, कैसी है, कैसे सुधरेगी, ठीक रूप क्या है, क्यों है, यह सब अच्छी तरह से न समझा-बुझा दिया जाय, उनको सन्तोष ही न होता था। इसके अतिरिक्त कभी-कभी वह अपनी पुस्तकें उठा लातीं और कक्षा में पढ़ाते समय जो-जो बात उनकी समझ में न आती, उसे यहां पूछतीं। इस प्रकार उनसे और विद्यार्थियों की अपेक्षा, बात-चीत करने का अधिक अवसर पड़ता गया। धीरे-धीरे उनसे मेरा खासा परिचय होगया। मालूम हुआ कि वह वहाँ के सुप्रसिद्ध वकील दास बाबू की सुपुत्रियां हैं। दास बाबू ब्रह्मसमाज के दृढ़ अनुयायी थे। उनके मन में कन्या और पुत्र में कोई अन्तर न था। दोनों को समान सुविधायें और समान स्वतन्त्रता देते। परिणाम यही हुआ कि उनकी लड़कियाँ भी पुत्रों की तरह प्रगल्भ होगई। मैं अपने बँगले पर और किसी से तो मिलता न था किंतु अपने विद्यार्थियों को ज़रूरत पड़ने पर मिलने की अनुमति दे रखी थी। इस अनुमति से लाभ उठा कर यह दोनों बहन कभी-कभी बँगले पर भी आ धमकतीं। 'स्त्रीशिक्षा', 'परदा', 'स्त्री और पुरुष की बराबरी' आदि विषयों पर बहुधा बातचीत छिड़ जाती। मैं था कट्टर सनातनी, और यह लड़कियां बीसवीं सदी के भी नहीं इक्कीसवीं के विचार रखनेवाली। खूब वाद-विवाद होता। उनके चले जाने पर इन विषयों पर मैं ध्यान लगाता था सो तो था ही, इन लड़कियों पर भी ध्यान जमने लगा। मेरे कट्टर विचार धीरे-धीरे बदलने लगे। साथ-ही-साथ इन लड़कियों के लिए पक्षपात भी होने लगा। मैंने अपना हृदय टटोल कर देखा। सच-मुच मैं इनसे स्नेह करने लगा था। मुझे अब मालूम हुआ कि प्रेम करने की असली चीज़ स्त्री है। मैं अब अपने कालेज के दिनों के पागलपन पर हँसा करता। धीरे-धीरे मेरे हृदय ने मेरे ऊपर फिर क़ब्ज़ा कर पाया। मुझे ऐसा मालूम हुआ कि वे भी मुझे प्यार करती हैं। मैं मन-ही-मन उनको बहुत प्यार करने लगा।

(६)

मुझे दो साल प्रोफ़ेसरी करते-करते बीते। दोनों मिस दास ने एफ़्० ए० पास करके पढ़ना छोड़ दिया। कालेज छोड़ने के दूसरे दिन से उन्होंने मुझे अपनी सूरत भी न दिखलाई। मैंने कहा—'क्या स्त्री का प्रेम इतना निर्मम है? क्या उसे प्रेमी को अकारण त्याग देने में ज़रा भी कठिनाई नहीं होती? क्या अपने हृदय पर उसको इतना क़ाबू है?'

किंतु इस अनुभव से मैंने लाभ नहीं उठाया, यह मुझे आगे चलकर मालूम हुआ। तीसरे वर्ष बी० ए० में मुझे एक और विद्यार्थिनी पढ़ाने को मिली। वह पूना से एफ़्० ए० पास करके आई थी। यहां अपने चाचा डा० सोनालकर के पास रहती थी। इसमें और मेरी पूर्व की विद्यार्थिनियों में विशेष अन्तर था। यह थी सीधी-सादी चाल की, सुन्दरी, किंतु फ़ैशन का शौक नहीं। दीर्घनयनी किंतु अचचल। पढ़ने में तेज किंतु मित-भाषिणी। स्व-भावतः मेरी उत्सुकता इस कन्या में बढ़ी। उसकी कापी में कभी-कभी पूरा अनुवाद अथवा आदर्श निबंध लिख-कर मैं बहुत प्रसन्न होता। घर पर इसका ध्यान करता—कल इससे क्या-क्या बातें करूँगा, यह पड़े-पड़े सोचा करता। धीरे-धीरे मिस सोनालकर को भी मालूम होने लगा कि वह मेरी विशेष कृपा की भाजन है। मेरी उसकी घनिष्टता हो गई। अब मैं कभी-कभी उसके घर की ओर निकल जाता। डा० सोनालकर से भी परिचय हो गया था। हम तीनों कभी-कभी राजनीति, धर्म, आदि विषयों पर बातचीत करते। डाक्टर साहब अपनी भतीजी की प्रखर बुद्धि देखकर बहुत खुश होते। मिस सोनालकर की बातें सुनने में मुझको जो आनंद होता, वह अवर्णनीय है। उनकी बातों के उत्तर में ऊपर से मैं चाहे जो कुछ कहता होऊँ, किंतु मेरा हृदय भीतर-ही-भीतर कुछ और ही बातें करता था।

पिताजी का आग्रह मेरे विवाह के लिए बढ़ता ही जाता था। एम्० ए० पास करने पर उन्होंने इसका प्रस्ताव किया था। तब तक मेरी दृष्टि किसी स्त्री की ओर उठी ही न थी। मैं कहता—क्या स्त्री भी पुरुष की योग्य संगिनी हो सकती है। उस समय तो मैंने सहज ही में टाल दिया। इधर नागपुर में नौकरी कर लेने के उपरांत फिर उन्होंने ज़ोर डाला। उस समय मैं छोटी

और वहीं मिस दास के चक्कर में था। तब, कभी-कभी सोचा करता था कि इन्हींमें से किसी को जीवन-संगिनी बना लूँगा। किंतु वह तो एकदम मुझे छोड़ कर चल दीं। अब मिस सोनालकर पर दृष्टि थी। मैंने निश्चय कर लिया कि यदि मिस सोनालकर को कोई आपत्ति न हो, तो इनके साथ जीवन-नौका संसार-समुद्र में डाल दूँगा।

अब मैं कभी-कभी सहज ही उनका हाथ अपने हाथ में ले लेता। कभी उनकी उँगलियों को पेंसिल से नापता। कभी हस्त-रेखाएँ देखकर भविष्य बतलाता। वह इन सबमें कुछ आपत्ति नहीं करती। मिस सोनालकर का घर का नाम था शांति। मुझे ऐसा मालूम हुआ कि शांति भी मुझ से अनुराग रखती है। तभी तो यदि उसके मत्थे पर अलक-लट आ जाए और मैं उसे ठीक करदूँ, तो वह मुसकिरा देती। यदि मैं उसकी किसी ज़रा-सी गलती पर एक हलकी-सी चपत लगा दूँ तो उसका मुख लाल हो जाता, किंतु कोप नहीं करती। उसके अनुराग के क्या यह दृढ़ प्रमाण नहीं थे?

अब कभी-कभी मैं शांति से उसके परिवार की बातें करता। बड़े भाई की वकालत कैसी चलती है, पिताजी कब पेंशन लेंगे, बहनोई का मिज़ाज कैसा है, इत्यादि, जानें कितनी बातें हम लोग किया करते थे? बहिन के विवाह के प्रसंग से मैं कभी-कभी शांति से उसके ब्याह की बात पूछता। वह कहती, "मैं ब्याह नहीं करूँगी। जान बूझकर किसीके अधीन क्यों रहूँ? यदि पुरुष अकेला रह सकता है, तो स्त्री क्यों नहीं?" मैं कहता, "अच्छा, यदि ऐसा पुरुष मिले, जो तुम्हारे अधीन होकर रहे, तो तुमको विवाह करने में क्या आपत्ति है"। उसकी धारणा थी कि ऐसे पुरुष का होना संभव नहीं है। धीरे-धीरे उसकी भी हिम्मत बढ़ी। वह मुझसे यह प्रश्न करने लगी—"आप ब्याह क्यों नहीं कर लेते, आख़िर, आपको कैसी लड़की चाहिए?" इन प्रश्नों के उत्तर में मैं उसीका वर्णन कर जाता। "तुम्हारी-सी" कहने का मुझे अब भी साहस न होता था।

मैं सोचता—'शांति' ही मुझ को शांति देगी। भगवान् ने मेरे क्षुब्ध हृदय को शांत करने के लिए इसे भेजा है। अब मेरी डगमगाती हुई नय्या स्थिर होकर किनारे लगेगी। दैनिक संध्या के उपरांत 'शांति शांति शांति-' में भी मुझे अपनी प्रेयसी का ही नाम मालूम होता।

एक रोज़ शांति के आग्रह करने पर मैंने कह दिया, "मुझे तुम्हारी सी लड़की चाहिए।" यह सुनकर उसका बदन तपाए हुए सोने के समान दमक उठा। मत्थे पर पसीने की बूँदें आगईं। गात्रयष्टि कुछ काँप गई। थोड़ी देर रुककर उसने कहा, "क्या सचमुच आप मेरी-सी लड़की पसंद करेंगे?" मैं इसका उत्तर क्या देता। मेरे हाथ ने सहज ही उसकी उँगलियों को लेकर ओठों तक पहुँचा दिया। मुझे क्या मालूम था कि यही प्रथम और अंतिम चुम्बन था।

इसके थोड़े दिन पश्चात् ही परीक्षा की तय्यारी के लिए लड़कों को छुट्टी दे दी गई। अब शांति से एकांत में मिलने का कोई मौक़ा न मिलता था। हाँ, कभी-कभी उसके घर पर जाकर उसकी परीक्षा की तय्यारी में सहायता कर आता था। यद्यपि इन दिनों प्रेम की कोई बात नहीं होती थी, तब भी मुझे पूर्ण निश्चय हो गया था कि, शांति ने मुझको आत्म-समर्पण कर दिया है। उसके प्रत्येक अंग से यह बात स्पष्ट थी। केवल जिह्वा मौन थी। मैंने सोचा था कि परीक्षा के उपरांत उससे मिलकर सब बातें तय कर लूँगा। हम लोगों ने हृदय में तो तय कर ही लिया था। केवल अपने बुज़ुर्गों को इसके लिये राज़ी करना था। किंतु, यह 'केवल' एक टेढ़ी खीर है, यह मैं अच्छी तरह समझता था।

मेरे दुर्भाग्य से परीक्षा समाप्त करके शांति तुरंत पूना चली गई। उसके पिता ने किसी कारण से उसे तार भेजकर बुलवा लिया था। मैं गर्मी की छुट्टियों में घर गया। मेरे हर समय का ध्यान शांति ही थी, वही मेरी दिवस की चिंता और रात्रि का स्वप्न थी। मैं प्रति सप्ताह उसको पत्र लिखता। वह भी उनका बराबर उत्तर देती। किंतु पत्रों में गूढ़ प्रेम की बात थोड़े ही लिखी जाती है!

अबकी छुट्टियों में मेरे परिवार के सारे लोग विवाह करने के लिए जोर करने लगे। मैंने दो-तीन मास का और समय लिया। सोचा, नागपुर लौट कर शांति से तय करके सारी बात पिताजी को लिख दूँगा।

किंतु, इधर तीन सप्ताह से शांति की एक भी चिट्ठी नहीं आई। मैं व्याकुल हो उठा। कालेज खुलने को एक

सप्ताह और बाकी था। मैं चार-पाँच दिन पहले ही चल दिया। नागपुर पहुँच कर मेरा पहला काम डॉ० सोनालकर के घर पर जाना था। वहाँ मालूम हुआ कि वह सपरिवार पूना हैं, शीघ्र ही लौटेंगे। यह चार दिन काटने कठिन हो गए। वहाँ से शांति को मैंने एक और पत्र लिखा। पड़े-पड़े सोचा करता—अब के जब शांति लौटेगी, तो उससे बोलूँगा नहीं। देखूँ, उसको यदि मुझ से प्रेम होगा, तो आँखों में आँसू भरकर मेरे पत्रों की अवहेलना करने के लिए क्षमा माँगेगी ही।

(७)

बड़ी छुट्टियों के उपरान्त हर साल कालेज के प्रोफ़ेसरों की एक सभा कालेज खुलने के दिन होती थी। इस बार भी हुई। उसमें कालेज की साल भर की पढ़ाई के बारे में बहुत-सा ज़रूरी बातें तय हुईं। अन्त में अपने इतिहास के प्रोफ़ेसर मिस्टर इस्लामपुरकर की शादी हो जाने पर बधाई का प्रस्ताव पास हुआ। उस समय मैं मन-ही-मन सोच रहा था—अब के शान्ति लौटे तो तुरन्त सब बातें निश्चित करके यह काम कर ही डालना चाहिए।

दो-तीन दिन बाद डा० सोनालकर पूना से लौटे, किंतु मेरे दुर्भाग्य से मेरी शान्ति नहीं लौटी थी। डा० सोनालकर बोले, "   और उसके शीघ्र लौटने की सम्भावना भी नहीं है। लौटी भी, तो दो-चार दिन के लिये। उसके ऊपर अब अपना अधिकार ही क्या है ?" मैं भौंचक्का-सा रह गया। मैंने कहा, "क्या उनका विवाह हो गया ?" डाक्टर साहब ने कहा, "हाँ, आपको निमन्त्रण तो भेजा था। आपके न आने पर हम लोगों को बड़ा अचरज हुआ। आपसे और शांति से तो अच्छा परिचय था। अस्तु, हम लोगों के भाग्य से शान्ति को वर अच्छा मिला है। मि० इस्लामपुरकर होनहार है।" मैं दंग रह गया। मेरी शांति का विवाह ! इस्लामपुरकर के साथ ! मेरी समझ में कुछ नहीं आया। मैं डा० सोनालकर के पास से क्या कहकर कैसे आया, इसका मुझे बिलकुल ज्ञान नहीं था।

बँगले पर पहुँच कर मैं तुरत पूना के लिए चल दिया। सोचा, शांति से एक बार जो खोलकर बातें कर लूँ। उससे पूँछ लूँ कि, आखिर मुझे किस अपराध के कारण हताश किया।

पूना पहुँचा। शांति का घर ढूँढ निकाला। किंतु शांति के दर्शन नहीं हुए। क्यों ? क्यों सुनकर आपको अचरज होगा। इसलिये, कि शांति ने मुझ से मिलने से इनकार कर दिया—उसी शांति ने जिसने मुझे प्राय आत्म-समर्पण कर दिया था, उसीने मेरा मुख देखना नहीं चाहा ! जी में आया कि सौंदर्य को लात से कुचल दूँ, स्त्री-जाति की जड़ ही उखाड़ दूँ।

मुझे नागपुर जाने का साहस नहीं हुआ। संसार के मुखों से जी हट गया। तभी से मैं इधर-उधर घूम रहा हूँ। इस बात को दस बरस हुए। शांति को मैंने अपने जी से तभी क्षमा कर दिया था। मैंने सोचा—उसका क्या अपराध। प्रेम का कोई अस्तित्व नहीं है—यदि है तो केवल उन्माद, सो भी अस्थिर। आज इस पर, कल उस पर। यदि शांति बेचारी मुझको भूल गई तो इसमें क्या अचरज। मैं ही कितनों को भूल चुका हूँ। नहीं, प्रेम सचमुच कोई वस्तु नहीं है। कवियों और उपन्यास-कारों का प्रेम केवल उनके मस्तिष्क की वस्तु है, संसार में वह सर्वथा अप्राप्य है। तभी से मुझे भावना होगई कि रूप कुछ नहीं है, गंध कुछ नहीं, स्पर्श कुछ नहीं, शब्द कुछ नहीं। इसी भावना से मेरा चचल चित्त बहुत कुछ ठिकाने आ गया है। इस कुटिया में ही मुझे चार साल हो गए। एक बार भी मेरा चित्त विचलित नहीं हुआ। किंतु, नहीं अब तो छिपाने से क्या मतलब। आपकी उस रोज़ की संगिनी को देखकर मेरा हृदय फिर विचलित है। मेरे ऐसा निकृष्ट कौन होगा। उस मनुष्य की दुर्वासना सचमुच अजेय है जिसकी पाप-वृत्ति दस वर्ष के सन्यास के उपरान्त भी फिर जाग उठे। नारायण, मेरे भाग्य में क्या है ! स्वामीजी ने अपनी आँखें ढक लीं और फूट-फूटकर रोने लगे। यह दृश्य बड़ा करुण था। बड़ी मुश्किल से मैंने उनको शांत किया। विदा होते समय मैंने उनसे हाथ जोड़कर क्षमा माँगी। वह हँसकर बोले, "नहीं भाई, तुमने तो मुझे चेतावनी दी, इसके लिये मुझे तुम्हारा कृतज्ञ होना चाहिए।"

(८)

मेरी माँ को मियादी बुख़ार था। कभी-कभी १०५-१०६ डिग्री तक बुख़ार चढ़ आता था। तब उनकी तबीअत बहुत घबड़ा जाती थी। इसी घबड़ाहट में उन्होंने मुझे बुलवा लिया था। उनका बुख़ार २१ दिन बाद उतर गया। कोई एक महीने पथ्य खाकर वह अच्छी हो गईं।

आनंदभाई लखनऊ लौट आए थे। मैंने पूछा, 'स्वामीजी के दर्शन किए थे'। उन्होंने लिखा, "भाई, हम लोग लौटे तब सोचा, चलो संन्यासी महात्मा के दर्शन करते चलें, किंतु उधर निगाह गई तो न उनकी कुटिया थी, न वह। जाने कहाँ प्रस्थान कर गए"।

किशन अब मेरी होगई है। मैंने उससे हरद्वार के संन्यासी की आत्म-कहानी कही। तबसे वह मुझको चिढ़ाने को बहुधा कहती—"संन्यासीजी बड़े भले थे, देखो, मुझे कितना प्यार करते थे। तुम कभी इतना कर सकोगे ?" किंतु कभी-कभी वह बड़ी चिंतित होती। कहती, "क्या सब पुरुषों का प्रेम अस्थिर है ? क्या तुम भी मुझे छोड़कर दूसरी को चाहने लगोगे ?" मैं कहता, "नहीं, मैंने अस्थिरता की दवा करली है मैंने अपने प्रेम को तुमसे जकड़ कर बाँध दिया है"। परंतु क्या इस बात से उसको संतोष होता होगा ?

'गँवार', एम्० ए०

लगन

त्यागि ललाम-लतान्तिका को हम माल गले तुलसी पहरैंगी।
श्रीहरि के कर बाँधी अहो अलकावली ये पग लों लहरैंगी॥
आतप शीत प्रवात की भाँति न भूलि कवौं हियमों हहरैंगी।
गावती गीत गोविंद सनेह के योगिनी ह्वै बनमें बिहरैंगी॥

'श्रीहरि'

मातृभूमि

जिसके भाल पर काश्मीर-जन्मा कुंकुम-केसर का तिलक है, जिसके हृदय पर जह्नु तनया की एकावली है, जिसके चरणों में भक्ति-धर्म से अवनत सिंहल प्रणाम करता है, जिसके चरणामृत का महोदधि नित्य पान करते हैं उस माता के स्वरूप को जानने की किसे इच्छा न होगी ? जिसके रक्षक स्वयं शैलराज हिमवन्त हैं, जहाँ सरस्वती नदी बहती है, जहाँ सिंधु और ब्रह्मपुत्र शैलराज के अमृत संदेश को अगाध सागर के समीप मन्त्रणा के लिये लेजाते हैं, जहाँ मरुस्थल और दण्डकारण्य जैसे रम्य प्रदेश हैं—वह भूमि किस नाम से विश्रुत है ?

जिसमें वेत्रवती, सुवर्णरेखा, और ताम्रपर्णी जैसी सुन्दर नाम-वाली नदियाँ हैं, जिसमें कांची, द्वारावती, विशाला और मथुरा जैसी राजधानियाँ हैं, जहाँ आदि-कवि ने मर्यादा-पुरुषोत्तम के पुण्यश्लोक चरित्र का गान किया है, जिसमें दौष्यन्ति भरत ने समुद्रपर्यंत पृथ्वी का एक-छत्र शासन किया, वही हम सबकी जन्मभूमि भारतमही है। उत्तर में गिरिराज हिमालय पूर्व से पश्चिम तक का समस्त प्रदेश व्याप्त करके पृथ्वी के मान-दण्ड की तरह स्थित है। यहीं गौरीशङ्कर और धवलगिरि-सदृश तुङ्ग गिरि-शिखर हैं, जहाँ नित्य प्रभात के समय सूर्य रश्मियाँ सुवर्ण-जल से हिमचल को स्नान कराती हैं। इसीके एक प्रदेश में मानसरोवर और राक्षसताल हैं। यहाँ कैलाश के उत्सङ्ग में अलकापुरी बसती है, जहाँ के कान्ता-विश्लेषित यक्ष ने श्रावण मास में मेघ को दूत बना कर भेजा था। यहाँ सरल और देवदारु के वृक्ष हैं, यह आजतक किन्नरों की निवास भूमि है। अक्षोट के विटप इसी प्रदेश में होते हैं, जिनके गर्भ में हिमचल से त्रस्त होकर उलूक छिपकर शरण लेती हैं। इन वनों में कृष्ण-मृग स्वच्छन्द विचरते हैं। इन कन्दराओं में वन केसरी निवास करते हैं। यहाँ के तपोवनों में कपिला-धेनु ऋषियों के साथ रहती है—ये देवभूमि अनन्त समय तक भारत को संयम का पाठ पढ़ाती रहेगी।

यहाँ नाना प्रकार की वीर्यवती ओषधियाँ होती हैं। शिलाजतु का जन्म यहीं होता है, अनन्त रत्नों के प्रभव स्थान, इस प्रदेश में, बिना तेल के प्रदीप जलते हैं। वेदों और उपनिषदों के लिखने-योग्य भूर्जत्वच यहीं होता है। यहाँ की चमरी गायें हिम के सदृश सान्द्र और स्निग्ध दुग्ध देती हैं। यह हिमवन्त वेदों की सभ्यता का अद्वितीय गौरव है। यह त्रिविष्टप भूमि है। यहीं उत्तर कुरु प्रदेश हैं, जिनके उत्तर में रम्यक और हिरण्यक वर्षों का विस्तार है।

वह देखो भारत का भाल काश्मीर प्रदेश सुशोभित है इसीके लिये कवि बिल्हण ने कहा है:—

सहोदराः कुङ्कुमकेसराणां भवन्ति नूनं कविता विलासाः।
न शारदा देशमपास्य दृष्टस्तेषां यदन्यत्र मया प्ररोहः॥

इसकी उत्तरी सीमा पर निषध पर्वत है, जिसके दूसरी ओर वक्षु और कपिशा नदी हैं। काश्मीर खण्ड की राजधानी श्रीनगर है, जिसकी स्थापना महाराज प्रियदर्शी अशोक ने की थी। यहां के जलवायु का माहात्म्य विलक्षण है। पतञ्जलि भाष्यकार की जन्मभूमि गोनर्द यहीं है। कथासरित्सागर के रचयिता सोमदेव यहीं हुए हैं। व्याकरण, साहित्य और शैवसिद्धान्त-रूप त्रिमति के विलास की साक्षी यही काश्मीर भूमि है। नीलमुनि और कल्हण, जिन्होंने नीलमत पुराण और राजतरङ्गिणी की रचना की, यहीं हुए हैं। मनुभाष्य के रचयिता मेधातिथि ने यहीं जन्म लिया था। कृविल्ल भट्ट, हेलाराज, जोनराज, राजानक, रुय्यक, विल्हण, जल्हण, क्षेमेन्द्र, मंख आदि कवियों के हृदयों में काश्मीर की प्रतिभा एक साथ ही मानो स्फुरित हो उठी। काव्य-प्रकाशकार मम्मट और वैयाकरण-शिरोमणि कैयट ने काश्मीर में ही जन्म ग्रहण किया। यहीं जम्मू के समीप एक झोपड़े में बैठकर कापिष्ठल वसिष्ठ-गोत्री श्री दुर्गाचार्य ने ऋज्वर्था-नामक निरुक्तवृत्ति की रचना की। इस काश्मीर के नररत्न अभीतक भारत के मस्तक को ऊंचा बनाते हैं। काश्मीर के बीच से सिन्धु नद बहता है। सिन्धु नद के उस पार केकय और गान्धार देश हैं। वैदिक युग से लेकर आज तक ये प्रदेश स्वेत्नी, कुभा, क्रुमु और गोमती आदि नदियों के द्वारा अपनी हिमराशि को सिन्धु के अर्पण करते आये हैं। इसी परोपनिषद खण्ड को मौर्य-सम्राट् चन्द्रगुप्त ने यवन राजलक्ष्मी के साथ सिल्यूकस से छीन लिया था। यहीं सिन्धु के समीप तक्षशिला नगरी थी, जहां के विश्व-विश्रुत विद्यालय में कौमारभृत्य शास्त्र में निष्णात महाराज बिम्बसार के आश्रित राजवैद्य जीवक ने सात वर्ष तक शिक्षा प्राप्त की थी। यहीं चरक ने आयुर्वेद शास्त्र का निर्माण किया, महात्मा सुश्रुत ने इसी तक्षशिला में अपनी शल्य चिकित्सा के प्रयोग किये। शालातुरीय दाक्षी-पुत्र पाणिनि ने तक्षशिला के विश्वविद्यालय में ही शिक्षा पाकर अष्टाध्यायी की रचना की। मातृभूमि के स्वरूप का दर्शन करनेवालो! इस तक्षशिला नगरी को प्रणाम करो। धन्य यहां के इङ्गुदीवृक्ष, जिनके तेल से पाणिनि ने अध्ययन किया! जिसके क्रोड में हिमालय की पांच पुत्रियां कल्लोल करती हैं, वह पंजाब देश है। वितस्ता, चन्द्रभागा (असिक्नी), इरावती (परुष्णी), शुतुद्रि और विपाशा — ये पांचों, पांच उंगलियों की तरह, फैली हुई हैं। यहीं असिक्नी नदी के तीर पर वैदिक सम्राट् सुदास का दस राजाओं से घोर संग्राम हुआ था। वितस्ता के तीर पर महाराज पुरु ने सिकन्दर को रणाङ्गण में आह्वान किया था। शुतुद्रि के तीर पर चींटियों की तरह फैली हुई हूण-सेना को महाराज स्कन्दगुप्त ने परास्त करके भारतीय सभ्यता की रक्षा की थी। यहीं धर्मक्षेत्र कुरुक्षेत्र है, जहां अनेक बार विधाता ने भारत के भाग्य-अङ्कों को मेट-मेट कर फिर लिखा है। इसीके समीप देहली है, जो मदोद्धत नृपतियों को विनाशक्षेत्र में भेजने के लिये सचमुच ही देहली-द्वार है।

इसी पंजाब प्रदेश में कठों का गण-राज्य था, जहां कठ-उपनिषद् की रचना हुई। यहीं मालव और क्षुद्रक गणों के राज्य थे—वे मालव, जिनके विषाक्त तीरों ने यवनराज सिकन्दर को मरणासन्न बना दिया था; और वे क्षुद्रक, जिन्होंने अकेले ही यवन-सेना को परास्त कर सन्धि करने पर बाध्य किया था। यहां पर कैसे कैसे पराक्रमी योद्धा थे। तीन-तीन गज़ लम्बे तीरों से लड़नेवाली, काल के समान भयङ्कर पदाति-सेना इसी भूमि में विचरती थी। यहीं शिबि और आरट्टों के राज्य थे। अब भी जिनके खंडहर विशीर्ण हुई राज-लक्ष्मी के मूर्तिमान चिह्न की भांति पाये जाते हैं। सरस्वती और दृषद्वती नदियों के बीच में ब्रह्मावर्त नामक प्रदेश पंजाब का ही एक भाग था। यहीं पर सामवेद का मधुर गान होता था। इस पंजाब प्रदेश के सुपुत्रों ने अनन्त बार अपने रक्त की आहुति देकर भारत के मान गौरव की रक्षा की है। क्यों माता! क्या अमृतसर-काण्ड भी इसी प्रदेश में हुआ था? हां, देवी को असाधारण भेंट चढ़ानेवाले गुरु गोविन्दसिंहजी के स्थान को छोड़कर और कौन स्थान उसके उपयुक्त हो सकता था। इन्हीं पंच-नदियों के बीच घूम-घूमकर नानक ने एक ईश्वर का गुण गान किया था, फिर दो शताब्दी बाद इसी प्रदेश में वीर-वैरागी बन्दा ने शोणित-तर्पण की प्यासी तलवार को दुर्विनीत यवनों के विरुद्ध धारण किया। जिस स्थान पर चिड़ियों से बाज़ मारे गये, उस भूखंड को माता गौरवपूर्वक अपने वक्ष पर रखती है। इसी पंजाब के चाणक्य ब्राह्मण के अमर्ष का साहाय्य पाकर चन्द्रगुप्त ने नन्दवंश की राजलक्ष्मी को छीन लिया था।

इसीके उत्तर-पश्चिम कोने में पुरुषपुर है, जहाँ अनेकों बार भारत के पुरुषत्व की परीक्षा हुई है। यहीं पर राजा आनन्दपाल और वीशलदेव ने असंख्य हिंदू-सेना लेकर यवनों को चालीस दिन तक मृत्युपाश में बाँध रक्खा था। इसीके निकट की पर्वत-उपत्यकाओं में प्राचीन केकय देश के वंशज पुरुष-सिंह स्वच्छंद निवास करते हैं। इसी पंजाब के एक कोने में मुलतान नगर है, जहाँ का मार्तण्ड मंदिर अपने समय में भारत की स्थापत्य-कला का एक अद्भुत नमूना था। इसी पंजाब प्रांत के महाराज रणजीतसिंह ने हिंदू-अभ्युदय के संध्याकाल में भी अपने शौर्य-पराक्रम से अफ़गानों के विरुद्ध मानो एक लोहे की अभेद्य प्राचीर खड़ी करदी थी, जिनके प्रधान सेनापति हरीसिंह नलवा के गीत अब भी पंजाब के घर-घर में गाये जाते हैं।

पंजाब के दक्षिण-पूर्व में इन्द्रप्रस्थ था। इस प्रदेश में महाराज हस्तिन् ने हस्तिनापुर बसाया था। इसी चक्र में जय नामक इतिहास की घटनाएँ आज से ठीक ३५०० वर्ष पूर्व घटित हुई थीं। शान्तनु-पुत्र गांगेय भीष्म यहीं रहते थे। इसीके दक्षिण में द्वैत वन था, जहाँ राज्यश्री-विहीन पांडवों ने कुछ समय तक निवास किया था। यहीं स्थाण्वीश्वर के सम्राट् यशोमती-पुत्र हर्षवर्धन ने विक्रम की छठी शताब्दी में धर्म-राज्य स्थापित किया। यहाँ की धूलि के कण-कण में माता का सौरभ मिला हुआ है।

यमुना नदी के तट पर खड़े होकर देखने से दाहिने हाथ की ओर विशाल राजस्थान है, और बाएँ ओर संयुक्तप्रांत है।

जिस राजस्थान की महिमा का पार चन्द और सूरजमल्ल की लेखनी भी पूरी तरह न पा सकी, वहाँ के क्षात्रधर्म का ज्वलन्त चित्र कौन खींच सकता है? जब सरस्वती नदी समुद्र में मिलती थी, उस युग में यह मरुभूमि सलिलार्णव के नीचे छिपी हुई थी। ब्रह्मा के विशेष प्रसाद से वीर-रस ने अपने निवास के लिये इस भूखंड को सागर-गर्भ से निकाला था। इस मरुस्थल के मध्य भाग में मुन्आवान पर्वत है, जिसकी दुर्गम घाटियों ने अनेकबार राजस्थान की आकुल मर्यादा को बचाया है। यहाँ पद-पद पर आर्य देवियों ने सहस्रों की संख्या में अपने आपको जौहर द्वारा भस्म किया है। यहाँ का हर एक स्थान किसी-न-किसी वीर की स्मरणीय कृति से अङ्कित है। राणा कुम्भा, साँगा, बापल, समरसी जैसे वीर इसी राजस्थान की गोद में खेले हैं। आर्य-जाति को स्वतन्त्रता का पाठ पढ़ानेवाले महाराणा प्रतापसिंह ने यहीं सीसोदिया वंश की मानरक्षा के लिये संसार-प्रसिद्ध हल्दीघाटी के युद्ध में असंख्य यवन-सेना का वध किया था। जिस नीले चेतक के अश्वारोही का चरित्र राजस्थान के प्रत्येक घर में आज भी गाया जाता है, उसका यश, जबतक भारतभूमि है, तबतक अक्षुण्ण बना रहेगा। राजस्थान ने किसी समय यौधेय और मालवगणों को शरण दी थी। उस देश के वासी स्वतन्त्रता के लिये प्राण देना जानते हैं। समय पड़ने पर मातृ-मन्दिर में वे लोग अवश्य अपनी भेंट चढ़ायेंगे। जिस दिन राजस्थान से क्षात्रधर्म का नाश होगा, उसी दिन वह मरुभूमि फिर रसातल को चली जायगी। इसी राजस्थान में विराट् नगर है, जहाँ कुरुकुल को अविच्छिन्न रखनेवाली देवी उत्तरा का जन्म हुआ था। यहीं दक्षिण में महाकवि माघ की जन्मभूमि श्रीमालनगर है। यहाँ के क्षत्रियों के छत्तीस कुलों का पृथक् पृथक् विस्तार प्रायः असम्भव ही है। पद्मिनी और दुर्गावती की जन्मभूमि को आर्य-सन्तान अब भी श्रद्धा के साथ प्रणाम करती है। भक्ति-स्रोतस्विनी मीराबाई का स्मरण करके भारतीय महिलाओं के मुख-कमल अब भी प्रसन्नता से चमक उठते हैं। यमुना के बाईं ओर ब्रह्मर्षि देश है। यहाँ गंगा के तट पर पांचालों की कान्यकुब्ज-नामक राजधानी है। मथुरा, माया, अयोध्या, काशी, कौशाम्बी, श्रावस्ती आदि प्रसिद्ध पुरियाँ यहीं पर हैं। शूरसेन राज्य की राजधानी मथुरा योगिराज भगवान् कृष्ण की जन्मभूमि है। उत्तरकोशल की राजधानी अयोध्या नगरी में भगवान् रामचंद्र ने जन्म लिया था। आज भी सरयू नदी अयोध्या के पास से उसी प्रकार बह रही है। यह अवध का प्रांत अतीव रम्य है। इसके थोड़ी दूर पर वाल्मीकि का तपोवन था, जहाँ आदिकाव्य रामायण का अवतार हुआ। अवध-भूमि धन्य है, जहाँ काव्य-मानस के हंस तुलसीदास ने जन्म लिया। जिन्होंने अकेले ही हिंदी भाषा के विमल गौरव की स्थापना की है। गंगा यमुना के संगम का दृश्य कितना मनोहर है, जिसकी छटा से

मुग्ध होकर कालिदास की सरस्वती भी कुछ समय के लिये अपना संयम खो बैठी थी। प्रयाग के समीप ही वत्सराज उदयन की कौशाम्बी नामक राजधानी थी। वासवदत्ता के स्वामी उदयन भारतीय उपाख्यानों के प्रधान पुरुष हैं। सुबन्धु, भास, हर्षादिक ने अनेक बार उदयन का गुण-गान किया है। जाह्नवी के बायें तट पर बसी हुई काशी नगरी है, जहां के ज्ञान और विद्या की महिमा अनंत समय से समस्त संसार में व्याप्त रही है। यहां जैन तीर्थंकर श्रीपार्श्वनाथ ने जन्म ग्रहण किया था। इसी नगरी में शारीरिक-सूत्र के रचयिता श्रीशंकर के ज्ञान का परिपाक हुआ था। वाचस्पति मिश्र और मधुसूदन सरस्वती जैसे प्रकांड विद्वानों की धात्री यही पुरी है। इसी नगरी में कुल्लूक भट्ट ने मनु के अर्थ का प्रकाश किया। आलंकारिकों के गुरु पंडितराज जगन्नाथ और भक्त-शिरोमणि तुलसीदास ने काशी में ही तनु-त्याग किया। व्याकरण-विद्या के परमोपकारी श्रीभट्टोजि दीक्षित ने यहीं सिद्धान्तकौमुदी की रचना की। अप्पय दीक्षित जैसे अद्वितीय पंडित ने यहीं सिद्धान्तलेश को निबद्ध किया। इसी महापुरी में नवनवोन्मेष ज्ञान का सदा से प्रकाश होता रहा है। यहीं के बापूदेव शास्त्री और शिवकुमार शास्त्री की कीर्ति दिग्दिगन्त तक फैल गई थी। इसी काशीपुरी में फिर एक बार आर्य सभ्यता की रक्षा के लिये विश्व-विश्रुत हिंदू विश्वविद्यालय का निर्माण हुआ है। यहीं, काशी से थोड़ी दूर पर, धर्मचक्र-परिवर्तन महाविहार है, जहां सर्व-प्रथम बुद्ध भगवान ने सत्यचतुष्टय का मानवजाति के हितार्थ उपदेश किया था। तथागत के उन सिद्धान्तों की ओर समस्त संसार नितान्त गद्गद् भाव से देख रहा है।

कोशल से थोड़ी दूर उत्तर में शाक्यों की राजधानी कपिलवस्तु है। इसीके निकट लुंबिनी उद्यान में माया-देवी के पुत्र बुद्ध-भगवान ने जन्म ग्रहण किया था। आज भी रोमिनदेवी-ग्राम में अशोक के स्तंभ, उस स्थान का निश्चित संकेत दे रहे हैं। यहां ही जेतवन है, जिसे अनाथपिण्डक नगर-श्रेष्ठी ने कार्षापणों से बिछाकर सौगत संघ को प्रदान कर दिया था। इस प्रदेश में अनेक गण-राज्य थे। उन सबकी इस समय कीर्ति मात्र ही अवशेष है। आगे बढ़कर विहार प्रांत है। यहाँ पद-पद पर खोदने से प्रस्तर-निर्मित भग्न मूर्तियाँ निकलती हैं। यहाँ ही मिथिला में जनकनंदिनी का जन्म हुआ था। याज्ञवल्क्य ने यहीं अपनी स्मृति की रचना की थी, जिसके ऊपर कल्याण के धर्मशास्त्र-कोविद विज्ञानेश्वर की मिताक्षरा नामक टीका आजतक हिंदू-विधान का नियन्त्रण करती है। इसी भूमि में मैत्रेयी ने इस शाश्वत सत्य का प्रकाश किया था —येनाहं नामृता स्याम् किमहं तेन कुर्याम। अर्थात —जिस वस्तु से मैं अमर नहीं बनूंगी, उसे लेकर मैं क्या करूं। यहीं लिच्छवियों का गण-राज्य था, जिसमें संबद्ध होने के कारण गुप्त सम्राट् अपने को लिच्छवि-दौहित्र लिखने में गौरव समझते थे। यहीं गिरिव्रज नगरी है, जो कि महाभारत के समय महाराज जरासंध की राजधानी थी; जहाँ श्रीकृष्णचन्द्र ने राजकुमार सहदेव का अभिषेक किया था। तत्कालीन दुर्ग की पाषाण-प्राचीर अब भी दर्शकों को मुग्ध कर रही है। इसी गिरिव्रज के पास राजगृह है, जिसके चारों ओर वैभार, विपुल, रत्नाचल, शैलगिरि और स्वर्णगिरि नामक पंच-गिरि शिखर हैं। नगर के दक्षिण-पूर्व में स्थित स्वर्णगिरि पर एक गुफा के किनारे ज्ञान-पिपासु गौतम ने कठोर तपश्चर्या की थी। इस स्थान का प्रत्येक रज कण अत्यंत ही पवित्र है। इसी राज-गृह के समीप नालंद विश्वविद्यालय के ध्वंस (टीले) खड़े हैं। दससहस्र विद्यार्थियों को शिक्षा देने वाले इस स्थान में समस्त पूर्वी देशों से छात्रगण आते थे। श्रीनालंद-महाविहारीय-आर्य-भिक्षुक संघ का प्रशंसापत्र प्राप्त करना अपूर्व गौरव का चिह्न समझा जाता था। इसी मगध प्रदेश में, जो वैदिक युग में कीकट और प्रमगण्ड आदि नामों से विख्यात था, आठसौ वर्षों तक भारत के गौरव की रक्षा करनेवाला प्रधान पाटलिपुत्र नगर है, जिसकी स्थापना शिशुनागवंश में प्रसिद्ध महाराज उदयिन ने अपने हाथों से की थी। यहीं के सम्राटों से पृथ्वी राजन्वती कहलाती है। इस पाटलिपुत्र को मेखला के समान एक गहरी परिखा चारों ओर से घेरे हुए थी। इसकी रक्षा के लिये क्षत्रिय जाति के काष्ठ का बना हुआ एक सुदृढ़ बृहत्काय प्राचीर था, जिसमें चौंसठ आने-जाने के मार्ग थे। इसके गोपुरों पर यत्रतत्र तोरण बने हुए थे। नगर के भीतर पाँचसौसत्तर उच्च अट्टालिकाएँ थीं। चन्द्रगुप्त मौर्य के राजकीय प्रासाद में सोने की बेलों पर चाँदी की चिड़ियाँ लगी हुई थीं। ऐसी अतुल संपत्ति और

वैभव को देखकर यवानी राजदूत हर्ष से पुलकित हो उठा था। मंत्री चाणक्य की राजनीति से शासित होनेवाले विशाल साम्राज्य के प्रबंध के विषय में क्या कहा जाय। इसी पाटलिपुत्र में महाराज देवानांप्रिय प्रियदर्शी अशोक ने जन्म ग्रहण किया था। संघ में दीक्षित होने पर जिनका सुयश सुवर्ण-भूमि बर्मा से गांधार देश तक तथा काश्मीर से सिंहल तक फैल गया था। शाहबाज़गढ़ी से जूनागढ़ तक तथा धौली जौगढ़ से सिद्धपुर मैसूर तक फैले हुए जिनके स्तंभ और शिलालेख आजतक उनकी अमर-कीर्ति का बखान कर रहे हैं। जिन्होंने संघ-भिक्षु भेजकर मध्य एशिया की बर्बर जातियों में भी तथागत के अहिंसा-धर्म का प्रचार किया, उन महाराज अशोक की जननी भारतभूमि हम सबकी जन्मभूमि है। एशिया भूखंड की एकता के स्वप्न को जिन्होंने सबसे पहले सत्य कर दिखाया, वे महाराज अशोक ही थे।

इस पाटलिपुत्र में महाराज पुष्यमित्र, परम भट्टारक परम भागवत महाराज समुद्रगुप्त, महाराज आदित्यसेन आदि ने कई बार अश्वमेध यज्ञ करके 'पृथिव्य समुद्रपर्यन्ताया एकराडिति' इस वैदिक प्रतिज्ञा को पूर्ण किया। यह पाटलिपुत्र विद्या का केंद्र था। यहीं वर्ष, उपवर्ष, पाणिनि, पिंगलाचार्य, व्याडि, वररुचि पतञ्जलि आदि विविध शास्त्र-रचयिता शलाका आदि परीक्षाओं में उत्तीर्ण होकर सर्वत्र ख्याति को प्राप्त हुए। यहीं आर्यभट्ट ने जन्म लेकर तीस वर्ष की आयु में ही आर्यभटीय नामक ज्योतिष ग्रंथ की रचना की, और सूर्य के चारों ओर पृथ्वी की गति का निदर्शन किया। इसी तिरहुत में नव्यन्याय का जन्म हुआ। विहार में ही शोण नदी के तट पर स्थित प्रीतिकूट गाँव में बाणभट्ट का जन्म हुआ, जिनकी कादंबरी नामक अद्वितीय कथा ने अकेले ही संस्कृत गद्य की नाक रक्खी है। इसी प्रदेश में मैथिल-कोकिल विद्यापति ने काव्य-रचना की, जिसका समादर तीन-तीन प्रांतों में समान रूप से हुआ। इसी प्रांत के दक्षिण में उत्कल और कलिंग है, जहाँ के समुद्र-तट के साथ पूर्वी द्वीपों का सहस्रों वर्षों तक व्यापार होता रहा। कलिंग में ही चैत्रवंश में समुदित महाराज महामेघवाहन खारवेल ने पाटलिपुत्र और पश्चिम सागर तक राज्य का विस्तार किया था। इसके पूर्व में बंग देश है। यहाँ के समतट देश सदा से गंगा के अनुपम कृपापात्र रहे हैं। यहाँ साहित्य अपूर्व है। जहाँ कृष्ण-भक्त चैतन्य का जन्म हुआ हो, उस भूमि के पुण्यभाग्य का क्या कहना है।

कविवर जयदेव की विपंची इसी बंग देश में निनादित हुई। उनके समकालीन धोयी कवि और रूप गोस्वामी ने भी अद्भुत काव्य रचना की। यहीं नासिरशाह, हुसेनशाह आदि के समय में विद्यापति, कृत्तिवास, चंडीदास और मालाधर वसु ने भगवद्भक्तिमयी काव्यवाणी का प्रसार किया। भक्त हरिदास के कीर्तन की पुण्यभूमि यही है। धर्मशास्त्र के धुरन्धर पंडित जीमूतवाहन ने बंगाल में ही दायभाग नामक ग्रंथ की रचना की। हे मातृभूमि! तेरा गौरव अपूर्व है, जिसमें ऐसे ऐसे विधान-कोविद उत्पन्न हुए हैं। बंगाल के आपाद-पद्म-प्रणत कलमों का वर्णन कौन करेगा। बंगदेश के पौण्ड्र और सुवर्णकुड्य स्थानों में अनुपम दुकूल वस्त्र तयार होता था। कर्ण सुवर्ण के समीप नागकेसर, लिकुच, बकुल तथा वट के वृक्षों पर कोष कीट पाले जाते थे। यहाँ के बुननेवालों का संबंध लाट और दशपुर के प्रसिद्ध व्यवसायियों के साथ था। कर्ण सुवर्ण के समीप ही रक्तमृत्तिका स्थान है, जहाँ के पोताधिपति महानाविक बुद्धगुप्त का शिलालेख मलय प्रायद्वीप के वैलेज़ली स्थान में अभीतक विराजमान है। इस भूमि में शक्ति की सर्वत्र उपासना होती है। यहीं बंकिम की तन्त्री से बंदेमातरम् नाद निनादित हुआ। भारत के अभ्युत्थान में इसी प्रांत ने अग्रणी बनकर भाग लिया है। काव्य-कला, साहित्य, नाटक, विज्ञान सबही में बंगीय प्रतिभा का उन्मेष हुआ है। बंग के उत्तर-पूर्वी कोण पर नवद्वीप नगरी है, जो श्रीचैतन्य महाप्रभु की जन्मभूमि है। इस पुरी को दूसरी तक्षशिला ही कहना चाहिये। कामरूप प्रकृति का अनुपम कृपापात्र है, यहीं कामाक्षा देवी का प्रसिद्ध मन्दिर है। इस प्रांत से मातृभूमि को बहुत आशा है।

मध्यभारत में मालव प्रदेश है। यहीं अवन्ति और विदिशा नामक राजधानियाँ हैं। चर्मण्वती, शिप्रा, गंभीरा, वेत्रवती, सिंधु आदि वारिधाराएँ इसी प्रदेश में यमुना देवी को नित्य उपहार ले जाती हैं। उत्तरी मालव की उज्जयिनी नामक राजधानी है, दक्षिण मालव की प्रधान पुरी माहिष्मती थी। उज्जयिनी नगरी में देश के प्रधान

व्यापार मार्ग मिलते थे। पहला मार्ग सौवीर देश से अवंती तक, दूसरा प्रतिष्ठान से अवंति विदिशा होता हुआ कौशाम्बी से साकेत और श्रावस्ती को जाता था। वहाँ से कुशीनगर, पावा, पाटलिपुत्र, राजगृह तक सम्बद्ध था। तीसरा मार्ग अवंती से काशी होता हुआ चम्पा और ताम्रलिप्ती तक जाता था। चौथा प्रसिद्ध मार्ग अवंति से गांधार देश को मिलाता था। इस विशालापुरी में किसी समय प्रद्योतों का राज्य था। यहाँ ज्योतिष विद्या की अपूर्व उन्नति हुई। पंच सिद्धांतों के रचयिता आचार्य वाराहमिहिर यहाँ रहते थे। सारे भारत में यह पुरी संस्कृत का केन्द्र थी। महाकवि कालिदास ने जहाँ निवास किया हो, उसको स्वर्ग का ही कांतिमत् खंड कहना चाहिये। यहीं शिप्रा के तीर पर स्थित महाकाल के मंदिर में नित्य महाभारत की कथा होती है। यह अवन्ती किसी समय हूण नृपतियों की राजधानी थी। प्रबल प्रतापी क्षत्रप रुद्रदमन विक्रम की द्वितीय शताब्दी में यहीं राज करते थे। मालव प्रदेश में ही पुष्यमित्रों का गण-राज्य था, जिन्होंने गुप्त कुल की राजलक्ष्मी को विचलित कर दिया था। इन्हीं समुदित-बल-कोप पुष्यमित्रों पर समर-विजयी होने के लिये महाराज स्कंदगुप्त ने भिटारी के पास एक रात्रि पृथ्वी-तल पर शयन करके तपस्या से व्यतीत की थी। विप्लुत-वंश-लक्ष्मी के स्तम्भन के लिये जब सेनानी लोग तपस्या करते हैं, तब क्षात्र धर्म समृद्धिमान हो जाता है। जिन्होंने समरांगण में विक्रांत हूणों से लोहा लेकर अपने भुजदंडों से पृथ्वी को कम्पायमान कर दिया, तथा जिन्होंने अनंत म्लेच्छों को मार भारतमही को पुनः आर्य धर्म में दीक्षित किया, यह अवंतिपुरी उन्हीं हूणहनन-केसरी जनेन्द्र कल्किराज महाराज यशोधर्मन् की पुण्यभूमि है। इसी अवंति के समीप दक्षिण में धारा नगरी है, जहाँ सरस्वती के अवतार महाराज भोज ने राज्य किया। भोज की विद्या के अगाध गाम्भीर्य को त्रिलोकी में कौन पूरी तरह जानता है। वह कौन सा विषय है, जिस पर सरस्वती-कण्ठाभरण महाराज भोज ने लेखनी न उठाई हो। हे मालवभूमि! तुझे बारबार प्रणाम है।

मध्यभारत के पूर्वी भाग बुंदेलखंड में विदिशा नामक नगरी है। इसी प्रदेश को दशार्ण कहते थे। यहाँ साँची और भारहुत के स्तूप हैं, जिनकी शिल्पकला के कारण मातृभूमि का गौरव प्रकर्ष होता है। ये शिल्प के उदाहरण किसी सम्राट् की आज्ञा से नहीं बने हैं, वरन् सामान्य पौरजानपद प्रजा ने अपनी-अपनी सामर्थ्य के अनुसार इनके निर्माण का भार वहन किया था। साँची के विशाल तोरण भारतीय शिल्पकला के अद्भुत उदाहरण हैं। उनमें तक्षक के अमर हृदय की छाप लगी हुई है। समीप ही भारहुत के स्तूपों में भदन्त, कश्यपगोत्र, मध्यम, दुन्दुभिसार और गोतीपुत्र आदि की अस्थियाँ बाइससौ वर्ष बाद भी उसी तरह रक्खी हुई हैं। इन महात्माओं ने युद्ध-दुन्दुभि की जगह धर्म का भेरी-घोष करनेवाले महाराज अशोक की आज्ञा से प्रेरित होकर हिमालय के प्रदेशों में तथागत के धर्म का प्रचार किया था। इस खण्ड में हिंदी भाषा खूब फूलीफली है। यहीं चम्पतराय के पुत्र छत्रसाल ने अलौकिक पुरुषार्थ के साथ हिंदू राज्य की स्थापना की थी।

मध्यभारत के दक्षिण में मध्यप्रदेश है। यहाँ विन्ध्य और पारियात्र पर्वतों के बीच रेवा नदी बहती है। यहाँ के पर्वतों और वनपटों में अभीतक आदिम सभ्यता बसती है। महाकांतार और दण्डकारण्य यहीं थे। यहीं शून्य-जन स्थान में राम, लक्ष्मण और सीता ने भ्रमण किया था। इसके दक्षिण में विदर्भ देश है, जहाँ दमयंती और इंदुमती जैसी रमणी-रत्न हुए हैं। यहीं पद्मपुर नामक ग्राम में कश्यपगोत्रीय ब्रह्मवादी उदुम्बर ब्राह्मणों के घर में कविवर भवभूति हुए, शब्दब्रह्म को प्रत्यक्ष करनेवाले जिन प्राज्ञ महात्मा की परिणत वाणी ही उत्तररामचरित के रूप में प्रकट हुई। कुमारिल के उद्बोधन आंदोलन के समय जिस वैदिक सभ्यता का उद्धार हुआ उसका समस्त आदर्श भवभूति में पुंजीभूत होगया था। इसी विदर्भ के अचलपुर ग्राम में कौशिक गोत्र में महाकवि भारवि और दंडी ने जन्म लिया, जिनके अर्थ गौरव और पद-लालित्य ने सहृदय जनों को मुग्ध कर लिया है। इस मध्यप्रान्त में ही रामगिरि, माल क्षेत्र और आम्रकूट हैं। यहाँ के छत्तीसगढ़ के इतिहास को राजस्थान का ही एक टुकड़ा समझना चाहिए। इसीके दक्षिणवर्ती वेनगंगा और गोदावरी तथा तुंगभद्रा और कृष्णा नदियों के बीच में महाकांतार प्रदेश हैं। ये किसी समय वन्य जातियों से भरे हुए थे। यहाँ ही सातवाहन राज्य का विस्तार हुआ था। यहाँ

अभी तक प्राचीन संस्कृत-साहित्य के अनेक ग्रंथ हैं। इसके उत्तर-पश्चिम कोने में अजंता की गुफाएँ हैं, जिनको राष्ट्रीय शिल्प-शाला का गौरवपद प्राप्त है। मौर्य, गुप्त, चालुक्य, पल्लव सब सम्राटों ने अजंता की गुफाओं के सँवारने में अपना धन व्यय किया था। श्रीमान् और वित्तपाल सदृश तक्षकों ने इन्हीं गुफाओं के निर्माण में अपने कौशल का परिचय दिया था।

पश्चिम में उत्तर से दक्षिण तक फैला हुआ महाराष्ट्र देश है। इसके उत्तर में सिंध सौवीर देश है, जहाँ के राजा शल्य ने कुरुक्षेत्र के युद्ध में भाग लिया था। यह क्षेत्र सिंधु नदी का अनुपम कृपापात्र है। यहाँ किसी समय अंबष्ठ और क्षत्रिय नाम के जनपद तथा मुचुकर्णि गण राज्य था, जिन्होंने सिकंदर की गति को रोककर अंतर्राष्ट्रीय विधान का पालन किया था। यहाँ के अधिवासी दंडनीति में बड़े निष्णात थे। मुचुकर्णि संघ के राज्य में सोने-चाँदी की खानें थीं। ये लोग स्वास्थ्य के नियमों का धर्म की तरह पालन करते थे, और सवा सौ डेढ़ सौ वर्षों का दीर्घायुष्य प्राप्त करते थे। स्वतंत्रता के उपासक इस जनपद में कोई कदर्य और दास नहीं था। यहीं पर सिंधु के पास पाटलनगर था, जहाँ से पाश्चात्य देशों के साथ विपुल व्यापार होता था। इस सौवीर प्रांत में राजा दाहिर ने देशाभिमान की वेदी पर अपना बलि चढ़ा दी थी। विक्रम की सातवीं शताब्दी में सिंधु-तीर पर सुखासीन ऋषिसत्तम देवल ने अपनी स्मृति की रचना की, जिसमें समाज और जाति की रक्षा के लिये पुनरावर्तन संस्कार का प्रतिपादन किया है। इसी प्रांत के अमरकोट दुर्ग में सम्राट् अकबर का जन्म हुआ था। सिंध देश की शुष्क भूमि में वेदांत और सूफ़ी धर्म अत्यंत पल्लवित हुआ है। सत्रहवीं शताब्दी में शाह लतीफ़ नाम के महात्मा ने रसालो लिखकर ब्रह्म के उपदेश द्वारा मानव-हृदयस्थित एकता को खोज निकाला था। सचल, स्वामी और दलपत ने उसी ज्ञान को घर-घर में पहुँचा दिया। यह सिंध प्रांत, यद्यपि देश के एक कोने में है, तथापि मातृ-भूमि के हृदय के साथ इसका हृदय एक है। इसके निकट ही आनर्त, सुराष्ट्र और लाट प्रदेश हैं। इनमें सरस्वती, साबरमती, मही, नर्मदा और पयोष्णी नदियाँ बहती हैं। सरस्वती नदी के तीर पर अणहिल-पत्तन नगर है, जहाँ कलिकाल के आचार्य कुमारपाल के सचिव पाहिनीपुत्र श्रीहेमचंद्र ने अनेक ग्रंथों का निर्माण किया, जिनका प्रसाद जैन और ब्राह्मण धर्म के अनुयायियों पर समान-रूप से वितीर्ण होता था। इस पत्तन में जैन हस्तलिखित ग्रंथों के भंडार अभी तक सुरक्षित हैं। श्रीहेमचंद्राचार्य का समस्त पुस्तकालय खरतरगच्छ की दीवारों में बंद है। यहाँ के साहित्य की ओर सब लोग आशाभरी दृष्टि से देख रहे हैं।

सौराष्ट्र में ही वलभी राजधानी है, जहाँ गुप्त-नरेशों की एक शाखा ने कई शताब्दियों तक राज्य किया। इसीके समीप पालिताना और शत्रुंजय तीर्थ हैं, जहाँ सहस्रों अर्हत प्रतिवर्ष यात्रा करते हैं। इसीके गौरव का धनेश्वर ने शत्रुंजय-माहात्म्य नामक ग्रंथ में गुणगान किया है। सुराष्ट्र मंडल की सर्वप्रसिद्ध पुरी द्वारावती है, जो अंधक वृष्णिगण राज्य की राजधानी थी। यहीं विक्रम से चौदहसौ वर्ष पू० अर्धभोक्ता राजन्य श्रीकृष्ण सात्वत दाशार्ह वृष्णि आदि यादवों के प्रधान बनकर शासन-सूत्र चलाते थे। इन्हीं वृष्णियों के प्राचीन सिक्के वृष्णिसंघस्य त्रातरस्य शब्दों से अंकित अब भी मिलते हैं, जिन पर चक्र की मुद्रा बनी हुई है। द्वारावती और इंद्रप्रस्थ के तत्कालीन राजनैतिक संबंध को कौन भारत-वासी नहीं जानता? यहीं समुद्र-तीर पर प्रभासतीर्थ है, जहाँ मदोद्धत यादवों का विनाश हुआ था। यही प्रभास पीछे से सोमनाथ नाम से विख्यात हुआ। यहीं पर आर्य जाति को दंडनीति के नाश होने पर सब धर्म भी डूब जाते हैं — इस अत्यंत कड़वे सत्य का यवन-विध्वंसक के हाथ से प्रत्यक्ष अनुभव करना पड़ा। यह गुजरात प्रांत वही है, जो व्यापार में अत्यंत उन्नति-शील था, जहाँ के नाविक अपनी-अपनी तरी और पोतों में अत्यंत महार्घ पदार्थ लाद कर द्वीप-द्वीपांतरों में बेचकर उत्तम लाभ और प्रभूत धन लाते थे, जहाँ से एक सहस्र रथकार किसी समय विराट भारत को बसाने के लिये गए थे। इसी गुर्जर प्रांत में मोरवी और पोरबंदर हैं, जहाँ महाप्रतापी दयानंद से आदित्य ब्रह्मचारी और गांधी से सत्याग्रही हुए हैं। इस पुण्यभूमि ने नरसी मेहता और अखा को जन्म दिया है। यहीं गिरिनार पर्वत पर सुदर्शन झील है, जिसे मौर्य-सम्राट् चन्द्र ने अपने स्थानक पुष्यगुप्त वैश्य द्वारा बनवाया था। उनके पौत्र अशोक

ने तुषास्फ नामक प्रादेशिक को आज्ञा देकर यहां नहरें बनवाई थीं। इस सुदर्शन ने सुराष्ट्र की भूमि को अदेव-मातृक बना दिया था। चार शताब्दी, बाद यह झील प्रचण्ड वर्षा के कारण फट गई थी। तब उज्जैन के प्रतापी क्षत्रप रुद्रदमन ने इसके निर्माण के लिये अपने मन्त्रिमण्डल से रुपया मांगा था, परन्तु मन्त्रियों के अस्वीकार करने पर रुद्रदमन ने अपने निजी कोष से इसका निर्माण कराया था। गिरिनार का शिलालेख भारतीय राष्ट्र-विधान का एक उज्ज्वल हीरा है। इसके दक्षिण में महाराष्ट्र देश है, जहां सह्याद्रि पर्वत-श्रेणियां हैं। विदर्भ के पश्चिम का भाग कुन्तल कहलाता था। यहीं प्राकृत कवि राजशेखर का जन्म हुआ, जिसने कुन्तल राजकुमारी कर्पूरमञ्जरी के चरित्र का वर्णन किया है। महाराष्ट्र के मध्य भाग में भीमा नदी के दक्षिण तट पर पंढरपुर स्थित है। यहीं ज्ञानेश्वर महाराज ने जन्म लेकर ज्ञानेश्वरी की रचना की। यहीं मुक्ताबाई के गर्भ से भक्त चोखामेला ने जन्म लिया। महाराष्ट्र के सन्तों का परिगणन कहां तक किया जाय। एकनाथ, नामदेव आदि महात्मा इसी प्रान्त में उत्पन्न हुए। कविवर मोरोपन्त और साधु तुकाराम ने अपने काव्यामृत से महाराष्ट्र-वासियों को तृप्त कर दिया। समर्थ गुरु रामदास ने छत्रपति शिवाजी जैसा शिष्य पाकर राष्ट्रीय-धर्म की योजना की। सारे मराठों को संगठित करके महाराष्ट्र धर्म को बढ़ाने का उपदेश दिया। हिंदू राज्य-प्रणाली के उद्धारकर्ता छत्रपति शिवाजी को कौन नहीं जानता, जिन्होंने स्वधर्म और स्वराज की स्थापना करके भारतीय-सभ्यता को बचाया। इनकी कीर्ति को गाकर मतिमान भूषण अमर हो गए हैं।

दक्षिण का द्राविड देश भक्ति और ज्ञान का आगार है। इस दक्षिणापथ के कई भाग हैं। गोदावरी और कृष्णा-नदी के बीच आन्ध्र देश है, जहां श्रीशैल, द्राक्षाराम और कालेश्वर के शिवलिङ्ग हैं। इसीसे यह प्रांत त्रिलिंगाना भी कहलाता है। यहीं आञ्जनेय हनुमान ने जन्म लिया था। यहीं सातवाहन नृपतियों की राजधानी थी, जिन्होंने चार शताब्दी तक वैदिक धर्म की दृढ़ ध्वजा का आरोपण किया। यहां का पौरजानपद प्रबन्ध प्रशंसनीय था। यहां की नैगम, पूग और कुलिक सभाएं जनता को पूर्ण स्वराज्य का अनुभव कराती थीं। आन्ध्र देश का मनुष्य-वर्गी-करण भी स्तुत्य था। महारथी, महासेनापति, अमात्य, महामात्र, भांडागारिक, नैगम, सार्थवाह, श्रेष्ठिन, लेखक, वैद्य, गन्धिक, हालकीय, वर्धकि, लोहवनिज और मालाकार आदि उद्योगों के अनुसार समाज का संगठन हुआ था। आन्ध्रों का समुद्र-वाहिक व्यापार उन्नति की चरम सीमा पर था। यहां काव्य और साहित्य का भी विपुल विकास हुआ है। नन्नय भट्टारक, तिक्कन सोमयाजी और एर्रीप्रेग्गडा नाम के 'कवित्रय' ने तीन शताब्दियों के अन्दर आन्ध्र महाभारत की रचना की। भक्तशिरोमणि पोतनामात्य और वेद-पुराणों के अद्वितीय विद्वान महा प्रतिभाशाली श्रीनाथ कवि ने आन्ध्र-देश को गौरवान्वित किया है। त्यागराज आन्ध्र के विद्यापति या जयदेव हैं। ऐसे-ऐसे महाकवियों से पुरस्कृत यह गोदा और कृष्णा के बीच का भू-प्रदेश सरलता और अध्यवसाय की मूर्ति है।

कर्णाट या तामिल प्रांत पूर्वी समुद्र तट पर दूर तक फैला हुआ है। यहीं कावेरी और ताम्रपर्णी नदियां हैं। यहां मुक्ताफल, जवादु, रिसेय आदि महार्घ पदार्थों का व्यापार होता था। यहां के नानादेशी संघों में देशविदेशों के व्यवसायीगण सम्मिलित होते थे। स्थानीय-स्वशासन की प्रवृत्ति यहां चरम-सीमा को पहुंच गई थी। यहां ही तृतीय संगम के समय में, तिरुवल्लुवर महाकवि ने तिरुक्कुरल ग्रन्थ की रचना की। इस ग्रन्थ ने कोटि-संख्यक मनुष्यों को शांति और नीति की शिक्षा दी है। तिरुवल्लुवर सदृश कवि ही, राष्ट्र की सभ्यता और संस्कृति का वर्द्धन करते हैं। धन्य है तिरुवल्लुवर की सरस्वती, जिसने तुलसीदास की शारदा के सदृश ही दक्षिण भारत में धर्म की स्थापना की। अनन्त रत्न अपनी-अपनी प्रभाओं के व्यतिकर से मातृभूमि के स्वरूप को भास्वित कर रहे हैं। शैवधर्मानुरागी मैकंड ने, जिनकी उपाधि श्वेताचार्य श्वेतवन भी है, शिवज्ञानबोध नामक ग्रन्थ की रचना की, जो तामिलों की सबसे प्रिय धर्म-पुस्तक है। श्वेताचार्य के ही शिष्य अरुलनन्दि उत्कृष्ट दार्शनिक हुए, तथा दूसरे शिष्य श्रीकण्ठ ने ब्रह्म-सूत्रों पर ब्रह्ममीमांसा नामक भाष्य रचा है। बोधायन, शङ्कर, भास्कर और रामानुज के बाद श्रीकण्ठ का ही भाष्य है। कम्बर की बाल्मीकि रामायण भी तामिल साहित्य का हृदय-हार है। यहां चोलों और पाण्ड्यों के

विस्तृत साम्राज्य थे। चोल महीपतियों ने तंजोर नगरी को अतुल सम्पत्ति व्यय करके सजाया था। जहाँ के विशाल मन्दिर अबभी दर्शकों को चकित करते हैं। पल्लवों की राजधानी कांची थी, जिसकी गणना भारत की महापुरियों में की जाती है। यहीं के सिंह विष्णुपल्लव के आश्रित भारवि कवि थे। सम्राट् नृसिंहवर्मन् ने अपने प्रखर प्रताप से महाराज पुलिकेशी की प्रतिभा को तिरोहित कर दिया था। कांचीपुरी के आपणों में ऊँचे-ऊँचे विमान-गृह, सौध और अट्टों में, राजमार्ग के तोरणों और प्राकारों में, अनन्त लक्ष्मी बरसती थी। इसे दक्षिण का पाटलिपुत्र ही कहना चाहिए।

पश्चिमी सागर के तीर प्रांत केरल और महिशूर हिरण्यवक्षा मातृभूमि के परमप्रिय अङ्ग हैं। मध्वधर्म के केन्द्र इन प्रांतों में पम्पा, रन्ना, लक्ष्मीश, षडक्षिराचार्य जैसे भक्त और कवि सम्राट् हुए हैं, जिनकी रचनाओं से कन्नड भाषा अलंकृत है। यहीं धारवाड के समीप गजेंद्र-गढ में कोलाचल सूरि मल्लिनाथ के वंशज अभीतक रहते हैं। कणाद, व्यास, पतञ्जलि, गौतम शास्त्रों में पारंगत तथा अतुल विषयों के ज्ञाता मल्लिनाथ के सदृश दूसरा टीकाकार किसी भाषा में नहीं हुआ जिनकी सञ्जीवनी और घण्टापथ अनन्य सामान्य हैं। परमपावन कनकदास ने यहीं पंचम कुल में जन्म लेकर भी हरितोयिणी भक्ति-तरङ्गिणी से समस्त जनों को स्नान कराया। ये किष्किन्धा प्रदेश है, जहाँ पम्पा और ऋष्यमूक पर्वत हैं। केरल में सरस्वती, वेत्रवती और मुरला नामकी नदियाँ हैं। यहाँ केतकी की धूलि निरन्तर वायु में उड़ती रहती है। यहीं मलयस्थली से बहता हुआ दाक्षिणानिल माता के विपुल-व्यापी अंचल को सुरभित करता है। ताम्बूलवल्ली, एलालता, पूग और तमालपत्रों से आस्तीर्ण इन भूप्रदेशों का स्मरण करके कितनी बार भारतीय कविजन विह्वल होगये हैं। यही केरल भूमि भगवान शंकर की जन्म-भूमि है। केवल पन्द्रह वर्ष की आयु में ही जिन्होंने शारीरिक मन्त्रों की रचना की, उन महाज्ञानी शंकर ने विश्व भर में भारत के यश को फैलाया है। कुमारिल, शंकर, यामुन, वेदान्तदेशिक, रामानुज, वल्लभ, उम्बेक, माधव, मध्व, सायण आदि आचार्यों का जन्म दक्षिणा-पथ में ही हुआ था। इनकी प्रतिभा आजतक दर्शन और वेद के विषय में अप्रतिद्वन्द्विनी मानी जाती है। इन्होंने वैदिक सभ्यता का आदर्श उत्कृष्टतम रूप में लोक के सामने रक्खा था। ज्ञान और भक्ति की जो तरङ्गें दक्षिणापथ से उठीं, सारे देश पर उनकी अमिट छाप लगी हुई है। दक्षिणापथ में ही ध्रुव स्वामिन्, देव स्वामिन्, भव स्वामिन्, अग्नि स्वामिन् आदि ने धर्मसूत्रों पर भाष्य रचकर सामाजिक-आचार की प्रतिष्ठा की। यहीं चालुक्य विक्रमार्क की राजधानी कल्याणनगरी में श्री-विज्ञानेश्वर ने मिताक्षरा की रचना की, जो कि व्यावहारिक धर्मशास्त्र का देशभर में सर्वशिरोमणि ग्रन्थ है। असा-मान्य विद्वज्जनों को उत्पन्न करनेवाली, कला साहित्य और विज्ञान में उन्नति की चरम-सीमा को पहुँची हुई, पौरजानपदों को उत्कृष्ट कक्षा की स्वतन्त्रता प्रदान करने-वाली भारत-भूमि के विषय में देवता भी गीत गाते हैं। अहा! वे कैसे धन्य-भाग हैं, जिनकी ऐसी जननी है। हे भुवन मन-मोहिनी, हे शुभ्र-तुषार-किरीटिनी, निर्मलसूर्य-करोज्ज्वलधरणी! तुम जनक-जननि-जननी हो। तुम्हारा हमारा सम्बन्ध कुछ नया नहीं है, हमारे पिता-माता और उनके पूर्वजों की भी तुम धात्री हो। हे देवि! नील-सिन्धु नित्य तुम्हारे चरणतल को धोते हैं, जलदकाल में मेघ से दुरित तुम्हारे अम्बर को समुद्रानिल विकम्पित करती है। तुम्हारे गगन में सर्व प्रथम ज्ञान-सूर्य का उदय हुआ, तुम्हारे यहाँ सामवेद की उत्पत्ति तपोवनों में हुई है, ज्ञान और धर्ममयी काव्य-गाथाएँ आरम्भ में तुम्हारे वन-भवनों में प्रचारित हुई। हे चिरकल्याणमयी देवी, तुम धन्य हो! तुम देश-विदेश में सकल सामग्री का वि-तरण करती हो, ऐसी तुम्हारी साम्पत्तिक महिमा है। हे अमृतनिष्यन्दिनी मातृभूमि! हम तुम्हारे वैदिक गीत को गाते हैं।

सत्य, यज्ञ, दीक्षा, तप और ज्ञान तुम्हें धारण करते हैं, तुम हमारे भूत की साक्षी और भविष्य की अधिष्ठात्री हो। तुम विषमता से रहित होकर नाना प्रकार की वीर्य-वती ओषधियों का भरण करती हो। तुम्हारे गिरि, पर्वत और अरण्य हमें सुख देनेवाले हों, तुम्हारी वारिधाराएँ प्रमादरहित होकर अहोरात्र बहती रहें। तुम व्रीहि और यवादि अन्नों को उत्पन्न करती हो, तुम्हारे ग्रीष्म, वर्षा, शरद, हेमन्त, शिशिर, वसन्त हमें सुखावह होवें। तुम चतुष्पाद्—सिंह, व्याघ्र आदि आरण्य पशुओं को तथा द्विपाद—हंस, सुपर्ण आदि पक्षियों को धारण करती हो।

विश्वम्भरा देवी ! तुम हिरण्यवक्षा हो, मणि, हिरण्य आदि निधियां तुम्हारे निगूढ़ स्थानों में गुप्त हैं। तुम्हारी गोद में उत्पन्न होकर हमारे पूर्वजनों ने अनेक पराक्रम किये, तुममें से जन्म लेकर सब तुम्हींमें विलीन हो जाते हैं, तुम्हारे ऊपर नृत्य, गान आदि नाना प्रमोद होते हैं, तुम्हारे यहां युद्धों में दुन्दुभि-घोष होता है। तुम हमारे धर्म को आश्रय देती हो, तुम्हारे ऊपर ही यथा-प्रान्त विभिन्न भाषा-भाषी और नाना धर्मों के माननेवाले मनुष्य असबाध होकर बसते हैं। सबमें तुम्हारी ही गन्ध बसी हुई है। तुम्हीं युवा का तेज और युवती का वर्चस् हो। तुम्हारे पथ अनेक हैं, जिनमें भद्र और पाप दोनों ही समान रूप से चलते हैं। तुम्हारी जो सभा और समितियां हैं, उनमें हम लोग चारु रूप से बोलें। यह पृथिवी पहले समुद्र के भीतर थी, इसका हृदय परब्रह्म में स्थित है। उसका ध्यान करनेवाले ऋषियों के लिये ही यह मातृभूमि प्रकट हुई, और अमृत से परिपूर्ण है। वह भूमि हमें उत्तम राष्ट्र में दीप्ति और बल देवे जिसमें ऋषियों ने गायत्री मंत्र का गान किया।

वासुदेवशरण अग्रवाल

लोभ का वक्तव्य

सुनु रे कपूर ! मदचूर ! इक सीख मेरी,
व्यर्थ अभिमान करि नीच ! नासि जाइगो।
रंग में न रूप में बिलोकि घिन होइ मन,
कोढ़िया सपेद तू अछूत बनि जाइगो।
छुद्र कीट मारिबे में सक्ति परसिद्ध तेरी,
नेकु तौ पसीजु सोंक लाये जरि जाइगो।
और की चलावै कौन मैं ही जो न साथ होऊँ,
पल में न जानें कौन लोक उड़ि जाइगो।

किशोरीदास वाजपेयी

पंतजी और पल्लव

(समालोचना)

(१)
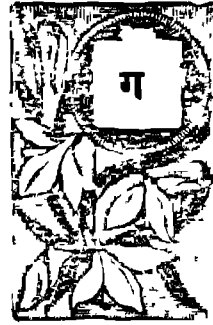
गत वर्ष, वसंत के पुष्प-पत्र के अंतिम ऐश्वर्य-काल में मित्रवर, हिंदी के कोमल किशोर कवि श्रीयुत सुमित्रानंदन पंत के "पल्लव" को मनोहर विकसित देखकर हार्दिक प्रसन्नता हुई थी। हिंदी के मंखाड़ में "पल्लव" का फूट कर निकलना स्वाभाविक हर्ष का कारण है भी।

उस समय जब "पल्लव" प्रेस की गैलियों की सघन प्रलंब डालियों के भीतर Projection of Nature का Problem solve कर रहा था, पंतजी के पत्र से प्रेस के कृष्णाकृति विशाल-वपु "कलौ भीम-भयंकरा" भूतों के निष्करुण-पीड़न, विश्लेपण-पेषण, घर्षण-घर्षण आदि से किये गये अनर्गल अत्याचारों की कल्पना मैंने कर ली थी, तथा शीघ्र ही "पल्लव" को यान्त्रिक-यन्त्रणा से मुक्ति देने के लिये मन-ही मन प्रार्थना भी परमात्मा से यथेष्ट की थी। परंतु कुछ महीनों के बाद "पल्लव" के संबंध में विचार करते हुए परमात्मा की निर्दयता से मुझे विचलित हो जाना पड़ा। उनके प्रति जो क्षणमात्र का विश्वास मैंने किया था, वह क्षणमात्र में उठ भी गया, कारण, तबतक प्रचत "पल्लव" पंतजी द्वारा प्रेरित होकर मुझे प्राप्त न हुआ था। जिस समय परमात्मा से मेरा असहयोग चल रहा था, मेरे एक मित्र ने आकर कहा, पंडितजी "पल्लव" तो प्रकाशित हो गया, कल मैं एक प्रति खरीदकर आपको दूँगा। अवश्य उस समय पंतजी की मित्रता की बानगी, पल्लव की एक प्रति उनसे न मिलने के कारण, उन्हें मैं "यश्च्यति तदव्ययम्" ही कर रहा था। दूसरे दिन मित्र ने "पल्लव" की एक प्रति खरीदकर मुझे दी। आलस्य-मयी भावनाओं का जाल समेटकर केन्द्रीकृत स्थिर बुद्धि से मैं उसे पढ़ने लगा। उसके "विज्ञापन" तथा "प्रवेश" भाग में पंतजी की सार्वभौमिकता के गज से कविता-कामिनी का शयन-जीर्ण प्राचीन कन्था नपा

हुआ तथा उनकी "प्रतिभा के बछड़े" के हुल्थे से कवि-समुदाय को पलायन-पन्था पर श्वासावरुद्ध भागता हुआ देखकर बड़ा आनंद आया, जैसे क्षणमात्र मे किसी ने "पुंगव" को "पोंगा" कर दिया। दूसरे कवि को ही टीकाकार के आसन पर देखकर मुझे विश्वास हो गया कि आजकल की दवाओंके विज्ञापक वस्तु-प्रसिद्धि के कौशल ज्ञान से बिलकुल ही कोरे हैं। एकबार आद्यन्त पढ़कर मैं अपने पूर्व भावो पर विचार करने लगा। जब एक दिन "पल्लव" के लिये निश्छल सहृदयता का स्रोत हृदय के उभय कूलों को प्लावित कर बहा था, उस समय अवश्य पल्लव के पल्वल में मृत अतीत के साहित्य-महारथियों को डुबाने को पतजी की चेष्टा पर कभी मुझे विचार करने का अवसर नहीं मिला, न मै इस तरह का विचार कर सकता था। इस तरह की चेष्टा यदि सत्य की दृष्टि से निष्पाप सिद्ध होती, तो विशेष कुछ लिखने या कहने का अवसर न मिलता, उनके पुष्ट प्रमाण उस सत्य की रक्षा करते। केवल पद समता के कारण मण्डूक की तरह साँस फुलाकर हस्तिकाय कहलाने की चेष्टा पतजी को न करनी थी। मण्डूक की तरह पतजी पद-लघुता और पद-गुरुता के ज्ञान से विवर्जित नहीं। "पल्लव" की छाया मे जो मुझे भी ताप से शीतल करने की पतजी ने सहृदयता दिखलाई है, और अपने इस उपकार का कहीं उल्लेख भी अपने प्रेरित पत्र मे नहीं आने दिया, उस समय मुझे मालूम न था कि इसके लिये कभी छापे के अक्षरो मे धन्यवाद देने की मुझे आवश्यकता पड़ेगी। "पल्लव" के 'प्रवेश'-भाग मे कविता, ब्रजभाषा, खड़ी बोली, अतीत के कवि, कवित्त, स्वच्छन्द छन्द, बँगला की कविता, "निराला" के छन्द, शब्दो के रूप राग, स्वर आदि जिन अनेक विषयो को नवाविष्कृत वैज्ञानिक सत्य की हैसियत से हिंदी के दरिद्र भाण्डार मे लाने की पतजी ने चेष्टा की है, उनकी अलग-अलग समालोचना करने के पहले मैं एक वह विषय उठा रहा हूँ, जिसकी कहीं चर्चा भी "प्रवेश" के ५४ पृष्ठो मे उन्होंने नहीं की।

इस विषय का उन्हींसे घनिष्ठ सबध है। अपनी कविता की कारीगरी की व्याख्या तो उन्होंने येनकेन-प्रकारेण अच्छी ही की है, परंतु इस कारीगरी का सोचा उन्हें कहाँ मिला, किस तरह वे अपने लिये इतने अच्छे कवि हो गये, कविता पर वे राजनीति-क्षेत्र के वर्तमान नेताओं की तरह कोई जन्मसिद्ध अधिकार रखते हैं या नहीं, इस तरह के आवश्यक विषयो को उन्होंने प्रच्छन्न ही छोड़ रक्खा है। पहले इन अव्यक्त विषयों पर ही मैं प्रकाश डालने की चेष्टा करूँगा। पतजी की कविता-कामिनी के लाडले भाव-त्रिशकु को साहित्य के नभोमंडल मे गतिरहित निराधार ही छोड़ रखना अनुचित-सा प्रतीत हो रहा है।

महर्षियो ने दर्शनो से विश्व को जो सत्य दिया, वह कभी बदलता नहीं। वह काल से अभेद तथा भिन्न भी है, इसलिये अमर और अक्षय है। वह न पुरुष है, न स्त्री, इसलिए उसे "तत्सत" कहा। वह आजकल की विश्व-भावना, विश्व-मैत्री आदि कल्पना-कलुषित बुद्धि से दूर, वाणी और मनकी पहुँच से बाहर है, जड़की सहायता से वह अपनी व्याख्या नहीं कराना चाहता, इस तरह उसमें जड़त्व का दोष आ जाता है, वह स्वय ही प्रकाशमान है -- बिनु पग चलै सुनै बिनु काना, कर बिनु कर्म करै बिधि नाना—आदि-आदि से कर्ता भी वही है, जड मे कर्म करने की शक्ति कहा? मन, बुद्धि, चित्त और अहकार को शास्त्रकारो ने जड़ कहा है क्योंकि वे पचभूतों के जडपिंड का आश्रय लिये हुए हैं, और मृत्यु होने पर कारण-शरीर मे तन्मय रहते हैं - इन्हें लिगज्ञान भी है— इस तरह जड़त्व-वर्जित न होने के कारण इन्हें भी, ब्रह्म से बहिर्गत कर, जड़ कहा है, यद्यपि ब्रह्म के प्रकाश को पाकर ही ये क्रियाशील होते है। कुछ हो, ये सब यत्र ही हैं, कर्त्ता वही है और उसके कर्तृत्व का एकाधिकार समझ कर ही उसे 'कविर्मनीषी परिभू स्वयभू" कहा है।

इस तरह कवि भी ब्रह्म ही सिद्ध होता है, जड शरीर से ध्यान छूट जाता, जड शरीरवाले कवि की आत्मा दीख पडती है। इसकी स्पष्ट व्याख्या इस तरह होगी--जैसे बालक पतजी मे कविता करने की शक्ति न थी, शक्ति का विकाश हो रहा था, न मन मे सोचने की शक्ति थी, न अगों में सचालन-क्रिया की, धीरे-धीरे, शक्ति के विकास के साथ ही-साथ, जिस जाति और वश में वे पैदा हुए-- उनके सस्कारो को लिये हुए, वे बढ़ने लगे, पढ़ने लगे, अपने व्यक्तित्व पर ज़ोर देकर बड़े होने लगे। उन्हें अपनी रुचि का अनुभव हुआ, इस तरह चेतन और जड़ का

मिश्रित प्रवाह उनके भीतर से अपनी सत्ता को संसार की अनेक सत्ताओं से विशिलिष्ट कर बहने लगा। एक दिन उन्हें मालूम हुआ, उनकी रुचि कविता पर अधिक है। यहां, इस रुचि को पकड़िए, यह जहां से आई है, वह ब्रह्म है, जहां अब उनकी बाह्य-शिक्षा ठहरेगी—जिस तरह से वे भविष्य में कवि होंगे, वह केंद्र भी ब्रह्म ही है, जीवात्मा का संयोग लिये हुए। इस तरह भारतीयों ने ब्रह्म को ही कवि स्वीकार किया है। यह रुचि या इच्छा क्यों पैदा होती है, इसका कारण अभीतक नहीं बतलाया जा सका, यहां भारतीय शास्त्र मौन है, और है भी यही यथार्थ उत्तर, क्योंकि, जब एक के सिवा दूसरा है ही नहीं, तब उस एक की रुचि का कारण कौन बतलाए, इसलिये ही कहा है, नमक का पुतला समुद्र की थाह लेने के लिये जाकर गल गया, खबर देने के लिये न लौटा। अस्तु इस तरह पन्तजी की आत्मा में कवि होने की—सृष्टि की रुचि का कारण नहीं बतलाया जा सकता, परन्तु रुचि हुई अवश्य उस ब्रह्मरूपी पंतजी की अनादि सत्ता में और कविता की कारीगरी, अक्षरों, शब्दों और भावों के चित्रों को ग्रहण की शक्ति, माया धारण करने लगी, प्रकृति में अनेक प्रकार की छायाएं पड़ने लगीं। स्मृतियां यहां हैं अनेक वस्तुओं की, अनेक भावों की। जड़ की ही स्मृति होती है। इन स्मृतियों को जिस तरह पहले प्रकृति धारण करती है, उसी तरह फिर निकालती भी है। बच्चे को "क" सिखाइए, जब लिखकर "क" के चित्र की धारणा वह कर लेगा, प्रकृति में "क" की छाया पड़ जायगी स्मृति दुरुस्त हो जायगी, तभी वह आप-से-आप "क" लिख सकेगा।

पन्तजी के पल्लव में इतनी ही कमी है। उन्होंने अपनी शिक्षा पर पर्दा डाला है। किस तरह, कहां-कहां से, छाया-चित्रों को उनकी प्रकृति ने ग्रहण किया है, उन्होंने नहीं लिखा। यह शायद इसलिये कि इससे महत्ता घट जायगी, लोग समादर कम करेंगे। दूसरों की आंखों में धूल झोंक कर, दूसरों को दबाकर बड़े होने की आदत पश्चिम की ही शिक्षा से मिलती है, यहां तो पहले ही बाबाआदम की बात सुझाकर शिष्य को सत्य ब्रह्म का यंत्र बना देते हैं, उसके अहंकार की क्षुद्रसीमा को तोड़कर उसमें पूर्णत्व भर देते हैं, उसे यन्त्र बनाकर कर्त्ता, और शिष्य बनाकर गुरु कर देते हैं, जड़त्व लेकर चेतना और ममत्व लेकर प्रेम देते हैं। वह अन्ध यूरोप की तरह नहीं होता, लक्ष्य-भ्रष्ट ग्रह की तरह उसकी गति अनियन्त्रित नहीं होती।

यद्यपि अपनी शिक्षा का हाल पन्तजी ने नहीं लिखा, छिपा रक्खा है, तथापि, एक जिज्ञासु दार्शनिक को वे धोखा नहीं दे सके—

"गन्ध मुग्ध हो अन्ध समीरण
लगा थिरकने विविध प्रकार"
—पन्तजी

"तोमार मंदिर गन्ध अन्ध वायु बहे चारिभिते"
—रवीन्द्रनाथ

"... ... ... अनन्त के
बतलाता जो भेद अपार"
—पन्तजी

"अनन्त रहस्य येन चाय बोलिबारे"
—रवीन्द्रनाथ

"नीरव घोष भरे शंखों में"
—पन्तजी

"नीरव सुरेर शंख बाजे"
—रवीन्द्रनाथ

"मेरे आंसू गूंथ"
—पन्तजी

"ए मोर अश्रुमालिका"
—रवीन्द्रनाथ

"शस्य श्यामल नदियों का अंचल"
—पन्तजी

"शस्य शीर्ष शिहरिया कांपि उठे धरार अंचल"
—रवीन्द्रनाथ

"शस्य शीर्ष राशि धरार अचलतल भरि"
—रवीन्द्रनाथ

"विपुल-वासना-विकच विश्व का मानस शतदल"
—पन्तजी

"... विकसित विश्व वासनार
अरविन्द ... ..."
—रवीन्द्रनाथ

"आलोड़ित अम्बुधि फेनोन्नत कर शतशत फन,
मुग्ध भुजंगम-सा इंगित पर करता नर्तन!"
—पन्तजी

"तरंगित महासिंधु मंत्रशांत भुजंगेर मत
पड़ेछिल पदप्रान्ते उच्छ्वसित फणा लक्षशत
करि अवनत"

—रवींद्रनाथ

"गाओ गाओ विहग-बालिके
तरुवर से मृदु मंगल-गान"

—पन्तजी

Then, sing ye birds, sing, sing a joyous song

—Wordsworth

उदाहरण के लिये इससे अधिक की आवश्यकता न होगी। कहीं-कहीं जो थोड़ा-सा रूपान्तर पन्तजी ने किया है, वह केवल अपने छन्द की सुविधा के लिये। पन्तजी चौर्य-कला में निपुण हैं। वे कभी एक पंक्ति से अधिक का लोभ नहीं करते। एक पंक्ति किसी एक कविता से ली, दूसरी किसी दूसरी कविता से, तीसरी में कुछ अपना हिस्सा मिलाया, चौथी में तुक मिलाने के लिये ऐसा ही कुछ गढ़ कर बैठा दिया। इस तरह की सफ़ाई के पकड़ने में समालोचकों को बड़ी दिक़्क़त होती है। उधर कवि को अपनी मौलिकता की विज्ञापनबाज़ी करने में कोई भय भी नहीं रहता। रवीन्द्रनाथ की "उर्वशी" कविता के चार उदाहरण मैंने उद्धृत किये हैं, जो नम्बर १, ४, ६ और ७ में आये हैं। उनमें पहला और पाँचवाँ उदाहरण पन्तजी की "अनङ्ग" कविता में है और छठा सातवाँ उदाहरण उनकी "परिवर्तन" कविता में।

दूसरे के भाव लेकर प्रायः सब कवियों ने कविताएँ लिखी हैं। परन्तु, वहाँ हर एक कवि ने दूसरे के भाव पर विजय प्राप्त करने की, उससे बढ़ कर अपना कोई विशेष चमत्कार दिखलाने की, चेष्टा की है। पन्तजी में यह बात बहुत कम है। कहीं-कहीं तो दूसरे के भावों को बदलकर, उसमें कुछ अपना हिस्सा मिलाकर, चमत्कार दिखलाने में इन्हें अच्छी सफलता हुई है, परन्तु अधिकांश स्थलों में सुन्दर-से-सुन्दर भावों को इन्होंने बड़ी बुरी तरह नष्ट कर डाला है। यह केवल इसलिये कि ये भावों के सौन्दर्य पर उतना ध्यान नहीं देते, जितना कि शब्दों के सौन्दर्य पर।

एक उदाहरण लीजिये—

'आपन रूपेर राशे
आपनि लुकाये हासे,"

—रवीन्द्रनाथ

"रूप का राशि राशि वह रास
दृगों की यमुना श्याम"

—पन्तजी

पन्तजी की प्रथम पंक्ति रवीन्द्रनाथ की ही पंक्ति से ली गई जान पड़ती है, परन्तु केवल शब्द-साम्य ही वे अपना सके हैं, भाव-सौंदर्य की छाया भी नहीं छू सके। रवींद्रनाथ की दोनों पंक्तियाँ परस्पर सम्बद्ध हैं, पन्तजी की दोनों पंक्तियाँ एक दूसरे से अलग। यह दोष पन्तजी की तमाम कविताओं में है, और वह केवल इसलिये कि, वे पंक्ति-चोर हैं, भाव-भाण्डार के लूटनेवाले डाकू नहीं। छकने के लिये एक चुल्लू से ज़्यादा नहीं चाहते, शायद हज़्म न कर सकने का ख़ौफ़ करते हैं, रवींद्रनाथ की पंक्तियों का भाव—"अपने रूप की राशि में आपही छिपकर हँसती है—" इन पंक्तियों में सुन्दरी नायिका का कितना सरस भाव है! अर्थ से आदिरस का निष्कलुष परम सुन्दर चित्र आँखों के सामने आता है। उधर पन्तजी की "रूपका राशि राशि वह रास"—पंक्ति कुछ शब्दों के कलरव के सिवा और कोई अर्थ-पुष्ट मनोहर चित्र सामने नहीं रखती। यदि हम यह कल्पना करें कि अनेक रूपवती गोपिकाएँ कृष्ण के साथ रास में रूप की सुधा पान कर रही हैं, तो ऐसी कल्पना हम क्यों करें? उनकी पंक्ति में तो इतनी गुंजायश ही नहीं है। और, थोड़ी देर के लिये यदि इस तरह की कोई कल्पना कर भी लीजाय, तो, दूसरी पंक्ति का अर्थ इसका विरोधी खड़ा हो जाता है—'दृगों की यमुना श्याम", इसमें दुःख है जो "रूपके रास" से 'बासों' वैर करने लगता है। दोनों के चित्र एक दूसरे के विरोधी हैं। पन्तजी की पंक्तियों में प्रायः यह दोष आगया है। केवल शब्द-चित्र से कविता का रूप पूरा नहीं उतरता। उन शब्दों के सार्थक संगठन से जो भाव तैयार होता है, वह भी अब शब्द-चित्र की तरह दोष-रहित हो।

एक उदाहरण और —

"नवोढा बाल लहर, अचानक उपकूलों के,
प्रसूनों के ढिंग रुककर, सरकती है सत्वर।"

—पन्तजी

"पल्लव" के "प्रवेश" में हम लोगों के समझने के लिये पन्तजी ने अपनी इन पंक्तियों की व्याख्या भी कर दी है। मेरी समझ में यह भाव पन्तजी का नहीं, यह

श्री रवीन्द्रनाथ ही का है। पहले की तरह कुछ परिवर्तन करके इसकी भी पन्त जी ने वैसी ही हत्या की है—

"श्यामल आमार दुइटी कूल,
माझे माझे ताहे फुटिबे फूल।
खेला छले काछे आसिया लहरी,
चकिते चुमिया पलाये जाबे॥"

रवीन्द्रनाथ

कितने सुन्दर भाव की हत्या की गई है! पन्तजी ने लिया है इन्हीं इतनी पंक्तियों का भाव, परन्तु रवींद्रनाथ की सौन्दर्य की अप्सरा कुछ और नवीन नृत्य दिखलाती है, अभी पूर्वोक्त पद्य अधूरा है। वह अन्तिम अंश इस प्रकार है—

"शरम-विमला कुसुम-रमणी,
फिराबे आनन [illegible] अमनि,
[illegible] अवश हइया,
[illegible] जाबे,
[illegible],
[illegible]

—रवीन्द्रनाथ

पन्तजी की पंक्तियों का अर्थ बिलकुल साफ़ है, यहाँ तक कि पद्य की लड़ियों को बराबर कर लीजिये, गद्य बन जायगा, कहीं परिवर्तन करने की ज़रूरत न होगी। पन्तजी की नवोढ़ा बाल लहर के अचानक उपकूलों के ढिग रुककर सरकने में कोई विशेष भाव-सौन्दर्य मुझे नहीं मिला परन्तु जहाँ से यह भाव लिया गया है, रवीन्द्रनाथ की उन पंक्तियों में अवश्य सौन्दर्य की उभय कूल-प्लाविनी सरिता बह रही है। रवीन्द्रनाथ की प्रथम चार पंक्तियों का अर्थ—

"मेरे दोनों श्यामल कूलों में जगह-जगह, पुष्प विकसित होंगे, और क्रीड़ा के छल से लहरियाँ पास आ अचानक चूमकर भग जायँगी।"

एक तो पन्तजी के छन्द के छोटे से घेरे में ये कुल भाव आ ही नहीं सके, दूसरे, मौलिक प्रतिभा के प्रदर्शन और छन्द की रक्षा के लिये कुछ शब्दों को विवश होकर उन्होंने बदल दिया है, जैसे, रवीन्द्रनाथ की लहर फूलों को अचानक चूम कर भगती है और पन्तजी की लहर अचानक प्रसूनों के ढिग रुककर सत्वर सरकती है। अवश्य ही रवीन्द्रनाथ के "पलाये जाबे" का शब्द-चित्र पन्तजी ने "सत्वर सरकती" से प्रगट किया है, "सत्वर" शब्द के बढ़ने पर भी पन्तजी की लहर "पलाये जाबे" का लघु चंचल सौन्दर्य नहीं पा सकी। "सरकती" के "सर" अंश में, लहर के चलने का आभास मिलता है, परन्तु अन्तिम "कती" अंश, उसके कुछ बढ़ने के पश्चात् उसे पकड़ कर रोक लेता है, जिससे Additional (संयुक्त) "सत्वर" भी उसे उसके स्थान से हिला नहीं सकता, बल्कि ख़ुद ही कुछ दूर बढ़ता चला जाता है। यहाँ के शब्द-चित्र से हास्य-रस की अवतारणा हुई है, जैसे "सरकती" से लहर कुछ चलकर रुक गई हो और "सत्वर" उसे घसीटने की चेष्टा कर (हाथ-सम्बन्ध) छूट जाने के कारण, ख़ुद ही कुछ दूर पर रपटता हुआ ढेर हो गया हो। दूसरे "सरकने" का मुहाविरा भी बहुत दूर तक चलने का नहीं, "कुछ हटना, फिर स्थिति" जोंक की चाल की तरह हो है। रवीन्द्रनाथ अपनी लहर के आने का कारण बतलाते हैं, "खेला-छले" और इससे सरल-सौन्दर्य शिशु के हास्य की तरह प्रदीप्त हो उठता है, पन्तजी ने अपनी लहर के आने का कोई कारण नहीं बतलाया, शायद छन्द के छोटे से कमरे में इतने शब्दों को जगह नहीं मिल सकी। रवीन्द्रनाथ के छन्द में जो सुखद प्रवाह मिलता है, पढ़ने में जिस तरह के आराम की अनुभूति होती है, वे बातें पन्तजी के छन्द में नहीं। रवीन्द्रनाथ के शब्दों में कर्कशता नहीं है, पन्तजी के शब्द छन्द की जीर्ण शाखा के सूखे हुए पत्ते हो रहे हैं।

दूसरे, सम्पूर्ण भाव को न अपनाने के कारण, सौन्दर्य के सिन्धु को ही पन्तजी ने छोड़ दिया है। वास्तव में लोकोत्तरानन्द रवीन्द्रनाथ की पूर्वोक्त पंक्तियों के बाद मिलता है। पीछे इन पंक्तियों का भी उद्धरण दिया जा चुका है।

प्रकृति की एक साधारण सी बात पर कवि की कल्पना में कितनी सुकुमारता आ सकती है, रवीन्द्रनाथ की पंक्तियों से बहुत ही स्पष्ट परिचय मिल रहा है; "नदी की लहरें तट की पुष्पित डालियों के पुष्पों को स्पर्श कर बहती चली जाती हैं" इस पर, कवि, लहरों की सजीवता, उनके आने का कारण—क्रीड़ाच्छल, स्पर्श से पुष्पों को चूमना और स्वभाव में लहरों की प्रकृति सिद्ध पलायन-चंचलता दिखलाकर प्राकृतिक सत्य को कल्पना से सजीव कर देता है। और इसके पश्चात्, फूलों की तरुणी का-

मिनियों का हाल लिखकर आदिरस को वेदान्त के लोकोत्तरानन्द में लेजाकर परिसमाप्त करता है। बाद के अंश का प्राकृतिक सत्य यह है —"लहरों के छू जाने पर डालियां और फूल हिलते हैं, फिर वे खुलकर नदी में गिर जाते हैं।" पहले कहा जा चुका है कि फूलों को चूमकर लहरें भग गई। वहा के पुष्प पुरुष-पुष्प थे। पुरुष-पुष्पों को चचला नायिकायें के चूम कर भग जाने के पश्चात्, दूसरे फूलों को, जो फूल चूमे न गये थे, कवि, फूलों की तरुणी कामिनिया कल्पना कर, उनकी लज्जा, कम्पन, स्खलन और बह कर असीम मे मिलने के अकन-सौंदर्य से, कविता मे स्वर्गीय विभूति भर देता है

"शरम-विमला कुसुम-रमणी" -

"शर्म से कुसुम-कामिनिया व्याकुल हे" इसलिये कि अभिसारिकाएँ उनके प्रेमियों को चूम कर चली जा रही है —

"फिराबे आनन शिहरि श्रमनि"

"शिहरि" = कापकर (यह कपन, प्राकृतिक सत्य से, लहर के छू जाने पर डालियों के साथ फूलों के काप उठने मे, लिया गया है) तत्काल वे मुँह फेर लेगी। (प्रेमिकाओं का मान, लज्जा, अपने नायकों से उदासीनता आदि, मुख फेर लेने के साथ, प्रगट है उधर डाल के हिलने, हवा के लगने से फूलों का एक ओर से दूसरी ओर झुक जाना प्राकृतिक सत्य है, जिस पर यह सार्थक कल्पना का प्रवाह बह रहा है।) —

"आवेशेते शेषे अवश होइया
खसिया पड़िया जाबे" —

"अन्त मे वे आवेश से शिथिल हो खुलकर गिर जायँगी।" (डाल के हिलने से फूल का वृक्ष से च्युत होना प्राकृतिक सत्य है, इसे कल्पना का रूप देकर कवि कहता है, वे पुष्पों की तरुणी भार्याएँ, आवेश मे—भावातिरेक से शिथिल होकर नदी के ऊपर, वक्ष मे, गिर जायँगी।)—

"भेसे गिये शेषे काँदिबे हाय
किनारा कोथाय पाबे"—

'हाय ! वे बहती हुई रोवेंगी, क्या कहीं उन्हें किनारा प्राप्त होगा ?"

"हाय" और "कोथाय" के बीच, उत्थान और पतन के स्वर-हिलोर मे बहती हुई उन कुसुम-कामिनियों को जैसे वास्तव मे कहीं किनारा न मिल रहा हो। कामिनियों को अकूल में बहाकर कवि अकुलता के साथ-साथ सीमारहित आनंद में पाठकों को भी मग्न कर देता है।

यहाँ एक बात और। रवींद्रनाथ की इन अंतिम पंक्तियों के "शिहरि" शब्द पर ध्यान रखकर पन्तजी की भी उद्धृत उन चार पंक्तियों के बाद का अंश देखिये —

"अकली-आकुलता-सी प्राण !
कहीं तब करती मृदु आघात,
सिहर उठता कृश-गात,
ठहर जाते हैं पग अज्ञात !"—

रवींद्रनाथ की कविता मे भाव की लड़ी टूटती नहीं, उनकी कुसुम-कामिनी के सिहरने का कारण आगे बतलाया जा चुका है, परन्तु यहा पन्तजी का ही कृश-गात सिहर उठता है ! रवींद्रनाथ की कुसुम-कामिनी असहाय, निसीम मे बह जाती है और पन्तजी के पैर ठहर जाते है ! पता नहीं, नवोढा बाल लहर के रुक कर सरकने से पन्तजी को इतना कष्ट क्यों होता है। शायद यहा भी पाठकों को अपनी तरफ से कुछ नई कल्पना करना पड़े, जैसे लहर का सरकना देखकर कवि को अपनी प्रेयसी की याद आई, मिलना असंभव जान पड़ा, विरह-कृश शरीर सिहर उठा, पैर रुक गए। सौंदर्य के नन्दन-वसन्त मे निर्गन्ध पुष्प ही पन्तजी के हाथ लगा। इस विषय पर बहुत ज्यादा लिखकर प्रसंग से अकारण अलग हो जाना है।

पन्तजी का एक उदाहरण और —

"सघन मेघों का भीमाकाश
गरजता है जब तमसाकार !"

—पंतजी

"जलद सघन गगन गरजे"

— डॉ॰ एल॰ राय

"तमसाकार" और "भीम" यहा दो शब्द पन्तजी की पंक्तियों मे अधिक है, कारण स्पष्ट है, छन्द की पूर्ति। तारीफ तो यह कि यहां, इस भाव मे, गुरु और शिष्य दोनो ही प्राकृतिक सत्य से अलग हो रहे है, दोनो ही के "आकाश" गरजते हैं, मेघ गौण हो गया है।

कुछ दिन हुए, हिंदी के प्रसिद्ध कवि श्रीयुत जयशंकर 'प्रसाद' जी के यहाँ इस प्रसंग पर जब वार्तालाप हो रहा था, 'प्रसाद' जी ने पन्तजी की अंतिम पंक्ति की बड़ी अच्छी डाक्टरी की। उन्होंने —

"गरजता है जब तमसाकार"
को
"गरजता है जब तम साकार"
करके इसके विकृत रूप को शुद्ध कर दिया। मैंने इधर विचार करके देखा, यदि प्रथम पंक्ति में परिवर्तन न किया जायगा, यदि "भीमाकाश" से "भीम" के अस्तित्व की रक्षा न की जायगी, यदि "भीमाकाश" इसी तरह "कर्ता" के रूप में छोड़ रखा जायगा, तो "साकार तम" के "कर्ता" होकर गरजने पर भी, "भीमाकाश" का व्याकरण से पिंड न छूटेगा, वह उधर से कर्ता बनकर न गरजा तो इधर से "साकार तम" का "वाइसराय" बनकर अपने उसी कदर्थ को पुष्ट करता रहेगा। यदि प्रथम पंक्ति दूसरी पंक्ति के अर्थ से अलग करदी जाय तो भाषा और भावों में सार्थकता आ सकती है। मेरी समझ में पंतजी की यह कविता—

सघन मेघों का भीमाकाश,
गरजता है जब तमसाकार;
दीर्घ भरता समीर निःश्वास,
प्रखर भरती जब पावस-धार;

यदि इस तरह परिवर्तन की जाय—

सघन मेघों का भीम गगन,
गरजता है जब तम साकार;
दीर्घ भरता निःश्वास पवन,
प्रखर भरती जब पावस-धार—

तो इसकी अनार्यता दूर हो, शुद्ध होकर यह हमारे घर में रह सके। परन्तु मैं निःसंदेह कहूँगा, पंतजी की पंक्तियों में इंद्रजाल की शक्ति ओतप्रोत है। मैंने "सघन मेघों का भीमाकाश" को एक वाक्यांश मान कर भी देखा, पर संतोष मुझे नहीं हुआ,

पंतजी की—

"अपने ही अश्रुजल से सिक्त धीरे-धीरे बहता है।"

"जैसे इसकी कादम्बिनी अपने ही परदों में गत बजा रही हो।"

"स्वयं अपनी ही आँखों में बेनुके-से लगते हैं।"

"अपनी ही कंपन में लीन"

"अपनी ही छवि से विस्मित हो जगती के अपलक लोचन"

"चारु नभचरी सी वर्ण-हीन अपनी ही मृदु ध्वनि में लीन," आदि

इस तरह की "अपनी ही" पर ज़ोर देकर सौन्दर्य की अभिव्यक्ति पर इतरानेवाली पंक्तियाँ भी मौलिकता की दीप-मालिका में उधार के तेल की रोशनी से प्रदीप्त हो रही है—"अपनेही" या "अपनीही" के प्रवर्तक भी रवीन्द्रनाथ ही हैं, जिन्होंने इसे अँग्रेज़ी के 'of its own' के डबल सम्बंध-कारक का प्रकाशन ढंग देखकर ग्रहण किया जान पड़ता है। रवीन्द्रनाथ के उदाहरण—

'आपनाते आपनि विजन,'

"आपन जगते आपनि आछिस एकटि रोगेर मत,"

"आबार लइया हताश होइया आपने आपनि मिशे,"

"मलिन अपना पान,"

"आपनार स्नेह कातर वचन कहेन आपन काने,"

आदि आदि।

पंतजी की कविता में पंखों की फड़क प्रायः सुनाई पड़ती है। जैसे—

"अपने छाया के पंखों में,"

"फड़का अपार पारद के पर,"

"पंख फड़काना नहीं थे जानते," आदि

अँग्रेज़ी-साहित्य से इस भाव की भी आमदनी हुई है। बंगाल के कवि इसे अनेक तरह से प्रगट कर चुके हैं—

"आयेर बसन, ओ तोर किरण माखा पाखा तुले"
—डी० एल० राय

"आबार रजनी आसिबे घनाये मेलिया पाखा"
—रवीन्द्रनाथ

"आनि धीरे-धीरे उड़िबे आकाशे लघु पाखा मेलि"
— रवीन्द्रनाथ

"थरथर करि काँपिबे पाखा"
—रवीन्द्रनाथ

जगह ज़्यादा घिर जाने के भय से अँग्रेज़ कवियों के उद्धरण मैं न दे सका। और यहाँ उद्धरण के लिये मेरे पास साधन भी कम हैं। देहात है, आवश्यक पुस्तकें यहाँ नहीं मिलतीं, स्मरण और कुछ ही पुस्तकों की सहायता से मित्रों के आग्रह की पूर्ति कर रहा हूँ। पंख का भाव लेकर पंख-प्रधान वाक्य में कुछ परिवर्तन कर देने पर भी कवि-कल्पना का मौलिक श्रेय प्राप्त नहीं कर सकता, और इस दृष्टि से प्रायः सब कवियों को उधार लेना पड़ा है, इसका विस्तृत विवेचन इस समालोचना के अंतिम अंश में करूँगा। उदाहरणार्थ शेली का—

"Sunlit city ! Thou hast been Ocean's child"—

पेश करता हूँ । कविवर रवीन्द्रनाथ ने अपनी एक कविता में, जिसका उद्धरण मैं पुस्तक के अभाव से न देसका, पृथ्वी को समुद्र की कन्या कल्पना कर बहुत कुछ लिखा है। उनकी कविता में समुद्र-माता बाँह फैलाकर आती अपनी कन्या पृथ्वी को चूमती तथा अनेक प्रकार से आदर करती है। "माता-पुत्री" के एक मूल भाव की प्राप्ति के पश्चात् तदनुकूल अनेक भावों की कल्पना कर लेना बहुत आसान है। इस तरह की कल्पना को मैं मौलिक नहीं मानता। जिस कल्पना का मेरुदण्ड मौलिक नहीं, समालोचक की दृष्टि में वह "घड़ा" देखकर "हण्डा" गढ़ने की तरह ही मौलिक है।

(अपूर्ण)

सूर्यकान्त त्रिपाठी

राजपूताने के इतिहास को भ्रष्ट करने का प्रयत्न

गत अंक से आगे
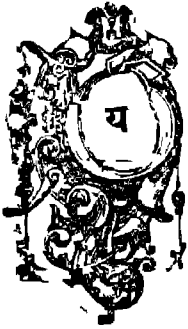
यदि रेऊजी के कथनानुसार मोकल की मृत्यु के समय अर्थात् १४८० में कुंभा की अवस्था ५-६ वर्ष की मानी जाय, तो कीर्तिस्तंभ की नींव डालने के समय वह १२-१३ वर्ष का होगा। अब प्रश्न यह है कि रेऊजी के मतानुसार क्या यह संभव है कि १२-१३ वर्ष के लड़के को ऐसे भव्य कीर्तिस्तंभ को बनवाने तथा अपरिमित सुंदर मूर्तियों को उसमें लगाने की योजना करने की सुबुद्धि सूझ सकती है ? करोड़ों रुपयों के व्यय से बननेवाले ऐसे सुविशाल कीर्तिस्तंभ की योजना करने के लिये उसके निर्माता में पर्याप्त समझदारी की आवश्यकता होनी चाहिये, और हमारे अनुमान से कीर्तिस्तंभ की प्रतिष्ठा के समय कुंभा की आयु कम-से कम २० वर्ष की होनी चाहिये, अतएव गद्दीनशीनी के समय कुंभा की अवस्था १३ वर्ष से कम नहीं, किंतु अधिक ही होगी। ऐसी दशा में पाठक जान सकेंगे कि रेऊजी के माने हुए कान्हा के जन्म, रणमल के मेवाड़ में आगमन, हंसबाई के विवाह तथा मोकल के जन्म के संवतों का जिस प्रकार कल्पित होना हमने ऊपर बतलाया है, उसी तरह मोकल की मृत्यु के समय कुंभा की आयु ५-६ वर्ष की होने का रेऊजी का कथन भी निर्मूल ही कहा जा सकता है।

इसके अनंतर उसी पृष्ठ (६१५) में रेऊजी ने जिज्ञासा प्रकट की है और वे यह जानना चाहते हैं कि, "जिस समय भीलों के व्यक्तिगत विरोध के कारण ६ मास तक राव रणमल्ल मौक़ा ढूँढ रहा था, उस समय महाराणा कुंभा की भेजी हुई सेना कहाँ क्या कर रही थी।"

हम इतना ही कह कर उनकी जिज्ञासा पूरी करते हैं कि महाराणा ने अपनी सेना रणमल के साथ देकर भेजा था, परन्तु भीलों के साथ रणमल की व्यक्तिगत शत्रुता होने के कारण उन्होंने किसी प्रकार उसकी सहायता नहीं की। भील लोग मेवाड़ के विषम पहाड़ी प्रदेश में छिपे हुए चाचा, मेरा आदि को हर तरह से सुरक्षित रखते थे और किसी शत्रु को उनका पता तक नहीं लगने देते थे। इसीलिये ऐसे दुर्गम पहाड़ी प्रदेश में भीलों की सहानुभूति प्राप्त न कर सकने के कारण रणमल सेना के साथ इधर-उधर भटकता ही रहा।

दूसरी बात रेऊजी यह जानना चाहते हैं कि, 'यदि रणमल्ल ने शत्रु-पक्ष की कन्याओं के साथ, अपने पक्ष के राजपूतों का विवाह करने का प्रबंध किया, तो क्या बुरा किया ? नहीं कह सकते कि इस पर महाराणा का चाचा राघवदेव क्यों एकदम क्रुद्ध हो उठा और जब उसके भाई महाराणा मोकल को षड्यंत्र से मारकर शत्रु पास ही के पर्वत में सकुशल जा बैठे, तब उसने क्यों सिर तक न उठाया ?'"

इसका उत्तर यही है कि चाचा और मेरा महाराणा खेता (क्षेत्रसिंह) की उपपत्नी (पासवान) से उत्पन्न पुत्र थे और उनका मुख्य सहायक महपा पँवार महाराणा का सरदार था। ये लड़कियाँ महपा के साथी परमार राजपूतों की थीं और जब रणमल उन्हें ले आया तो वह मेवाड़ के सैन्य-बल से लाया था; अतएव उसको कोई अधिकार नहीं था कि वह उन लड़कियों को राठौड़ों को ब्याहने का यत्न करे। वास्तव में वे लड़कियाँ महा-

राणा की इच्छानुसार ब्याही जानी चाहिये थी। रणमल की इस प्रकार की स्वार्थपरायणता से ही क्रुद्ध होकर राघवदेव उनको रणमल के डेरे से अपने यहाँ ले आया।

अब रही राघवदेव के सिर न उठाने की बात। महाराणा कुंभा ने गद्दी पर बैठते ही अपने पिता के शत्रुओं से बैर लेने के लिये उन पर सेना भेजने की व्यवस्था कर दी थी। इतने में रणमल आगया और महाराणा मोकल की कृपा से मंडोवर का राज्य पाने के प्रत्युपकार के लिये उसने यह प्रण कर लिया कि जबतक चाचा, मेरा आदि न मारे जावेंगे तबतक अपने सिर पर मैं पगड़ी नहीं बाँधूंगा। इसलिये सेना-सचालन का कार्य उसी के सुपुर्द किया गया था। जब महाराणा ने अपनी सेना रणमल के साथ भेज दी थी तब फिर राघवदेव के सिर उठाने की कोई आवश्यकता नहीं थी।

आगे चलकर पृष्ठ ६१६ के प्रारंभ में रेऊजी लिखते हैं—"जब चाचा का पुत्र राका [? एका] और महपा पँवार भाग कर माडू के सुलतान के पास जा रहे, तब मोकल के भ्राता चूँडा ने, जो सुलतान का कृपापात्र होकर उसके पास ही रहता था, उनसे या सुलतान से कुछ भी न कहा। उसका धर्म तो यह था कि वह स्वयं उनसे भ्रातृहत्या का बदला लेता और यदि वह उसके सामर्थ्य से बाहर था, तो कम-से-कम सुलतान को इतना तो कहता कि यदि आप इनको अपने पास रक्खेंगे, तो संसार में मेरी अपकीर्ति होगी।"

इसका सविस्तर उत्तर हमारे इतिहास की दूसरी जिल्द के पृष्ठ ५६७-६८ में विद्यमान है। महाराणा कुंभा ने स्वयं मालवे के सुलतान महमूद खिलजी को, महपा पँवार को अपने सुपुर्द करने के लिये पत्र लिखा था, और जब सुलतान ने अपने शरणागत महपा को सौंपने से इनकार कर दिया, तब एक विशाल सैन्य भेजकर मालवे के सुलतान पर चढ़ाई करदी। उधर से सुलतान भी लड़ने को चला। सारंगपुर के पास घोर युद्ध हुआ, जिसमें सुलतान हारकर भागा। शिलालेखादि के आधार पर लिखित इस युद्ध का सविस्तर वृत्तान्त उपर्युक्त पृष्ठों में विद्यमान है। जब स्वयं महाराणा ही सुलतान से लड़ने को उद्यत होगए तब चूँडा जैसे सुलतान के सरदार को उसके राजकीय कार्य में हस्ताक्षेप करना उचित ही न था।

इसके बाद रेऊजी ने जो कुछ लिखा है वह केवल रणमल का वास्तव से अधिक महत्व बतलाने की इच्छा से ही लिखा है, परन्तु यदि वे यह विचार करते कि उस समय रणमल की स्थिति कैसी थी और उसके अधीन कितना प्रदेश था, तो उसकी वास्तविकता स्वयं प्रकट होजाती। हमारे इतिहास के अनुसार रेऊजी पृष्ठ ६१६ में लिखते हैं—

"आगे उक्त इतिहास के पृष्ठ ५६५ के लेख से ज्ञात होता है कि राव रणमल्ल ने सरोपाव के बहाने से राघवदेव को राणा कुंभा के सामने बुलाकर मार डाला। परन्तु महाराणा ने कुछ भी न कहा। इससे भी हमारे अनुमान की ही पुष्टि होती है।"

हमने स्पष्ट शब्दों में लिख दिया है कि, "अपनी महत्ता के कारण महाराणा ने उस समय तो कुछ न कहा, परन्तु इस घटना से उनके चित्त में रणमल के प्रति सन्देह का अंकुर अवश्य उत्पन्न होगया।" रणमल के मारे जाने के कारणों में से एक राघवदेव का मारा जाना भी था, यह निस्संदेह कहा जा सकता है, जैसा कि हमने पृष्ठ ५६६-६०२ में विस्तारपूर्वक बतला दिया है।

तदनन्तर रणमल के मारे जाने की कथा लिखकर उसपर टीका करते हुए पृष्ठ ६१७ में रेऊजी निम्नलिखित शब्दों में अपना मत प्रकट करते हैं—

"ऐसी हालत में यदि इन लोगों ने १०-११ वर्ष के बालक महाराणा को झूठ-सच कहकर भड़काने की कोशिश की हो, तो क्या आश्चर्य है।"

इसका सविस्तर विवेचन हमारे इतिहास में रणमल के मारे जाने के प्रसंग में किया गया है। यह हम पहले ही बतला चुके हैं कि वि० सं० १४८७ में महाराणा कुंभा की अवस्था कम-से-कम बीस वर्ष की होनी चाहिए। इसलिये वि० सं० १४६५ में जब रणमल मारागया, महाराणा कम-से-कम १८ वर्ष का होगा। इसलिये उसे बालक कहकर बहक जाने योग्य बतलाना सर्वथा असंगत है। रणमल की मृत्यु के समय तक कुंभा में काफ़ी समझ आ गई थी, अत उसे बालक और बहक जाने योग्य बतलाने का रेऊजी का कथन मान्य नहीं हो सकता।

उसी (६१७) पृष्ठ के पहले कालम के टिप्पण १ में रेऊजी वि० सं० १४६६ के शिलालेख पर अविश्वास प्रकट करते हुए लिखते हैं—

"रणमल्ल वि० सं० १४६५ में मारा गया था। अतः उस समय राणा कुंभा की आयु ११ वर्ष से अधिक नहीं थी। ऐसी हालत में उक्त इतिहास के पृष्ठ ६०७-६०८ पर उद्धृत वि० सं० १४९६ का शिलालेख आदि कहाँ तक विश्वास योग्य हो सकते हैं ?"

परन्तु ऐसा लिखने के लिये एक भी प्रमाण देने की रेऊजी ने कृपा नहीं की। वि० सं० १४९६ का शिलालेख राणपुर गाँव (मारवाड़ में) के जैन मंदिर का है और मेवाड़ के राणा कुंभा का खुदवाया हुआ नहीं, किंतु उक्त जैन मंदिर के बनवाने वालों ने उसे खुदवाया है। यह मंदिर कुंभा के राजत्वकाल में बना, इसलिये लेख के रचयिता ने (जिसका नाम लेख में नहीं दिया) उसमें वहाँ के तत्कालीन राणा कुंभा की उस समय तक की विजय आदि का वर्णन किया है, जिससे कुंभा के उत्कर्ष का सम्यक् परिचय मिलता है। दिल्ली, गुजरात एवं मालवे के सुलतानों को परास्त करनेवाले और अनेक राज्यों के विजेता कुंभा जैसे महाप्रतापी राजा की महत्ता रणमल जैसे की विजय-वैजयन्ती फहरानेवाले रेऊजी से सहन कैसे हो सकती है ? राणा कुंभा के उत्कर्ष की प्रशंसा करते हुए अनेक यूरोपियन एवं भारतीय विद्वानों ने, जिन्होंने अपने ग्रंथ अंग्रेज़ी में लिखे हैं, उसको उस समय का सबसे प्रबल एवं प्रतापी हिंदू राजा बतलाया है। फिरिश्ता जैसा मुसलमान लेखक भी राणा कुंभा की प्रशंसा किये बिना नहीं रहता, और मिराते सिकंदरी का कर्ता सिकंदर उसके संबंध में लिखता है कि—'जब सुलतान कुतुबुद्दीन चंपानेर से अहमदाबाद को लौट रहा था, तब मार्ग में मालवे के सुलतान महमूद खिलजी का राजदूत ताजखाँ उसके पास पहुँचा और उससे कहा कि मुसलमानों में परस्पर मेल न होने से काफ़िर (हिंदू) शांतिपूर्वक रहते हैं। शरअ के अनुसार हमें परस्पर भाई बनकर रहना तथा हिंदुओं को दबाना चाहिये और विशेषकर राणा कुंभा को, जो कई बार मुसलमानों को हानि पहुँचा चुका है।" इससे ज्ञात होता है कि गुजरात और मालवे के मुसलमान सुलतानों आदि पर भी राणा कुंभा की धाक जमी हुई थी। ऐसी दशा में रेऊजी की दृष्टि में राणपुर का शिलालेख विश्वसनीय कैसे समझा जाय, क्योंकि इसमें कुंभा के मंडोर विजय करने का उल्लेख है और उसमें रणमल का नामनिशान भी नहीं है।

अबतक इस लेख का चार पुरातत्त्ववेत्ताओं के द्वारा संपादित होना तो हमें ज्ञात है। "भावनगर प्राचीन शोधसंग्रह" में भावनगर-निवासी पुरातत्त्ववित् विजयशंकर गौरीशंकर ओझा ने, "ए कलेक्शन ऑव् प्राकृत एण्ड संस्कृत इन्स्क्रिप्शन्स" (प्राकृत और संस्कृत शिलालेखों का संग्रह)-नामक बृहत् ग्रंथ में बंबई के सुप्रसिद्ध अंग्रेज़ संस्कृतज्ञ पीटर पीटर्सन ने, काव्य माला के अन्तर्गत छपी हुई 'प्राचीन लेखमाला' में महामहोपाध्याय पंडित दुर्गाप्रसादजी ने, आर्कियालॉजिकल सर्वे की ईसवी सन् १९०७-८ की रिपोर्ट में श्रीयुत देवदत्त रामकृष्ण भंडारकर ने, "प्राचीन जैन लेख संग्रह," भाग दूसरे में सुप्रसिद्ध जैन विद्वान् आचार्य जिनविजयजी ने और "जैन लेख संग्रह" में कलकत्ता-निवासी बाबू पूर्णचन्द नाहर, एम्० ए०, बी० एल्०, ने उसका संपादन किया है। उपर्युक्त विद्वानों में से एक को भी उक्त लेख के विषय में ज़रा भी अविश्वास न हुआ, इसका हमें आश्चर्य है, परंतु हम लेख पर केवल रेऊजी ने अविश्वास प्रकट किया है, जिसका कारण यही है कि यह शिलालेख उनकी कल्पित कथाओं का पोषक नहीं है। क्या कहें, प्राचीन शोध का अहोभाग्य समझना चाहिये कि उसको रेऊजी जैसे सुयोग्य शोधक मिल गये, जो शिलालेखों को कृत्रिम बतलाने की चेष्टा कर रहे हैं, परंतु भारत के प्राचीन इतिहास के उद्धार के लिये शिलालेखादि ही विश्वस्त साधन हैं, ऐसा सभी पुरातत्त्ववेत्ता एकमत से स्वीकार करते हैं। पुरातत्त्व के इसी उद्धार के निमित्त भारत सरकार "एपिग्राफ़िया इंडिका" नामक शिलालेखों तथा ताम्रपत्रों के संग्रह का ग्रंथ त्रैमासिक रूप में ईसवी सन् १८८८ से अबतक प्रकाशित कर रही है। इसी प्रकार भिन्न-भिन्न एशियाटिक सोसाइटियों की पत्रिकाओं तथा इंडियन एंटिक्वेरी आदि सामयिक शोध-सम्बन्धी पत्रों में भारत के शिलालेख प्रकाशित होते रहते हैं। इतना ही नहीं, किंतु माइसोर, ट्रावनकोर, हैदराबाद, ग्वालियर आदि राज्य भी इसी कार्य के लिये बड़ा व्यय उठा रहे हैं। इसीसे विद्वानों की दृष्टि में शिलालेखों का महत्त्व प्रकट होता है। यहाँ पर हम रेऊजी का ध्यान ज़रा मारवाड़ के इतिहास की ओर आकर्षित करते हैं। मारवाड़ की ख्यात तथा मारवाड़ के भाटों की ख्यातों में संवत् १५०० से पूर्व के

जोधपुर के बहुधा सभी राजाओं के संवत कृत्रिम धरे हुए हैं। इनमें से जोधाजी और धूहड़ के स्मारक-शिलालेख मिलने से ही केवल उन दो के मृत्यु-संवत निश्चित हुए हैं और शेष सब राजाओं के संवत अभी तक अशुद्ध ही पड़े हैं। यदि इन सब राजाओं के अशुद्ध संवतों को रेऊजी सप्रमाण शुद्ध कर दिखावें, तो मारवाड़ के इतिहास के लिये उनकी प्रशंसनीय सेवा समझी जावेगी।

उसी टिप्पण में अपनी मनमानी गणना के अनुसार कुंभा की आयु वि० सं० १४८९ में ग्यारह वर्ष से अधिक न होना बतलाते हैं। यदि उस समय कुंभा ग्यारह वर्ष का ही होता तो राणपुर के जैनमंदिर की प्रशस्ति के रचयिता को ग्यारह वर्ष के बालक की ऐसी प्रशंसा लिखने की क्या आवश्यकता थी? उक्त प्रशस्ति में लिखी हुई बातों के लिये निस्संदेह राणा कुंभा की अवस्था कम-से-कम १८ या इससे अधिक वर्ष की होनी चाहिये, जैसा कि हम ऊपर बतला चुके हैं। हमने पहले ही दिखला दिया है कि रेऊजी के माने हुए सब संवत कल्पित हैं, उसी तरह १४८९ में कुंभा की अवस्था ११ वर्ष से अधिक न होने का कथन भी सरासर कल्पित एवं अविश्वसनीय है। तदनन्तर रेऊजी ने पृष्ठ ५१७ में उज्ज्वल फतेकरणजी के "पत्र-प्रभाकर" से चाचा मेरा के सम्बन्ध की एक पंक्ति उद्धृत कर लिखा है कि, "यह भी हमारे ही अनुमान को पुष्ट करता है।" हमने स्वयं अपने इतिहास में लिख दिया है कि चाचा मेरा आदि को मारने के लिये महाराणा ने अपने सैन्य सहित रणमल को भेजा था। ऐसी हालत में फतेकरणजी के "पत्र प्रभाकर" का प्रमाण देने की कोई आवश्यकता नहीं थी। पत्र-प्रभाकर कोई ऐतिहासिक ग्रंथ नहीं, किन्तु काव्य-ग्रन्थ है। क्या रेऊजी इसे इतिहास का प्रामाणिक ग्रन्थ मानते हैं? यदि प्रमाण ही देना था तो वह किसी प्रामाणिक इतिहास-ग्रन्थ से दिया जाना चाहिये था।

आगे चलकर कुछ इधर-उधर की बातें लिखकर रेऊजी कहते हैं—

(राजपूताने के इतिहास के पृष्ठ ६०० पर उद्धृत)

"अब रही भारमली के क़िस्से की बात उसके विषय में हमारा इतना ही निवेदन है कि क्या वह क़िस्सा मेवाड़ के ख्यात-लेखकों ने रणमल्ल जैसे उपकारी के साथ इस प्रकार अपकार किए जाने का कलंक छिपाने के लिये ही पीछे से कल्पित नहीं किया है?"

रेऊजी ने जिस भारमली के क़िस्से की बात छेड़ी है वह तो एक गौण बात है, और "उपकारी" रणमल के मारे जाने के कारण तो कुछ और ही हैं। रेऊजी ने भारमली के क़िस्से का संबंध "उपकारी" रणमल के साथ बतलाया है, अत: यहाँ हम "उपकारी" रणमल तथा उसके मारे जाने के सम्बन्ध में कुछ शब्द लिखते हैं। रणमल उपकारी नहीं, किन्तु स्वार्थसिद्धि में लगा हुआ था। चूँडा जैसे पितृ-भक्त ने मेवाड़ जैसा बड़ा राज्य अपने छोटे भाई मोकल को दे दिया और वह उसके राज्य का प्रबंध बड़ी उत्तमता से करता रहा। जब स्वार्थी रणमल की दाल न गली तब उसने अपनी बहिन हंसबाई को यह समझाया कि राज्य का सारा कार्य चूँडा के हाथ में है, जिससे वह मोकल को मारकर स्वयं महाराणा बनना चाहता है। ऐसी बात सुनकर राजमाता हंसबाई का मन विचलित होगया और उसने पुत्र वात्सल्य एवं स्त्री जाति की स्वाभाविक निर्बलता के कारण चूँडा को बुलाकर कहा कि, या तो तुम मेवाड़ छोड़ दो या तुम कहो जहाँ मैं अपने पुत्र को लेकर चली जाऊँ। यह वचन सुनते ही सत्यव्रती चूँडा ने मेवाड़ के परित्याग का निश्चय कर राजमाता से कहा कि आपकी आज्ञानुसार मैं तो मेवाड़ छोड़ता हूँ। महाराणा और राज्य की रक्षा आप अच्छी तरह करना; कहीं ऐसा न हो कि राज्य नष्ट हो जाय। फिर अपने छोटे भाई राघवदेव पर महाराणा की रक्षा का भार छोड़कर वह अपने भाई अज्जा सहित मांडू के सुलतान के पास चला गया, जिसने बड़े सम्मान के साथ उन्हें अपने यहाँ रखा और कई परगने जागीर में दिये।

अब रणमल के उपकार की कुछ और बातें सुन लीजिये। चूँडा के मेवाड़ छोड़कर मांडू चले जाने के पीछे चूँडा का भाई राघवदेव रणमल की आँखों में खटक रहा था, जिससे 'उपकारी' रणमल ने उसे मरवा डालने का अमानुषिक कृत्य किया। फिर रणमल जगह-जगह अपने ही पक्ष के राठोड़ों को भरती करने लगा। इन सब बातों को देखकर मेवाड़ वालों को सन्देह होने लगा कि कहीं रणमल राज्य न दबा बैठे। इन्हीं बातों से महाराणा कुंभा का रणमल पर से सर्वथा विश्वास उठ गया, जिससे उसकी (रणमल की) इच्छा के विरुद्ध महपा पँवार और चाचा के पुत्र एका का अपराध क्षमा कर महाराणा ने उन्हें पीछा अपने पास रख लिया। रणमल

का बढ़ता हुआ प्रपंच देखकर ही महाराणा कुंभा और उसकी माता सौभाग्यदेवी ने सत्यवती चूँडा को मांडू से पीछा बुला लिया, जिस पर रणमल ने राजमाता से अर्ज़ कराई कि चूँडा का चित्तौड़ में आना ठीक नहीं है, शायद राज्य के लिये उसका दिल बिगड़ जाय। पाठक विचारें कि जिस पितृभक्त सत्यवती चूँडा ने मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान् रामचंद्र की तरह अपना राज्याधिकार अपने भाई मोकल के लिये छोड़ दिया, क्या उसके लिये यह अनुमान करना ठीक होगा कि राज्य के लिये उसका दिल बिगड़ जाय? इसके उत्तर में सौभाग्यदेवी ने रणमल को कहलाया कि राज्य का अधिकारी होने पर भी जिसने अपना राज्य अपने छोटे भाई को दे दिया, ऐसे सत्यवती को क़िले में न आने देने से तो निन्दा ही होगी। वह तो थोड़े-से आदमियों के साथ यहाँ आया है, जिससे कर भी क्या सकता है? इस उत्तर से रणमल चुप हो गया।

फिर रणमल को मरवा डालने का निश्चय हुआ। एक दिन रणमल के एक डोम ने उससे कहा कि मुझे संदेह है कि महाराणा आपको मरवा डालेंगे। यह सुनते ही रणमल को अपने प्राणों का भय होने लगा, जिससे उसने अपने पुत्रों— जोधा, कांधल आदि — को सचेत करते हुए यह कह कर तलहटी में भेज दिया कि यदि मैं बुलाऊँ तो भी तुम क़िले में मत आना। फिर एक दिन महाराणा ने रणमल से पूछा कि आजकल जोधा कहाँ है, वह यहाँ क्यों नहीं आता? इस पर उसने निवेदन किया कि वह तो तलहटी में रहता और घोड़ों को चराता है। जब महाराणा ने जोधा को बुलाने के लिये उसे कहा तो उसने उत्तर दिया—अच्छा बुलाऊँगा, परंतु इस बात को वह टालता ही रहा। इसके कुछ ही दिनों बाद रणमल मारा गया। इससे यही पाया जाता है कि 'उपकारी' रणमल का यदि कोई स्वार्थ न होता, तो ऐसी स्थिति में— जब कि उसे अपने प्राणों का भय था—वह चित्तौड़ में घड़ी-भर भी न ठहर कर सीधा अपने स्थान को चला जाता। उल्लिखित वृत्तान्त से पाठक रणमल के उपकार तथा उसके मारे जाने के कारणों से भलीभाँति परिचित हो सकेंगे।

पृष्ठ ६१७-१८ में रेऊजी ने लिखा है —

"आगे राजपूताने के इतिहास के पृष्ठ ६०२ से ६०४ तक, राव जोधा के मंडोर लेने का इतिहास दिया गया है। परन्तु हमारी समझ में जो दोष इसीके अन्त (पृष्ठ ६०४) में मारवाड़ की पुरानी ख्यातों पर लगाए गए हैं, शायद वे यहाँ भी विद्यमान हैं। इसमें मारवाड़ की ख्यातों [ख्यात] से केवल रावत लूँणा से १४० घोड़े लेने का तो उल्लेख है, परन्तु और सरदारों की सहायता से जो सेना एकत्रित की गई थी, उसका उल्लेख छोड़ दिया गया है।"

जोधा के मंडोर लेने का वृत्तान्त हमने मारवाड़ की ख्यात से केवल इसी अभिप्राय से उद्धृत किया है कि पाठक यह जान लें कि जोधपुर के इतिहास-लेखक इस विषय में क्या लिखते हैं? हमने अपने इतिहास में स्पष्ट लिख दिया है कि जोधा के पास राजपूत तो थे, परन्तु घोड़े न होने के कारण सेत्रावे के रावत लूँणा (लूणकरण) के यहाँ से अपनी मौसी भटियाणी के उद्योग से वह १४० घोड़े प्राप्त कर सका। यहाँ हम यह बतला देना चाहते हैं कि मारवाड़ की ख्यात में हमें जो वृत्तान्त मिला वह हमने लिख दिया और कल्पना के आधार पर नवीन बनाकर हम कोई बात नहीं लिख सकते, चाहे रेऊजी उसे पसंद करें या न करें। जोधा के सरदारों की सेना का मारवाड़ की ख्यात में कोई उल्लेख नहीं है, इसीलिये, जोधा ने अपने कौन-कौन से सरदार से कितनी-कितनी सेना एकत्र की, यह हम अपने इतिहास में कैसे लिख सकते थे?

अब हमें रेऊजी की निम्नलिखित पंक्तियों पर विचार करना चाहिए —

"यदि उक्त इतिहास में लिखे अनुसार केवल १४० घुड़सवारों वाली सेना से राव जोधा मंडोर लेने में कामयाब हो गया, तो कहना होगा कि या तो मेवाड़ के सवार मिट्टी के बने थे या राव जोधा के सवार फ़ौलाद के।"

रणमल के स्वर्गवास के अनंतर जब जोधा निस्सहाय होकर मरुभूमि में मारा-मारा फिरता था, तब उसकी फूफी हंसबाई ने महाराणा कुंभा से कहा कि रणमल ने मोकल को मारनेवाले चाचा, मेरा आदि से बदला लिया, परंतु अंत में वह भी मारा गया और उसके पुत्र जोधा की ऐसी दीन दशा हो रही है। इस पर कुंभा ने यही उत्तर दिया कि प्रकट रूप से तो मैं चूँडा के विरुद्ध जोधा को कोई सहायता नहीं दे सकता, क्योंकि रणमल ने

राघवदेव को मरवाया है। आप जोधा को लिख दे कि वह मंडोवर पर अधिकार करले, मैं उसे बुरा न मानूँगा। महाराणा का यह इशारा पाकर ही जोधा मंडोर लेसका। इससे पहले भी कई बार उसने मंडोवर पर हमले किए थे, किंतु प्रत्येक बार वह हारकर भागा, जिसका वृत्तांत हमने मारवाड़ की ख्यात के अनुसार ही अपने इतिहास के पृष्ठ ६०२-६०३ में लिखा है। उक्त ख्यात में यह भी लिखा है कि मंडोवर लेने की खबर पाकर महाराणा कुंभा बड़ी सेना के साथ जोधा पर चढ़ा और पाली में आ ठहरा। इधर से जोधा भी लड़ने को चला, परंतु घोड़े दुबले और थोड़े होने के कारण ४००० बैलगाड़ियों में २०००० राठोड़ों को बिठलाकर वह पाली की तरफ़ रवाना हुआ। जोधा के नक्कारे की आवाज़ सुनकर राणा बिना लड़े ही भाग गया।

अब विचारणीय प्रश्न यह है कि ऐसी लाठी काय के योद्धा लोग ही जब बैलगाड़ियों में बैठकर शत्रु-सेना में युद्ध करने को जावें, तो उनकी वीरता-धीरता का सहज ही अनुमान किया जा सकता है। बैलगाड़ियों में बैठकर वीर राजपूतों के लड़ने को जाने का इतिहास में यह पहला ही उदाहरण है। जिन ख्यातों में इस तरह की बातें लिखी गई हों, वे इतिहास के लिये कहाँ तक प्रामाणिक मानी जा सकती हैं, यह हम पाठकों के विचारार्थ छोड़ते हैं। कुंभा के बिना लड़े भाग जाने की बात निःसंदेह ऐसी ख्यातों में ही लिखी जाने योग्य है, क्योंकि वे आत्मश्लाघा, खुशामद एवं अतिशयोक्ति से ओत-प्रोत हैं। कहाँ तो प्रतापी महाराणा कुंभा, जिसने मालवे और गुजरात के सुलतानों को कई बार परास्त किया था, जिसने दिल्ली के सुलतान का भी कुछ प्रदेश छीन लिया था, जिसे गुजरात के सुलतान ने 'हिंदु-सुरत्राण' की उपाधि दी थी और जो अपने समय का सबसे प्रबल हिंदू राजा था और कहाँ एक छोटे-से इलाक़े का स्वामी जोधा, जो इस समय तक अपने राज्य में जमने भी न पाया था। महाराणा कुंभा ने तो रणमल के मारे जाने पर एक बार ही मंडोवर पर चढ़ाई की थी, दूसरी बार नहीं। दूसरी बार की चढ़ाई की बात केवल मारवाड़ की ख्यात में लिखी मिलती है, जो ऐतिहासिक नहीं है।

इसके बाद पृष्ठ ६१८ में उदयसिंह (ऊदा, हत्यारा) द्वारा जोधा को साँभर और अजमेर भेट करने की बात छिपाने का हमारे पर आक्षेप किया गया है। हमें किसी विश्वस्त ऐतिहासिक ग्रंथ में यह बात लिखी हुई नहीं मिली, जिससे हमने (पृष्ठ ६३७ में) इतना ही लिखा है कि जब मेवाड़ के सरदार पितृघाती ऊदा से किनारा करने लगे, तब उनकी प्रीति सम्पादन करने का वह भरसक प्रयत्न करने लगा, परंतु जब उसमें सफलता न हुई तब उसने अपने पड़ोसियों को सहायक बनाने का उद्योग किया। इसके लिये उसने आबू का प्रदेश, जो कुंभा ने लेलिया था, पाछा देवड़ों को दे दिया और अपने राज्य के कई परगने भी आस-पास के राजाओं को दिए। क्या रेऊजी यह कह सकते हैं कि जो बात विश्वस्त एवं प्रामाणिक रूप से हमें न मिल सके, उसके लिखने के लिये भी हम बाध्य हैं? बाबू रामनारायणजी ने भी, जिनका प्रमाण रेऊजी ने दिया है, अजमेर का परगना दिए जाने का कहीं उल्लेख नहीं किया और साँभर देने के विषय में एक भी प्रमाण नहीं दिया। इसी तरह संवत १५२५ (? १६२५) में साँभर और अजमेर के परगने जोधा को भेट करने की जो बात रेऊजी ने लिखी है, वह भी एकदम प्रमाणशून्य है।

इसके बाद उसी पृष्ठ (६१८) में रेऊजी कहते हैं —

"आगे महाराणा साँगा के बयान में रायमल्ल को गुजरात के सुलतान के विरुद्ध ईडर की गद्दी दिलाने में जोधपुर के राव गांगा की सहायता का और महाराणा उदयसिंह के इतिहास में उनके बणवीर से चित्तौड़ छीनने में जोधपुर के राव मालदेव की सहायता का उल्लेख न मालूम कैसे छूट गया है ?"

रायमल को ईडर की गद्दी दिलाने में जोधपुर के राव गाँगा की सहायता की बात सर्वथा मिथ्या है, इसीसे हमने अपने इतिहास में इसका उल्लेख नहीं किया। गाँगा की इस सहायता का उल्लेख किसी प्रामाणिक ग्रंथ में नहीं मिलता, और न साँगा की इन लड़ाइयों से संबंध रखनेवाली 'मिराते अहमदी', 'मिराते सिकंदरी' आदि गुजरात की फ़ारसी तवारीखों में कहीं इसका वर्णन है। हाँ, रेऊजी के 'भारत के प्राचीन राजवंश, भाग ३ में ऐसा उल्लेख अवश्य मिलता है, जहाँ वे लिखते हैं (पृष्ठ १६१) कि— "राणाजी (महाराणा साँगा) ने डूंगरपुर के शासक रावल डूंगरसीजी को गाँगाजी के पास सहायता माँगने के लिये भेजा। इस

पर स्वयं गांगाजी सेना लेकर उनकी सहायता को गए और वि० सं० १५७४ में गुजरात के शासक मुज़फ़्फ़रशाह द्वितीय को हराकर ईडर का राज्य रायमल को दिलवा दिया।" रेऊजी ने यह बात मारवाड़ की ख्यात, जिल्द १, पृष्ठ ६६ से ली है, और उसमें भी रावल डूंगरसिंह के ६ महीने तक जोधपुर में रहने की बात छोड़ दी गई है। रेऊजी के इस इतिहास की वास्तविकता तो हम पहले ही भलीभांति बतला चुके हैं। रेऊजी ने जहां इस बात का उल्लेख किया है वहां, हमें खेद है, लेखक महोदय ने एक भी प्रमाण नहीं दिया। यदि किसी प्रामाणिक ग्रंथ में रेऊजी को इसका उल्लेख मिल जाता तो वे अवश्य प्रमाण देते। अब यह देखना चाहिये कि क्या महाराणा सांगा जैसा प्रबल एवं प्रतापी राजा राव गांगा की सहायता बिना स्वयं रायमल को ईडर की गद्दी पर नहीं बिठा सकता था कि जिससे उसे डूंगरपुर के रावल डूंगरसिंह को गांगा के पास भेजकर सहायता मांगनी पड़ी। रेऊजी के इस कथन को हमने सर्वथा मिथ्या बतलाया, जिसका कारण हम यहां दिखलाते हैं।

महाराणा सांगा की गद्दीनशीनी संवत् १५६६ ज्येष्ठ सुदि ५ को हुई और सांगा के राज्य समय डूंगरपुर का शासक डूंगरसिंह नहीं किंतु रावल उदयसिंह था, जिसके समय के वि० सं० १५५५, १५६३, १५७४, १५७७, १५७६, १५८१, १५८३ और १५८४ के शिलालेख आदि मिल चुके हैं। इन लेखों से निश्चित है कि रावल उदयसिंह महाराणा सांगा से कई वर्ष पूर्व ही डूंगरपुर की गद्दी पर बैठ गया था। बाबर के साथ की राणा सांगा की लड़ाई में वह १०००० सवारों के साथ लड़ने को गया था और उसीमें मारा भी गया। डूंगरसिंह उदयसिंह का सातवां पूर्व पुरुष था, जिसके पीछे क्रमशः कर्मसिंह, कान्हड़देव, प्रतापसिंह, गोपाल, सोमदास, गंगदास और उदयसिंह राजा हुए। उदयसिंह के पिता गंगदास के भी संवत् १५४२, १५४८ तथा १५५३ के शिलालेख मिल चुके हैं। इसी तरह सोमदास, गोपाल, प्रतापसिंह, कर्मसिंह आदि के भी शिलालेख प्राप्त हो गये हैं। डूंगरपुर की ख्यातों में दिये हुए इन राजाओं के संवत् विश्वस्त प्रतीत न होने के कारण ही हमने दो वर्ष डूंगरपुर राज्य में दौरा किया और वहां से अनुमान २०० शिलालेख तथा ताम्रपत्रों का पता लगाकर उन सबकी छापें तैयार कीं और उनमें से एक एक छाप डूंगरपुर राज्य में भी भेज दी। हमारी भेजी हुई छापों के अनुसार डूंगरपुर राज्य का नया इतिहास बना, (कर्ता पं० रामचंद्र दुबे) जिसमें राजाओं के निश्चित संवत् दिये गये हैं, और प्रत्येक राजा के समय के कुछ लेखों तथा ताम्रपत्रों की स्थान एवं संवत् सहित सूची उसके उत्तरार्द्ध (ईसवी सन् १६२२ का छपा) के पृष्ठ ७४-८० में दी गई है। यदि रेऊजी इस सूची को ही देखने का कष्ट उठाते तो उन्हें ज्ञात हो जाता कि डूंगरसिंह सांगा की गद्दीनशीनी से अनुमान सवासौ वर्ष पूर्व ही मर चुका था क्योंकि उसके पुत्र कर्मसिंह के राजत्वकाल का वि० सं० १४५३ का मूल शिलालेख राजपूताना म्यूज़ियम, अजमेर में विद्यमान है। ऐसी दशा में डूंगरसिंह का राव गांगा के पास जाना और उसको राणा सांगा की सहायतार्थ लेजाना क्या कोई इतिहास-लेखक मान सकता है? यह हम रेऊजी के ही विचारार्थ छोड़ते हैं। क्या प्रेतात्मावाद के अनुसार राणा सांगा ने सवासौ वर्ष पूर्व मरे हुए डूंगरसिंह की आत्मा का आह्वान करके उसे सहायता मांगने के लिये राव गांगा के पास भेजा था? अब रेऊजी स्वयं बतावें कि जब डूंगरसिंह सांगा के समय से सवासौ वर्ष पूर्व ही यह संसार छोड़ चुका था, ऐसी हालत में हम कैसे लिख सकते थे कि उसने राव गांगा के पास जाकर सांगा को सहायता दिलवाई? अतः हम रेऊजी के इस कथन को निर्मूल ही समझते हैं। हम अपने इतिहास को भाटों की ख्यात बनाना नहीं चाहते, चाहे हमारी कोई बात रेऊजी के मन के अनुकूल हो अथवा प्रतिकूल। बाबर के साथ की महाराणा सांगा की लड़ाई में राव गांगा के सैन्य का महाराणा के झंडे के नीचे रहकर लड़ने का हमको प्रमाण मिल गया, इसलिये हमने अपने इतिहास के पृष्ठ ६८५ में इसका उल्लेख कर दिया। किसी बात का उल्लेख करने में हमें कोई हठधर्मी नहीं है परंतु उस बात के लिये हमें कोई पुष्ट प्रमाण अवश्य मिल जाना चाहिये, तभी हमारे मन में वह उल्लेखनीय समझी जाती है।

(क्रमशः)

गौरीशंकर हीराचंद ओझा

भूल-चूक

(गतांक से आगे)

दृश्य—३

डाक्टर साहब का मकान

गाना

सुशीला—(अकेली)

कहत सुनत बनत नाहिं दिल की हाय बतिया —
रहत-रहत धड़क उठत जाने काहे छतिया ।
दई ने कीन्हों काह आज,
नाहीं भावे काम काज,
देखि मोहिं लागे लाज,
मनकी अपने गतिया । हाय ! कहत०—

सुशीला—ईश्वर ! आज मुझे क्या हो गया ? मैं विधवा और मेरे हृदय में ऐसी चंचलता ? हाय ! डूब मरने की बात है । मगर करूँ क्या ? जितना ही मनको रोकता हूँ उतना ही इसकी छटपटाहट बढ़ रही है । जितना ही उमगों को वश में करना चाहती हूँ, उतना ही मैं स्वयं उनके वश में हुई जा रही हूँ । राह-कुराह सब कुछ जानती हूं । भलाई-बुराई अच्छी तरह समझती हूँ । फिर भी हृदय की लहर के आगे पूजा-पाठ, धर्म-ज्ञान एक नहीं काम दे रहा है । ईश्वर दया करो मुझ अबला पर तरस खाओ । तुम मेरा सत्यानाश तो पहले ही कर चुके हो, अब क्यों मुझे जीते ही नरक में ढकेलना चाहते हो ? अरे ! फिर वही स्मरण ! हाय ! ध्यान करना चाहती हूँ किसका, पर आँखोंमें बस रही है मूर्ति किसकी । हाय ! आज गंगा-स्नान को जाना तो मेरा काल ही होगया ।

(डाक्टर साहब का आना)

डाक्टर—क्यों सुशीला, आज तुम्हारे चेहरे पर इतनी घबराहट क्यों देख रहा हूँ । कुशल तो है ?

सुशीला—हां, पिताजी सब कुशल ही है ।

डाक्टर—शुकर है । अच्छा, रोगियों के बाधने के लिये तुमने पट्टियां तैयार करलीं ?

सुशीला—अभी नहीं ।

डाक्टर—तो क्या मरहम घोटती रही ?

सुशीला—नहीं ।

डाक्टर—ओह ! ठीक है । तुम्हें तो आज 'पाउडर' बनाने से छुट्टी न मिली होगी ? . . . क्यों चुप क्यों हो ? क्या वह भी नहीं बनाया ?

सुशीला—अभी बनाए देती हूँ ।

डाक्टर—अरे ! तब तुमने आज किया क्या ?

सुशीला—पिताजी आज तबीअत ज़रा ख़राब थी, इसलिये कुछ कर न सकी ।

डाक्टर—क्या, हुआ क्या ? ज़रा नब्ज़ तो देखूं ।

(सुशीला चल देती है)

डाक्टर—(अकेला) अरे ! बात क्या है । मुझे तो इसकी रंगत कुछ अच्छी नज़र नहीं आती । मैंने इसी की ख़ातिर निजी अस्पताल खोला ताकि रोगियों की सेवा में इसके दिन कट जायें । लड़कपन ही से धार्मिक पुस्तकें पढ़ाईं ताकि इसके विचार सदा धर्म-कर्मों ही में लगे रहें । मैंने कोई भी ऐसा द्वार खुला नहीं छोड़ा जिससे इसका मन किसी तरह बहक सके । फिर भी इसके चित्त में अशान्ति की कालिमा छाने लगी । क्यों ? क्या दिल की उमंगों को दबाए रखने के इतने उपाय करने पर भी जवानी का प्रभाव उनको भड़का रहा है ? नहीं, ऐसा नहीं हो सकता । मैं विधवा-विवाह का पक्का विरोधी होकर ऐसा विचार मन में नहीं ला सकता । इसी विरोध के कारण समाज में मेरी इतनी धाक जमी हुई है । इसीलिये मैंने इसका पुनर्विवाह नहीं किया । तब भला मैं कहीं ऐसे उलटे विचार से अपनी प्रतिष्ठा का आपही अनादर कर सकता हूं ? नहीं, बल्कि मैं तो विधवा-विवाह के पक्षपातियों को दिखा देना चाहता हूँ कि, देखो इस तरह बाल-विधवाओं के जीवन निष्कलंक बिताए जा सकते हैं ! तुम लोग नाहक़ उनका धर्म बिगाड़ रहे हो । ख़ुद भी जातिभ्रष्ट हो रहे हो और जाति को भी कलंकित कर रहे हो । इसलिये सुशीला के मन की उचाट दूर करने के लिये आज से मुझे उसके सब काम का भार और डालना पड़ा ।

भोंदू—(नेपथ्य में) बाबू डाक्टरप्रसाद होंत ; हे भइया डाक्टर बाबू !

डाक्टर—(अलग) यह कौन बेवकूफ़ मुझे इस तरह पुकार रहा है ? (प्रकट) कौन है, यहां आओ ।

(भोंदू बैठे-बैठे खिसकता हुआ आता है ।)

डाक्टर—अरे ! यह कौनसी चाल है ?

भोंदू—एका उकड़ू चाल कहत हैं । यहां देख के तू

घबराय उठ्यो। और अभी बिसलइया चाल देखे के पड़े है। (जिधर से आया है उधर मुह करके) चला आओ सरकार। (रामदास छिपकिली की तरह पेट के बल सरकता हुआ आता है।) यह देखो। बड़ी मसकन लागत है।

डाक्टर—(दूर हटकर) अरे ! यह जानवर है या छिपकिलीनुमा आदमी। तुम लोग कौन हो ? क्या कोई तमाशा दिखाने आए हो ?

भोंदू—तमाशा नहीं बेमारी दिखावे आयन है। तनी डाक्टर बाबू का बुलाय दो।

डाक्टर—कहो, क्या चाहते हो। मैं हो डाक्टर हूँ।

भोंदू—यह देखो। यह ससुर डाक्टर है ? हमका उल्लू बनावत है। जनो कब्बो हम डाक्टर देखबे नाही कीन है। (रामदास से) आपे देखो सरकार, भला डाक्टर के अस कहूँ घोघा अस मुँह होत है।

रामदास—चुप बेवकूफ़, ज़रा नर्माज़ से बातें कर।

डाक्टर—यह तो अजीब आदमी मालूम होता है। अरे ! तू बीमारी दिखाने आया है या मेरा मुँह देखने ?

भोंदू—हमका तुहार मुँह देखे का सौक नाहीं है। दइउ न करे अस मुँह देखे का रोगी होय। हम आयन है बेमारी दिखावे। मुल डाक्टर बाबू आवें तब तो दिखाई। तुका दिखाय के का करी ? न तो आपे रोगी हो।

डाक्टर—मैं रोगी हूँ ?

भोंदू—नाहीं तो फिर तोहार पेट हड़िया अस काहे फूला है ? अरे ! एकर दवाई करो। तमाकू का पाती बाध के सेको। नाहीं तो पाछे कुछ करत-धरत न बनी। और का ? देखो देहवा सगरो सोथान चला आवत है।

रामदास—अबे, सोथा चढ़ा है कि तंदुरुस्ती है ? गधा कहीं का, जब देखो तब तेरी ज़बान उलटी ही चलती है। ख़बरदार ! अब जो डाक्टर साहब की शान में ऐसी कोई बात की। हाय ! बाप रे ! बहुत दर्द करने लगा।

भोंदू—यहि लिये कहे न रहा कि आप न बोलब, हम हो का बात करे देव। आखिर पिराय लाग न ?

डाक्टर—यह तो बिलकुल उजड्ड गँवार है। इसके कौन मुँह लगे। हाँ, जनाब आप बताइए, आपको क्या हुआ है ?

भोंदू—बतावें का ? सूझ नाहीं पड़त है कि कम्हिोव टूट गवा है ? अउर हमही का गँवार बनावत है।

डाक्टर—क्या आपकी कमर टूट गई है ?

भोंदू—नाहीं तो मारे सौक के अस चलत हैं ? जो आप फुरे डाक्टर हन, तो यहू तो आपका सोचेके चाही कि हम आपन का करे। न होया हमार कोई भाइचारा है, अउर न नातेदारी है।

रामदास—डाक्टर साहब, आप इस बेवकूफ़ की बातों का ख्याल न कीजिये। बस, ईश्वर के लिये मेरी कमर की हड्डी जोड़कर फिर मुझे आदमी बना दीजिये।

डाक्टर—आखिर, आपकी कमर कैसे टूटी ?

भोंदू—यह सब पूछ के आप का करब ? न बतावे लायक होय तो कोई कसम खावे ? अरे ! यह तो आपका अपने जान लेबे के चाही कि जेही बिना आदत के अपने ऊपर मनई चढ़ाई वही के अस दसा होई।

डाक्टर—अजब मुसीबत है। इसके मारे ज़बान खोलना भी मुशकिल है। अच्छा, आप ज़रा अपनी कमर तो दिखाइए।

(डाक्टर, रामदास की कमर देखता है।)

रामदास—अरे ! डाक्टर साहब मर गया। ज़रा आहिस्ते आहिस्ते।

डाक्टर—घबराइए नहीं। आपकी कमर टूटी नहीं है। सिर्फ़ कुछ नसें अपनी जगह से हट गई हैं। कम्पाउन्डर !

(कम्पाउन्डर का आना)

कम्पाउन्डर—क्या हुज़ूर ने बुलाया ?

डाक्टर—हाँ। इनकी कमर में 'आयन्टमेन्ट' नम्बर १। मालिश करके बन्डेज करदो। और इनके लिये एक चारपाई यहाँ लादो। इन्हें अस्पताल में लेजाने की कोई ज़रूरत नहीं है। क्योंकि नसें मुलायम पड़तेही एक ख़ास हिकमत से अपनी जगह पर लाई जायेंगी, जो वहाँ और मरीज़ों की सगत में नहीं किया जा सकता।

(कम्पाउन्डर जाता है और चारपाई लदवा कर लाता है। उस पर रामदास को उठवाकर उसे लिटाता है और कमर में बेंडेज करना प्रारम्भ करता है।)

भोंदू—हे डाक्टर बाबू, कुछ हमरो चेत है ? हमहू तो बेमार हन। एक पलेंगा हमरो लिये यहो लागे बिछवाय देई। मुल गुलगुल होय गुलगुल।

डाक्टर—हाँ, तुम्हें क्या हुआ है ?

भोंदू—हमही जानित तो आपके पास का करे आइत ? (अपनी नारी दिखाकर) एका देखी तब तो आप जान पाइब।

डाक्टर—(भोंदू की नाड़ी देखता हुआ) अच्छा ख़ासा है। कुछ भी तो नहीं हुआ है।

भोंदू —यह नारी केर एतबार न करी। दगा देत है। एका देखौ (दूसरा हाथ बढ़ाता है) यह ठीक-ठीक बताई।

डाक्टर—(भोंदू के दूसरे हाथ की नब्ज़ देखता हुआ) यह भी ठीक है।

भोंदू—अरे! यहू नाहीं बोलत है? गजब होइगा (अपना एक टांग बढ़ाकर डाक्टर के हाथ में रखता हुआ) अच्छा ई नबज तो देखौ।

डाक्टर— धत्तेरे की! अरे! इसको दूर हटा। पैर की नब्ज़ नहीं देखी जाती।

भोंदू— जो टांगे मे बेमारी होय तो?

डाक्टर— खातिरजमा रख, तुझे कोई भी भीतरी बीमारी नहीं है। हां, ऊपर जहां चोट लगी हो, वह बताओ।

भोंदू— हम न बताय पाइब। आपै ढूंढ़ौ।

डाक्टर—तो क्या तुझे चोट-वोट कुछ नहीं लगी है?

भोंदू— वाह! लाग काहे नाहीं? अबाज बड़े जोर के भइ रही। मुल हम नाहीं पता पायेन कि चोटिया कहां लाग।

डाक्टर— अजब आदमी है। चोट तुझे लगी और मालूम हो दूसरे किसी को। वाह! वाह! अच्छा, बता यहां दर्द करता है? (डाक्टर भोंदू की गर्दन इधर-उधर अपने हाथ से दबाता है।)

भोंदू—ऊंहुक्। अच्छा एहर टोओ। (अपनी एक टांग डाक्टर के सामने फैलाता है।)

डाक्टर—(भोंदू की टांग पर दबाता हुआ) कुछ पीड़ा होती है?

भोंदू— नाहीं तो। अब एमौ देखौ। (अपनी जांघ को बताता है।)

डाक्टर—(भोंदू की जांघ भी उसी तरह दबाता हुआ) हां, अब बोलो।

भोंदू— का बोली?

डाक्टर—कैसा मालूम होता है?

भोंदू—भल नीक लागत है। अब तना यहू वैसे मजे-मजे दबौटौ तो? (अपनी दूसरी टांग भी डाक्टर के सामने फैलाता है।)

डाक्टर—क्यों बे, तू चोट बताता है या मुझसे पैर दबवा रहा है? बदमाश कहीं का। चला है मुझी से दिल्लगी करने।

भोंदू—हां लेयो! बेमारी तो आप नाहीं ढूंढ़ पाइत है अउर हम ही बदमास होई? भल डाक्टर हन आप। अरे! हमरे गांवें के बलभद्दर काका होते—वहू दवाई देत हैं—तो जहां नारी पर हाथ रखते तहां तोता अस टांय टांय गिन के पूरे बहत्तर रोग बताय देते। अउर एक आप हन कि घंटा भर से एहर टोइत है ओहर टोइत है, मुल तनिको थाह नाहीं पायेन।

डाक्टर—मैंने ऐसा मरीज़ तो ज़िंदगी भर में नहीं देखा। अबे, तेरा दिमाग तो सही है?

भोंदू—अब नाई रहा। मुल हीया आके बगदगा होय तो हम नाहीं कह सकित है।

डाक्टर—खड़ा हो सकता है?

भोंदू—काहे नाहीं? यह देखो, (भोंदू खड़ा होता है।)

डाक्टर—एकाध क़दम चलने की कोशिश कर।

भोंदू—(चलता हुआ) एक, दुई, तीन—

डाक्टर—तब, बदमाश! तू बैठ के क्यों चलता था? मुझे धोखा देना चाहता था? बना हुआ मक्कार कहीं का। निकल यहां से।

भोंदू—बस जान गएन, आप कब्बो राज दरबार में नाहीं रहेन, तब्बै हमार रोग नाहीं चीह्न पायेन। और उलटे खिसयाइ के मारे हमका भगाइत है।

डाक्टर—जब तुझे कोई बीमारी नहीं, तब क्या अपना सर बताऊं?

भोंदू—बेमारी रहा काहे नाहीं। 'तलब बढ़ाई' बेमारी बड़े जोर से दाबे रहा। यह राज दरबारी रोग है। आप नाहीं जान सकित है। जब राजा के कुछ होय जात है, तब यह रोग फैलत है। जैसे जो कहूं राजा के बाप मरजायें तो सब दरबारी मोछ मुड़ायदेत हैं। वैसे हमार मालिक जब बकियां चले लागे तो हमहूं घिसकिनिया काटे लागेन।

डाक्टर—निकल, निकल यहां से पाजी। एक तो बेहूदा और उस पर बातें कैसी बनाता है? (डाक्टर मारने को झपटता है और भोंदू भाग जाता है।) कमबख़्त ने नाक में दम कर दिया। हां, कम्पाउन्डर, कहो तुमने बेन्डेज कर दिया?

कम्पाउन्डर—जी हां। और इस वक्त नींद भी आगई है।

डाक्टर—अच्छा, सोने दो। जिस वक़्त यह ख़ूब गहरी नींद में हो, उस वक़्त इस तरकीब से जगाओ कि यह चौंक

कर उठे। इस तरह से कमर पर यकायक झटका पड़ेगा और नसें आप-से-आप अपनी जगह पर आजायँगी। अच्छा, अब ज़रा मैं और मरीज़ों को देख आऊँ।

(जाता है।)

कम्पाउन्डर—बहुत अच्छा, इसे अभी और थोड़ी देर सोने दूँ, ताकि यह गहरी नींद में हो जाय। जबतक ज़रा मैं भी अस्पताल हो आऊं।

(जाता है और दूसरी तरफ से सुशीला आती है।)

सुशीला—अरे! आज यह कैसा मरीज़ आया, जो इस कमरे में रक्खा गया। यह तो वही मालूम होते हैं। (और नज़दीक से देखकर) हा, हा, वही है वही। हाय! तुम फिर मेरी आखों के सामने पड़े। मगर तुम्हें हुआ क्या है? ईश्वर कुशल करे। (धीरे-धीरे पास जाकर रामदास के माथे पर अपना हाथ रख के देखती है। बस ही रामदास यकायक चौंककर उठ बैठता है।)

रामदास—कौन? तुम? यहां?

(सुशीला चल देती है। रामदास फिर अपनी कमर पर हाथ रखके देखता है। उसके बाद चारपाई पर खड़ा होता है।)

रामदास—अरे! मेरी कमर सीधी होगई। वाह! वाह! मगर वह कहां गई? यहां तो कोई भी नहीं है। तो फिर क्या मैंने स्वप्न देखा। ज़रूर यह स्वप्न ही होगा। वरना वह यहां कैसे आ सकती है? हाय! मैं फिर ऐसी नींद से जागा क्यों? अगर यही सपना मुझे हमेशा देखने को मिले, तब तो मैं ज़िंदगी-भर सोया ही करूं। कभी भूल कर भी जागने का नाम न लूं। ऐसे जागने पर लानत है। मैं फिर सोऊंगा ताकि फिर मैं वही सपना देखें।

(चारपाई पर लेटकर सोने की कोशिश करता है।)

(भोंदू का चुपके चुपके आना।)

भोंदू—(अलग) डकटरवा यहां माइन नाहीं है। बस चुप्पे से हौंग कहूँ छिप रहो।

(चुपचाप आकर रामदास की चारपाई के नीचे लेट जाता है।)

रामदास—हाय! अब तो आंख ही नहीं लगती। फिर स्वप्न कैसे देखूँ? (चारपाई पर बैठ कर) क्या करूँ। अब तो बिना उनका दर्शन पाए मुझे चैन कहां। अच्छा भोंदू को बुलाऊं। मगर वह है कहां? (पुकारता हुआ) अरे! भोंदुआ, ओ भोंदुआ।

भोंदू—(चारपाई के नीचे से) खोपड़ी पर आप आसमान काहे उठाइत है? धीरे से बोली, धीरे से।

रामदास—अबे, कहां है तू?

भोंदू—हीयां।

रामदास—न जाने कहां से बोल रहा है? अबे, सामने आ।

भोंदू—कसस आईं, फिर निकार दीन जाब।

रामदास—यह क्या बकता है? अच्छा बता, कहां छिपा है?

भोंदू—जहां कोई पता न पावे।

रामदास—हाय! हाय! तूने तो नाक में दम कर दिया। अब तुझे कहां ढूढ़ूँ?

भोंदू—खटिया के नीचे।

रामदास—धत्तेरे की (चारपाई से नीचे उतर कर भाकता हुआ) अबे, जल्दी बाहर आ।

भोंदू—अरे! सरकार का आप नीक होय गयन?

रामदास—हां, देवीजी के प्रसाद से।

भोंदू—तब तो हमहू नीक होय गयन। (बाहर निकलकर) मुल कौन देवीजी होयं?

रामदास—वही मेरी इष्ट देवी, जो मेरे हृदय में बसी हुई हैं। उन्होंने मुझे स्वप्न में दर्शन दिया और मेरे माथे पर अपना कर-कमल रक्खा। वैसेही मेरी आंख खुली और देखा कि मेरी कमर जुड़ गई।

भोंदू—हाय! हाय! तब तो आप बड़ी गलती कीन। आपका उनसे बर माग लेवे के चाहत रहा। आप जुरतिन उनके गोड़े पर गिर पड़तेन अउर हाथ जोड़ के कहतेन कि हे माता, हे मोर मैया—

रामदास—चुप बदमाश! यह क्या बेहूदा बकता है?

भोंदू—ऐसे तो बर माग जात है। हमका जो दरसन दे तो हम बिना बर मांगे उनके जीव न छोड़ी।

रामदास—हाय! हाय! स्वप्न में उनकी छवि बस देखने योग्य थी। वैसा रूप, वैसी सुन्दरता, वैसी शोभा मैंने आज तक कहीं देखी ही न थी। मेरे तो नेत्र सफल होगए। मगर मुझे अब चैन कहां? भोंदू, तू यहीं रह। मैं जाता हूँ उन्हींके मन्दिर की पैकरमा करने। तू डाक्टर साहब से कह देना कि बाबूजी अच्छे होगए और वह आपसे फिर मिलेंगे। यह कहकर तब आना।

(रामदास का जाना)

भोंदू—चला गए। जान पड़त है भगतई सैगर समाय गई। कबनो अचभो नाहीं है। कुकर्मन के बाद भगतई होते है। धरमसासतरो ऐसे कहत है। मुल देवीजी के दरसन करिके हमरो मन चाहत है। वह आपन करिहाव सोझ कराइन तो हमहू उनसे आपन तकदीर सोझ कराय लेई। मुल हमहू का सपन दे तब तो। जानो यही खटीवा मा कौनो करामात है। तब्बे देवीजी सपन मे उनका दरसन दीहिन, अउर तो कब्बो बातो नाहीं पूछिन रहा। तो हमहू तनी एपर सोय के देख न लेई। के जाने हमरो तकदीर जाग पडे। होया कौनो है थोडे। (चारपाई पर लेटता है।) चदरवा से मुहा ढाप लेई। तेहमा डकटरवा अइबो करें तो हमका जान न पावे। (चद्दर अपने ऊपर सर ग पर तक ओढ लेता है।) हे देवी मैया हमरो दाली मे तनी घीव छोड देव।

(कम्पाउन्डर का आना)

कम्पाउन्डर—मालम होता है, मरीज़ इस वक्त खूब गहरी नींद मे है। मगर इसे किस तरकीब से उठाऊ जिसमें यह चौंककर उठ पडे। अगर चारपाई को जल्दी से खड़ा करद तो आपही घबराकर उठ खडा होगा। बस, बस यही उपाय ठीक है।

(चारपाई के पास धीरे-धीरे जाकर एकबारगी चारपाई उठाकर खडा करता है। भोंदू चारपाई पर से लुढककर जमीन पर धम से गिर पड़ता है।)

भोंदू—अरे ! बापरे बाप मर गएन। यह ससुर कौन सपन होय। (जमीन से उठकर) उनका तो देवीजी दरसन दिहिन अउर हमका दिखाई पडा यह ससुर चण्डाल। मरो सरना न होत तो बिना मारे छाडित ना।

(लंगडाता हुआ जाता है।)

कम्पाउन्डर—(अकेला) अरे ! यह तो उसका नौकर था। मगर वह हज़रत खुद क्या हुए? डाक्टर साहब पूछेंगे तो क्या कहूगा। वह लो, डाक्टर साहब पहुंच गए। अब क्या बहाना करूं ?

(जल्दी से चारपाई और बिस्तरा ठीक करता है और डाक्टर आते हैं।)

डाक्टर—अरे ! मरीज़ कहा ?

कम्पाउन्डर—वह तो अच्छे होकर चले गए। आपसे फिर मिलने का वादा किया है।

डाक्टर—अच्छी बात है। मगर यह कौन आ रहा है? मुंशी शकीमल ?

(शकीमल रामदास की टोपी लिये धीरे धीरे आता है)

शकीमल—आदाबअर्ज़ है। (चारपाई पर बैठकर हाफता है।)

डाक्टर—आदाबअर्ज़। आप तो कभी इधर आतेही नहीं, आज कैसे भूल पड़े? कहिये, खैरियत तो है ?

शकीमल—खैरियत क्या अपना सर है। दम निकल रहा है। हाय !

(चारपाई पर लेट जाता है।)

डाक्टर—(शकीमल की नब्ज और पेशानी देखता हुआ।) आपको कुछ हरारत है। दिमाग मे गर्मी भी कुछ मालूम होती है। बदन भर पजा हुआ है। क्या कहीं दंगे के बीचमें तो नहीं पड गए। बड़ी बुरी तरह कुटी हुई है।

शकीमल—यह सब न पूछिये। ज़रा मुझे कोई ताक़त और नींद की दवा दीजिये जिससे मेरी तकलीफ़ कुछ कम हो। हाय ! सारा बदन फोडा-सा दुख रहा है।

डाक्टर—कम्पाउन्डर, इन्हें मिक्सचर नम्बर ३ की एक खुराक पिला दो। और इनके लिये एक नुसख़ा लिखे देता हू। इसे इन्हें दे देना।

(मेज पर बैठकर नुसखा लिखता है और उसे लिफाफे में रखकर कम्पाउन्डर को देता है।) अच्छा, मैं अब ज़रा एक काम से बाहर जाता हू।

(डाक्टर का जाना)

कम्पाउन्डर—बहुत अच्छा। (एक खुराक दवा ढाल कर शकीमल को देता हुआ) लीजिये, इसे पी लीजिये।

शकीमल—(दवा पीकर) आहा ! कलेजे में बड़ी ठढक पहुँची। भाई ज़रा चादर उढ़ा दो, मक्खियां बहुत तग करती हैं।

कम्पाउन्डर—यहीं रहना चाहते हो, तो चलिये अस्प-ताल मे आपके रहने का इन्तज़ाम करदू।

शकी—फिर कर देना। इस वक्त तो ज़रा यहीं दम लेने दो। है दवा अच्छी। आख झपकने लगी। (चद्दर ओढ लेता है।)

कम्पाउन्डर—अच्छा, तो यह नुसखा लीजिये। बाज़ार से दवा मँगवा कर कुछ दिनो इस्तेमाल कीजियेगा।

शकी—सिराहने रखदो। ज़रा तबीअत ठिकाने हो तो जेब में रख लूगा। (सर ढकके सोता है। कम्पाउन्डर

लिफ़ाफ़ा सिरहाने रख के जाता है। दूसरी तरफ़ से सुशीला आती है।)

सुशीला—हाय ! तबीअत को बहुतेरा समझाया, मगर बेकार। तुम्हारी मौजूदगी किसी तरह मुझे अपने बहके हुए दिल को क़ाबू में नहीं करने देती। आख़िर तुमने मेरा पता ढूँढ ही निकाला, और मरीज़ बनकर यहाँ तक पहुँचे। मगर, हाय ! तुम आए क्यों ? मेरे रहे-सहे जीवन में आग लगाने आए ? मेरे चैन-ओ-आराम को छीनने के लिये आए ? तुमने यह बुरा किया। सो रहे हो ? अच्छा सोओ। (सिरहाने से नुसख़े का लिफ़ाफ़ा उठाती है।) जो बीमारी तुम्हें है, वह तो मैं जानती हूँ। फिर इस नुसख़े की क्या ज़रूरत ? (लिफ़ाफ़े से नुसख़ा निकालकर फाड़ फेंकती है।) तुम्हें जिस नुसख़े की ज़रूरत है वह मैं लिखे देती हूँ। (मेज़पर बैठकर लिखती है।) न लिखूँ ? मगर मैंने तो वह नुसख़ा फाड़ दिया। अब तो कुछ न कुछ लिखकर उसकी जगह पर रखना ही पड़ा। (अपना लिखा पत्र मन में पढ़कर) हर्ज ही क्या है। कोई बुरी बात तो लिखी ही नहीं। और फिर यही तो पढ़ेंगे।

(अपना पत्र उसी लिफ़ाफ़े में रखकर सिरहाने उसी तरह रख देती है, और फिर चली जाती है। दूसरी तरफ़ से भोंदू इधर उधर झाँकता हुआ आता है)

भोंदू—सपन नाहीं रहा। सपन होत तो देहवा अबनाईं न पिरात। कम्पोटर के बदमास्सी रहा। वह देखो। मार अपने सोवे के मारे हमका खटिया पर से ढकेल दिहिस। अच्छा रहो मामा, ओकर बिना नहें मजा चखाए हम कद्दू रह सकित है।

(जल्दी से चारपाई एकदम उलट देता है, और उलटी हुई चारपाई पर मेज़ कुरसी सब लाद देता है।)

शकीमल—(चारपाई के नीचे) अरे, बाप रे बाप, जीते ही दम निकल गया। हाय ! हाय !

(कम्पाउन्डर का आना)

कम्पाउन्डर—हाय ! हाय ! यह क्या किया ?

भोंदू—यह सार नीचहूँ पड़ा चिल्लात है। और हीयों टाड है। अरे ! यह तो फुरे सपन अस जान पड़त है। (भाग जाता है।)

[पटपरिवर्तन]

दृश्य—४

शकीमल के मकान के सामने

पार्वती—(अपनी खिड़की खोलकर) बार-बार खिड़की खोल-खोलकर उनकी राह देखती-देखती मैं तो अब थक गई। सारी रात बीत गई और अबतक हज़रत को घरकी सुध न आई। ऐसे हाथ से बेहाथ होगए। अच्छा आने दो। कभी तो घर लौटेंगे। तब उन्हें रात-रात भर घूमने का मज़ा चखाऊँगी। वह महरिन आरही है।

(महरिन का आना)

क्यों महरिन, कहीं बाबूसाहब का पता मिला ?

महरिन—जहा-जहा बैठते उठते हैं, वहाँ तो नहीं हैं और न कल शाम ही को वहा गए थे। यह भी मैं पूछ आई।

पार्वती—आयँ ! तब उन्होंने रात कहाँ बिताई ?

महरिन—बहूजी मर्दों की भली कही। उनके पास पैसा हो तो सारा बाज़ार पड़ा है। मगर क्या कहें, बाबूजी कभी ऐसे न थे।

पार्वती—हाय ! हाय ! इसी शक के मारे तो मैं मरी जारही हूँ। अगर यह बात कहीं सच निकली तो मैं उनके कलेजे का खून पीलूँगी। अपनी और उनकी जान एक कर दूँगी। मैं उन दब्बू औरतों में नहीं हूँ, जो इन बातों को चुप-चाप सहकर अपने मर्दों की आवारगी में मदद दें।

महरिन—इतना गुस्सा न कीजिए, बहूजी। जिसकी आँख का पानी एक दफ़े गिर जाय, तो फिर वह कहीं राह-कुराह चलने से रोका जा सकता है ?

पार्वती—नहीं रोका जा सकता, तो मैं उसकी टाग भी तोड़ देना जानती हूँ। जिस आँख का पानी गिरजाय उस आँख को फोड़ भी देना जानती हूँ। अच्छा बता, तू कहा कहा गई थी ?

महरिन—सारा मुहल्ला तो छान आई। सिर्फ़ डाक्टर बाबू के घर नहीं गई।

पार्वती—अच्छा किया। वहा वह क्यों जाने लगे ? और भी कभी वहाँ जाते हैं कि कल ही जाते ? अच्छा, ज़रा चुन्नीलाल से तो पूछ आ। वह रहते तो हैं दूसरे मुहल्ले में, मगर उनसे आजकल इनकी ख़ूब छनती है। मुमकिन है, वहीं रात को रहगए हों। अगर वहाँ भी वह न रहे तब तो आज उनकी जान नहीं या फिर मेरी।
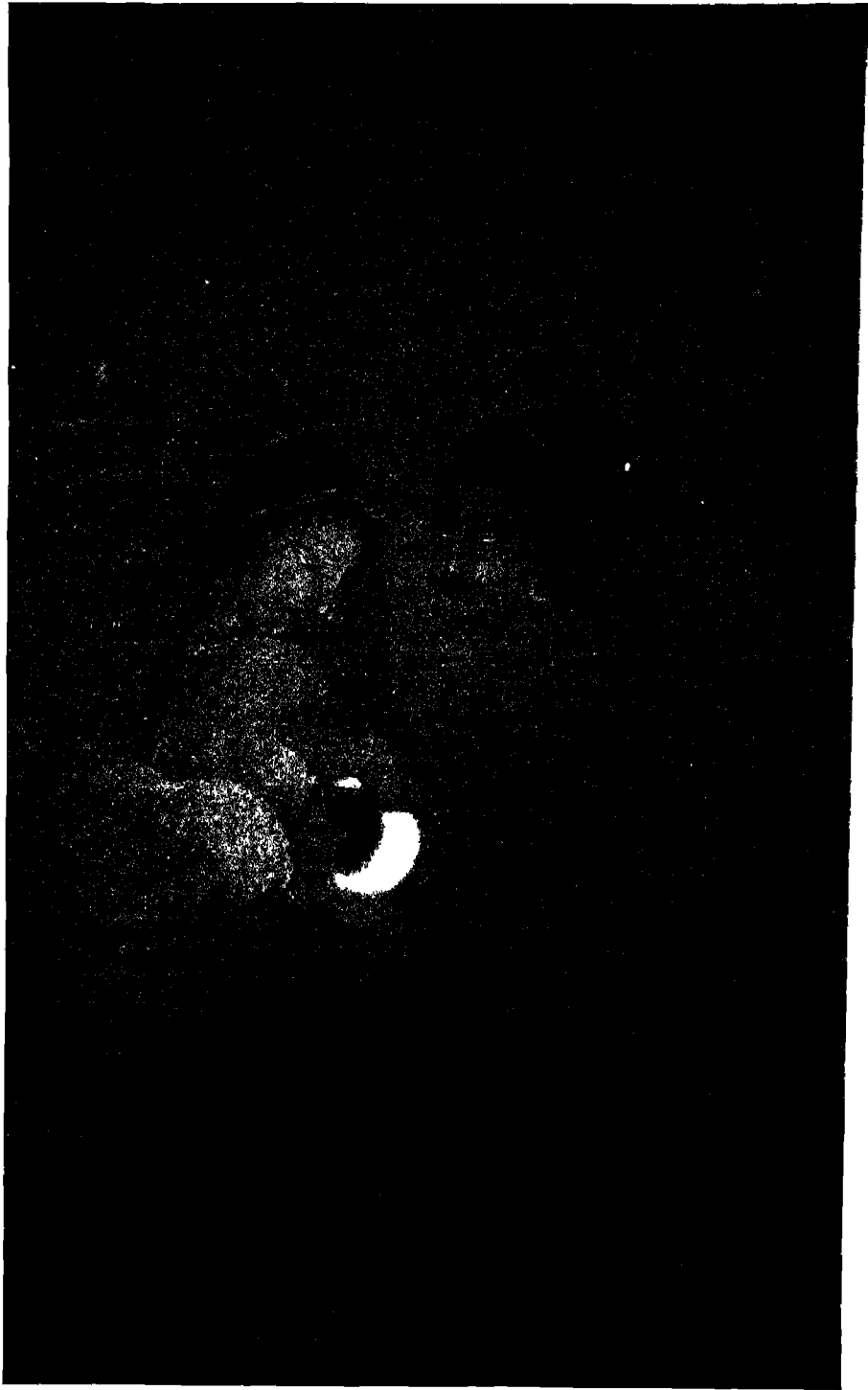
(गुस्से से खिड़की बन्द करती है और महरिन एक तरफ़ जाती है। दूसरी तरफ़ से शर्कीमल आता है।)

शर्कीमल—लोग कहते हैं कि कमबख्ती पीछा नहीं छोड़ती। और मैं कहता हूँ कि यह मुसरी पीछे नहीं बल्कि दो क़दम आगे-आगे चलती है। मैं गया डाक्टर बाबू के यहाँ अपने बदन का दर्द दूर कराने, और आया वहाँ से और हाथ-पैर तुड़ाकर। न जाने किस हराम-ज़ादे ने मेरी चारपाई उलट दी। वह तो ख़ैरियत होगई कि मैं तुरन्त ही बेहोश हो गया और बेचारे कम्पाउन्डर ने मुझे वहाँ से झट अस्पताल में लाकर रातभर दवा-दारू की, नहीं तो मर जाने में कोई कसर न थी। जब सुबह को ज़रा चलने-फिरने के क़ाबिल हुआ तो वहां से भागा। देखूँ, कोई चीज़ तो नहीं छूटी। (अपनी जेब टटोलता है।) ओहो! यह तो नुसख़ा है। (उसे फिर जेब में रख लेता है।) रहने दो अभी इसे वैसेही। जब दाम होगा तब दवा मँगाऊँगा। मगर वह टोपी तो वहीं भूल आया। अरे! उसे मैं कहीं नहीं छोड़ सकता। जाकर ले आऊँ।

(लौट जाता है और दूसरी तरफ़ से रामदास आता है।)

रामदास—कल शाम को जैसेही मैं डाक्टर साहब के यहाँ से चुपके से खिसका, वैसेही सीधे यहीं पहुँचा। इष्ट-देवी जब मेरी यहां हैं तब मैं कहां जाता? खिड़की कई बार खुली और बन्द हुई। मगर हाय! जब रात की अँधियारी गहरा गई तब, इसलिये उस वक़्त मेरी नज़रों ने काम नहीं दिया। रात ज्यों-त्यों काटी, मगर सुबह होते ही फिर यहीं दौड़ा। इस वक़्त तो आंख भरके देखूंगा। अगर गंगास्नान के लिये बाहर न निकलेंगी तो खिड़की पर तो ज़रूर ही दर्शन देंगी। हे मेरे हृदय की देवी! जैसे तुमने मुझे स्वप्न में दर्शन देकर मेरा उपकार किया है, वैसेही इन जागते हुए नेत्रों को भी दर्शन देकर इनकी प्यास बुझाओ। इनकी छटपटाहट दूर करो। मेरी क्या हालत है? तुम्हारे बिना मैं किस तरह तड़प रहा हूँ; तुम्हें कैसे बताऊँ? तुम्हें दूर से देखकर किस तरह अपनी व्यथा सुनाऊँ? अच्छा, तुम्हें पत्र लिखकर अपना हाल बताऊँगा। बस, बस यही ठीक है। अभी लिखे लाता हूँ।

(तेज़ी से जाना चाहता है, तैसे ही दूसरी तरफ़ से भोंदू आता है और दोनों टकरा कर गिरते हैं।)

भोंदू—अरे दादा रे! यह के होय, सार हमरा सा टकरात फिरत है? सारे के पाँच हाथ के मनई सूझ नाहीं पड़त है। (रामदास को देखकर) अरे! सरकार आप होई। उठी उठी।

रामदास—कौन भोंदुआ? एक तो कमबख्त का लोहे सा बदन। उसपर अंधे की तरह चलता है। गधा कहीं का।

भोंदू—अउर आप सरकार तो देखही में हलुक जान पड़त हैं। मुला आपके खोपड़ी के भीतर तो निशाख पाथर भरा है। अउर ठसाठस। हमका आज जान पड़ा। गंगा जाने बड़ी चोट लाग।

रामदास—क्यों बे, तू अबतक कहां था?

भोंदू—अउर आप कहां रहेन? हम जैसे डाक्टर बाबू के घरे से आयन वैसे आपके घरे गयन। मुला आपके पते नाहीं रहा। यहू जन गयन तो आप नाहीं मिलेन। तब धोबी जस आपन हेरान गधा ढूँढत है वहसे हमहू गली-गली आपका ढूँढे लागेन। अउर आपका पायेन कहां? हियां। अरे! सरकार ई कमर तोड़वा गली मा का करै आयो। अभी पेट नाहीं भरा?

रामदास—हाय! तो फिर अपनी हृदयदेवी के मन्दिर को छोड़कर कहां जाऊँ? रात भी यहीं बड़ी देर तक चक्कर लगाता रहा और सुबह होते ही फिर यहीं पहुँचा।

भोंदू—अरे! हियां देवीजी के मन्दिर कहां? हमका तो नाहीं दिखाई पड़त है।

रामदास—(शर्कीमल का मकान बताकर) अबे, यह क्या है। इतना जल्दी भूल गया। इसीमें तो हमारी इष्टदेवी निवास करती हैं। अच्छा, तू यहीं मिलना मैं अभी आता हूँ।

(जाता है।)

भोंदू—हो लेयो, फिर चला गए। जब से सपन देखेन हैं तब से मारे भगतई के पगलाय गए। मुला जस हम सपन देखेन है वैसे जो कहूँ यहूँ देखते तो इनका मंदिर के नाहीं फिर अस्पताल के पइकरमा करै के पड़त। मुला एका मन्दिर कसस कहत हैं? अभी कल्हियां एही में से ऊ मेहररुआ कूड़ा फेंकिस रहा। और एहर वाली कोठरिय में पलगा पड़ा रहा, और आज यह मन्दिर कसस होइ गवा? अजोध्याजी में सुनित है जितने घर हैं सब मन्दिरै

मन्दिर है। वहसे वही चाल के जानो यह मन्दिर बना है। बाहर देखे में हवेली और भीतर मन्दिर।

(शकीमल का आना और भोंदू को देखकर छिपजाना)

शकीमल—(अपनी छिपी जगह से) यह साला फिर यहाँ आया ? यह तो वही है जो कल मेरी खिड़की के भीतर झाँक कर बाते कर रहा था। घर मे इससे बाते करनेवाला कौन हो सकता है ? बस वही मेरी स्त्री हरामज़ादी। क्योंकि महरिन तो बाहर निकलती है, उसे छिप कर बाते करने की ज़रूरत क्या थी ? अच्छा, रह हरामज़ादी।

भोंदू—(उसीतरह) इतने देर तलक सोचे के बाद अब पता पायेन। (खिड़की की तरफ इशारा करके) यह खिड़की वाली कोठरी महन्त के होई। तब्बे एहमा मेहरारू और पलँगा देखेन रहा। दादा, जस मजा आज-कल पण्डा, महन्त, पुजारी, बरागी काटत हैं और फोकट के माल उड़ावत हैं, तस केकरे भाग मे है ? बस, बस यह मन्दिरे है।

शकीमल—(छिपी जगह) अरे ! यह साला मेरी खिड़की की तरफ़ इशारा करके आज भी दिल-ही-दिल कुछ मनसूबा गांठ रहा है। बस, मालूम होगया। यही वह बदमाश है, जो मेरे घरके भीतर आता जाता है। इसी साले की यह टोपी है। भीतर बन-ठनकर छैला बनकर मेरे पलँग पर बैठता है। और बाहर साला गँवार बनकर चक्कर लगाता है, जिसमे लोग इसकी बदमाशी भाप न सकें। अच्छा बचा, आज मैं अपनी हरामजादी बीवी की ज़रूर ही नाक काट लूँगा। तब आना अपनी नकटी को देखने।

भोंदू—(उसी तरह) जब यू मन्दिर है, तो ह्याँ झूठे तो ठाढ़ हन। चली जबनाई देवीजी के दरसने कर आई। दरवाजा तो खुला हइए है।

(दरवाजे की तरफ़ जाता है।)

शकीमल—(अपनी जगह पर बेताबी की हालत मे।) अरे ! अरे ! यह हरामज़ादा तो मेरे घर की तरफ़ चला। हाय ! हाय ! क्या करूँ ? कुछ नहीं बस आज दोनो को मार डालूँगा। चलो बचा आगे-आगे, पीछे-पीछे मैं भी आता हूँ।

भोंदू—तनी हाथ पाँव धोय लेई तब भीतर जाय के चाही। वह अम्बा है।

(द्वार पर से लौटकर बाहर जाता है।)

शकीमल—(अपनी छिपी जगहसे बाहर आकर) साला चला गया। अच्छा जाने दो। मगर वह हरामज़ादी तो घर मे है। वह बचके कहाँ जा सकती है ? आज तो मैंने जो देखना था खुद अपनी आखोंसे देख लिया। अब मैं उससे थोड़े ही दब सकताहू, जाते ही उसपर आफ़त की तरह फट पड़ूँगा, और एक ही बार मे उस हरामज़ादी का काम तमाम कर दूँगा। (दरवाजे की तरफ़ गुस्से मे जाना चाहता है।) मगर वह साला तो फिर आरहा है। ओ हो ! साला हाथ मुंह धोकर ख़ूबसूरत बनने गया था। अच्छा आओ। तुम्हारी मौत ला रही है तो मैं क्या करूं ?

(शकीमल भागकर फिर अपने छिपने की जगह पर जाता है। भोंदूराम आता है और बेधड़क शकीमल के द्वार के भीतर कदम रखता है। वैसही शकीमल दौड़कर आता है और उसे हाथ पकड़ कर बाहर घसीट लाता है।)

भोंदू—अरे ! अरे ! हमका हाथ पकड के काहे बाहर करत हो ? हमहू का भंगी चमार होई ?

शकी—नहीं आप ब्राह्मण देवता हैं। बदमाश कहीं का, भीतर क्या करने जा रहा था ?

भोंदू—देवीजी के दरसन करे।

शकी—मेरी ही आखों के सामने ? पहिले देवताजी को तो अपने बलिदान की भेंट चढ़ाओ।

भोंदू—आन गएन। बिना कुछ पाए तू हमका भीतर जाए न देबो। यही लिये इतना टर्रात हो। हम तोहार हक नाही मारा चाहित है। मुल जो सोझे-सोझे मांगो और हमार कुछ काम करो तो हमका देतो नीक लागे। जस ऊ टोपिया लिहे ठाड़ हो वइसे हमार यह जूता रखाओ। जब भीतर से हम बहिर आइब तो जौन हमार खुसी होई तौन दे देबे। मुल जो टर्रइहो तो दमड़ी न देब। हमका निहारो न जानो। मथुराजी मे बड़े बड़े चौबे लोगन का ठीक कै दीन है। उनके आगे तू भला कौने खेत के मुरई हो ?

शकी—हरामजादा, पाजी, बदमाश, सूअर का बच्चा, कमीना, कुत्ता, उल्लू का पट्ठा तू भीतर जाए और हम तेरा जूता रखाएं।

(मारने को झपटता है और भोंदू उसका हाथ पकड़ लेता है और महरिन आती है।)

महरिन—(इन दोनों से छिपकर घर के भीतर जल्दी न जाती हुई।) अरे ! यह तो यहां मौजूद हैं। मगर जड़

क्यों रहे हैं। क्या दारू पीए है क्या ? जाकर बहूजी से खबर करदूं।

(भीतर जाती है।)

भोंदू—बस। मुह सम्हार के बोलो।

शर्की—तेरी ऐसीतैसी, हरामज़ादे—

(पार्वती भाड़ू लेकर निकलती है और आते ही शर्कीमल की भाड़ू से खबर लेती है। शर्कीमल के हाथ से भोंद छूट जाता है और टोपी गिर पड़ती है।)

भोंदू—(टोपी उठाकर अपना जूता पहनता हुआ) अरे ! यह टोपिया तो वही होय। भले मिल गई। अब भाग चलो।

(चल देता है।)

पार्वती—रात रात-भर तू अब इस तरह गुलछर्रे उड़ाने लगा। और अब तक तेरा नशा न उतरा।

शर्की—ठहर हरामज़ादी। आज तुझे पकड़ा है। आज भी तू क्या टर्राकर हमसे बचना चाहती है। बोटी-बोटी काट कर कुत्तों को खिला दूंगा। पहिले ज़रा अपने उसको तो देख ले, तब मुझसे बोल। (भोंदू को चारा तरफ़ देखता हुआ) अरे ! चला गया। हाय ! हाय ! और साला टोपी भी लेगया।

पार्वती—(फिर मारती हुई।) बकता क्या है। क्या नशा बहुत ज्यादा चढ़ा हुआ है ? रह, मैं तेरा नशा अभी उतारे देती हू। (फिर मारती है।)

शर्की—हाय ! हाय ! यह तो फिर टर्राने लगी। उसको भी भगा दिया और अब मुझको मारने लगी। अरे ! अरे ! ज़रा रोक अपना हाथ, तब बताऊं।

पार्वती—(हाथ पकड़ कर शर्कीमल को घर के भीतर ले जाती हुई) बतादेगा क्या अपना सर ? भीतर चल तो रात भर घूमने का मज़ा चखाऊ। आवारा, पापी, कुकर्मी कहीं का।

(घर के भीतर लेजाकर द्वार बन्द कर देती है।)

[पटपरिवर्तन]

(क्रमश)

जी० पी० श्रीवास्तव

पावस-व्यथा

पौन के तुरग चढ़ि पावस महीप आज,
धीरे-धीरे घेरि आए दसहू दिसान मैं।
कारी भारी तोपन की अवली अनेक लीन्हे,
दैकै बिज्जु-बाती गरजन आसमान मैं।
मूसल-सी धारैं गिरैं गोला बरसत मनौं,
सुनि सुनि धुनि होत धसक धरान मैं।
ऐसे मैं बचैंगे कैसे प्रान वा वियोगिनी के,
आवन उपाय हाय ! नहू न ध्यान मैं।

रघुनाथप्रसाद वाजपेयी

फ़ैशन के ग़ुलाम

ये नक़ली साहब बहादुर फ़ैशन पर निछावर हैं !

कवि-चर्चा

१. कवि और हास्य-लेखक भारतेंदु हरिश्चन्द

हमारा विचार है कि भारतेंदु बा० हरिश्चन्द्र उन कुशल नाट्य-कार नहीं थे, जितने गद्य-लेखक और कवि। कवि हरिश्चन्द्र का स्थान नाट्यकार हरिश्चन्द्र से बहुत विशाल है। उनके नाटकों मे घटना का घात-प्रतिघात, चरित्र-चित्रण की चतुरता इत्यादि नाटकीय गुण उतने सुलभ नहीं है जितना कि काव्य की कमनीयता और भावों की भव्यता। हरिश्चन्द्र की कविता में विशेष ओज है और प्रसाद गुण तो पग-पग पर पाया जाता है। नाटक लिखते समय भारतेंदुजी काव्य की तरल तरगों में बहने लगते थे, और यही कारण है कि उनके नाटकों के बहुत-से पात्र लबी-चौडी कविताएँ ही सुनाया करते है। हरिश्चन्द्र-नाटक मे यदि काशी और गगा का वर्णन हो रहा है तो वही होता चला जाता है। रत्नावली में बहुत दूर तक यमुना का ही बखान होता रहता है। कहीं-कहीं पर तो सखियाँ भी कविता में बातचीत करती है। इतना होते हुए भी भारतेंदुजी ने अस्वाभाविकता का अधिकार नहीं होने दिया। उनके नाटकों मे शेक्सपियर के रोमियो जूलियट, ओथेलो और डेसडिमोना; कालिदास के दुष्यत और शकुन्तला और भवभूति की राम और सीता के समान, नाटकीय-दृष्टि से, आदर्श चरित्र-चित्रण भले ही न मिले, परतु उनके चरित्र-चित्रण में कोई मनुष्य-प्रकृति के प्रतिकूल बात भी दुर्लभ है। हरिश्चन्द्रजी ने अन्य कुशल नाट्यकारों की भाँति चरित्र-चित्रण मे यदि बुद्धि की कुशलता नहीं दिखाई है तो मूर्खता के भी दर्शन नहीं कराए।

हमारे इस लेख का मुख्य ध्येय भारतेंदुजी के हास्य-वर्णन पर कुछ प्रकाश डालना है, अतएव हम अन्य विषयों की आलोचना करना यहाँ पर उचित नहीं समझते, तोभी उनकी काव्य-प्रतिभा का कुछ रसास्वादन करा देना अनुचित न होगा।

चद्रावली नाटक मे ललिता चद्रावली से उसकी पीड़ा का कारण पूँछती है, और उचित उत्तर न पाने पर कहती है—

छिपाए छिपत न नैन लगे—
उघरि परत सब जानि जात है घूघट मे न खगे।
कितनो करो दुराव दुरत नहि जब ये प्रेम पगे,
निडर भए उघरे मे डोलत मोहन रग रँगे।

किसी अँगरेज़ी लेखक का कथन है—"प्रेम का जितना पुनीत और सुघर वर्णन भारतेन्दुजी की कविता मे मिलता है उतना अन्यत्र दुर्लभ है। घनानद, बोधा और देव प्रेममदिर के पुजारी अवश्य थे, परन्तु उस पावन मदिर की पूज्य प्रतिमा पर भारतेंदुजी ने जो कुसुम चढाए हैं, उनकी सुवास कुछ निराली ही है।"

शेक्सपियर ने कवि, पागल और प्रेमियों को एक ही श्रेणी में रखा है, परन्तु कवि और पागल में एक भेद अवश्य है, वह यह कि पागल मस्तिष्क से पागल होते हैं और कवि हृदय से। देवजी का पागलपन देखिए —

देवजू मीस बनायो सनेह सों,
भाल मृगम्मद बिन्दु कै राख्यो;
कंचुकी मैं चुपरयो करि चोवा,
लगाय लियो उरसों अभिलाख्यो।
लै मखतूल गुहे गहने,
रस मूरतवंत सिंगार कै चाख्यो;
सांवरेलाल को सॉवरो रूप, सो,
नैनन को कजरा करि राख्यो।

यही हाल भारतेन्दुजी का है। ललिता चन्द्रावली को दर्पण में मुँह देखते हुए देखकर कहती है —

हों तो याही सोच मैं बिसूरति रही री काहे,
दरपन हाथ ते न छिन बिसुरतु है,
त्यों ही "हरिचन्दजू" वियोग औ सजोग दोऊ,
एक से तिहारे कछु लखि न परतु है।
जानी हम आज ठकुरानी तेरी बात तू तौ,
परम पुनीत प्रेम पथ बिचरतु है,
तेरे नैन मूरति पियारे की बसत ताहि,
आरसी मैं रैन दिन देखिबो करतु है॥

सचमुच भारतेन्दुजी की कविता में "Every syntax is the syntax of thought rather than that of imagination." उनके शब्दों में जान है। उनके वाक्यों में हृदय आकर्षण करने की शक्ति है। उर्दू के सुप्रसिद्ध कवि मौलाना हसरत मोहानी के शब्दों में "शेर वही है जो पढ़तेही दिल में उतर जावे," बिलकुल सत्य जान पड़ता है। भारतेन्दुजी की कविता सुनते ही हृदय फड़क उठता है। उनकी कविता अलंकारों के अनावश्यक बोझसे कहीं लदी हुई नहीं दिखाई देती।

भारतेन्दुजी ने प्रायः सभी रसों में कविता लिखी है और हिन्दी-साहित्य उससे भलीभाँति परिचित है। भारतेन्दुजी ने गद्य और पद्य में जो हास्य-रस लिखा है उसे हिन्दी-संसार बहुत कम जानता है। भारतेन्दु के नाटकों में हास्य-रस का अधिक समावेश नहीं है, परन्तु उन्होंने "परिहासिनी" और "प्रहसन-पंचक" नाम-की दो पुस्तकें लिखी हैं जिनसे उनकी हास्य-प्रियता का पता चलता है। खेद है कि, इन अमूल्य ग्रंथों का अभी तक हिंदी-संसार ने समुचित सत्कार नहीं किया। "परिहासिनी" में "पंच का प्रपंच" नाम-की एक कविता तथा छोटी-छोटी मनोरंजक कहानियों का संग्रह है और "प्रहसन-पंचक" में भारतेन्दुजी के पांच हास्य-रस के लेखों का संग्रह।

"परिहासिनी"

मुंह तोड़ जवाब

एक ने कहा कि—"न जाने इस लड़के में इतनी बुरी आदतें कहां से आईं? हमें यक़ीन है कि हमसे इसने कोई बुरी बात नहीं सीखी।"

लड़का झट से बोल उठा—"बहुत ठीक है, क्योंकि हमने आपसे बुरी आदतें पाई होतीं तो आपमें बहुत-सी कम हो जातीं।"

अद्भुत संवाद

"ए, ज़रा हमारा घोड़ा तो पकड़े रहो।" "यह कूदेगा तो नहीं?" "कूदेगा, भला कूदेगा क्यों? लो संभालो।" "यह काटता है?" "नहीं काटेगा," "लगाम पकड़े रहो।" "क्या इसे दो आदमी पकड़ते हैं, तब सम्हलता है?" "नहीं।" "तो फिर हमें क्यों तकलीफ़ देते हो, आप तो हई हैं।"

दिल्लगी की बातें

(१)

अमरिका के एक जज ने किसी गवाह को हाज़िर होने और हलफ़ लेने का हुक्म दिया। वकीलों ने इत्तिला दी कि यह शख़्स बहरा और गूँगा है। उसने कहा—"मुझे इससे कुछ गरज़ नहीं, वह बोल सकता है या नहीं।" यूनाइटेड स्टेट्स का यह क़ानून मेरे सामने मौजूद है, इसके मुताबिक़ हर एक आदमी को अदालत में बोल सकने का हक़ हासिल है। और जबतक कि मैं इस अदालत में हूं हरगिज़ क़ानून के बरख़िलाफ़ तामील होने की इजाज़त न दूंगा, जिससे किसी की हक़तलफ़ी हो। जो क़ानून का मंशा है, उस पर उसे ज़रूर अमल करना पड़ेगा।

(२)

एक डाक्टर साहब कहीं बयान कर रहे थे कि दिल और जिगर की बीमारियां औरतों से मर्दों को ज़्यादा होती हैं। एक जवान ख़ूबसूरत औरत बोल उठी—"तभी तो मर्द ए औरों को दिल देते फिरते हैं।"

(३)

एक बेवक़ूफ़ इस ख़याल से अपने सामने आइना रखकर

सोरहा कि देख सोते वक्त मेरी सूरत कैसी मालूम पड़ती है।

(४)

एक जज किसी गवाह का इज़हार ले रहे थे। गवाह शरारत से अक्सर हकलाता था। जज ने खफ़ा होकर कहा—"मैं समझता हूँ कि तुम बड़े पाजी हो। गवाह ने जवाब दिया—"उतना पाजी नहीं जितना कि हुजूर—मु-मु-मुझे ख्याल करते हैं।

(५)

एक भले आदमी ने हकीम से पूछा कि सुँघनी से दिमाग को कुछ नुक़सान तो नहीं पहुँचता ? हकीम ने जवाब दिया—"हर्गिज़ नहीं, क्योंकि जिनके कुछ भी दिमाग है वे सुँघनी सूँघते ही नहीं।"

इस पुस्तक की प्रत्येक कहानी हँसानेवाली है। इसी परिहासिनी में सब स्थानों की बोलियाँ भी है। बनारस की बोली का एक उदाहरण हम यहाँ पर देते हैं —

चाह चकार चोर औ नटखट तोर जेदे ।
होय गेले गारे राम घ तोर बदे ।
घर से, नगर मे, जात हम मर्ग, भाइ गे ।
कैसे मयल बिगार न खटपट तोरे बदे ।
रोयल कालना पाटा द माथा पटक पटक ।
लेहला जबकि रान के ह्र्वर तोर बद ।

× × ×

कहला कि काहे आगा म सगा लगावला ।
हँस के कहले ज्रा के पथर नाहउला ।

इसी प्रकार उस पुस्तक में "पाँचवे पैगम्बर" इत्यादि बहुत-सी छोटी छोटी कहानियों का संग्रह है।

अँगरेज़ी में Skit जिस ढंग का हास्य लिखना था उसे Skit कहते है। भारतेन्दुजी ने भी अपनी "पच का प्रपच" नाम-की कविता उसी ढंग की लिखी है। कविता में मदिरा की बढ़ती और उससे हानि पर प्रकाश डाला गया है। कविता का आरम्भ इस प्रकार होता है —

परा कलारिन द्वार पे, बोलो प्यालो लाव ।
भयो जात बेहोश मैं, दे इक बार पिलाव ।
देखु न इतने दिवस लों, हम मुरछित है जात ।
मानहु ननम नाह रह्यो, या गरीब के प्रान ।
तेरे पायल की झनक, सुनत उठे अकुलाय ।
गये प्रान बहुरे बहुरि, अमृत दियो पिलाय ।

अब शराब माँगने का ढंग देखिये:—

दे प्यालो एक और तू, करि मत कछू विचार ।
दाम न मारो जायगो, तेरा री सुकुमार ॥
जोखिम कछु यामे नहीं, दिये जाइय आप ।
दाम दाम चुकजायगो, मरिहे जब मम बाप ॥

रकम चुकाने की अवधि तो बतादी गई, परन्तु हैसियत देखे बिना उधार मिले तो कैसे। अतएव अब हैसियत देखिए —

दौलत नहिं मोहि नात है, कोठी बगला धाम ।
बग्घी घोड़ा साज सब, फानूसन को ईस ।
दाम दाम सब देहहों, तेरो रकम चुकाय ।
नहिं वसल कार नालिसे, सब नीलाम कराय ।

अब मदिरा बेचनेवाली को भी तो कुछ खुशामद करनो चाहिये, अतएव —

जब लो सूरज चन्द है, जब लो सागर भूमि ।
जब लों कमलन को भ्रमर, रहत मत्त मुख चूमि ।
तब लों नुव जोबन बढ़े, सम्पानो थिर होय ।
अधर हाय घर मद्य के, पूरन प्यालो होय ॥

इस कविता मे भावो की सुंदरता और भाषा की प्रौढ़ता देखते ही बनती है। उन दिनो मदिरा का प्रचार दिन-दिन बढ़ता ही जाता था। उस समय से आजकल तो इसका साम्राज्य और भी सुदृढ़ है, परन्तु उस समय की दशा देखिये—

इत भैरो गनपति उत, इत देवी उत देव ।
जिनके माँगे मदिरा सरा, यह विचित्र अति भेव ।
मंदिर सों ससजिदन सों गिरजनहू सों जान ।
सुन्दरता सो है इहाँ, बढ़ती मद्य दुकान ।
लाज काज सब छाँड़ि कै, धरमसाति बिसराइ ।
पान करत है मद्य सब, मंगल महा मनाइ ।
एक पान पुनि आठ अरु, पैतालिस पच्चीस ।
कोउ कछु जानत नहीं, तनिक नवावत सीस ।
पहिर-पहिर पतलून अरु, टोपी चक्करदार ।
कोट बूट जेबी घड़ी, हाथ सु छड़ी सवार ।
कोउ कहत मदनहिं पियें, तो कछु लिख्यो न जाय ।
कोउ कहत हम मद्य बल, करत वकीली आय ।

"प्रहसन-पचक"

इसमे भारतेन्दुजी के पाँच हास्यरस के लेखों का संग्रह है। जातिविवेकिनी, स्वर्ग सभा, सब जाति गोपाल की,

वसंत पूजा और संड-भंड संवाद यह पाच लेख हैं। शांतिविवेकिनी सभा में पंडितो का मज़ाक़ उड़ा गया है। पंडितजी ने एक गड़रिये को किन-किन प्रमाणों से क्षत्रिय बनाया, यह देखते ही बनता है। देखिये गडरिया और उसकी स्त्री, दोनों, गाने हैं—

आइ मोर जानी सकल रमखाना,
धरि कध बहिया नाच मनमाना।
मैं मेला छनरि तू धन छतरानी,
अब सब छुटि गैरे कुल केर काना।
धनि-धनि बम्हना ले पाथिया पुरानी,
जिन दियो छतरी बनाय जग जानी॥

यह क्षत्रिय बनने की खुशी का गान है। भारतेन्दुजी ने देहाती भाषा का उपयोग बहुत ही सुंदर किया है। "स्वर्ग में विचार सभा का अधिवेशन" बड़ा सुंदर निबन्ध है, इसमे स्वामी दयानन्द सरस्वती और श्रीयुत केशवचन्द्र सेन के धार्मिक-विचारो की आलोचना बड़े मनोरजक ढग से है। दोनो का, मृत्यु के बाद स्वर्ग जाना और वहा पर कसरवेटिव और लिबरल दलवालों का वाद विवाद अनोखा है। भारतेन्दुजी के शब्दों मे जो पुराने ज़माने के ऋषि यज्ञ करके या तपस्या करके अपने-अपने शरीर को सुखा-सुखा कर और कर्म मे पचापचा कर मरके स्वर्ग गये है, उनकी आत्मा का बल कसरवेटिव Conservative है, और जो अपनी आत्मा ही की उन्नति से या किसी अन्य सार्वजनिक उच्च-भाव सपादन करने से या परमेश्वर की भक्ति मे स्वर्ग गये हैं, वे लिबरल Liberal है। कंसरवेटिव लोग इन नवीन धर्मों के प्रचारकों का तिरस्कार करते हैं और लिबरल लोग नहीं। मुसलमानों मे "शिया" लोग भी इसी Conservative पार्टी में सम्मिलित किये गये हैं। दोनो दलों को कमीशन Commission ने जो फ़ैसला दिया वह पूर्णतया सत्य है। इस कमीशन की रिपोर्ट तो प्रत्येक धर्मावलम्बी को अवश्य पढ़नी चाहिये।

"सबै जाति गोपाल की"—इसमे एक ब्राह्मण महाराज हर जाति को ब्राह्मण बनाने मे बड़े पटु थे। यह लेख प्रश्नोत्तर के रूप में है। जैसे, एक ने पूछा कि, धोबी कौन हैं, तो पंडितजी महाराज कहते हैं—

अच्छे ख़ासे ब्राह्मण जयदेव के ज़माने तक धोबी ब्राह्मण होते आए हैं—"धोई कवि क्षमापति"।

'वसंत पूजा' मे अँगरेज़ी शब्दों का संस्कृत रूप बड़ा ही मज़ेदार है, जैसे—रिसेप्शनश्चते, इल्यूमिनेशनश्चते, टेक्सश्चते, इत्यादि।

"सडभंडयो सम्वाद" संस्कृत मे है। इसमे संड और भंडों का वार्तालाप है।

भारतेन्दुजी गद्य और पद्य दोनों बहुत सुंदर लिखते थे। भारतेन्दुजी की टक्कर का गद्य-लेखक आजतक हिंदी मे कोई नहीं दिखाई देता। उनकी गद्य मे भी पद्य का आनंद आता था। भारतेन्दुजी हिंदी, उर्दू, संस्कृत, अँगरेज़ी के अच्छे ज्ञाता थे। यदि हिंदी-संसार गद्य-लेखन-शैली मे उनका अनुकरण करता, तो बहुत सुंदर होता।

के० पी० दीक्षित, 'कुसुमाकर'

× × ×

२ श्रीयुत प० ठग मिश्र

प० ठग मिश्र का जन्म वि० स० १९०२ के लगभग हुआ था। यह डुमरांव के स्वर्गीय महाराजाधिराज सर राधाप्रसादसिंहजू, के० सी० आई० ई० के दरबार मे अधिक रहते थे और इनका आदर भी होता था। ये कट्टर सनातनधर्मावलम्बी थे। त्रिकाल गायत्री-सन्ध्या करते थे। पुन प्रति अमावस्या को पिण्डदान भी दिया करते थे। आप संस्कृत के अच्छे ज्ञाता थे, उर्दू और अरबी का भी साधारण ज्ञान रखते थे, और हिन्दी के तो यह अपने समय के अच्छे कवियों मे से थे। इनकी कविता बड़ीही सरस, सुग्राह्य, रोचक और आनन्दवर्धक होती थी, परन्तु हिन्दी का अभाग्य है कि अब वे अधिक संख्या मे नहीं मिलती है। अस्तु, मुझे दो-चार जो मिली हैं, उन्हे पाठकों के सम्मुख उद्धृत किये देता हू —

सवैया

ननदी वो जठानी करें घर घर, कमोरिन मे रग घोरियो ना।
इत आई हू सास की चोरी अबै, हम पाव परै झकझोरियो ना॥
रस रग सुढग करौ हित सों 'ठग' तरसते मुख मोरियो ना।
यह मानिय मोर निहोर लला, तुम लाल गुलाल सों बोरियो ना॥

(२)

'ठग' पापी कपूत कलंकी तऊ, पर कटक मे झकझोरियो ना।
नित ही बढ शत्रु जो मेरे अहै, तिनको निज फंद में छोरियो ना॥
मम सारी कुबानिन को सुनिके, अब हाय हिये विष घोरियो ना।
जगदम्ब भरोस बड़ो तुम्हरो, भव-बारिध मे हमें बोरियो ना॥

—त्रिभुवननाथ सिंह, 'नाथ'

१. नीति और धर्म

सामर्थ्य, समृद्धि और शान्ति—अनुवादक, श्रीयुत बाबू रामचन्द्र वर्मा; प्रकाशक, हिंदी-ग्रंथ-रत्नाकर कार्यालय, बम्बई; मूल्य १॥); पृष्ठ-संख्या २५०; सजिल्द पुस्तक का मूल्य २)

यह पुस्तक अमेरिका के प्रसिद्ध आध्यात्मिक-लेखक डा० ओरिसन स्वेट मार्डेन की प्रसिद्ध रचना Please, Power and Plenty का भावानुवाद है। पाश्चात्य देशों में धन की विषमता ने जहाँ एक वर्ग को सब प्रकार सम्पन्न बना दिया है, वहाँ समाज का बहुत बड़ा अंश विपन्नता के कारण दुःखी और निरुत्साह हो गया है। ऐसी अवस्था में मनुष्य के संतोष का एक ही उपाय रह जाता है—जनता को इस भाँति प्रोत्साहित करना कि वे प्रतिकूल दशाओं का दृढ़ता के साथ सामना और उन पर विजय प्राप्त करना सीखें। उन्हें सच्चे सुख और शान्ति का मार्ग दिखाया जाय। डा० मार्डेन इसी विचार के प्रवर्त्तक हैं और अमेरिका में उनकी उपदेशप्रद पुस्तकों का बड़ा प्रचार है। अँगरेज़ी में उनकी बीसों किताबें हैं। उनमें से कई का अनुवाद हो चुका है। प्रस्तुत पुस्तक उनकी सर्वोत्तम रचनाओं में है। इस अनुवाद के विषय में इतना ही कहना काफ़ी है कि बाबू रामचन्द्र वर्मा इस काम में सिद्ध हस्त हैं। पुस्तक में १६ विषय है, जैसे आरोग्य का रहस्य, दरिद्रता, सम्पन्नता, कल्पना-शक्ति और आरोग्य, वृद्धावस्था का निवारण, आत्म-विश्वास, भय, आत्म-संयम, प्रसन्नता आदि। यह पुस्तक बाल, युवा, वृद्ध, स्त्री तथा पुरुष सभी के लिये उपयोगी है। छपाई मनोहर है, कागज़ उत्तम।

× × ×

छान्दोग्योपनिषद—भाष्यकार, 'देवर्षि' भट्ट श्रीरमानाथ जी शास्त्री; प्रकाशक मणिलाल इच्छारामजी देसाई, न्यूज़ प्रेस, बम्बई; पृष्ठ-संख्या ११०; छपाई-सफ़ाई साधारण; जिल्द ज़रा अच्छी; मूल्य कुछ लिखा नहीं।

छान्दोग्योपनिषद् के पहले अध्याय का 'भगवद्धर्म-बोध' नाम-का भाष्य शास्त्रीजी ने किया है और इसे प्रसिद्ध तथा सम्पन्न देवस्थान श्रीनाथद्वारा के स्वामी गोस्वामीजी ने अपने व्यय से प्रकाशित कराया है। भूमिका में भाष्यकार ने लिखा है कि कालेजों में पढ़नेवाले वल्लभ-सम्प्रदाय के छात्र शांकर-भाष्य के पढ़ने में रुचि नहीं प्रकट करते और उनके लिये अपने सम्प्रदाय का कोई इस उपनिषद् पर भाष्य है नहीं, अतः उनके विशेष आग्रह और अनुरोध पर यह भाष्य लिखा गया है। भाष्य शुद्धाद्वैत के अनुसार किया गया है और कई जगह इस उपनिषद् के शांकर-भाष्य और शांकर-सिद्धान्तों की निराकृति करने की चेष्टा की गयी है।

उपनिषदों का विषय प्रसिद्ध ही है—तत्त्व-विवेचन। सो, इस उपनिषद् में भी है। और-और उपनिषदों में यह अत्यन्त प्रसिद्ध और सर्वमान्य है। यही कारण है

कि प्रत्येक आचार्य ने अपने-अपने सिद्धान्त के अनुसार इस पर भाष्य किया है। कई आचार्यों के भाष्य उपलब्ध नहीं हैं। ऐसे ही आचार्यों में शुद्धाद्वैतवादी श्रीवल्लभाचार्यजी महाराज हैं। इनके सम्प्रदाय की इस कमी की पूर्ति करने की चेष्टा भट्टजी ने की है, जिसका यह प्रथम परिणाम है।

वेद का जिन्होंने अनुशीलन किया है, उन्हें मालूम है कि 'ऋषि' केवल 'मंत्र-द्रष्टा' को ही कह सकते हैं। यास्क ने निरुक्त में लिखा है—'ऋषिर्दर्शनात्'। और-और जगह भी 'ऋषयो मन्त्र-द्रष्टारः' प्रसिद्ध है। वेद के अद्वितीय विद्वान् सामश्रमी महोदय ने अपने 'निरुक्तालोचन' नामक निबंध में बड़ी अच्छी तरह इसका विवेचन किया है। सामश्रमीजी ने मनुस्मृति की समालोचना करते हुए मनुजी को भी ऋषि नहीं माना है। उन्होंने मनु का ऋषित्व खंडन करके उन्हें 'मुनि' लिखा है। सम्मान प्रदर्शित करने के लिये क्या 'ऋषि' शब्द के अतिरिक्त और कोई शब्द ही कहीं नहीं है।

किशोरीदास वाजपेयी

× × ×

२. इतिहास और जीवन-चरित

जैन लेख-संग्रह—(द्वितीय खंड) संग्रहकर्ता और प्रकाशक, श्री पूर्णचंद नाहर, एम० ए०, बी० एल०। मूल्य ५) पृष्ठ-संख्या २ [illegible] ४८; सुन्दर जिल्द।

यह लेख-संग्रह इतिहास-वेत्ताओं के लिये बड़े महत्त्व की वस्तु है। इसमें कुल ११११ शिलालेखों का संग्रह किया गया है। अंत में जैनाचार्यों के गच्छ और संवत की सूची दी गई है, जिससे उनके समय-निरूपण में बड़ी सहायता मिलेगी। मुख्य जैन मंदिरों के फ़ोटो ब्लाक भी दिए गए हैं, जिनमें तीर्थ आबू, और पावापुरी विशेष आलोचनीय हैं। श्री गौरीशंकर हीराचंद ओझाजी के शब्दों में 'यह ग्रंथ इतिहास-वेत्ताओं तथा जैन समाज के लिये रत्नाकर के समान है।'

× × ×

सद्गुरु कबीर साहब—लेखक, श्री मोतीदासजी (चैतन्य)। प्रकाशक, दीवान श्रीज्ञानंदासजी साहब, कबीर-धर्म-वर्द्धक कार्यालय, बड़ौदा; पृष्ठ-संख्या १००; मूल्य ।) प्रकाशक से प्राप्य।

यह एक छोटा-मोटा, विवेचनात्मक कबीर साहब का जीवन-चरित है। सुयोग्य लेखक ने कबीर साहब के प्रति अपनी श्रद्धा-भक्ति के अनुरूप ही इस छोटी-सी पुस्तक में कबीर साहब के जीवन-चरित की आलोचना वा विवेचना की है। पुस्तक में कबीर साहब की चमत्कारयुक्त जीवन-घटनाओं के आधार पर उन्हें केवल समाज-सुधारक, एक नवीन सम्प्रदाय-प्रवर्तक, भावुक कवि तथा महात्मा न मानकर अयोनिज, स्वयंसिद्ध, सत्यस्वरूप एवं समय-समय पर होनेवाला ईश्वरावतार सिद्ध किया गया है। पुस्तक में साम्प्रदायिक रंग की ख़ासी छटा है। कबीर-पंथियों के काम की चीज़ है। पुस्तक की भाषा में बहुत कुछ सुधार तथा संशोधन की आवश्यकता है।

× × ×

राजा महेंद्रप्रताप—लेखक, श्रीगोविंद [illegible], साहित्य-व्याख्यान-भूषण; प्रकाशक, गोविंद-भवन, इकदिल (इटावा)। पृष्ठ-संख्या ७०; आकार डबल क्राउन १६ पेजी; कागज़, छपाई-सफ़ाई साधारण; मूल्य ।≈)। पुस्तक-प्राप्ति-स्थान, भारतीय ग्रंथमाला, वृंदावन।

"राजा महेंद्रप्रताप"-पुस्तक का विषय नाम से ही स्पष्ट है। पुस्तक में प्रेम और स्वतंत्रता के सच्चे पुजारी, मातृभूमि के अन्यतम सेवक, प्रेम महाविद्यालय वृन्दावन के संस्थापक, आदर्श त्यागी, आदर्श संयमी, एवं आदर्श धीर और वीर राजा महेंद्रप्रतापसिंहजी के जीवन की जीती-जागती घटनाओं का चित्रण बहुत ही सुन्दर तथा सजीव भाषा में किया गया है। आनन्द-नन्दन का प्रस्फुटित पारिजात-प्रसून, युगल राजपरिवारों का लाड़िला लाल, अपनी प्रजा तथा प्रियजनों की आँखों का तारा, मातृभूमि के प्रेम तथा स्वतन्त्रता के लिए अपना सर्वस्व निछावर करनेवाला, एवं भारतीय नवयुवकों को समय-समय पर 'प्रेम धर्म' तथा देशसेवा का संदेश भेजनेवाला, राजा महेंद्रप्रतापसिंह कौन है? कहाँ है? और अब क्या कर रहा है? इन सब बातों के ऊपर इस पुस्तक में पर्याप्त प्रकाश डाला गया है। राजा महेंद्रप्रतापसिंहजी के बाल्यकाल से लेकर इस समय तक की सभी घटनाओं का समावेश प्रायः इस पुस्तक में किया गया है।

× × ×

बालब्रह्मचारिणी कुंती देवी—लेखक, श्रीभगवानदास केला; प्रकाशक व्यवस्थापक, भारतीय ग्रंथमाला, वृन्दावन।

पृष्ठ-संख्या २२४, मूल्य साधारण का १॥), सजिल्द का १॥।) और राजसंस्करण का ३)

यह एक ऐसी देवी का जीवनचरित्र है, जिसने बहुत ही साधारण परिस्थितियों में रहकर अपने कर्तव्य का पालन किया, और कुल-परिवार तथा पति की सेवा करते हुए, अवसर पड़ने पर समाज तथा देश के सेवा-क्षेत्र में अवतीर्ण होगई। वह अंग्रेज़ी में एम० ए० पास न थीं और न लिखने या बोलने में ही ख्याति लाभ की थी। पर इसके साथ ही दीन-दुखियों की सहायता, राष्ट्रीय आन्दोलन और सामाजिक समस्याओं से वह बेखबर न थी। पुस्तक की लेखन-शैली बड़ी रोचक है, कहीं शब्दाडम्बर नहीं—सरल, बातचीत की भाषा का प्रयोग किया गया है। जीवनी-लेखक में अपने नायक या नायिका के प्रति सच्ची सहृदयता और भक्ति परमावश्यक है। लेखक में दोनों बातें मौजूद हैं। उनके एक-एक वाक्य से कर्ता देवी के प्रति श्रद्धा टपकती है। कहीं अतिशयोक्तियों से काम नहीं लिया गया, नायिका में असाधारण गुणों के दिखाने की चेष्टा नहीं की गई है। इसमें सन्देह नहीं कि दुबेजी का जीवन एक आदर्श हिन्दू महिला का जीवन था। शिष्टाचार, निर्भयता, मितव्ययिता, आत्मसम्मान भूल-स्वीकार, दिखावे से चिढ़, दानशीलता, साधु-सेवा, मधुर-भाषण, सुप्रबंध, ईश्वर-भक्ति, समय का सद्व्यय, स्वदेशप्रेम, आदि सद्गुण उनमें कूट-कूट कर भरे हुए थे। हम चाहते हैं कि प्रत्येक बहन एक बार इस पुस्तक को पढ़े। पुस्तक का [illegible] और छपाई चित्ताकर्षक है।

× × ×

हिंदी गद्य-मीमांसा—लेखक, पं० रमाकान्त त्रिपाठी, एम० ए०; प्रकाशक, हिंदी साहित्य-माला कार्यालय, कानपूर, पृष्ठ संख्या ३६२, मूल्य ३॥)

हिन्दी पद्य की मीमांसा तो की जा चुकी है, पर हिन्दी गद्य की ओर अभी तक किसी का ध्यान आकर्षित न हुआ था। हर्ष की बात है कि श्री पं० रमाकान्त त्रिपाठी ने इस कमी को पूरा कर दिया है, और इतनी योग्यता से पूरा किया है कि इसे सदैव समकालीन साहित्य में एक ऊंचा स्थान मिलेगा। पुस्तक में तीन भाग हैं—(१) प्रस्तावना, (२) प्राचीन गद्य, (३) हरिश्चन्द्र के समय से आज तक।

प्रस्तावना में उन कारणों पर विचार किया गया है जिनसे हिन्दी में पद्य का विकास पहले और गद्य का पीछे हुआ। पर यह विशेषता कुछ हिन्दी ही की नहीं, साहित्यों के इतिहास में यह एक साधारण घटना है। अगर कहा जाय कि किसी जाति की सभ्यता का विकास उसके गद्य का विकास है तो सत्य से बहुत दूर न होगा। प्रारंभिक अवस्था में मनुष्य में आवेशों की मात्रा अधिक और विचार की कम रहती है। कविता मनोवेगों का शाब्दिक रूप है, अतएव उस अवस्था में कविता का विकास स्वाभाविक है। जब मनुष्य में सामाजिकता बढ़ जाती है, जीवन-संग्राम शुरू हो जाता है, तभी बुद्धि का विकास होता है और वह जलवायु गद्य के प्रादुर्भाव के लिये अनुकूल होता है। हिन्दी में भी ऐसा ही होना आवश्यक था।

इसमें तो अब किसी को आपत्ति न होगी कि वर्तमान हिन्दी का जन्म मुसलमानों के संसर्ग से हुआ। जिस दिन मुसलमानों ने भारत-भूमि पर क़दम रखे उसी दिन हिन्दी का जन्म हुआ। उसके पहले यहाँ शौरसेनी, मागधी आदि अपभ्रंशों का प्रचार था। पहला हिन्दी कवि भी मुसलमान अमीर खुसरो था, जो चौदहवीं शताब्दी में हुआ। पन्द्रहवीं शताब्दी में महात्मा कबीर ने उसी ग्रामीण, विद्वानों द्वारा तिरस्कृत, भाषा का व्यवहार किया। इस वक़्त तक के गद्य का कोई उल्लेखनीय उदाहरण नहीं मिलता। लेखक के शब्दों में 'सब से पहला समीचीन गद्य का नमूना गोकुलनाथ की चौरासी तथा दोसौबावन वैष्णवों की वार्ता" में मिलता है। तबसे १६वीं शताब्दी तक हिन्दी गद्य का विकास स्थगित-सा रहा। सैयद इंशा, लल्लूलाल और सदल मिश्र ने अन्त में गोकुलनाथ के लगाए हुए मुरझाते पौधे को अपनाया और तभी से हिन्दी भाषा का वर्तमान रूप निर्धारित हुआ। इससे विदित होता है कि हिन्दी भाषा के उद्भव और विकास में मुसलमानों का कितना हाथ है। इसी प्रसंग में लेखक ने "गद्य-शैली का विवेचन", "हिन्दी गद्य का भविष्य" और "गद्य-शैली की परख" का बड़ा ही मार्मिक विवेचन किया है।

अब 'प्राचीन गद्य' और 'प्रारम्भिक आधुनिक गद्य' का विवेचन किया गया है। इस काल में लेखक ने गोकुलनाथ, किशोरदास, सैयद इंशा, सदल मिश्र और लल्लूलाल की रचनाओं के नमूने दिए हैं।

तीसरे खंड मे राजा शिवप्रसाद, स्वामी दयानन्द सरस्वती, पं० बालकृष्ण भट्ट, मुंशी देवीप्रसाद, भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, पं० भीमसेन शर्मा, पं० प्रतापनारायण मिश्र, मुहम्मद हुसेन आज़ाद, श्री० गोपालराम गहमरी, पं० दुर्गाप्रसाद मिश्र, पं० गोविन्दनारायण मिश्र, बाबू बालमुकुन्द गुप्त, पं० महावीरप्रसाद द्विवेदी, पं० अम्बिकादत्त व्यास, पं० अयोध्यासिंह उपाध्याय, बाबू श्यामसुन्दरदास, पं० रामचन्द्र शुक्ल, पं० मन्नन द्विवेदी की शैलियों की विशेषताओं का विश्लेषण किया गया है। उनकी शैली के नमूने भी दिये गये हैं। इस सूची मे हमे कई ऐसे नाम मिलते है जिनकी ज़रूरत न थी, और कई ऐसे नाम छोड दिए गए हैं जिनका रहना आवश्यक था। लेखक महोदय हमे क्षमा करेंगे, यहा उन्होंने ऐसी निरकुशता से काम लिया है जिसने पुस्तक के महत्व को घटा दिया है। अगर गोपालराम गहमरी का लाना ज़रूरी था तो बाबू देवकीनन्दन खत्री ने क्या अपराध किया था? क्या पं० जगन्नाथप्रसाद चतुर्वेदी की रचनाओं का साहित्यिक महत्व कुछ भी नहीं है? स्वामी सत्यदेव की शैली अपनी है मगर यहा उनका ज़िक्र तक नही।

पुस्तक मे और भी कई त्रुटिया दिखाई देती हैं। बँगला भाषा का हिन्दी पर जो प्रभाव पडा है, उसकी कहीं चर्चा नहीं है। कुछ लोगों की शैली पर मराठी का भी काफ़ी असर पडा है, पर उसे भी नहीं दिखाया गया। माधवराव सप्रे का नाम न लिया जाना तो एक साहित्यिक-अपराध से कम नहीं। जिस व्यक्ति ने हिन्दीभाषी न होकर भी अपना सारा जीवन हिन्दी की सेवा मे अर्पित कर दिया, जिसकी प्रौढ़ लेखन-शैली ने गीतारहस्य जैसी अमरकीर्ति छोडी है, उसका नाम हिन्दी-गद्य के इतिहास मे नगण्य समझा जाय, यह बड़े खेद और दुःख की बात है। पुस्तक की छपाई भी अच्छी नहीं है।

× × ×

३ कविता

कवितावली—टीकाकार, पं० ठाकुरप्रसाद शर्मा, एम०ए०, एलएल० बी०; प्रकाशक, रामप्रसाद एण्ड ब्रदर्स, बुकसेलर्स, आगरा; पृष्ठसंख्या २८ + २२४ कागज़, छपाई आदि साधारण; मूल्य १॥) ; प्रकाशक से प्राप्य।

समालोच्य पुस्तक कवि-कुल-चन्द्र गोस्वामी तुलसीदासजी की कवितावली है, जिसमें हनुमानबाहुक भी संमिलित है। टीकाकार का नाम देखकर साधारणतया ऐसा भासित होने लगता है कि प्रस्तुत पोथी मे काव्य-रसिकों की तृप्ति के लिये यथेष्ट सामग्री मिलेगी, पर बात ऐसी नही है। पुस्तक परीक्षार्थी विद्यार्थियो के उपयोग के लिये प्रकाशित की गई है। पूजनीय गोस्वामीजी के अतर्दर्शन की लालसा प्रत्येक कविता-प्रेमी और रामभक्त को स्वभावत होती है, इसीलिये उनके ग्रथों की विशेष प्रतिष्ठा है। इस विचार-दृष्टि से मिश्रवर ठाकुरप्रसादजी से हिन्दी-जगत् ऐसी ही आशा रखता था। उनकी काव्य-मर्मज्ञता और तुलसी-सबधी खोज-परिश्रम का परिचय उनकी लिखी हुई २७ पेज की गवेषणा-पूर्ण भूमिका मे मिलता है, जो इस पुस्तक मे साहित्य-प्रेमियों के लिये एक विशेष पठनीय वस्तु है। विद्यार्थियो को इस टीका से विशेष सहायता मिलेगी। अपने उद्देश की दृष्टि से, छपाई की कतिपय भूलों को छोडकर, पुस्तक अच्छी हुई है। टीका, यदि पुस्तक के अन्तिम भाग मे न देकर प्रत्येक काड के अत मे दे दी जाती, तो अधिक सुविधा-जनक होती। आशा है, काव्य-मर्मज्ञो और साहित्यिकों के लिये भी कवितावली की टीका शर्माजी द्वारा शीघ्र ही प्रस्तुत कराकर प्रकाशक महाशय अपनी प्रकाशन-निपुणता का परिचय देंगे।

× × ×

श्रीछत्रसाल दशक—सपादक, 'आर्यमित्र'-सपादक कविरत्न पं० हरिशंकर शर्मा; प्रकाशक उपर्युक्त; पृष्ठ-सख्या टाइटिल पेज सहित ४०; मूल्य ।)

वीररस के अद्वितीय कवि भूषण के छत्रसाल-सबंधी १० कवित्तों की सरल और सुबोध टीका। इस पुस्तक मे भी २६ पृष्ठों की प्रस्तावना मे भाई सपादकजी की ओजस्विनी लेखनी का परिचय मिलता है, जो इन १० कवित्तो के साथ सोना और सुगध का काम करती है। टीका की शैली विद्यार्थियों के लिये समुचित है, जिसमे शब्दों और कठिन मुहाविरों के अर्थ मात्र दिये गये हैं, भावार्थ या सरलार्थ का भार उन्हीं पर छोड़ा गया है। मूल्य दोनों पुस्तकों का, यदि कुछ कम हो सकता, तो ठीक था।

मंगलदेव शर्मा

१ आश्रम में 'बा'

गुजराती में 'माँ' को कहते हैं और सत्याग्रह आश्रम, साबरमती में महात्मा गांधीजी की धर्मपत्नी श्रीमती कस्तूरबाई को सब 'बा' के नाम से पुकारते हैं। जीवन को पवित्र और स्वाभाविक बनाना और संयम द्वारा उसे जन-समाज के लिये अधिकाधिक उपयोगी बनाने का प्रयत्न करना—यही आश्रम का मुख्य उद्देश्य है। इसी कारण आश्रम में कृत्रिमता का प्रायः अभाव है और आश्रम की सबसे अधिक अकृत्रिम वस्तु 'बा' का सरल और सादा जीवन है। नदी के किनारे पत्थर पर बैठी हुई बर्तन माजते हुए अथवा अपना पानी भरते हुए या अतिथियों को भोजन कराते हुए (महात्माजी के यहाँ अतिथियों की कमी!) आप उनके पवित्र मुखमंडल पर वही गम्भीरता, वही सरलता और स्वाभाविकता देखेंगे, जो हमारे यहाँ की पुरानी चाल की बड़ी-बूढ़ी स्त्रियों के चेहरों पर पाई जाती है। 'बा' के जीवन की विशेषता यही है कि वे अपने ढंग की भारतीय स्त्रियों से इतनी अधिक समानता रखती हैं और फिरभी उनसे इतनी अधिक ऊँची हैं। 'बा' ज्यादा पढ़ी-लिखी नहीं। जिस तरह हमारी वृद्धा माताएँ तुलसीदासजी की रामायण की चौपाइयों को धीरे-धीरे खोलकर पढ़ती हैं 'बा' भी धीरे-धीरे थोड़ा-थोड़ा पढ़ लेती हैं। बच्चों से स्नेह तथा मोह-ममता में भी हमारी अन्य माताओं के समान ही हैं, यद्यपि महात्माजी के अनुपम स्वार्थत्याग तथा संयम ने उनके जीवन पर पूरा प्रभाव डाला है। 'बा' की उच्चता कष्टों में प्रकट होती है और जितनी कठिनाइयों में उन्हें गुज़रना पड़ा है उतनी कठिनाइयाँ बहुत कम भारतीय स्त्रियों ने झेली होंगी। इन पंक्तियों का लेखक उस दिन का दृश्य कभी नहीं भूल सकता, जब महात्माजी पकड़ कर साबरमती जेल को भेज दिए गए थे। 'बा' के चेहरे पर यद्यपि चिन्ता के चिह्न थे, पर वे धैर्य के द्वारा अपने हृदय के विषाद को सफलता-पूर्वक रोके हुए थीं, और उनका मुखमंडल आश्रमवालों के लिये उसी मातृ-प्रेम से परिपूरित था। महात्माजी के जेल के दिनों में 'बा' ने जो तपस्यापूर्ण जीवन व्यतीत किया था, उसका पता आश्रम के बाहर बहुत कम आदमियों को होगा।

'बा' का अकृत्रिम भोलापन ही उनका सबसे अधिक आकर्षक गुण है। एकबार कहीं राजनैतिक वाद-विवाद के बीच में महात्माजी ने कहा था—"मेरी दृष्टि में 'बा' संसारकी सबसे अधिक सुन्दरी स्त्री है।" श्रीमती सरोजिनी देवी भी उस समय उपस्थित थीं। उन्होंने यह

बात 'बा' से कही कि महात्माजी कहते थे कि, 'बा' संसार की सबसे अधिक सुन्दरी स्त्री है। 'बा' ने बड़े भोलेपन से कहा—"क्या सचमुच आपूजी ऐसा कहते थे?" श्रीमती सरोजिनी देवी ने यह बात पूर्व अफ्रिका में सुनाई थी।

यह बात ध्यान देने योग्य है कि महात्माजी भी 'बा' को 'बा' कहते हैं और 'बा' भी बापू को 'बापू' ही कहती हैं।

'बा' को बच्चों से बड़ा प्रेम है। 'बा' के घर पर एक झूला है और आश्रम के बच्चों को जबकभी अवकाश मिलता है तो वे 'बा' के झूले पर जाकर झूलते हैं। 'बा' इससे बड़ी प्रसन्न रहती हैं और कभी-कभी खाने की चीज़ भी उनको दे देती हैं। आश्रम में कोई स्त्री बीमार हो तो 'बा' उसके पास जाकर उसकी ख़बर पूछती हैं।

आश्रम में 'बा' का जीवन पूर्ण तपस्या का जीवन है। महात्माजी की तपस्या से तो आज शिक्षित-संसार परिचित है, पर 'बा' की तपस्या पर समाचार-पत्रों की कुदृष्टि अभी नहीं पड़ी, और संसार शायद कभी भी न जानेगा कि महात्माजी को 'महत्व' के उच्चतम शिखिर पर चढ़ने में 'बा' ने कितनी सहायता दी है। 'बा' महात्माजी की हर बात से सहमत नहीं, और कभी-कभी उनमें झगड़ा भी हो जाता है, पर महात्माजी बड़े व्यवहार-कुशल हैं और वे इस तरह के मौक़े प्रायः नहीं आने देते। पिछले 'यंग इंडिया' में महात्माजी ने लिखा है—

"सम्भवतः अब भी मेरी अनेक बातों से 'बा' सहमत नहीं। पर हम दोनों ऐसी बातों पर बहस नहीं करते। मुझे ऐसी बातों पर बहस करने में कोई नतीजा नहीं देख पड़ता। 'बा' को न तो उसके माता-पिता ने कुछ शिक्षा दी, और न मैंने ही यथासमय कुछ शिक्षा देकर अपना कर्त्तव्य पालन किया। पर 'बा' में एक बड़ा गुण अच्छी मात्रा में है, और वह गुण ऐसा है जो थोड़ी-बहुत मात्रा में अधिकांश हिंदू स्त्रियों में पाया जाता है। वह यह है कि मन, बेमन, समझे, बेसमझे उसने इस बात में ही अपना सौभाग्य समझ रखा है कि मेरा अनुगमन करे और वह मेरे संयमित जीवन व्यतीत करने के प्रयत्न में कभी बाधक नहीं हुई।"

'बा' वस्तुतः 'बापू' की अनुगामिनी है। अपनी सरल स्वाभाविकता के कारण उनका जीवन भारतीय स्त्रियों के लिये आदर्श है।

['आर्यमित्र']

× × ×

२ नारी-विक्रय

थोड़े दिनों की बात है 'अज़ीज़ो' और 'रेबा' नाम की दो स्त्रियाँ दुर्नीति दमन क़ानून ७, ८ धारा के अनुसार अभियुक्त हुई थीं। वे भिन्न-भिन्न स्थानों से बालिकाओं को चुराकर व्यभिचार-व्यवसाय चलाती थीं। नेपाली वीर खड्गबहादुरसिंह के मामले से भी यही बात प्रमाणित हुई है कि, कलकत्ता महानगरी के बड़ाबाज़ार के धन-कुबेर नारी-हरण कर 'उच्छेपु सों' के ज़ोर पर निर्विघ्न रूप से इस जघन्य व्यवसाय को चला रहे हैं।

यह तो भारतवर्ष की अवस्था हुई। अब यूरोप की बात भी सुनिए। सभ्यता का डींग हाँकनेवाले बड़े-बड़े सभ्य देशों की स्त्रियों की अवस्था भी बहुत अच्छी नहीं है। विश्व राष्ट्रसंघ की एक रिपोर्ट निकली है। उससे जाना जाता है कि यूरोप और अमेरिका में भी नारी-विक्रय का कारबार प्रचलित है। फ्रांस, पोलैण्ड, रोम प्रभृति देशों से बालिकाओं का संग्रह कर अमरिका और मिस्र में चालान होता है। एक दल के मनुष्य बालिका-संग्रह करने के लिये नियमित रूप से नियुक्त किए गये हैं और कतिपय अधेड़ उम्र की स्त्रियाँ वेश्यालय बनाकर इन हत-भागिनी बालिकाओं के सतीत्व को बेचकर प्रचुर द्रव्योपार्जन करती हैं।

इस संसार-व्यापी नारी-निर्यातन का दायित्व किसके सिर पर है? पुरुषों के? केवल पुरुषों के सिर पर दोष मढ़ने में कुछ विशेष लाभ नहीं। कवियों ने कहा है, "दूसरों पर हम क्यों इतना क्रोध कर रहे हैं, हम स्वयं दोषी हैं।" सत्य ही है। नारी-निर्यातन व्यापार में पुरुषों के दायित्व के साथ-साथ स्त्रियों का दायित्व भी कम नहीं। पुरुष नारी-विक्रय का व्यवसाय करते हैं, हम इसे मानते हैं, किन्तु, यदि स्त्रियाँ इसमें सहायता न देतीं, तो क्या यह व्यापार चलना सम्भव था? नारी-दुरावस्था के लिये यदि नारी ही दायी हो, तो नारी-मुक्ति के लिये भी नारी को ही चेष्टा करना नितान्त उचित है। जबतक स्त्रियाँ अपने पैरों पर खड़ी होकर स्वयं इस आन्दोलन में भाग नहीं लेतीं तबतक हमारा यह दुःख दूर नहीं होगा।

स्त्रियों के जागृत हुए बिना देश उन्नति नहीं कर सकता। नारी-शक्ति को पंगु बनाकर रखने से राष्ट्र की सजीवनी-शक्ति रुक जाती है, इसे नये सिर से बतलाने की आवश्यकता नहीं। अब प्रश्न यह है कि, महिलाओं की

स्वार्थ-रक्षा में हाथ कौन बटावे ? नेताओं में कोई तो कौंसिल-समस्या हल करने में व्यस्त है, कोई रायल कमीशन की दावतें खाने में दिलचस्पी ले रहे है, और कोई हिन्दू-मुस्लिम-विवाद मिटाने मे मशगूल हैं। नारी-प्रगति के लिये चेष्टा करता ही कौन है ? प्रतिध्वनि कहती है, "कौन है ?"

गोपीनाथ वर्मा

× × ×

३ करुण-क्रंदन

कोस कोस करती कलाप कुल-कान-वारी,
मानवारी मोहन को विनती सुनाती है।
मारग अगम देखि कान्हजू के मिलिबे को,
आँसुन के दूत पास उनके पठाती है।
एते निरमोही दया द्रवित न होते हाय,
केती अबलाएँ विष खातीं, मरजाती हैं !
आओ ब्रजचंद वेगि न्याय को निबेरो करो,
भारत की नारी असहाय अकुलाती है।

लीलावती देवी

× × ×

४ विधवा-विवाह

विधवा-विवाह के प्रश्न को लेकर आजकल समाचार-पत्रों मे बड़ी हाय-हाय हो रही है। जिस पत्र पर नज़र डालिए, विधवा-विवाह के विरोध से भरा पड़ा है, और आर्यसमाज को कोस रहा है। अगर उसका वश चले तो वह समाज को इसी वक्त नष्ट-भ्रष्ट करदे, परंतु यह उनकी शक्ति से बाहर है। विधवा-विवाह के विरोध मे वे धर्मकी दुहाई-तिहाई दिए डालते हैं, पर हम नहीं देखती कि सनातनधर्म की नीव कौन से धर्म पर क़ायम है। वह कौनसा धर्म है जिसे सनातनधर्मी पुरुष धारण किए हुए है ? इसका उत्तर देने के प्रथम मै यह लिख देना चाहती हूँ कि मैं आर्यसमाजिन नहीं हूँ, परंतु सत्य अवश्य सत्य है, इसमे मेरा विश्वास है, चाहे वह आर्य-समाज में हो, चाहे सनातनियों, या बौद्धों मे। कोई भी सत्य का निरादर नहीं कर सकता। सत्य सूर्य की तरह स्वयं प्रकाशमान है। अच्छा, अब मैं सनातनधर्मियों से पूछती हूँ, उनका धर्म क्या है। क्या वे होटलो मे जाकर गोमास के साथ बनाया भोजन ख़ुशी से नहीं खाते ? क्या वे विषाक्त वस्तुओं का सेवन नहीं करते ? क्या वे वेश्याओं का घर पवित्र नहीं करते ? क्या वे सुरा देवी की उपासना नहीं करते ? विजातीय विवाह का तो कहना ही क्या, किसी भी जाति की स्त्री हो, पुरुष उसका स्वागत करने को तैयार रहता है। फिर वे किस बात मे धर्म मानते हैं, और किस वजह से धर्म-धर्म की पुकार मचाये रहते हैं ?

आपके मुख से धर्म की दुहाई शोभा नहीं देती। धर्म की दुहाई आपका अपना ख़ुद अपमान कर रही है। अगर स्त्री-समाज कहे तो अवश्य कह सकता है और उसके योग्य है। हम धर्म की ख़ातिर क्या-क्या नहीं करतीं ? धर्म की ख़ातिर हम मृत्यु से बदतर जीवन बिताती है, जीवन भर घोर-से-घोर अपमान सहती है। जीवन भर पददलित होकर भी धर्म को रक्षित रखती है, अपने सुख का हम एकदम ख़याल छोड़ देती है। हम नहीं जानतीं दुनिया में ख़ुशी क्योंकर हासिल की जा सकती है। हमारे सामने एक ही उद्देश्य है, एक ही काम है—और वह है धर्म ! तुम सनातनधर्मी बने बैठे हो, किसके बल पर ? सिर्फ स्त्रियों के बल पर। विधवा-विवाह आम तौर से जायज़ नहीं होगा और न हर एक औरत मे हो ही सकता है। बच्चेवाली स्त्री का पुनर्विवाह निषिद्ध ही है, इसके अतिरिक्त हर एक की इच्छा भी नहीं होती। जिनको मान के साथ भोजन-वस्त्र प्राप्त हो सकेगा वे स्वयं इस जंजाल मे पड़ना पसंद न करेंगी। हाँ, जिनकी मनोवृत्ति बहुत प्रबल है, और जो किसी तरह रुक नहीं सकती, उनका मान के साथ पुनर्विवाह हो जाना ही उचित है। दुनिया मे हज़ारों तरह की बद-नामी से बचने के लिए पुनर्विवाह करना ही पड़ेगा। पुरुषों को इतना भयभीत होने का कोई कारण नहीं, और न उन स्त्रियों को अपमानित करने का, जो पुनर्विवाह की इच्छुक हो। अगर वे सहायता की प्रार्थिनी हैं तो उन्हे सहायता देना उनका परम कर्तव्य है। विधवाओं की इतनी निन्दा करने का कोई कारण नहीं है। जिस तरह पुरुषों में ब्रह्मचर्य का दर्जा एक गृहस्थ से कहीं ऊँचा है, उसी तरह स्त्रियों मे भी रहेगा। रही तलाक़ की बात, वह तो होगा ही और वह स्त्रियों के लिए बहुत लाभ-कारी है। इस वक्त पुरुष जितनी चाहे शादियाँ करे और चाहे जितना कष्ट दे, औरत किसी भी हालत में मरे बग़ैर उसे नहीं छोड़ सकती। तलाक़ जायज़ हो जाने पर कष्ट-बंधन इतना कठोर न रहेगा। किसी-किसी अंश में यह अनिष्टकर भी है और इसमे कुछ नुक़सान भी हैं, जैसे थोड़ी-थोड़ी नाराज़ी पर, या किसी अन्य स्त्री पर

आसक्त होने की वजह से पत्नी को ऐब लगाकर तलाक़ देदेना सहज हो जायगा। वर्तमान दशा यह है कि पुरुष स्त्री का अपमान करके उसका पालन करता जाता है, पर मैं ऐसे हेय जीवन से तलाक़ ही अच्छा समझती हूँ। मुसलमानों में तलाक़ और विधवा-विवाह दोनों ही हैं, मगर शरीफ़ों में दोनों ही बातें बहुत ही कम होती हैं। हाँ, बहु विवाह ज़ोरों के साथ होता है। यही अन्याय है। इसी को रोकने का यत्न होना चाहिए। पुरुषों को डर के मारे ऐसा न सोचना चाहिए कि औरतें मर्दों को ज़हर दे डालेंगी। यह तो पुरुष ही करते थे और करते हैं कि अभी दूसरी स्त्री लाने की इच्छा हुई कि पहली को खत्म कर दिया। स्त्रियों से ऐसा कभी नहीं होगा, ख़ासकर अँगरेज़ी अमलदारी में। पुरुष-समाज स्त्रियों की ज़रा-सी ही बात से ऐसा घबराता है मानो प्रलय आगया। वह स्त्री-शक्ति से बहुत डरता है। स्त्री-शक्ति का यद्यपि पुरुषों ने बिलकुल ही कुचल डाला है, तो भी ज़रा-सी बात सुनते ही वे अपने-आपे में नहीं रहते। रही उपदेश की बात, वह हर एक के ऊपर लागू नहीं हो सकती। क्योंकि बीज बोने के पेश्तर खेत देख लेना होता है। जिसमें बीज उपज सकता है, उसीमें बोना लाभकारी है, नहीं तो श्रम बेकार होता है।

अब समस्या यह है कि किसी-न-किसी रूप में विधवा-विवाह जारी करना ही पड़ेगा, नहीं तो वह अपने-आप होने लगेंगे—और बदनामी तथा अपमान के साथ। इसलिए समाज की मर्यादा बनाये रखने के लिए विधवा-विवाह जायज़ कर देना ही उचित है। आर्यसमाज अवश्य हमारे धन्यवाद का पात्र है, क्योंकि जितना उपकार उसने दीन स्त्रियों का किया है, उतना किसी का नहीं किया। वह मांस और मदिरा का निषेध करता है, वेश्या के नाच का विरोध करता है, बाल विवाह और वृद्ध विवाह का विरोध भी पहले-पहल उसीने किया था। ऐसे-ऐसे अनेक काम हैं जोकि स्त्री के लिये उपयोगी हैं। हम उसको हार्दिक धन्यवाद देती हैं। ईश्वर उसको और शक्तिशाली करे, जिससे संसार का कल्याण हो।

भगवती देवी

'हाँ' और 'ना'

लको! बात तो बहुत पुरानी है, पर है मजेदार। इसलिए तुम इसे सुन लो।

मदारीपुर मे एक बूढ़ा अहीरिन रहती थी। उसके दो लड़के थे; एक का नाम था—मल्लू और दूसरे का मल्लू। सल्लू बड़ा गँवार तथा मनहूस था। उसमे चतुराई तो नाम को नहीं थी। मल्लू बड़ा चतुर और परिश्रमी था। इनके यहाँ अहीरी का काम कोई-सा भी नहीं होता था। केवल खेती होती थी। उस पर भी थोड़ी जमीन थी, जिसमे रोटियो के लाले पड़ते थे। जैसे-तैसे काम चलता जाता था। बुढ़िया बेचारी अन्धी थी और उसके अंग भी शिथिल होगये थे। इसलिये उसने सोचा कि रोटी के सहारे के लिये मल्लू की शादी करनी चाहिये। पर सब काम द्रव्य से ही चलते है। बुढ़िया मन-ही-मन तड़फड़ा कर रह जाती, अन्त में मल्लू ने गाँव के मालगुजार से इस बारे में बातचीत की। मालगुजार भी बड़ा उदार और सहृदय था, इस कारण उसका हृदय जल्दी पिघल गया। मालगुजार ने मल्लू को दो सौ रुपये उसकी शादी के लिये दे दिये।

अब बुढ़िया का मन तीन-तीन हाथ ऊँचा कूदने लगा। उसकी खुशी का कुछ ठिकाना न था। मल्लू ने विवाह की बातचीत चैनपुर के धनी अहीर की लड़की से चलाई। होते होते मल्लू की शादी बड़ी धूमधाम से हुई, और बारात घर लौट आई।

सल्लू एक तो थे अलाल दूसरे शौकीन। इनका समय भाई की शादी के पहले बड़ी कठिनता से बीतता था। पर अब इनको ससुराल जाने का या घूमने का अच्छा अवसर निकल आया। इसलिये ये भैया से कहते कि हम ससुराल को जाते है। भैया कहता—'देखो तुम्हे बोलना तो आता नहीं है इसलिए अगर जाओ तो हाँ और ना के सिवाय कुछ न कहना। सल्लू आज्ञा को बड़ी जल्दी मान लेते थे। पर घर का काम करने के नाम तो आज्ञा को अग्निकुण्ड मे होम देते थे। अस्तु।

एक दिन की बात थी कि सल्लू बिना कहे-सुने ससुराल चल पड़े। गर्मी के दिन थे, पसीने से तरबतर हो गए। पर इस बात की परवाह ही क्या थी। शाम को ससुराल पहुँचे। ससुरदेव ने झट से इनका आगत-स्वागत किया और पूँछा—

"आप अच्छी तरह से हो?"

"हाँ जी"

"लालासाहब तो खुशी से है?"

"ना जी"

"क्या बीमार थे?"

"हाँ जी"

"दवाई कराई थी?"

"ना जी"

"तो क्या आशा नहीं है?"

"हाँ जी"

सल्लू का इतना कहना था कि घर मे रोना-पीटना मच गया। बेचारी नव-विवाहिता लड़की ने बिछुए उतार डाले और फूट-फूट कर रोने लगी। सल्लू ने सोचा कि दामाद के आने पर शायद रोया जाता होगा। इससे खुद आँखे मल-मलकर रोने लगे। परन्तु जब समय बहुत हो गया, तो वापस लौट चले और सोचा कि इनके यहां कोई मर गया है, इसलिए ये रोते है। रात को गाव की कुछ दूरी पर ठहर गये। सवेरा होते ही घर आए और भाई से बोले, उनके यहा कोई मर गया है, इसलिए मेरे जाने ही थोड़ी बातचीत के बाद उन्होंने रोना-पीटना शुरू कर दिया। भैया, उनके यहां कोई मर गया है इससे जाना पड़ेगा। मल्लू ने सोचा कि, यह पक्का गँवार है। कुछ काम बिगाड़ आया है।

सवेरे मल्लू ससुराल जा पहुँचे। पहुँचते ही सब लोगों को भागते हुए देखा। बड़ा आश्चर्य हुआ। अन्त में एक मालिन से सारा हाल पूछा। उसने सब हाल कह दिया। सुनते ही ये ससुर के घर पहुचे। ससुर बड़ा खुश हुआ। दूसरे दिन मल्लू चले और शाम तक घर आ पहुँचे। भाई पर बड़े क्रोधित हुए तथा अच्छी मार भी लगाई। अब सल्लू सिटपिटा गया और आयन्दा प्रण कर लिया कि मै भैया की ससुराल को न जाऊगा। मूर्खता पाप की जड़ है।

गौरीशकर 'शांत'

× × ×

२. छड़ी और छतरी

एक दिन छड़ी और छतरी मे लड़ाई होने लगी। छड़ी कहती थी—"छतरी सुनो! मै मनुष्यो के जितने काम आती हूँ, तुम कभी नही आ सकती, इसीसे मै उनकी परम प्यारी हूँ। देखो तो सही, जब मनुष्य पर विषैले जीव या कोई शत्रु आक्रमण करते है तो पहला वार मै ही लेती हूँ और जबतक दम रहता है उसपर वार नही होने देती। यही कारण है कि मनुष्य मुझे अपनी अंगिनी समझ चिरसगिनी बनाकर रखता है। अपरिचित मार्ग मे जहाँ कही पानी पड जाता है और आदमी उसमे पाँव रखते डरता है, तब मै ही धीरज धराती हूँ, पानी की थाह लेना भी मेरा ही काम है। अधे तो मुझे अपनी आँख ही समझते है। अगर मै उनकी सहायता न करती, तो बेचारे एक अगुल जमीन भी न तय कर पाते। पगु की तो मानो मै टाँग ही हूँ। घने अन्धकार मे, जब पैर को पैर और हाथ को हाथ नही सूझता, तो लोग मुझे जमीन पर बारंबार रखकर खट्-खट्

आवाज करते हैं। इससे मुझे कष्ट तो बहुत होता है, मगर मैं उनकी हित-कामना का परितोष कर सह लेती हूँ। इस हिसाब से तो उस समय मे आँख वालों की भी आँख हो जाती हूँ। सबसे बड़ी बात तो यह है कि मै प्राणियों की अन्नदात्री महाशक्ति ही हूँ। यह सुनकर तुम चकमका गई होगी कि अपने मुँह यह बड़ाई ! मगर बिना कहे भेद खुलता नही। बात यह है कि गुरु लोग—उस्ताद लोग—शिष्यो को—शागिर्दों को—मेरे सहारे ही गुणी बनाते है। अगर मैं न होती तो भला वे किस प्रकार शिक्षा देते ? तुम कह सकती हो कि, हाथो से। पर तुम नहीं जानती कि जब उनके हाथो मे चोट आती तो, वे दड देना ही छोड़ देते और परिणाम अच्छा न निकलता। सभी पशु—घोड़े, बैल, भैसे, ऊँट आदि मेरे ही कारण मनुष्यों के आधीन रहते है। यदि उन्हे मेरा डर न होता तो वे कभी के जगल की राह लेते और सब लोग हाथ मलते रह जाते। अत्याचारियो की पीठ पर पड़कर जब मै उनकी खबर लेती हूँ, तो उन्हे छठी का दूध याद आ जाता है। इसीसे बड़े आदमी, विद्वान् लोग, मुझे प्राणप्रिया समझते है। सरकसवालो की तो मै जान हूँ। मेरे इशारे से पशु पक्षी ऐसे-ऐसे खेल दिखाते है कि लोग विस्मित हो जाते है। अब तो मैं अपने अदर हथियार भी छिपाने लगी हूँ, जिससे सर्वसाधारण से लेकर राजा-महाराजा भी मुझे जान से बढ़कर प्रिय समझते है। मजा तो यह है कि मै न लिख सकूँ, न पढ़, और न देख सकूँ न सुन, मगर लोगों को लिखाती भी हूँ और पढ़ाती भी। दिखाती भी हूँ और सुनाती भी। इस आश्चर्य का भी कोई ठिकाना है। कहने का अभिप्राय यह कि, तुम मेरे समान मनुष्य की प्यारी नहीं हो सकतीं। भला मैं ही तुमसे अलग हो जाऊँ, तो तुम्हारा अस्तित्व ही कहाँ रहे ? मेरे ही द्वारा तुम्हारी भी इज्जत है।"

छड़ी की इतनी बातें सुनकर छतरी से चुप न रहा गया। यद्यपि उसे सब बाते सुनकर कायल हो जाना चाहिए था, मगर वह अंतिम बात न सह सकी। बोली—"चल निगोड़ी। कहाँ तू और कहाँ मैं। जरा कान इधर तो कर, सुन ! अगर मै आदमियो का साथ न दूँ, तो चिलचिलाती धूप मे उनका चलना मुशकिल होजाय। मै स्वय जलती हूँ, मगर उनको छाया पहुँचाती हूँ। क्या तुम मे यह गुण है ? बोलो ! बरसात के दिनो मे लोग मुझे कर का कगन समझते है। अगर मै जवाब दे जाऊँ, तो लोग लथपथ हो जायँ। कपड़े-लत्ते भीगकर उनके शरीर मे सर्दी पहुँचा कर बीमार करदें। फिर तो लेने के देने पड़ जायँ। कहो, ऐसी ताकत तुममे है ? हाँ, एक बात कहना तो भूली ही जाती हूँ। अगर मेरे रहते तुम न रहो तो मै तुम्हारा काम चला सकती हूँ, मगर तुम मेरी गैरहाजिरी में मेरा काम एक सेकड नहीं चला सकती। तुम मेरी बराबरी क्या कर सकती हो। तुम्हारी तरह मै अपने मुँह मियां-मिट्ठू नही बनना चाहती। यह तो विचारो कि, तुम जब काम नहीं दे सकती, तो जला दी जाती हो, मगर मैं जब पुरानी हो जाती हूँ, मेरी नसें ढीली पड़ जाती हैं, हाथ मुँह टूट जाते है, तो मै अपनी अँगुलियो (तीलियो) को सूजे के रूप मे कर देती हूँ, जिससे लोग दरी और टाट की सिलाई करते हैं। जीते-जी आराम देती हूँ, मरने पर जीवन। इससे कितनों की जीविका चलती है। कहाँतक अपने कारनामे बतलाऊँ ? अब तुम्हें लज्जित होना चाहिए।"

छड़ी ने इस अंतिम बात को बरदाश्त न कर

कहा— इस प्रकार हमारा तुम्हारा फ़ैसला नहीं हो सकता। आओ हम तुम लड़ जायँ जो बली हो उसीकी प्रधानता रहे।'

इस पर दोनो लड़ने लगीं। उन समय संयोग से दोनो एक ही आदमी के पास थीं। दोनो को लड़ते देख उस आदमी ने कहा—"भाई! तुम लड़ो नहीं। तुम दोनों, आदमियों को बराबर ही प्यारी हो। जब तुम्हारा समय आता है तो तुम प्रिय होती हो, और जब तुम्हारा वक्त आता है तो तुम। यह गलती है कि तुम अपनी अपनी समझ पर झगड़ा कर बैठो। देखो छड़ी, जब तुम सहायता करती हो तो छतरी की पैदाइश होती है, और जब छतरी छाया करती है तो तुम धूप और पानी से बचती हो। दोनों का पलड़ा बराबर है। एक को दूसरे की सहायता करना आवश्यक है।

मनुष्य के इस निर्णय पर दोनों गले से मिलीं और मामला तय होगा।

जीवनराम

× × ×

३, बालक!

दुर्बल देश का अभिमान, बालक! तुम्हीं हो
गिरे वक्त की शान, बालक! तुम्हीं हो।
गरीबों के अरमान, बालक! तुम्हीं हो;
अहो! राष्ट्र के प्राण, बालक! तुम्हीं हो।
तुम्हीं पर नज़र देशभर की लगी है।
बनो वीर, बालक! शिवा-वीर-जैसे,
बनो शेर-नर, शेर-पंजाब-जैसे।
तिलक देवता से पढ़ो ज्ञान गीता,
सिखो दास, मोहन से शिक्षा पुनीता।
हमारी जो तक़दीर सोकर जगी है।
तुम्हीं०
न भूलो कभी मलयगिरि भूमि भारत,
अकर्मण्यता में न होने दो गारत।
फटकने न दो पास आने निराशा
कहो हिन्द, हिन्दू की जै मातृभाषा।
इसी नीति से जीत जाहिर सगी है।
तुम्हीं०
पढ़ो राजभाषा को, हिन्दी न भूलो,
कभी सभ्यता—पश्चिमी पै न फूलो।
सदाचार का जो सहारा रहेगा,
तो दूना चमकता सितारा रहेगा।
मनो, आत्मा सत्य रँग में रँगी है।
तुम्हीं०

लीलावती देवी

जीवन-सुधा

१ शक्ति के नैसर्गिक भाण्डार

मनुष्य का जीवन तीन वस्तुओं पर अवलम्बित है—पवन, पानी और अन्न। इन्हीं तीन वस्तुओं में उसके प्राण हैं। इन चीज़ों से जीवनी-शक्ति प्राप्त करके मनुष्य बलिष्ठ और नीरोग हो सकता है। परन्तु, खेद है कि, इस शक्ति को प्राप्त करने की यथार्थ विधि का ज्ञान बहुत कम लोगों को है। आजकल के वैद्य और डाक्टर भी रोगियों को चलते-फिरते औषधालय बनाने का ही यत्न करते हैं। निसर्ग के अनन्त भाण्डार से बल और आरोग्य प्राप्त करने की विधि वे उन्हें नहीं बताते। लाहौर मेडिकल कॉलेज के प्रिंसिपल डाक्टर सदरलैंड कहा करते हैं कि, बलवान् बनने के लिए दवाइयों का सेवन करना भारी भूल है। क्योंकि "Strength comes from the kitchen, and not from the chemist's shop"—शक्ति रसोई-घर से मिलती है, अत्तार की दूकान से नहीं।

जब मनुष्य प्रकृति की गोद में खेलता था, जब उसका जीवन इतना जटिल और अस्वाभाविक न था, तब वह निसर्ग के रहस्यों को आज की अपेक्षा अधिक समझता था। वह दवाइयों पर ज़ोर न देकर प्रकृति से ही शक्ति-सञ्चय करने की चेष्टा करता था। प्राणायाम, जल-चिकित्सा, दुग्ध-चिकित्सा, उपवास-चिकित्सा और सूर्य-चिकित्सा, इत्यादि बातें सब उसी युग के आविष्कार हैं। पवन, पानी और अन्न परमेश्वर की अनन्त शक्ति के भाण्डार हैं। इनमें किसी प्रकार का दोष आजाने से जगत् में भारी उपद्रव होता है। इसीलिए इन तीनों की पवित्रता पर ज़ोर दिया जाता है। प्राचीन गुरु लोग अपने शिष्यों को निसर्ग के अनन्त भाण्डार से शक्ति-सञ्चय करने की विधियों का ज्ञान करा दिया करते थे। उस समय दवा-दारू पर उतना ज़ोर न था। इसलिए जनता का स्वास्थ्य वर्तमान की अपेक्षा कहीं अधिक अच्छा था।

पहले हम पवन को लेते हैं। पानी और अन्न के बिना तो मनुष्य कुछ देर जी भी सकता है, परन्तु पवन के बिना तो उसका जीना एक क्षणभर भी सम्भव नहीं। भौतिक विज्ञान कहता है कि पवन दो गैसों—ऑक्सिजन और नाइट्रोजन—का रासायनिक मिश्रण है। ऑक्सिजन हमारे शरीर के भीतर जाकर मल की शुद्धि करता है। यही जीवन का आधार है। परन्तु बात इतनी ही नहीं। पवन में उपर्युक्त दो गैसों के अतिरिक्त कोई एक चीज़ ऐसी भी है जिसे हमारा भौतिक विज्ञान देख नहीं सकता, जिसका रासायनिक-विश्लेषण द्वारा पता नहीं लगता। यही अगम्य और अगोचर चीज़ प्राणियों के जीवन का आधार है। हमारा यह कथन निराधार नहीं। पवन में ऑक्सिजन और नाइट्रोजन जिस अनुपात से मिश्रित हैं, यदि उनको उसी अनुपात से मिला कर कृत्रिम रीति से पवन बनाई जाए और उस कृत्रिम पवन में मेंढक, चूहे या किसी दूसरे प्राणी को रखा जाय तो

वह चटपट मर जाता है। इससे स्पष्ट है कि नैसर्गिक वायु में कोई ऐसी अगोचर वस्तु और भी है जो जीवन का आधार है। यदि वह न होती तो कृत्रिम वायु मे भी प्राणी उसी प्रकार जी सकता, जैसा कि वह नैसर्गिक पवन में जीता है।

यह सारा वायु-मंडल उस जीवनी-शक्ति से भरा पड़ा है। उसमें से अपने लिए इस शक्ति को ग्रहण करने का एक ही उपाय है। वह यह कि जितना भी हो सके हम अधिक-से-अधिक मात्रा मे खुली, शुद्ध वायु को अपने शरीर के भीतर लेजायें। इसके लिये प्राणायाम की आवश्यकता है। प्राणायाम से हमारा तात्पर्य किसी लम्बी-चौड़ी जटिल क्रिया से नहीं। उसकी एक सरल विधि यह है—

किसी खुले स्थान में, जहाँ की वायु बिलकुल शुद्ध हो—जहाँ धूलि, धुएँ और दुर्गंध का लवलेश तक न हो—सवेरे या साँझ को जाकर सीधे खड़े हो जाओ। इस समय तुम्हारा पेट भरा हुआ न होना चाहिए। दोनों हाथ दोनों ओर कमर पर, अँगूठा पीठ की ओर, और चारों उँगलियाँ पेट की ओर हों। सिर और रीढ़ एक सीध मे, कंधे पीछे को हटे हुए, और छाती आगे को तनी हुई हो। अब मुँह बंद करके नाक से धीरे-धीरे गहरी साँस लेकर शुद्ध वायु से फेफड़ों को भरो, यहाँ तक कि पसलियों का पिंजरा बाहर की ओर को फूला हुआ मालूम दे, और छाती का ऊपरी भाग—कंधों से ठीक नीचे का भाग—भी ऊपर को उभर आए। अब जितनी देर तक सुगमता से रुक सके, साँस को भीतर ही रोके रखो। फिर, जिस प्रकार धीरे-धीरे साँस भरी थी, उसी प्रकार धीरे-धीरे उसे बाहर निकाल दो। बहुत देर तक भीतर रोकने का यत्न करना ठीक नहीं। साँस के पूरी तरह पर बाहर निकल जाने के बाद उसे यथासामर्थ्य बाहर ही रोके रखो। फिर पूर्ववत् धीरे-धीरे भीतर ले जाकर फेफड़ों को भरो। इस अभ्यास को तीन बार से आरम्भ करके बहुत धीरे-धीरे बढ़ाना चाहिए। शीघ्रता करने से हानि होने की आशङ्का है। भीतर साँस भरते समय तुम्हारे मन मे यही धारणा रहनी चाहिए कि मैं अपने भीतर जीवनी-शक्ति को भर रहा हूँ। मेरे सब रोग दूर होकर मुझ में नव-जीवन का सचार हो रहा है। इस धारणा का स्वास्थ्य पर बहुत उत्तम प्रभाव पड़ता है।

मनुष्य के शरीर में शक्ति के कई केन्द्र हैं। वे नाड़ियों के चक्र हैं। उनको उत्तेजित करने से शरीर में शक्ति का संचार हो जाता है। इनमें से एक केन्द्र का नाम मणिपूर-चक्र (Solar plexus) है। यह छाती को पेट से जुदा करनेवाले परदे (डायाफ्राम) के नीचे—जहाँ छाती की पसलियाँ दाईं और बाईं ओर को एक दूसरे से अलग होती हैं, वहाँ—है। उपर्युक्त विधि से प्राणायाम—गहरा साँस लेने का अभ्यास—करते समय इस चक्र पर मानसिक दबाव डालने और पेट को घुमा कर चक्र को हिलाने से इसे उत्तेजित किया जा सकता है। इसको जगाने के लिए कुछ काल तक अभ्यास करने की आवश्यकता है।

इसी प्रकार का एक दूसरा चक्र गुदा के मूल में है। रीढ़ की हड्डी नीचे की ओर जहाँ समाप्त होती है, वहाँ एक छोटा-सा गड्ढा है। उसमें रीढ़ का छोटा-सा सिरा बाहर को निकला हुआ है। कई लोग उसे मनुष्य की पूँछ का शेषांश भी समझते हैं। बस, वहीं यह चक्र है। इस चक्र को जगाने की विधि यह है कि खड़े होकर या बैठकर पूर्वोल्लिखित विधि से प्राणायाम किया जाय और साथ ही इस चक्र को धीरे-धीरे हाथ से दबाया जाय। इससे शरीर में एक विशेष प्रकार का सुखद अनुभव या झनझनाहट सी होगी। बिन्दु-धारण के लिये यह अभ्यास बहुत लाभदायक है।

तीसरा नाड़ी-चक्र गर्दन के मूल मे है। जहाँ सिर की गर्दन के साथ संधि है, वहाँ एक छोटा-सा कूप-सा है। उसीमें यह चक्र स्थित है। पलथी मारकर बैठ जाइये, सिर की खोपड़ी और मेरुदण्ड को एक सीधी रेखा मे कर लीजिए। सिर आगे को झुका हुआ और पीठ पीछे को निकली हुई नहीं होनी चाहिए। फिर गहरी साँस लेने का अभ्यास कीजिए। इस क्रिया को करते हुए अपनी दोनों हथेलियों को इस चक्र के स्थान पर रखकर हलका-सा दबाइए। आपको एक विशेष प्रकार के सुख का अनुभव होगा। मस्तिष्क की सारी थकावट दूर हो जायगी। मस्तिष्क-संबंधी कार्य करनेवालों के लिए यह अभ्यास बहुत लाभदायक सिद्ध होगा।

मनुष्य का शरीर एक प्रकार की बिजली की बैटरी है। सिर की खोपड़ी इसका धनात्मक ध्रुव (Positive pole) और पाँव के तलुए ऋणात्मक ध्रुव (Nagative pole) हैं। खोपड़ी की उभरी हुई चोटी के द्वारा

हमारा शरीर जीवनी-शक्ति वायुमण्डल मे से लेता है और पॉव के तलुओं के रास्ते यह मैल को बाहर निकालता है। यही कारण है जो तलुवो में से प्रायः मुर्दा माँस झड़ता रहता है। इसलिए पैरों को सदा धो-धाकर साफ़ रखना चाहिए, ताकि मैल के निकलने में कोई बाधा न पड़े। खोपड़ी को भी उंगलियों के अग्र-भाग के साथ हौले-हौले मलना चाहिए। इससे सिर में जमा हुआ मैल दूर होकर शक्ति को भीतर लेने का रास्ता खुल जाता है।

जीवनी-शक्ति का दूसरा भाण्डार शुद्ध जल है। हाइड्रोजन और आक्सिजन को बिजली की शक्ति के द्वारा मिलाकर जो पानी प्रयोगशाला मे बनाया जाता है, उसमें यह नैसर्गिक शक्ति नहीं होती। स्वाद भी इतना नहीं होता। मछली आदि जल-जन्तु भी उसमे नहीं रह सकते। यदि नदी या कुएँ के जल को कुछ देर तक बोतल में बद रखा जाय, तो वह मुर्दा हो जाता है—उसमें जीवनी-शक्ति नहीं रहती। परन्तु इस मुर्दा पानी को यदि एक गिलास मे से दूसरे मे डालकर पन्द्रह बीस बार उलट-पलट किया जाय, तो यह दुबारा उस शक्ति से भर जाता है। यह फिर उसी प्रकार स्वादिष्ट हो जाता है।

जल मे से शक्ति लेने की विधि यह है कि दिन में कई बार थोड़ा-थोड़ा ताज़ा पानी पियो। भरा हुआ गिलास एकदम भीतर उंडेल लेने से कुछ लाभ नहीं। जिस प्रकार गरम दूध छोटे-छोटे घूंट भरकर पिया जाता है, उसी प्रकार पानी को भी छोटे-छोटे घूँटों में पीना चाहिए। तभी जीवनी-शक्ति पानी में से निकलकर हमारे शरीर मे रहेगी।

तीसरा भाण्डार अन्न है। शास्त्रो मे भी अन्न को प्राण कहा है। पवित्र अन्न से पवित्र मन बनता है। इसलिए अन्न का शुद्ध होना बहुत आवश्यक है। परन्तु जिस प्रकार साधारण लोग भोजन करते है उससे अन्न की शक्ति उससे पूरे तौर पर अलग नही होती, और हमें उससे अधूरा लाभ पहुंचता है। इसलिए शक्ति-लाभ की विधि यह है कि भोजन ख़ूब चबाकर खाया जाय—इतना चबाया जाय कि उसको और अधिक बारीक करना सम्भव न हो। इस प्रकार चबाकर खाया हुआ मोटा-झोटा खाना भी जितना पौष्टिक होता है उतना बहुमूल्य और स्वादिष्ट भोजन, जो चबाने के बदले यों ही निगल लिया जाता है, कभी लाभ नहीं पहुँचा सकता। खाना चबाते और पानी पीते समय मन में यही धारणा रहनी चाहिए कि मैं इनमें से जीवनी-शक्ति निकालकर अपने भीतर भर रहा हूँ।

हमें आशा है कि इन पंक्तियों के पाठक उपर्युक्त बातों को तुच्छ न समझेंगे। वरन् इनके अनुसार आचरण करके इनकी सत्यता और असत्यता को जाँचने का यत्न करेंगे।

संतराम

× × ×

२. ज़ुकाम

(गताक से आगे)

ज़ुकाम से बचने के लिये यह आवश्यक है कि हम ऐसे पदार्थ खाय जिनसे कफ़ नहीं पैदा होता, जो रक्त की खटास को कम करके उसे शुद्ध करते हैं, और वे क्या है? सब्ज़ी जैसे पालक, गोभी, करमकल्ला, टमाटर, गाजर, ताज़े पके फल और कुछ अल्पमात्रा मे सूखे मेवे, कफ़ नहीं पैदा करते। इन पदार्थों के खाते रहने से कफ़ का प्रकोप दबा रहता है।

बहु भोजन

स्वाद के वश पेट भर खा जाना कोई असाधारण बात नहीं है। सेठ साहूकार, वकील, और धनी पुरुष जिनकी रसोई स्वादिष्ट भोजनों से परिपूर्ण रहती है, अक्सर बहुत ज्यादा खा जाते हैं। परिणाम यह होता है कि क़ब्ज़ इत्यादि रोगों से पीडित रहते है। शरीर की आवश्यकता से अधिक जो मात्रा खाद्य पदार्थ की शरीर मे ठूँस दी जाती है, उसका निकालना शरीर के लिये आवश्यक होता है, और प्रकृति अक्सर इस फ़ज़ूल माद्दे को कफ़ की सूरत में बदल कर बाहर निकाल देती है।

क़ब्ज़

ज़ुकाम का एक मुख्य कारण क़ब्ज़ का बराबर रहना भी होता है। जिन लोगों को क़ब्ज़ की शिकायत होती है वही लोग अक्सर ज़ुकाम के भी शिकार होते हैं। इसलिये यदि ज़ुकाम क़ब्ज़ की वजह से है, तो क़ब्ज़ को मिटाना या उसका न होने देना ज़ुकाम को दूर करने और रोकने के लिये आवश्यक है। क़ब्ज़ के रोकने तथा उसके दूर करने के उपाय और उसके कारण इस स्थान पर सविस्तार नहीं कहे जा सकते। बहुत ही संक्षेप मे इतना कह दिया जा सकता है कि क़ब्ज़ की शिकायत ज़्यादातर अनुपयुक्त पदार्थों के भोजन से या आवश्यक

माधुरी के ग्राहकों के लिए

आवश्यक सूचना !

पत्र-व्यवहार करते समय अपना ग्राहक नंबर ज़रूर लिखिए

हमारे यहाँ से प्रति मास 'माधुरी' दो बार देखभाल कर प्रति ग्राहक के पास रवाना करदी जाती है। परन्तु, फिर भी पत्रिका न पहुँचने की हमारे पास शिकायतें आती रहती हैं। यह गड़बड़ी पोस्ट आफ़िस में ही होती है। इसलिए शिकायत करने के पहले प्रत्येक ग्राहक को अपने पास के डाकखाने में पूछताँछ कर, वहाँ के उत्तर सहित अपनी शिकायत हमारे पास भेजना चाहिए। ताकि हम भी उस संबंध में उस विभाग के अधिकारियों से लिखा पढ़ी कर सकें। माधुरी ठीक-ठीक न पहुँचने के संबंध में हम पोस्टमास्टर जनरल यू० पी० से लिखा पढ़ी कर रहे हैं। यथासम्भव हम अन्य उपाय भी इन शिकायतों को दूर करने के लिए काम में लावेंगे।

हमें पत्र लिखतेहुए अपना ग्राहक नंबर अवश्य लिखिए। ताकि शीघ्र आज्ञा का पालन किया जा सके।

यदि आप का चंदा खतम हो गया हो तो——

सूचना मिलने पर मनीआर्डर से रु० अवश्य भेजिए। इसमें खर्च और समय दोनों की बचत होगी।

मनीआर्डर से रुपया मिलते ही हम पत्रिका जारी कर देंगे। वी० पी० से, अक्सर १-२ महीने में पोस्ट आफ़िस से रुपया वसूल होता है और रुपया मिलने पर ही हम पत्रिका जारी करते हैं। ग्राहक महाशय वी० पी० छुड़ाते ही यह समझ लेते हैं कि, हमें रुपया मिल गया, पर हमने पत्रिका जारी नहीं की। यह बात नहीं है। इसलिए, सबसे उत्तम उपाय यही है कि,

एक वर्ष का चंदा ६॥) या छः मास का ३॥)

मनीआर्डर से ही भेज दिया करें। रुपया मिलते ही फ़ौरन पत्रिका जारी हो जावेगी। मनीआर्डर कूपन पर भी (पुराने ग्राहक होने का) ग्राहक नंबर अवश्य लिखना चाहिए। नवीन ग्राहक हो रहे हों, तो वैसा लिख दें।

थोड़े दिन के लिए पता बदलवाना हो तो—
पोस्ट आफ़िस में ही ठीक कर लिया करें।

अधिक दिन के लिए हमें सूचना देना चाहिए।

पता—मैनेजर, 'माधुरी' लखनऊ।

[illegible]

हाँ के ग्रंथ जर्मनी, अमेरिका आदि देशों में पहुँच गए। उनके द्वारा उन्होंने संसार को आश्चर्य-चकित कर दिया। हमारे ग्रन्थों को जो किञ्चित् हेर-फेर के साथ हमारे सामने जो उन्होंने पेश की कि हम विनाशियों के प्रशंसा के पुल बाँधने लगते हैं। विदेशी हमारे ऋषियों का सम्मान करें और हम उपेक्षा — यह शर्म की बात है। उन्होंने जो कुछ लिखा, ठीक है। वे दूरदर्शी थे, धुरन्धर आत्मज्ञानी थे। वे ग्रन्थ अब भी वैसे ही लाभप्रद हैं, जैसे पहले थे। कहिए यह कि, जब किसी देश की अवनति होती है तो उसमें बहुत-सी खराबियाँ आ जाती हैं। आप उनको दूर कीजिए। चिलुओं के डर से कथरी जला डालने का उपदेश देकर भ्रान्ति न कीजिए। चिलुओं को यत्न से मार भगाइए और कथरी को साफ़ करके काम में लाइए। वर्ण-व्यवस्था को समूल नष्ट करके स्वयं नष्ट होने के साधन उपस्थित न कीजिए। बल्कि उसमें जो समय के हेर-फेर से दूषण आ गए हैं उन्हें दूर कीजिए। आपका तो जात-पाँत-तोड़क मंडल है उसमें वर्ण-व्यवस्था से क्या मतलब? यदि वर्ण-व्यवस्था का नाश करने का उद्देश्य है तो आपको मैं नम्रतापूर्वक परामर्श दूँगा कि, आप टट्टी की ओट से शिकार न खेलिए।

उस मंडल का नाम 'वर्ण-व्यवस्था-तोड़क मंडल' रख दीजिए। अभी 'जात पाँत-तोड़क मंडल' का यही अर्थ साफ़ है कि 'हिंदू जाति'' को भी आप तोड़ेंगे। क्योंकि जात-पाँत का तोड़ना ही मंडल के नाम के अर्थ से प्रकट है। तब तो मज़ा किरकिरा हो जायगा और इने-गिने लोगों की रही-सही श्रद्धा भी काफ़ूर हो जायगी।

आप अछूतों के शुभचिंतक हैं, तो, उससे अधिक मैं उनको अपना भाई समझता हूँ। मैं हिंदू-संगठन का कट्टर पक्षपाती हूँ। एक श्रेष्ठ ब्राह्मण कुल में जन्म लेकर ढकोसलों का ज़रा भी समर्थक नहीं। मेरे जी में यह कभी स्वप्न में भी भावना नहीं आई कि मनुष्य मात्र कोई किसी से छोटा या बड़ा है, किसी एक मनुष्य को दूसरे के प्रति घृणा या तिरस्कार करने का हक़ है। मेरी तो यह दृढ़ धारणा है कि, घृणा करना ईश्वर के प्रति विश्वासघात करना है, घोर पाप है, नीचतम कर्म है। मैं पाठकों को विश्वास दिलाता हूँ कि श्री सन्तरामजी के मुक़ाबिले में मैं अछूतों से किसी प्रकार कम प्रेम नहीं करता। उनके प्रति मेरे बड़े श्रद्धा के विचार हैं। किंतु, मैं इस बात से कदापि सहमत नहीं कि, रोटी-बेटी का संबंध ही हिंदू-संगठन का मूलमंत्र है, अछूतों को अपनाने का एक मात्र उपाय है जैसा कि श्री सन्तरामजी के लेख से स्पष्ट प्रकट है। आजतक किसी भी अछूत ने ऐसे एतराज़ पेश नहीं किए। उनके साथ कुछ अन्याय है; उन्हें हृदय की संकीर्णता को हटाकर एकदम दूर करके मिटा देना चाहिए। जैसे —

(१) कुओं पर पानी न भरने देना, (२) उनको नीच समझना, उनसे घृणा करना, (३) उनकी आपत्ति काल में सहायता न करना, (४) जो-जो बराबरी के हक हम मुसलमानों को देते हैं, वह चमार, मेहतर, धोबी, धानुक आदि अछूतों को न देना, (५) पढ़ने के लिए पाठशालाओं में स्थान न देना, इत्यादि।

यदि हमारे द्विजातीय वर्ग इतना ही दृढ़ विचार कर ले, तो अछूतों का उद्धार हो जाय। उनमें रहन-सहन स्वच्छता आदि की जो कमी है, उसे दूर कराया जाय। उनकी आर्थिक-दशा सुधारने का यत्न किया जाय और उन्हें हर प्रकार अपना भाई समझा जाय। क्योंकि गोरक्षक के नाते वे निस्संदेह हमारे सच्चे भाई हैं। रहा रोटी-बेटी का संबंध, यह बहुत दूर तक प्रभाव रखता है। दूसरे न तो अछूत ही ऐसा करना पसंद करेंगे और न अन्य वर्ग के लोग ही। वर्ण-व्यवस्था इस बात को प्रकट करती है कि हिंदुओं की सभ्यता और आध्यात्मिक विकाश पराकाष्ठा को पहुँच चुका था। नियमबद्धता सभ्यता का सबसे उत्तम चिह्न है। इसलिए, गैर जाति के मुकाबिले में मिसाल देना एक भूल मात्र है। हम तो यह स्पष्ट कहने के लिए तैयार हैं कि अँगरेज़ी सभ्यता और विकाशवाद की वार्ता में अधिकतर दिखावट, नज़ाकत, अस्थिरता और कूटनीति ही भरी हुई है। आध्यात्मिक स्थिरता तथा मानव हित-कामना का समावेश बहुत थोड़ा है। ध्यान से जिस बात में चाहे देख लीजिए। हिंदू-जाति और हिंदू-धर्म का संस्कार हिंदुस्तान के अनुकूल किया गया है। उसमें स्वाभाविकता है, स्थिरता है, ईश्वरवाद का सम्मिश्रण है। आप अपनी उन्नति कीजिए। अपने को बलशाली और संगठित बनाइए, पर अपने देश की प्रत्येक बात पर ध्यान देकर, आवेश में, क्षणिक उद्वेग में आकर नकल न कीजिए। यहाँ की ऊँची से ऊँची बात में मौलिकता प्रसिद्ध है। उस गौरव को नष्ट न कीजिए। वर्ण-व्यवस्था जन्म और कर्म दोनों ही से मानी गई है। अकेले न तो जन्म से मानने से काम चल सकता है, और न कर्म से। उदाहरण के लिए श्री सन्तरामजी ने जो चार छ मिसालें दी हैं वह Exceptions ही कहे जावेंगे, उनको General Rule नहीं कहा जा सकता। २२ करोड़ हिंदुओं में यदि १००-२०० भी ऐसे उदाहरण हों तो क्या आप उन्हें लोक-रीति का रूप दे देंगे? यों तो किन्हीं कारणवश अब भी बहुत-सी अंतर्जातीय शादियाँ हो जाती हैं। परंतु, उनमें कितने ऐसे हैं जो सिद्धांत से प्रेरित होकर ऐसा करते हैं? कोई रूप के लालच में, कोई धन के लोभ में, कोई अन्य प्रभावों आदि से दबकर सौदा कर लेते हैं। परंतु, उसे रिवाज या जायज़ नहीं कहा जा सकता। वैसे भी अँगरेज़ी राज्य है ही। वह तो यों कहिए कि कुछ जातिदंड का भय है, बुज़ुर्गों का डर है, नहीं तो इधर-उधर खसक कर यह हिंदू-जाति अबतक ख़त्म हो गई होती। अब जात-पात और वर्ण-व्यवस्था का ध्यान हिंदुओं के दिल से मिट जायगा तो ईसाई और मुसलमानों के लाखों जाल ऐसे बिछे हुए हैं कि हिंदुओं को हड़प करने के लिए काफी हैं। कुछ दिन में ऐसी जात-पाँत टूटेगी कि हिंदू-जाति ही का पता न लगेगा। उस समय आपका संगठन-ढोल कहाँ बजेगा? म० गांधी से ज्यादा अछूतों का हितचिंतक और कौन होगा? पर वे भी वर्ण-व्यवस्था को मानते हैं। पूज्य मालवीयजी जैसा सहृदय और कौन है? पर वे इसके कट्टर पक्षपाती हैं। लाला लाजपतराय अपने को विद्वान् होते हुए भी लाला लाजपतराय शर्मा नहीं कहते। यहाँ तक कि म० हंसराज, प्रिंसिपल साईंदास आदि ने आज तक अपने को ब्राह्मण नहीं लिखा, यद्यपि वह किसी भी उच्च विद्वान् ब्राह्मण से गुण, कर्म में इंच भर भी कम नहीं हैं। मुझे आशा है कि यही बात श्री सन्तरामजी के संबंध में भी लागू है। नाई को नाई या धोबी को धोबी कहना अपमान की बात क्यों है? बल्कि, उनको नीच समझना, घृणा की दृष्टि से देखना अपमान की बात है। इसी तरह ब्राह्मण कहने से सम्मान नहीं हो जाता। यह तो समझ का फेर है। आप इन बातों को मिटाइए। आप यदि किसी पेड़ की उन्नति चाहते हैं तो उसमें जल-सिंचन कीजिए, खाद डालिए, उसके आसपास का झाड़-झंखाड़ दूर कीजिए; न कि पेड़ को ही समूल उखाड़ कर फेंक दीजिए।

प्रत्येक वर्ग अपने वर्ण में रहकर, अपने वर्ण का कहा कर भी सब कुछ उन्नति कर सकता है। उसकी विद्वत्ता, उसके कर्म उसे स्वयं ही श्रद्धास्पद बना देंगे। वर्ण बदल देना ही उन्नति और संगठन की निशानी नहीं है। इससे तो उलटा एक द्वेष-भावना फैलेगी।

आपसी तुमुल-युद्ध प्रारम्भ होगा, जैसा कि दिखाई पड़ रहा है।

(१) जिस वर्ण-संकरता को भगवान् कृष्ण ने नरक का कारण बतलाया है, उसकी व्याख्या आप क्या करते हैं?

(२) "चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुण कर्म विभागशः" का अर्थ समझने में जाति-विध्वंसकजी ने बहुत ही गड़बड़ किया है। यदि किसी विद्वान ब्राह्मण से परामर्श लेकर अर्थ करते तो ऐसी भारी भूल न होती। 'चातुर्वर्ण्यं सृष्टम्' की जगह यदि 'चातुर्वर्ण्यं विभक्तम्' होता तो उनका अभिप्राय सिद्ध हो जाता। परन्तु उपरोक्त वाक्य के कहनेवाले भगवान कृष्ण योगेश्वर, ज्ञानी और पंडित होते हुए भी कभी ब्राह्मण नहीं बने। जो थे वही बने रहे।

इस लेख में तो हमने एक सरसरी तौर पर वर्ण-व्यवस्था और हिंदू-जाति पर दृष्टिपात किया है। अगले अंक से हम प्रत्येक संबंधित अंग पर विवरण और प्रमाण सहित प्रकाश डालने की चेष्टा करेंगे। साथ ही हिंदू संगठन कैसे किया जावे — इस विषय पर भी अपने तुच्छ विचार प्रकट करने का यत्न करेंगे। इत्यलम्।

रामसेवक त्रिपाठी

गौड़ मलार

इस राग के विषय मे दो मत हैं। एक मत से यह राग काफी ठाठ का है, दूसरे मत मे खम्माच ठाठ का। यह सम्पूर्ण राग है पर कोई-कोई इसे बिलावल ठाठ मे भी मानते है। मध्यम का स्वर वादी है और षडज सवादी। अवरोही मे निषाद दुर्बल है। मध्यम से रिषभ की छूट बहुत सुन्दर मालूम होती है। सोमनाथ पडित का मत है कि इस राग मे निषाद अल्प हो और धैवत वादी। दोपहर के समय गाया जाय। परन्तु 'चतुर' के मतानुसार खम्माच ठाठ मे निषाद कोमल है। यह बम्बई प्रात की ओर बहुत प्रचलित है। अन्य प्रातो मे दोनो निषाद का प्रयोग है। दोनो गधार का भी इस राग मे प्रचार है। प्रचारात ख्याल के गायक गीत मे तीव्र गंधार और ध्रुपद के गवैये कोमल गधार का प्रयोग करते है तथापि कभी-कभी दोनो ही गधार ध्रुपदो मे दीख पडती हैं। तीव्र गधार के प्रयोग से मियाँ मलार और मेघ मलार दर्शाया जाता है और यह राग तब गौड मलार से भिन्न हो जाते है। दोनो निषादो के लगाने से यह राग क्रमश खम्माच ठाठ ही मे सम्मिलित समझा जायगा। यद्यपि खम्माच ठाठ के बहुधा रागो मे दोनो निषादो का योग होता है, पर हमारे देश मे तीव्र निषाद ही लगाते है। ऐसा करने से राग बिलावल ठाठ पर हो जायगा

गौड़ मलार

मृदु मध्यम तीखे सबै, सपूरन विस्तार।
अल्प निषाद लगाय कै, गावत गौड़ मलार॥

जैसा 'चतुर' पंडित ने इस मत को ऊपर समझाया है। कोमल निषाद भी इस देश मे लगाई जाती है पर कमी के साथ। यह राग वर्षा ऋतु में गाया जाता है, और अति मनोरंजक है। कारण यह कि इस राग के गीतों में वर्षा ऋतु का वर्णन बहुत है। बादल उमंड उमँड आते हैं, गरजते है, बिजली चमकती है, मोर और दादुर कोलाहल करते है, बन बेलि फूल रही है, सारा समा हरा-भरा दीख पड़ता है, प्रीतम प्यारा परदेस मे है, देखिये कब वापस आता है। विरह की आग बेचैन किये देती है, सखियां ढाढस देती है कि तू घबरा नहीं, प्रियतम शीघ्र ही परदेस से लौटेंगे। सास ननद खूब ही देख भाल रखती हैं और इतना भी समय नहीं देतीं कि किसी से दो शब्द भी कह सके। अँधियारी रात मे पानी टूट-टूट कर बरस रहा है। यही सब विषय मलार के राग मे होते है। री प, म प, ध में ध प म, री ग री म ग री स यह सब स्वर इस राग मे बारबार लगाते है जिससे यह राग दरश जाता है।

आरोहावरोह स्वरूप

स रे म, प, ध सं। नि न प, म प ग म, रे स।

अथवा

रे ग रे म ग रे स, रे प म प, ध सं। सं ध न प म ग रे स।

पकड़

रे ग रे म ग रे स, प म प ध स, ध प म।

त्रिताल (बिलंबित)

गाना

सावन को महिनवा बीत गयो आयो नहीं श्यामसुंदरवा।
निस अँधियारी बिजुरी चमके, कोयल शब्द सुनावे।
गरजत बदरा हिया मोरा डरपे, कौन लगावे मोहे गरवा

स्थाई

०				१				×				३			
	रे	ध		म											
रगम,रगरे	प	म		न	प	स	न	स	—	(म)	—	धनसंसनध	नध	न	प
हिऽऽ,ऽऽन	वा	ऽ		बी	त	ग	यो	आ	ऽ	ऽ	ऽ	येऽऽऽऽऽ	ऽऽ	ऽ	ऽ
ग	म						ग				ग				
म	प	— म		— ग	ग	रे		गम	पपमगरग	मरगम	म	—	मग	(म) रे	
न	हीं	ऽ श्या		ऽ म	सु	द		रऽ	वाऽऽऽऽऽ	ऽऽऽऽ	सा	ऽ	वन	को ऽ	

अन्तरा

सं								ग							
न	न	सं	न	सं —	स	—		रे	रें	गं	—	ग	म	प	—
नि	स	अ	धि	या ऽ	री	ऽ		बि	जु	री	ऽ	च	म	के	ऽ
ग				म								स			
मं	—	(म) ग		रे	रें	स	धन	म	—	स (म)	—	ध	—	न	प
को	ऽ	य	ल	स	ब	द	सुऽ	ना	ऽ	ऽऽ	ऽ	वे	ऽ	ऽ	ऽ

		ध	स									
प	प	पन न	स ध	नसस	संन	सन	र	म	स	र	स	—
ग	र	अऽ त	ब द	रा ऽ	हिऽ	याऽ	मो	रा	ड	र	पे	ऽ
न			म						ग			
म	ऽ	म म	धन प	मप धन	सर	नम	ब	प	म	प	(म)रे	
को	ऽ	न ल	गाऽ ऽ	ऽऽ ऽऽ	ऽऽ	ऽत्रे	मो	हैं	ग	र	वा	

राजाराम भार्गव

---

१ जल-प्लावन

इस वर्ष भारतवर्ष के कई हिस्सो मे जल-प्लावन के समाचार मिले है। यह कोई नई बात नहीं है। इस देश मे प्रति-वर्ष बाढ आती है, लाखो का नुकसान कर जाती है, हजारो मनुष्यो और पशुओ का प्राण ले जाती है। किंतु सरकार उन्हे रोकने का न तो कोई उपाय ही करती है और न किसी उद्योग ही को हाथ मे लेती है। गत तीन-चार वर्षों मे प्रति-साल उडीसा की नदिया बढती है खेत मे खडी हुई सारी फसल को धो ले जाती है, वहा प्राय प्रति-साल अकाल विकराल रूप धारण कर तहलका मचाया करता है, लोग खाने-दाने को तरसते हैं, अभक्ष्य पदार्थ का भोजन करते है, किंतु सरकार क्या करती है? कुछ रुपए तकावी – कर्ज के रूप में देने ही से लोगो का कष्ट दूर नहीं होता। आवश्यकता है ऐसे उपायो को काम मे लाने की, जिनसे बाढ़ों का वार्षिक उपद्रव दूर होजाय।

अभी कुछ ही महीने की बात है, अमेरिका की मिसिसिपी नदी में बाढ़ आई थी, जिसने वहा के बाशिन्दों में हज़ारों के प्राण लिए और लाखों रुपए का नुकसान किया। सरकार से लेकर आम लोगो के कान खड़े हो गए, सब लोग एक स्वर से चिल्ला उठे – "इसकी पुनरावृत्ति नहीं होनी चाहिए।" अमेरिका वाले हम-से निरीह थोडे है। जिस देश के लोगो ने वायु, पृथ्वी और प्रकृति को अपने वश मे कर रक्खा है, उनका इतना नुकसान बाढ कर डाले – यह उन्हे असह्य जान पड़ा। लज्जा से उनका मस्तक नीचा होगया। सरकार ने विशेषज्ञों और वैज्ञानिको से इस विषय पर मत मागे। मिसिसिपी नदी, उसके आस-पास के स्थान, शाखा नदियो आदि की परीक्षा कर उन लोगो ने कहा कि बाढ के उपद्रवो को रोकना सभव ही नही किंतु व्यावहारिक (Practical) भी है। बाढ के उपद्रवो को रोकने के लिये जो तरीके सरकार के सामने पेश किए गए हैं, उनमे से कुछ का जिक्र मै यहा करूँगा। हा, अमेरिका और भारतवर्ष की परिस्थिति भिन्न-भिन्न है, किंतु तो भी कुछ ऐसे तरीके है, जिनके व्यवहार से यहा की नदियो का उपद्रव भी रोका जा सकता है।

सैन्य इंजीनियरो के प्रधान मेजर-जेनरेल एडगर जाडविन का कहना है कि मिसिसिपी नदी के दोनो किनारो पर जो दीवारे पानी रोकने के लिए बनाई गई है, उन्हे सिर्फ पाच फ़ीट और ऊँचा कर देने से जल-प्लावन का भय जाता रहेगा। किंतु कुछ और लोगो का विचार इससे थोडा भिन्न है। उन लोगो का कहना है कि समूची दीवारो को तोड़कर उनके स्थान पर ४० फ़ीट ऊँची और

दो हज़ार मील लंबी, मिसिसिपी नदी के दोनो किनारों पर, पहले से मज़बूत, टिकाऊ और एक-सी दीवारें बनाई जायँ। यद्यपि इसमें ख़र्च बहुत ज़्यादा पड़ेगा, किंतु वह ख़र्च उस रक़म का आधा ही होगा जिस रक़म का नुक़सान इस नदी ने हाल में किया है।

दूसरा प्रस्ताव जो सर्वसाधारण के सामने रक्खा गया है, उसे लोग पागल का प्रलाप कहने लगे हैं। यह प्रस्ताव है मिसिसिपी नदी के बगल में, उसीके समानान्तर एक नहर बनाना, अर्थात् दूसरे शब्दों में एक छोटा मिसिसिपी खोदना। इस नहर और नदी से थोड़ी थोड़ी दूर पर संबंध करा दिया जायगा। नदी में पानी बढ़ने पर अधिक पानी नहर से होकर समुद्र में जा गिरेगा। किंतु इससे भी मज़ेदार वह प्रस्ताव है, जिसमें नदी की सतह के नीचे एक नहर या दूसरी नदी बनाने की बात कही गई है। नदी में जल बढ़ने पर अधिक जल ऊपर के एक रास्ते से होकर उस नीचे की नहर में जाकर गिरेगा, और अंत में समुद्र से जा मिलेगा। यह प्रस्ताव रास्ते के नीचे बने हुए रास्ते (Subway) के सिद्धांत पर रक्खा गया है।

बाढ़ रोकने के लिए पहिए लगाने का प्रस्ताव है

नदी के समानान्तर नहर खोदने से बाढ़ का उपद्रव कम हो जा सकता है
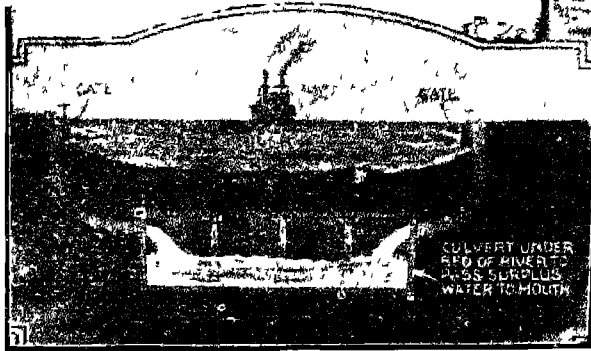
बाढ़ का उपद्रव कम करने के लिए नदी की सतह के नीचे नहर खोदी जाने का प्रस्ताव है

एक फ्रेंच इंजीनियर जे० आर्चर बाढ़ का उपद्रव रोकने के लिए मिसिसिपी नदी के इस ओर से उस ओर तक, स्थान-स्थान पर कई टरबाइन या पहिए लगाना चाहते हैं। ये पहिए तेज़ी के साथ घूमकर जल की गति को बढ़ा देंगे। इस प्रकार पानी कहीं जमा नहीं हो सकेगा और जल-प्लावन का भय जाता रहेगा। इस प्रकार के पहिए लगाने में जो ख़र्च पड़ेगा, वह नुकसान की रक़म से बहुत कम होगा।
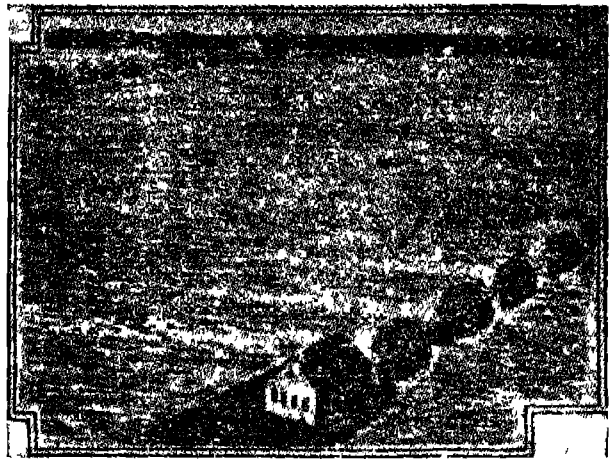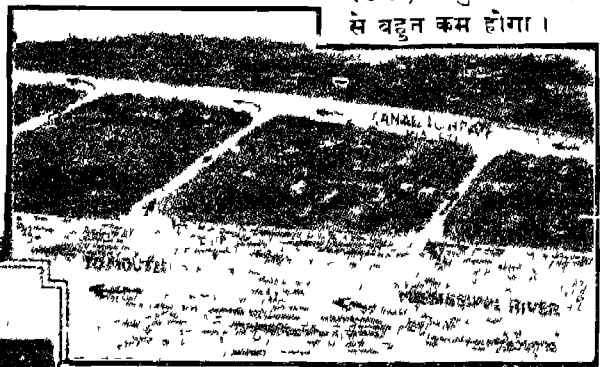
बड़े लोगों की ये बड़ी बातें हैं। इसी प्रकार और भी प्रस्ताव हुए हैं, किन्तु इनमें कौन व्यवहारोपयोगी है, यह कहना मुश्किल है। हम गरीब भारतवासियों के अनुकरण-योग्य केवल एक प्रस्ताव है। मेरी समझ से वही प्रस्ताव अमेरिका के लिए भी कार्यकरी होगा। वह प्रस्ताव है नदी के किनारों पर कुछ दूर पर बड़े बड़े तालाबों का खुदवाना। नदी में बाढ़ आने पर अधिक जल इन तालाबों में जमा होजावेगा और आसपास के स्थानों में पानी फैलने से रुक जावेगा। इन तालाबों के खोदने में बहुत ज़्यादा ख़र्च होने की संभावना नहीं है। ख़ैर,
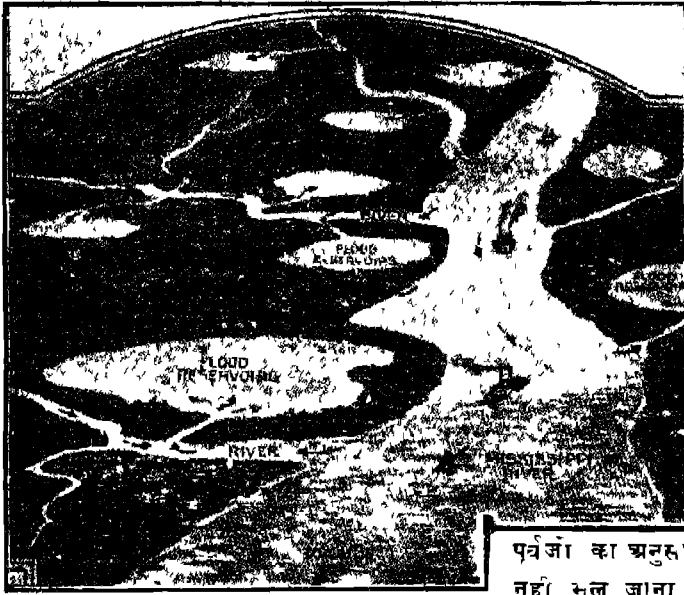
जल-प्लावन रोकने के लिए नदियों के दोनों किनारों पर तालाब खोद डालने चाहिए

अमेरिका वाले तो ऐसा उपाय कर रहे हैं कि भविष्य में मिसिसिपी नदी का उपद्रव बन्द होजाय, और इस देश के लोग हाथ पर हाथ धरे बैठे रहते हैं। अमेरिका की सरकार अपनी प्रजा के दुःखों और कष्टों को दूर करने में सचेष्ट रहती है, उतना इस देश की सरकार नहीं है। यदि थोड़ी भी चेष्टा की जाय तो यहां की नदियों का उपद्रव बहुत-कुछ कम हो जा सकता है। इस वैज्ञानिक-युग में नदियों की हरकतों को सिर झुका कर सहन कर लेना सचमुच लज्जाजनक है।

× × ×

मनुष्यों के पूर्वज

डार्विन तथा उनके विचार के अन्य वैज्ञानिकों का मत जगत-प्रसिद्ध है मनुष्यों के पूर्वज बन्दर थे। किंतु प्रो० हेनरी फ़यरफ़ील्ड ओसबर्न, American Museum of Natural History के अध्यक्ष का कहना है कि मनुष्यों के पूर्वज न तो मनुष्य थे और न बन्दर। अमेरिकन फ़िलासफ़िकल सोसाइटी के सामने वक्तृता देते हुए आपने कहा है कि मनुष्यों के पूर्वजों का विकास प्रागैतिहासिक एक ऐसे जानवर से हुआ है जिसका अभी तक अनुसंधान नहीं हो सका है। यह विकास बन्दरों से सर्वथा भिन्न था। इसी अवसर पर ओसबर्न साहब के एक पूर्व शिष्य डा० विलियम के० ग्रेगरी ने ऐसा मत प्रकट किया जो प्रोफ़ेसर साहब के मत के विरुद्ध है। ग्रेगरी भी अमेरिकन म्यूज़ियम के एक नामी सदस्य हैं। डा० ग्रेगरी का विचार है कि मनुष्य और आधुनिक 'एप'—बन्दरों के शरीर और मस्तिष्क में इतनी समानता है जो दोनों का एक ही पूर्व-पुरुष से उत्पत्ति होने का प्रबल प्रमाण है। इस विषय के पूर्व-प्रवर्तक डार्विन साहब थे और ऐसे-ऐसे वाद-विवादों में उनकी दुहाई देना स्वाभाविक ही है। ग्रेगरी साहब का कहना है कि मनुष्यों के पूर्वजों का अनुसंधान करते समय हमें डार्विन के सिद्धांत को नहीं भूल जाना चाहिए। आधुनिक वैज्ञानिकों का सिद्धांत डार्विन के सिद्धांत से थोड़ा-सा भिन्न है। वे अब बन्दरों को अपना पूर्वज नहीं मानते, किंतु बन्दरों और मनुष्यों की उत्पत्ति एक ही जानवर या पशु से बतलाते हैं। अस्तु, यहां मैं ओसबर्न साहब का विचार देना चाहता हूँ, क्योंकि उनका सिद्धांत अब-तक प्रतिपादित सिद्धांतों से भिन्न है।

पांच लाख वर्ष पहले का मनुष्य—'जावा-का-एप मैन'

प्रो० ओसबर्न अपने सिद्धान्त के समर्थन में कहते हैं कि मनुष्यों को पृथ्वी पर पैदा हुए ढेढ़ करोड़ वर्ष से भी ऊपर हुए, और मनुष्य और बन्दर एक ही समय आविर्भूत हुए, इसलिए बन्दर मनुष्यों के पूर्वज कदापि नहीं हो सकते। मनुष्यों के पूर्वज मध्य-एशिया में रहते थे, इसलिये हमें उनके कंकालों की खोज वहीं करनी चाहिए। और जो मनुष्य इस खोज में सफल होगा, वह अवश्य मानव-समाज का बड़ा भारी उपकार करेगा। मंगोलियन, नीग्रो और काकेशियन जातियों के पूर्वज अर्थात् आदिम मनुष्य ज़मीन में गड्ढा खोदकर रहते थे, वे बड़े होशियार हुआ करते थे, औज़ार बनाना जानते थे, एशिया की

ऊँची उपत्यका या समथल भूमि मे खुली हुई वायु मे स्वतंत्रतापूर्वक विचरण किया करते थे। प्रो० ओसबर्न का ख़याल है कि प्रसिद्ध 'निनडरथाल'—यूरोप के आदि-पुरुषों की जाति की उत्पत्ति एशिया के आदि-पुरुषों के बहुत बाद हुई थी। यह जाति संतान-विहीन होगई। जावा के 'पिथेकैनथ्रोपस इरेक्टस' जाति निनडरथाल-जाति का वंशावशेष हो सकती है, किंतु उनसे यूरोपियन जातियों का कोई संबंध नही जान पड़ता।

प्रो० ओसबर्न का उपरिलिखित सिद्धांत और मनुष्यों की रहस्य-मय उत्पत्ति की जड़ वह खोज है, जिससे पता लगा है कि आज से कम-से-कम ४० लाख वर्ष पहले इस पृथ्वी पर मनुष्यों का अस्तित्व था। नेब्रास्का पहाड़ों मे प्रो० ओसबर्न को तीनसौ हड्डियों के औज़ार मिले है, जिसे किसी आदिम-मनुष्य ने अपने समय के जानवरों की हड्डियों से बनाया था। जिन जानवरों की हड्डियों से ये औज़ार बने हुए है, वे ४०-४० लाख वर्ष पहले पृथ्वी पर विचरण करते थे। इससे जान पड़ता है कि उस समय भी मनुष्य थे, और औज़ार बनाना जानते थे। उस समय के बहुत पीछे बन्दरों का आविर्भाव हुआ। इसलिये बन्दर मनुष्यों के पूर्वज कदापि नहीं हो सकते।
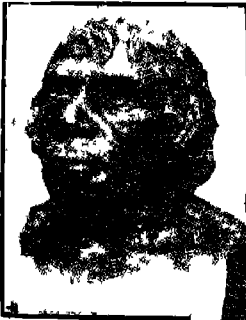
निनडरथल—२५ से ५० हज़ार वर्ष पहले का मनुष्य

क्रो-मैगनन जाति का मनुष्य—आज से २० हज़ार वर्ष पहले का

× × ×

३. बिजली द्वारा सिक्का गिनना

मुसलमान बादशाहों के समय मे जब जब उनके ख़ज़ाने का सिक्का गिनने की आवश्यकता होती थी, तब-तब वे तराज़ू पर तोले जाते थे। आज भी ज़िला कलेक्टरियों में, मालगुज़ारी के रुपए तराज़ू पर ही तोले जाते हैं, किंतु इँगलैंड बैंक मे सिक्कों को गिनने के लिये बिजली से काम लिया जाता है। बिजली द्वारा चालित एक मशीन पहले सिक्कों के खरेपन की परखती है, तब भिन्न-भिन्न सिक्कों को अलग-अलग करती है, इसके बाद उन्हे गिनकर नीचे लटकाए हुए थैलों मे भर देती है। पाँच पौंड से सौ पौंड तक गिनने और थैलों मे भरने की व्यवस्था की गई है। यह मशीन घंटे मे ७२०० पौंड तक गिन डालती है।

सिक्का गिनने की मशीन

× × ×

४. स्वयं-चलित हल

'माधुरी' के पिछले अंकों मे स्वयं-चालित वायुयान और जहाज़ के विषय मे लिख चुका हूँ। स्वयं चालित हल के विषय मे भी एक नोट निकल चुका है, किंतु जिस हल के विषय मे यहाँ लिखा जाता है, वह भिन्न प्रकार का है। नेब्रास्का विश्वविद्यालय के खलिहान मे कृषि-विशारदों और व्यावहारिक कृषकों के सामने एक विचित्र प्रकार के ट्रैक्टर (Tractor) की परीक्षा हुई थी। इस हल ने अपने-आप बीस एकड़ ज़मीन जोत कर यह प्रमाणित कर दिया कि धूप और पानी मे किसानों को जी देने की आवश्यकता नहीं है। ग्रैंड द्वीप के एक किसान एफ० एल० जीवेक का यह आविष्कार है। आपने ट्रैक्टर के साथ एक ऐसा यान्त्रिक पथ-प्रदर्शक लगाया, जो उसे रास्ता बतलाता है, इसलिये मनुष्य-चालक की आवश्यकता नही रहती।

पथ-प्रदर्शक धातु-निर्मित एक टेढ़ा टुकड़ा है, जो ट्रैक्टर के सामने के हिस्से में लगाया गया है। जब जीवक को अपना खेत जोतना होता है, वे खेत के किनारे-किनारे इस ट्रैक्टर द्वारा एक हराई दे देते हैं—यह हराई या तो गोल होती है या चौकोर। इसके बाद वे ट्रैक्टर के एक पहिए को इसी हराई पर रखकर छोड़ देते हैं और पथ-प्रदर्शक को गिरा देते हैं। बिना मनुष्य की सहायता के यह मेशीन बाकी खेत की जुताई आप कर लेती है। एक बार की जुती हुई हराई पर चलकर पथ-प्रदर्शक ट्रैक्टर को रास्ता दिखलाता है। खेत के चारों ओर एक हराई पड़ जाने पर पथ-प्रदर्शक उसी पर आ जाता है और ट्रैक्टर को फिर एक बार चारों ओर घुमा लाता है। इस प्रकार प्रत्येक हराई के बीच में दूसरी हराई पड़ती जाती है, और वृत या चौकोर प्रत्येक बार की जुताई में छोटा होता जाता है। इस प्रकार खेत का प्रत्येक फुट जमीन जुत जाती है।

हल का पथ-प्रदर्शक अलग दिखलाया गया है

स्वयं-चालित हल पथ-प्रदर्शक के साथ

हां, यदि पथ-प्रदर्शक स्वयं गुमराह होगया अर्थात् निश्चित रास्ते को छोड़ कर अन्य रास्ता पकड़ लिया या रास्ते में उसे कोई बाधा आ खड़ी हुई, तो ट्रैक्टर स्वयं खड़ा हो जायगा। अन्यथा मेशीन में प्रति-दिन दो बार गैसोलिन तेल और पानी दे देने से वह सारा दिन काम करती रहेगी। इस प्रकार की मेशीन की कितनी आवश्यकता है, यह वे ही लोग समझ सकते हैं जिन्होंने किसानों को कड़ी धूप, दावानल के समान लू और वर्षा में काम करते हुए देखा है। केवल भारतवर्ष के ही किसान नहीं प्रत्युत सारी पृथ्वी के किसान इससे लाभ उठा सकेंगे।

× × ×

५ कीचड़ में चलने वाली मोटर

अमेरिका के एक डाकिए को बरसात के दिनों में मोटर पर डाक ढोने में बड़ी कठिनाई होती थी। मोटर एक बार कीचड़ में फँसी कि घंटों की देर हुई। अमेरिका की भी देहाती सड़क उतनी अच्छी नहीं होती, वहां भी बरसात में सड़कों पर पानी जमा होजाता है और कीचड़ फैल जाती है। बार-बार इस कठिनाई से तंग आकर उसने एक ऐसी मोटर तैयार की है जिसे कीचड़ बाधा नहीं देती। यह मोटर चित्र में दिखलाई गई है, डाकिए का नाम लिओनार्ड एफ़० मुलहम है।
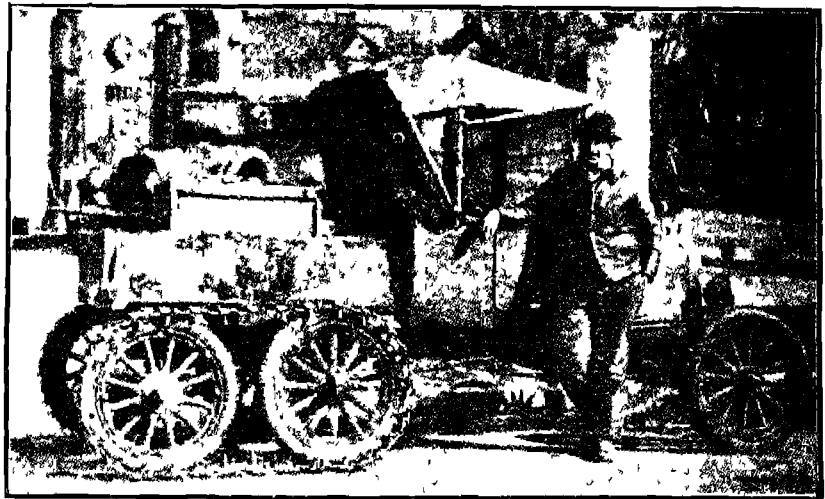
कीचड़ में चलने वाली मोटर

श्रीरमेशप्रसाद, बी० एससी०

१ कपास

रतवर्ष के कई प्रान्तों में करीब-करीब सभी फ़सलें छिटकवाँ बोते हैं, क़तार में नहीं बोते। किन्तु प्रयोगों और अनुभव से मालूम हुआ है कि कपास, धान आदि फ़सलों को कतारों में बोना फ़ायदेमन्द है। कतारों में बीज बोने से दो कतारों के बीच की ज़मीन पर उगे हुए खर-पतवार, डोरे खुरप आदि द्वारा कम खर्च में साफ़ किए जा सकते हैं, जिससे निराई आदि में कम खर्च बैठता है। अस्तु।

अक्सर देखा जाता है कि कपास, ज्वार आदि के पौधे बहुत पास-पास रखे जाते हैं, जिससे भोजन, प्रकाश आदि की कमी के कारण पौधों की वृद्धि में रुकावट पहुँचती है। फल यह होता है कि पैदावार कम आती है।

भारतवर्ष के भिन्न भिन्न प्रान्तों में यह जानने के लिए प्रयोग किए गए हैं और किए जा रहे हैं कि, किस फ़सल के पौधे कितनी दूरी पर रखे जाने चाहिए। इन्दौर और नागपुर के कृषि-क्षेत्रों के प्रयोगों से साबित होगया है कि दो कतारों के बीच में करीब १८ इंच का अन्तर रखा जाना चाहिए। हमारे खयाल से भारत के सभी प्रान्तों में १८ इंच का अन्तर रखना फ़ायदेमंद साबित होगा। इससे दो फ़ायदे होंगे। प्रथम तो बीज की बचत होगी, और दूसरे पैदावार अधिक आवेगी।

उन प्रान्तों में, जहाँ छिटकवाँ बीज बोने का रिवाज है, कतारों में बीज बोने की रीति को अपनाने से एक लाभ यह भी होगा कि निराई, गुड़ाई आदि में लगने वाला खर्च भी बहुत कम हो जायगा।

अक्सर देखा जाता है कि खेतों में जो बीज बोया जाता है, वह उत्तम जाति का नहीं होता। इसके अलावा कई जाति के कपास का बीज मिलाकर बोया जाता है। किसी कपास के खेत का निरीक्षण करने से हमारे कथन की सत्यता मालूम हो जायगी। मध्यप्रान्त, मालवा, राजस्थान आदि के खेतों में लेखक ने रोजियम (सफ़ेद फूल का कपास), वनी, बुरी मारवाड़ी और कम्बोडिया आदि विदेशी कपासों के पौधे एक ही खेत में देखे हैं। इससे किसान को नुकसान होता है। चिकने और लम्बे धागेवाली तथा छोटे खुरखुरे धागेवाली और कपास के मिश्रण की कीमत कम आती है। अतएव काश्तकारों को चिकने और लम्बे धागेवाली कपास की खेती की ओर विशेष ध्यान देना चाहिए। इस कपास की कीमत ज्यादा आती है, और बाज़ार में इसकी माँग भी ज्यादा है।

× × ×

२ भेड़ पालने वालों को कुछ हिदायतें

भारत के भिन्न-भिन्न प्रान्तों में ऊन के लिए भेड़ें पाली जाती हैं। यह रोज़गार गड़रियों के हाथ में ही है, जो अशिक्षित हैं। पुश्तों से इसी रोज़गार में लगे रहने के कारण इन लोगों को इस विषय का अच्छा ज्ञान है।

किन्तु वैज्ञानिक नियमों और तरीक़ों से जानकार न होने के कारण इन लोगों को बहुत नुकसान उठाना पड़ता है। पंजाब में सरकारी पशुशाला (Cattle Farm) है। इस फार्म के एक ज़िम्मेदार और अनुभवी अधिकारी ने निम्नलिखित हिदायतें प्रकाशित कराई हैं। हमारे मत से, पंजाब में ही क्यों, भारत के सभी प्रान्तों में, इन हिदायतों पर अमल करने से बहुत फ़ायदा होसकता है।

१. चराई—गर्म प्रान्तों में चरागाह में छाया के लिए वृक्षों का होना बहुत जरूरी है, और पास ही साफ़ सुथरा जलाशय भी होना चाहिए। भेड़ों को ख़राब, गंदा और मैला पानी नहीं पिलाना चाहिए। कारण कि ख़राब पानी से वे रोगी हो जातीं और कभी-कभी कई जानवर मर जाते हैं, जिससे मालिक को बहुत नुकसान उठाना पड़ता है।

यदि चरागाह में घास पत्ते आदि कम हों, तो पीपल, सीसम, बबूल, इमली आदि के पत्ते खाना चाहिए।

२ हिफ़ाज़त—बरसात में भेड़ों की पूँछ के पास का भाग हमेशा साफ़ रखना चाहिए। मैले और छितरे हुए बाल काट डाले जाने चाहिए। अक्सर ज़ख्म में मक्खियाँ अण्डे रख देती हैं, जिसमें कीड़े पड़ जाते हैं। इसलिए ज़ख्म या खून नज़र आतेही उस पर दवा लगादी जानी चाहिए। फ़िनाइल दो चमचे, तारपीन का तेल आठ चमचे और नारियल का तेल पांच सेर को मिलाकर रख छोड़ना चाहिए। इस मिश्रण को लगाते रहने से मक्खियाँ ज़ख्म पर नहीं बैठेंगी। यह मिश्रण सभी भेड़ों की पूंछ के पास वाले भाग पर लगाते रहने से कीड़ों का उपद्रव बहुत-कुछ कम होजायगा।

रात को भेड़ों को अच्छे स्थान में रखना चाहिए। बरसात में सूखी और छायादार ऊंची जगह में बन्द करना अच्छा है। भेड़ों के लिए छायादार जगह की उतनी जरूरत नहीं है। यदि जगह ऊंची और ऐसी हो, जहाँ पानी ठहर सकता हो, तो बरसात में भी उनके बैठने की जगह पर छप्पर डालने की ज़रूरत नहीं है।

३ ऊन—अकसर देखा जाता है कि अच्छी सब ऊन इकट्ठी ही रखी जाती है। कतरने के कुछ दिन पहले बहते हुए पानी में भेड़ों को खड़ा करके ऊन को अच्छी तरह से धो डालना चाहिए। कारण कि साफ ऊन की क़ीमत ज्यादा आती है। भेड़ के पेट और पांव की ऊन अलग रखनी चाहिए और शरीर के दूसरे भाग की ऊन अलग। क्योंकि पेट और पाँव पर की ऊन कुछ घटिया दरजे की होती है। जिस मेमने की ऊन पहली बार कतरी जाती है, वह भी कुछ घटिया दरजे की होती है। इसलिए इस ऊन को भी जुदा रखना चाहिए।

जिन महीनों में खूब पानी बरसे और कड़ाके की सर्दी पड़ती हो, उन महीनों में ऊन नहीं कतरनी चाहिए।

हृष्ट-पुष्ट भेड़ों की ऊन उत्तम होती है और कमज़ोर और अध पेट रखी जानेवाली भेड़ों की ख़राब। इसलिए ऊन का धंधा करनेवालों को चाहिए कि भेड़ों को भरपेट भोजन देते रहें।

४ ऊन का रंग—झुंड की सभी भेड़ें एक ही रंग की होनी चाहिए। कारण कि, भिन्न-भिन्न रंग की भेड़ों की ऊन जुदा-जुदा रखने में दिक्कत होती है और थोड़ा सा मेल होने पर भी क़ीमत कम आती है।

५ मेढ़ा—प्रति पचास भेड़ों पीछे एक मेढ़ा रखा जाना चाहिए। मेढ़ों को झुंड में कदापि नहीं रखना चाहिए। भेड़ें तभी फलाई जानी चाहिए जब काफ़ी भोजन मिलता हो। फलाने के वक़्त मेढ़े को एक पाव या आध सेर के करीब चना, ज्वार आदि प्रतिदिन दिया जाना चाहिए।

भेड़ें ऐसे मौसम में फलाई जावें कि जब बच्चा पैदा हो, तो भोजन की कमी न रहे। भेड़ फलने के पांच माह बाद जनती है। हर एक प्रांत में परिस्थिति के अनुसार फलने का मौसम ठहरा लेना चाहिए।

छोटे बच्चों को गर्मी के मौसम में धूप से बचाना चाहिए। ज़रूरत से ज्यादा मेढ़े बेच दिए जाने चाहिए। अगर गोश्त के लिये रखना हो तो उन्हें बधिया कर डालना अच्छा है।

शंकरराव जोशी,
डिप० एजी०, एफ़० आर०, एच० एस०

× × ×

३ देशी राज्यों में खेती

हाल में भारत-सरकार के कमर्शल इंटलीजेंस और स्टेटिस्टिक्स विभाग की ओर से ६६ देशी राज्यों की खेती का सन् १९२४—२५ का जो ब्यौरा प्रकाशित हुआ है,

उससे मालूम होता है कि इन राज्यों का अज़रूये सर्वे कुल रक़बा आराज़ी १३,२८,०८,००० एकड़ है, जिसमें से १,७०,४१,००० एकड़ जंगल है। २,३०,६१,००० एकड़ ऐसी ज़मीन है, जिसमें से कुछ नाक़ाबिल मज़रूआ और बाक़ी ऐसी है, जिसपर सड़क, मकानात और तालाब वग़ैरा है। बाक़ी जो आराज़ी ९,२६,८८,००० रहजाती है, वह क़ाबिल ज़राअत है। इसमें से ६,४१,४२,००० एकड़ आराज़ी पर साल ज़ेर रिपोर्ट काश्त हुई और उसमें से ८९,४५,००० एकड़ पर सिर्फ़ आबपाशी की गई।

उपरोक्त ब्यौरे से पता लगता है कि देशी राज्यों में जो कुछ आराज़ी है, उसमें से आधे से कम पर खेती होती है और इसका आधा रक़बा वैसेही निरर्थक पड़ा रहता है, जो क़ाबिल काश्त है, मगर काम में नहीं लाया जाता। इसके अलावा कुल रक़बे का १२.८ फ़ीसदी जंगल भी है, जिसका बहुत सा हिस्सा साफ़ किया जाकर क़ाबिल काश्त बनाया जा सकता है। अंकों पर दृष्टिपात करने से यह भी मालूम होसकता है कि $\frac{1}{2}$ करोड़ एकड़ मज़रूआ में से केवल ९० लाख एकड़ के क़रीब रक़बे पर आबपाशी की जाती है। बाक़ी फ़सल बिना आबपाशी रहती है और इस वजह से उसमें ख़ातिरख़्वाह पैदावार नहीं होसकती।

आजकल ब्रिटिश भारत के क़रीब क़रीब सबही प्रान्तों में कृषि की उन्नति देने, पतन ज़मीन को मज़रूआ बनाने, आबपाशी के नये नये साधन एकत्रित करने, नई-नई तरह के शस्यप्रद खाद तैयार करने का प्रयत्न हो रहा है, और उनके तजरुबा करने तथा उन्हें स्थानिक दृष्टि से उपयोगी और लाभकारी बनाने के लिये एक्सपर्ट इस काम में लगे हुए हैं, जिनके परिणाम बड़े सन्तोषजनक निकल रहे हैं, और प्रान्तों से कृषि के जो हालात प्रकाशित होते हैं उनसे मालूम हो सकता है कि वहाँ पैदावार गत पाँच वर्षों में ६५ फ़ीसदी से अधिक बढ़ चली है, और पंजाब, यू० पी० और मध्यप्रदेश में तो ज़मीन इस क़दर मज़रूआ होती जा रही है कि लोगों को चरागाह के लिये ज़मीन मिलना कठिन होगया है।

यह बात वास्तव में खेदजनक और विचारणीय है कि जब, देशी राज्यों से मिले हुए ब्रिटिश प्रान्तों की खेती में दिनोंदिन उन्नति होकर वहाँ जनता ख़ुशहाल हो रही हो और देशी राज्यों में $\frac{3}{4}$ ज़मीन पड़त पड़ी हो और वहाँ की जनता नाममात्र की काश्तकार कहलाकर कंगलों और जंगलियों की भाँति जीवन बिता रही हो। हम कह सकते हैं तीन-चार राज्यों को छोड़कर बाक़ी राज्यों ने केवल नाममात्र के एग्रीकलचरल विभाग खोल रखे हैं और बहुत से राज्य तो ऐसे हैं, जहाँ नरेशों का इस महत्व के प्रश्न पर अभी चित्त ही आकर्षित नहीं हुआ, जिस पर उनका हर तरह दारोमदार है।

हमें यह जानकर विशेष आनन्द हुआ है कि जामनगर के एक राजकुमार खेती की उच्च शिक्षा प्राप्त कर हाल में अमेरिका से लौटे हैं और उन्होंने यह प्रण किया है कि वे अपने राज्य में केवल खेती को उन्नत करने में अपना सर्वस्व लगावेंगे। यह बात स्वयं सिद्ध है कि देशी राज्यों की भूमि वास्तव में स्वर्णमयी है। इसमें सब कुछ उत्पन्न हो सकता है और पैदावार बढ़ने से केवल प्रजा ही नहीं, बल्कि राज्यों के ख़ज़ानों की आमदनी पुष्कल रूप से बढ़ सकती है। इसलिये हम चाहते हैं कि देशी नरेश, उनके जागीरदारान और अन्य पढ़े-लिखे लोग, उन फ़ज़ूल बातों को छोड़कर, जिनमें वे लगे रहते हैं, यदि केवल खेती को उन्नति देने में ही लग जावें, तो, हम कह सकते हैं कि, थोड़े दिनों में ही देशी राज्यों में कंचन बरसने लग जावे। जिन राज्यों में आजकल खेती को तरक़्क़ी देने के लिये जिस विधान पर काम किया जा रहा है उसमें कई दोष हैं। लाखों रुपयों की मशीनरी लाकर डाल दी जाती है जो किसी विशेष काम में नहीं आती, पड़ी सड़ती है। इसलिये इसको थोड़ा घटाकर ज़मीन को नवीन खादों द्वारा शस्यप्रद बनाने और आबपाशी के सुलभ साधन एकत्रित करने की सबसे ज़्यादा ज़रूरत है और यही उन्नति का गुप्त रहस्य है।

['जयाजी प्रताप']

१. रेलवे का किराया

सर्वसाधारण की यह शिकायत बहुत दिनों से चली आरही है कि रेलों से देशी उद्योग-धंधों को कोई सहायता नहीं मिलती। इतना ही नहीं, वे देशी उद्योग-धंधों की उन्नति में भी बाधक होती हैं। औद्योगिक कमीशन की गवाहियों से रेलों की उपेक्षा पूर्णरूप से प्रकट होती है। कमीशन के सामने यह बताया गया था कि कलकत्ते के दियासलाई और पेन्सिल के कारखानों को भारतवर्ष के किसी जंगल की अपेक्षा दक्षिण अफ्रीका से लकड़ी मँगाना सस्ता पड़ता है। कागज़ के व्यापारियों ने भी यह शिकायत की थी कि अपने कारखानों के लिए उत्तर-भारत से घास मँगाने की अपेक्षा विदेशी कागज मँगाना सस्ता है। पर सरकार के औद्योगिक कमीशन ने इन शिकायतों पर कोई ध्यान नहीं दिया। किन्तु, आकवर्थ कमिटी ने ऊपरी तौर से भारतीय रेलों के किराये की नीति में सुधार करने की आवश्यकता प्रकट की। पर रेलों ने आजतक इन शिकायतों को दूर नहीं किया। रेलों की नीति आयात के सर्वथा पक्ष में है। काँच के व्यापारियों ने अभी हाल में रेलवे बोर्ड से कारखानों में कच्चा माल सस्ते किराये में भेजने की प्रार्थना की है। आजकल टैरिफ़ बोर्ड इस प्रश्न पर विचार कर रहा है। उनका कहना है कि उन्हें सोडे पर १४ प्रति सैकड़ा एडवलोरम—आयात कर देना पड़ता है। इस सोडे की कारखानों में अत्यधिक खपत है। इस कर के देने से वे सस्ता माल नहीं तैयार कर सकते। इसके अतिरिक्त तैयार माल भेजने की भी रेलों की ओर से कोई सुविधा नहीं है। रेलों के किराये बहुत अधिक हैं और देशी उद्योग-धंधों को सहायता देने के लिए नहीं हैं। जब रेलों के सभी सामान का भाव गिर गया है, तब १९१६ के किराये में अवश्य परिवर्तन होना चाहिए। रेलवे विभाग की उपेक्षा से भारतीय काँच का उद्योग संकटजनक अवस्था में है। जबलपुर के उन्नतिजनक काँच के कारखाने की दुर्दशा रेलवे के कारण से हुई। बम्बई के नज़दीक भूसी निकालने और गन्ना पेरने का एक छोटा-सा कारखाना है। कस्टम विभाग ने उसकी कलों को कृषि की श्रेणी में रखकर कर में रिआयत की, पर रेलवे विभाग ने उन कलों को कृषि की श्रेणी में नहीं रखा। यह मुकदमा बम्बई सरकार के कृषि विभाग में पेश हुआ। उसके प्रधान कार्यकर्ता डाक्टर हारोल्ड मन ने कारखाने के प्रति सहानुभूति प्रकट कर उस मुकदमे को भारत सरकार के पास भेज दिया। कहते हुए आश्चर्य होता है कि रेलवे विभाग ने बम्बई सरकार की सिफ़ारिश पर ध्यान देने से इनकार कर दिया। इससे कारखाने को कोई सहायता नहीं मिली। कारण, रेलवे विभाग की सहानुभूति अंग्रेज़ व्यापारियों से सम्बन्ध रखती है। इस संबंध में भारत सरकार ने अभी रेलों के किराये

पर सम्मति देने के लिए एक कमिटी नियुक्ति की है। पर इस कमिटी के अंदर कई त्रुटियाँ हैं। कमिटी भारत सरकार की कही हुई बातों पर विचार करेगी। इधर आवश्यकता यह है कि रेलों की पद्धति पर पूर्ण रूप से विचार हो। सभी प्रकार के किराये पर देशी उद्योग धंधों को सहायता प्राप्त होने की दृष्टि से निर्णय किया जाय।

× × ×

२ ब्रह्मदेश में कपूर का तेल

ब्रह्मदेश में कपूर (Cinnamomum Camphora) की खेती ने खूब उन्नति की है। ब्रह्मदेश के अतिरिक्त समीपवर्ती कई राज्यों में भी कपूर की पैदावार बढ़ रही है। यद्यपि नई खेती की दृष्टि से यहाँ की पैदावार अभी अच्छी है तथापि उसमें बढ़िया माल नहीं तैयार होता। कच्चा माल भी वहाँ के स्थानीय बाज़ारों में बिक जाता है। पर, इधर वहाँ के लोगों का ध्यान अच्छा कपूर तैयार करने की ओर गया है। यहाँ के कपूर की पत्तियों और डालियों से तेल निकाल कर परीक्षा की गई है कि उन में से व्यापारिक दृष्टि से कितना विशुद्ध कपूर तैयार हो सकता है। वैज्ञानिकों ने अपने अनुसंधान से यह प्रकट किया है कि दो गैलन तेल से बहुत थोड़ा कपूर निकला है। यहाँ के तेल का रंग जापानी तेल के समान नहीं है, जिससे सबसे अच्छा कपूर तैयार होता है। कई रासायनिकों ने भी इस तेल को देखकर कहा कि अभी व्यापारिक दृष्टि से इस तेल का कोई महत्त्व नहीं है, क्योंकि बाज़ार में इसके बहुत थोड़े दाम मिलेंगे। संभवतः इस तेल में किसी तत्त्व का अभाव है, जिससे हलके दर्जे का तेल निकलता है। इससे यहाँ के तेल का मूल्य उससे कपूर निकलने के परिमाण पर आँका जाता है। पर यह आशा की जाती है कि आगे चलकर पैदावार अच्छी होने लगेगी।

× × ×

३ भारतीय स्टोर डिपार्टमेंट

यह विदित नहीं होता कि भारत सरकार अपने स्टोर क्रय डिपार्टमेंट के संबंध में क्या कर रही है? लक्षणों से मालूम होता है कि वह डिपार्टमेंट अपने उद्देश्यों की पूर्ति नहीं कर रहा है, जिनके लिए उसकी स्थापना हुई थी। इस डिपार्टमेंट का बहुत बड़ा इतिहास है। पर हम यहाँ पर संक्षेप में ही सब बातों का उल्लेख करेंगे। यह तो सर्वसाधारण को विदित है कि भारत सरकार जो माल अपने लिए ख़रीदती है, और भारतवर्ष की रेलवे जो माल ख़रीदती हैं, उन सबकी रक़म वर्ष में कई करोड़ होती है। इस डिपार्टमेंट के खुलने के पूर्व क्रय के समस्त कार्य का प्रबंध लंदन में बैठे हुए भारत-मंत्री करते थे। इसका परिणाम यह होता था कि इस क्रय से भारतीय उद्योग-धंधों को कोई लाभ नहीं पहुँचता था। केवल यही दुर्गुण नहीं था, इंडिया आफ़िस अंग्रेज़ व्यापारी और अंग्रेज़ी व्यापार को पूर्ण रूप से सहायता देने लगा था। अंग्रेज़ व्यापारियों के माल के दाम कई गुना अधिक होने पर भी वह दूसरों से न ख़रीद कर उनसे ख़रीदता था। इंडिया आफ़िस की इस पक्षपातपूर्ण नीति से भारत सरकार भी एक समय तंग आ गई थी, और उसने भारत मंत्री से बहुत लिखा-पढ़ी कर इस विषय में शीघ्र सुधार करने की प्रार्थना की। पर, इंडिया आफ़िस ने इसपर कुछ ध्यान नहीं दिया और बराबर अर्थ-शोषण करता रहा। उसने अपनी नीति परित्याग करने से एक दम इनकार कर दिया। यह अवस्था श्रीयुत माटेग के पूर्व तक जारी रहा। हम समझते हैं कि श्रीयुत माटेग के भारत-मंत्री होने पर ही सुधार हुआ। उनके आदेश से भारत सरकार के स्टोर क्रय की जाँच के लिए एक कमिटी नियुक्त हुई। इस कमिटी ने १९१९ में अपनी रिपोर्ट पेश की। उसकी सिफ़ारिश से यह निश्चित हुआ कि भारतवर्ष में स्टोर डिपार्टमेंट और इंगलैंड में हाई कमिश्नर सुभीते से अधिक माल ख़रीदें। इंडिया आफ़िस को अधिक माल के क्रय से छुटकारा दे दिया गया। इसके साथ ही इस कमिटी ने स्पष्ट शब्दों में यह सिफ़ारिश की थी कि भारत सरकार अपने क्रय द्वारा भारत के उद्योग-धंधों को उत्तेजन दे।

यह भी कहा गया था कि भारत सरकार यहाँ के उद्योगों को हानि सहकर भी व्यावहारिक सहायता प्रदान करे। उस समय श्रीयुत माटेग् की उदारता से यह आवश्यक सुधार हुआ था। पर भारत सरकार ने बहुत समय के उपरांत उक्त सिफ़ारिशों के अनुसार १९२२ में इंडिया स्टोर्स डिपार्टमेंट की स्थापना की। आज उसे स्थापित हुए छ वर्ष होगये, देशी उद्योग-धंधों को उससे कभी भी सहायता नहीं मिली। उसने किसी भी उद्योग को संरक्षण देकर उससे माल नहीं ख़रीदा। प्रांतीय सर-

कारें भी शायद ही अधिक माल खरीदती हों। रेलवे भी बहुत थोड़ा माल खरीदती है। गत वर्ष रेलवे ने २३ करोड़ का स्टोर खरीदा था, उसमें से ४६ लाख के आर्डर इस डिपार्टमेंट को मिले थे। रेलवे के एजेंट अपनी इच्छानुसार माल खरीदते हैं। इस सम्बन्ध में पूछताछ करने पर सरकार की ओर से यह जवाब मिला कि रेलवे हरसाल सरकार को कुछ धन देती है, इसलिए उन्हें अपना माल खरीदने में स्वतन्त्रता होनी चाहिए। इसमें यह प्रत्यक्ष प्रकट होता है कि भारत सरकार का यह स्टोर डिपार्टमेंट सुभीते से माल नहीं खरीदता। भारत सरकार ने स्टोर कमिटी की सिफ़ारिशों के अनुसार देशी उद्योग-धंधों की सहायता करने की नीति के अनुसार डिपार्टमेंट का आवश्यक संगठन नहीं किया। यदि यह डिपार्टमेंट भारतवर्ष के कारखानों से अधिक माल खरीदे और नये-नये उद्योगों के लिए बोनस दे, तो कई उद्योग सफलतापूर्वक चल सकते हैं। रेलवे के एजेंटों को भी नये नियम के अनुकूल इसी विभाग के द्वारा अपना समस्त माल खरीदने के लिए बाध्य किया जा सकता है।

× × ×

[illegible] बिजली की [illegible] कम्पनियाँ

भारतवर्ष में बिजली की कम्पनियाँ बड़ी सफलता से काम कर रही हैं। यद्यपि ये कम्पनियाँ पूर्ण रूप से देशवासियों के हाथ में नहीं हैं, तथापि जितना अधिकार प्राप्त किया गया है, वही आशाजनक है। यह उद्योग तो ऐसा है कि जिसमें भारतीयों का हाथ पूर्ण अधिकार अब ले जाना चाहिए, कारण, अब इस देश के लोग ही इस कार्य में सफलता प्राप्त कर सकते हैं। योग्य भारतीय इंजीनियरों का भी अभाव नहीं है। मदरास इलेक्ट्रिक सप्लाई कारपोरेशन को ६८०६१० रुपए का इस वर्ष नफ़ा हुआ है। गत वर्ष ४५३८६० रुपए का नफ़ा हुआ था। यह नफ़ा बहुत अधिक है; क्योंकि आठ प्रति सैकड़ा साधारण पूँजी पर दी हुई रक़म इसमें शामिल नहीं है। इसके अतिरिक्त रक्षित कोष के लिये ४१२४० रुपए और डायरेक्टरों ने अपने लिए ४१०८० रुपए पहले से ही निकाल लिये थे। दूसरी कम्पनी कानपुर की है। इसे १९२६ में ४६०२०० रुपए का नफ़ा हुआ है। इसके चलानेवालों ने भी रक्षित कोष में २२२४८० रुपए रखकर हिस्सेदारों को १० प्रति सैकड़ा नफ़ा दिया है। ऐसे उन्नतिजनक व्यवसायों में भारतीय व्यापारियों को अवश्य धन लगाना चाहिए।

× × ×

[illegible] का व्यापार

इंगलैंड का रूस से एक बार फिर व्यापारिक सम्बन्ध विच्छेद होगया। श्रीयुत बाल्डविन की सरकार ने मज़दूर सरकार की महत्वपूर्ण सन्धि तोड़ दी। दोनों ओर के प्रतिनिधि एक दूसरे स्थान से चले गए। इस सम्बन्ध-विच्छेद का व्यापार पर अवश्य ही प्रभाव पड़ेगा। अभी अंगरेज़ कहते हैं कि इससे रूस को ही दबना पड़ेगा, और उनका कुछ नहीं बिगड़ेगा। वे यह कहते हैं कि रूस को अपने कारखाने चलाने के लिए इंगलैंड से कलें ख़रीदनी होंगी। उनकी दृष्टि से अमेरिका भी रूस के साथ सम्बन्ध रखना उचित नहीं समझता। पर वस्तु स्थिति ऐसी नहीं है। अमेरिका की सरकार भले ही सावियों को न माने, पर वहाँ के व्यापारी रूस के साथ बराबर व्यापार करते हैं। इसलिए रूस का काम इंगलैंड और अमेरिका के सम्बन्ध बिना भी चल सकता है। रूस इंगलैंड से चाय ख़रीदता था। इस समय संबंध न रहने से उसने चीन के द्वारा सीधे अमेरिका से ख़रीदली। यही अवस्था अंगरेज़ी कलों की भी होगी। पर कुछ उद्योगों को अवश्य ही धक्का लगेगा। अपनी इम्पीरियल प्रिफ़रेंस नीति के कारण इंगलैंड रूस से पटुआसन नहीं ख़रीदेगा। अभी तक तो सस्ते के कारण ख़रीदता था। पर, अब सम्बन्ध विच्छेद हो जाने से, इम्पीरियल प्रिफ़रेंस की नीति से उसे भारतवर्ष से सारा पटसन ख़रीदना होगा। भारतवर्ष के लिए यह अच्छा अवसर है कि वह पटुए की अत्यधिक पैदावार बढ़ाकर इस व्यवसाय में उन्नति करे।

जी० एस० पथिक

पाली से।

१ उपगुप्त

द्ध भगवान का अनुयायी उपगुप्त मथुरा नगरी के परकोट के सहारे धूल में सो रहा था। सारे दीपक शान्त हो चुके थे सारे द्वार बन्द हो चुके थे। भादों के मेघाच्छन्न नभ में तारे छिपे हुए थे।

अकस्मात नूपुर रव से पूरित किसका पैर उसकी छाती पर लगा? आश्चर्य-चकित होकर उसने अपने नेत्र खोले। एक रमणी के दीपक का प्रकाश उसके क्षमाशील नेत्रों पर पड़ा। वह एक वार-विलासिनी थी — मणि-माणिकों से भूषित, नीलपीताम्बर में आच्छादित, यौवनमद में चूर।

उसने अपना दीपक नीचे किया और उसके प्रकाश में देखा युवक का सुंदर मुख! उसने कहा— "युवक भिक्षु, मुझे क्षमा करो। कृपा करके मेरे घर चलो, धूलि-धूसरित भूमि की शय्या तुम्हारे लिए उपयुक्त नहीं है।"

भिक्षुक ने कहा—"रमणी जाओ अपना मार्ग देखो। समय आने पर मैं स्वयं आऊँगा।"

सहसा उस रात्रि विभीषिका ने बिजली की एक चमक में अपने दाँत दिखाए। साथ ही उसने भीषण नाद किया, जिसे सुन कर वह युवती भय-चकित होकर काँपने लगी।

* * *

फल-फूलों से लदे हुए वृक्ष मार्ग पर झुके हुए थे। वसन्त की शीतोष्ण वायु पर बैठ कर वंशी की ध्वनि दूर से आ रही थी। नागरिक वसन्तोत्सव में सम्मिलित होने के लिए वन-प्रदेशों में चले गये थे। आकाश के मध्य भाग में चाँद शान्त और सुप्त नगरी को देख रहा था। युवक भिक्षु निर्जन पथ में भ्रमण कर रहा था जबकि ऊपर प्रेमासक्त कोयल एक आम्र वृक्ष में प्रेमालाप कर रही थी।

उपगुप्त नगर से बाहर होकर परकोट के नीचे सहसा खड़ा रह गया। उसके पैरों के पास परकोट की छाया में एक स्त्री पड़ी दिखाई दी। वह भीषण रोगसे आक्रान्त थी, देहसे स्थान-स्थान पर घाव हो रहे थे। वह शहर से निकाल दी गई थी।

भिक्षु उसके पास बैठ गया। उसका सिर उसने अपनी गोद में रख लिया। मुँह में पानी डाला, घावों पर लेप कर दिया। उस स्त्री ने पूछा — "ओ दयावान! तुम कौन हो?"

"तुमसे मिलने का समय आज आगया। यह देखो मैं हूँ —" युवक भिक्षु उपगुप्त ने उत्तर दिया।

२. श्रीमती

भगवान बुद्ध के निर्वाण-स्थान पर राजा बिम्बिसार ने

अपनी श्रद्धा-भक्ति को शुभ्र श्वेत संगमरमर से निर्मित मंदिर का रूप दिया। राज-घराने की सब कन्यायें और बहुएँ संध्या को वहाँ आतीं, पुष्प चढ़ातीं और दीपक जलातीं।

जब राजकुमार राजा हुआ तो उसने अपने पिता के नियमों को रक्त-प्रवाह से धो डाला। पिता के धार्मिक ग्रंथों से उसने यज्ञ समिधा प्रज्वलित की।

दिन ढल रहा था, सांध्य-आराधना का समय समीप था। रानी की दासी, भगवान बुद्ध की अनुयायिनी श्रीमती ने तीर्थोदक में स्नान करके, दीपक और नवीन श्वेत पुष्पों से स्वर्ण-थाल सुसज्जित करके रानी की ओर नीरवता से अपनी काली काली आँखों से देखा।

रानी ने भयत्रस्त होकर कहा—"पगली! क्या तू नहीं जानती कि बौद्ध-मंदिर में आराधना करने का दंड मृत्यु है? यह राजाज्ञा है।"

श्रीमती ने रानी को नमस्कार किया। वहाँ से आकर वह राजकुमार की नव-वधू अमिता के सम्मुख खड़ी हो गई। सोने से मढ़े हुए मुकुर को अपनी गोद में रखे नव-वधू अपने काले-काले लंबे केश गूँथ रही थी और माँग में सिंदूर का सौभाग्य-चिह्न अंकित कर रही थी। युवती दासी को देखने से उसका हाथ काँप गया। उसने कहा—"तुम किस अमंगल की सूचना कर रही हो? जाओ, जल्दी हटो!"

राजकुमारी शुक्ला अस्त होते सूर्य के प्रकाश में खिड़की के पास बैठी एक प्रेम-कथा पढ़ रही थी। श्रीमती उसके पास से भी गई। उसे देखते ही शुक्ला के हाथ से पुस्तक छूट गई, उसने श्रीमती के कान में कंपित-स्वर से कहा—"हे दुःसाहसिनी! क्यों मृत्यु-मुख में जाती हो?"

श्रीमती द्वार-द्वार घूमी। मस्तक ऊँचा करके उसने पुकारा—"अंतःपुर की रमणियो, सुनो, भगवान की पूजा का समय आ गया है। जल्दी चलो!"

कुछ ने तो अपने द्वार बंद कर लिए, कुछ ने उसे बुरा-भला भी कहा।

राजमहल के उच्च शिखर पर चमकती हुई सूर्य की किरण भी अस्त होगई। नगर की गलियों में छाया छा गई। नगर का जन-रव शांत होगया। शिव-मंदिर के घंटे ने सांध्य-आराधना का समय सूचित किया।

पारदर्शक झील की गंभीरता के समान गहरी अँधेरी रात में जब तारे अपने क्षीण प्रकाश में झिल-मिल कर रहे थे, राजभवन के उद्यान-रक्षकों ने आश्चर्य-चकित होकर वृक्षों की ओट में भगवान् बुद्ध के मंदिर पर प्रज्वलित दीपमाला को देखा। नंगी तलवार लेकर वे उस ओर दौड़े। उन्होंने पूछा—"मृत्यु की अवहेलना करने वाले ऐ मूर्ख! तुम कौन हो?"

"मैं हूँ श्रीमती, भगवान बुद्ध की दासी—" मीठी वाणी से उत्तर मिला।

दूसरे ही क्षण वह शीतल संगमरमर उसके हृदय के उष्ण रक्त से रंजित होगया। आराधना के अंतिम दीपक का प्रकाश भी तारों के साथ ही अस्त होगया!

३ सत्यकाम

नदी के उस ओर पश्चिम के क्षितिज में, जंगल के जाल में, सूर्य अस्त हो रहा था। तापस-बालक अपने पशु लेकर लौट आए थे। वे अग्नि के चारों ओर बैठे भगवान बुद्ध के उपदेश सुन रहे थे। उसी समय एक अनजान बालक आया। फल-फूल भेंट कर चरणों में नत मस्तक से नमस्कार करते हुए वह कोमल स्वर से बोला—"भगवान! आपके आश्रम में सत्पथ का पथिक होने के लिए मैं आया हूँ। मेरा नाम सत्यकाम है।"

आशीर्वाद देकर भगवान ने पूछा—"बालक! तुम किस जाति के हो? ज्ञान के उच्चतम शिखर तक पहुँचना ब्राह्मण के लिए ही शक्य है।"

"भगवान! मैं नहीं जानता मैं किस जाति का हूँ। जाता हूँ, माँ से पूछकर आऊँगा—" बालक ने उत्तर दिया।

बालक सत्यकाम वहाँ से चला आया। छिछले जल-प्रवाह को पार करके वह माँ के कुटीर पर आया, जो सुप्तग्राम के उस ओर बालुकामय प्रदेश में स्थित थी। कुटी में दीपक क्षीण प्रकाश फैला रहा था। कुटी के द्वार पर माता पुत्र की प्रतीक्षा में बैठी थी। गोद में लेकर उसने उसके शिरोभाग को चूमा और उससे भगवान का संदेश पूछा।

"मेरे पिता का क्या नाम है, मेरी प्यारी माँ?"—बालक ने पूछा और कहा—'भगवान ने कहा है, ज्ञान के उच्चतम शिखर तक पहुँचना ब्राह्मण के लिए ही शक्य है।"

माँ के नेत्र नीचे झुक गये। वह धीरे से बोली—"यौवन-काल में मैं धनहीन थी। मेरे कई मालिक थे। इस प्रकार तुम हे मेरे आँखों के तारे! अपनी माता जबाला की गोद में आए, जिसका कोई पति न था!"

*　　*　　*

वन की कुटियों के पास के वृक्षों के शिखरों पर बाल-सूर्य की किरणें चमकने लगीं। विद्यार्थी भगवान के चारों ओर एक प्राचीन वृक्ष के नीचे बैठे थे। प्रातःकाल के स्नान से उनकी केश-राशि अभी तक गीली थी।

सत्यकाम आया, भगवान के चरणों में प्रणाम करके चुपचाप खड़ा रह गया।

उस महान् धर्म-गुरु ने पूछा—"कहो, तुम किस वर्ण के हो?"

"प्रभु! मैं नहीं जानता। जब मैंने मा से पूछा तो उसने कहा—'मेरे यौवन-काल में मैंने बहुतों की सेवा की है। तुम अपनी माता जबाला की गोद में आये, जिसका कोई पति न था।'"

अपने छत्ते में छेड़ी हुई क्रोधित मधु-मक्खियों के गुंजार की भाँति काना-फूसी आरंभ हुई। उस जालिम्यन बालक की निर्लज्जता की विद्यार्थियों में चर्चा होने लगी।

भगवान गौतम अपने आसन से उठे, बालक को अपने भुजपाश से आबद्ध करके बोले—"बालक, तुम ब्राह्मणों से भी उच्च हो। तुम्हारा उच्च पैत्रिक संबंध तो सत्य से है!"

४. सुदास

सुदास माली ने अपने तालाब से शीत के उत्पात से बचे हुए अंतिम कमल को तोड़ा। उसे राजा को बेचने के लिए वह राजमहल के द्वार पर आकर खड़ा हो गया।

वहाँ उसे एक पथिक मिला। उसने पूछा—"इस कमल की क्या क़ीमत है? मैं इसे भगवान बुद्ध को अर्पित करूँगा।"

सुदास ने कहा—"एक स्वर्ण मुद्रा देकर तुम इसे ले सकते हो।"

पथिक उसका मूल्य देने को उद्यत हो गया।

उसी समय राजा बाहर आया और उसने वह पुष्प ख़रीदना चाहा। वह भगवान बुद्ध की सेवा में जा रहा था। उसने सोचा—"शीतकाल में पुष्पित कमल भगवान के चरणों में सजाने के लिए एक अच्छी वस्तु सिद्ध होगा।"

जब माली ने कहा कि एक स्वर्ण मुद्रा देने के लिए यह पथिक उद्यत है, तो राजा ने उसे दस स्वर्ण मुद्रा देने की स्वीकृति दी। परंतु पथिक ने उसका मूल्य दूना कर दिया।

माली ने लालच में आकर सोचा, जिसे अर्पण करने के लिए ये इतने उत्साहित हैं, उसीको अर्पण करके क्यों न अधिक लाभ उठाऊँ? उसने नमस्कार किया और कहा—"मैं अपना कमल नहीं बेच सकता।"

नगर के परकोटे से दूर आम्र-कुंज की छाया में सुदास भगवान बुद्ध के सामने खड़ा था, जिनके अधरों पर प्रसन्नमय नीरवता विराजित थी और ओस-सिंचित प्रातःकाल के नक्षत्र के समान नयनों पर शांति।

सुदास ने उनको निहारा, उनके चरणों में अपना कमल रख दिया और अपना मस्तक नत कर लिया।

बुद्ध भगवान ने मुसकुराकर पूछा—"पुत्र, तुम्हारी क्या कामना है?"

सुदास ने कहा—"चरणों का किंचित स्पर्श!"

५. सुप्रिया

"भूखों को अन्नदान देने का काम कौन ग्रहण करता है?"—भगवान बुद्ध ने अपने अनुयायियों से पूछा, जब श्रावस्ती में अकाल था।

वणिक् रत्नाकर ने कहा—"भूखों को अन्नदान देने के लिए मेरे सारे धन की अपेक्षा अधिक धन की आवश्यकता है।"

सेनापति जयसेन ने कहा—"मैं अपना रक्त दान कर सकता हूँ, पर मेरे घर में अन्न नहीं।"

ज़मींदार धर्मपाल ने कहा—"अनावृष्टि से मेरे सारे खेत सूख गये। मैं राज-कर भी कहाँ से दूँगा?"

यह सब सुनकर एक दान कन्या सुप्रिया उठी। उसने सबको नमस्कार किया और हँसते मुख से कहा—"भूखों को मैं खिलाऊँगी।"

"कैसे?" सभी साश्चर्य बोल उठे—"तू अपनी प्रतिज्ञा का पालन कैसे करेगी?"

सुप्रिया ने कहा—"मैं तुम सबसे ग़रीब हूँ। यही मेरी शक्ति है। मेरा कोष और संग्रह तुम सबके घर में है।"

श्रीगोपाल नेवटिया

× × ×

श्रीरवींद्रनाथ के Fruit gathering से अनुवादित।

सूक्ति-सुधा

बिंदु की विचित्रता

पंखी पख ऑखी बीच भाल उर गोरे गात ,
ठोढ़ी मैं सुहागमान कैसो है 'व्रजेश' बिंदु ।
अगवारो जगम बनावे है अनंग बिंदु ,
बिंदु चूनरी मे बिंदु ही ते होत हिंदी हिंदु ।
अरु बिंदु दस गुन भावे मेंहदी को बिंदु ,
पवित हो प्यासो है मरंद बिंदु को मलिंद ।
बिंदु मैं गोबिंद बिंदु ही है अवनी को गोल ,
बिंदु मे अकास है प्रकास तारे बिंदु इंदु ॥

हमारी मनोभिलाषा

छीरधि सो खारी नीरनिधि को बनाय ,
निज आसन 'व्रजेश' रतनाकर पे लावतो ।
मेरु मरुभूमि मैं सुगम करि देतो थापि,
देश ही में जबृ नद सरित बहावतो ।
मेरे सो हमारो जो रमेश अधिकार होतो,
चक्र चालि पातक निशेष बिनसावतो ।
नंदन सो तरु सुर पादप अनंद भरो ,
भारत के द्वार-द्वार नंदन बनावतो ॥

श्रीराघवेंद्र शर्मा त्रिपाठी, 'व्रजेश'

× × ×

कुररी

आज से कोई दश वर्ष पूर्व 'सरस्वती' में 'कुररी' पर मेरी एक कविता प्रकाशित हुई थी। तब से कई एक महानुभावों ने मुझ से 'कुररी' के विषय में पूछताछ की है। ऐसे महानुभावों में अन्यतम हैं, रीवा राज्यवासी श्रीकृष्णवंशसिंह जी। आपने इस विषय में मुझे लगातार चार पत्र लिखे और कई एक नई बातें बतलाईं, जिनके लिए मैं उनका कृतज्ञ हूँ। उनका अत्यन्त आग्रह जानकर मुझे उनको एक लम्बा पत्र लिखना पड़ा था, जिसमें मैंने 'कुररी'-विषयक अपनी सम्पूर्ण जानकारी लिख दी थी। यह लेख मेरे उसी पत्र का विस्तृत रूप है।

कुररी परदेशी पक्षी है। अँगरेज़ी में ऐसे पक्षियों को, जो वर्ष के किसी निश्चित काल में अपने वासस्थान से अन्य देशों को आते और यथासमय चले जाते हैं, Migratory birds कहते हैं। खजन, चकवाक, तेलहरी आदि इसी श्रेणी के पक्षी हैं। 'कुररी' भी Migratory birds है। इस अञ्चल में ये आश्विन के शुक्ल पक्ष या कार्तिक के महीने में, जबकि गुलाबी जाड़ा पड़ने लगता है, आते हैं। इस प्रकार शरद्-ऋतु के शुभागमन के साथ-ही-साथ, जबकि खंजन, चक्रवाक आदि पक्षियों का आगमन होता है, ये भी आ पहुँचते हैं। दिशाएँ स्वच्छ हो जाती हैं, आकाश निरभ्र होकर दिव्य नील-परिधान धारण करता है, सर-सरिताएँ हृदय की निर्मलता प्राप्त कर आनन्द से खिलखिला उठती हैं, प्रसन्न-वदना प्रकृति शरत्कालीन-शोभा का सुंदर दृश्य सामने रख कर उस जगन्नाटक-सूत्रधार की इच्छानुसार जन-मन-रञ्जन में प्रवृत्त होती है, ऐसे अवसर पर 'कुररी' आ पहुँचती है। पहले दस-पाँच देखने में आती हैं, फिर तो इनके दल-के-दल अपने शब्दों से आकाश-मार्ग को मुखरित कर देते हैं। प्रतिवर्ष ही यह दृश्य देखने में आता है, किंतु जब पहले पहल कुररियों की पंक्ति दृष्टिगोचर होती है, तो न जाने क्यों हृदय आनन्द से उत्फुल्ल हो उठता है, और विस्मय-विमुग्ध-सी आँखें तबतक आकाश से नहीं हटतीं, जबतक कि वे दृष्टि-मार्ग से अन्तर्हित नहीं हो जातीं। हृदय के उस आनन्द में तथा नेत्रों के विस्मय में और क्या-क्या भाव मिले होते हैं, यह ठीक-ठीक जान नहीं पड़ता। उसे एक अवर्णनीय रस का आस्वादन ही समझिए। उस आनन्द के अवसर में, प्रसन्नता के प्रांगण में, शरद के विपुल-विभव-विलास के बीच वीणा-झंकृत वायुमण्डल में 'कुररी' करुणा की एक रागिनी लेकर आ पहुँचती है। आनन्द निरानन्द में परिणत नहीं होजाता,

कुररी

हृदय के अन्तस्तल में एक वेदना सी ज्ञात होती है। वह वेदना कितनी मधुर है, यह श्रीकृष्ण-प्रेमानुरागिनी व्रजांगनाओं से या अपने जीवन-धन के दर्शन एवं मिलन को आतुर ध्रुव-प्रह्लादादि भक्त-हृदयों से पूछिए। वह वेदना भगवत्प्राप्ति का हेतु है, इसीलिए मधुर है। बिना उसके आनन्द निरानन्द है, विभव-विलास माया का पाश है। इसीलिए शरद्-सुषमा के मध्य 'कुररी' की मधुर-वेदना भरी वह स्वर-लहरी है।

कुररी पक्षी इस अंचल मे थोड़े-बहुत फाल्गुन तक रहते हैं। महानदी के किनारे बहुधा रहा करते हैं। ऐसा प्रवाद है कि 'होली की आग' देखकर ये सब प्रत्यावृत्त हो जाते है। सम्भवतः ये शीत-प्रधान देश मे रहते है, हिमालय की उपत्यका में या समुद्रमध्यवर्ती द्वीपों मे या कहाँ, नहीं कहा जा सकता। बर्फ़ या पाले के भय से कदाचित् ये शीत-ऋतु मे उष्ण देशों को चले आते हों।

इनका अधिकांश काल नदी गर्भ—जलधारा के निकट बालुका मे व्यतीत होता है। कभी-कभी धारा मे भी बैठा करते हैं, पर वहीं जहाँ कि पानी बहुत ही कम होता हैं। गत मकर सक्रांति के अवसर पर हम लोग नाव की सवारी मे मकर-स्नान के लिए पोरथ* जा रहे थे। मार्ग मे ठीक जलधारा के मध्य कुररियों का एक बड़ा भारी दल मिला। हम लोगों ने माँझियों को किनारा काट कर नाव ले चलने को कहा, ताकि उन्हें वहाँ से भयभीत होकर भागना न पड़े। माझियों ने वैसा ही किया। फिर भी वे उड़-उड़ कर भगने लगीं और वहीं दूर जाकर बैठने लगीं। उन हज़ारों बड़े-बड़े पक्षियों का उड़ना, उनके उड़ने से जल में एक विशेष प्रकार का शब्द होना, उनके परों की फड़फड़ाहट से श्वेत श्याम वर्ण के छोटे-बड़े परों का गिर कर नील-जल-धारा पर पवन के संकेत से नृत्य करना—ये दृश्य बड़े ही प्रभावोत्पादक थे। ये पक्षी अनाज (धान) के दाने चुगने को सुदूर खेतों में दिन को चले जाते हैं और संध्या को आकर नदी-गर्भ में विश्राम करते हैं।

बहुत से तो रात को लौटते हैं, यों ये दिन को भी महानदी-गर्भ में रहा करते है। रात को तो महानदी का तट-देश इनकी ध्वनि से भर जाता है। ये सैकड़ों और हज़ारों की संख्या में बहुधा पंक्तिबद्ध और कभी-कभी गोल बाँधकर उड़ा करते हैं। उड़ते समय अनवरत शब्द किया करते हैं। जब इनका दल गाँव पर से गुज़रता है, तब बच्चे बड़े प्रसन्न हो जाते है। हमें बचपन के वे दिन ख़ूब याद हैं, जब हम इन आकाशगामी अतिथियों को अपने आँगन या बाहर सड़क से देखकर हर्ष से नाच उठते थे और बाल-सखाओं के कंठ से कंठ मिला ज़ोर से पुकार कर कहते थे—"एक भाँवर किंदर दे दार चाउर ले जा।" इन पंक्तियों की कई बार सस्वर पुनरावृत्ति करके भी जी नहीं अघाता था। इनका भावार्थ है, '(हे अतिथि,) तुम थोड़ी देर ठहरो और यह सीधा-सामान ले जाओ।' आज भी बाल-मंडली यह अभिनय ठीक उसी ढंग से किया करती है, जिसे देखकर हृदय में उन आनंद के दिवसों की स्मृति जाग-सी उठती है। कुररियों से आकाश में एक गोल चक्कर लगा देने की प्रार्थना करने मे लड़कों का क्या अभिप्राय हो सकता है? यही न कि वे थोड़ी देर ठहरें तो हम नेत्रों का सुख लूटें। दूर-देश से आए हुए यात्रियों के देखने-सुनने में सबको कौतूहल होता है। फिर बच्चों का क्या कहना?

लड़के बहुधा कुररियों की ओर हाथ उठा कर यह भी कहा करते हैं—"जुन्ना नख ले जा नावों नख दे जा।" इसका अर्थ है—'तुम पुराने नखों को ले जाओ और हमें नूतन नख दे जाओ।' पर, इस कथन का तात्पर्य क्या है? यह बच्चों को ही या 'बाल-हृदय-साहित्य' के पंडितों को पूछना चाहिए। हममें यह बतलाने की क्षमता नहीं। यथार्थ मे ये विश्व-काव्य के पन्नों में अंकित कविता के जीवन्त चित्र हैं, जिन्हें उलट-पुलट कर बच्चे आप-ही-आप देखते और प्रसन्न होते हैं। कुररी पक्षी बृहदाकार होते हैं। रंग सफ़ेदी लिए हुए मटियल-सा होता है और परों के छोर में कुछ-कुछ श्यामता होती है। ये सारस से मोटे-ताज़े होते हैं। लंबी गर्दन, छोटा सिर, मज़बूत पैर, जिनमे तेज़ नाख़ून होते है, चौड़े पंख और चोंच नुकीली होती है।

आहार इनका अनाज के दाने हैं। ये नदी-गर्भ में

---

* पोरथ भी बालपुर से २-३ कोस पर पूर्व को एक पल्लीग्राम है। यहाँ महानदी के किनारे श्रीमहादेवजी का मंदिर है। मकर-स्नान का प्रतिवर्ष यहाँ मेला लगता है।

रहते हैं, आहारस्थल से प्राप्त करते हैं। पर इनकी गणना जलज जीवों में की गई है, जैसा कि इन पंक्तियों से विदित होता है—

कुररवकमकरा. ककचटकपिकभृंगसारसा ।
आडिदात्यूहहंसा जलकरटिकपिगा टिट्टिभाख्या ।
जलेचरा विहगास्ते भासका खजरीटका इत्येते जलजा जीवाः ।

(इति हारीते प्रथमे स्थाने ११अध्याये)

'प्रोद्घुष्टां क्रौंचकुररैश्चक्रवाकोपकूजिताम्' ।
अथ जलचरान्तर्गत पक्षिविशेष ।

(शब्दकल्पद्रुम)

इससे यह स्पष्ट है कि कुररी जलचर पक्षी है।

श्रीयुत कृष्णवंशसिंहजी ने अपने ११—१२—२६ के कार्ड में लिखा था—

"× × × मैं कुररी के विषय में निश्चयात्मक उत्तर चाहता हूं कि कुररी कौन पक्षी है। आजकल हिन्दी में क्या कही जाती है। संस्कृत-साहित्य में कुररी शब्द बहुत आया है। पर कम-से-कम मैं निश्चय नहीं कर सका। कोई टिटिहरी कहते हैं, कोई क्रौंच-भार्या। × × ×"

उक्त महानुभाव ता० १९—३—२७ के कार्ड में फिर लिखते हैं —

"× × × रघुवंश में लक्ष्मण सीता को वन में छोड़कर चलते हैं, तब विलाप करती हुई सीता की उपमा 'विग्ना कुररी' से दी गई है। तथा 'मालती-माधव' में मालती को जब अघोरघंट बलि देने लगा है, तब कुररी का-सा स्वर श्मशान में घूमते हुए माधव को सुन पड़ा है। यहाँ पर टीकाकार त्रिपुरारि कहते हैं, "क्रौंचवधू" मूल है "नादस्नाविह्विकनकुररी" और आगे कहते हैं "हा पूर्ता इति प्रसिद्धा।" उत्क्रोश-कुररौ समौ इत्यमरः, इन वर्णनों से यह अनुमान होता है कि भयभीत होने पर अथवा स्वभावतः कुररी का स्वर दयनीय (स्त्रियों का सा) होता होगा। उड़ते हुए उन पक्षियों को मैंने देखा है। बाल्यावस्था में मुझे भी कौतूहल होता था। पर वयो-वृद्ध कहते थे कि कड़ाकुल है। उन्नाव मण्डल के एक सज्जन इन्हें देखकर समद कहते थे। क्रौंच (कड़ाकुल) समूह में नहीं रहते। × × ×"

इन पत्रांशों से पाठकों को कुररी के विषय में मतभेद की बात मालूम हुई होगी। विद्यावारिधि प० ज्वाला-प्रसादजी ने रघुवंश की अपनी टीका में लिखा है कि इन्हें 'कुंज' पक्षी कहते हैं। इस अवस्था में 'कुररी' कौन पक्षी है? इसका निश्चयात्मक उत्तर देना बड़ा कठिन है। मैं निश्चयपूर्वक नहीं कह सकता कि मैंने इस लेख में जिन पक्षियों का वर्णन किया है, वे ही यथार्थ में 'कुररी' हैं। इतना ही कहा जा सकता है कि, हमारे इधर तो इनको कुररी या कुर्री ही कहा जाता है, इनके लिए और कोई दूसरा नाम प्रयुक्त ही नहीं होता। यह बात ख़याल में रखने लायक़ है कि 'कुररी' शब्द संस्कृत साहित्य में व्यवहृत हुआ है, और वह अपने शुद्ध रूप में इधर के अपढ़ देहातियों तक में प्रचलित है। जबलपुर की ओर कदाचित् इन्हें 'कर्री' कहते हैं। सम्बलपुर ज़िला उड़ीसा की तरफ़ 'देवचिराई' भी कहा जाता है।

'शब्दकल्पद्रुम' पृ० १८० में लिखा है —

कुरर पु०—कुरल पक्षी उत्क्रोश, स्वर शब्द, क्रौंच, पङ्क्तिचर, स्वर

इनमें 'उत्क्रोश' और 'पङ्क्तिचर' ये दो शब्द तो अपने यथार्थ अर्थ में इस लेख में वर्णन किए गये पक्षी के विषय में बराबर चरितार्थ होते हैं। वे निश्चय ही शब्द करनेवाले और पङ्क्तियों में उड़ने वाले होते हैं।

संस्कृत में 'कुरर' या 'कुरल' पुल्लिंग है और 'कुररी' स्त्रीलिंग। सम्भवतः इनके 'कुर्' 'कुर्' शब्द के कारण ही इनका नाम 'कुरर' या 'कुररी' पड़ा। संस्कृत में कुर धातु का अर्थ भी 'शब्द करना' होता है। अंग्रेज़ी में इन्हें Ospreys* कहा जाता है।

रघुवंशमें महाराजा दिलीप राज-महिषी सहित पुत्र-प्राप्ति का उपाय पूछने गुरु वशिष्ठ के पास तपोवन को जाते हैं। इसी प्रसंग में यह श्लोक है —

श्रेणीबन्धाद्वितन्वद्भिरस्तम्भां तोरणस्रजम् ।
सारसैः कलनिर्ह्रादैः क्वचिदुन्नमिताननौ ॥

(१म सर्ग, ४१वां श्लोक)

अर्थात् श्रेणीबद्ध होकर स्तम्भ-रहित तोरणमाला के समान उड़ते हुए सारस पक्षियों का मधुर-रव सुनने को वे कभी अपने सिर ऊपर को उठाते थे।

---

* Apte's Sanskrit English Dictionary

यहाँ 'अस्तम्भा तोरणस्रजम्' को पढ़ कर उड़ती हुई कुररियों की पंक्तियों का स्मरण हो आता है। वे ठीक स्तम्भहीन तोरण-सी प्रतीत होती हैं। मैंने कुररियों का वर्णन लिखते हुए अपने पत्र में श्रीकृष्णवंशसिंह जी का ध्यान उपर्युक्त श्लोक की ओर आकर्षित किया था। आप अपने २३-३ के कार्ड में विजयपुर (मिर्जापुर) से लिखते हैं:—

"कल मैं चने और यव के खेतों पर गिरते और 'कुरा' 'कुरा' शब्द निरन्तर करते हुए कालिदास के 'श्रेणीबन्धाद्वितन्वद्भिः' वाले श्लोक के दृश्य को साक्षात्कार करते हुए उन पक्षियों को देखकर अति प्रसन्न हुआ। खेद कि समीप से देखने का प्रयत्न करने पर भी नहीं देख सका। उड़गये। जहाँ तक स्मरण है, इन्हीं को उन्नाव वाले महाशय ससद और मेरे बचपन में वृद्धजन कड़ाकुल कहते थे। × × × उक्त श्लोक के सारस तो इन्हीं का होना अधिक सम्भवित होता है। कुररी कदाचित् भिन्न है। × × ×"

मेरे पूज्याग्रजप्रवर प० लोचनप्रसादजी भी उक्त श्लोक मुझे बतलाते हुए यही कहते थे कि कालिदास ने कुररियों को ही देखकर इसे लिखा होगा। बात चाहे जो हो, पर कालिदास ने कुररियों को ही सारस लिखा है, यह कैसे कहा जा सकता है?

उन्होंने उसी रघुवंश के—

तथेति तस्याः प्रतिगृह्य वाचं रामानुजे दृष्टिपथं व्यतीते।
सा मुक्तकण्ठं व्यसनातिभाराच्चक्रन्द विग्ना कुररीव भूयः॥
(स० १४, श्लोक ६८)

इस श्लोक में, जिसका कि ज़िक्र श्रीकृष्णवंशसिंह जी के १४-३ के पत्र के अवतरण में ऊपर आ चुका है, 'कुररी' का स्पष्ट उल्लेख किया है। इस अवस्था में 'कुररी' को 'कुररी' न लिखकर उनका 'सारस' लिखना युक्तिसंगत प्रतीत नहीं होता। संभव है, सारस भी श्रेणी बाँध कर उड़ते हों, जैसे कि वर्षा-ऋतु में 'बकाली' उड़ा करती है। 'बकाली' की उपमा सफ़ेद फूलों की माला से दी जा सकती है। हाँ, यहाँ 'सारसैःकलनिर्ह्रादैः' लिखा है। शायद उड़ते हुए सारस शब्द भी करते हों।

श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण में कुररी का उल्लेख हुआ है। यथाः—

तेन शब्देन सम्भ्रान्ताः सर्वशोऽन्तःपुरस्त्रियः।
सङ्घशश्चुक्रुशुस्तत्र कुरर्यस्त्रासिता इव॥
× × ×
इति तां पतिशोकस्य पुत्रशोकस्य विह्वलाम्।
पतितामातुरां दीनां क्रोशन्तीं कुररीमिव॥

महाभारत में भी 'कुररी' शब्द आया है। यथाः—

ततो मामनयत्क्षत्ता क्रोशन्तीं कुररीमिव।
(महाभारते १-६-१२)

श्रीगुसाई तुलसीदासजी ने रामायण में लिखा है—
'विलपति अति कुररी की नाईं'।

हिंदी के आधुनिक कवियों में, हमें जहाँतक स्मरण है, सर्व प्रथम पूज्याग्रजप्रवर प० लोचनप्रसादजी ने 'कुररी' पर कविताएं लिखीं। उन्होंने हिंदी और उड़िया में कई जगह 'कुररी' शब्द को साहित्य-गत किया है। मैंने भी 'कुररी' पर दो कविताएँ लिखी थीं, जो पूज्यपाद द्विवेदीजी के सम्पादन-काल में 'सरस्वती' में छपी थीं।

'कुररी' का एक चित्र भी यहाँ दिया जाता है। यह चित्र हमें रेवरेण्ड वाई० प्रकाश (Y. Prakas) से प्राप्त हो सका, इसके लिए हम उनके कृतज्ञ हैं।

पांडेय मुकुटधर

× × ×

४ परिहास

नहीं सखी यह तेरा आनन, जिसको तू है रही निहार,
हृदयहार यह भी नहि तेरा, कहै जिसे तू मोतिन हार।
नहीं उरोजों की भी छवि ये, विहँसि-विहँसि जो लखती है,
ये प्रतिबिंब तुम्हारा नहि है, जिसे 'रमा' तू तकती है।
कोटि उपायों से शशि तव मुख, समता नहिं कर पाया है
नखत-लड़ी में बाँध कनक घट, उसने गला फँसाया है॥

लक्ष्मीप्रसाद मिश्री, 'रमा'

× × ×

५. हिंदी का एक सिद्धांत

कई महीने हुए, 'माधुरी' की किसी पिछली संख्या में प्रख्यात-कीर्ति प० श्रीसकलनारायणजी शर्मा का एक विचार उक्त शीर्षक के नीचे निकला था। उसका सारांश यह है—

"लड़के और लड़कियाँ खेल रही हैं—इस प्रकार के वाक्य आजकल पत्र-पत्रिकाओं में देखने को मिलते हैं। ये ग़लत हैं। क्योंकि वाक्य में पुल्लिंग कर्ता के अनुसार

प्रेम संदेश (नं० २)

[चित्रकार— श्री० रामनाथ गोस्वामी]

बिरह निहार ह्वै रही राधा उतै बिहाल ।
औरन हँतै समाज तुम निपट निठुर नँदलाल ।

नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ

ही क्रिया का लिंग होना चाहिए। ऐसी जगह 'खेल रही हैं' क्रिया अशुद्ध और 'खेल रहे हैं' ठीक है। कारण, स्त्रीलिंग और पुरुष-लिंग कर्ता जब एक वाक्य में हों, तो पुरुष प्रधान होता है। इसलिये उसीके अनुसार क्रिया का लिंग होना आवश्यक है।

महर्षि पाणिनि ने अपने 'पुमान् स्त्रिया' सूत्र में पुरुष को प्रधान माना है। यही सबसे बड़ा प्रमाण है। दूसरे इसकी पुष्टि में कुछ हिंदी के आचार्यों के प्रयोग भी दिए जा सकते हैं। उदाहरणार्थ —

(१) "देखि रूप मोहे नर नारी।" (समस्त)

(२) "कश्यप और अदिति सिंहासन पर बैठे हैं।" (असमस्त)

(३) "कश्यप और अदिति प्रणाम करते हैं।" (असमस्त)

ये प्रमाण काफ़ी हैं। सो, बेजान पुरुष-लिंग और स्त्री-लिंग कर्ताओं में चाहे इस प्रधानता का विचार न भी किया जाय। पर जानदार कर्ताओं में इसकी आवश्यकता अनिवार्य है। अत ऐसी जगह पुरुष-लिंग कर्ता के अनुसार ही क्रिया का लिंग होना चाहिए। आजकल जो इस प्रकार अशुद्ध प्रयोग लिखने की चाल पड़ गई है, इसका दोष व्याकरणकारों पर है, जिन्होंने व्याकरण में एक यह नियम रखा है कि वाक्य में अंतिम कर्ता के अनुसार क्रिया का लिंग होना है। आशा है, अगले संस्करणों में इस नियम को ठीक कर दिया जायगा।"

हमने पंडितजी के ज्यों-के-त्यों शब्द नहीं दिए हैं। परंतु उनका भाव यही है और प्रमाण आदि सब यही हैं इससे अधिक और कुछ नहीं। अब इस सिद्धांत पर विचार कीजिए। वस्तुतः पंडितजी यदि इसे प्रस्ताव रूप में रखते, तो उस पर विचार करना कुछ ठीक भी जँचता। पर जब वे इसे 'सिद्धान्त' कह चुके हैं, तब इस पर विचार करना ज़रा बेढंगा-सा जँचता है। किंतु चित्त नहीं मानता। वह हम पर कुछ कहता है। उसका कहना है कि पंडितजी का यह सिद्धांत गलत है—अपसिद्धांत है। वह ऊपर का वाक्य, जिसे पंडितजी अशुद्ध बतलाते हैं, बिलकुल शुद्ध है, दुरुस्त है, और व्याकरण-सम्मत है। इस बात की परीक्षा कीजिए।

'वाक्य में अंतिम कर्ता के अनुसार क्रिया होती है—उसका लिंग और वचन अंतिम कर्ता के अनुसार होता है'—यह नियम बिलकुल ठीक है। हिंदी ही में नहीं, संस्कृत में भी यही नियम है। लिखा जाता है—'प्रतापो माधुरी चाधिगता मया।' यह विशुद्ध वाक्य है। यहाँ अंतिम कर्ता 'माधुरी' के अनुसार क्रिया का स्त्री-लिंग में प्रयोग हुआ है, और समस्त संस्कृत-वाङ्मय में इसी प्रकार होता है। परंतु पंडितजी कहते हैं कि बेजान चीज़ों में चाहे यह नियम न भी माना जाय, किंतु जानदारों में इसका मानना आवश्यक है। यह भी ग़लत है। हिंदी और संस्कृत में अंतिम कर्ता के अनुसार ही क्रिया होती है (इस नियम का एक अपवाद भी है, जिसे हम आगे चल कर लिखेंगे) जैसे—'मालवीय. सरोजिनी चागता।' इस वाक्य में अंतिम कर्ता 'सरोजिनी' के अनुसार ही 'आगता' क्रिया स्त्री-लिंग में प्रयुक्त हुई है; न कि पुल्लिंग 'मालवीय' के अनुसार। संस्कृत और हिंदी के सभी कवियों, लेखकों और आचार्यों ने इसी नियम को मानकर इसी प्रकार—अंतिम कर्ता के अनुसार—ऐसी जगहों में क्रिया का प्रयोग किया है।

पंडितजी का कहना है कि पाणिनि का 'पुमान् स्त्रिया' सूत्र इसमें प्रमाण है कि वाक्य में पुरुष प्रधान होता है और स्त्री अप्रधान। इसलिये प्रधान पुरुष-लिंग कर्ता के अनुसार ही क्रिया पुल्लिंग होनी चाहिए। फिर चाहे वह पुरुष-लिंग कर्ता आदि में हो या अंत में। परंतु वस्तुतः यह बात नहीं है। पंडितजी गलत समझ गए हैं। एक तो संस्कृत के व्याकरण से हिंदी को ज़रूरत ही क्या? इसका तो स्वतंत्र व्याकरण है, जिसका स्वरूप संस्कृत व्याकरण से बिलकुल भिन्न है। तब फिर उसके व्याकरण के सूत्र को यहाँ पेश करने की बात ही कौन थी? किंतु शोक तो यह है कि इस सूत्र से पंडितजी के सिद्धांत की बिलकुल पुष्टि नहीं होती। पुष्टि तो दूर की बात है, इस सूत्र की छाया भी पंडितजी के सिद्धांत तक नहीं जाती! वह सूत्र द्वंद्व-समास के एक-शेष प्रकरण का है। यह सूत्र एक-शेष करता है। एक-शेष में स्त्री का लोप होजाता है, और पुरुष रहजाता है। बस, इतनी ही बात यह बतलाता है। न तो यह पुरुष को प्रधान बताकर उसके अनुसार, प्रत्येक दशा में—क्रिया के लिंग करने की व्यवस्था ही देता है और न पंडितजी के सिद्धांत को सूँघता ही है। संभव है, इसी एक-शेष को आपने प्रमाण मान लिया हो! मान लें! हम तो न मानेंगे और न कोई और ही

मानेगा। यह एक-शेष हिंदी में भी होता है। हिरण और हिरणियाँ दौड़ी चली जा रही हैं। अब इस वाक्य में हिरण शब्द जो दो बार, पुल्लिंग और स्त्रीलिंग के रूप में, आ गया है, सहृदयों के कानों को अप्रिय मालूम होता है—यह पुनरुक्ति खटकती है। इसी दोष को दूर करने के लिये व्याकरण में दोनों का द्वंद्व समास होकर एक-शेष हो जाता है, अर्थात् एक शेष रह जाता है और एक का लोप हो जाता है। कौनसा शेष रहे और कौनसे का लोप हो, इसके बतलाने के लिये उक्त सूत्र है। वह कहता है, स्त्री का लोप होजाता है और पुरुष शेष रहता है। इस एक-शेष के करने पर ऊपर का वाक्य यों हो जायगा—"हिरण दौड़े चले जाते हैं।" वाक्य कितना संक्षिप्त और मनोहर होगया। अर्थ इससे वही निकल आएगा कि—हिरण और हिरणियाँ दौड़ी चली जा रही हैं। अस्तु। तो इससे और उस बात से कोई सरोकार नहीं। कदाचित् कोई यह कहे कि यदि पुरुष प्रधान नहीं था, तो उसे शेष क्यों रखा और स्त्री का लोप क्यों किया? उत्तर है कि यह प्रधानता कुछ और है और वह कुछ और। यह पुरुष तो इसलिये शेष रखा जाता है कि एक तो उससे स्त्री का भी बोध होजाता है और दूसरे उसमें कुछ मात्रा की कमी होती है—हिरण-हिरणियाँ, हिरण-हिरणी, कितना फ़र्क़ है। शब्दों की कमी के लिये ही तो व्याकरण और साहित्य-शास्त्र की सृष्टि है। जो जितने ही कम शब्दों द्वारा अधिक अर्थ व्यक्त करे, वह उतनाही बड़ा पंडित। अच्छा, तो यहाँ इसलिये पुरुष शेष नहीं रखा जाता कि वाक्य में सब जगह उसको प्रधान मानकर उसके अनुसार क्रिया का रूप रखे, भलेही वह आदि में हो या अंत में। इस सूत्र से उस सिद्धांत का इतना ही संबंध है, जितना हाथ की कोहनी का मुख से। बालक जानता है कि, कोहनी मुँह से थोड़ी ही दूर तो है, मुँह में चली जायगी। यह सोचकर वह उसे मुँह में ले जाना चाहता है, पर वह काहे को जाने की? यही गति इस सूत्र और इस सिद्धांत की है। पंडितजी इसे वहाँ लेजाना चाहते हैं, पर यह कहाँ जानेका? सारांश, इस सूत्र से पंडितजी की मनचीती नहीं होती।

अब रही उन आचार्यों के वचनों की बात। इस पर अवश्य विचार करना चाहिए। सोचने से समझ में आता है कि—वाक्य में अंतिम कर्त्ता के अनुसार क्रिया का लिंग होता है, यह एक सामान्य नियम है। इसका एक अपवाद है। वह यह है—जब कभी वाक्य में एक से अधिक कर्त्ता हों, और वहाँ 'दो', 'सब', 'कुछ', 'कोई' आदि संख्या-वाचक सर्वनाम शब्दों का साक्षात् प्रयोग हो, अथवा उनकी वहाँ प्रतीति होती हो, तो क्रिया का लिंग अंतिम कर्त्ता के अनुसार न होकर उस सर्वनाम के अनुसार होगा और वह पुल्लिंग होगा। गोस्वामीजी के पद्यांश में—

'देखि रूप मोहे नरनारी।'

"नर और नारी कर्त्ता हैं और उन दोनों का समास हुआ है। अंत में 'नारी' है, अतः उक्त नियम के अनुसार इसीके सहारे क्रिया का स्त्रीलिंग रूप 'मोहीं' होना था; पर उक्त अपवाद के भीतर इसे आजाने से वैसा न हुआ और प्रतीयमान 'सभी' सर्व-नाम रूप के अनुसार पुल्लिंग क्रिया हुई। 'सभी' सर्वनाम का यहाँ लोप हुआ है। उसकी प्रतीति हो रही है। चौपाई के अंश का अर्थ यह है—क्या स्त्री और क्या पुरुष, सभी, उनके रूपको देखकर मोहित होगए। यहाँ या ऐसी जगहों में कर्त्ता का परामर्शी या प्रतिनिधि सर्वनाम होता ही है। उसीका साक्षात् अन्वय क्रिया से होता है और उन कर्त्ताओं का इसके द्वारा। सभी मोहित होगए। सभी कौन? नर और नारी। इसी प्रकार दूसरे और तीसरे वाक्य में—

"कश्यप और अदिति, दोनोंही, प्रणाम करते हैं।"

"कश्यप और अदिति, दोनोंही, सिंहासन पर बैठते हैं।"

इस प्रकार 'दो' सर्व-नाम प्रतीयमान है और वही क्रिया का मुख्य कर्त्ता है। उसीके अनुसार क्रिया पुल्लिंग में है। शंका हो सकती है कि जब स्त्री और पुरुष, दोनों, कर्त्ताओं का प्रतिनिधि यह सर्व-नाम है, तो फिर यह पुल्लिंग कैसे हो गया? और फिर क्रिया भी इस लिंग की कैसे होगयी? इसका समाधान है। आप एक-शेष की बात अभी-अभी देख चुके हैं। वह एक-शेष सर्व-नाम शब्दों में सदा ही होता है। इसके लिये यह नित्य विधि है। फिर चाहे वे शब्द, जिनका कि वह प्रतिनिधि है, आपस में समस्त हों या न हों और इसीलिये उनमें एक-शेष हो या न हो। 'सब हिरण और सब हिरणियाँ दौड़ी जाती हैं', यह वाक्य अशुद्ध है; क्योंकि इसमें 'सब' शब्द का द्वि प्रयोग कानों को बुरा मालूम होता है। इसीलिये इन दोनों 'सब' शब्दों को, जिनमें में से एक पुरुष-लिंग और दूसरा स्त्री-लिंग है, द्वन्द्व समास होकर

एक-शेष हो जाता है, और तब यों शुद्ध प्रयोग होता है— 'सब हिरण और हिरणियाँ दौड़ी जाती हैं।' अभी कमी है। हिरण और हिरणी का समास करके एक शेष किया तो बन गया—'सब हिरण दौड़े जाते हैं।' अब ठीक हुआ। एक शेष में सदा पुरुष शेष रहता है और स्त्री का लोप हो जाता है। सर्व-नाम शब्दों में भी पुरुष शेष रह कर स्त्री का लोप हो जाता है। अतः उसी पुरुष के अनुसार क्रिया होती है। एक-शेष सजातीयों ही में होता है, विजातीयों में नहीं। 'सब हिरण और बैल दौड़े जाते हैं।' इस वाक्य में हिरण और बैल का समास हो कर एक-शेष नहीं हुआ है। समास हो भी सकता है, पर एक-शेष नहीं। परंतु सर्व-नामों में सदा ही समास और एक-शेष होता है। 'दो' सर्व-नाम में सजातीय समास या एक-शेष कभी नहीं होता। अन्यथा 'दो' और 'दो' का समास यदि हो जाय, तो उससे 'चार' संख्या के अर्थ का भान होना चाहिए और इस प्रकार उसका मुख्य अर्थ 'द्वित्व' नष्ट ही हो जाय, जिसके लिये उसका प्रयोग किया जाता है। सो, इस 'दो' शब्द का आपस में समास और एक-शेष नहीं होता।

सो, जहां सर्व-नाम संख्या-वाचक किसी शब्द की साक्षात् उपस्थिति या प्रतीति है, वहां तो उस सर्व-नाम के अनुसार ही क्रिया का लिंग पुल्लिंग होगा, और जहां यह बात नहीं, वहाँ अंतिम कर्त्ता के अनुसार क्रिया का लिंग होगा ही। 'लड़के और लड़कियाँ खेल रही हैं—' यह वाक्य ठीक है। अंतिम कर्त्ता 'लड़कियों' के अनुसार 'खेल रही हैं' क्रिया है। यहाँ 'सब' आदि सर्व-नाम की प्रतीति नहीं होती। कहने वाले को सर्वत्व विवक्षित नहीं, वह तो इतना ही कहता है कि अमुक स्थान पर लड़के और लड़कियां खेल रही हैं। अगर सर्व-नाम विवक्षित हो, तो उसके अनुसार ज़रूर क्रिया पुल्लिंग हो जायगी। जैसे 'इस शहर के लड़के और लड़कियाँ, सभी खेल ही में समय बिताते हैं।' अथवा 'आज कल के लड़के और लड़कियाँ अपने पूर्वजों के नाम तक नहीं जानते।' मतलब यह कि 'आजकल के लड़के और लड़कियाँ, कोई भी, अपने पूर्वजों के नाम तक नहीं जानते।' यहाँ 'कोई' संख्या-वाचक सर्व-नाम लुप्त है, जिसकी प्रतीति हो रही है। इसीलिये उसके अनुसार 'जानते' क्रिया पुल्लिंग है।

एक बात और है। जब विभिन्न-लिंग कर्त्ताओं में समास न हुआ हो और वे एक वाक्य में एक ही क्रिया के कर्त्ता हों, साथ ही 'सब' आदि संख्यावाचक कोई सर्व-नाम उपस्थित हो, तो उस सर्व नाम के अनुसार सभी क्रिया पुल्लिंग होगी, जब उसका संबंध दोनों से हो; अर्थात् उस सर्व-नाम में द्वंद्व होकर एक-शेष होगया हो और इसी कारण उसमें स्त्रीत्व न रह कर पुंस्त्व ही शेष रह गया हो। इसके विपरीत जब किसी दशा में सर्वनाम का एक ही कर्त्ता से योग हो, तब वहाँ उसके अनुसार क्रिया पुल्लिंग न होकर अंतिम कर्त्ता के अनुसार रही होगी; क्योंकि उसका संबंध दोनों कर्त्ताओं से नहीं, अतः वह दोनों कर्त्ताओं का प्रतिनिधि नहीं। ऐसी दशा में दोनों कर्त्ताओं का क्रिया के साथ पृथक्-पृथक् अन्वय होता है और क्रिया अंतिम ही कर्त्ता के अनुसार रहती है। जैसे, हमें कहना हो कि 'सब लड़के और लड़कियाँ आ रही हैं'; अर्थात् सर्वत्व हम लड़कों के साथ जोड़ना चाहते हैं, लड़कियों के नहीं। ऐसी दशा में सर्व-नाम 'सब' के होते हुए भी क्रिया अंतिम कर्त्ता के अनुसार ही होगी, जैसी कि उक्त वाक्य में हुई है।

अब बात यह रही कि यह पहचान में कैसे आवे कि यहाँ सर्व-नाम विवक्षित है या नहीं—इस वाक्य में उसका लोप हुआ है कि नहीं। इसका उत्तर यह है कि इस बात का ज्ञान प्रकरण आदि से हो जाता है। वक्ता का वाक्य बनावट से ही फ़ौरन मालूम हो जाता है कि यहाँ क्या बात है।

इस संबंध में यह ध्यान में रखना चाहिए कि, जब दो कर्त्ताओं का एक वाक्य में प्रयोग हो और दोनों एक वचनांत ही हों, तो सदा ही उनमें द्वित्व की प्रतीति है—एक और एक दो। फिर चाहे वहां 'दो' सर्व-नाम शब्द का प्रयोग हो या न हो। इसी कारण ऐसे वाक्यों में सदा ही क्रिया पुल्लिंग, सर्व-नाम के अनुसार ही, होगी। कश्यप और अदिति के प्रणाम करने और सिंहासन पर बैठनेवाले वाक्यों में यही बात है। इसे सदा याद रखना चाहिए।

मैंने अपना यह विचार प्रस्ताव रूप में रखा है। आशा है, हिंदी के विद्वान् इस पर प्रकाश डालेंगे।

किशोरीदास वाजपेयी
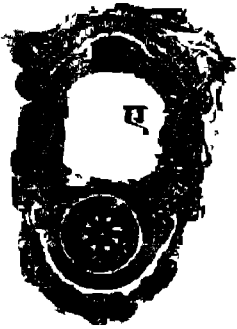
एक श्रोता—"तुमने मितव्ययिता पर यह व्याख्यान कभी अपनी धर्मपत्नी के सामने भी दिया या नहीं ?"

व्याख्याता—"हाँ, दिया था।"

"क्या नतीजा हुआ ?"

"मुझे सिगरेट पीना छोड़ना पड़ा।"

× × ×

एक दुर्बल मनुष्य जीर्णावस्था में शय्या पर पड़ा हुआ है। उसके समीप ही एक वकील कुरसी पर बैठा कुछ काग़ज़-पत्रों की देखभाल कर रहा है। डाक्टर कमरे में इधर-उधर घूम रहा है और कभी-कभी रोगी की नाड़ी पर हाथ रखकर देखता है।

डाक्टर—(रोगी से) अब तुम्हारा अंतिम समय निकट आ पहुँचा। तुम दो-चार मिनिट के मेहमान हो। संसार की कोई शक्ति अब तुम्हें नहीं बचा सकती। घरवालों से जो कुछ कहना सुनना हो, कह सुन लो; जो कुछ लिखा-पढ़ी करना चाहते हो, कर लो।

(रोगी एक ठंढी साँस भरता है)

वकील—(रोगी से) लाला जी, इससे पहले कि समय हाथ से निकल जाय, आप वसीयत कर लीजिए।

लाला—मुझे मौत का डर नहीं। संसार में कौन अमर हुआ जो मैं अमर हो जाऊँगा। मुझे केवल एक चिन्ता है, और वह यह कि मेरे मरजाने के बाद मेरी दूकान कौन सँभालेगा।

वकील—(डाक्टर से) लाला जी अब चलनेवाले ही है, मेरी राय में घर के सब प्राणियों को बुला लेना चाहिए।

(लाला जी की लड़की कमरे में आती है)

लड़की—(शोकातुर होकर) कुछ आशा है ?

डाक्टर—अफ़सोस ! जीवनसूत्र अब टूटा ही चाहता है। कोई आशा नहीं।

लड़की—पिताजी, हाय आँखें खोलिये, आप हमलोगों को किसपर छोड़े जाते हैं !

वकील—मेरी राय है कि घर के सब आदमी आजायँ और लालाजी की वसीयत सुनलें।

(लड़की घरके सब प्राणियों को कमरे में बुला लाती है।)

वकील—कोई रहनो नहीं गया ?

(लालाजी घबड़ाकर उठ बैठते हैं और इधर-उधर आँखें फाड़-फाड़ कर देखते हैं।)

लाला—यह क्या शोर है ? तुमलोग सबके-सब यहाँ क्यों जमा होगए ? क्या सब लोग यहाँ आगए हैं ? दूकान पर कोई नहीं ?

वकील—जी हाँ, सब लोग यहाँ आगए हैं। वसीयत कीजिए।

लाला—(कपड़ों को नोचते और माथे पर हाथ मारते हुए) हाय ! सब-के-सब मूर्ख हैं। सब यहाँ जमा होगए, दूकान अकेली छोड़ दी। मैं खुद दूकान पर जाता हूँ।

(लालाजी उठकर दूकान की ओर भागते हैं; चक्कर

खाकर गिर पड़ते हैं, और प्राण निकल जाते हैं ।)
[नैरंगे ख़याल]

× × ×

कोई कंजूस आदमी गंगास्नान करने गया । पंडों ने उसे तंग करके ख़ूब दक्षिणा पेंठी । जब वह स्नान करके लौटने लगा तो पंडों ने कहा—"लालाजी, कोई चीज़ यहाँ छोड़ जाइये । तीर्थों पर कुछ-न-कुछ छोड़ने का बड़ा माहात्म्य है ।"

लालाजी बोले—"अच्छा, मैंने यहाँ आना छोड़ा । भविष्य में कभी यहाँ नहीं आऊँगा ।"
['श्रीकृष्ण संदेश']

× × ×

जवान मल्लाह—"पिछली यात्रा में मैंने लहरों को ४०-४० फ़ुट चढ़ते देखा ।"

बूढ़ा मल्लाह—"झूठ बात । मैं पचास बरसों से यही काम कर रहा हूँ, पर कभी इतनी ऊँची लहरें नहीं देखीं ।"

जवान मल्लाह—"अजी होश की दवा करो । सभी चीज़ें पहले से चढ़ गई हैं । अनाज का भाव ही देखो, कितना चढ़ गया है ।"

× × ×

हिन्दुस्तान के एक रईस इँगलेंड की सैर करने गए हुए थे । एक दिन आप गाइड के साथ एक पहाड़ी दृश्य देखने गए । वहाँ बहुत देर होगई । गाइड को शराब की प्यास लगी । बोला—"यहाँ एक विचित्र प्रतिध्वनि सुनाई देती है । आप ख़ूब ज़ोर से कहिए—'दो पाइंट बीयर' ।"

राजा साहब ने ख़ूब गला फाड़कर कहा—'दो पाइंट बीयर ।' मगर जब कोई प्रतिध्वनि न सुनाई दी तो बोले—'कुछ भी तो नहीं सुनाई दिया।'

गाइड ने एक होटल की ओर, जो वृक्षों की आड़ में छिपा हुआ था, इशारा करके कहा—'अजी, प्रतिध्वनि लेकर क्या कीजियेगा, वह आदमी बीयर लिये ख़ुद आ रहा है ।'

× × ×

एक महाशय की एक दिन एक युवती से मुठभेड़ हो गई, जो कुछ दिन उनके घर में काम कर चुकी थी । आप सुशिक्षित जीव थे । बिना कुशल-क्षेम पूछे निकल जाना उन्हें शिष्टता के विरुद्ध जान पड़ा । बोले—'क्यों, अभी तुम्हारा विवाह नहीं हुआ ?'

"नहीं महाशय।"

"मैंने तो समझा था तुम्हारा विवाह कबका हो चुका होगा ?"

"नहीं महाशय, अभी तो दोनों ही तैयारी कर रहे हैं ।"

"दो" ! महाशय ने विस्मय से कहा—"क्या दो से विवाह करोगी ?"

"अरे, नहीं बाबूजी, एक मैं और दूसरा वह ।"

× × ×

अध्यापक—"कोई लड़का बतला सकता है, वह कौन है जो सिंह की भाँति आता है और बकरी की भाँति जाता है ?"

विनोद (उम्र ९ साल)—"हाँ गुरुजी, मैं जानता हूँ ।"

अध्यापक—"अच्छा बताओ ?"

विनोद—"ज़मींदार साहब, जब दादा उन्हें बाक़ी चुका देते हैं ।"

× × ×

बालक ने द्वार पर आते हुए मेहमान को देखकर कहा—'आपने बड़ी देर लगाई' ?

मेहमान—"हाँ बच्चा, देर हो गई । तुम मेरे आने से ख़ुश हुए ?"

बालक—'ज़रूर, अब अम्माँ फलों की टोकरी खोलेगी।'

× × ×

दो बाबू लाहौर के एक गाँव में शिकार खेलने गए । मगर अभ्यास न था, कोई शिकार हाथ न आया । सहसा एक सिख सिपाही बंदूक़ लिये हुए आया और देखते-देखते कई चिड़ियाँ गिरा दीं । एक बाबूजी ने प्रशंसा के भाव से कहा—"तुम्हारी बंदूक़ बहुत अच्छी है ।"

सिख—"जी हाँ, यह बंदूक़ मुझे महाराज रणजीत-सिंह ने दी थी ।"

बाबू—"अजी जाओ भी, महाराज रणजीतसिंह को मरे कितने दिन हो गए ।"

सिख—"बाबूजी, कैसी बातें करते हो, दिन जाते क्या देर लगती है ।"

× × ×

बालक जब पास होकर नए क्लास में जाता है और नए-नए विषय पढ़ने लगता है, तो उसे एक प्रकार का गर्व होता है। कैलाश सातवें दरजे में आकर इतिहास पढ़ने लगा था। एक दिन उसने अपनी विद्वत्ता दिखाने के लिये पिता से पूछा—"अच्छा आप बता सकते हैं सन् १८८४ में कौनसी बड़ी लड़ाई शुरू हुई ?"

बाबूजी ने समाचार-पत्र बंद करके रख दिया और बालक के मुख की ओर विचारपूर्वक देखा। सहसा उन्हें जवाब सूझ गया। बोले—"ठीक तो है, उसी साल तुम्हारी अम्माँ से मेरा विवाह हुआ था।"

× × ×

एक बंगाली बाबू एक बिहारी सज्जन के साथ खड़े रेलगाड़ी का इंतज़ार कर रहे थे।

बंगाली—हम तुमसे एक प्रश्न पूछता है, तुम भी हाम से एक प्रश्न पूछो। जो अपने प्रश्न का जवाब ना दे सके वह दोनों की टिकट खरीदे। बोलो मंज़ूर है।

बिहारी—मंज़ूर है।

बंगाली—सामने खरहों का बिल देखता है? इन-का मिट्टी कहाँ गया ?

बिहारी—यह तो मुझे नहीं मालूम, तुम्हीं बताओ।

बंगाली—खरहा पहले नीचे से खोदती है, फिर ऊपर को खोदती है।

बिहारी—लेकिन बिना ऊपर खोदे नीचे कैसे खोदेगा ?

बंगाली—यह तो तुम्हारा प्रश्न हुआ। इसका जोवाब तुम देगा।

बिहारी सज्जन को दोनों टिकट लेने पड़े।

१ स्त्री-रक्षा

स्त्री-जाति का अपमान एक प्रकार का सामाजिक पाप है। प्रत्येक सभ्य-समाज में स्त्री जाति का विशेष रूप से आदर होना चाहिये। वे आदर की पात्री हैं भी। मनुजी का कहना है कि, जहाँ नारियों की पूजा होती है (उचित सम्मान होता है), वहाँ लक्ष्मी का निवास रहता है, तथैव जहाँ नारियों की अपूजा (अपमान) होती है वहाँ लोगों को अपने कामों में सफलता नहीं प्राप्त होती। हिंदू-समाज में इधर स्त्रियों का अपमान अधिकता से होने लगा था। फल स्वरूप हिंदुओं को प्रायः सभी कामों में असफलता होती रही। हमारा यह कहना नहीं है कि, केवल स्त्री जाति का अपमान करने के कारण ही हिंदू जाति की अवनति हुई। अवनति के और भी बहुत से कारण हैं; पर उनमें स्त्री जाति का अपमान भी एक कारण है। स्त्री-जाति की रक्षा का भार पुरुषों ने अपने ऊपर ले रखा है, और यह उचित भी है। ईश्वर ने पुरुष जाति में जो विशेष शक्ति संनिहित की है, उसका उपयोग इसीमें है कि वह अपनी रक्षा के अतिरिक्त स्त्रियों की रक्षा का भार भी अपने ऊपर ले। हिंदू-समाज में स्त्री-जाति अबला नाम से पुकारी जाती है। इन अबलाओं की रक्षा का संपूर्ण भार पुरुषों पर है। प्राचीन हिंदू-समाज में नारियों का आदर था और उनकी रक्षा का पूरा प्रबन्ध था। स्त्री-रक्षा में आदर का भाव संश्लिष्ट है और स्त्रियों के प्रति आदर में यह आवश्यक है कि उनकी रक्षा की जाय।

वर्तमान हिंदू-समाज में न तो स्त्रियों का आदर है और न उनकी रक्षा का प्रबंध है। यह बड़े ही परिताप की बात है। पर यह परिताप सहस्र-गुना अधिक हो जाता है, जब हम देखते हैं कि मुसलमान गुंडे हिंदू स्त्रियों को नाना प्रकार से चरित्र-भ्रष्ट करते हैं; परंतु फिर भी हिंदू-समाज पर्याप्त परिमाण में संक्षुब्ध नहीं होता। जो जाति मरने पर होती है, जिसमें कायरता का प्राधान्य हो जाता है, वही जाति ऐसे अपमान सहन करने में समर्थ होती है। एक जीती-जागती जाति तो ऐसे दुराचरण को एक क्षण के लिये भी सहन नहीं कर सकती। समाचार-पत्रों में नित्य ही यह समाचार पढ़ने को मिलता है कि मुसलमान गुंडों ने हिंदू स्त्रियों का अपमान किया पर हिंदू लोग सिवाय इसके कि अपनी स्त्रियों से और भी अधिक परदा कराएँ—उनको घर के बाहर और भी पैर न रखने दें—इसके सिवाय और कोई दूसरा प्रतीकार नहीं ढूँढते हैं। क्या हमें यह जानने का हक़ नहीं है कि, स्त्रियों का अपमान करने वाले कितने गुंडों को दंड मिला। हम यह नहीं कहते कि हिंदू लोग क़ानून को अपने हाथ में लें, पर उन्हें कम-से-कम गुंडों को गिरफ़्तार कराने में, उन्हें अदालतों द्वारा दंडित कराने में, तो प्रयत्नशील होना चाहिये। पर खेद के साथ कहना पड़ता है कि हिंदुओं के किये यह भी नहीं हो पाता है। गुंडई करने वाले के लिये दंड-विधान है। पर हमारा कहना है कि यह दंड-विधान पर्याप्त

नहीं है। गुंडे हिंदू भी होते है और मुसलमान भी। एक साधारण गुंडा हिंदू होते हुये भी हिंदू स्त्री को छेड़ सकता है, और इसी प्रकार से एक मुसलमान गुंडा किसी मुसलमान स्त्री को परेशान करने से रुक नहीं सकता। ऐसे गुंडों की सज़ा प्रचलित दंड-विधान के अनुसार होसकती है। पर, यदि मुसलमान गुंडों का एक संगठित दल हो, जिनका काम केवल हिंदू स्त्रियों को ही छेड़ने का हो, जो प्रत्येक दशा में हिंदू स्त्रियों की इज्ज़त उतारने पर तुले हुये हों, जिनमें यह भाव भरे गये हों कि हिंदू स्त्रियों का सतीत्व भंग करने से सवाब होता है तो ऐसे गुंडों की सज़ा हमारी राय में प्रचलित दंड-विधान से नहीं हो सकती। ऐसे गुंडों को तो इतना कठोर दंड मिलना चाहिये कि एक बार सज़ा पा चुकने के बाद फिर उन्हें दोबारा गुंडई करने का साहस ही न हो। हमारा हिंदू समाज से यह नम्र निवेदन है कि ऐसे संगठित और 'धार्मिक'-गुंडों को उचित पाठ पढ़ाने के लिये उन्हें सरकारी क़ानून को कठोरतम कराना होगा। यदि हिंदू लोग अपनी स्त्रियों का सम्मान करना चाहते हैं, उनकी उचित रक्षा करना चाहते हैं, तो उन्हें अविलंब ऐसा क़ानून बनवाना चाहिये कि यदि 'धार्मिक' कारणों से प्रवृत्त होकर कोई गुंडई करता हो, तो उसको साधारण गुंडे से तीन-चार गुना अधिक दंड दिया जाय। इसके लिये हिंदुओं को लोकमत जागृत करना चाहिये और व्यवस्थापिका सभा में कानून बनवाने के लिये सचेष्ट होना चाहिये। मुसलमानों का कहना तो यहाँ तक है कि हमारे रसूल की समालोचना, चाहे वह ठीक ही क्यों न हो, कोई इस प्रकार से न करे जिससे उनका दिल दुखे। वे इसके लिये क़ानून बनवाने के फेर में हैं। 'रँगीला रसूल' के मामले को लेकर उन्होंने आकाश पाताल एक कर दिया है। तब हिंदू लोग अपनी स्त्रियों की लाज रखने के लिये क्यों नहीं ज़बरदस्त आंदोलन करते हैं। हमारी राय में एक ओर तो हिंदुओं को 'धार्मिक'-गुंडों की सज़ा बढ़वाने का उद्योग करना चाहिये और दूसरी ओर उन गुंडों को गिरफ्तार कराने में जान पर खेल जाना चाहिये जो गुंडई करके अपने आतंक के ज़ोर से बच जाना चाहते हैं। मुसलमानों के 'धार्मिक'-गुंडेपन का जवाब देने के लिये कुछ लोगों का कहना है कि हिंदू भी उसी प्रकार से सुसंगठित गुंडेपन की सृष्टि करें और, 'शठ के साथ शठता करनी चाहिये', इस मसले को चरितार्थ कर दिखलावें। पर, हम इस मत के समर्थक नहीं हैं। हिंदू-धर्म यह कभी नहीं सिखलाता है कि दूसरे धर्म को माननेवाली किसी रमणी का सतीत्व बिगाड़ना पुण्यकार्य है। यदि हिंदू-धर्म में हमें ऐसी आज्ञा मिले तो हम तो उसे निस्संकोच धर्म मानने से इनकार कर देंगे। वह भी कोई धर्म है जो व्यभिचार को धार्मिक रूप दे! इसलिये मुसलमानों के 'धार्मिक'-गुंडेपन के अनुकरण में हिंदू 'धार्मिक'-गुंडापन बनानेकी ज़रूरत नहीं है। पर मुसलमानों के 'धार्मिक'-गुंडापन का भयंकर रूप दिखलाकर और उसको रोकने के लिये उग्र क़ानून की सृष्टि कराकर हमें अपनी स्त्रियों की रक्षा का पूर्ण प्रयत्न अवश्य करना चाहिये। हमारा यह दृढ़ विश्वास है कि अत्यंत उग्र क़ानून का आश्रय लिये बिना यह विषैला 'धार्मिक'-गुंडापन शांत न होगा और इसके बिना हिंदू-ललनाओं की रक्षा न हो सकेगी। यह भी स्पष्ट है कि यदि हिंदू समाज अपनी स्त्रियों का आदर न कर सकेगा, विधर्मियों से उन्हें न बचा सकेगा, तो निश्चय ही वह नष्ट हो जायगा।

× × ×

२ कनवनक

उधर यह ख़बर पढ़कर संतोष हो रहा था कि अमृतसर के हिंदू-मुसलिम ४०० नेताओं ने आपस में मेल रखने के लिये एक प्रतिज्ञापत्र पर हस्ताक्षर किए हैं, फिर वाइसराय लार्ड इर्विन का सहृदयतापूर्ण भाषण सुनकर वह संतोष आशा का रूप धारण करनेवाला था कि, बरेली, कानपुर और नागपुर के बलवों ने उस आशांकुर को मसल डाला—फिर वही नैराश्य है, वही चिंता, वही विकलता। भारतीयों का जीवन योंही क्या कम दुख मय था कि इस नई विपत्ति ने उस पर आतंक जमाया। हमारे बालक अब स्कूल जाते हुए डरते हैं, स्त्रियाँ घरों से निकल नहीं सकतीं, जीवन नरक तुल्य हो गया है। इन उपद्रवों पर विचार करने से उनमें एक पारिवारिक सादृश्य-सा मिलता है, जिससे परिस्थिति और भी चिंतामय हो जाती है। हिंदू-मुसलमानों में छोटी-छोटी तकरार भी साम्प्रदायिक महत्त्व प्राप्त कर लेती है। कानपुर और नागपुर के उपद्रवों में ऐसा ही हुआ। फिर, बलवा शुरू होजाने के बाद पुलीस की ओर से किसी प्रकार की तत्परता नहीं प्रकट होती। बरेली, कानपुर दोनों ही शहरों में कोतवाल मुसलमान हैं और हिंदू-जनता उनसे संतुष्ट नहीं। फिर यह समझ में नहीं आता

कि इन अधिकारियों को तब्दील क्यों नहीं किया जाता। हमें विश्वास है कि गवर्नमेंट दृढ़ता से काम ले तो वातावरण शीघ्र ही बदल सकता है। वाइसराय के एक भाषण का उतना ही असर हो सकता है जितना हो रहा है। कुछ नेतागण शिमले में जमा होकर दस-बीस शुभ प्रस्ताव पास कर देंगे, और बस।

अगर हिंदुओं ने कभी सारे भारतीय मुसलमानों को अपने अंदर हज़्म कर लेने की कल्पना की थी, तो अब उनकी आँखें खुल जानी चाहिए। मुसलमान भारत के हैं, और भारत में रहेंगे। भारत के सिवा संसार में उनके लिये और कोई स्थान नहीं है। अगर मुसलमानों ने कभी यह स्वप्न देखा था कि वह शांति-प्रिय हिंदुओं को दबाकर मुसलमानी राज्य की स्थापना कर लेंगे, तो अब उनकी आँखें भी खुल जानी चाहिए। हिंदू इतने कमज़ोर नहीं है, जितना उन्होंने समझा था। हाल के तीनों बलवों में हताहतों की संख्या हिंदू-मुसलमानों में लगभग समान रही है। इससे दोनों पक्षों को अपनी-अपनी शक्ति का अंदाज़ हो जाना चाहिए। अगर किसी एक शहर में मुसलमान अधिक संख्या में है, तो दूसरे शहर में हिंदू। अगर एक मुहल्ले में हिंदू अधिक संख्या में है, तो दूसरे में मुसलमान। इसलिए जो लोग उपद्रव करते हैं वे यह जानते हुए करते हैं कि, जिस वक्त हम यहाँ एक हिंदू की हत्या कर रहे हैं, उसी वक्त दूसरे मुहल्ले में एक मुसलमान की हत्या हो रही होगी। यह तो विशुद्ध द्वेषांधता है, जिसमें साम्प्रदायिकता का भी लेशमात्र भाव नहीं, धार्मिकता का कहना ही क्या। साम्प्रदायिकता वह भाव है जो अपने सम्प्रदाय की रक्षा के लिये अपना खून बहादे या विपक्षी का सर्वनाश करदे। यह जब ही हो सकता है जब हिंदू और मुसलमानों के स्थान अलग होते और वे एक दल होकर द्वंद्वी का सामना कर सकते। जब हम जानते हैं कि हरेक घूँसा, जो हम अपने विपक्षी पर चलाते हैं, हमारे ही सम्प्रदाय के किसी व्यक्ति पर पड़ता है, तो इसे उन्माद के सिवा और क्या कहा जा सकता है।

इसमें संदेह नहीं कि ताली दोनों ओर से बजती है, लेकिन ज़्यादती बहुधा मुसलमानों ही की ओर से होती है, इसमें भी संदेह नहीं। जिन शहरों और प्रांतों में हिंदुओं की संख्या मुसलमानों से कई गुनी है, वहाँ अब तक शांति है। अगर हिंदू छेड़ना चाहते तो उन प्रांतों में शांति भंग होगई होती। पर, हिंदू-जनता लड़ाई दंगे से बचती है और कुछ ग़म खाकर भी लड़ाई से बचना चाहती है। उनकी इसी प्रवृत्ति को मुसलमानों ने कायरता समझकर आतंक जमाने का इरादा कर लिया। अगर विद्रोह यों ही बढ़ता गया तो उन प्रांतों में मुसलमानों के लिये बड़ी भयंकर समस्या उठ खड़ी होगी—उतनी ही भयंकर जितनी मुलतान या कोहाट में हिंदुओं के लिये हुई थी। मुसलमानों में दरिद्रता और आलस्य-प्रियता के कारण लफंगों की संख्या अधिक है। अब हिंदू भी, ज़रूरत से मजबूर होकर, अपने में इस प्रवृत्ति को जगा रहे हैं। हिंदू की दृष्टि में शोहदा एक हेय व्यक्ति था, लेकिन अब उसे, कड़वे अनुभव से, मालूम हो रहा है कि समाज को शोहदों की भी ज़रूरत होती है।

अभीतक ख़ैरियत है कि युक्त-प्रांत के नगरों में ही दंगे हुए हैं। नगरों में प्रायः दोनों पक्षों की संख्या समान है। कमीबेशी है तो बहुत थोड़ी। देहातों में अभी तक यह आग नहीं फैली है। लेकिन यही हाल रहा तो देहातों में भी आग की लपटें पहुँचेंगी और तब अशांति का विशाल रूप नज़र आएगा।

और इन उपद्रवों में होता क्या है? बेचारे राहगीर बेगुनाह मारे जाते हैं। लड़ने वाले तो जत्थे बनाकर एक-एक साथ खड़े होते हैं। उनका यही काम होता है कि आने जाने वालों की दुर्गति करें। एक आदमी किसी रोगी की दवा लेने जाता है। रास्ते में उसे छुरी भोंक दी जाती है, गरीब घर तक भी नहीं पहुँचने पाता! एक आदमी अपने क्षुधा-पीड़ित बिना माँ के बालक के लिये दूध लेने बाज़ार जाता है, पर रास्ते में पत्थरों से मारकर गिरा दिया जाता है!! एक बालक पाठशाला से लौटा आरहा है। उसकी उम्र ९, १० वर्ष से अधिक नहीं; उसे पकड़कर पैरों से कुचल दिया जाता है!!! 'धर्म' के नाम पर ऐसी-ऐसी पैशाचिक लीलायें होती हैं। अभागे भारत को ये दिन देखने भी बदे थे। इस विषय पर माननीय लाला लाजपतराय के विचार क्या हैं, सुनिए—

"क्या आर्यसमाज के नेताओं को अभी यह अनुभव हुआ या नहीं कि रंगीला रसूल, या रिसाला वर्तमान

जैसी पुस्तकों से उनके हित को जौ भर भी लाभ नहीं हुआ ? फिर क्या वे ऐसी पुस्तकों का प्रकाशन रोकने के लिये क्रियाशील न होंगे। ज्यों ही इस प्रकार की कोई पुस्तक निकले उसका स्पष्ट रूप से तिरस्कार करना चाहिए। और, यदि प्रकाशक अथवा लेखक पर कोई अभियोग चलाया जाय, तो उनके साथ लेशमात्र सहानुभूति भी न होनी चाहिए, और न कोई मदद देनी चाहिए। यह जवाब कि मुसलमान ऐसा प्रचार-कार्य कर रहे हैं, न्याय और नीति की दृष्टि से निस्सार है। इस स्पष्ट कर्तव्य के सम्पादन में मान और गौरव के विचारों को बाधक न होने देना चाहिए। यदि शिक्षित हिंदू और मुसलमान इस नीति का पालन करने लगें तो वे कीट, जो ऐसी पुस्तकें प्रकाशित करते हैं, शीघ्र ही नष्ट न भी हों तो अदृश्य अवश्य हो जायँगे।"

इस वक्तव्य के बाद लालाजी ने हिंदू और मुसलमान लीडरों से यह प्रश्न किया है—'हम कबतक अपनी मातृभूमि के गौरव, कीर्ति और राजनैतिक तथा राष्ट्रीय हितों पर आघात करते जायँगे ?'

हम भी अपने लीडरों से यही प्रश्न करते हैं।

× × ×

३. चीन में जापानी माल का बहिष्कार

चीन की राष्ट्रीयता के इस समय दो प्रधान शत्रु हैं—ब्रिटेन और जापान। इनमें जापान निकटतर होने के कारण अधिक भयानक है। उसके विशेषाधिकार चीनियों को और भी खटकते हैं। चीनी यह जानते हैं कि ब्रिटेन को वह आसानी से नीचा दिखा सकते, यदि जापान इस मामले में न कूद पड़ता। चीनी जापान को अपना मित्र बनाए रखने के लिये यथासाध्य बराबर प्रयत्न करते रहे हैं, और हमेशा दबते आए हैं; पर अपनी शक्ति में उन्मत्त जापान को यह कभी न सूझी कि इस ४०करोड़ के महान राष्ट्र को अपना मित्र बनाए रखे। इधर तो चीनी अंग्रेज़ों से उलझ रहे थे, उधर जापान ने चीनियों के विरुद्ध अपने लड़ाकू-जहाज़ और अपनी सेनाएँ भेजनी शुरू कर दीं। नतीजा यह हुआ है कि आज चीन में अंग्रेज़ों ही की भाँति जापानी भी घृणा की दृष्टि से देखे जा रहे हैं। कैसा ही भला जापानी चीन मे किसी गली से निकले, असहाय बालक और स्त्रियाँ तक उसकी उपेक्षा करती हैं। जापानी होना ही चीन की निगाह में पाप है। यह राष्ट्रीय-क्रोध अब प्रतिहिंसा का रूप धारण कर रहा है, और चीन मे जापानी माल के बहिष्कार की बड़े ज़ोर-शोर से तैयारियाँ की जा रही है। शांघाई, कैंटन, हैंकाओ, इत्यादि नगरोंमे इसका पूरा प्रबंध हो चुका है। दक्षिण चीन मे सर्वत्र समितियाँ संगठित होगई हैं। यह बहिष्कार १० जून से आरम्भ हुआ है, जब जापान ने सिंगतो मे अपनी सेना भेजी थी। केन्द्रीय जापानी बहिष्कार कमिटी ने कार्य को सफलतापूर्वक चलाने के लिये निम्नलिखित आदेशों की घोषणा की है.—

(१) बन्दरों तथा बाहर के बड़े-बड़े व्यापारियों को तार भेजे जा रहे हैं कि वे जापानी माल का आयात बन्द करदें।

(२) उन सब चीनियों को, जिन्होंने जापानी बैंकों में अपने रुपए जमा कर रखे हैं, परामर्श दिया गया है कि वे तुरन्त अपने रुपए निकाललें।

(३) चीन के सारे बैंक जापानी बैंकों से सम्बन्ध-विच्छेद करलें।

(४) चीन के जहाज़, स्टीमर, रेलगाड़ियाँ जापानी माल को लेजाना बंद करदें।

(५) सब चीनी दूकानदारों को जापानी बहिष्कार-संघ द्वारा नियुक्त जाँच कमेटी को नियमित रूप से अपनी दूकानों तथा गोदामों की तलाशी देनी पड़ेगी।

देशद्रोही व्यापारियों का नियमन करने के लिये इन दण्डों की व्यवस्था की गई है —

(१) १० जून के बाद जो आदमी जापानी माल बेचेगा उसे १० दिन तक पिंजड़े में क़ैद किया जायगा। इसके उपरान्त ५ या उससे कम दिनों तक उसे सड़कों पर फिराया जायगा और उसकी जायदाद ज़ब्त करली जायगी।

(२) १० जून के बाद जापानी माल का आयात करने वाले को ७ दिन तक पिंजड़े में क़ैद किया जायगा।

(३) कोई आदमी, जो किसी गुप्त उद्देश्य से जापानी बहिष्कार संघ को तोड़ने का षड्यंत्र करेगा, २० या उससे कम दिन के लिये पिंजड़े में क़ैद किया जायगा।

(४) कोई आदमी, जो कच्चा माल, खाद्य द्रव्य, अथवा और कोई आवश्यक पदार्थ पहुँचायगा, २० दिन या उससे कम अवधि तक पिंजड़े में कैद किया जायगा। इसके अतिरिक्त उसे उतना ही जुर्माना देना पड़ेगा जितने का माल उसने पहुँचाया हो।

(५) जो 'बहिष्कार संघ' का अनादर करेगा, अथवा जापानियों से कोई सम्बंध रखेगा, उसकी जायदाद ज़ब्त करली जायगी।

क़ैद के पिंजड़े मुख्य मुख्य स्थानों पर लगाए गए हैं। पिंजड़ों के पास बड़े-बड़े पोस्टर लगे हुए हैं—"पिंजड़े विदेशियों के ग़ुलामों को किराए पर देने के लिये। स्थान चाहनेवाले विदेशियों के प्रत्येक ग़ुलाम का स्वागत।"

इस बहिष्कार के पहले से ही जापानी माल की खपत चीन मे कम हो रही है। नीचे दी हुई तालिका से मालूम होता है कि चीनियों को इस उद्योग मे कितनी सफलता मिली है —

निर्यात

	१९२७	१९२६
मञ्चूरिया को—	२४६३७००० येन	३८५३८००० येन
उत्तरीय चीन को	५६०६७००० ,,	५५१३२००० ,,
मध्य चीन को	६३०१६००० ,,	१०१८२९००० ,,
दक्षिण चीन को	२९६०००० ,,	१०७०६००० ,,
कानटुंग को (विशेषाधिकार का प्रान्त)	३९४०२००० ,,	५००४०००० ,,
हांगकांग को	२८४६२००० ,,	२१४०८००० ,,

इन आंकड़ों को देखने से मालूम होता है कि उत्तरीय चीन और हांगकांग को छोड़कर और सब प्रांतो के निर्यात में कमी हुई है । उत्तरीय चीन में जापान के मित्र चंग-सो-लिन का प्राधान्य है और हांगकांग अंग्रेज़ो के अधिकार में है । दक्षिण चीन में, जहाँ राष्ट्रीय सरकार स्थापित हो गई है, विशेष कमी हुई है —

आयात

	१६२७		१६२६	
मचूरिया से	१०७६७०००	येन	६०६१०००	येन
उत्तरी चीन से	३४२०५०००	,,	३०७३००००	,,
मध्य चीन से	२४६८३०००	,,	४०१६५०००	,,
दक्षिण चीन से	४३६६०००	,,	३४४८०००	,,
कामटुंग से	५४५४८०००	,,	६७८१७०००	,,
हांगकांग से	१०१२०००	,,	७१५०००	,,

ये अंक बहिष्कार-घोषणा के पूर्व के है । बहिष्कार के बाद से तो जापानी व्यापार को बहुत अधिक धक्का पहुँचा है । मगर बहिष्कार में उन्हीं राष्ट्रों को सफलता मिलती है, जिनकी व्यवस्था अपने हाथ मे हो ।

× × ×

४ भारतीय सभ्यता के शत्रु

एक ओर जहा प्राचीन भारतीय सभ्यता के प्रशसकों और नवीन भारत की समस्याओं को ठीक रूप में व्यक्त करनेवालों की पश्चिम में कमी नही है, वहा एक बहुत बड़ा दल उन लोगो का है जो भारत को सभ्य-जातियों की पिछली श्रेणी में भी स्थान देने को तैयार नहीं । इनमें कुछ धार्मिक, कुछ व्यापारिक, कुछ राजनैतिक, और कुछ व्यक्तिगत स्वार्थों तथा कितने ही अज्ञान के कारण भारत को एक असभ्य जगली देश और यहाँ के मनुष्यों को बर्बर समझते हैं । इस दल में राजनैतिक स्वार्थ वाले अंग्रेज़ों और पादरियों की ही सख्या अधिक है । ईसाई धर्म के प्रचार के नाम पर हरसाल भारत मे जो अरबों रुपये व्यय किये जाते हैं, उसका अधिकाश अमेरिका और इँगलैंड की 'सभ्य' और धर्म की परवा न करनेवाली जनता से भारत के 'जगलियों' को सभ्य बनाने की चेष्टा के नाम पर ही वसूल किया जाता है ! इधर असहयोग आंदोलन के बाद, जब से इस देश की राष्ट्रीय-जागृति ने अमेरिकनों का ध्यान अपनी ओर आकर्षित किया, तब से इस देश में विदेशी—विशेषतः अमेरिकन—यात्रियों का ताँता लग गया ; और, इसीलिये अब ईसाई धर्म-प्रचारकों और राजनैतिक कारणों से भारत को असभ्य एव जंगली मशहूर कर रखने वालों की पोल खुलने लगी है । फिर भी भारतीय-सभ्यता के शत्रुओं का दल अपने प्रचार-कार्य में सर-गर्म है । यूरोप के विभिन्न देशों में सिनेमा, ट्रैक्ट तथा बड़ी-बड़ी पुस्तकों एवं व्याख्यानों द्वारा भारतीयों के जगलीपन की भावना सीधी-सादी जनता के हृदय में बैठायी जाती है । अभी साल भर नहीं हुआ, कि 'स्टैंडर्ड लिटरेचर कम्पनी' की एक पुस्तक में भारतीय स्त्रियों के सम्बन्ध में बहुत वाहियात और अनुचित बातें लिखी गई थीं । हाल में हमें ससार-प्रसिद्ध नार्वोजियन उपन्यास लेखक नट हैमसन की 'पैन' नामक पुस्तक पढने का अवसर प्राप्त हुआ । मि० हैमसन १६२० में 'भूमि का विकास' नामक उपन्यास लिखने के लिये 'नोबल' पुरस्कार पा चुके हैं । ये सरल, स्वभाव के नम्र और विद्वान पुरुष समझे जाते हैं, पर अपनी इस 'पैन' पुस्तक मे इन्होंने भी इसी दल द्वारा प्रचारित विवरणों के आधार पर भारतीय, और विशेषतः तामिल स्त्रियो के सम्बन्ध मे ऐसी भद्दी, झूठी और अपमानजनक बातें लिखी है कि, खून खौल उठता है । इस पुस्तक को पढ़नेवाला भारत से अपरिचित पाठक तो यही समझेगा कि भारत की सभी स्त्रिया वेश्याएँ हैं, और कोई विदेशी जिस गाव मे चला जाय, वहा की खूबसूरत लड़कियाँ उसे अपने घर मे लेजाकर रात भर अपने साथ अवश्य रक्खेगी ! कोई इसका विरोध भी न करेगा—मानो यह यहा का साधारण चारित्रिक कार्य-क्रम है !!

यह एक ऐसे ज़िम्मेदार लेखक की रचना का हवाला है, जिसकी पुस्तकों के अनुवाद ससार की सभी उन्नत भाषाओं मे निकल गये है, और जिसकी रचनाएँ सभ्य साहित्यिक-समाज में बड़े चाव से पढ़ी जाती हैं । हमें यह विश्वास नही है कि इस पुस्तक के लेखक ने द्वेष-भाव से ऐसा लिखा होगा—उनका अज्ञान और भारतीय-सभ्यता के शत्रुओं द्वारा प्रकाशित विवरणों से प्रभावित होना ही इसका प्रधान कारण समझ पड़ता है । पर ऐसी रचनाओं से एक ऐसे देश की, जो इस समय पराधीनता की ज़ंजीरों को तोड़ने के लिये छटपटा रहा है, और जिसके विरोधी बहुत शक्तिमान और साधनयुक्त हैं, कितनी हानि हो सकती है, यह प्रत्येक भारतीय अनुभव करेगा ।

× × ×

४. स्वदेश और संसार

इसमें तो कोई संदेह ही नहीं कि संसार भर को भाई समझने का आदर्श स्वदेश-प्रेम से कहीं ऊँचा है। संसार का कर्ता एक है, पिता एक है, इसलिये संसार एक कुटुंब के समान है। या यों कहो कि जब वही आत्मा चर और अचर, जड़ और चेतन, दोनों ही में विद्यमान है तो फिर प्राणियों में भेद-भाव मानना, उनको एक दूसरे से पृथक् समझना, मूर्खता के सिवा और क्या हो सकता है। अगर इस सत्य को व्यवहार में लाया जाय तो संसार की क्या दशा होगी। केवल राष्ट्र और जातियों का अस्तित्व न मिट जायगा, बल्कि कुटुंब और परिवार का भी अंत हो जायगा। न कोई किसी का पिता रहेगा न पुत्र, न पति न पत्नी; न राजा न प्रजा, न स्वामी न सेवक। यदि ऐसा हो सकता तो आज यह संसार स्वर्ग होता। अतीत के आदिकाल में अवश्य ही मनुष्य मात्र एक परिवार की भाँति रहते होंगे। ज्यों-ज्यों उनकी संख्या बढ़ी, वे भिन्न-भिन्न देशों में बसे। पृथक्-पृथक् जातियाँ और उपजातियाँ बनीं और अभीतक हम आत्मिक-विकास की इसी कक्षा तक पहुँचे हैं। हम आगे जा रहे हैं, इसमें शक नहीं; किंतु आगे जाने के लिये बीच का रास्ता तय करना ज़रूरी है। हम फाँदकर बीच की मंज़िलें छोड़कर आगे क़दम नहीं रख सकते। उस परम पद पर पहुँचने के लिये हमें प्रकृति के अटल नियमों का पालन करना पड़ेगा। एकता से अनेकता और अनेकता से एकता—यही सृष्टि का संक्षम इतिहास है। लेकिन प्रत्येक चक्र में यह एकता पूर्व से कुछ परिमार्जित, कुछ संस्कृत, कुछ पवित्रतर हो जाती है, अन्यथा इस चक्र, इस दौर, की उपयोगिता ही क्या हो? एक से अनेक होते समय हम विकास के जिस पद पर थे, अनेक से फिर एक होते समय उससे अवश्य ही उच्चतर पद पर होंगे, नहीं तो यह लम्बा रास्ता नापने की ज़रूरत ही क्या थी। एक ज़माना था जब परिवार ही हमारा सर्वस्व था। फिर जिर्गे—समूह—बने, जिर्गों से गुण, कर्म और स्वभाव के अनुसार जातियाँ बनीं, जातियों से राष्ट्र का निर्माण हुआ; इन मध्यवर्ती कक्षाओं को तय करते हुए हम राष्ट्रीयता की कक्षा तक पहुँचे हैं। इसके आगेवाली मंज़िल मनुष्यमात्र की एकता है। मगर यह युग राष्ट्रीयता का है। आज राष्ट्र ही हमारी प्रधान वस्तु है। परिवार, जाति, सभी उसके सामने गौण है। जिन राष्ट्रों ने राष्ट्रीयता की कक्षा पास कर ली है, राष्ट्र को उन्नति के शिखर पर पहुँचा चुके हैं, वे ही संसार-भर की एकता की ओर अग्रसर हो सकते हैं। जो जातियाँ अभी राष्ट्रीयता की मंज़िल तक भी नहीं पहुँच सकीं, जो अभी मत-मतांतरों के दलदल में फँसी हुई हैं, उन्हें इसका कदापि अधिकार नहीं कि वे भूमंडल-व्यापी भ्रातृत्व का स्वप्न देखें। पहले अपने को, अपने परिवार को, अपनी जाति को राष्ट्र पर बलिदान करना सीखो। पहले ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र की बेड़ियों को हटाओ, राष्ट्र में भाई-चारे का व्यवहार करो, इसके बाद तुम्हें संसार भर को भाई समझने का हक़ होगा। जो प्राणी राष्ट्र की उपेक्षा करके संसार से नाता जोड़ता है, उसके विषय में यही कहा जा सकता है कि, राष्ट्रों के संग्राम से मुँह मोड़ता है, क़दम पीछे हटाता है, वह बिना समर के मैदान में उतरे शांति-शांति की हाँक लगाता है। वह या तो यह नहीं जानता, या जानकर अजान बनता है, कि समर में सफल होने के बाद ही शांति मिलती है। यूरोप के उन्नत राष्ट्रों के मुख से तो सार्व-भौमिकता की बातें शोभा देती हैं—रोमा रोलैंड और रसेल दुर्बल जातियों को कुचलते हुए भी संसार को एकता का उपदेश दे सकते हैं; लेकिन जब वही आदर्श और भ्रातृत्व की बड़ी-बड़ी बातें हम अपने युवकों के मुँह से सुनते हैं, तो हमें हँसी आती है। मेंढकी भी मदारों को चली! हमें तो इन बड़ी-बड़ी बातों के परदे में पस्त-हिम्मती ही छिपी हुई दीखती है। समर से मुँह मोड़कर पीछे हटनेवाले प्राणी के लिये आदर्शवादिता ही का सहारा रह जाता है। शांति दो प्रकार की होती है; एक वीरों की शांति, दूसरी हिम्मतहारों की शांति। वीरों की शांति का मूल्य बलिदान है, दूसरे प्रकार की शांति कौड़ियों के मोल बिकती है; केवल ज़रा देर के लिये आत्म-सम्मान को भूल जाने की ज़रूरत है, बस ज़रा आँखों में आँसू भर-कर, हाथ बाँधे हुए, सामने ललकारनेवाले प्रतिद्वंद्वी के पैरों पर गिर पड़ना काफ़ी है। जिसे यह शांति पसंद हो वह उसके लिये साधना करे, हम यह शांति नहीं चाहते। क्या आपको मालूम है कि ऐसे शांति के उपासकों की संसार-विजयी राष्ट्रों के सामने क्या दशा होगी? उन्हें उस दिव्य-मंडली में घुसने भी न दिया

जायगा। वे दुत्कार कर निकाल दिए जायँगे। अगर हमारे होनहार युवकों की यही मनोवृत्ति है, वे अभी से राष्ट्र-संग्राम से मुँह मोड़ने लगे हैं, राष्ट्रीयता के नाम से उन्हें घृणा होने लगी है, साहित्य में स्वदेश की चर्चा भी उन्हें असह्य हो रही है, तो ऐसे राष्ट्र की ईश्वर ही रक्षा करे।

× × ×

६ "भारतमाता"

मिस कैथेराइन मेयो ने उपरोक्त पुस्तक लिखकर अगर भारत पर अन्याय किया है, तो उपकार भी अवश्य किया है। अन्याय यह है कि उन्होंने हमारी वर्तमान कुदशा का सारा दोष हमारे ही ऊपर रख दिया है, अंग्रेज़ी सरकार को सर्वथा निर्दोष सिद्ध किया है। और उपकार यह कि हमारे आचार-विचार, रीति-नीति की तीव्र आलोचना करके उन्होंने मानो कीट और दुर्गंध में पड़े हुए सोनेवाले मनुष्य के कानों पर शंख बजा दिया। मिस मेयो की भाषा कठोर है, उनकी आलोचनाएँ भी एकांगी हैं; पर हैं वे सत्य। बाल-विवाह, बहु-विवाह, नारी-दुर्दशा, आरोग्य के नियमों से अनभिज्ञता आदि प्रश्नों पर उन्होंने जो बातें कही हैं, उनके दोषी हम स्वयं हैं। अगर भारतीय नारियों में आज केवल दो प्रतिशत साक्षर हैं, तो यह किसका दोष है? सरकार का कदापि नहीं। अगर ६ करोड़ अछूत आज भी समाज के त्याज्य अंग बने हुए हैं, तो यह किसका दोष है? अगर हमारी गलियों में आज भी बिना नाक बन्द किए निकलना कठिन है, सड़कों पर लोग निस्संकोच भाव से कूड़ा फेंकते हैं, नालियों से सडास का काम लेते हैं, तो यह किसका दोष है? अगर देहातों में दरवाज़े पर गोबर के ढेर लगाए जाते हैं, मकानों के सामने गढ़े खोदे जाते हैं तो यह किसका दोष है? अगर हम तेल में पानी और घी में चर्बी मिलाकर बेचते हैं, भोज्य पदार्थों की दूकानों को मक्खियों से बचाने की परवा नहीं करते, तो यह किसका दोष है? गोरक्षा हमारा धर्म है। इसके लिये हम मनुष्यों का ख़ून बहाने को भी तैयार हो जाते हैं, लेकिन ग्वाले को फुके का व्यवहार करते और दुर्बल बछड़ों को लड़खड़ाते हुए अपनी माता के पीछे घिसटते देखकर हमें ज़रा भी क्रोध नहीं आता! यदि मिस मेयो ने भारतीय-समाज के उद्धार के उद्देश्य से यह पुस्तक लिखी होती, तो हम उनका यश मानते; पर उनका राजनैतिक उद्देश्य यह मालूम होता है कि भारत की बुराइयाँ दिखाकर उसे स्वराज्य के अयोग्य सिद्ध करें। यही कारण है कि जिन बुराइयों का दायित्व भारतीय बहुमत पर है, उनकी तो बड़ी निर्दयता से आलोचना की गई है; और जिन बातों की ज़िम्मेदारी अंग्रेज़ी सरकार पर है, उनकी चर्चा ही नहीं की गई। अगर भारत मैलेरिया, प्लेग, हैज़ा आदि भयंकर बीमारियों का शिकार हो रहा है, तो क्या यह सोलहों-आने देशवासियों का क़सूर है? सरकार पर कोई ज़िम्मेदारी नहीं?

× × ×

७ अंग्रेज़ी फ़िल्मों की प्रचार-योजना

अमेरिका में सिनेमा फ़िल्मों का व्यवसाय दिन-दिन बढ़ता जा रहा है। एक अर्थशास्त्र के विद्वान ने हिसाब लगाया है कि अनाज और ऊन और मोटरों के बाद फ़िल्म ही संयुक्त-प्रदेश अमेरिका का सबसे बड़ा व्यवसाय है। अमेरिकन फ़िल्म आज समस्त संसार में व्यापक हो रहे हैं। भारतवर्ष का कोना-कोना, चीन, जापान, रूस, अफ़्रिका, दक्षिण अमेरिका, जावा, फ़िलिपाइन, सारांश यह कि कोई ऐसा बड़ा नगर नहीं है, जहाँ अमेरिकन फ़िल्मों का प्रचार न हो। यहाँतक कि इँगलैंड में भी अमेरिकन फ़िल्म का प्रचार इतना बढ़ गया है कि अंग्रेज़ी सरकार ने अंग्रेज़ी फ़िल्म के व्यापार को जीवित रखने के लिये प्रत्येक मंच पर अंग्रेज़ी फ़िल्मों की एक निर्दिष्ट संख्या का दिखलाया जाना अनिवार्य कर दिया है। इँगलैंड अमेरिका का दोस्त है, पर यह वृद्धि उसकी आँखों में खटकती है। खुल्लमखुल्ला तो वह कुछ नहीं कहता, पर गुप्त रूप से अमेरिकन फ़िल्मों का बहिष्कार करना चाहता है। अँगरेज़ी फ़िल्म कम्पनियों की ओर से, थोड़े दिन हुए, एक महाशय भारत आए थे। आपने यहाँ के उच्च सिविल अधिकारियों और बड़े-बड़े राजों से भेंट की और अब आपने एक रिपोर्ट प्रकाशित की है, जिसमें दिखाया गया है कि अमेरिकन फ़िल्म अँगरेज़ी जीवन के कलुषित रूप दिखा-दिखाकर इँगलैंड को भारत की दृष्टि में अपमानित कर रहे हैं, अतएव समय आ गया है अब भारत गवर्नमेंट को इन फ़िल्मों का कठोरता के साथ सेंसर करना चाहिए। आपका कथन है कि अँगरेज़ी वैवाहिक जीवन के जैसे दृश्य इन फ़िल्मों

में दिखाए जाते हैं। उन पर वेश्याओं को भी लज्जा आती है, मानो इँगलैंड में वैवाहिक जीवन का अंत ही गया और सभी विवाहित स्त्रियाँ दरजनों प्रेमियों के साथ रंग-रलियाँ मनाने ही में जीवन व्यतीत करती हैं।

इसमें संदेह नहीं कि उक्त महाशय ने भारत के हित के विचार से यह रिपोर्ट नहीं लिखी। उनका अभिप्राय केवल अमेरिकन फ़िल्मों के विरुद्ध आंदोलन करना है, पर, यदि सरकार फ़िल्मों का सेंसर करे तो भारतीय-जनता पर उसका एहसान होगा। भारत के चित्र-मंचों पर आजकल जो चित्र दिखाए जाते हैं, वे बहुधा आपत्तिजनक होते हैं, और उन दृश्यों का असर हमारे युवकों और युवतियों पर अच्छा नहीं पड़ सकता। वे जब देखते हैं कि इँगलैंड जैसे समझत देश में आचरण की पवित्रता की यह दशा है, तो सदाचार का महत्त्व उनकी निगाह में कम हो जाता है। मगर इसका ज़िम्मा कौन ले सकता है कि धन पर प्राण देनेवाले अंग्रेज व्यापारी इस विषय में अमेरिका के व्यापारियों की अपेक्षा उन्नतर व्यापारिक आदर्श का पालन करेंगे।

× × ×

८. सुधा'

'सुधा' का पहला अंक यथासमय प्रकाशित होगया। हम उसका हृदय से स्वागत करते हैं। छपाई साधारण, चित्र आकर्षक और लेख अच्छे हैं। श्री हेमचंद्र जोशी का 'भारत में सनातन निरीश्वरवाद', श्री गौरीशंकर हीराचंद ओझा का 'शिवाजी का जन्मदिन' और प्रोफ़ेसर रामदासजी गौड़ का 'परलोक' बहुत उच्च कोटि के लेख हैं। श्री शिवपूजनसहाय की "सुधा" ने तो साहित्य-सुधा की धारा-सी प्रवाहित कर दी। श्री पंडित शालग्राम जी शास्त्री ने "यज्ञोपवीत" का महत्व दिखाते हुए अपनी ज़राफ़त को निबाहा है। सपादकीय संमति में भी विषय-वैचित्र्य की छटा है। हमें यह पढ़कर आनन्द हुआ कि सुधा राजनीति को भी अपनावेगी और प्रभा के रिक्त स्थान की पूर्ति करेगी। सम्पादक श्री० दुलारेलाल भार्गव तथा प० रूपनारायण पांडेय। प्रकाशक गंगा-पुस्तक-माला लखनऊ, पृष्ठ सख्या १२० है और वार्षिक मूल्य ६॥)

चित्र-चर्चा

१. ध्यान-मग्ना

एक नव-यौवना स्त्री निज मंदिर में अपने पति का स्मरण कर रही है। अपने सामने रखे हुए आइने को हाथ मे उठाकर मुखाकृति देखती है। दाहिने कान के कर्णफूल को ठीक करती हुई, वह स्वयं ही अपने रूप लावण्य पर मुग्ध हो रही है। उधर हृदय में पति का ध्यान और इधर आरसी द्वारा अपने रूप गर्व का निदर्शन उसके यौवन-सौंदर्य को द्विगुणित कर रहा है। उसकी इस ध्यान-मग्नावस्था का श्रीरामेश्वरप्रसादजी वर्मा चित्रकार ने बहुत-ही उपयुक्त चित्र खींचा है। पाठक देखेंगे कि चित्र के नख-से-शिख तक यही अवस्था टपक रही है।

× × ×

२. कृष्ण-जन्म

कंस के कारागार में श्रीवसुदेव-देवकी बन्दी की दशा में विद्यमान हैं। कारागार की यातनाओं ने उनकी मुखाकृतियों में दौर्बल्य और भीषण क्लेशों के चिह्नों का समावेश कर दिया है। अर्धरात्रि के घनघोर अंधकार के समय उसी बन्दीगृह में भगवान कृष्ण प्रकट होते हैं। माता देवकी बालक कृष्ण को गोदी में लिये हुए सतृष्ण तथा भयाकुल नेत्रों से उसकी ओर देख रही हैं। पास ही बैठे हुए वसुदेवजी कंस की निरंकुश मनोवृत्ति और भविष्य की अमंगल-जनक सूचना पर विचार कर रहे हैं। आनंद और विषाद का कैसा सुंदर संमिश्रण है। इस चित्र के रचयिता हैं—श्री० शारदाचरणजी उकील, जिन्होंने इस नवीन प्रकार की चित्रकला में अच्छी ख्याति प्राप्त की है। आपके चित्रों पर पूना कला प्रदर्शिनी में स्वर्ण पदक प्रदान हुआ है, और दो चित्रों पर प्रथम उपहार प्राप्त हुए है। हम उकील महोदय को पाठकों तथा अपनी ओर से इस सफलता पर बधाई देते हैं। आपके ये पदक-प्राप्त चित्र हम किसी आगामी अंक में 'माधुरी' के पाठकों की भेंट करने की चेष्टा करेंगे।

× × ×

३. हंस-संदेश (नं० २)

श्रावण के अंक में हंसदूत नं० १ का चित्र दिया जा चुका है। उसी दशा के बाद का यह चित्र है। हंस श्रीराधाजी की विरह-विकलता का सारा समाचार श्रीकृष्ण महाराज को सुनाने के लिए द्वारिकापुरी को प्रस्थान करता है। द्वारिकापुरी में श्रीकृष्णजी अपने सुसज्जित महल में बैठे हुए हैं। संगीत की मधुर ध्वनि चारों ओर गूँज रही है। पीछे मुहासिब लोग बैठे हुए हैं। अचानक कृष्णजी की दृष्टि महल में लगी हुई एक नीलम की खूँटी पर जाती है, और उस पर बैठा हुआ एक हंस दिखाई देता है। वह हंस बड़े ही मर्मस्पर्शी शब्दों में श्रीराधाजी की दशा का वर्णन करता हुआ कहता है कि—आप तो यहाँ निश्चिंतता से आमोद-प्रमोद में आनन्दानुभव कर रहे हैं और उधर आपकी राधाजी आपकी जुदाई में अचेतनावस्था में पड़ी हुई हैं। वीणा की ध्वनि बन्द हो गई, श्रीकृष्ण महाराज चिंता-सागर में निमग्न हो गए। इसी दशा का सुंदर चित्रण हमारे कुशल चित्रकार श्रीरामनाथ गोस्वामी ने किया है। पाठकों के ध्यानपूर्वक चित्र की ओर देखने से प्रत्येक भाव स्पष्ट होजायगा।

"माधुरी" के नियम—

मूल्य-विवरण

माधुरी का डाक-व्यय-सहित वार्षिक मूल्य ६॥), छ मास का ३॥) और प्रति संख्या का ॥=) है। वी० पी० से मँगाने से =) रजिस्ट्री के और देने पड़ेंगे। इसलिये ग्राहकों को मनीऑर्डर से ही चंदा भेज देना चाहिए। भारत के बाहर सर्वत्र वार्षिक मूल्य ८) छ महीने का ४॥) और प्रति संख्या का ॥) है। वर्षारंभ श्रावण से होता है लेकिन ग्राहक बननेवाले सज्जन जिस संख्या से चाहें ग्राहक बन सकते हैं।

अप्राप्त संख्या

अगर कोई संख्या किसी ग्राहक के पास न पहुँचे, तो उसी महीने के अंदर कार्यालय को सूचना देनी चाहिए। लेकिन हमें सूचना देने के पहले स्थानीय पोस्ट-ऑफ़िस में उसकी जाँच करके डाकख़ाने का दिया हुआ उत्तर सूचना के साथ भेजना ज़रूरी है। उनको उस संख्या की दूसरी प्रति भेज दी जायगी। डाकख़ाने का उत्तर साथ न रहने से सूचना पर ध्यान नहीं दिया जायगा, और उस संख्या को ग्राहक ॥=) के टिकट भेजने पर ही पा सकेंगे।

पत्र-व्यवहार

उत्तर के लिये जवाबी कार्ड या टिकट आना चाहिए। अन्यथा पत्र का उत्तर नहीं दिया जा सकेगा। पत्र के साथ ग्राहक-नंबर ज़रूर लिखना चाहिए। मूल्य या ग्राहक होने की सूचना मैनेजर "माधुरी" नवलकिशोर-प्रेस (बुकडिपो) हज़रतगंज, लखनऊ के पते से आनी चाहिए।

पता

ग्राहक होते समय अपना नाम और पता बहुत साफ़ अक्षरों में लिखना चाहिए। दो-एक महीने के लिये पता बदलवाना हो, तो उसका प्रबंध सीधे डाकघर से ही कर लेना ठीक होगा। अधिक दिन के लिये बदलवाना हो, तो १५ रोज़ पेश्तर उसकी सूचना माधुरी-ऑफ़िस को दे देनी चाहिए।

लेख आदि

लेख या कविता स्पष्ट अक्षरों में, काग़ज़ के एक ही ओर संशोधन के लिये इधर-उधर जगह छोड़कर, लिखी होनी चाहिए। क्रमशः प्रकाशित होने योग्य बड़े लेख संपूर्ण आने चाहिए। किसी लेख अथवा कविता के प्रकाशित करने या न करने का, उसे घटाने-बढ़ाने का तथा उसे लौटाने या न लौटाने का सारा अधिकार संपादक को है। अस्वीकृत लेख टिकट आने पर ही वापस किए जा सकते हैं। सचित्र लेखों के चित्रों का प्रबंध लेखकों को ही करना चाहिए।

लेख, कविता, चित्र, समालोचना के लिये प्रत्येक पुस्तक की २-२ प्रतियाँ और बदले के पत्र इस पते से भेजने चाहिए—

संपादक "माधुरी"

नवलकिशोर प्रेस (बुकडिपो), हज़रतगंज, लखनऊ।

विज्ञापन

किसी महीने में विज्ञापन बंद करना या बदलवाना हो, तो एक महीने पहले सूचना देनी चाहिए।

अश्लील विज्ञापन नहीं छपते। छपाई पेशगी ली जाती है। विज्ञापन की दर नीचे दी जाती है—

१ पृष्ठ या २ कालम की छपाई	३०)	प्रति मास
½ ,, या १ ,, ,,	१६)	,, ,,
¼ ,, या ½ ,, ,,	१०)	,, ,,
⅛ ,, या ¼ ,, ,,	६)	,, ,,

कम-से-कम चौथाई कालम विज्ञापन छपानेवालों को माधुरी मुफ़्त मिलती है। साल-भर के विज्ञापनों पर उचित कमीशन दिया जाता है।

"माधुरी" में विज्ञापन छपानेवालों को बड़ा लाभ रहता है। कारण, इसका प्रत्येक विज्ञापन कम-से-कम ४,००,००० पढ़े लिखे धनी मानी और सभ्य स्त्री पुरुषों की नज़रों से गुज़र जाता है। ६ वर्षों में हिंदी की सर्वश्रेष्ठ पत्रिका होने के कारण इसका प्रचार ख़ूब हो गया है और उत्तरोत्तर बढ़ रहा है, एवं प्रत्येक ग्राहक से माधुरी ले-लेकर पढ़नेवालों की संख्या ४०६० तक पहुँच जाती है।

यह सब होने पर भी हमने विज्ञापन-छपाई की दर अन्य अच्छी पत्रिकाओं से कम ही रक्खी है। कृपया शीघ्र अपना विज्ञापन माधुरी में छपाकर लाभ उठाइए। कम-से-कम एक बार परीक्षा तो अवश्य कीजिए।

निवेदक—मैनेजर "माधुरी" न० कि० प्रेस (बुकडिपो), हज़रतगंज, लखनऊ

वर्ष ६ खंड १ | आश्विन, ३०४ तुलसी-संवत् (१९८४ वि०) अक्टूबर, सन् १९२७ ई० | संख्या ३ पूर्ण संख्या ६३

वियोगिनी

देखत ही जीवन बिडारो तौ तिहारो जान्यो

जीवनद नाम कहिबे ही को कहानी मैं।

कैधों घनस्याम जो कहावै सो सतावै मोहि

निहचै कै आजु यह बात उर आनी मैं।

भूषन सुकवि कीजै कौन पर रोसु निज

भाग ही को दोसु आगि उठति ज्यों पानी मैं।

रावरे हू आये हाय हाय मेघराय सब

धरती जुडानी पै न बरती जुडानी मैं।

महाकवि भूषण

गोस्वामी तुलसीदासजी का अंत

संवत सोरह से असी असी गंग के तीर,
सावन स्यामातीज सनि तुलसी तजइ सरीर ।—तुलसीदास

(मा) नसकार गोस्वामीजी के अंत के संबंध मे कुछ लोगों का मत है कि उन्हें भाति-भाति की शारीरिक व्याधाएं होगयी थी, उन्हींसे उनका शरीरांत होगया ।

इस कल्पना का आधार हनुमान-बाहुक नामकी गोस्वामीजी की रचना है, जिसमे उन्होंने कई प्रकार की दैहिक-व्यथाओं के निवारण के लिये हनुमानजी से प्रार्थना की है ।

कवित्त-रामायण के उत्तरकाड का अंतिम अंश हनुमान-बाहुक है । उत्तरकांड भर में कहीं किसी कथा का वर्णन नहीं है । भगवान् का यशोकीर्तन, विनय और भक्ति-संगत उक्तियां ही उत्तरकाड का प्राय सपूर्ण विषय है । अत में काशी की दुर्दशा का भी वर्णन है । प्रयाणकाल का सवैया भी है । इस तरह १८३ कवित्तों के बाद हनुमान-बाहुक का आरंभ होता है। हनुमान-बाहुक भर मे पीडाओं से निवृत्ति के लिये प्रार्थना है । जान पड़ता है कि उत्तर-कांड अवश्य ही गोस्वामीजी का फुटकर रचनाओं का संग्रह है । विषय के विचार से उत्तरकाड नाम ही असंगत है । कवितावली मे रामकथा सिलसिले से पूरी नहीं कही गयी है । बीच-बीच में बड़े आवश्यक प्रकरण छूट गये है । किष्किधाकाड के नाम से जो एक मात्र कवित्त है वह वस्तुत सुदरकाड का ही विषय है । अयोध्याकाड मे वनगमन के पहले की कोई चर्चा ही नही है । इन बातों से हमे तो इसमें तनिक संदेह नही कि रामचरित-विषयक जो स्फुट कवित्त सवैया गोसाईंजी ने लिखे थे उनके पीछे किसी चतुर शिष्य ने बड़ी चतुरता से क्रम-बद्ध कर डाला और विषयानुसार सात कांडों में विभक्त कर दिया ।*

हनुमान-बाहुक की रचना एक ही समय पर और एक ही प्रसंग मे हुई दीख पड़ती है । मंगलाचरण के छप्पयों से आरंभ करके उन्नीसवें सवैया तक साधारण विनय और प्रार्थना है कि ताप, शाप, सकट, पाप का निवारण कीजिये । विशेष पीडा "बाहपीर" के निवारण की प्रार्थना बीसवें मन-हरण कवित्त से आरंभ हुई । सैंतीसवें तक इसी बाहु-पीडा की शिकायत है । अड़तीसवें और उतालीसवें मन-हरण मे "बाहुपीर" की प्रधानता है, परंतु सारे शरीर मे पीडा फैली हुई है । इकतालीसवें में देह भर में बरतोर या फोडे निकलने की शिकायत है । अत के चवालीसवें मन-हरण तक विविध युक्तियों से कष्ट-निवारण की प्रार्थना है ।

हनुमान-बाहुक को आदि से अत तक पढ़ जाने से यह स्पष्ट होजाता है कि किसी समय गोसाईंजी की बांह में कंधे के पास से बड़ी कठिन पीड़ा उठी थी । बढ़ते-बढ़ते पीडा सारे शरीर मे फैल गयी, परंतु बांह मे प्रधान रूप से रही । किसी अभ्यतर विष के कारण ही यह पीडा उठी होगी । अत मे भिन्न-भिन्न अंगों मे फोड़े होकर इस विष का उद्‌गार हुआ । बाह की पीडा मिटी सही, परंतु वह बायीं बाह को बेकार करती गयी । बाह सूख गयी । गोसाईंजी बायीं बांह से फिर कभी काम न ले सके । उनके उन चित्रों मे, जो इस घटना के बाद के है, बायीं बाह सूखी हुई दिखायी भी गयी है । हनुमान-बाहुक की रचना उसी बाहुपीडा के समय मे हुई थी । बाहुक शब्द और चवालीस मे इक्कीस छद इस बात की साफ़ गवाही देते हैं । पैंतीसवें मनहरण की

घेरि लियो रोगनि कुजोगनि कुलोगनि ज्यों,
बासर जलद घनघटा धुकि धाई है ।
बरषत बारि पीर जारिये जवासे जस,
रोष बिनु दोष, धूम मूल मलिनाई है ।

इन पक्तियों से अनुमान किया जाता है कि यह रोग गोस्वामीजी को बरसात मे हुआ था और सावन में उनकी मृत्यु भी होगयी । परंतु यदि यह माना जाय कि हनुमान-बाहुक की रचना उन्होंने अपने अंत करनेवाले

---

* मूल गोसाईं-चरित मे कवित्त-रामायण की कोई चर्चा नहीं है । अन्य ग्रन्थों की, यहातक कि हनुमान-बाहुक की भी, है । अत एक प्रकार से गोसाईं-चरित से मेरे इस अनुमान की पुष्टि होती है ।—लेखक

रोग के संबंध में ही की थी, तो नीचे लिखे निष्कर्ष आवश्यक होंगे :—

(१) सूखी बांह वाले चित्र उनके अंत समय के चित्र हैं।

(२) हनुमान-बाहुक उनकी अंतिम कविता है।

(३) अंत समय में अनेक अंगों में उन्हें फोड़े निकले थे।

(४) उनकी मृत्यु अत्यंत अशांत और कष्ट की दशा में हुई।

१ उनके दो चित्रों में से, जिनमें सूखी बांह दिखायी गयी है, एक तो राय कृष्णदासजी के यहां का है, और दूसरा रणछोड़लाल व्यास के यहां का। दोनों के संबंध में कहा जाता है कि बुढ़ापे के चित्र हैं, परंतु इन्हें देखकर कोई यह कदापि नहीं कह सकता कि यह नब्बे बरस के बूढ़े का चित्र है। यह चित्र साठ-पैंसठ बरस के अच्छे स्वस्थ शरीर के हैं। इनमें कहीं फोड़ों के चिह्न नहीं हैं। व्यासजी-वाला चित्र तो रोगी का रूप अवश्य दिखाता है, परंतु फोड़े यहां भी नहीं हैं। यदि बांह सूखने के समय का चित्र होता तो फोड़ों का होना ज़रूरी था। चित्र से जान पड़ता है कि बांह सूखी हुई है। यदि सूखने के समय फोड़े हुए तो उनके अच्छे होजाने के बहुत काल पीछे का यह चित्र हो सकता है, जब वह शायद प्लीहा या यकृत के किसी रोग से पीड़ित होंगे। हनुमान-बाहुक का विषय बांह के सूखने से संबंध रखता है। अत: यदि उनकी मृत्यु बांह सूखने के बाद जल्द भी हुई, तो कम-से-कम फोड़ों के बिलकुल अच्छे होजाने पर और इस चित्र के लिये जाने के बाद हुई होगी। बाँह की पीड़ा, अंग-अंग की पीड़ा और फोड़े-फुंसी सभी बरसात के रोग हैं। यदि इनके शमन के पीछे चित्र लिया गया, और दो मास में शमन हुआ, तो सावन का महीना तो बीत ही जाता है। बुढ़ापे के फोड़े या घाव बड़ी देर में पूरते हैं। उनके लिये दो मास का समय भी थोड़ा ही है। इसके सिवा व्यासजी वाले चित्र में नब्बे बरस के बूढ़े के शरीर की स्वाभाविक झुर्रियां भी कहीं नज़र नहीं आतीं। वह चित्र मरण के निकट का चित्र नहीं दीखता। राय कृष्णदास वाले चित्र में तो रोगी का सा रूप भी नहीं है, तो भी बायीं बांह सूखी हुई है। बांह के सूखने के साथही सारा प्रबंध बँधा हुआ है, और मृत्यु-काल की उपर्युक्त कल्पना भी उसी पर अवलंबित है। जब यह दोनों चित्र अंतकाल के नहीं हैं, तब उनकी बांह का सूखना कदापि अंतकाल की घटना नहीं हो सकता।

२ चित्रों से जब यह निश्चय होता है कि उनकी बांह मृत्यु-काल के बहुत पहले सूखी थी, तो यह बात भी सहज ही खंडित हो जाती है कि हनुमान-बाहुक कवि की अंतिम रचना है। उस कविता के भीतर ही कोई अंतरंग साक्षी इस बात के प्रमाण में नहीं है कि बाहुक अंतिम रचना है। बाहुक के बयालीसवें छंद में मरने की चर्चा भी है—

> जीबो जग जानकीजीवन को कहाय जन,
> मरिबे को बारानसी बारि सुरसरि को।
> तुलसी के दुहू हाथ मोदक है ऐसे ठाउ,
> जाके जिये मुये सोच करिहैं न लरिको।

परंतु यह उक्ति भी वैसी ही है जैसे और और जगहों पर साधारणतया कह गये हैं। इस कवित्त से आसन्न-मृत्यु का कोई पता नहीं लगता। अब अंतिम मनहरण पर विचार कीजिये—

> कहौं हनुमान सों सुजान रामराय सों,
> कृपानिधान संकर सों सावधान सुनिये।
> हरष विषाद राग रोष गुन दोष मई,
> बिरची बिरंचि सब देखियतु दुनिये।
> माया जीव काल के करम के सुभाय के,
> करैया राम वेद कहे सांची मन गुनिये।
> तुम तें कहा न होय हाहा सो बुझैये मोहि,
> हौं हू रहौं मौन ही, बयो सो जानि लुनिये ॥४४॥

भगवान् से उलाहना है कि "वह कौन सा काम है जो आप (सर्वशक्तिमान्) से नहीं हो सकता, पर इतने विनय-अनुनय पर भी आप पसीजते नहीं। इसका सबब मुझे तो यही दीखता है कि मैंने जैसे कर्म किये हैं वैसे ही फल भी भुगतूंगा, जैसा बोया है काटूंगा। इसलिये अब तो चुपही रहना और कर्म ठोंककर जो पड़े सहते रहना ही मुझे ठीक जचता है।" जब मौन की ठहरी तब आगे विनय-अनुनय का सिलसिला पीड़ा के संबंध में बंद ही होगया। अंत समय होता तो यों चुप न होते। वह महाभागवत, जो रामनाम की महिमा जीवन भर गाता है, अंत समय में विनय करके चुप हो जायगा ? वह तो अंत समय में चुप होने के बदले जीभ से परम पावन काम लेगा। इस विचार से भी बाहुक अंतिम कविता नहीं, और न उसका

अंतिम अथवा कोई पद अंतिम रचना होने की गवाही देता है।

३. अंत समय में फोड़ों के निकलने की कल्पना का आधार भी हनुमान बाहुक ही है। जहाँगीर के समय में भारत में प्लेग भी फैला था। काशी की कुदशा के वर्णन में कवितावली के उत्तरकांड के अंत और बाहुक के पहले कई कवित्त हैं, जिनमें कलियुग के अत्याचारों का वर्णन है। प्लेग भी कलियुग का ही रोग है जो उस समय ज़ोरों से फैला था। परंतु यह तो ऐतिहासिक तथ्य है कि उसका शमन संवत् १६७२ तक हो चुका था। यह फोड़े यदि गिल्टियों के नामांतर हैं, तो यह भी उनके देहावसान के आठ बरस पहले हो चुके थे। जो हो, बाँह के सूखने के संबंध में जिन फोड़ों की चर्चा है, वह बाहु-पीड़ा के संघाती थे और बाहु का सूखना मरण के अनेक वर्षों के पहले की घटना है, तो फोड़ों का होना भी देहावसान के अनेक वर्षों पूर्व की बात होगी।

४. इस बात का एक भी अंतरंग प्रमाण नहीं मिलता कि गोस्वामीजी ने कष्ट और अशांति में शरीर त्याग किया। जिस साधु ने सारे जीवन भगवान् का ही यश गाया हो, जिसकी उपासना अनन्य रही हो, जो मूर्तिमान त्याग और तितिक्षा हो, और जो नब्बे बानवे बरस तक जिये, उसको भी शरीर त्याग करने में कोई कष्ट हो। यह बात अस्वाभाविक है। अंत की घड़ी की जो रचनाएँ और उक्तियाँ प्रसिद्ध हैं, वह तो किसी प्रकार के कष्ट वा अशांति का पता नहीं देतीं। उनसे तो असीम शांति और पूरा स्वास्थ्य झलकता है। उनके कष्ट के साथ शरीरत्याग की कल्पना हनुमान-बाहुक पर अवलंबित है, जिसके, मरण के बहुत पूर्व रचना होने पर विचार प्रकट किया जा चुका है।

हमारी राय में गोस्वामीजी की मृत्यु बाहु पीड़ा और फोड़ों के उपद्रव से अथवा प्लेग से नहीं हुई। गोस्वामीजी की मृत्यु के संबंध में जो कथा शिष्य-परंपरा से प्रसिद्ध है, और जिसके विरुद्ध मानने का कोई कारण नहीं दीखता, यह है कि अत्यधिक अवस्था हो जाने पर तुलसीदासजी ने विधि-पूर्वक स्वयं प्राण-त्याग करने की इच्छा की। अस्सी के उत्तर गंगाजी के पावन तट पर तीन दिन का व्रत किया। तीसरे दिन मध्याह्न में शुभ मुहूर्त्त जानकर प्रयाण किया। प्रयाण के कुछ ही पहले पड़े पड़े क्षेमकरी के दर्शन करके वह बोले—

कुंकुम रंग सुअंग जितो मुखचन्द सों चन्दन होड़ परी है।
बोलत बोल समृद्ध चवै अवलोकत सोच विषादहरी है।
गौरी कि गंग विहंगिनि बेष कि मंजुल मूरति मोद भरी है।
पेखु सप्रेम पयान समै सब सोच विमोचन छेमकरी है॥

इस सवैया का अंतिम चरण संकट और क्लेश के बदले शांति और निश्चिन्तता प्रकट करता है।

शरीर त्यागने के संबंध में नीचे लिखा दोहा भी इसी सवैया के बाद उन्होंने कहा—

राम नाम जस बरनि कै होन चहत अब मौन,
तुलसी के मुख दीजिये अबहीं तुलसी सौन।

तुरत ही तुलसी और सोना उनके मुख में रखा गया। एक बार "राम" कहते हुए शरीर त्याग कर दिया।

इस प्रकार के अत्यंत शांत आनंदमय प्रयाण को, जो ऐसे भक्तराज के लिये परमावश्यक था, लोगों ने न जाने क्या क्या रूप दे डाले। कितना बीमार और पीड़ित बना डाला! साधारणतया सिवा हनुमान-बाहुक के और कहीं किसी प्रकार के रोग वा पीड़ा की चर्चा का विनय में कहीं नाम भी नहीं है। जीवनी की कथाओं से तो पता चलता है कि गोस्वामीजी बड़े भारी यात्री थे। उन्होंने इतनी यात्राएँ कीं, कि यदि कहा जाय कि उनका जीवन यात्रा-मय था तो अत्युक्ति न होगी। रोगी और पीड़ित मनुष्य रेल के सैकड़ों बरस पहले के युग में इतनी यात्राएँ कैसे किया करता? उनकी कविता भी इतनी सरस, इतनी चुस्त, इतनी प्रसाद-माधुर्य्य-ओज-पूर्ण है, कि किसी रोगी के दिल और दिमाग़ से निकली हुई कदापि जान नहीं पड़ती। उलटे सही दिमाग़ और सही दिल की गवाही उनकी हर रचना के हर पद देते हैं, और वह भी थोड़े नहीं हैं। अपने हाथ से और भी रामायणों की नकल करते रहते थे। यह सब उनकी तंदुरुस्ती के प्रमाण हैं। बायीं बाँह सूख जाने के सिवा हमारा अनुमान है कि शरीर-त्यागपर्यंत वह बीमार पड़े ही नहीं। ऐसी दशा में उनका अंत संकटमय अनुमान करने के लिये कोई प्रबल कारण नहीं दीखता।

* यहाँतक हमने तर्क और अनुमान से काम लिया

* यहाँतक लिखे पीछे विद्वद्वर रायसाहब बा० श्यामसुन्दर दास का गोस्वामी तुलसीदास-नामक लेख पढ़ने में आया, जो नागरी-प्रचारिणी पत्रिका भाग ७, संख्या ४ में छपा है।—ले०

है। परन्तु हमारे अनुमान का समर्थन सम-सामयिक प्रमाण से भी होता है। वेणीमाधवदासजी के लिये यह कहा जाता है कि वह गोसाईंजी के साथ ही रहा करते थे। उन्होंने गोसाईंचरित विस्तार के साथ लिखा है। पाठ करने के सुभीते के लिये संक्षेप में भी वर्णन किया है। वही संक्षिप्त चरित "मूल गोसाईं चरित" के नाम से छपा है। वेणीमाधवदासजी का सदा साथ रहना सापेक्ष कथनमात्र हो सकता है। उन्होंने जन्म से शरीर-त्याग तक की कथा कही है, परन्तु जन्म से मरण तक साथ रहना अभिप्रेत भी नहीं है। कहने का अभिप्राय यही हो सकता है कि वह अन्त समय तक साथ रहे होंगे। उन्होंने जो तिथियां दी हैं, उनमें से अधिकांश जाँच में ठीक उतरती हैं। जिनमें भूल दीख पड़ती है, उनमें भी सत और तिथि के भेद मात्र की भूलें जान पड़ती हैं। इन कारणों से यह रचना जाली तो कदापि नहीं है। हां, ऐसी भूलें होनी सम्भव हैं, जो सम-सामयिक लेखकों से भी, ठीक-ठीक वृत्तान्त न जानने के कारण, हो सकती हैं। जो हो, सारे जीवन नहीं तो अंतिम भाग में वेणीमाधवदास गोस्वामीजी के साथ अवश्य रहे होंगे। अब सुनिये कि वह क्या कहते हैं—

> पर प्रस्थान की शुभ घड़ी, आयी निकट विचारि,
> कहेउ प्रचारि मुनीस तब, आपन दसा निहारि।
> रामचन्द्र जस बरनिके, भयो चहत अब मौन,
> तुलसी के मुख दीजिये, अबही तुलसी सोन।

वेणीमाधवदासजी के अनुसार गोस्वामीजी इस समय १२६ बरस के थे। इतनी बड़ी अवस्था कैसे सुन्दर स्वास्थ्य का प्रमाण है, इस पर कुछ कहने की आवश्यकता नहीं है। ऊपर के दोहे में "शुभ" घड़ी और "कहेउ प्रचार" यह दो वाक्य यह स्पष्ट कर देते हैं कि प्रस्थान की घड़ी नियुक्त थी और वह शुभ थी। उसके आने के लिये मुनि के मन में उत्साह था, सो भी मामूली उत्साह न था। उन्होंने ललकार कर आज्ञा दी कि अभी सोना तुलसी लाओ। खाट पर पड़े कराहते रोगी के मुख से ललकार निकलनी असंगत है। संक्षिप्त चरित में कहीं प्रस्थान के समय किसी रोग की चर्चा नहीं है। साथ ही हनुमान-बाहुक की रचना का काल संवत १६७० के पहले बताया है।

> बाहुपीर व्याकुल भये, बाहुक रचे सुधीर।
> पुनि विराग संदीपनी, रामाज्ञा शकुनीर॥ १२४॥
> पूर्व रचित लघु ग्रन्थननि, दुहराये मुनिधीर।
> लिखवाये सब आननते, सो अति खीन शरीर॥ १२५॥
> जहागीर आयो तहा, सत्तर सम्बत बीत।
> धन धरती दीन्हो चहै, गहे न गुन विपरीत॥ १२६॥

इस समय गोस्वामीजी की अवस्था वेणीमाधवदास के अनुसार ११६ बरस की हो चुकी थी। "खीन सरीर" होना स्वाभाविक ही है। "बाहुपीर" कब हुई, इसका पता ठीक-ठीक नहीं लगता। परन्तु १६७० के पहले तो अवश्य ही हुई, क्योंकि बाहुक आदि छोटे ग्रन्थों के दुहराने और दूसरे लोगों से लिखवाने का काम १६७० में ही हुआ। प्रस्थान से कम-से-कम दस बरस पहले यह घटना हो चुकी थी।

प्रस्थान की तिथि पर भी अनेक मतामत चल रहे हैं। वेणीमाधवदासजी ने वह तिथि यों लिखी है—

> संवत सोरह सै असी, असी गंग के तीर।
> सावन स्यामातीज शनि, तुलसी तजेउ सरीर॥

इससे पहले जो पाठ दिया जाता था, उसमें "सावन सुकला सत्तमी" था। मूल चरित में जन्म के सम्बन्ध में यह लिखा है—

> कुज सप्तम अष्टम भानुतनय
> अभिजित शनि सुन्दर सौम्य समय
> पन्द्रह से चौअन बिषे, कालिंदी के तीर।
> सावन सुकला सत्तमी, तुलसी धरेउ शरीर॥

विद्वद्वर रायसाहब बाबू श्यामसुन्दरदासजी ने इस जन्म-तिथि पर (शायद सूर्यसिद्धांत के अनुसार) विचार करके इसे अप्रामाणिक ठहराया है। शुद्ध श्रावण शुक्ला सप्तमी को संवत १५५४ में शुक्रवार पड़ता है और यहाँ शनिवार है। अन्तर केवल एक दिन का है। संभव है कि जिस विधि से आज से चारसौ बरस पहले इन तिथियों की गणना करते थे, उससे इस एक दिन का भी अन्तर न पड़े। शुक्रवार की जगह श्रावण शुक्ला सप्तमी शनिवार को ही पड़े। आज भी तिथि निकालने की कई गणनाएँ प्रचलित हैं। उन सबसे मिलान करने की आवश्यकता है।

रायसाहब के इस निष्कर्ष से कि बाबा वेणीमाधवदास जी का लिखा गोस्वामी तुलसीदासजी का चरित बहुत

कुछ प्रामाणिक है, मैं पूर्णतया सहमत हूँ।* रायसाहब ने भी उस लेख में लिखा है—

"(च) अबतक यह अनुमान किया जाता था कि गोस्वामीजी की मृत्यु प्लेग के कारण हुई। परंतु मूल चरित से यह विदित नहीं होता।"

प्रत्युत मूल चरित से यही प्रमाणित होता है कि उनका अंत उनके द्वारा ज्ञात प्रयाण के शुभ मुहूर्त पर पूरी तय्यारी के साथ बिना किसी रोग या ताप के हुआ।

रामदास गौड़

आराध्य

कोमल-रवि-किरणों सी उज्ज्वल, तुलसी की कविता पावन,
नाच रही हो हृदय-कुसुम की खुली पँखुड़ियों पर जिस क्षण,
तभी, नाथ, मेरी कुटिया में, सरस हृदय ले, तुम आना!
जीवन के उस प्रिय प्रभात की छवि में मिलकर मुसकाना!!

जगन्नाथप्रसाद, खत्री 'मिलिंद'

* गोसाईंजी के हाथ की लिखी वाल्मीकीय रामायण के उत्तरकांड की जो प्रति काशी के सरकारी सरस्वती भांडार में है, उसकी फ़ोटो मैंने रामचरितमानस की भूमिका में दी है। उसके अंतिम पृष्ठ में नीचे किसी और क़लम से लिखा हुआ यह शार्दूलविक्रीडित छंद है—

श्रीमद्येदिलशाहभूमिपसभासम्पद्भूमीसुर-
श्रेणीमंडनमंडलीधृतिदयादानादिभाजि प्रभु ।
वाल्मीके कृतिमुत्तमां पुररिपं पृथ्वीं पुरोगः कृति-
र्दत्तात्रेयसमाह्वयो लिपिकृते कर्म्म वमार्वीकरत् (?)

इस पर भाँति-भाँति के अनुमान किए गये थे। वेणीमाधव दासजी इसे यों स्पष्ट कर देते हैं—

आदिलशाही राज के भाजक दान बनेत।
दत्तात्रेय सुविप्रवर आये विप्र निकेत ॥ ७४ ॥
करि पूजा आसिख लहे माग पुराण प्रमाद।
लिखित वाल्मीकी स्वकर दिय सहित अहलाद ॥ ७५ ॥

इसी पोथी के लिखने की तिथि यों दी है—

लिखे वाल्मीकी बहुरि, इकतालिस के मांहि।
मगसर सुदि सतिमी रवौ, पाठ करन हित ताहि ॥ ७८ ॥

यह तिथि-गणना से भी ठीक उतरती है, और उक्त पोथी में दी हुई भी है। इससे इस "मूलचरित" की प्रामाणिकता और भी पुष्ट होती है।—लेखक

अद्वैतवाद

[श्रावण की संख्या से आगे]

प्रमाणों का प्रामाण्य

जिस जटिल प्रश्न की ओर हमने पहले अध्याय में संकेत किया है, उसका समीकरण उस समय तक नहीं हो सकता जबतक हम इस बात का निश्चय न करलें कि, हमारे पास सत्य तथा असत्य के पहचानने के लिये क्या-क्या साधन हैं। इन्हीं साधनों का नाम दर्शनकारों ने "प्रमाण" रक्खा है। प्रमाण वह है, जिसके द्वारा किसी वस्तु को मापा या नापा जाय। जैसे कपड़े की लम्बाई गज़ से नापते हैं, या अन्न तथा दूध आदि को नापने के लिये भी पात्र होते हैं। वस्तुतः यह गज़ और यह पात्र ही प्रमाण हैं। जिस प्रकार इनसे कपड़े तथा अन्य वस्तुओं का परिमाण जाना जाता है, उसी प्रकार सत्यासत्य के लिये भी प्रमाण हैं। "विद्वान्" को सम्बोधित करके यजुर्वेद में कहा है—

सहस्रस्य प्रमासि सहस्रस्य प्रतिमासि सहस्रस्योन्मासि साहस्रोऽसि सहस्राय त्वा। (अ० १५, म० ६५)

अर्थात् मनुष्य अनेक पदार्थों का 'प्रमाण,' 'प्रतिमाण' तथा 'उन्मान' या ज्ञान प्राप्त करने के योग्य है।

न्यायदर्शन में गौतम मुनि ने चार प्रमाण माने हैं—

प्रत्यक्षानुमानोपमानशब्दाः प्रमाणानि (१ । १ । ३)

अर्थात्—प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान तथा शब्द।

योगदर्शनकार पतञ्जलि मुनि तीन प्रमाण मानते हैं। अर्थात्—

प्रत्यक्षानुमानागमाः प्रमाणानि (योग १।७)

प्रत्यक्ष, अनुमान और शब्द।

सांख्यकार कपिल भी—

त्रिविधं प्रमाणम् (सां० १।८७)

इन्हीं तीनों प्रमाणों को स्वीकार करते हैं।

मानव-धर्मशास्त्र में—

प्रत्यक्षं चानुमानं च शास्त्रं च विविधागमम्।
त्रयं सुविदितं कार्य्यं धर्मशुद्धिमभीप्सता ॥

(मं० १२।१०५)

प्रत्यक्ष, अनुमान और शब्द ही को माना गया है।

कुछ लोगों ने न्याय के चार प्रमाणों के साथ ऐतिह्य, अर्थापत्ति, संभव और अभाव चार और प्रमाण मिलाकर आठ कर दिये हैं। परंतु जिस प्रकार न्यायदर्शनकार इन अंतिम चार को पहले चार के अन्तर्गत मान लेते हैं, उसी प्रकार तीन प्रमाण मानने वालों ने उपमान प्रमाण को भी शब्द के अन्तर्गत मान लिया है।

चार्वाक लोग एक ही प्रमाण मानते है अर्थात प्रत्यक्ष, और बौद्ध शब्द-प्रमाण को छोड़कर प्रत्यक्ष और अनुमान तक ही आते हैं ; परन्तु ऐसा शायद ही कोई हो जो प्रत्यक्ष को भी नहीं मानता। इसलिये ज्ञान का सब से पहला और मुख्य साधन प्रत्यक्ष है।

प्रत्यक्ष का लक्षण गौतमजी यह करते हैं—

इन्द्रियार्थसन्निकर्षोत्पन्न ज्ञानमव्यपदेश्यमव्यभिचारि व्यवसायात्मक प्रत्यक्षम् । (न्याय १।१।४)

इन्द्रिय और अर्थ के सन्निकट से जो ज्ञान पैदा होता है, वह यदि अशाब्द, भ्रमरहित और संशयरहित हो तो प्रत्यक्ष कहलाता है।

इंद्रियाँ पाँच हैं—आँख, कान, नाक, खाल और जीभ। जब से बच्चा संसार में आता है, उसी समय से वह इन इन्द्रियों का प्रयोग करने लगता है, और इनके द्वारा जिसकी उसको प्राप्ति होती है उसको ज्ञान कहते हैं। इन्द्रियों को 'इन्द्रिय' कहने का कारण भी यही है कि—

इन्द्रियमिन्द्रलिङ्गम (पाणिनि की अष्टाध्यायी)

'इन्द्र' नाम है जीव का। जीव का मुख्य गुण है चेतनता, अर्थात् ज्ञान की प्राप्ति कर सकना। इसमे सब से पहला, और इसलिये, मुख्य साधन हैं आँख, कान आदि। इसलिये इनको इन्द्रिय कहते है।

आँख से हम रूप देखते है, कान से शब्द सुनते हैं। नाक से गंध सूँघते हैं, जीभ से स्वाद चखते है और खाल से ठंडापन, गर्मी, अथवा चिकनापन या कठोरता का अनुभव करते है।

आरम्भ में यह इन्द्रियाँ विकसित नहीं होतीं। परंतु ज्यों-ज्यों बच्चा बड़ा होता जाता है, इन्द्रियों मे अर्थ-ग्रहण की शक्ति बढ़ती जाती है, और ज्यों-ज्यों इनको शिक्षित किया जाता है त्यों-त्यों इनमें यथार्थ-दर्शन की शक्ति आ-जाती है। इसीलिये सूत्रकार ने केवल इन्द्रिय और अर्थ के सन्निकर्ष को ही प्रत्यक्ष प्रमाण नहीं कहा, किंतु भ्रान्ति और शंका से रहित होने की शर्त भी लगादी है। इन्द्रियों में दोष होना भी स्वाभाविक ही है। यह एक बनी हुई वस्तु है। जो वस्तु बनी होती है वह बिगड़ भी जाती है। इन्द्रियों में इसीलिये बहुधा विकार आ जाता है। जिस प्रकार धुँधले दर्पण में अपने मुख का यथार्थ रूप प्रकट नहीं होता, इसी प्रकार इन्द्रियों में विकार आजाने से भी ठीक-ठीक ज्ञान नहीं होता। कणाद मुनि ने इसीलिये कहा है कि—

इन्द्रियदोषात्संस्कारदोषाच्चाविद्या । (वै०)

अर्थात् इन्द्रियों और संस्कारों के दोष से यथार्थ ज्ञान की उपलब्धि नहीं होती। प्रत्यक्ष प्रमाण के ठीक उतरने के लिये आवश्यक है कि—

(१) इन्द्रिय में कुछ दोष न हो, अर्थात् यदि आँख फूट जाय, या दुखने आजाय तो उससे देखने का काम नहीं लिया जा सकता।

(२) विकाररहित होने के अतिरिक्त इन्द्रिय सुसंस्कृत भी हो। अर्थात् आंख के स्वस्थ होने पर भी यदि उसको प्रयोग में लाने की शिक्षा नहीं दी गई, तो उससे ठीक-ठीक दिखाई नहीं पड़ेगा। पुलिसवालों की वही दृष्टि नहीं होती जो साधारण मनुष्यों की होती है। साधारण मनुष्यों को बहुत सी बातें नहीं सूझतीं, और पुलिस के लोग एक निगाह से बीसियों बातें ताड़ लेते हैं। इसका कारण यह नहीं है कि साधारण लोगों की आंख में कुछ दोष है। कदापि नहीं। भेद केवल इतना है कि उसकी आंख को भलीभांति शिक्षा नहीं मिली। बच्चे की आंख मे कुछ दोष नहीं होता। परन्तु उसको बहुत-सी ऐसी बातें नहीं दीखतीं जो दूसरों को दिखाई देती हैं। इसका कारण भी शिक्षा या संस्कार का अभाव है।

इसी प्रकार कानों का भी हाल है। सुशिक्षित कान बहुत सी ध्वनियों के भेद को सुन सकते हैं, साधारण कान नहीं। साधारण मनुष्य एक प्रकार के इत्र की गंध को दूसरे प्रकार के इत्र की गन्ध से अलग नहीं पहचान सकते, परन्तु गन्धी को वह भेद सुगमता से मालूम हो जाते हैं।

यदि इन्द्रियों में किसी प्रकार का रोग न हो और उनको यथोचित शिक्षा मिली हो, तो वह अपने-अपने अर्थ का ठीक-ठीक बोध करा सकती हैं—अर्थात् आँख

बता सकती है कि जिस चीज़ का मुख से संसर्ग है वह लाल है या पीली, सफ़ेद है या नीली, इत्यादि।

यद्यपि प्रत्यक्ष प्रमाण को सभी मानते हैं, तथापि बाल की खाल खींचने वालों ने इसके मानने में भी कई प्रकार के आक्षेप किये हैं। न्यायदर्शन में पूर्व पक्ष रूप से यह शंका की गई है कि—

प्रत्यक्षादीनामप्रामाण्यं त्रैकाल्यासिद्धेः ।
पूर्वं हि प्रमाणसिद्धौ नेन्द्रियार्थसन्निकर्षात्प्रत्यक्षोत्पत्तिः ।
पश्चात्सिद्धौ न प्रमाणेभ्यः प्रमेयसिद्धिः ।
युगपत्सिद्धौ प्रत्यर्थनियतत्वात् क्रमवृत्तित्वाभावो बुद्धीनाम् ॥
(न्या० २ । १ । ८, ९, १०, ११)

भूत, भविष्यत तथा वर्तमान तीनों कालों में प्रत्यक्ष प्रमाण सिद्ध नहीं होता। क्योंकि यदि कहा जाय कि इन्द्रियों और अर्थ के सन्निकर्ष से पहले प्रत्यक्ष प्रमाण उपस्थित था, तो यह कहना झूठ होगा कि इन्द्रिय और अर्थ के सन्निकर्ष से होने वाले ज्ञान का नाम प्रत्यक्ष प्रमाण है। क्योंकि जबतक सन्निकर्ष हुआ ही नहीं, उस समय तक प्रत्यक्ष प्रमाण आया कहाँ से? और, यदि कहो कि सन्निकर्ष पहले होता है और प्रत्यक्ष प्रमाण की सिद्धि पीछे से होती है, तो बिना प्रमाण के ही प्रमेय अर्थात् साध्य की सिद्धि हो जायगी। फिर यह नहीं कह सकेंगे कि अमुक ज्ञान के यथार्थ होने से प्रत्यक्ष प्रमाण है। यदि कहो कि प्रमेय और प्रमाण दोनों की साथ-साथ सिद्धि होती है, तो यह भी असम्भव है; क्योंकि बुद्धियों में किन्हीं दो ज्ञानों की उपलब्धि करने के लिये पूर्वापर का क्रम होता है। एक ही साथ दो ज्ञानों की उपलब्धि नहीं होसकती। इस प्रकार प्रत्यक्ष प्रमाण तीनों कालों में असिद्ध ठहरता है।

जिस प्रकार की शंकाये है, उसी प्रकार का उत्तर भी दिया गया है। अर्थात—

त्रैकाल्यासिद्धेः प्रतिषेधानुपपत्तिः ।
सर्वप्रमाणप्रतिषेधाच्च प्रतिषेधानुपपत्तिः ।
तत्प्रामाण्ये वा न सर्वप्रमाणविप्रतिषेधः ।
त्रैकाल्याप्रतिषेधश्च शब्दादातोद्यसिद्धिवत्तत्सिद्धेः ।
प्रमेयता च तुलाप्रामाण्यात् ।
(न्या० २।१।१२,१३,१४,१५,१६)

जिन युक्तियों द्वारा आक्षेप करने वाले ने प्रत्यक्ष प्रमाण को तीनों कालों में खण्डन किया है, उन्हीं युक्तियों द्वारा इस "खण्डन" की भी तीनों कालों में सिद्धि नहीं होती। दूसरे यदि तुम प्रत्यक्ष आदि प्रमाणों का खण्डन करोगे तो अपने इस 'खण्डन' के पक्ष में कहाँ से प्रमाण लाओगे? तीसरे, यदि तुमको अपने पक्ष की पुष्टि में कोई प्रमाण मिला भी, तो किस मुँह से कह सकोगे कि हमने सब प्रमाणों का खण्डन कर दिया, क्योंकि तुमने भी तो एक प्रमाण का आश्रय लिया ही है। जिस प्रकार बाजा सुनकर वीणा के अस्तित्व का ज्ञान होता है, उसी प्रकार यथार्थ ज्ञान की उपलब्धि से यह भी निश्चय हो जाता है कि अमुक ज्ञान प्रत्यक्ष प्रमाण द्वारा हुआ। जिस प्रकार तुला अर्थात् तराज़ू से चीज़ तोलते हैं, और तोलेने से ही तराज़ू की भी सिद्धि होती है। इसी प्रकार प्रमाण और प्रमेय दोनों का व्यवहार होता है।

कुछ लोग सन्देहवादी (Sceptics) हैं। उनका मत है कि वस्तुतः हमारे पास ज्ञान-प्राप्ति के कोई साधन उपस्थित नहीं हैं। जिन इन्द्रियों को ज्ञान-प्राप्ति का साधन कहा जाता है, वह ऐसी विचित्र हैं कि हमको नित्यप्रति धोखा दिया करती है। जो तराज़ू कभी ठीक तोले और कभी बेठीक, उसका विश्वास ही कैसे किया जाय और किसको ठीक कहा जाय, किसको बेठीक? जो वस्तु साधारणतया सफ़ेद दिखाई पड़ती है, वह पीलिया के रोग से पीड़ित मनुष्य को पीली दिखाई पड़ने लगती है। जो लड्डू इस समय मीठा लगता है, वही ज्वर आने पर कड़वा प्रतीत होने लगता है। जो मिर्च हमको कड़वा लगता है, वह दूसरे को उतनी कड़वी नहीं लगती। इसलिये सम्भव है कि जिसको हम कड़वा कहते हैं उसमें न कड़वापन हो न मीठापन। वस्तुतः इसका कुछ और ही स्वरूप हो, जिसका न तो हमको ज्ञान है न उसके जानने के साधन है।

फिर, जिन इन्द्रियों को ज्ञान-द्वार कहा जाता है उनमें एक आपत्ति और है। इनका आपस में वैमनस्य भी हो जाता है। एक इन्द्रिय कुछ कहती है, और दूसरी कुछ और। ऐसी अवस्था में कठिनाई यह पड़ती है कि किसकी बात मानी जाय और किसकी न मानी जाय। शीशे की एक गोली लो और बिना दिखाए हुए किसी के हाथ की दो उँगलियों के बीच में रखदो। वह कह उठेगा कि दो गोलियाँ हैं। परन्तु जब वह आँख से

देखेगा तो उसे एक ही गोली दिखाई पड़ेगी, अब मुश्किल यह है कि आँख कहती है 'एक गोली है', हाथ कहता है 'दो गोलियाँ हैं'। किसकी बात पर विश्वास करें ? परकार के दोनों कोनों को खूब मिला लो और उनको पैर की एड़ी में चुभोओ, तो ऐसा मालूम होगा कि एक नोक चुभोई जा रही है। परन्तु, यदि उसी नोक को जीभ के टौने (अग्रभाग) पर चुभोया जाय तो झट दोनों कोनों का ज्ञान होने लगेगा। इसका अर्थ यह है कि एक ही शरीर में उपस्थित त्वक्-इन्द्रिय (खाल) पैर के स्थान में कुछ और ज्ञान देती है और जीभ के स्थान में कुछ और। जिज्ञासु बेचारे की आफ़त है।

इसी प्रकार जिसको तुम श्वेत देखते हो, सम्भव है कि उसीको मैं हरा देखता हूँ। इस बात का क्या निश्चयात्मक सुबूत है कि, हम सबको एक वस्तु एक-सी ही दिखाई पड़ती है। मैंने कभी आपकी आँख से नहीं देखा, न आपने मेरी आँख से, संभव है कि यह दोनों यन्त्र भिन्न-भिन्न प्रकार का ज्ञान देते हों। सूक्ष्मदर्शक यन्त्र में एक चीज़ का परिमाण कई गुना दिखाई पड़ने लगता है।

इन सब बातों से सन्देहवादी सिद्ध करते हैं कि प्रमाणों का प्रमाणत्व ढोंग मात्र है। इसमें कुछ तत्त्व है नहीं। जिसको तुम सत्य कहते हो वह भी काल्पनिक है और जिसको असत्य वह भी काल्पनिक। वस्तुतः सत्यासत्य का निर्णय हो ही नहीं सकता। इसलिये जिस प्रकार संसार का व्यवहार चलता रहे, उस प्रकार काम करते जाओ। जटिल प्रश्नों के जटिलत्व को सुलझाने का यत्न व्यर्थ है।

सन्देहवादियों की ये शंकायें भ्रममूलक हैं। थोड़ा-सा विचार करने से इनकी निस्सारता का ज्ञान हो जाता है। प्रथम तो सन्देहवादियों का व्यवहार ही बताता है कि उनका सन्देहवाद कथन मात्र का है। वह अपने जीवन के अधिकांश काम इसी प्रकार करते हैं, मानो उनको अपनी इन्द्रियों पर भरोसा है। अन्य पुरुषों के समान उनको भी भूख, प्यास आदि लगती है और प्यास लगने पर वह उसी प्रकार पानी की ओर दौड़ते हैं, जैसे अन्य लोग किया करते हैं। सामने रोटी देखकर किसी सन्देहवादी को यह भ्रम नहीं होता कि, संभव है इससे पेट भरे, संभव है पत्थर के टुकड़ों से पेट भर जाय। किसी मनुष्य के ज्ञान की अवस्था का अंदाज़ा उसके कामों से लग सकता है। जब हमारा कुत्ता हमको देखकर हमारी ओर प्रेम से आता है और दूसरों को देखकर भौंकने लगता है, तो हमको इस बात का निश्चय करना ही पड़ता है कि वह हमको पहचानता है। ग्रामोफ़ोन में अपने मालिक की आवाज़ सुनकर जब कुत्ता उसकी ओर आकर्षित होता है, तो क्या कोई संदेह रहता है कि, यह आवाज़ उसके मालिक के अनुकरण में नहीं है ? इसी प्रकार जब हम सभी संदेहवादियों को निरंतर अपनी इन्हीं इन्द्रियों के सहारे काम करते हुए देखते हैं तो कैसे मान लें कि उनका उनपर विश्वास नहीं है। ठगों की ठगाई का संदेह करने के पश्चात् कोई उनके पास नहीं जाता। यदि सन्देहवादी वस्तुतः उनको ठग समझते तो कभी उनके कहने पर न चलते। परंतु हम नित्य देखते हैं कि आँख कहती है कि, 'सड़क साफ़ है, आगे पैर धरो' और वह चलने लग जाते हैं। जीभ कहती है कि, 'यह लड्डू मीठा है एक इसी प्रकार का और लाओ' और हाथ झट लड्डू उठानेमें लग जाता है। आँख बताती है कि 'यह कुँआ है इस में से पानी खींच कर पियो' और हाथ रस्सी तथा बर्तन लेकर पानी निकालने का व्यापार करने लगता है।

कुछ लोग शायद कहने लगें कि यह तो तुमने व्यवहार-संबंधी बातें गिना डालीं। व्यवहार और दर्शनशास्त्र में भेद है। जब तुम किसी वस्तु की दार्शनिक मीमांसा करते हो तो व्यावहारिक दृष्टान्त न लो।

परंतु हम इसका उत्तर यह देते हैं कि दार्शनिक मीमांसा व्यावहारिक दृष्टान्तों के बिना हो ही नहीं सकती, यदि इन दृष्टान्तों को न लिया जाय तो ग्रन्थ नये कहाँ से गढ़े जायें। जो दृष्टान्त दिये जायेंगे वह सब व्यवहार संबंधी होंगे। जिन दृष्टान्तों को देकर तुम अपना सन्देहवाद सिद्ध करते हो, वह भी तो व्यावहारिक ही हैं, जब तुम कहते हो कि लड्डू ज्वर में कड़वा लगता है, तो क्या ज्वर और लड्डू व्यावहारिक दृष्टान्त नहीं हैं, 'ज्वर' और 'कड़वापन' दोनों का परिज्ञान भी तो इन्हीं इन्द्रियों द्वारा होता है।

वस्तुतः यदि प्रत्यक्ष प्रमाण के प्रयोग के नियमों को सावधानी के साथ व्यवहार में लाया जाय तो संदेह करने की इतनी आवश्यकता नहीं पड़ती। जिस प्रकार

तराज़ू से तौलने के लिये नियम हैं, उसी प्रकार इंद्रियों द्वारा ज्ञानोपलब्धि के लिये भी नियम हैं। जिस प्रकार तराज़ू की भूल-चूक मालूम करने के साधन हैं, उसी प्रकार इंद्रियों की भूल-चूक मालूम करने के भी साधन हैं। यदि इन साधनों को सावधानी से काम में लाया जाय तो धोखा नहीं हो सकता।

संदेहवादियों की सबसे बड़ी गलती यह है कि वे इंद्रियों को बिना परीक्षा के ही धोखेबाज़ मान लेते हैं और यह समझ बैठते हैं कि सृष्टि ऐसी क्रूर तथा भयानक है कि उसमें हमारा इन धोखेबाज़ों के साथ समवाय सम्बंध हो गया है। यह धोखेबाज़ कैसे हमारे पीछे लग गये? और इनसे कैसे छुटकारा हो सकता है? इसका कोई कारण नहीं बताता। परन्तु विचित्र बात यह है कि यदि इनके मतानुसार आँख, कान, नाक, खाल तथा जीभ को धोखेबाज़ मान लिया जाय, तो अंधे, बहरे आदि इंद्रियहीन पुरुषों को बधाई देनी पड़ेगी कि अच्छा हुआ तुम्हारा कम-से-कम दो-तीन धोखेबाज़ों से तो पिंड छूटा, और, यदि इस प्रकार नेत्र और कान वाले भी पिंड छुड़ाने लगे, तो बड़ी विचित्र अवस्था उपस्थित हो जायगी, जिसको बड़े-से-बड़े से संदेहवाद तथा भ्रमवाद के महोपदेशक भी ग्रहण करने से काँपने लगेंगे।

यह ठीक है कि मनुष्य को कभी-कभी भ्रम और सन्देह उत्पन्न होजाते हैं। परन्तु भ्रम तथा सन्देह शब्द ही बताते हैं कि, इनके साथ-ही-साथ निश्चयात्मकता भी अवश्य है। यदि निश्चयात्मकता का अस्तित्व न होता तो भ्रम तथा सन्देह भी न होते। जिस प्रकार प्रकाश की अपेक्षा से अँधेरे का ज्ञान होता है, उसी प्रकार निश्चयात्मकता की अपेक्षा से सन्देह और भ्रम का भी ज्ञान होता है। जो मनुष्य कहता है कि मुझे सन्देह हो रहा है, या मुझे भ्रम हो रहा है वह मान रहा है कि "सन्देह" या "भ्रम" का उसको निश्चयात्मक ज्ञान है। अर्थात् सन्देह और भ्रम को आश्रय देनेवाला भी निश्चयात्मक ज्ञान अवश्य होता है। क्या कभी किसी को यह कहते हुये भी सुना है कि मुझे भ्रम होने में भ्रम है? या सन्देह होने में सन्देह है? यह तो कहा जा सकता है कि मुझे यह निश्चय ज्ञान है कि, अमुक विषय के सम्बन्ध में मैं यथोचित ज्ञान नहीं रखता, अर्थात मैं उसे सन्देह की दृष्टि से देखता हूं। दूर से जब हमको जल दिखाई पड़ता है, तो कह उठते हैं, कि "शायद यह सचमुच जल हो। शायद मृग-तृष्णिका मात्र हो।" परन्तु क्या कोई यह भी कहता है कि, मुझे इस सन्देह के होने में सन्देह है? अर्थात् कम-से-कम सन्देह का ज्ञान तो निश्चयात्मक ही होता है, और यह सन्देह उन्हीं इन्द्रियों के व्यापार से मिटाया जा सकता है। हमने ऊपर कहा है कि तराज़ू की भूल-चूक मालूम करने के भी साधन हैं। तोलने वाले झट से बता देते हैं कि अमुक तराज़ू से तोलने में फ़ी मन इतने छटांक या फ़ी सेर इतने तोले की भूल हो सकती है। यह साधन तराज़ुओं द्वारा ही सम्पादित किये जाते हैं। इसी प्रकार इन्द्रिय-जन्य भ्रम या सन्देह भी इन्द्रिय-जन्य व्यापार द्वारा ही दूर हो सकता है।

मृग-तृष्णिका को लीजिये। इसको आप आँख की धोखेबाज़ी कहते हैं। हम इसको आपकी बुद्धि की न्यूनता कहते हैं, और वस्तुतः है भी यही। यदि मृग-तृष्णिका की मीमांसा कीजाय तो पता लगेगा कि रेत और जल के रूप में कुछ समानतायें हैं कुछ असमानतायें। यदि समानता और असमानता दोनों को देख लिया जाय तो पहचान हो सकती है कि यह रेत है, यह जल है। जब हम आँख से दूर से देखते हैं तो रेत के रूप का वह अंश ही प्रतीत होता है जो जल के समान है, असमान रूप की प्रतीति नहीं होती। इसमें आँख का दोष नहीं है, किंतु आँख को प्रयोग में लाने वाले का दोष है। आँख एक परिमित शक्तिवाला अंग है, उससे अपरिमित या अधिक दूर की वस्तुओं को देख नहीं सकते। क्या यदि दस कोस पर बैठे हुये आपको अपना घर नहीं दीखता तो आप आँख को दोष देंगे? आँख तो उतनी ही दूर की चीज़ देख सकेगी जितनी उसमें शक्ति है। रेत और जल की समानताओं का भान दूर से होगया, असमानता का न होसका; अतः सन्देह रहा कि न जाने जल है या रेत। परन्तु जब आप पास पहुंचे तो उसी आँख से देखकर बता सके कि यह जल है, रेत नहीं, या रेत है, जल नहीं। यदि आँख धोखेबाज़ होती तो निकट से भी न बता सकती कि सत्यता क्या है? कल्पना कीजिये कि मोहन और सोहन की टोपियाँ एक-सी हैं, परन्तु कोट भिन्न-भिन्न प्रकार के हैं। आप दूर से एक पुरुष को देख रहे हैं, जो उसी प्रकार की टोपी पहने हुये है। नीचे का धड़ तथा वस्त्र दिखाई नहीं पड़ते, क्योंकि आड़ में छिपे हैं। उस समय आपको टोपी के देखने

से सन्देह होता है कि यह या तो मोहन है, या सोहन। परन्तु जब किसी प्रकार उसका कोट भी दिखाई पड़ने लगता है तो आप कह उठते हैं कि यह मोहन है, सोहन नहीं, या सोहन है, मोहन नहीं। अब थोड़ा-सा विचारिये कि धोखा किसने दिया ? आंख ने ? कदापि नहीं। वस्तुतः आपको सन्देह भी इसीलिये हुआ कि आपको टोपी का ठीक-ठीक ज्ञान होगया। यदि टोपी का ठीक ठीक ज्ञान न होता तो मोहन या सोहन के अस्तित्व का सन्देह भी न होता। इसीलिये "संशय" का लक्षण करते हुए न्यायदर्शनकार लिखते हैं—

समानानेकधर्मोपपत्तेर्विप्रतिपत्तेरुपलब्ध्यनुपलब्ध्यव्यवस्था-तश्च विशेषापेक्षो विमर्शः संशयः ।

(न्याय १ । १ । २३)

अर्थात् समान धर्मों का ज्ञान होने और विशेष का ज्ञान न होने से "संशय" उत्पन्न होता है। अर्थात् 'संशय' की नींव भी 'ज्ञान' पर ही है। रेत और जल के समान धर्म उसी प्रकार प्रतीत होते हैं जैसे मोहन और सोहन की टोपी, और विशेष धर्म उसी प्रकार प्रतीत नहीं होते जैसे उनके कोट या अन्य वस्त्र आदि।

यही हाल सीप और चांदी का है। दूर से सीप को देखकर बहुधा सन्देह हो जाता है कि यह चांदी है, क्योंकि सीप और चांदी के रूपों में बहुत कुछ सादृश्य है। वस्तुतः आंख इसी सादृश्य या समान धर्म का अवलोकन करती है। विशेष धर्म दूरी के कारण छिप जाते हैं। इसीलिये सीप और चांदी में भ्रम हो जाता है। जब वह विशेष धर्म भी दिखाई पड़ने लगते हैं, तो संशय सर्वथा दूर हो जाता है।

ठूठ और चोर, या सांप और रस्सी में भ्रम होने का भी यही कारण है। इन सब दृष्टान्तों में कोई एक भी ऐसा नहीं है, जिसके विषय में यह कहा जा सके कि आंख ने हमको धोखा दिया। आंख तो स्पष्टतया बता रही है, और इसी कारण हमको संशय हो रहा है। यदि आप इस भ्रम का विश्लेषण करें तो पता चलेगा कि—

(१) पहले आंख ने सांप और रस्सी दोनों का यथोचित निरीक्षण किया और उनके धर्म आपको बताये।

(२) इनमें से कुछ तो सांप और रस्सी के समान थे, कुछ असमान।

(३) आपने आंख को आज्ञा दी कि अमुक वस्तु को देखकर बताओ कि इसमें कौनसा धर्म है।

(४) अंधेरा होने के कारण आंख कुछ देख सकी और कुछ न देख सकी।

(५) उसने आपसे कहा कि मुझे केवल इतना धर्म दिखाई पड़ता है, इससे अधिक नहीं।

(६) यह धर्म वह था जो सांप और रस्सी दोनों में समान था। इसकी आपको स्मृति थी।

(७) इसलिये आप संशय में पड़ गये कि न जाने सांप है या रस्सी।

यह सातों क्रियायें इतनी शीघ्रता से होती हैं कि, आप इनको अलग अलग गिन नहीं सकते, परन्तु होती अवश्य हैं, और इनमें से किसी के लिये आप आंख को दोष नहीं दे सकते।

इसी सम्बन्ध में दो और दृष्टान्तों का निराकरण होना चाहिए। एक ज्वर के समय लड्डू के कड़वा लगने का, और दूसरा पीलिया रोग की अवस्था में श्वेत वस्तुओं के पीली दिखाई पड़ने का। पहले के कारण तो रसनेन्द्रिय को धोखेबाज़ कहा जाता है, और दूसरे के कारण चक्षु-इन्द्रिय को। वस्तुतः इन दोनों में से एक में भी इन्द्रियों का दोष नहीं।

हम पहले लड्डू के दृष्टान्त को लेते हैं। लड्डू को कई आदमियों को खिलाकर देखो। सभी कहते हैं कि यह मीठा होता है, हलवाई इसीलिये इसको बनाता है। असंख्यों पुरुष, जो उसकी दुकान से लड्डू मोल लेते हैं, इस बात की साक्षी देते हैं कि, लड्डू मीठा होता है। अब यदि लड्डू में कुनैन का थोड़ा-सा अंश मिला दो, तो जो पुरुष पहले उसे मीठा कहता था वही अब उसे कड़वा बताता है। यह जीभ का दोष नहीं किन्तु गुण है कि, उसने आपको झट बता दिया कि, इसमें कोई कड़वी वस्तु मिली है। एक और अवस्था पर विचार कीजिये। जिस पुरुष ने लड्डू को मीठा बताया है, उसकी जीभ पर कुनैन मल दो, फिर उसे लड्डू खिलाओ, तो वह उसको कड़वा बताएगा। इसका कारण न तो लड्डू का दोष है, न जीभ का। किन्तु बात यह है कि जीभ और लड्डू (अर्थात इन्द्रिय और अर्थ) का सन्निकर्ष होने से पहले या तो लड्डू में परिवर्तन हो गया, या जीभ और लड्डू के बीच में कुनैन का आवरण आ गया। बस यही दशा

ज्वर-पीड़ित मनुष्य की है। ज्वर की अवस्था में कड़वी वस्तु राल में मिली होती है। यह वस्तु लड्डू से नहीं आती किन्तु शरीर में रोग हो जाने के कारण शरीर की धातुओं से उत्पन्न हो जाती है। जिस समय मनुष्य लड्डू को मुँह मे रखता है तो यह कड़वी चीज़ लड्डू में मिल जाती है, इसीलिये लड्डू कड़वा प्रतीत होने लगता है। इसका सबसे मोटा सुबूत यह है कि ज्वर की अवस्था में विना लड्डू खाये भी रोगी को अपना मुँह कड़वा मालूम होता है, क्योंकि भीतर से कड़वा रस रोग के कारण उत्पन्न होकर मुँह मे आया करता है। रोगी को जो कड़वापन प्रतीत होता है वह लड्डू का नहीं किन्तु उस कड़वे रस का है जो मुँह मे उत्पन्न हो गया है। इसमे इन्द्रिय का कुछ भी दोष नहीं है।

पीलिया रोग का भी यही सिद्धान्त है। यदि तुम स्वाथ आँख मे पीला चश्मा लगालो तो सफेद दीवार पीली दीखेगी, क्योंकि पीले चश्मे के कारण सूर्य्य की जो किरणें आँख तक आती हैं उनके अन्य सब रंग विलीन हो जाते हैं, केवल पीला रंग रह जाता है। वही प्रतीत होने लगता है। पीलिया के रोग में भी यही होता है, अर्थात् रोग के कारण आँख के उस अंश मे, जिससे चक्षु-इन्द्रिय रूप ग्रहण किया करती है, कुछ ऐसा विकार हो जाता है कि प्रकाश की किरण के अन्य सब रंग विलीन हो जाते हैं, केवल पीला रंग रह जाता है, या आँख के सामने कुछ पीला आवरण आ जाता है। इसी कारण समस्त वस्तुएँ पीली दिखाई पड़ती हैं। यदि औषधि द्वारा इस विकार को दूर कर दिया जाय तो फिर यथार्थ रंग दिखाई पड़ने लगता है। इस प्रकार जिसको सन्देहवादी इन्द्रियों का दोष बताते हैं, वह वस्तुतः उनका दोष नहीं होता।

श्रीशंकराचार्य महाराज ने अपने वेदान्त-भाष्य मे प्रत्यक्षादि प्रमाणों को जो अविद्याजन्य या भ्रमन्य ठहराया है, वह ठीक नहीं है। हम यहा उनका कथन उद्धृत करके उसकी समालोचना करते हैं

(१) कथं पुनरविद्यावद्विषयाणि प्रत्यक्षादीनि प्रमाणानि शास्त्राणि चेति उच्यते।

(२) देहेन्द्रियादिष्वहं ममाभिमानरहितस्य प्रमातृत्वानुपपत्तौ प्रमाणप्रवृत्त्यनुपपत्तेः।

(३) नहीन्द्रियाण्यनुपादाय प्रत्यक्षादिव्यवहारः संभवति।

(४) न चाधिष्ठानमन्तरेणेन्द्रियाणां व्यवहारः संभवति।

(५) न चानध्यस्तात्मभावेन देहेन कश्चिद् व्याप्रियते।

(६) न चैतस्मिन् सर्वस्मिन्नसति असङ्गस्यात्मनः प्रमातृत्वमुपपद्यते।

(७) न च प्रमातृत्वमन्तरेण प्रमाणप्रवृत्तिरस्ति।

(८) तस्मादविद्यावद्विषयाण्येव प्रत्यक्षादीनि प्रमाणानि शास्त्राणि च।

अर्थात्--

(१) प्रत्यक्ष आदि प्रमाण तथा शास्त्र अविद्या जन्य कैसे हैं? इसका कथन करते हैं।

(२) यदि आत्मा देह और इन्द्रियों मे 'अहंबुद्धि' या 'ममबुद्धि' न करे तो उसमे प्रमाता की उपपत्ति नहीं होती। अर्थात् जब तक आत्मा शरीर और इन्द्रियों के विषय मे यह नहीं कहता कि 'यह मैं हूँ' या 'यह मेरी है' उस समय तक आत्मा प्रमाणों का प्रयोग नहीं कर सकता और उसमे प्रत्यक्ष आदि प्रमाणों को प्रयोग में लाने की प्रवृत्ति नहीं होती।

(३) विना इन्द्रियों के प्रत्यक्ष आदि होते नहीं।

(४) बिना आत्मा के अधिष्ठान के भी इन्द्रियाँ कुछ काम नहीं कर सकतीं।

(५) और जब तक देह मे आत्मा का अध्यास न किया जावे, उस समय तक शरीर से कुछ काम नहीं होता।

(६) यदि यह सब कुछ न हो तो अकेले आत्मा मे प्रमातृत्व का भाव नहीं उठ सकता।

(७) जब तक प्रमातृत्व न हो उस समय तक प्रमाणों मे प्रवृत्ति ही कैसे हो?

(८) इसलिये प्रत्यक्ष आदि प्रमाण तथा शास्त्र अविद्यावत् हैं।

श्रीशंकराचार्य्य की परम विद्वत्ता तथा उनकी युक्तियों के प्राबल्य की प्रशंसा करते हुये भी हमको कहना पड़ता है कि यहाँ शंकर स्वामी की युक्ति ठीक नहीं है। यदि पाठकगण थोड़ा-सा भी विचार करेंगे तो उनको प्रतीत होजायगा कि उनका हेतु हेत्वाभास मात्र ही है। शंकर स्वामी शरीर और इन्द्रियों मे आत्मा का अध्यास मानते हैं। अर्थात् वह कहते हैं कि आत्मा अविद्या के कारण शरीर और इन्द्रियों को 'मैं हूँ' ऐसा मान लेता है और यही मानकर प्रत्यक्ष आदि व्यापार करता है, इसलिये

यह सब व्यापार अविद्या के कारण होते हैं और प्रत्यक्षादि प्रमाण भी अविद्यावत् सिद्ध होते हैं।

परन्तु यह उनकी कल्पना हेतुशून्य है। उन्होंने कोई युक्ति इस पक्ष की पुष्टि में नहीं दी कि आत्मा शरीर और इन्द्रियों को "मैं हूँ" ऐसा समझ लेता है। उन्होंने अध्यास के विषय में चार बातें कही हैं—

(१) स्मृतिरूपः परत्र पूर्वदृष्टावभासः।

(२) अन्यत्रान्यधर्माध्यासः।

(३) यत्र यदध्यासस्तद्विवेकाग्रहनिबन्धनो भ्रमः।

(४) यत्र यदध्यासस्तस्यैव विपरीतधर्मत्वकल्पना।

अर्थात्—

(१) पहले देखी हुई किसी वस्तु का स्मृतिरूप से किसी दूसरी वस्तु में कल्पना कर लेना अध्यास है। जैसे पहले गर्म दूध से मुँह जल गया। इसकी याद रही, अब ठण्डे दूध या छाछ को देखकर भी यह कल्पना की कि इससे भी मुँह जल जायगा। तो इसीको अध्यास कहेंगे।

(२) एक वस्तु में दूसरी वस्तु की कल्पना करना अध्यास है, जैसे वृक्ष के ठूँठ को चोर समझ लेना।

(३) भेद या विशेषता का ज्ञान न होने के कारण जो भ्रम हो जाता है उसे अध्यास कहते हैं। जैसे कुत्ता हड्डी चूसता है और उसके लग जाने से मुँह में जो खून बहता है, उसको वह निश्चयपूर्वक कह नहीं सकता कि यह हड्डी से निकल रहा है या मेरे मुँह से। इस प्रकार का भ्रम अध्यास है।

(४) यदि एक वस्तु में उससे विपरीत धर्म वाली वस्तु के धर्म मान लिये जायें, तो यह भी अध्यास कहलाता है, जैसे मूर्ति जड़ है, उसको चेतन समझ लेना।

इन चारों लक्षणों में एक समानता है, वह यह कि—

सर्वथापि त्वन्यस्यान्यधर्मावभासतां न व्यभिचरति।

अर्थात् एक वस्तु में किसी दूसरी वस्तु के धर्म की कल्पना कर लेना।

अब देखना यह है कि इनमें से किस अर्थ में आत्मा शरीर या इन्द्रियों में अपना अध्यास करता है? विचारपूर्वक देखा जाय तो एक में भी नहीं। शंकर स्वामी आगे लिखते हैं—

"अध्यासो नाम अतस्मिंस्तद्बुद्धिरित्यवोचाम। तद्यथा पुत्रभार्यादिषु विकलेषु सकलेषु वा अहमेव विकलः सकलो वेति बाह्यधर्मानात्मन्यध्यस्यति तथा देहधर्मान्—स्थूलोऽहं, कृशोऽहं, गौरोऽहं; तिष्ठामि, गच्छामि, लङ्घयामि चेति। तथेन्द्रियधर्मान्—मूकः, काणः, क्लीबः, बधिरः, अन्धोऽहमिति। तथान्तःकरणधर्मान् कामसंकल्पविचिकित्साध्यवसायादीनि। एवमहंप्रत्ययिनमशेषस्वप्रचारसाक्षिणि प्रत्यगात्मन्यध्यस्य तं च प्रत्यगात्मानं सर्वसाक्षिणं तद्विपर्ययेणान्तःकरणादिष्वध्यस्यति। एवमयमनादिरनन्तो नैसर्गिकोऽध्यासो मिथ्याप्रत्ययरूपः कर्तृत्वभोक्तृत्वप्रवर्तकः सर्वलोकप्रत्यक्षः।"

अर्थ—हम कह चुके हैं कि एक में दूसरे की बुद्धि करना अध्यास है। जैसे (१) पुत्र, स्त्री आदि के दुःखी या सुखी होने पर इस बाहरी दुःख या सुख को अपने आत्मा में मान लेना, अर्थात् यह समझ लेना कि मैं दुःखी या सुखी हूँ—अध्यास है।

(२) शरीर के धर्म को अपने आत्मा में मान लेना अध्यास है, जैसे मैं मोटा हूँ, मैं दुबला हूँ, मैं गोरा हूँ, मैं खड़ा होता हूँ, मैं जाता हूँ; इत्यादि।

(३) इन्द्रियों के धर्मों को अपना धर्म मान लेना अध्यास है, जैसे मैं गूंगा हूँ, मैं काना हूँ, मैं नपुंसक हूँ, मैं बहरा हूँ, मैं अन्धा हूँ।

(४) अन्तःकरण के धर्म अर्थात् संकल्प आदि को अपने आत्मा में मान लेना अध्यास है।

हमको इन चारों अवस्थाओं में से एक में भी अध्यास का लक्षण (अतस्मिंस्तद्बुद्धि) नहीं मिलता। आत्मा, शरीर और इन्द्रिय आदि में 'आत्मत्व' की भावना नहीं करता, किन्तु वह उनको अपने कार्य का साधन तथा अपनी सम्पत्ति समझता है। अध्यास में वह वस्तु, जिसका अध्यास किया जाता है, उस वस्तु के पास जिसमें अध्यास किया जाता है, नहीं होती। परन्तु साधक के पास साधन या स्वामी के पास सम्पत्ति होती है। रस्सी में साँप नहीं किन्तु उसमें साँप के धर्म मान लिये गये, इसलिये यह अध्यास है। यदि रस्सी के ऊपर साँप होता और उस समय साँप के गुण माने जाते तो यह अध्यास न होता। सीप में चाँदी के धर्म मान लेना अध्यास है, परन्तु यदि सीप के ऊपर चाँदी का खोल चढ़ा दिया जाय और उस खोल में चाँदी के धर्म माने जायँ, तो कोई इसको अध्यास नहीं कहेगा, और न यह शंकराचार्य-कथित अध्यास के किसी लक्षण के अन्तर्गत आ सकता है। जब मैं पुत्र या स्त्री को दुःखी देखकर

दु:खी होता हूँ, तो इसका यह अर्थ नहीं कि, मैं अपने को 'पुत्र' या 'स्त्री' समझ लेता हूँ, किन्तु केवल इतना मानता हूँ कि इनके द्वारा जो मुझ को सुख मिलता वह न मिलेगा। इसीका परिज्ञान होने के कारण मुझे दु:ख होता है। यदि स्त्री या पुत्र को ज्वर आजाय तो कोई यह नहीं समझता कि, मुझे ज्वर आ रहा है। यदि स्त्री या पुत्र की पीठ में फोड़ा निकले तो मै कभी यह नहीं समझता कि मेरी पीठ में फोड़ा निकला है। उस समय मेरी भावना ऐसी होती है कि यह मेरे सम्बन्धी हैं। इनको कष्ट हो रहा है, अत मुझे भी कष्ट हो रहा है। यदि इस भावना का विश्लेषण किया जाय तो तीन बातें मिलेगी —

(१) स्त्री या पुत्र का बीमार होना।

(२) उस बीमारी के कारण उनका दु:खी होना।

(३) *उनके उस दु:ख के कारण मेरा दु:खी होना।* जो दु:ख स्त्री या पुत्र को है वही दु:ख मुझे नहीं है। मेरा दु:ख उससे भिन्न है। स्त्री या पुत्र का दु:ख ज्वर से उत्पन्न हुआ है, और मेरा दु:ख उनके दु:ख से। मुझे वही पीड़ा नहीं हो रही, जो स्त्री या पुत्र को हो रही है। मेरी पीड़ा और उनकी पीड़ा में भेद है। उनकी पीड़ा मेरी पीड़ा का कारण मात्र है। अत जब मै स्त्री या पुत्र के दु:ख या सुख मे अपने को दु:खी या सुखी समझता हूँ, तो इसका यह अर्थ कदापि नही कि मै स्त्री या पुत्र मे अपना अध्यास कर रहा हूँ।

इसी प्रकार शरीर मेरे काम का साधन मात्र है। मै शरीर से काम लेता हूँ। वह मेरा औज़ार (Instrument) है। मै शरीर को यह नहीं समझता कि मै शरीर हूँ। यह तो सब कहते है कि मेरा सिर है, मेरी टाँगे है, मेरे हाथ है, या मेरा शरीर है। यह कोई नहीं कहता कि मै सिर हू, मै टागे हूं, मैं हाथ हू, इत्यादि। हमने यह तो सबको कहते सुना है कि मेरे शरीर मे पीड़ा है। परन्तु क्या कोई ऐसा भी कहता है कि 'मुझ मे पीड़ा है'? श्रीशंकराचार्यजी जैसे दार्शनिकों की बात जाने दीजिये। वह विचित्रता के लिये कुछ भी क्यों न समझते हों, या समझ सकते हो, परन्तु साधारणतया असभ्य और अशिक्षित मनुष्य से लेकर शिक्षित और सभ्य मनुष्य तक कोई भी यह नहीं समझता कि—मैं शरीर हू। यही सब कहते हैं कि मेरा शरीर है। यह ठीक है कि लोग कहते है कि, मैं मोटा हू, मैं दुबला हूँ इत्यादि, परन्तु यह उपचार की भाषा है। "मैं मोटा हू" का अर्थ है "मैं मोटे शरीर-वाला हूं"। "मै गोरा हूं" का अर्थ है "मै गोरे शरीर वाला हू"। यह उपचार की भाषा केवल इसलिये नहीं है कि हम ऐसा कहते है, किन्तु प्रत्येक भाषा-भाषी के मस्तिष्क में यह भाव विद्यमान रहता है कि इन वाक्यों से मेरा क्या तात्पर्य है। इसका सुबूत यह है कि यदि किसीसे पूछो कि "क्या तुम मोटे हो?" या "तुम्हारा शरीर मोटा है?" तो वह झट कह उठेगा कि "मेरा यही तात्पर्य है कि मेरा शरीर मोटा है।" जब हम कहते है कि "मै जाता हूँ" तो इसमें अध्यास कहां से आगया? "जाने" का अर्थ यह है कि एक स्थान छोड़कर दूसरे स्थान को घेरना। इसमें सदेह नही कि जब मैं जाता हूँ तो *अवश्य पहले स्थान पर विद्यमान नहीं रहता, किंतु दूसरे* स्थान पर होता हूँ। इसलिये "मैं जाता हूँ" वाक्य या व्यापार मे शरीर पर आत्मा का अध्यास मानना किसी प्रकार भी ठीक नहीं समझा जा सकता। (क्रमश)

गंगाप्रसाद उपाध्याय

प्रेमलीला

प्रकृति का मधुर भाव-सचार

आम्र-मजरी के विकास मे,
कुसुम-कली के मधुर हास मे,
प्रिय पराग मे, मृदु सुवास मे—
मधुर राग मे, रंग रास मे,
करता है झकार।१।

नव वसत कृत कुसुम-कुंज मे,
पल्लव पुष्प प्रपर्ण पुज मे,
घन-निनाद मे, सरस वाद में—
प्रियोन्माद मे, भ्रमर-गुंज मे,
विविध रूप लय धार।२।

विरही की सताप कथा मे,
घोर यत्रणापूर्ण प्रथा मे,
हृदयानलमें, नयन विकल के—
छल-छल जलमें, विषम व्यथा मे,
प्रगटित विविध प्रकार।३।

नद-प्रवाह मे, मिलन-चाह मे,
नव उछाह में, विकलदाह में,

घोर निराशापूर्ण विरहदग्धा—
विधवा की उष्ण आह में,
करता विषम विकार । ४ ।
यौवन की नूतन तरंग में,
प्रथम समागम की उमंग में,
सुहृद्-संग में, प्रिया-अंग में,
रूप रंग में, विविध ढंग में,
करता नित विस्तार । ५ ।
नवादित्य में, पूर्ण इन्दु में,
मुक्ताहित्य में, स्वाति बिन्दु में,
मलयानिल में, शीतसलिल में—
प्रिय-मुख-तिलमें, शान्त सिन्धु में,
बहता बन रसधार । ६ ।
शीतल मन्द सुगन्ध पवन में,
विकसित कम्र कुसुम-कानन में,
श्याम सघन घन में, गर्जन में,
बन में विस्तृत नील गगन में,
धरता छवि सुकुमार । ७ ।
मोहन मंत्र मनुज की मति का,
धारक घोर विपति में धृति का,
अगम और अज्ञेय स्वगति का,
रूप सजाता निखिल प्रकृति का
मधुर भाव सचार । ८ ।
कन्हैयालाल जैन

मेरी तीर्थयात्रा
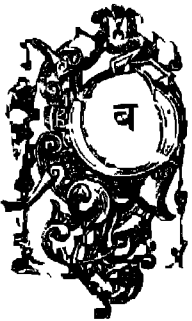
बहुत दिनों से हम लोगों का विचार था कि एक बार जगदीश, रामेश्वर तथा द्वारका की यात्रा कर आवें, परन्तु किसी-न-किसी सामयिक असुविधा के कारण यह सकल्प टलता ही गया । गत फाल्गुन मास में पूज्य चाचाजी ने मुझसे निश्चित रूप से यह कहा कि अब की चाहे जो कुछ हो यात्रा कर डालना ही चाहिये । मुझे भला इसमें क्या आपत्ति होती । मेरे लिये तो इससे बढ़कर भारत-भ्रमण करने का और कोई सुयोग था ही नहीं । मैंने तुरन्त अपनी सहर्ष अनुमति देदी । पचाङ्ग आदि देखकर मुहूर्त निश्चित कर लिया गया, चैत्र कृष्ण ५ को हम लोगों का प्रस्थान करना निश्चित हुआ ।

यात्रावाले दिन हम लोग पहिले काशी की ही यात्रा को निकले । गङ्गास्नान करके श्रीविश्वेश्वर, अन्नपूर्णा के दर्शन करने गये । भारत के मुख्य-मुख्य तीर्थस्थानों में काशी का स्थान बहुत ऊँचा है । काशी का माहात्म्य लिखते हुए कहा गया है—

"भूमिष्ठापि न यात्र भूस्त्रिदिवतोऽप्युच्चैरधःस्थापि या ।
या बद्धा भुवि मुक्तिदा स्युरमृतं यस्यां मृता जन्तवः ॥
या नित्यं त्रिजगत्पवित्रतटिनीतीरे सुरैः सेव्यते ।
सा काशी त्रिपुरारिराजनगरी पायादपायाज्जगत् ॥१॥

श्रीविश्वनाथजी का मंदिर

श्री काशीक्षेत्र का सबसे प्रसिद्ध तथा मुख्य स्थान है विश्वनाथजी का मन्दिर । इस पर कई बार यवनों के आघात हो चुके हैं । सर्व प्रथम अलाउद्दीन खिलजी ने १४वीं शताब्दी के प्रारम्भ में इस मन्दिर को तोड़ा। इसके उपरान्त दूसरा मन्दिर इससे थोड़ी दूर पर बना । इस बार औरङ्गज़ेब ने इस मन्दिर पर चढ़ाई की। तदुपरान्त अहिल्याबाई ने नर्मदा नदी से विश्वनाथजी की मूर्ति प्राप्त करके स्थापित की, और उसपर यह नया मन्दिर, जो आजकल है, बनवाया । परन्तु यहाँ पर एक सन्देह उत्पन्न होता है, और वह यह कि अहिल्याबाई औरङ्गज़ेब की समकालीना न थीं । औरङ्गज़ेब सन् १७०७ ई० में मर गया था । यह बात इतिहास-प्रसिद्ध है कि उसके राजत्व-काल के अन्तिम २५ वर्ष दक्षिण की

श्री काशी विश्वेश्वर

लड़ाइयों में बीते. अस्तु, विश्वनाथ जी के मन्दिर का तोड़ा जाना १६८० ई० के पूर्व ही माना जा सकता है । परन्तु महारानी अहिल्याबाई सन १७६५ ई० में गद्दी पर बैठी हैं । यदि यह भी मान लिया जावे कि उन्होंने गद्दी पर बैठने के पूर्व ही मन्दिर बनवा दिया, तो वह भी १५ वर्ष से अधिक का काल नहीं हो सकता । इस हिसाब से सन् १६८० ई० से १७५० ई० तक अर्थात् ७० वर्ष तक काशी में विश्वनाथ जी का कोई मन्दिर न था । आगे चलकर इसी मन्दिर पर पंजाब-केसरी महाराजा रणजीतसिंह ने नौ मन सोना चढ़वाया ।

नित्य-प्रति हज़ारों की संख्या में लोग यहाँ दर्शन के निमित्त आते हैं । पंचम वर्ण तथा अनार्यों को छोड़कर सबको मन्दिर में आने की आज्ञा है । प्रत्येक समय मन्दिर में भीड़ रहती है। प्रातःकाल ३ बजे से मन्दिर खुलता है और रात्रि को १२ बजे तक खुला रहता है। प्रातःकाल, मध्यान्ह, सायंकाल तथा मध्य रात्रि को चार

काशी की श्रीअन्नपूर्णा देवी

बार पूजन तथा आरती होती है । उस समय भी सब कोई बाहर से दर्शन कर सकते हैं । यद्यपि यहाँ भी अन्य तीर्थ स्थानों की भाँति पंडे बहुत हैं, परन्तु विशेष कष्ट-दायक नहीं हैं । विश्वनाथजी के मन्दिर में महा शिवरात्रि को बड़ी भीड़ होती है । दो तीन लाख मनुष्य बाहर से आते हैं । ग्रहण के समय भी यहाँ प्रायः बड़ी भीड़ रहती है । बड़ा तीर्थ होने के कारण हर समय यहाँ हज़ारों ही

भावना बने रहते हैं। यहाँ पर तीन मुख्य धर्मशालाएँ हैं। एक तो मन्दिर के पास ही लक्ष्मीनारायण की धर्मशाला, दूसरी शहर में बुलानाले पर मारवाड़ी की धर्मशाला के नाम से प्रख्यात तथा तीसरी छावनी स्टेशन पर।

यहाँ की सड़कें तथा सवारियाँ विशेष प्रशंसनीय नहीं हैं, इससे यात्रियों को कष्ट होता है। काशीक्षेत्र हिंदुओं का तीर्थमात्र ही नहीं है, किन्तु वह हिंदू-जाति के पूर्व-गौरव, समृद्धि, अभ्युदय तथा उसकी प्राचीनता का परिचायक भी है। भारतीय सभ्यता तथा विद्या का केन्द्र है। भगवान शंकर के मन्दिर के वाम पार्श्व में माता अन्नपूर्णा अथवा देवी विशालाक्षी का मन्दिर है। इन दोनों स्थानों का दर्शन करना मुख्य रूप से माना गया है। अस्तु, काशी के मुख्य-मुख्य देव स्थानों का दर्शन करके पूर्व निश्चयानुसार चैत्र कृष्ण ४ को सन्ध्या समय देहरादून एक्सप्रेस से कलकत्ते के लिये रवाना हुए। यद्यपि कलकत्ता स्वयं कोई तीर्थस्थान नहीं है, परन्तु यहाँ से होकर जगदीशपुरी जाने में अधिक सुविधा होती है।

फिर शस्य-श्यामला बंग देश की सुप्रसिद्ध राजधानी विशाल कलिकाता नगरी के एक बार और देखने का लोभ हम संवरण न कर सके। पुरी जाने के लिये गोमा होकर एक और लाइन सीधी भी गई है, और इसमें प्रायः २०० मील का अन्तर भी पड़ता है, परन्तु हम लोग कलकत्ते होकर ही पुरी गए थे। यहाँ पर हम लोग तीन दिन रहे।

रविवार की रात्रि को ९ बजे पुरी एक्सप्रेस से हम लोग पुरी के लिये चले। हवड़ा स्टेशन पर ही भद्रोचित वस्त्र पहने हुए एक सज्जन आए और हम लोगों से हमारा परिचय प्राप्त करना चाहा। बातचीत से ज्ञात हुआ कि आप रामेश्वर क्षेत्र के एक पंडे के नौकर हैं, और आप की 'ड्यूटी' हवड़ा स्टेशन पर रामेश्वर जानेवाले यात्रियों को फाँस कर अपने स्वामी के यहाँ भेजना है। हम लोगों से दो टूक उत्तर पा जाने पर कि, हम लोग किसी पंडा के यहाँ आतिथ्य स्वीकार न करेंगे, वे अपना-सा मुँह लेकर लौट गए। हम लोगों की गाड़ी बड़ी तेज़ी से रवाना हुई। प्रातःकाल भुवनेश्वर का स्टेशन पड़ा। भुवनेश्वर में सूर्य भगवान का एक बहुत ही बृहद् मन्दिर है। ठीक उसीके जोड़ का मन्दिर अमेरिका में
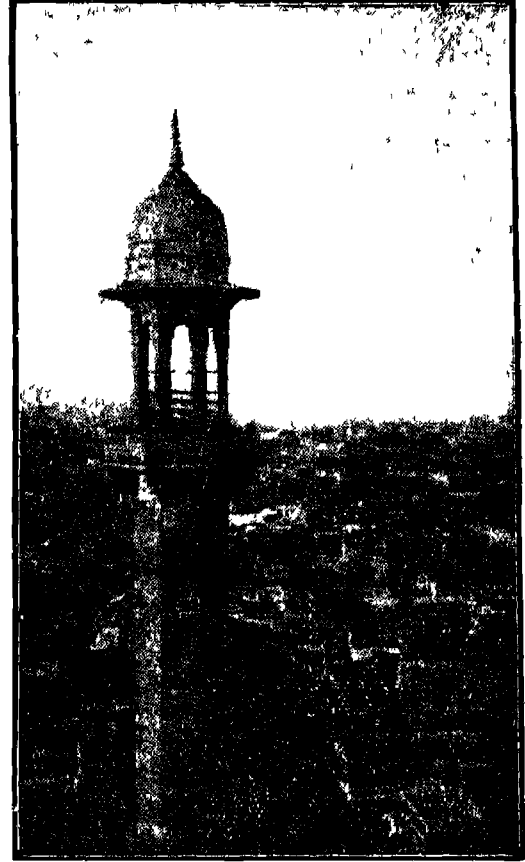
पचगंगा घाट पर के औरंगज़ेब के धौरेहरा पर से काशी का दृश्य

खोज कर निकाला गया है, जिससे यह सिद्ध होगया है कि, प्राचीनकाल में भारतवर्ष के चक्रवर्ती राजाओं का शासन-क्षेत्र वहाँ तक फैला था। अपने प्राचीन गौरव के सूचक इन चिह्नों को देखकर किस प्राणी का हृदय आह्लादमय न हो जायगा। विदेश-यात्रा के विरोधी धर्मध्वजियों को यह जानना चाहिए, कि कूप-मंडूक वाली प्रवृत्ति हम लोगों के पूर्वजों में नहीं थी। कला में निपुण, व्यापार-कुशल, सुचतुर, वणिक समुदाय देशदेशान्तरों में जाकर उपनिवेश स्थापित करते और अपनी शिष्टता, सभ्यता, शिक्षा तथा अन्य कलाओं की निपुणता की छाप वहाँ के आदि निवासियों पर लगाकर अपनी श्रेष्ठता प्रमाणित करते थे।

वहाँ से आगे बढ़ने पर खुरदा रोड जंकशन पड़ा।

बी० एन० आर० की मेन लाइन खुरदा रोड से सीधी वालटेयर को चली जाती है, और पुरी के यात्रियों को यहाँ पर एक लोकल गाड़ी बदलनी पड़ती है। परन्तु हमारी गाड़ी सीधी पुरी तक जाती थी। इस कारण हम लोगों को गाड़ी बदलने का कष्ट नहीं उठाना पड़ा। खुरदा रोड स्टेशन से पुरी के पंडे साथ लगते हैं। हम लोगों के पास भी आए। पूछा—"कौन गाँव रहते हो ?" हमने मज़ाक में कहा—"तुम कौन गाँव रहते हो ?" ताड़ गए यहाँ दाल नहीं गलने की। परन्तु एक गया ही था कि दूसरा फिर सर पर सवार। पुरी की ओर हम लोग पहले कभी आए नहीं थे, इस हेतु वहाँ के सभी स्थानों तथा रीति-नीति से नितांत अनभिज्ञ थे। अस्तु, जो पंडा दुबारा आया था उससे हम लोगों ने वहाँ के संबंध की कुछ बातें पूछीं। उसने भी नम्रता तथा सौजन्यता से हमारे प्रश्नों के उत्तर दिए। जब हमने उसका नाम पूछा, तब तो उसकी बाछें खिल गईं। अपना कार्ड निकाल कर दिया। यही महाशय हमारे पंडा हो गए। प्रातःकाल ८ बजे हमारी गाड़ी पुरी स्टेशन पहुँची। स्टेशन पर पंडों की भीड़ देखकर एक बार जी सहम उठा। ज्ञात होता था मानो जलियाँवाला बाग़ में जेनरल डायर के सैनिकों के बीच हम लोग क़ैदी हैं ! यहाँ से बच आना कोई साधारण काम नहीं है। कोई आपका एक हाथ खींचता है, तो कोई दूसरा कोई आपका निवास-स्थान पूछता है, तो दूसरा आपकी जाति। मानो वे लोग विवाह कराने वाले दलाल हैं। कुशल यही थी कि हमने एक पंडा पहले ही से कर लिया था अन्यथा नगर तक पहुँचना कठिन हो जाता। ।=) में एक घोड़ा-गाड़ी किराए करके मन्दिर के पास आए। हम लोगों के एक मित्र ने काशी से चलने के पूर्व ही गोयेनका-वाली धर्मशाला का नाम बतलाया था, और वहीं हम लोग उतरनेवाले भी थे। परन्तु भला पंडाजी हम लोगों को अपने क़ब्ज़े से क्यों जाने देते ? उन्होंने धर्मशालाओं की अवस्था का एक बड़ा भीषण चित्र खींचा, जिससे यह ज्ञात हुआ कि मानो धर्मशाला चोरों तथा ठगों का एक अड्डा ही हो। लाचार हम लोग अपने तीर्थ-गुरु श्रीपंडाजी के साथ उनके तपोवन सदृश आश्रम में जा पधारे ! यह यात्री-विश्रामालय एक बड़ा मकान था। गृह-स्वामी को म्युनिसिपैल बोर्ड द्वारा अधिकार प्राप्त है। स्थान बड़ा था तथा साफ़ सुथरा भी। जल का सुपास था।

साधारणतया जगन्नाथजी का मन्दिर दिन भर खुला रहता है, परन्तु दर्शनार्थियों को मूर्ति के पास जाकर मत्था टेकने की आज्ञा दिन भर में केवल दो बार है; एक तो ९-१० बजे दिन को और दूसरा ९॥ बजे रात्रि को। परन्तु जिस दिन हम लोग वहाँ पहुँचे थे, उस दिन एक आकस्मिक घटना से कुछ विलम्ब हो गया था। मन्दिर का यह नियम है कि १) दक्षिणा देने से मनुष्य को भगवान का स्नान, शृङ्गार तथा भोग आदि का उत्सव देखने का अधिकार प्राप्त होता है। इसी नियम के अनुसार उस दिन प्रातःकाल कुछ सज्जन भीतर गये थे। वहाँ पर कुछ *स्पृश्यास्पृश्य* के झमले के कारण भगवान की मूर्ति का दुबारा स्नान पूजन किया गया, तथा उक्त सज्जनों को ११) जुर्माना का देना पड़ा। अस्तु, दर्शनों में विलम्ब था हम लोग अपने कमरे में बैठे थे कि दो भिक्षुक ब्राह्मण गाते हुये आये। एक सज्जन के कुछ पद ऐसे हैं—

> ओड़िया महाराज पुरी में ठाकुर भले बिराजो जी -
> काले काले दिगल बैठा तथा उनकी चोटी।
> तिन्ह देखि ठाकुरजी मोहे उनके गरदन मोटी॥
> ठाकुर भले बिराजोजी -
> उड़िया मांगे कौड़ी औ बहाना मांग भात—
> मांगे मांग दरसन और महा परसाद।

ठीक समय पर दर्शन को गये। वहाँ का नोच-खसोट देख कर भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्रजी का यह कथन स्मरण हो आया—

> मन्दिर बीच भँड़ेरिया नाचे करे धरम की गासी।
> राह चलत भिखमंगा नाचे बात करे दाता सी।
> मोटा लेत दलाली नाचे देकर लामा लामी।
> माल लिये पर दूकानदार नाचे कपड़ा दे रासी।
> घाट जाओ तो गंगापुत्तर नोचे दे गलफाँसी।
> कर घटिया बस्तर मोचन दे दे के सब झाँसी।

एक सज्जन चने का बड़ा भारी तिलक लगाकर पास आये और एक माला देकर बोले—"इसे भगवान पर चढ़ाओ।" दाम पूछने पर बताया दो पैसा। हमने माला

ले लो। बोले, ऐसा नहीं ; दो पैसा हमें और दो तो हम यह माला चढ़ा देंगे। हमने पूछा, क्यों तुम्हें क्यों दें, हम स्वयं चढ़ा लेंगे ? बोले, नहीं, तुम्हें चढ़ाने का अधिकार नहीं है। लाचार दो पैसा माला पीछे और दिया। थोड़ी देर के बाद वही माला लिये फिर वही व्यक्ति सामने से निकला। पैसे उड़ा लिये, पर माला कौन चढ़ाता है। इसी भांति सभी बातों में जुआ चोरी होती है। प्रसाद का तुलसीदल लीजिये तो पैसा, चरणामृत लीजिये तो पैसा, अर्थात् बात-बात में पैसा। किसी प्रकार भोग लगा। भोग बांटने के लिये एक सज्जन खिचड़ी एक थाल में रखकर लाये और एक एक पैसा देने पर सबको दो-दो दाने देने लगे। भक्तिपूर्वक हम लोगों ने उसको ग्रहण किया।

प्रायः सभी जानते हैं कि जगन्नाथजी में खान-पान का विचार नहीं है। इस कथन का यह तात्पर्य नहीं है कि वहां भक्ष्याभक्ष्य का विवेक लोगों में नहीं है, वरन् इसका यह अर्थ है कि मन्दिर के पुजारियों द्वारा पकाया हुआ भोजन, जाति-पांतिके भेद भाव की उपेक्षा करके, उच्चाति-उच्च ब्राह्मणों द्वारा भी ग्राह्य है। सभी कोई मन्दिर का महाप्रसाद सहर्ष ग्रहण करते हैं। यह बात सर्वथा सत्य है। इसके संबंध में जो पौराणिक कथा यहां प्रचलित है, वह इस प्रकार है—

अपने पिता प्रजापति दक्ष के यज्ञ में अपना शरीर भस्म करके सती ने अपने पति भगवान शंकर के हृदय से अपने प्रति क्रोध तथा वैराग्य के भाव को निर्वासित कर दिया। इनके प्राण-त्याग के उपरान्त इनके विरह से व्यथित जब शिवजी अत्यन्त वीभत्स रूप धारण कर सती के मृत शव को लेकर ताडव नृत्य करने लगे, तब उनके शरीर के अंग-विशेष टूट-टूट कर स्थान-स्थान पर जा गिरे। उन्हीं स्थानों पर प्रसिद्ध देवीपीठ की संस्थापना हुई। उसीके अनुसार जगन्नाथपुरी में देवी के ओष्ठ-पल्लव गिरे थे, जिसके प्रभाव से यहां भोजन-संबंधी उन साधारण संकीर्णताओं का पालन नहीं होता, जिनका अन्य स्थानों तथा स्थितियों में उल्लंघन करना उस मनुष्य को जातिच्युत कर देता है। दूसरा कथन इस प्रकार है कि पूर्व काल में खान-पान में ऐसा वितण्डावाद नहीं था। शुद्ध ब्राह्मणों द्वारा पकाया भोजन प्रत्येक जाति या वर्ण के मनुष्य को ग्राह्य था। यद्यपि अन्य स्थानों से यह प्रथा लुप्त होगई, परन्तु यहाँ यह अब भी अवशिष्ट है। प्रसाद-वितरण के उपरांत मंदिर के भीतर सफ़ाई हुई और हम लोगों को भीतर जाने की अनुमति मिली। यद्यपि जिन दिनों हम लोग पुरी गये थे, कोई मेले का अवसर नहीं था, तथापि भीड़ यथेष्ट थी। मंदिर का भीतरी स्थान बहुत बड़ा नहीं है, केवल १००–१२५ मनुष्यों की जगह उसके अंदर है। भीतर अत्यंत अंधकार है। दीपक के निरंतर जलने से भीतर की वायु भी दूषित होगई है। आने तथा जाने दोनों के लिये एक ही मार्ग है। भीतर दर्शन करके हम लोग बाहर निकले। दरवाज़े पर कई सज्जन वहाँ की विशेष प्रकार की छड़ियाँ लिये यात्रियों के सिर पर लगाकर पैसा वसूल करने को खड़े थे। हमने पास पहुंच कर साफ कह दिया कि, अगर छड़ी बदन से छुलाई तो हम भी एक करारा हाथ रसीद करेंगे। वे समझ गये और हम लोगों पर अपना टोना नहीं कर पाये। लौटकर घर आये। पंडाजी पहले से ही महाप्रसाद लेकर उपस्थित थे। हम लोगों ने भी उन प्रसाद की सामग्रियों पर खूब हाथ फेरा। दूसरे दिन एकादशी थी। हम लोग बारहों मास एकादशी का व्रत करते हैं, परन्तु तीर्थ-गुरुओं ने इसका निषेध किया।

यहां पर अन्य पांच तीर्थ स्थान हैं। जिनमें मारकंडेय तीर्थ एक सरोवर है ; महोदधि समुद्र ही है, और अन्य तीन स्थान मंदिर के बड़े घेरे के भीतर ही हैं। पुरी की दो एक विशेषतायें उल्लेखनीय हैं। यद्यपि यहाँ की वायु स्वास्थ्य के लिये लाभकर है, तथापि जल यहां का हानिकारक ही है। यहाँ प्रायः ७५ प्रतिशत मनुष्यों को फ़ील-वृद्धि का कष्ट है। यह केवल तीर्थ-स्थान मात्र है। यहां कोई बड़ी बस्ती नहीं है। यहाँ मनुष्यों द्वारा खींची जानेवाली एक विशेष प्रकार की गाड़ी होती है। इसमें सबसे बड़ा कष्ट यह होता है कि बीच में बैठा हुआ मनुष्य बाहर का दृश्य नहीं देख सकता। यहां पर पान खाने की भी बड़ी चाल है। प्रातःकाल से ही बिना मुँह-हाथ धोये लोग पान खाने लगते हैं। यह यहां की प्रचलित प्रथा-सी है। यह बात नहीं है कि दो-एक सज्जन ऐसे हों—नहीं, यहां की चाल ही ऐसी है।

महोदधि समुद्र में स्नान करने से बड़ा आनंद आता है। पुरी के समुद्र की विशेषता यह है कि किनारे पर

बहुत दूर तक छिछला मैदान होने से जो लहरें बड़े वेग से दूर से आती हैं वे बिलकुल किनारे तक आते-आते शक्तिरहित-सी हो जाती हैं। अस्तु, स्नान करनेवाला विना भय के जल-केलि कर सकता है।

जगन्नाथजी का मंदिर कम-से-कम एक मील के घेरे मे बना है। उसके भीतर कई स्थान है—जैसे भोजनालय, सग्रहालय आदि। मुख्य मंदिर भी विस्तृत क्षेत्र में बना है और बड़ा विशालाकार है। ऊपर एक बहुत ऊंचा गुम्बज़ है। मंदिर के इस गुम्बज़ के चारो तरफ़ ४०-५० पत्थर की कोकशास्त्र-सबधी स्त्री-पुरुषों की नग्न मूर्तियां बनी हैं। इनके बनाने का क्या अभिप्राय था, यह ठीक-ठीक नहीं जान पड़ता। पडाजी से पूछने पर यह अवश्य ज्ञात हुआ कि ३०-४० मूर्तियाँ तोड़ दी गई हैं, और अब जो सख्या वर्तमान है वह प्राय आधी है। खोज करने से यह अवश्य पता चला है कि प्राचीन समय में यह भैरवजी का मंदिर था। कालान्तर मे वाममार्गियो ने उस पर अपना अधिकार जमा लिया, और ये मूर्तियाँ उन्हीं लोगो की स्थापित की हुई है, जिन्होंने कोकशास्त्र-सबधी ज्ञान का जनसमूह मे प्रचार करने का उपयुक्त साधन इसे ही बनाया। इसके बाद जब इन लोगों का अधिकार क्षीण हुआ और भिन्न प्रवृत्ति वालो का आधिपत्य हुआ, तब मंदिर के भीतर वाली प्रधान मूर्ति हटा दी गई, और उसके स्थान पर जगन्नाथजी की मूर्ति स्थापित कर दी गई। परन्तु अन्य मूर्तियां जो बाहर गुम्बज़ पर लगी थीं, वैसी ही बनी रहीं। जो कुछ भी हो, यह बात अवश्य ही प्रतीत होती है, कि ये कुरुचि-पूर्ण मूर्तियां ऐसे स्थानो में रखे जाने से लाभ की अपेक्षा कहीं अधिक हानि होती है। नहीं मालम, क्या कारण है कि, न तो प्रजा की ओर से ही और न मंदिर के अधिकारिवर्ग की ही ओर से इनके हटा देनेका कोई प्रयत्न होता है। यदि ऐसे चित्रों को रखना ही अभीष्ट है, तो किसी आच्छादित बन्द स्थान मे ही इनको रखना चाहिये। प्रत्येक स्त्री-पुरुष के नेत्रों के सामने बलात् ऐसे चित्रों का लाया जाना कोई अच्छी बात नहीं है। गुरुजनो के साथ जाते हुए यदि किसी कन्या की दृष्टि एक मूर्ति की ओर चली जावे तो यह घटना उस कन्या को कितना दुःख देगी। क्या ऐसी आशा की जा सकती है कि इसका कोई-न-कोई उचित प्रबंध अवश्य किया जायगा?

यहां पर यात्रियों को ठगने के लिये पडों के बहुत से हथकंडे हैं। यात्रियों से कहा जाता है कि "अटका चढ़ाओ।" इस शब्द विशेष के अर्थ हैं, एक ऐसी गहरी रक़म चढ़ाओ जिसके ब्याज से जन्मजन्मान्तर आपकी ओर से ठाकुर जी को भोग लगा करे। ऐसी चढ़ाई हुई सारी-की-सारी रकम पडाजी की तोंद मे समा जाती है। यात्रियों को इससे बचना आवश्यक है। अटके के समान अन्य कितने ही प्रकार के लटके ये लोग बे-खटके काम मे लाते हैं। आषाढ़ मास मे रथयात्रा के उत्सव पर यहां पुरी मे बड़ी भीड़ होती है। दो-ढाई लाख मनुष्य श्रीजगदीश भगवान् के दर्शनार्थ यहां आते हैं। मन्दिर के सामने वाला राजमार्ग १०० फ़ुट के लगभग चौड़ा है। यह सारा-का-सारा मार्ग नरमुडमय हो दीख पड़ता है। उस समय जगन्नाथपुरी वास्तव में देखने लायक़ जगह हो जाती है। मन्दिर के भीतरी प्रबंध मे अत्यधिक सुधार की आवश्यकता है। वर्तमान प्रबन्ध यात्रियों को अत्यन्त अरुचिकर है।

जगन्नाथजी मे तीन रात्रि रहकर हम लोग आगे बढ़े। पुरी से रामेश्वर तक का हम लोगो ने १२५० मील का सीधा टिकट खरीदा। पुरी से प्रातःकाल ८॥ बजे गाड़ी मे बैठ और साढ़े दस बजे खुरदा रोड पहुँचे। मार्ग मे एक स्थान पड़ता है, जिसका नाम है "साखी गोपाल"। इस स्थान के विषय मे प्रसिद्ध है कि, यहां एक गोपालजी की मूर्ति प्रतिष्ठित है, जो मनुष्य की जगन्नाथ-यात्रा की साक्षी श्रीचित्रगुप्तजी के सामने देती है।

खुरदा रोड मे पहुँचकर हम लोगों ने गाड़ी बदली। गाड़ी मे बैठने पर रामेश्वर के पडों के दूत आ पहुँचे। ये अधिकतर सज्जन प्रकृति के थे। जो सज्जन हमारे पास आये, वे हमारे बड़े ही शुभचिंतक बन गये। आपने बड़े ही निस्पृह भाव से १२०० मील की यात्रा का टाइमटेबल् बनाना आरम्भ किया कि अमुक स्थान पर अमुक गाड़ी अमुक समय पर पहुँचेगी। वहां पर हमें उतर जाना चाहिये। फिर रात्रि की गाड़ी मे ठहे-ठहे चलना चाहिये और दूसरे दिन प्रातःकाल दूसरे स्थान पर टिकना चाहिये। रेल के छूटने के ठीक घंटा मिनट और मार्ग मे विश्राम के लिये ठहरने के स्थान तक बत-लाते थे। इन बातो का यह असर पड़ता था कि ये महा-राज बड़े सज्जन और कृपालु व्यक्ति हैं और उनके लिये
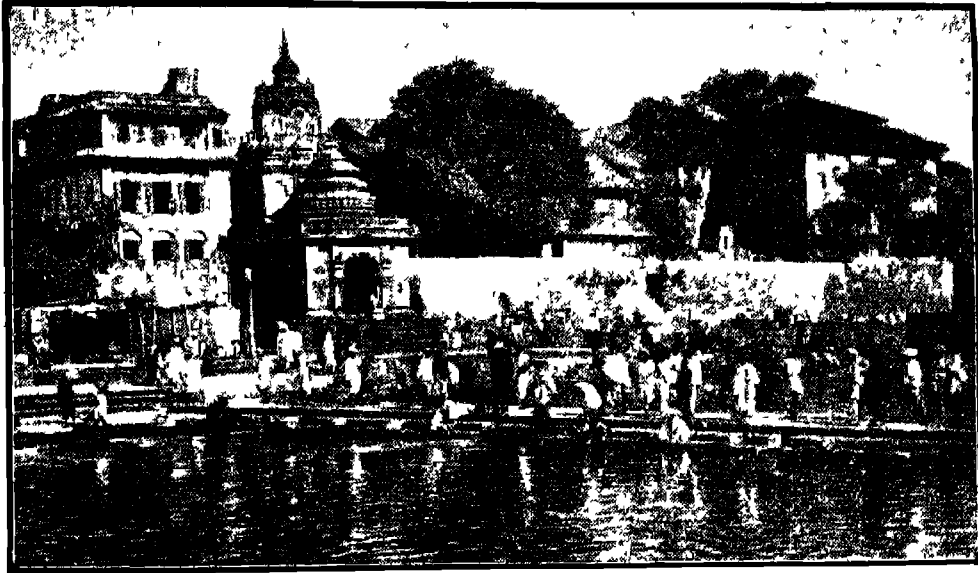
गोदावरी नदी का दृश्य

अच्छे भाव पैदा होने लगते थे। परन्तु यह सब उनके व्यापार के हथकंडे थे।

अब हम लोगों की दक्षिण-यात्रा प्रारंभ हुई। इस यात्रा की पहिली विशेषता है स्टेशनों पर किसी भी अच्छी खाद्य वस्तु का न मिलना। केला और संतरा दो ऐसी चीज़ें हैं जिनको उत्तर भारत का मनुष्य खा सकता है। बड़े, मुरकी, ऊदल, उपमा, इंटली, यही पाँच चीज़ें हैं, जो सारे-के-सारे मदरास प्रांत में उत्तर से दक्षिण तक स्टेशनों पर मिल सकती हैं। ये सब खाद्य-पदार्थ उड़द अथवा बेसन और तेल से बनते हैं। मिर्च की अधिकता इनके लाल रंग से प्रत्यक्ष झलकती है। काफ़ी अर्थात् कहवा का प्रचार भी इस प्रांत में अत्यधिक है। जूठे-मीठे का भी विचार यहाँ नहीं है। एक के जूठे बर्तन में दूसरा निस्संकोच जल अथवा काफ़ी पी लेता है। इस आचरण की भ्रष्टता को देखकर चित्त में बड़ी भारी ग्लानि तथा घृणा उत्पन्न हो जाती है। विदेशी सभ्यता के कुफल का प्रत्यक्ष उदाहरण मदरास में है, और वह भी बड़े उग्र रूप में। उस दिन का उत्तरार्द्ध तथा सारी रात्रि इस गाड़ी में चलकर दूसरे दिन प्रातःकाल ४॥। बजे के लगभग हम लोग वालटेयर पहुँचे। यहाँ पर गाड़ी बदलनी थी। बी० एन० आर० हवड़ा से चलकर यहाँ समाप्त हो जाती है, तथा यहाँ से मदरास तक एम० एस० एम० आर० से आना पड़ता है। गाड़ी आध घंटे में स्टेशन पर आ लगी। यहाँ पर पहले तो हम लोगों का विचार रुक जाने का था, परन्तु उस दिन पंचांग देखने से पता लगा कि वारुणी पर्व उसी दिन पड़ता था। इस कारण हम लोगों ने विचार किया कि यहाँ न रुक कर गोदावरी तीर्थ पर ही स्नान-ध्यान करके विश्राम करना चाहिये। इसलिये हम भी गाड़ी में सवार हुए। एक बात देखकर हम लोगों को आश्चर्य हुआ। अपने प्रांत में हम लोग यह बात प्रतिदिन देखते हैं कि, एक मनुष्य जब भरी गाड़ी में बैठने को घुसता है, तो पहले से बैठे हुये लोग महा कोलाहल मचाते हैं, और इस बात का यथाशक्ति प्रयत्न करते हैं कि वह मनुष्य अन्दर न आने पावे। परन्तु, इधर मदरास प्रांत भर में ऐसी असहिष्णुता कहीं नहीं पाई जाती। दूसरी बात और भी थी। नया चढ़ा हुआ मुसाफ़िर पहले वाले को किसी प्रकार का कष्ट नहीं देता। आप यदि गाड़ी में पहले से बैठे हैं और आपका बिस्तर बिछा हुआ है तो नवागत व्यक्ति आपसे कभी भी बिस्तर हटाने को नहीं कहेगा—चाहे वह यात्रा भर खड़ा ही क्यों न चला जाय। रेल में इतना औदार्य सराहनीय तथा प्रशंसनीय है और उत्तर भारतवासियों के लिये अनुकरणीय भी।

श्रीरामेश्वरम् मे महादेवजी की स्थापना

यहा वालों की दो एक विशेषताये और भी ध्यान देने योग्य हैं। पुरुष भी यहां रंगीन धोतियां तथा हाथों मे सोने के चिपटे कड़े पहिनते हैं। गरीब-से-गरीब व्यक्ति ज़रूर कड़ा पहिनेगा—चाहे उसके पास द्रव्य के नाम पर वही कड़ा क्यो न हो। पुरुषो मे ऐसी आभूषण-प्रियता अन्यत्र कही भी देखने मे नहीं आई। पाच हाथ से लंबा कपडा ये लोग धोती के स्थान पर नही पहिनते। कुछ तो उसको तहवेद की तरह लपेट लेते है और कुछ पीछे कांछ भी देते है।

मार्ग मे स्टेशनों की एक विशेषता थी। अपनी प्यारी देवनागरी लिपि कही भी नहीं दिखलाई पड़ती थी। अंगरेज़ी, तामिल अथवा तेलगु, तथा उर्दू, यही भाषाएं मार्ग में दृष्टिगोचर होती थी। बहुत ध्यान देने पर ज्ञात हुआ कि गाडियों में यात्रियों के सूचनार्थ जो नोटिसें रहती हैं, उनमे से एक मराठी भाषा में होते हुये भी देवनागरी लिपि मे लिखी थी। उस नोटिस में ये शब्द थे—"चोरा पासून सावध रहा"। इस नोटिस का महत्व उस समय हम लोगो के सामने बहुत था। गीता के श्लोक के समान मैं उसका उच्चारण बारम्बार करता था।

दिन को लगभग एक बजे के हम लोगो की गाड़ी गोदावरी स्टेशन पर पहुँची। गाड़ी से उतर कर स्टेशन के बाहर आए, और बैलगाडी किराये करके कहा, 'धर्मशाला चलो।' उसने कहा कि, "धर्मशाला से अधिक सुविधाजनक एक और स्थान है, आज्ञा हो तो ले चलूं।" हमारे यह कहने पर कि "अच्छा ले चल", वह हमको वहा ले गया। यह स्थान स्टेशन से कोई एक फ़र्लांग की दूरी पर ठीक नदी के ऊपर है। इसका नाम है हनुमानजी का मठ। ॥) देना स्वीकार करने पर वहा के "महाराज" ने हम लोगों को असबाब उतारने की आज्ञा दी। कोठरी में ताला लगाकर हम लोग पुण्यतोया गोदावरी मे स्नान करने गये। दोपहर की धूप से संतप्त हम लोगों को गोदावरी का शीतल जल अत्यन्त सुखकर प्रतीत हुआ। इस स्थान पर आकर हम लोगो को प्रथम बार अबोधगम्य भाषा-जनित कष्ट का अनुभव प्राप्त हुआ। उत्तर भारतवासी की भाषा इधर के मनुष्य साधारणतया नहीं समझ सकते, और यही बात उन लोगों के लिये यहा की भाषा के संबध मे है।

हम लोगो को इस बात से अधिक कष्ट नही उठाना पड़ा, कारण हम लोगो के विचार-विनिमय का माध्यम अँगरेज़ी थी। इससे यह न जानना चाहिये कि यहा के कुजड़े अथवा अन्य सौदा बेचनेवाले अँगरेजी समझ लेते हो, नहीं यह बात नही थी। मार्ग मे चलते हुए किसी अंगरेजी पढे बाबू साहब को पकड लेते थे और उन्हींके द्वारा अपने भाव दूसरे पर व्यक्त करवा देते थे। उत्तर भारत मे यह एक भ्रामक धारणा फैली है, कि मदरास प्रान्त मे सभी कनवारू, चमारू अँगरेज़ी बोल तथा समझ सकते है, परन्तु इस बात मे लेशमात्र भी तथ्य नही है। कदाचित् ही सहस्र में कोई एक ऐसा मज़दूर होगा जो एक-आध शब्द अँगरेज़ी के समझ अथवा बोल सकता हो। संकेतो द्वारा अधिकतर इन लोगो को बात समझाई जा सकती है। हा, मदरास नगर मे अवश्य अन्य स्थानो की अपेक्षा नीच जातियो मे कुछ अधिक अँगरेज़ी का प्रचार है

गोदावरी तीर्थ में हम लोगो ने एक रात्रि वास किया। स्थान अत्यन्त रमणीक था। हम लोगों ने उस दिन दही भात का ही आहार किया। यहां का दही बड़ा ही

स्वादिष्ट था। गोदावरी स्टेशन राजमुन्दरी नगर का ही एक दूसरा स्टेशन है। यह नगर दक्षिण के बड़े नगरों में से है। यहा पर गवर्नमेण्ट स्कूल भी है। बाज़ार भी बड़ा है। गोदावरी नदी पर जो पुल बंधा है, वह भारतवर्ष में अपनी लम्बाई के लिये द्वितीय समझा जाता है। पहिला नम्बर है सोन के पुल का। नदी का पाट बहुत चौड़ा है। यहां पर मारवाड़ियों द्वारा बनवाई हुई एक बड़ी धर्मशाला भी है। जिस स्थान पर हम लोग ठहरे थे वहा पर एक पक्का घाट बना हुआ है, और प्रातःकाल ४ बजे से नदी से जल लेजाने वाली स्त्रियों का जो ताता लगता है, वह ६ बजे तक बन्द नहीं होता।

दूसरे दिन दोपहर को एक बजे उसी गाड़ी से, जिससे पूर्व दिवस यहा आये थे, मदरास की ओर चले। आज मार्ग मे हम लोगों के मनोरंजन के लिये केवल दो वस्तुएँ थीः एक तो गन्ना और दूसरा केला। इन्हीं चीज़ों से रास्ता कटा। पास थोड़ा सा खोया था, जिसमे चीनी मिलाकर रात्रि को जलपान किया। हम ऊपर कह आये है कि गाड़ियों मे चोरों से बचने के लिये सूचना लगी थी इस

रामेश्वर में हनुमत् तीर्थ

कारण चित्त में एक प्रकार का भय-सा लगा हुआ था। रात्रि को बारी-बारी सोते जागते हम लोगों ने रास्ता पार किया। इस लाइन पर मुख्यतया दो बड़े नगर पड़े, एक तो बेजवाड़ा और दूसरा नेलोर। बेज़वाड़ा बहुत बड़ा जङ्कशन स्टेशन है। यहां से निज़ाम के राज्य को जाने के लिये गाड़ी बदलनी पड़ती है। दिन को दस बजे के लगभग हमारी गाड़ी मदरास के सेन्ट्रल स्टेशन पर पहुची। एक गाड़ी किराये कर स्टेशन के पास वाली धर्मशाला मे, जिसका नाम है "छोटालाल परमानन्ददास की धर्मशाला" आये। यह धर्मशाला स्टेशन से आधे फ़र्लांग की दूरी पर है। यहाँ का प्रबन्ध बड़ा सुन्दर है। तीन दिन ठहरने का अधिकार यात्रियों को है। यद्यपि मदरास नगर अपने प्रान्त की राजधानी और भारतवर्ष के मुख्य नगरों में से एक समझा जाता है, तथापि हमारे चित्त को आकर्षित करने में वह असमर्थ ही रहा। मेरे विचार से तो अपने प्रान्त के कानपुर, लखनऊ आदि नगर इससे कहीं अधिक अच्छे हैं। प्रान्त का मुख्य नगर होते हुये भी किराये की गाड़िया अत्यन्त भद्दी हैं। ट्राम कार तथा मोटर बस का यहाँ अधिक प्रचार है। नगर-भ्रमण करने के लिये सन्ध्या समय बाहर गये। परन्तु कुछ आनन्द न आया। दूसरे दिन प्रातःकाल एक गाड़ी किराये कर हम लोग "मच्छीघर" अर्थात Acquarium देखने के लिये गये। कारोमण्डल के समुद्र मे मिलनेवाली प्रत्येक जाति की मछलियों का अत्यन्त सुन्दर सग्रह इस स्थान पर है। समुद्र से जल पम्प द्वारा लाया जाता है और शीशे के हौज़ बने है, जिनमे ये मछलियां केलि करती है। यह स्थान विशेष रूप से देखने लायक़ है। Acquarium Guide चार आने मे मोल मिल सकती है। यहाँ से लौटते समय विलम्ब होजाने से धूप निकल आई थी, इसलिये कुछ कष्ट अवश्य हुआ।

हम लोग मदरास मे अधिक नहीं ठहरे। ३६ घन्टे वास करके हम लोग मदरास के इगमोर स्टेशन से त्रिवन्दरम् एक्सप्रेस द्वारा रामेश्वर की ओर चले। इगमोर स्टेशन एस० आई० आर० का टरमिनस है। यहीं से दक्षिण भारत को ओर जाने वाली गाड़ी मिलती है।

रामेश्वर जाने के हेतु मदरास् से एक गाड़ी रामेश्वर एक्सप्रेस के नाम से प्रातःकाल ७ बजे छूटती है, जो सीधी

त्रिचनापल्ली में भगवान् श्रीरंगजी की मूर्ति

रामेश्वर २४ घन्टे में पहुँचा देती है। परन्तु हमलोगों को यह गाड़ी सुविधाजनक नहीं ज्ञात हुई, क्योंकि हमलोग मार्ग के अन्य स्थानों में रुकते हुये जाना चाहते थे। यात्रा भर हम लोगों का यह सिद्धान्त रहा है कि प्रातःकाल किसी-न-किसी अच्छे स्थान पर रुककर स्नान, पूजन से निवृत्त होकर भोजन कर लेना चाहिये। अस्तु, हम लोग इगमोर स्टेशन से रात्रि को त्रिवन्दरम् एक्सप्रेस से चले। पाँच बजे के लगभग गाड़ी चिदम्बर स्टेशन पर ठहरा। यद्यपि यह कोई बड़ा तीर्थ-क्षेत्र नहीं है, तथापि यहाँ शिवजी का एक बड़ा सुन्दर मन्दिर है। शैलेन्द्रजा पार्वती को प्रसन्न करने के हेतु यहाँ भगवान् रुद्र ने ताडव नृत्य किया है। शिवजी की जो मूर्ति स्थापित है, वह तांडव करते समय की-सी है। मूर्ति बड़ी ही मनोहर तथा चित्ताकर्षक है। हम लोग कुछ कारण विशेष से यहाँ रुक न सके और आगे चले। साढ़े दस बजे दिन को त्रिचनापल्ली जंक्शन पर पहुँचे। यहाँ से लोकल ट्रेन त्रिचनापल्ली फ़ोर्ट को जाती है। उसमें बैठकर हम लोग त्रिचनापल्ली फ़ोर्ट पहुँचे। यहाँ आने का अभिप्राय था श्रीरंगजी के दर्शन करना। फ़ोर्ट तक पहुँचते-पहुँचते ११½ बज गये थे। स्टेशन के पास ही म्युनिसिपेल बोर्ड द्वारा सचालित एक यात्री-विश्राम गृह है, जिसको यहाँ वाले चोल्ट्री कहते हैं। हम लोगों ने अपना सामान रखा और स्वस्थ होने लगे। मध्याह्न हो जाने के कारण श्रीरंगजी के दर्शन का विचार दूसरे दिन के लिये स्थगित कर दिया। स्नान आदि के उपरांत जलपान करके विश्राम किया। तीसरे पहर बाज़ार से सामान लाये और संध्या को भोजन बना। दक्षिण प्रांत में अन्न आदि तौल कर नहीं मिलता, वरन नाप कर मिलता है। यहाँ का मापक पात्र एक परी कहलाती है, जो १२० तोला अर्थात् ऽ१॥ सेर के बराबर होती है। इस प्रांत में घी तथा दूध महँगा है। ।।।) परी के हिसाब से दूध इधर मिलता है। परंतु एक बात इधर बहुत अच्छी है। वह यह कि ग्वाला अपनी गऊ को तथा दुहने और नापने के पात्र को साथ लिये दरवाज़े-दरवाज़े घूमता है।

संध्या समय कावेरी स्नान करने गये। दूसरे दिन प्रातःकाल एक गाड़ी किराये करके हम लोग श्रीरंग के दर्शनों के लिये चले। यह स्थान नगर से ३ मील

चिदम्बरम् के नटराज भगवान् शंकर—
पार्श्वों में गजानन तथा पार्वती

की धुरी पर है। श्रीरंग के नाम से एक पृथक् नगर ही मंदिर के घेरे के भीतर बसा है। यह मन्दिर दक्षिण के उन तीन मन्दिरों में से एक है जो दक्षिण भारत में सबसे बड़े समझे जाते हैं। तीन मील की परिधि में यह मन्दिर स्थित है और ११ बड़ी-बड़ी ड्योढ़ियां पार करने के बाद मुख्य मन्दिर मिलता है। प्रत्येक ड्योढ़ी के बाद चारों ओर एक-एक बाज़ार है, जिसमें सभी आवश्यक सामग्रियां उपलब्ध हो सकती हैं। हम लोग जब मन्दिर में पहुंचे तो ७½ बज चुका था, परन्तु मन्दिर तब तक नहीं खुला था। प्रधान पुजारीजी कावेरी में स्नान करके चांदी का एक बड़ा भारी घड़ा भर कर हाथी पर बैठकर गाजे-बाजे सहित ८ बजे आते हैं और तभी वे मन्दिर का ताला खोलते हैं। चार तालों के भीतर भगवान् क़ैदी के समान बन्द रहते हैं। यह बड़ी ही शोचनीय बात है कि गर्मी के दिनों में ८ बजे ठाकुरजी की मंगला-झांकी हो। परन्तु भला वहां कौन इन बातों पर विचार करता है। श्रीरंगजी के मन्दिर में बड़ी सम्पदा लगी है। करोड़ों के तो केवल रत्न-जटित आभूषण आदि हैं, जो भगवान् के शृङ्गार में काम आते हैं। बड़ा राजसी व्यवहार है।

दर्शन करके हम लोग १० बजे के लगभग अपने डेरे पर आये और लग गये अपने भोजन-पानी के झमेले में। उसी दिन सन्ध्या की गाड़ी से फ़ोर्ट से जंक्शन स्टेशन आये और रामेश्वर एक्सप्रेस में बैठकर दूसरे दिन प्रातःकाल रामेश्वर पहुंच गए।

[आगामी अंक में समाप्य]

देवेंद्रनाथ सुकुल, बी० ए०

भूल-चूक

(गतांक से आगे)

दृश्य—५

सड़क

(रामदास का आना)

रामदास—न जाने भोंदुआ कमबख्त कहां चला गया। मैंने उसे उसी जगह रुकने के लिये कहा था। मगर वहाँ उसका पता नहीं। अब क्या करूं? किस तरह इस ख़त को अपनी प्यारी के पास पहुँचाऊं? यह ख़त लेकर अकेले वहाँ घूमने की मेरी हिम्मत नहीं पड़ती। वह लो, वह भोंदुआ आ रहा है। (भोंदू आता है) क्यों बे, मैंने तुझे वहाँ मेरा इन्तज़ार करने को कहा था कि इधर उधर घूमने को?

भोंदू—अरे! सरकार भले आफ़त में फसाय गयो रहा। लो आपन टोपिया लो।

रामदास—अबे, यह कैसे पागया?

भोंदू—यू पूछ के का करब? कउनो हिकमत से हम तो ले आएन। मुला सरकार अब ओहर कदम न राख्यो।

रामदास—क्यों?

भोंदू—नाहीं सरकार। हुआं के पण्डवा बड़ा बदमास होय। सार बात बात में गारी देत है।

रामदास—पण्डा?

भोंदू—हां, पण्डा। अरे! वही होए जौन आपकेर करिहाव तोड़िस रहा। जब टोपिया चीन्हेन तब ओका जानेन। पहिलवा नाहीं चीन्ह पायेन रहा। ओह से कहा कि तू तनी हमार जूता रखाओ तो सार बहुत चिटका। और मन्दिरवा में हमका नाहीं जाय दिहिस।

रामदास—अबे, कैसा मन्दिर, कैसा पण्डा? बकता क्या है।

भोंदू—हो लेयो! आपै तो हमका मन्दिर बताय गएन रहा। अरे वही, जहा आप अब्बै टहरत रहेन। और जहां आपके करिहाव टूट रहा। और जौने खिड़की में से एक मेहरारू कूदा फेंकिस रहा तौन वही पंडवा के कोठरी होय। मार कयू भगतिन राखे है।

रामदास—अबे, क्या तूने उसे कोई सचमुच मूर्ति पूजनेवाला मन्दिर समझा?

भोंदू—अउर नाहीं तो का? तब्बे तो हम हाथ पांव धोय के ओहमा दरसन करे जात रहेन। वैसे तो ऊ सार कमरतोड़वा फाट पड़ा।

रामदास—धत्तेरे की! उल्लू कहीं का! आ हा हा हा! आ हा हा हा!! अजब बेवकूफ़ है। तू आ हा हा हा!

भोंदू—अरे! उल्टे हमही का बेवकूफ बनावत हैं। अपने तो वह का मन्दिर बताइन अउर अब हँसत हैं। यह देखो—ही ही ही ही हमका नाहीं नीक लागत है।

रामदास—अबे, वह मूर्ति पूजने वाला मन्दिर नहीं है। बल्कि वह हमारे पूजने के लिये मन्दिर है। क्योंकि उसमें हमारी प्राणेश्वरी निवास करती है।

भोंदू—हां, हां, परमेसरी देवी के असथान होय, हम समझित है। तब्बे तो दरसन करे हमहू जात रहेन। एहमा कौन बुराई कीन, जौन आप ही ही ही ही कहित है ?

रामदास—फिर वही बात ? बचा मालूम होता जब खोपड़ी टूटती। ईश्वर न करे किसी को किसी गँवार से पाला पड़े। आ हा हा हा। मन्दिर समझकर किसी के घर में आप बेधड़क घुसने चले थे। आ हा हा हा !

भोंदू—सरकार, गंवार स्वार सब कुछ कहौ। मुल ही ही ही ही न करौ। हमरे देहमा आग लागत है।

रामदास—तूने काम ही ऐसा किया कि बिना हँसे नहीं रहा जाता। अबे, वह वैसा मन्दिर नहीं है, जैसा तू समझता है। बल्कि वह घर है, और मन्दिर के असली माने भी घर ही है।

भोंदू—तब काहे ओहका आप देवीजी के असथान बतायेन ?

रामदास—यह तो मैं हमेशा ही कहूंगा। जिसमें हमारी प्यारी रहे, वह हमारे लिये पूज्य स्थान तो होगा ही।

भोंदू—प्यारी रहे ? अरे ! अब्बे तो आप कहेन है कि वहमा देवीजी निवास करत हैं।

रामदास—अबे बेवकूफ़, वही मेरी प्यारी ही मेरे पूजने की देवी है। वही, जो अपनी नौकरनी के साथ गंगास्नान से लौटती हुई दिखाई पड़ी थी।

भोंदू—अरे ! वही टिटहरी अस छोकड़िया का तो आप देवी नाहीं कहित है ?

रामदास—हां, वही। मगर खबरदार, जो उसे टिटहरी ऐसी छोकड़ी कहेगा। ज़बान पकड़ के खींच लूँगा।

भोंदू—हाय करम ! आ हा हा हा ! आ हा हा हा ! राम राम ! ओहका आप देवी कहत है। हाय ! हाय ! बिलाय गयो सरकार। आ हा हा हा !

रामदास—चुप बदमाश। देवी तो हई है वह। हँसता क्यों है ?

भोंदू—आपके अकिल पर आ हा हा हा ! मेहररुवन के देवी कहत हैं। हे राम ! लाजो नाहीं आवत है। आ हा हा हा !

रामदास—फिर नहीं मानता। अब जो हँसेगा तो बिना मारे छोड़ूँगा नहीं।

भोंदू—तब आप काहे हँसत रहेन ? अब हमार पारो आवा हमहू हँसित है। आ हा हा हा ! धरम सासतर औ कहत है कि बना, चमार और मेहरारू बिना मारेपीटे ठीक नाहीं रहत हैं। और यह मेहरारू का देवी कहिहैं। ओका पुजिहैं। हे राम ! हे राम ! बिलाय गयो सरकार। मर्द होय के मेहररुवन के गोड़े गिरिहैं। कहत लाजो नाहीं आवत है। नहके दइउ आपका मर्द बनाइन। आ हा हा हा !

रामदास—(भोंदू का कान पकड़ता है) फिर हँसेगा ? फिर बकेगा ?

भोंदू—अरे ! बाप रे बाप ! बहुत पिरात है। अब्बे रोयै लागब तो आपका घन्टन चुपावत लागी।

रामदास—(भोंदू का कान पकड़े हुए) अब तो मेरा कहना मानेगा ? जो कहूंगा, वही करेगा ?

भोंदू—हां, हां, वही करब।

रामदास—अच्छा तो यह ले ख़त। इसको ले जाकर उसी मकान के आस-पास चक्कर लगाना। जब उसकी महरिन, वही औरत जिसने कूड़ा फेंका था, उस घर से बाहर निकले तो उससे चुपचाप मिलना, उसे एक रुपया देकर यह ख़त देना, और हाथ जोड़कर कहना कि इस ख़त को चुपचाप मेरी हृदयेश्वरी देवी को दे दे। उन्हीं को जो उस दिन उसके साथ थीं। समझा ?

भोंदू—समझेन तो। मुल हम कौनो मेहरारू के हाथ नाहीं जोड़ सकित है। और मेहरारू कौन, ऊ हरामजादी जौन मूड़ पर कूड़ा फेंकिस रहा।

रामदास—हाथ न जोड़ना, न सही। मगर इस तरह कहना जिससे वह उन्हें यह ख़त चुपचाप दे दे।

भोंदू—हां, यह होय सकत है। मुल ऊ महरिन होय यू कसस आप जानेन ?

रामदास—उसके रंग ढंग से। अच्छा ले रुपया, अब जा।

भोंदू—अउर ऊ छोकड़ियो वहीं में रहत है ?

रामदास—अबे जहां पैर होगा वहीं तो सर भी होगा कि नहीं ? मगर तूने फिर उसे छोकड़ी कहा ?

भोंदू—भूल गएन। देवीजी, हां देवीजी। मुल हमार नाहीं आप केर। अच्छा जाइत है। रामराम।

(दोनों का भिन्न ओर प्रस्थान।)

[पटपरिवर्तन]

दृश्य—६

शर्कीमल के मकान के सामने

(शर्कीमल नंगे बदन खाली धोती पहने हुए)

शर्कीमल—(अकेला) बहादुरी किस चीज़ में होती है ? आदमी में नहीं बल्कि हथियार में। तभी तो कोई कैसा ही बहादुर क्यों न हो मगर विना हथियार के वह भीगी बिल्ली से भी बदतर है। इसी तरह बात की सचाई भी बात में नहीं होती, बल्कि उसके सुबूत से। इसीलिये लाख सच्ची बात हो, आखों से भी देखी हुई हो, मगर विना सुबूत के एक दम झूठी हो जाती है। मेरी हरामज़ादी बीवी जैसी है, वह मैं दिल में अच्छी तरह जानता हू। मगर विना सुबूत के मैं उसका कुछ कर नहीं पाता, और उलटे मैं ही मार खा जाता हूँ। बदमाशी करती है वह, और मारा जाता हूँ मैं। क्यों ? बस सुबूत की कमज़ोरी से। इसीलिये मैं बौखला जाता हूं और वह बाज़ी मार ले जाती है। सुबूत में एक टोपी हाथ आ गई थी, मगर उसके झूठे सुबूत के आगे इसकी किरकिरी होगई। इस दफ़े मैंने उस बदमाश को भी पकड़ लिया था, मगर वह हरामज़ादी ऐसी चाल चल गई कि वह भी भाग गया और अपनी टोपी भी ले गया। उसी की थी, तभी तो ले गया। सब सुबूत ही सफ़ाचट हो गए। फिर क्या करता ? बे हथियार के सिपाही की जो हालत दुश्मन के ख़ीमे में होती है, वही मेरी हुई। कपड़े तक सब मेरे छीन लिए गए, और मैं घर से बाहर निकाल दिया गया। अब इस शक्ल मे कहां जाऊ ? अरे ! वह हरामज़ादा तो फिर इधर ही आ रहा है। साले को ज़रा देर भी चैन नहीं पड़ता। अच्छा, ज़रा छिप कर इसका तमाशा देखूं तो बताऊँ।

(छिप जाता है और भोंदूराम आता है।)

भोंदू—आय तो गएन मुल कमरतोड़वा फिर न कहू भेंटाय जाय।

(महरिन का दरवाज़ा खोल कर निकलना।)

महरिन—(भीतर की तरफ़ मुँह करके) बहूजी, देखिये कहीं दूध उबल न जाय। मैं जाती हूँ बाज़ार। (सामने की तरफ़ मुँह करके मन मे हिसाब लगाती हुई एक तरफ़ चलने लगती है) दो पैसे का धनिया, दो आने का पान, चार पैसे की इलायची।

(सोचने लगती है।)

भोंदू—वाह रे तकदीर, हमरे अउते महरिनिया निकल पड़ी अउर इहरे आवत है। मुल कसस बुलकारी ? एक हाथ में चिट्ठी अउर एक हाथ में रुपया लेके दिखाई तो आपे टोकी।

(इस तरह ख़त और रुपया दिखाता है, मगर महरिन नहीं देखती।)

महरिन—(भोंदू को बिना देखे हुए) चार पैसे का और कौन सा सौदा बताया है, याद नहीं पड़ता। जाकर पूछ आऊँ।

(लौट कर फिर मकान के भीतर जाती है।)

शर्की—(अलग अपनी छिपी जगह से) यह हरामज़ादा ख़त और रुपया क्यों दिखाता है। ओहो ! समझ गया। इसे वह हमारी जोरू के पास महरिन के हाथ भिजवाना चाहता है।

भोंदू—ऊ तो घर में घुसर गई। अच्छा यही रस्ता तो आई। तनी और पीछे हट के आसरा निहारी। वहाँ न ठिकाई।

(लौट जाता है।)

(महरिन मकान से निकलती है।)

महरिन—अब इधर से कौन जाए। (दूसरे रास्ते से जाती है)

शर्कीमल—महरिन तो चली गई, मगर वह उसका ख़त लेकर आएगी ज़रूर। दरवाज़ा खुला हुई है, इसलिये दरवाज़े की आड़ में छिप रहूं। जैसे ही वह ख़त लेकर भीतर जाने लगे, वैसे ही मैं उसे ड्योढ़ी में उससे छीन लूँ। वरना जहां वह आँगन मे पहुँची फिर वह ख़त मेरे हाथ नहीं लग सकता।

(जाकर अपने मकान के दरवाजे की आड़ में छिपता है।)

(भोंदू आता है।)

भोंदू—ससुरी अबताई नाहीं दिखाई पड़ी। दुवारा हालत है। ओहो ! समुझ गएन। हम जानत रहेन कि हमका न देखिस होई। मुल भइया मेहररुअन के चार आँखी होत है। एक से हँसत हैं, एक से रोवत हैं, एक से देखत हैं और एक से मतलब ताड़त हैं। अउर सब एक लागे। तब्बै तो ऊ बिना आँख उठाए हमार मतलब जान के तुरन्ते लौट पड़ी। जेहिमा हम रस्ता मा नाहीं ओसे दुवारे पर भेंट करी। यही लिये जानौं ऊ दुवारे हमार आसरा निहारत है। (द्वार पर जाकर) महरिन, ओ महरिन !

शक्की—(आड़ से) धीरे से बोलो। जाओ, चुपके से भीतर फेंकदो।

भोंदू—वाह ! महरिन तू हमार मतलब जानो पहिचवें जान गयू रहा। तब्बे लौट के हीयाँ ठाड़ हो।

शक्की—(आड़ से) हाँ।

भोंदू—अच्छा बताओ कौन चीज़ फेंक देई।

शक्की—(आड़ से) चिट्ठी।

भोंदू—बस, बस, ठीक है। वाहरी महरिन ! मुल जानत हो केकरे लिये है।

शक्की—(आड़ से) देवीजी के।

भोंदू—बस, बस, बस, अब कुछू कहे सुने के जरूरते नाहीं है। मुल चुपे से दीहो। कोई आने न पावे।

शक्की—(आड़ से) अच्छा।

भोंदू—(अलग) वाह ! वाह ! कामो बन गवा अउर रुपयो नाहीं देवे के पड़ा।

(जाता है।)

शक्की—(बाहर निकलकर) हरामज़ादा, सुअर का बच्चा कहीं का। जी तो बहुत चाहता था कि दोनो हाथों से तेरी खोपड़ी पकड़ कर चौखट पर पटक दूँ। मगर अफ़सोस ! इस ख़त को लेने की ख़ातिर मुझे दम साधे छिपा खड़ा रहना पड़ा। हमारी औरत के पास ख़त भेजता है। साला पढ़ा लिखा भी है। और ऊपर से कैसा गँवार बना हुआ है। इस साले में सब गुन हैं। छटा हुआ बदमाश है। देखूँ, हरामज़ादा लिखता क्या है ? (ख़त पढ़ता है।)—"मेरी प्राणप्यारी, मेरी हृदयेश्वरी"। यह शब्द, और यह पाजी हमारी जोरू को लिखे। हाय ! हाय ! गले में फाँसी लगाकर एकदम मर-जाने की बात है। (पढ़ता हुआ)—"मैंने जिस दिन से तुम्हें देखा है उसी दिन से तड़प रहा हूँ। बे मौत मर रहा हूँ।"—मगर साला अबतक मरा नहीं। अब भी मर जाय तो अच्छा है।—"रातों दिन तुम्हारी गलियों में ख़ाक उड़ाता हूँ। ईश्वर के लिये एक दफ़े तो खिड़की पर आकर दर्शन दो"। उफ़ ! कलेजे में गोली चल गई। आँखों में ख़ून उतर आया। अब नहीं पढ़ा जाता। उस हरामज़ादी का पहले सर काट लूँगा, तब पढ़ूँगा। अब यह पक्का सुबूत मिल जाने पर भी वह भला मेरी आँखों में धूल झोंक सकती है ? उसकी ऐसी-तैसी। उसकी छाती पर चढ़के अभी उसके कलेजे का ख़ून पिये लेता हूँ। कहाँ है हरामज़ादी, सुअर की बच्ची, उल्लू की पट्ठी।

(गुस्से में बेताब होकर घर के भीतर घुसता है और ख़त उसके अनजाने घर के बाहर ही उसके हाथ से गिर जाता है।)

(रामदास का आना।)

रामदास—देखूँ, मेरे ख़त का क्या असर पड़ा। उम्मीद तो है अभी खिड़की पर दर्शन मिलेगा। अररर ! मेरा ख़त तो यहाँ पड़ा हुआ है। क्या भोंदुआ रुपया ख़ुद लेने के लिये इसे यहीं फेंक कर चला गया। जाते ही साले की ख़बर लेता हूँ।

(ख़त उठाकर चल देता है।)

(शक्कीमल बदहवास घर से निकलता है।)

शक्की—अरे ! वह हरामज़ादी तो उलटे मुर्ग़ी को काटने दौड़ती है। देख हरामज़ादी, सुबूत भी देख। मैं झूठ थोड़े ही कहता हूँ।

(इधर उधर ज़मीन पर ख़त ढूँढता है और पार्वती गुस्से में भरी बाहर आती है।)

पार्वती—तू क्या ख़ा के सुबूत देगा। यह देख अपनी करतूत का बोलता हुआ सुबूत, जो तेरी जेब में मिला है।

(सुशीला का ख़त दिखाती है।)

शक्की—अरे ! जा वह डाक्टर साहब का नुसख़ा है। चली है मुझसे चाल चलने। इस दफ़े मैं तेरी धौंस में आने का नहीं। ज़रा वह ख़त मिल जाय तो बताऊँ।

(ख़त ढूँढ़ता है।)

पार्वती—(दोहत्थड़ मारकर) यह नुसख़ा है कि तेरी नानी का ख़त, ज़रा कान खोल के सुन—"मेरे अनोखे चाहनेवाले।" ऐसे चाहनेवाले को चूल्हे में झोंक दूँ !

शक्की—अररररर ! यह क्या ?

पार्वती—(पढ़ती हुई) "तुम मेरे पीछे क्यों पड़े हो। आख़िर मेरे लिये बीमार बनकर यहाँ तक आए।" वहाँ क्या करने गया था ? सीधे जहन्नुम क्यों नहीं चला गया ? "ईश्वर के लिये तुम जाओ। मुझे अपने हृदय को वश में करने दो। मुझे मारने के लिये मेरा दुर्भाग्य ही क्या कम था, जो तुम उसकी मदद के लिये आए ? तुम्हारी मौजूदगी मुझे और भी बरबाद कर रही है।" अब बोलता क्यों नहीं ? हुक्का ऐसा मुँह बाए क्यों खड़ा है ?

शक्को—यह कैसी आफ़त फट पड़ी ? मेरी तो अक़्ल ही गुम होगई । यह तो उलटे लेने के देने पड़ गए । अब क्या करूं ?

पार्वती—(मारती हुई) मैं कुढ़ कुढ़ कर मरूं और तू इस तरह रँगरलियां उड़ाए, और उलटे मुझ पर जंगली टठाए कि मैं ख़राब हूं । क्यों ?

शक्की—ठीक है । इसमें भी भला कुछ शक है । अरे मैंने ख़ुद अपनी आंख से देखा है, उसमें 'प्राणप्यारी' लिखा हुआ था ।

पार्वती—(मारती हुई) चुप बेशरम । तेरी ज़बान कट कर नहीं गिर जाती ?

शक्की—अरे ! ज़रा दम लेने दे । अभी बदन का दर्द अच्छा नहीं हुआ है । हाय ! हाय ! सच बोलने का यह नतीजा । न जाने किस बेवक़ूफ पण्डित ने मेरी शादी कराई थी कि सारा दिन मार ही खाते गुज़रता है ।

पार्वती—सच है तो साबित कर । नहीं तुझे खड़े-खड़े निगल जाऊंगी ।

शक्की—(अलग) बस यहीं पर तो मेरा टट्टू अड़ गया है । नहीं तो मैं भला इससे दब सकता था ? अब तक इसकी गर्दन पर खोपड़ी दिखाई न देती ।

पार्वती—अब बगलें क्या झांकता है ? बता, यह किस नानी ने लिखा है ?

शक्की—नानी नहीं नाना ने लिखा है । डाक्टर साहब ने लिखा है ।

पार्वती—फिर वही चाल ? और हमसे ? (मार कर) डाक्टर साहब तुझे लिखेंगे, 'मेरे अनोखे चाहनेवाले ।' बोल ?

शक्की—जो जी में आवे वह लिखें । मुझे तो नुसख़ा कह के दिया । मैंने उसे चलते वक़्त जेब में रख लिया । खोल कर देखा भी नहीं कि कमबख़्त ने नुसख़ा लिखा है या मेरी मरणकुण्डली लिखी है ।

पार्वती—अपनी चाल से तू बाज़ न आएगा । ले, दोनों आंखें फाड़ के देख कि यह नुसख़ा है या तेरे कुकर्मों का सुबूत । (ख़त सामने फेंक देती है) जा, जहां जी में आवे अपना काला मुँह कर । ख़बरदार, अब मेरे सामने न आना ।

(घर में जाती है और द्वार बन्द कर लेती है ।)

शक्को—(ख़त उठाकर देखता हुआ) अरे ! इसमें तो सचमुच वही बातें लिखी हैं, जो अभी वह पढ़ती थी । धत्तेरे डाक्टर की ऐसी-तैसी । यह तूने कब की दुश्मनी निकाली ? तेरी ही वजह से मेरी जीती हुई बाज़ी पलट गई । वरना आज यह शेर भला कहीं भीगी बिल्ली बन सकता था ?

(डाक्टर का आना ।)

डाक्टर—अख़्वा ! मुन्शी शक्कीमल, आदाबअर्ज़ है । आइए, चलिये टहल आवें । रास्ते में खड़े क्यों हैं ?

शक्की—ओ हो ! आप हैं ? बस, ख़बरदार बोलियेगा नहीं, वरना फ़ौरन मारपीट हो जायगी ।

डाक्टर—क्यों क्यों, ख़ैरियत तो है ?

शक्को—जैसी है वैसी ख़ैरियत आपकी भी बना दूंगा । डाक्टर नहीं डाक्टर के दुम बने हैं ।

डाक्टर—मालूम होता है ताक़त की दवा से मिज़ाज में बहुत ज़्यादे तेज़ी आ गई है ।

शक्की—जी हां । आपका नुसख़ा ही ऐसा था । देखिये देखिये, आंख खोल के देखिये ।

(ख़त देता है ।)

डाक्टर—(अलग) अरे ! यह मैं क्या देखता हूँ । यह तो सुशीला की लिखावट है । हाय ! हाय ! यह हरामज़ादा क्या मेरी आबरू लेने की नीयत से मेरे यहां गया था ? और मुझे अपनी ही आंखों में ज़लील करने के लिये यह ख़त दिखा रहा है । हाय ! हाय ! मैं जीते ही मर गया । सारी इज़्ज़त ख़ाक में मिल गई ।

शक्को—(अलग) अब बचा को कुछ जवाब नहीं सूझ पड़ता । यही जी चाहता है कि, आव देखूं न ताव, बस एकबारगी मारना शुरू करदूं ।

डाक्टर—अरे हरामज़ादे, बदमाश, पाजी । मैं तुझे ऐसा नीच नहीं समझता था ।

(शक्कीमल को मारता है ।)

शक्की—हाय ! हाय ! कहां मैं इसे मारने को सोच रहा था और कहां यही मुझे मारने लगा । हाय ! हाय !

(भागता है और डाक्टर उसका पीछा करता जाता है ।)

[पटपरिवर्तन]

दृश्य ७

डाक्टर का मकान

गाना

सुशीला—जियरा मोरा, माने ना, मनाय मैं हारी ।
मनाय मैं हारी, समझाय मैं हारी । जियरा—

मन तो कहे अपनी करो,
लाज कहे नाहीं।
किसकी सुनूं किसकी नहीं,
बिपत पड़ी भारी। जियरा मोरा माने ना।

सुशीला—हाय! जितना हो सका दिलको समझाया, मगर इसकी बेकली बढ़ती ही जाती है। अजब संकट में प्राण हैं। मैंने ही तुमको यहाँ से चले जाने के लिये लिखा था। और वैसे ही, सुना, तुम चल भी दिये। मैंने फिर इधर झाँका भी नहीं। और मैं ही तुम्हारे लिये तड़प रही हूँ। मैं ही तुम से भागना चाहती हूँ, और मैं ही तुमको देखना भी। आँखें तरस रही हैं। फिर भी गंगास्नान को नहीं जाती कि, कहीं तुम न मिल जाओ। क्या करूँ? इस काट-पेंच में पड़कर दिल की जैसी हालत है, वह दिल ही जानता है। मालूम होता है, तुम्हें मेरे ख़त ने सम्हाल दिया। क्योंकि फिर तुम यहाँ नहीं आए। मगर मुझे कौन सम्हाले, यह तो बताओ।

(डाक्टर का आना।)

डाक्टर—सुशीला! तू पैदा होते ही मर जाती, तो अच्छा था। चल दूर हो मेरे सामने से, कुल कलंकिनी! मैंने तेरे लिए क्या क्या नहीं किया। और इसका नतीजा यह?

(तुमलेवाला ख़त सामने फेंकता है।)

सुशीला—(ख़त उठाकर) हाय! गज़ब! यह क्या हुआ!

(जाती है।)

डाक्टर—(अकेला) अफ़सोस! जिस बात पर मैं अकड़ता था, उसी में पछाड़ खा गया। मैं विधवा-विवाह करने वाले ख़ान्दानों पर नफ़रत की उँगली उठाता था। उनको जाति-भ्रष्ट बताकर उनके यहाँ पानी पीना भी पाप समझता था। क्योंकि मैं जानता था कि मुझ पर कभी ऐब की उँगली नहीं उठ सकती, और न मुझे कभी उन भ्रष्टों में मिलना पड़ेगा। उसीकी सज़ा ईश्वर ने आज यह दी। कहाँ मैं इतना सर उठा के चलता था, और कहाँ अब मुँह दिखाने लायक़ भी नहीं रह गया। अब जाना कि मैंने भूल की और बड़ी सख़्त भूल की। जिन ख़यालात में पड़कर मैंने सुशीला का पुनर्विवाह नहीं किया वह ग़लत निकल गए। मैं समझता था कि जब विदेश में लाखों स्त्रियाँ आजन्म कुमारी रह सकती हैं, तो हमारे देश की विधवा युवतियों को सदा काम-धन्धे में लगाये रखा जाय, तो इनके भी जीवन निष्कलंक कट सकते हैं। मगर यह तुलना ठीक नहीं है। क्योंकि, यों मैं चाहे एक जगह दिन भर बैठा रहूँ, मगर, अगर मुझे कहीं मजबूरन बैठना पड़े, और उस पर यह पाबन्दी लगादी जाय कि ख़बरदार उठना मत, तो पाँच ही मिनट में मेरी बुरी दशा हो जायगी। और मेरी अधीरता इस पाबन्दी को चोरी छिपे जिस तरह मुमकिन हो तोड़ देने के लिये मुझे व्याकुल कर देगी। इसी तरह विधवा-विवाह की मनाई भी, हमारे यहाँ की विधवा युवतियों के हृदय में काँटों की तरह सदा चुभा करती है। उनको लाख यत्न से रखने पर भी वह अपने को अभागिनी ही समझती हैं। इसलिये ज़माने का रंग देखते हुए अब इस मनाई को दूर ही करने में भलाई है। वरना जिस समाज की स्त्रियों के हृदय में, चाहे वह विधवा हो या ब्याही, अशान्ति रहेगी, उस समाज के मुँह में कालिख लगे ही गी। आज सुशीला का यह हाल है, तो कल ईश्वर जाने क्या हो? अब जाना कि मुझ से वही लोग हज़ार गुना अच्छे हैं, जिन पर मैं थूकता था। इस बेइज़्ज़ती से वह बदनामी लाख दर्जे अच्छी। मगर सुशीला को किससे ब्याहूँ? विधवा के साथ ब्याह करने के लिये किसी का राज़ी होना भी तो मुशकिल है।

(कम्पाउन्डर का घबड़ाए हुए आना।)

कम्पाउन्डर—हुज़ूर! गज़ब होगया! सुशीला ने ज़हर खा लिया।

डाक्टर—हाय! हाय! यह कौन-सा अनर्थ हुआ? या ईश्वर! कुशल कर। क्या करूँ?

कम्पाउन्डर—आप डाक्टर होके घबड़ा जायँगे तो बेचारी का बचना मुशकिल है।

डाक्टर—हाय! जब अपने ऊपर पड़ती है, तो डाक्टरी वाक्टरी कुछ नहीं सूझती।

कम्पाउन्डर—चलिये, उसको क़ै कराइए।

(डाक्टर का हाथ पकड़ कर भीतर लेजाता है।)

(महरिन का आना और उसके पीछे पार्वती और मुहल्ले की दो तीन औरत आना है।)

महरिन—सुना, डाक्टर बाबू की लड़की ने ज़हर

खाजिया। हाय ! हाय ! यह क्या किया ? आइए, जल्दी आइए। नहीं देखने को भी न मिलेगी।

(सबको साथ लिये हुए भीतर जाती है।)

(शकीमल का आना।)

शकी—मैं इस मकान में हरगिज़ नहीं आता। मगर महरिन हमारी औरत को यहां लेकर क्यों आई ? यही देखने आया हूँ।

(चारपाई पर सुशीला भीतर से लाई जाती है। डाक्टर, कम्पाउन्डर और महरिन का आना और बाकी औरतों का आड़ में छिप छिप कर झाँकना।)

डाक्टर—(शकीमल से) आप यहाँ क्या करने आए ? अपनी बदमाशी का नतीजा देखने ? देखो, जी भर के देखो !

शकी—मज़े में लेटी तो है। बदमाशी इसमें हमारी क्या है ? क्या फिर मारपीट करने का इरादा है ?

डाक्टर—लेटी है कि इसने ज़हर खा लिया है।

शकी—अच्छा किया ? विधवा थी ही। छुट्टी मिली।

सुशीला—ठीक है। मेरा मरना ही अच्छा। विधवाओं के लिये यह संसार नहीं है।

डाक्टर—हाय ! मौत की घड़ी में भी इसके दिल में वही काँटा चुभ रहा है। विधवाओं के हृदय से सब ख़यालात दूर हों तो हों, मगर यह ख़याल मरते दम भी नहीं अलग हो सकता। मैंने इस बात को जाना तो कब जाना, जब इसकी दशा यह है ! हाय ! अब क्या करूँ। ऐ देशवासियो ! अब तो आँखें खोलो।

(महरिन और कम्पाउन्डर सुशीला को दवा पिलाना चाहते हैं।)

महरिन—लो बहिनी, इसे पी लो।

सुशीला—हाय ! हाय ! मैं तो खुद ही मर रही हूँ। फिर मुझे लोग इस तरह तंग करके क्यों मारते हैं।

डाक्टर—नहीं नहीं, यह दवा न दो। कै करते करते इसकी दशा ऐसी हो गई कि मुझ से नहीं देखी जाती। हाय ! हाय ! आँखें बन्द हो रही हैं।

(रामदास और भोदू का आना।)

रामदास—आदाबअर्ज़ डाक्टर साहब। माफ़ कीजियेगा, उस दिन आपको धन्यवाद न दे सका। इसलिये आज सेवा में हाज़िर हुआ हूँ।—

मगर, अरे ! (सुशीला को देखकर) तुम यहाँ कैसे ? महरिन, बोलो बोलो इन्हें क्या हुआ है ? इन्हें क्यों यहाँ लाई हो ? इनकी आँखें क्यों बन्द हैं ?

शकीमल—(भोदू को देखकर अलग) यह साला यहाँ भी आया ? बस, मालूम होगया इसीके लिये मेरी हरामज़ादी औरत यहाँ आई है। या यही साला सूँघकर यहाँ पहुँच गया। साला उस हरामज़ादी को सूँघता हुआ चलता है। क्या बताऊँ, बहुत से आदमी हैं, नहीं तो दोनों को बिना मारे नहीं छोड़ता।

रामदास—हाय ! हाय ! महरिन तो कुछ भी नहीं बोलती। अरे डाक्टर साहब, आप ही बताइए, इन्हें क्या हुआ है ?

डाक्टर—क्या बताऊँ। इसने ज़हर खा लिया है।

रामदास—ऐं ! ज़हर ? हाय ! हाय ! मैं लुट गया। जीते ही मर गया।

शकी—(अलग) वाह ! वाह ! यह तमाशा देखिये। ज़हर खाया इसने और असर होरहा है इन्हें।

डाक्टर—अरे कम्पाउन्डर जल्दी से मिक्स्चर नम्बर पाँच ला। इसकी हालत ख़राब होती जाती है। ज़हर असर कर रहा है।

औरतें—हे परमात्मा, हे दीनानाथ कुशल करो।

कम्पाउन्डर—नहीं, घबड़ाइए नहीं, यह तो कमज़ोरी के आसार हैं। पेट का सारा पानी निकल जाने से सुस्ती आ गई है। इन्हें ताक़त की दवा दीजिये। ठहरिये, मैं एक चीज़ लाता हूँ।

(जाता है।)

डाक्टर—ठीक है। कमज़ोरी के कारण बेहोश होगई है। पखा झलो, पखा।

रामदास—डाक्टर साहब। ईश्वर के लिये इनकी जान बचाइए, मैं आपके हाथ जोड़ता हूँ, आपके क़दमों पर गिरता हूँ। आपके इस उपकार का बदला अगर इनके घरवाले न दे सकेंगे तो मैं दूँगा। इसके लिये अगर मेरी जान की भी ज़रूरत हो तो वह भी आपकी ख़िदमत में हाज़िर है। मगर इन्हें मौत के मुँह से बचा लीजिए।

भोदू—जो न अच्छा कर पाओ तो हमहूँ का वही स्वाद दो जो यह खाइस है। छुट्टी मिले।

शकी—(अलग) वाह वाह ! यह तो अजीब ही नाटक करने लगा। लड़की किसकी और परेशानी हो किसे ?

डाक्टर—आख़िर आप इसके लिये क्यों इतने परेशान हो रहे हैं।

भोंदू—जेहमा फिर कमरिया टूटे और का ?

रामदास—चुप रह बेवक़ूफ़ ! मेरा तो दम लबों पर है, और तू अपनी बेतुकी बातों से कलेजे में बर्छियाँ चला रहा है। डाक्टर साहब, मेरी सारी उम्मीदों का ख़ून हो रहा है। मेरे तमाम अरमानों का गला घुट रहा है। और फिर मैं न परेशान होऊँगा तो और कौन परेशान होगा ?

भोंदू—सोझे सोझे काहे नाहीं कहत हो कि हमार एसे ब्याह करे के मन रहा।

शक्की—मगर लड़की तो विधवा है।

भोंदू—तो का भवा, हमार सरकारो रड़ुआ हैं।

डाक्टर—हाय ! हाय ! तब आप पहले क्यों न मिले ?

भोंदू—तो हमे का मालूम रहा कि सहर भरे के बेवा के ब्याह करे के आप ठेका लियेहन।

डाक्टर—शहर भर की विधवाओं से क्या मतलब ? यह तो मेरी लड़की है।

रामदास—आपकी लड़की है ?

भोंदू—राम दे ? तब एका ऊ घरा मे काहे राखे हो ?

डाक्टर—किस घर में ?

भोंदू—जहा यू ससुर कमरतोड़वा रहत है।

डाक्टर—नहीं तो।

शक्की—अबे, ज़बान सम्हाल के नहीं बोलता। जानता नहीं कि मुझे पहले ही से ग़ुस्सा चढ़ा है।

भोंदू—तो हीया ग़ुस्सा चढ़त कौन देर लागत है ?

रामदास—(भोंदू से) अबे, चुप रह। मगर महरिन इनको तो मैंने तुम्हारे साथ देखा था ?

महरिन—हा बहिनी का ऐसा मीठा सुभाव है कि मुहल्ले भर की सभी औरतें इनसे लिपटी रहती हैं, और फिर हम पर इनकी बड़ी कृपा रहती है, तभी तो उस दिन सबका साथ छोड़कर हमारे साथ होली थीं। परमात्मा इन्हे अच्छा करे। हे महादेव बाबा सवासेर लड्डू चढ़ाऊँगी। इनकी आन बचा लो।

रामदास—हाय ! हाय ! तब तो बड़ी भूल हुई।

भोंदू—हा, अउर का नहके कमरिया टूट।

(कम्पाउन्डर का आना।)

कम्पाउन्डर—सुशीला को नाहक़ दवा देकर परेशान न कीजिये। मैंने बदहज़मी की दवा पर भूल से ज़हर का लेबिल लगा दिया था। उसीको वह ज़हर समझकर पी गई।

डाक्टर—धन्य परमात्मा तेरी महिमा। कम्पाउन्डर, तूने भूल तो की, मगर बड़ी अच्छी भूल की।

रामदास—(कम्पाउन्डर से) भाई तुम्हारे मुंह में घी शक्कर। तेरी भूल ने इनकी जान बचा ली।

महरिन—क्या अब कुछ डर तो नहीं है ? बहिनी बच गईं न ?

डाक्टर—हा, ख़ाली सुस्ती और घबराहट की वजह से बेहोशी है। अभी होश आया जाता है। (मुह पर पानी छिड़कता है और दवाइया सुघाता है)

पर्देवाली औरतें—(आड़ से) धन्य ईश्वर ! तूने हम लोगों को जिला लिया।

शक्की—अरे ! अरे ! यह तो वही टोपी है। अब तक इसका ख़याल ही नहीं किया।

(रामदास के सर से टोपी उतारता है, वैसे ही भोंदू शक्कीमल के मुह पर तमाचा मारता है।)

भोंदू—तोरी ऐसी-तैसी। चार मनई के बिच्चे मे आबरू उतारत हो। सरौ यू नाहीं जानत हो कि, धरम सासतर कहत है कि टोपी अउर आबरू एकै होय ?

शक्की—अरे ! मै मारने की ताक ही मे था और इसने धड़ से तमाचा जड़ दिया। ठहर तो जा, गधा, पाजी, बदमाश।

डाक्टर—आपही ने तो इसके मालिक के सर से टोपी उतार ली, तो नौकर क्यों न बिगड़े ? फिर यह गंवार तो हई है।

शक्की—इसे आप गवार समझते हैं ? अरे ! यह साला छटा हुआ बदमाश है। यह साला यही टोपी लगाकर मेरी औरत को फुसलाने आता है, उससे हसता बोलता है।

पार्वती—(आड़ से) हाय ! हाय ! यह क्या बकने लगा। यही जी चाहता है कि लाज शर्म चूल्हे में झोंक कर इसके मुंह पर झाड़ू मार दू।

भोंदू—ए झूठ बोलिहो तो अभी अउर मारब। हम आज ताईं अपने मेहरारू से तो बातें नाहीं कीन, अउर हम इनके मेहरारू से बोले जाब।

शक्की—झूठा कहीं का। तब मेरी औरत की चारपाई पर यह टोपी कैसे आई ?

भोंदू—टोपी खींच के हम ई महरिनियां के मारेन रहा। हमरे ऊपर कुत्ता फेंक दिहिस रहा। टोपिया भीतर जाके पलंगा पर गिरी तो हम का करी।

रामदास—इसकी ताईद तो मैं भी करता हूँ।

शक्की—अररररर! तब तो मुझी से भूल हुई। नाहक इतनी जूतियां उस दिन खाईं।

पार्वती—(सामने आकर) अब अपना मुंह पीट खुद तो महरिन से छेड़-छाड़ कर रहा था और यहां मुझे बदनाम करना चाहता था। अरे ईश्वर से डर, ईश्वर से।

शक्की—अरे! कौन छेड़-छाड़ कर रहा था। मैं तो इससे इस टोपी का भेद जानने के लिये इसे पहन कर इसको देखता था।

महरिन—राम! राम! तब तो मुझ से भूल हुई। समझने को क्या और समझ गई क्या? मगर मुझे भला टोपी का भेद क्या मालूम था। मैं तो इसके, भीतर गिरने के पहले ही कमरे से बाहर हो गई थी।

पार्वती—अच्छा यह न सही। मगर उस दिन तू रात भर कहां था, यह तो बता।

शक्की—डाक्टर साहब के अस्पताल में। चाहे पूछ ले। मगर तू अपनी तो कह। मेरी गैरहाज़िरी में यह बद-माश मेरे घर देवीजी से मिलने क्यों जाता था? बताइए देवीजी?

भोंदू—ए सरौ, तू फिर हमार नाव लियो? का कहीं हम से चूक होइ गई जो तोहरे घर का हम मन्दिर सम-झेन और यहीलिये वोहमा दरसन करे जात रहेन, नाहीं तो हम वोहमा थुकहू तो न जाइत।

शक्की—और प्राणप्यारी वाला ख़त महरिन को क्यों देने गया था?

भोंदू—यह इनसे पूछो।

रामदास—बेशक यह मुझ से भूल हुई जो आपके मकान को (सुशीला की तरफ बता कर) इनका मकान समझकर इनके लिये वह ख़त वहां भेजा। ओहो! मेरी क़िस्मत चमकी, बीमार ने आंखें खोल दीं।

सुशीला—(आंख मलती हुई उठ बैठती है) अरे! क्या मैं अभी तक जीती हूं।

(सब औरतें सुशीला के पास दौड़ पड़ती हैं और उसे छाती से लगाती हैं।)

औरतें—(पारापारी) जुग-जुग जीओ मेरी लाल। मेरी आंखों की पुतली। मेरे घर की रौशनी। अरे ज़रा बच्ची का मुंह धो दो। कैसी सूरत कुम्हला गई!

डाक्टर—उसे घेरे हुए क्यों हो। अभी होश में आई है। ज़रा उसे हवा लगने दो।

शक्की—ओहो! अब जाना कि मुझसे बड़ी भूल हुई। नाहक़ शक करके अपने दिल को कुढ़ाया और अपनी दुरगत कराई। (पार्वती से) मगर देख, मेरी सभी बातें आख़िर सच्ची निकलीं न, गो ज़रा उलटी होगईं?

पार्वती—तो अपनी समझ पर उलटी झाड़ू मार।

शक्की—अच्छा तो भूल-चूक माफ़ कर दो। आओ सुलह करलें।

पार्वती—जी नहीं, उसीके पास जाइए, जिसका ख़त लिये आप जेब मे फिरते हैं। वही जो तसवीरवाले लिफ़ाफ़े के भीतर था। सब बातें गलत हों तो हों, मगर यह तो सच है।

सुशीला—अरे! वह ख़त इनके पास कैसे आया? उसे तो मैं (रामदास की तरफ़ बताकर) इनके सिरहाने रख आई थी। हाय! हाय! बौखलाहट में यह क्या उगल बैठी। अब क्या करूँ।

शक्की—(पार्वती से) ले सुन। अब तो तेरे दिल में चैन आया?

पार्वती—अरे! तब तो मुझ से भी भूल हुई। ख़ैर! दोनों पल्ले बराबर होगए।

शक्की—बराबर कैसे? मैंने इतनी मार खाई वह?

भोंदू—ऊ घाता होय घाता।

सुशीला—अफ़सोस! मैंने बड़ी सख़्त भूल की जो विधवा होकर एक गैर आदमी को ख़त लिखा। और इस भूल को मर कर भी न सुधार सकी!

रामदास—गैर नहीं अपना ही समझो।

डाक्टर—सच तो यह है कि असली भूल मैंने की जो सुशीला का पुनर्विवाह नहीं किया, जिसके कारण इतनी आफ़तें खड़ी होगईं। जब दोनों के दिलों में यही बात है, तो मैं भी अपनी भूल को अपने आशीर्वाद सहित इस तरह सुधारे देता हूं। (सुशीला का हाथ रामदास के हाथ में देकर) लो, तुम दोनों फूलो फलो, बला से अब समाज मुझ पर उँगली उठाए, कुछ परवाह नहीं।

शक्की—अजी, आपने मुझे मारने में भी तो भूल की थी। उसको तो सुधारिये।

भोंदू—बस तो सभी भूल किहिन है तौन ?

डाक्टर—उसके लिये मैं बहुत शर्मिन्दा हूँ। और मेरी तरह सभी लोग अपनी भूलों पर लज्जित होंगे। इसलिये आओ सब लोग मिलकर इस ख़ुशियाली के अवसर पर अपनी-अपनी भूल-चूक की माफ़ी माँगलें।

गाना—कोरस

सब—

बस माफ़ करो दिल साफ़ करो सब भूल भई सो भई ;
जाने दो मैल न राखोजी दिल में हाँ चूक भई सो भई।
सब से तो हुई भूल,
आँखों में पड़ी धूल,
जो कुछ कि हुआ होगया अब जाओ उसे भूल।
बस माफ़ करो—
अपनी-अपनी भूलों की पाई सज़ा सब ने हाँ काफ़ी,
आओ सुधारो हाँ भूल-चूक माँग माँग माफ़ी।
बस माफ़ करो, दिल साफ़ करो—

[पटाक्षेप]

सी० पी० श्रीवास्तव

गोपिका गीत

(१)

घनस्यामछटाघनस्यामअटा चपलासों चितौन चितै गयोरी,
हरषाय हियो 'कुसुमाकर' त्यों चहुधा बरसाय हितै गयोरी।
मुरली धुनि सों हठि दादुर मोरन सोरन मान बितै गयोरी,
तन पावस रूप धरे मनमोहन बारो हमारो कितै गयोरी ॥

(२)

चोखी चितौनि चुभी चित में करकै उर में कहो कैसे निकारौं,
मूरति मंजु मनोहर मो मन माफ़ बसी धौं कहा करि डारौं।
कानन मों भरी बाँसुरी की धुनि नैनन आँसुरी कैसे कै बारौं,
मोहनको जबते हौं लख्यो मचला सो परे हियो कैसे सभारौं ॥

(३)

मुरली धुनि कानपरी जबते नहि नाद कछू अवरेखनो है,
पट पीत लटा लकुटी दुपटो लखिकै हू सिगार न लेखनो है।
'कुसुमाकर' पान किये अधरामृत नेकु सुधा न बिसेखनो है,
इन नैनन मोहने देखि लियो अब और कछू नहि देखनो है ॥

कुबेरनाथ मुकुल

अदृश्य व्यक्ति

'अदृश्य पदार्थ वे होते हैं जिनके आर-पार देखा जा सके। या यूँ कहो कि जितना कोई पदार्थ पार-दर्शक होगा उतना ही कम वह दिखाई देगा। पृथ्वी पर वायु सबसे उत्तम पार-दर्शक है। इसी कारण यह दिखाई नहीं देती। विज्ञान-वेत्ता कई दृश्य पदार्थों को अदृश्य और अदृश्य पदार्थों को दृश्य बना देते हैं। घी जब पिघल जावे तो कुछ सीमा तक पार-दर्शक हो जाता है। उसी सीमा तक वह अदृश्य हो जाता है। काँच अदृश्य है, परन्तु जब काँच को पीस कर चूर्ण कर दिया जावे तो वह दिखाई देने लगता है। यदि काँच के चूर्ण को बिल्लौर के ग्लास में डाल दिया जावे, तो दिखाई देगा। परन्तु जब ग्लास में जल डाल दें तो काँच पुनः अदृश्य हो जावेगा। यथार्थ में दृश्य और अदृश्य पदार्थों में भेद केवल पदार्थ के अणुओं की स्थिति और उनके भीतरी स्थान में उपयुक्त रस का होना है।'

नलिनीकान्त ने कलकत्ता युनिवर्सिटी का इस वर्ष बहुत मान के साथ साइंस का एम० ए० पास किया है। आजकल वह युनिवर्सिटी के आविष्कार विभाग में वज़ीफ़ा लेकर काम करते हैं। वह बारीसाल के एक प्रसिद्ध ज़मींदार के इकलौते लड़के हैं, इस कारण उनको धन का अभाव नहीं। आरम्भ से ही उनकी बुद्धि का विकास इतना था कि, गाँव के सब लोग उनकी बातें सुनकर दंग रह जाते थे। गणित में तो जब वह छठी श्रेणी में कलकत्ते के स्कूल में दाख़िल हुए, तो सुगमता से दशम श्रेणी के विद्यार्थी को पछाड़ सकते थे। कालिज में बिना बहुत कष्ट के कक्षा में प्रथम आ जाते। एम० ए० में उन्होंने भौतिक-विज्ञान पढ़ा और पास किया। प्रोफ़ेसर साहब इनकी तीव्र बुद्धि देखकर इनसे ईर्षा करते थे। परन्तु नलिनी बहुत नम्र स्वभाव के तथा सदाचारी थे। इस कारण निर्वाह होता जाता था।

एक दिन उन्होंने प्रयोगशाला में बैठे हुए एक जर्मन फ़िलासफ़र की एक पुस्तक में ऊपर का कथन पढ़ा। पढ़ते-पढ़ते उनके मन में एक विचार-तरंग उठी। क्या

प्रत्येक पदार्थ के परमाणु अदृश्य हैं ? क्या सचमुच दृश्य और अदृश्य पदार्थों में भेद केवल उनके परमाणुओं के भीतर किसी उपयुक्त तरल का होना या न होना है ? यदि यह सत्य है, तो क्या मनुष्य अदृश्य हो सकता है ? कौन-सा तरल ऐसा होगा कि, जब वह मनुष्य के भीतर डाल दिया जाय तो मनुष्य अदृश्य होजावे ? इसके उपरांत विचार-तरगें और उमड़ीं तो नलिनीकांत सोचने लगे कि, यदि ऐसा सम्भव हो तो क्या ही आनन्द हो। चलना-फिरना, घूमना, खाना-पीना और किसी को दिखाई न देना ! गाड़ी, रेल, जहाज़ और पृथ्वी भर की सैर बिना दिखाई दिए और बिना टिकट लिये ! ओह ! गज़ब हो जाय। परन्तु प्रश्न यह था कि कौन-सा तरल हो और किस प्रकार मनुष्य के भीतर डाला जाय।

अब नलिनीकान्त की बुद्धि को सैर करने के लिये एक नया मैदान मिला। वह इस सैर में इतने निमग्न हुए कि पुस्तक हाथ से नीचे गिर पड़ी। अपने शरीर तथा बाहर की वस्तुओं की सुध जाती रही। टन-टन घंटे के बाद घंटा बजने लगा। धीरे-धीरे अंधेरा होने लगा, परन्तु नलिनीकांत कुर्सी पर बैठे सामने दीवार की ओर देख रहे हैं। चपरासी कमरे में आया। बाबू साहब को विचार-मग्न जान कर बिजली का लैंप जलाकर किसी और काम को चला गया। नलिनीकांत को कुछ मालूम नहीं कि क्या समय है। वह तो दृश्य तथा अदृश्य के प्रश्न को सुलझाने मे मग्न थे। टन-टन रात के बारह बजे कि नलिनी बाबू चौंके। उनको कोई ज़ोर से हिला रहा था, और कह रहा था, "फ्रैण्ड, क्या कर रहे हो ? आज घर न चलिएगा ? बहुत इन्तज़ार के बाद ढूंढने आया हूँ।"

नलिनीकांत घबड़ा कर बोले, "क्या सतीश, क्या देरी होगई ? अभी तो ......" यह कहते-कहते नलिनी को कुछ बाहर की बातों का ज्ञान होने लगा। वह बोलते-बोलते अटक गए। कोट का कफ़ उठाकर कलाई पर घड़ी देखी तो घबड़ा गए। "उफ़ ! बारह बज गए ! लेकिन दोस्त, एक अद्भुत बात सूझी है।"

"क्या ?"

"नहीं, तुम न समझ सकोगे। भला वकीलों को साइंस के चमत्कारों से क्या काम।"

सतीशचन्द्र वकालत की जमाअत में पढ़ते थे। नलिनी के परम मित्र थे। दोनों कलकत्ते में एक ही मकान में रहते थे। परस्पर अगाध प्रेम था। एक के बिना दूसरा खाना न खाता था। प्राय: प्रतिदिन नलिनी रात के सात बजे घर आता। सतीश भी पढ़ाई से छुट्टी पाकर प्रतीक्षा में बैठा रहता। दोनों मित्र इकट्ठे खाना खाते और तदनतर पार्क में सैर को चले जाते। घंटा दो घंटा सैर के उपरांत वापस आते तो कभी ताश कभी शतरंज शुरू होजाता। जब इन में जी न लगता तो बातें होती रहतीं। इसी प्रकार एक दो बजे से पूर्व न सोते। सतीश के साथी कभी-कभी दोनों मित्रों की हँसी करते कि उल्लुओं की भांति रात भर जागते रहते हैं। दोनों की खूब हँसी उड़ाई जाती।

इस रात जब ग्यारह बजे तक भी नलिनी घर नहीं आए तो सतीश के मन में कुछ शंका तथा भय उत्पन्न होने लगा। बाइसिकल उठाई और पार्क में पहुँचे। वहाँ नलिनी का कोई चिह्न नहीं पाया तो पुनः घर लौटे। घर वैसा ही सुनसान था। अब कुछ काल तक विचार करने के उपरान्त प्रयोगशाला पहुँचे। जब वहाँ अन्दर कुछ प्रकाश देखा, तो कुछ धैर्य बँधा। देखा तो प्रयोगशाला का दरवाज़ा खुला था। बाइसिकल दीवार के साथ खड़ी कर अन्दर घुसे तो बाबू साहब कुर्सी पर डटकर बैठे दिखाई दिये। सतीश ने आवाज़ दी, "नलिनी"।

परन्तु नलिनी तो अपने विचारों मे मग्न थे। इतने में सतीश समीप पहुँच गए। देखा कि नलिनी सामने की दीवार पर एकटक टकटकी लगाए बैठे हैं। सतीश पुनः बोले, "हेलो फ्रैंड, आज खाना नहीं खाइएगा ?" परन्तु वहाँ कौन सुनता था। तब सतीश ने नलिनी को ज़ोर से हिलाया तो वह चौंके।

(२)

उक्त घटना के लगभग दस वर्ष पश्चात् कलकत्ते के एक भोजनालय में एक अद्भुत घटना घटी। रिपन कालिज के कुछ विद्यार्थी अपने एक मित्र की शादी की ख़ुशी में प्रीतिभोज उड़ा रहे थे। एक गोल मेज़ के गिर्द दस कुर्सियां लगी थीं, परन्तु केवल नौ विद्यार्थी उपस्थित थे। एक कुर्सी ख़ाली पड़ी थी। मेज़ भिन्न-भिन्न प्रकार की मिठाइयों से लदी हुई थी। एक विद्यार्थी के गले में फूलों की मालाएँ पड़ी थीं। शायद वही दुलहा साहब थे। एक विद्यार्थी खड़ा होकर कुछ भाषण कर रहा था।

इतने में उस कमरे का खट से दरवाज़ा खुला, और फिर बन्द हो गया। सबकी नज़रें दरवाज़े की ओर घूम गईं, परन्तु वहाँ कोई नहीं था। एक विद्यार्थी उठा और दरवाज़े के बाहर झाँकने लगा। वहाँ दरवान के अतिरिक्त, जो कुर्सी पर सो रहा था, और कोई दिखाई न दिया। यह समझ कर कि दरवाज़ा हवा से हिला है, प्रीतिभोज आरम्भ हुआ। दुलहे ने लम्बे चाकू से केक को काटा और उठा-उठाकर बाँटने लगा। बस, फिर क्या था, सब-के-सब राक्षसों की भाँति केक, पेस्टरी, सन्देश, चम-चम, केले और सतरों पर टूट पड़े। एक विद्यार्थी, जो ख़ाली कुर्सी के समीप बैठा था, जब अपने सन्मुख से मेज़ ख़ाली कर चुका, तो विचार करने लगा कि अनुपस्थित मित्र के नाम का श्राद्ध भी खा लिया जाय, तो अच्छा है। परन्तु इस भय से कि कहीं साथी लालची तथा पेटू न कहें, मौक़ा ताड़ने लगा कि, जब सबका ध्यान किसी दूसरी ओर लगे, तो मिठाई की तश्तरी खसका ले। जब विद्यार्थियों के सन्मुख से मेज़ हलकी होने लगी, तो उन्होंने अपने मनोरंजन का एक और ढंग निकाला। दुलहे पर हँसी-ठट्ठे की बौछार होने लगी। एक बोले, "भैया, इस भोज के लिये हमारी भावज को हमारा धन्यवाद पहुँचा देना।" दूसरे बोले, "वाह साहब, भावज को क्यों धन्यवाद दिया जाय ?" पहले साहब, "क्यों नहीं, यदि वह भैया के घर आने की कृपा न करतीं, तो आज भी तुम होस्टल के किचन की हड्डियाँ चाटते होते।"

हा! हा! सब हँस पड़े। एक और महाशय बोले, "मित्रो, हमें तो शक है कि हमारा धन्यवाद ठीक पात्र तक पहुँच सकेगा।" इस पर पहले साहब बोले, "तो श्रीमतीजी की सेवा में, सीधे ही एक डेपुटेशन क्यों न भेज दिया जाय ?" इस पर एक साहब, जो अभी तक चुप थे, बोले, "परन्तु डेपुटेशन के प्रधान श्रीमती के श्रीमान् न होंगे।"

"क्यों नहीं ?"

"अजी श्रीमान् तो मरणपर्यंत धन्यवाद ही दिया करेंगे, परन्तु हमें तो दूसरा अवसर प्राप्त न होगा।"

पहला—"अजी होगा क्यों नहीं। अभी लड़का होगा तो भोज में हमीं तो निमन्त्रित होंगे। और तब धन्यवाद भी हमीं देंगे।"

इस समय मिठाई के इच्छुक विद्यार्थी ने, जब दूसरों को बातों में मग्न देखा, तो ख़ाली कुर्सी के आगे पड़ी हुई तश्तरी की तरफ़ हाथ बढ़ाया और उसको अपनी ओर खींच लिया। परंतु तश्तरी पर नज़र पड़ते ही चौंका, और हाथ पीछे हटा लिया। तश्तरी लगभग ख़ाली हो चुकी थी। एक रसगुल्ला अभी बाक़ी था। हैं! हैं! यह क्या। वह रसगुल्ला भी उड़ा और भागा ख़ाली कुर्सी की तरफ़। विद्यार्थी ने समझा कि उसे नींद आ रही है। सिर को झटका देकर आँखें खोलीं। परंतु रसगुल्ला कुर्सी के ऊपर सीट से दो फुट ऊँचे हवा में खड़ा था। अद्भुत तमाशा था। वह विद्यार्थी घबड़ाई हुई आवाज़ में बोला, "फ्रेण्ड्स! लुक हीयर ए वंडर!" सब लोग चुप हो गये और उसी ओर देखने लगे जिधर वह उँगली से संकेत कर रहा था। सब ने देखा कि रसगुल्ला हवा में निराश्रय खड़ा है। एक सेकण्ड बाद वह गुम हो गया। इस दृश्य को देखकर सब उठ खड़े हुए। इतने में केलों की तश्तरी में से एक फली टूटी और मेज़ से ऊपर हवा में उठकर ख़ाली कुर्सी की ओर खिसकी। वहाँ स्वयं छिलके उतरने लगे। जब फली निकल आई तो टुकड़े-टुकड़े होकर अदृश्य होने लगी। अकस्मात् एक के मुँह से निकला—"भूत"! दूसरे विद्यार्थी तो इस अस्वाभाविक घटना से इतने भयभीत हुए कि किसीको बोलने की हिम्मत न पड़ती थी। सब एक दूसरे का मुँह देख रहे थे। सबके मुख से प्रसन्नता के स्थान पर भय प्रगट होने लगा। इतने में कमरे के द्वार के समीप से एक मोटी तथा खरखराहट की आवाज़ में यह शब्द हुआ—'Dear boys, don't be afraid. I join with you in thanking the host. I wish him, his wife and his children, that are to come, a long and prosperous life—प्यारे मित्रो, डरो मत! मैं दूल्हे को धन्यवाद देने में आपसे सम्मिलित होता हूँ। और मैं उनके लिये, उनकी स्त्री के लिये और उनके बच्चों के लिये, जो पैदा होंगे, दीर्घ तथा प्रसन्नता के जीवन की वाञ्छा करता हूँ।"

इस समय एक विद्यार्थी ने साहस करके पूछ ही लिया—'But who are you परंतु तुम हो कौन ?'—ऐसा कहते-कहते उसने एक बिल्लौर के ग्लास को, जो मेज़ पर पड़ा था, उठकर ज़ोर से दरवाज़े की ओर फेंक ही दिया। सब यह समझ रहे थे कि ग्लास दरवाज़े के साथ टकरा

कर चूर-चूर हो जावेगा। परंतु जब ऐसा नहीं हुआ तो उनके विस्मय की सीमा नहीं रही। ग्लास दरवाज़े के समीप आकर अटक गया, और हवा में भूमि से लगभग चार फ़ुट ऊँचे अटखेलियाँ करने लगा। साथ ही बहुत ज़ोर का क़हक़हा लगा। सब सहम गये। ग्लास धीरे-धीरे मेज़ की तरफ़ उड़ता हुआ आने लगा। सब मेज़ से दूर हट गये। ग्लास मेज़ पर आकर टिक गया। सब आँखें मल-मल कर इस कौतुक को देखने लगे। कुछ काल के बाद दरवाज़े के समीप से फिर शब्द हुआ—"गुड बाई फ्रेंड्स"। दरवाज़ा खुला और बंद होगया।

दरवाज़ा बंद होने के पाँच मिनट बाद तक किसीको बोलने का साहस नहीं हुआ। सबसे पहले वही विद्यार्थी, जिसने ग्लास फेंका था, दूसरे की ओर देखते हुए बोला, "हमारे दोस्त के भाग्य बहुत प्रबल प्रतीत होते हैं। यह अवश्य कोई देवता हैं, जो इनको आशीर्वाद देने आये थे।" अब एक और साहब को भी बोलने का साहस हुआ, "हाँ ठीक, अवश्य कोई देवता थे। परंतु मित्रो, कलियुग की महिमा अपार है। प्रतीत होता है भारतवर्ष की अवनति के साथ-ही-साथ देवलोक में भी म्लेच्छ आंग्ल भाषावादियों का राज्य होगया है।" (दुलहे की ओर देखकर) "परंतु मित्र, तुम क्यों इतने शोक में हो? देव-भाषा में नहीं तो म्लेच्छ-भाषा में ही सही। था तो आशीर्वाद। ऐसा प्रतीत होता है कि वह आपकी स्त्री के कोई पूर्व-परिचित थे।" इसपर पुनः उपस्थित-गण हँसने लगे। परंतु यह वह हँसी न थी, जो दस मिनट पूर्व इस कमरे में गूंज रही थी। यह तो काँपते हुए दाँतों की खीस थी।

दूसरे दिन कलकत्ते भर में यह खबर फैल गई कि बाबू श्यामसुन्दरमोहन के, जो बी० ए० के विद्यार्थी हैं, विवाह-संबंधी भोज पर देवलोक के एक व्यक्ति पधारे थे, और उन्होंने बाबूसाहब, उनकी स्त्री और होने-वाली संतान को आशीर्वाद दिया। उस दिन श्यामसुन्दर, जब पढ़ाई समाप्त कर कालिज के दरवाज़े से बाहर निकले, तो पाँच-चार अख़बारों के रिपोर्टरों ने उन्हें घेर लिया। इच्छा न रहते हुए भी बेचारे को वृत्तांत सुनाना पड़ा। रिपोर्टर महोदय वृत्तांत सुनकर सिर हिलाते हुए चले गये। उनके सिर हिलाने का कारण दूसरे दिन की "वसुमती" में समाचार के इस शीर्षक से स्पष्ट हो गया जिसमें लिखा था, "भाँग के नशे में देवताओं के दर्शन।" दूसरे ही रोज़ एक और घटना पत्रों में छपी। कलकत्ते के समीप धकुरिया गाँव में एक मिठाई वाले की दूकान लुट गई। दूकानदार दूकान पर बैठा ख़रीदारों की राह देख रहा था कि इतने में रसगुल्लों के थाल में हलचल मचनी आरंभ हुई। रसगुल्ले स्वयं उड़-उड़ कर गायब होने लगे। दूकानदार के तो होश उड़ गये। वह चीख़ मार कर बेहोश हो गया। जब होश में आया तो रस-गुल्लों का आधे से अधिक थाल ख़ाली था। इस पर अचंभा यह कि वहाँ कोई दिखाई नहीं पड़ता था। दूकान से कुछ फ़ासले पर एक पुलीसमैन खड़ा था। जब दूकानदार ने उससे कहा कि चोर उसकी मिठाई खा गये, तो पुलीसवाला बोला, "यहाँ तो बटा भर से कोई नहीं गुज़रा, बताओ चोर की क्या शक्ल थी।" दूकानदार शक्ल तो एक तरफ़ रही, यह भी नहीं जानता था कि चोर किस प्रकार के कपड़े पहने था। यह समाचार भी "वसुमती" में छपा और इसका शीर्षक था, "भूखे देवता"। दो ही दिन बाद बीवन एण्ड कंपनी के मैनेजर साहब ने रात के बारह बजे अपनी दूकान में प्यानो बजते सुना। मैनेजर दूकान से ऊपर की मंज़िल में रहता था। प्यानो की आवाज़ सुनकर हैरान हुआ कि इतनी रात गए कौन बाजा बजा रहा है? और सब से विचित्र बात यह थी कि दूकान में बाहर से ताला लगा था। मैनेजर साहब जब दूकान के अंदर गये, तो एक बड़े प्यानो पर रोशनी हो रही थी और उसमें से मधुर स्वरों की झंकार आ रही थी। परंतु बजाने वाले का कहीं पता न चलता था। कई सेकण्ड तक मैनेजर साहब भौंचके खड़े रहे। धीरे-धीरे उनकी विचारशक्ति काम देने लगी। समझे कि यह कोई ट्रिक (चालाकी) है। जेब से पिस्तौल निकालकर प्यानो की ओर बढ़े। परंतु तुरन्त ही प्यानो बन्द होगया और रोशनी बुझ गई। अब तो मैनेजर साहब बहुत घबड़ाये। एक और लैंप जलाया और तमाम दूकान की तलाशी ली। लेकिन किसी का चिह्नमात्र भी दिखाई न पड़ा। पुलीस को फ़ोन किया गया। तुरन्त एक सार्जेन्ट और दो कान्स्टेबल् दूकान पर आ मौजूद हुए। पुलीसवालों ने अपने ढंग से अनुसंधान आरम्भ किया। दूकान में संगमरमर का फ़र्श था। बहुत मेहनत के बाद फ़र्श पर

मिट्टी से भरे पाँवों के चिह्न ढूँढ़े गये। चिह्न एक खिड़की से आरम्भ होकर प्यानो तक पहुँचे थे, और प्यानो से दूकान के दरवाज़े तक। तुरन्त पद-चिह्नों का फ़ोटो लिया गया। इसके उपरांत अनुसंधान समाप्त हुआ। सुबह, जब मैनेजर साहब ने अपने मित्रों अथवा ग्राहकों से रात की घटना का उल्लेख किया, तो सब मुसकिरा कर बोले—"Dear Sir, you must have drunk somewhat heavily last night—जनाब, तुमने अवश्य रात को कुछ अधिक शराब पी ली होगी।"

कुछ दिन तक तो अख़बारवालों को मज़ाक़ का बहुत अच्छा मौक़ा मिला। परन्तु जब इस प्रकार की घटनाएँ बहुत सुनाई पड़ने लगीं, तो लोगों की बुद्धि चक्कर खाने लगी। सी० आई० डी० विभाग ने इस रहस्य को खोलने का विशेष प्रयत्न आरम्भ किया। गवर्नमेन्ट की ओर से एक विज्ञापन निकाला गया। जिसका अभिप्राय यह था कि जिस किसी को जब भी कोई ऊपर की क़िस्म की घटना का पता चले, वह पुलीस के दफ्तर में विस्तार से उसकी इत्तिला करे। इन सब प्रकार की युक्तियों के करने पर भी लोगों का भय दिन-प्रति-दिन बढ़ने लगा और घटनाओं का ताँता बँध गया।

(४)

इसी प्रकार कई मास व्यतीत होगये। पुलीस के पास रहस्यमय घटनाओं की फ़ाइल एक गधे का बोझ बन गई। परन्तु इस रहस्य की गुत्थी सुलझने की रत्ती भर भी आशा पैदा नहीं हुई। तमाम हिंदुस्तान में इन घटनाओं की धूम मची हुई थी और विदेशों में भी लोग गप्पबाज़ी के समय इनका ज़िक्र किया करते थे। कलकत्ते में तो लोग इस क़दर सहम गये थे कि यदि बाज़ार में कोई अचानक किसी के कंधे पर हाथ रख देता तो वह भय से चीख़ उठता, और यदि भीड़ में किसी को धक्का लग जाता तो थरथर काँपने लगता।

एक दिन रात के बारह बजे चेरिंग क्रास पुलीस स्टेशन पर टेलीफ़ोन की घंटी बजी। जब कान्स्टेबल् ने टेलीफ़ोन को कान से लगाया तो यह बातें होने लगीं—

पुलीसमैन "हैलो!"

"कहाँ से बोलते हो?"

"पुलीस स्टेशन चैरिंग क्रास से।"

"मदद भेजो! मिस्टीरियस चोर पकड़ा गया है?"

"हैं!"

"हाँ।"

"कब?"

"अभी।"

"कहाँ?"

"यहाँ।"

"पुलीस कहाँ पहुँचे?"

"क्लाइव स्क्वेयर नम्बर १०"

"तुम्हारा नाम?"

"कृष्ण।"

टेलीफ़ोन बन्द होगया और इसके लगभग पंद्रह मिनट उपरान्त क्लाइव स्क्वेयर नम्बर १० के सन्मुख दो मोटर गाड़ियाँ ठहरीं। उनमें से दो सार्जेन्ट और एक दर्जन कान्स्टेबल् निकल आये। मकान के बाहर चालीस-पचास आदमियों की भीड़ थी। इस मजमे में एक नौजवान खड़ा कुछ बना रहा था कि इतने में सार्जेन्ट ने पूछा "मिस्टर कृष्ण कौन है?" वही नौजवान आगे बढ़ा और बोला, "मैं हूँ जनाब।"

"क्या माजरा है?"

"मेरे कमरे में कोई है।"

"तुमने देखा है?"

"वह दिखाई नहीं देता।"

"तो तुमने किस प्रकार जाना कि कोई है?"

"जनाब, जब मैं खाना खाने गया था तो कमरे का लैम्प बुझ गया था और जब खाना खाकर आया तो लैम्प जल रहा था। मुझे शक हुआ तो मैं आहिस्ता आहिस्ता खिड़की के पास पहुँचा। देखा तो मेज़ पर एक काग़ज़ पड़ा था और मेरी फाउन्टेन पेन स्वयं उस पर लिख रही थी। मैं तुरन्त समझ गया कि यह वही व्यक्ति है जिसकी सबको तलाश है। मैंने ख़याल किया कि यदि यह कोई भूत प्रेत अथवा देवता है, तो दरवाज़ा बन्द करने पर भी निकल आवेगा, अन्यथा दरवाज़ा बन्द करने पर अन्दर बन्द रहेगा। कमरे में केवल एक ही दरवाज़ा है और खिड़कियों में लोहे के छड़ लगे हैं। मैं धीरे-धीरे दरवाज़े तक पहुँचा और एकदम दरवाज़ा बन्द करके बाहर से कुंडी चढ़ा दी। दरवाज़े की आवाज़ होते ही फ़ौरन्

क़लम मेज़ पर गिर पड़ी और लैम्प बुझ गया। अब मैंने विचार किया कि पुलीस को इत्तिला देने से पूर्व मुझे पता लगाना चाहिये कि वह व्यक्ति अन्दर है या बाहर निकल गया। अतः एक खिड़की से अन्दर देखने लगा। आध घंटा तक सर्वथा शान्ति रही, परन्तु बाद को पुनः रौशनी होगई। उस समय मैंने खिड़की के अन्दर झाँकने का प्रयत्न किया कि मेरे मुँह पर ज़ोर से एक तमाचा पड़ा। मैं पीछे हट गया। अब लैम्प फिर बुझा है और चारपाई पर चादर ओढ़े कोई सोया हुआ प्रतीत होता है।"

पुलीस सार्जेन्ट चतुर व्यक्ति जान पड़ता था। फ़ौरन् उसने कमरे पर घेरा डाल दिया और खिड़की से सर्च-लाईट द्वारा कमरा रौशन कर दिया। चारपाई पर चादर ओढ़े कोई सोया हुआ प्रतीत होता था। कुछ ही काल पश्चात चारपाई पर चादर हिलने लगी और एक तरफ़ इस प्रकार हट गई जैसे हवा से उड़कर एक तरफ़ जा गिरे। चादर के नीचे से कुछ नहीं निकला। पुलीस अपनी जगह पर डटी रही और उस रात भर कुछ नहीं हुआ।

प्रात होते होते यह समाचार कलकत्ता और एक दो घंटे के उपरान्त तमाम देश भर में फैल गया कि आखिर-कार एक अदृश्य व्यक्ति पुलीस के कब्ज़े में आगया है। अभी सूर्य भगवान ने कलकत्ते के लोगों को अपने दर्शन भी न दिये थे कि क्लाइव स्क्वेयर नम्बर १० के गिर्द लाखों की भीड़ होगई। पुलीस वालों को लोगों को हटाने में जितना कष्ट हुआ, वह उस व्यक्ति को पकड़ने से कहीं अधिक था। दिन के बारह बजगये और सिवा पुलीस वालों का पहरा बदलने के कुछ विशेष बात नहीं हुई। अन्त को दोपहर के लगभग एक बजे कमरे में से आवाज़ आई—"साहब, भूख लगी है, कुछ खाने को तो दो।" आवाज़ सुनतेही सार्जेन्ट आ मौजूद हुआ और पूछनेलगा—

"तुम कौन हो और कहाँ हो ?"

आवाज़ आई—"मनुष्य हूँ और आपके सामने खिड़की में खड़ा हूँ।"

सार्जेन्ट "लेकिन तुम दिखाई नहीं देते ?"

आवाज़—"हाँ। परन्तु यह एक लम्बा क़िस्सा है। अब तो भूख लगी है। रात भी कुछ नहीं खाया और अब एक बज गया है।"

सार्जेन्ट—"खाने के लिये अभी मँगवा देता हूँ। परन्तु तुम्हें हमारे साथ थाने चलना होगा।"

इस पर कमरा हँसी से गूंज उठा और आवाज़ आई—"जैसी तुम्हारी इच्छा। परन्तु खाने को दोगे तो बाहर निकलेगा।"

"लेकिन तुम्हें पकड़ेंगे किस प्रकार ? तुम तो दिखाई नहीं पड़ते ?"

आवाज़—हँसतेहुए, "मैं स्वयं तुम्हारे संग चलूँगा।"

कुछ और बातचीत के बाद खाना ज्यों-त्यों करके अन्दर पहुँचाया गया। देखते-देखते खाना ख़त्म हो गया। इस पर आवाज आई, "जल"। जल भी पहुँचाया गया। तो आवाज़ आई कि दरवाज़ा खोलकर एक आदमी अन्दर आजाओ। सबसे कठिन समस्या यही थी। यह सब कुछ इतना अस्वाभाविक था कि कोई भी अन्दर जाने का साहस न करता था। जब सब एक दूसरे का मुख देख रहे थे तो पुनः शब्द हुआ, "डरो मत ! मैं भूत या प्रेत नहीं हूँ। मैं अवश्य आपके संग थाने तक चलूँगा।" इन बातों से सार्जेंट महाशय को कुछ हौसला हुआ। एक हाथ जेब में डाले हुए, जिसमें पिस्तौल था, और दूसरा आगे बढ़ाये हुए कमरे में दाख़िल हुए। अभी दो ही कदम बढ़े थे कि खड़े हो गये और सिर से पाँव तक काँपने लगे। गर्मी न रहते हुए भी माथे से पसीने की बूँदें टपकने लगीं। कारण यह था कि कोई दिखाई न पड़ता था, परन्तु उनके हाथ में एक और हाथ लग रहा था और शेकहैंड कर रहा था। बड़ी मुश्किल से सार्जेन्ट साहब ने दूसरा हाथ जेब से निकाला और पुलीसवालों को मोटर लाने का संकेत किया।

(५)

थाने में यह समाचार पहले ही पहुँच चुका था कि अदृश्य व्यक्ति पकड़ा गया है और थाने में पहुँचनेवाला है। पुलीस कैप्टेन और कई सार्जेन्ट उस स्थान पर पहले ही पहुँच चुके थे। एक दस्ता कान्स्टेबलों का विशेष बुलाया गया था। दो बजे के कुछ बाद मोटर थाने में पहुँची। सार्जेन्ट साहब मोटर से उतरे और कैप्टेन साहब को सैल्यूट किया। कैप्टेन ने पूछा—

"Where is the thief—चोर कहाँ है ?"

सार्जेन्ट ने अपने बाएँ हाथ की ओर इशारा करके कहा—"Holding him Sir—जनाब पकड़े हुए हूँ।"

कैप्टेन "Bring him in—अन्दर ले आओ"—कह कर एक कमरे में चले गये। सार्जेन्ट उसी प्रकार अदृश्य व्यक्ति को पकड़े हुए कमरे में दाख़िल हुआ।

कैप्टेन साहब एक कुर्सी पर बैठ गए। पास ही एक मेज़ के पीछे एक क्लार्क काग़ज़ क़लम दावात लिये लिखने को तैयार बैठा था। जब सार्जेन्ट कमरे में पहुँच गया तो कैप्टेन साहब ने बैठने का इशारा किया और सार्जेन्ट के बाये हाथ की ओर देखते हुए पूछने लगे —

"तुम कौन हो ?"

"मनुष्य हूँ।"

"क्या नाम है ?"

"नलिनीकांत।"

"बाप का नाम ?"

"बताने की आवश्यकता नहीं समझता। मेरे बाप ने कोई अपराध नहीं किया।"

"क़ानून है, बताना होगा ?"

"मेरे बाप से जाकर पूछो।"

"कहाँ रहता है ?"

"स्वर्गधाम में।"

"क्या बोला ?"

"इन हेवन—in heaven"

कैप्टेन साहब से भी हँसी न रुकी। कुछ देर के बाद फिर पूछना आरम्भ किया—

कैप्टेन—"तुम कहा रहता है ?"

"इस समय थाने में।"

क्रोधसे—"पहले ?"

"कलाइव स्क्वेयर न० १०"

अब तो कैप्टेन साहब का पारा चढ़ गया। ज़ोर से बोले, "नहीं बताओगे ?"

उत्तर अत्यन्त नम्र आवाज़ में—"जनाब, बता तो रहा हूँ।"

प्रश्न—"कहा पैदा हुए थे ?"

"अपनी ननिहाल में।"

"ननिहाल किस ज़िले का ग्राम है ?"

अब तो सार्जेन्ट को हँसी रोकने में अत्यन्त प्रयत्न करना पड़ा और वह बहाने से खांसने लगा।

उत्तर धीरे से—जनाब, प्रान्त का भूगोल पढ़े चौबीस वर्ष होगये। अब याद नहीं रहा। परन्तु इसमे आपको मतलब भी कुछ नहीं। और यदि आप वहां जायँगे भी तो आपका स्वागत कोई न कर सकेगा, क्योंकि दो वर्ष से गंगा मय्या तमाम गाँव को अपने पेट मे रखे हुए हैं। मैं जनाब के सामने मौजूद हू। मुझे बताया जाय कि मैंने कौन पुण्य कर्म किये हैं कि, आप जैसे चतुर, बुद्धिमान और न्यायशील कर्मचारियों के दर्शन हुए हैं ?"

प्रश्न—"वेरी वेल, तुम यह बताओ कि तुम दिखाई क्यों नहीं देते ?"

"दुष्कर्मों का फल।"

"है ? यह कैसे ? हमारी समझ में नहीं आता।"

"तो इसमें मेरा क्या दोष है।"

"नहीं। खुलासा बताओ, कि क्या पैदा होते ही से ऐसे थे ?"

"अच्छा तो सुनिये ! पैदा होने के समय ऐसा न था। मैंने कलकत्ता यूनिवर्सिटी का एम० एससी० पास किया है। पास करने के बाद आविष्कार विभाग में काम करता रहा। एक दिन एक जर्मन फ़िलासफ़र की पुस्तक मे अदृश्य और दृश्य पदार्थों मे भेद के कारण पढ़ते पढ़ते मुझे यह सूझा कि मनुष्य भी अदृश्य हो सकता है। दूसरे दिन जब मैंने अपने प्रोफेसर मिस्टर ब्राउन से ज़िक्र किया तो वह ज़ोर से हँसकर बोले, "तुम पागल हो गये हो"। जब मै अपने विचार विस्तार से वर्णन करने लगा तो वह बिना सुने अपने कमरे में चले गये, और जाते समय यह कहते गये, "I have no time to hear this nonsense—मेरे पास तुम्हारी बेवक़ूफ़ी की बातें सुनने को समय नहीं है।"

"कुछ ही दिनों के बाद मेरे पिता का देहान्त हो गया और उसी सप्ताह में मेरी स्त्री भी काल का ग्रास हुई। यह मेरे लिये अत्यन्त दुःख का समय था। मैंने घर से बाहर निकलना बंद कर दिया। महीनों घर के बाहर पाँव नहीं रखा। यदि कोई बात भी कहता तो बहुत दुःख मालूम होता। प्राय अकेला बैठा रहता था। कुछ ही काल के बाद उस जर्मन फ़िलासफ़र की बात पुन याद आने लगी। अब वहां सोचने के लिये बहुत समय था। कई वर्षों के विचार के उपरान्त मैंने वस्तुओं को अदृश्य करने की एक विधि सोची। परन्तु उस विधि का तजुरबा करने के लिये धन की आवश्यकता थी। मैंने अपने पिता का सब रुपया, जो बैंक में था, ख़र्च करके एप्रेटस

मगवाये और तजुरबे करने लगा। अनेकों ही बार प्रयत्न किया, परन्तु सफलता देवी के दर्शन न हुए। धीरे-धीरे सब धन व्यय होगया। ज़ेवर बिक गया। ज़मीन बिक गई। अकस्मात् एक दिन जब प्रात अपनी प्रयोगशाला मे दाखिल हुआ, तो अन्दर से म्यो म्यो का शब्द आने लगा। मैंने समझा कि बिल्ली कमरे मे बन्द रह गई है। मै इसी बिल्ली पर तजुरबे किया करता था। आज तक वह अदृश्य न हुई थी। मैंने उसको पुचकारा तो तुरन्त पाच सेर का बोझा मेरी गोद मे आ गिरा। बिल्ली मुझ से हिल गई थी और मेरी गोद मे बैठा करती थी। आज बिल्ली का बोझ और म्यो म्यो तो गोद मे थी परन्तु दिखाई कुछ न पड़ता था। मै कुछ सेकण्ड तक तो भौंचक्का सा बैठा रहा, परन्तु तुरत ही माजरा समझ गया। मेरा प्रयोग सफल हो गया था। ज्योंही सफलता का निश्चय हुआ कि खुशी की हद न रही। प्रयोगशाला मे ही नाचने और गाने लगा। कभी कुर्सी पर बैठ जाना और कभी खुशी के मारे ज़ोर ज़ोर से कमरे मे घूमने लगना। यथार्थ मे मै पागल-सा हो गया था। आगा-पीछे का कुछ ज्ञान न रहा। और यही मेरे लिये विपत्ति का कारण बना। यदि उस समय अपने आपको वश मे रखता तो जो दुःख और क्लेश इस समय मुझे हो रहा है वह न होता। और शायद इस समय दुनिया में सबसे बड़े विज्ञान-वेत्ता का पद पाये होता। कई घटे के बाद जब मेरी खुशी कुछ कम हुई तो मै सोचने लगा कि इस रात मे कौनसी विशेष बात हुई कि तजुरबा सफल हुआ। सहसा एप्रेटस की ओर ध्यान गया। देखा कि रात बिजली का स्विच बन्द नहीं किया और वैकुअम ट्यूब के आगे जो शेड था वह मेज़ के नीचे गिर कर चूर-चूर हो गया है। शायद बिल्ली मेज़ पर चढ़ी है और उसके धक्के से वह टूटा है। फ़ौरन् उठा और जब स्विच को बद करने के लिये हाथ बढ़ाया तो दिमाग चक्कर खाने लगा। आखों के आगे अधेरा छा गया। कोट का बाज़ू तो ऊपर उठा परन्तु हाथ का चिह्न मात्र भी न था। जिस बात ने रात में बिल्ली को अदृश्य किया था, उसीने मुझे भी अदृश्य बना दिया। बिजली बन्द की और घटों ही इस नई स्थिति के फल पर विचार करता रहा। मै स्वय अदृश्य न होना चाहता था। जो कुछ हुआ एक भारी भूल हुई। रात को भूल से बिजली खुली छोड़ गया, भूल से बिल्ली कमरे मे बन्द हो गई, भूल से बिल्ली मेज़ पर चढ़ी, और उसने न जानते हुए वैकुअम ट्यूब के शेड को तोड़ डाला। बिल्ली अदृश्य हुई। और जब बिल्ली को मैंने देखा तो मैंने एक और भूल की, कि कारण जानने के पूर्व खुशी मनाने लगा, और वह भी उसी कमरे मे जहा मुझे मेरे प्रयत्न का फल मिलनेवाला था।

"सायकाल के पाच बज गये थे। सुबह को कुछ नहीं खाया था। भूख ने सताना आरम्भ किया। आखिर अपने नौकर को, जिसका नाम मुरारी था, आवाज़ दी कि खाना लाओ। मुरारी खाना लाया। खाना मेज़ पर रख कर कुछ पूछना ही चाहता था कि उसकी दृष्टि मेरे मुँह और हाथ की ओर गई। देखकर कापने लगा और ज़ोर से चीख मार कर बेहोश हो गया। गिरना ही चाहता था कि मैंने पकड़ लिया, और खाट पर लिटाकर मुह पर पानी के छीटे लगाये। उसने आखे खोलीं, लेकिन खोलते ही फिर मूद लीं। मै हैरान था। मुरारी के इस भय का कारण तब मालूम हुआ जब मैंने जाकर आइने मे अपना मुह देखा। मुह, सिर और गर्दन कुछ न था। दर्जियों की दूकानों पर जैसे शिकजे पर कोट टगे होते हैं वैसेही आइने मे कोट तथा क़मीज़ तो दिखाई देते थे, परन्तु न तो कमीज़ के अन्दर शिकजा था और न कोट के ऊपर गर्दन, मुह इत्यादि। इतना भयानक तथा अस्वाभाविक दृश्य था कि मै भी बहुत देर तक देख न सका। जब पुन प्रयोगशाला मे आया तो मुरारी भाग गया था। खाना पड़ा था। भूख के मारे जान निकल रही थी। कुछ ज्यो त्यो करके खाया और अपनी नई स्थिति पर विचार करने लगा।

"इसके बाद लगभग दो वर्ष तक मै वहीं रहा, परन्तु लोग समझने लगे कि मै चुपचाप कहीं भाग गया हू और मेरे पिता तथा स्त्री की आत्माएँ उस मकान मे चीखें मारा करती है। यथार्थ मे मुझे कभी कभी पागलपन आ जाता था और चीखें मारने लगता था। एक दिन इसी पागलपन के ज़ोर मे मैंने तमाम एप्रेटस, जो हज़ारों रुपयों की लागत का था, तोड़ डाला। इस काल मे मेरे पास केवल मेरी बिल्ली रहती थी। जब कुछ-कुछ मन को धैर्य तथा शान्ति हुई, तो बाहर निकलने का साहस करने लगा। बिना कपड़े पहने बाहर निकलना आसान है, क्योंकि कपड़े तो अदृश्य नहीं। शरीर और शरीर के अन्दर

सब कुछ अदृश्य है। अब पाँच छै मास से कलकत्ते में हूँ। यहाँ की रिपोर्ट तो आपको मिलती ही रही है। बताने की कुछ आवश्यकता नहीं।"

कैप्टेन, "वाह! वाह! मिस्टर वंडरफुल! कुछ समझ में नहीं आता। बुद्धि चक्कर खाने लगती है।"

नलिनी, "हाँ जनाब।"

कैप्टेन, "अच्छा तुमने बहुत चोरी की है, इसलिये तुम्हें हिरासत में रक्खा जावेगा, और तुम पर मुक़द्दमा चलाया जावेगा।"

नलिनी, 'मैंने कोई चोरी नहीं की। दुनिया में 'जिसकी लाठी उसीकी भैंस' होती है। आपही बताए कि आप हिन्दुस्तान में चोरी कर रहे हैं या नहीं।"

कैप्टेन, "नहीं। हमारा तो हिन्दुस्तान में राज्य है।"

नलिनी, "हाँ ठीक! परन्तु आपको किसने यहाँ राज्य करने को कहा है?"

कैप्टेन, "वाह! वाह! क्या राज्य भी किसी के कहने से किया जाता है। जिसमें बल होता है, वह राज्य करता है; और जो बलहीन है, वही पराधीन है।"

नलिनी, "बहुत ठीक! बहुत ठीक! तो क्या जनाब मैं पूछ सकता हूँ कि अँगरेज़ों में कौन-सा बल है?"

कैप्टेन, "हाँ, देखो यूरोपियन लोगों ने रेल बनाई है, तार बनाया है, जहाज़ है, बन्दूकें हैं, सैकड़ों प्रकार की बारूदें तय्यार की हैं। सबसे अद्भुत वस्तु हमने हवाई जहाज़ और बेतार का टेलीग्राम ईजाद किया है।"

नलिनी, "लेकिन साहब बहादुर, मैंने वह चीज़ ईजाद की है जो आपकी सब ईजादों को मात कर देता है। अतः मैं तो अपनी ईजाद का फल पाता हूँ। चोरी नहीं करता। आप अपनी ईजादों के बल हिन्दुस्तान को लूट रहे हैं, मैं तो केवल पेट भरने के लिये ही मिठाई खाता हूँ।"

कैप्टेन, "मगर तुम्हारी ईजाद और तुम्हारा बल तो निकम्मा हो गया, क्योंकि हमने तुम्हें पकड़ लिया है। हमें तो कोई नहीं पकड़ पाता।"

नलिनी, "झूठ! सर्वथा झूठ! मैं अपनी इच्छा से आया हूँ" यह कहते कहते कैप्टेन साहब के मुँह पर ज़ोर से थप्पड़ पड़ा और सार्जेन्ट साहब को इतने ज़ोर से धक्का लगा कि वह नीचे और कुर्सी ऊपर हो गई।

कैप्टेन साहब ने फ़ौरन् पिस्तौल निकाल कर धड़ाधड़ दो फ़ायर कर दिये। गोलियों ने सामने दीवार पर निशान बना दिये। यह शोर सुनकर लोग दौड़े हुए अन्दर आये और अन्धों की भाँति हवा को टटोलने लगे। इस घटना के उपरान्त पुनः नलिनीकान्त का पता नहीं मिला।

गुरुदत्त, एम० एससी०

प्रलाप

चंचल जीवन के अंचल पर थिरक रही है भीषण-तान!
आशाओं के निर्मित सुख की मंजुल घड़ियों का अवसान!
चिता चित्त की क्षुब्ध परिधि में धधक रही पा प्रलयाश्वास,
चिर-चिंता की क्रूराहुति से दाहक ज्वाला का सुविकास!!
तृषित दृगों के अश्रु वेदना-मय जीवन का करुण प्रवाह—
उत्कंठा को जीवन देकर और बढ़ाता जीवन दाह!!
हृदय-गगन में सदा निराशामय मेघों का पा संचार—
शांत प्रकृति भी चंद्रहीन हो बनती क्षुब्ध उदधि का ज्वार!!
आहत-उरक इस इच्छा-मय-जीवन-अभिनय-विफल-प्रयास—रंगभूमि में आकर करता जगत विदूषक है उपहास! हृत्कंपन का आहत मर्मस्थल पर करना उग्र-प्रहार—
है अतीत की सम्मुख लाकर बना रहा दुखमय संसार!!
हा उन्मत्त गई थी आँखें रूप-सुरा का करके पान—
स्वप्न जगत का जाग्रत-जीवन के विनिमय में नीरव स्थान—
पर नशे में होकर गिरती मतवाली सी पथ को रोक,
कुचल गई वे, नष्ट बाँध होगया, उमड़ता कितना शोक!!
जीवन की अवसादभरी इन उत्तरहित घड़ियों का प्यार,
चला यंत्र सा देह रहा है किए चेतना का संहार!
कंपित अंबर की छाया सा नश्वर जीवन का उल्लास—
मुझे खींच बरबस ले जाता—नहीं जानता किसके पास!

श्रीकैलासपति त्रिपाठी

हिन्दू घरों में तबलीग का प्रोपेगैंडा !

रायबहादुर सर सेठ हुकमचंदजी

जन्म और शिक्षा—इन्दौर के रायबहादुर सर सेठ हुकमचदजी राज्यभूषण भारत के प्रसिद्ध सेठ है। आपकी दूकाने "सरूपचद हुकमचद" के नाम से मशहूर है। आपका जन्म संवत् १९३१ के आषाढ़ शुक्ला १ के दिन सेठ सरूपचदजी के घर हुआ। जिस कुल मे आपका जन्म हुआ, वह व्यापार मे वर्षों से मशहूर रहा है। आपके दो चचेरे भाई इन्दौर मे और है। "ओंकारजी कस्तूरचद" फ़र्म के मालिक रायबहादुर सेठ कस्तूरचदजी और "तिलोकचद कल्याण-मल" फर्म के मालिक सेठ कल्याणमलजी। इनका भी कारोबार अच्छा चल रहा है। दुःख है कि सेठ कल्याण-मलजी अब इस ससार मे नहीं है। आपकी भी पारमा-र्थिक सस्थाएँ इन्दौर मे चल रही है, जिनमे बोर्डिंग, हाईस्कूल आदि है।

सर हुकमचदजी की शिक्षा सात वर्ष की अवस्था मे शुरू हुई। हिंदी और अँगरेजी का थोड़ा-सा ज्ञान प्राप्त कर लेने के बाद आप व्यापार मे प्रवृत्त हुए। व्यापार की ओर बचपन ही से आपकी बड़ी रुचि थी। पद्रह ही वर्ष की अवस्था मे आपने अपने पिता के कारोबार को अच्छी तरह सम्हाल लिया। आपकी व्यापारिक बुद्धि देखकर लोग चकित रह गए।

व्यापार में सफलता—सवत् १९४८ मे आप तीनो भाई अलग होगए और धन का बँटवारा हुआ। आपके हिस्से मे जो पैतृक सम्पत्ति आई, वह ८ लाख के लगभग थी। पर, आपने अपने साहस, पुरुषार्थ, दृढ़ निश्चय और व्यापार-कुशलता के कारण उसे इतना बढ़ाया कि आज आप ५-६ करोड़ के स्वामी गिने जाते है। जबसे आपने कारोबार हाथ मे लिया तबसे आपका व्यापार खूब बढ़ने लगा। पहले आपकी दूकाने सिर्फ इन्दौर, उज्जैन और बबई ही मे थीं, लेकिन व्यापार की बढ़ती के कारण आपको कलकत्ते आदि मे भी दूकाने खोलनी पड़ी। आपकी दूकानों मे खासकर अफ़ीम, साहूकारी लेनदेन, रुई, तिलहन, गल्ला, कपड़ा, जूट, आदि का व्यापार होता है। इन जिसो के व्यापार मे आपने लाखों रुपए कमाये। सट्टे मे भी आपको करोड़ो का लाभ हुआ, लेकिन अब आपने इसे छोड़ दिया है। सन् १९०९-१० मे जब भारत सरकार ने चीन मे अफ़ीम भेजने का ठेका दिया और ड्यूटी की हुडी की व्यवस्था चाही, उस समय आपने सरकार के भरोसे पर एक्सपोर्ट ड्यूटी के लिए २५ लाख रुपया बड़ी हिम्मत के साथ एक मुश्त लगा दिया। यह सुअवसर सभी के लिए एकसा था, और सभी इससे लाभ उठा सकते थे। पर किसी की हिम्मत रुपया लगाने की नहीं हुई। इससे आपको डेढ़ करोड़ रुपयों का लाभ हुआ। उस समय प्रसिद्ध दैनिक पत्र "टाइम्स आव इंडिया" ने "मरचेट प्रिंस आव इंडिया" लिखकर आपका सम्मान किया था। इसके बाद आपको सफलता होती ही गई। आप बबई ही मे नहीं, लिवरपूल, चीन, जापान और अमेरिका मे भी मशहूर होगए। विलायत और अमेरिका के बाजारो मे भी आपके नाम का अच्छा प्रभाव जम गया। आप बाज़ मौकों पर तो करोड़ दो करोड़ रुपयों तक की हार-जीत का सौदा करते है। लाख दो लाख का नफ़ा-नुकसान तो आप गिनते ही नहीं। व्यापार मे आपकी हिम्मत देख-कर मालवा मे यह कहावत मशहूर होगई है कि, सेठजी २०-२५ लाख रुपयों का नफ़ा-नुकसान हमेशा सिरहाने लेकर सोते है। सचमुच आपका साहस अलौकिक है। आप कहा करते है कि सफलता पर हार्दिक विश्वास ही सफलता की मुख्य कुजी है। इसलिए जो मनुष्य इस संसार मे सफलता प्राप्त किया चाहे, उसके लिए सबसे पहिले इस बात की आवश्यकता है कि वह अपने अन्तःकरण मे सफलता के विचारो के सिवाय रत्तीभर भी सदेह अथवा भय के विचारो को स्थान न दे।

पहले आप खब सट्टे करते थे। सट्टे की बदौलत ही आप इतने सपत्तिशाली हुए है। सट्टे मे आपने जैसे करोड़ो कमाये वैसे लाखो का नुकसान भी दिया है। कई दफ़े बड़े नाजुक मौके आये लेकिन जिस समय लाखों का नुकसान देना पड़ता था, उस समय आपके प्रसन्न-मुख पर ज़रा भी चिंता या पश्चात्ताप का चिन्ह नहीं आता था। आप हँसते-हँसते नुकसान देते थे। सट्टे की धुन आप को बेतरह सवार थी। रात दिन इसीकी उधेड़-बुन में जगे

रहते थे। सैकड़ों तार बाहर से आपके पास आते थे और आप भी इतने ही तार देते थे। रात के १२ बजे तक तार आने-जाने का तांता बँधा रहता था। नींद में सोये हुए हैं, ख़याल जम गया, उसी वक़्त प्राइवेट सेक्रेटरी को बुलाया और तार लिखवा कर दे दिया। एक-एक तार में आप लाख-लाख गांठ का सौदा करते थे। उसमें यदि ॥) की भी घट-बढ़ हुई तो एक लाख रुपये का नफ़ा-नुक़सान रहता था। यह एक तार का हाल है। ऐसे कई तार आते-जाते थे। बबई का बाज़ार आपकी ख़रीद-फ़रोख्त पर चलता था। इस प्रकार आपका भारत के सटोरिया में पहला नम्बर था। करोड़ों की आमदनी सट्टे के व्यापार से थी। लेकिन, इतना सब होते हुए भी, जिस समय आपने सट्टे के व्यापार को छोड़ना चाहा, फौरन ही छोड़ दिया। क्योंकि आप जानते हुए थे कि सट्टे के धंधे ने बड़े-बड़े सम्पत्तिशालियों के दिवाले निकाल दिये हैं, और यह धन्धा असल में अच्छा नहीं है। इससे अंत में बड़ा भारी भय है। साधारण तौर पर यह जानते हुए भी कोई करोड़ों की आमदनी नहीं छोड़ता। पर, सेठजी ने तो छोड़ने के बाद सट्टे का नाम तक नहीं लिया। आश्चर्य करने की बात है कि जो व्यक्ति रात-दिन इस धन्धे में लगा रहे, उठते-बैठते जिसे यही धुन हो और इस व्यापार से जिसे करोड़ों का लाभ होता हो, वह एकदम इस काम को छोड़ दे!

१०-१५ वर्षों ही में आपका यश और वैभव इतना फैल गया है कि आज इंदौर ही में क्या दूर-दूर तक आपके जोड़ का दूसरा सेठ नहीं है। आधा इंदौर आप ही के वैभव से भरा पड़ा है। इंदौर में यदि कोई आकर देखे तो दीतवारिया बाज़ार में आपके रहने का शीशमहल, रंगमहल, मोतीमहल, और तुकोगंज में आपका इंद्रभवन (घटाघर) उसे प्रधान इमारतें दीखेंगी। जहां आपकी सवारी के लिए एक छोटा-सा तांगा था, वहाँ आज, हाथी, घोड़े, बग्घी, मोटर आदि बहुमूल्य सवारियां मौजूद हैं। इंदौर में आपकी दो मिलें कपड़े की हैं, हुकमचंद मिल और राजकुमार मिल। हुकमचंद मिल ३० लाख के केपीटल से खोली गई है। इसे आपने अपने बुद्धि-बल और प्रबंध-शक्ति से इतना बढ़ाया है कि इसके १००) के शेयर करीब १०००) तक बिके हैं।

२००० आदमी इस मिल में काम करते हैं। १५०० लूम और ५०००० स्पिंडल हैं। आज हिंदुस्तान की मिलों में यह गिनती की मिल है। शायद ही किसी मिल ने इतना मुनाफ़ा कमाया हो। लोगों को १००) के शेयर पर दस गुने से अधिक मुनाफ़ा देने के बाद भी इस मिल में इतना मुनाफ़ा रहा कि उससे एक और मिल इसी मिल के अन्तर्गत बना दी गई है।

दूसरी राजकुमार मिल आपके छोटे पुत्र राजकुमारजी के नाम से इंदौर ही में २० लाख के केपीटल से खोली गई है। इसमें १०००-१२०० आदमी काम करते हैं। हाल ही में इंदौर में मिल-मजूरों ने हड़ताल करदी थी, कई दिनों तक हड़ताल जारी रही। आख़ीर में सब मजूरों ने आपको पंच मुक़र्रर किया। आपने बिलकुल पक्षपात न करते हुए, जो बात वाजिब थी वही कर दी, इससे सब मज़ूर संतुष्ट होगये।

एक जूट का और एक स्टील का, दो मिल आपके कलकत्ते में हैं। जूट का सारा कारोबार अँगरेज़ों के हाथ में है—हिंदुस्थानियों के हाथ में बहुत कम है। लेकिन सन् १९२० में आपने ८० लाख के केपीटल से कलकत्ते में एक बड़ा भारी जूट का मिल जारी किया है, जिसमें ३ हजार आदमी काम करते हैं। इसको भी आपने इतना उन्नति पर पहुँचाया है कि इसके ७॥) के शेयरों का भाव आज १५॥) है। इस प्रकार आप उद्योग-धंधों के बड़े निर्माता हैं। इसके सिवाय कई मिलों और बैंकों के आप डाइरेक्टर हैं। अपने कारोबार की सम्हाल में आप ज़रा भी आलस्य नहीं करते। भारतीय लोगों में यह दोष है कि अव्वल तो वे कोई बड़ा कारोबार करते नहीं, और यदि कर लिया तो उसे सम्हालते नहीं, उनकी लापरवाही से वह नष्ट हुए बिना नहीं रहता। पर सेठजी में यह बात नहीं है। आपकी प्रबंध-शक्ति बड़ी ज़बरदस्त है। ग्रीष्मऋतु की कड़ी दुपहरी में भी यदि अपने कारोबार के काम के लिये आपको जाना पड़ता है, तो आप बिना किसी विलंब के चल देते हैं। ट्रेन छूटने के ५ मिनिट पहले भी यदि आपको बंबई जाने का काम निकल आवे तो आप फ़ौरन चल देते हैं। आलस्य ज़रा नहीं है। बंबई में आपके नाज का और रुई का जत्था बड़े पैमाने पर चल रहा है। इस प्रकार यदि यह कहा जाय कि अपने पिताजी से आपने १०० गुना अधिक कारोबार बढ़ा लिया है, तो अत्युक्ति नहीं होगी।

श्रीमान् सर सेठ हुकमचंदजी नाइट, उनके ज्येष्ठ पुत्र कु० हीरालालजी और बीच में बैठेहुए छोटे पुत्र कु० राजकुमारसिंह जी

जिस काम को आप करते हैं, उसे कमाल पर पहुँचा देते हैं। स्व० ग्वालियर महाराज ने आपको "ग्वालियर इका-

नमिक डेवलपमेंट बोर्ड" का सदस्य बनाया है। इंदौर की लेजिस्लेटिव कौंसिल के आप मेम्बर हैं।

इंदौर के ११ पंचों के मुखिया हैं। गवर्नमेंट को १ करोड़ और ५ लाख रु० वार लोन में दिया है। उस समय कई अँगरेज़ आपको देखने के लिये आये थे। गवर्नमेंट ने आपको क्रमशः रायबहादुर, सर, नाइट की पदवियां प्रदान की हैं।

संवत १९४८ में, जब किसी ज्योतिषी ने आपकी थोड़ी उम्र बताई, तब आपने कुँवर हीरालालजी को गोद लिया था, जो आज बड़ी योग्यता से राजकुमार मिल का काम देखते हैं। जँवाइयों में झालावाड़ के "सेठ विनोदीराम बालचंद" फर्म के स्वामी ताजीमी सरदार सेठ लालचंदजी सेठी वाणिज्य-भूषण और अजमेर के रा० ब० सेठ टीकमचंदजी के सुपुत्र भागचंदजी सोनी बड़े योग्य और हितैषी प्रेमी हैं।

आपके तीन विवाह हुए हैं। वर्तमान सेठानीजी सौ० कंचनबाई बड़ी सुयोग्य और गृह-कार्य में सुचतुर हैं। 'कंचनबाई श्राविकाश्रम' को आप अच्छी तरह सँभालती हैं, और स्त्रियों की उन्नति के लिये यथाशक्ति प्रयत्न किया करती हैं।

धन का सदुपयोग—संसार के सम्पन्न राष्ट्रों में भारतवर्ष बहुत पिछड़ा हुआ है। यहाँ के धनिक ऐसे कामों में धन नहीं लगाना चाहते जिससे देश की तरक्की हो—उसका गौरव बढ़े। इसके विपरीत योरोप के अधिकांश धनिक अपने धन का देश-हितकारी कामों में उपयोग करना ही अपना गौरव मानते हैं। पर हमारे यहाँ तो धन को ज़मीन में गाड़कर चल लक्ष्मी को अचल करने की तदबीर की जाती है। नतीजा यह होता है कि ये धनाढ्य संसार में चल बसते हैं, और धन धरती के सुपुर्द ही रहता है—उसका कुछ भी उपयोग नहीं हो पाता। ऐसे सैकड़ों उदाहरण मिलते हैं। ऐसी हालत में यदि कोई लक्ष्मी का लाल अपनी लक्ष्मी का सदुपयोग करता वह निस्सन्देह प्रशंसा का पात्र है। ऐसे ही धनिक-रत्नों में सेठ हुकमचंदजी की गिनती है। भारत के धनिकों में सचमुच आप एक दानवीर महानुभाव हैं। 'दानवीर' का खिताब आपको भारतवर्षीय दिगम्बर जैन महासभा ने प्रदान किया है।

पारमार्थिक संस्थाएँ—यद्यपि आपको सभी रईसाना ठाठ मयस्सर हैं, लेकिन इन सुखों में आप अंधे नहीं। बल्कि संसार की असारता को ध्यान में रखते हुए आपकी वृत्ति सदा परमार्थ में लगी रहती है। उसका प्रत्यक्ष प्रमाण इंदौर में आपकी पारमार्थिक संस्थाएँ हैं। वैसे तो संवत १९४९ से ही आपके द्वारा संस्थाएँ चलती आ रही हैं, लेकिन आज तक ११ लाख रुपया आप इन संस्थाओं को दे चुके हैं, उसके ब्याज की ४१ हज़ार आमदनी से इनका काम और भी बढ़ गया है। संस्थाएँ रजिस्टर्ड कराई गई हैं। संस्थाओं का ध्रुव-द्रव्य पहले टाटा आयर्न स्टील कंपनी के सेकिंड प्रिफ़रेंस शेयरों में लगा था, परन्तु इस कंपनी के १००) के शेअरों का भाव जब ३०)—४०) रह गया और ब्याज भी आना रुक गया तथा संस्थाओं के काम चलने में शंका होने लगी तब आपने अपनी उदारता का परिचय देते हुए पूरे भाव में शेयर रखकर अपने घर से नकद रुपया संस्थाओं को दे दिया और रुका हुआ ब्याज भी चुका दिया। आपकी इस उदारता के कारण संस्थाएँ २॥ लाख की क्षति से बच गईं। आज कल सब मिलाकर ४८०००) की वार्षिक आय इन संस्थाओं को होती है। विशेष-विवरण यों है—

धर्मशाला—पहले यह स्थान नसियाँ के नाम से प्रसिद्ध था पर सं० १९७२ में सेठजी ने इसे अपनी मातेश्वरी के नाम से "जवरी बाग" प्रसिद्ध कर दिया है। यह स्टेशन के पास है। इसके लिये सेठजीने तीन बार में १६०००), २५०००) और ३१०००) दिये हैं, जिससे अब यह दुमंजिली बनकर बहुत अच्छी हालत में हो गई है। ५०० आदमी इसमें आराम से ठहर सकते हैं। यहाँ ठहरने वालों को बर्तन, बिस्तर, लालटेन, फ़र्नीचर आदि सब सामान मुफ्त मिलता है। धर्मशाला के सालाना खर्च का बजट ४८६२) है।

महाविद्यालय—इस विद्यालय में अँगरेज़ी, संस्कृत, जैन-धर्म और उद्योग-धंधों की शिक्षा दी जाती है। बालकों को टाइपराइटिंग, शार्टहैंड आदि औद्योगिक कार्य सिखाये जाते हैं। जो लोग अपने भावी जीवन में साहूकारी या मुनीमी करना चाहते हैं, उन्हें बहीखाता और मुनीमी की शिक्षा भी दी जाती है। परीक्षा-फल सन्तोषजनक रहता है। प्रति वर्ष उत्तीर्ण छात्रों को २००) का इनाम और विशेष प्रसंगों पर स्वर्ण या रजत पदक भी दिये जाते हैं। विद्यालय में एक अच्छा पुस्तकालय भी है। सालाना खर्च का बजट ६२८९) है।

बोर्डिंग हाउस—इसमें कोई १२५ विद्यार्थी रहते हैं। भोजन, किताबें, रोशनी आदि की कुल व्यवस्था मुफ्त होती

है। धर्माचरण और स्वास्थ्य-रक्षा के नियमों की तरफ़ पूरा ध्यान दिया जाता है। विद्यार्थियों की भाषण-शक्ति बढ़ाने के लिये साप्ताहिक व्याख्यान कराने का भी प्रबंध है। सालाना ख़र्चे का बजट १००५५) का है।

कंचनबाई श्राविकाश्रम—यह आश्रम सेठजी की धर्मपत्नी श्रीमती कंचनबाई के नाम से सन् १९१७ से स्थापित है। इसमें कुमारी कन्याएँ, विवाहित स्त्रियाँ और विधवाएँ शिक्षा पाती हैं। साहित्य, धर्म और अनेक प्रकार की कलाओं की शिक्षा दी जाती है। सेठानी जी इसमें बड़ी दिलचस्पी लेती हैं। इससे स्त्री-समाज को बड़ा लाभ पहुँच रहा है।

प्रिंस यशवंतराव आयुर्वेदीय जैन औषधालय—सियाबानी मुहल्ले में ७४०००) की लागत से इसका भवन बनाया गया है। इसमें सब प्रकार की दवाइयाँ तैयार रहती हैं और रोगियों को मुफ़्त दी जाती हैं। सालाना बजट ८८४३) का है। एक रसायनशाला भी है। "राज्य-भूषण-आतुरालय" नाम का वार्ड भी है, जिसमें रोगी ठहरते हैं।

प्रसूतिगृह वा शिशु-रक्षा-संस्था—श्रीमती सेठानीजी ने ५००००) के दान से इसे खोला है। इसमें शिशु-रक्षा-भवन अलग है। इसमें ७ प्रसूताएँ एक साथ रह सकती हैं। अबतक ८० स्त्रियों के जापे इसमें आसानी के साथ हो चुके हैं। जहाँ तक पता लगा है, किसी को भी प्रसूति रोग नहीं होने पाया है। अब छोटी जातियों के लिये भी पृथक् वार्ड बननेवाला है।

इन संस्थाओं के मंत्री लाला हज़ारीलालजी जैन बड़े अनुभवी, परिश्रमी और कार्य-दक्ष हैं। आपही के मंत्रित्व में संस्थाओं ने बड़ी उन्नति की है। इन संस्थाओं के सिवा सेठजी ने और भी दान किया है। हिंदी-साहित्य-सम्मेलन को १००००) दिये हैं। बंबई के मारवाड़ी विद्यालय को २५०००) दिये हैं। मुरैना के जैन विद्यालय को १००००) दान किया है। इंदौर में सार्वजनिक पुस्तकालय खोलने के लिये आपने सरकार को २००००) दे रक्खे हैं। आपने यूरोपीय महासमर के समय युद्ध-ऋण में एक करोड़ रुपया तो दिया ही था, लेकिन इंदौर के जो लोग ग़रीबी के कारण युद्ध में कुछ नहीं दे सकते थे, उनकी तरफ़ से आपने उसी समय १०००००) दे दिया था। इस प्रकार तीसलाख रुपया आजतक आप दान कर चुके हैं। एक उदासीन आश्रम भी आपने खोल रक्खा है।

साहित्य-प्रेम—यद्यपि आप बहुत बड़े विद्वान् नहीं हैं, पर हिंदी और गुजराती की पुस्तकें प्रायः पढ़ा ही करते हैं, और पुस्तक को आरंभ करके उसे अधूरी कभी नहीं छोड़ते। नयी पुस्तक को फ़ौरन मँगा लेते हैं। समाचार-पत्र ख़ूब पढ़ते हैं। इस वर्ष मध्यभारत हिंदी-साहित्य-सम्मेलन और कवि-सम्मेलन में आपने पूरा पूरा योग दिया था। अब भी और अष्टम हिंदी-साहित्य-सम्मेलन के मौक़े पर भी आप स्वागत-कारिणी समिति के प्रधान थे। इंदौर की मध्यभारत हिंदी-साहित्य समिति का भवन नगर से बहुत दूर था, इसलिये नगर-निवासी पूरा पूरा लाभ नहीं उठा सकते थे। इस दिक़्क़त को मिटाने के लिये तीतवारिया बाज़ार में आपने अपना 'मोतीमहल' समिति को दे दिया है। इससे लोगों को पठन-पाठन का बड़ा सुभीता होगया है।

सामाजिक-कार्य—सामाजिक कार्यों में भी आप प्रधान भाग लिया करते हैं। अपनी कई जातीय सभाओं के आप सभापति हैं और समय-समय पर उनको ख़ूब मदद दिया करते हैं। पंचायती झगड़े-बखेड़े आपके द्वारा ख़ूब निपटते हैं। आपको कई सभा सोसाइटियों में भाषण देने का काम पड़ा ही करता है। आपकी आवाज़ इतनी बुलंद है कि हज़ारों आदमी आसानी से आपका व्याख्यान सुन लेते हैं। इंदौर में तो कोई सामाजिक कार्य ऐसा नहीं जिसमें आपका हाथ न रहता हो।

शील-व्रत—आपका स्वास्थ्य उत्तम है। स्वास्थ्य-रक्षा के नियमों का पालन आप नियम से करते हैं। संध्या समय ५ मील घूमना आपका नित्य-नेम है। इतने प्रबल पुरुषार्थी होकर भी आपकी जिस विषय में ज़्यादे प्रशंसा है, वह आपका शील-व्रत है। इंदौर का प्रत्येक आदमी आपके इस गुण की प्रशंसा करता है। एक धन-कुबेर में इस महा गुण का होना कितना प्रशंसनीय और अनुकरणीय है, इसका पाठक स्वयम् विचार कर सकते हैं।

सादा स्वभाव—आपका स्वभाव बड़ा सीधा और सादा है। करोड़पति होकर भी आप विलासिता के ग़ुलाम नहीं हैं। अभिमान आपमें बिलकुल नहीं है। अपनी जाति में आप जिस प्रकार अमीर के यहाँ भोजनार्थ चले जाते हैं, वैसे ही एक ग़रीब के घर भी जाते हैं। आप मामूली-से-मामूली आदमी से भी बड़ी नम्रता

उत्कंठिता

[श्री विष्णुनारायण भार्गव की चित्रशाला से]

कियहै न मै कबहूँ कलह गह्यो न कबहूँ मान

और प्रेम से बातचीत करते हैं। किसी को पहरा आपसे मिलने के लिये दरवाज़े पर नहीं बैठना पड़ता। आप करोड़पति हैं। गवर्नमेंट के कृपापात्र हैं। सर हैं। तो भी आप से बातचीत करते समय एक साधारण आदमी को भी ऐसा मालूम होता है कि मानो मैं किसी बराबरी के आदमी से बातें कर रहा हूँ। आपके सादे स्वभाव की लोग बहुत तारीफ़ किया करते हैं। मृदु-भाषण भी आप का ख़ास गुण है।

राजभक्ति—आप जिस प्रकार होल्कर महाराज के अनन्य भक्त हैं, उसी प्रकार ब्रिटिश सरकार के भी। समर-ऋण में एक मुश्त एक करोड़ रुपया दे देना ही आपकी राजभक्ति का ज्वलंत प्रमाण है। दिल्ली के लेडी हार्डिंग फ़ीमेल हास्पिटल को आपने एक मुश्त ४ लाख रुपये दान किये है। इसी प्रकार होल्कर सरकार को जब-जब जिस-जिस रूप में आवश्यकता पड़ी, तब-तब आपने राजभक्ति का पूरा परिचय दिया है। हाल ही में भूतपूर्व महाराज तुकोजीराव को पूर्ण सहायता देने में आपने कोई कसर नहीं रखी थी। हर समय आप राज्य की उन्नति और राज-परिवार के लिए शुभ कामना किया करते हैं। आपकी अटल राजभक्ति को देखकर होल्कर सरकार ने आपको "राज्यभूषण" की पदवी और पाँव में सोना तथा हाथी रखने की आज्ञा प्रदान की है।

धर्म पर विश्वास—आप प्रतिदिन स्वाध्याय, पूजन और मुक्ति के लिये जिनवाणी का स्मरण करते हैं। आपने अपने हाथों से कई मंदिरों का उत्थापन करवाया है। अपने निवास-महल (शीशमहल) से मिला हुआ जो जिन-मंदिर आपने बनवाया है, उसकी कारीगरी देखकर लोग चकित हो जाते हैं। इस मंदिर के सभा-मंडप में जो सोने और काँच का काम हुआ है, उसको लार्ड रीडिंग, लेडी रीडिंग, महाराजा होल्कर और एजेंट टू दि गवर्नर जनरल देख कर बड़े प्रसन्न हुए थे, और उसकी मुक्तकंठ से प्रशंसा की थी। इसमें २५) प्रतिदिन पाने वाले कारीगरों ने काम किया है। सेठजी ४-५ बार तीर्थ-यात्रा कर चुके है। आप सांप्रदायिक-विवाद में नहीं पड़ते। श्वेतांबरों और दिगंबरों के कई झगड़ों को आपने निपटाया है। जगह-जगह की धर्मशालाओं को आपने सुधारणार्थ द्रव्य देकर उनको जीर्ण होने से बचाया है। एक मंदिर आपका नसिया में भी है। उसकी भी कारीगरी देखने ही योग्य है। हाल ही में आपने ५० हज़ार की लागत से सोने के काम का एक देव-रथ बनवाया है। कहते हैं कि भारत के जैनियों में शायद ही आजतक किसी ने ऐसा रथ बनवाया हो। असल में आपका जीवन बड़ा धार्मिक-जीवन है।

मनुष्य-ज्ञान—प्रायः देखने में आता है कि धनवानों को मनुष्य-ज्ञान बहुत कम होता है। चापलूस उन्हें ऐसा बना लेते हैं कि उनके ज्ञान को विकसित होने का ही मौक़ा नहीं मिलता। राजाओं में तो यह बात मोटे तौर पर स्पष्ट दिखाई देती है। पर आप ख़ुशामदियों के बहकावे में नहीं आते, बल्कि उन्हें तुरत फटकार देते हैं। इसी प्रकार आप सच्चे और परिश्रमी लोगों की क़द्र करते हैं, पर मुलाहिज़ा किसी नौकर का नहीं रखते हैं। आपके पास इतने आदमी रहते है और छूटते है कि उनकी गिनती नहीं हो सकती।

जीवन का सार—कुछ भी हो, सेठजी में अधिकांश गुण ऐसे है, जो सबके लिये अनुकरणीय हैं। व्यापारिक-क्षेत्र में सचमुच आप महापुरुष हैं। साहस, पुरुषार्थ, शील, संयम आपके जीवन के प्रधान अंग हैं। जो नव-युवक व्यापारिक क्षेत्र में सफलता प्राप्त किया चाहें, उनके लिये आपका जीवन-चरित्र आदर्श हो सकता है। हम आपकी चिरायु की ईश्वर से प्रार्थना करते हैं, और चाहते हैं कि आपके पुत्र भी आपही का पदानुसरण करते हुए आपके वंश की कीर्ति को और भी उज्ज्वल करते रहें।

कृष्णगोपाल माथुर

आराध्यचरण

आभरन जटित बिराजत सजित मंजु,
सिजित अनूप जानरूप बिभुवन को।
सुंदर श्रवन सुखदायक चरन 'दीन',
सहज बसीकरन कीनों त्रिभुवन को।
जासु नख रुचिर प्रकास निरखत चंद,
मंद धुनि होत व्योम चाहै ना उवन को।
साँचे सेव्य चरन सरोज राधिका के जिन,
सेवक बनायो निज नंद के सुवन को।

भगवानदीन मिश्र, 'दीन'

साम्यवाद आंदोलन
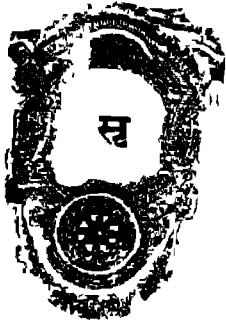
सृष्टि के आदि से अबतक मानव-समाज की स्थिति में, समय-समय पर, अनेक परिवर्तन होते चले आये हैं। आरम्भ में मनुष्य की दशा क्या थी, धीरे-धीरे उसकी प्रकृति एवं रंग-रूप और रहन-सहन में कैसे विकास हुआ, आदि बातों के सम्बन्ध में सृष्टि-विज्ञान-वेत्ताओं के विभिन्न मत हैं। किन्तु, इस बात से तो प्रायः सभी सहमत हैं कि मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। वह अकेला नहीं रह सकता, क्योंकि वह स्वभाव ही से दूसरों से मिल-जुल कर रहने का आदी है। इसके साथ ही मानव-स्वभाव बड़ा प्रगतिशील भी है। काल-चक्र के साथ वह बड़ी तेज़ रफ़ार से दौड़ता है। जहाँ इसके कामों में कोई अड़चन हुई, कि वहीं इसकी गति-विधि एकदम बदल जाती है। सामाजिक-क्रम-विकास का इतिहास मानव-स्वभाव के प्रगतिशील होने का साक्षी है। इसी कारण संसार में घात-प्रतिघात की प्रक्रियाओं, अनेक युद्धों और आंदोलनों का जन्म होता है। उन बातों का, जिन्हें देखकर आज दंग रह जाना पड़ता है, अब से सैकड़ों वर्ष पहले दुनिया में कहीं नाम भी नहीं था। प्राचीन काल के काव्य, साहित्य-कला, संगीत, वाद्य, आदि चीज़ों से आधुनिक चीज़ों का मिलान कीजिये, बिलकुल रूप ही दूसरा मिलेगा। नित्य नये आविष्कारों की नित्य नई बातें सुनने में आती हैं। शासन-प्रणालियाँ तो, न जाने, कितनी चलीं, और कितनी मिट गईं। जनतंत्रवाद, प्रजातंत्रवाद आदि न मालूम कितने 'वाद' चले, और नष्ट हो गये, या उनका रूप परिवर्तित हो गया, और वे एक नये रूप में दुनिया के सामने फिर आगये। किंतु मानव-मस्तिष्क अभी अनेक और नये 'वाद' ढूंढ़ निकालने में व्यस्त है, वह तो अभी न जाने विश्व को कितने और नये 'वादों' के रंग-मंच पर लेजाकर खिलायेगा, और वहाँ से उसे नीचे पटकेगा।

नवयुग के साथ जैसे-जैसे दुनिया में कल-पुर्ज़ों, युद्ध-कला-विज्ञान, नये आविष्कारों और सुख समृद्धि बढ़ाने-वाली नई-नई बातों की उन्नति हो रही है, वैसे-ही-वैसे किसी-न-किसी रूप में नये आंदोलनों और नई हल-चलों का जन्म हो रहा है। इंगलैंड, फ्रान्स, जर्मनी, अमेरिका आदि पाश्चात्य देशों में आजकल साम्यवाद की हवा बड़े ज़ोरों से चल रही है। यहाँ हम उसीके संबन्ध में ज्ञातव्य बातों पर प्रकाश डालेंगे।

साम्यवाद क्या है?

मि० रेम्जे मेकडानल्ड के शब्दों में "साम्यवाद का आशय यह है कि समाज का अस्तित्व व्यक्तियों के सुधार और स्वाधीनता की स्थापना के लिए है, और जीवन की आर्थिक समस्याओं के नियंत्रण का अर्थ है, स्वयं जीवन का नियंत्रण, और साथ ही साम्यवाद एक ऐसे सामाजिक संगठन के लिए प्रयत्न करने की बात कहता है जो अपनी कार्यावली में भूमि, औद्योगिक पूँजी आदि उन आर्थिक साधनों का प्रबन्ध रखता हो, जो सुरक्षित रूप से व्यक्तियों के हाथों में नहीं छोड़े जा सकते।" साम्यवाद राजनैतिक और आर्थिक गुत्थियाँ सुलझाने के लिए पारस्परिक सहायता का एक साधन है। इसका मतलब है सामाजिक-ढाँचे में परिवर्तन करना, और मानव स्वतंत्रता का विस्तार करने के लिए एक साधन के रूप में साम्यवाद इस परिवर्तन को उचित ठहराता है। सामाजिक संगठन एक श्रेयस्कर अवस्था की तरह है, वह व्यक्तिगत स्वतंत्रता के विचारों का विरोधी नहीं। यह एक शहर की तरह है, जिसकी ओर प्रत्येक दिशा से सड़कें आती हैं— यह एक तीर्थ-यात्री के लिए ईश्वर-भक्ति का मार्ग है, एक व्यापारी के लिए व्यापार-पथ है, एक दार्शनिक के लिए नियंत्रण-मार्ग है। इस प्रकार साम्यवाद के अनेक राज-मार्ग हैं। [वैसे तो साम्यवाद का सोशलिज़्म, कम्यूनिज़्म, निहलिज़्म, बाल्शेविज़्म आदि अनेक शाखा-प्रशाखायें हैं, किन्तु, इस लेख में, हमने साम्यवाद को मज़दूर-संघवाद और सोशलिज़्म (Socialism) के अर्थ ही में प्रयुक्त किया है]। जैसे जैसे समय बीतता गया, और लोगों का व्यापारिक अनुभव परिपक्व होता गया, वैसे-ही-वैसे साम्यवाद के उन सिद्धांतों में, जो आरम्भ में साम्यवादियों द्वारा चलाये गये थे, संशोधन और परिवर्द्धन होता गया। यह स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि साम्यवादी व्यक्तियों पर आक्रमण नहीं करते। जब वे पूँजीवाद या व्यापारवाद की आलोचना करते हैं तब, वे पूँजीपति या व्यापारी की निन्दा नहीं

करते। उनका कहना है कि पूँजीपति भी अपनी पूँजी-वाद की प्रणाली में उतना ही जकड़ा हुआ है जितना कि बेकार मज़दूर बेकारी में, और इसका समाज पर उसी तरह बुरा प्रभाव पड़ता है जिस तरह कि ग़रीबों का।

समाज में व्यक्ति का स्थान

इतिहास बतलाता है कि प्रारम्भ में समाज का संगठन सर्वसाधारण की रक्षा के लिए हुआ। परन्तु, ज़बरदस्त आदमी दल पर क़ब्ज़ा कर बैठे, और उन्होंने अपने स्वार्थ और आकाक्षाओं की पूर्ति के लिए अपने अधिकारों का दुरुपयोग किया। इस बात के लाखों उदाहरण मिलते हैं कि समय-समय पर जनता ने अत्याचारी शासकों के विरुद्ध आवाज़ उठाई, और ज़ुल्म-ज़्यादतियों का अन्त कर देने के लिए अनेक लड़ाइयाँ भी लड़ीं। उदाहरण के लिए इंगलेंड का 'किसानों का बलवा' और जर्मनी का 'हुस्साइट का बलवा' उल्लेखनीय हैं। सचमुच मानव-समाज की उन्नति का इतिहास विविध जातियों, सम्प्रदायों और राष्ट्रों के संघर्षण का ख़ज़ाना है। समाज-संगठन की प्रारम्भिक दशा में राष्ट्रीय कामों की ज़िम्मेदारी बहुत थोड़े लोगों पर रहती थी। इस दशा में एक फ़ौजी अफ़सर भी राज्य-अधिकारी बना दिया जाता था। परन्तु, जब फ़ैक्टरी (कल-कारख़ानों) को संघर्षण-भूमि के रूप में राष्ट्रीय महत्त्व मिला, तब, राष्ट्रीय हितों के संरक्षण का भार अधिक लोगों के हाथ में आया, और धनी तथा मध्य स्थिति के आदमियों को वोट देने का अधिकार मिला, और उनके आर्थिक हितों की विशेष रूप से परवाह की जाने लगी। मुख्यतः जब राज्य प्रजा-सत्ता के संगठन के रूप में आया, और शासन के कामों में उसने व्यक्तियों से सहयोग किया, तब, राजनैतिक प्रजा सत्ता का आंदोलन अपनी परिपक्व अवस्था में आया, और उसने प्रकृति-देवी के दिये हुए सामाजिक फल उत्पन्न किये।

मानव-समाज का विकास एक छोटे परिवार से प्रारम्भ होता है। परिवार का संगठन व्यक्तियों के पारस्परिक स्नेह और सहानुभूति की भित्ति पर था। जब पारिवारिक समूह अधिक पुराना और व्यवस्थित रूप से संघटित हुआ, तो, उसकी प्रगति और भी बढ़ी। अपनी रक्षा की ज़िम्मेदारी स्वयं उसी पर थी। धीरे-धीरे वह समुदाय विकसित होकर नैतिक, धार्मिक और संरक्षण-संबंधी शासक-वर्ग के रूप में परिणत होगया। वह समुदाय व्यक्तियों की रक्षा करता था। अरस्तू ने लिखा है—"For as the State was formed to make life possible, so it exists to make life good" अर्थात शासन की व्यवस्था मनुष्य जीवन को सुचारु बनाने के लिए की गई, और इसीकी उन्नति के लिए उसकी सत्ता भी है। हिंदुस्तान के प्राचीन ग्राम्य-समुदाय, और क्रांति से पहले फ्रेंच गावों में सामाजिक-जीवन पूर्ण विकास को पहुँच चुका था। भारतवर्ष में तो वर्ण ने समाज में व्यक्ति को जातीय जीवन का पूर्ण अधिकार प्रदान कर रखा था। यहाँ व्यक्ति को जन्म ही से अपना निश्चित अधिकार प्राप्त था, और किसी हद तक अब भी है। बढ़ई के लड़के बढ़ई और नाई के लड़के नाई होते हैं। वे व्यक्तियों के रूप में मज़दूर नहीं होते। वे गाव के कामवाले हैं, और गाव की संपत्ति में उसी प्रकार उनका भाग है जिस प्रकार शरीर का कोई अंग ख़ुराक और शरीर की ज़िंदगी में अपना भाग रखता है। वे समाज के साझीदार हैं। वे कामवाले अपने काम की मज़दूरी नहीं पाते, बल्कि जातीय संपत्ति पर सामूहिक रूप से उनका अधिकार है। अभिप्राय यह है कि भारतीय समाज में व्यक्तियों का स्थान बहुत ऊंचा और महत्त्वपूर्ण है। आज तो पश्चिम की आर्थिक सभ्यता के सामने भारतवर्ष की प्राचीन सामाजिक ग्राम्य-प्रणाली जीर्ण-शीर्ण अवस्था में पड़ी हुई अपनी मौत के दिन पूरे कर रही है।

वर्तमान अवस्था

पाश्चात्य सभ्यता, उसके नये आविष्कारों, मशीनों और कल-पुर्ज़ों, बढ़ते हुए उद्योग-धंधों तथा बिजली की रोशनी ने संसार की आखों में चकाचौंध पैदा करदी है। बाहर के लोग समझते हैं कि इससे पाश्चात्य देशों में भूतल पर स्वर्ग का नज़ारा दिखाई देता होगा, वहाँ गरीबी में साधारण आदमी भूखे न मरते होंगे। किसी हद तक तो बाहरवालों का यह विचार ठीक हो सकता है, किंतु सर्वांश में नहीं। उक्त देशों के उद्योग-धंधों का चित्र खींचते हुए मिस्टर मेलकाक नाम के अर्थशास्त्री अपने "The Nation as a Business firm" नामक ग्रन्थ में लिखते हैं कि इन

देशों में ३५०,००० परिवारों में जिनमें १,७५०,००० आदमी हैं, प्रत्येक व्यक्ति की आमदनी २ शि० ३ पेंस प्रति सप्ताह होती है। उसीमें उसका सारा ख़र्च चलता है। यह आमदनी एक परिवार का ख़र्च चलाने के लिए इतनी नाकाफ़ी है कि आदमी बीमारी-हारी और बेकारी में बड़ी मुसीबत में फँस जाता । इस आमदनी से एक आदमी को मकान का किराया देने में भी बड़ी कठिनाई का सामना करना पड़ता है। मि० बूथ नाम के एक अन्य विद्वान् का कहना है कि उत्तर और पूर्वी लन्दन के ३५.२ फ़ीसदी आदमी एक परिवार पर प्रति सप्ताह १ गिनी की आमदनी से गुज़र करते हैं। मि० राउनट्री का कहना है कि यॉर्क में ३० फ़ीसदी आदमी बहुत ग़रीबी से अपने दिन काटते हैं। साधारण आदमियों की ग़रीबी का कारण किसी हद तक यह भी है कि उनमें जुआ, शराब, आदि व्यसनों की लत पड़ जाती है, जिससे वे कमाए हुए धन को बरबाद करते हैं। परन्तु, अधिकांश में उद्योग-धन्धों के साथ ही समाज में ग़रीबी के बढ़ने का कारण यही है कि उन्हें पर्याप्त आमदनी नहीं होती, जिससे उनकी आर्थिक-दशा दिन-पर-दिन गिरती जाती है। उद्योग-धन्धों के साथ व्यापार और पूँजीवाद का चक्र भी चल रहा है। वह हर दिशा में अपने पैर फैला रहा है। यह युग व्यापार और सौदे-सट्टे का युग है। जहाँ देखो, वहीं ख़रीद-बिक्री और देन-लेन का बाज़ार गर्म है। गुण के मुक़ाबिले मे रुपए की क़दर बढ़ती जा रही है। दूकानदार और ग्राहक दोनों ही अपने-अपने लाभ की फ़िराक़ में हैं। आजकल इस व्यापार-क्षेत्र में 'ईमानदारी की नीति सबसे अच्छी नीति' नहीं समझी जाती। सभी जगह भौतिकवाद का प्रभुत्व जमता जा रहा है। ऊँचे-से-ऊँचे कुल में पैदा और आदर पाया हुआ पुरुष सम्पत्ति के सामने सर झुकाता है। आजकल के सभ्य समाज में रुपया सब कुछ कर सकता है। रुपए से बाज़ार में ग़ुलामों की तरह स्त्रियाँ ख़रीदी जा सकती हैं। एक आदमी, चाहे कितना ही मूर्ख हो, दुनिया के तौर-तरीक़ों से बिलकुल अनभिज्ञ हो, पर, यदि उसके पास रुपया है, तो उसके लिए सभी जगह आदर का द्वार खुला हुआ है। सभी जगह उसका सम्मान होगा। मतलब यह है कि इस व्यापारिक युग में रुपया सब कुछ है। सब जगह इसीकी माया है। अनेक उद्योग-धन्धे, मिल, बैंक, कंपनी आदि के विशाल कार्य-भवन पूँजीवाद या व्यापारवाद की सुदृढ़ भित्ति पर खड़े किए गए हैं। इसमें शक नहीं कि इस पूँजीवाद से दुनियाँ सामयिक प्रगति के साथ उन्नति की घुड़दौड़ में छलांग मारती हुई नज़र आती है। परन्तु, इसमें भी सन्देह नहीं कि इस प्रणाली ने पूँजीपतियों और साधारण आदमियों के बीच एक ऐसी गहरी खाई खोद कर तैयार कर दी है, जिसके फलस्वरूप साम्यवाद का जन्म हुआ। संसार की आँखें लग रही हैं, यह देखने के लिये कि, साम्यवाद आंदोलन, जिसे साम्राज्यवादियों ने 'हौआ' कहकर बदनाम कर रखा है, किसानों, मज़दूरों और पूँजीपतियों के बीच की खाई को पाटने का काम करेगा, या उसे और चौड़ा कर देगा।

आंदोलन की उत्पत्ति

साम्यवाद एक प्रवृत्ति की तरह है, अपौरुषेय सिद्धांत नहीं ; इसलिए इसकी व्याख्या समय-समय पर अधिकाधिक सुधरे हुए ढंग से की जाती रही है। आदर्श एक ही है, किन्तु उसकी ओर जाने के मार्ग अन्य मानव-पंथों की तरह परिष्कृत और परिवर्तित किए जाते रहे हैं। इसका रंग-रूप भी बदलता रहा है।

साम्यवाद (Socialism) शब्द इंगलैंड में सबसे पहले सन् १८३५ में उस समय इस्तेमाल किया गया था, जब कि प्रसिद्ध साम्यवादी ओवेन और उसके कामों की चर्चा चल रही थी। रीबॉद नाम के एक फ़रासीसी ने सेंट सिमोन और फ़ाउरियर के सिद्धांतों की व्याख्या करते समय इस शब्द का व्यवहार किया था। उस समय यह शब्द समाज के पुनर्संगठन के सिद्धांतों का प्रचार करने के लिए व्यवहार में लाया गया था। उसमें शासन का कोई भाग नहीं था। वह सामाजिक संगठन का नैतिक और आदर्शभूत आंदोलन था। उस आंदोलन में भाग लेनेवाले साम्यवादी यूटोपिस्ट (Utopists) कहलाते थे। जब मार्क्स और एंजिल्स ने आंदोलन की राजनैतिक दशा पर ज़ोर देकर उसके इतिहासों में एक नया परिच्छेद जोड़ा, तब उन्होंने अपने 'कम्युनिस्ट' शब्द की रचना की और पूर्व-प्रवर्तकों के सोशलिज़्म पर अनेक आक्षेप किए।

सुरेन्द्र शर्मा

अल्पमत का प्रतिनिधित्व

(मि० हेअर की स्कीम)

आजकल की भाषा में जिसे "राष्ट्र का बहुमत" नाम से पुकारा जाता है, वह प्रायः वास्तव में एक बहुत ही छोटा "अल्पमत" होता है। हमारी यह स्थापना कुछ विचित्र सी प्रतीत होती है, अतः इसकी पुष्टि के लिये एक उदाहरण देना उचित होगा। कल्पना कीजिये, भारत की बड़ी व्यवस्थापिका सभा के निर्वाचन के लिये कुमायूँ विभाग की ओर से तीन उम्मीदवार खड़े हुए हैं। निर्वाचन में इन तीनों को क्रमशः इस प्रकार वोट मिले— 'क' को ५०००, 'ख' को ४००० और 'ग' को ३०००। इस अवस्था में 'क' के पक्ष में ५००० और विपक्ष में ७००० वोट होते हुए भी वह बहुमत से निर्वाचित समझा गया। हम कल्पना कर लेते हैं कि बड़ी व्यवस्थापिका के प्रत्येक निर्वाचित सदस्य को औसतन् इसी अनुपात से वोट मिले हैं। अब व्यवस्थापिका सभा में एक प्रस्ताव पास होता है। प्रस्ताव के पक्ष में ६५ और विपक्ष में ६० वोट आते हैं। इस अवस्था में इस प्रस्ताव के पक्ष में केवल ६५×५०००= ३२५००० मतदाताओं के प्रतिनिधि है, और ६५×७०००+ ६०×१२०००=११७५००० मतदाता ऐसे हैं, जिनके प्रतिनिधि इस प्रस्ताव के विरोध में थे, अथवा जिनका इस प्रस्ताव में प्रतिनिधित्व ही नहीं हुआ। परन्तु, फिर भी यह प्रस्ताव बहुसम्मति से पास समझा गया है। इस प्रस्ताव को "राष्ट्र का बहुमत" माना जाता है।

इस अवस्था में प्रतिनिधि-शासन की बहुत-सी विशेषताएँ नष्ट होजाती है, क्योंकि प्रतिनिधि सभा में देश की आधी से अधिक जनसंख्या का प्रतिनिधित्व ही नहीं हो रहा। प्रतिनिधि-शासन का यह सबसे प्रथम सिद्धांत है कि राष्ट्र के नियामक विभाग में देश की जनता का समुचित प्रतिनिधित्व हो रहा हो। अर्थात् वह दल, जिसके पक्ष में देश के मतदाताओं का बहुमत हो, प्रतिनिधि सभा में भी बहुमत प्राप्त कर सके, साथ ही वे सब दल भी, जिनका देश में अल्पमत है, अपने-अपने अनुपात से प्रतिनिधि सभा में प्रतिनिधित्व पाए हुए हों। आजकल के वर्तमान विधानों के अनुसार प्रतिनिधि सभा में देश के बहुमत का अपने अनुपात से भी अधिक प्रतिनिधित्व होता है, और कई छोटे-छोटे अल्पमत प्रतिनिधि सभा में स्थान ही नहीं पा सकते। वर्तमान प्रजातन्त्र शासन-पद्धति पर यह एक बड़ा लांछन है।

कुछ लोगों का विचार है कि अल्पमत जब प्रतिनिधि सभा में भी अल्प ही रहता है, तो आनुपातिक प्रतिनिधित्व कर देने से लाभ ही क्या है? परन्तु यह प्रश्न व्यर्थ है। एक अल्पमत का पूरा अधिकार है, कि वह प्रतिनिधि सभा में अपने अनुपात के अनुसार उपस्थित हो। केवल अल्पमत के अधिकारों की दृष्टि से ही यह प्रश्न सर्वथा निस्सार हो जाता है। साथ ही इस अल्पमत के प्रतिनिधित्व का एक और विशेष लाभ भी है। वह यह कि अगर सब अल्पमतों को यथोचित मात्रा में प्रतिनिधित्व दिया जायगा तो वे बहुमत को निरंकुश और स्वेच्छाचारी होने से रोकेंगे। बहुमत को अपनी प्रत्येक क्रिया में इनमें से किसी न-किसी दल को अपने साथ लेना पड़ेगा। अगर प्रतिनिधि सभा में किसी मत का पूर्ण बहुमत (absolute majority) भी हो तो भी ये दल उसकी स्वेच्छाचार प्रवृत्ति पर किसी अंश तक अंकुश का कार्य करते रहेंगे। अतः अल्पमत को अपने अनुपात में पूरा प्रतिनिधित्व प्राप्त होना चाहिये। इसके बिना एक प्रतिनिधि शासन सच्चे अर्थों में प्रतिनिधि शासन ही नहीं है।

वर्तमान प्रतिनिधि तन्त्र में यह बड़ा दोष पाकर बहुत से लोगों ने इसके निवारण के लिये भिन्न-भिन्न उपाय बतलाये हैं। लार्ड जान रसेल ने अपने एक 'सुधार मसविदे' में यह स्कीम पेश की थी कि वर्तमान तीन-तीन निर्वाचन विभागों को मिलाकर एक-एक निर्वाचन विभाग बना दिया जाय। इस प्रकार एक निर्वाचन विभाग (Constituency) को तीन प्रतिनिधि चुनने का अधिकार होगा। परन्तु इसके साथ ही यह नियम बना दिया जाय कि प्रत्येक मतदाता केवल दो उम्मीदवारों के लिये ही अपना मत दे सकता है। इस अवस्था में उस निर्वाचन विभाग के वे तीनों प्रतिनिधि केवल बहुमत के ही प्रति-

निधि न होंगे। मि० जी० मार्शल ने इस स्कीम में यह सुधार उपस्थित किया था कि उपर्युक्त उदाहरण में प्रत्येक मतदाता को तीन वोट देने का अधिकार दिया जाय; यह बात उसकी इच्छा पर छोड़ दी जाय कि वह अपने तीनो वोट एकही व्यक्ति को देता है, या भिन्न-भिन्न व्यक्तियों को।

इन दोनों स्कीमों के परिणाम में कोई विशेष भेद नहीं है। दोनों स्कीमों से कुछ अंश तक अभीष्ट लाभ भी अवश्य है, परन्तु इनके द्वारा अल्पमत के यथोचित प्रतिनिधित्व न होने का दोष पूरी तरह निवारण नहीं हो पाता।

इँगलैण्ड के एक राजनीतिज्ञ मि० टामस हेअर ने इस उपर्युक्त दोष के निराकरण के लिये एक और 'आविष्कार' किया है। मिल जैसे बड़े विद्वान् की सहायता पाकर यह आविष्कार संसार भर के राजनीति-शास्त्रज्ञों के सन्मुख बहुत महत्त्व प्राप्त कर चुका है। यह स्कीम वास्तव में है भी बहुत विचारणीय। आज इस लेख में हमें मि० हेअर की इसी स्कीम पर कुछ प्रकाश डालना है।

मि० हेअर की यह स्कीम इस प्रकार है—सम्पूर्ण देश को एक ही निर्वाचन विभाग माना जाय। कुल मतदाताओं की संख्या को प्रतिनिधि सभा के निर्वाचित सदस्यों की संख्या से भाग देकर जो संख्या प्राप्त हो, उसे एक 'कोटा' मान लिया जाय। प्रत्येक मतदाता अपने टिकट पर बहुत से उम्मीदवारों के नाम लिखे। सब उम्मीदवारों में, जिसे वह सर्वश्रेष्ठ समझता हो, उसका नाम सबसे ऊपर लिखे। इसी प्रकार क्रमशः आठ या दस अपने अभीष्ट उम्मीदवारों के नाम टिकट पर लिख दे। देश भर के सम्पूर्ण टिकट इकट्ठे कर लिये जायँ। कोटा की निश्चित संख्या के बराबर जिस मतदाता के वोट आजायँ, वह उम्मीदवार निर्वाचित समझ लिया जाय। जिन उम्मीदवारों के नाम तो सबसे ऊपर लिखे हुए हैं, परन्तु उनका कोटा पूरा नहीं होता, उन्हें छोड़ दिया जाय। दूसरी लाइन में लिखे नामों में से, जिनका कोटा पूरा हो जाय, उन्हें निर्वाचित समझा जाय। इसी प्रकार प्रतिनिधियों का निर्वाचन हो।

इस स्कीम द्वारा अल्पमत के यथोचित प्रतिनिधित्व न होने का दोष पूरी तरह निराकृत हो जाता है। क्योंकि देश का कोई छोटे-से-छोटा अल्पमत भी, जिसे कि निश्चित कोटा की संख्या के वोट प्राप्त हो सकते हैं, प्रतिनिधि सभा में यथानुमत अपने प्रतिनिधि भेज सकेगा।

यह स्कीम इतनी अधिक प्रतिनिधि-सत्तात्मक होते हुए भी अभीतक व्यावहारिक रूप में बहुत कम देशों में स्थान पा सकी है। प्रायः किसी भी बड़े देश की मुख्य प्रतिनिधि सभा का निर्वाचन इस पद्धति से नहीं होता। केवल कुछ देशों की स्थानीय संस्थाओं—म्युनिसिपैलिटी, आदि में यह स्कीम व्यवहार में लाई जा रही है। वहाँ यह स्कीम यथेष्ट लाभकर भी सिद्ध हुई है। अब धीरे-धीरे संसार के बहुत से राष्ट्र इस स्कीम की महत्ता को समझने लगे हैं। दक्षिण अमेरिका की कुछ रियासतों में भी प्रतिनिधि सभाओं का निर्वाचन इसी स्कीम के आधार पर होता है। स्विट्ज़रलैण्ड की 'नेशनल कौन्सिल' का निर्वाचन इसी प्रथा द्वारा होता है। इँगलैण्ड और संयुक्त राज्य अमेरिका के कुछ नगरों की नगर-समितियों का निर्वाचन भी इसी स्कीम के अनुसार होता है। इस समय जर्मनी भी अपने कुछ मुख्य निर्वाचनों में इस स्कीम का आश्रय लिये हुए है। कतिपय अन्य राष्ट्रों में भी यह स्कीम प्रचलित किये जाने की चर्चा उठ रही है। इस स्कीम के पूरी तरह न अपनाये जाने के कारण हैं। हम क्रमशः इस स्कीम पर लगाए जाने वाले आक्षेपों का निराकरण करके इसके लाभों का निर्देश करेंगे।

प्रायः देखा जाता है कि किसी भी देश में सब मतदाता अपना मत नहीं देते। इँगलैण्ड जैसे देश में भी, जो कि इतने समय से प्रतिनिधि शासन के अनुभव प्राप्त करता चला आ रहा है, पिछले निर्वाचन में केवल ७० प्रतिशत मतदाताओं ने ही अपने मत दिये थे। इस अवस्था में कोटा किस प्रकार निश्चित किया जाय? प्रति निर्वाचन में कितने मतदाता मत देंगे, यह बात भी नहीं जानी जा सकती। यह वास्तव में एक बड़ा दोष है, इसके परिहार के लिये यह उपाय बताया जाता है कि कोटा पहले ही निश्चित न किया जाय। प्रति निर्वाचन में जितने मतदाता मत दें, उसीके अनुसार कोटा निश्चित किया जाय। परन्तु इस प्रकार एक बड़ी हानि उम्मीदवारों को यह होगी कि वे कोटा की निश्चित संख्या न जानने के कारण बड़ी अनिश्चित दशा में रहेंगे। इस संख्या की कल्पना करने का एकही आधार उनके पास रहेगा। यह

होंगी गत निर्वाचनों के कोटे की संख्याएं, जो कि भिन्न-भिन्न हैं।

यह समझा जाता है कि मि० हेअर की स्कीम द्वारा प्रतिनिधि सभा में दलबन्दी बहुत अधिक बढ़ जायगी; क्योंकि ऐसे थोड़े से लोग मिलकर भी, जो कि एक कोटा पूरा कर सकते हैं, अपना एक नया दल खड़ा कर लेंगे। इस प्रकार भवन (House) में अनेक छोटी छोटी पार्टियां नज़र आने लगेंगी। हम पहले ही कह चुके हैं कि अगर यह बात हो भी जाय तो अनुचित नहीं है, क्योंकि यह प्रतिनिधि-तन्त्र शासन का मूलभूत और प्रथम सिद्धान्त है। यह अल्पमतों का न्यायोचित अधिकार है। साथ ही यह दोष दूसरी दृष्टि से भी निर्मूल है। अगर देश में कोई ऐसा दल मौजूद है, जिसका कि आम जनता में पूर्ण बहुमत (clear majority) है, तो निश्चित रूप से प्रतिनिधि सभा में भी उसका पूर्ण बहुमत ही रहेगा। इस अवस्था में उपर्युक्त आशंका सर्वथा निर्मूल हो जाती है। प्रतिनिधि सभा में एक दल का पूर्ण बहुमत होने पर जो अन्य छोटे छोटे दल होंगे वह उस पर अंकुश का कार्य करेंगे। दूसरी दशा यह हो सकती है कि देश में किसी एक दल का पूर्ण बहुमत न हो, इस हालत में प्रतिनिधि सभा अवश्य कई अम-शक्ति-सम्पन्न विभिन्न-विभिन्न दलों में विभक्त हो जायगी। परन्तु इसमें भी घबराने का कोई कारण नहीं है। आजकल फ्रान्स और जर्मनी तथा इसी प्रकार कुछ अन्य देशों की प्रतिनिधि सभाओं में कोई भी ऐसा दल नहीं है जिसका वहां पूर्ण बहुमत हो, अतः वहां एक से अधिक दलों को मिलकर शासन-कार्य हाथ में लेना होता है। यह अवस्था भी कुछ विशेष हानिकर नहीं है। इस दशा में सभी दलों को खूब समझ-बूझ कर क़दम रखना पड़ता है। अल्पमतों की महत्ता इस अवस्था में वहां तक बढ़ सकती है, जहां तक कि उनका अधिकार न्यायोचित है।

इसमें सन्देह नहीं कि यह स्कीम निर्वाचन की वर्तमान प्रणाली की अपेक्षा कुछ अधिक गुथीली (Complicated) है। परन्तु इसी कारण इसे अक्रियात्मक कहना भारी भूल होगी। अगर मतदाताओं को टिकट पर एक चिह्न की बजाय दस, बारह नाम लिखने पड़ेंगे तो कोई आफ़त नहीं आ जायगी। टिकटों को मिलाकर उनके अनुसार चार्ट बनाने का कार्य यद्यपि वर्तमान प्रणाली की अपेक्षा कुछ कठिन है, परन्तु असम्भव नहीं है। कुछ लोगों को इस स्कीम के विरुद्ध अन्धविश्वास है। वे किसी परिवर्तन को सह नहीं सकते। यह बात नितान्त घातक है। किसी नयी चीज़ से केवल इसीलिये नहीं घबराना चाहिये कि वह नयी है। कहा जाता है कि इस पद्धति को कार्य रूप में लाने पर निर्वाचन में बहुत अधिक बिगाड़ (Corruption) आ जायगा। हम इस बात से भी सहमत नहीं हैं। जब कि उम्मीदवार और मतदाता लोगों को निर्वाचन का परिणाम प्रकाशित होने के बाद निरीक्षण और परीक्षण का पूरा अधिकार रहेगा तब 'बिगाड़' का कोई कारण समझ में नहीं आता।

इस स्कीम पर एक दोष यह दिया जाता है कि इसके द्वारा स्थानीय निर्वाचन विभाग और निर्वाचित सदस्य का वर्तमान सम्बन्ध टूट जायगा। परन्तु वास्तव में यह इस स्कीम का दोष नहीं अपितु गुण है। कारण यह है कि कईबार राष्ट्र के हित में स्थानीय हित (Local interests) बाधक बनकर उपस्थित हो जाते हैं। साथ ही आदर्शों की दृष्टि से भी यह स्थानीय हितों के आधार पर किया गया निर्वाचन मौलिक सिद्धान्त-भेदों के आधार पर किए गए निर्वाचन की अपेक्षा बहुत निकृष्ट है।

अब इस स्कीम के मुख्य-मुख्य लाभों की ओर निर्देश कर लेना भी उपयुक्त होगा। मि० हेअर की इस स्कीम का सर्वश्रेष्ठ और मुख्यतम लाभ तो यही है, कि इसके द्वारा देश के अल्पमतों का प्रतिनिधित्व उचित और यथेष्ट अनुपात में हो जाता है। इसके साथ-ही-साथ इस स्कीम द्वारा कुछ और भी महत्वपूर्ण लाभों की पूरी सम्भावना है।

आजकल दलबन्दी का युग है। इस दलबन्दी से घबरा कर बहुत से विद्वान्, अनुभवी और योग्य व्यक्ति निर्वाचनों में उम्मीदवार बनकर भी नहीं खड़े होते; क्योंकि वे लोग पार्टी के लिए अपनी आत्मा की हत्या करना उचित नहीं समझते। अमेरिका के वर्तमान निर्वाचन इस बात के ज्वलन्त उदाहरण हैं। वर्तमान निर्वाचन-प्रकार में यह एक मुख्य दोष है। मि० हेअर की उपर्युक्त स्कीम द्वारा यह नष्ट हो जायगा। योग्यतम व्यक्ति बिना किसी सकोच के उम्मीदवार बनकर खड़े हो सकेंगे,

क्योंकि इस अवस्था में उन्हें पार्टी-भक्त बनने की शपथ लेने की आवश्यकता नहीं पड़ेगी। उन्हें अपनी योग्यता के प्रभाव से एक कोटा के लायक मत तो अवश्य ही प्राप्त हो जायँगे। इस प्रकार प्रतिनिधि शासन-पद्धति पर लगाए जानेवाले दोषों में से एक बड़े दोष का निराकरण सहज में ही हो जायगा।

जब योग्यतम व्यक्ति किसी दल विशेष की सहायता लिये बिना ही प्रतिनिधि सभा में जा सकेंगे, तब बाधित होकर सब दलों को भी अपने में से योग्यतम व्यक्तियों को ही उम्मेदवार बनाना होगा। अर्थात् मि० हेअर की स्कीम द्वारा प्रतिनिधि सभाओं की योग्यता का दर्जा अब की अपेक्षा बहुत बढ़ जायगा। इस अवस्था में दलबन्दी के बहुत से दोष स्वयं ही दूर हो जायँगे।

प्रतिनिधि सभा में किसी एक विचार के लोगों का पूर्ण प्रभुत्व कर देना राष्ट्र के लिये अहितकर है। क्योंकि इसके द्वारा वह पूर्ण बहुमत स्वेच्छाचारी होकर, अपनी शक्ति के गर्व में, अल्पमत के हितों और विचारों का ध्यान नहीं रखता। इसका एकमात्र उपाय यही है कि प्रतिनिधि सभा में अनेक दल रहें। मिस्टर हेअर की स्कीम के द्वारा सभा में देश के संपूर्ण अल्पमत भी स्थान पा सकेंगे, अतः बहुमत की इस स्वेच्छाचारिता का भय नष्ट हो जायगा। साथ ही इस स्कीम द्वारा अनुचित और संकुचित प्रांतीयता के भाव भी कुछ अंश तक नष्ट हो जायँगे, क्योंकि निर्वाचित प्रतिनिधियों का किसी विशेष स्थान से गाढ़ संबंध नहीं रहेगा।

हम पहले ही कह चुके हैं कि यह स्कीम कुछ अधिक गुथीली है, अतः इसे व्यवहार में लाने पर निर्वाचन के व्यय अवश्य बढ़ जायँगे। परन्तु इसे दोष नहीं समझना चाहिये, क्योंकि दूसरी ओर इस स्कीम से एक और बड़ा लाभ होगा। आजकल पार्टीबंदी के कारण निर्वाचनों में सब दलों की ओर से बहुत अधिक अनुचित व्यय किया जाता है। धन को पानी की तरह बहाये बिना कोई दल सफलता प्राप्त नहीं कर सकता। मि० हेअर की स्कीम व्यवहार में लाने पर यह व्यय बहुत कम हो जायगा। यह 'निर्वाचन-क्षेत्र के पालन' (Nursing the Constituency) का व्यय कम हो जाना भी एक बड़ा लाभ है।

वर्तमान पद्धति के अनुसार एक निर्वाचन-क्षेत्र में से किसी एक व्यक्ति को ही प्रतिनिधि चुना जा सकता है। यह चुनाव का क्षेत्र बहुत संकुचित है। संभव है कि किसी निर्वाचन-क्षेत्र में कोई अपेक्षाकृत पर्याप्त योग्य व्यक्ति न हो और किसी में एक से अधिक अपेक्षाकृत योग्य व्यक्ति विद्यमान हों। प्रस्तावित पद्धति के अनुसार चुनाव का क्षेत्र बहुत विस्तृत हो जायगा।

इस प्रकार मि० हेअर की स्कीम तथा उसके गुण और दोषों का हमने यहाँ संक्षेप में निर्देश कर दिया है। इस स्कीम की वास्तविक परीक्षा तो तभी होगी, जब इसे व्यावहारिक रूप में परखा जायगा। तथापि इस बात में संदेह नहीं कि वर्तमान प्रतिनिधि-शासन की उपर्युक्त बड़ी कमज़ोरी को दूर करने के लिये राजनीतिज्ञों को इस स्कीम पर ख़ूब विचार करना चाहिये। अगले लेख में हम विस्तार के साथ मिस्टर हेअर की इस स्कीम की समीक्षा करेंगे।

चंद्रगुप्त, विद्यालंकार

रूप की धूप

आह! वह कैसा तेरा रूप!—
पंकज के रमणीय पुंज-सा,
नव-कलियों के कलित कुंज-सा,
इंद्र-धनुष-सा स्वेत शिखर-सा;
वह सौन्दर्य अनूप॥ आह०—
शांत सरोवर की शोभा-सा,
चपल चंचला की रेखा-सा,
त्रिवेणी-सा तरल ताल-सा;
सुंदर सुभग 'स्वरूप'॥ आह०—
उन्मादक यौवन सुर-स्वर-सी,
सुखदायक प्रिय कोमल-कर-सी,
छिटक रही है रवि-किरणों-सी;
रम्य रूप की धूप॥ आह०—

श्रीगिरीन्द्रनारायण सिंह

ग्राम-संगठन और शिक्षा-प्रचार
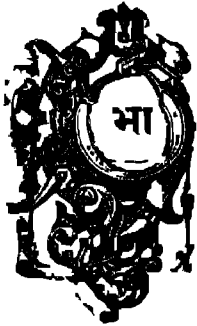
भारतवर्ष इस समय एक नवीन युग में प्रवेश कर रहा है और जितने भी आन्दोलन इस समय देश मे हो रहे हैं, वे सब अपना-अपना प्रभाव निश्चय ही इस युग पर बिना डाले हुए नहीं रह सकते। ऐसी अवस्था मे शिक्षित-समाज और उत्साही कार्य्य-कर्त्ताओं का सबसे बड़ा कर्त्तव्य यह है कि वे ऐसे ही उचित, उपयोगी तथा उच्च कार्यों को हाथ में ले, जो भविष्य मे भारत के लिये लाभदायक हों और उसे उन्नति और कल्याण के मार्ग पर लेजाने के योग्य हों।

लगभग ७२ प्रतिशत मनुष्य यहाँ ग्रामों में रहते हैं, अतएव जो सुधार—चाहे वह राजनैतिक हो अथवा सामाजिक— ग्रामीण के झोपड़े तक नहीं पहुँचता। वह भारतवर्ष के लिये एक प्रकार से व्यर्थ ही-सा है, क्योंकि उससे असीम जनता को कोई लाभ नहीं पहुंचता। साथ ही यह भी देखा जाता है कि यदि कोई उपदेश अथवा प्रचार ग्राम मे किया भी जाता है, तो उसका यथेष्ट प्रभाव लोगों पर नहीं पड़ता, जिसके कदाचित् दो कारण विशेष हैं। एक तो यह कि लोगों की बुद्धि इतनी मन्द है, कि वे गूढ़ भावों को न तो समझ ही सकते हैं और न उनपर स्वयं ही विचार कर सकते है, और दूसरे यह कि जिस परिष्कृत भाषा में हमारे उपदेशक और प्रचारक उन भावों को प्रकट करते हैं, वह एक साधारण ग्रामीण की पूर्णतया समझ में नहीं आती। परिणाम यह होता है कि वह सब शिक्षा व्यर्थ हो जाती है। उदाहरण के लिये सहयोग विभाग (Co-operative Department) के गिरदावर लोग, जो सहयोगी सिद्धान्तों का प्रचार करने के लिये देहात में जाते हैं, उन्हे इसी प्रकार की कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है, और उनके निरन्तर तोता-रटन्त कराने पर भी परिणाम अत्यन्त शोचनीय होता है।

अतः सबसे पहले इस बात की आवश्यकता है कि प्रत्येक ग्राम में, चाहे छोटा हो चाहे बड़ा, एक-एक ग्राम-पंचायत अथवा प्रेम-सभा अवश्य स्थापित की जाय जिसके उद्देश्य निम्न भाँति होने चाहिये:—

(१) ग्राम की सब जातियों अथवा व्यक्तियों में परस्पर प्रेम, सहनशीलता, सहयोगिता तथा सहकार्यता उत्पन्न करना।

(२) पारस्परिक झगड़ों को प्रेम सभा मे निपटा लेना।

(३) ग्राम की अन्य आर्थिक तथा सामाजिक क्षतियों को पूरा करना—जैसे शिक्षा, स्वच्छता, चिकित्सा और प्रकाश आदि का प्रबन्ध।

परन्तु सबसे प्रथम, शिक्षा और पारस्परिक प्रेम का प्रचार ही इन सभाओं और पंचायतों को आरम्भ करना चाहिये। अब प्रश्न यह है कि ये सभाएँ स्थापित और सचालित किस प्रकार हों। ग्रामीण स्वयं तो इस कार्य को कर नहीं सकते, उन्हे तो प्रेरक और कार्यकर्ताओं की आवश्यकता है। इसमे सन्देह भी नहीं है कि इस समय भारत को उन सच्चे त्यागी और उन्मत्त युवकों की आवश्यकता है, जो ग्रामीण-जीवन से कुछ प्रेम रखते और देशसेवा के लिये सब प्रकार से तैयार हैं। परन्तु यह शोक और दुर्भाग्य की बात है कि भारतीय नवयुवक इस कार्य के लिये स्वयंसेवक बनकर सेना मे नहीं आ सकते। इसलिये अब एक उपाय, जिसे कई विद्वानों ने भी स्वीकार किया है, वह यह है कि प्रत्येक विश्वविद्यालय और इन्टरमीजियेट कालेज — कम-से-कम वे कालेज, जिनमें अर्थशास्त्र और समाज-विज्ञान पढ़ाया जाता है—एक ऐसी अध्ययन-टोली बना लेवें, जिसमें कम-से-कम एक शिक्षक और कम-से-कम दस विद्यार्थी हों। और यह टोलियाँ समय-समय पर, और विशेष कर छुट्टियों में, शिक्षा-प्रचार तथा सभास्थापन का कार्य देहातों में किया करें। इसके लिये एफ़० ए० के प्रथम वर्ष में (First year Economics) और बी० ए० के प्रथम वर्ष (First year B. A. Economics) के विद्यार्थियों के लिये अर्थशास्त्र विषय मे २० नम्बर प्रति-सैकड़ा इस कार्य के लिये रखे जावें। वास्तव मे तो अर्थशास्त्र के शिक्षकों को इस कार्य के लिये अग्रसर होना चाहिये और उन्हे इस ओर विशेष ध्यान देना चाहिये कि उनके विद्यार्थी ग्राम-संगठन और शिक्षा प्रचार के कार्य तथा ग्रामीण-जीवन के प्रत्येक अङ्ग के अध्ययन में एक स्वाभाविक आनन्द प्राप्त करते हैं, और स्वयं उत्साही होकर इस क्षेत्र मे आगे बढ़ते हैं।

मेरा तो यह दृढ़ विश्वास है कि, जबतक भारत में शिक्षित नागरिक समाज का सम्पर्क तथा सम्बन्ध अशिक्षित ग्रामीण जनता से आधिक्य के साथ न होगा तबतक किसी प्रकार की उन्नति की आशा देश में न करनी चाहिये।

श्रीयुत एस० वी० राममूर्ति, आई० सी० एस०, की जो आयोजना 'हिन्दुस्तान रिव्यू' में निकली है, वह सराहनीय है। आपका विचार भी यही है कि देश में प्रत्येक विश्वविद्यालय ऐसा नियम बनाले कि बी० ए० और एम० ए० की डिग्री उसी समय दी जाय, जब कि विद्यार्थी ने कम-से-कम ६ मास देहातों में घूमकर किसी क्षेत्र में प्रचार का कार्य किया हो। यद्यपि मैं इस प्रस्ताव से सर्वथा असहमत नहीं हूँ, फिर भी मुझे ऐसा ज्ञात पड़ता है कि विश्वविद्यालयों को प्रत्येक विभाग के लिये ऐसे नियम बनाना अभी कठिन, और कुछ समय तक असंभव ही होगा। अतः मेरी तुच्छ बुद्धि के अनुसार अर्थशास्त्र तथा राजनीति विभागों (Departments of Economics & politics) में ऐसे नियम सहज ही में बनाए और पालन किये जा सकते हैं। विशेषकर अर्थशास्त्र विभाग में तो इस प्रकार के विचारों का आविर्भाव हो भी चुका है, और हर्ष की बात है कि लखनऊ विश्वविद्यालय के अर्थशास्त्र विभाग में लगभग तीन वर्ष से कुछ कार्य इस संबंध में हो भी चुका है। वहाँ एम० ए० की परीक्षा में एक प्रश्नपत्र के स्थान में एक 'विशाल लेख' ग्राम-संबंधी किसी भी आर्थिक अथवा सामाजिक विषय पर लिखने की आज्ञा दे दी गई है। यद्यपि यह अभी अनिवार्य नहीं है, फिर भी आशा की जाती थी कि, विद्यार्थी स्वयं इसको पसन्द करेंगे। परन्तु, मुझे खेद है कि, इस वर्ष कदाचित् एक भी विद्यार्थी ने एम० ए० की परीक्षा में इस कार्य को नहीं किया, और एक भी विद्यार्थी को देहातों में घूमने, प्रचार तथा अध्ययन करने का कुछ भी अवसर प्राप्त न हुआ। इस शिथिलता का एक विशेष कारण, जो मुझे अपने मित्रों तथा स्वयं श्रीयुत डाक्टर राधाकमल मुकर्जी से, जोकि लखनऊ विश्वविद्यालय में अर्थशास्त्र विभाग के अध्यक्ष हैं, ज्ञात हुआ है, केवल देहात में घूमने और जाने तथा रहने की कठिनाई ने नवयुवकों को हतोत्साह कर दिया है, जो वास्तव में उनके लिये और भारत के लिये लज्जा की बात है।

अमेरिका के प्रोफ़ेसर रास और लखनऊ विश्वविद्यालय के राजनीति के अध्यापक डाक्टर राम का कथन है कि अमेरिका और इँगलैंड में विश्वविद्यालय के बी० ए० तथा एम० ए० के विद्यार्थियों का ग्राम-पर्यटन एक मुख्य मनोरंजन तथा शिक्षा-प्रचार का विशेष साधन है। प्रोफ़ेसर राम के कथनानुसार विश्वविद्यालय के युवक छुट्टियों में टोलियाँ बनाकर देहातों में मुफ्त पुस्तकें बाँटने, मैजिक लालटेन द्वारा उपदेश देने तथा अभिनय द्वारा शिक्षा देने के निमित्त निरन्तर घूमा करते हैं। वहाँ के ज़मींदार लोग तथा अन्य सज्जन उन्हें आश्रय देकर सब प्रकार से उनका यथोचित सत्कार करते हैं, और उनके लिये आवश्यक प्रबंध भी कर देते हैं। मेरा विचार है, और जो लोग ग्रामवासी हैं अथवा ग्रामीण सभ्यता का अनुभव रखते हैं, कदाचित् मुझसे सहमत होंगे, कि इस सहानुभूति अथवा सहायता की भारतीय ग्रामों में भी कमी नहीं है। पर, हाँ, यह बात अवश्य है कि सरल और अशिक्षित ग्रामीण नागरिक सभ्यता तथा नवशिक्षित युवकों की आधुनिक अनन्त आवश्यकताओं को न तो भलीभाँति जानते ही हैं और न उन्हें वहाँ पूरा ही कर सकते हैं। उदाहरण के लिये बहुत से फ़ैशनेबल नवयुवक आजकल गर्मियों में बिना बर्फ़ के पानी ही नहीं पी सकते, और नगरों में कुछ हद तक आवश्यक भी है, पर ग्राम में, जहाँ कुएँ का ठंडा पानी पीने को मिलता है, वहाँ भी उनको कुछ तो आदत के कारण और कुछ शान के कारण, बर्फ़ की आवश्यकता होती है। विवाहों में यह बात विशेष रूप से दिखाई पड़ती है। उसी प्रकार नाश्ते के लिये यदि उन्हें नगर की उत्तमोत्तम वस्तुएँ न मिलें तो उन्हें बड़ा खेद और क्रोध होता है। राब तो दूर रही यदि वहाँ की देशी खाँड़ का भी शरबत मिले तो भी उन्हें नहीं भाता। दूध तो कदाचित् बहुत ही कम नवयुवक प्रातःकाल पीना पसंद करते हैं। तरकारियाँ भी वहाँ कभी-कभी नहीं मिलतीं, और मिलती भी हैं तो उनके रुचि की नहीं; साथ ही दोपहर में ठहरने के लिये ठंडे कमरे भी पंखे लगे हुए नहीं मिलते। रास्ते भी बरसात में बिलकुल ख़राब हो जाते हैं, अतएव आने-जाने में भी कष्ट होता है। इन्हीं कठिनाइयों के कारण हमारे शिक्षित नवयुवक देहातों में जाना, रहना और घूमना बिलकुल पसंद नहीं करते,

और वास्तव में यही हमारे अधःपतन का एक मुख्य कारण है, और इसी कारण से शिक्षित और अशिक्षित समाज में जो अंतर बढ़ता जा रहा है, वह देश की भावी उन्नति के लिये अत्यंत हानिकारक है।

अतएव अब आवश्यकता इस बात की है कि, विश्वविद्यालय के शिक्षित नवयुवक अपने आपको इस योग्य बनावें कि वे प्रत्येक प्रतिकूल अवस्था को भी अपने अनुकूल करलें, इसके लिये उन्हें बहुत सादा जीवन व्यतीत करना चाहिये, और कठिनाइयों पर विजय प्राप्त करने के लिये कठिनाइयों को ईश्वर का प्रसाद समझकर निमन्त्रित करना चाहिये। कठिनाइयों का जन्म संसार में मनुष्य की दैवी परीक्षा के लिये हुआ है, यदि जीवन में कठिनाइयाँ न पड़ें तो विजय का कोई महत्व नहीं रह जाता, सफलता में कोई आनंद नहीं हो सकता।

अंत में मुझे अपने सहयोगी शिक्षकों से यह प्रार्थना करनी है कि इस सबका भार उनके ही ऊपर है, और कम-से-कम एफ़० ए० और बी० ए० के प्रथम वर्ष में तो विद्यार्थी सर्वथा उन्हीं के हाथ में होते हैं, और यदि बोर्ड तथा विश्वविद्यालय इस संबंध में थोड़ा भी अधिकार उन्हें और दे दें, जैसा कि मैंने ऊपर लिखा है, कि १०० में से ५० नम्बर इस कार्य के लिये अवश्य रखे जावें और कम-से-कम कार्यक्रम भी निश्चित कर दिया जावे, जो इस भाँति हो सकता है—

१ जैसा कि बोर्ड ने निश्चित किया है, एफ़० ए० के विद्यार्थियों के लिये किसी एक किसान की गृहस्थी का साधारण आय-व्यय का ब्योरा बनाना आवश्यक हो, और उसके संबंध में एक साधारण लेख जो २० पृष्ठ से अधिक न हो।

२ बी० ए० के लिये एक ग्रामीण शिल्पकार का भी आय-व्यय का ब्योरा तथा टोला कुटुंबों की आर्थिक तथा सामाजिक स्थिति पर कम-से-कम ५० पृष्ठ का एक लेख भी आवश्यक कर दिया जावे।

३. यह उचित होगा कि यह सब कार्य शिक्षक लोग प्रथम वर्ष में ही समाप्त करा लें, और इसको प्रथम वर्ष की वार्षिक परीक्षा में शामिल करके दूसरे वर्ष में आने के लिये आवश्यक समझ लें, और विद्यार्थियों को भी समझा दें। ५० नम्बर का एक पर्चा हो और ५० का यह सब कार्य हो, यही कार्य दूसरे वर्ष बोर्ड के पास और विश्वविद्यालय में भी परीक्षक के पास भेज दिया जावे।

४ इस समय बोर्ड ने एफ़० ए० में अर्थशास्त्र के विषय में ३० नम्बर इस असली कार्य्य के लिये रखे हैं, और ७० दो पर्चों के लिये रखे हैं।

इस संबंध में इतना परिवर्तन और होना चाहिये कि, जो विद्यार्थी गर्मी की छुट्टियों में प्रचार और संगठन का कार्य्य करें उनकी कार्य्यवाही की रिपोर्ट शिक्षक के द्वारा उसकी टिप्पणी और समालोचना के साथ परीक्षकों के पास भेज दी जावे। ऐसे विद्यार्थियों के लिये ७० नम्बरों में से २० और पृथक् कर लिये जावें और उनमें से उन्हें नम्बर दिये जावें; उनके दोनों पर्चे २५, २५ नम्बरों में ही देखे जावें, इस प्रकार उन्हें इस कार्य में ध्यान भी देना पड़ेगा और रुचि भी होगी।

५ साथ ही सबसे बड़ी आवश्यकता इस कार्य के लिये आर्थिक सहायता की है, क्योंकि बहुत से विद्यार्थी वास्तव में इतना व्यय नहीं कर सकते, इसके लिये यदि बोर्ड और गवर्नमेंट दोनों मिलकर कुछ सहायता दें, और प्राइवेट कालेजों में, कालेज भी कुछ भार अपने ऊपर लेवें, तो बहुत कुछ सफलता की आशा हो सकती है। अतएव एक ग्राम-संगठन फ़ंड की भी आवश्यकता है।

६ एक प्रचारक टोली में १५ मनुष्यों से अधिक न होने चाहिये। और यदि प्रत्येक के साथ एक एक शिक्षक भी हो, तो बहुत ही अच्छा हो। और प्रत्येक टोली को कम-से-कम १५ दिन अवश्य घूमना चाहिये। पहाड़ी ग्रामों में घूमने के लिये टोली को स्वयं भी कुछ धन एकत्रित करना चाहिये और अपना एक निजी फ़ंड भी रखना चाहिये।

मुझे पूर्ण आशा है कि यदि इस प्रकार टोलियाँ बना कर प्रत्येक कालेज और विश्वविद्यालय में यदि ग्राम-संगठन और शिक्षा-प्रचार का कार्य आरंभ किया जावे तो शीघ्र ही बहुत कुछ लाभ देश को पहुँचाया जा सकता है।

मुझे यह भी आशा है कि विचारवान सज्जन इस पर ध्यान देंगे और विशेषकर शिक्षक लोग, जिनका यह मुख्य कर्तव्य है, इस कार्य्य को तुरत हाथ में लेंगे।

कृष्णसहाय अष्ठाना

क्रान्ति की लहर

न्तियें अपने बाद जन-साधारण के हृदयों पर एक अमर रेखा छोड़ जाती हैं। देश के वर्तमान इतिहास में असहयोग की क्रान्ति एक विशेष स्थान रखती है। व्यावहारिक रूप से वह सफल नहीं हुई, परन्तु सार्वजनिक-जागरण के रूप में वह अपनी चिरस्थायी स्मृति छोड़ गयी है। इस जागरण के कई अङ्ग हैं, जिनमें एक हिन्दुओं की वर्तमान सामाजिक अव्यवस्था का संशोधन भी है। अस्पृश्यता मानवता का कलङ्क और स्वतन्त्रता की घातक होने के कारण इस महाक्रान्ति के आचार्य को सर्व प्रथम खटकी, और उसने, इसीलिये, इसके संहार के कार्यक्रम को देशोद्धार की शर्तों में आवश्यक स्थान दिया। उसने स्पष्ट घोषणा कर दी कि बिना इस कालिमा को धोये भारतवासी स्वतन्त्रता जैसे पुनीत प्रसाद के अधिकारी नहीं हो सकते। बात बिलकुल समयोचित और सत्य थी, देश के प्रत्येक समुदाय ने इसका हृदय से स्वागत और समर्थन किया। अछूतोद्धार का श्रीगणेश हुआ, और चारों ओर से लोग अपने दलित भाइयों के त्राण के लिये कटिबद्ध होगये। इस सार्वदेशिक मनोभाव के पूर्व भी देश में अछूतोद्धार की भावना थी। हमने उसे आर्यसमाज के मंच से अनेकों बार सुना। उस पर अमल भी किया। लेकिन यह स्पष्ट है कि, उस समय में जहाँ यह भावना एकदेशीय अथवा एक संस्था विशेष की अनुभूति थी, वहाँ महात्मा गान्धी के असहयोग आन्दोलन ने इसको भारत-व्यापी रूप दिया। आर्यसमाज के प्रचारक तो लोगों से अछूतों के सुधार-साहाय्य की अपील मात्र ही किया करते थे, महात्मा ने तो ठोंक कर कह दिया कि, यदि उद्धार चाहते हो, तो दूसरी शर्तों के साथ इस अस्पृश्यता-निवारण की शर्त को भी पूरा करो।

कहने की आवश्यकता नहीं कि असहयोग-क्रान्ति के आचार्य की सूझ एकदम व्यावहारिक थी। किसी की हिम्मत न पड़ी कि, उसके अन्य कुछ आदेश-आदर्शों की भाँति, वह इसका विरोध करता; अपितु, इसके विपरीत, हिन्दुओं के धुरन्धर धर्माचार्यों तक ने इसके औचित्य को माना। पर, इधर कुछ काल से, इस अस्पृश्यता-निवारण के आन्दोलन ने एक नया ही रूप धारण किया है। उसका तीव्र गति से विकास हुआ है, और उसके वर्तमानकालीन कतिपय अगुओं ने अब जो रूप उसे दिया है, वह उन आदर्शों से बिलकुल विभिन्न है, जिनके आधार पर असहयोग-कालीन जागृत राष्ट्र ने उसे देशोद्धार की कसौटी के रूप में स्वीकार किया था। उस काल के नेता की दूर-दृष्टि में राष्ट्र-सङ्गठन और देशोद्धार के लिये 'अस्पृश्यता-निवारण' मात्र ही इतना बहुमूल्य जँचा था कि, उसने इसे स्वराज-साधना का एक मुख्य अङ्ग कहकर पुकारा। ऐसे महदुद्देश्य की सिद्धि के लिये केवल छोटी-सी माँग—छुआछूत के भूत को भगा देने की भावना—थी। लेकिन, आज के अछूतोद्धारकगण हिन्दुओं से कहते हैं कि, अजी कहाँ की छुआछूत दूर करने की बात कर रहे हो, अगर अस्तित्व क़ायम रखना चाहते हो तो समाज में अछूतों के साथ रोटी-बेटी का सम्बन्ध तुरन्त जारी करदो। वे कहते हैं कि, अछूतों पर इन हिन्दुओं ने सदियों से ज़ुल्म ढा रक्खा है; और, क्योंकि, यह ज़ुल्म ढाने की वृत्ति हिन्दू बच्चे-बच्चे के ख़ून और रेशे में समाई हुई है, इसलिये जबतक हिन्दुओं की वर्तमान सामाजिक-संस्था—वर्ण-व्यवस्था—का आमूल संहार न हो जायगा इन अछूतों के साथ न्याय होने की आशा नहीं। वे पुकार-पुकार कर कह रहे हैं कि, इस वर्ण-व्यवस्था का नाश करदो, जात-पाँत के जहाज़ को डुबादो, और यह जो, कुछ विशेष जातियों को जन्ममूलक अधिकार प्राप्त है, उनको छीन लो। यह वर्ण-व्यवस्था तो कुछ स्वार्थियों ने रची है, जिन्होंने अधिकार-लोलुपता के वश यह ऊँच-नीच का भेदभाव बना रक्खा है। वे यह भी कहते हैं कि, इस सबकी जड़ ब्राह्मण है, इसलिये इनको पहले समझो। अस्तु।

पहलेपहल आर्यसमाज के अछूतोद्धार का युग था, जिसमें विशृंखलित हिन्दुओं को उनके समाज-शरीर का पूर्ण ज्ञान कराया गया। उनसे कहा गया कि यदि पैरों को न सँभाला, तो किसी दिन सारा रुण्डमुण्ड गिरकर बिखर जायगा। उसके बाद असहयोग के अस्पृश्यता-निवारण (Removal of untouchability) ने देश को कौने-कौने में अपना दर्शन कराया। फिर हिन्दू-सङ्गठन के अछूतोद्धार की ध्वनि सुनाई पड़ी।

आवाज़ें आईं कि, जबतक संगठन न होगा, यह मुसलमान पीस डालेंगे। और अछूतोद्धार इस सङ्गठन का एक मुख्य अङ्ग समझा गया। लेकिन अब छनते-छनाते इस अस्पृश्यता-निवारण और अछूतोद्धार का जो रूप बनाया जारहा है, वह ऊपर लिखा जा चुका है।

'कतिपय' शब्द हमने जान बूझ कर लिखा है। देश में अब भी अछूतोद्धार के सम्बन्ध में वही सहानुभूति है, लेकिन, उसके इस वर्तमान परिवर्तित और परिवर्द्धित रूप का समर्थन करनेवाले अँगुलियों पर ही गिने जा सकते हैं। इनमें से एक मुख्य अछूत-नेता श्री अछूतानन्द या शूद्रानन्द नाम के एक सज्जन है, जो आजकल अछूत कहे जाने वाले हिंदुओं मे खूब उलटी गङ्गा बहा रहे हैं। ऐसे ही विचारों के लोगों की संस्था है, लाहौर का जात-पाँत तोड़क मण्डल। जिसके प्रधान हैं, स्वनामधन्य भाई परमानन्द जी और मन्त्री श्री सन्तरामजी। सन्तरामजी हिन्दी के पुराने ख्यातिनामा लेखक हैं, इसलिये उन्हे अपने उद्देश के प्रचारार्थ अच्छे साधन प्राप्त हैं। माधुरी, सरस्वती, सुधा में वे वर्णव्यवस्था के विरुद्ध लिख चुके हैं। माधुरी में तो उनके साथ एक जन्मना ब्राह्मण सज्जन का इस विषय पर विवाद ही छिड़ा हुआ है। इसमें सन्देह नहीं कि श्रीयुत सन्तरामजी साध के बड़े सच्चे हैं। अपने पक्ष-समर्थन में कदाचित किसीके भावों को आघात भी पहुँचता हो, तो, वे उसको परवा नहीं करते। यह बात उनके प० रामसेवक त्रिपाठीजी के लेख के उत्तर में विज्ञ पाठकों ने अनुभव की होगी।

परन्तु, सितम्बर मास की सरस्वती में अपनी 'क्रान्ति की लहर' में उन्होंने जिन शब्दों में अपने मनोभावों का परिचय दिया है, वे कभी भी आदरणीय नहीं हो सकते। बल्कि, मैं तो, उनकी लगन के लिये उनकी प्रशंसा करता हुआ, यह कहूँगा कि उन्होंने शेष १६ करोड़ हिन्दुओं पर गहरा लाञ्छन लगाते हुए २२ करोड़के महा राष्ट्र के अन्दर विष की विषम-वेलि बोने का सूत्रपात किया है। महाशय सन्तरामजी विद्वान् है, वयोवृद्ध है; यदि वे चाहते, तो भाव-भाषा में शिष्टता का सीमोल्लंघन किये बिना ही अपने मण्डल के उद्देशों की पूर्त्यर्थ लिख सकते थे। लेकिन उल्लिखित 'क्रान्ति की लहर' में उन्होंने जिस विद्रोही का जामा पहना है, वह हमारी समझ में वह है, जो क्रान्ति की विभीषिका उत्पन्न करने के स्थान में उसके उद्देश को ही ले डूबेगा। सन्तरामजी की इस बात से कोई भी हिन्दू सहमत होगा कि हिन्दू-मनोभाव दूषित होगया है। इतना दूषित कि पाखाना खाने वाला कुत्ता उनके सारे घर में घूम ही नहीं सकता, उनके पलँग पर सो सकता है, गोभक्षी मुसलमान भी उनके कुँओं से पानी भरते है, ईसाई होजाने पर एक भङ्गी से भी बेरोक-टोक वे मिलते है, पर अपने एक अछूत भाई को छूने में वे झिझकते हैं। कौन नही मानता कि इस घातक मनोभाव ने हमें काफ़ी से ज्यादा ज़लील किया। कौन नहीं स्वीकार करता कि हिन्दू की इस दुर्बुद्धि ने उसे आज का दुर्दिन दिखाया। लेकिन महाशयजी, यह तो बताइये कि, "हिन्दुओं के इस नीच मनोभाव को, उनको इस जाति-देश-नाशिनी स्वार्थबुद्धि को सुधारने का बहुतेरा यत्न" कब और किसने किया, जिसके निरन्तर करते रहते भी "कुत्ते की पूँछ के सदृश वह वैसा की वैसी ही बनी रही"? इस मनोभाव के सुधारने के लिए कौनसी योजना असफल हुई, जिसे देखकर आप आज हिन्दुओं के सुधार को "असम्भव" कह रहे हैं? देश के सामाजिक और राजनीतिक आंदोलनों का एक विद्यार्थी जानता है कि, आर्यसमाज से पूर्व कोई हिंदू अपनी इस भूल को अनुभव नहीं करता था। अलबत्ता बंगाल मे राजा राममोहनराय और बा० केशवचन्द्र सेन के ब्रह्मवादी सामाजिक-आंदोलन की सृष्टि आर्यसमाज से पूर्व हो चुकी थी। 'साहब' बंगालियों के इस ब्रह्मवाद पर किस भावना की छाप थी, उसे आज बड़े-बड़े बंगाली स्वीकार करते है। अँगरेज़ियत की जिस गहरी छाया ने इसे आच्छादित किया था, वह आज भी स्पष्ट दीख पड़ती है, और यही कारण है कि, धर्मभीरु भावुक हिंदू अधिक काल तक उसके चौंध में ठहर न सके। खैर। मध्य और उत्तरी भारत में सबसे पहले अछूतोद्धार का होश हिंदुओं को दिलाने का श्रेय आर्यसमाज को है, जिसके लिये हिंदू आज भी उसके उपकार को मानते हैं। आर्यसमाज के इस प्रचार का अभूतपूर्व प्रभाव हिंदू-समाज पर पड़ा—हिंदुओं को अपनी पुरानी गलती महसूस हुई, और उन्होंने अपने इन दलित भाइयों के उद्धारार्थ आयोजन किया। छूआछूत का ज़ोर घटा, ऊँचनीच का भाव कम हुआ, अछूतों को अपना भाई ख़याल किया जाने लगा। उसके उपरांत ही असहयोग के जनरल की आज्ञा ने उसको चार चाँद लगा दिये।

जो कमी आर्यसमाज से पूरी होने को रह गई थी, उसे असहयोग की पाँच शर्तों में से एक, अस्पृश्यता-निवारण, ने पूरा किया। अगर हिंदू-हृदय निष्ठुर होता तो कभी इतना न लचता। जो हृदय नादिरशाही और औरंगज़ेबी को भुला दे सकता है, डायर की करतूत पर खाक डाल सकता है, वह अपने अगभूत भाइयों के लिये इतना नीच और 'निष्ठुर' हो गया!

लेकिन श्रीयुत संतरामजी की दृष्टि में इतना किया-धरा कुछ मूल्य नहीं रखता। वे एक न्यारे ही "नवीन भाव की जागृति" की सूचना करते हैं। प्रतीत होता है, हिंदू-संगठन और देशोद्धार से और उनके आंदोलन से कुछ सरोकार नहीं। उनके जाने हिंदू भाड़ में पड़े और देश रसातल को जाय, वे अपनी लहर का दरिया अवश्य बहायँगे। अपने इस लेख में उन्होंने अछूतों की ओर से जिन शब्दों में अपील की है, उससे हमारे विचार की पुष्टि होती है। फिर, वे तो अछूत भाइयों के उस दल के पैरोकार हैं, जो आज अपने को हिंदुओं से अलग कर लेने की कोशिश में है। माधुरी के पाठकों को ज्ञात होगा कि, इधर कुछ दिनों से, अछूतों में एक नया आंदोलन उठाया गया है, जिसके संचालक श्री० अछूतानन्द आदि कुछ ऐसे ही लोग हैं। वे अपने को हिंदू न कहकर आदि-हिंदू (Aborigines) कहते हैं, और हिंदुओं को अंतिम नमस्कार करके एक अलग जाति क़ायम करना चाहते हैं। इसी आंदोलन को संतरामजी ने 'क्रांति की लहर' के नाम से पुकारा है। इन 'क्रांति-कारियों' का उद्देश उन्हींके मुख और संतरामजी की लेखनी द्वारा सुनिए —

"हम भारत के आदिम निवासी हैं। हम आदिधर्मी हैं। हम हिंदू नहीं हैं। आर्य लोगों ने ईरान और मध्य एशिया से आकर हमारा राज्य छीन लिया, हमें दास और शूद्र बना दिया। हम हिंदुओं से उतने ही दूर हैं जितना कि हिंदू मुसलमानों से दूर हैं। हिंदू लोग मनुष्य-गणना में हमारी सात करोड़ संख्या को लिखवा कर हमारे राजनैतिक अधिकार भी आप हड़प कर रहे हैं। हम भी मुसलमानों और सिक्खों की तरह सरकार से अलग अधिकार लेंगे। ..जब हम हिंदू ही नहीं तब ब्राह्मण और क्षत्रिय हमारी संख्या का लाभ क्यों उठावें.. . हमारे पेट में भी कुछ पड़ना चाहिए। हिंदुओं के पास है ही क्या जो वे हमें देंगे। हम अँगरेज़ी सरकार से प्रार्थना करेंगे कि, हमारे साथ न्याय किया जाय, हमें भी रोटी का टुकड़ा खाने को दिया जाय। हिंदुओं के पास जब कुछ था तब तो उन्होंने हमें कुछ दिया नहीं। अब बूढ़ी बिल्ली की तरह, जिसमें चूहे पकड़ने की शक्ति नहीं रही, हमें चापलूसी की मीठी-मीठी बातें सुनाकर अपने कपट-जाल में फँसाना चाहते हैं। हम भी सरकार की वैसी ही प्रजा हैं जैसे कि हिंदू हैं। अब हिन्दुओं का राज्य नहीं कि, हमारे कान में पिघला हुआ सीसा भर दिया जायगा, या हमारी जीभ काट डाली जायगी। हिन्दुओं का सारा इतिहास शूद्रों पर अकथनीय अत्याचार का इतिहास है। जो श्रीरामचन्द्र आज ईश्वर के अवतार माने जाते हैं उन्होंने एक शूद्र की गर्दन इसलिए काट डाली कि वह तपस्या कर रहा था। वामदेव, रविदास, कबीर और पम्पादि हमारी जाति के महात्माओं को दुःख देने में हिन्दुओं ने कौनसी कसर उठा रक्खी। इन विजेता आर्यों ने हमारी आदिम जाति को कुचलकर पशुओं से भी बत्तर दशा में फेंक दिया है। शुद्धि का ढोंग रचकर ये हमारी जाति में फूट डाल रहे हैं। जो भाई इनके फंदे में फँसकर शुद्ध होजाते हैं वे अपने आदि-वंश को नीच समझने लगते हैं। परन्तु क्या किसी ब्राह्मण या क्षत्रिय ने अपनी लड़की भी किसी शुद्ध हुए अछूत को दी? इसीसे हिन्दुओं के कपट-जाल का पता लग सकता है। यदि हम हिन्दू होते तो आर्यसमाज हमारी शुद्धि न करता, वरन् दूसरे हिन्दुओं की तरह हमें भी वैसेही अपना सभासद् बना लेता। इसलिये भाइयो, इन हिन्दुओं से दूर भागो। ये मतलब के यार हैं, मुसलमानों के जूते से डरते हैं। तुम आदिम-निवासी हो। रायल कमीशन आने-वाला है। सरकार से सात करोड़ के लिये अलग अधि-कार लेने का यत्न करो।"

यह ज़हर फैलाया जा रहा है, उन सीधे-सादे, ग़रीब, अछूतों में, जिनके उद्धार का बीड़ा हिन्दुओं ने उठाया है। यह बात अनेक सार्वजनिक मंचों पर से कही जा चुकी है कि, हिन्दुओं के साथ एक नयी चाल खेली जा रही है। हिन्दू अबतक अपने अछूत भाइयों की ओर से भूल में थे। अब यारलोगों ने देखा कि, यह तो ७ करोड़ के जत्थे को मज़बूत कर बलशाली हुआ चाहते

हैं, तो अपना एक मुहरा फेंक दिया। कुछ लोग तैयार किये गये हैं, जो इन अछूतों को हिन्दुओं के विरुद्ध जो-जो पट्टी पढ़ा रहे हैं, वह ऊपर के उद्धरण में आ चुका है। मुसलमान भला ऐसे अवसर से क्यों लाभ न उठाते, वे किस-किस तरह इस विष-वृक्ष का सिंचन कर रहे हैं, जिसका सन्तराम महाशय को गर्व है, यह अगले उद्धरण में पढ़िये। ऐसी दशा में कोई भी विचारशील हिन्दू इस आन्दोलन का समर्थन करेगा? और फिर यह जान-मानकर कि, इस विग्रहकारी आयोजन की जड़ में हिन्दू-विरोधी मुसलमानों और भेद-नीति-निष्णात नौकरशाही का हाथ काम कर रहा है! लेकिन नहीं, श्रीयुत सन्तराम महाशय के जोशो-मुहब्बत का दरिया बाढ़ पर है; वे आवेशपूर्ण विद्रोही के रूप में खड़े हैं। उनका हिन्दू-विद्रोह देखिये —

"दलित भाइयों के विचारों में जो क्रान्ति उत्पन्न हुई है उसे हिन्दू लोग दबाने की चेष्टा करेंगे। कहा जाता है कि उनमें ये हिन्दू-द्रोही विचार मुसलमानों के उत्पन्न किये हुए हैं, मुसलमान और सरकार उनको हिन्दुओं से अलग करना चाहती हैं, । परन्तु हम कहते हैं, ये विचार किसी ने भी उनको दिये हों, विचारणीय बात यह है कि क्या उनकी इस माँग में सचाई नहीं, क्या हिन्दू उन पर चिरकाल से अत्याचार नहीं करते आ रहे हैं। यदि उनकी शिकायत में सत्य का कुछ अंश है तो फिर इसको दबाने का उपाय वह नहीं जो हिन्दू करना चाहते हैं।" इस आन्दोलन के 'जोशीले' प्रचारक श्री० शूद्रानन्द की सफ़ाई में वे कहते हैं - "ऋषि दयानंद को स्वार्थी लोगों ने क्या गुप्त ईसाई और अँगरेज़ों का प्रचारक तक नहीं कहा था? परन्तु उनके कहने से क्या सचाई नष्ट हो गई। हमारे पास इस बात के प्रमाण हैं कि श्री० शूद्रानंद मुसलमान नहीं। वे जन्म के जटिया चमार हैं। हाँ, क्योंकि मुसलमानों का और उनका उद्देश—अछूतों को हिन्दुओं से अलग करना—एक ही है, इसलिये वे अहमदियों और ख़्वाजा हसन निज़ामी से भी सहायता लेलेने में संकोच नहीं करते। अहमदी लोग उनको हिन्दुओं के विरुद्ध प्रमाण ढूँढ़ कर देते हैं और कदाचित् रुपये से भी सहायता करते हैं। प्रेम और युद्ध में कोई भी बात अनुचित नहीं समझी जाती। हिन्दुओं को नीचा दिखाने के लिये वे क्यों न मुसलमानों से सहायता लें। क्या कालूराम और अखिलानन्द ख़्वाजा हसन-निज़ामी से सहायता लेते नहीं पकड़े गये? फिर इन गरीब अछूत भाइयों का ही अपने लिये अलग अधिकार माँगना देश द्रोह है! जिस धर्म में हिन्दू-सङ्गठन के विधायक पण्डित मदनमोहन मालवीय जैसे नेता अपने एक सम्बन्धी को केवल इसीलिये समाज से बहिष्कृत कर देते हैं कि उसने अपनी पुत्री का विवाह मालवीय-बिरादरी से बाहर कर दिया था, उस धर्म और उसके नेताओं से अछूतों को अपने कल्याण की आशा करना महा मूर्खता नहीं तो और क्या है।"

इन उद्धरणों से सन्तरामजी के उद्देश की सत्यता स्पष्ट हो जाती है, और हमारा अनुमान पुष्ट होता है कि, जात-पाँत तोड़क मण्डल और उसके मन्त्री महाशय सन्तरामजी का अस्तित्व भी इसी आन्दोलन के लिये है। अच्छा हुआ, हिन्दू समाज के सामने उन्होंने अपनी स्थिति को इस प्रकार प्रकट कर दिया। अब तक हिन्दू इन 'आदि-हिन्दू' भाइयों के आन्दोलन में सरकार और मुसलमानों का हाथ समझ कर उसे उपेक्षा की दृष्टि से देखते थे, लेकिन अब उन्हें समझ रखना चाहिये कि, भाई परमानन्द सरीखे देशभक्त और महाशय सन्तरामजी जैसे समाज-सुधारकों का हाथ भी उसमें है। भाईजी का नाम हम न लेते। लेकिन अभी हाल ही में उन्होंने हिंदू सभा से नाता तोड़ जिस हिंदू साम्यवाद मण्डल की स्थापना की सूचना प्रकाशित की है, उसका मुख्य उद्देश जात-पाँत की जड़ को खोदना है। उनके हिन्दू सङ्गठन की भी पहली सीढ़ी जात-पाँत का संहार है। लेकिन श्री सन्तरामजी तो एकदम खड्गहस्त-द्रोही बन कर हिन्दुओं से कहते हैं कि, या तो आज ही अछूतों के साथ रोटी-बेटी का व्यवहार खोल दो अन्यथा मुसलमानों की पल्टन और सरकार की तोपें लेकर हम तुम्हारा विध्वंस कर डालेंगे!! वे इस 'युद्ध' में ख़्वाजा हसन निज़ामी तक से सहायता लेना धर्मविहित ठहराते हैं!!! उनके जोश का जज़्बा सीमोल्लंघन कर गया दीखता है। एक महाशय ने कहीं सन्तरामजी से कह दिया कि "चाहे जो कुछ हो जाय, क्षत्रिय-ब्राह्मणों की लड़कियाँ तो चमारों के यहाँ ब्याही जाने से रहीं।" इस महा अपराध के कारण यह सज्जन उन्हें साक्षात् कुम्भकर्ण के बड़े भाई प्रतीत होने लगे! इसपर संतरामजी आप

देते हैं—"ईश्वर से डरो। संसार में आजतक किसी का अहंकार टिका नहीं रह सका। तुम क्या चीज़ हो, हिरण्यकशिपु और रावण से अहंकारी मिट्टी में मिल गये।" परमात्मा करे, इस बुढ़ौती में संतरामजी की दिलदारी और जोश दिन-दिन बढ़े! लेकिन देवताजी, यह तो बताइये कि, यदि एक जन्मना उच्च हिंदू किसी अछूत भाई को अपनी लड़की नहीं देता तो उसने कितने प्रह्लादों और कितनी सीताओं को परिपीड़ित कर डाला जो आज आप एक साथ ही नृसिंह और रामावतार धारण किये बैठे हैं! उच्चवर्णस्थ हिंदुओं का शूद्रों के साथ रोटी-बेटी को आजही स्पष्ट घोषणा न करना क्या ऐसा जघन्य पाप है, जो आज उनको आपके द्वारा राक्षसों की उपाधि मिल रही है! आप तो अतिशयवादिता की सीमा पार जा रहे हैं। क्या आपको यह शोभा देता है? ऐसे विचारों से हिंदुओं का भला होगा?

और आप तो सरकार का भी बल रखते हैं। आपका सिद्धांत ही ठहरा—Everything is fair in love and war! "हिंदुओं को नीचा दिखाने के लिये" अछूत लोग "क्यों न मुसलमानों से सहायता लें" और "सरकार चाहे तो जन्माभिमानियों को मिट्टी के ठीकरे में पानी पिलादे। . . .परमात्मा न करे, यदि आज हिंदुओं का रोज़गार जाता रहे, नौकरियाँ मिलनी बंद हो जाँय, और शिक्षा प्राप्ति के सुभीते न रहें तो फिर देखिये इनकी दशा भंगियों से भी बत्तर होती है या नहीं। सरकार की कृपा होने से अछूत तहसीलदार, मजिस्ट्रेट, जज और इन्सपेक्टर बनकर जन्माभिमानी लोगों का मान-मर्दन कर सकते हैं। वही कुलीन और श्रेष्ठ कहला सकते हैं।"

क्या अब भी किसी को संदेह रह सकता है कि अछूतोद्धार के इस नये आंदोलन में नौकरशाही और मुसलमानों का हाथ नहीं, और लाहौर का जात-पाँत तोड़क मण्डल एक 'जाति-देश-नाशक' संस्था है? जिस संस्था का मंत्री थोड़े से भ्रांत हिंदुओं को और भी गुमराह करने के लिये शेष हिंदुओं को 'नीचा' दिखाने पर उतारू होकर उनके बड़े-से बड़े द्रोहियों की सहायता लेने में गर्व के साथ उनको धौंस देता हो, उससे अब हिंदू-समाज को सजग होजाना चाहिये। हिंदुओं ही क्या कुछ कम व्यथित हैं, जो संतरामजी उनके विरुद्ध एक जहादी जत्था और खड़ा कर रहे हैं! वैसे ही उनके विरोधी और उन विरोधियों के पिट्ठू क्या कम हैं, जो आज आपको उन्हींमें से एक नया द्रोही दल खड़ा कर देने की आवश्यकता पड़ी! भारत में एक नये गृह-विग्रह (Civil war) की यह नयी योजना नहीं तो क्या है! क्या इन धौंस-पट्टियों से "जन्माभिमानी" हिंदू आपके सामने नतमस्तक हो जायँगे? यह तो प्रेम का सौदा है—'प्रेम और युद्ध में सब बातें उचित समझी जाती हैं।' संभव है, प्रेम के वशीभूत होकर एक उच्चवर्णस्थ हिंदू अन्य वर्ण मे अपनी कन्या देदे। और इसी कारण से पौराणिक-कालीन उन विवाहों की सृष्टि हुई, जिनका आपने अपने अन्य लेखों में उल्लेख किया है। लेकिन क्या किसी भी आत्मभिमानी को यह स्वीकार होगा कि, वह शत्रु की सहायता प्राप्त अपने भाई को हृदय से लगावे?

राष्ट्रनिर्माण में शर्त के सौदे नहीं चला करते। संतरामजी धौंसपूर्वक शर्त पेश कर रहे हैं—दण्डनीति का आश्रय लेकर वर्ण-व्यवस्था को तुड़वाने की घुड़की देते हैं। उनकी मसीहाई का माद्दा इस क़दर फलफला रहा है कि, वे खुले तौर पर मुसलमानों और 'सरकार' के साहाय्य की दाद देते हैं! उनका यह वलवला सदाशयता, आदर्श और ऐतिहासिक सत्य के बिलकुल परे है। कौन नहीं कहता कि, हिंदुओं ने अपने सात करोड़ भाइयों को अछूत बनाकर पाप किया है, लेकिन उस पाप का प्रायश्चित्त करानेवाले पण्डे संतरामजी आज उनके पास आते हैं, और साथ में लाते हैं, विदेशी सरकार और हसन निज़ामी को! जयचंद की कन्या का हरण हुआ, विभीषण के हृदय में भी एक साथ ही रामभक्ति उमड़ पड़ी, लेकिन क्या इतिहास ने इनको क्रूर-कर्मी, देश-बंधु-द्रोही कह कर नहीं पुकारा। वे क्षमा नहीं किये जा सकते, 'त्रिकाल' में नहीं किये जा सकते। संतरामजी इस ऐतिहासिक सत्य को देखते हुए भी इतिहास की पुनरावृत्ति क्यों कर रहे हैं। हिंदू-हृदय इतना 'निष्ठुर'! दुःख होता है कि एक विद्वान् की लेखनी से ऐसी विवेकहीन धारा प्रवाहित हुई। और, क्योंकि पं० अखिलानन्द और पं० कालूराम हसन निज़ामी से सहायता लेते पकड़े गये, इस सन्देह में सन्तरामजी अछूतों का निज़ामी से सहायता लेना न्याय्य सिद्ध करते हैं! जहां तक हमें ज्ञात है, उक्त दोनों सज्जन, उनके विरुद्ध लगाये

गये आक्षेपों का प्रतिवाद कर चुके हैं, तो भी, यदि वह अपर्याप्त है, तो उन्हें चाहिये कि अपनी स्थिति को फिर साफ़ करें। लेकिन हमें तो सन्तरामजी के इस तर्क और न्याय पर दया आती है, और प्रत्येक विचारशील हिंदू उसकी भर्त्सना करेगा।

यही नहीं, आपकी विवेक बुद्धि का एक उन्मेष और देखिये। क्योंकि मालवीयजी ने अपने समधी को जाति-बिरादरी से बाहर कर दिया है, इसलिये हिन्दू 'धर्म' ही अ'कल्याण'-कारी हो गया! बलिहारी है इस न्याय-बुद्धि की, और इनाम देने के क़ाबिल है यह तर्क। व्यष्टि के लिये समष्टि पर बिजन बोल दिया जाय—बीसवीं शताब्दी की इस नादिरशाही का भी मुलाहिज़ा फ़रमा लीजिये। बात दरअसल यह है कि, हिंदुओं के अंदर अछूतोद्धार के जो भाव आर्यसमाज, असहयोग और संगठन आंदोलनों ने जागृत किये थे, उनका अंत-रूप है, ब्राह्मणों को नीचा दिखाना। हमारे यू० पी० में सन् १५-१६ में इस भाव का जागरण हुआ, आर्य-समाज से यह हलचल उठी। ब्राह्मणों का खुल्लम-खुल्ला विरोध किया जाने लगा। जो लोग उन दिनों अखबार पढ़ते रहे हैं, वे जानते हैं कि 'ब्राह्मण' और 'बाबू' नामकी दो पार्टियाँ भी दिखाई पड़ी थीं। उसीका प्रतिफल आर्य बिरादरी का निर्माण था। व्यावहारिक रूप से जब ठोस काम इन जन्मना-ब्राह्मण-विरोधियों के द्वारा न हो सका, तो ब्राह्मणों के विरुद्ध कटुभावों की सृष्टि होती रही। उसी वक्त में एक और नई भावना ने ज़ोर पकड़ा। जो जिस वर्ण में था, उस वर्ण से ऊपर उठने—ऊँचा बनने—की घोषणा करने लगा। सब कोई ब्राह्मण और क्षत्रिय बनने और लिखने लगे। किसी ने नाम के साथ शर्मा जोड़ा तो किसी ने वर्मा। और पंडित शब्द तो मानो अब निरक्षर भट्टों का भी विशेषण हो गया है। लोगों में किस तरह और किस विचित्रता से यह लहर बह चली, इसका एक आँखों देखा उदाहरण सुनिये—एक दिन एक अख़बार के दफ़्तर में एक सज्जन पधारे। आते ही उन्होंने ऐसी बातें छेड़ीं, जिससे ज्ञात होगया कि, यह कोई उच्च-वर्ण-प्रवेशाभिलाषी महाशय हैं। नाम के साथ शर्मा पहले ज्ञात हो चुका था। पास बैठे हुए एक मित्र ने उनसे कौतूहलवश उनका वर्ण पूछा। सज्जन बोले—धनुर्वेदीय ब्राह्मण। यह कौन ब्राह्मण हैं, हमारे मित्र ने साश्चर्य पूछा? वे सज्जन बोले, वही जिन्हें धुनियाँ कहकर पुकारा जाता है। इतना कहने पर मी हँसी न रुक सकी। मित्र महाशय ने फिर पूछा, लेकिन ब्राह्मण नित्य धर्मग्रंथों का स्पर्श करेगा, या मरी खाल की ताँत बजायगा? आगत सज्जन धीरे से कहने लगे—मैं गुण, कर्म, स्वभाव से वर्ण-व्यवस्था मानता हूँ। मित्र महाशय बड़े विनोदी थे। बोले, ठीक है महाशय, इसमें हर्ज ही क्या; जब पेट में आँत रह सकती है, तो भला एक ब्राह्मण के घर में ताँत रहने में क्या बुराई। अस्तु। हिन्दू-संगठन के इस शुभ अवसर पर अछूतों में इस भ्रात भावना को फलित-पल्लवित करना खुल्लमखुल्ला देशद्रोह है। अछूतों को हम गले लगायेंगे, यह एक बात है, और सन्तरामजी की धौंस में आकर खड्गहस्त जयचन्दी पल्टन के सामने तिनका मुँह में दबाकर बेटी देने की शर्त पर सन्धि कर लेंगे, यह 'त्रिकाल' में असंभव है। यह नहीं देखा जा सकता कि, हिंदुओं के घरू फ़ैसले करने के लिये हसन निज़ामी या कोई विदेशी आवे अथवा एक पथभ्रष्ट भाई विरोधियों की सेना लेकर सारी जाति पर बम्बार्डमेन्ट करने को आवे, और उसे क्षमा किया जाय। समय आ गया है, जब हृदयों की पारस्परिक परिष्कृतता से आपस में प्रेम-बंधन सुदृढ़ हो जायेंगे। हृदय परिवर्तन का यह प्रश्न है, धौंस और पला-यन-वृत्ति को उत्तेजित करने का नहीं। श्री सन्तरामजी जाति में कायरता का संचार कर पलायन-वृत्ति और देश-द्रोहिता का बीज बोकर ही देश और हिंदू जाति का भला करना चाहते हैं?

मंगलदेव शर्मा

अनुरोध

गुल्म, तरुराम महँ सुमन सुबास जहँ,
कर रे विलास तहँ आस सरसायगी।
पंकज, गुलाब रस चाखि चाखि लोभबस,
गंध पाय नाहि फँस बुद्धि अकुलायगी।
भूलि जिन आव इत केतकी है कंटकित,
या पै कहूँ वृत्ति-चित नेक ना लुभायगी।
है न मकरंद भृंग छोरदे कुसंग रंग,
कटक लगैंगे अंग धूलि धँस जायगी।

राजा रामसिंह, सीतामऊ-नरेश

तुलसीदासजी की सुकुमार सूक्तियाँ

मैं यह प्रथम ही कह चुका हूँ कि ज्यों-ही रामचन्द्रजी को अपनी दशा का ख़याल आया कि वहीं उन्हें तृतीय व्यक्ति अर्थात् लक्ष्मणजी की विद्यमानता का अनुभव हुआ।

कैसा मनोहर दृश्य था। महाराज की आँखें (विलोचन चारु अचंचल) सीताजी के देखने में तल्लीन होगईं। यहाँ तक कि उन्हें अपने एवं लक्ष्मणजी के व्यक्तित्व का ज्ञान भी न शेष रहा। उस वाटिका में, जहाँ वसन्त ऋतु पहले ही से रँगरलियाँ मचा रही है, राजकुमार तथा राजकुमारी सखियों सहित एक ओर, और महाराज लक्ष्मण दूसरी ओर, अवलोकनार्थ उपस्थित हैं। चित्र सर्वथा पूर्ण परन्तु मौन है। अगर कवि अपनी काव्योपम-चिन्तना द्वारा राम के हृद्गत् भावों की व्याख्या न करता होता तो नाटक के रंगमंच पर बिलकुल सन्नाटा होता। कैसे ठीक समय पर कवि ने मानो उस चित्र के सर्व-प्रधान व्यक्ति की सुन्दरताओं को हमें दिखलाया है कि, मौन के कारण आकर्षण में न्यूनता न आए।

तात जनक तनया यह सोई, धनुषयज्ञ जेहि कारण होई।

"जनकतनया"—किस सुन्दरता से यह बतला दिया है कि "सीताजी अभी महाराज जनक की कन्या ही हैं। अभी वह मेरी प्रिया नहीं हुईं। मैं निरीक्षण में रत अवश्य रहा। मुझे विश्वास भी है कि सीता अवश्य मिलेगी। परन्तु समय के पूर्व ही मुझे उनको 'प्रिया' कहने का अथवा इसी प्रकार के किसी अन्य प्रेमसूचक शब्द से स्मरण करने का कोई नैतिक अधिकार नहीं है।" हिंदुओं की विचार-दृष्टि से विवाह प्रेम की प्रारम्भिक अवस्था है, अंतिम नहीं। अस्तु। यहाँ तो लक्ष्मण से बातें हो रही थीं, जिसमें छोटे भाई के ख़याल से ऐसे ही शब्द यों भी प्रयुक्त होते। परन्तु अप्रकट प्रशंसा में भी कवि ने रामचन्द्रजी की हृदयरूपी जिह्वा द्वारा कोई ऐसा शब्द नहीं प्रयुक्त कराया जिससे समय के पूर्व ही किसी अनीतिमूलक वासना का प्रकटीकरण होता। 'तात' और 'तनया' का ध्वन्यात्मक शब्द-विन्यास भी विचारणीय है।

यहाँ एक रोचक प्रश्न पैदा होता है कि, अभी सीताजी को 'विदेहकुमारी' कहा था, अब जनकतनया क्यों कहा? ऐसे ही शाब्दिक विशेषत्व से कवि के कमाल का पता चलता है। 'विदेहकुमारी' के विचारात्मक आदर्श की दृष्टि से महाराज राम सीताजी के प्रकट एवं अप्रकट सौंदर्य की सूक्ष्मताओं के विश्लेषण तक ही पहुँचे हैं। छोटे भाई के सामने उन सूक्ष्मताओं की व्याख्या का न अवकाश ही था और न समय। इसकी आवश्यकता भी न थी। उनके समक्ष, जिन्हें रामजी इस समय अपने हमदर्द छोटे भाई की हैसियत से सम्बोधित कर रहे हैं, घटनाओं को ऐसे सरल एवं सुगम रीति पर रखना है कि जो छोटे राजकुँवर के लिये उचित एवं उपयुक्त हो, और साथ ही अपने आकस्मिक एवं पवित्र प्रेम की यथार्थ व्याख्या भी हो जावे। कैसा भोलापन लक्ष्मण पर चरितार्थ किया जाता है, मानो वह सीता को "जनकतनया" के ही रूप में देख सकते हैं! [मैं यह पहले ही बतला चुका हूँ कि तुलसीजी ने पुष्पवाटिका-सम्बन्धी दृश्य को अधिकांश में नाटक के मानवी दर्जे पर ही रखा है। हाँ, कहीं-कहीं वह अपने काव्य-चमत्कार से आध्यात्मिकता की बिजली का बटन दबाकर उस दृश्य को आकाश पर उठा ले जाते हैं, पर बहुत करके शृंगारी बातों की व्याख्या के लिये वह मानवी स्थिति में ही सम्पूर्ण दृश्य की पूर्ति करते हैं।] कविता की विचार-दृष्टि से उस शृंगार-विषयक मुग्धता के उतार की यह अंतिम श्रेणी है कि जब काव्योपम चिन्तना की उड़ान ख़त्म हुई तो असली चीज़ अर्थात् 'जनकतनया' सामने रह गई—'विदेहकुमारी' अब नहीं रही।

यह बात स्वाभाविक ही है कि अपना छोटा भाई सभी को भोला-भाला मालूम होता है। प्रेम का आधिक्य उसके महान् व्यक्तित्व को आँखों की ओट कर देता है। क्या आपने वह भजन नहीं सुना, जिसमें, जब रामचन्द्रजी का हृदय प्रेमजनित लज्जा के भावों से प्रभावित हो जाता है, तो उनसे सीताजी के हाथ का कंकण नहीं खुलता, उसी समय जनकपुर की स्त्रियों ने कैसी चुटकी ली थी:—

हँसि-हँसि कहैं जनकपुर की नारी—
छोड़े न छूटे सियाजी का कंगन . .....
कैसे ताड़का मारयो ?—इत्यादि

इसी प्रकार जब रामचन्द्रजी इत्यादि विवाह के पश्चात् अयोध्या वापस आए हैं, तो उनकी मातायें निरन्तर यही कहती थीं कि तुम सुकुमारों ने राक्षसों का सामना कैसे किया ? यह सब मुनिजी की कृपा थी कि तुम्हारी बुरी घड़ियाँ टल गई, और हमारे धन्य भाग थे कि तुम सकुशल लौट आए ।

"यह सोई "—व्याख्या सरल अवश्य होनी चाहिए जिसमें छोटे भाई से बातचीत करने में नैतिक आदर्श की भी रक्षा होती रहे। पर, यदि सीता की प्रशंसा न हुई तो मज़ा ही क्या ? साधारणतः तो प्रत्येक कवि ऐसा कर लेता। बात तो जभी है कि लज्जा की अवहेलना न हो और पूर्ण प्रशंसा भी हो जावे। इसीलिये कवि ने क्या उत्तम रीति ग्रहण की है। महाराज रामचन्द्र कहते हैं—महाराज जनक की यह वही कन्या है, जिसके कारण धनुषयज्ञ हो रहा है। कितने ही राजे-महाराजे आए हुए हैं। कैसा वृहद् उत्सव है। कैसी रंगभूमि बनी है और कितनी बड़ी तैयारी है। अभी कल हम और तुम उसे देख ही आए है। और सबसे बढ़कर यह कि सीता की प्राप्ति के निमित्त धनुष-भंग की कितनी कड़ी शर्त रक्खी गई है। सब की केन्द्र वही है। तो फिर क्यों वह रूप-गुण के सौन्दर्य-पराकाष्ठा की प्रतिमा न हो ? यहाँ किस प्रकार विचारों को सीता ही पर केन्द्रीभूत किया है।

दूसरी ओर क्षमा-याचना भी हो जाती है। गोया रामजी का अभिप्राय यह है कि जब सारा समारोह इसी के लिये है, और वह मेरी निगाहों के सामने है, तो मेरा उसे देख लेना क्या क्षम्य नहीं है ? क्या मुझे उसको देखने का नैतिक अधिकार नहीं है, जिसके हेतु मैं भी इस धनुषयज्ञ में सम्मिलित होने के लिये इतनी दूर से यहाँ आया हूँ ? उसे देखकर मैं भी तो इस बात के परखने की कोशिश करूँ कि क्या वह इस योग्य है कि उसके लिये इतनी कड़ी शर्त पूरी की जावे। कहीं ऐसा तो नहीं है कि दूर के ढोल सुहावने वाला मज़मून हो ?

परन्तु यह स्मरण रहे कि आलोच्य दृश्य में यह सारा वाद-विवाद हृदय के आन्तरिक अनुभव तथा उसके कार्यों एवं शब्दों द्वारा केवल अकस्मात् ही इन तर्क पूर्ण रूपों में प्रकट हो रहा है। वस्तुतः वहाँ तर्क-वितर्क की शक्ति ही किसमें थी। आभूषणों की झंकार पर ही अर्द्ध-विजय मान लीगई और फिर सामीप्य होते ही मुग्धता छा गई। ये युक्तियाँ तो अब किसी हद तक लक्ष्मणजी से क्षमा-याचना के निमित्त प्रस्तुत की गई हैं और वह भी केवल सांकेतिक अनुभव के साथ—पूर्ण विवाद के रूप में नहीं।

पूजन गौरि सखीं लै आई , करत प्रकाश फिरत फुलवाई

पूजन गौरि— क्या पवित्र प्रयोजन था। सीता के जीवन का मानचित्र परिवर्तित होने को है। देवी की पूजा करना और उससे सहायता माँगना कितना आवश्यक एवं स्वाभाविक है। बाग की सैर केवल मनोरंजन के लिये नहीं। पूर्व निश्चित गुप्त-मिलन-सम्बन्धी अनीति का यहाँ लेश भी नहीं। इन्हीं बातों पर ध्यान दिलाने के लिये महाराज राम लक्ष्मणजी से यों कहते हैं—"हे भाई ! सीता का अभिप्राय न वाटिका-भ्रमण से है, और न ताक-झाँक से, प्रत्युत केवल देवी की पूजा से।" साहित्यिक संसार में बाग का यह एक अनोखा दृश्य है, जिसकी तुलना में जानेआलम और रौशनआरा के पारस्परिक मिलन और रोमिओ तथा जूलियट के आपेक्षिक अवलोकन के दृश्य कितनी निम्न कोटि के हैं। [मेरा यह अभिप्राय कदापि नहीं कि मैं उन दृश्यों की निन्दा करूँ। वे भी अपने-अपने रंग में बढ़िया ही हैं। मेरा उपर्युक्त कथन तो केवल तुलना की दृष्टि से ही है।]

क्योंकि प्रयोजन इतना पवित्र था, इस कारण दोनों ओर जो आकस्मिक भाव उत्पन्न हुआ, वह भी इस पवित्रता से प्रभावित होकर पवित्र ही रहा।

गौरि—शिवजी महाराज की धर्मपत्नी—स्त्रियोचित हिन्दू-सभ्यता के आदर्श की जान हैं। आजकल के निराकारवादी भी इस बात का ख्याल रखें कि स्वामी दयानन्दजी सरस्वती के कथनानुसार वेद में भी परमात्मा के प्रति ऐसे अनेक नामों को व्यवहृत किया गया है, जो पुरुष-लिङ्ग, स्त्री-लिङ्ग तथा नपुंसक-लिङ्ग सभी प्रकार वाले हैं। स्त्रियों को परमात्मा 'माता' अथवा 'देवी' के रूप में ही स्वाभाविकतया अधिक अच्छे लगते हैं, अतः हिन्दू स्त्रियाँ उसी 'माता' के अवतार गौरीजी की पूजा विशेष प्रेम से करती हैं। ऐसी धर्मपरायणा देवी की पूजा का

ख़याल होने में किसी प्रकार के अनुचित शृंगार का ख़याल भी नहीं हो सकता, जिनका क़ौल था—

महादेव अवगुन भवन, विष्णु सकल गुन धाम।
जेहिकर मन रम जाहि मन, ताहि ताहि सन काम॥

सखी ले आई—मानो महाराज राम लक्ष्मणजी से कहते हैं कि, "भाई! अगर कोई और प्रयोजन होता तो सखियों के लाने की ज़रूरत न थी।" यहाँ ख़ुफ़िया मुलाक़ातों का शुबा भी नहीं हो सकता। जो-जो गुंजाइश शुबा की हैं, उन सबका उत्तर विचित्र सांकेतिक रीति पर इस व्याख्या में मौजूद है। एक ओर तो मानो सम्भावी आलोचना का उत्तर है और दूसरी ओर महाराज राम का हृदय, सीताजी के शुद्ध प्रयोजन एवं सखियों के संग आगमन के कारण, और भी लुभाया जाता है। वस्तुतः 'सहज पुनीत' व्यक्ति के लिये ऐसी ही रमणी की आवश्यकता थी, जो नैतिक शुद्धता की मूर्ति हो। "गुल खिलाती गई गुलछर्रे उड़ाती आई"—वाली चंचल स्त्रियों से तो उन्हें घृणा ही होगी, जिसके लिये शूर्पनखा का उदाहरण काफ़ी है।

नाटकीय रचना-कौशल की एक बारीकी देखिए। रामचंद्रजी आख़िर अनुमान ही से तो मदद ले रहे हैं, अतः वास्तविक घटना से किंचित् अन्तर शेष रख छोड़ा है। वास्तविक बात यह है कि सीताजी स्वयं पूजा के लिये भी नहीं आई थीं प्रत्युत उन्हें उनकी माता ने भेजा था—गिरिजा पूजन जननि पठाई। यदि तुलसी-दासजी अनुमान तथा वास्तविक बात को बिलकुल मिला देते, तब या तो राम का आध्यात्मिकता एवं सर्वज्ञता से परिपूर्ण व्यक्तित्व सामने आ जाता जिससे शृंगार का मज़ा जाता रहता, या फिर नाटकीय सत्य (Dramatic truth) की सरसता का सर्वथा लोप होजाता। कैसी दोरुख़ी तस्वीर है। जिन ख़यालों द्वारा वह अपने ऊपर से सन्देह हटाना चाहते हैं, वही सीता की पवित्रता को प्रमाणित तथा राम के हृदय को प्रभावित करने के लिये भी आवश्यक हैं।

करत प्रकाश—वही अनुमान और वास्तविक घटना का अन्तर, जो नाटक-रचना की जान है, यहाँ भी क़ायम है। सीताजी पुष्पवाटिका में अपनी सौन्दर्य-छटा दिखाने के लिये नहीं भ्रमण कर रही हैं, प्रत्युत किसी सौन्दर्य-छटा की खोज में। असली बात तो यह थी, परन्तु प्रेमिक का पीड़ित हृदय उसके इस भ्रमण में भी अपना प्रयोजन देखता है कि, मानो यह भ्रमण सौन्दर्य-छटा के प्रकाशनार्थ हो है। मैंने इस लेख के प्रारम्भ ही में एक स्थान पर किसी आँग्ल उपन्यासकार के इस कथन का उल्लेख किया है कि प्रेमिका साधारणतया साधारण रीति पर ही काम करती है; पर प्रेमिक के लिये वह सदा इस प्रकार दृष्टिगत होती है मानो उसके हृदय को ग्रहण करने की प्रबल एवं ज्ञानमयी चेष्टा कर रही है।

करत प्रकाश—सौन्दर्य-छटा की कैसी सुन्दर प्रशंसा है। नैतिक आदर्श की दृष्टि से भी कोई अनुचित शब्द नहीं।

मैंने प्रथम ही पाश्चात्य एवं पौर्वात्य शृंगार का अन्तर बतलाते हुए कह दिया था कि पौर्वात्य प्रेम में शान्ति और पाश्चात्य प्रेम में आवेश है। वही दृश्य यहाँ भी है। इस 'प्रकाश' को देखिए और फिर पाश्चात्य अथवा फ़ारसी उर्दू के पौर्वात्य शृंगार के 'बिजली गिराने', 'शमअ का नूर' होकर 'परवाना' को जलाने इत्यादि के दृश्यों से इसकी तुलना कीजिए तो आपको तुलसी का असाधारण काव्य-कौशल मानना ही पड़ेगा।

फिरत फुलवाई—सीता जैसी अल्पवयस्का प्रेमिका के लिये ये दोनों शब्द कितने उपयुक्त हैं। आह प्रेम का कैसा प्रभाव है! यह अब 'भूप बाग वर' नहीं है बल्कि सीता के फिरने के लिये फूलों की फुलवारी है। छोरी सीता के लिये फुलवारी की सैर स्वाभाविकतया कितनी औचित्यपूर्ण है। अचल पुष्पों की वाटिका में पुष्पवर्णा प्रेमिका का यह चलना कितना सामयिक है। वही नाट-कीय कौशल अर्थात् अनुमान और वास्तविकता के अन्तर की सुन्दरता देखने ही योग्य है। रामजी प्रेमवश होकर कम-से-कम इतना अनुमान तो करते ही हैं, और सीता को सन्मार्ग से इतना विमुख तो बतलाते ही हैं कि सीता आई तो थीं गौरी की पूजा करने, पर सौन्दर्य-प्रेरणा से लगीं फुलवारी की सैर करने, और सौन्दर्य-मद से अपनी रूप-छटा को हर तरफ़ फैलाने। पाठकगण! यही अन्तरसूचक बातें तो शृंगार में सरसता भर देती हैं और साथ ही कैसी भली लगती हैं। अनुमान अंशतः सत्य भी है, परन्तु वह मज़े को दुबाला ही कर देता है। यदि केवल फुलवारी देखने में नहीं तो राम की खोज में वस्तुतः विमुखता थी। पर ऐसी विमुखता भी अत्यन्त मनोहर है। मानवी जीवन का आनन्द सीधी लकीरों

वाली समताओं पर निर्भर नहीं है, बल्कि ऐसी ही असमताओं पर। इनके बिना ज़िंदगी रूखी और शाइरी मिल्टन की शाइरी की तरह फीकी है। हाँ, यह आवश्यक है कि यह असमताएँ नैतिक परिधि के भीतर ही हों। तनिक घूम कर सही, पर एक केन्द्र से दूसरे केन्द्र पर पहुँचे अवश्य, और इस प्रकार, कि छिद्रान्वेषण की गुंजाइश न रहे।

राम का अनुमान है कि सीता फुलवारी की सैर के लिये फिर रही है। उन्हें खबर नहीं कि सीता का दिल भी चोट खाया हुआ है, और वह मेरी ही खोज में भ्रमण कर रही है। उन्हें खबर नहीं कि यह मेरा ही चुम्बकीय आकर्षण है जो उसे खींचे, लिये फिरता है। महाराज उसे व्याध समझते हैं, पर वह बेचारी स्वयं ही आखेट बनी हुई है। नाटकीय विरोधाभास (Dramatic contrast) का कैसा सुन्दर दृश्य है।

द्वितीय पदार्द्ध में 'र' की पुनरुक्ति द्वारा सीता के फिरने का दृश्य शाब्दिक रूप में कैसा अच्छा दिखलाया है और अल्प स्वरों (Small vowels) द्वारा उस जल्दी-जल्दी फिरने का लुत्फ़ और भी बढ़ जाता है। 'त' की थापें भी गायकाचार्यों से अपनी प्रशंसा कराए बिना न रहेंगी और फिरने में भी पगों की कोमल थापों के विचार से कितनी उपयुक्त हैं। 'फिरत फुलवाई' का छेकानुप्रास और "करत, फिरत" का अनुप्रास भी दर्शनीय है।

इसके पूर्व (१) भूप बाग वर देखेउ जाई, (२) देखन बाग कुँवर दोउ आए, (३) गई रही देखन फुलवाई, इन तीनों बाग वाले दृश्यों के समय, स्थान और उद्देश्यों की तुलना इस 'फिरत फुलवाई' वाले दृश्य से अत्यन्त उत्तम होगी।

क्योंकि पूर्व ही प्रत्येक बात का यथास्थान उल्लेख हो चुका है, अतः पाठकों से प्रार्थना है कि उन स्थानों के विवरण का यहाँ की व्याख्या से स्वयं मुक़ाबिला करें और आनन्द उठावें। मैं इतना अवश्य कहूँगा कि यह चंचलता, यह आतुरता और यह भावना कहीं नहीं है। वस्तुतः 'फुलवारी लीला' के नाम से इस दृश्य का शीर्षक कितना ठीक है। उसी एक बाग की सैर किस किसने किस-किस रीति पर की, और उस बाग ने क्या-क्या मनोवेग उत्पन्न किए और किन-किन भावों की पूर्ति की—केवल इन्हीं बातों की व्याख्या के लिये एक दफ़्तर चाहिए।

जासु बिलोकि अलौकिक सोभा, सहज पुनीत मोर मन छोभा।

प्रश्न होता है कि यह राम की निर्बलता का प्रभाव था या सीता के अनुपम सौंदर्य का अथवा किसी आध्यात्मिक आकर्षण का? यदि केवल रामजी की निर्बलता का प्रभाव हो तब साधारण मनुष्य तो यही कहने पर मजबूर होगा कि "मुज़्दाबाद ऐ मर्ग ! ईसा आप ही बीमार है" अर्थात् "ए मृत्यु ! प्रसन्न हो कि ईसा ।" पर ऐसा नहीं है। महाराज राम ने ऐसे ही प्रश्नों का उपर्युक्त चौपाई द्वारा कैसा मार्मिक उत्तर दिया है।

इस पद में सीताजी की सौंदर्य-श्लाघा है। कितनी [illegible] है, पर नैतिक नियमों की अवहेला नहीं होती। महाराज राम कहते हैं कि मेरे मन का विशेष गुण है—सहज पुनीत। उस पर भी सीता के असाधारण सौंदर्य का क्या प्रभाव है। ऐसे पवित्र हृदय पर पवित्र सौंदर्य के अतिरिक्त और किसी वस्तु का प्रभाव नहीं पड़ सकता, जो हृदय कृत्रिमता-रहित है ('सहज' से यही प्रकट होता है) उसे कृत्रिम सौंदर्य से घृणा ही होती, न कि प्रेम।

मोर—कैसा प्यारा शब्द है। 'मोर मन' जो स्वाभाविकतः सरल, पवित्र, और अलिप्त था वह अब लुभा गया—अब मेरा नहीं रहा। स्वर्गीय 'सुरूर' जहानाबादी का अन्तिम पद देखिए—

> बजाय मैं दिया पानी का इक गिलास मुझे,
> समझ लिया मेरे साक़ी ने बदहवास मुझे।

लोभा—वाह रे तुलसीदासजी ! आपकी काव्य-रचना और आपकी शब्द-सम्बन्धी विशेषता क्या है, एक जादू है। देखिए न, हम व्याख्या में वह विशेषता स्थिर न रख सके और 'मोर मन' की तथा तुलसीजी के काव्य-सौंदर्य की व्याख्या करने में हमने यहाँ तक लिख दिया कि 'मेरा हृदय' मेरा नहीं रहा। यह ग़लती है। अभी बहुत दर्जे बाक़ी हैं। अभी मन हाथ से निकल नहीं गया, बल्कि सिर्फ़ लुभाया है। इसमें संदेह नहीं कि लुभाने में मन अशान्त अवश्य ही इख़्तियार से जाता रहता है, पर इतना नहीं कि हमको उन्मत्त बना दे। अभी धनुष-यज्ञ की शर्त बाक़ी है। वह पूरी न हुई तो क्या होगा ? अतः राम जैसा पवित्र व्यक्ति अपने दिलको इस तरह बेक़ाबू न होजाने देगा। मगर फिर भी लुभाने में एक विचित्र एवं सुन्दर रीति पर यह बतलाया है—(१) बुद्धि न सही, पर कम-से-कम मन सीता के बाह्य एवं आभ्यं-

तरिक सौंदर्य पर आसक्त होगया है। पंच ज्ञानेन्द्रियाँ मन ही के अधीन हैं। अतः क्रिया, वार्ता इत्यादि सभी पर सीता के सौंदर्य की छाप है। अंग-अंग में फड़क है, तो उसी के कारण। अस्तु। इसका रसास्वादन आप तभी कर सकेंगे जब आप समूचे दृश्य को पढ़ेंगे और यह देखेंगे कि शाम को चाँद निकला तो सीता का ख़याल, और सुबह सूरज निकला तो सीता का ख़याल—सारांश यह कि प्रत्येक वस्तु से प्रेमिका का स्मरण होता है। इस मिलन के पश्चात् प्रत्येक वार्ता में सीता का ज़िक्र ज़रूर है। 'लुभाने' का यही अर्थ है। पर, क्योंकि, मन ही तक प्रभाव है, और बुद्धि उसके ऊपर है, अतः क्या मजाल कि किसी क्रिया से आवश्यक उद्विग्नता का प्रकटीकरण हो। न पागलों का सा उन्माद है, न पत्थर की सी कठोरता। प्रेम का प्रभाव है और रसयुक्त प्रभाव है, पर नीतिपूर्ण मात्रा से अधिक नहीं। मानो यह पद किसी अपरिपक्व मस्तिष्क से निकला हुआ कहा जाता है—'दुरंगी छोड़कर इकरंग होजा। सरासर मोमिया या संग होजा।

प्रेम अत्यंत रोचक भाव है, अतः शृंगार-कौशल रोचकतापूर्ण ही है। जब राम जैसा पवित्र व्यक्ति भी उसकी स्वीकृति में अनुचित लज्जा एवं संकोच से काम नहीं लेता, तो आजकल की अनुचित प्रथा उसे व्यर्थ ही लांछित करती है। वस्तुतः आधुनिक लज्जा ही बहुधा उन त्रुटियों को मूल-कारण है, जो आए-दिन अकथनीय रूपों में दीख रही हैं।

ऊपर कहा जा चुका है कि लुभाने का असर वार्ता में भी है। उसका एक उदाहरण यहीं मौजूद है।

नाटकीय सत्य—Dramatic truthfulness का ख़याल रखते हुए और लुभाने का असर दिखलाने के ख़याल से तुलसीदासजी ने आगामी वार्ता में अव्यवस्था (Incoherency) उत्पन्न कर दी है। तर्क की जिस क्रमिक वार्ता का आरम्भ हुआ था, उसपर लुभानेवाली शक्तियों का वह प्रभाव पड़ा कि तर्क का सिलसिला भंग होगया। मनोवेगों के उभार में एक वाक्य दूसरे वाक्य के पश्चात् संबोधनात्मक बल (Interjectional force) के साथ निकल रहा है। वाच्य, वाचक, कर्ता, क्रिया, कर्म इत्यादि की विद्यमानता तथा आदि अंत इत्यादि के अस्तित्व का ख़याल नहीं है। उदाहरणार्थ क्यों वही तीन मिसालें ली गईं, जो आगे कही गई हैं—और नहीं? और उनका आदि-अंत किस बुनियाद पर है? इन सारी बातों के उत्तर की खोज में आपको इस परिणाम पर पहुँचना होगा कि महाराज राम ने हृदयासक्ति की दशा में आत्मा के समीप लुभाने और होशोहवास ठीक रखने की प्रतिद्वंद्विता में पड़कर जिस प्रकार की वार्ता की होगी उसका सच्चा चित्र कवि ने खींच कर सामने रख दिया है।

विलोक—की शृंगारात्मक सुन्दरता पर प्रथम ही लिखा जा चुका है, मगर यहाँ "अलौकिक" शाब्दिक समानता के साथ उसका लुत्फ़ और भी बढ़ जाता है! मानों ऐसा ज्ञात होता है कि "अलौकिक शोभा" को देखने ही के लिये 'विलोक" की रचना की गई है, नहीं तो केवल 'देखना' लिख देना पर्याप्त था।

व्युत्पत्ति की दृष्टि से एक बारीकी और भी है। 'लोक' का शाब्दिक अर्थ है "स्थान" और "विलोक" शब्द भी बतलाता है कि स्थान से सीमित वस्तु ही देखी जाती है। अब "अलौकिक शोभा", जो किसी स्थान से सीमित नहीं, (अथवा इहलोक में न पाई जावे) वह दीखने लगे तो "लुभाना" स्वाभाविक ही है। "अलौकिक" एक विचित्र श्लेषात्मक शब्द है। शृंगारी विचार दृष्टि से "असाधारण" अथवा "इहलोक में न पाई जाने वाली" कह देना उसके लिये अलम् है। परन्तु आध्यात्मिक विचार-दृष्टि से "अलौकिक" का अर्थ है जिसे "सीमित करने के लिये किसी लोक से निसबत न दी जा सके।" तब फिर क्या वह उस परम शक्ति की शोभा न होगी, जो आदि अंत से परे है? शायरी क्या है, जादू है! "लुभाना" राम की मानवतायुक्त शृंगारी हैसियत से भी उपयुक्त और उनकी आध्यात्मिकतापूर्ण अवतारी हैसियत से भी उपयुक्त।

इस पद में ल, श, म, त इत्यादि का शाब्दिक माधुर्य भी विचारणीय एवं प्रशंसनीय है।

राम बुझावन जान त्रिधाता, फरकहिं सुभग अंग सुनु भ्राता।

मैंने पहले कहा है कि भावों के असर से जुमले एक-दूसरे के बाद संबोधनात्मक प्रबलता (Interjectional force) के साथ निकल रहे हैं, और ज़ाहिरा तार्किक क्रम भी क़ायम नहीं है। पर ऐसा केवल प्रकट ही में है और यही शृंगारी सरसता के लिये ठीक भी है। मगर तनिक भी ध्यान देने से मालूम हो सकता है कि वस्तुतः तार्किक क्रम का किंचित् भी अभाव नहीं है, प्रत्युत विचारात्मक शक्ति के थोड़े प्रयत्न से भी महाराज की

गहरी आध्यात्मिकता से भरे हुए सूक्ष्म तार्किक कारणों का पता लग जाता है और ऊपरी अव्यवस्था का लोप हो जाता है। उदाहरणार्थ यह ज्ञात हो जाता है कि पूर्व वाली चौपाई से केवल सीता की आकस्मिक प्रशंसा मंजूर थी। प्रस्तुत वह आध्यात्मिक तर्क के निमित्त से कार्य-रूप में थी, जिसका कारण इसी चौपाई में मौजूद है। युक्ति के लिये कार्य और कारण दोनों पूर्णत उपस्थित है। हाँ, क्रम में आदि-अन्त की दृष्टि से कुछ अव्यवस्था ज़रूर है।

यदि बिना किसी आध्यात्मिक कारण के केवल 'अलौकिक शोभा' से दिल पर असर हो जावे तो प्रत्येक प्रेमिक अपनी प्रेयसी को असाधारण ही समझता है। अन्यों के प्रेम-सबधी बातों पर दोषारोपण क्यों किया जावे ? अत उपर्युक्त चौपाई मे कहते है कि वास्तविक कारण "अलौकिक शोभा" नहीं है, प्रत्युत वह आतरिक एव आध्यात्मिक सबध है जिसे विधाता जानते हैं। मै पहले ही पूर्व एव पश्चिम के प्रेम-सबधी सिद्धातो का अन्तर बतलाते हुए कह चुका हूँ कि पूर्वीय सिद्धांतानुसार प्रेमिक और प्रेमिका उत्पत्ति से ही एक दूसरे के निमित्त नितात सापेक्ष होते हैं, और यही सापेक्षता अपने आकर्षण द्वारा उन्हे खींच कर मिला देती है। कोई भी सासारिक शक्ति उन्हे पृथक् नही रख सकती। अस्तु। पवित्र आत्मायें एक दूसरे की ओर खिच रही है और आदि-स्रष्टा इसका भेद जानता है। रामजी केवल उसके प्रभाव को अनुभव कर अपने कनिष्ठ भ्राता से कह रहे है कि सीता के प्रभाव से मेरे अग-अग मे फड़क पैदा हो गई है।

क्योंकि इसमें और आगामी चौपाइयो मे कारणो की खोज का विवरण है, अत प्रत्येक शब्द ऐसा है मानो सोच-सोचकर और ठहर-ठहरकर अलग-अलग बोला जा रहा है— मानो विचार अपनी निमग्नता से एक-एक शब्द निकाल कर लाता है।

सब कारण— ठीक है। सभी कारणो को विधाता ही जान सकता है। कुछ कारण राम ने बतलाये पर उनका दिल खुद कह रहा है कि वह काफ़ी नही हैं, और प्रत्येक प्रेमिक तनिक परिवर्तन के साथ उन्हे अपने प्रति प्रयुक्त कर सकता है।

विधाता— जिसने सृष्टि की रचना की और पारस्परिक संबंध निश्चित किया।

फरकहि— भौतिक-विज्ञान के ज्ञाता इस ततु तथा स्नायु पर पड़ने वाले प्रेम-प्रभाव का वर्णन करेगे, परन्तु आध्यात्मिकता के पारंगत [जिनकी बातें अब सर आलिवर लॉज (Sir Oliver Lodge) जैसे विज्ञान-वेत्ता भी मानते हैं] इसे फिर भी आध्यात्मिक आकर्षण का बाह्य परिणाम कहेगे। विज्ञान बतलाता है कि दिशासूचक यत्र की सुई उत्तर दिशा की ओर ही कैसे रहती है। पर वह क्यों रहती है, इसका उत्तर वहाँ नही मिल सकता। उसके लिये आध्यात्मिकता के ही माहात्म्य की आवश्यकता है।

देखिए, आध्यात्मिक संबंध का स्मरण होने पर और यह निश्चय होने पर कि उनका प्रेम सच्चा है, फड़क पैदा होती है। पुरुष में यह फड़क फिर भी जल्द ही पैदा हो जाती है। राजकुमारी सीता को कब और कितनी विलब से इसका अनुभव हुआ है, यह बात पाठकों को आगे चलकर विशेष ध्यान से देखनी होगी, जिससे पुरुष-स्त्री का नैतिक गहराई का फ़र्क़ ज़ाहिर हो जायगा।

सुनु भ्राता—(१) किसी बात पर ज़ोर देने का कैसा अच्छा तरीक़ा है। भ्राता के प्रति सहानुभूति की अभिलाषा और भ्रातृ-स्नेह की भावना तुरन्त ही स्पष्ट हो जाती है।

(२) कदाचित् लक्ष्मणजी भी इस सपूर्ण दृश्य पर कुछ सोच रहे हैं और उसी सोच-विचार की दशा में रामजी किस प्रकार और किस प्रेम से उनका ध्यान अपनी ओर आकर्षित करते हैं।

(३) वस्तुत यहाँ की कुल बातें और विशेषत. आगे आनेवाली बाते इस योग्य है कि उन पर पर्याप्त ध्यान दिया जाय। पाठकगण तदनुसार ही अपना जीवनादर्श स्थिर करने की कोशिश करें क्योंकि वह भी इस दृश्य के द्रष्टा और आलोचक और मानो लक्ष्मण के स्थानापन्न है। मर्यादापुरुषोत्तम राम उनके द्वारा आपको भी वही सदेश देना चाहते हैं।

राजबहादुर लमगोड़ा

गोस्वामी तुलसीदास

जय जय हिंदी-गगन-सुधाकर—
काव्य-भवन के दिव्य प्रकाश।
नन्दन-वन के पारिजात जय—
गोस्वामी श्री तुलसीदास !

'विमल'

ऐक्ट्रेस

(१)

रंगमंच का परदा गिर गया। तारादेवी ने शकुंतला का पार्ट खेल कर दर्शकों को मुग्ध कर दिया था। जिस वक्त वह शकुंतला के रूप में राजा दुष्यंत के सम्मुख खड़ी ग्लानि, वेदना और तिरस्कार से उत्तेजित भावों को आग्नेय शब्दों में प्रकट कर रही थी, दर्शक-वृन्द शिष्टता के नियमों की उपेक्षा करके मंच की ओर उन्मत्तों की भाँति दौड़ पड़े थे, और तारादेवी का यशोगान करने लगे थे। कितने ही तो स्टेज पर चढ़ गए और तारादेवी के चरणों पर गिर पड़े। सारा स्टेज फूलों से पट गया, आभूषणों की वर्षा होने लगी। यदि उसी क्षण मेनका का विमान नीचे आकर उसे उड़ा न ले जाता, तो कदाचित् उस धक्कम-धक्के में दस-पाँच आदमियों की जान पर बन जाती। मैनेजर ने तुरन्त आकर दर्शकों की गुण-ग्राहकता का धन्यवाद दिया और वादा किया कि दूसरे दिन फिर यही तमाशा होगा। तब लोगों का मोहोन्माद शान्त हुआ। मगर, एक युवक उस वक्त भी मंच पर खड़ा रहा। लंबा क़द था, तेजस्वी मुद्रा, कुन्दन का-सा रंग, देवताओं का-सा स्वरूप, गठी हुई देह, मुख से एक ज्योति सी प्रस्फुटित हो रही थी। कोई राजकुमार मालूम होता था।

जब सारे दर्शक बाहर निकल गए तो उसने मैनेजर से पूछा—क्या मैं तारादेवी से एक क्षणके लिये मिल सकता हूँ?

मैनेजर ने उपेक्षा के भाव से कहा—हमारे यहाँ ऐसा नियम नहीं है।

युवक ने फिर पूछा—क्या आप मेरा कोई पत्र उनके पास भेज सकते हैं? मैनेजर ने उसी उपेक्षा भाव से कहा—जी नहीं। क्षमा कीजिएगा। यह भी हमारे नियमों के विरुद्ध है।

युवक ने और कुछ न कहा, निराश होकर स्टेज के नीचे उतर पड़ा और बाहर जाना ही चाहता था कि मैनेजर ने पूछा—ज़रा ठहर जाइए, आपका कार्ड?

युवक ने जेब से काग़ज़ का एक टुकड़ा निकालकर कुछ लिखा और दे दिया।

मैनेजर ने पुर्ज़े को उड़ती हुई निगाह से देखा—कुँवर निर्मलकांत चौधरी, ओ० बी० ई०। मैनेजर की कठोर मुद्रा कोमल हो गई। कुँवर निर्मलकांत शहर के सबसे बड़े रईस और ताल्लुक़दार, साहित्य के उज्ज्वल रत्न, संगीत के सिद्धहस्त आचार्य, उच्चकोटि के विद्वान्, आठ-दस लाख सालाना के नफ़ेदार, जिनके दान से देश की कितनी ही संस्थाएँ चलती थीं, इस समय एक क्षुद्र प्रार्थी के रूप में खड़े थे। मैनेजर अपने उपेक्षा भाव पर लज्जित होगया। विनम्र शब्दों में बोला—क्षमा कीजिएगा, मुझ से बड़ा अपराध हुआ। मैं अभी तारादेवी के पास हुज़ूर का कार्ड लिये जाता हूँ।

कुँवर साहब ने उसे रुकने का इशारा करके कहा—नहीं अब रहने ही दीजिए। मैं कल पाँच बजे आऊँगा। इस वक्त तारादेवी को कष्ट होगा। यह उनके विश्राम का समय है।

मैनेजर—मुझे विश्वास है कि वह आपकी ख़ातिर से इतना कष्ट सहर्ष सह लेंगी। मैं एक मिनट में आता हूँ।

किंतु कुँवर साहब अपना परिचय देने के बाद अब अपनी आतुरता पर संयम का परदा डालने के लिये विवश थे। मैनेजर की सज्जनता का धन्यवाद दिया और कल आने का वादा करके चले गए।

(२)

तारा एक साफ़-सुथरे और सजे हुए कमरे में मेज़ के सामने किसी विचार में मग्न बैठी थी। रात का वह दृश्य उसकी आँखों के सामने नाच रहा था। ऐसे दिन जीवन में क्या बार-बार आते हैं। कितने मनुष्य उसके दर्शनों के लिये विकल हो रहे थे! सब एक दूसरे पर फटे पड़ते थे। कितनों को उसने पैरों से ठुकरा दिया था—हाँ, ठुकरा दिया था। मगर उस समूह में केवल एक दिव्यमूर्ति अविचलित रूप से खड़ी थी। उसकी आँखों में कितना गंभीर अनुराग था, कितना दृढ़ संकल्प। ऐसा जान पड़ता था मानो उसके दोनो नेत्र उसके हृदय में चुभे जा रहे हैं। आज फिर उस पुरुष के दर्शन होंगे या नहीं, कौन जानता है। लेकिन यदि आज उनके दर्शन हुए तो तारा उनसे एक बार बातचीत किए बिना न जाने देगी।

यह सोचते हुए उसने आइने की ओर देखा, कमल का फूल-सा खिला था। कौन कह सकता था कि यह

नव-विकसित पुष्प ३५ वसन्तों की बहार देख चुका है। वह कांति, वह कोमलता, वह चपलता, वह माधुर्य किसी नवयौवना को लज्जित कर सकता था। तारा एक बार फिर हृदय में प्रेम का दीपक जला बैठी। आज से बीस साल पहले एक बार उसको प्रेम का कटु अनुभव हुआ था। तब से वह एक प्रकार का वैधव्य जीवन व्यतीत करती रही। कितने प्रेमियों ने अपना हृदय उसकी भेंट करना चाहा था, पर उसने किसी की ओर आँख उठाकर भी न देखा था। उसे उनके प्रेम में कपट की गन्ध आती थी। मगर आह! आज उसका संयम उसके हाथ से निकल गया। एक बार फिर आज उसे हृदय में उसी मधुर वेदना का अनुभव हुआ, जो बीस साल पहले हुआ था। एक पुरुष का सौम्य स्वरूप उसकी आँखों में बस गया, हृदय-पट पर खिंच गया। उसे वह किसी तरह भूल न सकती थी। उसी पुरुष को उसने मोटर पर आते देखा होता तो कदाचित् उधर ध्यान भी न करती। पर उसे अपने सम्मुख प्रेम का उपहार हाथ में लिये देखकर वह स्थिर न रह सकी।

सहसा दाई ने आकर कहा—बाईजी, रात की सब चीज़ें रखी हुई हैं, कहिये तो लाऊँ?

तारा ने कहा—नहीं, मेरे पास कोई चीज़ लाने की ज़रूरत नहीं, मगर ठहरो, क्या-क्या चीज़ें हैं?

"एक ढेर-का-ढेर तो लगा है बाईजी, कहाँ तक गिनाऊँ—अशर्फ़ियाँ हैं, ब्रूचेज़, बाल के पिन, बटन, लॉकेट, अँगूठियाँ सभी तो हैं। एक छोटे से डिब्बे में एक सुंदर हार है। मैंने आज तक वैसा हार नहीं देखा। सब संदूक़ में रख दिया है।"

"अच्छा, वह संदूक़ मेरे पास ला।" दाई ने संदूक लाकर मेज़ पर रख दिया। उधर एक लड़के ने एक पत्र लाकर तारा को दिया। तारा ने पत्र को उत्सुक नेत्रों से देखा—कुँवर निर्मलकान्त, ओ० बी० ई०। लड़के से पूछा—"यह पत्र किसने दिया? वह तो नहीं जो रेशमी साफ़ा बाँधे हुए थे?"

लड़के ने केवल इतना कहा—'मैनेजर साहब ने दिया है', और लपका हुआ बाहर चला गया।

संदूक़ में सबसे पहले डिब्बा नज़र आया। तारा ने उसे खोला तो सच्चे मोतियों का सुन्दर हार था। डिब्बे में

तारा ने पत्र को उत्सुक नेत्रों से देखा

एक तरफ़ एक कार्ड भी था। तारा ने लपककर उसे निकाल लिया और पढ़ा—कुँवर निर्मलकान्त . । कार्ड उसके हाथ से छूटकर गिर पड़ा। वह झपटकर कुरसी से उठी और बड़े वेग से कई कमरों और बरामदों को पार करती मैनेजर के सामने आकर खड़ी हो गई। मैनेजर ने खड़े होकर उसका स्वागत किया और बोला—मैं रात की सफलता पर आपको बधाई देता हूँ।

तारा ने खड़े-खड़े पूछा—कुँवर निर्मलकान्त क्या बाहर हैं? लड़का पत्र देकर भाग गया। मैं उससे कुछ पूछ न सकी।

"कुँवर साहब का रुक्क़ा तो रात ही तुम्हारे चले आने के बाद मिला था।"

"तो आपने उसी वक़्त मेरे पास क्यों न भेज दिया?"

मैनेजर ने दबी ज़बान से कहा—मैंने समझा तुम आराम कर रही होगी, कष्ट देना उचित न समझा। और, भाई साफ़ बात यह है कि मैं डर रहा था, कहीं कुँवर साहब

को तुमसे मिलाकर तुम्हें खो न बैठूँ। अगर मैं औरत होता तो उसी वक्त उनके पीछे हो लेता। ऐसा देवरूप पुरुष मैंने आजतक नहीं देखा। वही जो रेशमी साफ़ा बाँधे खड़े थे तुम्हारे सामने। तुमने भी तो देखा था।"

तारा ने मानो अर्धनिद्रा की दशा में कहा—हाँ, देखा तो था—क्या वह फिर आवेंगे?

"हाँ आज पाँच बजे शाम को। बड़े विद्वान् आदमी हैं, और इस शहर के सबसे बड़े रईस।"

"आज मैं रिहर्सल में न आऊँगी", यह कहती हुई तारा वहाँ से चली गई।

(३)

कुँवर साहब आ रहे होंगे! तारा आइने के सामने बैठी है और दाई उसका शृंगार कर रही है। शृंगार भी इस ज़माने में एक विद्या है। पहले परिपाटी के अनुसार ही शृंगार किया जाता था। कवियों, चित्रकारों और रसिकों ने शृंगार की मर्यादा-सी बाँध दी थी, आँखों के लिये काजल लाज़मी था, हाथों के लिये मेंहदी, पाँव के लिये महावर। एक-एक अंग एक-एक आभूषण के लिये निर्दिष्ट था। आज वह परिपाटी नहीं रही। आज प्रत्येक रमणी अपनी सुरुचि, सुबुद्धि और तुलनात्मक भाव से शृंगार करती है। उसका सौंदर्य किस उपाय से आकर्षकता की सीमा पर पहुँच सकता है, यही उसका आदर्श होता है। तारा इस कला में निपुण थी। वह १५ साल से इस कम्पनी में थी और यह समस्त जीवन उसने पुरुषों के हृदय से खेलने ही में व्यतीत किया था। किस चितवन से, किस मुसकान से, किस अँगड़ाई से, किस तरह केशों को बिखेर देने से दिलों का क़त्लेआम हो जाता है, इस कला में कौन उससे बढ़कर हो सकता था। आज उसने चुन-चुन कर आज़माए हुए तीर तरकश से निकाले, और जब अपने अस्त्रों से सजकर वह दीवानख़ाने में आई, तो जान पड़ा मानो संसार का सारा माधुर्य उसकी बलायें ले रहा है। वह मेज़ के पास खड़ी कुँवर साहब का कार्ड देख रही थी पर उसके कान मोटर की आवाज़ की ओर लगे हुए थे। वह चाहती थी कि कुँवर साहब इसी वक्त आजायें और उसे इसी अंदाज़ से खड़े देखें। इसी अंदाज़ से वह उसके अंग-प्रत्यंगों की पूर्ण छवि देख सकते थे। उसने अपनी शृंगार-कला से काल पर विजय पा लिया था। कौन कह सकता था कि यह चंचल नव-यौवना उस अवस्था को पहुँच चुकी है जब हृदय को शांति की इच्छा होती है, वह किसी आश्रय के लिये आतुर हो उठता है, और उसका अभिमान नम्रता के आगे सिर झुका देता है।

तारादेवी को बहुत इन्तज़ार न करना पड़ा। कुँवर साहब शायद मिलने के लिये उससे भी अधिक उत्सुक थे। १० ही मिनट बाद उनकी मोटर की आवाज़ आई। तारा सँभल गई। एक क्षण में कुँवर साहब ने कमरे में प्रवेश किया। तारा शिष्टाचार के लिये हाथ मिलाना भी भूल गई। प्रौढ़ावस्था में भी प्रेम की उद्विग्नता और असावधानी कुछ कम नहीं होती। वह किसी सलज्जा युवती की भाँति सिर झुकाए खड़ी रही।

कुँवर साहब की निगाह आते ही उसकी गर्दन पर पड़ी। वह मोतियों का हार, जो उन्होंने रात भेंट किया था, वहाँ चमक रहा था। कुँवर साहब को इतना आनन्द और कभी न हुआ था। उन्हें एक क्षण के लिये ऐसा जान पड़ा मानो उनके जीवन की सारी अभिलाषा पूरी होगई। बोले—मैंने आपको आज इतने सवेरे कष्ट दिया, क्षमा कीजिएगा। यह तो आपके आराम का समय होगा।

तारा ने सिर से खिसकती हुई साड़ी को सँभाल कर कहा—इससे ज़्यादा आराम और क्या हो सकता था कि आपके दर्शन हुए। मैं इस उपहार के लिये आपको मनो धन्यवाद देती हूँ। अब तो कभी-कभी मुलाकात होती रहेगी?

निर्मलकांत ने मुसकिराकर कहा—कभी-कभी नहीं, रोज़। आप चाहे मुझसे मिलना पसन्द न करें, पर एक बार इस ड्योढ़ी पर सिर तो झुकाही जाऊँगा। तारा ने भी मुसकिरा कर उत्तर दिया—उसी वक्त तक कि मनोरंजन की कोई नई वस्तु नज़र न आजाय! क्यों?

मेरे लिये यह मनोरंजन का विषय नहीं, ज़िंदगी और मौत का सवाल है। हाँ, तुम इसे विनोद समझ सकती हो। मगर कोई परवा नहीं। तुम्हारे मनोरंजन के लिये यदि मेरे प्राण भी निकल जायँ तो मैं अपना जीवन सफल समझूँगा।

दोनो तरफ़ से इस प्रीति को निभाने के वादे हुए, फिर दोनो ने नाश्ता किया और कल भोज का न्योता देकर कुँवर साहब बिदा हुए।

(४)

एक महीना गुज़र गया, कुँवर साहब दिन में कई-

कई बार आते। उन्हें एक क्षण का वियोग भी असह्य था। कभी दोनों बजरे पर दरिया की सैर करते, कभी हरी-हरी घास पर पार्कों में बैठे बातें करते, कभी गाना-बजाना होता, नित्य नए प्रोग्राम बनते थे। सारे शहर में मशहूर था कि ताराबाई ने कुँवर साहब को फाँस लिया और दोनों हाथों से सम्पत्ति लूट रही है। पर तारा के लिये कुँवर साहब का प्रेम ही एक ऐसी सम्पत्ति थी जिसके सामने दुनिया भर की दौलत हेच थी। उन्हें अपने सामने देखकर उसे किसी वस्तु की इच्छा न होती थी।

मगर एक महीने तक इस प्रेम के बाज़ार में घूमने पर भी तारा को वह वस्तु न मिली, जिसके लिये उसकी आत्मा लोलुप हो रही थी। वह कुँवर साहब से प्रेम की, अपार और अतुल प्रेम की सच्ची और निष्कपट प्रेम की बातें रोज सुनती थी, पर उसमें "विवाह" का शब्द न आने पाता था, मानो प्यासे को बाज़ार में पानी छोड़कर और सब कुछ मिलता हो। ऐसे प्यासे को पानी के सिवा और किस चीज से तृप्ति हो सकती है? प्यास बुझने के बाद सम्भव है और चीज़ों की तरफ़ उसकी रुचि हो, पर प्यासे के लिये तो पानी सबसे मूल्यवान पदार्थ है। वह जानती थी कुँवर साहब उसके इशारे पर प्राण तक दे देंगे, लेकिन विवाह की बात क्यों उनकी जबान से नहीं निकलती? क्या इस विषय का कोई पत्र लिखकर अपना आशय कह देना असम्भव था। फिर क्या वह उसे केवल विनोद की वस्तु बनाकर रखना चाहते हैं? यह अपमान उससे न सहा जायगा। कुँवर के एक इशारे पर वह आग में कूद सकती थी, पर यह अपमान उसके लिये असह्य था। किसी शौक़ीन रईस के साथ वह इससे कुछ दिन पहले शायद एक दो महीने रह जाती और उसे नोच-खसोट कर अपनी राह लेती किन्तु प्रेम का बदला प्रेम है, कुँवर साहब के साथ वह यह निर्लज्ज जीवन न व्यतीत कर सकती थी।

उधर कुँवर साहब के भाई-बंद भी गाफ़िल न थे, वे किसी भाँति उन्हें ताराबाई के पंजे से छुड़ाना चाहते थे। कहीं कुँवर साहब का विवाह ठीक कर देना ही एक ऐसा उपाय था जिससे सफल होने की आशा थी, और यही उन लोगों ने किया। उन्हें यह भय तो न था कि कुँवर साहब इस ऐक्ट्रेस से विवाह करेंगे; हाँ, यह भय अवश्य था कि कहीं रियासत का कोई हिस्सा उसके नाम कर दें या उसके आनेवाले बच्चों को रियासत का मालिक बना दें। कुँवर साहब पर चारों ओर से दबाव पड़ने लगे। यहाँतक कि यूरोपियन अधिकारियों ने भी उन्हें विवाह कर लेने की सलाह दी। उसी दिन संध्या समय कुँवर साहब ने ताराबाई के पास आकर कहा—तारा, देखो तुम से एक बात कहता हूँ, इनकार न करना। तारा का हृदय उछलने लगा। बोली—कहिए, क्या बात है। ऐसी कौन वस्तु है जिसे आपकी भेंट करके मैं अपने को धन्य न समझूँ।

बात मुँह से निकलने की देर थी। तारा ने स्वीकार कर लिया और हर्षोन्माद की दशा में रोती हुई कुँवर साहब के पैरों पर गिर पड़ी।

(४)

एक क्षण के बाद तारा ने कहा मैं तो निराश हो चली थी। आपने बड़ी लंबी परीक्षा ली।

कुँवर साहब ने ज़बान दाँतों तले दबाई, मानो कोई अनुचित बात सुन ली हो।

"यह बात नहीं है तारा, अगर मुझे विश्वास होता कि तुम मेरी याचना स्वीकार कर लोगी तो कदाचित पहले ही दिन मैंने भिक्षा के लिये हाथ फैलाया होता। पर मैं अपने को तुम्हारे योग्य नहीं पाता था। तुम सद्गुणों की खान हो, और मैं । मैं जो कुछ हूँ वह तुम जानती हो हो। मैंने निश्चय कर लिया था कि उम्र भर तुम्हारी उपासना करता रहूँगा। शायद कभी प्रसन्न होकर तुम मुझे बिना माँगे ही वरदान दे दो। बस यही मेरी अभिलाषा थी। मुझ में अगर कोई गुण है तो यही कि मैं तुम से प्रेम करता हूँ, जब तुम साहित्य या संगीत या धर्म पर अपने विचार प्रकट करने लगती हो, तो मैं दंग रहजाता हूँ और अपनी क्षुद्रता पर लज्जित हो जाता हूँ। तुम मेरे लिये सांसारिक नहीं, स्वर्गीय हो। मुझे आश्चर्य यही है कि इस समय मैं मारे ख़ुशी के पागल क्यों नहीं होजाता।"

कुँवर साहब देर तक अपने दिल की बातें कहते रहे। उनकी वाणी कभी इतनी प्रगल्भ न हुई थी।

तारा सिर झुकाए सुनती थी, पर आनन्द की जगह उसके मुखपर एक प्रकार का क्षोभ, लज्जा से मिला हुआ, अंकित होरहा था। यह पुरुष इतना सरल हृदय, इतना निष्कपट है! इतना विनीत, इतना उदार!

सहसा कुँवर साहब ने पूछा—तो मेरे भाग्य किस दिन उदय होंगे तारा ? दया करके बहुत दिनों के लिये न टालना।

तारा ने कुँवर साहब की सरलता से परास्त होकर चिंतित स्वर मे कहा—क़ानून को क्या कीजिएगा ? कुँवर ने तत्परता से उत्तर दिया—इस विषय मे तुम निश्चिन्त रहो तारा, मैंने वकीलों से पूछ लिया है। एक क़ानून ऐसा है, जिसके अनुसार हम और तुम एक प्रेम-सूत्र में बँध सकते हैं। उसे सिविल मैरिज कहते हैं। बस, आज ही के दिन वह शुभ मुहूर्त आएगा, क्यों ?

तारा सिर झुकाए रही। कुछ बोल न सकी।

"मैं प्रातःकाल आजाऊँगा। तैयार रहना।"

तारा सिर झुकाए ही रही। मुँह से एक शब्द भी न निकला।

कुवर साहब चले गए, पर तारा वहाँ मूर्ति की भाँति बैठी रही। पुरुषों के हृदय से क्रीड़ा करनेवाली चतुर नारी क्यों इतनी विमूढ़ होगई है !

(६)

विवाह का एक दिन और बाक़ी है। तारा को चारों ओर से बधाइयाँ मिल रही है। थियेटर के सभी स्त्री-पुरुषों ने अपने सामर्थ्य के अनुसार उसे अच्छे-अच्छे उपहार दिए हैं, कुँवर साहब ने भी आभूषणों से सजा हुआ एक सिंगारदान भेंट किया है, उनके दो-चार अंतरंग मित्रों ने भाँति भाँति के सौगात भेजे है। पर तारा के सुन्दर मुख पर हर्ष की रेखा भी नहीं नज़र आती। वह क्षुब्ध और उदास है। उसके मन मे चार दिनो से निरंतर यही प्रश्न उठ रहा है—क्या कुँवर के साथ वह विश्वासघात करे। जिस प्रेम के देवता ने उसके लिये अपने कुल-मर्याद को तिलांजलि देदी, अपने बंधुजनों से नाता तोड़ा, जिसका हृदय हिमकण के समान निष्कलंक है, पर्वत के समान विशाल, उसी से वह कपट करे ! नहीं, वह इतनी नीचता नहीं कर सकती। अपने जीवन में उसने कितने ही युवकों से प्रेम का अभिनय किया था, कितने ही प्रेम के मतवालों को वह सब्ज़ बाग़ दिखा चुकी थी, पर कभी उसके मन में ऐसी दुविधा न हुई थी, कभी उसके हृदय ने उसका तिरस्कार न किया था। क्या इसका कारण इसके सिवा कुछ और था कि ऐसा अनुराग उसे और कहीं न मिला था !

क्या वह कुँवर साहब का जीवन सुखी बना सकती है ? हाँ, अवश्य। इस विषय में उसे लेशमात्र भी संदेह नहीं था। भक्ति के लिये ऐसी कौन सी वस्तु है जो असाध्य हो। पर क्या वह प्रकृति को धोखा दे सकती है। ढलते हुए सूर्य में मध्यान्ह का-सा प्रकाश हो सकता है ? असम्भव। वह स्फूर्ति, वह चपलता, वह विनोद, वह सरल छवि, वह तल्लीनता, वह त्याग, वह आत्मविश्वास वह कहाँ से लावेगी, जिसके सम्मिश्रण को यौवन कहते है ? नहीं, वह कितना ही चाहे, पर कुँवर साहब के जीवन को सुखी नहीं बना सकती। बूढ़ा बैल कभी जवान बछड़े के साथ नहीं चल सकता !

आह ! उसने यह नौबत ही क्यों आने दी ! उसने क्यों कृत्रिम साधनों से, बनावटी सिंगार से कुँवर को धोखे में डाला ? अब इतना सब कुछ होजाने पर वह किस मुँह से कहेगी कि मैं रँगी हुई गुड़िया हूँ, जवानी मुझ से कब की विदा हो चुकी, अब केवल उसका पद-चिह्न रह गया है !

रात के बारह बज गए थे। तारा मेज़ के सामने इन्हीं चिन्ताओं में मग्न बैठी हुई थी। मेज़ पर उपहारों के ढेर लगे हुए थे। पर वह किसी चीज़ की ओर आँख उठाकर भी न देखती थी। अभी चार दिन पहले वह इन्हीं चीज़ों पर प्राण देती थी। उसे हमेशा ऐसी चीज़ों की तलाश रहती थी जो काल के चिन्हों को मिटा सके, जो उसके झिलमिलाते हुए यौवन-दीपक को प्रज्वलित कर सके। पर अब उन्हीं चीजों से उसे घृणा हो रही है। प्रेम सत्य है—और सत्य और मिथ्या दोनों एक साथ नहीं रह सकते।

तारा ने सोचा क्यों न यहाँ से कहीं भाग जाय ? किसी ऐसी जगह चली जाय जहाँ कोई उसे जानता भी न हो। कुछ दिनों के बाद जब कुँवर का विवाह होजाय तो वह फिर आकर उनसे मिले और यह सारा वृत्तान्त उनसे कह सुनाए। इस समय कुँवर पर वज्राघात सा होगा—हाय ! न जाने उनकी क्या दशा होगी। पर उसके लिये इसके सिवा और कोई मार्ग नहीं है। अब उसके दिन रो-रोकर कटेंगे, लेकिन उसे कितना ही दुःख क्यों न हो, वह अपने प्रियतम के साथ छल नहीं कर सकती। उसके लिये इस स्वर्गीय प्रेम की स्मृति, इसकी वेदना, ही बहुत है। इससे अधिक उसका अधिकार नहीं।

दाई ने आकर कहा—बाईजी, चलिये कुछ थोड़ा सा भोजन कर लीजिए, अब तो बारह बज गए।

तारा ने कहा—नहीं, ज़रा भी भूख नहीं है। तुम जाकर खालो।

दाई—देखिए, मुझे भूल न जाइएगा। मैं भी आपके साथ चलूँगी।

तारा—अच्छे-अच्छे कपड़े बनवा रखे हैं न?

दाई—अरे बाईजी, मुझे अच्छे कपड़े लेकर क्या करना है। आप अपना कोई उतारा दे दीजिएगा।

दाई चली गई। तारा ने घड़ी की ओर देखा। सचमुच बारह बज गए थे। केवल छः घंटे और हैं। प्रातःकाल कुँवर साहब उसे विवाह-मंदिर में ले जाने के लिये आ जायेंगे। हाय! भगवान, जिस पदार्थ से तुमने इतने दिनों उसे वंचित रखा, वह आज क्यों सामने लाए? क्या यह भी तुम्हारी क्रीड़ा है!

तारा ने एक सफ़ेद साड़ी पहन ली। सारे आभूषण उतार कर रख दिए। गर्म पानी मौजूद था। साबुन और पानी से मुँह धोया और आइने के सम्मुख जाकर खड़ी हो गई—कहाँ थी वह छवि, वह ज्योति जो आँखों को लुभा लेती थी। रूप वही था, पर वह कांति कहाँ। क्या अब भी वह यौवन का स्वांग भर सकती है?

तारा को अब वहाँ एक क्षण और रहना कठिन हो गया। मेज़ पर फैले हुए आभूषण और विलास की सामग्रियाँ मानो उसे काटने दौड़ने लगीं। यह कृत्रिम जीवन असह्य हो उठा, ख़स की टट्टियों और बिजली के पंखों से सजा हुआ शीतल भवन उसे भट्टी के समान तपाने लगा।

उसने सोचा, कहाँ भाग कर जाऊँ। रेल से भागती हूँ तो भागने न पाऊँगी। सवेरे ही कुँवर साहब के आदमी छूटेंगे और चारों तरफ़ मेरी तलाश होने लगेगी। वह ऐसे रास्ते से जायगी जिधर किसी का ख़याल भी न जाय।

तारा का हृदय इस समय गर्व से छलका पड़ता था। वह दुःखी न थी, निराश न थी। वह फिर कुँवर साहब से मिलेगी, किन्तु वह निस्स्वार्थ संयोग होगा। वह प्रेम के बताए हुए कर्तव्य-मार्ग पर चल रही है, फिर दुख क्यों हो और निराशा क्यों हो?

सहसा उसे ख़याल आया—ऐसा न हो कुँवर साहब उसे वहाँ न पाकर शोक-विह्वलता की दशा में कोई अनर्थ कर बैठें। इस कल्पना से उसके रोंगटे खड़े हो गए। एक क्षण के लिये उसका मन कातर हो उठा। फिर वह मेज़ पर आ बैठी और यह पत्र लिखने लगी—

प्रियतम, मुझे क्षमा करना। मैं अपने को तुम्हारी दासी बनने के योग्य नहीं पाती। तुमने मुझे प्रेम का वह स्वरूप दिखा दिया जिसकी इस जीवन में मैं आशा न कर सकती थी। मेरे लिये इतना ही बहुत है। मैं जब तक जीऊँगी तुम्हारे प्रेम में मग्न रहूँगी। मुझे ऐसा जान पड़ रहा है कि प्रेम की स्मृति में प्रेम के भोग से कहीं अधिक माधुर्य और आनन्द है। मैं फिर आऊँगी, फिर तुम्हारे दर्शन करूँगी, लेकिन उसी दशा में, जब तुम विवाह करलोगे। यही मेरे लौटने की शर्त है। मेरे प्राणों के प्राण मुझसे नाराज़ न होना, ये आभूषण, जो तुमने मेरे लिये भेजे थे, अपनी ओर से नववधू के लिये छोड़े जाती हूँ। केवल वह मोतियों का हार, जो तुम्हारे प्रेम का पहला उपहार है, अपने साथ लिए जाती हूँ। तुमसे हाथ जोड़कर कहती हूँ, मेरी तलाश न करना। मैं तुम्हारी हूँ, और सदा तुम्हारी रहूँगी ।

तुम्हारी—

तारा

यह पत्र लिखकर तारा ने मेज़ पर रख दिया, मोतियों का हार गले में डाला और बाहर निकल आई। थियेटर हाल से संगीत की ध्वनि आ रही थी। एक क्षण के लिए उसके पैर बँध गए। पंद्रह वर्षों का पुराना सम्बंध आज टूटा जा रहा था। सहसा उसने मैनेजर को आते देखा। उसका कलेजा धक् से होगया। वह बड़ी तेज़ी से लपक कर दीवार की आड़ में खड़ी हो गई। ज्योंही मैनेजर निकल गया वह हाते के बाहर आई और कुछ दूर गलियों में चलने के बाद उसने गंगा का रास्ता पकड़ा।

गंगातट पर सन्नाटा छाया हुआ था। दस पाँच साधु-बैरागी धूनियों के सामने लेटे थे। दस पाँच यात्री कम्बल ज़मीन पर बिछाए सो रहे थे। गंगा किसी विशाल सर्प की भाँति रेंगती चली जाती थी। एक छोटी सी नौका किनारे पर लगी हुई थी। मल्लाह नौका में बैठा हुआ था।

तारा ने मल्लाह को पुकारा—ओ माझी, उस पार नाव ले चलेगा?

ओ माझी, उस पार नाव ले चलेगा ?'

माझी ने जवाब दिया—इतनी रात गए नाव न जाई।

मगर दूनी मज़दूरी की बात सुनकर उसने डाँड़ा उठाया और नाव को खोलता हुआ बोला—"सरकार, उस पार कहाँ जैहैं ?"

"उस पार एक गाँव में जाना है।"

"मुदा इतनी रात गए कौनो सवारी-सिकारी न मिली।"

"कोई हर्ज नहीं, तुम मुझे उस पार पहुँचा दो।"

माझी ने नाव खोल दी। तारा उस पर जा बैठी, और नौका मंद गति से चलने लगी, मानो जीव स्वप्न साम्राज्य में विचर रहा हो।

इसी समय एकादशी का चाँद पृथ्वी के उस पार अपनी उज्ज्वल नौका खेता हुआ निकला और व्योम-सागर को पार करने लगा।

प्रेमचन्द

भवभूति और राम का सीता-परित्याग

संस्कृत साहित्य में मनुष्य की कोमल भावनाओं का जैसा विस्तृत और सर्वांगपूर्ण वर्णन है, उतना संसार की कदाचित ही किसी भाषा में हो। यों तो संस्कृत-साहित्य-कानन में एक-से-एक बढ़कर केशरी विचरते हैं, परन्तु उनमें भी कालिदास और भवभूति का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। देव-वाणी के गगन-मंडल में ये ऐसे दो चंद्र हैं, जिनकी शीतल और सुखद अमृतरूपी किरणों से संस्कृतज्ञ ही नहीं बल्कि अन्य भाषाभाषी सहृदयों के हृदय भी अनवरत रूप से उमड़ते चले आ रहे हैं। दोनों ही की सुंदर कृतियों ने नाटकों का सुंदर कलेवर धारण किया है, और इसी रूप में वे कला के उच्चतम शिखर पर विराजमान हैं। दोनों ही की अनुपम सृष्टियों में वह सादृश्य है, जो उन नाटकों के सरसरी तौर पर पढ़नेवालों की दृष्टि से भी नहीं बच सकता। एक ओर कालिदास की गर्भवती शकुंतला को यदि हम अपने पति से शापवश परित्यक्त हुई पाते हैं तो दूसरी ओर पवित्रता की उस मूर्ति को, जो

> 'अति पुनीत सिया निज जस समा
> निदि सली पुनि पावन करि कर
> लहि सकै कहु अन्य पदार्थ सा
> अनल, नीरद, तोय विशुद्धता'

केवल जन-अपवाद के कारण राम द्वारा छोड़ी जाकर वन में विलाप करती हुई देखते हैं। दोनों नाटकों के नायकों के हृदयों में तपोवन में अपने अपने पुत्रों को देखकर स्वाभाविक प्रेम की धारा बहने लगती है और अंत में राम और दुष्यंत दोनों वहीं पर अपनी अपनी प्रियाओं को पाकर आनंदित होते हैं।

इतनी समानता होते हुए भी दोनों कृतियों में भेद है। यद्यपि दोनों नाटकों की विचार-धाराएँ एक ही मान-सरोवर झील से निकल कर एक ही स्थान में जाकर मिल

जाती है, दोनो धाराओं मे एक ही प्रकार स्वच्छ अमृत-मय जल बहता है, दोनों के किनारो पर सुदर सुदर वृक्ष, लता, पुष्प इत्यादि अपने अनुपम रग-बिरगे वस्त्रों से सुसज्जित होकर वायु मे आनद ले रहे हैं, और दोनो ही के किनारे नाना प्रकार के पक्षी चहक रहे है। तब भी यदि एक स्वाभाविक जल का प्रवाह है, तो दूसरे में रास्ते की बाधाओं को हटाकर जल के लिये मार्ग बनाया गया है। एक को यदि हम सुदर सरिता से उपमा दे सकते है, तो दूसरी को एक मनोरम नहर की उपाधि से विभूषित करना पड़ेगा। एक को अपना मार्ग बनाने के लिये यदि कोई कष्ट नहीं करना पड़ा है, जहाँ पथ मिला वहीं बहना आरभ कर दिया तो दूसरी का मार्ग निश्चित करने, रास्ते की बाधाओं को हटाने और जल को स्वच्छ रखने के लिये घोर परिश्रम किया गया है।

शकुतला में दुष्यन्त से अपनी प्रिया का भूला जाना स्वाभाविक है। क्योंकि प्रथम तो दुष्यत राम की तरह सदाचार के उत्कृष्ट उदाहरण नहीं, (जिस समय वे शकुतला को देखकर अपने आपे से बाहर हो रहे थे, उस समय भी उनको यह भय था कि मेरी प्रेम-कहानी मेरी भार्या पर प्रकट न हो जाय)। दूसरे, शकुतला और दुष्यत का बिल्कुल 'इकत सबध' था और ऐसे कारज के विषय 'निरे न बनिये अध' से कवि ने भलीभाँति प्रतिपादित कर दिया है कि, ऐसे सबधो मे कुछ खराबी हो जाने की आशका है। तीसरे, दुष्यत शाप के वशीभूत हैं। जब उनको अपने सबध के बारे मे स्मरण ही नहीं, तब वे किस प्रकार पर भार्या को अगीकार करके अपने और अपने कुल को कलकित कर सकते थे। चौथे, उन्होंने शकुतला को अपना पक्ष सिद्ध करने के लिये काफ़ी अवसर दिया, और पाँचवे, जब वह अपनी सत्यता प्रमाणित करने मे असमर्थ रही, तो पुरोहितजी की राय को, कि वह बालक उत्पन्न होने के समय तक उन्हीं के गृह पर रहे, उदारतापूर्वक मान लिया। यह साक्षियाँ इतनी स्पष्ट और निर्विवाद है, कि इनके सहारे कोई भी न्यायाधीश दुष्यत को शकुतला के प्रति किसी प्रकार के अपराध से मुक्त कर सकता है।

परन्तु, राम का सीता-परित्याग इतना स्वाभाविक और न्यायसगत कहाँ? हो सकता है कि राम का ऐसा चरित्र चित्रण करने मे कवि ने उनको मनुष्य की परिधि से हटाकर और भी उच्च श्रेणी पर बिठलाने की चेष्टा की हो। हो सकता है कि कवि के श्रीराम को 'प्रजा के मन भावत' करने की इतनी प्रबल इच्छा हो कि, एक निरपराध अबला को, जिसकी पवित्रता के बारे मे उनको तनिक भी सदेह नहीं, एक प्रजा के नाते से भी उसका कुछ भी विचार न करके गर्भावस्था ही मे घोर निर्जन वन मे, जहाँ पर 'घिरि हाय अचानक सिंहनि सो किमि बेबस धीरज धारति होइगी', छोड़ दिया जाय! पर कवि के यह प्रयत्न कहाँ तक सफल हुए है। श्रीरामचद्रजी का सीता-परित्याग कहाँ तक न्याय-सगत हो गया है, इसका निश्चय पाठकगण कवि की निम्नलिखित चेष्टा से कर सकते है।

सबसे प्रथम सूत्रधार रगमंच पर आकर परोक्ष रीति से श्रीसीताजी के कलक के बारे मे इस तरह कहता है—

> नर चाकरी मे कबहुँ, करनी चहिये नाहिं,
> सब प्रकार निरदोष कहु, को पदार्थ जगमाहिं।
> कुटिल मनुज सो रहि सकत, भला कहे न निसक,
> सद वनिता कवितान मे जो नित लखत कलक।

इस पद्य मे 'सद्वनितान' शब्द के उपयोग का कोई विशेष उद्देश्य है। कवि की प्रबल इच्छा यहाँ पर यही प्रतीत होती है कि किसी-न-किसी तरह वह सीताजी का कलक अपने नाटकों के दर्शको के सम्मुख रखे। तभी तो वह एक अच्छी स्तुति सोचते-सोचते इस विषय पर आ जाता है। आगे चलकर कवि का यह आशय और भी स्पष्ट रूप मे प्रकट हो जाता है।

नट—अजी, ऐसों को तो अति कुटिल कहना चाहिये। क्योंकि—

> सता सियहु को दोष दे, जन जब करत अनीति;
> अपर तियन की जगत मे, को करिहैं परतीति।
> केवल निंदा मूल तिन, राक्षस घर को वास,
> अनल परीच्छहु मे तनक, नाहि लोगन विसवास।

राम के कान मे इस कलक की भनक पड़ जाने से अनर्थ हो जाने की सम्भावना का सूत्रधार इस प्रकार वर्णन करता है—

सूत्र०—जो कहीं उड़ते-उड़ते इस चर्चा की महाराज के कान मे भनक भी पड़ गई तो बड़ा ही अनर्थ हो जायगा।

* * *

इसी प्रकार की चेष्टा सीता-परित्याग को न्याय सगत

हिन्दी की सर्वश्रेष्ठ मासिक पत्रिका

माधुरी के विशेषांक के लिये

कुछ विद्वानों और प्रेमियों की सम्मतियाँ:—

[क्रमागत]

श्री० शुकदेवबिहारीजी मिश्र, रायबहादुर, दीवान छत्रपुर स्टेट.—

I have gone through the special issue of 'Madhuri'. It fulfills all expectations. Many new entries have been added. *Both in matter and form the magazine excells all its contemporaries.* The price is very admissible in comparison to its size.

श्री० पद्मसिंहजी शर्मा, काव्य कुटीर, चाँदपुर.—

'माधुरी' का विशेषांक आपने बहुत बढ़िया निकाला है, इस पर मैं प्रेमचंदजी को तहेदिल से मुबारकबाद और पं० कृष्णबिहारीजी मिश्र को हृदयान्तस्तल से बधाई और साधुवाद कहता हूँ। ऐसा सर्वांग-सुन्दर विशेषांक हिन्दी में देखने में नहीं आया। समालोचकों की यह राय सचमुच सच है, इसमें माशाभर मुबालगा और रत्तीभर अत्युक्ति नहीं है। इस मैदान में आप बाज़ी मार ले गये, हरीफ़ भी हार मानने को मजबूर होंगे।

श्री० अमरनाथ झा, एम० ए०, प्रोफ़ेसर, इलाहाबाद यूनिवर्सिटी —

Your special number is worthy of the 'Madhuri' and worthy of you. *It upholds its well established reputation of being one of the most attractive of Hindi Journals.*

श्री० गयाप्रसादजी शुक्ल 'सनेही', कानपुर:—

'माधुरी' का विशेषांक देखकर चित्त अत्यन्त प्रसन्न हुआ। इसने जैसे अपने बाह्यसौंदर्य से पिछले हिंदी के सभी मासिक पत्रों को मात कर दिया है, वैसे ही इसके लेख और टिप्पणियाँ भी गंभीर हैं।

श्री० शिवनन्दनसहायजी, आरा.—

इस बार 'माधुरी' ने नवीन सौंदर्य छटा के साथ विशेषांक रूप में अपने छठे वर्ष में पदार्पण किया है। इसका यह ढंग पहले कभी देखने में नहीं आया था, इसके रंगीन चित्रों में भी विशेष चमक पाते हैं। यह संख्या धुरंधर लेखकों और कवियों के ललित उपयोगी लेखों तथा मधुर रसीली कविताओं से पूर्ववत् भूषित है। अब इस पत्रिका में जीवन-सुधा, ज्ञान-ज्योति, कृषि-कौशल, व्यवसाय और वाणिज्य, सुभाषित और विनोद नाम के नूतन स्तंभ भी खोल दिये गये हैं। ये विशेष-विशेष श्रेणी के पाठकों के लिए निश्चय लाभदायक होंगे।

श्री० यात्रिकत्रय, लखनऊ:—

'माधुरी' के विशेषांक के लिये आपको जितनी बधाइयाँ दी जायें, वे सब थोड़ी ही हैं। हमारे विचार से यदि यह कहा जाय कि इतना सुन्दर एवं साहित्य-पूर्ण विशेषांक अब तक हिंदी की किसी पत्रिका का नहीं प्रकाशित हुआ, तो कोई भी अत्युक्ति नहीं है। 'माधुरी' के संपादकों से जैसी आशा की गई थी, वैसी ही कृति देखने को मिली। नये स्तंभ अत्यंत उपयोगी हैं। हमें कोई संदेह नहीं है कि नये संपादकों द्वारा 'माधुरी' की उन्नति दिन-दूनी रात-चौगुनी अवश्य होती रहेगी।

श्री० दयाशंकरजी दुबे, एम० ए०, एल्‌एल्० बी०, अर्थशास्त्र अध्यापक, प्रयाग विश्वविद्यालय:—

'माधुरी' का विशेषांक सचमुच बहुत ही अच्छा निकला। हिंदी में आज तक ऐसा सुन्दर, सुसंपादित तथा ललित लेखों से पूर्ण विशेषांक मेरे देखने में नहीं आया। इस उत्तम विशेषांक निकालने के लिए आपको हार्दिक बधाई है।

श्री० रमेशप्रसाद, बी० एस्‌सी०, सर्चलाइट, पटना —

'माधुरी' का विशेषांक तो आपने खूब ही निकाला। सभी पत्र-पत्रिकाओं के विशेषांकों से यह अच्छा निकला है। हिन्दी-साहित्य की यह स्थायी सम्पत्ति होकर रहेगा।

श्री० सूर्यकांतजी त्रिपाठी, 'निराला', कलकत्ता:—

आपका विशेषांक देखा। हिंदी में इतना सुन्दर विशेषांक पहले कभी नहीं देखा था।

श्री० गोपीवल्लभजी उपाध्याय, मालव-विद्यापीठ गुरुकुल, इंदौर:—

इस अंक को देखकर विश्वास हो गया है कि 'माधुरी' आपके द्वारा अक्षय यश संपादन करेगी। हिंदी की कोई पत्रिका इसकी समता नहीं कर सकती।

श्री० गिरिजादत्तजी शुक्ल, कानपुर:—

विशेषांक बहुत सुन्दर निकला है। इस सफलता के लिए बधाई देता हूँ।

श्री० जी० एस० पथिक, बी० ए०, बी० कॉम०—

इतने बड़े अंक का मूल्य केवल एक रुपया देखकर अत्यंत आश्चर्य हुआ। वर्तमान संपादकों ने कई नये स्तंभ खोलकर 'माधुरी' का क्षेत्र विस्तीर्ण कर दिया है। हमें विश्वास है कि पूर्व की भाँति ही 'माधुरी' बराबर उन्नति करेगी। इसके उत्साही प्रकाशक जिस प्रकार अतुल धन-व्यय कर रहे हैं, वह श्लाघनीय है।

श्री० रूपनारायणजी दीक्षित, बी० ए०, एल्० टी० —

'माधुरी' का विशेषांक मिला। देखते ही मैं तो चकित सा रह गया। कोई पत्र-पत्रिका इतनी सुंदर बनाई जा सकती है, इसका मुझे स्वप्न में भी ख़याल न था। इस अंक के निकालने में आपने कमाल कर दिया। इस अंक में इसमें जो अनेक नये स्तंभ खोले गए हैं, उनसे इसकी उपयोगिता पहले की अपेक्षा बहुत बढ़ गई है। इस संख्या में आपने बहुत मैटर दिया, पर तारीफ़ यह कि सब का सब उच्चकोटि का। इतने अच्छे लेखों का एक ही अंक में इतना बड़ा संग्रह हिंदी की पत्रिकाओं के इतिहास में शायद एकदम नई बात है। कविताएँ भी अच्छी हैं। हमें पूर्ण आशा है कि 'माधुरी' उत्तरोत्तर उन्नति करती जायगी।

श्री० बलदेवप्रसादजी मिश्र—

'माधुरी' का विशेषांक मिला। वास्तव में यह अपूर्व है। चित्रों और लेखों की संख्या तथा मधुरता में मानो होड़ सी लग रही है। ईश्वर करे, आपकी पत्रिका उत्तरोत्तर उन्नति करती जाय।

श्री० ज़हूरबख़्शजी, 'हिन्दी-कोविद':—

इस अंक की सजावट देखकर मैं तो दंग होगया। आपने पत्रिका की जैसी सुन्दर और अपूर्व सजावट की है—वैसी शायद किसी ने कल्पना भी न की होगी। इतना भारी, इतना सजीला विशेषांक आज तक किसी हिंदी पत्रिका के संचालक ने प्रकाशित करने का साहस नहीं किया। शायद भारतवर्षीय अन्य भाषाओं की पत्रिकाओं के विशेषांक भी इतने बड़े न निकले होंगे। फिर भी इतने बड़े विशेषांक का इतना अल्प मूल्य—केवल एक रुपया! इस विषय में आपका अनुकरण यदि अन्य पत्रिकाओं के संचालक करेंगे तो निस्संदेह हिंदी-संसार की सौंदर्य-श्री की वृद्धि होगी। इस अंक का संपादन इतना बढ़िया हुआ है, कि हम 'माधुरी' के उज्ज्वल भविष्य की कल्पना सहज ही कर सकते हैं। विश्वास तो यही होता है कि, और चाहे न हो, पर हिंदी-संसार संपादन-शैली में अवश्य ही आपका अनुकरण करेगा। वह हिंदी-संसार के लिये बहुमूल्य और उपयोगी वस्तु होगी। सच पूछा जाय, तो इसांक पढ़ लेने से पाठकों को समझ लेना चाहिए कि हमारे ६॥) वसूल हो गये, और 'माधुरी' की विशाल जिल्दें मुफ़्त में ही प्राप्त हो गईं। चित्रों का चुनाव भी परम मनोहर है, पवित्र भावों का उद्रेक करने वाले भी हैं। इस प्रकार के चित्र शायद ही किसी हिंदी-पत्रिका में निकले हों। हस्तलिपियाँ प्रकाशित कर बड़ा ही उत्तम कार्य किया है। असल बात तो यह है कि आप सब से बाज़ी मार ले गए और बहुत ऊँचे गए हैं। इससे अधिक क्या कहूँ।

श्री० श्रीगोपालजी नेवटिया, सुखनिवास, बंबई:—

विशेषांक के दर्शन हुए। किसी भी पत्रिका का ऐसा सुन्दर विशेषांक प्रकाशित नहीं हुआ। यह 'माधुरी' की भावी श्रेष्ठता की द्योतक है।

श्री० रामनाथलालजी 'सुमन', सौरभकुटीर, काशी —

'माधुरी' का विशेषांक अपने साथ मादकता की भी काफ़ी सामग्री लाया है। विरोधियों के लिए यह साकार उत्तर होगा। लेखों का चुनाव बहुत सुंदर हुआ है। चित्रकला की आधुनिक परिभाषा के अनुसार चित्र बहुत सुन्दर हैं। अनेक कला-विशारदों ने तारीफ़ की है।

श्री० अनन्तबिहारीजी माथुर एम० आई० एस० ए० 'कविरत्न', ग्वालियर —

वास्तव में ऐसा सुन्दर विशेषांक आज तक किसी भी पत्र ने नहीं निकाला था। इसमें एक नहीं दर्जनों विशेषताएँ हैं, कहाँ तक गिनावें। सुन्दर छपाई सफ़ाई देखकर मन मुग्ध हो गया। सुनहरी छपाई तो बस ग़ज़ब ही हो रही है। इस वर्ष से जो आपने नवीन-नवीन अनेक कालम और बढ़ाए हैं, उनसे भविष्य में समाज की अच्छी सेवा की जा सकेगी। पर सस्तेपन में तो आपने कमाल ही कर दिखाया। देखकर हृदय नाचने लगा।

श्री० चन्द्रमनोहरजी मिश्र, बी० ए०, एल्-एल्० बी०, फ़तेहगढ़ —

I am extremely delighted to go through your Madhuri Special Issue. *It has excelled its previous style in various ways.* The new sub-divisions have added to the utility as well as beauty of the Magazine. The Editorial Notes themselves bespeak of Editors' ability. *It is hard to call it inferior to any English Magazine in preciseness and straightforwardness. The Madhuri is sure to make its mark on the living literatures of the world*

श्री० गुरुस्वामीजी, विलासपुर, सी० पी०:—

'माधुरी' का विशेषांक देखकर चित्त बहुत प्रसन्न हुआ। धार्मिक, सामाजिक, ऐतिहासिक साहित्यिक संबंधी सब प्रकार के सुन्दर रंगीन चित्रों का समावेश है। दूसरी पत्रिकाओं को 'विशेषांक' निकालते समय 'माधुरी' के इस विशेषांक का अनुकरण करना चाहिए।

श्रीमती केशरकुमारी देवी 'हिंदी-रत्न', अध्यापिका, झालरापाटन, राजपूताना:—

'माधुरी' का श्रावण मास का विशेषांक देखकर मुझे हज़ार गुना हर्ष हुआ। यह कहने में लेशमात्र भी सन्देह नहीं होता कि इन सब हिंदी-पत्रिकाओं में 'माधुरी' का नंबर बढ़ा हुआ है। मुझे यह पूर्ण आशा होगई है कि हमारे हिंदी-साहित्य-भंडार का इस 'माधुरी' जैसी सर्वांग-सुन्दर पत्रिका से बड़ा उपकार होगा।

श्री० हास्यरसाचार्य 'अलबेला' कानपुर —

जो निकली 'माधुरी' उसमें गज़ब की माधुरी निकली;
मधुरता में ये बिलकुल कृष्ण ही की बाँसुरी निकली।
किसी ने भी जो अपनी तान इसके सामने छेड़ी;
बहुत भद्दी अँची उसकी, सिहायन बेसुरी निकली।
हज़ारों इसके हैं तेगे अदा से होगए बिस्मिल;
सिरोही निकली, ये ख़ंजर, कि पैनी ये छुरी निकली।
हितैषी ख़ुश हैं, पर सर पीट कर हासिद ये कहते हैं—
बुरी निकली, बुरी निकली, बुरी निकली, बुरी निकली।

श्री० शिवपूजनसहाय, संपादक, बालक, लहरियासराय —

'माधुरी' की लोकप्रियता बढ़ रही है। डाक-रोग, पुनर्जन्म, भत आदि लेख बड़े मनोरंजक हैं। समाचार तो देखने ही योग्य है। सर्वांगसुन्दर विशेषांक के लिए बधाई।

श्री० शिवनारायणजी मिश्र भिषग्रत्न, कानपुर:—

'माधुरी' का विशेषांक 'माधुरी' के योग्य ही निकला है, और वह संपादकों के परिश्रम, विद्वत्ता और ज्ञान का प्रतिबिंब है तथा प्रबंधकों और प्रकाशकों की दक्षता तथा सुरुचि का द्योतक है। संपादनशैली उत्तरोत्तर उन्नत होती जा रही है। मुद्रण प्रबंध की विशेषता की छाप उसके प्रत्येक चित्र और पृष्ठ पर दिखलाई पड़ रही है। समष्टि रूप से 'माधुरी' का यह विशेषांक सुन्दर, सर्वांगपूर्ण, और जहाँ तक मुझे स्मरण है, हिंदी के लिए नई दिशा का प्रदर्शक है।

श्री० गोपीनाथ वर्मा, जमशेदपुर.—

यों तो 'माधुरी' की प्रत्येक संख्या दूसरी और और मासिक पत्रिकाओं की तुलना में विशेष संख्या के रूप में रहती है, किंतु, इस विशेष संख्या ने तो सोने में सुगंध मिला दिया।

श्री० अयोध्याप्रसादजी वाजपेयी, 'कविरत्न', 'सेवक', कानपुर:—

'माधुरी' का विशेषांक देखा, तबीअत फड़क उठी। टाइटिल की तड़क-भड़क, चित्रों की छटा, लेखों का चुनाव ग़ज़ब का हुआ है। कुछ मान्य कवियों की कविताएँ सुन्दर ढंग से छापकर आपने कमाल कर दिया, आँखें चित्र देखते-देखते तृप्त नहीं होतीं। ऐसा सुन्दर, अद्वितीय अंक निकालने के लिये अध्यक्ष, प्रबंधक तथा संपादक महाशय बधाई के पात्र हैं। मूल्य १) तो न्योछावरमात्र है।

श्री० देवीप्रसादजी गुप्त 'कुसुमाकर', सुहागपुरः—

'माधुरी' की सजावट, आकार-प्रकार, सुन्दरता और शृंगार देखकर चित्त प्रसन्न होगया। पहले की अपेक्षा इस अंक में कई स्तंभ अधिक हैं। वैसे तो 'माधुरी' में उच्च श्रेणी की सारयुक्त और पठनीय सामग्री सदा से रहती चली आई है, और इसी कारण यह लोकप्रिय भी हुई है, किंतु इस अंक में लेखों और कविताओं के चुनाव और संकलन की ओर विशेष ध्यान दिया गया है और उनमें अध्ययन और मनोरंजन की यथेष्ट सामग्री है।

श्री० जगदम्बाप्रसादजी मिश्र 'हितैषी', कानपुर—

सचमुच 'माधुरी' का यह विशेषांक बहुत ही सुन्दर निकला। विद्वत्तापूर्ण लेख, गंभीर टिप्पणियाँ, सरस कविताएँ मन को मोह लेती हैं। छपाई सफाई का तो कहना ही क्या? चित्र तो चित्रकला के जीते जागते नमूने ही हैं। अंक सर्व प्रकार बाह्य-अभ्यंतर से सुन्दर है।

श्री० शिवसिंहजी, मुरवा —

मधुरता 'माधुरी' मैं कोऊ पावै।
याके अगनित भावभरे सब कबलौं हम गुन गावैं;
भव्य-भाव-भूषित लेखादिक, कविता रुचिर सुहावैं।
हिंदी बिंदी, सरस सलोनी रसिकन को उरझावैं;
कृष्णविहारी प्रेमचंद की प्रतिभा हिय हुलसावै॥

श्री० ज्वालाप्रसादजी शुप्त, चिड़ावा, राजपूताना—

आपका 'माधुरी' का विशेषांक मिला। पढ़कर बहुत प्रसन्न हुआ। अंतरंग एवं बहिरंग दोनों ही आशातीत सुंदर और मनमोहक निकले। आपका यह विशेषांक हिंदी के स्थायी साहित्य की एक बहुमूल्य वस्तु है। आशा है, आप महानुभावों द्वारा हिंदी-साहित्य का एक महान् उपकार होगा। आपका यह पावन प्रयास सर्वथा स्तुत्य और अभिनंदनीय है।

श्री० रामविहारीजी तिवारी, एम० एल० सी० तथा मंत्री, आर्यसमाज, लखनऊ.—

लेख बहुत ही उत्तम तथा वैज्ञानिक भावों से भरे हुए हैं। कविताएँ बहुत ही सुन्दर तथा सरस हैं। हिन्दी-साहित्य के प्रचार में आपकी पत्रिका विशेष भाग ले रही है। इसके लिए हिन्दी-प्रेमी जनता को 'माधुरी' के संचालकों का विशेष कृतज्ञ होना चाहिए। मुझे पूर्ण आशा है कि भविष्य में आपकी पत्रिका उत्तरोत्तर उन्नति करेगी तथा मातृभाषा की सेवा करने में भली प्रकार समर्थ होगी।

सहयोगियों की सम्मतियाँ

आज— पिछले चार-पाँच महीनों से इसके नूतन सम्पादकों ने भी इसे समुन्नत बनाने में कम परिश्रम नहीं किया है। यह विशेषाङ्क ही इसका प्रमाण है। हमें पूर्ण आशा है कि आप लोगों के सम्पादकत्व में पत्रिका और भी अधिक उन्नति कर सकेगी और यदि आप लोगों को अपने कार्य में इसके उत्साही प्रकाशक का पूर्ण सहयोग प्राप्त होता रहा तो, हिन्दी-संसार में शीघ्र ही यह एक विशेष स्थान प्राप्त कर लेगी। इस पत्रिका में व्रजभाषा की कविता का भी अच्छा आदर किया जाता है। यह संतोष की बात है कि अन्य पत्रिकाओं की अपेक्षा इसमें प्राचीन कवियों की अच्छी चर्चा रहती है, यह इसकी एक विशेषता है। इसका श्रेय पत्रिका के काव्य मर्मज्ञ सम्पादक श्री कृष्णविहारीजी मिश्र को ही है। इसके अतिरिक्त साहित्य-विषयक अन्य चर्चा भी इसमें पर्याप्त मात्रा में दृष्टिगोचर होती है। किन्तु इससे कोई यह न समझे कि इसमें केवल साहित्यानुरागियों तथा काव्यप्रेमियों के ही काम की बातें रहती हैं। वस्तुतः महिलाओं, बालकों, दार्शनिकों, वैज्ञानिकों, इतिहास-प्रेमियों इत्यादि प्रायः सभी को अपना-अपनी रुचि के अनुसार

बहुत कुछ सामग्री इससे मिल सकती है। विविध रंगों से विभूषित सुन्दर आवरण पृष्ठ के अतिरिक्त छः रंगीन तथा कई सादे चित्र इस अंक में हैं। इसमें संदेह नहीं कि इसे सर्वांगसुन्दर बनाने की जो चेष्टा की गई है, वह बहुत कुछ सफल हुई है।

कर्मधार—मानवी-संसार को 'माधुरी' का यह चित्र सम्पादकों की सुरुचि का परिचायक है। इस सुन्दर विशेषाङ्क के सम्पादन प्रकाशन के लिये सम्पादक-मण्डल एवं नवलकिशोर प्रेस के स्वामी प्रशंसा के पात्र हैं।

Indian Daily Mail—The beautiful magazine now begins its sixth year with this special Srawan number. It always contains, and in this number too, thoughtful articles and poems by the foremost writers of the day with special features for children and others. The illustrations, particularly the coloured ones are very beautiful reproductions and we are very glad to say that the time passed in reading Madhuri is never lost. We heartily commend this magazine to all lovers of Hindi. The price of Re. 1/- for this special number is very reasonable.

बंगवासी—हिन्दी संसार में 'माधुरी' ने जो प्रतिष्ठा प्राप्त की है, उसके अनुरूप ही यह विशेषांक भी है। हिन्दी के लब्धप्रतिष्ठ लेखकों तथा कवियों के उत्तमोत्तम लेख तथा भावपूर्ण एवं सरस कविताओं से यह अंक विभूषित है। यह कहने में अतिशयोक्ति न होगी, कि 'माधुरी' ने जैसा यह विशेषाङ्क निकाला है, वैसा पहले हिन्दी संसार में किसी ने नहीं निकाला था। सारांश यह, कि हिन्दी में 'माधुरी' जैसी सर्वश्रेष्ठ मासिक पत्रिका है, वैसा ही इसका विशेषाङ्क भी सर्वोत्तम हुआ है। इसका छपाई-सफ़ाई और सुन्दरता के सम्बन्ध में तो कुछ कहना ही नहीं। किन्तु इतने पर भी होनेपर भी इस अङ्क का मूल्य केवल एक रुपया रखा है!

विश्वमित्र—ऐसा बढ़िया विशेषाङ्क निकालने के लिये इसके विद्वान् सम्पादकद्वय पं० कृष्णबिहारीजी मिश्र तथा श्री प्रेमचन्दजी को बधाई है।

विद्या—'माधुरी' हिन्दी-संसार की पत्रिकाओं में ऊँचा स्थान रखती है। लेख अपने नामानुरूप साहित्य, समाज, धर्म, दर्शन, इतिहास, कृषि-विज्ञान, आरोग्यशास्त्र प्रभृति सब विषयों के दिए गए हैं और सभी अपने-अपने विषय के मर्मज्ञों के लिखे हुए हैं। अन्तरंग की ही तरह इसका बहिरंग भी नयनाभिराम हुआ है। सुन्दर अक्षरों में बढ़िया आर्ट पेपर पर तथा तिरंगे चित्रों की तरह कविताएँ छापकर तो 'माधुरी' ने हिन्दी-संसार में एकदम युगान्तर हो कर दिया है। यह अंक पिछले सब विशेषांकों से सुन्दर एवं हिंदी के पत्रों के अन्यान्य विशेषांकों का शिरमौर कहा जा सकता है। 'माधुरी' ने हिन्दी-जगत के सम्मुख अपना यह अधिकार सिद्ध कर दिया है कि, उच्चकोटि की साहित्यिक पत्रिका के नाते प्रथम पद पाने के लिए वह सर्वथा योग्य है। इस सफलता के लिए हम सम्पादक बन्धुओं को हार्दिक बधाई देते हैं।

वर्तमान—हिन्दी-साहित्य की प्रख्यात पत्रिका 'माधुरी' का यह विशेषांक है, और उसके नाम के अनुरूप ही निकला है। छपाई सफाई और तड़क-भड़क में तो यह नयनाभिराम है ही, साथ ही लेख भी उच्चकोटि के हैं। संक्षेप में विशेषांक बहुत अच्छा रहा, जिसके लिए सम्पादक और प्रकाशक धन्यवादार्ह हैं। पत्र-पत्रिकाओं से प्रेम रखने-वालों को कम-से-कम विशेषांक के दर्शन अवश्य करना चाहिये। १) मूल्य भी उचित ही है।

आलोक—श्रावण का अंक विशेषांक है। आजतक ऐसा उत्तम विशेषांक किसी हिन्दी पत्र-पत्रिका का नहीं निकला। जैसे इसके मनोहर तिरंगे चित्र हैं, वैसे ही उत्तम, गम्भीर तथा गवेषणापूर्ण लेख हैं। इसने प्रसिद्ध कवियों की कविताओं को आर्ट पेपर पर छापकर मान प्रदान करने का नया मार्ग खोला है। कुछ नये स्तम्भ भी खोले हैं।

(क्रमशः)

'माधुरी' का 'सुधा' से कोई संबंध नहीं !

प्रेमी पाठक नोट कर लें !

"माधुरी के ग्राहक बनकर दूसरी हिन्दी-पत्रिका लेने की ज़रूरत नहीं।"

'माधुरी' के ग्राहक नीचे बार्डर में दी हुई सूचना से सावधान रहें !

हिन्दी संसार में 'माधुरी' सर्वश्रेष्ठ है।

इसके पाठ्य-गद्य तथा चित्र अन्यत्र न मिलेंगे।

वार्षिक मू० 6॥), छः मास का 3।)

गंगा पुस्तकमाला कार्यालय,
२१ ३० अमीनाबाद पार्क,
लखनऊ, ८-८-२७ ई०

प्रिय महाशय !

आपका पत्र मिला। धन्यवाद।

इस संबंध में निवेदन यह है कि, हम लोगों ने माधुरी से अपना संबंध तोड़ दिया है और अब शीघ्र ही उससे भी उच्च कोटि की पत्रिका 'सुधा' के द्वारा आप लोगों की सेवा करने का निश्चय कर लिया है। अतएव कृपाकर यह लिखिए कि आप 'माधुरी' के ग्राहक बनना चाहते हैं या नई पत्रिका के। हमें आशा है आप लोगों की कृपा से हम बहुत शीघ्र ही नए रूप से हिन्दी की सेवा करने में समर्थ होंगे। सुधा की पहली संख्या निकल गई है। वार्षिक 6॥) अग्रिम है। माधुरी से भी यह उत्कृष्ट निकली है।

भवदीय—
(हस्ताक्षर) दुलारेलाल
संपादक और संचालक

'माधुरी' के विशेषांक ने हलचल मचादी !

चारों ओर से एक ही आवाज़—

"'माधुरी' हिन्दी में सर्वश्रेष्ठ पत्रिका है।"

नोट—माधुरी के ग्राहक ऊपर बार्डर के अंदर दी हुई गंगापुस्तकमाला तथा 'सुधा' कार्यालय की सूचनाओं से सावधान रहें।

श्रीमती धर्मपत्नी कुँवर बलवन्तसिंहजी तथा अन्य सैकड़ों ग्राहकों ने इस तरह की शिकायतें भेजी हैं कि "मैंने 'माधुरी' माँगी थी, पर मुझे सुधा भेजी गई, या सुधा लेने के लिए पत्र लिखा गया"। बात यह है कि पोस्ट विभाग की गड़बड़ी से या पते में 'माधुरी' गंगापुस्तकमाला कार्यालय लिखे होने से पत्र वहाँ पहुँच जाते हैं और तब यह कारवाई होती है। ग्राहकों की जानकारी के लिए हम 'सुधा' आफिस के कार्ड की नक़ल ऊपर दे रहे हैं, जो हमारी ग्राहिका ने हमारे पास भेजा है। अन्य लोगों के पास भी ऐसे ही पत्र पहुँचे होंगे। प्रेमी पाठक नोट कर लें कि 'गंगापुस्तकमाला' या 'सुधा' से हमारा कोई संबंध नहीं है। माधुरी से बढ़कर इस समय कोई हिन्दी पत्रिका नहीं है। उन्हें सीधे नीचे पते पर पत्र-व्यवहार करना चाहिए।

पता—मैनेजर, 'माधुरी' कार्यालय, लखनऊ।

जनक—अच्छा, तो कथा कहाँ तक बन गई है ?

लव—लोगों के मिथ्या कलंक लगाने के भय से घबड़ाकर राजा ने यज्ञान्यजा भगवती सीता को वनवास दे दिया, और शीघ्र होने वाले प्रसव की वेदना से व्याकुल उस बेचारी को वन में अकेली छोड़ लक्ष्मण फिर लौट गए—बस, यहीं तक समाप्त ।

लव की उपर्युक्त बातचीत से यह साफ़ प्रकट होता है कि उसकी राय में राम ने न्याय से नहीं बल्कि घबड़ाकर सीता को वनवास दे दिया । क्या इसको हम लव के गुरु वाल्मीकिजी की सम्मति नहीं मान सकते ? जनक के लिये तो राम का सीता-परित्याग एक घोर वेदना है । उनको दुःखी बनाता है । इस दुःख से शांति पाने के लिये वे सन्यास ले लेते हैं, और तप में लीन हो जाते हैं पर, तब भी उनको सीता का दुःख रह-रह कर एक अजीब वेदना दे जाता है—

> सोचहु सुता की विरह सों ता सदय में जिन साल ।
> छिप होत आनाथ न यों ... दे लिया विकराल ॥
> बालि दिनाकहु ... मम शोक क्रोध विशाल ।
> ... आरो ... सादर साल ॥

उनके हृदय में सीता का परित्याग करके भी राम का प्रजा-पालन करने की दुहाई देना ऐसा खल रहा है, यह उनके उस प्रश्न से, जो कौशल्याकी कुशल पूछने के लिये किया है, भलीभाँति प्रकट हो जायगा ।

जनक—आर्य गृष्टि प्रजा के पालन करने वाले महाराज की माता तो कुशल से है ?

कंचुकी—(आप-ही-आप) आज तो सचमुच ही हम सबको लज्जित होना पड़ा । देखिए 'प्रजापाल' शब्द इन्होंने किस व्यंग के साथ कहा है ।

लव की बातों से तो जनक का दुःख और भी बढ़ जाता है । साथ-ही-साथ राम और अयोध्यावासियों के प्रति उनका क्रोध भी प्रज्वलित हो उठता है ।

जनक—हाय, दुष्ट पुरवासियों ने तो अपनी मर्यादा छोड़ दी, और रामने भी कुछ विचार न करके शीघ्रता कर डाली, यह आश्चर्य है—

> निरत वज्र सम घोर यह, सिय संग अनरथ पात ।
> आलोचन मम आत प्रबल, क्रोधानल बढ़ि जात ॥
> समर माँहि कर चाप गहि, अथवा दै निज श्राप ।
> अन्याई को हनि अबहिं, उचित हरन संताप ॥

हमारी समझ में पुरवासियों ने अपनी मर्यादा चाहे छोड़ी हो चाहे नहीं, पर राम ने जल्दी में वह कार्य कर डाला, जिससे इतना ही नहीं कि उनके मुख पर बहुत काल तक वज्राघात हुआ, वरन् वासंती के शब्दों में एक ऐसा अजस भी पड़ा, जिसकी समानता करने वाला और कलंक नहीं । पर कालिदास के दुष्यंत इस दोषारोपण से साफ़ बरी हो जाते हैं । इन दोनों नाटकों में यह बड़ा भारी भेद है । शकुन्तला और सीताजी के चरित्र के बारे में फिर कभी लिखा जायगा ।

चन्दनलाल गर्ग, बी० ए०, एल० टी०

व्याधिक

> गहन-विपिन की अधित्यकापर—
> कौन बैठ गाता है गीत ।
> थिरक रहा है वन-निकुंज में—
> मधुर मनोहर-स्वर संगीत ॥
> उथल पुथल क्या स्वर मचाया—
> छेड़ रागिनी रागालाप ।
> निकट खड़े हैं वन मृग आकर—
> भूल गये तन की सुधि आप ॥
> अहह तुणीर तीर तीखे से—
> देख गिराया मृग-दल चोर ।
> किया कदाचित स्वर लहरी का—
> निष्ठुर वधिक अबोध अघोर ॥

'विमल'

सौरभ-सान्त्वना

"किन दोषों से बना हुआ हूँ तुच्छ हाय ! जगती-तल में !
उस पर भी स्वाधीन नहीं बन्दी हूँ फूलों के दल में !
बीती जाती हैं वसन्त की घड़ियाँ भगवन् ! हूँ लाचार !
अन्त हो गया है उत्सव का, शेष एक मूर्च्छित आकार !
निपट निदयी मलय-पवन भी मुझे हाय ! अब रहा बिसार !
चूर-चूर होरहा धूल में आज पतित हो मेरा प्यार !
कहाँ छिपाकर धरूँ न जिससे शुष्क वेदना का हो हार !
हे मेरे अज्ञात-देव ! अब खटकाऊँ जा किसका द्वार ?"
"मत घबड़ा रे तुच्छ-जीव ! वह समय शीघ्र ही आएगा,
जब तू अपने को अनन्त-जीवन में उड़ता पाएगा ।"

'प्रभात'

कवि - चर्चा

१ सुदामा-चरित्र

कविता-भूमि भारत के अनेकानेक विषयों में से 'सुदामा-चरित्र' भी एक ऐसा विषय है, जिसकी ओर कविगण आकर्षित हुए हैं। हिन्दी ही में नहीं, उर्दू में भी कवियों ने सुदामा की सुन्दर कथा को पद्य-बद्ध किया है। भारत भक्ति-भूमि है, और सुदामा का चरित्र भक्ति और भक्त-रंजन गोपाल की निस्सन्देह दया का परिपूर्ण उदाहरण है। भक्तजन भगवान के गुण गाने से कभी नहीं थकते। ऐसी दशा में कोई आश्चर्य नहीं, यदि भक्त कवियों ने पुनः-पुनः अपनी-अपनी प्रतिभानुसार सुदामा की दीनता और भगवान की भक्ति का वर्णन कर अपनी लेखनी को पुनीत किया हो।

जिस प्रकार उर्दू में सर्वोत्तम सुदामा-चरित्र श्री मुंशी गौरीसहाय का है, उसी प्रकार हिन्दी में नरोत्तमदासजी का सुदामा चरित्र सर्वश्रेष्ठ है। कौन ऐसा हिन्दी-प्रेमी है, जो नरोत्तमदासजी की सरस तथा कोमल पदावली से परिचित नहीं है? नरोत्तमदास का स्थान हिन्दी में उनकी स्वाभाविक और प्रसादपूर्ण पंक्तियों के कारण बहुत ऊँचा है। छोटे से ग्रंथ में कवि ने करुण रस की गंगा बहा दी है। सुदामा-चरित्र लिखनेवाले और कवि नरोत्तमदास के बहुत पीछे रह गये हैं। जितने सुदामा-चरित्र प्रकाशित हो चुके हैं, उनमें से कोई नरोत्तमदास के सुदामा-चरित्र की समता का नहीं है। किन्तु हाल में मुझको एक हस्तलिखित सुदामा-चरित्र अपने शिष्य मित्र पं० विश्वंभरनाथ वाजपेयी, मैनेजर कमिश्रार से मिला है, जिसके कुछ पद्य नरोत्तमदास की पंक्तियों की समता करने का साहस करते हैं। जहाँ तक मुझको ज्ञात होता है, यह पुस्तक अभीतक प्रकाशित नहीं हुई है। इस पुस्तक के प्रणेता हरदोई प्रदेशान्तर्गत पालीग्राम निवासी कवि मनराखनलाल वाजपेयी हैं।

पुस्तक में प्रणेता के विषय में कोई छन्द नहीं है। ग्रंथ का पूर्वार्ध पुराना लिखा हुआ मालूम होता है, किन्तु उत्तरार्ध इधर दस या पाँच साल का लिखा हुआ है। पुस्तक के अंत में एक दोहा है, जिससे यह पता लगता है कि पुस्तक को लिखे हुए अभी केवल दो वर्ष हुए हैं—

संवत दृग वसु अंक भू पौष शुक्ल बुधवार।
आठै तिथि कवि लाल यह कीन्हो ग्रंथ तयार॥

इस दोहे के अनुसार यह पुस्तक विक्रमीय संवत् १९८२ में लिखी गई, क्योंकि दृग २ हैं, वसु ८ हैं, अंक ९ हैं, और भू १ है, और २८९१ को उलट देने से १९८२ प्राप्त होता है। और यह ही पुस्तक के लिखे जाने का संवत है। अवश्य यह दोहा लिपिकार का है, क्योंकि इसमें "लाल" उपनाम आया है, और ग्रंथ में इस स्थान को छोड़कर अन्यत्र कहीं भी कवि ने "राखन" उपनाम के अतिरिक्त "लाल" उपनाम का प्रयोग नहीं

किया है। ग्रंथ में बहुत से दोहे भी हैं, किन्तु उनमें भी कहीं "लाल" उपनाम का प्रयोग नहीं हुआ है। अतः "लाल" और "राखन" में दोनों भिन्न व्यक्तियाँ हैं। ग्रंथ के अन्त में "लाल" ने एक कवित्त और पाँच दोहे अपने रखकर ग्रंथ को इस प्रकार समाप्त किया है। बहुत संभव है, यह "लाल" "राखन" के कोई संबंधी अथवा मित्र हों।

राखन ने "सुदामा-चरित्र" अपने गुरु शिवगुलाम मिश्र के उपलक्ष्य में बनाया है, और यह बात उन्होंने निम्नलिखित छन्दों में इस प्रकार वर्णन की है —

बाजपेयी बरने सुदामा के चरित्र चारु,
सुनि के विचित्र-कथा साधु सुख मानैंगे।
जे हैं कुलदीपक महीपन के माननीय,
मंडित महान कवि पंडित प्रमानैंगे।
ज्ञान गेय गोनन के अधिक उदोतन के,
श्रोतन के श्रवन सुधा के रस सानैंगे।
हरि गुन गर्भित ग्रंथ की गँभीरताई,
शिवगुलाम सारिखे यसस्वी जन जानैंगे॥

आगे चलकर "राखन" ने अपने गुरु शिवगुलाम के बारे में लिखा है कि वे अब बड़े वृद्ध हो गये हैं और उनकी अवस्था सत्तासी वर्ष की हो गई है—"विद्या के विलासी अब भये बड़े वृद्ध हैं।" 'राखन' के गुरु शिवगुलाम हरदोई ज़िला पाली के रहनेवाले थे, यह बात राखन ने इस प्रकार कही है —

परसू के मिश्र शिवगुलाम गुरु ज्ञान वारे
पुरुष प्रमभवारे पलिहा प्रसिद्ध हैं।

यह ग्रंथ गुरु शिवगुलाम के लिये लिखा गया था, यह बात निम्नलिखित दोहे से विदित होती है —

हरिगुन गर्भित ग्रंथ यह कीन्हो जिनके अर्थ।
अर्थ समर्थन करन की ते शिवगुलाम समर्थ॥

"राखन" की कविता प्रसाद-रसपूर्ण है और उसमें थोमे यमक का विचित्र आनंद मिलता है। इस ग्रंथ में कहीं-कहीं पर हास्य रस का भी आनंद प्राप्त होता है। "राखन" ने अपने ग्रंथ के प्रथम दो छंद देववाणी संस्कृत में लिखकर फिर मूल ग्रंथ का प्रारंभ किया है। प्रथम के संस्कृत छंद नीचे दिये जाते हैं—

श्रीदामा नाम कृष्णस्य सहाध्यायी सखाऽऽभवेत्।
ब्रूम तच्चरित्र चारु सुहृदा हर्षहेतवे॥

विचिन्त्य वृन्दारकवृन्दवन्द्यम्
पादारविन्दद्वयमिन्दुमौलेः।
प्रसिद्धनाम्नो द्विजधर्मधाम्नो
ब्रूमो विचित्र चरित सुदाम्न॥

इसके पश्चात् कवि ने हिंदी में प्रार्थना की है—

बन्दि चरन ब्रजराज के वारिज वरन विचित्र।
सप्रुभि सुदामा विप्र को बरनौं चारु चरित्र॥

फिर कवि ने एक सुंदर छंद में सुदामा के ब्राह्मणत्व को वर्णन करके अपने ग्रंथ का प्रारंभ किया है। छंद नीचे उद्धृत है—

विद्या को विलासी ब्रह्मतेज को प्रकासी नित,
नमित निवासी निज नामही के ग्रामा को।
सुख को सुखी न जाहि दुख को दुखी न चित्त,
चाहत विभौ न नेकौ भौन और भामा को।
'राखन' सुकवि कहै ताहू पै रहोई रंक,
जापर प्रसन्न तो सनेही सत्यभामा को।
हरि नौ हिये को हर्ष करनो करन हू को,
बरनौं विचित्र चारु चरित सुदामा को॥

नरोत्तमदासजी ने अपने ग्रंथ के आदि में सुदामा का वर्णन केवल एक ही दोहे में करके वर्णन को समाप्त कर दिया है—

विप्र सुदामा बसत है, सदा आपने धाम।
भिक्षा कर भोजन करै, हृदय जपै हरिनाम॥

'राखन' ने सुदामा की दीनता और हीनता का कुछ विस्तृत वर्णन किया है, किंतु इसमें कुछ संदेह नहीं कि 'राखन' का वर्णन बहुत ही मार्मिक और वस्तुस्व-पूर्ण है—

मैलजटी दुपटी को दुकूल दयो शिर पै विन तेज की ताखी,
छूटै न खोम लगाइ के लोभ लटे पट मैं मड़रात है माखी।
"राखन" राखि कहो न कछू सब सामा सुदामा के भौन की भाखी,
कौन गनै टुटई टठिया लटई लोटिया सोऊ लाख की लाखी॥

कवि ने सुदामा की सारी संपत्ति का वर्णन कर दिया है, सुदामा के यहाँ सिवाय टूटी थाली और लाख-लखी लुटिया के अन्य दूसरी संपत्ति नहीं, किंतु सुदामा का हृदय रंक नहीं है। उसमें बड़ी संपत्ति भरी है, और वह संपत्ति है 'प्रभु पद प्रीति'। उसका भी वर्णन सुनिये—

जाकी जँजीरन सो जकरो जग माया सोऊ जगदीश की जीती,
शील सुदामा को साधु सराहत और असाधु करै विपरीती।

जानि परो जिय जोर जराहु को जोबन जोर वय कम बीती,
क़ूरन के कहे होन कहा परिपूरन है प्रभु के पद प्रीती ॥

नरोत्तमदासजी ने सुदामा की पत्नी का एक ही दोहे में बहुत सूक्ष्म, किंतु परिपूर्ण, वर्णन कर दिया है—

ताकी घरनी पतिव्रता गहै वेद की रीति ।
सलज सुशील सुबुद्धि अति, पति सेवा में प्रीति ॥

इन्हीं गुणों का "रत्नन" ने विकास में वर्णन किया है, उसको देखिये । पहले सुदामा की पत्नी का शारीरिक चित्र आपके सामने उपस्थित किया जाता है, उसको देखकर मानसिक चित्र देखियेगा—

बसन विहीन छुधा छीन दीन देखि द्विज,
दुख सों दलित होत आननवान भामा के ।
ताकी ततकाल ही मैं तन्दुल तयार होत,
तामें पट्टर लौं सँवैया सेरु सामा के ।
"रत्नन" सुकवि कहै याही अनुमान ही तें,
जानि लेहु सराजाम सकल सुदामा के ।
पीनरि की पहिरे पतीली नथ नासिका में,
पायन अनोट और भूषन न भामा के ॥

कवित्त का अन्तिम पद कैसा सजीव है । कवि ने सज्जनों के सामने सुदामा की भामिनी का फ़ोटो खड़ा कर दिया है । ऐसे ही गुणों के कारण कवि चित्रकार कहे गये हैं । वास्तव में कवि, चित्र तथा शिल्पकला—तीनों एक ही बात के भिन्न स्वरूप हैं । जिस कविता में जब चित्र का आनन्द प्राप्त हो, वह कविता अवश्य सजीव है । जिनके दृष्टि है, वह उसे देखकर अवश्य सुखी होंगे । सुन्दर शब्दों के जाल में दृष्टिवान को चित्रकार की हलकी पतली शलाका की स्वर्ण-रेखा का अनुभव हो सकता है, यदि शब्द-जाल किसी सजीव लेखनी से निकले हैं । 'रत्नन' के छन्द उनकी सजीवता के परिचायक हैं । कहीं पर 'रत्नन' ने अपने वर्णन को ढीला नहीं होने दिया, और चालाक चित्रकार की भाँति उसने कहीं पर एक रंग की अधिकता नहीं होने दी है । सुदामा की पत्नी के मानसिक गुणों को उसने इस प्रकार दिखलाया है—

जाकी गुनगीता गाय पुरी की पुनीता होती,
बनिता विनीता सती सीता-सी सयानी है ।
सारदा की सानी सोहै रानी रतिदेव कैसी,
जगत बखानी पति देवता प्रमानी है ।
"रत्नन" बखानै राजी रहत रमेश जापै,
देश देश विदित महेश मनमानी है ।
बोलि मृदुबानी लोक लाज मों लजानी मानी,
शील सों सुदामाजू की भामिनी भमानी है ॥

ऐसी कामिनी को पति के दुःख में दुःख है और पति के सुख में सुख । केवल पतिभक्ति ही उसके लिये जीवन का सार है । 'रत्नन' ने इस भाव को इन शब्दों में दिखाया है—

मिच्छा को न मर्म लोकलिच्छा को न शर्म जाके,
करै नित कर्म धर्माधर्म को धनी रहै ।
सेवै सब देवै मानि लेवै निज दैवै,
लेवै दारिद दुसह शीलसिंधु मैं सनी रहै ।
अन्तर न आवै सो निरन्तर निवाहै नेह,
फ़िकिर फ़िराक घर घेरत घनी रहै ।
प्रीति ही पुलित पतिसेवा में सुखित सदा,
द्विज को दुखे मा देखि दुखित बनी रहै ॥

आगे चलकर "रत्नन" ने उसी सुपत्नी के बारे में कहा है—"पूरो है परम पतिप्रेम निर्वाही चहै सेवत चरन अरविन्द ब्रह्मचारी को" । "रत्नन" ने सुदामा के घर की हीनता का वर्णन एक बहुत ही मार्मिक छन्द में किया है, और छन्द अपने ढंग का अनूठा है । सुदामा के यहाँ सदा एकादशी ही रहती है—

निधनी निकाम धन धनी की न धाम जहाँ,
ग्राम को निवासी बेश बश ते विचार है ।
होत न छुपास आसपास के मँझाए बिन,
परत न पार प्रात अजर अहार है ।
"रत्नन" बखान निराहार को नियम नाहिं,
बिना फलाहार रहिजात निशिसार है ।
एकादशी सहज सुदामा के सदन सदा,
पारन को द्यौस द्वादशी को दुसवार है ॥

अन्त की दोनों पंक्तियाँ बहुत ही सुन्दर हैं । वर्णन सहज और प्रसाद-रस-पूर्ण है । पत्नी के बहुत समझाने पर कि तुम द्वारिकानाथ से मिलने के लिये द्वारिका जाओ, सुदामा ने झुँझला कर कहा—

बैस बधुन की वहस के, सहस सिखावत सीख ।
तोहिं तृषा धन की मिलत, मोहिं न माँगे भीख ॥

सुदामा के ऐसा कहने पर उनकी पत्नी ने दुःखित होकर जो उत्तर दिया, उसका "रत्नन" ने ऐसा हृदय-ग्राहक वर्णन किया है कि पाठक को विवश होकर कहना

पड़ता है—"रासन" का वर्णन "नरोत्तमदास" के वर्णन से किसी भाँति न्यून नहीं है। जिस समय शृंगारी कवियों ने संयोग-कलरव और वियोग-व्याकुलता से साहित्य-संसार में विप्लव मचा दिया था, और चारों ओर वंशी की तान, विरह-व्यथा, मन्द-मुसकान, कान्ता-कटाक्ष, और रास-मंडल के अतिरिक्त और कोई विषय काव्योपयोगी समझा ही न जाता था, उस समय के अकृत्रिम, अलंकार-रहित, सीधे-सादे—किन्तु मनोहर और बरबस अपनी ओर चित्त को खींच लेनेवाले कविता-देवी के, रूप को देखकर उपासकों को बहुत कुछ आश्वासन मिलता है। धन्य हैं वे उपासक, जिन्होंने उस समय भी देवी के इस भोले, अकृत्रिम, वेशभूषा-रहित, निर्मल अथच प्रसाद-पूर्ण रूप की उपासना को ही उत्तम समझा। सुदामा की पत्नी ने दुःखित होकर, किन्तु साहस के साथ, सुदामा से कहा—

चित को चतुर जित तित तेरो आवे वहै,
　　नात हित ही की तो हितू को हटकत हौ।
द्वारिका के जाइवे की जिकिर जनाये पर,
　　नाथ दुहू हाथन सों माथ पटकत हौ।
पूजापाठ ही मे कन्त रहत प्रसन्न सदा,
　　बाजे बाजे चीस अन्नदू को अटकत हौ।
दखत दुखेमा दुख देखत न आवे मेरी,
　　मानत न सीख मीख ही में मटकत हौ॥

उदर भरे की जोपे गोत की मुदर होती,
　　गृह की गरीबी माँहि गालिब गठौती ना।
रावरे चरन अरविन्द अनुरागत हौ,
　　माँगत हौ दूध दधि माखन मठौती ना।
याहू ते कहो तो और होतो अनहोतो कहा,
　　साबुत दिखात कन्त काठ की कठौती ना।
छुधाछीन दीन बाल बालिका बसनहीन,
　　हेरत न होती देव द्वारिका पठौती ना॥

(असम्पूर्ण)

गुरुप्रसाद पाण्डेय

---

१. धर्म और नीति

चातुर्वर्ण्य-शिक्षा वेद-दृष्टि-समेता—लेखक, महामहोपाध्याय पंडित दुर्गाप्रसाद द्विवेदी; प्रकाशक और मुद्रक, नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ; मूल्य ३)

वर्तमान काल में परम प्राचीन सनातनधर्म पर चारों ओर से कठोर आक्रमण हो रहे हैं, सनातन हिंदू-समाज की प्राणभूत वर्णाश्रम-व्यवस्था पर मूलोच्छेदकारी कुठाराघात हो रहा है। कहीं प्रकाश रूप से जाति-पांत को तोड़ने के लिये मण्डल तैयार हो रहा है, तो कहीं साम्यवाद की घोषणा करके वर्णव्यवस्था को रसातल में पहुँचाने की चेष्टा की जा रही है। इधर एक तो वैसे ही कालचक्र के फेर से ब्राह्मण लोग अपने ब्राह्मणत्व के पथ से भ्रष्ट हो रहे हैं, जो कोई विरले यथार्थ ब्राह्मण बच गए हैं उन पर भी सर्वत्र आक्रमण हो रहा है, और भारत के इस आर्थिक तथा नैतिक पतन का पूरा-पूरा भार ब्राह्मणों के मत्थे मढ़ने की चेष्टा की जारही है। ब्राह्मणों पर इस प्रकार आक्रमण होने का यह प्रथम ही अवसर नहीं है। इतिहास से पता चलता है कि प्राचीन काल में भी ब्राह्मणों के मूलोच्छेद करने का भगीरथ प्रयत्न अनेक बार हो चुका है, बौद्ध और जैन संप्रदाय ने तो एक प्रकार से ब्राह्मणों के मूलोच्छेद करने में बहुत कुछ अंशों में सफलता भी प्राप्त करली थी, परन्तु जिस प्रकार भार्गव परशुराम के इक्कीस बार पृथ्वी-मण्डल को निःक्षत्रिय कर देने पर भी क्षत्रिय जाति अपना अस्तित्व स्थिर रख सकी, अपना बीज नष्ट नहीं होने दिया, उसी तरह ब्राह्मण जाति भीषण आक्रमणों को सहकर भी अपने को नष्ट होने से सदा से बचाती आरही है। परन्तु उस समय में और वर्तमान समय में बड़ा अंतर है। उन दिनों यदि ब्राह्मणत्व आक्रान्त होकर अपनी रक्षा कर सका, तो इसका प्रधान कारण यही था कि उस समय ब्राह्मणों में ब्राह्मणत्व का जोश था; उन्हें अपने सनातन ग्रन्थों के पठन-पाठन की सुविधा थी; सबसे बढ़कर उनमें वह उत्साह था जिसके कारण अनेक प्रकार से समाज और राज से सताए जाने पर भी उन्होंने अपनापन नहीं खोया—अपना बीज क़ायम रखा और समय आने पर फिर से अपनी विजय-वैजयन्ती फहरादी।

परन्तु आजकल गति कुछ विचित्र ही प्रतीत होती है। इधर, जब कि विपक्ष मण्डल वेद और पुराणों का अध्ययन कर रहा है, अपने पक्ष की पुष्टि के लिये प्रमाण उपस्थित करता है, तर्क के बल से अपने मत का प्रतिपादन करने की क्षमता रखता है, ब्राह्मणादि उच्च जातियाँ संस्कृत के नाम से भयभीत होती हैं, उसे अस्पृश्य समझ कर उसका दूर से ही परित्याग करती हैं। क्या यह शोचनीय नहीं है, कि इस समय कालेजों में संस्कृत पढ़ने वालों की संख्या कितनी न्यून हो रही है। जो अपने उच्च-वंश का गौरव रखते हैं, विवाह काल में जिनके

लिये ब्राह्मणत्व की उच्चता के नाते हज़ारों की थैलियाँ भी अपर्याप्त मानी जाती हैं, वही कुलीन ब्राह्मण युवक संस्कृत का तिरस्कार करते हैं। यही नहीं, संस्कृत के स्थान में फ़ारसी और उर्दू में अपनी योग्यता की पराकाष्ठा दिखाते हैं। जो लोग केवल प्राचीन परिपाटी से भी संस्कृत का अध्ययन करते हैं, वे भी वर्तमान समाज की नीति से प्राय अनभिज्ञ रहते हैं, और अपना बचाव करने की ओर बहुत कम सचेष्ट रहते हैं। ऐसी स्थिति में, जब कि धर्म का यथार्थ ज्ञान करानेवालों की संख्या अत्यधिक न्यून हो रही है, जब कि हम लोग इस बात की चेष्टा ही नहीं करते कि हमारे यहाँ के ग्रन्थों में कौन-कौन से अमूल्य रत्न भरे पड़े हैं, यदि हम दूसरों के काँच की चकाचौंध से चकित हो जायँ, तो इसमें आश्चर्य ही क्या है। प्राचीन धर्म की महत्ता जानने की यदि हम चेष्टा करें, यदि हम अपने प्राचीन धर्म को देशकालानुरूप बनाने का उद्योग कर सकें, यदि हम यह समझने लगें कि प्राचीन धर्म में कौन-कौन सी बातें प्रत्येक देश और काल के अनुकूल हैं और कौन-कौन सी विशेष-विशेष परिस्थितियों के लिये ही है, तो हम फिर भी अपने गौरव की रक्षा कर सकते हैं। यदि ऐसा न करेंगे तो हमारा अस्तित्व अवश्य ही काल-कवल में विलीन हो जायगा। अपने अस्तित्व को यदि हम बनाए रखना चाहें, तो हमारे लिये यह अत्यन्त आवश्यक है कि हम अपनी प्राचीन मर्यादा को समझें, अपने ग्रन्थों का अनुशीलन करके उनकी यथार्थ व्याख्या लोगों के समक्ष उपस्थित करें, देशकाल के अनुसार उनमें जहाँ संकीर्णता प्रतीत होती हो, उसका सामंजस्य करें और यथासाध्य उसके प्रचार की चेष्टा करें। हिंदूमात्र का प्राण है वर्णव्यवस्था। इसे खोकर यदि हमने राजनैतिक क्षेत्र में उन्नति भी कर ली तो वह उन्नति नहीं है। मनुष्यमात्र का परम पुरुषार्थ केवल ऐहिक सुख ही नहीं है। शरीर का ही भरण-पोषण हमारा ध्येय नहीं है। यह अवश्य है कि शरीर धारण के बिना पारमार्थिक-पथ का द्वार भी अवरुद्ध हो जाता है, यह मानते हैं कि 'शरीरमाद्यं खलु धर्म साधनम्' है परन्तु हमें यह भूलना न चाहिए कि शरीर साधनमात्र है। शरीर ही सब कुछ नहीं। आत्मा की उन्नति करना ही प्रधान लक्ष्य होना चाहिए। और शारीरिक उन्नति वहाँ तक अभीष्ट है, जहाँ तक वह आत्मा की उन्नति में बाधक न हो। 'Eat to live and not live to eat'—यह सिद्धांत यहाँ भी लागू होता है। भारतीयों का एक मात्र लक्ष्य आत्मा की उन्नति करना ही सर्वदा से चला आया है। यदि इस लक्ष्य को हमने खो दिया तो समझना चाहिए कि हमने भारतीयत्व खो-दिया, और भारतीयत्व खोकर यदि राजनीति के क्षेत्र में हमें सर्वस्व भी मिल जाय तो वह हमारे लिये अकिंचित्कर है। हमारी इस भारतीयता के यथार्थ स्वरूप का प्रतिपादन करना ही प्रत्येक भारतीय का पुनीत कर्तव्य होना चाहिए। परन्तु इस महान् कार्य के लिये अधिकारी वही हो सकता है जो संस्कृत-साहित्य से पूर्ण अभिज्ञ हो, वेदपुराण और धर्मशास्त्रों का जिसने यथाविधि अध्ययन किया हो, और साथ-ही-साथ जो अपनी कुशाग्रधिषणा के द्वारा वर्तमान प्रवाह की ओर भी लक्ष्यपात कर सके। इस पुनीत पथ में प्रवृत्त होकर उपकार करनेवाले महानुभाव यथार्थ में प्रणम्य हैं। ऐसे ही महानुभावों की चेष्टा से यह समाज फिर से अपना गौरव स्थापित करने में समर्थ हो सकता है। यह हर्ष का विषय है कि जयपुर महाराजाश्रित महामहोपाध्याय पण्डित दुर्गाप्रसादजी द्विवेदी ने 'चातुर्वर्ण्य-शिक्षा' के रूप में एक अनुपम रत्न हम लोगों के समक्ष उपस्थित किया है। सर्वसाधारण इस ग्रंथ-रत्न से समुचित लाभ उठा सकें, इसलिये नवलकिशोर प्रेस के अध्यक्ष महोदय ने इसे प्रकाशित करके अपनी गुण-ग्राहकता का परिचय दिया है, जिसके लिये वे सर्वथा प्रशंसा-भाजन हैं। पुस्तक संस्कृत में है। प्रारम्भ में मनुष्यता, विवेकिता और कर्तव्यता का विवेचन किया गया है। 'मनुष्यता' प्रकरण में आर्य, हिंदू इत्यादि नामों की विवेचना भी की गई है। इस समय भारतवर्ष में 'शुद्धि' को लेकर बहुत आंदोलन चल रहा है, अनेक लब्धप्रतिष्ठ विद्वद्गण उसके पक्ष और विपक्ष में अपना-अपना मत प्रकाशित कर चुके हैं। अनेक पण्डित, कम-से-कम देश की परिस्थिति पर विचार करते हुए, उसके समर्थक हो गए हैं। परन्तु द्विवेदीजी के समान तपस्वी ब्राह्मण केवल शारीरिक शुद्धि से ही किसी को शुद्ध मानने को कथमपि प्रस्तुत नहीं हैं। इनका मत है कि यथार्थ शुद्धि जो अभिप्रेत है, वह है अन्तःकरण की शुद्धि। जबतक अन्तःकरण की शुद्धि नहीं होगी, जबतक दूषित वासना का क्षय नहीं होगा, तबतक केवल 'फू'

कर देने से कोई शुद्ध नहीं हो सकता। वासना के क्षय के लिये तपश्चर्या अपेक्षित है। आप लिखते हैं—यदि नाम शुक्रशोणितद्वारेण संक्रममाणं कुष्ठादि पाट्कौसिक पिण्डं संक्रमते, महामारीप्रभृति वा शरीराच्छरीरान्तरं संचरति, उपदेशकस्य मनोबुद्ध्याहङ्कारविलसितं वाप्युपदेश्यस्य हृदयदेशमावृणोति, तदा यथाव्यवहार ससृज्यमानोऽपि देही कथमिविकहेलया लब्धातिशय अज्ञात, पूर्वावस्थां वा विन्देत? कष्टं भो. कष्टम्। अतएव पातकिनां संसर्ग्यपि पातकीति स्मर्यते (मनु०११।२४)। किं बहुना, अधुनापि राजकीयव्यवहारेषु ससर्गी दण्डधारामारोप्यते। इसका अर्थ यह है—'शुक्रशोणित के द्वारा संक्रामित होकर जब कुष्ठादि रोग छै कोश से बने पिण्ड में पहुँच जाते हैं, जब कि महामारी आदि रोग एक शरीर से दूसरे शरीर में संचरण कर जाते हैं, अथवा जब उपदेशक के मन, बुद्धि और अहंकार के प्रभाव उपदेश्य (शिष्य) के हृदय-स्थान में पहुँच जाते हैं, तब व्यवहारानुकूल संसृष्ट देहधारी एकदम कैसे अपनी पुरानी वासना को त्याग देगा, अथवा अपनी पूर्वावस्था को प्राप्त कर लेगा? यह बड़ा कठिन है। इसीलिये मनु आदि धर्मशास्त्रकारों ने पातकी के संसर्गी को भी पातकी बताया है। और कहाँ तक राजकीय व्यवहारों में भी अपराधी का संसर्गी भी दण्डनीय माना जाता है।' ये उद्गार वर्तमान शिक्षित-समाज को अवश्य ही कर्णकटु प्रतीत होंगे, परन्तु इसमें, हमारी समझ में, किसी को विप्रतिपत्ति नहीं हो सकती कि, जिस दृष्टि से यह कहा गया है वह आत्मा की उन्नति की दृष्टि से अवश्य ही बड़े महत्त्व का है। वर्तमान सामाजिक परिस्थिति के भले ही यह अनुकूल न हो। यह भी माना जा सकता है कि यह शुद्धि का विरोध उन लोगों के लिये हो जिनकी वासना जन्मजन्मान्तरीय संस्कारों से भिन्न धर्म में चली आ रही हो। जो लोग इसी जन्म में किसी कारण-विशेष से भिन्न धर्म ग्रहण करने के लिये बाध्य हो गए हों, उनका प्रायश्चित्तादि शोधन-विधि से संस्कारातिशय उत्पन्न किया जा सकता है। अस्तु।

इसके अनन्तर मूल ग्रंथ चातुर्वर्ण्य-शिक्षा का प्रारम्भ होता है, जिसमें सबसे प्रथम ब्राह्मण जाति की शिक्षा का उल्लेख है। ब्राह्मणों के प्रकरण में ही वेद की पौरुषेयता और अपौरुषेयता पर पूर्ण विचार किया गया है। यथार्थ ब्राह्मण किसे कहना चाहिए, इसका विवेचन बड़ा ही मार्मिक है। जिन्होंने अपना धर्म-कर्म छोड़ दिया है, और केवल अर्थलोलुपता के लिये केवल धर्मध्वज बनते हैं, उनकी खूब खबर ली गई है। प्रसंगवशात् पुराणों की चर्चा करते हुए उनमें जो कुतर्क होने लगे हैं, उनका भी निराकरण किया गया है। भगवान् कृष्णचन्द्र पर आलस्य का आरोप जो किया जाने लगा है, उसका परिहार शास्त्र और युक्ति के द्वारा बड़े अच्छे ढँग से किया गया है।

आजकल वर्तमान सभ्यताभिमानी शिक्षित समाज ब्राह्मणों पर यह कलङ्क मढ़ रहा है कि ब्राह्मणों के हाथमें धार्मिक शिक्षा की बागडोर थी, इसलिये ब्राह्मण जाति ने स्त्री और शूद्रों को पददलित कर दिया और अपना सर्वोच्च स्थान सुदृढ़ कर लिया। परन्तु जो लोग विचार-पूर्वक विवेचन करेंगे, वह सरलतया ही यह देखने में समर्थ हो सकेंगे कि ब्राह्मणजाति का जीवन कितना कष्टमय रखा गया है। उसे तो अधिक धन-धान्य संग्रह करने तक की अनुज्ञा नहीं दी गई है। उसके लिये अत्यंत कठोर नियम बने हैं, और एक प्रकार से ऐहिक सुख की सामग्री से तो उसे सर्वथा वञ्चित ही रखा गया है। कठोर तपस्या करना ही उसके जीवन का मुख्य व्यवसाय माना गया है। सन्तोष वृत्ति ही उसकी जीविका है। उसके लिये तो स्पष्ट शब्दों में कहा गया है—

'अद्रोहेणैव भूतानामल्पद्रोहेण वा पुनः।
या वृत्तिस्तां समास्थाय विप्रो जीवेदनापदि॥
यात्रामात्रप्रसिद्ध्यर्थं स्वैः कर्मभिरगर्हितैः।
अक्लेशेन शरीरस्य कुर्वीत धनसञ्चयम्॥
ऋतामृताभ्यां जीवेत्तु मृतेन प्रमृतेन वा।
सत्यानृताभ्यामपि वा न श्ववृत्त्या कदाचन॥'

यह सर्वथा विचार करने योग्य है। जो ब्राह्मण अपने हेतु सब कुछ कर सकता है उसने अपने लिये कैसी व्यवस्था की है कि शिल और उंछ बीनकर अपनी जीविका चलावे। क्या इससे बढ़ कर भी त्याग का और कोई उत्कृष्ट उदाहरण मिल सकता है। इसी त्याग की महिमा है कि दिलीप के सदृश परम पराक्रमी पृथ्वीपति भगवान् वशिष्ठ के आश्रम में जाकर मस्तक रगड़ते थे। यह त्याग और तपस्या की महिमा है। आज दिन ब्राह्मणों ने अपना धर्मकर्म छोड़ रखा है; सत्य, दया आदि से मुख मोड़ लिया है, और अर्थ के दास बनकर कार्याकार्य का विचार त्याग दिया है, इसलिये आजकल सभी

उन पर अँगुली उठा सकते हैं। परन्तु प्राचीन धर्म-शास्त्रकारों पर आक्षेप करना तो सर्वथा अनुचित और निंद्य है। यह उन्हीं तपस्वी ब्राह्मणों की तपश्चर्या का ही प्रताप है कि हम लोग इस पतितावस्था में भी अपना सिर ऊँचा कर सकते है। भगवान् करे वह दिन फिर आवे जब सब लोग अपने अपने निर्दिष्ट पथ पर प्रवृत्त होकर लोक-कल्याणकर कार्यों में योग दें। तथास्तु।

अनेक प्रान्तों मे ब्राह्मण-कुलों मे जो अशास्त्रीयता पाई जाती है, उसका भी उल्लेख करके उसे दूर करने की ओर ध्यान आकृष्ट किया गया है।—

यथा मधुरादि प्रान्त मे ब्राह्मणों मे विधिपूर्वक उपनयन संस्कार का लोप हो रहा है। लोग मन्दिरों मे जाकर माणवक के गले मे यज्ञोपवीत डाल देते है। अयोध्या आदि प्रान्तों मे बहुत जगह ब्राह्मणों मे यह चाल है कि विवाह-काल से पूर्व दिन ही उपनयन किया जाता है। पुष्करादि प्रान्त मे, राजपताना मण्डल मे, गौड ब्राह्मणों मे तथा उनके प्रभेदों मे, प्राय सगोत्रा का परिहार पाणिग्रहण मे नहीं किया जाता, इत्यादि। ब्राह्मणों को इन शिक्षाओं पर पूर्ण ध्यान देना चाहिए और इस पर मनन करके अपने को उन्नत करने की चेष्टा करनी चाहिए, जिससे उन पर कोई आक्षेप न कर सके।

इसके अनन्तर क्षत्रिय, वैश्य, स्त्री और शूद्रों की शिक्षाओं का संग्रह है। तदनन्तर आश्रम के क्रम से ब्रह्मचारि, गृहस्थ आदि की शिक्षा का पूर्ण विवेचन है। इस एक पुस्तक से ही श्रुति स्मृत्युक्त सदाचार का मनुष्य पूर्ण ज्ञान प्राप्त कर सकता है। सम्पूर्ण वेद और शास्त्रों का इसमे निचोड़ आ गया है। प्रत्येक भारतीय के लिये यह ग्रंथ-रत्न गौरव की वस्तु है। ऐसी सुंदर पुस्तक लिखकर द्विवेदीजी ने बड़ा लोकोपकार किया है। नवलकिशोर प्रेस के अध्यक्ष महोदय ने भी इस ग्रंथ-रत्न का प्रकाशन करके बड़ा महत्वपूर्ण कार्य किया है। परन्तु ये महाशय यदि इसका भाषानुवाद कराकर प्रकाशित कर सकें, तो और भी लोकोपकार हो, अत्यधिक संख्या में लोग इसे समझ सकेंगे और इसे समझकर यदि थोड़े से भी मनुष्य श्रुति स्मृत्युदित सदाचारमें प्रवृत्त होंगे, तो उनकी कीर्ति को अक्षय बनाने के लिये यह पर्याप्त होगा। इससे भारत का मुख उज्वल होगा और फिर भी संसार मे यह घोषणा चरितार्थ हो सकेगी कि—

एतद्देशप्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः।
स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन्पृथिव्यां सर्वमानवाः ॥

आद्यादत्त ठाकुर

× × ×

२ इतिहास और जीवन चरित

श्रीगौरांग महाप्रभु—लेखक, हरिश्चन्द्र तथा श्री तुलसीदास आदि के जीवनचरित्रों के लेखक, श्रीशिवनन्दन सहायजी; प्रकाशक, खड्गविलास प्रेस, बांकीपुर, पृष्ठ-संख्या ४०१; आकार डिमाई, मूल्य २); प्रकाशक से प्राप्य।

सम्भवत हिंदू-धर्म के प्रेमी और शिक्षित ऐसे बहुत ही थोड़े भारतवासी होंगे, जो वैष्णव-धर्म के प्रवर्तक, प्रकांड-पंडित, कृष्ण-प्रेम मे मग्न होकर आत्मसंज्ञा को भुलानेवाले, "हरिबोल-हरिबोल" के गगनभेदी मधुर स्वर से भक्तजनों के मन-मयूरों को नचानेवाले, सौंदर्य और प्रेम के प्रतिरूप श्रीगौरांग महाप्रभु के पुण्य सुयश से सर्वथा अपरिचित हों। विक्रम सं० १५४२ में, जिस समय केवल बंगाल में ही नहीं वरन् समस्त भारतवर्ष भर मे मुसलमानी साम्राज्य का काफी दौर-दौरा था, हिंदुओं के धार्मिक भावों तथा विचारों के ऊपर काफी चोट पहुँचाई जा रही थी, हिंदुओं के धार्मिक कृत्यों में मुसलमानों का अनुचित हस्तक्षेप एक साधारण-सी बात था, भारतीय हिंदू-समाज आतरिक कलह, झूठे धर्माडम्बर, निर्जीव रूढ़ियों से अपने-आप नष्ट-भ्रष्ट हो रहा था, ठीक उसी समय हमारे उदार-चरित चरित-नायक 'श्रीगौरांग महाप्रभु' का जन्म नवद्वीप वा नदिया (बङ्गाल) में हुआ। आपकी पूज्या सौभाग्यवती माता का नाम शचीदेवी एवं पिता का नाम जगन्नाथ मिश्र था। आपका राशिनाम विश्वम्भर था, किन्तु कई प्रकार के कारण-कलाप तथा लीलाभेद से आपके श्रीगौराङ्ग महाप्रभु, श्री गौरहरि, श्रीकृष्ण चैतन्य तथा श्री चैतन्यदेव आदि अनेक नाम भक्तजनों में प्रचलित हैं। आपके भक्तजन आपको भगवान् श्रीकृष्ण का अवतार मानते हैं। श्रीगौराङ्ग महाप्रभु एकमात्र प्रेमधर्म के प्रचारक थे। आपने अपने अमूल्य उपदेशों से शुष्क हृदयों को भी प्रेम की मन्दाकिनी से परिप्लावित कर दिया था। आपने अपने धर्मोपदेश में छुआछूत का कुछ भी विचार न रखा

था। सभी श्रेणी के लोग आपको पवित्र प्रेम-दीक्षा से दीक्षित होकर भगवत्प्रेमामृत का पान कर सकते थे। आपका सम्प्रदाय वल्लभ संप्रदाय से बहुत कुछ मिलता-जुलता है। आप समयानुकूल अपने लीला-संवरण के अन्तिम क्षण तक भगवद्भक्तों को प्रेमामृत का पान कराते हुए १५९० वि० सं० में संसार के चर्म-चक्षुओं से अन्तर्हित होगए। उन्हीं श्रीगौराङ्ग महाप्रभु का यह विस्तृत जीवन-चरित है। जीवन-चरित कई एक संस्कृत, हिन्दी तथा बंगभाषा के प्रामाणिक ग्रन्थों के आधार पर खोज के साथ लिखा गया है। श्रीमहाप्रभु के बाल्यकाल से लेकर अन्तर्धान-काल तक की सभी छोटी मोटी घटनाओं के ऊपर प्रकाश डाला गया है। हमने अभी तक हिन्दीभाषा में श्रीगौराङ्ग महाप्रभु का इतना बड़ा जीवन-चरित नहीं देखा है, अतः हिन्दी भाषा-भाषियों के लिए यह स्पृहणीय एवं नई चीज़ है। जिस भाषा मे सुप्रसिद्ध महापुरुषों के जीवन-चरितों का अभाव है, वह भाषा अपना कोई भी गौरव नहीं रखती है। लेखक महोदय श्रीगौराङ्ग महाप्रभु का जीवन-चरित लिखने में बहुत कुछ सफलता प्राप्त कर सके हैं। अतः हिन्दी भाषा-भाषियों के विशेष रूप से बधाई के पात्र हैं। पुस्तक में कई स्थानों पर विषय-विचारों में पुनरुक्ति और भेद-भावों की विशृङ्खलता, भाषा की शिथिलता, छपाई-सफ़ाई की दुर्गति एवं प्रूफ़-सम्बन्धी कोवियों अशुद्धियाँ बहुत ही अधिक खटकती हैं, फिर भी पुस्तक सर्वथा उत्तम तथा उपादेय है।

× × ×

३ उपन्यास और कहानी

यूथिका—लेखक, श्रीयुत श्रीगोपाल नेवटिया; प्रकाशक, हिन्दी-पुस्तक भंडार, लहेरिया सराय; मूल्य नहीं लिखा गया, पृष्ठ-संख्या ६०।

यह आठ कहानियों का छोटा-सा संग्रह है। कहानियाँ कुछ मौलिक हैं, कुछ अन्य भाषाओं से ली हुई आख्यायिकाओं और उपन्यासों के आधार पर लिखी गई है। कहानियाँ मनोरंजक है। मगर रचयिता ने जिन कहानियों को अपना आधेय बनाया है, वे स्वयं उच्चकोटि की नहीं हैं। या संभव है उनका रूपान्तर करने और अंग्रेज़ी कथा को भारतीय रंग देने के कारण उनकी सजीवता नष्ट हो गई हो। प्रत्येक जाति का साहित्य उसके जीवन का प्रतिबिंब होता है। केवल पात्रों के नाम बदल देने से आप उसे भारतीय नहीं बना सकते। उसकी सारी परिस्थिति बदलनी पड़ेगी और मूलकथा में भी बहुत कुछ उलट-फेर करना पड़ेगा। इस पुस्तक में पहली कहानी एक अंग्रेज़ी उपन्यास के आधार पर लिखी गई है। उसका नाम है "प्रेम की भूमिका"। पहले दृश्य में एक बालक और बालिका एक चट्टान पर बैठे नज़र आते हैं। बालिका का सिर बालक की गोद में है। वह उसे गाकर सुनाती है। दोनों की बातों से मालूम होता है कि बालिका एक ऐसे आदमी के अधिकार में है, जिसने उसकी माता की हत्या की थी। बालक उससे प्रेम करता है और अंत में बालिका को उस आदमी के पंजे से छुड़ाता है। कुछ न मालूम हुआ कि बालक कौन था, बालिका कौन थी, देश कौन-सा था? किसने बालिका को पकड़ कर क़ैद किया था? क्यों क़ैद किया था? ऐसा अनुमान होता है कि मूल कथानक में कोई अंग्रेज़ लड़की अफ्रीका के किसी जंगली सरदार के पंजे में पड़ जाती है, और कोई अंग्रेज़ युवक उसे वहाँ से छुड़ा लाता है। इस आधारित कहानी की अपेक्षा "प्रेम की विजय," जो मौलिक रचना है, कहीं सजीव और आकर्षक है।

× × ×

४ फुटकर

शाहिदे-मानी—लेखक और प्रकाशक, मास्टर बासित बिसवानी; मूल्य ॥), पृष्ठ-संख्या १५४; मिलने का पता, मास्टर बासित, बिसवा, ज़िला सीतापुर।

यह बासित बिसवानी की कविताओं का संग्रह है। मास्टर बासित उर्दू के अच्छे कवि है, और नये ढंग के कवि है। इस संग्रह मे एक भी ग़ज़ल नहीं है, सभी कविताएँ सामाजिक या नैतिक विषयों पर हैं। कई धार्मिक कविताएँ भी हैं, पर आपके भाव उदार हैं, और कई कविताओं मे आपने अपनी शांति-प्रियता का परिचय दिया है। "अपनी हस्ती" की आपने यों विवेचना की है—

> पूछो न कोई मुझसे मैं कौन हूँ मैं क्या हूँ,
> तसवीरे-फ़ना समझो, इक ख़ाक का पुतला हूँ।
> मिलता हूँ बराबर मैं, हिंदू से मुसलमाँ से,
> बेगानों से बेगाना, अपनों का मैं अपना हूँ।

एक युवती विधवा का विलाप सुनिये—

छोड़कर मुझको सफ़र पर मेरे जाने वाले,
पीठ दिखलाके मुझे मुँह न दिखाने वाले।
हाँ तसव्वर की तरह दिल में समाने वाले,
मेरे सिरताज पलट कर न फिर आने वाले।
भूल जाना मुझे हरगिज़ न था ज़ेबा तुमको,
याद कुछ भी न रहा वाद-ए-फ़रदा तुमको।

कृष्ण और जसोदा नाम-की कविता का एक बंद सुन लीजिये—

आँखें हमारी शाद हैं दीदार से तेरे,
शरमा रहे हैं फूल से रुख़सार भी तेरे।
गोकुल में नूर फैला है अनवार (गऊएँ) से तेरे,
पूछे तो कोई हाल तलबगार से तेरे।
क्या कह रही है देखो जसोदा खड़ी हुई,
तेरे क़दम से राज महल झोपड़ी हुई।

एक क़िता और देखिये। करुणारस में डूबा हुआ है—

होली तनमन फूँक रही है, दूर सखी गिरधारी है,
दिल भी टुकड़े-टुकड़े है और ज़ख़्मे-जिगर भी कारी है।
हाय अकेली खेल रही हूँ सारी डूबी सारी है,
ख़ूने तमन्ना रंग बना है, आँखों की पिचकारी है।

× × ×

रंगे ज़माना—लेखक और प्रकाशक, मु० व्रजभूषणलाल साहब 'मुहिब', दरियाबादी; मूल्य ॥=); पृष्ठ-संख्या १५२

यह 'मुहिब' साहब दरियाबाद (ज़िला बाराबंकी) निवासी की उर्दू कविताओं का संग्रह है। मुहिब साहब हज़रत 'नज़र' लखनवी के शिष्य हैं, जिनका लखनऊ के कवियों में बहुत ऊँचा स्थान है। मगर उनकी कविता लखनऊ की शृंगार-रस-प्रधान कविता नहीं है। उन्होंने 'अकबर' इलाहाबादी के रंग का अनुसरण किया है। आपने भी पश्चिमी-सभ्यता की बुराइयाँ दिखाने और अँगरेज़ी रीति-नीति, आहार-व्यवहार की हँसी उड़ाने में अपनी कवित्व शक्ति का परिचय दिया है। आपके यहाँ भी वही डिनर और वही लीडर, वही मिसें और वही लेडियाँ हैं। आपने भी समाज की वर्तमान गति की चुटकियाँ ली हैं—

मैं यह समझूँगा कि जीते जी हुई जन्नत नसीब,
आपकी कौंसिल में जब मेरा गुज़र होजायगा।
इश्क़ में कम हिम्मती से मैं तो छकड़ा ही रहा
शौक़ की तेज़ी में दिल अलबत्ता मोटर हो गया।
हज़ार हैफ़ कि अब मुझ में क़ाइम नहीं,
वह दिल की थान में है पर कोई डिफ़ेंस नहीं।
मिलाया हाथ जो होटल में लेडियों से मुहिब
तो बस ख़ुशी के सबब हाथ पाँव फूल गए।
अर्ज़ियाँ लिखिए, ख़ुशामद कीजिए, और रोइये,
जब न हासिल हो सका तो कुली बन जाइए।

मुहिब साहब की कविता में वह मीठी चुटकियाँ नहीं है, जिन्होंने अकबर की रचनाओं को अमर बना दिया है।

---

१ ब्याह का विचित्र रस्म

छ दिन पहले 'इँगलिशमैन' में मंगोलिया की उत्तरीय सीमा पर रहनेवाले एक क़बीले का हाल छपा था। इसे लोग कामलूक कहते है। इस क़बीले मे अब भी पुराने ज़माने की अनेक रस्मे जारी हैं। विवाह-संबंधी एक विचित्र क़ायदा यह भी है कि बालिका को उसके बाप के ख़ीमे से उठाकर ले आया जाय, किंतु अब लड़की अपने प्रेमियों में से किसी को चुन लेती है, तभी यह काम होता है। शादी के दिन लड़की का रानियों की भाँति शृंगार किया जाता है। इसके बाद वह एक तेज़ घोड़े पर सवार होती है। हाथ में एक लंबा चाबुक होता है। वह प्रेम का दम भरनेवाले चंद नवयुवकों को दौड़ाती है। दौड़ने वालों में से जिसको नापसंद करती है, उस पर चाबुक का प्रयोग होता है। असफल युवकों को चाबुक की चोट बहुत दिनों के लिये बेकाम कर देती है।

'दि मैनर्स एंड कस्टम्स आव् दि वर्ल्ड' नामी ग्रंथ में भी इस प्रकार की अनेक प्रथाएँ पढ़ने को मिलती हैं। भारत की उत्तरी सीमा पर तिब्बत में फरीमजर नाम-की एक जंगली क़ौम रहती है। इसमें अधिकांश आदमी भेड़ पाल कर निर्वाह करते हैं। पर्वत की ऊँचाई और सर्दी प्रेमपूर्ण हाव-भाव का शीघ्र विकास होने में बाधा देती है। सर्दी इतनी ज्यादा होती है कि थर्मामीटर का पारा शून्य से प्रायः ४० अंश नीचे रहता है। प्रेमी बर्फ़ानी नदियों, गारों और चट्टानों को तय करता हुआ अपनी प्रेमिका तक पहुँचता है। पिता लड़की की क़ीमत तलब करता है। यदि प्रेमी उतना नहीं दे सकता, जितना माँगा जाता है, तो वह लौट जाता है, अथवा परिश्रम और मज़दूरी करके उसे चुका देता है। इस मूल्य का अंदाज़ प्रायः जानवरों की संख्या से किया जाता है। दुलहिन अपने शृंगार और वेषभूषा के लिये तिब्बत भर मे मशहूर है। इसके सर पर बहुमूल्य रत्नों की माला होती है। कान की बालियाँ तो ग़ज़ब की ख़ूबसूरत होती हैं।

दक्षिण भारत के ट्रावनकोर राज्य के पर्वतीय दुर्गम भाग मे एक अजीब क़बीला है। इसका नाम 'बोदाबोजी' है। इन लोगों में विवाह के पूर्व लड़की अपने प्रेमी की बड़ी कठिन परीक्षा लेती है। दोनों जंगल में चले आते हैं। वहाँ पहुँच कर आग जलाते हैं। लड़की लोहे की एक छड़ साथ ले आती है। यह छड़ आग में तपाकर वह प्रेमी की पीठ पर लगाती है। यदि प्रेमी 'उफ़' तक नहीं करता, तो परीक्षा में सफल हो जाता है। मुँह से 'सी' भी निकला कि प्रेम के अयोग्य समझ लिया गया।

अरब में भी विवाह की विचित्र रस्म है। युवक बाल्यावस्था में जिन लड़कियों के साथ खेलता-कूदता है, उनमें से किसी एक के प्रति यदि उसके हृदय में अनुराग जागृत हो जाता है, तो वह अपनी माता से उस लड़की का हुलिया और (मालूम हो तो) पता बता देता है। माँ हुलिया के अनुसार उस लड़की की खोज में निकलती है। ठीक ऐसा ही लड़की की ओर भी होता है। दोनों की माँएँ मिलकर जहेज़ इत्यादि का फ़ैसला कर लेती हैं। यह सारा जहेज़ लड़की की व्यक्तिगत संपत्ति में शामिल है, पर लड़का आवश्यकता पड़ने पर उसका उपभोग कर सकता है; लड़की ऐसी अवस्था में बाधक नहीं हो सकती। विवाह के कुछ महीने पूर्व युवक अपनी भावी पत्नी को नाना प्रकार के उपहार भेजना आरंभ कर देता है। इस उपहार में प्रायः रेशम के थान, इत्र, सोना की मालाएँ और अँगूठियाँ भेजी जाती हैं। विवाह के समय मेहमानों के अतिरिक्त भिखारियों को भी बुलाकर खिलाया-पिलाया जाता है कि वे वर और दुलहिन के दीर्घायु और सुखी होने का आशीर्वाद दें। विवाह के बाद पति पत्नी को अलग-अलग रखा जाता है। विवाह भारतीय प्रथा की भाँति लड़की के ही घर में होता है। हाँ, मसजिद में लड़के को ले जाकर कुछ वैवाहिक रीतियाँ अवश्य संपन्न की जाती हैं, और तब पिता को विवाह की घोषणा करनी पड़ती है। यह घोषणा बाक़ायदा लिख ली जाती है और यही विवाह की सनद होती है। विवाह के एक सप्ताह पूर्व लड़की एक दक्ष स्त्री के सुपुर्द कर दी जाती है, जो उसके बाल बनाती, स्नान कराती और मालिश तथा शृंगार करती है। विवाह के दिन लड़की अपनी सहेलियों को भोजन कराती है। दूसरी ओर लड़का अपने मित्रों को भोजन कराता है। बृहस्पतिवार का दिन ब्याह के लिये अरबों में शुभ समझा जाता है। जब शादी हो जाती है और लड़की ससुराल आ जाती है, तो पति अपनी दुलहिन का मुँह देखता है। यदि लड़की उसे पसंद आगई तो वह ईश्वर को धन्यवाद देता है, और इस प्रसन्नता को प्रगट करने के लिये वह लड़की का कोई कपड़ा खींच लेता है। यदि नापसंद होती है, तो कपड़ा नहीं खींचता, और लड़की समझ जाती है कि उसे बहुत जल्द तलाक़ दे दिया जायगा। सुमन

× × ×

२. बच्चों की आदतें

बच्चों में अच्छी या बुरी आदतों का बीजारोपण उसी समय से आरम्भ हो जाता है, जब कि वे बिलकुल संज्ञा-शून्य होते हैं और उन्हें भले-बुरे का ज़रा भी ज्ञान नहीं होता। बहुत-से लोग बालक की प्रत्येक इच्छा और आवश्यकता को पूरी करने और लाड़-प्यार के साथ उसे पाल-पोष कर बड़ा कर देने में ही अपने कर्त्तव्य की इतिश्री समझते हैं। उनके विचार में वह बड़ा होकर सब कुछ स्वयं सीख जावेगा और उसे इस छोटी उम्र में कुछ भी सिखलाने की न तो आवश्यकता ही है और न वह कुछ सीख ही सकता है। परन्तु यह विचार सर्वथा ग़लत है, क्योंकि बाल्यकाल ही में बालक के आगामी जीवन की नींव रखी जाती है। इस समय की छोटी-छोटी बातें भी उसके जीवन पर भारी प्रभाव डालती हैं। बाल्यकाल में पड़ी हुई आदतों पर हमारा स्वास्थ्य, सुख-दुख, प्रसन्नता तथा योग्यता, आदि बहुत कुछ निर्भर है, क्योंकि बाल्यकाल में पड़ी हुई आदतें प्रायः जीवन-पर्यंत बनी रहती हैं। शिशु में आरम्भ से ही अच्छी आदतें डालने का प्रयत्न करना चाहिए। अच्छी और बुरी आदतों में क्या फ़र्क़ है, यह बतलाने की आवश्यकता नहीं। जिन्हें अधिक लोग पसंद करें वे अच्छी, और जिन्हें पसंद न करें वे बुरी हैं। माता को उचित है कि वह अपने बालक को ऐसी शिक्षा दे कि उसे प्रत्येक मनुष्य प्यार करे और अच्छा बालक कहे। बहुधा बुरे नौकर बालक में बुरी आदतें डालने की चेष्टा करते रहते हैं, और उससे उनका आदर्श भी बुरा हो जाता है। इसलिये अपने बालक को गन्दे नौकरों के पास नहीं खेलने देना चाहिए।

नियमशीलता—बालक में जन्म के बाद सबसे पहली अच्छी आदत नियमशीलता की डालनी चाहिए। बालक को नियत समय पर दूध पिलाना, नहलाना और सुलाना चाहिए। उसे ऐसी बान डालें कि वह सदा ठीक समय पर उठे, अर्थात् बालक का कोई भी कार्य अनियमित रूप से नहीं होना चाहिए। इससे माता को सुगमता रहेगी और बालक में भी नियमशीलता की बान सुदृढ़ होती चली जावेगी। बड़े होने पर भी बालक को सदा नियमित रूप से कार्य करने की शिक्षा देनी चाहिए।

प्रसन्नचित्त रहना जीवन के प्रत्येक समय में ही सुखदायक

होता है, इसलिये बाल्यकाल ही से इस गुण को ग्रहण करने की शिक्षा देनी चाहिए। यदि तुम स्वयं ही प्रसन्न-चित्त रहकर बच्चों से भी प्रेम का व्यवहार करोगी तो उन्हें इस गुण को सीखने में देर न लगेगी। इसका सर्वदा ध्यान रखना चाहिए कि प्रायः बालकों में अनुकरण-शैली स्वभाव ही से होती है। अतः यदि माता प्रसन्नमुख होगी, तो उसका परिणाम भी शिशु पर अच्छा होगा। और यदि माता हर समय क्रोधित ही रहे तो बालक भी उसका अनुकरण करना सीखेगा। बच्चे पर कभी क्रोधित नहीं होना चाहिए और उसे सर्वदा प्रसन्न रखने की चेष्टा करनी चाहिए। यदि कोई वस्तु उसे भाती हो और वह हानिकर न हो तो उसको सहर्ष दे डालनी चाहिए। बच्चे प्रायः किसी-न-किसी कारणवश ही रोते हैं। भूख-प्यास, सर्दी-गर्मी, नींद, किसी रोग के होने, बिछौना गीला हो जाने, अथवा किसी अन्य कारणवश बालक रोने लगता है। उसकी आवश्यकताओं को ध्यानपूर्वक देखकर तुरन्त दूर कर देना चाहिए। कभी-कभी बच्चा बिस्तर पर लेटे-लेटे थक जाता है और चाहता है कि उसे कोई गोद में ले हँसाए-खिलाए। बालक बहुत चचल होता है, वह चुपचाप बैठना नहीं पसंद करता। नई-नई चीज़ें देख-सुनकर प्रसन्न होता है। बालक को यथा-संभव रोने-चिल्लाने और ज़िद करने का अवसर ही नहीं देना चाहिए। उसका मन सदा बहलाए रखना चाहिए, नहीं तो बालक प्रायः रोता रहता है और किसी-न-किसी वस्तु के लिये ज़िद करता रहता है; इससे माता को भी क्रोध आजाता है और बालक में भी चिड़चिड़ेपन की आदत पड़ जाती है। बच्चों को ख़ूब खेलने देना चाहिए, इससे वे प्रसन्न रहते हैं और उनका शारीरिक विकास भले प्रकार होता है।

स्वच्छता—बच्चों में जितनी जल्दी हो सके सफ़ाई की आदत डालनी चाहिये। उनको स्वयं ख़ूब स्वच्छ रखो, गन्दी वस्तुएँ न छूने दो। उन्हें सिखलाना चाहिये कि वे अपने वस्त्र तथा अन्य वस्तुएँ स्वच्छ तथा यथास्थान रखें। कमरे में बिछी हुई दरी तथा बिस्तर पर पैर पोंछ कर रखें, भोजन करते समय अपने हाथ और वस्त्र ख़राब न करें, घर में कूड़ा न फैलाएँ, इत्यादि। यदि वे ऐसा करें तो उन्हें तुरन्त मना करना और फैलाई हुई वस्तुएँ उनसे ही उठवानी चाहिये। बहुधा हम ऐसी छोटी-छोटी बातों का विचार नहीं करते, जिसका फल यह होता है कि उन में बड़े होकर भी गन्दी आदतें पड़ी रहती हैं।

सभ्यता, सुशीलता और सदाचार के नियम बालकों को आरम्भ ही से सिखाने चाहिये। उन्हें सिखलाना चाहिये कि वे आपस में मिलकर खेलें, घर में अधिक गुल न मचावें। जब किसी से मिलें हाथ जोड़ कर प्रणाम करें, और सदा मीठी-मीठी बातें करें। माता-पिता को बालक के सामने आपस में झगड़ा नहीं करना चाहिये, न दूसरों को गाली अथवा कठोर शब्द ही कहने चाहिये, नहीं तो बच्चा भी गालियाँ देनी सीख जावेगा।

बच्चे में स्वावलंब की आदत भी आरम्भ ही से डाली जाय। जहाँ तक बन सके, बालक को अपने काम स्वयं ही करने दो, जैसे—वह अपने कपड़े स्वयं पहिने, अपनी चीज़ों को सँभाल कर रखे, बालों में कंघी आप ही करे, इत्यादि। यदि उसे किसी चीज़ की ज़रूरत हो तो स्वयं ही उठाकर लावे। उसे नौकर की ज़रूरत नहीं होनी चाहिये। बच्चे से यह कभी न कहो कि यह काम तू न कर, बल्कि उसे सदा अपना काम करने के लिये उत्साहित करना चाहिये। जबतक उसे हमारी मदद की विशेष आवश्यकता न हो, तबतक मदद नहीं करनी चाहिये।

बालक में आज्ञाकारिता की बान डालने के लिये यह आवश्यक है कि तुम उसकी मनोवृत्ति का भली-प्रकार निरीक्षण करो। बालक को आज्ञा सोच-समझ कर देनी चाहिये, और एक आज्ञा देने पर उसे अवश्य पूरी कराओ। आज्ञा देते समय देखलो कि बालक क्या कर रहा है। यदि वह कोई दिलचस्प कहानी पढ़ रहा है, या अपने खेल में तल्लीन है और उस समय माता इस बात का विचार किये बिना ही कोई कार्य करने की आज्ञा देती है तो प्रायः बालक उस पर ध्यान नहीं देता और अक्सर ऐसी आज्ञाएँ देते रहने का फल यह होता है कि बालक माता की आज्ञा की परवा न करके उसका उल्लंघन करने लगता है, विशेष करके जब कि वह देख लेता है कि माता की आज्ञा की परवा न करने से उसका कुछ हर्ज नहीं होता। बालक के साथ सदा एक-सा बर्ताव करो। जो बात एक बार मना करो, ऐसा न हो कि दूसरी बार बालक फिर उसी तरह करे और तुम उसे मना न करो। बच्चों से 'चुप रहो', 'निचले बैठो', 'बोलो मत' इत्यादि शब्द नहीं कहने चाहियें, क्योंकि बच्चों के लिये ऐसा

करना प्रायः असंभव-सा है । बच्चों को दौड़ने-भागने, उछलने-कूदने की स्वतन्त्रता होनी चाहिये, क्योंकि इसके बिना बालक का विकास नहीं हो सकता । यदि संभव हो तो बच्चों के लिये घर में एक अलग सुरक्षित जगह नियत कर दो, जहाँ वे स्वतंत्रतापूर्वक खेल सकें। कभी-कभी ऐसा होता है कि बच्चा अपने माता-पिता को सहायता देना चाहता है, और उस समय उससे कोई ऐसा काम होजाता है जो उसे मना किया गया था; जैसे पिता को अपने उद्यान में फूलों की क्यारी में से घास अलग करते देख कर बालक भी वैसा ही करने लगता है । और उस समय उससे कोई फूल का पौधा भी ग़लती से उखड़ जावे, ऐसे समय उसे कभी नहीं डाटना चाहिये । साथ ही यदि वह कोई अच्छा कार्य करे तो उसको तारीफ़ करनी चाहिये । बच्चों से सदा यह आशा करो कि वे तुम्हारी आज्ञा का अवश्य पालन करेंगे । उनका यह विचार कदापि न होने दो कि तुम्हें उनकी आज्ञाकारिता में सन्देह हैं, बल्कि ऐसा दिखलाओ मानो तुम्हें पूर्ण विश्वास है कि वे तुम्हारी आज्ञा को कदापि न टालेंगे । प्रत्येक मनुष्य वैसा ही बनना चाहता है जैसा कि उससे आशा की जाती है, विशेष कर बालक । यदि तुम उसे आज्ञाकारी बालक समझोगे तो वह यह कदापि न चाहेगा कि उसे कोई ज़िद्दी कहे । बालक में सच बोलने की आदत डालने का सबसे सरल तरीका यह है कि उसके चतुर्दिक् ऐसा वातावरण रखो कि वह सत्य बोलने को आदर्श समझ कर उसकी नक़ल करे । बहुधा बालक घर के अन्य लोगों को झूठ बोलते और दूसरों को धोखा देते देखकर झूठ बोलना सीख जाते हैं । यदि माता बच्चे के सामने ही कोई कार्य करती है और उससे कहती है, देखो अपने पिता से यह बात न कहना, तो ऐसी परिस्थिति में बच्चे से यह आशा करना कि सदा सच बोले, निरी मूर्खता है । बच्चे को कभी धोखा नहीं देना चाहिये, जैसे यदि बालक की फुंसी में चीरा दिलवाना है और उससे हम यह कह कर कि, चलो सैर कराने ले चलें, डाक्टर के यहाँ लेजाकर चीरा दिलवा दें, ऐसा करने से बालक को अपने माता-पिता के प्रति बड़ी घृणा होजाती है, और वह भी ऐसी बातों की नक़ल करने लगते हैं । बालक सज़ा पाने के डर से अपने क़सूर को छिपाने के लिये भी बहुधा झूठ बोलते हैं ; और विशेष कर जब वह देखते है कि सच बोलने पर भी उनकी सज़ा में कोई कमी न होगी । यदि बालक का झूठ पकड़ा न जाय तो वह बहुत प्रसन्न होता है और उसकी यह आदत बढ़ती जाती है । यदि बच्चा अपने क़सूर को स्वयं स्वीकार कर ले और सच बोले तो उसको पीटना या सख़्त सज़ा नहीं देनी चाहिये; क्योंकि ऐसा करने से वह सोचता है कि यदि मैं अपना क़सूर न बतलाता तो शायद झूठ बोलकर दण्ड पाने से बच जाता और वह भविष्य में ऐसा ही करता है । बालक के, अपना अपराध स्वीकार करलेने पर, उसे धीरे से समझा देना चाहिये कि, देखो फिर ऐसा न करना, नहीं तो हम तुमको सज़ा देंगे ।

बहुधा माता-पिता बालक के लिये ऐसी परिस्थिति पैदा कर देते हैं जब कि वह झूठ बोलने के लिये विवश-सा हो जाता है । इसका परिणाम बहुत बुरा होता है । बालक को ऐसा अनुभव होता है मानो वह झूठ बोलने के लिये विवश कर दिया गया हो । ऐसी परिस्थिति में वह केवल हीनता का ही अनुभव नहीं करता, प्रत्युत उसे क्रोध भी आता है । यह अधिक अच्छा है कि बालक सच और झूठ में से एक को स्वाधीनतापूर्वक पसंद कर सके, परन्तु अनुभव से उसे यह ज्ञात होजाय कि उसका झूठ अवश्यमेव पकड़ा जावेगा और यह उसके पक्ष में अहितकर साबित होगा ।

प्रायः यदि बालक कोई वस्तु चुपके से उठा लेता है तो उसका ऐसा करना चोरी नहीं समझा जाता । माता-पिता यही समझते हैं कि उनका बालक अभी इन बातों को नहीं समझता । कोई-कोई माता-पिता कहते हैं कि उनका बालक उठाई हुई वस्तुओं को दूसरों को बाँट देता है और स्वयं उनका उपयोग नहीं करता, इसलिये उसके ऐसा करने में कोई दोष नहीं है । इसी तरह के अनेकों विचारों से माता-पिता अपने को धोखा देकर बच्चे को ऐसा करने से मना नहीं करते । जब कि बालक इस योग्य हो जाय कि वह अपनी और दूसरे की चीज़ों में अन्तर कर सके, तभी से उसको बताना चाहिए कि किसी वस्तु को बिना माँगे लेलेना चोरी है । चोरी करने की आदत बहुत ही भयानक है, क्योंकि इससे वे इच्छाएँ, जो कि अन्यथा पूरी न होतीं, पूरी हो जाती हैं । इससे बालक को लाभ पहुँचता है, अतः यह स्वाभाविक ही है कि वह तबतक चोरी करना न छोड़ेगा जबतक कि उसे यह ज्ञात न हो जावे कि यह उसके लिये हानिकर है ।

वह बालक, जिसे आरंभ ही से परिवार के अन्य मनुष्यों के अधिकारों और वस्तुओं की क़दर करना नहीं सिखलाया गया, स्कूल जाने पर भी दूसरों की वस्तुओं की क़दर करना नहीं जानता। वहाँ पर भी उसकी चोरी करने की आदत नहीं जाती। यद्यपि माता उसकी इस आदत को बच्चा समझकर माफ़ कर देती थी, परन्तु स्कूल में वह अपने अध्यापक तथा अन्य सहपाठियों की दृष्टि में गिर जाता है, और वे उसे चोर समझते हैं। अत. प्रत्येक माता पिता को उचित है कि वे बालक के हृदय में आरंभ ही से दूसरों के अधिकारों की क़दर करने के महत्व को भलीभाँति जमा देवें। बच्चे को निजी अनुभव से यह ज्ञात हो जाना चाहिये कि दूसरे की वस्तुओं को चुराना अधिकतर उसके लिये हानिकर है, और अच्छे चालचलन से आन्तरिक प्रसन्नता होती है, तथा सब लोग उसे अच्छा कहते हैं। माता-पिता के लिये यह सबसे अधिक बुद्धिमानी का कार्य है कि वे जानें कि बच्चे को कब सज़ा और कब इनाम देना चाहिये। क्योंकि इसका महत्त्व बालक में अच्छी आदतें डालने के लिये बहुत बड़ा है।

दुर्गादेवी

---

१. बुलबुल की फ़रियाद

क बुलबुल थी। वह कहीं से एक दाल का दाना चुनकर लिये जा रही थी। सयोग-वश उसका मुँह खुल गया और वह दाल का दाना जाँत के एक खूँटे मे गिरकर अटक गया। उसने उसे निकालने की बहुत कोशिश की, परंतु उसे सफलता नही मिली। तब वह बढ़ई के यहाँ जाकर कहने लगी—

"बढ़ई बढ़ई तू खूँटा चीरो, खूँटा में मेरी दाल है,
क्या खाऊँ क्या पीऊँ, क्या लेकर परदेश जाऊँ।"

बढ़ई ने सोचा कि एक साधारण पक्षी के लिये कौन इतना परिश्रम करे। उसने खूँटा चीरने से इनकार कर दिया। तब वह बुलबुल राजा के पास जाकर बोली—

"राजा राजा बढ़ई दडो, बढ़ई ना खूँटा चीरे,
खूँटा में मेरी दाल है, क्या खाऊँ क्या पीऊँ,
क्या लेकर परदेश जाऊँ।"

राजा ने भी बुलबुल की बात को अनसुनी कर दिया। तब वह रानी के पास जाकर कहने लगी—

"रानी रानी तू राजा बुझाओ, राजा न बढ़ई दंडे,
बढ़ई न खूँटा चीरे, खूँटा मे मेरी दाल है,
क्या खाऊँ क्या पीऊँ, क्या लेकर परदेश जाऊँ।"

रानी ने बुलबुल को डाँटकर दुतकार दिया। तब वह साँप के पास जाकर कहने लगी—

"साँप साँप तू रानी डसो, रानी न राजा बुझावे,
राजा न बढ़ई दडे, बढ़ई न खूँटा चीरे,
खूँटा में मेरी दाल है, क्या खाऊँ क्या पीऊँ,
क्या लेकर परदेश जाऊँ।"

साँप ने भी बुलबुल की बातों की कुछ परवा न की, तब वह लाठी के यहाँ गई और बोली—

"लाठी लाठी तू साँप मारो, साँप न रानी डसे,
रानी न राजा बुझावे, राजा न बढ़ई दडे,
बढ़ई न खूँटा चीरे, खूँटा में मेरी दाल है,
क्या खाऊँ का पीऊँ, क्या लेकर परदेश जाऊँ।"

बुलबुल की इन बातों को सुनकर लाठी को हँसी आई और वह उसीको मारने को दौड़ी। बुलबुल ने भागकर अपनी जान बचाई। पर वह

हताश न हुई, वह अग्नि के पास जाकर कहने लगी—

"अग्निदेव तू लाठी जारो, लाठी न साँप मारे,
साँप न रानी डसे, रानी न राजा बुझावे,
राजा न बढ़ई दडे, बढ़ई न खूँटा चीरे,
खूँटा में मेरी दाल है, क्या खाऊँ क्या पीऊँ,
क्या लेकर परदेश जाऊँ।"

जब अग्निदेव ने भी उसकी फरियाद न सुनी तब वह समुद्र के पास पहुँची और निवेदन किया—

"हे समुद्र तुम आग बुझाओ, आग न लाठी जारे, लाठी न साँप मारे, साँप न रानी डसे, रानी न राजा बुझावे, राजा न बढ़ई दडे, बढ़ई न खूँटा चीरे, खूँटा मे मेरी दाल है, क्या खाऊँ क्या पीऊँ, क्या लेकर परदेश जाऊँ।"

परंतु समुद्र ने भी उसकी बातों पर कान न दिया। तब वह हाथी से जाकर बोली—

"हाथी हाथी तू समुदर सोखो, समुदर न आग बुझावे,
आग न लाठी जारे, लाठी न साँप मारे,
साँप न रानी डसे, रानी न राजा बुझावे,
राजा न बढ़ई दडे, बढ़ई न खूँटा चीरे,
खूँटा मे मेरी दाल है, क्या खाऊँ क्या पीऊँ,
क्या लेकर परदेश जाऊँ।"

हाथी को बहुत जोरों मे प्यास लगी थी। वह समुद्र को सोखने के लिए तैयार हो गया। जब समुद्र ने बुलबुल के साथ हाथी को आते देखा, तब उसके देवता कूच कर गये। वह डरकर कहने लगा—

"हमें सोखे-ओखे मत कोई
हम आग बुझाइब लोई।"

हाथी तो कुछ पानी पीकर लौट गया और समुद्र आग बुझाने चला। समुद्र के साथ बुलबुल को आते देख अग्निदेव डर गये, और बोले—

"हमे बुझावे-उझावे मत कोई
हम लाठी जलाउब लोई।"

अग्नि को देखते ही लाठी डर गई, उसका शरीर जलने लगा। तब वह काँपते हुए बोली—

हमें जलावे-ओलावे मत कोई
हम साँप क मारब लोई।"

जब साँप ने लाठी को आते देखा तो दूर ही से डरकर कहने लगा—

"हमे मारे-ओरे मत कोई
हम रानी को काटब लोई।"

जब रानी ने बुलबुल को साँप के साथ आते देखा तो डर के मारे उसकी विचित्र हालत हो गई। वह दूर से ही बोली—

"हमें काटे-ओटे मत कोई
हम राजा बुझाइब लोई।"

अब रानी राजा को जाकर समझाने लगी और बढ़ई को दड देने के लिए तंग करने लगी। तब राजा ने ऊब कर कहा—

"हमे बुझावे-उझावे मत कोई
हम बढई दडब लोई।"

राजा ने बढ़ई को दड देने की ठानी और उसे बुला भेजा। राजा के निकट बुलबुल को बैठी हुई देखकर बढ़ई सब बात समझ गया और बोला—

"हमे मारे-ओरे मत कोई
हम खूँटा चीरब लोई।"

खूँटा ने जब बढ़ई को बसूला रुखानी आदि हथियारों के साथ लैस होकर अपनी ओर आते देखा तो उसे कोई बात समझ मे न आई, परंतु जब बुलबुल को साथ में आते हुए देखा तो उसे सब कुछ समझते देर न लगी। वह डरकर कहने लगा—

"हमें चीरे-चोरे मत कोई
हम दाल गिराउब लोई।"

खूँटे में से दाल का दाना गिर गया और बुलबुल उसे लेकर आकाश में उड़ गई। उसकी प्रसन्नता का ठिकाना न था।

बालको, तुम भी इस कहानी से अध्यवसाय और निर्भयता का पाठ सीख सकते हो। केवल एक दाल के दाने के लिए बुलबुल ने कितना परिश्रम किया और अंत मे उसे प्राप्त करके ही माना। अपने हक के लिए बड़े बड़े लोगो पर भी नालिश करने में उसने कोर-कसर न की, क्योंकि वह निडर थी। इसलिए, हे बालको! तुम भी बुलबुल ही की भाँति परिश्रमी बनो और अपने हकके लिए अंत तक लड़ते रहो।

श्रीजगन्नाथप्रसाद सिंह

× × ×

२. गुणवान 'पढ़क्कू'

बड़े पढ़क्कू बड़े लिखक्कू,
बड़े खिलाड़ी बड़े लड़क्कू।
बड़े सयाने बड़े घुमक्कू,
बड़े मचलते बड़े बुलक्कू।१।

बड़े नाटकी बड़े भजक्कू,
बड़े नकलची बड़े पिटक्कू।
बड़े घिनाहे बड़े सजक्कू,
बत्तड़ पूरे पूरे भक्कू।२।

खूब उछलते बड़े कुदक्कू,
दिन भर सोते 'बड़े पढ़क्कू'।
शैतानी मे सबमे पक्कू,
दिन भर बहती रहती नक्कू।३।

बड़े घमंडी बड़े मिलक्कू,
बड़े कसरती बड़े हठक्कू।
बड़े लालची बड़े बिटक्कू,
बड़े आलसी बड़े ढुढक्कू।४।

पक्के क्रोधी बड़े झलक्कू,
सदा धूल में रहे 'पढ़क्कू'।
ऐसे मोटे खूब उड़क्कू,
बड़े मजाकी बड़े फिरक्कू।५।

गौरीशंकर 'शान्त'

१. योगाभ्यास

जीवात्मा का विकास जीवन के उत्कर्ष पर निर्भर है। इस शक्ति और प्राणों की वृद्धि हम योगाभ्यास ही से विशेषतापूर्वक कर सकते हैं। आहार-विहार में सामान्य सयम करते रहने और स्वास्थ्य के साधारण नियमों का पालन करते रहने ही से जब हमारी जीवन-शक्ति की वृद्धि होती है, तब योग सरीखे सर्वोच्च संयमपूर्ण मार्ग का अभ्यास करने से हमारी जीवन-शक्ति में अवश्यमेव असाधारण वृद्धि होगी, इसमें संदेह नहीं है। कई लोगों ने योग को हौआ समझ रखा है, और प्रत्येक मनुष्य को उसका अधिकारी नहीं समझते। उन्हें अपनी यह भूल अवश्य दूर कर देनी चाहिये। योग की क्रियायें किसी समुदाय-विशेष के लिये नहीं हैं। वे संपूर्ण मनुष्यों, ब्रह्मचारियों, गृहस्थों, संन्यासियों, स्त्री-पुरुष, बालक, वृद्ध, सभी के लिये हैं। प्रत्येक मनुष्य को अपने जीव और जीवन-विकास के लिये इन क्रियाओं का यथाशक्ति, यथावकाश और यथारुचि अवश्यमेव अभ्यास करना चाहिये। हाँ, इन क्रियाओं में पथदर्शक अथवा गुरु की आवश्यकता अवश्य पड़ती है। परन्तु, यदि मनमें लगन सच्ची हो, तो गुरु भी मिल ही जाता है। और फिर योग की सामान्य क्रियाओं के लिये तो गुरु की इतनी आवश्यकता भी नहीं रहती। सामान्य क्रिया बताने वाले मनुष्य भी बहुत मिल सकते हैं।

शरीर में पाचक-शक्ति के लिये पाचन नली का, प्राण-शक्ति के लिये रक्त नाड़ियों का और जीव-शक्ति के लिये (अथवा चेतना-शक्ति या चित्-शक्ति के लिये) ततुओं का विस्तार फैला हुआ है। हमारे जीवन मे इन तीनों शक्तियों की प्रबलता की आवश्यकता है। पाचक-शक्ति की शिथिलता से हमारी प्राण-शक्ति और जीव-शक्ति में भी शिथिलता आ जाती है। प्राण-शक्ति की शिथिलता से शेष दो शक्तियाँ भी शिथिल होजाती हैं और चित्-शक्ति की शिथिलता से शेष शक्तियों का शिथिल होना तो निश्चित ही है।

पाचक-शक्ति की वृद्धि अथवा शरीर-रक्षा के लिये योग के आचार्यों ने अनेकानेक क्रियायें ढूँढ़ निकाली हैं। शरीर में विजातीय वस्तुओं अथवा विजातीय (अर्थात् ह्रासोन्मुखी, उदाहरणार्थ—क्रोध, द्रोह, काम, लोभ, इ०) विचारों के आने से ही मल का आधिक्य होता है और मल के बढ़ने से ही रोग उत्पन्न होते तथा शरीर-रक्षा में बाधा होती है। इसीलिए सद्विचार यम, नियम व्रत, उपवास इत्यादि के साथ नेती-धोती, वस्ति, नौली इत्यादि का विधान किया गया है, तथा अनेक आसनों, बन्धों और मुद्राओं का अनुसंधान किया गया है। इनके अभ्यास से मनुष्य अपने शरीर को वज्र के बराबर बना सकता, और पत्थर भी पचा सकता है।

प्राण-शक्ति की वृद्धि अथवा प्राणरक्षा के लिये योगाचार्यों ने प्राणायाम की अनेकानेक क्रियाओं का अनुसंधान किया है। इस जगत् में सर्वत्र प्राण ही प्रवाहित हो रहे हैं। कोई स्थान इस प्राणवायु से खाली नहीं।

सम्पूर्ण वायु-मण्डल को हम प्राण नहीं कहते । वायु-मण्डल का विशुद्धतम अंश-विशेष ही प्राणवायु कहाता है । इस विशुद्ध अंश-विशेष का सम्बन्ध ग्रहों की शक्ति (Planetary electricity) और विशेषकर सूर्य-ज्योति से है । जिस समय सूर्य की ज्योति रहेगी उस समय प्राण-वायु का विशेष सचार होने से जगत् एक दम जागृत-सा हो उठता है, और सब जीवों में विशेष चेतना आ जाती है । सूर्य के न रहने पर रात्रि के समय प्राणवायु भी शक्तिहीन-सी हो जाती है, और इसीलिये जीवों को भी विश्राम करने—सोजाने—की आवश्यकता-सी जान पड़ती है । सो, इस प्रकार सूर्य-ज्योति से चित्-शक्ति पाकर प्राणवायु उसे हमारे शरीर मे लाती है और उसी चित्-शक्ति को प्राप्त करके हमारे जीवन की वृद्धि होती है । प्राणायाम की प्रक्रियाओं द्वारा इसी चित्-शक्ति की वृद्धि की जाती है, और हमारी नाभि के पास स्थित सूर्य चन्द्र का वेध किया जाता है, जिससे वह प्राणायामी योगी अतुल शक्ति-सम्पन्न होकर कठिन-से-कठिन कार्य सरलता-पूर्वक कर सकता है ।

योग का वास्तविक कार्य इसके बाद प्रारम्भ होता है । पाचक-शक्ति और प्राण-शक्ति तो हमारी जीवन-शक्ति के विकास के लिये साधनरूप ही है, वास्तव मे तो जीवरक्षा अथवा जीव-शक्ति की वृद्धि ही मुख्य है । उसीकी वृद्धि में हमारे जीवन की अनन्तता और सर्वशक्तिमत्ता है । इसीलिये योगियों ने प्राणायाम के बाद प्रत्याहार और ध्यान, धारणा, समाधि की व्यवस्था की है । ऊपर लिखा गया है कि मस्तिष्क ही ज्ञान-रज्जु के रूप मे मेरु-दण्ड के भीतर नीचे तक अनन्त स्नायु-तन्तुओं के रूप मे फैला हुआ है । पायु से दो अगुल ऊपर और उपस्थ से दो अगुल नीचे आकर ज्ञान-रज्जु मेरु-दण्ड के बाहर एक चतुरगुल विस्तृत कद के रूप में प्रकट हुई है । योगियों के मतानुसार उसी कंद से बहत्तर हज़ार नाड़ियां (स्ना-यु-तन्तु) निकलकर सम्पूर्ण शरीर में व्याप्त हुई हैं । इन में से तीन नाड़ियां मुख्य हैं, जिन्हें योगी लोग इड़ा, पिंगला और सुषुम्ना कहते हैं । वे इसीलिये मुख्य मानी गई हैं, क्योंकि उनके द्वारा प्राणवायु उस मूलस्थ कंद के पास तक पहुँचती है । दाहिनी नाक के पास पिंगला नाड़ी है, बाईं के पास इड़ा है, और दोनों के मध्य में सुषुम्ना है । जब हमारा दाहिना सुर चलता है (अर्थात् जब हम दाहिने नथुने से स्वच्छन्दतापूर्वक साँस लेते हैं) तब पिंगला नाड़ी उस श्वास-प्रश्वास से प्राणवायु खींच कर कन्द-मूल तक पहुंचाती है । जब बायाँ सुर चलता है, तब इड़ा नाड़ी प्राणवायु खींचकर कन्द-मूल तक पहुँचाती है । दक्षिण सुर तभी चलेगा जब प्राण-वायु में सूर्य्य का तत्त्व विशेष हो । इसीलिये वह सूर्य-स्वर कहाता है । वाम सुर मे शान्ति की मात्रा विशेष मिलती है, इसीलिये वह चन्द्र-स्वर कहा गया है । परन्तु इतना निश्चित है कि इड़ा और पिंगला दोनों के द्वारा हमारे कन्द-मूल तक शक्ति पहुँचती है, और उसी शक्ति को पाकर बहत्तर हज़ार नाड़ियाँ अपना-अपना कार्य किया करती है । रक्त की नालिकाओं से भी प्राणवायु प्रवाहित होकर मस्तिष्क के तन्तुओं मे पहुँचती और उसे पुष्ट करती है, तथा इड़ा, पिंगला इत्यादि के मार्ग से होकर भी वह शक्ति पहुँचाई जा सकती है । जो मनुष्य प्राणायाम के द्वारा कद-मूल में शक्ति का सचय करके उसके द्वारा बहत्तर हज़ार नाड़ियों ही की पुष्टि किया करते हैं, वे उन नाड़ियों द्वारा अपनी शक्ति को बहिर्मुखी ही किया करते हैं, इसलिये उनकी शक्ति का ह्रास और अपूर्णत्व अवश्यं-भावी है । और जो अपनी इस शक्ति को बहिर्मुखी न करके अन्तर्मुखी होने देते हैं, वे ही जीव के साथ इस शक्ति का सयोग कराकर पूर्ण और कृतकृत्य होजाते हैं । रक्त की नालिकाओं से जो प्राण के साथ चित्-शक्ति मस्तिष्क तक पहुँचती है, वह अत्यन्त स्वल्प रहती है, और जो चित्-शक्ति अन्तर्मुखी क्रिया से कन्द-मूल और ज्ञान-रज्जु के द्वारा पहुँचाई जासकती है, उसकी कोई सीमा नहीं । यह अन्तर्मुखी क्रिया विशेष रूप से तब सिद्ध होतीहै, जब सुषुम्ना नाड़ी के द्वारा चित-शक्ति खींची जाय । क्योंकि इड़ा पिंगला के समान वह नाड़ी कंद-मूल तक ही आकर नहीं रहजाती, वरन् वह उससे भी आगे बढ़कर हमारे मस्तिष्क तक पहुंचती और जीव के स्थान से विशेष सम्बन्ध रखती है । इसी सुषुम्ना के सहारे योगी लोग शक्ति को ऊर्ध्वगामिनी करके अमृत पद प्राप्त करते हैं । जिस समय दाहिने और बायें दोनों सुर बराबर चलें तब समझना चाहिये कि श्वास-प्रश्वास सुषुम्ना के समीप से प्रवाहित होरहा है, और चित्-शक्ति सुषुम्ना के मार्ग से आगे बढ़ रही है । बस, प्राणायाम के द्वारा योगी लोग शक्ति को प्रबुद्ध करके इसी सुषुम्ना के

मार्ग से ऊपर प्रवाहित करने की चेष्टा किया करते हैं। योग की इसी अन्तर्मुखी क्रिया का नाम प्रत्याहार है और कन्द-मूल के पास संचित होनेवाली उस चित्-शक्ति (Life energy—सूर्य की शक्ति जिसका भाग मात्र है) ही को कुण्डलिनी कहा गया है। वह कम्प अथवा ताप के रूप में विकसित होने के कारण परावाणी अथवा आदि-शक्ति भी कही गई है। और बहिर्मुखी क्रिया के विपरीत जो यह अन्तर्मुखी क्रियाहै, उसे ही योग का उलटा मार्ग कहा गया है; तथा मस्तिष्क-रूपी मूल से निकलकर ७२ हज़ार नाड़ियों के रूप में नीचे आकर फैलने वाले तन्तु-जाल ही को ऊर्ध्व मूल और अध शाखावाला अश्वत्थ-वृक्ष (पीपल का पेड़) कहा गया है।

भारतीय महात्माओं ने इसी जीव और शक्ति के संयोग को बड़े ही मनोहारी भावों में व्यक्त किया है। शङ्कर-भक्त इसे शिव शक्ति-संयोग के रूप में वर्णित करते हैं। राम-भक्त इसे सीताराम-मिलन समझते हैं। कृष्ण-भक्त तो बहत्तर हज़ार नाड़ी-रूप गोपियों के संग श्रीराधाजी का (कुण्डलिनी का) वंशीवट के निकट (मस्तिष्क के पास) आकर श्रीकृष्णजी के साथ रास-विलास ही देखा करते हैं, और आधुनिक संतगण इसे सुरति-शब्द-संयोग के रूप में वर्णित करके गद्‌गद् हुआ करते है। इसी शक्ति का संयोग पाकर जीव पूर्ण होजाता है, शिव होजाता है, साक्षात् परमात्मा होजाता है। हमारा जीव जितना ही बहिर्मुखी रहेगा, उतनाही सङ्कीर्ण होगा। वह जितनाही अन्तर्मुखी होगा उतनाही पूर्ण होता जायगा। हमारी शक्ति की उत्क्रान्ति के साथ हमारा बहिर्मुखी क्षुद्र जीव भी ऊपर उठता जाता है, और अन्त में मस्तिष्क में पहुँच कर सर्वशक्तिसम्पन्न स्वयं शिव बन जाता है। इसी में अनन्त जीवन है, इसीमें अनन्त कल्याण है, इसीमें जीवन के उत्कर्ष की इयत्ता है।

कन्द-मूल से लेकर मस्तिष्क तक सुषुम्ना नाड़ी एकदम सीधी-सीधी ही नहीं चली गई है। बीच-बीच में उसकी अनेकों गुत्थियाँ भी पड़ गई हैं। इन गुत्थियों में छ: प्रधानहैं, इन्हें षट्चक्र कहते हैं। इसी चक्रव्यूह को भेदकर कुण्डलिनी शक्ति ऊपर को पहुँचाई जाती है। ये गुत्थियाँ (अथवा चक्र) कमल के आकार की हैं, और उनमें सुषुम्ना के लपेट कमलदलों के समान दिखाई देते हैं। वे चक्र क्रमशः मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपूर, अनाहत, विशुद्ध और आज्ञा चक्र कहाते हैं, और उनके स्थान भी क्रमशः कन्द और सुषुम्ना का संधि-स्थल, लिंगमूल, नाभिमूल, हृदय, कण्ठ और भ्रूमध्य हैं। प्रत्येक पद्म के दलों की संख्या भिन्न भिन्न है, और उनके एक एक पत्तों पर एक एक विशिष्ट आकृति-सी बनी हुई है। (जो सुषुम्ना की उलझन ही के कारण जान पड़ती है, और जिसे वर्णमाला के एक एक अक्षर की आकृति माना गया है) तथा उस दल से वैसेही अक्षर की ध्वनि भी होती है। (जो चित्-शक्ति के प्रवाह-भेद से जान पड़ती है)। इस प्रकार प्रणवरूपिणी वह परावाणी (आदि-शक्ति) षट्चक्र के भीतर वर्णमाला के रूप में विकसित होकर मस्तिष्क के कैलाश-कूट पर स्थित सदाशिव के गले में पड़जाती है। तभी विश्व में आनन्द की धारायें बह निकलती है, और कालकूट भी अमृत का फल देने लगता है। हमारा मस्तिष्क भी, जो अखरोट के समान बना हुआ है, हज़ार पत्तोंवाला कमल ही जान पड़ता है। इसलिये योगियों ने षट्चक्र के ऊपर इसे सातवां चक्र माना है, और इसे सहस्र-दल कमल कहा है। यहीं पर राधाकृष्ण का अपूर्व रास सदैव हुआ करता है। जो इसका अनुभव करता है, वही कृतकृत्य होता है। इस षट्चक्र को भेदन कर सहस्र-दल कमल में शिव-शक्ति-संयोग करा देने के तीन उपाय हैं (१) मंत्र, (२) ज्योति, (३) नाद। इनमें से किसी एक की सहायता से कार्यसिद्धि हो सकती है। तीनों का संक्षिप्त वृत्तांत आगे दिया जाता है। स्मरण रखना चाहिये कि ये तीनों मार्ग भी "ध्यान" के ऊपर अवलंबित हैं।

मंत्र—यह विज्ञान-सम्मत है कि समस्त संसार विद्युदणुओं (electrons) का विकास है। तंत्र और योग वाले इन विद्युदणुओं को भी कम्प या नाद और विंदु (rotations and vibrations) का विकास मानते हैं। इस दृष्टि से नाद अथवा शब्द ही आदि-शक्ति है। नाद और विंदु का मूलतम रूप है ॐ। वह मूलभूत शब्द इसी प्रकार गूँजता रहता है और कुण्डलिनी के रूप में उसका आकार भी ऐसा ही रहता है। इसलिये मंत्र-शास्त्र में ओंकार ही ब्रह्मरूप माना गया है। षट्चक्र में विकसित होकर यह शब्द वर्णमाला के सब अक्षरों के रूप में (जिनमें अनुस्वार अवश्य रहता है, जैसे कं, खं, गं, घं आदि) हो जाता है। प्रत्येक अक्षर

की शक्ति अलग-अलग है और रंग-रूप, आकार, परिणाम, फलाफल इत्यादि भी अलग-अलग है। उस अक्षर के उच्चारण होते ही उसमें निहित शक्ति और रूप का प्रादुर्भाव होना अवश्यभावी है। मन्त्र-शास्त्र में इन्हीं अक्षरों और इनमें निहित शक्ति (जिसे उस मंत्र का देवता कहते है) के ध्यान करने की विधियाँ हैं, और यह दावे के साथ कहा गया है कि अमुक मन्त्र के जप से अमुक सिद्धि होना अवश्यभावी है। हमारे भीतर चित्-शक्ति के अनवरत नाद से जो शब्द उठा करते हैं, वे ही वास्तव में अक्षर कहाने योग्य हैं; क्योंकि वे प्रत्यक्ष फल-दायक होते है, और उनका नाश नहीं होता। हम मुँह से जिन शब्दों का उच्चारण करते है, वे तो उच्चरित होने के बाद शून्य में विलीन हो जाते है। हमने 'राम' कहा और हमारे कहने के बाद ही वह शब्द शून्य में विलीन होगया। यदि हमने बाहरी वाणी से न कहकर यही शब्द परावाणी से 'रम्' बीज के रूप मे उठवाया तो तत्काल ही हम उसका फल दृष्टिगोचर कर सकते है। मन्त्र-शास्त्र मे मन्त्र-सिद्धि के विषय मे यही रहस्य है। इसी पर ध्यान न देने से ज़बानी जप करने वालो को सिद्धि नहीं प्राप्त होती। अब परावाणी से शब्द उठाना सबके लिये तो सरल नहीं है, इसीलिये यह विधान किया गया है कि प्रत्येक मन्त्र के देवता (तन्निहित शक्ति) का मन्त्र जपने के समय स्थूल रूप मे ध्यान किया जाय और इस प्रकार मन्त्र और उसके देवता का जप मे अनेक बार (अथवा यथासंख्यात) एकी-करण होने से उसका फल प्रत्यक्ष दिखने लगता है। देवता का ध्यान किये विना मन्त्र का जप करना लाभ-दायक नहो। (यद्यपि ऐसे कोरे जप से इतना लाभ अवश्य होता है कि कालान्तर में उस घोर अभ्यास के कारण हमारी प्रवृत्ति हो उठती है और उस मन्त्र के शब्द की ठोकरें लग-लगकर कुण्डलिनी को उस मन्त्र-विशेष की ओर बढ चलने की उत्तेजना मिलती है। परन्तु ये लाभ प्रत्यक्ष सिद्धि के आगे तुच्छही-से हैं)। इस प्रकार मंत्र के साधन मे मन्त्र-शास्त्रियो ने ध्यानही की प्रधानता मानी है। अब यह पहले ही कहा जा चुका है कि मन मे कोई विचार आते ही हमारे आज्ञा-तन्तु आप-ही-आप वैसा कार्य करने लगते हैं; बशर्ते कि कोई बाधक विचार उपस्थित न हो। तब जब ध्यानयोग से हम किसी विशिष्ट शक्ति (देवता) ही का विचार इस दृढ़ता से कर सकेंगे कि जिससे बाधक विचार पास तक न फटकने पावे तो यह निश्चित ही है कि हमें उस विशिष्ट शक्ति की सिद्धि अवश्यमेव हो जायगी और हमारे स्नायु-जाल वैसे ही शक्तिसंपन्न हो जायँगे। इस प्रकार जब हम मन्त्रयोग से पूर्ण सच्चिदानन्द का ध्यान करेंगे, तो सुषुम्ना सरीखे हमारे स्नायु-जाल अवश्य ही उस विचार की पूर्ति के लिये कुण्डलिनी शक्ति को आप-ही-आप ऊपर पहुँचा देंगे। षट्चक्र-भेद आप ही-आप हो-जायगा। हमे प्रयत्न भी न करना पड़ेगा। आजकल के अधिकांश वैज्ञानिक नाद और अक्षर के रहस्य को चाहे स्वीकार न करें, परन्तु ध्यान के महत्व को और उस के द्वारा कार्यसिद्धि को तो उन्हे स्वीकार करना ही पड़ेगा।

(२) ज्योति—मन्त्र-योगी लोग स्थूल रूप का ध्यान करते हैं। प्रत्येक मन्त्र की शक्ति के अनुसार उसके देवता और उस देवता के रूप की कल्पना करनी पड़ती है, तथा उसकी बाह्यमूर्ति का ध्यान करना पड़ता है। ऐसे बाह्य और कल्पित पदार्थ का ध्यान नीचे दर्जे का ही ध्यान कहा जायगा। केवल ज्योति का ध्यान करना किसी बाहिरी रूप-विशेष के ध्यान से उत्तम है। इस ज्योति का ध्यान आँखें बन्द करके भ्रूमध्य के बीच मे (त्रिपुटी में) किया जाता है। इस ज्योति की भी सोलह कलायें या सीढ़ियाँ मानी गई है, जिनमें प्रथम नौ क्रमश: ओस, धुआँ, सूर्य, वायु, अग्नि, खद्योत, बिजली, स्फटिक और चन्द्र के समान है, शेष शब्दों के द्वारा प्रकट नहीं की जा सकतीं। त्रिपुटी में ध्यान का अभ्यास करते रहने से क्रमश: इन सब ज्योतियों के दर्शन होते हैं। हम उस स्थान-विशेष में ज्योति का ध्यान करते है, इसलिये हमारी आँखों के ज्ञान-तन्तु यथार्थ ही वहाँ ज्योति के दर्शन पाने लगते हैं। हम विरह, उन्माद या भक्ति के आवेश (ध्यान की एकाग्रता) मे अपनी प्रियतमा जगत् के ऐसे ही पदार्थ या स्वयं मूर्तिमान ईश्वर के प्रत्यक्ष दर्शन कर लेते है। (हमारी आँख के ज्ञान-तन्तुओ के द्वारा जान पड़ता है कि बाहर आराध्य-मूर्ति खड़ी हुई है)। तब फिर ध्यान की एकाग्रता के कारण एक विशिष्ट बात के दर्शन के लिये आँख के ज्ञान-तन्तुओं में हलचल पैदा करके क्या हम ज्योति के

दर्शन नहीं प्राप्त कर सकते। त्रिपुटी ही वह स्थान है जहाँ इड़ा और पिंगला के साथ सुषुम्ना का संगम हुआ है। इसीलिये वह त्रिवेणी के समान पवित्र माना गया है। सो उस स्थान पर ज्योति का ध्यान करने से सुषुम्ना में हलचल होना और उसके द्वारा ज्योति अथवा चित्-शक्ति का ऊपर उठना अवश्यंभावी है। अब हम अपने त्राटक की ज्योति को साक्षात् ब्रह्मज्योति मानते हैं, इसलिये ज्योति के साथ जो इस पूर्णत्व की भावना का ध्यान होता है, उससे सहज ही हमारे षट्चक्र का वेध हो जाता है।

(३) नाद—ऊपर ही कहा गया है कि तंत्र और योग के अनेक विद्वानों ने नाद ही से सम्पूर्ण सृष्टि की उत्पत्ति मानी है। इससे नाद का अनुसंधान और नाद के केन्द्र-मूल बिन्दु का ध्यान करने से भी उस मूल शक्ति के साथ जीवात्मा का संयोग होने से षट्चक्र का वेध आपही हो जाता है। कर्ण-रन्ध्र को मूँदकर ध्यानस्थ होने से आपही कुछ शब्द सुनाई देता है—वह शब्द चाहे सूक्ष्म वायु के प्रवेश के कारण हो, चाहे कान के ज्ञान-तन्तुओं के संघर्ष के कारण हो, चाहे रक्त नलिकाओं मे रक्त के दौड़ने के कारण। क्रमश: उसी शब्द पर लक्ष्य करते रहने से हम उसीके भीतर सूक्ष्म-से-सूक्ष्म शब्द सुन सकने की शक्ति प्राप्त कर सकते हैं। अन्त में वह शब्द सूक्ष्मतम होते हुए आदि-शक्ति कुण्डलिनी मे उठते रहनेवाले शब्द के समान हो जाता है। उस समय हमे अपनी कुण्डलिनी शक्ति का प्रत्यक्ष ज्ञान प्राप्त होता है। और उसी बिन्दुरूपिणी पराशक्ति मे अपने क्षुद्र जीव का लय करके हम पूर्णत्व का पद प्राप्त कर सकते हैं। इस नाद के अठारह भेद माने गए हैं, और यह अनाहत (बिना बजाये आप-ही-आप निरन्तर) हुआ करता है, इसलिये इसे अनाहत नाद या अनहद नाद कहा गया है। नाद बिन्दूपनिषद् में यह नाद क्रमश: जलधितरङ्ग, मेघगर्जना, भेरी, निर्झर, मृदंग, घंटा, वेणु, किंकिणी, वंशी, वीणा, और भ्रमर के स्वर के समान माना गया है। योगी लोग क्रमश: ये नाद सुनकर परमपद प्राप्त करते हैं।

षट्चक्र-वेध के जो ये तीन मार्ग बतलाये गये हैं, वे तीनों ध्यान ही के ऊपर निर्भर हैं। मुख्य तो ध्यान ही है जिसके कारण षट्चक्र भेद होता है। जिसमें एकाग्रता की शक्ति अच्छी तरह आ गई है, और जो अपने पूर्णत्व अथवा सच्चिदानन्दत्व पर दृढ़ ध्यान कर सकता है, उसका षट्चक्र भेद अवश्यंभावी है। जब वही ध्यान किसी मूर्ति के सहारे होता है, तब हम उस प्रक्रिया को मंत्रयोग कहते है। जब वही ध्यान ज्योति के सहारे होता है तब हम उसे हठयोग कहते हैं। (हठयोग में नाड़ियों के व्यायाम और उन्हें प्रबुद्ध करने की विधियाँ हैं, इसीलिये उसमें ज्योति का विधान किया गया है, जिससे सुषुम्ना में उस ज्योति और शक्ति का संचार होकर षट्चक्र वेध हो जाय)। जब वही ध्यान बिन्दु (नाद के केन्द्रिस्थ रूप) के सहारे होता है, तब हम उसे लययोग कहते हैं, परन्तु वास्तव में तो ध्यान-योग ही (जिसे हम राजयोग कह सकते हैं) प्रधान है। सच्चिदानन्द की प्राप्ति में सत् अथवा शक्ति का अंश मंत्र योग के मार्ग मे विशेष है। चित (ज्योतिप्रकाश, ज्ञान) का अंश हठयोग के मार्ग में विशेष है। और आनंद का अंश लययोग के मार्ग में विशेष है। हम चाहे किसीभी मार्ग का अवलम्बन करें, षट्चक्र-वेध अवश्यंभावी है।

योग कोई अप्राकृतिक वस्तु नहीं है। वह केवल प्राकृतिक नियमो ही के आधार पर जीवन को विशेष उत्कृष्ट बनाने की प्रक्रिया मात्र है। इसलिये उसे हौआ समझना एकदम अनुचित है। जीवों के जीवन को उत्कृष्टतम बनाने के लिये इस अमूल्य शास्त्र की (जिसकी सब क्रियाएँ वैज्ञानिक नियमो के अनुसार निश्चित की हुई हैं) जो कोई उपेक्षा करते है, वे अपने पूर्वज महर्षियों के साथ बड़ा अनुचित व्यवहार कर रहे हैं, इसमे कोई संदेह नहीं।*

बलदेवप्रसाद मिश्र

* अप्रकाशित 'जीवविज्ञान' से।
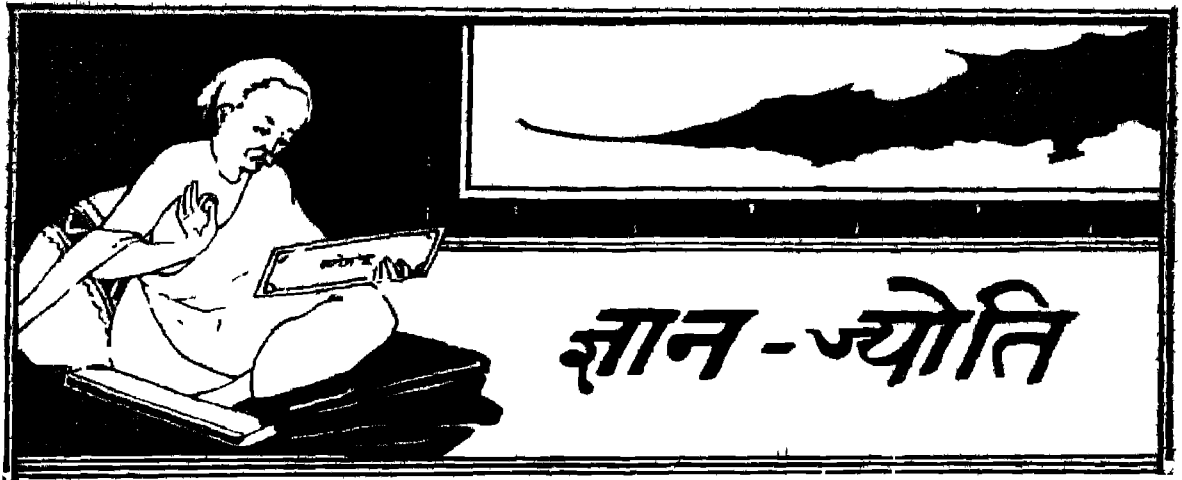
१. विक्रम सवत् ११३४ का कलचुरीवंशीय सोढ़देव का गोरखपुर जिले मे प्राप्त ताम्र-लेख
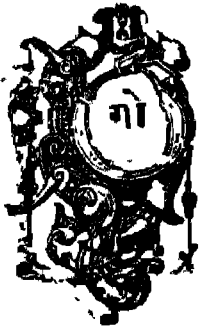
रखपुर जिले के धुरियापार परगने मे कहल (Kahal)-नामक एक गाँव है । यह ताम्र-लेख इसी गाँव में शिवसेवक राय नाम के एक किसान को १५ अगस्त सन् १८८९ में मिला था । यह ताम्र-पत्र आजकल लखनऊ के 'अजायबघर' में है । यह ताम्र-पत्र १ फुट ४$\frac{1}{2}$ इंच चौड़ा और १ फुट $\frac{3}{8}$ इंच लम्बा है । अक्षर दोनों ओर खुदे हैं । नीचे की ओर ठीक बीच में एक छेद है जिसमें एक चक्राकार मुद्रायुक्त अंगूठी है । मुद्रा (seal) पर वृषभ (बैल) का चिह्न है और उसके नीचे "श्रीमत्सोढ़देवस्य" नागरी लिपि में लिखा हुआ है । इसके नीचे एक बाण (arrow) का चित्र दिया गया है ।

इस ताम्र-पत्र की लिपि नागरी है । कन्नौज के राजा जयचन्द्र और गोविन्दचन्द्र के ताम्र-पत्रों की लिपि से इसकी समानता है । भाषा है संस्कृत, पर ब्राह्मणों के नाम देहाती या देशीभाषा के रूपों में दिये गए हैं । Names of some of the Brahmans mentioned in lines 40—50 are given in their vernacular forms or in forms based on them

सरवार में कलचुरी या हैहय राजवंश की किसी शाखा के शासन का हाल अबतक नहीं मिला है । यही एक ताम्र-पत्र है, जिससे गोरखपुर में हैहय-राजत्व पर कुछ थोड़ा सा प्रकाश पड़ सकता है ।

ताम्र-पत्र में परमभट्टारक महाराजाधिराज परमेश्वर श्रीमर्यादासागर देव के पुत्र परमभट्टारक महाराजाधिराज परमेश्वर श्रीसोढ़देव के द्वारा प्रदत्त भूमिदान का उल्लेख है । प्रारम्भ के श्लोकों में सोढ़देव के पूर्व-पुरुषों का वर्णन दिया गया है, जो यों है:—

अत्रि के पुत्र सोम, बुध, पुरूरवा, नहुष, हैहय, कृतवीर्य और कार्तवीर्यार्जुन हुए । इसी हैहय वंश में एक राजा हुए, जिन्होंने अयोमुख को जीतकर, क्रथ (Krathas) जाति को वश में लाकर 'कालञ्जर' पर अधिकार किया (श्लोक ४) । इस अज्ञात नाम नृपाल ने शत्रुओं का संहार कर अपना राज्य अपने छोटे भाई को सौंप दिया । उनके छोटे भाई लक्ष्मणराज ने "श्वेतपद" पर विजय प्राप्त की । इन लक्ष्मणराज के वंश में एक राजपुत्र-नामक नरेश हुए, जिन्होंने तुरगपति बाहुलि को बन्धन-युक्त कर पूर्वदेश के राजाओं को हराया तथा किरीटी तथा अन्य राजाओं की कीर्ति नष्ट की । उनके पुत्र हुए शिवराज, और शिवराज के पुत्र हुए शंकरगण (प्रथम) । उनके पुत्र गुणाम्भोधिदेव (या गुणाकर "प्रथम") हुए । इन गुणाकर ने भोजदेव से सम्बन्ध स्थापित किया तथा गौड़ देश की राज्यलक्ष्मी छीनली । उनकी रानी कौशलदेवी से उल्लभ उत्पन्न हुए । इन्होंने अपने भाई भामानदेव को राजा बनाया । भामानदेव ने "धार" के राजा से युद्ध किया था । इनके पुत्र शंकरगण (द्वितीय) मुग्धतुङ्ग हुए ।

फिर गुणसागर (द्वितीय) जात हुए। उनके पुत्र राजवा से शिवराज (द्वितीय) हुए। फिर शंकरगण (तृतीय) हुए। फिर भीम नामक राजा हुए। भीम राजा को दुर्भाग्यवश राज्य से वंचित होना पड़ा। गुणसागर (द्वितीय) के पुत्र व्यास-नामक राजकुमार थे। इन्हें सिंहासन प्राप्त हुआ। यही व्यास नृपति इस ताम्र-पत्र के नायक सोढ़देव के पिता थे। सोढ़देव "सरवार के जीवनाधार" स्वरूप थे।

यथा:—

प्रौढप्रतापपरितापचयारभय-
कीर्तेः श्रिता जलनिधीनपि सम तयोम्।
लक्ष्मीः पुनर्जलधिमयनिवासशैल्यात्
श्रीसोढ़देवचरणं शरणं प्रयाता ॥२८॥
स श्रीसोढदेवोऽय सरयूपार जीवितम्।
विदुषामग्रणीः श्रेष्ठो धर्मराशिः प्रजेश्वरः ॥ ३० ॥

इस श्लोक के आगे गद्य में भूमिदान का विवरण है।

यथा:—

स्वस्ति। धुलियाघट्टासमावासात्।

परमभट्टारक महाराजाधिराज परमेश्वर श्री मर्यादासागरदेव पादानुध्यात परमभट्टारक महाराजाधिराज परमेश्वर श्रीमत्सोढ़देवपादाः कल्याणिन महाराज्ञी, महाराजपुत्र, महासान्धिविग्रहिक, महामहन्तक, महाप्रतिहार, महासेनापति, महाक्षपटलिक, महासाधनिक महाश्रेष्ठी महादानिक, महापान्थाकुलिक, शौल्किक, गौल्मिक, घट्टपति, नरपतिविषयदानिक, दुष्टसाधक, चण्डवाल, वलाधीरप्रभृतीन् समस्तराजपुरुषान् भट्टामाकुलिक, महत्तमप्रमुखान् जनपदादीन् च मानयन्ति, बोधयन्ति, समाज्ञापयन्ति च। यथा विदितमस्तु भवताम्।

गुणकलविषय-प्रतिबद्धटिकारिकाया पूर्वे अन्नाढ। उत्तरे टिकरी। दक्षिणे अवडन्वरा। पश्चिमे चगडुलेश्रा। अत्र चतुराघाट अभ्यन्तरे महिआरि-पाटक, अमथो पाटक, वणिआ पाटक, दुआरि पाटक, चाछिडा-डाटेभा क्षेत्रेषु, देवकुटिकाष्ट-परिमित विंशति-नालुक परिमाण भूमि ॥ अङ्केऽपि भूमि-नालू २० भूमिरियम्। सजलस्थला, साम्रमधूका, सवनवाटिका, सगर्त्तोसरा, सलोहलवणाकरा, सगोप्रचार-तृण-पूति चतुःसीमा पर्यन्ता × × रविदिने × × महानदी गण्डक्याम् विधिवत् स्नात्वाचम्य इष्टदेवतापूजासमनन्तर × × × × × चतुर्दशब्राह्मणेभ्यो × × × × सम्प्रदत्ताऽस्माभि ॥

गण्डकी नदी के तट पर "धुलियाघट्टा" नामक कोई घाट या स्थान था। वहाँ से यह दान-पत्र प्रचारित किया गया था। गुणकल प्रान्त में टिकारिका परगने में दान में दी हुई भूमि थी। भूमि १४ ब्राह्मणों को "सदर्भतिलोदक पाणि" दी गई थी। ऊपर जो विविध राज-कर्म्मचारियों के नाम आए हैं, उससे ज्ञात होता है कि सोढ़देव का राज्य-प्रबन्ध उच्चकोटि का रहा होगा और उसके नीचे एक सुसगठित "मन्त्रिमण्डल" रहा होगा।

मूल लेख के चार पाँच श्लोक बतौर नमूने के नीचे दिये गये हैं—

कलचुरितिलकः शत्रून् जित्वा राज्य ददौ लघुभ्रातुः।
स श्रीलक्ष्मणराजः स्वेतपदं यः पुनर्जितवान् ॥ ६ ॥
तद्वंशे विश्वभर्त्ता तुरगपतिमथो बद्धवान् बाहलियो।
यश्च प्राचीचिर्तान्ध्रानवसरकरणम्यातदोर्दण्डदर्पः ॥
राजा आराजपुत्रः स सभयमदभग्न्याकिरन्यक्तगर्वे।
स्वीकुर्वन् किरीटि प्रभृतिनृपयशोराशिमामान्मनीषा ॥७॥
ततः पृथ्वीनाथद्वितयवरणीय प्रभवभृत्।
प्रमाथी शत्रूणां समिति शिवराजः शिविरिव ॥
सुतस्तस्माज्जातः स रणफुरणा वृत्तिरसकृत्।
क्षमानाथः क्षेमाप्रकृति सरलः शङ्करगण ॥ ८ ॥
तत्सूनुर्धर्म्मधाम्नानिर्विरोधकधियाभोजदेवाप्तभूमिः।
प्रत्यावृत्तप्रकारः प्रथितपृथुयशा श्री गुणाम्भोधिदेव ॥
येनोद्दामिकदर्पद्विपघटितघटाघात रुसक्तमुक्ता—
सोपानोदानुरागात्प्रकटपृथुपथेनादृता गौड लक्ष्मी ॥

सम्पूर्ण लेख उद्धृत करने को स्थानाभाव है।

यह ताम्र-पत्र स्वर्णैतिहासिक महत्ता में एक विशेष स्थान रखता है, क्योंकि अबतक "मध्यदेश" या युक्त-प्रान्त अथवा "सरवार" के हैहयवंशीय राजों का वर्णन अन्यत्र नहीं मिला है। श्री प० विश्वेश्वरनाथ रेउजी के "प्राचीन राजवंश" नामक प्रसिद्ध पुस्तक में इस "सरयूपारीण" हैहय राजशाखा का उल्लेख सन्निवेशित किया गया है या नहीं, हमें ज्ञात नहीं।

इस ताम्र-पत्र के वर्णित "टिकारिका" का नाम छत्तीसगढ के राजा पृथ्वीदेव (द्वितीय) के चेदि सं० ९०० वाले ताम्र-पत्र में भी आया है। हम उस अश को नीचे उद्धृत करते हैं—

चन्द्रात्रेयस्य गोत्रे भृतिमिश्रन्द्रात्रिपावनेः।
प्रवरे, प्रवरो विप्रो मिहिरस्वामिनामभृत ॥ १२ ॥

शाखा वाजसनेयाख्या टकारी ग्रामनिर्गत ।
तस्य ब्रह्म समस्यामीद्विशाम्मेंति नन्दन ॥ १३ ॥

'टकारी' ग्राम के सम्बन्ध में रायबहादुर हीरालाल साहब लिखते हैं.—

Takari appears to have been a big colony of Brahmans in the United Provinces from which emigration took place from time to time Its name is found in several charters, but as there exist many villages of that name, it is difficult to say which particular one is its representative

(J H Quarterly p 468, Vol 1 no 3)

इस ताम्र-पत्र का विवरण डाक्टर कीलहार्न (गाटिंगन—जर्मनी) ने सन् १९०२—०३ के "एपिग्राफ़िया इंडिका" (E Indica Vol. VII) नामक पत्रिका में प्रकाशित किया है। जिन महाशयों की जिज्ञासा हो, वे उक्त पत्रिका मे सोढ़देव के ताम्र-पत्र के सम्बन्ध का लेख देख सकते हैं; अथवा लखनऊ के 'अजायबघर' में जाकर मूल ताम्र-पत्र के दर्शन कर सकते हैं। खेद है कि Epigraphia Indica में डाक्टर कीलहार्न साहब के लेख के साथ इस ताम्र-पत्र की प्रतिकृति नहीं दी गई है। यदि 'माधुरी' के सम्पादक महोदय उस ताम्र-पत्र और उसके साथवाली राज-मुद्रा (Seal) की प्रतिकृतियां पाठकों को अर्पण कर सकें, तो बड़ा उपकार हो।

डाक्टर कीलहार्न साहब का मत है कि इस राजवंश का सस्थापक राजा राजपुत्र सन् ई० की ९वीं सदी के प्रारम्भ में विद्यमान था।

The founder of this new branch of the *Kalchuri* family Rajputra cannot be placed later than the beginning of the 9th century A D

इस ताम्र-लेख मे तीन तिथियाँ दी गई हैं। जिस दिन यह भूमिदान दिया गया था, उसकी तिथि है विक्रम सवत् ११३४ रविवार (ता० २४ दिसम्बर सन् १०७७ ई०) यह लेख जिस तिथि को लिखा गया, वह है कार्तिकादि विक्रम सवत् ११३५ पूर्णिमान्त चैत्र (ता० २४ फ़रवरी सन् १०७९ ई०, रविवार) अर्थात् दान देने के १४ महीने पश्चात् ताम्र-पत्र पर लेख उत्कीर्ण किया गया। मूल लेख की पंक्ति २८ और २९ मे सोढ़देव के पिता व्यास के सिंहासनारोहण की तिथि दी गई है। वह है कार्तिकादि विक्रम सवत् १०८७ (अर्थात् ता० ३१ मई सन् १०३१ ई०, सोमवार) यथा :—

श्रीमान् स स्वपितुः पदे गतवति ज्येष्ठे द्वितीये क्रमात्
वारे शीतरुचे सुधासुधवले पक्षेऽष्टमीवासरे।
सप्ताशीतिसमन्विते दशगुणे सवत्सराणां शते
भूपो गोकुलघट्टभाजि कटके भान्यष लब्धोदय ॥ २७ ॥

हम इसके पहले यह लिख आए हैं, कि "भीम" नामक राजा को दुर्भाग्यवश राजच्युत होना पड़ा। 'भीम' के पुत्र गुणसागर के पुत्र व्यास, जो सोढ़देव के पिता थे :—

अस्मिन राज्यपरिच्युते विधिवशात् लावण्यवस्यामभूत्
देव्यां श्रीगुणसागराभरपतेरुत्पन्नजन्मा नत ।
श्रीव्यासः स पराशरादिव मुनेर्व्यास शिशुत्वेऽपि न
प्रासा त्यागदयादमि गुणगणैर्यस्यापरे तुल्यताम् ॥२५॥
किम्वा बलि· किममपुण्यमरीचिसूनुः
किं राघव किमु नृग किमय ययाति ।
एवं जनैं प्रतिदिन परितर्कयद्भिः
य स्तूयते जगति म स्वपदे प्रतिष्ठ· ॥ २६ ॥

२७वाँ श्लोक अन्यत्र उद्धृत है। २८वाँ श्लोक सुनिए:—

तत्पुत्र सुकृतैर्जनस्य नृपतामासादित स्वैर्गुणै.
राजा निर्जितकार्तवीर्यचरित श्रीसोढ़देवोऽधुना।
सत्यत्यागविवेकविक्रमनयप्रागापारविस्फारित-
प्रालेयाचलतूलनिर्मलयशो धौतत्रिलोकीतल ॥ २८ ॥

इस ताम्र-लेख के प्रशस्तिकार कवि का उल्लेख ताम्रपत्र में नहीं है। अन्त मे इतना भर अवश्य लिखा हुआ है—

लिखितोऽय ताम्रपट्ट आदेशनैबन्धिक श्री—अनकेनेति ॥ थ ॥ थ ॥ थ ॥ मंगल महाश्रीः ॥ थ ॥
स्वहस्तोऽयम् महाराजाधिराजश्रीमत्सोढ़देवस्य ॥

इस ताम्र-लेख मे वर्णित ग्रामों का पता गोरखपुर ज़िले के कोई साहित्य-प्रेमी लगा सकें, तो बड़ा अच्छा हो। ग्रामों के नाम ये हैं —मोहाला, मथुर, हस्तिग्राम, निखतिग्राम, तिलकी, कुलान्ध, आदि।

डाक्टर कीलहार्न लिखते हैं —

I regret to say that I have not been able to identify with confidence any of the numerous *localities* mentioned in this inscription × × × × The rivers (गंडकी और सरयू) would indicate in a general way where Gunakal Vishaya and (the district of) *Tikārikā*, in which the villages containing the land granted were situated, should be looked for

लोचनप्रसाद पांडेय

आसावरीध्यानम्

जवाप्रसूनद्युतिबिम्बवक्त्रा स कञ्चुपद्म करयोर्दधाना ।
क्षौमांशुकच्छादितगात्रयष्टिराशावरी रङ्गकलाविदग्धा ॥

(शब्दकल्पद्रुम)

चलकदलीदलमौलिर्मलयाचलवासा क्वणन् मुरलि ।
आसावरी सकरुणा बहोली शालिनी नीला ॥

(रागविबोधविवेक)

कुङ्कुमाङ्कितवक्षोजा पुरुषेण समास्थिता ।
संगीतरसिका राजत्यासावरी मुनेर्मते ॥

(नारदीय)

गांधारोऽत्राग्निग स्यात प्रथमगतिगानिर्मादिमध्यान्तपूर्णा
तन्वंगी श्यामवर्णा करधृतमुकुला सर्वशृंगारयुक्ता ।
रम्भाया काननेषु प्रियविमलयशोऽध्यापयन्ती सुकेशी
गन्धर्वैः स्तूयमाना प्रियरसकरुणा शश्वदासावरी सा ॥

(रागमाला)

श्रीखण्डशैलशिखरे शिखिपिच्छवस्त्रा मातङ्गमौक्तिकमनोहरहारवल्ली ।
आकृष्य चन्दनतरोरुरग वहन्ती आसावरीवलयमुज्ज्वलनीलकान्ति ॥

(संगीतदर्पण)

राग आसावरी

ग्रंथों में जो भैरवी ठाट लिखा है उसीको आजकल आसावरी ठाट कहते हैं। इसके स्वर यह हैं —'स, रे, ग, म, प, ध, नी'। इस ठाट का नाम आसावरी रागिनी से लिया गया है, जोकि बहुत प्रसिद्ध राग है। यह स्मरण रखना चाहिए कि, ग्रंथकार इस ठाट को भैरवी ठाट इसलिये कहते थे कि भैरवी की विषम तीव्र थी, किन्तु

आजकल भैरवी की रिषभ कोमल मानी जाती है। अतः इस ठाट को भैरवी ठाट नहीं कह सकते और इसका नाम आसावरी ठाट रख दिया गया है। आसावरी राग में रिषभ पर अभी तक मतभेद चला आता है। दक्षिण-वाले तथा अन्य अनेक ख्यालिये भी तीव्र रिषभ मानते हैं। शास्त्रकारों के प्रमाण भी इसीसे सहमत हैं। किंतु उत्तर भारत में 'सेनिए' अर्थात तानसेन के वंशज तथा बड़े-बड़े उस्ताद कोमल रिषभ मानते हैं, क्योंकि इस प्रांत में तीव्र रिषभ से गंधारी मानी जाती है। अस्तुः कोमल रिषभ वाला मत अधिक प्रौढ़ है, क्योंकि विवादी स्वर अवरोही में लगाने से राग नहीं बिगड़ता। पर आसावरी राग को ठीक-ठीक दरशाने में कोमल रिषभ आवश्यक नहीं है। यदि आप कोमल रिषभ न भी लगावें तो राग नहीं बिगड़ेगा। कोमल रिषभ को विवादी स्वर मानकर यदि इसका प्रयोग किया जाय तो कुछ हानि न होगा। परन्तु आरोही में ऐसा करना अच्छा न मालूम होगा। कोमल रिषभ के पक्षपाती कहते हैं कि तान लगाने में जब कोमल नहीं सँभला तब लोग तीव्र रिषभ लगाने लगे।

कुछ लोग इसे औडव-संपूर्ण कहते हैं। क्योंकि आरोह में गंधार और निषाद दोनों नहीं लगाते। परन्तु जब इसमें सातों स्वर हैं तो केवल आरोह-अवरोह के भेद से जाति में भिन्नता न करनी चाहिए। वह भेद केवल बर्ताव का है। यदि बर्ताव में ऐसी छूट न रखी जाय तो एक ठाट के भिन्न-भिन्न रागों का रूप कैसे दरशाया जा सकता है? अतएव आरोह-अवरोह में भेद होते हुए भी यह संपूर्ण है।

इसके अतिरिक्त वादी और संवादी स्वरों में भी मतभेद है। कोई कोमल धैवत और कोमल रिषभ को वादी-संवादी मानते हैं, और कोई धैवत तथा गंधार को; परन्तु वास्तव में कोमल धैवत और कोमल रिषभ ही वादी-संवादी हैं। क्योंकि इसके आरोह में गंधार व निषाद नहीं लगते। यदि निषाद लगता भी है तो वक्र होकर अर्थात् अवरोह के भाव से। परन्तु गंधार तो आरोह में किसी तरह नहीं लगता। जब आरोह में गंधार वर्जित है, तब संवादी कैसे हो सकता है? संवादी स्वर किसी हालत में छूट नहीं सकता। गंधार का तो पकड़ के स्वरों में भी पता नहीं है। इस राग में मध्यम का स्वर गृह का है, तथा पंचम नियास का स्वर है। अवरोही में मध्यम दुर्बल है तथा गंधार और पंचम की संगत अति प्रिय है।

रागों की वंशावली में आसावरी श्रीराग की एक रागिनी है। परन्तु 'शिव' के मतानुसार मेघराग की रागिनी है। 'भरत' के मत से मेघ और हिंडोल दोनों की। इस राग का अंग सदा अवरोही में ही दरशाता है क्योंकि यह उत्तरांग का राग है। शास्त्रों में एक यह प्रसिद्ध नियम रखा है कि उत्तराग के रागों का स्वरूप अधिक अवरोही में ही खुले।

आसावरी

मंजुल मेरु के अंचल बैठि प्रमोदभरी बर बीन बजावै,
फूल के हार, सिंगार है फूल ही, फूलन की छबि अंगन छावै।
गाती जबै मदमाती उमंग भरी अहि वृंद तबै तित धावै,
आसावरी नव आसाभरी सुठि रागिनी चित्त प्रमोद बढ़ावै॥

ताल त्रिताल (विलंबित)

गाना

आयोरी जीति राजा रामचंद्र लंका नगर
जित तित मुनी, चहुँ देस बाजे बजत, आनँद भयो घर घर ।

स्थाई

	१				५				३				०		
	स					न	न								स
सस	र	म	प	सं	न	ध	प	प,मप	धम	पसं	धप,म	पधमप	ग	रग	र
आयो	री	जी	ऽ	त	रा	ऽ	जा	रा,ऽऽ	ऽऽ	मऽ	चंऽ,ऽ	ऽऽऽऽ	द्र	लऽ	ऽ
प	ररसनमर	म	प	स	ग	मन	धप	मप	मप	ध न	सन	धप	मग	रग	रस
का	नऽऽऽऽऽ	ग	र	आ	याऽ	रीऽ	औऽ	ऽऽ	ऽत	राऽ	ऽऽ	जाऽ	राऽ	ऽऽ	ऽम

अंतरा

												न			
				मप	सस	गर	म	स	नर	स	ध	प	प	गं	र
				जित	तित	मुना	ऽ	च	हुऽऽ	ऽ	दे	ऽ	स	बा	ऽ
											पप				स
स	र	मंन	स	सं	नस	रग	मंन	धप	म	प	धध,पम	प	ग	रग	र
जे	ब	जऽ	न	आ	ऽऽ	नऽ	ऽऽ	ऽह	भ	यो	ऽऽ,ऽऽ	घ	र	घऽ	र
	स														
सस	र	म	प	म											
आयो	री	जी	ऽ	त											

राजाराम भार्गव

१ आतिशबाज़ी द्वारा यात्रा

ठक जानते है कि कुछ वायुयान-वीर यूरोप और अमेरिका को एक करने की फ़िक्र मे हैं। हाल ही मे कुछ उडाके अमेरिका से यात्रा कर आकाशमार्ग द्वारा यूरोप पहुचे है। यूरोप वालो ने भी एटलैन्टिक समुद्र को वायु-मार्ग द्वारा पार करने की चेष्टा की है। किन्तु इस यात्रा मे समय कितना लगा ? दो दिन से भी अधिक। इस उन्नतिशील जगत के लिए यह समय बहुत ज्यादा है। कोई भी 'अप-टु-डेट' मनुष्य इतना समय सिर्फ़ एटलान्टिक सागर पार करने के लिए नहीं दे सकता। अब वह समय आ रहा है जब मनुष्यो को न्यूयार्क से पेरिस जाने मे सिर्फ डेढ़ घंटा लगेगा। यह यात्रा आतिशबाज़ी (Rocket) द्वारा होगी।

एक जर्मन उडाका और ज्योतिषी मैक्स वेलियर एक ऐसा यान बनाने मे लगे हुए है, जो प्रति सेकेन्ड एक मील या प्रति घंटा तीनहज़ार छ सौ मील की चाल से चलेगा। यह यान पृथ्वी से ५० मील ऊपर उडा करेगा। इतनी ऊँचाई पर हवा की रुकावट इतनी कम होगी कि यान को इस आश्चर्यमय तेज़ गति से चलने मे कठिनता नहीं होगी। 'सिगार' के आकार के बने हुए इस यान के बीच के हिस्से मे मनुष्यो के बैठने, सामानों के रखने, यान को चलाने की मॅशीने आदि लगाने की जगह होगी। आप अपने स्थान पर आ बैठिए, चालक एक 'लिवर' पर झटका देगा और ज़ोरो की आवाज़ करता हुआ यान सीधा ऊपर उठने लगेगा। पृथ्वी से ५० मील की ऊंचाई पर पहुँच कर यान अपने इच्छित स्थान को गमन करेगा। डरने की बात नहीं, इस अकाल्पनिक गति से चलने पर भी यह यान उल्का-सा जल नहीं उठेगा, क्योंकि उतनी ऊंचाई पर बाधा देने के लिए बहुत थोड़ी वायु होगी। यात्रा आरम्भ करने के घंटे भर बाद आप अपने उडने के स्थान से हज़ारो मील की दूरी पर पहुँच जायेंगे। यान अब आगे की ओर नहा जाता, वह धीरे-धीरे नीचे उतर रहा है। इसी समय ज़रा इसके उस हिस्से पर भी ध्यान डालिए, जिसने आपको इतना तेज़ चलने मे भाग लिया है। सिगाराकार इस यान के दोनो ओर जो दो नल लगे हुए हैं, उनमें तरल हाइड्रोजन और आक्सिजन बड़े दबाव पर मिलते है, और उससे जो धड़ाका होता है वही यान को इतनी तीव्र गति से आगे चलाता है। ये दोनो गैसे हलकी होने के कारण बारूद की बनिस्बत अधिक परिमाण मे रखी जा सकेंगी। बारूद आतिशबाज़ी को यात्रा के लिए उपयोगी नहीं होगी, क्योंकि यान अपने वज़न का तीन गुना इंधन जबतक साथ नहीं रखेगा, तब-

तक वह काफ़ी दूर उड़ नहीं सकेगा। नए प्रकार के ईंधन अधिक कार्यकारी सिद्ध हो सकते हैं।

यान को ज़ोर से या आहिस्ता चलाने के लिए चालक धड़ाकों पर निर्भर करेगा, और धड़ाके उसकी इच्छानुसार हुआ करेंगे। 'गैस लिवर' इस यान की गति पर अधिकार रखेगा। बादल के ऊपर चलने में

मैक्स वैलियर

'गायरोस्कोपिक' निर्देशक यन्त्र उसे चलने में और पृथ्वी के स्थानों का पता लगाने में सहायता करेगा। अस्तु, इस यान के बन जाने पर उसकी परीक्षा में किसी को प्राण न गँवाना पड़े, इसलिये मैक्स वैलियर कई, सात से दस फ़ीट के छोटे यान बनाकर परीक्षा करना चाहते हैं। ये यान वायुयान पर से उड़ाए जायँगे और उनकी चाल की परीक्षा की जायगी। यदि ये सफल हुए तब बड़े यान बनेंगे और उनमें बैठकर मनुष्य यात्रा करेंगे। यात्रा के समय इसकी चाल पर लक्ष्य रखना पड़ेगा, क्योंकि यात्रा आरंभ करते समय और मोड़ घुमाते समय मनुष्यों के प्राण जाने का डर रहेगा। आजकल वायुयानों की जो दौड़ें होती हैं, उनमें मोड़ते समय उसके चालक क्षणभर के लिए बेहोश हो जाते हैं, तब भला इस तीव्रगामी यान के घूमते समय यात्रियों की क्या हालत होगी। वैलियर का विश्वास है कि समय आने पर मनुष्य इतनी तीव्र गति के लिए तैयार मिलेंगे। तथास्तु।

× × ×

२. आकाश के ऊपर क्या है ?

वायुयान के आविष्कार के साथ ही वैज्ञानिकों को अन्वेषण का एक और क्षेत्र मिल गया है। सभी जानते हैं कि पृथ्वी वायुमण्डल से घिरी हुई है, किन्तु यह वायुमण्डल अपरिमित नहीं है। उसका भी अंत है। वायुमण्डल के परे क्या है, आकाश क्या है ; ये प्रश्न अब वैज्ञानिकों के मन में उठने लगे हैं। जिस प्रकार कुछ लोग समुद्र-गर्भ का अन्वेषण करने के लिए तत्पर हुए हैं, जिस प्रकार कुछ खोजी ध्रुवों तक पहुँचने की चेष्टा में लगे हुए हैं, और जिस प्रकार कुछ उत्साही वैज्ञानिक एवरेस्ट पहाड़ की चोटी तक पहुँचना चाहते हैं, उसी प्रकार कुछ उड़ाके आकाश का रहस्य-भेदन करने के लिए उतारू हुए हैं। इस खोज का आरम्भ बड़ा विचित्र है।

मैक्स वैलियर का आतिशबाज़ी-यान

'बैलनों' के आविष्कार के बाद कुछ लोग आकाश में सबसे ऊँचे स्थान पर पहुँचने की कोशिश करने लगे। यों तो बहुत से लोग उड़े, किंतु उनमें उल्लेखयोग्य दो

जर्मन उड़ाके, सरिंग और बर्सन, १९०१ में ३२,४२४ फ़ीट की ऊँचाई पर पहुँचे। अमेरिका के लेफ्टिनेन्ट जान मैक्रीडी ३८,७०४ फ़ीट की ऊँचाई तक उड़े। पारसाल एक फ्रेंच उड़ाका, जीन कैलजो, पेरिस से अपने 'वाइप्लेन' में बैठ कर पृथ्वी छोड़कर ४०,८२० फ़ीट की ऊँचाई तक पहुँचा, और इस साल कैप्टेन हैथॉर्न ग्रे ने इन सभी लोगों को मात कर दिया। इनकी पहुँच ४२,४७० फ़ीट है। अब तक कोई भी मनुष्य किसी यान में बैठ कर इस ऊँचाई से ऊपर नहीं जासका है।

ग्रे यात्रा आरम्भ कर रहे है

इन लोगों तथा कुछ और लोगों के अनुभव से हमे आकाश के रहस्य का पता लगता है। आकाश के ऐसे उड़ाकों को अपने साथ आक्सिजन गैस के पीपे लेजाने पड़ते है, क्योंकि आकाश में कुछ ही हज़ार फ़ीट ऊपर जाने पर हवा इतनी पतली होजाती है कि, मनुष्यों का दम घुटने लगता है। उनके सिर चक्कर खाने लगते हैं, और उनका फेफड़ा काम करने से जवाब दे बैठता है। उन लोगों का कहना है कि पृथ्वी की आधी हवा उसके ३½ मील चारों ओर है, और बाकी आधी हवा २०० मील तक फैली हुई है। ग्रे ने आठ मील की ऊँचाई पर की हवा को पृथ्वी की हवा से पचमांश में पतली पाया। यहाँ यदि आक्सिजन का पीपा फट पड़े तो उड़ाके की जो विचित्र हालत होगी उसका अनुमान भी नहीं किया जा सकता। न तो वह अपनी रक्षा के लिए कोई सहायता हो पा सकता है, और न वह यही निश्चय कर सकता है कि ऐसे मौक़े पर क्या करना चाहिए, क्योंकि उसके मस्तिष्क की अवस्था बड़ी बुरी हो जाती है, और उसकी बुद्धि नष्ट हो जाती है। मैक्रीडी को ऐसे ही एक घटना का सामना करना पड़ा था। जब वह ३३,००० फ़ीट की ऊँचाई पर पहुँचा तब उसका आक्सिजन का पीपा फट पड़ा। इस समय वह हतबुद्धि हो गया था, क्रोध के मारे उसका सारा शरीर जल रहा था और आकाश में उड़ने की अपनी बेवक़ूफ़ी पर वह पश्चात्ताप कर रहा था। इस समय ईश्वर ही ने उसकी रक्षा की, वह एकाएक छ मील नीचे गिर पड़ा और ऐसे प्रदेश में आ पहुँचा, जहाँ आसानी से श्वाँस लेसकता था।

इन ऊँचाइयों से पृथ्वी को देखना मुश्किल होता है, क्योंकि बादल बीच में आकर व्यवधान खड़ा कर देते हैं। हाँ, स्वच्छ ऋतु मे पृथ्वी के दृश्य देखे जा सकते है। ऊपर सूर्य्य चमकता रहता है। दस हज़ार फ़ीट की ऊँचाई के ऊपर का आकाश गहरे नीले रंग का दीख पड़ता है। हवा बड़ी ठंढी होती है, तापमापक-यन्त्र शून्य से भी प्रायः सत्तर डिग्री कम गर्मी बतलाता है। इस प्रदेश मे पक्षी और कीड़े पाए जाते हैं या नहीं, यह कहना कठिन है। एशियाई कौए २७,००० फ़ीट की ऊँचाई तक उड़ते पाए गए, किन्तु २४,००० फ़ीट से ऊपर कोई कीड़ा रहते हुए नही पाया गया। एवरेस्ट पहाड़ की इस ऊँचाई पर एक जाति के काले मकड़े मिले। इनके अलावा और कोई भी पक्षी या कीड़े नही दीख पड़े।

कैप्टेन ग्रे, जो पृथ्वी से ४२,४७० फ़ीट की ऊँचाई की यात्रा कर चुके है

हवा का ऊपरी हिस्सा बड़ा विचित्र है। इसमे जो धूल दीख पड़ती है, वह उल्का के धूल-कण है। ज्वालामुखी पहाड़ों के धूए भी इसमे पाए जाते हैं। पृथ्वी पर चाहे ज़ोरों की आँधी भले ही चलती

रहे, किन्तु १४,००० से ३०,००० फ़ीट ऊँचाई का स्थान सर्वदा शान्त रहता है। इसके ऊपर प्रदेश में कभी-कभी भयानक आँधी चला करती है। मनुष्य जिस ऊँचाई तक पहुँच सका है, उसके ऊपर के स्थानों के विषय का भी ज्ञान बैलूनों द्वारा प्राप्त किया गया है। विषुवत्-रेखा से ग्यारह मील की ऊँचाई का तापक्रम शून्य से १३३ डिग्री नीचे रहता है। यहाँ सूर्य की तीव्र बैगनी किरण तीव्रतर होजाती है। इस कारण उड़ाकों के शरीर में फोड़े निकल आते हैं, इससे बचने के लिये उन्हें अपने सारे शरीर पर चर्बी मल लेनी पड़ती है।

जो स्थान मनुष्यों के लिये अगम्य है, या जहाँ मनुष्य अभीतक नहीं पहुँच सके हैं, उस स्थान की परीक्षा के लिए दो प्रकार के बैलून काम में लाए जा रहे हैं। एक के साथ कोई औज़ार आदि नहीं रहता। ये पृथ्वी से मीलों ऊपर के स्थान में हवा की गति, दिशा आदि को बतलाते हैं। इन पर एक दूरदर्शक यन्त्र द्वारा सदा लक्ष्य रखा जाता है। दूसरे प्रकार के बैलूनों के साथ ताप और हवा के दबाव-मापक यन्त्र रखे रहते हैं। पहले प्रकार का बैलून २४ मील की ऊँचाई तक पहुँच सका है, किन्तु दूसरे प्रकार का सिर्फ़ २२ मील ही। उड़ाकों और इन बैलूनों ने आकाश का जो रहस्य-भेदन किया है, उसका संक्षेप में विवरण दिया जाता है।

पृथ्वी से यात्रा करते समय हमें वायुमण्डल का वह हिस्सा मिलता है जिसमें सचराचर हम लोग रहते हैं, मामूली वायुयान उड़ा करते हैं। इसका विस्तार बीस हज़ार फ़ीट तक है। इसे 'ट्रापोस्फ़ियर' (Tropo-sphere) कहते हैं। इसमें आक्सिजन की कमी नहीं रहती, आसानी से श्वास लिया जा सकता है। किसी प्रकार की तकलीफ़ नहीं मालूम देती। इसके ऊपर जाते ही ठंढ मिलती है। हर हजार फ़ीट ऊँचाई पीछे दो डिग्री गर्मी कम होती जाती है। यह कमी ३४,००० फ़ीट की ऊँचाई तक लक्षित होती है, यहाँ का तापक्रम शून्य से ८० डिग्री कम होता है। इस प्रदेश के ऊपर जाने पर भी अधिक ठंढ नहीं मिलती और वायुमण्डल का वह हिस्सा मिलता है जिसे 'स्ट्रैटोस्फ़ियर' (Strato-sphere) कहते हैं। यहाँ से बीस मील की ऊँचाई तक तापक्रम एक-सा रहता है। "स्ट्रैटोस्फ़ियर" के ऊपर क्या है, यह कहना मुश्किल है। इस विषय पर मत-भेद है। सारा वायुमण्डल ४०० मील तक फैला हुआ है। कहीं-न-कहीं स्ट्रैटोस्फ़ियर का अन्त होता ही है। इसके बाद क्या है? इतनाही कहा जा सकता है कि इसके बाद की हवा पृथ्वी पर की हवा से बहुत भिन्न है। उल्का पृथ्वी से सौ मील की दूरी पर पहुँचते ही जलने लगते हैं, इसलिए लिंडेनमैन और लिबसन नामक ज्योतिषियों की धारणा है कि 'स्ट्रैटोस्फ़ियर' के ऊपर गरम हवा का प्रदेश है और उसका आरम्भ पृथ्वी से ४० मील की ऊँचाई से होता है। उन लोगों का कहना है कि इस प्रदेश का तापक्रम ८० डिग्री है। इसका समर्थन कई वैज्ञानिकों ने भी किया है।
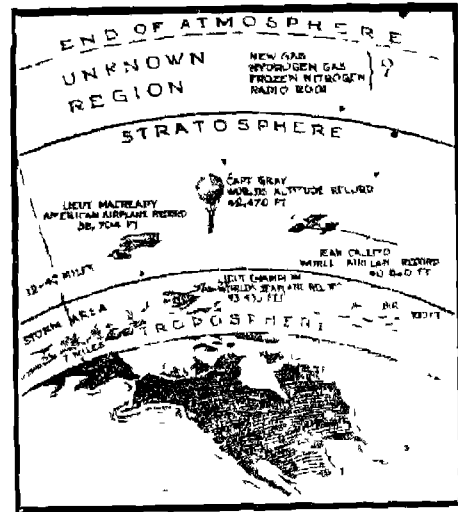
वायुमण्डल में क्या है

फ़्रांस के बर्गेज़ वेधशाला के डाइरेक्टर एबो मारिश्रों का कहना है कि 'स्ट्रैटोस्फ़ियर' का अन्त पृथ्वी से ४० मील की दूरी पर होजाता है। इसके ऊपर नाइट्रोजन गैस का एक पर्त है। उनका विचार है कि हाइड्रोजन स्ट्रैटोस्फ़ियर को घेरे हुए है। किरण-विश्लेषण द्वारा इसकी सत्यता प्रमाणित होती है।

इस अज्ञात प्रदेश के ऊपर—८० मील से आरम्भ कर ४०० मील तक या जहाँ हवा ख़तम होती है—क्या है, यह कोई नहीं जानता। ऐबी का कहना है कि कोई अज्ञात गैस—सम्भवतः 'कोरोनियम'—यहाँ होगी। डा० एल० वेगार्ड का विचार है कि यहाँ जमी हुई नाइ-

ोजन है। इस प्रकार अन्य वैज्ञानिकों के और और मत हैं, निश्चित-रूप से कुछ भी नहीं कहा जा सकता। सक्षेप में वायुमण्डल का यही रहस्य है।

× × ×

३ तीन मनुष्यों के लिये मोटर साइकल्

मोटर साइकल् को बगल मे साइड कार लगा देने

तीन मनुष्यो के लिए मोटर साइकल्

मे एक और मनुष्य के बैठने की व्यवस्था की जाती है। किन्तु इँगलैंड के विम्बेलडन नामक स्थान के एक मनुष्य ने अपनी साइकल् के दोनो ओर दो साइड कार लगाकर दो मनुष्यो को बैठाने का इन्तिजाम किया है। तारीफ़ की बात यह है कि दो साइडकार लगाने पर भी साइकल् दो ही पहिए पर दौड़ती है। इस साइकल् पर आविष्कर्ता अपने लड़के और लड़की को चढ़ाकर कई हज़ार मील की यात्रा कर चुका है। चित्र में इस मोटर साइकल् को देखिए।

× × ×

४. बेलून साइकल्

स्थल साइकल्, जल-साइकल्, और बर्फ़ साइकल के आविष्कार के बाद वायु साइकल् का आविष्कार हो अपेक्षित था। कुछ आविष्कारो ने डैने और 'प्रोपेलर'-युक्त कई वायु साइकलें बनाईं, जिनमें केवल एक उड़ सकी। इस प्रकार की साइकल् का भविष्य अंधकारपूर्ण देखकर एक अँगरेज़ आविष्कारक ने 'बैलून-साइकल्' बनाई है। यह साइकल् सिगार के आकार के एक बैलून के सहारे, जिसमे हाइड्रोजन गैस भर देते हैं, हवा मे उड़ती है। बैलून के नीचे एल्युमिनियम धातु की यह साइकल् लटकती रहती है। साधारण साइकलो जैसे इसमे भी पेडल् हैं, जिन्हे पैरो से चलाने से साइकल् सामने चलती है। साइकल को घुमाने-फिराने के लिए उसमें एक पतवार है। इस साइकल् के आविष्कार से वायु विहार का सस्ता साधन उपस्थित होगया है।

× × ×

५ ससार की सबसे ऊंची पुस्तक

गत श्रावण की 'माधुरी' में 'संसार की सबसे बड़ी पुस्तक' के विषय मे एक नोट निकल चुका है। इस अक में संसार की सबसे ऊँची पुस्तक का चित्र देखिए। यह पुस्तक नक्शो की पुस्तक है। सन् १६६० ई० में एम्सटरडम के व्यापारियो ने इसे उस समय के इँगलैंड के राजा द्वितीय चार्ल्स को उपहार मे दिया था। आजकल यह ब्रिटिश म्यूजियम की शोभा बढ़ा रही है। इसकी ऊंचाई औसत दर्जे के मनुष्य की ऊँचाई से भी अधिक है। पुस्तक एक ऐतिहासिक घटना की
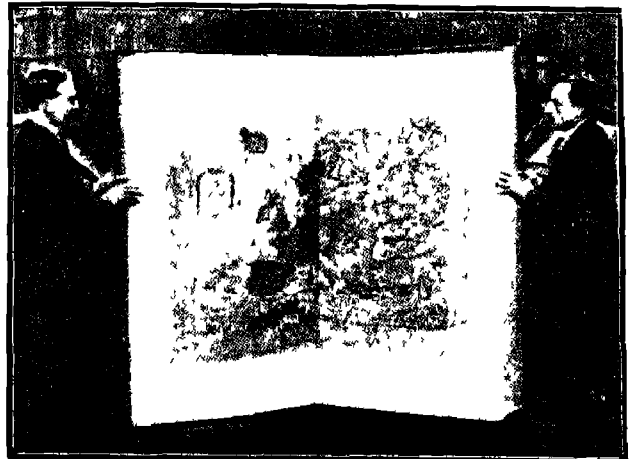
संसार की सबसे ऊँची पुस्तक

यादगार स्वरूप है। ब्रिटिश Monarchy के पतन के बाद जब चार्ल्स नेदरलैंड्स की शरण में गए थे, उसी समय उन्हें यह उपहार में मिली थी। पुस्तक की आयु प्रायः २६७ वर्ष की हुई।

× × ×

६ लिफ़ाफ़ों में चिट्ठियाँ डालने की मशीन

बड़े-बड़े व्यवसायियों को प्रतिदिन हज़ारों-लाखों चिट्ठियाँ भेजनी पड़ती हैं। इतनी चिट्ठियों को मोड़ कर लिफ़ाफ़ों के अंदर रखना आसान काम नहीं है। ग्लेवामा पालिटेकनिक इंस्टिट्यूट में प्राइस नामक एक व्यक्ति
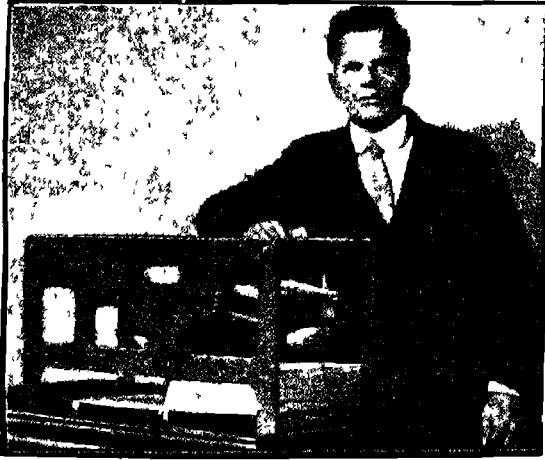
प्राइस और उनकी मशीन

चिट्ठियों को मोड़ने और लिफ़ाफ़ों में भरने में जो समय, शक्ति, धन बरबाद होता था, उसे प्रतिदिन देखा करता था। एक दिन उसके मन में यह बात आई कि, यदि कोई मेशीन इन कामों को कर दिया करे, तो कैसा हो। चार वर्ष के परिश्रम के बाद उसने एक मॅशीन बनाई है, जो प्रति घंटा ५००० चिट्ठियों को मोड़ती है, लिफ़ाफ़ों के हवाले करती है और लिफ़ाफ़ों को चिपका भी देती है। दस मनुष्य मुशकिल से जो काम करते थे, उसे यह मॅशीन अकेले कर डालती है।

× × ×

७ जल-यात्रा की योग्यता

भारतवर्ष और पाश्चात्य देशों में उतना ही अन्तर है, जितना उत्तरी और दक्षिणी ध्रुवों में। यहाँ जल-यात्रा की योग्यता धार्मिक और जातीय-बन्धनों को तोड़ने ही में मानी जाती है। जो लोग धर्म पर पदाघात करते हैं और समाज-शासन की परवाह नहीं करते, वे ही लोग जल-यात्रा कर सकते हैं। किंतु पाश्चात्य देशवालों को देखिए। वहाँ जल-यात्रा की योग्यता और अयोग्यता जाँचने के लिए वैज्ञानिक परीक्षाएँ ली जाती हैं। जल-

जल-यात्रा की योग्यता-परीक्षा करने की मशीन

यात्रा-काल में 'सी सिकनेस' नामक बीमारी यात्रियों को बड़ा तंग करती है। इसलिये फ्रांसवालों ने एक ऐसी कुर्सी बनाई है, जो हिलने डुलने में जहाज़ को भी मात कर डालती है। किसी व्यक्ति को उसी पर बैठा कर परीक्षा की जाती है। जहाँ उसका जी मिचलाने लगता है, उलटी आने लगती है, वहीं मेशीन बन्द कर दी जाती है। यदि वे इस परीक्षा में उत्तीर्ण हुए तो उन्हें जल-यात्रा की इजाज़त मिल जाती है, अन्यथा डाक्टर उन्हें जल-यात्रा करने से रोकते हैं। दूर की यात्रा करनेवाले व्यक्तियों और कमज़ोर दिलवाले व्यक्तियों को इस परीक्षा द्वारा बड़ा लाभ होते देखा गया है।

श्रीरमेशप्रसाद, बी० एससी०

——

१ हांककांग में पाट की खेती
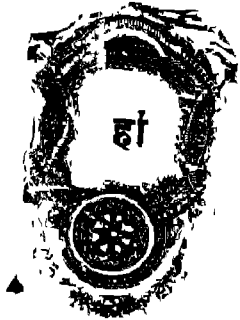
हांगकांग ने पाट पैदा करने का प्रयत्न नहीं छोड़ा। यहाँ के लोगों ने प्रयत्न तो वर्षों से किया, किन्तु इस बार उनका प्रयत्न सफल हुआ। हांककांग के पाट की अभी हाल में जो परीक्षा हुई है, उससे पता चलता है कि वह अब व्यापारिक दृष्टि से पाट पैदा करने लगा है। हांगकांग के पाट का रेशा बहुत अच्छे दर्जे का निकलता है। रेशे में रासायनिक दृष्टि से कोई त्रुटि नहीं है। इतना ही नहीं, भारतवर्ष के अच्छे-से-अच्छे पाट से यहां का पाट किसी प्रकार हलका नहीं है। यहाँ के पाट की व्यापारियों ने भी परीक्षा करली है। मेसर्स विगलेसवर्थ एण्ड कम्पनी, लिमिटेड ने पहले नम्बर के पाट को ज़रा हल्का बताया, किन्तु दूसरे नम्बर के पाट को संतोषजनक बताते हुए केवल यह कहा कि इसकी जड़ों के किनारे ज़रा सख़्त होते हैं। कम्पनी ने यह कहा कि इस पाट की बाज़ार में ख़ूब बिक्री हो सकती है। यहाँ का माल ३२ पौंड और ३४ पौंड प्रति टन के भाव से बिक सकता है, जिसका मूल्य कलकत्ते में ३० पौंड प्रति टन है। बंगाल के पाट से तुलना करने पर प्रकट हुआ कि हांगकांग का पाट सब प्रकार से अच्छा है। यह बात अवश्य है कि अभी यहाँ का पाट कलकत्ते के पाट के समान मुलायम और चमकदार नहीं है, और लम्बाई भी छोटी है; किन्तु बाज़ार में इसके बिकने में कोई अड़चन नहीं है।

× × ×

२ अलसी के सन का उद्योग

भारतवर्ष में अलसी (तीसी) बहुत बोई जाती है। पर यहां केवल अलसी ही तैयार होती है। अलसी के पौदों से सन निकालने का कोई उद्योग नहीं है। अनेक बार के अनुसंधान से यह प्रकट हो चुका है कि संयुक्त-प्रान्त और पंजाब में अलसी का रेशा ख़ूब तैयार हो सकता है। इस अलसी के सन से रुई की तरह अनेक प्रकार के वस्त्रों के अलावा अन्य कई प्रकार की मज़बूत चीज़ें तैयार होती हैं। इसलिए, आजकल अलसी से रेशा (सन) तैयार करने का उद्योग अत्यंत लाभदायक है।

बंगाल में १७६० और १८२० में दो बार इस रेशे की महत्त्वपूर्ण जांच हुई। सन् १८३६ में रेशे की पैदावार बढ़ाने के लिए एक कम्पनी खोली गई। उसका काम चलाने के लिए बेलजियम के कई विशेषज्ञ बुलाकर रखे गये। सरकार के निरीक्षण में संयुक्त-प्रान्त, पंजाब, मदरास और बम्बई आदि प्रान्तों में प्रयोग किया गया, पर व्यापारिक दृष्टि से काम न आरम्भ होने से कोई नतीजा नहीं निकला। फिर १८५४ में सरकार ने पंजाब के लोगों को २५०००० एकड़ ज़मीन रेशा पैदा करने के लिए दी। उस समय की सरकारी रिपोर्ट से यह प्रकट होता है कि रेशा पैदा करने से पंजाब के उन किसानों को लाभ हुआ था, और जो रेशा पैदा हुआ था, वह बहुत अच्छे दर्जे का था।

यह खेती कई वर्षों तक होती रही। पर कुछ समय के उपरान्त कई बाधाएँ उपस्थित होने से लोग अलसी पैदा करने लगे। इसके उपरांत कई वर्षों तक कोई प्रयत्न नहीं हुआ। १६०६ में कहीं बिहार के ज़मींदारों की

समिति को रेशा पैदा करने की सूझी। उसने बिहार में परीक्षा के रूप में खेती की। इस खेती से बहुत अच्छा रेशा निकला। यह देखकर बंगाल सरकार ने १९०७ में बेलजियम के विद्वानों को नियुक्त किया। इन विशेषज्ञों की सहायता से डूरिया में खेती की गई। यहाँ के पौधों से सबसे अच्छा रेशा निकला और जो पूंजी लगाई गई थी, वह ब्याज और नफ़े सहित वापस निकल आई। पर उस समय बिहार को नील का जर्मनी से मुक़ाबिला चल रहा था। इसलिए रेशे की अपेक्षा उसकी पैदावार बढ़ाना आवश्यक हो गया। दूसरी बात यह भी थी कि उस समय बिहार में वर्षा के ऊपर अलसी की खेती का आधार था। इससे बीज जमने की कोई सम्भावना नहीं थी, और जैसे-तैसे जो बीज जमते थे, उनसे काफ़ी रेशा नहीं निकलता था। फिर १९१३—१७ में कानपुर में रेशे के लिये अलसी की खेती की गई और उससे बहुत अच्छा रेशा निकला। खेती करते समय इस ज़मीन में कोई भी खाद वग़ैरह नहीं डाली गयी थी। फिर कानपुर के आसपास और भी प्रयोग किये गये, और वे सब सफलीभूत हुए। उनसे यह साबित हुआ कि संयुक्त-प्रान्त में अलसी से रेशा निकालने का उद्योग अत्यन्त लाभदायक है। पर, खेद है कि, इन प्रयोगों को देखकर भी संयुक्त-प्रान्त के ज़मींदार और व्यापारियों ने पैदावार बढ़ाने की ओर कोई ध्यान नहीं दिया। यद्यपि छोटे-छोटे किसान भी रेशा पैदा कर सकते हैं, तथापि वह उद्योग इतना उपयोगी नहीं होगा। आवश्यकता तो यह है कि रेशे की पैदावार भले ही छोटे-छोटे किसान करें, किन्तु उन खेतों के पास ही रेशा तैयार करने के छोटे-छोटे कारख़ाने हों, जहाँ पर बाज़ार में बिक्री के लिये माल तैयार हो सके। अभी तो भारतीय किसानों की इस ओर प्रेरणा नहीं है कि वे अलसी से रेशा पैदा करें। पर यह बात निश्चित है कि भारतवर्ष के लिये यह बहुत बड़ा उद्योग है, और निकट भविष्य में शीघ्र ही इस देश में कई बड़े बड़े कारख़ाने खुलेंगे। व्यापारी-वर्ग रुपया लगाकर बड़े पैमाने पर खेती कराके अपने कारख़ानों में माल तैयार करें, तो निश्चय यहीं संयुक्त-प्रान्त में एक नया उद्योग खड़ा हो सकता है। बड़ी पूँजी से यदि एक-दो कम्पनियाँ खोलकर खेती और व्यवसाय चलाया जाय तो यह उद्योग बड़ी आसानी से उन्नति कर सकता है।

जी० एल० पथिक

---

३. भारत में विदेशी सांड

भारत के अधिकांश प्रांतों में गायों की नस्ल ख़राब हो गई है। गाएँ कम दूध देने लगी हैं, और बैल भी दिन-पर-दिन कमज़ोर होते जा रहे हैं। भारत में बैल का एक विशेष स्थान है। भारतीय कृषि का सब दारोमदार बैलों पर ही है और उत्तम गायों के बिना उत्तम बैलों का प्राप्त होना सम्भव नहीं। अतएव भारत की साम्पत्तिक और शारीरिक उन्नति के लिये भारतीय गायों की नस्ल सुधारना अत्यावश्यक है। भारत सरकार ने इस काम को अपने हाथों में लिया है, और भिन्न-भिन्न प्रांतों में कोशिश की जा रही है।

भारतवर्ष में इंगलैंड के साँडों का उपयोग डेरी फ़ार्म और कैटल् ब्रीडिंग फ़ार्मों पर किया जा रहा है। पूसा कृषि-क्षेत्र के कैटल् ब्रीडिंग फ़ार्म के लिए पंजाब की मांटगोमरी या शाहीवाल गाएँ काम में लाई गई है।

अच्छा भोजन देकर और चुन-चुन कर गायें छाँट कर अच्छी नस्ल कायम करने की कोशिश की गई। सन् १९१३ में एक गाय का एक दिन का दूध औसतन् क़रीब ३ सेर था। चुनाव और खिलाई के कारण सन् १९२६ में यह औसतन ६ सेर के क़रीब था। फ़ार्म क़ायम करने के बाद से आज तक नई गाएँ शामिल नहीं की गई है। डेरी फ़ार्मों से साँड ख़रीदे गए थे।

कुछ वर्षों तक बच्चा देने के बाद के दस महीने की अवधि (Lactation period of 10 months) में जो गायें दो हज़ार सेर से कम दूध देती थीं, वे अलग कर दी गई हैं। इन निकाली हुई गायों को 'आयरशायर' (Ayrshire) सांड से जो सन्तति हुई वे ख़ूब दूध दे रही हैं। ये गायें एक दिन में औसतन् २५½ पौंड दूध देती है। पाठको, देखिए एक ही साल में संकरीकरण (Cross breeding) से कितनी उन्नति हुई। इसके अलावा ये गायें प्रति १३½ महीने बच्चा देती है।

अभी इस क्षेत्र में बहुत कुछ कार्य करना शेष है। इस कार्य के लिये यथेष्ट धन और समय की ज़रूरत है। अगर हिन्दू-जनता इस ओर ध्यान दे तो बहुत कुछ कार्य शीघ्र ही सम्पन्न किया जा सकता है।

शंकरराव जोशी
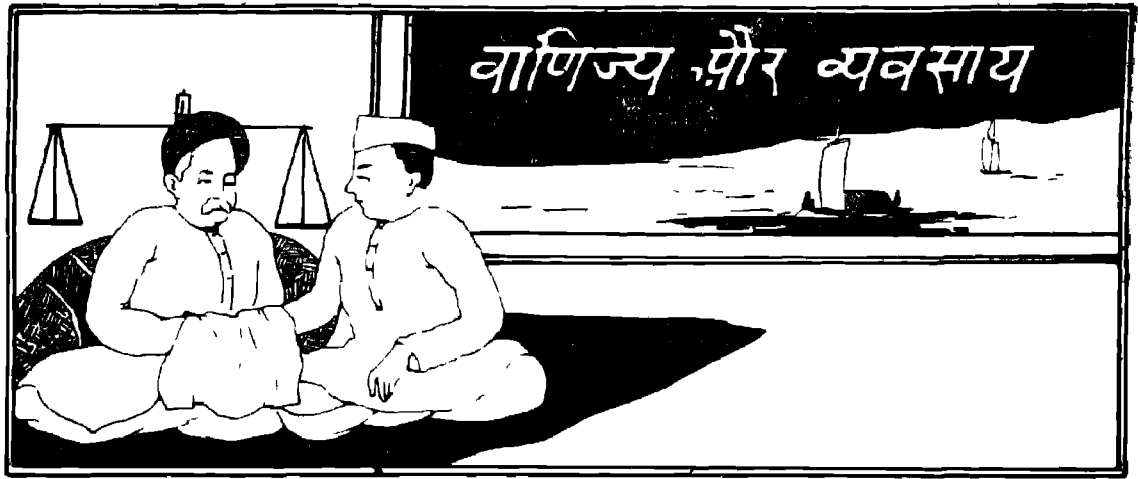
१ भारतवर्ष में बैंक

क (Bank) शब्द की उत्पत्ति इटालियन शब्द बैंको (Banco) अर्थात् बेंच से हुई है। प्राचीन काल में वहां के सर्राफ़ लोग बाज़ार में बेंचों पर बैठकर अपना कारोबार करते थे। जब किसी सर्राफ़ का काम ठंडा पड़ जाता अर्थात उसका दिवाला निकल जाता, तो लोग उसकी बेंच को तोड़ डालते और इसी क्रिया से Bankrupt शब्द, जिसका अर्थ दिवालिया है, बना है।

व्याख्या

भारत की प्राचीन बैंकिंग प्रणाली

यदि इस कारोबार अर्थात बैंकिंग की अर्वाचीन विधि को लें, तो कहा जा सकता है कि पाश्चात्य देशों में बैंक की स्थापना पहले हुई और भारतवर्ष में बहुत से अन्य देशों में हो जाने के बाद। लेकिन, यदि यथार्थ में देखा जाय तो, रुपया-पैसा सम्बन्धी कारोबार भारतवर्ष में बहुत पहले से प्रचलित है। मनुस्मृति में एवं उसके बाद अर्थशास्त्र में ब्याज की दर का वर्णन मिलता है, इससे प्रगट है कि उधार देना और लेना हमारे यहाँ बहुत पहले से जाना-चीन्हा हुआ कारोबार है।

सिक्के का चलन भी यहाँ पर बहुत पहले से है। ईसा से तीन शताब्दि पूर्व के एक ग्रंथ में मुद्रा-प्रणाली का वर्णन मिलता है। सोने और चाँदी दोनों तरह की मुद्रा का एक साथ चलन था। प्राचीन हिंदू राज्य में सोने का सिक्का था, और मुसलमानों ने चाँदी का सिक्का चलाया। अँगरेज़ी राज्य के आरम्भ तक सोने और चाँदी दोनों तरह का सिक्का चलता रहा। अकबर के राज्य में उसके ख़ज़ाञ्चियों को मालगुज़ारी की रक़म में चाँदी, सोने और ताँबे किसी भी धातु के सिक्के लेने की आज्ञा थी। इसी भाँति दक्षिण में भी चाँदी के साथ सोने का सिक्का भी पूर्णतया चालू था। ईस्ट इंडिया कम्पनी ने चाँदी और सोने के ९९४ तरह के सिक्के प्रचलित पाये और सन् १७९३ के बंगाल रेग्युलेशन एक्ट में कई प्रान्तों में प्रचलित भिन्न-भिन्न २७ प्रकार के रुपयों का वर्णन आया है। कई तरह के सिक्कों के चलन की असुविधा को मेटने के लिए और एक सिक्के के चलन से लाभ सोचकर कंपनी ने अपने राज्य में एक ही सिक्के के चलाने का विचार प्रगट किया। सन् १८३५ में उसने यह घोषणा करदी कि भारत भर में केवल चाँदी के रुपये का प्रचलन माना जाय। यह एक आश्चर्य की बात है कि जहाँ १५०० वर्ष से अधिक काल तक सोने का प्रचलन रह चुका था, वहाँ कंपनी ने केवल चाँदी का सिक्का चलाने की घोषणा की।

हमारे यहाँ यह कारोबार बहुत प्राचीन काल से चलता है, और हमारे बैंकर अर्थात् इस काम के करने वाले सेठ, साहूकार, महाजन, सर्राफ, बोहरे आदि कहलाते हैं। ये लोग रुपया जमा लेते और उधार देते हैं। इन लोगों के चैक (Cheque) हुंडियाँ है, जिनका व्यवहार अभी तक जारी है। ये जिस स्थान से लिखी जाती हैं, वहीं की

लिपि में होती हैं। नीचे इनकी लिखावट का एक नमूना दिया जाता है—

श्रीपरमेश्वरजी ॥

सिध श्री कलकत्ता सुभ सुथान भाई श्री हरविलासजी सोभागमल जोग आगरा स विलासराय मदनगोपाल की जै श्रीजी की बांचजो । अपरंच हुंडी १ रु० ५००) अखरे पांचसो नीमे रुपया अढाइसो का दूणा पूरा अठे राख्या भाई पुरसोतमदास सोहनलाल पास मिती पोस बदी १२ पुगा तुरत रुपया साह जोग हुंडी चलण का दीजो स १७८० का पोस बदी १२=

|रु० ५००)|

नीमेका नीमे रुपया सवासोका चौगणा पूरापाचसो करदीजो।

खाने में रक़म और उसके नीचे की लिखावट हुंडी के पीछे लिखी जाती थी, पर आजकल इसके लिखने का रिवाज कम होता जाता है। हुंडियों का व्यवहार आज तक होता है, पर इनका आरम्भ कब से हुआ, यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता। हाँ, यह कहा जा सकता है कि इनका प्रचलन बहुत पुराना है। अधिक नहीं तो उस काल से अवश्य है, जबकि फ़ारसी भाषा यहाँ आई। हुंडी में फ़ारसी शब्द नीमे आया है, जिसका अर्थ आधा होता है। संस्कृत में भी "नेम" शब्द आधे का वाचक है। यदि फ़ारसी का "नीम" शब्द संस्कृत "नेम" शब्द का अपभ्रंश है, और हुंडी का "नीमे" शब्द फ़ारसी से न लिया जाकर संस्कृत से ही लिया गया है, तो, यह हुंडियों की प्रणाली और भी प्राचीन ठहरती है। हुंडी की रकम में कहीं कोई गड़बड़ न करदे, इस लिए, देखिए, कितनी तरह से और कितनी बार, रकम खोली जाती है—प्रथम संख्या में ५००), दूसरे अक्षरों में पाँचसौ, तीसरे नीमे रुपया अढाइसौ का दूणा पूरा पाँचसौ, चौथे हुंडी के पीछे संख्या में ५००), पाँचवें नीमे का नीमे रुपया सवासौ का चौगणा पूरा पाँचसौ।

हुंडी का भुगतान "साह जोग" दिया जाता है। जो हुंडी लिखता है, वह हुंडी करने या लिखने वाला (Drawer) कहलाता है। जिस पर हुंडी की जाती है, वह ऊपर वाला (Payee) कहलाता है। जिसके लिए, अर्थात् जो रुपया देकर हुंडी लिखाता है, वह दूसरे को बेच देता है, और उससे फिर हुंडी का बेचान आगे को चलता है। इस तरह हुंडी बिकती हुई जब अंत में जिस स्थान को लिखी गई है, वहाँ पहुँचती है, तो जिसके यहाँ वह पहुँचती है, वह ऊपर वाले व्यक्ति को दिखाता है। कलकत्ते में हुंडी सिकराने की प्रणाली इस भाँति है : ऊपर वाला रसीद देकर उस हुंडी को अपने पास रख लेता है और तब सिकार कर, जिसके यहाँ हुंडी आई है, उसके पास वापस भेज देता है। तब वह उसका भुगतान अपने आदमी द्वारा मँगा लेता है। बम्बई में इस विधि में कुछ अंतर है। वहाँ हुंडी जिसके पास आती है, वह ऊपर वाले को दिखाकर वापस ले आता है। वहाँ हुंडी ऊपर वाले के पास छोड़ी नहीं जाती। ऊपर वाला हुंडी का भुगतान स्वयं भेज कर हुंडी मँगा लेता है। हुंडी का भुगतान हो जाने पर वह "खोका" कहलाती है। हुंडी खो जाने पर दूसरी लिखाई जाती है उसे "पेठ" कहते हैं, और पेठ भी खोई जाय तो फिर लिखाने पर "परपेठ" कहलाती है। हुंडी के भाव को "हुंडावण" कहते हैं। यदि ऊपर वाला हुंडी का भुगतान न दे, और बिना सिकरी हुई हुंडी लिखने वाले को फिरती की जाय, तो उसे हुंडी का रुपया दंड सहित देना पड़ता है। इस जुर्माने का "निकराई सिकराई" कहते हैं। हुंडी दर्शनी (on demand) और मुद्दती (promissory) दोनों तरह की होती है। हुंडी का भुगतान "साह जोग" दिये जाने में यद्यपि उचित सावधानी की जाती है तोभी कई बार जुवाचार भी भुगतान ले जाते हैं।

यह तो हमारी प्राचीन बैंकिंग प्रणाली की बात हुई।

संसार में बैंक की प्रथम स्थापना

यदि बैंक की स्थापना अर्वाचीन ढंग से लें तो पहले-पहल सन् १६०९ में हालैंड में 'बैंक आव् एम्सटरडम' की स्थापना हुई। यूरोप के बैंक इसीके आदर्श पर बने। पाश्चात्य देशों में इटाली आजकल के बैंकों का उद्गम स्थान माना जाता है, ख़ास कर इस लिहाज से कि वह प्राचीन रोमन बैंकरों का उत्तराधिकारी है।

बैंक आव् इंगलैंड

इँगलैंड में आधुनिक ढंग से बैंकिंग कारोबार की उत्पत्ति सन् १६९४ में बैंक आव् इँगलैंड की स्थापना से हुई। इटाली, आस्ट्रिया और रूस में बैंकों की स्थापना वहाँ की सरकारों की धन की आवश्यकता के कारण हुई। इसी भाँति बैंक आव् इँगलैंड की स्थापना भी वहाँ के व्यापार में किसी तरह की उन्नति पहुँचाने के विचार से नहीं हुई। वहाँ के राजा

विलियम तृतीय को लुई चौदहवें से लड़ाई लड़ने के लिए धन की आवश्यकता थी, इसीलिए धन प्राप्त करने के उपाय-स्वरूप बैंक आव् इंगलैंड की स्थापना हुई। बारह लाख पौंड का मूलधन बात-की-बात में भर गया, और यह सब रक़म वहाँ की सरकार को ८ सैकड़े के ब्याज पर उधार दे दी गई। ब्याज के अतिरिक्त प्रबन्ध-ख़र्च के लिए चार हज़ार पौंड और भी देना तय हुआ। इसके बदले में बैंक को नोट निकालने का अधिकार दिया गया। पर नोट बारह लाख पौंड से अधिक के न हों, यह शर्त रखी गई।

भारत में ईस्ट इण्डिया कंपनी की नौकरी से छूटे हुए अफ़सरों ने यहाँ पर "एजेंसी हाउस" खोल कर बैंकिंग कारोबार करना आरम्भ किया और कंपनी को रक़म ऊँचे ब्याज पर उधार देते रहे। सन् १८१३ में ब्याज की दर गिरकर ६ सैकड़ा रह गई और उधार की रक़म २ करोड़ ७० लाख पौंड तक पहुँच गई।

प्रेसिडेंसी बैंकें

बैंक आव् बंगाल सन् १८०६ में खुली, बंबई बैंक सन् १८४० में, और मद्रास बैंक सन् १८४३ में। सन् १८६२ तक इन प्रेसिडेंसी बैंकों को नोट निकालने का अधिकार बना रहा। बंगाल बैंक दो करोड़ रुपये तक के नोट इस शर्त पर निकाल सकती थी कि वह अपनी दर्शनी देनदारी (on demand debts) की चौथाई रक़म सदा अपनी तिजोरियों में रखे। सन् १८६२ में नोट निकालने का अधिकार बैंकों से ले लिया गया और भारत सरकार नोट निकालने की ठेकेदार बन गई। इसके बदले में सरकार ने अपनी पोते बाक़ी (balances) बैंकों में रखना स्वीकार किया। नोट निकालने के अधिकार छिन जाने पर बैंकों की आबरू में फ़र्क़ पड़ा और लंदन में ओवरेंड गरनी एंड कंपनी के दिवाला निकाल देने पर बंबई बैंक को भी धक्का पहुँचा और अपना कारबार बंद करना पड़ा। सन् १८६८ के मई महीने में बैंक आव् बंबई की नई स्थापना हुई। उस समय के लेखे से यह प्रगट हुआ कि पुराने बैंक के मूलधन में से १८,८१,११३ पौंड की रक़म नष्ट हो चुकी थी। सन् १८७८ में बैंक से अपनी जमा की रक़म लेने में सरकार को तकलीफ़ हुई और इसलिए उसने अपना अलग ख़ज़ाना-विभाग (Treasury) खोल दिया। बैंकों से यह शर्त करली कि, वह उनके यहाँ निश्चित रक़म जमा रखेगी, और यदि किसी समय उस परिमाण से जमा की रक़म कम होजायगी तो उतनी कमी पर ब्याज देगी। इन बैंकों का कारोबार सन् १८७६ के प्रेसिडेंसी बैंक्स ऐक्ट के अनुसार परिचालित होता था और आरम्भ ही से इन्हें कड़े और पक्के नियमों पर अपना कारोबार चलाना पड़ता था। भारत में पक्के और बेजोखिम के ढँग पर बैंकिंग कारोबार को बढ़ाना, बैंकों को घाटे में पड़ने से बचाना, और इस कारोबार के अँगरेज़ी तरीक़े और अनुभव को यहाँ प्रचलित करना ही इस ऐक्ट का मुख्य उद्देश्य था। इन्हीं बातों को ध्यान में रख कर बैंकों की कार्य-प्रणाली में कई तरह की रोक टोक डाल दी गई। संक्षेप में रुकावटें इस भाँति थीं: (१) विदेशी विनिमय (foreign exchange) का कारोबार नहीं कर सकती थीं, (२) भारत के बाहर न कोई रक़म जमा ले सकतीं और न भारत के बाहर भुगतान मिले ऐसी जमा यहाँ ले सकती थीं, (३) छः महीने से अधिक के लिए उधार नहीं दे सकती थीं, (४) स्थावर संपत्ति या ऐसी दस्तावेज़ पर, जिस पर दो स्वतंत्र व्यक्तियों के हस्ताक्षर न हों, या ऐसे माल पर, जो बैंक को नहीं सौंप दिया गया हो, या उस माल पर बैंक को हक़नामा न दे दिया गया हो, रुपया उधार नहीं दे सकती थीं।

सेन्ट्रल बैंक का प्रश्न

भारत में सेन्ट्रल बैंक की स्थापना का प्रश्न प्रेसिडेंसी बैंकों के जन्म-काल ही से चलता था। सन् १८३६, १८६१, १८६७ और १८७० में इस बात पर बहुत विचार हुआ। सन् १८९८ में मि० हेम्ब्रो ने फ़ाउलर कमिटी की रिपोर्ट के नीचे एक टिप्पणी में सेन्ट्रल बैंक के लाभ दर्शाये। इस पर सेक्रेटरी आव् स्टेट् और भारत-सरकार के बीच लिखा-पढ़ी चली और दोनों ही इसके पक्ष में भी थे। लेकिन यह सब होते हुए भी समय की अनुपयोगिता कहकर बात टाल दी गई। युद्ध के समय सरकार को एक सेन्ट्रल बैंक की आवश्यकता का अनुभव हुआ और इसी समय प्रेसिडेंसी बैंकों को भी एक में मिल जाना लाभप्रद जान पड़ा। इन बैंकों ने वार लोन आदि के भरे जाने में सरकार का बड़ा भारी काम किया, और इसीलिए सरकार को यह फ़िक्र हुई कि बैंकों के साथ उस समय में स्थापित हुआ घनिष्ठ सम्बन्ध निभा रहे। साथ ही देश में बैंकिंग की विशेष सुविधाएं कर देने

का प्रश्न भी था। यह बात प्रगट थी कि सेन्ट्रल बैंक में लोगों की श्रद्धा और विश्वास अधिक रहेगा, और इसलिए उसकी जमा (deposits) में विशेष आसानी से अधिक रक़म आ सकेगी। साथ ही ऐसी बैंक के लिए भारत के प्रत्येक भाग में अधिक शाखाएँ खोलना भी आसान रहेगा। अत परस्पर बातचीत चली, और बैंकों के बीच एव बैंक और सरकार के बीच शर्तनामा तय हो गया। इसके फलस्वरूप इपीरियल बैंक आव् इडिया ऐक्ट बना, जो सन् १९२१ की २७ जनवरीसे चालू हुआ।

'इंपीरियल बैंक आव् इडिया' तीनो प्रेसिडेंसी बैंकों को मिला कर बनी है। उनका सब कारोबार नई स्थापना में आगया और पुराने शेयर नई बैंक के शेयरो में बदल दिये गये। मूलधन ११ करोड़ २५ लाख रुपये का नियत किया गया, जिसमें से आधी रक़म का भरा हुआ अर्थात् पेडअप कैपिटल रखा गया। बैंक के कारोबार को चलानेवाला सेंट्रल बोर्ड है, जो उसके मुख्य-मुख्य कार्यों का सञ्चालन करता है। एक जगह से दूसरी जगह रक़म का उलट-फेर, ब्याज की दर बाँधना और साप्ताहिक लेखे (weekly statements) का प्रकाशित करना सेंट्रल बोर्ड के काम हैं। सेंट्रल बोर्ड के नोचे तीनों नगरों—कलकत्ता, बबई और मदरास—में तीन लोकल बोर्ड हैं, जिनको स्थानीय कारोबार के सञ्चालन के लिए उचित अधिकार प्राप्त हैं। सेन्ट्रल बोर्ड का सगठन इस भाँति होता है—

इपीरियल बैंक आव् इडिया

लोकल बोर्डों के सभापति और उपसभापति (ये शेयर-होल्डरों के प्रतिनिधि-स्वरूप होते हैं), कट्रोलर आव् करेंसी (यह सरकार की ओर से प्रतिनिधि होता है), चार गवर्नर (सरकार द्वारा नियुक्त किये जाते हैं, और भारतीय-जनता के लोकल बोर्डों के सेक्रेटरी प्रतिनिधि स्वरूप होते हैं); दो अथवा एक मैनेजिंग गवर्नर (सरकार द्वारा नियुक्त)।

चार गवर्नर, जो सरकार द्वारा नियुक्त किए जाते हैं, सेन्ट्रल बोर्ड के प्रत्येक अधिवेशन में उपस्थित होकर वहाँ के तर्क-वितर्क मे भाग ले सकते हैं, पर किसी प्रश्न पर अपनी सम्मति (vote) देने का अधिकार नहीं रखते। इपीरियल बैंक ने ५ वर्ष में कम से-कम १०० नई शाखाएं, जिनमें चौथाई सरकार के बताये हुए स्थानों में हों, खोलनेका भार लिया। इसके सगठन के पूर्व प्रेसिडेंसी बैंकों की ६९ शाखाएँ थीं। सन् १९२१ के क़ानून बनने के बाद १९२४ के मार्च महीने तक ६५ शाखाएँ खोलदी गई।

इंपीरियल बैंक सरकार का सब कामकाज भुगताती है, और इसीलिए इसे सरकारी बैंक-सा महत्त्व प्राप्त है। इसके सचालन के नियम प्रेसिडेंसी बैंक्स ऐक्ट के आधार पर बने है। हा, उनमें थोड़ा फेर-बदल अवश्य हुआ है।

अब यहाँ पर इस बैंक की कार्य-प्रणाली की कुछ बातों पर विचार किया जाता है।

यह बैंक ६ महीने से अधिक के लिये उधार नहीं दे सकती, इसलिये इससे केवल वही उधार लेसकते हैं, जिनको थोड़े समय के लिये रक़म की आवश्यकता हो। भारत में उद्योग धन्धों के लिए द्रव्य की निरन्तर आवश्यकता रहती है। यहाँ के व्यापार के लिए धन की आवश्यकता का प्रश्न इस कारण और भी जटिल होजाता है कि, यहाँ स्वय सरकार को उधार लेने की बड़ी भारी भूख रहती है।

यह भारतवर्ष और सीलोन के बाहर अपना कारबार नहीं फैला सकती और न विदेशी विनिमय के धन्धे में पड़ सकती है। इस रुकावट के कारण विदेशी व्यापार, जो वर्ष भर मे अनुमान ६ अरब रुपये का होता है, सब एक्सचेंज बैंकों के हाथ में पहुँचता है।

यह भारत के बाहर जमा नहीं लेसकती, और न इस काम के लिये बाहर अपनी शाखा खोल सकती है। इसका अर्थ यह है कि वह भारत में काम लेने के लिए लदन या और कहीं रकम नहीं जुटा सकती। पर यूरोप में जहाँ कहीं भी सेन्ट्रल बैंक है—वह चाहे सरकारी बैंक हो या बैंक आव् इँगलैंड की भाँति उसमे वहाँ की सरकार का हाथ हो—ससार के किसी भी स्थान में रक़म जुटाने का अधिकार रखती है। देश के बाहर उधार लेने में रुकावट डालकर उसकी शक्ति कुचली नहीं जाती। सरकार ने यह काम करने में यह दोष बताया कि इससे बैंक को विनिमय के धन्धे में पड़ना पड़ेगा, जो बैंकिंग कारोबार नहीं, पर एक फाटके का काम है। यदि बैंक के लिये विदेशी विनिमय का कारोबार इसीलिये अनुचित है कि वह एक फाटका है, तो फिर सेक्रेटरी आव स्टेट् और भारत सरकार के लिए ऐसे फाटके के काम मे पड़ना और भी अधिक अनुचित है। तब क्यों दोनों ही कौंसिल बिलों द्वारा यह कारोबार करते हैं।

एक और भी काम है, जो सेन्ट्रल बैंक देश की करेंसी के उचित रीति से परिचालनार्थ भलीभाति कर सकती है, एवं जो पाश्चात्य देशों में सब जगह सेन्ट्रल बैंक द्वारा

किया जाता है—वह है नोटों का निकालना । भारत में सरकार ने यह काम सन् १८६२ से अपने हाथ में कर रखा है । सरकारी पोते बाक़ी (Government balances) और पब्लिक डेट आफ़िस (Public debt office) का काम इंपीरियल बैंक को सौंपकर सरकार ने बड़ी कृपा की । पर जब तक वह नोटों के निकालने का अधिकार अपने हाथ में रखती है, यह कहा जायगा कि वह देश को करेंसी के उन उपयोगों से वंचित रखती है, जो अन्य देशों को उपलब्ध हैं । यद्यपि पाश्चात्य देशों में ये उपयोग विशेष महत्व नहीं रखते, क्योंकि वहाँ पर बैंकों के चेकों का व्यवहार बहुत बढ़ा हुआ है ; भारत में जहाँ पर नोटों की माँग में ऐसी आकस्मिक घटा-बढ़ी होती है, बहुत महत्वशाली हैं । रक़म की टाण का पता ब्याज की घट-बढ़ स्पष्ट बताती है । नीचे इंपीरियल बैंक के ब्याज की ऊँची-से-ऊँची और नीची-से-नीची तीन वर्ष की दर दीजाती है:—

सन् १९२१—२२	१९२२—२३	१९२३—२४
८	८	९
५	४	४

सन् १९०० में स्वय सरकार ने इस बात को माना कि भारत की परिस्थिति में ऐसी कोई बात नहीं है, जो बैंक को नोट निकालने का काम दिये जाने में बाधा पहुँचाती हो । तत्पश्चात् सन् १९२० में प्रेसिडेंसी बैंकों के मिलाने के समय इस काम में संशोधन करने का मौक़ा था, पर सरकार ने इसे अपने हाथ से नहीं छोड़ा ।

नीचे सन् १९२६ के नवम्बर महीने का जमा ख़र्च का लेखा दिया जाता है, जिससे इस बैंक के कारोबार और लेन-देन का पता चल सकता है.—

मूलधन (लिखा गया)	रु० ११,२५००,०००	सरकारी सिक्यूरिटी	रु० १७,८४,६६,०००
		अन्य सिक्यूरिटी	१,६१,३१,०००
मूलधन (भरा गया)	५,६२,५०,०००	लोन (उधार)	१२,५४,२६,०००
रिज़र्व	४,९२,५०,०००	कैश क्रेडिट (नक़द उधार)	२१,२९,१३,०००
पब्लिक जमा (डिपाज़िट)	८,४७,१९,०००	देशी हुंडियाँ	५,३३,२०,०००
दूसरी जमा (,,)	७९,६२,५१,०००	विदेशी हुंडियाँ	३६,३४,०००
विविध	१,३१,९९,०००	अकारथ पूँजी (Dead stock)	२,७८,४४,०००
		विविध	७१,८५,०००
जोड़	९९,९६,६९,०००	अन्य बैंकों में जमा	८,६९,०००
		नक़दी	३७,३८,८१,०००
		जोड़	९९,९६,६९,०००

नीचे की ओर सबसे बड़ी संख्या नक़द उधार की है, उसके बाद उधार और देशी हुंडियों की है । बैंक का यह सब लेन-देन ६ महीने की अवधि से परिसीमित रहता है ।

भारत में दूसरा दर्जा एक्सचेंज बैंकों का है । इंपीरियल बैंक को एक्सचेंज का काम करने की मनाई है, अतः भारत के विदेशी व्यापार को भुगताने का काम इन्हीं एक्सचेंज बैंकों के हाथ पड़ता है । इस काम पर मानो इनका एकाधिपत्य है । इनकी भारत में ९२ शाखाएँ हैं । इनको अपने काम में बहुत बड़ा लाभ रहता है ; इसीलिये ये डिवीडेंड भी अच्छा बाँटा करती हैं । एक्सचेंज के कारोबार पर यदि इनका ठेका कहा जाय, तो अनुचित नहीं होगा । किसी नई बैंक को यह काम करना कैसे सुलभ हो, जबकि स्वय इंपीरियल बैंक को इसके करने की मनाई है । सन् १९०० में जब प्रेसिडेंसी बैंकों को मिलाकर सेन्ट्रल बैंक का रूप देने की बात चल रही थी, तभी इन एक्सचेंज बैंकों ने बड़े लाट की सेवा में एक मेमोरियल इस आशय का पेश किया—"जो नई बैंक होनेवाली है, वह एक्सचेंज का काम करने से रोक दीजाय, क्योंकि यदि ऐसा नहीं किया गया तो उन्हें (एक्सचेंज बैंकों को) केवल एक बराबरी की संस्था से ही नहीं, पर एक ऐसी संस्था से प्रतियोगिता में पड़ना होगा, जिसे स्टेट-बैंक की-सी आबरू, इज़्ज़त और साधन प्राप्त हैं । यदि ऐसा हुआ, तो एक्सचेंज बैंकों का अस्तित्व ही मिट जायगा, और ऐसी दशा में सरकार के विरुद्ध अपनी प्रजा के साथ कारोबार में बराबरी करने का दोष लगाया जायगा ।"

एक्सचेंज बैंक

ये भारतीय बैंक नहीं हैं, और न इनका ध्येय स्थानीय

व्यापार ही है। इनके हेड ऑफ़िस विदेशों में हैं, और ये भारत में, या लन्दन में या अन्य चाहे जहाँ जमा ले सकती हैं। इंपीरियल बैंक से विशेष सुविधाएँ देकर भारत का धन अपने यहाँ जुटाने में प्रयत्नशील रहती हैं। मुद्दती जमा (fixed deposit) पर ये ऊँचा ब्याज दिया करती हैं, और चालू खातों (current accounts) पर इंपीरियल बैंक कुछ ब्याज नहीं देती, पर ये दो रुपया सैकड़ा देती हैं। अपनी पूँजी मुख्यतया विदेशी व्यापार के संचालन में और कुछ हिस्सा भारत में या बाहर उधार (loans) देने में लगाती हैं। जो माल यहाँ से बाहर जाता है, उस पर काटी हुई हुंडियों का रुपया यहाँ देती हैं, और जो माल यहाँ आता है उसकी हुंडियों पर विदेशों में रक़म लगाती हैं। इसी भाँति इनके द्वारा विदेशी व्यापार सचालित होता है। विदेशी व्यापार की ओर इनका प्रधान लक्ष्य रहता है, और भारत के हित-अहित से इन्हें कोई प्रयोजन नहीं। जिस समय भारत में रक़म की चाह हो, एक भारतीय बैंक रक़म को यहाँ खींचने का प्रयत्न करेगी, पर इन बैंकों को यदि रक़म भारत से बाहर भेजने में लाभ जान पड़े, तो ये पहले बाहर भेजेंगी।

गत दस वर्षों में इनके यहाँ जमा (deposits) की रक़म बहुत बढ़ी। सन् १९१३ में इनके यहाँ जमा ३१ करोड़ रुपया था, वह सन् १९२२ में ७३ करोड़ होगया। यह दुःख की बात है कि इस तरह यह बढ़ती हुई जमा इन बैंकों द्वारा केवल विदेशी व्यापार के सचालन में लगे और देश उस रक़म के उपयोग से वंचित रहे, जो, सम्भव है, यहाँ के आंतरिक व्यापार और उद्योग-धन्धों की उन्नति में लगती।

जब बैंक ब्याज की दर (bank rate) ऊँची कर देती है, जैसा गत तीन वर्षों में मौसम के दिनों में देखा गया है, उस समय देहातों में ब्याज बहुत ऊँचा हो जाता है। इसका कारण स्पष्ट है कि जब देहातों में रुपये की आवश्यकता होती है, वह बन्दरों (Port towns) को खींच लिया जाता है। ऐसे समय एक्सचेंज बैंक अपनी शाखाओं से काम कम कर देते हैं, जिससे उन्हें कलकत्ता, बंबई आदि बन्दरगाही नगरों में रुपए की विशेष छूट रहे। इस प्रकार मौसम के दिनों में ब्याज की तेज़ दर देश के आंतरिक व्यापार पर पक्षाघात का काम करती है, क्योंकि उस समय कृषक को ग्राहक जो दाम दे उसीमें वह अपना माल बेच देने को बाध्य होता है।

एक्सचेंज बैंकों को जब यहाँ पर रुपए की चाह होती है, सरकार से कौंसिल बिल ख़रीद लेती हैं। भारत सरकार को अपना जमा ख़र्च बराबर रखने के लिये कभी भारत पर और कभी लंदन पर हुंडियाँ (bills) काटनी पड़ती हैं। इनका व्यवहार एक्सचेंज बैंक करती हैं। किसी बैंक को लंदन से रक़म मँगानी है, तो यहाँ उसे सरकार से मिल जायगी और सरकार को यहाँ से लंदन भेजनी ही थी, अतः वह लदन में उस बैंक से लेलेगी। इस भाँति ये बैंक भी अपना हिसाब-किताब बराबर बैठा लेती हैं। इस समय भारत में एक्सचेंज का काम करनेवाली अनुमान से २० बैंकें हैं, जिनमें मुख्य और प्रख्यात ये हैं:—

- चार्टर्ड बैंक ऑव् इंडिया, आस्ट्रेलिया एण्ड चाइना
- नेशनल बैंक ऑव् इंडिया, लिमिटेड
- हांगकांग एण्ड शांघाई बैंकिंग कारपोरेशन
- लायड्स बैंक, लिमिटेड (काक्स ब्रांच)
- पी० एन्ड ओ० बैंकिंग कारपोरेशन
- ईस्टर्न बैंक, लिमिटेड
- मरकेन्टाइल बैंक ऑव् इंडिया, लिमिटेड
- इन्टरनेशनल बैंकिंग कारपोरेशन
- याकोहामा स्पेसी बैंक
- नेदरलेंड्स इंडिया हेडल्स बैंक

एक्सचेंज बैंकों के बाद ज्वाइंट स्टॉक बैंक हैं। इनकी

ज्वाइंट स्टॉक बैंक

संख्या ६८ है, और इन्होंने भारत में सब जगह ३०० से अधिक शाखाएँ खोल रखी हैं। इनकी दो श्रेणियाँ हैं, एक तो वे, जिनका मूलधन और रिज़र्व ५ लाख रुपया या उससे अधिक है; दूसरी वे जिनका ५ लाख और एक लाख रुपये के बीच है। सन् १९५२ में इन ६८ बैंकों का मूलधन और रिज़र्व ११ करोड़ ७५ लाख रुपया था, और इनमें सर्वसाधारण का जमा (deposit) ६५ करोड़ २ लाख रुपया था। सन् १८५० से १८५० तक ज्वाइन्ट स्टाक बैंकों का आरम्भ काल रहा, और १८७० से १८९४ तक ऐसी कई बैंकें खुल गईं। सन् १९०४ से इन बैंकों ने ज़ोर पकड़ा और इसके बाद कई नई बैंकों की स्थापना हुई। स्वदेशी आन्दोलन और व्यापार की बढ़ती देखकर ऐसी कई बैंक खुल गईं, पर अधिकांश के प्रबन्धक (managers) बैंकिंग कारोबार से अनभिज्ञ थे, एवं उनका कारोबार जोखिम से भरे ढंग पर होता था। इन्हीं कारणों से सन् १९१३-१४

में ऐसी ४७ भारतीय ज्वाइन्ट स्टाक बैंकों का काम बंद हो गया। इससे भारतीय बैंकिंग को धक्का पहुँचा, और मुख्यतया पंजाब में पीपुल्स बैंक और बंबई में स्वेदेशी बैंक के बैठ रह जाने से जनता में भारतीय ज्वाइन्ट स्टाक बैंकों में अधिक सन्देह बढ़ गया।

ज्वाइन्ट स्टाक बैंकें साधारण बैंकिंग कारोबार करती हैं और देश के आन्तरिक व्यापार के संचालन में सहायता पहुँचाती हैं। वर्तमान में निम्नलिखित चार बैंक सबसे अच्छी और बड़ी हैं:—

सेन्ट्रल बैंक ऑव् इंडिया, लिमिटेड
अलाहाबाद बैंक ऑव् इंडिया
बैंक ऑव् इंडिया, लिमिटेड
पंजाब नेशनल बैंक, लिमिटेड

मुद्दती जमा पर ये भी इंपीरियल बैंक से ऊँचा ब्याज देती हैं और चालू खातों पर २) से २॥) सैकड़ा दिया जाता है।

ज्वाइन्ट स्टाक बैंकों के सिवाय और भी बहुत-सी संस्थाएं अन्य छोटी हैं, जो इंडियन कंपनीज़ ऐक्ट के आधार बैंकिंग संस्थाएँ पर बैंक खोल कर रजिस्ट्री हुई हैं। इन बैंकों का मूलधन और कार्य-वाहिनी शक्ति इतनी सूक्ष्म है कि ये ज्वाइन्ट स्टाक बैंकों की गणना में नहीं आ सकतीं। सन् १९२०-२१ में ऐसी ६४८ बैंकें थीं जिनका मूलधन १८ करोड़ ३२ लाख रुपया था। इनके यहाँ सर्व-साधारण की जमा कितनी है, इसका लेखा नहीं मिलता।

यह भारत के बैंकों की रामकहानी हुई, अब बैंकों के मूल-भारत में बैंकिंग धन और सर्वसाधारण की जमा का १० वर्ष में व्यवहार क्या हाल रहा, इसका लेखा दिया जाता है।

वर्ष	इंपीरियल बैंक		एक्सचेंज बैंक		ज्वाइन्ट स्टाक बैंक		सब बैंकों का जोड़	
	केपिटल रिज़र्व	डिपाज़िट	केपिटल रिज़र्व	डिपाज़िट	केपिटल रिज़र्व	डिपाज़िट	केपिटल रिज़र्व	डिपाज़िट
१९१३	७	४२	३८	३१	४	२४	४९	९७
१९२०	७	८७	९०	७५	१२	७३	१०९	२३५
१९२१	१०	७३	११२	७५	१३	८०	१३५	२२८
१९२२	१०	७१	११२	७४	१२	६५	१३४	२१०
१९२३	१०	८२	१४०	६८	११	४७	१६१	१९७

उल्लिखित सब संख्यायें करोड़ रुपया हैं। कोष्टक यह बताता है कि सन् १९१३ में तीनों तरह के बैंकों के यहाँ जमा की रक़म ९७ करोड़ थी, वह सन् १९२३ में बढ़कर १ अरब ९७ करोड़ होगई; इसी भाँति केपिटल और रिज़र्व की रक़म, जो ४९ करोड़ थी, वह १ अरब ६१ करोड़ हो गई। तदनुसार यद्यपि यह कहा जा सकता है कि भारत में बैंकिंग व्यवहार बढ़ा, यहाँ की जन-संख्या के हिसाब से अभी बहुत कसर है। भारत का क्षेत्र १८,०२,६५७ वर्ग-मील है, जिसमें २,२५३ नगर हैं, जहाँ की जन-संख्या २,९७,४८,२२८ है, और ७,२०,३४२ गाँव हैं, जिनकी जन-संख्या २८,५४,०६,१६८ है। सन् १९१७ के ३१ दिसम्बर के दिन भारत में बैंकों के आफ़िस सब मिलाकर ४०२ थे, इनमें बड़े शहरों में अवश्य ही एक से अधिक आफ़िस थे, और इसलिए केवल १६५ नगर ऐसे थे, जहाँ बैंकों के आफ़िस थे। यूनाइटेड किंगडम में ४,८०,००,००० की जन-संख्या के पीछे बैंकों के आफ़िसों की संख्या ९१३८ थी। इसी भाँति केनाडा में, जहाँ की जन-संख्या ८४,६०,००० है, बैंकों की शाखाएं ४००० हैं। इससे यह सिद्ध है कि भारतवर्ष में बैंकिंग के प्रचार के लिए अभी बहुत गुंजाइश है।

जब कि जापान और हालैंड जैसे अन्य देशों ने, जिनका विदेशी व्यापार भारत से बहुत कम है, अपने बैंकों का जाल संसार के स्थानों में फैला रखा है, यह बड़े दुःख की बात है कि हमारे किसी बैंक की कोई भी शाखा बाहर कहीं भी—और तो क्या ख़ास लंदन में, जिससे इतना भारी काम पड़ता है, नहीं है। भारत को अपने व्यापार की संयोजना के लिए एक्सचेंज बैंकों पर निर्भर रहना पड़ता है, जो अपने कारोबार के एकस्वत्व पर बड़ा अभिमान रखती हैं। जब भारत में जापानी, फ्रेंच और अँगरेज़ी बैंकें इतना कारोबार फैलाये बैठी हैं, न जाने वह दिन कब आयगा, जब भारतीय बैंक लंदन, रोम या कोबी में अपनी शाखाएं खोलने में समर्थ होंगी।

मोहनलाल बड़जात्या

१. गणेश-गुणगान

धारन ही ध्यान ज्ञान उदित हिए में होत ,
चक्रधर चारु सुख सम्पति सों सानि है ।
पूजनीय प्रथम उदार सुर वृन्दन में ,
सत्य सुखदायक मनोरथ को दानि है ।
सिद्धि सरसाइबे की बुद्धि बरसाइबे की ,
दुति दरसाइबे की मानो खुली खानि है ।
सुयस प्रकासिबे की बिघन बिनासिबे की ,
वारन बदन की बिरद वर बानि है ॥

चक्रधर अवस्थी

× × ×

२ एक आवश्यक प्रश्न

हमें सस्कृत महाभारत देखने और पढ़ने का संयोग तथा सौभाग्य नहीं हुआ है, किन्तु उसका अंग्रेज़ी अनुवाद, बँगला में लिखित महाभारत की छोटी-छोटी पुस्तकें एव श्रीयुत सुरेन्द्रनाथ ठाकुर-प्रणीत बँगला के वृहद्ग्रंथ का मान्यवर प० महावीरप्रसाद द्विवेदी-कृत अनुवाद-पाठ का अवश्य सुअवसर मिला है ।

महाभारत-वर्णित प्राय. सब प्रधान पुरुषों की उत्पत्ति दूषणीय पाई जाती है । राजा शान्तनु बन में एक अपरिचिता सुन्दरी को देख तथा उस पर मोहित हो उसे घर लाकर रखते हैं, और उसीसे भीष्म पितामह जन्म ग्रहण करते हैं । गगा ने निश्चय नारी-रूप धारण किया था, पर वह किस विशेष जाति की नारी बनी थी, इसका पता नहीं।

फिर वेदव्यास को देखिये । वे मातृ-कुल के विचार से कैसे थे, और उनकी उत्पत्ति किस रीति से हुई । पीछे उन्हींकी माता से प्रागुक्त शान्तनु ने विवाह किया और उनके पुत्र चित्रांगद तथा विचित्रवीर्य्य का जन्म भी उसी महानिषिध जाति के धीवर की कन्या से हुआ ।

पुन परमपूजनीय महावेदज्ञ वेदव्यास को अपनी विधवा भौजाइयों से (अर्थात् निज कनिष्ट भ्राताओं की पतिहीना सहधर्मिणियों से) धृतराष्ट्र तथा पांडु को उत्पन्न करते देखते हैं । विदुर तो भला दासी से उत्पन्न किये गये थे ।

कुन्ती ने कर्ण को कुँआरी अवस्था में और पाँचों पांडवों को विवाह के अनन्तर भिन्न-भिन्न देवताओं की कृपा और सहायता से प्राप्त किया ।

इन महापुरुषों की जन्म-कहानियों के वर्णनों में जो कुछ नोन-मिर्च लगाया गया हो, और विचित्रता तथा अलौकिकता के चटक-रंगों से वे चाहे जिस प्रकार रंजित की गई हों, यह स्पष्ट है कि इन लोगों की उत्पत्ति धर्म्मोचित और सराहनीय रीति से नहीं हुई ।

धृतराष्ट्र के सौ पुत्रों की जन्म कथा भी गड़बड़ी से

ग्लानी नहीं। उनका जन्म भी वेदव्यास के ही आशीर्वाद और उद्योग से हुआ था।

श्रीमद्भगवद्गीता में देखते हैं कि महाभारत के रण-क्षेत्र के मध्य रथ पर खड़े अर्जुन ने युद्ध करने से विरक्ति प्रकट करते हुए कहा है कि—"युद्ध में लोगों के निहत होने से उनकी विधवाओं से जारजों की उत्पत्ति की सम्भावना होगी, जिससे पितृगण पिंडदान न पाकर स्वर्ग से पतित होंगे और इसका पाप हमारे माथे होगा।" क्या उपर्युक्त किसी महाशय पर यह लक्षण घटित नहीं होता?

घटित हो, पर यही लोग विविध-गुण-सम्पन्न हमारे गौरव और ममता के कारण हैं। वेदव्यास—महान् विद्वान्, योगीश्वर, श्रीमद्भागवत, महाभारत और पुराणों के प्रणेता, भीष्म—अद्वितीय दृढ़प्रतिज्ञ तथा अतुलित बलधारी योधा; युधिष्ठिर—परम सत्यवादी धर्मावतार; कर्ण, अर्जुन और भीम एक-से-एक युद्ध-कुशल, अपार पराक्रमी, बलशाली, शत्रु-संहारक, वीर-पुंगव; दुर्योधन आदि भी शस्त्र-विद्या-निपुण विपुल बलवान, वैरियों के मानमर्दक और दाँत खट्टे करनेवाले थे।

ये ही जगद्विख्यात महापुरुषगण अपनी योग्यता, विद्वत्ता तथा पौरुष-प्रबलता से भारत के मस्तक को उन्नत करने वाले हुए। इनकी कीर्ति दिगन्त-व्यापिनी है। दरिद्र, दुर्गति-ग्रस्त आरत भारत आज भी इनको लेकर अपने को धन्य मानता और गौरव करता है, एवम् इन्हीं लोगों के सदृश योग्य महापुरुषों के प्रादुर्भाव से अब भी देश का वास्तविक कल्याण-साधन संभव दीखता है, अन्यथा नहीं।

हाँ, समाज को उस समय भी सामाजिक दूषणों का ख़याल था। यदि यह बात नहीं होती तो कर्ण जन्म ग्रहण करते ही कुन्ती द्वारा परित्यक्त नहीं होते। जारज की ओर अर्जुन का भी ध्यान नहीं जाता।

परंतु तत्कालीन समाज उदारचेता था। आज के समान जनता को कड़े नियमों से आबद्ध रखना नहीं चाहता था। यदि ऐसा करता तो ऐसे-ऐसे पुरुष-रत्न मिट्टी में मिल जाते। जगत् को इनका जौहर देखने की बारी नहीं आती।

उदारचित्त समाज ने चित्रांगद तथा विचित्रवीर्य्य को हस्तिनापुर के राजसिंहासन पर विराजमान कराया, कर्ण को अंग-पति बनाया और विदुर को राजसभा में आसीन किया।

कर्ण अतुल्य रणवीर होने के साथ-साथ अभूतपूर्व दानवीर भी हुए, और विदुर महा विद्वान्, यथार्थवादी, परम शांत, भक्त, धीर। कृष्ण ने दुर्योधन की दुष्ट प्रकृति के कारण उसके घर के सुस्वादिष्ट भोज्य-पदार्थों को परित्याग कर बहुत-से ब्राह्मणों के साथ दासी-पुत्र विदुर के घर जाकर भोजन किया और विप्रों ने भोजन-दक्षिणा भी पाई।

आज समाज के कुविचार तथा हृदय-संकीर्णता से ऐसे उदरस्थ अपत्यों को जगज्ज्योति देखने का भी संयोग नहीं होता। यदि वे संसार में आने और रहने पाते एवम् उनको शिक्षा और सम्मान होता, तो न जाने उनमें कितने कर्ण और विदुर निकल आते।

यहाँ वंश-रक्षणार्थ श्वसुर से संतान जन्माने की बात दूर रहे, दुर्भाग्यवश देवर या किसी अन्य से प्रेम के फलस्वरूप संतति उत्पत्ति का रंग होने से ही किसी पतिहीना को जो दुर्गतिग्रस्त होना पड़ता है, उसका ध्यान ही महा मर्मपीड़क कहा जायगा। वह भ्रूणहत्या का पाप सर पर ले, जिसका प्रकट होना भी घोर अनर्थकारक और विपज्जनक होता है, अथवा घर-परिवार परित्यागपूर्वक नवजात शिशु को छाती से लगाये, पथ की कंगालिनी भिखारिनी बन दिनपात करे, वह तो धर्म्मभ्रष्ट, जातिभ्रष्ट और साधारण सुख से वंचित हो कालक्षेप करे; और उसके सतीत्व-विनाशक अपना कुलीनता और वंश गौरव का अभिमान लिये, मोछों पर ताव देते जगत् और जनता में महा निरपराधी जैसे सानन्द विचरण किया करें। कोई उनसे चूँ भी न करे!

सच पूछिये तो बेचारी दयापात्री कुल-कामिनियों एवं साधार नारियों को कुपथ पर ले जाकर और उनका अमूल्य-रत्न अपहरण कर उन्हें धर्मभ्रष्ट करने वाले सैकड़े पंचानवे पुरुष ही होते हैं, क्योंकि इन्हें कोई डर-भय नहीं। और इनकी करनी से इनकी लज्जा तो स्वयं लज्जित हो न जाने कहाँ मुँह छिपाये बैठी रहती है!

कैसी ही स्त्री क्यों न हो, वह किसी पुरुष पर आप गिरने नहीं जायगी। उसको ऐसा करने का कदापि साहस नहीं होगा। स्त्रियाँ स्वभावतः धर्म-भीरु और लाजवती होती हैं। हम सामान्या की बात नहीं कहते।

रस-ग्रंथों में परकीयाओं की बातें देखते हैं। पर

वहाँ भी, हमारा यही ख़याल है कि, उत्पात विशेषतः पुरुषों ही से आरंभ होता है, पीछे चाहे दिवाभिसार हो या निशाभिसार। सहस्रों मुग्धा और मध्या बालिकाओं को धर्मनष्ट करनेवाली आज की कुटनियाँ, जिनका हाल समाचार-पत्रों में देखने में आता है, दूतियों की प्रतिरूपिणी स्वरूपा ही हैं।

रस-ग्रंथ-कथित परकीयाओं के प्रति समाज का कैसा व्यवहार होता था, यह तो किसी पुस्तक से विदित नहीं होता, परंतु कठोर बर्ताव की सम्भावना नहीं। यदि वैसा होता, तो कविगण उछल-उछल कर उन का गुण-गान और लक्षण-वर्णन करते नहीं पाए जाते।

जो हो, ऐसी जघन्य घटनाओं के लिये कौन दोषी कहा जायगा? समाज। समाज असल अपराधियों के दंड का कोई विधान नहीं करता और निर्बला अबला के प्रति उसका घोर अत्याचारपूर्ण बर्ताव होता है।

जिस घर मे संयोगवश ऐसी घटना घटित होती है, उस घर के लोग बेचारी अपराधिनी नारी को तो पापिनी, कुलकलंकिनी आदि सुभाषणों से सम्बोधित कर सदा के लिये उसे आँखों की ओट कर देते हैं एवं उससे कोई संपर्क नहीं रखते। किंतु कोई अपने कुलकलंक पुत्र, पौत्र, भाई, भतीजे वा भांजे को कुलनाशक कहने और समझने की कृपा नहीं करता, उससे संबंध-विच्छेद नहीं करता, उसे घर से बाहर करने का स्वप्न भी नहीं देखता! कारण यह कि यदि कोई अपराधिनी स्त्री के साथ ऐसा बर्ताव न करे और उसके साथ पूर्ववत् संसर्ग स्थिर रखे, तो समाज उसके माथे वज्रपात करने को प्रस्तुत हो, किंतु व्यभिचारी पुरुष के प्रति कुछ नहीं करने से समाज उनसे कुछ नहीं कहता। इसीसे हम समाज को महादोषी मानते हैं।

हम यह नहीं कहते कि समाज सर्वथा बाग ढीली कर कुलांगारों तथा कुलकलंकिनियों को कुकर्मक्षेत्र में काम-क्रीड़ा की मनमानी घुड़दौड़ उड़ाने दे। किंतु यह जैसे बाल विवाह, असम विवाह आदि अनेक कुप्रथाओं के दमन और परिशोधन की चेष्टा कर देश की शुभकामना करता है, उसी प्रकार स्त्री और पुरुष दोनों को कुकर्मियों के समान ही दंडनीय होने का विधान करे और दोनों प्राणियों को उचित और पूरा दंड दिया करे। दंडभय से पुरुष भी कुकर्म से मुँह मोड़ेगा, जिससे अबलाओं के धर्म की रक्षा होगी एवं समाज में पाप-प्रचार का ह्रास होगा। अथवा यदि लाज-औरत ने जवाब दिया, तो दंडित होने पर पापपरायण उभय प्राणी विलग संसार कर दिन काटेंगे। गर्भस्थ अपत्यों के विनाश किये जाने या किसीके दुःख भोगने का अवसर नहीं आवेगा।

हम हिंदू धर्म, नीति और रीति की जड़ में कुल्हाड़ा मारना भी नहीं चाहते। हम श्रीगुरु नानक के अनुयायी हैं। सनातनधर्म में हमारी पूरी श्रद्धा है। हम इसकी सेवा भी करते आते हैं। चिरकाल तक बाँकीपुर धर्म सभा के उपसभापति का भी काम हमसे लिया गया है।

जैसे आज हिंदू-संघटन की चर्चा चतुर्दिक् सुन रहे हैं, वैसे ही सनातनधर्म की रक्षा के निमित्त दशमगुरु श्रीगुरु गोविंदसिंहजी ने सिक्ख मठों का संघटन किया। वे सिक्ख भाई भूलते हैं जो किसी भ्रमवश अपने को हिंदुओं से विलग समझते हैं, और जो हिंदू उन्हें अपना नहीं जानते, वे उनके प्रति घोर अन्याय करते हैं। गुरु साहब का उद्देश्य दोनों मे पार्थक्य स्थापन का कदापि नहीं था। हिंदू और सिक्ख दोनो को भाई के समान रहना उचित है। तभी तो सिक्ख भाइयों के नामों के साथ "भाई" शब्द का प्रयोग सार्थक होगा।

किंतु, जैसे आज कतिपय सनातनधर्मी हिंदू-संघटन के विरोधी हो रहे हैं और सुने जाते हैं, उसी तरह उस समय भी बहुत से लोगों ने सिक्ख-संघटन के प्रतिकूल हो उससे सहानुभूति प्रगट नहीं की। नहीं तो उसी समय मामला ठीक हो जाता। आज भी ऐसे ही विरोधियों के कारण कार्यसिद्धि मे विघ्नबाधा का भय है।

हमारी समझ मे जो समयानुसार देशावस्था के विचार से हिंदूधर्म की नियमावलियों में यथावश्यक संशोधन कर उसकी रक्षा करे एवं धर्म के मुख्य लक्ष्य से न चूके, वही सच्चा सनातनधर्मी है। ऐसा परिवर्तन सदा होता आया है। समय समय पर भिन्न-भिन्न स्मृतियों की रचना और उनकी स्थिति इसकी साक्षी दे रही है।

आज भी नई नियमावली तथा नूतन स्मृति की आवश्यकता दीखती है। इसकी ज़रूरत ही आज कल करवीरपीठ के पूजनीय महामान्य शंकराचार्यजी भी आज्ञा करते हैं कि "धर्मशास्त्र का नये सिरे से परिवर्तन होना चाहिये।"

एक बार आरे के सुविद्वान् और महान वैद्य श्रीयुत

बालमुकुंद तिवारी, जो जीवन भर आरा नागरी-प्रचारिणी सभा के सभापति के आसन को सुशोभित करते रहे, कहते थे कि—"समयानुसार हमारे धर्मशास्त्र में रद्दोबदल होना वांछनीय है। देखिये, लिखा है कि, 'यदि खूँटे पर बँधा हुआ गाय बैल मर जाय तो बाँधने वाले को पाप होता है।' उसके लिये प्रायश्चित्त भी कहा गया है। इसीसे लोग वृद्ध गाय बैल को बंधनमुक्त कर देते हैं और वे मनमाने रूप से भ्रमण किया करते हैं। किंतु बुढ़ापे से कमज़ोर होजाने के कारण यदि वे कहीं गड्ढे या कुएँ में गिर कर मर जायँ, तो क्या पाप न होगा? इससे तो यही उत्तम है कि अपने स्थान पर बँधे खाना-दाना पाते प्राण विसर्जन करें।" उन्होंने यह एक साधारण उदाहरण दिया था।

इसकी आवश्यकता और उपकारिता का ही ध्यान करके आज के अनुभवी, बुद्धिमान और दूरदर्शी सज्जनगण हिंदू-संघटन और शुद्धि-पथ अवलंबन का उपयोगी जान इसके लिये बद्धपरिकर हुए हैं, किसी के साथ द्वेषवश नहीं। अतएव इस कार्य में सब हिंदू धर्म-प्रेमियों तथा सनातनधर्मियों को योग प्रदान कर निज धर्म और मान की रक्षा करनी परमधर्म और कर्तव्य है। इसकी उपेक्षा और उपहास सराहनीय नहीं।

महाभारत वा अन्य धर्मग्रंथों का आदर केवल उनकी आरती-पूजा से नहीं होता, उनसे उत्तम शिक्षा ग्रहण करना ही उनका यथार्थ आदर करना कहलाएगा।

शिवनंदनसहाय

× × ×

३. कुसुमत्रयी *

१. तुलसीदास

विचारों में लवलीन कविशिरोमणि तुलसीदास गंगा-तट पर उस एकांत स्थान में घूम रहे थे, जहाँ मृतक शरीरों का दाहकर्म किया जाता है। सोलह शृंगार से नववधू के समान सुसज्जित एक रमणी अपने मृतपति की लाश के चरणों के पास बैठी हुई उन्हें दिखाई दी।

तुलसीदासजी को अपनी ओर आते देख उस सती ने अपना मस्तक उठाया और नमस्कारपूर्वक कहा—"देव! मुझे आशीर्वाद दीजिए, स्वर्ग में मैं अपने पतिदेव का अनुगमन कर सकूँ।"

"क्यों, ऐसा क्यों, बेटी" तुलसीदासजी ने पूछा, "क्या यह पृथ्वी भी उसी की नहीं है जिसने स्वर्ग का निर्माण किया है?"

"मुझे स्वर्ग की चाह नहीं; मैं तो अपने पतिदेव को प्राप्त करना चाहती हूँ—" सती रमणी ने उत्तर दिया।

हँसकर तुलसीदासजी ने कहा—"अपने घर को लौट जाओ, बेटी। एक मास पूरा होते-होते तुम अपने पति को प्राप्त कर लोगी।"

वह देवी आशापूरित हर्ष को लेकर लौट गई। तुलसीदासजी नित्यप्रति उसे उपदेश देने के लिए जाने लगे। उसका हृदय ईश्वरीय प्रेम से ओतप्रोत भर गया।

महीना पूरा होते ही पास-पड़ोस के लोगों ने आकर प्रश्न किया—"क्या तुमने अपने पति को पा लिया?"

वैधव्य की महिमामयी पूजनीय वीणा से ध्वनि निकली—"हाँ"।

उत्सुकतापूर्वक उन्होंने पूछा—"वह कहाँ हैं?"

"मेरे देव मेरे हृदय में विराजमान हैं, वे सदा-सर्वदा मेरे साथ हैं"—देवी ने उत्तर दिया।

२ गुरु गोविंद

कुछ दूर पर नीचे कल कल-निनादिनी यमुना प्रवाहित हो रही थी। उसके स्वच्छ जल में तट के वृक्षों का प्रतिबिंब पड़ रहा था। वृक्षों के उस पार शैल-शिखर अपना मस्तक ऊपर उठाए खड़े थे।

गुरु गोविंद एक चट्टान पर बैठे धर्मग्रंथ पढ़ रहे थे। उनका धनाभिमानी शिष्य रघुनाथ आया और उसने नतमस्तक होकर कहा—"गुरुदेव! यह शिष्य एक तुच्छ भेंट ले आया है, जो आपके योग्य शायद ही हो।" ऐसा कहकर उसने हीरे मोतियों से सुसज्जित स्वर्ण-कंकण उनके समक्ष उपस्थित किए।

गुरु गोविंद ने उनमें से एक को अपने हाथ में उठा लिया। अंगुलियों में घूमने हुए कंकण से निकलकर हीरों की छटा इधर-उधर छिटकने लगी। अकस्मात् कंकण हाथ से छूटकर यमुना के अगाध प्रवाह में जा गिरा।

रघुनाथ के मुँह से एक आह निकली और वह यमुना में कूद पड़ा। गुरु गोविंद के नेत्रद्वय पुस्तक पर स्थिर थे। चुराई हुई वस्तु को छिपाकर प्रवाह उसी गति से प्रवाहित होने लगा।

रघुनाथ जब लौट कर आया तो सूर्य मुसका रहे थे।

* 'Fruit Gathering' से संकलित।

वह पानी से तरबतर और थका हुआ था। उसने हाँफते हुए कहा—"मैं अब भी उसे खोजकर ला सकता हूँ, यदि आप मुझे बतलावें कि वह कहाँ गिरा था।"

गुरु गोविंद ने दूसरे कंकण को उठाया, उसे भी जल-प्रवाह में फेंकते हुए कहा, "यहाँ।"

३ सनातन

गंगा के निर्मल प्रवाह में सनातन माला का जाप कर रहे थे। उसी समय एक दीन-हीन ब्राह्मण आया, उसने कहा—"मेरी सहायता करो, मैं दरिद्र हूँ।"

"भीख देने के लिये मेरे पास क्या है, मेरे पास जो कुछ था सो मैं दे चुका—" सनातन ने उत्तर दिया।

"परंतु भगवान् शंकर ने मुझे स्वप्न में दर्शन दिए हैं, उन्होंने मुझे आपके पास आने का आदेश दिया है—" ब्राह्मण ने कहा।

सनातन को सहसा याद आया कि उन्होंने गंगातट पर से एक पत्थर उठाकर इस विचार से एक स्थान पर रख दिया था कि शायद किसी को कभी इसकी आवश्यकता आ पड़े।

उन्होंने ब्राह्मण को वह स्थान दिखा दिया। उसे खोद कर उसने वह पत्थर उठा लिया। ब्राह्मण धरती पर बैठा अकेला उस समय तक विचार करता रहा, जब कि सूर्य वृक्ष-समूहों के उस ओर छिप गए, ग्वाले गायों को लेकर घर को लौट आये।

वह उठा और धीरे-धीरे सनातन के पास आकर बोला—"देव! मुझे उस धन का अल्पातीत भाग दीजिए, जो समस्त संसार की धनराशि को लज्जित करदे।" यह कहकर उसने वह पत्थर गंगा में फेंक दिया।

श्रीगोपाल नेवटिया

× × ×

४. जिज्ञासा

नीरवता का चीर पहनकर
भौतिकता से दूर विराज,
किस अनंत के चिर-चिंतन में
है एकान्त यती गिरिराज? ॥ १ ॥
वन वन बिखर विचरकर करती
सुरसरि किसकी अरचा चारु?
"पुष्प तोय" को पाकर रीझे
ऐसा अनुपम कौन उदार? ॥ २ ॥
किस परोक्ष से सागर कहता—
'हर हर' कर 'हरले जग-जाल'?
सरिता-जल जब जलनिधि जाता
करता वह भी यही सवाल ॥ ३ ॥
किसकी झलक अलौकिक पाकर
चपला चंचल-चित गत-भार,
झट झट झाँक झाँक कर सजती
प्रोषितपतिका सी अभिसार? ॥ ४ ॥
गगनाङ्गन में गाते किसका
अगणित उडुगन गौरव-गान?
किसकी छवि से छका लपाकर
छोटे मंजु मधुर मुसकान? ॥ ५ ॥

नन्ददुलारे वाजपेयी, बी० ए०

× × ×

५ कौन हो?

अपने सुख के साथ मैं विश्राम करता था, तुमने आकर क्यों जगाया? मेरे सुख में तुम्हें क्या डाह थी? क्या तुम उसे मेरे साथ नहीं देखना चाहती हो? उसे हटाकर अब तुम मेरे ऊपर अपना साम्राज्य स्थापित करने के लिये प्रस्तुत हो। मेरे पास से तुम सुख को बहलाकर ले गई थीं; सुना है, उसे तुमने मिट्टी में मिला दिया है। अब लौट कर आई हो।

तुम परिस्थितियों का एक जाल बनाकर लाई हो; मेरा मन उसमें उलझकर तड़पता ही रह गया। तुम उसे धैर्य देती हो। रजनी की घोर निविड़ता में जब सारा संसार अपने केलि-भवन में विश्राम करता है, उसी समय तुम मेरे कानों में कुछ कह जाती हो, मैं पागल हो जाता हूँ। अपनी आशा-भरी आँखों से देखता हूँ। तुम अट्टहास करती हो। अपना नृत्य दिखलाती हो। मैं देखता ही रह जाता हूँ।

तुम नित्य नवीन आभूषण सजकर बड़ी कुशलता से आती हो, जिसमें तुम्हें कोई पहचान भी न सके। तुम्हारे स्वर मुझे परिचित हो गये हैं। तुम्हारी बातें ध्यान से सुनता हूँ। एक दिन मैं एकांत में बैठा था, तब तुमने धीरे से कहा था—"मैं तुम्हें कर्त्तव्य-हीन नहीं देखना चाहती हूँ। तुम्हारी कायरता देख कर ही मैं तुम्हें सचेत करने

आई हूँ। उठो, अभिलाषा के युद्ध में तत्पर होकर खड़ो !"—तुम्हारे इस आदेश पर मैं विचार करता रहा। तुम्हारी बातों से ही मैं उठ खड़ा हुआ। देखा—संसार अँगुलियाँ दिखाकर, मेरी ओर संकेत करते हुए, हास्य करने लगा। मैं लज्जित होकर उस अभिनय को देखने लगा। निराशा मुझे अपनी ओर खींचने लगी।

तुम फिर वेष बदल कर आई हो। तुमने मुझे इस उलझन में क्यों डाल रखा है? इस बार मैंने तुम्हें पहचान लिया। एक दीर्घ नि:श्वास लेकर, करुणा और निराशा से किलोल करते हुए, मैंने कहा—"अच्छा, इतना तो बतादो कि तुम कौन हो?" उसने इठलाते हुए कहा—"अच्छा विचार करो : देखूँ, तुम मुझे पहचान सकते हो!"—मैं सोचने लगा। मुझे वही आनंद आया। मैंने सहमते हुए कहा—"चिंता।"

वह मुसकिराकर चली गई!

विनोदशंकर व्यास

× × ×

६. हमारे हैं

मानै मत काहू को न सिखवै सुमति कौन,
पीके प्रेम प्याले भये ऐसे मतवारे हैं।
"द्विज पद्मधर" कहौ काको बिसवास कीजै,
आस कीजै काकी सबै निठुर निहारे हैं।
प्रान दीन्हों मान दीन्हों आन कुलकानि दीन्हों,
ठानि दीन्हों हठ प्रान पर हाथ पारे हैं।
मोहन के मोह में विमोहित ह्वै बैरी बने,
मन ही हमारो है न नैन ही हमारे हैं॥

पद्मधर अवस्थी "पद्म"

× × ×

७ दीन

(१)

दूसरों के दुख में सदैव उर थाम लिया,
और पर-सुख मे तुम्हारा मन भाया है।
प्राण तक वार दिया चाहा किसीने जो तुम्हे,
पास भी बिठाया उसे उर में बिठाया है।
'कौशलेंद्र' संतत रहे परोपकार-लीन,
समझा न भूल कभी अपना पराया है।
प्रेम वश होना, झुकना, दया का दान देना,
दीन तुमने ही दयानिधि को सिखाया है॥

(२)

सदय बड़े हो है सदयता तुम्हारी गेय,
छोड़ते न आन अपनी हो किसी हाल मे।
रखते अटल अनुराग हो सभी के प्रति,
बाँध रक्खा वैरियों को भी है प्रेम-जाल में।
'कौशलेंद्र' कृशता तुम्हारी ही शरण लेती,
खोजती तुम्हीं को है दरिद्रता दुकाल में।
शांति पाती है तुम्हारी छाया में निदाघ-धूप,
शीत छिपता है मुट्ठियो में शीत-काल में॥

(३)

कहते दशा न अपनी कभी किसी से, सदा—
बात हो बनाते, पर मुँह न बनाते तुम।
मानस में भाप सी व्यथा जो उठती कभी, तो—
अश्रु बरसाते, उर-आतप बुझाते तुम।
'कौशलेंद्र' रहते अचल हो अचल सम,
घोर दु:ख में भी रसना पै 'हा!' न लाते तुम।
आह करते भी तो डिगाते ध्यान शंकर का,
प्रलय मचाते हरि-हृदय हिलाते तुम॥

(४)

होता उपलब्ध जितना, उसी मे होते तुष्ट,
हीनता पै अपनी न नेक पछताते हो।
आँख है चुराता यदि कोई तुमसे, तो तुम—
राह मे उसी की नैन-पावड़े बिछाते हो।
'कौशलेंद्र' निर्बल कभी कभी सबल तुम—
प्रबल प्रभाव प्रबलों पै भी जमाते हो।
दीन! तुम्हे दीन, बतलाओ हम कैसे कहें?
अब तुम बंधु दीनबंधु के कहाते हो॥*

कौशलेंद्र राठौर

---

* मैनपुरी माथुर चतुर्वेदी पुस्तकालय के वार्षिक कवि-सम्मेलन में पठित और स्वर्ण-पदक से पुरस्कृत।

१. हा! देवी धैर्य रखना

यामः सुन्दरि याहि पान्थ! दयिते शोकं वृथा मा कृथाः,
शोकस्ते गमने कुतो मम ततो बाष्पं कथं मुञ्चसि।
शीघ्रं न व्रजसीति मां गमयितुं कस्मादियं ते त्वरा
भूयानस्य सह त्वया जिगमिषोर्जीवस्य मे सम्भ्रमः॥

नायक किसी कार्यवश परदेश-गमन के लिए प्रस्तुत है। इधर नायिका को इस दुर्घटना से प्राणान्तक कष्ट हो रहा है। सन्ताप और मनोव्यथा की अधिकताके कारण उसका अन्तःकरण पिघल-पिघल कर आँसुओं के रूप में बह रहा है। उसी समय प्राणपति ने सान्त्वना देते हुए बिदा माँगी। नायक कहता है—

हे सुन्दरि! हम जावें? (नायिका प्रत्यक्षरूप में अमङ्गल की आशङ्का से यात्रा में विघ्न न डाल कर व्यंगोक्ति द्वारा प्रश्नों का उत्तर निम्न प्रकार से देती है)—

नायिका—अच्छा पथिक, जाओ।

नायक—प्रिये! फिर व्यर्थ शोक क्यों करती हो?

नायिका—तुम्हारे जाने में मुझे शोक क्यों होगा।

नायक—यदि ऐसा है, तो, फिर आँसू क्यों बहा रही हो?

नायिका—तुम शीघ्र नहीं जाते हो, इसीलिये।

नायक—मुझे भेजनेके लिये तुम्हें इतनी आतुरता क्यों है?

नायिका—यह केवल मेरे प्राणों की घबराहट है, जो तुम्हारे साथ चलने को तैयार बैठे हुए हैं।

× × ×

२. पतितावस्था

भिक्षो, मांसनिषेवणं प्रकुरुषे किं तेन मद्यं विना,
मद्यं चापि तव प्रियं प्रियमहो वाराङ्गनाभिः सह।
तासामर्थरुचिः कुतस्तव धनं द्यूतेन चौर्येण वा,
चौर्यद्यूतपरिग्रहोऽपि भवतः नष्टस्य काऽन्या गतिः॥

एक बार मनुष्य जहाँ दुराचार के पाश में फँसा कि उसका हृदय क्रमशः किस प्रकार पतितावस्था को प्राप्त होता है, उपरोक्त पद्य में उसी स्थिति का बड़ी रोचकता से प्रश्नोत्तर के रूप में कवि ने वर्णन किया है—

प्रश्नकर्ता—हे भिक्षुक! क्या तुम मांस खाते हो?

भिक्षुक—खाते तो हैं, किन्तु बिना शराब के उसमें मज़ा ही क्या।

प्रश्नकर्ता—(चौंककर) क्या शराब भी तुम्हे प्यारी है?

भिक्षुक—हाँ, किंतु वेश्याओं के साथ।

प्रश्नकर्ता—वेश्याओं को तो धन की चाह रहती है, तुम्हारे पास धन कहाँ?

भिक्षुक—जुआ और चोरी से तो मिल सकता है।

प्रश्नकर्ता—क्या तुम जुआ खेलना और चोरी करना भी पसन्द करते हो?

भिक्षुक—पतित की और गति ही क्या है?

म॰ गंगादास

× × ×

३ चुटकुले

१—कहते हैं कि जब औरंगज़ेब तख्त पर बैठा तो उसने हुक्म दिया कि सारे नाचने-गानेवाले उसकी सल्तनत से निकाल दिए जावें। दिल्ली उस समय हिंदुस्तान की राजधानी थी। देश के हरएक प्रांत के गुणी अपने भाग्य की परीक्षा करने के लिये दिल्ली आया करते थे। भाँडों, कलावंतों का अच्छा ख़ासा जमघट रहता था। उन्होंने यह हुक्म सुना तो चकराए। दिल्ली छोड़कर जावें तो कहाँ? कहाँ उनकी क़द्र होगी? चार पाँच दिन के बाद बादशाह की सवारी निकली। भाँडों को अर्ज़मारूज़ करने का यह अच्छा मौक़ा मिला। जिस रास्ते से बाद-

शाह की सवारी आनेवाली थी उसीके किनारे एक वृक्ष पर कई भाँड अपने ढोल मँजीरे लेकर चुपके से आ बैठे। जब बादशाह की सवारी उस पेड़ के सामने से होकर निकली तो उसके कान में गाने-बजाने की आवाज़ पड़ी। सुनते ही जल उठा। कोतवाल से पूछा, यह कौन हैं, जिन्होंने अब तक मेरे हुक्म की तामील नहीं की। इन्हें गिरफ़्तार करो।

सिपाहियों ने पेड़ को घेर लिया। भाँडों को किसी तरह नीचे उतारा गया और उन्हे रस्सियों से जकड़ कर बादशाह के सामने पेश किया गया।

औरंगज़ेब ने पूछा—'तुम्हे मेरा हुक्म नहीं मिला ?'

भाँडों के सरदार ने झुक कर सलाम किया और बोला, 'मिल गया हुज़ूर।'

'तो फिर तुम लोगों ने उसकी तामील क्यों नहीं की ?'

'आज से शुरू की है हुज़ूर। पाँच-छ दिन तो यही सोचने मे लग गए कि जावे किधर, दिशाएँ तो छ ही है। पाँच दिशाओं में तो हुज़ूर का राज है, केवल छठी दिशा बाक़ी है। उसी तरफ़ जा रहे हैं। आज उसकी पहली मंज़िल थी। देखिये, कल कहाँ पहुँचते है।'

बादशाह हँस पड़ा और अपना हुक्म वापस ले लिया।

२—हकीम अफ़लातूँ बड़े ठाठ से रहता था। उसके दीवानख़ाने में क़ीमती गलीचे बिछे रहते थे। एक दिन उसके यहाँ नगर के कई प्रतिष्ठित पुरुष बैठे थे कि डायुजेनीस भी आ पहुँचा। यह धनवानों का द्रोही था और उनकी निंदा करते कभी न थकता था। सरल जीवन उसका आदर्श था। आडंबरों से उसे घृणा थी। अफ़लातूँ जैसे विद्वान और बुद्धिमान् के कमरे का वह ठाठ देखकर वह जामे से बाहर हो गया और दोनों पैरों से ग़लीचों को रगड़ने लगा। उपस्थित महानुभावों को उसका यह अशिष्ट व्यवहार बुरा मालूम हुआ। एक साहब बोल उठे—'हज़रत, यह आप क्या कर रहे हैं ?' डायुजेनीस ने उत्तर दिया—'मैं अफ़लातूँ के अहंकार को कुचल रहा हूँ।'

अफ़लातूँ भी वहाँ बैठा था। वह भला कब चुप रह सकता था। बोला—'लेकिन उससे भी बड़े अहंकार से।'

३—फ्रेंच क्रांति के पहले जनता की दशा अत्यन्त शोचनीय हो रही थी। उनके लिये न करने को कोई काम था, न खाने को भोजन। उधर रईस और अमीर अपने भोग-विलास में मग्न थे। महारानी मेरी एंटायनेट और बादशाह लूई सदय होने पर भी कृपाशील न थे। मंत्रिगण ने एक दिन विवश होकर रानी मेरी से प्रजा की हीनावस्था का रोना रोया। रानी बड़े ध्यान से उनकी बातें सुनती रही। अन्त में जब एक मंत्री ने कहा—'ग़रीबों की हालत इतनी ख़राब हो गई है कि उनके पास खाने को रोटियाँ भी नहीं हैं।'

रानी मेरी ने बड़े सरल भाव से उत्तर दिया—'रोटियाँ नहीं है तो लोग बिस्कुट क्यों नहीं खाते ?'

४—दो देहाती किसी काम से शहर आए और घूमते-घामते पार्क की तरफ़ जा निकले। वहाँ एक महाशय गॉल्फ़ खेल रहे थे। देहातियों ने किसी को गॉल्फ़ खेलते तो देखा न था। ध्यान से देखने लगे। खिलाड़ी-महाशय बार बार हाथ चलाते, किंतु थोड़ीसी धूल उड़ कर रह जाती, गेंद पर निशाना न जाता। इस तरह सात निशाने ख़ाली गए। अंत को आठवीं बार गेंद सूराख़ में चली गई। एक देहाती बोला—'अब का खेलिहैं, गेंदवा तो बिल में चला गवा।'

५—एक लखपती सेठ जी अपने लुटाऊ लड़के को किफ़ायत पर उपदेश दे रहे थे—'बेटा, धन बड़े परिश्रम से एकत्र होता है। एक कौड़ी भी व्यर्थ मत ख़र्च करो। जब मैं तुम्हारे बराबर था तो अपने सिर पर घड़ा रखकर मजूरों को पानी पिलाने मील भर जाया करता था। इस तरह धन जमा होता है।'

पुत्र ने गभीरता से उत्तर दिया—'पिताजी, मुझे आपके ऊपर गर्व है। यदि आपने इतना अध्यवसाय न दिखाया होता, तो आज मुझे भी उसी भाँति पानी ढोना पड़ता।'

× × ×

४ प्रवासी का परिताप

नपुंसकमिति ज्ञात्वा प्रियायै प्रेषित मन.।
तत्तु तत्रैव रमते हन्त दुष्करता विधेः॥

एक प्रवासी व्यक्ति किसी निर्जन स्थान में बैठा हुआ पश्चात्ताप कर रहा है। वह कहता है, मैंने अपनी प्रियतमा के समीप एक संदेशवाहक को भेजा, वह भी कोई रसिक पुरुष नहीं, किन्तु नपुंसक (लिङ्ग) मन को। किन्तु वह नपुंसक मन भी वहीं रम रहा। हा, विधाता के कठोर कर्मों के लिए दुःख है।

१ गोसाईं चरित

नागरी-प्रचारिणी पत्रिका भाग ७ अंक ४ में बाबू श्यामसुंदर दासजी, बी० ए० ने गोस्वामी तुलसीदासजी के जीवनचरित्र के विषय में एक लेख प्रकाशित कराया था। लखनऊ के मुंशी नवलकिशोर प्रेस से हाल में पं० रामकिशोर शुक्ल-संपादित एक रामायण प्रकाशित हुई है। आदि में शुक्लजी ने बाबा वेणीमाधवदास-रचित गोसाईं चरित के आधार पर गोस्वामीजी का जीवन-चरित्र लिखा है। बाबू श्यामसुंदरदासजी का लेख इसी जीवन-चरित्र के संबंध में था। बाबू साहब ने एक ओर तो वह लेख प्रकाशित कराया, दूसरी ओर लिखापढ़ी करके उन्होंने यह जाना कि पं० रामकिशोरजी को गोसाईं चरित की प्रति अयोध्या के कनकभवन-स्थित महात्मा बालकराम विनायकजी से प्राप्त हुई थी, तथैव उक्त महात्मा को जो प्रति मिली उसकी असल पं० रामाधारी पांडे मौज़ा मरुव, पो० ओबरा, ज़ि० गया के पास है। इस मरुववाली प्रति की प्रतिलिपि भी बाबू साहब ने मँगाली है, और संभवतः उसे भी वे शीघ्र नागरी-प्रचारिणी पत्रिका में प्रकाशित करावेंगे। अस्तु।

नागरी-प्रचारिणी पत्रिका भाग ८ अंक १ में बाबू श्यामसुंदर दासजी ने गोस्वामी तुलसीदासजी पर एक दूसरा लेख प्रकाशित किया है। इस लेख में उसी विषय के पूर्व लेख पर प्राप्त विद्वानों की सम्मतियों का संग्रह है। सम्मतियाँ अनुकूल भी हैं और प्रतिकूल भी। सम्मतिदाताओं के नाम इस प्रकार से हैं—

(१) रायबहादुर पं० गौरीशंकर हीराचंद ओझा, (२) रायबहादुर पं० शुकदेवविहारी मिश्र, बी० ए०, (३) रायबहादुर बाबू हीरालाल, बी० ए० (४) पं० महावीरप्रसाद द्विवेदी, (५) डाक्टर सर जार्ज ग्रियर्सन, (६) पं० गौरीलाल तिवारी तथा (७) पं० श्रीधरजी पाठक। नंबर दो की सम्मति 'माधुरी' में भी प्रकाशित हो चुकी है। अधिकांश सम्मतिदाताओं की राय है कि 'गोसाईं चरित' की सब बातें प्रामाणिक नहीं हैं, फिर भी उसमें बहुत सी काम की बातें हैं; और, यदि परिश्रम करके गोस्वामीजी का जीवन-चरित्र लिखा जाय तो गोसाईं चरित से बहुत कुछ सहायता मिल सकती है। 'गोसाईं चरित' में जो तिथियाँ, दिन तथा संवत् आदि दिये हैं, उनकी गणना करने पर वे बहुत अंशों में ठीक उतरे हैं। पं० महावीरप्रसाद जी द्विवेदी अपनी सम्मति में लिखते हैं —

"इसमें कितने ही स्थानों और व्यक्तियों के नाम हैं। इनपर आपने कुछ नहीं लिखा। यथासंभव खोज होनी चाहिये कि वहाँ-वहाँ तुलसीदास के जाने का कुछ पता मिलता है या नहीं और जिन लोगों के नाम चरित में हैं वे कभी थे या नहीं।"

द्विवेदीजी के उपर्युक्त लेख से प्रभावान्वित होकर हमने भी गोसाईं चरित में आये रामपुर और वंशीवट की बाबत कुछ जाँच पड़ताल की है। 'गोसाईं चरित' में इसका वर्णन इस प्रकार से है:—

खैराबाद को सिद्ध प्रवीन घरे, मुनि आपुह योग ते जाइ परे।
करि ताहि निहाल चले मिसरिख, सँग मे नव खडि दुवारिक सिष।
पुनि नाव चढे सुख सों बिचरे, पुर राम सुने तुरते उतरे।
नृप सेवक टटा बेसाहि रहे, सब माल मता तजि राह गहे।
सिंह राम सुन्यो पग दौरि गह्यो, करिके जु विनै पद टेकि रह्यो।
तब लौटि परे निज धाम बसे, हनुमतहि थापि तहाँ विलसे।
वंशीवट नाम भयो बटरय, मगसर सुदि पंचमी रास रचय।

उपर्युक्त पंक्तियों में जिस पुर राम (रामपुर) का ज़िक्र है, वह आजकल 'जयरामपुर' के नाम से प्रसिद्ध है यह सरायन नाम की एक छोटी नदी के किनारे कुछ दूर हटकर स्थित है। उपर्युक्त गाँव तहसील मिश्रीखी ज़िला सीतापुर में वंशीवट के मेले के लिये बहुत प्रसिद्ध है। यहाँ अब भी अगहन सुदी पंचमी से रासलीला और धनुषयज्ञ का प्रबंध होता है। इस गाँव में तुलसीदासजी पधारे थे, यह बात वहाँ पर खूब प्रसिद्ध है। यहाँ पर कुछ वटवृक्ष हैं, जिनकी बाबत यह कहा जाता है कि गोस्वामीजी ने बरगद की दतून करके उसे गाड़ दिया था उसीसे वटवृक्ष होगये। यहाँ पर शिवजी का एक मंदिर भी है और उसके पास में ही तुलसीदासजी के पद-चिह्न भी बतलाये जाते हैं। यहाँ यह भी सुना जाता है कि गोस्वामीजी 'मिश्रिख' होकर ही जयरामपुर पधारे थे। मिश्रिख से जयरामपुर आने का रास्ता उत्तरवाहिनी के समीप वाले घाट से सरायन उतर कर है। पद्य में जिन 'सिहराम' का उल्लेख है, उनका पूरा नाम 'धन सिंहराम' या धनसिंहराय था। वे बैस वंश के ठाकुर थे। सिंहरामजी के वंशज ठाकुर रघुनंदनसिंहजी अब भी जयरामपुर के एक प्रतिष्ठित ज़मींदार हैं। उनका कहना है कि 'धनसिंहराम' प्रायः साढ़े तीन सौ बरस पूर्व विद्यमान थे। इस नोट के लेखक की ज़मींदारी जयरामपुर के बहुत निकट है। सारांश कि पद्य में जिस रामपुर, वंशीवट तथा सिंहराम का उल्लेख है, उनका अस्तित्व ठीक है। सिंहराम और गोस्वामीजी का समय भी मिलता है। मिश्रिख से जयरामपुर आते हुए नाव पर भी चढ़ना पड़ता है, सरायन नदी जयरामपुर के पास ही है। मार्गशीर्ष शुक्ल पंचमी को वहाँ रासलीला होती है। वंशीवट नाम से प्रसिद्ध वटवृक्ष भी यहाँ है। पद्य में यह भी लिखा है कि गोस्वामीजी ने यहाँ हनुमानजी की स्थापना की। पर यहाँ पर हनुमानजी का कोई मंदिर नहीं है। खैराबाद में किस 'प्रवीन सिद्ध' के यहाँ गोस्वामीजी ठहरे थे, इसका पता अभी तक नहीं लगा है। सग में "नव खड दुवारिक सिष" का पूरा अभिप्राय भी अभी समझ में नहीं आया है। 'मलिहाबाद' और 'सँडीले' में गोस्वामीजी के जाने की बात लिखी है। मलिहाबाद में जिन भट्टराज के यहाँ वे पधारे बतलाये जाते हैं, उनका नाम ब्रजवल्लभ लिखा है। मलिहाबाद में एक महाशय के यहाँ तुलसीदासजी के हाथ की लिखी रामायण बतलाई जाती है। यदि हो सका तो हम इस बात का पता लगाने का उद्योग करेंगे कि ब्रजवल्लभजी कौन थे। एवं मलिहाबाद के निकट कोई कोटरा नाम का स्थान है, जहाँ अनन्य माधव नाम के कोई सज्जन हुए हैं। बड़ा अच्छा हो यदि खैराबाद, मलिहाबाद तथा सँडीले के रहने वाले कोई सज्जन इन बातों का पता लगावें।

गोसाईं चरित में सचमुच बहुत-सी असंभव बातें भर दी गई हैं, जिनको पढ़कर ग्रंथ पर विश्वास करने को जी नहीं चाहता है; परंतु जब तिथि तथा नामों आदि की पड़ताल करने से बहुत-सी बातें सच पाई जाती हैं, तो यही मुनासिब समझ पड़ता है कि उक्त चरित में जितना पानी है वह अलग कर दिया जाय और दूध-दूध निकाल लिया जाय। यह काम कष्ट-साध्य ज़रूर है, पर असाध्य नहीं। पुराणों में पाई जाने वाली बहुत-सी असंभव बातों को देखकर लोग उनका ऐतिहासिक महत्त्व बिलकुल न मानते थे, पर खोज होने पर उनमें दी हुई राजवंशावलियाँ बहुत ठीक पाई गई, और इतिहास के विद्वानों ने उन्हें स्वीकार भी कर लिया। 'गोसाईं चरित' के विषय में भी हमारा यही भाव होना चाहिये। उसमें जो ऐतिहासिक बातें हों वे मानली जायँ और शेष श्रद्धालु और भक्तों के आनंद के लिये छोड़ दी जायँ। मूल 'गोसाईं चरित' की संपूर्ण प्रति का पता लगाना भी आवश्यक है।

× × ×

२. महिलाओं का नवीन युग

यद्यपि अभी तक संसार ने स्त्रियों और पुरुषों की समानता स्वीकार नहीं की है, अभी तक बहुतेरों का यही विचार है कि इन दोनों का कार्य-क्षेत्र पृथक् है और स्त्रियों को पुरुषों का आसन ग्रहण करते देखकर उनकी मानसिक शांति पलायन कर जाती है; पर इसमें कोई संदेह नहीं कि पाश्चात्य महिलाओं ने इस समानता को बड़ी हद तक सफलता के साथ सिद्ध कर दिया है, और आज उन्हें जो अधिकार प्राप्त हैं, उनके जीवन का क्षेत्र जितना विस्तीर्ण हो गया है, उसकी आज से २५ वर्ष पहले कल्पना भी न की जा सकती थी। यह तो बहुत पहले से मान लिया गया था कि स्त्री और पुरुष मे बौद्धिक समानता किसी हद तक पाई जाती है; साहित्य, राजनीति और धर्म के विभागो मे पुरुषो ने स्त्रियो का लोहा मान लिया था, लेकिन एक चाँद बीबी, एक दुर्गावती, एक लक्ष्मी, या एक जोन स्त्रियो को कठोर प्रवृत्तियो की सनद न दिला सकती थीं। पर, अब तो स्त्रियो ने जल, थल और आकाश तीनो ही क्षेत्रो मे झडे गाड़ दिए हैं, फिर कौन है जो उनकी समानता को तसलीम न करे। आज महिला-जीवन पहले से कहीं स्वाधीन, उपयोगी और आनन्दमय हो गया है। उनको घर की दासी या रानी बनकर रहना मंज़ूर नहीं, वे पुरुषो के साथ कधा मिला कर जीवन-सग्राम मे उतरने के लिये तैयार हैं।

इस क्रान्ति का असर भारत पर भी पड़ना स्वाभाविक था। हमारा स्त्री-समाज भी बड़ी तीव्र गति से इन नए आदर्शों की ओर बढ़ने की चेष्टा कर रहा है। भारत ही क्यो चीन, ईरान, अरब, अफ़ग़ानिस्तान सभी देशों की स्त्रियों में इन नए विचारो ने क्रांति उत्पन्न कर दी है। हम अब इस लहर को रोक नहीं सकते। जिस भाँति वर्तमान आर्थिक सभ्यता की बुराइयों को जानते हुए भी हम किसी अदृश्य प्रेरणा से उसकी ओर खिचे चले जा रहे है, उसी भाँति स्त्री-समाज भी इन नए आदर्शों की ओर दौड़ा जा रहा है। बल्कि यों कहना चाहिए कि यह क्रांति उस नवीन आर्थिक सभ्यता का ही एक अग है। लेकिन, जनता और हमारे पौराणिक पंडित महिलाओं की इस प्रवृत्ति से कितना ही चौंके, वास्तव मे ये नए विचार हमें उन प्राचीन वैदिक आदर्शों ही की ओर ले जा रहे हैं, जिन्हे हम शताब्दियो से भूले बैठे हैं, और जो अब, अन्य कितनी ही बातों की भाँति, यूरोपीय आवरण में हमारे सामने आरहे हैं।

अब तक हमारी स्त्रियों के लिये वैवाहिक-जीवन अनिवार्य था। इसके सिवा उन्हें अपना जीवन सफल करने का और कोई साधन ही नहीं दिखाई देता था। पति उनका उपास्य था, उसीके द्वारा वो परम पद पा सकती थी, पति से पृथक् उसका कोई आध्यात्मिक अस्तित्व न था। यदि पुरुषों में पत्नीभक्ति का भाव प्रज्वलित रहता, और वे अभिमान के नशे मे स्त्रियों को तुच्छ न समझने लगते, तो कदाचित स्त्रियाँ घर की चहारदीवारी में संतुष्ट रहतीं। लेकिन पुरुषों ने कलुषित विलासिता में पड़कर जब स्त्रियों के अधिकारो को निर्दयता से ठुकराना शुरू किया, और स्त्रियाँ देखने लगीं कि इस पराधीनता के कारण उनका जीवन कितना दुःखमय हो रहा है, तो उन्हे उस जीवन से घृणा होने लगी। पुरुषों की कितनी बड़ी ज़्यादती है कि वे स्वयं स्त्रियो का अनादर करते हैं और फिर यह आशा रखते हैं कि वे उनको अपना पतिदेव और ईश्वर समझें। अब शिक्षित स्त्रियाँ जबरन् विवाह के बंधन मे नहीं पड़ना चाहतीं। कितनी ही मनस्विनी महिलाएँ केवल पति और संतान के लिये अपना जीवन बलिदान नहीं करना चाहतीं। वे जाति की सेवा का पुण्य और गौरव प्राप्त करना चाहती हैं। कीर्ति-लालसा स्त्रियो मे भी उतनी ही प्रबल है जितनी पुरुषो मे। पत्नी बनकर वे अपनी शक्तियों का उपयोग करने से वंचित हो जाती हैं। इसके अतिरिक्त वे आर्थिक स्वतन्त्रता की इच्छुक हैं। वे समझती हैं कि उनके पालन-पोषण का भार ग्रहण करने ही के कारण पुरुष उनके ऊपर रोब जमाते हैं। इस विचार में आंशिक सत्य है, इससे इनकार नहीं किया जा सकता। अब स्त्री विवाह कर लेने पर भी पुरुष की आर्थिक पराधीनता नहीं स्वीकार करना चाहती। फिर यूरोपीय स्त्रियो का उदाहरण सामने है। उन्हीं की भाँति हमारी महिलाएँ भी देश के सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक जीवन मे सम्मिलित होना चाहती हैं। हमें तो यह जागृति के लक्षण मालूम होते हैं, जिन पर हमें प्रसन्न होना चाहिए। पुरुषों में दोनों ही श्रेणियों के व्यक्ति मौजूद हैं: एक तो वे हैं जो पारिवारिक जीव हैं, जिनकी सारी शक्ति अपने बाल-बच्चों और संबंधियो के भरण-पोषण में लग जाती है; दूसरे सार्वदेशिक जीव हैं, जो

निरंतर परोपकार में रत रहते हैं। पारिवारिक व्यक्ति की समाज को उतनी ही ज़रूरत है जितनी सार्वदेशिक व्यक्ति की। पुरुषों को यदि यह स्वाधीनता है तो स्त्रियों के मार्ग में क्यों बाधा हो ? जब हम देखते हैं कि सतान-वृद्धि के कारण देश के सामने बेकारी की भीषण समस्या उपस्थित हो रही है तो स्त्रियों मे इस देश-सेवा प्रवृत्ति की हम अवहेलना नहीं कर सकते।

× × ×

३ नास्तिकतावाद

यूरोप और अमेरिका में नास्तिकतावाद का प्रचार बढ़ता ही जाता है। इँगलैंड में इसका प्रभाव अभी सामाजिक क्रांतिवादियों में ही है, पर अमेरिका में उस पर धर्म से भी अधिक गभीरता के साथ विचार किया जाता है। रूस मे तो राजनीतिक सिद्धांतों में नास्तिकतावाद का भी स्थान है। बड़ी ही विचित्र गति है। एक ओर यूरोप और अमेरिका में प्रेतवाद का प्रचार बढ़ रहा है, तो दूसरी ओर नास्तिकता का उससे भी बढ़कर ज़ोर है। इस ज़ोर का एक प्रधान कारण यह भी है कि पाश्चात्य विज्ञान-वेत्ताओ मे से भी अधिकाश अनीश्वरवादी है। टामस एडिसन सदृश जो दो-चार वैज्ञानिक ऐसे हैं भी जिनका 'सर्वश्रेष्ठ चैतन्यशक्ति' (Supreme intelligence)में विश्वास है, उन्हे और वैज्ञानिक दक़ियानूसी (Conservative) कहते हैं। एक वैज्ञानिक ने तो यहाँ तक कह डाला है कि यदि कोई ईश्वर के अस्तित्व का प्रमाण प्रयोगशाला में दिखला दे तो मैं उसको १० लाख पाउड का इनाम दूँगा ! नास्तिकतावाद को मानने वाले न तो ईश्वर मे विश्वास करते हैं, न आत्मा में, और न मृत्यु के बाद आत्मा के अस्तित्व में। उनका कहना है कि ईश्वर मे विश्वास करना वैसा ही है जैसा किसी ऐसी वस्तु में विश्वास, जिसका अस्तित्व ही नहीं है। जब ये लोग ईश्वर को ही नहीं मानते, तो ईश्वर-वन्दना अथवा उसके प्रभाव को क्यों मानने लगे। फलत. बाइबल् और ईसाई धर्म पर उनका रचक मात्र विश्वास नहीं है। प्रभु ईसा के सबंध मे तो उनका यहाँ तक कहना है कि यह वह पुरुष हैं जो संसार को बचाने आये थे पर स्वयं अपनी रक्षा न कर सके। ईसाई धर्म के विषय मे उनकी राय है कि वह अज्ञान, क्रूरता, धूर्तता और मानसिक रोग का घर है। बाइबल् को वे लोग गंदी कहानियों की किताब बतलाते हैं। रूस में नास्तिकतावाद का प्रचार खुल्लमखुल्ला होता है, और इँगलैंड में छिपे-छिपे। पर अमेरिका में इसका प्रचार बड़े ही संगठित और वैध विधि से होता है। वहां नास्तिकतावाद के प्रचारकों में प्रधान पुरुष चार्ल्स स्मिथ और फ्रीमैन हाप-उड हैं। इन लोगों के उद्योग से अक्टूबर १६२५ में न्यूयार्क नगर में एक सोसाइटी की स्थापना हुई। इस का उद्देश्य था कि वह धर्म का मुक़ाबिला करे और यह प्रमाणित करे कि ईश्वर का अस्तित्व नहीं है। सोसाइटी को प्रचार-कार्य प्रारम्भ करने के पूर्व चार्टर की आवश्य-कता हुई। इसके लिये न्यायालय में आवेदनपत्र भेजा गया, पर वह तुरत अस्वीकृत हो गया। परन्तु इन लोगों ने तुरत दूसरा आवेदनपत्र उपस्थित किया। यह सिलसिला बराबर जारी रहा। अत में १६२५ के नवम्बर मास में इस संस्था को चार्टर (आज्ञापत्र) मिल गया कि वह नास्तिकतावाद का प्रचार कर सकती है। ससार में रूस के बाहर यही सस्था है जिसको नास्तिकतावाद के प्रचार की आज्ञा मिली है। अपने इस दो साल के जीवन में इस संस्था ने नास्तिकतावाद के प्रचार का विपुल प्रयास किया है। इस समय इस संस्था की ओर से अमेरिका के बीस कालेजों में नास्तिकता की शिक्षा का प्रबध है। इसके अतिरिक्त तीन हाई स्कूलों तथा एक जहाज़ पर भी इसका काम जारी है। इस संस्था का अंग्रेज़ी नाम है—American Association for the Advancement of Atheism है। इसमें America, Association, Advancement तथा Atheism शब्दों का प्रारम्भ A अक्षर से हुआ है, इसलिये संक्षेप में इस सोसाइटी का नाम "4A's" है। इस संस्था की ओर से The Truth Seeker 'सत्य का खोजी' नाम-का एक पत्र भी निकलता है। इसमें नास्तिकतावाद की बहुत-सी बातें रहती हैं।

"4A's" संस्था के ६ उद्देश्य हैं, जो अधिकतर धर्म एवं बाइबल् के महत्व को मिटानेवाले है। अमेरिका के नास्तिकतावादियों की राय है कि सारे गिरजाघर गिरा दिए जायँ और उनके स्थान पर पार्क, खेलने के मैदान और तालाब खुदवा दिए जायँ, जहाँ बैठकर लोग स्वास्थ्य-लाभ कर सकें। ईश्वर-वंदना का मज़ाक़ नास्तिकतावादी

ख़ूब उड़ाते हैं। उनका कहना है कि विगत महान् युद्ध के समय प्रत्येक राष्ट्र दूसरे राष्ट्र के नाश के लिये ईश्वर-वंदना करता था। यदि ईश्वर होगा तो वह इस वंदना से बहुत परेशान होगा। उसको यह न सूझ पड़ता होगा कि किसकी बात माने। आख़िर ईश्वर ने किसी की भी वंदना का कोई जवाब न दिया। अमेरिका के नास्तिकों का कहना है कि प्रारम्भ से ही बच्चों का धर्म और ईश्वर में विश्वास दिलाकर उनका मस्तिष्क ख़राब कर दिया जाता है। आवश्यकता इस बात की है कि उनकी कोमल मति ऐसे विचारों से कलुषित न की जाय। इसलिए नास्तिकतावादियों ने कोमलमति शिशुओं में ही अपने मत के प्रचार का बीड़ा उठाया है। इस कार्य में उन्हें सफलता भी ख़ूब मिल रही है। इँगलैंड में तो बालकों में नास्तिकता-प्रचार के इस भाव को देखकर लोग भय-भीत हो उठे हैं और एतादृश प्रचार को रोकने के लिये वहाँ "Seditious and Blasphemous Teaching to Children Bill" नामक क़ानून की भी सृष्टि हो गई है, जिससे इस प्रकार का प्रचार करनेवाले दब पा सकेंगे। Queen Silver Magazine द्वारा नास्तिकतावाद का प्रचार बड़े उग्र रूप में किया जाता है। इसमें बाइबल, प्रभु ईसा और ईसाई धर्म के प्रति ऐसी कठोर और मर्मस्पर्शिनी बातें पाई जाती हैं कि उनको पढ़कर आश्चर्य होता है कि अबतक उक्त पत्रिका की संपादिका पर मुक़दमा क्यों नहीं चलाया गया। परन्तु यूरोप और अमेरिका में सच्ची विचार-स्वतन्त्रता है। वहाँ विचार-स्वातंत्र्य के साथ-साथ धार्मिक सहिष्णुता का भी भाव है। शत-प्रति-शत ईसाई धर्म को माननेवाले लोग भी उसी धर्म का खंडन करनेवालों का विरोध नहीं करते हैं। कहाँ एक भारतवर्ष है कि एक "रँगीला रसूल" पुस्तक लिख डाली गई, तो मुसलमानों ने आसमान सर पर उठा लिया। चट व्यवस्थापिका सभा में क़ानून बन गया और किसी धर्म पर आक्षेप करनेवाले को बिना वारंट गिरफ़्तार करने तक का अधिकार न्यायालय को दे दिया गया! और इस क़ानून का समर्थन किया हमारे पूज्यपाद पं० मदनमोहनजी मालवीय और स्वनामधन्य लाला लाजपतरायजी ने!

हमारा ईश्वर में, आत्मा में और मृत्यु के बाद आत्मा के अस्तित्व में विश्वास है, इसलिये नास्तिकतावादियों के इस प्रचार-कार्य से हमारी सहानुभूति नहीं है; पर हम इन लोगों के अध्यवसाय एवं उनके बुद्धिसंगत तर्क के प्रशंसक हैं। हमारी राय में प्रत्येक आस्तिक को—ईश्वर में विश्वास करनेवाले को—नास्तिकों की तर्कशैली, उनके अध्यवसाय और उनकी नेकनीयती को आदर की दृष्टि से—सहिष्णुता के भाव से—देखना चाहिए। भारत में नास्तिकतावाद का इतिहास बहुत पुराना है। अगस्त महीने की 'World Today' में श्री आर्थर हड्लेस्टन साहब ने The Rising Tide of Atheism 'नास्तिकवाद की उठती हुई लहर' शीर्षक एक बड़ा सुन्दर निबन्ध लिखा है। इस नोट के लिखने में उस निबन्ध से सहायता ली गई है।

× × ×

४ महाकवि बिहारी का कल्पित चित्र

पूज्यपाद मिश्रबंधुओं ने 'हिंदी-नवरत्न' में जब पहले-पहल महाकवि बिहारीजी का कल्पित चित्र निकाला था, तो बहुत से हिंदी के विद्वान् लेखक उनसे बहुत असन्तुष्ट हो गये थे। उन लोगों का कहना था कि मिश्र-बन्धुओं ने जान-बूझकर बिहारीलाल को ज़लील करने के लिये उनका ऐसा चित्र निकाला है। मिश्रबन्धुओं ने इस आक्षेप का उत्तर दिया था। उन्होंने लिखा था कि बिहारीलालजी के बहुत से दोहे ऐसे हैं जिनसे कल्पित चित्र द्वारा अभिव्यक्त भाव का निश्चय ही समर्थन होता है। पर मिश्रबन्धुओं के इस उत्तर से बिहारी-भक्त विद्वन्मंडली का संतोष नहीं हुआ और उक्त कल्पित चित्र के विरुद्ध आंदोलन जारी ही रहा। उधर मिश्रबन्धु भी अपनी बात पर अड़े रहे और 'हिंदी-नवरत्न' के दूसरे संस्करण में भी उन्होंने उसी कल्पित चित्र को प्रकाशित करवाया। इस चित्र में एक सरोवर का दृश्य है, सरोवर में कोई स्त्री नहा रही है, कोई नहाकर निकल रही है और कोई नहाने के लिये पानी में घुसने जा रही है। सरोवर के तट पर कुछ दूर पर महाकवि बिहारी-लालजी खड़े हैं और अपनी मूँछ मरोड़ रहे हैं। खड़े-खड़े वे स्त्रियों की स्नान-लीला का दृश्य ध्यान से देख रहे हैं। इस चित्र के नीचे यह दोहा भी छपा है —

मोछ मरोरत रसिक मनि लखहु बिहारीलाल;
नर नारिन को न्हान हैं तकन खरे ढिंग ताल।

चित्र-विरोधियों का कहना है कि यह चित्र बिहारी-

लाल को गूँगा सिद्ध करने के लिये बनाया गया है। मिश्रबन्धुओं का कहना है कि विहारीलाल के बहुत से दोहे ऐसे हैं जिनमें स्त्रियों के स्नान करते समय के भाव हैं। ये भाव ऐसे अच्छे ढंग से वर्णन किए गए हैं, जिनसे जान पड़ता है कि कवि ने उन्हें अपनी आँखों से देखा है। बस, इसी विचार को लेकर कल्पित चित्र बनाया गया है। ख़ैर, चाहे चित्र-विरोधियों का पक्ष ठीक हो और चाहे मिश्रबन्धुओं का, पर बिहारीलाल के जीवन-चरित से सबंध रखने वाली जो नई सामग्री प्राप्त हुई है उससे इस प्रश्न पर कुछ नवीन प्रकाश पड़ता है। बाबू जगन्नाथदासजी 'रत्नाकर' ने नागरी-प्रचारिणी पत्रिका भाग ८ अंक १ में 'महाकवि बिहारीदासजी की जीवनी' शीर्षक एक लेख प्रकाशित कराया है। इस लेख में आपने लिखा है कि —"हमारे विद्याभूषण पं० रामनाथजी ने जयपुर में जो बिहारी-विषयक अनुसन्धान किया है, उससे ऊपर लिखी बातों के अतिरिक्त इतनी बातें और भिन्न-भिन्न लोगों तथा प्रकारों से ज्ञात हुई हैं।" इसके बाद यह ज्ञात बातें दी गई हैं। इनकी संख्या १५ है। ४ नंबर की जो बात है, वह इस प्रकार से है—

"वर्तमान जयपुर के पास एक बड़ा कूप है, जो अब रामबाग में पड़ गया है। इस कुएँ का पानी बहुत अच्छा है, और जयपुर की सैकड़ों स्त्रियाँ अब भी उस पर साँझ-सवेरे जल भरने आती हैं। यह ब्रह्मपुरी से भी बहुत समीप है। सुना गया है कि बिहारी वहाँ प्रायः आते थे और स्त्रियों के हाव-भाव अवलोकन करके अपनी कविता बनाते थे।" मिश्रबन्धुओं के कल्पित चित्र में महाकवि बिहारी की ताक-झाँक का जो दृश्य है उसका समर्थन जयपुर में प्रसिद्ध किंवदन्ती से होता है। फ़र्क़ इतना ही है कि मिश्रबन्धुओं ने सरोवर के किनारे का दृश्य दिखलाया है, पर जयपुर में प्रसिद्ध है कि बिहारीजी रामबाग में स्थित कुएँ के पास आकर पानी के लिये आई हुई स्त्रियों के हाव-भाव देखकर कविता बनाते थे। ख़ैर, जब बिहारीलालजी कुएँ के पास स्त्रियों के हाव-भाव देखने को जा सकते थे, तो सरोवर के किनारे भी उनका जाना कोई अनहोनी बात नहीं है। जो हो, किंवदन्ती से यह बात पाई जाती है कि यदि महाकवि बिहारी का कोई चित्रकार ऐसा चित्र खींचे जिसमें कविजी स्त्रियों की ताक-झाँक कर रहे हों, तो यह कल्पना नितांत निराधार नहीं है, भले ही वह सबको रुचिकर तथा प्रिय न जँचे। यदि श्री रत्नाकरजी की प्रकट की हुई किंवदन्ती के आधार पर कोई बिहारीलालजी का एक चित्र बनवाए और उसमें कविजी को दूर से लव कुएँ के पास वाली स्त्रियों के हाव-भाव देखता हुआ दरशावे तथा चित्र के नीचे निम्नलिखित दोहा लिख दे, तो नहीं जानते कि बिहारी-भक्त विद्वन्मण्डली के भाव क्या होंगे—

> नरम बिहारी की लखौ मोड़ मरोर अनूप,
> हाव-भाव सुंदरिन के तकन लगे ढिंग कूप।

× × ×

५. हिज़ एक्सिलेंसी लार्ड इरविन की सहृदयता

वाइसराय ने हाल में हिन्दू-मुसलिम वैमनस्य पर जो विचार प्रकट किए उनसे उनकी सहृदयता और सज्जनता चाहे कितनी ही प्रकट हो, पर वे विश्वासोत्पादक न थे। वह व्याख्यान अगर किसी राजा महाराजा के मुख से निकलता तो हम उसकी उदारता और सुबुद्धि की प्रशंसा करते, पर वाइसराय के मुख से निकलकर वह उनकी कमज़ोरी का ढिंढोरा पीट रहा है। हिंदुस्तान का वाइसराय, जिसका हुक्म क़ानून है, जिसके अधिकारों को देखकर क़ैसर भी लज्जित हो जाता, जो ख़ुदमुख़्तारी में किसी औरंगज़ेब या अकबर से कम नहीं, जब देश की दशा को आँखों से देखकर भी आँखें बंद कर लेता है, उन्हीं लोगों से मदद माँगता है जो इस समय या तो निस्सहाय है, या स्वार्थांध अथवा धर्मांध, तो हमें उनकी सहृदयता पर अविश्वास होने लगता है। अबसे पहले ऐसे अवसर बारहा आ चुके हैं, जब देश में विद्रोह की अग्नि इतनी व्यापक और दाहक न होने पर भी वाइसरायों ने लोगों की इच्छा को पैरों तले कुचलकर कठोरतम दंडनीति का व्यवहार किया है, और शायद आज भी वैसा अवसर आ जाने पर लार्ड इरविन भी करने में संकोच न करेंगे। हाँ, परिस्थिति में कुछ भिन्नता है। जब प्रजा में सरकार के विरुद्ध अशांति उत्पन्न होती है, तो सरकार उसे दमन करने में किसी से सलाह नहीं लेती, किसी की रू-रिआयत नहीं करती। मगर जिस अशांति का उस पर कोई असर नहीं पड़ सकता; या पड़ सकता है तो इतना ही कि उसको पुलीस का प्रबंध करने और उसके बाद द्रोहियों

पर अभियोग चलाने में ख़ज़ाने पर कुछ अधिक बोझ पड़ जाता है, तो उसकी क्रियात्मक शक्ति और शासन-नीति और क़ानून की सारी भयंकर दफ़ाएँ शिथिल पड़ जाती हैं। अगर वाइसराय ने स्पष्ट शब्दों में एक निश्चित नीति की घोषणा कर दी होती, और उस नीति का पालन करने के लिये अपने मातहतों को सख़्ती से ताकीद कर दी होती, तो हमें विश्वास है कि, वायुमंडल शांत हो जाता, और इतनी जल्द कि स्वयं वाइसराय को आश्चर्य होता। क्या हिज़ एक्सिलेन्सी को यह निर्णय करने का कोई साधन नहीं है कि मसजिदों के सामने आज के चार वर्ष पूर्व बाजे बजते थे या नहीं। क्या गवर्नमेंट के अधीन आज हज़ारों ऐसे अंग्रेज़ और हिन्दुस्तानी कर्मचारी नहीं हैं, जो इस विषय में उन्हें निष्पक्ष सम्मति दे सकते थे। कौन अशांति के लिये उत्तरदायी है, इसका एक बार निर्णय कर लेने पर फिर उपद्रवकारियों का दमन करने में कोई बाधा न होनी चाहिए थी। पर, आज चार वर्ष से ऊपर हो गए, और सरकार अभीतक यह साधारण-सी बात भी निर्णय न कर सकी। हम सरकार को इतना अशक्त नहीं समझते। वह इसका कारण जानना नहीं चाहती। हमारे नेताओं ने वाइसराय के निमंत्रण को जितनी तत्परता से स्वीकार किया उससे प्रकट होता है कि वे शांति के कितने इच्छुक हैं, पर उसका नतीजा इसके सिवा क्या हो सकता था जो हुआ। मालूम नहीं इस वक्त निर्वासन वाला क़ानून कहाँ चला गया। वह सारी धाराएँ, जिनकी असहयोग-काल में धूम मची हुई थी, आज न जाने कहाँ विश्राम कर रही हैं। शायद हमारे भाग्य-विधाताओं की दृष्टि में अभी उनकी ज़रूरत नहीं पड़ी!

× × ×

६ बाजे और मसजिद पर मुसलमान नेता

मुसलमानों के प्रमुख नेता सर मुहम्मद शफ़ी ने 'इंडियन रिव्यू' में वर्तमान हिन्दू-मुसलिम समस्या पर अपने विचार प्रकट करते हुए स्वीकार किया है कि बाजे और मसजिद का प्रश्न गौण है और वैमनस्य के असली कारण आर्थिक हैं। जब बाजे और मसजिद का प्रश्न गौण है, तो उसे यह प्रधानता क्यों दी गई है, और किस ने दी है? सर शफ़ी के पहले और भी बड़े-बड़े मुसलिम नेताओं ने कुछ उन्हीं के विचारों से मिलते-जुलते विचार प्रकट किए हैं। यहाँ तक कि ख़ुद ख़्वाजा हसन निज़ामी ने बहुत-से लीडरों की सम्मति लेकर यह सिद्ध कर दिया था कि मुसलमानों की यह ज़िद बेजा और झगड़ा बढ़ाने वाली है, फिर समझ में नहीं आता कि लीडरों द्वारा तिरस्कृत होने पर भी इस प्रश्न को यह महत्त्व कैसे प्राप्त हो गया। इसके कई कारण हो सकते हैं; या तो मुसलमान नेताओं का जनता पर कुछ भी दबाव नहीं है, या जिन महानुभावों के नाम सभाओं और अख़बारों में नज़र आते हैं, वे असली लीडर नहीं, असली लीडर कुछ और ही लोग हैं, और या मुसलिम लीडर दुरंगी चाल चलते हैं। दुनिया के दिखाने को तो कह दिया—'मसजिदों के सामने बाजों को रोकने की ज़िद करना बेजा है।' मगर घर पर जब भक्तों ने इस कथन में आपत्ति की तो मुसकिरा कर कह दिया—'अजी, यह सब हम लोगों की चालें हैं, ऐसा न करें तो फिर पकड़े न जायँ, मुसलमान क़ौम बदनाम न हो जाय। तुम जो कुछ करते हो किए जाओ, हमें अपने राग अलापने दो। तुम्हारी ख़ैरियत हम लोगों की इसी पालिसी में है।' यह ओसरी सम्मति पत्रों के सैकड़ों लेखों को मटियामेट कर देती है।

हम यह नहीं कहते कि ऐसे नेता मुसलमानों ही में हैं। नहीं, हिन्दुओं में भी हैं, और काफ़ी से ज़्यादा हैं, पर देखना यह है कि ज़्यादती किसकी है। मुसलमान लीडर दून की लेकर गवर्नमेंट पर आतंक जमाने का अभिनय करते आरहे हैं। उन्होंने हमेशा विशेष अधिकारों पर ज़ोर दिया है, और गवर्नमेंट ने भी उनके इन अधिकारों को स्वीकार किया है। ऐसी दशा में यह स्वाभाविक ही था कि मुसलिम जनता के दिमाग़ आसमान पर चढ़ जाते—क्षुद्र व्यक्तियों के सिर मालिक की थोड़ी-सी कृपादृष्टि पर भी फिर जाते हैं। सरकार का मुसलिम नेताओं की हरएक जा और बेजा माँग को पूरा करने के लिये तत्पर रहना मुसलिम जनता के दिल में यह ख़याल जमा देने के लिये काफ़ी था कि सरकार उनसे दबती है, और उनकी ओर से जो माँग पेश की जायगी वह अवश्यमेव स्वीकार की जायगी। मुसलिम लीडरों के लिये भी जनता में फैले हुए इस भ्रम से फ़ायदा उठाना स्वाभाविक है। बाजे और मसजिद का प्रश्न ही एक ऐसा

प्रश्न है जिसके द्वारा वे मुसलिम जनता को अपनी मुट्ठी में कर सकते हैं। यही कारण है कि बाजे का प्रश्न गौण होने पर भी प्रधान बना हुआ है।

अगर गत चार-पाँच वर्षों में होनेवाले उपद्रवों की मीमांसा की जाय, तो विदित होगा कि उनका मुख्य कारण बाजा और मसजिद ही है। और मुसलिम नेताओं का कथन है कि यह गौण विषय है, न क़ुरान में इस पर ज़ोर दिया गया है और न अन्य मुसलिम देशों में इसकी पाबंदी की जाती है; और सबसे बड़ी बात यह कि इस देश में भी यह प्रश्न बिल्कुल नया है, चार-पांच वर्ष पहले यह प्रश्न कभी सुनने में भी न आया था। फिर इस दुराग्रह का मंशा इसके सिवा और क्या समझा जाय कि मुसलिम-नेता हिन्दुओं पर आतंक जमाना चाहते हैं और बाजे का मसला केवल एक बहाना है। हिन्दू, मुसलमानों की प्रधानता स्वीकार करने के लिये तैयार नहीं हैं। वे मुसलमानों को दबाना नहीं चाहते, मगर इसके साथ ही दबना भी नहीं चाहते। मुसलमानों में गुंडों की संख्या अधिक है। इसके कारणों की विवेचना हम इस समय नहीं करना चाहते, पर इस कथन की सत्यता से किसी को इनकार नहीं हो सकता। शांति के समय में ये गुंडे अपने समाज के लिये कलंक का कारण होते हैं, लेकिन अशान्ति में वे उद्धारक बन जाते हैं, क्योंकि वे लूटमार करने के लिये सबसे पहले तैयार होजाते हैं। मुसलिम नेता इन्हीं गुंडों के बल पर हिन्दुओं को परास्त करना चाहते हैं। अब तक अधिकांश दंगों में मुसलमानों ही की विजय हुई है। इससे मुसलिम नेता और भी फूले हुए हैं। मुसलमान राजनीति-चतुर हैं, इसमें संदेह नहीं। वह ख़ूब समझते हैं कि उद्दण्डता जितनी प्रभावोत्पादक होती है, उतनी शांतिप्रियता नहीं हो सकती। सरकार ने उनके हरएक दावे को स्वीकार करके उनके इस विश्वास को और भी दृढ़ कर दिया है। इसलिये यदि अब हिन्दू भी इस अनुभव से लाभ उठावें और अपनी उद्दण्डता का परिचय दें तो हम उन्हें दोषी नहीं कह सकते। आवश्यकता ही आविष्कार की जननी है। समाज में गुंडे पैदा कर देना मुश्किल काम नहीं। दरिद्रता और बेकारी का अगर यही हाल रहा तो दो-चार साल में हिन्दू शिक्षितों की भाँति हिन्दू गुंडों की भी संख्या अधिक हो जायगी। हमें उस समय की कल्पना करके ही रोमांच होजाता है, पर हम जानते हैं कि वह भीषणकाल आनेवाला है, और हमारे मुसलिम नेता उसके लाने में और भी सहायक होरहे हैं। यह न बाजे-मसजिद का मामला है, न क़ुरबानी और जुलूस का, यह ओहदों और नौकरियों का प्रश्न है और हिन्दुओं पर प्रभुत्व जमाने का। जब तक मुसलमान क़ौम अपने दिल से प्राचीन गौरव के अभिमान को निकाल न देगी, जब तक वह हिन्दुओं से समानता का व्यवहार करना न सीखेगी, जब तक विशेष अधिकार और विशेष व्यवहार के लिये आग्रह करती रहेगी, तब तक वास्तविक शांति नहीं हो सकती, इसका परिणाम चाहे जो कुछ हो। हम जानते हैं कि एक-एक उपद्रव हमें स्वराज्य से एक-एक योजन दूर कर रहा है; यह भी जानते हैं कि हमारी इस कुदशा से फ़ायदा उठाने वाले मूछों पर ताव दे रहे हैं, पर यह भी जानते हैं कि अपमानित, दलित होकर जीने से मरजाना ही अच्छा है।

× × ×

६. जापान के समाचार-पत्र

भारतवर्ष की जन-संख्या ३३ करोड़ है और जापान की प्रायः साढ़े छः करोड़, फिर भी समाचार-पत्रों के मामलों में जापान, भारतवर्ष से कहीं आगे है। इस समय जापान में अकेले दैनिक पत्रों की संख्या ११३७ है। समाचार-पत्रों के ग्राहकों की संयुक्त-संख्या १ करोड़ से ऊपर है, अर्थात् प्रत्येक छः आदमियों में से एक आदमी समाचार-पत्र का ग्राहक है। जापान में 'ओसाका मैनीची' और 'ओसाका असाही' नाम की दो कम्पनियाँ हैं, इन दोनों कम्पनियों में बड़ी ज़बरदस्त प्रतिद्वन्द्विता है। दोनों ही समाचार-पत्रों के प्रकाशन का काम करती हैं। मैनीची कम्पनी की ओर से 'ओसाका मैनीची' और 'टोकियोनीची' नाम के दो पत्र निकलते हैं। इसी प्रकार से ओसाका असाही कम्पनी की ओर से 'ओसाका असाही' और 'टोकियो असाही' नाम के दो पत्र निकलते हैं। जापान के समाचार-पत्रों में यही चार पत्र सर्वोत्कृष्ट हैं और इन चारों की ग्राहक-संख्या ४० लाख से कम नहीं है।

यद्यपि जापान की राजधानी टोकियो है, फिर भी उक्त देश का व्यापार केन्द्र ओसाका नगर है। कहना नहीं होगा कि इस नगर में असाही और मैनीची दोनों ही कम्पनियों द्वारा प्रकाशित समाचार-पत्रों के विशाल दफ़्तर

हैं। इन कम्पनियों द्वारा प्रकाशित समाचार-पत्र सारे जापान में पढ़े जाते हैं। इन कम्पनियों की प्रतिद्वन्द्विता बड़ी ही विकट है—प्रतिद्वन्द्विता क्या एक प्रकार का शांतिमय युद्ध कहना चाहिए। छः साल की बात है कि ओसाका मैनीची कम्पनी ने २० लाख येन से ऊपर की लागत का एक पँचमंज़िला विशाल भवन तैयार कराया था, मैनीची कम्पनी का ख़याल था कि संसार में किसी भी समाचार-पत्र का दफ़्तर इससे विशाल न होगा। टोकियो में भी उसने बड़ी ही सुन्दर इमारतें बनवाईं। असाही कम्पनी को यह बात सहन न हुई और उसने टोकियो में ३० मिलियन येन ख़र्च करके एक अठमंज़िली इमारत तैयार कराई। सन् १९२४ में मैनीची कम्पनी ने एक हवाई-जहाज़ को जापान के सब बड़े-बड़े द्वीपों को देखने के लिये भेजा। असाही कम्पनी इससे भी आगे बढ़ गई और उसने एक ऐसा हवाई-जहाज़ भेजा जो साइबेरिया और रूस होता हुआ पेरिस तक पहुँचा। मैनीची कम्पनी ने तब से पाँच हवाई-जहाज़ इसलिये रखे हैं कि वे ओसाका और टोकियो के दफ़्तरों से फ़ोटो तथा मैटर पहुँचाया करें, एवं विज्ञापनबाज़ी के लिये उड़ा करें। इसके जवाब में असाही कम्पनी ने टोकियो और ओसाका के बीच में सरकारी डाक ढोने के लिये हवाई जहाज़ों का नियमित प्रबन्ध कर लिया है। मैनीची कम्पनी हानि उठाकर अपने समाचार-पत्र का एक साप्ताहिक संस्करण अंधों के लिये निकालती है। असाही कम्पनी इसके जवाब में एक संक्षिप्त और सूची आदि से समन्वित अपने समाचार-पत्र का मासिक संस्करण निकालती है। इस संस्करण की पुस्तकालयों में अच्छी प्रतिष्ठा है। इन दोनों कम्पनियों की प्रतिद्वन्द्विता से जनता को बड़ा लाभ है, प्रत्येक कम्पनी के पत्र का एक सन्ध्याकालीन संस्करण निकलता है, और अपने ग्राहकों में बिना मूल्य वितरित होता है। इसी प्रकारसे इन चार पत्रों के तेरह-तेरह तक क्रोड़पत्र निकलते हैं। विशेष महत्व के समाचार को कौन पहले प्रकाशित करता है, इस बात को लेकर भी इन कम्पनियों में बड़ी प्रतिद्वन्द्विता होती है। जब जापन-नरेश बीमार थे, तो इन कम्पनियों ने राजमहल के निकट अपने-अपने दफ़्तर खोल रक्खे थे, जिनमें साठ-साठ आदमी तक काम करते थे। उद्देश्य केवल यही था कि दस-पन्द्रह मिनट ही पहले सम्राट् की मृत्यु का समाचार एक पत्र में छप जाय।

समाचार भेजने के लिये हवाई जहाज़ तो हैं ही, पर साथ ही रेल, तार, मोटर साइकल से भी काम लिया जाता है और इनसे भी सन्तुष्ट न होकर जापानी समाचार-पत्रों ने समाचार भेजने का एक विचित्र प्रबन्ध कर रक्खा है। मैनीची और असाही कम्पनी ने सैकड़ों कबूतर पाल रक्खे हैं, जो एक स्थान से दूसरे स्थान को समाचार पहुँचाते हैं। इन कम्पनियों के समाचार-पत्रों के दफ़्तर बड़े ही भव्य हैं। दफ़्तर क्या नगर हैं—उन्हीं में भोजन गृह है, नाई की दूकानें हैं, स्नानागार हैं, उपवन है, ऋतुमापक दर्शन मंदिर हैं, व्याख्यानशालाएँ हैं, स्वागत भवन हैं, और सुन्दर पुस्तकालय है। यह सब सामान एक मात्र समाचार-पत्र वालों के व्यवहारके लिये है। अकेली ओसाका मैनीची कम्पनी दो पत्र जापानी भाषा में और एक अंग्रेज़ीमें निकालती है। इसके सम्पादकीय विभाग में ४०५ मनुष्य, व्यापार विभाग में ३६८, स्थानीय शाखा दफ़्तरों में १८०, कम्पोज़िंग और प्रिंटिंग विभाग में ८५८, आफ़िस के नौकर, दूत और समाचारवाहक ४५७, एवं नौका विभाग में २५६ मनुष्य काम करते हैं। असाही कम्पनी के कार्यकर्ताओं की संख्या भी ऐसी ही समझिये। इन कम्पनियों द्वारा प्रकाशित चार समाचार-पत्रों के बाद टोकियोसे प्रकाशित छः समाचार-पत्रों का नंबर है। इसमें सबसे पहला स्थान 'जीजी' को प्राप्त है, इसमें आर्थिक एवं राजनीतिक चर्चा रहती है। इसके बाद 'होची' का नम्बर है, इसे स्त्रियाँ बहुत पसन्द करती हैं। 'चुगाई शोगा' महाजन और व्यापारियों का पत्र है। 'कोकोमिन्' पत्र को विद्यार्थी और पुराने विचार के लोग बहुत पढ़ते हैं। 'यारोज़' पत्र सरकार का भक्त है। 'टोकियो मोयपू' ग़रीबों और मज़दूरों का पत्र है। यद्यपि जापानी टाइप की बनावट ऐसी विकट है कि कम्पोज़िंग के काम में बड़ी कठिनता पड़ती है, फिर भी इस कठिनता की परवा न करके प्रकाशन-कला दिन-पर-दिन उन्नति ही करती जाती है। समाचार-संग्रह का काम जापान में भी अन्य देशों के समान होता है। रेंगो, टीकोकूसूशीन, डम्पोसूशीन नामक एजेंसियाँ समाचार-संग्रह का काम बड़ी मुस्तैदी से करती हैं। जापानी समाचार-पत्रों में विदेशी समाचारों को अधिक महत्व नहीं दिया जाता। समाचार-पत्र का काम जापान

में बड़ी आदर की दृष्टि से देखा जाता है। पहले इस पेशे को लोग अपमानजनक समझते थे, यहाँ तक कि पिता इस बात का ख़याल रखता था कि उसकी पुत्री का ब्याह किसी समाचार-पत्र वाले से न हो, पर अब बात इसकी उलटी हो रही है, और यह आशा है कि दस ही बरस में प्रत्येक पिता अपनी कन्या को किसी समाचार-पत्र वाले के साथ भेजने को आतुर रहेगा। जापानी समाचार-पत्रों के सम्पादकों का पद क्या है, यह इसी बात से समझ में आजायगा कि जहाँ मंत्रियों और गवर्नरों को बारह और सात हज़ार येन से अधिक प्रतिवर्ष नहीं मिलते हैं, वहाँ 'मैनीची' पत्र के प्रधान सपादक की वार्षिक आय ३० हज़ार येन है। जापानी समाचार-पत्रों ने उक्त देश की सरकार को उदार बनाने में बहुत बड़ी सहायता पहुँचाई। समय-समय पर समाचार-पत्रों के प्रबल आन्दोलन से अनेक सरकारें डावाँडोल हो गई और अनेकों की फिर से प्रतिष्ठा हुई। जापान में समाचार-पत्रों के नियंत्रण का जो क़ानून है, वह देखने में तो बड़ा कठोर जान पड़ता है, पर वास्तव में वह वैसा नहीं है, और जापानी समाचार-पत्रों को बहुत कुछ स्वतन्त्रता प्राप्त है। इन समाचार-पत्रों में आय भी खूब होती है। 'ओसाका मैनीची' पत्र की केवल विज्ञापनों से एक करोड़ येन आय है, एवं पत्र की बिक्री से एक करोड़ चालीस लाख येन है। इस कम्पनी को २० लाख येन का प्रतिवर्ष मुनाफ़ा होता है। जापानी समाचार-पत्रों का यह हाल मिस्टर केके कावाकामी ने 'कलकत्ता रिव्यू' में प्रकाशित कराया है।

× × ×

८. विपन्नता का बालकों की आयु पर असर

यह तो मानी हुई बात है कि गरीब घरानों में शिशुओं की मृत्यु-संख्या बहुत अधिक है, क्योंकि बालकों की रक्षा के लिये जिन सुविधाओं की आवश्यकता होती है वे गरीबों की पहुँच से बाहर है। अब अमेरिका के एक डाक्टर ने सिद्ध किया है कि माता-पिता की आमदनी में वृद्धि के अनुपात ही से बालकों की मृत्यु-संख्या घटती जाती है। जिस घर की वार्षिक-आय ४२० डालर थी, उनमें बालकों की मृत्यु-संख्या १००० में १६६.७ थी, लेकिन जिन घरों की आय १२०० डालर वार्षिक थी, वहाँ बच्चों की मृत्यु-संख्या १००० में केवल ८४ थी। इन आँकड़ों से यह स्पष्ट रूप से प्रमाणित हो जाता है कि भारतीय बालकों की मृत्यु-संख्या ईश्वरीय कोप या यमराज की अकृपा के कारण नहीं, केवल हमारी दरिद्रता के कारण है। और, बालकों की मृत्यु-संख्या पर दरिद्रता का इतना असर पड़ सकता है, तो पुरुषों और स्त्रियों को दीर्घायु बनाने में क्या उसका असर न होगा? यह सारी कठिनाइयाँ आर्थिक हैं, और जबतक हमारी आर्थिक दशा इतनी हीन रहेगी हम स्वस्थ और दीर्घजीवी नहीं हो सकते।

× × ×

९. बाबू प्यारेलालजी भार्गव का स्वर्गवास

बड़े ही दुःख की बात है कि 'सुधा' पत्रिका के प्रधान संपादक श्रीयुत दुलारेलालजी भार्गव के पिता बाबू प्यारेलालजी भार्गव का विगत १६ सितंबर को स्वर्गवास होगया। बाबू प्यारेलालजी बड़े ही मिलनसार, हँस मुख और सज्जन पुरुष थे। इस घोर विपत्ति में दुखी परिवार के साथ, विशेष करके 'सुधा'-संपादक श्रीयुत दुलारेलालजी के साथ हमारी हार्दिक सहानुभूति है। हमारी ईश्वर से प्रार्थना है कि वह दुखी-परिवार को इस असह्य कष्ट को भी सह डालने का बल दे और परलोकगत आत्मा को सद्गति प्रदान करे।

× × ×

१०. स्वामी रामतीर्थ का जन्म-दिवस

स्वामी रामतीर्थ पब्लिकेशन लीग के मैनेजर ने हमें सूचना दी है कि लीग द्वारा प्रकाशित कुछ पुस्तकें, स्वामी रामतीर्थ के पुण्य जन्म-दिवस के उपलक्ष में, जो २६ अक्टूबर को लीग कार्यालय में होनेवाला है, उक्त तिथि से १५ दिन तक आधे दामों पर मिलेंगी। हमें आशा है, हिन्दी जनता, विशेषकर वे सज्जन, जिन्हें वेदान्त साहित्य से प्रेम है, इस रिआयत से लाभ उठाएँगे।

× × ×

११. भूल-सुधार

माधुरी के विशेषांक में 'कमला' और 'आषाढ़' में 'चित्र-लेखन' ये दोनों चित्र श्रीयुत रानोद उकील के बनाए हुए हैं; बाबू शारदाचरण उकील का नाम भूल से दे दिया गया है। हम इसके लिये उक्त रानोद बाबू से क्षमा माँगते हैं।

चित्र-चर्चा

१ रासलीला

जयपुरी चित्रकला का सुन्दर नमूना है। सोनरी की छटा कितनी मनोहर है, जो जयपुरी-कला की विशेषता है। विषय भक्ति और अनुराग से परिपूर्ण है।

२. उत्कंठिता

विरहिणी नायिका द्वार पर खड़ी नायक की प्रतीक्षा कर रही है। पूर्णमासी का चन्द्रमा ऊपर चढ़ आया है, पर प्रेमी का पता नहीं। नायिका के मुख पर चिन्तामय-उत्कंठा की सुन्दर रेखा दीख पड़ती है। एक हाथ से चौखट को पकड़े रहना नायिका की तल्लीनता का परिचय दे रहा है। एक ही किवाड़ खुला हुआ, पैर भी चौखट से आगे नहीं बढ़े—उत्कंठा की दशा में भी रमणी ने संकोच का परित्याग नहीं किया है।

३. सुंदरी

अलंकार-विहीन होकर भी पुष्प कितना सुन्दर होता है—यह रमणी एक वन्य-पुष्प हाथमें लिये कदाचित् उसी पुष्प से अपनी तुलना करने के लिये अपने अलंकारों को उतार कर खड़ी है।

"माधुरी" के नियम—

मूल्य विवरण

माधुरी का डाक-व्यय-सहित वार्षिक मूल्य ६॥), छ मास का ३॥) और प्रति संख्या का ॥=) है। वी० पी० से मँगाने में =) रजिस्ट्री के और देने पड़ेंगे। इसलिये ग्राहकों को मनीऑर्डर से ही चंदा भेज देना चाहिए। भारत के बाहर सर्वत्र वार्षिक मूल्य ८) छ महीने का ४॥) और प्रति संख्या का ॥।) है। वर्षारंभ श्रावण से होता है लेकिन ग्राहक बननेवाले सज्जन जिस संख्या से चाहें ग्राहक बन सकते हैं।

अप्राप्त संख्या

अगर कोई संख्या किसी ग्राहक के पास न पहुँचे, तो उसी महीने के अंदर कार्यालय को सूचना देनी चाहिए। लेकिन हमें सूचना देने के पहले स्थानीय पोस्ट-ऑफ़िस में उसकी जाँच करके डाकख़ाने का दिया हुआ उत्तर सूचना के साथ भेजना ज़रूरी है। उनको उस संख्या की दूसरी प्रति भेज दी जायगी। डाकख़ाने का उत्तर साथ न रहने से सूचना पर ध्यान नहीं दिया जायगा, और उस संख्या को ग्राहक ॥=) के टिकट भेजने पर ही पा सकेंगे।

पत्र-व्यवहार

उत्तर के लिये जवाबी कार्ड या टिकट आना चाहिए। अन्यथा पत्र का उत्तर नहीं दिया जा सकेगा। पत्र के साथ ग्राहक-नंबर ज़रूर लिखना चाहिए। मूल्य या ग्राहक होने की सूचना मैनेजर "माधुरी" नवलकिशोर-प्रेस (बुकडिपो) हज़रतगंज, लखनऊ के पते से आनी चाहिए।

पता

ग्राहक होते समय अपना नाम और पता बहुत साफ़ अक्षरों में लिखना चाहिए। दो-एक महीने के लिये पता बदलवाना हो, तो उसका प्रबंध सीधे डाकघर से ही कर लेना ठीक होगा। अधिक दिन के लिये बदलवाना हो, तो १५ रोज़ पेश्तर उसकी सूचना माधुरी-ऑफ़िस को दे देनी चाहिए।

लेख आदि

लेख या कविता स्पष्ट अक्षरों में, काग़ज़ के एक ही ओर संशोधन के लिये इधर-उधर जगह छोड़कर, लिखी होनी चाहिए। क्रमशः प्रकाशित होने योग्य बड़े लेख संपूर्ण आने चाहिए। किसी लेख अथवा कविता के प्रकाशित करने या न करने का, उसे घटाने-बढ़ाने का तथा उसे लौटाने या न लौटाने का सारा अधिकार संपादक को है। अस्वीकृत लेख टिकट आने पर ही वापस किए जा सकते हैं। सचित्र लेखों के चित्रों का प्रबंध लेखकों को ही करना चाहिए।

लेख, कविता, चित्र, समालोचना के लिये प्रत्येक पुस्तक की २-२ प्रतियाँ और बदले के पत्र इस पते से भेजने चाहिए—

संपादक "माधुरी"
नवलकिशोर प्रेस (बुकडिपो), हज़रतगंज, लखनऊ।

विज्ञापन

किसी महीने से विज्ञापन बंद करना या बदलवाना हो, तो एक महीने पहले सूचना देनी चाहिए।

अश्लील विज्ञापन नहीं छपते। छपाई पेशगी ली जाती है। विज्ञापन की दर नीचे दी जाती है—

१ पृष्ठ या २ कालम की छपाई	३०)	प्रति मास
½ ,, या १ ,, ,,	१८)	,, ,,
¼ ,, या ½ ,, ,,	१०)	,, ,,
⅛ ,, या ¼ ,, ,,	६)	,, ,,

कम-से-कम चौथाई कालम विज्ञापन छपानेवालों को माधुरी मुफ़्त मिलती है। साल-भर के विज्ञापनों पर उचित कमीशन दिया जाता है।

"माधुरी" में विज्ञापन छपानेवालों को बड़ा लाभ रहता है। कारण, इसका प्रत्येक विज्ञापन कम-से-कम ५,००,००० पढ़े लिखे धनी मानी और सभ्य स्त्री पुरुषों की नज़रों से गुज़र जाता है। ५४ प्रांतों में हिंदी का सर्वश्रेष्ठ पत्रिका होने के कारण इसका प्रचार ख़ूब हो गया है और उत्तरोत्तर बढ़ रहा है, एक प्रत्येक ग्राहक से माधुरी ले-लेकर पढ़नेवालों की संख्या ५०६० तक पहुँच जाती है।

यह सब होने पर भी हमने विज्ञापन-छपाई की दर अन्य अच्छी पत्रिकाओं से कम ही रक्खी है। कृपया शीघ्र अपना विज्ञापन माधुरी में छपाकर लाभ उठाइए। कम-से-कम एक बार परीक्षा तो अवश्य कीजिए।

निवेदक—मैनेजर "माधुरी" न० कि० प्रेस (बुकडिपो), हज़रतगंज, लखनऊ

अद्वैतवाद

[क्रमागत]

तीसरा अध्याय

स्वप्न

संसार को स्वप्न और माया से उपमा देने की परिपाटी इतनी प्रचलित हो गई है कि, स्वप्न और माया की मीमांसा आवश्यक प्रतीत होती है। हम पहले 'स्वप्न' को लेते हैं।

स्वप्न क्या वस्तु है? वस्तु है भी या नहीं? कहीं भ्रम ही-भ्रम तो नहीं है?

साधारणतया शरीरयुक्त आत्मा की तीन अवस्थाएँ बताई गई हैं। जागृत, स्वप्न और सुषुप्ति। चौथी (तुरीय) अवस्था का इस विषय से संबंध न होने से हम इसका उल्लेख नहीं करते।

जागृत अवस्था वह है जिसमें आत्मा, मन तथा इन्द्रियों द्वारा अर्थों (वाह्य-पदार्थों) का ज्ञान प्राप्त करता है। कठोपनिषत् में लिखा है —

> आत्मानं रथिनं विद्धि शरीरं रथमेव च,
> बुद्धिं तु सारथिं विद्धि मनः प्रग्रहमेव च।
> इन्द्रियाणि हयानाहुर्विषयांस्तेषु गोचरान्,
> आत्मेन्द्रियमनोयुक्तं भोक्तेत्याहुर्मनीषिणः।

अर्थात् आत्मा सवार है, शरीर रथ है, बुद्धि रथवान है, मन लगाम है, इन्द्रियाँ घोड़े हैं, और विषय वह मार्ग है जिस पर रथ चलता है।

जिस अवस्था में आत्मा का अर्थों के साथ मन तथा इन्द्रियों द्वारा संसर्ग होता है, उसको जागृत अवस्था कहते हैं।

स्वप्न में आत्मा का मन के साथ सम्बन्ध रहता है, परन्तु इन्द्रियों द्वारा बाह्य पदार्थों के साथ संबंध नहीं रहता। जो संस्कार जागृत अवस्था में इन्द्रियों द्वारा मन पर पड़ते हैं, वही संस्कार निद्राकाल में उठ खड़े होते हैं। इसीका नाम स्वप्न है। माण्डूक्योपनिषत् में स्वप्न और जागरित अवस्थाओं का यह भेद दिया है।—

> जागरितस्थानो बहिः प्रज्ञ ......स्थूलभुक्.. ॥ ३ ॥
> स्वप्नस्थानोऽन्तः प्रज्ञ .... प्रविविक्तभुक्. ॥ ४ ॥

अर्थात् जागृत अवस्था में मन की वृत्तियाँ बाहर की ओर होती हैं और वह इन्द्रियों द्वारा स्थूल जगत् का ज्ञान प्राप्त करता है, स्वप्न में मनोवृत्तियाँ भीतर की ओर होती हैं। उस समय आत्मा बाह्य पदार्थों से प्रविविक्त अर्थात् अलग होता है। केवल बाह्य जगत् के संस्कार ही मन में रहते हैं, वह उसी संस्काररूप जगत् में विचरता है।

सुषुप्ति अवस्था के लिये माण्डूक्योपनिषत् कहती है.—

> यत्र सुप्तो न कंचन कामं कामयते न कंचन स्वप्नं पश्यति तत्सुषुप्तम्। ५।

अर्थात् जिस अवस्था में सोनेवाले को न कोई कामना होती है न स्वप्न देखता है, उस अवस्था को सुषुप्ति कहते हैं। इससे ज्ञात होता है कि सुषुप्ति में मनोवृत्तियाँ सर्वथा बन्द हो जाती हैं।

यही तात्पर्य छांदोग्य उपनिषद् के नीचे लिखे वाक्य से पाया जाता है.—

> उद्दालको हारुणिः श्वेतकेतुं पुत्रमुवाच स्वप्नान्तं मे सोम्य विजानीहीति यत्रैतत्पुरुषः स्वपिति नाम सता सोम्य तदा सम्पन्नो भवति स्वमपीतो भवति तस्मादेनं ँ स्वपितीत्याचक्षते स्व ँ ह्यपीतो भवति। स यथा शकुनिः सूत्रेण प्रबद्धो दिशं दिशं पतित्वान्यत्रायतनमलब्ध्वा बन्धनमेवोपश्रयत एवमेव खलु सोम्य तन्मनो दिशं दिशं पतित्वान्यत्रायतनमलब्ध्वा प्राणमेवोपश्रयते प्राणबन्धन ँ हि सोम्य मन इति।
>
> (छांदोग्य, अध्याय ६।८।१,२)

आरुणि. उद्दालक ने पुत्र श्वेतकेतु से पूछा कि हे भद्र पुरुष, मुझको यह बतलाइए कि स्वप्न के अन्त में क्या होता है। उसने उत्तर दिया कि संस्कृत में कहते हैं कि एतत् पुरुषः स्वपिति अर्थात् यह पुरुष सोता है। यहाँ स्वपिति का अर्थ यह है कि 'स्व' नाम है आत्मा का, जो सत् है। इसलिये 'स्वप्न' वह दशा है जिसमें 'आत्मा अपने में हो जाता है'। जैसे यदि पक्षी के पैर में धागा बाँध दिया जाय तो इधर-उधर फिर कर भी वह कहीं सहारा नहीं पाता और अपनी खूँटी पर ही वापिस आता है, इसी प्रकार मन प्रत्येक दिशा में फिर कर कहीं सहारा नहीं पाता और प्राणों का ही अंत में आश्रय लेता है। क्योंकि मन का बन्धन प्राण है।

यहाँ 'स्वप्न' का अर्थ 'सुषुप्ति' है, जिसमें मन भी अपना विचरना बन्द कर देता है।

वेदान्तदर्शन के "स्वाप्ययात्" (१।१।९) सूत्र का भाष्य करते हुए श्रीशंकराचार्यजी छान्दोग्य के उपर्युक्त वाक्य के संबंध में लिखते हैं:—

स्वशब्देनेहात्मोच्यते । यः प्रकृतः सच्छब्दवाच्यस्तमपीतो भवत्यपिगतो भवतीत्यर्थः । अपिपूर्वस्यैतेर्लयार्थत्वं प्रसिद्धं, प्रभवाप्ययावित्युत्पत्तिप्रलययोः प्रयोगदर्शनात् । मनःप्रचारोपाधिविशेषसम्बंधादिन्द्रियार्थान् गृह्णंस्तद्विशेषापन्नो जीवो जागर्ति । तद्वासनाविशिष्टः स्वप्नान्पश्यन् मनःशब्दवाच्यो भवति । स उपाधिद्वयोपरमे सुषुप्तावस्थायामुपाधिकृतविशेषाभावात् स्वात्मनि प्रलीन इवेति ।

अर्थात् जागृत अवस्था में मन इन्द्रियों के अर्थों को ग्रहण करता है। स्वप्न में केवल वासनाएँ रहती हैं (अर्थात् इन्द्रियों के अर्थ नहीं रहते, उनके संस्कार मात्र रहते हैं)। सुषुप्त अवस्था में दोनों उपाधियों, अर्थात् मन और इन्द्रियों, का काम बन्द हो जाता। । उस समय अपने में ही लीन होता है।

इससे पता चलता है कि स्वप्नावस्था में जागृत अवस्था की वासना मात्र रहती है। अर्थात् स्वप्नावस्था का जागृत अवस्था से वही संबंध है, जो किसी फ़ोटो का असली चीज़ से है। जिस समय मेरा संसर्ग फ़ोटो के कैमरे के साथ होता है, उस पर मेरी आकृति आजाती है। साधारणतया जबतक मैं बैठा हुआ हूँ, मेरी आकृति भी मौजूद है—जैसे दर्पण में। जहाँ मैं हट गया मेरी आकृति भी हट गई; परंतु फ़ोटोग्राफ़र विशेष साधनों द्वारा उस समय भी मेरी आकृति को सुरक्षित रखने की कोशिश करता है, जब मैं नहीं हूँ। इसीको फ़ोटो कहते हैं। इसी प्रकार जागृत अवस्था में मेज़ या कुर्सी का जबतक मेरे साथ संसर्ग होता है, वह मुझको उपस्थित दिखाई पड़ती हैं। परंतु जब वह मेरे सामने से हट जाती हैं, तो मुझे फिर उनकी प्रतीति नहीं होती। स्वप्नावस्था में विशेषता यह है कि जागृत अवस्था में मेज़ और कुर्सी के जो संस्कार मन पर पड़े थे, वह मेज़ और कुर्सी के हटजाने पर सुरक्षित रहते हैं, और हमको ऐसा प्रतीत होता है कि मेज़ और कुर्सी हमारे सामने रखी हैं।

बृहदारण्यकोपनिषद् में लिखा है:—

न तत्र रथा न रथयोगा न पन्थानो भवन्त्यथ रथान् रथयोगान् पथः सृजते न तत्रानन्दा मुदः प्रमुदो भवन्त्यथानन्दान् मुदः प्रमुदः सृजते न तत्र वेशान्ताः पुष्करिण्यः स्रवन्त्यो भवन्त्यथ वेशान्तान्पुष्करिणीः स्रवन्तीः सृजते स हि कर्ता । (बृह० ४ । ३ । १०)

अर्थात् न रथ होता है, न मार्ग होता है, परंतु मन इनको बनाता है। न मोद प्रमोद होते हैं, न तालाब या झील आदि होते हैं; इनको भी मन बनाता है। अर्थात् स्वप्न में जो वस्तुएँ देखी जाती हैं, उन सबका कर्ता मन है।

स्वप्नेन शारीरमभिप्रहत्यासुप्तः सुप्तानभिचाकशीति । शुक्रमादाय पुनरैति स्थान ँ हिरण्मयः पुरुष एकह ँ सः । (बृ० ४ । ३ । ११)

स्वप्न में जागृत अवस्था में भोगे हुए सुखों को अनुभव करता हुआ फिर जागृत अवस्था को प्राप्त हो जाता है।

प्राणेन रक्षन्नवरं कुलायं बहिष्कुलायादमृतश्चरित्वा स ईयतेऽमृतो यत्र काम ँ हिरण्मयः पुरुष एकहंसः । (बृ० ४ । ३ । १२)

अर्थात् जिस प्रकार पक्षी इधर उधर फिर कर फिर घोंसले में आ जाता है, इसी प्रकार यह जीव स्वप्न से फिर जागृत अवस्था को प्राप्त करता है।

स्वप्नान्त उच्चावचमीयमानो रूपाणि देवः कुरुते बहूनि उतेव स्त्रीभिः सह मोदमानो जक्षदुतेवापि भयानि पश्यन् । (बृ० ४ । ३ । १३)

अर्थात् स्वप्न में अनेक रूपों की कल्पना करता हुआ कभी स्त्रियों के साथ आनंद, कभी मित्रों के साथ भोजन और कभी-कभी भय को भी प्राप्त करता है।

तद्यथास्मिन्नाकाशे श्येनो वा सुपर्णो वा विपरिपत्य श्रान्तः स ँ हत्य पक्षौ संलयायैव ध्रियत एवमेवायं पुरुष एतस्मा अन्ताय धावति । यत्र सुप्तो न कञ्चन कामं कामयते न कञ्चन स्वप्नं पश्यति । (बृ० ४ । ३ । १९)

जैसे बाज़ या गरुड़ आकाश में उड़ता उड़ता थक कर फिर अपने पंख समेट लेता है, इसी प्रकार आत्मा जागृत और स्वप्न अवस्था से थक कर सुषुप्ति (गाढ़ निद्रा) को प्राप्त हो जाता है। उस दशा में न कोई इच्छा ही रहती है, न स्वप्न ही देखता है।

अब देखना चाहिये कि स्वप्न का मूल कारण क्या है?

श्रीशंकराचार्यजी के—स्मृतिरूपः परत्र पूर्वदृष्टावभासः वेदांत (१।१।१) पर भामती व्याख्या में लिखा है—

स्वप्नज्ञानस्यापिस्मृतिविभ्रमरूपत्वेन स्मृतित्वात् । तत्रापि हि स्मर्यमाणे पित्रादौ निद्रोपप्लववशादमनिधानापरामर्शो, तत्र तत्र पूर्वदृष्टेऽस्मि मानिद्रितदेशकालत्वस्य समारोप ।

तात्पर्य यह है, स्वप्न स्मृति का विभ्रमरूप है।

Aristotle refers them (i e dreams) to the impressions left by objects seen with the eyes of the body *

अरस्तू की राय है कि इन्द्रियों द्वारा हम जो कुछ प्रत्यक्ष करते हैं, उसीके संस्कार शेष रह जाते हैं, इसी-से स्वप्न होता है।

He further remarks on the exaggeration of slight stimuli when they are incorporated into a dream, a small sound becomes a noise like thunder *

अरस्तू का कथन है कि छोटे-छोटे उत्प्रेरण स्वप्न से मिलकर बड़ा रूप धारण कर लेते हैं, जैसे एक छोटी आवाज़ स्वप्न में बादल की 'गरज सी मालूम होती है।'

Plato, too, connects dreaming with the normal waking operations of the mind

प्लैटो की राय में स्वप्न का जागृत अवस्था-सम्बन्धी मानसिक व्यापारों से सम्बन्ध है।

Pliny, on the other hand, admits this only for dreams which take place after meals, the remainder being supernatural

प्लिनी का विचार है कि केवल उन्हीं स्वप्नों का जागृत अवस्था से सम्बन्ध है, जो भोजन के पीछे होते हैं। शेष का कारण दैवगति है।

Cicero, however, takes the view that they are *simply natural occurrences no more no less* than the mental operations and sensations of the waking state

सिसरो कहता है कि जिस प्रकार जागृत अवस्था में मानसिक तथा इन्द्रिय-सम्बन्धी व्यापार होते हैं, उसी प्रकार स्वप्न में भी इनमें कोई भेद नहीं।

*Encyclopædia Britannica XI edition, Vol 8 on Dreams (pp 561—62)

The doctrine of Descartes that existence depended upon thought naturally led his followers to maintain that the mind is always thinking and consequently that dreaming is continuous

डिकार्ट्स का सिद्धांत है कि अस्तित्व का आधार विचार पर है। इसलिये उसके अनुयायी यह मानने लगे कि मन निरन्तर सोचता रहता है और स्वप्न निरन्तर होते रहते हैं।

That *we always dream* was maintained by *Leibnitz, Kant*, Sir *W Hamilton* and others

लैब्निट्ज़, कान्ट, सर डब्ल्यू० हैमिल्टन और अन्य भी यही मानते हैं कि, हम निरन्तर स्वप्न देखा करते हैं।

It has been commonly held by metaphysicians that the nature of dreams is explained by the suspension of volition during sleep, Dugald Stewart asserts that it is not wholly dormant but loses its hold on the faculties and he thus accounts for the incoherence of dreams and the *apparent reality* of dream images

दार्शनिक लोगों का सामान्य विचार है कि सोते समय इच्छा-वृत्ति के बन्द हो जाने के कारण स्वप्न होते हैं। डूगल्ड स्टुअर्ट कहता है कि इच्छा-वृत्ति सर्वथा बन्द नहीं होती, परन्तु इसका अन्य शक्तियों पर आधिपत्य नहीं रहता, इसी कारण से स्वप्न असम्बद्ध होते हैं, और इसी कारण स्वप्न के संस्कार सच्चे मालूम होते हैं।

Hobbes held that dreams all proceed from the agitation of the inward parts of a man's body, which owing to their connection with the brain serve to keep the latter in motion.

हॉब्स का सिद्धान्त था कि मनुष्य के शरीर के आन्तरिक अङ्गों के अव्यवस्थित होने के कारण स्वप्न होते हैं। चूँकि इन अङ्गों का मस्तिष्क से सम्बन्ध रहता है, अतः उनके कारण मस्तिष्क भी चलायमान रहता है।

For Schopenhauer the cause of dreams is the stimulation of the brain by the internal regions of the organism through the sympathetic nervous system These impressions the

mind afterwards works up into quasi realities, by means of space, time, causality &c.

शोपिनहायर का विचार है कि स्वप्न का कारण मस्तिष्क की वह उत्प्रेरणा है, जो नाड़ी-प्रबन्ध द्वारा शरीर के आन्तरिक अगों की ओर से हुआ करती है। मन तत्पश्चात् इन संस्कारों को आकाश, काल, कारण आदि की सहायता से अर्द्ध-सत्ताओं में परिवर्तित कर देता है।

इन सब साक्षियों से एक बात सिद्ध होती है—अर्थात् स्वप्न अवस्था बिना जागृत अवस्था के हो ही नहीं सकती। या दूसरे शब्दों में स्वप्न का आधार जागृति है।

यहाँ हम एक बात को स्पष्ट करदेना चाहते हैं। बहुधा यह एक विचित्र प्रश्न रहा है कि हम जागृति में स्वप्न का अनुकरण करते हैं, या स्वप्न में जागृति का ? अर्थात् मौलिक अवस्था किसको मानना चाहिये ? हैं तो दोनों अवस्थाएँ आत्मा की, किसी और की तो हैं नहीं। इनमें किसको मौलिक मानें और किसको गौण, यह एक टेढ़ा प्रश्न है। और बाह्य जगत् की मीमांसा के लिये यह एक अत्यन्त आवश्यकीय प्रश्न है। यदि स्वप्न मौलिक अवस्था है, और जागृत केवल स्वप्न की अनुयायिनी है, तो यह मानना पड़ेगा कि स्वप्न में जो कुछ प्रतीत होती है, उसका कारण बाह्य पदार्थ नहीं किन्तु आन्तरिक आत्मा ही है। अत. जागृत अवस्था में भी बाह्य पदार्थों के मानने की कोई आवश्यकता नहीं। जिस प्रकार स्वप्न बाह्य पदार्थों के अभाव में होते हैं, उसी प्रकार जागृत-अवस्था-गत संस्कार भी बाह्य पदार्थों के बिना होंगे और हो सकेंगे।

परन्तु, यदि जागृत अवस्था मौलिक है, और स्वप्न उसका अनुयायी मात्र है, तो जिस प्रकार बाह्य पदार्थों के कारण ही जागृत अवस्था होती है उसी प्रकार स्वप्नगत प्रतीतियों का कारण भी आत्मा के बाहर की कुछ चीज़ होंगी।

यह प्रश्न तो टेढ़ा है, और ऐसी सुगमता और जल्दी से इसका उत्तर भी नहीं दिया जा सकता, जबतक जागृत-अवस्था-सम्बन्धी अनेक बातों को विचारा न जाय। क्योंकि स्वयं जागृत अवस्था के अन्तर्गत भी कई अवस्थाएँ ऐसी होती हैं, जिनमें बाह्य पदार्थों का अभाव होता है।

जैसे:—

(१) स्मृति (Memory)
(२) अनुप्रतीति (Recollection)
(३) विकल्पना (Imagination)
(४) आभास (Hallucination)
(५) भ्रान्ति (Illusion)

हम यहाँ संक्षेप से लिखे देते हैं कि इन पाँचों से हमारा क्या तात्पर्य्य है.—

किसी घटना की साधारण याद को स्मृति (memory) कहते हैं : जैसे अमुक पुरुष चार वर्ष हुए कि मर गया। परन्तु, यदि देश, काल, परिस्थिति आदि का पूरा चित्र खिंच जाय कि हमने उसको इस प्रकार, इस स्थान या इस परिस्थिति में मरते देखा था, वह मृतक-शय्या पर पड़ा हुआ था, इत्यादि, तो उसे अनुप्रतीति (recollection) कहेंगे।

पुराने संस्कारों की स्मृति की सहायता से मन में जो नई रचनाएँ उत्पन्न होती हैं, उनको विकल्पना (imagination) कहते हैं। चित्रकार, उपन्यास लेखक, नई वस्तुओं के आविष्कारकर्त्ता आदि इसी विकल्पना-वृत्ति के द्वारा काम करते हैं।

कभी-कभी बाह्य पदार्थ न होते हुए भी हमको उनका होना प्रतीत होता है। जैसे कोई मनुष्य न हो और हमको कुछ देर के लिये ऐसा प्रतीत हो कि मनुष्य है। इसको आभास (hallucination) कहते हैं।

कभी-कभी कुछ का कुछ दीखता है, जैसे रेत का जल; इसको भ्रांति (illusion) कहते हैं।

यह पाँचों अवस्थाएँ जागृति के अन्तर्गत हैं। यह उस समय होती हैं, जब हमारी इन्द्रियाँ (आँख, कान, नाक आदि) काम करती रहती हैं। इनमें से किसी में बाह्य पदार्थ नहीं होते। परन्तु इन पाँचों का अस्तित्व बाह्य पदार्थों के अस्तित्व के आश्रित है। अर्थात् यदि बाह्य पदार्थ न होते और उनके संस्कार पूर्वकाल में मन पर न पड़ गये होते, तो इनमें से कोई अवस्था न हो सकती।

उदाहरण के लिये स्मृति, जिसके अन्तर्गत अनुप्रतीति भी आजाती है, बिना पुराने अनुभवों के हो ही नहीं सकती। योगदर्शन में लिखा है.—

अनुभूतविषयासम्प्रमोषः स्मृतिः (योग १ । ११)

जबतक अनुभूत विषय न होंगे, स्मृति होगी ही नहीं। रही विकल्पना, उसके लिये भी अनुभूत विषयों की स्मृति की

आवश्यकता है। जिस प्रकार बिना काष्ठ के बढ़ई मेज़, कुर्सी नहीं बना सकता, या बिना आटे के रसोइया भिन्न-भिन्न खाद्य-पदार्थ नहीं तैयार कर सकता, इसी प्रकार बिना स्मृति या अनुप्रतीति-रूपी सामग्री के कोई विकल्पना नहीं कर सकता। एक उपन्यास-लेखक अपने मन से एक कहानी गढ़ता है और उसको रोचक शब्दों में उपस्थित करता है। परन्तु, यदि वस्तुतः देखा जाय तो, उसमें ऐसी कोई बात नहीं होती जो "अनुभूत विषय" के बाहर हो, केवल क्रम अपना होता है। इसी प्रकार एक चित्रकार एक नवीन चित्र बनाता है। कल्पना कीजिए कि उसने एक मक्खी का चित्र बनाया, जिसके परों पर अनेक हाथी झूल रहे हैं। साधारण दृष्टि से कहा जा सकता है कि यह चित्र नया है। चित्रकार ने मक्खी के परों पर हाथी झूलते कभी नहीं देखे; परन्तु गम्भीर दृष्टि से यह भी 'अनुभूत विषय' ही सिद्ध होते हैं। जिस चित्रकार ने न कभी हाथी देखा और न मक्खी, वह कभी ऐसा चित्र न बना सकेगा। चित्र में क्या है—(१) एक मक्खी, (२) उसके पर, (३) परों से लटकते हुए हाथी। यह तो सभी जानते हैं कि यह तीनों वस्तुएँ अलग-अलग अनुभूत हैं, मक्खी के पर का एक समय या स्थान में अनुभव हो चुका है, हाथी का दूसरे स्थान या समय में, और "लटकना" रूप व्यापार का तीसरे स्थान या समय में। अब इन तीनों के संस्कार (स्मृति) मन में उसी प्रकार साथ-साथ इकट्ठे रहते हैं, जिस प्रकार अनेक स्थानों से अनेक काल में लाई हुई वस्तुएँ कमरे में। आप मेज़ के ऊपर एक सेब रख देते हैं। यह सेब मेज़ पर उगता नहीं, मेज़ अलग थी और सेब अलग एक वृक्ष पर लटक रहा था। आपने सेब को तोड़ा और कमरे में लाकर मेज़ पर रख दिया। इसी प्रकार चित्रकार ने मक्खी का चित्र एक स्थान से ग्रहण किया और हाथी का दूसरे से; और इन दोनों को पास-पास रख दिया था। आप हाथी को पकड़कर उसके ऊपर मक्खी रख सकते थे, परन्तु मक्खी को पकड़कर उसके ऊपर हाथी न रख सकते, क्योंकि हाथी के बोझ को मक्खी का पर न सहार सकता। परन्तु हाथी का चित्र इतना ही हल्का है जितना मक्खी का, इसलिये मक्खी के पर का चित्र हाथी के चित्र को भली प्रकार सहार सकता है। चित्रों में आकृति मात्र है, बोझ नहीं। वस्तुओं में बोझ भी था और आकृति भी, परन्तु चित्र हैं वस्तुओं के कारण। यदि वस्तुएँ न होतीं, तो चित्र भी न होते।

यही हाल आभास और भ्रांति का है। कभी आभास या भ्रांति में "अननुभूत" विषय नहीं प्रतीत होते। भेद केवल यह होता है कि वह वस्तुएँ उस समय उपस्थित नहीं होतीं, केवल उनके संस्कार मन में उपस्थित रहते हैं। जो बात विकल्पना में होती है, वही आभास या भ्रांति में। विकल्पना बुद्धिपूर्वक होती है। आत्मा अनुभव करता है कि मैं स्वयं किसी विशेष संबंध को उत्पन्न कर रहा हूँ। आभास और भ्रांति बुद्धिपूर्वक नहीं होते। वहाँ इच्छापूर्वक रचना का सर्वथा अभाव होता है, यह बात नीचे के दृष्टान्त से समझ में आ सकती है।

आप जागृत अवस्था में किसी रेत के मैदान की ओर देखिए और उसी समय नदी या तालाब या अन्य किसी जलाशय को याद कीजिए और अपनी कल्पना-शक्ति से सोचिए कि जिसको आप रेत का मैदान देख रहे हैं, वह जलाशय के सदृश है। इस सदृशत्व का निरन्तर थोड़ी देर तक ध्यान करते जाइए। कुछ देर में आपको प्रतीत होने लगेगा कि बालू के मैदान में पानी बह रहा है, परन्तु इसके साथ-साथ आप यह भी समझते रहेंगे कि वस्तुतः यह बालु-प्रदेश है, केवल आपको विकल्पना द्वारा जल की प्रतीति होरही है।

यदि आपके मन में कल्पना-शक्ति ने काम नहीं किया और बिना विकल्पना के ही बालु-प्रदेश जलाशय प्रतीत होने लगा, तो इसीको आप "मृगतृष्णिका" कहने लगेंगे, इसीका नाम भ्रान्ति (illusion) है। भ्रांति और विकल्पना में केवल यही भेद है कि भ्रांति आपकी इच्छा बिना होती है और विकल्पना इच्छा द्वारा। रस्सी का साँप और सीप की चाँदी भी इसी प्रकार मालूम होती है। आप प्रत्येक रस्सी में साँप की कल्पना कर सकते हैं, क्योंकि यद्यपि रस्सी बाहर है तथापि आत्मा के भीतर साँप के संस्कार उपस्थित हैं। यह साँप के संस्कार किसी समय आपको उस साँप के द्वारा प्राप्त हुए थे, जो पहले किसी अन्य स्थान में उपस्थित था। यदि साँप कोई वस्तु न होता, और आप उसे कभी न देखते, तो आपको कभी रस्सी में साँप की भ्रान्ति न होती। इसी प्रकार यदि कभी चाँदी न देखी होती तो सीप में चाँदी की भ्रान्ति भी न होती। इसका कुछ उल्लेख हम दूसरे अध्याय में

कर चुके हैं। जिन लोगों ने आभास (hallucination) और भ्रान्ति (illusion) के दृश्यों की विवेचना की है, वह भी इसी नतीजे पर पहुँचे हैं।

आभास (hallucination) के विषय में पेरिस की आत्म-शरीर-सम्बन्ध समिति (The Paris Congress for Psycho-Physiology) तथा इंगलैंड की आत्म-मीमांसा समिति (English Society for Psychical Research) ने अनेक दृश्यों के विवरण इकट्ठे करके उन पर विचार किया था। * प्रश्न यह किया गया था —

'Have you ever, when believing yourself to be completely awake, had a vivid impression of seeing or being touched by a living being or inanimate object, or of hearing a voice, which impression, so far as you could discover, was not due to any external physical cause ?'

"क्या कभी तुमको ऐसे समय, जब तुम अपने को यथार्थ जागृत अवस्था में समझते हो, किसी सजीव या निर्जीव पदार्थ के देखने, छूने या किसी शब्द के सुनने के पूरे पूरे संस्कार हैं, जिनको तुम यथोचित अन्वेषण के पश्चात् समझते हो कि वह किसी बाह्य प्राकृतिक कारण से उत्पन्न नहीं हुए ?"

इसके साथ अमेरिका में विलियम जेम्स (William James) ने, फ्रांस में एल० मैरीलियर (L Marillier) और जर्मनी में वॉन श्रेङ्क नॉट्ज़िग् (Von Schrenck Notzing) ने इस प्रश्न की छानबीन की। कुल २७३२९ उत्तर आए। इनमें २४०५८ उत्तर तो इस बात के थे कि हमने कभी ऐसी घटनाएँ नहीं देखीं। ३२७१ पुरुष स्त्रियों ने कहा कि हमको इस प्रकार का अनुभव हुआ है। इन अनुभवों की कहानियाँ मौलिक प्रश्न पर प्रकाश डालने के अतिरिक्त पाठकों को मनोरंजक भी होंगी, अतः हम यहाँ कुछको लिखते हैं —

(१) तीन वर्ष हुए कि, १८८९ ई० के जेनियर मास में प्रातःकाल ४ और ५ बजे के बीच में जब मैं जागी तो अपनी बहिन को, जो ६ साल की होकर मर चुकी थी, चारपाई के पास खड़ी हुई देखी। वह कफ़न पहने हुए थी। वह मेरी चारपाई के निकट आने लगी। पहले तो कुछ धुँधली दिखाई दी, परन्तु निकट आने पर स्पष्ट होने लगी। मेरे ज़ोर से चिल्लाने पर वह आकृति मेरी आँखों के सामने लुप्त होगई। एक बहिन उसी कमरे में सोरही थी। उसको कुछ अनुभव नहीं हुआ और न उसने मेरी चिल्लाहट ही सुनी।

मीमांसकों का कहना है कि वस्तुतः वह अच्छी तरह जागी नहीं थी। केवल स्वप्न देख रही थी। अन्यथा उसकी चिल्लाहट को उसके कमरे में सोने वाली बहिन अवश्य सुन सकती। भारतवर्ष में इस प्रकार के 'भूत' के क़िस्से बहुत मशहूर हैं।

(२) नवम्बर १८७१ ई० में मैं १ और २ बजे के बीच में (रात के समय) पढ़ रहा था कि अचानक ऐसा मालूम हुआ कि किसीने मेरा कन्धा छू लिया। मैंने देखा तो मेरा एक मित्र खड़ा हुआ है। यह मित्र एक दिन पहले मर चुका था, परन्तु मुझे उसके मरने की ख़बर न थी। मुझे उसकी आकृति ऐसी स्पष्ट मालूम हुई कि मैं चिल्ला उठा—"अजी, तुम यहाँ कैसे आगये ?" उसी समय वह आकृति लुप्त होगई। मैंने देखा कि दरवाज़ा बन्द था।

मीमांसकों की सम्मति में, अधिक पढ़ने के कारण, मस्तिष्क में ऐसा विकार होगया कि पुरानी स्मृति के संस्कार उभर आए।

(३) एक दिन शाम को मैं पढ़ रही थी कि मैंने अपनी एक सहपाठिनी को दरवाज़े के निकट खड़ी देखा। मैं पूछने को ही थी कि यकायक मुझे उस कमरे में अपनी माता के सिवा और कोई दिखाई न पड़ा। मैंने माँ से कहा। उसने हँसकर कहा कि अधिक पढ़ने से तेरा मस्तिष्क चकरा गया है।

(४) मैं कुछ लिख रहा था कि ऐसा मालूम हुआ कि किसीने मुझे आवाज़ दी। उस समय मैंने देखा कि न कोई कमरे में था, न सड़क पर। मैं सोचने लगा कि यह किसकी आवाज़ थी, तो याद आई कि मेरी मरी हुई नानी की सी आवाज़ थी। (p. 98)

* Proceedings of the S P R Vol X, Aug 1894, published by Prof Henry Sidgwick's committee. [Vide Hallucinations and Illusions by Edmund Parish]

साधारण लोग इसको शायद भूत समझने लगें, जैसा कि अशिक्षित पुरुषों का विचार है कि मरकर आदमी भूत हो जाता है। परन्तु अगले दृष्टान्त से स्पष्ट होजायगा कि यह केवल आभास (hallucination) है।

(५) १२ मार्च १८७८ को दस बजे रात को मैंने अपनी ही आकृति देखी। एक बच्चा कुछ कुलबुला रहा था। मैंने दीपक लेकर देखना चाहा कि क्या कारण है। कमरे का पर्दा हटाते ही मुझे ऐसा मालूम हुआ कि दो क़दम पर मेरी ही आकृति उन वस्त्रों में, जिनको मैंने कुछ दिनों से पहना न था, चारपाई पर झुक रही है। उसके चेहरे से दुःख प्रकट होता था। उस दिन मैं किसी प्रकार से चिन्तित न थी और मन में भी साधारण विचार ही उपस्थित थे। मैं अकेली थी। आध घंटे पहले एक सखी चली जा चुकी थी, और मैं मैशीन पर सी रही थी। मैं शांत थी। मेरा स्वास्थ्य अच्छा था और उस समय मेरी अवस्था ३६ वर्ष की थी। तीन मास पूर्व मेरा एक बच्चा मर चुका था। जिस समय मैं यह लिख रही हूँ, उस समय यह विचार हो रहा है कि मृत्यु के पश्चात् मेरा बच्चा मेरी चारपाई के पैरों की ओर लेटा था। उस समय शायद मैं उसी प्रकार झुक रही हूँगी। यह वस्त्र तो वही थे जिनको मैं उस समय पहने थी। (p 99)

(६) मिस्टर रॉलिसन (Mr Rawlinson) का कथन है कि दिसम्बर १८८१ में एक दिन प्रातःकाल मैं कपड़े पहन रहा था, उस समय मुझे ऐसा मालूम पड़ा कि कमरे में कोई है। इधर-उधर देखा कोई न था। परन्तु, शायद मेरे मन को आँखों के सामने मेरे मित्र डब्ल्यू०एस० का चेहरा और आकृति दिखाई देने लगी। (p 242)

इन भिन्न-भिन्न उदाहरणों से यही स्पष्ट होता है कि आभास और भ्रांति दोनों केवल आत्मा के भीतर से नहीं उठते। इनके लिये बाह्य पदार्थ चाहिए, जिनके संस्कार पहले मन पर पड़ चुके हों।

स्वप्न में भी प्रायः यही होता है। भ्रांति या आभास में इंद्रियाँ खुली रहती हैं, परन्तु वस्तुतः वह उतनी ही कर्मशून्य होती हैं, जितनी स्वप्न अवस्था में। जिस समय एक चित्रकार के सामने हाथी न होते हुए भी हाथी के चित्र को अपने मनःपटल पर खींचता है, या काग़ज़ पर उस चित्र को बनाता है, उस समय उसकी आँखें खुली होते हुए भी अपने सामने हाथी को नहीं देखतीं। फिर भी हाथी का दृश्य उसके मनमें होता है। स्वप्न में चक्षु खुले नहीं होते, जैसे कि जागृत में विकल्पना या आभास के समय होते हैं, परन्तु पुराने संस्कार सब दशाओं में एक प्रकार से ही कार्य करते हैं।

श्रीशंकराचार्यजी "वैधर्म्याच्च न स्वप्नादिवत्" (वेदा० २।२।२९) के भाष्य में 'स्वप्न' की मीमांसा इस प्रकार करते हैं —

अपि च स्मृतिरेषा यत्स्वप्नदर्शनम्। उपलब्धिस्तु जागरितदर्शनम्। स्मृत्युपलब्ध्योश्च प्रत्यक्षमन्तरं स्वयमनुभूयतेऽर्थविप्रयोगसम्प्रयोगात्मकमिष्टं पुत्रं स्मरामि नोपलभ उपलब्धुमिच्छामीति। तत्रैवं सति न शक्यते वक्तुं मिथ्या जागरितोपलब्धिरुपलब्धित्वात् स्वप्नोपलब्धिवदित्युभयोरन्तरं स्वयमनुभवता।

अर्थात् स्वप्न में जो कुछ दीखता है, वह स्मृतिमात्र होता है। जागृत में जो कुछ दीखता है, वह प्रत्यक्ष है। यह तो सभी जानते हैं कि स्मृति और प्रत्यक्ष में क्या भेद है। अर्थात् प्रत्यक्ष में पदार्थ उपस्थित होता है और स्मृति में नहीं। मैं पुत्र का स्मरण करता हूँ। इसका अर्थ यह है कि पुत्र प्रत्यक्ष नहीं है, उसको प्रत्यक्ष करने की आशा करता हूँ। इसलिये यह कहना ठीक नहीं हो सकता कि जागृत अवस्था में जो कुछ दीखता है वह मिथ्या है, क्योंकि जागृत की उपलब्धि स्वप्न की उपलब्धि के समान है। दोनों का भेद स्पष्ट ही है।

यहाँ श्रीशंकराचार्यजी यह दिखलाते हैं कि जागरित अवस्था में बाह्य पदार्थों का प्रत्यक्ष होता है, परन्तु स्वप्न में उनके संस्कारमात्र होते हैं। इसके अतिरिक्त वह यह भी दिखाते हैं कि जागृत अवस्था में प्रत्यक्ष हुए पदार्थों को हम स्वप्न की उपमा देकर मिथ्या नहीं कह सकते, क्योंकि स्वप्न और जागृत अवस्थाओं में भेद है। शांकर-भाष्य की भामती टीका में इसी भाव को स्पष्ट किया है.—

संस्कारमात्रजं हि विज्ञानं स्मृतिः। प्रत्युत्पन्नेन्द्रियसम्प्रयोगलिङ्गशब्दसारूप्यान्यथानुपपद्यमानयोग्यप्रमाणात्पत्ति

सचक्षुसावग्रोप्रमव तु ज्ञानमुपलभ्यः । तदिह निद्रावस्य तामन्यन्तरविरहात् संस्कारः परिशिष्यते । तेन संस्कारजत्वात् स्मृति सापि च निद्रादोषादविपरीताऽवर्तमानमपि पित्रादि वर्तमानतया भासयति ।

अर्थात् संस्कार मात्र से उत्पन्न हुए ज्ञान को स्मृति कहते हैं। इन्द्रियों और पदार्थों के संसर्ग से प्रत्यक्ष ज्ञान उत्पन्न होता है। सोते में बाहर के पदार्थ नहीं रहते किन्तु संस्कारमात्र रह जाते हैं। उन संस्कारों से स्मृति उत्पन्न होती है। सोते में वह स्मृति भी विपरीत हो जाती है। इसलिए पिता आदि सामने न होते हुए भी उपस्थित-से प्रतीत होते हैं।

इससे सिद्धांत यह निकलता है कि जिस प्रकार प्रत्यक्ष प्रमाण के पहले हुए बिना अनुमान, उपमान आदि नहीं हो सकते इसी प्रकार बिना पहले जागृत अवस्था के हुए स्वप्न भी नहीं हो सकते। जिस प्रकार अनुमान को गौतम मुनि ने न्यायदर्शन में "तत्पूर्वकम्" (प्रत्यक्ष का अनुगामी) बताया है, इसीप्रकार स्वप्न को भी तत्पूर्वकः अर्थात् जागृत् का अनुगामी समझना चाहिए।

अब हम यह देखना चाहते हैं कि अद्वैतवाद में स्वप्न की उपमा कहाँ कहाँ दी गई है, और वह कहाँ तक अद्वैतवाद को सिद्ध करती है।

अद्वैतवाद के सबसे प्रथम प्रचारक गौड़पादाचार्यजी * हुए हैं, जिनके शिष्य गोविन्दाचार्यजी शंकराचार्यजी के गुरु थे, इन्होंने मांडूक्य उपनिषद् पर पाँच कारिकाएँ लिखी हैं। श्रीशंकराचार्यजी ने इन्हीं कारिकाओं पर अपने अद्वैतवाद का भवन निर्माण किया है, दूसरी कारिका में बाह्य जगत् का अभाव सिद्ध किया गया है, और उसके लिये 'स्वप्न' की उपमा दी गई है।

वैतथ्यं सर्वभावानां स्वप्न आहुर्मनीषिणः ।
अन्तःस्थानात्तु भावानां संवृतत्वेन हेतुना ॥
अदीर्घत्वाच्च कालस्य गत्वा देशान्न पश्यति ।
प्रतिबुद्धश्च वै सर्वस्तस्मिन् देशे न विद्यते ॥
अभावश्च रथादीनां श्रूयते न्यायपूर्वकम् ।
वैतथ्यं तेन वै प्राप्तं स्वप्नमाहुः प्रकाशितम् ॥
अन्तःस्थानात्तु भेदानां तस्माज्जागरिते स्मृतम् ।
यथा तत्र तथा स्वप्ने संवृतत्वेन भिद्यते ॥
स्वप्न जागरिते स्थाने ह्येकमाहुर्मनीषिणः ।
भेदानां हि समत्वेन प्रसिद्धेनैव हेतुना ॥ (२, १—५)

अर्थ—सब बुद्धिमान लोग स्वप्न के समय के भावों को वैतथ्य अर्थात् मिथ्या समझते हैं, क्योंकि स्वप्न में जो चीज़ें देखी जाती हैं वह बाहर उपस्थित नहीं होतीं, केवल आत्मा के भीतर ही मौजूद होती हैं ॥ १ ॥

चूँकि स्वप्न देखने में समय नहीं लगता (अर्थात् हज़ारों कोस दूर की चीज़ उसी समय दीख जाती है) इसलिये सिद्ध होता है कि आत्मा उस चीज़ को दूर जाकर नहीं देखता। जब जाग पड़ता है तो भी उस स्थान पर नहीं होता, जहाँ पर कि वह स्वप्न की अवस्था में था। (इससे भी यही सिद्ध है कि आत्मा स्वप्न में अपने शरीर से बाहर नहीं जाता) ॥ २ ॥

स्वप्न में देखे हुए रथ वग़ैर: को श्रुति तथा श्रुति* दोनों ने अभाव हो माना है, इसलिये सिद्ध है कि स्वप्न में जो कुछ दिखाई देता है, वह सब मिथ्या है ॥ ३ ॥

इसी प्रकार जागृत अवस्था में देखे हुए पदार्थ भी मिथ्या ही हैं। क्योंकि जैसे स्वप्न में देखे हुए पदार्थ आत्मा के भीतर ही विद्यमान रहते हैं, बाहर नहीं, इसी प्रकार जागृत अवस्था में देखे हुए पदार्थों का हाल है ॥ ४ ॥

स्वप्न और जागृत दोनों अवस्थाओं में एक-सी ही बात होती है, इसलिए बुद्धिमान लोग दोनों अवस्थाओं को एक ही कहते हैं ॥ ५ ॥

तात्पर्य यह है कि जिस प्रकार स्वप्न में देखे हुए पदार्थों का कोई अपना अस्तित्व नहीं होता, इसी प्रकार संसार के सभी पदार्थ, जिनको हम जागृत अवस्था में देखते हैं, अपना कोई स्वतंत्र अस्तित्व नहीं रखते। यदि वस्तुतः यह बात ठीक है तो प्रत्यक्ष, अनुमान आदि सभी प्रमाणों पर पानी फिर जाता है, और जो कुछ सूर्य, चन्द्र, तारागण, पहाड़, नदी, मनुष्य आदि संसार में उपस्थित देखे जाते हैं, वह सब मिथ्या सिद्ध होते हैं। यदि यह सब वस्तुतः मिथ्या ही हैं, तो स्वप्न की उपमा के अनुसार जीवन के भिन्न-भिन्न विभाग अर्थात् व्यापार, कृषि आदि तथा साइंसों की प्रयोगशालाओं के भिन्न-भिन्न अन्वेषण सर्वथा व्यर्थ हो जायँगे। यदि स्वप्न में

* ईश्वरकृष्ण की सांख्यकारिका पर भी गौड़पाद का भाष्य है। परन्तु यह गौड़पाद शायद कोई भिन्न पुरुष हैं। लेखक

* यहाँ शायद बृहदारण्यक ४।३।१० की ओर संकेत है, जिसको हम ऊपर उद्धृत कर चुके हैं। लेखक

देखे हुए हाथी की भाँति ही जागृत में देखा हुआ हाथी है, तो उसको मोक्ष लेने के लिये कौन प्रयत्न करेगा? यदि एक जाति द्वारा दूसरी जाति पर किये हुए अत्याचारों का स्वप्न के पदार्थों के समान ही अभाव है, तो फिर हाथ पैर मारना, स्वराज्य-प्राप्ति की कोशिश करना, और दूसरों को अत्याचारी बताना यह सब व्यर्थ ही तो है।

परन्तु गौड़पादाचार्यजी की युक्तियों पर भी किंचित् विचार-दृष्टि डालनी चाहिए। केवल व्यावहारिक आपत्तियों को देखकर ही किसी सिद्धान्त का निश्चय नहीं कर देना चाहिए।

गौड़पादाचार्य की जो कारिकाएँ ऊपर उद्धृत की गई हैं, उन पर श्रीशंकराचार्यजी लिखते हैं:—

(१) जाग्रद्दृश्यानां भावानां वैतथ्यम् । (प्रतिज्ञा)

(२) दृश्यमानत्वात् । (हेतु)

(३) स्वप्नदृश्यभाववत् । (उदाहरण)

(४) यथा तत्र स्वप्ने दृश्यानां भावानां वैतथ्यम्, तथा जागरितेऽपि दृश्यत्वमविशिष्टमिति । (उपनय)

(५) तस्माज्जागरितेऽपि वैतथ्यम् स्मृतमिति । (निगमन)

हम दूसरे अध्याय में बता चुके हैं कि अद्वैतवादी वेदान्ती लोग नैयायिकों की कैसी खिल्ली उड़ाते हैं। श्रीहर्ष ने खण्डनखण्डखाद्य में गौतम-कृत न्यायदर्शन के प्रमाण आदि सभी पदार्थों का खण्डन किया है। परन्तु यह सन्तोष की बात है कि श्रीशंकराचार्य ने संसार को मिथ्या सिद्ध करने के लिये गौतम-निर्दिष्ट पाँचों अवयवों की आवश्यकता समझी, और अपनी युक्ति को इस रूप में प्रदर्शित किया। उनकी प्रतिज्ञा है—

कि जागृत अवस्था में देखी हुई चीज़ें मिथ्या हैं।

क्यों? इसके लिये हेतु देते हैं —

क्योंकि वह दिखाई देती हैं।

इसके लिये उदाहरण क्या? लीजिये —

जैसे स्वप्न में देखी हुई वस्तुएँ।

उपनय यह हुआ कि —

जिस प्रकार स्वप्न में देखी हुई वस्तुएँ मिथ्या हैं, उसी प्रकार जागते समय देखी हुई वस्तुएँ भी मिथ्या ही हैं।

इसलिए निगमन यह है कि:—

जागृत में देखी हुई वस्तुएँ मिथ्या हैं।

अब पाठकगण इस विचित्र युक्ति की परीक्षा करें। श्रीशंकराचार्यजी महाराज को "जगत् का मिथ्या होना" सिद्ध करना था। उसके लिये वह एक "हेतु" देते हैं, अर्थात् "दृश्यमानत्वात्" (दिखाई पड़ने से)। इसका तात्पर्य यह हुआ कि "जो वस्तु दिखाई पड़े वह मिथ्या"। अर्थात् "दृश्यमानत्व" और "मिथ्यात्व" सगे भाई बहिन हैं। जो दिखाई पड़ता है, वह अवश्य मिथ्या है। क्या इससे यह भी नतीजा निकालना चाहिए कि जो दिखाई न पड़े वह मिथ्या न होगी? अर्थापत्ति से तो यही सिद्ध होता है।

परन्तु, यह भी तो देखना चाहिए कि "दिखाई पड़ती हुई वस्तुओं" को "मिथ्या" सिद्ध करने के लिए श्रीशंकराचार्य के पास कौन-सा प्रमाण है? वस्तुतः कोई भी नहीं। उन्होंने इस बात की कल्पना करली है कि जो चीज़ दिखाई पड़ेगी, वह अवश्य मिथ्या होगी। स्वप्नवाद-रूपी भवन के लिये यह बहुत ही कमज़ोर बुनियाद है। फिर भी आश्चर्य है कि यह भवन किस प्रकार अबतक खड़ा रहा। सम्भव है कि, मध्यकालीन सांख्यवादियों के नास्तिक हो जाने के कारण आस्तिकों ने "डूबते को तिनके का सहारा" के अनुसार 'एकवाद' को ही ग़नीमत समझा और शंकराचार्यजी की युक्तियों की कभी मीमांसा नहीं की। वस्तुत. किसी पदार्थ के मिथ्या सिद्ध करने के लिए उसका "न दीख सकना" तो किसी-किसी अवस्था में 'हेतु" हो सकता है, परन्तु "देख सकना" नहीं। पाठकवृन्द विचार तो करें। मैं देख रहा हूँ कि मेरे सामने कुर्सी रखी हुई है। मैं कहता हूँ कि कुर्सी मिथ्या है। कोई पूछता है कि इसके "मिथ्या" कहने के लिए तुम्हारे पास क्या प्रमाण है। मैं कहता हूँ "चूँकि यह दीखती है"। मेरे हाथ में क़लम है। हाथ इसको स्पष्ट स्पर्श करता है। मैं कहता हूँ कि क़लम मिथ्या है। क्यों? इसलिए कि मैं इसका स्पर्श कर रहा हूँ। मुझे सुनाई दिया कि मेरे दरवाज़े पर एक मित्र ने आवाज़ दी। नौकर कहता है, "अमुक बाबूजी आये हैं"। मैं कहता हूँ, "नहीं"। वह कहता है, "मैं आवाज़ तो सुन रहा हूँ, वह खड़े-खड़े पुकार रहे हैं"। मैं कहता हूँ कि, "भाई, उनकी आवाज़ का सुनाई पड़ना ही तो इस बात की दलील है कि वह नहीं हैं।" क्योंकि श्रीशंकराचार्यजी-जैसे

धुरन्धर या जगद्गुरु दार्शनिक की व्यवस्था है कि "मिथ्यात्व" सिद्ध करने के लिए "दृश्यमानत्व" एक पर्याप्त हेतु है। सबसे बड़ी भूल, जो ब्रह्मा से लेकर जैमिनि तक समस्त वैदिक ऋषि तथा अन्य शिक्षित तथा अशिक्षित पुरुष करते रहे, वह यह थी कि किसी पदार्थ के अस्तित्व की सिद्धि के लिए वह अपनी ज्ञान-इन्द्रियों का सहारा लेते रहे, और आजकल के साइंसज्ञ भी ऐसा ही करते हैं। परन्तु श्रीशंकराचार्यजी ने इस भूल से लोगों को रोका। उन्होंने विचित्र गुरु यह बताया कि "जो चीज़ तुमको दीखे वह झूठी"। किसी उर्दू कवि ने भी तो ऐसा ही कहा है :—

> आँखें ही बला लाती हैं इन्सान पे अक्सर।
> अन्धे ही यहाँ अच्छे हैं बीना नहीं अच्छा॥

"अच्छा" बनने के लिए यहाँ एकमात्र अच्छी औषधि बतादी गई कि आँखें फोड़लो, अन्धे हो जाओ, फिर 'अच्छे' होने में कोई सन्देह न रहेगा!

परन्तु, शंकराचार्यजी क्या करें। उनके पास उदाहरण भी तो है, "स्वप्नदृश्यभाववत्"—जिस प्रकार स्वप्न में देखे हुए पदार्थ मिथ्या हैं, इसी प्रकार जागृत में देखे हुए पदार्थ भी होने चाहिए। परन्तु खेद तो यह है कि श्रीशंकराचार्यजी ने "स्वप्न क्या वस्तु है?" इसकी मीमांसा नहीं की। और यदि की भी, तो उसे अपने कल्पित सिद्धान्त की पुष्टि के लिए सर्वथा भुला दिया। (देखो, शांकरभाष्य वेदांत २।२।२६)। यदि थोड़ा-सा विचार कीजिए तो पता चलेगा कि "स्वप्न में देखे हुए पदार्थों के वैतथ्य" का कारण उनका "दीख पड़ना" नहीं है। किन्तु "जागृत अवस्था में न दीख पड़ना" है। यदि जिस वस्तु को स्वप्न में देखते हैं, उसको जागृत में भी देखते होते, तो उसको कभी मिथ्या न कह सकते। उसका स्वप्न में दिखाई पड़ना और जागृत में दिखाई न पड़ना यह इस बात की दलील है कि वह वस्तु मिथ्या है। कल्पना कीजिए कि मैंने स्वप्न में देखा कि मेरा भाई मेरे पास बैठा है। आँख खुली तो मैंने उसको अपने पास बैठा पाया। उस समय मैं यही तो कहूँगा कि मेरा स्वप्न सत्य निकला। और, यदि इसी प्रकार के सभी स्वप्न होजायँ तो संसार में स्वप्नों को मिथ्या कहने की प्रणाली ही उठ जाय। चूंकि साधारणतया यह नहीं होता, इसलिये कहते हैं कि स्वप्न में देखी हुई वस्तु का क्या विश्वास? जागने पर भी दिखाई दे तो ठीक। इससे यह बात सिद्ध हुई कि स्वप्न में देखी हुई वस्तु के मिथ्या होने का कारण यह नहीं है कि "वह दिखाई देती है", किन्तु यह कि वह जागने पर दिखाई नहीं देती। स्वप्न में देखी हुई वस्तु का दिखाई पड़ना उसके मिथ्या होने की दलील नहीं, किन्तु उसके संस्कार के सत्य होने की दलील है। किसी का फ़ोटो देखकर हम यह नतीजा नहीं निकालते कि वह पुरुष है ही नहीं, किन्तु उससे यही नतीजा निकालते हैं कि ऐसा पुरुष कभी-न-कभी, कहीं-न-कहीं अवश्य रहा होगा तभी तो उसका फ़ोटो लिया गया। यदि वह न होता तो उसका फ़ोटो भी न लिया जा सकता। इसी प्रकार "स्वप्न" तथा उसके भाई-बन्द—स्मृति, भ्रांति आदि—जिनका हमने इस अध्याय के आरम्भ में उल्लेख किया है, वस्तु के अस्तित्व को सिद्ध करते हैं न कि 'मिथ्यात्व' को। यदि मैं स्वप्न में अपने भाई को पास बैठा हुआ देखता हूँ तो चाहे वह भाई इस समय मेरे पास न हो अर्थात् उसका उस समय उस स्थान पर अभाव हो, तो भी उससे यह बात अवश्य सिद्ध होती है कि कभी-न-कभी और कहीं-न-कहीं उसका अस्तित्व अवश्य था। उसीके पुराने संस्कार मेरे मनोपटल पर अङ्कित हैं, और मैं स्वप्न देख रहा हूँ।

अब आपको मालूम होगया कि श्रीशंकराचार्यजी की युक्ति कितनी दूषित है, उन्होंने जागृत अवस्था में देखे हुए पदार्थों का "वैतथ्य" सिद्ध करने के लिए "दृश्यमानत्व" (दिखाई पड़ना)—नामी ऐसा "हेतु" दिया, जो स्वयं-सिद्ध नहीं किन्तु साध्य कोटि में है; और इसलिये "साध्यसमहेत्वाभास" कहलाने के योग्य है।

सम्भव है कि कोई अद्वैतवादी महोदय हम पर आक्षेप करने लगें कि हमने लौकिक उदाहरण देकर श्रीशंकरस्वामी के परमार्थ-सम्बन्धी तर्क की मीमांसा की है। परन्तु यह हमारा दोष नहीं है, स्वप्न का दृष्टान्त भी तो लौकिक ही है। वह अलौकिक नहीं हो सकता, और इसलिये, उसकी मीमांसा भी लौकिकरीत्या ही करनी पड़ेगी।

हमारी इस मीमांसा से गौड़पादाचार्यजी की पाँचों कारिकाओं पर भी पर्याप्त प्रकाश पड़ता है। पहली तीन कारिकाओं में उन्होंने जो बताया है कि स्वप्न में देखी

हुई वस्तुएँ मिथ्या होती हैं । यह बात केवल एक ही अंश में ठीक है, सर्वांश में नहीं; अर्थात् जब मैं स्वप्न देख रहा हूँ कि मेरा भाई मेरे पास बैठा हुआ है, तो यहाँ तक तो ठीक है कि वस्तुतः उस समय मेरे पास मेरा भाई उपस्थित नहीं है । अर्थात् स्वप्न में बिना पदार्थों के उपस्थित हुए भी उनके सम्बन्ध में भाव उपस्थित रहते हैं । परन्तु एक बात ठीक नहीं । गौड़पादाचार्यजी का यह मानना कि स्वप्नावस्था के भाव बिना किसी पदार्थ के उत्पन्न होगए सर्वथा अनुचित और युक्तिशून्य है । क्योंकि स्वप्न के भावों की उत्पत्ति बाहरी पदार्थों द्वारा ही हुई है, बिना उनके नहीं । मेरा भाई एक समय मेरे पास बैठा था । उसी घटना ने मेरे मन पर वह भाव छोड़ रक्खे थे जो स्वप्न अवस्था में अनेक मानसिक कारणों द्वारा उद्दीप्त होगये । इसलिए यह कहना कि स्वप्न में देखी हुई वस्तुएँ सर्वांश में "वैतथ्य" को सिद्ध करती हैं, कदापि ठीक नहीं हो सकता । जो मनुष्य आँखों से देखता हुआ नहीं देखता और कानों से सुनता हुआ नहीं सुनता, उसके विषय में हम कुछ नहीं कह सकते, जिस मनुष्य के पास 'दृश्यमानत्व' किसी वस्तु के 'वैतथ्य' की दलील है, उससे हम पूछते हैं कि वेदों में

पश्येम शरदः शतम्, शृणुयाम शरदः शतम्

अर्थात् सौ वर्ष तक हम देखते रहें, सौ वर्ष तक हम सुनते रहें आदि प्रार्थनाएँ क्यों की गईं । श्रीशंकराचार्यजी के कथनानुसार तो प्रार्थना ऐसी होनी चाहिये थी—

नेत्रहीना स्याम शरदः शतम्,
श्रोत्रहीना स्याम शरदः शतम्, इत्यादि

तीसरी और चौथी कारिकाओं में गौड़पादाचार्यजी ने स्वप्न और जागृत का जो सादृश्य दिखाया है, उसका तो सबसे अच्छा खण्डन श्रीशंकराचार्य के ही शब्दों में बतलाना अधिक उपयुक्त होगा । वेदान्तदर्शन के दूसरे अध्याय के दूसरे पाद के २९वें सूत्र अर्थात्

वैधर्म्याच्च न स्वप्नादिवत् (२ । २ । २९)

का भाष्य करते हुए शंकर स्वामी लिखते हैं.—

(१) यदुक्तं बाह्यार्थापलापिना स्वप्नादिप्रत्ययवज्जागरितगोचरा अपि स्तम्भादिप्रत्यया विनैव बाह्येनार्थेन भवेयुः प्रत्ययत्वाविशेषादिति । तत्प्रतिवक्तव्यम् ।

बाहर पदार्थ न माननेवाले कहते हैं कि जिस प्रकार स्वप्न में देखे हुए खम्भे आदि बाहर विद्यमान नहीं होते, उसी प्रकार जागृत में देखे हुए पदार्थ भी बाहर विद्यमान नहीं हैं, क्योंकि जागृत और स्वप्न के भाव एक-से ही हैं (अविशेषात्) । इसका खण्डन किया जाता है ।

(२) अत्रोच्यते—न स्वप्नादिप्रत्ययवज्जाग्रत्प्रत्यया भवितुमर्हन्ति ।

हमारा (शंकराचार्यजी का) कहना है कि स्वप्न के प्रत्यय के समान जाग्रत के प्रत्यय हो ही नहीं सकते ।

(३) कस्मात् । वैधर्म्यात् । वैधर्म्यं हि भवति स्वप्नजागरितयोः ।

क्यों ? इसलिए कि स्वप्न और जागृत अवस्थाओं में वैधर्म्य अर्थात् अन्तर है ।

(४) किं पुनर्वैधर्म्यम् । बाधाबाधाविति ब्रूमः । बाध्यते हि स्वप्नोपलब्धं वस्तु प्रतिबुद्धस्य मिथ्या मयोपलब्धो महाजन समागम इति । न ह्यस्ति मम महाजन समागमो निद्राग्लानं तु मे मनो बभूव तेनैषा भ्रान्तिरुद्बभूवेति ।

अन्तर क्या है ? स्वप्न में देखे हुए पदार्थ की जागृत में देखे हुए पदार्थ से बाधा होती है । अर्थात् जिस वस्तु को मैंने स्वप्न के समय देखा उसको जागने पर न पाया । मैंने स्वप्न में देखा कि किसी महापुरुष के दर्शन हुए । आँख खोली तो मालूम हुआ कि वह पुरुष नहीं है । केवल नींद आने के कारण मेरे मन में एक विकार हो गया, जिससे यह भ्रान्ति होगई ।

(५) नैवं जागरितोपलब्धं वस्तु स्तम्भादिकं कस्यांचिदप्यवस्थायां बाध्यते ।

परन्तु जो वस्तु जागते समय देखते हैं, जैसे खम्भे आदि; उनमें किसी अवस्था में भी बाधा नहीं पड़ती ।

इस प्रकार श्रीशंकराचार्य ने इस सूत्र के भाष्य में उसी बात का खण्डन किया है, जिसका वह कारिकाओं के भाष्य में मण्डन करते हैं । परन्तु यहाँ उनको अपने मत के स्थापन की अपेक्षा बौद्धयोगाचार मत के खण्डन का अधिक ध्यान था । उन्होंने यह न सोचा कि हम अपने ही शब्दों में अपने मत का खण्डन कर रहे हैं । और करते भी क्या ? व्याससूत्र तो इतना स्पष्ट था कि उसका दूसरा अर्थ हो ही नहीं सकता था ।

वह इसीके आगे स्वप्न का वही कारण बताते हैं, जो हम ऊपर बता चुके हैं :—

अपि च स्मृतिरेषा* यत्स्वप्नदर्शनम्। उपलब्धिस्तु जागरित दर्शनम्। स्मृत्युपलब्ध्योश्च प्रत्यक्षमन्तरं स्वयमनुभूयतेऽर्थ विप्रयोगसंप्रयोगात्मकमिष्टं पुत्रं स्मरामि† नोपलभ उपलब्धुमिच्छामीति।

अर्थात् स्वप्न में जो कुछ देखते हैं, वह स्मृति के कारण देखते हैं। जागते में जो देखा जाता है, वह उपलब्ध अर्थात् वस्तुतः प्राप्त होता है। उपलब्धि और स्मृति में तो स्पष्ट ही बड़ा भेद है। एक प्राप्त है और दूसरी अप्राप्त। जब मैं पुत्र को याद† करता हूँ तो इसका अर्थ यह है कि मेरे पास पुत्र नहीं है, मैं उसको पाना चाहता हूँ।

तत्रैवंसति न शक्यते वक्तुं मिथ्या जागरितोपलब्धिरुपलब्धित्वात् स्वप्नोपलब्धिवदित्युभयोरन्तरं स्वयमनुभवता।

इसलिए जागृत अवस्था की उपलब्धि को स्वप्न की उपलब्धि के समान मिथ्या नहीं कह सकते। शंकरस्वामी के इन शब्दों को देखकर कौन कह सकता है कि गौड़पादाचार्य्य का कथन युक्तियुक्त है।

आगे चल कर शंकरस्वामी और भी स्पष्ट करते हैं।—

अपिचानुभवविरोधप्रसङ्गाज्जागरित प्रत्ययानां स्वतोऽनिरावलम्बनतांवक्तुमशक्नुवतास्वप्नप्रत्ययसाधर्म्याद्वक्तुमिष्यते न च यो यस्य स्वतो धर्मो न सम्भवति सोऽन्यस्य साधर्म्यात्तस्य सम्भविष्यति। न ह्यग्निरुष्णोऽनुभूयमान उदक साधर्म्याच्छीतो भविष्यति। दर्शितं तु वैधर्म्यं स्वप्न जागरितयोः।

चूंकि योगाचार मतानुयायी, अपने अनुभव के विरुद्ध, जागृत अवस्था में देखे हुए पदार्थों का मिथ्या होना उन्हीं अनुभवों के आधार पर सिद्ध नहीं कर सकते, अतः वह स्वप्न के अनुभवों की उपमा देकर उन का मिथ्यात्व सिद्ध करना चाहते हैं। परन्तु जो जिसका निज धर्म नहीं होता, वह दूसरे के साधर्म्य से भी निज धर्म नहीं हो सकता। सब जानते हैं कि आग गर्म होती है। तो केवल इसलिए कि आग और पानी में कुछ साधर्म्य भी है, आग को ठण्डा नहीं कह सकते। इसी प्रकार यद्यपि जागृत और स्वप्न के अनुभवों में कुछ सादृश्य भी है, तथापि वह एक नहीं हो सकते, क्योंकि उनमें वैधर्म्य भी है।

गंगाप्रसाद उपाध्याय

---

* इस वाक्य पर भामती व्याख्या इस प्रकार है —

संस्कारमात्रजं हि विज्ञानं स्मृतिः। प्रत्युत्पन्नेन्द्रियसम्प्रयोगलिङ्गशब्दसारूप्यान्यथानुपपद्यमानयोग्यप्रमाणानुत्पत्तिलक्षणसामग्री प्रभवन्तु ज्ञानमुपलब्धिः।

† यहाँ 'स्मरामि' शब्द को शंकरस्वामी ने "उपलब्धुमिच्छामि" (पाना चाहता हूँ) के अर्थ में प्रयुक्त किया है, जो सर्वथा प्रसंग से विरुद्ध है। स्वप्न में जो स्मृति होती है, वह केवल जागृत में देखे हुए पदार्थों के संस्कार होते हैं।—लेखक

आह्वान

(१)

सोई विश्व-हृदय-तंत्री की तान मधुर मतवाली,
भव-मानस-सर चंचल करने-वाली मुग्ध मराली!
जीवन-मरु की रसमय सरिता, मूक प्राण की भाषा,
मर्मस्थल-निकुंज की कोकिल, अन्तस्थल की स्वाँसा!
आओ, इन प्यासी आँखों की तृष्णा अमिट बुझाओ।
मेरे भव्य मनोमन्दिर में आओ, कविते, आओ॥

(२)

भाव-राशि की रूप-राशि के अभिनव-साँचे-ढाली,
नव-रस-मय यौवन-तरंग की लेकर छटा निराली।
मंजु अलंकारों से सजकर, जगमग-जगमग करती,
कोमल कलित ललित छन्दों के नूपुर पहन थिरकती—
गजगामिनि, अनुपम शोभा की दिव्य प्रभा दरसाओ।
छमछम करती हृदय-कुंज में आओ, कविते, आओ॥

(३)

कोमल कर से डाल गले में मेरे मणिमय माला,
प्रिये, पिलाओ मुझे छलकता हुआ प्रणय का प्याला।
सुध-बुध बिसराकर मैं सारी, मंत्र-मुग्ध-सा झूमूँ,
मन्द-स्मिति-अंकित अधरों को ललक-ललक कर चूमूँ।
प्रेममयी! फिर तुम वीणा की मधुमय तान सुनाओ।
प्रिय सुषुप्ति के मधुर स्वप्न-सी आओ, कविते, आओ॥

(४)

शत-सहस्र वृश्चिक दशन की जो नित पीड़ा सहते,
शतशः छिद्र हुए हैं जिनमें आहें भरते-मरते।
खाते हैं जो गम रो-रोकर, घूँट लहू के पीते,
गिनते हुए मौत की घड़ियाँ तड़प-तड़प कर जीते।

ऐसी ताप-दग्ध प्राणों की करुण कहानी लाओ।
आँसू बनकर मुझे रुलाने आओ, कविते, आओ॥

(५)

उठे प्रबल विद्रोह-बवंडर, साहस-घन घहराएँ,
सत्य-धर्म की बलि-वेदी पर उष्ण रुधिर बरसाएँ।
जब-शासन पर वज्रपात कर क्रांति-दामिनी दमके,
पशु-प्रवृत्ति विप्लव-प्लावित हो, नव-जीवन-धन चमके।
उथल-पुथल मच जाय सृष्टि में, वह मल्लार सुनाओ।
दसों दिशाएँ कम्पित करती आओ, कविते, आओ॥

(६)

चिर-विनोदमय चिर मधुमय है उज्ज्वल लोक तुम्हारा,
प्रेम-तरंगित चिर-यौवन की बहती जिसमें धारा।
चिर-नवीन दृश्यों की सुषमा चेतनता हर लेती,
जहाँ कल्पना-कल्पवल्लरी मन-चीते फल देती।
हाथ पकड़कर दयामयी! तुम मुझे वहाँ पहुँचाओ।
बड़ी साध से बुला रहा हूँ, आओ, कविते, आओ॥

(७)

क्यों यह दारुण शोक-ताप की विपुल वेदना-पीड़ा?
क्यों वियोग की भीषण ज्वाला, निठुर मृत्यु की क्रीड़ा?
अन्धकारमय किस अनन्त की ओर प्रगति ले जाती?
विस्मयभरी पहेली जग को नहीं समझ में आती!
इस भेद की कठिन ग्रंथियाँ अब-उलझन सुलझाओ।
उस अनन्त का परिचय देने आओ, कविते, आओ॥

श्यामसुन्दर खत्री

आदिराज पृथु

प्रायः हमें बताया जाता है कि भारतवासी सदा से अनियन्त्रित उद्दण्ड शासन-प्रणाली के आदी हैं। यह बात बड़े भारी अज्ञान की सूचक है। सत्य यह नहीं है। इस देश में डेढ़सहस्र वर्षों तक गणराज्य रहे हैं। यहाँ प्रजातन्त्र राज्य थे। भौज्य, स्वाराज्य, वैराज्य, साम्राज्य आदि अनेक प्रकार के शासन-विधान ब्राह्मण ग्रन्थों के समय से यहाँ प्रचलित थे। वेदों के समय में भी प्रजा को राजसूत्र पर पूर्ण अधिकार था। राजा को अभिषेक के समय प्रजारंजन की प्रतिज्ञा करनी पड़ती थी। चारों वेदों के कई सौ मंत्रों में राष्ट्र-प्रकरण वर्णित है, जिसमें राजा का वरण, उसकी प्रतिज्ञा, प्रजाकामना, सभा-समिति का संगठन आदि विषय बड़ी उत्तमता से दिये हुए हैं। राजगद्दी पर बैठने के समय का उपदेश है—

आत्वाहार्षमन्तरेधि ध्रुवस्तिष्ठाविचाचलि ।
विशस्त्वा सर्वा वाञ्छन्तु मा त्वद्राष्ट्रमधि भ्रशत् ॥

ऋ० १० । १७३ । १

अर्थ—प्रधान अभिषेककर्ता कहता है—हे राजन्! तुम चुने गए हो, तुम आओ और सिंहासन पर ध्रुव होकर बैठो, तुम्हारा राज्य चलायमान न हो, सब प्रजाएँ तुम्हारे अनुकूल हों और तुम्हारे हाथ में पड़ कर राष्ट्र भ्रष्ट न हो।

और भी—

त्वा विशो वृणतां राज्याय—अथर्व ३ । ४ । २

ये समस्त जन तुम्हें राज्य करने के लिए वृणीत करें, अर्थात् चुनें।

भारतीय राजनीति-शास्त्र का एक प्रधान विषय यह है कि इस देश में पहले राजा नहीं था। प्रजाएँ स्वयं परस्पर अभिसन्धि करके रहती थीं। पर यह अवस्था अधिक दिन नहीं चली। उसके बाद शासन-शक्ति का विकास हुआ। गृहस्थों में गृहपति प्रधान हुए, ग्रामों में सभाएँ स्थापित हुईं; जनपदों में समिति का संगठन हुआ, उससे ऊपर आमंत्रण परिषद् बनी। प्रजापति-युग का अंत होकर राज-युग का आरंभ हुआ।

अथर्व वेद में इसका बड़ा सुंदर वर्णन है—

विराड् वा इदमग्र आसीत्
तस्या जातायाः सर्वमबिभेदियमेवेदं भविष्यतीति ॥ १ ॥
सोदक्रामत् सा गार्हपत्ये न्यक्रामत् ॥ २ ॥
गृहमेधी गृहपतिर्भवति य एवं वेद ॥ ३ ॥
सोदक्रामत् सा सभायां न्यक्रामत् ॥ ८ ॥
यन्त्यस्य सभां सभ्यो भवति य एवं वेद ॥ ९ ॥
सोदक्रामत् सा समितौ न्यक्रामत् ॥ १० ॥
यन्त्यस्य समितिं सामित्यो भवति य एवं वेद ॥ ११ ॥
सोदक्रामत् सामन्त्रणे न्यक्रामत् ॥ १२ ॥
यन्त्यस्यामन्त्रणमामन्त्रणीयो भवति य एवं वेद ॥ १३ ॥ अथर्व ८।१०

अर्थ—१ (अग्रे) सबसे प्रथम केवल एक (वि-राड्)

अर्थात् राजा के विहीन प्रजाशक्ति ही केवल थी। इस राजविहीन अवस्था को देखकर (सर्वम्) सब (अबिभेत्) भयभीत होगए और सोचने लगे कि क्या यही अवस्था सदा रहेगी।

२. (सा) वह प्रजाशक्ति (उदक्रामत्) उत्क्रमण को प्राप्त हुई और (गार्हपत्ये) गृहपति में परिणत हो गई। अर्थात् जो अलग अलग प्रजाएँ थीं, उनमें व्यवस्थित कुटुंब-प्रणाली प्रचलित हुई। गृहस्थी को चलाने वाले की गृहपति पदवी हुई। जो इस व्यवस्था को जानता है, वही सच्चा गृहपति है।

३. (सा) वह प्रजाशक्ति आगे उत्क्रान्त हुई और (सभायां) सभा में (न्यक्रामत्) परिणत हुई, अर्थात् उसके बाद सभा बनी। इस तत्व को जो जानता है वही 'सभ्य' के अधिकार समझने के कारण सच्चा समासद् (सभ्य) है।

४ (सा) वह प्रजाशक्ति उत्क्रान्त हुई। उससे समिति बनी। जो इस विधान सगठन को जानता है वही उपयुक्त 'सामित्य' (समिति का सदस्य) है।

५ (सा) वह प्रजाशक्ति उत्क्रान्त हुई। उससे आमन्त्रण परिषद् का सगठन हुआ। इस विकास को पूरी तरह समझने वाला ही आमन्त्रणीय (आमन्त्रण परिषद्) का सदस्य हो सकता है।

अन्य स्थान पर कहा है कि प्रभुता या आधिपत्य का अन्तिम स्रोत वह विराज—राजाविहीन प्रजा ही—है।

यद्ज प्रथमं सदभूव स हि तत्स्वराज्यमियाय।
यस्मान्नान्यत् परमस्ति भूतम्। अथर्व १०।७।३१

जो पहली अवस्था थी, वह स्वराज्य की अवस्था थी। उससे अधिक शक्तिशाली या परसामर्थ्य वाली कोई अन्य वस्तु नहीं है। जो पीछे (भूत) सभा समितियाँ राजशक्ति आदि हुईं, वे स्वराज्य से ऊपर नहीं हैं। यद्यपि ये प्रजासम्मत हैं, परन्तु अन्तिम अवस्था में प्रभुता प्रजा के ही हाथ में है।

सभा और समिति को प्रजापति की दुहिता (पुत्री) कहा गया है—

सभा च मा समितिश्चावतां प्रजापतेर्दुहितरौ संविदाने।
येन सगच्छा उप मा स शिक्षाच्चारु वदानि पितर-सगतेषु॥
अथर्व—

प्रजापति (ट्राइबल् लीडर) की पुत्री सभा और समिति हैं। वे दोनों मेरी रक्षा करें। एक दूसरे के अनुकूल (संविदाने) होकर वे कार्य निर्वाह करें। जिस सभासद् के साथ मैं मिलू, उससे मुझे शिक्षा प्राप्त हो। हे पितरो (पालन करने वाले सभ्यो), संगतियों (Assemblies) में मैं उत्तम प्रकार से भाषण करूँ।

प्राचीन शासन-प्रणाली में जनसमुदाय का कितना हाथ था, यह इन अवतरणों से ज्ञात होता है। सब प्रमाणों का संचय करके वैदिक-कालीन राष्ट्र-विधान का निर्माण करना अभी शेष है। किसी विद्वान् को यह प्रकरण हाथ में लेने से पर्याप्त सफलता मिलने की संभावना है।

अर्थशास्त्र, पुराण, महाभारत, ब्राह्मण आदि ग्रन्थों में भी सिद्धान्त और इतिहास की दृष्टि से राजशक्ति के उदय और विकास पर बहुत शास्त्रार्थ पाया जाता है। वायु, मत्स्य, ब्रह्माण्ड, विष्णु, पद्म और भागवत पुराणों में तथा महाभारत में प्रजापति वेन और आदिराज पृथु का चरित्र दिया हुआ है। उससे वैदिक-कालीन शासन-पद्धति पर तथा केन्द्रस्थ और विहित (विधानयुक्त) राजशक्ति के विकास पर बड़ा प्रकाश पड़ता है।

आर्यों की प्राचीन अवस्था में प्रधान पुरुष प्रजापति कहलाते थे। अन्तिम प्रजापति वेन था। वह अत्याचारी और निर्दयी था। उसको पदच्युत करके ऋषियों ने पृथु का अभिषेक किया और पृथु आदिराजा कहलाया। उसने सब प्रजाओं का रंजन किया, इसलिए उसकी उपाधि राजा हुई।

(रंजिताश्च प्रजा सर्वास्तेन राजेति शब्द्यते)

प्रजारंजन से राजा शब्द की व्युत्पत्ति कालिदास को भी मान्य थी[1]। इस विषय पर आदिराज पृथु-शीर्षक एक लेखमाला श्रीयुत प्रो० पी० के० तैलङ्गजी ने मदरास के थियोसोफिस्ट नामक पत्र मे १९२६ के जून, जुलाई, अगस्त मास के अङ्कों में निकाली थी। उसीके आधार पर आदिराज पृथु का चरित्र लिखा जाता है।

पृथु वेन का पुत्र और उत्तराधिकारी था। वेन प्रजा-

१. यथा प्रह्लादनाच्चन्द्रः प्रतापात्तपनो यथा।
तथैव सोऽभूदन्वर्थो राजा प्रकृतिरञ्जनात्॥
रघुवंश ४। १२

पति था और पृथु के समय से राजाओं का युग शुरू होता है। वेन मातामह-दोष के कारण बड़ा अत्याचारी अथवा आर्य-राजनीति के नियमों की अवहेलना करनेवाला हुआ। वेन की उत्पत्ति में दो जातियों का रक्त मिला हुआ था। वह विशुद्ध आर्य नहीं था। मातृवंश के कारण उसमें पीछे जिन दोषों का प्रादुर्भाव हुआ, उनका नाम मातामह-दोष है।

वेन के पिता का नाम अङ्ग (पद्मपुराण के अनुसार; महाभारत के अनुसार अतिबल) तथा माता का सुनीथा था। सुनीथा के पिता का नाम मृत्यु था। अङ्ग आर्य जाति का था और सुनीथा भिन्न जाति की कन्या थी। वह एक गन्धर्व तपस्वी को बड़ी पीड़ा पहुँचाती थी[1]। उस तपस्वी ने उसे मना किया और उसे धर्म की शिक्षा दी, जो सुनीथा की समझ में न आई। उसने कहा—'हे भद्रे, बड़े आदमी ताड़न का जवाब ताड़न से नहीं देते, और क्रोधित किये जाने पर क्रोध नहीं करते—यही धर्म की मर्यादा है[2]।' उसने उत्तर दिया कि मेरा पिता तो दुष्टों का नित्य संहार करता है और सज्जनों को पीड़ा नहीं पहुँचाता। इससे उसे कुछ दोष नहीं लगता और सम्भवतः वह पुण्य का कार्य ही करता है[3]। तपस्वी का यह कहना कि महाजन लोग ताड़न का जवाब ताड़न से नहीं देते, सुनीथा की समझ में न आया; क्योंकि वह अपने पिता को नित्य दुष्टों को दण्ड देते देखती थी। उसने अपने पिता से आकर इसका रहस्य पूछा[4] कि एक तपस्वी कुमार को मारने पर उसने कहा कि मार का जवाब मार से नहीं देना चाहिए। इस प्रश्न का मृत्यु ने कुछ उत्तर न दिया और सुनीथा फिर तपस्वी के पास आकर उसे सताने लगी, इस पर तपस्वी ने शाप दिया—

पापाचारमयः पुत्रो देवब्राह्मणनिन्दकः।
सर्वपापरतो दुष्टस्तवगर्भाद् भविष्यति ॥

अर्थात् तेरे गर्भ से अत्यन्त पापी, दुष्ट, अनाचारी और देवता ब्राह्मणों को सतानेवाला एक पुत्र उत्पन्न होगा। जब मृत्यु को यह समाचार मालूम हुआ तो वह बहुत डरा और उसने सुनीथा को सज्जनों की संगति करने का उपदेश दिया। उसने बहुत प्रयत्न किया कि उसका विवाह देव, गन्धर्व, मुनि आदि अर्थात् आर्यजाति के किसी श्रेष्ठ पुरुष के साथ हो जाय, पर सुनीथा को अपनी पत्नी बनाना किसी ने स्वीकार न किया। यहाँ तक कि उसकी जातिवाले भी उससे असन्तुष्ट होगये। तब पुरुषों को प्रमोहित करदेने वाली अपनी रूप-सम्पत्ति के विश्वास पर सुनीथा ने अपने-आप पति ढूँढने का सङ्कल्प किया। उसको भेंट अत्रि गोत्र में उत्पन्न अङ्ग से हुई। अङ्ग ने इन्द्र के समान पुत्र पाने के लिए बड़ी तपस्या की थी। इन्हें वरदान मिला था—

कस्यचित्पुण्यवीर्यस्य पुण्यां कन्यां विवाहय।
तस्यामुत्पादय सुतं पुण्यं पुण्यावहं प्रियम् ॥

कि किसी पुण्यात्मा की पवित्राचरण वाली कन्या से विवाह करके सदाचारी पुत्र को उत्पन्न करो। ब्राह्मण होते हुए भी अङ्ग प्रजापति बनाये गये थे। इस समय सुनीथा को पति की और अङ्ग को पत्नी की चाह थी। भेंट होते ही सुनीथा ने अङ्ग को मोहित कर लिया और उससे विवाह करके एक पुत्र उत्पन्न किया। उसका नाम वेन रखा गया। सुनीथा जानती थी कि पुत्र को शाप दिया गया था, पर वेन ने इसके विषय में कुछ जाने बिना ही विवाह कर लिया था। परन्तु अब सुनीथा हृदय से चाहती थी कि उसका पुत्र आर्य नीति-धर्म का पालन करनेवाला हो। उसने कहा—

धर्माङ्गानि सुपुण्यानि सुताङ्गे परिदर्शयेत्।
सत्यभावादिकान् पुण्यान् गुणान् सा वै प्रकाशयेत् ॥
इत्युवाच सुतं सा हि चाहं धर्मसुता सुत।
पिता ते धर्मतत्त्वज्ञस्तस्माद् धर्मं समाचर ॥

अर्थात् वह अपने पुत्र के शरीर में धर्म और पुण्य तथा सत्य आदि नीति को प्रकाशित करने की चेष्टा करती थी। उसने पुत्र से कहा कि मैं धर्म की पुत्री हूँ और तुम्हारे पिता धर्मज्ञ हैं, इसलिये तुम धर्म का आचरण करो। उसने उसे इतनी अच्छी शिक्षा दी कि ऋषियों ने वेन को प्रजापति नियुक्त किया। परन्तु समय आते ही वेन का मातामह-दोष प्रकट होगया। अनार्य

---

१. तस्यापराधनेवासौ सचकार दिने दिने।
२. ताडनात् ताडनं भद्रे न कुर्वन्ति महाजनाः।
आकुष्टा नैव कुप्यन्ति चाति धर्मस्य संस्थितिः ॥
३. असतो घातयेन्नित्यं सतो न परितापयेत्।
नैव दोषो भवेत्तस्य महापुण्येन वर्तयेत् ॥
४. न ताडयेत् ताडयन्तं क्रोशन्तं नैव क्रोशयेत्।
इत्युवाच स मां तात तन्मे त्वं कारणं वद ॥

जाति की सन्तति होने के कारण वह आर्य दंडनीति के आदर्श का पालन न कर सका। पुराणों में भी लिखा है कि माता के अंश से वेन के शरीर में निषाद रहते थे।

प्रजापति होते ही वेन ने अत्याचार करना शुरू कर दिया—

स्थापनं स्थापयामास धर्मापेतं स पार्थिवः।
वेदशास्त्राण्यतिक्रम्य ह्यधर्मे निरतोऽभवत् ॥
निःस्वाध्यायवषट्कारा प्रजास्तस्मिन् प्रशासति।
प्रासन् न पपुः सोमहुतं यज्ञेषु देवताः ॥
न यष्टव्यं न होतव्यमिति तस्य प्रजापतेः।
आसीत् प्रतिज्ञा क्रूरेयं विनाशे प्रत्युपस्थिते ॥—वायु

अर्थ—उसने धर्म से रहित राज्य की स्थापना की। वेद और शास्त्रों का अतिक्रमण करके वह अधर्म करने लगा। उसके शासन में वेदों का स्वाध्याय और वेदोक्त कर्मों का लोप होगया और देवों को यज्ञों में सोमपान मिलना दुर्लभ होगया। उसका विनाश निकट होने पर उसने ऐसी क्रूर प्रतिज्ञा प्रचारित की कि कोई यज्ञ और हवन न करे।

उसने प्रजातन्त्र अधिकारों की अवहेलना करके अनियन्त्रित शासन को प्रचलित करना चाहा—

अहमिज्यश्च पूज्यश्च सर्वयज्ञ द्विजातिभिः।
मयि यज्ञो विधातव्यो मयि होतव्यमित्यपि ॥
स्रष्टा धर्मस्य कश्चान्यः श्रोतव्यं कस्य वै मया।
वीर्यश्रुततपः सत्यैर्मया वा कः समो भुवि ॥
प्रभवः सर्वलोकानां धर्माणां च विशेषतः।
इच्छन् दहेयं पृथिवीं प्लावयेयं जलेन वा ॥
सृजेयं वा ग्रसेयं वा नात्र कार्या विचारणा ॥—वायु

अर्थ—वेन ने आज्ञा दी कि धर्माधिकार सब मेरे वश में हैं। मेरे ही नाम पर यज्ञ करो, मेरी पूजा करो, मेरे ही लिए यज्ञ और हवन करो। मेरे अतिरिक्त धर्म को बतानेवाला और कौन है, मैं किसके साथ धर्म का आमंत्रण श्रवण करूँ। वीर्य, ज्ञान, तप और सत्य में मेरे समान पृथ्वी पर कोई नहीं है। सब मनुष्यों और धर्मों का प्रभव-स्थान मैं ही हूँ। यदि चाहूँ तो पृथ्वी को आग में जलादूँ, और चाहूँ तो पानी में डुबादूँ। चाहे बनाऊं या बिगाड़ूं, इसमें कोई कुछ विचार नहीं कर सकता। और भी—

एते चान्ये च ये देवाः शापानुग्रहकारिणः।
नृपस्यैते शरीरस्था सर्वदेवमयो नृपः ॥
एतज्ज्ञात्वा मयाऽऽज्ञप्तं यथावत् क्रियतां तथा।
ममाज्ञापालनं धर्मो भवतां च तथा द्विजाः ॥—विष्णु

अर्थ—जितने देवगण शाप या अनुग्रह करनेवाले हैं, वे सब राजा के शरीर में ही हैं, क्योंकि राजा सर्वदेवमय है। यह जान कर तुम मेरी आज्ञा का पालन करो—यही तुम्हारे लिए धर्म है। इस प्रकार वेन ने अनधिकार चेष्टा की और अपनी शक्ति के दैवी होने का दावा पेश किया। जाति, कुल, धर्मों का तिरस्कार करके अपने-आप को ही इनका नियन्ता बताया। राजा की आज्ञा सब धर्म कर्म का सार है, यह दावा किसीको भी मान्य नहीं हो सकता। जब-जब राजशक्ति इतनी उद्दंड होगई है, तभी इसके प्रतिकार के लिये प्रजा ने विद्रोह किया है। शासक को शरीरस्थ षड्-रिपुओं का विजेता होना चाहिये; परन्तु वेन में काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सर इन सबकी प्रबलता थी। प्राचीन परम्परा से आई हुई नीति का परित्याग करनेवाला प्रत्येक शासक ऐसे ही गर्त में गिरता है। इसीलिए आचार्य विष्णुगुप्त ने विनय को राजा का प्रधान गुण बताया है। प्रजाओं का विनेता बनने के लिये स्वयं 'विनीत' होना चाहिए। ऋषियों ने वेन की नीति का विरोध किया, पर उसके स्तम्भ (हठ) और मान के आगे उनकी कुछ न चली। पुराण कहते हैं कि तब उन्होंने उसके शरीर का मन्थन किया (शरीरं ममन्थुस्तस्य)। विद्रोह का ही दूसरा नाम 'मन्थ' है। तात्पर्य यह कि समस्त जन-मण्डल में मन्थन की तरह आन्दोलन उठा। वेन ने इसके दबाने के लिए निषादों की सहायता ली और पृथु जो सेनाध्यक्ष था उसको उभाड़ा। पुराणों में लिखा है कि उसके बाएं हाथ से कुरूप, काले निषाद, धीवर, तुम्बर, तुवर, खस आदि म्लेच्छ जाति के लोग, जिनके कारण वह अधर्म करता था और माता के अंश से जिनके साथ उसका सम्बन्ध था, उत्पन्न हुए। परन्तु—

तेन द्वारेण तत्पापं निष्क्रान्तं तस्य भूपतेः।

इस प्रकार वेन के बाएँ हाथ से उन म्लेच्छों के निकलने पर मानो उसी रास्ते उसका पाप भी निकल-कर चला गया। इस प्रकार राज्य का इन बर्बरों से छुटकारा हुआ और वेन की शक्ति का मुख्य स्तम्भ भिन्न होगया।

वेन के सीधे हाथ से पूर्ण कवच और अस्त्रधारी पृथु का जन्म हुआ।[1] इन विशेषणों से ज्ञात होता है कि पृथु के हाथ में सेना-बल था और अभीतक वह बराबर वेन की सहायता करता था। वेन की शक्ति नष्ट होने पर ऋषियों[2] को पृथु को ही अधिकारयोग्य उत्तराधिकारी मानना पड़ा। जो शक्ति वस्तुतः पृथु के हाथ में थी, उस पर विधान की अनुमति देकर ऋषियों ने उसे न्याय्य ठहरा दिया। वायुपुराण ने पृथु के विषय में लिखा है—

आदिराजो महाराजः पृथुर्वैन्यः प्रतापवान् ।

प्रजापति युग का अन्त होकर राजशासन-पद्धति का प्रारम्भ हुआ और प्रतापी महाराज पृथु को आदिराज की उपाधि मिली।

पृथु ने अनेक नवीन बातों की स्थापना की। उसने प्रजापति युग की अव्यवस्था को हटा कर दृढ़ नीति और व्यवस्था की स्थापना की और आर्य राजधर्म का एक आदर्श उपस्थित किया। प्रजापति पद्धति और राजतंत्र-शासन-पद्धति के भेद विचारणीय हैं।

(१) प्रजापति किसी कुल या गोत्र का नेता होता था। उसकी अधिकार-सत्ता दूसरे प्रजापतियों के साथ सम्बन्ध होने पर निर्भर थी।

राजा की शक्ति राजनैतिक थी। इसका लक्षण गोत्र या जाति के साथ रिश्ता न होकर राष्ट्रीयता-तत्त्व था। राष्ट्रीय कार्यों के लिए राजा की आवश्यकता अनिवार्य थी। उसका काम प्रजा का रक्षण और संवर्द्धन था।

(२) प्रजापति कुलसमूहों के नेता थे, इसलिए जितने जनसमुदाय थे सब पृथक्-पृथक् प्रजापति चुनते थे। सब एक दूसरे से स्वतन्त्र होकर परिमित भूक्षेत्र का शासन करते थे और उनको अधिकतर उन्हीं बातों से मतलब था जिनका सम्बन्ध जाति से होता था। हर एक प्रजा के साथ प्रजापति के शासन का सम्बन्ध नहीं था। राजाओं का दृष्टिक्षेत्र राष्ट्रीय था। वे प्रशस्त भूभाग का शासन करते थे और प्रजा-सम्बन्धी प्रत्येक विषय पर अलग अलग विचार करते थे। इसीलिए पृथु को महाराज कहा गया है, और महाभारत में उसका कर्तव्य भौम ब्रह्म का भरण करना बताया गया है। भौम ब्रह्म से तात्पर्य राष्ट्र के समस्त अंगों से है।

(३) प्रजापतियों के समय में देश और राष्ट्र स्थितिशील अवस्था में थे। जाति और पृथक् वर्गों की रूढ़ियों ने शासन को जकड़ रक्खा था। पर राजा के आने पर राष्ट्र बराबर उन्नति करता और परिवर्तित होता था। पृथु को अश्वमेधसमाहर्ता और राजसूयाभिषिक्तानामाद्यः स वसुधाधिप कहा गया है। इससे ज्ञात होता है कि राजा लोग नए नए देश जीतकर राज की सीमा को बढ़ाते थे और अनेक प्रकार से उसमें उन्नति करने की चेष्टा करते थे।

पृथु के विषय में लिखा है कि—

आपस्तस्तम्भिरे चास्य समुद्रमभियास्यतः ।
पर्वताश्च विशीर्यन्ते ध्वजभङ्गश्च नाभवत् ॥—वायु
पर्वताश्च ददुर्मार्गं—विष्णु

उसके चलने पर पानी की गति स्तम्भित होजाती थी और पर्वत रास्ता छोड़ देते थे। कहीं भी उसके झंडे की गति नहीं रुकती थी।

इस प्रकार राजाओं के शासन में विजय द्वारा राष्ट्रसंवर्द्धन होता था। प्रजापति लोग इस विषय में बिलकुल उदासीन थे।

(४) जाति के वृद्ध जन ऋषि, मुनि और द्विज प्रजापति की नियुक्ति करते थे। ये लोग जाति की सभ्यता के रक्षक और मूर्तिमान् चिह्न थे।

राजा की नियुक्ति में सारे पौरजानपद भाग लेते थे। लोक में सशरीर विचरनेवाले नागरिकों के अतिरिक्त और भी अमूर्त देव तथा शक्तियाँ राजा के वरण में भाग लेती थीं। पृथु के अभिषेक के विषय में लिखा है—

ततो नद्यश्च समुद्राश्च रत्नान्यादाय सर्वशः ।
अभिषेकाय तोयं च सर्वे एवोपतस्थिरे ॥

---

१ आद्यमाजगवं नाम धनुर्गृह्य महारवम् ।
शरांश्च दिव्यान् रक्षार्थं कवचं च महाप्रभम् ॥—वायु
उत्पन्नः सधनुः सशरो गदी कवची साङ्गदः ।—मत्स्य

२ प्रो० काशीप्रसाद जायसवाल का मत है कि ऋषियों से यहाँ तात्पर्य चातुर्वर्ण्य के अग्रणी नेताओं से है, क्योंकि वेन प्रकरण के आदि में लिखा हुआ है कि चारों वर्णों ने साथ जाकर ही राजा के लिये ब्रह्मा से प्रार्थना की थी।

[देखो—हिन्दू पॉलिटी वाल्यूम दूसरा, पृष्ठ ४७-४८ पर टिप्पणी।]

पितामहश्च भगवान् अंगिरोभिः सहामरैः ।
स्थावराणि च भूतानि जंगमानि च सर्वशः ॥
समागम्य तदा वैन्यमभ्यषिञ्चन् नराधिपम् ।
महता राजराज्येन महाराज महाद्युतिम् ॥
सोऽभिषिक्तो महाराजो देवैरंगिरसः सुतैः ।
आदिराजो महाराज पृथुर्वैन्यः प्रतापवान् ॥—वायु

अर्थ—उस पृथु के समीप में नदियाँ और समुद्र रत्नों का उपहार लेकर और अभिषेक के लिए जल लेकर उपस्थित हुए। पितामह ब्रह्मा ने अंगिरा ऋषियों और देवताओं तथा स्थावर जंगम भूतों के साथ चारों ओर से आकर महाद्युति वाले नराधिप महाराज पृथु का राज्याभिषेक किया। इस प्रकार देवों और अंगिरस् ऋषियों से अभिषिक्त होकर प्रतापी वैन्य पृथु आदिराज की पदवी से सुशोभित हुए।

(५) प्रजापति के लिए यह क़ैद नहीं थी कि वह क्षत्रिय वर्ण का ही हो। वेन के प्राक्कालीन अत्रि, अंग तथा अन्य प्रजापति ब्राह्मण भी थे। सम्भवतः इसका कारण यह हो सकता है कि उस समय वर्णों का विभाग इतनी कड़ाई के साथ नहीं हुआ था।

राजा के लिए क्षत्रिय होना परम आवश्यक था। कालिदास ने भी राज्य को क्षत्रिय के साथ सतत सम्बद्ध माना है—

क्षतात्किल त्रायत इत्युदग्रः क्षत्रस्य शब्दो भुवनेषु रूढः ।
राज्येन किं तद्विपरीतवृत्तेः प्राणैरुपक्रोशमलीमसैर्वा ॥

अर्थात् क्षति से रक्षा करने के कारण क्षत्र शब्द की प्रसिद्धि है। उस क्षत्र से विपरीत वृत्ति राज्य (जहाँ के शासक की वृत्ति अर्थात् प्रजापालन-पद्धति क्षत्रोचित न हो) किसी काम का नहीं। राज्य का क्षत्र के साथ अटूट सम्बन्ध है। पृथु को भी क्षत्रिय-पूर्वज कहा गया है। उसकी पदवी प्रतापवान् है। प्रताप के अर्थ हैं—क्षात्र-धर्म की जागरूकता। महाभारत के अनुसार प्रजा पृथु से कहती हैं—

सम्राडसि क्षत्रियोऽसि राजा गोप्ता पितासि नः ।

अर्थात् तुम सम्राट् हो, क्षत्रिय हो, हमारे राजा, रक्षक और पिता हो।

(६) प्रजापतियों का काम प्रजापालन समझा जाता था। प्रजापालन का सामान्य अर्थ सबके लिए प्रयुक्त होता था और उससे किसी निश्चित कर्तव्य की ध्वनि नहीं निकलती थी। वेन से ऋषि शिकायत करते हैं—

पालयिष्ये प्रजाश्चेति त्वया पूर्वं प्रतिश्रुतम् ।

अर्थात् तुमने पहले यह वचन दिया था कि मैं प्रजा का पालन करूँगा। यह वादा राजप्रतिज्ञा की तरह दृढ़ और नियन्त्रण करनेवाला न था।

राजा का काम प्रजारंजन था, अर्थात् न केवल सामान्य रूप से उपद्रवों से प्रजा की रक्षा करना ही राजा का कार्य है, बल्कि कोई निश्चित लाभजनक कार्य करके प्रजा को प्रसन्न करना भी राजकार्य है। प्रजारंजन के लिए राजा को एक विशेष प्रतिज्ञा करनी पड़ती थी। राजन् शब्द ही रञ्ज् धातु से बना है, जिसके अर्थ तृप्त करने के हैं—राजाप्रकृतिरञ्जनात्, राजा प्रजारञ्जनलब्धवर्णः।

भवभूति ने उत्तर रामचरित में इसी भाव को दुहराया है। इससे प्रमाणित होता है कि विक्रम की आठवीं शताब्दी तक राजा के यौगिक अर्थ को भारतवासी जानते और व्यवहार में समझते थे। वशिष्ठ अष्टावक्र के द्वारा नवाभिषिक्त राम के लिये आदेश भेजते हैं—

युक्तः प्रजानामनुरञ्जने स्यास्तस्माद्यशो यत् परमं धनं वः ।

अर्थात् प्रजाओं के अनुरंजन में सदा तत्पर रहना, क्योंकि तुम्हारे लिए अनिन्दित यश ही परम धन है।

राम ने इसका उत्तर कितना निश्चित और दृढ़तापूर्ण दिया है—

स्नेहं दयां च सौख्यं च यदि वा जानकीमपि ।
आराधनाय लोकस्य मुञ्चतो नास्ति मे व्यथा ॥

अर्थात् स्नेह को, दया को, सुख को, अथवा यदि सीता को भी लोक के आराधन के लिए छोड़ना पड़े तो मुझे दुःख नहीं होगा। राजा को इस प्रकार की प्रतिज्ञा से बद्ध होना पड़ता था। अन्तिम मौर्य राजा बृहद्रथ अपनी प्रतिज्ञा से दुर्बल होगया था (प्रतिज्ञादुर्बल—हर्षचरित)। वह विदेशियों के आक्रमण से लोक की रक्षा करने में असमर्थ था, इसलिए ब्राह्मण सेनापति पुष्यमित्र शुङ्ग ने उसका वध कर दिया और दुर्दान्त यवनों के आक्रमण को रोकनेवाले शक्तिशाली राज्य की स्थापना की। क्षत्रप रुद्रदमन ने बड़े गौरव से अपने-आपको गिरनार के शिलालेख में सत्यप्रतिज्ञ (अभिषेक के समय की हुई प्रतिज्ञा का ठीक-ठीक पालन करनेवाला) लिखा है। पृथु के लिए भी वायुपुराण में लिखा है—

प्रजास्तेनानुरञ्जितास्ततो राजेति नामास्यानुरागादजायत ।

अर्थात् उसने प्रजानुरञ्जन किया, इसलिए वह राजा

कहलाया। महाभारत में लिखा है कि अभिषेक कराते समय ऋषियों ने पृथु से कहा—

प्रतिज्ञामधिरोहस्व मनसा कर्मणा गिरा।
पालयिष्याम्यहं भौमं ब्रह्म इत्येव चासकृत्॥

अर्थात् मन, कर्म और वाणी से प्रतिज्ञा करो कि मैं भौमब्रह्म अर्थात् राष्ट्र का पालन करूँगा। इस प्रतिज्ञा पर तुम ऐसे आरूढ़ होते हो जैसे सवार घोड़े पर। यदि गिरोगे तो तुम्हारे लिए बड़ी आशंका है। इस प्रतिज्ञा से तुम वापस भी नहीं फिर सकते, क्योंकि इससे एक बार करके ही छुट्टी नहीं मिल जाती बल्कि बार-बार इसे ध्यान में रखना और आजन्म निबाहना पड़ता है।

(७) प्रजापति और राजा के कर्त्तव्यों में भी अन्तर है। प्रजापति का काम प्रजा के शरीर, सम्पत्ति आदि की भौतिक उपद्रवों से रक्षा करना था। भागवत में लिखा है कि पहले अराजक लोक था और सर्वत्र दस्युओं का त्रास था। उससे बचने के लिए ही वेन प्रजापति बनाया गया। ऋषियों को प्रजाक्षेम प्राप्त हो जाने से वे सब कुछ मिला हुआ समझते थे।

पर राजा का काम प्रजाहित था। प्रजाक्षेम का अर्थ अभावात्मक है, अर्थात् उपद्रवों और बाह्य बाधाओं का अभाव। प्रजाहित का अर्थ सत्तात्मक है अर्थात् लोकों की वृद्धि और सफलता के लिए नियत वस्तु का सिद्ध होना। कालिदास के मत से आदर्श नृपति का कर्त्तव्य है—

प्रजानां विनयाधानाद् रक्षणाद् भरणादपि।
स पिता पितरस्तासां केवलं जन्महेतवः॥—रघु०

कि वह प्रजाओं में विनय की स्थापना करे, उनकी रक्षा और भरण-पोषण करे। इससे राजा प्रजाओं के लिए पितृतुल्य होजाता है।

पृथु के विषय में यही भाव वर्णाश्रमधर्माणां स्थापक. इस पद से ज्ञात होता है, अर्थात् वह प्राचीन आश्रम और वर्णधर्म की मर्यादा का रक्षक और स्थापक था। पृथु और भी अनेक लोकहित-सम्बन्धी कार्यों के लिए प्रसिद्ध है। पृथु के समय से पहले पूर्व विसर्गों में बड़ी अव्यवस्था थी—

देशानां क्षेत्रपन्नानां मर्यादा नहि दृश्यते।
क्वचित् भूमौ गिरौ वापि नदीतीरेषु वै तदा॥
कुञ्जेषु सर्वतीर्थेषु सागरस्य तटेषु च।
निवासं चक्रिरे प्रजास्तासां कृच्छ्रेण महताहारः स्यात्।—पद्म

प्रविभागो न राष्ट्राणां पुराणां चाभवत्तदा।
प्रविभागं पुराणां वा ग्रामाणां वापि विद्यते॥
न सस्यानि न गोरक्षा न कृषिर्न वणिक्पथः।
समस्तं यत्र यत्रासाद् भूयस्तस्मिन् तदेव हि॥
तत्र प्रजास्ता वै निवसन्तिस्म सर्वदा।
न्यवसत यथाकामं वृक्षेषु च गुहासु च॥—महाभारत

अर्थ—न कहीं देशों की क्षेत्रमर्यादा नियत थी, न कहीं नगर और गाँवों का ठीक-ठीक बँटवारा ही हुआ था, अर्थात् भूमिकृत सीमाविभाग, जो राजशासन में होता है, कहीं भी नहीं था। पहाड़ों में, जंगलों में, नदियों के किनारे पर, समुद्र तट पर, वृक्षों पर, कुञ्जों में या गुफाओं में, जहाँ कहीं जगह और चौरस धरती मिल जाती, लोग वहीं पड़ रहते थे। बड़ी मुश्किल से खाना मिलता था। न खेती होती थी, न अन्न उपजता था, न कोई गाय पालता था और आने जाने के लिए वणिक्पथ व्यापार-मार्ग भी नहीं थे। राज रहित दशा में ऐसी बुरी हालत थी।

पुराणों का यह वर्णन आदिम जातियों के विषय में यूरोपियनों द्वारा किए गए अनुमानों से कितना अधिक मिलता है। आदिम असभ्य मनुष्यों का वृक्ष-निवास, गुहानिवास, तीर्थनिवास, गिरिनिवास, निम्नभूमिनिवास सागरतीरनिवास ये सब वर्णन नई खोजों के इतने अनुकूल हैं जैसे पुराण-लेखकों ने कल ही बैठकर इन्हें लिपिबद्ध किया हो। पूर्वैतिहासिक युग के विषय में जिन ग्रन्थों में इतना यथार्थ वर्णन मिलता हो, उनके ऐतिहासिक महत्त्व का क्या कहना है। यही मात्स्य न्याय है—मात्स्यन्यायाभिभूताः प्रजाः मनुं राजानं चक्रिरे। इसी दुरवस्था से दुःखी होकर लोगों को राजा की फ़िक्र हुई। यही रूसो और हाब्स के स्टेट् आव नेचर और सोशल कन्ट्रैक्ट है। पृथु ने इस आदिम दुर्व्यवस्था का अन्त करके सुगठित राज्य की स्थापना की। उसने पुर बसाए, पर्वतश्रेणियों के द्वारा और पत्थर लगवाकर भूक्षेत्र की सीमाएँ निर्धारित करदीं। उसने सड़कें निकलवाई और लोक में सम्पन्नता स्थापित की। पृथ्वी पर घी दूध की नदियाँ बहने लगीं—

अकृष्टपच्या पृथिवी सिद्ध्यन्त्यन्नानि चिन्तया।
सर्वाः कामदुघा गावः पुटके पुटके मधु॥—ब्रह्माण्ड

अर्थात् पृथिवी को जोतने की आवश्यकता न थी, केवल संकल्प मात्र से अन्नधान्य मिल जाता था। गायें पुष्कल दूध देती थीं और सब वृक्ष शहद से लहलहाते थे। राज्य की सुव्यवस्था होने से प्रजा को यही प्रसाद मिलता है, इसीलिए भारत में राजा कालस्य कारणम् कहा जाता है। पृथु ने राजा होकर राष्ट्रहित के लिए जो अपूर्व काम किये, उनके कारण राजा और राष्ट्र इन दोनों का अभेद सम्बन्ध होगया। जो राजा वही राष्ट्र, जो राष्ट्र वही राजा—इन दोनों में कोई पार्थक्य नहीं रहा। ऐसा राज्य किसी व्यक्ति-विशेष का राज्य नहीं था, बल्कि वह सारे राष्ट्र का राज्य था। तैत्तिरीय ब्राह्मण ने पृथु का राज्याभिषेक वर्णन करते समय इस बात पर बड़ा उत्तम प्रकाश डाला है—

पृथिर्वैन्य अभ्यषिच्यत। स राष्ट्रं नाभवत्। स एतानि पार्थान्यपश्यत्। तान्यजुहोत्। तैर्वै राष्ट्रमभवत्। यत् पार्थानि जुहोति। राष्ट्रमेव भवति॥

अर्थ—पृथु वैन्य का अभिषेक हुआ। वह राष्ट्र के साथ एक न हो सका। उसने इन सांसारिक पार्थिव वस्तुओं को देखा और उन सबका राष्ट्रयज्ञ में हवन कर दिया। इससे पृथु स्वयं राष्ट्र होगया। जो इसी प्रकार दुनिया की चीज़ों से यज्ञ करता है, वह भी राष्ट्र हो जाता है।

राष्ट्रीयता प्राप्त करने के तत्त्व का यहाँ अत्यंत निश्चित रूप से प्रतिपादन किया है। पृथु ने समस्त सांसारिक पदार्थों की अभिवृद्धि की, और फिर लोक के लिए उन का उत्सर्ग किया, इन्हीं दो बातों से पृथु का राष्ट्र के साथ सम्मिलन हुआ।

(८) प्रजापति के ऊपर समाज के भरण का आर्थिक उत्तरदायित्व नहीं था। ऊपर उद्धृत वृत्तान्तों से, जो पूर्व विसर्गों में प्रचलित थे, यह बात स्पष्ट ज्ञात होती है। प्रजापति ने प्रजा को अपने ही ऊपर छोड़ रखा था, वह चाहे जहाँ से खाती-पीती थी। राजा के ऊपर इस बात का निश्चित ठेका आया कि वह समाज की आर्थिक दशा को सुधारे। उसका ज़िम्मा है कि भूखे मरने वालों को काम और भोजन दे। उत्तरदायित्वपूर्ण शासन-प्रणाली स्थापित होने पर ही प्रजा का यह दावा चलता है। भारतीय राजनीति के सिद्धांतों में इस बात को स्वीकार किया गया है कि प्रजा के अन्य अधिकारों में से एक यह भी है कि वह राजा से भोजन का और भूख से न मरने देने का दावा करे। इसीलिए पृथु को वृत्तिद. अर्थात् जीविका का प्रबन्ध करनेवाला कहा गया है।

प्रजा के लिए पृथु ने जिस प्रकार पृथ्वी को दुहा, वह कथा बड़ी मनोहर है। पृथु के राजा होते ही सर्वत्र शांति फैल गई। फलतः भूमि से पर्याप्त अन्न मिलने लगा। केवल बीज डालने से ही अच्छी फ़सल तैयार हो जाती थी। उसके लिए मेहनत की आवश्यकता न थी। परन्तु कुछ समय बाद भूमि की यह स्वतः-सिद्ध उर्वरा शक्ति क्षीण होगई। पुराणों में कहा है—

धात्री उप्तं बीजं पुरा किल।
जीवनार्थं प्रजानां तु ग्रसयित्वा स्थिराभवत्॥

अर्थात् जो भूमि पहले लोगों का भरण करती थी, वह अब बीज को भी निगल कर चुप होगई।

इस संकट में प्रजा ने पृथु के यहाँ पुकारा कि तुम्हीं हमारी जीविका का प्रबन्ध करो—

वैन्यं महाभागं प्रजा समभिदुद्रुवुः। त्वं नो वृत्तिं विधत्स्वेति।

इसी प्रकरण में पद्म पुराण ने जो सभ्यता का विकास-क्रम बताया है, वह आजकल के लेखकों को भी चकित कर देने वाला है। आधुनिक समाज-शास्त्र-वेत्ताओं का मत है कि आरम्भ में मनुष्य पेड़ों और कन्दराओं में रहते तथा फल-मूल खाकर गुज़ारा करते थे। उसके बाद पाषाण-युग में पत्थर के हथियार बनाकर वे वन्य पशुओं का शिकार करने लगे। यह दूसरी अवस्था है। इसके बाद उन्होंने तीर कमान बनाना सीख लिया। उससे शिकार करने में बड़ी सुविधा हुई। थोड़े परिश्रम से अधिक प्राप्त कर लेने पर लोगों को फ़ुरसत मिली और उन्होंने खेती करना सीखा। इस क्रम पर सारे पंडित सहमत हैं। देखिये, पुराण इस पर क्या कहते हैं। प्रथम अवस्था—

तासामाहारः संजातः फलं पुष्पं तथा मधु।
आहारः फलमूलं तु प्रजानामभवत् किल॥—वायु

अर्थात् फल-फूल, मधु, कंद-मूल यही खाकर लोग रहते थे। यह अवस्था कपि जाति की रहन-सहन के सदृश है।

इसके बाद शिकार का युग आता है। लोगों ने पृथु से वृत्ति माँगी। पृथु ने पृथ्वी का पीछा किया। वह हाथी

बनकर, शेर बनकर, भैंस बनकर उसके आगे भाग चली—

कुञ्जररूपा तां अभिदुद्राव । हरिरूपा तां अभिदुद्राव,

माहिषीरूपा तां अधावन् ।

इस प्रकार के आलंकारिक वर्णन का अभिप्राय बड़ा सीधा-सादा है, अर्थात द्वितीय अवस्था में लोगों का जीवनोपाय आखेट था। यह भी सोचने की बात है कि पुराणों में हाथी, शेर, भैंसा ये बड़े जानवर ही क्यों कहे गये हैं। मानव-शास्त्रियों का भी यही मत है कि पहले मनुष्य का परिचय बड़े भीमकाय पशुओं के साथ हुआ था। यह बात आज से चारलाख वर्ष पहले की है। उसके बाद मनुष्य का संग हिरन, रीछ, बारहसिंगा आदि छोटे पशुओं से हुआ। इस आखेट-युग में मनुष्यों के पास शस्त्र ही थे। फेंक कर चलाने वाले अस्त्रों का ज्ञान अभी नहीं हो पाया था—

अन्य प्रहरणा खड्गो भाड्रवनीसुत ।

पृथुस्तूपपादयामास धनरायमरिन्दम ॥—महाभारत

अर्थात् पहले लोग तलवार काम में लाते थे। पृथु ने ही सबसे पूर्व धनुष का आविष्कार किया। धनुष के ज्ञात होने पर शिकार करने में बहुत सुविधा हुई और वन्य-पशुओं पर मनुष्य का आधिपत्य आसानी से जम गया। परन्तु अंत में यह युग भी समाप्त हुआ और तीसरा युग पशुपालन का प्रारम्भ हुआ। आर्य सभ्यता को प्रायः लोग इसी युग में रखा करते हैं। पुराणों में लिखा है कि पृथ्वी गौ बनकर पृथु के पास गई—गौर्भूता वैन्यमेवाम्वपद्यत। इस युग में लोग गाय तथा अन्य पशुओं को पालते थे, और चारे की खोज में घूमा करते थे। इसके बाद कृषि का युग प्रारम्भ हुआ। पृथ्वी ने पृथु से कहा—

स्थिरत्वं यान्ति ते सर्वे स्थिरीभूता यदा ह्यहम् ।

अर्थात् मेरे स्थिर हो जाने पर अन्य सब प्राणी भी स्थिर हो जाते हैं। कृषि करने पर मनुष्यों को जमकर भूमि के विशेष भाग को अपना मानकर एक स्थान पर रहना होता है। तभी से सभ्यता के विकास का प्रारम्भ होता है। पहले तो कृषि से लोगों को बड़ा लाभ हुआ। पर, ऊपर कहा जा चुका है कि, पृथ्वी की उपजाऊ-शक्ति मारी गई, इस पर प्रजा पृथु के पास गई। पृथु ने कहा—

प्रजानिमित्तं त्वां हनिष्यामि न संशय ।—पद्म

सोऽहं प्रजानिमित्तं त्वां वधिष्यामि वसुंधरे ।

सजीवय प्रजा नित्यं शक्तासि न संशय ॥—वायु

स प्रजाहितचिकीर्षया ।

धनुर्गृहीत्वा बाणांश्च वसुधामार्दयद् बली ।

अस्यार्दनभयत्रस्ता प्राद्रवन् मही ।

तां पृथुर्धनुरादाय द्रवन्तीमन्वधावत ॥—पद्म

अर्थ—तुम प्रजा के लिए सस्य उत्पन्न करो, नहीं हम तुम्हें मार डालेंगे। तुम्हारा यह नित्य का कर्तव्य है कि तुम प्रजा का सजीवन करो, तुममें इसकी सामर्थ्य है। फिर प्रजाहित के लिए पृथु ने धनुष बाण लेकर पृथ्वी को बहुत त्रास दिखाया और पृथु के दंड से भयभीत होकर पृथ्वी भागी। पृथु ने भी उसका पीछा किया।

परन्तु बलप्रयोग से ऐसे कार्यों मे सफलता नहीं मिलती। जब भूमि की उर्वरा-शक्ति ही नष्ट होगई हो, तो बजाय बलप्रयोग के खाद आदि उपायों से काम बनता है। इसलिए पृथिवी ने कहा—

कथं धारयिता चासि प्रजा राजन्मया विना ।

अर्थात् हे राजन्! प्रजाओं के हित के लिए तुम मेरे साथ बलप्रयोग करते हो। पर यह तो बताओ कि मेरे नाश होने पर मेरे बिना प्रजाओं को कैसे बचा सकोगे। तुम्हारी सब प्रजा नष्ट हो जायगी (विनश्येयुः प्रजा), इसलिए

न मामर्हसि वै हन्तुं श्रेयश्चेत्त्वं चिकीर्षसि प्रजानाम्

यदि तुम प्रजा का कल्याण चाहो, तो मुझे मत मारो। पृथु को अपनी भूल मालूम हुई। उसने पृथिवी को अपनी पुत्री बनाया—

दुहितृत्वं च मे गच्छ धर्मार्थम् ।—वायु

तब पृथिवी ने अपनी उर्वरा-शक्ति का रहस्य खोला—

उपायतः समारब्धा सर्वे सिध्यन्त्युपक्रमा ।

अन्नभूता भविष्यामि जहि कोपं महामते ॥—वायु

अर्थ—उपाय से किये हुए प्रयत्न सफल होते हैं। तुम अन्न उत्पन्न करने के लिए उपाय करो। कृषि के उपाय जगविदित ही हैं—खाद, सिंचाई, श्रम, बीज। इनमें सुधार करने से उत्तम कृषि सिद्ध होती है।

उद्यमेनापि पुण्येन तूपायैश्च नरेश्वर ।

समारंभा प्रसिध्यन्ति पुण्याश्चैवाप्युपक्रमा ॥

अर्थात् विशुद्ध परिश्रम से और उपायों से किये हुए कार्यों में पुनीत सफलता प्राप्त होती है। पहला उपाय पृथिवी का चौरस करना और सड़कें बनाना है,

जिससे एक स्थान की उपज दूसरी जगह आसानी से पहुँचाई जा सके। ऐसी हालत में सर्वत्र सब चीज़ें बोने की आवश्यकता नहीं रहती, वरन् विशेष स्थानों में सुविधा के अनुसार विशेष पैदावार की जा सकती है, और फिर उसे अन्यत्र विनिमय के लिये ले जाते हैं। इसीलिए पृथिवी ने पृथु से कहा—

समां च कुरु सर्वत्र माम्।

पहले सब जगह मुझे चौरस बनाओ, जिससे यदि एक स्थान पर दूध गिरे तो वह सर्वत्र फैल जाय। विषम स्थल में एक स्थान की प्रचुर सामग्री उसी जगह रह जाती है, पर सम भूमि में व्यापार-मार्ग बन जाते हैं, और स्थानीय उपज सर्वत्र पहुँचाई जा सकती है—

यथा विस्यन्दमानं च क्षीरं सर्वत्र भावयेत्।

और भी

मन्वन्तरेष्वतीतेषु विषमासीद् वसुंधरा।

पूर्वे विसमत्वं गता भूमिः पन्था नासीच्च कुत्रचित्॥ — पद्म

पहले मन्वन्तर युगों में पृथिवी बेडौल थी, कहीं रास्ता नहीं मिलता था।

पृथु ने ऊबड़-खाबड़ धरती को चौरस करके राजपथ बनाये। इसके बाद वास्तविक कृषि और औद्योगिक व्यवसायों का आरम्भ हुआ। इसीको पृथिवी-दोहन कहते हैं। जब भूमि ने दोहन की स्वीकृति दी तो पृथु ने सब तय्यारी की (विधानमकरोत्)। उसके बनाये पात्र और वत्सों को लोग आजतक काम में लाते हैं (यैर्वर्तयन्ति ते ह्यद्य पात्रैर्वत्सैश्च नित्यशः)। कहा जाता है कि पृथु ने विभिन्न प्रकार के पात्र, वत्स और दोग्धा देकर विविध प्रकार के दुग्धों का दोहन किया। इस वर्णन में अर्थ-शास्त्र के गूढ़ तत्त्वों का समावेश है। पृथ्वी जो दुही गई वह समवायिकारण है। आधुनिक अर्थशास्त्र में धरती ही सब धन्धों की जनयित्री है। यही अनिवार्य मूल कारण है। पृथु राजकीय साहाय्य का द्योतक है। सर-कार के ही संरक्षण और प्रोत्साहन से सारे उद्योग-धन्धे सफल होते हैं। पृथु की अध्यक्षता में ही समस्त दोहन-कार्य सफलतापूर्वक सम्पन्न हुआ। वत्स असमवायि-कारण है। अरस्तू के मत में यह अन्तिम हेतु है, जिसके लिये कार्य किया जाता है। आधुनिक अर्थशास्त्र इसे खपत या भोक्तृत्व की आवश्यकता का नाम देता है। कन्ज़्यूमर्स वान्ट के लिये ही (वत्स) दोहन की प्रवृत्ति होती है। जबतक वत्स न होगा—अर्थात् बाज़ार में किसी चीज़ की माँग न होगी—तबतक कोई चीज़ तैयार नहीं होती। वर्तमान सोशल थ्योरिस्ट इसीको एपीटिटिव फ़ंक्शन (Appetitive function) कहते हैं। दोग्धा से तात्पर्य उन लोगों से है, जो किसी व्यवसाय को संगठित करते हैं—यानी व्यवस्थापक और पूँजीपति आदि। न्याय की दृष्टि से यह निमित्तकारण हुआ। पात्र से तात्पर्य उस प्रबन्ध से है, जिसके द्वारा व्यवसाय होता है। कोई व्यापार किसी ख़ास स्थान में होता है, किसीके लिए किसी विशेष सामान और उपायों की आवश्यकता होती है, यही पात्र है। दोग्धा, गौ, वत्स, पात्र और रक्षयितृ शक्ति—इन पाँचों के सहयोग से दोहन-क्रिया सिद्ध होती है। सारे व्यवसाय और उद्योग-धन्धे इन्हींकी अनुकूलता से सफल होते हैं। महाभारत में इस दोहन-क्रिया का अत्यन्त विस्तार से वर्णन है। पद्मपुराण में लिखा है कि दोहन के फल स्वरूप पृथ्वी—

धात्री विधात्री च धारिणी च प्रतिष्ठा च योनिरेव च लोकस्य

लोक को धारण, भरण, प्रतिष्ठित और उत्पन्न करने वाली होगई। कुमारसम्भव में कालिदास ने हिमालय को पृथ्वी-दोहन में वत्स कहा है—

यं सर्वशैलाः परिकल्प्य वत्सं मेरौ स्थिते दोग्धरि दोहदक्षे।
भास्वन्ति रत्नानि महौषधीश्च पृथूपदिष्टां दुदुहुर्धरित्रीम्॥

अर्थात् हिमालय को दुहने से चमकीले रत्न और नाना प्रकार की वीर्यवती ओषधियां प्राप्त हुईं। वृक्षों से कलम लगाने की क्रिया प्राप्त की गई—

वृक्षैर्ग्राह्यं छिन्नप्ररोहणं दुग्धम्

(६) प्रजापति के सन्मुख कोई आदर्श नहीं था। उसके लिये परम्परागत रूढ़ियों का कोई बन्धन नहीं था। अपनी धुन और मति के अनुसार प्रजापति काम करता था।

राजा के समक्ष एक निश्चित आदर्श था। चारण लोग नित्य उसके कर्तव्य का स्मरण दिलाते थे। यद्यपि अभी तक दण्डनीति का कोई रूप निश्चित नहीं हो पाया था, तो भी सामाजिक आदर्श राजाओं को भी मान्य था। सूत और मागध पृथु से पहले भी होते थे, परन्तु अभी-तक ये लोग प्रजापति के अतीत चरित्रों का ही गुणगान करते थे। पृथु के अभिषेक के समय चारण लोगों को

बुलाकर उनसे राजयश वर्णन करने को कहा गया। मागधों ने ऋजुतापूर्वक कहा कि अभी पृथु ने कोई कार्य तो किया ही नहीं, हम लोग किस बात का वर्णन करें—

न चास्य कर्म वै विद्धो न तथा लक्षण यशः ।
स्तोत्र येनास्य कुर्यान्वो राज्ञस्तेजस्विन स्वयम् ॥

इस पर ऋषियों ने कहा—

करिष्यत्येष यत्कर्म चक्रवर्ती महाबल ।
गुणा भविष्या ये चास्य तैरेव स्तूयता नृपः ॥

अच्छा, जो कर्म यह भविष्य में करेगा, उसीका वर्णन करो, वही इसके लिए गुणस्वरूप होंगे और उन्हींको आदर्श मानकर यह कार्य में प्रवृत्त होगा। पृथु ने भी इस बात की प्रतिज्ञा की कि ये सूत और मागध मेरे लिए जिस कर्तव्य-कर्म का आदेश करेंगे, उसे मैं सावधान होकर करूँगा। और जिस कर्म का वर्जन करेंगे, उसका मैं परित्याग करूँगा—

यदय स्तोत्रिभ गुणैर्निर्वर्णन मम ।
करिष्येते करिष्यामि तदेवाह समाहित ॥
यदिमौ वर्जनीय च किंचिदत्र वदिष्यत ।
तदिह वर्जयिष्यामीत्येव चक्रे मतिं नृप ॥
सूतेनोक्तान् गुणान् मागधेन च ।
चकार हृदि तादृक् च कर्मणा कृतवानसौ ॥—विष्णु

आर्य राजाओं के समक्ष जो आदर्श रखा गया, उसका वर्णन पद्मपुराण में सजीव दिया हुआ है—

सत्यवान् ज्ञानसम्पन्नो बुद्धिमान् ख्यातविक्रम ।
सदा शूरो गुणग्राही पुण्यवांस्त्यागवान् गुणी ॥
धार्मिक सत्यवादी च यज्ञाना याजकोत्तम ।
प्रियवाक् सत्यवाग् दान्तो धान्यवान धनवान सुखी ॥
गुणज्ञश्च कृतज्ञश्च धर्मज्ञ सत्यवत्सल ।
सर्वग सर्वदो नेता ब्रह्मण्यो वेदवित् सुधी ॥

राजा को सत्यवादी, सत्यग्राही, ज्ञानसम्पन्न, बुद्धिमान्, पराक्रमी, शूर, गुणज्ञ, पुण्यकर्ता, त्यागी, गुणी, धार्मिक, उत्तम यज्ञों में दक्ष, धर्म के अनुकूल आचरण करनेवाला, आत्मसंयमी, धनधान्य से सम्पन्न, सुखी, मधुरभाषी, अप्रतिहत गति, वेदों का ज्ञाता, ब्रह्म को जाननेवाला, और उत्तम मेधायुक्त होना चाहिए।

नीतिधर्म का यह आदर्श सदा राजाओं के सामने रहा है। इस देश के इतिहास में इसके अनेक उदाहरण हैं। आत्म विनय राजा का सर्व-प्रधान कर्तव्य है। ऐसे ही राजा को राजर्षि कहते हैं। महाभारत के षोडश-राजीय प्रकरण में, जहाँ पृथु का चरित्र भी है, आए हुए अन्य राजाओं को भी राजर्षि की पदवी से अलंकृत किया गया है—

यज्वाश्च स शूरश्च वेदवेदाङ्गपारग ।
धन्यो गोप्ता प्रजाना च विजयी समराङ्गणे ।
राजसूयादिकाना तु यज्वाऽयं राजसत्तम ।
आहर्ता भूतले चैक सर्वधर्मसमन्वित ॥

अर्थात् राजा वेद-वेदाङ्ग में पारगत, प्रजाओं का गोप्ता, समरभूमि में विजयी, राजसूयादिक यज्ञों से यजन करनेवाला और सर्व धर्मों से युक्त होता है।

चक्रवर्ती राजाओं का पद्मपुराण में वर्णन है—

महाणामानि तपा वै भवन्तीह महात्मनाम् ।
अत्यद्भुतानि चत्वारि बल धर्मस्तपो धनम् ॥
अन्योन्यस्याविरोधेन प्राप्यन्ते तु नृपै समम् ।
अर्थो धर्मश्च कामश्च यशो विजय एव च ॥
ऐश्वर्येणाणिमाद्येन प्रभुशक्त्या तथैव च ।
श्रुतेन तपसा चैव मुनीना च भवन्ति वै ॥
बलेन तपसा चैव देवदानवमानवान ॥

अर्थात् बल, धर्म, तप, धन ये चार लक्षण चक्रवर्ती राजाओं के पास निवास करते हैं और राजा लोग भी परस्पर विरोध न करते हुए अर्थ, धर्म, काम, यश, और विजय लाभ करते हैं। परन्तु चक्रवर्ती सम्राट् ऐश्वर्य से, अणिमादिक सिद्धियों से, प्रभु शक्ति से, अपने वेदज्ञान और तप से मुनि, देव, दानव और मनुष्यों से भी श्रेष्ठ होते हैं।

ऐसे ही आदर्शों का पालन करनेवाले दुष्यन्त के विषय में कालिदास ने कहा है—

अध्याक्रान्ता वसतिरमुनाप्याश्रमे सर्वभोग्ये ।
रक्षायोगादयमपि तप प्रत्यह सञ्चिनोति ॥
अस्यापि द्या स्पृशति वशिनश्चारणद्वन्द्वगीत ।
पुण्य शब्दो मुनिरिति मुहु केवल राजपूर्व ॥—शकुन्तला

अर्थ—यह दुष्यन्त मुनियों की तरह ही आश्रम-वासी, तप का सञ्चय करने वाला और आकाश में विचरण करने वाला है। परन्तु यह ऋषि नहीं राजर्षि है, क्योंकि इसका आश्रम सर्वभोग्य है (अर्थात् ब्रह्मचारी

स्वर्ण-संयोग

तीन स्वर्ण-पदक

माधुरी

के

चित्रकारों, कवियों और लेखकों

के लिये

प्रथम, कविता-पदक

१००) का

देनेवाले, श्री० सेठ महेश्वरदयालजी ताल्लुकेदार

कोटरा इस्टेट, सीतापुर.

द्वितीय, चित्र-पदक

१५०) का

देनेवाले, श्री० मुंशी विष्णुनारायणजी भार्गव,

अध्यक्ष—माधुरी एवं नवलकिशोर-इस्टेट

तृतीय, समालोचना-पदक

१२५) का

देनेवाले, पं० कृष्णबिहारी मिश्र, बी० ए० एल् एल्० बी०,

संपादक—माधुरी एवं साहित्य-समालोचक

पदकों का पूर्ण विवरण आगामी अंक में दिया जायगा ।

निवेदक—**रामसेवक त्रिपाठी,**

व्यवस्थापक "माधुरी" लखनऊ

वानप्रस्थ, सन्यास आदि से भोग्य गृहस्थ आश्रम है), इसका तप भी औरों की रक्षा करने के रूप मे होता है, तथा इसका आकाश-विचरण चारणों के गीतों से होता है ।

ऐसे राजर्षि इस देश मे अनेक होगये हैं । यह राजमर्यादा पूर्व राजर्षियो से निश्चित होकर उत्तरोत्तर राजाओं को नीति, धर्म और विनय में नियुक्त करती आई है ।

भविष्य में हमें उदात्तचित्त, साहसी, नोतिमान् नेताओं की आवश्यकता है, जो प्रजातन्त्र शासन की कीर्ति के स्तम्भ बन कर जनता को सत्य पथ पर ले चलेंगे । पृथु वैन्य ने ऋग्वेद मे इन्द्र से इसीके लिए प्रार्थना की है । हम भी यही चाहते हैं—

> इमा ब्रह्मेन्द्र तुभ्यं शंसि । दा नृभ्यो नृणां शूर शवः ।
> तेभिर्भव सक्रतुर्येषु चाकन् । उतत्रायस्व गृणत उत स्तान् ॥
>
> ऋक्, म० १० । अनु० ११ । सू० २०

हे राष्ट्रशक्ति के त्राता इन्द्र ! हम तुम्हारी स्तुति करते हैं कि तुम नरों मे जो श्रेष्ठ नर हैं, उन्हें शक्ति दो । जिनसे तुम प्रसन्न हो उनको अपने जैसी-ही सुमति, त्याग और बल प्रदान करो। हे राष्ट्र-विवर्धन ! जो इस प्रकार तुम्हारी स्तुति करते है, उनकी रक्षा करो ।

वासुदेवशरण अग्रवाल

गोपिका गीत

(१)

सूझत न नेम एरी भूली कुलकानि छेम,
लाज बरु हेम त्यों निछावरि सु दै चुकीं ।
लोक परलोक सुधि बुधि हूं बिसारि भले,
निपट निसङ्क ह्वै कलङ्क डरु ख्वै चुकीं ।
रातो दिन मातो मन होत ना अमातो छिन,
आनँद 'विसारद' अकथनीय लै चुकीं ।
चपन पियाले जुग भरि-भरि हौंस भरि,
आली हम हरि-रूप-आसव अचै चुकीं ॥

(२)

मानिए न ऊनो मन, धीरज न लूनो सुनि,
कहा भयो जोपै यो सिखाय जोग लाए हैं ।
आनत भलेई सब ब्रज को हवाल ये तौ,
स्याम के सनेही साँचे चारु मति पाए हैं ।
भनत 'विसारद' सु मेरे अनुमान आली,
अभिप्राय बेस उर अन्तर दुराए हैं ।
देनको न दिच्छा त्यों परिच्छा को न इच्छा कछु,
और न समिच्छा प्रेम भिच्छा लेन आए हैं ॥

(३)

ब्रज तजि औचक गमन सहि लीन्हो, अरु,
लीन्हो सहि सूने ये परे जे कुंजधाम हैं ।
पानी, पान, भोजन, बसन-बिसरनि सह्यो,
लीन्हो सहि छूटिबो त्यो भूखन ललाम हैं ।
लीन्हो सहि जोगु को सँदेसहू हिये को थामि,
अनखि 'विसारद' न कीन्हे पै कलाम हैं ।
एती अनुगति यह सही ना परति ऊधो !
सूधो भई कूबरी कुटिल भए स्याम हैं ॥

(४)

देखत आई सबै हम त्यौं लहराति सदा लतिका अनुराग की,
खोजिए जाइ कहूँ अनतै किन भूमि भली अति नीरसभाग की ?
ऊधो ! न यो करिए श्रम वादि 'विसारद' बातहिं भूलि दिमागकी,
या ब्रजके जलवायु मे नेक नहीं पनपैगी सुबेलि बिराग की ॥

बलदेवप्रसाद टंडन

राठौर राजवंश

[शेषांश—गत की संख्या मे आगे]

आस्थानजी के बाद ३—राव धुहड़जी गद्दी पर बैठे । वह दक्षिण के कोंकण (कर्नाटक) देश में जाकर अपनी कुल-देवी चक्रेश्वरी की मूर्ति लाए और उसे पचपदरा साल्ट लेक से क़रीब ८ मील पर नागाना गाँव मे स्थापित किया, जिससे वह (देवी) "नागणेची" नाम से प्रसिद्ध हुई । इन्होंने पँवारों को परास्त कर ५६० गाँवों समेत बाड़मेर का इलाक़ा ले लिया । कन्नौज और मंडोवर लेनेका भी उद्योग किया, किन्तु मंडोवर के परिहारों से युद्ध करके काम आए । धूहड़ के उत्तराधिकारी ४—रायपाल[1] जयसलमेर पर चढ़ाई

१— इनके एक पुत्र मोहनसी का विवाह जयसलमेर राजकुल मे हुआ था । वहाँ इसका प्रेम वहाँ के दीवान की पुत्री
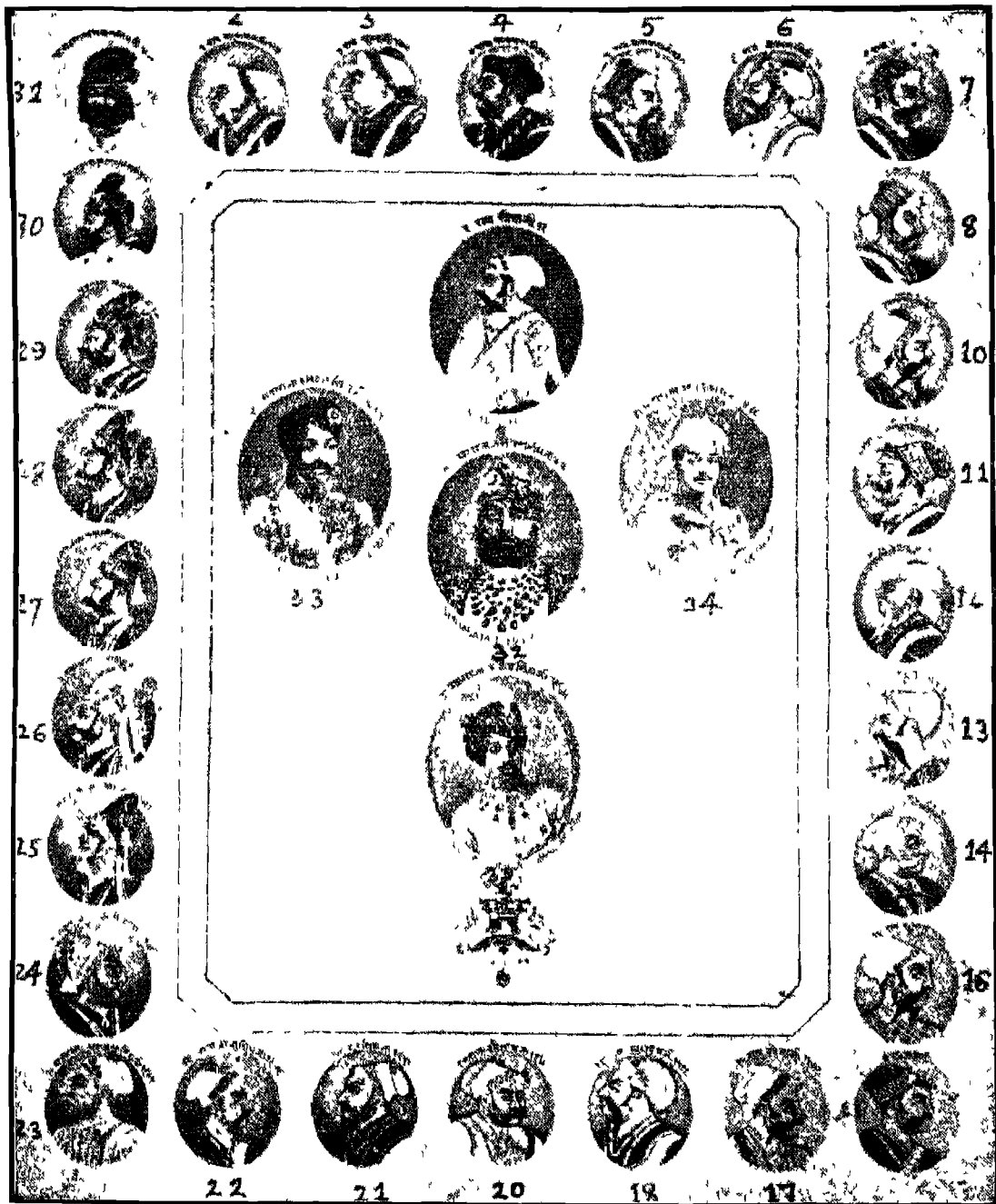
मारवाड़ का राठौर-राजवंश

कर बुद्धचंद[1] भाटी को वहाँ से पकड़ लाया और ८४ गाव भाटियों के दबा लिये। इनके समय में रोड़िया बारहट और मुहणोत ओसवाल नामक दो नई जातियाँ बनीं। इनके बड़े बेटे ५—राव कनपाल भाटियों से अनेक युद्ध कर अन्त में मुसलमानों से लड़ते हुए वीर गति को प्राप्त हुए। पश्चात् गद्दी के अधिकारी ६—राव जालणसीजी हुए, जिन्होंने सिन्ध के सोढा क्षत्रियों को हराया और दिल्ली के तुर्कों से युद्ध कर काम आये। इन्होंने सोढों से एक साफ़ा छीना था, उसी दिन से राठौर सिर पर उस जय की यादगार में साफ़ा बाँधते चले आते हैं। राव जालणसीजी के बड़े बेटे ७—राव छाड़ाजी भी बड़े वीर थे। वह भी जालोर के चौहान राजा से लड़कर मारे गये। इन्होंने वि० सं० १३८५ से १४०१ तक राज्य किया। इनके पुत्र ८—राव तीडाजी हुए। उन्होंने महेवा को अपनी राजधानी बनाया और देवड़ा, सोलंकी और चौहानों को विजय कर भाटियों से दंड लिया। अपने पिता का वैर लेने को ये जालोर के बालेसा चौहान राजा सावतसी पर चढ़ाई की और उसे लड़ाई में हराकर भानमाल परगना छीन लिया। इस युद्ध में चौहान राजा की सवलां नामक एक रानी राव तीडाजी के हाथ लगी। मुसलमानों ने जब सीवाना के अधिपति चौहान सातलसोम पर चढ़ाई की, तब राव तीड़ाजी अपने भानजे की मदद में वहाँ गये और वहीं लड़कर वि० सं० १४१४ में काम आये। राव तीडाजी के बाद उनका कनिष्ठ पुत्र ९—राव कानड़देव गद्दी पर बैठा। इसने राजकाज को हाथ में लेते ही अपने बड़े भाई सलखाजी को जागीर में एक गाँव दिया। मुसलमानों ने राव कानड़देव राठौर को नाबालिग और कमज़ोर देख महेवा को छीन लिया। किन्तु कुछ ही समय बाद मौका पाकर इन्होंने खेड़ पर अधिकार कर लिया और उधर १०—राव सलखाजी ने महेवा का बहुत-सा इलाका मुसलमानों से छीन लिया।

महाराजा विजयचंदजी गहरवार कन्नौजपति

से हो गया था, जो माथामाल वैश्यजाति का था। अतः दीवान की कन्या से माहनसी को कार्तिक बदि १३ सं० १३१? वि० को विवाह करना पड़ा। पश्चात् ये स्वयं जैन बन गये। इनके पहले विवाह से जो पुत्र भीम नामक था, वह तो राठौर ही रहा, जिसके वंशज माहनिया राठौर कहलाए। और दीवान की बेटी से सम्पतसेन नामक पुत्र बाद में हुआ, उसके वंशज मुहणोत ओसवाल कहलाए। [देखो—सरकारी छपा "मारवाड़ का क़ौमों का इतिहास" पृष्ठ ४१२, सन् १८९१ ई०]

१—बुद्धा भाटी को रोड़ (कैद) में रख उसका विवाह चारण जाति की एक जुना नामक कन्या से कर दिया और उसे राठौर राजपूतों का पोलपात चारण बना लिया, क्योंकि कन्नौज से आने पर राठौरों का कोई चारण नहीं था। चारण जाति राजपूताना ही में है। उधर संयुक्त-प्रान्त में ये लोग नहीं थे, और न हैं। उसकी सन्तान "रोड़िया" बारहट कहलाई। यह लोग मारवाड़ में अधिक हैं और राजपूतों के जन्म, विवाह आदि पर अपना नेग (लाग-बाग) लेते हैं जिसे यह 'त्याग' कहते हैं। इनके पास दान-पुण्य में मिले गाँव बहुत हैं। जिनमें मुदियाड़ बड़ा ठिकाना है। उसका कुर्ब राजपूत सरदारों के बराबर है। रोहड़िये चारण सब बारहट कहलाते हैं।

कोट को अपनी राजधानी बनाया। राव सलखाजी आठ वर्ष तक महेवा में राज्य कर स० १४३० वि० में मुसलमानों से युद्ध करते समय काम आये। उनके मल्लिनाथ, जैतमाल, वीरमजी और सोभितजी नामक चार पुत्र-रत्न थे। इनमें से ज्येष्ठ पुत्र मल्लिनाथजी को राव सलखाजी ने अपना राजकाज देखने-भालने को नियत किया। कानड़देव के बाद उनके बड़े भाई राज्य के मालिक बने, किन्तु राव मल्लिनाथजी मुसलमानों की मदद से उन्हें मार राज्य पर क़ब्ज़ा कर बैठे। मल्लिनाथजी बड़े वीर थे। इन्होंने मंडोवर, सिरोही, मेवाड़ और सिन्ध की सरहद पर लूट-खसोट मचा मुसलमानों का नाक में दम कर दिया। इस कारण शाही फ़ौज इन पर चढ़ आई। इन्होंने बादशाही फ़ौज के १३ दलों को वीरता से परास्त कर भगा दिया। इस विषय का यह पद मारवाड़ में आजतक प्रसिद्ध है —

तेरह तुगा भाजिया माले सलखानी

यह एक अतीव बुद्धि-विचक्षण और दूरदर्शी महान् पुरुष थे। मारवाड़ और बीकानेर में यह एक पहुँचे हुए सिद्ध की तरह पूजे जाते हैं। लूणी नदी के किनारे गाँव तीलवाड़ा के पास इनके नाम पर बना हुआ एक छोटा-सा मंदिर है। वहाँ वि० स० १६५० से हर वर्ष चैत्र मास में पशुओं का बड़ा भारी मेला लगता है।

मल्लिनाथजी के बड़े बेटे राव जगमालजी थे। वे भी बड़े बहादुर थे। इन्होंने माडू के बादशाह को हरा-कर उसकी गींदोली नामक रूपवती कन्या को छीन लिया था। लड़ाई में जब जगमालजी की मार से घबरा-कर बादशाह महलों में चला गया, उस समय का यह पद मारवाड़ में प्रसिद्ध है — "बीबी पूछे खान ने जग केता जगमाल" — अर्थात् बेगम बादशाह से पूछती है कि संसार में ऐसे कितने जगमाल हैं, जो आप ऐसे काँप रहे हैं। राव जगमालजी के १३ पुत्र हुए, जिनसे बाड़मेरा, बाटाड़ा, थुर्मलिया, खाबरिया, मागर, ऊँगा, धारोइया, कानासरिया, कोटड़िया और गागरिया नाम की दस शाखाएँ चलीं। जगमालजी के बाद महेवा का राज्य उनकी औलाद में बँट गया और उसके टुकड़े-टुकड़े हो गए। मल्लिनाथजी के भतीजे और ११—वीरमदेवजी के कनिष्ठ पुत्र चूँडाजी ने मंडोवर का राज्य स० १४५१ वि० में क़ायम किया, जैसा कि इस पद्य में कहा है:—

"मालारा महेवे वीरमरा गढ़ेह"

अर्थात् मल्लिनाथजी के वंशज मालानी में रहे और वीरमजी के वंशज गढ़ के मालिक (राजा) हुए। यह मंडोर का गढ़ पहले परिहार-वंश के राजपूतों के हाथ में था, किन्तु स० १३५० वि० में दिल्ली के बादशाह जलालुद्दीन खिलजी ने परिहार राणा रोपड़ा पर चढ़ाई कर इसे जीत लिया। इस तुर्क-वंश का राज्य १०० वर्ष के लगभग मंडोवर पर रहा। इस अरसे में दिल्ली दुर्बल हो गई थी और उसके बाद सूबे के ख़ुद मुख्तार बन बैठे थे। गुजरात के सूबेदार ज़फ़रख़ाँ ने गुजरात के साथ-हो-साथ अजमेर और मारवाड़ पर भी क़ब्ज़ा कर लिया और मंडोवर पर अपनी तरफ़ से ऐबकख़ाँ नामक हाकिम रख दिया था। स० १४५१ में इस हाकिम ने अपने इलाक़े के भोमियों जागीरदारों से साधारण कर के सिवाय गाँव पीछे पाँच-पाँच गाड़ी घास की भी माँगी और इसके लिए उन्हें बहुत तंग किया। तब परिहार-वंश की इन्दा शाखा के राणा उगमसी बालेसर वाले ने घास की एक-एक गाड़ी में ४-४ जंगी जवानों को छिपाया और एक हथियारबंद राज-पूत को उसके ऊपर बैठाया। इस प्रकार ५०० गाड़ियों में २,५०० योद्धा मंडोवर को भेजे। दरवाज़े पर पहुँचते ही ऐबक के भानजे ने शरारत से एक बरछा घास में मारा, जो एक राजपूत की जाँघ में लगा। उसने बड़ी चतुराई से ख़ून पोंछ कर भाले को बाहर आने दिया। भाले के देर में और कठिनता से निकलने के कारण गाड़ियों को घास से ख़ूब भरी हुई समझ हाकिम का भानजा उन्हें अंदर ले गया। पर गाड़ियों के खुलते ही एकदम ढाई हज़ार तलवारें चमकीं, जिससे दम भर में ऐबकख़ाँ और उसके तमाम मुग़ल घास की तरह कट गए। राजपूत वीरों ने किले पर क़ब्ज़ा कर बालेसर के राणा उगमसिंह इन्दा को ख़बर दी। किन्तु मंडोवर की रक्षा करने में राणा उगमसिंह असमर्थ था। इस कारण राणा ने अपने प्रधान मंत्री गहलोत हेमा[1] की सलाह से राव मल्लिनाथ राठौर के शक्तिशाली भतीजे

१—ये हेमाजी उसी गहलोत-वंश क्षत्रिय क़ौम के थे, जो कि उस समय साधारण राजपूत ज़मींदार थे और युद्ध आदि कारणों से खेती-बारी का पेशा करने लग गये थे, और जिस जाति को आगे चलकर लोग एक भिन्न जाति समझने

चूँडाजी से इन्दों के मुखिया राय धवल की कन्या का विवाह कर उसके दहेज में मंडोवर दे डाला, जैसा कि उस समय का यह पद्य प्रसिद्ध है —

इन्दारो उपकार कमधज मत भूलो कदे।
चूँडो चँवरी चाड़ दियो मंडोवर दायजे॥

अर्थात् इन्दा परिहारों को कमधज (राठौर) कभी न भूलेंगे, क्योंकि इन्दों ने ही चूँडाजी राठौर को अपनी पुत्री ब्याह कर मंडोवर दहेज में दिया है।

कहते हैं कि इस मंडोवर के राज्य में चौदहसौ-चवालीस गाँव थे, जो सब-के-सब मंडोवर गढ़ के साथ वि० सं० १४५१ में चूँडाजी के हाथ लगे। जब यह ख़बर गुजरात के सूबेदार जफ़रख़ाँ (प्रथम) को मिली, तब उसने मंडोवर पर चढ़ाई कर उसको एक वर्ष तक घेरे रखा, पर राव चूँडाजी के सामने उसकी दाल न गली और उसे निराश हो घेरा उठाना पड़ा। १२—राव चूँडाजी बड़े प्रतापी और वीर थे। इन्होंने सं० १४५६ में मुसलमानों से नागौर छीन लिया और बाद में खाटू, डीडवाना, साभर और अजमेर पर भी अधिकार जमा लिया। इन युद्धों में इनके चाचा मल्लिनाथजी और जैतमालजी ने भी इनकी बड़ी मदद की थी। इनका भाई जयसिंह बुलाने पर भी इनकी सहायता के लिए नहीं आया, अतः नाराज़ हो चूँडाजी ने उसे महेवा की तरफ़ भगाकर उसकी जागीर फलोधी पर क़ब्ज़ा कर लिया। ये वि० सं० १४८० की चैत्र सुदि ३ को वीरता पूर्वक लड़ते हुए ४६ वर्ष की आयु में भाटी के लहण के हाथ से मारे गये। इनके पुत्र १३—राव रिड़मल (रणमल) हुए। राणा मोकलजी के मारे जाने पर मेवाड़ का पवित्र राजवंश इन्हींकी सहायता से क़ायम रहा था। इनके पुत्र १४—राव जोधाजी ने वि० सं० १५१६ की ज्येष्ठ सुदि ११ शनिवार (१२ मई सन् १४५९ ई०) के दिन मंडोवर से ६ मील दक्षिण में नया क़िला बनवाना आरम्भ कर नवीन राजधानी जोधपुर की स्थापना की। जोधाजी ने अपने राज्य को उत्तर में पंजाब और पश्चिम में सिन्ध की सीमा तक बढ़ाया। इनके २६ भाई और १७ बेटे थे। ये वि० सं० १५४५ की वैशाख सुदि ५ (ई० सन् १४८८, एप्रिल १८) को ७३ वर्ष के होकर स्वर्ग सिधारे। इनके गुणों की गणना इन तीन अनमोल फ़िक़रों में होती है, कि वे हक़ पर रहते थे, नीति-शास्त्र पर चलते थे और प्रजा की रक्षा करते थे। आज उनकी संतान में ८ बड़े-बड़े राज्य—जोधपुर, बीकानेर, किशनगढ़, ईडर, रतलाम, झाबुआ, सैलाना और सीतामऊ हैं[1]। इस्तमरारदार (ताल्लुक़ेदार) और जागीरदार तो अनन्त हैं।

शाह अकबर ने जब सं० १६२४ वि० में चित्तौड़ पर चढ़ाई की, तब इन्हीं राव जोधाजी के परपोते वीर जयमल्ल मेड़तिया ने ही गढ़ की रक्षा की थी। सुप्रसिद्ध सत्याग्रही भगवद्भक्ता मीराबाई भी जोधाजी की प्रपौत्री थीं[2]। जोधाजी के बड़े पुत्र १५—राव सातलजी तो जोधपुर के अधिकारी हुए और बीकाजी ने जाँगलू देश फ़तह कर वहाँ पर अपने नाम से वि० सं० १५४५ वैशाख सुदि २ को बीकानेर-राज्य की स्थापना की। राव सातलजी के समय वि० सं० १५४८ में अजमेर के सूबेदार मल्लूख़ाँ और

लगे और "राजपूत माली" नाम से पुकारने लग गये। यही कारण है कि श्रीदरबार राज मारवाड़ की ओर से बनाई हुई और बड़ा-भारी खोज-पड़ताल व जाँच के साथ राज्य के बड़े-बड़े मुसद्दी, विद्वान्, इतिहासज्ञ और वयोवृद्धों की एक कमिटी द्वारा संशोधित तथा महाराजा साहब के पास करने पर लाख से अधिक रुपए के व्यय से मारवाड़ की ४५० हिन्दू मुसलमान जातियों का जो विस्तृत इतिहास सन् १८८१ ई० की मनुष्य-गणना के समय तैयार हुआ, उसमें हरएक कौम को उसकी क़ौमियत से ही लिखा गया था। परंतु उस महत्त्वपूर्ण ग्रंथ के पृष्ठ ८३ में भी इस जाति को "राजपूत माली" लिखा है। अन्य किसी क्षत्रियवर्णस्थ जाति को भी राजपूत नहीं लिखा है। यही जाति पंजाब और यू० पी० में "सैनी" कहलाती है।

[1]—मालवा के अलीराजपुर राज्य के हिज़ हाइनेस राजा अपने को मारवाड़ राठौर-राजवंश से निकले मानते हैं। [Vide Ruling Princes and chiefs and leading families in Central India by Col C E Luard I A, M A, page 60 (1923 A D)]

[2]—ये मेड़ताधिपति राव दूदाजी की पोती व रत्नसिंह की एकलौती पुत्री थीं। इनका जन्म सं० १५५५ वि० में हुआ था और विवाह मेवाड़ के महाराणा साँगा के ज्येष्ठ पुत्र कुँवर भोजराज से सं० १५७३ में हुआ और विधवा १५८० में हुईं। इनकी मृत्यु १६०३ की चैत्र सुदि ३, सोमवार को हुई, जैसा कि गाँव के लाखा के शिलालेख से प्रकट है।

घड़ूलाख़ाँ ने रावजी के भाई दूदाजी की राजधानी मेड़ता पर चढ़ाई की और गौरी-पूजनार्थ गई हुई गाँव कोसाने के तालाब पर से १४० क्षत्रिय कन्याओं को ले भागा। सातलजी ने, जो राव दूदाजी की मदद के लिए पहले ही मेड़ता पहुँच चुके थे, कन्याओं पर अत्याचार सुनकर मुसलमानों का पीछा किया और राजपूत कन्याओं के साथ कई अमीरज़ादियों को भी मय घड़ूलाख़ाँ की रूपवती कन्या के ले आये। परंतु वे स्वयं ऐसे घायल हो गये थे कि डेरे पर पहुँच उसी रात (श्रावण सुदि ३ = ई० सं० १४६१, मार्च १३) को मर गये। इस युद्ध में मीर घड़ूला राव सातलजी के सेनापति खीची सारगजी के तीरों से छिदकर मारा गया। खीची सरदार ने घड़ूले का तीरों से छिदा हुआ सिर काट कर उन १४० कन्याओं के सुपुर्द किया। ये कन्याएँ इस सिर को लेकर सारे गाँव में घूमीं। तुर्क के, इन दीन अबलाओं को कष्ट देने और उसके परिणाम की यादगार में एक वार्षिक मेला स्थापित होगया[१]। यह मेला राजपूताने के सुप्रसिद्ध "गणगोरियों" के मेले के दिनों में मारवाड़ के सारे नगरों में मनाया जाता है। इस दिन सन्ध्या समय गाँव की स्त्रियाँ मिलकर कुम्हार के घर जाकर वहाँ से एक बहुत छेदोंवाली छोटी मटकी लाती हैं, जिसके बीच में एक जलता हुआ दीपक रख "घुड़ल्यो घुमेलो"-नामक गीत गाती हुई घर लौटती हैं। इसके छेदों से मीर घड़ूलाख़ाँ के शरीर में लगे हुए जख़्मों का तात्पर्य समझा जाता है। यह मारवाड़ियों की मुसलमानों पर विजय का सूचक है।

राव सातलजी के उत्तराधिकारी १६—राव सूजाजी हुए। वे २४ वर्ष तक राज्य कर सं० १५७१ की भादों सुदि १४ (ई० स० १५१४, सितम्बर ३) को स्वर्ग सिधारे। इनके ज्येष्ठ पुत्र कुँवर बाघाजी का स्वर्गवास इनके जीवन-काल में ही हो गया था। इस कारण बाघाजी के पुत्र १७—राव गांगाजी गद्दी पर बैठे। ये बड़े वीर थे। इन्होंने राणा साँगाजी को मुसलमानों के विरुद्ध अनेक बार मदद दी थी। इनके पुत्र १८—राव मालदेव हुए, जिनका राज्य आगरा और दिल्ली की सीमा तक पहुँच गया था। इन्हींके साथ मुठभेड़ होने पर दिल्ली के बादशाह शेरशाह ने कहा था कि—"ख़ैर हुई, वरना मुट्ठी भर बाजरे के वास्ते मैंने हिन्दुस्तान की बादशाहत खोई थी।" यदि उस समय राठौरों में फूट न हुई होती, तो संभव था कि, भारत का इतिहास कुछ और ही ढंग से लिखा

राव मालदेव राठौर

जाता। मालदेवजी की ही रानी सुप्रसिद्ध "रूठी रानी" थी, जिसका नाम उमादे था और जो जयसलमेर के रावल लूणकरण भाटी की राजकुमारी थी। वह एक कारण-विशेष से विवाह की रात ही को रावजी से रूठ (नाराज़ हो) गई थी, और आयु भर (३६ वर्ष) ऐसी ही रह, रावजी के स्वर्गवास पर सती हुई। रानी उमादे भटियाणी (रूठी रानी) के साथ ही ज्योतिषी चडूजी पुष्करणा जोधपुर में आये थे, जिन्होंने सं० १५६८ में अपनी नवीन परिपाटी को पूर्ण रीति से ठीक करके पंचांग चलाया। यह पंचांग राजपूताने में बड़ा प्रसिद्ध है और

१—किसी-किसी ख्यात में लिखा है कि यह मेला मीर घड़ूला की पुत्री ने अपने स्वामी सूजाजी से आज्ञा ले, अपने पिता की स्मृति में चलाया था।

बंबई आदि में हज़ारों की संख्या में छपकर प्रकाशित होता है। मालदेवजी के पीछे उनकी इच्छानुसार उनके द्वितीय पुत्र १९—राव चंद्रसेन सं० १६१९ वि० में गद्दी पर बैठे। यह बड़े स्वाधीनचेता नरेश थे। इनके मरने पर इनके भाई २०—राजा उदयसिंहजी (मोटा राजा)

राजा उदयसिंह राठौर

राज्य के मालिक बने। इन्हीं के समय में पहले-पहल मारवाड़ पर मुगलों का प्रभाव पड़ा। ख्यातों में लिखा है कि इनकी पुत्री मानबाई (जोधबाई) शाहज़ादे सलीम (जहाँगीर) को ब्याही गई थी। इससे कल्ला रायमलोत ने नाराज होकर दगा करना चाहा, किंतु बादशाही दबाव से वह सीवाने की तरफ़ चला आया। पीछे से राजा उदयसिंह भी बादशाही सेना लेकर चढ़े। सीवाना (मारवाड़) में सं० १६४५ में लड़ाई हुई, जिसमें राठौर वीर कल्ला रायमलोत रणक्षेत्र में काम आया। इसकी सन्तान लाडनू आदि गाँवों में हैं। राजा उदयसिंह के पीछे उनके पुत्र २१—राजा सूरसिंहजी तो जोधपुर की गद्दी पर बैठे और कृष्णसिंहजी ने कृष्णगढ़ राज्य की सं० १६५१ वि० में स्थापना की। राजा सूर-सिंह की तलवार से दक्षिण के पठान भी काँपा करते थे। इनका मंत्री गोविंददास बड़ा ही बुद्धिमान था। राजा सूरसिंहजी के पुत्र २२—राजा गजसिंह ने बादशाही सेना के साथ अनेक युद्धों में विजय प्राप्त की थी। गज-सिंहजी के पुत्रों में से बड़े पुत्र राव अमरसिंह तो नागौर

देश-गौरव राव अमरसिंह राठौर नागौरपति

के अधिपति हुए और २३—महाराजा जसवंतसिंहजी को जोधपुर की गद्दी मिली। ये दोनों ही वीर थे। इनमें से राव अमरसिंह राठौर तो 'गँवार' कह देने पर क्रोधित हो आगरे के क़िले में भरे दरबार में सम्राट् शाहजहाँ के बख्शी सलावतख़ाँ को श्रावण सुदि ३ सं० १७०१ (ई० सन् १६४४, ता० २६ जुलाई, शुक्रवार) को अपनी कटारी

से मारकर वीरगति को प्राप्त हुए। उस कटारी की प्रशंसा में उसी समय किसी कवि ने यह कवित्त कहा था[1] —

वजन मांह भारी थी कि रेख में सुधारी थी,
हाथ से उतारी थी कि साचेहू में ढारी थी।
सेलजा के दर्द मांहि गर्द-सी जमाई मर्द,
पूरे हाथ साधी थी कि जोधपुर सँवारी थी।
हाथ में हटक गई गुट्टि सी गटक गई,
फेफड़ा फटक गई श्रोंका बाकी तारी थी।
शाहजहाँ कहे यार सभा मांहि बारबार,
अमर की कमर में कहाँ की कटारी थी॥

साहि को सलाम करि मारि गो थो सलावतखाँ,
दिली गयो मरोर सूरबार धीर आगरो।
मीर उमरावन की कचेड़ा धजाय गारो,
खेलत सिकार जैसे मृगन में बागरो।
कहे पानराय गजसिंह के अमरसिंह,
राखी रजपूती मजबूती नव नागरो।
पाव सेर लोह से हलाई सारी पातसाही,
होता समसेर तो छिनाय लेतो आगरो॥

महाराजा जसवंतसिंहजी (प्रथम) जबतक जिये, औरंगज़ेब के साथ बराबर छेड़-छाड़ करते रहे। यद्यपि बादशाह औरंगज़ेब (आलमगीर) मन में इनसे बहुत ही जलता था, परन्तु खुलकर विरोध करने से हिचकता था। अन्त में उसने इन्हें अपने राज्य से दूर करने के लिए काबुल का गवर्नर बना उधर भेज दिया। परन्तु राठौर वीर ने वहाँ पर भी अपनी वीरता से युद्धप्रिय पठानों का उत्साह ढीला कर दिया। यह वीर होने के साथ ही साहित्य-प्रेमी और विद्वान् भी थे। इनकी बनाई पुस्तकों में आनन्दविलास, अनुभवप्रकाश, अपरोक्षसिद्धान्त, सिद्धान्तबोध, सिद्धान्तसार और भाषाभूषण प्रसिद्ध हैं। भाषाभूषण हिन्दी में अलंकारों का एक बहुत उत्तम ग्रंथ है। इनमें से पहले पाँच तो वेदान्तपंचक के नाम से जोधपुर राज्य की तरफ़ से हाल ही में छपे हैं, और भाषाभूषण भी शायद काशी से प्रकाशित हो चुका है। महाराजा कविता भी अच्छी करते थे, जिसके नमूने के कुछ दोहे ये हैं —

जसवंत शीशा काच का जैसे नर का देह।
जतन करन्ता जावसी हर भजि लाहा लेह॥ १॥
जसवंत बास सराय का क्यों सोवे भरि नैन।
श्वास नगारे कूच के बाजत है दिन रैन॥ २॥
दस दुवार का पींजरा ता में पंछी पौन।
रहन अचंभो है जसा जात अचंभो कौन॥ ३॥
खाया पाया खरचिया दिया लिया सो सत।
जसवंत धर पौढ़ावियाँ माल बिराणे हत॥ ४॥

इन साहित्य-सेवी महाराजा का दीवान मुहणोत नैणसी भी विद्या का बड़ा रसिक था। उसने राजपूताने के राजपूत राज्यों का बहुत अच्छा इतिहास मारवाड़ी भाषा में लिखा है, जो राजपूताने में और दूर-दूर तक "मूता नैणसी की ख्यात" के नाम से प्रसिद्ध है[1]।

महाराजा मानसिंह राठौर

[1] —मारवाड़ राज्य का इतिहास पृष्ठ १४८ (सं० १९८२ वि०)

[1] —मूता नैणसी का जन्म ओसवाल वैश्य जाति में वि० सं० १६६७ की मगसर सुदि ४ शुक्रवार (ई० सन् १६१०, ता० ९ नवम्बर) को हुआ था और मृत्यु सं० १७२७ की भादों बदि १३ (ई० सन् १६७०, ता० ३ अगस्त, बुधवार) को हुई।

इन्हीं महाराजा जसवन्तसिंह ने अपने कृषिविद्या-विशारद गहलोत चतुराजी की सम्मति से काबुली अनार (दाड़िम) के पेड़ जोधपुर में लगाने का प्रयत्न किया। इस समय भी मारवाड़ के अनार दूर-दूर तक प्रसिद्ध हैं। वे न सिर्फ काबुल के अनारों-जैसे ही स्वादिष्ट और गुणकारी होते हैं, किन्तु मिठास और सस्तेपन में काबुली अनारों को भी मात करते हैं। लोग दूर-दूर से मँगाते हैं। इन अनारों को यहाँ पर उगाने के लिए मंडोवर के गहलोत चतुराजी ने पूर्ण उद्योग किया था, जो वर्षों महाराजा के साथ काबुल में भी रहे और वहीं ४३ वर्ष की आयु में श्रावण सुदि ४ सं० १७३० वि० (७ जुलाई सन् १६७३ ई०, सोमवार) को काम आये।

महाराजा जसवंत के पुत्र २४—अजीतसिंह थे। यह ऐसे प्रतापी और स्वाधीन प्रकृति के हुए कि इन्होंने सैयद-बंधुओं से मिलकर बादशाह फर्रुखसियर को दिल्ली के तख्त से हटा फाँसी दे दी और उसके स्थान पर क्रमश: एक के बाद दूसरा, इसी प्रकार तीन, बादशाह दिल्ली के तख़्त पर बैठा दिये। इन्हींके समय में वीर दुर्गादास[1] राठौर और सरदार मुकुन्ददास खीची बड़े बहादुर और स्वामिभक्त होगए हैं। इन्हीं वीरों की वीरता से औरंगज़ेब को निगला हुआ मारवाड़ का राज्य फिर उगलना पड़ा था। किन्तु काल की गति देखिए कि, जिस दुर्गादास के बाहुबल, पराक्रम तथा बुद्धिमानी से यवनों के ग्रास से मारवाड़-राज्य का उद्धार हुआ था, वही दुर्गादास महाराजा की अकृपा से बुढ़ापे में मारवाड़ से निकाल दिया गया, जैसा कि किसी कवि ने उस समय कहा था:—

> महाराजा अजमाल की जद पारख जाणी ।
> दुरगो देशां काढियो गोला गांगाणी ।

अर्थात् महाराजा अजीतसिंह की परीक्षा तो तब हुई जब उसने दुर्गादास जैसे अपने सहायक को देश से निकाल दिया और गांगाणी की जागीर गोला[2] (गुलाम) को दी।

वि० सं० १७३६ की श्रावण बदि २ को बादशाह ने बालक अजीत तथा उनकी माताओं को, जिनका डेरा दिल्ली में कृष्णगढ़ के राजा रूपसिंह की हवेली में था,

वीर मुकुन्ददास खीची चौहान
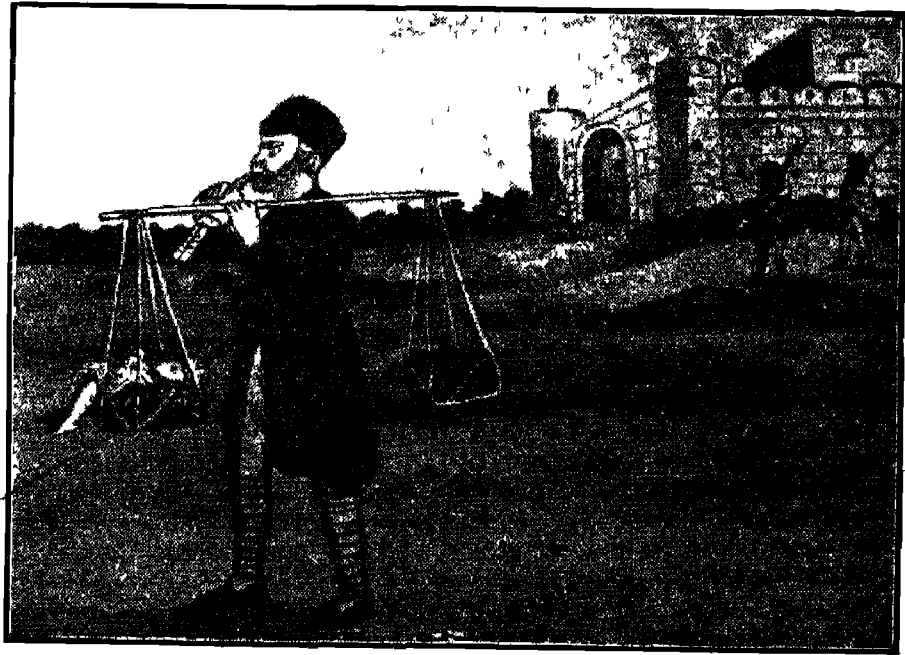
1—इस आदर्श वीर दुर्गादास का जन्म संवत् १६९५ की द्वितीय श्रावण सुदि १४, सोमवार (ई० स० १६३८, ता० १३ जून) को हुआ था और देहान्त सं० १७७८ की ज्येष्ठ बदि ११ (ई० स० १७२१, ता० १३ एप्रिल) गुरुवार को उज्जैन में सफरा (सिप्रा) नदी के तट पर हुआ था। देखो—"मारवाड़ राज्य का इतिहास" पृष्ठ १६२

२—महाराजा अजीतसिंह ने सं० १७६५ में खीची मुकुन्ददास के बेटे गोकुलदास को जागीर में गाँव गांगाणी दे दिया था। मुकुन्ददास ने महाराजा की बड़ी सेवाएँ की थीं।

वीर दुर्गादास राठौर

बादशाही महलों (नूरगढ़) में जबरदस्ती ले आने की आज्ञा शाही कोतवाल को दी। किन्तु खीची मुकुंददास एक दिन पहले ही सँपेरे (कालबेलिया) का स्वाँग भर महाराजा को मय उनके छोटे भाई दलथम्मनजी के निकाल लेगया।

महाराजा अजीत के पुत्र २५—महाराजा अभयसिंह ने सूबेदार सरबलंदखाँ को आसोज सुदि १२ सं० १७८७ वि० को परास्त कर अहमदाबाद पर विजय की थी, और वहाँ से अनेक अपूर्व वस्तुएँ लूट लाए थे, जो अबतक जोधपुर राज्य में सुरक्षित हैं। इन महाराजा ने जोधपुर के शासक नरेश के छुटभइयों को तीन पीढ़ी तक "महाराज" उपाधि धारण करने का अधिकार दिया था, जो अबतक है। महाराजा अभयसिंह के पुत्र २६—महाराजा रामसिंहजी में बचपन बहुत था, इससे जागीरदार और प्रजा नाराज थी। यह हाल देख इनके चाचा २७—महाराजा बख्तसिंहजी इन पर चढ़ाई कर सं० १८०८ वि० में गद्दी पर बैठ गये। बख्तसिंह बड़े न्यायी थे। इनके पुत्र २८—महाराजा विजयसिंहजी

महाराजा विजयसिंह राठौर

दुर्गादास के किसी पक्षपाती चारण ने जलन से गोकुल को गोला (दासीपुत्र) कह दिया है। वास्तव में यह शुद्ध क्षत्रिय था।

१—राजा रूपसिंह की हवेली के जनाने महलों में से बालक अजीतसिंह को लाकर मुकुंददास खीची को सौंपनेवाली वारांगना गोरा धाय थी, जो मंडोवर की राजपूत माली (सैनी) जाति की थी। यह मेहतरानी (भंगिन) का स्वाँग भर टोकरी में बच्चे को रखकर शाही पहरे से बड़ी चतुराई से बाहर ले आई थी। इस सेवा के बदले में उसे राज्य से भूमि दीगई। उसकी सनद अबतक उसके वंशजों के पास है। इस गोरा धाय की बनवाई विशाल गोरा धाय बावड़ी उर्फ गोरधा जोधपुर शहर में पोकरन की हवेली के पास अबतक है। गोरा धाय की माँ रूपा धाय टाक की बनवाई बावली भी शहर में मेड़ती दरवाजे के पास है।

कट्टर वैष्णव थे, उन्होंने अपने राजकाल में शराब और मांस का पेशा ही उठा दिया था। इनके एक उमराव (आहुवा के ठा० जैतसिंह) ने इस हुक्म की अवज्ञा की। इस पर सं० १८३१ में महाराजा ने ठाकुर को जोधपुर के क़िले में बुलवाकर मरवा डाला। मारवाड़ में पहले-पहल इन्हींके समय में चाँदी का सिक्का बनने लगा, जो "बिजेशाही" के नाम से प्रसिद्ध हुआ। इन्हीं महाराजा ने मरहठों के मुक़ाबिले के लिए मेवाड़ से गोसाइयों को बुलाकर एक सेना बनाई थी। यह लोग अपनी वीरता और स्वामिभक्ति के लिये प्रसिद्ध थे। बाण चलाने में तो ये बड़े ही दक्ष थे। इनके पौत्र २९—महाराजा भीमसिंहजी बड़े उदारचित्त, वीर, दयावान् और गुणग्राहक थे। यह पढ़े-लिखे कुछ न थे, लेकिन स्वयं बुद्धिमान होने से राजकाज भली प्रकार चलाया। कहते हैं, इनके ११ वर्ष के राजकाल में एक भी अकाल मारवाड़ में न पड़ा। महाराजा भीमसिंहजी के भतीजे ३०—महाराजा मानसिंहजी बड़े गुणी थे। इनके विषय में यह दोहा प्रसिद्ध है —

जोध बसाई जोधपुर ब्रज कीना बिजपाल।
लखनऊ काशी दिल्ली मान करी नेपाल ॥

इनके बनाए अनेक कविता के ग्रंथ प्रसिद्ध हैं। इनमें से कृष्णविलास (भागवत के दसवें स्कंध के पहले के ३२ अध्यायों का छंदोबद्ध अनुवाद) राज्य की तरफ़ से हाल में प्रकाशित हुआ है। इन्हींके समय में पहले-पहल अंग्रेज़ सरकार से पौष सुदि ६ सं० १८६० (२२ दिसम्बर १८०३ ई०) को सन्धि हुई, पर बाद में महाराजा ने इसे मंज़ूर नहीं किया। इसके बाद इन्होंने कम्पनी के विरुद्ध जसवन्तराव होलकर को सहायता दी। इससे वि० सं० १८६१ में यह सन्धि रद्द होगई। जिस समय यह सन्धि हुई थी उस समय अंग्रेज़ों और मरहठों के बीच युद्ध छिड़ा हुआ था, इससे इसमें खिराज देने का बंधन नहीं था। परन्तु इसके बाद जो सन्धि सं० १८७४ में हुई, उसमें यह शर्त लगा दी गई। यह महाराजा शरणागतों की बड़ी रक्षा करते थे। सं० १८८४ में जब नागपुर का राजा मधुराजदेव भोंसले अंग्रेज़ों से मुठभेड़ कर जोधपुर पहुँचा तो महाराजा ने उसे आदर से सुरक्षित रखा। किन्तु कुछ समय पश्चात उस राजा का जोधपुर में देहान्त होगया। महाराजा मान के राजकुमार छत्रसिंह का स्वर्गवास इनके जीवनकाल में ही हो जाने के कारण ईडर राज्य के अहमदनगर (अब हिम्मतनगर) से ३१—महाराजा सर तख़्तसिंहजी, जी० सी० एस० आई०, कार्तिक सुदि ७ सं० १९०० वि० को गोद लिये गये। इन्होंने सं० १९१४ के गदर में अंग्रेज़ों की बड़ी मदद की थी। यह महाराजा शराब अधिक पीते थे। यह क़द के छोटे, गोरे, हँसमुख और मिलनसार थे। इन्हींके समय में पहले-पहल अंग्रेज़ी स्कूल स्थापित हुआ और मुंशी रतनलालजी मनिहार (माहेश्वरी वैश्य) के सम्पादकत्व में "मुरधरमित्र" साप्ताहिक हिन्दी पत्र निकला। डूँगजी और जवारजी नामक शेखावत राजपूत भी आपही के समय में हुए थे, जो बड़े बड़े डाके डाला करते थे। इन दोनों भाइयों की धाक से उस समय राजपूताने के लोग थर्राते थे। नामी डाकू होने पर भी इन्होंने ब्राह्मण और स्त्री का अनादर नहीं किया और गरीबों पर सदा दया की। कम्पनी सरकार ने मौक़ा पाकर जब डूँगजी को आगरे की जेल में क़ैद कर दिया, तब जवाहर ने अपने बहादुर करनिया मीना और लोटिया जाट की सहायता से उसे निकाल लिया था। इसके बाद दोनों वीर फिर पकड़े गये और क़ैद हुए, किंतु मारवाड़ के उनके संबंधी कई ठाकुर लोग दल बाँध आगरे पहुँच ठीक मुहर्रम क़तल की रात को क़िले पर हमला करके दोनों भाइयों को मय साथियों के छुड़ा लाये। अन्त में इन्होंने नसीराबाद (अजमेर) छावनी के अँगरेज़ी ख़ज़ाने को दिन दहाड़े लूटा और ४२,०००) ले भागे। जवाहरजी

१—यह बाण चरख़ की नाल के आकार का होता था और उसमें जंजीरों से आठ नंगी तलवारें बंधी रहती थीं। इस नाल में बारूद भर कर आग लगा देने से यह शस्त्र शत्रु सेना में पहुँच चक्र की तरह घूमता हुआ शत्रुओं का संहार करता था। कर्नल टाड ने इन संन्यासी महापुरुषों को Templars of Rajasthan के पद से सम्बोधित किया है।

२—राव जोधाजी ने तो जोधपुर नगर बसाया और महाराजा विजयसिंह ने ब्रज के वैष्णव गोसाइयों को बसा और जगह-जगह मंदिर बना ब्रज बनाई, परन्तु महाराजा मान ने तो गवैयों, पंडितों और योगियों को बुलाकर लखनऊ, काशी, दिल्ली और नेपाल ही कर दिया।

तो बीकानेर-नरेश महाराजा रत्नसिंह की शरण में चला गया, जहाँ वह वि० सं० १८९८ तक रहा और डूँगजी को महाराजा तख्तसिंह ने सं० १९०४ के आषाढ़ कृष्ण पक्ष (जुलाई १८४७ई०) में अँगरेज़ों के सुपुर्द कर दिया।

महाराजा तख्तसिंहजी के ज्येष्ठ पुत्र ३२—महाराजा जसवंतसिंहजी (द्वितीय) थे, जिनकी कृपा और दयालुता से इस मरुस्थल देश में विद्या का प्रचार प्रारंभ हुआ और नाना प्रकार के कला-कौशल रेल, तार, डाक आदि का प्रचार हुआ। वह आपही का समय था कि जब पुराणों में वर्णित मरुस्थल प्रांत में अनेक

परलोकवासी लेफ्टिनेन्ट जेनरल हिज़हाइनेस महाराजाधिराज महाराजा सर प्रतापसिंहजी बहादुर, जी०सी०बी०, जी०सी०एस०आई०, जी० सी० वी० ओ०, ए० डी० सी०

बाँध आदि तैयार होजाने से जल का अभाव मिट गया और निर्जल मरुभूमि में भी अनेक बाग बगीचे और निर्मल जल से पूर्ण जलाशय नज़र आने लगे। इन्होंने ही अपने कनिष्ठ भ्राता और राज्यके प्रधान मन्त्री महाराजा सर प्रताप (पश्चात् ईडर-नरेश) की सम्मति से सं० १९४० में स्वहस्त-लिखित एक "ख़ास रुक्का" भेजकर स्वामी दयानंद सरस्वती को बुला उनसे स्वधर्म-रक्षा और स्वजातीय शिक्षा का पाठ पढ़कर जोधपुर में वैदिक धर्म का प्रचार कराया और अदालतों में उर्दू की जगह हिन्दी जारी की। वैसे तो उस समय के राजकर्मचारियों और स्वयं महाराजा पर भी स्वामीजी के कई मास के सत्संग का बहुत प्रभाव पड़ा था, परन्तु नवयुवक और होनहार मुसाहिबआला महाराजा सर प्रताप पर तो ऐसा असर पड़ा कि वे आजन्म स्वामीजी के अनन्य भक्त बने रहे। स्वामीजी के उपदेश द्वारा महाराजा साहब और प्रधान मन्त्री सर प्रताप का ध्यान देश की वास्तविक उन्नति और समाज-सुधार आदि की ओर गया। राजपूत जाति की उन्नति भी इस समय से ख़ूब होने लगी। सर प्रताप द्वारा राजपूतों की जो उन्नति हुई, उसका दिग्दर्शन कवि जुगतीदान चारण ने इस प्रकार किया है:—

बगता जमों अजा त्रिजा मान गुमान मां बाप,
तारस कुल तखतेस रे पारस तू परताप।
दूजा कारम देखिया एक सुधारस आप,
मरुधर बारस जनमियो पारस तू परताप।
छतरि चराते छानियो धान न खाते धाप,
मोरा रा बटण लगावे पानल रो परताप।
पा दारू परवारता करजा में कल काप,
ठका हुतो ठीक हुई सर पा रो परताप।

महाराजा जसवंतसिंहजी के एकलौते पुत्र ३३—महाराजा सर सरदारसिंहजी, जी० सी० एस० आई० थे। इनके समय में भी अनेक नवीन जलाशय तैयार किये गये, जिससे वहाँ सदा के लिये जलाभाव दूर होगया। यह नरेश भी बड़े सरल स्वभाव, आडंबररहित और सच्चे मधुरभाषी थे। धर्म पर आपकी दृढ़ श्रद्धा थी। जोधपुर के सर्वमान्य योगी, ध्यानी, ज्ञानी और ब्रह्मनिष्ठ महात्मा देवीदान सन्यासी के आप पूरे भक्त थे, अतएव सन्यासीजी के दर्शनों को उनके पहाड़ी आश्रम (देवीदान देवस्थान) पर बहुत

जाते थे और घंटों उपदेश सुनते थे। जैसा आपको धर्म-विषय में प्रेम था, वैसाही आपको सच्चा प्रजाप्रेम भी। आप अपनी प्रजा के हित का बड़ा ध्यान रखते थे। प्रजा का भी आप पर पूरा प्रेम था। सं० १९५६ के भयकर अकाल के समय मुक्तहस्त होकर अपनी प्रजा के प्राणों की रक्षा की थी। उस समय को भीषण दशा का वर्णन करते हुए राजस्थान का चिरस्मरणीय महाकवि ऊमरदान कहता है—

माणम मुरधरिया माणक सम मूगा,
कौड़ी कौड़ी रा करिया श्रम सूँगा।
दाढी मूछाला डालिया मे डूलिया,
रलिया जायोडा गलियाँ मे रूलिया।
आफत मोटी ने खोटी पल आई,
रोटी रोटी ने रैयत रोवाई[१]।

इन्हीं महाराजा ने जोधपुर शहर में पत्थर की सड़कें बनवाकर आवागमन की सुविधा करदी। सरदार मार्केट, घंटाघर और जसवन्त थड़ा (जसवत स्मृति-भवन) आपके समय की मुख्य यादगार है। इनके ज्येष्ठ पुत्र

३४—महाराजा मेजर सर सुमेरसिंहजी, के० बी० ई०, थे। ये १६ वर्ष की आयु मे मय अपनी सेना के महाराजा रिजेन्ट सर प्रताप के साथ यूरोपीय महायुद्ध मे गए थे। इनके समय में जोधपुर नगर में बिजली आदि लोकहितकारी कार्यों का प्रचार हुआ, और सर्वसाधारण के हितार्थ राज्य की तरफ़ से एक सार्वजनिक पुस्तकालय (सुमेर पब्लिक लाइब्रेरी) खोला गया। इन्हीं महाराजा साहब ने पहले पहल मारवाड़ मे शिक्षा और समाज-सुधार-सम्बन्धी समाचारपत्रों को प्रकाशित करने और प्रेस खोलने की आज्ञा प्रदान की। आप रसिक भी पूरे थे और आपको सगीत का भी बड़ा भारी शौक़ था। इसके सिवाय आपमें यह भी एक गुण था कि बिना किसी छोटे-बड़े का विचार किए समयानुसार सभी का समान आदर किया करते थे।

जोधपुर नरेश का राजभवन

कहा जाता है कि आपने एक बार बम्बई से हजामत बनवाने के लिए एक नाई बुलवाया। उसको पहले दर्जे का रेल किराया तथा मार्ग-व्यय-स्वरूप १८०) प्रदान किये। ८०० मील की यात्रा करके जब यह नाई जोधपुर पहुँचा, तो उसने तुरत अपने पहुँचने की सूचना महाराजा को दी। महाराजा ने बुलाया और कहा कि इस समय मैं राज्य के कार्यों में सलग्न हूँ, अत कल आना। दूसरे दिन महाराजा शिकार खेलने चले गये। नाई को आज्ञा मिली कि फिर आना। तीसरे दिन महाराजा बीमार होगये। अत हुक्म हुआ कि तदुरुस्त होने पर हजामत बनवावेंगे। एक सप्ताह योंही गुज़र गया।
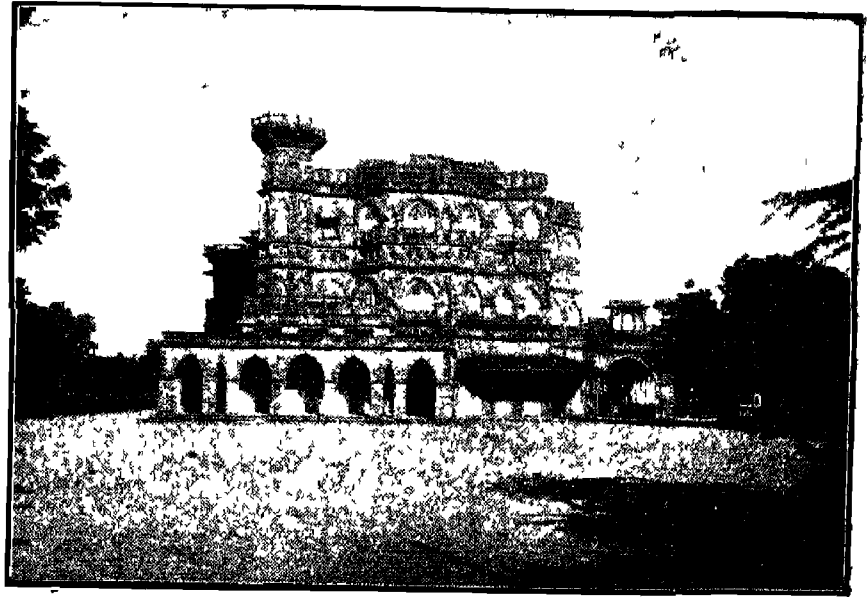
[१]—अर्थात् मुरधर (मारवाड) के मनुष्य (वह मारवाड़ी, जिसकी धाक धन और व्यापार में सर्वत्र प्रसिद्ध है), जो माणिक और मूँगा आदि रत्नों के समान महगे थे, एक-एक कौड़ी का सस्ता परिश्रम करते दिखाई दिये। गर्वभरी दाढ़ी मूछोंवाले डालिया (टोकरी) उठाते थे। रलिया (महलों) मे पैदा हुए गलियों में भटक रहे थे। यह छप्पन की घड़ी, भारी आपत्ति के साथ आई थी—रैयत (प्रजा) रोटी रोटी को रोती थी।

महाराजा ने स्वास्थ्य लाभ कर लिया, पर कुछ विदेशी मित्रों के आदर-सत्कार में लगजाने के कारण आज्ञा दी गई कि इनके चले जाने पर हजामत बनवाई जायगी। इस तरह वादे होते रहे। भाग्यवान् नाई तीन महीने तक जोधपुर राज्य में मेहमान रहा और उसे १०) रोज़ जोधपुर में रुके रहने के मिलते रहे। यह हजामत की फ़ीस के सिवा थे। इस प्रकार तीन मास पीछे हजामत बनी और एक हजामत पर सिर्फ़ १ हज़ार रुपये खर्च हुए[1]।

इन महाराज ने बालकपन से ही इंगलैंड में शिक्षा पाई थी, इस कारण ये पाश्चात्य ढंग को अधिक पसंद करते थे। छोटी अवस्था होने पर भी यह बड़े वीर, निर्भीक, प्रभावशाली और माहसी थे। खेद है, आप २१ वर्ष की भरी जवानी में ही इस संसार से कूच कर गये

महाराजा सर उमेदसिंहजी बहादुर, जोधपुर नरेश

आपके छोटे भाई ३४—महाराजा सर उमेदसिंहजी साहब बहादुर सं० १९७५ में गद्दी पर विराजे। आप बड़े ही प्रजाहितैषी और योग्य नरेश हैं। आपको पोलो का भी बड़ा शौक़ है। इससे जोधपुर की पोलो टीम ने भारत की पोलो टीमों पर विजय प्राप्त कर इंगलैंड में भी अच्छा नाम हासिल किया है। आप कुटुंब सहित अभी विलायत से लौटे हैं। आपके दो महाराजकुमार हैं, जिनमें बड़े महाराजकुमार प्रिंस हनुमन्तसिंहजी का ज्येष्ठ सुदि २, सं० १९८० को जोधपुर में और छोटे कुमार हिम्मतसिंह का वि० सं० १९८२ की आषाढ़ बदि ३० को लंदन में जन्म हुआ।

महाराजा साहब के छोटे भाई महाराज अजीतसिंहजी साहब भी बड़े बुद्धिमान् और होनहार नवयुवक हैं। मारवाड़ को आपसे बहुत कुछ आशा है। आपका शुभ विवाह ईसरदा के ठाकुर साहब सवाईसिंहजी की कन्या और हिज़हाईनेस जयपुर नरेश महाराजा श्री मानसिंहजी बहादुर की प्रिय भगिनी सौभाग्यवती श्रीमती सजन-कुमारी के साथ सं० १९८१ की वसंत-पंचमी को ईसरदा जयपुर में हुआ है।

जगदीशसिंह गहलोत

सूक्ति-सुधा

जाकी दुति देखि घटि जात दुति बारिद की,
कटि सरसात जाके सोभा पीत पट की।
सज्जन के हिय अपने हीं सों बिहरि जात,
देखत के खल छबि भृकुटी बिकट की।
चूरन चाणूरहू को कियो नाहिं चली एक,
कुबलयापीड़ से मतंग उद्भट की।
बास करे मेरे हिय मूरति साँवरी सोई,
कंस के करेजे में जो कुलिस लौं खटकी ॥ १ ॥

भृकुटी बिलास तें सँहार अरु सृष्टि करे,
आदि सक्ति जगदंबा जान घटघट की।
विश्व में बिभाति जो अनेक रूपरूपन में,
जाकी ज्योति-ज्वाला सारे जग बीच छिटकी।
जाई बसुधा की बधू कोमलेस नृपति की,
चातकी तृपित सदा राम राम रट की।
मंगल बढ़ावे सोई मैथिली चरन रेनु,
भई है सुगति जो बदन चारि खटकी ॥ २ ॥

सिमिलि उठ हँसे, कंज पुंज मुसकाइ उठे,
कली हू गुलाबन की बाटिका में चटकी।
मंद मंद मलय समीर हू बहन लागि,
पुहुप समूहन पै अलिआलि अटकी।
कैलिया हू हियरो हरन लागि मत्त कीर,
देनलागि सुरभि रसालन की टटकी।
आवत बसंत के भयो सो सब नीकी भयो,
रैनि छोटि होन लागि यहै हिए खटकी ॥ ३ ॥

भूपनारायण दीक्षित

1—New Empire—daily, July 1925

शास्त्रार्थ

प्रेतलीला

[भुतहे मकान का अनुभव]

प्रयागराज यदि संयुक्त-प्रान्त की राजधानी है, तो अंग्रेज़ी पढ़नेवालों की विद्याधानी भी है। नए विधान के पहले यहाँ छात्र-वृन्द अक्सर पढ़ने के साथ-साथ जीविका का उपार्जन भी कर लिया करते थे। उस समय विश्वविद्यालय न था, विश्व-परीक्षालय था। छात्रों का विश्वपरीक्षालय की चहारदीवारी के भीतर बन्द रहना अनिवार्य न था। किराये के घर लेकर अक्सर दस पाँच छात्र अपने बन्दोबस्त से रहा करते थे। कमाते भी थे। पढ़ते भी थे। आज हम तेईस बरस पहले की चर्चा कर रहे हैं।

उस समय मैं भी एक सरकारी दफ़्तर में नौकर था और लॉ क्लास में पढ़ता था। हम लोग कुल नौ विद्यार्थी मुहतशिमगंज के एक मकान में रहते थे। महल्ले में इसका नाम "महल" मशहूर था। टाउन इम्प्रूवमेंट ट्रस्ट ने तब से हज़ारों मकान गिरवा दिये, अनेक नयी सड़कें निकालीं, पर वह मकान और गली अबतक मौजूद है। साधारण दोमंज़िला मकान है। ऊपर चारों ओर घिरा है। दक्खिन में केवल खुली छत, पच्छिम में एक बरंडा और खुली छत और एक कोठरी, उत्तर में केवल बरंडा, पूरब में केवल एक लम्बा कमरा है। हम लोग जब रहते थे, हमारे साथ एक रसोइया था और दो नौकर भी रहते थे। रसोई नीचे के खंड में होती थी। सामान भी नीचे ही रहता था। हम लोग अधिकांश ऊपर ही रहते थे।

जब हम लोगों ने यह मकान किराये पर लिया, तब १६०१ की होली बीत चुकी थी। पहले दिन हम तीन ही आदमी नये घर में आए। रसोइया और एक नौकर मिलाकर हम पाँच थे। पहली रात में हम तीनों पच्छिम के बरंडे में सोये। तीनों चारपाइयाँ एक दूसरे से भिड़ी थीं। लालटेन एक कोने में धीमी की हुई रखी थी। मेरी चारपाई बीचोबीच बिछी थी। आधीरात के लगभग एकाएक मेरी आँख खुल गई। मालूम हुआ कि मेरी चारपाई काँप रही है। मैंने सोचा कि शायद मेरे दहने बाएँ कोई साथी ज़ोर से खुजला रहा है, इसीसे चारपाई हिल रही है। इधर-उधर पड़े-पड़े नज़र फेरी, पर कुछ पता न लगा। दोनों चादर लपेट पड़े थे। मैंने पुकारा तो दोनों जग पड़े। अब तीनों अपनी-अपनी चारपाई पर उठ बैठे। मालूम हुआ कि कोई खुजला नहीं रहा था। परन्तु मेरी चारपाई अभी काँप रही थी। पूछने से पता लगा कि चारपाइयाँ उनकी भी हिल रही हैं। तब तो मैं उठा, लालटेन तेज़ की। किवाड़ों की ज़ंजीरें देखीं तो स्थिर थीं। कन्दुकाकार गोल पेंदी का लोटा भी पानी से भरा स्थिर था। छत पर खड़े-खड़े भी कोई कँपकँपी जान न पड़ी। मैंने निश्चय कर लिया कि भूचाल नहीं है। फिर चारपाइयाँ अलग-अलग करदीं और बैठे, तब भी तीनों वही कम्पन अनुभव कर रहे थे। चारपाइयों के नीचे खूब देखा-भाला। कोई कारण समझ न पड़ा। तीनों में से हम दो तो विज्ञान के ग्रेजुएट थे और क़ानून पढ़ते थे। तीसरे सज्जन लाटसाहब के दफ़्तर में नौकरी करते थे, पर कुछ विज्ञान पढ़े हुए थे। निदान तीनों विज्ञान-लव-दुर्विदग्ध हम कम्पन के कारण का पता न लगा सके। चारपाइयाँ झाड़ डालीं, पटक कर खूब साफ़ कीं, फिर बिछाया तो फिर कम्पन। शायद आध घंटे के बाद यह कम्पन मिट गया और हम सब फिर सोये। सोने के पहले फिर भी यह निश्चय कर लिया कि लोगों से दिन में भूकम्प की चर्चा की जायगी। शायद रात में भूकम्प आया हो, परन्तु चारपाई हिलाने को ही काफ़ी रहा हो। ज़ंजीर और अस्थिर पेंदे के लोटे को हिलाने की ताकत उसमें न रही हो। इस असम्भाव्य और विपरीत सम्भावना को संभव मानकर हम लोगों ने अपनी पैनी बुद्धि को जैसे-तैसे संतुष्ट कर लिया। प्रेतलीला की सम्भावना प्रत्येक के मन में थी, परन्तु मूर्ख बनने के डर से किसी ने मन की बात उस समय प्रकट न की।

दिनमें अपने-अपने कार्यालयों में हममें से हर एक ने पूछा—"क्यों भाई, कल आधीरात को कैसे ज़ोर का भूकम्प आया। तुम जागते थे कि सोते?" परन्तु प्रायः सभी गहरे सोनेवाले निकले। हाँ, एक सज्जन ने कहा कि, "भाई! मैं तो दो-बजे तक काम करता रहा, मुझे तो कोई भूकम्प नहीं मालूम हुआ। भूचाल क्या अकेले आपके ही लिये आया था?" इस प्रकार हम लोगों ने अपने झूठे निष्कर्ष का निश्चय कर लिया। आपस में

अन्त में यही निर्धारित करना पड़ा कि कोई अज्ञात और अदृष्ट कारण होगा। फिर कम्पन हो तो पता लगाने की और कोशिश की जाय।

परन्तु फिर वह कम्पन नहीं हुआ। लगभग एक मास के उसकी राह देखते बीत गये। एक बात और थी। कम्पनवाली घटना के दूसरे ही दिन घर में कई आदमी बढ़ गये और आगे की घटनाओं के समय तो महल के भीतर बारह मनुष्य रहते थे। हम लोगों ने मन-ही-मन समझ लिया कि प्रेतलीला अवश्य थी, पर अधिक आदमियों के कारण प्रेत भाग गये होंगे। हमारी कल्पना निर्मूल ठहरी।

तरबूज़ बाज़ार में फैल गये थे। एक दिन शाम को एक बड़ा-सा तरबूज़ काट कर उसके लम्बे-लम्बे कतरे परात में रखे गए। हम सब बड़ी देर से शाम को अपने-अपने काम से थके-माँदे लौटे थे। कोई आठ बजे तक छत पर पड़ी हुई चारपाइयों पर लेटे-लेटे गपशप कर रहे थे। फिर नीचे जाकर ब्यालू की और ऊपर आकर सोरहे। तरबूज़ के कतरे ओस में पड़े ठढे होते रहे। परन्तु सबेरे देखा गया कि परात में केवल छिलके हैं, और वह भी ऐसे कि मानो किसीने विधिवत् छील कर गूदा खा लिया हो। नौकर, रसोइया सबसे पूछा गया, परन्तु पता न लगा कि तरबूज़ किसने खाये। अकेला एक आदमी खा भी नहीं सकता था। सबका ख़याल हुआ कि नौकरों की करतूत है। हम में से दो को पहले का कम्पनवाला अनुभव याद आया। मैंने निश्चय कर लिया कि फिर परीक्षा करूंगा। किसी को अपने निश्चय की सूचना न दी।

पश्चिम ओर छत और बरडे के सिवा एक कोठरी भी थी, जिसमें केवल एक दरवाज़ा था। उसमें कोई खिड़की भी न थी। कोठरी बिलकुल ख़ाली थी। शाम को एक तरबूज़ लाया, उसके कतरे किये, परात में रखे। इस बार रात को आठ बजे उसी कोठरी में तरबूज़ के कतरे उसी परात में रख दिये गये। अच्छी तरह देख लिया गया कि कोई बिल या और तरह का निकास नेवले, बिल्ली, घूँस आदि के लिये है या नहीं। मकान पक्का था। हाल में ही पूरी मरम्मत हुई थी। कहीं बिल या दरार या और किसी तरह का निकास न था। दरवाज़ा चपक कर बन्द होता था। हवादार न होने से ही कोठरी किसी के काम में नहीं आती थी। मैंने कटे तरबूज़वाली परात रखवाकर एक ताला ऐसा लगाया कि जो बिना चाबी के या बिना तोड़े हुए खुल न सकता था, और जिसकी चाबी मेरे ही पास थी। यह ताला पहले काम में न आया था। ख़ास ज़रूरत पड़ने पर काम में आने के लिए मेरे पास रखा था। इसकी चाबी मेरे यज्ञोपवीत में बँधी थी। उस रात ताला लगा कर यज्ञोपवीत में बँधी चाबी मैंने सावधानी से अटी में गिरह देकर रखली कि कोई यदि मेरे सोते में चाबी लेना चाहे तो बिना मुझे जगाए नहीं ले सकता था। बचपन से ही मेरा ऐसा स्वभाव है कि ज़रा-से ही खुटके में मैं जाग जाता हूँ। मुझे जगाने के लिए मेरा नाम लेके बातें करना ही काफ़ी है। जागने पर तुरन्त सचेत होता हूँ। मैंने आजतक नींद की बदौलत कोई हानि नहीं उठायी है। उस रात को तो विशेष सावधानी बरतनी थी। रात मे कई बार जब-जब जग पड़ा तो चाबी देखी और कोठरी का ताला देख लिया। सब ठीक था। सवेरे उठकर कोठरी खोली, तो देखता हूँ कि परात में पहले दिन की तरह गूदे चाकू से तराश कर खा लिये गये हैं, और छिलके ठीक उसी तरह सजा कर रखे हुए हैं, जिस तरह मैंने कतरे रखे थे। कोई छोटा जानवर एक बड़ा तरबूज़ अकेला चट नहीं कर सकता था, और यदि करता भी तो चाकू से सफ़ाई के साथ तराशने का कष्ट अपने पशुत्व के विरुद्ध न उठाता। परात के छिलकों में दांत और पंजों के निशान ज़रूर छोड़ जाता। उसे छिलकों को सजाने की आवश्यकता न थी। बीज तो पड़े होते। इस सलीकेदारी का काम ही क्या था?

यदि किसी मनुष्य पर सन्देह करूं तो किसी एक साथी पर सन्देह करना व्यर्थ था। अकेले आदमी से इतना तरबूज़ खाया नहीं जाता। कई साथी मिलकर ऐसा कर सकते थे, परन्तु सिवा दो के शेष सभी शिष्य थे, जो मुझसे ऐसी दिल्लगी करने की हिम्मत नहीं कर सकते थे। वह दो, जो मेरे सहाध्यायी थे, वह कम्पनवाली रात के अनुभवी थे और मेरी परीक्षा के गौरव को समझते थे। वह स्वयं ठीक जाँच करने में रस रखते थे। उस रात को कोठरी सबके सामने बन्द की गई थी। हाँ, नौकरों से यह बात छिपाई गई थी। तीनों नौकरों में से किसी को तरबूज़ के रखने का पता न था।

उन्हें यह सोचने का भी कारण न था कि तरबूज़ रखा गया होगा। यदि यह पता होता भी तो तीनों मिलकर ही उसे पूरा भोग लगा सकते थे। पिछली घटना में तरबूज़ के खाये जाने का संदेह किसी नौकर पर प्रकट नहीं किया गया था। यह ओछी बात समझी गई और नौकर ऐसे छोटे-छोटे दोष लगाए जाने पर टिकते भी नहीं, यह अनुभव हम लोगों को सावधान रखता था। यदि इन विपरीत कल्पनाओं के सिवा भी मान लें कि किसी नौकर ने मेरे जनेऊ से ताली निकाल ली होगी, तो तरबूज़ जैसे बहुत-ही साधारण मूल्य की चीज़ के लिए अपनी नौकरी, वेतन और आज़ादी का जोखिम में डालने का कोई बड़ा ढीठ चोर भी साहस न करेगा। फिर ताली निकाल कर बड़े इतमीनान से तरबूज़ तराश कर खायगा और ठीक विधि से छिलकों को सजाकर, एक-एक बीज चुनकर, फिर ताला लगाकर ताली यज्ञोपवीत में पहनाकर मेरी खटी में कई लपेट देकर खोस देगा और मुझे (जो कई बार रात में जगा और सब कुछ देख-भाल कर सोया) बिना जगाये और जताये अपने काम में सफल हो जायगा ! इतनी असंभव और कष्ट कल्पना को दिमाग़ में स्थान देने के बदले तो मुझे प्रेतलीला मान लेने में ही अधिक सुभीता देख पड़ा।

इस घटना का सब लोगों को अचरज हुआ। परन्तु सबको समझा दिया गया कि नौकरों को यह न मालूम होने पावे, नहीं तो हमारी हर तरह पर हानि ही होगी।

इस घटना के बाद, एक सप्ताह की बात है, शाम को छत पर लेटे-लेटे हम लोग गपशप कर रहे थे कि एकाएकी मेरे सामने के, मेरे मित्र बिलकुल चुप होगये। उनका सारा शरीर निश्चेष्ट होगया। आँखें खुली थीं, परन्तु निश्चेष्ट होगई थीं। मैं घबराया कि एकाएकी इन्हें क्या हो गया। उठकर उनकी चारपाई पर बैठकर हाथ पैर हिलाकर उन्हें पुकारा तो वह बोले और अच्छे होगये। कहने लगे कि—"मैं बिलकुल बँध-सा गया था। कोई अंग क़ाबू में नहीं था। कोई अंग शून्य भी नहीं था, पर ऐसा बँधा था कि हिल-डुल नहीं सकता था। तुम्हारे हिलाने से बंधन टूट गये। आँखें भी क़ाबू में आगई। मैं बात सबकी सुनता था। देखता था कि लोग मेरी दशा पर घबरा रहे हैं। पर बोल नहीं सकता था।"

थोड़ी देर बाद एक और साथी इसी तरह सकते में पड़ गया। उसे भी हिलाकर जगा दिया गया। उसने भी वही कथा दुहराई। यही मालूम हुआ कि किसी ने उन्हें जकड़ दिया था। वे बेहोश न थे।

जब यह घटना जल्दी-जल्दी घटने लगी, हम लोग सावधान होगये। जब किसी को चुप देखते, झट पुकार लेते। जगा देते। दो तीन रात यही दशा रही। हम नौ आदमी थे। मेरे सिवा आठों को यह प्रत्यक्ष अनुभव हुआ। तीसरी शाम को मैं दहनी करवट लेटा हुआ था कि कान में कुछ भनक-सी मालूम हुई कि मेरी बाईं ओर दो व्यक्ति कुछ भुनभुना रहे हैं। एक कह रहा है कि इसे इधर से बाँधो। मैं बाएँ हाथको ज़ोर से पटकते हुए बाईं करवट हुआ। परन्तु करवट बदलते और हाथ पटकते हुए शरीर पर भारी बोझा मालूम हुआ। बाईं ओर देखा तो कुछ न था। यह भुनभुनाना किसीने नहीं सुना। मैं बँध नहीं पाया। परन्तु तब से खटके से और एक विचित्र प्रकार के भय से देरतक नींद नहीं आई। लगभग ग्यारह बजे आँख लगी और बारह बजे खुल गई।

उस समय मैं अपने पलँग पर चित पड़ा था। नज़र आकाश पर डटी थी। आँखों से नींद गायब थी। और सब साथी सो रहे थे। मेरी चारपाई दक्खिन की ओर सबसे आख़िरी थी। रात अँधेरी थी, परन्तु निर्मल आकाश में तारे जगमगा रहे थे। जिसे रात-रात नींद नहीं आती, इन्हीं तारों से बातचीत करके समय काट देता है। पीछे निद्राभंग रोग में मुझे इसका अच्छा अनुभव हुआ है। मैं तारों की स्थिति देख रहा था। एकाएकी आकाश मण्डल का ठीक बायाँ आधा तारों से शून्य होगया। बादल होते तो उत्तर से दक्षिण तक सीधी लकीर में परदा-सा न पड़ा होता। बादलों से रेखागणित के शुद्ध रूप नहीं खिंचते। यह कोई विशेष बात थी। बाईं आँख मूँदकर दहनी से, दहनी मूँदकर बाईं से देखा। कोई भेद न दीखा। अपने दहने सोने वाले को आवाज़ दी तो दैवयोग से वह जागते निकले। उनसे यह अद्भुत अनुभव कहा तो उन्होंने भी आकाश की ओर टकटकी लगाई। पहले तो उन्हें भी सारा मंडल स्वच्छ और तारों से सजा हुआ दीखा। फिर उन्हें भी ठीक आधा दीखने लगा। पर उनका दहना अर्धवृत्त

अंधकार से ढक गया। मेरा बायाँ ढका था। अब हम दोनों मिलकर ही पूरा आकाश देख सकते थे।

वह मेरी चारपाई पर आए और मैं उनकी पर जाकर लेटा और आकाश पर दृष्टि डाली। स्थान और चारपाई तो बदल गई, परन्तु हम दोनों का अनुभव ज्यों-का-त्यों रहा। दहने बाएँ में अदला-बदली नहीं हुई। इतने में कई साथी जाग गये थे। उनमें से किसी और को ऐसा किसी प्रकार का अनुभव नहीं हुआ।

फिर अपनी-अपनी चारपाई पर पड़े-पड़े कुछ देर तक इस घटना की आलोचना प्रत्यालोचना होती रही। फिर हम लोग सोगये।

इस घटना के लगभग एक सप्ताह बाद की बात है, उसी छत पर हम लोग नित्य की भाँति सो रहे थे। मेरी चारपाई पूरब की ओर अन्तिम थी। आधी रात के लगभग मेरी नींद खुल गई। हवा बन्द थी, परन्तु साधारणतया ठण्ढा था। एकाएकी मुझे बहुत दिनों के सड़े विष्ठा की तीव्र दुर्गंध मालूम हुई। मैं तुरन्त बिस्तर से उठ बैठा। फिर घबराकर चारपाई छोड़कर दूर हट गया। परन्तु जहाँ जाता था, वहीं दुर्गंध आती थी। और साथी जग पड़े। लोग मेरी चारपाई पर बैठे, परन्तु किसी को बदबू न आई। मेरे पास आये तो इतनी बदबू थी कि सह नहीं सकते थे। मैंने तुरन्त सभी कपड़े बदल डाले, परन्तु कोई लाभ न हुआ। चारपाई, उसके आसपास, कपड़े-लत्ते सब कुछ देख डाला गया। पता न लगा कि बदबू का कारण क्या है। होगा भी तो मेरे शरीर के साथ होगा। परन्तु मेरा शरीर बिलकुल शुद्ध था। शरीर से तो दुर्गंध आती न थी। शरीर के पाससे ही आती थी, पर उसके स्रोत का पता न लगता था। उस दुर्गंध से लगभग पाव घंटे में मुझे अपने-आप छुटकारा मिल गया। फिर कहीं कुछ न था। हम लोग इस उपद्रव के कुछ देर पीछे फिर सोरहे।

इन घटनाओं से सबके हृदय मे थोड़ा-बहुत डर समा गया था। हममे से कई लड़के कम उमर के थे। यदि उनके बड़े और इतने आदमी साथ न होते, अथवा यदि स्त्रियाँ साथ होतीं, तो कभी के डर के भागे होते। घर छोड़ दिया गया होता। बेसुधीवाली घटनाओं के बाद से ही हमारे कई साथी घर खोजने लगे थे। मैंने भी घर छोड़ने को अनुमति दे दी थी। परन्तु ठीक-ठिकाने का घर मिल जाना सहज बात तो है नहीं। पिछली घटना से तो मैंने भी निश्चय कर लिया कि जल्दी घर छोड़ देना चाहिए।

पूरा अठवारा न हो पाया था कि एक रात प्रायः सबने एक ही सपना देखा। हम चार-पाँच आदमियों को तो सपने की एक-एक बात याद थी।

देखा कि भयावनी अँधेरी रात है। घर वही है। सपना देखनेवाला छत पर अकेला लेटा हुआ है। लगभग आधी रात का समय होगा। नीचे आँगन में आठ-दस आदमी आपस में बातचीत कर रहे हैं, जिससे शोर है और नींद नहीं आती है। सपना देखनेवाला उठकर नीचे झाँकता है तो कई स्त्री पुरुष हैं, जिनमें से एक को भी वह नहीं पहचानता। फिर वह ऊपर के पच्छिमी बरडे में आता है, तो उत्तर के कोने में एक चौकी पर एक भलेमानुस को बैठा पाता है। उससे इस तरह बातचीत होती है :—

प्र०—भाई साहब, आप कौन हैं?

उ०—भाई, मैं इसी घर में बड़ी मुद्दत से रहता आया हूँ।

प्र०—और आँगन मे कौन लोग हैं?

उ०—आँगन में भी जो लोग हैं, एक मुद्दत से इस मकान मे रहते आये हैं, परन्तु मुझ से पीछे के हैं।

प्र०—यह शोर क्यों मचा रहे हैं।

उ०—आप लोगों के, यहाँ रहने से उन सबको कष्ट है। उन्हें आप लोगों का यहाँ रहना पसन्द नहीं है। किसी-न-किसी तरह आप लोगों को सताकर निकालने की सलाह कर रहे हैं। वह देखते हैं कि आप लोग मामूली छेड़छाड़ से घर नहीं छोड़ेंगे। इसीलिए आज पंचायत है।

प्र०—तो आप उनसे अलग क्यों बैठे हैं?

उ०—मेरा स्वभाव उनसे नहीं मिलता। वह सब मुर्दे खाते और शराब पीते हैं। मैं मांस शराब नहीं इस्तेमाल करता। ब्राह्मण हूँ।

प्र०—तो आपको क्या हम लोगों के रहने से कष्ट नहीं है?

उ०—है क्यों नहीं। मैं भी अकेला रहना चाहता हूँ। पर उन सबके रहने से भी तो मुझे कष्ट है।

अन्त में इस ब्राह्मण की यही सलाह हुई कि आप लोग कहीं और जाकर रहिए। हरएक से प्रायः यही बात-

चीत हुई। सवेरे ही हम लोगों ने निश्चय किया कि मकान छोड़ देना चाहिए। अब घर की खोज ज़ोरों से होने लगी।

इस घटना के तीसरे दिन दो आदमी ज्वराक्रान्त होकर पड़ गये। उनका इलाज होने लगा।

इन लोगों के अच्छे होते-होते मुझे ज़ोर का इनफ्लुएंज़ा (श्लैष्मिक ज्वर) होगया। मेरे आठ दिन तक पड़े रहने से मकान का बदलना रुक गया।

मेरे अच्छे साथियों को डर हो गया कि कहीं वे भी बीमार न पड़ जायें, इसलिये तीन-चार आदमियों ने सलाह करके एक मकान ले ही लिया। छोटी उम्रवाले साथी तो वहाँ रहने ही लगे, पर मेरी बीमारी के कारण तीन साथी मेरे साथ रह गये। अच्छा होते ही मैंने भी उस घर को छोड़ दिया।

तरबूज़वाली घटना के बाद ही पड़ोस के एक सज्जन ने, जो इस घर के भुतहे होने की बात जानते थे, एक शाहसाहब से फुँकवाकर कई कीलें लाकर भिन्न-भिन्न स्थानों में गाड़ दी थीं। फिर कुछ काल तक कोई घटना न होने से हम लोगों ने समझा कि शाहसाहब की कीलें कुछ काम कर गई। परन्तु वह व्यर्थ निकलीं।

जब हम घर छोड़ रहे थे, कई पड़ोसियों ने कहा कि हमको तो मालूम था कि मकान भुतहा है, परन्तु आप अँगरेज़ी पढ़े-लिखे बाबू लोग थे, भूत-प्रेत न मानते होंगे, इसीलिए कहने की हिम्मत नहीं पड़ी।

फिर भी हमारे कई साथी यह स्वीकार करते शरमाते थे कि मकान भुतहा है। हाँ, वे यही कहते थे कि इस मकान में हम लोग बीमार पड़ने लगे। मकान पुराना है। हवा रोशनी के लिहाज़ से ठीक नहीं बना है, इसी-लिए छोड़ते हैं। पढ़े-लिखे लोग प्रेत मानें, यह कितनी लाज की बात है!

मकान के मालिक का स्वार्थ भी इसीमें था कि मकान को भुतहा न कहा जाय, नहीं तो किरायेदार न मिलेंगे। यही कारण है कि अनेक भुतहे मकान होते हुए भी प्रेतान्वेषण-प्रेमियों को ऐसे मकान मिलने में कुछ कठिनाई होती है।

रामदास गौड़

मेरी मृत्यु

(१)

लौटते न जिस पथ से कभी पथिक एक,
बहती जहाँ परम शांति की सुखी लहर;
उस पथ पर जब जायँगे सुकवि हम,
सुंदर नवीन दिव्य पीत पट ओढ़कर।
परियाँ अनेक मुक्ति पथ साज, चित्रवत्,
फूल बरसायेंगी मृदुल पग-पग पर;
दौड़ आयँगे स्वतंत्र-स्वागत-समूह बीच,
क्षीरसिंधु छोड़ भगवान भक्ति रथ पर॥

(२)

भारत बसुंधरा की सुकुमार देह पर,
वज्र गिर आयगा भयंकर तड़पकर;
कमला कमल पर देंगी अश्रु-बिन्दु ढाल,
भारती की बीन गिर जायगी बिलखकर।
दारुण विलाप ध्वनि से पिघल गिरि प्राण,
बह आयँगे विकल दृग-अश्रु-श्रोत पर;
अवलोक ऋतुराज का अनंत अंत मौन,
सूख जायेंगे सुमन-दल तरु अङ्क पर॥

(३)

चन्द्र साथ तारक समाज शोक-लिपि बाँच,
मर जायगा गगन-गोद बीच मन मार;
फट जायगा प्रकांड मञ्जु-मेघ-दल-प्राण,
घट जायगा सुधा-समुद्र मर्द्दना निहार।
छिप जायगा अरुण अवमान दृश्य देख,
घिर आयगा उदास-कालकूट-अंधकार,
रुक जायगा प्रचण्ड-अभिमान राष्ट्र-रण,
झुक जायगा विदीर्ण आर्तस्वर से दुलार॥

(४)

कोटि-कोटि फन काढ़ सापिनी चिता नवीन,
लपट उड़ायगी हज़ार जल धक्-धक्;
कल्पना कुहुक-जाल, छंद गति नृत्य ताल,
भूल जायगी त्रिलोक सुंदरी सुहाग तक।
विश्व के विशाल रंगमंच पर कालिका-सी,
गिर जायगी यवनिका पलक से खिसक;
हाय-हाय की विलाप-ध्वनि में विलाय कर,
प्रलय पढ़ेगी शांति-पाठ मृत्यु से झिझक॥

'गुलाब'

भाव-परिवर्तन

(१)

चालीस वर्ष बीत गये, परन्तु वह घटना कल की-सी याद है। उन दिनों मैं नेशनल बैंक में एक क्लार्क था। अपने पिता का एकलौता पुत्र होने के कारण मेरे पास रुपयों की कमी न थी। वह एक छोटे से ज़मींदार थे, परन्तु मुझे हाथ खोल कर ख़र्च देते थे। डेढ़सौ रुपये मुझे बैंक से मिलते थे और क़रीब इतने ही घर से आ जाते थे। इसके अलावा दसहज़ार रुपये बैंक में विमला के जमा थे, उनका सूद अलग आता था। कहने का अभिप्राय यह है कि हमारा पारिवारिक जीवन बड़े आनन्द के साथ व्यतीत होता था। उसमें न भविष्य के लिए किसी प्रकार की चिंता थी, और न अतीत के लिए परिताप।

परन्तु यह सब कुछ होते हुए भी मैं उन व्यसनों से कोसों दूर था, जो आजकल के युवकों के स्वभाव-सिद्ध अधिकार माने जाते हैं। सम्भव है, इस कथन में आप को कुछ असत्यता का आभास मिले; क्योंकि उन सुविधाओं और साधनों के रहते हुए, जो कि ईश्वर ने मुझे दी थीं, यह एक प्रकार से असम्भव-सा प्रतीत होता है कि, कलकत्ते जैसे शहर में रहता हुआ एक मनुष्य समुद्र-तट की सैर न करे, पार्कों और बागीचों में न घूमे, और सिनेमा और थियेटरों का कभी नाम न ले। परन्तु सच जानिए, मेरी यह आदत न थी। यह नहीं कि इनमें मेरी द्वेषबुद्धि थी, अथवा इनसे कोई ख़ास चिढ़ थी। बात यह है कि इधर कुछ प्रवृत्ति ही नहीं थी। दिल गवाही ही न देता था।

इसका एक कारण था। मैं अपने समय का एक माना हुआ साहित्य-सेवी था। जब मैं एन्ट्रेन्स में पढ़ता था तभी मैंने शेक्सपियर-सागर का मन्थन कर डाला था, और इंटरमीजियेट में पदार्पण करते ही मेरी लेखनी शेली और कीट्स की कविता के अंदर छिपे हुए गूढ़ रहस्यों का उद्घाटन करने लगी थी। प्रोफ़ेसर लोग यह देखते तो दंग रह जाते। कहते—यह अपने समय का एक उद्भट विद्वान् होगा। इसकी लेखनी में शक्ति है। जिस विषय को उठाता है, उसी पर अपना रङ्ग चढ़ा देता है। मेरा विश्वास था कि ईश्वर ने मुझे साहित्य में सौन्दर्य और सुरुचि की सृष्टि करने के लिए भेजा है, और मैं इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए तन, मन, धन से प्रयत्न करने लगा। परिणाम यह हुआ कि मेरी साहित्य-पिपासा दिन दूनी रात चौगुनी बढ़ती गई और बी० ए० होते-होते मैं एक प्रकाण्ड समालोचक हो उठा। मेरा नाम इन दिनों भारत के कोने कोने में मशहूर हो चुका था और मेरे लेख एक बड़े महत्व की चीज़ समझे जाते थे। मित्र-मण्डली में मेरा नाम गेटे पड़ गया था

और, सच पूछिए तो, मैं भी अपने-आपको गेटे से किसी तरह कम न समझता था। गेटे समालोचक था, और मैं भी समालोचक। सुना है, गेटे अपनी जवानी में बड़ा ख़ूबसूरत था। कहनेवालों ने तो यहाँतक कह डाला है कि, अगर सौंदर्य ही स्त्री के प्रेम का आधार माना जाय, तो सिवा गेटे के उसका और कोई अधिकारी हो नहीं। ठीक यही बात अगर आप चाहते तो मेरे विषय में भी कह सकते थे। ऊँचा क़द, गौर वर्ण, चौड़ा मस्तक, भरा हुआ चेहरा, बड़ी-बड़ी आँखें और सिर पर पीछे की तरफ़ लेटे हुए थोड़े-से बाल; बस, इसीका नाम तो सौंदर्य है। परन्तु मुझ में एक बड़ीभारी कमी थी। वह थी क्रियात्मक शक्ति। दूसरे शब्दों में मैं लौकिक व्यवहार से बिलकुल अनभिज्ञ था। मुझे उसका उतना ही ज्ञान था जितना कि एक बैंक के अन्दर समा सकता है। दिन का अधिकांश मेरा साहित्य-चर्चा में व्यतीत होता था। यहाँतक कि आपस की बात-चीत भी मुझे तभी तक अच्छी लगती थी जबतक वह मेरे प्रिय विषय की सीमा का उल्लङ्घन न करे। उसके बाहर पड़ कर मुझे उसी बेचैनी का अनुभव होता था जो गरम रेत में तड़पती हुई एक मछली को होता है। अगर कभी मुझे किसी कवि की कोई चुभती हुई लाइन नज़र पड़ जाती, तो मैं दो-दो दिन तक उसी पर झूमता रहता था। मैं उसे बार-बार पढ़ता था और बार-बार मस्त होता था। उसका एक-एक शब्द, एक-एक अक्षर मुझे उस दिव्य लोक में पहुँचा देता था, जहाँ संगीत और सौरभ के सिवा कुछ नहीं। मेरी दृष्टि में उसका वही मूल्य था जो आपकी दृष्टि में एक ऐसी घटना का

होता है, जो समाचार-पत्रों में प्रकाशित होते ही उथल-पुथल मचा देती है। आप लोग दिन-रात अख़बारों के पेजों को इधर से उधर पलटते रहते हैं और सामयिक प्रश्नों पर विचार करते हुए न जाने कितना अमूल्य समय नष्ट कर देते हैं, परन्तु इतने समय में अगर मैं यह मालूम कर सकता था कि शेक्सपियर किस प्रकार अपने जूतों के तस्मे बाँधता था, अथवा ग्रे के आजीवन सुस्त रहने का कारण क्या था, तो मैं अपने समय का आपसे कहीं अच्छा उपयोग करता था। इन्हीं सब कारणों से लोग मुझे पाखंडी कह कर पुकारा करते थे और हर तरह से मेरी हँसी उड़ाया करते थे। परन्तु मेरा आदर्श महान् और आडंबर-हीन था। मैं इन सब बातों की क्यों परवा करता ?

परन्तु, साहित्य-चर्चा अकेले आदमी से नहीं हो सकती। जबतक साथ में दूसरा कोई दाद देने वाला न हो, तबतक उसमें पूरा मज़ा नहीं आता। मैं चाहता था कि इस आवश्यक अंग की पूर्ति मेरी स्त्री करे, क्योंकि इस जीवन में उससे अधिक सहवास की संभावना और भला किसके साथ की जा सकती है। उन दिनों यह प्रश्न मेरे लिए इतना महत्त्वपूर्ण हो उठा था कि इसकी विपरीत संभावना का थोड़ा-सा भी कल्पित चित्र मेरे हृदय में हलचल मचा देता था। मेरे जीवन की समस्त आशाएँ केवल इसी एक क्षीण सूत्र पर अवलंबित थीं। मैं प्राय उन सुखद दिनों की कल्पना किया करता था जब वसन्त के स्निग्ध प्रभात में, ग्रीष्म की सुधा-धवल चाँदनी में और जाड़ों में बिजली से जगमगाते हुए कमरों में बैठकर हम दोनों अँगरेज़ी के भिन्न-भिन्न कवियों की कृतियों पर अपना मन्तव्य प्रकट किया करेंगे। वह थकेरे और हार्डी के उपन्यासों को पढ़ा करेगी और मैं तन्मय होकर उसके सुकोमल स्वर में उन्हें सुना करूँगा। आह, वे दिन कब आएँगे !

(२)

वे दिन भी आगये, और साथ में विमला को लाये। विमला ने घर पर ही प्राइवेट तौर से अँगरेज़ी की शिक्षा पाई थी। वह अँगरेज़ी में बातचीत कर सकती थी, उच्च कोटि के उपन्यासों को समझ सकती थी और एकाध को छोड़कर (जैसे शेली और ब्राउनिंग) प्राय सभी अँगरेज़ी कवियों की रचना का रसास्वादन कर सकती थी। परन्तु वह बहुश्रुतता, जो समालोचना की प्राण है, वह दीर्घदृष्टि, जो विवेचना-शक्ति का एक मुख्य अंग है, उसे प्राप्त न थी। इसका अभिप्राय यह नहीं है कि उसका हृदय संकीर्ण था, अथवा वह असहृदय थी। वह जो कुछ भी पढ़ती थी, समझ कर पढ़ती थी और जितना पढ़ती थी, उससे कहीं अधिक समझती थी। पर ये सब बातें तो अब मालूम हुई हैं। उन दिनों मैं समझता था कि विमला के हृदय में समालोचना का अंकुर तो है, पर अभी उसे लज्जा ने दबा रखा है। समय आयगा जब वह वृक्ष के रूप में शीघ्र ही प्रकट होगा। अभी कुछ अभ्यास और दिनों की ज़रूरत है।

हम लोगों ने एक क्लब खोल रखा था—उसका नाम था सेटरडे क्लब। हम वहाँ प्रत्येक शनिवार को एकत्रित हुआ करते थे और घंटों बैठ कर अँगरेज़ी साहित्य की भिन्न-भिन्न अवस्थाओं की समीक्षा किया करते थे। इसके बारह सदस्य थे—सब एक ही अवस्था के, एक ही प्रकृति के और एक ही परिस्थिति के—सब नवयुवक, सब साहित्य-सेवी और सब ख़ुशहाल। आप लोग यह सुनेंगे तो दंग रह जायँगे कि किस प्रकार हम दस-बारह आदमी बिना किसी चाय अथवा सिगरेट की सहायता के लगातार तीन घंटे एक टेबल् के चारों तरफ़ चुपचाप बैठे साहित्य जैसे नीरस विषय पर अपने विचार प्रकट किया करते थे, परन्तु मुझे अभीतक इसमें कोई विचित्रता नहीं दिखाई पड़ती, प्रत्युत यह एक स्वाभाविक-सी बात मालूम पड़ती है। हम लोग आवश्यक-से-आवश्यक कार्य छोड़ सकते थे—बैंक न जाते, उसकी मीटिंगों में गैरहाज़िर रहते, देश के धुरंधर नेताओं के व्याख्यान न सुनते, पर क्लब में शामिल न हों, यह मंज़ूर न था। यह आदत हमारे जीवन का एक आवश्यक अंग बन गई थी। हमारा इसीमें मनोरंजन होता था।

शनिवार का दिन था, शाम का वक़्त। मैं कलकत्ते की जनाकीर्ण सड़कों को पार करता हुआ क्लब से घर की तरफ़ जा रहा था। दिमाग में शेली और कीट्स चक्कर खा रहे थे। दरिया चढ़ा हुआ था। जल की लहरें किनारे के साथ टक्कर खातीं और निराश होकर पीछे लौट जाती थीं। और एलेस्टर की जादू की नाव—

'× × × was
seized by the sway of ascending stream.

परन्तु अन्त में क्या हुआ—नाव डूब गई या पार लग गई—यह कुछ पता नहीं लगा। एलेस्टर के सब पेज पलट डाले, पर कुछ हाथ नहीं आया। शेली की आदत ही ऐसी है, बात को साफ़-साफ़ नहीं कहता। क्लब में भी लगातार तीन घंटे इसी बात पर वाद-विवाद होता रहा। मित्र-मंडली अपना-अपना फ़ैसला देकर चली गई, पर संतोष न हुआ। मैंने सोचा, घर चल कर इस प्रश्न को विमला के सामने पेश करूँगा। मेरी आँखें चमक उठीं। आह, आज साहित्य-चर्चा का आनन्द आएगा। मैंने क़दम बढ़ा दिये और कुछ ही मिनटों में घर पहुँच गया। देखा, विमला एक पड़ोसिन की लड़की को कारचोबी का काम सिखला रही है। इस समय तक काफ़ी अँधेरा हो चुका था; बाज़ार में बिजलियाँ जल गई थीं। मैंने झटपट ब्यालू की और ब्यालू कर चुकने के बाद विमला के आगे शेली की कविताओं का एक संग्रह रख दिया। विमला ने पूछा—"क्या है ?"

मैंने कहा—"एलेस्टर निकालो।"

विमला ने एलेस्टर निकाल लिया। मैंने कहा—"बतलाओ, मैजिक बोट का आख़िर में क्या हुआ। देखूँ, तुम किस तरह पढ़ा करती हो" ?
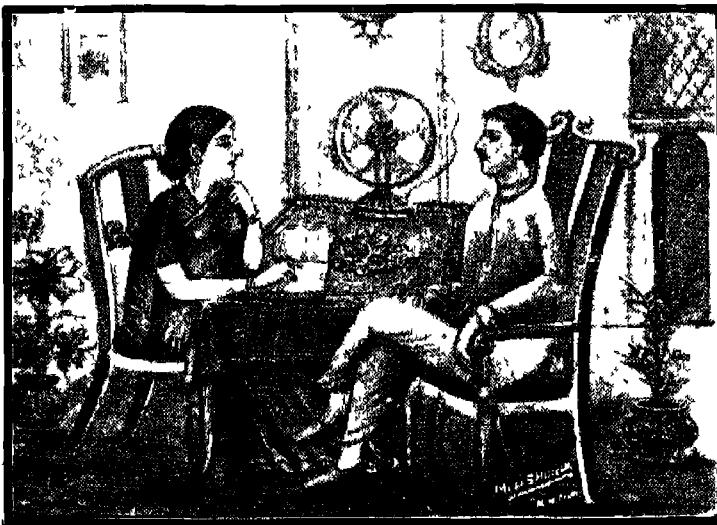
विमला ने एलेस्टर के पेजों को कई बार पलटा और मेरी तरफ देखा।

विमला ने एलेस्टर के पेजों को इधर से उधर कई बार पलटा और फिर मेरी तरफ़ देख कर कहा—

परन्तु, वह कहने नहीं पाई थी कि मैं क़हक़हा मारकर हँस पड़ा। मुझे इस सब क्रिया में एक स्वर्गीय आनन्द का अनुभव हो रहा था। बोला—"देखती क्या हो, बतलाओ झटपट।"

विमला ने कहा—"यात्री कौन था ?"

मुझे अपने कानों पर विश्वास नहीं हुआ। मैंने पूछा—"क्या कहा ?"

विमला ने फिर पूछा—"यात्री कहाँ जा रहा है, किसलिए जा रहा है ?"

मुझे ऐसा प्रतीत हुआ जैसे किसी ने गोली मार दी हो। आह ! जिसे लहलहाता हुआ उद्यान समझ रखा था, वह पास आने पर रेतीला मैदान निकला। जब विमला को यही पता नहीं कि यात्री कौन है और कहाँ जा रहा है, तब वह मेरे प्रश्न का क्या उत्तर दे सकेगी ? मैंने उस निराशा की तीव्र यातना में चीख़ कर कहा—"विमले ! क्या ही अच्छा होता, अगर तुम्हारे जीवन का प्रवाह उधर ही बहता जिधर कि मेरा बहता है—तुम्हारे हृदय में मेरे लिए कुछ सहानुभूति होती। आह ! मेरी क्या क्या आशाएँ थीं।"

विमला उठ गई। मैंने देखा उसकी आँखों में आँसू थे। मैं जीवन में पहली बार काँप उठा। मेरा उद्देश्य विमला का दिल दुखाना न था। मैं उसे हृदय से प्यार करता था। मेरे मुँह से अचानक निकल पड़ा—"आह ! यह मेरे प्रेम के पतन का श्रीगणेश तो नहीं ?"

मैं इस समय ठीक उस भय, उस निराशा का अनुभव कर रहा था जो कि एक मनुष्य भूकंप में करता है जब कि उसके चारों तरफ़ मकान धड़ाधड़ गिरते हुए दिखलाई देते हैं और उसका एक मात्र आधार पृथ्वी भी उसके पैरों के नीचे से खिसकने लगती है।

(३)

दूसरे दिन मुझसे कैलाश मिलने आया। कैलाश मेरा अभिन्न मित्र था। इधर क़रीब दो साल से उसे नहीं देखा था, इसलिए उसका अचानक आ जाना हम दोनों के लिए एक नई

बात थी । मेरे लिए इसलिए कि हम दोनों कई वर्षों तक साथ रहे थे और विमला के लिए इसलिए कि उसकी छोटी बहिन उसे ब्याही थी । हम दोनों ने बी० ए० साथ-साथ एक ही कालेज मे पास किया था और साल भर तक लॉ भी साथ ही पढ़े थे । इसके बाद वह बंबई का एक नामी दलाल बन गया और मैं नेशनल बैंक का एक साधारण क्लार्क । परन्तु, यह सब कुछ होते हुए भी मेरी और कैलाश की प्रकृति मे उतना ही अन्तर था जितना कि आकाश और पाताल मे । कैलाश लोकप्रिय मनुष्य था और मैं एकान्त-प्रिय साहित्य-सेवी । उसके दिन का अधिकांश अनाथालयों का चन्दा उगाहने मे, लीडरों की आव-भगत करने में और स्थानीय सभा-सोसाइटियों के आय-व्यय का लेखा-जोखा रखने में व्यतीत होता था । वह न जाने कितनी संस्थाओं का सचालक, कितनियों का मन्त्री, उपमन्त्री और कितनियों का प्रधान था। शहर का बच्चा-बच्चा उसके नाम से परिचित था । उसके व्याख्यान मार्मिक और हिला देनेवाले होते थे । तीन-तीन दिन पहले शहर में नोटिस बँट जाता—'भारत की अधोगति का मूल कारण' इस विषय पर बाबू कैलाशनाथ, बी० ए०, का महत्त्वपूर्ण भाषण होगा । जिस वक्त वह प्लेटफ़ार्म पर पैर रखता, लोगों में हलचल मच जाती । उसकी वाणी मे जादू था, शब्दों मे जोश । वह भारत की दयनीय दशा का वह ख़ाका खींचता कि लोग आप-से-आप ही जेब झाड़ जाते ; उसे पल्ला पसारने की जरूरत ही नहीं पड़ती थी—इस ढंग का आदमी था कैलाश । वह मुझ से प्रायः कहा करता था—यार ! कैसे आदमी हो, दिन-रात किताबों मे मग़ज़ मारा करते हो, न घर की ख़बर न बाहर की । याद रक्खो, देश को इस समय कवियों की जरूरत नहीं । उसे ज़रूरत है शहीदों और अपनी जाति के नाम पर ख़ून बहानेवालों की । कविता प्रभुताशाली देशों के मनोरंजन की सामग्री है । जहाँ प्रतिशत अस्सी आदमियों को पेट भर कर भोजन न मिलता हो, जहाँ दारिद्र्य लोगों का जन्मसिद्ध अधिकार हो, और आपत्तियाँ उनका निश्चित भाग्य ; वहाँ कविता वैसी ही लगती है जैसे मरघट मे गाना । ऐश्वर्य और विलासिता कविता का शरीर है । जहाँ वह मनुष्यों के विचारों को उच्च और उनके आदर्शों को महान् बनाती है, वहाँ वह उनके हृदयों को स्त्री की तरह निर्बल भी कर देती है ।

इन सब बातों का मैं क्या जवाब देता था, यह तो कुछ याद नहीं; पर हाँ, हम दोनों में बहस ख़ूब होती थी और घंटों होती थी । कभी उसका पक्ष प्रबल रहता था और कभी मेरा । कभी मैं चुप हो जाता था और कभी वह । परन्तु इससे हमारी पारस्परिक मैत्री मे कुछ भी फ़र्क नहीं आता था ।

रात को कैलाश ने मेरे घर पर ही ब्यालू की । बहुत दिनों के बाद आज एक साथ बैठ कर खाने का सुयोग मिला था । घंटों इधर-उधर की गपशप उड़ती रही । विमला इस समय अपनी दो महीने की बीमार लड़की की देख-रेख में व्यस्त थी । आख़िर कैलाश ने कहा —'नवीन ! तुम धन्य हो ।'

मैंने कुछ विस्मित होकर पूछा—'क्यों मुझे क्या मिल गया है ?'

कैलाश ने कहा—"तुम्हें एक सुपात्र स्त्री मिल गई है, और तुम क्या चाहते हो ? आधे से ज्यादा मनुष्य के जीवन के सुख-दुःख का प्रश्न केवल एक इसी बात पर निर्भर है । अगर इच्छानुकूल स्त्री मिल गई तो समझ लो एक ऐसी समस्या हल हो गई जिसके ऊपर जीवन की छोटी-मोटी न जाने और कितनी समस्याएँ अवलंबित हैं । स्त्री, पुरुष को दिया हुआ ईश्वर का एक वरदान है, और शाप भी । अगर वह इच्छानुकूल हुई तो स्वर्ग है, नहीं तो वही नरक है । संसार के समस्त सुख केवल इस एक सुख की तुलना नहीं कर सकते ।"

कैलाश ने ऐसी बातें आज तक नहीं की थीं, यद्यपि इससे पहले भी वह मेरी स्त्री से कई बार मिल चुका था । मैंने कुछ अप्रतिभ होकर कहा—'तुमने विमला मे ऐसी कौन-सी बात देखी है, जो आज ऐसी बड़ाई करने पर उतारू हुए हो ?'

कैलाश की आकृति इस समय कुछ गंभीर हो चली थी । वह संसार के उन मनुष्यों में से था जिनके ऊपर जीवन की तुच्छ-से-तुच्छ घटनाएँ भी अपना असर छोड़ जाती हैं । कहने के लिए हम दोनों मित्र थे, परन्तु मेरे हृदय मे उसका वही स्थान था जो एक शिष्य के हृदय में गुरु का होता है, अथवा छोटे भाई के हृदय मे बड़े भाई का ।

मैं उसे एक आदर्श पुरुष समझता था—जो क्या नैतिक जीवन में और क्या बड़े-से-बड़े संकटों में अपने सिद्धान्तों का समान रूप से पालन करता है। अपने कालेज-जीवन में वह एक सच्चा विद्यार्थी रहा था, और एक बार नहीं, कई बार उसने मेरी आत्मा को यौवन-सुलभ कुप्रवृत्तियों के गड्ढे में गिरने से रोका था। वह कई अंशों में मेरा उद्धारक और जीवनदाता था। उसकी सम्मतियाँ अमूल्य और उसके उपदेश जँचे-तुले होते थे। अब-तक मैं समझ रहा था कि वह थोथी बातें मार रहा है पर, जब मुझे मालूम हुआ कि उसकी बातों में कुछ सार है, तब मैं भी ज़रा ध्यानपूर्वक सुनने लगा।

कैलाश ने जवाब दिया—"उसमें क्या नहीं है, नवीन? वह सुशील है, सहृदय है, पढ़ी-लिखी है और सबसे बढ़कर बात यह है कि उसके दिल में दूसरों के लिए दर्द है। आज मेरी उससे थोड़ी देर बातचीत हुई थी। तुम उस वक़्त शायद बाज़ार गए थे। मैंने पूछा—'नवीन दस बजे से चार बजे तक बैंक में रहता है, इतने समय में तुम्हारा अकेले यहाँ किस तरह दिल लगता होगा, विमला?'

विमला की आँखों में इस समय साधारण स्त्रियों के आँसू नहीं बल्कि एक स्वर्गीय उल्लास था। उसने उत्तर दिया—'आप समझते होंगे कि शायद मेरा सारा दिन, और स्त्रियों की तरह, उनकी प्रतीक्षा में सामने की सड़क की तरफ़ ताकते हुए व्यतीत होता है, परन्तु मेरी यह आदत नहीं। घर के काम-धन्धे से जो कुछ समय बचता है, वह मेरा पड़ोस की लड़कियों को लिखाने-पढ़ाने में, उन्हें सीना-पिरोना सिखलाने में व्यतीत होता है। इस देश की स्त्रियों की हार्दिक संकीर्णता पर मेरी आँखें दया के आँसू बहाया करती हैं, और उनकी विवशता को देखकर मेरा हृदय अन्दर-ही-अन्दर घुटा करता है। इसमें उनका कोई क़ुसूर नहीं। क़ुसूर है समाज का, जिसने उन्हें मुद्दत से पराधीनता की बेड़ियों में जकड़ रखा है। मेरी राय में जबतक उन्हें स्वाधीनता न दी जायगी, तबतक लाख प्रयत्न करने पर भी वे मिट्टी का माधो ही बनी रहेंगी। जहाँ तक बन पड़ता है, मैं उनकी इस कमी को दूर करने का प्रयत्न करती रहती हूँ, और कुछ अंश तक सफल भी हुई हूँ। मेरे विवाह को क़रीबन् सात साल हो गए। जब से मैं यहाँ आई हूँ, तब से मैंने कम-से-कम पचास लड़कियों को सुशिक्षित बना दिया है। विधवा बहिनें मेरे पास आती हैं और घंटों बैठी-बैठी अपना दुखड़ा रोया करती हैं। मैं उनकी करुण-कथा को बड़े चाव से सुनती हूँ और यथाशक्ति उनके शोक-संतप्त हृदय को सान्त्वना देती हूँ। यही, कैलाश, मेरी दिनचर्या है। मैं चाहती हूँ कि मेरा सारा जीवन अपनी जाति की सेवा में व्यतीत हो। अगर मेरा यह प्रण पूरा होगया और मेरा कार्य-क्रम इसी प्रकार निभता चला गया, तो मैं समझूँगी कि मेरा जन्म सफल हो गया और मैं अपने उच्च-तम आदर्श पर पहुँच गई।'

जब से मैंने विमला की दिनचर्या सुनी है, तबसे मेरे आश्चर्य की सीमा नहीं है। मैं बार-बार तुम्हारे भाग्य को सराहता हूँ कि तुम्हें अनायास ही एक ऐसा स्त्री-रत्न मिल गया। "कैलाश, तुम वास्तव में धन्य हो।"

इन सब बातों का मेरे ऊपर क्या प्रभाव पड़ा, यह बतलाने की आवश्यकता नहीं, उसी रात को कैलाश बंबई के लिए रवाना होगया। उसे मैं स्टेशन तक पहुँचाने गया। जब मैं लौटा तब काफ़ी रात हो चुकी थी और घर में सोता पड़ गया था। मैं सीधा विमला

पलग के पास एक टेबल् रखी हुई थी और उस पर किताब खुली हुई पड़ी थी।

के कमरे में गया। देखा, लाइट जल रही है, पर दरवाज़ा बन्द है। मैंने चुपके से दरवाज़ा खोला और दबे पैर अन्दर घुस गया। विमला सो रही थी और पास ही उसके एक तरफ़ उसकी लड़की पड़ी थी। पलँग के पास एक टेबल रखी हुई थी और उस पर एक किताब खुली हुई पड़ी थी। मैंने किताब को धीरे से उठा लिया—ठीक उसी सावधानी से जिससे कि एक चोर घर की चीज़ों को उठाता है। देखा, वही शेली की कविताओं का संग्रह है, जिसे मैंने उसे पहली रात को दिया था, वही एलेस्टर है और वही पेज है। मैंने लाइट को जलने रहने दिया और उसी तरह कमरे से बाहर निकल आया, जैसे कि घुसा था। दूसरे दिन सवेरे मैं और दिन से जल्दी उठा। घड़ी में उस वक़्त चार बजे थे। रात का दृश्य आँखों के सामने ज्यों-का-त्यों नाच रहा था। मैं फिर विमला के कमरे में गया। वह उस वक़्त जाग रही थी, पर उसकी आँखें बन्द थीं। किसी के पैरों की आहट पाते ही वह चौंक पड़ी और सामने मुझे खड़ा हुआ देखकर झट-से पलँग से नीचे उतर आई। मैंने कमरे में इधर-उधर निगाह दौड़ाई तो देखा, सब वही दृश्य उपस्थित था। उसी तरह टेबल पर किताब रखी हुई थी और उसी तरह उसके पास एक लाल पेन्सिल पड़ी थी। सिर्फ़ किताब का पेज पलटा हुआ था और उस पर जहाँ-तहाँ पेन्सिल के निशान लगे थे। मैंने विमला को पहले चूमा और फिर छाती से लगा लिया। उसने मेरी तरफ़ एक बार देखा और फिर एक अपराधी की भाँति फ़र्श की तरफ़ आँखें झुका लीं। आह! उन आँखों में क्या वेदना थी, क्या शिकायत थी, कौन जान सकता है?

चालीस वर्ष बीत गये, परन्तु यह घटना कल-की-सी याद है। उसके थोड़े दिन बाद वह इस असार संसार से विदा हो गई। उसकी वह मधुर मूर्ति अभी तक ज्यों-की-त्यों हृत्पटल पर अंकित है। मैं रोता हूँ, और जीवन भर रोऊँगा—पर विमला के लिए नहीं, अपनी भूल के लिए, जिसने कि मुझे आजीवन उसके सत्य स्वरूप को पहिचानने से वंचित रक्खा।*

रामकृष्णदेव गर्ग

---

*विलियम हेल व्हाइट की एक कहानी के आधार पर।

अश्रुधारा

कहीं शान्तिप्रद नीरवता में किसी कुञ्ज में बारम्बार,
कहीं उदासी की छाया में कौन कहेगा अपना प्यार,
फूल दबा ग्रीवा को चुपके वृक्ष डाल पे बैठे दीन,
बने हुए चुपकी प्रतिमाएँ विहग बिराने हो तल्लीन;
विशद इन्दु की शीतल छाया उन्मद गायक का-सा रङ्ग,
लय होता है अगम स्वरों में मधुर स्वप्न का-सा वह ढङ्ग;
खोल हृदय कलियों ने अपने उड़ा दिये बरबश उद्‌गार,
प्रगट वहाँ से प्रेम कहेगा प्रियतम को क्या अपना प्यार?
चला कहीं कौतुक के मग से प्रेम प्रवाह हुआ न अशेष,
एक उदासी के आँगन में खेल रहा है दुख का वेष;
यद्यपि छोड़ लोक से नाता मृतक यातना में आया,
किन्तु लोक की लुब्ध दृष्टि से जीवन अन्त नहीं पाया;
बन प्रदेश दूर्वादल श्यामल दूर नीलिमा की झंकार,
अगणित सित-सुमनों की माया प्रणय विधुर हिय के उस पार,
फूल बीनने आ मृदु बाले! फूल बीन ले जा तन सींच,
मृदुल परी सी झलक दिखाकर अगम हृदय को बरबश खींच रे
मूक वेदना रुला रही है सहृदय को क्यों बारंबार,
चिते! कहीं उजड़ी बातों से वृथा हुआ मन में अधिकार;
कुछ थोड़े से इस जीवन में हैं उदास भावों में अन्त,
देख रहा हूँ जग में पागल क्रूर अन्त है बना अनन्त
ज्वलित चिता के सित प्रकाश में टान चाँदनी की छवि को,
ऊँचे नीचे विषम मार्ग में रसिक! देखना उस छवि को,
जहाँ तहाँ बिखरी फूलों-सी श्वेत अस्थियों का कर ज्ञान,
जले सड़े उन मृत अंगों की बास सूँघना सौरभ मान रे
वहीं सुनोगे मधुर ताल में क्रूर चिता के चट-चट छन्द,
उस श्मशान के सुखद भवन में बैठ बनाना दुख को मन्द;
मदविभोर हो रस से छना मृत बाला का तनु शीतल,
चटक-चटक भीषण ज्वालाएँ तुम्हें दिखाएँगी छलबल;
हे उदास! एकान्त जगत के किसी हृदय में उठ उद्‌गार,
दुख गाथा में ग्रहण करो तुम दीन आँसुओं का यह हार;
शून्य-दूत! सुन जाना मेरी कहीं निराली करुण-कथा,
आँख बन्द कर देखो प्रियतम! निपट निराली मर्म-व्यथा ४
नीरव अश्रु चले आते हैं किसी खोज में होकर दीन,
क्यों अवरोध करूँ बरबश भी हृदय किसी का है तल्लीन;
पहिले इसे बता जाना तुम हे अनन्त चारी! चुपचाप,
फिर करना खञ्जन! प्रमुदित हो विकसित कमलों से आलाप;

हे मेरे नैराश्य देवता मनक उठेंगे किसके प्राण,
अथक भाव से जब आवेगा लख मेरा भावी निर्वाण।
नहीं किसी की साध रहेगी नहीं किसी का होगा कौन,
नयनों से ओझल हो जाना पाकर अपना प्रियतम मौन।*

'ललित'

राजपूताने के इतिहास को भ्रष्ट करने का प्रयत्न

[भाद्रपद की संख्या से क्रमागत]

अब रही राव मालदेव की उदयसिंह को सहायता देने की बात। मुंशी देवीप्रसादजी ने महाराणा उदयसिंह का जीवन-चरित्र प्रकाशित किया है। उसमें महाराणा उदयसिंह को दी हुई राव मालदेव की सहायता का कोई उल्लेख नहीं है। इसी तरह मुंशीजी ने जोधपुर के राव मालदेव का भी जीवन-चरित्र लिखा है उसमें भी महाराणा उदयसिंह को राव मालदेव की सहायता देने का कहीं उल्लेख नहीं है। यदि राव मालदेव ने उदयसिंह को, बनवीर से चित्तौड़ का राज्य छीनने में सहायता दी होती, तो मुंशीजी इस बात का उल्लेख अवश्य करते। मुहणोत नैणसी ने भी अपनी ख्यात में मालदेव की इस सहायता का उल्लेख नहीं किया। उसने तो यह लिखा है कि महाराणा उदयसिंह ने सोनगरे अखैराज की पुत्री से विवाह किया था, जिससे वह (अखैराज) कूंपा महराजोत आदि मारवाड़ के राठौर सरदारों को भी अपने साथ ले आया था, जिसका उल्लेख हमने पृष्ठ ७१६ में कर दिया है। मुंशीजी ने भी, जो मारवाड़ के इतिहास के विशेषज्ञ थे, महाराणा उदयसिंह के जीवन-चरित्र (पृष्ठ ८४) में उसके चित्तौड़ लेने के प्रसंग में लिखा है कि सोनगरे अखैराज ने, जिसने अपनी बेटी महाराणा उदयसिंह को ब्याही थी, १०,००० सोनगरों से उसकी (उदयसिंह की) सहायता की थी। उन्होंने यह भी लिखा है कि महाराणा उदयसिंह ने दूसरी शादी राठौर कूंपा महराजोत की पुत्री से की थी, जिससे उसने भी १५,००० राठौरों से उदयसिंह की सहायता की। इस प्रकार महाराणा के मारवाड़ के संबंधियों ने उसकी जो सहायता की, उसका उल्लेख हमने पृष्ठ ७१६ में कर दिया है। इस पर से पाठक जान जावेंगे कि मुंशीजी और नैणसी की पुस्तकों में कहीं मालदेव की सहायता का उल्लेख नहीं है। रेऊजी ने अपनी पुस्तक (पृष्ठ १६४-१६५) में बिना कोई प्रमाण दिये यहाँ तक लिख मारा है कि—"वि० सं० १५९७ में उदयसिंहजी की प्रार्थना पर मालदेवजी ने अपने सरदार जैता और कूंपा आदि को भेजकर उनकी सहायता की। बनवीर हारकर गुजरात की तरफ़ भाग गया और राणा उदयसिंहजी को मेवाड़ का राज्य मिला। इस सहायता के एवज़ में राणा उदयसिंहजी ने ४०,००० फ़ीरोज़ी सिक्के और एक हाथी रावजी को भेंट किया।" हम इस कथन को झूठी ख़ुशामद के सिवा और कुछ नहीं समझते, क्योंकि यह उसी मारवाड़ की ख्यात से लिया गया है, जो ख़ुशामद से लिखी हुई होने के कारण अप्रामाणिक है। माधुरी में रेऊजी ने उदयपुर के प्रसिद्ध इतिहास 'वीर विनोद' का अपने कथन की पुष्टि में हवाला दिया है, परन्तु 'वीर-विनोद' में इस संबंध में जो कुछ लिखा गया है, वह मारवाड़ की ख्यात से ही लिया हुआ होने के कारण विश्वसनीय नहीं कहा जा सकता।

आगे चलकर रेऊजी कहते हैं कि हमने अपने राजपूताने के इतिहास के प्रथम भाग की भूमिका के पृष्ठ २२-२३ में मारवाड़ के मुहणोत नैणसी की ख्यात की ख़ासी प्रशंसा की है और दूसरी जिल्द के पृष्ठ ६५६ की टिप्पणी नं० १ में इसे टाड-राजस्थान और वीर-विनोद से भी अधिक प्रामाणिक माना है। "फिर क्या कारण है कि पृष्ठ ६०५ में राव जोधा के इतिहास में उसी मारवाड़ की ख्यात के बारे में लिखा गया है कि वह ख्यात वि० सं० १७०० से पीछे की बनी हुई होने से उसमें पुराना वृत्तान्त भाटों की ख्यातों के आधार पर लिखा गया है। अर्थात् वह झूठा है, विश्वास-योग्य नहीं है—यह परस्पर विरोधी मत कैसा।"

वास्तव में यहाँ तो रेऊजी ने पाठकों की आँखों में धूल डालने में प्रशंसनीय चातुरी दिखलाई है। वे पाठकों को यही बतलाने का उद्योग कर रहे हैं कि मारवाड़ के

* अप्रकाशित 'अश्रुधारा' पुस्तक से। लेखक

नैणसी की ख्यात और मारवाड़ की ख्यात, दोनों एक ही पुस्तक हैं। वास्तव में नैणसी की ख्यात केवल मारवाड़ की ख्यात ही नहीं है। उसमें तो राजपूताने के तत्कालीन सभी राज्यों का थोड़ा-बहुत वृत्तान्त और राजपूताने से बाहर के गुजरात, काठियावाड़, बघेलखण्ड आदि पर राज्य करनेवाले अनेक वंशों के इतिवृत्त संगृहीत हैं। मारवाड़ की ख्यात केवल जोधपुर राज्य का इतिहास है, अन्यत्र का नहीं। नैणसी की ख्यात और मारवाड़ की ख्यात दोनो भिन्न-भिन्न ग्रन्थ हैं और हस्त लिखित होने के कारण वे बहुधा उपलब्ध नहीं हो सकते। इसी से रेऊजी ने 'माधुरी' के पाठकों को इन ग्रन्थों से अपरिचित जानकर उनके चित्त में एक झूठी एवं भ्रममूलक बात जमा देने मे अपना चातुर्य प्रकट किया है। ऐतिहासिक होने का दावा करनेवाले व्यक्ति के लिये ऐसी चेष्टाएँ कहाँ तक गौरवपूर्ण हो सकती हैं, यह पाठक स्वय विचार ले। नैणसी की ख्यात राजपूताने-भर की दूसरी सब ख्यातों से अधिक उत्तम है, क्योंकि भिन्न-भिन्न स्थानों के लोगों से जो कुछ नैणसी ने जाना उसका उसने अपनी ख्यात मे संग्रह किया है। इसी से हम ख्यातों में उसे अच्छी समझते हैं। मारवाड़ की ख्यात खुशामद का ग्रंथ होने से हम उस पर विश्वास नहीं करते। पृष्ठ ६०५ मे हमने मारवाड़ की ख्यात को रद्दी बतलाया है, न कि नैणसी की ख्यात को। इन दोनो भिन्न पुस्तकों के विद्यमान होने पर भी इनको एक बतलाकर रेऊजी न जाने लोगों को भ्रम मे डालने की कोशिश क्यों कर रहे हैं? क्या ऐसा करने से मारवाड़ की ख्यात की प्रामाणिकता बढ़ जायगी? हमारा मत किसी प्रकार परस्पर विरोधी नहीं है, क्योंकि दोनों ग्रंथ भिन्न भिन्न हैं। भूमिका मे प्रशंसा नैणसी की ख्यात की की गई है और पृष्ठ ६०५ में मारवाड़ की ख्यात को हमने रद्दी बतलाया है। दो भिन्न भिन्न पुस्तकों पर पृथक् पृथक् मत प्रकाशित करने मे हमारा मत किसी प्रकार परस्पर विरोधी नहीं हो सकता। आशा है, इससे पाठकों मे रेऊजी द्वारा फैलाया हुआ भ्रम निवारण हो जायगा।

अब हमे रेऊजी की निम्न-लिखित पंक्तियों पर विचार करना चाहिए

"फिर यदि यह पिछली उक्ति नैणसी की ख्यात के बारे मे नहीं है, तो उसमे का लिखा मारवाड़ के राव रणमल्ल, जोधा आदि का इतिहास क्यों न मान्य समझा जाय? क्योंकि यह इतिहास तो वि० सं० १५५० के बाद का है। इतने पर भी यदि इसके विरुद्ध ही मत दिया जायगा, तो यही समझना होगा कि बड़े आदमी जो न कहे, वही थोड़ा है।"

हम यह स्वीकार करते हैं कि हमारी पिछली उक्ति नैणसी की ख्यात के बारे में नहीं है, क्योंकि हमने तो पृष्ठ ६०५ मे स्पष्ट शब्दों मे मारवाड़ की ख्यात को रद्दी बतलाया है। नैणसी की ख्यात, टॉड-राजस्थान, वीर-विनोद आदि राजपूताने के इतिहास-संबंधी ग्रंथों में जो कुछ लिखा मिलता है, वह सब-का-सब ठीक है, यह कभी नहीं माना जा सकता। जिस पुस्तक का जो अंश इतिहास की कसौटी पर ठीक जँचे, वही हमें मान्य हो सकता है, न कि प्रत्येक कथन। हम 'बाबावाक्य प्रमाणम्' के अनुयायियों मे नहीं हैं। नैणसी के संवत् १५५० के इतिहास के लिये भी यही कसौटी नियत है। इतिहास में बड़े और छोटे का कोई प्रश्न ही नहीं है। इतिहास एक बड़ा पवित्र विषय है। उसको लिखने के लिये हठधर्मी को छोड़कर निष्पक्षपात गवेषणा तथा पुष्ट प्रमाणों की आवश्यकता रहती है और इतिहास-लेखक को सत्य का गला घोंटने, मनमानी कल्पनाएँ करने और झूठे संवतों को स्थिर करने से कोसों दूर रहना चाहिए। ऐसे इतिहास ही विद्वानों मे महत्त्वपूर्ण एवं आदरणीय समझे जाते हैं।

इसके अनन्तर वि० सं० १४९६ के राणपुर के शिलालेख मे लिखित कुंभा के राजत्वकाल के वृत्तान्त पर टीका-टिप्पणी करते हुए रेऊजी लिखते हैं—

"क्या ये बातें सच्ची समझी जा सकती हैं। उस समय महाराणा कुंभा की आयु १२ वर्ष की होती है और यह उक्त इतिहास के लेखानुसार राणा कुंभा के ७ वर्ष का हाल है। तब क्या ५ वर्ष की आयु से ही उसने उपर्युक्त कार्य करने प्रारंभ कर दिए थे। अतः या तो यह कवि बिल्हण की उक्ति के अनुसार—

लङ्कापतेः संकुचितं यशो यद्यत्कीर्तिपात्रं रघुराजपुत्रः ;
स सर्व एवादिकवेः प्रभावो न कोपनीयाः कवयः क्षितीन्द्रैः ।

उक्त लेख के रचयिता का ही प्रभाव है या प्रकारान्तर से यह सब रणमल्ल के ही प्रबंध की प्रशंसा है, क्योंकि महाराणा के बालक होने के कारण वि० सं० १४९५

तक वही मेवाड़ का प्रबंधकर्ता था और उसी वर्ष दुष्टों ने बालक महाराणा को बहकाकर धोके से उसे मार डाला था।"

यहाँ पर रेऊजी ने अपने लेख की पहले लिखी हुई बातों को ही दूसरे शब्दों में दुहराया और राणपुर के शिलालेख पर अविश्वास प्रकट करते हुए रणमल्ल की प्रशंसा की है। इस सारे कथन का हम विस्तारपूर्वक निराकरण कर चुके हैं। हमने पहले ही लिख दिया है कि यह शिलालेख महाराणा का खुदवाया हुआ नहीं, किंतु उक्त जैनमंदिर के निर्माताओं द्वारा खुदवाया गया है। रेऊजी के कथनानुसार यदि उक्त शिलालेख में लिखी हुई बातें सच्ची न समझी जायँ तो हम यह पूछते हैं कि राणपुर के जैनमंदिर की प्रशस्ति खुदवानेवालों को क्या आवश्यकता थी कि जो विजय कुंभा ने उस समय तक की ही नहीं, उनका वे कृत्रिम वर्णन करें। कुंभा की इन विजयों में मंडोर-विजय का भी उल्लेख है। क्या इसे भी रेऊजी झूठा समझते हैं? उक्त प्रशस्ति में लिखे हुए समस्त विजयों का उल्लेख कई अन्य शिलालेखों से सिद्ध होता है, परन्तु जिन्होंने उन अप्रकाशित शिलालेखों को अब तक देखा ही नहीं उनका कथन इस विषय में कहाँ तक मान्य हो सकता है? उन शिलालेखों से कई मूल अवतरण हमने अपने इतिहास में यथास्थान उद्धृत किए हैं। रेऊजी की मानी हुई कुंभा की कल्पित आयु का पहले ही निर्णय कर दिया गया है। रणमल के सुप्रबन्ध के संबंध में हम पहले ही विवेचन कर चुके हैं अतः उसे यहाँ दुहराना अनावश्यक है।

लेखान्त में भवभूति या बिल्हण के ग्रंथों से श्लोक लिख देने से उसका महत्त्व नहीं बढ़ सकता। विद्वानों की दृष्टि में लेख का गौरव तो तभी समझा जाता है जब कि लेखक अपने प्रत्येक कथन के लिये कल्पना को छोड़कर पुष्ट प्रमाण देने का श्रम उठावे।

यहाँ तक हमने रेऊजी के बहुधा सभी मुख्य मुख्य आक्षेपों का उत्तर दे दिया है। माधुरी में प्रकाशित रेऊजी का यह सारा लेख प्रमाण-शून्य है, उसमें अपनी इच्छानुसार भिन्न भिन्न घटनाओं के संवत् कल्पित धरे गये हैं। इसी तरह राजाओं की आयु के संबंध में जो अनुमान लेखक महोदय ने किये हैं, उनके लिये कोई प्रमाण देने का कष्ट नहीं उठाया गया, और प्रारंभ में ही "सिद्ध" संवत् कल्पित खड़ा किया है उसी को आधारभूत मानकर लेखक महाशय आगे चले हैं। झूठी ख्यातों को शुद्ध बतलाने का हमारे इतिहासज्ञ समालोचक ने भरसक प्रयत्न किया है, इसी से उन्हें शिलालेखों को अप्रामाणिक बतलाने का साहस करना पड़ा। रेऊजी का यह लेख इतिहास की शुद्धि के लिये नहीं बल्कि उसे भ्रष्ट करने के उद्देश्य से लिखा गया है। इतिहास-विषय में हमारे ही शिष्य होने के कारण रेऊजी के ऐतिहासिक ज्ञान से हम ख़ूब परिचित हैं, अतएव हमें ऐसे लेख का उत्तर देना कदापि इष्ट नहीं था, परन्तु आजकल उन्होंने राजपूताने के इतिहास को शुद्ध न कर स्वार्थवश उसे भ्रष्ट करने का बीड़ा उठाया है, इसीलिये इतिहास की शुद्धता की रक्षा के लिये ही हमें विवश होकर यह लेख लिखना पड़ा है।

मंडोर के राव रणमल और जोधा के विषय में हमने स्थल-स्थल पर प्रमाण देकर जो कुछ लिखा है, उसमें हमने उन्हें बड़े राजा न मानकर उनकी जैसी वास्तविक स्थिति थी वैसी बतलाई है। उसीके विरोध में रेऊजी की लेखनी से यह सारा लेख लिखा गया है, जिसमें एक भी यथार्थ प्रमाण न देकर और मनमानी कल्पित बातें लिखकर ही लेख का कलेवर बढ़ाया गया है। ऐसी अनर्गल बातों की हमें तनिक भी परवाह नहीं है, परन्तु झूठी बातों को सच्ची बतलाने के लिये प्राचीन शिलालेखों को झूठा सिद्ध करने की जो कुचेष्टा की गई है, वह वास्तव में पुरातत्ववेत्ताओं और इतिहास के सच्चे प्रेमियों को खटकती हुई है।

रेऊजी अपनी मनमानी बातों को पुष्ट करने के लिये कहीं शिलालेखों को झूठा कहने का साहस करते हैं, कहीं शिलालेखों में न लिखी हुई बात का उनमें उल्लेख होना बतलाते हैं तथा अर्थ का अनर्थ करने में कसर नहीं रखते, और कहीं अपने प्रतिकूल कोई बात हो तो उस प्रतिकूल अंश को छिपाकर अपने अनुकूल अंश को ही लोगों के सामने रखते हैं। इस तरह की सब बातें इतिहास की कदापि पोषक नहीं, किन्तु उसकी शोषक हैं। रेऊजी की ऐसी अनेक कृतियों में से कुछ का दिग्दर्शन हम पाठकों को कराते हैं।

मारवाड़ के राजा राठौर हैं और वे अपने को कन्नौज के राजा जयचंद के वंशज मानते हैं। इसीलिये प्राचीन

शोध के प्रारंभ से पूर्व जयचंद राठौर माना जाता था, परन्तु अब जयचंद तथा उसके पूर्वपुरुषों के अनेक ताम्रपत्र मिल गये, जिनमें कहीं उनके वंश का नाम राठौर नहीं किन्तु गाहडवाल (गहरवाल) लिखा हुआ मिलने से विद्वान् लोग राठौर और गाहडवालों को भिन्न-भिन्न मानने लगे। अब तक के शोध से ऐसा एक भी प्रमाण नहीं मिला, जिसके आधार पर निश्चित रूप से यह कहा जा सके कि गाहडवाल और राठौर एक ही वंश के हैं। राजपूताने में गाहडवालों का नाम टाड के समय तक प्रसिद्ध नहीं था और राठौरों की शाखाओं मे गाहडवाल (गहरवाल) नामक कोई शाखा भी नहीं है। कर्नल टाड भी यह नहीं जानता था कि जयचंद और उसके पूर्वज गाहडवाल थे और गाहडवालों का वास्तविक इतिहास न मिलने के कारण ही उसने उनके अशुद्ध रक्त के होने की बात लिख दी जो विश्वासयोग्य नहीं है।

रेऊजी ने "भारत के प्राचीन राजवंश" भाग ३ के अंत में अपना सचित्र परिचय प्रकाशित करने से पूर्व परिशिष्ट नं० (१) मे "राष्ट्रकूट और गाहडवाल वंश" शीर्षक देकर इन दो वंशों के विषय मे विस्तृत विवेचन किया है, जिसके प्रारम्भ में दक्षिण के राष्ट्रकूटों और गाहडवालों को एक वंश का मानने मे संकोच करनेवाले प्राच्य और पाश्चात्य विद्वानों की मुख्य-मुख्य पाँच दलीलें दी हैं। फिर उन दलीलों पर टीका-टिप्पणी कर इन्होंने यह सिद्ध करने का निष्फल प्रयत्न किया है कि ये दोनो वंश वास्तव मे एक ही हैं। प्राच्य और पाश्चात्य विद्वानों का इन दोनो वंशों को भिन्न मानने का एक कारण रेऊजी ने यह बतलाया है कि ये विद्वान् कहते हैं कि राष्ट्रकूटों के लेखों में उनको चंद्रवंशीय लिखा है, परन्तु गाहडवाल अपने को सूर्यवंशीय लिखते हैं। इस शंका का समाधान करते हुए रेऊजी लिखते हैं—

"विक्रम-संवत् १०२७ के यादव राजा भिल्लम (द्वितीय) के ताम्रपत्र से प्रकट होता है कि राष्ट्रकूटों और यादवों के आपस मे विवाह संबंध होते थे। यादव राजा सेउणचन्द्र (द्वितीय) के वि० सं० ११२६ के ताम्रपत्र से भी इसी बात की पुष्टि होती है। अतः हमारी संमति मे ये राष्ट्रकूट राजा वास्तव में सूर्यवंशी ही थे; परन्तु द्वारका के निकट रहने के कारण इन पर वैष्णव-मत का विशेष प्रभाव पड़ गया। इसीसे कालांतर में लोग इन्हें यदुवंशी समझने लग गए।"

विक्रम संवत् १६०० से पूर्व के राठौरों के किसी शिलालेख, ताम्रपत्र अथवा ऐतिहासिक ग्रंथ में कहीं भी उनका सूर्यवंशी होना नहीं लिखा, किंतु इसके विपरीत चंद्रवंशी यादवों की सात्यकि शाखा में उनका होना अनेक जगह लिखा मिलता है[1]। नहीं कह सकते कि राष्ट्रकूटों (राठौरों) और यादवों में परस्पर विवाह होने से ही चंद्रवंशी राठौर सूर्यवंशी कैसे बन सकते हैं? प्राचीन काल से ही यादवों का यादवों मे विवाह होता रहा है। यदि रेऊजी पुराणों को ध्यानपूर्वक पढ़ते तो उन्हें मालूम हो जाता कि भगवान् श्रीकृष्णचंद्र का विवाह यादव राजा सत्राजित् की पुत्री सत्यभामा के साथ हुआ था। इसी तरह श्रीकृष्ण के पुत्र प्रद्युम्न का विवाह भी यादवों में होना पाया

---

१ दक्षिण के राठौर राजा अमोघवर्ष (प्रथम) के समय के शक संवत् ७८२ (वि० सं० ९१७) के कोन्नूर के शिलालेख में (एपिग्राफिया इंडिका जि० ६, पृ० २९), गोविंदराज (चौथे, सुवर्णवर्ष) के शक सं० ८५२ (वि० सं० ९८७) के खंभात में मिले हुए दानपत्र में (एपि० इंडि०, जि० ७, पृ० ३७), उसी राजा के शक सं० ८५५ (वि० सं० ९९०) के सांगली से मिले हुए दानपत्र में (इंडियन एंटिक्वेरी; जिल्द १२, पृ० २४९) ; कृष्णराज (तीसरे, अकालवर्ष) के शक संवत् ८८० (वि० सं० १०१५) के करहाड के दानपत्र में (एपि० इंडि०, जि० ४, पृ० २८२) और कर्कराज (दूसरे—अमोघवर्ष) के शक सं० ८९४ (वि० सं० १०२९) के खरडा के दानपत्र में राठौरों का यदुवंशी (यादव) होना लिखा है। राठौर राजा इंद्रराज (तीसरे, नित्यवर्ष) के शक सं० ८३६ (वि० सं० ९७१) के बगुमरा से मिले हुए दो दानपत्रों में (बंबई एशियाटिक सोसाइटी-जर्नल, जि० १८, पृ० २५७, २६१) और कृष्णराज (तीसरे, अकालवर्ष) के शक संवत् ८६२ (वि० सं० ९९७) के देवली से मिले हुए दानपत्र में (एपि० इंडि०, जि० ५, पृ० १९२, ९३) राठौरों का चंद्रवंश की यदुशाखा में सात्यकि के वंश में होना लिखा है। हलायुध पंडित ने अपनी रची हुई 'कवि-रहस्य' नामक पुस्तक में उसके नायक राठौर राजा कृष्णराज को सोमवंश (चंद्रवंश) का भूषण कहा है (बंबई गेजेटियर० जि० १, भाग २, पृ० २०८—९)।

जाता है। ऐसी दशा में यादवों और राठौरों में परस्पर विवाह होने से ही चन्द्रवंशी राठौरों को निश्चयपूर्वक सूर्यवंशी कह देना केवल मनगढ़त कल्पना नहीं तो और क्या है ?

अब रही राठौरों के द्वारिका के निकट रहने के कारण इन पर वैष्णव मत का विशेष प्रभाव पड़ने और कालान्तर में लोगों के इनको यदुवंशी समझने की बात। आधुनिक प्राचीन शोधक भाटों की ख्यातों को बहुधा गप्पाष्टक के ग्रंथ मानते हैं, परन्तु इस कथन में तो रेऊजी भाटों को भी मात कर गए। क्या वे बतला सकते हैं कि राठौर कब तो द्वारिका के पास रहे और कब तथा किन लोगों ने उन्हें सूर्यवंशी से चन्द्रवंशी मान लिया ? रेऊजी के कथनानुसार यदि लोगों ने उन्हें चन्द्रवंशी मान लिया होता, परन्तु राठौर यदि चन्द्रवंशी न होते, तो वे अपने अनेक *ताम्रपत्रादि में अपने को चन्द्रवंशी कैसे लिख देते ?* यदि राठौर सूर्यवंशी होते, तो डाक्टर सर रामकृष्ण गोपाल भांडारकर ने "अर्ली हिस्ट्री अव् दि डेकन" (दक्षिण का प्राचीन इतिहास), डाक्टर फ्लीट ने "दि डाइनैस्टीज़ आव् दि कैनेराज़ डिस्ट्रिक्ट्स आॅव् दि बाम्बे प्रेसिडेन्सी" (बम्बई इहाते के कनाडी प्रान्तों के राजवंश) और डाक्टर भगवानलाल इन्द्रजी ने "अर्ली हिस्टी आव् गुजरात" (गुजरात का प्राचीन इतिहास) में राष्ट्रकूटों का जो प्राचीन इतिहास लिखा है, उसमें वे कहीं-न-कहीं तो राठौरों के प्रारंभ में सूर्यवंशी होने और पीछे से उनके चन्द्रवंशी बन जाने का उल्लेख अवश्य करते। यदि उपर्युक्त तीनों सुप्रसिद्ध पुरातत्त्ववेत्ताओं में से किसी को भी राठौरों के सूर्यवंशी होने की बात मालूम होती, तो वे अपने-अपने ग्रंथ में इस बात का उल्लेख अवश्य करते। प्राचीन काल में राठौर कभी द्वारिका के पास रहे ही नहीं। उनका मूल राज्य तो दक्षिण में ही था, जहाँ से उन्होंने पीछे से गुजरात, राजपूताना, मालवा, मध्यप्रदेश, गया (पोठी) आदि में स्वतंत्र या परतंत्र राज्य स्थापित किए। यदि द्वारिका के निकट रहने से ही राठौरों का सूर्यवंशी से यदुवंशी बनना सम्भव हो, तो यही मानना पड़ेगा कि राठौरों का मूल निवास-स्थान द्वारिका के पास था, जहाँ से वे दक्षिण में गये हों। डाक्टर सर रामकृष्ण भांडारकर का तो मत यह है कि मौर्यवंशी राजा अशोक के समय में भी राठौर दक्षिण में विद्यमान थे। कई राजा वैष्णवधर्म के परम भक्त रहे हैं, परन्तु ऐसी भक्ति के कारण उनके वंश का कभी परिवर्तन नहीं हुआ। महाराणा कुंभा परम वैष्णव था और कई विष्णुमंदिर उसने बनवाए, परन्तु वह सूर्यवंशी से चन्द्रवंशी नहीं बना। कोटा के राजा विष्णु के परम भक्त रहे और उनकी राजधानी कोटा 'नंदगाँव कोटा' के नाम से प्रसिद्ध हुई, परन्तु कोटा के राजाओं ने अपना वंश-परिवर्तन कभी नहीं किया। इस विषय में अनेक उदाहरण मिल सकते हैं, अतएव रेऊजी का यह कथन लोगों को सरासर धोखे में डालनेवाला ही है।

अब राठौरों को सूर्यवंशी बनाने का रेऊजी का एक और प्रमाण सुन लीजिए। भारत के प्राचीन राजवंश, तृतीय भाग के अन्त के चार पत्रिवाले पाँचवें परिशिष्ट में रेऊजी लिखते हैं—

"*धमोरी (अमरावती ताल्लुका) से राष्ट्रकूट राजा* कृष्णराज के क़रीब १,८०० चाँदी के सिक्के मिले हैं। इन सिक्कों में एक तरफ़ राजा का मस्तक है और दूसरी तरफ़ 'परममाहेश्वरमहादित्यपादानुध्यात श्रीकृष्णराज' लिखा है। इस पद से भी इनका सूर्यवंशी होना सिद्ध होता है।"

फिर आठ महीने बाद अगस्त सन् १९२६ ई० की "सरस्वती" में कृष्णराज के इन्हीं सिक्कों पर के लेख को दुहराते हुए रेऊजी ने पृष्ठ २१० में लिखा है कि "विद्वान् लोग इनको प्रथम कृष्णराज के समय के ही मानते हैं। यदि आप (अर्थात् "तरुणराजस्थान"-सम्पादक) हठवश इन्हें अन्तिम कृष्णराज के भी मान लें, तो भी ये विक्रम-संवत् १००० के क़रीब के ही सिद्ध होंगे और राठौरों को सूर्यवंशी सिद्ध करेंगे।"

रेऊजी ने कृष्णराज के सिक्कों पर के लेख का हिन्दी अनुवाद करने का कष्ट नहीं उठाया, जिसका कारण यही है कि यदि वे ऐसा करते तो उनकी इस दलील की सारी पोल खुल जाती। अब हम कृष्णराज के उक्त सिक्कों पर के लेख का हिन्दी अनुवाद नीचे लिखते हैं—

"शिव का परमभक्त (परममाहेश्वर) और महादित्य के चरणों का ध्यान करनेवाले श्रीकृष्णराज [का सिक्का]।"

दक्षिण के राष्ट्रकूटों में कृष्णराज नामक तीन राजा हुए, जिनमें से ये सिक्के किसके हैं, यह इन पर से जाना नहीं जा सकता। सम्भवतः ये कृष्णराज तीसरे के हों, जो प्रबल राजा था। सिक्कों पर के उपर्युक्त लेख में कृष्णराज

के सूर्यवंशी होने का लेशमात्र भी उल्लेख नहीं है। संस्कृत शिलालेखों तथा ताम्रपत्रों में 'पादानुध्यात' शब्द से पूर्व का नाम उक्त शब्द से पिछले नामवाले राजा के पिता (या पूर्वाधिकारी) के नाम अथवा विरुद का सूचक होता है, जो निम्नलिखित अवतरणों से स्पष्ट हो जायगा। महादित्य कृष्णराज के पिता का विरुद होना चाहिए, न कि वंशसूचक शब्द।

(१) मोखरी राजा शर्ववर्मा की आसीरगढ़ से मिली हुई राजमुद्रा में लिखा है—

जयस्वामिनीभट्टारिकादेव्यामुत्पन्न श्रीमहाराजादित्यवर्मा तस्य पुत्रस्तत्पादानुध्यातो हर्षगुप्ताभट्टारिकादेव्यामुत्पन्न श्रीमहाराजेश्वरवर्म्मा तस्य पुत्रस्तत्पादानुध्यात उपगुप्तभट्टारिकादेव्यामुत्पन्नो महाराजाधिराजश्रीशानवर्मा . .

(डाक्टर फ्लीट-सम्पादित 'गुप्त इन्स्क्रिपशन्स' पृष्ठ २२०)

(२) अलीना से मिले हुए वलभी के राजा शीलादित्य के वलभी संवत् ४४७ के दानपत्र में यह लिखा मिलता है—

परममाहेश्वरपरमभट्टारकमहाराजाधिराजपरमेश्वर श्रीबप्पपादानुध्यात परमभट्टारकमहाराजाधिराज परमेश्वर श्रीशीलादित्य देव . ... . (वहीं, पृष्ठ १७८)

(३) कन्नौज के प्रसिद्ध बैसवंशी राजा हर्षवर्द्धन के बंसखेड़ा से मिले हुए दानपत्र में निम्नलिखित पंक्तियाँ हैं—

महाराज श्रीनरवर्द्धनस्तस्य पुत्रस्तत्पादानुध्यातश्रीवज्रिणीदेव्यामुत्पन्न परमादित्यभक्तो महाराजश्रीराज्यवर्द्धनस्तस्य पुत्रस्तत्पादानुध्यातश्रीमदप्सरोदेव्यामुत्पन्न परमादित्यभक्तो महाराजश्रीमदादित्यवर्द्धनस्तस्य पुत्रस्तत्पादानुध्यातश्रीमहासेनगुप्तादेव्यामुत्पन्न .. ..

(एपिग्राफिया इंडिका जिल्द ४, पृष्ठ २१०)

(४) कन्नौज के रघुवंशी प्रतिहार राजा महेन्द्रपाल दूसरे के विक्रम संवत् १००३ के प्रतापगढ़ (राजपूताना) से मिले हुए शिलालेख में लिखा है—

महाराजश्रीदेवशक्तिदेवस्तस्य पुत्रस्तत्पादानुध्यात श्रीभूयिकादेव्यामुत्पन्नपरममाहेश्वरो महाराजश्रीवत्सराजदेवस्तस्य पुत्रस्तत्पादानुध्यातश्रीसुन्दरीदेव्यामुत्पन्न परमभगवतीभक्तो महाराजश्रीनागभटदेवस्तस्य पुत्रस्तत्पादानुध्यात श्रीमदीसटादेव्यामुत्पन्न . .. .

(एपिग्राफिया इंडिका जिल्द १४, १८३)

ऊपर उद्धृत किये हुए अवतरणों से पाठक स्पष्टतया जान जावेंगे कि पादानुध्यात शब्द से पूर्व का नाम उक्त शब्द के पीछे लिखे जानेवाले राजा के पिता अथवा उसके विरुद का सूचक होता है। अवतरण (२) में 'बप्प' शब्द विरुद है, न कि नाम। हम ताम्रपत्रादि से ऐसे बीसों उदाहरण दे सकते हैं, परन्तु विस्तार-भय से यहाँ चार ही उद्धृत करना उचित समझते हैं। रेऊजी ने ये ताम्रपत्रादि पढ़े ही होंगे। हम नहीं कह सकते कि जानते हुए भी क्या समझकर रेऊजी ने कृष्णराज के सिक्के पर से राष्ट्रकूटों को सूर्यवंशी बनाने में अर्थ का अनर्थ कर डाला ? यदि 'महादित्यपादानुध्यात' का यह अर्थ किया जाय कि 'महा आदित्य के चरणों का ध्यान करनेवाला', तो भी वंश-निर्णय करने में यह अर्थ किसी प्रकार सहायक नहीं हो सकता। ऐसा अर्थ मानने पर 'महादित्यपादानुध्यात' से यही जाना जायगा कि जिसके नाम के साथ उस शब्द का संबंध है, वह पुरुष सूर्य का उपासक था। सूर्योपासक मान लेने पर भी वह सूर्यवंशी नहीं हो सकता, क्योंकि एक ही वंश के भिन्न-भिन्न पुरुष भिन्न-भिन्न देवताओं के उपासक होते हैं, जैसा कि उल्लिखित अवतरणों से निश्चित है। कृष्णराज के सिक्के के लेख में तो उसको 'परममाहेश्वर' अर्थात् 'शिव का परमभक्त' लिखा है, अतएव 'महादित्यपादानुध्यात' शब्द से 'महासूर्य के चरणों का ध्यान करनेवाला'—अर्थ मान लेना सर्वथा असंगत ही है। यहाँ पर 'महादित्य' कृष्णराज के पिता का विरुद होना चाहिए।

जिस कृष्णराज के १८०० सिक्के हैं उसी के राजकवि हलायुध पंडित ने भट्टिकाव्य की शैली का 'कवि-रहस्य' नामक काव्य लिखा, जिसका नायक स्वयं राष्ट्रकूट कृष्णराज है। उस कृष्णराज के वर्णन में कवि लिखता है कि—

अस्त्यगस्त्यमुनिज्योत्स्नापवित्रे दक्षिणापथे ;
कृष्णराज इति ख्यातो राजा साम्राज्यदीक्षित ।
तोलयत्यतुलं शक्त्या यो भारं भुवनेश्वर ;
करस्तं तुलयति स्थाम्ना राष्ट्रकूटकुलोद्भवम् ;
सोमं सुनोति यज्ञेषु सोमवंशविभूषण ।

(बंबई गैज़ेटियर, जिल्द १, भाग २ में प्रकाशित डॉक्टर सर रामकृष्ण गोपाल भांडारकर-रचित 'अर्ली हिस्ट्री ऑव् दि डेक्कन, पृष्ठ २०८-२०९)

राष्ट्रकूट कृष्णराज का ही राजकवि जब अपने आश्रय-

माता का धन

नवलकिशोर-प्रेस, लखनऊ।

इसी राजा को 'सोमवंशविभूषणः' (चंद्रवंश का भूषण) कहता है, तो उसी राजा के सिक्के पर के लेख से, जिसका विवेचन हम कर चुके हैं, उसे (कृष्णराज को) सूर्यवंशी कहने का साहस क्या कोई कर सकता है ?

अब हम अन्तिम कृष्णराज अर्थात् कृष्णराज तृतीय के शक संवत् ८८० (वि० सं० १०१५) के करहाड़ से मिले हुए और डॉ० सर रामकृष्ण गोपाल भांडारकर द्वारा संपादित दान-पत्र का अवतरण नीचे उद्धृत करते हैं, जिससे ज्ञात हो जायगा कि स्वयं कृष्णराज ने अपने वंश का परिचय किस तरह दिया है—

श्रीमानस्ति नभस्तलैकतिलकस्त्रैलोक्यनेत्रोत्सवो
देवो मन्मथबा (बा) न्धव कुमुदिनीनाथः सुधादीधिति ।
[नि]. शेषामरतर्प्पणार्प्पिततनुप्रक्षीणतालङ्कृते-
र्यस्याशः शिर [सा] गुणाश्रि (श्रि) यतया नून धृतःशम्भुना ॥३॥
तस्माद्विकासनपरः कु [मुदाव] लीना-
न्दोषान्धकारदलन. परिपूरिताशः ।
ज्योत्स्नाप्रवाह इव दर्शितशुद्ध [वृ] त्त-
प्रावर्त्तत क्षितितले क्षितिपालवंश [॥ ४ ॥]
अभवदतुलका [न्ति] स्तत्र [मु] क्तामणीना
गण इव यदुवंशो दुग्धसिन्धूयमाने ।
अधिगतहरिनीलप्रोल्लसन्नायकश्री-
रशिथिलगुणसंगो भूषणं यो भुवोऽभूत् [॥ ५ ॥]
क्षितितलतिलकस्तदन्वये च स्तरिपुदन्तिघटोजनिष्ट रट्ट. ।
तमनु च सुतराष्ट्रकूटनाम्ना भुवि विदितोऽजनि राष्ट्रकूट-
वंशः [॥ ७ ॥]

(एपिग्राफिया इंडिका, जिल्द ४, पृष्ठ २८१-८२) ।

आशय—गगनतल का तिलक, तीनों लोकों के लिये नयनाभिराम, कामदेव का बांधव, कुमुदिनीपति, और अमृतरूपी किरणोंवाला चंद्र हुआ ।......उससे पृथ्वी पर (एक) राजवंश चला । उस समुद्र के वंश में मुक्ता-मणि का समूहरूप यदुवंश निकला ।.. उस वंश में रट्ट हुआ और उसके पुत्र राष्ट्रकूट से पृथ्वी पर राष्ट्रकूट (राठौड़) वंश चला ।

आगे चलकर उक्त ताम्रपत्र में कृष्णराज तृतीय तक का वर्णन मिलता है । 'कवि-रहस्य' और इस ताम्रपत्र को देखते हुए यही कहना पड़ता है कि कृष्णराज के सिक्के पर के लेख में उसके सूर्यवंशी होने का तनिक भी उल्लेख न होते हुए भी रेऊजी ने उसका सूर्यवंशी होना बतला कर पाठकों को निःसंदेह धोखा ही दिया है । 'कवि-रहस्य' कृष्णराज के उपर्युक्त दानपत्र और इसी तरह राठौड़ों के दूसरे अनेक ताम्रपत्रों में लिखी हुई उनके चंद्रवंशी होने की बात को, भलीभाँति जानते हुए भी, साधारण पाठकों से छिपाने का प्रयत्न कर किया है । रेऊजी चाहे जो सच-झूठ लिखकर पुरातत्त्व से अनभिज्ञ अनेक पाठकों को बहका सकते हैं, परन्तु झूठी बात सिद्ध करने की उनकी चातुर्यपूर्ण युक्तियाँ पुरातत्त्वज्ञों की दृष्टि से कदापि नहीं बच सकतीं और वे आसानी से नहीं बहक सकते, यह रेऊजी को भलीभाँति जान लेना चाहिए ।

गौरीशंकर हीराचंद ओझा

पपीहे से प्रार्थना

तेरे डाहे रही पैठि कोठरी के कोने रही,
अजहू जो कौलु देहि निकसौं तो कोने सों ;
कवि मकरंद कोऊ पच्छी न गहत पच्छ,
काग सों निहोरो करि देख्यो औन तौने सों ;
तोपौं हौं अराऊ करौं चोप करि चोप करौं,
चुनि-चुनि चुनी करौं हीरालाल सोने सों ;
अरे ऐ पपीहा जैसे पोऊ पीऊ कहै ऐसे,
आयो आयो कहै तौ मढ़ाऊँ चोंच सोने सों ।

"मकरंद"

मेरी तीर्थयात्रा

(शेषांश)

मेश्वर स्टेशन के पूर्व एक बड़ा स्टेशन पड़ता है, मण्डपम् ! मण्डपम् से जब गाड़ी चली, तो रेल पर बड़ा आनन्द आया । रेल में बैठे हुए दोनों ओर विशाल समुद्र दिखाई पड़ता था । थोड़ी दूर तक तो यह दृश्य रहा, आगे चलकर दोनों ओर के समुद्र मिल गये और हम लोगों की गाड़ी अब समुद्र में पुल पर से जाने लगी । यह बात तो सब पर विदित होगी कि रामेश्वर की बस्ती तथा मंदिर एक

टापू पर है। अस्तु, भारतवर्ष के भूभाग से लेकर रामेश्वर के टापू को मिलाने के लिये एक पुल बना है। यह पुल २-२½ मील लम्बा है। और जब इस पुल पर से प्रातः-काल के सुहावने समय में हमारी गाड़ी जाने लगी, तो अकथनीय आनन्द प्राप्त हुआ।

प्रायः ७ बजे होंगे, जब हमारी गाड़ी रामेश्वरम् स्टेशन पर पहुँची। यह बड़ा छोटा-सा स्टेशन है, परन्तु तीर्थस्थान होने के कारण यात्री सदा सर्वदा आया ही करते हैं। इस कारण कुली तथा किराए की गाड़ियाँ मिल जाती हैं। एक बैलगाड़ी हमने भी किराये पर की, और दीवान बहादुर सेठ सर कस्तूरचन्द डागा के धर्मशाला में जाकर ठहरे। इस धर्मशाला के संरक्षक हैं पं० गौरीशंकरजी, जो एक मारवाड़ी ब्राह्मण हैं। आपका प्रबंध अत्यन्त प्रशंसनीय है और आप यात्रियों के आराम का सब प्रकार से ध्यान रखते हैं। यह धर्मशाला मन्दिर से दो फ़र्लांग की दूरी पर है, और धर्मशाला से मन्दिर तक सीधा मार्ग है। बाज़ार तो बिलकुल ही पास है। धर्मशाला के संरक्षक की कृपा से हम लोग पंडों से बच गये। जिन दिनों हम लोग पहुँचे, ५-७ यात्रियों से अधिक वहाँ नहीं थे। संभव है, यही कारण हो कि हम लोगों को पंडों ने अधिक नहीं सताया। स्नान-ध्यान करके हमलोग पं० गौरीशंकरजी के साथ रामेश्वर के दर्शन को गये। श्रीरंग का वर्णन करते हुए मैंने उल्लेख किया था कि वह दक्षिण भारत के तीन सबसे बड़े मन्दिरों में से एक है। अस्तु, अन्य दो मन्दिरों में से एक है यही रामेश्वरजी का मन्दिर और दूसरा है मदूरा में मीनाक्षी का।

रामेश्वरजी का मन्दिर बड़े भारी घेरे मे स्थित है। मन्दिर में सात फाटक हैं, जो एक के बाद दूसरे पड़ते हैं। हर एक फाटक को पार करने पर एक मार्ग मिलता है, जो मन्दिर की एक परिक्रमा करा देता है। मन्दिर इस प्रकार का नहीं है कि आप सीधे देवमूर्ति के पास पहुँच जायँ। इन परिक्रमाओं में दूकानें लगती हैं, क्योंकि इनके साथ-साथ बड़ी लम्बी-लम्बी दालानें बनी हैं। इस मन्दिर में कम-से-कम दो लाख आदमी एक समय में रह सकते हैं। हम लोग भी सारा मार्ग तय करके देवमूर्ति के सामने पहुँचे। यह स्थान मंदिर के सामने का सभा-मंडप समझा जा सकता है। यहाँ से देवमूर्ति सामने पड़ती है, परन्तु तब भी बीच में पाँच ड्योढ़ियाँ पड़ती हैं। दक्षिण के मन्दिरों में सर्वत्र देवमूर्ति के पास यात्री को आने का निषेध है—चाहे वह किसी भी जाति का क्यों न हो। रामेश्वर के मन्दिर का यह नियम है कि ब्राह्मण यात्रियों को एक ड्योढ़ी नाँघने का अधिकार है; परन्तु वह भी तब, जब आप वहाँ के दफ़्तर में जाकर अपना नाम आदि लिखावें और वहाँ से आपको टिकट मिले, जिसे द्वार पर देने से आप एक ड्योढ़ी पार कर सकें।

उत्तर भारत से गंगाजल लाकर भगवान् रामेश्वर के ऊपर डालने पर अक्षय पुण्य की प्राप्ति होती है, ऐसा विश्वास प्रत्येक आस्तिक बुद्धिवाले भारतवासी का है। गोस्वामी श्रीतुलसीदासजी का भी यह कथन है कि—

"जो गंगाजल आनि चढ़ावहिं।
सो सायुज्य मुक्ति नर पावहिं।"

हम लोग भी सायुज्य मुक्ति प्राप्त करने के लिए यहाँ से गंगाजल एक काँच की शीशी में बंद करके ले गये थे। परन्तु वहाँ गंगाजल चढ़ाने का भी कर लगता है। और वह भी कुछ कम नहीं—प्रत्येक पात्र पीछे २)! हम अन्यायपूर्ण कर को चुकाकर तथा उस गंगाजल को एक ताम्रपात्र में भरकर पुजारीजी को दिया। एक बात यहाँ अच्छी है। वह यह कि पूजन विधिवत् कर देते हैं। बड़े आनन्द से आरती हुई और हम लोग प्रसन्नचित्त हो धर्मशाला लौट आये।

मन्दिर के भीतर की एक विशेषता है; वह यह कि यहाँ मन्दिर के भीतर २१ कुएँ हैं, जो २१ तीर्थ कहलाते हैं। आश्चर्यजनक बात यह है कि इन २१ कुओं का पानी मीठा है, खारा नहीं। यद्यपि समुद्र मन्दिर से १ फ़र्लांग से अधिक दूर पर नहीं है तथापि उसका प्रभाव लेश-मात्र भी इन कुओं के जल पर नहीं है। बस्ती के और सब स्थानों का जल कुछ-न-कुछ खारी अवश्य है, परन्तु मन्दिर के भीतरवाले कुओं का जल बड़ा ही स्वादिष्ट तथा मीठा है।

श्रीरामेश्वरजी के मन्दिर के अतिरिक्त वहाँ श्रीराम, सीता, तथा लक्ष्मण के नाम से तीन सरोवर भी हैं, जिनमें स्नान करने का माहात्म्य है।

रामेश्वरजी का यह शिवलिंग द्वादश ज्योतिर्लिंगों में से है और इसका माहात्म्य अत्यधिक है। इस मूर्ति की संस्थापना के विषय में जो पौराणिक कथा प्रचलित है, वह इस प्रकार है:—

महाबाहु लंकेश्वर रावण को युद्ध में मारकर जब सीताजी के साथ भगवान् रामचंद्रजी भारतवर्ष की ओर लौटे, तो सेतु पार करके उन्होंने वहाँ डेरा डाला और ब्रह्महत्यानिवारणार्थ वहाँ पर इस शिवलिंग की संस्थापना करने का विचार किया। ऋषियों ने इसका अनुमोदन किया। महाराज रामचन्द्रजी ने यह इच्छा प्रकट की कि कैलास पर्वत पर से लाया गया शिवलिंग ही स्थापित किया जाय। अपने स्वामी की इच्छा जानकर वायु-वेग से कपीश्वर हनुमान्‌जी कैलास को गये। परन्तु वहाँ जाकर देखा तो देवमाया से उन्हें एक भी लिंग प्राप्त न हुआ। चित्त में क्षुब्ध होकर इन्होंने महादेवजी की तपस्या करना प्रारम्भ कर दिया। अन्त में भगवान् शंकर ने प्रसन्न होकर इनको अपने हाथ से दो शिवलिंग दिये। परन्तु इधर हनुमान् को लौटने में विलम्ब होता देखकर और मुहूर्त का समय टला जाता देखकर, ऋषियों द्वारा यह समझाये जाने पर कि विनोद में बनाये हुए सीताजी के हाथों के बालुकापिंड की संस्थापना कर देनी चाहिये, भगवान् श्रीरामचन्द्रजी ने वही बालुकापिंड मन्त्र से अभिसिंचित करके स्थापित कर दिये।

इधर भगवान् शंकर को प्रसन्न करके उनके स्वहस्त से प्राप्त दो शिवलिंग लिये हुए हनुमान्‌जी भी कैलास से उड़े हुए आ पहुँचे। यहाँ आकर जब उन्होंने यह देखा कि रामनाथ महादेव की स्थापना तो हो गई और उनका सब परिश्रम व्यर्थ हुआ, तो वे बड़े दुःखित तथा क्षुब्ध हुए। उन्हें इस बात से और भी अधिक क्रोध आया कि उनके परिश्रम की उपेक्षा करके उनका अपमान किया गया। अन्त को वे अपने को रोक न सके और उबल पड़े। श्रीरामचन्द्रजी को खूब खरी-खोटी सुनाई। अन्त में श्रीरामचन्द्रजी ने उनसे कहा कि, यदि ऐसा ही तुम्हें दुःख हुआ है, तो इस मूर्ति को उखाड़ कर फेंक दो और हम तुम्हारी लाई हुई मूर्ति की स्थापना कर देंगे। अज्ञान के मोह से उस समय हनुमान्‌जी की बुद्धि भ्रष्ट हो गई थी, सो उन्होंने दोनों हाथों से मूर्ति को उखाड़ना चाहा। परन्तु भला राम-जानकी के हाथों से स्थापित मूर्ति क्यों उखड़ने लगी। जब सब परिश्रम करके थक गये, तो लिंग में पूँछ लपेटकर वे आकाश की ओर उड़े। सारा ब्रह्माण्ड काँप गया और दशो दिशाएँ डोल गईं परन्तु मूर्ति ज्यों-की-त्यों बनी रही। पूँछ छूट जाने से हनुमान्‌जी दूर जाकर गिर पड़े और बेहोश हो गये। सर्वांग रक्ताक्त होगया और रुधिर बहने लगा। रामचन्द्रजी ने दौड़कर उन्हें उठाया और रो-रोकर उनका नाम लेकर विलाप करने लगे। रामचन्द्रजी के आँसुओं से हनुमान्‌जी का सारा शरीर भीग गया तब चैतन्यता प्राप्त हुई और रामचन्द्रजी के पैरों पड़कर अपने अज्ञान में किये गए व्यवहार के लिये क्षमा माँगी। रामचन्द्रजी ने प्रसन्नतापूर्वक छाती से लगाया और अभय-दान दिया।

इस कथानक से केवल हनुमान्‌जी के आचरण पर कुछ आक्षेप होता है अन्यथा और कोई विचारणीय निष्कर्ष नहीं निकलता। गोस्वामी तुलसीदासजी द्वारा चित्रित हनुमान्‌जी की जो मूर्ति हम लोगों के समक्ष नित्य-प्रति नृत्य किया करती है, उसके द्वारा ऐसे अविवेक का काम होना अस्वाभाविक ही नहीं असंभव प्रतीत होता है। इस पौराणिक कथा के आधारवाले हनुमान्‌जी साधारण प्रकृति के जीव की भाँति हैं, जिसको काम, क्रोध, मोह आदि सब प्रकार के भाव अपना लक्ष्य बना सकते हैं। सेवा का वह उच्च आदर्श यहाँ व्यवहृत होने में नितान्त असमर्थ रहा है। उसका निर्वाह यहाँ नहीं हो सका।

अस्तु, रामेश्वर का स्थान हम लोगों को बड़ा सुखद प्रतीत हुआ। अभी भारत के पश्चिम कोण की यात्रा बाक़ी थी और ग्रीष्मऋतु का आगम निकटतर होता जाता था, इसी कारण हम लोग यहाँ अधिक दिन वास न कर सके; केवल तीन रात्रि वास करके ही संतोष किया। यहाँ एक स्थान-विशेष है, जिसका नाम गन्धमादन पर्वत है, यह बड़ा रमणीक स्थान है और "बनरसियों के निपटने के लिये अच्छा स्थान है।" यहाँ की बस्ती बहुत छोटी है। यात्रियों का, एक तीर्थस्थान होने के कारण, आना-जाना बराबर रहता है; इसी कारण कुछ चहल-पहल रहती है। यहाँ के बनिये लोग भी हिन्दी समझ तथा बोल लेते हैं और सौदा भी ८०) के सेर के हिसाब से देते हैं। दूध यहाँ बहुत महँगा रहता है। जब हम लोग गये थे तब ।॥) सेर के हिसाब से बिकता था। भोजन की सामग्री प्रायः प्रत्येक तीर्थस्थान पर बहुत अच्छी मिलती है।

जैसा कि ऊपर कह आए हैं, केवल तीन दिन रहकर हम लोग चैत्र के नवरात्र की अष्टमी को रामेश्वर से मदूरा के लिये रवाना हुए। रामेश्वर से मदूरा पैसेंजर द्वारा

५ घंटे में पहुँचा जा सकता है, इस कारण उसी अष्टमी को संध्या समय ५ बजे मदूरा पहुँच गये। यहाँ मीनाक्षी देवी तथा सुन्दरेश्वर महादेव का मन्दिर है। इसी मन्दिर के भीतर १ सहस्र खंभोंवाला बड़ा सभा-मण्डप है। दक्षिण भारत का यह तीसरा सबसे बड़ा मन्दिर है।

इस मन्दिर के दक्षिण ओर का दरवाज़ा बहुत ऊँचा है। उसकी ऊँचाई २५० फ़ीट के लगभग है। स्टेशन के सामने ही आधे फ़र्लांग की दूरी पर डिस्ट्रिक्ट बोर्ड द्वारा संचालित कोठरियाँ हैं। इनका प्रबन्ध कुछ विशेष रूप का है। यहाँ पर पाँच भवन हैं। एक में इसी प्रान्त के अब्राह्मण, दूसरे में ब्राह्मण, तीसरा ब्राह्मण यात्री, चौथा अब्राह्मण यात्री, और पाँचवाँ मुसलमानों के लिये; इस नियम का पालन बड़ी कड़ाई से होता है। मदूरा नगर मदरास प्रान्त का दूसरा नगर समझा जाता है, और है भी यह इस लायक़। इसकी बड़ी विशेषताओं में से यह मन्दिर है, यहाँ पर भी हम लोगों ने दो दिन वास किया और आगे बढ़े।

रामेश्वर से चलते समय हम लोगों ने वहाँ से सीधे बम्बई तक का टिकट लिया था, और यात्रा १२०० मील के कुछ ऊपर होने के कारण मार्ग में १२ दिन बिताने का अवकाश हम लोगों को था। मदूरा से हम लोगों का विचार सीधे कांची अर्थात् कांजीवरम् जाने का था। अस्तु, हम लोग मदूरा से ग्यारह बजे दिन को गाड़ी पर सवार हुए। इसी मार्ग से होकर हम लोग पहली बार रामेश्वर गये थे, परन्तु रात्रि होने के कारण रेल के बाहर का दृश्य कुछ भी न देख सके थे। इस बार दिन का समय था, इस कारण अच्छी प्रकार से बाहर का हाल देख सकते थे। दस-दस, बारह-बारह मील तक लगातार केलों की खेती दिखाई पड़ती थी। केलों के साथ यहाँ की दूसरी उपज है, नारियल की। स्टेशनों पर भी केला और कच्चे नारियल की बहुतायत थी। सारा दिन और सारी रात रेल पर ही तय करके प्रातःकाल चार बजे चिंगलपट में हम लोग उतरे और कांची की ओर जानेवाली दूसरी गाड़ी में, जो वहीं स्टेशन पर तैयार खड़ी थी, जा बैठे। स्टेशन पर ही हम लोग शौच आदि से निवृत्त होगये, और सात बजे के लगभग प्रातःकाल कांची पहुँच गये।

कांची नगर के दो भाग हैं, एक विष्णुकांची तथा दूसरी शिवकांची। अँगरेज़ी में पहले को Little Kanchi और दूसरे को Big Kanchi कहते हैं। वास्तव में दूसरा हिस्सा बड़ा है भी, और पहला छोटा। जिस दिन हम लोग कांची पहुँचे, उस दिन एकादशी थी, इस कारण हम लोगों ने विष्णुकांची में ही ठहरना निश्चित किया। स्टेशन से यह स्थान ढाई मील के अन्तर पर है। यहाँ पर ठहरने का स्थान हम लोगों को पहले ही एक सज्जन ने बता दिया था। वह स्थान था, "महाप्रभुजी की बैठक।" महाप्रभु वल्लभाचार्यजी ने जहाँ-जहाँ जाकर भागवत का पाठ किया, वहाँ-वहाँ उनके नाम से, उस-उस स्थान पर, एक-एक आश्रम बना दिया गया है। कांची की यह बैठक श्रीविष्णुभगवान् के मन्दिर से लगभग आधा मील दूर वेगवती नाम की एक छोटी-सी नदी के तीर पर, नगर से बाहर एक बड़े सुन्दर स्थान पर बनी है। एक बड़े रमणीक तथा विशाल उपवन के बीच में एक बड़ी सुन्दर अट्टालिका बनी है। यहीं पर हम लोगों ने अपना डेरा डाला।

पण्डों की बहार यहाँ भी ख़ूब थी। स्टेशन पर ही इन लोगों का आक्रमण हुआ। परन्तु हम लोग तो बड़े-बड़े मैदान देखे हुए थे। रामेश्वर तथा पुरी की लड़ाइयों में जय प्राप्त किये हुए थे। इन लोगों को भला हम क्या समझते थे। हम लोगों का रथ (बैलगाड़ी) जय प्राप्त कर अपने शिविर की ओर चल पड़ा।

बैठक में सामान रख कर स्नान-पूजन से छुट्टी पाकर हम लोग मन्दिर गये। यहाँ पर वही ढंग थे जो श्रीजगन्नाथपुरी में थे। कहीं पुजारीगण कहते थे कि आरती करने के लिये १) दीजिए, तो दूसरी जगह पूजन करवाई एक अशर्फ़ी तलब की जाती थी। यहाँ के पुजारियों से निपटना कुछ हँसी-खेल नहीं है। तनिक मन्द पड़ा नहीं कि, इन्होंने उसकी गर्दन पकड़ी नहीं। दर्शन करके जब हम लोग लौटे, तो बारह बज चुके थे। लौट कर जल-पान किया और तीसरे पहर कुछ फलाहार। स्थान की रमणीयता के लालच से हम लोगों ने वहाँ तीन दिन ठहरना निश्चित किया।

दूसरे दिन प्रातःकाल एक गाड़ी किराए पर करके हम लोग शिवकांची गये। शिवकांची विष्णुकांची से लगभग पाँच मील के अन्तर पर है। कांजीवरम् नगर का यह भाग वास्तव में बहुत घना बसा है, और यहाँ का बाज़ार

आदि भी बड़ा है। यहाँ पर एक बड़ी अच्छी धर्मशाला भी है। शिवजी के दर्शन के पूर्व सर्वतीर्थ नामक सरोवर में हम लोग मार्जन करने गये। क्षेत्र-ब्राह्मण ने संकल्प कहा। बहुत शुद्ध उच्चारण था और श्रावणी-कर्म करने के समय जब गणस्नान के लिये नदी या सरोवर में मन्त्रों द्वारा जो जल अभिसिचन होता है, उस समय जो जो मन्त्र कहे जाते हैं, उन्हीं का समावेश उस संकल्प में था। शिवकांची के मुख्य दर्शनीय देवता तीन हैं। एकाम्बरेश्वर महादेव, कामाक्षी देवी तथा वामनावतार। तीनों ही स्थानों के दर्शन हम लोगों ने किये और दस बजते बजते फिर अपने स्थान पर लौट आये।

तीन दिन श्रीकांचीक्षेत्र में रह कर अन्त में वहाँ से बिदा हुए। इच्छा तो यही होती थी कि यदि आगे की यात्रा बाक़ी न होती और यहीं से घर लौटना होता, तो कम-से-कम एक मास और यहाँ रहते।

दिन को ग्यारह बजे गाड़ी पर बैठे और डेढ़ घंटे में आरकोनम् जंक्शन पहुँच गये। यहाँ से ढाई बजे दूसरी गाड़ी में बैठे और पौने चार बजे रेनीगुन्टा स्टेशन पर पहुँचे। आरकोनम् तक तो हम लोग एस० आई० आर० से हो आये। यहाँ से फिर एम० एस० एम० आ० की दूसरी लाइन पर बैठे। यह लाइन रायचूर तक गई है। यदि बालाजी के दर्शनों के लिये हम लोगों को त्रिपुटी जाना पड़ता, तो हम लोग रेनीगुन्टा स्टेशन पर न रुकते और सीधे उसी गाड़ी में बैठे हुए रायचूर पहुँचते। परन्तु हम लोगों को तो बीच में बालाजी के दर्शन भी करने थे, इसलिए यहाँ रुकना आवश्यक था।

रेनीगुन्टा से त्रिपुटी केवल १०-१२ मील की दूरी पर है; ४॥ बजे दूसरी गाड़ी आई और उस पर बैठकर आध घंटे में त्रिपुटी पहुँच गये। यहाँ पर कई धर्मशालाएँ हैं, और स्टेशन के पास ही हैं। परन्तु हम लोगों को स्टेशन पर किराए की गाड़ी मिलने में कुछ विलम्ब होगया इसलिए अधिक परिश्रम करके अच्छी धर्मशाला न ढूँढ़ सके। गाड़ीवाला जिस धर्मशाला में ले गया उसी में उतर पड़े। वह धर्मशाला "हाथीरामवाली धर्मशाला" के नाम से प्रसिद्ध है। यात्रा भर में जितनी धर्मशालाएँ मिलीं, उन सबमें यह सबसे गन्दी और सबसे ख़राब थी। लाचार थे—सन्ध्या होगई थी और दूसरा स्थान देखने का अवकाश न था। दक्षिण प्रान्त में बालाजी का माहात्म्य बहुत है। बारहों मास यात्री आया करते हैं। बालाजी का स्थान एक पहाड़ी पर है जो पहाड़ी मार्ग का चढ़ाव-उतार मिलाकर सात मील पड़ता है। रात्रि भर वहाँ (धर्मशाला में) वास करके प्रातःकाल पहाड़ी पर जाने का विचार स्थिर हुआ। बालाजी की पहाड़ी पर जाने के लिये सैकड़ों डोलीवाले तैयार रहते हैं। स्टेशन से उतरते देर नहीं कि डोलीवाले यात्री को घेर लेते हैं। धर्मशाला तक आना कठिन हो जाता है। परन्तु ये लोग मोल-तोल बहुत ज्यादा करते हैं। आने-जाने के लिये इन्होंने पहले-पहल मोल किया २५) और अन्त में तय किया ५) पर। पहाड़ी पर पैदल जानेवालों की संख्या अधिक रहती है, और वहाँ से लौटकर आने पर शरीर की थकावट मिटाने के लिए बीसों पैर दबानेवाले धर्मशालाओं में घूमते हुए मिलते हैं। त्रिपुटी में दूध सस्ता था। अपने ८०) वाले सेर भर दूध का मूल्य ।) था।

हम लोग भी ऊपर दर्शन करने गये। बहुधा जो लोग ऊपर जाते हैं, वे दो एक दिन ऊपर ही रहते हैं, परन्तु हम लोगों को शीघ्रता थी, कारण टिकट की अवधि समाप्ति पर पहुँच रही थी। अस्तु, हम लोग उसी सन्ध्या को लौट आये। हाँ, एक बात लिखना भूल ही गये थे। त्रिपुटी से बालाजी जाते समय अपना सारा असबाब त्रिपुटी की ही धर्मशाला में छोड़ जाना पड़ता है। यदि कुछ विशेष आवश्यक सामान हो, तो १,—१॥, में एक मज़दूर और करना पड़ता है। हम लोग तो अपना सामान एक कोठरी में बन्द कर गये थे और अपना ताला लगा गये थे। इस प्रकार रखा गया सामान यदि धर्मशाला के निरीक्षक को तका दिया जाय तो चोरी नहीं जाता। प्रायः लोग ऐसा ही करते हैं।

बालाजी से लौटने के दूसरे ही दिन बाद हम लोग प्रातःकाल ८ बजे की गाड़ी से त्रिपुटी से रेनीगुंटा आये। यहाँ पर पास से कुछ निकाल कर आहार किया और १०॥ बजे बंबई के लिये गाड़ी पर सवार हुए। यह फ़ास्ट पैसिंजर ट्रेन सीधी बम्बई तक चली जाती है। जैसा ऊपर कहा जा चुका है, एम० एस० एम० आर० मदरास से आरकोनम् होती हुई रायचूर तक जाती है, और रायचूर से आगे जी० आई० पी० आर० की लाइन है, जो बम्बई तक जाती है। परन्तु एक तो मदरास मेल और दूसरी यही फ़ास्ट पैसेंजर थ्रू रन करती हैं।

जैसे-जैसे मदरास नगर दूर होता आता था, वैसे-ही-वैसे 'बड़े, मुरक्की, सन्दल, उपमा, इंटली, काफ़ी' का रोग भी शान्त होता आता था। दूसरे दिन प्रातःकाल ६ बजे हमारी गाड़ी होतगी जंक्शन पर पहुँची। यदि हम लोग इसी गाड़ी पर बैठे रहते, तो रात्रि को १॥ बजे बम्बई पहुँच जाते, परन्तु एक-तो २४ घंटे का सफ़र करके योंही थक गये थे; फिर बिना स्नान भोजन किये लगातार १२ घंटे का और सफ़र करना बड़ा ही कष्टकर होता। दूसरे बम्बई ऐसे बड़े तथा नये शहर में रात्रि को ६॥, १० बजे कहाँ भटकते फिरते। यही सब विचार कर होतगी जंक्शन पर ही रुकना ठीक समझा। स्टेशन मास्टर से यह पूछने पर कि यहाँ कोई ऐसा स्थान है, जहाँ दिन को रुककर स्नान-ध्यान हो सकता है, उन्होंने पास वाला हनुमान्‌जी का एक मंदिर बता दिया। इस स्थान पर टीन से छाई हुई एक मड़ैया थी, जिसमें एक ओर हनुमान्‌जी की मूर्ति स्थापित थी। पुरी से लौटते समय जो कष्ट खुरदा रोड स्टेशन पर मिला था, वैसा ही कष्ट था। गर्मी कुछ अधिक बढ़ जाने के कारण उससे कुछ अधिक कष्ट हम लोगों को यहाँ उठाना पड़ा। न देस न दिहात, न वहाँ कोई बस्ती। खाने की कच्ची चीज़ें अर्थात् आटा दाल तक यहाँ नहीं मिलता था। तिस पर प्रचंड आतप का ताप; बस, हम लोगों के सब करम वहाँ हो गये!

संध्या समय ८ बजे की गाड़ी से बम्बई की ओर चले। रात्रि को गाड़ी में भीड़ अधिक न होने से हम लोग सुखपूर्वक सोते हुए आगे चले। दूसरे दिन प्रातः पाँच बजे गाड़ी पूना स्टेशन पहुँची। हिंदू जाति की कीर्ति को उज्ज्वल करनेवाले, गो-ब्राह्मण-प्रतिपालक, वीर-श्रेष्ठ छत्रपति महाराज शिवाजी द्वारा स्थापित महाराष्ट्र-साम्राज्य के कर्णधार पेशवाओं की राजधानी तथा आज-कल भी बम्बई सरकार की ६ महीना तक राजधानी रहने-वाली प्रसिद्ध पूना नगरी के देखने का लोभ हम लोग संवरण न कर सके। एक दिन का अवकाश टिकट में था ही, उतर पड़े। स्टेशन के सामने ही एक बड़ी सुन्दर भाटिया की धर्मशाला है—इसका नाम "पूना सेनिटेरिम" है। कुली के सर पर असबाब रखवाकर हम लोग वहाँ गये। पहले तो नौकर ने ऐरा-गैरा समझ कर स्थान देने से इनकार किया, परन्तु जब हम मालिक के पास गये, तो ५) डिपाज़िट देने पर एक कमरा मिला। वहीं सामान आदि रखकर नित्य-कर्म से छुट्टी पाई। दिन के समय पूना नगर देखने को गये। बुधवार-पेठ वहाँ का बड़ा बाज़ार है, जिसमें सब प्रकार की वस्तुएँ मिलती हैं। बाज़ार देखकर हम फ़र्गुसन कालेज देखने गये। यह विद्यालय भी अपने ढंग का अद्वितीय है। निःस्वार्थ सेवकों की सेवा का यह ज्वलंत उदाहरण है। काशी हिन्दू-विश्वविद्यालय का एक छात्र होने के कारण अपने समान स्थितिवाले विद्यालय को देखकर अपार आनन्द प्राप्त हुआ। बम्बई प्रान्त की डैकन एजुकेशनल सोसाइटी के प्रयत्न का ही यह फल है। महात्मा गोखले तथा डा० परांजपे ऐसे उदारमना लोगों की सेवाओं से ही यह विद्यालय इस अवस्था को पहुँच सका है। शहर की भीड़भाड़ से दूर एक पहाड़ी के किनारे यह विद्यालय यथार्थ में तपोभूमि-सा ज्ञात होता है, और विद्यार्जन तथा विद्यादान के उपयुक्त स्थान प्रतीत होता है।

फ़र्गुसन कालेज के बाद 'सर्वेन्ट आव् इन्डिया सोसाइटी' देखने गये। यह संस्था एकमात्र स्वर्गवासी गोखले की चलाई हुई है। भारतीय शिक्षित-समुदाय इस संस्था से अपरिचित नहीं है। जितनी-ही प्रशंसा इस संस्था की की जाय, अधिक नहीं है। जिस समय हम वहाँ गये थे समिति के एक सदस्य वहीं पर थे। आपने कृपा करके एक नौकर साथ कर दिया, जिसने संस्था की लाइब्रेरी, भवन आदि प्रत्येक चीज़ दिखलाई। उनको धन्यवाद देकर सन्ध्या समय धर्म-शाला में लौट आये। भोजन आदि से निवृत्त होने पर सामान बाँधा गया और स्टेशन पर चले आये। रात्रि को १॥ बजे की गाड़ी से बम्बई के लिये रवाना हुए।

मार्ग में अत्यधिक भीड़ थी। सीधे बैठना कठिन था। पूने से बम्बई के लिये २४ घंटे में १० गाड़ियाँ छूटती हैं, और प्रायः सबमें ऐसी ही भीड़ रहती है। रात्रि को गाड़ी में पेशाब मालूम पड़ा, परन्तु संडास तक जाने का मार्ग नहीं था। लाचार खिड़की से ही बैठे बैठे अपनी लघुशंका का समाधान किया। सवेरे ४॥ बजे बम्बई के विक्टोरिया टर्मिनस स्टेशन पर गाड़ी लगी और हम लोगों को भी उतरना पड़ा। ।।।) की एक विक्टोरिया फ़िटन किराये पर करके हीराबाग़ की धर्मशाला में आकर ठहरे। महल्ले का नाम है 'माधव-

बाग' और ट्रैम के स्टेशन का नाम है 'सी० पी० टैंक।' इस स्थान पर दो और धर्मशालाएँ हैं, एक तो माधव बाग की धर्मशाला के नाम से ही प्रख्यात है, और दूसरी सखाराम की धर्मशाला। पूना की तरह यहाँ भी धर्मशालाओं में डिपाज़िट वाली प्रथा है। हम लोगों को भी रुपया जमा करा देने पर एक कोठरी मिल गई। अब भी आपको कितने ऐसे मनुष्य मिलेंगे जो अपने ग्राम्य-गृह को छोड़कर कभी बाहर नहीं गये। उनके लिए वही संसार है। हम लोग यद्यपि उस श्रेणी से कहीं ऊँचे थे, तथापि बम्बई कभी देखा नहीं था और इस कारण पुस्तकों द्वारा प्राप्त ज्ञान पर ही संतोष किये बैठे थे। आज वास्तव में बम्बई देखने को मिली। कलकत्ता कई बार हो आये थे, परन्तु बम्बई उससे कहीं भिन्न है। उत्तर भारतवासी के लिए कलकत्ता कोई विचित्र वस्तु नहीं है। जिस प्रकार एक बालक को देखकर मनुष्य उसके पिता का अनुमान कर सकता है, उसी भाँति उत्तर भारत के किसी नगर को देखकर कलकत्ते का आभास मिल सकता है। परन्तु बम्बई वास्तव में एक अजायबघर है। भिन्न-भिन्न प्रान्तवाले, भिन्न-भिन्न भाषावाले तथा भिन्न-भिन्न आचार-विचारवाले मनुष्यों के इतने बड़े समुदाय को आप भारतवर्ष-भर में कहीं अन्य एक स्थान पर नहीं देख सकते। जो स्थान धन तथा विद्या, धर्म तथा पाप, व्यापार तथा जुआचोरी आदि परस्पर विरोधी गुणों का केन्द्र हो; जहाँ चंचला भी अचला होकर रहती हो; जहाँ की टक्कर लेने के लिए कोई भी दूसरा स्थान सामने न लाया जा सके; उसका वर्णन हम दो शब्दों में कैसे कर सकते हैं? औचक-से चार दिन तक बम्बई घूमते रहे, परन्तु तृप्ति तब भी न हुई। सन्ध्या समय एक दिन तो चौपाटी गये और दूसरे दिन अपोलो बन्दर। दोनों ही स्थानों पर नित्यप्रति सन्ध्या समय बड़ी भीड़ होती है। समुद्र का किनारा होने से बड़ी दूर से शुद्ध वायु आती है। बम्बई की विशेषताओं में हैं यहाँ की ट्रैम गाड़ियाँ। भारतवर्ष भर में इतनी सस्ती ट्रैम अन्य कहीं नहीं है। यहाँ पर ट्रैम का एक ही टिकट है, वह -) का है, एक टिकट और है, वह -)॥ का है। चार पैसे में सबसे बड़ा सफ़र आप १० मील का कर सकते हैं। यह सुगमता और कहीं नहीं है।

बम्बई का संक्षिप्त वर्णन भी यहाँ पर अधिक हो जायगा, उस पर स्वतंत्र लेख लिखा जा सकता है। अस्तु, इसका वर्णन यहीं समाप्त कर देते हैं।

बम्बई से द्वारिका जाने के दो मार्ग हैं, एक जल से और दूसरा रेल से। यद्यपि नये उत्साह के कारण मैं व्यक्तिगत रूप से सदा जलमार्ग से जाने के पक्ष में रहा, परन्तु चाचाजी ने अपने प्रौढ़ विचार से रेल पर से ही जाना निश्चित किया। उनके ऐसे विचार का कारण भी था। यद्यपि बम्बई से प्रत्येक सोमवार को छूटनेवाला Vita जहाज़ १३५० टन का है, और उसके हिलने-डुलने अथवा तज्जनित वमन आदि व्याधि की कोई सम्भावना नहीं है, परन्तु द्वारिका में ख़ास बन्दरगाह न होने के कारण समुद्र में ज़मीन से एक डेढ़ मील की दूरी पर से ही यह बड़ा जहाज़ यात्रियों को छोटी-छोटी नावों पर उतार देता है, और उन्हीं नावों द्वारा यात्रीगण किनारे लाये जाते हैं। यही समय आशंकाजनक होता है। एक तो ऊँचे जहाज़ पर से नीची नाव पर उतरना निरापद नहीं है, और उससे भी जोखिम तो उस भयंकर समुद्र में १॥ मील तक उन नावों पर रहना है। वृद्ध तथा रोगी माता-पिता को लेकर, मैं कैसे अपने क्षणिक आवेश से अन्ध हो समुद्रयात्रा करना चाहता था, यह बात जभी स्मरण आ जाती है, तो अपनी स्वार्थान्धता से आँखें लज्जित हो जाती हैं। धन्य है वह परमात्मा, जिसने मेरे इस विचार को कार्यरूप में परिणत न होने दिया, और कलंक से बचा लिया।

आधुनिक काल के सबसे बड़े तीर्थ स्थान—बम्बई में भी त्रिरात्रि वास करके कोलाबा स्टेशन से काठियावाड़ मेल द्वारा हम लोगों ने ६ बजे श्रीकृष्ण भगवान् की द्वारिकापुरी के लिये प्रस्थान किया।

रात्रि भर तो आनन्द से सोते हुए गये। सूरत तथा बड़ौदा स्टेशन कब आये, हम लोग नहीं जानते। डाकगाड़ी होने से वायुवेग से गाड़ी जा रही थी और बड़े बड़े स्टेशनों पर ही रुकती थी। प्रातःकाल ८ बजे गाड़ी अहमदाबाद स्टेशन पर लगी। इतना बड़ा कारबार का स्थान इस प्रान्त में और कोई नहीं है। केवल ८४ बड़ी बड़ी मिलें तो कपड़े की ही यहाँ चलती हैं। इस स्टेशन पर ही हम लोगों ने स्नान कर लिया और खड़े खड़े गायत्री मन्त्र का जप भी। यहाँ पर गाड़ी प्रायः

है पैदा सकती है, इस कारण कोई कष्ट हम लोगों को नहीं हुआ। गाड़ी आगे बढ़ी, महात्माजी का साबरमती आश्रम दृष्टिगोचर हुआ। अहमदाबाद से छूटी हुई हमारी गाड़ी सीधे वीरमगाँव तक चली गई, और बीच में कहीं रुकी नहीं। बी० बी० सी० आई० की यह सर्विस यहीं तक आती है। यहाँ पर हम लोगों को गाड़ी बदलनी थी। स्नान आदि से निवृत्त हो ही गये थे, अस्तु बम्बई से साथ में लाये हुए पेड़ों का जलपान किया। हम लोगों ने बम्बई से चलते हुए यह विचार किया था कि कदाचित् काठियावाड़ की मरुभूमि में कुछ अच्छा खाद्य-पदार्थ न प्राप्त हो सके, तो ऐसी अवस्था के लिये अपने पास सामान रखना आवश्यक है, और यही विचार कर सेर भर पेड़ा साथ में बाँध लिया था। परन्तु इधर यह देखकर आश्चर्य हुआ कि वीरमगाँव से द्वारिका, अर्थात् तीन-सौ मील तक प्राय: प्रत्येक स्टेशन पर बहुत ही अच्छा पेड़ा मिल सकता है। अस्तु, बाबू देवकीनन्दन खत्री के अय्यारों की भाँति हमने भी कुछ पेड़े तथा कुछ मेवे खाकर गाड़ी मे ही विश्राम किया। गुजरात प्रान्त तो बीत ही चुका था, इस समय हमारी गाड़ी काठियावाड़ के मैदानों से जा रही थी। वाधवान तथा राजकोट जंक्शन पारकर रात्रि को ६॥ बजे हमारी गाड़ी जामनगर पहुँची। यहाँ कुली तथा गाड़ीवालों ने कष्ट देना चाहा, परन्तु स्टेशन मास्टर की डाँट ने इनको सीधा कर दिया। स्टेशन के पास ही एक भाटिया की धर्मशाला है। प्रबन्ध तथा रहने का स्थान बड़ा सुन्दर है। दिनभर की गर्मी से व्याकुल होने के कारण रात्रि को ही स्नान किया। चाचाजी तो आप वातरोग से पीड़ित रहते ही हैं। उनको इस व्यतिक्रम से बड़ा कष्ट मिला। दूसरे दिन उठना बैठना कठिन होगया। परन्तु हिम्मत करके दूसरे दिन मध्याह्न को आगे चलना निश्चित हुआ। हम लोग जामनगर में स्वत: नहीं उतरना चाहते थे। हम लोग लाचार थे। जामनगर से द्वारिका को जानेवाली केवल एक गाड़ी है, और वह दोपहर को १ बजे यहाँ से छूटती है और पाँच बजे द्वारिका पहुँच जाती है। स्टेशन पर पता लगाने से, कि क्या कारण है कि द्वारिका को केवल एक ही गाड़ी और वह भी दोपहर के समय जाती है, तो यह ज्ञात हुआ कि इस ओर कोई बड़ी बस्ती नहीं है, ऊसर मैदान ही मैदान है। ऐसी अवस्था में यात्री भी कम रहते हैं। फिर गाँववालों को दिन की-ही यात्रा अधिक सुविधाजनक प्रतीत होती है, रात्रि को गाड़ी के लुट जाने का भय रहता है। इन्हीं कारणों से हम लोगों को १८ घंटे यहाँ पड़े रहना पड़ा।

जिस दिन दोपहर को हम लोग द्वारिका जानेवाले थे, उस दिन जामनगर राज्य में कई छोटे-मोटे राजा-राव आनेवाले थे, सो बड़ी तयारियाँ हो रही थीं। देशी राज्यों में नरपति का बड़ा सम्मान होता है। स्वागत का यह दृश्य देखकर चित्त को बड़ी प्रसन्नता हुई। प्रातः-काल धर्मशाला में भोजन आदि बना खा-पी कर हम लोग दोपहरवाली गाड़ी से चलने के लिये तैयार हो गये।

सन्ध्या को पाँच बजे हम लोग द्वारिका पहुँचे। यहाँ भी पंडों की भरमार थी। परन्तु यहाँ की यजमानी में विभिन्नता थी। यहाँ की यजमानी स्थान आदि पर नहीं बटी है, वरन् जाति पर। अस्तु, ये लोग यात्रियों की जाति का ही पता लगाते हैं। हम लोगों का भी पीछा किया। हमने कह दिया "जाति पाँति पूँछै नहि कोई। हरि का भजै सो हरि का होई।" परन्तु, भला वे क्यों ऐसे सस्ते छोड़ने लगे। पीछे लग ही गये। "देवोभुवन" नामक धर्मशाला में डेरा डाला और पंडाजी के साथ उसी समय दर्शन करने के लिये चल पड़े। झाँकी हुई। ६ बजे तक धर्मशाला फिर लौट आये।

यहाँ की भाषा साधारण गुजराती नहीं है, काठिया-वाड़ी-मिश्रित है। हिन्दू तथा मुसलमान सब एक ही भाषा बोलते हैं। वीरमगाँव से चलने के बाद लगातार यही भाषा सुनने मे आई। इसका समझना शुद्ध गुजराती से कुछ कठिन है। जिस समय हम लोग मदरास प्रांत मे घूम रहे थे, तो हम लोगों ने वहाँ की एक विशे-षता पर ध्यान दिया था। वह यह थी कि, वहाँ प्रायः प्रत्येक घर के सामने स्त्रियाँ गोबर से भूमि लीपती हैं और उस पर आटे से मङ्गल-चिह्न अंकित करती हैं। इस प्रथा से घर की शोभा बहुत बढ़ जाती है और सफ़ाई भी घर के सामने यथेष्ट रहती है। काठियावाड़ प्रांत में भी हम लोगों ने इस प्रथा का अनुकरण किया जाना देखा। यहाँ की स्त्रियों में परदा की चाल नहीं है। ये बड़ी परिश्रमी होती हैं तथा सफ़ाई पसन्द भी।

द्वारिका नगरी में बसनेवालों की संख्या लगभग

४ हज़ार के हैं जिनमें दो हज़ार व्यक्तियों की आजीविका पंसई के व्यापार से होती है। यह नगर बिलकुल समुद्र के तीर पर बसा हुआ है। यहाँ से १८ मील की दूरी पर ओकापोर्ट नाम का एक बन्दरगाह है, जिसमें बड़े-बड़े जहाज़ आ सकते हैं। जहाज़ से आनेवाले यात्रियों को चाहिए कि वे बम्बई से ओकापोर्ट तक जहाज़ से आया करें और ओका से द्वारिका तक रेल पर। इससे उन लोगों को बड़ी सुविधा हो जायगी। द्वारिका तक रेल का आयोजन अभी १॥ वर्ष से हुआ है। यहाँ पर एक स्कूल तथा एक वाचनालय है, जिससे लोगों का कुछ शिक्षात्मक मनोरंजन हो सकता है।

यहाँ पर मंदिर तथा तत्सम्बंधी अन्य तीर्थों की व्यवस्था प्रशंसनीय नहीं है। लोगों का यह विश्वास है कि द्वारिका से ५ मील दूर पर गोमती नाम-की नदी का उद्गम स्थान है। इस नदी का जिस स्थान पर समुद्र से संगम होता है, वह एक पुण्यक्षेत्र माना जाता है, तथा यहां पर स्नान करना यात्रियों के लिये मङ्गलदायक समझा जाता है। मन्दिर तथा अन्य तीर्थक्षेत्र बड़ौदा के महाराज गायकवाड़ के अधीन होने से उनके प्रबन्ध मे हैं। महाराज की ओर से इस तीर्थ मे स्नान करने के हेतु, दण्ड कहिये अथवा कर-स्वरूप १) देना पड़ता है, जो वास्तव में एक हिन्दू-राज्य के लिये विशेष निन्दात्मक बात है। उसी प्रकार द्वारिकाधीश की मूर्ति स्पर्श करने के लिये भी ॥) की फ़ीस है और रणछोड़जी का मूर्ति के लिये ।) । इन अन्यायमूलक करों का समर्थन किस प्रकार किया जा सकता है, यह बात समझ में नहीं आती। देवस्थानों पर किया गया यह अत्याचार सर्वथा निन्दनीय है। जिस प्रकार जगन्नाथपुरी में १) फ़ीस देने से भगवान् का स्नान आदि देख सकते है, २) फ़ीस देकर रामेश्वर में श्रीशिवलिंग का गंगाजल से स्नान करवा सकते हैं, उसी प्रकार द्वारिकाक्षेत्र में १।॥) फ़ीस देकर देवदर्शन तथा स्नान कर सकते हैं। इन करों में कुछ राज्य द्वारा प्रचलित हैं, कुछ तीर्थ-सुधारक समितियों द्वारा तथा कुछ पुजारियों की उच्छृङ्खलता द्वारा चलाये गये हैं। यद्यपि ये कर भिन्न-भिन्न लोगों द्वारा चलाये गये हैं, तथापि इनका नतीजा एक है, और वह है यात्रियों को कष्ट देना।

द्वारिकापुरी में समुद्र की लहरों के देखने का बड़ा आनन्द है। जिस प्रकार बङ्गाल की खाड़ी को तीर्थगुरु लोग महोदधि के नाम से पुकारते हैं, उसी प्रकार अरब सागर को रत्नाकर का नाम प्राप्त हुआ है। इन दोनों का विलक्षण संगम रामेश्वर में होता है। महोदधि को क्षत्रिय तथा रत्नाकर को ब्राह्मण माना गया है। कारण यह कि रामेश्वर के पास बहुधा महोदधि की अपेक्षा रत्नाकर में कम उग्र लहरें आती हैं। रत्नाकर की जो कुछ भी अवस्था रामेश्वर में हो, द्वारिका के पास तो इसमें बड़ी भीषण लहरें उठती हैं। किनारे पर चट्टानें होने के कारण लहरों का तोड़ भी बड़ा भीषण होता है। हमने तो यहाँ पर भी समुद्रस्नान किया, और बड़ी देर तक किया। गोमती नदी, जो यहाँ की पवित्र नदी मानी जाती है, हम लोगों की समझ में तो पंडों की विडंबना-मात्र भासित हुई। वह समुद्र की एक क्रीक (स्थल के अन्दर समुद्र की धार)-मात्र जान पड़ती थी।

द्वारिका में एक बहुत बड़ा कष्ट है, और वह है मीठे पानी का अभाव। जो जल यहाँ मीठे पानी के नाम से चार पैसे घड़े के हिसाब से मिलता है, वह भी इतना अधिक खारी होता है कि भोजन करने के बाद उसको पीने से वमन हो जाने का भय रहता है। स्नान करने के बाद देह सदा चटपटाया करती है और पसीना निकलने पर तो फिर क्या पूछना है, स्वर्गसुख का अनुभव होने लगता है। पानी का कष्ट यहाँ बड़ा कठिन है।

त्रिरात्रि वास करके एकादशी के दिन हम लोग लौटे। प्रातःकाल ही स्नान-पूजन से निपट कर देवदर्शन को गये और वहाँ से लौटकर कुछ जलपान करके ६ बजे वाली गाड़ी से उज्जैन के लिये रवाना हुए।

संध्या समय ६ बजे हम लोगों की गाड़ी राजकोट पहुँची। यहाँ दूसरी गाड़ी बदलनी पड़ी। अब जिस गाड़ी में हम लोग बैठे, उसमें बिस्तर बिछा लिये और सोने का प्रबंध कर लिया। प्रातःकाल ४ बजे यह गाड़ी वीरमगाँव पहुँची और यहाँ से फिर मेन लाइन द्वारा आनन्द स्टेशन तक जाने के लिये हम लोगों ने बड़ी लाइन वाली गाड़ी में सामान बदलकर रखा। हमारी गाड़ी आनन्द स्टेशन १० बजे पहुँची और गोधरा की ओर जानेवाली गाड़ी तुरन्त तैयार मिली। उसी पर बैठ

गये और आनन्द से दो स्टेशन बाद डाकोर स्टेशन पर उतर पड़े।

डाकोर एक बड़ा प्रसिद्ध तीर्थस्थान है, और लाखों यात्री प्रतिवर्ष यहाँ श्रीडाकोरनाथजी के दर्शनों के निमित्त आया करते हैं। कथा है कि श्रीद्वारिकापुरी से दस कोस दूर पर जो 'बेट द्वारिका' के नाम से प्रसिद्ध स्थान है, वही कृष्णजी की मुख्य द्वारावती थी। वहाँ पर एक सेठ, जिसका मुख्य स्थान डाकोर में था, नित्यप्रति जाया करता था और देवाराधन में समय व्यतीत किया करता था। एक बार वह कुछ अस्वस्थ हुआ और दर्शन के लिये न जा सका। उसको रात्रि में भगवान् ने स्वप्न दिया कि तुम वहाँ से मूर्ति उठा लाओ और अपने स्थान डाकोरजी में ले जाकर प्रतिष्ठित कर दो। वह उसी आज्ञा के अनुसार उस मूर्ति को वहाँ से चुराकर उठा लाया और डाकोरक्षेत्र में जाकर स्थापित कर दिया। जब पंडों ने हाहाकार मचाया तब उनको दैवीशक्ति से दो मूर्तियाँ प्राप्त हुईं। एक बेट द्वारिका में स्थापित की गई और दूसरी मुख्य द्वारिकापुरी में। अस्तु; इस कथा के अनुसार मुख्य तथा प्राचीन मूर्ति श्रीडाकोरनाथजी की ही है, और इसी कारण इसका माहात्म्य बहुत अधिक है। हम लोगों को पहले तो यह सब कथा कुछ ज्ञात न थी, परन्तु मार्ग में ही यह बात छिड़ी और वहीं यह विचार स्थिर हुआ कि डाकोरजी के भी दर्शन कर लेना चाहिए, क्योंकि वे मार्ग में ही पड़ते हैं। दिन के ११ बजे होंगे, जिस समय हम लोग श्रीडाकोरनाथजी के दर्शन करने मन्दिर में पहुँचे। मूर्ति बड़ी ही भव्य बनी है और वास्तव में द्वारिकाधीश की मूर्ति से कहीं सुन्दर है। मन्दिर भी बड़ा ही सुन्दर बना है तथा पौराणिक आख्यानों के चित्रों से मन्दिर की शोभा और भी अधिक बढ़ गई है। ये चित्र दीवारों पर रंग द्वारा हाथ से बनाए हुए हैं। चित्रकारी अद्भुत है। यहाँ की धर्मशाला भी अच्छी ही है। यहाँ कोई बहुत बड़ा नगर नहीं बसा है। बस्ती छोटी ही है, परन्तु अच्छी है। बाज़ार है, जिसमें साधारणतया उपयोग में आनेवाली प्रत्येक सामग्री मिलती है। यद्यपि हम लोगों की अर्थात् शैवी एकादशी पहले दिन मानी गई थी, परन्तु वैष्णवों की एकादशी आज ही थी; अस्तु, बाज़ार में सिंघाड़े का आटा आदि भी मिल सकता था। रात्रि को ६ बजे की गाड़ी से ही हम लोग आगे बढ़े। गोधरा तथा रतलाम में गाड़ी बदलते हुए और बी० बी० सी० आई० आर० को छोड़कर जी० आई० पी० आर० की शरण लेते हुए हम लोग दूसरे ही दिन प्रातःकाल उज्जैन जा पहुँचे।

स्टेशन के पास ही ग्वालियर के भूतपूर्व महाराज माधवरावजी की बहन सखाराजा की बनवाई हुई धर्मशाला है। यात्रा भर में हम लोगों ने ऐसा विशाल तथा सुन्दर भवन धर्मशाला के उपयोग में आते नहीं देखा था। बाहर से देखने से यही ज्ञात होता था मानो यह किसी नृपति का राजप्रासाद है। बनावट ही ऐसी थी। धर्मशाला की विशेषता एक और थी। सारे नगर में तो पानी पम्प द्वारा १२ घंटे रहता था, परन्तु यहाँ के लिये विशेष प्रबंध था, जिसके अनुसार यहाँ चौबीसों घंटे जल मिल सकता था। धर्मशाला में ठहरनेवाले यात्रियों के दो विभाग थे। एक में तो प्रतिष्ठित सज्जन स्थान पाते थे, और दूसरे में साधु-संत तथा भिखमंगे, जिनको सदावर्त से भोजन की सामग्री दी जाती थी। निरीक्षक महोदय का प्रबंध भी प्रशंसनीय था। प्रदोष का दिन था। महाकाल के दर्शन करने गये। पंडे यहाँ भी साथ लग जाया करते हैं। मन्दिर बहुत विशाल है। उसके भीतर ही एक बहुत बड़ा कुण्ड है, जिसको यहाँवाले गंगातीर्थ कहते हैं। दर्शन करके धर्मशाला लौट आये। संध्या को भोजन बना और तभी खाया गया।

उज्जैन नगरी बहुत प्राचीनकाल से स्थित है। सर्व प्रथम जो ऐतिहासिक पुरुष अवन्त्यधीश के आसन पर बैठा, और जिसका आज दिन हमको पता है, वह महाराज प्रद्योत थे। इनके समकालीन राजा थे कौशाम्बी के उदयन, कोशल के प्रसेनजित् तथा मगध के बिम्बसार और अजातशत्रु। बिम्बसार का समय ईसा की छठी शताब्दी के मध्य भाग में माना जाता है। कथा है कि महाराज उदयन गजविद्या में दक्ष थे। एक बार आखेट में निकले हुए कौशाम्बी के अधिपति साधारण युद्ध के बाद उज्जैनी सेना द्वारा पकड़ लिये गये और महाराज प्रद्योत के सामने लाये गये। महाराज ने इनसे गजविद्या सिखा देने पर लौटा देने का प्रस्ताव किया। उदयन ने कहा, यदि आप मुझसे विद्या प्राप्त करना चाहते हैं, तो मुझको गुरु मानिए और वैसा ही आचरण मेरे साथ कीजिए।

महाराज प्रद्योत इन्हें केवल एक क़ैदी के समान समझते थे। अन्त में यह तय हुआ कि परदे के बाहर बैठकर उदयन महाराज प्रद्योत की कन्या वासवदत्ता को गज-विद्या की शिक्षा दें। शिक्षा का यह प्रबंध प्रारम्भ हुआ, परन्तु कालान्तर में गुरु शिष्य में स्नेह उत्पन्न हुआ और बढ़ते-बढ़ते यहाँ तक बढ़ा कि वे गजविद्या का वास्तविक प्रयोग करने के बहाने भाग गये। पीछा किया गया, परन्तु प्रद्योत की सेना हार गई। उदयन तथा वासवदत्ता का विवाह संस्कार होगया।

यद्यपि अवन्ती किसी समय भारतवर्ष की एक प्रधान नगरी थी, किन्तु इस समय अब इसकी कुछ विलक्षण दशा है। क्षिप्रा नदी इसके कूलों को धोती हुई शान्त रूप से चली जाती है। यह नगर ग्वालियर के महाराज के आधीन है। अस्तु, इसके प्रबन्ध में कुछ शिथिलता अवश्य है। यहाँ पर दो डाकघर हैं, एक तो भारतीय सरकार का, और दूसरा ग्वालियर सरकार का। यहाँ पर एक हाई स्कूल भी है। नगर का मुख्य भाग गोपाल मन्दिर के आस-पास बसा है। यहाँ पर शुद्ध हिन्दी भाषा का प्रचार है। महाकालेश्वर महादेव का मन्दिर बड़े सुन्दर स्थान पर स्थित है। यहाँ पर भी हम लोगों ने त्रिरात्रि वास किया।

यहाँ से हम लोग सीधे भूपाल, झाँसी, लखनऊ होते हुए बनारस चले आए।

इस प्रकार हम लोगों की यात्रा भगवान् शंकरजी की कृपा से निर्विघ्न समाप्त होगई। इस ५,०३१ मील की यात्रा में हम लोगों को पूरे ४१ दिन बाहर लगे। हम लोगों को इससे अधिक समय लगा होता, यदि गर्मी आ जाने के डर से हम लोगों ने घर लौटने की शीघ्रता न की होती। इस यात्रा से हमारा तो यही अनुभव है कि मनुष्य को कम-से-कम एक मास पूर्व चलना चाहिए नहीं तो फिर गर्मी से बड़ा कष्ट मिलता है। इसी विलम्ब होने के डर से, मार्ग से दूर पड़नेवाले अन्य स्थानों में हम लोग नहीं जा सके—जैसे दक्षिण में त्रिवेन्द्रम् में पद्मनाभजी तथा उसीके पास जनार्दन। फिर इधर नासिक के पास त्र्यम्बक तथा काठियावाड़ में सुदामापुरी तथा सोमनाथ महादेव का मन्दिर। रतलाम से थोड़ी दूर पर नर्मदा तीर पर ओङ्कारेश्वर का मन्दिर भी दर्शनीय है। त्र्यम्बक, सोमनाथ तथा ओङ्कारेश्वर द्वादश ज्योतिर्लिंग में से हैं। यदि भगवान् की कृपा हुई, तो किसी अन्य समय इन स्थानों में भी जायँगे।

सारी यात्रा में हम लोगों को कहीं भी कोई विशेष कष्ट नहीं हुआ। भोजन आदि की कच्ची जिंस प्रत्येक स्थान पर अच्छी मिल जाती है। धर्मशालाएँ भी प्रत्येक स्थान पर बनी हैं, जिसमें यात्रियों को बड़ा सुख मिलता है। धर्मभीरु मारवाड़ी जाति ने इस ओर अच्छा ध्यान दिया है। बम्बई प्रान्त की ओर भाटियों की धर्म-शालाएँ भी बड़ी सुन्दर हैं। प्रत्येक धर्मशाला में चार छ: पैसे देने से बर्तन मलने के लिये मज़दूर मज़दूरिन मिल जाते हैं। हम लोग अपने अनुभव से कह सकते हैं कि दो-सौ रुपए में एक मनुष्य किफ़ायत से व्यय करके यात्रा पूरी कर सकता है।

स्थान-स्थान पर यद्यपि हमने पंडों के प्रति बहुत अच्छे शब्दों का प्रयोग नहीं किया है, तथापि इतना कहे बिना हम नहीं रह सकते कि इन लोगों के कारण ही आज-तक ये तीर्थस्थान जागृत स्थान से प्रतीत होते हैं, अन्यथा और बहुत से बड़े-बड़े स्थानों की भाँति ये भी भूगर्भ में समाधिस्थ हो जाते। निःसंदेह इस पंडा-वर्ग में दोष आ गये हैं और ये दोष संक्रामक भी हैं, परन्तु इनको हटाते समय हमें सावधान रहना चाहिए कि अफ़ीमची की नाक की तरह यह समुदाय ही न नष्ट हो जावे। हमें इनको निर्दोष करने का प्रयत्न करना चाहिए इनके अन्त करने का नहीं, अन्यथा यह कृतघ्नता होगी।

अन्त में इस छोटे-से विवरण को समाप्त करते हुए हम अपने भारत-भ्रमण ज्ञान को इस घनाक्षरी द्वारा प्रकट करते हुए बिदा लेते हैं—

"नख बिन कटा देखे, शीश भारी जटा देखे,
जोगी कनफटा देखे छार लाए तन में।
मौनी अनबोल देखे स्योढ़ा सर छोल देखे,
करत कलोल देखे बनखंडी बन में।
शूर देखे, वीर देखे, जन्म ही के क्रूर देखे,
माया में भरपूर देखे भूलि रहे धन में।
आदि अन्त सुखी देखे, जन्म ही के दुखी देखे,
पै वे न देखे जिनके लोभ नहिं मन में।

देवेन्द्रनाथ सुकुल, बी० ए०

हसन-बिन-सब्बाह

आजकल चारों ओर ख़्वाजा हसन निज़ामी साहब के नाम की धूम मची हुई है । उनके नाम के साथ कभी-कभी हसन-बिन-सब्बाह का नाम भी सुनाई दे जाता है । निज़ामी साहब को तो सभी लोग जानते हैं, पर हसन-बिन-सब्बाह को बहुत कम लोग जानते होंगे । यह हसन-बिन-सब्बाह कौन था ? उसके जीवन वृत्तांत से पाठकों को मालूम होगा कि मनुष्य सतत उद्योग, विद्या-बुद्धि और चातुर्य से किस प्रकार उन्नति के उच्च शिखर पर आसीन हो सकता है । उससे पाठकों को यह भी मालूम होगा कि धर्म के मधुर नाम की माया के मोह में पड़कर मनुष्य की कोमल वृत्तियाँ कैसा भीषण रूप धारण कर कैसे-कैसे क्रूर और पाशविक कर्म करने पर आरूढ़ हो जाती हैं। और आश्चर्य की बात यह है कि धर्म की माया का रहस्य-भेद हो जाने पर भी मनुष्य का अज्ञानांधकार ज्यों-का-त्यों घनीभूत रहता है, उसकी बुद्धि पर विश्वास और अन्ध-श्रद्धा का पर्दा तद्वत् पड़ा रहता है । अस्तु ।

लगभग एक हज़ार वर्ष की बात है। ईरान के रै नामक नगर में अली नाम का एक आदमी रहता था। वह वहाँ के हाकिम अबू मुस्लिम के यहाँ नौकर था। अबू मुस्लिम कट्टर मुसलमान था; इतना ही नहीं वह अपने धर्म पर जान देता था। वह अली को सदैव घृणा की दृष्टि से देखता था। इसका कारण यह था कि अली इस्माईलिया-मत का उपासक था। यद्यपि बहुतेरे लोग इस्माईलिया-मत को मुस्लिम-मत की ही एक शाखा मानते हैं, और किन्हीं अंशों में यह बात सत्य भी हो सकती है; पर वास्तविक बात तो यह है कि उस मत के उपासक क़ुरानशरीफ़ और शरियत को बहुत-सी बातें नहीं मानते। इसलिए सच्चे मुसलमान उसे अधर्म से परिपूर्ण मानते और इस्माईलियों को 'मुलहिद' अर्थात् बेधर्मी समझते हैं। यद्यपि अली भी कट्टर इस्माईली था, पर वह मुसलमानों की घृणा से बचने और उनकी कृपादृष्टि प्राप्त करने के लिए सदैव यही कहा करता था कि मैं इस्माईली नहीं हूँ। इसी अली के यहाँ सन् १०११ ई० में हसन-बिन-सब्बाह ने जन्म लिया था। इस्माईलिया मत की एक शाखा नज़ारिया नाम से प्रसिद्ध है। आगे चलकर हसन इस शाखा का बड़ा प्रबल प्रचारक हुआ। इस कारण इस शाखा के लोग अपने को 'सब्बाहिया' या 'हिमयरिया' भी कहते हैं। बात यह है कि हसन अपने को 'सब्बाह हिमयरी' का वंशज बतलाता था। यह ख़ान्दान अरब में बहुत प्रतिष्ठित समझा जाता था। 'नज़ारिया' को कुछ लोग 'बातिनिया' भी कहते हैं। इस्माईलिया-सम्प्रदाय के लोग हसन को 'सय्यदना' अर्थात् 'हमारा सरदार' कहते हैं।

यद्यपि अली मुसलमानों के भय से अपने को 'इस्माईली' कहने से हिचकता था, पर इससे उसका हृदय भीतर-ही-भीतर सन्ताप की अग्नि से धधक उठता था। वह सदैव मन-ही-मन यही सोचा करता था कि क्या कभी ऐसा समय भी आवेगा, जब इस्माईली गर्वोन्नत मस्तक से कह सकेंगे, हम 'इस्माईली' हैं, और समाज में प्रतिष्ठा की दृष्टि से देखे जावेंगे ? हसन में बचपन ही से 'होनहार बिरवान के होत चीकने पात' वाले लक्षण थे। वह बड़ा ही कुशाग्रबुद्धि, प्रतिभाशाली और चंचल बालक था। अली की सारी आशाएँ नन्हे से बालक हसन पर केन्द्रीभूत होगईं। वह बालक को गोद में लेता और आशा-भरी दृष्टि से उसकी ओर देखकर कहता—'हे इस्माईली-मत के बाल-रवि ! तेरे प्रखर प्रकाश से एक दिन इस्माईली-मत जगमगा उठेगा। क्या मेरी यह आशा पूर्ण होगी ?' बालक हसन मुसकुरा कर उत्तर देता—हाँ। अली ने निश्चय कर लिया कि बच्चे को सुशिक्षित बनाने में किसी बात की कोताही न करूँगा।

उन दिनों नीशापुर के इमाम मज़हुद्दीन की विद्वत्ता की चारों ओर शोहरत थी। लोगों का विश्वास था कि जो उनसे शिक्षा प्राप्त कर लेता है, वह एक-न-एक दिन अवश्य उच्च पद का अधिकारी हो जाता है। वास्तव में इमाम साहब थे भी उच्चकोटि के शिक्षक। अली ने हसन की साधारण शिक्षा समाप्त हो जाने के बाद उसे नीशापुर भेज दिया। हसन इमाम साहब की पाठशाला में प्रविष्ट हो उच्च शिक्षा प्राप्त करने लगा। इस पाठशाला में उस समय निज़ामुलमुल्क तूसी और उमर ख़ैयाम नाम के दो विद्यार्थी भी अध्ययन कर रहे थे। इन दोनों

से हसन को मित्रता हो गई, और क्रमशः वह गाढ़ स्नेह के रूप में परिणत हो गई। चौबीस घंटे का साथ था, तीनों मित्र पवित्र प्रेम के सिवा परस्पर एक दूसरे के अध्ययन का भी यथेष्ट लाभ उठाते थे, जिससे भविष्य में उनकी योग्यता का चमत्कारपूर्ण विकास हुआ।

एक दिन की बात है कि तीनों मित्रों में भविष्य जीवन की कल्पना होने लगी। तब हसन ने कहा, मित्रो! मेरी राय तो यह है कि यदि हममें से कोई भी परमात्मा की दया से उच्च पद पा जावे, तो वह बाकी दो मित्रों का भी ख़याल रखे और यथाशक्ति उनके लिए सुख के साधन एकत्र कर दे। हसन की यह बात दोनों मित्रों को प्रिय लगी और उन्होंने ईश्वर को साक्षीभूत करके उसका पालन करने का अभिवचन दिया। शिक्षा समाप्त होने पर उमर ख़ैयाम और तूसी तो अपने-अपने स्थानों को चले गए, पर हसन नीशापुर में ही रहा। उस समय ईरान में इस्लाम का विशेष प्राबल्य था, और उसके विरुद्ध बातें करना या अन्य धर्म के प्रति स्नेह प्रकाशित करना, जान जोखों में डालना था। इस्लाम की यह कट्टरता देख विचार-स्वातंत्र्य प्रेमी हसन पर बुरा प्रभाव पड़ा और उसके हृदय में, उसके प्रति विरक्ति के भाव उद्भूत हो उठे। अस्तु—

शाला से निकलने के बाद निज़ामुल्मुल्क तूसी ने सरकारी नौकरी कर ली। तूसी बड़ा ही कर्तव्य परायण और कार्य-कुशल व्यक्ति था। दिन दिन उसकी पदोन्नति होने लगी। क्रमशः वह बादशाह का इतना कृपापात्र हो गया कि वह दरबार के प्रमुख सरदारों में गिना जाने लगा। अन्त में शीघ्र ही वह दिन भी आया, जब सलजूकी बादशाह अल्प अरसलाँ ने उसे अपना प्रधान मन्त्री बना दिया। उमर ख़ैयाम और हसन ने भी यह समाचार सुना। उन्हें उस प्रतिज्ञा की स्मृति हो आई। उन्होंने सोचा, एक बार तूसी से भेंट तो करनी चाहिए, देखें उसे वह प्रतिज्ञा याद है या नहीं; शायद हम लोगों के दिन भी फिर जावें। दोनों मित्र राजधानी में पधारे। उन्हें देखते ही तूसी को विद्यार्थी-जीवन की सभी बातें एक-एक करके याद हो आईं। झलकते हुए हृदय से उसने मित्रों का स्वागत किया। उमर ख़ैयाम मित्र के लिए तो उसने ऐसा प्रबन्ध कर दिया कि निर्द्वन्द्व होकर काव्यरसामृत पान करता रहे, और हसन को दरबार में रख लिया। हसन योग्य और प्रभावशाली व्यक्ति तो था ही, क्रमशः दरबार में उसकी ख्याति बढ़ने लगी।

इसके कुछ दिन बाद ही सुल्तान मलिक शाह इस्फ़हान के राजसिंहासन पर विराजमान हुए। तूसी पर आपकी और भी कृपादृष्टि हुई। इधर दरबार में रहते-रहते हसन को भी शासन-कार्य का बहुत कुछ अनुभव हो चुका था। तूसी ने अवसर पाते ही उसे हमदान प्रान्त का सूबेदार बना दिया। परन्तु एकबारगी इतना उच्च पद प्राप्त होने पर भी हसन की मनस्तुष्टि नहीं हुई। उसका विश्वास था कि और नहीं तो समय आने पर निज़ामुल्मुल्क मुझे अपना सहायक मन्त्री अवश्य बनावेगा। पर यह इच्छा पूर्ण न होने से उसे बड़ा सन्ताप हुआ। उसने इस कृपा के लिए न तो मित्र का कुछ उपकार ही माना और न अपनी असन्तुष्टि के विषय में ही उससे कुछ कहा। महत्वाकांक्षी हसन असंतोष की ज्वाला में दिन-रात झुलसने लगा। क्रमशः उसकी महत्वाकांक्षा ने ऐसा उग्र रूप धारण किया कि वह मित्र का सारा उपकार भूल गया; इतना ही नहीं, उसने उसकी जड़ काटने पर कमर बाँधी। हसन अपना अभिप्राय सिद्ध करने में बड़ा ही कुशल था। अब वह तूसी को फँसाने के लिये दरबार में नित्य-नये जाल पूरने लगा। उसने धीरे-धीरे दरबार में बहुत-से प्रमुख-प्रमुख सरदारों पर अपना प्रभाव जमा लिया। ये सरदार प्रायः ऐसे थे जो निज़ामुल्मुल्क का ऐश्वर्य देख ईर्षा से जलते रहते थे। विलक्षण बुद्धि हसन नित्य उनके साथ तूसी के पराभव के लिये नवीन-नवीन मन्त्रणाएँ करता और दरबार में एक-न-एक सरदार मंत्रिवर के कार्य में छिद्रान्वेषण करता। पर इससे तूसी के व्यक्तित्व पर रत्ती भर भी प्रभाव न पड़ा। अन्त में हसन ने खीझ कर एक दिन सुअवसर देख अपने एक मित्र से दरबार में यह बात उठवाई कि हुज़ूर को राज करते बीस वर्ष होगए, इस दीर्घकाल में सरकार की क्या आमदनी हुई, क्या ख़र्च हुआ, इसका हिसाब-किताब तैयार होना ज़रूरी काम है। बात उचित थी, और समय पर कही गई थी, सुल्तान को जँच गई। उन्होंने फ़ौरन् निज़ामुल्मुल्क से कहा, तुम हमारे सम्पूर्ण शासन-काल के आमद-ख़र्च का हिसाब कितने दिन में तैयार कर सकते हो?

तूसी ने नम्रतापूर्वक शाह को उत्तर दिया—हुज़ूर, एक तो आपका राज्य बहुत भारी है, दूसरे हिसाब भी

बीस वर्षों का तैयार करना है। काम बहुत बड़ा है। एक वर्ष से क्या कम लगेगा ?

तब शाह ने दरबारियों की ओर दृष्टिपात कर उनसे पूछा—क्या आप लोगों में से कोई एक वर्ष के भीतर हिसाब तैयार कर सकता है ?

सारे दरबार में सन्नाटा छा गया। जिस महत्कार्य को प्रधान मंत्री भी वर्ष भर में समाप्त नहीं कर सकते, उसे साधारण आदमी कैसे इतनी अवधि के भीतर कर सकता है ? परन्तु दूसरे ही क्षण एक दरबारी उठता हुआ दिखाई दिया। यह हसन था। हसन अपनी महत्वाकांक्षा की पूर्ति के लिये पहले से ही प्रयत्नशील था, उसी की बदौलत आज यह अवसर उपस्थित हुआ था। कदाचित् उसने पहले से ही इस महत्कार्य के सम्पादनार्थ साधन एकत्र कर लिए थे। स्वार्थ की वेदी पर मित्रता के पवित्र भावों की बलि देकर उसने शाह से निवेदन किया—यदि हुज़ूर की ओर से मुझे पूर्ण सुभीता कर दिया जाय, तो यह सेवक चालीस दिन में ही सब हिसाब तैयार कर सकता है।

हसन का यह साहस देख सारा दरबार आश्चर्य से विमुग्ध हो गया। शाह ने उसकी प्रार्थना स्वीकृत कर ली। राज्य के कागज़-पत्रों का कार्यालय हसन को सौंप दिया गया और सहकारी मंत्रियों को आज्ञा दी गई कि वे हसन की आज्ञाओं का पालन करें तथा उसे यथेष्ट सहायता पहुँचावें। हसन भविष्य की मधुर कल्पना कर आनन्द से अभिभूत हो उठा। परन्तु बेचारे तूसी की और ही दशा हो रही थी। उसने सोचा, हसन ने मेरे विरुद्ध यह कार्य करने का साहस क्यों किया ? मैं आज तक उसके साथ सच्चे मित्र का कर्तव्य पालन करता आ रहा हूँ, मेरे ही प्रयत्न से हसन आज ऐसे प्रतिष्ठित पद को प्राप्त कर सका है। तब उसकी प्रवृत्ति मेरे विरुद्ध क्यों हुई ? कहीं यह मेरा पराभव कर स्वयं ही तो प्रधान मंत्री का पद प्राप्त नहीं करना चाहता ? अवश्य बात यही है, नहीं तो हसन को क्या पड़ी थी, जो वह इतनी जल्दी हिसाब तैयार करने के लिये प्रस्तुत हो गया ? यदि कहीं सचमुच यह मेरा पराभव कर सका, तो मेरा क्या परिणाम होगा ? भविष्य की अमंगलमयी आशंका से तूसी उद्वेलित हो उठा। अपनी मान-मर्यादा की रक्षा कैसे करूँ, यदि प्रकाश्य-रूप से हसन के कार्य में बाधक बनूँगा, तो इससे मेरी अयोग्यता सिद्ध होगी, हँसी होगी और अन्त में शाह का कोपभाजन बनूँगा। तब क्या गुप्त रूप से हसन का पराभव करना चाहिए ? पर हसन भी कुछ कम चलता पुर्ज़ा नहीं है, उसकी आँखों को धोखा देना असम्भव है। ऐसे ही विचार करता हुआ तूसी घर लौटा। उसके मुखड़े पर विषाद की कालिमा छा रही थी।

तूसी के पास एक बड़ा ही विश्वस्त, कार्य-कुशल और चतुर कर्मचारी था। वह बड़ा ही स्वामिभक्त था। तूसी बहुधा कठिन कार्यों में उससे सहायता और सम्मति लिया करता था। आज अपने स्वामी को उदास देख उसने उससे इसका कारण पूछा। तूसी ने आज की सारी घटना सुनाकर उससे कहा—मैं इसी बात से व्यथित हो रहा हूँ कि यदि हसन अपने कार्य में यशस्वी हो गया, तो मेरा पद तो छिन जाने की आशंका है ही, साथ ही मेरी कीर्ति-कौमुदी भी अपयश के अन्धकार में विलीन हो जायगी। तुम्हीं कहो, ऐसी कठिन परिस्थिति में मैं अपनी रक्षा के लिए क्या उपाय करूँ ?

उक्त कर्मचारी ने मुसकुराकर तूसी को उत्तर दिया—हुज़ूर भी किस चिन्ता में पड़े हैं। अपने दफ़्तर का भी तो लेखा-जोखा तैयार किया जायगा। इस कार्य के लिए आप मुझे ही हसन के दफ़्तर में नियत कर दीजिए।

तूसी के उक्त कर्मचारी ने हसन के दफ़्तर में पहुँचकर उसके मुंशी से मेल बढ़ाना शुरू किया। क्रमशः दोनों में गाढ़-स्नेह उत्पन्न हो गया। हसन का मुंशी तूसी के भृत्य को अत्यन्त ही विश्वासपात्र समझने लगा। इसका परिणाम यह हुआ कि आय-व्यय के लेखे के सभी कागज़-पत्र वह देख लेता था। हसन भी दिन को दिन और रात को रात न समझ बड़े परिश्रम और योग्यता से हिसाब तैयार कर रहा था। उन्तालीसवें दिन की सन्ध्या होते-होते उसने सारा कार्य समाप्त कर डाला। सारा हिसाब बड़ी ही योग्यता और स्पष्टता से तैयार किया गया था, उसे देख हसन को विश्वास होगया था कि अब मेरा मनोरथ सफल होगा। मूँछों पर ताव देते हुए उसने सुख की साँस ली और मुंशी को आज्ञा दी कि कल ठीक समय पर ये कागज़ दरबार में ले आना।

चालीसवाँ दिन आया, आज ही हसन और तूसी के

भाग्य-निर्णय की बेला थी। अभिमानी हसन मस्तानी चाल से मंद-मंद मुसकुराता हुआ दरबार में पहुँचा। आज आशा का मोहन रूप हसन के आगे थिरक रहा था। इधर मुंशीजी दरबार में जाने के लिए काग़ज़ात सँभालने लगे। इतने में वहाँ तूसी का भृत्य भी आ पहुँचा। उसने मुंशीजी से हसन की बड़ाई करते-करते उन काग़ज़ों को बिलकुल अस्त-व्यस्त कर दिया। मुंशीजी को काग़ज़ों की क्रम-शृंखला नष्ट होने का गुमान भी न हुआ। उन्होंने बस्ता बाँधकर दरबार की राह ली।

दरबार में शाह ने हसन से पूछा—तुम्हारा काम ख़त्म हो गया?

हसन ने उल्लासमय स्वर से उत्तर दिया—जी हाँ।

बादशाह की आज्ञा पाते ही हसन ने बस्ता खोला और हिसाब समझाने के लिए काग़ज़ हाथ में लिए। परन्तु काग़ज़ों पर दृष्टि पड़ते ही हसन का उल्लास और उत्साह काफ़ूर हो गया, मुँह पर हवाइयाँ उड़ने लगीं। तो भी धीरज धर वह काग़ज़ों को क्रमबद्ध करने लगा। परन्तु ढेर के ढेर काग़ज़ों को शीघ्रतापूर्वक क्रमबद्ध करना आसान काम नहीं था। हसन की सारी आशा धूल में मिल गई, वह मारे भय के काँपने लगा। हसन का यह ढंग देख तूसी मुसकुराने लगा। इसी समय उस पर हसन की दृष्टि पड़ी। काग़ज़ों की क्रमभङ्गता से हसन को मर्मान्तक वेदना हो रही थी, तूसी को मुसकुराते देख मानों भीतर-ही-भीतर उसकी क्रोधाग्नि भभक उठी। वह समझ गया कि यह सब शरारत तूसी की है, इसी ने मेरी उन्नति-आशा की कोमल लता मसल डाली है, पर शाह के डर के मारे वह कुछ कह न सका। उसे चुपचाप सिटपिटाते देख शाह ने ज़रा बिगड़कर कहा—कहाँ है तेरा हिसाब?

हसन ने विनीत भाव से उत्तर दिया—हुज़ूर, हिसाब तो यही है। अभी थोड़ी देर पहले मैंने इन काग़ज़ों को क्रमबद्ध किया था, पर नहीं जानता, ये इस समय कैसे गड़बड़ होगए हैं। इतना घोर परिश्रम करके मैंने जो हिसाब तैयार किया था, वह इस समय अस्तव्यस्त हो रहा है, यह मेरे दुर्भाग्य का ही दोष है। यदि आज्ञा हो, तो मैं इसको फिर से ठीक कर कल सेवा में हिसाब प्रस्तुत कर सकता हूँ।

अब निज़ामुल्मुल्क का दाँव था। हसन की बात सुनते ही उसने बादशाह से कहा—हुज़ूर, जान पड़ता है, हसन पागल हो गया है। जिस दिन इसने बीस वर्ष के आमद-ख़र्च के लिये लेखे को केवल चालीस दिन में ही तैयार करने की प्रतिज्ञा की थी, उसी दिन मैं यह बात समझ गया था। पर हुज़ूर इसे आज्ञा दे चुके थे, इसलिए मैं कुछ न कह सका। ज़रा इसकी बुद्धि तो देखिए, जिस काम को यह चालीस दिन में पूरा नहीं कर सका, अब उसे एक दिन में पूरा कर लेगा। बादशाहों के सामने भी ऐसी दिल्लगी!

चिकने मुँह की तरफ़ बोलनेवालों ने भी तूसी की हाँ में हाँ मिलाई। बस, हसन के भाग्य का निर्णय हो गया। सुल्तान पर उसकी प्रार्थना का कुछ भी प्रभाव न पड़ा। उन्होंने गरज कर हसन को आज्ञा दी—बेवकूफ़! तू अभी इस शहर से निकल जा, फिर कभी अपना काला मुँह मुझे मत दिखलाना। बादशाहों की ही तो तबीयत ठहरी। दुर्भाग्य की प्रबलता के आगे हसन की अलौकिक कार्यक्षमता, विद्वत्ता और बुद्धिमत्ता का कुछ भी ज़ोर न चला। मित्र के साथ विरोधमय निन्द्य व्यापार कर उसने अपने अटूट परिश्रम के उपलक्ष्य में कहाँ तो आशातीत पुरस्कार पाने की आशा कर रखी थी, और कहाँ उसे राह का भिखारी बनना पड़ा। आशा उसके साथ आँखमिचौनी जैसी क्रीड़ा कर उसे निराशा के घनीभूत अन्धकार में छोड़ कर चली गई। पर, हसन ऐसा जीव था, जो हज़ार विघ्न-बाधाओं के आने पर भी आशा का पीछा न छोड़ता था। सतत उद्योगशीलता ही हसन की जीवन सहचरी थी। अस्तु—

हसन इस्फ़हान त्यागने की तैयारी कर ही रहा था कि उसकी भेंट अबुलफ़ज़ल नामक एक मित्र से हुई। वह हसन को बहुत चाहता और मानता था। उसने बड़े आग्रह से हसन को रोका और उसे बड़े आदर एवं स्नेह से अपने यहाँ छिपा रखा। एक दिन दोनों मित्र बातें कर रहे थे कि हसन ने कहा—'यदि मैं जान पर खेल जानेवाला एक ही सच्चा मित्र पा जाऊँ, तो मलिकशाह को इस लम्बी-चौड़ी सल्तनत को पलक मारते ख़ाक में मिला दूँ। मित्र का यह असम्भव कथन सुन अबुलफ़ज़ल ने समझा, वास्तव में हसन की बुद्धि नष्ट हो गई है। उसे मित्र की इस पतनावस्था पर बड़ी वेदना हुई और वह उसके उपचार में प्रयत्नशील हुआ। उसने

यूनानी चिकित्सा-पद्धति से बादाम, केशर आदि पौष्टिक और तर पदार्थों से युक्त भोजन तैयार कराए। जब हसन भोजन करने बैठा, तब वह भोजन के स्वाद से ही मित्र का अभिप्राय समझ गया। उसने मन-ही-मन निश्चय किया कि जब यह मेरी साधारण सी बात से मुझे पागल समझता है, तब इससे अभीष्ट-सिद्धि में सहायता प्राप्त होना कठिन है, अत: अब कहीं और चलकर ही भाग्य की परीक्षा करना उचित है।

हसन के हृदय में आरम्भ से ही इस्माईली मत के प्रति श्रद्धा थी और वह छिपे-छिपे उसका प्रचार करने की चेष्टा भी किया करता था। इस्लाम की कट्टरता के कारण हसन के हृदय में उसके प्रति पहले से ही विरक्ति के भाव उत्पन्न हो चुके थे। अब इन घटनाओं से वह विरक्ति तीव्र द्वेष और ईर्षा में परिणत हो गई और इस्माईली मत की ओर वह बड़ी प्रबलता से आकर्षित हुआ। उसने इस्माईली मत की शिक्षा ग्रहण करने का दृढ़ निश्चय किया। उन दिनों मिस्र की राजधानी क़ाहिरा में इस मत का बड़ा ज़ोर था। वहाँ का बादशाह इस मत का प्रमुख आचार्य अथवा ख़लीफ़ा समझा जाता था। हसन क़ाहिरा को रवाना हुआ। वह तीन वर्ष तक वहाँ रहा और इतने समय में उसने इस्माईली मत के मर्मज्ञों की सहायता से उस मत के तत्त्वों का यथेष्ट अनुशीलन किया। इस प्रकार हसन कट्टर इस्माईली बनकर वहाँ से लौटा। उसने मिस्र, रुद्बार, हलब, बग़दाद आदि स्थानों में भ्रमण किया और जहाँ तक बन सका, अपने प्रिय मत का प्रचार भी किया। बहुतेरे आदमी हसन के अनुयायी बन गए, पर उसे यथेष्ट सफलता प्राप्त न हुई। तब वह ईरान वापस चला आया और अपने मत का प्रचार करने की चेष्टा में संलग्न हुआ। पर ईरान के मुसलमान भी कुछ कम कट्टर न थे। यदि उन्हें हसन के विचारों का पता चल जाता तो इस्माईली मत का प्रचार होना तो दूर रहा, उसका जीवित रहना ही असंभव था। इसलिए उसने गुप्त रीति से कार्य प्रारंभ किया। अनेक स्थानों में उसने चेष्टा की। कुछ लोग उसके अनुयायी बन भी गये, पर वास्तव में उसका प्रयत्न असफल ही रहा। वास्तव में बात यह है कि जब तक ज़ोर-शोर से, एवं प्रकट रीति से धर्म-प्रचार न किया जाय, तब तक ऐसे मामले में किसी को भी सफलता नहीं मिल सकती, चाहे धर्म-प्रचारक कितना ही योग्य, चतुर, विद्वान् और कार्य-क्षम व्यक्ति क्यों न हो; पर ईरान मुसलमानी देश था, वहाँ हसन को ऐसा सुयोग प्राप्त होना असंभव था। तब हसन ने निश्चय किया कि किसी स्वतंत्र और दृढ़ स्थान पर मैं अधिकार कर सकूँ, तो आसानी से अपने धर्म का प्रचार कर सकूँगा। अब हसन ऐसे ही स्थान की तलाश में प्रयत्नशील हुआ।

उस समय ईरान के पश्चिम में काकेशस पर्वत पर अलमौत नाम का एक दुर्ग था। यह दुर्ग पृथ्वी-तल से बहुत ऊँचाई पर बड़ी ही दृढ़ता से निर्मित किया गया था। उसके चारों ओर सुन्दर पर्वत-मालाएँ घेरा डाले हुए थीं। इन कारणों से यह दुर्ग दुर्जेय था। उसके चारों ओर दूर तक कोई ज़बरदस्त सल्तनत भी न थी। हसन की दृष्टि उसी दुर्ग पर पड़ी। उसने सोचा, यदि इस दुर्ग पर मैं अधिकार कर सका, तो फिर इस्माईली-मत के प्रचार में कोई बाधा न रह जायगी। मेरी शक्ति अजेय हो जायगी और मैं अपना कार्य अभीष्ट सफलता से सम्पादन कर सकूँगा। बस, एक दिन उसने चुपके से अलमौत की राह ली।

हसन अलमौत पहुँचा। उसने साधु का वेष बनाया और दुर्ग के बाहर एक छोटी-सी झोपड़ी बना उसमें डेरा डाल दिया। इसके बाद वह भगवद्भक्ति में लीन हो गया। दुर्गवालों ने भी यह हाल सुना। क्रमश: वे हसन का दर्शन करने आने लगे। हसन के भव्यरूप और सीधे-सादे बर्ताव का उन पर बड़ा ही प्रभाव पड़ा। हसन ने अपनी उपदेशमयी मधुर वाणी से उनका मन मोह लिया। दुर्ग में हसन की जहाँ-तहाँ प्रशंसा होने लगी। होते-होते यह बात दुर्गपति के कानों तक भी पहुँची। वह साधु का दर्शन करने एवं उसका उपदेश सुनने के लिये लालायित हो उठा और बड़ी ही भक्ति-भावना से उसकी सेवा में उपस्थित हुआ। सुचतुर और विद्वान् हसन ने पहली मुलाक़ात में ही दुर्गपति का मन अपनी मुट्ठी में कर लिया। उसने साधु से आग्रह-पूर्वक दुर्ग में पधारने की प्रार्थना की। हसन ने उसे उत्तर दिया—"बाबा, मैं फ़क़ीर ठहरा, मुझे दुर्ग में बिठलाकर क्यों संसारी मायाजाल में फँसाते हो। दूसरे, मैं पराई धरती में बैठकर ख़ुदा की इबादत जैसा पवित्र काम नहीं कर सकता। पर तुम्हारा आग्रह टालने में भी मुझे

संकोच होता है। यदि तुम नहीं मानते, तो मुझे केवल एक बैल के चमड़े के बराबर भूमि वाजिब क़ीमत लेकर बेच दो। तब मैं ईश्वर की आराधना के साथ-साथ मनुष्यों को पवित्र उपदेश देता हुआ शांतिपूर्वक अपने दिन बिता सकूँगा।" हसन की बात सुन सभी के हृदय भक्ति से गद्‌गद् हो गए। साधुओं के शब्दों में कैसा आकर्षण होता है—कैसी प्रबल माया होती है। उनके मायाजाल में धर्मभीरु प्राणी कितनी आसानी से आबद्ध हो जाता है। दुर्गपति ने हँसते-हँसते हसन की बात स्वीकृत करली और वह उसे बड़ी धूमधाम से दुर्ग में ले गया। दुर्ग में प्रवेश करते ही हसन ने अपनी माया का सुन्दर जाल फैलाना प्रारंभ कर दिया। क्रमशः दुर्ग के सभी निवासी उसमें आ फँसे। जब हसन ने देखा कि अब सब लोग मेरे फंदे में फँस गए हैं और कोई भी मेरी आज्ञा के विरुद्ध आचरण नहीं कर सकता, तब उसने दुर्गपति से कहा—अब आप अपनी प्रतिज्ञा पूर्ण कीजिए, मुझे बैल के चमड़े के घेरे में आ जाने-योग्य भूमि शीघ्र ही प्रदान कीजिए। दुर्गपति ने अपने सर्व-नाश की उस मोहक मूर्ति से हँसते-हँसते कहा—शाह साहब, आप ज़मीन पसन्द कर लीजिए। तब तो वामन भगवान् के समान शाह साहब ने अपना विराट् रूप दिखलाया। उन्होंने बैल का चमड़ा मँगवाया, और उसकी इतनी बारीक तांत निकलवाई कि उसके अंदर सारा दुर्ग आ गया। शाह साहब की यह लीला देखकर दुर्गपति चौंक उठा। साधु की इस छलनामयी मूर्ति से उसे बड़ी घृणा हुई और उसने निश्चय किया कि इस धूर्त को काफ़ी सज़ा देनी चाहिए। पर जब उसने देखा कि दुर्ग में मेरे सिवा एक भी आदमी ऐसा नहीं है, जो साधु को दंड देने की तो कौन कहे, शांतिपूर्वक उसके अपमान की बात भी नहीं सुन सकता, तब बेचारे ने ख़ुद ही माथा ठोंकते-ठोंकते विदेश की राह ली। दुर्ग पर हसन का अधिकार हो गया, उसने आज उल्लास की साँस ली। सन् १०९० ई० में यह घटना हुई।

अब हसन अपनी अभीष्ट साधना में तत्पर हुआ। उसने क्रमशः दुर्ग-निवासियों में इस्माईली मत का प्रचार करना आरम्भ कर दिया। उन पर हसन का ऐसा रंग चढ़ा कि वे थोड़े समय में ही कट्टर इस्माईली बन गए और उसके ऐसे भक्त एवं आज्ञाकारी हो गए, कि उसके इशारे पर सदा अपने प्राण निछावर करने को भी प्रस्तुत रहते थे। परन्तु इतना ही आना ही हसन का अभीष्ट नहीं था। वह तो यही चाहता था, कि दिग्-दिगंत में इस्माईली मत का प्रकाश फैल जावे और इस्माईली उपदेशक डंके की चोट पर अपने मत का प्रचार कर सकें। दुर्ग-निवासियों को अपने अनुकूल देख हसन का हौसला भी बढ़ता जाता था, इसलिए अब उसने इस्माईली-मत क्षेत्र और भी विशाल करने के लिए कमर कसी। परन्तु यह कार्य अब भी पहले के समान असंभव था। चारों ओर उसी प्रकार इस्लाम की तूती बोल रही थी। क्या सुन्नी और क्या शिया, सभी मुसलमान इस्माईली मत के कट्टर शत्रु थे। मुसलमान शासक और मौलवी-मुल्ले किसी इस्माईली को फूटी आँखों भी न देखना चाहते थे। इस्माईली मत के कितने ही सिद्धांत क़ुरान-शरीफ़ और शरियत के विरुद्ध थे, अतः मौलवी-मुल्ले सहज ही इस्माईली-मत का खंडन कर जनता को वशीभूत कर लेते थे। अलमौत का राज्य अल्प और शक्तिहीन था, ऐसी दशा में वह खुल्लम-खुल्ला अपने विरोधियों का सामना भी नहीं कर सकता था। तब चारों ओर इस्माईली-मत का बोल-बाला कैसे हो सकेगा, अब हसन इसी उधेड़-बुन में पड़ गया।

हसन ने सोचा, कि केवल धर्म-भावना से प्रेरित होकर कर्मक्षेत्र में अवतीर्ण होनेवाले इस्माईली ही मेरा उद्देश्य पूर्ण नहीं कर सकते। आपत्तियाँ आने पर उनकी धर्म-भावना कुंठित हो सकती है। रुपए-पैसे के लालच से कार्य करनेवाले तो और भी असफल हो सकते हैं। यदि मैं अपने कार्यकर्त्ताओं के सामने कोई ऐसा आकर्षण उपस्थित कर सकूँ, जिसके मोह में पड़कर वे हज़ार विघ्न-बाधाएँ आने पर भी—प्राण-संकट देख-कर भी—पश्चात्पद न हो सकें, तब बड़ी आसानी से मेरा उद्देश्य सिद्ध हो सकता है। ऐसा कौन सा आकर्षण है, जिसके लोभ में मनुष्य एक बारगी अंधा हो जाय, बुद्धि-विवेक को त्याग दे, और प्राणों की परवा भी न करे? जिस क़ुरानशरीफ़ के विरुद्ध हसन ने कमर कसी थी, वही हसन को यह उपाय बतलाने में समर्थ हुई। हसन ने क़ुरानशरीफ़ का पाठ किया और उसमें उसे अपनी अभीष्ट-साधना की युक्ति प्राप्त हो गई।

हसन की बुद्धि बड़ी ही प्रखर थी। आजतक संसार

में हज़ारों धर्म-प्रचारक हो गए हैं, जिन्होंने बड़े ही ज्ञान-ध्यान और परिश्रम से अपने मतों का प्रचार किया है, पर हसन ने अपनी प्रखर बुद्धि से धर्म-प्रचार की जैसी सुन्दर, सरल, प्रभावशालिनी और सफल युक्ति ढूँढ़ निकाली, वैसी और कोई नहीं निकाल सका। हसन के उस कृत्य की स्मृति से आज भी बुद्धि चकित हो जाती है, दाँतों तले उँगली दबा आश्चर्यान्वित होना पड़ता और बरबस उसकी प्रशंसा करनी पड़ती है। हसन की दृष्टि क़ुरानशरीफ़ में वर्णित स्वर्ग पर पड़ी। उसने सोचा, मनुष्य के लिए इससे उत्कृष्ट आकर्षण और क्या हो सकता है? यदि उसके सामने मूर्त्तिमान् सजीव स्वर्ग का आकर्षण उपस्थित कर दिया जाय, तो वह उसकी प्राप्ति के लिए कौन-सा प्रयत्न बाक़ी छोड़ेगा? तब मैं भी क्यों न एक कृत्रिम स्वर्ग की रचना कर डालूँ? यदि प्रयत्न में सफल होगया, तब क्या कहना? फिर इस्माईली-मत की प्रबल धारा के सामने कौन माई का लाल खड़ा रह सकेगा? बस, हसन कृत्रिम स्वर्ग की रचना करने में शीघ्रता से तत्पर हो गया।

हसन ने बड़ी बारीकी से अलमौत की पहाड़ियों का निरीक्षण किया। क़िले के पास ही उसे एक भारी मैदान मिल गया, जिसके चारों ओर बड़ी-बड़ी ऊँची सुन्दर और सुहावनी पहाड़ियाँ थीं। ये पर्वत-मालाएँ आपस में इस प्रकार सटी हुई थीं, कि बाहर से मैदान में आने के लिए कहीं भी तिल भर स्थान न था। मैदान में जहाँ-तहाँ लता-गुल्म से आच्छादित हरी-भरी कुंजें थीं और निर्मल नीर से भरे हुए पहाड़ी चश्मे कल-कल ध्वनि करते हुए बह रहे थे। पर्वत-मालाओं से परिवेष्टित यह लह-लहाता हुआ मैदान मानो विधाता ने इनकी अभिलाषा-पूर्ति के लिए ही निर्मित कर रखा था। हसन उसकी सुहावनी शोभा देख मुग्ध हो गया, और उसने उसी में अपने इच्छित स्वर्ग की स्थापना करने का निश्चय किया। हसन ने उसमें बड़ी-ही योग्यता से एक सुविस्तृत और अत्यन्त सुन्दर उद्यान की रचना की। स्थान-स्थान पर लहराती हुई नहरें तैयार की गईं, जिनमें दिन-रात अबाध-गति से निर्मल नीर बहता रहता था। फ़व्वारे भी एक-से-एक सुन्दर और अनूठे बनाए गए थे, जिनमें अनन्त जल-कण निकल-निकल कर वहाँ की शीतल वायु को और भी शीतल बनाया करते थे। लाखों रुपए व्यय कर वहाँ ऐसे-ऐसे भवन बनाये गये थे, जिनकी सुन्दरता देखते ही बनती थी। उन पर ऐसी सुनहली और रुपहली पालिश की गई थी, कि अँधेरी रात में भी वे जगर-मगर हुआ करते थे, उन्हें देखनेवाला यही समझता था कि ये सोने-चाँदी के मेल से ही निर्मित किये गये हैं। निदान वह वाटिका इतनी सुन्दरता से बनाई तथा सजाई गई थी कि जिसकी कल्पना करना भी असंभव है। मृत्युलोक में ऐसे दृश्य की संभावना ही क्या, ऐसे दृश्य तो स्वर्ग में ही हो सकते हैं—दर्शक के मन पर यह बात तत्काल ही जम जाती थी। हसन इतना करके ही शान्त नहीं हुआ। उसकी इच्छा तो मुसलमानों के विश्वास के अनुकूल पूर्णतया स्वर्ग निर्मित करने की थी। अतः उसने बाग़ में ऐसी नहरें भी तैयार कराईं, जिनमें स्वादिष्ट दूध, मधु और शराब की धाराएँ भी निरन्तर प्रवाहित होती रहती थीं। जब वह इतना कर चुका, तब उसे हूरों और गिलमानों का जमघट तैयार करने की सूझी। इसलिए वहाँ सुन्दर-से-सुन्दर रमणियाँ तथा अल्पायु बालक एक बड़ी संख्या में एकत्र किये गये। हसन के ज़बरदस्त धार्मिक और स्वर्गीय प्रलोभनों ने सहज ही उनकी वृत्तियाँ अपने वश में कर लीं। उन्हें ऐसी शिक्षा दी गई, जैसी कि स्वर्गीय हूरों और गिलमानों को अपेक्षित होनी चाहिए। तदनुसार ही उनका आचरण भी हो, इसकी पूर्ण चेष्टा की गई और इसमें हसन को यथेष्ट सफलता प्राप्त हो गई। स्वर्ग-रचना का यह कार्य ऐसे पोशीदा तौर से किया गया था, कि उसका भेद सिवा हसन के और कोई भी न जान सका।

स्वर्ग-रचना का कार्य समाप्त हो जाने के बाद हसन अपने यथार्थ उद्देश्य की पूर्ति के लिए तत्पर हुआ। अब उसकी इच्छा-पूर्ति में कुछ विघ्न तो था ही नहीं, अतः वह द्रुतगति से अपने उद्देश के मार्ग पर गमन करने लगा। जो नवीन आदमी हसन के सामने आता, उसे ही वह अपना चमत्कार दिखला अपना दृढ़ अनु-यायी एवं अन्ध-भक्त बना लेता। हसन उससे कहता—देखो, मैं बहुत जल्दी तुम्हें इसी शरीर से स्वर्ग भेजूँगा। यदि वह आदमी कुछ चालाक होता, या उसे हसन के कथन में शंका प्रतीत होती, तो हसन उससे कुछ समय तक व्रत, उपवास और ईश्वर-प्रार्थना करवाता रहता, जिससे उसके हृदय में विश्वास उत्पन्न हो जाय। तब

एक दिन वह उसे सहसा हशीश (भंग के रस से बनी हुई एक मादक वस्तु) पिलाकर बेसुध कर देता और हसन के विश्वासपात्र आदमी उसे उठाकर उक्त उद्यान में रख आते। जब वह आदमी होश में आता, तब एकाएक अपने को ऐसे सुन्दर स्थान में देख उसके आश्चर्य का ठिकाना न रहता। इस स्थान में उस मनुष्य पर आनंद का इतना अधिक बोझ डाल दिया जाता था कि वह अपने अस्तित्व से ही विस्मृत हो जाता था। वहाँ का अपूर्व वैभव, मकानों की अनोखी एवं चमत्कारी सजावट, पुष्प-वाटिकाओं का मनोहारी सौंदर्य, अगणित षोडशी युवतियों का प्रेम, उनका अत्यंत रमणीय रूप-लावण्य, उनके नाज़-नख़रे, उनकी अपूर्व वेष-भूषा एवं उनका मनोहर गाना-बजाना, गिलमानों का वह आज्ञा-पालन, वहाँ के अत्यन्त सुस्वादु भोजन, पुष्पों तथा इत्रों की मस्तानी सुगंधि आदि विचित्रताएँ देख-सुन आगंतुक यही समझता था कि निःसंदेह यह स्वर्ग ही है। उसे वहाँ इस तरह रक्खा जाता था कि वह वहाँ की प्रत्येक वस्तु को ईश्वरीय समझता था। जीवन सुख की ऐसी आकर्षक सामग्री के मध्य मनुष्य यदि अपना आपा भूल जाय, तो स्वाभाविक ही है। साधारण मनुष्य, बादशाहों को भी दुर्लभ स्थान का अधिकार पाकर, आनंद की ऐसी अटूट वर्षा की बहार देखकर अपना अस्तित्व न भूल जाय, यह असंभव है।

विलास और वैभव की गोद में अठखेलियाँ करते-करते कुछ दिन बाद वह आदमी सहसा एक दिन देखता था कि वह शाह साहब के सामने ही बैठा हुआ है। स्वर्ग से एकाएक मृत्युलोक में आ जाने के कारण उसकी अंतरात्मा क्षुब्ध हो उठती, बुद्धि और विवेक को तिलांजलि दे, वह मारे दुःख के अधीर हो उठता और हसन से प्रार्थना करता—ए-ए अर्श के शाहंशाह! मुझसे ऐसी क्या ख़ता बन पड़ी, जो मुझ पर आपका यह क़हर बरस पड़ा? मैं अब इस दुनियाए-फ़ानी में नहीं रहना चाहता। मैं अब बिहिश्त में रहकर ही अपनी ज़िंदगी के दिन बिताना चाहता हूँ। मुझ पर मिहरबानी करो। मुझे वहीं भेज दो। तब हसन उसे दिलासा देकर कहता था—"बेटा! चिंता न करो, तुम्हें ज़रूर बिहिश्त नसीब होगा। अगर तुम सचमुच बिहिश्त चाहते हो, तो ख़ुदा-इ-पाक के भेजे हुए इस इस्माईली-मत के फ़ारनू दीक्षित बन जाओ। ख़ुद पवित्र बनो और दुनिया को पवित्र बनाओ। गुरु की आज्ञा मानते हुए स्वधर्म का प्रचार करो। स्वधर्म का प्रचार करने में हज़ार विघ्न-बाधाएँ आवें, तो भी पीछे पैर न हटाओ—अधिक क्या, ऐसा करते समय तुम्हें अपने प्राण भी त्यागना पड़े, तो कुछ चिंता नहीं। विधर्मी को जैसे बने, अपने धर्म में ले आओ, यदि वह तुम्हारे धर्म की दीक्षा न लेवे, तो उसे मार डालने में भी कोई पाप नहीं। तुम्हारे सहधर्मियों की संख्या बढ़े, विधर्मियों की संख्या घटे, यही ख़ुदा की और मेरी इच्छा है। यदि तुम उनकी इच्छा का पालन करोगे, तो वे तुम पर प्रसन्न होंगे और तुम्हें आशीर्वाद देंगे। बेटा, फिर तुम स्वयं देखोगे कि समय आने पर तुम्हें कल्पांत तक के लिये स्वर्ग का अधिकार प्राप्त होगा।" कितना प्रबल प्रलोभन था। इस प्रलोभन की मोहिनी माया में आबद्ध हो, मनुष्य एक प्रकार से माया-मोह में मग्न-सा हो जाता था। उसके सामने केवल एक यही लक्ष्य रहता था—गुरु की आज्ञा पालन कर अनंत स्वर्ग का अधिकार प्राप्त करना। इस अपूर्व लोभ के वशीभूत हो, हसन के मुरीद तन, मन और धन से इस्माईली-मत का प्रचार करने लगे। हज़ार विघ्न-बाधाएँ आने पर भी वे अपने मार्ग पर आगे बढ़ते थे। कठिन-से-कठिन परिश्रम करना और प्राणों को भी संकट में डाल देना, उनका प्रधान कर्तव्य हो गया था। इतना ही नहीं, हसन की आज्ञा से वे धर्म, समाज और राज्य के विरुद्ध जघन्य से-जघन्य कार्य करने पर भी उतारू रहते थे। और तो क्या, धार्मिक अंध-विश्वास में फँसे हुए हसन के वे मुरीद, उसके इशारे पर हँसते-हँसते अपने प्राण भी निछावर कर देते थे। एक बार शाम का बादशाह हसन से मिलने आया। जब वह उसके साथ घूम रहा था, तो हसन ने उससे कहा—मेरे अनुयायी जिस प्रकार मेरी आज्ञा का पालन करते हैं, वैसे आज्ञा-पालक संसार के किसी भी बादशाह या धर्माचार्य को प्राप्त नहीं हो सकते। इसके बाद उसने एक ऊँची मीनार पर खड़े हुए दो लड़कों की ओर इशारा किया। उसका इशारा पाते ही लड़कों ने बिना किसी हिचकिचाहट के मीनार से कूद कर अपने प्राण त्याग दिये। हसन का यह प्रभाव—यह आतंक देख, बादशाह सन्न रह गया। उसने कहा—जिसे ऐसे सेवक प्राप्त हैं, वह धन्य है और उसका सामना संसार की कोई शक्ति नहीं कर सकती। अस्तु—

स्वर्ग की सैर किए हुए इस्माईली बड़े ज़ोर-शोर से अपने मत का प्रचार करते थे। उनके मुख से उस स्वर्ग का अनूठा वर्णन और उसे प्राप्त करने का उपाय सुन अगणित आदमी हसन के मुरीद हो, उसकी आज्ञा मान, किसी भी प्रकार का कार्य हो करने के लिये समुपस्थित हो जाते थे। इस उपाय से बने हुए इस्माईली लोगों को यह दृढ़ विश्वास हो जाता था कि हमारा नबी ख़ुदा का सच्चा प्रतिनिधि है। उसकी आज्ञा से हम चाहे भले काम करें—चाहे बुरे, हमे पाप नहीं लगेगा और हम स्वर्ग-सुखों के अधिकारी हो सकेंगे। इस मोहिनी माया मे पड़कर वे हसन की आज्ञा से अपने माता, पिता, भाई, बहिन, मित्र, गुरु, बादशाह आदि सभी को निःसंकोच मार डालते थे। ऐसे जघन्य कृत्य वे जैसे बनता—प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रीति से—पूर्ण करके ही दम लेते थे। ये लोग नंबर एक के विश्वासघाती होते थे। बड़े-बड़े हाकिमों या बादशाहों को प्रत्यक्ष रीति से मार डालना असंभव ही था। अतः ये लोग उनके रसोइयों से मेल कर उन्हें ज़हर दिलवा देते या उनके यहाँ नौकरी कर उन्हें सोते में या छिप कर मार डालते थे। जो शासक, बादशाह या विद्वान् इस्माईली-धर्म के विरुद्ध होता या उससे इस्माईली-सम्प्रदाय को हानि पहुँचने की ज़रा भी शंका होती, वह एक दिन ज़रूर इस्माईली छुरी के नीचे बलिदान हो जाता था। इस प्रकार न-जाने कितने विद्वान्, मौलवी और उलमा, वज़ीर, बादशाह, शाहज़ादे और शासक इस्माईली छुरी के शिकार हो गए। कहते है कि हसन ने अपने पूर्व आश्रयदाता सुल्तान मलिकशाह और उपकारी मित्र, परन्तु पीछे से कृत-शत्रु, निज़ामुलमुल्क तूसी को भी मरवा डाला था। निदान बड़े बड़े विद्वानों और शक्तिशालियों ने हसन का लोहा मान लिया। चारों ओर इस्माईली आतंक छा गया। हसन या उसके धर्म के विरुद्ध क्या प्रत्यक्ष मे क्या अप्रत्यक्ष मे किसी की ज़बान में ताक़त न रही। डंके की चोट पर इस्माईली-मत का प्रचार होने लगा। दिन-दिन हसन के अनुयायियों की संख्या-वृद्धि होती गई और शीघ्र ही हसन ने वह दिन देख लिया कि उसके अधिकार में अलमौत के सिवा और भी अनेक दुर्ग हैं और वह लाखों इस्माईलियों का बादशाह, गुरु तथा नबी है।

लोग सोचेंगे कि इस प्रकार के छल-प्रपंच और रक्त-पात से हसन को क्या लाभ था? अवश्य ही वह बड़ा स्वार्थी और पैशाचिक वृत्ति का आदमी था; परंतु ऐसा ख़याल करते समय, उसके कार्य को उसी की दृष्टि से देखना चाहिए तथा यह भी विचार करना चाहिए कि उस समय हसन के चारों ओर का वातावरण कैसा था? और कैसी परिस्थिति में पड़कर वह क्या कर सकता था। मनुष्यों के कृत्य बहुधा परिस्थिति पर ही अवलंबित रहते हैं। हसन के हृदय में आरंभ से ही क़ुरानशरीफ़ और इस्लाम के प्रति श्रद्धा का अभाव था। नव-संशोधित इस्माईली-मत पर उसकी यथार्थ श्रद्धा थी। उसकी एकांत कामना थी कि विश्व मे मेरे प्यारे धर्म का ख़ूब प्रचार हो। परंतु इस्लाम के दृढ़ अनुयायी उसकी उद्देश्य-पूर्ति में मूर्तिमान् बाधक थे। इस्लाम के अनुयायी बहुधा आरंभ से ही कट्टर होते आए हैं। वास्तव में इस्लाम बुरा नहीं है, बुरे वे मौलवी-मुल्ले हैं, जो अपने धर्म की प्रशंसा के सिवा दूसरे धर्म की अच्छी-से-अच्छी बात भी नहीं सुनना चाहते। मुसलमानों की इसी कट्टरता के कारण हसन उनका और उनके धर्म का शत्रु बन बैठा। आज मुसलमान शक्ति-हीन हो गए हैं, तब भी दूसरे के धर्म की प्रशंसा या अपने धर्म की ज़रा-सी समालोचना सुनकर उनके शरीर मे बिजली कौंध जाती है और वे ख़ून-ख़राबा करने को प्रस्तुत हो जाते हैं। तब तो वह समय उनके अखंड प्रताप का था—चारों ओर उनकी तूती बोल रही थी। ऐसे समय मे हसन अपने धर्म की प्रत्यक्ष चर्चा कर कैसे प्राण सुरक्षित रख सकता था? वह भी उसी इस्लाम के परमाणुओं से बनाया गया था और तदनुसार ही उसकी वृत्तियाँ भी थीं। वह अपने धर्म का कट्टर अनुयायी था और चाहता था कि मेरे धर्म का प्रचार हो। ऐसे कट्टर धर्मानुयायी बहुधा पागल-जैसे हो जाते हैं और सनक मे आकर उचित अनुचित का कुछ भी ख़याल न कर, मनमाने काम कर बैठते हैं। हसन ने भी ऐसा ही किया। यदि वह ऐसा न करता, तो उसे सफलता भी न मिलती और प्राणों से अलग हाथ धोने पड़ते। किसे गरज़ पड़ी थी, जो सेंत-मेंत मे निर्बल हसन का साथ दे। धर्म-समाजों और राज्य के विरुद्ध जघन्य-से-जघन्य पापाचार कर अपने प्राण जोखिम में डालता? इसी-

लिये हसन ने कृत्रिम स्वर्ग की आयोजना की, जिसकी बदौलत उसे प्राणों का मोह भी त्याग देनेवाले प्रचारक मिल गए। वास्तव में जिस धर्म को ऐसे थोड़े से ही प्रचारक प्राप्त हो जायँ, उसकी सफलता अनिवार्य है। और यदि इसलिये हसन के कारण अनंत हत्याकांड हुए, तो इसमें उसका दोष नहीं, हमारे विचार से उसका सारा उत्तरदायित्व मुसलमानों पर ही है। यदि वे शांति से—ठंडे हृदय से—उसकी बातें सुनते, उसके सामने मृत्यु का रूप लेकर खड़े न होते, भले ही उसकी बातें न मानते, तो शायद उसे ऐसे छल-प्रपंचों का आश्रय न लेना पड़ता।

हसन ने अपने अनुयायियों को कई श्रेणियों में बाँट रक्खा था। सबसे उच्च श्रेणी के लोग 'दाइल किबार' कहलाते थे। ये लोग उन स्थानों के शासक होते थे, जिन पर हसन का अधिकार था। दूसरी श्रेणी 'आमदायो' लोगों की थी। ये लोग 'दाइल किबार' की अधीनता में रहते थे। इन्हें सारे गुप्त भेदों और कार्यों का पता रहता था। ये प्रचार का कार्य प्रत्येक उचित और अनुचित रूप से करते थे। तीसरी श्रेणी के लोग 'रफ़ीक़' कहलाते और उन्नति करते करते उच्च श्रेणियों में प्रवेश करते थे। चौथी और सबसे प्रचंड श्रेणी—'फ़िदाई' लोगों की थी। इस श्रेणी में जवान मज़बूत लोग ही रक्खे जाते थे। इसी श्रेणी की बदौलत चारों ओर हसन का आतंक छा गया था। ये ही लोग हसन की आज्ञा पालनार्थ जघन्य-से-जघन्य कार्य कर डालते थे। इन लोगों ने अपने प्राण की ममता को हृदय में स्थान ही न दिया था। इन्होंने हसन तथा इस्माईली के प्रत्येक शत्रु का बड़ी बेदर्दी से मृत्यु के घाट उतार दिया था। इसी श्रेणी पर 'इस्माईली' का सारा प्रताप और जीवन अवलंबित था। पाँचवीं श्रेणी 'लासिक' लोगों की थी। इन्हें शिक्षा देकर आगामी श्रेणियों के लिये तैयार किया जाता था। छठीं श्रेणी उम्मती लोगों की थी। इसमें इस्माईली के अनुयायी सर्वसाधारण थे।

हसन अलमौत के क़िले में पूरे ३५ वर्ष तक रहकर इस्माईली-मत का प्रचार करने में प्रयत्नशील रहा। कहते हैं कि इस बीच में वह कभी क़िले से बाहर नहीं निकला, भीतर बैठा-बैठा ही धर्म-प्रचार की नवीन-नवीन युक्तियाँ सोचता रहता था। इस्माईली-धर्म की उन्नति और लोगों को उसमें दीक्षित करने के लिये, वह यहाँ तक तल्लीन हुआ कि संसार की सभी बातें भूल गया। हसन का जीवन कर्तव्य-पालन का सजीव चित्र है। इसलिये उसने अपने बड़े-से-बड़े हानि-लाभ, परिश्रम और कष्ट तथा सुख-दुख की परवा भी नहीं की। कर्तव्य-पालन के लिये उसने संसार की सबसे अमूल्य और प्रिय वस्तु सन्तान का भी मोह न किया। इस्माईली-धर्म का उल्लंघन करने के कारण उसने अपने दो पुत्रों को यहाँ तक घोर दंड दिया कि उनके प्राण ही चल बसे। इनमें से एक ने किसी इस्माईली उपदेशक की हत्या कर डाली थी और दूसरे ने सुरा-पान किया था। हसन की इस निःस्पृहता और न्याय-प्रियता का इस्माईली-संसार पर बड़ा सुंदर प्रभाव पड़ा। कहते हैं कि अँगरेज़ी-भाषा के Assassin (हत्याकारी) शब्द की उत्पत्ति हसन के आज्ञानुवर्ती अनुयायियों के कुकृत्यों के कारण ही हुई है। जो कुछ भी हो, इसमें संदेह नहीं कि हसन महापुरुष था। उसने अपने ही जीवन में अपने धर्म को फलता-फूलता देखा। लाखों आदमी उसके अनुयायी बन गए और उनकी सहायता से उसने अपने तथा अपने धर्म के शत्रुओं का पूर्ण पराभव किया। यह सब उसकी अपूर्व कार्य-क्षमता, अटूट बुद्धिबल और अदम्य साहस का परिणाम था। यह साधारण कार्य नहीं था और ऐसा कार्य संसार के अनेक असाधारण मस्तिष्क भी नहीं कर सके। भले ही अनेक समालोचक उसके कार्य को घृणा की दृष्टि से देखा करें; पर इसमें संदेह नहीं कि हसन एक गौरवशाली महापुरुष था।

सन् ११२४ ई० में, यह क्रांतिलों का बादशाह 'शेखुल जबल' (पहाड़ का नेता) या 'नबी-उल्-हलाकत' (हत्या का दूत) परलोक-वासी हो गया। पर उसकी स्थापित की हुई संस्था ज्यों की-त्यों क़ायम रही। दिन-दिन उसका ज़ोर बढ़ता ही गया। लगभग १७५ वर्ष तक उसका भीषण आतंक छाया रहा। इस बीच में 'फ़िदाई' लोगों ने वह ग़ज़ब ढाया कि चारों ओर त्राहि-त्राहि की पुकार मच गई। उन्होंने ऐसी-ऐसी भीषण और पाशविक हत्याएँ कीं कि उनका वर्णन पढ़कर आज भी रोमांच हो आते हैं—कलेजा दहल उठता है। अन्य धर्म के अनुयायियों के जीवन का कोई मूल्य ही न रहा—सदा उन पर इस्माईली-ख़ंजर

खटका रहता था। आगे चलकर ये 'फ़िदाई' लोग भाड़े पर भी हत्याएँ करने लगे। सारे अत्याचार के मनुष्य ऊब उठे। किसी भी बात की अति बुरी होती है—फिर ऐसे हत्याकारी अत्याचार का तो कहना ही क्या! अत्याचार की जड़ पाताल तक प्रवेश नहीं कर पाती! समय आता है और अनायास ही अत्याचार और अत्याचारियों का उन्मूलन हो जाता है। अलमौत का अंतिम बादशाह रुकनुद्दीन खुरशाह हुआ। उसके समय में लोग 'इस्माईली-अत्याचार' से इतने त्रस्त हुए कि वे हमेशा इस बात की चेष्टा में रहने लगे कि कब इस अत्याचार का अंत हो। कितनी चेष्टाएँ की गईं—कितने ही हमले किए गए, पर अलमौत के विशाल और सुदृढ़ वक्षःस्थल पर किसी का ज़ोर न चला। इसी बीच में प्रसिद्ध तातारी बादशाह चंगेज़ख़ाँ 'फ़िदाई' लोगों का शिकार हो गया। सारे तातार देश में आग लग गई। चंगेज़ख़ाँ के शाहज़ादे हलाकूख़ाँ ने प्रतिज्ञा की कि जब तक मैं अलमौत को धूल में न मिला दूँगा, आराम को हराम समझूँगा। बस, उसने अनंत सेना लेकर अलमौत पर धावा बोल दिया। परंतु अलमौत पर उसका कुछ भी ज़ोर न चला। तब प्रतिज्ञा-वीर हलाकू ने अलमौत के चारो ओर घेरा डाल दिया। घोर आपदाओं का सामना करते हुए भी उसने वहाँ से हटने का नाम न लिया। तीन वर्ष तक वह बराबर घेरा डाले पड़ा रहा। अंत में अलमौत की सारी रसद चुक गई। दुर्ग-वासी दाने-दाने के लिये मोहताज हो गए। आत्मसमर्पण करने के सिवा दूसरा उपाय ही न रह गया। तब दुर्ग का द्वार खोल दिया गया। हलाकू की विजयी सेना ने घोर जय-ध्वनि करते हुए अलमौत में प्रवेश किया। हलाकू की सेना ने बयान से बाहर बर्बरता से काम लिया। दुर्ग के अंदर जितने भी निवासी थे—सब तलवार के घाट उतार दिए गए। क़िला भी ज़मींदोज़ कर दिया गया। इसके बाद उस सुंदर स्वर्ग की बारी आई। वे सुंदर भव्य भवन, वे हरी-भरी वाटिकाएँ, वे नहरें, वे अनूठे फ़व्वारे, सब संहार की वेदी पर होम दिए गए—तातारियों ने उनकी ईंट-से-ईंट बजा दी। वे सुंदर रमणियाँ, जो स्वर्ग की हूरों से किसी प्रकार कम न थीं, जिनका अनूठा रूप लावण्य बड़े-बड़े बादशाहों को भी दुर्लभ था, जिनके मोहक हाव-भाव देखकर मनुष्य को अपने अस्तित्व तक की स्मृति न रहती थी; जिनके मधुर गान और रसमयी मधुर बातें सुनकर बड़े-बड़े ज्ञानी और बुद्धिमान् विह्वल हो जाते थे, क़ैद कर दासियाँ बनाई गईं। मनुष्य की बुद्धि पर परदा डाल देनेवाले सुंदर गिलमान तलवार की धार पर उतार दिये गये। तातारियों ने उस अपूर्व स्वर्ग की एक भी स्मृति शेष न छोड़ी—सभी कुछ धूलिसात् कर दिया। जहाँ आनंद साक्षात् विराजमान था, जहाँ विलास और वैभव की साकार उपासना होती थी, जहाँ प्रेमी-जन आत्म-विस्मृत होकर सुख के कोमल एवं मधुर अंक में क्रीड़ाएँ करते थे, वहाँ पलक मारते दैवी माया के समान कुछ भी शेष न रह गया—रह गया वही बीहड़ वन और हिंसक पशुओं का रोमांचकारी चीत्कार! समय की भी कैसी अनोखी लीला है।

इस प्रकार सन् १२५८ ई० में, हसन के सारे उद्योग, प्रयत्न और चातुर्य का पूर्णतया नाश हो गया, पर इस्माईली-धर्म जिसके लिये हसन ने इतना विशद आयोजन किया था, अमर हो गया। हाँ, उसका वैसा ज़ोर न रहा और हत्या की वह प्रबल प्रवृत्ति भी धीरे-धीरे नष्ट हो गई। अलमौत के बादशाहों ने इस्माईली-मत का प्रचार करने के लिये भारत में भी उपदेशक भेजे थे और उन्होंने अपना कार्य अपूर्व कौशल से संपादित किया था। आज भी बंबई-प्रांत में लाखों इस्माईली हैं। ये 'खोजा' कहलाते और बहुधा व्यवसाय करते हैं। इनमें बहुत लोग तो बड़े ही धनवान् हैं। सुप्रसिद्ध हिज़-हाइनेस सर आग़ाख़ाँ साहब आजकल इस्माईली-संप्रदाय के आचार्य हैं। सुनते हैं, आप अलमौत के बादशाहों के ही वंशज हैं।

यह लेख लिखने में 'मनोरमा' में प्रकाशित मौलवी महेशप्रसादजी आलिम-फ़ाज़िल के एक लेख से सहायता ली गई है। तदर्थ लेखक उनका आभारी है। †

† हसन की इस जीवनी से मालूम होता है कि वह इस्लाम का प्रबल द्रोही था और उसने सच्चे इस्लाम को नष्ट करने के लिये पूर्णतया प्रयत्न भी किया था। आश्चर्य की बात है कि आज ख़्वाजा हसन निज़ामी साहब उसी हसन का अनुकरण करने की चेष्टा कर रहे हैं और मुसलमान उनका साथ देते नज़र आते हैं। यद्यपि हसन के आदर्श की पुनरावृत्ति होना, इस युग में असंभव ही है—लेखक।

वेश्या की बेटी

वेश्या की लड़की थी। नाम था वीणा। शिक्षा भी जैसी होनी चाहिए, वैसी ही हुई थी। उस्तादजी लखनऊ से बुलाए गए थे। वह फ़ारसी के आलिम थे। संस्कृत के मौक़े के कुछ श्लोक जानते थे और अँगरेज़ी भी ख़ूब आसानी से बोल लेते थे। पश्चिमी कई ज़बानों के गीत और उनके अदा करने के ढंग भी ख़ूब जानते थे।

ऐसे अनुभवी और योग्य उस्ताद की छत्र-छाया में वीणा की शिक्षा सुचारु रूप से समाप्त हुई। शिष्या, गुरु से भी आगे निकल गई। गुरु में सब कुछ होते हुए भी उन स्त्री-सुलभ गुणों का अभाव था, जिनको पाकर वीणा के गुरु प्रदत्त गुण एक अद्भुत माधुर्य और कोमलता से प्लावित हो गए थे। माँ की—पिता की नहीं—आशा की वल्लरी, अमीरों के मनचले लड़कों के प्रेम की संजीवन बूटी, रूप सुधा की प्याली, रईसों की मजलिस की आनंद मय ज्योति, और मोहनकला की रानी, वीणा ने अपने इस अतुल ऐश्वर्य के साथ तारुण्य के प्रथम सोपान पर पाँव रखा।

नगर के शोहदों मे, अमीरों के लड़कों मे, संगीत-विद्या के प्रेमियों मे और स्पर्धी समवयस्क वेश्या-पुत्रियों में नित्य प्रति वीणा के विषय में वाद-विवाद होना आरंभ हुआ। शोहदे कहते—"कहो तो चिड़िया को उड़ा कर ऐसे जंगल में भेज दें कि फिर कोई माई का लाल पता न पावे।" रईसों के लड़के कहते—"ज़रा कुछ और माल मत्ता हो जाने दो, फिर तो वह आँख उठा कर देखेगी भी नहीं।" वेश्याएँ कहतीं—"इसने तो हमारी रोज़ी में ख़लल डाल दिया, बाबू लोग इधर ताकते भी नहीं।" किंतु इस वाद-विवाद और गुप्त मंत्रणा का प्रभाव वीणा की ख्याति में कुछ भी व्याघात न कर सका और उसकी सौभाग्यश्री दिनोदिन बढ़ने लगी।

(२)

बनारस में कई दिनों से एक नई थिएट्रिकल कंपनी आई है। लोग कहते हैं कि कुछ दिन हुए यह कंपनी एक बार और आई थी और यहाँ से पचासों हज़ार रुपए लूट ले गई। तमाशे इसके लाजवाब होते हैं। पर्दे भी कितने अच्छे हैं! रोज़ रोज़ नए ही नए पर्दे निकालती है। इसके ट्रांसफॉरमेशन (Transformation) सीन तो गज़ब के होते हैं। पोशाकें भी क्या ही अच्छी हैं! लाल और नीले मख़मल पर ज़री और कलाबत्तू के काम आँखों में चकाचौंध पैदा करते हैं। मौक़े के सब सामान मौजूद हैं। शाम के वक़्त 'बाँस का फाटक' 'चौक' से भी अधिक गुलज़ार हो जाता है। मोटर, फिटन, लैंडो और एक्कों का ताँता-सा बँध जाता है। कितनों का तो दिन को सोना और रात को थिएटर देखना ही काम हो गया है।

वस्तुतः थिएटर देखना एक बड़ा भारी व्यसन है। जिसको एक बार चसका पड़ गया, उसके लिये छुटकारे का उपाय बड़ा कठिन है। वीणा नित्यप्रति थिएटर देखने जाती है। कई बार उसकी माँ ने मना भी किया; पर वह मानती नहीं। कहती है—"दो चार दिन तो और कंपनी ठहरेगी ही, ज़रा देख लेने दो; न-जाने कब आवे। देखने से ज़रा जी बहलता है।"

जिस दिन से वीणा थिएटर में जाने लगी थी, उस दिन से कंपनी की आमदनी और बढ़ गई। स्पेशल क्लास में सीट की कमी पड़ने लगी। कभी-कभी तो बैठने के लिये उठा-पटक की नौबत आ जाती थी। देखनेवाले घंटों पहले से दख़ल जमा लेते थे।

स्पेशल क्लास में वीणा के साथ बैठनेवाले ही कह सकेंगे कि उन्हें इस थोड़े समय के लिये कभी-कभी दूर से वीणा की तरफ़ एक नज़र देखने में कौन-सा मज़ा आता है।

एक दिन कंपनी ने 'शकुंतला' खेला। इस नाटक में जिस प्रकार दुष्यंत और शकुंतला मुख्य पात्र हैं, उसी प्रकार इस कंपनी में दुष्यंत और शकुंतला के पार्ट खेलनेवाले मुख्य ऐक्टर्स हैं। दोनों के नाट्य बड़े प्रशंसनीय होते हैं। भाव-भंगी में तो इन्हें कमाल हासिल है। उस दिन शकुंतला का पार्ट ऐसा उतरा कि जब-जब वह रंग-मंच पर आई नाट्य-भूमि नीरवता और निस्तब्धता का साम्राज्य हो गई। ऐसी शांति छा गई कि एक साधारण सुई भी गिरे तो आवाज़ सुन पड़े। सबकी टकटकी रंग-मंच पर थी। मुँह तो खुलता न था; परंतु हृदय भूरि-

दुष्यन्त और शकुंतला का पार्ट खेलनेवाले मुख्य ऐक्टर्स

भूरि प्रशंसा करता था। जब वह ऐक्ट ख़त्म हुआ और पर्दा गिरा, तो एक सज्जन ने अपने मित्र से कहा, जानते हो, शकुंतला का पार्ट खेलनेवाली एक वेश्या की लड़की है। इन लोगों ने इसकी मा के मर जाने पर इसे प्रलोभन देकर अपने यहाँ रख लिया। इसके न रहने पर कंपनी फीकी पड़ जायगी।

दूसरे सज्जन बोले—"तभी तो इसका गाना इतना बढ़िया होता है। उस दिन भई, मैं तो रोने लगा। साक्षात् 'उत्तरा' बन गई थी। विलाप सुनकर कलेजा मुँह को आ जाता था।"

इस पर फिर पहले सज्जन बोले—"उस दिन तुम थे, जिस दिन 'भक्त सूरदास' हुआ था? इसी ने चिंतामणि का पार्ट लिया था।"

दूसरे—"उस दिन तो नहीं था, परंतु 'सावित्री-सत्यवान' के दिन था। भई, उस दिन भी इस छोकरी ने कमाल किया था। तुम्हें कैसे मालूम हुआ कि यह वेश्या की लड़की है।"

पहले—"क्या मुझे सिर्फ़ यही मालूम है? और भी कितनी बातें मालूम हैं।"

दूसरे—"इसमें क्या संदेह, परंतु यह तो बताओ ये बातें तुम्हें मालूम कैसे हुईं?"

पहले—"यह लंबा आदमी जो फाटक पर बैठा है, उसका घर बंबई में हमारे सेठजी के घर से एकदम सटा हुआ है। वहीं एक दिन उनसे मिलने गया था और उनके पूछने पर सारी बातें बतलाईं। इस लड़की ने अभी तक अपनी शादी नहीं की है और मज़ा यह है कि ऐसी नाज़ुक जगह में रहती हुई भी अपनी रक्षा करती जाती है। इस कंपनी में दो-तीन और वेश्याएँ हैं, पर उन लोगों ने पात्रों में किसी-न-किसी से अपना संबंध कर लिया है।"

बातचीत यहीं समाप्त हुई। दूसरा ऐक्ट आरंभ हुआ। कई सीनों में शकुंतला रंग-मंच पर आई और अपने स्वर-माधुरी से सबको मुग्ध कर गई। इसी तरह नाटक समाप्त होने को आया। शकुंतला और दुष्यंत का संयोग हुआ। बालक भरत ने माँ-बाप के इस शुभ मिलन को थिरक-थिरक नाचकर और आनंदमय बना दिया।

खेल समाप्त होने पर सब लोग घर चले गए। सबके पीछे वीणा भी एक अज्ञात चिंता से चिंतित हो घर को चली।

(३)

३-४ वर्ष के बाद फिर एक बढ़िया थिएट्रिकल कंपनी काशी में आई। बीच में कितनी कंपनियाँ आई, परंतु उनमें कोई विशेषता न थी। भीड़ भी उनमें बहुत कम होती। जो एक बार देख लेता, फिर आने का नाम न लेता, और साथ ही उस पुरानी कंपनी को याद करता जो एक बार काशी के हृदय में अपना घर बना गई थी। कितने ही तमाशा देखनेवाले काशीवाले तो बराबर इस बात की टोह में रहते कि कब वह कंपनी आवेगी और इस समय वह कहाँ तमाशा दिखा रही है। कितने मन-चले तो उस कंपनी के लखनऊ और कानपूर आने पर वहाँ धमक पड़ते थे।

अभी आई हुई इस कंपनी ने भी काशी में वही रंग जमा दिया है। धीरे-धीरे इसकी प्रशंसा भी शहर-भर में फैलने लगी। तीन ही चार दिन के बाद इसमें अपार भीड़ होने लगी। विवश होकर कंपनी को कभी-कभी टिकट बेचना बंद करना पड़ता था। शनिश्चर और बुध के लिये तो दो दिन पहले से ही कुर्सियाँ रिज़र्व हो जाती थीं।

यों तो इसके सभी तमाशे एक-से-एक बढ़िया थे, किंतु कुछ को तो यह ऐसी खूबी से अदा करती थी कि मुँह से अनायास वाह-वाह की ध्वनि निकलने लगती थी।

एक दिन कंपनी ने 'फ़रहाद और शीरीं' खेला। शनिश्चर के दिन होने से स्थानीय स्कूल, कॉलेज तथा कचहरी के बहुत लोग आ गए थे। मुश्किल से कितनों को जगह मिली। कितने लोग तो वापस गये। सौभाग्य-वश उन दिनों अवध से एक नामी ताल्लुक़ेदार काशी आ गये थे। कंपनी की ख्याति सुनकर वे भी थिएटर देखने पहुँचे।

तमाशा आरंभ हुआ। सबकी आँखें स्टेज पर पहुँचीं। सिद्ध-हस्त एक्टर्स के अनुपम नाट्य देखकर किसी को किसी बात की सुधि न रही। स्टेज पर मौके की घटना होने पर भी, मित्रों को उस तरफ़ आकर्षित कर साथ-साथ मज़ा लेने की इच्छा को भी, लोगों ने दबा दिया। 'शीरीं' जब रंग-मंच पर पहुँची, तो रही-सही चेतनता भी जाती रही। अंग-स्फालन तक भी बंद हो गया। मालूम होता था कि थिएटर हॉल में तमाम पत्थर की मूर्तियाँ बैठी हैं। जब 'शीरीं' चली जाती, तो लोग उत्सुकतापूर्वक उस दृश्य की राह जोहते जिसमें 'शीरीं' रंग-मंच पर दीख पड़े। इस प्रकार तमाशे का अंत होने को आया। प्रेम-पंथ का पथिक बेचारा 'फ़रहाद' 'शीरीं' के पाने की आशा में अकाट्य पहाड़ को खुशी से काटने लगा। दर्शक वृंद इस प्रेमांध-कृत्य को दया और सहानुभूति की दृष्टि से देखने लगे। किसी की आँख बिना आँसू की न रही। जब 'फ़रहाद' ने 'शीरीं' के मर जाने की ग़लत ख़बर सुनकर तड़प-तड़प कर जान दे दी और 'शीरीं' ने भी 'फ़रहाद' का अनुकरण किया तो मातम छा गया। प्रेमी ने मेरे लिये प्राण त्याग दिए, यह सुनकर जिन अंतिम वाक्यों के साथ 'शीरीं' ने इस नश्वर शरीर को तिनके से भी तुच्छ समझकर ठुकराया, माता-पिता के स्नेह को तिलांजलि दिया और संसार के समग्र सुख-सौख्य और विलास-वैभव को त्याग दिया, उनका स्मरण कर कितने तो कई दिनों तक रोते रहे।

बाद का दृश्य तो अनुपम रहा। स्वर्ग में एक सुंदर और रमणीय वाटिका के भीतर एक मनोहर प्रासाद देख पड़ा, जिसमें वह युगल जोड़ी एक दूसरे को आलिंगन कर उस दिव्य सुख को लूट रही थी, जो संसार में बिलकुल अप्राप्य है।

ताल्लुक़ेदार बाबू राधारमणसिंह इस कंपनी पर न्योछावर हो गए और उस दिन से जितने दिन तक काशी में रहे, किसी दिन भी बिना थिएटर देखे नहीं रहे। उस दिनवाली 'शीरीं' कभी 'उत्तरा' के रूप में, कभी 'सावित्री' के रूप में, कभी 'चिंता' के रूप में प्रतिदिन रंगमंच पर आकर बाबू साहब के हृदय में थिएटर देखने की इच्छा को प्रबल करती रही।

(४)

उस दिन दोनों 'फ़रहाद' और 'शीरीं' के पार्ट खेलने-वाले स्वर्ग के उस मनोरम और विलास-सामग्री से सुसज्जित राज-प्रासाद में उच्च सिंहासन पर बैठकर चिर-वियोग के बाद परस्पर आलिंगन का स्वाँग जब दर्शक-वृंद को दिखा रहे थे और उनके हृदय में एक विचित्र भाव उत्पन्न कर रहे थे, उस समय उन दोनों का अंतर्हृदय भी एक दूसरे से मिल गया।

'शीरीं' का पार्ट लेनेवाली वही वीणा थी। माँ की आज्ञा का उल्लंघन कर वह इस थिएट्रिकल कंपनी में सम्मिलित हो गई थी। इधर कंपनी ने अपना सौभाग्य

माना कि उसे ऐसी शिक्षिता तथा योग्य ऐक्ट्रेस मिली, उधर वीणा ने इस कम्पनी में भर्ती होने के लिये परमेश्वर को धन्यवाद दिया और अपने को धन्य माना। वीणा ने अपना आदर्श उस पुरानी थिएटिकल कंपनी की शकुंतला बनी हुई वेश्या की पुत्री को माना था और उसकी भी यही इच्छा थी कि मैं भी आजन्म अविवाहिता रहूँ। कितने नाज़ुक समय में भी वह दृढ़ रही। मन के चंचल होने पर संयम से उसे ठीक कर लेती।

* * *

समय बहुत प्रबल है। कितने आदमी जीवन की कठिन-से-कठिन परीक्षा में उत्तीर्ण होकर भी एक साधारण मौक़े पर चूक जाते हैं और उसके लिये जन्म-भर पछताते हैं। कितने संयमी विषम परिस्थिति में भी अपनी रक्षा करते हुए सहज ही धोखा खा जाते हैं। ऐसी ही दशा वीणा की भी हुई। कितनी बार उसे इससे भी बढ़ कर प्रेम-सम्भाषण, प्रेम-मिलन, प्रेमालिङ्गन और प्रेम चुम्बन के स्वाँग रचने पड़े। परंतु उसका हृदय ज़रा भी विचलित न हुआ, पर उस दिन वह सहज ही में अपना दिल खो बैठी।

तमाशे का अंत होने पर जब वह अपने शयन-कक्ष में पहुँची, तो उसकी दशा विचित्र थी। वह शीघ्र ही उस अवसर को ढूँढने लगी, जब उसका अपने प्रेमी के साथ आलिंगन का झूठा स्वाँग न हो, प्रत्युत वस्तुतः वह एक पवित्र बंधन में बँधकर अपने प्रेमी से उस रूप में मिले। रात समाप्त हुई। प्रातःकाल हुआ। वीणा के इस आकस्मिक प्रेम की अँधियारी भी पुनः संयम के उजाले में लुप्तप्राय हुई। जिस प्रकार सूर्य की किरणें पहले तो कोमल मालूम होती हैं, परंतु जैसे-जैसे दिन बढ़ने लगता है, वैसे-वैसे उनमें रुखाई आने लगती है, उसी प्रकार वीणा का संयम दिन में पहले ही जैसा दृढ़ हो गया। मन में कहने लगी कि कितना शीघ्र मेरा पतन हो गया। श्रीपति में कल कौन ऐसी मोहिनी शक्ति आ गई, जो मुझे डिगा गई। व्यर्थ मेरी अक़्ल मारी गई। अब मैं ज़रा भी विचलित न होऊँगी।

दिन समाप्त हुआ। फिर रात्रि आई। आज भी वीणा रंग-मंच पर आई। श्रीपति से पहले सीन में ही देखा-देखी हुई। इसके बाद वीणा जब-जब रंग-मंच पर आई, उसकी मुद्रा, उसका स्वर, उसका नाट्य यही कह रहे थे कि वह यहाँ नहीं है।

(४)

राधारमणसिंह आजकल सदा थिएटर की ही चिन्ता में रहते थे। अमीर थे ही, रुपए की कमी थी ही नहीं, प्रतिदिन इष्टमित्रों के साथ ऑरचेस्ट्रा (orchestra) पर आ डटते। दूकानदार अपने अच्छे ग्राहक को शीघ्र पहचान लेता है और उसके साथ हिल-मिल भी जाता है। कंपनी के मैनेजर मिस्टर दयालजी भी अपने धनी मानी थिएटर-प्रेमी ग्राहक को अच्छी तरह जानने लगे थे। बाबू साहब दिन में भी कभी-कभी मैनेजर साहब से मिल लेते थे। मिलने पर बड़ा रंग जमता। सिगरेट, पान और चाय का मज़ा तो लिया ही जाता, गप्प की बहार भी ख़ूब ली जाती। धार्मिक, सामाजिक किंवा नैतिक कोई विषय बाक़ी न बचते। कुछ दिन में यह मित्रता गाढ़ी हो गई। हवाख़ोरी भी साथ-ही-साथ होने लगी।

एक दिन दोनो मित्र हवाख़ोरी के लिये बाहर निकले। बाबू साहब की नई मोटर बड़ी शान से अज़मतगढ़ की ओर दौड़ने लगी। बातें करते-करते मैनेजर दयालजी ने पूछा—"यह गाड़ी आपने कितने को मोल ली? बड़े मज़े की है। यों तो मैंने कितनी फ़ोर्ड की गाड़ियाँ देखी हैं, किंतु इसमें जो ख़ूबी है, बहुतों में नहीं होती।"

बाबू साहब बोले—"हाँ, मोटर वस्तुतः अच्छी है! मूल्य इसका मुझे ठीक याद नहीं पर हाँ, लगभग ४,०००) पड़े थे।"

"बाबू साहब, इस गाड़ी को देखकर तो मुझे हसद होता है। मैं भी बहुत जल्दी एक ऐसी ही मँगाऊँगा।"

"मँगाने की क्या आवश्यकता? आप इसी को अपनी सेवा में रक्खें।"

"वाह! यह भी कोई बात है। आपने जिसको अपने शौक़ से अपने आराम के लिये ख़रीदा है, उसे मैं क्यों लेने लगा?"

"मेरे शौक़ की बात न पूछिए, आप ख़ुशी से इसे अपनी सेवा में रखिए।"

"बाबू साहब, माफ़ फ़रमाइए। ऐसा न होने का। आपने तो मुझ पर इतने एहसान लाद दिए कि उनका बदला देना मेरे क़ाबू से बाहर हो गया। उस दिन ५००) की शाल ही दे दी। एक दिन वह बेशक़ीमत चेन ही दे दिया और आज मोटर भी देने लगे।"

"मैनेजर साहब, क्या मेरे तुच्छ उपहारों को गिना-

गिनाकर आप मुझे लज्जित करते हैं ? मोटर आपको अवश्य लेनी पड़ेगी।"

दयालजी के हज़ार मना करने पर भी दूसरे दिन मोटर उनके यहाँ पहुँच गई। मैनेजर साहब घंटों इस बात की चिंता में पड़े रहे कि इन सबका बदला क्या दिया जाय।

इस घटना के ३-४ दिन के बाद एक दिन दोपहर के समय बाबू साहब दयालजी के यहाँ पहुँचे। कंपनी को यहाँ रहते महीनों हो गए थे, अत मजिस्ट्रेट ने यहाँ से शीघ्र चले जाने की कड़ी आज्ञा दे दी थी। दयालजी जाने के प्रबंध करने में व्यस्त थे। समय न रहते हुए भी सब काम छोड़-छाड़ बाबू साहब से बड़े तपाक से मिले और उन्हें अपने कमरे में ले गए।

थोड़ी देर तक इधर-उधर की बातें होती रहीं। उसके बाद मैनेजर साहब ने कहा कि अब तो हम लोग चले। न-जाने कब फिर काशी मे आना होगा। आपकी यादगारें तो मेरे पास बहुत कुछ हैं, परंतु मैं अपनी यादगारी क्या छोड़ जाऊँ? जब उन बेशक़ीमत चीज़ों की तरफ देखता हूँ, जिन्हें आपने मेहरबानी कर दे रक्खी है, तो सोचने पर भी मै नहीं समझता कि क्या लेकर आपकी खिदमत मे हाज़िर होऊँ।

बाबू साहब बोले—"कुछ दे दीजिएगा। मैं भी चाहता हूँ कि आपसे कुछ ले लूँ, जिसमें आपको भूल न सकूँ।"

दयालजी ने कहा—"आप" जो कहिए।"

बाबू साहब—"जो मैं माँगूँगा, वही दीजिएगा ?"

दयालजी—"हाँ, साहब !"

इस पर बाबू साहब ने दबी ज़बान से उनसे कुछ कहा, जिसको सुनकर दयालजी कुछ चिंतित हुए। फिर थोड़ी देर तक कुछ सोचकर बोले—"बात तो कठिन है, परंतु यथा शक्ति चेष्टा करूँगा।"

(६)

दूसरे दिन भी वीणा जब रंगमंच पर से शयनकक्ष में पहुँची, तो उसके हृदय में फिर वही भाव उठने लगे, जो एक दिन पहले उसे बेचैन कर गये थे। विचार में विप्लव होना आरंभ हुआ। प्रतिज्ञाएँ भूलने लगीं। संयम साथ छोड़ भाग चला। वीणा, असहाया वीणा, अबला वीणा, विचार-धारा मे बहने लगी।

किसी प्रकार रात्रि का अंत हुआ। वीणा ने सोचा कल जैसे आज भी ये विचार दिन में मुझे तंग न करेंगे, परंतु सोचना व्यर्थ हुआ। जी बहलाने के लिये उसने
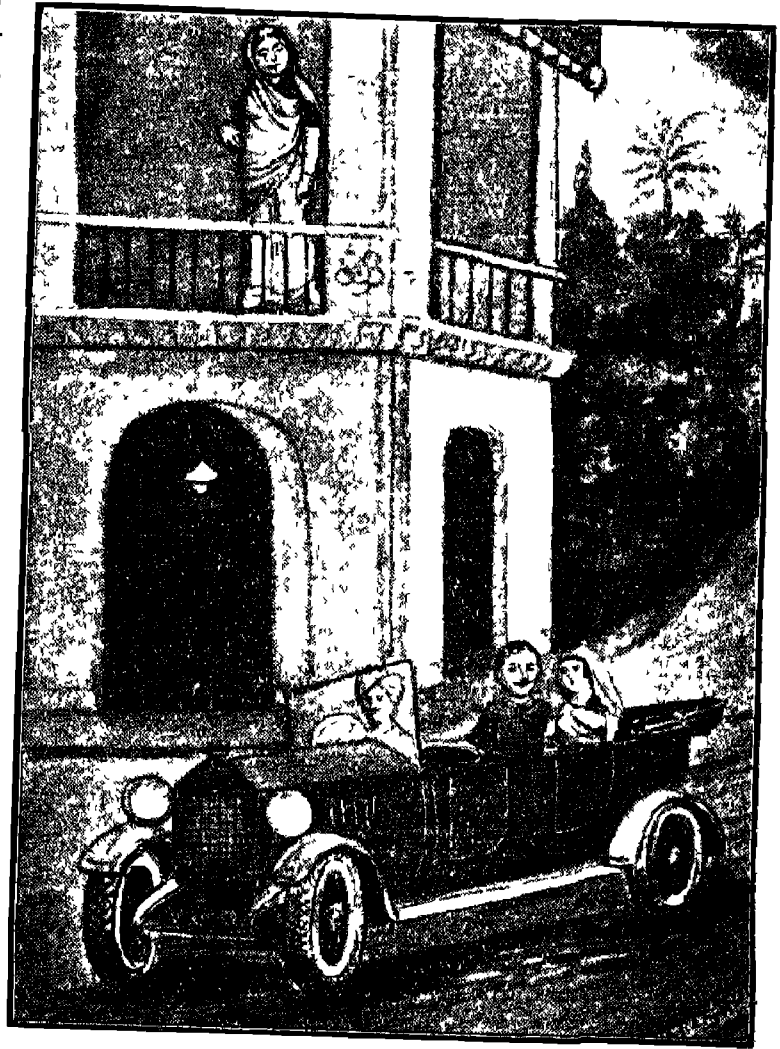
जब उसने सुंदर मोटर मे एक नवोढ़ा युवती को अपने पति के साथ जाते देखा—

कोठे की शरण ली। वहाँ से सड़क के सब दृश्य देखने में आते थे। उसने सोचा अनेक प्रकार के लोगों को आते-जाते देख सहज ही में मैं इन विचारों को भूल सकूँगी। कुछ अंश में उसका सोचना सार्थक हुआ, पर तु थोड़ी देर बाद जब उसने एक सु दर मोटर मे एक नवोढ़ा युवती को अपने पति के संग जाते देखा, तो उसका दिल फिर हाथ से निकल गया। कुछ समय के लिये वह अचेत-सी हो गई। उसके बाद कई दिनों तक वह यों ही समय काटती रही। किसी को इस बात का पता न था कि वीणा किस दु:ख से दु:खी है।

× × ×

कंपनी के जाने के दिन दयालजी और बाबू साहब साथ ही बैठे बातें करते थे। इधर-उधर बातों के बाद मुख्य विषय की चर्चा छिड़ी। दयालजी कहने लगे—"बाबू साहब, जानते हैं मेरे ऊपर कितनी जवाब-देही है। किसी काम में हाथ लगाने के पहले मुझे बहुत कुछ आगे-पीछे देखना पड़ता है। इतनी भारी थिएट्रिकल कंपनी के मैनेजर के तरद्दुदात को आप तो ज़रूर समझते होंगे, सो भी मैंने आपके लिये इन सब बातों का कुछ ख़याल न करके और अपने ऊपर किए हुए आपके एहसानों का बदला चुकाने की धुनि में बहुत कोशिशें की हैं। उम्मेद है, आज आपको पक्की ख़बर दे दूँगा। मेरे पूछने पर वीणा ने तो कुछ जवाब न दिया, सिर्फ़ हँसकर चल दी, लेकिन आज तो किसी प्रकार हाँ नाहीं करा ही लेनी होगी। बाबू साहब, अगर मैंने आपके लिये इतना भी न किया, तो आप यह ज़रूर जानिएगा कि मैं यहाँ से बहुत शर्मिंदा होकर जाऊँगा।"

बाबू साहब ने कहा—"इसके लिये आपको शर्मिंदा होने की बिलकुल ज़रूरत नहीं। आपके अधिकार में तो केवल चेष्टा करनी है। हाँ, आप उससे इतना कहिएगा कि मैं उसे ग्रहण कर पंक मे न फँसाऊँगा, प्रत्युत उसे अपने हृदय की अधिष्ठात्री देवी बनाऊँगा। इस मेरी याचना को आप काम-लिप्सा-जनित न समझें। मैं उसे अपनी विषय-वासना की तृप्ति के लिये नहीं चाहता, मैं उसे उसके अतुल सौंदर्य पर मोहित होकर नहीं चाहता, मैं उसे उसके नाट्यविद्या में अनुपम ख्याति लाभ करने पर प्रसन्न होकर नहीं चाहता; किंतु इसके अतिरिक्त उसमें कुछ ऐसे गुण हैं, जिनके लिये उसे मैं चाहता हूँ। जिस प्रकार उसका बहिरंग इन गुणों से विभूषित है, उसी प्रकार उसका अंतरंग भी कुछ ऐसे विचित्र गुणों से मंडित है कि लोगों के हृदय में उसके प्रति श्रद्धा उत्पन्न हो गई है। वह परम विदुषी ही नहीं है, प्रत्युत उसमें वह संयम, वह अटूट निश्चय वर्तमान है, जिसके कारण भारतीय ललनाएँ विख्यात हो चुकी हैं। आजकल के संसार के सर्वोच्च सुख-विलास की सामग्री से युक्तवाली परिस्थिति में जिसने अपनी प्रतिज्ञा निबाही, वह देवी धन्य है! मैं तो उसे इसलिये चाहता हूँ कि अपने छोटे इलाक़े में उसे ले जाकर वहाँ वर्तमान स्त्री-संसार के लिये आदर्श खड़ा करूँगा और उसके द्वारा स्त्री-समाज की दशा सुधारने की चेष्टा करूँगा।"

बाबू साहब को इन सब बातों को सुनकर दयालजी मन में सोचने लगे कि सचमुच यदि इनकी यही इच्छा है, तो अगर मेरी कोशिशें कामयाब न हुईं, तो मुझ पर लानत है। एहसान का बदला और मुल्क की बेहबूदी का ख़याल, दोनों बातें हैं। अभी वह इसी विचार में निमग्न थे कि वीणा और श्रीपति दोनों ने कमरे में प्रवेश किया और मैनेजर साहब को अभिवादन कर बैठ गए। इनके आने से दयालजी और बाबू साहब दोनों ख़ुश हुए। दयालजी ख़ुश हुए इसलिये कि श्रीपति के यहाँ से चले जाने पर बाबू साहब का कार्य अच्छी तरह से हो सकेगा और बाबू साहब ख़ुश हुए इसलिये कि वीणा उनके इतना निकट आ गई।

उनके बैठने के कुछ क्षण के बाद दयालजी ने श्रीपति से पूछा—"कहो, चलने के लिए तैयार हो गए?"

श्रीपति ने उत्तर देने के पहले वीणा के मुँह की ओर देखा और कहा—"तैयार हो हूँ। आपसे कुछ अर्ज़ करना है।"

"कहो क्या है?"

"आज मेरा और वीणा का चिर उत्पन्न आतरिक प्रेम यहाँ काशी में विवाह-रूप में प्रकट होगा, अत हम लोग कुछ विलंब कर कंपनी की सेवा के लिये उपस्थित होंगे।"

यह सुनकर दोनों दयालजी और बाबू साहब अवाक् रह गए।

मुरलीमनोहर

साहब की मोटर

सिपाही—अहा ! ख़ून यह क्या कर डाला ,
बड़ा बना है मोटरवाला ।
ड्राइवर—अरे सिपाही तुझे ख़बर है ;
यह तो 'साहब' की मोटर है ।
सिपाही—ओहो ! साहब की है, जाओ ।

कवि - चर्चा

१. तोषनिधि का परिचय

जिन कवि का परिचय मैं पाठकों को कराना चाहता हूं वे, वह तोष नहीं हैं, जिनको प्रायः लोग तोषनिधि भी कहा करते हैं। इस भ्रम का निवारण कई लेखों द्वारा किया जा चुका है और अब उसके दुहराने की आवश्यकता नहीं। केवल इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि इनका कविता-प्रभाकर १९वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में चमका था और यह राजा दौलतसिंह जि० एटा राज्य रिजौर के दरबारी कवि थे। इनका निवास-स्थान कंपिला, जि० फ़र्रुख़ाबाद था और ये कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे।

इनके बनाए निम्न-लिखित ग्रंथों का पता चलता है। (१) भारत पचासिका, (२) दौलतचंद्रिका, (३) राजनीति, (४) आत्मशिक्षा, (५) दुर्गासप्तशती, (६) नायिका-भेद, (अपूर्ण) और (७) व्यंग्यशतक।

साहित्य एवं काव्यानुराग इनके वंश की प्राचीन संपत्ति थी। ईश्वर मिश्र तथा सुखदेव मिश्र आदि साहित्य-मुखोज्ज्वलकारी पुरुष इसी वंश के थे। इनकी कई साख पहले भी बराबर अच्छे विद्वानों का पता चलता है। तोषनिधि जिन ईश्वर मिश्र की संतति हैं, उनके संबंध में सुखदेव मिश्र का कथन है —

"तिनमें परम प्रसिद्ध अति ईश्वर मिश्र प्रवीन,
गुन मंडित पंडित सब जिनसों भए अधीन।
प्रगट प्रबोधा को किया टीका सरस बनाइ
उक्ति युक्ति रत्नावली त्रिपुरा चरन मनाइ।
रूप तरंगिनि जिन करी जग में परम प्रसिद्ध
साहित को टीका किया करि विवेक गण सिद्ध।
भारत पर टिप्पण करयो लघु जातक पर और,
वृद्धिबलसा प्रसिध है जहां तहां सब ठौर।
चौदह विद्या जिन पढ़ीं तिन पर टीका कीन,
ईस्वर ईस्वर मिश्र सों भेद न कहत प्रबीन।"

तोषनिधि के बाद केवल दो ही साख तक उनका वंश चला और तब तक इस वंश में विद्या-व्यसन बराबर बना रहा। तोषनिधि बड़े उग्र प्रकृति के मनुष्य थे। इनमें सहनशीलता की मात्रा बहुत न्यून थी। इनके समय में कंपिला में कायस्थों की तूती बोल रही थी और उन्हीं का आधिपत्य उस नगर पर था। तत्कालीन कायस्थ जिनके हाथ में नगर की बागडोर थी, उनका नाम भैयालाल था। उनके आतंक-सूर्य के सामने आंख उठाना दुस्साहस था, किंतु तोषनिधि बिलकुल निडर थे। एक तो कान्यकुब्ज ब्राह्मण, दूसरे कवि! कहा जाता है, एक दिन कविराजजी हजामत बनवा रहे थे और उसी समय मुं० भैयालाल को भी नाई की आवश्यकता हुई। मुंशीजी के कर्मचारी ने उसी नाई से चलने को कहा, उसने

कहा, कविराज की हजामत बना कर आता हूँ किंतु वह कर्मचारी तोषनिधि से किसी कारण अप्रसन्न था; इसलिये उसने भैयालाल से ऐसे वचन कहे जिससे मुंशीजी को कविराज की उद्दंडता मर्म-भेदी जँची। ऐसी दशा में भैयालाल ने नाई को बलात् ले आने की आज्ञा दी और कुछ ऐसे वचन भी कहे, जिनसे कविराज की मान-हानि समझी जा सकती थी। परिणाम यह हुआ कि नाई चला गया और तोषनिधि की अधमुड़ी दाढ़ी छूट गई। इस पर तोषनिधि अत्यंत क्रुद्ध हुए, पर सिवा कोसने के और गरीब ब्राह्मण के हाथ में था ही क्या, जो उस मान-हानि का प्रत्युत्तर देते। निदान कविराजजी अपनी आराध्य भगवती के मंदिर में संकल्प कर बैठ गए। उस इष्ट की प्राप्ति के लिये उन्होंने २५ छंद कहे हैं, जो भैयालाल पचीसी के नाम से प्रसिद्ध हैं। कहा जाता है कविराज की मनोकामना फलीभूत हुई और भैयालाल का काम तमाम हुआ। उन कायस्थों के कुछ वंशज अब भी पुरानी देहरी पर हैं, जो तोषनिधि के स्थान के समीप ही है। यहा पर दो छंद पाठकों के विनोदार्थ नीचे दिए जाते हैं—

(१)

"राम जानै महिष निशुंभ शुंभ कौने हन्यो,
नाम तुम पायो सोई सुनिके रिहाती हौं;
जो न यह जानै निर्बुद्धि जन सेवै तेई,
मैं तो तुम्हैं जानि लीन्हों कहा पछिताती हौं।
बुरो मनि माता साँची कहत पुकारे नित,
सीतल सडर अरि देखि दुरि जाती हौं;
कान्हों काज कौन कोह हुइ है कहा मैया,
यह "भैयालाल" कायथै बिगारत डराती हौं।"

(२)

"कैधों रुष्ट पुष्ट सुख संपति संतुष्ट दुष्ट,
क्यों न जगदंबे याहि करत खराब री;
मेटु याको संपति समेटु सरबस बेगि,
गात की गजक करि पीउ तू सराब री;
काटिकै करेजो बाँटि चाटि कै उदर फारि
जारि बारि डारु वाको सब सुख राबरी;
कालिका भवानी खलखाना कीति रावरी है,
तेरे दास ह्वै सो नीच करत बराबरी।"

तोषनिधि को संस्कृत का भी अच्छा अभ्यास था और वह आशुकवि थे, साथ ही मज़ाक़ करने में भी काफ़ी निपुण थे। किसी यादव ठाकुर के यहाँ आप बरात में गए थे, वहाँ लोगों ने उन्हें छेड़ा, तो ज्यौनार के अवसर पर आपने निम्न-पद्य कह सुनाया—

ताराया[म]भवद्बुधो यदनृप आदेवगार्नास्ततो—
जाते यत्र शुभे सुचित्रचरित कुंतीसुभद्रे उभे।
रोहिण्या च हली यथा समभवत्कृष्णस्तु नन्दात्मज-
स्त वंश सुयशोन्वित बयमिह स्तोतुं कथं शक्नुमः"।

मान-मर्यादा की बात को छोड़कर तोषनिधि घमंडी नहीं थे। नम्रता जैसी कुछ होनी चाहिए, वैसी उनमें थी और वह साधु भक्त भी थे। अपने पूर्वजों का परिचय देते हुए आप कहते हैं:—

"हो तिनको निधि तोष सो मुरख, मन लगै जिहको प्रियराम सों।"

इनकी भक्ति के उदाहरण में 'व्यंग्यशतक' के छंद पत्रिकाओं में प्रकाशित हो चुके हैं। इनकी उत्कृष्ट काव्य के नमूने भी भारत-पचाशिका से 'समालोचक' में निकल चुके हैं। पाठकों के विनोदार्थ इनका शृंगार-रस का भी एक छंद नीचे उद्धृत किया जाता है—

(शुक्लाभिसारिका)

"सरद की पूनो तामैं दूनो सौ प्रकाशमान,
अंतिम कला को उदै गोप मानि मानिगे;
जिन नित बूझत कहा है आज "तोषनिधि",
ऐसो उदै कबहू न बिधु को प्रमानिगे;
हरि बहरावैं ठहरावैं उतपात जाहू,
गेहन सम्हारो काहि समय सभानिगे;
उठि सुखदानि गए कुंजन की ओर निज,
प्यारी राधिका को उर अभिसार जानिगे।"

चंद्रमनोहर मिश्र

१. नीति और सुधार

हिन्दुस्थानी शिष्टाचार—लेखक, पं० कामताप्रसाद गुरु; प्रकाशक, लाला रामनरायनलाल बुकसेलर और पब्लिशर इलाहाबाद, मूल्य ||=); पृष्ठ-संख्या १४८; ऊपर मोटा कागज लगा हुआ।

पं० कामताप्रसाद गुरु हिंदी के सिद्धहस्त लेखकों में हैं। आपने यह पुस्तक लिखकर हिंदी-प्रेमियों के साथ बड़ा उपकार किया है। अब तक इस विषय की कोई अच्छी पुस्तक हिंदी में न थी। आपने इस रचना द्वारा इस अभाव को पूरा किया है। हमारे चरित्र में शिष्टाचार कितने महत्त्व की वस्तु है, यह लिखने की ज़रूरत नहीं। प्रत्येक उन्नत-समाज में परस्पर व्यवहार के कुछ प्रचलित नियम होते हैं, जिनका समाज की मर्यादा के लिये पालन करना आवश्यक होता है। पुस्तक में सात अध्याय हैं। पहले तीन अध्यायों के विषय हैं—शिष्टाचार का स्वरूप, प्राचीन आर्य शिष्टाचार और आधुनिक हिन्दुस्थानी शिष्टाचार। शेष चार अध्यायों में आधुनिक शिष्टाचार की व्याख्या की गई है। भिन्न भिन्न परिस्थितियों में शिष्टाचार का रूप किस तरह बदलता रहता है, इसे आपने सभाओं में, मेलों तथा रास्तों में, मंदिरों में, भोजों में, उत्सवों में, व्यवसाय में, सभाषण में, पहुनई में, स्त्रियों के प्रति, बड़ों और बूढ़ों के प्रति, मित्रों के प्रति आदि परिस्थितियों का उदाहरण देकर ख़ूब स्पष्ट कर दिया है। संपादकों को भी आपने कुछ उपदेश दिया है, जो सर्वथा माननीय है। उसका कुछ अंश हम यहाँ उद्धृत करते हैं—

"किसी पुस्तक की समालोचना करते समय पुस्तक ही की समालोचना करना उचित है, उसके लेखक के विषय में व्यक्तिगत रूप से अनधिकार चर्चा करना उचित नहीं।"

"किसी-किसी मासिक पत्र में ऐसे ऐसे समालोचकों के नाम छापे जाते हैं, जिन्हें पत्रों के विद्वान पाठक समालोचना करने के योग्य नहीं समझते। ऐसे समालोचकों से समालोचना कराकर संपादक लोग प्रत्यक्ष रूप से अपने पत्रों की प्रतिष्ठा घटाते हैं।"

पुस्तक सबके लिये उपयोगी है।

× × ×

मित्रता—लेखक और प्रकाशक, श्री० प्रतापमल नाहटा, संपादक श्रीलक्ष्मणनारायण गर्दे; मूल्य |=); पृष्ठ-संख्या ६०।

निबंध सुन्दर है। लेखक ने प्राचीन आचार्यों के विचारों से अपने निबंध को यथासाध्य अलंकृत करने की चेष्टा की है, जिससे लेख का महत्त्व और उपयोगिता बढ़ गई है।

× × ×

२. व्याकरण

अँगरेज़ी का व्याकरण—लेखक और प्रकाशक, बाबू हरिहरनाथ बी० ए०, मध्यमेश्वर काशी; मूल्य नहीं लिखा।

यह पुस्तक उन विद्यार्थियों के लिये लिखी गई है जो हिंदी का व्याकरण भली भाँति जानते हैं और लेखक महोदय इस उद्देश्य में सफल हुए हैं। व्याख्या-भाग सब सरल हिंदी में है। जिन्हें अँगरेज़ी का वर्ण परिचय-मात्र है, वे भी थोड़े से परिश्रम से अगरेज़ी-व्याकरण का ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं। अन्त के तीन अध्यायों में विराम-चिह्न, पत्र-लेखन और उपसर्ग की व्याख्या की गई है जो साधारण व्याकरण की पुस्तकों में नहीं पाई जाती। पुस्तक को जहाँ-तहाँ पढ़ने से ज्ञात होता है कि लेखक को इस विषय का बहुत अच्छा अनुभव है और वह उन कठिनाइयों को समझता है जो हिंदुस्तानी बालकों को क़दम-क़दम पर पड़ती हैं और जिन्हें अँगरेज़ लेखक नहीं समझ सकते।

× × ×

३ कविता

कुसुम-कुंज — लेखक, ठाकुर गुरुभक्तसिंह 'भक्त' बी०ए०,एल्‌एल्‌०बी०, एम० आर० ए० एस०; प्रकाशक, केदारनाथ गुप्त, छात्र-हितकारी-पुस्तक माला, दारागंज, प्रयाग; पृष्ठ संख्या ५० ; मूल्य ।=) ; छपाई और कागज़ उच्च कोटि का, प्रकाशक से प्राप्त।

'कुसुम-कुंज' 'सरस-साहित्य-माला' का प्रथम पुष्प है। इसमें १ ओस, २ कृषकवधूटी, ३ निशा, ४ नदी, ५ लजवंती, ६ नाविकवधू, ७ जीवन यात्रा, ८ अनाथा, ९ प्रेम, १० फूल, ११ सिंदूर, १२ बाल-विनोद, १३ आकाश, १४ चमेली, १५ काँटा, १६ मंदिर, १७ शिवालय, १८ इतिहास, १९ प्रभात और २० मान-लीला शीर्षकों पर पद्यात्मक रचनाएँ हैं। इन रचनाओं में सरसता के साथ-साथ स्वाभाविकता का अच्छा समन्वय है। रचयिता ने प्रकृति-निरीक्षण-संबंधी अपने ज्ञान को 'कुसुम-कुंज' में भली भाँति प्रकट किया है। हमें कृषकवधूटी, लजवंती और सिंदूर शीर्षक रचनाएँ बहुत अच्छी लगीं। कुछ उदाहरण लीजिए—

(१)

"उसी समय मैं फूला-फूली मन-ही-मन हरषाती थी,
मैया को दिखला-दिखलाकर छड़े झाँझ झनकाती थी;
प्रथम बार लड़की होने का तब ही गौरव था पाया,
एक बार बाला-जीवन में मानो ज्ञान कुछ था आया;
तब से यों ही रही खेलती मिट्टी से वो पानी से,
घर कितने ही बना-बनाकर तोड़ दिए नादानी से;

(२)

माँग बना चोटी जब गूँथी सेंदुर ले मैं बोली त्यों,
"अम्मा लाल लाल सेंदुर तू हमको नहीं लगाती क्यों?"
पहले सुख का ज्ञान नहीं था जब थे खेल कूद के दिन,
पर क्या भाग्य-कला मुझ को मैंने सुख पाया एक दिन;
उस दिन से ही जीवन-सुख-राशि श्याम-प्रेम में लीन हुआ,
किरण कोर झलकी थी जिसकी वह अब छिपकर क्षीण हुआ।
छोड़ो अब मत मुझे एक छिन रोकर दुःख भगाने दो,
क्वाँरी को नारी होने पर सेंदुर सोच लगाने दो।"

'कुसुम-कुंज' पुस्तक अच्छी है और संग्रह करने योग्य है।

× × ×

मानसी—लेखक श्रीयुत प० रामनरेश त्रिपाठी, संग्रहकर्ता श्रीगोपाल नेवटिया, प्रकाशक, हिन्दी-मंदिर प्रयाग ; पृष्ठ-संख्या ११० ; कागज़ और छपाई अत्यंत उत्कृष्ट ; मूल्य ॥) ; प्रकाशक से प्राप्त।

इस पुस्तक में प० रामनरेशजी की ५० कविताओं का संग्रह है। आरंभ में २३ पृष्ठों में संग्रहकर्ता ने 'परिचय' शीर्षक द्वारा कविजी की कविता पर आलोचनात्मक रूप से विचार किया है। 'माधुरी' के पाठक प० रामनरेशजी की कविता से भली भाँति परिचित हैं। उनकी कविताएँ 'माधुरी' में प्रायः प्रकाशित हुआ करती हैं। कुछ ऐसी-ही कविताएँ इस संग्रह में भी हैं। त्रिपाठीजी की हिंदी संसार में अच्छी सुख्याति है। वे एक सत्कवि हैं। नेवटियाजी ने उनकी कविताओं को इस संग्रह रूप में प्रकाशित करके अच्छा काम किया। हिंदी-काव्य-प्रेमियों को यह संग्रह अवश्य पढ़ना चाहिए। हमें त्रिपाठीजी का निम्न-लिखित छंद बहुत अच्छा लगा—

"वह कौन-सी है छवि खोजता जिसे है रवि,
प्रतिदिन भेज दल अमित किरन का;
वह कौन-सा है गान जिसमें लगाए कान,
गिरि चुपचाप खड़े ज्ञान भूल तन का;
कौनसा सँदेशा पौन कहता प्रसून से है,
खिल उठता है मुख जिससे सुमन का;
कौन से रसिक को रिझाती है सुनाके गान,
कौन जानता है भेद कोयल के मन का।"

× × ×

४. उपन्यास और कहानियाँ

दिल्ली का दलाल—लेखक, पांडेय बेचन शर्मा 'उग्र'; प्रकाशक, सुलभ-ग्रंथ-प्रचारक, मंडल ३६, शंकर घोष लेन, कलकत्ता। पृष्ठ-संख्या २५०; मूल्य १॥)

यह उग्रजी की दूसरी रचना है। इसकी सर्वप्रियता का अनुमान इसी से हो सकता है कि इसका पहला संस्करण हाथोंहाथ बिक गया। इसमें उस दुनिया के चित्र और चरित्र दिखाए गए हैं, जहाँ रमणियाँ छल-कपट से फुसलाकर लाई जाती हैं और उन्हें जबरन् विलासी, कामांध नर-पिशाचों की काम-लोलुपता का खिलौना बनाया जाता है। यह घृणित व्यापार दिन-दिन ज़ोर पकड़ रहा है और वर्तमान सामाजिक दुरवस्थाओं तथा धार्मिक उपद्रवों ने इसकी रौनक और भी बढ़ा दी है। उग्रजी ने इस सामयिक रचना से समाज को जगाने का सफल प्रयत्न किया है। कथा, भाव, भाषा हरएक एतबार से यह रचना सुंदर है। हमें सबसे बड़ी ख़ुशी यह है कि उग्रजी द्वारा हमें अपने मौलिक साहित्य में वृद्धि होने की बहुत कुछ आशा हो रही है।

× × ×

वीरों की सच्ची कहानियाँ—लेखक, मौलवी ज़हूर-बख़्श कोविद; प्रकाशक, छात्र-हितकारी-पुस्तक-माला, दारागंज, प्रयाग; मूल्य ॥); पृष्ठ-संख्या १५८।

ज़हूरबख़्शजी बालकों के लिये कहानियाँ लिखने में सिद्धहस्त हैं। आपकी कहानियों के कई संग्रह चाँद-कार्यालय और गंगा-पुस्तकमाला ने प्रकाशित किए हैं। आपके पास शायद ऐसी कहानियों का बहुत बड़ा ज़ख़ीरा जमा है। यह सभी कहानियाँ ऐतिहासिक हैं। भाषा बहुत ही सरल, सुलझी हुई और मधुर है, जिसे छोटे बालक भी आसानी से समझ सकते हैं। टाइटल पर एक तिरंगा चित्र है, जिसमें भामाशाह महाराणा प्रताप को अशर्फ़ियों की थैलियाँ भेंट करते दिखाया गया है।

× × ×

ईश्वरीय बोध—प्रकाशक, वही; मूल्य ॥); पृष्ठ संख्या १८४।

यह परमहंस श्रीरामकृष्ण के उपदेशों का संग्रह है। इन उपदेशों में ज्ञान और भक्ति के उज्ज्वल रत्न बिखरे पड़े हैं। परमहंस रामकृष्ण ने आधुनिक बंगाल पर जो असर डाला है, उतना और किसी ने नहीं डाला। ऐसा कौन है, जिसे उनके उपदेशों का संग्रह करना और कभी-कभी उनका अध्ययन करना हितकर न हो।

× × ×

हमारे ज़माने की ग़ुलामी—अनुवादक, 'सत्येंद्र'; प्रकाशक, सस्ता-साहित्य-प्रकाशक मंडल, अजमेर; मूल्य ।); पृष्ठ संख्या १००।

यह महात्मा टाल्सटाय रचित 'The slavery of our times' का अनुवाद है। ऋषि टाल्सटाय ने, इस पुस्तक में वर्तमान आर्थिक व्यावसायिक और सामाजिक व्यवस्थाओं की विवेचना की है। जिन्होंने कृषकों को गाँव से निकाल कर शहरों के शरण लेने और मिलों में मँजूरी करने पर मजबूर किया है यही हमारे ज़माने की ग़ुलामी है और जिसे हम 'सरकार', 'गवर्नमेंट' या 'राज्य' कहते हैं, वह महात्मा टाल्सटाय के शब्दों में 'सुसंगठित हिंसा है' सारी ख़राबी की जड़ यही है कि वर्तमान सभ्यता का आधार व्यवसाय और व्यवसाय के साथ स्पर्धा का अटूट संबंध है। महात्मा टाल्सटाय ने आजीवन इस व्यवस्था का विरोध किया और इस छोटी-सी पुस्तक में उनके सामाजिक तथा राजनैतिक विचारों का दिग्दर्शन हो जाता है। अनुवाद की भाषा सुबोध है।

× × ×

सुखमय जीवन—लेखक, डॉ० कुंदनलाल एम्० डी०, डी० एस्० आदि; प्रकाशक, श्यामलाल वर्मा; वैदिक आर्य-पुस्तकालय, बरेली; मूल्य ।), पृष्ठ-संख्या १६८।

इस छोटी-सी पुस्तक में स्वास्थ्य-रक्षा के नियम बड़ी सरल सीधी-सादी भाषा में समझाए गए हैं। डॉक्टर साहब ने केवल अँग्रेज़ी पुस्तकों के आधार पर यह पुस्तक नहीं लिखी। भारतीय रहन-सहन को अपने ध्यान में रक्खा है। इस पुस्तक का पाठशालाओं में प्रचार होना चाहिए।

× × ×

३. अर्थ-शास्त्र और राष्ट्रीय

स्टॉक-एक्सचेंज—लेखक और प्रकाशक, श्रीमान् पंडित गौरीशंकरजी शुक्ल, 'पथिक'; आकार २०×३० सोलह पेजी; पृष्ठ-संख्या २१४; मूल्य १॥); प्राप्ति-स्थान-कलकत्ता-पुस्तक-भंडार, १७१ अ हरीसन रोड, कलकत्ता।

स्टॉक-एक्सचेंज ऐसी संस्थाएँ हैं, जिनमें सरकारी क़र्ज़-पत्र तथा कारख़ानों के हिस्सों और ज़मानतों का क्रय-विक्रय होता है। इनको 'शेयर बाज़ार' भी कहते हैं।

इन संस्थाओं के द्वारा लोग सुरक्षित रूप में धन-विनियोग कर सकते हैं। जहाँ तक हमें मालूम है, हिंदी में यह प्रथम पुस्तक है कि जिसमें लंदन स्टॉक-एक्सचेंज, अमेरिकन स्टॉक-एक्सचेंज-पेरिस वर्स तथा भारतीय स्टॉक-एक्सचेंजों का संगठन और कार्य-प्रणाली समझाई गई है। इस पुस्तक में स्टॉक-एक्सचेंज-संबंधी प्रायः सब बातों का समावेश कर दिया गया है। पुस्तक बड़े परिश्रम से लिखी गई है। प्रूफ़-संबंधी ग़लतियाँ बहुत हैं। कहीं-कहीं लेखक के भाव आसानी से समझ में नहीं आते। यदि यह पुस्तक किसी योग्य संपादक द्वारा संपादित की जाती और इसके प्रूफ़ अधिक सावधानी से देखे जाते, तो इसकी उपयोगिता बहुत बढ़ जाती। अंत में पारिभाषिक शब्दों की सूची देना भी आवश्यक था। पुस्तक अर्थ शास्त्र के विद्यार्थियों को उपयोगी सिद्ध होगी। स्टॉक-एक्सचेंज तथा औद्योगिक क्षेत्र के व्यापारियों को भी इससे लाभ उठाना चाहिए। व्यापारिक शिक्षा-संस्थाओं को भी अपने पाठ्य-क्रम में इस पुस्तक को अवश्य स्थान देना चाहिए।

दयाशंकर दुबे

× × ×

६ चिकित्सा

न्याय, वैद्यक और विष-तंत्र—लेखक, कविराज श्रीअत्रिदेव विद्यालंकार भिषग्रत्न; प्रकाशक, 'आरोग्य-सिंधु-कार्यालय', काँची; मूल्य ३), ३॥)

हिंदी में Medical Jurisprudence तथा Toxicology पर संभवतः यह प्रथम पुस्तक है। जिन अँगरेज़ी, बँगला, संस्कृत तथा गुजराती पुस्तकों से सहायता ली गई है; उनके नाम भी दे दिए गए हैं। यत्र-तत्र संस्कृत अवतरण देकर प्राचीन हिंदू-मत पर भी प्रकाश डाला गया है। साथ ही विष-चिकित्सा पर शास्त्रोक्त तथा अनुभूत उपचार बड़े परिश्रम से संग्रह किए गए हैं।

हिंदी में अभी इस विषय पर पुस्तक लिखना बड़ा कठिन है। इसी से लेखक को जो कुछ भी सफलता मिली है, उसे ही बहुत कुछ समझना चाहिए।

पुस्तक में हिंदी और अँगरेज़ी की कुछ ऐसी खिचड़ी पकाई गई है कि साधारण हिंदी जाननेवाला भी चक्कर में पड़ जाय और अँगरेज़ी जाननेवाला भी। अँगरेज़ी के कितने ही साधारण शब्द और वाक्य 'मक्षिका स्थाने मक्षिका' आँख बंद करके लिख दिए गए हैं। ज़रा भी समझाने का कष्ट नहीं उठाया गया—

Sloughing (पृ० ११७), Sodomy (पृ० ११६) "Callus में fibrous (fibres ? fibrosis ?) उत्पन्न हो जाते हैं (पृ० ११६), Labia major (majora ?) Elastic, Areola, Loublated (Lobuated ?) Rogose (Rugose ?) (पृ० १७८), KMnO₄ (पृ० ३४७)

इन सबसे पाठक की समझ में तो कुछ आने का नहीं, उलटे मति-भ्रम हो सकता है। लेखक की कठिनाइयों पर ध्यान रखते हुए भी हम इस बात में उसकी प्रशंसा नहीं कर सकते।

पुस्तक में जहाँ-जहाँ अंकों की आवश्यकता पड़ी है, वहाँ हिंदी के अंक तथा क, ख, इत्यादि को छोड़कर न-जाने क्यों रोमन अंक तथा a, b, c इत्यादि की शरण ली गई है।

पृ० ३१२ पर सर्प-विष को Albumin लिखा गया है तथा Albumin और "Prateoses" (Protoses ?) को एक ही बतलाया गया है। असल में न तो सर्प-विष Albumin है और न Albumin तथा Proteose एक चीज़ हैं।

छापे की भूलों से पुस्तक भरी पड़ी है। फिर भी लेखक का प्रयत्न प्रशंसनीय है।

नवलबिहारी मिश्र

× × ×

७. फुटकर

सचित्र हारमोनियम मास्टर—लेखक, श्री०सीताकृष्ण राय देहलवी; अनुवादक, पं० शुकदेवप्रसाद वाजपेयी; प्रकाशक, मनलालकिशोर-बुकडिपो, लखनऊ; मूल्य ३); पृष्ठ-संख्या ६१८।

हारमोनियम का आजकल जितना प्रचार है, उतना शायद और किसी बाजे का न होगा। इसका कारण इसकी सरलता है। सितार और सरोद सीखने में बरसों लग जाते हैं, हारमोनियम महीनों में आ जाता है। इस पुस्तक में हारमोनियम के विषय में प्रायः सभी ज़रूरी बातें लिख दी गई हैं, यहाँ तक कि बाजे की मरम्मत करने की विधियाँ भी बतलाई गई हैं और चित्रों द्वारा क्रियाओं को ख़ूब स्पष्ट कर दिया गया है। नौसिखियों के लिये बड़े काम की चीज़ है। इसकी मदद से किसी हारमोनियम मास्टर के बिना ही हारमोनियम बजाना

सीखा जा सकता है। लेखक इस फ़न के उस्ताद मालूम होते हैं। भाषा सरल है।

× × ×

८. सहयोगियों के विशेषांक

मनोरमा—अगस्त का अंक "महिलांक" है। इसमें यह विशेषता है कि अधिकांश लेख महिलाओं ही के लिखे हुए हैं। अब तक हमारा अनुमान था कि हिंदी में लेखिकाओं का अभाव है। पर इस अंक में लेखिकाओं की वृहद् नामावली देखकर हम दंग रह गए। ४१ लेखों में, कोई ४० महिलाओं के लिखे हुए हैं। श्रीमती यमुना देवी का 'महाशक्ति', श्रीमती चन्द्रावती लखनपाल का 'फ़ीवर', श्रीमती मोहनकुँवरि देवी माथुर का 'मेरी अमेरिका-यात्रा', श्रीमती हेमंतकुमारी चौधरानी का 'स्त्रियों का स्वास्थ्य', श्रीमती उमा नेहरू का 'स्नेह-लता', श्रीमती तारकेश्वरी आशा का 'शिक्षा-प्रबंधी-सुधारों की मुख्य कठिनाइयाँ' आदि लेख बहुत विचारणीय और पढ़ने लायक़ हैं। कई मदरासी महिलाओं के हिंदी-लेख का पढ़कर हमें कुतूहलमय हर्ष हुआ। इस पत्रिका में २०० पृष्ठ हैं। रंगीन चित्र चार हैं, जिनमें-से तीन अन्य पत्रिकाओं में छप चुके हैं। सादे चित्र ७० के लगभग हैं, जिनमें १७ विदुषी महिलाओं के सुंदर फ़ोटो हैं। स्त्री-लेखिकाओं का ऐसा जमघट हमने पहले किसी पत्रिका में नहीं देखा। फ़ोटो-चित्रों के प्राप्त करने में भी बहुत उद्योग किया गया है। इस अंक का मूल्य २) है।

× × ×

बालक-वीरांक—इस अंक का उद्देश्य नाम ही से विदित है। इसमें जगत्-विख्यात वीरों के जीवन-चरित्र दिए गए हैं, जैसे वीर श्रीकृष्ण, महाराणा प्रतापसिंह, पृथ्वीराज, शिवाजी, गुरुगोविंदसिंह, रुस्तम, भारतीय नेपोलियन, समुद्र गुप्त आदि। "कुछ विदेशी वीर" नामक लेख के अंतर्गत जूलियस सीज़र, नेपोलियन बोनापार्ट, क्रामवेल, चार्ल्स बारहवाँ, जार्ज वाशिंगटन आदि का संक्षिप्त वृत्तांत लिखा गया है। भारत की कुछ वीर-नारियों की चर्चा भी की गई है। हमारे बालकों में वीरता का भाव जागृत करने की बड़ी ज़रूरत है। बालक ने यह अंक प्रकाशित करके बालकों के वीर-साहित्य की वृद्धि की है। अन्य लेखों में 'नगेसर और झिंगुरू' बहुत मनोरंजक हुआ है। अंक में वीरों के कई चित्र हैं। पृष्ठ-संख्या ११०।

× × ×

महारथी—(वीरांक)—अक्टूबर मास का अंक महारथी का "वीरांक" हमारे सामने है। इसके प्रधान संपादक हैं, श्री० पं० रामचन्द्रजी शर्मा बी० ए०। साथ ही महारथी का एक संपादक-मण्डल भी है, जिसमें कई एक हिंदी-साहित्य-मर्मज्ञ विद्वानों तथा हिंदी-साहित्य-सेवियों के नाम हैं। इन्हीं सब हिंदी-प्रेमियों के सम्मिलित संपादन का सुफल है, महारथी का "वीरांक"। प्रस्तुत अंक में ३ तिरंगे चित्र, एक इकरंगा चित्र और कितने ही साधारण चित्र हैं। पाठ्य-विषयों की पृष्ठ-संख्या है १२० और मूल्य १)

यद्यपि "वीरांक" के कई एक लेख तथा कविताएँ सुपाठ्य एवं उत्साह-हीन नवयुवकों के हृदयों में नवजीवन का संचार करके उन्हें कर्मवीर बनाने में प्रोत्साहन देने वाली हैं, फिर भी श्रीमैथिलीशरण गुप्त का "धर्मक्षेत्र", श्रीघातकजी की "प्रताप-प्रतिज्ञा" और बिस्मिलजी की "फ़रियादे बिस्मिल" शीर्षक कविताएँ बहुत ही अच्छी और "वीरांक" के लिये उपयुक्त हैं। गद्य-लेखों में श्रीभगवानदास केला का "वीर की खोज", एक मुस्लिम हृदय का "बहुविवाह का करुण दृश्य" और श्री० पं० भगवतीप्रसादजी की "रायबाघिनी व अतीत-स्मृति" शीर्षक कहानी बहुत ही सुंदर तथा हृदयाकर्षक है। "महारथी" के प्रत्येक पृष्ठ के नीचे जो सूक्तियाँ दी जाती हैं, वे प्राय: बहुत ही सुंदर तथा चुटीली होती हैं। "महारथी" लगभग ३ वर्ष से "महारथी-कार्यालय, चाँदनी चौक, देहली से" निकल रहा है। हर्ष है "महारथी" ने आरंभ में जिस नीति का अवलंबन किया था, उसी नीति को सब प्रकार का घाटा सहता हुआ भी प्राय: निभाता जा रहा है। इसके लिए हम "महारथी" के प्रधान संपादक, दृढ़प्रतिज्ञ श्री० प्र० रामचंद्रजी को सत्साहस के लिये बधाई दिए बिना नहीं रह सकते हैं। दिल्ली-जैसे उर्दू-साहित्य-प्रधान नगर से एक हिंदी का मासिक-पत्र निकाल कर "महारथी" के संपादकजी ने राष्ट्र-भाषा हिंदी की सेवा में बहुत कुछ हाथ बटाया है। हम हृदय से सहयोगी "महारथी" की उन्नति चाहते हैं। विद्यार्थियों तथा नवयुवकों को "महारथी" का ग्राहक अवश्य बनना चाहिए। "महारथी" का "वीरांक" साधारणतया अच्छा है।

---

१. गर्भ में शिशु-शिक्षा
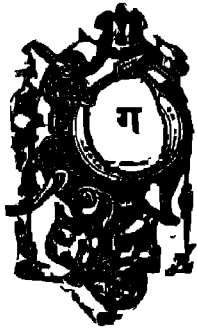
र्भ-स्थित बालक और माता में जितना घनिष्ठ संबंध रहता है, उतना संसार की किसी और दो चीज़ों में नहीं होता है। माता की कोख में बालक नौ मास व्यतीत करता है और इस समय में एक अति सूक्ष्म पदार्थ से जीता-जागता जीव बन जाता है। गर्भावस्था में माता और बालक के बीच में एक अति कोमल नली द्वारा संबंध बना रहता है। इसी नली द्वारा माता की साँस के साथ बालक साँस लेता है और माता के भोजन के साथ उसे भोजन पहुँचता है। ऐसी दशा में यह स्वाभाविक ही है कि माता और गर्भस्थ बालक के बीच में ऐसा सूक्ष्म और घनिष्ठ संबंध रहेगा कि माता का जैसा शारीरिक, मानसिक, सामाजिक, नैतिक और मौलिक रूप होगा, वैसा ही गर्भ में विराजमान बालक में अपने आप अंकित हो जायगा। इस लेख में मैं इस समस्या को ऐतिहासिक दृष्टांत, वैज्ञानिक परिभाषा और डाक्टरों के अनुभव से सिद्ध करने का प्रयत्न करूँगी।

ऐतिहासिक दृष्टांत—जब अभिमन्यु गर्भस्थ थे, तब ही उनकी माता को अर्जुन ने चक्र-व्यूह प्रवेश की तरकीब सुनाई थी। अति तीव्र और प्रभावशाली अभिमन्यु पर इस विवरण का इतना बड़ा प्रभाव पड़ा कि उनको चक्र-व्यूह में प्रवेश करने की तरकीब जन्म के पश्चात् स्मरण रही और जब महाभारत का घोर युद्ध छिड़ा हुआ था, तब अभिमन्यु ने गर्भ में सीखी हुई शिक्षा का प्रयोग करके ऐसे विकट चक्र-व्यूह में प्रवेश कर लिया जिसमें प्रवेश करने की रीति का ज्ञान अर्जुन के अतिरिक्त और किसी योद्धा को नहीं था और इस कारण उनमें से किसी का साहस चक्र-व्यूह में प्रवेश करने का नहीं होता था। विदुषी मदालसा ने अपने बालकों को लोरियाँ सुना-सुनाकर वीर और ब्रह्मज्ञानी बना दिया था।

राक्षसों के राजा हिरण्यकश्यप के पुत्र प्रह्लाद इतने बड़े ईश्वर के भक्त केवल इसी कारण हुए कि जब वह अपनी माता की कोख में थे ; तब उनकी माता को नारद मुनि ने ज्ञान और भक्ति का उपदेश दिया था। यह भाव उनके हृदय पर इतने विशेष-रूप से अंकित हो गए कि गर्भस्थ प्रह्लाद भी उन्हीं भावों को लेकर उत्पन्न हुए। उनके पिता ईश्वर के बड़े द्रोही थे, उन्हें केवल ईश्वर के नाम-मात्र पर घृणा और क्रोध होता था। जब उन्होंने शिशु

प्रह्लाद में ईश्वर-भक्ति के भाव देखे, तब उनको बदलने की बड़ी कोशिशें कीं। प्रह्लाद को अनेक प्रकार के भय दिखलाए और दण्ड दिए, पर उनमें धर्म के भाव इतनी दृढ़ता से अंकित हो गए थे कि घोर-से-घोर दंड भी उनकी ईश्वर-भक्ति के मार्ग पर से नहीं हटा सका।

नेपोलियन जब गर्भ में था, तब उसकी माता कई महीनों तक अपने पति के साथ फ़ौज में लड़ाई पर रही थी। वह कूच के समय घोड़े पर सवार होकर सेना के साथ जाती थी और स्वयं युद्ध-संबंधी बातों में बहुत दिलचस्पी लेती थी। गर्भ-स्थित नेपोलियन पर इन बातों का बहुत प्रभाव पड़ा। बालकपन में ही उसमें वीरों के लक्षण विद्यमान थे, उसको युद्ध प्रिय था। वह युद्ध और विजय के बारे में ही बातचीत किया करता था, युवावस्था को प्राप्त होने पर उसने अपनी वीरता और युद्ध-कला में निपुणता के ऐसे चमत्कार दिखलाए कि समस्त योरप उनसे विस्मित हो गया।

स्कॉटलैंड के प्रसिद्ध कवि रोबर्ट बर्न्स (Robert Burns) के लिये कहा जाता है कि उसकी माता को विशेष-रूप से बहुत कवित्त याद थे और उनसे उसको इतना प्रेम था कि वह अपने घर का काम करते-करते इनको गाया करती थी।

प्रसिद्ध चित्रकार फ़्लैक्समैन (Artist Flaxman) की माता गर्भ-काल में घंटों अच्छे-अच्छे चित्र देखने में व्यतीत करती थी और चित्रकला के विशेषज्ञों के सुंदर-से-सुंदर चित्रों को अपने हृदय में अंकित करने का प्रयत्न करती थी। उसका परिणाम यह हुआ कि उसका बालक इस कला में बहुत ही निपुण निकला।

वैज्ञानिक दृष्टांत प्रोफ़ेसर एलमरगेटस्(Elmer Gates) ने अपनी विज्ञानशाला में जो संयुक्तराज्य की राजधानी वाशिंगटन में थी (his laboratory at Washington D. C) कुछ अति रोचक प्रयोग (experiments) किए। उन्होंने भिन्न-भिन्न समय अनेक मनुष्यों से अपनी साँस को शीशे (दर्पण) पर फेंकने को कहा। प्रत्येक बार साँस की हवा में मिले हुए जो पदार्थ ठंडे शीशे पर जम जाते थे, उनकी परीक्षा (analysis) से उनको ज्ञात हुआ कि यह पदार्थ मनुष्य की मानसिक प्रवृत्ति के अनुसार बदलते रहते हैं। क्रोध, ईर्ष्या, दुःख, शोक, पीड़ा इत्यादि अनेक मानसिक स्थितियाँ अपना-अपना प्रभाव साँस पर डालती हैं और ऐसी अनेक दशाओं में यदि साँस की परीक्षा की जाय, तो साँस के उपादानों में अंतर मिलेगा। इस प्रकार प्रोफ़ेसर गेटस् ने साबित कर दिया कि साँस की परीक्षा से मनुष्य की मानसिक स्थिति का ऐसी अच्छी तरह ज्ञान हो सकता है, जैसे टेलीफ़ोन के द्वारा दूर स्थित मनुष्य की बात साफ़ सुनाई देती है। साँस पर सारा शरीर निर्भर है, जैसी साँस होगी, वैसा हमारा समस्त शरीर होगा। जब माता की साँस पर बालक की साँस निर्भर है, तो यह अक्षरशः ठीक है कि माता की जैसी प्रवृत्ति होगी, वैसी ही बालक की।

विशेषज्ञों का कहना है कि प्रत्येक रोग और प्रत्येक मानसिक स्थिति में ख़ास तरह की गंध होती है, इसी कारण प्रत्येक मनुष्य में एक विशेष प्रकार की गंध होती है। मन्दिर, पाठशाला, पागलख़ाने, जेल सबमें वहाँ के रहनेवालों की मानसिक स्थिति के अनुसार एक विशेष गन्ध होती है। यही कारण है कि कोई स्थान आपको शांत मालूम देते हैं और कोई भयानक। बहुत-से स्थान ऐसे हैं, जहाँ पर वीरता, दया, धर्म या ग्लानि के भाव आपके हृदय में उत्पन्न हुए बिना रह नहीं सकते। यदि मानसिक स्थिति साँस और शरीर पर इतना असर करती है कि बाहरवाले मनुष्यों को उसका अनुमान हो जाता है, तो यह सहज अनुमान किया जा सकता है कि बालक पर—जो माता के शरीर के बीच में नौ मास रहता है और उसकी साँस के साथ साँस लेता है—माता की मानसिक स्थिति का कितना बड़ा प्रभाव पड़ता होगा।

डाक्टरी अनुभव—मिस्टर सी० जे० बेयर (Mr. C. J. Byer) ने अपनी महत्त्व-पूर्ण पुस्तक "मातृ-भाव" ("Maternal impressions") में लिखा है कि बहुत कम आयु की एक स्त्री गर्भवती हो गई। आस-पास की लड़कियाँ उसको चिढ़ाने के लिये उसकी तरफ़ उँगली उठाकर कहतीं "क्या यह तुम्हारे लिये शरम की बात नहीं है" इसको सुनकर वह बेचारी अपने कमरे में जाकर ख़ूब रोया करती थी। जब इसका बालक छः वर्ष का हो गया, तब मिस्टर बेयर ने देखा कि यदि कोई मनुष्य इस बालक की तरफ़ उँगली उठाकर देखता, तो वह फ़ौरन् रोने लगता था।

दूसरी औरत के बारे में मिस्टर वेबर का कहना है कि गर्भवती होने के समय उसके मासिक वेतन में कुछ कमी हो जाने के कारण उसमें यह आदत पड़ गई कि वह अपने पति और अन्य निकट संबंधियों की चीज़ें चुरा लिया करती थी। उसके बालक में भी यही आदत देखी गई कि वह गैरों की चीज़ें तो कभी नहीं चुराता था; पर क़रीब के रिश्तेदारों की चीज़ें ख़ूब चुरा लिया करता था—उसने अपनी मा की सोने की ज़ंजीर, बहन की घड़ी और पिता की अँगूठी चुरा ली।

इन्हीं महोदय का कहना है कि उन्होंने जब एक तीन मास के बालक को बहुत अधिक बुद्धिमान् देखा, तो उसकी माता से इसका कारण पूछा। उसकी माता एक स्कूल में अध्यापिका थी। उसने कहा कि मैंने स्कूल में बहुत-से ऐसे बच्चे देखे हैं, जो कुछ नहीं समझते। इस कारण मैं अपनी गर्भावस्था में इस बात का बहुधा ध्यान रक्खा करती थी कि मेरा शिशु बहुत बुद्धिमान् हो।

संसार के इतिहास में ग्युटो (Guiteau) एक बहुत ख़ौफ़नाक क़ातिल हो गया है। उसने १८८१ में प्रेसीडेंट गारफ़ील्ड (President Garfield) को मार डाला। इसकी माता का कहना है कि उसके बहुत जल्दी-जल्दी बच्चे होते थे और दरिद्रता के कारण उसको गर्भावस्था में भी अधिक परिश्रम का काम करना पड़ता था। इससे उसको बहुत कष्ट होता था और वह गर्भवती होने से पहले बहुत डरती थी, इस कारण जब ग्युटो पेट में पड़ा, तो उसने गर्भपात कराने की ठानी। बहुधा वह इसकी तदबीरें और परिणाम सोचती। फिर उसने बहुत-सी दवाइयाँ खाईं। पर ईश्वर की इच्छा, गर्भपात नहीं हुआ। ग्युटो के जन्म के कुछ पहले उसके सिर में दर्द और चक्कर आते रहे। इन सबका परिणाम यह हुआ कि ग्युटो बहुत निर्बल और अल्पकाय पैदा हुआ, बड़े होने पर भी वह बहुत कम समझ था। मनुष्य होने पर भी उसकी बुद्धि क्षीण रही और उसने कई क़तल किए। निःसंदेह माता को जो अपने बालक के मारने की इच्छा बनी रहती थी; उसी का परिणाम यह हुआ कि उसके लड़के को भी बड़े होकर यही बान बनी रही।

डॉक्टर स्टॉक से एक माता ने कहा कि गर्भवती होने के समय उसको अपने संबंधियों से अलग रहना पड़ा और इसलिये अकेले रहकर वह किताबें पढ़कर अपना समय व्यतीत करती थी। उसकी लड़की में यह बात देखी गई कि वह खिलौनों की बनिस्बत किताबें पसंद करती थी और चुपचाप घंटों किताब हाथ में लिए ख़ुश रहती थी।

एक ऐसा बालक पैदा हुआ कि जिसकी एक बाँह की कुहनी और हथेली के बीच में मानो डॉक्टर ने काट दिया हो। माता से बहुत-से सवाल करने के बाद यह मालूम हुआ कि गर्भावस्था के समय उसका देवर घर में बहुधा रहा करता था, जिसका हाथ इस तरह कटा हुआ था।

मिस्टर वेबर का यह भी मत है कि यदि गर्भावस्था के समय माता यह सोचा करे कि मेरा बालक वीर, बुद्धिमान्, उत्साही और गुणवान् हो, तो इस ध्यान का प्रभाव बालक पर अवश्य पड़ेगा। वह यह भी कहते हैं कि यदि माता को अँधेरे में डर लगता हो—और वह सोचा करे मेरा बालक निडर हो, तो बालक अवश्य माता से कम डरनेवाला होगा। इसका सारांश यह कि यदि माता इस बात पर ध्यान दिया करे कि जो त्रुटियाँ या अवगुण उसमें हैं, वह बालक में न हों, तो बालक पर इस ध्यान का अवश्य प्रभाव पड़ेगा।

डॉक्टरों का यह भी अनुभव है कि गर्भावस्था में यदि माता को किसी विशेष चीज़ की इच्छा हो और वह पूर्ण न की जाय, तो बालक में उसकी इच्छा बहुत प्रबल होती है। डॉक्टरी किताबों में बहुत-सी ऐसी मिसालें मिलती हैं कि जन्म के पश्चात् बालक बहुत देर तक रोता चिल्लाता रहा; पर जब ज़रा-सी वह चीज़ उसको दे दी गई, जिसके लिये गर्भावस्था में उनकी माता को इच्छा थी, तो वह तुरंत चुप हो गया।

गर्भावस्था में एक स्त्री को गोश्त की ख़ुशबू आ गई और उसको मांस खाने की तुरंत इच्छा हुई; पर उसके धर्म के अनुसार मांस खाना वर्जित था, इसलिये उसने मांस नहीं खाया। जब बालक उत्पन्न हुआ, तो उसने छातियाँ मुँह से बिलकुल नहीं दबाईं। दाई ने तंग आकर कहा कि आख़िर क्या बात है, इस बालक को किस चीज़ की इच्छा है। मा ने झुँझलाकर कहा, "होगी काहे की, मांस की होगी" यह सुनकर बाप ने थोड़ा मांस बालक को चूसने के लिये दिया। उसको चूसकर बालक शांत हो गया और दूध पीने लगा। बड़ा होने पर उससे मांस खाए बिना न रहा गया, हालाँकि उसके धर्म में वह मना था और घर में कभी किसी ने नहीं खाया था।

एक और बालक का ज़िक है कि उसमें शराब का नाम कभी किसी ने नहीं लिया था, पर गर्भवती माता को एकाएक शराब पीने की प्रबल इच्छा हुई। पिता ने सोचा कि दवाई की तरह एक दफ़े शराब दे दो। बस, एक दफ़े पीते ही उसकी शराब की तृष्णा मिट गई और बालक ठीक उत्पन्न हुआ।

बहुत-से बालकों के व्यवहार, तबीयत और तौर-तरीक़ों पर ध्यान देने से विशेषज्ञों ने यह नतीजा निकाला है कि गर्भावस्था में माता की जैसी स्थिति रहती है, वैसी ही बालक की होती है। यदि उस समय रुपए की अधिकता रही, तो बालक उदार या अधिक रुपए ख़र्च करनेवाला होता है। अगर धन की कमी रही हो, तो बालक किफ़ायतशार या कंजूस होते हैं। इसी प्रकार माता-पिता के अन्य गुण या अवगुण बालक पर तसवीर खींचनेवाले यंत्र की तरह आ जाते हैं। बहुधा बड़े बालक की निसबत छोटे लड़के अधिक बुद्धिमान् और बलवान् होते हैं। क्योंकि बड़े होकर माता-पिता भी पहले की अपेक्षा अधिक अक़्लमंद और ताक़तवर होते हैं। बड़े लड़के के समय विवाह को कम दिन होने के कारण माता अपने पति का अधिक ध्यान रखती है। इस कारण से बड़े बच्चे में पति के गुण अधिक होते हैं।

गर्भावस्था के प्रभाव ऐसी सूक्ष्म और अद्भुत रीति से बालक पर पड़ते हैं कि बहुत रुपया ख़र्च करने से भी गुणों व अवगुणों का असर बदला नहीं जा सकता। अगर वे बढ़ाए या घटाए जा सकते हैं, तो माता को अपने विचार सुधारने और अच्छी बातों को मनन करने से। इस छोटे से परिश्रम से माता अपने प्रिय बालक, कुटुंब, जाति और देश को बड़ाई के उच्च मार्ग पर ले जा सकती है, फिर क्या माता जो अपने बालक के छोटे से सुख के हेतु या उसको ज़रा-सी तकलीफ़ से बचाने के लिये जीवन-पर्यंत बड़े-से-बड़ा आत्म-त्याग करने को सदा प्रस्तुत रहती है और अपने बालक की ज़रा-सी ख़ुशी के लिये अपना खाना-नहाना दुःख-सुख सभी भूल जाती है, इतना नहीं कर सकती की केवल ९ मास के लिये अपने आचार-विचार शुद्ध और उच्च रक्खे?

डॉक्टर डीयोलेविस (Di. Dio Leuis) ने चेसटिटी (chastity) नाम की पुस्तक में लिखा है कि यदि माता-पिता चाहें कि उनका भावी बालक किसी विशेष व्यापार, पेशे, कारीगरी इत्यादि में विशेष ज्ञान प्राप्त करे, तो उनको चाहिए कि गर्भावस्था में ही ऐसे भाव रक्खें कि जब बालक माता की कोख में हो, तभी उसके मस्तिष्क में यह बातें अंकित हो जायँ। उन बातों के विशेष ज्ञान का अंकुर पेट के अंदर ही जम जाय, ताकि बड़ा होने पर वह बहुत बड़ा हरा-भरा फल-फूल देनेवाला वृक्ष हो जाय।

माता-पिता के लिये यह जानना अनिवार्य है कि बालक के बड़े होने पर उसको सुधारने की अपेक्षा यह कहीं अच्छा है कि उनको जन्म से पहले ही उन्नति के मार्ग पर डाल दें। जो दान-वीर माता-पिता मेहनत से कमाया हुआ रुपया बालकों की शिक्षा में ख़र्च करते हैं, वे धन्य हैं। उनकी अपेक्षा वह अच्छा काम करते हैं, जो अपना तन-मन शिशु के पालन-पोषण में भली प्रकार लगाते हैं। पर सबसे उत्तम कार्य वह करते हैं जो बिना पैसा कौड़ी ख़र्च किए गर्भावस्था के नौ मास में ऐसे भावों के बीज डाल देते हैं जो बड़े होने पर निःसंदेह उस बालक को ऊँचे रास्ते पर ले जायँगे।

मायादेवी

× × ×

२ स्त्री में पुरुष

येल-युनिवर्सिटी के मानव-विज्ञान के सुप्रसिद्ध जानकार प्रोफ़ेसर ह्यूगो सेलहीम कहते हैं कि "पुरुषों की तरह बाल रखने, मर्दानी पोशाक पहनने और मनुष्य की ताक़त की ज़रूरतवाले कामों और खेलों में भाग लेने से स्त्रियों में पुरुषों की विशेषताएँ आ जाती हैं, जिससे आधुनिक सभ्यता को गहरा धक्का पहुँच सकता है।" उन्होंने मानव-विज्ञान-संबंधी अंतर्राष्ट्रीय कांग्रेस में भाषण करते हुए कहा कि मैं एक स्त्री को जानता हूँ, जो इस प्रकार की दिनचर्या के कारण ४३ वर्ष की अवस्था में सब प्रकार पुरुष की भाँति मालूम पड़ती थी। यहाँ तक कि उसकी दाढ़ी पर बाल बढ़ने लगे, स्वर मर्दों-सा हो गया और चेहरा पुरुष-सा मालूम पड़ने लगा। लड़के उसे देखकर 'डायन' कहते थे। इसमें कोई संदेह नहीं कि यदि वह स्त्री दो-सौ वर्ष पहले पैदा हुई होती, तो जीवित जला दी जाती। ये लक्षण इस प्रकार का रहन-सहन इख़्तियार करने से सभी स्त्रियों में पैदा हो सकते हैं।

प्रोफ़ेसर ह्यूगो के इस कथन का समर्थन अनेक उदाहरणों से होता है। इस प्रकार की एक और घटना का हाल कुछ दिन पूर्व अख़बारों में छपा था, जिसमें बताया गया था; एक स्त्री किस प्रकार पुरुष हो गई। इस स्त्री की न केवल आकृति में परिवर्तन हुआ, वरन् उसका अंग-विशेष भी पुरुषों जैसा हो गया।

तीन-चार वर्ष पूर्व काशी के ईश्वरी मेमोरियल अस्पताल में, जो प्रधान लेडी सर्जन थी उसे दाढ़ी और ज़रा-ज़रा सी मूँछें थीं। देखने में उसका चेहरा बहुत कुछ पुरुषों से मिलता जुलता था। काशी के बुलानाला मुहाल में अब भी एक स्त्री है, जिसके संबंध में प्रोफ़ेसर साहब की बातें बहुत दूर तक लागू होती हैं। इसका रहन-सहन सब मर्दों-जैसा है—यहाँ तक कि वह साफ़ा और पुरुषों का जूता भी पहनकर निकलती है। इसका शक्ल पुरुषों से इतनी मिलती-जुलती है कि यदि किसी आदमी से कहा जाय कि यह स्त्री है, तो वह कभी विश्वास न करेगा। उसने अपना नाम भी 'सीताराम' रख छोड़ा है और उसके अनेक परिचित तक उसे पुरुष समझते हैं।

---

१. वीर बनो

गभग १६८० ई० की बात है। एक दिन एक अँगरेज-बालक वाइटद्वीप के बॉनचर्च-नगर की एक दर्जी की दुकान पर बैठा काम कर रहा था। उसका मालिक कहीं बाहर चला गया। बालक ही तो था, सुई-तागा छोड़कर बड़ी ललक से सामने दूर तक लहराते हुए समुद्र के नील जल की शोभा निहारने लगा।

वह माता-पिता से रहित एक कंगाल अनाथ बालक था। पादड़ियों ने उसे पाला पोसा था और उन्होंने ही उसे एक दर्जी की दुकान पर सिलाई सीखने को भर्ती कर दिया था किंतु सुई-तागे में झगड़ना उसे पसंद नहीं था।

नील समुद्र में पहले मस्तूल दीख पड़े, फिर जंगी जहाजों का एक झुंड समुद्र की तरंगों को कुचलता मस्तानी चाल से चलता, उसकी आँखों के सामने आया।

बालक दुकान से उठ भागा, दौड़ता हुआ समुद्र के कछार पर आया। वहाँ एक छोटी-सी नाव थी, कूद कर उस पर चढ़ गया। छोटी-छोटी किंतु दृढ़-प्रतिज्ञ भुजाओं से संचालित नौका, तरंगों को चीरती, तीर-सी चल निकली। बालक जल-सेनापति के निकट हाजिर हुआ।

उस समय लड़ाकू जहाजों पर रहना बड़ा खतरनाक समझा जाता था। जल्दी कोई उन पर भर्ती होना नहीं चाहता था। लड़के के भर्ती होने के लिए बार-बार आग्रह करने पर कोई 'नाहीं' नहीं कर सका।

दूसरे ही दिन उसकी परीक्षा का समय आया। उस समय फ्रांस और इँगलैंड में बड़ी दुश्मनी थी। सूर्य उदय के साथ ही फ्रांसीसी लड़ाकू जहाजों से इन जहाजों का मुकाबला हो गया। यद्यपि बालक जहाज पर नया-ही-नया आया था, इसके पहले उसने कभी लड़ाई की भयानकता नहीं देखी थी, तो भी वह जरा भी नहीं घबराया। अपने अफ़सर के हुक्म के मुताबिक वह दौड़-दौड़कर अपना काम करता रहा। उत्तेजना के समय में भी तनिक विचलित नहीं हुआ।

बहुत देर तक लड़ाई होती रही। बालक ने ऊबकर एक जहाजी साथी से पूछा—'हम लोगों को कैसे मालूम होगा कि हमारे दुश्मन अब हार गए !''

जहाजी ने फ्रांसीसी सेनापति के जहाज के मस्तूल पर फहराती हुई पताका की ओर अँगुली बताते हुए कहा—'देखो, जब वह पताका नीचे उतार ली जायगी, हम लोग समझेंगे कि दुश्मन हार गए, हमारी जीत हुई।'

'बस, इतने ही से'—यह कहता हुआ, बालक वहाँ से तेजी से चल पड़ा।

उस जमाने मे दोनो पक्ष के जहाज बहुत निकट होकर लड़ते थे। एक पक्ष के जहाज दूसरे पक्ष के जहाज पर, चक्कर काटते हुए गोली-गोले बरसाते थे; और एक के सैनिक दूसरे जहाज पर जबर्दस्ती चढ़कर कब्जा करने की कोशिश करते थे।

फ्रांसीसी सेनापति का जहाज बालकवाले जहाज के पास ही था। बालक निधड़क कूदकर उस पर चढ़ गया। फिर चुपके-चुपके दोनो ओर की गोलियों की कुछ परवाह न कर, रस्से की सीढ़ी के सहारे मस्तूल पर जा पहुँचा। सहूलियत से पताका उतार ली और बिल्ली-सा पैर दाबता अपने जहाज पर फिर आ दाखिल हुआ। दोनों सेनाओं मे से किसी ने भी उसे जाते-आते न देखा।

ओहो! कितनी बड़ी वीरता! दोनों ओर से दनादन गोलियाँ दागी जा रही हैं, तोपे आग उगल रही हैं। एक पक्षवाले दूसरे पक्षवालों को देखते ही मार डालने में राक्षसों को मात कर रहे हैं। यदि एक भी गोली चाहे किसी भी पक्ष की (क्योंकि वह दुश्मन के जहाज पर था और सभव था, अनजाने अपने ही आदमी की गोली उसे लग जाती) उसे लगती या किपक्षी उसे देख भर पाते, तो क्या उसकी बोटियों का भी कहीं पता चलता!

अँगरेजी सैनिकों ने फ्रांसीसी जहाज पर पताका नहीं देखी। वे फूले नहीं समाए. समझा, दुश्मन ने हार मानी। एक बार ही, उत्साह और उमग में आकर फ्रांसीसी जहाज पर कूद पड़े। उनके इस अचानक धावे से फ्रांसीसी सेना भौचक रह गई। उनके गोलदाज तोप छोड़कर दुम दबा भाग पड़े। दो ही एक पल मे फ्रांसीसी जहाजों पर अँगरेजों का कब्जा हो गया।

हम लोग जीत गए—यह जानकर आनद में उछलता वह बालक आगे आया। उसके हाथ में फ्रांसीसी पताका थी—सब लोग देखकर आश्चर्य-चकित हो रहे!

इस घटना की खबर अँगरेजी सेनापति को मिली। उन्होंने बालक को बुलाया—सम्पूर्ण कहानी सुनी। खुश हो, उसे छाती से लगाया, पीठ ठोक दी, बहुत कुछ इनाम दिया और ऊँचे पद पर तरक्की कर दी। साहस और वीरता के कारण उसकी तरक्की का सिलसिला जारी रहा, यहां तक कि एक दिन वह अँगरेजी जल-सेना के सबसे बड़े पद पर जा पहुँचा।

अँगरेजी इतिहास मे उसका नाम "जलसेना-पति हॉप्सन" करके सोने के अक्षरो में लिखा मिलता है।

भारत के प्यारे बालको, आज तुम जो अँगरेज जाति को इतना सबल पाते हो, उसका खास कारण हॉप्सन-ऐसे अनेक सबल, वीर और साहसी बालक हैं। भारत को इस समय वीर बालकों की जरूरत है। वीर बनो।

श्रीरामवृक्ष शर्मा बेनीपुरी

× × ×

२. गरगौवे की भीषण प्रतिज्ञा

किसी गाँव में एक पुराने मकान के खँडहर में गरगैया-गरगौवा का एक जोड़ा रहा करता था। उस घर मे उनके खाने-पीने का कोई सामान न था। इसलिए अपनी जीविका उपार्जन के लिए उन्हें बाहर जाना पड़ता था। एक दिन चलते-चलते वे बहुत दूर निकल गए और एक गाँव में जाकर एक चमार के घर मे घुसे। आँगन मे बेसार के लिए गेंहुओं का ढेर लगा था। ये दोनों जाकर आनद से वहीं पर चुगने लगे। इतने में मालिक मकान धनसिंहवा चमार भी हल-बैल लेकर खेतों से आ गया। एक तो धूप से थका हुआ चला आ रहा था, इन्हें गेंहुओं के ढेर मे चुगते देख मारे गुस्से के लाल हो गया। आव न देखा ताव झट बैल हाँकने के चाबुक से ऐसा प्रहार किया कि गरगैया वहीं कडा हो गई, गरगौवा अपनी जान लेकर भाग गया। अपने घोंसले मे आ-कर जब वह निश्चित होकर बैठा, तो सोचने लगा—"अरे, मेरे जीते जी मेरे सामने मेरी धर्म-पत्नी मार डाली गई और मै कुछ न कर सका। मै अपने दांपत्य-धर्म का कुछ भी ख़याल न कर अपनी जान लेकर भाग आया। हा, धिक्कार है मुझे। क्या मेरे बराबर दुनिया में कोई और नीच पापी हो सकता है। जिस समय मुझे कोई कष्ट होता था, तो मेरी स्त्री बेचैन हो जाती थी, मेरी दवा-दारू मे रात दिन एक कर देती थी। जब तक मै चगा न हो जाता, उसके लिए खाना-पीना सब हराम हो जाता। पर हा! मैं इतना नीच और स्वार्थी निकला कि मेरे सामने ही वह मार डाली गई और मैं देखता रहा, कुछ भी न कर सका और अपनी जान लेकर भाग आया। मुझे धिक्कार है! हजार बार धिक्कार है! मुझे भी वहीं पर अपने प्राण दे देना चाहिए था, अगर मैं उसकी रक्षा नहीं कर सकता था; पर इससे होता क्या! यदि जीवित रह कर ही कुछ न कर सका, तो मर कर क्या कर लेता। ख़ैर, जो कुछ हुआ सो हुआ। अब पानी तब पिऊँगा, जब इसका बदला चमरऊ से ले लूँगा।"

यह भीषण प्रतिज्ञा करके गरगौवा बदला लेने के उपाय सोचने लगा। झट एक तरकीब याद आ गई। वह दौड़ता हुआ गया और जंगल से सींके चीर लाया। उनकी एक बहली तैयार की। इसके बाद चूहों के पास पहुँचा और उनको अपनी सारी कथा कह सुनाई। चूहे भी उसकी इस वीर प्रतिज्ञा से बहुत ख़ुश हुए और बैलों की जगह काम करने को तैयार हो गए। एक सच्ची लगनवाले दृढ़-प्रतिज्ञ वीरात्मा का कौन साथ नहीं देता। बस, फिर क्या था, बहली मे चूहों को जोत, हटो, बचो करता हुआ गरगौवा धनसिंहवा से बदला लेने चल दिया।

गाँव से थोड़ी ही दूर पहुँचा था कि रास्ते में कौवा मिला। कौवा बोला—"गरगऊ भाई कहाँ चले?" गरगौवा बोला—

"सींक चीरि कर बहल बनाई
बहल बनाई, मूस लिए मचियाय।
चमरवा पाजी गरगइया मारी
दाउँ लेन को जायँ।"

भाई, धनसिंहवा चमार ने मेरी स्त्री को मार डाला है, उसी का बदला लेने जा रहा हूँ।" यह सुन कौवा बोला—"क्या भाई हम भी चलें?" गरगौवा बोला—"भाई चलो, आप तो हमारे बड़े सहायक हैं।" कौवा भी बहली पर बैठकर चल दिया। आगे चलकर एक बिच्छू मिला। उसने पूछा—"भाई गरगऊ कहाँ चले?" गरगौवा बोला—

"सींक चीरि कर अहल बनाई
बहल बनाई, मूस लिए मचियाय;
चमरवा पाजी गरगइया मारी
दाउँ लेन को जायँ।

यह सुन बिच्छू बोला—"चलो भाई मै भी तुम्हारे साथ चलूँगा।" वह भी बहली पर बैठकर चल दिया। आगे चल कर साँप मिला। उसने पूछा—"गरगऊ भाई कहाँ चले?" गरगौवा बोला—

सींक चीरि कर अहल बनाई
बहल बनाई, मूस लिए मचियाय।
चमरवा पाजी गरगइया मारी
दाउँ लेन को जायँ।

यह सुन साँप भी साथ मे चल दिया। आगे चलकर एक भेड़िया मिला। उसने पूछा—"भाई गरगऊ आज सब लोग कहाँ जा रहे हो? क्या कहीं कोई शादी ब्याह या पचायत है?" गरगौवा बोला—"भाई,

सींक चीरि कर अहल बनाई
बहल बनाई, मूस लिए मचियाय,
चमरवा पाजी गरगइया मारी
दाउँ लेन को जायँ।"

यह सुन भेड़िया बोला—"चलो भाई, यह कितनी बात है। अब की पाजी चमरवा को ठीक कर देंगे।" इतना कहकर भेड़िया भी बहली पर बैठकर चल दिया। आगे चलकर दो चोर मिले। बहली आती देख, उन्होंने समझा, आज कोई मालदार असामी फँसा। अब कहीं जाने की जरूरत न होगी। अच्छी साइत विचार कर घर से चले थे। इस प्रकार मन-ही-मन पकौड़ी खाते हुए झट दूर ही से डपट कर बोले—"कौन है! खड़ी कर गाड़ी, कहाँ जा रहा है? खबरदार, अब एक कदम भी आगे मत बढ़ना।" इतना कह बात-की-बात में दौड़कर वह बहली के पास आ गए। गरगौवा को देखकर बोले "तुम लोग कहाँ जाते हो?" गरगौवा बोला—"भाई जाता क्या हूँ—

सींक चीरि कर अहल बनाई
बहल बनाई, मूस लिए मचियाय;
चमरवा पाजी गरगइया मारी
दाउँ लेन को जायँ।"

चोर होते बड़े कठोर-हृदय है, पर इस इतने छोटे जीव का साहस देखकर उनको भी दया आई और सोचने लगे, इस बहादुर की मदद जरूर करनी चाहिए। साथ ही अपना भी काम बन जाने की आशा है। उन्होंने कहा—"अच्छा भाई, हम भी तुम्हारे साथ चलेंगे। तुम बड़े बहादुर मालूम पड़ते हो।" गरगौवा बोला—"भाई, चलो। आप लोगो के सहारे पर तो मैने इतनी बड़ी प्रतिज्ञा की है कि जब तक अपनी स्त्री की हत्या का बदला चमरवा से न ले लूगा, तब तक अन्न-जल ग्रहण न करूँगा।" चोर भी बहली पर बैठकर चल दिए।

इस दल-बल के साथ गरगौवा चल दिया। मन मे उत्साह था और हृदय में बदले की आग। जाकर सब लोग उस गाँव मे पहुँचे, जहाँ धनसिंहवा रहता था। रात के क़रीब दस बज चुके थे। सारे गाँव मे सन्नाटा था। सब लोग अपने-अपने घरो मे सो रहे थे। धनसिंहवा भी अपने घर मे पड़ा खर्राटे मार रहा था। गरगौवा अपनी इस सेना के साथ उसके घर पहुँचा। बहली गाँव के बाहर ही छोड़ गया था। दरवाजे पर जाकर देखा, टट्टर बंद था। टट्टर खोलकर चुपके से सब लोग भीतर घुसे और अपनी-अपनी घात से बैठ गए। बिच्छू दिया तले बैठा। साँप पानी के घड़े के पास बैठा; भेड़िया और चोर एक-एक

कोने में छिपकर खड़े हो गए। कौवा छिपकर अलग बैठ गया, इसके बाद चूहे कोठरी के भीतर घुसे और वहाँ खड़भड़ शुरू की। ऊपर से बड़े ज़ोर से एक हाँड़ी गिरी हाँड़ी गिरने की आवाज सुनकर धनसिंहवा झट उठ बैठा और अपनी औरत से बोला—"उठ, चिराग़ जला, घर के अंदर कोई खटखटा रहा है।" औरत भी हड़बड़ा कर झट उठी। चिराग़ जलाकर ज्यों ही उसे उठाकर चलने को हुई कि बिच्छू ने डंक मार दिया और वह झट चिराग को वहीं छोड़ चिल्लाने लगी। इतने मे कौवा उड़ा और झट चिराग़ की जलती हुई बत्ती उठाकर छप्पर पर रख दिया। छप्पर जलने लगा। यह देख धनसिंहवा पानी के लिए दौड़ा। ज्यों ही उसने पानी का घड़ा उठाया त्यों ही साँप ने पैर के अँगूठे मे काट खाया। वह बेहोश होकर वहीं पर गिर पड़ा। इसी बीच में बच्चे भी जाग पड़े। भेड़िया झट झपटकर उनको उठा ले भागा। इधर चोरों को मौक़ा मिला। उन्होंने बात-की-बात मे घर का सारा सामान लाकर गाँव के बाहर रख दिया। जब तक गाँववाले दौड़ें दौड़े तब तक सब घर-मकान स्वाहा हो गया। चमरवा ऐसा सोया कि लहर भी न जगी।

इस प्रकार धनसिंहवा से बदला लेकर सब लोग गाँव के बाहर आए। फिर बहली जोती गई और उसमे बैठकर सामान के साथ सब लोग चल दिए। रास्ते मे आकर सब लोग अपने-अपने घर चले गए। गरगौवा ने इस सहायता के लिये सबको धन्यवाद दिया और सामान लाया था, वह सहायकों को दे दिया। इस प्रकार उसकी प्रतिज्ञा पूर्ण हुई और उसने अन्न-जल ग्रहण किया।

सच्चो लगनवाला दृढ़-प्रतिज्ञ मनुष्य क्या नहीं कर सकता। उसे सहायक भी बहुत मिल जाते है। शत्रु को कभी छोटा नहीं समझना चाहिए। बिगड़ने पर वह बहुत बड़ा अनर्थ कर सकता है।

'माधव'

१. ज़ुकाम

(भाद्रमास की संख्या से आगे)

कुछ लोग ऐसे होते हैं, जो ज़ुकाम के डर की वजह से अपना कमरा बराबर बंद रखते हैं। ताज़ी हवा कमरे में नहीं आने देते, बासी और गंदी हवा का सेवन करते हैं, अपने शरीर को ठंडक से बचाने के लिए ज़रूरत से ज्यादा कपड़ों से ढके रहते हैं । पैर में मोज़े, बदन पर कोट, चेस्टर, कम्बल इत्यादि कान में गुलूबंद-साफा, हाथ में दस्ताने पहनते हैं, इस ख़याल से कि कहीं सरदी न हो जाय । ऐसे आदमियों को अगर ज़रा भी ठंडी हवा लगी, तो सरदी हो जाती है, क्योंकि इस प्रकार के रहने से वह अपना शरीर दुर्बल कर लेते हैं । गंदी हवा में रहने से और स्वच्छ और ताज़ी हवा से परहेज़ करने की वजह से उनका फेफड़ा और रक्त दोनों दुरुस्त नहीं होते । कपड़े के ज़रूरत से ज्यादा इस्तेमाल से वह अपने चमड़े को भी कमज़ोर बना लेते हैं । प्रकृति की सरदी, गरमी के निरंतर परिवर्तन को सहने के लिये इनके चमड़े की शक्ति कम हो जाती है, चमड़े की खाल नाज़ुक हो जाती है। परिणाम यह होता है कि जहाँ कहीं वायु की सरदी, गरमी में फ़रक़ आया और उसका असर नाक की झिल्ली या शरीर की खाल पर पड़ा कि स्वास्थ्य का पलड़ा उलट-पलट जाता है और ज़ुकाम का प्रकोप हो जाता है। इसलिये यह आवश्यक है कि मनुष्य यह ग़लत ख़याल अपने दिल से निकाल दे कि ताज़ी या ठंडी हवा साँस लेने से ज़ुकाम हो जाता है। ज़ुकाम के मरीज़ के लिए बासी हवा भयंकर शत्रु है। शरीर की खाल को भी हलके-हलके सरदी-गरमी बरदाश्त करने के क़ाबिल बनना चाहिए । कान में गुलूबंद बाँधने की आदत बहुत ज़रूरी नहीं है। शरीर के अन्य कपड़ों में भी कमी हो सकती है । जो लोग प्रातःकाल उठकर ठंडे पानी से स्नान करते हैं, उनके शरीर की खाल बहुत पुष्ट और स्वस्थ होती है और सरदी-गरमी के परिवर्तन से उन्हें ज़ुकाम नहीं हो सकता । जो लोग प्रातः-काल उठकर टहलने जाते हैं, उनके नाक की झिल्ली और फेफड़े स्वच्छ और ताज़ी हवा से मज़बूत हो जाते हैं और ठंडी हवा के सूँघने से उन्हें सरदी हो जाने का ज़रा भी डर नहीं रहता । इसलिये प्रातःकाल टहलने जाना और स्नान करना बहुत लाभदायक होता है ।

तंबाकू और शराब दोनों कफज पदार्थ हैं। इनके सेवन से शरीर में कफ की मात्रा बढ़ती है, जो सरदी ज़ुकाम के पैदा करने में मदद ही नहीं देती, बल्कि उसकी जन्मदाता हो जाती है। शराब और तंबाकू के अति सेवन से ज़ुकाम और सरदी का प्रकोप नहीं बढ़ता, बल्कि साधारण अवस्था में भी खाँसी से पीड़ित रहता है और बेहद कफ थूकता है। पाठकों ने अक्सर देखा होगा कि हुक़ा पीनेवाले बेहद कफ थूकते हैं और शराब पीनेवालों को भी खाँसी का रोग बहुत सताता है। शराब और तंबाकू दोनों ज़हरीली चीज़ें हैं। डॉक्टरों को और बातों में संभव है मतभेद हो, लेकिन शराब

और तम्बाकू के संबंध में सब एकमत हैं और वह इसे मनुष्य के स्वास्थ्य के लिये हानिकर बताते हैं।

चिंताग्रस्त मन, विक्षिप्तचित्त और शांति के अभाव से भी ज़ुकाम हो जाया करता है। जो लोग ज़रूरत से ज़्यादा फ़िक्र में डूबे रहते हैं, जिन्हें किसी-न-किसी चीज़ की चिंता बराबर लगी रहती है, जो किसी-न-किसी परेशानी में मुब्तला रहते हैं, जिनके सर पर उनके सामर्थ्य से अधिक काम रहता है उन लोगों की तनु-नाड़ियाँ निर्बल पड़ जाती हैं। शरीर में रोग को दबाने की शक्ति कम पड़ जाती है और साधारण व्यतिक्रम से ज़ुकाम में फँस जाते हैं। चिंता के प्रकोप से भय में, अफ़सोस की हालत में रक्त की नाड़ियाँ सिकुड़ जाती हैं। रक्त के संचार में फ़र्क़ पड़ता है, सरदी पैदा हो जाती है। नियमानुकूल, सामर्थ्य के अनुसार काम, प्रसन्न चित्त, बेफ़िक्री और निश्चिंत मानसिक अवस्था पैदा करना चाहिए। यह सब बातें मनुष्य स्वयं पैदा कर सकता है, चाहे उसकी आर्थिक दशा कुछ हो क्यों न हो, मुतवातिर ज़ुकाम से पीड़ित मनुष्यों के लिये यह आवश्यक है।

ज़ुकाम हो जाने पर रोगी को तबीअत यही चाहती है कि नाक का पानी, सर का दर्द, हरारत, मन्दता जितनी जल्द अच्छी हो जाय, उतना ही अच्छा है; इसलिये वह तुरंत डॉक्टर के पास दौड़ता है। नातजुरबेकारी में अकसर यह होता है कि ग़लत दवा खा लेने से ज़ुकाम बिगड़ जाता है। बहते हुए ज़ुकाम को रोकना बहुत नुकसान पहुँचाता है। इसलिये ज़ुकाम के बहने की हालत में यही नहीं कि कोई बंद करने का दवा न खानी चाहिये; बल्कि ऐसा भोजन भी न करना चाहिए, जिससे ज़ुकाम बंद हो जाय। सरदी में जो पानी नाक से गिरता है, वास्तव में वह शरीर का मल होता है; जो हमने अपने जिस्म में बाहर से भर रक्खा था। प्रकृति सरदी द्वारा उस मल को निकालती थी, अगर हम उस मल को निकल जाने दें, तो अच्छा ही है। अगर हमने किसी दवा से या अन्य पदार्थ को खाकर इसे रोक दिया, तो नाक की सरसराहट तो ज़रूर रुक जायगी; लेकिन वह विष जो शरीर से निकल रहा था; हट कर किसी दूसरे अवयव पर आक्रमण करेगा।

ज़ुकाम तो ज़रूर रुक जायगा, लेकिन या तो खाँसी आने लगेगी या सर में दर्द हो जायगा या कुछ और रोग पैदा हो जायगा। इसी अवस्था का नाम ज़ुकाम का बिगड़ जाना है।

हमारे देश में भी इस बात का काफ़ी ज्ञान है। सरदी हो जाने पर सरदी को बिलकुल नहीं छेड़ते, केवल ऐसी दवाएँ खाते हैं, जिससे ज़ुकाम और बह जाय। कोई ऐसी नहीं खाते जो ज़ुकाम को बंद कर दे।

जो दवाएँ ज़ुकाम को एक ही दिन में या चंद घंटों में बन्द कर देने को मिलती हैं, वह ज़ुकाम को तो बंद करती ही हैं, साथ ही शरीर के अन्य अवयवों पर बहुत बुरा असर रखती हैं। एक डॉक्टर साहब ने इस संबंध में अपना ज़ाती तजुर्बा यह बताया है कि एक दफ़ा उन्हें ज़ुकाम हुआ। ज़ुकाम से बहुत परेशान हुए और चाहते यह थे कि यह मर्ज़ किसी-न-किसी तरह तुरंत अच्छा हो जाय। बाज़ार में उन्हें एक जगह यह नोटिस दिखाई दी "हमारी दवा से ज़ुकाम एक दिन में अच्छा हो जाता है।" इन्होंने मनमानी मुराद पाई, तुरंत ही दवा ख़रीद कर उसका सेवन किया और चंद घंटों में ज़ुकाम जाता रहा। इन्हें बड़ी प्रसन्नता हुई। थोड़ी देर के बाद जब यह खाना खाने बैठे, तो अपने को आश्चर्यजनक अवस्था में पाया। भोजन का ग्रास मुँह में रखते हैं, तो बिलकुल बेस्वाद जान पड़ता है। बिसकुट मालूम होता था कि सूखा आटा है। मुँह का थूक भी बिलकुल सूख गया था। बात क्या थी। बात यह थी कि जिस दवा ने ज़ुकाम को सुखा दिया, उसने थूक पैदा करनेवाली ग्रंथियों को भी सुखा दिया था; और स्वाद इन्द्रिय पर भी अपना प्रभाव डाला था, ज़ुकाम को दबाने की दवाएँ इसलिये वास्तव में नुकसानदेह होती हैं। वह रोग के प्रकोप को एक जगह से हटाकर दूसरी जगह कर देती हैं। इसलिये ज़ुकाम को रोकना न चाहिए। बहुत-से डॉक्टरों का मत है कि इन्फ़्लुएंज़ा रोग के समय अधिकांश मृत्युएँ इसलिये हुई थीं कि विष को निकलने नहीं दिया जाता था; बल्कि तुरंत ही दबाने की कोशिश की जाती थी, जिसका परिणाम यह होता था कि रोग फेफड़े पर प्रकोप करता था और रोगी न्यूमूनिया से मर जाता था। दमा, खाँसी, फेफड़े के अनेक रोग साधारण ज़ुकाम के बराबर दबाते रहने से ही पैदा हो जाते हैं।

ज़ुकाम अच्छा करने के उपाय

निम्न-लिखित उपाय एक डॉक्टर की पुस्तक से उद्धृत किए जाते हैं।

(१) सरदी होने की आशंका को अनुभव करते ही

गरम पानी से टब में बैठकर नहा लेना चाहिए, टब में कम-से-कम बीस मिनट बैठे रहना चाहिए।

(२) एक कागज़ी नीबू का अर्क़ एक गिलास गरम पानी मे डालकर पी जाओ। इसमें शक्कर न डाली जाय। यदि नीबू का अर्क़ न पसंद हो, तो प्याज़ को उबाल कर मय पानी के खाना चाहिए।

(३) पैर अगर ठंडे हैं, तो पट लेट रहना चाहिए और गरम पानी की बोतल से उन्हें सेंक डालना चाहिए।

(४) जिस कमरे मे रोगी सोवे, उसकी खिड़की बिलकुल खुली रहनी चाहिए।

(५) खाने-पीने में ख़ब परहेज़ करना चाहिए, सरदी होने पर ख़ूब न खाना चाहिए बल्कि दूसरे दिन सुबह उपवास या अर्ध उपवास कर डालना चाहिए। यदि आपमे इतनी शक्ति है कि आप केवल पानी पर सारा दिन गुज़ार सकें, तो यक़ीन रखिए ऐसा करने से ज़ुकाम बहुत जल्द अच्छा होगा। यदि आप बिना खाए हुए नहीं रह सकते, तो केवल फल के रसों को पीकर रहिए।

दस्तावर भोजन खाने से पेट की सफ़ाई होती है और शरीर का विष साफ हो जाता है।

(६) ज़ुकाम की हालत में प्राणायाम और ताज़ी हवा का सेवन बहुत लाभदायक होगा।

(७) पेट का साफ़ करना बहुत ज़रूरी है, इसलिये अगर क़ब्ज़ की शिकायत हो, तो फल के रस से अच्छा हो जायगा, लेकिन अगर यह नामुमकिन है, तो "इनीमा" ले लेना चाहिए अंतड़ियाँ इससे साफ़ हो जाती हैं और शरीर का बहुत-सा मल और विष निकल आता है।

(८) प्रातःकाल हलकी कसरत कर लेनी चाहिए और बदन की मालिश करा लेना और भी लाभदायक होगा।

पुराना ज़ुकाम या बिगड़ा हुआ ज़ुकाम

जब शरीर मे विष की मात्रा साधारण परिमाण से अधिक हो जाती है या गलत दवा करने से ज़ुकाम एक दफ़ा दबके फिर उभर आता है, उस अवस्था मे ज़ुकाम एक स्थायी सूरत इख्तियार कर लेता है और रोगी इस रोग से बराबर पीड़ित होता रहता है। नाक की झिल्ली कमज़ोर पड़ जाती है और फूल आती है। नाक से साँस लेने में दिक़्क़त होती है और कफ़ इत्यादि बराबर निकलता रहता है।

इस अवस्था में साधारण पथ्य या परहेज़ से लाभ की विशेष आवश्यकता नहीं है। किसी योग्य चिकित्सक से तुरत ही सलाह लेनी चाहिए। निम्न-लिखित पथ्य से भी लाभ हो सकता है।

(१) खाने की मात्रा घटा देनी चाहिए, ताकि शरीर की सारी शक्ति ज़्यादा भोजन के फ़ुज़ले के निकालने में ही व्यय न हो; बल्कि रोग के दूर करने में भी लग सके। भोजन हलका, किंतु पुष्टकर होना चाहिए। वे पके ताज़े भोजन की मात्रा खाने में बढ़ानी चाहिए। ताज़े पके फल, हरे शाक और अन्य सब्ज़ी इस रोग में बहुत लाभदायक हैं। नमक और शक्कर या मिठाई न खाना चाहिए।

(२) अगर संभव हो तो उपवास आरंभ कर देना चाहिए, ताकि शरीर का जमा हुआ कफ ढीला होकर निकल जाय। उपवास के अनेक गुण हैं, उपवास करने से आश्चर्य-जनक लाभ हुए हैं।

(३) इनीमा से रोज़ाना पेट साफ़ कर लेना चाहिए। किंतु भोजन के पदार्थ और उसकी मात्रा को दुरुस्त करने से पेट स्वयं ठीक हो जाता है। क़ब्ज़ जाता रहता है और दिन में दो मरतबा साफ़ पाख़ाना हो जाता है।

(४) खुली हवा में कसरत करना, दौड़ना, टहलना या अन्य खेल खेलना बहुत लाभदायक हैं। अगर यह संभव न हो, तो घर के अंदर ही कसरत कर लेनी चाहिए।

(५) बदन की रोज़ाना मालिश कर लेनी चाहिए। मालिश से त्वचा मे रक्त का संचार हो जाता है। स्नान भी करना आवश्यक है, हफ्ते में एक दफ़ा गरम पानी से भी स्नान कर लेना लाभदायक रहेगा।

(६) स्वच्छ हवा दिन रात बराबर मिलनी चाहिए।

(७) कड़वे तेल के एक या दो बूँद नाक मे डाल लेने से भी अकसर नाक साफ़ हो जाती है। नाक के अंदर पपड़िया न पड़ने देनी चाहिए। कड़वे तेल की फुरेहरी नाक मे घुमाने से यह कठिनाई जाती रहेगी।

बच्चों में ज़ुकाम के बिगड़ जाने से adenoid नाम का रोग हो जाता है। यह रोग ज़्यादातर बच्चों में होता है। इस रोग मे नाक के पीछे और हलक़ के ऊपर की कुछ ग्रंथियाँ फूल जाती हैं जिससे नाक के ज़रिए से साँस लेने में दिक़्क़त होती है और रोगी मुँह से साँस लेने लगता है। कुछ दिन के बाद मुँह से साँस लेने की आदत पड़ जाती है और रोगी का मुँह बराबर खुला रहता है। जब यह ग्रंथियाँ फूल कर कान तक आनेवाली

नाली का मुँह बंद कर देती हैं, उस समय से बहरापन, कान का बहना और कर्ण-शूल इत्यादि रोग पैदा हो जाते हैं। यह रोग ज़्यादातर ४ वर्ष से लेकर १० वर्ष तक के बच्चों को होता है। बड़े आदमियों को भी हो सकता है। इस रोग से बालक की मानसिक शक्ति पर भी बुरा प्रभाव पड़ता है। बालक के चेहरे से मूर्खता टपकती है। मुँह बराबर खुला रहता है, ठुड्डी पीछे हटी रहती, दाँत बाहर निकले रहते हैं। बच्चे ज़रा-सी मेहनत में भी हाँफने लगते हैं। रात को अच्छी नींद नहीं आती और सोते में ऐसा बालक बहुत ख़र्राटे लेता है। अनुस्वार का उच्चारण कठिनाई से होता है। यह रोग पराकाष्ठा में पहुँचकर मंघा, काली खाँसी पैदा कर सकता है। बालक का सीना पतला हो जाता है। सूखे का रोग हो सकता है। मानसिक शक्तियाँ तो इस रोग के कारण बिलकुल मंद पड़ जाती हैं। वह किसी काम में ध्यान लगाकर कुछ देर भी बैठ नहीं सकता। इस अवस्था में डॉक्टर की सलाह तुरंत लेनी चाहिए।

ज़ुकाम के बिगड़ जाने से कव्वा भी बढ़ जाता है, गले की ग्रंथियाँ फूल जाती हैं। खाँसी आने लगती है। कुछ डॉक्टरों का मत है कि ऐसी अवस्था मे कव्वा काटकर फेंक देना चाहिए और कुछ डॉक्टर इसको हानिकारक बताते हैं। इनका मत है कि कव्वा तथा गले की ग्रंथियाँ साँस के ज़हर को मारने का काम करती हैं, इसलिये इनको काटकर फेंक देना वास्तव में शरीर के एक महत्त्वपूर्ण अवयव का नाश कर देना है। कव्वा को काट डालने के पश्चात् ज़ुकाम और ज़्यादा होने लगता है। इस क़िस्म के ऑपरेशन बहुत ख़तरनाक होते हैं, इसलिए यह मुनासिब नहीं कि चीड़-फाड़ कराई जाय।

इस रोग में भोजन में परहेज़ करने से बहुत फ़ायदा होता है। मिठाई, घी और चावल इत्यादि न खाना चाहिए। चोकरदार गेहूँ के आटे की रोटी फ़ायदेमंद है। ताज़े पके फल, मेवे, साग, टमाटर इत्यादि पदार्थ जिसमें विटामिन अर्थात् प्राणत्व ज्यादा है खाने से फ़ायदा होता है, फल का रस या साग का रस भी बहुत फायदेमन्द चीज़ है। इनीमा लेकर पेट साफ़ रखना चाहिए। बदन की रोज़ाना मालिश करनी चाहिए और ठण्डे या नीम गरम पानी से रोज़ स्नान करना चाहिए। प्राणायाम, खुली हवा का सेवन इत्यादि भी लाभदायक है।

ज़ुकाम के मरीज़ के लिये निम्न-लिखित भोजन लाभदायक होगा। प्रातःकाल उठते ही—एक गिलास गरम पानी घूँट-घूँट कर पीना चाहिए। ७½ बजे, दलिया या ताज़ा मक्खन, छटाँक-भर दही; किंतु कुछ पीना न चाहिए। ११½ बजे, भुने हुए आलू, भुने हुए प्याज़, गली गोभी। शाम को, किशमिश (साफ़), मुनक्का (साफ़) सोते समय ५॥ पाव साग का रस।

ज़ुकाम में पानी या रस का जितना कम प्रयोग किया जाय, अच्छा है।

यह पुस्तक डॉक्टरों की आवश्यकता को पूरी करने के लिये नहीं है, केवल साधारण नियमों का ही दिग्दर्शन कराया गया है। इनके पालन से ज़ुकाम का होना मुश्किल होगा और हो जाने पर उसका अच्छा होना बहुत आसान होगा।

शीतलासहाय

---

१. जीवात्म-वाद विषयक समीक्षा

त वर्ष के श्रावण मास की 'माधुरी' में मिश्र-बधुओं का "जीवाणुवाद" पर अत्यंत गंभीर विचार-युक्त लेख छपा था। जिसमें बड़ी विद्वत्ता के साथ वैज्ञानिक प्रमाणों और स्वतन्त्र तर्क से सिद्ध किया गया था कि जीवात्मा एक संदिग्ध विषय है और मनुष्य के शरीर अथवा इतर प्राणियों में उसकी कोई आवश्यकता प्रतीत नहीं होती; परंतु गत ज्येष्ठ मास के अंक में "जीवात्मवाद" शीर्षक लेख उक्त मिश्र-बधुओं द्वारा इसके प्रतिवाद में निकला है। हमें विचार करना है कि तुलनात्मक दृष्टि से "जीवाणुवाद" में विशेष तथ्य है कि "जीवात्मवाद" में; और "जीवाणुवाद" की पुष्टि के लिये काम में लाए गए प्रमाणों तथा तर्कों की अपेक्षा "जीवात्मवाद" विषयक तर्कावली विशेष ग्राह्य है कि नहीं।

सरल बुद्धि तो यह कहती है कि जिस वस्तु को हम देख नहीं सकते, सुन नहीं सकते अथवा अन्य किसी प्रकार के साधनों द्वारा अपनी इंद्रियों से उसका परिचय प्राप्त नहीं कर सकते, उसका अस्तित्व भी स्वीकार नहीं कर सकते; पर जीवात्मा, ईश्वर, परलोक आदि के विषय में हम प्राय पहले से ही उसका यथार्थत्व मानकर जी-जान से उसे सिद्ध करने की चेष्टा करते हैं। यही कारण है कि कोई भी मनुष्य आजकल ऐसी तर्कावली उक्त विषयों के प्रतिपादन के निमित्त उपस्थित नहीं कर सका, जो सब लोगों को एक ही प्रकार से स्वीकार हो। जिस वस्तु के विषय में हमारा कुछ भी अनुभव नहीं है, उसके विषय में जितने लोग विचार करेंगे, उतने ही प्रकार के मत भी हो सकते हैं; क्योंकि अप्रत्यक्ष वस्तु की कल्पना आधार-रहित होती है।

जीवात्मा से मिश्र-बधुओं का प्रयोजन यह है कि "मनुष्य के पार्थिव शरीर से सबद्ध और मरणानंतर उससे पृथक् कोई अपार्थिव वस्तु है।" विचारणीय यह है कि क्या ऐसा सभव है? क्या यह भी कोरी कल्पना नहीं है? मनुष्य का अवशिष्टांश पार्थिव न होकर अपार्थिव है, इसका क्या प्रमाण है! मन, बुद्धि, चित्त और अहकार जीवात्मा के साक्षी न कहे जाकर ज्ञान-ततुओं के साक्षी कहे जा सकते है। जिस प्रकार हृदय का काम रक्त-संचालन और फुफ्फुस का काम श्वास ग्रहण है, उसी प्रकार ज्ञान-तंतुओं का व्यापार मन, बुद्धि, चित्त और अहकार इत्यादि भावों को उत्पन्न करना है। यह निर्विवाद है कि ज्ञान-ततुओं की यह क्रिया शरीर से संबद्ध अवस्था में ही हो सकती है, जैसी कि हृदय या फुफ्फुस की अलग नहीं। हम मन, बुद्धि, चेतना और अहकार का उपयोग भी शरीर-सचालन की क्रियाओं के आश्रित ही कर सकते हैं, अलग नहीं। स्मरण-शक्ति का चमत्कार हमारे मस्तिष्क के घटक समुदाय की व्यवस्था के कारण है। यह व्यवस्था उतनी ही स्वाभाविक है, जितनी कि शरीर की वृद्धि और क्षय इत्यादि। शरीर

यदि जीवात्मा ही हमारे शरीर के असंख्य घटकों पर शासन करता है और विचारों का अस्तित्व शरीर की भौतिक शक्तियों पर निर्भर न होकर जीवात्मा के कारण है, तो हम नशे की वस्तुओं के सेवन द्वारा विचारों में विशेष परिवर्तन होते क्यों देखते हैं ? उस समय मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार सभी विकृत दशा मे पाए जाते हैं ! आश्चर्य है कि एक रत्ती अफ़ीम जीवात्मा के इन ज़बरदस्त साक्षियों को अस्त-व्यस्त कर देती, इससे तो पार्थिव वस्तु का अपार्थिव वस्तु पर अधिकार सिद्ध होता है, जो कि नितांत असंभव है। इसी प्रकार यदि विचारों का उत्तरदायित्व जीवात्मा पर है, तो पागलपन की अवस्था भी शरीर में जीवात्मा के होते हुए असंभव है। इत्यादि इत्यादि।

हमें तो यही कहना पड़ता है कि जीवाणुवाद की पुष्टि में दिए गए प्रमाणों के मुक़ाबिले में जीवात्मा की सिद्धि करने के प्रयत्न में उपस्थित की गई दलीलें बहुत ही कमज़ोर और लाचार हैं। ऐसा मालूम होता है कि यह लेख लिखकर मिश्रबंधुओं ने एक उलाहना-सा टाल दिया है; अथवा मानसिक विकास को जीवात्मा मानकर अर्थात् एक पार्थिव वस्तु को अपार्थिव संज्ञा देकर अर्थ का अनर्थ कर डाला है।

दशरथलाल श्रीवास्तव

राग-बिलावल

बिलावल ठाट का दूसरा नाम शंकरभरणमेल है तथा उसी से बिलावल राग उत्पन्न होता है। 'श्रीमल्लक्ष्य-संगीत' में यमन ठाट को प्रथम और बिलावल को द्वितीय ठाट लिखा है। 'राग-माला' के रचयिता ने बिलावल-राग में षड्जवादी स्वर माना है और 'संगीत-रत्नाकर' ने 'संगीत-दर्पण' के मत से धैवतवादी स्वर कहा है। अस्तु, यह दोनों ही मत ठीक है। यह राग संपूर्ण है तथा इसमें सब शुद्ध स्वर लगते हैं। इसकी अवरोही में मध्यम कभी के साथ लगाना चाहिए। यह उत्तराग का राग होने के कारण प्रातःकाल गाया जाता है। इसीलिये इसको बहुधा प्रातःकाल का कल्याण भी कहते है, परंतु बिलावल की अवरोही में गंधार दुर्बल है। अतएव कल्याण से भिन्न हो जाता है, किंतु सारा भेद केवल मध्यम का ही है। इस राग में धैवत मध्यम की संगति अतिप्रिय होती है। बहुधा अवरोही में निषाद व गंधार वक्र होते हैं। यथा—
प, ध, न, ध, सं, न, ध, प, म, ग, म, र और स। यह राग उत्तराग का होने के कारण पूर्ण उत्तराग में ही उत्पन्न होता है।

जोबन रूप भरी तिय राजति सोरह भाँति सिंगारनि कीये,
चित्त मैं कंत की चाह छई सखी बात भुलावत हो मन दीये;
नील निचोल बनी घन बिज्जु-सी आरसी देखि लजावनि हीये,
राग हिंडोल की रागिनी है जु बिलावल नाम विलासनि कीये।

संकेतदीक्षां च दत्वा वितन्वतो भूषणाङ्केषु ;
मुहु स्मरन्ति स्मरमिष्टदेवं वेलावलीनीलसरोजकान्तिः ।

ताल त्रिताल (विलंबित)

स्थायी

३				×				२				०			
		प												र	म ,न ,सं
ध	प	गम	गर	स	—	स	—	सर	गम	ग	—	पपमग	म	ग	गम, म
ऽ	के	ऽऽ	ऽत	दी	ऽ	क्षा	ऽ	ऽम	चऽ	द	ऽ	त्वाऽऽऽ	ऽ	वि	तऽ,ऽ
सं								ग				म			
धन	धप	म	पम	ग	र	स	स	र	ग	भमगर	ग	गप	पपमग	रग	गम,न
ऽन्व	तीऽ	ऽ	ऽऽ	भू	ऽ	ष	णो	ऽ	ग	केऽऽऽ	ऽ	षुऽ	ऽऽऽऽ	ऽऽ	ऽऽ,स

अन्तरा

म			न					न		रं				ग	
प	पप	,पप	धनध	संसं	संस	सर	सं	स	ग	ग	म	गंर	ग	र	सं
मु	हु ऽ	ऽ,स्म	रऽऽ	ऽऽ	ऽन्ति	स्म	र	म	इ	ष्ट	दे	ऽऽ	वं	ऽ	ऽ
प		सं		म				न		सं		प	ध		म
स	(स)	ध	नप	(प)प	प	पपधनस	र	स	(म)	धन	प	ध	म	म	-,न
वे	ला	व	लीऽ	ऽऽ	नी	ऽऽऽऽऽ	ल	स	रो	ऽऽ	ज	का	ऽ	न्तिः	ऽ,स

राजाराम भार्गव

---

१. अजीब रबड़

डापेस्ट-निवासी डॉक्टर पॉल क्लाइन Klein ने एक नई खोज की है, जिससे रबड़ की वस्तुएँ इतनी पतली हो सकती हैं कि उनके आर-पार उजाला दिखता है। परन्तु यह रबड़ इतना मज़बूत है कि कोई आदमी खींचकर उसे फाड़ नहीं सकता। डनलप Dunlop की प्रसिद्ध कंपनी ने इस आविष्कार को मोल ले लिया है।

रबड़ पेड़ से दूध की तरह तरल निकलता है। परन्तु कारखाने पहुँचने के पहले उसे जमाया जाता है, जिससे वह सुविधा से जहाज़ों पर लदता है। कारखाने में फिर वह दूध की तरह पतला किया जाता है। क्लाइन ने यह तरीका ईजाद किया है कि जिससे रबड़ का दूध जैसा निकलता है, वैसे ही काम में आ जाय, और फिर उसे जमाने और पतला करने का काम न रह जाय। इस विधि से माल सस्ता बनता है और छीज भी नहीं होती।

क्लाइन ने बिजली की ताक़त से रबड़ के दूध को साँचों पर चढ़ाया है, जिससे वह अति पतला हो सकता है। इस कारण थोड़े रबड़ से अधिक माल बन सकता है।

× × ×

२. एक आने में फोटो

ऐ टोल ओज़ेफ़ाक नामी एक नवयुवक ने रूस-देश में एक ऐसी मशीन बनाई है जिसके पास जाने से और एक आनावाला निकल उस मशीन में डालने से आप अपना फोटो ले सकते हैं। इस मशीन में आठ प्रकार के फोटो बन सकते हैं। इसका नाम फ़ोटोमेटन है। यह वैसी ही है जैसी स्टेशन पर तौलनेवाली या टिकट बेचनेवाली स्लाट मशीन लगी है। इस मशीन के बनाने का हक़ एक अमेरिकन सिंडीकेट ने लिया है, जो उसे हर शहर में बड़े स्टेशनों में रखकर रुपया कमाएगा। ऐ टोल ओज़ेफ़ाक ने सर्व अधिकार ६,४०,००० रुपए में बेचा है, यह रुपए किसी धर्म के काम में लगाये जायेंगे। क्योंकि वह बोलशेविक है। उस मत के अनुसार किसी को अधिक रुपया अपने निजी भोग-विलास में खर्च करने का अधिकार नहीं है।

× × ×

३. नदी पहाड़ पर चढ़ाई जायगी

संकल्प-शक्ति विजय की देवी है। कठिन-से-कठिन कार्य संकल्प से पूरा हो जाता है। भगीरथ ने संकल्प किया था कि अपने पुरुषाओं की हड्डियों पर गंगा की धारा बहाकर अपना जीवन सुफल करेंगे, उनकी प्रतिज्ञा पूरी हुई। गंगा कैलाश से हुगली तक लाई गई। पहाड़ों को काटकर गंगा का लाना कुछ साधारण काम न था।

जिसने नीलकंठ महादेव के रास्ते पर जाकर गंगोत्री की ओर देखा है, वह जानता है कि किस सफ़ाई से पहाड़ काटे गये हैं और भगीरथ ने कितना बड़ा इंजीनियरिंग का कार्य किया है। जिस प्रतिज्ञा से भगीरथ ने आकाश से पृथ्वी-तल पर गंगा बहाई, उसी घोर प्रतिज्ञा से आज एक अमेरिकन ने कालोरेडो-नामक नदी को समुद्र के तट से उठाकर १,४१७ फ़ीट ऊँचे पहाड़ पर ले जाने का ठेका लिया है। कार्य आरंभ हो गया है। यह काम दस वर्ष में समाप्त होगा।
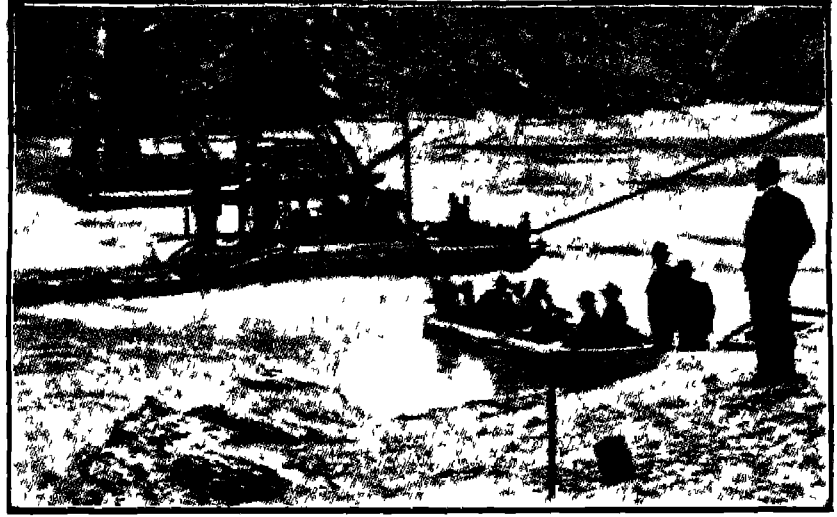
कालोरेडो नदी में सलाख डालकर पता लगाया जा रहा है कि पत्थर की चट्टान कितनी गहराई पर है।

नदी के दहाने के पास एक बड़ी झील खोदकर बनाई जायगी, जिसमें नदी का छना हुआ पानी एकत्र होगा, क्योंकि नदी की बालू और मिट्टी को पानी के साथ पहाड़ पर चढ़ाना मंज़ूर नहीं। इसलिये ज़मीन इस गहराई तक खोदी जायगी, जिस गहराई तक कि पत्थर की साफ़ चट्टान न मिल जाय। यह झील नदी के किनारे २० मील लंबी बनेगी।

कालोरेडो नदी का पानी कालोरेडो स्थान से लास-एनजलिस तक मैदान, जंगल, रेगिस्तान, पृथ्वी के नीचे, सुरंगों में होता हुआ, पहाड़ों के ऊपर फाँदता हुआ, कहीं खुला, कहीं बंद, कहीं-कहीं नलों में होकर, कहीं पक्की नहरों में चलकर २६० मील तक दौड़ाया जायगा। सोचने की बात है कि इस काम में कितनी खुदाई है। यह काम फावड़े से होगा, किंतु ये फावड़े मशीन और यंत्रों से चलेंगे।

भाप के ज़ोर से चलनेवाला फावड़ा

यह नहर ४४ मील ज़मीन के नीचे सुरंग में होकर चलेगी, जिसमें २६ मील लंबी एक लगातार पक्की सुरंग बनेगी। पाठक सोचें कि वह काम कितना महत्व-पूर्ण होगा। इस नहर को बनाने के लिये ४,००० आदमी रक्खे जायँगे और ४ मील की दूरी पर मज़दूरों के डेरे लगाए जायँगे। उसमें ६० डेरे और एक दर्जन दफ़्तर होंगे। मज़दूरों को आराम तथा कार्य की सुविधा के लिये २६० मील तक बराबर पानी का नल, बिजली की रोशनी और टेलीफ़ोन, तार इत्यादि लगाए जायँगे।

मार्ग में कई जगह बड़े-बड़े तालाब बनाए जायँगे, जिनमें आपत्ति-काल में पानी जमा हो सकेगा। जैसे यदि पानी का ऊपर चढ़ना सहसा किसी कारण से या मशीनों के बिगड़ने से बंद हो जाय, तो यह तालाब रुके

हुए अधिक पानी को धारण कर लें, नहीं तो नदी का वेग से दौड़ता हुआ पानी नल, नहर, सुरंग सब तोड़ देगा और करोड़ों की हानि होगी।

नदी की सतह से १,४१७ फ़ीट ऊंचा पानी बिजली या पंप की ताक़त से चढ़ाया जायगा। ऊँचान थोड़ी-थोड़ी करके कटेगी। यहाँ तक कि ७५ मील लंबी चढ़ाई में १,४१७ फ़ीट ऊँचान बाँटा गया है। इसके लिये पाँच बड़े-बड़े पंप १५ मील के फ़ासले पर अलग-अलग लगाये जायँगे। हर एक पंप के पास एक बड़ा तालाब होगा, जिसमें पानी जमा होकर ऊपर फेंका जायगा।

ज़मीन के नीचे सुरंग मे पानी कैसे चलेगा

सारी नहर में पानी दौड़ाने के निमित्त १८ इंच प्रति-मील का ढाल रक्खा जायगा। पानी को ७५ मील की दूरी और १,४१७ फ़ीट ऊंचाई पर पानी चढ़ाने को २,५०,००० घोड़े की ताक़त चाहिए, जो जल-विद्युत् द्वारा पूरी की जायगी। इस बृहद् कार्य में बावन करोड़ और पचास लाख रुपए का ख़र्च होगा।

इतने अधिक ख़र्च और परिश्रम का यह लाभ होगा कि कालोरेडो नदी के दहाने से लासएंजिल्स कैलीफ़ोरनिया तक बड़ी नहर बन जायगी जिससे सूखे खेतों को पानी मिलेगा और १,००,००,००० आदमियों का जीवन-निर्वाह होगा। इसके अतिरिक्त १७० फ़ीट पानी के उछाल के बल से बिजली के कारख़ाने खुलेंगे जिनसे शिल्प बढ़ेगा, किसानों की चक्कियाँ चलेंगी, कटिया काटी जायगी, लकड़ी चीरी जायगी, बिजली, रोशनी और टेलीफ़ोन चलेगा और जो शक्ति बिजली की पानी ऊपर चढ़ाने में ख़र्च हुई थी, उसका ७० फ़ी सदी पुनः लौट मिलेगा।

× × ×

४ टाइप साफ़ करने की विधि

गंदे टाइप की छपाई साफ़ नहीं होती। नीचे दी हुई तरकीब से टाइप ख़ूब साफ़ हो जाते हैं।

कारबन टेटरा-क्लोराइड (Corbon Tetra-chloride) ९५ भाग नवसार गंध, अमोनिया (Ammonia) ५ भाग इन दोनों को मिलाकर टाइप साफ़ करो।

× × ×

५ फ़ोकस देखने की नई विधि

जो लोग फ़ोटो खींचते हैं या जिन्होंने फ़ोटो खींचते देखा है वे जानते हैं कि फ़ोटोग्राफर लोग काला कपड़ा ओढ़कर चित्र का फ़ोकस लेते हैं। इस कपड़े के ओढ़ने से तीन दोष उत्पन्न होते हैं। एक तो उसे ओढ़ने से फ़ोटोग्राफर का दम घबड़ाता है। दूसरे हवा मे कपड़ा अपनी जगह से हट जाता है। तीसरे फ़ोटोग्राफर के बाल कपड़े की रगड़ से बिगड़ कर बिथर जाते हैं और उसे फिर कंघ-शीशे की आवश्यकता होती है। इन कष्टों को दूर करने के लिए कपड़े की जगह धौंकनी बाँध दी गई है और उसके बीच में एक सूराख़ है, जिसमें
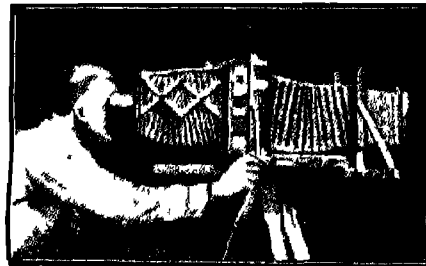
फ़ोकस देखने का यंत्र

एक टोंटी लगी है। उसी पर आँख रखने से चित्र का फ़ोकस मिल जाता है।

महेशचरण सिंहा, एम. एस-सी.

× × ×

६. गरमी में घड़ियाँ सुस्त क्यों होती हैं ?

जिन लोगों को विज्ञान का थोड़ा भी ज्ञान है, वे कहेंगे कि गरमी के दिनों में घड़ियों के "पेंडुलम" या "बैलेंसिंग ह्वील" कुछ बढ़ जाते हैं, इसलिए घड़ियाँ सुस्त हो जाती हैं; किंतु डॉ० पी० जी० नटिंग का कहना है कि वैज्ञानिकों की यह भूल धारणा है। आपने हाल ही में इस विषय की एक परीक्षा शेष की है, इससे आपको पता लगा है कि घड़ियों के सुस्त हो जाने का कारण तापक्रम (Temperature) का तारतम्य नहीं है, किंतु दो भिन्न-भिन्न समयों में हवा में तरी का कमोबेश होना है। बहुत-सी घड़ियाँ जाड़े के दिनों में भी अपेक्षाकृत गरम स्थानों में रहती हैं, किंतु वे सुस्त नहीं होतीं। गरमी के दिनों में हवा में, अधिक तरी रहती है, इसलिये उन दिनों घड़ियों के "बैलेंसिंग ह्वील" पर पानी का एक पतला-सा परत जमा हो जाता है। यह परत इतना सूक्ष्म होता है, जिसे अणुवीक्षण-यंत्र द्वारा देखना भी कठिन है ; किंतु उसका वज़न इतना काफ़ी होता है, जो पहिए की चाल को सुस्त कर देता है। समुद्र के किनारे जहा अन्य स्थानों की अपेक्षा हवा में तरी अधिक होती है, घड़ियाँ अधिक सुस्त हो जाती हैं। जाड़े के दिनों में हवा की तरी नष्ट-प्राय हो जाती है इसलिये वे तेज़ हो जाती हैं। नटिंग साहब वैज्ञानिकों से उनकी भूल धारणा को सुधार लेने की प्रार्थना करते हैं।

× × ×

७. समुद्र-सतह

वाशिंगटन के एक समाचार ने हमारे एक और विश्वास को भ्रांत साबित कर दिया है। हम लोगों का विश्वास था कि समुद्र-सतह सब जगह एक-सी है ; समुद्र का जल न तो कहीं ऊँचा है और न कहीं नीचा। किंतु एच० जी० ऐभर्स का कहना है कि समुद्र "एक ढालू पहाड़" सा है। आपने बहुदिन-व्यापी परीक्षा के फल-स्वरूप यह कथन प्रतिपादित किया है। अमेरिका के विलाक्सी के पास का समुद्र गैलभेस्टन के पास के समुद्र से दो सेंटीमीटर नीचा है। यही नहीं, सेंट आगस्टिन के पास की समुद्र-सतह गैलभेस्टन की समुद्र-सतह से २४ सेंटीमीटर और पोर्टलैंड की समुद्र-सतह से ३१ सेंटीमीटर नीची है। सिर्फ़ अमेरिका के पास के समुद्र की परीक्षा करने से इन बातों का पता लगा है। मालूम नहीं मध्य समुद्र या अन्य महादेशों के पास के समुद्रों की क्या अवस्था है ?

× × ×

८. चोर पकड़ने का नया तरीका

जर्मनी की पुलिस चोर पकड़ने की एक विचित्र प्रथा को काम में ला रही है। 'तीव्र-शब्दकारी-सीटी' की आवाज़ मनुष्यों को तो श्रवणगोचर नहीं होती, किंतु उसे कुत्ते सुन लेते हैं। इस सीटी से जो आवाज़ निकलती है, वह सेकेंड में ४०,००० से भी अधिक बार हवा को आंदोलित करती है। इसे मनुष्य का कान नहीं सुन सकता, किंतु कुत्ते सुन लेते हैं। इस सीटी द्वारा कुत्तों को जो आज्ञा दी जाती है, उसके अनुसार वे काम करते हैं।

रमेशप्रसाद

× × ×

९. एक नवीन गैस का आविष्कार

फ़्रांसीसी गवर्नमेंट ने कोयले से एक नूतन गैस का आविष्कार किया है, जो पेट्रोल की जगह काम में लाया जा सकता है। १,५०० मील तक मोटर चलाने में जो धन व्यय होता है, इस गैस की सहायता से उसका चतुर्थांश कम व्यय पड़ता है।

इस गैस के व्यवहार करने में मोटर का कोई भाग बदलना नहीं पड़ता। पेट्रोल की सहायता से मोटर चलाने में जिस स्थान पर जिस कल पुर्ज़े की ज़रूरत होती है, इस गैस के व्यवहार करने में भी ठीक वही बात लागू है। केवल उसमें एक फ़र्नेस (Furnace) अधिक लगाना पड़ता है। फ़्रांसीसी सरकार को इस नवीन आविष्कार के फल-स्वरूप आर्थिक उन्नति में ख़ूब सहायता पहुँची है। हमारे देश में प्रतिदिन मोटर की संख्या जिस प्रकार बढ़ती जा रही है, उससे प्रचुर द्रव्य व्यय हो रहा है। यदि हम इस उपाय को काम में लावें, तो हमारा बहुत पैसा बच सकता है।

× × ×

१०. समुद्र-गर्भ में भग्नावशेष नगर

सम्प्रति वैज्ञानिकों ने मेडिटेरियन समुद्र के वेनिस के किनारे एक भग्नावशेष नगर का पता लगाया है। बड़ी-बड़ी ईंटें, पत्थर और घर के सामान वहाँ पाए गए हैं। वैज्ञानिकगण अपूर्व उत्साह से इसके भीतरी रहस्य का पता लगाने में व्यस्त हो रहे हैं।

गोपीनाथ वर्मा

१ क्या गोचर-भूमि की कमी पूरी हो सकती है ?

ओं का स्वाभाविक आहार हरा चारा ही है। हरे चारे के सामने वे और कुछ नहीं खाना चाहतीं। उनको हरी-हरी घासों के सामने अनाज तथा खली कुछ नहीं भाती और न किसी चीज़ की ज़रूरत ही है। यदि गौओं को हरा चारा न मिले, तो वे नीरोग तथा स्वस्थ नहीं रह सकतीं। जहाँ पर विस्तृत चरागाह हैं, वहाँ गौएँ बहुत उन्नत तथा बहुत दूध देनेवाली होती हैं।

जहाँ पर चरागाह बहुत कम हैं, वहाँ गौएँ बहुत दुबली होती हैं और दूध भी कम देती हैं। ऐसे स्थानों में गौओं की संख्या भी बहुत कम होती है। गरमियों में जब घास सूख जाती है तो गौओं को बड़ा कष्ट होता है और उनका दूध भी कम हो जाता है।

इसीलिये पहले लोग गौओं के चरने के लिये प्रत्येक गाँव के पास कुछ भूमि छोड़ देते थे, जहाँ पर गाँव की सब गौएँ आकर चरती थीं। किसान लोग भी अपने-अपने खेतों का कुछ भाग गौओं के चरने के लिये छोड़ देते थे।

इसको परती की भूमि कहते हैं। मनु महाराज ने लिखा है कि प्रत्येक गाँव का दसवाँ भाग पशुओं के चरने के लिये छोड़ देना चाहिए। परन्तु अब निर्धनता तथा भूमि की अधिक माँग होने के कारण मनुष्य गोचर भूमि को भी जोतकर खेती करने लगे हैं। इस कारण अब यहाँ गौओं के चरने के लिये काफ़ी भूमि नहीं रही है।

बंगाल में तो अब चरागाह रहे ही नहीं, वहाँ गौओं को या तो सड़कों पर गिरा पड़ा खाने को या किनारे की घास चरने के लिये छोड़ देते हैं। उनके लिये चारे का कोई प्रबंध नहीं करते। परिणाम यह होता है कि बंगाल में गोरू बहुत दुर्बल तथा ठिगने होते हैं। उनके शरीर में सिवाय हड्डी-पंजर के कुछ भी नहीं होता। इसलिये वे अधिक काम के भी नहीं होते।

इसके अतिरिक्त प्रति वर्ष हज़ारों गोरू चारे के अभाव के कारण मर जाते हैं। बैलों के मर जाने पर किसान अपने खेत नहीं जोत पाते। इसका फल यह होता है कि किसान न तो लगान ही दे सकते हैं और न अपने कुटुंब के लिये अन्न ही पैदा कर सकते हैं। इस प्रकार हम गौओं को भूखों मारकर स्वयं भी भूखों मरते हैं। हम हिंदू कहते तो गौओं को माता हैं, परंतु उन्हें भूखों मारना और उनके साथ निर्दयता का व्यवहार करना बुरा नहीं समझते। मेरी राय में तो ऐसा करना गो-हत्या से भी बढ़कर पाप है। गौओं से हमारा घनिष्ठ संबंध है। जहाँ वे सुखी रहती हैं, वहाँ मनुष्य भी सुखी रहते हैं।

आजकल जब कि भूमि का मूल्य इतना बढ़ गया है और उसकी माँग दिन-प्रति-दिन बढ़ती ही चली आ रही है, इस बात की आशा करना कि पहले की तरह अब भी विस्तृत चरागाहों के लिये भूमि छोड़ दी

आवेगी, निरी मूर्खता ही होगी। जिस भूमि में से ३० मन अनाज और ६० मन भूसा प्राप्त हो सकता है, उसको १० मन घास उत्पन्न करने के लिये कौन छोड़ सकता है। वर्तमान युग में जब कि कोई एक पैसे को भी ख़राब नहीं करना चाहता, इतनी बड़ी हानि कैसे सह सकता है? तो अब उपाय क्या हो सकता है।

बहुत समय हुआ मनुष्य खेती करना नहीं जानते थे, जो फल-फूल अपने आप ही पैदा हो जाते थे, मनुष्य वही खाकर अपना जीवन-निर्वाह करते थे। जो भूमि उस समय अपनी प्राकृतिक पैदावार के द्वारा केवल एक या दो मनुष्यों का भरण-पोषण कर सकती थी, वही भूमि कृषि-विद्या के प्रचार से अब प्रायः सौ कुटुंबों के पालन में समर्थ हो गई है। इसमें कोई संदेह नहीं कि भूमि को जोतने, बोने और फ़सल काटने में मेहनत और रुपया अवश्य लगता है, परंतु खेती से जो लाभ होता है, वह रुपया और मेहनत से कहीं अधिक होता है। बिना कृषि के अब कोई देश धन-धान्य-संपन्न तथा उन्नत नहीं हो सकता है। न वह इतनी जन-संख्या का भरण-पोषण ही कर सकता है। आजकल यदि कोई कहे कि जब कि हमको भूमि की प्राकृतिक उपज से आहार मिल सकता है, तो हम क्यों खेती करके व्यर्थ समय या रुपया ख़र्च करें, तो वह उन्मत्त समझा जावेगा।

यदि अब हम प्राकृतिक चरागाहों पर निर्भर न रहकर अनाज की तरह हरा चारा भी बोने लगें, तो चरागाहों की कमी पूरी हो सकती है। हरा चारा पैदा करने में मेहनत और रुपया अवश्य लगेगा, परंतु उससे आर्थिक लाभ भी अब की अपेक्षा कहीं अधिक होगा। जैसे अब हम अपने खाने के लिये प्राकृतिक उपज पर निर्भर नहीं रह सकते, उसी प्रकार गौओं के चारे के लिये भी भूमि की प्राकृतिक उपज पर निर्भर नहीं रह सकते। हमको उपज बढ़ाने के लिये प्रकृति की सहायता करनी ही पड़ेगी, अन्यथा हमारे गोरू भूखों मर जायँगे।

उपर्युक्त बात का अनुभव अभी हमको नहीं हुआ है, यद्यपि योरप-अमेरिकावालों को हो गया है। योरपवाले १८ रुपए से ४२ रुपए एकड़ लगान की भूमि में हरा चारा बोते हैं। इसमें कोई संदेह नहीं कि योरप में यहाँ की अपेक्षा भूमि का मूल्य अधिक है। चरागाह में, गौओं को घास चराने की अपेक्षा हरा चारा काटकर गोशाला में खिलाना कहीं अच्छा है। कारण स्पष्ट है। गोचर-भूमि में जो घास उगती है, उसका कुछ भाग तो गौओं के चरने के काम आता है और जितना चरने के काम आता है, उससे अधिक भाग उनके चलने-फिरने, बैठने-लेटने, गोबर-मूत्र करने आदि से ख़राब हो जाता है। यदि खेत में हरा चारा बोकर और काटकर गौओं को खिलाया जाता है, तो चारे का कोई भी भाग नष्ट नहीं होता। इसके अतिरिक्त एक बात और है। गोचर-भूमि पशुओं के चलने-फिरने से कड़ी हो जाती है। इसलिये उसमें चारा बहुत कम पैदा होता है। जब भूमि को जोतकर और खाद डालकर हरा चारा पैदा किया जाता है, तो एक एकड़ ज़मीन में उतना चारा पैदा होता है, जितना कि गोचर-भूमि की दो या तीन एकड़ भूमि में। इसलिये आजकल के समय में जब कि भूमि की माँग बहुत बढ़ गई है, गोचर-भूमि के लिये परती की भूमि छोड़ने की अपेक्षा यही अधिक अच्छा है कि खेत में हरा चारा बोया जावे। इसीलिये इँगलिस्तान आदि पश्चिमी देशों में यही रीति प्रचलित हो गई है।

डेढ़ बीघे ज़मीन में एक उत्तम और दुधार गाय के लिये काफ़ी हरा चारा पैदा हो सकता है। गेहूँ, जौ, उड़द, जुआर, बाजरा, समा और मूँगफली के हरे पौदे गायों के लिये बहुत लाभदायक होते हैं और उनसे दूध बहुत गाढ़ा हो जाता है। दूब तथा और भी कई तरह की घास भी गाय के लिये अच्छी होती है, कई विलायती घासों को गायें बड़े चाव से खाती हैं, और उनका बीज एक बार डाल देने पर वे हमेशा जमती तथा बढ़ती रहती हैं। पत्ता-गोभी भी गायों के लिये अच्छी होती है। हम लिख चुके हैं कि पश्चिमी देशों में यही रीति प्रचलित हो गई है। कहीं-कहीं तो मनुष्य वर्ष भर गायों को गोशाला ही में रखते हैं और खेतों से हरा चारा काटकर और गाड़ी में भरकर उनके खाने के लिये पहुँचाते रहते हैं। ऐसी दशा में गोशाला के पास ही एक खुला हुआ बाड़ा या मैदान रखते हैं जिससे जाड़ों में दोपहरी में और गर्मियों में दूध दुहने के बाद थोड़ी-सी खुली हवा तथा कसरत के लिये गौओं को छोड़ देते हैं। जब गायें बाड़े में होती हैं, तब गोशाला को अच्छी तरह साफ़ कर देना चाहिए। इस प्रकार गौओं को रखने के अनेक लाभ हैं।

(१) गौओं को चरागाह तक आने-जाने और चरने में परिश्रम नहीं करना पड़ता। जितना गौ को कम परिश्रम करना पड़ता है, उतना ही उससे अधिक तथा गाढ़ा दूध उत्पन्न होता है। इस प्रकार पहले की अपेक्षा गौएँ दूध बहुत देने लगती हैं। परीक्षा द्वारा मालूम हुआ है कि यदि गौओं को इस प्रकार रक्खा जावे, तो उनके पहले की अपेक्षा ड्योढ़ा दूध उत्पन्न होने लगता है। इसकी परीक्षा हर एक व्यक्ति करके देख सकता है।

(२) गर्मियों में गर्मी के कारण गौओं का दूध कम हो जाता है। गोशाला में ही गौओं को हरा चारा खिलाने से उनको दिन में चरागाह जाने की आवश्यकता नहीं रहती और वे आराम से अपने ठंडे घरों में रह सकते हैं। इस प्रकार गर्मियों में भी उनके दूध कम नहीं होने पाता।

(३) गौओं के गोशाला में रहने से सारा गोबर प्राप्त हो जाता है। उसका वह भाग जो मार्ग में या चरागाह में नष्ट हो जाता था अब खाद के काम में आ सकता है, जिससे भूमि की उपज बढ़ जावेगी।

(४) गोशाला में रहने से पशुओं को बीमार पशुओं से मिलने का अवसर नहीं मिलता। इस कारण वे उन छूत की बीमारियों से बचे रहते है जो कि चरागाह मे बहुधा लग जाती हैं।

(५) एक दो गौओं के रखनेवालों को यह विशेष लाभ होता है कि चरागाह मे चरवाहे उनकी गौओं का दूध नहीं चुरा सकते और उनके साथ दुर्व्यवहार नहीं कर सकते।

यह तो सच है कि खेत में हरा चारा बोने में बीज खरीदने, खाद डालने, हल चलाने और दूसरे कामों के लिये धन तथा परिश्रम दोनों की आवश्यकता होती है; परंतु उसी भूमि में से दुगने-तिगुने चारे की पैदावार से तथा दूध और गोबर की अधिक प्राप्ति से हरा चारा बोने तथा काटकर गोशाला तक पहुँचाने का व्यय ही नहीं प्राप्त हो जाता, वरन् पहले की अपेक्षा अधिक लाभ होता है।

विद्यावती

× × ×

२ पपीता

पपीते को संस्कृत में पारीश तथा अँगरेजी में Papaya carica कहते हैं।

पपीते का पेड़ १५-१६ हाथ ऊँचा होता है। इसके पत्ते आकार में बड़े होते हैं। पपीते का फल तोड़ने पर उसमें से सफ़ेद दूध के ऐसा लसलसा पदार्थ निकलता है।

पपीता नर और मादा दो तरह का होता है। पुरुष-जातीय गाछ में फल नहीं लगते। स्त्री-जातीय गाछ में ही फल लगते हैं।

पपीते की खेती इस देश में लाभदायक है। एक बार पेड़ लग जाने पर ४-५ वर्षों तक फल लगता रहता है; किंतु प्रथम दो वर्ष तक ही पपीता बड़ा तथा मीठा होता है। इसके बाद क्रम से आकार में छोटा होता जाता है। एक पेड़ में तीन वर्ष से अधिक फल की आशा न कर, उसे काट देना ही उचित है।

चैत्र, वैशाख के महीने में एक जगह पपीते का बीज रोप देना चाहिए; थोड़ा बड़ा होने पर पौधे को उखाड़कर निर्दिष्ट स्थान पर ८-१० हाथ की दूरी पर क़तारबंदी करके रोप देना चाहिए। फिर गोबर, मिट्टी, हड्डी का चूर्ण अथवा नाइट्रेट ऑव सोडा देना चाहिये। खाद देने से पौधे शीघ्र ही बढ़ते तथा फल भी पुष्ट होते है। पहली बार में ही पुरुष जातीय पौधे पहचान लिए जाते हैं। जिसमें पहले फूल लगे, उसे पुरुष-जातीय पौधे समझकर तुरन्त काट देना चाहिए।

पपीता कई प्रकार के होते हैं। उनमे बंबैया और बंगलोर पपीते ही बड़े आकार के होते हैं। हमारे एक मित्र ने बंगलोर पपीते के कुछ पौधे लगाए थे। उसके फल २-३ सेर से कम नहीं होते, किंतु वे स्वाद में उतने मीठे नहीं होते। कच्चे ही तरकारी बनाकर खाने से अच्छे लगते हैं। बंबई जाति के पपीते आकार मे बड़े भी होते हैं और खाने मे मीठे भी पपीते का श्रेणी-विभाग करना भी आसान काम नहीं। देशी पपीता संख्या मे अधिक फलता है। प्रथम बार के छोटे-छोटे अपुष्ट फलों को तोड़कर फेंक देने से दूसरी बार पुष्ट तथा अच्छे-अच्छे फल लगते हैं।

एक जाति के पपीते के पेड़ के पत्ते बैंगन के रंग के होते हैं, उनका स्वाद मीठा होता है। पपीते का प्रचलन जितना अधिक हो, उतना ही अच्छा है। कच्चे पपीते की तरकारी बनाकर खाना तथा पके पपीते से जल-पान करना स्वास्थ्य के लिये अत्यंत लाभदायक है। अजीर्ण, प्लीहा, अर्श प्रभृति रोगों में पपीता लाभ पहुँचाता है। पपीता प्रायः सब ऋतुओं मे पाया जाता है, अतः

गृहस्थों को ८-१० पेड़ अवश्य अपने-अपने घरों में लगाना चाहिए।

पके पपीते का दाम २-३ आना और बड़ा होने पर ४-५ आना पर्यंत होता है। पपीते का व्यवसाय लाभदायक है। आयुर्वेद-मतानुसार पपीते का गुण निम्न-प्रकार है—

अग्नि-दीपक, शीत-वीर्य, रुचिकर, पाचक, मधुर रस, तथा रक्त-पित्त-नाशक।

अजीर्ण-रोग में पका पपीता विशेष लाभदायक होता है। यकृत, प्लीहा इत्यादि रोगों में पपीते का ४-५ बूँद दूध चीनी के साथ मिलाकर सेवन करना चाहिए। ८-१० दिन के भीतर ही फ़ायदा मालूम होने लगता है।

× × ×

३. कटहल की खेती

कटहल भारतवर्ष में प्राय सभी जगह पाया जाता है, यह एक अत्युत्तम फल है।

कटहल को पनस, कटकि फल, चपकोष तथा मृदंग फल कहते हैं। अँगरेज़ी में इसे Jack fruit तथा इसके पेड़ को Artocarpus integrifolia कहते हैं। कटहल का पेड़ आकार में अत्यंत वृहत होता है। इसकी शाखा तथा पत्तों को तोड़ने पर दूध की नाई एक प्रकार का पदार्थ निकलता है। अँगरेज़ी में इसे Latex कहते हैं।

सुवृहत् कटहल फल को हम लोग भ्रम-वश एक ही फल समझते हैं, किंतु सच पूछिए तो इसमें एक नहीं, अनेक फलों का समावेश रहता है। अँगरेज़ी में इसे Collective या Multiple fruit तथा एक शब्द में Soroses कहते हैं। प्रत्येक कोष को अलग-अलग करने पर हरएक एक-एक फल मालूम होगा। एक ही बड़े फल के भीतर छोटे-छोटे कितने फल रहते हैं।

बीज से ही कटहल का चारा प्रस्तुत किया जाता है और वही चारा अलग-अलग लगाया जाता है। कटहल के कलम नहीं लगते। पहले नर्म और तैयार ज़मीन में बीज बो दिए जाते हैं। एक या डेढ़ हाथ बड़ा होते ही पौधे को उखाड़कर जिस स्थान पर लगाना हो, वहाँ लगा देते हैं। एक बीघा ज़मीन में ७-८ कटहल के पौधे अच्छी तरह बढ़ सकते हैं।

एक और प्रथा है, जिससे हज़ारों कटहल पौधा तैयार हो सकता है। पके हुए एक समूचे कटहल को लेकर ज़मीन में गाड़ दीजिए। कुछ दिनों के बाद उसमें से सभी बीजों का एक गुच्छा-सा अंकुर निकल आएगा। उस गुच्छे को गोबर-मिट्टी देकर एकत्र बाँध रखना चाहिए। सभी बीजों के पौधे मिलकर एक विशाल वृक्ष होगा और उसमें बड़े-बड़े और अनेकों कटहल फलेंगे*।

कच्चे कटहल का अचार बहुत अच्छा होता है। इसकी तरकारी भी बहुत मुफ़ीद होती है। पकने पर इसका फल अत्यंत मीठा होता है तथा इसके बीज की भी अच्छी तरकारी होती है।

कटहल के छिलके गाय-भैंस को देने पर वे दूध अधिक देती हैं। पुराना हो जाने पर कटहल के पेड़ की लकड़ी से कुर्सी, टेबुल, अल्मारी इत्यादि सामान तैयार किए जाते हैं, ये मज़बूत तथा टिकाऊ भी होते हैं। बड़े, पुराने और अच्छे कटहल के पौधे ६०-७० रु० में बिकी होते हैं। कटहल का यदि बगीचा लगाया जाय, तो अधिक लाभ की संभावना है।

आयुर्वेदीय मत से कटहल के ये गुण हैं—शीतल, स्निग्ध, वायु-पित्त-नाशक, पुष्टिकारक, अतिशय मांस-वर्द्धक, श्लेष्मजनक, रक्त पित्त और क्षय-रोगों में कटहल विशेष उपकारी है। पके कटहल का गूदा नियमित रूप से व्यवहार करने पर अपार लाभ होता है। गूदे में ही कटहल का सार पदार्थ रहता है। कटहल का बीज वीर्यवर्द्धक, मधुर, गुरु, कोष्ठरोधक तथा मत्र-नि सारक है।

अजीर्ण, मंदाग्नि, शूल और प्लीहा के रोगियों के लिये कटहल अत्यंत हानिकारक है। कटहल के बीज की तरकारी जितनी ही खाई जाय, उतनी ही लाभदायक है। कारण, इसमें पुष्टिकारक पदार्थ अधिक मात्रा में रहते हैं।

कटहल के बीज में सैकड़े ४५-४६ भाग जल, १३ १४ भाग छाना जातीय उपादान, १.६८ अंश मक्खन जातीय उपादान, ३१ २० भाग शक्कर जातीय उपादान, २-२७ भाग नमक जातीय उपादान रहते हैं। प्रतिदिन तीसरे पहर जल के साथ टटका पका कटहल का कोआ खाने से शरीर स्वस्थ रहता तथा पुष्ट होता है।

गोपीनाथ वर्मा

* इसकी परीक्षा हम कर चुके हैं, हम सफलता नहीं हुई। फल लगे, मगर बिलकुल छोटे-छोटे।—संपादक
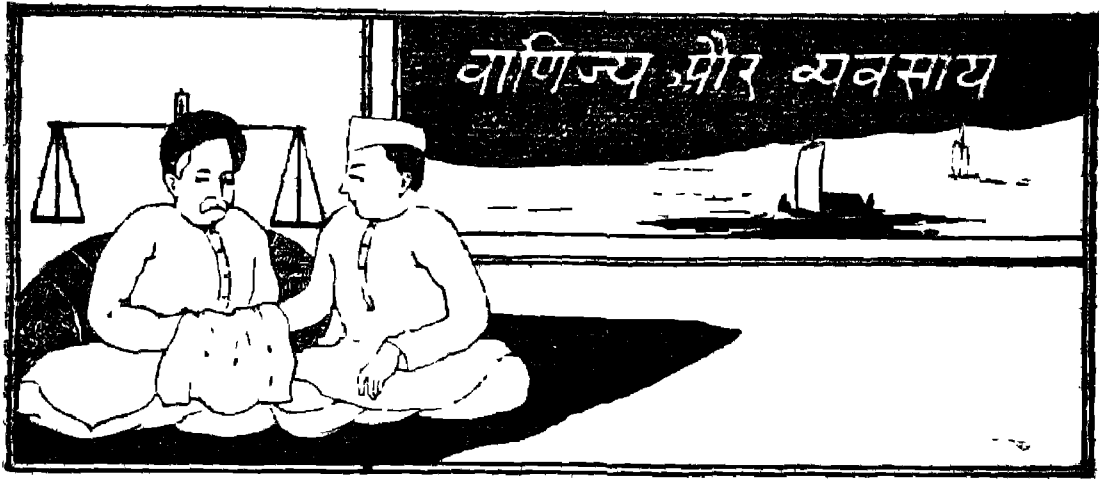
१. जापान के साथ हमारा व्यापार

द्यपि सन १९२६-२७ में, जापान के साथ भारत के व्यापार में पूर्व वर्ष की अपेक्षा १९ करोड़ रुपए की घटी हुई तो भी भारतवर्ष के विदेशी व्यापार में दूसरा नंबर जापान का ही है। इस १९ करोड़ की घटी का लेखा यों है कि आयात पर्व वर्ष १८ करोड़ का हुआ था, वह इस वर्ष १६ करोड़ का और निर्यात ५८ करोड़ के स्थान में ४१ करोड़ का ही हुआ। इस भाँति दो करोड़ आयात में और १७ करोड़ निर्यात में कुल १९ करोड़ की कमी हुई।

सरकारी लेखे के अनुसार जापानी कपड़े का आयात सूत को मिलाकर सन् १९२५-२६ में १२$\frac{१}{२}$ करोड़ रुपए अर्थात् जापान से समूचे आयात का ६९ प्रतिशत भाग हुआ था, वह सन् १९२६-२७ में ११ करोड़ अर्थात् आयात व्यापार का ६८ प्रतिशत भाग रह गया। कौन-सा कपड़ा कितना आया, इसका ब्योरा नीचे दिया जाता है।

हज़ार गज़ों में

सन्	१९१३-१४	२४-२५	२५-२६	२६-२७	
कोरा	७,१०८	१,०९,८३६	१,४२,६०९	१,५४,८६५	
धोवा	५८	४,४८४	४,६७८	२,८८२	(२८८२)
रंगीन	१,७३५	४०,९७९	६९,५४२	८५,८२२	

कोरे और रंगीन माल में कितनी वृद्धि हुई है, यह बात प्रकट है, पर धोवा माल में पूर्व वर्षों से कुछ कमी हुई है। इस माल के भेजने में युनाइटेड किंगडम ने मुख्य-स्थान ले रक्खा है।

सन् १९२५ २६ में कपड़ा ६,८८ लाख रुपए का आया था। वह इस वर्ष ६,५७$\frac{१}{२}$ लाख का रह गया, पर सूती गंजी मोज़ा आदि १,११$\frac{३}{४}$ लाख से बढ़कर १,१७$\frac{२}{३}$ लाख का आया। सूती ३,३५ लाख माल अर्थात् ४,२५ लाख रुपए से घटकर ३,२० लाख रुपए का २,६६ लाख स्लब आया।

दियासलाई १०$\frac{१}{२}$ लाख रुपए की आई, जो कि गत वर्ष २४$\frac{२}{३}$ लाख रुपए की और सन् १९२४-२५ में ४०$\frac{३}{४}$ लाख रुपए की आई थी। शुक्र है कि दियासलाई के आयात में इस भाँति लगातार घटी होती जा रही है *।

फीता और पोशाक आदि वस्तुओं का आयात २३$\frac{३}{४}$ लाख से घटकर १४$\frac{३}{४}$ लाख का रह गया। ऊनी कपड़ा २०$\frac{१}{२}$ लाख से ११ लाख और धातु की वस्तुएँ ३७ लाख से घटकर २१ लाख रुपए की आई। काँच और

---

* संभव हुआ तो आगामी 'भारत में दियासलाई के उद्योग' विषय पर कुछ लिखने की चेष्टा की जायगी—लेखक

काँच के पदार्थ ६७½ लाख से घटकर ६६½ लाख रुपए के आए; पर रेशमी माल में ८ लाख की वृद्धि हुई अर्थात् १,३६८ लाख के रेशमी माल में १,१८ लाख का रेशमी कपड़ा आया। गत वर्ष लकड़ी की बनी चीज़ें १६½ लाख की आई थीं, वही बढ़कर २३ लाख रुपए की आईं। पहनने के कपड़े, बटन, दवाइयाँ, सवारी की चीज़ें, छाते आदि में भी थोड़ी-थोड़ी वृद्धि हुई; पर धातु और मिट्टी के पदार्थ, खिलौने और काग़ज़ आदि में घटी हुई।

निर्यात के लेखे में अधिक घटी रुई में हुई, और वह भी कम नहीं। कोई १० सैकड़ा से भी अधिक अर्थात् गत वर्ष जापान ने २०,८४,००० गाँठें ली थीं। उसकी जगह इस वर्ष केवल १८,४२,००० गाँठें लीं। इस वर्ष रुई के निर्यात का मूल्य ३४½ करोड़ अर्थात् समूचे निर्यात का ८३ सैकड़ा रहा। गत वर्ष रुई के निर्यात का मूल्य ४७½ करोड़ रुपया बैठा था।

चावल के निर्यात में भी कमी हुई। गतवर्ष २,८२,००० टन का मूल्य ४,१७⅔ लाख रुपया मिला था, वह इस वर्ष १,२१,००० टन का १,७६¾ लाख रुपया मिला।

भारत के कच्चे लोहे की इस वर्ष जापान में अधिक माँग रही। गत वर्ष के ७६½ लाख रुपए के २,८२,००० टन के निर्यात से बढ़कर इस वर्ष १,०५¾ लाख रुपए के २,३४,५०० टन का निर्यात हुआ। हाँ, कच्चे शीशे का निर्यात ५३लाख रुपए से घटकर २६⅓ लाख रुपए का ही रह गया। कच्चे पाट के चालान में ११ सैकड़े की कमी हुई, और वह ११,४०० टन से घटकर ६,२०० टन हो गया। इसके मूल्य में माल की अपेक्षा और भी अधिक घटी हुई अर्थात् गत वर्ष का ६१ लाख रुपया घटकर ३१ लाख ही रह गया।

बोरों के निर्यात में वृद्धि हुई। १६७½ लाख की संख्या बढ़कर २५० लाख हो गई, और मूल्य भी १,०५⅔ लाख से बढ़कर १२१¾ लाख रुपया हो गया।

गत वर्ष चमड़ा ३६½ लाख रुपए का गया था, वह इस वर्ष ३६½ लाख का गया। इस वर्ष यहाँ से मोम कुछ नहीं गया। यद्यपि गत वर्ष २१५ टन और १६२४-२५ में ३,६०० टन गया था। चपड़ी और खल का निर्यात कुछ बढ़ा पर चंदन के तेल और हड्डी के निर्यात में वृद्धि हुई।

यह १६२६-२७ में जापान के साथ भारत के व्यापार का संक्षिप्त विवरण है।

× × ×

२. भारत में मोटरों की माँग

मोटरें बढ़ती ही जा रही हैं। शहरों में ही नहीं, गाँवों में भी भोंपों की आवाज़ बहुत ज़ोर से होने लगी है। जिन सड़कों पर बैलगाड़ियों में दिन-भर चलना पड़ता था, वही रास्ता अब मोटर लॉरी या बसों में घंटों में ही तय हो जाता है। सरकार ने भी इस वर्ष मार्च महीने से मोटरगाड़ी के आयात कर को ३० सैकड़ा से घटाकर २० सैकड़ा और ट्यूब-टायर पर १५ सैकड़ा कर दिया। इससे भी मोटरों का आयात निश्चय ही बहुत अधिक बढ़ेगा।

मोटरों के आयात में गत वर्ष की अपेक्षा ३ सैकड़ा संख्या वृद्धि हुई, अर्थात् सन् १६२५-२६ में १२,७५७ मोटरें २८२ लाख रुपए के मूल्य की आई थीं। वही इस साल २६४ लाख की १३,११७ आईं। विलायती (इँगलिश) गाड़ियाँ भी अब अधिक पसंद आने लगी हैं; पर अभी तक केनाडा और अमेरिका का ही इस काम में मुख्य हाथ है।

सन् १६२६-२७ में युनाइटेड किंग्डम से आनेवाली मोटरों का औसत मूल्य प्रति मोटर ३,१५६ रुपया पड़ा, जब कि अमेरिकन का २,२०८ और केनाडा का १,५६८ रुपया ही पड़ा। इससे कहाँ की गाड़ी कितनी सस्ती होती है इस बात का पता चल जाता है। युनाइटेड किंग्डम से ८०½ लाख रुपए की २,५४६, केनाडा से ७० लाख की ४,४७६ और अमेरिका से ८६ लाख की ४,०३० गाड़ियाँ आईं। इटली और फ्रांस ने भी गत वर्ष की अपेक्षा अधिक गाड़ियाँ भेजीं।

समूचे आयात में केनाडा से ३४ सैकड़ा, अमेरिका से ३० सैकड़ा, युनाइटेड किंग्डम से १६ सैकड़ा और इटली से ११ सैकड़ा, गाड़ियाँ आईं। बंगाल ने आयात हुई समूची संख्या में से ३२ सैकड़ा, बंबई ने २७, सिंध ने १४, मदरास ने १४ और बरमा ने १३ सैकड़ा लीं।

मोटरसाइकलों में भी १६२५-२६ की अपेक्षा ११ सैकड़ा वृद्धि हुई, अर्थात् १,६२६ के स्थान में सन् १६२६-२७ में १,८०३ आईं, जिनका मूल्य ६,८६,००० रुपए से, बढ़कर १०,४७,००० रुपया देना पड़ा।

युनाइटेड किंग्डम का भाग मोटरसाइकिलों के भेजने में लगातार बढ़ रहा है। सन् १६२४-२५ में १,२०१ अर्थात् कुल जोड़ का ८२ सैकड़ा, १६२५-२६ में १,४५८ अर्थात् ८६ सैकड़ा भाग रहा। वही सन् १६२६-२७ में १,६६५

मोटरसाइकिलें भेजकर ४२ प्रति सैकड़ा ही गया। अमेरिका से इन तीन वर्षों में क्रमशः १८०, ११६ और ७५ ही आईं। फ्रांस से ११ और जर्मनी से ८ मोटरसाइकलें आईं।

मोटर लॉरियाँ—यात्रा में मोटर बसों के अधिक उपयोग के कारण मोटर बस और लॉरियों के आयात में भी ख़ूब वृद्धि हुई है। इस वर्ष १,२० लाख के मूल्य की ६,६२६ गाड़ियाँ आईं; जब कि सन् १९२५-२६ में ८८ लाख की ४,८४० और उसके पूर्व ३६ लाख की २,१६२ गाड़ियाँ आई थीं। इस वर्ष के मूल्य में ६६ लाख रुपए की क़ीमत के ५,३४५ ख़ाली इंजिन आए। इससे यह प्रकट होता है कि भारत में मोटरों की बॉडियाँ अर्थात् विदेशी इंजिन पर ऊपरी भाग यहाँ बैठा देने का उद्योग बढ़ रहा है। इन इंजिनों में बहुत-से मोटर बसों के लिये आए, उन पर बॉडियाँ यहाँ चढ़ाई गईं। वह दिन भी कभी आयेगा, जब भारत में इंजिन आदि सहित समूची गाड़ियाँ यहाँ बनने लगेंगी?

केनाडा से मोटर बस आदि का आयात ३० लाख रुपए की २,३७८ से बढ़कर ४८ लाख रुपए की ३,५२६ का आयात हुआ। अमेरिका से ४१ लाख की २,०१४ से बढ़कर ४६ लाख रुपए की २,३२२ का हुआ। युनाइटेड किंगडम ने १६ लाख के मूल्य की केवल ३४१ गाड़ियाँ भेजीं, यही गत वर्ष १४ लाख की ३३८ आई थीं।

नीचे भारत के भिन्न-भिन्न प्रांतों में १९२७ के मार्च-मास तक सब तरह की मोटर गाड़ियों की रजिस्टर्ड हुई संख्याएँ दी जाती हैं—

मोटर गाड़ियाँ टैक्सी सहित

बंगाल कलकत्ता-सहित	१६,६३८
बंबई-नगर	१०,०७६
बबई-प्रात	६,१८६
मद्रास-नगर	८,३०६
मद्रास-प्रांत	४,२१६
संयुक्त-प्रांत	५,६६६
पंजाब	८,२०७
बरमा	६,८८८
बिहार-उड़ीसा	४,४२६
मध्य-प्रांत	३,१०५
सिंध	२,०८७
दिल्ली	२,६०७
अजमेर मारवाड़ा	६६६
आसाम	१,५०८

मोहनलाल बड़जात्या

× × ×

३. बंगाल-ग्लास वर्क्स

रेलगाड़ी से काच का माल चालान करने में विशेष असुविधा होती थी—इसी कारण काँच का व्यवसाय भारतवर्ष में निर्जीव-अवस्था में चलता था। जबलपुर काँच के कारख़ाने में सोडा-वाटर की बहुत अच्छी बोतलें तैयार की जाती थीं; किंतु विलायत से जहाज़ द्वारा काँच की चीज़ें बंबई तथा कलकत्ता आने में जितना ख़र्च पड़ता था, उससे कहीं अधिक ख़र्च जबलपुर से रेल द्वारा, उन्हीं स्थानों में चालान करने में होता था। अत: उक्त कंपनी विशेष-रूप से उन्नति नहीं कर सकी। सम्प्रति बंगाल-ग्लास-वर्क्स नाना प्रकार के काँच के द्रव्य बनाने में व्यस्त है। उक्त कंपनी ने एक प्रकार की काँच की फूलदानी तथा जार बनाई है, जो वास्तव में बहुत अच्छी बनी है, एवं जापानी तथा जर्मनी माल से किसी भी प्रकार घटकर नहीं है। विलायती माल से मूल्य में सस्ता होने के कारण, बाज़ार में इसकी खपत भी ख़ूब हो रही है। इसके अतिरिक्त इसने बिजली की बत्ती के ढक्कन भी बनाए हैं। इस समय इस कंपनी की बनी हुई वस्तुओं की सराहना देशवासी मुक्तकंठ से कर रहे हैं।

× × ×

४. भारत में रुई का व्यवसाय

इस वर्ष भारतवर्ष से ६ लाख टन रुई जहाज़ द्वारा विदेश में रफ़्तनी हुई है। केवल जापान में ही, उसका फ़ी सैकड़े ७२ भाग भेजा गया है। शेष जर्मनी, चीन, बेलजियम, इटली, फ़्रांस तथा युक्तराज्य को भेजा गया है। ६ हज़ार टन चीन और ५ हज़ार टन जर्मनी तथा बेलजियम में गया है। चार हज़ार टन इटली भेजा गया है।

गोपीनाथ वर्मा

१. भारत एवं असामयिक मृत्युएँ

रत-मानव-शक्ति-ह्रास का एक प्रमुख कारण असामयिक मृत्युएँ भी हैं। यहाँ पर पुरुष की औसत आयु २४ ८ वर्ष एवं स्त्री की २४ ७ है, अथवा और भी स्पष्ट-रूप से यों कहिए कि एक भारतवासी की औसत आयु २४ ७५ वर्ष है। विगत लगभग ४० वर्ष से यह अवस्था प्राय अचल-सी है—न तो औसत आयु बढ़ी ही है और न घटी है। नीचे दी हुई तालिका से यह बात स्पष्ट ज्ञात हो जायगी—

सन् १८८१ से सन १९२१ पर्यंत
भारत की औसत आयु का ब्योरा *

सन्	पुरुष	स्त्री	औसत प्रति व्यक्ति की आयु
१८८१	२४ ५ वर्ष	२५ २ वर्ष	२४ ८५ वर्ष
१८९१	२४·४ ,,	२४·९ ,,	२४·६५ ,,
१९०१	२४ ७ ,,	२५ १ ,,	२४·९० ,,
१९११	२४ ७ ,,	२४ ७ ,,	२४ ७२ ,,
१९२१	२४ ८ ,,	२४ ७ ,,	२४ ७५ ,,

दूसरे देशों के साथ इसकी तुलना करने से पता चलता है कि यह विश्व-ब्रह्माण्ड में सबसे कम है। जहाँ नार्वे की औसत आयु ५५ ६ वर्ष एवं जापान की ४४ ३ वर्ष है, वहाँ भारत की केवल २४ ७ वर्ष। सन् १९२४ की फ्रांस की वार्षिक रिपोर्ट (Annuaire statisque) के पृ० २०५ से निम्न लिखित तालिका उद्धृत की जाती है, जिससे यह स्पष्टतया ज्ञात होता है। यथा—

अन्यान्य देशों की औसत आयु

देश	वर्ष	औसत आयु
नार्वे	१९१५	५५·६
दक्षिणी अफ्रीका	१९२०	५५ ६
हालैंड	१९१५	५५ १
इंगलैंड और वेल्स	१९१०	५१ ५
युनाइटेड स्टेट्स	१९१०	५०·०
फ्रांस	१९१०	४८·५
जर्मनी	१९१०	४७ ४
इटली	१९१०	४७·०
जापान	१९१०	४४ ३
भारत	१९२१	२४ ७

अस्तु, इससे यह सिद्ध होता है कि भारत को १२२ प्रतिशत अन्यान्य देशों की अपेक्षा कहीं अधिक शक्ति व्यय करनी पड़ती है।

देश को इससे अधिकतर जो हानि है, वह यह है कि प्रथम चौदह वर्ष पर्यंत तो व्यक्ति बाल्यावस्था में हो

* सन् १९२१ की भारतीय मनुष्य गणना रिपोर्ट १ पृष्ठ १२८।—लेखक

रहना है, और इससे वह समाज के लिये कार्य नहीं कर सकता। अतएव सामाजिक कार्य करने के लिये नाम-मात्र को प्रायः १५ वर्ष शेष रह जाते हैं। किंतु यह एक अटल नियम है कि एक व्यक्ति की समाज के लिये उपयोगिता उसकी अनुभव-वृद्धि पर निर्भर है, और इसके लिये समय की आवश्यकता है। सुतराम् भारतवासी अल्पायु के कारण यथोचित रीति से सामाजिक सेवा नहीं कर पाते। हमें इसके लिये बाल, वृद्ध विवाहादि को रोककर शारीरिक शक्ति बढ़ाने का प्रयत्न करना चाहिए, और तभी यह समस्या 'हल' हो सकेगी, अन्यथा नहीं।

क्या भारतीय जनता का इस ओर ध्यान आकृष्ट होगा?

नंदकिशोर अग्रवाल चौधरी

× × ×

२. आज

निर्जन कुटिया में रहता हूँ त्याग विश्व का हाहाकार,
किसे बुलाऊँ? मुझ छोटे का है सूना छोटा संसार!
प्राण बँधा है, लघु परिचय का बढ़-बढ़ फैल रहा है जाल,
कण-कण के मोहक स्वर में है स्मृति का नाच रहा कंकाल!
सुख-विरहित जीवन में हिल-मिलकर कब तक ढो सकता भार?
प्रकृत-रुदन कृत्रिम हँसने का जब करने लगता बेगार!
कब तक छिपती मेरी छलना होकर परदे में अब मौन?—
खोकर निज विश्वास जगत के अंतर का रह सकता कौन?
दीवाने की करुण-कहानी से होगा किसको अनुराग?
कौन जलावेगा निज नंदन अपने कर से लाकर आग?
किसे सुनाऊँ, क्षितिज-चरण-सा बढ़ता जाता है संताप—?
है जीवन के क्षुब्ध अजिर में झुलस रहा पागल चुपचाप!
कैसे उलझी सुलझ सकेगी, थककर बैठ गया जब हार?
मेरी इन निराश घड़ियों का होता है कितना विस्तार!
छोड़ रही है माया ममता इस अंतस्तल का अधिवास;
क्या आधार रहेगा जीने का उजड़े दुखिया के पास?

श्रीकैलासपति त्रिपाठी

× × ×

३. अनुरोध

नाविक तरी तीर तट लाओ!
तुंग-तुरंगे भरती धारा;
काट रही है कठिन करारा।
छूट रहा है सभी सहारा—बेड़ा पार लगाओ।
नाविक तरी तीर तट लाओ।
देखा कई बार तुम आये।
भर-भर तरणी खेव लगाये।
हम भटके अटके रह पाए—अब मत देर दिखाओ।
नाविक तरी तीर तट लाओ।

'विमल'

× × ×

४. विलायत में विवाह-समस्या

योरपीय महासमर के फल-स्वरूप पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों की संख्या इंगलैण्ड में अधिक बढ़ गई है। गत जन-संख्या की रिपोर्ट से जाना जाता है कि विलायत में पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों की संख्या प्रायः बीस लाख अधिक है। परिणाम यह हुआ है कि इन बीस लाख स्त्रियों को क्वाँरी रहकर जीवन-यापन करना और अपनी जीविका का उपाय अपने आप करना पड़ता है। पति प्राप्त करना आजकल अँगरेज़-महिलाओं के लिये एक कठिन समस्या हो रही है। इसी कारण अँगरेज़-कुमारियाँ प्रतिदिन आत्म-निर्भर-परायण होती जा रही हैं। अपने पैरों के बल आप ही खड़ा होना तथा जिस प्रकार हो, अर्थोपार्जन करना, यही इनका प्रधान लक्ष्य हो रहा है। शिक्षिका और डॉक्टरी-विभाग में विलायती महिलाएँ पुरुषों से प्रतियोगिता कर रही हैं।

महारानी विक्टोरिया के समय में अँगरेज़ विवाहित जीवन को ही आदर्श-जीवन मानते थे। इसके पश्चात् विश्वव्यापी महासमर हुआ। फल यह हुआ कि विलायत का समाज-बंधन चूर्ण-विचूर्ण हो गया। विवाह-संस्कार को सभी एक भार-स्वरूप समझने लगे। युद्ध की उत्तेजना अब रुक गई है। इंगलैंड के नर-नारी फिर उस समय की नाईं शांतिमय जीवन बिताने के लिये लालायित हो उठे हैं, किंतु बात यह है कि प्रायः बीस लाख स्त्रियों के पति मिलेंगे कहाँ? महिला-समाज में विवाह-समस्या के साथ बेकार-समस्या भी प्रतिदिन जटिलतर होती चली जा रही है। पाश्चात्य विद्वान् इस समस्या के सुलझाने में अस्त-व्यस्त हो रहे हैं। किसी-किसी का कहना है कि इन क्वाँरियों को उपनिवेशों में भेज दिया जावे, जहाँ उन्हें पति मिल जाएँ, और सुखपूर्वक अपना जीवन व्यतीत कर सकें।

कोई-कोई युवतियाँ विवाह करने के पक्ष में नहीं हैं। धारणा है कि अविवाहित जीवन ही सुखमय जीवन है। प्रसिद्ध अभिनेत्री मिस सिबिलथार्नडाइक (Miss sybil

Thorndike) का कहना है कि पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों की संख्या अधिक होनी ही अवश्यंभावी है। कारण, ऐसी अनेक महिलाएँ हैं, जो जन्म-भर क्वाँरी रहकर ही जीवन व्यतीत करना चाहती हैं। महारानी विक्टोरिया के समय में रमणी-जीवन सार्थक करने के लिये विवाह के अतिरिक्त और कोई उपाय न था ; लेकिन अब वे दिन नहीं रहे। स्त्रियाँ अब नाना प्रकार से अपने जीवन में सफलता प्राप्त करने के लिये स्वतन्त्र हैं। जो विवाहित जीवन व्यतीत करना चाहती हों, वे विवाह करें। इसमें किसी को आपत्ति नहीं ; किंतु जो स्वतंत्र-रूप से जीवन व्यतीत करना चाहती हैं, उनके सिर पर एक अनावश्यक बोझ क्यों रक्खा जाय ? लेडी फ्रेंनसीज बालफ़ोर (Lady Iancis Balfour) कहती हैं कि स्त्रियों की संख्या चिरकाल से पुरुषों की अपेक्षा अधिक रही है, आज भी रहेगी। स्त्रियाँ स्वयं अपनी अवस्था का अनुभव कर सकती हैं, उनके लिये दूसरों को माथापची करने से कुछ विशेष लाभ की संभावना नहीं।

डॉक्टर ऑक्टाविया लेवीन (Dr Octavia Lewin) के मतानुसार विवाह मानवीय जीवन में शांति पैदा नहीं कर सकता। इच्छा करने पर स्त्रियाँ अपने निःसंग-जीवन को सार्थक बना सकती हैं। अतः वैवाहिक बंधन में प्रवेश करने की उन्हें उतनी आवश्यकता भी नहीं है।

यही अवस्था आजकल योरप की हो रही है। विदुषी-युवतियाँ समाज-नेताओं से कोई संबंध रखना नहीं चाहतीं। वे अपने अभाव-अभियोगों को आप ही सुलझा लेना चाहती हैं। उसमें पुरुषों को हस्तक्षेप करने देना नहीं चाहतीं। किंतु दूरदर्शी विद्वान् इससे चिंतित हो उठे हैं। स्त्रियों के आधिक्य से आर्थिक अवस्था जटिल होती जा रही है, साथ-ही-साथ नैतिक अधःपतन तथा जाति-ह्रास की आशंका पाश्चात्य विद्वानों की बेचैनी का एक कारण हो रही है।

प्राच्य शास्त्रकार विद्वानों ने ऐसी ही समस्याओं के सुलझाने के लिये बहुविवाह की प्रथा निकाली थी। अँगरेज़-महिलाएँ सब कुछ बर्दाश्त कर सकती हैं, किंतु सौत का अस्तित्व उन्हें असह्य हो जाता है। देखें, उनकी वैवाहिक समस्या किस प्रकार सुलझती है ?

गोपीनाथ वर्मा

× × ×

५. तसव्वुफ़ या पर्शियन मिस्टिसिज्म

पूर्व और पश्चिम के संस्कृति-संयोग ने एक दूसरे के सम्मुख अनेक नई बातें पेश की हैं। प्राच्य दार्शनिक विषयों की ओर जब से आधुनिक संसार आकर्षित हुआ है, तभी से भारतीय वेदांत और पर्शियन तसव्वुफ़ या सूफ़ी-धर्म ने उसके हृदय में एक नवीन ज्योति की सृष्टि की है।

ईरान का यह तसव्वुफ़ जिसे पश्चिमीय विद्वान् 'मिस्टिसिज़्म' के अस्पष्ट नाम से पुकारते हैं—कब और कैसे उत्पन्न हुआ, इसके संबंध में जानकारी प्राप्त करने के बहुत कम साधन हमारे पास हैं। योरपीय लेखकों ने इस विषय पर जो कुछ लिखा है, उसे देखने से जान पड़ता है कि वे इसके कतिपय मौलिक तथ्यों को समझ नहीं सके हैं। अतएव इस विषय पर मूल-सामग्री लेकर ही कुछ ठीक अनुसंधान किया जा सकता है।

फ़ारस और उसके आसपास के देशों का प्राचीन इतिहास इसका साक्षी है। किसी समय इन देशों में अग्नि-पूजक ज़रतुश्तों का अत्यधिक प्रभाव था। इन लोगों की अपनी फ़िलासफ़ी, अपना साहित्य और अपनी एक सभ्यता थी। इनके दार्शनिक सिद्धांत प्राचीन वैदिक सिद्धांतों से बहुत मिलते-जुलते थे ; क्योंकि सच पूछिए, तो ईरान के ये निवासी प्राचीन आर्यों की ही एक शाखा से आकर वहाँ बस गए थे। ईरान तात्कालिक आर्यों की एक 'कालोनी' (उपनिवेश) था। इसके पश्चात् ऐतिहासिक घटनाओं के चक्र में पड़कर जब इस देश की अवनति होने लगी, तो यहाँ तथा इसके समीप-वर्ती देशों में ईसाई-धर्म ने अपना विस्तार किया। इस कोमल भाव-प्रधान धर्म ने मस्तिष्क की अपेक्षा लोगों के हृदय पर बहुत दूर तक प्रभाव डाला। उनकी फ़िला-सफ़ी, जिसमें भारतीय ज्ञानवाद का भी एक अंश था—ईसाइयों के प्रेमवाद में रँग गई। पीछे सातवीं और आठवीं शताब्दी में इस्लाम ने अपने 'धार्मिक भ्रातृत्व' के सिद्धांतों से इस पर एक नया रंग डाला। इस प्रकार इस देश-फ़ारस में एक स्वतंत्र सम्मिलित दार्शनिक मनो-वृत्ति का विकास होने लगा।

हज़रत मुहम्मद की मृत्यु के पश्चात् जब इस्लाम के प्रचारयुग में ख़लीफ़ों और सेनापतियों के अत्याचार बढ़ चले, और अधिकार मदोन्मत्त शासक अपनी शक्ति को अक्षुण्ण रखने के लिये प्रजा की मूल मनोवृत्तियों को

कुचलकर धर्म की चोट से उस पर अत्याचार करने लगे, तो प्रचलित इस्लाम के विरुद्ध शिक्षित और दार्शनिक बुद्धि की जनता ने विद्रोह किया। इस्लाम में जहाँ और सब गुण थे, वहाँ मानव हृदय को संतुष्ट रखनेवाली कोई चीज़ न थी—जो सब प्रकार की उच्च प्रवृत्तियों की जननी है। मूर्ति-पूजा, चित्रकारी, संगीत, काव्य सबका उसमें निषेध था। मनुष्य के कोमल उपकरणों को विकसित करनेवाली कोई वस्तु उसमें न थी। जो भक्तिवाद मनुष्य को अधिक-से-अधिक मानवीय—'ह्यूमन'—बनाता है, उसका उसमें नितांत अभाव था। इस्लाम के संस्थापक ने, जहाँ अपने अनुयायियों को सुदृढ़, साहसी और वीर बना रहने के लिये इन अनेक कठोर नियमों का आश्रय ग्रहण किया, वहाँ वे मनुष्य की मूल प्रवृत्तियों को समझने में भूल कर गए *। इस्लाम की इस धार्मिक भौतिकता के विरुद्ध स्वयं अरब में ही एक बड़ा दल पैदा हो गया था, यह अरबी कवियों की रचनाओं से स्पष्ट है।

फ़ारस की वह प्रजा—जो तीन-तीन धर्मों की दार्शनिकता में रँग रही थी, और जिस पर अभी-अभी ईसाई-धर्म की सुंदर सहृदयता का प्रभाव पड़ चुका था—इस्लाम के सिद्धांतों को ग्रहण न कर सकी। ज़बर्दस्ती के कारण मुसलमान होजाने पर भी उसका हृदय विद्रोही हो गया। इस विद्रोही-समाज के उन्नत दार्शनिक दल की फ़िलासफ़ी ही परिपक्व हो जाने पर 'सूफ़ीवाद' या 'तसव्वुफ़' के रूप में प्रस्फुटित हुई †।

इस 'तसव्वुफ़' या पर्शियन मिस्टिसिज़्म ने कविता का मधुर और संगीतमय कवच पहनकर अपनी विकसित अवस्था में उन्हें भी पराजित किया, जो इस्लाम के कट्टरतम अनुयायियों में समझे जाते थे। कविता, 'सूफ़ीवाद' का अजेय अस्त्र थी।

तसव्वुफ़ का साधारण अर्थ पवित्रता है। सूफ़ी वह है, जो सर्वात्मा के सांनिध्य में पवित्र है। अर्थात् उसमें सर्वात्मा के अतिरिक्त और किसी पदार्थ का संयोग नहीं है। 'जामी' के अनुसार पहली बार 'सूफ़ी' शब्द इस अर्थ में कूफ़ा के अबू-हशाम के लिये व्यवहृत हुआ। इस महात्मा ने हज़रत मुहम्मद की आज्ञा के विरुद्ध फ़िलिस्तीन के रमला स्थान में सूफ़ियों के लिये एक संघ भी स्थापित किया था। अब्बास-काल में तो 'सूफ़ीवाद' का पूर्ण विकास हो चुका था।

पीछे चलकर यद्यपि इस दार्शनिक भक्ति-प्रधान धर्म में कई शाखाएँ हो गईं; पर भीतर की धारा एक ही रही। इब्न ख़ल्दून ने दीनता (फ़क्र-फ़क़ीरी) और ज़ुहूद को सूफ़ी-धर्म का प्रधान अंग माना है पर बात यह नहीं है। 'सूफ़ी-वाद' में ये बातें भी अवश्य हैं; पर इनके अतिरिक्त कुछ और ख़ास चीज़ है, जिसके बिना कोई उस अवस्था को पा नहीं सकता। सूफ़ी वह है, जो अपने सांसारिक 'अहम्' (self) से पूर्णतः अलग हो गया है, और सत्य में ही उसका जीवन है। इस सत्य की प्रकृति प्रेम या भक्ति है, और अनंत उसकी अवधि है। सूफ़ी अपवित्रता को पूर्ण मात्रा में नष्ट कर डालता है। पवित्रता की इस भावना में शारीरिकता—भौतिकता—न होनी चाहिए। केवल प्रेम की भावना और अनुभूति अपनी चरम सीमा में हो सकती है। पवित्रता मानवीय नहीं है क्योंकि मानव शरीर मिट्टी का बना है, और मिट्टी असत्य और अपवित्र है। सूफ़ी के भीतर सत्य की यह प्रकृति—प्रेम—उसे विश्वात्मा के पूर्ण मिलन की ओर अग्रसर करती है।

प्रेम मानव जीवन का प्रधान सत्य है। वह मनुष्य

---

* और यही कारण है कि इस्लाम अपने मूल-रूप में सदैव असफल रहा। बहुत थोड़े समय में इसके अनुयायियों ने संगीत, काव्य, चित्रकला इत्यादि को अपना लिया।

† कुछ दिन पहले किसी लेखक ने अपने अँगरेज़ी लेख में इस विषय का हवाला देते हुए लिखा था—"Those who have studied this religion will agree with me that it has also a mystical side, which considerably aided and paved the way for the smooth play of the new creed which rose in the shape of sufism out of the ashes of the religions of Zoroaster and the Lord Christ.

यही लेखक आगे लिखते हैं—"When Islamic orthodoxy was reaching a certain psychological stage in its rapid career, * * save imbued with the thought of Aristotle and Greek Philosophy the mysticism of Zoroaster and the divine beauties struggling in the waves of the Vedantic ocean and the pristine love Vibrating in the strings of the Christian.

के विकास का एक-मात्र साधन है। प्रेमी का सर्वान्तिम आदर्श प्रियतम में विलीन हो जाना है। चुंबन, आलिंगन की संपूर्ण स्पृहा मिलकर एक हो जाने की ही चेष्टा है। शुष्क ब्रह्म को सूफ़ियों ने प्रियतम का रूप देकर सरस और मानवीय चेष्टा के अंतर्गत कर दिया। तसव्वुफ़ की सारी कविता इस विशेष अवस्था के उच्छ्रसित, अनाहूत उद्गार हैं। इस मिलन का प्राथमिक फल दैवी अनंत—आनंद की प्राप्ति है, और अंतिम एकाकारता। यह एक बहुत स्पष्ट बात है कि इस प्रकार की अलौकिक अवस्था मे होनेवाली अनुभूति पूर्ण और स्पष्ट-रूप से किसी ऐसी भाषा मे प्रकट नहीं हो सकती, जो स्वयं लौकिक और अपूर्ण है। इस प्रकार की कविता पर किए जानेवाले अस्पष्टता संबंधी आरोप को सुनकर किसी फ़ारसी सूफ़ी ने कहा था—"ख़ुम की शराब की चंद बूँदें ज़रा-से प्याले को लबरेज़ करने के लिये काफ़ी हैं।" यह चिरसत्य है। ज़रा से प्याले मे—लौकिक अपूर्ण भाषा मे—ख़ुम का ख़ुम कैसे उँडेलकर दिखाया जा सकता है। जब भी यह प्रयत्न किया जायगा, प्याला स्वयं डूब जायगा।

सूफ़ी-वाद में सृष्टि पूर्ण सुंदर की छाया है। नित्य परिवर्तन ब्रह्म के नित्य जीवन—चित्—का दृश्य है। सासारिक सौंदर्य, दार्शनिक मनोजगत् में अनंतसौंदर्य की स्मृति है। सूफ़ी शरीर को परदा-मात्र मानते हैं। फ़ारसी और उर्दू की अनेक कविताओं में यह भावना उदय हुई है। 'कोई माशूक़ है' इस परदये ज़ंगारी में, तथा 'दरपरदह यह कौन आख़िर सरगर्मे तमाशा है', इत्यादि इसी आदर्श—के चिह्न हैं; किंतु इसके साथ यह भी है कि एक विशेष अवस्था में अंतःकरण विश्वात्मा के रहस्यों का आलिंगन करता है।

संक्षेप में 'सूफ़ी'-वाद प्रेम का धर्म है। इस प्रेम का आश्रय 'सत् शिव सुंदर' विश्वात्मा है। प्रेमी और प्रियतम का पूर्ण मिलन उसका मार्ग है, और एकाकारता फल।

× × ×

७. कहाँ ?

भाद्र-कृष्ण अष्टमी भगवान् श्रीकृष्णचंद्र की जन्म तिथि थी। प्रत्येक हिंदू-हृदय आनंदातिरेक से सुख का अनुभव कर रहा था। मेरा मन भी एक प्रकार के सुख का अनुभव कर रहा था। उस दिन मैंने उपवास किया था। मध्य रात्रि की उस शुभ घड़ी की मैं प्रतीक्षा कर रहा था, जिसमें भगवान् जन्म लेंगे, मंदिरों के विशाल घंटे ध्वनित होंगे, भक्तजन मंगल-गान करेंगे।

प्रतीक्षा का समय पूर्ण होने आया। दिनकर ने अपनी किरणों को समेट लिया। पृथ्वी अंधकार की गोद में आसीन हो गई। मैं पूजा के निमित्त मंदिर में जाने की तैयारी करने लगा। एक चाँदी के थाल में मैंने भगवान् के वे सब सुंदर-सुंदर वस्त्र सजाए, जिन्हें मूर्ति को पहनाकर मै नयन-सुख लाभ करने की इच्छा में था। वस्त्रों के साथ थोड़े-से सोने के आभूषण भी थे। दूसरे थाल मे मैने स्वादिष्ट और सुवासित पदार्थ प्रसाद के लिये सजाए। दोनो थालों को लेकर मै मंदिर की ओर चला। भादों की अँधेरी रात थी। नभ में बादलों के कारण, तारों का अल्प प्रकाश भी दुर्लभ था।

मध्य रात्रि का योग उपस्थित हुआ। दिन-भर का भूखा होने के कारण अपनी भेंट पुजारीजी को सौंपकर मैं एक कोने मे बैठकर ऊँघने लग गया था। सहसा मंदिर के विशाल घंटों का गंभीरनाद आरंभ हुआ। आस-पास के अन्य मंदिरो के निनाद ने उसे और भी भीषण कर दिया। इस रव ने मेरे कानों के मार्ग से प्रवेश करके मेरी आँखों के पट खोल दिए। मै उठ खड़ा हुआ। सामने देखा, पुजारीजी आरती कर रहे थे। देवकीजी की गोद मे शंख, चक्र, पद्मधारी बालकृष्ण विराजमान थे। भक्ति-भाव से मेरा मस्तक नत हो गया। मैं ध्यानस्थ होकर इस अलौकिक दृश्य को देख रहा था, भक्तों के कर्ण-मधुर गान सुन रहा था।

आरती और गान समाप्त हुए। क्षण-भर के लिये वहाँ शांति स्थापित हुई। मैंने आँख उठाकर देखा, जो वस्त्र आभूषण मैंने चढ़ाए थे, वे ही भगवान् धारण किए हुए है; ज़री-किनारी से सजा हुआ, जो रेशमी पीतांबर मैंने भक्ति-भाव से बनवाया था, वही उनके तन पर है। वे ही छोटे-छोटे आभूषण हैं जो कल ही बनकर आए थे। मैं यह दृश्य देखकर आनंद-विमुग्ध हो गया!

मंदिर में पूजा-पाठ का काम समाप्त हो गया। प्रसाद का थाल लेकर मैं वापस लौटा। मंदिर से थोड़ी दूर निकल आने पर मेरा ध्यान एक करुणोत्पादक चीत्कार ने आकर्षित कर लिया। वह ध्वनि थी तो कोमल, पर उसमें

करुण-रस भी पूरित था। एक क्षण के लिये मैं उसकी विवेचना करने के लिये ठहर गया, दूसरे ही क्षण मैं किसी अज्ञात-शक्ति से प्रेरित होकर उसी दिशा में चल पड़ा, जहाँ से वह चीत्कार आई थी।

आगे जाकर मैंने देखा, एक जीर्ण-शीर्ण मकान है, मानों अपने स्वामी की दरिद्रता का चित्र-पट है। मैं इधर-उधर बिखरे भग्नावशेषों को पार करके घर के आँगन में पहुँचा। बादलों की ओट में चाँद उग आया था। उसकी एक झलक में वह मुझे वहाँ का कारुणिक चित्र दिखा गया। वस्त्र-विहीना मृतप्राया माता की गोद में एक कंकालावशेष बालक पड़ा था। चाँद बादल में छिप गया, वह दृश्य भी आँखों की ओट हो गया; पर मन-मानस में एक अद्भुत विचार-लहरी उत्पन्न कर गया। मैं मन-ही-मन भगवान् के मंदिर के उस दृश्य की और दरिद्रदेव के इस निवास की परस्पर तुलना करने लगा। वहाँ देवकी की गोद में श्रीकृष्ण भगवान् थे, यहाँ दरिद्र माता की गोद में एक दरिद्र बालक है! मैं किंकर्तव्य विमूढ़ हो गया; किंतु दूसरी बार चाँद के प्रकाश में उस माता की आँखों के आँसुओं ने मुझे मेरा कर्तव्य सुझा दिया।

प्रसाद का थाल मैंने उस देवकी-स्वरूपा जननी के सम्मुख रख दिया। अपना क़ीमती शाल उतारकर मैंने उसे उढ़ा दिया। अपने इस कार्य में मुझे जो आनंद आया, उसकी तुलना मैं उस आनंद से भी न कर सका जो मुझे मंदिर में प्राप्त हुआ था। जननी ने आशीर्वादात्मक दृष्टि से मेरी ओर देखा; थाल में एक कटोरे में दूध को देख बालक ने मेरी ओर देखकर मुस्किरा दिया। मैं कृत-कृत्य हो गया।

फिर एक बार बादल के घर से बाहर आकर चाँद ने मुझे वह दृश्य दिखाया। उसी समय मेरे जिज्ञासु मन ने प्रश्न किया—"हे भगवन्! तुम कहाँ हो? यहाँ अथवा वहाँ?"

श्रीगोपाल नेवटिया

स्वामी बड़ी देर के बाद सैर करके लौटे, तो नौकर से पूछा—कोई मुझसे मिलने तो नहीं आया था ?

नौकर—जी हाँ, एक साहब आए थे। कहते थे कि मैं उनको ख़ूब पीटूँगा।

स्वामी—अच्छा ! तुमने क्या कहा ?

नौकर—मैंने यही कहा कि खेद है मालिक घर में नहीं है।

× × ×

शारदा ने ग्रामोफ़ोन मेज़ पर रखकर पति से कहा—मैं एक अजीब तरह का रेकार्ड लाई हूँ। बूझ जाव तो जानूँ।

जब रेकार्ड से अद्भुत स्वरों का तांता बँधा, तो विनोद बाबू ने भौंहें सिकोड़ लीं, और स्वर को पहचानने की चेष्टा करने लगे।

शारदा—बूझा ?

विनोद—आरा लकड़ी की गाठ को चीर रहा है।

शारदा—फिर बूझो ?

विनोद—कोई बंदर कराह रहा है।

शारदा—ग़लत।

विनोद—उल्लू है, जिसका पंजा झपट्टे में फँस गया है।

शारदा ने सिर हिलाकर कहा—यह भी ग़लत।

विनोद—तो फिर तुम्हीं बताओ।

शारदा—मैं मानती हूँ कि यह आवाज़ उतनी ही ख़राब है जितना तुमने नाम लिया, और मुझे आशा है कि अब आगे मुझे इस विषय में बहुत तर्क-वितर्क न करना पड़ेगा।

विनोद—लेकिन आवाज़ किसकी है ? यह तो बताया ही नहीं।

शारदा—यह रेकार्ड मैंने तुम्हारे सोने के कमरे में भरा था, जिससे तुम्हें विश्वास आ जाय कि तुम ख़र्राटे लेते हो और यह भी मालूम हो जाय कि वह आवाज़ कितनी भयंकर होती है।

× × ×

पिता—मन्नू, लड़की को क्यों बार-बार रुला रहे हो ?

बालक—पिताजी, हम मोटर मोटर खेल रहे हैं। हार्न कहाँ से लावें।

× × ×

एक सौदागर सड़क पर अपनी चीज़ें नीलाम कर रहा था।

"है कोई ख़रीदार ? बहुत सस्ता सौदा लुटा दिया है। चार पैसे में ५० पोस्टकार्ड।"

एक देहाती ने जेब से चार पैसे निकाले, फिर ग़ौर से कार्डों को देखा, और यह कहकर चलता हुआ—"वाह भाई वाह, शहर वाले भी बड़े ठग होते हैं। इन पोस्टकार्डों पर टिकट तो है ही नहीं।

× × ×

घुड़दौड़ शुरू होनेवाली थी। सहसा एक आदमी टट्टियों को फाँदकर दौड़ा हुआ आया। छूटनेवाले घोड़ों में से एक के पास जा खड़ा हुआ, और सवार से पूछा—

'इसी का नाम 'रेस' है न ?'

सवार—हाँ, मगर तुम यहाँ कहाँ फँसे पड़ते हो। निकलो। उस आदमी ने जेब से एक रुपया निकाला, और उस घोड़े की गरदन पर रखकर बोला—मेरे दोस्त ने कहा था कि इसी घोड़े पर एक रुपया लगाना। ज़रा देखना रुपया गिर न पड़े।

× × ×

एक युवती मोटर चला रही थी। रास्ते में मोटर एक वृद्ध आदमी से टकरा गई। बूढ़ा गिर तो पड़ा पर उसे ज़्यादा चोट नहीं लगी।

युवती—मुझे बड़ा खेद है बूढ़े मियाँ। गलती तुम्हारी थी। तुम किसी और तरफ़ देख रहे थे। मुझे मोटर चलाने का अच्छा अभ्यास है, मैं ७ वर्ष से मोटर चला रही हूँ।

बूढ़े ने धूल झाड़ते हुए कहा—मैं भी नौसिखिया नहीं हूँ। मुझे तो चलते ६० वर्ष हो गए।

× × ×

एक बालक सड़क पर रो रहा था। एक दयालु मनुष्य उधर से आ निकला। बालक को रोते देखकर उसने पूछा—बेटा क्यों रोते हो ?

बालक—मेरी चवन्नी गिर गई। अब घर में मारा जाऊँगा। दयालु मनुष्य ने एक चवन्नी निकालकर बालक को दी, और कहा—अब मत रोओ। यह चवन्नी लेकर घर जाओ।

बालक और ज़ोर से रोने लगा। मुसाफ़िर ने पूछा—हैं, अब क्यों रोते हो ? चवन्नी तो पा गए।

बच्चे ने सिसकियाँ भरकर कहा—अब तो मुझे और भी मार पड़ेगी। जब मेरे बाप यह बात सुनेंगे, तो वह मुझे और भी मारेंगे कि तूने अठन्नी क्यों न बनाई।

× × ×

स्त्री—तुम्हारे पहले मेरा विवाह कई जगह लग चुका था, और वे सब तुमसे कहीं अच्छे थे।

पति—तभी तो निकल भागे। अकेला मैं ही फँस गया।

× × ×

लड्डू पर मार पड़ चुकी थी।

उसने सिसककर माँ से पूछा—क्यों अम्मा, जब तुम छोटी-सी थीं, तो तुम्हारी माता भी तुम्हें मारती थीं ?

माँ—हाँ, जब मैं शरारत करती थी।

लड्डू—उनको माँ भी उनको मारती थी ?

माँ—हाँ हाँ क्यों नहीं।

लड्डू—तो फिर यह मारना शुरू किसने किया ?

× × ×

व्याख्याता ने जोश में आकर कहा—"मद्य-पान संसार के लिये, मनुष्य के लिये, प्राणी-मात्र के लिये कलंक है। यदि मेरा वश चलता तो मैं रम की एक-एक बोतल, बियर का एक-एक पीपा, ह्विस्की का एक-एक टिन तीक्ष्ण समुद्र में डुबो देता।

एक श्रोता—धन्य है ! धन्य है !!"

व्याख्याता—(प्रसन्न होकर) आपने तो बिलकुल छोड़ दी होगी।

श्रोता—जी नहीं, मैं गहरी डूबता हूँ।

× × ×

बूढ़े मियाँ ने पत्नी से बड़े प्रेम के साथ कहा—आज हमारे विवाह की डायमंड जुबली है। तुम्हें एक मज़े की बात सुनाता हूँ।

श्वेत केशिनी पत्नी ने कहा—कहो, क्या बात है।

पति ने पत्नी का हाथ अपने हाथ पर रख लिया, और कहा—यह मँगनी की अँगूठी मैंने आज ७६ वर्ष हुए तुम्हे दी थी।

पत्नी—हाँ, तभी तो दी थी।

पति—मैंने इसके दामों की आख़िरी क़िस्त आज अदा कर पाई है, और मुझे यह कहते गर्व हो रहा है कि अब यह तुम्हारी अपनी हो गई।

१. हिंदू-बाल-विवाह-बिल

हम अपने सामाजिक विषयों में राजकीय हस्तक्षेप के पक्षपाती नहीं। हम चाहते हैं कि हम सामाजिक व्यवस्थाओं में पूर्ण-रूप से स्वतन्त्र रहें, लेकिन ऐसी दशाएँ प्रायः हरएक देश और जाति में उत्पन्न हो जाती हैं, जब मजबूर होकर क़ानून की शरण लेना पड़ती है। प्राचीन काल में तो हिंदू-जाति का शासक धर्म का व्यवस्थापक भी होता था। वह आवश्यकतानुसार आचार्यों से परामर्श करके समाज की रीति-नीति की व्यवस्था करता था। यहाँ तक कि अकबर बादशाह के राज्य-काल में भी सती-प्रथा को बंद करने के लिये क़ानूनी काररवाई की गई थी। अँगरेज़ी-काल में राजा राममोहनराय के समय से लेकर अब तक कई सामाजिक कुप्रथाओं के विरुद्ध क़ानून बन चुके हैं, और सच पूछिए, तो क़ानूनी सहायता के बग़ैर समाज में कोई सुधार नहीं हो सकता। मानवीय सभ्यता का इतिहास साफ़ बतला रहा है कि वह किस सीमा तक क़ानून का ऋणी है। अभी संसार उस आदर्श से बहुत दूर है, जब प्रत्येक नागरिक इतना साहसी हो जायगा कि वह प्रचलित प्रथाओं की, चाहे वे कितनी ही विध्वंसक क्यों न हों, अवज्ञा कर सके। ऐसे ही लोगों के लिये क़ानून की ज़रूरत होती है। हम इस विचार से श्रीहरविलास सारदा के हिंदू-बाल-विवाह बिल का स्वागत करते हैं।

यह मानने में तो कदाचित् किसी को भी आपत्ति न होगी कि हिंदू-जाति दिन-दिन अल्पायु, क्षीणकाय और रुग्ण होती चली जा रही है। इस दुर्दशा के दरिद्रता, खाद्य वस्तुओं का अभाव, कठिन मानसिक परिश्रम, नागरिक जीवन, घोर जीवन-संग्राम आदि अनेक कारण हो सकते हैं। पर इसमें संदेह नहीं कि बाल-विवाह उसका मुख्य कारण है। भारत के सिवा संसार में ऐसा कौन-सा अभागा देश होगा, जहाँ ५ वर्ष से भी कम उम्र की विधवा बालिकाओं की संख्या १२,००० से अधिक हो। १० वर्ष से कम उम्र की विधवाओं की संख्या तो एक लाख के लगभग है। जिस समाज में ऐसी घोर दुर्व्यवस्था हो, वह संसार में कै दिन ज़िंदा रह सकती है? हिंदू-बाल-विवाह-बिल का मुख्य उद्देश्य बाल-विधवाओं का उद्धार करना है। स्मृतिकारों ने सहस्रों वर्ष पहले बालकों और बालिकाओं दोनों के लिये विवाह की आयु नियत कर दी थी। प्राचीन ग्रंथों में हमें कहीं बाल-विवाह का प्रमाण नहीं मिलता। बाल-विवाह की प्रथा मुसलमानों के पहले न थी। संभव है, उस वक़्त इसकी ज़रूरत रही हो; लेकिन अब इस प्रथा का मिट जाना ही अच्छा है, और जितनी जल्द मिट सके, उतना ही अच्छा। कितना महान् अनर्थ है कि हिंदू स्त्रियों में ११ प्रतिशत १० वर्ष की अवस्था के पूर्व ही विवाहिता हो जाती हैं और

१४ वर्ष की विवाहित बालिकाओं की संख्या तो ४४ प्रतिशत है। श्रीहरविलासजी ने, १४ वर्ष की अवस्था बहुत कम रक्खी है। अगर उनका उद्देश्य जाति का वास्तविक उपकार करना है, तो इस अवस्था को बढ़ाकर लड़कियों के लिये १४ वर्ष और लड़कों के लिये १८ वर्ष कर देनी चाहिए। ९ या १० वर्ष की लड़की को १२ वर्ष की बतला देना बहुत आसान है। शायद कोई डॉक्टर भी उम्र का ठीक अनुमान नहीं कर सकता। और जन्म-पत्री तो बातों में बनती-बिगड़ती है। ऐसे क़ानून से लाभ ही क्या, जिसका इतनी आसानी से दुरुपयोग किया जा सके। १२-१३ वर्ष की बालिका १४ वर्ष की बनाई जा सकती है। इसलिये पेशबंदी यही होनी चाहिए कि अगर कोई जालसाज़ी भी करे और क़ानून को धोखा देना चाहे, तो भी वह कन्या पर ऐसा अन्याय न कर सके जो उसके जीवन को मिट्टी में मिला दे। बहुत-से लोग १४ और १८ की संख्याएँ देखकर ही कानों पर हाथ रख लेंगे; लेकिन जब बड़ोदा, मैसूर, भरतपूर आदि राज्यों ने लड़कियों के लिये कम-से-कम १२ वर्ष की आयु नियत कर दी है, और चीन में लड़कियों के लिये १६ और लड़कों के लिये १८ वर्ष की क़ैद है, तो ब्रिटिश सरकार की प्रजा को परेशान होने का कोई कारण नहीं। हमें आशा है, सरकार की ओर से इस बिल का विरोध न होगा। कौंसिल के मेंबरों से भी हमारी प्रार्थना है कि वह यथाशक्ति इस बिल का समर्थन करें। यह उनके लिये कम बदनामी की बात नहीं है कि देश में ऐसी क्रूर कुप्रथाओं का आधिपत्य हो। उन्हें धर्म के ध्वजाधारियों के शंकामय प्रस्तावों पर विशेष ध्यान देने की ज़रूरत नहीं। शारदामठ के श्रीशंकराचार्यजी ने उस दिन इस बिल का विरोध करते हुए एक तार वाइसराय के पास भेजा था। गवर्नमेंट के लिये रास्ता साफ़ है। अगर उसे विश्वास है कि इस बिल से भारतीय जनता का कल्याण होगा, तो उसे इसका समर्थन निःशंक होकर करना चाहिए। यदि उसे विश्वास हो कि इससे जाति को हानि होगी, तो उसे इसको रद्द कर देना चाहिए। एक बात की उपयोगिता को स्वीकार करके उसका समर्थन न करना अक्षम्य है।

× × ×

२. उर्दू में एक बृहत् कोष की आयोजना

उर्दू-भाषा में आज भी कई अच्छे कोष हैं। फ़रहंगे आसफ़िया, अमीरुल्लुग़ात, आदि तो पहले ही से मौजूद थे। हाल में नूरुल्लुग़ात के नाम से एक नए कोष का प्रकाशन आरंभ हुआ है; किंतु अब मुसलिम-साहित्य के महारथियों ने उर्दू में एक ऐसा कोष संपादित करने की व्यवस्था की है जो अँगरेज़ी के इंसाइक्लोपीडिया ब्रिटेनिका से टक्कर ले सके। इस कोष का नाम होगा "हिफ़ज़ुलउलूम" अर्थात् 'विद्या-रक्षक'। इसमें पाँच-पाँच सौ पृष्ठों की २५० जिल्दें होंगी। हमारे पास उसका जो प्रास्पेक्टस आया है, उसे देखने से विदित होता है कि इस बृहत् कोष में फ़ोटो, हाफ़टोन, बुडकट आदि कुल मिलाकर सवा लाख चित्र होंगे। ५०,००० विद्वानों से उसके लिये विद्वत्ता-पूर्ण लेख लिखाए जायँगे। संसार के सभी देशों के विशेषज्ञों से उसके लिये लेख लिखवाने का प्रबंध किया गया है। लेखकों को पुरस्कार स्वरूप देने के लिये १०,००० सोने और चाँदी के तमगे बनवाए गए हैं। उसकी विषय-सूची देखकर इस महान् साहित्यिक निर्माण का कुछ अनुमान हो सकता है। इसमें पौने चार लाख शब्दों की व्याख्या के अतिरिक्त समस्त प्रचलित लोकोक्तियों की विस्तृत आलोचना होगी। इसमें लगभग २० स्तंभ होंगे। दो स्तंभों की चर्चा तो हम कर ही चुके। तीसरे स्तंभ में पृथ्वी-भर के मेलों, पर्वों, मज़हबों, लोक-प्रथाओं का ऐतिहासिक खोज के साथ वर्णन किया जायगा। चौथे स्तंभ में साहित्य, इतिहास, भूगोल, खगोल, गणित, बीजगणित, भौतिक विज्ञान, वैद्यक-शास्त्र (इसमें यूनानी, अँगरेज़ी, होमियोपैथी, जल-चिकित्सा, विद्युत् चिकित्सा आदि आदि सभी शामिल होंगी), सामुद्रिक, स्वप्न, अध्यात्म, मोहिनी-विद्या, धर्म-शास्त्र, पिंगल, व्याकरण, न्याय, स्मृति आदि। इसी भाँति एक स्तंभ जीवन-चरित्रों का होगा, जिसमें केवल राजे-महाराजे, विजेता और आविष्कर्ता ही न होंगे, बल्कि पहलवानों, जादूगरों, डाकुओं, मदारियों आदि की जीवनियाँ भी दी जायँगी। एक स्तंभ कला-कौशल का होगा जिसमें चित्रकारी से लेकर अचार बनाने और कपड़े सीने तक सभी कलाओं का विवेचन किया जायगा।

सारांश यह कि यह कोष एक छोटा-सा पुस्तकालय होगा। प्रकाशन के पूर्व विद्वानों का एक मंडल इस कोष का संपादन करेगा, जिसमें राजा नरेंद्रनाथ, दीवान बहादुर कुंजबिहारी थापर, ख़ानबहादुर शेख़ अब्दुलक़ादिर भूतपूर्व मन्त्री शिक्षा-

विभाग पंजाब, पंडित ब्रजमोहन साहब दत्तात्रेय, डाक्टर शेख मुहम्मद इक़बाल आदि होंगे। उर्दू-भाषा में यह अत्यंत सराहनीय और अनुकरणीय उद्योग है और यदि यह उद्योग सफल हो गया, तो उससे केवल उर्दू-संसार का नहीं, वरन् समस्त भारतवर्ष का उपकार होगा। काम अत्यंत कठिन है। अभी विज्ञान के पारिभाषिक शब्दों का निर्माण नहीं हुआ। देश में ऐसे प्रकांड विद्वानों का अभाव है, जो अपने विषय पर प्रामाणिक रूप से लिख सकें। विज्ञान के सभी विभागों में आश्चर्य-जनक विकास हुआ है। प्रकाशकों को अवश्य ही योरपीय विद्वानों से कठिन विषयों पर लेख लिखाकर उर्दू में अनुवाद करवाने पड़ेंगे। यदि इन सभी बाधाओं पर विजय प्राप्त कर लिया गया, तो यह उर्दू-साहित्य में एक युगांतर पैदा करनेवाली वस्तु होगी।

× × ×

३ हिंदी-साहित्य में अशिष्टता और अश्लीलता

साहित्य समाज का प्रतिबिंब है। समाज के जैसे भाव होते हैं, साहित्य में भी वैसी ही विचार-धारा प्रवाहित होती है। शिष्ट समाज का साहित्य शिष्ट और अशिष्ट का अशिष्ट होगा, इसमें किसी प्रकार का संदेह नहीं। कहा जाता है कि पाश्चात्य देशों के संपर्क से इस समय भारतीय समाज के दृष्टि-कोण में भी परिवर्तन हुआ है। आज से पचास-साठ वर्ष पहले हमारे समाज में जो बातें निःसंकोच कही जा सकती थीं, इस समय उनके कहने में कुछ लोगों को संकोच होता है। समाज के भावों में इस प्रकार का जो परिवर्तन हुआ है, उसी के अनुरूप साहित्य में भी परिवर्तन हुआ है। पुराने कवि और लेखक ऐसी रचनाएँ भी कर डालते थे, जिनका प्रकाशित होना इस समय की रुचि के प्रतिकूल है। सामाजिक रुचि के अनुरूप साहित्य में इस समय जो परिवर्तन दृष्टिगत हो रहा है, वह नितांत स्वाभाविक है। उसमें आश्चर्य-जनक बात कोई भी नहीं है। कुछ लोगों का विचार है कि वर्तमान साहित्य में शिष्टता और सभ्यता का सम्मान पूर्वापेक्षा अधिक है। हिंदी के साहित्य के विषय में भी यही बात कही जा रही है। हिंदी-साहित्य में इस समय दैनिक, साप्ताहिक और मासिकपत्रों का ख़ासा प्रचार है। पुस्तकें भी ख़ूब निकल रही हैं। इन पत्र-पत्रिकाओं तथा पुस्तकों की टोन पर यदि व्यापक दृष्टि से विचार किया जाय, तो मालूम पड़ता है कि पचास बरस की कौन कहे, आज से दस वर्ष पहले की अपेक्षा भी इस समय के लेखों में अधिक शिष्टता और सभ्यता का प्रदर्शन है। इसके लिये हिंदी-साहित्य-संसार को हार्दिक बधाई है। फिर भी अभी हिंदी-साहित्य का अशिष्टता और अश्लीलता से सर्वथा पिंड नहीं छूटा है। खेद के साथ कहना पड़ता है कि इस समय समालोचना और समाज-सुधार के बहाने अशिष्टता और अश्लीलता का कभी-कभी प्रदर्शन हो जाता है। समालोचना एवं समाज-सुधार-संबंधी लेखों की उपयोगिता उनकी गंभीर तथा संयत भाषा से ही बढ़ सकती है। उक्त दोनो ही विषय बड़े ही उत्तरदायित्व-पूर्ण हैं। समालोचक एक प्रकार का न्यायाधीश है। समाज-सुधारक भी प्रथम श्रेणी का समाजोपकारी है। यह सोचने की बात है कि जब न्यायाधीश और समाजोपकारी पुरुष अपने लेखों में अशिष्टता और अश्लीलता को आश्रय देंगे, तो फिर समाज में सुरुचि का संचार कैसे हो सकेगा। समालोचना के बहाने लोगों पर गंदे और भद्दे आक्षेप करना, उन्हें गालियाँ देना और फिर अपनी निर्दोषता दिखलाने के लिये यह कहना कि यह तो हमारे लिखने की शैली है, कैसी लचर बात है। उसी प्रकार सामाजिक बुराइयों से भरी घोर अश्लील और गंदी कहानियों से ओत-प्रोत पुस्तकें प्रकाशित करना और अपने बचाव में यह ढोल पीटना कि यह सामाजिक बुराइयों का असली दृश्य दिखलाने के उद्देश्य से लिखी गई हैं बिलकुल वाहियात बात है। अश्लील, अभद्र, अशिष्ट और व्यक्तिगत आक्षेपों से परिपूर्ण लेखों द्वारा भला समालोचना और समाज-सुधार का काम चल सकता है? कदापि नहीं। व्यापक रूप से हिंदी-साहित्य में, अशिष्टता और अश्लीलता घटी है, पर समालोचना और समाज-सुधार-संबंधी-साहित्य में अभी उसका साम्राज्य स्थिर है, यह खेद की बात है। इन अंगों से भी यदि ये बुराइयाँ दूर की जा सकें, तो बड़ा अच्छा हो।

× × ×

४. हम पराधीन क्यों हैं ?

अजमेर से 'त्यागभूमि' नामक एक बहुत ही उपयोगी मासिक-पत्रिका का जन्म हुआ है। उसके संपादक हमारे मित्र प० हरिभाऊ उपाध्याय हैं। हाल में जितनी

पत्रिकाएँ निकली हैं, उनमें प्रत्येक दृष्टि से हम 'त्याग-भूमि' को सर्वश्रेष्ठ कह सकते हैं। उसके पहले अंक में श्रीघनश्यामदासजी बिड़ला ने एक बहुत ही विचारपूर्ण और विचारोत्पादक लेख लिखा है। आपने उस लेख में इस प्रश्न का उत्तर देने की चेष्टा की है—'हम पराधीन क्यों हैं ?' योरप जो संसार पर राज्य कर रहा है, भोग-विलास में हमसे कई मंज़िल आगे बढ़ा हुआ है। वह पानी की जगह शराब पीता है, रात को जागता है, दिन को सोता है, थिएटर और सिनेमा उसके लिये उतना ही आवश्यक है, जितना जल और वायु। फिर भी वह स्वाधीन है। वह भूलकर भी ईश्वर का नाम नहीं लेता, दया, धर्म, भजन-भाव का भूलकर भी ध्यान नहीं करता, गिरजा घरों से भी उसे प्रेम नहीं, भीख माँगनेवालों की सूरत से भी उसे घृणा है। फिर भी उसका संसार पर आधिपत्य है और हम जो धर्म पर प्राण देते हैं जो नित्य स्नान, ध्यान, व्रत-पूजा में व्यतीत करते हैं, नदियों में नहाने के लिये लंबी-लंबी यात्राएँ करते हैं, नाना कष्ट झेलते हैं, जिसकी अपार भक्ति देश के अगणित मंदिरों से प्रकट है, पराधीन हैं, दलित हैं। हम आश्चर्य करते हैं कि कृष्ण भगवान् क्यों अवतार लेकर संसार का पाप-भार हलका नहीं करते। अब क्या विलंब है ?

तो क्या योरपवालों की भोगलिप्सा ही उनकी उन्नति का कारण है, और हमारी सात्त्विक वृत्ति हमारे अधःपतन का ? हम अपने मन को समझाने के लिये चाहे ऐसा समझ लें, पर वास्तव में ऐसी बात नहीं है योरप की भोग-लिप्सा उस रजोवृत्ति का एक अंग है। जो मौक़ा पड़ने पर अपने देश और जाति की मर्यादा के लिये अपना सर्वस्व न्योछावर कर सकती है। "जहाँ भोग की लालसा और विषय-सुख की तृष्णा की इनमें अधिकता थी, वहाँ शौर्य, उत्साह, धैर्य, सचाई हम लोगों से कहीं अधिक इनमें देखने में आई।"

इसके विपरीत हमारा सत्त्वगुण वास्तव में तमोगुण का आवरण-पात्र है। "हम अपनी अकर्मण्यता को संतोष, कायरता को अहिंसा, दरिद्रता को अपरिग्रह, भय को क्षमा, बाह्योपचारी रूढ़ियों को धर्म, अज्ञान को शांति, आलस्य को धृति माने बैठे हैं, और इसी में अपना गौरव समझते हैं।" सत्त्वगुण का अभाव दोनों ही में है। अंतर यह है कि योरप के लोग सत्त्वगुण को अपना आदर्श नहीं मानते, उद्योग और भोग ही उनका ध्येय है। हम सत्त्वगुण को आदर्श तो मानते हैं; पर तमोगुण में डूब गए हैं। हमने कभी देश और राष्ट्र के लिये कोई बलिदान नहीं किया। राणा प्रताप, शिवाजी, गुरुगोविंदसिंह आदि ने भी धर्म का उद्धार करना ही अपना लक्ष्य माना। देशोद्धार किसी का भी लक्ष्य न था। यह संभव है कि उन लोगों ने धर्म और देश को अभिन्न समझ लिया हो; पर प्रधान धर्मोद्धार ही था। यह है श्रीबिड़लाजी के लेख का सारांश। आपके कथनानुसार हमारे अधः-पतन का कारण हमारा तमोजन्य आलस्य और अकर्मण्यता है, और हमारी पराधीनता का कारण हमारी दास मनोवृत्ति। हम परतंत्र क्यों हैं ? इसका कारण यही है कि "हम में स्वतंत्रता की उत्कट चाह नहीं है।"

इस कथन की सत्यता में किसे संदेह हो सकता है।

× × ×

४. समाज-सुधार

समाज-सुधार का काम बड़े उत्तरदायित्व का है। समाज-सुधारक को जिन कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है, वे बहुत हैं। *अध्यवसाय, सहिष्णुता और त्याग* को अपनाए बिना समाज-सुधार का काम नहीं हो सकता। जो समाज-सुधारक थोड़ी कठिनता देखकर घबरा जाता है, जो अपने विचारों का विरोध करनेवाले को अपना शत्रु मानने लगता है, और जो सुधार के काम के लिये अपनी थोड़ी-सी भी हानि उठाने को तैयार नहीं है वह समाज-सुधार का काम नहीं कर सकता। दूसरों पर अपना आतंक जमाकर, उन्हें डरा, धमका कर अथवा अनुचित प्रलोभनों से उनको अपने में मिलाकर समाज-सुधार का जो काम किया जाता है, वह न तो स्थायी होता है, और न उससे समाज का विशेष कल्याण ही हो सकता है। क्षणिक आवेश में आकर जो कोई भी काम किया जाता है, उसका परिणाम प्रायः अच्छा नहीं होता। समाज-सुधार का काम तो बहुत समझ बूझ कर करने का है। उसमें उतावलेपन और आवेश से हानि की ही अधिक संभावना है। प्रत्येक देश और प्रत्येक जाति के समाज-सुधारकों को भयंकर कंटकाकीर्ण-पथ का पथिक बनना पड़ा है। किसी सुधारक के विषय में यह सुनने में नहीं आया कि उसके कर्तव्य-पथ पर गुलाब के फूल बिछाए गए थे।

भारतवर्ष में इस समय समाज-सुधार की ओर लोगों का ध्यान विशेष-रूप से आकर्षित हुआ है। हिंदू-समाज में ही सुधार की चर्चा ज़ोरों पर है। समाज-मात्र परिवर्तन से घबड़ाता है। प्रचलित नियमों और रूढ़ियों को छोड़कर नवीन नियमों को अपनाने में प्रत्येक समाज झिझकता है। हिंदू-समाज तो अत्यधिक अपरिवर्तनवादी प्रसिद्ध है। ऐसी दशा में हिंदू-समाज में सुधारक संप्रदाय के लिये घोर विरोध का सामना अवश्यंभावी हो रहा है। एक ओर समाज-सुधार के पक्षपाती अपने सुधार के काम में व्यस्त हैं, तो दूसरी ओर उनके विरोधी भी चुप नहीं हैं। इस प्रकार संघर्ष जारी है। संघर्ष में कहीं पर समाज-सुधारकों को अभूतपूर्व सफलता मिलती है, तो कहीं पर प्रगति के स्थान में उनका काम और भी पीछे हट जाता है। हमारा ख़याल है कि समय की अनुकूलता पर दृष्टि रखते हुए सुधारकों को सर्वत्र सफलता मिलनी चाहिए, पर वे कहीं-कहीं पर विफल क्यों होते हैं। इसका कारण हमारी निगाह में उनकी अहंमन्यता, स्वार्थपरता, असहिष्णुता और उतावलापन तथा अनुचित मार्गों का अवलंबन है। इस स्पष्ट कथन के लिये हमारे कुछ समाज-सुधारक भाई हमें क्षमा करें। कुछ हमने इसीलिये कहा है; क्योंकि हम स्वीकार करते हैं कि अनेक ऐसे समाज-सुधारक भी हैं, जो अहंमन्यता, स्वार्थपरता और असहिष्णुता-दोष से सर्वथा मुक्त हैं। समाज का सुधार जब कभी भी सफल होगा, तो ऐसे ही सज्जनों के बदौलत होगा।

× × ×

हिंदी की सर्वश्रेष्ठ मासिक पत्रिका

माधुरी के विशेषांक के लिये

'माधुरी' पर विद्वानों लेखकों और पत्रों की सम्मतियाँ:—

[क्रमागत]

N. C. Mehta Esq, Florence.

Just a line to thank you for the special issue of the Madhuri. I hope, we will have more of those inimitable stories from Prem Chand, which have been read wherever Hindi is known ; and the scholarly studies of the old masters of Braj with which Pt. Krishna Behari Misra has made us familiar, Wishing you all success.

श्रीहेमचंद्र जोशी (पेरिस)—

माधुरी का विशेषांक मिला। हार्दिक आनंद यह देखकर प्राप्त हुआ कि माधुरी ने इस अंक के द्वारा भारतवर्ष आदि बंगला-पत्रों को भी मात दे दी। इसकी छपाई-सफ़ाई के सामने भारतीय भाषाओं के पत्र नहीं ठहर सकते। लेखों का चुनाव भी अत्युत्तम हुआ है। आप लोगों ने संपादन-भार हाथ में लेते ही जो महान योग्यता दिखलाई है वह वास्तव में प्रशंसनीय है। परमात्मा से यही प्रार्थना है कि 'माधुरी' उत्तरोत्तर उन्नति करे और आप लोगों को अधिकाधिक बल दे कि हिंदी की अभिवृद्धि में आप पूर्ण भाग ले सकें।

प्रोफ़ेसर रामदास गौड़, एम० ए०—

माधुरी का विशेषांक बड़ी सजधज से निकला। हस्तलिपियों का छापना बड़ा मूल्यवान कार्य है और साहित्य की उत्तम कोटि की सेवा है। इस अंक में एक-से-एक उत्तम और गंभीर लेख हैं। यह अंक ऐसा सर्वांग सुंदर, विविध रंगीन और एकरंगे चित्रों से सुशोभित निकला है कि २१६ बड़े उपयोगी और ठोस मैटर से भरे बड़े-बड़े पृष्ठों की पोथी का दाम एक रु० कुछ भी नहीं है। ऐसा सुंदर अंक निकालने के लिये हम योग्य संपादकों को सादर बधाई देते हैं।

श्री० पं० विश्वम्भरनाथ शर्मा "कौशिक"—

माधुरी का विशेषांक बहुत सुंदर निकला। इधर मासिक-पत्रों को विशेषांक निकालने का चस्का-सा पड़ गया है, परंतु उनमें-से बहुत कम ऐसे हैं जिनका विशेषांक माधुरी का-सा निकला हो। लेख, चित्र, छपाई-सफ़ाई की दृष्टि से भी सुंदर है। ईश्वर माधुरी की उत्तरोत्तर उन्नति करे—यही हार्दिक कामना है।

ज्योतिषाचार्य पं० लक्ष्मीकांत कन्याल—

माधुरी का विशेषांक मिला, जिसे देखकर मेरा हृदय-कमल खिल उठा। कविताएँ, लेख, चित्र और छपाई-सफ़ाई सब कुछ आकर्षक है। मैं निःसंकोच होकर कह सकता हूँ कि माधुरी के भूतपूर्व संपादकों के संपादन-काल में माधुरी में इतनी माधुरी न थी और न कभी ऐसा विशेषांक ही निकला था। माधुरी पत्रिकाओं की रानी है और इसकी सफलता का श्रेय आप लोगों को है। मेरी हार्दिक अभिलाषा है कि इसका घर-घर प्रचार हो।

श्रीप्रद्युम्नकृष्ण कौल, संपादक-'हिंदूपंच'—

विशेषांक बहुत सुंदर निकला। हार्दिक बधाई स्वीकार कीजिए।

श्रीरामस्वरूप कौशल—

मुझे विश्वास है कि ऐसा अद्भुत, सर्वांगसुंदर, उत्कृष्ट, सर्वोपयोगी, सुसंपादित और साथ ही इतना मोटा और सस्ता विशेषांक हिंदी में इससे पहले कभी प्रकाशित नहीं हुआ। लेख सभी विचार-पूर्ण और सारगर्भित, कविताएँ सरस रोचक तथा चित्र ललित और चित्रकला-कौशल के परिचायक हैं। संपादक-वर्ग को इस अभूतपूर्व सफलता पर हार्दिक बधाई।

आयुर्विज्ञानाचार्य वैद्यशास्त्री डॉक्टर इन्द्रदेवप्रसाद चतुर्वेदी—

(के० टी० एम्० एम्० एम्० एस्० बी० डी० एस्० बी०)

'माधुरी' के मधुरभाव, अनोखे रंग-ढंग सब कुछ प्रशंसनीय और अवर्णनीय है। परमात्मा, माधुरी की मधुरिमा को सर्वदा और सर्वथा सुरक्षित रक्खे।

श्रीभास्कर रामचंद्र भालेराव—

माधुरी का विशेषांक मिला। ऐसा नयनाभिराम, सुपाठ्य और बड़ा अंक निकालने के लिये सादर अभिनंदन करता हूँ। लेखों का चुनाव अनूठा, और चित्र मनोहारी हैं। आजतक इस विशेषांक का सानी कोई नहीं निकला। संपादक युगल, प्रबंध-संपादक तथा अध्यक्ष महोदय सर्वथा धन्यवाद के लायक हैं।

श्रीजगदीशचंद्र शास्त्री—

विशेषांक तथा प्रबंध-संपादक का पत्र मिला। धन्यवाद। निःसंदेह आपको तथा प्रबंध-संपादक महोदय को इस अंक के सजाने के लिये अनथक परिश्रम करना पड़ा होगा। सारा का सारा संग्रह सराहनीय है। स्थायी-साहित्य के योग्य है। इस सफलता पर हिंदी-साहित्य-माधुरी के प्रोप्राइटर, प्रबंध-संपादक तथा संपादक-युगल पर एक साथ सहस्रों बधाइयों को न्योछावर करेगा।

श्रीदेवेंद्रनाथ शुक्ल, बी० ए०—

माधुरी का विशेषांक निकालकर आपने वास्तव में अपने को प्रत्येक हिंदी-प्रेमी जनता का प्रशंसा-भाजन बना लिया है। यदि 'सुधा' अच्छी पत्रिका है, तो 'माधुरी' उससे अच्छी पत्रिका है, ऐसा सुंदर अंक निकालने के लिये आपको बधाई।

साहित्य-गोष्ठी, दारागंज, प्रयाग—

साहित्य-गोष्ठी की ता० २९। १। २७ की बैठक में विचार हुआ और वाद विवाद के उपरांत बहुमत से निश्चित हुआ कि यह गोष्ठी माधुरी के संपादकों तथा स्वामी को उसे सजधज के साथ सर्वांग सुंदर तथा इतने सस्ते मूल्य में निकालने के लिये हार्दिक बधाई देती है।

प्रोफ़ेसर दयाशंकर दुबे (सभापति), पं० लक्ष्मीधरजी वाजपेयी, पं० रामजीलाल शर्मा, बा० भगवानदास केला, बा० शम्भूदयाल सक्सेना साहित्यरत्न, आदि २५ साहित्य-प्रेमी।

रामेंद्र शर्मा—

आपका विशेषांक विविध विषय-पारंगत लेखों तथा अनेक सुरुचि पूर्ण मनोहर चित्रों से विभूषित है। इसकी उपयोगिता में ज़रा भी शक नहीं। संपादकीय-विचार पहले से अधिक गंभीर और अध्ययन-पूर्ण है। ऐसा सर्वांग-सुंदर विशेषांक निकालने के लिये बधाई।

श्रीजगन्नाथप्रसादसिंह-हिंदी-मंदिर, शांतलपुर—

विशेषांक का तो कहना ही क्या, उसके बाद के साधारण अंक भी देखकर मुझे भास होता है कि वे किसी साहित्य-पत्रिका के विशेषांक हैं। संपादकीय टिप्पणियाँ मार्के की हैं। छपाई-सफाई तथा चित्रों के चुनाव में आप लोग बहुत

सफल हुए हैं। टाइटिल-चित्र बहुत सुंदर है। यदि आप लोगों के परिश्रम का यही क्रम जारी रहा, तो भारतवर्ष की किसी भी पत्रिका से माधुरी बाज़ी ले जायगी। सस्तेपन की आपने हद कर दी।

सुप्रभातम्—सम्पादकौ—श्री पं० कृष्णविहारीमिश्र', बी० ए०, एल् एल्० बी०,—श्रीप्रेमचन्द्रश्च। संचालकः श्रीविष्णुनारायणभार्गवः, नवलकिशोर-प्रेस, लखनऊ। वार्षिकमूल्यम् ६॥)

इयं सुप्रसिद्धा हिन्दी-पत्रिका हिन्दीभाषायां युगान्तरमुपस्थापितवतीति विदितचरमेव सर्वेषां साहित्यरसिकानाम्। एष विशेषाङ्कः षष्ठवर्षस्य प्रथमाङ्कः। एतस्य मुद्रणं प्रकाशनञ्चातितरां मनोहरम्। षट् चित्राणि त्रिवर्णानि वर्तन्ते। अन्यानि च सन्ति बहूनि चित्राणि। सम्पादनसौन्दर्यं कौशलञ्च सभाजनीयमस्ति। लेखानां निर्वाचन सौष्ठवं च दृष्ट्वा चेतः प्रमोदतितराम्। 'जीवन-सुधा', 'ज्ञान-ज्योतिः', 'कृषि-कौशलम्', 'वाणिज्यं व्यवसायश्च', 'सुभाषितं विनोदश्चेति' पञ्च स्तम्भा नूतना नियोजिताः सन्ति। एतस्य सर्वमपि बाह्यमान्तरञ्चाङ्गं हिन्दी-साहित्य-संसारे गौरवास्पदं महत्त्वपूर्णञ्च वरीवर्ति। बङ्ग-महाराष्ट्र-गुर्जरादि-साहित्ये समुन्नततराणि पत्राणि बहूनि सन्ति। हिन्दी-भाषायामेकैवासीत् सरस्वती, परमिदानीं माधुरी-माधुरी ॥ पयति सर्वेषां माधुरीमिति वयमिमां पत्रिकां सभाजयामः। कामयामश्च यदियं पत्री विजयतादिति।

'मतवाला'—कलकत्ता—"माधुरी" का विशेषांक, संपादक पं० कृष्णविहारी मिश्र बी० ए०, एल्०-एल्० बी० तथा श्री प्रेमचंद, प्रबंध-संपादक पं० रामसेवक त्रिपाठी; इस अंक का मूल्य १), वार्षिक ६॥), इस अंक की पृष्ठ-संख्या २१०, रंगीन चित्र ८, अध्यक्ष-श्रीविष्णुनारायण भार्गव, नवलकिशोर-प्रेस, लखनऊ को लिखने से प्राप्य।

आज तक जितने विशेषांक हिंदी मे हमने देखे हैं, हम निःसंकोच होकर कहेंगे, इतना सुंदर, इतना आकर्षक, इस तरह का सुसंपादित और इतना बड़ा विशेषांक हमने नहीं देखा। इसके मुख्य संपादकद्वय हिंदी में लब्धकीर्ति और यथेष्ट यशस्वी हो चुके हैं। मेधा-शक्ति से ऐश्वर्य की, सरस्वती से लक्ष्मी की सम्मिलित भावना का फल कितना सुंदर, कितना लाभ-प्रद हुआ करता है, इस "विशेषांक" के उदाहरण से हिंदी-समाज इसे याद रखेगा।

यों तो इस विशेषांक के लेख सभी अच्छे हैं, परन्तु बाबू शिवपूजनसहाय का 'वंगीय रंगमंच', पं० कृष्णविहारी मिश्र का 'पुनर्जन्म', पं० गौरीशंकर हीराचंदजी ओझा का 'राजपूताने के इतिहास को शुद्ध करने का प्रयत्न', पं० विष्णुदत्त शुक्ल का 'समाचार-पत्र', पं० गंगाप्रसाद उपाध्याय का 'अद्वैतवाद', श्रीकस्तूरमलजी का 'अनेकांतवाद' विशेष उल्लेख योग्य और अच्छे हुए हैं। कवि-चर्चा, महिला-मनोरंजन, संगीत-सुधा, जीवन-सुधा ज्ञान ज्योति, विज्ञान-वाटिका, कृषि-कौशल, वाणिज्य-व्यवसाय, सुमन-संचय, सुभाषित और विनोद तथा संपादकीय-विचार आदि स्तंभों में जानने लायक अच्छी से अच्छी कितनी ही बातें आई हैं। हम निःसंदेह कहेंगे माधुरी पहले से अच्छी निकल रही है और उसके संपादन में पहले से विशेषता आ गई है।

प्रसिद्ध कई कवियों की कविताएँ हैं, जिनमें पं० श्रीधर पाठक का 'वसंत-ऋतु-वर्णन'—आर्ट पेपर पर उनके हस्ताक्षरों की प्रतिलिपि में, श्रीहरिऔध का 'प्रलय-काल' बाबू मैथिलीशरण का 'प्रवाह' बाबू जयशंकर 'प्रसाद' की 'जर्जर तरी', रत्नाकर की 'हरियाली में लाली', श्रीशंकर का 'हर्षविषादक मरण' और श्रीनिराला का 'रेखा' ये कविताएँ भाव और भाषा तथा रुचि की दृष्टि से प्रशंसनीय हुई हैं। चित्रों में श्रीरामेश्वरप्रसाद वर्मा का सुंदरी-विनोद और श्रीरामनाथ गोस्वामी का 'हंस-दूत' अच्छे हुए हैं। पाठक अवश्य माधुरी के विशेषांक के लिये १) खर्च करें।

"स्वतंत्र" कलकत्ता—माधुरी का विशेषांक, संपादक पं० कृष्णविहारी मिश्र बी० ए०, एल्०-एल्० बी० और श्रीप्रेमचंद बी० ए०। प्रबंध-संपादक पं० रामसेवक त्रिपाठी। प्रकाशक श्रीविष्णुनारायण भार्गव, अध्यक्ष नवलकिशोर-प्रेस, लखनऊ। पृष्ठ-संख्या २१०, रंगीन चित्र ८; वार्षिक मूल्य ६॥), इस अंक का मूल्य १)

नवीन संपादकों के हाथ में आकर थोड़े ही समय में माधुरी ने बड़ी उन्नति की है। इसे देखकर आशा होती है कि इसका उत्कर्ष उत्तरोत्तर बढ़ता जायगा। अभी हाल में इस पत्रिका का श्रावण का विशेषांक बड़ी सजधज के साथ निकला है। उत्तमोत्तम लेखों के चुनाव और चित्रों के संग्रह में संपादकों ने बड़ा परिश्रम किया है सुरुचि और निपुणता का यथेष्ट परिचय दिया है।

कई कविताएँ बढ़िया आर्ट-पेपर पर छपाई गई हैं, ऐसी छपाई हिंदी की किसी पत्रिका में नहीं हुई। लेखों में श्रीयुत ओझाजी, कृष्णबिहारीजी, शिवपूजनसहायजी, विष्णुदत्तजी और गंगाप्रसादजी के लेख; और कविताओं में निरालाजी, हरिऔधजी, श्यामसुंदर खत्री, मैथिलीशरणजी और महाकवि सेनापतिजी की कविताएँ उत्तम हैं। प्रसिद्ध चित्रकार बाबू रामेश्वरप्रसादजी वर्मा के द्वारा अंकित कई मनोहर रंगीन चित्र हैं। कई नवीन स्तंभ भी इसमें बढ़ाये गये हैं। विशेषांक सर्वथा सम्मान्य है। मूल्य १) बहुत कम है। ऐसा विशेषांक इसके पहले किसी पत्र का नहीं निकला।

वेंकटेश्वर समाचार बम्बई—'माधुरी' का विशेषाङ्क। अगस्त मास की माधुरी विशेषांक के रूप में प्रकाशित हुई है, जिसमें २१६ पृष्ठ और छः रंगीन चित्र दिये गये हैं। इनके अतिरिक्त आर्ट-पेपर पर मुद्रित सादे चित्र और कविताएँ भी हैं जिनकी संख्या ६ है। लेख के साथ भी अनेक चित्र दिये गये हैं।

टाइटिल पेज अतिशय सुन्दर और भावपूर्ण है। उसके एक चित्र में चित्र दिये हैं। बीच में माता बच्चे को गोद में लेकर खड़ी हुई है। चारों कोनों पर ४ चित्र और भी हैं—(१) भारतीय-महिला टेनिस खेलती हुई दिखलाई गई है जो स्त्री-समाज के लिये, सम्भवतः शारीरिक शक्ति की आवश्यकता को प्रकट करती है (२) दूसरे चित्र में विद्याध्ययन (३) तीसरे में वीणावादन अर्थात् कलाज्ञान और (४) चतुर्थ में बद्धाञ्जलि प्रार्थना का भाव प्रकट करके आस्तिकता की आवश्यकता प्रकट की गई है। यद्यपि लेखों में बहुत गंभीर लेखों की कमी है फिर भी लेख सभी अच्छे और सुरुचि का परिचय देनेवाले हैं। शायद हिंदी साहित्य में यह पहला ही अवसर है जब कि विशेषाङ्क में आर्ट पेपर पर ग्राउंड देकर कविताएँ छापी गई हों। सारांशतः यह कहा जा सकता है कि छपाई सफ़ाई की दृष्टि से यह विशेषाङ्क अबतक प्रकाशित सभी विशेषाङ्कों से बाज़ी ले गया है, और लेखों की भी दृष्टि से किसी से कम नहीं है। १) में यह विशेषाङ्क बहुत सस्ता है। सम्पादक युगल को हम, इस सफलता पर बधाई देते हैं।

'अमर' बरेली—माधुरी का विशेषांक—पृष्ठ-संख्या २१०, मूल्य १) मिलने का पता व्यवस्थापक "माधुरी", नवलकिशोर-प्रेस, लखनऊ।

नवलकिशोर-प्रेस के आधिपत्य में आने के बाद, नये संपादक श्रीयुत कृष्णबिहारी मिश्र, श्रीयुत प्रेमचंदजी के तत्त्वावधान में माधुरी श्रावण १९८४ का अंक विशेषांक के रूप में निकला है। इस विशेषांक की छपाई सफ़ाई कुछ विशेषता लिये हुए है। साथ ही गद्य-पद्य लेखों का निर्वाचन और संपादन भी सुन्दर एवं समयोचित है। [illegible] वाद, बंगीय रंगमंच, अनेकांतवाद, मृत-रहस्य, सोवियट रूस में शिक्षा प्रचार, हस्त-रेखा-विज्ञान, पतञ्जलि और [illegible] के इतिहास को स्पष्ट करने का प्रयत्न आदि लेख विद्वत्ता, गवेषणा और खोज के साथ लिखे गये हैं। पं० नरदेव शास्त्रीजी का 'डाक-रोग' बड़ा मज़ेदार है। कहानियों में अद्भुत रस है। अन्यान्य लेखों में ज्ञान कौतुक उपदेश और फटकार का भी काफ़ी मसाला है। इस प्रकार मसाले के साथ छः तिरंगे और अनेक सादे चित्रों ने अंक की मनोरमता खूब बढ़ाई है। माधुरी के संपादक-युगल को उक्त विशेषांक की सफलता पर बधाई।

"प्रेम" वृन्दावन—माधुरी का विशेषांक—यह अंक छः रंगीन चित्रों से सुसज्जित है। इसके अतिरिक्त अन्य अनेक चित्र हैं और चित्रमय लेख भी हैं। छपाई, कागज़ आदि अति उत्तम हैं। अनेक लेख विद्वत्तापूर्ण तथा मनोरंजक हैं। दो एक छोटी छोटी कहानियाँ भी हैं। अंक छपाई, सफ़ाई तथा चित्रों के विचार से अत्यंत सुंदर और मनोरंजक है।

नोट—हमारे पास विशेषांक तथा साधारण अंकों की उपयोगिता के लिये अनेकों बधाई के पत्र आये हैं, किंतु खेद है कि समय तथा स्थानाभाव के कारण वे सब प्रकाशित नहीं हो सकते। जिन सज्जनों ने बधाई देते हुए शुभाभिलाषा प्रकट की है, उनके हम लोग हृदय से आभारी हैं। उन सज्जनों का यह उत्साह-वर्धन हमें हिंदी साहित्य की सेवा करने के लिये आगे अधिक उत्साह-दान करेगा। हमारी प्रार्थना है कि आप लोग माधुरी को अपनी ही वस्तु समझकर समय-समय पर हमारा हाथ उसके प्रचार में बँटाते रहें।

निवेदक—व्यवस्थापक 'माधुरी' लखनऊ

६. महाराजा साहब पटियाला का प्रशंसनीय विद्या-प्रेम

कई वर्ष हुए पंजाब के श्रीमान् भाई काहनसिंहजी ने पंद्रह वर्ष के अविरत परिश्रम और पर्याप्त धन-व्यय के पश्चात् "गुरु-शब्द-रत्नाकर" नामक महान् कोष की रचना की। उसके प्रकाशन के लिये सर्दार साहब के पास धन न था। इसलिये आपने समाचार-पत्रों में जनता से अपील की कि यदि ५०० महानुभाव उन्हें ३४) का दान दे दें, तो वह इस ग्रंथ के प्रकाशन की व्यवस्था कर सकें। इस अपील का परिणाम बहुत निराशा-जनक निकला। अब तक केवल २०० प्रतियों के ग्राहक निकले हैं। भाई साहब ने चारों ओर से निराश होकर अंत में महाराजा साहब पटियाला से ५०० प्रतियों के ग्राहक बन जाने की प्रार्थना की। महाराजा साहब ने इस प्रार्थना का आशातीत उदारता के साथ उत्तर दिया। आपने इस ग्रंथ के प्रकाशन का सारा व्यय स्वयं स्वीकार कर लिया। महाराजा साहब अब स्वयं सिक्ख धर्म में प्रविष्ट हो गए हैं, इसलिये उनकी उदारता और भी सराहनीय है। हमारे [illegible] भी [illegible] विद्या-प्रेम का परिचय दे सकें, तो [illegible] आशाओं का उद्धार हो जाय।

× × ×

७. देहातों में कृषि की अवनति

[illegible] गाँव उजड़ते जाते हैं और शहर बढ़ते जाते हैं। व्यावसायिक युग में ऐसा होना अनिवार्य है। देहात में बड़े-बड़े कारखाने नहीं बन सकते। जहाँ कारखाने बन जायँगे, वह स्थान थोड़े दिनों में शहर हो जायगा। [illegible]नगर कई साल पहले एक छोटा-सा गाँव था। अब वह नगर है। थोड़े दिनों में उसकी गणना भी भारत के बड़े-बड़े नगरों में होने लगेगी। कृषि-प्रधान देश में देहातों की अवनति और भी चिंता-जनक है। यह व्यावसायिक युग है। नगरों का बढ़ना और देहातों का उजड़ना इस युग के लिये स्वाभाविक है। योरप के गाँव बहुत दिन हुए उजड़ गए। उनका अब राष्ट्र में कोई स्थान नहीं। भारत में भी आर्थिक और व्यावसायिक कारणों से देहात दिन-दिन उजड़ते जा रहे हैं। देहातों में कठिन परिश्रम है, उस पर ज़मींदारों और सरकारी कर्मचारियों की धमकियाँ! सभी किसानों को नोचना-खसोटना चाहते हैं। शहर में आसानी से मज़दूरी मिल जाती है, और मज़दूर भी स्वाधीनता का अनुभव कर सकता है। हकीम, डॉक्टर और बाज़ार की सभी चीज़ें सुलभ हैं। देहात में बीमार अपनी ज़िंदगी से जीता है, और अपनी मौत से मरता है। अब अमेरिका को भी यही मरज़ पैदा हो गया है। योरप में आबादी इतनी ज़्यादा हो गई है कि कृषि से सबका निर्वाह नहीं हो सकता। भारत के सामने भी यही समस्या उपस्थित है। मगर हम समझते थे, अमेरिका के पास ज़रूरत से ज़्यादा ज़मीन है। काश्तकारों को खेती के नए-नए औज़ार सुलभ हैं, कलों के व्यवहार तथा विज्ञान की सहायता से वे लोग नफ़े के साथ खेती कर सकते हैं, पर अब मालूम हुआ है कि वहाँ भी देहातों पर यही आफ़त आई हुई है। देहाती आबादी, नगरों की तरफ़ खिंचती चली जाती है। इससे यही सिद्ध होता है कि किसानों को खेती से पूरा नहीं पड़ता। इसकी अपेक्षा मिल की मज़दूरी में उन्हें अधिक लाभ होता है। अगर अमेरिका-जैसे धन-धान्य-संपन्न देश को यह अनुभव हो रहा है, तो फिर ऐसा कौन उपाय है, जो नागरिक जीवन के प्रलोभन को रोक सके, और यदि [illegible] अर्जेंटाइन प्रभृति देशों में भी यही हवा चली, तो संसार में भोज्य पदार्थ कहाँ से आवेंगे? मगर शायद उस वक्त तक अन्य वस्तुओं की भाँति अन्न भी मिलों में पैदा किया जा सके।

× × ×

८. गँवार

जो कोई भी गाँव में रहता हो, वह गँवार कहा जा सकता है, और इसी प्रकार से जो कोई भी नगर में रहता हो, वह नागर कहा जा सकता है। इस प्रकार से हमारे पूज्य श्रीधर पाठक, पं० महावीरप्रसाद द्विवेदी और बाबू मैथिलीशरणजी गुप्त गँवार कहे जा सकते हैं। यही क्यों, स्वनामधन्य लार्ड सिनहा भी तो रायपुर गाँव के रहने-वाले होने से गँवार कहे जा सकते हैं, पर इस समय जिस अर्थ में 'गँवार' शब्द का प्रयोग होता है, उसके विचार से तो हम पाठकजी, द्विवेदीजी, गुप्तजी अथवा लार्ड सिनहा को गँवार नहीं कह सकते। तात्पर्य यह कि केवल गाँव में रहने से ही कोई गँवार नहीं कहा जा सकता। अच्छा, तो 'गँवार' शब्द में उन कौन-कौन-सी बुराइयों का संकेत है, जिनके कारण अपने लिये उस शब्द का प्रयोग लोग पसंद नहीं करते। यह तो स्पष्ट ही

है कि गाँव का निवास कोई बुरी बात नहीं है। आज-कल लोग जिस मनुष्य का आचरण अशिष्ट देखते हैं, जिसमें सभ्यता के भाव नहीं पाए जाते हैं, जो लोगों से मिलने-जुलने में, उनके साथ उठने-बैठने में सभ्यजनानुमोदित नियमों का पालन नहीं करता, जिसकी बात-चीत और कामों में अश्लीलता आ जाती है, तथा जिसकी बुद्धि कुछ ऐसी कुंठित दिखलाई पड़ती है कि वह साधारण ज्ञान की बातों को भी नहीं समझ सकता है, उसी को लोग 'गँवार' कहते हैं। गाँव छोटी जगह है। वहाँ थोड़े मनुष्य निवास करते हैं। उनके बीच में रहने से देखा गया है कि बुद्धि का स्फुरण अच्छा नहीं होता, और नगरवासी सभ्यजनानुमोदित नियमों से भी परिचय नहीं हो पाता। कदाचित् इन्हीं कारणों से गँवार शब्द का बुरे अर्थ में प्रयोग होने लगा होगा; पर अब तो यह बात नहीं रही। आने-जाने के साधनों की सुलभता से एव शिक्षा के प्रचार से आज गाँवों में देश के बड़े-बड़े प्रतिभाशाली विद्वान् भी पाए जा सकते हैं। इँगलैंड में तो अब देहात का रहना एक फ़ैशन-सा हो गया है। साल का कुछ समय गाँवों में बिताना विद्वान् लोग ज़रूरी-सा मानने लगे हैं। देहात में रहने से स्वास्थ्य-सुधार भी हो जाता है, और शांति-लाभ होने के कारण मानसिक उन्नति करने का भी अच्छा अवसर मिलता है। भारतवर्ष में भी लोग गाँवों में रहने का उपयोग समझने लगे हैं। ऐसी दशा में केवल गाँव में रहने के कारण अब कोई पुरुष व्यापक अर्थवाला गँवार नहीं कहा जा सकता। इसके विपरीत शहर में रहनेवाले कितने ही पुरुष ऐसे हैं, जो सभ्य-समाज में गँवार कहलाते हैं। वे बेचारे गाँव के रहनेवाले नहीं हैं, फिर भी लोग उन्हें निःसकोच गँवार कहते हैं। कारण स्पष्ट है। उनके आचरण सभ्यजनानुमोदित नहीं हैं, उनकी बात-चीत में फूहड़पन, उजड्डता और अश्लीलता आ जाती है। अहमन्यता के कारण, वे अपने अज्ञान को समझ नहीं पाते। बस, इसी कारण समझदार लोग उन्हें 'गँवार' कहते हैं, और ठीक ही कहते हैं। ऐसी दशा में यह स्पष्ट है कि इस समय 'गँवार' शब्द जिस अर्थ को प्रकट करता है, उस अर्थ के अनुरूप 'गँवार' शहर में भी पाए जा सकते हैं, और ग्रामों में भी। इसी प्रकार से हमारी राय में केवल नगर का रहनेवाला ही 'नागर' नहीं है, वरन् जिसमें शिष्टता हो, जिसके आचरण सभ्यजनानुमोदित हों, जो विनय और सौम्यता को अपनाए हो, जिसमें प्रतिभा हो, वही 'नागर' है, चाहे वह गाँव में रहता हो अथवा शहर में। कम-से-कम 'गँवार' शब्द ने तो अपना भौगोलिक अर्थ (गाँव का रहनेवाला) बहुत कुछ छोड़ दिया है। इस समय तो समाज में अशिष्ट, उद्दंड और उजड्ड मनुष्य ही गँवार कहा जाता है।

× × ×

६ मुसलिम-लीग-सम्मेलन

मुसलिम-लीग का वार्षिक सम्मेलन मेरठ में होगया। सभापति का आसन राजा अहमदअलीख़ाँ साहब राजा सलेमपुर ने ग्रहण किया था। राजा साहब का व्याख्यान आदि से अंत तक विष से भरा हुआ था। आपने वर्तमान परिस्थिति का सारा उत्तरदायित्व हिंदुओं पर रक्खा। हिंदू ही अपने बहुमत से मुसलमानों को दबाने की चेष्टा कर रहे हैं, हिंदू ही मसजिदों के सामने बाजे बजाकर मुसलमानों की ईश्वरोपासना में बाधक हो रहे हैं। जहाँ देखिए, वहाँ हिंदू मुसलमानों को सता रहे हैं। सारे व्याख्यान में एक शब्द भी ऐसा नहीं था, जिससे पक्षपात की गंध न आती हो। सम्मिलित निर्वाचन का आपने घोर विरोध किया, और उसे मुसलमानों के लिये विनाशक बतलाया। ठीक ही है, हिंदुओं ने मुसलमानों को नीचा दिखाने के लिये यह नया षड्यन्त्र रचा है। इस वक़्त लीडरी, ख्याति और शहादत बड़े सस्ते दामों बिक रही है, और किसी प्रकार का भय नहीं। सरकार के मुक़ाबिले में प्रजा-पक्ष लेना जोखिम का काम है। वहाँ जेल है, नज़रबंदी, ज़बानबंदी है। यहाँ आप चाहे जितना ज़हर उगलिए, द्वेष की आग में चाहे जितना तेल डालिए, किसी तरह का खटका नहीं। राजा साहब को मालूम होगा कि हिंदुओं ने शुरू से मुसलमानों को राष्ट्रीय आंदोलन में अपने साथ रखने की कोशिश की है, और इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये वह हर तरह से ग़म खाते और दबते आए हैं; मगर मुसलमानों ने कभी राष्ट्रीय आंदोलन में हिंदुओं का साथ नहीं दिया। उन्होंने हिंदुओं से पृथक् रहने में ही अपना हित समझा, और इसमें संदेह नहीं कि सरकार का दामन पकड़ने से उन्हें कितने ही विशेष अधिकार मिल गए। हिंदू अब जो कुछ कर रहे हैं, वह केवल इतना ही है कि

वह अब और दबना नहीं चाहते। हिंदू-सभा, मुसलिम-लीग और खिलाफ़त का जवाब है। शुद्धि मुसलिम तबलीग़ के जवाब के सिवाय और कुछ नहीं। यदि मुसलिम-नेता आज तबलीग बद कर दे, तो हिंदू-सभा को शुद्धि के बद करने मे लेश-मात्र भी विलब न होगा। बाजे का प्रश्न बिलकुल नया है। तीन-चार साल पहले हिंदोस्तान मे इसकी कहीं चर्चा तक न थी। यह आंदोलन केवल हिंदुओं को नीचा दिखाने के लिये जारी किया गया है। जब यह स्वीकार कर लिया गया है कि मसजिद के सामने बाजे को रोकना धार्मिक प्रश्न नहीं, तो उसका उद्देश्य इसके सिवा और हो ही क्या सकता है कि हिंदुओं के विरुद्ध मुसलिम जनता को भड़काया जाय। मुसलमान इस बात पर राज़ी है कि यदि हिंदू गो-हत्या के विषय में किसी प्रकार की रोक-टोक न करें, तो मुसलमान बाजे बद करने की ज़िद छोड़ देंगे। इससे स्पष्ट है कि बाजा कोई धार्मिक प्रश्न नहीं। केवल हिंदुओं को पस्त करने का एक बहाना है। गो-रक्षा हिंदुओं के लिये धार्मिक प्रश्न है। हिंदू अगर हिंदू है तो वह गऊ रक्षक भी होगा। हिंदू इस धार्मिक सिद्धांत को किसी भी राजनैतिक पदार्थ के बदले मे नहीं त्याग सकते। सभव है हिंदू नेता एकता के विचार से गऊरक्षा को तिलांजलि दे दें, पर हिंदू-जनता इस विषय में नेताओं के निर्णय का अनुमोदन न करेगी। गो-रक्षा हिंदू-धर्म का एक मुख्य अग है। बाजे के प्रश्न से इसकी तुलना नहीं की जा सकती।

अब दूसरा प्रश्न है 'सम्मिलित निर्वाचन' का। मुसलिम लीग ने इसका घोर विरोध किया, और विरोध-कर्ताओं मे प्रसिद्ध राष्ट्र-भक्त मौलाना हसरत मोहानी भी शरीक थे। इसे ज़माने की ख़ूबी के सिवा और क्या कहा जाय। वह मौलाना जो स्वराज्य के आदर्श मे "साम्राज्य के अतर्गत" शब्दों के विरोधी थे, आज पृथक् निर्वाचन के समर्थक हैं। हिंदुओं ने तो इस विषय को भुला-सा दिया था। एक वस्तु कितनी ही मूल्यवान् क्यों न हो, बार-बार गले लगाने से उसका महत्त्व नष्ट हो जाता है। बच्चे को मिठाई इसलिये प्रिय है कि माँगने पर मिलती है। हिंदुओं ने समझ लिया था कि एक-न-एक दिन मुसलमान लोग 'पृथक् निर्वाचन' की बुराइयों को ज़रूर समझेंगे। इसलिये जब मि० मुहम्मदअली जिन्ना ने इस प्रश्न को फिर छेड़ा, तो हिंदुओं ने इसे नए आने-वाले युग का शुभ संदेश समझकर ख़ुशियाँ मनाईं। मुसलमानों ने जो-जो शर्तें लगाईं, वे सब हिंदुओं ने मंज़ूर कर लीं। वे चाहते थे कि यह नादिर मौक़ा हाथ से न जाने पाए; मगर उन्हें क्या मालूम था कि यह भी मुसलमानों की एक पोलिटिकल चाल थी। इसका मशा था कि पाँच मुसलिम सूबों में मुसलमानों का बहुमत हो जाय। अब हिंदू इस प्रश्न पर अगर विचार करेंगे, तो बग़ैर किसी शर्त के। यदि मुसलमान पृथक् रहने में अपना कल्याण समझते हैं, तो पृथक् रहें, हमें कोई आपत्ति नहीं। हाँ, हम उन्हें उनके हिस्से से अधिक जौ-भर भी दिया जाना पसद नहीं कर सकते। अगर मुसलमान स्वराज्य के आंदोलन में हिंदुओं से पृथक् रहना चाहते हैं, तो शौक़ से रहें। मुसलमानों की मदद से स्वराज्य पाने का अर्थ अब हमारी समझ में आता जा रहा है। जब तक मुसलमान हरएक विषय में विशेषता का दावा न छोड़ेंगे, तब तक हिंदू-मुसलिम ऐक्य सफल नहीं हो सकता। सम्मिलित निर्वाचन से यदि देश का कल्याण होगा, तो दोनों जातियों का समान रूप से होगा, हिंदू उसके लिये विशेष चिंता करने का कोई कारण नहीं पाता। मुसलमानों को हिंदुओं के कमज़ोर पहलू ख़ूब मालूम हैं। वे जानते हैं कि दंगे और फ़िसाद में, लूट-मार में, हिंदू उनकी बराबरी नहीं कर सकते। वे यह भी जानते हैं कि हिंदुओं में आपस में हो फूट पड़ी हुई है, समाजी, सनातनधर्मी, ब्राह्मण, अब्राह्मण और न-जाने कितने दल एक दूसरे से लड़ने को कमर कसे तैयार खड़े हैं। ब्राह्मण-ब्राह्मण के लिये, वैश्य-वैश्य के लिये, क्षत्रिय-क्षत्रिय के लिये की आवाज़ उठी हुई है। बोर्डों में हिंदू-बहुमत मुसलिम-अल्पमत के हाथों की कठपुतली बना हुआ है। शूद्रों को अभी तक कुछ पढ़े-लिखे सज्जनों की ज़बानी हमदर्दी के सिवा और समाज में कोई स्थान नहीं मिला। ऐसी दशा में यदि मुसलमान-नेता मुसलिम-जनता को भड़काकर हिंदुओं को नीचा दिखा सकते हैं, तो क्यों न दिखा दें! लेकिन हमें विश्वास है कि हिंदुओं की यह दशा बहुत दिनों तक नहीं रहेगी। जब तक वे पूर्ण-रूप से संगठित न हो जायँगे, मुसलमान उन्हें यों ही ठुकराते रहेंगे, और उन्हें यों ही निःसहायों की भाँति बार-बार गवर्नमेंट के दरबार में फ़रियाद करनी पड़ेगी, शायद तुर्की की

जागृति, अफ़ग़ानिस्तान की उन्नति, अलजीरिया, हेजाज़, मिस्र आदि देशों की कीर्ति ने हिंदोस्तानी मुसलमानों में भी एक नशा पैदा कर दिया है, और यह मुसलमानों के लिये स्वाभाविक है। संसार के अन्य सभी देशों में राष्ट्रीयता के बंधन के मुक़ाबिले में धर्म के बंधन का कोई मूल्य नहीं ; लेकिन इसलामी हिंदोस्तान का बाबा आदम निराला है। वह आज भी उन्हीं पुरानी लकीरों को पीटता चला जा रहा है। धार्मिक कट्टरता संसार के लिये विनाशक सिद्ध हो चुकी है; मगर शायद अभी हिंदोस्तान-जैसे दो-चार अभागे देशों में उसकी परीक्षा होना बाक़ी है।

× × ×

१०. तीन स्वर्ण-पदक

इस वर्ष 'माधुरी' मे जो चित्र प्रकाशित होंगे, उनमें से, विशेषज्ञ निर्णायकों द्वारा जो चित्र सर्वोत्कृष्ट ठहराया जायगा, उसके चित्रकार को (यदि वह चित्रकार पसंद करेगा) एक स्वर्ण-पदक प्रदान किया जायगा। चित्र, कला की दृष्टि से उत्तम होना चाहिए, और समाज में सुरुचि के भावों को प्रोत्साहन दिलानेवाला भी होना चाहिए। नवीन और प्राचीन दोनों ही ढंग की चित्र-कला के अनुसार बनाये हुए चित्रों पर विचार किया जायगा। किसी एक प्रणाली का पक्षपात नहीं किया जायगा। निर्णायकों के नाम शीघ्र प्रकाशित कर दिये जायँगे। यदि कोई चित्रकार महोदय अपने चित्र को प्रतियोगिता मे रखना न पसंद करेंगे, तो उनके चित्र पर निर्णायक लोग विचार न करेंगे। चित्र-पदक के समान ही एक कविता-पदक देने की भी व्यवस्था की गई है। इस पदक के दाता महोदय चाहते है कि इस वर्ष 'माधुरी' में किसानों से संबंध रखनेवाली जितनी कविताएँ प्रकाशित हों, उनमें जो सर्व-श्रेष्ठ हो, उसके रचयिता को यह स्वर्ण-पदक दिया जाय। कविता चाहे, व्रजभाषा में हो और चाहे खड़ी बोली में हो; पर सुरुचि-पूर्ण हो। उसमें असभ्य और अश्लील भाव न आने पावें। किस कवि को पदक दिया जायगा, इसका निर्णय कुछ निर्णायक सज्जन करेंगे। इनके नाम भी शीघ्र प्रकाशित कर दिये जायँगे। यदि कोई कवि पदक-प्रतियोगिता में पड़ना न पसंद करेगा, तो 'माधुरी' में उसकी कविता प्रकाशित होने पर भी निर्णायक लोग उस पर विचार नहीं करेंगे। तीसरा पदक समालोचना-पदक है। इस वर्ष 'माधुरी' में जो समालोचनाएँ प्रकाशित होंगी, उनमें जो सर्व-श्रेष्ठ होगी, उसके लेखक को यह पदक दिया जायगा। कौन समालोचना सर्व-श्रेष्ठ है, इसका निर्णय भी कुछ निर्णायक सज्जन करेंगे। इनके नाम भी शीघ्र प्रकाशित किये जायँगे। जिन समालोचनाओं के रचयिता पदक-प्रतियोगिता में पड़ना पसंद न करेंगे, उनकी समालोचनाओं पर निर्णायक लोग विचार न करेंगे। समालोचनाओं में व्यक्तिगत आक्षेप, असभ्यता-पूर्ण आक्रमण और अशिष्ट व्यंग्य का समावेश नहीं होना चाहिए। समालोचना में गंभीरता के साथ-साथ शिष्टता, सभ्यता और मौलिकता होनी चाहिए। समालोचना साहित्य के किसी भी अंग पर हो सकेगी। किसी ग्रंथ अथवा ग्रंथकार पर विमर्श लिखा जा सकेगा। कविता-पदक के लिये जो कविताएँ लिखी जायँ तथा समालोचना-पदक के लिये जो विमर्श तैयार किये जायँ, उनका आकार कितना हो, इसका निश्चय अगली संख्या मे प्रकाशित किया जायगा। उसी संख्या में प्रत्येक पदक के निर्णायकों के नाम भी छपेंगे। इन पदकों के देने का उद्देश्य यही है कि कविता, समालोचना तथा चित्रों के प्रकाशन में कला और सुरुचि का आदर हो। यदि इस उद्देश्य की सिद्धि में इन पदकों से कुछ भी सहायता मिली, तो 'माधुरी' और पदकों के देनेवाले अपने को धन्य समझेंगे।

× × ×

११ त्याग-भूमि और वीणा

सस्ता साहित्य-मंडल अजमेर की ओर से श्रीहरिभाऊ उपाध्याय और श्रीक्षेमानंद 'राहत' के संपादकत्व में 'त्याग भूमि' नाम की पत्रिका प्रकाशित होने लगी है। इसका वार्षिक मूल्य ४) है। हमारे सामने इस समय इसकी प्रथम संख्या मौजूद है। इसमें ६८ पृष्ठ हैं। छपाई अच्छी है। कागज़ भी अच्छा है। इस संख्या में २ रंगीन तथा १ सादा चित्र है। रंगीन चित्रों में महाराणा प्रताप का चित्र बहुत सुंदर है। लेखों और कविताओं का चुनाव भी बहुत अच्छा है। लेखों में लाला लाजपतराय का 'राजपूताना', रायबहादुर पं० गौरीशंकर-हीराचंद ओझा का 'महाराणा प्रताप की संपत्ति', सेठ घनश्यामदासजी बिड़ला का 'हम पराधीन क्यों हैं' तथा श्रीरायसाहब हरिबिलास सारडा का 'रिज़र्व बैंक-बिल' अच्छे लेख हैं। कविताओं में बाबू मैथिलीशरण गुप्त की 'गुंजार',

ठाकुर गोपालशरणसिंह की 'प्रार्थना' तथा दो-एक और रचनाएँ उत्तम हैं। 'त्याग-भूमि' एक अच्छी पत्रिका है। इसका संपादन विद्वत्ता के साथ होता है। प्रथम संख्या के प्रारंभ में महात्मा गांधी का छः लाइनों का आशीर्वाद बहुत सुंदर है। हम 'त्याग-भूमि' की हृदय से सफलता चाहते हैं।

इंदौर में मध्यभारत-हिंदी-साहित्य-समिति नाम की एक संस्था है। विजयदशमी से इस संस्था ने 'वीणा' नाम की एक मासिक पत्रिका का प्रकाशन प्रारंभ किया है। इसके संपादक पंडित अंबिकाप्रसादजी त्रिपाठी हैं। इसमें माधुरी के आकार के ८२ पृष्ठ हैं। प्रथम संख्या में महाराज होलकर, स्वर्गीया महारानी अहल्याबाई, अहल्याबाई का समाधिस्थान एवं राम-राज्याभिषेक नामक ४ चित्र हैं। अंतिम चित्र रंगीन है। कागज़ और छपाई अच्छी है। प्रथम अंक में संपादकीय विचारों के अतिरिक्त ४० गद्य-पद्यमय लेख हैं। लेखकों में हिंदी के प्रसिद्ध-प्रसिद्ध पुरुष हैं। 'वीणा' पत्रिका होनहार जान पड़ती है। इसके संपादक परिश्रमी और अध्ययनशील हैं। हम हृदय से 'वीणा' की सफलता के इच्छुक हैं।

'त्याग-भूमि' और 'वीणा' इन दोनों ही पत्रिकाओं के संपादकों ने यह बात प्रकट की है कि प्रथम संख्या शीघ्रता से निकाली गई है। इस कारण संपादकगण उन्हें जिस रूप में निकालना चाहते थे, उस रूप में नहीं निकाल पाए हैं। उन्होंने विश्वास दिलाया है कि इस पत्रिका के अगले अंक विशेष सुंदर और मनोहर होंगे। ईश्वर करे, संपादकों का यह कथन यथार्थ प्रमाणित हो। हिंदी की मासिक पत्रिकाओं की संख्या बढ़ रही है, यह बड़ी प्रसन्नता की बात है। क्या ही अच्छा हो कि 'त्याग-भूमि' और 'वीणा' हिंदी की मासिक पत्रिकाओं में स्थायी स्थान प्राप्त करें, और उनके द्वारा चिरकाल तक हिंदी-साहित्य का कल्याण होता रहे।

× × ×

१२. महाभारत का एक परिष्कृत संस्करण निकालने की आयोजना

ऋग्वेद के बाद महाभारत ही हिंदू-साहित्य का महत्त्व-पूर्ण ग्रंथ है। वह प्राचीन हिंदू-जाति की धार्मिक, सामाजिक, राजनैतिक व्यवस्थाओं का अनंत भांडार तो है ही, साहित्यिक गुणों की दृष्टि से भी संसार में उसका सानी कोई ग्रंथ नहीं है। आज समस्त शिक्षित संसार उसके सामने आदर से सिर झुकाता है। महाभारत ही ने उन आदर्श-चरित्रों को अमरत्व प्रदान किया है, जिन पर हिंदू आज तक गर्व करते हैं, जिनकी बदौलत आज तक हिंदू-जाति जीवित है। महाभारत के बिना हिंदू-जाति की कल्पना ही नहीं की जा सकती; परंतु उसी महाभारत ग्रंथ का अभी तक कोई प्रामाणिक मूल नहीं है। उसके मूलों की विभिन्नता किसी सर्वमान्य संस्करण के मार्ग में बाधक है। अब तक महाभारत के विषय में जो छानबीन की गई है, उससे सिद्ध होता है कि मूल में कहीं कुछ बदल दिया गया है, कहीं जोड़ या निकाल दिया गया है। दक्षिण-भारत के कुछ विद्वानों ने १६१८ में एक प्रामाणिक, विशुद्ध संस्करण निकालने का संकल्प किया। एक विद्या-प्रेमी रईस ने इस काम के लिये एक लाख रुपया चंदा भी दिया। विद्वानों के एक संपादक-मंडल ने कार्य आरंभ कर दिया। उसका श्रीगणेश स्वयं स्व० डॉक्टर रामकृष्ण भांडारकर ने किया। संपादक-मंडल ने बंगाल, कोचीन, नैपाल, और तंजोर में विविध मूलों की तुलना करने का प्रबंध किया गया है। प्रत्येक पर्व कई-कई मूलों से मिलाकर शुद्ध किया है। यहाँ तक कि कोई-कोई पर्व तो ६० मूलों से मिलाए गए हैं। ग्रंथ में बड़े आकार के ८,००० पृष्ठ होंगे। उन्हें १२ जिल्दों में विभक्त किया जायगा। भिन्न-भिन्न मूलों पर आलोचनाओं एवं टिप्पणियों के कारण पुस्तक का आकार बहुत बढ़ गया है। मूल के बराबर ही टिप्पणियों की पृष्ठ-संख्या होगी। इस ग्रंथ को प्रकाशित करने का व्यय ४ लाख से कम न होगा। इसमें १ लाख वसूल हो चुका है। बंबई, मदरास, बर्मा की युनिवर्सिटियों और बड़ौदा, भावनगर तथा औंध के दर्बारों ने इस यश में उल्लेखनीय भाग लिया है। यद्यपि इस संचित कोष से १२,००० वार्षिक आय हो रही है। लेकिन इस आमदनी में से पुस्तक प्रकाशित करने में बहुत विलंब होगा। हमें आश्चर्य है कि पंजाब, इलाहाबाद तथा हिंदू-युनिवर्सिटियों ने अभी तक इस पुण्य-कार्य में सहायता नहीं दी। हिंदू-मात्र का कर्तव्य है कि यथाशक्ति इस काम में सम्मिलित होकर यश के भागी हों। हमें आशा है, हमारे विद्या-रसिक जाति-भक्त नृपति अपनी उदारता से काम लेंगे। ऐसा न हो कि जिस भाँति हम ऋग्वेद के लिये जर्मनी के ऋणी हैं, महाभारत के लिये भी पश्चिमी जातियों के ऋण का कलंक माथे पर लें। जो सज्जन कुछ देना चाहें, वे 'महाभारत-संपादक-मंडल, भांडारकर ओरिएन्टल रिसर्च इन्स्टीट्यूट पूना' के नाम से भेज सकते हैं।

× × ×

१३ खड्गपूर का मुआमिला

पिछले साल खड्गपूर के रेलवे कारखाने में ज़ोरों की हड़ताल हुई थी। उस कारख़ाने में १०,००० आदमी काम करते हैं। अधिकारियों ने उसी वक़्त से हड़ताल के नेताओं को चुन लिया था, और उन्हें किसी तरह निकाल बाहर करने का मौक़ा तलाश कर रहे थे। अब यह बहाना निकाला गया है कि इतने आदमियों की कारख़ाने को ज़रूरत ही नहीं है, आदमी कम किए जायँगे। इस बहाने से लगभग २,००० मज़दूर, जिन्होंने पिछली हड़ताल में प्रमुख भाग लिया था, पृथक् कर दिए गए हैं। भारतीय-सरकार ने इसकी मंज़ूरी भी दे दी है। ट्रेड युनियन कमिटी की तरफ से जो ब्योरा प्रकाशित हुआ है, उससे स्पष्ट प्रतीत होता है कि किफायत की जो दलील पेश की गई है, वह केवल बहाना है। अगर अधिकारियों का यही ढंग रहा, तो भय है कि भीषण हड़ताल हो जायगी। हम हड़ताल के पक्षपाती नहीं। अनुभव ने सिद्ध कर दिया है कि हड़ताल से अंत में दोनों पक्षों को हानि होती है, और बेचारे मज़दूर ही अधिक पिसते हैं। इसमें कौन संदेह कर सकता है कि विजय अधिकारियों ही की होगी। जो सरकार जन-मत को पैरों से ठुकरा सकती है, वह धर्म और नीति की ज्यादा परवा न करेगी; लेकिन अपढ़, गँवार, दुर्बल मज़दूरों पर विजय पाना किसी के लिये गर्व की बात नहीं हो सकती।

× × ×

१४ लॉर्ड हेडली और इसलाम

लॉर्ड हेडली इँगलैंड के एक रईस हैं। कई साल हुए आप इसलाम-धर्म में दीक्षित हो गए हैं। अभी हाल-

में आपने इसलाम पर अपने विचार प्रकट किए हैं, जिन पर मुसलमानों को ठंडे दिल से विचार करना चाहिए। ये विचार इतने शरीयत के ख़िलाफ़ हैं कि यदि किसी अन्य मतावलंबी के मुँह से निकले होते, तो इसलामी दुनिया में हलचल मच जाती, और उस पर इसलाम के अपमान करने का दोषारोपण कर दिया जाता। लॉर्ड हेडली यद्यपि मुसलमान हैं, पर उन्होंने अपने विचार-स्वातंत्र्य को शरीयत की वेदी पर बलिदान नहीं किया। उन्होंने कहा, अपने वर्तमान रूप में इसलाम कभी व्यापक धर्म नहीं हो सकता। यदि वह शरीयत के नियमों को और उदार नहीं बना सकता, तो उसे यह स्वप्न न देखना चाहिए कि इसलाम कभी योरप में उन्नति कर सकेगा। योरप-जैसे ठंडे मुल्क के निवासी दिन में पाँच मर्तबा वज़ू करके नमाज़ नहीं अदा कर सकते। वे विकट जीवन-संग्राम में आसीन होने के कारण इतना अवकाश कहाँ से निकालें कि दिन में पाँच बार नमाज़ पढ़ें। फिर खान-पान की क़ैद तो और भी सख़्त है। भला योरपियन सुअर-मांस जैसी स्वादिष्ट बलवर्धक, पुष्टिकारक वस्तु का कैसे परित्याग कर सकते हैं। और मदिरा में तो योरपियन जातियों की जान बसती है। उसे वे कैसे छोड़ सकते हैं। क्या इसलाम अपनी शरीयत को इस हद तक तरमीम करने को तैयार है? क्यों लार्ड साहब पर कुफ्र का फ़तवा नहीं सादिर किया जाता? बात यह है कि हिंदोस्तान के मुसलमान राजनैतिक स्वार्थ के लिये अपने मज़हब का कितना ही ढिंढोरा पीटें, दुनिया अब साम्प्रदायिक संकीर्णता को सहन नहीं कर सकती। लाला लाजपतराय ने अपने एक लेख में लिखा है कि मिस्र और तुर्की के लोग बाजे के विरुद्ध मुसलमानों के आंदोलन पर हँसते हैं। उनकी समझ में यह बात आती ही नहीं कि यह भी लड़ाई-दंगे का कोई विषय हो सकता है। औरों का तो कहना ही क्या, ख़ुद मुस्तफ़ा कमालपाशा ने कहा है कि हम मुसलमान नहीं, हम तुर्क हैं। दुनिया राष्ट्रीयता की ओर जा रही है, और हिंदोस्तान सारी दुनिया से अलग साम्प्रदायिकता की लहरों में बहा जा रहा है। इसे देश के दुर्भाग्य के सिवा और क्या कहा जाय। हमें आशा है, मुसलिम-नेता लॉर्ड हेडली को दीवाना न समझकर, उनके कथनों पर शांतचित्त होकर विचार करेंगे।

चित्र-चर्चा

१. मार-विजय

चित्रकार—श्री० वीरेश्वरसेन, हेडमास्टर गवर्नमेन्ट आर्टस्कूल, लखनऊ। तपस्वी गौतमबुद्ध की ध्यानमग्नावस्था में उनकी तपश्चर्या के व्रत को डिगाने के लिये संसार की दुर्जय कामवासनाओं की मूर्तियों का दिखाई देना और उनके अनेकों प्रयत्न; किंतु, उनका कोई फल नहीं। तपस्वी उसी प्रकार अटल और अविचल है और यह जीत उसकी संसार की सबसे बड़ी जीत है।

२ माता का धन

इस चित्र के चित्रकार श्री० गणेश पाल हैं। स्नेह-वत्सला माता अपने पुत्र को गोदी में लिये हुए आनंदानुभव कर रही है। संसार का अमूल्य पुत्र-धन पाकर, माता की पदवी पानेवाली रमणी अपने भाग्य को पल्लवित तथा पुष्पित देखकर गर्व से फूली नहीं समाती। इसी भाव को चित्रकार महाशय ने बड़ी सुंदरता से चित्रण किया है।

३ प्रियतम का ध्यान

चित्रकार—श्री० हीरालाल बच्चनजी। इस चित्र में चित्रकार महाशय ने दिखाया है कि इच्छित नायक का ध्यान करते-करते नायिका ऐसी तन्मय हो गई कि उसने प्रियतम के नेत्रों से ओझल हो जाने के डर से उसका चित्र आँखों में खींचकर उन्हें बंद कर लिया। उसके सामने प्रेमी का चित्र कल्पना-राज्य में स्वच्छंद नृत्य कर रहा है, और इसी आनंद में नायिका निमग्न है। ज्ञात होता है कि उसके अंग की प्रत्येक स्फूर्ति में उसके प्रेमी का ध्यान विराज रहा है। शरीर की गठन और सौंदर्य की आभा अवलोकनीय है। ध्यान देकर चित्र की ओर देखने से प्रत्येक भाव स्पष्ट हो जाता है।

LALIMLI

LALIMLI
PURE WOOL

"माधुरी" के नियम—

मूल्य-विवरण

माधुरी का डाक-व्यय-सहित वार्षिक मूल्य ६॥), छ मास का ३॥) और प्रति संख्या का ॥=) है। वी० पी० से मँगाने से =) रजिस्ट्री के और देने पड़ेंगे। इसलिये ग्राहकों को मनीऑर्डर से ही चंदा भेज देना चाहिए। भारत के बाहर सर्वत्र वार्षिक मूल्य ८) छ महीने का ४॥) और प्रति संख्या का ॥।) है। वर्षारंभ श्रावण से होता है लेकिन ग्राहक बननेवाले सज्जन जिस संख्या से चाहें ग्राहक बन सकते हैं।

अप्राप्त संख्या

अगर कोई संख्या किसी ग्राहक के पास न पहुँचे, तो उसी महीने के अंदर कार्यालय को सूचना देनी चाहिए। लेकिन हमें सूचना देने के पहले स्थानीय पोस्ट-ऑफ़िस में उसको जाँच करके डाकखाने का दिया हुआ उत्तर सूचना के साथ भेजना ज़रूरी है। उनको उस संख्या की दूसरी प्रति भेज दी जायगी। डाकखाने का उत्तर साथ न रहने से सूचना पर ध्यान नहीं दिया जायगा और उस संख्या को ग्राहक ।।=) के टिकट भेजने पर ही पा सकेंगे।

पत्र-व्यवहार

उत्तर के लिये जवाबी कार्ड या टिकट आना चाहिए। अन्यथा पत्र का उत्तर नहीं दिया जा सकेगा। पत्र में ग्राहक नंबर ज़रूर लिखना चाहिए। मूल्य या ग्राहक होने की सूचना मैनेजर "माधुरी" नवलकिशोर-प्रेस (बुक डिपो) हज़रतगंज, लखनऊ के पते से आनी चाहिए।

पता

ग्राहक होते समय अपना नाम और पता बहुत साफ़ अक्षरों में लिखना चाहिए। दो-एक महीने के लिये पता बदलवाना हो, तो उसका प्रबंध सीधे डाकघर से ही कर लेना ठीक होगा। अधिक दिन के लिये बदलवाना हो, तो १५ रोज़ पेश्तर उसकी सूचना माधुरी ऑफ़िस को दे देनी चाहिए।

लेख आदि

लेख या कविता स्पष्ट अक्षरों में कागज़ के एक ही ओर संशोधन के लिये इधर-उधर जगह छोड़कर, लिखी होनी चाहिए। क्रमशः प्रकाशित होने योग्य बड़े लेख संपूर्ण आने चाहिए। किसी लेख अथवा कविता के प्रकाशित करने या न करने का, उसे घटाने-बढ़ाने का तथा उसे लौटाने या न लौटाने का सारा अधिकार संपादक को है। अस्वीकृत लेख टिकट आने पर ही वापस किए जा सकते हैं। सचित्र लेखों के चित्रों का प्रबंध लेखकों को ही करना चाहिए।

लेख, कविता, चित्र, समालोचना के लिये प्रत्येक पुस्तक की २ २ प्रतियाँ और बदले के पत्र इस पते से भेजने चाहिए—

संपादक "माधुरी"
नवलकिशोर प्रेस (बुकडिपो), हज़रतगंज, लखनऊ।

विज्ञापन

किसी महीने में विज्ञापन बंद करना या बदलवाना हो, तो एक महीने पहले सूचना देनी चाहिए।

अश्लील विज्ञापन नहीं छपते। छपाई पेशगी ली जाती है। विज्ञापन की दर नीचे दी जाती है—

१ पृष्ठ या २ कालम की छपाई	३०)	प्रति मास
१/२ ,, या १ ,, ,,	१५)	,, ,,
१/४ ,, या १/२ ,, ,,	१०)	,, ,,
१/८ ,, या १/४ ,, ,,	६)	,, ,,

कम-से-कम चौथाई कालम विज्ञापन छपानेवालों को माधुरी मुफ़्त मिलती है। साल-भर के विज्ञापनों पर उचित कमीशन दिया जाता है।

"माधुरी" में विज्ञापन छपानेवालों को बड़ा लाभ रहता है। कारण, इसका प्रत्येक विज्ञापन कम-से-कम ४,००,००० पढ़े लिखे धनी मानी और सभ्य स्त्री पुरुषों की नज़रों से गुज़र जाता है। सब बातों में हिंदी की सर्वश्रेष्ठ पत्रिका होने के कारण इसका प्रचार बहुत हो गया है और उत्तरोत्तर बढ़ रहा है। एक प्रत्येक ग्राहक से माधुरी ले-लेकर पढ़नेवालों की संख्या ४०-५० तक पहुँच जाती है।

यह सब होने पर भी हमने विज्ञापन-छपाई की दर अन्य अच्छी पत्रिकाओं से कम ही रक्खी है। कृपया शीघ्र अपना विज्ञापन माधुरी में छपाकर लाभ उठाइए। कम-से-कम एक बार परीक्षा तो अवश्य कीजिए।

निवेदक—मैनेजर "माधुरी" न० कि० प्रेस (बुकडिपो), हज़रतगंज, लखनऊ

वर्ष ६ खंड १	मार्गशीर्ष, ३०४ तुलसी-संवत् (१९८४ वि०) दिसंबर, सन् १९२७ ई०	संख्या ५ पूर्ण संख्या ६५

द्रौपदी की प्रार्थना

द्रौपदी सभा मैं आनि ठाढ़ी करी हठ करि,
कौरव कुपित कह्यौ काहू को न मान हौं।
लच्छक नरेस पै न रच्छक उठत कोऊ,
परी है बिपति पति लागौ पतितान हौं।
जब 'स्यामसुंदर अनंत हरे बासुदेव',
कहि करि टेरी लाज जाति है निदान हौं ;
'सेनापति' तब मेरे जान तेई हरि नाम,
ह्वै गए बसन हरि नाम के समान ही।

"सेनापति"

त्याग बैठे और सदा योरप की सैर करने में लगे रहते हैं।

क्या अब भी हम कालापानी पार किए बिना रह सकते हैं? हम प्राचीन काल में भी तो म्लेच्छों के समागम से नहीं बचे, उलटा उन्हें हिन्दू बनाकर छोड़ा। इन दिनों में अब हम विदेशों का संपर्क और भी नहीं छोड़ सकते। यदि हम विदेशों को न जायँ, तो निरे कूप-मंडूक बने रहेंगे और विद्या तथा व्यापार की उन्नति नहीं कर सकते। यदि हम अन्य देशों से अलग भी रहना चाहें, तो क्या हम विदेशियों के संपर्क से बच सकते हैं? वे हमारे देश में व्यापारादि करने को अवश्य आवेंगे और यदि हम रोकेंगे, तो हमें सबसे लड़ना पड़ेगा। इसका फल क्या होगा? यदि हम चाहें कि हम अपनी प्राचीनता रक्षित रखने के लिये बाह्य शत्रुओं से स्वदेशी ढंग से युद्ध करें अर्थात् धनुष बाण, गदा, तलवार, पत्थरकला, तोड़ेदार, शतघ्नी, भुशुंडी आदि अस्त्र-शस्त्रों का उपयोग करें, तो क्या यह संभव है? हमें भी पाश्चात्य शस्त्रास्त्रों का उपयोग करना पड़ेगा। व्योमयानों से बम बरसाना, ज़हरीले गैसों का उपयोग करना या सुरंग लगाकर उड़ा देना अनिवार्य होगा, नहीं तो क्षण-भर में हम नष्ट कर दिए जायँगे। इसी तरह आवागमन के साधन में भी रथ, हाथी, घोड़े, बैलगाड़ी आदि अब काम नहीं दे सकते। रेल, तार, वायरलेस, एरोप्लेन, मोटरकार, टेलीफोन आदि के बिना हम नहीं रह सकते। भला बिजली की रोशनी छोड़कर क्या हम फिर से दीपक का उपयोग कर सकते हैं?

हमारे यहाँ भी वायव्यास्त्र, आग्नेयास्त्र, नागफाँस, पुष्पकविमानादि दिव्यास्त्रों का उल्लेख है, पर अब तो हम उन्हें बिलकुल भूल गए हैं। इसलिये जब नए सिरे से सीखना है, तो इन्हीं के सीख लेने का प्रयत्न करना होगा। तभी हम स्वराज्य चलाने में समर्थ होंगे, नहीं तो स्वराज्य पा जाने पर भी हम उसे खो बैठेंगे। अभी कोई भी देश सभ्यता की उस पराकाष्ठा को नहीं पहुँचा कि किसी देश को निर्बल पा उसे हड़प लेने के लोभ को संवरण कर सके। हमें अपने देश की रक्षा करनी पड़ेगी और अपना सैनिक संगठन पाश्चात्य पद्धति से करना पड़ेगा। अब पाश्चात्य संस्कृति की अनेक बातों में स्वीकार कर लेना हमारे लिये ही क्या, सारे संसार के लिये अनिवार्य है। इन दिनों में सबसे अमूल्य वस्तु समय है। जिन-जिन बातों में प्राचीन काल के समान वह नष्ट होता है, वे-वे बातें हमें त्यागनी पड़ेंगी और साथ ही पाश्चात्य औद्योगिक पद्धतियों के दोषों से हमें अपने देश-भाइयों को बचाना पड़ेगा।

देखिए! टर्की, चीन, जापान आदि देशों में क्या हो रहा है? कुछ समय पूर्व ये देश भी पुरानी लकीर के फ़क़ीर बने हुए थे। जब तक ऐसा रहा, तब तक इनको नीचा ही देखना पड़ा। टर्की को ही लीजिए, धीरे-धीरे उसके कितने प्रांत निकल गए और अंत में उसे योरप में रहना कठिन हो गया। उसका नाम पूर्व का पिंडरोगी रक्खा गया। इसी समय अमेरिका ने टर्की में शिक्षा-प्रचार करना शुरू कर दिया। मिशन के स्कूल और कालेज खोले गए। इनमें पढ़-पढ़कर तुर्कों की एक नई पीढ़ी तैयार हुई, जो नवीन तुर्कों के नाम से प्रसिद्ध हुई। इन्होंने एक राजनैतिक दल का संगठन किया और अंत में इन्होंने टर्की में युगांतर कर दिया। जब तक ये लोग पुरानी लकीर के फ़क़ीर बने रहे, तब तक बड़े-बड़े प्रांत खोते और पिंडरोगी कहलाते गए। उन्होंने जब देखा कि कोई-कोई पुरानी राजनैतिक और धार्मिक संस्थाएँ उन्नति के मार्ग में बाधक हैं, तो उन्होंने सुलतानी और खिलाफ़त दोनों को तिलांजलि दे दी। पीछे जब उन्होंने देखा कि तुर्की-फ़ेशन और पर्दा से हम लोग पाश्चात्य देशों में हेय समझे जाते और हमारा उतना मान नहीं होता, तो उन्होंने पर्दा भी बंद कर दिया और हैट लगाने का क़ानून भी पास कर दिया। अब पुराने ढंग की टोपी या पगड़ी लगाए हुए जो तुर्क देखा जाता है, उसे अत्यंत कठिन दंड भोगना पड़ता है। ऐसा करने से टर्की-देश अब सँभल गया और उसकी धाक भी जम गई।

जापान ने तो पहले ही संसार की प्रधान शक्तियों के साथ कंधे-से कंधा लगाकर बैठने का अधिकार प्राप्त कर लिया था। सभी आवश्यक बातों में उसने पाश्चात्य सभ्यता को अपनाकर रूस को पछाड़ा था। उसने व्यक्तिगत जाति-अभिमान को त्याग, देशाभिमान का मंत्र लिया और जापानी जापानी के बीच भेद-भाव उत्पन्न करनेवाली एक प्राचीन संस्था का बहिष्कार कर डाला। कुलीन जापानी जो सुमेराई कहलाते थे, अपनी कुलीनता का अभिमान छोड़, इतर जापानियों को अपने बराबर

हमारी स्थिति

मेरिका-निवासिनी मिस कैथराइन मेयो ने हाल ही में, जो पुस्तक हिंदुओं के विषय में लिखी है, उसकी समालोचना अँगरेज़ी-पत्रों में पढ़ने से हिंदुओं ही को नहीं, प्रत्येक न्यायशील व्यक्ति को बुरा लगा है। यदि पुस्तक सहानुभूति के साथ लिखी गई होती और हिंदुओं के सुधार के उद्देश्य से त्रुटियाँ दिखाई गई होतीं, तो हमको इतना कष्ट न होता। पर एक साधारण बुद्धि का मनुष्य भी समझ सकता है कि पुस्तक अच्छी नियत से नहीं लिखी गई, वरन् यह सिद्ध करने के लिये लिखी गई है कि हिंदू लोग अभी बर्बर जातियों से भी कई महत्व-पूर्ण बातों में पीछे पड़े हैं, अतएव उत्तरदायित्व पूर्ण शासन या स्वराज्य पाने के पात्र नहीं हैं। साथ ही हिंदुओं की जो त्रुटियाँ दिखाई गई हैं, उनमें से कुछ तो निरी कपोल-कल्पित हैं और जो वास्तव में हैं, उनके वर्णन में अत्यंतातिशयोक्ति की गई है।

इस पुस्तक के प्रकाशित होने से हमको बड़ी हानि हुई है। योरप और अमेरिका तथा अन्य सभी देश, इस पुस्तक को पढ़कर हमें अत्यन्त नीच समझेंगे, और इन देशों में हमारा मान और भी अधिक घटेगा। वैसे ही हमारे रहन-सहन का ढंग देख, दक्षिण अफ्रीका आदि के उपनिवेशों में हम अछूतों के समान समझे जाते थे। अब इस पुस्तक में जो विष उगला गया है उसका असर बहुत बुरा पड़ेगा। हम अपने को बहुत ही अच्छा क्यों न समझें पर दूसरे लोग यदि हमको महा भ्रष्ट और बर्बर जातियों से भी बुरा समझेंगे, तो हमारी उन्नति में बाधा पड़े बिना न रहेगी। इसलिये हमें निष्पक्ष होकर देखना चाहिए कि क्या हममें सचमुच कोई त्रुटियाँ हैं, जिनके कारण हमारा यह अनादर है? क्या मिस के० मेयो की बताई हुई त्रुटियाँ हममें हैं या नहीं और यदि हैं, तो उनको शीघ्र ही दूर कर देना हमारा कर्तव्य है, अथवा नहीं। क्रोध में आकर सच्ची त्रुटियों को भी स्वीकार न करना बुद्धिमानी न होगी। यह तो हमको ही धोखा देने के बराबर होगा।

स्मरण रहे कि यह कलियुग है, इसलिये इसकी सभ्यता भी अब अन्य युगों की सभ्यता के समान नहीं रह गई। संसार की प्रगति जिस दिशा की ओर अग्रसर है, हमें भी उसी दिशा की ओर अग्रसर होना चाहिए। हमें सभ्य देशों के वर्तमान ध्येयों से अपने ध्येयों की तुलना करनी चाहिए; पर खेद की बात है कि हम लोगों के ध्येय भी तो निश्चित नहीं। यद्यपि हम पाश्चात्य सभ्यता को बराबर ग्रहण कर रहे हैं तथापि हममें अधिकांश ऐसे हैं, जो वही पुरानी लीक पीटते जाते हैं। हमारे ध्येयों और कर्मों में बड़ा अन्तर दीखता है। हम इस देश में राम-राज्य स्थापित करना चाहते हैं और वर्णाश्रम-धर्म के पक्षपाती हैं, अर्थात् कलियुग को त्रेता और द्वापर बना देना चाहते हैं। यही तो बहुतेरे अछूतोद्धार की धूम लगाते हैं और बहुतेरे राम-राज्य की तथा वर्णाश्रम-धर्म की। भला ये दो विरुद्ध बातें एक साथ कैसे हो सकती हैं? राम राज्य में आत्मोन्नति करनेवाले शबूक के भाई-बन्धुओं की कुशल कदापि नहीं हो सकती। वे दूसरे उच्च वर्णों अर्थात् द्विजातियों के कर्म कभी न करने पावेंगे। यह समय तो राष्ट्रीयता का है, उच्च-नीच वर्णों का नहीं; एकता का है, इस तरह के जातीय भेद-भाव का नहीं। वर्ण-विभाग के कारण हम हिंदुओं में एकता रह ही नहीं सकती, ब्राह्मण और अब्राह्मण सदृश एकता के नाशक समूह उत्पन्न होते रहेंगे और हिंदू-राष्ट्र की स्थापना का विचार निरा स्वप्न ही बना रहेगा। इसलिये हिंदू-जाति के कल्याण के लिये, हम सबका एक निश्चित ध्येय होना चाहिए और उसकी बाधक अनेक त्रुटियों को हमें दूर करने का प्रयत्न करना चाहिए। पुरानी लकीर के फ़क़ीर बने रहकर हम कुछ नहीं कर सकते।

मित्रो! राम-राज्य स्थापित ही कौन करेगा? वर्णाश्रम-धर्म का प्रवर्तक एवं रक्षक, तो हिंदू राजा ही हो सकता है। उद्दंडों को दंड देकर वर्ण की मर्यादा के भीतर सबको रखना उसी का काम है। वही शास्त्रोक्त धर्म-रक्षक (Defender of the faith) है। जब राजा ही हिंदू नहीं हैं तो वर्ण-धर्म रह ही कैसे सकता है? श्रीराम के वंशज भी तो अपने राज्य में अब राम-राज्य नहीं चला सकते, फिर समस्त भारत में राम-राज्य और वर्णाश्रम-धर्म चलाना कैसे संभव है। हमारे जो थोड़े बहुत हिंदू नामधारी राजा हैं वे स्वयं वर्ण-धर्म

समझने लगे, जिससे उनमें सच्चा भ्रातृ-भाव हो गया। इस त्याग का फल देश के लिये बड़ा कल्याणकारी हुआ। जब तक यह भेद-भाव था, तब तक देश में राष्ट्र-भाव नहीं हो सकता था। जापान की उन्नति का एक दूसरा कारण स्त्रियों के साथ पाश्चात्यों के समान व्यवहार है। भूकंप से पहले दश वर्ष पूर्व जापानी महिलाएँ भी स्वतंत्र नहीं थीं, पर इस आपत्ति के समय से उन्होंने पर्दा छोड़ दिया है और पाश्चात्य ढग से रहने लगी हैं।

चीन को देखिए, वह भी अब पुराना मदकची चीन नहीं रह गया। पादरियों ने वहाँ नए-नए कॉलेज और विश्वविद्यालय खोलकर किसी दूसरे ही उद्देश्य से शिक्षा-प्रचार किया था। उनका वह उद्देश्य तो जैसा पूरा हुआ वैसा हुआ ही; पर यह अवश्य हुआ कि चीनी लोगों मे पाश्चात्य शिक्षा के फल-स्वरूप राष्ट्रीय-भाव जागृत हो उठे और उन्होंने भी प्राचीन ढंग से शासन करने मे देश की हानि देख, अपने सम्राट् को धता बताया और लोक-तंत्र स्थापित कर दिया। साथ ही चीनी नवयुवकों को योरप और अमेरिका भेजकर शिक्षा दिलाई और देश में सेना आदि का संगठन पाश्चात्य ढंग से कर डाला। जब चीनियों ने देखा कि हममें काफ़ी बल आ गया है, तब उन्होंने पाश्चात्य देशों के साथ जो पुरानी संधियाँ हुई थीं और चीन का बहुत-सा भाग पाश्चात्यों के हाथ लग गया था, उसके विरुद्ध आवाज़ें कसना शुरू कर दीं और अंत में कई स्थानों से विदेशियों को भागना पड़ा। क्या दश वर्ष पूर्व भी चीन इतना साहस कर सकता था? कदापि नहीं! क्योंकि पुरानी लकीर का फ़कीर बना रहने से उसमें शारीरिक और मानसिक दुर्बलता बहुत थी। अब चीन मे पाश्चात्य शिक्षा पाए और पाश्चात्य ढंग से युद्ध करना सीखे हुए चीनी बहुत है। उनके नेता यूजेनचैन आदि तो पूरे योरपीय बन गए हैं, यहा तक कि ईसाई-धर्म तक स्वीकार कर बैठे हैं। धर्म त्यागने की तो कोई आवश्यकता नहीं है; पर बहुत-सी पुरानी बातें, जो उस समय के लिये बहुत उपयोगी समझी गई थीं, पर अब हानिकारक हो गई हैं, उन्हें त्यागे बिना देश उन्नत नहीं हो सकता।

अब एकता और राष्ट्रीयता का ज़माना है। हाल में यह एकता हिंदू-हिंदू के बीच नहीं है, फिर अन्य जातियों की तो बात ही क्या है। जातीयता या राष्ट्रीयता के प्रधान साधन एकता का स्थापित होना परम आवश्यक है; पर जब तक बड़े-छोटे, ब्राह्मण, अब्राह्मण, छूत-अछूत आदि का भेद-भाव हम लोगों में बना रहेगा, तब तक हम लोगों में सच्चा स्नेह हो नहीं सकता, जैसा कि अन्य स्वतंत्र देशों में है। हम जब हिंदू-हिंदू एक नहीं हो सकते, तो अन्य जातियों को कैसे मिला सकते हैं। पहले तो हिंदू अपने को योग्य बनाकर दिखावें और आपस में ऊँच-नीच का भाव भुलाकर परस्पर सहानुभूति का अनुभव करने लग। दूसरे हम लोगों को शारीरिक शक्ति का संचय करना परम आवश्यक है। बाल-विवाहादि दुष्प्रथाओं के रहते हम कभी बलवान् नहीं हो सकते। बाल-विधवाओं के तरुण होने पर हम आशा नहीं कर सकते कि वे सभी अखंड ब्रह्मचर्य धारण कर सकें। उनके पतन से जाति को बड़ी हानि पहुँच रही है। जब वे विधर्मियों के घर बैठ जाती हैं, तो हमारी जाति-संख्या घटती है और मिस मेयो या मि० पिलचर को बात बढ़ाकर कहने का अवसर प्राप्त होता है।

इसमें संदेह नहीं कि हम भारतवासियों के हृदयों में राष्ट्रीय भावों ने स्थान पा लिया है। इसलिये स्वराज्य पाए बिना हम संतुष्ट नहीं हो सकते; पर यह तभी हो सकता है, जब हम अन्य गिरे हुए देशों का दृष्टांत अपने सम्मुख रख लें और उन्होंने जिन उपायों द्वारा अपना उत्थान किया है, वे ही उपाय हम लोग भी करें। हमारी उन्नति के बाधक अन्य देशों की अपेक्षा अधिक हैं। हम सबमें एक बड़ी त्रुटि यह है कि हम राजनैतिक तथा सामाजिक प्रश्नों को भी वही धार्मिक चश्मा लगाकर देखते हैं। हम स्वराज्य को भी हिंदू-मुसलमान-दृष्टि से देखने लगते हैं। स्वराज्य तो स्वराज्य ही होगा, भारतवर्ष के सब लोग—हिंदू, मुसलमान, किरिस्तान, सिक्ख, जैन, पारसी आदि सबका एक स्वराज्य होगा, जैसा कि देश सबका एक है। जब ऐसी बात है, तो हमें छोटी-छोटी बातों के लिये आपस में लड़ना और एक दूसरे का सिर काट लेना मूर्खता नहीं तो क्या है? इस तरह भेद-भाव रखने और लड़ने-मरने से हम संसार के सम्मुख अपनी हँसी कराते और सिद्ध कर दिखाते हैं कि हम अभी इतने सभ्य नहीं हुए कि उच्च-से-उच्च सभ्यता का फल स्वराज्य पाने के योग्य हों। अभी हमारी गणना उन पशुओं में की जा रही है, जो एकत्र होने पर लड़ने-भिड़ने के सिवा और कुछ नहीं कर सकते, और नहीं तो मिस मेयो के समान

लेखिकाओं को हमें मनुष्य के पद से कुछ नीचा (Under human) कहने का अवसर तो मिलता है ? हम चाहे कुछ कहें, अपने को सभ्य-शिरोमणि और भारत को सभ्यता की जननी मानें; पर हमारी प्राचीनता को देखकर अन्य सभ्य देश तो हमें असभ्य ही मानते और दक्षिण अफ्रीका, आस्ट्रेलिया, अमेरिका आदि देशों में हमारे साथ वैसा ही बर्ताव किया जा रहा है, जैसा हम अपने यहाँ अछूतों के साथ करते हैं। इसे रोकने की क्या दवा है ? एक ही दवा है और वह यह कि हम सब पारस्परिक द्वेष-भाव छोड़ दें और अछूत कहलानेवाली जातियों के साथ कम-से-कम वैसा बर्ताव तो करने लगें, जैसा मुसलमानों या ईसाइयों के साथ करते हैं।

भारत की समस्त जातियों का मेल तो दूर रहा, एक ही जाति हिंदुओं तक में तो उसका अभाव पाया जाता है। ब्राह्मण और अब्राह्मण, हिंदुस्तानी और दक्षिणी आदि के बीच में कितना वैमनस्य और विरोध है। यह सभी जानते हैं कि आरंभ में गांधीजी का नेतृत्व मराठों और बंगालियों को प्रिय न था और कई मास पीछे जब उन्होंने देखा कि शेष भारत उनके पैरों में लोट रहा है, तब कहीं इसे अनिवार्य समझ वे असहयोग-आन्दोलन में सम्मिलित हुए। साधारण हिंदुस्तानी मराठों को क्या समझता है, इसके कहने की आवश्यकता नहीं, सब जानते हैं। ये दोनों जातियाँ मिलकर काम नहीं कर सकतीं। कहीं-कहीं तो मिलकर एक स्कूल चलाना भी इनसे नहीं हो सकता। मराठे अपना स्कूल अलग चलाते और उसमें निरी मराठी शिक्षा देते हैं, मानों वे हिंदी को राष्ट्रभाषा ही स्वीकार नहीं करते। भिन्न-भिन्न जातियों की अलग-अलग कानफ्रेंसें होना भी इसी भेद-भाव का सूचक है। प्रत्येक संस्था को कोई-कोई जातियाँ बिलकुल अपने हाथ में कर लेना चाहती हैं, जिससे अन्य जातियों के साथ उनका वैमनस्य बढ़ता है। हम लोगों में यही तो एक बड़ी त्रुटि है कि हम आँख खोलकर अपने इन दोषों को देखकर उनका निराकरण किए बिना ही अन्य सभ्य एवं स्वतंत्र जातियों के समान बनना चाहते हैं।

अभी हमारे भाव पूरे राष्ट्रीय नहीं हुए। प्रत्येक भारत-वासी अभी इस बात का स्मरण नहीं रखता कि हम हिंदू हैं या, मुसलमान, बल्कि हम हिंदुस्तानी हैं और समूचे हिंदोस्तान की हित-कामना करना हमारा कर्तव्य है। जब तक नेताओं अथवा शिक्षित लोगों भर में ही नहीं, वरन् निरक्षर हिंदू-मुसलमानों में भी ऐसे भाव न आवेंगे और वे छोटी-छोटी बातों पर डंड-मुंड-सम्मेलन करते बैठेंगे, तब तक हमारी उन्नति भी नहीं हो सकेगी। स्वराज्य प्राप्त कर लेना, तो बात ही दूसरी है। जब तक लोग हिंदू या मुसलमान स्वराज्य के लिये यानी स्वराज्य मिलने पर हिंदुओं को प्रतिशत इतने और मुसलमानों को इतने अधिकारी पद मिलेंगे, इन बातों के लिये लड़कर अपना समय ख़राब करेंगे, तब तक इसी प्रकार का शासन चलेगा जैसा अब है। कहावत प्रसिद्ध है कि जैसे "तुम होगे, उसी के अनुरूप शासन-प्रणाली भी होगी।" मौलवी ज़ियाऊलहुसेन, मौलाना महम्मदअली प्रभृति मुसलमान नेता और अमीर-काबुल तो कहते हैं कि ईद में क़ुर्बानी बकरे, भेड़ आदि पशुओं की भी हो सकती है। फिर मुसलमान लोग गाय की क़ुर्बानी करने और क़ुर्बानी के पशुओं का जुलूस हिंदू-बस्ती के बीच में से निकालने की ज़िद क्यों करते हैं और कलह के नए-नए कारण क्यों निकालते हैं ? हिंदू भी क्यों नहीं विचारते कि गो-वध तो हम रोक ही नहीं सकते ; फिर मुसलमानों से लड़कर अपने बड़े हित पर क्यों कुठाराघात करते हैं ? मुसलमानों को भी समझना चाहिए कि अंत में हम हिंदुस्तानी ही तो हैं। फिर ज़रा-ज़रा में अपनी शान दिखाने के लिये हिंदुओं से लड़ने का अवसर ढूँढ़ना बुद्धिमानी नहीं, निरी मूर्खता है। दोनों जातियों को न्याय की दृष्टि से आपस के प्रश्नों को देखना और देश-हित को ही सर्वोच्च हित समझना चाहिए। दोनों को ऐसे काम भूल कर भी न करना चाहिए, जिनके कारण आपस में कलह उत्पन्न होकर देश का सौभाग्य पीछे हटता जाय।

हिंदुओं में जितनी बुरी सामाजिक प्रथाएँ हैं और जितना अंध विश्वास फैला हुआ है, उतना हिंदोस्तान की अन्य किसी जाति में नहीं पाया जाता। उनमें समाज-सुधार की विशेष आवश्यकता है। अमेरिका की मिस मेयो ने अपनी पुस्तक जिस किसी भाव से भी लिखी हो ; पर इसमें संदेह नहीं कि इस समाज में भारी-भारी दोष हैं, जिनका निराकरण अत्यंत आवश्यक है। हिंदुओं में अनेक संस्थाओं के रहते मेल-मिलाप रहना असंभव है। बुरी तरह का जाति-भेद और अपने ही हिंदू भाइयों को चाहे, वे कैसे ही योग्य क्यों न हों, अत्यंत नीच और

अछूत मानना कैसी मूर्खता है। इसके रहते संघ-शक्ति आ ही नहीं सकती। यह देख हमारे कुछ नेताओं ने हिंदू-संगठन की प्रथा का आरंभ किया है और समाज से बिछुड़ों की शुद्धि करके समाज में स्थान देने का आयोजन किया है। ऐसा करने से छूताछूत की प्रथा अवश्य ही निर्बल हो जायगी, इस तरह यदि हिंदू अपना बल बढ़ाने का आयोजन कर रहे हों, तो मुसलमान भाइयों को क्यों बुरा लगना चाहिए। वे शायद कहेंगे कि शुद्धि से तो हमारी संख्या कम होती है; इसलिये हिंदुओं का यह काम हमारे विरुद्ध है। हमारा कहना है कि आप लोगों को मुसलमान बनाने को मना कौन करता है। धर्म में तो "जाको जैसी लख पड़ी, सो तैसो गह लीन" का नियम बहुत काल से चला आता है। इसलिये जो काम आप बराबर १३०० से भी ऊपर वर्षों से करते आते हैं, वह यदि हम भी करने लगे हैं, तो आप क्यों इतना बुरा मानते हैं। न्याय को न भूलिए। आपने भी मुसलमानों में तबलीग और तंज़ीम का आरंभ किया है। इसके लिये हम तो आपसे नहीं लड़ते, फिर आप क्यों सिर उठाए फिरते हैं। भाई-भाई के समान एक जगह बैठकर आपस मे बातचीत क्यों नहीं कर लेते? हिंदू तो आपके साथ सदा रहे हैं, मुहर्रम में वे ताज़िए बनाते और सवारी रखते आए हैं। आपके पीर औलिया को वे अपना गुरु बनाते आए हैं। उन्हें आपसे कोई द्वेष-भाव नहीं रहा है और अब भी नहीं रखना चाहते हैं। हम लोगों में यह सबसे बड़ी त्रुटि है, जिसके रहते देश का राजनैतिक उत्थान होना असंभव है। इस त्रुटि के लिये हम दोनों एक से उत्तरदायी हैं। सारांश यह कि इस बीसवीं शताब्दी में हर जगह, हर देश में उथल-पुथल हो रहा है, जिससे हम अछूत से नहीं बच सकते। अब हमें भी संसार की प्रगति के साथ आगे बढ़ना होगा और पाश्चात्य सभ्यता की अनेक त्रुटियों को ग्रहण न करते हुए, उसके गुणों को अपनाना होगा। अब प्राचीन परतंत्रता हमें छोड़नी होगी। सब नहीं, केवल उतनी ही जो हमारे उत्थान में घातक है। जब तक यह पीढ़ी बनी है, तब तक हम पाश्चात्य सभ्यता से बचने और फिर से राम-राज्य और वर्णाश्रम-धर्म का दम भर सकते हैं; पर नई पीढ़ी इन बातों की क़ायल अब भी नहीं दीखती और न संसार की सभ्य जातियों के सामने निरा मूर्ख ही बनना चाहती। ईश्वर ने चाहा, तो पाश्चात्य और प्राच्य सभ्यता का उत्तम सम्मिश्रण होकर, एक ऐसी सभ्यता का प्रादुर्भाव होगा जिसमें मनुष्य-मात्र दूसरों को भाई समझेगा और सब लोग अपने रहन-सहन में एक से हो जायँगे। भला कौन ऐसा प्राच्य होगा, जो अब भी जामा पहनकर अपनी प्राचीनता बघारेगा, कौन ऐसा होगा, जो मोटर, व्योमयान, विद्युत् प्रकाश, टेलीफोन आदि आराम देनेवाले तथा समय बचानेवाले साधनों को त्यागकर उसी बहल, बैलगाड़ी आदि का उपयोग करेगा?

कोट, पतलून, नकटाई, कॉलर और हैट की हँसी उड़ाने में कुछ सार नहीं है और न इनके उपयोग से हमारी राष्ट्रीयता ही जाती है। यदि अँगरेज़ी पोशाक में लोग लाभ देखते हैं, तो वे उसे ग्रहण करेंगे। इसके सिवा हमारी पोशाक हमारी रुचि पर अवलंबित है। संसार की रुचि अब इसी ओर झुकी मालूम होती है। अफ़ग़ानिस्तान के अमीर साहब भी अब अँगरेज़ी पोशाक पहनने लगे हैं। सारांश यह कि संसार की प्रगति जिस ओर होगी, उसी ओर हम लोग धीरे-धीरे झुकते जायँगे। हमारा यह अभिप्राय कदापि नहीं है कि भारतीय लोग अपनी पुरानी पोशाक छोड़, दिन-रात अँगरेज़ी पोशाक ही पहने रहें। हम तो चाहते हैं कि हमारी पोशाक और-और देशों के लोग भी स्वीकृत कर लें, पर जब यह संभव नहीं है, तो हम लोग अँगरेज़ी पोशाक पहननेवालों की हँसी तो न करें। आख़िर वे भी तो हमारे ही भाई हैं और किसी-न-किसी रूप से देश-सेवा के कार्य में लगे हुए हैं। फिर जापान, टर्की, चीन, मिस्र आदि उठते हुए देशों का दृष्टांत भी तो हमारे सामने है। ऐसी दशा में कैसे संभव है कि हम इस नई हवा से अछूते रह जायँ।

अंत में हम यही कहेंगे कि हमको राष्ट्र-निर्माण के कार्य में सच्चे हृदय से लग जाना चाहिए और इस कार्य में सहायता पहुँचानेवाले साधन, चाहे जहाँ से मिलें, उपयोग में लाना चाहिए। अभी हमें बहुत कुछ करना है। अभी हममें बहुत-सी त्रुटियाँ हैं, जिनके रहते राष्ट्र-निर्माण के कार्य में बाधा पड़ती है, और पाश्चात्य लोग हमें निरे बर्बर मानते हैं। हम संसार में अछूत माने जा रहे हैं। हमारा कर्तव्य है कि ऐसी त्रुटियों को हम खोद बहावें। यह बुद्धिमानी नहीं है कि हम उन त्रुटियों को

स्वीकार न करके, मिस मेयो आदि लेखक-लेखिकाओं के पीछे पड़ जायँ। लेखिका ने जिस भाव से पुस्तक लिखी हो; पर हमें तो यह देखना है कि हमारे समाज में उसकी बतलाई हुई त्रुटियाँ हैं, या नहीं। यदि हैं, तो पुस्तक की तीव्र-से-तीव्र समालोचना करने से वे त्रुटियाँ दूर न होंगी, होंगी तभी, जब हम उनके अस्तित्व को स्वीकार कर, उनके दूर करने के कार्य में अर्थात् समाज-सुधार में कमर कसकर भिड़ जायँगे। जब तक यह न होगा, तब तक हमारा सारा प्रयत्न व्यर्थ जायगा। चरित्र-संगठन उन्नति का श्रीगणेश है। जब तक वह नहीं है, तब तक कुछ नहीं है। यदि दूसरों की कृपा से हमें कुछ मिला भी, तो हम उसकी रक्षा न कर सकेंगे।

रघुवरप्रसाद द्विवेदी

परिचय

(१)

मैं हूँ विश्व-विदित कोमल कवि,
नम्र सुशील सुमन सुकुमार;
अपनी स्वर्ण-बाँसुरी पर मैं,
गाता हूँ मृदु गीत उदार।
कभी शैल पर कभी शृंग पर,
करता हूँ किलोल उत्सव;
मर्मर ध्वनि से 'यौवन की जय',
गाते हैं अरण्य पल्लव।

(२)

मैं सुंदर बालक वसंत-सा,
जिधर टहलता हूँ चिर शांत;
कुसुमांजलि से भर जाते हैं,
वह कौतुकमय पुलकित प्रांत।
मेरे अमर मंत्र बंधन में—
बँधा हुआ है सब त्रिभुवन;
स्वर्ण-कमल-सा मुसकाता हूँ,
कर विचित्र जीवन यौवन।

(३)

नील गगन मेरा सिंहासन,
मैं हूँ अमर सूर्य-सम्राट;
मेरी किरणों से सुंदर है,
निष्कलंक यह विश्व-विराट।
तृण-तृण में आनंद लहर है,
प्राणों में उमंग उत्सव;
कहीं मधुर संगीत लोल है,
कहीं तरुण-कोकिल कलरव।

(४)

करता हूँ एकांत तपस्या,
मेरी यज्ञ-धूप की धूम;
फैल रही है तीर्थ-कुटी में,
कुसुम-गंध-सी दूर-दूर झूम।
फहराती है विजय-पताका,
मेरी यत्र-तत्र-सर्वत्र;
साज रहा हूँ महु-मंदिर में,
मुकुलित लता, फूल, फल, पत्र।

(५)

उड़ता हूँ सुरभित-समीर-सा,
मुझे पसंद नदी, गिरि, वन;
मैं हूँ धन्य, धन्य कोलाहल,
मंगलमय सुंदर दर्शन!!
बजा रही है नव वीणा-सी,
माँ भारती मुझे चुमकार;
आज विश्व अभ्युदय लग्न में,
मैं फिर लेता हूँ अवतार।

"गुलाब"

क्या पाणिनि लिखना जानते थे ?

प्रो० मेक्समूलर का मत

मेक्समूलर का मत है कि 'लेखन-कला' भारत-वर्ष में पाणिनि के समय विद्यमान नहीं थी और पाणिनि स्वयं भी लिखना नहीं जानते थे। पूर्व इसके कि हम उपर्युक्त महाशय की युक्ति और उसके कुछ विपरीत बताने का साहस करें, हम पाठकों को एक बात बता देना चाहते हैं।

आजकल नवीन विद्वानों का कहना है कि मेक्समूलर ने भारतीय संस्कृत-साहित्य का इतिहास लिखकर हमारा बहुत उपकार किया है। हमें इस बात का कुछ विरोध नहीं। यदि कुछ विरोध है भी, तो इस बात से नहीं कि उसके सिद्धांत हमारी सभ्यता-माता के गले पर छुरी चलानेवाले हैं; परंतु जिस ढंग का मेक्समूलर ने भारतीय इतिहास की समालोचना करने में अनुसरण किया है, वह हमें पसंद नहीं। प्रो० मेक्समूलर के ग्रंथ पढ़ने से यही पता लगता है कि उसने हमारी सभ्यता को संकुचित करने का जितना प्रयत्न किया है, उसका शतांश भी हमारी सभ्यता की यथार्थता के दर्शाने में नहीं किया। जो कुछ भी थोड़ा या बहुत उपकार हम मान सकते हैं—वह इतना ही सकता है कि उसने हमारी समालोचना करके हमें सचेत अवश्य कर दिया है। जितना हम उसके ग्रंथों को पढ़ते जाते हैं, उतना ही हमें सचेत होकर 'रिसर्च' में अधिक प्रवृत्त होना पड़ता है। यही कारण है कि जब हमने मेक्समूलर के साहित्य को पढ़ा, तो हमें यह बात अनुचित-सी प्रतीत हुई कि पाणिनि को 'लेखन-कलानभिज्ञ' माना जाय।

प्रो० मेक्समूलर अपने 'भारतीय संस्कृत-साहित्य के इतिहास' के पृ० ५२४ पर लिखता है—

"If writing came in towards the later half of Sutra Period, it would have no doubt been applied at the same time to reducing the hymns and Brahmanas to a written form. Previously to that time, however, we are bound to maintain that the collection of the hymns and the immense mass of Brahamana literature, were preserved by means of oral tradition only."

यहाँ पर मेक्समूलर ने दिखाया है कि 'सूत्र' और 'ब्राह्मण-ग्रंथों' को कंठस्थ करके ही सुरक्षित रक्खा गया। इसके आगे वह इससे भी प्रबल युक्तियों को देने की कोशिश करता है और कहता है—

But there are strong arguments than these to prove that before the time of Panini and before the first spreading of Buddhism in India, writing for literary purpose was unknown. If writing had been known to Panini some of his grammatical terms would surely point to the graphical appearance of the word. I maintain there is not a single word in Panini's terminology which presupposses the existence of writing."

इस प्रकार मि० मेक्समूलर का मत है कि न केवल पाणिनि के समय से पूर्व प्रत्युत पाणिनि तक को 'लेखन-कला' का ज्ञान न था, और उसकी अपनी 'थ्यूरी' के अनुसार पाणिनि ख्री० पू० चतुर्थ शताब्दी के मध्य में था। इससे यह सिद्ध किया गया है कि इस समय से पूर्व भारतीय उजड्ड थे और प्लेटो के मरने के बाद अरस्तू के समय भी भारत में शिल्प और कारीगरी इत्यादि नहीं थी।

हम इस बात को बिलकुल नहीं छेड़ते कि Archeological Department ने अपनी अमूल्य खोज द्वारा क्या-क्या सिद्ध किया है; परंतु फिर भी यह बात हमारी समझ में नहीं आती कि मेक्समूलर ने यह बात किस तरह लिख दी। उसका यह सिद्धांत पुस्तक के आरंभ से ही दीखता है। इस पुस्तक के १३७ पृष्ठ पर आपने कहा है—"The rules of Pratishakhya were not intended for written literature" पृ० २७५ पर "The question whether Hindus possessed the knowledge of writing during Sutra Period will have to be discussed afterwards" पृ० ३६२ पर "If we remember that in these old times, literary works did not exist in writing" पृ० ३११ पर "In India where before the time of Panini we have no evidence of any written literature" इत्यादि कई स्थलों के प्रमाण दिखाने का तात्पर्य यह है कि जिस समय मेक्समूलर महोदय पुस्तक लिखने बैठे थे, इसी लक्ष्य को मन में धारण करके बैठे थे कि भारतीय सभ्यता को नीचा ही दिखाना है, परंतु लिखते-लिखते उनकी न-जाने आँखें मुँद गईं या कोई ऐसी दैवी-शक्ति काम कर गई कि जिससे उनकी अपनी लेखनी ही उनका खंडन करती चली गई।

उदाहरण के तौर पर हम दो-एक स्थल दिखाते हैं।

अपने ही वाक्यों से मेक्समूलर का खंडन

यद्यपि यह 'थ्यूरी' उन्होंने गढ़ी और स्वयं ही उसे मान लिया। परंतु हमें विश्वास है कि उनका यह सिद्धांत उनके हृदय में भी नहीं बैठा था, क्योंकि उन्होंने पृष्ठ १८७ और ४७३ पर "Prayer Book of the

Hotris" (होत्रियों की प्रार्थना-पुस्तक) का नाम लिया है। अब विचारने की बात है कि यदि 'लेखन-कला' भारत में व्यवहृत नहीं थी, तो 'पुस्तक' यह शब्द कहाँ से आ गया? और मेक्समूलर महोदय ने 'Book' शब्द का प्रयोग किस प्रकार कर दिया? पुस्तकें मन में या स्मृति में रहकर, तो अपना नामकरण-संस्कार नहीं करा लेतीं। परंतु 'पुस्तक' शब्द उस समय व्यवहृत होता है, जब कि उनका वर्णित विषय संगृहीत होकर कहीं सुरक्षित रूप से लिख दिया जाय।

इसी प्रकार पृष्ठ १३८ पर आप कात्यायन को पाणिनि का समकालीन मानते हैं और फिर पृष्ठ १४८ पर कहते हैं "Katyayana wrote vartika." अब विचार करने की आवश्यकता है कि पाणिनि के समय तो 'लेखन-कला' का प्रचार नहीं था और कात्यायन ने वार्तिक लिख डाले, इससे सिद्ध होता है कि पाणिनि ने भी सूत्र लिख डाले होंगे क्योंकि दोनों समकालीन हैं। या तो मेक्समूलर को कात्यायन तथा पाणिनि को समकालीन नहीं मानना चाहिए या, फिर इस थ्यूरी को कि 'पाणिनि के समय लेखन-कला का प्रचार नहीं था', उड़ा देना चाहिए।

यदि हम प्रो० मेक्समूलर के उपर्युक्त सिद्धांत को खंडन करने में अपने टीकाकारों और उनके अर्थों को उद्धृत करें, तो हमारी बात, संभव है कि सर्वजनता के सामने कुछ मूल्य धारण न कर सके, क्योंकि उस समय लोगों की यह धारणा होगी कि हमने खींचातानी से अर्थ गढ़े हैं। अतः हम जो कोई भी प्रमाण टीकाकारों का या अन्य विद्वानों का देंगे, तो हम अँगरेज़ी अनुवाद को ही उद्धृत करेंगे, फिर मेक्समूलर से उसका मिलान करके प्रस्तुत विषय को सिद्ध करने का प्रयत्न करेंगे और मेक्समूलर की 'थ्यूरी' का प्रतिवाद करेंगे।

योरपीय विद्वानों के मतानुसार मेक्समूलर का खंडन

मि० विलसन अपने ऋग्वेद के आंग्ल-भाषानुवाद के द्वितीयाध्याय की भूमिका के पृष्ठ XVI पर लिखता है कि मंत्र और ब्राह्मण काल से भी पूर्व वेदों में कला, विज्ञान, स्वर्ण के गहने, कवच, अस्त्र-शस्त्रादि थे। उसका कहना है कि मंत्र-काल में "Arts, sciences, institutes, and vices of civilized life, golden ornaments, coat of mail, weapons of offence, the use of precious metals of musical instruments, the fabrication of cars, the enforcement of needle ... the knowledge of drugs and antidotes, the practice of medicine, and computation of the division of time to a minute extent, including repeated allusions to the seventh season or intercalary month" और फिर "Law of property, law of inheritance and of simple contact or buying and selling" यह सब बातें पाई जाती हैं।

प्रो० विलसन ने अपने अनुवाद में यह बातें स्पष्टतया बताई हैं। हम ऋचाओं को उद्धृत इस वास्ते नहीं करते कि हमें डर है, हमारा लेख बहुत लंबा हो जायगा। उसने साथ ही यह भी प्रतिपादन किया है कि सिकंदर के भारत पर आक्रमण के समय में जो सभ्यता पाई गई थी, उससे बिलकुल मिलती-जुलती सभ्यता मंत्र-काल में थी। यदि वास्तव में विलसन की बात मान ली जाय तो कोई कारण नहीं, जिससे हमारी सभ्यता के साथ-साथ ही वैदिक भारत में लेखन-कला के प्रचार की संभावना में संदेह हो सके।

वस्तुतः यह बात अत्यंत रोचक प्रतीत होती है कि मेक्समूलर के मतानुसार इस सभ्यता के ६०० या ७०० वर्ष पीछे एक वैयाकरण ने थोड़े-से वाद्य (डमरू) द्वारा एक अत्यंत विस्तृत व्याकरण बनाकर संसार को चक्कर में डाल दिया; हम तो कहते हैं कि जो एक जंगल में रहनेवाला व्यक्ति अपने डमरू से विशाल और अगाध व्याकरण को जादूगर की नाईं प्रकट कर सकता है—उसके लिये यह कहना कि उसे लिखने का अभ्यास नहीं था, सर्वथा भ्रम है। क्या यह संभव है कि जिस पाणिनि ने अपने सूत्रों में कला, विज्ञान, मान-यंत्र, परिमाणों और सिक्कों का वर्णन किया हो - लेखन-कला से अनभिज्ञ होगा? महेश्वर के सूत्र 'अइउण्' 'ऋलृक्' इत्यादि का मन से आविर्भाव करना—जिनमें 'समस्त वाङ्मय व्याप्तम्' हो — क्या उन लेख-प्रणाली के अक्षरों के ज्ञान के बिना हो सकता है?

हम इस विषय में प्रमाण दिए बिना नहीं रुक सकते। जब तक इस अयथार्थ कल्पना का खंडन न कर दें, हमें धैर्य नहीं।

पहले हम एक छोटी-सी ऐतिहासिक युक्ति का उल्लेख करते हैं। हेरोडोटस ने यूनान के इतिहास में लिखा है कि डेरियस हिस्टस्पिस के पुत्र ने, हिंदुओं को परास्त किया, और हमें उपर्युक्त राजा के एक शिला-लेख से भी पता लगता है कि 'सिंध' या 'इंध' नदी के तट पर उसने 'गदार', 'हिंदु' और 'गांधार' लोगों को हराया। मेक्समूलर ने पाणिनि को 'डेरियस' के पीछे और 'गांधारदेशीय' माना है, तो क्या पाणिनि इस बात से अनभिज्ञ रहा होगा कि यूनान देश में लेख का प्रचार हो गया है? यदि वह अनभिज्ञ न था, तो क्या वह व्याकरण बनाते समय यह न लिखता कि यूनानी वर्णानुक्रमणिका का प्रचार तभी ही नया-नया हुआ? तो क्या वह उन वर्णों की अभिज्ञता या अनभिज्ञता के विषय में कुछ भी न लिखता? यदि उसको अपनी वर्णानुक्रमणिका न होती, तो भी वह उस नवीन आविष्कार का उल्लेख अवश्य करता?

ऐतिहासिक प्रमाण द्वारा खंडन

हम इस बात का उत्तर पाणिनि के एक ही सूत्र को उद्धृत करके दे देते हैं। पाणिनि ने अष्टाध्यायी के चतुर्थ पाद का ४९वाँ सूत्र इस प्रकार पढ़ा है। "इन्द्रवरुणभवशर्वरुद्रमृडहिमारण्ययवयवनमातुलाचार्याणामानुक्" इसमें 'यवन' शब्द का व्यवहार किया गया है। इस पर कात्यायन "यवनाल्लिप्याम्" यह वार्तिक पढ़ते हैं और महाभाष्यकार "यवनानी लिपि" इस बात को खोलकर कह देते हैं। मि० ह्वेबर (Wheber) और मेक्समूलर दोनो इस सूत्र से यवनानी लिपि सिद्ध करते हैं। ह्वेबर कहता है—

पाणिनि का 'यवनानी' शब्द

"The writing of the Greeks or Semites" मेक्समूलर कहता है —

"A variety of Semitic alphabet, which previous to Alexander and previous to Panini became the type of the Indian alphabet" संभव है कि यह यवनानी लिपि पाणिनि ने इसी अक्षरानुक्रमणिका के लिये प्रयुक्त की हो, परतु यदि पाणिनि की वर्णानुक्रमणिका यही होती और इससे भिन्न न होती, तो अवश्य इस बात को पाणिनि लिखता कि वह यवनानी लिपि का अनुसरण कर रहा है। परंतु यह बात भी पूर्णतया हमारा मतलब सिद्ध नहीं कर सकती। इस पर कल्पना के अतिरिक्त हम कुछ भी निर्दिष्ट बात नहीं कह सकते। संभवतः यह कात्यायन और पाणिनि की बनाई हुई यूनान की लिपि हो या, डेरियस से भी पहले की Cuneiform लिपि हो।

मि० मेक्समूलर ने इस बात को सिद्ध करने के लिये कि 'लेखन-कला' पाणिनि के समय में न थी, एक युक्ति स्वयं दी है। यह युक्ति पाणिनि के "दिवाविभानिशाप्रभा" इत्यादि (3 2 21.) सूत्र के 'लिपिकर' शब्द पर निर्भर है। मेक्समूलर का कथन है—

पाणिनि में 'लिपिकर' शब्द

"This last word "Lipikara" is an important word, for it is the only word in Sutras of Panini which can legitimately be adduced to prove that Panini was acquainted with the art of writing. He teaches the formation of this word."

यहाँ पर यह युक्ति मेक्समूलर ने स्वयं ही हमारे सामने रक्खी है और इतना कहकर टाल दिया है कि यहाँ पर पाणिनि 'लिपिकर' इस शब्द के निर्माण की विधि बता रहा है न कि किसी लेखक को; परंतु हम इतना अवश्य कहेंगे कि यदि पाणिनि को 'लेखन-कला' का ज्ञान न होता, तो 'लिपि' शब्द का व्यवहार न किया जाता। मि० मेक्समूलर का कहना है कि यदि पाणिनि को अपनी लेखन-कलाभिज्ञता प्रमाणित करनी थी और उपर्युक्त अभियोग से बचना था, तो उसे इस शब्द को स्पष्टतया कई बार पढ़ना था, अथवा इसके अतिरिक्त अन्य शब्द भी पढ़ता, जो कि उसके उपर्युक्त अभियोग को हटा सकते। हम कहते हैं कि पाणिनि को इस बात का पता नहीं था कि आगामी विद्वान् लोग इसके लेखन-कलानभिज्ञ होने को प्रमाणित करने का भरसक प्रयत्न करेंगे, और न उसे ऐसा प्रमाणित करने में कोई स्वार्थ ही था। उसका लक्ष्य व्याकरण बनाना था, न कि अपने आपको लेखन-कलाभिज्ञ प्रमाणित करना। परंतु फिर भी हम इतना अवश्य कहेंगे कि मेक्समूलर! तुम तत्त्वान्वेषी थे, क्योंकि तुमने स्वयं कहा है.—

"This is possible. I may have omitted some words in the Brahmanas and Sutras which would prove the existence of written books pre-

vious to Panini If it be so, it is not from any wish to suppress them"

मि० मेक्समूलर ! यदि तुम अब जीते होते, तो संभव है कि हमारी रिसर्च को देखकर तुमने अपना सिद्धांत इस विषय में बदल दिया होता। हम तुम्हारी बातों का पिष्टपेषण न करके कुछ एक दृष्टांतों से सिद्ध करने का प्रयत्न करेंगे और दिखाएँगे कि पाणिनीय काल में लेखन-कला प्रौढ़ता के शिखर तक पहुँच चुकी थी। हमारा प्रयत्न यदि सफल हुआ, तो हम न केवल यह बतावेंगे कि पाणिनि लिखा-पढ़ी में प्रवीण था, प्रत्युत उसका व्याकरण, विना लेख-शैली में प्रयुक्त हुए अक्षरों और अक्षर-चिह्नों के बन ही न सकता था।

मेक्समूलर

मि० मेक्समूलर की प्रधान युक्ति अभाव द्योतक है। वह पाणिनि के लेखन-कलानभिज्ञ प्रमाणित करने में 'पुस्तक', 'कागज़', और स्याही इत्यादि शब्दों के प्रयोग न करने को ही प्रधान कारण मानता है। उसकी युक्ति यह है कि जहाँ लेखन-कला प्रयुक्त हो, यह बात असंभव है कि वहाँ विना 'लिखना', 'पढ़ना', 'काग़ज़', 'क़लम', 'दवात' इत्यादि शब्दों के प्रयोग के हज़ारों मन्त्रों और ऋचाओं का निर्माण हो गया हो। परंतु इन ऋचाओं और मन्त्रों में एक भी दृष्टांत ऐसा नहीं कि जहाँ इन शब्दों का प्रयोग किया गया हो।

मेक्समूलर की प्रधान युक्ति

हम यह नहीं कहते कि उसकी यह युक्ति सर्वथा थोथी और कल्पनात्मक है। परंतु इतना बता देना चाहते हैं कि वेदों का 'मिशन' सर्वसाधारण को अपनी लेखन-कला की परिस्थिति सिद्ध करने के लिये उपर्युक्त शब्दों का प्रयोग करना नहीं था। उनका यह लक्ष्य सर्वथा नहीं था कि आर्यों की सभ्यता प्रमाणित करे और 'काग़ज़' 'क़लम' और 'दवात' के शब्दों का व्यवहार करे। यह तो घटनात्मक बातें हैं कि ऐसी छोटी-छोटी बातों का भी वर्णन प्रसंगतः आ जाय कि पंडितों और ऋषियों ने लिखने के साधनों का भी प्रयोग किया या नहीं और दूसरा पाणिनि का मिशन भी कुछ और ही था। उसका भाव ऐसा एक ग्रंथ बनाने का था, जिससे कि अति प्राचीन वेदादि व ब्राह्मण-ग्रंथों की संगति भी सुगमतया उसके शिष्य-प्रशिष्यों को लग सके। उसने अपना ग्रंथ वैयाकरण-शैली पर निर्माण किया और कुछ ऐसे तात्कालिक शब्दों का भी प्रयोग किया, जो कि आजकल हमको ऐतिहासिक दृष्टि से मूल्यवान् प्रतीत होते हैं। परंतु ऐसी कल्पना भ्रमात्मक है कि पाणिनि के अमुक-अमुक शब्द प्रयोग न करने से अमुक विषय की सभ्यता में भी त्रुटि थी। वस्तुतः पाणिनि ने अपना विशुद्ध ग्रंथ लिखते हुए ऐसा कोई भी पद नहीं छोड़ा, जो व्याकरण की दृष्टि से उसे अवश्य लिखना चाहिए था।

मि० मेक्समूलर का कथन है कि ऐसा कोई भी शब्द पाणिनि में नहीं पाया जाता, जो 'पुस्तक', 'काग़ज़', 'क़लम' और 'दवात' इनका द्योतक हो। परंतु 'लिप्' धातु लिखने के अर्थ में है और इसी से 'लिपि' और 'लिपिकर' शब्द बने हैं। यद्यपि 'अधि-इ' और 'वच्' धातुएँ क्रमशः पढ़ने के अर्थ में पाई जाती हैं, परंतु यह "ग्रहण करना" और "प्राप्त करना" इस अर्थ का द्योतन करती हैं—हम मानते हैं। साथ ही हम यह भी मानते हैं कि निम्न-लिखित शब्द जो हमें मिलते हैं—इनसे पुस्तक के पृथक्-पृथक् भागों का ज्ञान होता है। यह शब्द 'अनुवाक्य', 'प्रश्न', 'सूत्र', 'मण्डल', 'पाठ' और 'वर्ग' हैं। यदि ये शब्द न पाए जाते, तो किस प्रकार लिखित पुस्तकों के भागों का पता चलता। केवल एक ही शब्द 'लिपिकर' भी पर्याप्त है कि जो मेक्समूलर का स्वयं प्रयुक्त किया हुआ—उनके समस्त प्रस्ताव का खंडन करने की सामर्थ्य रक्खे। इससे अधिक कोई क्या प्रमाण माँग सकता है ?

इसके अनंतर मि० मेक्समूलर अपनी पुस्तक के ५१५ पृष्ठ पर कहता है कि उसे विश्वास है कि ब्राह्मण-ग्रंथ स्मृति द्वारा परंपरा से सुरक्षित रक्खे गये। परंतु उसने थोड़ा-थोड़ा इस बात को मान लिया है कि सूत्र-काल के ऋषि संभवत लेखन-कला को जानते थे—"But I could feel inclined to claim an acquaintance with art of writing for the author of Sutra" क्योंकि इस बात की पुष्टि में 'पटल' शब्द आता है। हमें ज्ञात होता है कि सूत्र भिन्न-भिन्न भागों में विभक्त किए गये जिन्हें 'पटल' नाम से कहा गया। 'पटल' का अर्थ मेक्समूलर 'आवर्तन' या 'ओढ़न' अथवा 'आवर्तन चर्म-त्वचा' करता है। 'पटल' का अर्थ एक वृक्ष भी है। संभव है कि 'पटल' वृक्ष का पर्यायवाची शब्द प्रचलित हो गया

पाणिनि में 'पटल' शब्द का भाव

हो और वह अर्थ बदलते-बदलते पुस्तक के अर्थ में रूढ़ हो गया हो। और संभव है 'पटल' का अर्थ Volume (प्रति) इस बात से निश्चित हो गया हो। क्योंकि प्राचीन काल में वृक्ष की त्वचा पर खोद-खोदकर लिखा जाता था। परंतु मेक्समूलर को इस बात पर निश्चय नहीं। यह उसकी केवल कल्पना-मात्र है।

हम इसी युक्ति का विश्लेषण न करते हुए, इसी प्रकार

पाणिनि में 'खंड' शब्द का भाव

की एक दूसरी युक्ति बताते हैं, और पाठकों का ध्यान एक ऐसे शब्द पर आकर्षित करते हैं, जो कि भाग के अर्थ में तैत्तरीय संहिता में और ब्राह्मण-ग्रंथों में प्रयुक्त हुआ है। वह 'खंड' शब्द है। "कामेष्टिखंड', 'काम्यपशुखंड', 'पौरोडाशिकखंड', 'आग्नेयखंड', 'होत्रखंड', 'अध्वर्युखंड', 'यजमानखंड', 'सत्रखंड', इत्यादि। वस्तुत 'खंड' का अर्थ वृक्ष के तने का हिस्सा है, जहाँ से शाखाएँ आरंभ होती है। यदि मेक्समूलर के मतानुसार 'पटल' शब्द एक वृक्ष का आवर्तन या त्वचा होकर बदलता-बदलता संभवत पुस्तक तक के अर्थ तक पहुँच सकता है, तो 'खंड' शब्द जो वास्तव में एक वृक्ष के भाग का नाम है, मेक्समूलर के अर्थ को ठीक जा पकड़ेगा। 'खंड' शब्द ब्राह्मणों में भी आता है, अत मेक्समूलर के 'पटल' शब्द की तरह यह शब्द बड़ी सुगमता से 'पुस्तक' का प्रतिनिधि हो सकता है।

वास्तव में यदि देखा जाय, तो मेक्समूलर को 'पटल' शब्द पर भी संदेह नहीं करना चाहिए था। 'पटल' से 'पतर' या 'पत्र' यह अपभ्रंश हो सकता है, और पत्र अर्थ स्पष्ट वृक्ष का पत्ता है, जिस पर प्राचीन काल में लिखा जाता था। 'भूर्जपत्र' और 'तालपत्र' के नमूने अभी तक पाए जाते हैं।

इन 'खंड' और 'पटल' शब्दों के अतिरिक्त दो और

पाणिनि में 'सूत्र' और 'ग्रंथ' शब्दों का भाव

शब्द भी हैं, जिन पर हम पाठकों का ध्यान आकर्षित करना चाहते हैं। वह शब्द 'सूत्र' और 'ग्रंथ' हैं। सूत्र का अर्थ है 'तार' या 'रस्सी' और प्रो० मेक्समूलर के मतानुसार 'सूत्र-ग्रंथ' उच्चश्रेणी के ग्रंथों में गिने जाते हैं। इसका अर्थ "सिद्धांतों या नियमों की तार या रज्जु" हो सकता है।

और 'ग्रंथ' शब्द 'ग्रथ्' धातु से बना है, जिसका अर्थ है 'बाँधना'—'पिरोना'। इसका दूसरा अर्थ 'माला' या हार होता है। जिस प्रकार संदर्भ एक फूलों के गुच्छे का अर्थ रखता हुआ भी एक प्रस्ताव या कृति (Composition) के अर्थ का द्योतन करता है, उसी प्रकार 'ग्रंथ' शब्द भी एक संदर्भ या प्रस्ताव या 'निबंध' का अर्थ है। अर्थात् एक 'गुथा हुआ साहित्य का हार' Composition निरुक्त टीकाकार दुर्गाचार्य ने "साक्षात् कृतधर्माण" इत्यादि वाक्य की टीका करते हुए लिखा है "ग्रंथतोऽर्थतश्च" यहाँ ग्रंथ से उपदेश द्वारा ऋषियों ने शिष्यों को ज्ञान दिया। यहाँ ग्रंथ का अर्थ 'मूल-पाठ' से है। इसी प्रकार कुल्लूक ने मनु-टीका में "त्रिवेदीमर्थतो-ग्रन्थतश्चाध्यसेत्" (७ ४३) ऐसा लिखा है। यहाँ भी ग्रंथ का भाव 'मूल-पाठ' से है। अर्वाचीन भारत में 'ग्रंथ' का भाव 'पुस्तक की प्रति' और 'ग्रंथाकुटी' का भाव 'पुस्तकालय' से है। परंतु प्राचीन भारत में ग्रंथ का अर्थ 'संदर्भ' या 'निबंध' इस अर्थ में था।

संभव है कि सूत्र शब्द का अर्थ पुस्तक के अर्थ में रूढ़ होने से पहले 'सिद्धांतों की तार व रज्जु' के भाव में प्रयुक्त होता हो। इससे पूर्व हम इस विषय में अपनी सम्मति बताएँ, हम सूत्र शब्द पर कुछ विचार करना चाहते हैं।

प्राचीन शास्त्रों में 'सूत्र' शब्द-प्रयोग दो प्रकार से आया है। 'सूत्र' शब्द केवल एक सूत्र के लिये भी प्रयुक्त हुआ है और बहुत-से सूत्रों अर्थात् 'सूत्रसमुच्चय' के अर्थ में भी आया है। परंतु पहले पहल सूत्र एक ही सूत्र (एकवचनांत) के लिये प्रयुक्त हुआ होगा, और फिर बढ़ते-बढ़ते 'सूत्र-संग्रह' के विषय में भी रूढ़ हो गया होगा। इसी कारण काशिकावृत्ति में पाणिनि के सूत्रों को 'गणसूत्र' कहा गया है (४ अ० ४ पा० १२१ सूत्र) और फिर पाँच सूत्रों को लक्ष्य करके "स्वरितञित इति पञ्चभि सूत्रैरात्मनेपदम्" "एव पञ्चसप्त्यामुदाहार्यम्", और पतंजलि भी इसी भाव को लक्ष्य करके लिखते हैं। "सूत्राणि चाप्यधीयानाध्यन्ते वैयाकरणाइति"—यहाँ पर सूत्र शब्द एकवचन में एकवचन, और बहुवचन में बहुवचन प्रयुक्त हुआ है।

परंतु यदि हम पाणिनि को स्वयं देखें, तो हमें पता चलता है कि पाणिनि 'सूत्र' शब्द को 'सूत्रसंग्रह' अथवा 'सूत्रसमुच्चय' के भाव में प्रयुक्त करता है, और केवल एक सूत्र के अर्थ में प्रयुक्त नहीं करता।

"सत्राच कोपधात्" (४ २ ६५) तथा "पाराशर्यशिलालिभ्यां भिक्षुनटसूत्रयो" (४.३.११०) इन सूत्रों में स्पष्टतया 'भिक्षुसूत्र' 'नटसूत्र' कहा गया है, और यह 'सूत्रसमुदायार्थ' में है। इसी प्रकार 'क्रतुकथादिसूत्रान्ताट्ठक्' इसमें सूत्र शब्द केवल एकवचनान्त है। परन्तु काशिका के उदाहरण में "कल्पसूत्रमधीते काल्पसूत्र" ऐसा पाठ आता है। इसमें स्पष्टतया 'सूत्र' शब्द से 'सूत्रसमुच्चय' लिया गया है। इसी प्रकार "संख्यायाः संज्ञासंघसूत्राध्ययनेषु" इसमें स्पष्टतया "अष्टौ अध्यायाः परिमाणमस्य सूत्रस्य अष्टकं पाणिनीयम्" इस काशिका पाठ में सूत्र शब्द से 'सूत्रग्रंथ' का भाव लक्षित होता है।

इसी प्रकार महाभाष्यकार पतञ्जलि भी २ अ० ३ पा० ६६ सूत्र के भाष्य में "शोभना खलु पाणिनेः सूत्रस्य कृतिः शोभना खलु पाणिनिना सूत्रस्य कृतिः" इस पाठ से पाणिनि के सूत्र-ग्रंथ को एकवचनान्त पढ़ता है। इसी प्रकार महाभाष्य में और पाठ भी आया है—

"अथ व्याकरणमित्यस्य शब्दस्य कः पदार्थः। सूत्रम्।"

कात्यायन कहता है—"सूत्रे व्याकरणे षष्ठ्यर्थोऽनुपपन्नः"

पतञ्जलि कहता है—"सूत्रे व्याकरणे षष्ठ्यर्थो नोपपद्यते। व्याकरणस्य सूत्रम् किमन्यत् सूत्राद्व्याकरणम्। यस्मात् सूत्र स्यात्।"

कात्यायन कहता है—"षष्ठ्यर्थ इति। शब्दाभ्यामपि शब्दाभ्यामष्टाध्याय्या प्रतिपादनाद्व्यतिरेकभावः। सामान्यविशेषयोस्तु द्वयोः प्रयोगो न विरुध्यते। यदा त्वेकदेशे सूत्रशब्देनोच्यते तदा षष्ठ्यर्थोऽप्युपपद्यते।"

नागोजीभट्ट कहता है—"ननु सूत्रसमुदायस्य व्याकरणत्वेऽपि सूत्रमित्युपपन्नमत आह। द्वाभ्यामिति। सूत्रशब्देनाष्टाध्याय्येव यदोच्यते तदापार्यन्तेऽस्य प्रयोगः। न तस्य सिद्धयेदित्यर्थः। ननु किमुच्यते षष्ठ्यर्थोऽनुपपन्न इति पर्यायतया सह प्रयोगोऽपि स्यादत आह। सामान्यविशेषेति सूत्रसामान्य व्याकरणमिति विशेषः। सूत्रशब्देनाष्टाध्याय्येव। तदेकदेशे तु व्यवहारयोग एव। योगे योगे उपतिष्ठत इत्यादौ। यद्रा त्विति। सूत्राणि चाप्यधीयानोति भाष्ये वक्ष्यमाणत्वादिति भावः। वस्तुतः एकदेशस्य सूत्रत्वेऽपि साक्षात् परम्परया वा व्याकरणत्वात् षष्ठ्यर्थानुपपत्तिरेवेति तत्त्वम्।"

इस उपर्युक्त शास्त्रार्थ से स्पष्टतया सिद्ध है कि 'सूत्र' शब्द पाणिनि-काल में 'सूत्रसमुदाय' अर्थ में भी साक्षात् अथवा परंपरा से सिद्ध होता चला आता है। इसी बात को कात्यायन, पतञ्जलि और नागोजीभट्ट के प्रमाणों द्वारा भी स्पष्ट किया गया है।

यदि यह बात है, तो प्रश्न उत्पन्न होगा कि 'सूत्र' शब्द 'सूत्रसमुदाय' में प्रवृत्त होकर क्या 'पुस्तक' अर्थ में प्रयुक्त हो सकता है? क्यों नहीं। यदि पाणिनि 'भिक्षु-सूत्र' और 'नटसूत्रों' के नाम को लेता है, तो वस्तुतः यह पुस्तक रूप में प्रचलित होंगे। हम अब कुछ सफलीभूत हुए हैं कि पाणिनि को लेखन-कलाभिज्ञ प्रमाणित कर सकें, और उससे पहले भी लिखित ग्रंथ विद्यमान थे और उस समय 'पटल' और 'खंड' यह दो नाम 'पुस्तक' के अर्थ में प्रचलित थे।

एक बात हम और भी बता देना चाहते हैं। जिन महानुभावों ने संस्कृत के प्राचीन ग्रंथ 'भूर्जपत्र' अथवा 'तालपत्रों' पर देखे होंगे, उन्होंने यह भी देखा होगा कि उन पत्रों के मध्य में एक छिद्र होता है, जिसमें से एक सूत्र (रज्जु) प्रवेश करके उन पत्रों को एक साथ बाँधा और नत्थी किया जाता है। जिसे हम जिल्द-बंदी या Binding कहते हैं। इनको इस प्रकार बाँधकर ऊपर से दो लकड़ियाँ ऊपर और नीचे से बाँध दी जाती हैं, जिससे कि वे पत्र सुरक्षित रह सकें। हमारे विचार में कोई भी इस 'सूत्र' शब्द के 'पुस्तकार्थ' में प्रचलित होने में हँसी नहीं करेगा, जब उसे निश्चित रूप से ज्ञान हो जायगा कि जर्मन लोग अभी तक अपनी पुस्तक को 'Band' कहते है, और यदि संस्कृत में इसका अनुवाद किया जाय, तो 'सूत्र' ही होगा।

अतः हम इस बात के कहने में संकोच नहीं करेंगे कि 'सूत्र-ग्रंथों' की परिस्थिति उन साधन वस्तुओं पर है, जो कि सूत्र (रस्सी) से बाँधी जाती थीं। हम मेक्समूलर की यह बात नहीं मानते कि सूत्र-ग्रंथों की शैली अत्यंत संक्षिप्त होने से उनका निर्माण केवल सुगमतया कंठस्थ करने के लिये हुआ। मेक्समूलर का कथन है कि यह ग्रंथ अत्यंत संकुचित और संक्षिप्त इस कारण बनाए गये कि पहले पहल बालकों को कंठस्थ करने का सुभीता हो; और अंत में टीकाओं और भाष्यों द्वारा वे विस्तार-पूर्वक समझने में समर्थ हो सकें। हम मानते हैं कि सूत्र कंठस्थ किए जाते थे और अब भी किए जाते हैं। परन्तु "एकाक्षरलाघवेन पुत्रोत्सवं मन्यन्ते वैयाकरणाः" इस उक्ति

की पुष्टि में इतना कह देना पर्याप्त नहीं कि बालक उसको प्रकार कंठस्थ कर सकेंगे। मेक्समूलर स्वयं स्मरण-शक्ति की पराकाष्ठा को नहीं मानता और स्वयं इस बात को मान गया है कि ब्राह्मण और वेद तक कंठस्थ किए जाते थे। अतः यह बात कहनी कि सूत्र-रूप कंठस्थ के कारण हुआ, असमंजस प्रतीत होता है।

'सूत्र' शब्द के साथ-साथ अब हम दूसरे शब्द को लेते हैं। हमारी धारणा है कि 'सूत्र' शब्द की तरह 'ग्रंथ' शब्द भी 'पुस्तक' के अर्थ में व्यवहृत हुआ दीखता है, यह व्यवहार पुस्तक के भिन्न-भिन्न भागों के आधार पर नहीं हुआ, प्रत्युत यह उन भूर्जपत्रों व ताल-पत्रों के जिन पर प्राचीन काल में लिखा जाता था—बृहत् परिमाण के आधार पर प्रचलित हुआ दीखता है। प्रो० वेबर पाणिनि को ख्रीष्ट की द्वितीय शताब्दी के मध्य में (140 A. D.) मानता है, जो कि हमें मान्य नहीं; परंतु फिर भी वह पाणिनि के लेखन-कलाभिज्ञ होने में इस शब्द को प्रमाण-रूप में पेश करता है—

'The word Grantha, which is several times used by Panini refers, according to its etymology, decided to written text इस पर भी वह हमें बतलाता है कि बोटलिंक के मतानुसार 'ग्रथ' शब्द का अर्थ 'निबंध' या 'संदर्भ' है।

'ग्रथ्यत इति ग्रन्थ' इस व्युत्पत्ति के अनुसार 'ग्रंथ' का अर्थ भले ही 'शास्त्रीय निबंध' हो, और भले ही पुस्तक के अर्थ में भी अंत में प्रयुक्त हो गया हो। परंतु हमें विश्वास है कि पूर्व इसके यह अक्षरार्थ-रूप में "पत्रों की माला"—इस अर्थ में प्रयुक्त हुआ हो, उपर्युक्त लाक्षणिक अर्थ (शास्त्रीय निबंध) में प्रयुक्त नहीं हुआ होगा। इस युक्ति के समाधान के पहले हम उचित समझते हैं कि एक भ्रम, जो प्रो० मेक्समूलर ने इस विषय में दिलाया है—हटा दिया जावे।

मि० मेक्समूलर पाणिनि के कई सूत्रों को उद्धृत करता है, जिनमें 'ग्रथ' शब्द पढ़ा गया है। परंतु कह देता है—

"The word Grantha used in Sutras is always suspicious" मेक्समूलर का यह संदेह किस बात से पैदा हुआ? हमारे विचार में यह संदेह "अधिकृत्य कृते ग्रन्थे" पाणिनि के इस सूत्र से हुआ दीखता है; क्योंकि मेक्समूलर कहता है—"That some Sutras which now form part of Panini's Grammar did not proceed from him, is acknowledged by Kaiyata (of IV3 131 132)" और ३६१ पृ० पर फिर उसने कहा है कि पाणिनि का 'कृते ग्रन्थे' यह सूत्र कैयट के मतानुसार अपना नहीं है। "Kaiyata says that this Sutra does not belong to Panini

वास्तव में सारी अष्टाध्यायी के ३,९९६ सूत्रों में से केवल तीन या चार सूत्र ऐसे हैं, जो कि पाणिनि के अपने नहीं माने जाते। वास्तव में वे पाणिनि के हैं या नहीं, यह बात हम अगले लेख में बताएँगे। परंतु जो भी वे सूत्र विवादास्पद हैं, इनमें हमारा प्रस्तुत शब्द 'ग्रन्थ' कहीं भी नहीं आता। हमें विश्वास है, मि० मेक्समूलर की बड़ी भारी गलती है, जो वह यह कहता है कि कैयट के मतानुसार "कृते ग्रन्थे" (४. ३ ११६) यह सूत्र पाणिनि का नहीं है। हमें कैयट की भाष्यप्रदीपिकोद्योत में कहीं भी ऐसा पाठ नहीं मिला, जहाँ कैयट ने इस सूत्र पर कोई भी मत प्रकाशित किया हो। परंतु यदि मान भी लिया जाय कि हमें वह पाठ ढूँढने से नहीं मिला, या किसी तरह हमारी दृष्टि में नहीं पड़ा। परंतु इस युक्ति का कुछ भी प्रभाव नहीं रहेगा, यदि हम महाभाष्य में अन्य स्थलों पर यह सूत्र उद्धृत किया हुआ दिखा दें।

पतञ्जलि अपने (४ ३ १०५) सूत्र के भाष्य में वार्तिक के आरम्भ में स्पष्टतया दो बार 'कृते ग्रंथे' सूत्र का उद्धरण करता है। पाठकों को ध्यान रखना चाहिए कि 'कृते ग्रन्थे' सूत्र पर भाष्य नहीं है। इसलिये कैयट की 'भाष्यप्रदीपिका' भी नहीं हो सकती। "पुराणप्रोक्तेषु ब्राह्मणकल्पेषु" इस सूत्र की दूसरे वार्तिक में "कृते ग्रथे, मक्षिकादिभ्योऽण्" यह पाठ आता है। हमारी समझ में यह पाणिनि-सूत्र "कृते ग्रथे" पर समालोचना की गई है। और "मक्षिकादिभ्योऽण्" यह पाठ बढ़ाया गया है। और यह बात सिद्ध होती है कि यह सूत्र पाणिनि का अपना ही है। आगे भी पतञ्जलि कहता है कि " 'कृते ग्रथे' इत्यत्र मक्षिकादिभ्योऽण् वक्तव्यः। मक्षिकाभिः कृतं माक्षिकम्" और तीसरा वार्तिक 'योगविभागात् सिद्धम्' पर (जो कि कलकत्ता संस्करण में वर्जित है) वह कहता है, "योगविभाग करिष्यते। 'कृते ग्रथे' (४ ३·११६) और "ततः संज्ञायाम्" (४ ३·११७) न कृतः इत्येतस्मिन्नर्थे यथा विहितं प्रत्ययो भविष्यति"।

इससे स्पष्ट सिद्ध है कि कैयट ने प्रथम तो 'कृते ग्रन्थे' पाणिनि का सूत्र न होना, कहीं नहीं माना। यदि दुर्जन-तोषण-न्याय से मान भी लिया जाय, तो भी पतञ्जलि दो बार इस सूत्र को अपने भाष्य में उद्धृत करता है। अत. यह बात मानना कि पाणिनि में 'ग्रंथ' शब्द सदा सन्देहास्पद रहा—सर्वथा भ्रम-मूलक है, और काशिकाकार भी 'कृते ग्रन्थे' इस सूत्र का उद्धरण करता है। उसने 'तेन प्रोक्तम्' की वृत्ति में कहा है, "प्रकर्षेणोक्तं प्रोक्तमित्युच्यते। न तु कृतम्। "कृते ग्रन्थे" इत्यनेन गतत्वात्। अन्येन कृता माथुरेण प्रोक्ता माथुरीवृत्तिः।"

इसी प्रकार 'ग्रंथ' शब्द का भी व्यवहार 'काशिका' में आया है। (४ अ० १ पा० १० सू०) में "पौरुषेयो ग्रन्थः।" (४ २ ६२) सूत्र में "ब्राह्मणसदृशो ग्रन्थोऽनुब्राह्मणम्।" (४ २ ६३) सूत्र में वसन्तसहचरितो ग्रन्थो वसन्त इत्युच्यते।"

अब हम एक दृष्टांत महाभारत का दिखाते हैं। यदि उसमें 'ग्रंथ' शब्द केवल 'निबंध' या 'सदर्भ' के अर्थ में मान लिया जाय और 'लिखित पुस्तक' या 'प्रति' के अर्थ में न लिया जाय, तो उन श्लोकों की संगति नहीं लगती। परंतु श्लोकों को उद्धृत करने के पूर्व हम एक आपत्ति से बाध्य होकर एक बात पाठकों के सामने रखते हैं कि क्या महाभारत जिसका हम उदाहरण दिखाएँगे, ऐसी पुस्तक है, जो मेक्समूलर का मतलब हल कर सके ? अर्थात् क्या महाभारत प्राचीन ग्रंथ है ? क्योंकि मेक्समूलर के वचन हैं—

'महाभारत में ग्रंथ शब्द'

"Grantha does not mean 'Pustaka' or Book in early literature." तो क्या महाभारत की गणना Early literature (प्राचीन साहित्य) में आ सकती है ?

दोनों मेक्समूलर और ह्वेबर इस बात को मान चुके हैं कि आश्वलायन के समय एक महाभारत था, और उन्होंने आश्वलायन के गृह्य-सूत्र से महाभारत का एक पद भी उद्धृत किया है। (देखो मेक्समूलर पृष्ठ ४२ और ह्वेबर Literature schichte पृष्ठ २६) हम इस विषय को यहाँ खोलना नहीं चाहते। किसी अन्य समय इस पर विचार करेंगे। परंतु कहने का तात्पर्य यह है कि दोनों में से कोई भी आश्वलायन से पूर्व के ग्रंथों को 'प्राचीन साहित्य' मानने मे विरोध नहीं करता। परंतु इसमें कुछ भी संदेह नहीं कि महाभारत पाणिनि से पूर्व का ग्रंथ है। क्योंकि पाणिनि ने स्वयं महाभारत के मुख्य नेताओं और राजों, महाराजों का नाम लिया है। दोनों उपर्युक्त विद्वानों ने भी इस विषय पर विवेचन किया है (ह्वेबर Indische studien पृ० ३४८ और मेक्स० ४४) 'पांडु' और 'पांडव' शब्द कैयट, पतञ्जलि और काशिकाकार तीनों ने लिखा है।

क्या महाभारत एक प्राचीन ग्रंथ है

वार्तिक कहता है—"पाण्डोर्ड्यण् वक्तव्य।"

पतञ्जलि—"पाण्ड्यः। बह्वादिप्रभृतिषु (४ १ ९६) येषां दर्शनं लौकिके गोत्राभाव इति वचनाद्युधिष्ठिरादिषु पाण्डोरग्रहणबाधिन। पाण्डव इत्येव भवति।

काशिकाकार कहता है—"अन्यस्मात्पाण्डव एव।"

कहने का तात्पर्य यह है कि 'पाण्ड्य' या 'पाण्डव' शब्द उस समय इतना साधारण था कि बच्चे-बच्चे के मुँह पर था। पाणिनि ने इसे सर्वसाधारण शब्द समझकर नाम लेना आवश्यक नहीं समझा। परंतु उसकी टीका करनेवालों ने खोल दिया। हमें पूर्ण विश्वास है कि पाणिनि उपर्युक्त व्यक्तियों से अनभिज्ञ नहीं था। दूसरे मेक्समूलर के मतानुसार कात्यायन पाणिनि का समकालीन था। यदि कात्यायन 'पाण्डु' या 'पाण्डव' का नाम जानता था, तो क्या संदेह हो सकता है कि पाणिनि न जानता होगा ?

अत महाभारत को स्वयं उपर्युक्त विद्वानों ने प्राचीन साहित्य अवश्य माना है। और यदि हम इसमें से 'ग्रंथ' को शब्द उपर्युक्त दोनों अर्थों में प्रवृत्त हुआ दिखा दें, तब तो कोई भी संदेह न रहेगा कि पाणिनि को भी 'ग्रंथ' शब्द के पुस्तकार्थ में प्रवृत्त होने के विषय में ज्ञान था, और उसे लेखन-कला का भी ज्ञान था। महाभारत में आता है—

यदेतदुक्तं भवता वेदशास्त्रनिदर्शनम्।
एवमेतद्यथा चैतन्न गृह्णाति तथा भवान्॥
धार्यते हि त्वया ग्रन्थ उभयोर्वेदशास्त्रयो।
न च ग्रन्थस्य तत्त्वज्ञो यथावत्त्व नरेश्वर॥
यो हि वेदे च शास्त्रे च ग्रन्थधारणतत्पर
न च ग्रन्थार्थतत्त्वज्ञ तस्य तद्धारणं वृथा॥
भार स वहते तस्य ग्रन्थस्यार्थं न वेत्ति य
यस्तु ग्रन्थार्थतत्त्वज्ञो नास्य ग्रन्थागमो वृथा॥

(पञ्चम—११३३९-११३४२)

वशिष्ठमुनि जनक से कहते हैं कि तुमने वेद-शास्त्रों के सिद्धांतों को कहा है, ठीक कहा है। परंतु तुम उनके मर्म को नहीं जान सकते। क्योंकि तुम वेदादि शास्त्रों के ग्रंथ (मूल पाठ) को धारण करते हो। परंतु तुम्हें इनके तत्त्व का ज्ञान नहीं। क्योंकि जो कोई वेदादिकों के ग्रंथ (मूल पाठ) के धारण करने में लगा हुआ है और उस पाठ के तत्त्व को नहीं जानता। वह केवल ग्रंथ के भार को धारण करता है, और अर्थ नहीं जानता। परंतु जिसने ग्रंथ (मूल पाठ) के अर्थ को जान लिया, उसके लिये ग्रंथ का ग्रहण व्यर्थ नहीं गया।

यहाँ पर 'ग्रंथ' शब्द द्व्यर्थक है। 'मूलपाठ' के अर्थ में और 'पुस्तक-भार' के अर्थ में, "भार स वहते तस्य" इसमें केवल ग्रंथ के भार का ही वर्णन है कि जिसे हम पुस्तक की प्रति जिल्द अथवा Volume कहते हैं।

हमने दुर्गाचार्य के पाठ "ग्रंथतोऽर्थतश्च" को पहले भी उद्धृत किया है। परंतु हम इस पर मेक्समूलर के अर्थ को दिखाते हैं। मेक्समूलर इसका अर्थ 'According to text and according to the meaning" करता है, यहाँ पर स्वयं ग्रंथ का अर्थ मेक्समूलर ने tent (मूलपाठ) किया है। परंतु महाभारत में उपर्युक्त दोनों ही अर्थों में प्रयुक्त हुआ है। ग्रंथ शब्द का मूलपाठ यह गौण अर्थ है। वस्तुतः मुख्य अर्थ इसका 'पुस्तक' 'प्रति' अथवा आंगल-भाषा का Volume ही था, और इसी अर्थ में प्राचीन काल में व्यवहृत होता था।

पाणिनि को लेखन-कलाभिज्ञ प्रमाणित करने में हम एक और आवश्यक शब्द की ओर पाठकों का ध्यान आकर्षित करते हैं। यह शब्द 'वर्ण' है। यह शब्द पाणिनि ने कई बार व्यवहृत किया है। मि० मेक्समूलर ने इस शब्द का ठीक दुरुपयोग करके लोगों को अंधा बनाने का प्रयत्न किया है। वह इस शब्द का या तो 'रंग' अर्थ करते हैं। या जहाँ कहीं 'अक्षर' के अर्थ-विषय में आने की थोड़ी-सी भी संभावना थी वहाँ "does not mean colour in the sense of a painted letter, but the colouring or modulation of voice" अर्थात् 'वर्ण' शब्द 'स्वर-न्यक्रम' के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। ऐसा मेक्समूलर ने माना है (पृ० ५०७), परंतु जहाँ कहीं ऐसा समाधान नहीं बन सका वहाँ

पाणिनि में 'वर्ण' शब्द

मेक्समूलर महोदय ने और ही चाल खेली है। वहाँ आपने अरस्तू के (Aristotle X 59) 'Ypámmata" इस शब्द को उद्धृत किया है और ह्वेबर के वाक्यों का मिलान करके समस्या हल कर डाली है। जो कुछ भी ह्वेबर इस विषय में कहता है, हम उसको अक्षरशः उद्धृत करते हैं:— 'The name varna is probably to be understood of the colouring–specialising of sound, compare 'रक्त' which is employed in 'ऋक्प्रातिशाख्यम्" in the sense of Nasalised. With writing it has nothing to do."

अर्थात् "वर्ण" "वर्णस्वर" के व्यक्त करने के भाव में प्रयुक्त होता है, और इसीलिये 'ऋक्प्रातिशाख्यम्' में 'रक्त' शब्द नासिका स्वर के भाव में प्रयुक्त हुआ है। मेक्समूलर ने भी इसी ही युक्ति का आधार लेकर इस विषय का टाल-मटोल कर दिया है। वस्तुतः यदि देखा जाय, तो ह्वेबर का कहना भी मान्य नहीं हो सकता; क्योंकि वह स्वयं संदेहास्पद वाक्यों से आरंभ करता है और फिर 'रक्त' शब्द के आधार को पाकर विश्वास कर लेता है, और मेक्समूलर से हम कहते हैं कि संस्कृत-साहित्य के शब्दों की अरस्तू के शब्दों से समानता किस प्रकार हो सकती है। परंतु यदि मान भी लिया जाय कि इससे संस्कृत साहित्य का कुछ भला होगा, तो क्या हमें हक हासिल नहीं कि हम भी इसी ही शब्द से मेक्समूलर की युक्तियों का खंडन करें। अवश्य!

अरस्तू के आधार पर मेक्समूलर का खंडन

अरस्तू के "Ypámmata" शब्द का भाव है "लिखे हुए चिह्न"। स्वर शब्द के लिये तो उसने 'Ypámmata' शब्द व्यवहृत किया है। परंतु पहले शब्द का यदि अर्थ लिखे हुए चिह्न हो सकता है, तो क्या "लिखे हुए अक्षर" नहीं हो सकता? अवश्य!

फिर भी "रंगत" की कल्पना स्वयं एक ऐसी अवस्था का भान कराती है जो कि उससे उलटा "रंग-रहित" है। काला, हरा, नीला, पीला और लाल—यह वर्ण एक ऐसे अवर्ण का भान कराती है जो श्वेत है। इसी प्रकार "वर्ण,स्वर" भी ऐसी कल्पना के बिना कि कोई "अवर्ण-स्वर" भी है, समझ में नहीं आ सकता। यह अवश्य 'अवर्णस्वर' का भान कराएगी।

अतः हम अर्वाचीन परिभाषा में 'इ' 'उ', ऋ, ए, ओ इत्यादिकों को वर्णस्वर कहते हैं—क्योंकि यह 'अ' (अवर्ण स्वर) से भेद रखते हैं। परंतु फिर भी हम दिखावेंगे कि वर्ण शब्द समस्त स्वरों (अकार-समेत) के लिये प्रयुक्त होता है।

हमें इस बात में भी विवाद नहीं कि वर्ण शब्द अरस्तू के 'ypákka' (वर्ण) बोले आनेवाले वर्णों के लिये प्रयुक्त होता है। क्योंकि हमारे शास्त्रों में भी ऐसा प्रयोग आया है। नागोजीभट्ट ने अपने विवरण के आदि में "नादो वर्णः" और कैयट ने 'घोषवन्तो वर्णाः' ऐसा पाठ लिखा है। परन्तु फिर भी हमारा विचार है कि यह शब्द लिखे जानेवाले शब्दों के लिये भी अवश्य प्रयुक्त हुआ है।

इस बात के समर्थन के लिये हम प्रसंगवश एक और शब्द का निर्देश करते हैं जिसका भाव 'अक्षर' शब्द पर आ घटता है। यह एक संयुक्त शब्द का हिस्सा है जो अपने से पूर्व के संयुक्त भाग के द्योतनार्थ प्रयुक्त होता है, यह 'कार' शब्द है। जैसे—अकार से 'अ' का बोध और 'इकार' से 'इ' का बोध होता है इत्यादि। (२) यह वर्ण शब्द का पर्यायवाची शब्द है। जैसे—अवर्ण, इवर्ण इत्यादिकों से भी 'अकार', 'इकार' का बोध होता है। (३) कात्यायन 'वर्णात्कार०' इस वार्तिक से इसे एक आगम रूप मानता है जो केवल वर्णों के पीछे लगता है। पतञ्जलि इस पर भाष्य करते हैं —

पाणिनि में शब्द का भाव

"वर्णात्कारप्रत्ययो वक्तव्य" अकारः, इकार।

कैयट इस पर लिखते हैं—"वर्णादिति वर्णवाचिनो वर्णानुकरणादित्यर्थः। बहुलग्रहणात् क्वचिन्न भवति। "अस्य च्वौ" इति यथा तथा क्वचित् वर्णसमुदायानुकरणादपि कारप्रत्यय इति।"

यहाँ कैयट वर्ण शब्द पर भी व्याख्या करते हुए 'कार' प्रत्यय का अर्थ करते हैं कि 'कार'-प्रत्यय 'वर्णवाची' और 'वर्णानुकारी' होता है।

अष्टाध्यायी, महाभाष्य, वार्तिक, और कैयट की प्रदीपोद्योत और काशिका—इन सबमें 'कार' और वर्ण इतनी बार आया है कि उनका उद्धरण करना मानो एक नयी पुस्तक लिखना है। यह 'कार' और 'वर्ण' शब्द न केवल अचों और व्यजनों, किंतु संयुक्त अक्षरों के साथ भी प्रयुक्त हुए हैं। तत्त्व यह निकलता है (१) इनमें से 'कार' दोनों स्वर और वर्णों के साथ प्रयुक्त होता है। यदि उनमें से व्यंजन अजन्त हों—जैसे क्+अ+कार=ककार, तथा न्+अ+कार=नकार इत्यादि। (२) 'वर्ण' केवल स्वरों के साथ प्रवृत्त हुआ है और उन व्यजनों के साथ भी जो 'अजन्त' नहीं हैं। जैसे—"यीवर्णयोर्दीधीवेव्योः" यहाँ अच्-रहित यकार के पीछे वर्ण का प्रयोग हुआ है।

(३) पाणिनि अजन्त व्यंजन अक्षरों के साथ 'वर्ण' नहीं लिखता। परन्तु काशिका में " 'क' 'भ' इत्येतौ वर्णौ" "जबगडद, इत्येतान् वर्णान्" इत्यादि प्रमाणों से पाणिनि के विपरीत अनंत व्यंजन अक्षरों के साथ भी 'वर्ण' शब्द को प्रयोग में लाता है।

यह सब बातें पूर्णतया ध्यान देने से सिद्ध होती हैं। परंतु यदि हम बोले और लिखे जानेवाले शब्दों का भेद बताएँ, तो हमें और भी स्पष्टतया प्रतीत हो जायगा कि प्राचीन आर्यों को इस भेद का कहाँ तक ज्ञान था। 'क', 'प', 'ट', इत्यादि व्यंजनों के उच्चारण के लिये हमें 'अच्' का संयोग करना पड़ता है। परन्तु लिखने में हम भले ही अच् का व्यवहार न करें, तो भी कोई डर नहीं, हम उसे हलन्त करके लिख सकते हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि उच्चारण में आनेवाला 'क्' लिखे आनेवाले 'क' से अत्यंत भिन्न है। पहला 'क' केवल 'क्' ही है परन्तु दूसरा 'क्+अ' है। जब तक पाणिनि क्+अ अथवा किसी अन्य ऐसे अक्षर पर कोई नियम नहीं बनाता, तब तक 'क्' के साथ 'अ' का प्रयोग नहीं करता। यदि 'क्' के साथ 'अ' का कहीं प्रयोग करना भी पड़ जाय, तो उसके लिये उसे विशेष नियम देना पड़ जाता है कि अमुक अक्षर इत्संज्ञार्थ है। इसीलिये तो उसने अनुबंधसंज्ञा बनाई। "उपदेशेऽजनुनासिक इत्" यह सूत्र उन अचों की निवृत्ति के लिये बनाया गया जो कि व्याकरण में पठनार्थ अनिवार्य थे। परंतु जब उनकी किसी के साथ संधि होने लगे, तो अच् का उच्चारण नहीं होता। ऐसे अच् को पाणिनि ने अनुनासिक संज्ञा दी। अतः पाणिनि जब किसी ऐसे नियम को बताता है जिसमें अच् का व्यंजन के साथ संयोग निरर्थक किंतु अनिवार्य हो, तो वृत्तिकार व भाष्यकार इस विशेष बात को समझकर कि जिसके लिये उसका प्रयोग हुआ—अपने सूत्र का कुछ-न-कुछ

समर्थन कर ही देते हैं । 'लण्' सूत्र पर काशिकाकार ने "इकारादिष्वकार उच्चारणार्थो नानुबंध." । "लकारे ण्वकारोऽनुनासिक इत्संज्ञ प्रतिज्ञायते"—ऐसी व्यवस्था बाँध दी । और "अदड्डतरादिभ्य· पञ्चभ्य" यहाँ पर 'अदड्' का 'अ' केवल उच्चारण के लिये जानकर कात्यायन ने "सिद्धं त्वनुनासिकोपधात्" यह वार्तिक गढ़ डाला ।

भाव यह है कि 'अकार', 'इकार', 'उकार' इत्यादि और 'अवर्ण', 'इवर्ण', 'उवर्ण' इत्यादि—एक ही रूप हैं। क्योंकि बोले जानेवाले अच्, लिखे जानेवाले अचों के समानधर्म ही हैं, केवल संदेह है, तो इतना है कि 'कार' और 'वर्ण' दोनों लेख चिन्हों के लिये प्रयुक्त होते हैं या, नहीं । परतु जब हम देखते है कि सकार, अकार, णकार, शकार, टकार इत्यादि ऐसे नियमांश की सिद्धि के लिये बनाये गये हैं जिससे स्, भ्, ण्, श्, ट् इत्यादि ही द्योतित होते हैं, न कि 'स, भ, ण, श, ट' इत्यादि अजंत—तब हमें स्पष्टतया प्रतीत हो जाता है कि 'कार' शब्द केवल उच्चारण के लिये ही प्रयुक्त होता है । इसके अतिरिक्त जब पाणिनि "यीवर्णयोर्दीधीवेव्यो" इस सूत्र में दो वर्णों (य् और इ) को एक साथ कहता है, तो हमें स्पष्टतया प्रतीत होता है कि वर्ण शब्द उच्चारण-वाची शब्दों के लिये प्रयुक्त नहीं होता प्रत्युत लिखे जानेवाले शब्दों के लिये प्रयुक्त होता है । क्योंकि 'य्' बिना अच् बोला नहीं जा सकेगा । हम इन दोनों शब्दों के अर्थ-संबंध में एक और प्रमाण देते हैं । पूर्वोक्त प्रमाण में हमने 'कार' शब्द को इ, उ, स इत्यादिकों के संयोग से दिखाकर बताया था कि पाणिनि दो बाते मानते थे । एक—'उच्चारित शब्द' और दूसरा—'लिखित चिन्ह व अक्षर ।' इनमें से 'कार' 'उच्चारित शब्दों' के लिये और वर्ण लिखित चिन्हों के लिये प्रयुक्त होता है । इसके अतिरिक्त 'करण' शब्द भी 'कार' से मिलता-जुलता है, और काशिका में निम्न-लिखित स्थानों में आता है—"न वेति विभाषा" (१ १ ४४) में इति करणोऽर्थनिर्देश· । "सास्मिन् पौर्णमासीति सज्ञायाम्" में "इतिकरणस्ततश्चेद्विवक्षा" "अदड्डतरादिभ्य पञ्चभ्य" में "इत्करणं किम्" । "उपमान शब्दार्थप्रकृत्येव (६ . २ . ८०) में एवकारकरणमुपमानावधारणार्थम्" यहाँ 'कार' से 'संयुक्त करण' का प्रयोग है ।

अब हम पाठकों का ध्यान एक दूसरे शब्द के प्रति ले जाते हैं । यह शब्द 'उपदेश' है । वृत्तिकार इसे 'उपदेश आद्योच्चारणम्' ऐसा कहते हैं ।

पाणिनि मे 'उपदेश' शब्द का भाव

पाणिनि—"उपदेशेऽजनुनासिक इत्" यह सूत्र पढ़ते हैं । इस पर—

भाष्यकार—"किम्पुनरुद्देशनम् । शास्त्रम्" ऐसा कहते हैं । इससे अगला सूत्र "हलन्त्यम्" है । इस पर का वार्तिक "सिद्ध तु व्यवसितान्त्यत्वात्" है—

भाष्यकार—इस पर कहते हैं "सिद्धं तत्कथम् । व्यवसितान्त्यत्वात् । व्यवसितान्त्यो हलित्संज्ञ भवतीति वक्तव्यम् ।" धातु, प्रातिपदिक, प्रत्यय, निपात, आगम—इनको व्यवसितान्त्य कहते है । फिर—

भाष्यकार कहते हैं—"कथमिद विज्ञायते एग् उपदेश इति । आहोस्विदेजन्तमुपदेश इति" इसको और भी खोल कर—

कैयट कहते हैं—"कथमिति । यदोपदेशशब्देन करण-साधनेन शास्त्रमुच्यते तथा विशेष्यस्यानुपादानादेव नास्ति तत्र विधिरित्यय पक्षो भवति एच् उपदेश इति ।" यदा तु कर्मसाधन उपदेशशब्द उपदिश्यमानार्थवाची षष्ठ्यर्थे च सप्तमी तदोपदेशस्यैवाविशेषणत्तत्र विधाविष्यं पक्षो भवति एजन्तम् उपदेश इति ।" ऐसी ही बात भाष्यकार पतञ्जलि ने ८ १ १८१ सत्र पर की है—

"अदुपदेशादिति । कथमिति विज्ञायते। अकारोऽयम् उपदेश इति । आहोस्विदकारान्तमुपदेश इति ।"

पतञ्जलि फिर कहते है । "अथ कथमुपदेश । उच्चारणम् । कुत एतत् । दिशिरुच्चारणक्रिय । उच्चार्य हि वर्णानाह । उपदिष्टा इमे वर्णा ।"

इन सब प्रमाणों से सिद्ध होता है कि उपदेश और वर्ण का सबध करके पतञ्जलि दो प्रकार के वर्णों को बताता है । उपदेश क्या है ? उच्चारण, किस तरह ? 'दिशि' धातु जहाँ से उपदेश शब्द निकलता है, उच्चारण के अर्थ में आती है । अत. उच्चारित वर्णों को उपदिष्ट वर्ण कहा जा सकता है । ऐसा कहने से पतञ्जलि 'वर्ण' और 'उपदिष्ट वर्ण' दोनों के भेद को बतलाता है । अब सोचने की बात है, यदि वर्ण लिखे जानेवाले न होते, तो उपदिष्ट वर्णों की पृथकता बतलाने का क्या मतलब था । वर्ण लिखे जानेवाले भी थे और कहीं उपदेश के स्थान मे

भी लिखे जानेवाले वर्णों का ग्रहण न हो जाय इसी कारण उसने विशेषत: उपदिष्ट वर्ण का भेद स्पष्ट बतला दिया।

दूसरा—'साधारण व्यञ्जन का' 'उपदिष्ट व्यञ्जन' से क्या संबंध है और 'साधारण स्वर' का 'उपदिष्ट स्वर' से क्या संबंध है। यह दोनों बातें एक शब्द के आधार पर हैं। और यह शब्द 'स्वर वर्ण' है जो कि भाष्यकार ने 'श्रियाम्' इस पाणिनि-सूत्र के भाष्य में लिखा है। "अतिखट्व, अतिमाल इति। नैषा अकारान्तता। अतएवैतद् ह्रस्वत्वम्। सर्वेषां तु स्वरवर्णानुपूर्वीज्ञानार्थमुपदेश:। सर्वेषामेव प्रातिपदिकानां स्वरवर्णानुपूर्वीयज्ञानार्थमुपदेश: कर्तव्य:।"

भाव यह है कि 'ए-वर्ण', 'ओ-वर्ण', 'ऐ-वर्ण' और 'औ-वर्ण'—पाणिनि और कात्यायन दोनों में नहीं आते। क्योंकि अ और इ मिलकर ए, अ और उ मिलकर ओ तथा अ और इ मिलकर ऐ और अ और उ मिलकर औ हो जाते हैं। इनको प्राचीन व्याकरण के अनुसार 'सन्ध्यक्षर' या 'प्रश्लिष्ट वर्ण' कहते हैं। कैयट शिव-सूत्र ३ और ४ पर कहते हैं "सन्ध्यक्षराणीत्यन्वर्था पूर्वाचार्यसंज्ञा।" और पतञ्जलि भी इसी स्थान में "इमावैचौ समाहारवर्णौ" इससे अ और उ को "समाहार वर्ण" भी कहते हैं तथा 'तुल्यास्य०' इत्यादि सूत्र पर (ए ओ) प्रश्लिष्टवर्णावेतौ, इससे ए और ओ को 'प्रश्लिष्ट वर्ण', कहते हैं। परन्तु काशिकाकार शिव-सूत्र ३ और ४ पर "ए ओ इत्येतौ वर्णौ" तथा 'ऐ औ इत्यतौ वर्णौ" कहता है। प्रथम तो यह 'इवर्ण' 'उवर्ण' की तरह 'एवर्ण' और 'ओवर्ण' नहीं कहता। दूसरे यह ग्रंथ बहुत पीछे का होने से पाणिनि, कात्यायन, पतञ्जलि तथा कैयट के प्रमाणों से कम दर्जे पर है। परंतु यदि पाणिनि में इस बात के अनुसार 'एवर्ण' और 'ओवर्ण' ऐसे प्रयोग भी मान लिये जायँ, तो भी यह बात स्वत: सिद्ध हो जायगी कि वर्ण पाणिनि-काल में लिखे जाते थे। क्योंकि दो स्वरों का मिलना और मिलकर फिर तीसरा वर्ण बन जाना बिना लिखे जाने के कैसे सिद्ध होगा ? अत: यदि मेक्समूलर की बात मान ली जावे कि शास्त्र-परंपरा से स्मृति में धारण किये जाते थे और लिखे-पढ़े नहीं जाते थे, तो शिष्यगण व्याकरण के इस ज्ञान को किस प्रकार मन में धारण करते होंगे कि अमुक स्वर और अमुक स्वर मिलकर अमुक 'संयुक्त स्वर' स्वर वर्ण हो गया ?

पाणिनि के अक्षर शब्द का भाव

'वर्ण' और 'अक्षर' शब्दों की भी समानता बहुत कुछ स्पष्ट है। कैयट (८. २. ८४) सूत्र पर लिखते हैं "अक्षरमच्" और शिव-सूत्रों की भूमिका में "अक्षरं व्यञ्जनसहितोऽच्" ऐसा कहते हैं। तथा नागोजीभट्ट भी कहते हैं:—

"यथा ये यजामह इति पञ्चाक्षरम्।" अत: 'वर्ण' अक्षर के साथ तब मेल खाता है जब यह 'अच्' होता है। इन सब पारिभाषिक शब्दों का जो ऊपर दिखाये गये हैं भेद निम्न-लिखित है:—

'कार'—तब प्रयुक्त होता है जब अक्षर केवल उच्चारण के लिये प्रयुक्त हो—जो कि सदा एक अक्षर हो या अधिक हों। यदि एकाक्षर 'कार' हो, तो उसका भाव साधारण स्वर से होगा जैसे—अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ऋ, ॠ, ऌ या संयुक्त स्वर 'ए ओ', 'ऐ औ' से होगा। अथवा केवल उच्चारणार्थ, 'अ' से युक्त व्यञ्जन के लिये प्रयुक्त होगा, जैसे—ककार—खकार आदि। बस।

'करण'—उच्चारणार्थ शब्द के लिये प्रयुक्त होगा जो कि या तो एक से अधिक अक्षरों के लिये अथवा एक से अधिक व्यञ्जनोंवाले एक अक्षर के लिये प्रयुक्त होगा।

'वर्ण'—इसके विपरीत साधारण अक्षर के लिये प्रयुक्त होगा जो स्वरों में केवल साधारण स्वरों (अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ऋ, ॠ, ऌ) के लिये और व्यञ्जनों में केवल अकेले व्यञ्जन के लिये प्रयुक्त होगा जो कि स्वर से संयुक्त न होगा। परंतु.—

अक्षर—का भाव 'अक्षर' ही से है जो कभी 'कार' या 'वर्ण' के रूप के लिये भी प्रयुक्त होता है और साथ ही यह भी बता देता है कि 'कार' और 'वर्ण' परस्पर भिन्न हैं। जैसे अकार—अक्षर, आकार—अक्षर, एकार अक्षर इत्यादि। यह एक विस्तृत शब्द है जो समस्त लिखे जानेवाले वर्णों और 'कारांत' वर्णों का बोध कराता है।

'प्रातिशाख्य' का प्रमाण

हमने शौनिक और कात्यायन के प्रातिशाख्य का जान बूझकर कोई प्रमाण नहीं दिया। कारण कि हम यह सब बातें पहले पाणिनि और उसके टीकाकारों तथा भाष्यकारों से सिद्ध करना चाहते थे जो कि पाणिनि के

पारिभाषिक शब्दों का गूढ़ मर्म जानते हैं और जिन्हें पाणिनि की शैली भी भली प्रकार मालूम है। और यदि हम बीच-बीच में और ग्रंथों को भी उद्धृत करते, तो हमारे लेख में अवश्य बाधा पड़ती। क्योंकि पाणिनि और उसके टीकाकारों तथा अन्य वैयाकरणों के पारिभाषिक शब्दों में भी भेद है। उदाहरण के तौर पर निरुक्तकार यास्क 'अभ्यस्त' शब्द से द्वित्व शब्द मानता है। जैसे एरिट इति निरुपसृष्टोऽभ्यस्त (नि० ४ अ० २३) तथा 'रविणानातिरभ्यस्त' (४-२५) परंतु पाणिनि "उभेऽभ्यस्तम्" इस सूत्र से द्वित्व के पहले दो अक्षरों को ही 'अभ्यस्त' शब्द से कहता है। तथा—अभ्यास शब्द से फिर निरुक्त में द्वित्व शब्द माना गया है ("बब्धाम् अदिनाभ्यासेनोपहितेनोपधामादत्ते बभस्तिरग्रिकर्मा)" परंतु पाणिनि "पूर्वोऽभ्यास" इस सूत्र से द्वित्व शब्द के प्रथमाक्षर को ही अभ्यास-संज्ञक मानता है।

परंतु हमारा मत है कि जहाँ कहीं प्राचीन ग्रंथकारों ने वर्ण शब्द लिखा है ऐसी कोई युक्ति उनके विषय में नहीं पाई जाती कि कोई यह सिद्ध कर सके कि वह शब्द लिखे हुए अक्षरों के लिये प्रवृत्त नहीं हुआ। उदाहरण के तौर पर कात्यायन अपनी वार्तिक-भूमिका में इस बात का समर्थन करता है कि वर्ण प्राचीन वैयाकरणों के मत में इसी भाव में आता था। परंतु कात्यायन का भेद प्रकट करने का तरीक़ा ऐसा है कि वह पाणिनि और उससे पूर्वभव वैयाकरणों का मुक़ाबिला कर रहा है। वार्तिक निम्नलिखित ऋचा को उद्धृत करता है—

"यो वा इमां पदश स्वरशोऽक्षरशोवाच विदधाति स आर्त्विजीनो भवति।"

भाष्यकार कहता है—"आर्त्विजीना स्यामित्यध्येय व्याकरणम्।"

कैयट कहता है—"ऋत्विजमर्हति इत्यार्त्विजीनो यजमान।" यज्ञर्त्विग्भ्या घखञौ (५ १ ७१)। इस पर

वार्तिककार कहता है—"यज्ञर्त्विग्भ्या तत्कर्मार्हतीत्युपसङ्ख्यानम्" अर्थात् ऋत्विक् कर्मार्हतीति याजकोऽप्यार्त्विजीन। अक्षर न क्षर विद्यात्।

अश्नोतेर्वा सरोऽक्षरम्। वर्ण वाऽऽहुः पूर्वसूत्रे।"

पतञ्जलि —अथवा पूर्वसूत्रे वर्णस्याक्षरमिति संज्ञा क्रियते।"

कैयट —पूर्वसूत्र इति। व्याकरणान्तरे वर्णाः अक्षराणीति वचनात्।"

नागोजीभट्ट —पूर्वसूत्रशब्दे षष्ठीतत्पुरुष इति भावः। एवं चाक्षरसमाम्नाय इत्यस्य श्रुतिरूपो वर्णसंघात इत्यत्र तात्पर्यम्।"

देखिए। कितना स्पष्ट प्रमाण है जो पाणिनि और उसके पूर्ववाले ग्रंथकारों को लेखन-कलाभिज्ञ प्रमाणित करता है। ऋचा कहती है, जो इस वाणी को पद, अक्षर और स्वर-समेत पढ़ता है वह आर्त्विजीन (यज्ञ करने का पात्र) हो जाता है। वार्तिक कहता है, अक्षर का अर्थ है और क्षर—अर्थात् न नष्ट होनेवाला, अथवा 'अश्' धातु से सर प्रत्यय लगने से 'अक्षर' शब्द बनता है। क्योंकि कैयट के मतानुसार यह भाव में व्याप्त होता है। वह कहता है कि वर्ण की अक्षर संज्ञा प्राचीन लोग करते थे, क्योंकि अन्य व्याकरणों में 'वर्ण' अक्षरों के नाम से बताए गए हैं। नागोजीभट्ट इस बात को और भी खोल देता है कि अक्षरसमाम्नाय को वर्णसंघात (वर्णसमूह) कहते हैं जैसा कि वेद में भी देखा गया है। तो अब क्या कोई संदेह रह सकता है कि पाणिनि और उससे भी प्राचीन ग्रंथकार लेखन-कला न जानते थे।

पाणिनि और उससे पूर्वभव वैयाकरण

पाणिनि ने अपने सूत्रों में न केवल अपने पूर्वभव वैयाकरणों को उद्धृत किया है, किंतु ऐसे प्रत्यय और धातुओं की गणना भी कराई है जो उसके अपने पारिभाषिक शब्दों से मेल खाते हैं। पाणिनि का उनके साथ क्या संबंध है, यह हम अगले लेख में बतावेंगे। अब इतना दिखाना पर्याप्त समझते हैं कि पाणिनि और उसके पूर्वभव वैयाकरणों ने एक ही प्रणाली का अनुसरण किया। जैसे—पाणिनि ने उणादि प्रत्ययों को गिनाया है जो 'उण्' से प्रारंभ होते हैं। उनमें 'उण्' के 'ण्' का वही प्रयोग होता है जो पाणिनि के 'अण्' का है। पाणिनि भ्वादि, अदादि, तुदादि—इस प्रकार दस गणों और अन्य प्रत्ययों में भी आदि—आदिकों को गिनाता है। जैसे 'भूवादयो धातव.'—भ्वादि। 'अदिप्रभृतिभ्य' शप'—अदादि। 'दिवादिभ्य. श्यन्'—दिवादि। 'स्वादिभ्यः श्नु'—स्वादि। 'तुदादिभ्यः शः'—तुदादि। 'रुधादिभ्य श्नम्'—रुधादि। 'तनादिकृञ्भ्य उ'—तनादि। 'क्र्यादिभ्य श्ना'—क्र्यादि। 'सत्यापपाश ... चुरादिभ्यो णिच्'—चुरादि। 'वचिस्वपि-

यजादीनां किति'—यजादि । 'पुषादिद्युतादि लृदितः परस्मैपदेषु'—पुषादि और द्युतादि । 'रधादिभ्यश्च'—रधादि—आदि आदि । इनका वर्णन ठीक उसी तरह किया है जैसे धातुपाठ में आता है । न केवल यही ; किंतु कहीं-कहीं तो धातुपाठ की-सी संख्या भी बता दी है । जैसे—"न वृद्भ्यश्चतुर्भ्यः" । यह नियम केवल वृतादिकों पर ही प्रयुक्त होता है और यह चार संख्या का अनुमोदन केवल धातुपाठ ही में किया गया है । और पाणिनि केवल पहले का ही नाम बताता है । बाक़ी तीन भी धातुपाठ में ही जाने जाते हैं । इसी प्रकार 'किरश्च पञ्चभ्यः' इसमें भी किरादिकों के शेष चार भेद कहीं पाणिनि में नहीं पाए जाते । केवल धातुपाठ से ही पता लगता है । अतः पाठकों को इस विषय में कुछ भी संदेह नहीं करना चाहिए कि धातुपाठ का व्याकरण संबंधी बातों की सिद्धि में कुछ भी मूल्य नहीं । यदि हम उन सूत्रों पर विचार करें जिनमें धातुओं का वर्णन आया है, तो हमें पता लगेगा कि नियमानुसार एक धातु 'अन्तोदात्त' होती है । क्योंकि 'धातोः' यह सूत्र धातु को अन्तोदात्त करता है । परंतु 'एकाच उपदेशेऽनुदात्तात्' इस सूत्र के अनुसार धातु जो उपदेश में 'एकाच्' और 'अनुदात्त' हो उसे इट् का आगम होता है । तो पहला 'अन्तोदात्त'-वाला नियम उस धातु के लिये प्रवृत्त होगा जो वास्तविक शब्द का हिस्सा है—जिसमें यह आवश्यक नहीं कि लिखने के लिये प्रयुक्त किया गया हो । परंतु दूसरा नियम उस धातु के लिये प्रयुक्त होगा जो केवल धातुपाठ में ही पढ़ी जानेवाली है और केवल उच्चारणमात्र के लिये प्रयुक्त हुई है । हमें इस बात से पता चलता है कि व्याकरण पढ़ने के लिये धातुओं का उच्चारण उपदेश अवस्था में उससे कुछ और प्रकार से था जैसा कि वास्तविक भाषा में पाया जाता था । यदि हम यह बात न मानें, तो क्या यह खेद की बात नहीं कि एक ही वैयाकरण एक धातु को कभी 'अन्तोदात्त' कभी 'अनुदात्त' कहे । तो क्या यह संभव था कि पाणिनि जैसे महान् वैयाकरण भी हमें भ्रम में डाल देते जब कि एक 'पारिभाषिक अनुबंध' द्वारा उनका काम हो सकता था । परंतु हमें वास्तविक अनुमान करना पड़ता है कि उपदेश में अनुदात्त का भाव उच्चारणार्थ नहीं है ; किंतु लेख में प्रयुक्त होने के लिये है । यदि हम ऐसा मान लें, तो स्वतः समस्या हल हो जाती है ।

पाणिनि का 'अ अ' सूत्र

हमारे इस अनुमान का समर्थन करने के लिये हमारे पास एक और प्रबल युक्ति है जो पाणिनि के अंतिम सूत्र 'अ अ' पर निर्भर है । इस पर भाष्यकार का वचन है—"किमर्थमिदमुच्यते, अकारोऽयमक्षरसमाम्नाये विवृत उपदिष्टस्तस्य संवृतता प्रत्यापत्तिः क्रियते ।"

कैयट का वचन है—"किमर्थमिति । अकारस्याकारवचने प्रयोजनाभावात्प्रश्न । अकारोऽयमिति, सवर्णार्थमिह शास्त्रे विवृतदोषयुक्तोऽकार उपदिष्टः । तस्य प्रयोगे संवृतस्यैवोच्चारणार्थमिदं प्रत्यापत्तिवचनम् । अक्षरसमाम्नायग्रहणं सकलशास्त्रोपलक्षणम् ।"

भाव यह है—'अ' जहाँ पाणिनि ने विवृत (गले के विस्फार से उच्चारित) कहा है, वस्तुतः संवृत है जो कि गले के संकोच से बोला जाता है । यह सूत्र शिष्यों के लिये व्याकरण पढ़ते समय उच्चारणार्थ शब्दों के लिये प्रयुक्त नहीं हुआ । प्रत्युत छोटा 'अ' कठिनता से बोला जाता है । और बच्चों के लिये इसका बोलना आसान नहीं । परंतु यदि 'अ' का विवृत उच्चारण होगा, तो 'आ' बन जायगा । पाणिनि का भाव इन दोनों के भेदों को पृथक्-पृथक् दिखलाने का था और वह 'अ' को 'आ' उच्चारण से भिन्न कराना चाहता था । इसलिये पाणिनि ने पहले 'उपदेश' में वर्णों को बनाकर 'उपदिष्ट वर्णों' से उच्चारित वर्णों का द्योतन कराया । अब पतञ्जलि को भी पाणिनि के 'अ अ' इस सूत्र पढ़ने का भाव ज्ञात हुआ जो कि 'उपदेश' का उलटा है । अर्थात् उच्चारण में प्रयुक्त नहीं होता ; किंतु लिखने में प्रयुक्त होता है । इसीलिये उसने 'अकारोऽयमक्षरसमाम्नाये विवृत उपदिष्टस्तस्य संवृतता प्रत्यापत्तिः क्रियते ।" ऐसा पाठ कहा और सिद्ध किया कि बोलने में यदि 'अ' को विवृत भी पढ़ लिया जाय, तो कोई आपत्ति नहीं । परंतु लिखने में संवृत ही लिखा जायगा । नहीं तो 'अ' के स्थान में 'आ' लिखा जायगा । इससे सिद्ध है कि पाणिनि महाराज लेखन-कला को न केवल जानते थे, किंतु उसकी प्रत्येक बारीकी को पहचानते थे और इसमें दक्ष और प्रवीण थे ।

पाणिनि में लोप शब्द

एक और शब्द भी पाणिनि में आया है और वह 'लोप' शब्द है । 'अदर्शनं लोपः' (१. १. ६०) यह पाणिनीय सूत्र है । पाणिनि महाराज अपनी शैली से कहीं लोप, कहीं

आगम, कहीं प्रत्यय लगाकर शब्द-सिद्धि करते हैं। लोप का अर्थ 'लुप् धातु' कट जाने का बोधक है। परंतु सोचने की बात है कि कोई वस्तु कटकर अलग तभी होगी, या लुप्त हो जायगी, जब वह वस्तु भी हो जिससे वह कटी हो, अन्यथा वह लोप कहाँ होगी? यदि पाणिनि-काल में लेखन-कला का प्रचार न होता, तो रूप-सिद्धि ही नहीं हो सकती थी। लोप किसका होता और आगम कहाँ पर होता? क्या मेक्समूलर के कथनानुसार मन में? नहीं, पाणिनि स्पष्टतया 'अदर्शनं लोप' कहते हैं जो दृष्टि से ओझल हो जाय। दृष्टि से ओझल वही होगा जो एक बार देखा जायगा। यही बात अन्य सूत्रों पर भी घट सकती है। पाणिनि "अन्येभ्योऽपि दृश्यते" (३.२.१७८) "अन्येभ्योऽपि दृश्यते" (३ २. ७५) "अन्येषामपि दृश्यते" (६. ३ १३७) अन्येष्वपि दृश्यते (३ २ १०१) ऐसे सूत्र पढ़ते हैं। रूप देखे तभी जायँगे जब लिखे जायं। यदि ऐसी बात है, तो हमारी समझ में नहीं आता कि मेक्समूलर का देखना किस अर्थ को द्योतित करता है।

पाणिनि-काल में पशुओं के कान पर स्वस्तिकादि चिह्न

एक बात और भी है। पाणिनि मे एक सूत्र आता है। "कर्णे लक्षणस्याऽविष्टाष्टपञ्चम-मणिभिन्नच्छिन्नछिद्रस्रुवस्वस्तिकस्य" इस सूत्र से पता चलता है कि प्राचीन काल में पशुओं के स्वामी अपने पशुओं की पहचान के लिये उनके कान पर कोई चिह्न खोद दिया करते थे। क्योंकि इस सूत्र पर काशिकाकार लिखता है:—

"पशूनां स्वामिसम्बन्धज्ञापनार्थं दात्राकारादि क्रियते तदिह लक्षणं गृह्यते।" इन चिह्नों में से 'विष्ट' 'अष्ट' 'पञ्च' 'मणि' 'भिन्न', 'छिन्न' 'छिद्र' 'स्रुव' और 'स्वस्तिक' यह चिह्न ही प्राय प्रचलित थे, इनमें 'पञ्च' और 'अष्ट' का नाम भी आता है। अब या तो यह गणनाओं में से हैं क्योंकि गणनार्थ में "अष्टन आ विभक्तौ" और ,किरश्च पञ्चभ्य' यह सूत्र पाणिनि में भी आ चुके हैं। यदि यह बात नहीं, तो भी कोई न कोई स्वरूपवान् चिह्न होंगे जिसे पाणिनि ने स्पष्टतया बताया है। यदि वह संख्याओं में से है, तब कोई संदेह ही नहीं रहा कि प्राचीनकाल में लिपि-कला प्रवृत्त थी। परंतु दूसरी अवस्था में भी इतना अवश्य मानना पड़ेगा कि प्राचीन आर्यों में विशेष कामों के लिये चिह्न अवश्य बनाये जाते थे। संभव है, वे अक्षर ही हों। यदि पाणिनि-काल के ग्वालों को इतनी बुद्धि थी कि वे अपने पशुओं की पहचान के लिये विविध चिह्न निर्माण कर सकें—तो क्या अत्यत विस्तृत व्याकरण—जिसके समझने में भी अर्वाचीनों के दिमाग चकरा जाते हैं और जिसमें प्रवीण होने के लिये विद्वानों ने "द्वादशभिर्वर्षैर्व्याकरणं श्रूयते" यह व्यवस्था बाँध दी—एसे व्याकरण के निर्माता को लेखन-कलानभिज्ञ कहना कहा तक माना जा सकता है। पाणिनि को क्या रुकावट थी कि वह भी अपने शिष्यों के समझाने के हेतु वर्ण और अक्षर चिन्ह न बना लेता?

महाभारत के प्रमाण से मेक्समूलर का खंडन

मेक्समूलर ने महाभारत के अनुशासन-पर्व का १६४५ श्लोक उद्धृत किया है। जिसका भाव है 'जो लिखकर भी वेदों को बेचते हैं वे वेदों को दूषित करते हैं। मेक्समूलर ने इस बात का दुरुपयोग करके लिपि-कला का विरोध किया है। और एक प्रमाण कुमारिल के वार्तिकों मे से भी दिया है जिसका भाव भी यही है। परतु मेक्समूलर का यह प्रमाण हमारे मत को ही सिद्ध करता है कि लिपि-कला अवश्य थी। कारण कि उस समय किसी ने वेदों को लिखकर बेचा होगा—तभी तो इस बात का महाभारत मे निषेध किया गया और पुस्तक-विक्रय को पाप माना गया। इसका मतलब यह नहीं कि वेद लिखे नहीं जाते थे। इस बात को याज्ञवल्क्य ही कहता है कि "सद्याश्रमैर्विजिज्ञास्य समस्तैरेवमेव तु। द्रष्टव्यस्त्वथ मन्तव्य श्रोतव्यश्च द्विजातिभि" देखना, मनन करना और सुनना तभी हो सकता है जब वेद लिखे जायँ। मिताक्षराकार भी इस पर लिखता है —

"यस्मात् नित्यनयात्मप्रमाणभूतो वेदस्तस्मादसावुक्तमार्गेण सकलाश्रमिभिर्नानाप्रकारं विजिज्ञासितव्यस्तमेव प्रकार दर्शयति। द्विजातिभिर्द्रष्टव्योऽपरोक्षीकर्तव्यस्तत्रोपायं दर्शयति। श्रोतव्या मन्तव्यश्च। प्रथम वेदान्तश्रवणेन निर्णेतव्य. तदनन्तर मन्तव्यो युक्तिभिर्विचारयितव्य. ततोऽध्यानेनापरोक्षीभवति।"

पाणिनि ने भी स्पष्ट कहा है—"छन्दस्यपि दृश्यते" (६.४ ७३।७ १.७६) इससे सिद्ध है कि पाणिनि के काल में लेखन-कला विद्यमान थी। क्योंकि पाणिनि स्वयं 'दृश्यते' का पद कहते हैं।

अब प्रश्न होता है कि क्या लेखन-कला पाणिनि से पूर्व भी थी ? एक शब्द वैदिक मंत्रों में आता है जो हमारी बात का कुछ-कुछ समर्थन करता है। यह ऋषि शब्द है। शतपथ ब्राह्मण में लिखा है ऋषि वामदेव ने ऋग्वेद की ऋचाओं को देखते हुए पाया। "तदेतत् पश्यन्नृषिर्वामदेव प्रतिपेदे" (१४ ४।२ २२)

क्या पाणिनि से पूर्व भी लेखन-कला थी ?

ऐतरेय ब्राह्मण—"तद्देतदृषि. पश्यन्नुवाच नियुत्वाँ इन्द्र-सारथि. (६ १)

ऋक्प्रातिशाख्य—"ऋषयो मन्त्रद्रष्टार."

नागोजीभट्ट—"यज्ञकाण्डद्रष्टार ऋषय (१।१।१) ऋषिशब्देनात्र मन्त्रद्रष्टार ।"

पाणिनि स्वय भी "दृष्टं साम" कहते हैं।

यास्क—"एवमुच्चावचैरभिप्रायै ऋषीणा मन्त्रदृष्टयो भवन्ति (नि० २-११) "ऋषिदर्शनात् स्तोमान् ददर्श इत्यौपमन्यव ।"

सायण—"ऋषिभिरतीन्द्रियार्थप्रकाशकैर्मन्त्रै" (ऋक् ५ १ १८६ ८) पिछले दो प्रमाणो से ऋषि शब्द वेद का पर्यायवाची माना गया है। और पाणिनि ने भी "छन्दसि ऋषौ" (४ ४ ६६) इस सूत्र में ऋषि शब्द से वेद लिया है। काशिकाकार यहां पर कहता है "ऋषिर्वेदो गृह्यते।"

इन सब प्रमाणो का भाव यह है कि ऋषियों ने वेदों को देखा। देखने का तात्पर्य हमारी समझ में प्राचीनकाल में मन में देखना न था प्रत्युत लिखे हुए को देखना कहा जाता था। मन मे तो 'मनन' होता है। 'देखना' आँखों से होता है।

इस प्रकार हमने प्रो० मेक्समूलर से आरंभ करके अन्त तक उसकी युक्तियों का भी साथ-साथ खडन करते हुए सिद्ध किया है कि पाणिनि और उसके बहुत पहले तक लेखन-कला विद्यमान थी।

अब हम अपने लेख का साराश बताकर उपसहार उपसहार करते है—

(१) मेक्समूलर ने स्वय ही ऐसे शब्दो को लिखा है जिनसे उसे भी यह बात कि "प्राचीन भारत मे लेखन-कला विद्यमान नहीं थी"—इस विषय में सदेह है। जैसे 'कात्यायन ने वार्तिक लिखे' इत्यादि।

(२) योरपीय विद्वान् भी (विलसन आदि) इस बात को मानते हैं कि भारत मे लेखन-कला विद्यमान थी। यद्यपि उनमें (ग्रन्थकारो) का काल और हमारा काल पृथक-पृथक है।

(३) यूनान के ऐतिहासिक प्रमाण द्वारा भी प्राचीन भारत में लेखन-कला को सिद्ध किया गया है।

(४) पाणिनि के 'यवनानी' 'लिपिकर' शब्दों से भी लिपि-कला को प्राचीन भारत में सिद्ध किया गया।

(५) मेक्समूलर की 'कागज़' 'कलम' 'दवात' संबंधी प्रधान युक्ति का भी खण्डन किया गया।

(६) पाणिनि में 'पटल', 'खंड', 'सूत्र', 'ग्रंथ', तथा महाभारत के 'ग्रथ' (ग्रथक) शब्द से भी सिद्ध किया गया कि पाणिनि लिखना और पढ़ना अवश्य जानते थे।

(७) पाणिनि में 'वर्ण' और 'वर्ण स्वर' शब्दों का भाव भी इसी संबध में बताया गया।

(८) 'अरस्तू' के Ypáuuata इस शब्द के आधार पर भी मेक्समूलर का खडन किया गया।

(९) पाणिनि मे 'कार' 'उपदेश' 'करण' तथा 'अक्षर' शब्दों से भी पाणिनि की लेखन-कलाभिज्ञता प्रमाणित की गई।

(१०) कात्यायन प्रातिशाख्य के प्रमाण से भी यही सिद्ध किया गया।

(११) पाणिनि और उसके पूर्वभव वैयाकरणों के परस्पर सम्बन्ध से भी प्रस्तुत विषय को सिद्ध किया गया।

(१२) पाणिनि के अन्तिम सूत्र ' अ अ ' से भी पाणिनि का लिखना और पढ़ना सिद्ध किया गया।

(१३) पाणिनि में 'लोप' और 'आगम' शब्दों से भी यही सिद्ध किया गया।

(१४) पाणिनि-काल में पशुओं के कान पर स्वस्तिकादि चिन्ह लगाए जाते थे; इस बात को भी प्रमाणित करके प्रस्तुत विषय का समर्थन किया गया।

(१५) अत मे मेक्समूलर के 'महाभारत' के अपने ही प्रमाण से उसका खंडन किया गया। तथा पाणिनि से पूर्व भी लेखन-कला विद्यमान थी—इस पर भी थोड़ा-सा प्रकाश डाला गया।

हमारे विचार में हमने जितने प्रमाण दिए हैं (वे ऐसे हैं जो) सर्व- साधारण को भली प्रकार समझ में आ सकें। हमारे इस लेख को पढ़कर हमें आशा है—कोई भी भारतीय अथवा योरपीय विद्वान् पाणिनि तथा अन्य प्राचीन विद्वानों की सभ्यता को मलीन करने का दुःसाहस नहीं करेगा।

परमानन्द शास्त्री "आनन्दबन्धु"

सूक्ति-सुधा

(१)

उत्सव अनूपम रमा को सुविचारि भले ,
देवगन फूल पारिजात बरसाए हैं ;
कैधौं अति चाह ये 'बिसारद' उछाह-भरे ,
चाह धरे नखत अवनि चलि आए हैं ।
देखत बनत पै बखानत बनत नाहिं ,
जगमग-ज्योति के समूह सरसाए हैं ;
मंदिरन मंदिर अतूल छबि छाए सुचि ,
पीत-मनि-माल दीप-जाल धौं सुहाए है ।

(२)

आवनि नको है रात कलपत पायो प्रात ,
पल-भर पल हम पल सो न पारे हैं ;
बस अटु वारी यह कौन-सो बतैए चाल ,
मूठी मूठी बात बदि बिरद बिगारे है ।
छाहि के सु दाँउ कोऊ चतुर तिया पै भले ,
बसे हो 'बिसारद' कहत अग सारे है ;
चौकसी रही न जी तनक कहूँ रावरे के ,
परबस परि सरबसु आप हारे है ।

(३)

चहकि चकोर जुरि जुरि ढिंग आवैं घने ,
बहँकि कलापी परैं पाछे, का बताइए ;
औरन की और अरपर उमकत आली !
मिलत न पथ कहा जतन कराइए ।
भरी अभिलाष भौन भीतर मढ़ीई रहौं ,
बाहर कढ़न ही को ज्यों तु क्यों बनाइए ।
बिधना की मति ! भले दीन्हें ऐसे गुन ,
कहु कैसे ते सुगुन जिन्हें पाइ पछिताइए ।

(४)

उछलत सिंधु, मेरु, बिन्ध्यवर बिछुलत ,
पछिलत दिग्गज त्रिगतनि थलंका है ;
कूरम सुकोल सेस बेस दहलत हीय ,
हलत धराहू धीर-रहित लमका है ।
भनत 'बिसारद' गगन घोर रव छायो ,
होन चाहै गरद गुमान-गढ़-लंका है ;
डंका देत दल के पयान को भलेई आजु ,
राम रन-बंका को बजत दीह डंका है ।

(५)

कैधौं छीर-सागर की ललित लहर धाइ ,
धाम-धाम धवलि सु-छबि सरसाई है ।
कैधौं खुलि पारद की पानिप सों पूरी खानि ,
दसहू दिसानि मे भरी लै रुचिराई है ।
कैधौं या 'बिसारद' नवल निसि नागरी की ,
मद मुसकानि आभा अमल सुहाई है ।
ताप की हरनि, दुख दरद दरनि बेस ,
राजि रही कैधौं सुचि सरद जुन्हाई है ।

बलदेवप्रसाद टंडन

लाल झंडी

सिमियन इवानफ़ एक गुमटिहा था । रेल आने के समय फाटक बंद करके गुमटी पर मौजूद रहना और गुमटी के हद मे जितनी रेल की पटरी थी, उसी की देख-रेख रखना उसका काम था । उसकी गुमटी बीच जगल मे स्थित थी । एक ओर का स्टेशन आठ मील और दूसरी ओर का छ मील की दूरी पर था । वहाँ से तीन मील की दूरी पर अभी साल-भर हुए एक कपड़ा बुनने का पुतलीघर खुला था । इस पुतलीघर की लबी काली चिमनी जगल के पीछे वहाँ से दिखाई पड़ती थी । आसपास कोई बस्ती नहीं थी । बस्ती के नाम पर यही दूर-दूर पर बनी हुई और गुमटियाँ थीं ।

सिमियन इवानफ़ का स्वास्थ्य बिलकुल बिगड़ गया था । आज से नव वर्ष पहले तो वह हट्टा-कट्टा आदमी था । तब वह एक फ़ौजी अफ़सर की नौकरी में था और रूस और तुर्की के बीच मे होनेवाली एक लड़ाई भी देख चुका था । उसने धूप और वर्षा, सर्दी और गर्मी सभी सहन की थी । भूखे-प्यासे बीस-बीस पचीस-पचीस मीलों की मंज़िलें मारने का भी उसे अनुभव था । कई बार गोला-बारी के झपेट मे पड़ चुका था । बंदूक की गोलियाँ उसके कानो के पास से सनसनाती गुज़र गई थीं । लेकिन ईश्वर की कृपा से उसे एक भी लगी न थी ।

सिमियनवाला रिसाला एक बार बिलकुल आगे पड़ गया था। पूरे एक सप्ताह तक तुर्की सैनिकों का सामना रहा। प्रतिद्वंदी फ़ौजों के बीच मे केवल एक दर्रा था और सवेरे से शाम तक दोनों ओर से बंदूकें चला ही करती थीं। दिन में तीन बार सिमियन बावर्चीख़ाने से उस दर्रे तक अपने अफ़सरों के लिये चाय-पानी और खाना पहुँचाता। गोलियाँ उसके पास से सनसनाती हुई चट्टान मे आकर लगतीं। वायु-मंडल बंदूकों की आवाज़ से गूंजा करता। सिमियन बहुत भयभीत होता, कभी-कभी चिल्ला उठता, परन्तु अपने काम मे मुस्तैद था। अफ़सर लोग उससे प्रसन्न इसलिये रहते कि उन्हें सदा गर्म चाय पहुँचती थी।

जब वह लड़ाई से लौटा, तो ईश्वर की दया से उसके हाथ-पैर तो सही सलामत थे; लेकिन उसे गठिया का मर्ज़ पैदा हो गया था। इस बीच में उस पर दुःख भी थोड़ा नही टूटा था। उसको अपने गाँव मे घर आने पर पता चला कि उसका वृद्ध पिता और चार वर्ष का एक-लौता बेटा मर गया। सिमियन अपनी स्त्री के साथ अकेला रहने लगा। गठिया का मर्ज़ बुरा होता है, दोनों मिलकर भी बहुत न कमा पाते। उन दोनों ने सोचा कि गाँव मे अब गुज़र नहीं होता, इसलिये गाँव छोड़-कर दूसरी जगह नौकरी की खोज में निकल पड़े। थोड़े दिन तो उन्हें किसी रेल के स्टेशन पर कुछ काम मिल गया; लेकिन वह बँधी नौकरी नहीं थी। इसके बाद उसकी स्त्री को कहीं धंधा मिल गया, परन्तु सिमियन यों हीं बेकार एक स्थान से दूसरे स्थान पर फिरने लगा। एक बार उसे किसी एंजिनवाले ने एंजिन पर बैठा लिया। एक स्टेशन पर उसे स्टेशनमास्टर का मुँह परिचित-सा जान पड़ा। सिमियन स्टेशनमास्टर को ध्यान से देखने लगा, और स्टेशनमास्टर भी सिमियन का मुँह देखने लगा। फिर दोनों एक दूसरे को पहिचान गए। वह स्टेशन-मास्टर सिमियन के रिसाले का एक अफ़सर रह चुका था।

उसने कहा, "तुम्हारा नाम इवानफ़ है?"

"जी-हुज़ूर।"

"तुम यहाँ कैसे?"

सिमियन ने अपनी कहानी कह सुनाई।

"अच्छा तुम जा कहाँ रहे हो?"

"कहाँ बताऊँ, हुज़ूर।"

"बेवक़ूफ़ 'कहाँ बताऊँ' के क्या मानी?"

"हुज़ूर, ठीक ही कहता हूँ। मेरे लिये कहीं जाने की जगह नहीं है। काम की खोज में मारा-मारा फिर रहा हूँ।"

स्टेशनमास्टर ने उसकी ओर फिर ध्यान से देखा, एक-क्षण कुछ विचार करके बोला, "अच्छा तो भई, तुम यहीं स्टेशन पर ठहर जाव। तुम्हारा तो ब्याह हो चुका है न? तुम्हारी घरवाली कहाँ है?"

"जी हुज़ूर, मेरा ब्याह हो गया है, मेरी घरवाली ने कुरश मे एक सौदागर के यहाँ नौकरी कर ली है।"

"अच्छा, तो उसे भी लिखकर बुला भेजो। एक गुम-टिहे की जगह ख़ाली हुई है। मैं बड़े साहब से तुम्हारी सिफारिश कर दूँगा।"

सिमियन ने कहा, "हुज़ूर की बड़ी मेहरबानी होगी।"

सिमियन वहीं स्टेशन पर उतर गया। स्टेशनमास्टर के चौके में काम करता, जलाने की लकड़ी काट लाता, आँगन साफ रखता और स्टेशन के प्लैटफ़ार्म पर झाड़ू लगाता। एक पखवारे में उसकी घरवाली भी आ गई और दोनो एक ट्रॉली पर सवार कराकर अपनी गुमटी पर पहुँचा दिए गए। गुमटी नई ही बनी थी, ख़ूब गर्म थी। जलाने के लिये लकड़ी की कोई कमी नहीं थी—सारा जंगल ही पड़ा हुआ था। गुमटी से मिला हुआ एक छोटा-मोटा तरकारी का बाग़ीचा भी था, जिसे पहिले गुमटिहे ने लगाया था। रेल की पटरी के दोनों ओर बीघा-दो-बीघा जुताऊ भूमि भी थी। सिमियन का जी ख़ुश हो गया। सोचा, धीरे-धीरे थोड़ी-सी खेती भी कर लेंगे और एक गाय और एक घुड़िया भी रख लेंगे।

महकमे से उसे सब आवश्यकीय वस्तुएँ मिल गईं। एक हरी झंडी, एक लाल झंडी, लालटेनें, बिगुल, हथौड़ी, सनसी, कुदाल, झाड़ू, ढिबरियाँ, कांटियाँ—जिन-जिन वस्तुओं की ज़रूरत थी, वह पा गया। इसके साथ ही उसे एक टाइम-टेबिल और एक नियमावली भी मिली। शुरू मे तो सिमियन को रात-रात-भर नींद न आती। पड़ा-पड़ा टाइम-टेबिल देखा करता, यहाँ तक कि उसे सारा टाइम-टेबिल याद हो गया। गाड़ी आने के समय से दो घंटा पहले ही वह अपनी गुमटी के सामने बेंच पर बैठ जाता और कान लगाकर गाड़ी की घरघराहट सुनता, तथा पटरियों का हिलना देखता। उसे नियमावली भी पूरी-पूरी याद होगई थी।

गर्मी का मौसम था। काम अधिक नहीं था। पटरियों पर से बर्फ़ साफ़ करने का काम भी नहीं था। गाड़ियाँ भी बहुत कम आती थीं। सिमियन अपने हद के भीतर की पटरी दिन में दो बार देख-भाल लेता। जहाँ ढिबरियाँ ढीली होतीं, उन्हें कस देता, स्लीपर अगर दब गए होते या टेढ़े हो गए होते, तो उन्हें भी ठीक कर देता, पानी के नल को भी देख लेता और फिर अपने धंधे में लगता। इस नौकरी में एक ही बुराई थी। अगर उसे ज़रा सा भी कोई निजी काम करने की इच्छा होती, तो उसके लिये इंस्पेक्टर की इजाज़त माँगनी पड़ती। इससे सिमियन और उसकी घरवाली दोनों का जी ऊबने लग गया था।

दो महीने बीते। सिमियन ने धीरे-धीरे अपने दोनों ओर के पड़ोसी गुमटिहों से जान-पहचान पैदा कर ली। इनमें से एक तो बहुत वृद्ध हो गया था और महकमा उसकी जगह पर दूसरा गुमटिहा नियुक्त करनेवाला था। वह अपनी गुमटी छोड़कर बहुत कम बाहर आता-जाता। उसकी स्त्री उसका सब काम सँभाले हुए थी। दूसरी ओर का गुमटिहा एक जवान आदमी था। था तो दुबला-पतला, लेकिन गठे शरीर का था। सिमियन की और उसकी पहली भेंट दोनों की गुमटियों के बीचोबीच रेल की पटरी ही पर हुई थी। सिमियन ने अपनी टोपी उठाकर उसका अभिवादन किया था। पूछा था—"भाई, कुशल से तो हो।"

लेकिन उस पड़ोसी ने उसे तिरछी नज़र से देखकर केवल इतना कहा था—"हाँ, सब कुशल है, तुम तो कुशल से हो?" बस, इतने अभिवादन के बाद वह अपनी राह चला गया था।

कुछ दिनों बाद दोनों की घरवालियों की भी भेंट हुई। सिमियन की स्त्री अपनी पड़ोसिन के यहाँ दिन में अक्सर आती-जाती, लेकिन वह भी बहुत बातचीत न करती।

एक दिन सिमियन ने अपनी पड़ोसिन से कहा, "भली औरत, तेरा आदमी सदा चुप्पी क्यों साधे रहता है, मैं तो उसे बहुत कम बोलता-चालता देखता हूँ।"

पहले तो स्त्री भी चुप रही, परंतु बाद में उसने उत्तर दिया था कि "बातचीत भी क्या करें? हर एक आदमी अपने धंधे में लगा रहता है। तुम भी अपने काम में लगो। भगवान् तुम्हारा भला करे!"

परंतु एक महीना बीतते-बीतते पड़ोसियों में परिचय बढ़ गया। सिमियन अपने पड़ोसी वासिली के साथ पटरी के किनारे बैठकर हुक़्क़ा पीता और ज़िंदगी के प्रश्न पर चर्चा किया करता। वासिली अधिकतर चुपचाप बैठा रहता और सिमियन अपने गाँव की तथा अपने पलटन की चर्चा किया करता।

सिमियन अक्सर कहता—"भाई, मैंने थोड़ा कष्ट नहीं सहा है, और अभी मेरी उम्र ही कितनी है। भगवान् ने हमें कोई ऐसा सुख न दिया—लेकिन जैसी उसकी मर्ज़ी होगी, वैसा ही होगा। इसमें कोई फ़र्क़ नहीं हो सकता। भाई, वासिली, बात यही है न?"

वासिली पटरी के पास हुक्के की राख गिराकर उठ खड़ा हुआ और कहने लगा, "इस ज़िंदगी में भाग्य हमारा पीछा नहीं करता, पीछा करते हैं हमारे ही भाई-बंद। मनुष्य से अधिक निर्दयी जन्तु इस पृथ्वी पर दूसरा नहीं बनाया गया। भेड़िया भेड़िए को नहीं खाता, लेकिन आदमी आदमी को सहज में खा जायगा।

"न भाई, ऐसा न कहो, भेड़िया ही भेड़िए को खाता है।"

"जो बात मेरी समझ में आती है, वही कहता हूँ। सच बात तो यही है, आदमी से बढ़कर निर्दयी जीव कोई दूसरा नहीं। आदमी अपनी दुष्टता और लोभ को छोड़ दे, तो संसार रहने लायक जगह हो जाय। जिसे देखो वही तुम्हारे टुकड़े करना चाहता है और चाहता कि तुम्हें खा हो जायँ।"

सिमियन ने क्षण-भर सोचकर कहा, "भाई, मैं नहीं कह सकता। शायद वही ठीक है, जो तुम कह रहे हो। और शायद यही ईश्वर की मर्ज़ी है!"

वासिली चिढ़कर बोल उठा "और शायद तुमसे बात करना भी मूर्खता है और समय का नष्ट करना है। तुम सभी अप्रिय बातों को भगवान् के सिर पर रख देते हो। इसका अर्थ यह होता है कि तुम मनुष्य नहीं हो, पशु हो! और मैं इससे ज़्यादा क्या कहूँ?"

यह कहकर वासिली ने, अपने मित्र की ओर पीठ फेर ली और बिना नमस्कार किए हुए ही वहाँ से चला गया।

सिमियन भी उठ खड़ा हुआ। पुकारकर कहा, "भाई नाराज़ न हो; सुनो तो। मैंने तो कोई ऐसी बात नहीं कही है।" लेकिन वासिली चला ही गया, रुका नहीं।

सिमियन एकटक खड़ा देखता रहा। जब तक वासिली वहाँ से दिखाई देता रहा, तब तक वह वहीं खड़ा रहा। फिर अपनी गुमटी पर चला आया। घर आकर सिमियन ने अपनी स्त्री से कहा, "अरी ना, हमारा पड़ोसी बड़ा दुष्ट है, उसे तो आदमी न कहना चाहिए।"

सिमियन लड़ाके स्वभाव का न था। दोनों की फिर भेंट हुई। दोनों फिर उसी भाँति मिलने और उन्हीं विषयों पर वार्तालाप करने लगे।

एक अवसर पर वासिली ने कहा, "अरे मित्र, मनुष्यों की नीचता के कारण ही आज हम लोग इन झोपड़ों में ठूँस दिए गए हैं।"

"तो इन झोपड़ों में रहना क्या बुरा है? इनमें आदमी क्या रह नहीं सकता?"

"ज़रूर रह सकता है! क्यों नहीं? अरे तुम... तुम इतने बड़े हुए, पर आज तक अक्ल न आई। बहुत दुनिया देखी, पर समझ जैसी-की-तैसी बनी रही। यहाँ झोपड़ों में हम लोगों को जैसी ज़िंदगी बीत रही है, मैं ही जानता हूँ। अरे मनुष्य-भक्षी लोगों के चंगुल में हम लोग फँसे हुए हैं। ये लोग हमारा ख़ून चूसे लेते हैं और जब हम वृद्ध हो जायँगे, तो हमें उस प्रकार ये लोग निकाल बाहर कर देंगे, जिस प्रकार कि अन्न के ऊपर से भूसा निकालकर सुअरों के आगे डाल दी जाती है। तुम क्या तनख्वाह पाते हो?"

"वासिली, मेरी तनख्वाह तो ज्यादा नहीं है—बारह रूबल* है।"

"और मैं साढ़े तेरह रूबल पाता हूँ। बताओ नियमावली में लिखे अनुसार हमें पंद्रह रूबल मिलना चाहिए कि नहीं। जलाने की लकड़ी और रोशनी इसके अलावा है। क्यों इसमें भी कतरनी लगाई जाती है। डेढ़ या तीन रूबल की कोई बात नहीं है। तुम्हीं कहो, भला इतने में कोई रह सकता है। पंद्रह रूबल पूरे मिलें, तब भी उसमें क्या हो सकता है। अभी पिछले महीने मैं स्टेशन पर गया हुआ था। बड़े साहब गुज़र रहे थे। मैंने भी उन्हें देखा। मुझे भी यह सौभाग्य प्राप्त हुआ। उनके लिये एक पूरा डिब्बा अलग था—कैसा डिब्बा था, मैं क्या बताऊँ। आप अकड़कर उसमें-से निकले और प्लेटफ़ार्म पर खड़े हो गए। लोगों ने सलामियाँ बजाईं और चले गए... अपनी हालत पर ध्यान दो! मैं तो यहाँ नहीं रुकने का, मैं कहीं चला जाऊँगा, चाहे जहाँ चला जाऊँ, जहाँ कहीं अपने पैर ले जायँगे, चला जाऊँगा।"

"लेकिन वासिली तुम जाओगे कहाँ? इस झगड़े में न पड़ो। यहाँ घर है, आराम है। जोतने के लिये थोड़ी-सी ज़मीन मिल गई है। घरवाली भी तुम्हारी काम-काजी है। और क्या चाहते हो?"

"ज़मीन मिल गई है? क्यों नहीं? मेरी ज़मीन देखो, तो पता चले, एक पत्ती तो उसमें उगती नहीं। पिछली फ़सल में मैंने कुछ गोभियाँ बो दी थीं, मुआयने के लिये इंसपेक्टर आया हुआ था, बोला "यह क्या है? इसकी रिपोर्ट तुमने क्यों नहीं दी? बिना इजाज़त तुमने यह क्यों किया। इन्हें जड़ से खोदकर अभी फेंक दो।" पाजी शराब पिए हुए था। दूसरे वक्त आया होता, तो उसे इसका ख़याल भी न होता; लेकिन नशे में सूझती भी तो है! हुआ क्या? तीन रूबल जुर्माना कर गया।"

वासिली क्षण-भर चुप रहा, हुक्का पीता रहा। फिर स्थिर भाव से कहने लगा, "ज़रा कुछ और बोलता, तो मैं भी उसकी मरम्मत किए बिना न रहता।"

"भई, तुम्हारा मिज़ाज बड़ा गर्म है।"

"अजी नहीं, यह बात नहीं है, मैं सच कहता हूँ, मुझे बान लग गई। हाँ देखो, एक दिन मैं उसकी नाक लाल किए बिना न रहूँगा। मैं बड़े साहब के यहाँ तक मामला पहुँचाऊँगा। देखना!"

वासिली ने सचमुच बड़े साहब तक शिकायत पहुँचा दी।

एक बार बड़े साहब आप ही पटरी का मुआइना करने के लिये आए। बात यह थी कि सेंटपीटर्सबर्ग (राजधानी) से कुछ प्रसिद्ध राजनैतिक व्यक्ति किसी मामले की जाँच में वहाँ से गुज़रनेवाले थे। इसलिये यह आवश्यक समझा गया कि लाइन बिलकुल ठीक रहे। फिर क्या था, पत्थर के रोड़े फिर से बिछवाए जाने लगे। पटरियाँ बराबर की जाने लगीं, लकड़ी के स्लीपरों का भी बड़े ध्यान से मुआइना हुआ। ढिबरियाँ कसी जाने लगीं, आँकड़े ठीक किए गए। खंभे रँगे गए। गुमटियों के पास बालू पड़ने लगा—सारांश यह कि उन राजनीतिज्ञों के स्वागत में जो-जो सामान हो सकता था, किया गया। पड़ोस के बुड्ढे गुमटिहे की स्त्री ने अपने पति

* रूसी सिक्का।

को घास साफ़ कर डालने के लिये कहा । सिमियन भी लगातार एक सप्ताह तक मेहनत करता रहा । उसने सब सामान लैस कर दिया, अपनी वरदी साफ़ की और मरम्मत की। उसके पीतल के बटन चमकाए। वासिली ने भी पूरी मेहनत की। अंत में बड़ा साहब अपनी पहियोंवाली ट्राली पर सनसनाता हुआ पंद्रह मील की रफ्तार से उधर से गुज़रा। एकाएक उसकी ट्राली सिमियन की गुमटी के सामने रुकी । सिमियन ने गुमटी से दौड़कर साहब को सलाम किया । साहब उसकी मुस्तैदी पर प्रसन्न हुए। सब बातें ठीक पाई गईं ।

साहब ने पूछा—"तुम यहाँ क्या बहुत दिनों से हो ?"

"हुज़ूर, मैं दूसरी मई से यहाँ नौकर हुआ हूँ ।"

"ठीक है । नं० १६४ की गुमटी पर कौन है ?"

बड़े साहब के साथ छोटा साहब भी था, वह बोल उठा—"वासिली स्पिरिडाफ़ है ।"

बड़े साहब ने सिर खुजलाते हुए कहा, "स्पिरिडाफ़, स्पिरिडाफ़ कौन, वही तो नहीं, जिसकी पिछली बार तुमने मुआइने में शिकायत की थी ।"

"जी हाँ, वही है ।"

"अच्छा, तो अब उसका मुआइना करूँगा। चलो ।" ट्राली चलानेवालों ने पहिया घुमाया और फिर ट्राली दौड़ती नज़र आई। सिमियन उसे ध्यान से देखता रहा। मन में सोचने लगा, "आज वासिली से और इनसे कुछ खटपट ज़रूर होगी ।"

क़रीब दो घंटे बाद वह अपने नित्य के नियम के अनु-सार पटरी की निगरानी के लिये निकला। उसे दूर पर कोई पैदल आता हुआ दिखाई पड़ा। आनेवाले के सर पर कुछ सफ़ेद-सा दिखाई पड़ रहा था। सिमियन और भी ध्यान से देखने लगा। वासिली ही आ रहा था। हाथ में एक लाठी थी, पीठ पर एक छोटी-सी गठरी और उसके मुँह पर एक अँगोछा बधा हुआ था।

सिमियन ने पुकारकर पूछा। "अरे कहाँ जा रहे हो ?"

वासिली निकट आया। उसका मुँह मिट्टी के रंग-सा पीला पड़ रहा था। उसकी आँखों में वहशत मालूम पड़ रही थी। गला रुँध रहा था, बोला, "शहर जा रहा हूँ। मास्को जाऊँगा—सदर दफ़्तर में ।"

"सदर दफ़्तर में क्यों जाओगे ? जान पड़ता है, शिका-यत करने जा रहे हो। वासिली स्पिरिडाफ़, जाने भी दो, भूल जाओ, इससे कुछ लाभ नहीं होने का ।"

"नहीं भाई, भूल कैसे जाऊँ ? यह भी भूलने की बात है ! बहुत हो चुका। उसने मेरे मुँह में इस ज़ोर से थप्पड़ लगाया कि ख़ून निकल पड़ा। ज़िंदगी-भर तो भूल नहीं सकता। मैं यह मामला यहीं तक थोड़े ही रहने दूँगा ।"

सिमियन ने वासिली का हाथ पकड़ लिया। कहने लगा—मान जाओ। फ़िज़ूल का बखेड़ा न उठाओ, इसका कुछ भी नतीजा न होगा ।"

"नतीजा तो जो होना है, मैं भी जानता हूँ, लेकिन करूँ क्या ? तुम ठीक कहते थे कि भाग्य में जो होता है, होकर रहता है। ख़ैर, अपने हक़ के लिये भी लड़ लूँगा। आगे देखा जायगा ।"

"लेकिन, यह तो बताओ कि बात क्या हुई ।"

"बात कुछ भी नहीं हुई। उसने सब चीज़ों की जाँच की। ट्राली पर से उतरकर गुमटी के भीतर भी आया। मैं पहले ही से जानता था कि वह बड़ी सख़्ती करेगा, इसीलिये मैंने सभी वस्तुएँ बहुत क़ायदे से रख छोड़ी थीं। वह जब चलने को हुआ, तो मैंने अपनी शिकायत फिर से पेश की। बस, इसी पर बिगड़ गया। कहने लगा। "यहाँ तो सरकारी जाँच के लिये बड़े-बड़े लोग इस लाइन से आ रहे हैं और तुम्हें तरकारियों की पड़ी हुई है। मैं तुम्हारी गोभियों की सुनूँ कि उनका इंतिज़ाम करूँ।" बस, मेरे मुँह से भी कुछ निकल पड़ा, इसी पर वह आग बबूला हो गया। मुँह पर थप्पड़ लगा ही तो दिया। मैं खड़ा रहा, कुछ न बोला। उसके लिये जैसे कोई बात ही न हो। अब वह चला गया, तो मैंने भी मुँह धोया, और सीधे आ रहा हूँ ।"

"गुमटी की क्या फ़िक्र की है ।"

"मेरी घरवाली तो है ही। गुमटी पर वह रहेगी। पटरी की मुझे फ़िक्र नहीं ।"

वासिली चलने लगा। कहने लगा—"भाई इवानफ़, जाता तो हूँ। देखूँ दफ़्तर में मेरी सुनवाई भी होती है कि नहीं। नमस्कार ।"

"तो क्या तुम पैदल ही इतनी दूर जाओगे ?"

"नहीं अगले स्टेशन पर देखूँगा। कोई मालगाड़ी मिल गई, तो कल तक मास्को पहुँच जाऊँगा ।"

दोनों एक दूसरे को प्रणाम करके बिदा हुए। वासिली कई दिनों तक बाहर ही रहा। उसकी घरवाली रात-दिन मेहनत करके उसका काम सँभाले हुए थी। बेचारी को सोना हराम हो गया था। दिन-रात अपने आदमी की प्रतीक्षा में रहती। तीसरे दिन जाँच करनेवाले राजनीतिज्ञ उधर से गुज़रे। उनके लिये एक स्पेशल गाड़ी थी, जिसमें एंजिन के अलावा एक असबाब का डिब्बा और दो अव्वल दर्जे के डिब्बे लगे हुए थे ; परतु वासिली का अब तक कोई पता न था। चौथे दिन सिमियन उसकी घरवाली से मिला। बेचारी का रोते-रोते मुँह फूल आया था और आँखें लाल हो गई थीं।

सिमियन ने पूछा, "तेरा आदमी लौटा कि नहीं।" उसने हाथ हिलाकर जवाब दिया और अपने काम में लगी रही। एक बात भी उसके मुँह से न निकली।

सिमियन ने लड़कपन में एक छोटा-सा हुनर सीख लिया था। वह नरकुल की डंडियों से एक प्रकार की बाँसुरी बना सकता था। वह नरकुल की डंडियों को भीतर से जलाकर साफ़ कर लिया करता, उसमें छेद कर लेता, और मुँह के पास एक और टुकड़ा ऐसे ढंग से लगा देता कि सहज में बाँसुरी तैयार हो जाती और उसमें से जैसा सुर चाहो, निकल आता। वह फ़ुरसत के समय ये बाँसुरियाँ तैयार करता और मालगाड़ी पर काम करनेवाले कुलियों के ज़रिए से शहर में भेज देता, वहाँ ये सब बिक जातीं। उसे भी एक-एक बाँसुरी के दो-दो कोपेक* मिल जाते। जिस दिन कमीशन उस तरफ़ से गुज़रा उसके दूसरे दिन सिमियन अपनी घरवाली को गुमटी पर छोड़कर और ६ बजेवाली गाड़ी पर मौजूद रहने के लिये कहकर आप जंगल में लकड़ी काटने के लिये चला गया। वह अपनी पटरी की हद तक पहुँच गया। यहाँ पर रेल की पटरी मोड़ खाकर एक पहाड़ी की तलहटी में जंगल के बीच होकर चली गई थी। यहाँ से क़रीब आधे मील की दूरी पर एक तालाब था। उसी के किनारे बहुत अच्छी नरकुल उग रही थी। इन्हीं से वह बाँसुरियाँ बनाया करता था। सिमियन ने वहाँ पहुँचकर एक पूरा बोझ काटकर बाँधा और घर की ओर लौटा। संध्या हो रही थी। सूर्य डूबनेवाला था। सन्नाटा था। केवल रह-रहकर घोंसले में लौटनेवाली चिड़ियों का चहचहाना सुनाई पड़ जाता था। सिमियन के कानों में अचानक ऐसी आवाज़ सुनाई दी, जैसी कि लोहे पर लोहा पीटने से होती है। उसने क़दम बढ़ाया। उन दिनों पटरी की मरम्मत भी आस-पास में कहीं नहीं हो रही थी। "आख़िर मामला क्या है ?" यही सोच रहा था। वह जंगल से निकलकर रेल की पटरी की तरफ़ आया। ऊपर सिर से ऊँचे पर उसे रेल की पटरी की उँचास मालूम पड़ने लगी। उसने देखा कि पटरी पर कोई आदमी बैठा हुआ, कुछ कर रहा है। सिमियन चुपके-चुपके उसकी ओर चढ़ने लगा। उसने समझा कोई चोर पटरी से ढिबरियाँ निकाल रहा है। वह ग़ौर से देख रहा था कि इतने में दूसरा आदमी भी उठ खड़ा हुआ। उसके हाथ मे एक बड़ी सब्बल थी। उसने रेल की एक पटरी बिलकुल खोलकर अलग कर दी थी। रेल के आते ही वह खसककर एक ओर गिर जाती। सिमियन की आँखों के सामने अँधेरा आ गया। वह चिल्लाना चाहता था, लेकिन उसके मुँह से आवाज़ न निकली। यह दूसरा आदमी था—वासिली ! सिमियन ज्यों ही उसके पास पहुँचा, वह अपनी सब्बल लेकर दूसरी ओर उतर गया।

"वासिली ! अरे भाई, लौट आओ। लाओ अपनी सब्बल मुझे दे दो। हम लोग मिलकर पटरी ठीक कर देंगे। कोई जान भी न पावेगा। लौट आओ। ऐसा पाप अपने सिर पर न लो !"

वासिली ने पीछे घूमकर देखा भी नहीं। वह जंगल में गायब हो गया।

सिमियन उस निकाली हुई रेल की पटरी के पास खड़ा रहा। सिर से उसने लकड़ी का बोझ उतारकर वहीं पटक दिया। गाड़ी आने में थोड़ा ही समय रह गया था। मालगाड़ी भी नहीं थी, सवारी गाड़ी थी। सिमियन के पास कोई ऐसी चीज़ नहीं थी, जिससे कि वह गाड़ी रोक सकता, झंडी भी यहाँ नहीं थी। ख़ाली हाथों रेल की पटरी ठीक नहीं हो सकती थी। बेचारा कर ही क्या सकता था। गुमटी तक दौड़कर पहुँचना और औज़ार ले आना बहुत आवश्यक था। मन में कहने लगा, "ईश्वर तुम्हीं सहायक हो !"

सिमियन अपनी गुमटी की ओर दौड़ा। उसका दम फूल रहा था, लेकिन बेचारा गिरता-पड़ता दौड़ रहा था। उसने बहुत रास्ता तो पार कर लिया। लेकिन

* रूसी सिक्का।

जिस समय अपनी गुमटी के दो-सौ क़दम पर पहुँचा होगा, तो उसे जंगल के उस पार के पुतलीघर की संध्या की छः बजेवाली सीटी सुनाई दी। दो मिनट के भीतर सात नंबर की गाड़ी आनेवाली थी। वह चिल्ला उठा, "हे ईश्वर, बेक़सूरों की रक्षा करना।" उसे मन में ऐसा जान पड़ने लगा कि एंजिन उस निकाली हुई पटरी तक पहुँच गया है, उसकी टक्कर से पटरी अलग हो गई है, लकड़ी के सिलीपर चूर-चूर हो गए हैं। आगे ही मोड़ है। रेल की पटरी आसपास की भूमि से सत्तर फ़ीट की ऊँचाई पर है एंजिन उलटकर नीचे आ रहेगा—तीसरे दर्जे के ठसाठस भरे हुए डिब्बे होंगे छोटे-छोटे बच्चे होंगे—बेचारे स्वप्न में भी न सोचते होंगे कि यह भयानक स्थिति उनके सामने है। "हे भगवन्, क्या करूँ? गुमटी तक पहुँचकर लौटना असंभव है"

सिमियन लौट पड़ा। अपनी गुमटी की ओर नहीं गया। लौटा और भी तेज़ी से। उसे अपने तन की सुध नहीं थी। मानों आँखें बंद करके दौड़ रहा हो। उस पटरी तक पहुँचा। उसकी लकड़ियों का पास ही ढेर लग रहा था। उसने उसमें से बिना किसी विशेष विचार के एक लकड़ी निकाल ली और आप और भी आगे निकल गया, जिधर से गाड़ी आनेवाली थी, उसे जान पड़ा, गाड़ी आ रही है। दूर से सीटी की आवाज़ भी उसे सुनाई दी। उसे पटरी का हिलना भी मालूम पड़ने लगा; लेकिन उसका दम टूट गया था। वह और आगे न बढ़ सका। उस अलग की हुई पटरी से क़रीब छः सौ फ़ीट की दूरी पर वह रुक गया।

उसके मन में अचानक यह बात आ गई। उसने अपनी टोपी उतारी। उसके भीतर से एक बड़ा रुमाल निकाला। कमर से छुरी निकाली। छाती पर हाथ रख के प्रार्थना करने लगा—"ईश्वर, तेरी ही दया का भरोसा है।"

सिमियन ने अपनी बाईं भुजा में चाकू भोंक दिया। खून की गर्म धार बह निकली। उसने अपने रुमाल को इसी में अच्छी तरह तर किया। फिर इसी रुमाल को फैलाकर लकड़ी में बाँधकर लाल झंडी बना ली।

वह झंडी हिलाता रहा। गाड़ी दिखाई पड़ने लगी। रेल के ड्राइवर ने उसे न देखा, गाड़ी पास आ गई। छः सौ फ़ीट के अंदर इतनी बड़ी और तेज़ गाड़ी का रोकना सहज न था।

उधर सिमियन के हाथ से खून बराबर जारी था। सिमियन एक हाथ से अपना घाव दबाए हुए था, लेकिन खून का निकलना बंद नहीं होता था। उसकी भुजा में गहरा घाव हो गया था। उसके सिर में चक्कर आने लगा। सिर के सामने अँधेरा आ गया—बिलकुल अंधकार जान पड़ने लगा। उसके कानों में घंटी की सी आवाज़ हो रही थी। न वह गाड़ी देख सका, न उसकी घरघराहट सुन सका। उसके मन में एक ही ख़याल उठ रहा था। "मैं कैसे खड़ा रह सकूँगा। ऐसा न हो कि मैं गिर पड़ूँ और गाड़ी गुज़र जाय, मुझे देख भी न पावे। भगवान्, मेरी सहायता करना।"

उसके सामने अँधेरा छा गया, उसके मस्तिष्क में शून्य-सा जान पड़ने लगा। झंडी उसके हाथ से छूट गई; लेकिन वह खून की झंडी धरती पर गिरी नहीं। एक दूसरे हाथ ने उसे पकड़ लिया और खूब ऊँची करके उसे लिये रहा। एंजिनवाले ने उसे देखा और गाड़ी रोक ली।

लोग डिब्बों में से कूद-कूदकर नीचे आने लगे, सिमियन के आसपास एक भीड़ इकट्ठी हो गई। उन्होंने देखा कि पटरी के पास पगडंडी पर कोई खून में लस्त-पस्त पड़ा हुआ है और एक दूसरा आदमी एक लकड़ी में खून का चिथड़ा बाँधे खड़ा है।

वासिली ने एक बार आँखें घुमाकर सबकी ओर देखा। फिर सिर नीचा करके बोला, "मुझे पकड़ लो! मैंने ही रेल की पटरी खोली है।"*

रामचंद्र टंडन

काजल की कोठरी

छैलवा छबीले की छटान छबि छीनी छाय,
छहरि रही है छतियन मैं छबीला के।
चंद्र-चाँदनी मैं चारु चमक रहे हैं चख,
चतुर चितेरे चित-चाहक चुटीली के।
रासहू रचाई रंगभूमि मैं रसिक राज,
रंग-रूप रमि रहे 'विट्ठल' रँगीली के।
काजल की कोठरी मैं कैसहु कहूँ ते जाय,
आउब कठिन बिनु कालिख कटीली के।

वैद्यनाथ मिश्र 'विट्ठल'

---

* प्रसिद्ध रूसी लेखक, गार्शिन की एक कहानी—अनुवादक

आत्म-प्रशंसा

वृद्धावस्था सिर पर मंडला रही है पर आप अभी छैला ही बने हुए हैं।

अद्वैतवाद

तीसरा अध्याय

(गतांक से आगे)

इंद्रियों में आत्मा के अध्यास के जो उदाहरण श्रीशंकराचार्यजी ने दिए हैं उनके विचार से तो हँसी आए बिना नहीं रहती। वह कहते हैं कि "मैं अंधा हूँ" इसमें "आत्मा" का "इंद्रियों" (इस स्थान पर 'आँख') में अध्यास है। अर्थात् 'आँख' को आत्मा समझ लिया गया है। परंतु यह कैसे? "मैं अंधा हूं" का क्या अर्थ है? यही न कि "मेरे पास आँखें नहीं हैं" अथवा "मैं नेत्रहीन हूँ"। "नेत्रहीन" शब्द "नेत्रों" का निषेध करता है, न कि 'नेत्रों' में आत्मा का अध्यास मानता है, "मैं अंधा हूँ" का अर्थ यह नहीं है कि "आँख अंधी है" किंतु यह कि "मेरे आँखें नहीं हैं।" यदि मैं कहूँ कि "मैं मोटर-हीन हूँ" अर्थात् "मेरे पास मोटर नहीं है" तो यह किस प्रकार सिद्ध हुआ कि मैंने मोटर में अपने धर्म की या अपने में मोटर के धर्म की बुद्धि कर ली? न ऐसा होता है और न इसके लिये कोई हेतु ही है। इसी प्रकार संकल्प और विकल्प के विषय में समझना चाहिए। अंतःकरण और आत्मा में साधन और साधक का संबंध है, अध्यास और अध्यस्त का नहीं। श्रीस्वामी शंकराचार्यजी ने शारीरिक भाष्य का आरंभ ही इस कल्पना से किया है कि—

अस्मत्प्रत्ययगोचरे विषयिणि चिदात्मके युष्मत्प्रत्ययगोचरस्य विषयस्य तद्धर्माणां चाध्यासः।

अर्थात् चेतन विषयी आत्मा में अचेतन विषय और उसके धर्मों का मान लेना अध्यास है। इसके लिये उन्होंने कोई युक्ति नहीं दी और इसी कल्पना के ऊपर समस्त 'अध्यासवाद' तथा "अद्वैतवाद" का भवन निर्माण कर दिया है। उनके आरंभ के शब्द यह हैं—

युष्मदस्मत्प्रत्ययगोचरयोर्विषयविषयिणोस्तमःप्रकाशवद्विरुद्धस्वभावयोरितरेतरभावानुपपत्तौ सिद्धायां, तद्धर्माणामपि सुतरामितरेतरभावानुपपत्तिः।

अर्थात् 'तुम' शब्द के वाच्य विषय और "मैं" शब्द के वाच्य विषयी के स्वभावों में अँधेरे और प्रकाश के समान भेद है। इसलिये एक में दूसरे के स्वभावों की उपपत्ति नहीं हो सकती। जब यह सिद्ध हो गया, तो उनके धर्मों की भी एक दूसरे में उपपत्ति नहीं हो सकती। तात्पर्य यह है कि जिस प्रकार प्रकाश के धर्मों की अँधेरे में और अँधेरे के धर्मों की प्रकाश में उपपत्ति नहीं हो सकती इसी प्रकार प्रमाता या 'जाननेवाले' के धर्मों की 'प्रमेय' या 'जानने-योग्य' वस्तु में उपपत्ति नहीं होती। इसलिये जब हम संसार में प्रमाता और प्रमेय का व्यवहार देखते हैं, तो यह मानना पड़ेगा कि यह व्यवहार अध्यास-मात्र है। परंतु यह बात सिद्ध करने का उन्होंने यत्न नहीं किया कि प्रकाश और अंधकार में जो संबंध है वही विषयी और विषय या, प्रमाता और प्रमेय में है। प्रकाश के अभाव का नाम ही अंधकार है। परंतु प्रमाता या विषयी के अभाव का नाम प्रमेय या, विषय नहीं। विषयी और विषय में ज्ञाता और ज्ञेय का संबंध है। प्रकाश और अंधकार में यह संबंध नहीं। न हुआ और न कभी हो सकता है। ज्ञाता ज्ञेय को किस प्रकार जानता है, यह और बात है। परंतु इसमें संदेह नहीं कि जानता अवश्य है। केवल कह देने से विषयी और विषय में अध्यस्त और अध्यास का संबंध नहीं हो सकता और न उनमें भेद है, प्रकाश और अँधेरे में है। पहले अध्यास की कल्पना करके फिर उसके अनुसार युक्तियाँ देना और प्रत्यक्ष आदि प्रमाणों को अविद्यावत बतलाना साध्यसम हेत्वाभास है।

कहीं-कहीं श्रीशंकराचार्यजी ने अध्यास के जो उदाहरण दिए हैं वे हास्यजनक हैं। जैसे—

अप्रत्यक्षेऽपि ह्याकाशे बालास्तलमलिनताद्यध्यस्यन्ति

इस पर भामती टीका इस प्रकार है—

नभो हि द्रव्यं सत् रूपस्पर्शविरहान्न बाह्येन्द्रियप्रत्यक्षम्। नापि मानसम्; मनसोऽसहायस्य बाह्येऽप्रवृत्तेः। तस्मादप्रत्यक्षम्। अथ च तत्र बाला अविवेकिनः परदर्शितदर्शिनः कदाचित्पार्थिवच्छायां श्यामतामारोप्य कदाचित्तैजसं शुक्लत्वमारोप्य नीलोत्पलपलाशश्याममिति वा राजहंसमालाधवलमिति वा निर्वर्णयन्ति।

तात्पर्य यह है कि "मूर्ख लोग अप्रत्यक्ष आकाश द्रव्य में नीलेपन या, मलिनता आदि का अध्यास कर लेते हैं।" परंतु थोड़े से विचार से प्रकट हो जाता है कि इसको
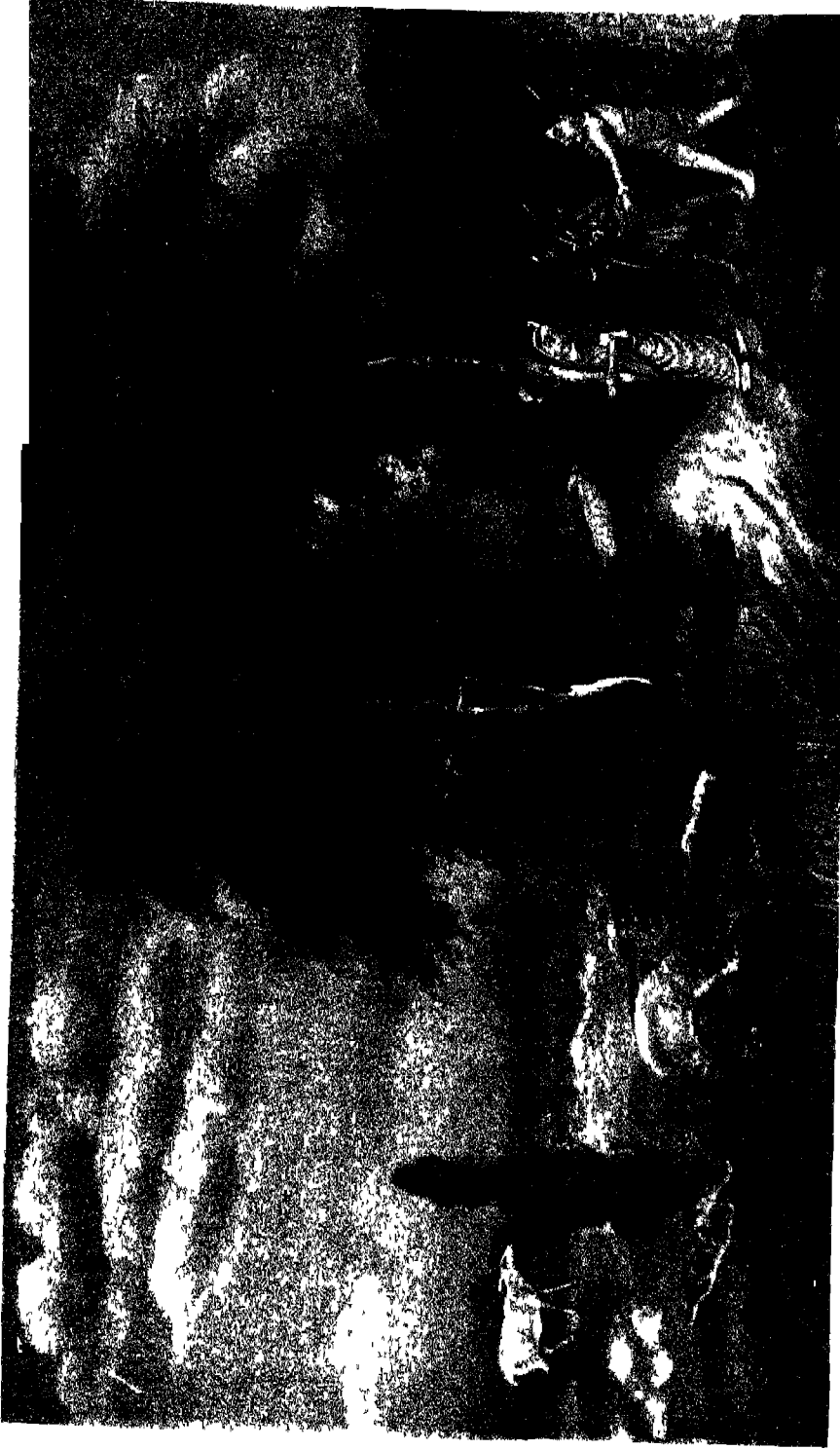
कपट मृग

[श्री० विष्णुनारायणजी भार्गव की चित्रशाला से]

सीता परम रुचिर मृग देखा। अंग अंग सु मनोहर बेषा।
सुनहु देव रघुबीर कृपाला। एहि मृग कर अति सुंदर छाला।

— गोस्वामी तुलसीदासजी

नवलकिशोर-प्रेस, लखनऊ

अध्यास मानने में श्रीशंकरस्वामी ने वाक्छल से काम लिया है। वस्तुतः 'आकाश' शब्द दो अर्थों में प्रयुक्त होता है। एक तो दार्शनिक अर्थ में 'आकाश' एक द्रव्य माना गया है। यह सर्वव्यापी है। दूसरा ऊपर जो नीला-नीला दीखता है उसको भी आकाश कहते हैं। साधारणतया किसी से कहो कि "आकाश की ओर देखो" तो वह ऊपर को देखने लगेगा। क्योंकि वह आकाश से निराकार द्रव्य का अर्थ नहीं लेता। इसी प्रकार जो पुरुष आकाश को मलिन या नीला बताते हैं वह आकाश 'द्रव्य' को ऐसा नहीं बताते। किंतु वह आकाश जो ऊपर नीला-नीला चमकता है, चाहे वह पृथ्वी के परमाणु हों या जल के, अध्यास उस समय होता, जब नीली चीज़ न होती और लोग उसे नीला कहते। विचारे साधारण मनुष्यों को तो सर्वव्यापी निराकार आकाश का ज्ञानमात्र भी नहीं है, और जिनमें यह ज्ञान है वे भी उसको नीला नहीं बताते। जो ऊपर दीखता है, उसको तो शंकरस्वामी भी नीला ही कहेंगे, क्योंकि वह नीला है। एक ही वाक्य में पहले आकाश को एक अर्थ में प्रयुक्त करना और फिर दूसरे में एक ऐसी गलती है जिसकी आशा दार्शनिक-शिरोमणि श्रीशंकराचार्यजी की पुस्तकों में नहीं हो सकती। परंतु यह दुर्भाग्य है कि उनका भाष्य ऐसे हेत्वाभासों से भरा पड़ा है। हम यहां इसी अविद्या के संबंध में एक और अवतरण देते हैं।

(१) अविद्यावद्विषयाण्येव प्रत्यक्षादीनि प्रमाणानि शास्त्राणि च।

(२) पश्वादिभिश्चाविशेषात्।

(३) यथा हि पश्वादयः शब्दादिभिः श्रोत्रादीनां संबन्धे सति, शब्दादिविज्ञाने प्रतिकूले जाते ततो निवर्तन्तेऽनुकूले च प्रवर्तन्ते।

(४) यथा दण्डोद्यतकरं पुरुषमभिमुखमुपलभ्य मां हन्तुमयमिच्छतीति पलायितुमारभन्ते, हरिततृणपूर्णपाणिमुपलभ्य तं प्रत्यभिमुखीभवन्ति।

(५) एवं पुरुषा अपि व्युत्पन्नचित्ताः क्रूरदृष्टीनाक्रोशतः खड्गोद्यतकरान्बलवत उपलभ्य ततो निवर्तन्ते तद्विपरीतान्प्रति प्रवर्तन्ते।

(६) अतः समानः पश्वादिभिः पुरुषाणां प्रमाणप्रमेयव्यवहारः।

(७) पश्वादीनां च प्रसिद्धोऽविवेकपुरःसरः प्रत्यक्षादिव्यवहारः।

(८) तत्सामान्यदर्शनाद् व्युत्पत्तिमतामपि पुरुषाणां प्रत्यक्षादिव्यवहारस्तत्कालः समान इति निश्चीयते।

श्रीशंकराचार्यजी प्रत्यक्षादि प्रमाणों का खंडन करना चाहते हैं। उनकी युक्तियाँ सुनिये:—

(१) पशुओं में विवेक नहीं।

(२) इसलिये उनके सब व्यवहार विवेक-शून्य हैं।

(३) पशु किसी को डंडा हाथ में लिए देखकर उसको अपना अहितकारक समझकर उससे भागते हैं, और यदि कोई हरी-हरी घास दिखावे, तो उसे अपना हितकर समझकर उसके पास आते हैं।

(४) जब उनके सब व्यवहार विवेक-शून्य हुए, तो डंडेवाले के पास से भागना और घासवाले की ओर आकर्षित होना भी विवेक-शून्य ही हुआ।

(५) मनुष्य भी ऐसा ही करता है अर्थात भलाई करनेवाले की ओर आकर्षित होता है और बुराई करनेवालों से दूर भागता है।

(६) इसलिये उसका यह व्यवहार भी विवेक-शून्य हुआ।

(७) अतः पशुओं के समान व्यापार करने से मनुष्य भी अविवेकी ठहरा।

(८) अतः उसके द्वारा प्रयुक्त हुए प्रत्यक्षादि प्रमाण भी अविद्यावत् ठहरे।

जो पढ़े-लिखे पुरुष हैं अर्थात् जिनका मस्तिष्क विकसित हो चुका है, परन्तु जिन्होंने श्रीशंकराचार्यजी के ग्रंथ नहीं पढ़े, उनको कभी विश्वास न होगा कि यह कथन श्रीशंकराचार्य जैसे धुरंधर विद्वान् का है। परंतु हम शोक और लज्जा से कहते हैं कि यह न केवल शांकर-भाष्य का ही अवतरण है, किंतु ऐसे स्थान से लिया गया है, जो समस्त भाष्य की जान है अर्थात् 'चतुःसूत्री'। यह ऐसा अवतरण है, जिस पर श्रीशंकराचार्यजी के समस्त सिद्धांत का आश्रय है। वस्तुतः इसको शांकर-मत का बुनियादी पत्थर कहना चाहिए। हम यहाँ अपनी ओर से एक युक्ति देते हैं जो ऊपर दी हुई शांकर-युक्ति के सर्वथा समान है। भेद केवल इतना है कि उस पर शंकर महाराज की छाप है।

(१) मोहन पागल है।

(२) अतः उसके सब काम पागलपन के हैं।
(३) वह मुँह से रोटी खाता है।
(४) अतः उसका यह काम भी पागलपन का हुआ।
(५) मैं भी मोहन के समान ही मुँह से रोटी खाता हूँ।
(६) अतः मैं भी पागल हुआ।

जिस प्रकार आप इसको ठीक नहीं मान सकते इसी प्रकार मैं भी शंकराचार्यजी की युक्ति को नहीं मान सकता। पशुओं को अविवेक इसलिये कहते हैं कि उनके बहुत-से कामों से अविवेकी टपकता है। परंतु उनके सभी काम विवेक-शून्य नहीं होते। पहले उनको अविवेकी मानकर, फिर उनके सब कामों को विवेक शून्य बताना ठीक नहीं। डंडेवाले से भागना और घासवाले से प्रेम करना कभी अविवेक नहीं है। क्या शंकरस्वामी पशुओं को उस समय विवेकी कहते, जब वह डंडेवाले से प्रेम और घासवाले से अप्रेम करते? यदि ऐसा ही है, तो हम उन बच्चों को विवेकी कहेंगे, जो भूल से आग के अंगारे को हाथ में पकड़ लेते हैं। मनुष्य के बहुत से व्यवहार पशुओं के-से हैं, या यों कहिए कि पशु भी बहुत से व्यवहार विवेकी पुरुषों की भाँति करते हैं। यह व्यवहार अर्थात् डंडेवाले से भागना और घासवाले से प्रेम करना भी पशुओं की बुद्धिमत्ता का सूचक है। वह इनके अविवेक का सूचक कदापि नहीं। हाँ, बहुत से अन्य व्यवहार अवश्य उनके अज्ञान को सूचित करते हैं। इसी प्रकार मनुष्य भी विवेक-सूचक और विवेक-शून्य दोनों प्रकार के काम करता है और उसका प्रत्यक्ष आदि प्रमाणों को प्रयुक्त करना कभी अविद्या या अविवेक-सूचक नहीं कहा जा सकता। न प्रत्यक्ष आदि प्रमाण तथा शास्त्र अविद्यावत् हैं।

प्रत्यक्ष आदि प्रमाणों के विषय में एक बात और कही जाती है। वह यह कि ब्रह्म-विद्या में केवल प्रत्यक्ष आदि प्रमाणों से काम नहीं चलता। क्योंकि ब्रह्म निराकार और अगोचर होने से इंद्रियों का विषय नहीं।

इस बात को हम भी मानते हैं कि प्रत्यक्ष प्रमाण ईश्वर में नहीं घट सकता। कपिल ने सांख्य में इसीलिये तो कहा था कि —

ईश्वरासिद्धेः।

अर्थात् ईश्वर में प्रत्यक्ष प्रमाण नहीं घटता। यदि केवल प्रत्यक्ष प्रमाण ही होता जैसा कि चार्वाक-मत को अभिमत है, तो ईश्वर सिद्ध न हो सकता। परंतु हम अनुमान और आगम को भी प्रमाण मानते हैं। इसलिये प्रत्यक्षादि प्रमाणों में आगम या आप्त प्रमाण के अंतर्गत विद्यमान होने से हमारे मत में कोई हानि नहीं आती। हम यह नहीं कहते कि चूँकि ब्रह्म-विद्या के लिये आगम अर्थात् वेद की आवश्यकता है, अतः प्रत्यक्ष प्रमाण या, अनुमान प्रमाण अविद्या-जन्य हैं। प्रत्यक्ष प्रमाण में भी भेद है। नाक से रूप और आँख से गंध नहीं मालूम होती। परंतु नाक से गंध और आँख से रूप अवश्य मालूम होते हैं। यदि एक प्रमाण से, या एक प्रमाण की एक शाखा से, दूसरे प्रमाणों या दूसरी शाखा का काम नहीं निकल सकता, तो इसका यह अर्थ कदापि नहीं कि पहला प्रमाण अविद्या-जन्य है। वेदांतदर्शन के दूसरे अध्याय के पहले पद का ११ वाँ सूत्र यह है.—

तर्काप्रतिष्ठानादप्यन्यथानुमेयमिति चेदेवमप्यविमोक्षप्रसङ्गः।
(वेदान्त २।१।११)

इस पर श्रीशंकराचार्यजी लिखते हैं —

इतश्च नागमगम्येऽर्थे केवलेन तर्केण प्रत्यवस्थातव्यम्। यस्मान्निरागमाः पुरुषोत्प्रेक्षामात्रनिबन्धनास्तर्का अप्रतिष्ठिता भवन्ति। उत्प्रेक्षाया निरङ्कुशत्वात्। तथाहि कैश्चिदभियुक्तैर्यत्नेनोत्प्रेक्षितास्तर्का अभियुक्ततरैरन्यैराभास्यमाना दृश्यन्ते। तैरप्युत्प्रेक्षिताः सन्तस्ततोऽन्यैराभास्यन्त इति न प्रतिष्ठितत्वं तर्काणां शक्यमाश्रयितुम्, पुरुषमतिवैरूप्यात्।

अर्थात् केवल तर्क से काम नहीं चलता। क्योंकि तर्क निश्चित नहीं है। यदि एक पुरुष एक बात को तर्क से सिद्ध कर देता है, तो उससे अधिक बुद्धिमान् उसको काट देता है। इस प्रकार तर्क में अनवस्था दोष आता है।

यहाँ श्रीशंकराचार्यजी का यह तात्पर्य नहीं है कि प्रत्यक्षादि प्रमाणों द्वारा किया गया तर्क 'अविद्यावत' है। वस्तुतः वह अपनी पूर्व प्रतिज्ञा को जो उन्होंने दर्शन-भाष्य के आरंभ में की थी, भूल-से गये हैं। क्योंकि इसी स्थल पर उनको मानना पड़ा कि.—

यद्यपि क्वचिद्विषये तर्कस्य प्रतिष्ठितत्वमुपलक्ष्यते, तथापि प्रकृते तावद्विषये प्रसज्यत एवाप्रतिष्ठितत्वदोषादनिर्मोक्षस्तर्कस्य। न हीदमतिगम्भीरं भावयाथात्म्यं मुक्तिनिबन्धनमागममन्तरेणोत्प्रेक्षितुमपि शक्यम्।

अर्थात् किसी किसी विषय में तर्क की प्रतिष्ठिता है, परंतु मोक्ष आदि अति गम्भीर विषयों में वेद के बिना काम नहीं चलता।

इसी सूत्र के भाष्य में श्रीभाष्य-कर्ता श्रीरामानुजाचार्यजी का मत अधिक ग्राह्य प्रतीत होता है। वह लिखते हैं कि

"अतीन्द्रियऽर्थे शास्त्रमेव प्रमाणम् । तदुपबृंहणायैव तर्क उपादेय" । तथा च आह—

आर्षं धर्मोपदेशं च वेदशास्त्राविरोधिना ;

यस्तर्केणानुसन्धत्ते स धर्मं वेद नेतरः । (मनु० १२।१०६)

अर्थात् "जिन विषयों में इंद्रियों की गति नहीं है, वहाँ शास्त्र ही प्रमाण है। उस (शास्त्र) के ठीक-ठीक समझने के लिये ही तर्क का उपयोग है ; जैसा कि कहा है।

ऋषियों द्वारा किया हुआ धर्मोपदेश ही धर्म है। यदि वह वेद-शास्त्र के अनुकूल हो और तर्क से स्थापित किया जा सके (मनु० १२।१०६)

मनुस्मृति के इस श्लोक को श्रीशंकराचार्यजी ने भी दिया है, परंतु पूर्वपक्ष में। वस्तुतः उनके हृदय में उस बात का संस्कार जमा हुआ था कि "प्रत्यक्षादि प्रमाण तथा शास्त्र अविद्यावत्" हैं। जब पूर्वपक्ष ने तीक्ष्ण युक्तियाँ पेश कीं कि—

(१) एतदपि हि तर्काणामप्रतिष्ठितत्वं तर्केणैव प्रतिष्ठाप्यते।

(२) सर्वतर्काप्रतिष्ठायां च लोकव्यवहारोच्छेदप्रसंगः ।

(३) अयमेव तर्कस्यालंकारो यदप्रतिष्ठितत्वं नाम । एवं हि सावद्यतर्कपरित्यागेन निरवद्यस्तर्कः प्रतिपत्तव्यो भवति।

अर्थात्—

(१) तर्क का खंडन भी तो तुम तर्क से ही करते हो, फिर तर्क की अप्रतिष्ठा कहाँ रही।

(२) सब तर्कों की अप्रतिष्ठा हो जायगी, तो लोक-व्यवहार बंद हो जायगा।

(३) जिसको तुम तर्क का दोष बताते हो वह दोष नहीं, किंतु गुण है। क्योंकि इससे केवल दोष-युक्त तर्क का परित्याग और दोष-रहित तर्क का ग्रहण होता है।

इन युक्तियों के उत्तर में उनको मानना पड़ा कि कहीं-कहीं तर्क की भी प्रतिष्ठा अवश्य है। परंतु इस सूत्र के भाष्य में जो कुछ उन्होंने लिखा है उससे उनकी प्रतिज्ञा-हानि अवश्य होती है। क्योंकि वह आरंभ में मान चुके हैं कि—

अविद्यावद् विषयाण्येव प्रत्यक्षादीनि प्रमाणानि शास्त्राणि च।

अर्थात् प्रत्यक्षादि प्रमाण और शास्त्र दोनों अविद्यावत् हैं।

यदि शास्त्र भी अविद्यावत् हुए, तो उनकी वही कोटि हुई जो प्रत्यक्ष तथा अनुमानप्रमाण की। फिर वह "अति गम्भीर" या 'अतीन्द्रिय' विषय के लिये प्रमाण कहाँ से लावेंगे? वह तो 'आगम' का भी खंडन कर चुके। और यदि प्रत्यक्ष अविद्यावत् है, तो यह कहना कैसे बन सकेगा कि—

क्वचिद्विषये तर्कस्य प्रतिष्ठितत्वमुपलक्ष्यते ।

अर्थात् कहीं-कहीं तर्क की प्रतिष्ठा पाई जाती है।

यदि कहो कि लोक-संबंधी व्यवहार में जो स्वयं मिथ्या है, मिथ्या बातों की प्रतिष्ठा हो सकती है, तो यह भी ठीक नहीं, क्योंकि सत्य तो सत्य का अविरोधी होता है, परंतु झूठ झूठ का अविरोधी नहीं होता। रुपए में १६ आने होते हैं, यह सच है। परंतु 'रुपए में १५ आने होते हैं' यह भी झूठ है और 'रुपए में १४ आने होते हैं' यह भी झूठ है। यह दोनों झूठ परस्पर एक नहीं हो सकते। और यदि यह मान भी लिया जाय कि झूठों की झूठों में प्रतिष्ठा होती है, तो आपकी "मोक्ष-विद्या" या 'ब्रह्म-विद्या' तो सच है। फिर उसमें "अविद्यावत" "शास्त्रों" का कैसे प्रमाण मानते हो?

वस्तुतः बात यह है कि बादरायण मुनि प्रत्यक्षादि प्रमाणों को अविद्यावत् नहीं मानते थे। इस सूत्र से उनका तात्पर्य केवल इतना था कि वह शास्त्रों की महिमा पर बल दें। 'वेदांत-दर्शन' रचने का भी यही प्रयोजन था कि ब्रह्म-विद्या की वेदों और उपनिषदों के आधार पर पुष्टि की जाय। यह श्रीशंकराचार्यजी की अपनी धारणा है कि प्रत्यक्षादि प्रमाण तथा शास्त्र अविद्यावत् हैं। यदि शंकराचार्यजी ऐसा न करते, तो उनका "जगन्मिथ्यावाद" कैसे सिद्ध होता। परंतु हम यह बताना चाहते हैं कि श्रीशंकराचार्यजी अपने इस कार्य में सफल नहीं हुए। 'अविद्यावत्' शास्त्रों के तो उन्होंने निरंतर प्रमाण दिए ही हैं, परंतु जिन प्रत्यक्ष आदि प्रमाणों को वह अविद्यावत् बताते हैं। इन लोक के दृष्टांतों से भी समस्त भाष्य भरा पड़ा है। यदि उनको छोड़ दिया जाय तो वह एक पग भी आगे नहीं रख सकते। हम यहाँ केवल वह उदाहरण देंगे जिनके मिथ्या होने से उनके सिद्धांतों की भूमिका ही हिल जाती है—

(१) "सर्वथापि त्वन्यस्यान्यधर्मावभासतां न व्यभिचरति । तथा च लोकेऽनुभवः शुक्तिका हि रजतवदवभासते ।"(भूमिका)

"अन्य में अन्य के धर्म का प्रतीत होना अध्यास है। जैसे लोक में अनुभव है कि सीपी चाँदी के समान प्रतीत होती है।"

समीक्षा—"सीपी चाँदी के समान प्रतीत होती है" का क्या अर्थ है ? यही न कि वस्तुत. यह सीपी है, पर चाँदी मालूम होती है। यदि प्रत्यक्षादि प्रमाणों पर विश्वास न किया जाय, तो यह कैसे सिद्ध होगा कि वस्तुत यह सीपी है। यदि श्रीशंकराचार्यजी के उपर्युक्त कथन के अनुसार प्रत्यक्ष आदि प्रमाण पशुओं के समान अविवेक के सूचक हैं, तो "यह सीपी है" ऐसा कहना भी अविवेक का ही परिणाम होगा और हम कभी यह न कह सकेंगे कि "यह वस्तुतः सीपी है और चाँदी मालूम होती है।" और उनके अध्यास का लक्षण भी न दिया जा सकेगा।

(२) "यथा राजासौ गच्छतीत्युक्ते सपरिवारस्य राज्ञो गमनमुक्तं भवति तद्वत् ।" (शांकर-भाष्य १ । १ । १)

"जैसे राजा जाता है" कहने से यह भी समझ में आ जाता है कि राजा के साथी जा रहे हैं, इसी प्रकार 'ब्रह्म की जिज्ञासा' में ब्रह्म-संबंधी अन्य बातों की भी जिज्ञासा आ जाती है।

समीक्षा—यदि प्रत्यक्ष आदि प्रमाणों को अविद्या-वत् मानो, तो राजा का जाना भी अविद्या-जन्य ही होगा, फिर यह दृष्टांत कैसे ठीक होगा।

(३) "न हि स्थाणावेकस्मिन्स्थाणुर्वा पुरुषोऽन्यो वेति तत्त्वज्ञानं भवति। तत्र पुरुषोऽन्यो वेति मिथ्याज्ञानम्। स्थाणुरेवेति तत्त्व-ज्ञान, वस्तुतन्त्रत्वात् ।" (शांकर-भाष्य १।१।२)

"किसी ठूँठ (वृक्ष के स्थाणु) को देखकर यह संदेह करना कि यह ठूँठ है या आदमी है या कोई और चीज़ है, तत्त्व-ज्ञान नहीं। 'यह आदमी है' या 'और कोई चीज़ है' यह दोनों मिथ्या ज्ञान हैं केवल "ठूँठ है" यह ज्ञान ही तत्त्व-ज्ञान है। क्योंकि यह मनुष्य की कल्पना के आश्रय नहीं, किंतु वस्तु के आश्रय है।"

समीक्षा—यहाँ शंकरस्वामी ठूँठ को ठूँठ समझना तत्त्व-ज्ञान बताते हैं। यही तो प्रत्यक्षादि प्रमाण माननेवाले नैयायिक कहते हैं। यदि ठूँठ को ठूँठ देखना प्रत्यक्ष का फल है और प्रत्यक्ष अविद्यावत् है, तो यह "अविद्यावत् तत्त्वज्ञान" हुआ। 'अविद्यावत् तत्त्व-ज्ञान' के क्या अर्थ होंगे ?

(४) "महत ऋग्वेदादेः शास्त्रस्यानेकविद्यास्थानोपबृंहितस्य प्रदीपवत् सर्वार्थावद्योतिन सर्वज्ञकल्पस्य योनि कारण ब्रह्म ।" (शांकर-भाष्य १ । १ । ३)

"अनेक विद्याओं को प्रकाशित करनेवाले दीपक के समान समस्त अर्थों को बतानेवाले महान् ऋग्वेदादि शास्त्रों का कारण ब्रह्म है।"

समीक्षा—पहले तो शंकरस्वामी वेदादि को अविद्यावत् मानते हैं, परंतु यहाँ इनको समस्त विद्याओं का प्रकाशक और ब्रह्म से उत्पन्न हुआ मानते हैं। और अपनी पुष्टि में दीपक का उदाहरण भी देते हैं। कैसी अनिर्वचनीय समस्या है ?

(५) ऋग्वेदाद्याख्यस्य सर्वज्ञानाकरस्याप्रयत्नेनैव लीलान्यायेन पुरुषनिःश्वासवद् यस्मान्महतो भूताद्योनेः सम्भव । (शा० भा० १ । १ । ३)

'सब ज्ञान के आकार वेद के बिना किसी प्रयत्न के लीला के समान ब्रह्म से उत्पत्ति हुई।'

समीक्षा—लीलान्याय अविद्या का फल है या विद्या का ?

(६) न च क्रममात्रसामान्यात् समानार्थप्रतिपत्तिर्भवत्यसति तद्रूपप्रत्यभिज्ञाने। न ह्यश्वस्थाने गां पश्यन्नश्वोऽयमित्यमूढोऽध्यवस्यति । (१ । ४ । १)

केवल क्रम की समानता से अर्थ की समानता नहीं पाई जाती जब तक कि यह समानता अलग से सिद्ध न हो। यदि घोड़े के स्थान में गाय बाँध दी जाय, तो कौन मूर्ख है जो उसे घोड़ा कहने लग जाय।

समीक्षा—यह सिद्धांत बिना प्रत्यक्ष आदि का प्रमाणत्व स्वीकार किये कैसे सिद्ध होगा ?

(७) न हि प्रदीपौ परस्परस्योपकुरुत । (२ । १ । ४)

दो दीपक एक दूसरे के आश्रय नहीं होते।

(८) दृश्यते हि लोके चेतनत्वेन प्रसिद्धेभ्य पुरुषादिभ्यो विलक्षणानां केशनखादीनामुत्पत्ति ।

लोक में देखा जाता है कि चेतन पुरुष आदि से अचेतन केश, नख आदि की उत्पत्ति होती है।

(९) दृष्टान्तभावात् । सन्ति हि दृष्टान्ता (२।१।९)

"ऐसे दृष्टांत पाये जाते हैं" इत्यादि।

(१०) न केवल शब्दादेव कार्यकारणयोरनन्यत्वम् । प्रत्यक्षोपलब्धिभावाच्च तयोरनन्यत्वमित्यर्थ । भवति हि प्रत्यक्षोपलब्धि कार्यकारणयोरनन्यत्वे। तद्यथा—तन्तुस्थाने पटे तन्तुव्यतिरेकेण पटो नाम कार्य नैवोपलभ्यते, केवलास्तु तन्तव आतानवितानवन्त प्रत्यक्षमुपलभ्यन्ते तथा तन्तुष्वंशवोऽशुषु तदवयवा । अनया प्रत्यक्षोपलब्ध्या लोहित-शुक्ल-कृष्णानि त्रीणि रूपाणि ततो वायुमात्रमाकाशमात्र चेत्यनुमेयम् (२ । १ । १५)

"न केवल शब्द-प्रमाण से ही कारण और कार्य के अनन्यत्व की सिद्धि होती है, किंतु प्रत्यक्ष से भी। प्रत्यक्ष भी कारण और कार्य का अनन्यत्व बताता है। जैसे, तंतुस्थानीय कपड़े में कपड़ा नामी कार्य का प्रत्यक्ष नहीं होता। ताना बाना किये हुए तंतु ही प्रत्यक्ष दीखते हैं और तंतुओं में उनके अंश, उन अंशों में उनके अवयव। इस प्रत्यक्षज्ञान से अनुमान किया जाता है कि लाल, सफ़ेद और काले तीन रूप केवल वायु-मात्र और आकाश-मात्र हैं।"

समीक्षा—इससे अधिक और क्या प्रमाण हो सकता है कि प्रत्यक्ष आदि को अविद्यावत् माननेवाले श्रीशंकर-स्वामी ब्रह्म को उपादान कारण सिद्ध करने के लिये प्रत्यक्ष और अनुमान दोनो से सहायता लेते हैं।

हमने यहाँ केवल १० उदाहरण ही दिए हैं। परतु यदि हम श्रीशकराचार्यजी के समस्त ग्रंथों में से उद्धृत करना चाहे, तो सैकड़ों उदाहरण मिलेंगे जिनसे हमारे कथन की पुष्टि होगी।

शायद यह कहा जाय कि जब तक इस मिथ्या जगत् से संबध है उस समय तक इन उदाहरणों का आश्रय लेना ही होगा और इसी मिथ्या जगत् की भाषा में बोलना पड़ेगा। बार्कले कहता है कि बुद्धिमान् बुद्धिमानों के समान सोचते और ग्रामीणों के समान बोलते हैं। परतु इतना कहने से छुटकारा नहीं मिलता। यदि जगत व्यवहार "तत्त्व" के अनुकूल है, तो यह जगत् मिथ्या न होगा। यदि मिथ्या है, तो 'तत्त्व' उसके विरुद्ध होगा और उसके उदाहरण 'तत्त्व' का ज्ञान न करा सकेंगे। जैसे कई स्थानों पर श्रीशकराचार्यजी ने लिखा है कि लोक में भी ऐसा ही पाया जाता है। अब प्रश्न यह होता है कि यदि लोक मिथ्या है, तो उसमे आपके सिद्धात के विरुद्ध ही मिल सकेगा। परतु यदि लोक में आपके सिद्धातों की अनुकूलता मिलती है, तो यदि आपके सिद्धात सत्य है, तो लोक भी सत्य है। लोक उसी समय मिथ्या हो सकता है जब आपके सिद्धांत भी मिथ्या हों। क्योंकि आपके सिद्धांत लोक के उदाहरणों के अनुकूल हैं।

यहाँ प्रश्न हो सकता है कि यह आक्षेप शंकरस्वामी पर ही क्यों है? उन्होंने तो केवल बादरायण के सूत्रों पर भाष्य-मात्र किया है। बादरायण ने स्वय अपने सूत्रों में लोक के उदाहरण दिए हैं, जैसे—

(१२) अतएव चोपमा सूर्यकादिवत् (३।२।१८)
(११) अदृष्टानियमात् (२।३।५१)
(१३) अम्बुवदग्रहणात्तु न तथात्वम् (३।२।१९)
(४) अश्मादिवच्च तदनुपपत्ति (२।१।२३)
(५) उपसंहारदर्शनान्नेति चेन्न क्षीरवद्धि (२।१।२४)
(२) न तु दृष्टान्तभावात् (२।१।९)
(१०) न भावोऽनुपलब्धेः (२।२।३०)
(१) दृश्यते तु (२।१।६)
(६) नासतोऽदृष्टत्वात् (२।२।२६)
(३) पटवच्च (२।१।१९)
(७) पयोऽम्बुवच्चेत्तत्रापि (२।२।३)
(८) पुरुषाश्मवदिति चेत्तथापि (२।२।७)
(१५) प्रदीपवदावेशस्तथाहि दर्शयति (४।४।१५)
(१४) रश्म्यनुसारी (४।२।१८)
(९) लोकवत्तु लीलाकैवल्यम् (२।१।३३)

परतु यहाँ इतना कहना ही पर्याप्त होगा कि जिस प्रकार शकरस्वामी प्रत्यक्षादि प्रमाणों को अविद्यावत् मानते हैं उस प्रकार बादरायण नहीं मानते। हम आगे किसी स्थान पर बतावेंगे कि "जगन्मिथ्यावाद" वेदात-सूत्रों में पाया नहीं जाता। शकरस्वामी ने सूत्रों में इसका अध्यास (अतस्मिंस्तद्बुद्धि) किया है।

प्रत्यक्ष, अनुमान तथा शब्द तीनों प्रमाण ही सूत्रकार को [illegible] हैं। इनमें से कोई त्याज्य नहीं। निम्न तीन सूत्रों में इनका वर्णन आता है—

(१) शब्द इति चेन्नात प्रभवात् प्रत्यक्षानुमानाभ्याम् (१।३।२८)

(२) अपि च सराधने प्रत्यक्षानुमानाभ्याम् (३।२।२४)

(३) दर्शयतश्चैवं प्रत्यक्षानुमाने (४।४।२०)

इसमें सदेह नहीं कि श्रीशकराचार्यजी ने अपने भाष्य में प्रत्यक्ष तथा अनुमान के वही अर्थ नहीं लिये जो न्याय, वैशेषिक अथवा साख्यदर्शन में लिये गये है। प्रत्यक्ष का अर्थ उन्होंने 'श्रुति' लिया है, और अनुमान का 'स्मृति'। श्रीरामानुजाचार्यजी ने श्रीभाष्य में और श्रीनिम्बार्काचार्यजी ने 'वेदातपारिजातसौरभ' में भी श्रीशकराचार्यजी का ही अनुमोदन किया है। परतु यदि स्वतंत्रशैल्या वेदात-सूत्रों पर विचार किया जाय, तो इन भाष्यकारों की कल्पना के लिये कोई दृढ़ हेतु देख नहीं पड़ता। यदि हम श्रीशकराचार्यजी की सम्मति को तद्वत् मान लें, तो

उनके भाष्य के आधार पर वेदांत-सूत्रों का निर्माण न केवल न्याय, वैशेषिक तथा सांख्य के ही, किंतु बौद्ध और जैन-दर्शनों के भी पश्चात् का सिद्ध होता है। फिर समझ में नहीं आता कि व्यासजी ने 'अनुमान' और 'प्रत्यक्ष' शब्दों को उन शास्त्रों से भिन्न-भिन्न अर्थों में क्यों प्रयुक्त किया ? अन्य किसी ग्रंथ में यह शब्द इस विलक्षण अर्थ में प्रयुक्त नहीं होते। वस्तुतः प्रतीत यह होता है कि श्रीशंकराचार्य ने प्रत्यक्ष आदि प्रमाणों की असारता सिद्ध करने और न्याय आदि शास्त्रों की अवहेलना करने के प्रयोजन से यह कल्पना की और 'श्रीभाष्य' तथा 'वेदांत-पारिजात-सौरभ' के रचयिताओं ने यद्यपि अपने निज-निज सिद्धांतों की पुष्टि के लिये भाष्य रचे और शांकर-मत का अनेक अंशों में खंडन भी किया, परंतु जिस स्थल पर, या जिस अंश का उनको खंडन करना अभीष्ट न था, वहाँ शंकर महाराज की कल्पना को तद्वत् मान लेने में संकोच नहीं किया। बोधायन-कृत आर्ष-भाष्य के लुप्त हो जाने से यह नहीं कहा जा सकता कि उसमें क्या था। परंतु श्रीशंकराचार्यजी की असाधारण विद्वत्ता ने लोगों के दिलों पर ऐसा सिक्का जमा दिया था कि वह उनके मत का विरोध करते हुए भी स्वतंत्रतया विचार नहीं कर सके। या उनको शांकर-भाष्य के उन स्थलों की सत्यता या असत्यता के जाँचने की आवश्यकता प्रतीत न हुई, जहाँ पर वह शांकर-मत के विरोधी न थे। शांकर-मत का एक समय बड़ा आधिपत्य हो गया था और वह नैयायिकों की बड़ी अवहेलना करते थे, जैसा कि नीचे के श्लोक से पाया जाता है —

तावद् गर्जन्ति शास्त्राणि जम्बुका विपिने यथा।
न गर्जन्ति महाशक्ति यावद्वेदान्तकेसरी॥

खंडन-खंडखाद्य के रचयिता* ने इसी भाव को लेकर प्रमाणों का खंडन किया था। मध्यकालीन नैयायिक शांकर-मत को ही वेदांत समझते थे, अतः वह भी वेदांतियों के विरुद्ध थे, परंतु विचार करने से ज्ञात होता है कि शंकराचार्यजी की विद्वत्ता को स्वीकार करते हुए उनकी बात को सर्वथा मान लेना संभव नहीं है।

ड्यूसन (Deussen) ने लिखा है कि:—

"As for Badarayana, he expresses his rejection of the secular means of knowledge, *Pratyakaham* and *Anumanam* with the drastic brevity which characterises him, in this, as we have already remarked, that he uses the two words to indicate something altogether different, namely, the Shruti and Smriti, thus in the Sutras 1,328, 3,2,24, 4,4,20 (Supposing naturally that Shankara has explained them correctly) (The system of the Vedanta p 90)

"बादरायण प्रत्यक्ष और अनुमान को नहीं मानता, क्योंकि उसने इन दोनों को श्रुति और स्मृति के अर्थ में लिया है (स्वभावतः हम यह मान लेते हैं कि श्रीशंकर ने इनका ठीक-ठीक अर्थ किया है)"। परंतु ड्यूसन ने यह जानने का कष्ट नहीं उठाया कि इस बात के मानने के लिये क्या प्रमाण है कि शंकर का किया अर्थ ठीक ही है। इससे पूर्व ड्यूसन लिखता है :—

"As far as our Vedanta Sutras are concerned there is, neither in the text nor in the commentary, any discussion of the Pramanas at all on the contrary they are everywhere presupposed as well-known and set aside as inadmissible for the metaphysics of the Vedanta—and in reality a fundamental account of the fact that metaphysics attains its contents only through a right use of the natural means of knowledge is very difficult and presupposes a greater ripeness of thought than we find in the Vedanta, which helps itself out of the difficulty by the short cut of substituting a theological for the philosophical means of knowledge etc" (Ibid p 89)

कि "जहाँ तक हमारे वेदांत-सूत्रों का संबंध है, न तो सूत्रों में और न भाष्य में प्रमाणों की मीमांसा की गई

* खंडन-खंडखाद्य के लेखक श्रीहर्ष वेदांती हैं। परंतु खंडन-खंडखाद्य में जिसका नाम 'अनिर्वचनीयतासर्वस्व' भी है शून्यवाद का प्रतिपादन किया गया है, जो बौद्धों का एक संप्रदाय था। वस्तुतः वेदांतियों ने बौद्धों के शास्त्रों से ही वैदिकधर्मी नैयायिकों का खंडन किया और आगे चलकर वह सर्वथा बौद्धों के प्रभाव से प्रभावित हो गए। व्यासजी का वेदांत "शुद्ध वैदिक" है।

है। विरुद्ध इसके प्रमाणों का होना मान लिया गया है और वेदांत-विषय की मीमांसा के लिये उनको अप्रमाणिक ठहराया गया है। वस्तुत इस बात का अनुभव कि दर्शन-शास्त्र के लिये सामग्री ही ज्ञानोपलब्धि के स्वाभाविक साधनों (प्रत्यक्ष आदि प्रमाणों) के उचित प्रयोग द्वारा प्राप्त होती है, बड़ा दुस्तर है। इस बात के समझने के लिये मस्तिष्क का जो विकास चाहिए, वह वेदांत में नहीं मिलता। वेदांत में, तो इस कठिनाई से बचने के लिये दार्शनिक प्रमाणों के बजाय श्रुति का सरल-सा मार्ग ढूँढ़ लिया गया है।''

ड्यूमन का तात्पर्य यह है कि वेदांत में प्रमाणों की परवाह नहीं की गई और जहाँ कहीं कठिनाई उपस्थित हुई, वहाँ श्रुति का सहारा ढूँढ़कर उसको दूर कर दिया गया। ड्यूमन कहते हैं कि प्रमाणों के ठीक-ठीक प्रयोग के लिये मस्तिष्क के उच्चतर विकास की आवश्यकता है; परंतु उन्होंने यह आक्षेप वेदांत के मूल सूत्रों पर इसलिये किया है कि वह शांकर भाष्य को ठीक मान लेते हैं। हम ऊपर बता चुके हैं कि वेदांत में प्रत्यक्ष तथा अनुमान प्रमाणों को अग्राह्य (inadmissible) नहीं माना। किंतु अपूर्ण (insufficient) माना है। यही अवस्था नैयायिकों की भी है, जो प्रत्यक्ष और अनुमान को अपूर्ण समझकर शब्द-प्रमाण मानने के लिये बाधित होते हैं। जिस प्रकार केवल प्रत्यक्ष से काम नहीं चलता, उसी प्रकार केवल प्रत्यक्ष और अनुमान से भी काम नहीं चलता। परंतु जिस प्रकार अनुमान प्रत्यक्ष के विरुद्ध नहीं जाता, उसी प्रकार शब्द को भी प्रत्यक्ष तथा अनुमान के विरुद्ध नहीं जाना चाहिए।

हम यह मानते हैं कि कुछ वस्तुएँ ऐसी हैं, जो इंद्रिय-अगोचर होने के कारण प्रत्यक्ष तथा अनुमान का विषय नहीं हैं; परंतु जो लोग इस बहाने की आड़ लेकर मन-मानी बातों का प्रचार करते हैं, वह भी ठीक नहीं हैं। कम-से-कम इससे यह सिद्ध नहीं होता कि संसार में कोई वस्तु भी इंद्रिय-गोचर नहीं। यदि प्रत्यक्ष और अनुमान को प्रमाण न माना जाय, तो किसी चीज़ का निश्चय करना भी असंभव होगा।

दूसरी बात यह है कि इंद्रिय-अगोचर वस्तुओं का प्रभाव उन वस्तुओं पर पड़ता है, जो इंद्रिय-गोचर हैं, अत हम इंद्रिय-गोचर वस्तुओं के ज्ञान से ही इंद्रिय-अगोचर वस्तुओं के विषय में अनुमान कर लेते हैं। इसलिये इंद्रियातीत वस्तुओं के लिये भी प्रत्यक्ष तथा अनुमान-प्रमाणों से सहायता मिलती है। ऐसी कौन-सी इन्द्रियातीत वस्तु है जिसका इंद्रिय-गोचर वस्तुओं से कोई भी संबंध नहीं है? और यदि है, तो हमको उसका ज्ञान भी कैसे हो सकता है?

गंगाप्रसाद उपाध्याय

जगद्वंधन

(१)

शासन शिशिर का था, हिम पुष्प-वर्षा से,
 प्यारी रात करके सुपूजा हिम शैल की;
हुआ था प्रसन्न नभ-मंडल प्रभात-काल,
 थी न किसी कक्ष में ज़रा भी रेख मैल की;
उड़ने लगे थे व्योमचर वायु-यान पर,
 ढूँढ़ने लगे थे भूमिचर लीक गैल की;
जागृत हो बहने लगी थी स्निग्ध-भाव,
 अलसित निम्नगा गभीर गति तैल की।

(२)

आके बाल रवि छवि छटा छिटकाते हुए,
 शैल को सजा रहे थे हेम के मुकुट से;
हँस-हँस करते द्रवित गिरि का हृदय,
 ऊँचे चढ़ पा आधार किरण-लकुट से,
मुखरित करती समस्त अनिलावरण,
 फैली थीं प्रभाती तरुओं के झुरमुट से;
मलय विहार करता था तरु-डालियों से,
 पूरित प्रकृति-प्रतिमा थी मोद-पुट से।

(३)

जानके समय अनुकूल, मुख मूल, खुल,
 आँखें चली देखने बहार हिमधार की,
क्रम से प्रहार पाके भानु-किरणों का घोर,
 बहने लगी थी गल बरफ़ करार की;
धार वह धार प्रलयंकर प्रपात-रूप,
 आगे बढ़ गिरती थी माल-सी तुषार की;
क्षण मे ही देखा एक एक उच्च टीले पर,
 उछल-उछल लघु बूँदों ने फुहार की।

(४)

उठके प्रचंड हाहाकार झरने से रव ,
होता था प्रचंडतम हिमखंड-पात से ।
मानो मंत्र-गानकर, मणि-मोतियों से युक्त,
दे रहा था गिरि रवि-अर्घ्य बड़े प्रात से ;
या कि राम-रवि-स्तुति-मग्न थी अहल्या-सरि ,
त्याग जड़रूप जो हुआ था शाप-रात से :
अथवा प्रवाह देख प्रभु की उदारता का ,
निकल रहे थे धन्यवाद गिरि-गात से ।

(५)

गिर वेग से पाथ-प्रवाह अथाह, कहाँ किस चाह से जा रहा था !
हिम और शिलाओं के खंड बड़े-बड़े टक्करें, मार ढहा रहा था।
रुकता था कहीं भी नहीं मग में, जो मिला उसे ठेल बहा रहा था:
मदमत्त हो व्याकुल शोर मचाता, अँधेरी गुफा में समा रहा था।

(६)

बल विक्रम चंड अखंड दिखा जल, तांडव-नृत्य मचा रहा था ,
गिरिराज की बंदी को तोड़ भयंकर, विप्लव-कांड रचा रहा था।
उसके विजयोत्सव का कलगान, दिशाओं का वृंद भी गा रहा था!
या पिला रहा दूध की धारें धरा को, स्वहर्ष में हीरे लुटा रहा था।

(७)

इस दृश्य से आँखें फिरीं जो अचानक, दूसरा रंग पड़ा दिखलाई ;
शव एक बहा चला आ रहा था, हिम ने थी उसे कफ़नी पहिनाई।
गिरि-गर्भ में देने समाधि उसे, जलधार प्रपात की ओर थी लाई ,
तथा सम्मुख एक बुभुक्षित गीध की दृष्टि भी थी शव रूप ही आई।

(८)

अधीर हो वीर के तीर समान, सवेग समीर का अंचल चीर ,
गिरा वह भूख में व्याकुल गृद्ध, बिसार तुषार-पगा हिम-वीर ।
अखिन्न हो चंचल चोंच में नोच, किया उसने शव छिन्न-शरीर ,
निरंतर शीतल मांस के कौर बुझाने लगे उदराग्नि गभीर ।

(९)

पाके निज मात्र आधिपत्य मृत-देह पर ,
खा रहा था गीध मंद मांस नोच-नोचके ;
प्रबल तरंगों की थपेड़ों से विकल होके ,
चंगुलों से शव-वक्ष थामे था दबोचके ,
गरज-गरज जलपात था डराता उसे ,
किंतु वो असोच था स्वपंख-बल सोच के :
"शव के प्रपात-मग्न होने के प्रथम ही मैं,"
जानता था, "नभ में उड़ूँगा क्षुधा मोच के ।"

(१०)

बहुत दिनों की चंड कुपित जठर-ज्वाल ,
पाती थी न तोष लघु-तुंड के प्रयास से ;
मज्जा सने-मांस का हुआ था प्रति रेशा पूर्ण ,
मृदुता से, महक से, मधु की मिठास से ;
स्वाद का समस्त सुख भोगती है होके मस्त ,
रसना सुभूख की ही रस के विलास से ;
था वह सुदृश्य दर्शनीय मात्र उस काल ,
युद्ध हो रहा था वहाँ त्रास-उपवास से ।

(११)

भोजन में लीन खग अति सावधानता से ,
बीच-बीच में था देख लेता जल-पात को ;
क्रम से निदान लहरावली प्रपात-पास,
अंतिम-क्रिया के हित लाई मृत-गात को ;
उठने लगा वो, हो सचेत, पंख मार-मार,
देखके निकट निज भीषण निपात को ;
विस्मय-सा उसका प्रयत्न दिखा व्यर्थ, मानो,
शव उसे ले चला पकड़ प्रतिघात को ।

(१२)

लोभ लालसा का लगा जाला दोनों चंगुलों में,
पंजे फँस के थे फँसे मेद भरे उर में ;
चरबी का पंक बना बेड़ियाँ सुदृढ़ होके ,
बँधि गए चोर-नख तंतु-जाल-पुर में ;
स्वर्ण-सतरी सा गया हिम से जकड़ उसे ,
सन सन करता समीर शीत-सुर में ;
उड़ गए होश पै सके न उड़ पीन-पंख ,
दीखा निज शव उसे नीर के मुकुर में ।

(१३)

डूब गई गिरि-माला समेत, उपत्यका गीध की आर्त्त-पुकार में ;
स्वप्न की सृष्टि बना वह दुर्विध, लीन हुआ गिरके जल-धार में ;
प्राण-समेत उड़ा न विहंग, गया उड़ प्राण-विहंग बयार में ;
ज्यों ही गिरा पर्दा इस दृश्य का, मैं खग-संग ही डूबा विचार में ।

रामनारायण मिश्र

पंतजी और पल्लव

(समालोचना)

(२)

[भाद्रपद की संख्या से आगे]

कार्यवशात् मुझे कलकत्ता आना पड़ा। रास्ते में गाड़ी काशी के स्टेशन पर पहुँची, साहित्यिक मित्रों की याद आई। साहित्य की मही वीर-विहीन हो रही है या कोई महावीर इस समय भी प्रहरण-कौशल-प्रदर्शन कर रहे है, कुछ मालूम न था; कौतूहल बढ़ा, मैं गाड़ी से उतर पड़ा। पहले के एक पत्र से सूचना मिल चुकी थी कि खड़ी बोली की प्रथम कविता की स्वर्णलंका को छायावाद के मलिनत्व के स्पर्श से बचाने के लिये "सरस्वती" के सुकवि किंकर महाशय ने छायावाद के कवियों की लांगूलों मे आग लगा दी है। कहते हैं, वे कवि उनके सुदृढ़ गढ़ के कँगूरे ढहाते थे, अपने कर्ण-कटु शब्दों से उन्हें हैरान करते थे और सबसे बड़ा पाप, सोते समय उनकी नासिका के छिद्र में लांगूल करके उन्हें जगा देते थे। अवश्य प्रकाश देखकर, प्रसन्न होनें से पहले अपने सुख और निद्रा के लिये मोहवशात् क्रोधांध हो जाना स्वाभाविक ही है—कुछ दिनो के बाद मालूम हुआ, लांगूलों की प्रज्वलित वह्नि की शिखाएँ उत्तरोत्तर परिसर प्राप्त करती जा रही है। सोचा—यदि इस लंका में पवन-प्रिय पुच्छ-पावक को रावण, कुंभकर्ण, अतिकाय, महोदर, और वज्रदंष्ट्रा आदि के गृहों के सिवा विभीषण की भीषण खाल में छिपे किसी कोमल कल्पना-प्रिय सहृदय सज्जन का "राम-नाम अंकित गृह" नहीं मिला, तो अवश्य यह अनर्थ ही हुआ; क्योंकि इस तरह तो कविता साहित्य के लंकाकांड की जड़ ही नहीं जम पाती, न भविष्य मे हिंदी-साहित्य की रामायण के लिखे जाने की आशा ही की जा सकती है। निश्चय हुआ कि वर्तमान कविता की सीता के उद्धार के लिये अभी लांगूलों में अग्नि-संयोग से श्रीगणेश ही हुआ समझना चाहिए। यद्यपि इस समय भी लंका, पुलस्त्य-कुल, विभीषण और अशोक-वाटिका आदि वहाँ के संपूर्ण दृश्य और प्राणी लांगूलों के अनल से निःसृत धूम की छाया में छायावाद की कविता की ही तरह अस्पष्ट-रूप दिखलाई देने लगे हैं। आश्चर्य है न अब तक किसी "कविराज" ने, स्याही के समुद्र में लांगूल-अनल की ज्वाला प्रशमित की, न उनके विरोधियों ने ही "तेल बोरि पट बाँधि पुनि" कलकंठ-ध्वनि धीमी की।

मैं सोचता हुआ, बाबू शिवपूजनसहायजी के डेरे पर पहुँचा। वहा वर्तमान कविता-साहित्य की बहुत-सी बातें मालूम हुईं। वहाँ ३० जुलाई १९२७ के "मतवाला" मे, किसी "युगल" महाशय द्वारा की गई छायावाद के कवियों की प्रशंसा में पतजी का यह पद्य उद्धृत पाया। अवश्य "पल्लव" के साथ इसका संबंध नहीं है। शायद यह पतजी की इधर की रचना है—

"प्रिये प्राणो की प्राण !
अरे वह प्रथम मिलन अज्ञात,
विकंपित-मृदु-उर, पुलकित-गात;
सशंकित-ज्योत्स्ना-सी चुपचाप,
जड़ित-पद, नमित-पलक-दृक्-पात;
पास जब आ न सकोगी प्राण,
मधुरता में सी छिपी अजान;
लाज की छुईमुई-सी म्लान !
प्रिये प्राणो की प्राण !"—

इसे पढ़ते ही मुझे रवींद्रनाथ की उर्वशी को ये पंक्तियाँ याद आ गईं—

"द्विधाय जड़ितपदे कम्प्रवक्षे नम्रनेत्रपाते।
स्मितहास्ये नहीं चल सलज्जित वासरशय्याते।
स्तब्ध अर्द्धराते।"

द्विधाय = सशंकित (ज्योत्स्ना-सी चुपचाप)
जड़ितपदे = जड़ित पद
कम्प्रवक्षे = विकम्पित मृदु उर
नम्रनेत्रपाते = नमित पलक दृक्-पात
स्मितहास्ये = मधुरता में-सी छिपी अजान
नहीं चल वासर शय्याते = पास जब आ न सकोगी प्राण
सलज्जित = लाज की छुईमुई-सी म्लान

कहीं कुछ बढ़ा दिया गया है, कही रवींद्रनाथ ही के शब्द रख दिए गए है। रवींद्रनाथ की "उर्वशी" के संबंध में बड़े से बड़े समालोचकों ने लिखा है, "उर्वशी" संसार के कविता-साहित्य में सौंदर्य की एक सर्वोत्तम

सृष्टि है। "उर्वशी" की पंक्तियाँ पंतजी के अनेक पद्यों में आई हैं। यह दिखलाया जा चुका है। इस तरह के अपहरण का फल भी कहा जा चुका है कि इससे भाव की लड़ी टूट जाती है, कविता का प्रकाशन-क्रम नष्ट हो जाता है।

"माँ मेरे जीवन की हार
तेरा मञ्जुल हृदय-हार हो
अश्रु-कणों का यह उपहार;
* * *
तेरे मस्तक का हो उज्ज्वल
श्रम - जलमय मुक्तालंकार।"
—पंतजी

"तोमार सोनार थालाय साजाबो आज
दुखेर अश्रु-धार।
जननी गो, गाथबो तोमार
गलार मुक्ताहार।
* * *
तोमार बुके शोभा पाबे आमार
दुखेर अलंकार।"
—रवींद्रनाथ

"जननी" की जगह पंतजी ने "माँ" संबोधन किया है। "गलार मुक्ताहार" की जगह "मञ्जुल हृदय-हार" आया है। "दुखेर अश्रु-धार" की जगह "जीवन की हार" आई है। "तोमार बुके शोभा पाबे आमार दुखेर अलंकार" की जगह "तेरे मस्तक का हो उज्ज्वल श्रम-जलमय मुक्तालंकार" हो गया है।

रवींद्रनाथ की "गीतांजलि" को इस कविता के साथ यदि पंतजी की उद्धृत कविता की समालोचना करूँगा, तो अकारण लेख की कलेवर-वृद्धि होगी। अतएव जहाँ-जहाँ पंतजी ने परिवर्तन किया है, उस-उस स्थल के परिवर्तन के कारण सौंदर्य, सफलता, निष्फलता आदि छोड़ दिए गए। मेरे विचार से पंतजी के कुल "विनय"—पद्य से और रवींद्रनाथ की "गीतांजलि" के १०वें गान से संपूर्ण समता है। वह परिवर्तन परिवर्तन नहीं। यदि हिंदी-संसार में युक्ति को कुछ भी मूल्य दिया जाता है, तो मैं कहूँगा, समालोचना होने पर, युक्ति आदरणीय होगी।

"पंतजी की कविता में सोने का बड़ा ख़र्च है" एक दूसरे कवि ने कहा था, जब मैं पंतजी के संबंध में उनसे वार्तालाप कर रहा था। उनके उदाहरण—

"मेरा सोने का गान।"
"वह सुवर्ण-संसार"—आदि-आदि।

यह भी पंतजी की अपनी चीज़ नहीं। बंगाल के कवि—

"आजि ए सोनार साँझे"
"सोनार वरणी रानी गो"
"आमार सोनार धाने गियाछे भरि"—आदि-आदि से।

अपनी कविता-सुंदरी को आवश्यकता से बहुत अधिक स्वर्णाभरण पहना चुके हैं और उनके साहित्य में सोने की आमदनी हुई है। विलायत के कवियों की मौलिक कृतियों की खानों से; जैसे—

'Like a golden maiden
In a palace tower'—etc.

पंतजी हाथ बढ़ाकर बुलाने के सौंदर्य की कल्पना में—

"बढ़ाकर लघु लहरों से हाथ"
"बढ़ाकर लहरों से कर कौन"—आदि-आदि।

अनेक पंक्तियाँ लिखी हैं—यह भी उनकी अपनी कल्पना नहीं। रवींद्रनाथ नदी की कल्पना में "आकुलि विकुलि शत बाहु तुलि", अन्यत्र "मेघे रे डाकिछे गिरि हस्त बाड़ाए" आदि बहुत कुछ लिख चुके हैं। पंतजी ने 'वहीं से लिया' जान पड़ता है।

यही हाल पंतजी के "सजल"-शब्द का है। बँगला में शायद ही किसी कवि से "सजल" छूटा हो।

पंतजी के—

"सजल जलधर से बन जलधार"—में

"सजल"—शब्द "जलधर" के विशेषण के स्थान में अर्थ की द्युति से रहित-सा हो रहा है। जलधर तो सजल है ही, फिर सजल जलधर क्या? जान पड़ता है, पंतजी ने "जलधर" के शब्दार्थ की ओर ध्यान नहीं दिया, "जलधर" को निष्प्रभ काले मेघ का एक टुकड़ा समझकर, उस पर "सजल"-ता की वार्निश कर दी है। पंतजी के "प्रवेश" में शब्दों के रूप पर जो व्याख्या हुई है, उसके अर्थ से और पंतजी के इस तरह के प्रयोग से साम्य भी है। इसके संबंध में मुझे जो कुछ लिखना है, आगे चलकर इस विषय पर, विचार करते समय लिखूँगा।

"राशि-राशि" और उनके "शत-शत"-शब्दों से जो उच्चारण-सुख हमें मिलता है, इसका कारण हिंदी के कंठ-तालु-दंतोष्ठों द्वारा बँगला अक्षरों के यथार्थ उच्चारण की अक्षमता है। ये दोनों प्रयोग बँगला के

अपने, भाषा के प्रचलित मुहावरे हैं। हिंदी में न कोई "राशि-राशि" कहता है, न "शत-शत"।

"चले श्वास राशि-राशि
ज्योत्स्नार मृदु हासि"—तथा—
"ए आदर राशि-राशि"—आदि से।

बँगला में "राशि-राशि" की अगणित राशियाँ है और "शत-शत" की सहस्र-सहस्र। हिंदी में सबसे पहला "शत-शत" का प्रयोग शायद मैथिलीशरणजी ने किया है, परंतु उन्होंने उसके पीछे एक "सम्यक" जोड़कर उसे हिंदी की रजिस्टर्ड सपत्ति कर ली। उनके "पलाशीर युद्ध" के अनुवाद मे है—

"शत-शत सम्यक कोहिनूर की प्रभा पाटकर;
दमक रहा था दिव्य रत्न उनत ललाट पर।"

अवश्य "सम्यक" के न रहने पर "शत-शत" मे कामिनी-सुलभ कोमल सौंदर्य अधिक आ जाता है।

"द्रे गगनेर नील शतदल खानि"
—रवींद्रनाथ

"नभ के नील-कमल मे"
—पतजी

"I laugh when I pass by thunder"
Shelley

"कड़क कड़ककर हँसते हम जब, थर्रा उठता है संसार"
—पतजी

"ये आये वीर बादर बहादर मदन के"
—भूषण

"मदन-राज के वीर बहादुर"
—पतजी

अब इस तरह की पंक्तियों के उदाहरण और न दूँगा। यदि आवश्यकता होगी, तो इस संबंध में फिर कभी लिखूँगा। यह विचार इस समय स्थगित करता हूँ। मेरा मतलब पतजी पर अकारण आक्रमण करना नहीं। जिस विषय पर "पल्लव" के "प्रवेश" मे उन्होंने एक पंक्ति भी नहीं लिखी—उधर दूसरों की समालोचना में अत्युक्ति से अत्युक्ति कर डाली है। उस विषय का साहित्य मे अनुल्लिखित रह जाना, मुझे बुरा जान पड़ा। मैंने उसका उल्लेख किया।

अब मैं उन विषयों पर क्रमश लिखने की चेष्टा करूँगा, जिन पर पंतजी ने "पल्लव" के "प्रवेश" मे विचार किया है। पहले कवित्त-छंद को ही लेता हूँ। पंतजी लिखते हैं, "कवित्त-छंद मुझे ऐसा जान पड़ता है, हिंदी का औरस-जात नहीं, पोष्य-पुत्र है। × × × हिंदी के × × स्वर और लिपि के सामजस्य को छीन लेता है। उसमें यति के नियमों के पालन-पूर्वक, चाहे आप इकतीस गुरु-अक्षर रख दें, चाहे लघु, एक ही बात है; छंद की रचना में अंतर नहीं आता। इसका कारण यह है कि कवित्त में प्रत्येक अक्षर को चाहे, वह लघु हो या गुरु, एक ही मात्रा-काल मिलता है, जिससे छंदोबद्ध शब्द, एक दूसरे को झकोरते हुए, परस्पर टकराते हुए उच्चारित होते हैं, हिंदी का स्वाभाविक संगीत नष्ट हो जाता। सारी शब्दावली जैसे मद्यपान कर लड़खड़ाती हुई, अकड़ती, खिंचती, एक उत्तेजित तथा विदेशी स्वरपात के साथ बोलती है। कवित्त छंद के किसी चरण के अधिकांश शब्दों को किसी प्रकार मात्रिक छंद मे बाँध दीजिए, यथा—

"कूलन मे केलिन कछारन मे कुंजन मे क्यारिन में कलित कलीन किलकत है", इस लड़ी को भी सोलह मात्रा के छंद मे रख दीजिए—

"मृदु-कूलन मे केलिन मे (और)
कछारन कुंजन मे (सब ठौर)
कलित-क्यारिन मे (कल) किलकत
बनन मे बगरो (विपुल) बसत।"

"अब दोनो को पढ़िए और देखिए, उन्हीं 'कूलन केलिन' आदि शब्दों का उच्चारण-संगीत इन दो छंदों मे किस प्रकार भिन्न-भिन्न हो जाता है; कवित्त मे परकीय और मात्रिक छंद में स्वकीय, हिंदी का अपना उच्चारण मिलता है।"

कवित्त-छंद के संबंध मे पतजी का जान पड़ना आर्यों के आदिम आवास पर की गई आयोंही के सृष्टि-तत्त्व के प्रतिकूल अँगरेज़ों की भिन्न-भिन्न कल्पनाओं की तरह बुद्धि का वयन-शिल्प प्रदर्शन करने के अतिरिक्त और कोई सग्राह्य सार-पदार्थ नहीं रखता। हिंदी के प्रचलित छंदों में जिस छंद को एक विशाल भूभाग के मनुष्य कई शताब्दियों तक गले का हार बनाए रहे, जिसमे उनके हर्ष-शोक, संयोग-वियोग और मैत्री-शत्रुता की समुद्गत विपुल भावराशि आज साहित्य के रूप में विराजमान हो रही है—आज भी जिस छंद की आवृत्ति करके ग्रामीण सरल मनुष्य अपार आनंद अनुभव करते हैं,

जिसके समकक्ष कोई दूसरा छद उन्हे जँचता ही नहीं। करोड़ों मनुष्यों के उस जातीय छंद को—उनके प्राणों की जीवनी-शक्ति को परकीय कहना कितनी दूरदर्शिता का परिचायक है, पतजी स्वय समझें। पतजी की रुचि तमाम हिंदी-संसार की रुचि नहीं हो सकती ; जो वस्तु उनकी अपनी नहीं, उसके संबंध में विचार करते समय, यह जिनकी वस्तु है, उन्हीं की रुचि के अनुकूल उन्हें विचार करना था। मैं समझता हूँ, जो वस्तु अपनी नहीं होती, उस पर किसी की ममता भी नहीं होती, वह किसी के हृदय पर विजय प्राप्त नहीं कर सकती। जिस दिन कवित्त-छद की सृष्टि हुई थी, उस दिन वह भले ही हिंदी-भाषी अगणित मनुष्यों की अपनी वस्तु न रही हो, परतु समय के प्रवाह ने हिंदी के अन्यान्य प्रचलित छदों की अपेक्षा अधिक बल उसे ही दिया, उसी की तरग मे हिंदी-जनता को अपने मनोमल के धोने और सुभाषित रत्नों की प्रशसा मे बहुत कुछ कहने और सुनने की आवश्यकता पड़ी। पतजी ने, जो कवित्त-छद को हिंदी के उच्चारण-सगीत के अननुकूल, अस्वाभाविक गति से चलनेवाला बतलाया, इसका कारण पतजी के स्वभाव में है, जिसका पता शायद वे लगा नहीं सके। उनकी कविता में, (Femole grac s) स्त्रीत्व के चिह्न अधिक होने का कारण—उनके स्वभाव का स्त्रीत्व, कवित्त-जैसे पुरुषत्व-प्रधान काव्य के समझने में बाधक हुआ है। रही सगीत की बात, सो संगीत में भी स्त्री-पुरुष-भेद हुआ करता है—राग और रागिनियों के नाम ही उनके उदाहरण हैं। अक्षर-मात्रिक स्वर-प्रधान राग स्त्री-भेद मे और व्यजन-प्रधान पुरुष-भेद में होंगे। पंतजी ने कवित्त की लड़ी को १६ मात्राओं से जो अपने अनुकूल कर लिया, वह स्त्री-भेद में हो गया है। वह कभी पुरुष भेद में जा नहीं सकती, उसके स्त्रीत्व का परिवर्तन नहीं हो सकता, परतु कवित्त मे यह बात नहीं। इस छद मे एक ऐसी विशेषता है, जो संसार के किसी छद मे न होगी। निर्गुण आत्मा की तरह यह पुरुष भी बनता, और स्त्री भी, यों तो इसे पतजी ने नपुसक सिद्ध कर ही दिया है। चौताल में इस छद के पुरुषत्व का कितना प्रमार होता है, स्वर किस तरह परिपुष्ट उच्चारित होते हैं, आनंद की मात्रा कहाँ तक बढ़ जाती है—पतजी देखें—

चौताला—

+					१				१		२
वृ	उं	लं	नं	में	ए	कें	ए	लि	न	अ	कं

+					१				१		२
छां	आ	र	नं	मं	एं	कु	उ	जं	नं	मं	ए

+					१				१		२
क्या	आ	रि	नं	मं	एं	कं	लिं	तं	अ	अं	कं

+					१				१		२
ला	इ	ई	नं	किं	लं	कं	अ	अं	तं	हं	एं

जिस "वृलन में केलिन कछारन में कुजन में क्यारिन में कलित कलीन किलकत है" कवित्त-छंद के सबध में पतजी कहते हैं, राग कुठित हो जाता, सब गुरु और ह्रस्व स्वर आपस मे टकराने लगते हैं—केवल एक मात्रा-काल मिलने के कारण, उसी छद के लघु और गुरु स्वरों को इस चौताल के अवतरण मे देखिए, कोई दीर्घ ऐसा नहीं; जिसने दो मात्राएँ न ली हों, कहीं-कहीं ह्रस्व-दीर्घ दोनों स्वर प्लुत कर देने पड़े हैं। पहले कहा जा चुका है कि स्वभाव में Female gıaces की प्रधानता के कारण पतजी कवित्त-छद की मौलिकता, उसका सौंदर्य, मन को उच्च परिस्थिति मे ले आनेवाली उसकी शक्ति, उसकी स्वर-विचित्रता आदि समझ नहीं सके।

यही कवित्त छद जिसे आप ४७ मात्राओं में चौताल के वर्गीकृत चार चरणों में अलग अलग देखते हैं। जब ठुमरी सुकोमल-स्वरूप में आता है, उस समय न यह उदात्त भाव रहता है, न यह पुरुष पुरातन तक ले आनेवाला उसका पौरुष। उस समय के परिवर्तित स्वरूप में इस समय के उसके लक्षण बिलकुल नहीं मिलते, उदाहरण—

तीन ताल —

(१६ मात्रा)

०　　　　　　　　१　　　　　　　　३

के + लं + नें + मं + कं + लि + नें + के + क्षा + रं + नें + मं + कुं + अं + नें + मं +

०　　　　　　　　१　　　　　　　　३

क्यों + रिं + नें + में + कें + लिं + तें + कें + लीं + नें + कें + लं + कं + तं + हें + एं

इस जगह तीन ताल की साधारण रागिनी में कवित्त-छंद का प्रत्येक अक्षर, चाहे वह लघु हो या गुरु, एक ही मात्रा पा रहा है, केवल अंतिम अक्षर को दो मात्राएँ दी गई हैं, यह १६+१६ मात्राओं से दोनों लड़ियों को बराबर कर लेने के अभिप्राय से। कवित्त के (१६+१५) से संगीत के समय की रक्षा नहीं होती। इसलिये १५ मात्राओंवाले चरण के अंतिम गुरु अक्षर को दो मात्राएँ दी गई हैं। कवित्त का यह स्त्री-रूप है। इस तरह की रचना-कुशलता शायद ही संसार के किसी छंद में हो। इसका विश्लेषण यदि कल्पना की दृष्टि से न कर, प्रत्यक्ष जगत् में प्रचलित इसके स्वर-वैचित्र्य की जाँच करने के पश्चात् पंतजी इसके संबंध में कुछ लिखते, तो उन्हें इस तरह के भ्रम में न पड़ जाना पड़ता।

अब मुक्त-काव्य के संबंध में कुछ लिखना चाहिए। पंतजी लिखते हैं—"सन् १९२१ में, जब 'उच्छ्वास' मेरी कृश लेखनी से यक्ष के कनक-वलय की तरह निकल पड़ा था, तब "निगम" जी ने 'सम्मेलन-पत्रिका' में उस 'बीसवीं सदी के महाकाव्य' की आलोचना करते हुए लिखा था, "इसकी भाषा रंगीली, छंद स्वच्छंद हैं।" पर उस वामन ने, जो कि लोकप्रियता के रात-दिन घटने-बढ़नेवाले चाँद को पकड़ने के लिये बहुत छोटा था, कुछ ऐसी टाँगें फैला दीं कि आज सौभाग्य अथवा दुर्भाग्य-वश, हिंदी में सर्वत्र 'स्वच्छंद छंद' ही की छटा दिखलाई पड़ती है।"

पंतजी की इन पंक्तियों से उनके स्वच्छंद छंद के प्रवर्तन की लिप्सा बहुत अच्छी तरह प्रकट हो गई है। उनके हृदय का दुःख भी लोगों के रचे हुए स्वच्छंद छंद के विकृत रूप पर (जिसे वे ही यथार्थ रूप से संगठित कर सकने का पुष्ट विचार रखते हैं) प्रकट हो गया है, और बिना किसी प्रकार के संकोच के, अपने सिद्धांत पर प्रगाढ़ विश्वास रखते हुए स्वच्छंद हृदय से घोषित कर रहे हैं कि दूसरों के स्वच्छंद छंद की हरियाली पर उन्हीं के 'उच्छ्वास' के प्रपात का पानी पड़ा है, अथवा स्वच्छंद छंद की अनुर्वर भूमि उन्हीं की डाली हुई खाद से उपजाऊ हो सकी है—उधर 'उच्छ्वास' के प्रथम मेघ से उस पर पानी भी उन्होंने ही बरसाया; और चूँकि "निगम" जी ने, 'सम्मेलन-पत्रिका' में उनके 'उच्छ्वास' की लड़ियों को स्वच्छंद छंद स्वीकार कर लिया है, इसलिये वह स्वच्छंद छंद के सिवा और कुछ हो भी नहीं सकता।

इसमें संदेह नहीं कि पंतजी की भूमिका से हिंदी में स्वच्छंद छंद विनोद बाबू का कामा (,) हो रहा है। इस 'कामा' का इतिहास—

किसी स्टेट में (घटना सत्य होने के कारण स्टेट का नाम नहीं लिया गया) विनोद बाबू, एक बंगाली सज्जन नौकर थे। हेड क्लर्क थे। सब ऑफ़िसरों को विश्वास था, विनोद बाबू अच्छी अँगरेज़ी लिखते हैं। ख़त-किताबत का काम उन्हीं के सिपुर्द था। एक रोज़ राजा साहब एकाएक कचहरी में दाख़िल हो गए। सब ऑफ़िसरों ने उठकर उनका यथोचित सम्मान किया। राजा साहब बैठ गए, और लोग भी बैठे। मैनेजर साहब विनोद बाबू की लिखी एक चिट्ठी ग़ौर से देख रहे थे। राजा साहब न रहते, तो अवश्य वे उस पर अपने हस्ताक्षर कर देते; परंतु नहीं, राजा साहब को अपने कार्य की दक्षता दिखलाने के विचार से उन्होंने विनोद बाबू से कहा, यहाँ एक कामा लगाना चाहिए। बहुत दिनों से राजा साहब स्टेट की देख-रेख कर रहे थे। परंतु यह श्रुति-मधुर नाम पहले कभी उन्होंने न सुना था। उन्होंने निश्चय कर लिया कि स्टेट की रक्षा के लिये यह ज़रूर शतघ्नी से बढ़कर कोई महास्त्र होगा। उन्होंने मैनेजर की तनख़्वाह बढ़ा दी। दूसरे दिन मैनेजर के आने से पहले ही वे कचहरी पहुँचे। तब तक विनोद बाबू दो-तीन चिट्ठियाँ लिख चुके थे। मैनेजर की कुर्सी पर राजा साहब को देखकर उन्हीं के सामने हस्ताक्षरों के लिये चिट्ठियाँ रख दीं। उसी तरह ग़ौर से राजा साहब भी चिट्ठियों को देखते रहे—

(राजा साहब को अँगरेज़ी वर्णमाला का ज्ञान था)— विनोद बाबू से कहा, देख लो कहीं कामा की गलती न हो गई हो । विनोद बाबू ने उस रोज़ तो शांति-पूर्वक सब काम किया, परंतु दूसरे दिन कामा के महत्त्व से घबड़ाकर उन्हें इस्तीफ़ा दे देना पड़ा ।

इसी तरह हिंदी में स्वच्छंद छंद के कामा का प्रचलन करना यदि पन्तजी का अभिप्राय है, तो मैं कहूँगा, आश्चर्य नहीं । यदि उससे कितने ही विनोद बाबू मजबूर होकर इस्तीफ़ा दाख़िल करें ।

पंतजी की कविताओं में स्वच्छंद छंद की एक लड़ी भी नहीं, परंतु वे कहते हैं, "पल्लव" में मेरी अधिकांश रचनाएँ इसी छंद में हैं, जिनमें 'उच्छ्वास', 'आँसू' तथा 'परिवर्तन' विशेष बड़ी हैं।" यदि गीति-काव्य और स्वच्छंद छंद का भेद, दोनों की विशेषता पंतजी को मालूम होती, तो वे ऐसा न लिखते । 'स्वच्छंद छंद' और 'मुक्त-काव्य' के 'स्वच्छंद' और 'मुक्त' विशेषणों के अलंकार से, यदि उन्हें अपनी शोभा बढ़ाने का लोभ हुआ हो, तो यह और बात है, क्योंकि हिंदी के वर्तमान शब्द-प्रमाद-ग्रस्त अनेक कवि स्वयं ही अपने नामों के पहले 'कविवर' और 'कवि-सम्राट्' लिखने तथा छापने के लिये संपादकों से अनुरोध करने की उच्च आकांक्षा से पीड़ित रहा करते हैं । परंतु यदि यथार्थ तत्त्व की दृष्टि से उनकी पंक्तियों की जाँच की जाय, तो कहना होगा कि उनकी इस तरह की पंक्तियाँ—

"दिव्य स्वर या आँसू का तार
बहा दे हृदयोद्गार ।"

जिनकी संख्या उनकी अब तक की प्रकाशित कविताओं में बहुत थोड़ी है—विषय-मात्रिक होने पर भी गीति-काव्य की परिधि को पारकर स्वच्छंद छंद की निराधार नंदन-भूमि पर पैर नहीं रख सकतीं । उद्धृत प्रथम पंक्ति में चार आघात हैं और दूसरी में तीन । इस तरह की पंक्तियों में छंद की मात्राओं से पहले संगीत की मात्राएँ सूझ जाती हैं—छंद भी संगीत-प्रधान है—अतएव यह अपनी प्रधानता को छोड़कर एक दूसरे छंद के घेरे में, जो इसके लिये अप्रधान है, नहीं आ सकता । दूसरे स्वच्छंद छंद में "तार" और "गार" के अनुप्रासों की कृत्रिमता नहीं रहती—वहाँ कृत्रिम, तो कुछ है ही नहीं । यदि कारीगरी की गई, मात्राएँ गिनी गईं, लड़ियों के बराबर रखने पर ध्यान रक्खा गया, तो इतनी बाह्य विभूतियों के गर्व में स्वच्छंदता का सरल सौंदर्य, सहज प्रकाशन, निश्चय है कि नष्ट हो जाता है ; परंतु पंतजी के लिखने के अनुसार स्वच्छंद छंद ह्रस्व-दीर्घ मात्रिक संगीत पर चल सकता है, यह भी एक बहुत बड़ा भ्रम है । स्वच्छंद छंद में art of music नहीं मिल सकता, वहाँ है art of Reading वह स्वर-प्रधान नहीं, व्यंजन-प्रधान है । वह कविता की स्त्री-सुकुमारता नहीं, कवित्व का पुरुष-गर्व है । उसका सौंदर्य गाने में नहीं, वार्तालाप करने में है । उसकी सृष्टि कवित्त-छंद से हुई है, जिसे पंतजी विदेशी कहते हैं, जो उनकी समझ में नहीं आया । मेरे—

"देख यह कपोत-कंठ—
बाहु-वल्ली—कर-सरोज—
उन्नत उरोज पीने—क्षीण कटि—
नितंब-भार—चरण सुकुमार—
गति मंद-मंद,
छूट जाता धैर्य ऋषि-मुनियों का ;
देवों-योगियों की तो बात ही निराली है ।"

इस छंद का, जिसे मैं हिंदी का मुक्त काव्य समझता हूँ, पंतजी ने रवींद्रनाथ की—

'हे सम्राट कवि,
एइ तव हृदयेर छवि,
एइ तव नव मेघदूत,
अपूर्व अद्भुत"—आदि—

पंक्तियों के उद्धरण से बँगला से लिया गया सिद्ध करने की चेष्टा की है । वे कहते हैं, निरालाजी का यह छंद बँगला के अनुसार चलता है । उनकी यह रवींद्रनाथ के छंद से समता दिखाने की चेष्टा शायद उनके कृत-कार्यों का संस्कार-जन्य फल हो ; परंतु वास्तव में इस छंद की स्वच्छंदता उनकी समझ में नहीं आई । यदि वे कवित्त-छंद को कुछ महत्त्व देते, तो शायद समझ भी लेते ।

"देख यह कपोत-कंठ" के "ह" को निकाल दीजिए । अब देखिए कवित्त-छंद के एक चरण का एक टुकड़ा बनता है, या नहीं । इसी तरह "बाहु-वल्ली कर सरोज" के "र" को निकालकर देखिए । लिखे हुए संपूर्ण चरणों की धारा कवित्त-छंद की है, नियमों की रक्षा नहीं की गई, न स्वच्छंद छंद में की जा सकती है ।" (अपूर्ण)

सूर्यकांत त्रिपाठी

ओ माली

(१)

त्यागकर अन्य अनेकों रम्य ,
किया मुझ पर करुणा की कोर ;
दूर करके सब मन का मैल ,
बनाया मुझे पवित्र अथोर ।

(२)

बनाकर बंजर से उर्वरा ,
लगाई तुमने कोमल दूब ;
देखकर यह सुषमा स्वर्गीय ,
कौन कब गया न सुख में डूब ।

(३)

हटाकर कटक कटक अपार ,
उगाए सुंदर-सुंदर फूल ;
सुरभि पाकर जिसकी मधुमयी ,
विश्व-मदिरा में जाता भूल ।

(४)

भगीरथ कर प्रयत्न तुम धन्य !
लगाए मरुस्थली में पद्म ;
उपेक्षा क्यों अब ऐसी किंतु ,
दीनबंधो, सब सुख के सद्म ।

(५)

इस तरह का रच अनुपम खेल ,
बिगाड़ो फिर मत इसको नाथ ;
इसे रहने दो कुछ दिन और ,
शीश पर धरो दया का हाथ ।

(६)

लगाओ मत ऐसी दावाग्नि ,
भस्म हो जायँगे तरु-पात ;
सींच दो एक बार फिर इसे ,
खिल उठें उपवन में जलजात ।

सोहनलाल द्विवेदी

तुलसीदासजी की सुकुमार सूक्तियाँ

(शेषांश)

रघुबंशिन कर सहज सुभाऊ , मन कुपथ पग धरहिं न काऊ ।

मैं पहले कह चुका हूँ कि गर्व तथा अतिशयोक्ति के दोषों से सुरक्षित रखने के लिये तुलसीदासजी राम को ऐसे अवसरों पर ऐसी स्थिति (Position) में रख देते हैं कि उन्हें एक प्रकार की अपनी सफ़ाई के तौर पर कुछ कहना ज़रूरी हो । यहाँ यह भी प्रयोजन है और उसी के साथ एक नैतिक प्रयोजन की भी पूर्ति होती है । वह यह कि आख़िर यह सिद्धांत कहाँ तक माननीय है कि पारस्परिक निरीक्षण द्वारा, जो आकर्षण एक दूसरे के प्रति उत्पन्न हो जावे, उसी के आधार पर विवाह की रस्म अदा की जावे, अथवा उसी आकर्षण का नाम वास्तविक प्रेम रख दिया जावे, यहाँ यह प्रश्न किस सुंदरता से हल किया गया है । रूखी-फीकी व्याख्या नहीं, कोरा तर्क-वितर्क नहीं, प्रत्युत एक प्रभावित हो जानेवाले हृदय को अपनी ही नैतिक आलोचना के परिणाम-स्वरूप ये उत्तर मिले हैं, जिन्हें अव्यवस्थित होने पर भी, घटनाओं तथा अनुभवों द्वारा एक सूक्ष्मदर्शी पहचान सकता है, परंतु कविता एवं भावना की सुंदरता का लोप नहीं होने पाया ।

रघुबंशिन—जब आनुवंशिक संस्कारों से पवित्रता उत्पन्न हो गई हो, तब जाकर दिल की काँपती हुई सुई ध्रुव की ओर ही होकर रह सकती है। (कर्म, गुण और स्वभाव भी आवश्यक है ; पर लोग भूल जाते हैं कि सिर्फ़ ख़ानदानी नहीं, बल्कि मुल्की, मज़हबी इत्यादि प्रत्येक प्रकार के संस्कारों अथवा कर्म और गुण से स्वभाव बनता है। कर्म, गुण, स्वभाव केवल वैयक्तिक बातें नहीं हैं, चाहे उनका बहुत बड़ा अंश वैयक्तिक ही क्यों न हो । अब पश्चिमी जगत् भी उत्पत्ति एवं वंश-परंपरा का प्रभाव मानने लगा है) ।

सहज सुभाऊ—जब आनुवंशिक संस्कार इतने परिपक्व हो चुके हों कि स्वभाव और वह भी सहज अथवा

अकृत्रिमता-रहित बन जावे। क्योंकि जब तक बनावटी रोक-थामवाला आचार है, तब तक संभव है कि वह किसी असाधारण सौंदर्य पर आसक्त होने के समय स्थिर न रह सके। ('अनुप्रास' दर्शनीय है)।

मन कुपंथ पग धरहिं न काऊ—आह ! कहाँ है अब वह संस्कार ? बुरे काम का करना तो क्या, ख़याल को भी बुरे रास्ते पर नहीं ले जा सकते और न कभी ले जाते हैं। यहाँ यह परिणाम के रूप में है। बेशक ऐसे ही सज्जनों को कहने का दावा हो सकता है—क्योंकि मेरी दृष्टि अमुक प्रेमिका पर मोहित हो गई है, इसलिये मुझे यह यक़ीन है कि वह अवश्य ही मिलेगी और मुझे उसके पाने का हक़ भी है। अन्यथा समस्त जगत् की अगार की शोचनीय नैतिक क्रांति ही सिद्धांत-रहित स्वतंत्रता का परिणाम है। भारत की स्वयंवरवाली विवाह की रीति अधिकतर किसी शर्त पर निर्भर थी, न कि वैयक्तिक आकर्षण पर और अततोगत्वा शेक्सपियर ने भी (Merchant of Venice) में ऐसे ही शर्त पर स्वयंवर का आदर्श बाँधा है और केवल पोर्शिया (Portia) और ऐनटोनिओ (Antonio) को कुछ-कुछ पवित्र प्रेम के निश्चयात्मक आदर्श पर पहुँचाया है।

प्रेम की भावना का उभार वंशपरंपरागजन्य स्वाभिमान के रूप में किस सुंदरता से प्रकट हुआ है।

मोहिं अतिशय प्रतीति जिय केरी ; जेहिं सपनेहु परनारि न हेरी।

उस जातीय स्वाभिमान, निजी स्वाभिमान की यह द्वितीय श्रेणी कैसी सुंदर है और एक प्रकार से उसी का प्रकट परिणाम है। (Tennyson) टेनीसन ने सत्य ही कहा है—Self-reverence, self-knowledge, self-control lead अर्थात् "स्वाभिमान आत्म-ज्ञान और इन्द्रियावसान सर्वोत्तम मानवी शक्ति की उपलब्धि के साधन हैं।" इसीलिये तो मैं कहता हूँ कि राम का पुष्पवाटिका-दृश्यवाला अर्ध-अधिकारमय रूप (Semi official appearance) और धनुप-यज्ञ में राम के official test (अधिकारयुक्त परीक्षा) के पश्चात् ही संसार का पूर्व नेता परशुराम अपनी "राम रमापति कर धनु लेहू" वक्तृता द्वारा अपना मार्ग भावी नेता राम को देकर वन को चला जाता है। वस्तुतः राम के उपर्युक्त तीनों तथा अन्य कितने ही गुण उभय दृश्यों द्वारा प्रकट हो गए हैं।

अतिशय प्रतीति—साधारण निर्भरता नहीं है। संदेह की कोई गुंजाइश बाक़ी नहीं है। अगर नैतिक शिक्षा काफ़ी है और पूर्ववाले जातीय तथा निजी संस्कार ठीक हैं—तो वैसा ही निश्चित परिणाम होगा, जैसा गणित में होता है।

जिय—पाठकगण ! तनिक विचार कीजिए। जब पहले सीता की काव्योपम प्रशंसा की गई थी, तो "हृदय" शब्द रक्खा गया था, जिसमें भावों के लिये काफ़ी अवकाश रहे। तत्पश्चात् जब काव्य-संबंधी सूक्ष्मता में उतार हुआ, पर भावों का स्पष्ट एवं अकृत्रिम होना फिर भी शेष रहा, तो "हिय" शब्द आया। अब यहाँ "जिय" है। इसमें न केवल भावों की सुस्पष्टता तथा अकृत्रिमता है, प्रत्युत अपने "जी" की उस मस्तिष्कीय खोज का अंश है, जो स्पष्ट तार्किक खोज न होते हुए भी स्वाभाविक, एवं आकस्मिक खोज अवश्य है। यह साधारण बोलचाल है कि भाई ! तुम हज़ार समझाओ, पर मेरे 'जी' में यह बात नहीं बैठती, चाहे तुम्हारी युक्तियों का उत्तर न दे सकूँ। यदि Conscience (intuitive reason) अर्थात् आत्मा के साथ भावों का भी सम्मिश्रण हो जाये, तो 'जिय' ऐसे ही एकीकरण का पर्याय है और जीवात्मा का सुंदर एवं सुबोध पर्याय भी है।

जेहिं सपनेहु परनारि न हेरी—केवल पैतृक संस्कार काफ़ी नहीं है, बल्कि अपने नैतिक सुधार की भी आवश्यकता है। यह बातें बिना आत्म-निर्भरता के उत्पन्न नहीं होतीं। जब विचार शुद्ध होंगे, तो उत्तर भी शुद्धता पूर्ण होंगे। अन्यथा केवल बाह्य शुद्धतावाले मनुष्यों के विचारों की अशुद्धता "ख़्वाबे-परेशाँ" बन जाती है।

हेरी—कैसा प्यारा छोटा-सा शब्द है, जो बतला रहा कि कभी वैसी प्रेरणा ही नहीं हुई।

परनारि—क्या सुंदर संकेत है। माँ, बहन और बेटी के सदृश देखना 'परनारि' का देखना ही नहीं है। क्या नैतिक आदर्श है। कुदृष्टि की कौन कहे, "नारि" के रूप में ही अन्य स्त्री का देखना उचित नहीं है। वह है भी, तो माता, भगिनी वा पुत्री। जब ऐसी मर्यादा हो, तभी तो आत्मा की सुई में वह स्थिरता आ सकती है कि सत्यरूपी ध्रुव पर बराबर जमी रहे और सांसारिक प्रलोभनों के झोंकों से तनिक भी न डिगे।

जिनके लहहिं न रिपु रण पीठी ; नहिं लावहिं परतिय मन डीठी।

मगन लहहिं न जिनके नाहीं; ते नरवर थोरे जग माहीं।

मैंने पहले ही कहा है कि इस वार्ता में आकस्मिकता बहुत है और उसी का प्राबल्य है, और क्योंकि दिल सीता पर लुभाया हुआ है, अतः वार्ता में तर्क-पूर्ण-क्रम तथा वाच्य-वाचक इत्यादि के आदि-अंत का विचार नहीं है। ठीक है। यदि सीताजी के बाह्य एवं आंतरिक सौंदर्य का इतना भी असर दिल पर न होता और उस समुद्र में भावना-रूपी लहरें तनिक भी हरकत न पैदा करतीं, तो हमको कहना पड़ता कि राम का दिल नहीं, पत्थर है। परंतु इस व्याख्या से पाठकगण यह कदापि न समझें कि ऊपरी असर से ज़्यादा बेचैनी का कोई और असर है। प्रेम का असर दूसरी चीज़ है। उसने तो राम पर लगभग पर्याप्त अधिकार कर लिया है, परंतु बेचैनी का असर केवल अनित्य और बाह्य है, क्योंकि उपर्युक्त व्याख्या में भी आखिर आपने देखा कि विचार-शक्ति की थोड़ी मदद से विषयों तथा कारणों का क्रम मिलता चला जाता है। कारण स्पष्ट है। वह यह कि जब नैतिक अभ्यास द्वारा मनुष्य के स्वभाव में शुद्ध पवित्रता उत्पन्न हो जाती है, तो आकस्मिकता से क्या प्रत्युत उसके प्रत्येक कार्य एवं शब्द से प्रकट हुए बिना नहीं रहती। अन्यथा वह पवित्रता ही क्या कि शीशे की तरह ज़रा ठेस लगते ही चूर-चूर हो जावे।

यहाँ भी थोड़ी कोशिश से साफ़ मालूम हो जाता है कि एक क्षत्रिय योधा के ख़याल में शत्रु के सामने पीठ दिखलाने का ख़याल सर्वप्रथम ख़याल होगा। प्रत्येक मनुष्य की चिंतना उसकी क्षमता के अनुसार ही होती है। महाभारत में भी महाराज द्रुपद के पुत्र ने, जब पांडवों की रातवाली वह वार्ता एक कुम्हार के घर में सुनी थी, जिसमें सेना, शस्त्र एवं युद्ध का ही ज़िक्र था, तो वह तुरंत समझ गया था कि "इस राख में चिंगारी है" और यद्यपि ये लोग अपने को प्रकट नहीं कर रहे, फिर भी ब्राह्मण नहीं हैं, बल्कि क्षत्रिय हैं और संभवतः पांडव हैं। दूसरी मिसाल (नहिं लावहिं डीठी) तो प्रस्तुत विषय की ही है। अब रही "मगन"-वाली मिसाल वह भी साफ़ है। "शिव", "दधीच" और "हरिचंद" के वंशवाले को सबसे पहले एकदम इसी मिसाल का ख़याल आना अत्यंत स्वाभाविक एवं औचित्य-पूर्ण है। इतने बड़े दान-वीर संसार में पैदा ही नहीं किए। एक बात और भी है। किसी धर्म-ग्रंथ में (जिसका नाम मुझे इस समय याद नहीं आ रहा है), जब एक मनुष्य ने एक ऋषि से यह प्रश्न किया कि कृपया आप एक ही शब्द में यह बतलाएँ कि मानवी कर्तव्य क्या है, तो उन्होंने उत्तर दिया था "दत्त" अर्थात् "दो"। यही हिंदू व्यावहारिकता का मूलभूत सिद्धांत है। ब्राह्मण विद्या, क्षत्रिय बल, वैश्य धन और शूद्र सेवा का दान करे, इसीलिये मैं हमेशा कहता हूँ कि हिंदू व्यावहारिकता की नींव ही Voluntary Socialism (स्वेच्छा-पूर्ण समाजवाद) पर है। हाँ, पाशविक वृत्तियों को इस भाँति उत्तेजित करना, उसमें कभी उचित नहीं ठहराया गया कि निर्धन धनवानों को, प्रजा राजा को और एक देश दूसरे को लूटे, प्रत्युत उचित तो यह है कि दान द्वारा समीकरण का भरसक प्रयत्न किया जावे। विश्व-विख्यात रूसो (Rousseau) का भी कथन है कि कभी दान देने में संकोच मत करो, क्योंकि तुम नहीं जानते कि कुछ पैसों के दान से तुम किसी मनुष्य को कितने पापों से बचा रहे हो। महात्मा ईसा के Sermon on the mount शीर्षक उपदेश में भी उपर्युक्त तीनों बातों में से कम-से-कम दो बातों का समर्थन किया गया है। हाँ, वहाँ दुश्मन के सामने पीठ न दिखलाना नहीं माना गया। यही कारण है कि आदर्शानुसार उत्तम होने पर भी उनका उपदेश सांसारिक उपयोगिता की दृष्टि से पर्याप्त अनुकरणीय नहीं है। हाँ, ब्राह्मण और संन्यासी के ख़याल से ठीक है। सायल का सवाल रद्द न किया जाय, ऐसा इस्लाम ने भी माना है। हातिमताई की दानशीलता भी इसी बात का समर्थन करती है, जिस दानशीलता का यह असर हुआ कि उसके लड़के के कहने से मुहम्मद साहब ने 'क़त्लआम' का हुक्म वापस ले लिया—यद्यपि हातिम या उसका लड़का, दोनों कभी इस्लाम पर ईमान नहीं लाए। महात्मा सादी भी स्वरचित "बोस्ताँ" में कहते हैं कि "असल और जौहर" से "ख़ता नहीं हो सकती।"

परतिय मन डीठी—इसकी व्याख्या एक प्रकार "सपनेहु परनारि न हेरी" के साथ हो चुकी। फ़र्क़ इतना ही है कि यह कथन अधिक दृढ़, अतः अधिक प्रभावोत्पादक है।

नरवर—ठीक है। वह सामान्य नहीं, विशेष मनुष्य

हैं और वस्तुत थोड़े हैं। महाराज राम के समय में भी थोड़े ही थे, फिर वर्तमान समय का क्या कहना ?

यहाँ निम्नानुसार कतिपय सुंदर बातें विचारणीय हैं—

(१) इन उदाहरणों का परिणाम संभवतः वार्ता द्वारा आगे निकलता, पर कदाचित् रामजी नाटक के स्टेज पर भाई से बातचीत करते हुए ज़रा हट गए, क्योंकि आगे "लता ओट तब सखिन लखाए" आया है। इसी कारण मानो हमने अपूर्ण वार्ता सुनी है और जब वार्ता सुनाई नहीं देती और रामजी ज़रा हट गए, तो कवि स्वयं सामने आकर नाटक के स्टेज (रंगमंच) पर नायक और नायिका की मौन क्रियाओं की व्याख्या करता है।

(२) नाटकीय विचार-दृष्टि से पहले की सीता-दर्शन की निमग्नता में राम-लक्ष्मण की वार्ता में कुछ रुकावट पैदा हो जाना और अब भी कुछ निमग्नता और कुछ हट जाने के कारण वार्ता का सुनाई न देना और फिर बंद हो जाना अत्यंत चित्ताकर्षक है।

(३) महाराज राम ने अपनी "सफ़ाई" के लिये वार्ता प्रारंभ की थी, परंतु ऐसे अवसर पर एक स्वाभाविक प्रकृति मनुष्य को उपदेशक-सा बना देती है, अतः वह भी उपदेशक-से हो बन गए हैं। इसी कारण इस शृंगारी दृश्य का अंतिम भाग कुछ अनमिल-सा प्रतीत होता है; परंतु कवि कितना सूक्ष्मदर्शी है कि चित्र की पूर्णता में तनिक भी अंतर नहीं।

(४) जितना धर्मोपदेश आवश्यक था, उसे ख़त्म करके कैसा मौक़ा और कैसी सुंदर रीति पर मुग्धता और "शृंगार की आँखमिचौनी" में रामजी को तनिक पेड़ों की ओट में छिपाकर यह वार्ता समाप्त की गई। आगामी दोहा एवं चौपाइयों से यह बात अधिक सुस्पष्ट हो जावेगी।

(५) किंचित्—शुष्क नैतिक वार्ता के पश्चात् आनेवाला दोहा कितना रोचक प्रतीत होता है। यदि रंगमंच पर दृष्टिपात करते हुए यह सोचिए कि इस उपदेश के बढ़ाने की कुछ वजह यह भी होगी कि अनुज (जिसका शाब्दिक अर्थ है—पीछे चलनेवाला) से वार्ता करने के अज्ञात मिस द्वारा पीछे देखने का मौक़ा मिलता रहे और इस कारण रामजी 'जनकतनया' वाली इस वार्ता को बग़ैर किसी वैसे इरादे के तूल दे रहे थे, तो मानो वार्ता के इस अंश में भी, जो वस्तुतः तर्क-पूर्ण है, शृंगारी भावों का समावेश हो गया है।

(६) उपर्युक्त व्याख्या को ध्यान में रखते हुए शुद्ध-शृंगारी विचार-दृष्टि से भी वार्ता के आदि तथा अंत में दो बार "अनुज" शब्द का प्रयोग कितना समयोचित एवं सरस है।

> करत बतकही अनुज सन, मन सिय रूप लुभान ;
> मुखसरोज मकरंद छबि, करत मधुप इव पान।

करत बतकही—(१) उपर्युक्त व्याख्या से प्रकट हो चुका है कि यहाँ 'बतकही' क्यों अधिक उपयुक्त है। हृदय तो सीता पर अनुरक्त है और जिह्वा वार्ता में लगी हुई है। अतः बिना हृदय की वार्ता "बतकही" से अधिक नहीं हो सकती।

(२) अपूर्ण क्रिया से पूर्णतः प्रकट है कि वार्ता के समय में दिल सीता पर बराबर लुभाया हुआ है।

(३) क्या चमत्कार है। इस वार्ता के प्रारंभ में तुलसीदासजी ने कहा है "वचन समय अनुहारि" और ठीक भी है। प्रारंभिक शब्द अवश्य "वचन" है, क्योंकि अगर वहाँ दिल सीता पर अनुरक्त है, तो जिह्वा पर भी सीता ही की प्रशंसा है। यद्यपि "समय अनुहारि" से उसमें वह नैतिक रुकावट मौजूद है, जो विवाह और "फरकहि सुभग अंग" के पूर्व और विशेषतः कनिष्ठ भ्राता लक्ष्मणजी के सामने प्रशंसा करने में होनी चाहिए। वह तो जहाँ से भौतिक वार्ता का प्रारंभ है और हृदय, मस्तिष्क एवं जिह्वा में अंतर उत्पन्न हो गया है, वहीं से अन्त तक का भाग अवश्य "बतकही" है।

अनुज—यद्यपि उसके पश्चात् ही "मन" आया है, जिससे प्रकट होता है कि सीताजी अब आँख से ओझल हैं और केवल "मन" लुभाने के लिये मौजूद है। परंतु फिर भी इस शब्द की पुनरुक्ति साफ़ बतला रही है कि भाई तनिक पीछे है (दो ही पग सही) और राम मुड़कर उनसे बातचीत कर रहे हैं। कौन जाने कि अंदर की मनोवृत्ति का यह बाह्य परिणाम हो कि अब भी उस ओर ज़रा झुके हुए और मुड़े हुए बात कर रहे हैं ? क्या सुंदर चित्रण है, बेल बूटों का आवरण, सीता उसकी एक ओर और राम-लक्ष्मण दूसरी ओर, राम लक्ष्मण की ओर मुँह किए, और साथ ही जिधर सीता हैं, उस ओर मुड़े हुए, परंतु केवल मन लुभाया हुआ यह सब अगर 'आँख-मिचौनी' नहीं, तो क्या है ? आगे और भी स्पष्ट हो

आवेगा, जब सीताजी की आँखों में हरकत पैदा होगी और तलाश शुरू होगी।

मन सिय रूप लुभान—प्रिय पाठकगण! यह उन दोहों में से एक है, जिन्हें मैं तुलसीदासजी के काव्य-चमत्कार का नमूना समझता हूँ। अत आप भी अपनी विचार शक्ति में विशेषत काम लेते हुए साहित्यिक भृंग के सदृश इस काव्य-कमल के आतरिक माधुर्य-रूपी मधु को चखने का प्रयत्न करें। व्याख्याता में यह शक्ति कदापि नहीं कि सपूर्ण माधुर्य का मज़ा चखा सके। यदि ऐसा ही हो, तो वह माधुर्य ही क्या है?

(१) कवि ठीक उसी समय अपनी व्याख्याकारी जिह्वा के साथ हमारे सामने आता है, जब नायक और नायिका एक तो दूर होते जाने के कारण अपनी वार्ता से हमें तृप्त नहीं कर सके, और दूसरे अब मन के लुभाने का अतिम भाग भी आ गया, अत ज़बान भी बद हुई जाती होगी, जब वार्ता और रसास्वादन ("पान") एक साथ नहीं हो सके।

(२) इस खयाल में चुबन का विचार कितना सूक्ष्म है और नैतिक बधन भी कितना सुदर। इसकी तुलना में पश्चिम की कृत्रिम कार्य-विधि कितनी भद्दी मालूम होती है, जिसमें अँगुलियाँ ओठों से लगाकर चटखार के साथ चुबन को वायु द्वारा उडाते हुए पहुँचाने का प्रयत्न किया जाता है।

(३) देखिए, जब तक परमात्मा की विशेष प्रेरणा से अगों में फडक पैदा होकर वास्तविक प्रेम की उत्पत्ति नहीं हुई थी, तब तक तुलसीजी ने पहले महाराज की "दिल की तारीफ़" के समय यह दृश्य नहीं दिखलाया था—तत्कालीन प्रशसा केवल वहीं तक पहुँची थी, जहाँ तक कोई भी रूप-गुण का पारखी उस अभूतपूर्व सौंदर्य की प्रतिमा की प्रशसा कर सका। यद्यपि केवल कौशल का विचार करनेवाला वैसी प्रशसा न कर सकता, तथापि अधिकतर प्रशसा वैसी ही है। हाँ, उसमें अज्ञान-रूप से जो भावों का समावेश हो गया है, वह उस प्रेम का परिणाम है, जो अप्रकट रीति पर उत्पन्न हो चुका था और केवल जिसका प्रकटीकरण शेष था।

मन, लुभान, रूप—मानवी गुणों के विशेषज्ञ, जो इन बातों को जानते हैं कि 'मन' 'बुद्धि' इत्यादि से कितना नीचे है और रूप, रस और गध इत्यादि का सबध 'मन' से है, वह और भी ज़्यादा लुत्फ़ उठावेंगे। पहले भी तुलसीदासजी ने कहा था कि "मनसा विश्व विजय कहँ कीन्ही" और उसी विजय का यह एक दृश्य है। इस विशेषता पर विचार करने से एक और आध्यात्मिक प्रश्न भी हल हो जाता है। वह यह कि प्रकृति का प्रभाव 'मन' तक ही रहे, तो बेहतर है और जब पुरुष की आत्मा स्वतत्र रहे, तभी वह "मर्यादा-पुरुषोत्तम" कहलाने का अधिकारी होता है। इसमें न तो संन्यास की शुष्कता है और न "दरमियाने क़अरे दरिया" * वाली विवशता की चीत्कार। इसीलिये तो मैं कहता हूँ कि Epic (वीर रस-युक्त) एव Dramatic (नाटकीय) का सम्मिश्रण तुलसीदासजी से बढ़कर किसी ने नहीं किया। क्या मनुष्यता और आध्यात्मिकता का यह सयुक्तिकरण सराहनीय एव सम्माननीय नहीं है? शायरी में ज़मीन और आसमान के कुलाबे इसी तरह मिलाए जाते हैं। हमारे हृदय की आध्यात्मिक कामना यह चाहती है कि हम उस निराकार ईश्वर को किसी भौतिक आकार में देखें। आधुनिक समय के सुप्रसिद्ध कवि डॉ० इक़बाल भी कहते हैं—

"कभी ए हक़ीक़ते-मुतज़िर! नज़र आ लिबासे-मजाज़ में ;
कि हज़ारों सिजदे तडप रहे हैं मेरी जबाने-नयाज़ में।"

अर्थात् ए असलियत! कभी तो भौतिक परिधान में दृष्टिगत हो, क्योंकि मेरे भक्ति-पूर्ण ललाट में हज़ारों सिजदे (माथा रगडना) तडप रहे हैं।

यहाँ भी वही कामना है, जिसको किसी कवि ने विद्युत् का उल्लेख कर यों कहा है—"बिजली का तडपना यह बतला रहा है कि कोई सौंदर्य आवरण-रहित होने को तडप रहा है।" यही तो भगवान् एव भक्ति-सबधी सौंदर्य एव प्रेम के पारस्परिक आकर्षण और अवतार सबधी सिद्धांत का युक्ति-पूर्ण आधार है। अधिक व्याख्या का न यह समय है, और न मुझमें वैसी योग्यता है, अत केवल सांकेतिक रीति पर इतना कह दिया। अस्तु। इसका प्रमाण कि बुद्धि और आत्मा स्वतत्र हैं, आगे धनुष-यज्ञ में आएगा, जब महाराज धनुष-भग के निमित्त उठते हैं कि "का वर्षा जब कृषी सुखानी" के अनुसार सीता के प्रति यथासमय ही दया दिखलानी चाहिए,

* यह समूचा पद अर्थ-सहित कहीं पहले लिखा जा चुका है—लेखक।

और जब कवि ने लिखा है कि "हर्ष विषाद न कछु उर आवा।"

"भए विलोचन चारु अचचल" में पहले आँखों पर और फिर हृदय पर और फिर "फरकहिं सुभग अग " में सपूर्ण शरीर पर और अब मन पर प्रेम की विजय है। यह क्रमिक विकास भी विचारणीय है।

[नोट—यद्यपि यहाँ तुलसीदासजी को गौण अतर रखना अभीष्ट था, पर दृश्य शृगारी है, इसी कारण आत्मा एव बुद्धि के अतर को स्मरण नहीं कराया, प्रत्युत आदि से अत तक "लुभाने" का ही चित्र सामने रक्खा है। यदि यह नैतिक व्याख्या असमय ही मे छेड़ दी जाती, तो शृगार मे फ़र्क़ आ जाता। क्या कमाल है कि न तो मज़मून ही रूखा हुआ और न अतर ही हाथ से गया। धनुष-भग से तनिक पूर्व ही, यह भेद कुछ-कुछ खुलना शुरू हुआ है और बिलकुल आख़िर में "राम रमापति कर धनु लेहू" इत्यादि पर कवि ने उसे पूर्णत खोल दिया है और शृंगारी दृश्य को आकाश पर ले जाकर भौतिक प्रेम को अभौतिक प्रेम की उच्चता पर पहुँचा दिया है]

सिय—क्या छोटा-सा प्यारा नाम है और शृगार में कितना सुदर है। इस सिलसिले के पहले मज़मून मे, जो नागरी-प्रचारिणी-सभा की तुलसी-ग्रथावली के तीसरे भाग में "प्रभा" से उद्धृत कर प्रकाशित किया गया है, मै "सिय" की व्याख्या कर चुका हूं। इसका शाब्दिक अर्थ "हल के कुद से पैदा हुई वस्तु" है। आह, क्या मिट्टी की सच्ची मूर्ति है और उस पर राम लुभाए हुए है। प्रकृति (जिसे परमशक्ति व महामाया भी कहते है) और पुरुष के पारस्परिक सबध का कैसा सुदर दृश्य है। "स" के रस की चाशनी भी मज़ेदार है।

शाब्दिक कौशल का एक यह पहलू भी देखिए। "करत बतकही" तक शब्द स्पष्ट है और तत्पश्चात् "अनुज सन" इत्यादि इत्यादि में "न" की गूँज पैदा होती जाती है, जिसके अर्थ स्पष्ट है कि अब निमग्नावस्था में आवाज़ भी केवल गुनगुनाहट रह गई। रगमच पर भी राम और लक्ष्मण दूर-दूर हटे हुए हैं। अत जो कुछ बातचीत असल मे हो भी रही हो, उसकी सिर्फ़ गूँज हमारे लिये रह गई है।

सरोज—पहले "सरसिज" की व्याख्या में बतला चुका हूँ कि यह नाम कमल के उस समय होते हैं, जब उसकी सुंदरता और सफ़ाई की ओर ध्यान दिलाना हो और पंक से कमल (पकज) का ख़याल न पैदा करना हो।

"सरसिज" से भी अच्छा "सरोज" शब्द है, जो अतर "सर" और "सरोवर" मे है, वही उनमें भी विद्यमान है। "पान" शब्द की रियायत से भी यह शब्द कितना उपयुक्त है। "सरोवर" से पैदा हुआ सुदर कमल और उसमें 'छवि' का रस कितना अच्छा ख़याल है और यही ख़याल बराबर क़ायम रक्खा गया है। यहाँ तक कि सीता की, जो अतिम प्रशंसा कवि ने की है और जहाँ सीता से तुलना के लिये अपने काव्य-कौशल द्वारा एक नई लक्ष्मी की सृष्टि कर ब्रह्मा के तद्विषयक यत्र मे परिवर्तन पैदा कर दिया है, वहाँ भी 'छवि' के अमृत का ही समुद्र बाँधा , जिसे मथने पर सीताजी उत्पत्ति हुई है। छवि वही है, जिसे "आबे हुस्न" कहते है। जिसमें "प्रकाश" भी होता है और "रस" भी।

प्रिय पाठकगण ! यह दोहा कविता की शाब्दिक चित्रकारी का एक अनोखा नमूना है। भौंरे की तरह "मन" जो सीता के मुख-कमल मे से छवि-रूपी रस पान कर रहा है, तो "मन पान" तक ओष्ठों से निकलनेवाले कितने अक्षर प्रयुक्त हुए हैं। प्रारभ मे कम और फिर आगे-आगे कितना सरस एव मधुर होता जाता है। यही स्वाभाविक गुण भी है। किसी मज़ेदार चीज़ को चखना शुरू कीजिए तो ज्यो-ज्यो स्वाद बढ़ता है, उसी अनुपात से निमग्नता मे भी वृद्धि होती है और उसी क्रम से "म" और "प" के दर्म्यान "पीने" की आत्मात्मक विशेषता भी विद्यमान है। "सिय" मे इस पीने के रस के साथ विचित्र सरसता है।

मधुप—भौंरा अब "भृग" नही है, प्रत्युत मधु का पान करनेवाला है। अत "मधुप" का प्रयोग है।

मधुप इव पान—एक सूक्ष्म उपमा है। भौंरे की पीने और चसने मे एक ख़ास बात है। वह यह कि कमल-पुष्प के रंग, रूप और गध मे तनिक भी—फ़र्क़ नहीं आता और भौंरे की तृप्ति भी हो जाती है। अन्य के चसने मे यह बात नहीं है। यही रंग-रूप-गध प्रकृति मे भी है, जिसमे से पुरुष-रूपी भौंरा रस-पान करे, पर उसे हानि न पहुँचावे, और न उसमें स्वय बद होकर रह जावे। यही तो उसका

विशेष गुण होना चाहिए । रामायण का आदर्श प्रत्येक स्थान पर न कर्म-सन्यास है और न प्रकृति में फँसकर रह जाना है, प्रत्युत उपर्युक्त्यनुसार केवल "पान" करना है।

करत—इसकी पुनरुक्ति भी कितनी सुदर एवं यथार्थ है। राम तो वार्ता कर रहे है और राम का मन भौंरे की तरह छवि का रस पान कर रहा है। दोनों क्रियाएँ, प्रकट में एक दूसरे से कितना अतर रखती हैं।

मन, मुख, मकरंद, मधुप—इनमे (alliteration) छेकानुप्रास की छटा कितनी मनोहर है। ऐसा प्रतीत होता है कि इन शब्दों का एक दूसरे से अनिवार्य सबध है।

पाठकगण! यहाँ एक सुंदर विचार और आपके समक्ष रखता हूँ —

मैंने अपने इन लेखों मे कहीं पहले बतलाया है कि किसी कवि का यह दोहा—

"अमी हलाहल मद-भरे, स्वेत स्याम रतनार ;
जियत-मरत झुक-झुक परत, जेहि चितवत इक बार।"

अत्यन्त मार्मिक है । प्रेम मे भावों की विषाक्तता भी है, जो पश्चिम की रीति नीति और बहुधा "ज़हरे-इश्क़" इत्यादि जैसी उर्दू-कविताओं मे भी पाई जाती है, पर साथ ही उसमे 'मद' की कुछ सुखप्रद मस्ती लिए हुए अमृत का जीवनप्रद असर भी मौजूद है।

तुलसीदासजी ने किस अपूर्व काव्य-कौशल से विषाक्तता के ख्याल को तो पास तक नही फटकने दिया और अधिक-से-अधिक मदिरा के सुखप्रद, प्रभाव (झुक-झुक परत) का किंचित समावेश किया है । इतना उचित भी था, नहीं तो सारा मज़मून ही रूखा-सूखा रहता और प्रेम का रग ही उड़ जाता।

पाठकगण ! आपको वह बात स्मरण कराके कि आप प्रेम की उस मज़िल मे है कि "बुयाबद बूए-गुल ख्वाहद कि चीनद" अर्थात् "पुष्प की गध पाकर उसे तोड़ने का जी चाहता है"—तुलसीदासजी ने किस सुचारुता के साथ इस मज़िल की भी सूक्ष्म-से सूक्ष्म श्रेणियाँ दिखलाई है। पहले मुग्धता, फिर हृदय की प्रशसा, फिर अपनी दशा का ख़याल होना, जबान का खुलना, अपने सदाचार एवं व्यक्तित्व की व्याख्या और अपनी ऐसी ज़ोरदार सफ़ाई कि नीति की सीमा का उल्लघन न हो सके, मन का लुभाना और उसके मज़े, शृगारी रगमच पर "आँख-मिचौनी"-वाले खेल का होना कि "ख्वाहद कि चीनद" अर्थात् "तोड़ लेनेवाली बात" अधिक सुदृढ़ हो जावे और साथ ही प्रेम का निरंतर परिपक्व होता जाना और उसका निश्चय होना, इत्यादि इत्यादि सभी श्रेणियाँ दर्शनीय एव विचारणीय हैं। अभी यह मज़िल कितनी टिकाऊ और सुखप्रद है, इसका पता आपको आगे चलेगा ; और तत्पश्चात् रुकावट पैदा करके there are many a slip between the cup and the lip (प्याला और ओष्ठों के बीच मे, अगणित बाधाएँ हैं) के सिद्धात को करुणा-रस से परिपूर्ण करके प्रेम की परख और उसकी परिपक्वता के हेतु प्रयुक्त करना भी महाकवि तुलसीदास ही के बस की बात है।

राजबहादुर लमगोड़ा

दीपावली

झिलमिल तारक-दीपों में नयनों की ज्योति मिलाऊँगा ;
इस प्यासे प्रकाश को उर का संचित स्नेह पिलाऊगा।
वन कुसुमों से, चुन-चुनकर मै, तेरी कुटी सजाऊगा ;
आज विजन वन में जीवन की दीपावली मनाऊँगा।
अभिलाषा है, तेरा स्वर हो मेरी वीणा की झनकार ;
मेरे यौवन की मादकता तेरे वैभव का हो सार।
जग की हृदय हीन जगमग मे अलग सजे अपना ससार ;
तलके पद-रज पर दो मोती—प्राणों के निर्मल उपहार।

जगन्नाथप्रसाद खत्री "मिलिंद"

इजिप्ट राष्ट्रोद्धारक स्वर्गवासी जगलुलपाशा
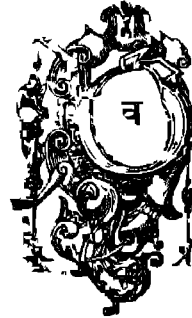
र्तमान युग मे पूँजीपति-साम्राज्यवादियों की स्वेच्छाचारिता तथा उनकी "जिसकी लाठी उसकी भैस"-वाली नीति से तग आकर सर्वसाधारण के हृदय में एक विशेष क्रांति का उदय हो चुका है, और इस कारण पूँजीपति-राष्ट्रों का दुर्बल राष्ट्रों के रक्त को चूस-चूस कर मोटा होना अब ज़रा टेढ़ी खीर होता जा

रहा है । अपनी रक्त-पिपासा-शांति के मार्ग में इस रुकावट को उपस्थित हुआ देखकर पूँजीपति राष्ट्रों ने और भी अधिक वीभत्स-रूप धारण कर लिया है और वे दुर्बल राष्ट्रों में उत्पन्न हुई उत्क्रांति का येन केन प्रकारेण समूल नष्ट करने का कठिन प्रयत्न कर रहे हैं । भारत तथा इजिप्ट में ब्रिटेन की नीति, फ़िलीपाइन्स द्वीप समुदाय में अमेरिका की नीति, कोरिया में जापान की नीति, इसके ज्वलंत उदाहरण है । परतंत्र राष्ट्रों ने भी दूसरा कोई उपाय न देखकर, अंत में प्रबल राष्ट्रों के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी है । और वे अपने बल की प्रतीति दिलानेवाले तथा उन्हें सुसंगठित रूप प्रदान कर अग्रसर करनेवाले असाधारण नेताओं के अलौकिक बल पर ही इस तुमुल युद्ध में प्रवृत्त हुए हैं । ऐसे गंभीर समय में इस युद्ध में सम्मिलित हुए किसी दुर्बल राष्ट्र को यदि अपने नेता से हाथ धोना पड़े, तो इससे उस राष्ट्र की बड़ी भारी क्षति तो होती ही है, पर उससे उन संपूर्ण दुर्बल राष्ट्रों की गति में भी बड़ा धक्का पहुँचता है, जो अपने समानाधिकार के लिये प्राणाहुति देने पर उतारू हो रहे हैं । किसी राजा की मृत्यु हो जाने पर यद्यपि राजसिंहासन कुछ समय के लिये खाली पड़ जाता है, तथापि उससे कोई विशेष क्षति नहीं होती, क्योंकि उसके अनंतर उसके उत्तराधिकारी द्वारा वह पुनः विभूषित कर दिया जाता है । इस प्रकार से साम्राज्य में कोई विशेष परिवर्तन नहीं होता, परंतु यथार्थ राष्ट्रोद्धारक नेता, जो अपने आत्मीय लोकोत्तर गुणों के कारण अनभिषिक्त-राजपद का सम्मान लाभ करता है— उसके निधन से राष्ट्र की जो अकल्पित हानि होती है— उसकी पूर्ति बहुत कठिनता से होती है । पार्नेल सरीखे यशस्वी नेता की मृत्यु के अनंतर आयर्लेंड को लगातार १० वर्ष तक कैसी विकट कठिनता सहन करना पड़ा था । लोकमान्य तिलक की मृत्यु के कारण भारतीय राष्ट्र की जैसी कुछ भयंकर स्थिति हो रही है, वह हम देख ही रहे हैं । आज इजिप्ट देश को भी अपने राष्ट्रकर्णधार-असामान्य नेता श्रीजगलुलपाशा के ता० २४ अगस्त, सन् १९२७ ई० को देहांत हो जाने से असीम दुःख और विकट परिस्थिति का सामना करना पड़ रहा है । इजिप्ट और इँगलैंड के बीच में, जो स्वायत्त शासन के विषय में झगड़ा चल रहा था, और जिसके प्रधान सूत्रधार महामान्य नेता जगलुलपाशा ही थे, उस झगड़े का किसी प्रकार अंत होकर अब आज उक्त दोनों ही राष्ट्रों का पारस्परिक संबंध निश्चित किए जाने के संबंध में लंदन में विवाद हो रहा है । ऐसे महत्त्व के अवसर पर इजिप्ट राष्ट्र को स्वातंत्र्य मार्ग पर ला खड़े करनेवाले उन्हीं यशस्वी नेता का मृत्यु-मुख में पड़ जाना, बड़े ही शोक की बात है ।

जगलुलपाशा ने अपनी ७६ वर्ष की आयु में इजिप्ट राष्ट्रोद्धार की इच्छा से प्रेरित हो, कैसे-कैसे विकट कार्य किए और उनमें कौन-से ऐसे गुण थे, जिनके कारण उन्हें राष्ट्र के अनभिषिक्त राजपद का सम्मान प्राप्त हुआ, इसका संक्षिप्त विवरण यहाँ दिया जाता है, जो पाठकों को उनके आदर्श-जीवन से परिचय कराने के साथ ही वह

स्वर्गवासी जगलुलपाशा

मार्ग भी बतलाने में समर्थ होगा, जिस पर चलकर मनुष्य अनुपम शक्तिशाली बनकर राष्ट्र का उद्धार करने में यशस्वी हो सकता है।

जगलुल्पाशा का जन्म सन् १८५२ ई० में हुआ था। इनके पिता का नाम इब्राहीम जगलुल् था। जगलुल्पाशा का प्राथमिक शिक्षण एक देहाती मदरसे में ही हुआ था। इसके अनंतर वे कैरो शहर के अज़हर विश्वविद्यालय (University) में दाख़िल हुए और वहाँ उन्होंने अरबी-साहित्य और मुस्लिम-क़ानून का अध्ययन किया। इनके स्वाभाविक गुण और अनुपम विद्वत्ता ने प्रसिद्ध राजनीति-विशारद मुस्तफ़ापाशा फाहमी के मन को मुग्ध कर लिया, और परिणाम-स्वरूप उन्होंने अपनी कन्या इन्हें ब्याह दी। विद्यार्थि-जीवन व्यतीत करने के बाद इन्होंने कुछ समय तो पत्र-संपादन में व्यतीत किया और फिर सरकारी नौकरी कर ली। सन् १८८२ ई० में अँगरेज़ सरकार के विरुद्ध आंदोलन खड़ा करने के अपराध में कुछ अरबी लोग पकड़े गए थे। उनके साथ जगलुल्पाशा भी पकड़े गए और नज़रबंद रहे। इससे इनकी सरकारी नौकरी भी छूट गई।

सन् १८८४ ई० में, इजिप्ट को अपनी अदालत खोलने का स्वत्व मिला और तब इन्होंने वकालत शुरू कर दी। थोड़े ही समय में इनकी वकालत ख़ूब चमक उठी। इतना ही नहीं, वरन् क़ानून में इनकी असाधारण कुशलता को देखकर ये सन् १८९२ ई० में, एक अदालत के प्रधान न्यायाधीश भी बना दिए गए। इस पद को पूर्ण रूप से निबाहते हुए भी इन्होंने फ्रेंच-भाषा और क़ानून का अभ्यास किया और फिर क़ानून में सनद भी प्राप्त कर ली। वक्तृत्व-शक्ति, विद्वत्ता और कर्तव्य-परायणता इन तीनो ही गुणों की इनमें प्रधानता होने के कारण सन् १९०८ ई० में, ये शिक्षण-विभाग के मंत्री पद से विभूषित कर दिए गए।

शिक्षण-विभाग में जगलुल्पाशा ने बड़ी दक्षता का परिचय दिया। उनका पूर्ण विश्वास था कि परतंत्र राष्ट्र में स्वातंत्र्य की जागृति करने के लिये उपयुक्त शिक्षण से बढ़कर अन्य कोई साधन नहीं है। इसी विचार से वे शिक्षण-कार्य में अनुपम उत्साह प्रकट करते थे और उनके समय इजिप्ट में शिक्षण-प्रचार में ख़ूब उन्नति हुई। परंतु उस समय के ख़दीव से मनोमालिन्य हो जाने के कारण, इनको अपने पद से इस्तीफ़ा दे देना पड़ा। मंत्री की हैसियत से इन्हें कभी-कभी ऐसे कार्यों के करने का मौक़ा भी आ पड़ता था, जो इनके स्वभाव से बिलकुल प्रतिकूल थे और जिनके विरुद्ध वे स्वतः ही जनता में जागृति फैला रहे थे। ऐसी स्थिति में जगलुल्पाशा बड़ी कुशलता और बुद्धि-चातुर्य से अपने मनोनीत कार्यों को निर्भय कर डालते थे। ऐसा करने में उन्हें ख़दीव का कोप-भाजन बनना पड़ा। इनके इस विरोध-भाव से ख़दीव इतना असंतुष्ट हो गया कि उसने कह दिया कि जब तक जगलुल्पाशा कैबिनेट में रहेगा, तब तक वह उससे किसी भी प्रकार का संबंध न रक्खेगा। इस समय इजिप्ट में लार्ड किचनर थे और वे जगलुल्पाशा को बहुत चाहते थे, पर उन्हें भी अंत में ख़दीव का हठ देखकर इनके इस्तीफ़े को मंज़ूर करना पड़ा। इस समय तक इजिप्ट राष्ट्र ने भी जगलुल्पाशा की उपयुक्तता को ख़ूब अच्छी तरह से जान लिया था और इससे अब उसने इन्हें अपने नेता-पद से विभूषित कर दिया। लोकपक्ष के नेतृत्व की बागडोर हाथ में आते ही इन्होंने स्वपक्ष की ओर से सरकार से झगड़ना आरंभ कर दिया। इसी समय से जगलुल्पाशा का शेष जीवन इँगलैंड की इजिप्ट पर सार्वभौम सत्ता के प्रतिवाद में लड़ते हुए व्यतीत हुआ।

महायुद्ध के आरंभ होते ही इँगलैंड ने यह घोषणा कर दी कि अब तुर्कों की किसी प्रकार की सत्ता इजिप्ट पर नहीं रही और अब इँगलैंड ही वहाँ का पूर्ण प्रभुत्व ग्रहण करेगा। इस समय इजिप्ट का ख़दीव अब्बास हिल्मी था, पर तुर्कों के साथ संबंध रखने के कारण वह पद-च्युत कर दिया गया और उसकी जगह इँगलैंड ने सुल्तान फ़ौद को ख़दीव बनाकर उसके हाथ में सल्तनत का भार सौंप दिया। सुल्तान फ़ौद को ख़दीव-पद अँगरेज़ों की कृपा-दृष्टि के कारण ही प्राप्त हुआ था, इससे वह अँगरेज़ों के हाथ की कठपुतली बन गया। इस समय इजिप्ट में सर्वत्र ब्रिटिश सैन्य का ही बोलबाला हो रहा था। बस, फिर क्या था, महासमर में इँगलैंड ने पूर्वीय देशों को क़ाबू में रखने की इच्छा से इजिप्ट के द्वारा मनमाना लाभ उठाया।

इँगलैंड की इस स्वेच्छाचारिता और उससे देश तथा राष्ट्र की बढ़ती हुई दुर्दशा को देखकर जगलुल्पाशा के समान देश-हितैषी नेता से कब चुप रहा जा सकता था,

और फिर अब तो इन्होंने अपना एक राष्ट्रीय दल भी निर्माण कर लिया था। इन्होंने उस समय के हाई-कमिश्नर सर रेजिनॉल्ड विन्गेट की मुलाकात की और उनसे यह विनती की कि उन्हें लंदन जाकर इजिप्ट लोक-पक्ष की ओर से सरकार से यह निवेदन करने की इजाज़त दी जावे कि इजिप्ट राष्ट्र अब पूर्ण स्वायत्त शासन (Self-Government) का भार अपने ही कंधों पर लेना चाहता है। साथ ही उन्होंने यह भी कहा कि उन्हें ब्रिटिश परराष्ट्र सचिव से मुलाक़ात करने की आज्ञा भी प्रदान की जावे जिसमें वे इस महत्त्व के प्रश्न पर उनसे वाद-विवाद कर सकें। परंतु उन्हें इँगलैंड जाने की आज्ञा नहीं मिली। इतना ही नहीं, वरन जब सरकार ने यह देखा कि जगलुल् का इरादा सब संसार के सामने इँगलैंड के इजिप्ट-राष्ट्र शासन का भंडाफोड़ करने का है, तो उसने इन्हें मार्च सन् १९१९ ई० में, देश निकाला देकर माल्टा-द्वीप में ले जा रक्खा। सरकार के इस व्यवहार से जनता में बड़ी खलबली मच गई और जगह-जगह विरोध में आंदोलन होने लगे। इजिप्ट राष्ट्र के इस रुख को देखकर सरकार ने जगलुलपाशा को कुछ सप्ताह के बाद ही मुक्त कर योरप जाने की आज्ञा दे दी।

जगलुलपाशा ने पेरिस की संधि-परिषद् के सम्मुख इजिप्ट के राज्य-व्यवस्था-संबंधी प्रश्न को रखने के विचार से फ्रांस-देश को प्रयाण किया। फ्रांस की राजधानी पेरिस में उस समय तमाम विजयी राष्ट्रों के प्रतिनिधियों का जमघट था, जो पराजित राष्ट्रों के राज्य को विभक्त करके खा जाने के लिये लालायित हो, आपस में कौओं के समान काँव-काँव कर रहे थे। ऐसी स्थिति में वहाँ इजिप्ट की क्या दाल गल सकती थी, अतः जगलुल को वहाँ से भी निराश होना पड़ा।

इसके बाद शीघ्र ही जगलुलपाशा को स्वदेश में आने की इजाज़त मिल गई, और फिर इजिप्ट में फैले हुए असंतोष के कारण की छानबीन करने के लिये लार्ड मिलनर की अध्यक्षता में वहाँ एक कमीशन भी आ धमका। इस समय तक इजिप्ट ने इस बात का पूर्ण अनुभव कर लिया था कि ये कमीशन्स यथार्थ बात को दबाकर किस प्रकार से ऊपरी तौर से लीपापोती किया करती हैं। जगलुलपाशा के राष्ट्रीय पक्ष ने यह कहकर इस कमीशन का बहिष्कार कर दिया कि "इजिप्ट की अस्वस्थता की जाँच करने का यह इँगलैंड का नया बहाना इजिप्ट के स्वातंत्र्य के हित में उपमर्दकारक है।" राष्ट्रीय पक्ष का यह बहिष्कार-आंदोलन पूर्ण-रूप से यशस्वी हुआ, फलतः सार्वभौमित्व की अहमन्यता के ज़ोर पर, इजिप्ट के घावों पर मनमानी मलहमपट्टी करने के इरादे से आई हुई इस कमीशन को अंत में अपना नाक, मुँह बंद कर राष्ट्रीय पक्ष से संधि कर लेनी पड़ी। जगलुलपाशा और लार्ड मिलनर की आपसी बातचीत का परिणाम यह हुआ कि इँगलैंड को यह क़बूल करना पड़ा कि वह शीघ्र ही इजिप्ट को अंतर्गत स्वातंत्र्य प्रदान करेगा।

कूटनीति की लीला अपरंपार है! उपर्युक्त प्रतिज्ञा का पूरा करना, तो एक ओर रहा; उलटे सन् १९२२ ई० में, जगलुलपाशा को फिर देश निकाले का दंड दे दिया गया। इँगलैंड का आग्रह इस बात पर था कि उस पर इजिप्ट के परराष्ट्रियों की अपने हित संबंध की, और स्वतः इजिप्ट देश-रक्षा की, कठिन जवाबदारी का भार होने के कारण, इजिप्ट-देश में उसकी सैनिक प्रभुता का अबाधित रूप से रहना नितांत आवश्यक है। इसे आग्रह भी कैसे कहा जा सकता है, जब कि अपनी सत्ता के बल पर इँगलैंड ने अपने इस निश्चय को कार्य-रूप में परिणत भी कर दिया! और इसलिये उसके इस व्यवहार को ढिठाई की पराकाष्ठा कहकर जगलुलपाशा ने विरोध की आवाज़ उठाई और तब उसी के परिणाम-स्वरूप उन्हें इँगलैंड के क्रोध का शिकार बनना पड़ा। दुबारा देश निकाले का दंड लंका-द्वीप में भुगतकर, जगलुलपाशा फिर इजिप्ट वापस आ गए।

इस समय इजिप्ट में उनका राष्ट्रीय पक्ष बड़े ज़ोरों से कार्य कर रहा था। एसेंबली के चुनाव में भी उसी पक्ष की विजय रही और जगलुलपाशा उसके मुख्य सूत्रधार बन गए। इसके अनंतर साम्राज्य सरकार के समक्ष स्वदेश की पूर्ण स्वाधीनता का गहन प्रश्न उपस्थित करने की इच्छा से उन्होंने विलायत को प्रस्थान किया।

विलायत में इस समय मुख्य मंत्री मि० राम्सेमैकडॉनेल्ड थे। इन्होंने इजिप्ट के हित में सूखा सा जवाब दे दिया। इस जवाब से जगलुलपाशा को जो हार्दिक वेदना हुई, वह उनके इस उद्गार से भली भाँति व्यक्त होती है—O they invited us to London as that we might commit suicide अर्थात् इँगलैंड को

हमें निमंत्रित कर बुलाने का हेतु यही था कि हम अपनी आत्म-हत्या कर लेवें !

यद्यपि जगलुलपाशा के गर्मदल का इस समय भी इजिप्ट में पूर्ण प्रभाव फैल रहा था और चुनाव में बहुमत से वही यशस्वी भी हुआ था, तथापि अब जगलुल ने, मंत्रि-मंडल में प्रवेश करने की अपेक्षा अपने सारे उद्योग को इँगलेंड के इजिप्ट के अंतर्गत सैन्य-शासन को ही उखाड़ फेंकने में केंद्रीभूत किया और गत दो वर्षों से वे इसी घोर प्रयत्न में निमग्न थे। परंतु शोक! उनके इन अलौकिक प्रयत्नों के कोई निश्चित स्वरूप धारण करने के पहले ही उनके जीवन का अचानक अंत हो गया। इजिप्ट की राजघटना का कार्यपूर्ण होने के पहले ही कुटिल-काल ने इस राष्ट्र-धुरीण को भूतल से उठा लिया"

जगलुलपाशा की महत्त्वाकांक्षा स्वायत्तशासनयुक्त स्वतंत्र इजिप्ट देश देखने की थी। यद्यपि उनकी यह अभिलाषा उनके जीवन-काल में पूर्ण नहीं हुई, तथापि यह उन्हीं के अविश्राम प्रयत्नों का फल है, जो आज इजिप्ट देश स्वायत्तशासन का उपभोग कर रहा है।

जगलुलपाशा ने ५० वर्ष तक अबाधित राजनैतिक जीवन व्यतीत किया। उनमें एक प्रकार का स्वाभाविक तेज था, जिसके कारण वे हरएक व्यक्ति के हृदय पर शीघ्र अधिकार कर लेते थे। ऊँचा, भव्य शरीर, सुघटित कद, पीत-मिश्रित भूरा रंग, उठे हुए गाल इत्यादि, उनकी देह-कांति उनके मनोगत उच्च भाव और आदर्श-जीवन की द्योतक थी। वक्तृत्व शक्ति उनकी बहुत ही तीव्र थी और उनका भाषण इतना तर्कानुबद्ध रहता था कि अँगरेज़ लोग भी सुनकर आश्चर्य के उद्गार निकालते थे। इसके सिवाय उनका विनोदी स्वभाव होने के कारण उनका भाषण श्रोतागण को बीच-बीच में ख़ूब हँसाया करता था। इन सब गुणों से वे श्रोताओं के हृदय पर सरलता से ही पूर्ण अधिकार कर लेते थे। मृत्यु के समय इनकी आयु ७७ वर्ष की थी।

स्वदेश के उद्धार का कठिन व्रत धारण कर संसार की अत्यंत बलाढ्य साम्राज्य-सत्ता से भी निडर होकर लड़नेवाले, बहादुर नेता पार्नेल, सनयतसेन, ग्रिफिथ, तिलक, गांधी प्रभृति नेताओं में श्रीजगलुल पाशा की भी गणना की जावेगी।

विपिनविहारी

दलित कुसुम

(मेरे बच्चे गणेशचंद्र की मृत्यु पर)

(१)

उपवन में तू खिला, सुरभि से उसको तूने महँकाया;
रूप अनूठा देख-देखकर माली मन में हरषाया।
सारे तरुवर सुखी हुए थे हँसती सारी लतिकाएँ;
जिस गोदी में खिला कुसुम तू चाहा उसकी बलि जाएँ।

(२)

प्रात समीर प्रेम से पंखा मानो तुझ पर झलता था;
कोमल अंग देखकर तेरा धीरे-धीरे चलता था।
दो दिन तक तो हरा-भरा तू रहकर सुख का स्रोत रहा;
अभिलाषाओं-आशाओं की आँखों की तू ज्योत रहा।

(३)

किंतु अचानक घन घिर आए बादल ज़ोरों से कड़का;
आँधी चली, हृदय माली का भय से आतुर हो धड़का।
उसने चाहा किसी भाँति भी उपवन से वह हट जाए;
किए यत्न पर और वेग से झोंकों पर झोंके आए।

(४)

कहा प्रकृति ने गोद सम्हालो! सिमट गई लतिका भोली;
अंचल में चाहा मैं ढक लूँ काल-रूप आँधी बोली—
"माना तेरा जीवन-धन है तुझे प्राण से प्यारा है,
किंतु आज क्रीड़ा करने को मैंने यही विचारा है।

(५)

जिसको पाकर फूल रही है फूली नहीं समाती है;
जिसको देख-देखकर मन में स्वर्गोपम सुख पाती है।
जिसको अंचल में ढाका है उसको आज पछाड़ूँगी;
तेरी गोदी से छानूँगी उसे धरा में डालूँगी।"

(६)

लतिका काँप उठी सुनते ही चाहा गोद सम्हाले वह,
कुसुम—कलेजे के टुकड़े को छाती से चिपका ले वह।
किंतु उसी क्षण एक ज़ोर का जो उसने झटका खाया;
सम्हल न सकी गोद से छूटा कुसुम धरा पर गिर आया।

* * *

(७)

सर्वनाश हो गया देखता क्या है खड़ा-खड़ा माली;
गया, ले गया काल प्रेम की तेरी वह परसी थाली।
हृदय मध्य ढाला था, जिसने प्रेम-सुधा-रस का प्याला;
धधकेगी अब जला गया, वह जाते-जाते जो ज्वाला।

देवीप्रसाद गुप्त "कुसुमाकर"

गायनाचार्य पं० विष्णु-दिगंबर पलुसकरजी से साक्षात्कार

गीत भी एक स्वर्गीय वस्तु है। यदि उसे 'वसुधा की सुधा' कहा जाय, तो अत्युक्ति न होगी। सत्संगीत मनुष्य की आत्मा को इस ताप-त्रय-पूर्ण भवधाम से ऊँचा उठाकर क्षण-काल के लिये एक ऐसे अमर-लोक में ले पहुँचाता है, जहाँ चारो ओर सुख-शांति का साम्राज्य छाया हुआ होता है, चिंता-दुःख का कहीं नाम तक नहीं सुन पड़ता। यही नहीं, संगीत ईश्वरोपासन का एक साधन भी माना गया है। अतएव उसके द्वारा सच्चिदानंदमय परात्पर परमात्मा की भक्ति का अमृत-मधुर-रस भी पान किया जा सकता है। संगीत विद्या नाद-विद्या है। नाद को 'नाद-ब्रह्म' भी कहा गया है। यह 'नाद-ब्रह्म' श्रुति के 'रसो वै सः' का प्रत्यक्ष प्रमाण है। जिस समय भारतवर्ष संपूर्ण उन्नत था, जिस समय वह आध्यात्मिक उन्नति के उच्च स्थान पर विद्यमान था, उस समय संगीत-विद्या का यहाँ यथेष्ट प्रचार और समुचित समादर था। इस बात के प्रमाण देने की यहाँ आवश्यकता नहीं। ऐसे प्रमाणों का प्राचीन हिंदू-ग्रंथों में अभाव नहीं है, किंतु देश की अवनति के साथ-साथ संगीत-विद्या की भी अवनति घटित हुई और एक समय ऐसा आया कि जो संगीत-विद्या कभी आत्मोन्नति की सहायक समझी जाती थी, वही अत्यंत हेय और निम्न-श्रेणी के लोगों का व्यवसाय मानी जाने लगी। उसके पवित्र उद्देश्य नष्ट हो गए। उसका उच्च आदर्श जाता रहा। वह विकृत हो गया। भारतीय संगीत की इसी दुर्दशापन्न अवस्था में भगवान् ने उसके पुनरुद्धार के लिये श्री पं० विष्णुदिगंबर पलुसकरजी को भारतवर्ष में भेजा।

गत पचीस-तीस वर्षों से आप संगीत-विद्या की उन्नति-विधान में लगे हुए हैं और आपके प्रबल प्रयत्नों ने परिस्थिति बहुत कुछ बदल दी है। मुसलमानों के संसर्ग से भारतीय-संगीत छिन्न-विच्छिन्न हो पड़ा था, उसका रूप विकृत हो गया था। पलुसकर महोदय ने शास्त्र-शुद्ध प्रणाली से संगीत का अभ्यास किया और अपने को विशुद्ध-संगीत-प्रसार के कार्य में लगा दिया। लाहौर, बंबई आदि स्थानों में गांधर्व-महाविद्यालयों की स्थापना द्वारा आपने पश्चिमोत्तर भारत की मृतप्राय संगीत-कला को नवजीवन प्रदान किया।

पं० विष्णुदिगंबर पलुसकरजी

लाहौर में आपने अपने गांधर्व-महाविद्यालय में एक उपदेशक क्लास खोल दी। इस समय प्रायः १५० उपदेशक संगीत की उच्च शिक्षा प्राप्त कर भारतवर्ष-भर में संगीत का प्रचार कर रहे हैं। श्रीपलुसकरजी को इनके कार्य में बहुत कुछ सफलता मिली है। श्रीलक्ष्मणनारायण गर्देजी के शब्दों में "श्रीपलुसकरजी की सफलता का बीज उनके चारित्र्य और सदभिरुचि में भरा हुआ है। प्राय-

गायकगण व्यसनी और दुराचारी होते हैं, यह भावना श्रीपलुसकरजी ने अपने सदाचरण से बदल दी और सदाचारी शिष्यों का निर्माण कर सिद्ध कर दिया कि गायक भी उन्नत-चरित्र के हो सकते हैं।"

श्रीविष्णुदिगबरजी का नाम बहुकाल पूर्व से भारत-भर में प्रसिद्ध है। आपके दर्शनों की बहुत दिनों से उत्कंठा थी। धन्यवाद है रायगढ़-नरेश श्रीमान् राजा चक्रधरसिंहजी को, जिनकी कृपा से यह सुयोग आज हाथ आया। श्रीमान् बड़े ही संगीतानुरागी हैं। आपके यहाँ प्रतिवर्ष बड़े समारोह से श्रीगणेशोत्सव हुआ करता है। इस अवसर पर आपके दरबार में अनेक गुणी-मानी आया करते हैं। इस वर्ष श्रीमान ने संगीत-विद्या के पुनरुद्धारक गायनाचार्य श्री० पं० विष्णुदिगबर पलुसकरजी को आह्वान किया था। चार छः दिनों तक बड़ा ही आनंद रहा। जिस समय विविध वाद्यों के साथ श्रीपलुसकरजी ताल और लय-युक्त मेघमंद्र-ध्वनि से गान करते थे, उस समय राज-प्रासाद का सुविस्तृत-कक्ष झंकृत हो उठता था और आँखों के आगे प्राचीन भारत के विद्या-विभव की एक झलक सी झलक जाती थी। श्रीपलुसकरजी का ऋषि-प्रतिम भव्य रूप और सुरम्य वस्त्र-परिधान भी कुछ कम प्रभावोत्पादक नहीं था। उनके प्रशांत नेत्र और गंभीर मुखाकृति उनके उच्च मनोभावों की परिचायक थी। उन्हें देखकर किसी भी दर्शक के हृदय में उनके प्रति श्रद्धा के भाव जाग्रत हो सकते थे। सबसे बड़ी बात, जो देखने में आई, वह थी उनकी भक्ति-परायणता। राम के रंग में हृदय ऐसा सराबोर था कि राम को छोड़ कोई शब्द ही मुख से नहीं निकलता था। हरि-भक्ति-विषयक गानों को छोड़कर अन्य गीत गाते ही नहीं थे। तालों का आनंद, तो मर्मज्ञ ही ले सकते थे। पर जब भजन गाए जाते, तब प्रत्येक दर्शक का हृदय खिल उठता था। तुलसी, सूर, मीरा आदि के पदों से अमृत-वर्षा होने लगती थी। श्रीपलुसकरजी का कीर्तन भी अपने ढंग का अनूठा होता है। उनके शब्दों में एक प्रकार की सजीवता होती है और हृदय के सच्चे भाव बहिर्गत होकर श्रोताओं के हृदय में भी भावावेश उत्पन्न कर देते हैं। वे मंत्र-मुग्ध से बन जाते हैं। इसका कारण उनका बाह्याचरण नहीं, बल्कि आभ्यंतरीण भाव-प्रवीणता ही है। जिस समय वे अपने सहज मधुर-कंठ से—

"रघुपति राघव राजा राम,
पतित पावन सीताराम।"

का कीर्तन करते हैं, उस समय एक लोकोत्तर आनंद का अनुभव कर हृदय नाच उठता है, भक्ति और प्रेम से नेत्र साश्रु हो जाते और कंठ गद्गद हो जाता है। इस प्रकार श्रीपलुसकरजी महोदय हरि-भक्ति और संगीत के स्रोत साथ-ही-साथ बहाया करते हैं। 'सोने में सुगंध' अथवा 'मणि-कांचन' योग चरितार्थ होता है।

गायनाचार्य पं० विष्णुदिगंबर पलुसकरजी

ता० ६-६-२७ की संध्या को मैं गायनाचार्यजी के दर्शनों को उनके निवास स्थल (डेरे) पर गया। आप एक आरामकुर्सी पर बैठे हुए थे, हाथ में एकतारा था और 'राम-राम' का सुर बँधा हुआ था। कभी 'प्रसाद' जी की 'हृदय मेरा हुआ है एकतारा'-वाली कविता पढ़ी थी, उसका स्मरण हो आया। सूर्यास्त का समय था, पश्चिमाकाश में अरुणिमा छाई हुई थी,

गायनाचार्यजी के ओज-युक्त अरुण मुख-मंडल की प्रभा द्विगुणित हो रही थी। बोध हुआ कि प्राचीन भारत का कोई ऋषि अपनी साधना में लग्न है। मैंने सादर अभिवादन किया। गायनाचार्यजी ने बैठने का संकेत किया और अपने मिष्टालाप से मुझे आप्यायित कर दिया। सामान्य वार्तालाप के पश्चात् मैंने कुछ प्रश्न करने चाहे, जिनके उत्तर देना आपने सहर्ष स्वीकार किया। इसके बाद, जो प्रश्नोत्तर हुए, वे यहाँ संक्षेप में दिए जाते हैं—

प्रश्न (१)—संगीत का मुख्य अभिप्राय अथवा उद्देश्य क्या है ?

उत्तर—श्रोता का और निज-का उत्साह बढ़ाना। संगीत सुरुचि और कुरुचि के भेद से पोषक और शोषक, तारक और मारक दोनों हो सकता है।

प्रश्न (२)—संगीत का मनुष्य के हृदय और समाज पर क्या प्रभाव पड़ता है ?

उत्तर—समाज में किसी भी बात को समझाने का कार्य सफलता-पूर्वक होता है। अपने और दूसरों के हृदय और मन को एकाग्र किया जा सकता है। अच्छे या बुरे कार्य में, उसका उपयोग करने का उत्तरदायित्व गायक पर है। ऋषियों ने इसीलिए संगीत का उपयोग सदैव अच्छे कार्यों में किया है।

प्रश्न (३)—काव्य और संगीत में क्या अंतर है ?

उत्तर—काव्य और संगीत में उतना ही अंतर है, जितना सगुण और निर्गुण में है। काव्य सगुण है और संगीत निर्गुण। काव्य केवल चेतन पर प्रभाव डाल सकता है। भाषा-भेद इसमें भी प्रतिबंध है। एक आंग्ल-भाषानभिज्ञ, पर आंग्ल-काव्य का कुछ असर नहीं पड़ सकता। इसके विरुद्ध संगीत का प्रभाव संपूर्ण चेतन प्राणियों के साथ-साथ जड़ पदार्थ पर भी पड़ता है। संगीत और काव्य का जब मेल होता है, तब सोने में सुगंध आ जाती है।

सरस्वती की वीणा-पुस्तक का मेल इसी का निदर्शक है। संगीत को काव्य की अपेक्षा नहीं रहती, पर काव्य एक प्रकार से संगीत के गुण ग्रहण किए बिना रह नहीं सकता। इसका कारण यह है कि संगीत को स्वर का आश्रय होता है और काव्य को वर्ण का। स्वर स्वतंत्र है, पर वर्ण स्वर-सापेक्ष है।

प्रश्न (४)—संगीत का नृत्य के साथ क्या संबंध है ?

उत्तर—यों तो गीत का अर्थ (सं+गीत=संगीत) केवल गान भी है ; पर नृत्य के बिना संगीत अपूर्ण माना गया है। अतएव संगीत का नृत्य के साथ घनिष्ठ संबंध है। नृत्य में गान, वाद्य और नृत्य तीनों बातों का समावेश रहता है। इसी से नृत्य को संगीत का पूर्ण अंग कहा गया है। नृत्य के दो भाग हैं। (१) उत्थापन (नाच) और (२) हाव-भाव कटाक्ष। इस प्रकार नृत्य में जहाँ स्पष्ट-भाषा का व्यवहार होता है, वहाँ मूक-भाषा से भी बराबर काम लिया जाता है।

प्रश्न (५)—भारतीय संगीत का जन्म-स्थान क्या वेद नहीं है ?

उत्तर—हाँ, वेद ही है।

प्रश्न (६)—स्वतंत्र विषय के रूप में संगीत का आदि ग्रंथ कौन है, और उसके आदि आचार्य कौन हैं ?

उत्तर—संगीत का आदि ग्रंथ सामवेद और आदि आचार्य भगवान् शंकर हैं। 'नारदीय शिक्षा'-नामक ग्रंथ में गाने की विधि लिखी है।

प्रश्न (७)—संगीत और नाट्य इन दोनों में क्या संबंध है ?

उत्तर—नाट्य में संगीत का भाव नहीं होगा, तो वह अपूर्ण रहेगा। आवाज को ऊँचा-नीचा करना संगीत का विषय है। नाट्य नृत्य का एक अंग है।

प्रश्न (८)—प्राचीन भारत में नाट्य-संगीत का क्या स्थान था ?

उत्तर—उच्च स्थान था। सर्वत्र नाट्य-क्रिया होती थी।

प्रश्न (९)—उसकी अवनति का क्या कारण हुआ ?

उत्तर—मुग़ल बादशाहों का दुराचरण और दुर्व्यसन। पहले संगीत उच्च उद्देश्य की पूर्ति का साधन माना जाता था, पर अब वही विषय-विलास का एक अंग माना जाने लगा।

प्रश्न (१०) संगीत की अवनति का क्या परिणाम हुआ ?

उत्तर—प्रजा दुर्बल हो गई, धैर्य जाता रहा, विशुद्ध भावना जाती रही। लोगों के ख़याल उलटे हो गए। वैदिक काल में संगीत में सुधार की भावना होती थी, पर अब यह भावना विपरीत हो गई। लोगों का यह ख़याल हो गया कि संगीत से आदमी बिगड़ जाता है।

प्रश्न (११)—संगीत के पुनरुज्जीवन का क्या उपाय है ?

उत्तर—इसके लिये यत्न करना पड़ेगा।

प्रश्न (१२) *—पाश्चात्य संगीत का भारतीय संगीत पर क्या प्रभाव पड़ा, और उस प्रभाव से भारतीय संगीत की भलाई हुई, या बुराई ?

उत्तर—राजशक्ति विदेशी संगीत के साथ होने पर भारतीय संगीत आश्रय-हीन हो गई। यह बुराई हुई, और भलाई यह हुई कि पाश्चात्य लोगों का संगीत-प्रेम देखकर हमारे देश-वासियों में कुछ स्पर्धा के भाव जागृत हुए।

प्रश्न (१३)—प्राचीन राग-रागिनियों के गाने का समय निश्चित है। इसका कारण क्या है ? क्या इससे विज्ञान का कोई संबंध है ?

उत्तर—इस प्रश्न पर मैं भी विचार कर रहा हूं। इसमें तत्त्व अवश्य है ; पर बिना शोध के कुछ नहीं कहा जा सकता, मैं इस तत्त्व के शोध के यत्न में हूँ।

प्रश्न (१४)—प्राचीन रागों के कार्यों के विषय में जो प्रवाद है, वे इस समय क्या दृष्टि-गोचर हो सकते हैं ?

उत्तर—रागों के कार्यों के विषय में जो प्रवाद है, उन्हें असंभव नहीं कहा जा सकता। गान-वाद्य करते समय किवाड़ के काच तड़कते हुए मैंने स्वयं देखा है। वाद्यों में पचीसों तार होते हैं, जो तार मिले हुए होते हैं, वे एक दूसरे से दूर होने पर भी एक को छेड़ने से दूसरे हिल जाते हैं; पर बिना मिला हुआ निकटवाला तार नहीं हिलता। पेड़ों पर तो गान का स्पष्ट प्रभाव पड़ता है। इसकी सत्यता विज्ञानाचार्य श्रीजगदीशचंद्र बोस आदि बतला सकेंगे। दीपक-राग के विषय में जो प्रवाद है, उसका प्रत्यक्ष प्रमाण नहीं मिलता ; पर इतना कहा जा सकता है कि बिना घर्षण के ध्वनि नहीं हो सकती, जहाँ घर्षण है, वहीं ध्वनि है और जहां घर्षण और ध्वनि है, वहां अग्नि भी है।

प्रश्न (१५)—क्या नवीन राग-रागिनी का निर्माण शास्त्र-सम्मत है ? क्या ऐसा किया जा सकता है ?

उत्तर—राग पहले भी बने, अब भी बन सकते हैं। पहले क्रिया, फिर शास्त्र। पर ऐसा करना सबका काम नहीं है। इसके लिये योग्य अधिकारी, पात्र चाहिए। स्वर को प्रमाण-बद्ध किए बिना ऐसा नहीं किया जा सकता। राग को लोगों का रंजन करने में सक्षम होना चाहिए। दूसरी बात नवीन राग के परिणाम के विषय में प्रयोग आवश्यक है। प्रयोग से परिणाम लाभदायक सिद्ध होने पर ही उसका प्रचार वांछनीय है। यह अनुभवी सज्जनों का काम है।

अब ७½ बज चुके थे। मैं प्रणामानंतर गायनाचार्यजी से विदा हुआ और वे भी कीर्तन के लिये जाने की तैयारी करने लगे।

मुकुटधर पांडेय

* इस प्रश्न से मेरा अभिप्राय यह था कि पाश्चात्य संगीत और भारतीय संगीत के पारस्परिक संघर्ष का भारतीय संगीत पर कैसा प्रभाव पड़ा और उससे लाभ हुआ या हानि ? शीघ्रता में मैं, गायनाचार्यजी को अपना अभिप्राय ठीक-ठीक नहीं बता सका और अपनी समझ के अनुसार उन्होंने उस प्रश्न का जो उत्तर दिया, वही नोट कर लाया। —लेखक

प्रेम-सुधा

उस प्रभात के नीरव-मन में वीणा-सी अद्भुत झंकार;
मृदुल-स्वरों में कोकिल गाकर कर देता है सुख-संचार।
विश्व-राग की वह स्वर-लहरी बनकर विपुल व्यथा का भार;
प्रकृति गले में पहना देती अपनी माला का उपहार।

निर्जन-कानन के अंचल में
शैल-शिला पर बैठ नितांत,
करुणा-क्रंदन के मृदु-स्वर में
गाता था कुछ हो उद्भ्रांत।

राका निज विस्मित किरनों से
भेज रही थी कुछ संदेश।
तेरी स्मृति का वह दर्शन हो
तुझे ढूंढता हूं हृदयेश !

हृदय-वेदना से आकुल हो
थिरक उठे मम नीरव-प्राण
अनधिकार कल्पना हुई
उन्मत्त सुनाती विस्मृत गान।

मचल उठा उस कोमल लय में
हुआ शांति का अब अवसान;
गोधूली के स्वर्णांचल में
दिनकर-कर का अरुण-प्रसार,
मौन-प्रकृति का आलिंगन कर
ढाली सोम-सुधा की धार।

उस संध्या के शिथिल हृदय में
विरह-मिलन का अंतिम प्यार;
देख रहा है व्यथित विश्व क्या
देगा ओस-अश्रु उपहार।
प्रेम-सुधा बरसा दो नाथ!
प्रत्याशा के नव कल-कल से,
शैशव-गिरि के अंतस्तल से,—
बहने को हूँ तेरे साथ,
प्रेम-सुधा बरसा दो नाथ!
नीरव-रजनी के मृदु-फूल
मधु-गर्भो में जाते भूल
बिखर न जाएँगे इक साथ,
प्रेम-सुधा बरसा दो नाथ!
मन-मंदिर के अंतरतम में,
जीवन के कंपन में, सम में,
हृदय-बीन हो तेरे हाथ,
प्रेम-सुधा बरसा दो नाथ!

मुकुंदीलाल गुप्त

प्रिया-प्रकाश

(प्रत्यालोचना)

(१)

समालोचना साहित्य का एक विशेष अंग है। साहित्य के विकास एवं उन्नति के लिये सुविज्ञ समालोचकों का होना परम आवश्यक है। यह शब्द 'सम्+आ' उपसर्ग-पूर्वक 'लोचन' शब्द के संयोग से बना है। इसका अर्थ है (सम्) सम्यक् अर्थात् अच्छे प्रकार से (आ) चारों ओर से (लोचन) निरीक्षण करना, या देखना। इसमें सम् और आ उपसर्गों का प्रयोग निरर्थक—केवल शब्द की शोभा बढ़ाने के लिये ही—नहीं किया गया है। "किसी पदार्थ को अच्छे प्रकार निष्कपट एवं पक्षपात-रहित होकर चारों ओर से उसका निरीक्षण करने के उपरांत उसके गुण और दोष दोनों के वर्णन करने को ही 'समालोचना' कहते हैं।" इसके निष्कपट और पक्षपात-रहित होने का उद्देश स्पष्ट ही है। साहित्यिक क्षेत्र में कपट और पक्षपात के लिये स्थान ही नहीं है। साहित्यिक मामलों में कपट और पक्षपात से काम लेनेवाला मेरी समझ में साहित्यिक कहलाने का अधिकारी नहीं हो सकता। यहाँ तो उदारता, सहृदयता एवं गुणग्राहकता की आवश्यकता है। गुण-दोष दोनों को व्यक्त करने का प्रयोजन यह है कि समालोचकों द्वारा गुण और दोष दोनों का स्पष्ट विवेचन हो जाने से कवि, लेखक, टीकाकार या अनुवादक कोई भी हो, पूर्व पदार्थ का संग्रह और उत्तर का त्याग करने में सफल होता है। केवल गुणों का ही कथन या दोषों का ही वर्णन 'समालोचना' नहीं कहा जा सकता। अगर प्रशंसा के ही पुल बाँधने हों, तो उसका शीर्षक 'प्रशंसा' अथवा निंदा की ही झड़ी लगानी हो, तो 'निंदा' शीर्षक देना अधिक उपयुक्त होगा। यदि एकांगी वर्णन करना ही अभीष्ट है, तो उसको 'समालोचना' नाम देकर समालोचना का ख़ून न करना चाहिए। इन एकांगी वर्णनों का साहित्य में कोई मूल्य नहीं। पक्षपात-पूर्ण प्रशंसा या द्वेष-पूर्ण निंदा से साहित्य का लाभ होना, तो दूर रहा, उलटे अधिक हानि ही होती है। इसका नतीजा यह होता है कि एक ओर तो निकम्मे लेखक या स्वयंभू कवि इन समालोचकों की कृपा-कोर से व्यर्थ की प्रशंसा में फूलकर कुप्पा हो जाते हैं और साहित्य के गले में छुरी फेरने को कमर कसने लगते हैं, दूसरी ओर होनहार एवं प्रतिभाशाली कवि, लेखक या टीकाकार इन्हीं समालोचकों की बदौलत हतोत्साह हो बैठते हैं। किंतु ऐसे लोगों को समालोचक मानना साहित्य का गला घोटना है। ये लोग समालोचकों के नाम को कलंकित करते हैं। सच पूछा जाय, तो हिंदी में अभी तक सत्समालोचकों का अभाव-सा है।

'माधुरी' की गत श्रावण मास की प्रति (वर्ष ६, संख्या १) में 'संपादकीय विचार' के अंतर्गत 'हिंदी के समालोचक' नामक एक शीर्षक में संपादक महोदय लिखते हैं—

" समालोचक की पहली योग्यता सहृदयता है। जिस लेखक में इस गुण का अभाव है, वह आलोचक कहलाने के सर्वथा अयोग्य है और जब आलोचना द्वेष या दिल का ग़ुबार निकालने के लिये की जाती है, तब तो वह साहित्य के लिये कलंक बन जाती

है। दुर्भाग्य-वश आजकल हिंदी पर ऐसे ही एक दो आलोचकों की कृपा-दृष्टि हो रही है . . ।"

अस्तु, 'प्रकृतमनुसराम' के अनुसार हम प्रकृत विषय में आते हैं।

समालोचक बड़े सौभाग्य से मिलते हैं। वह टीकाकार या संपादक धन्य है, जिसे सुयोग्य समालोचक मिल जावे। हमारे दुर्भाग्य से कहिए अथवा लाला भगवान-दीनजी के मंदभाग्य से, लालाजी को अभी तक ऐसे समालोचक नहीं मिले, जो उनके टीकाकारत्व या संपादकत्व की सुगंध द्वारा उनकी कीर्ति-कौमुदी को इस संसार में फैलाते। सौभाग्य से अब इस दुर्वह काम का बोझ हिंदी-साहित्य के मर्मज्ञ श्रीभूदेव शर्मा विद्यालंकारजी ने अपने कठोर कंधों पर उठा लिया है। आप उन समालोचकों में से हैं, जिनको सदा यही चिंता पड़ी रहती है कि किसी सफल लेखक या टीकाकार पर आक्षेप करके—चाहे वे निर्मूल ही क्यों न हों—जल्दी ख्याति प्राप्त कर लें। अगर सच पूछिए तो, ख्याति-प्राप्त करने का इससे सुगम दूसरा तरीक़ा है ही नहीं। आप पहले लालाजी की 'केशव-कौमुदी' की भी आलोचना लिख चुके हैं। लालाजी की बुढ़ापे की ललकार शर्माजी को इतनी असह्य हुई कि आप आखिर खम ठोककर उनकी 'प्रिया-प्रकाश' की भी समालोचना—जो वास्तव में समालोचना नहीं कही जा सकती—करके कुश्ती लड़ने अखाड़े में उतर ही तो आए, क्यों न हो, शर्माजी ने 'विद्यालंकारत्व' की लाज रख ली, विद्यार्थी और अध्यापक वर्ग कहीं लालाजी की टीका से धोखा न खा जायँ, उनको इस हित-चिंता से आपने, जो उनको सावधान करने का कष्ट उठाया है, उसके लिये सादर धन्यवाद देते हुए तथा उत्तरदायित्व की विषमता का अनुभव करते हुए हम अब इस बात की छान-बीन करेंगे कि आपने लालाजी के अर्थों को भी अनर्थ ठहरा कर, जो अनर्थ किये हैं, वे कहाँ तक ठीक हैं। सहृदय साहित्य-मर्मज्ञ इस बात का निर्णय स्वयं करेंगे।

(२)

"पुण्य को प्रकाश, बेद बिद्या को बिलास किधौं,
जस को निवास 'केसौदास' जग जानिये।
मदन-कदन-सुत बदन-रदन किधौं,
बिघन बिनासन की बिधि पहिचानिए॥ ३॥"

प्रिया-प्रकाश पृष्ठ ३, प्रथम प्रभाव

शर्माजी लालाजी के अर्थ को अनर्थ ठहराते हुए निम्न-लिखित विचार प्रकट करते हैं—

"इन 'अथवा' और 'या' शब्दों द्वारा स्पष्ट प्रतीत होता है कि कवि की उत्प्रेक्षणीय वस्तु दूसरी ही है, अन्यथा गणेश के दाँत के लिये 'अथवा शिवपुत्र के मुख का दाँत है' यह बात कवि कदापि नहीं कहता। यदि दीनजी का 'अथवा' वाला यह अर्थ ठीक मान लिया जाय, तो क्या लालाजी बतावेंगे कि वह वस्तु इस छंद में कहाँ है, जिस पर केशवदास ने इतनी उत्प्रेक्षाओं का ढेर लगा दिया है? ।"

लालाजी बताते तो अवश्य, पर किसको? यहाँ उत्प्रेक्षा अलंकार है ही कहाँ? यहाँ तो साफ़ संदेह अलंकार है, इसमें कोई संदेह नहीं। हम नहीं समझते कि इस संदेह अलंकार में उत्प्रेक्षणीय वस्तु कहाँ से टपक पड़ी? कवि को संदेह है कि यह गणेशजी का दाँत है, अथवा उक्त गिनाए हुए पदार्थों में से कोई दूसरी ही वस्तु है। यहाँ कल्पना और उत्प्रेक्षा के लिये ठौर ही कहाँ? आप प्रश्न करते हैं कि "क्या लालाजी बतावेंगे कि वह वस्तु इस छंद में है कहाँ?" लालाजी ने, इस प्रश्न का उत्तर पहले ही से दे रक्खा है। किसी भी दो आँखवाले पुरुष को इस प्रश्न का उत्तर उसी छंद की टीका के आरंभ में मिल जायगा कि "(श्री-गणेशजी के दाँत की प्रशंसा में कवि कहता है)।"

*　　　*

(३)

"सगुन पदारथ अर्थयुत, सुबरनमय सुभ साज।
कंठमाल ज्यों कवि-प्रिया, कंठ करौ कविराज॥ ३॥"

प्र० ३, पृ० २५

यह दोहा बड़ा ही सरल है, श्लिष्ट पदों द्वारा कंठी और कवि-प्रिया का सादृश्य दिखलाया गया है, दीनजी ने टीका करके इसे अबोध बालकों के लिये भी सुबोध बना दिया है। पर अफ़सोस! विद्यालंकारजी ने, इस सुबोध और सरल टीका को भी नहीं समझ पाया। पहले तो आपको लालाजी-कृत 'कंठ करो' इस मुहावरे का 'कंठ में पहन लो (ज़बानी याद कर लो)' यह अर्थ न रुचा, आप इसका अर्थ यों लिखते हैं "हे कविराजगण! तुम इस कवि-प्रिया ग्रंथ को कंठ-माला के सदृश "कंठस्थ कर लो।" क्या खूब! आपने 'कविराजगण' के गले में 'कंठ-माला' अच्छी पहनाई। कंठ-माला (कंठी) के लिये 'कंठस्थ करना'

मुहावरा तो कहीं सुनने में नहीं आया। 'कंठस्थ करना' मुहाविरा है । इसका शाब्दिक अर्थ 'गले में रखना' भले ही हो जाय, पर बोलचाल भी तो कोई चीज़ है। 'प्रवृत्तिनिमित्त' अर्थ के सामने 'व्युत्पत्तिनिमित्त' अर्थ की कुछ दाल नहीं गलने पाती। आप किसी छोटे बालक को उपदेश तो कीजिए कि इस 'माला' को 'कंठस्थ कर लो' वह झट से 'माला-माला-माला-माला' की रटत लगा देगा। 'कंठ करने' का अर्थ 'याद करना' 'मुखाग्र करना' (by heart) 'बाई हार्ट करना' ये आम बोलचाल में प्रसिद्ध हैं। तब भी शायद किसी मोटी अक़्लवाले की समझ में न आता हो, इसी विचार से लालाजी को इस श्लिष्ट पद की व्याख्या करने में कंठी के लिये 'पहन लो' और कवि-प्रिया के लिये 'याद कर लो' लिखने की आवश्यकता पड़ी।

आप फिर फ़रमाते हैं, "पर 'इसमें काव्य-गुण हो ओज, माधुर्य और प्रसाद का डोरा है' यह आपने क्या लिख डाला है। . बेचारे ओज, माधुर्य और प्रसाद को इस डोरे में क्यों लटका दिया। दीनजी! काव्य-गुण और ओज, माधुर्य तथा प्रसाद आदि (?) क्या भिन्न-भिन्न वस्तुएँ हैं? . दीनजी का यह डोरा, तो नव मन (?) की सुतली हो गई है, जिसे जितना सुलझाओ उलझती ही जाती है ।"

'प्रथमग्रासे मक्षिकापात' के अनुसार पहले छंद से ही इस लेख की महत्ता प्रकट हो गई थी। अस्तु, ज़रा इस दोहे की भी समीक्षा कर लें। अलंकार-शास्त्र की तो बात ही जाने दीजिए, मालूम होता है कि आपने अभी तक 'हिंदी-बालबोध-व्याकरण' भी नहीं पढ़ा। बेचारे व्याकरण को तो आपने अपनी गुण-रूपी डोरी में लटका दिया, नव मन की सुतली से, नहीं, बीस मन के सिकड़ से जकड़कर ताक पर रख दिया। कृपा करके व्याकरण के 'कारक प्रकरण' में 'समानाधिकरण' कारक की परिभाषा देखिए, तब आपकी 'समझे शरीफ़' में आएगा कि काव्य-गुण तथा ओज, प्रसाद और माधुर्य भिन्न-भिन्न वस्तुएँ नहीं हैं, वरन् ओज, माधुर्य और प्रसाद का काव्य-गुण के साथ 'सामानाधिकरण्य' है। हाँ, लालाजी के लिखने की शैली अवश्य पुरानी है। अगर लालाजी समानाधिकरण कारक को 'कामा' (,) या 'डैश' (—) से अलग कर देते, तो शर्माजी के लिये अवश्य सुबोध हो जाता। आधुनिक शैली के अनुसार इसका रूप यों होगा—

"इसमें काव्य-गुण—ओज, माधुर्य और प्रसाद ही का डोरा है।"

अभी आप पूछते हैं—"इस वाक्य में यह 'इसमें' शब्द किसके लिये आया है? कंठी के लिये तो है नहीं, क्योंकि पूर्वापर देखने से कहीं उसका पता नहीं मिलता है, तो फिर अगत्या कवि-प्रिया के लिये मानना पड़ेगा, जो कि सर्वथा असंगत होगा ।"

क्यों जनाब, कवि-प्रिया के लिये मानना क्यों पड़ेगा? उसके लिये तो है ही, ज़रा 'पूर्वापर' नज़र दौड़ाइए भी तो। इसके पूर्व-वाक्य में 'इसे' शब्द जिसके लिये आया है, उसी 'कवि-प्रिया' के लिये इस वाक्य में भी आया है। 'इसमें' का यहाँ पर अर्थ है 'इस कवि-प्रिया-रूपी कंठी में।'

* * *

(४)

(पाठ-परिवर्तन और मनमाना अर्थ)

अपने लेख के तीसरे स्तंभ में शर्माजी ने, लालाजी पर 'प्रिया-प्रकाश' में अपनी इच्छानुसार पाठ-भेद करने का दोषारोपण किया है। आपका यह कथन कहाँ तक सत्य है, सो या तो लालाजी ही जानें, या विद्वान् ही इसकी समीक्षा करेंगे। पर हाँ, इतना अवश्य कहना पड़ेगा कि शर्माजी ने, यहाँ भी अनधिकार चेष्टा की है। आप सरासर झूठ कहते हैं। आप इस बात को जानते हैं ही नहीं, केवल अटकलपच्चू लिख रहे हैं। कम-से-कम आपने, जो छंद उद्धृत किया है। उसी से इस बात का पूरा प्रमाण मिल जाता है। क्या आप यह बतलाने की कृपा करेंगे कि आपने कितनी टीकाएँ देखी हैं? मेरे पास एक सरदार कवि की भी टीका है।

केशव के प्राचीन टीकाकारों में से 'सरदार कवि' का स्थान सबसे ऊँचा है। उन्हीं की टीका सबसे प्रामाणिक भी मानी जाती है। लालाजी ने, अपने वक्तव्य में उस टीका का नाम सबसे पहले लिखा भी है। अतः मैं समझता हूँ कि मूल-पाठ में लालाजी ने उसका भी आधार लिया होगा। पहले पाठांतर के झगड़े से निबट लें, तब मनमाने अर्थ की मीमांसा की जायगी। आपका उदाहृत छंद है—

"दै दधि, दीनो उधार हो 'केसव' दानी कहा जब मोल लै खैहें।"

प्र० ३, छं० ३६

आप इसका पाठ यों भी बताते हैं—

"...................................दान कहा अरु मोल लै खैहैं ।"

यह पाठ नवलकिशोर की प्रति में है। पर इस बात का ही क्या सबूत कि यही पाठ प्रामाणिक है। स्वयं केशव की लिखी तो यह प्रति है नहीं। इस स्थल पर शर्माजी लालाजी को स्वेच्छानुसार पाठ संशोधन करने की प्रवृत्ति का दोष लगाते हैं और लिखते हैं, "प्राचीन किसी भी एक पुस्तक को देखने से..... ।" हैं! कैसा सफ़ेद झूठ है! देखी है, आपने सरदार कवि की टीका; नहीं देखी है, तो ज़रा 'नागरी-प्रचारिणी-सभा, काशी' में क़दमरंजा फ़रमाइए, और पुस्तकालय में से 'सरदार' कवि की टीका देखने का कष्ट कीजिए, देखिए उसमें क्या पाठ है। 'किसी भी प्राचीन पुस्तक को' लिखकर शर्माजी मानो यह दम भरते हैं कि आपने सभी संस्करण पढ़े हैं। पर उक्त टीका का नाम जानते हुए भी आपने देखी तक नहीं। यह तो हुई आपकी सत्यवादिता की नग्नमूर्ति। अगर स्वेच्छानुसार पाठ बदलने का दोष लगाना ही था, तो सरदार कवि पर। अब दोषी कौन है? सरदार कवि हैं या लालाजी, हरिचरणदासजी हैं या आप। यह साहित्य-मर्मज्ञ ही निर्णय करेंगे। मुझे, और आपको भी, बड़े आदमियों के बीच में पड़ने का अधिकार नहीं है। यहाँ तो लालाजी इस दोष से बिलकुल बरी हैं।

आप दीनजी को एक सलाह भी देते हैं। "दीनजी को यदि यह पाठांतर करना था, तो कर सकते थे, पर यदि मूल-पाठ या पाठांतर भी साथ साथ लिख देते, तो पुस्तक अधिक उपादेय और पूर्ण हो जाती।" पहले तो यही स्पष्ट करने की कृपा कीजिए कि 'मूल-पाठ' या 'पाठांतर' के क्या मानी? ये दोनों पर्याय तो नहीं हैं? अस्तु, जो कुछ भी हो, पाठांतर रखना सुयोग्य संपादक का काम नहीं है, कवि अपनी कविता में 'पाठांतर' नहीं लिख जाता, कवि का मूल-पाठ केवल एक होता है। लिपि-प्रमाद, छापे की भूल, श्रुति-दोष, जिह्वा-दोष आदि कई एक ऐसे कारण हैं, जिनकी वजह से पाठ-भेद हो ही जाता है। पाठांतर को स्थान देना, या मूल-पाठ का निर्णय करने की क्षमता का न होना, संपादक की अयोग्यता ही सिद्ध करता है, और वह संपादक बनने का अधिकारी नहीं हो सकता। मेरी राय में पाठांतर को पुस्तक में स्थान देना उसकी उपादेयता को बढ़ाने के बदले घटाना है। मुझे तो शर्माजी की यह राय भाड़ में झोंकने लायक़ जान पड़ती है।

अब इसी छंद के मनमाने अर्थ की भी समीक्षा विद्वज्जन करें। शर्माजी को एक शंका और भी है। आपको अभी तक यह भी नहीं मालूम कि हिंदी-साहित्य में 'दानी' का अर्थ 'दान लेनेवाला' भी होता है। श्रीकृष्णजी के लिये कवियों ने 'दधिदानी' शब्द का कई बार प्रयोग किया है। 'दान-लीला' तो एक ने नहीं कई कवियों ने गाई है। पर श्रीकृष्णजी ने किसी को दही का दान दिया, ऐसा कभी सुनने में नहीं आया। हाँ, लिया अवश्य। लेना ही क्या छीना-झपटी का भी मामला आ जाता था। अतः 'दानी' शब्द का व्युत्पत्तिनिमित्त अर्थ चाहे कुछ भी हो, पर प्रवृत्तिनिमित्त अर्थ श्रीकृष्णजी के प्रसंग में अगत्या 'दान लेनेवाले' या 'दान-पात्र' लेना ही होगा। फिर यदि 'दानी' शब्द को 'दानीय' का विकृत—भाषा-विज्ञान के नियम से विकसित—रूप मान लें, तो सारा झगड़ा ही तै हो जाता है। 'दानीय' शब्द संस्कृत 'दान+छयत्' के संयोग से बना है। उसका अर्थ होता है 'दान-पात्र' या 'दान लेनेवाला' संस्कृत 'दानीय' से हिंदी में 'दानी' हो जाना कोई नई बात नहीं है। एक और उदाहरण लीजिए, संस्कृत 'पानीय' से हिंदी का 'पानी' शब्द निकला है, यह किसी से छिपा नहीं है। साहित्यिक दृष्टिकोण से देखने पर चमत्कार भी वस्तुतः इसी अर्थ में नज़र आता है। आप इसको अनर्थ बतलाते हैं और दूसरा पाठ स्वीकार करते हुए इसका अर्थ यों करते हैं "और क्या मोल लेके थोड़े ही खाओगे, उधार माँगोगे, या दान माँगोगे।"

ख़ूब कही शर्माजी! आपने तो इस अर्थ की काफ़ी मिट्टी पलीद कर दी। यह अर्थ निकला कहाँ से? हरिचरणदासजी की टीका से उद्धृत है, या आपकी ही बुद्धि की उपज? पर इस अर्थ ने साहित्य का ख़ून कर डाला है, साहित्यिक चमत्कार को चौपट कर दिया है। इस मनमाने अर्थ के कारण साहित्य का सर्वनाश तो हुआ ही था, साथ में बेचारे व्याकरण की भी बर्बादी हुई। अस्तु, सहृदय साहित्यिकों पर ही हम इस बात का निर्णय छोड़ते हैं कि कौन पाठ और कौन अर्थ अधिक स्पष्ट और चमत्कार-पूर्ण है।

* * *

(५)

"हैं अति उत्तम ते पुरुषारथ जे परमारथ के पथ सो हैं।
केशवदास अनुत्तम ते नर सतत स्वारथ संयुत जो हैं॥
स्वारथ हू परमारथ भोग न मध्यम लोगनि के मन मोहैं।
भारत पारथ-मित्र कह्यो परमारथ स्वारथहीन ते को हैं॥ ३॥"

पृ० ४८, प्र० ४।

केशव का उक्त छंद भर्तृहरि के निम्न-लिखित एक श्लोक से हूबहू मिल जाता है—

"एते सत्पुरुषाः परार्थघटकाः स्वार्थान् परित्यज्य ये,
सामान्यास्तु परार्थमुद्यमभृतः स्वार्थाविरोधेन ये।
तेऽमी मानवराक्षसाः परहितं स्वार्थाय निघ्नन्ति ये,
ये तु घ्नन्ति निरर्थकं परहितं ते के न जानीमहे।"

—भर्तृहरि नीति-शतक

इसके पूर्व दोहे में केशव ने कवियों की तीन श्रेणियाँ बताई हैं—उत्तम, मध्यम, अधम, यहाँ सारे झगड़े की जड़ 'मध्यम' शब्द है। 'मध्यम' शब्द का एक अर्थ 'बीच का' होता है। दोहे में 'मध्यम' शब्द का यही अर्थ लिया गया है। कवि का तात्पर्य है कि कुछ कवि उत्तम होते हैं, कुछ अधम 'परंतु कुछ ऐसे भी होते हैं' जिनको हम न उत्तम कह सकते हैं, न अधम। वे मध्यम अर्थात् उत्तम और अधम कवियों के बीच के 'अपेक्षा-कृत कम अच्छे' कहे जाते हैं। सवैया में केशव ने कवियों के चार दर्जे किए हैं, तीन नहीं। (भर्तृहरि के श्लोक से मिलान कीजिए)। परमार्थी और स्वार्थ-त्यागी उत्तम हैं। स्वार्थ-साधन को मुख्यता देनेवाले और यदि स्वार्थ की हानि न हो, तो परमार्थ भी कर देनेवाले कवि अनुत्तम—उत्तम से न्यून—ये दूसरे दर्जे के कवि हैं। जो केवल स्वार्थ ही साधने के लिये परमार्थ को ताक़ में रख देते हैं, केवल लोगों के रिझाने को भंडौ-वापन कर देते हैं, उनको हम पहिले या दूसरे दर्जे में तो रख नहीं सकते, तीसरे ही दर्जे में उनको मानना पड़ेगा। दूसरे दर्जेवाले उनसे कहीं श्रेष्ठ हैं। केशव ने, इस तीसरी श्रेणी के कवियों के लिये 'मध्यम' शब्द का प्रयोग किया है। अतः इसका अर्थ हमको 'अति नीच' या 'अधम' लेना ही पड़ेगा। (भर्तृहरि ने भी इसी के समांतर तीसरे दर्जे के लोगों को 'मानव राक्षस' कहा है)। 'मध्यम' शब्द का 'नीच' अर्थ लालाजी की ही बपौती, या मौरूसी जायदाद नहीं है। आप और हम भी इसका प्रयोग बख़ूबी कर सकते हैं। आम बोलचाल में 'मध्यम' का 'निकृष्ट' अर्थ अब भी लिया जाता है। 'बड़ी मद्धिम चीज़ है' का अर्थ होता है 'बड़ी रद्दी चीज़ है' नागरी-प्रचारिणी-सभा, काशी द्वारा प्रकाशित 'हिंदी-शब्द-सागर' में भी 'मद्धिम' का एक अर्थ 'मंदा' दिया है।

कवि ने तीन श्रेणी के कवियों का उत्तम, मध्यम और अधम नाम से उल्लेख कर दिया, किंतु चौथे दर्जे के स्वार्थ और परमार्थ-हीन कवियों के लिये उनको कोई नाम न सूझा। अतः 'ते के न जानीमहे' भर्तृहरि के इस स्वर में स्वर मिलाकर केशव भी कह देते हैं 'ते को हैं!' इससे उनको अधमाधम ध्वनित करते हैं। मेरी समझ में नहीं आता कि आप ऐसी किस विपत्ति में पड़ गए थे, जो आप लिखते हैं कि " 'मध्यम' शब्द का अति नीच अर्थ करना सर्वथा असंगत अशुद्ध (?) और व्यर्थ है।" किसी शब्द का अर्थ जानने के लिये पूर्वापर संबंध जानने की आवश्यकता है जनाब! जब कवि तीसरे दर्जे के कवियों को ठीक इसके ऊपर के दोहे में 'अधम' कह चुका है, तो इस छंद में आपके अर्थ या अनर्थ के अनुसार उन्हीं को 'वे कौन हैं, हम नहीं जानते' ऐसा कह कैसे सकता है! केशवदास ऐसे भुलक्कड़ न थे, कवि थे। ग्यारहवें दिन स्वयं लड़के का नामकरण करके कोई व्यक्ति यदि बारहवें दिन कहे कि मेरे लड़के का नाम क्या है, मैं नहीं जानता, तो उसे हम क्या कहें?

* *

(६)

अब पाँचवें प्रभाव का 'वर्णालंकार' प्रकरण उठाकर देखिए, आचार्य केशवजी ने, जो कुछ लिखा है, उसकी समालोचना विद्यालंकारजी किसी समय पाठकों के सामने रखने की कृपा करेंगे। यहाँ पर तो केवल केशवजी के अनन्य भक्त एवं टीकाकार 'दीन' जी की टीका के संबंध में ही अपनी अपूर्व विद्यालंकारता प्रदर्शित करेंगे। धन्यवाद।

प्रिया-प्रकाश के पृष्ठ ६० में श्वेत वस्तुओं की गणना में केशव ने 'कीरति, हरिहय, शरदघन, जोन्ह, जरा, मंदार', आदि लिखा है। यद्यपि शर्माजी ने स्पष्ट तो नहीं स्वीकार किया, किंतु "प्रथम दोहे में आए 'हरिहय' का अर्थ लालाजी ने 'इंद्र' लिखा है।" इस वाक्य से यह

ज़ाहिर हो ही जाता है कि आपको इस विषय में भी संदेह है कि 'हरिहय' का अर्थ 'इंद्र' होता है, या नहीं। लालाजी ने लिखा है, तो क्या ज़बर्दस्ती थोड़े ही लिखा है। अमर-कोष देखिए—

"इन्द्रो मरुत्वान्......जम्भभेदी हरिहय ... ।"

प्रथम-कांड, स्वर्ग-वर्ग, श्लोक ४३।

इंद्र का रंग सफ़ेद होता है, यह भी लालाजी की अपनी कल्पना नहीं है। वास्तव में इन्द्र का रंग कैसा होता है, सो तो ईश्वर ही जाने। क्योंकि कोई देखकर तो आया नहीं है, किंतु इंद्र का श्वेत रंग—और पीत भी—कविप्रौढ़ोक्ति-सिद्ध अर्थ है। पृष्ठ ६८ में पीत वस्तुओं के वर्णन में भी 'सुरपाल' शब्द आया है। लालाजी ने सुरपाल शब्द का अर्थ सरल समझकर नहीं लिखा। यही उचित भी है। यह स्कूलों में पढ़ाई जानेवाली पुस्तक नहीं है। जो 'सुरपाल' शब्द का अर्थ नहीं जानता, वह 'कवि-प्रिया' अध्ययन करने का अधिकारी नहीं है। शर्माजी ने 'सुरपाल' शब्द का अर्थ करने में दिल-दिमाग़ को एक में मिलाकर सुर और पाल शब्द को अलग कर दिया। हाँ, तब आप लिखते हैं 'सुर' का अर्थ 'देवता' और 'पाल' का अर्थ 'पाल में पकी वस्तु' है। पाल में पकी वस्तु का रंग पीला होता ही है। इस प्रकार कोई आपत्ति भी नहीं रहती और दो नए पदार्थों का वर्णन भी हो जाता है।" यह अर्थ तो आपके दिमाग़ की सूझ नहीं। नवलकिशोर की प्रति में भी तो यही अर्थ है। तो क्या आप समझते हैं कि यह अर्थ लालाजी की नज़र में न आया होगा? उन्होंने जान-बूझकर इस प्रकार शब्दों की टाँगें तोड़कर किए गए अनर्थ को स्वीकार करना अनुचित समझा। एक तो शर्माजी पाल में पकी वस्तु को पीला लिखते हैं। यह क्या शर्माजी का निजी अनुभव है, या सुनी सुनाई बात। जनाब, पाल में पकी हुई सभी वस्तुएँ पीली ही नहीं होतीं, लाल भी होती हैं। दूसरे जो आपने 'सुर' अर्थात् 'देवतों' को पीला माना है, सो किस सिद्धांत के अनुसार? इस अर्थ को यदि ठीक भी मान लें, तो क्या इंद्र सुर न होकर असुर था? सुर एक समूहवाची शब्द Collective noun है। इंद्र ही क्या सभी देवतों—सूर्य (लाल), चंद्र (श्वेत), शनि (नीले), मंगल (लाल), गुरु (पीले), बुध (हरे), आदि—का 'सुर' शब्द में अंतर्भाव हो जाता है। इसलिये रंग का वर्णन करने के लिये यदि समूह-वाची शब्द लाने ही हों, तो ऐसे शब्द लाने चाहिए, जिनमें कोई विभेद न हो, जैसे 'शरदघन'। शरदघन सभी सफ़ेद होते हैं। इंद्र 'सुर' है। अतः आपके अर्थ के अनुसार सुरों में ही इन्द्र की गणना होने से वह भी पीला मानना ही पड़ेगा। तो क्या मैं भी आपसे पूछ सकता हूँ कि 'हरिहय' शब्द द्वारा जिस इंद्र का रंग आपने भी सफ़ेद स्वीकार किया ही है, क्या वह इंद्र इन सबके सब पाण्डुरोगी देवतों में से नहीं है। यदि है, तो आप के ही कथन से अन्यथा सिद्ध वह दुरंगा गिरगिट-सा रंग बदलनेवाला इंद्र किस पुराण का है? यदि नहीं, तो वे सुर कौन हैं जिनका अधिपति होने से इन्द्र को 'सुरपति' का 'टाइटिल' मिला है, और आपसे उसकी व्याख्या कैसे छूट गई? 'विद्यालंकार' की तरह 'सुरपति' किसी गुरुकुल की उपाधि तो नहीं?

'सुरपाल' शब्द जैसा दीनजी ने छपवाया है, मेरी समझ में वही उचित है। व्यर्थ में खींचातानी से अर्थ की छीछालेदर करना कहाँ तक ठीक है, सो साहित्य-मर्मज्ञ ही जानें। वस्तुतः साहित्य में इन्द्र का रंग पीला और सफ़ेद दोनों ही प्रसिद्ध हैं। क्यों? इसका उत्तर मैं पहले दे चुका हूँ कि यह 'कविप्रौढ़ोक्ति-सिद्ध' है। इसी प्रकार साहित्य में हनुमान्‌जी को 'स्वर्णशैला-भदेह' भी कहा है, 'बालार्कारुणसन्निभ' भी उनके लिये प्रयुक्त हुआ है, पिंगल भी उनको माना है। लक्ष्मण को भी कहीं कुंदसुंदर (श्वेत) कहा है, तो कहीं 'विद्युत्सन्निभ' (पीला) माना है। कितने उदाहरण दें। "अक़्लमंदां इशारा काफ़ी।"

*   *   *

(७)

अच्छा, अब इस 'पीत-वर्णन' के उदाहरण को भी विद्वान् पाठक देखें और अर्थ-वैचित्र्य की परीक्षा करें—

"मंगल हो जु करी रजनी विधि, याही ते मंगला नाम धरयो है।
दीपति दामिनि देह सँवारि, उड़ाय दई घन जाय बरयो है॥
लोचन को रुचि केतकि चंपक, फूल में अंग सुबास भरयो है।
गौरी गोराई के मेलहिं लै करि, हाटक ते कर हाट करयो है॥१६॥

प्रभाव ५, पृ० ६८

आप फ़रमाते हैं, "सहृदय रसिकगण, केशवजी की कविता का चमत्कार देखिए। उत्तम (?) गौरी की

गोराई का क्या वर्णन किया है !" क्यों विद्यालंकारजी, वे उत्तम-गौरी कैसी ? क्या मध्यम और अधम गौरियाँ भी होती है ? होती होंगी आपके साहित्य में। आप लालाजी के भाष्य का यों खंडन करते हैं—

"'पार्वतीजी के मांगल्य गुण से ब्रह्मा ने हल्दी बनाई, इसी से उसका नाम 'मंगली' रक्खा'। देखा पाठको, यह गुण से गुणी कैसे बना दिया।" खेद है कि अभी तक आप गुणी शब्द का अर्थ ही नहीं जानते। गुणी शब्द का अर्थ ही 'गुणवाला' (गुण अस्यास्तीति गुणी) होता है। गौर वर्ण होने से ही पार्वतीजी को 'गौरी' कहते हैं। किसी विशेष गुण-संपन्न होने के कारण यदि कोई व्यक्ति उसी गुण का गुणी कहा जाय, तो इसमें बेजा ही क्या है ? यदि मांगल्य गुणयुत होने से 'हल्दी' का नाम 'मंगली' रख दिया, तो क्या गुनाह किया। 'मंगल ही जु करी रजनी विधि, का गड़बड़कारी अर्थ आप यों लिखते हैं—

"ब्रह्मा ने संसार के लोगों की कामना से पार्वती की गोराई लेकर 'रजनी' हल्दी बनाई। ।" कैसे शर्माजी कैसे ? 'मंगल ही' का लालाजी-कृत "मंगल=(पार्वती का एक नाम 'मंगला' भी है, अत) मंगलकारी गुण", यह अर्थ आपको न रुचा, तो आपने झट से न जाने कहाँ से शब्दों की ट्रेन छोड़ दी ? दरअसल में देखा जाय, तो आपके इन शब्दों का वास्तविक अर्थ से कोई संबंध ही नहीं है। आपको स्वयं अपने इस अर्थ से संतोष न हुआ, तो आपने अर्थ या अनर्थ के पाठांतर (?) स्वरूप दूसरा अर्थ भी दे दिया। क्यों शर्माजी मूल में पाठांतर लिखने की सलाह तो आप दे ही चुके हैं, तो क्या अर्थों के पाठांतर भी देने चाहिए ?

"यदि उसे (मंगली को शायद) गौरी का पर्याय (?) मानकर 'मंगली' शब्द से संबंध जोड़ना चाहें, तो भी यही हो सकता है कि यत मंगलकारिणी (रजनी) हल्दी मंगला की गोराई से बनाई गई है, इसीलिये उसका नाम 'मंगली' रक्खा गया है।" अरेरे ! भला यह 'मंगली' से संबंध जोड़ना, अशास्त्र-सम्मत कर्म करना, कैसा ! ख़ैर, आप चाहे किसी से संबंध जोड़ सकते हैं। पर कृपा करके साहित्य पर रुष्ट होकर उसके पीछे लाठी लेकर न दौड़िए। इस 'कि यत' का क्या तात्पर्य है ? मंगलकारिणी (रजनी) हल्दी का मंगला की गोराई से क्या संबंध है ? जितना ही सोचो, उतना ही अर्थ क्लिष्ट होता जाता है। वास्तव में आपने अर्थ का अनर्थ करने में कमाल कर दिया। यदि शर्माजी समझते हों कि हल्दी, दामिनी, रोचन आदि गोराई से ही बनाए गए हैं, तो यह शर्माजी की सरासर भूल है। पार्वतीजी का रंग कवियों ने पीला माना है। यही नहीं, किंतु पार्वतीजी से संबंध रखनेवाले जितने भी गुण हैं, उनको भी पीला ही कहा है। 'मांगल्य' 'दीप्ति' 'सुवास' और 'गोराई' ये पार्वतीजी के नैसर्गिक गुण हैं। इन्हीं गुणों को लेकर एक-एक वस्तु की रचना की गई है। मांगल्य गुण से—जिसके कारण पार्वतीजी का नाम मंगला पड़ा—हल्दी, शरीर की कांति से बिजली, अंगों की सुवास से गोरोचन तथा चंपा और केतकी के पुष्पों की सुगंध रची। उनकी गोराई के मैल से—गोराई से नहीं—सोना, कमलकोश आदि पीतवर्ण के सभी पदार्थ बनाए। इसका अर्थ इतना स्पष्ट है कि इसको सरल करने की आवश्यकता ही नहीं प्रतीत होती। आप प्रश्न करते हैं—"इस छंद में गौरी की गोराई का वर्णन है, या मांगल्य गुण का।" जनाब इसमें दोनों का वर्णन है, दोनों का ही नहीं, बल्कि साथ-साथ उनके अंगवास का भी वर्णन है। इस बात को दूसरे चरण का अर्थ करते हुए आप स्वयं स्वीकार करते हैं "गौरी की देह की द्युति से दामिनी ख़ूब सँवारकर बनाई।" क्या ख़ूब ! दामिनी भी कहीं सँवारी जाती है ? अगर दामिनी को उनकी कांति से निर्मित मानने को तैयार हैं, उसके लिये आपको गौरी की 'गोराई' का 'मिक्सचर' बनाने की आवश्यकता न जान पड़ी, तो क्या पार्वती के मंगल-कारी गुण से 'मंगली' (हल्दी) नहीं बनाई जा सकती ? इसी छंद के दूसरे चरण का अर्थ लालाजी ने यों लिखा है, "उनकी कांति से दामिनी बनाई, पर उसे अव चंचला समझकर आकाश की ओर उड़ा दिया, उसी से अब तक बादल जल रहे हैं।" अब ज़रा शर्माजी की शिष्ट शब्दावली भी देखिए। "क्या ख़ूब ! गौरी की कांति क्या हुई, फ़ासफ़ोरस की टिकिया हो गई जो जल के स्पर्श से स्वयं जल उठती है और दूसरे को भी स्वाहा कर देती है ! क्यों लालाजी गौरी कभी नहाती-धोती भी थीं कि नहीं ? उस कांति ने उन्हें, तो कहीं नहीं जला दिया ?" गौरीजी को और जलाना मैंने जब

लेखनी तक की भगवती श्रीगौरीजी के बारे में इन शब्दों को लिखने में लज्जा-सी जान पड़ती है। न जाने शर्माजी की जिह्वा को इन शब्दों का उच्चारण करते शर्म क्यों न मालूम हुई? न हुए केशवजी, नहीं तो देखते कि आज-कल के सुविज्ञ समालोचक उनकी कविता-लता-कुंज में कैसी आग लगा रहे हैं! इसका 'अनर्थ' आपने यों किया है। "गौरी की देह द्युति से दामिनी खूब सँवारकर बनाई और उसे ऊपर उड़ा दिया। उसने आकर बादलों को (बरयो) वरण कर लिया। वह विद्युत् रूप से बादलों में रहने लगी। बरयो का अर्थ जलना नहीं, वरन् स्वीकार करना ही उचित था, और है।" कदापि नहीं। 'बरना' का अर्थ आप किसी से भी चाहे पूछ सकते हैं, वह 'जलना' या 'बलना' ही कहेगा, जिसका अर्थ आप 'स्वीकार करना' लेते हैं, वह है 'वरना'। इसके सीधे से अर्थ में आपने जो खींचातानी की है, उसके विषय में मुझे कुछ नहीं कहना। शर्माजी, गौरी की कांति फ्रास-फ्रोरस तो क्या, उससे भी इक्कीस है। गौरीजी को हिंदू-संतान 'पतिदेवता सुतीय मनि' मानकर सदा से पूजती है। 'अत' गौरीजी की कांति का भी किसी को वरण करना, ऐसा लिखना केशव से महाकवि के लिये कदापि संभव न था। लिखना तो क्या, ऐसी कल्पना भी मन में लाना 'भारतीय आदर्श' से च्युत होना ही समझा जायगा। गौरीजी के संबध में उक्त प्रकार की कल्पना—यह विचारना कि उनकी कांति-निर्मित दामिनी ने बादलों को वर लिया—उनके पातिव्रत्य में दोष लगाना है। अलबत्ता केशव के स्थान में आप होते, तो मान लिये होते। केशव का विचार चाहे कुछ भी रहा हो, पर मेरी समझ में केशव ने उन्हीं पदार्थों को पार्वती के मांगल्य गुण, कांति, सुवास आदि से निर्मित बताया, जिनको हम बड़े आदर-सम्मान के भाव से देखते हैं। किसी की सामर्थ्य क्या कि वह पतिव्रता की ओर कुभावना से देखे भी। किसी की मजाल कि पार्वतीजी से संबंध रखनेवाले हीनातिहीन पदार्थ को भी वरण करने का विचार भी करे। भस्म हो जायगा। आग जलना क्या प्रलय हो जायगा। गौरीजी की दीप्ति और बादलों को वरे; असंभव।

दूसरे यहाँ तो 'अत्युक्ति' अलंकार है। गौरीजी की कांति की अति प्रभुतता व्यंजित करना ही इसका उद्देश है। शर्माजी में भावुकता तो नाम को भी नहीं जान पड़ती। यदि कोई कहे कि 'अमुक का तेज सूर्य के समान था', या 'अमुक के तेज से संसार तप रहा था', तो इसका अर्थ यह नहीं कि उसका तेज भी सूर्य की तरह एक बड़ा आग का गोला था। मुझे तो शर्माजी की ये दलीलें 'बिना सींग पूँछ की' जान पड़ती हैं।

*　　*　　*

(८)

"को है दमयंती, इंदुमती, रति, राति-दिन,
होहिं न छबीली छनछबि जो सिंगारिए ॥ ४२ ॥"
प्र० ६, पृ० १००

लालाजी का सरल भाष्य यह है, "दमयंती, इंदुमती और रति (सीता के रूप के सामने) क्या हैं (तुच्छ हैं)। यदि उन्हें रातों-दिन बिजली से सिंगारते रहें, तो भी उतनी सुंदर नहीं होंगी (जितनी सीताजी हैं)।" शर्माजी में भावुकता का तो नाम नहीं जान पड़ता, पर करने चले हैं समालोचना। यह बात सभी जानते हैं कि बिजली से—आकाश की बिजली से*—शृंगार नहीं किया जाता। पर कवि-कल्पना भी तो कोई चीज़ है। कालिदास ने भी कुछ ऐसी कल्पना की है—

"करेण वातायनलम्बितेन, स्पृष्टस्त्वया चण्डिकुतूहलिन्या।
आमुञ्चती वा मरण द्वितीयमुद्भिन्नविद्युद्वलयो घनस्ते ॥ २१ ॥"
कालिदास—रघु० सर्ग १३

यहाँ शृंगार-कर्त्ता है 'घन' और आभूषण है 'उद्भिन्न-विद्युद्वलय'। शर्माजी को तो यहाँ भी कोई चमत्कार नहीं जान पड़ता होगा। न बादल किसी को गहना पहनाते देखे गए हैं, न बिजली का गहना ही कोई पहनता है। पर यह 'अलंकार' है 'अलंकार'। इससे यह स्पष्ट है कि बिजली द्वारा मानव-शृंगार का वर्णन कवि-संप्रदायाभिमत है। कवि यह नहीं कहता कि बिजली का शृंगार होना ही है। वह तो कल्पना करता है कि यदि बिजली का शृंगार संभव हो, तो..। 'जो हों, सिंगारिए' में 'जो' किस अर्थ का वाचक है? 'जो' का अर्थ है 'यदि' या

* बिजली से आजकल शृंगार करना एक साधारण-सी बात हो गई है। सिरपेंच, बटन, अँगूठी आदि न जाने कितने आभूषण बिजली के मिलते हैं—और सस्ते भी होते हैं।—लेखक

'अगर' । मुझे तो कोई शंका-स्थान ही नहीं जान पड़ता । अगर आपकी आँखें बिजली के कल्पित—वास्तविक नहीं—श्रृंगार की चकाचौंध में ही चौंधिया जावँ, तो अपनी आँखों पर कारिख से पुते शीशे का चश्मा चढ़ाकर देखिए । आप यहाँ 'छन-छवि' के बदले 'छिन-छवि' पाठ बदलकर इसका यों मनमाना अर्थ करते हैं—"...सीताजी के क्षण-भर के श्रृंगार-सौंदर्य को नहीं पा सकतीं । ।" शर्माजी की इस लेखनी को तो चूम लेने को जी करता है । सीताजी का क्षण-भर का श्रृंगार-सौंदर्य कैसा ? क्या सीताजी क्षण-क्षण में गिरगिट की तरह अपना रंग बदलती रहती थीं ? इसकी विशद व्याख्या करने का कष्ट शर्माजी उठाते, तो कम-से-कम केशवजी तो स्वर्ग में कृतकृत्य हो जाते । *

* * *

(९)

"वदन निरूपन निरूपम निरूप भए ।
चंद बहुरूप अनुरूपकै विचारिए ॥ ४२ ॥"
प्र० ६, पृ० १०१

छापे की भूल से इस पद में 'अनुरूपकै' शब्द का "कै" अलग छप गया है । लालाजी के शब्दार्थ को पढ़ने पर यह समझ में आ ही जाता है कि 'अनुरूपक' एक ही शब्द है । छापे की गलती लेखक के सिर मढ़ना भारी भूल है । 'अनुरूपक' शब्द का शब्दार्थ भी जैसा लालाजी ने लिखा है 'प्रतिमा' या 'मूर्ति' होता ही है। कवि का भाव यह है कि 'चंद्रमा तो बहुरुपिए की प्रतिमा—साक्षात् मूर्ति—ही है, अर्थात् चंद्रमा तो दिन-दिन स्वरूप बदलता रहता है, इसलिये सीताजी के मुख से उसकी उपमा दी ही कैसे जा सकती है । मालूम पड़ता है कि शर्माजी 'प्रतिमा-पूजन' के पक्के विरोधी हैं । लालाजी ने 'प्रतिमा' शब्द का प्रयोग क्या किया, शर्माजी ने आव देखा न ताव चट से 'मूर्ति-पूजा' का मखौल उड़ाने को तत्पर हो गए । आप लिखते हैं—"बहुरूपिया की क्या सुंदर प्रतिमा बनाई है, अच्छा हुआ कि वह कुछ ऊँची नहीं, अन्यथा एक और प्रतिमा-पूजन होने लगता ।" सहृदय पाठकवृंद, आप ही विचारिए कि इस प्रसंग पर इस वाक्य का क्या प्रयोजन है ? क्या भाव है ? क्या मूल्य है ? स्वयं शर्माजी इसका अर्थ यों लिखते हैं, "बहुरूपिया चंद्र तो सीता के मुख के अनुरूप (सदृश) हो ही क्या सकता है ?" इस अर्थ में कवि के चमत्कार को चौपट कर दिया है । "कै विचारिए" का भाष्य आप करते हैं 'कैसे कहा जा सकता है' या 'क्या हो सकता है ।' यह अर्थ किस व्याकरण या कोष के अनुसार किया गया है, सो शर्माजी ही जानें । आगे यह पद विद्वान् पाठकों के सामने रक्खा ही है, सो वे इसका निर्णय कर ही लेंगे ।

* * *

(१०)

"मणिमय आलबाल जलज जलज रवि-
मंडल में जैसे मति मोहै कवितान की ।
जैसे सविशेष परिवेष में अशेष रेख,
शोभित सुवेश सोम सीमा सुलतान की ॥ ५९ ॥
प्र० ६, पृ० १११

इसमें भी दुर्भाग्य-वश छापे की भयंकर भूलें हो गई हैं । एक तो पहिले 'जलज' स्थान में 'थलज' होना चाहिए । शब्दार्थ में 'थलज' के माने भी दिए गए हैं । दूसरे, जान पड़ता है, "जलज रविमंडल में . . . कवितान की" इस सारे वाक्यांश का भावार्थ ही छप जाने से रह गया है । मेरी समझ में जटिल-से-जटिल पदों के अर्थ को सुलझाने में सूक्ष्म लालाजी को इस अति सुगम पद का अर्थ ही न आया होगा, ऐसा ही विचारना उनकी विद्वत्ता पर आक्षेप करने के अतिरिक्त और क्या कहा जा सकता है ? इसमें लालाजी की भूल कहाँ तक है, यह उन अनुभवी सज्जनों से छिपा न होगा जिनको प्रेस के प्रेतों से कभी काम पड़ा होगा । अब रह गई अर्थ की समीक्षा । आप थलज-जलज को एक मानते हैं । क्या आप कह सकते हैं कि यह थल और जल से पैदा होनेवाला 'वर्णसंकर' कमल है क्या ? थलज भी और जलज भी ! आपके अनुसार यदि 'थलज-जलज' का अर्थ 'थल-कमल' मान भी लें, तो थल-कमल (कवियों ने जिसे पाटल कहा है, और जिसे गुलाब भी

---

* 'छन-छवि' शब्द केशव ने कमाल का रक्खा है । बिजली के और भी नाम यहाँ प्रयुक्त हो सकते थे । पर यह चमत्कार किसी में न आता, 'छन-छवि से सिंगारने पर भी छबीली न हो' इस विशेषोक्ति अलंकार द्वारा सीता का सौंदर्यातिशय बड़ी खूबी से व्यंजित किया है ।

कहते हैं) के लिये आलवाल बनाते किसी ने नहीं देखा। तमाल-वृक्ष से श्रीकृष्णजी की उपमा कवियों ने एक नहीं लाखों जगह दी है, जिन्हें मैं स्थानाभाव से उद्धृत नहीं कर सकता। ऐसा क्यों किया है, सो कविजन ही जानें। फिर क्या कभी आपने नीले स्थल-कमल का भी ज़िक्र सुना, या स्वयं चर्म-चक्षुओं से देखा है? पीले, सफ़ेद, लाल और गुलाबी रंग के स्थल-कमल (गुलाब) तो हमने भी देखे हैं। यदि कहीं नीले गुलाब भी होते हों, तो शर्माजी, कृपा करके उनका पूरा-पूरा 'एड्रेस' तो लिख भेजिए; मैं भी उन्हें देखकर अपनी आँखें जुड़ा लूँ। 'थलज' का अर्थ यहाँ 'तमाल' भले ही न हो, पर थलज-जलज को एक मानकर उसका अर्थ थल-कमल मानने को मैं तैयार नहीं हूँ! श्रीकृष्णजी का वर्ण श्याम है। थल-कमल श्याम होती नहीं। आप इसका अर्थ यों करते हैं। "मणिमय थाला में जैसे थल-कमल हो, अपने मंडल में जैसे सूर्य हो, और शरद् ऋतु के पूर्ण मंडल के बीच में जैसे पूर्ण प्रतिबिंब या पूर्णिमा का चंद्र हो ..इत्यादि।" आलवाल में एक पुष्प नहीं रक्खा जाता; किंतु पेड़-का-पेड़ लगाया जाता है। अत मणिमय क्यारी में थल-कमल (या गुलाब) का रक्खा जाना समालोचक महोदय की अनोखी कल्पना है। सूर्य का अपने मंडल में होना कोई नई युक्ति पूर्ण बात नहीं है। कवि तो यहाँ पर नवीन कल्पना कर रहा है, उसी में वस्तुत चमत्कार भी है। किसी बात को सीधे शब्दों में कह देने से तो कोई साहित्यिक ख़ूबी नहीं आती। 'सविशेष' का 'पूर्ण' या 'अखंडित' अर्थ शर्माजी ग़लत बताते है और स्वय उसका अर्थ 'शरद्-ऋतु-विशेष का (?) करते हैं। पर यह किसी से छिपा नहीं है कि 'परिवेष' चंद्रमा और सूर्य दोनों के इर्द-गिर्द अवसर-विशेष पर मुख्यतः वर्षा-काल के मेघाच्छन्न आकाश मे ही दिखाई देता है, शरद्-ऋतु मे नहीं। 'परिवेष' का अर्थ भी, जैसा आपने लिखा है, 'पूर्ण मंडल' नहीं होता। परिवेष का अर्थ 'परिधि' होता है—'परिवेषस्तु परिधि' इत्यमर'। परिधि पूर्ण और अपूर्ण दोनों हो सकती है। अपूर्ण चंद्र में पूर्ण-मंडल कैसे होगा? अब आई आपकी समझ में सविशेष की सार्थकता? सविशेष परिवेष का अर्थ होगा 'पूर्ण परिवेष', जो केवल पूर्णिमा के चंद्रमा का ही हो सकता है।

'रवि-मंडल' का अर्थ 'सूर्य-मंडल' सभी जानते हैं। अतः यदि लालाजी ने, इसका अर्थ न भी लिखा, तो अयुक्त नहीं किया। पर जैसा मैं पहले कह चुका हूँ "जलज रविमंडल में जैसे.. की", इस संपूर्ण का अर्थ ही छापे की असावधानी से छपने से रह गया होगा। मेरी समझ में इसका सरलार्थ यों है—

"रास-मंडल में गोपियों से घिरे हुए श्रीकृष्णजी ऐसे दिखाई देते हैं, जैसे मणिवेष्टित क्यारी में कोई सुंदर सघन वृक्ष हो, अथवा रवि-मंडल में जैसे नीलकमल शोभायमान हो, इत्यादि।" हाँ, आपको यह शंका हो सकती है कि सूर्य-मंडल, और उसमें कमल! तिस पर भी कमल जलकर राख न हुआ, प्रत्युत सुशोभित रहा!! मुझे ऐसी निःसार दलीलों के बारे में कुछ नहीं कहना है।

* * *

(११)

ग्यारहवें प्रभाव का २२ वाँ छंद इस प्रकार है—

"एक थल थिर पै बसत प्रतिजन जीय,
द्विकर पै देश-देश को कर धरतु है।
* * *
केशोदास इंद्रजीत भूतल अभूत, पंच-
भूत की प्रभूति भवभूति को शरनु है॥"

—पृ० २३७

इसमें राजा इंद्रजीत का वर्णन है। विरोधाभास के कारण इसमें अपूर्व चमत्कार आ गया है। पर शर्माजी ने सब मिट्टी पलीद कर दी है। 'कर धरना' मुहावरा है जिसके अर्थ 'हाथ पकड़ना', 'सहारा देना', 'निगाह करना', 'मित्रता करना' आदि होते हैं; 'राज्य कर' या 'लगान' देना कहीं नहीं होता। 'कर लगाना' का अर्थ अलबत्ता वही होता है, जो आप 'कर धरना' का समझे बैठे हैं। केशव ऐसे मूर्ख नहीं थे, जो ग़लत मुहावरे का प्रयोग करते। चौथे चरण का भी शर्माजी ने क्या शब्दार्थ, क्या भावार्थ, क्या ध्वन्यर्थ (?) सबका सत्या-नाश कर दिया है। लालाजी ने 'पंचभूत की प्रभूति' को 'भवभूति' का विशेषण माना है जो यथार्थ में इतना ही उपयुक्त और स्वयं सिद्ध है जितना कि दो दूने चार। 'पाँच भौतिक संसार' यह मुहावरा आम बोलचाल का है। 'पंचभूति की प्रभूति' में 'की' विभक्ति भी इसका

अन्वय 'भक्भूति' से ही बतलाती है, इंद्रजीत से नहीं। अब सहृदय साहित्य-मर्मज्ञों के ऊपर इस निर्णय का भार है कि कौन-सा अर्थ युक्ति-संगत है।

* * *

(१२)

"दरश न सुर से नरेश सिर नावे नित,
षटदरशन ही को सिर नाइयतु है।"
पृ० २३८ प्रभाव ११ छंद २३

"राजा इंद्रजीत के सामने देव-तुल्य राजा सिर नवाते हैं, पर वह उनकी ओर देखता तक नहीं, केवल 'षट्-दर्शन' को ही सिर नवाता है।" कवि का प्रयोजन यहाँ राजा का शिष्टाचार प्रदर्शित करने का नहीं है, किंतु उसका राज्याधिकार, उसका रोब दिखलाना ही अभिप्रेत है। जो सुर-सम राजाओं तक की कुछ परवाह नहीं करता, उसका प्रभुत्व विचारणीय ही है। किंतु इतना अधिकार पाने पर भी उसमें गर्व का लेश भी नहीं है। अपने आधीन राजाओं की ओर वह भले ही ताके भी न, पर वह बिलकुल शिष्टाचार-शून्य भी नहीं है। षट् प्रातर्दर्शनीय पुराणाभिमत लोकप्रसिद्ध व्यक्तियों—वैष्णव, ब्राह्मण, योगी, सन्यासी, जगम और सेवार—को सिर झुकाने से नहीं चूकता। 'षड्दर्शन' शब्द का अर्थ लालाजी ने प्रस्तुत छंद के ठीक ६ पृष्ठ पूर्व स्पष्ट ही 'षट् प्रातर्दर्शनीय महात्मा' लिखा है। यहाँ पर उसका लिखना पुनरुक्ति ही होता। षड्दर्शन का अर्थ इस प्रसग में वेदांतादि लिया नहीं जा सकता, कवि-प्रिया ग्रंथ पूर्वापर पढ़ने और मनन करने के लिये है, समालोचना करने को जहाँ हाथ आया वहीं पन्ने उलटने को नहीं।

शर्माजी 'दरशन' के स्थान पर 'दरसैन' पाठ बतलाते हैं। होगा। हमें इस पर कोई उज्र नहीं। पर इसका अर्थ आपने बड़ा गड़बड़झाला किया है। 'दर' का अर्थ 'थोड़ा' लेकर आप कहते हैं 'थोड़ा सैन कर देता है' पर 'दर' का अर्थ 'थोड़ा' है किस कोष के अनुसार, सो तो शर्माजी ही जानें। इस अपूर्व पाठ के, अपूर्व अर्थ की मीमांसा विद्वज्जन ही करेंगे।

* * *

(१३)

इस लेख के लिखने से मेरा यह प्रयोजन नहीं कि लालाजी निर्दोष हैं। to err is Human अर्थात् मनुष्य से भूल होती ही है—या यों कहिए 'भूल मनुष्य से ही होती है'। बहुत संभव है, लालाजी से भी भूलें हो गई होंगी। उन्हीं भूलों से सचेत करने के लिये लालाजी ने विद्वानों से नम्र शब्दों में अनुरोध भी किया है। पर शर्माजी किसी भूल की छाया तक भी न पहुँच पाए। न जाने क्या समझकर आपने अपनी इस सुविनम्र एवं शिष्टपदावली में यह लेख लिखने की कृपा की। अगर आप एक भी भूल बताए होते, तो लालाजी आपके अवश्य कृतज्ञ होते। हाँ, आपकी कृपा से एक भूल अवश्य मालूम हुई है। 'थलज' के स्थान पर 'जलज' छप गया है, और 'जलज रविमंडल में जैसे...की' का अर्थ ही छप जाने से रह गया। एतदर्थ मैं लालाजी से सविनय अनुरोध करूँगा कि दूसरे संस्करण में इन भूलों को सुधारने की कृपा करें।

समालोचकों की निंदा के डर से कोई पुस्तक लिखना बंद नहीं करता, न किसी ने आज तक छोड़ा ही। रत्नों की परख जौहरी ही जानते हैं, लोहार या सुनार नहीं। गुणग्राही विद्वान् लालाजी की पुस्तकों का आदर करते आए हैं, आज दिन भी कर रहे हैं और भविष्य में भी अवश्य करेंगे ही।

खेद के साथ कहना पड़ता है कि हिंदी में 'दूध का दूध पानी का पानी' करनेवाले यथार्थ भाषी सत्समालोचकों का अभाव-सा है। जब हर ऐरा गैरा नत्थू खैरा समालोचक बनने पर तुला हुआ हो और पत्र, पत्रिकाओं को लेखों के अभाव के कारण, छापने के लिये कुछ और 'मैटर' न मिलता हो तो साहित्य की ईश्वर ही रक्षा करे।

मोहनवल्लभ पंत 'विशारद'

प्रेम !

प्रेम है सौंदर्य अनुपम,
प्रेम ही सु विकाश है।
प्रेम है संगीत सुंदर,
प्रेम ही सु प्रकाश है;
प्रेम है आनंद, नवनिधि,
प्रेम जीवन-सार है;
प्रेम है परमात्मा सुख,
शांति का भांडार है।

सोहनलाल द्विवेदी

हमारी आबू-यात्रा
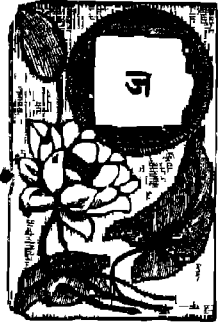
जयपुर से सायंकाल की गाड़ी से रवाना होकर, दूसरे दिन प्रातः-काल हम आबू रोड स्टेशन पहुँचे। आबू जानेवाले यात्रियों को इसी स्टेशन पर उतरना पड़ता है। यहाँ से आबू १८ मील है, मोटर का रास्ता बना हुआ है। हम ९ बजे आबू रोड से रवाना होकर ११ बजे आबू पहुँचे। सड़क पहाड़ के किनारे-किनारे घूमती हुई ऊँची चढ़ी है। चढ़ाई शुरू होते ही प्राकृतिक सौंदर्य की बाहुल्यता दृष्टिगोचर होने लगती है। मार्ग के एक ओर ऊँचे पर्वत-शृंग तथा दूसरी ओर नीचा खड्ड होने के कारण मार्ग भयावह प्रतीत होता है। चारो तरफ़ पर्वतीय दृश्य को देखते हुए हम द्रुतगति से जा रहे थे। रास्ते से अचलगढ़ का किला दिखलाई देता है, जो किसी समय प्रमार राजाओं की राजधानी था।

आबू राजपूताना में सबसे अधिक ऊँचा स्थान है। हिमालय और नीलगिरि के मध्य में इससे अधिक ऊँचा दूसरा कोई पहाड़ नहीं है। समुद्र की सतह से यह ४,००० फ़ीट ऊँचा है। पहले यह स्थान सिरोही-राज्य के अधिकार में था, किंतु गवर्नमेंट ने सिरोही राज्य को कुछ हर्जाना देकर इसे अपने अधिकार में कर लिया है। नीचे की अपेक्षा यहाँ ठंड बहुत रहती है। साल-भर में वर्षा का औसत ४८ इंच है। यहाँ पर एक बहुत बड़ा तालाब है, जिसे नक्खी कहते हैं। दंतकथा है कि ऋषियों ने इसको नखों से खोदा था, इसलिये नक्खी कहलाता है। राजपूताने के राजाओं की कोठियाँ, साहब लोगों के बँगले और गोरों की बारकें यहाँ की मुख्य इमारतों में हैं। एक छोटा-सा बाज़ार भी है, जिसमें देशी सामान की दुकानें हैं।

राजपूताना के ए० जी० जी० तथा अन्य पदाधिकारी ग्रीष्म-काल में यहाँ पदार्पण करते हैं। उस समय आबू में ख़ूब चहल-पहल रहती है। वर्षा में यहाँ की वायु बिगड़ जाती है, इसलिये ग्रीष्म-काल समाप्त होते ही सब नीचे उतर आते हैं। आमोद-प्रमोद के सब सामान यहाँ पर हैं, एक पोलो ग्राउंड, दो होटल और एक क्लब है। हर साल ग्रीष्म-ऋतु में पोलो-टूर्नामेंट होता है।

पैदल भ्रमण करने के लिये यहाँ कई उत्तम-उत्तम सड़कें हैं। सायं-प्रातः अनेक नर-नारी इन सड़कों पर वायु-सेवनार्थ जाते हैं। ज्यों-ज्यों यहाँ की जन-संख्या बढ़ती जाती है, प्राकृतिक सौंदर्य कम होता जा रहा है। ४० वर्ष पहले यहाँ पर अनेक जलप्रपात थे, किंतु आज बहुत-से बंद हो गए हैं। सनसेट पाइंट, पालनपुर पाइंट, क्रेग्स् आदि पैदल भ्रमण करने के लिये उत्तम स्थान हैं। सनसेट पाइंट से सूर्यास्त का दृश्य बहुत सुहावना दिखलाई देता है। आबू में बहुत-से दर्शनीय स्थान हैं, जिनमें वशिष्ठाश्रम, अर्बुदादेवी, गुरुशिखर, अचलगढ़ और देलवाड़ा के जैन-मंदिर मुख्य हैं।

वशिष्ठाश्रम

आबू से ३ मील आग्नेय कोण में, पहाड़ों के मध्य, सुंदर स्थान में वशिष्ठाश्रम है। यहाँ पर एक गोमुख बना हुआ है, जिसमें से सदा जल बहता है। यह स्थान बहुत रमणीय है। वशिष्ठजी का एक मंदिर भी यहाँ पर है, जिसमें कई टूटी-फूटी मूर्तियाँ एकत्रित हैं। इसी स्थान पर वह अग्निकुंड बतलाते हैं, जिसमें से चौहान, प्रमार, पड़िहार और चालुक्य क्षत्रियों की उत्पत्ति हुई थी। यहाँ से दो मील नीचे ऋषिवर्य गौतम का आश्रम है, किंतु मार्ग कठिन होने और हिंसक पशुओं के भय से हम वहाँ न जा सके।

अर्बुदादेवी

बीकानेर-हाउस के पास ही अर्बुदादेवी की मूर्ति एक गुफा के अंदर अवस्थित है। यह देवी चौहानों की कुल-देवी है। कहते हैं, देवी की मूर्ति बिना किसी सहारे के अधर खड़ी है। हमने पुजारी से इस बात को अच्छी तरह दिखलाने के लिये प्रार्थना की, किंतु पुजारी महाराज हमारी प्रार्थना पर किसी प्रकार सहमत न हुए। जिस गुफा में देवी की मूर्ति है, वह गुफा बहुत बड़ी है। आबू में बहुत-सी गुफाएँ हैं, जिनमें किसी समय संसार से विरक्त पुरुष रहा करते थे, किंतु आज वे सब ख़ाली पड़ी हैं।

गुरु-शिखर

आबू की सबसे अधिक ऊँची चोटी गुरुशिखर आबू से १२ मील उत्तर में है। यह समुद्र की सतह से ४,६५० फ़ीट ऊँची है, यहाँ पर दत्तात्रेय मुनि का आश्रम है। इस स्थान से आबू-पहाड़ का दृश्य बहुत मनोहर

जयपुर-हाउस से आबू का दृश्य
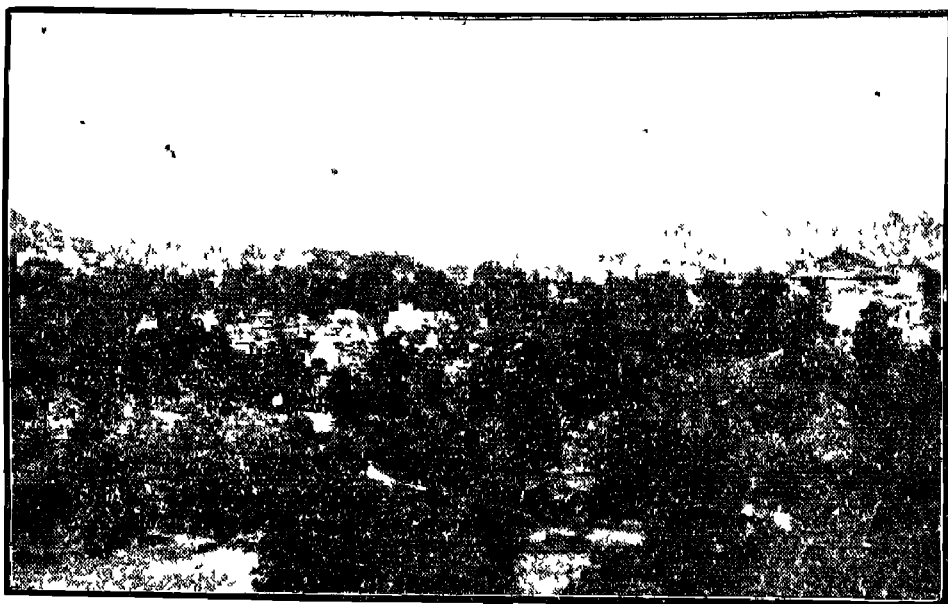
अचलगढ़ के जैन-मंदिर

दिखलाई देता है। शोक है कि हमारे पास केमरा न होने से इस दर्शनीय दृश्य को पाठकों के सामने उपस्थित नहीं कर सके और न फ़ोटोग्राफ़र की दुकान में ही इस दृश्य का कोई चित्र मिल सका।

अचलगढ़

प्रमार नृपतियों के शासन-काल में अचलगढ़ बहुत उन्नति पर था। आबू में सबसे पहले जैन समाज का पदार्पण यहीं हुआ। प्रमार नृपति और पृथ्वीराज में पर-

स्पर जो युद्ध हुआ, उसका रणस्थल भी यहीं है। पहाड़ पर क़िले के भग्नावशेष अब भी विद्यमान है। चित्तौड़ाधिपति राणा कुंभा ने, इस क़िले को अपने राज्य में मिला लिया था। उनके जैनमन्त्री ने क़िले पर जो जैन-मंदिर बनवाए वह अद्यावधि विद्यमान हैं। यहाँ से पुरातत्त्व-संबंधी बहुत-सी सामग्री प्राप्त हुई है। अचलेश्वर महादेव का मंदिर पहाड़ के नीचे बना हुआ है। कहते हैं, इन्हीं अचलेश्वर के नाम से अचलगढ़ का नामकरण हुआ।

नक्खी तालाब
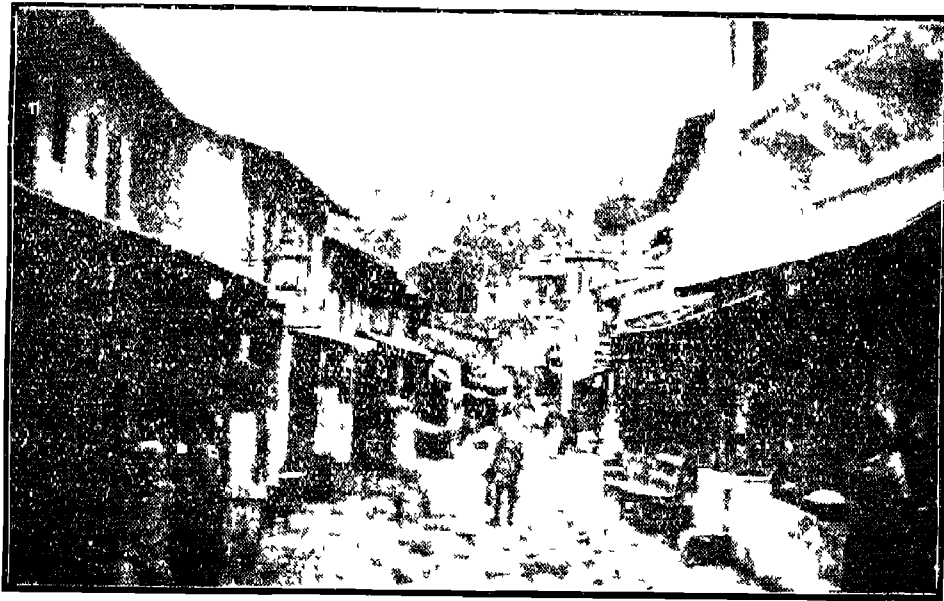
आबू बाज़ार
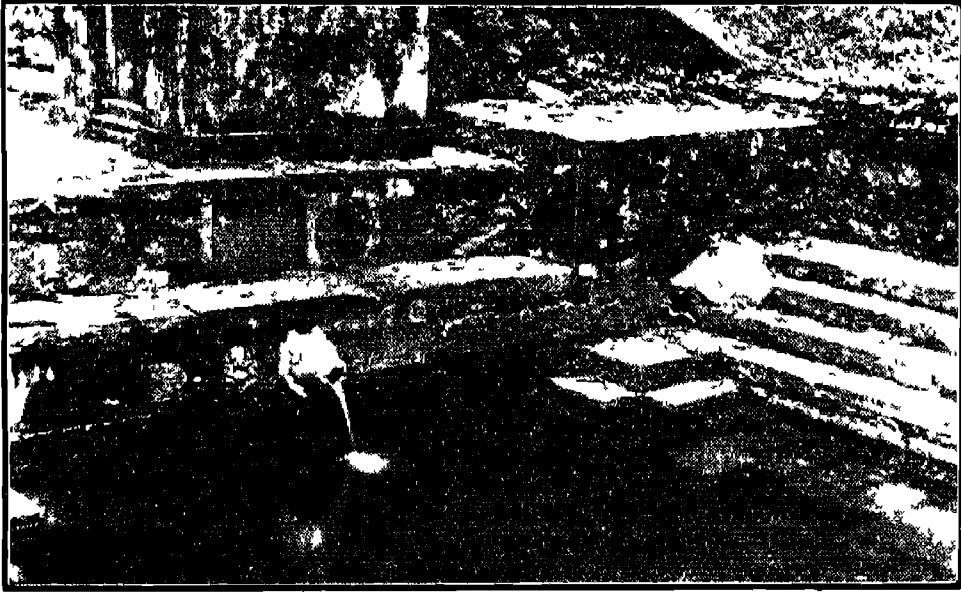
वशिष्ठाश्रम का गोमुख
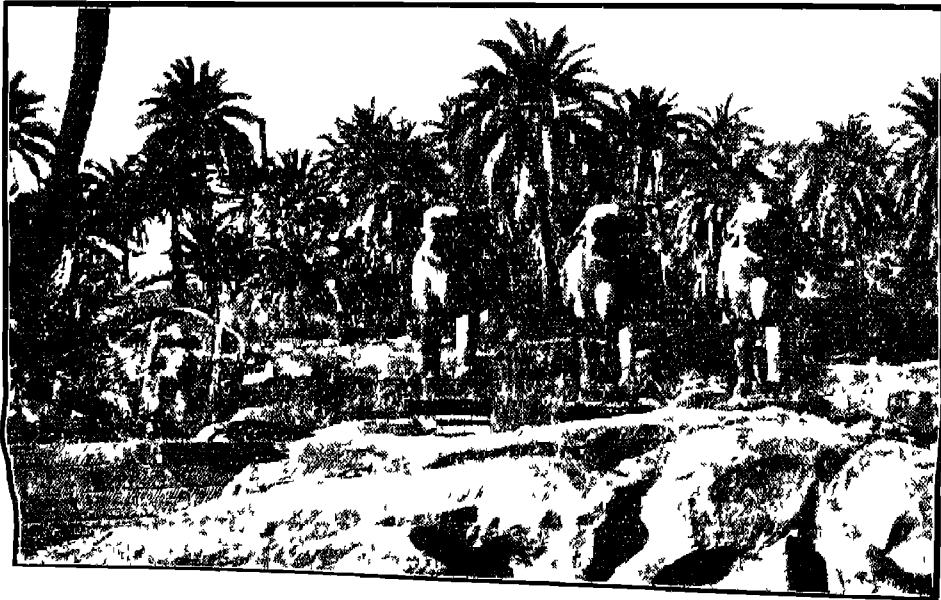
अचलगढ़ में राजा धारावर्ष और तीन भैंसों की प्रतिमा

इस देवालय में प्रवेश करते ही मनुष्य के हृदय में एक अपूर्व आनंद का संचार होता है। चारो तरफ़ पर्वतों पर आच्छादित हरित लताएँ, मध्य में शुभ्र और सुंदर देवालय, चंपा के पुष्पों की मधुर-गंध, शांति का अखंड राज्य और मंद-मंद वायु से ध्वजा का हिलना हृदय को आनंद में प्लावित कर देता है। मंदिर से बाहर एक टूटा-फूटा तालाब है। इसके एक तीर पर अचलगढ़ के प्रमार-नरेश धारावर्ष की मूर्ति स्थापित है। इस नरेश ने एक ही तीर

एक पहाड़ी नाले का पुल

देलवाड़ा में विमलशाह के मंदिर का मुख्य मंडप
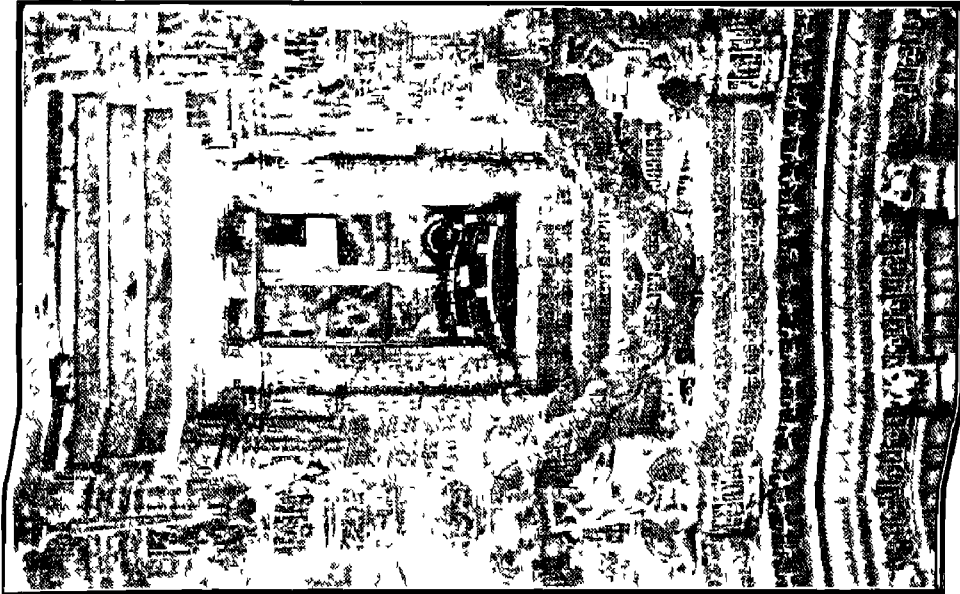
से तीन भैंसों के शरीर को वेध डाला था। इसके स्मारक-रूप से उन भैंसों को तथा इस नरेश की प्रतिमा यहाँ स्थापित हैं।

देलवाड़ा

भारतवर्ष की शिल्प-कला विश्व-विख्यात है। यहाँ के कारीगर एक टाँकी और हथौड़े से जो कार्य कर गए हैं, उसके सामने आज विज्ञान में अग्रणी पाश्चात्यों को भी सिर झुकाना पड़ता है, किंतु काल के कराल कोप और हमारी असमर्थता से उन कारीगरों का वह स्तुत्य कार्य प्राय बहुत-सा विनिष्ट हो चुका है। जो एक-दो स्थान

बचे है, उन्ही को दिखाकर आज हतभाग्य भारत तनिक सिर उठाकर अभिमान के साथ कह सकता है कि कभी मै भी किसी से हीन न था । ऐसे ही स्थानो मे से एक देलवाड़ा के जैन-मदिर है । यह मदिर सख्या मे २ है। दोनों संगमर्मर के बने हुए है । खुदाई का काम अत्यत चतुराई से किया गया है । कोई स्थान ऐसा नहीं है, जहाँ पर कुछ-न-कुछ शिल्प-चातुर्य प्रकट न होता हो । यह मदिर तेरहवीं सदी के बने हुए है । इनके बनानेवाले

देलवाड़ा मे जैन-मदिर का एक भीतरी दृश्य
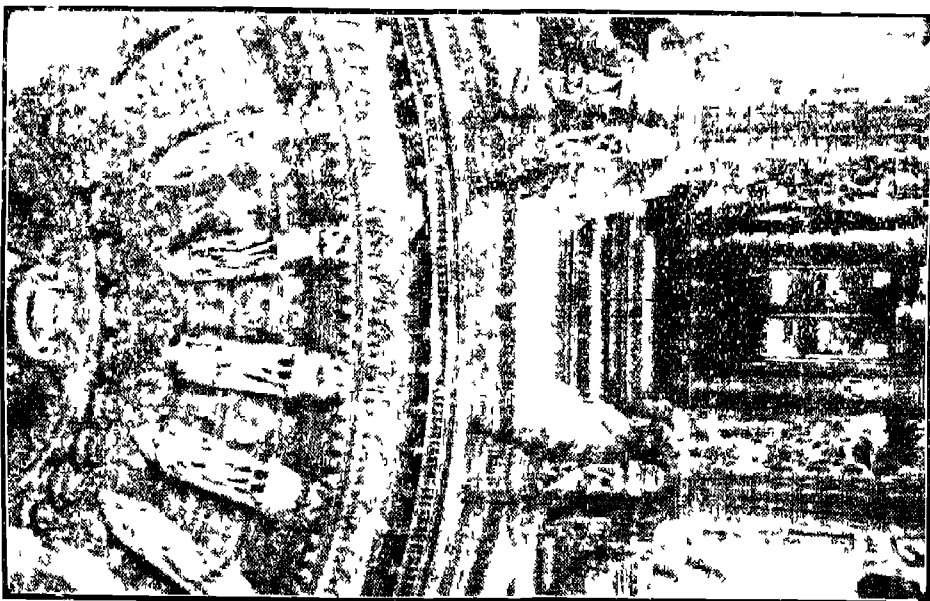
देलवाड़ा के जैन-मदिर मे तक्षण-कला का नमूना
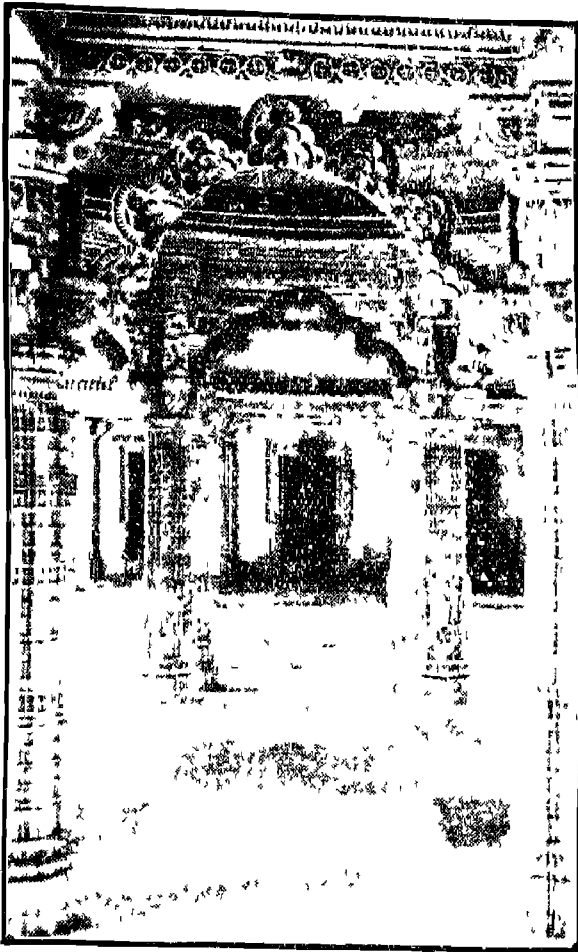
देलवाड़ा में वस्तुपाल तेजपाल के मंदिर का अन्य मंडप

देलवाड़ा के जैन-मंदिर में हाथियों की प्रतिमा

गुजरात के राजा के मन्त्री थे। दोनों मंदिरों में बनानेवालों के कुटुंब की मूर्तियाँ थीं, जिनमें एक-दो के सिवाय प्रायः सब भग्न हो गई हैं। भारतीय तक्षण-कला के अद्वितीय ज्ञाता फर्गुसन साहब ने अपनी रिपोर्ट में लिखा है कि "इन मंदिरों की तक्षण-कला में समानता रखनेवाला भारतवर्ष में ताजमहल के अतिरिक्त दूसरा कोई स्थान नहीं है"। जिस समय आबू पर जाने-योग्य कोई उत्तम और निरापद मार्ग न था और न कोई ऐसा यंत्र था कि जिसके द्वारा भारी पत्थर इतनी अधिक ऊँचाई पर सुरक्षित पहुँच सकें उस समय मकराने से, जो आबू से अनुमान १०० कोस दूर है इतने बड़े-बड़े संगमरमर के पत्थर लाना और फिर उनमें अत्युत्तम खुदाई का काम करना निर्माताओं के अपूर्व साहस का परिचय देता है। आज यह मंदिर ७०० वर्ष बीत जाने पर भी जैसे-के-तैसे विद्यमान हैं और इनको देखकर कोई यह नहीं कह सकता कि यह इतने अधिक पुराने हैं।

बिसनसिंह

राय बहादुर

[**चित्रकार**—कमलाशंकरसिंह, बनारस स्टेट]
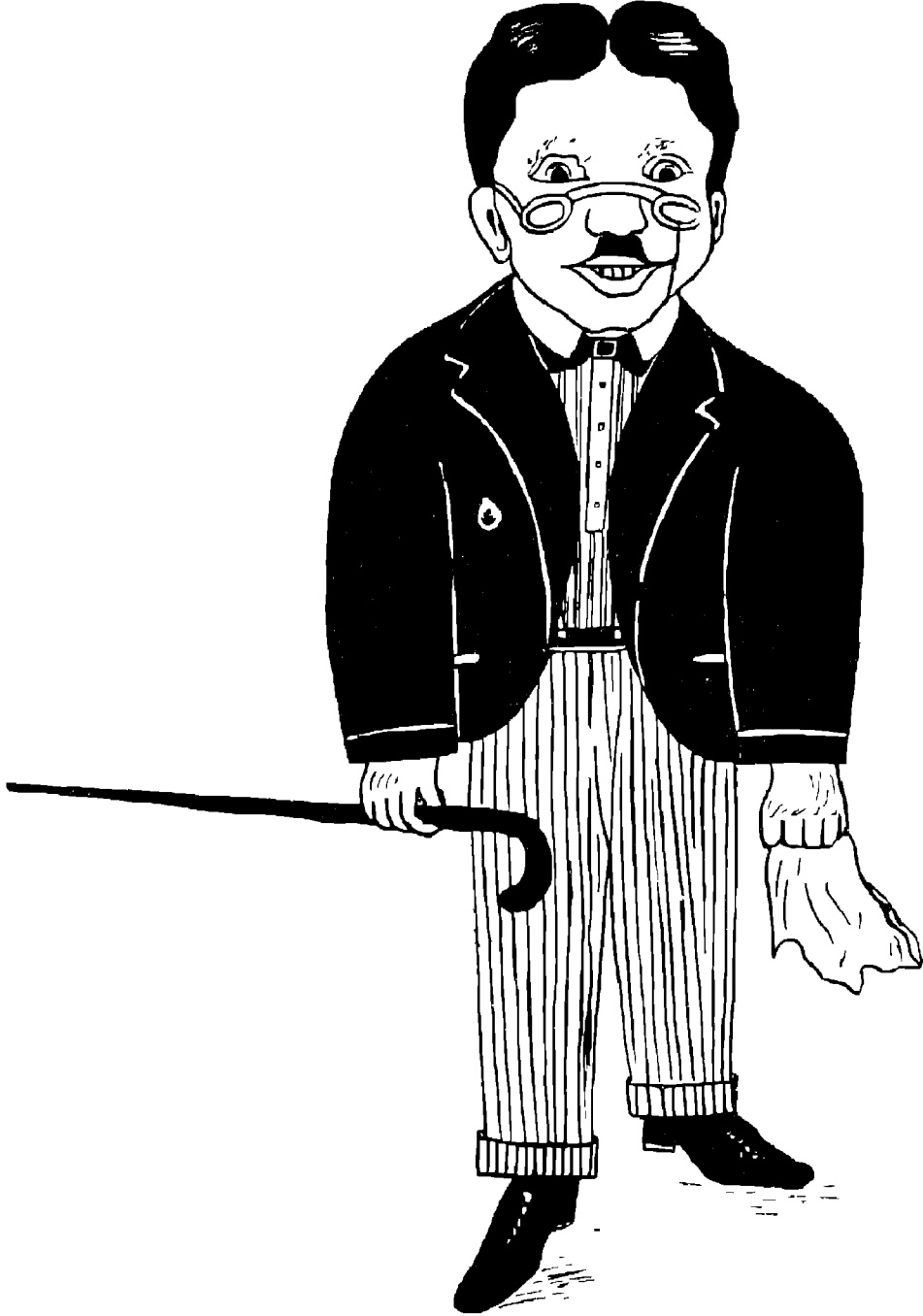
१ कविवर बनारसीदासजी और उनका काव्य

हिंदी-साहित्य के प्रसिद्ध भाषा-कवियों में जैन-कवियों के सिवा शायद ही कोई ऐसा कवि होगा, जिसके काव्य की चर्चा हिंदी के नामी पत्र-पत्रिकाओं में न हुई हो और संग्रह-ग्रंथों में उनको स्थान न मिला हो। किंतु जैन-कवियों के काव्य की न तो कभी पत्र-पत्रिकाओं में चर्चा देखने में आई और न 'साहित्य-प्रभाकर' के सिवा किसी आज तक के प्रकाशित संग्रह-ग्रंथों में ही उनको स्थान मिला।

साधारण कवियों को जाने दीजिए। बनारसीदासजी, भूधरदासजी, किशन, वृंदावनजी, भैया भगवतीदासजी और राजकवि सरीखे प्रतिभाशाली कवियों को स्थान नहीं मिला, यह कितने बड़े दुःख की बात है। भूल से ऐसा हुआ हो, यह भी संभव नहीं। क्योंकि प्रथम तो उक्त कवि-कोविदों-कृत बनारसी-विलास, नाटक-समय-सार, नाम-माला, अर्द्धकथानक, भूधर-जैन-शतक, किशन-बावनी, वृंदावन-विलास और ब्रह्म-विलास इत्यादि प्रकाशित काव्य-ग्रंथ किसी काव्य-प्रेमी सज्जन से छिपे नहीं है। दूसरे, मिश्रबंधुओं ने अपने मिश्रबंधु-विनोद में इन कवियों के काव्य की मुक्तकंठ से प्रशंसा की है और उन्हें उच्च श्रेणी के कवि माना है। संग्रह-ग्रंथों के संग्रहकर्ताओं ने कवियों का समय प्रायः मिश्रबंधु-विनोद से लिया है। अतः कवियों का समय-निरूपण करने के लिये मिश्रबंधु-विनोद के पन्ने उलट-पलटकर देखते समय उक्त जैन-कवियों के नाम और उनके काव्य-छंद संग्रहकर्ताओं की नज़रों से न गुज़रे हों, यह भी कहाँ तक संभव हो सकता है, पाठक विचार सकते हैं। ऐसी दशा में इन लोगों को स्थान न मिलने का कारण ईर्ष्या, हृदय-संकीर्णता और घृणा के सिवाय और क्या हो सकता है। जो पत्र निरंतर सबको एक दृष्टि से देखने की डींग मारा करते हैं, उन्हीं पत्रों में जैन-ग्रंथों की जो समालोचना होती है, वह भी प्रचार में बाधा देने के अभिप्राय से होती है। "छपाई-सफ़ाई उत्तम है, मूल्य इतना है, ग्रंथ 'जैनियों' के काम का है।" बस, जैन-ग्रंथों की समालोचना इतने में ही पत्र-संपादकगण समाप्त कर देते हैं।

कविता की दृष्टि से उपर्युक्त जैन-कवियों का स्थान हिंदी-साहित्य के किसी भी भाषा-कवि से न्यून नहीं है। विद्वान् काव्य-मर्मज्ञ सज्जनगण इनकी कविताओं से अन्य कवियों की कविता की तुलनात्मक समालोचना करके इसकी परीक्षा कर सकते हैं।

आज मैं कविवर बनारसीदासजी और उनके काव्य का संक्षिप्त परिचय पाठकों के सामने उपस्थित करता हूँ। यदि पाठकों ने पसंद किया, तो क्रमशः अन्य कवियों के विषय में भी लिखने का प्रयत्न करूँगा।

कविवर बनारसीदासजी का शुभजन्म सं० १६४३ माघ-शुक्ला ११ को जौनपुर में हुआ। इनके बनाए हुए बनारसी-विलास, नाटक-समय-सार, नाम-माला और अर्द्धकथानक ग्रंथ प्रसिद्ध हैं, जिसमें 'नाटक-समय-सार' ग्रंथ तो भाषा-साहित्य के गगन-मंडल का निष्कलंक चंद्रमा है। पूर्ण प्रतिभा का परिचायक है। अध्यात्म सरीखे कठिन विषय को कैसी सरलता और सुंदरता से इसमें दरशाया है, उसे पाठक तब ही जान सकेंगे, जब उक्त पुस्तक को एक बार पूरी पढ़ लेंगे।

अब ज़रा कविवर के काव्य का रसास्वादन कीजिए—

(१)

ज्यों मतिहीन विवेक बिना नर साजि मतगज ईंधन ढोवै ;
कंचन भाजन धूल भरै शठ मूढ़ सुधारस सों पग धोवै।
बाहित काग उड़ावन कारन डार महामणि मूरख रोवै ;
त्यों यह दुर्लभ देह 'बनारसि' पाय अजान अकारथ खोवै।

(२)

केई उदास रहैं प्रभु कारण, केई कहीं उठि जाहिं कहीं के ;
केई प्रनाम करैं गढ़ि मूरति, केई पहार चढ़े चढ़ि छींके।
केई कहैं असमान के ऊपरि, केई कहैं प्रभु हेठि जमीं के ;
मेरो धनी नहिं दूर दिशांतर, मो महिं है मुहि सूझत नीके।

(३)

पुण्य सँजोग जुरे रथपायक, माते मतंग तुरंग तबेले।
मान बिभौ अँग यो सिरभार, कियो बिसतार परिग्रह ले-ले।
बंध बढ़ाय करी थिति पूरण, अंत चले उठि आप अकेले।
हारि हमाल की पोटसी डारिके, और दिवार की ओट है खेले।

(४)

मात पिता सुत बंधु सखीजन, मीत हितू सुख कामन पीके ;
सेवक साज मतंगज बाज, महादलराज रथी रथ नीके।
दुर्गति जाय दुखी बिललाय, परै सिर आय अकेलहि जीके ;
पंथ कुपंथ गुरू समुझावत और सगे सब स्वारथ ही के।

(५)

काज बिना न करै जिय उद्यम, लाज बिना रन माँहि न जूझै ;
डील बिना न सधै परमारथ, सील बिना सत सों न अरूझै।
नेम बिना न लहै निहचै पद, प्रेम बिना रस रीति न बूझै ;
ध्यान बिना न थँमै मन की गति, ज्ञान बिना शिव-पंथ न सूझै।

(६)

सम्यकज्ञान नहीं उर अंतर, कीरति कारन भेष बनावै ;
मौन तजै बनबास गहै सुख, मौन रहै तप सों तन तावै।
जोग अजोग कछू न विचारत, मूरख लोगन को भरमावै ;
फैल करै बहु जैन-कथा कहि, जैन बिना नर जैन कहावै।

(७)

ज्ञान उदै जिनके घट अंतर, ज्योति जगी मति होति न मैली ;
बाहिज दृष्टि मिटी जिनके हिय, आतमज्ञान कला बिधि फैली।
जे जड़ चेतन भिन्न लखै सुविवेक लिये परखै गुन थैली ;
ते जग में परमारथ जानि, गहै रुचि मानि अध्यातम सैली।

(८)

काया चित्रसारी में करम परजंक भारी,
माया की सँवारी सेज चादर कलपना ;
सैन करै चेतन अचेतनता नींद लिए,
मोह की मरोर यहै लोचन को ढपना ;
उदै बल जोर यहै स्वास को शबद घोर,
विषय सुख-काज की है दौर यहै सपना ;
ऐसी मूढ़ दशा में मगन रहै तिहूँ काल,
धावै भ्रमजाल में न पावै रूप अपना।

(९)

काया से विचारि प्रीति माया ही में हार जीति,
लिये हठ रीति जैसे हारिल की लकरी ;
चुंगुल के जोर जैसे गोह गहि रहै भूमि,
त्यों ही पाँय गाड़े पै न छाँड़े टेक पकरी ;
मोह की मरोर सों भरम को न ठौर पावे,
धावै चहुँ ओर ज्यों बढ़ावै जाल मकरी ;
ऐसी दुरबुद्धि भूलि झूठ के झरोखे झूलि,
फूली फिरै ममता जंजीरन सों जकरी।

(१०)

अगनि में जैसे अरबिंद न बिलोकियत,
सूर अथवत जैसे बासर न मानिए ;
साँप के बदन जैसे अमृत न उपजत,
कालकूट खाए जैसे जीवन न जानिए ;
कलह करत नहिं पाइए सुजस जैसे,
बाढ़त रसास रोग नाश न बखानिए ;
प्राणी बध माहिं तैसे धर्म की निशानी नाहिं,
याही ते 'बनारसी' विवेक मन आनिए।

(११)

मौन के धरैया गृह त्याग के करैया बिधि,
रीत के सधैया परनिंदा सों अपूठे हैं ;

विद्या के अभ्यासी गिरि-कंदरा के बासी शुचि ,
मग के अचारी हितकारी बैन छूटे हैं ।
आगम के पाठी मन लाय महाकाठी भारी ,
कष्ट के सहनहार रामहु सो रूठे हैं ।
इत्यादिक जीव सब कारज करत रीते ,
इंद्रिन के जीते बिना सरबग झूठे हैं ।

(१२)

रती की हे गढ़ी बिथो मढ़ी है मसान-केसी ,
अदर अँधेरी जैसी कदरा है सैल की ।
ऊपर की चमक दमक पट भूषन की ,
धोखे लागे भली जैसी कली है कनैल की ।
औगुन की ओड़ी महा भोड़ी मोह की कनोड़ी ,
माया की मसूरति है मूरति है मैल की ।
ऐसी देह याहि के सनेह याकी सगति सों ,
ह्वै रही हमारी मति कोल्हू के से बैल की ।

(१३)

सुकृत की खान इंद्रपुरी की नसैनी जान ,
पापरज खडन को पौन राशि पेखिए ।
भवदुख पावक बुझायबे को मेघमाला ,
कमला मिलायबे को दूती ज्यों विशेखिए ।
सुगति बधू सो प्रीत पालबे को आली सम,
कुगति के द्वार दृढ़ आगल-सी देखिए ;
ऐसी दया कीजे चित तिहूँ लोक प्राणी-हत ,
और करतूत काहू लेखे में न लेखिए ।

महालचंद बयेद

× × ×

२. मडन

मडन कवि के सबध में निम्नांकित बातें अब तक ज्ञात हुई है ।

(१) मडन कवि जैतपुर बुंदेलखंडी संवत् १७१६ में उत्पन्न—ये कवि बुंदेलखड में महाकवि हो गए हैं और राजा मगदसिंह के यहाँ रहे । रस-रत्नावली १, रस-विलास २, नयन-पचासा ३, ये तीनों ग्रंथ इनके बनाये महा उत्तम हैं । रस-रत्नावली साहित्य में देखने योग्य ग्रंथ है । "शिवसिंह-सरोज" पृष्ठ ४३३

(२) न० ३४८ मणिमडन मिश्र उपनाम मंडन यह कवि जैतपुर बुंदेलखड में सवत् १६६० में उत्पन्न हुआ था । इसके तीन ग्रंथ सुने जाते हैं, पर हमारे देखने में एक भी नहीं आया, यद्यपि इनके स्फुट कवित्त बहुतेरे सुने और देखे गए हैं । इनके विषय में यह किम्वदंती कुछ-कुछ प्रसिद्ध है कि ये भूषण और मतिराम इत्यादि के भाई थे, पर यह बात बिलकुल अशुद्ध है । यह बुंदेलखंडी थे और भूषण इत्यादि ज़िला कानपुर के रहनेवाले । हमने भूषण के वास-स्थान तिकवाँपुर (ज़िला कानपुर) में इसका पता चलाया, तो मंडन को कोई इनका भाई नहीं बतलाता । मडनजी भाग्यशाली कवि हैं, क्योंकि कवि-मंडली में इनका नाम ख़ूब है, यहाँ तक कि कुछ लोग इन्हें बड़े ऊँचे दर्जे का कवि मानते हैं । इनकी कविता सरस और मधुर होती थी । हम इन्हें 'तोष'-कवि की श्रेणी का कवि समझते हैं । इनके बनाए हुए रस-रत्नावली, रस-विलास, नयन-पचासा, जनक-पचीसी और जानकीजू का विवाह-नामक ग्रंथ खोज में मिले हैं । इन्होंने पुरदर-माया १७१६ में रची । "मिश्रबंधु-विनोद पृष्ठ ४८७"

(३) मडन—सवत् १७१६ के लगभग वर्तमान । जैतपुर (बुंदेलखंड) निवासी, राजा मंगदसिंह के आश्रित थे ।

जनक-पचीसी देखो (६–७२) "हस्त-लिखित हिंदी पुस्तकों का संक्षिप्त विवरण पृष्ठ ११४"

उपर्युक्त तीनों उद्धरण पाठकों के सामने हैं । मिश्र-बंधुओं ने मणिमडन और मंडन को एक ही मान लिया है, यद्यपि हस्त-लिखित हिंदी-पुस्तकों का संक्षिप्त विवरण पृष्ठ ११४ देखने से स्पष्ट ज्ञात होता है कि मणिमडन और मंडन दो भिन्न-भिन्न व्यक्ति थे । मणि-मडन मिश्र, गौड़ क्षत्री राजा केशरीसिंह के आश्रित थे । 'पुरंदर-माया' इनका ग्रंथ लिखा है ।

इस बात को यदि छोड़ दें, तो तीनों उद्धरणों से यही निष्कर्ष निकलता है कि मंडन-जैतपुर (बुंदेलखड) वासी थे, संवत् १७१६ में वर्तमान होना भी तीनों उद्धरणों से सिद्ध होता है । परतु यह निश्चित नहीं होता है कि यह कवि कब से कब तक जीवित रहा । यद्यपि मिश्र-बंधुओं ने कवि का जन्म १६६० लिखा है, परतु इसका आधार क्या है, इस पर कुछ भी प्रकाश नहीं डाला है ।

इतना कह चुकने पर मैं एक बात और कहना चाहता हूँ और वह यह कि ख्यातनामा लाला भगवानदीन का

एक लेख, "बुंदेलखंड के कवि" इस शीर्षक का द्वितीय हिंदी-साहित्य-सम्मेलन, प्रयाग के कार्य-विवरण दूसरे भाग में छपा है। उसमें जहाँ वाल्मीकि, सूर, तुलसी आदि तक बुंदेलखंड के प्रभाव से प्रभावित बताए गए, वहाँ मंडन का नाम तक नहीं लिया गया! क्या लालाजी इन्हें बुंदेलखंडी नहीं मानते? इसका रहस्य लालाजी ही जानें!

इस कवि का 'रस-रत्नावली'-नामक एक ग्रंथ मुझे खोज में प्राप्त हुआ है। इसमें कवि ने शृंगार-सहित आठों अवस्थाएँ, हाव-भाव और हेलादि का वर्णन १६२ छंदों में किया है। पं० भगीरथप्रसादजी द्वारा कुछ रसों के उदाहरण प्राप्त हुए हैं। संभव है, वह रस-विलास के हों, क्योंकि जो ग्रंथ मुझे प्राप्त हुआ है उसमें वह नहीं पाए जाते हैं। नयन-पचासा के चार दोहे सरोजकार ने दिए हैं। इसके अतिरिक्त अब तक इन पुस्तकों के संबंध में और कुछ ज्ञात नहीं हुआ है। यदि किन्हीं महानुभाव के पास इनका कोई ग्रंथ हो, अथवा इनके संबंध में और कुछ विदित हो, तो सूचना देने की कृपा करें।

यह कवि अब्दुलरहीमखाँ ख़ानख़ाना का समकालीन था। रहीम कवियों का बड़ा आदर करते थे। उनके आश्रित हिंदी, फ़ारसी के अनेकों कवि थे। फिर भला मंडन ऐसे कवि की वहाँ पहुँच न हो, यह असंभव था। रहीम की प्रशंसा में इनका निम्न-लिखित छंद पाया गया है—

तेरे गुन खानखाना परत दुनी के कान,
यह तेरे कान गुन अपनो धरत हैं।
तू तो खग्ग खोलि-खोलि खलन पै करत लत,
लेत यह तो पै कर, नेक ना डरत हैं।
'मंडन' सुकवि तू चढ़त नवखंड पै,
यह भुजदंड तेरे चढ़िए रहत है।
ओहती अटलखान साहब तुरकमान,
तेरी या कमान तो सों तेहु सों करत हैं।

यह कवि महाराजा मगदसिंह के आश्रित था, उनकी प्रशंसा में कवि ने लिखा है कि—

बैरी के निशान सुने बिरंचि-बिरंचि वेष,
नाहर से लपकि पुकार लागे वीर के।
'मंडन' अनूप सिरमौर बाने बाँधे सबै,
लोहे के गहैया औ सहैया भारी भीर के।
होन लागी महा मारु, तुपकें चलन लागीं,
तोप तरवारें अरु रेले चले तीर के।
दौरि-दौरि देखिबे को आँखें चली लोगन की,
हाथ चले मगद के पाँइ चले मीर के।

कवि ने पावस का वर्णन करते हुए काले बादलों के साथ काले नागों की मनोहारिणी उत्प्रेक्षा की है। देखिये—

गरज पुकार सों वियोगी तन छार भए,
बूँदै विषवारि परै महा विषधारी के।
धुरवा अनेक फन 'मंडन' को बिज्जुमणि,
चमकि चकित चित होत नर-नारी के।
बौरे फेन झरै वायु मत्र सो सचार करै,
देशन में रोरि परै सूरत डरारी के।
भामिन भडारे विष वापी ते निकारे कान्ह,
फिरै घन कारे नाग पावस-बिलारी के।

अंत में रस-रत्नावली के दो-चार उदाहरण देकर मैं लेख को समाप्त करता हूँ। सबसे प्रथम, कवि ने मंगलाचरण किया है, उसके पश्चात् पुस्तक-रचना का कारण बताया है—

विषयी लोगन केसहुँ, उपजे हरि सों प्रीति,
कवि 'मंडन' यह जानिके, बरनत है रस-रीति।
करि-करि मथ्यो रसार्नव, कवि 'मंडन' द्विजराज,
काढ़ी रस रत्नावली, भाषा कवि के काज।

आगे रस, हाव, भाव और संचारी आदि की परिभाषा बताने के पश्चात् कवि कहता है कि—

तहँ पहिल शृंगार के कहियत हैं सब अंग,
आलंबन सुनि जानिहो, आरो तिहि परसंग।
याते नायक नायिका, रस-आलंबन आहि,
तासों 'मंडन' आदि ही, बरन बनाऊँ ताहि।

अतः प्रथम नायक का लक्षण तथा चार भेद कहता है।

दक्षिण नायक का उदाहरण—

ग्वालिन गोरस दवहुरी जमुना में उतारत है रसिकाई,
'मंडन' आनि चढ़ी गिगरी सुमई मनमोहन की मन-भाई।
अपने-अपने घर को तकि घाट सबै चित चाह दिवावै दुहाई,
लै नँदलाल हिलोरनि कै, मिमि औघट नाउ तरैं सो लगाई।

इसके पश्चात् उत्तम, मध्यम और अधम दूती का वर्णन करके नायिका-भेद और उनकी अवस्था आदि का वर्णन करता है। बानगी के तौर पर दो-एक उदाहरण देता हूँ।

लघु लज्जा का उदाहरण—

एक सखी बिहँसे रस ही रस खेल भयो दुलही अरु ना है,
उतै अँकवारि की हारि भई, इत 'मंडन' लाल को लाग्यो भला है।
जीति को दाँव परो पिय को, सजनी ने कह्यो जु हमारी बिदा है;
लाल रहे अँगिया तन चाह तिया मुसकाइ दिया तन चाहै।

प्रौढ़ा धीराधीरा का उदाहरण—

डोरे बिन हार है महावर लिलार आय,
अति ही रवारे प्यारे तऊ मोहिं भाइहौ;
'मंडन' लजौहैं नेक हँसि मुसकाइ कछु,
मोहनी-सी नाइ अनबोलेहू बुलाइहौ;
ओठन करौंछी लीक लोयन लगी है पीक,
बूझिये तो उत्तर पचास कर नाइहौ;
लागि रही बलबार बाँह मेरे बारी बीर,
कहा धौं अबाले यह छाप क्यों छपाइहौ।

उत्कंठिता का लक्षण—

सो कहिए उतकंठिता, जो ललकै पिय चाह।
भाँति-भाँति सुमनोरथनि, सोच करै मन माँह।

उदाहरण—

अँचरा गहि हारि भरौं अँकवारि सुबाहन-बाँधि गरे लै लगाऊँ,
'मंडन' जी महिँजी करि रातैं हरा ही की ओट हिए में छिपाऊँ।
यों इकटक रूप अँचै पुनि लै इन आँखिन भीतर नाऊँ,
माई री जो अब की नँदलालहिं क्यों हू गुपालहिं देखन पाऊँ।

इसके पश्चात् हाव, भाव और हेलादि का वर्णन करके पुस्तक समाप्त करते हुए कवि ने कहा है कि—

इहि भाँति 'मंडन' निरमयी, रस-सिंधु तें रतनावली,
सुनि रसिकराइ कृपा करौ, यह आपनी बिरदावली।
उद्दीपनादिक हाव-भाव, विभाव आदि मिल्यो ठयो,
दस गुने गुन सों गुन्यो यह, जु प्रबंध पूरो है भयो।

अयोध्याप्रसाद शर्मा विशारद

---

१ साहित्य और कथा-कहानी

वीरों की सच्ची कहानियाँ—लेखक, अध्यापक जहूर-बख्श 'हिंदी-कोविद'; प्रकाशक, छात्र-हितकारी-पुस्तक-माला, दारागंज, प्रयाग ; पृष्ठ-संख्या १५७ ; मूल्य ॥); छपाई और कागज साधारण , प्रकाशक से प्राप्य ।

इस पुस्तक में महात्मा बुद्ध से लेकर ज़ोरावरसिंह तक ३१ कहानियाँ हैं, जैसा पुस्तक के नाम से प्रकट है। कहानियों में वीरता की बातों का विशद वैभव है। यद्यपि ये कहानियाँ अधिकांश में लड़कों के काम की हैं, फिर भी प्रौढ़ पुरुष भी इनको पढ़कर लाभ उठा सकते हैं। ज़हूरबख़्शजी ने कुछ और भी ऐसी ही पुस्तकें लिखी हैं, उनमें भी वीरों की कहानियाँ हैं। पर वे सभी जातियों और सभी देशों के वीरों के चरित्रों से चुनी गई हैं। प्रस्तुत पुस्तक का चुनाव केवल भारतीय वीरों की चरितावली से किया गया है, सो भी अधिकतर राजपूताने के वीरों के चरित्र से। पुस्तक अच्छी है और संग्रह करने-योग्य है।

× × ×

चीन की आवाज़—अनुवादक, बैजनाथ महोदय बी० ए०, प्रकाशक, सस्ता-साहित्य-प्रकाशक-मंडल, अजमेर; मूल्य ।-) ; पृष्ठ संख्या १३३ ।

अँगरेज़ी में लावज डिकिन्सन-कृत Letters from John Chinaman एक बहुत ही प्रसिद्ध पुस्तक है। डिकिन्सन ने यह ऐसे चीनी के क़लम से लिखे हैं जो योरप में बहुत काल तक रह चुका है और पश्चिमी सभ्यता के तत्त्वों से भली भाँति परिचित है। इन पत्रों में चीन और योरप की सभ्यताओं की तुलनात्मक विवेचना की गई है और ऐसे रोचक ढंग से की गई है कि उसके पढ़ने में विशेष आनंद आता है। डिकिन्सन एक सुशिक्षित, भद्र चीनी के मनोभावों की तह में कुछ इस तरह पैठ जाता है कि एक-एक वाक्य से उसकी उदारता और सहृदयता टपकती है। इस पुस्तक का गुजराती अनुवाद महात्मा गांधी ने उस वक़्त किया था, जब वह अफ़रीका में Indain Opinion निकालते थे। इन पत्रों को जनता ने इतना पसंद किया कि—उनको पुस्तक रूप में निकाला गया। प्रस्तुत पुस्तक उसी गुजराती पुस्तक का हिंदी-अनुवाद है। अनुवाद सरल है।

× × ×

सत्य-कथा संग्रह (पाश्चात्य खंड)—लेखक, श्रीमान् राजा खलकसिंहजू देव; प्रकाशक, बुंदेलखंड-गौरव-ग्रंथ-माला, रवनियाधाना राज्य; मूल्य ।≈); पृष्ठ-संख्या ८७

इस पुस्तक में योरप की तीन कथाएँ लिखी गई हैं, जो योरपीय इतिहास से संबंध रखती हैं—(१) वीर सेनापति हैनिबल, (२) फ्रांसिस्को पिज़ारो, (३) एक वीर सैनिक का साहस। हैनिबल उन अमर वीरों में है, जिन्होंने अपनी कीर्ति से पृथ्वी का मुख उज्ज्वल कर

दिया है। दूसरी कथा एक स्पेनी गुड़े की है, जिसने दक्षिणी अमेरिका के पेरू-प्रांत को स्पेनवालों के हस्तगत कर दिया। तीसरी कथा में नेपोलियन बोनापार्ट के एक आज्ञाकारी सैनिक का वृत्तांत है। श्रीमान् राजा साहब एक स्वाधीन राज्य के अधीश्वर होने पर भी साहित्य-सेवा के इतने प्रेमी हैं, यह बड़े हर्ष की बात है।

× × ×

पश्चात्ताप—लेखक, श्रीबुद्धिनाथ झा कैरव; प्रकाशक, प्रमोद-पुस्तक-माला, पुर्निया, मूल्य ॥=); पृष्ठ-संख्या १२०।

इस छोटे-से उपन्यास में दहेज की कुप्रथा का बुरा परिणाम दिखाने की चेष्टा की गई है। एक युवक और युवती में प्रेम हो जाता है, युवक के घरवाले अधिक धन पाकर उसका विवाह दूसरी जगह कर देते हैं। कन्या का विवाह एक अशिक्षित गँवार से हो जाता है। अंत में लड़की इसी शोक में मर जाती है। कथानक में कोई नयापन नहीं, इसकी शिकायत नहीं। लिखने का ढंग नीरस है। एक चरित्र भी ऐसा नहीं, जिसका हृदय पर कुछ असर पड़े। भाषा की भूलें और मुहावरे की गलतियाँ तो बेहिसाब हैं—कपसने, कुटमैती, आदि ऐसे वाक्य और शब्द हैं, जो किसी कोष में भी न मिलेंगे। भावों की हत्या तो पग-पग पर की गई है।

× × ×

२ वैद्यक

रस-योग-सागर—लेखक तथा प्रकाशक, वैद्य प० हरिप्रपन्नजी शास्त्री,"श्रीभास्कर-औषधालय बंबई (Bombay) पो० न० २"; आकार क्राउन अठपेजी; पृष्ठ-संख्या ७०१; मूल्य १०) ग्रन्थ प्रकाशक से प्राप्त हो सकता है।

हमारा आलोच्य ग्रंथ "रसयोगसागर" भी एक सर्वोत्कृष्ट तथा सर्वसुंदर संग्रह-ग्रंथ है। इसमें अकारादि वर्णों की अनुक्रमणिका के अनुसार कितने ही प्रकाशित तथा अप्रकाशित रस-ग्रंथों से रसों का संग्रह किया गया है। रस-योगों के संग्रह के साथ-साथ कितने ही स्थलों पर आयुर्विज्ञानाचार्य, सुयोग्य संग्रहकर्ता महोदय ने रस-निर्माण-विधि में अपनी क्रिया-कुशलता, अनुभव, दूरदर्शिता तथा सूक्ष्म बुद्धि से भी पूरा-पूरा काम लिया है। यह ग्रंथ संभवतः दो भागों में विभक्त किया जायगा। प्रस्तुत ग्रंथ "रस-योग-सागर" का प्रथम भाग है, इसमें अकारादि-तवर्गान्त (अगदेश्वर से लेकर नेत्राशनि पर्यंत) रस-योगों का संग्रह है। एक-एक रस के जितने भी भेद तथा उपभेद प्राचीन, अर्वाचीन, प्रकाशित एवं अप्रकाशित ग्रंथों में पाए जाते हैं, वे प्रायः सभी इस ग्रंथ में विद्यमान हैं। संस्कृत श्लोकों का हिंदी-भाषांतर भी अन्य प्रकाशित वैद्यक-ग्रंथों की अपेक्षा शुद्ध तथा सुंदर है। लेखक महोदय ने १०४ पृष्ठों की अँगरेज़ी में भूमिका और १७८ पृष्ठों की संस्कृत-भाषा में भूमिका लिखकर अपने प्रकांड पांडित्य, व्यापक ज्ञान तथा आदर्श-गवेषणा-परायणता का परिचय दिया है। यद्यपि भूमिकाओं में उल्लिखित कई एक सिद्धांतों से हम सहमत नहीं हैं, फिर भी हमें मुक्तकंठ से स्वीकार करना पड़ता है कि इस ग्रंथ के दोनों ही उपोद्घात बहुत ही सुंदर, विचारपूर्ण, मननीय, पठनीय तथा आयुर्वेद-प्रेमियों के लिये बड़े गर्व की वस्तु हैं। इस ग्रंथ में कितने ही दुरूह स्थलों पर मूल श्लोकों का संस्कृत-भाषा में भाष्य, अर्थ तथा टिप्पणी लिखकर लेखक महोदय ने सोने में सुहागे का काम किया है। फलत. कई दृष्टियों से यह ग्रंथ बहुत ही उपयोगी तथा अपने ढंग का एक है। हमें इस सर्वांग सुंदर ग्रंथ में जो दो-एक बातें खटक रही हैं, वे ये हैं। ग्रंथ में प्रूफ़ की अशुद्धियाँ अधिक रह गई हैं। आज कल के प्रचलित मान (तोल) में तथा चरक, शारंगधर आदि के द्रव्यमान (द्रव्यों की तोल) में बहुत बड़ा अंतर है। लेखक महोदय ने "रस-योग-सागर" में किस मान के अनुसार रसादि के निर्माण में द्रव्यों की व्यवस्था की है, इस बात का उल्लेख हमें ग्रंथ भर में कहीं भी नहीं मिला। जो लोग एक ही "रस-योग-सागर" से अपना प्रयोजन सिद्ध करना चाहते हैं, उन लोगों के लिये आवश्यक था कि ग्रंथारंभ अथवा भूमिका में कहीं-न-कहीं सरल रीति से समस्त धातुओं, उपधातुओं तथा रसयोगों में आनेवाले अन्यान्य द्रव्यों का शोधन, मारण, सिद्धि एवं प्रयोग-विधि के ऊपर भी पूरा-पूरा प्रकाश डाल दिया जाता। इस ग्रंथ को सर्वांग-पूर्ण बनाने के लिये ग्रंथ के किसी-न-किसी स्थल के ऊपर द्रव्य-परिभाषा, द्रव्य-प्रतिनिधि, द्रव्य-परिमाण, रस-निर्माण में सहायक कुछ एक आवश्यक यंत्रों की साधन-विधि तथा संदेहोत्पादक वनस्पतियों का चित्र-संकेत भी दे देना आवश्यक था। संभवतः लेखक महोदय अपने ग्रंथ के द्वितीय भाग में इन सब आवश्यक विषयों के ऊपर प्रकाश डालें। जो कुछ भी हो, हमें यह लिखते हुए बड़ी ही प्रसन्नता

होती है कि "रस-योग-सागर" का नाम सार्थक है। यह ग्रंथ आयुर्वेद-प्रेमियों के लिये सर्वथा उपादेय है। इस ग्रंथ ने एक बड़े भारी अभाव की पूर्ति की है। हम "रस-योग-सागर" के द्वितीय भाग की प्रतीक्षा बड़ी ही उत्सुक दृष्टि से कर रहे हैं। "रस-योग-सागर" के प्रथम भाग की उपयोगिता, छपाई-सफ़ाई तथा काग़ज़ की सुंदरता को देखते हुए १२) मूल्य कुछ अधिक नहीं है, फिर भी भारतीय विद्वानों तथा वैद्यों की आर्थिक अवस्था के ऊपर विचार करते समय यह बात ध्यान में अवश्य आती है कि यदि इस सर्व-सुंदर रस-ग्रंथ का मूल्य कुछ कम होता, तो सर्व-साधारण के हाथों में पहुँचने से इसके व्यापक प्रचार में बहुत अधिक सहायता मिलती। अंत में हम आयुर्विज्ञानाचार्य, वैद्यवर्य पंडित हरिप्रपन्नशर्माजी को इस महत्त्व-पूर्ण ग्रंथ-रत्न के लेखन व संपादन में किए गए असीम श्रम के लिये अभिनंदन तथा इस ग्रंथ के संपादन में प्राप्त की हुई सफलता के लिये हार्दिक बधाइयाँ देते हैं।

गयाप्रसाद शास्त्री "श्रीहरि"

× × ×

३. दर्शन

भारतोन्नति—लेखक, श्री १०८ स्वामी श्यामसुंदरदासजी, प्रकाशक, श्रीयुत जगतनारायण रस्तोगी, कड़ा, प्रयाग; मूल्य १), पृष्ठ-संख्या २६६।

धार्मिक पुस्तक है। गुरु-शिष्य-संवादों द्वारा धार्मिक और दार्शनिक तत्त्वों की विवेचना की गई है। स्वामीजी के सामाजिक विचार बहुत उदार हैं। आपने बाह्योपचारों की निंदा की है और सिद्धांतों ही का प्रतिपादन किया है। जिज्ञासुओं के लिये बड़ी उपयोगी वस्तु है।

× × ×

४ फुटकर

पत्र-प्रबंध प्रदीप—लेखक, अध्यापक मुरारीलाल शर्मा तथा कबूलसिंह स्वामी, बी० ए० एल्० टी०; पृष्ठ-संख्या ६०; मूल्य ।) ; काग़ज़ और छपाई साधारण; अध्यापक मुरारीलाल शर्मा, हरसदन, मेरठ के पते से प्राप्य।

यह छोटी-सी पुस्तक वर्नाक्युलर और ऐंग्लो वर्नाक्युलर स्कूलों के विद्यार्थियों के लिये लिखी गई है। इसमें वाक्य से लेकर भाँति-भाँति के पत्रों के लिखने की रीतियाँ बतलाई गई हैं। पुस्तक विद्यार्थियों के काम की है।

× × ×

रत्नाकर-पचीसी—हिंदी-अनुवादक, व्याख्यान वाचस्पति—पीतांबर विजेता मुनि, श्रीयतींद्र विजयजी महाराज; प्रकाशक, गुरुणीजी, श्रीमान् श्रीजी और श्रीमनोहर श्रीजी के सदुपदेश से, पोरवाड़—जवरचंदजी बूँदरजी—कुक्षी (धार स्टेट); पृष्ठ-संख्या २४; प्रकाशक से प्राप्य।

इसमें २५ सरस श्लोकों का अनुवाद है। श्लोकों में एक जैनी पंडित ने स्तुति, प्रार्थना अथवा चेतावनी के भावों को प्रकट किया है। श्लोक सुंदर हैं। कविता-प्रेमियों तथा जैनियों को यह पुस्तक पढ़नी चाहिए।

× × ×

कला कौमुदी—लेखिका, श्रीओ३म्वती देवी; प्रकाशिका, श्रीविद्यावती सेठ, ज्योति-कार्यालय, देहली तथा लायलपुर; पृष्ठ-संख्या ६२ ; आर्ट पेपर पर बहुत सुंदर छपी हुई, मूल्य १॥); प्रकाशिका से प्राप्य, आकार 'माधुरी' का।

यह पुस्तक तीन अध्यायों में विभक्त है। प्रथम अध्याय में सुई के काम से संबंध रखनेवाले तरह-तरह के फंदों और उनके डालने की रीतियों का वर्णन है। दूसरे अध्याय में लेस-फ्रीते इत्यादि का वर्णन है और तीसरे अध्याय में बच्चों के कपड़े बनाने का हाल है। चित्रों और नक़्शों द्वारा सूची-कला की बातें बड़े अच्छे ढंग से समझाई गई हैं। ऐसी पुस्तकों की हिंदी-साहित्य के लिये बड़ी आवश्यकता है। आशा है, इस पुस्तक का अच्छा प्रचार होगा, जिससे इस प्रकार की और पुस्तकें भी प्रकाशित की जा सकें। इस पुस्तक को प्रकाशित करने के उपलक्ष्य में हम इसकी लेखिका और प्रकाशिका दोनों को बधाई देते हैं।

× × ×

हिंदी रेलवे टाइमटेबुल—प्रकाशक, पुस्तक-भवन बनारस सिटी; पृष्ठ-संख्या १६२; छपाई और काग़ज़ साधारण; मूल्य ॥); प्रकाशक से प्राप्य।

रेलवे टाइमटेबुल विषयक शायद हिंदी में यह पहली पुस्तक है। रेल के द्वारा यात्रा करनेवाले उन मुसाफ़िरों के लिये यह बड़ी उपयोगी वस्तु है, जो केवल हिंदी ही जानते हैं। अँगरेज़ी में तो बीसों रेलवे टाइमटेबुल हैं; ईस्ट इंडियन रेलवे का टाइमटेबुल तो इतना विशाल है कि उसके सामने यह हिंदीवाला टाइमटेबुल कुछ भी नहीं जँचता है, तिस पर भी उसका दाम केवल ≈) है। इसके अलावा उसमें रेलवे का नक़्शा, बड़े-बड़े नगरों

का संक्षिप्त इतिहास और विवरण, धर्मशाला आदि के पते भी रहते हैं। इस टाइमटेबुल में यह सब बातें नहीं हैं, इससे दाम अधिक जान पड़ता है, स्टेशनों के नाम भी कहीं-कहीं पर गलत छप गए हैं, पृष्ठ १३७ पर कमालपुर के स्थान पर कलालपुर, बख्शी का तालाब के स्थान पर बख्शी का ताला और अटरिया के स्थान पर अटारिया छपा है। फिर भी प्रकाशक महोदय का उत्साह प्रशंसनीय है और पुस्तक संग्रह करने-योग्य है।

× × ×

राष्ट्रीय संदेश—लेखक और प्रकाशक, चतुर्वेदी रामचंद्र शर्मा 'विद्यार्थी' विशारद, बड़वाह (होलकर राज्य), आकार २०×३० सोलहपेजी; पृष्ठ-संख्या ११६, कागज़ छपाई साधारण; मूल्य केवल ।।)

श्रीमान् चतुर्वेदी रामचंद्रजी शर्मा 'विद्यार्थी' मालवा प्रांत के एक होनहार कवि हैं। आपकी कविताएँ हिंदी के प्राय: सब मासिक, साप्ताहिक तथा दैनिक पत्रों में प्रकाशित होती रहती हैं। इन्हीं कविताओं का संग्रह इस पुस्तक में किया गया है। सब कविताएँ राष्ट्रीय भावों से भरी हुई हैं और खासकर नवयुवकों के लिये बहुत उपयोगी हैं। प्रत्येक हिंदी-पाठशाला के लायब्रेरी में इस पुस्तक की एक प्रति अवश्य होनी चाहिए। आशा है, हिंदी-संसार इस पुस्तक का उचित आदर करेगी।

दयाशंकर दुबे

× × ×

५ विशेषांक

आर्यमित्र का ऋषिअंक—पूर्वानुसार दीपावली के अवसर पर निकाला है। इसमें गद्य पद्य के कुल मिलाकर ४८ लेख हैं। लेखों में 'सामाजिक साम्यवाद', 'आधुनिक शिक्षा-प्रणाली और आर्य-समाज', 'मैं ऋषि का आदर क्यों करता हूँ', 'वैदिक सिद्धांतों का दिग्विजय' आदि लेख विचार-पूर्ण हैं। कविताओं में कई धुरंधर कवियों की कविताएं हैं। लेख प्राय: उन सभी विषयों पर हैं, जो इस समय हिंदू-समाज में हलचल मचा रहे हैं।

× × ×

हिंदू-पंच—हिंदू-पंच विशेषांकों के लिये बदनाम-सा हो गया है। साल में ६ विशेषांक, एक-से-एक सुंदर, सचित्र। दीपमालिका के अवसर पर उसने फिर कमलांक निकाला है। यद्यपि यह इसके अन्य विशेषांकों की तरह भारी भरकम नहीं है; पर कई सचित्र लेख, कार्टून, और गल्प हैं। श्रीयुत जी० पी० श्रीवास्तव्य का एक मज़ेदार ड्रामा 'काटपेच' क्रमश: चल रहा है।

× × ×

हिंदू-संसार—इस पत्र का दीपावली अंक देखकर चित्त और नेत्रों को समान मनोरंजन होता है। लेख विविध उपयोगी विषयों पर हैं और कई रंगीन तथा सादे चित्र और चुटकी लेनेवाले कार्टूनों ने, इस अंक को बहुत ही सुंदर बना दिया है। पं० गोपीवल्लभजी का 'सार्वभौम धर्म और व्यावहारिक वेदांत' 'हिंदू-विवाह का आदर्श' 'भारत में बैंकिंग की उन्नति' आदि लेख पढ़ने और मनन करने-योग्य है। स्वास्थ्य, राजनीति, आदि विषयों के प्रेमियों के लिये भी काफ़ी सामान है।

× × ×

श्रीवेंकटेश्वर-समाचार—इस पत्र की संख्या २६ भाग ३२ विशेषांक है। यह दीपावली के अवसर पर निकला है। इसमें बड़े आकार के ६४ पृष्ठ हैं। इन ६४ पृष्ठों में ४६ पृष्ठों में संपादकीय निवेदन-सहित ६० लेख और कविताएँ हैं; शेष पृष्ठों में विज्ञापन आदि हैं। चित्र भी पर्याप्त संख्या में है। प्रारंभ में श्रीलक्ष्मी और श्रीवेंकटेश्वरजी के रंगीन चित्र हैं।

लेखों और कविताओं का चुनाव अच्छा हुआ है। इसका यह अर्थ नहीं है कि सभी लेखों में प्रकट किए गए विचार प्रमाद शून्य हैं, एवं सभी पद्य-रचनाएँ कवित्व गुण-संपन्न हैं, पर यह बात नि:संकोच-रूप से कही जा सकती है कि लेखों का चुनाव सुंदर है। लेखकों और कवियों में लब्धप्रतिष्ठ लोग भी हैं। आज ३२ वर्ष से श्रीवेंकटेश्वर-समाचार हिंदी की सेवा कर रहा है। इधर जब से पत्र श्री निरंजन शर्मा 'अजित' के संपादकत्व में आया है तबसे कुछ विशेष उन्नति-शील हो गया है। हम इस पत्र की हृदय से उन्नति चाहते हैं।

× × ×

विश्वमित्र—इस पत्र का दीपावली का विशेषांक अच्छा निकला है। आवरण-पृष्ठ पर श्रीलक्ष्मीजी का सुंदर चित्र है। पाठ्य-सामग्री ७४ पृष्ठों में है। लेखों और कविताओं का चुनाव संतोषप्रद है। संपादकजी को बधाई है।

× × ×

६ प्राप्ति-स्वीकार

बाल-कौतुक—लेखक, अघौरी शिवनंदनप्रसाद; प्रकाशक, राजराजेश्वरी-पुस्तकालय, गया; मूल्य।); पुस्तक प्रकाशक से प्राप्य।

यह छोटी पुस्तिका सचित्र है, और छोटे बच्चों के पढ़ने लायक़ छोटे-छोटे निबंध दिए गए हैं। छपाई-सफ़ाई अच्छी है।

विनय—रचयिता, प० रामवचन द्विवेदी, प्रकाशक, राजराजेश्वरी-पुस्तकालय, गया, मूल्य =)

इस पुस्तिका में बालकों तथा छोटे बच्चों के पढ़ने-योग्य १७ कविताएँ दी गई हैं, जो सामयिक और शिक्षाप्रद हैं। बालकों के लिये पुस्तक उपयोगी है। छपाई साधारण है।

ओसवाल ट्रेडिंग क० कलकत्ता ने निम्नांकित वस्तुएँ हमारे पास समालोचनार्थ भेजी हैं, तदर्थ धन्यवाद।

१ **माधुरी तैल**—यह तैल ह्वाइट आयल पर नहीं बनाया गया है। इसकी सुगंध भीनी है।

२ **गुलाब आँवला तैल**—इसमें गुलाब-आँवला तथा अन्य मसालों का मेल प्रतीत होता है। बाज़ारू तेलों से यह कई गुना अच्छा है, और आध पाववाली शीशी का मूल्य भी केवल १) है।

३. **शंकर तैल**—यह तैल वायु-संबंधी दर्द तथा विकार के लिये है। सूजन तथा चोट में भी लाभ करता है। ख़ूबी यह कि, तैल सुगंधित है। मूल्य १) फ़ी शीशी।

४. **बाल धोने का मसाला**—इस मसाले से बाल धोने में बाल मुलायम और सुगंध-युक्त हो जाते हैं। बाज़ारू मसालों से अच्छा प्रतीत होता है। उपर्युक्त कं० से यह वस्तुएँ मिल सकती हैं।

कैस्टन पब्लिशिंग कं० दि माल, कानपुर ने कुछ रंगीन चित्र हमारे पास भेजे हैं, जो कलकत्ता फोटो टाइप क०, १ क्रुकुड लेन, कलकत्ता ने ब्लाक बनाकर अपने यहाँ छापे हैं। इस फोटो टाइप क० से हम स्वयं अपने रंगीन ब्लाक बनवाते हैं, जो कि माधुरी मे छपा करते हैं।

चूँकि आपके यहाँ रंगीन ब्लाक बनाने का "up-to-date" सामान है, इसलिये ब्लाक अच्छे बनते हैं। इन चित्रों की छपाई भी अच्छी हुई है। जिन सज्जनों को अच्छे काम के ब्लाक आदि बनवाने तथा छपवाने की आवश्यकता पड़े, वह अवश्य ही इस क० की एक बार परीक्षा करें।

मेसर्स एम० वाडीलाल एंड क० रिची रोड, अहमदाबाद से कुछ रंगीन कार्ड और शुभ-वर्ष-बधाई के कई रंगे-छपे-हुए कार्ड मिले हैं, तदर्थ धन्यवाद। छपाई-सफ़ाई उत्तम है।

१. कालिदास के साहित्य मे नारियो का स्थान

महाकवि कालिदास ने जहाँ-जहाँ नारियों अथवा उनके कार्य-कलाओ का वर्णन किया है, नारियों का सम्मान कहीं भी क्षुएण नहीं रक्खा है। यद्यपि उस समय नारियो को पूर्ण स्वतन्त्रता नहीं थी, तो भी वर्तमान समय के सदृश उनका समाज पंगु नहीं था।

उस समय भद्र-गृहस्थों की नारियाँ अशिक्षिता नहीं रहती थीं। कश्यप मुनि की भगिनी गौतमी तो शिक्षिता थी ही, साथ ही मालविका, शकुंतला, अनुसूया एवं प्रियवदा भी लिखना और पढ़ना जानती थीं। शकुंतला ने राजा दुष्यंत को अपनी सखियो के अनुरोध से, जो प्रणयपत्री भेजी थी, वह सुललित पद्य में लिखी गई थी।

प्रियंवदा चित्र-विद्या मे कुशला थी। मेघदूत में भी विरही यक्ष मेघ से कहता है—"भाई मेघ, तुम देखना मेरी प्रिया मेरे ही समान चित्र खींचती होगी।

शकुंतला-नाटक के पंचमांक में भी देखिए, दुष्यंत की अन्यतमा महिषी हंस-पत्रिका संगीतशाला में वीणा-यंत्र के साथ मधुर गीत गाती थी, तथा वह गीत राज-सभा में भी स्पष्टतः सुनाई पड़ता था।

मालविकाग्निमित्र में महाराणी 'धारिणी' ने मालविका को गीत, वाद्य और नृत्य की शिक्षा देने के लिये आचार्य "गणदास" को नियुक्त किया था। अग्निमित्र का अपना संगीत-विद्यालय (Music school) था, जहाँ राजा के व्यय मे अनेक छात्र और छात्रिकाए शिक्षा पाती थीं।

पुनश्च, राजा की सभा मे जो संगीत की प्रतियोगिता हुई थी, उसके निर्णय का भार दिया गया था, संगीत-कला-निपुणा कौशिकी को। महाराजा 'अज ने' प्रियतमा इंदुमती की अकाल मृत्यु पर विलाप करते हुए कहा था—

> "गृहिणीसचिव सखी मिथ
> प्रियशिष्या ललिते कलाविधौ।"

मेघदूत में विरही यक्ष ने मेघ को दूतत्व करने के समय यह भी जता दिया था कि मेरी पत्नी वीणा-यंत्र के साथ गाती भी है। अस्तु।

नारियो की वेष-भूषा का भी उन्हें ध्यान था। स्त्रियों को अलंकार अत्यंत प्रिय था। उस समय वे चंदनादि नाना-प्रकार के सुगंध-युक्त पदार्थों का व्यवहार करना जानती थीं।

उस समय स्त्रियाँ कर्ण मे शिरीष पुष्प, मस्तक पर कदंब-सुमन, वक्षस्थल पर फूलों की माला प्रभृति धारण कर अंगों की शोभा बढ़ाती थीं।

वर्तमान समय के ही सदृश नारियो उस समय हाथ में "वलय" पहनती थीं। 'वलय' का अर्थ 'चूड़ी' लेना ही अच्छा है, क्योंकि 'बाला' एक से अधिक एक हाथ में नहीं

पहना जा सकता। "कंकण" भी एक प्रकार "ब्रेसलेट्" था, यही प्रतीत होता है। वे मस्तक पर "मुक्ताजाल", बाहु में 'अंगी', कटिप्रदेश में "रशना", वक्ष-थल पर "हार", कर्ण में 'कुंडल' एवं चरण में नूपुर पहनती थीं।

स्त्रियाँ, कुंतल-कलाप सुगंधित करने के लिये 'अगर' और 'धूप' का व्यवहार करती थीं। शरीर 'कुंकुम' और मृगनाभि-युक्त चंदन से सुवासित किया जाता था। अधरोष्ठ तांबूल द्वारा रक्त वर्ण बनाती थीं। युगल नेत्रों में शलाका-रंजन (काजल) का लेपन करती थीं। कमल-मुख का सौंदर्य भी पुष्प पराग के द्वारा बढ़ाती थीं।

लेकिन महाकवि के साहित्य में विलासिता का एक वीभत्स व्यापार दृष्टिगोचर होता है, वह है नारियों का 'मद्य-पान'।

स्त्रियाँ मैके (नैहर) में निसंकोच हो, पुरुषों के सन्मुख आती थीं और अपने स्वामी के साथ कथोपकथन करती थीं। आधुनिक काल में दक्षिण देश अथवा महाराष्ट्र में ऐसी प्रथा अब तक प्रचलित है।

मालविकाग्निमित्र मे महाराज अग्निमित्र की रानी धारिणी सबके सामने सभासदों से भरी हुई राज-सभा में प्रविष्ट हो, संगीत-प्रतियोगिता श्रवण करती थी। विशेष आश्चर्य का विषय तो यह कि इस प्रतियोगिता का विचार-भार एक रमणी के सिपुर्द था।

नारियों का निवासस्थान पुरुषों के निवासस्थान से से पूर्णतः पृथक् निर्मित किया जाता था, अथवा भवन के एक भाग में पुरुष और दूसरे भाग मे स्त्रियाँ रहा करती थीं। पर शकुंतला नाटक के पंचमांक मे शकुंतला अवगुंठिता हो, महाराज दुष्यंत की सभा मे गई थी। इससे पता चलता है कि "अवगुंठन-प्रथा" महाकवि के किंचित् पूर्व अथवा उसी समय से स्त्रियों में प्रचलित होने लगी थी। अस्तु।

इस प्रकार देखा जाता है कि महाकवि का काव्य नारी-मर्यादा-विहीन नहीं था। उन्हें स्त्रियों पर विशेष ध्यान था। उनकी लेखनी सर्वत्र नारियों के गुण-गान में प्रवृत्त रहती थी। *

नृसिंह पाठक "अमर" 'विशारद'

× × ×

*(सुवर्ण-त्र गिरि समाचार के एक लेख के आधार पर)

—संपादक

२. कटु भाषण

हमारी कुछ बहनें ऐसी हैं, जिन्हें बात-बात पर क्रोध आ जाता है और वे आपे से बाहर होकर अपशब्दों की वर्षा करने लगती हैं। उस समय उनकी गालियाँ सुनकर पुरुषों को भी कान बंद कर लेना पड़ता है। मृदु-भाषण कुलवती स्त्रियों का एक मुख्य लक्षण है, पर मैंने तो अधिकांश बहनों में इस गुण का अभाव ही देखा। जहाँ कोई बात इच्छा के विरुद्ध हुई और मुँह से फूल झड़ने लगे। कभी नौकरों के गड़े मुरदे उखाड़ रही हैं, तो कभी बनिए को कोस रही हैं। 'इसका सर्वनाश हो, डाढ़ी जार कभी पूरी चीज़ नहीं तौलता, कोढ़ी होके मरेगा इत्यादि।' कितनी ही बहनें तो अपने बच्चों को भी इस बुरी तरह कोसती हैं कि जान पड़ता है, इनसे बढ़कर इनका कोई दुश्मन न होगा। मज़ा यह है कि वह आशीर्वाद केवल दंड-स्वरूप नहीं मिलता, बहुधा अपनी नींद में बाधा पड़ने या गपशप में रुकावट होने पर माता की क्रोधाग्नि दहक उठती है। एक शिशु को दस्त आते थे, इसलिये माता को रात भर मे कई बार उठना पड़ता था। हरेक बार उठने पर वह बच्चे को पेट भर कोसती, यहाँ तक कि थप्पड़ भी जमा दिया करती थी। उसे इसका ज़रा भी विवेक न रहता था कि बच्चा उसे दिक़ करने के लिये तो यह बीमारी लाया नहीं, उसकी जान तो आप ही गाढ़े मे है, और संभवतः माता ही के किसी कुपथ्य के कारण उस बेचारे को यह रोग हुआ है, बस, राक्षसी की भाँति उस पर झपट दौड़ती थी। बालक माता को जगाते हुए डरता था, यहाँ तक कि एक बार उसे विवश होकर चारपाई ही पर मल त्याग करना पड़ा। फिर तो माता के क्रोध का वारापार न रहा। उस नन्हीं-सी जान को इतनी गालियाँ दीं कि सारा घर त्राहि-त्राहि करने लगा। आख़िर धो-धाकर उसका हाथ पकड़ा और ख़ुर्री चारपाई पर पटक आप यों भाग्य को कोसते फ़र्श पर लेट गई—'इस अभागे ने रात की नींद हराम कर दी, मर भी नहीं जाता कि गला छूट जाय। चूल्हे में जाय ऐसी जिंदगी और भाड़ में जाय ऐसी सन्तान। फिर जो उठे बच्चा तो गला ही दबा दूँगी।' वह तो दिल का गुबार निकालकर सो रही, बच्चे को सरदी लग गई। प्रातःकाल उसे निमोनिया हो गया और दूसरे दिन वह वज्रहृदया माता की गोद सूनी करके परलोक सिधारा।

माता ने छाती पीटनी और पछाड़ें खानी शुरू कीं, मगर अब रोने से क्या होता था।

मैंने समझा था, इस दुर्घटना से माता को हमेशा के लिये सबक़ मिल गया होगा, मगर यह मेरा भ्रम था। देवी अभी जीवित हैं और उनके मुख से कटु वाक्यों का प्रवाह उसी तेज़ी से होता है। हाँ, उनके बच्चे जो अब सयाने हो गए हैं, उनका ज़रा भी अदब नहीं करते और उनकी कन्याएँ तो इतनी झगड़ालू, इतनी बदज़बान हैं कि घर में एक द्वंद्व-सा मचा रहता है। विवाह-योग्य हो गई हैं, पर कोई फटकता ही नहीं।

यह क्रोधमय, उत्तेजना से भरा हुआ स्वभाव केवल इसीलिये हेय नहीं है कि सन्तानों पर इसका बुरा असर पड़ता है। इससे अपना स्वास्थ्य भी नष्ट हो जाता है और आयु क्षीण होती है।

गायत्री

---

१. सोने का हार

एक राजकुमार था। उसका विवाह एक राजकन्या से हुआ। वह अपनी स्त्री को बहुत प्यार करने लगा। कुछ दिनों के बाद वह विदेश चला गया। जाने के समय अपनी स्त्री से कहता गया

कि वहाँ जाते ही मैं तुम्हारे लिये एक सोने का हार बनवाकर भेजूँगा। राजपुत्र के जाने के कुछ ही दिन बाद राजकन्या अपने मायके चली गई।

राजकुमार ने परदेश जाने के बाद तुरत एक सोने का हार बनवाकर उसे एक डिबिया मे रखकर एक कौए के द्वारा भेजा। कौआ उस डिबिया को लेकर उड़ चला। राह मे थकावट मिटाने के लिये वह एक मकान की छत पर बैठ गया। वहाँ क्या देखता है कि भोजन का सामान मौजूद है, पत्तलों में हलुआ, पूरी, मिठाई आदि स्वादिष्ट चीजें परोसी जा रही है। उन वस्तुओं को देखकर उसके मुँह से लार टपकने लगी। डिबिया को छत के एक कोने में रखकर वह खाने चला गया।

इधर उस घर की नाइन किसी काम से उस छत पर आई। डिबिया पर उसकी नजर पड़ गई। खोलकर देखा, तो हृदय आनंद से नाच उठा। सोने के हार को तो निकाल लिया और डिबिया में बाल और नाखून भर दिए। फिर जहाँ का तहाँ उस डिबिया को रखकर चली गई। कुछ देर में कौआ आया और उस डिबिया को लेकर उड़ गया।

राजकन्या अपने मायके में स्नानकर, सिर के बाल सँवार, शृंगारकर अपनी सखियों के साथ बैठी हुई थी। गपशप हो रहा था। उसी समय वह कौआ आया और राजकन्या को डिबिया देकर बोला—"राजकुमार ने मुझे यह डिबिया तुम्हें देने को दिया था—सो यह अपनी चीज तुम ले लो। इसमे तुम्हारे लिये उन्होंने एक सोने का हार बनवाकर भेजा है।" ऐसा कहकर वह उड़ गया। राजकन्या ने खोला, तो उसमें से नाखून और बाल निकले। लज्जा के मारे गड़-सी गई। सखियों के बीच में उस दिन उसकी बड़ी भद्द हुई।

राजकुमार पर उसे बड़ा क्रोध आया। उसने उस दिन से राजकुमार से न बोलने की प्रतिज्ञा कर ली।

बहुत दिनों के बाद राजकुमार घर लौटा। तब तक उसकी स्त्री अपनी ससुराल आ गई थी। राजकुमार ने उससे पूछा—"मैंने जो सोने का हार भेजा था, वह तुम्हें पसंद आया या नहीं?" राजकन्या ने कुछ भी उत्तर नहीं दिया। इसके बाद राजकुमार ने कई प्रश्न किए—पर उत्तर नदारद। राजकुमार को क्रोध आ गया और तुरत राजकन्या का सिर मुँड़वा दिया। रानी ने भी बहुत बार पूछा कि बहू! तुम मेरे पुत्र से क्यों नहीं बोलती—परंतु राजकन्या ने इसका कारण नहीं बताया।

कुछ दिनों के बाद एक दिन राजकुमार ने अपनी माँ से कहा—"आज किसी के घर चूल्हा न जलने पावे। जिस किसी को आग की जरूरत हो, वह उस मैदान में जाय—वहाँ एक साधू बैठे हुए हैं—उनसे आग माँग लावे। अपने घर में यदि आग की जरूरत हो, तो अपनी बहू को उस साधू के पास भेजना—दूसरे को नहीं।" ऐसा कहकर वह स्वयं साधू का वेश बनाकर धूनी रमा सामने के मैदान में जा बैठा।

आग की आवश्यकता होने पर रानी ने अपने पुत्र के कथनानुसार बहू को आग लाने भेजा। राजकन्या मैदान में गई और उस साधु से आग माँगी। साधु ने आग देते हुए कहा—"तुम कौन हो? तुम्हारा सिर मुँड़ा हुआ क्यों है? तुम देखने में बहुत दुखी मालूम पड़ती हो। तुम अपना दुख मुझे बतलाओ। मैं यथा-साध्य तुम्हारा दुख दूर करूँगा।" पहले तो राजकन्या ने कुछ कहने से इनकार किया, परंतु साधु के बहुत कहने-सुनने पर सब बातें कह सुनाईं। इस प्रकार साधुरूपी राजकुमार ने अपनी स्त्री के मन का हाल जान लिया। जब वह आग लेकर घर आई, तब राजकुमार भी जटा आदि फेंक-फाँककर घर आ गया। फिर राजकन्या से सब बातें खोलकर बोला—"तुमने पहले क्यों नहीं कहा कि तुम्हें वह सोने का हार नहीं मिला—बल्कि उस डिब्बे में नाखून और बाल थे। मैं उसी समय दूसरा हार बनवाकर ला देता। अब मैं चार-पाँच दिन में दूसरा हार बनवाकर—ला दूँगा।" राजकन्या ने कहा—"मैं क्या जानती थी कि तुमने सचमुच सोने का हार भेजा था। मै तो समझती थी कि तुमने नाखून और बाल भेजे हैं। सखियों के सामने उस डिबिया के खोलते ही मै लाज से गड़-सी गई थी। भला बताओ, मुझे क्रोध कैसे न आता।" राजकुमार ने कहा—'अच्छा जाने दो, जो हो गया सो हो गया। अब मैं सात दिनों में नया हार बनवाकर ला दूँगा।"

दूसरे दिन राजकुमार विदेश गया और सात दिनों मे ही एक दूसरा सोने का हार बनवाकर ला दिया। राजकुमार और राजकन्या सुख से रहने लगी।

श्रीजगन्नाथप्रसाद सिंह

× × ×

२. मजेदार बातें

(क)

छदम्मी—(अपने लड़के सम्पतराय से) क्यों रे, तू आज भंगी के लड़कों के साथ खेल रहा था! बदमाश कहीं का! जा नहा कर आ।

सम्पतराय—क्यों, उनके साथ क्यों न खेला करूँ? इसमें क्या हरज है?।

छदम्मी—अरे, तू नहीं जानता कि भंगी मैला साफ करते हैं। कैसा नीच काम करते हैं। उन्हें कोई छूता है?

सम्पतराय—तो फिर मैं आपको भी न छुआ करूँगा और आप मुझे भी न छुआ करें। मैं और किसी को भी न छुआ करूँगा और कोई मुझे न छुआ करे, क्योंकि सभी तो टट्टी जाकर अपना-अपना मैला, खास अपने-अपने हाथों से, साफ़ करते है।

छदम्मी—तू पागल है। शायद अपना मैला पाक गिना गया है और दूसरों का नापाक। तभी तो भंगियों को नहीं छुआ जाता। अब तू समझा।

सम्पतराय—हा !, हा !!, हा !!!

(ख)

सम्पतराय— दादा, चमारों के लड़कों के साथ खेलने को आप क्यो मना करते है ? देखिए, रामू चमार का लड़का कैसा साफ रहता है, जैसा कोई ऊँची जाति का भी नहीं रहता। उसके साथ खेलने को आप क्यो मना करते है ?

छदम्मी—भई, चमार लोग पशुओ का चमड़ा निकालते है। इसीलिये उन्हे नहीं छुआ जाता।

सम्पतराय—तो फिर हुसेनी के लड़के के साथ क्यो खेलने को कहते हो ? वह तो क़साई है। नित्य पशुओं को मारकर चीरता-फाड़ता है। यह तो बड़ा बुरा काम है, जो जीते पशु को मार डालता है। चमार तो मरे-मराए पशु से चमड़ा निकालते हैं।

छदम्मी—अरे, तू जानता नहीं। मरे हुए जीव का चमड़ा निकालना ही शायद छूत माना गया हो। नहीं तो हमारे बाप-दादे क्या झूठ बोलते थे ? उन्हो ने चमारों को नहीं छुआ।

सम्पतराय—अच्छा, जो यही बात है, तो फिर डॉक्टरो को लोग क्यो छूते है ? ये तो न जाने, कितने मुर्दों को पहले चीरते हैं, तब कहीं डॉक्टर बनते हैं।

छदम्मी—शायद पशुओं का चीरना ही छूत गिना गया हो, आदमी का नहीं। डॉक्टर तो मरे हुए आदमियो को ही चीरते हैं।

सम्पतराय—अगर यह बात हो, यदि मनुष्य का चीरना पाक और पशु का चीरना नापाक हो, तो सबको पशु के गोबर से चौका लीपना-पोतना ठीक नहीं है। उन्हें मनुष्य के.... से ही लीपना-पोतना चाहिए।

छदम्मी—शायद जीते जी पशु पवित्र होते हो, और मर जाने पर अपवित्र।

सम्पतराय—हा ! हा !! हा !!! क्या खूब !

फिर सम्पतराय खेलने चला गया।

किशोरीदास वाजपेयी

× × ×

३. लाला सियारमल

किसी जंगल में एक बहुत बड़ा तालाब था। तालाब के किनारे एक विशाल पीपल का वृक्ष था। उसी के करीब लगभग पंद्रह-बीस कदम के फासले पर सूखे हुए पेड़ का ठूँठ था। जंगल के तमाम जानवर—सियार, लोमड़ी आदि—प्रति दिन पीपल के छोटे-छोटे पके हुए सुमधुर फल खाने और पानी पीने के लिये वहाँ आया करते और गर्मी के दिनों मे उस पीपल की शीतल छाया मे बैठकर आमोद-प्रमोद किया करते थे।

उसी जंगल मे एक काना सियार रहा करता था। 'एक तो कड़ू करेला दूजे नीम चढ़ा'। सियार एक तो वैसे ही शरारत का पुतला होता है, दूसरे काना। 'भंग और फिर उसमें धतूरे के बीज'। काने राजा से इन भोले-भाले स्वजाति-बांधवों, अपने स्वदेशवासी जंगली पशुओं का सुख न देखा गया। अब आप उनको हैरान करने की

तरकीबें सोचने लगे। दूसरे की बुराई की बातें सोचने मे दुष्ट का दिमाग बड़ा काम करता है। झट उसको एक बात सूझ गई।

दूसरे दिन सवेरा होते ही लाला सियारमल एक मोटा भगघोटना लेकर उस सूखे हुए ठूँठ पर जा बैठे और लगे उचक-उचककर बड़े जोर-जोर से चिल्लाने—

तिल्ली-वोड़ी पर बैठे सियारमल, तिनका यह ताल ;
विना हुकुम जो इसमे जावे, मार खाइ तत्काल।

जो भी जानवर तालाब की ओर बढ़ने की हिम्मत करता, उसीकी ओर खीसें निकालकर वह झपटता—"खबरदार, हम इस तालाब के मालिक है। अभी तक तुम लोगों ने खूब अधेर मचाया, खूब पीपल के फल खाए और खूब पानी पिया—खूब मजे उड़ाए। आज से इसके ऊपर हमारा पहरा है। विना हमारी आज्ञा के आज से कोई फल खाने न पावेगा और न पानी पीने पावेगा।" जिसे भी डॉट बताता, वही विचारा डरके मारे खिसककर जंगल की राह लेता।

गर्मी के दिन थे। भूख और प्यास के मारे सबका बुरा हाल था। इसलिये शाम को जगल के सब छोटे-छोटे जानवरों ने एक सभा इस बात पर विचार करने के लिये की, अब ऐसी दशा मे क्या होना चाहिए। इस ताल के सिवाय दूर तक और कोई दूसरा तालाब न था। सब लोग जमा हुए। सर्व-सम्मति से यह तय पाया कि चलकर लाला सियारमल की खुशामद करनी चाहिए और किसी तरह फल खाने और पानी पीने की आज्ञा लेनी चाहिए। सब लोग जाकर लाला सियारमल के पास पहुँचे। पहले तो उसने सबको एक बड़ी लबी डॉट बताई। पर अंत में बहुत कुछ अनुनय-विनय करने पर कहा—'अच्छा देखो, हम इस पीपल के पेड़ और इस तालाब के मालिक और जमींदार है। अगर तुम सब लोग इस बात पर राजी हो कि जितने फल चुनो, उसमें से आधे हमको दे जाओ और आधे तुम ले जाओ, तो हम तुमको तालाब मे पानी पीने, पीपल के फल खाने और उसकी छाया मे बैठने की इजाजत दे सकते है।' भूख और प्यास के मारे सब तिल-मिला रहे थे। इसलिये सब इस बात पर राजी हो गए। आकर सबने पीपल के फल खाए, पानी पिया और अपने-अपने चुने हुए आधे फल सियार-मल को दे आए। उस दिन से रोज़ाना यही क्रम जारी रहता। काने राजा सियारमल उसी सूखे लकड़े के ऊपर रहने लगे।

एक दिन सवेरे के समय सब जानवर पीपल के फल बीन रहे थे, सियारमल बैठे हुए उनकी रखवाली कर रहे थे। इतने मे एक लोमड़ी जो उठी, तो देखा कि कई शिकारी कुत्ते लाल-लाल जीभे निकाले हुए दौड़े चले आ रहे है। उसने झट दौड़कर सियारमल को इसकी इत्तिला की। सियारमल बड़े ही स्वाभिमानी थे। झट डपटकर बोले—"हट, हरामजादी! क्या हम ऐसे वैसे है। एक वह, एक हम। जाओ, तुम लोग निडर होकर अपना काम करो। वे आवेग, तो हमारे उनके दो-दो हाथ होंगे, यह डडा उन्हीं के सर पर टूटेगा। हट जा, तुझे क्या मालूम। राज काज ऐसे ही चलते हैं।" इतने मे कुत्ते और भी निकट आ गए। यह देख सब-के-सब जोर से चिल्ला उठे—"सरकार, बचाओ। वह देखो शिकारी कुत्ते दौड़े चले आ रहे है। पीछे तीन-चार आदमी भी लबे-लबे बाँस लिए दौडे हुए चले आते है। सरकार साहब भागो, हमको भी बचाओ।" परतु फिर भी स्वाभि-

मान की रक्षा करते हुए लाला सियारमल बोले—"चुप रहो, खबरदार डरने की कोई बात नहीं। तुम अपना काम करते रहो। हमारे होते हुए तुम क्यों डरते हो। कोई हँसी-ठट्ठा है, हमारे हुक्म बिना वे यहाँ क़दम तो धर ही नहीं सकते।" दिखाव में तो काने राजा सियारमल बड़ी लंबी-चौड़ी बातें करते थे, शेख़ी मार रहे थे, लेकिन भीतर-ही-भीतर पेट पानी हो रहा था। बात की बात में सबके सब शिकारी कुत्ते सर पर आ धमके। ज्योंही एक दो के ऊपर झपटे, सब-के-सब दौड़कर अपने-अपने बिलों में घुस गए। काने राजा भी अपना मगघोटना छोड़ दुम दबाकर बेतहाशा भागे। उनका कोई अपना रहने का बिल न था। झट दौड़कर एक लोमड़ी के बिल में घुसना चाहा। बिल इतना बड़ा न था कि लाला सियारमल का इतना मोटा-ताज़ा शरीर उसके अंदर आ सकता। आपने कोशिश बड़ी की, लेकिन सिकुड़कर भी अंदर घुस न सके। इसी बीच में कुत्तों की निगाह इन पर पड़ी। उन्होंने झट दौड़कर एक-एक कूला लिया और बाहर खींचकर पटक दिया। इतने में शिकारी भी आ पहुँचे। उन्होंने भी अपनी लंबी-लंबी लाठियों से दो तीन हाथ रसीद किए। भीम-काय वीरवर लाला सियारमल रण-क्षेत्र में काम आए। कुत्तों ने अपने तेज़ पंजों और नुकीले दाँतों से उनका मृतक संस्कार भी वहीं पर समाप्त कर दिया! अपने कुत्तों को लेकर शिकारी अपने घर आए। उस दिन से जंगल में फिर राम-राज्य हो गया। सब फिर आनंद से पीपल के पके हुए सुमधुर फलों तथा तालाब के शीतल जल से परितृप्त हो पीपल की सुखदायिनी शीतल-छाया में स्वतंत्र विहरण करने और आमोद-प्रमोद-मय जीवन बिताने लगे। सबके हृदय-कमल की कलियाँ खिल उठीं।

माधवप्रसाद मिश्र

१. गेहूँ के आटे मे मिलावट

य बड़े शहरों में सभी का यह अनुभव है कि बाज़ार से ख़रीदा हुआ आटा अच्छा नहीं होता। वास्तव में बात यह है भी सच। आज कल व्यावसायिक लाग-डाट के कारण प्रत्येक विक्रेता ग्राहक को ठगने मे ही अपनी कुशलता दिखाता है। भारत मे आटे-जैसे सर्वोपयोगी खाद्य पदार्थ मे अन्य पदार्थों की मिलावट करने से जनता की जो हानि होती है, उससे अधिकारी वर्ग सभवत भलीभाँति परिचित नहीं हैं, अन्यथा इस कुप्रथा की निरतर वृद्धि होने की सभावना नहीं थी।

सामान्यत गेहूँ के आटे मे मिट्टी तथा सस्ते अन्नो का आटा ही मिलाया जाता है, किंतु अन्य देशो मे तो कुछ ऐसी वस्तुओ का भी मेल किया जाता है, जो शरीर के लिये हानिकर भी है। आटे में मेल निम्न-लिखित उद्देश्यों से किया जाता है —

१ सस्ती वस्तुओ के मेल से उसका परिमाण बढ़ाकर धन-लाभ करना।

२ आटे की सफ़ेदी बढ़ाना।

३ आटे के माड़ने में अधिक लसी उत्पन्न करना।

४ पुराने आटे के अवगुण दूर करना।

इस देश में आटा अवश्य ख़राब मिलता है। परंतु विदेशियो का अनुसरण करके अनेक प्रकार के हानिकारक पदार्थों का मेल नहीं किया जाता। संभव है, इस वैज्ञानिक युग मे पाश्चात्य ससर्ग से ये बुराइयाँ भी यहाँ के विक्रेता ग्रहण कर लें। इस देश में साधारण रूप से परीक्षा करने से तो यही पता चलता है कि आटे में अन्य सस्ते आटो का तथा पुराने अथवा बासी आटे का ही मेल करते हैं। लकड़ी का आटा भी अब भारत में आने लगा है, और उसके रोकने का प्रयत्न भी होना चाहिए।

यहा पर आटे का विश्लेषण कर उसकी रासायनिक परीक्षा करने की विधि देना आवश्यक प्रतीत नहीं होती। परतु अन्य सस्ते आटों का मेल पहिचानने की एक सुगम विधि लिखी जाती है, जिससे प्रत्येक मनुष्य जिसके पास एक साधारण-सा भी अणुवीक्षण-यत्र है, इस प्रकार की मिलावट का भली भाँति पता चला सकता है। यदि यह यंत्र न हो, तो किसी कॉलेज के विद्यार्थी की सहायता ली जा सकती है।

प्रत्येक अन्न में न्यूनाधिक मात्रा में स्टार्च (starch) अवश्य होता है। आलू में २२ प्रतिशत तथा चावल मे ८० के लगभग होता है। गेहूँ में भी ७० प्रतिशत के लगभग होता है। स्टार्च के कण होते हैं, और इन कणो का आकार तथा साइज़ में भेद होता है। इसलिये यदि आटे के कुछ कण कॉच के टुकड़े (slide) पर रखकर और उस पर एक बूँद जल डालकर अणुवीक्षण-यत्र में देखा जाय, तो इन कणो को बड़ी सुगमता-पूर्वक पहचाना जा सकता है। इसी प्रकार यदि मिश्रण हो, तो केवल इन कणों को देखकर ही मिश्रित पदार्थ का भी पता चल सकता है।

गेहूँ के आटे में मिट्टी तथा अन्य खनिज पदार्थ भारत में नहीं मिलाए जाते। परंतु गेहूँ को ठीक-ठीक साफ़ न करने से अथवा आटे को सुव्यवस्थित रूप से ढककर न रखने से मिट्टी का मेल हो जाता है। यदि एक बार आटे में थोड़ी बहुत मिट्टी अनजान से मिल भी जाती है, तो उसमें से निकाली नहीं जा सकती। इस कारण यह आवश्यक है, पिसवाने के पहले गेहूँ को ख़ूब अच्छी तरह से साफ़ करा लेना चाहिए। मशीन की चक्की भी पक्के मकान में होनी चाहिए और चक्की का स्थान भी इंजिन के कमरे में न होना चाहिए। आटे को सफ़ेद करने की जो विधि अन्य देशों में काम में लाई जाती है, वह सर्वथा निर्दोष नहीं है, परंतु संभव है कि कोई व्यवसायी धनोपार्जन करने के हेतु उसे प्रयोग करने लगे। इस कारण उसका यहाँ वर्णन नहीं किया जाता।

गेहूँ के आटे में जब पानी मिलाकर गूँधा जाता है, तो उसमें लचीलापन आ जाता है। यह लचीलापन अथवा चिपकन ग्ल्यूटीन नामक पदार्थ के कारण होता है। गेहूँ के आटे में यह ७ से १२ प्रतिशत की मात्रा में होता है। बाजरा, मक्का तथा अन्य पदार्थों के आटों में यह कम होता है। इस कारण उनकी रोटी उतनी सुगमता से नहीं बेली जा सकती, जितनी गेहूँ के आटे की। यह ग्ल्यूटीन (Gluten) बड़ा पुष्टिकारक पदार्थ है। जब किसी आटे में इसकी मात्रा ७ प्रतिशत से कम पाई जाय, तो आटा अवश्य ही मिश्रित मानना चाहिए। १० प्रतिशत तक हो तो आटा अच्छा माना जाता है।

अच्छा आटा स्वच्छ तथा सफ़ेद होता है। पीलापन उसका बासीपन सूचित करता है। इस प्रकार के आटे के सेवन से पाचन-विकार हो सकता है। उसमें खट्टेपन की तथा घुनैली दुर्गंध न होनी चाहिए, और न स्वाद में ही कुछ अंतर होना चाहिए। यदि उँगलियों के बीच में दबाकर देखा जाय, तो वह चिकना और मुलायम होना चाहिए। दरदरा अथवा रवेदार आटा ठीक पिसा हुआ नहीं होता। यदि मुट्ठी में दबाया जाय, तो अच्छा आटा कुछ लड्डू के रूप में बँध जाता है। और यदि ज़ोर से दीवार पर फेंका जाय, तो बहुत कुछ चिपक जाना चाहिए। पानी में मिलाकर गूँधने से उसमें लसीली चिपकन होनी चाहिए। इसके अतिरिक्त उसमें घुन अथवा अन्य कीटाणुओं तथा हानिकारक पदार्थों का मेल न होना चाहिए। यदि सील की जगह में आटा रक्खा जाता है, तो कीटाणुओं की संख्या बढ़ जाती है और वह दूषित हो जाता है। यदि डारनेल नामक घास (Lolium temulentum) के बीज गेहूँ में मिल जायँ, तो वह अफ़ीम की तरह विषैला हो सकता है।

× × ×

२ शीतला (चेचक) की भयंकरता

विगत ७५ वर्षों में भारत में, शीतला का प्रकोप बहुत कम हो गया है। इस कारण अब प्रायः इसकी भयंकरता का अनुमान नहीं किया जाता। गत शताब्दी में जो उन्नति हुई है, वह इस बात का स्पष्ट प्रमाण है कि शीतला के संबंध में जो कुछ कार्य उसकी भयंकर गति को रोकने के लिये किए गए हैं वे पूर्ण-रूप से सफल हुए हैं। यह बात अवश्य स्वीकार की जा सकती है कि अन्य देशों की अपेक्षा भारत में सफलता की मात्रा बहुत कम है, परंतु अन्य देशों के इतिहास से यह भी प्रतीत होने लगा है कि यदि शीतला की गति को रोकने के लिये, जो कुछ हो रहा है, वह बराबर जारी रक्खा जावे, तो जर्मनी आदि देशों की तरह यहाँ से यह रोग समूल नष्ट किया जा सकता है। यदि विचार-पूर्वक देखा जाय, तो यह बात निर्विवाद सिद्ध होती है कि यह सब उन्नति टीके के कारण ही हुई है। टीके से जो लाभ हुआ है, उसका वास्तविक दिग्दर्शन तभी हो सकता है जब इस रोग का टीके के पूर्व का इतिहास जान लिया जाय।

शीतला एक प्राचीन रोग है। ईसा के पूर्व यह रोग पृथ्वी के पूर्व भाग विशेषकर चीन और भारत में अवश्य था, और अनुमान किया जाता है कि छठी शताब्दी में इसका प्रसार पश्चिम में हुआ। यह प्रसार ईसाई तथा मुसलमानों के धार्मिक युद्धों में भाग लेनेवाले सैनिकों द्वारा ही हुआ था। उन देशों में यह रोग इतना व्यापक हो गया था कि प्रायः समस्त योरप इसकी भयंकरता से घबड़ा उठा था। ८० अथवा ९० प्रतिशत जनता को यह रोग सताता था और उसमें जो बच्चे होते थे, उनमें लगभग ६० प्रतिशत का तो प्राणांत ही हो जाता था। सन् १८०२ ई० में एडमिरल बर्कले ने पार्लियामेंट में भाषण देते हुए कहा था "यह सिद्ध है कि केवल इँगलिस्तान में ही प्रतिवर्ष ४५,००० प्राणी चेचक से मरते हैं। समस्त संसार की तो बात ही क्या? इस

संसार में शीतला माता की वेदी पर प्रत्येक सेकेंड एक-न-एक प्राणी का अवश्य ही बलिदान होता रहता है।" सन् १७५४ ई० में फ्रांस की यह दशा थी कि जितने प्राणी मरते थे, उसके दशांश तो केवल शीतला से ही मरते थे और चतुर्थांश जनता शीतला के कारण अपाहिज अथवा कुरूप हो जाती थी। जर्मनी मे सन् १७६६ मे ६५,००० से ऊपर प्राणी मरे और प्रशिया मे १६ वी शताब्दी के आरंभ काल में प्रति वर्ष ४० ००० प्राणी अपना जीवन खोते थे। क्या इन अंक से चेचक की भयंकरता का अनुमान नहीं होता? आजकल इस प्रकार का प्रकोप नहीं होता, इस कारण साधारण जनता शीतला के संबंध मे निश्चित हो बैठी है।

भारत मे तो शीतला की भयंकरता अन्य देशों की अपेक्षा कई गुना अधिक थी और अब भी है। मृत्यु-संख्या के अंक प्राप्त नहीं, किंतु जो कुछ भी लेख मिलते है, उनमे यह सिद्ध होता है कि शीतला द्वारा भारत मे जितनी जीवन-हानि हुई है, उतनी और किसी रोग से नहीं हुई। भारत में कम-से-कम १५०० वर्ष से तो यह रोग अवश्य प्रचलित है, और जब शीतला से बचने के लिये किंकर्तव्य विमूढ होकर केवल मंदिरों मे देवी की आराधना के अतिरिक्त कोई उपाय नहीं था, तो इसकी वास्तविक भयंकरता का अनुमान अच्छी तरह से किया जा सकता है। मेक्सिको, ब्राज़ील, साइबेरिया, ग्रीनलैंड आदि देशों की तरह भारत में भी अनेक नगर शीतला के द्वारा उजड गए हो, तो कोई आश्चर्य नहीं। यह कहा जाता है कि जिस प्रकार टिड्डियों का दल हरे-भरे खेतों को उजाड़ देता है उसी प्रकार शीतला द्वारा भी अनेक नगर मरुस्थल के समान निर्जन हो गए थे। इस प्रकार के विवरण में जिन्हे अतिशयोक्ति की शंका हो, वे सन् १८७७ मे, आसाम मे जो नागा साधुओं की शीतला द्वारा जीवन-हानि हुई थी उसका विवरण आसाम के गज़ेटियर मे पढ ले, तो अच्छा हो।

भारत मे शीतला से बचने के लिये एक प्रकार का टीका लगाने की रीति अनेक शताब्दियों से प्रचलित थी। उससे लाभ की अपेक्षा हानि बहुत होती थी। उस प्रकार के टीके से टीका लगवानेवालों में से अधिकांश को रोग नहीं सताता था, परंतु टीकाधारी लोग रोग का प्रसार करते थे, कारण कि उस टीके की छूत से पड़ोसी रोगी हो जाते थे। प्राचीन रीति से कुछ व्यक्तियों को तो लाभ हो सकता था, परंतु समस्त जाति के लिये वह अत्यंत हानिकर सिद्ध हुआ। इस कारण वह रीति क़ानून द्वारा उठा दी गई और नवीन प्रणाली काम मे लाई जाने लगी।

इस नवीन प्रणाली के पूर्व भारत की जो दशा थी, वह यदि आजकल होती, तो कलकत्ता, बंबई आदि नगरों में जहाँ लाखों प्राणी बसते हैं प्रलय का-सा हाहाकार मच जाता। टिपरा के राजवंश मे १५ वीं शताब्दी से लेकर १८ वीं शताब्दी तक १६ महाराज गद्दी पर बैठे थे, उनमे से ५ महाराज शीतला से मरे! सन् १७६७ के लगभग का लेख है जिससे यह सिद्ध होता है कि बंगाल मे प्रति सातवे वर्ष चेचक का प्रचंड प्रकोप होता था और मार्च, एप्रिल और मई के तीन महीनों मे धनी, निर्धनी, अंगरेज़ अथवा भारतीय सभी को वह इतना सताता था कि बहुत थोड़े मनुष्य निरोग रह पाते थे। केवल कलकत्ते की ही शीतला द्वारा मृत्यु-संख्या के अंक इस प्रकार हैं—

सन्	मृत्यु-संख्या प्रतिलाख मे से
१८३३	१,१७६
१८३८	६६७
१८४४	१,३५३
१८४६	७६८
१८५०	१,०७२
१८५७	८२३
१८६५	१,२६२

अन्य नगरों का भी यही हाल था। दिल्ली, लाहौर, बंबई आदि कई नगरों के अंक प्राप्त है, परंतु उनकी दशा कलकत्ते की दशा से कुछ भी अच्छी नहीं थी। यदि समस्त भारत का विचार किया जाय, तो अनुमानतः भारत के कुछ भाग मे जहां मृत्यु-संख्या गिनी जाने लगी थी, सन् १८६६ मे चार लाख से अधिक प्राणी मरे। प्रिंगिल (१८६६) का कथन है "मै अपने चार वर्ष के अनुभव से कह सकता हू कि युक्तप्रांत के गंगा-यमुना के बीच के भाग मे, जिसकी जन-संख्या ६० लाख के ऊपर है, ६५ प्रतिशत प्राणी अपने जीवन-काल में एक बार शीतला से अवश्य पीड़ित होते हैं, और यह रोग इतना भयंकर होता है कि किसान, ज़मींदार और अन्य धनी जातियाँ भी बच्चो को अपने कुटुंब मे स्थायी रूप से तब तक नहीं गिनते थे, जब

तक वह एक बार शीतला का झटका खाकर बच न जाते। सर्जन जनरल पिंकर्टन ने सिंध तथा बंबई के १२ वर्ष के अनुभव से यह तथ्य पाया कि सन् १८६३ में सिंध की समस्त जनता शीतला के भयंकर परिणामों से पीड़ित थी या हो चुकी थी। सन् १८४४ में कलकत्ते के एक अस्पताल में प्रति दिवस २८० में से १२ मनुष्य शीतला के परिणामों (अपंग, अंधा आदि) से पीड़ित पाए जाते थे, और सर रेनाल्ड मार्टिन का अनुमान है कि भारत के ७५ प्रतिशत अंधे प्राणी शीतला द्वारा अंधे हुए थे।

टीके लगाने की रीति से पूर्व भारत में शीतला का इतिहास कितना रक्त-रंजित है। टीके द्वारा ही मृत्यु-संख्या में अब आशाजनक कमी हुई है। यह तथ्य सप्रमाण फिर कभी सिद्ध किया जायगा। परन्तु यहाँ यह कह देना आवश्यक प्रतीत होता है कि अभी अग्नि शांत नहीं हुई है। राख के ढेर में छिपी हुई चिनगारियाँ फिर कभी समय पाकर भयंकर रूप धारण कर सकती हैं, कारण कि आजकल भी कभी-कभी किसी गाँव में यह दृश्य दिखाई दे जाता है। जब पिछले १० वर्ष में, भारत में ही इतनी अधिक सफलता हुई है, तो फिर अब तो जनता तथा अधिकारी वर्ग दोनों को ही द्विगुणित उत्साह के साथ इस पुनीत कार्य में अग्रसर होना चाहिए। अभी टीके के संबंध में अज्ञानता के कारण अंधविश्वास फैला हुआ है, परंतु आशा है, वह शीघ्र ही दूर हो जायगा। जैनर द्वारा चलाई हुई रीति से भारत में टीका लगाने से भारतवासियों को जो लाभ हुआ है, उसका दिग्दर्शन फिर कभी कराया जायगा। यहाँ पर केवल इतना ही कहा जाता है कि सबसे पहले १८०२ ई० में बंबई में जैनर-वाली रीति से टीका दिया गया और केवल ४ वर्ष ही में भारतवासियों को इससे इतना लाभ हुआ कि कलकत्ते के निवासियों ने अपनी हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करते हुए जैनर को ४,००० पौंड भेंट किए थे। फिर बंबई ने भी २,००० पौंड तथा मदरास ने १,३८३ पौंड भेजकर अपनी कृतज्ञता प्रकाश की।

भवानीशंकर याज्ञिक
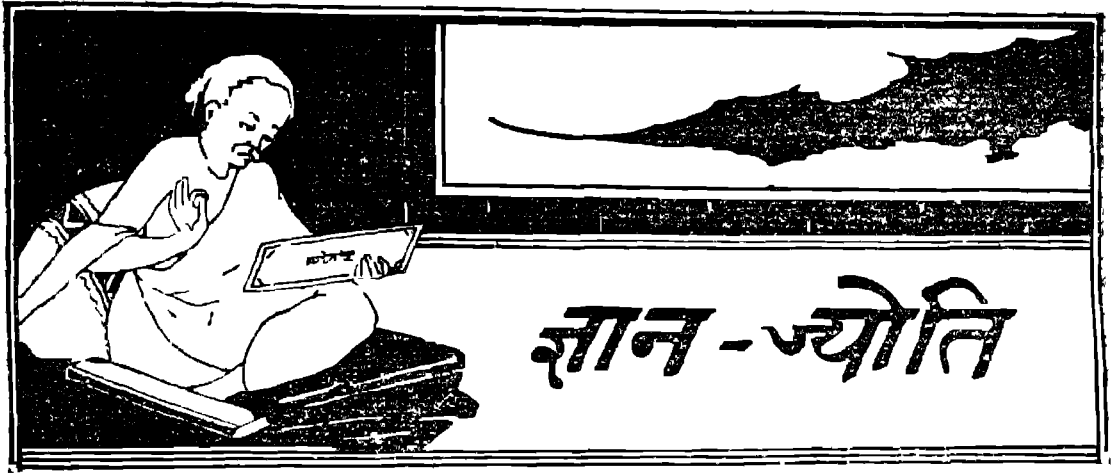
१. वाल्मीकीय रामायण के सार में गलती

मेरे मित्र श्रद्धेय मिश्रबंधु महाशयों ने जब से हिंदी साहित्य की उन्नति का बीड़ा उठाया है, तब से वे अनेक उत्तम-उत्तम ग्रंथों की रचना और संपादन कर रहे हैं। हज़ार मेरा उनसे मत-भेद हो; किंतु न्याय के लिहाज़ से यह अवश्य स्वीकार करना पड़ेगा कि अँगरेज़ी-भाषा के नामी विद्वानों में ऐसे कम महानुभाव निकलेंगे, जिन्होंने इनके समान ऐसे ठोस काम करने में अपना समय लगाया हो। श्रावण की "माधुरी" में "वाल्मीकीय रामायण का सार" चाहे छोटा और एक निबंध के रूप में ही सही, किंतु उसके पाठक-पाठिकाओं में से उनके लिये, जो संस्कृत न जानने से अथवा एक बृहत्ग्रंथ के अवलोकन का अवकाश न मिलने से "वाल्मीकीय रामायण" को अभी तक नहीं देख सके हैं यह सार बड़े काम की चीज़ है। कम-से कम उस बृहद्ग्रंथ को उस इतिहास का इसमें दिग्दर्शन अवश्य हो जाता है।

इतना होने पर भी मेरी लघुमति के अनुसार इस निबंध में जो दृष्टि-दोष रह गए हैं उन पर मिश्रबंधु महोदयों को और इसके द्वारा "माधुरी" के पाठक-पाठिकाओं को ध्यान दिला देना आवश्यक है। यह निश्चय है कि काव्य में सर्ग और इतिहास में अध्याय हुआ करते हैं। इस तरह "वाल्मीकीय रामायण" में सर्ग और भागवत में अध्याय हैं। मिश्रबंधु महाशयों का ध्यान इस बात पर न गया और संभव है कि यह सार लिखते समय उन्होंने संस्कृत रामायण का अवलोकन नहीं किया। बस, इसी का यह फल हुआ कि इसमें प्रत्येक स्थल पर सर्गों का हवाला देने की जगह अध्याय शब्द का भूल से प्रयोग कर दिया गया।

इस लेख में असल "वाल्मीकीय रामायण" से संक्षेप करते समय किस किस जगह क्या-क्या भूल रह गई है, इसका दिग्दर्शन कराने के लिये आद्योपांत (समग्र) रामायण के पाठ करने की आवश्यकता है। यह कार्य समय साध्य है और आवश्यकता इस बात की है कि 'माधुरी' के पाठकों में से जो संस्कृत के विद्वान् हों वे परिश्रम उठाकर यह कार्य करें, ताकि कुछ संशोधन और आवश्यक परिवर्द्धन के साथ छोटी-सी पोथी के रूप में यह सचमुच काम की चीज़ बन जाय।

हाँ! इस लेख के अंत की कतिपय पंक्तियाँ पढ़कर उनका संशोधन कराना आवश्यक है और इसी हेतु मैंने इस छोटे-से लेख को लिखने का साहस किया है। यदि मिश्रबंधु महाशयों का यह लेख समालोचनात्मक दृष्टि से लिखा गया होता, तो मुझे कुछ लिखने की आवश्यकता न थी, क्योंकि मतभेद होना स्वाभाविक है; किंतु यह सार है और सार में मूल से और का और हो जाना अनुचित है। यदि गलती हुई हो, तो उसका संशोधन होना चाहिए और बुद्धि-पूर्वक किया गया हो, तो अन्याय है। संक्षेप करते समय कर्त्ता के शब्दों का अर्थ न कर अटकल से काम लेना अच्छा नहीं है।

आपने उक्त लेख के अंत की पंक्तियों में लिखा है कि— "शेष सब सुग्रीव राम तथा उनके भाइयों-सहित गुप्तार-घाट में डूब मरे। बहुत से अयोध्यावासी डूब मरे।" यद्यपि मैं नहीं कह सकता कि लेखक महोदयों ने किन शब्दों से "डूब मरे" अर्थ निकाला है, किंतु मूल-ग्रंथ में कहीं 'डूब मरे' का नाम तक नहीं है। पाठकों को ताज़ा हवाला देने के लिये मैं "वाल्मीकीय रामायण" उत्तर-कांड, सर्ग ११० के तीन श्लोक यहाँ उद्धृत करता हूँ—

"आययौ यत्र काकुत्स्थ स्वर्गाय समुपस्थित ;
विमानशतकोटीभिर्दिव्याभिरभिसंवृत ॥४॥
"तस्मिस्तूर्यशतै कीर्णे गधर्वाप्सरसकुले;
सरयूसलिल राम पद्भ्या समुपचक्रमे ॥७॥
"पितामहवच श्रुत्वा विनिश्चित्य महामति ,
विवेश वैष्णव तेज सशरीर सहानुज ॥१२॥"

इनका भावार्थ यह है कि अयोध्यापुर-निवासियों को स्वर्ग में ले जाने के लिये सौ करोड़ विमान वहाँ उपस्थित किए गए थे। जिस समय पैरों चलकर भगवान् राम ने सरयू में प्रवेश किया, गधर्व और अप्सराओं के झुंड-के-झुंड गा रहे थे। ब्रह्माजी के वचन सुनकर भगवान् ने भाइयों-सहित सशरीर विष्णु-तेज मे प्रवेश किया। इस जगह यदि सरयू में पैरों चलकर घुसने से मिश्रबंधु महोदयों ने डूब मरना मान लिया हो, तो "भाइयों-समेत शरीर-सहित विष्णु-तेज मे प्रवेश करना" इस वाक्य का क्या अर्थ हुआ ? इसी तरह की घटना भागवत के अनुसार भगवान् श्रीकृष्णचद्र के स्वधाम पधारने के समय हुई है। पुराणों मे किसी भी अवतार का मरना नहीं बतलाया गया है। उनका शरीर दिव्य है, और जब उनकी इच्छा होती है, वह अतर्धान हो जाया करते हैं। यही भगवान् रामचद्र के विषय मे है और यही भगवान् कृष्ण के विषय मे है। यदि लेखक महोदयों ने इस घटना को असंभव समझकर सातवें श्लोक के उत्तरार्द्ध के आधार पर डूब मरना मान लिया हो, तो ऐसी "वाल्मीकीय रामायण" में अनेक घटनाएँ मिलेंगी, जो आज कल की दृष्टि में असंभव हैं और विमान तथा भूत-विद्या प्रभृति की तरह समय पाकर सभव साबित हो सकती हैं। फिर यह लेख 'सार' है। "वाल्मीकीय रामायण" की समालोचना नहीं। बिना स्पष्टीकरण और सशोधन किए, यदि यह लेख यों ही चला जावे, तो सभव है कि जनता अवश्य रामचद्रका डूब मरना मानेगी। "वाल्मीकीय रामायण" में जहाँ इस घटना का वर्णन है, वहाँ सारा कार्य शास्त्रीय विधि से करना बतलाया गया है। यदि डूब मरना मान लिया जाय, तो भगवान् रामचद्र आत्मघात करने के अपराधी सिद्ध होते हैं और इस तरह उनके मर्यादा पुरुषोत्तमपन में बट्टा लगता है। मेरा ख़याल है कि मिश्रबंधु महोदयों ने यदि डूब मरना लिखते समय इन बातों पर ध्यान दिया होता, तो वे ऐसी गलती कदापि न करते। इसका सशोधन अवश्य होना चाहिए।

लज्जाराम मेहता

× × ×

२. क्रांति, भ्रांति पर शांति-लहर

आज देश में कुछ जागृति-सी दिखाई देती है, साथ-ही-साथ वैषम्यता (धन, व्यक्तिगत संपत्ति) के कारण "पडिता समदर्शिन." ऐसे साम्य सिद्धांत का रक्तपात भी हो रहा है, परतु यह रक्त रक्तबीज-रूप धारण कर रज-तम पर सत-साम्यता की प्रभुता स्थायी किए बिना न रहेगा। "प्रत्यक्षस्य किं प्रमाणम्"। वर्तमान सृष्टि-गति को देखते हुए यह अनुभव किया जा सकता है कि यहाँ आत्म-अनुभव-ज्ञान (हमारा सत-धर्म) जगज्जीवों को अज्ञानाधकार से निकालकर सत (कालत्रयेऽपि तिष्ठतीति सत्) साम्य सुख, आत्मिक लौकिक शांति का सूत्रपात कर चुका है, तदनुसार ही अनुभवोत्पादक क्षेत्र में भी कारण कार्य-रूप मे परिवर्तित हो रहा है। सदा संत-महात्मागणों में समय-समय पर विकास हुआ, परतु साधन-सपन्न न होने से अपरिपक्व ही सा रहा। अब इस राज्य में वाक् तथा धार्मिक स्वतत्रता को अवसर मिला, तो देश के साम्य-धर्मी (श्रमी) आदि वामी भी प्रकाश पाकर वश, गौरव और दैशिक अधिकार की टटोल मे लगे हैं, तभी तो कहते हैं—

आदि में सब हिंदू ही थे, बाद मे यवन, क्रिश्चियन-मतानुसार मत-परिवर्तन कर पूर्वागत आर्य-धर्म द्वारा भी "सस्काराद्द्विजउच्यते" इस प्रकार सस्कृत होकर द्विज बने और अब भी बनते जा रहे हैं। चाहे कोई निज प्रांत छोड़कर अन्यत्र जा, जाति छिपाकर बने अथवा वर्तमान धर्म-समाजों द्वारा बने हों, बन अवश्य हो रहे हैं, वे सब कहाँ से बने तथा बनते हैं ? हमी मूल हिंदू (आदि-हिंदू) वश में से तो हैं, क्योंकि हमारी ही भाषा बोलते और

पनिहारिन

बलखाती मनहर पनिहारिन जल भरने नहिं आई,
झीनी अँगिया के तारों से हृदय झाँकने आई।
निर्मल शीतल सरवर जल में प्रेम-मीन को पाई,
उझक झिझक कर जानि अकेली छबि-वंशीहि बझाई।

मार्कण्डेय पाण्डेय "मधु"

नवलकिशोर-प्रेस, लखनऊ।

रीति-नीति बरतते हैं, हाँ! "प्रभुता पाय काहि मद नाहीं" की नाईं—राजसत्ता प्रभाव-पदादि स्वार्थ-मद में मस्त हो "मदोन्मत्तो नैव पश्यति" के समान अपने आदि वंशीय गौरव को नहीं देखते, जैसे—यवन-राज्य में लोग लबें कटा, दाढ़ी-पट्टे रखा, नमाज़ तक पढ़ने लगे थे। यही नहीं, बेटी-रोटी का व्यवहार तथा मियाँ-मदार और क़बर-पूजा तक चल गई, जो अब तक नहीं गई है। ठीक यों हीं अब का भी राज्य-प्रभाव देख ले—हैट, कोट पैंट पहन, मूछें मुड़ा, कर्ज़नी फ़ैशन बना, गौन जैकिट से ब्रौन लेडी को सजा, या विदेशों में जा, विलायती पट्टा (नकटाई) बँधा, हाफ़ कास्ट (मिश्र जाति) बनना मात्र ही धर्म मान रहे हैं। बस, यों हीं तो अपने मूलवंश से पृथक् हो स्वार्थवश उन्हीं का शूद्र-अछूत नाम धर दिया, स्वयं विजेता जातियों के आश्रित हो, दैशिक अधिकार पर क़ब्ज़ा जमाया, अपने मूलवंशीय १६ कोटि आदि-हिंदू (सछूत-अछूत नामी) भाइयों के मुल्की हकों को सामने में रख "सर्व वै पूर्णछं स्वाहा"-वत् सब डकार कर इस कहावत को चरितार्थ करते हैं कि—"कोई मरे चाहे कोई जीवे, बदा घोल बताशे पीवे।" बल्कि पूर्व जन्म की थाथी का पट्टा लिखाए हुए मनुष्यत्व के ठेकेदार बनकर समय-समय नई नीति, चालों से मूलत्व को दबाते-सताते, बल्कि पतन तक कराके विजातीय बनाते हैं, गोकि यवनादि भी विशेषकर आदि-हिंदू ही तो हैं, केवल मत-भेद से हो द्विजों के समान घृणा करते हैं, वर्ना आज भी वे हमारी भाषा बोलते हैं, चोली-दामन का-सा साथ है और उन्हें भी अरबी या अमरीकन आदि निज देशों में हिंदी ही कहते हैं। फ़र्क़ है, तो केवल उर्दू-हिंदी में (ई) या (ऊ) का, आशय दोनों का एक ही है, अस्तु! यों ही पूर्वागत-आर्य भी यहीं मर-खप गए, उनकी आसुरी वैदिक भाषा भी केवल प्रथा-मात्र ही में रह गई; बल्कि संस्कारित (प्राकृत-मिश्रित संस्कृत) भाषा, जो उर्दू वत् बनाई गई थी, वह भी आम प्रचलित न रही और न मूल आर्य-वंश हो रहा। अब यदि है, तो केवल हिंदू, हिंदी हिंदुस्थान में है। हाँ, द्विजमत जो उनकी प्रभुता में मिश्रित जनों (द्विजों) ने चलाया था, वही आज द्विज क्रांति या भ्रांति लहर, आदि-हिंदुत्व के उद्धार या पुचकार व फटकार-रूप में समक्ष है, अतः अब उस पर भी कुछ विवेचना करनी चाहिए:—

हमारे आदि हिंदू आंदोलन की पुकार सुन, समझकर जहाँ कुछ यवनों ने अपने लाभार्थ सहानुभूति प्रकट की है, कदाचित् पंजाब में श्रीशूद्रानंद को आर्थिक सहायता देकर उभारा कि हमारे द्वारा मुल्की हक़ जानकर अछूत-वंश शत्रु न हों। निज मित्र बने रहें, तो मित्रता से उन पर धार्मिक विजय भी कदाचित् प्राप्त हो सके, तहाँ—कुछ द्विज-धर्मी हिंदू व आर्यसमाजी लोग भी इसकी तह तक गए। यही नहीं, कतिपय सज्जन तो अग्रगण्य बनकर लखनऊ-जैसे केंद्र में आदि-हिंदू-पत्र, निकालकर हलचल मचा रहे हैं, बल्कि आर्य हिंदू सभाओं को त्याग-कर कट्टर आदि हिंदू बन गए, तद्वत् जहाँ-तहाँ दृष्टि पातकर—ज़ात-पाँत-तोड़क-मंडल, लाहौर के मंत्री तथा उक्त नाम्नी पत्रिका के संपादक श्रीयुत लाला संतरामजी बी० ए० महानुभाव ने भी देशकाल विचारकर स्वयं आर्य सिद्धांत रखते हुए, लौकिक दृष्टि से हमारे आंदोलन द्वारा सशंकित हो, हिंदू या द्विज (आर्य) धर्म, वंश नाम रक्षार्थ सहानुभूति प्रकट की अर्थात् हिंदू-महासभा के मूल उद्देशानुसार एक हिंदूनेशन बनाने का प्रस्ताव "क्रांति की लहर" नाम से सितंबर की सरस्वती आदि में रक्खा था कि यदि ऐसा न करें, तो सिख या यवनों के समान अछूतों के लिये मुल्की हक़ का बटवारा अलग, (हिंदुओं को न्याय-सम्मत होकर) देना चाहिए। गोकि वे हमारे उद्देशों से दूर हैं, परंतु उनके हृदय की दयालुता, अछूतों के दैशिक अधिकारों द्वारा सुधार की सद्भावना दर्शाती है, तभी तो हमारे भाइयों की पुकार पर करुणा कर अपने सभ्य द्विजादि भाइयों के प्रति तीव्रालोचना कर दी है, गोकि उनके विचार में दोनों (छूत-अछूतों) का ही मंगल है, चाहे हम उनके रोटी-बेटीवाले सिद्धांत से स्वयं इस समय सहमत नहीं हैं। हम तो केवल मुल्की अधिकार (बटवारा) ही चाहते हैं, तावत् कि हमारी अवस्था हर प्रकार द्विजों के समान न हो जाय, परंतु श्रीमंगलदेवशर्माजी को उन (संतरामजी) का लेख अमंगलकारक प्रतीत हुआ, तभी तो उन्होंने आश्विन की माधुरी में "भ्रांति की लहर" बहाकर दंगल रोप दिया, आप लिखते हैं—

"महाउद्देश (स्वराज्य-सिद्धि) के लिये केवल छोटी सी माँग—छुआछूत ही भगा देनी थी, न कि रोटी-बेटी की बात, इत्यादि"। हम देवताजी से पूछते

हैं, किसकी छोटी-सी माँग है ? यह तो आपके ही द्विज देवों का हमारे फँसाने के लिये ढकोसला है, जो कि सामान्य जलसे करके हमारे कुछ दब्बू स्वार्थी दो-चार अछूत भाइयों को शामिल करके खुद रौला मचा देते हैं, वर्ना हमारी माँगें तो मुल्की हक़ों की है, जैसा हमारी आल इंडिया आदि हिंदू (डिप्रेज्डक्लासेस) तथा सबा कानफ्रेंसों में पास हो चुका है। आगे आप हमारे आदि-हिंदू आंदोलन के समर्थक इने-गिने लिखते हुए मुख्य नेता संचालक श्री० ह० स्वामि अछूतानन्दजी व शूद्रानंद नामक एक ही सज्जन लिखते है—इसमे तो आप सचमुच भ्रांति की लहर मे गहरे बह गए। हमारे प्रधान नेता संस्थापक श्री० अछूत० स्वामीजी आदिहिंदू महासभा के कार्यालय कानपुर मे (जहाँ आदिहिंदू प्रेस है) केंद्र बनाकर रहते हैं तथा श्रीशूद्रानंद जालंधर पंजाब मे इसी उद्देश पर आंदोलन करते सुने जाते हैं, बल्कि हरएक सूबे मे किसी-न-किसी प्रकार काम करते हुए बहुत से नेता है, जिनका आपको परिज्ञान ही नहीं है। सन० जी की हिंदू-हितकारिणी कटु बूटी से तो आपको आघात ज्ञात हो गया; परंतु हमारे १६ कोटि आदि-हिंदुओं (शूद्र अछूत कहानेवाले) के महदाघात को ज़रा-सी बात (माँग) लिख दिया, यों १६ कोटि पर लांछन नहीं, केवल ७ कोटि द्विजो पर लिखते तो शोभा पाते, क्योंकि आधे तो शूद्र नामधारी हमारी ही तरह पतित माने गए है, दूर क्यों, रामायण ही देखे—"जे वर्णाधम तेलि कुम्हारा, स्वपच किरात कोल कलवारा।" "शूद्र करहिं जप तप व्रत दाना बरनि न जाय अनीति अपारा।"व मनुस्मृति (शूद्रो हि धनमासाद्य ब्राह्मणानेव बाधते। उच्छिष्टमन्न दातव्य जीर्णानि वसनानि च) इत्यादि। विष-बेलि का बीज सन० जी ने नहीं, वरन आपही के उपर्युक्त पुरुषों ने बोया था, जिसे अन्य प्रकार आप सोच रहे है। हा ! भ्रम-लहर मे आपको ऐसा ही प्रतीत होता हो, तो संभव है—"नेत्रदोष जा कहँ जब होई, शशि कहँ पीत वर्ण कह सोई", यह आपकी विषमता शीघ्र नहीं मिटेगी, क्योंकि आपके हार्दिक भाव इसे स्थायी रखना चाहते है, जब तक सहस्रों वर्ष के इस महान् पाप का पूर्ण प्रायश्चित्त न हो जायगा, तब तक यह धारणा दृढ़ होती जायगी, आगे इसी के फल-स्वरूप साम्यता से सुख-शांति स्वयं प्राप्त होगी। सन० जी को चाहे आप अशिष्ट, विद्रोही कुछ भी कहे, पर वे—"खल के बचन संत सहैं जैसे" सह लेंगे; क्योंकि आपके शुभाकांक्षी है। उनकी बात से कोई हिंदू सहमत क्यों न होगा ? "कूपमंडूक-न्यायवत्"—चाहे आप इसे माने रहे, पर अब प्रकाश-मयजगत् है, अब विश्लेषणता पैदा हो गई है, वह स्वयं मना देगी व मना रही है। आगे आप हिंदुओं (द्विजों) की निठुरता को दयार्द्रता मे बदलते है, क्यों साहब ! अहो, आर्य, असहयोगी आदि (जिनको आप प्रशंसा कर चुके है) क्या आपके जैसे संकुचित विचारों के पोषक है ? वे सब द्विजों के ठेकेदार नहीं हैं, जो आप उनकी आड़ मे जन्मज वर्ण-व्यवस्था-प्रचारकों की निठुरता छिपाते है। आगे आप लिखते है—जिस आंदोलन के संचालक श्री० अछूतानंद है, उसे ही "क्रांति-लहर" नाम सन० जी ने दिया है, आगे—कुछ तैयार किए गए, पट्टी पढ़ाए गए, लोगों द्वारा ये ज़हर (मुल्की हक़ बटवारा) फैलाया जाता है। इसमे कहा अछूत स्वामी का आंदोलन, कहा सन० जी की पट्टी, दोनो मे क्या सत्य है ? "वदतो व्याघात"। आगे परशुराम के परशुप्रहारवत् अछूत हितैषियों को निःक्षत्रिय करने पर उद्यत होकर आभाई परमानंदजी पर भी बौछार करने लगे, जिन्होंने स्वयं अभ्युदय १७-११-२५ मे ह० अछूत० स्वामी व आदि हिंदू-आंदोलन का प्रतिवाद किया था, उन्हें भी सन० जी के साथ-साथ (सत्य-प्रियता के कारण) इसी में साना है, उनका ज़बरदस्त हाथ इसमे बताते है। धन्य हो देवता ! धन्य हो !! सन०जी ने भूल की थी, जो रोटी बेटी विवाह का प्रश्न करके हमारी तौहीन करवाई, वर्ना हमारे (अछूतों) मे तो यदि कोई ब्राह्मणी घर मे डाल लेवे, तो जाति बहिष्कृत होता है, भारी दंड देकर ब्राह्मणी शुद्ध कराके पंच मिलाते है, वर्ना बारह बारह वर्ष तक हुक्का पानी बंद रहता है, हम मे तो खपना दुस्तर है, यों हमारी गुरुता कुछ कम नहीं है, केवल राजनैतिक अधिकार बिना इतने गिरे हुए है। मंगल० जी वे (सन०) जहादी जत्था नहीं, आर्य बिरादरी, आपकी द्विजत्व पोषण कारिणी बना रहे है। उसमे तो हमको ही घाटा है, क्योंकि पढ़े-लिखे गुण-कर्म से आपके ब्राह्मण बनेंगे और बली क्षत्रिय, यों ही धनी वैश्य, रहे तो तीनों गुण-हीन हमारी ही श्रेणी मे रहे, जो सदा तुम्हारी (द्विजों की) दासता,

मार, बेगार आदि अत्याचार सहते रहेंगे। अत: हम तो उनके मंडल को आपके मंडल से भी विशेष भयकर समझते हैं, हाँ! उनके नैयायिक सद्भावों की क़द्र करते हैं। आगे आप रावण (ब्राह्मण कहानेवाले) का पक्ष लेकर विभीषण को बंधु-द्रोही अर्थात् राम-विद्रोही के पक्षवाला लिखकर धिक्कार चुके हैं—तो सत० जी विचारे क्या चीज़ रहे? अक्षम्य, विवेक-हीन कुंभकरण के बड़े भाई लिखते हुए भी न जाने कौन-सी दया दरशाते हैं, क्या करें—"दैवात् नाखून न हुए" वर्ना अक्षम्य फल न जाने क्या देते? चमारों की तौहीन, धुनिए की मखौल क्या ज़ख्म पर नमक का काम नहीं देती? क्या इनसे आपके हार्दिक भावों का हम पता नहीं लगा सकते? अब हम समष्टि व्यष्टि की कल्पनाओं की भ्रांति-लहर में भ्रम नहीं सकते, बहु संख्या आदि हिंदुओं (शूद्र अछूत १६ कोटि) की ही हमारी समष्टि है। समय प्रेम-बंधन का तभी आवेगा, जब आदि हिंदू दासता से मुक्त हो बलशाली हो जावेंगे, वर्ना—"ग़रीब की जोरू सबकी भाभी" कहावत प्रसिद्ध ही है। घरू झगड़े भी सदा सरकार से निपटवाते रहते हो, फिर भी नक्कू बनना आपही जैसे महानुभावों का काम है। पलायनवृत्ति ख़बरदार कभी न धारना, हमारे लिये दासता में जकड़ने को अंग में डटे रहना, धौंस में आकर कहीं कायर न बन जाना, चाहे वैसे किंपुरुष ही क्यों न हों।

संपादक-मंडल—
आर्य-हिंदू-महासभा, कानपुर

शब्दकार—श्री० राधेश्याम, 'कविरत्न'। स्वरकार—प्रोफेसर—एम्० पी० मुकर्जी, वायोलीनिस्ट।

जंगला-मिश्र

बहुधा राग ऐसे हैं, जो विदेशी संगीतों में से हिंदोस्तानी संगीत में लिए गए हैं। यह राग ईरान का है। इसका असली नाम ज़नगोला है, जिसको संगीत के पंडितों ने जंगोला लिखा है। अब यह जंगला कहा जाने लगा है। इस राग में गंधार—भैरवी व आसावरी की है व निषाद—काफ़ी की—मालूम होती है। इस राग का उत्तर-अंग पर ज़ोर रहता है। जंगला भी मिश्रमेल राग कहा जाता है। दो-तीन ठाठों के मिलाने से एक राग पैदा हुआ है। इसके गाने का समय तृतीय पहर दिन है। ऐसे रागों में सदैव रिवाज देखकर चलना चाहिए।

पंडित सोमनाथजी अपने ग्रंथ मे लिखते हैं कि "करनाट गौड़" जो राग है, इसमे भैरो मिलाने से यह राग पैदा होता है। पंडित चतुरजी कहते हैं, "यह आसावरी व भैरवी से मिलकर बना है।"

आरोही। न स र ग म प ध न म।

अवरोही। सं न ध प म ग म प ग र ग र न स।

गायन—

देखो मदनमोहन रह्यो मन रिझाय,
अधर मधुर मुरली कर धर बजाय।
बिंद्राबन की कुंजगलिन मे,
ऐसी बाँसुरी बजाई सारा ब्रज बस कीनों।

जंगला-मिश्र-त्रिताल

				दे	खो	म	द	न	मो	ह	न	र	ग्यो	म	न
				ग				र		स				प	
				र	ग	र	ग	स	र	न	स	र	ग	म	प
रि	का	ऽ	य												
	ध														
ध	ग	ऽ	म												
				अ	ध	र	म	धु	र	मु	र	ली	क	र	ध
				न	न	स	र	स	न	ध	प	ध	म	प	ग
र	ब	जा	य	(देखो											
म	ग	र	ग												
				बि	ऽ	न्द्रा	ऽ	ब	न	की	ऽ	कु	ऽ	ज	ग
				म	ऽ	म	ऽ	ध	ध	न	ऽ	म	ऽ	सं	स
लि	न	में	ऽ	ते	सी	बाँ	सु	री	ब	जा	ई	सा	रा	ब्र	ज
म	न	स	ऽ	प	स	न	म	ध	न	प	ध	म	प	ग	म
ब	स	की	नो	(देखो . .											
र	ग	र	ग												

सुख के लिये विवाह

विवाह चाहे किसी देश में, किसी जाति में और किसी उम्र में हो सुख के लिये ही किया जाता है। शादी के पहले सभी लोग भिन्न भिन्न तरीकों द्वारा यह निश्चय कर लेना चाहते हैं कि विवाह सुखमय होगा या नहीं। कोई भी वैवाहिक जीवन को दुःखमय देखना नहीं चाहता। हम भारतवासी कुंडलियों के फेर में पड़े रहते हैं। जहाँ वर-कन्या की कुंडली मिली, विवाह निश्चित हो गया। पाश्चात्य देशवाले 'कोर्टशिप' द्वारा अपने जीवन-साथी को चुना करते हैं। किंतु चाहे कुंडलियों के मिलने से शादी हो या 'कोर्टशिप' के फल-स्वरूप, ऐसा देखने में आता है कि सभी लोगों का दाम्पत्य-जीवन सुखमय नहीं होता। दाम्पत्य-जीवन सुखमय न होने पर यहाँ के पति-पत्नी चुपचाप मन मारकर रह जाते हैं, किंतु पाश्चात्य देश में तलाक की नौबत पहुँच जाती है। अमेरिका में तलाक की बढ़ती हुई संख्या को देखकर खोजी इसका कारण ढूंढ़ने लगे। भिन्न-भिन्न दिशाओं से इस पर विचार होने लगा। यहाँ एक प्रकार की वैज्ञानिक खोज का विवरण दिया जाता है। इससे पाठकों का मनोरंजन होगा और यदि वे इसके अनुसार चलेंगे, तो कुछ खोजियों का कहना है कि वे अवश्य सुखी होंगे।

एक प्रकार के वैज्ञानिकों का कहना है कि वैवाहिक सुख-दुःख प्रधानतः दम्पति के विवाह के समय की आयु पर निर्भर है। वर और कन्या की आयु का पता लगाकर यह ठीक-ठीक कहा जा सकता है कि जोड़ी का वैवाहिक जीवन, सुख से बीतेगा या नहीं। वैवाहिक जीवन को सुखमय बनाने के लिये हमें दम्पति के मानसिक और शारीरिक अवस्था का भी विचार करना पड़ता है। आर्थिक और सामाजिक परिस्थिति भी सुख दुःख का कारण हो सकती है; किंतु इन सबों में आयु को ही प्रधान मानना चाहिए। प्रथमतः सौ तलाक देनेवाली पति-पत्नियों के विषय में पूछ-ताछ की गई। फल-स्वरूप यह ज्ञात हुआ कि यदि कोई नौजवान लड़की अपने से चौगुने-पचगुने उम्र के वर के साथ विवाह करती है, तो उसका जीवन दुःखपूर्ण होता है। जहाँ-जहाँ दम्पति की उम्र प्रायः निकट-निकट रही, वहाँ-वहाँ सुख उनके पीछे-पीछे डोलता रहा। डॉ० कैथरिन डेविस ने एक हज़ार औरतों का गुप्त सन्देश इकट्ठा किया। इनमें ११६ स्त्रियों का जीवन दुःख-पूर्ण था। तीसरी खोज कम उम्र की दम्पति की गार्हस्थिक अवस्था की जाँच थी। इसी प्रकार और कई जाँचों के बाद एक 'चार्ट' तैयार किया गया है, जिसका चित्र यहाँ दिया जा रहा है। जिसमें वर
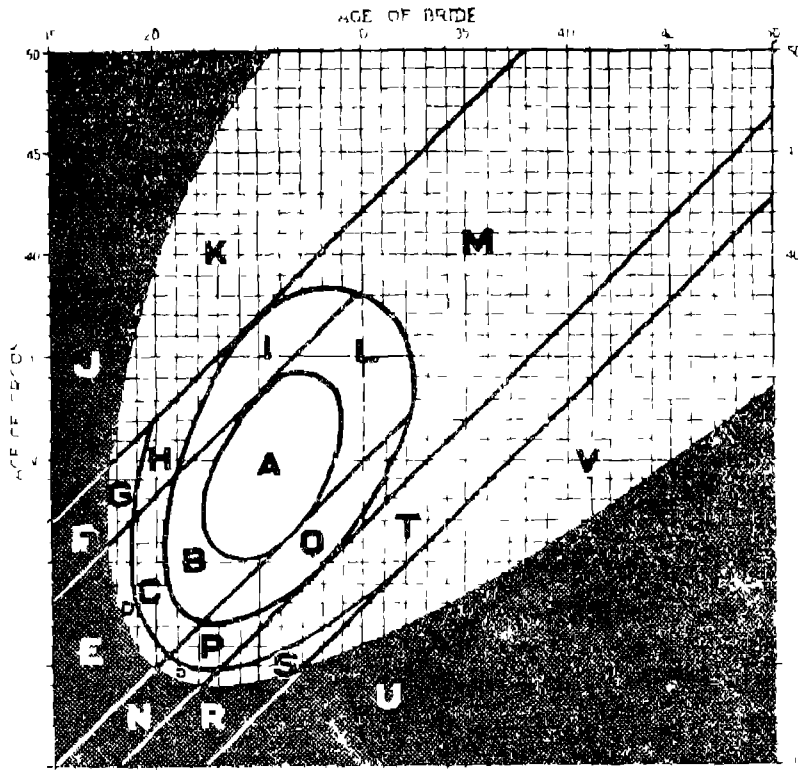
अवश्य ये बातें अमेरिका-जैसे सभ्य देश की हैं; किंतु इनकी सत्यता का प्रमाण इस देश में भी मिलेगा।

शादी का फलाफल नीचे दिया जाता है—A—आदर्श। B-A—जैसा आदर्श नहीं। यदि शक मालूम हो, एक दो साल ठहर कर शादी करो। C—खतरनाक ; कुछ साल ठहरो। D—बड़ा खतरनाक ; वर-कन्या बहुत कमसिन हैं। E—अत्यंत भयानक, ठहर जाओ। F—सभवत तलाक़ की नौबत पहुँचेगी। G–F से थोड़ा कम खतरनाक। H—कन्या बहुत कमसिन है। J—सभवत. तलाक और कष्ट। K—सुखमय हो सकते हैं। L—अच्छा भविष्य, यद्यपि दोनों को देर तक आसरा देखना पड़ा। M—साधारण मौका है। N—मौक़ा वैसा अच्छा नहीं। O—दोनो बड़े कमसिन हैं; कम-से-कम चार साल ठहर कर शादी करो। P—वर कमसिन है, एक दो साल ठहर जाओ। Q—अच्छा मौक़ा है। R—बहुत कम मौक़ा है। S—कम मौक़ा है। T—सफल हो सकता है। U—उम्र मे बड़ा फ़र्क़ है, निराशा। V—U—से थोड़ा कम, आशा-रहित।

और कन्या की आयु दो तरफ़ दिखलाई गई है। कन्या की उम्र की लाइन से ऊपर की ओर बढ़िए और वर की आयु की लाइन पकड़कर दाहिनी ओर आइए। जहाँ ये दोनों लाइनें मिलें, वहा देखिए कौन-सा अक्षर है या उस घेरे मे कौन-सा अक्षर लिखा हुआ है। इसके बाद उस अक्षर का फल देखिए, आपका भविष्य मालूम हो जायगा।

एक उदाहरण द्वारा बात आसानी से समझ मे आ जायगी। मान लीजिए, कन्या १६ वर्ष की है और वर २२ साल का दोनों लाइनें D के पास कटती हैं। अब D का फलाफल नीचे की तालिका मे देखिए—"बड़ा ही खतरनाक ; दोनो बड़े कमसिन है।" ऊपर जो चित्र दिया गया है, उसमे जो हिस्सा काला रँगा हुआ है, उस उम्र में शादी साधारणत दु खमय होती है। जो हिस्सा एकदम सफ़ेद है, वह सुखमय शादी का स्थान है। परीक्षकों ने यह भी बतलाया है कि आदर्श विवाह वयस्क पुरुषों के लिये २६-३० और स्त्रियों के लिये २४ है।

× × ×

२ अँधेरे मे देखना

अँधेरे मे मनुष्य को कुछ भी दिखाई नहीं पड़ता। उन्नीसवीं शताब्दी के अंतिम भाग में लोगों का विश्वास था कि अँधेरे मे कुछ देर तक रहने से मनुष्य को सभी चीज़ें सूझने लगती हैं। इसका कारण यह बतलाया जाता था कि प्राय सभी पदार्थ एक प्रकार की किरण छिटकाया करते हैं और ये किरण मनुष्य के नेत्र से टकराकर उस पदार्थ की आकृति का ज्ञान मनुष्यों को करा देती हैं। किंतु परीक्षाओं से अब पता चला है कि लोगों का यह

विश्वास गलत था। पूर्ण अंधकार में हम कोई भी पदार्थ नहीं देख सकते।

रात्रिचर पशुओं—बिल्ली, बाघ, आदि—के विषय में लोगों की धारणा है कि अँधेरे में वे मनुष्य से अच्छा देख सकते हैं। किंतु इस धारणा का कोई प्रमाण नहीं मिलता। दरअसल पूर्ण अंधकार में उनकी भी आँखें उसी प्रकार बेकाम हो जाती हैं, जिस प्रकार मनुष्यों की। रात्रिचरों की आँखों में एक विशेषता होती है, उनकी पपनियाँ अँधेरे में फैल जाती हैं, किंतु प्रकाश में वे सिकुड़ी हुई रहती हैं। पपनियों के फैलने से उनकी आँखें मनुष्यों की आँखों की बनिस्बत अधिक प्रकाश ग्रहण कर सकती हैं। इसलिये अर्ध प्रकाश या अर्ध अंधकार में वे मनुष्यों से अच्छा देख सकते हैं।

कीट-पतंगों के विषय में यह ज्ञात नहीं है कि वे अँधेरे में देख सकते हैं या नहीं। चमगादड़ अँधेरे में नेत्र की सहायता से नहीं, बल्कि अन्य इंद्रियों की सहायता से देख सकते हैं।

थोड़े में कहना होगा कि जानदार पूर्ण अँधेरे में सर्वथा विवश हो जाते हैं। अब, औरों के विषय में भी सुन लीजिए। आजकल ऐसे फ़ोटो के "कैमेरा" बनने लगे हैं, जो पूर्ण अँधेरे में रक्खे हुए पदार्थों का भी फ़ोटो ले सकते हैं। एक विशेष प्रकार का 'प्लेट' बनने लगा है, जिस पर तीव्र बैंगनी और लाल रंगों का—जिसे हम देख भी नहीं सकते—फ़ोटो लिया जा सकता है। एक अँगरेज़ आविष्कारक, बायर्ड ने अभी-अभी अपने आविष्कार को वैज्ञानिकों के समक्ष प्रदर्शित किया है। अँधेरे में चोर चोरी कर रहा है, आप उसे देख नहीं सकते; किंतु यह नवाविष्कृत "कैमेरा" उसका फ़ोटो ले लेता है। चोर को इसकी ज़रा भी ख़बर नहीं लगती।

आजकल एक ओर जहाँ निःशस्त्रीकरण का दिखौआ राग अलापा जाता है, वहाँ चुपचाप लड़ाई की ऐसी-ऐसी तैयारियाँ हो रही हैं, जिसका लोगों को पता भी नहीं। जहाँ कोई आविष्कार प्रयोगशाला से बाहर हुआ कि लोगों को उसे युद्ध के काम में लगाने की फ़िक्र पड़ जाती है। उपर्युक्त फ़ोटो कैमेरा को भी लोग युद्ध का एक उपकरण बनाना चाहते हैं। अँधेरे में शत्रु-सेनाओं का फ़ोटो लेना तथा यह निश्चय करना कि शत्रु-सेना कितनी टुकड़ियों में विभाजित है और कहाँ-कहाँ अवस्थित है आदि काम इस 'कैमेरा' के हवाले सौंपे जायँगे। इस "कैमेरा" में व्यवहार होनेवाले लेंस से दूरदर्शक यंत्र बनाकर उससे भी तरह-तरह के काम लेने के मनसूबे बाँधे जाते हैं। यह दूरदर्शक यंत्र अँधेरे में ही नहीं, किंतु कुहासे में भी वायुयानों के उड़ने में सहायक होगा। अस्तु।

विज्ञान के अन्यान्य अनुन्नत विषयों में प्रकाश भी है। इसके रहस्य का बहुत थोड़ा पता लगा है। अभी हाल में प्रो० मिलिकेन ने 'कास्मिक' किरण के विषय में कहा है कि यह किरण संसार में चारों ओर फैली हुई है और यह एक्स-किरण की नाईं सभी ज्ञातव्य पदार्थों को पार कर जाती है। वैज्ञानिक अब इस किरण के अध्ययन में लगे हैं। इससे कैसे-कैसे आविष्कार होंगे—यह भविष्य के गर्भ में ही छिपा है।

× × ×

३. वायुयान की छतरी

वायुयानों में आग लगने पर चालक अपनी रक्षा के लिये वायुयान को छोड़कर एक छतरी के सहारे कूद पड़ता है और आहिस्ता-आहिस्ता पृथ्वी पर आ गिरता है। इस छतरी का नाम 'पाराशूट' है। इसके विषय में 'माधुरी' में कई नोट निकल चुके हैं। अब वायुयानों में यात्रियों के सफ़र करने की भी व्यवस्था की गई है, इसलिये उनकी रक्षा का प्रबंध भी होना ही चाहिए। यदि सभी यात्रियों को यात्रा के पहले एक-एक छतरी आवश्यकता के समय इस्तेमाल करने के लिये दे दी जाय, तो काम चल सकता है। किंतु ऐसे भी मनुष्य हैं, जो आग में जल मरना पसंद करेंगे, किंतु छतरी के सहारे ज़मीन पर उतरना नहीं पसंद करेंगे। इसलिये इस कारण से हो या अन्य किसी कारण से हो, सैन फ़्रैंसिसको के जाक्विन एम्० ऐब्रू ने दो हिस्सों में वायुयानों को बनाने की बात कही है और वैसे वायुयान का एक नमूना भी तैयार किया है। इसके एक हिस्से में एंजिन पेट्रोल आदि रहेंगे और दूसरे में चालक यात्री आदि। पिछले हिस्से में एक बड़ी-सी छतरी भी रहेगी, जो आवश्यकता पड़ने पर खोल दी जावेगी। मान लीजिए, एंजिन में आग लगी, जो सारे वायुयान को जला डालना चाहती है, वायु भी इसमें उसकी सहायता करना चाहती है। ऐसी हालत में

छतरी लगे हुए वायुयान

दो हिस्सेवाले वायुयानों के आविष्कारक जाकिन ऐब्रू

चालक झट एक झटका देता है, वायुयान का जलता हुआ हिस्सा ज़मीन की ओर ज़ोरों से अग्रसर होता है और उसका दूसरा हिस्सा धीरे-धीरे पृथ्वी की ओर डगमगाता हुआ उतरता जाता है। यदि पेट्रोल के पीपे आदि ठीक रहे, किंतु ईंधन की कमी के कारण एंजिन रुक गया, उस हालत में दोनों हिस्सों को अलग करने की ज़रूरत नहीं, सिर्फ़ छतरी खोलने ही से काम चल जावेगा।

× × ×

४ लिंडबर्ग का डाक

एटलैंटिक सागर को वायु-मार्ग द्वारा पार करनेवाला सर्वप्रथम उड़ाका लिंडबर्ग हैं। न्यूयार्क से उड़कर जब यह पेरिस पहुँचे, तब इनकी जो आवभगत हुई, वह राजा महाराजों के लिये भी दुर्लभ है। वहाँ यदि पुलिस हस्तक्षेप न करती, तो शायद इनका बचा रहना कठिन था, क्योंकि लोगों की भीड़ इन पर टूट पड़ी थी और इनको देखने तथा इनके साथ हाथ मिलाने के लिये इन्हें चारों ओर से लोग पीस रहे थे। यह तो पेरिस की बात हुई। पेरिस से लौटकर जब यह मकान आए, उस समय संसार के सभी हिस्सों से एक लाख तार, पैंतिस लाख चिट्ठियाँ और १४ हज़ार भिन्न-भिन्न पदार्थों के

लिंडबर्ग की डाक

पार्सल आपके नाम डाकख़ाने में पहुँच चुके थे। रेल के तीन डिब्बों में भरकर आपकी डाक आपके पास पहुँचाई गई। दस पिउनों पर और एक मोटर 'बस' मे लादकर आप के तार आपके घर लाए गए, मोटर लारियों में दस टन पार्सल लादे गए और आपके दरवाज़े पर पहुँचाए गए। इन्हें देखकर लिंडवर्ग सिर खुजलाने लगा। भला इतने पदार्थों की प्राप्ति-स्वीकार वह कैसे करता? यदि क्षिप्र लेखन-प्रणाली और टाइपराइटर के सहारे दो-सौ पत्रों का भी उत्तर प्रतिदिन दिया जाता, तो केवल पत्रों के उत्तर लिखवाने मे उसे ७५ वर्ष लग जाते और इनमें दो तिहाई हिस्सा शेष करते-करते वह क़ब्र मे पहुँचा दिया जाता। किंतु लिंडवर्ग यदि अपने हाथ से सभी पत्रों आदि का केवल प्राप्ति-स्वीकार ही लिखता, तो उसे १५० वर्ष से कम समय न लगता। यदि इसकी डाक एक के ऊपर एक रक्खी जाती, तो १०,००० फ़ीट ऊँची हो जाती! चेंबर ऑफ़ कामर्स के १५ सेक्रेटरियों ने छ हफ़्ते मे केवल २,००,००० चिट्ठियों की केवल प्राप्ति-स्वीकार की!

यहाँ यदि पत्रों की थोड़े मे चर्चा कर दी जाय, तो कोई हानि नहीं जान पड़ती। इनमें अधिकांश धन्यवाद, बधाई आदि के पत्र थे, कुछ ऐसे थे जिनमें लिंडवर्ग से किसी-न-किसी प्रकार की मदद मांगी गई थी। एक बुढ़िया ने अपने जीवन-निर्वाह के लिये, रुपए मांगे थे, किसी इंजीनीयर ने अपने आविष्कार को पूरा करने की सहायता चाही थी, किसी का आविष्कार आधी दूर पहुँचकर रुका हुआ है, उसे लिंडवर्ग की सहायता चाहिए, कोई बेकार बैठा हुआ है, उसे लिंडवर्ग की सहायता से नौकरी मिल सकती है। इसी प्रकार के न मालूम कितने पत्र थे। प्रायः ४०० लिंडवर्गों ने उसे अपना रिश्तेदार बतलाया था। किसी ने लिंडवर्ग पर कविता बनाई थी और किसी ने अपनी सर्वोत्तम कविता उसे समर्पण की थी।

कारबारी और रुपयावाले लोग भला इस मौक़े को क्यों जाने दें। एक फ़िल्म कंपनी फ़िल्म तैयार करने के लिये लिंडवर्ग को तीन लाख रुपया देना चाहती है। दूसरी एक विशेष प्रकार के कारबार के लिये १,८०,००,००० रुपया दे रही है। इसी प्रकार और भी कितने लोग धन देनेवाले हैं। कुछ लोगों ने लिंडवर्ग से अपने-अपने पदार्थों के लिये सार्टिफ़िकेट लेने की दरख़्वास्त की है। इस समय युवतियाँ क्यों चूकें, लिंडवर्ग से शादी करने की न मालूम कितनी दरख़्वास्तें पढ़ चुकी हैं। प्राय प्रत्येक दरख़्वास्त के साथ प्रार्थी का चित्र भी है।

पार्सलों मे भिन्न-भिन्न प्रकार के पदार्थ निकलते हैं। रोटी, जवाहिरात, अस्तुरे, रूमाल, नेकटाई, अचार, चटनी, किताब, दवा, दरी, कपड़े, जूते, हैट आदि-आदि। देखिए, पाश्चात्य देश अपने यहाँ के लोगों की कितनी क़द्र करता है और इस देश के लोग जगदीश बाबू के लिये क्या कर रहे हैं?

× × ×

५. मनुष्य की सहन-शक्ति

मनुष्यों मे कष्ट सहने की शक्ति कितनी है? क्या वे पशुओं का मुक़ाबिला कर सकते हैं? कम-से-कम एक अँगरेज दौड़ाक, चार्ल्स हार्ट, घोड़े को सहन-शक्ति मे पछाड़ सकता है। हाल ही मे हार्ट की एक घोड़े से मुठभेड़ हुई थी, दोनो ने एक साथ लंदन से दौड़ना आरंभ किया। परीक्षा यह देखने की नहीं थी कि कौन तेज़ दौड़ता है, किंतु इस बात की कि कौन अधिक समय तक दौड़ सकता है। दौड़ प्रतिदिन बारह घंटे के हिसाब से छ दिन तक जारी रही। दो घोड़े प्रतिदिन अदल-बदलकर दौड़ा करते थे, किंतु हार्ट अकेला ही दोनो का मुक़ाबिला करता था। इस दौड़-काल मे हार्ट साधारणत.

हार्ट घोड़े के मुक़ाबिले मे दौड़ रहा है।

तरल भोजन करता था। दो साल पहले भी इसी प्रकार की एक दौड़ हुई थी जिसमें हार्ट को दो घोड़ों का सामना करना पड़ा था। इन दौड़ों में हार्ट के ही पक्ष में विजयश्री रही। चित्र में हार्ट और घोड़े की दौड़ का आरंभ दिखाया गया है।

× × ×

६ दृश्य-दर्शक रेलगाड़ी

रेल के बंद डिब्बों में बैठकर यात्रा-पथ के दोनों ओर के सभी सुहावने दृश्य नहीं देख पड़ते। यात्रा का महत्त्व पाश्चात्य समाज
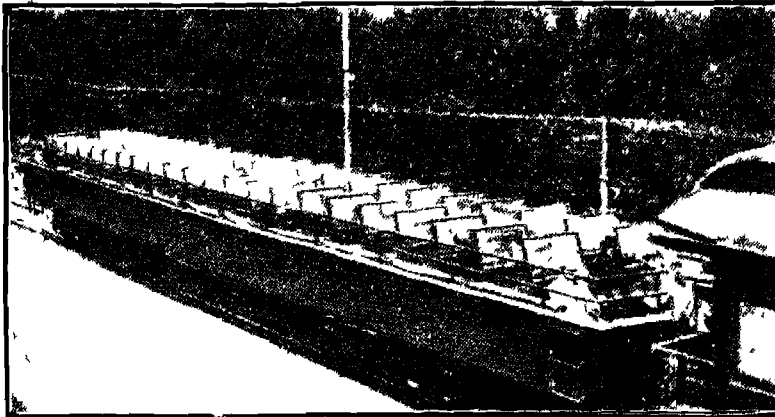
अमेरिका की दृश्य-दर्शक गाड़ी

के लोग जितना समझते हैं, उतना हम लोग नहीं समझते। किसी भी विद्यार्थी की शिक्षा उस समय तक पूरी नहीं समझी जाती, जब तक वह देश-विदेश की यात्रा नहीं कर लेता। यों भी अमेरिकावासी हज़ारों की संख्या में प्रति वर्ष अन्य देशों की यात्रा करते हैं। इसके अलावा, अमेरिका में भी तो ऐसे मनोमोहक दृश्य हैं, जिनका पूर्ण उपभोग तभी हो सकता है, जब खुली गाड़ियों में यात्रा की जाय। ज़रा आप ही उस दृश्य की कल्पना कीजिए—एक ओर पैसेफ़िक महासागर लहरा रहा हो, दूसरी ओर पर्वतमाला पट-पट पर अपने अनुपम दृश्य को आपके सम्मुख लाने की चेष्टा कर रही हो—आप किस ओर देखिएगा? क्या बंद गाड़ी में इन दोनों दृश्यों को एक साथ देखना और उसकी सुंदरता का उपभोग करना संभव है? यूनियन पैसेफ़िक रेल-रोड पर चलनेवाली गाड़ियों में कुछ दृश्य-दर्शक गाड़ियाँ सिर्फ़ प्राकृतिक दृश्य देखनेवालों के लिये ही दौड़ाई जाती हैं। इनमें धूल, गर्द आदि से बचने की भी व्यवस्था की गई है। इस देश में भी जिन-जिन प्रदेशों के अनुपम दृश्य हैं, वहाँ ऐसी गाड़ियाँ लाभ के साथ चलाई जा सकती हैं।

× × ×

७ पुराने अख़बारों का इस्तेमाल

पाश्चात्य देशों में पुराने अख़बार अनेकों काम में लाए जाते हैं। इस देश में यद्यपि उनका व्यवहार परिमित है, तथापि पढ़ने से लेकर खाना खाने के काम तक उनका व्यवहार होता है। अमेरिका में एक महाशय एलिस एफ० स्टेनमैन रहते हैं। आपका पहाड़ पर गर्मी के दिनों में रहने के लिये एक मकान है, उसमें ख़ासियत यह है कि खिड़की और चौखट को छोड़कर सारा-का-सारा मकान पुराने

काग़ज़ के बने हुए टेबुल-कुर्सी और आरामकुर्सी

अख़बार का बना हुआ है। यहाँ तक कि उसमें जितने सामान हैं—खाना पकाने के सामानों को छोड़कर—सभी कागज़ के बने हुए हैं। कुर्सी, आरामकुर्सी, टेबुल, आलमारी, चिरागदान आदि सभी कागज़ के है। इसे स्टेनमैन साहब ने अपनी स्त्री और पुत्री की सहायता से बनाया है। तीन वर्षों से यह मकान धूप, पानी, आँधी, कुहासा, बर्फ़ आदि की चोट बर्दाश्त कर रहा है, किंतु अभी तक ज्यों-का-त्यों बना है। बात यह है कि काग़ज़ का मकान बनाकर उस पर वार्निश कर दी गई है। सारे मकान और उसके सामानों को बनाने मे ६७,००० अखबार लगे है। कागज़ के सामान बडे काम देनेवाले और लकड़ी के सामानों से हलके हैं।

× × ×

८ पृथ्वी कैसे घूमती है ?

जर्मनी के गाटिजेन विश्वविद्यालय के प्रो० ब्रूनो मेयर मैन का कहना है कि पृथ्वी का ऊपरी छिलका उसकी ठोस गुठली के चारों ओर प्राय २७० वर्षों मे एक बार घूम जाता है। गत बीस वर्षों की खोजों से पता लगता है कि पृथ्वी का ठोस छिलका और ठोस केंद्रीय गुठली के बीच का हिस्सा मोम-से मुलायम पदार्थ से बना है, इसलिये ऊपरी हिस्से का घूमना असभव नहीं है। मालूम नहीं, सच्ची बात क्या है! हम भारतवासियों को पाश्चात्य देशों की सभी बातें निराली जान पडती है। बचपन मे पढ़ते थे, पृथ्वी नारगी-सी गोल है। अब सुनने में आता है कि नारगी का ऊपरी छिलका फलियों से अलग हो जाने पर जैसे घूमता है, वैसे ही पृथ्वी का ऊपरी हिस्सा भी घूमता है।

× × ×

९. रेडियम का नया उपयोग

लडन के रेडियम इन्स्टीट्यूट के हेवर्ड पिच साहब का कहना है कि रेडियम अनावश्यक बालों को दूर करने के काम मे लाया जा सकता है। रेडियम कीड़ों को, कैंसर के कोषों को नष्ट कर डालता है। यदि वह चमडे मे अवस्थित बाल की जडो को नष्ट कर डाले, तो आश्चर्य ही क्या? इसी आधार पर आप यह परीक्षा कर रहे है कि रेडियम की किरण बालों को नष्ट करने के काम मे लाई जाय।

श्रीरमेशप्रसाद

× × ×

१० एक नवीन धूमकेतु का आविष्कार

उत्तम-आशा अतरीप (Cape of Good Hope) के जी० ई० एनसर नामक एक वैज्ञानिक ने एक नवीन धूमकेतु का आविष्कार किया है। यह धूमकेतु विषुवत् रेखा से बहुत दूर दक्षिण-दिशा मे व्यवस्थित है। दक्षिणी अक्षरेखा (Southern latitude) से यह धूमकेतु साफ़ दीख पड़ता है।

गोपीनाथ वर्मा

बीज और उनका चनाव

अच्छी पैदावार प्राप्त करने के लिये जुताई, खाद, बीज आदि पर ध्यान देना नितान्त आवश्यक है। इन तीनों के सयोग के विना उपज अच्छी नहीं आती है। खूब जुताई करने से खेत की मिट्टी नरम, भुरभुरी और महीन कण-युत हो जाती है। पौधे की जडो पर सूक्ष्म रोम होते हैं। ये रोम नलिका के समान पोले होते है। इनको मूल-रोम (Root-hairs) कहते है। जुताई के कारण मिट्टी पर हवा और प्रकाश का असर पहुँचता है। जिससे उसमे के अघुलनशील-भोज्य-पदार्थ घुलनशील अवस्था को प्राप्त हो जाते है। मूल-रोम मिट्टी के कणो मे स्थित भोज्य पदार्थों को सोख-कर जडो द्वारा पौधे के भिन्न-भिन्न अवयवो को पहुंचाते रहते है। अतएव यह ज़रूरी है कि खेत की मिट्टी मे आवश्यक भोज्य-पदार्थ पर्याप्त मात्रा मे वर्तमान रहे। लगातार फसले बोते रहने से खेतो की मिट्टी मे के भोज्य-पदार्थों का कोष धीरे-धीरे खाली होता जाता है और कोष को इस कमी को पूरा करने के लिये ही खेतो को खाद दी जाती है।

भिन्न-भिन्न जाति के पौधो को जुदे जुदे प्रकार के भोज्य-पदार्थों की ज़रूरत होती है। अतएव वे अपनी-अपनी रुचि के अनुसार ही आवश्यक भोज्यांशों को ज़मीन में से ग्रहण करते रहते हैं और यही कारण है, भिन्न-भिन्न फ़सलों को भिन्न-भिन्न प्रकार की खाद देनी पड़ती है। भारतवर्ष मे किसान लोग इस ओर बिलकुल ही ध्यान नहीं देते है। जिससे इस देश की ज़मीन की उर्वरा शक्ति अन्तिम सीमा तक घट गई है। किस फ़सल को किस प्रकार की खाद दी जानी चाहिए, यह एक जुदा विषय है। अतएव इस विषय पर इस लेख मे अधिक विवेचन करना अप्रासंगिक होगा।

ज़मीन कितनी ही ऊँचे दर्जे की क्यो न हो और जुताई भी कितनी ही अच्छी क्यो न की गई हो, किंतु उत्तम बीज के अभाव मे पैदावार कभी अच्छी नहीं आवेगी। खेत में खूब खाद देने पर भी कमज़ोर और रद्दी बीज बोने से फ़सल मारी जायगी। 'जैसा बाप वैसा बेटा' का नियम वनस्पति-ससार को भी लागू होता है। इसलिये ज्यादा पैदावार की प्राप्ति के लिये जुताई और खाद के साथ-ही-साथ बीज की उत्तमता पर भी ध्यान देना अत्यन्त आवश्यक ही नहीं—अनिवार्य है।

भारतवर्ष के किसान उत्तम बीज बोने की बात पर ध्यान ही नहीं देते है। हमारे ख्याल से इसमें किसानो का कुछ भी दोष नहीं है। भारतवर्ष के किसानो की हालत बहुत ही खराब है। प्रतिशत ७० किसानों को दोनो वेला भर पेट मोटा अन्न भी खाने को नहीं मिलता है और न उनकी लज्जा-निवारणार्थ मोटा वस्त्र ही नसीब होता है। इस गरीबी के कारण ही वे अपनी पैदावार का अधिकांश भाग साहूकारो, बोहरों और मालगुज़ारो को कर्ज़े पेटे जमा करा देते हैं और साल भर तक इन्हीं

लोगों से क़र्ज़ा लेकर अपना और अपने कुटुब का निर्वाह करते हैं। खेतों मे बोने के लिये बीज भी साहूकारों से सवाई-ड्योढ़ो पर क़र्ज़ लिया जाता है। साहूकार लोग तो सिर्फ़ अपने मुनाफ़े पर नज़र रखते हैं, किसान के भले-बुरे और लाभ-हानि की ओर वे क्यों देखने लगे। बेचारे किसानों को अच्छा-बुरा या सड़ा-गला जैसा भी बीज साहूकार लोग देते हैं, लाचार होकर खेतों मे बोना ही पड़ता है। रद्दी बीज बोने से रोगी पौधे पैदा होते है, जिससे पैदावार भी बहुत कम आती है।

आजकल बीज भाडारों द्वारा किसानों को उत्तम बीज देने का प्रबध किया गया है, किंतु अभी देश का एक बड़ा भाग इन भाडारों से वचित ही है। अतएव यह ज़रूरी है कि हमारे सुशिक्षित बधु इस ओर ध्यान दे। यदि साहूकार और बोहरे तथा व्यापारी सज्जन इस काम को हाथ मे ले, तो देश का बहुत कुछ लाभ हो सकता है। देहातों के हित के लिये सहकारी सभाओं की स्थापना करना प्रत्येक देश-हितैषी का कर्तव्य है।

कृषि-विज्ञान की दृष्टि से पौधे का कोई भाग, जो बोने के काम में आता है, बीज कहा जाता है। इस दृष्टि से गन्ने के टुकड़े शकरकंद की बेले, अदरख, आलू आदि के कद के टुकड़े, अमरपती का पत्ता आदि बीज ही है। गेहूँ, ज्वार आदि के दाने, जिनको हम बीज कहते है, दरअसल में फल है। वनस्पति-विज्ञान की दृष्टि मे ये बीज नहीं कहे जा सकते। किंतु सर्वसाधारण इन्हें बीज ही कहते हैं और हम भी इस लेख मे बीज शब्द का उपयोग बोलचाल की भाषा में ही करेंगे। इस लेख में मुख्यत ज्वार, बाजरा, मक्का, गेहूँ, चना, जौ आदि के बीजों के चुनाव पर ही विचार किया जायगा।

अच्छी फसल प्राप्त करने के लिये बीजों मे नीचे लिखे हुए गुणों का होना नितात आवश्यक है—

१—बीज एक ही जाति के हो। उनमे दूसरी जातियो के बीजों की मिलावट न हो।

२—बीज चमकदार और ख़ास रंगयुत हो।

३—उनमे किसी तरह की बू न आती हो।

४—बीज मोटे और सड़े हुए न हों।

५—पुराने न हो।

६—उनमें उगने की शक्ति मौजूद हो।

१—बीज मे मिलावट का होना—बोने के लिये चुने जाने-वाले बीज एक ही क़िस्म के होने चाहिए। बसी, कठिया, पिस्सी या पूसा गेहूँ के बीज एक ही क़िस्म के हों। मालवी कपास के बीज में, मारवाड़ी (अपलैंड जॉर्जियन) या कबोडिया या निनेवेली नामक जाति की कपास के बीजों की मिलावट न होनी चाहिए। भिन्न-भिन्न किस्म के बीजों का मिश्रण बोने से पैदावार भी मिश्रण होती है, और मिलावटवाले माल की क़ीमत कम आती है। कबोडिया नामक कपास ऊँचे दर्जे की होती है। इसमे मालवी, रोझिया आदि हलकी जाति की कपास का मिश्रण होने पर क़ीमत कम आती है, कारण कि अच्छी कपास भी मिश्रण के कारण हलकी कपास के भाव बिकती है।

२—बीजों की चमक और रग—हरएक नाज के बीजों पर एक ख़ास चमक और रग होता है। जिन बीजों पर यह चमक और रग हलका या भद्दा हो, उनको ख़राब समझना चाहिए। ऐसे बीज, जहा तक सभव हो बोने के काम मे नहीं लाए जाने चाहिए।

३—बू वाले बीज ख़राब होते है। पुराने बीजों मे सूँघने पर एक ख़ास तरह की बू आती है।

४—मोटे बीज—बोने के लिये वे ही बीज चुने जाने चाहिए, जो मोटे हो और जिन पर शल न हो। जिन बीजों पर शल नज़र आवे, उनको अधपके या कच्चे समझना चाहिए। ऐसे बीज खेतों मे कदापि न बोए जाये। मटर की कुछ जातियों के बीजों पर शल होते है और वे हरे भी होते है। इनको ख़राब समझकर नहीं फेक देना चाहिए।

५—पुराने बीज—कई वर्षों तक पड़े रहने के कारण बीजों के उगने की ताक़त घट जाती है और कुछ फसलों के बीज तो एक-दो साल बाद ही ख़राब हो जाते है। अतएव जहा तक सभव हो, एक साल से ज़्यादा पुराने बीज बोने के लिये काम मे नहीं लाए जाने चाहिए।

६—बीजों मे उगने की शक्ति का मौजूद होना भी ज़रूरी है। बीजों के उगने की शक्ति की जाच करने की रीति आगे चलकर बतलाई जायगी।

बीजों का चुनाव

बीजों के चुनाव मे ऊपर लिखे हुए गुणों पर विचार करना निहायत ज़रूरी है। जिन बीजों में उक्त सभी गुण मौजूद होंगे, वे अवश्य ही उत्तम बीज है। फिर भी नीचे लिखी हुई रीतियों से बीजों का चुनाव करने से लाभ ही होगा—

१—बीजों को तौलना—बीजों के भिन्न-भिन्न नमूने लेकर हरएक नमूने में से सौ-सौ बीज गिनकर अलग-अलग रख दो और तब इनको तौलो। जिस नमूने के सौ बीजों का वज़न सबसे अधिक हो, उसे ही उत्तम समझो।

२—बीजों की उत्तमता जानने का एक तरीक़ा यह भी है कि हरएक नमूने के सौ-सौ बीजों को लेकर अलग-अलग पानी में गला दो। चौबीस घंटे बाद इन बीजों को अलग-अलग गीले ब्लाटिंग पेपर, गीले टाट के टुकड़े या गीली रेत में बोकर ऊपर से ढक दो और तब इन्हें किसी अँधेरे स्थान में रख दो। तीन रोज़ बाद इनको निकालकर देखो और उगे हुए बीजों को गिन लो। जिस नमूने के बीजों में उगे हुए बीजों का परिमाण अधिक हो, उसे ही उत्तम समझकर चुन लो। कभी-कभी तीसरे और पाँचवें दिन उगे हुए बीजों की संख्या को मालूम करके बीज चुने जाते हैं। ब्लाटिंग पेपर, रेत या टाट के टुकड़े को गीला बनाए रखने की ओर विशेष ध्यान दिया जाना चाहिए। यदि ये पदार्थ गीले न रहेंगे, तो बीज उगेगा नहीं। इसी रीति से बीजों की उगने की शक्ति मालूम की जाती है।

ऊपर जितनी बातें लिखी गई हैं, वे बाज़ार से बीज ख़रीदने के समय ही काम में लाई जा सकती हैं। किंतु बाज़ारों में बेचे जानेवाले बीजों में मिलावट ज़रूर होती है। अतएव कितनी ही सावधानी क्यों न की जाय, बिना मिलावट के बीजों का मिलना संभव नहीं। इसलिये सधन और समझदार काश्तकारों को चाहिए कि खड़ी फ़सल में से ही बीज के लिये पौधों को चुन लें और इन्हीं पौधों से पैदा हुए बीजों को दूसरे मौसम में बोने के लिये रख लें। दो-तीन साल तक लगातार चुनाव करते रहने से अच्छा बीज तैयार किया जा सकता है।

अब खड़ी फसल में बीज चुनने की रीति पर विचार किया जाता है।

किसी खेत की खड़ी फ़सल के पौधों को ख़ूब ध्यान लगाकर देखो। जो पौधे बलिष्ठ ऊँचे पूरे और उत्तम जँचें और जिनकी बाली, भुट्टा या फल मोटा, लंबा और उत्तम हो, उन्हें ही चुनकर लाल फ़ीता बाँध दो। मक्का और ज्वार के उन्हीं भुट्टों के पौधों को चुनना चाहिए, जिनके दाने बड़े-बड़े और अच्छे पके हुए हों। फसल काटते समय इन लाल फ़ीता बाँधे हुए पौधों को काटकर अलग रख लो, और तब इनके बीजों को निकालकर सुरक्षित स्थान में रख दो।

बीजों की रक्षा

चुने हुए पौधों के बीजों को साफ़ करके धूप में अच्छी तरह से सुखा लो। इन बीजों को तब कनस्तर, मिट्टी के बरतन, कोठियों आदि में भरकर रख दो।

बीजों में अक्सर कीड़े लग जाते हैं, जिससे वे ख़राब हो जाते हैं। इसलिये नीचे लिखी हुई तरकीबों को कार्य में लाने से कीड़ों से बीजों की रक्षा हो सकती है—

१—चना, मूँग, उड़द, आदि द्विदल जाति की फसलों के बीजों को कीड़ों से बहुत ज्यादा नुक़सान पहुँचता है। इसलिये इन बीजों को कनस्तर में भरकर उसमें चार-पाँच नेपथलीन की गोलियाँ डाल दी जायँ और तब इनका मुँह मिट्टी से बंद कर दिया जाय।

२—गेहूँ, ज्वार आदि को भूसा, राख, चूना, नीम के पत्ते आदि मिलाकर कोठियों और कोठारों में भरने की आम रिवाज है। इनमें भी नेपथलीन की गोलियाँ कपड़े में बाँध-बाँधकर रख दी जावें, तो अच्छा है।

कार्बन-बाय-सलफ़ाइड का उपयोग भी किया जाता है—किंतु मामूली किसानों के लिये इसको काम में लाना संभव नहीं, क्योंकि यह आग जल्दी पकड़ लेता है। मौसमी फूलों और अन्य फूल-झाड़ों के बीजों को टीन के डिब्बों या काँच की शीशियों में भरकर रखना चाहिए। इनमें नेपथलीन की गोलियाँ रख देना अच्छा ही है।

सुरक्षित रक्खे हुए बीजों को, जहाँ तक संभव हो, हवा से बचाना चाहिए। बीज को कोठारों में से तभी निकालना चाहिए, जब ज़रूरत हो।

अदरख़ आदि की गाँठें मिट्टी के अंदर दाबकर रक्खी जाती हैं। शकरकंद आदि की बेलें नरसरी में गाड़ दी जाती हैं और मौसम में इनके टुकड़े करके खेतों में बो दिए जाते हैं।

आलू को किसी सूने कमरे में रेत पर बिछा देते हैं और प्रति आठवें-दसवें दिन सड़े और रोगी आलू चुनकर अलग कर दिए जाते हैं। रोगी और सड़े आलुओं को ढेर में पड़ा रहने देने से दूसरों के भी ख़राब हो जाने का डर रहता है।

अमरूद, बैंगन, टमाटर, सीताफल आदि के फलों को पौधे पर ही ख़ूब पकने देते हैं। बाद में फल को तोड़कर सड़ने देते हैं। तदंतर बीजों को निकालकर पानी से दो-तीन बार ख़ूब धोकर धूप में अच्छी तरह से सुखाते हैं और तब शीशियों में भरकर रख छोड़ते हैं। काँच की शीशियों के मुँह काग से अच्छी तरह बंद कर देते हैं।

शंकरराव जोशी

की कोशिश कर रहा है। सन् १९२३ में अमेरिका की अपेक्षा इँगलैंड की लारियों का मूल्य कोई ३½ गुना था, किन्तु अब दुगुना ही रह गया है। फिर भी यह स्पष्ट है कि अमेरिका की तरह सस्ती लारियाँ तैयार करने में अभी इँगलैंड को कई वर्ष लगेंगे।

ऊपर का नोट लिख चुकने के बाद सन् १९२६-२७ के अंक भी हमें मिल गए। इन्हें देखने से विदित होता है कि इस वर्ष बाहर से कुल ६,२४२ मोटरलारियाँ हिंदोस्तान में आईं अर्थात् इस वर्ष उनकी संख्या पिछले वर्ष की अपेक्षा ज़्यादा हो गई। कनेडा से ३,५२८, अमेरिका से २,०१४ तथा ग्रेटब्रिटेन से ३५१ मोटरलारियाँ इत्यादि आईं। कनेडा से आई प्रत्येक लारी का औसत मूल्य १,३५५ रुपए, अमेरिका से आई लारी का २,०५० रुपए तथा ग्रेट ब्रिटेन से आई हुई का ५,५६८ रुपए था अर्थात् ब्रिटिश मोटरलारी का औसत मूल्य अमेरिका तथा कनेडा की अपेक्षा अब भी ढाई-तीन गुना है।

× × ×

२ नक़ली रेशम को प्रोत्साहन

भारत-सरकार ने मिलवालों की प्रार्थना पर यद्यपि पहले कुछ ध्यान नहीं दिया, किन्तु बाद में यह बात उसकी समझ में आ गई कि जापान आदि की प्रतिद्वंद्विता से भारतीय मिलों की रक्षा करना आवश्यक है। बहुत आनाकानी करने के बाद अन्त में उसने निश्चय किया कि विदेश से आनेवाले सूत पर एक पौंड के पीछे डेढ़ आना [illegible] कर लिया जाय। किन्तु विदेशी सूत पर विशेष कर लगाने से कहीं हाथ से करघा चलानेवालों को कोई क्षति न उठानी पड़े, यह कहकर उसने विदेश से आनेवाले नक़ली रेशम पर, जो १५ प्रतिशत कर लगता था उसे घटाकर ७½ प्रतिशत ही कर दिया। इस प्रकार नक़ली रेशम को प्रोत्साहन देने का स्पष्ट अभिप्राय यही है कि हिंदोस्तान के, जो जुलाहे अभी तक जापानी सूत का प्रयोग करते थे, वे इँगलैंड के नक़ली रेशम का प्रयोग करने लगें।

हिंदोस्तान में नक़ली रेशम का प्रचार किस तेज़ी से बढ़ रहा है, यह इसी से प्रकट है कि सन् १९२०-२१ में जितना नक़ली रेशम इस देश में आया था, सन् १९२५-२६ में उसकी अपेक्षा कोई तीस गुना अधिक आया। आयात कर पहले की अपेक्षा आधा रह जाने से अब यह और भी अधिक परिमाण में आने लगेगा और उसी अनुपात में इस देश के असली रेशम के व्यापार की क्षति का कारण बनेगा। नक़ली रेशम विशेषतः इँगलैंड तथा इटली से ही आता है, किन्तु इधर कोई एक वर्ष से इँगलैंड की अपेक्षा इटली से उसका आना बहुत ही कम हो गया है। अतः आयात-कर घटा देने से मुख्यतः इँगलैंड का ही भला होगा, किन्तु हिंदोस्तान को इससे कोई लाभ न होगा। अभी तक जिस परिमाण में नक़ली रेशम यहाँ आता रहा है, उसी से देशी रेशम के व्यवसाय को काफ़ी हानि पहुँच चुकी है। उसका आयात और भी अधिक बढ़ जाने से बंगाल, आसाम, बिहार, मध्यप्रान्त इत्यादि के असली रेशम के व्यापार की क्या दुर्दशा होगी, इसका अनुमान लगाना कठिन नहीं है। इसके अतिरिक्त आयात-कर में, जो साढ़े सात लाख रुपए की घटी होगी, उसकी बात ही अलग है।

× × ×

३ वाणिज्य-दूतों की नियुक्ति का प्रश्न

प्रायः प्रत्येक समुन्नत देश की सरकार अपने व्यापार का अधिकाधिक विस्तार करने के उद्देश्य से अन्य-अन्य देशों में अपने वाणिज्य-दूत (ट्रेड कमिश्नर्स) नियुक्त करती है। इन लोगों का काम वहाँ अपने देश में तैयार की गई वस्तुओं की खपत बढ़ाने और व्यापार के नए-नए क्षेत्र ढूँढ निकालने आदि का प्रयत्न करना तथा सब तरह से अपने देश के व्यापार के हित की रक्षा करना होता है। भारत-सरकार इस संबंध में अभी तक चुपचाप बैठी थी, किन्तु अब उसने भी मिस्र, दक्षिण अफ़्रीका, मुहाने की बस्तियों आदि में भारतीय वस्तुओं की खपत बढ़ाने की गुंजाइश देखने तथा वहाँ वाणिज्य-दूतों का नियुक्त करना लाभजनक होगा अथवा नहीं, इस संबंध में भलीभाँति जाँच करने के निमित्त भारत से दो प्रतिनिधि भेजने का निश्चय किया है। इनमें से एक प्रतिनिधि सरकार की ओर से और दूसरा मिलवालों की ओर से रहेगा। सरकार ने अपना प्रतिनिधि 'कामर्शल इंटेलिजन्स डिपार्टमेंट' (व्यापारिक-समाचार-विभाग) के प्रधान संचालक डॉक्टर 'मीक' को मनोनीत किया है और मिलवालों की संस्था ने अपना प्रतिनिधि संस्था के मंत्री श्री० टी०

मैसोनी को चुना है। ये लोग इसी नवंबर में अपनी यात्रा का प्रारंभ करेंगे।

वाणिज्य-दूतों की नियुक्ति का प्रश्न कोई नया प्रश्न नहीं है। "टैरिफ़ बोर्ड" के सामने साक्ष्य देते समय बंबई के मिलवालों की ओर से पहले ही कहा गया था कि भारत-सरकार को शीघ्र ही इन छः स्थानों में अपने वाणिज्य-दूत नियुक्त कर देने चाहिए—१ अलक्षेंद्रिया, २. अदन, ३. बसरा, ४ मोम्बासा, ५ दरबन, ६. सिंगापुर। ऐसा करने से मिस्र, सीरिया, फिलिस्तीन, ईराक़ आदि में भारत के पुतलीघरों द्वारा तैयार किए गए कपड़े आदि की खपत बढ़ जायगी और देश के इस प्रमुख व्यवसाय की उन्नति हो सकेगी। टैरिफ़ बोर्ड के सदस्यों के मन में भी यह बात बैठ गई और उन्होंने भारत-सरकार से सिफ़ारिश की कि मोम्बासा तथा बसरा में, तो वाणिज्य-दूतों की नियुक्ति तुरंत कर दी जाय किंतु शेष स्थानों के संबंध में पहले दो विशेषज्ञों को भेजकर जाँच कर ली जाय, तब यदि आवश्यकता हो, तो वहाँ भी वाणिज्य-दूत नियुक्त कर दिये जायँ। टैरिफ़ बोर्ड की यही सलाह मानकर भारत-सरकार ने मिस्र आदि में वाणिज्य-विस्तार की संभावना के संबंध में स्वयं जाकर जाँच करने के निमित्त उक्त दो प्रतिनिधियों को भेजने का निश्चय किया है। जब तक जाँच पूरी न हो जाय और उसकी रिपोर्ट भी न निकल जाय, तब तक मोम्बासा तथा ईराक़ में भी वाणिज्य-दूतों की नियुक्ति न की जायगी। इसका मतलब यही है कि अभी कम-से-कम एक वर्ष तक और इस संबंध में कोई उल्लेखनीय कार-रवाई न हो सकेगी; क्योंकि जैसा कि कहा गया है, सब बातों की जाँच करने में ही लगभग सात महीने लग जायँगे। किंतु इस देश में वस्त्र-व्यवसाय की जो हालत हो रही है, उसे देखते हुए कहना पड़ता है कि भारत-सरकार इस मामले में काफ़ी देर कर चुकी है, अब अधिक देर करने की कोई जगह नहीं है।

मुकुंदीलाल श्रीवास्तव्य

---

१. समुद्र-लघन

पाके अनुशासन कपीश का महान बीर,
आगे बढ़ा साहसी सवेग त्याग शंका को,
त्वरित फलाँग के शिला के तुग शृग पर,
ताल दे बजाया वीरता के विजै डंका को।
आगे बढ़ा विक्रमी विशाल लाल अजनी का,
काल के समान बुद्धि आसुरी अशंका को,
संभ्रम समस्त कपि-भालुओं में व्यापा जब,
रामनाम लेके चला राम दूत लंका को।१।

आगे बढ़ा करके तयारी सिंधु-लघन की,
निखिल निशाचरों के नगर निघन को।
कंचन कँगूर-सा लँगूर लंब मानकर,
दहमान ग्रीवा को विकासित बदन को।
सिंह के समान दृष्टि फेर के निहारा कपि—
भालुओं को भूधर को भूमि को खनन को,
देख फिर सामने विराजमान सागर को,
दीप्यमान लंका को उड़ान के गगन को।२।

पेसी दिया वेग से धमक धरणीधर पै,
शृंग धँस-धँस धरणी के तले आते थे,
ठोक भुजदंड को बजाया ताल जानु पर,
जिससे समूह दनुजों के दबे आते थे।
उछल-उछलके छलाँग मार आगे बढ़े,
पक्षधारी भूधर की भाँति चले आते थे,
सानुमान कूदके महान आसमान बीच,
बान के समान हनुमान चले जाते थे।३।

पुत्र केसरी का कपि-केसरी समान बढ़ा,
पाके जय भीति पै विजय पाके शंका पै;
स्वर्ण इन्द्रधनुष समान पुच्छ वक्रित थी,
घोष था गंभीर ज्यों पड़ी हो चोब डंका पै।
स्वर्ण-शूकरी पै रक्त-सिंह के समान वक्र,
डाली शनि दृष्टि अरि-अवनि अशंका पै;
पारकर गगन अपार पारावार वीर,
मार सुरसा को उल्का-सा गिरा लंका पै।४।

'अनूप'

× × ×

२. श्रीकृष्ण

गीता में बताया है कि मैं क्या हूँ, कहाँ हूँ;
अनजानो यह जानो कि मैं हर चीज़ की जाँ[1] हूँ।
मैं रूह रवाँ हूँ, न वहाँ हूँ, न यहाँ हूँ;
है हिम्मते मरदाना जहाँ, अब[2] भी वहाँ हूँ।
लंदन में, न्यूयार्क में, पेरिस में अयाँ हूँ।
मैं चीन का हूँ चैन, तो जापान की जाँ हूँ।

नारा जिगर सोज़

---

१. अंतर्यामी (चलने-फिरनेवाली चीज़)। २. वर्तमान।

सृष्टि के आरंभ से लेकर आजतक इस पुण्य-भूमि पर भिन्न-भिन्न उद्देश्यों का साधन करने के लिये, यद्यपि भगवान् के अनेक अवतार हुए हैं, तथापि भगवान् कृष्ण का अवतार उन सभी अवतारों से विशिष्ट है। इतिहास और पुराणों के पारायण से हमें ज्ञात होता है कि भगवान् कृष्ण परमात्मा के पूर्णावतार थे—(एते चांश-कला: पुंस:)—कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्। अन्य जितने भी अवतार हुए, वे एकांगीभाव साधन के निमित्त थे, पर भगवान् कृष्ण का अवतार धर्म, समाज और नीति—इन सभी क्षेत्रों के हित-साधन के निमित्त हुआ था। इसी से अन्यान्य अवतारों की अपेक्षा उनका माहात्म्य विशेषरूप से माना जाता है।

श्रीकृष्ण भारत के परम विभूति, भारत की सूत्रात्मा, भारतीय जीवन के आधार तो थे ही, पर साथ ही संसार को सच्चा मार्ग बतानेवाले "जगद्धिताय" (कृष्णाय गोविन्दाय नमो नम:) और (कृष्ण वंदे) "जगद्गुरुम्"—भूमंडल का हित चाहनेवाले जगद्गुरु भी थे। उन्होंने अत्याचार व दासता से पिसती हुई प्रजा के कष्टों को दूर कर, भारत की छाती पर प्राग्ज्योतिष (वर्तमान आसाम प्रांत का गोहाटी नगर) के भौमासुर, काश्मीर के नरकासुर, मगध के जरासंध, चेदि देश के शिशुपाल, काशी के वासुदेव तथा ज्वर, नरक, वाण, कालयवन और दुर्योधन आदि धर्म की सत्ता को नष्ट करनेवाले और स्वयं सुखभोक्ता बननेवाले अनेक स्वेच्छाचारी तथा अन्यायी माण्डलीक राजाओं की प्रबल प्रभुता बढ़ जाने पर, उनको देह-दंड देकर और उनके राज्यों में सुशासन प्रवर्तन कर उनके चंगुल से इस देश की रक्षा की थी। वे पूर्णता के सीमा-रूप आदर्श, संन्यासी, आदर्श भक्त-वत्सल, आदर्श धर्मोपदेशक और धर्म-संस्थापक, आदर्श संयमी और समाज-सुधारक, विख्यात कर्मयोगी, महान् तेजस्वी पुरुष थे। उनके मस्तिष्क से गीता-जैसे अनंत विज्ञानमय, मुर्दों की नसों में संजीवनी भरकर जिलाने-वाले अजर, अमर, अनमोल और अनुपम ग्रंथ-रत्न का आविर्भाव हुआ, जिसके उपदेशों से आज तक हिंदू-धर्म का आधार बना हुआ है। श्रीकृष्ण के इस संगीत-गीता में ज्ञानी, योगी, देशभक्त, व्यापारी, कर्मयोगी, ग्वाला सभी को अपने-अपने कर्तव्य-धर्मानुकूल शिक्षा और उपदेश मिलता है।

श्रीकृष्ण प्रेम की पराकाष्ठा पर पहुँचे हुए पुरुष थे, उन्होंने प्रेम-पयोधि को लहराकर परमात्मा के "मन तो शुदम् तो मन शुदी (मैं तू हुआ, तू मैं हुआ)" वाले भक्ति-भाव को प्रकट किया था। श्रीकृष्ण सदा स्मित-वदन, गोपी-जन-प्रिय, सुदामा-सखा, योगीजनों के परम तत्त्व, मूर्तिमान् सौंदर्य, दुष्ट राजाओं के शास्ता, कामिनियों के कामदेव, बाल-गोपाल-मंडली, गोप-गोपियों और मित्र-सखाओं के स्वजन और निवृत्ति-प्रवृत्ति के सम्मेलन की साक्षात् प्रतिमा थे। घटोत्कच की मृत्यु पर शोक-युक्त पांडवों का सारा शोक अपनी हँसी में उड़ानेवाले और उत्तरा के मृत पुत्र को अपने सत्य बल से जिलानेवाले श्रीकृष्ण ही थे।

श्रीकृष्ण भगवान्, जिनको समस्त हिंदू-जाति ने षोडश-कला-पूर्ण—१ ब्रह्मचर्य-बल, २ मल्ल-विद्या, ३ संगीत, ४ अस्त्र-शास्त्र, ५ गो-पालन, ६ प्रेम, ७ सुहृद्-भाव, ८ कर्मण्यता, ९ तत्त्व-ज्ञान, १० योग, ११ संयम, १२ शील, १३ सदाचार, १४ शारीरिक सौंदर्य, १५ उत्तम वक्तृत्व और १६ युक्ति, कौशल इत्यादि १६ कलाओं से युक्त—पुरुषोत्तम का अवतार माना है, अपने समय के असाधारण रण-विद्या-कुशल ही नहीं, वरन् सर्वविद्या-संपन्न, अलौकिक विद्वान्, बहुत बड़े राजनीति-विशारद और सर्व-श्रेष्ठ योगीश्वर तथा सफल राज्य-निर्माता भी थे। नरों में वे नरवर थे, उन्होंने सह्याद्रि पर्वत-श्रेणी से लेकर प्राग्ज्योतिष तक सारे भारतवर्ष को पादाक्रांत करके जो अद्भुत पराक्रम किए, उनको देखकर उनके शत्रु को भी उनकी नरवरता अस्वीकार करने का साहस नहीं हो सकता था। श्रीकृष्ण ने अवतार लेकर बनावटी प्रतिष्ठा को तोड़ा, अभिमानी प्रतिष्ठित लोगों का सिर नीचा किया और निष्पाप हृदय-वाले दीनजनों को श्रेष्ठ ठहराया। धर्म को पांडित्य के जाल से बचाकर भक्ति के श्वेत आसन पर बिठाया। राम हुए, नृसिंह हुए, दत्तात्रेय और वामन हुए, पर किसी ने भी धर्म को अमर बना देने की ऐसी स्थायी चेष्टा नहीं की। राजा इंद्र और ब्रह्मा का गर्व शमन किया; ऋषियों को अपना रहस्य समझाया, नारद का मोह छुड़ाया, राजाओं को नम्र बनाया, प्रजा में गोवर्द्धन-रूपी देश-पूजा को प्रचलित किया, स्त्रियों को स्त्री कर्तव्य का रहस्य सिखलाया और नग्न होकर नदी आदि में न नहाने की

शिक्षा दी* ; पर इतना होने पर भी वे लोगों के सरदार न बने। लड़कपन में उन्होंने काली कमली धारणकर सारे गोप-गोपियों के खिलौने से बनकर, यमुना के कछारों में लकुटिया लेकर गोवंश की सेवा में दिन बिताए। ग्वाले का पेशा किया, मधुर मुरली बजाकर नव-रस-पूर्ण संगीत के प्रभाव द्वारा ग्वाल-बालों में प्रेम तथा आकर्षण का संचार किया। और जब बड़े हुए, तब माईस हो गए। राजसूय-यज्ञ—जैसे राजनैतिक उत्सव में आपने सबकी जूठन उठाने—बारी का काम स्वयं लिया। खुद गोप-बंधु रहकर, गोपीजनवल्लभ ही नाम आपने पसंद किया, वनमाला को ही आपने आभूषण की तरह प्रिय समझा, व्रज-गोपियों की मटकी की छाछ, धना जाट के गन्ने, भक्त प्रवर दरिद्र सुदामा के तंदुल, द्रौपदी के घर का साग-पात और विदुर के घर की सादी मिहमानदारी में ही उन्हें संतोष हुआ। कुब्जा की सेवा स्वीकार करने ही में उन्होंने कृतार्थता मानी। वे तो भक्तों के हृदयाधिदेव, "दीनन-दुख-हरण देव-संतन-हितकारी" थे। आज कौन लोकनायक ऐसा निष्पाप जीवन दिखा सकता है।

प्रभुनारायण त्रिपाठी 'सुशील'

× × ×

* कृष्ण पर यह दोष लगाया जाता है कि स्त्रियों को नंगी देखने के लिये गोपियों के वस्त्र-हरण किए थे और इसी कारण उन्हें जल से नंगी निकलने को बाध्य किया था। पर कृष्ण पर यह दोष कदापि नहीं लगाया जा सकता। क्योंकि वह घटना इस प्रकार है, हेमन्तु-ऋतु के प्रथम मास अगहन में व्रज की बालिकाओं ने कात्यायनी-व्रत किया। पूजा करने के पहले सब मिलकर यमुना में स्नान करने गईं। वहाँ स्वभावानुकूल नग्न होकर स्नान करने लगीं। इतने में बालकों-समेत कृष्ण भी अचानक वहाँ आ गए। यह देखते ही कृष्ण ने बालिकाओं से कहा—

यूयं विवस्त्रा यदपो धृतव्रता व्यगाहतैतत्तदु देवहेलनम्।
बद्धाञ्जलिं मूर्ध्न्यपनुत्तयेंऽहसः कृत्वा नमोऽधो वसनं प्रगृह्यताम् ॥

"नग्न होकर जो तुमने स्नान किया है, यह जल में रहने-वाले देवताओं का अपमान है। इस कारण उनको प्रणाम करके अपने-अपने कपड़े पहनो और नंगे होकर कभी जलके भीतर स्नान न किया करो।" कृष्ण का यह काम कितना मर्यादा-रक्षक है, इसे लक्ष्य न कर उस समय छ: वर्ष की अवस्थावाले बालक कृष्ण का पाँच-छ: वर्ष की बालिकाओं पर कुदृष्टि का कलंक जो लगाते हैं, उन्हें क्या कहा जाय।

३. सागर-सुषमा

या सागर-तट, अहे रजनि ! बनि धन्य आज तू !
समुद-समुद पै छाय छत्र सित करति राज तू !
कलित कलाधर बिंब लोल लहरनि पै नाचत ;
हुलसि जनक के अंक आय किलकत चित राचत।
निरखि सुहावन सलिल केलि छवि-पुंज नियारी ;
उमँग्यो अमित उमाह दृगनि फूली फुलवारी।
परसि पवन कवि-हृदय भाव मृदु मंजु जगावत ;
पुरुष-पुरातन-परा-प्रकृति सों लगन लगावत।
उतरति चढ़ति तरंगमाल लरजति इत आवति ;
प्रकृति बधू मनु चढ़ी हिंडोलैं झूलति गावति।
नील विमल जल राशि चटाननि पै टकरावै ;
गरजत अति गभीर धीर उर भय उपजावै।
विविध जाति जल-जंतु दीह लघु बूड़त उछरत ;
क्रीड़त संग तरंग एक एकहिं धरि कलपत।
रजत रेत पै पौढ़ि नींद सुख की कोउ सोवत ;
जल-विहार संजनित सकल श्रम सहजैं खोवत।
सीप-चूर्णिका मनो बालुका रम्य तीर पर ;
प्रकृति-रसिक-मन रही मोहि रस रासि मनोहर।
नारिकेल अरु ताल-तीर पै सोहत तरुवर ;
विविध वनस्पति वृंद-लसत लोने सुषमाधर।
रही थिरकि कहुँ नाव कहूँ डोंगी मछुवन की ;
उड़त पाल चहुँ कुसल सूचना दै छन-छन की।
हिय उछाह रस-पूरि मत्त केवटगन गावत ;
गहे सुदृढ़ पतवारि नाव निज खेवत आवत।
धन्य-धन्य स्वर्गीय यहै सुंदर रत्नाकर ;
धन्य रसिक रमनीय यहै प्राकृत सुषमाकर।
बरनि जाय कहि कौन इंदिरा-जनक-मौन-तट ;
रमत जहाँ बैकुंठ छाँड़ि माधव नागरनट।

गुरुप्रसाद टंडन

× × ×

४. भारत एवं अशक्त

प्रत्येक देश में ऐसे भी व्यक्ति होते हैं, जो अधिक आयु होने से अयोग्य, निर्बल अथवा पागल-से हो जाते हैं, और वास्तव में यह लोग दयनीय हैं। लगभग ७० वर्ष अथवा इससे अधिक आयुवाले सज्जन 'अशक्तों' की श्रेणी में रक्खे जा सकते हैं। सन् १९२१ की भारतीय मर्दुमशुमारी की रिपोर्ट के अनुसार भारत में इस प्रकार के

अशक्तों की संख्या लगभग ५,००,००० थी अर्थात् भारत में प्रतिशत १·७ अशक्त व्यक्ति थे। नीचे की तालिका से यह भली भाँति प्रकट हो जायगा कि भारत की यह अशक्त-संख्या अन्यान्य देशों की अपेक्षा सबसे न्यूनतम है। यथा—

देश	वर्ष	कुल जन-संख्या (लाखों में)	७० अथवा इससे अधिक वर्ष की आयुवालों की संख्या (लाखों में)	अर्थात् प्रतिशत
फ्रांस	१९११	३९	१ ६	४ ६
इटली	१९११	३५	१ ३	३ ७
इँगलैंड और वेल्स	१९११	३६	१ ०	३ ०
आस्ट्रिया	१९१०	२९	८	३ ०
हंगरी	१९१०	२१	·६	२ ०
जर्मनी	१९१०	६५	१ ८	२ ०
भारत	१९२१	३१९	५·०	१·७

इस भारतीय अशक्त-संख्या की न्यूनता का मुख्य कारण है यहाँ की मृत्यु-संख्या की सर्वोपरि अधिकता, जिसके कारण उक्त ७० वर्ष की अवस्था तक अधिकांश को तो पहुँचने का अवसर ही नहीं मिलता। ७० वर्ष की आयु होने के पूर्व ही यहाँ अधिकांश लोग चल बसते हैं। खेद के साथ लिखना पड़ता है कि यहाँ की अशक्त-संख्या अल्पतम होने पर भी उसको यथोचित रूप से उस समय भी सहायता नहीं मिलती, बहुधा उसे तब भी दुःखमय जीवन ही व्यतीत करना पड़ता है। दूसरे-दूसरे देशों में इनकी सहायतार्थ विभिन्न संस्थाएँ हैं और उन्होंने इनकी देखभाल का भार अपने ऊपर ले रखा है, किंतु भारत में या तो अपने कुटुंबियों के ऊपर उन्हें अवलंबित रहना पड़ता है या भिक्षा-वृत्ति द्वारा अपने शेष जीवन की घड़ियाँ बितानी पड़ती हैं। हा, पराधीनता! यह सब तेरा ही वैभव है। तेरी ही कृपा से हम भारतियों की क्षुधारूपी प्रचंड ज्वाला भी शांत नहीं हो पाती। उसी में हम भस्मीभूत हुए जा रहे हैं। सुतरां, ऐसी दशा में और और बातों का विचार करने की भी किसमें सामर्थ्य हो सकती है।

ईश्वर! तू ही सहायक है।

नंदकिशोर अ० चौ०

५. उत्सर्ग

(१)

उर-अंतर अव्यक्त वेदना,
अविरत स्वर से विषम निनाद;
भग्न हृदय की वीणा लेकर,
मना रहो कैसा आह्लाद।

(२)

जीवन की उद्भ्रांत रागिनी—
क्षीण कंठ से किसी अतीत;
कठिन निराशा में निमग्न हो,
गाती है संगीत पुनीत।

(३)

उद्वेलित हो रहीं तरंगें,
अंतस्तल में मची अशांति;
सरस सरल सुखमय-जीवन में,
आज मच रही है यों क्रांति।

(४)

शून्य कल्पना भव्य भाव भी,
उत्कंठाएँ हुईं मलीन;
पाप, शाप, संताप, शोक में,
प्रणय-सौख्य हो रहा विलीन।

(५)

अंतर्हित होतीं आशाएँ,
किस अतीत जगतीतल ओर;
विधि-विडंबना या निज मन से,
उठा रहा हूँ दुःख कठोर।

(६)

बना अर्द्ध विक्षिप्त प्रवंचक,
चिरसंगी है अपना कौन?
आशा का प्रोज्ज्वल प्रकाश या,
क्रंदन, अभिनंदन या मौन।

(७)

उत्तेजित भीषण विषाद का,
हुआ आज उद्दाम प्रवाह;
चंचल चित, उन्मत्त व्यग्र हो,
मिटा रहा उर-अंतर्दाह।

(८)

त्याग ममत्व प्राण की आहुति ,
अर्घ्य अमित अनुपम सुख-साज ;
सादर चला समर्पण करने ,
प्रिय-वियोग-वेदी पर आज ।

रमाशंकर मिश्र "श्रीपति"

× × ×

६ कृति और समालोचना

कृति और समालोचना के समर्थकों का झगड़ा बहुत पुराना है। बहुत-से लोग समालोचना को उपेक्षणीय विषय समझते हैं। वर्ड्सवर्थ ने लिखा था—"The writers of criticisms, while they prosecute their inglorious employment, cannot be supposed to be in a state of mind very favourable for being affected by the finer influences of a thing so pure as genuine poetry." अर्थात् "समालोचनाओं के लेखकों के लिये अपना यह अप्रशंसनीय कार्य करते समय, ऐसी मन स्थिति में होने की संभावना नहीं की जा सकती, जो कविता जैसी एक अभूतपूर्व और पवित्र वस्तु से विशेष प्रभावान्वित हो सके।" बात बड़ी गूढ़ है, क्योंकि संसार के साहित्य का इतिहास और हमारा व्यावहारिक अनुभव इस बात का समर्थक है। समालोचना, स्वय अपने भीतर, कोई अच्छी चीज़ नहीं और इसका कारण है कि वह किसी दूसरी कृति के अस्तित्व पर निर्भर है। संसार की अधिकांश समालोचनाएँ, समालोचना के लिये ही लिखी गई हैं और लिखी जाती हैं। वर्ड्सवर्थ के उपर्युक्त वाक्य में एक मनोवैज्ञानिक सत्य है। जिस समय हम किसी पुस्तक को सिर्फ़ अध्ययन और उससे उत्पन्न होनेवाले आनंद को ग्रहण करने के लिये पढ़ते हैं, हम प्राय निर्दोष और निष्पक्ष होते हैं, किंतु जब हम किसी पुस्तक का अध्ययन उसकी समालोचना करने के ख़याल से आरंभ करते हैं, तो हमारा बौद्धिक अहंकार (Intellectual egoism) हमारे अध्ययन की निष्पक्षता को हमारे अज्ञान में ही दबा देता है। प्रत्येक मनुष्य जितना ही विद्वान् होगा, उसके किसी विषय पर उतने ही निश्चित विचार होंगे। मनोविज्ञान का यह एक आधार मूल सत्य है कि मनुष्य को अपने विचारों—आत्मप्रकाशन—से प्राकृतिक अनुराग है। यह अनुराग उसके जीवन और समाज के प्रत्येक अंग में प्रत्येक समय प्रत्यक्ष है। ऐसी अवस्था में अच्छी-से-अच्छी पुस्तक का पूर्ण आनंद लेने में भी समालोचक का बौद्धिक अहंकार उसके निश्चित विचारों से मिलकर उसकी निष्पक्षता को दबा देता है। इस सत्य की जब चाहे परीक्षा की जा सकती है। किसी अपरिचित लेखक की एक रचना को पढ़ने का आनंद लेने के लिये पढ़िए—आपको कुछ-न-कुछ आनंद मिलेगा। अब उसे ही दूसरे समय समालोचना करने का विचार करके पढ़ना आरंभ कीजिए। आप उसमें बहुत कम या कुछ आनंद न पाएँगे। समालोचक, लेखक के प्रति पक्षपात या द्वेष-भाव से ही भले हो, पर इस मनोवैज्ञानिक प्रवृत्ति से बच नहीं सकता। गेटी, सेंटबेवे, मैथ्यू आर्नल्ड, बोरप और सेंट्सबरी-जैसे संसार के आदर्श समालोचकों की आलोचनाएँ पढ़ जाइए, आप सर्वत्र यही देखेंगे।

पर इसका यह अर्थ नहीं है कि समालोचना नितांत अनावश्यक विषय है, उसकी भी आवश्यकता है; पर साहित्य के विकास में उसका एक ख़ास समय होता है। पहले कृति (मौलिक रचनाओं से अभिप्राय है) का काल आता है और फिर साहित्य के पूर्ण अभ्युदय में समालोचना का। यह अँगरेजी-साहित्य में समालोचना का युग है और हिंदी-साहित्य में कृति का। इस क्रम का कारण बहुत साफ़ और साधारण है। पहले भावावेश, विचार और कृति का जन्म होता है, फिर उसकी आलोचना, विश्लेषण, गुण-दोष-विवेचन की बारी आती है। समालोचना का संपूर्ण अस्तित्व अपने से पूर्व उपस्थित कृति पर है।

यह कहना बहुत कठिन है कि समालोचना से क्रियात्मक साहित्य की सृष्टि में कहाँ तक सहायता मिलती है, पर इस संबंध में भी विश्व का साहित्य समालोचना की आवश्यकता स्वीकार करने के लिये तैयार नहीं है। संसार के सर्वश्रेष्ठ काव्य, सर्वश्रेष्ठ रचनाएँ समालोचना के युग में नहीं लिखी गईं। इसके विरुद्ध समालोचना के युग में संसार की कोई महान् और अमर रचना का जन्म नहीं हुआ। एकाध का हुआ भी हो, तो उनके लेखकों पर उस युग की समालोचना का कोई प्रत्यक्ष प्रभाव—'निर्माण'—नहीं दिखाई पड़ता। बीसवीं शताब्दी कहने से जिस युग, जिस विचारधारा का बोध होता है,

उस युग के उपकरण रोमेंरोलाँ, बर्नार्ड शा, ईट्स, मटरलिंक, सेल्मा, लेगरलाफ और रवींद्रनाथ * में नहीं हैं। वे पूर्ण अर्थ में बीसवीं शताब्दी के 'प्राडक्ट' नहीं। इसके उपकरणों ने, तो एडमों रोस्ता, ब्रेट और किपलिंग इत्यादि को जन्म दिया है। साहित्य, समाज या धर्म किसी भी क्षेत्र की महान् आत्माओं का जन्म समाज या क्षेत्र की विकसित अविकसित अवस्था पर निर्भर नहीं है। महान् शक्तियाँ एकाएक विना किसी तैयारी के सामने आ जाती हैं।

पर इसका इतना ही अर्थ है कि व्यष्टि के विकास में समालोचना का विशेष स्थान भले न हो, किंतु समष्टि-रूपेण साहित्य की स्वच्छता एक हद तक उस पर निर्भर अवश्य है। विशेष और एकाएक उत्पन्न होनेवाली महान् प्रतिभाशाली साहित्यिक आत्माएँ समालोचना से विकसित न हों, उनका समालोचना कुछ कल्याण न करे, पर साधारण लेखक, जिनके लिये नियमन और पथ-प्रदर्शन की आवश्यकता है—उसके द्वारा ठीक रास्ता पकड़ सकते हैं। हम यहाँ सच्ची समालोचना की बात कर रहे हैं। सच पूछिए, तो समालोचक साहित्य-क्षेत्र का भंगी है। भंगी कहने से लोग चिढ़ेंगे, पर सामाजिक स्वास्थ्य के लिये उसकी आवश्यकता अन्य सब समाजाधिकारियों से बड़ी है।

साहित्य की पूर्णता के लिये कृति और समालोचना दोनों आवश्यक उपकरण हैं। हाँ, यह अवश्य है कि कृति का स्थान प्रथम और समालोचना से अधिक महत्त्व-पूर्ण है। †

रामनाथलाल 'सुमन'

× × ×

७. चकोरी की निराशा

निराशा का उठकर तूफ़ान; हृदय को मथने लगा महान।
नहीं निकला प्यारा राकेश;
चकोरी बैठी मलिन सुवेश।
रट रही रसना प्रिय! तवनाम; हो रहे यत्न विफल सुखधाम!
दिखा दो प्रिय आनन प्राणेश!
चकोरी बैठी मलिन सुवेश।
हो रही आतुर अमित, अनाथ; तपत तन विरह तापनिशिनाथ!
नहीं निकलोगे क्या हृदयेश!
चकोरी बैठी मलिन सुवेश।
कर रहे प्रियतम! क्यों उपहास; सुधाधर! निरखत नयननिरास
निकल आओ छाये किस देश,
चकोरी बैठी मलिन सुवेश।
छिपे किस देश विलग हो नाथ! कलपती तुम बिन आज अनाथ
दुखित क्यों करते हो रसिकेश!
चकोरी बैठी मलिन सुवेश।
चकितचितचितवतव्याकुलआजगरलसमनिसितुमबिनुसुखसाज
याम रजनी के कुछ अवशेष;
चकोरी बैठी मलिन सुवेष।

रामेश्वरीदेवी "चकोरी"

× × ×

८. भद्दा फूल

मोड़ लिया मुख मत्त मधुप ने, मेरे मधु को मधुर न मान;
सौरभहीन समझ कर मुझको, रीझे नेक न रसिक सुजान।
भक्तजनों को एक आँख भी, भाया मेरा रूप न रंग;
कौतुक में भी तोड़ न मुझको, की शिशुओं ने आशा-भंग।
तेरे अंचल में भी मालिन! क्या अब हाय! करूँ न विहार;
रह जाऊँ यों ही मन मारे, खो दूँ सारे निज अधिकार।

× × ×

९. सायंकाल

था मेरे जीवन-प्रभात में, भरा हुआ कितना उत्साह;
आशामय मध्याह्न-कुंज में, देखी कितनी तेरी राह।
अस्फुट आशंका ने आकर, दिया तीसरे पहर झकोर;
अति आतुर हो बिता रही हूँ, संध्या का यह काल कठोर।
आ, अब भी आ जा जीवन-धन! खड़ी हुई हूँ मैं पट-खोल;
अंधकार में पा न मुझे फिर, होगा थकित टटोल-टटोल।

सुमंगलप्रकाश गुप्त

---

* ये महानुभाव नोबल-पुरस्कार पानेवालों में श्रेष्ठ हैं और हिंदी-पाठकों में भी इनका नाम सुना जाता है।—लेखक

† कार्तिक की 'माधुरी' 'तसव्वुफ़' के लेखक भी 'सुमन' जी ही हैं।—संपादक

१ स्वर्गीय कवियों का सम्मेलन

आजकल देव-बिहारी के बारे में कुछ लिखो, तो लोग बुरा मान जाते हैं। अपना स्वभाव किसी का जी दुखाने का नहीं है। कहीं कुछ टेढ़ा-मेढ़ा लिख गया, तो जान को आ बनेगी। लिखनेवाले के पीछे पूरी गारद दौड़ पड़ेगी। एक लेख लिखकर पूरे पचास लेखों का ताँता कौन बाँधे; पर यह मकुआ जी ऐसा है, शांति से बैठने नहीं देता। विचार आए कि लेखक परवश हो गया। जिसने अनुभव किया है, वही उस समय की अवस्था को जान सकता है। हमारे एक मित्र की कुछ ऐसी आदत है कि जो किसी कवि की उलटी समालोचना सुन लें, तो अपनी और लिखनेवाले की जान एक कर दें। सबसे पहले उनको ही मन में प्रणाम कर लेना अच्छा है, जिससे शरीर तो कुशल से रहे; क्योंकि शरीर रहा, तो काव्य-चर्चा भी रहेगी। एक दिन कुछ साथियों के बीच में मुँह से निकल गया—"यारो देव, बिहारी और मतिराम ने तो हिंदी-कविता का ढेर कर दिया। देखा-देखी, हाव-भाव, चढ़ा-ऊपरी, लुक-छिपकर सैन चलाना, इनके मारे जाति के वीर-रस का कचूमड़ निकल गया। बिचारे मनोभाव आजन्म क़ैद की सज़ा अलग भोग रहे हैं।"

कहने को तो कह गया, पर तुरंत ही पश्चात्ताप करने लगा। यह निगोड़ी जीभ भी बैठे-बैठाए टटा मोल ले लेती है। छूटते ही एक महाशय ने तड़पकर कहा—"तुमने कभी कुत्ते का मुँह भी चाटा है।"

मैंने कहा—"कुत्ते का मुँह तो नहीं चाटा, वह तो दधि-माखन के साथ छोछी खाने से बड़ा अपवित्र होता है। क्यों, क्या इन कवियों का काव्य-मर्म समझने का यह अचूक नुसख़ा है?"

दूसरे साथी ने कहा—"तुम तो व्यंग्य का भी सत्यानाश कर डालते हो, इसी समझ पर कविता बूझने चले हो?"

पहले मित्र का आवेश अभी कम न हुआ था। बोले—"ये क्या खाकर कविता समझेंगे? इनके सात पुश्त में भी किसी ने कविता का नाम सुना था?" मैंने सोचा, मैं तो दाल-भात ही खाता हूँ। फिर अपने सात पितरों को टटोलकर देखा, तो निःसंदेह उनमें कविता का गूदा कहीं न मिला। मैंने कहा—"पहले सात पुश्त न सही, अगले सात पुश्तों को काव्य-मर्मज्ञ अवश्य बना दूँगा। रही खाने की बात, तो जो पंडित कृष्णबिहारी मिश्र और लाला भगवानदीन खाते हैं, वही मैं भी खाता हूँ। खाने से कविता के मर्म से क्या संबंध। देखिए, मिश्रजी कैसे फूले हुए और दीनजी कैसे चुचके हुए हैं।"

हमारे तीसरे साथी कुछ विचारशील थे। उन्होंने कहा—"तुम लोग यहाँ लड़े मरते हो, कुछ परलोक की भी ख़बर है?" सबने जिज्ञासा से उनकी ओर देखा। उन्होंने कहा—"वहाँ एक बड़े भारी कवि-सम्मेलन का आयोजन किया गया है। उस सम्मेलन में नई रचनाएँ न पढ़ी जायँगी। प्रत्येक कवि को अवसर दिया जायगा

कि वह अपनी कविता के विषय में कुछ कहे। किसी को दूसरे की समालोचना का अधिकार न दिया जायगा।"

इससे हमारी मंडली में सबको कुतूहल हुआ, परंतु परलोक के लिये रिपोर्टर मिलने में बड़ी बाधा थी। सोचते-सोचते मुझे प्लैंचेट का नाम याद आया। सबने कहा, प्लैंचेट की बात ठीक है।

निदान एक रात को बहुत-सी सफ़ेद चादरें बिछाकर उन पर तकिए लगा दिए गए और बीच में हम लोग प्लैंचेट लेकर बैठे।

इस लोक में तो हम नौ-दस कवियों का तले-ऊपर नंबर लगा देते हैं ; पर उस सम्मेलन में लोग किस हिसाब से बैठे थे, इसका कुछ पता न चला।

सबसे पहले केशवदासजी उठे—उन्होंने कहना शुरू किया—

"सज्जनो ! अपने मुख अपनी स्तुति किसी को अच्छी लगती हो या नहीं, हमें तो अपनी प्रशंसा करने में बड़ा रस आता है। हमने कविता क्या रची थी, भाषा और भावों को एक साथ रगड़ दिया था। हममें उद्दंडता और शब्द-सामर्थ्य थी। हमारे कथा-प्रबंध पर लांछन लगाना अनुचित है। क्योंकि रामायण की कथा तो सब जानते ही हैं, उसमें प्रबंध-निर्वाह की चातुरी में कौन-सा चमत्कार है। हमारी स्वतन्त्र कल्पना जहाँ अनोखी सूझ को देखती, वहीं पकड़कर उसके कंधे पर छंद का विकट जुआ रख देती। हमने शृंगार भी कहा है और वह अपूर्व है ; पर हमने आचार्य होने के नाते शृंगार का वर्णन किया। शृंगार के रस को वे मूढ़ क्या जानें, जिन्हें हमारी जैसी तबियत ही न मिली हो। चंद्रवदनी, मृगलोचनी बालाओं से विरक्त जीव हम पर रोष करते हों, तो भले करें, हाँ, आजकल जब से हमने अपनी वलिदयत पर हमला होना सुना है, हमें बड़ा क्रोध आता है। यदि आप लोगों में से कोई मनुष्य लोक में जायँ, तो वहाँ कह दीजिएगा कि हमें ऐसी छान-बीन अच्छी नहीं लगती।"

केशवदास की बातें सुनकर ज़रा उन कवियों का हियाव खुला, जो अपने विषय में कुछ कहने को पहाड़ समझ रहे थे।

दूसरे नंबर पर मतिराम ने उठकर कहा—

"कवि की कविता के विषय में कुछ कहना असफल कवि उर्फ़ समालोचक के लिये ही ठीक सुना जाता है। मैं इस मत का माननेवाला नहीं हूँ, बिना अपनी सफलता को धक्का पहुँचाए भी मैं अपनी कविता के विषय में कुछ कह सकता हूँ। हमारे गज-वर्णन और पावस-वर्णन ने और सब वर्णनों की नाक काट ली है। हमारे माधुर्य की चासनी अभी उस दिन वयोवृद्ध सूरदासजी भी माँग रहे थे। न जाने वह मिठास और कितनों के मुँह लग चुकी है। विरह की अवस्थाओं का जैसा सुंदर विवेचन हमने किया है, उससे रसराज का मान हुआ है। हमारे ललितललाम को भाऊसिंह समझते थे। प्रवीणराय के वर्णन में आयु खोनेवाले हमारी सुधा-माधुरी को क्या जान सकते हैं ?"

प्रवीणराय का नाम सुनते ही केशव के मुख पर कुछ लाली आ गई। मतिराम के बैठने पर जायसी ने कहना शुरू किया। उनकी एक आँख और तकुए से गुदे हुए चेहरे को देखकर कवियों की हँसी रोके न रुकी। जायसी इस हँसी को पहले भी भुगते बैठे थे। बोले—"अरे भाँडे पर हँसते हो या कुम्हार पर ?" इस पर सूरदासजी ने ग्लानि करते हुए कहा—"मलिकजी अपनी कविता पर कुछ कहिए। दुर्भाग्य से उसे बहुत दिन तक हम भूले रहे।"

जायसी ने कहा—"प्रेम के पारखी कवि जनो ! क्या आपने कभी पद्मावत के प्रेम की ओर भी ध्यान दिया है। यदि नहीं, तो कृपया अब बताइएगा आपको वह प्रेम की पीर पसंद है या नहीं। इस रंग में रँगे प्रेमी को अरहर के खेत और दूतियों की परवाह नहीं। वह प्रेम ही क्या, जो गंगा की सरल धारा की तरह मनुष्य को तार न दे। हमारा ध्यान मानस-सलिल में क्रीड़ा करनेवाले निर्मल हंसों की ओर रहता है। हम स्वयं हंसावस्था के भोगी हैं। जो मनुष्य के जीवन की पहेली को सुलझाकर उसे देवोचित कल्याण का भागी बनावे, वही प्रेम स्वर्गीय है। आप लोगों ने काम-वासना को उद्दीप्त और तृप्त करनेवाले प्रेम में ही अपनी प्रतिभा का अंत कर डाला। आप कवि थे, समय के प्रवाह को बदल सकते थे। कविता को वेश्या-वृत्ति स्वीकार करके राव-राजाओं की तृप्ति के लिये जब उससे नृत्य कराया गया होगा, तो उसे कितनी लज्जा लगी होगी। आपके बिछाए काँटों के जाल से कविता आज तक छटपटाती है।"

जायसी को इस प्रकार उपदेश देते देखकर 'परनारी के सजोग को जोग से कठिन, माननेवाले, कवि महोदय से न रहा गया, तुरंत रोककर बोले—"आपत्ति ! आपत्ति ! यहाँ समालोचना करना मना है। जायसी हमें क्यों

उपदेश देते हैं, इनकी पद्मावती के नख-शिख में तो 'चंदन मरहिं कुरंगिनि खोजू' तक का वर्णन है। हाँ, इनका बारह-मासा हमें अवश्य कुछ अच्छा लगा है, पर क्या वह सुख-सागर-तरंग और वैराग्य-शतक के टक्कर का है?" अष्टयाम के कर्ता का टोकना इतर कविजनों को कुछ अच्छा न लगा। उन्होंने कहा—"जीते जी इन महाशय की किसी से न पटी, कहीं एक कल होकर न रहे। इस लोक में भी ऊधम मचाना चाहते हैं। मलिकजी का कहना ठीक है, आप सदृश कवियों ने, तो कविता-कामिनी को चौपट ही कर दिया, उसे क्षत्राणी या साध्वी सती के उच्चासन से गिराकर चकले में क्यों घसीट लिया?" इस विघ्न से एक नयनवाले कवि की शांति बिलकुल भंग नहीं हुई। वे कहते गए—"स्वर्गीय प्रेम तो मनुष्य को तार सकता है। हम उस प्रेम को स्वर्गीय कहते हैं, जिसके वश में होकर मनुष्य विषय-वासना में लिप्त नहीं होता, वरन् उससे ऊपर उठ जाता है। हमारा अभिमत प्रेम कलुषित वासना के बंधन से मुक्त करके एक दिव्य-धाम और आत्मतेज के दर्शन कराता है। पद्मावत को यदि आज तक आपने उपेक्षा की दृष्टि से देखा है, तो उससे हमारी कुछ क्षति नहीं हुई। परंतु जब कभी सहृदय उसको देखेंगे, पद्मावत की गणना उन काव्यों में होगी, जो मनुष्य की आभ्यंतरिक भावनाओं का विश्व-कल्याण के साथ समन्वय लगाकर जीवन-रहस्य पर नया प्रकाश डालते हैं। कुछ सज्जनों को हमारी भाषा पर आपत्ति होती है, पद्मावत की भाषा में ठेठ अवधी का माधुर्य भरा हुआ है। वह संस्कृत के शब्द-जाल से मुक्त है।

तुरकी, अरबी, हिंदुई, भाषा जेती आहि।
जेहि महँ मारग प्रेम कर, सबै सराहैं ताहि।

बस, इसी विश्वास पर पद्मावत की भाषा को हम सराहनीय समझते हैं। आप बच्चे के हाथ में पद्मावत को दे दीजिएगा, तो उसे भी थोड़े परिश्रम से ही उसका अर्थ बोध हो जायगा।"

जायसी के बैठने पर कविवर देवजी की बारी आई। उन्होंने उठते ही मधुर स्वर में दो छंद पढ़े, जिन्हें सुनकर सत्यनारायण कविरत्न चिल्ला उठे—"वास्तव में छंद पढ़ने का ढंग इसे कहते हैं।"

पहला मंगलाचरण यह था—

पाँयन नूपुर मंजु बजै, कटि-किंकिनि मैं धुनि की मधुराई।
साँवरे अंग लसै पट पीत, हिये हुलसै बनमाल सुहाई।
माथे किरीट, बड़े दृग चंचल, मंद हँसी, मुख-चंद जुन्हाई।
जै जग-मंदिर-दीपक सुंदर, श्रीब्रज दूलह देव कन्हाई।

मतिराम और लक्ष्मणसिंह को यह छंद सुनकर अपने-अपने 'ज्यों-ज्यों निहारिए नेरे ह्वै नैननि' तथा 'मोर पखा मतिराम किरीट में' आदि और 'देखि आजि खीजों ना नगेंद्र'-वाले छंदों का स्मरण हो आया। शेष कवियों को इस छंद में शब्द-योजना के अतिरिक्त और कुछ उक्ति-चमत्कार न मालूम हुआ। हाँ, सूरदासजी ने इस छंद को बहुत पसंद किया। देवजी का दूसरा छंद मन के ऊपर था।

ज्यों हीं लौं न जाने, अनजाने रही तौलौं;
अब मेरो मन माई, बहकाए बहकत नाहिं।

ऐसा ज्ञात हुआ, जैसे देवजी खोई हुई प्रतिष्ठा को पाने के लिये सबके सामने क़सम खा रहे हों। कवियों ने, इस प्रायश्चित्त को मंद हँसी के साथ स्वीकार किया, और कहा—"आप अपनी कविता के विषय में कुछ कहिए।"

देवदत्तजी कहने लगे—"हमारे काव्य में भाषा की दुरूहता अवश्य है, पर उसमें भाव, चमत्कार और उक्ति-वैचित्र्य भी है। हमारी वाणी किसी भूले हुए पथिक की बहक नहीं है, जो अपना धैर्य खोने से कातर और अनुभव-शून्य हो गया हो। हमने जिस मार्ग का भी अनुसरण किया, हम उस पथ के धनी थे। उसके रोम-रोम पर हमारा आधिपत्य था, उसको नस-नस में बिधकर हमने और लोगों के लिये उसका उद्घाटन किया। हमारी उक्ति में इसीलिये ओज, तेजस्विता और आत्म-विश्वास है। हमारी कविता पर आक्षेप करनेवाले कहते हैं कि हमने प्रबंध-काव्य नहीं लिखा, इसलिये हम कवि की दृष्टि से जीवन के रहस्य का प्रकाश करने में असफल रहे। हो सकता है, पर क्या फुटकर कविता रचनेवाले कवि नहीं हुए हैं, किसी वस्तु को देखकर जब कवि का हृदय परवश हो जाता है, तब उसमें से छंदों का फ़व्वारा अपने आप छूटने लगता है। उसका प्रवाह चाहे बहुत देर तक न रहे, पर उसके आनंद और शीतलता में कमी नहीं होती। यह ठीक है कि हमारे काव्य में लोक-नीति और व्यवहार-उपदेश का अभाव है; पर रमणी के सरस और भोग-प्रधान प्रेम को हमसे अच्छा और कौन कह सका है। यदि वियोग-पक्ष में इस प्रेम से लोग विह्वल होकर कालिदास के मेघदूत की प्रशंसा से मुग्ध हो जाते हैं,

तो संयोग-पक्ष में ही उसे जुगुप्सात्मक मानने का उन्हें क्या अधिकार है। कौन ऐसा प्राणी है, जो इस प्रेम में रस न मानता हो, प्रौढ़ नायक-नायिकाओं में संयम के साथ उसका निर्वाह-जीवन के सौंदर्य को बढ़ा देता है। यह प्रेम ज्ञान की पहली सीढ़ी है। इस रस से छका हुआ मनुष्य ही अनुभव की सोपान-पंक्ति पर आगे पैर बढ़ाता है। हे कवीश्वरो ! इस प्रेम से डरो नहीं, इसका सांगोपांग वर्णन करके ही मनुष्य का इससे उद्धार करो। जो दूर से ही इस उपवन को प्रणाम करके चले आते हैं, उनके मन में यह कुतूहल का अंकुर सदा बना रहता है कि न जाने उस आराम में कैसा आनंद होगा। जो हमारी तरह इसके भीतर से सैर करते हुए इस माया-प्रपंच नाटक को देखते हैं, वे सब विलासों से मुक्त होकर आत्मदर्शन तक पहुँच जाते हैं।" इस वर्णन को सुनकर सब कहने लगे—भाई देवजी के बराबर अपनी कविता की वकालत कोई नहीं कर सका। इस पर गिरिधरराय ने हँसते हुए कहा—"इसी बात पर पंडितजी को सोनापुरी मोदक खिलाने चाहिए।"

देवजी का वक्तव्य समाप्त होने पर महाकवि विहारी-लालजी बोले—"सज्जनो ! हमें नित्य समाचार मिलता है कि मनुष्य-लोक में हमारे और देवजी के अनुयायियों में तुमुल संग्राम छिड़ा हुआ है। यदि इन समालोचकों को हमारी और देवजी की घनिष्ठ मित्रता का परिचय होता, तो इस प्रकार एक दूसरे के ऊपर धूल न फेंकते। कवि और कुछ करे, या न करे, पर वह ईर्ष्या और द्वेष का अंत करके शांति और आनंद की वर्षा करता है। हमारी आड़ में पारस्परिक द्वंद्व का बीज बोकर हम दोनों कवियों का अपमान किया जाता है। यदि एक पुस्तक का नाम देव-विहारी रक्खो और दूसरी में इसको बदलकर विहारी-देव कर दो, तो क्या इससे किसी की छोटाई बड़ाई हो सकती है। यदि किसी काव्य-माला में हमारा चरित्र पहले निकले और देवजी का बाद को, तो इस अनुक्रम से प्रतिष्ठा को भी घटा-बढ़ाकर कहनेवाले महानुभावों की बुद्धि की क्या स्तुति की जाय। देव के ही नभोमंडल में सूर, तुलसी तक को चमकानेवाले ज्योतिषीजी ने, तो मानो सच्ची समालोचना का अंत ही कर डाला। सत्य तो यह है कि जीवन के जिस अंग पर देवजी ने प्रकाश डाला है, उसी की विवेचना हमने उनसे पहले अपने दोहों में की थी। सहृदय रसिकों का कर्तव्य है कि दोनों के अगाध जल में तैरकर अपना मनोरंजन करें, उसके भीतर प्रवेश करके अमोल मुक्ता-फलों का संचय करें, और विरोध को त्यागकर भावों की तुलना से आनंद उठावें।

यदि पाठकों की संख्या और टीकाकारों की बहुलता को सफलता का प्रमाण माना जाय, तो हमें अपने विषय में कुछ कहने की आवश्यकता ही नहीं रहती। इतना अलं है कि उस कविता का यथेष्ट मान हुआ है। कवि अपने बल पर खड़ा होता है, वकीलों की वकालत के बल पर नहीं, पर तो भी समालोचक का कर्तव्य है कि वह अपने कवि के लिये सहृदयों के मन में प्रेम उत्पन्न करे। महाकवियों के विषय में चोरी और भावापहरण के अभियोगों को सुनकर हमें अत्यंत लज्जा लगती है। समालोचकों को विवाद करना ही हो, तो इस बात को लेकर करें कि कवि विशेष मनुष्य-जीवन पर किस दृष्टि विंदु से प्रकाश डालना चाहता है, अपनी कविता में वह किस आदर्श को रखता है। और समय के पथ पर कवियों की स्वच्छंद छूट में वह कितनी दूर आगे निकल सकता है। व्यंजक चित्रों के चित्रित करने में सफल होना भी कवि के लिये प्रशंसा का प्रमाण है। 'छुटो न शिशुता की झलक उमँग्यो यौवन अंग' ऐसे वाक्य कवियों की लेखनी से नित्य-नित्य नहीं निकलते।

मैं देख्यौं निरधार, यह जग काँचो काँच सो,
एकै रूप अपार, प्रतिबिम्बित लखियतु जहाँ।

यह दोहा किस सहृदय को पानी-पानी नहीं कर देता ? किसी समय कालिदास की भारती भी दुर्व्याख्याओं के विष से मूर्च्छित हुई पड़ी थी, धन्य हैं उसे संजीवनी देनेवाले मल्लिनाथसूरि ! सतसई को संहार से बचानेवाला संजीवन भाष्य भी अमर रहेगा। दोहों के संकोच में निर्वाह करने-वाला कवि न जाने आज क्यों इतना तरल हो गया, इससे सबको आश्चर्य हुआ ; परंतु सब ध्यानपूर्वक सुनते रहे।

इसके अनंतर तुलसीदासजी की ओर सबके नेत्र फिरे। उनकी बाहु-पीड़ा शांत हो चुकी थी, पर जीर्ण वय ने शरीर को अत्यंत कृश बना दिया था। उन्होंने अपने स्थान पर बैठे-ही-बैठे कहा—

"अमर कीर्ति पानेवाले कविजनो ! इस संसृति-सागर में राम का नाम यही बड़ा सहारा है। भक्ति ही

जीवन का परम साधन है। मुझे समझने के लिये राम-चरित-मानस का ही निरंतर पारायण करो। यही उपदेश है, यही परम आलंबन है। जिसका जीवन भक्ति से पवित्र हो चुका है, वही राम-चरित-मानस को पूरी तरह जानता है। पर यहाँ एक और बात भी मैं कहने का इच्छुक हूँ। भाषा ही कविता का स्थूल शरीर है। शब्द उसका अन्नमय कोष और अर्थ उसका प्राणमय कोष है। कवि को इन्हीं दोनो का परम सहारा होता है। तीन-सौ वर्ष बीतने पर भी राम-चरित-मानस के शब्दों का समुचित अध्ययन नहीं हुआ। यदि सहस्र समालोचक भी 'मानस' के अध्ययन में आजीवन परिश्रम करते रहें, तो भी उसके समग्र सौंदर्य, गाम्भीर्य और वैचित्र्य का अंत नहीं हो सकता। 'मानस' की भाषा राम-चरित की तरह ही अनंत और अपार है। उसके पद-पद में विशेषता है। रामायण के संपूर्ण अर्थ का बोध होने के लिये हृदय में दिव्य तेज की आवश्यकता है। रामायण को पढ़ते समय 'नानापुराणनिगमागम'-वाली प्रतिज्ञा कभी मत भूलिए।

रामायण-जैसे काव्य की भाषा-विज्ञान की दृष्टि से इतनी उपेक्षा का अनुभव करके उपस्थित मंडली को परम दु:ख हुआ। हिंदी-भाषा कितनी संस्कृत और परिमार्जित हो सकती है, उसमें कितना ओज और भाव-गम्यता है, यदि यह जानना हो, तो तुलसी को देखो। किस कवि की प्रतिभा इस प्रकार वाक्य और उपमाओं को पंक्ति-की-पंक्ति खड़ी कर सकी है। उदाहरण के लिए —

जग-मंगल-गुन-ग्राम राम के; दानि मुकुति धन धरम धाम के।
सद्गुरु ज्ञान बिराग जोग के; बिबुध बेद भव भीम रोग के।
जननि-जनक सिय-राम प्रेम के; बीज सकल ब्रत धरम नेम के।
समन पाप संताप सोक के; प्रिय पालक परलोक लोक के।
काम-कोह-कलिमल-करिगन के; केहरि सावक जन-मन-बन के।
अतिथि पूज्य प्रियतम पुरारि के; कामद घन दारिद दवारि के।
मंत्र महामनि बिषय-ब्याल के; मेटत कठिन कुअंक भाल के।
हरन मोह-तम दिनकर-कर से; सेवक सालिपाल जलधर से।
अभिमत-दानि देवतरुवर से; सेवत सुलभ सुखद हरि-हर से।
सुकवि सरद-नभ मन उडुगन से; रामभगत जन जीवन धन से।
सेवक मनमानस मराल से; पावन गंग-तरंग-माल से।

ऐसे उत्कृष्ट संत का इतना उत्कृष्ट कवि होना, यह तुलसी में ही पाया जाता है।

सूर, चंद्र, हरिश्चंद्र, सेनापति आदि-आदि कवि एक साथ बोल पड़े—"हिंदी-भाषा की जय, हिंदी-कविता की जय।" उस दिन कवि-सम्मेलन का कार्य समाप्त हुआ। चलते-चलते देवजी ने बिहारीलाल के पास आकर हँसकर अभिवादन किया, और सूरदास का हाथ पकड़कर उन्हें मार्ग दिखाने लगे। साथियों ने कहा—"सम्मेलन तो अच्छा रहा, पर इसमें आलम, रहीम, रसखान और कबीर का नाम नहीं आया। जुलाहे की 'ज्यों की त्यों धर दीनी चदरिया' देखने की इच्छा मन की मन में ही रह गई।"

प्राइवेट रिपोर्टर

२—अनेक अपकार करके भी अपने को उपकारी प्रकट करनेवाले कुटिल पुरुष के प्रति किसी सहृदय की मार्मिक उक्ति है—

उपकृतं बहु तत्र किमुच्यते
सुजनता प्रथिता भवता परम्।
विदधदीदृशमेव सदा सखे
सुखितमास्व ततः शरदां शतम्॥

आपने बहुत-बहुत उपकार किए हैं! उस विषय में कहना ही क्या है!! आपने सज्जनता का बहुत कुछ विस्तार किया है!!! हे सखे! आप इसी प्रकार उपकार करते हुए सैकड़ों वर्षों तक जीवित रहिए।

× × ×

विद्वानों की सभा में वस्त्र आदि का आडंबर रचकर निःशंक आते हुए किसी मूर्ख को देखकर किसी विद्वान् रसिक पुरुष की उक्ति है—

गुरोर्गिरः पञ्च दिनान्यधीत्य
वेदान्तशास्त्राणि दिनत्रयं च।
अमी समाघ्राय च तर्कवादान्
समागताः कुक्कुटमिश्रपादाः॥

देखिए! कुक्कुट मिश्रजी आ रहे हैं!! आपने गुरु (प्रभाकर) की सब विद्याएँ (मीमांसा-शास्त्र) पाँच दिन में ही पढ़ (चुग) ली हैं, और तीन दिन में ही संपूर्ण वेदांत-शास्त्र को साफ़ कर दिया है। तथा आप न्याय के समस्त तर्कवाद भी सूँघ चुके हैं। अतः सब लोग सामने से हट जाओ!

गोकर्णदत्तत्रिपाठी

१. शाही कमीशन
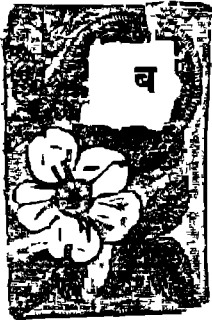
बहुत प्रतीक्षा के बाद शाही कमीशन की घोषणा प्रकाशित हो गई और उसके सदस्यों के नाम भी प्रकट कर दिए गए। जैसा अनुमान और भय था, कमीशन में हिंदोस्तानी कोई आदमी नहीं है, सभी अँगरेज़ हैं और उनमें भी अधिकांश साम्राज्यवादी ही हैं। इस घोषणा ने समस्त भारत में हलचल मचा दी है और सभी पक्षों के नेता रोष, क्षोभ और निराशा से भरे शब्दों में उसका खंडन कर चुके हैं। यद्यपि वाइसराय ने, इस कड़वे ग्रास को मधुमय बनाने की चेष्टा की है, पर उनका उद्योग सर्वथा निष्फल हुआ। हम यह मानते हैं कि भारत में इस समय साम्प्रदायिकता की ज्वाला प्रचंड हो रही है, हिंदू-मुसलमानों में ही नहीं, इन दोनों प्रधान जातियों की *शाखाओं और उपशाखाओं में भी* द्वंद्व मचा हुआ है। अविश्वास इतना बढ़ा हुआ है कि हम एक दूसरे की परछाईं से भी चौंकते हैं, साम्प्रदायिकता ने राष्ट्रीयता को कुचल डाला है; देश के बड़े-बड़े महारथी जिनका इतना जीवन राष्ट्रीयता के आदर्शों की रक्षा करने में व्यतीत हुआ, आज मताध हो रहे हैं, फिर भी यह नहीं कहा जा सकता कि देश में दो-एक सज्जन भी ऐसे नहीं हैं जो धार्मिक संकीर्णता से ऊपर उठ सकें। यह कौन कह सकता है कि कमीशन के अँगरेज़ मेम्बर सर्वथा पक्षपात-हीन हैं। क्या वे साम्राज्यवादी नहीं हैं? क्या साम्राज्यवाद और स्वराज्यवाद में घोर विरोध नहीं है? यह मानसिक वृत्तियाँ हैं और हम कितना ही चाहें इनको दबा नहीं सकते। दिखाने को मजूर-दल के दो मेम्बर ले लिये गए हैं, पर भारत के विषय में उनके क्या विचार हैं, इसका हमें कोई परिचय नहीं। इँगलैंड ही में कमीशन के लिये इससे कहीं योग्य मनुष्यों का चुनाव हो सकता था, पर ऐसा नहीं किया गया। भारत के लिये यह कितना बड़ा अपमान है, शब्दों में इसे प्रकट नहीं किया जा सकता। एक ऐसे महान् कार्य में जिस पर हमारा राष्ट्रीय जीवन निर्भर है, हमसे कुछ न पूछा जाना हमारी पराधीनता का कठोरतम दंड है।

लेकिन क्या यह बात हमें पहले ही से मालूम न थी कि भारत में जो द्वेष और मतोन्माद फैला हुआ है, इँगलैंड उससे लाभ उठाने में कोई कसर उठा न रक्खेगा। हम आज यह नहीं कह सकते कि हमें इसका गुमान न था। भारत-सरकार की अस्थिर, अनिश्चित नीति, उपद्रवों के अवसर पर उसके कर्मचारियों की उदासीनता, इस बात का साफ़ पता दे रही थी कि इसमें कोई-न-कोई रहस्य है। फिर भी हम चेते नहीं, हमारे लड़ाई-झगड़े बंद न हुए, अग्नि दिन-प्रतिदिन धधकती ही गई। लेकिन इस अपमान ने कदाचित् हमारे आत्म-सम्मान को जगा दिया है। शाही कमीशन के विरोध में हमारे

नेताओं ने जिस अभिन्नता और एकता का परिचय दिया है। अगर वह क्षणिक नहीं है और आगे चलकर वह लुप्त न हो जायगा, तो हम कहते हैं, हमारा यह अपमान और पराजय वास्तव में हमारी विजय है। हमारे विधाताओं ने हमसे जो असहयोग किया है, वैसा ही असहयोग हमें उनके साथ करना चाहिए। इसके सिवाय हमारे लिये और कोई मार्ग नहीं है। हमारे कुछ शुभचिंतकों को भय है कि इस समय असहयोग करने से हमारी बड़ी हानि होगी, मगर हमें इस शंका को अपने पास भी न फटकने देना चाहिए। इँगलैंड स्वार्थांध हो रहा है और वह अपने लाभ के लिये हमें अधिक-से-अधिक हानि पहुँचाने में कभी संकोच न करेगा, चाहे हम कितना ही दबते जावें। जितनी हानि उसने की है, उससे अधिक वह और क्या कर सकता है।

लेकिन हम पूछते हैं, इस कमीशन की ज़रूरत ही क्या थी? जब पहले ही से सारी बातें तय कर ली गई हैं, तो व्यर्थ में इस दरिद्र देश पर लाखों रुपए के ख़र्च का बोझ डालने की क्या ज़रूरत थी? अगर भूल से १० वर्ष में सुधारों की व्यवस्था से जाँच करने के नियम की पाबन्दी ही करनी थी, तो वह इँगलैंड में ही भारतीय कौंसिल द्वारा की जा सकती थी। द्विविध शासन के विषय में प्रायः उन सभी सज्जनों ने अपने मत प्रकट कर दिए हैं, जिन्हें उन्हें बरतना पड़ा है। लिबरल, स्वराजिस्ट, नेशनलिस्ट, मुसलिम, अब्राह्मण, ऐसा कोई दल नहीं है, जिसने उन व्यवस्थाओं पर अपनी सम्मति न प्रकट कर दी हो। उनको संग्रह कर लेने ही से काम चल सकता था। कमीशनों का उपयोग केवल इसीलिये है कि उसमें भिन्न मतों के सदस्य भिन्न-भिन्न दृष्टिकोण से जिरहें करते हैं। जब भारतीय दृष्टिकोण से कोई जिरह करनेवाला ही उसमे न रहेगा, तो भारत का उससे क्या उपकार हो सकेगा, यह हमारी समझ में नहीं आता।

वायसराय ने हिंदोस्तानी मेम्बरों के न रक्खे जाने की मुख्य दलील जो दी है, वह यह है कि यहाँ कोई व्यक्ति निष्पक्ष राय देने की क्षमता नहीं रखता। सभी किसी-न-किसी दल से संबंध रखते हैं। इसी दलील पर कोई अँगरेज़ी पदाधिकारी भी नहीं रक्खा गया। मगर इस साम्राज्य-प्रधान राजनीति के ज़माने में अब कमीशन में सात सज्जन मौजूद, हैं तो यह कहना कि किसी अँगरेज़ पदाधिकारी को स्थान नहीं दिया गया, केवल हमारी परवशता का मज़ाक़ उड़ाना है। स्वभावतः ये सातों सज्जन हरएक बात को इँगलैंड और भारतीय गवर्नमेंट के लाभ की दृष्टि से देखेंगे। अँगरेज पदाधिकारियों की स्वार्थ-रक्षा काफ़ी से ज़्यादा कमीशन द्वारा हो जायगी, केवल भारत की सम्मति को व्यक्त करनेवाला कोई न रहेगा। इँगलैंड की उदारता के तो हम जब क़ायल होते कि कमीशन में अन्तरराष्ट्रीय नीतिज्ञों को स्थान दिया जाता। वे ही सज्जन निष्पक्ष-सम्मति प्रदान कर सकते हैं। इँगलैंड तो स्वयं वादी है। उसके निर्वाचित किए हुए सदस्यों को निष्पक्ष कहना इस शब्द का दुरुपयोग करना है। जब महाराजा बर्दवान-जैसे अँगरेज़ी साम्राज्य के भक्त भी इस कमीशन का विरोध कर रहे हैं, तो यह कहा जा सकता है कि आज तक इँगलैंड के किसी कृत्य का इतना सार्वभौमिक, इतना व्यापक विरोध नहीं हुआ। अब देखना यही है कि हम अंत तक दृढ़ रह सकते हैं, या आगे चलकर जातिगत प्रतिद्वंद्वता के वशीभूत हो जाते हैं।

× × ×

२. गंगावतरण

इस समय भी कुछ लोग व्रज-भाषा में कविता करते हैं। ऐसे कवियों में श्रीयुत बाबू जगन्नाथदासजी 'रत्नाकर' बी० ए० का स्थान बहुत ऊँचा है। 'रत्नाकर' जी के फुटकल छंद, तो 'माधुरी' के पाठक पढ़ा ही करते हैं, पर उनके काव्य-ग्रंथ इधर बहुत दिनों से नहीं प्रकाशित हुए थे। हर्ष की बात है कि हाल ही मे प्रयाग के सुप्रसिद्ध इंडियन-प्रेस ने आपके बनाए 'गंगावतरण' काव्य को सज-धज के साथ प्रकाशित किया है। यह काव्य तेरह सर्गों मे समाप्त हुआ है। 'गंगावतरण' की पुराण-प्रसिद्ध कथा रोला छंदों मे बड़े अच्छे ढंग से वर्णित की गई है। समग्र पुस्तक मे ५६७ रोला छंद हैं। चौथा सर्ग सबसे बड़ा है। इसमें ८३ रोला हैं। छठे और बारहवें सर्ग सबसे छोटे हैं, इनमें ४१, ४१ रोला हैं। प्रत्येक रोला में चार पंक्तियाँ है। इस हिसाब से 'गंगावतरण' काव्य २२६८ पंक्तियों का सुंदर काव्य-ग्रंथ है। बहुत दिनों से व्रजभाषा में इतना बड़ा काव्य-ग्रंथ नहीं प्रकाशित हुआ था। इसके प्रकाशन के लिये महारानी अवधेश्वरी ने रत्नाकरजी को १,०००) का पुरस्कार दिया था। इस पुरस्कार को रत्नाकरजी ने काशी-नागरी-

प्रचारिणी सभा को इस शर्त पर दे दिया है कि इसकी आय से प्रति तीसरे वर्ष व्रज-भाषा का, जो सर्वोत्कृष्ट काव्य-ग्रंथ प्रकाशित हो, उसके रचयिता को २००) का पुरस्कार दिया जाया करे। श्रीरत्नाकरजी का यह कार्य उनके व्रज-भाषा काव्य-प्रेम के अनुरूप ही है। गंगा-वतरण के प्रारंभ में रत्नाकरजी का एक चित्र है एवं गंगावतरण दृश्य का कल्पना-प्रसूत एक सुंदर रंगीन चित्र भी है। इस पुस्तक का मूल्य १) है।

'गंगावतरण' काव्य को हमने ध्यान-पूर्वक पढ़ा है। उसके पाठ से हमें पूर्ण आनंद मिला। रत्नाकरजी का भाषा एवं पद्य-प्रवाह पुराने प्रसिद्ध कवियों के टक्कर का है। आपने नई कल्पनाओं को भी अपनाया है और पुरानी कल्पनाओं से भली भाँति लाभ उठाया है। आपके भावों में—चाहे वे पुराने ही क्यों न हों—नूतनता का चमत्कार दिखलाई पड़ने लगता है। रत्नाकरजी सत्कवि हैं और उनका निर्मित 'गंगावतरण' उनकी योग्यता के सर्वथा अनुरूप है। भारतीय सभ्यता के साथ गंगाजी का बहुत बड़ा संबंध है। इस पवित्र नदी के तट पर भारतीय सभ्यता का विकास भी हुआ है और सत्यानाश भी। यदि यह कहा जाय कि हिंदू-सभ्यता का इतिहास गंगाजी के किनारे निर्मित हुआ है, तो यह कथन कोरी अत्युक्ति न मानी जायगी। खेद है कि भारत के हिंदू-कवियों ने गंगाजी का आश्रय लेकर अधिक कविता का निर्माण नहीं किया। हिंदी के पुराने कवियों ने भी इधर कम ध्यान दिया। यद्यपि हिंदी के पुराने कवियों ने गंगाजी की स्तुति या प्रशंसा में कविताएँ बनाईं फिर भी क्रमबद्ध कोई ग्रंथ न बना। पद्माकर की 'गंगा-लहरी' भी, क्रमबद्ध नहीं कही जा सकती। ऐसी दशा में बाबू जगन्नाथदासजी 'रत्नाकर' ने 'गंगावतरण' ग्रंथ की रचना करके एक बड़े अभाव की आंशिक रूप में पूर्ति की है। इसके लिये हिंदी-संसार को उनका कृतज्ञ होना चाहिए।

यहाँ पर हम गंगावतरण के कुछ अंश पाठकों के अवलोकनार्थ उद्धृत करते हैं। पाठकगण देखें कि कितनी सरस पंक्तियाँ हैं—

(१)

सिंहासन चहुँ पास अमल जल-रासि लखाई ;
गौर-स्याम-द्युति-दाम ललित लहरनि छबि छाई।
है अति बिह्वल बिकल लगे सुर सकल बिसूरन ;
आरत नाद बिषाद-बाद सौं सब दिसि पूरन।

(२)

छोभ-छलक ह्वै गई प्रेम की पुलक अंग मैं ;
थहरनि के टरि ढरि परे उछरति तरंग मैं।
भयो बेग उद्वेग पेंग छाती पर धरकी ;
हरहरानि धुनि बिघटि सुरट उघटी हर-हर की।
भयो हुतो भ्रव-भंग-भाव जो भव-निदरन कौ ;
तामैं पलटि प्रभाव परयो हिय हेरि हरन कौ।
प्रगटत सोई अनुभाव-भाव औरै सुखकारी ;
ह्वै थाई उतसाह भयौ रति को संचारी।
कृपानिधान सुजान संभु हिय की गति जानी ;
दियौ सीस पर ठाम बाम करि कै मन मानी।
सकुचति ऐंचति अंग गंग सुख-संग लजानी ;
जटा-जूट-हिम-कूट सघन बन सिमिटि समानी।

(३)

ग्राम बधूटी जुटति आनि तट गागरि लै-लै ;
गावति परम पुनीत गीत धुनि लावति लै-लै।
धारे सहज सिंगार गात गोरे गद कारे ;
बिहँसत गोल कपोल लाल लोचन कजरारे।
सुनरिवा की आड़ ताड़ तरकी तरपीली ;
ठाढ़े गाढ़े कुचनि चिहुँटनी माल सजीली।
रँग चोल रँग चीर लगे मोहर नग चमकत ,
गृह-स्रम सचित-स्वास्थ्य उमगि आनन पर दमकत।
कोउ पैठति जल हँसति धँसति एँड़ी कोउ तट पर ;
कोउ मुख पानि पखारि बारि छिरकति निज पट पर।
कोउ कर जोरि नवाय सीस दृग मूँदि मनावति ;
ऐपन घुघुरी रोट अर्पि कोउ दीप दिखावति।

तीसरे अवतरण को पढ़नेवाले पाठक सहज में ही इस बात का अनुभव कर सकेंगे कि 'गंगावतरण' काव्य के रचयिता और 'बिहारी-रत्नाकर' के टीकाकार एक ही व्यक्ति हैं। 'गंगावतरण' ग्रंथ के प्रकाशन से हमें संतोष भी है और हर्ष भी।

× × ×

३. कलकत्ते का मिलाप-सम्मेलन

शिमले में मिलाप-सम्मेलन का जो निराशाजनक अंत हुआ, उससे लेश-मात्र भी हतोत्साह न होकर कांग्रेस कार्यकर्ताओं ने कलकत्ते में दूसरा मिलाप-सम्मेलन कर

डाला। जैसा भय था, हिंदू-नेताओं ने इस सम्मेलन के निमंत्रण को स्वीकार नहीं किया। हां, मुसलिम नेता मौजूद थे। सम्मेलन ने यों तो कई प्रस्ताव स्वीकृत किए, पर उनके दो मुख्य प्रस्ताव बाजे और कुरबानी के संबंध में थे। कुरबानी के लिये गउओं को सभी सड़कों पर ले जाने के हक़ को सम्मेलन ने जिस तरह स्वीकार किया है, उसी तरह हिंदुओं के सभी सड़कों पर बाजे बजाने के हक़ को भी माना है। जैसा हम गत मास अपनी एक टिप्पणी में लिख चुके हैं, हिंदुओं के लिये गो-रक्षा जितना धार्मिक प्रश्न है, उतना बाजे को मसजिद के सामने रोकना मुसलमानों के लिये कदापि नहीं है। मुसलमान-नेताओं ने स्वयं स्वीकार किया है कि बाजे का प्रश्न केवल राजनैतिक है, इसलिये इन दोनों प्रश्नों को समता का स्थान देकर सम्मेलन ने हिंदुओं के साथ अन्याय किया है। हिंदू-नेताओं तथा सभाओं ने इसी-लिये इन प्रस्तावों का विरोध किया है। हमारा भी यही विचार है। हां, महामना श्रीनिवास आयंगर ने, इस विषय में जो भाव प्रकट किये हैं, उन पर वर्तमान परि-स्थितियों को देखते हुए शांतचित्त से विचार करने की आवश्यकता है। यह स्पष्ट ही है कि जब एक पक्ष किसी बात पर अड़ जाता है, तो दूसरा पक्ष उतनी ही दृढ़ता से उसका विरोध करने पर तत्पर हो जाता है। यह मानवीय स्वभाव है। बाजे का मुसलमान जितना विरोध करते हैं, उतना ही हिंदू उस पर आग्रह करते हैं। उसी प्रकार हिंदू गो-हत्या पर जितना रोष करते हैं, उतना ही मुसलमानों को उत्तेजना होती है। संभव है दोनों पक्ष यदि इन उपद्रवजनक प्रश्नों की ओर उदासीनता तथा सहिष्णुता का व्यवहार करने लगें, तो दूसरा पक्ष भी कुछ ढीला पड़ जाय। इसी सिद्धांत को सामने रखकर कलकत्ता-सम्मेलन ने इन प्रस्तावों को स्वीकार किया है। रहा यह एतराज़ कि कांग्रेस को धार्मिक विषयों में हस्त-क्षेप करने का कोई अधिकार नहीं, इसमें कोई सार नहीं है। जब वर्तमान परिस्थिति का कारण विशेषतः धार्मिक नहीं, वरन् राजनैतिक है, तो देश की प्रधान राजनैतिक संस्था को उस पर विचार करने के अधिकार से इनकार नहीं किया जा सकता। फिर कांग्रेस में ऐसे हिंदू-सज्जनों की संख्या कम नहीं है, जो हिंदू-सभा में भी शरीक हैं। अगर ऐसे लोग कलकत्ते के मिलाप-सम्मेलन में न शरीक हुए, तो इसका दोष उन्हीं लोगों पर है। शाही कमीशन के इस अवसर पर जब इस बात की ज़रूरत है कि सारा भारत संयुक्त स्वर से उसका बहिष्कार करे, यह कितने खेद और लज्जा की बात होगी, यदि हम आपस ही में जातिगत प्रश्नों के पीछे पड़े रहे। पंजाब की मुसलिम-लीग ने साफ़ कह दिया कि उसे वर्तमान दशाओं के देखते हुए शाही-कमीशन से कोई विरोध नहीं है। उसकी देखादेखी हिंदू सभाएँ भी शाही-कमीशन का स्वागत करेंगी और वह बहिष्कार ध्वनि, जिसमें सभी दलों के नेता शरीक हैं, निरर्थक सिद्ध होगी।

× × ×

४. गोसाईंचरित में रामपुर और जयरामपुर

'गोसाईंचरित' ग्रंथ के संबंध में विगत आश्विन मास की 'माधुरी' में एक संपादकीय नोट निकला था। ज़िला सीतापुर में सिधौली तहसील के अंतर्गत जयरामपुर नाम का एक गांव है। यह गाँव बहुत पुराना है। 'गोसाइंचरित' में जिस रामपुर गाँव का उल्लेख है, वही इस समय जयरामपुर नाम से प्रसिद्ध है, ऐसा उक्त नोट में लिखा गया था। उसमें यह भी लिखा गया था कि वर्तमान जयरामपुर गाँव के ज़मींदार के पूर्वज धनसिंहराय ही गोसाइंचरित के सिंह राम हैं। इस नोट के संबंध में हमारे मित्र चतुर्वेदी ओंकारनाथ पांडेय ने कुछ नई खोज की है। आप तहसील सिधौली में परगना कुँडरी के सुपरवाइज़र क़ानूनगो हैं। आपका कहना है कि 'गोसाइंचरित' में जिस रामपुर का ज़िक्र है, वह कुँडरी तहसील में चौका नदी के किनारे स्थित है। जयरामपुर और रामपुर दो भिन्न-भिन्न स्थान हैं। जयरामपुर में वंशीवट है, मालूम नहीं रामपुर में वंशीवट है या नहीं। जयरामपुर में अगहन सुदी पंचमी को रासलीला होती है; पर रामपुर में उसी समय धनुष-यज्ञ का समारोह होता है। जयरामपुर में हनुमान्जी की मूर्ति नहीं है, पर रामपुर में हनुमान्जी की मूर्ति भी है। रामपुर गाँव के पास 'जानकीनगर' नाम की एक आराज़ी है। इसकी मालगुज़ारी माफ़ है। ऐसा जान पड़ता है कि बाबा बेणीमाधवदासजी ने गोसाईंचरित में रामपुर और जयरामपुर को एक मान कर कुछ गड़बड़ी कर दी है। अथवा यह भी संभव है कि मूल गोसाईंचरित में जयरामपुर और रामपुर अलग-अलग हों, परंतु उसकी

संक्षेप बनानेवाले ने जयरामपुर और रामपुर के भेद को न समझकर उन्हें एक मान लिया हो, जिससे यह गड़बड़ी हुई हो। जो हो, हमारी पांडेयजी से प्रार्थना है कि जहाँ उन्होंने जयरामपुर और रामपुर को भिन्न-भिन्न प्रमाणित करने की चेष्टा की है, वहाँ वह जयरामपुर के वाजिबुल्अर्ज़ को देखकर इस बात का भी पता लगावें कि जयरामपुर में श्रीगोस्वामीजी के पधारने की बात कहाँ तक सत्य है। रामसिंहजी को गोस्वामीजी जो रामायण दे गये थे, वह इस समय यदि उक्त गाँव के स्वामी की स्त्री के पास है, तो उसके देखने का पूर्ण प्रयत्न होना चाहिए। ओंकारनाथजी ने, इस संबंध में हमें जो पत्र भेजा है, उसे हम यहाँ दिए देते हैं—

"श्रीमान् द्विवेदीजी के लेख से प्रभावान्वित होकर जो खोज आपने उस रामपुर के संबंध में जहाँ गोस्वामी तुलसीदासजी उतरे थे की है, उसमें कुछ भ्रम हो गया है। आपने आश्विन की संख्या में लिखा है "उपर्युक्त पंक्तियों में जिस रामपुर का ज़िक्र है, वह आजकल जयरामपुर के नाम से प्रसिद्ध है इत्यादि।" मुझे जो कुछ पता मिला है उसमें और इसमें थोड़ा अंतर है। रामपुर व जयरामपुर दो भिन्न-भिन्न स्थान हैं और दोनों जगह गोसाइंजी पधारे थे। इन दोनों स्थानों के संबंध में अलग-अलग बाबू श्यामसुंदरदासजी तुलसी-ग्रंथावली में लिखते हैं।

(१) "मिसिरिख के पास एक जयरामपुर गाँव है। वहाँ आकर एक सूखी डाली लगा दी, वह पेड़ हो गई। उसका नाम वंशीवट रक्खा और आज्ञा की कि श्रीराम-विवाहोत्सव के दिन अगहन सुदि ५ को यहाँ रासलीला कराया करो। वह प्रतिवर्ष अब तक होती है" (यह उल्लेख जयरामपुर के संबंध में जनश्रुति से मिलता है, अतः यह वही जयरामपुर है, जिसके संबंध में आपने माधुरी (पूर्ण संख्या ६३) में लिखा है।

रामपुर के संबंध में बाबू साहब लिखते हैं कि—

(२) "रामपुर में जगात के लिये इनकी नाव को रोक दिया था। तब इन्होंने सब कुछ वहीं लुटा दिया। ज़मींदार ने जब सुना पैरों पर गिरा और बड़े आग्रह से घर लाया। प्रसन्न होकर उसको एक प्रति रामायण की दी।

यह रामपुर परगना कुँडरी, तहसील सिधौली, ज़िला सीतापुर में है। यह गाँव चौका नदी के तट पर है और मेरे हल्के के अंतर्गत है। अक्टूबर, नवंबर और दिसंबर सन् १९२६ में मुझे लगातार यहाँ रहना पड़ा था। वहाँ गोसाइंजी के संबंध में जो बातें कही जाती हैं, वे इस प्रकार हैं। गोसाइंजी नाव पर चढ़े हुए आ रहे थे। उन्होंने गाँव का नाम पूछा, तो लोगों ने रामपुर बताया। तब उन्होंने गोंडिया से कहा 'तेरा क्या नाम है?' उसने कहा 'रामा'। पूछा यहाँ का ज़मींदार कौन है? उत्तर मिला 'ठाकुर रामसिंह।' यह सुनते ही गोसाइंजी ने यह कहकर कि इससे अच्छा और कौन स्थान हो सकता है, वहाँ उतरने का निश्चय किया। वहाँ उनसे कर माँगने में मल्लाहों ने झगड़ा किया। गोसाइंजी ने सब कुछ माल मता वहीं लुटा दिया। यह समाचार तुरंत ही रामसिंहजी को मिला। उन्होंने बड़े आग्रह से गोसाइंजी को रोका और बड़े आदर व सेवा के साथ उन्हें अपने यहाँ ले गए। वहाँ उन्होंने एक मूर्त्ति हनुमानजी की गढ़ी के अंदर स्थापित की (यह मूर्ति अब तक मौजूद है। मैंने स्वयं इसे देखा है, देखने में यह मूर्त्ति बनारस में गोसाइंजी द्वारा स्थापित मूर्ति से मिलती है) और नदी के किनारे श्रीजानकीजी और श्रीरामजी की मूर्त्ति स्थापित कर वहीं कुछ दिन रहे और उपदेश देते रहे। फिर रामसिंहजी को एक प्रति रामायण की देकर चले गए। इसी जानकीजी के स्थल में (जिसे वहाँ के लोग अस्थल कहते हैं) एक चबूतरा बना है, जिसे गोसाइंजी की गद्दी कहते हैं और कहा जाता है कि यहीं गोसाइंजी ने उपदेश दिए थे। इस जानकीजी के मंदिर के लिये रामसिंहजी ने एक अच्छी आराज़ी लगा दी थी। जो कालांतर में जानकीनगर कहलाई। यह मौज़ा जानकीनगर माफ़ी है और ब्रिटिश सरकार भी इससे कोई मालगुज़ारी नहीं लेती। इस मौज़े के वाजिबुल्अर्ज़ (रिवाजदेही, जो बंदोबस्त में तैयार होती है) में लिखा है कि इसकी मालगुज़ारी माफ़ है और शामिल रामपुर ताल्लुक़ा है। अगर बमूजिब शरायत यह माफ़ी ज़ब्त होगी, तो यह मौज़ा शामिल ताल्लुक़ा रामपुर किया जायगा।" इस मंदिर और गाँव जानकीनगर के संरक्षक इस समय महंत रणछोरदासजी हैं। ठाकुर शिवपालसिंह के मस्तिष्क-रोग के कारण इलाक़ा रामपुर इस समय कोर्ट आफ़ वार्ड्स की निग-

रानी में है। हनुमान्‌जी की मूर्ति के पूजा-पाठ का प्रबंध कोर्ट द्वारा ही होता है। मेरी इच्छा उस रामायण के देखने के लिये थी, परंतु न देख सका। मालूम हुआ कि वह ठकुरानी साहिबा के पास है और ठकुरानी साहिबा अपने पिता के घर रहती हैं। रामपुर में अगहन सुदि ५ को मेला धनुष-यज्ञ हुआ करता है।

रामपुर के संबंध में जो जनश्रुति है वह बाबू साहब के व 'माधुरी' में छपे हुए उल्लेखों से मिलती है। अतः रामपुर व जयरामपुर दो भिन्न स्थान हैं, एक नहीं।"

× × ×

४ विवाह की समस्या

हमारे बालकों और बालिकाओं के विवाह की समस्या दिन-दिन जटिल होती जाती है। अभी तक तो सारा भार माता-पिता पर था। लड़के या लड़की का विवाह, वे जिसके साथ उचित समझते थे कर देते थे, और संतान को उसका निर्वाह करना पड़ता था। मगर नई रोशनी अब माता-पिता के इस अधिकार को अस्वीकार कर रही है और शिक्षित युवा-मंडली विवाह-जैसे विषय में मौन धारण करना घातक समझती है। हम कितने ही ऐसे उच्च शिक्षा प्राप्त युवकों को जानते हैं, जिनका वैवाहिक जीवन निराशामय हो गया है। वे इसका सारा उत्तरदायित्व माता-पिता पर रखते हैं, और उनके बस की बात हो, तो आज संबंध तोड़ लें। पर हिंदू-शास्त्र में तलाक़ की व्यवस्था न होने के कारण बेचारे रो-रोकर दिन काट रहे हैं। पुरुष स्त्री की सूरत से बेज़ार है और स्त्री पुरुष की सूरत से। ऐसी दशा में यह परमावश्यक है कि इस समस्या पर शांत चित्त होकर विचार किया जाय और वैवाहिक प्रथा में वांछनीय सुधार करने की चेष्टा की जाय।

यह मानने में तो कदाचित् किसी को आपत्ति न होगी कि विवाह-जैसे महत्त्व-पूर्ण कार्य में लड़के और लड़की की अनुमति ली जानी चाहिए। यह किसी तरह न्यायसंगत नहीं है कि माता-पिता अपनी रुचि और सुविधा के अनुसार फ़ैसला करें और जिन बेचारों के भाग्य का निर्णय हो रहा हो, उनसे कुछ भी न पूछा जाय! अब प्रश्न यह है कि यह उद्देश्य कैसे पूरा हो। लड़के और लड़की को एक दूसरे से परिचय प्राप्त करने, एक दूसरे के आचार-विचार जानने का कौन-सा रास्ता इख़्तियार किया जाय। साधारणतः इसके तीन रूप हैं—

(१) वर और कन्या को एक दूसरे से मिलने का अवसर दिया जाय।

(२) वर और कन्या आपस में पत्र-व्यवहार कर सकें, और—

(३) वर और कन्या एक दूसरे को देख लें।

आइए, इन तीनों विधानों पर अलग-अलग विचार करें।

(१) पाश्चात्य देशों में इसी प्रथा का रिवाज है। लेकिन भारतवर्ष में गिने-गिनाए व्यक्तियों को छोड़कर कोई इस प्रथा का अनुमोदन नहीं कर सकता। इसकी बुराइयाँ इतनी स्पष्ट हैं कि उनका उल्लेख करने की ज़रूरत नहीं जान पड़ती। युवावस्था में वर और कन्या उच्चशिक्षा पाकर भी इतने संयत हो सकते हैं कि प्रेमालाप में उचित सीमा का उल्लंघन न करें, हमें इसमें संदेह है। लंपट युवकों के लिये नित नई चिड़ियाँ फँसाने का इससे सुंदर अवसर नहीं मिल सकता। फिर यही क्या निश्चय है कि यौवन की पहली उमंग में, जब रंग-रूप और हाव-भाव ही का मन पर आधिपत्य रहता है, हमारा चित्त जिस ओर आकर्षित हो, वह आगे चलकर, उमंग के शांत हो जाने पर कठिन परिस्थितियों में, धोखे की टट्टी न साबित हो जाय। जो रमणी कोकिलों के स्वर में गाती है, पुष्प की भाँति मुसकिराती है, तितलियों की भाँति प्रकाश में चमकती फिरती है, वह क्या बसंत का अंत होने पर भी उसी भाँति गावेगी, तुषार में उसी भाँति मुसकिराएगी और अँधेरा होने पर उसी भाँति चमकेगी? जो युवक आज सद्‌गुणों का पुतला-सा दीखता है, उसकी नम्रता का अंत नहीं, सहृदयता की थाह नहीं, साहस की सीमा नहीं, शील का पार नहीं, वह क्या कल परिस्थिति के बदल जाने पर भी कायर, दुराचारी, ओछा, विवेकहीन नहीं हो सकता? कौन इसका ज़िम्मा ले सकता है? अभी तक तो किसी ऐसे यंत्र का आविष्कार नहीं हुआ, जो किसी स्त्री या पुरुष का सच्चा रूप दिखा सके। जब युवकों की अभिरुचि इतना धोखा खा सकती है, तो हमें यह कहना पड़ता है कि उनकी कच्ची बुद्धि से माता-पिता का प्रौढ़ परामर्श ही अच्छा। हाँ, माता-पिता का यह कर्तव्य

अवश्य है कि वे शिक्षित को अशिक्षित से, सुंदर को कुरूप से, गोरे को काले से मिलाने का प्रयास न करें।

(२) यह विधान भी धोखे से खाली नहीं। अगर साक्षात्कार से हम किसी के गुण दोष का निर्णय करने में धोखा खा सकते हैं, तो पत्र-व्यवहार से तो इसकी संभावना और भी बढ़ जाती है। प्रणय के आवेश में क़लम से निकले हुए शब्द किस युवक या युवती का मन न मोह लेंगे। युवतियाँ तो स्वभाव से लज्जाशील होने के कारण अपनी तारीफ़ों के पुल न बाँध सकेंगी, पर युवकों को अपने गुणों का बखान करने से कौन रोकेगा। दुर्व्यसनी, चरित्रहीन युवकों के लिये तो यह नुस्ख़ा और भी आसान है। जब उनकी सफलता का दारोमदार उनकी आत्मश्लाघा पर ही ठहरा, तो वे फिर भला क्यों चूकने लगे।

(३) यह विधान मँगनी के पहले की प्रारंभिक क्रिया ही हो सकता है। साधारणतः अवस्था तथा रूप के मनोनीत न होने से ही स्त्री-पुरुष में असंतोष पैदा हो जाता है। एक दूसरे को देख लेने पर असंतोष का यह द्वार बंद हो जायगा, और बातें माता-पिता की इच्छा पर निर्भर होंगी। हमें तीनों विधानों में यही सबसे अच्छा मालूम होता है। जब स्त्री-पुरुष एक दूसरे के चरित्र का परिचय यों भी नहीं पा सकते, तो फिर अपनी बुद्धि पर भरोसा करने से माता पिता की बुद्धि पर भरोसा करना कहीं अच्छा। हाँ, जो बात माता-पिता के बस की नहीं और जिसका निर्णय हम स्वयं कर सकते हैं, उसका अधिकार वर और कन्या को मिलना चाहिए। हाँ, इसमें भी इसका लिहाज़ रखना पड़ेगा कि वर और कन्या को इस ढंग से दिखाया जाय कि उनको ज़रा भी भाँपने का अवसर न मिले। अगर ऐसा न किया गया, तो उन लड़कियों के लिये कितनी लज्जा की बात होगी, जिन्हें एक या अनेक बार पुरुष नापसंद कर देंगे। एक दूसरे को देख लेने पर जब वर-कन्या की इच्छा ज्ञात हो जाय, तभी उनसे असली बात बतानी चाहिए।

आजकल हम हरएक बात में योरप की नक़ल कर रहे हैं। हम अँगरेज़ी उपन्यासों में प्रणय की कहानियाँ पढ़-पढ़कर उसी सुख की कामना में अपनी इच्छा, रुचि और निर्णय को मुख्य समझने लगते हैं। अपनी 'पसंद' पर ही समस्त जीवन के सुखों को अवलंबित समझते हैं। अगर किसी को कविता से प्रेम है, तो वह ऐसी संगिनी चाहता है, जो सुंदर कवित्त रचती हो, फिर तो उसके सुख की सीमा ही न रहेगी। जिसे संगीत से प्रेम है वह अपनी चिरसंगिनी में संगीत-प्रेम के सिवा और कोई दोष-गुण देखना ही नहीं चाहता। सोचता है, हम दोनों बैठकर गाए बजाएँगे, तो जीवन के सारे सुख प्राप्त हो जायँगे। वह यह नहीं समझता कि जीवन कवित्त और संगीत ही नहीं है। इसमें शुष्क, नीरस, अरुचिकर बातों का सम्मिश्रण भी है। इसलिये हम पसंद की अपेक्षा त्याग और धर्म के सिद्धांत को ही अपने लिये हितकर समझते हैं। इस सिद्धांत की रक्षा करते हुए हम वर और कन्या को और सभी प्रकार की स्वतंत्रता देने में कोई बाधा नहीं देखते। विवाह-जैसे पवित्र संस्कार में हम केवल आँखों की पसंद के हामी नहीं। पश्चिम में सुन रहे हैं, इम्तिहानी शादियों की परीक्षा की जानेवाली है। एक समाज-शास्त्र के विद्वान् ने कहा है, वर कन्या में एक प्रकार का समझौता हो जाय और जब कुछ दिनों के सहवास से ज्ञात हो जाय कि वे एक दूसरे के साथ आनंद से ज़िंदगी काट सकते हैं, तब उनमें असली विवाह हो। जब पश्चिम को अपनी वर्तमान विवाह पद्धति स्वयं दूषित प्रतीत हो रही है और वे उसकी बुराइयों और ख़ामियों का सुधार करने के लिये नित नए प्रस्ताव कर रहे हैं, तो हम उनके विवाह-प्रथा की आँखें बंद करके नक़ल करने की ज़रूरत नहीं।

× × ×

६ मारवाड़ी समाज और हिंदी-संसार

हिंदी समाचारपत्रों को पढ़नेवाले इस बात को भली भाँति जानते हैं कि इस समय मारवाड़ी समाज में इस बात को लेकर बड़ी हलचल मची हुई है कि समाज-सुधार के बहाने से उसकी सामाजिक बुराइयों का बहुत ही अतिरंजित और कुत्सित रूप हिंदी-संसार के सामने रखा जा रहा है। मारवाड़ियों का कहना है कि जैसे सारे भारतीय समाज में बुराइयाँ हैं, वैसे ही मारवाड़ी-समाज भी सदोष है। पर है वह व्यापक नियम के भीतर ही। उसकी दशा अपवाद-स्वरूप नहीं है। उनका यह भी कहना है कि मारवाड़ी-समाज की बुराई द्वेष-वश

की जो रही है एवं इन बुराइयों को प्रदर्शित करनेवाला जो साहित्य निकल रहा है, उसका उद्देश उतना बुराइयों को दूर करना नहीं है, जितना गंदे साहित्य के विक्रय से धनोपार्जन करना। हम नहीं जानते हैं कि मारवाड़ी भाइयों का यह अनुमान कहाँ तक सच है, पर यदि इन कथनों में आंशिक सचाई भी हो, तो भी बड़े खेद की बात है। हम यह बात कई बार लिख चुके है कि समाज-सुधार का आंदोलन बड़ी ही सतर्कता के साथ चलाना चाहिए। थोड़ी सी भूल हो जाने से जितना सुधार हो चुका, होता है, उस पर भी पानी फिर जाता है और आगे पैर पड़ने के स्थान पर पैर पीछे पड़ जाता है। इस समय मारवाड़ी-समाज धन-कुबेर है। समाज-सुधार के मामले में वह मुक्त-हस्त हो धन-व्यय करने को तैयार है। शायद कुछ कर भी चुका है। समाज-सुधारकों के किसी काम से यदि यही समाज असंतुष्ट हो जाय, तो यह धन समाज-सुधारकों को तो मिलेगा नहीं, पर संभव है कि उसी से समाज-सुधार के विरोधियों का काम बन जाय। मारवाड़ी-समाज की बुराइयाँ ज़रूर दिखलाई जायँ, पर हर एक काम सलीके से करना चाहिए। उद्योग यह होना चाहिए कि बुराई दूर करने के लिये असली कार्य-क्रम सामने रक्खा जाय और नेकनीयती के साथ उसे पूरा करने के लिये मारवाड़ी-समाज का सहयोग प्राप्त किया जाय। जब पशु-पक्षी भी अपना हिताहित जान लेते है, तब श्रीजमनालाल बजाज और श्रीघनश्यामदास बिड़ला जैसे-नररत्नों को उत्पन्न करने-वाला समाज अपनी भलाई-बुराई क्यों न समझेगा? जिस साहित्य के प्रकाशन से मारवाड़ी-समाज क्षुब्ध हुआ है, उसे हमने बहुत कम पढ़ा है और जो कुछ पढ़ा भी है, वह एक तटस्थ व्यक्ति की हैसियत से। फिर भी इतना हम निःसंकोचरूप से कहने को तैयार है कि 'अबलाओं का इंसाफ' पुस्तक का कुछ ही भाग पढ़कर जिन जुगुप्सित भावों का उदय हमारे मन में हुआ उनसे हमें क्लेश हुआ। हमने पुस्तक का पढ़ना बंद कर दिया। हमने यह भी निश्चय किया कि इस पुस्तक को अपने घर की किसी स्त्री को भूल से भी पढ़ने को न दिया जाय। यदि मारवाड़ी-समाज के कुछ सज्जन भी ऐसी पुस्तक पढ़ने से दुखी हुए हों, तो हमें इसमें कोई आश्चर्य नहीं है। ऐसी पुस्तकों के प्रचार से हित के स्थान में समाज का अहित हो सकता है। खेद है, हम ऐसे साहित्य के प्रचार का समर्थन नहीं कर सकते। मारवाड़ी-समाज में बुराइयाँ है, इसके लिये हमें खेद है। उन बुराइयों को दूर करने का उद्योग किया जाय, इसके हम समर्थक है, पर हम यह कदापि नहीं चाहते कि समाज की बुराइयों का नग्न स्वरूप—अत्यंत घृणित और जुगुप्सित रूप—सर्वसाधारण के सामने रक्खा जाय। इस नग्न-स्वरूप के प्रदर्शन से हानि की संभावना अधिक है। अव्यवस्थित और उच्छृंखल चरित्र के युवक और युवतियाँ ऐसे गंदे साहित्य को पढ़कर अपने व्यभिचार-मार्ग को अनुकूल और सरल बना सकती है। हमारा किसी पर व्यक्तिगत आक्षेप नहीं है, पर हम गंदे साहित्य के दुरुपयोग का समर्थन करने में असमर्थ है। मारवाड़ी-समाज से हमारी प्रार्थना है कि वे अपने समाज की बुराइयों को दूर करें और इस बात का खयाल छोड़ दें कि किसी के लिख देने मात्र से ही उनका सारा समाज गंदा मान लिया जायगा।

× × ×

७ डॉक्टर हैरोल्डमैन के कृषि-संबंधी विचार

डॉक्टर हैरोल्डमैन कृषि-विभाग बंबई प्रांत के डाइ-रेक्टर है। आप २० साल से इस पद को सुशोभित कर रहे है। अभी हाल में आपने पेंशन ली है। इँगलैंड को रवाना होने के पहले आपने बंबई के एक अँगरेज़ी समाचारपत्र में उस प्रांत के कृषि जीवन के विषय में अपने निजी अनुभव के आधार पर जो विचार प्रकट किए है, वे इस योग्य है कि हमारी सरकार और नेता शांतचित्त होकर उन पर मनन करें। आपने कृषकों की आर्थिक दुर्दशा का वर्णन करते हुए कहा—"यद्यपि गाँव के लोग स्वयं बिना बहुत धन व्यय किए बहुत कुछ कर सकते है, पर बड़े पैमाने पर कुछ नहीं हो सकता जब तक गवर्नमेंट और नेता यह न जान लें कि कृषकों की सुदशा का सारा रहस्य यही है कि उनके पेट भरे जायँ। कृषकों को स्वयं अधिक काम करना चाहिए। कोई देश उन्नति नहीं कर सकता, जब तक अधिकांश निवासी साल में छः महीने बेकार पड़े रहें। जनता के लिये किसी काम की व्यवस्था होनी चाहिए, चाहे उससे कितनी ही थोड़ी आय क्यों न हो। महात्मा गांधी ने और चाहे कितनी ही भूलें की हों; पर चरखे का प्रचार करके उन्होंने सिद्ध कर

दिया है कि वह भारत की आर्थिक दुर्दशा के रहस्य को भली भाँति समझ गए हैं। गवर्नमेंट अगर देहातों को धन-धान्य-पूर्ण देखना चाहती है, तो उसे समस्या के इस अंग पर खूब ध्यान देना चाहिए। आश्चर्य यही है कि इतने दिन गुज़र गए, फिर भी सरकार ने इस गुत्थी को सुलझाने में तत्परता नहीं दिखाई।"

ये किसी स्वराजिस्ट या आंदोलक के विचार नहीं हैं। ये उस कर्मचारी के अनुभव-सिद्ध विचार है, जिसने अपना जीवन कृषकों की दशा का ज्ञान प्राप्त करने मे व्यतीत किया है। इसमें संदेह नहीं गाँव के लोग स्वयं अपनी दशा कुछ सुधार सकते हैं और इसके लिये शिक्षा की ज़रूरत है, पर शिक्षा से भी बहुत उपकार नहीं हो सकता, जब तक कृषकों का पेट न भरे। सबसे पहला प्रश्न रोटी का है। सारी उन्नति का आधार रोटी है। क्षुधा-पीड़ित, जर्जर जनता से यह आशा करना कि वह स्वयं अपनी दशा सुधारने का प्रयत्न करे, उस पर अन्याय करना है; और यह दशा केवल बंबई ही की नहीं है। पंजाब के कुछ भागों को छोड़कर समस्त देश में यही दशा व्याप्त हो रही है। देश भूखों मरा जा रहा है। जो संपन्न कहलाते है उन्हें भी इच्छा-पूर्ण भोजन नहीं मिलता। संतानें दिन-दिन दुर्बल होती जा रही हैं, लोगों की आयु क्षीण होती चली जा रही है, करोड़ों आदमी प्रतिवर्ष उन बीमारियों का शिकार हो रहे हैं, जिनका मुख्य कारण भोजन का अभाव है पर हमारे विधाताओं की आँखें नहीं खुलतीं। जो बातें सर्वसाधारण को मालूम हैं उनकी जाँच-पड़ताल करने के लिये बड़े-बड़े कमीशन नियुक्त होते हैं, उन पर देश के लाखों रुपए ख़र्च होते हैं और अंत में उनके परिश्रम का फल पुस्तकालयों की अलमारियों को सुशोभित करने के सिवा और कुछ नहीं होता। आज भी ऐसा ही एक कमीशन देश मे भ्रमण कर रहा है। उसकी शहादतों से दस बड़ी-बड़ी पोथियाँ तैयार हो चुकी है, पर उनका फल जो कुछ होगा वह हमें मालूम है। बात यह है कि हमारी सरकार ने प्रजा-पालन के कर्तव्य को कभी अंगीकार नहीं किया। उसके कर्तव्य की इतिश्री यहीं तक है कि देश में शांति रहे और इंगलैंड के व्यापारियों और शिक्षित जनों के लिये अर्थोपार्जन की सुविधाएँ सुलभ रहें। यही हमारे विधाताओं का आदर्श और उद्देश्य है। अन्य देशों में शासन-व्यवस्था का प्रधान कर्तव्य यही है कि जनता को भोजन और वस्त्र से परिपूर्ण रखे। यहाँ तक कि बाज़े देशों ने जनता के लिये घर का प्रबंध करना भी अपना कर्तव्य मान लिया है। इँगलैंड में गत ८ वर्षों में जनता के लिये लगभग नौ लाख घर बनवाए जा चुके हैं। अंतर यही है कि वहाँ स्वजातियों का शासन है, यहाँ विजातियों का।

× × ×

८ राष्ट्रभाषा हिंदी-सम्मेलन, मदरास

मदरास ही वह उदार प्रांत है, जिसने हिंदी को राष्ट्रीय भाषा के स्थान पर गौरवान्वित करने के लिये सबसे पहले क़दम बढ़ाया है और आज वहाँ हिंदी-प्रेमियों की एक बड़ी संख्या मौजूद है। जिन आर्थिक कठिनाइयों में हिंदी-प्रचारकों के एक छोटे से, धुन के पक्के, दल ने हिंदी का प्रचार किया है, वह त्याग और अध्यवसाय की एक अपूर्व कथा है। उन्हीं हिंदी-प्रेमियों ने आगामी दिसंबर में कांग्रेस के अवसर पर मदरास में हिंदी-सम्मेलन करने का निश्चय किया है। आज से चार वर्ष पूर्व कोकानाडा विशेष कांग्रेस के अवसर पर जिस उत्साह से उन लोगों ने सम्मेलन किया था, उसकी याद अभी ताज़ी है। हिंदी-जनता ने उस अवसर पर उन लोगों की बड़ी उदारता के साथ सहायता की थी। इस वर्ष के सम्मेलन के लिये स्वागतकारिणी-समिति बन गई है। उसके अध्यक्ष हैं, हिंदी के अनन्य भक्त आनरेबुल श्रीयुत रामदास पंतलु। स्वागत-समिति की सदस्यता के लिये ५) की जगह केवल २) फ़ीस रक्खी गई है और प्रतिनिधि-शुल्क केवल १) है। निश्चय किया गया है कि इस अवसर पर हिंदी-पुस्तकों तथा पत्रों की एक प्रदर्शिनी भी की जाय। हमें आशा है कि हिंदी-प्रेमी बड़ी से बड़ी संख्या मे इस सम्मेलन मे उपस्थित होंगे। मदरास में जिस उत्सर्ग और धैर्य के साथ वहाँ के हिंदी-प्रेमियों ने हिंदी का प्रचार किया है और कर रहे है, उनसे अपनी सहानुभूति और संतोष हम इसी प्रकार प्रकट कर सकते हैं। हम हिंदी-जनता से सविनय अनुरोध करते है कि वह इस अवसर पर सम्मेलन मे शरीक होकर हिंदी-भाषा का मुख उज्ज्वल करे।

× × ×

९ श्रीदामोदरलाल भार्गव आई० एस० ओ०

दीवान बहादुर श्रीयुत दामोदरलाल भार्गव आई० एस० ओ० अजमेर मेरवाड़ा में अतिरिक्त डिस्ट्रिक्ट और सेशनजज थे। इस समय पेनशन लेकर आप अपनी जन्मभूमि अलीगढ़ में रहते थे। खेद है, विगत जुलाई मास मे आपका देहांत हो गया। दीवान बहादुर बड़े

श्रीदामोदरलाल भार्गव आई० एस० ओ०

मिलनसार और शिष्ट पुरुष थे। सरस्वती और लक्ष्मी दोनों की आप पर अपार कृपा थी। आप समय-समय पर भरतपुर को स्टेट कौंसिल तथा जोधपुर रीजेंसी कौंसिल के मेम्बर रहे है। उदयपुर में आप प्राइम-मिनिस्टर थे। भार्गव-कानफ्रेंस के आप दो बार सभापति हुए थे। इस समय आपकी अवस्था ७१ वर्ष की थी।

× × ×

१०. श्रीरामकृष्ण मिशन सेवाश्रम काशी की एक अपील

पंजाब और संयुक्तप्रांत के पश्चिमी भागों में जिस प्रकार आर्य-समाज एक जीती-जागती, उपकार और सेवा के आदर्श को सामने रखकर काम करनेवाली संस्था है, उसी भाँति बंगाल में श्रीरामकृष्ण मिशन है। इस मिशन की एक शाखा काशी मे भी है। उसने आज २७ वर्षों से एक 'सेवाश्रम' खोल रखा है। इस आश्रम मे स्थायी रोगियो की संख्या लगभग १२२ है, जिन्हें आश्रम ही की ओर से भोजन भी मिलता है। बाहरी रोगियों की सख्या २७५ प्रतिदिन है। दवाओं का दाम किसी से नहीं लिया जाता। निराश्रित जनों को आश्रय भी दिया जाता है। इस सस्था का रोज़ाना ख़र्च १००) के समीप है। पर अब सेवाश्रम को अपनी इमारते बढ़ाने के लिये और ज़मीन की ज़रूरत है। जगह न होने से आश्रम दीनजनों की उतनी सेवा नहीं कर सकता, जितनी वह करनी चाहता है। इमारत मे ५० हज़ार रुपए ख़र्च होंगे। इतने ही रुपए ज़मीन ख़रीदने मे भी लगेंगे। सरकार ने इस काम मे २५ हज़ार की सहायता दी है। अब ७५ हज़ार जमा करना जनता का काम है। सेवाश्रम ने इन रुपयों के लिये जनता से अपील की है। श्रीरामकृष्ण तथा श्रीविवेकानद के भक्तों की सख्या इतनी अधिक है कि वे लोग थोडा-सा भी ध्यान दे, तो ७५ हजार एक दिन मे जमा हो सकते है। हम पाठकों से अनुरोध करते है कि वह इस शुभ कार्य मे यथाशक्ति सहायता प्रदान करके यश के भागी बने। हम लोग ऐसे कुपात्रों को बहुत-सा धन दान कर देते है, जो उसका दुरुपयोग करके और भी बुराइयाँ फैलाते है। यहाँ इस बात का कोई भय नहीं है। सेवाश्रम आपकी दी हुई एक-एक पाई का सदुपयोग करेगा। सनातन-धर्मावलबियों के लिये तो काशी-जैसे पवित्र स्थान मे स्थित एसी परोपकारी सस्था की दिल खोलकर मदद करनी चाहिए।

चित्र-चर्चा

१ वात्सल्य प्रेम

इस चित्र में यशोदा माता का बालकृष्ण-प्रेम प्रदर्शित है। माता और पुत्र के पवित्र प्रेम की इस झाँकी को श्रीगणेशखन्नाजी ने जिस कौशल से दिखलाया है, वह सभी प्रकार से सराहनीय है।

२. कपट-मृग

अरण्य में माया-मृग को देखकर सीताजी श्रीरामचन्द्रजी से प्रार्थना करती हैं कि इस मृग को मारकर इसका चर्म हमें ला दो। श्रीरामजी उन्हें बहुत समझाते-बुझाते हैं; पर वे नहीं मानतीं। रामायण के इसी दृश्य का 'कपट-मृग' चित्र में चित्रण है। प्राकृतिक दृश्य की शोभा देखने ही योग्य है।

३. मुख-शोभा

इस चित्र में सुंदरी के आनन पर सुकुमारता, मुग्धता और सुंदरता की जो अनुपम सम्मिलनी विकसित हुई है, उसका चित्रण चतुर चित्रकार श्रीरामेश्वरवर्मा की कुशल लेखनी से हुआ है। 'मुख-शोभा' में लज्जा और प्रतिभा के भाव भी मौजूद हैं। बड़ा सुंदर चित्र है।

४ पनिहारिन

इस चित्र में एक पनिहारिन का दृश्य है। पनिहारिन जल की गगरी लिए जा रही है।

५

"माधुरी" के नियम—

मूल्य-विवरण

माधुरी का डाक-व्यय-सहित वार्षिक मूल्य ६॥), छ मास का ३॥) और प्रति संख्या का ॥=) है। वी० पी० से मँगाने में =) रजिस्ट्री के और देने पड़ेंगे। इसलिये ग्राहकों को मनीऑर्डर से ही चंदा भेज देना चाहिए। भारत के बाहर सर्वत्र वार्षिक मूल्य ८) छ महीने का ४॥) और प्रति संख्या का ॥।) है। वर्षारंभ श्रावण से होता है लेकिन ग्राहक बननेवाले सज्जन जिस संख्या से चाहें ग्राहक बन सकते हैं।

अप्राप्त संख्या

अगर कोई संख्या किसी ग्राहक के पास न पहुँचे, तो उसी महीने के अंदर कार्यालय को सूचना देनी चाहिए। लेकिन हमें सूचना देने के पहले स्थानीय पोस्ट-ऑफ़िस में उसकी जाँच करके डाकख़ाने का दिया हुआ उत्तर सूचना के साथ भेजना ज़रूरी है। उनको उस संख्या की दूसरी प्रति भेज दी जायगी। डाकख़ाने का उत्तर साथ न रहने से सूचना पर ध्यान नहीं दिया जायगा, और उस संख्या को ग्राहक ॥=) के टिकट भेजने पर ही पा सकेंगे।

पत्र-व्यवहार

उत्तर के लिये जवाबी कार्ड या टिकट आना चाहिए। अन्यथा पत्र का उत्तर नहीं दिया जा सकेगा। पत्र के साथ ग्राहक-नंबर ज़रूर लिखना चाहिए। मूल्य या ग्राहक होने की सूचना मैनेजर "माधुरी" नवलकिशोर-प्रेस (बुकडिपो) हज़रतगंज, लखनऊ के पते से आनी चाहिए।

पता

ग्राहक होते समय अपना नाम और पता बहुत साफ़ अक्षरों में लिखना चाहिए। दो-एक महीने के लिये पता बदलवाना हो, तो उसका प्रबंध सीधे डाकघर से ही कर लेना ठीक होगा। अधिक दिन के लिये बदलवाना हो, तो १५ रोज़ पेश्तर उसकी सूचना माधुरी-ऑफ़िस को दे देनी चाहिए।

लेख आदि

लेख या कविता स्पष्ट अक्षरों में, काग़ज़ के एक ही ओर संशोधन के लिये इधर-उधर जगह छोड़कर, लिखी होनी चाहिए। क्रमशः प्रकाशित होने योग्य बड़े लेख संपूर्ण आने चाहिए। किसी लेख अथवा कविता के प्रकाशित करने या न करने का, उसे घटाने बढ़ाने का तथा उसे लौटाने या न लौटाने का सारा अधिकार संपादक को है। अस्वीकृत लेख टिकट आने पर ही वापस किए जा सकते हैं। मासिक लेखों के चित्रों का प्रबंध लेखकों को ही करना उचित।

लेख, कविता, चित्र, समालोचना के लिये प्रत्येक पुस्तक की २-२ प्रतियाँ और बदले के पत्र इस पते से भेजने चाहिए—

संपादक, "माधुरी"

नवलकिशोर प्रेस (बुकडिपो), हज़रतगंज, लखनऊ।

विज्ञापन

किसी महीने में विज्ञापन बंद करना या बदलवाना हो, तो एक महीने पहले सूचना देनी चाहिए।

अश्लील विज्ञापन नहीं छपते। छपाई पेशगी ली जाती है। विज्ञापन की दर नीचे दी जाती है—

१ पृष्ठ या २ कालम की छपाई	२०)	प्रति मास
½ ,, या १ ,, ,,	१५)	,, ,,
¼ ,, या ½ ,, ,,	१०)	,, ,,
⅛ ,, या ¼ ,, ,,	६)	,, ,,

कम-से-कम चौथाई कालम विज्ञापन छपानेवालों को माधुरी मुफ़्त मिलती है। साल-भर के विज्ञापनों पर उचित कमीशन दिया जाता है।

"माधुरी" में विज्ञापन छपानेवालों को बड़ा लाभ रहता है। कारण, इसका प्रत्येक विज्ञापन कम-से-कम २,००,००० पढ़े-लिखे भले आदमी और स्त्री पुरुषों की नज़रों से गुज़र जाता है। सब बातों में हिंदी की सर्वश्रेष्ठ पत्रिका होने के कारण इसका प्रचार बहुत हो गया है और उत्तरोत्तर बढ़ रहा है, एक प्रत्येक ग्राहक से माधुरी को लेकर पढ़नेवालों की संख्या ५०-६० तक पहुँच जाती है।

यह सब होने पर भी इसमें विज्ञापन-छपाई की दर अन्य अच्छी पत्रिकाओं से कम ही रक्खी है। कृपया शीघ्र अपना विज्ञापन माधुरी में छपाकर लाभ उठाइए। कम-से-कम एक बार परीक्षा तो अवश्य कीजिए।

निवेदक—मैनेजर "माधुरी" न० कि० प्रेस (बुकडिपो), हज़रतगंज, लखनऊ

वर्ष ६	पौष, ३०४ तुलसी-संवत् (१९८४ वि०)	संख्या ६
खंड १	जनवरी, सन् १९२८ ई०	पूर्ण संख्या ६६

उद्धव की बिदाई

धाई जित-तित तैं बिदाई हेत ऊधव की ,
गोपी भरीं आरति सँभारति न साँसुरी ;
कहै 'रतनाकर' मयूरपच्छ कोऊ लिए ,
कोऊ गुंज अंजली उमाहे प्रेम आँसुरी ।
भाव-भरी कोऊ लिए रुचिर सजाव दही ,
कोऊ मही मंजु दाबि दलकति पाँसुरी ;
पीतपट नंद जसुमति नवनीत नयो ,
कीरति कुमारी सुरवारी दई बाँसुरी ।

"रत्नाकर"

जैन-दर्शन में ज्ञान-मीमांसा

ज्ञान की उपयोगिता

ज्ञान का मूल्य यही है कि वह हमारे उद्देश्य की पूर्ति करने में सहायता दे। कोरा ज्ञान जिससे हमारा कुछ काम न निकले, निरर्थक है। बौद्ध और जैन दोनों इस बात में सहमत हैं। दोनों ही ज्ञान को इसी तरह मानते हैं। किसी वस्तु का महत्त्व इसी में है कि वह हमें अपना कार्य सिद्ध करने में अकुण्ठित सहायता दे। यह शक्ति ज्ञान में ही है क्योंकि उसके द्वारा हम अपनी उपस्थिति के अनुसार अपने को बना सकते हैं और अपनी भलाई करने और बुराई को रोकने की चेष्टा कर सकते हैं। वे बातें जिनसे ज्ञान उत्पन्न होता है, असंगत हैं; क्योंकि इन बातों से हमारा अर्थ सिद्ध नहीं होता। वह सिद्ध होता है ज्ञान से। इसलिये हम ज्ञान का ही उल्लेख करते हैं। हमें इतना जानना ही पर्याप्त है कि बाहरी पदार्थ विशेष अवस्थाओं में ऐसी विशेष योग्यता प्राप्त कर लेते हैं कि हमें उनका ज्ञान हो जाता है। हमें इस बात का विश्वास नहीं है कि वे हम में ज्ञान उत्पन्न करते हैं। हम तो इतना ही जानते हैं कि किसी विशेष अवस्था में तो हम एक वस्तु को जान लेते हैं और दूसरी अवस्था में हम उसे नहीं जान सकते। वस्तुओं की विशेष योग्यता जिससे हमें उनका ज्ञान उत्पन्न होता है, क्या है, इस विषय की खोज करने से हमारा कुछ संबंध नहीं। हमारा उद्देश्य तो केवल भलाई प्राप्त करना और बुराई छोड़ना है और वह उद्देश्य ज्ञान द्वारा पूरा हो जाता है, न कि बाहरी वस्तुओं की अवस्थाओं की खोज से। इसलिये हम इस खोज के झंझट में नहीं पड़ना चाहते। ज्ञान हमारी आत्मा को ज्ञाता के रूप में, और बाहरी विषयों को ज्ञेय रूप में बताता है। हम बौद्धों की तरह यह नहीं कहते कि पहले पहल जब हम बाहरी पदार्थों को देखते हैं तो उनका ज्ञान निर्विकल्प होता है और वस्तु के आकार, वर्ण, विस्तार तथा अन्य लक्षणों का ज्ञान प्रत्यक्ष नहीं है, बल्कि उत्प्रेक्षा से उत्पन्न होता है। इस बौद्ध सिद्धांत के अनुसार हमारा प्रत्यक्षज्ञान केवल निर्विकल्प है। हमारा अनुभव यह कहता है कि यथार्थ-ज्ञान एक ओर तो ज्ञाता को बताता है और दूसरी ओर ज्ञेय पदार्थों के विविध लक्षणों का यथार्थ रूप दिखाता है। इसलिये ज्ञान हमारे अर्थों की सिद्धि के लिये हमारा अविवक्षित और अत्यावश्यक साधन है। यह हम नहीं कहते कि ज्ञान स्वयं और तत्काल ही हमारी भलाई कर देता है। बात यह है कि वह हमें उन पदार्थों का स्वभाव बता देता है जो हमारे चारों तरफ हैं और हमारे उन कार्यों का होना संभव कर देता है जिनसे हम अपनी भलाई करें और बुराई से दूर रहें। यदि ज्ञान में यह बातें होतीं, तो ये कार्य असम्भव होते। ज्ञान का यही प्रमाण है कि वह हमारे सर्वोपरि अर्थों की प्राप्ति का सीधा, सरल, अविवक्षित और अनिवार्य साधन है। यथार्थ ज्ञान वही है जिसका खण्डन न हो। मिथ्याज्ञान वह है जो वस्तुओं को उन संबंधों में बतावे, जिनमें वे हैं ही नहीं। जब एक रस्सी धुँधली रोशनी में सर्प का भ्रम उत्पन्न करे, तो भ्रम इस बात का है कि रस्सी का सर्प बन गया है, अर्थात् जहाँ सर्प नहीं है वहाँ सर्प देखना। सर्प और रज्जु दोनों होते हैं, इसमें कोई मिथ्यापन नहीं है, लेकिन भूल यह है कि जहाँ केवल रज्जु ही है वहाँ सर्प दिखाई दे। जो पहले सर्प दिखाई देता था वह पीछे रज्जु निकला। अर्थात् पहला ज्ञान पीछे के ज्ञान से कट गया और झूठा साबित हुआ। इसलिये यह मिथ्याज्ञान है। अयथार्थज्ञान अनुभव में पदार्थ का मिथ्यारूप दिखाता है। यथार्थज्ञान पदार्थ का ऐसा सच्चा और ठीक रूप बताता है कि पीछे उसका कभी किसी प्रकार खंडन हो ही न सके। ज्ञान जो उपलब्धि के समय ज्ञानेन्द्रियों द्वारा अविवक्षित होता है अति स्पष्ट Clear निर्मल और विशेष Distinct होता है और प्रत्यक्ष ज्ञान कहलाता है, और जो ज्ञान अन्य प्रकार प्राप्त होता है वह ऐसा निर्मल, स्पष्ट नहीं होता और परोक्षज्ञान कहलाता है।

प्रत्यक्षज्ञान

बाहरी पदार्थ और उनके अनेक प्रकार के लक्षण जैसे रूप, वर्ण, आकार इत्यादि अर्थात् जैसे वे पदार्थ हैं वैसे के वैसे ही हमें प्रत्यक्ष ज्ञान से मालूम हो जाते हैं और ज्ञान का उदय आत्मा में भीतर से होता है, जैसे कि उसके ऊपर कोई आवरण पड़ा था, उसे हटाकर ज्ञानोदय हुआ है।

बाहरी पदार्थ जैसे हैं वैसे के वैसे प्रत्यक्षज्ञान से दिखाई देना और आत्मा के भीतर से ज्ञान का उदय ऐसे होना

जैसे कि उसके (आत्मा) के ऊपर से कोई पर्दा हट गया है—इन दोनों बातों में बौद्धों का मत भिन्न है। विज्ञानवादी बौद्ध कहते हैं कि बाहरी पदार्थ केवल ज्ञान रूप है, वास्तव में नहीं है; लेकिन जैन इन्हें (बाहरी पदार्थों को) वास्तव में विद्यमान मानते हैं, ज्ञान-मात्र ही नहीं। ज्ञानेंद्रियों द्वारा बाह्य पदार्थों का ज्ञान होता है। बाह्य भौतिक इन्द्रिय जैसे नेत्र, एक वस्तु है, और अदृश्य-शक्ति अर्थात् आत्मा की अवलोकन-शक्ति जिसे ही वास्तव में इन्द्रिय कहना चाहिए, दूसरी चीज़ है—दोनों में भेद समझना चाहिए। ऐसी पाँच ज्ञानेंद्रियाँ हैं। जैनों का कथन है कि चूँकि हमें अनुभव द्वारा पाँच प्रकार का ऐन्द्रिय ज्ञान मालूम होता है जो पाँचों इंद्रियों से संबंध रखता है, तो यह कहना बेहतर होगा कि वह आत्मा है जो अपने आप उन भिन्न-भिन्न प्रकार के ऐंद्रिय ज्ञान को उन बाह्य इन्द्रियों के मेल से ऐसे प्राप्त करती हैं जैसे कोई पर्दा हट जाने से होता है। इस आवरण के कारण ही ज्ञान का उदय पहले नहीं हो सका था। इस प्रकार बाह्य पदार्थों के ज्ञान की विधि मे किसी पृथक् और भिन्न इन्द्रिय के कार्य की आवश्यकता नहीं है, हालाँकि आत्मा में ऐंद्रियज्ञान का उदय नेत्र आदि इन्द्रियों के संसर्ग से होता है। आत्मा शरीर के सब अंगों के साथ है और दृष्टि-ज्ञान वह ज्ञान है जो आत्मा मे उसके उस भाग के द्वारा उत्पन्न होता है जो नेत्र के साथ संसर्ग रखता है। उदाहरण—देखिए मैं अपने सामने की ओर निगाह डालता हूँ और एक गुलाब के फूल को देखता हूँ। उसे देखने के पहले गुलाब का ज्ञान मेरे भीतर था, लेकिन ऐसे था जैसे किसी आवरण से ढका हुआ हो, और इसलिये वह अभिव्यक्त नहीं हो सकता था। पुष्प की ओर देखने के कार्य का अर्थ यह है कि ऐसी योग्यता पुष्प मे और मुझमें आ गई है कि पुष्प दिखाई देने लगा है और पुष्प के ज्ञान के ऊपर जो पर्दा पड़ा था हट गया है। जब वस्तुओं के देखने के ज्ञान का उदय होता है, तो यह नेत्र के साथ संसर्ग से होता है। हम कहते हैं कि हम नेत्र इन्द्रिय द्वारा देखते हैं लेकिन वास्तव मे हमारा अनुभव यह बताता है कि हमे केवल नेत्र से संसर्ग रखनेवाला देखने का ज्ञान हुआ है। अनुभव पृथक् पृथक् इंद्रियों को नहीं बताता इसलिये यह कहना अनुचित होगा कि उनका अस्तित्व आत्मा से पृथक् है। इस प्रकार जैन मनः इंद्रिय का पृथक् होना भी नहीं मानते क्योंकि मन भी अनुभव में नहीं आता। इसलिये उसका अस्तित्व भी व्यर्थ है, क्योंकि उसका काम भी आत्मा ही से चल जाता है। किसी वस्तु के देखने के ज्ञान का अर्थ यह है कि उस वस्तु के संबंध में आत्मा के ऊपर अज्ञान का जो पर्दा पड़ा था वह हट गया है। भीतर तो इस पर्दे का हटना मनुष्य के कर्म से होता है और बाहर ज्ञेय पदार्थ का होना प्रकाश ज्ञानेंद्रियों की शक्ति और ऐसी ही अन्य बातों से होता है। बौद्ध तथा अन्य अनेक भारतीय दर्शनों के विरुद्ध जैन सविकल्प-ज्ञान के पहले निर्विकल्प-ज्ञान का होना नहीं मानते। पदार्थों का ज्ञान सीधा भीतर से होता है और सविकल्प-ज्ञान होने के लिये पहले निर्विकल्प-ज्ञान होने की कोई आवश्यकता नहीं। बौद्ध कहते हैं कि पदार्थों का पहले निर्विकल्प-ज्ञान होता है और यही प्रत्यक्ष-ज्ञान का प्रामाणिक अंश है। उनके मत से सविकल्प-ज्ञान कल्पना, स्मृति इत्यादि मानसिक चीज़ों के लगने से होता है और इसलिये वह प्रत्यक्ष-ज्ञान का सच्चा बतानेवाला नहीं है।

सारांश—बाह्य पदार्थों का ज्ञान

१ प्रत्यक्ष ज्ञान में बाह्य-पदार्थ जैसे के तैसे दिखाई देना।

२ ज्ञान आत्मा के भीतर से उदय होता है जैसे पर्दा हटाकर निकला हो।

३ बाह्य पदार्थ वास्तव मे अस्तित्व रखते हैं, केवल ज्ञान रूप नहीं हैं, जैसा कि विज्ञानवादी कहते हैं।

४ आत्मा अपना पर्दा हटाकर ज्ञानेंद्रियों के संसर्ग से ज्ञान प्राप्त करती है।

५ भिन्न-भिन्न ज्ञानेंद्रियों तथा मन का अस्तित्व मानना भी व्यर्थ है क्योंकि एक आत्मा ही सबका काम दे देती है।

६. सविकल्प-ज्ञान के पहले निर्विकल्प-ज्ञान का होना जैसे कि बौद्ध मानते हैं, जैन नहीं मानते, क्योंकि इनके मतानुसार ज्ञान सीधा आत्मा से होता है। बौद्ध निर्विकल्प-ज्ञान को ही प्रत्यक्ष-ज्ञान का सच्चा अंश समझते हैं और सविकल्प-ज्ञान को कल्पना, स्मृति इत्यादि मानसिक वस्तुओं से होना कहते हैं।

परोक्ष-ज्ञान

जैसे प्रत्यक्ष-ज्ञान से पदार्थों का स्पष्ट रूप दिखाई देता है वैसा परोक्ष ज्ञान से नहीं प्रतीत होता, और यही

प्रत्यक्ष और परोक्ष-ज्ञान में भेद है। जैन कहते हैं कि आत्मा को ज्ञान प्राप्त होने में ज्ञानेंद्रियों का कोई काम नहीं पड़ता, इसलिये उनका कथन है कि प्रत्यक्ष और परोक्ष-ज्ञान में केवल इतना ही भेद है कि प्रत्यक्ष-ज्ञान से पदार्थों के जैसे स्पष्ट रूप और लक्षण दिखाई देते हैं वैसे परोक्ष-ज्ञान से नहीं। परोक्ष-ज्ञान के अंतर्गत अनुमान, स्मृति, पहचान, व्यंग इत्यादि हैं और यह ज्ञान प्रत्यक्ष-ज्ञान से कम स्पष्ट है।

अनुमान के विषय में जैनों का मत है कि पाँच वाक्यों का प्रयोग करना निरर्थक है जैसे—

१ प्रतिज्ञा	पर्वत पर अग्नि है।
२ हेतु	क्योंकि धुँआ है।
३ दृष्टांत	जहाँ कहीं धुँआ होता है वहाँ अग्नि होती है जैसे रसोईघर में।
४ उपनय	इस पर्वत पर धुँआ है।
५ निगमन	इसलिये उस पर अग्नि है।

केवल पहले दो वाक्यों से अनुमान बन जाता है। जब हम अनुमान करते हैं, तो पाँचों वाक्यों का प्रयोग नहीं करते। जो यह जानते हैं कि हेतु का प्रतिज्ञा (probandum) के साथ अभिन्न संबंध है। चाहे यह संबंध सहभाव-रूप से हो, या क्रमभाव-रूप से हो, पर्वत में हेतु यानी धूम होने के वाक्य से तत्काल निगमन पर आ जायँगे कि पर्वत पर अग्नि है। पंच वाक्यों का प्रयोग बच्चों को समझने के लिये है, न कि अनुमान करते समय मन की असली अवस्था को बताने के लिये। शब्द-प्रमाण के विषय में यह कहना है कि जैन वेद-प्रमाण नहीं मानते, लेकिन यह मानते हैं कि जैन-शास्त्रों से सम्यक् ज्ञान होता है, क्योंकि यह उन महान् पुरुषों के वाक्य हैं जिन्होंने संसार में गृहस्थ जीवन में रहने के पश्चात् सम्यक् चरित्र और सम्यक् ज्ञान के द्वारा रागद्वेष को जीत लिया था और सब अज्ञान को दूर कर दिया था।

ज्ञान

बौद्धों का कथन है कि किसी वस्तु के अस्तित्व का प्रमाण उस कार्य पर निर्भर है जो वह हमारे ऊपर कर सकता है। जो हमारे ऊपर प्रभाव डाल सके वह सत्य है, और जो न डाल सके वह असत्य है। उनके मतानुसार कार्य उत्पन्न करना ही अस्तित्व की परिभाषा है। प्रत्येक कार्य दूसरे कार्य से भिन्न होता है इसलिये उनका मत है कि भिन्न कार्यों की शृंखला होती है, अथवा जिसे वही वस्तु कहते हैं वह प्रतिक्षण नये द्रव्यों की कतार है। सब वस्तुएँ इसीलिये क्षणिक हैं।

जैन कहते हैं कि कार्य की उत्पत्ति को सत्ता का प्रमाण इसलिये मानते हैं कि हम केवल उसी चीज़ को कह सकते हैं जिसके अस्तित्व की सूचना वैसे अनुभव से मिले। जब हमें कोई अनुभव होता है, तो हम उसके मूल में पदार्थ का होना ख़याल करते हैं। बौद्धों का यह सिद्धांत है कि प्रत्येक कार्य जो हममें होता है प्रत्येक नये क्षण में ठीक वही नहीं है। और इसलिये सब वस्तुएँ क्षणिक हैं, यथार्थ नहीं हैं। क्योंकि अनुभव से सिद्ध होता है कि समस्त पदार्थ प्रतिक्षण में नहीं परिवर्तित हो जाता है। किंतु उसका कुछ भाग स्थायी बना रहता है और दूसरे भागों में परिवर्तन हो जाता है। जैसे सुवर्ण के अलंकार में सुवर्ण तो स्थायी रहता है लेकिन उसका रूप जैसे कर्णफूल, अथवा चूड़ी बदल जाता है। जब हमारा अनुभव ऐसा है, तो हम कैसे कह सकते हैं कि सब वस्तुएँ प्रतिक्षण बदल जाती हैं और नई चीज़ें प्रतिक्षण आ जाती हैं। हम कह सकते हैं कि सत्ता के विषय में विचार करने पर अनुभव से मालूम होता है कि उसमें स्थिति और परिवर्तन दोनों हैं—यानी पुराने धर्मों का जाना, और नये धर्मों का आना जिसे पर्याय कहते हैं। जैन कहते हैं कि अन्य मतों की भूल इसमें है कि वे अनुभव का अर्थ एक नय से निकालते हैं, लेकिन जैन अनुभव की जाँच सब नयों द्वारा करते हैं और उनसे जो सत्य प्राप्त होता है उसे मानते हैं, लेकिन इस सत्य को भी सर्वथा नहीं, बल्कि उपयुक्त सीमाओं और अनुबंधों के साथ। जैनों का कथन है कि अर्थक्रियाकारित्व सिद्धांत के प्रतिपादन में बौद्ध पहले तो अनुभव के प्रमाण पर अनुसंधान करने की चेष्टा दिखाते हैं, लेकिन शीघ्र ही एक पक्ष का समर्थन करते हैं और ऐसे अप्रामाणिक मानसिक विचारों में मग्न हो जाते हैं जो अनुभव के विरुद्ध हैं। यदि हम अनुभव को मानकर चलें, तो हम न तो आत्मा का त्याग कर सकते हैं और न बाह्य संसार का, जैसा कि कुछ बौद्ध करते हैं। ज्ञान जो हमें बाह्य जगत् के स्पष्ट लक्षण दिखाता है, इस बात का प्रमाण देता है कि ऐसा ज्ञान मुक्त ज्ञाता का आवश्यक अंश है। इस प्रकार ज्ञान मेरी ही आत्मा का उद्गार है। यह बात हम अनुभव में नहीं पाते हैं

कि ज्ञान हममें बाह्य जगत् से उत्पन्न होता है, लेकिन हम में ज्ञान का उदय होता है और उन पदार्थों के ज्ञान का जो हमें उसके द्वारा प्रतीत होते हैं। इस प्रकार ज्ञान का उदय वस्तुओं के कुछ बाह्य समुदायों के साथ-साथ होता है, जिनमें किसी प्रकार से यह योग्यता है कि किसी विशेष क्षण में वे ही दिखाई दें, दूसरे समुदाय नहीं। इस दृष्टि से देखने पर हमारे सब अनुभव हम में ही केंद्रीभूत होते हैं। क्योंकि कैसे भी क्यों न हो, हमारे अनुभव हमारे पास हमारी ही आत्मा के विकार-रूपों में आते हैं। ज्ञान आत्मा का लक्षण है, वह ज्ञानेंद्रियों से स्वतंत्र आत्मिक प्रादुर्भाव के रूप में प्रकट होता है। सांख्य-वालों के सदृश ज्ञान में चेतन और अचेतन विभाग नहीं मानने चाहिए। यह समझना चाहिए कि ज्ञान उन पदार्थों का प्रत्यय है जिन्हें वह प्रकट करता है जैसा कि सौत्रा-न्तिकों का मत है। क्योंकि पदार्थ के पदार्थत्व के प्रत्यय होने में ज्ञान भी पार्थिव यानी भौतिक हो जायगा। ज्ञान को आत्मा का निराकार गुण समझना चाहिए, जो सब वस्तुओं को स्वयं प्रकट करता है। लेकिन मीमां-सावालों का मत है कि सर्वज्ञान का प्रामाण्य स्वयं ज्ञान से ही सिद्ध है (स्वत प्रामाण्य)। यह मत अयथार्थ है। न्याय और मनोविज्ञान दोनों के द्वारा ज्ञान का प्रामाण्य वस्तुओं के साथ बाह्य समता (संवाद) पर निर्भर है। परंतु उन उदाहरणों में जहाँ पहले संवाद के ज्ञान से सम्यक् विश्वास उत्पन्न हो गया हो वहाँ बाह्य वस्तुओं के निर्देश के बिना भी प्रामाण्य का निश्चय मनोविज्ञान रीति से हो जाता है। बाह्य जगत् है और इसका प्रमाण अनुभव है। वह अनुभव-सिद्ध है। लेकिन यह मानना कि वह हम में ज्ञान उत्पन्न करता है, अप्रमाणिक कल्पना है, क्योंकि ज्ञान तो हमारी ही आत्मा का प्रादुर्भाव है।

कन्नोमल

अज्ञात कवि

कहूँ कबहुँ कोउ सुकवि एक लघुवयस दिव्य रह,
जो अकाल हो गयेहु दुरानन काल-गाल महँ।
ताको कोऊ मीत सप्रेम चिता के ठौरा;
रचेहु धाय लघुकाय एक माटी को चौरा।
तापै छवि-छवि आइ गिरे बहु पात पुराने,
यद्यपि सूखे तदपि परे सनेह सों साने।
ऐसो सुभग सुभाव सुकवि सुठि प्रतिभा-धारी,
सुनि कै जाकी मीचु सकल रोये नर-नारी।
कबहुँक कोऊ मीत कबहुँ प्रेमिका कोऊ तहँ;
आइ जगावत महा नींद-बस परेहु सुकवि जहँ।
कबहुँक दीपक धरत कबहुँ माला पहिरावत;
कबहुँक रोवत ताहि कबहुँ ताके गुन गावत।
जियत, रचत निज काव्य, मरत देखेहु सब कोई;
ऐसो को सुदरी ताहि सुनिकै नहिं रोई।
सुजन अपरिचित काव्य सुने आनंद-लीन भे;
नव जीवन के सौख्य भरे अति मृदुल मीन मे।
मरन जानि अज्ञात, सुने सोभा अँखियन की;
हाथ मींजि रहि गई सकल टोली सखियन की।
ते अखियाँ अति सुभग सकल थल देखन हारी;
जोति-हीन छवि-छीन भई दुख-दायक भारी।
दृश्य महागंभीर तथा आलोकित सपने;
बाल्य-काल में रहे सखा सुख-दायक अपने।
सकल दृश्य अभिराम गीत सुख-धाम प्रकृति के;
जिते सकल सुंदर सुभाव मधि में नभ-छिति के।
निज-निज डारि प्रभाव हिये पै ताहि सुकवि के;
रहे जगावत भाव स-चाव अनूपम छवि के।
गूढ़ जगत के भेद बहे बनि सुरसरि-धारा;
किंतु बुझी नहिं नेकु सुकवि की प्यास अपारा।
भूत काल को रहेहु सत्य शिव सुंदर जेतो;
जानेहु थोरेहि काल माहिं हिय में सब तेतो।
छूटी जब लरिकई अंग में जोबन आयो;
सत्य खोजिबे हेत भवन तजि बाहर धायो।
केते बीहड़ गहन तथा केते तरु सरि सर;
पावन पावन पाय पुनीत भये गुरु गिरिवर।
चलब पयादेहि सकल लाँघि कुस कंटक नाना,
जैसो निरमम रहत सदा सुकविन को बाना।
कहुं तरु तर कर बास कहूँ कोऊ कुटीर महँ;
होत जात आनंद सुकवि वह जात जहाँ तहँ।
जहाँ ठाढ़ गिरि तुंग अनल मुख ते उगिलत हैं,
जहाँ जाय घोरहर धुआँ के व्योम मिलत हैं।
जहाँ ठाढ़ हिम-शृंग दीह गजदंत समाना;
जहाँ व्योम ही व्योम, व्योम के इतर न आना।

जहँ वर तोयधि तुंग तरंग तटन सों लागै ।
जहाँ मत्त मातंग महन मथि 'संभ्रम' भागै ।
गह्वर गुंफित गुफा जहाँ गिरि बीच बिराजत ;
जहाँ तलैयन बीच तरैयन की छबि छाजत ।
जहाँ निसा में सोम सुधा बरसत अवनीतल ;
उदित इंद्र को चाप जहाँ प्रतिबिंबित कर जल ।
देखि व्योम को ठाट अचभो करिबो सीख्यो ;
देखि भूमि को साज प्रेम हित मरिबो सीख्यो ।
कहूँ विजन बन देखि हरेहु बहु खन तेहि थल पर ;
मिलेहु महा छवि-धाम मनहु कोउ सुंदर घर ।
कीर सारिका सकल धाय निज गीत सुनावहिं ;
इतर विहग लखि सांत रूप करते अब पावहिं ।
अरु, कुरंग जो भजत सूख पातन के खरके ;
लखि कवि को मृदु रूप तेऊ ठाढ़े नहिं सरके ।
वाके चंचल चरन चले वा ठौर जहाँ पर ;
कछु अतीत के खंड परे अवसेस तहाँ पर ।
जहाँ हस्तिनापूर पुरातन रहेहु मनोहर ;
इंद्रप्रस्थ जहँ रहेहु कबौं अवनीपर सुंदर ।
जहाँ रहेहु गढ़ कबहुँ हिंदु-पति पृथीराज को ;
जहाँ लोह की कील जु है आचरजु आज को ।
जहाँ कुतुब मीनार हिंदु-नृप निरमित सोहै ;
जहँ जोतिस को भौन राशि-माला को जोहै ।
जहाँ मुये नर मुये ख्याल धरि मुयी भीत पर ;
भूत-काल में लीन भये चढ़ि हार-जीत पर ।
जहाँ रहे यह दृस्य अदृस्य पुरातन छवि के ;
ठाढ़ रहे निसि-द्योस तहाँ देखत दृग कवि के ।
ज्यों-ज्यों चलि-चलि निकट निहारत नीके नयननि;
त्यों-त्यों कहत रहस्य काल अपनो मृदु बयननि ।
इत उत भ्रमत फिरत चलेहु कवि अन्य देस कहँ ;
पंच धार ह्वै बहेहु सलिल अति बेगवत जहँ ।
पार कियहु कुरुखेत खेत जो पानीपत को ;
जहाँ युद्ध को ठानि भयहु नहिं भूप निहत को ।
पार कियहु पंजाब जाय कसमीर पहुँच्यो ;
प्रकृति दृस्य जहँ विसद गहन सुंदर गिरि ऊँच्यो ।
जहाँ प्रफुल्ल प्रसून-समूह शिला के नीचैं ;
स-रव भृ ग उड़ि रहे स-मुद जिनके बिच-बीचैं ।
जहाँ नीर के तीर समीर केलि कर जल पै ;
चकित सुकवि रहि गयेहु थकित सोयहु ता थल पै ।

सोवत ही कवि लखेहु महा अद्भुत यक सपनो ;
जैसो कबहुँ न लखेहु भाग मान्यो धनि अपनो ।
लखेहु वाम दिसि बैठि एक सुंदर वर नारी ;
घाले घूँघट परी बदन पर कारी सारी ।
ताके मंजुल बचन भये भासित कवि कहँ तस ;
महा शांति के समय अनाहत नाद सुनेहु जस ।
अरु वाको संगीत सुने कल-कल धुनि के सम ;
मोहित ह्वै रहि गयेहु सकल भूलेहु बनि निर्मम ।
ज्ञान, सत्य अरु धर्म कर्म वाके सँगीत में ;
पूरि रहे सब ठौर तनु धरे दिव्य गीत में ।
लै प्रसाद माधुरी ओज रचना छंदन की ;
सुनिकै पूरी आस सुकवि सारद-नंदन की ।
पुनि आयो आलोक अलौकिक तिय के तन में ;
गूँजि रागिनी उठी और ही ढंग सों छन में ।
अरु वाको वेदना भरो स्वर कंठ मनोहर ;
जानि परेहु अति उग्र भयानक कोमल सुंदर ।
तिय के तन की बीन बजी अति सुंदरता से ;
ताहि बिलोकेहु सुकवि निपट विस्मय करुना से ।
ताके कोमल अंग लपेटे वायु-वसन में ;
केस खुले फहरात अजब आभास दसन में ।
चमकत चंचल नयन तथा कंपन अधरन में ;
देखि मनोहर रूप प्रेम बाढ़यो कवि-मन में ।
साँस रोकि कै बढ़यो विकंपित अंग सम्हार्यो ;
आलिंगन के हेतु युगल कर धाय पसार्यो ।
करके पसरत छूटि गयो सब जगत पसारो ;
अहह ! प्रेम यह अगम, अहह ! आलिंगन प्यारो ।
हाय! हाय!! अब कहाँ सुकवि वह छीयमान भो;
सीत-प्रात-रवि-किरनि-स्वाँस-सम-लीयमान भो ।
ठाढ़े मंदर भवन विटप वैसे के वैसे ;
चलत नदी को सलिल बहत प्रथमहिं रह जैसे ।
उदित भानु हू होत चंद्र हूँ करत प्रकासा ;
वही राग वह रंग वहै यह जगत तमासा ।
रचहिं चित्र जनि भूलि चतुर चित्रक यहि कवि को;
शिल्पी करहिं न उपल सुरूपक वाकी छवि को ।
नहिं वाको गुन-गान करहिं छवहिं रचि कवि-गन ;
भूलेहु इतिहास-कार नहिं समुझहिं निज धन ।
लज्जित कला विज्ञान ज्ञान सब होत अकारथ ;
चित्रन हेत चरित्र सुकवि को कोऊ न समरथ ।

केतो बढ़ो विषाद कहहु कैसो अपार दुख।
अब कोउ समरथ सुकवि जगत तें फेरत निज मुख।
सकल प्रकृति के खेल तथा मनुजन की करनी;
जीवन-मरन-रहस्य खोलि याही में बरनी।
"अनूप"

मालती-माधव

संस्कृत साहित्य में महाकवि भवभूति प्रसिद्ध नाट्यकार हैं। उनकी रचनाओं का माहात्म्य समय की अग्रगति के साथ बढ़ता ही जाता है। इतिहासवेत्ता जनरल कनिंघम के मतानुसार भवभूति का समय ईसा की सप्तम शताब्दी का शेष भाग है। विश्व-विश्रुत मालती-माधव इनकी ही कृति है। मालती-माधव उज्जयिनी में महाकालेश्वर महादेव के यात्रोत्सव पर खेला गया है। आज के लेख में उसी पर विचार किया जायगा।

१—संक्षिप्त कथा-वस्तु

अंक १

विदर्भराज के मंत्री देवराज का अपने पुत्र माधव को पद्मावती में आन्विक्षिकी (तर्क-शास्त्र) पढ़ने के लिये भेजना। वहाँ माधव का राजमंत्री की कन्या मालती पर मोहित होना। मालती और माधव का काम-मंदिर में अन्योन्य दर्शन तथा मालती के लिये माधव का बकुल-माला देना। मालती की सखी लवंगिका का बौद्ध संन्यासिनी कामंदकी से मालती और माधव के प्रेम का वर्णन करना।

अंक २

प्रवेशक में मंत्री भूरिवसु की दो दासियों का आपस में वार्तालाप। नर्मसचिव नंदन का महाराज द्वारा मंत्री पर अपने विचार के लिये दबाव डलवाना।

अंक ३

मालती और माधव की प्रेम-वृद्धि के लिये कामंदकी का दूती-कार्य करना। मकरंद का स्वयं घायल होकर (नंदन की भगिनी) मदयंतिका का व्याघ्र से रक्षा करना।

अंक ४

घायल मकरंद का बेहोश होना। उनकी दशा को देखकर माधव का भी मूर्छित होना। कामंदकी का उन पर कमंडलु का जल छिड़कना तथा मालती और उसकी सखियों का दोनों के ऊपर कपड़े की हवा करना। दोनों का होश में आना। मदयंतिका से नंदन के नौकर का यह कहना कि महाराज ने स्वयं आकर तुम्हारे भाई से कहा है कि राजमंत्री मेरी आज्ञा का उल्लंघन नहीं कर सकते। मालती को मैं तुम्हें देता हूँ। यह सुनकर मालती और माधव का दुखी होना।

अंक ५

अघोरघंट कापालिक का कराला देवी को बलि चढ़ाने के लिये मालती को ले जाना। माधव का वहाँ पहुँच जाना और मालती की रक्षा करना।

अंक ६

मालती के साथ नंदन के विवाहोत्सव का प्रबंध होना। रात्रि को मालती का पूजा करने के लिये देव-मंदिर जाना। वहाँ माधव के साथ मालती का विवाह कामंदकी के प्रयत्न से होना। नंदन का मालती-वेषधारी मकरंद से विवाह होना।

अंक ७

मालती-वेषधारी मकरंद से नंदन की सुरत-याच्ञा। नंदन को मकरंद का पीटना। मकरंद और मदयंतिका का विवाह।

अंक ८

मकरंद का राजकीय सेना से युद्ध। माधव का मकरंद की सहायता करना। कपालकुंडला द्वारा मालती का अपहरण।

अंक ९

विरही माधव का विलाप। मकरंद का आश्वासन। योगेश्वरी सौदामिनी का माधव को मालती का अभिज्ञान देना।

अंक १०

मालती को नष्ट जानकर माता-पिता का चिता में बैठने का इरादा करना। मालती-माधव का पुनर्मिलन।

२—चरित्र-चित्रण

मालती—'मालती-माधव' की नायिका है। वह लोक में अनुपम सुंदरी तथा परम गुणवती है। प्रकरण

में उसका कन्या-चरित ख़ूब ही प्रस्फुटित हुआ है। यद्यपि उसके हृदय पर माधव जैसे सुरूप युवा ने पूर्ण अधिकार कर लिया है। वह मानसिक-व्यथाओं से व्यथित है। स्वयं अपनी सखी लवंगिका से कहती है—"कि तीव्र मन-रोग विष की भाँति सम्पूर्ण शरीर में व्याप्त हो रहा है तथा निर्धन अग्नि की भाँति जला रहा है एवं बाह्य अवयवों को ज्वर की तरह व्यथित कर रहा है। इस दुरवस्था में न तात और न अंबा ही रक्षा कर सकती है। इस प्रकार मालती के संशयापन्न जीवन को देखकर लवंगिका मालती से माधव के सम्मिलन का प्रस्ताव करती है। तथापि मालती कहती है—"सहि ! दुइद-मालदीजीविदे ! साहसोवएणासिणि ! अवेहि" सखी, दूर हो। ऐसे साहस का उपदेश करती हो ! तुमको केवल मालती का ही जीवन प्रिय है। सम्पूर्ण कलाओं से चंद्र गगन में भले ही जले और कामदेव भले ही भस्म कर डाले। ये दोनो मृत्यु से अधिक कर ही क्या सकते हैं। श्लाघ्य पिता, निर्मल कुलवाली मेरी माता और निष्कलंक कुल ही मुझे प्रिय है। मुझको न अपना जीवन और न माधव ही प्रिय है।

ज्वलतु गगने रात्रौ रात्रावखण्डकलः शशी,
दहतु मदनः, किं वा मृत्योः परेण विधास्यतः ;
मम तु दयितः श्लाघ्यस्तातो जनन्यमलान्वया,
कुलममलिनं, न त्वेवायं जनो न च जीवितम्।

मालती के इन वचनों में एक प्रकार का तेज है। विशुद्ध कुल का गर्व है। माता, पिता के यश का विचार है। जो सर्वथा कुल-कन्यका के स्वभाव के अनुरूप है।

भारतीय समाज में कन्याओं को स्वयं विवाह करने का अधिकार नहीं है, किंतु पिता को है। ऐसी परिस्थिति में पिता जब कन्या का विवाह अनुरूप वर के साथ नहीं करता है; किंतु किसी बूढ़े बाबा के गले मढ़ देता है, कन्याएँ लज्जा-वश चाहे मुख से कुछ न कहें; किंतु उनके हृदय में घोर मर्मांतक व्यथा होती है। जिसका अनुभव वही करती हैं और मन-ही-मन अपने माँ-बाप को कोसती हैं। भवभूति ने मालती के चरित्र में इस विषय को ख़ूब दिखलाया है। राजा के अनुरोध से मालती के पिता भूरिवसु वृद्ध नंदन के साथ मालती का विवाह अंगीकार करते हैं। मालती मन-ही-मन कुढ़कर कहती है—'राआराहणं क्खु तादस्स गुरुअं ण उण मालदी। हा ताद ! तुम वि मम याम एव्वं त्ति सव्वधा जिदं भोअतिहाए।' तात मालती की अपेक्षा राजा को प्रसन्न करना बढ़कर समझते हैं। फिर कहती है कि तात आपने भी मेरे साथ . हा भोग-तृष्णा ने सबको जीत लिया। सचमुच मालती का यह वाक्य जितना गंभीर और मर्मस्पर्शी है कि भोग-तृष्णा ने सबको जीत लिया। अर्थात् दास मनोवृत्तिवालों की भोग-लिप्सा इतनी बढ़ जाती है कि वे अपने स्नेह को भी महत्त्व नहीं देते हैं।

पंचम अंक में कपालकुंडला और अघोरघण्ट कापालिक कराला देवी को बलि के लिये मालती को वध करना चाहते हैं। उस समय में भी—मृत्यु-समय में भी—नंदन-विवाह का शल्य मालती के हृदय से नहीं निकला है। पिता की निष्ठुरता का उपालंभ देखकर करुण क्रंदन करती है (हा ताद ! णिक्करुण ! एसो दाणि दे णरेंद चित्ताराहणोवअरणं जणो विवजह !) 'तात निष्करुण नरेंद्र के चित्त की आराधन-स्वरूप सामग्री मालती नष्ट हो रही है।'

मालती के उपर्युक्त वाक्य कितने करुणापूर्ण हैं। पढ़ते-पढ़ते मालती के प्रति समवेदना हो आती है। आँखों में आँसू आ जाते हैं। अयोग्य विवाह करनेवाले पिता के प्रति घोर घृणा उत्पन्न होती है (भवभूति कवि ने आज से १३०० वर्ष पूर्व जिस सामाजिक कुरीति का चित्र खींचा है, दुर्भाग्यवश वह कुरीति आज भी मौजूद है। वृद्धों की विवाहेच्छा पहिले से भी अधिक है) मालती के कन्या-चरित का यही चरम विकास है। उपन्यास की भाँति नाटक में नाट्यकार को स्वयं कहने का अधिकार नहीं होता है। पर किसी पात्र के उद्‌गार ऐसे होते हैं जो कवि के हृदय के होते हैं। यहाँ पर भवभूति ने मालती के द्वारा अपने भावों को अभिव्यक्त किया है।

पंचम और षष्ठ अंक में हम मालती के हृदय को कितना स्नेहयुक्त और कोमल पाते हैं। पंचम अंक में कपालकुंडला मालती से कहती है कि तेरा अंतिम समय है। यदि संसार में तेरा कोई प्रेमी है, तो क्षण भर याद कर ले। मालती माधव को स्मरण कर कहती है कि हा नाथ ! हा दयित !! हा माधव !!! मेरे परलोक जाने पर भी याद करते रहना, क्योंकि प्रियजन मरने पर भी जिसको याद किया करते हैं वह मृत होने पर भी जीवित है। षष्ठ

अंक में मालती का नदन के साथ विवाह होने जा रहा है। लवंगिका मालती के पास कुसुम-माला लेकर आती है। मालती कहती है कि इनका क्या होगा। वह आत्म-हत्या निश्चित कर लवंगिका से अंतिम उपदेश करती है कि—मेरे जीवन-प्रद जन का (माधव का) अनिर्वचनीय सुंदर शरीर मुझे मृत सुनकर किसी प्रकार नष्ट न होने पावे तथा मेरी कथा-मात्र शेष होने पर उनकी लोक-यात्रा शिथिल न होने पावे ; ऐसा यत्न करना। ऐसा करने पर ही मैं प्रिय सखी के प्रसाद से कृतार्थ हूँगी।

कामन्दकी

कामन्दकी पंडिता नीति-कुशला बौद्धसंन्यासिनी है। यद्यपि संसार से विरक्त होकर उसने सन्यास ग्रहण कर लिया है तथापि उसमें उच्चकोटि का परोपकार गुण है जिसके कारण वह सांसारिक कार्यों में भी भाग लेती है। मंत्री भूरिवसु गुप्त रीति से उसे मालती और माधव के विवाह कराने के लिये नियुक्त करते हैं। प्रकाश्य-रूप में वह राजा की आज्ञा का विरोध नहीं कर सकते हैं (देवरात, भूरिवसु और कामन्दकी, इन तीनों ने साथ-साथ विद्याध्ययन किया था। छात्रावस्था में ही देवरात और भूरिवसु ने प्रतिज्ञा की थी कि हम लोग आपस में अपत्य संबंध करेंगे) यह बात मालती तक नहीं जानती है। कामन्दकी का अपने मित्र भूरिवसु पर अनिर्वचनीय प्रेम है वह स्वयं अपनी शिष्या बुद्धरक्षिता से कहती है—कि मंत्रीजी ! मुझे कर्तव्य विषय में लगाते हैं। यह प्रेम का फल है, विश्वास का सार है, मेरे प्राण अथवा तप से यदि मित्र का कार्य हो जायगा, तो मैं अपने को कृतकृत्य समझूँगी। कामन्दकी में हम इतना साहस और नीति-चातुर्य देखते हैं कि वह राजा के विरुद्ध षड्यंत्र रचती है। मालती का माधव जैसे गुणी युवा के साथ विवाह सर्वथा समुचित है। वृद्ध नन्दन का राजा के द्वारा दबाव डालकर विवाह करना सर्वथा न्याय-विरुद्ध है। इस प्रकार गुप्त रीति से आन्दोलन करती है। चतुर्थ अंक में राजा के अनुचित दबाव का विरोध करती है। मकरन्द से कहती है कि महाराज को अपनी कन्या पर अधिकार है। मालती राजा की कन्या नहीं है। कन्या-दान में राजा लोग प्रमाण हैं। इस प्रकार धर्म-शास्त्र आज्ञा नहीं देता है। तृतीय अंक में कामन्दकी दूती का काम करती है। मालती के समक्ष माधव की शोचनीय दशा का वर्णन करती है कि मदनोद्यान-यात्रा के दिवस से माधव अत्यन्त विकल हैं। शरीर-संताप प्रति-दिन बढ़ता जाता है। उनको न अब चन्द्र-दर्शन में और न किसी प्रियजन के मिलने में आनन्द आता है। अत्यन्त अधीर होकर आन्तरिक ताप को प्रकट करते हैं। उनका प्रियंगु के समान श्यामवर्ण पीला और दुबला हो गया है। पर इससे उनका लावण्य और भी खरा हो गया है। मैंने सुना है और निश्चय है कि मालती ही इस कामोन्माद का हेतु है। फिर कहती है—कि माधव मृत्यु के लिये, जिस पर कोयल कूक रही है और बौर आया हुआ है ऐसे बाल आम्र-वृक्ष पर दृष्टि डालता है, बकुल-कुसुम (मौलसिरी) की गंध से सुगंधित वायु के मार्ग में लोटता है, दावाग्नि के प्रेम से भीगी हुई कमलिनी के पत्रों का उत्तरीय ओढ़ता है और बार बार चन्द्रमा की किरणों की शरण जाता है।

> धत्ते चक्षुर्मुकुलिनि रणत्कोकिले बालचूते
> मार्गे गात्रं क्षिपति बकुलामोदगर्भस्य वायोः ;
> दावप्रेम्णा सरसबिसिनीपत्रमात्रोत्तरीय-
> स्ताम्यन्मूर्तिः श्रयति बहुशो मृत्यवे चन्द्रपादान्।

मालती कामन्दकी का पहले माँ की तरह अदब करती थी। पर कामन्दकी उसे सखी के समान विश्वास-पात्र बना लेती है। पुष्पावचय से मालती जब थक जाती है, तब कामन्दकी कहती है कि श्रम से तेरी वाणी स्खलित हो रही है, अंग ढीले पड़ रहे हैं, मुख-चंद्र पर पसीने के बूँद आ गए हैं और नेत्र मुकुलित हो रहे हैं। अरी सुन्दर भौंहवाली ! तेरी तो थकावट से ऐसी दशा हो गई है जैसे प्रिय-दर्शन से होती है।

> स्खलयति वचनं ते संश्रयत्यङ्गमङ्गम्,
> ज्वलयति मुखचन्द्रोद्भासिनः स्वेदबिन्दून् ;
> मुकुलयति च नेत्रे सर्वथा सुभ्रु खेद-
> स्त्वयि विलसति तुल्यं वल्लभालोकनेन।

भवभूति ने कामन्दकी के चरित्र-चित्रण में बड़ा कौशल दिखलाया है। जब हम देखते हैं कि चीर-चीवर-धारिणी परिणतवयवाली कामन्दकी निसृष्टार्थ दूती का काम करती है, तो बड़ा विस्मय होता है और साथ ही यह भी मालूम होता है कि मानव-जीवन कितना गूढ़ और रहस्य-मय है। वेष और आकृति से मनोवृत्ति का जो अनुमान करते हैं वह धोखा उठाते हैं। भवभूति मानव-जीवन

की अच्छी व्याख्या करते हैं जो एक सच्चे नाट्यकार का प्रधान गुण है।

कामन्दकी ने 'अन्त शाक्ताः बहिःशैवाः' का जो जामा पहिना है वह केवल परोपकार और सदिच्छा के कारण ही। अतः कामन्दकी के प्रति दर्शकों का पूज्य-भाव ही है। कामन्दकी ने इस तरह समाज के सामने यह उच्च आदर्श उपस्थित कर दिया है कि वैयक्तिक मुक्ति की अपेक्षा प्राणियों पर दया करना भी कुछ कम महत्त्व नहीं रखता है। भवभूति ने भी मकरन्द द्वारा संकेत किया है। मकरन्द कामन्दकी से कहते हैं कि— "भगवति! शिशुजनों पर आपका स्नेह और दया संसार से विरक्त भी आपके चित्त को द्रवीभूत करती है। इसीलिये मालती और माधव के विवाह के लिये आपका यत्न है। जो सर्वथा सन्यास-सुलभ आचार के प्रतिकूल है—

दया वा स्नेहो वा भगवति निजेऽस्मिन् शिशुजने,
सर्वथा संसाराद्विरतमपि चित्तं द्रवयति।
अतश्च प्रव्रज्यासमयसुलभाचारविमुख
प्रसक्तस्ते यत्नः प्रभवति . ...

अंत में मालती पर कामन्दकी का जादू चल जाता है। वह वासवदत्ता, उर्वशी आदि के इतिहासों का वर्णन कर प्रभाव डालती है और गान्धर्व-विवाह करवा देती है। कामन्दकी सन्यासिनी होने पर भी संसारिणी है और साध्वी होने पर भी कूट-नीतिज्ञ है। मालती-माधव की कामन्दकी सर्वस्व है। मालती-माधव से कामन्दकी यदि निकाल दी जावे, तो प्रकरण का मज़ा किरकिरा हो जायगा।

माधव

माधव प्रस्तुत प्रकरण के नायक हैं। वह शूर-वीर सुरूप युवक छात्र है। कुण्डिनपुर से पद्मावती को आन्वीक्षिकी के अध्ययन के लिये आए हैं। वहा पद्मावती के राजमंत्री की कन्या के नयन-बाणों के लक्ष्य हो जाते हैं। विद्यार्थी का युवती के नयन-बाणों का लक्ष्य होना नैतिक पतन अवश्य है। किंतु भवभूति ने माधव-चरित में नैतिक गुणों का जानकर अधिक विकास नहीं किया है। कारण कि उन्होंने नाटक को छोड़कर प्रकरण विषय चुना है। प्रकरण उदात्त-चरित अङ्कित करना आवश्यक नहीं है। अतएव भवभूति ने माधव का देव-चरित न लिखकर मानव-चरित लिखा है। माधव के चरित में शौर्य गुण खूब प्रस्फुटित हुआ है। उन्होंने अघोरघण्ट कापालिक-सदृश नर-पिशाच का वध किया है जो एक निर्दोष अबला की हत्या करना चाहता था। इसके अतिरिक्त मकरंद के ऊपर क्रुद्ध होकर जब राजा ने नगर रक्षकों को आक्रमण के लिये भेजा है उस समय उन्होंने अपने मित्र की सहायता की है और अपने बाहु-बल से नगर-रक्षकों को परास्त किया है। माधव उच्चकोटि के प्रेमी हैं। वह नवम अङ्क में मालती के विरह में पागल होजाते हैं। कभी मेघ और पौरस्त्य पवन से मालती को पूछते हैं और कभी मूर्च्छित हो जाते हैं।

मकरन्द

मकरन्द माधव का बाल्य-सखा है। माधव की भाँति वह भी शूर-वीर अथ च प्रेमी है। नदन की भगिनी मदयन्तिका को चाहता है। पिंजड़े से छूटे हुए शेर से अपनी प्रेयसी मदयन्तिका की रक्षा करता है। वीरता उसमें इतनी है कि वह एकाकी बहुसंख्यक नगर-रक्षकों से मुक़ाबिला करता है। मकरंद के चरित में सबसे अधिक गुण जो विकसित हुआ है, वह है माधव में अनिर्वचनीय अकृत्रिम प्रेम। मकरंद माधव के बिना क्षण भर भी जीना नहीं चाहता है। माधव मालती के विरह में मूर्च्छित होते हैं। उस समय मकरंद के मनोगत भावों से माधव के प्रति स्नेह प्रकट होता है। मकरंद कहता है कि— "तत् किन्नु खलु माधवास्तमयसाक्षिणा मया भवितव्य मिति जीवामि" मुझे माधव के मरण का साक्षी होना चाहिए? मैं जीवित हूँ! पुनः पर्वत-शिखर से पाटलावती में कूदना चाहता है, पुनः मूर्च्छित माधव को आलिङ्गन कर पुकारता है कि—हा वयस्य! हा विमल-विद्या निधे! गुण गुरो! माधव! यह मकरंद के बाहु का अन्तिम आलिङ्गन है। मकरंद तुम्हारे बिना क्षण भर भी जीवित रहेगा! ऐसा ख़याल न करना, हे पुण्डरीकमुख! मैं जन्म से तुम्हारे साथ रहा हूँ, यहाँ तक कि माता का भी दूध साथ ही साथ पिया है, तो कोई कारण नहीं है कि तर्पणाञ्जलि भी साथ-साथ न पिऊँ।

आजन्मनः सह निवासितया मयैव
मातुः पयोधरपयोऽपि मया निपीय।
त्वं पुण्डरीकमुख! मन्नयया निःस्न-
मेको निवापसलिलं पिबसीत्ययुक्तम्।

भगवति! पाटलावति (पाटलावती नदी का नाम है)

प्रिय सुहृद् का जहाँ जन्म हो, वहीं मेरा भी हो और मैं पुनः माधव का अनुचर होऊँ।

प्रियस्य सुहृदो यत्र मम तत्रैव सम्भवः।
भूयादमुत्र भूयेऽपि भूयासमनुमत्सरः॥

अवान्तर चरितों की समीक्षा विस्तार-भय से नहीं की जाती है।

३. नाटकीय उत्कर्ष

नाटक का आख्यान-भाग ऐतिहासिक या पौराणिक वृत्त के आधार पर होता है। नाटक में पाँच अंक से लेकर दस अंक तक होते हैं। प्रख्यातवंश धीरोदात्त नायक होता है। एक रस प्रधान रहता है, अन्य रस गौण होते हैं। नाटक में बीज, विंदु, पताका, प्रकरी और कार्य यह पाँच अर्थ प्रकृतियाँ होती हैं। अर्थ प्रकृतियाँ नाटक के उद्देश्य की सिद्धि के लिये कारण स्वरूप है। कार्य अर्थात् व्यापार शृंखला की पाँच अवस्थाएँ होती हैं—आरंभ, यत्न, प्राप्त्याशा, नियताप्ति और फलागम। इन्हीं पाँच अवस्थाओं के योग से मुख, प्रतिमुख, गर्भ, विमर्श और उपसंहार संधियाँ होती हैं। जिनसे नाटक-रचना का विभाग होता है। नाटक में ३६ लक्षण और ३३ अलंकार होते हैं। प्रकरण नाटक के समान होता है। अन्तर इतना ही है कि नाटक का कथा-भाग पौराणिक या ऐतिहासिक घटना के आधार पर होता है। किंतु प्रकरण में लौकिक वृत्त के आधार पर होता है। शेष नाटक की भाँति होता है। 'मालती-माधव' प्रकरण है। इसमें शृंगार-रस मुख्य है। अन्य रस गौण हैं। माधव धीर प्रशान्त नायक है।

'मालती-माधव' में अर्थ प्रकृतियाँ

मालती और माधव के विवाहस्वरूप उद्देश्य का साधक अन्योन्य अनुराग बीज[1] है। द्वितीय अंक में नंदन के लिये मालती के देने का वर्णन है। जिससे कथा के अर्थ का विच्छेद होना है। पर माधव की (मालती की) दर्शनाभिलाषा विच्छेद होने से बचाती है। इसलिये विंदु[2] है। मकरंद और मदयंतिका का विवाह आदि प्रासंगिक वृत्त पताका[3] है। मकरन्द पर राजकीय सैनिकों का आक्रमण रूप एक देशीय वृत्त प्रकरी[1] है। मालती-रूप लाभ कार्य[2] है।

पाँच अवस्थाएँ

'मालती-माधव' में मालती और माधव के विवाह-रूप फल-सिद्धि के लिये कामन्दकी का औत्सुक्य आरंभ नामक अवस्था है। दोनों के समागम के लिये कामन्दकी का उद्योग यत्न नामक द्वितीय अवस्था है। नंदन के विवाह के आयोजन से अपाय (विघ्न) की आशंका है। पर कामन्दकी के व्यापार से उपाय की भी संभावना है। अतः प्राप्त्याशा नामक तृतीय अवस्था है। पुनः कामन्दकी की असाधारण चेष्टा से सफलता का निश्चय है। अतः नियताप्ति नामक चतुर्थ अवस्था है। माधव को मालती मिल गई है इसलिये फलागम नामक पंचम अवस्था है।

पाँच संधियाँ

'मालती-माधव' में प्रथम अंक से लेकर द्वितीय अंक तक मुख-संधि[3] है। इन अंकों में प्रारंभ नामक अवस्था (कामंदकी के औत्सुक्य) के साथ मालती और माधव के परस्पर अनुराग रूप बीज की उत्पत्ति हुई है। तृतीय अंक से लेकर चतुर्थ अंक तक प्रतिमुख संधि[4] है। इनमें कामंदकी माधव के काम-जनित विकारों का वर्णन करती है और लवंगिका कामंदकी से मालती की दयनीय दशा का वर्णन करती है। जिससे परस्पर समागम-रूप फल का प्रधान उपाय (अनुराग) दिखलाई पड़ता है, किंतु नंदन के विवाह से वह तिरोहित हो जाता है। पंचम अंक से लेकर सप्तम अंक तक गर्भसंधि[5] है। इनमें विवाह-रूप

---

१ बीज—फल का मुख्य हेतु जिससे अनेक कार्य उत्पन्न होकर फलते हैं, बीज कहलाता है।

२ विंदु—कथा के अर्थ के विच्छेद होने पर, जो विच्छेद से बचाता है उसे विंदु कहते हैं।

३ पताका—प्रासंगिक वृत्त को पताका कहते हैं।

१ प्रकरी—एकदेशीय चरित को प्रकरी कहते हैं।

२ कार्य—जिसके लिये उपायों का आरंभ किया जाता है और जिसकी सिद्धि के लिये सामग्री एकत्र की जाती है उसे कार्य कहते हैं।

३ मुख—आरंभ अवस्था के साथ जिसमें अनेक अर्थ और रसों की अभिव्यंजक बीज-समुत्पत्ति हो उसे मुखसंधि कहते हैं।

४ प्रतिमुख—मुख-संधि में रहनेवाले मुख्य उपाय का निदर्शन कहीं लक्ष्य रीति पर हो और कहीं अलक्ष्य रीति पर उसे प्रतिमुखसंधि कहते हैं।

५ गर्भसंधि—प्रथम उत्पन्न फल के उपाय का जहाँ उद्भेद हो तथा बारबार ह्रास और अन्वेषण हो वहाँ गर्भसंधि होती है।

फल के प्रधान उपाय (अनुराग) का (हा तात ! निष्करुण नरेंद्र के चित्र की आराधन-स्वरूप सामग्री मालती नष्ट हो रही है) इससे ह्रास है, तथा "नेपथ्य में ओ मालती के ढूँढनेवाले सैनिकों" इससे अन्वेषण है।

मालत्या प्रथमावलोकनदिनादारभ्य विस्तारिणो
भूय स्नेहविचेष्टितैर्मृगदृशो नीतस्य कोटिं पराम् ।
अद्यन्त खलु सर्वथास्य मदनायासप्रबधस्य मे
कल्याणं विदधातु वा भगवतानीतिर्विपर्येतु वा ।

इससे उद्भेद है। अमात्य भगवती से कहते हैं कि "नंदन के भेजे हुए आभूषण मालती को देवता के सामने पहनाना चाहिए" इससे पुनः ह्रास है। "मेरी सखी बहिन, प्रिय सखी, लवंगिका ! तुम्हारी प्रियसखी आज मरने के लिये तैयार है। बचपन से मेरा तुम्हारे ऊपर परम विश्वास रहा है। उसी विश्वास के अनुसार मैं तुम्हारे गले में बाँह डाल कर प्रार्थना करती हूँ कि मुझे माधव का मुखारविंद दिखला दो। जो समग्र मांगलिकों से बढ़कर सौभाग्य-लक्ष्मी को देनेवाला है" इससे पुनः अन्वेषण है। अष्टम अंक से लेकर नवम तक विमर्श[1] संधि है। क्योंकि इनमें मालती-माधव के विवाह-रूप मुख्य फल का परस्पर अनुराग-स्वरूप उपाय एकत्र स्थिति द्वारा गर्भसंधि से अधिक विकसित हुआ है। दशम अंक में उपहारसंधि[2] है। यहाँ पर अनुराग-रूप बीज के सहित मुख आदि संधियों का आयोजन मालती के लाभ के लिये किया गया है। लेख-विस्तार-भय से लक्षण और नाट्यालंकार और सध्यंग नहीं दिखलाए जाते हैं।

उपर्युक्त संस्कृत के अलंकार-शास्त्रों का नियम सामंजस्य दिखलाया गया है। किंतु आधुनिक नाट्य-साहित्य के लेखकों ने नाटक के जिन विशिष्ट गुणों का उल्लेख किया है 'मालती-माधव' में प्रायः उनका भी समावेश है। 'मालती-माधव' को बने हुए हज़ार वर्ष से भी अधिक हुए। रुचि और विचार में महान् परिवर्तन हो गया। पर 'मालती-माधव' नवीन समालोचना की कसौटी पर भी खरा उतरता है। बंग-वसुधरा-भूषण स्वर्गीय राय द्विजेंद्रलाल नाटक में निम्न लिखित गुणों का होना आवश्यक बतलाते हैं। घटना का ऐक्य, घटना की सार्थकता, घटनाओं का घात-प्रतिघात, गति, कवित्व, चरित्र-चित्रण और स्वाभाविकता। 'मालती-माधव' का आरंभ प्रेम-विषय को लेकर हुआ है और अंत तक यही रहा है। नायक और नायिका का अन्योन्य अनुराग अंकुरित, पल्लवित एवं परिणत हुआ है। अतः इसमें घटना का ऐक्य है। 'मालती-माधव' में संपूर्ण चरित्र नायक और नायिका के प्रणय-विकास के लिये अवतरित हुए हैं जिनमें कुछ साधक और कुछ बाधक हैं। कामंदकी का उद्योग, लवंगिका की सहायता, सौदामिनी की रक्षा आदि समागम के साधक हैं। नंदन का राज्य के द्वारा मालती की याञ्चा कराना, नंदन के विवाह का आयोजन, अघोरघंट का मालती की बलि का इरादा तथा कपालकुंडला का अपहरण बाधक हैं।

इनमें यदि कोई अंश पृथक् कर दिया जाय, तो परिणाम ठीक रूप में वर्णित नहीं होगा। अतः घटना की सार्थकता भी है। मालती और माधव का प्रेम ज्योंही परिणत होता है त्योंही नंदन-विवाह-रूप विघ्न आकर उपस्थित हो जाता है। उसके बाद मालती और माधव का जब व्याह होता है, तब मालती को कपालकुंडला उड़ा ले जाती है। इस तरह 'मालती-माधव' में घटनाओं की घात-प्रतिघात गति भी है। चरित्र-चित्रण दिखलाया जा चुका है। कवित्व का वर्णन आगे किया जायगा। 'मालती-माधव' में वर्णित घटनाएँ प्रायः स्वाभाविक ही है। अतः कहा जा सकता है कि इसमें स्वाभाविकता भी है। पंचम अंक में पिशाचों का वर्णन और नवम अंक में सौदामिनी की 'आकर्षिणी सिद्धि' का वर्णन है जो आज कल के विचारों के अनुसार चाहे अस्वाभाविक हो। किंतु जिस समय 'मालती-माधव' लिखा गया है उस समय जनता का इन बातों पर विश्वास था। अतः अपने समय के विश्वास और विचारों का दिखलाना दूषण नहीं वरन् भूषण ही है। नाटक में अंतर्द्वंद्व प्रधान गुण होता है। नाटक के किसी पात्र के हृदय में परस्पर विरोधिनी वृत्तियों के संघर्ष को अंतर्द्वंद्व कहते हैं। 'मालती-माधव' में यह गुण प्रस्फुटित नहीं हुआ है। हाँ, एक जगह कुछ

---

१ विमर्श—मुख्य फल का उपाय जहाँ गर्भसंधि से अधिक विकसित हो, किंतु वह शाप आदि से विघ्न-युक्त हो, उसे विमर्शसंधि कहते हैं।

२ उपसंहार—मुख आदि अर्थ इधर उधर जो बिखरे हुए है, उनका एक प्रयोजन के हेतु आयोजन हो, वहाँ उपसंहार-संधि होती है।

अवश्य अंकुरित हुआ है। कामंदकी मालती से विवाह के लिये अनुरोध करती है। तब वह "हा तात! हा अंब!" कहती है। जिससे अनुमान होता है कि उसके हृदय में अंतर्द्वंद्व उपस्थित हुआ है कि मैं विवाह करूँ, या न करूँ। विवाह करूँगी, तो माता-पिता क्या कहेंगे। अगर नहीं करती हूँ, तो नंदन के साथ ब्याह हुआ जाता है। किंतु शीघ्र ही वह विवाह करना स्वीकार कर लेती है। अत अंतर्द्वंद्व स्पष्ट नहीं हुआ है।

४ कवित्व-कौशल

कविता का क्षेत्र इतना विस्तृत है कि ठीक-ठीक आज तक उसकी परिभाषा नहीं हो सकी है। पर संस्कृत के सभी आचार्य प्राय इस मत से सहमत हैं कि 'रसमयी कविता' उत्कृष्ट कविता कहलाती है। कविता के रस प्राण-स्वरूप होते हैं। 'मालती-माधव' में रस-चमत्कार अच्छा है। स्वय भवभूति अपने मुख से कहते हैं कि 'मालती-माधव' मे रसों का अभिनय बाहुल्य से किया गया है—"भूम्ना रसानां गहना प्रयोगा"।

पाठकों को कुछ शृंगार-रस के पद्यों का दिग्दर्शन कराया जाता है। भवभूति आलंबन-विभाव स्वरूप मालती का वर्णन करते हैं कि वह कुमारी सौंदर्य-निधि की अधिष्ठात्री देवता है, या सौंदर्यतत्त्व की निधि है। मालूम होता है कि उस सुंदरी को स्वय रतिपति भगवान् ने चद्र, सुधा, मृणाल, ज्योत्स्ना आदि उपादानों से बनाया है (चद्र से मुख, सुधा से अधर, मृणाल से बाहु और ज्योत्स्ना से कान्ति बनाई है)। वेदाभ्यास-जड ब्रह्मा भला ऐसी सुंदरी कैसे बना सकता था।

सा रामणीयकनिधेरधिदेवता वा
सौन्दर्यसारसमुदायनिकेतनं वा।
तस्या सखे नियतमिन्दुसुधामृणाल-
ज्योत्स्नादि कारणमभून्मदनश्च वेधा।

आगे चलकर मदन कथा से व्यथित मालती का चित्र खींचते हैं कि कृशांगी मालती के अंग मसले हुए मृणाल की तरह मलिन हो गए हैं। कपोल हाथी दाँत के नए टुकड़े की तरह श्वेत हो गए है, तथा निष्कलंक कलाधर की लक्ष्मी को धारण कर रहे हैं। वह सखियों के बड़े अनुरोध से शृंगार आदि करने में प्रवृत्त होती है।

परिमृदितमृणालीम्लानमङ्गं प्रवृत्ति
कथमपि परिवारप्रार्थनाभि क्रियासु।
कलयति च हिमांशोर्निष्कलङ्कस्य लक्ष्मी-
मभिनवकरिदन्तच्छेदपाण्डु कपोल।

दुबले अंगों की मृणाल से, एवं श्वेत कपोल की हाथी-दाँत से उपमा हृदय-ग्राहिणी है। उस पर निदर्शनालंकार द्वारा चंद्रलक्ष्मी का बिंब-प्रतिबिंब-भाव अपूर्व चमत्कार को पैदा कर रहा है।

पहले-पहल मालती और माधव की जब चार आँखें होती हैं उस समय नेत्र-व्यापारों का भवभूति इतना सजीव वर्णन करते हैं जिससे अनुमान होता है कि भवभूति बड़े रसिक रहे होंगे। उनको स्वय ऐसी घटनाओं का अनुभव होगा। माधव मकरंद से कहते हैं कि मैं मालती के विविध दर्शनों का पात्र हुआ। मालती की विशाल दृष्टि पहले मुझे देखकर निश्चल हो गई। बाद को (मेरे अंगों को गौर से देखने के लिये) विकसित हुई। जिससे भ्रूलताएँ उन्नत हो गई। फिर (दृष्टि) अनुराग से चिकण और मुकुलित (अत्यंत आनद के कारण) हो गई। मेरे ताकने पर (लज्जावश) कुछ आकुंचित (सिकुड़) हो गई।

स्तिमितविकसितानामुल्लसद्भ्रूलतानां
मसृणमुकुलितानां प्रान्तविस्तारभाजाम्।
प्रतिनयननिपाते किंचिदाकुञ्चितानां
विविधमहमभूवम्पात्रमालोकितानाम्।

फिर कहते हैं कि पक्ष्मलाक्षी (जिसके नेत्रोंमें बड़ी-बड़ी और घनी बरुनी हैं) के कटाक्षों ने मेरे अशरण हृदय को लूट लिया है, घायल किया है, निगल लिया है और उखाड़ लिया है। वे कटाक्ष अलस (लज्जा से लौटे हुए) वलित (पुन देखने की इच्छा से तिरछे चलाए हुए) मुग्ध (देखने मे सीधे पर भावों से भरे हुए) निष्पद (टकटकी लगाए हुए) और मद थे।

अलसवलितमुग्धस्निग्धनिष्पन्दमन्दै-
रधिकविकसदन्तर्विस्मयस्मेरतारै।
हृदयमशरणं मे पक्ष्मलाक्ष्या कटाक्ष-
रपहृतमपविद्धं पीतमुन्मीलितञ्च।

माधव की विरहानुभूति

कपालकुंडला मालती को हर ले गई है। विरह-विधुर माधव पागल हुए जाते हैं। कहते हैं कि चण्डि! मैं तुम्हारे विषय में अमंगल-कल्पनाएँ करता हूँ। और तुम्हे हँसी सूझती है। बस, बहुत हँसी हो गई। तुम

प्रेम-परीक्षा कर रही हो। मैं तो बहुत बार परीक्षित हो चुका। प्रिये! उत्तर दो। अंदर-ही-अंदर मेरा हृदय विह्वल हो घूम रहा है। बड़ी निर्दया हो।

> किमपि किमपि शङ्के मंगलेभ्यो यदन्य-
> द्विरमतु परिहासश्चण्डि ! पर्युत्सुकोऽस्मि।
> कलयसि कलितोऽहं वल्लभ देहि वाचं
> भ्रमति हृदयमन्तर्विह्वलं निर्दयासि।

फिर सोचते हैं कि इस जगल में मालती के पास किसे दूत बनाकर भेजूँ? मेघ की तरफ देखकर विचार करते हैं कि इसे ही दूत बनाकर भेज दूँ। वेग से उठकर मेघ को हाथ जोड़ते हैं और कहते हैं कि सौम्य! क्या प्रिय-सहचरी विद्युत् तुम्हारा आलिंगन करती है? (मेरी तरह क्या तुम भी तो सहचरी-शून्य नहीं हो) क्या प्रेमी चातक प्रसन्नमुख होकर तुम्हारी सेवा करते हैं? (मेरी तरह मित्र-शून्य तो नहीं हो, यद्यपि उनके मित्र मकरंद साथ ही है तथापि वह उन्मादवश ऐसा कहते हैं) क्या प्राच्य पवन (पुरवाई) अंगमर्दन से तुम्हें सुखी करती है? (मेरी तरह तुम भी तो दास-शून्य नहीं हो) क्या इंद्र धनुष तुम्हारे सौंदर्य को बढ़ाता है? (मेरी तरह आभूषण-शून्य तो नहीं हो)।

> कच्चित् सौम्य प्रियसहचरी विद्युदालिङ्गति त्वाम्?
> आविर्भूतप्रणयसुमुखाश्चातका वा भजन्ते?
> पौरस्त्यो वा सुखयति मरुत् संवाहनाभिः?
> बिभ्रन् सुरपतिधनुर्लक्ष्म लक्ष्मीं तनोति?

भवभूति मे भावुकता अधिक है। वह अपने पात्रों को विरहावस्था मे मूर्च्छित और उन्मत्त बना देते हैं। विरह-वर्णन तो उन्हीं का हिस्सा है। यहाँ पर आठवीं दशा (उन्माद) काम की दिखलाई है।

माधव मेघ से संदेश कहते हैं कि भगवन् जीमूत! सौभाग्य वश घूमते हुए आपको मेरी प्यारी मालती दिखलाई दे, तो पहले आश्वासन देना; पुनः मेरी अवस्था का वर्णन करना। लेकिन, खबरदार संदेश कहते हुए आशा-तंतु न तोड़ देना, क्योंकि केवल आशा-तंतु ही किसी तरह उसकी प्राण-रक्षा करता है।

> दैवात् पश्येर्जगति विचरन्निच्छया मत्प्रिया चेत्
> आश्वास्यादौ तदनु कथयेर्माधवीयामवस्थाम्।
> आशातन्तुर्न च कथयतात्यन्तमुच्छेदनीयः
> प्राणत्राणं कथमपि करोत्यायताक्ष्याः स एकः।

फिर कहते हैं, मेरी प्रिया कहीं न होगी। क्योंकि वह लुट गई है। उसके अंग भी जंगल में बट गए हैं। देखो, मेरी प्यारी की कांति नवीन लोध्र-कुसुमों में है, दृष्टि हरिणियों में है, गति गजों में है और नम्रता लतिकाओं में है।

> नवेषु लोध्रप्रसवेषु कान्तिर्दृशः कुरङ्गेषु गतं गजेषु।
> लतासु नम्रत्वमिति प्रमथ्य व्यक्तं विभक्ता विपिने प्रिया मे।

कभी कहते हैं कि मैं प्रिया को किससे पूछूँ? मेरी तो कोई सुनता ही नहीं है! पता जानने के लिये किससे प्रार्थना करूँ? देखो—अपनी पूँछ को छितराए नाचते हुए नीलकंठ (मयूर) अपनी वाणी से मेरी वाणी को रोक लेता है, चकोर जिसकी आँखें मद से घूम रही हैं, अपनी कांता चकोरी के पीछे दौड़ रहा है और वानर फूलों की धूल से वानरी के गालों को रँग रहा है।

> केकाभिर्नीलकण्ठस्तिरयति वचनं ताण्डवादुच्छिखण्डः
> कान्तामन्तः प्रमोदादभिसरति मदभ्रान्ततारश्चकोरः।
> गोलाङ्गूलः कपोलं छुरयति रजसा कौसुमेन प्रियायाः
> किं याचे यत्र तत्र ध्रुवमनवसरग्रस्त एवाभिभावः।

उपर्युक्त भवभूति की कल्पनाओं को पढ़कर कवि शेक्सपियर की यह उक्ति "The Lunatic, the lover and the poet are of imagination all compact". (पागल कवि और प्रेमी इनकी कल्पनाएँ एकसी होती हैं) सत्य मालूम होती है। भवभूति ने 'मालती-माधव' में वीभत्स, भयानक, करुण आदि रसों का भी वर्णन कर अपनी सर्वतोन्मुखी प्रतिभा का परिचय दिया है। भवभूति हास्य-रस का वर्णन अवश्य नहीं करते हैं, उनका स्वभाव दार्शनिकों की भाँति गंभीर है। इसीलिए उन्होंने अपने नाटकों में विदूषक का स्थान ही नहीं रखा है। सब रसों के उदाहरणों में लेख का कलेवर बहुत बढ़ जायगा। वीभत्स रस का एक उदाहरण दिया जाता है।

> उत्कृत्योत्कृत्य कृत्तिं प्रथममथ पृथूच्छोफभूयांसि मांसा-
> न्यंसस्फिक्पृष्ठपिण्डाद्यवयवसुलभान्युग्रपूतीनि जग्ध्वा;
> आर्तः पर्यस्तनेत्रः प्रकटितदशनः प्रेतरङ्कः करङ्का-
> दङ्कस्थादस्थिसंस्थं स्थपुटगतमपि क्रव्यमव्यग्रमत्ति।

भूख से व्याकुल, इधर-उधर दृष्टि डालता हुआ, दाँतों को निकाले, दीन पिशाच पहले मुर्दे की खाल को नोंच-नोंचकर शोथ रोग से फूले कंधे, नितंब, पीठ आदि अंगों के दुर्गंधित मांस को खाता है। पुनः हड्डियों और ऊँचे नीचे स्थानों में लगे हुए मांस को जल्दी-जल्दी खाता है।

प्राकृतिक दृश्य

संस्कृत-साहित्य में प्रकृति का समादृत स्थान है। काव्य और नाटकों में प्राकृतिक वर्णन अंग-सा है। चाहे वह उद्दीपन विभाव में हो, या स्वतंत्र रूप में हो। भवभूति प्रकृतिपर्युपासक कवियों में अग्रगण्य हैं। पाठकगण, भवभूति के प्राकृतिक वर्णन के भी नमूने देखिए—अधो लिखित श्लोक-द्वय में पद्मावती और सिंधु नदी के प्रपात का कितना सुंदर वर्णन है।

पद्मावतीविमलवारिविशालसिन्धु-
पारासरित्परिकरच्छलतो बिभर्ति।
उत्तुङ्गसौधसुरमन्दिरगोपुराट्ट-
सङ्घट्टपाटितविमुक्तमिवान्तरिक्षम्।

विशाल सिंधु और पारा नदियाँ जिनमें निर्मल जल बह रहा है उनसे पद्मावती नगरी घिरी हुई है। पद्मावती मे राज-गृह, देव-मंदिर, पुरद्वार और अट्टालिकाएँ इतनी बनी हुई हैं। मानों उनके संघर्ष से आकाश, टूट कर गिर पड़ा है और वह नदियों के रूप में परिणत हो गया है।

यत्तत्य एष तुमुलो ध्वनिरम्बुगर्भ-
गम्भीरनूतनघनस्तनितप्रचण्ड।
पर्यन्तभूधरनिकुञ्जविजृम्भणेन
हेरम्बकण्ठरसितप्रतिमानमेति।

यह सिंधु-नदी का प्रपात है जिसमें जल से भरे हुए मेघों की गर्जन के समान ध्वनि हो रही है। जो ध्वनि आस-पास के पर्वत और कुंजों में गूँज रही है। जो प्रतिध्वनि से बढ़कर गणपति के कंठ-ध्वनि के समान हो रही है।

निम्न-लिखित श्लोकों में पर्वत और दो नदियों के संगम के किनारे नहाई हुई स्त्रियों का वर्णन कितना सजीव है। हज़ारों वर्ष की घटना मूर्तिमती होकर सामने नाचने लगती है।

अयमभिनवमेघश्यामलोत्तुङ्गसानु-
र्मदमुखरमयूरीमुक्तसंसक्तकेक।
शकुनिशबलनीडानोकहस्निग्धवर्ष्मा
वितरति बृहदश्मा पर्वत प्रीतिमक्ष्णो।

उच्च शिखरवाला, नवीन मेघों से श्यामल, यह पर्वत क्या ही नेत्रों को आनंद देनेवाला है जिस पर मदमाती मयूरी कुहुक रही हैं। कहीं पत्थरों के ढेर लगे हुए हैं। कहीं रंग-बिरंगे पक्षियों के घोंसलेवाले वृक्ष चितकबरे हो रहे हैं जिनसे पर्वतीय भागों की अनुपम [illegible] दिखलाई देती है।

जलनिविडितवस्त्रव्यक्तनिम्नोन्नतानि
परिगततटभूमि स्नानमात्रोत्थितानाम्।
रुचिरकनककुम्भश्रीमदाभोगतुङ्ग-
स्तनविनिहितहस्तस्वस्तिकाभिर्बभूमि।

सिंधु और पारा के संगम-तट पर नहाकर आई हुई महिलाओं की भीड़ है जिनके भीगे कपड़े ऐसे चपक गए हैं कि उनमें अंगों की निचाई और ऊँचाई साफ़ झलक रही है। कमनीय कांचन-कलश की भाँति विशाल और उन्नत स्तनों पर रक्खे हुए हाथ ऐसे शोभित हो रहे हैं मानों स्वस्तिक (स्वस्तिक—मंगल के लिये स्त्रियाँ पीठे (चावलों का चूर्ण) से हाथ की छापे कलश आदि पर देती हैं। उसको स्वस्तिक कहते हैं) हों स्तनों पर रक्खे हुए गोरे-गोरे हाथों की स्वस्तिक से उपमा कितनी चमत्कार-पूर्ण है। कवि की अनोखी सूझ है!

कालिदासीय रचना की अनुकृति

भवभूति कालिदास के परवर्ती हैं। इन दोनों कवियों के स्वभाव और रचना में आकाश-पाताल का अंतर है। कालिदास सुकुमार-प्रकृति सर्वप्रिय और हँसमुख रहे होंगे। पर भवभूति गंभीर-प्रकृति विशिष्ट जनप्रिय शोकमय-मूर्ति रहे होंगे। कालिदास की प्रकृति में विनय है और भवभूति के स्वभाव मे गर्व है। भवभूति की रचना क्लिष्ट है, कालिदास की सरल है। यद्यपि भवभूति कालिदास की सरणी से भिन्न मार्ग पर चलनेवाले हैं। तथापि भवभूति ने 'मालती-माधव' मे उनकी रचना का अनुकरण किया है। 'मालती-माधव' और अभिज्ञान शाकुन्तल में घटना-सादृश्य है और कहीं-कहीं कालिदास के भावों का अपहरण किया गया है।

घटना-सादृश्य

शकुंतला अपने अभिभावक महर्षि कण्व की बिना आज्ञा के गांधर्व विवाह कर लेती है। इसी तरह मालती भी बिना अपने माँ बाप के पूछे विवाह कर लेती है। अंतर इतना ही है कि शकुंतला केवल दुष्यंत के प्रस्ताव से ही विवाह कर लेती है। पर मालती, अपनी माँ जैसी बड़ी बूढ़ी कामंदकी के कहने पर करती है। शकुंतला की अपेक्षा मालती का चरित्र अवश्य कुछ उन्नत हो गया है।

पर भवभूति को इसमें कोई तारीफ़ नहीं है। क्योंकि शकुंतला का उपाख्यान-भाग पौराणिक है और मालती-माधव का काल्पनिक है।

अभिज्ञान-शाकुंतल में कण्व शकुंतला को उपदेश देते हैं कि "शुश्रूषस्व गुरून् कुरु प्रियसखीवृत्तिं सपत्नीजने, भर्तुर्विप्रकृताऽपि रोषणतया मा स्म प्रतीपं गमः।" इसी तरह कामंदकी मालती को उपदेश करती है कि—प्रेयो मित्रं बन्धुता वा समग्रा, सर्वे कामाः शेवधिर्जीवितं च। स्त्रीणां भर्ता—अर्थात् पति स्त्रियों का प्रियतम होता है। वही बंधु-समूह, वही मनोरथ, वही निधि और अधिक क्या कहें, वही जीवन भी होता है।

भावापहरण

भवभूति ने प्रथम अंक में 'सा रामणीयकनिधेः' इस पद्य द्वारा मालती के सौंदर्य का वर्णन किया है। उसमें यह कल्पना की है कि मालती ब्रह्मा की कृति नहीं है। किंतु स्वयं काम ने चंद्र आदि उपकरण से बनाई है। वस्तुतः यह भवभूति के मस्तिष्क की उपज नहीं है। भवभूति ने इसे विक्रमोर्वशी के निम्न-लिखित छंद से अपहरण किया है।

अस्याः सर्गविधौ प्रजापतिरभूच्चन्द्रो नु कान्तिप्रदः
शृङ्गारैकरसः स्वयं नु मदनो मासो नु पुष्पाकरः ;
वेदाभ्यासजडः कथं नु विषयव्यावृत्तकौतूहलो
निर्मातुं प्रभवेन्मनोहरमिदं रूपं पुराणो मुनिः।

भवभूति ने माधव द्वारा मेघ के प्रति जो संदेश दिलवाया है कि—"आशातन्तुर्न च कथयतात्यन्तमुच्छेदनीयः, प्राणत्राणं कथमपि करोत्यायताक्ष्याः स एकः॥" यह भी मेघदूत के पद्य का भाव है। यक्ष मेघ से कहता है कि आशाबन्धः कुसुमसदृशं प्रायशो ह्यङ्गनानां सद्यः पाति प्रणयिहृदयं विप्रयोगे रुणद्धि। महिलाओं की आशा कुसुम के वृक्ष के समान होती है, जैसे कुसुम-वृक्ष कुसुम की पंखुरियों को रोके रहता है उसी तरह वियोग में आशा ही उनके प्रेम-युक्त हृदय की रक्षा करती है, अन्यथा वह विदीर्ण हो जावे। भवभूति ने वृक्ष के स्थान पर तंतु बदल दिया है। पर कालिदास की उक्ति में जो भाव-सौंदर्य और सौकुमार्य है वह भवभूति नहीं ला सके हैं।

नवेषु लोध्रप्रसवेषु कान्तिर्दृशः कुरङ्गीषु गतं गजेषु ;
लतासु नम्रत्वमिति प्रमथ्य, व्यक्तं विभक्ता विपिने प्रिया मे।

भवभूति का यह पद्य भी कालिदास के—कलमन्यभृतासु भाषितं कलहंसीषु मदालसं गतम्। पृषतीषु विलोलमीक्षितं पवनाधूतलतासु विभ्रमः (अज विलाप करते हैं कि स्वर्ग जाने के लिये इंदुमती मेरे विनोद के लिये अपना भाषण कोकिलाओं में, गमन हंसियों में, चंचल कटाक्ष हरिणियों में और विभ्रम पवन-कंपित लताओं में रख गई है) पद्य का रूपांतर है। भवभूति ने भाषण को बदल कर कांति, और कलहंसी को बदल कर गज कर दिया है। लता और कुरंगी ज्यों की त्यों है। हाँ विभ्रम के स्थान पर नम्रता कर दी है। जो विभ्रम की अपेक्षा मनोहर नहीं है। दर-असल भवभूति अपहरण में पूर्व भावों की अपेक्षा अधिक चमत्कार नहीं दिखला सके हैं। भवभूति सर्वथा अपहरण में विफल रहे हैं।

भाषा

कविता-कामिनी के प्राण यदि भाव हैं, तो भाषा शरीर होती है। अतः काव्य-विवेचन में भाषा-विचार की भी आवश्यकता होती है। उच्चकोटि की कविता वही है जिसमें भाव और भाषा दोनों रमणीय हों। सुन्दर भाषा वही है जो अलंकृत हो (मुहाविरेदार और मँजी हो) और भावों का अनुसरण करती हो। भवभूति का संस्कृत और प्राकृत दोनों पर समान अधिकार है। भावों को प्रकट करने की क्षमता उनकी भाषा में पर्याप्त है। भवभूति की भाषा भावानुगामिनी होती है। निम्नलिखित व्याघ्र-वर्णन में प्राकृत-भाषा का मुलाहिज़ा कीजिए। देखिए, भाषा कितनी ओजस्विनी और आडम्बर-युक्त है "रे रे णअरपुरवासिजाणवदा! एसो क्खु ओव्वणारम्भ-गव्वसम्भरिददुव्विसहामरिसरोसव्वदिअर - बलामोडि बिहडिदुग्गाढिद - लोहपंजर-पडिलग्ग-सगलिअ-णिअलो, दुल्लसहलो × × × कुविअ कि अन्त-जीलाइं दद करेतिदि।" और इसी रंग में श्मशानवाले 'उत्कृत्योत्कृत्य' संस्कृत पद्य को भी देखिए। इसमें वाच्यार्थ विकट है। तदनुसार भाषा भी कैसी उद्धत है। पर नीचे लिखे छंद में करुणरस के वर्णन में भाषा कैसी प्राञ्जल और कोमल हो गई है।

न्यस्तालक्तकरक्तमाल्यवसना पाषण्डचाण्डालया
पापारम्भवतोर्मृगीव वृकयोर्मध्यं गता गोचरम्।
सेयं भूरिवसोर्वरमेरिव सुता मृत्योर्मुखे वर्तते
हा धिक् कष्टमनिष्टमस्तकरुणं कार्यं विधेः प्रक्रमः।

(वसु-सुता के समान भूरिवसु की कन्या मालती (जो लाल कपड़े पहिने है और जिसके हाथ-पैरों में महावर लगी हुई है) पापी चाण्डाल अघोरघण्ट और कपाल-

कुबला के बीच में ऐसी डरी हुई पड़ी है, जैसे दो भेड़ियों के बीच में हरिणी। हा! वह अब साक्षात् मृत्यु के मुख में वर्तमान है। हा! धिक्कार है, निर्दयी दैव का आरंभ कितना दारुण है)।

अरे शंकरपुर के रहनेवालो, यह देखो दुष्ट शार्दूल यमराज की लीला कर रहा है। यौवन-सुलभ आमर्ष और रोष के कारण उसने ज़बरदस्ती लोहे के पिंजड़े को तोड़ डाला है। उसके पैरों से ज़ंजीरें भी निकल गई हैं, इत्यादि।

अनुप्रास भी भाषा की संपत्ति है। भवभूति की भाषा अनुप्रासों से बड़ी मधुर हो जाती है। इस गद्यांश में देखिए कितना माधुर्य है, "अथ ता सलोलमुत्तालकर-कमलकलितताडिकातरलवलयावलीकम् उत्त्रस्त-मत्तकलहंसविभ्रमाभिरामचरणमञ्चरणझणझणायमानम-ञ्जीरमञ्जुशिञ्जितानुविद्धमेखलाकलापकिङ्किणीरणत्कारम् - स्वरप्रतिनिवृत्य . आख्यातवत्य । भवभूति" की भाषा में श्लेषचमत्कार कहीं-कहीं है। उदाहरण के लिये निम्न-लिखित गद्य-भाग को देखिए। भवभूति ने श्लेष द्वारा कितनी उत्कृष्ट भाषा लिखी है। "महाभाग! सुश्लिष्टगुणतया रमणीय एव व सुमनसां सन्निवेश । कुतूहलिनी च नो भर्तृदारिकाऽस्मिन् वर्त्तते। तस्यामभिनवो विचित्र कुसुमपुष्यापार. । तद्भवतु कृतार्थता वैदग्ध्यस्य। फलतु निर्माणरमणीयता विधातु । आस्वादयतु सरस एव भर्तृदारिकाया कण्ठावलम्बनमहार्घतामिति" (लवङ्गिका माधव से बकुल-माला मांगती है) कहती है कि महाभाग, आपका कुसुम-ग्रथन (बकुल-हार का गुहना) बड़ा ही सुंदर है। कैसा सत पिरोया है। मेरी स्वामि-कन्या इस हार को लेना चाहती है। वह फूलों को तरह-तरह से गूँथना जानती है। (हार देने से) तुम्हारा शिल्प-नैपुण्य भी चरितार्थ होगा (गुणी में गुण-प्रकाशन से गुण की चरितार्थता होती है) और मालय सौंदर्य भी (रत्न और कांचन के योग की भाँति) फलीभूत होगा। ताज़ा फूलों का हार स्वामि-कन्या के गले में पड़कर महार्घ (क़ीमती) हो जावेगा। दूसरा अर्थ यह है कि—महाभाग, सुंदर हृदयवाले आप लोगों का परस्पर प्रेम रमणीय है, क्योंकि दोनो में रूप, लावण्य आदि गुण विद्यमान हैं। ऐसी लगावट के लिये मेरी स्वामि-कन्या लालायित है। उसमें विचित्र नवीन कुसुम-सायक का व्यापार प्रादुर्भूत हो रहा है। इसलिये आप लोगों का कला-चातुर्य सार्थक हो और ब्रह्मा का रचना-सौंदर्य भी (योग्य समागम से) सफल हो। रसिक आप भी हों, उसके कंठालिंगन से महार्घ बनिए (अन्य स्त्रियों को दुर्लभ होने से अमूल्य बनिए)।

मालतीमाधव और तत्कालीन समाज

पाठकगण! मालतीमाधव को हम साहित्यिक दृष्टि से देख चुके। किंतु उसका ऐतिहासिक निरीक्षण किया जाय, तो उसमें तत्कालीन सामाजिक जीवन और परिस्थिति का भी चित्र मौजूद है। कवि अपने समकालीन समाज का प्रतिनिधि होता है। उसकी रचनाएँ उसके समय का प्रतिबिंब दिखाने में दर्पण का काम देती हैं। मालतीमाधव जिस समय लिखा गया है, उस समय हिंदू-धर्म का पुनरुत्थान हुआ था ; पर बौद्ध-धर्म और हिंदू-धर्म में समन्वय हो चुका था। उदार हिंदू-धर्म ने बुद्ध भगवान् की गणना दशावतारों में कर ली थी। भवभूति ने बौद्ध-धर्मावलंबिनी कामंदकी और बुद्धरक्षिता को नायक-पक्षीय पात्र बनाया है, और उनका उज्ज्वल चरित्र अंकित किया है, जिससे स्वयं कवि का बौद्ध-धर्म में आदर प्रकट होता है। कवि ने कामंदकी के चरित्र में यह भी दिखलाया है कि यद्यपि वह बौद्ध-धर्मावलंबिनी है, तथापि उसका आर्य-शास्त्रों में पर्याप्त आदर है। वैवाहिक व्यवस्था में वह महर्षि अंगिरा का प्रमाण देती है—"गीतश्चायमर्थोऽङ्गिरसा यस्यां मनश्चक्षुषो-र्निबन्धस्तस्यामृद्धिरिति।" अत स्पष्ट है कि उभय धर्मावलंबी एक दूसरे धर्म का आदर करते थे। बौद्ध-धर्म निवृत्ति-प्रधान है। अत उस समय अनेक युवा पुरुष और युवती स्त्रियाँ बिना वैराग्य के परिपक्व हुए ही विरक्त हो जाती थीं, पर प्रवृत्तियों का सहसा विघात नहीं हो सकता। इसीलिये बौद्ध संघारामों में गुप्त व्यभिचार हुआ करते थे। कवि ने यह बात मालतीमाधव में माधव के सेवक कलहंस का बौद्ध-मठपरिचारिका मंदारिका के साथ अवैध-प्रणय का वर्णन कर सूचित किया है। भवभूति के समय में कामदेव की पूजा होती थी। कामदेव के मंदिर बने थे। वसंत में मदनोत्सव बड़े धूमधाम से मनाया जाता था, जिसमें स्त्री-पुरुष सभी सम्मिलित होते थे। स्त्रियों के परदा का रिवाज न रहा होगा। श्रीमानों की कन्याएँ सवारियों पर निकलती थीं। मालती हथिनी पर चढ़कर 'कामायतन' को गई थी। प्राचीन

भारत के गुरुकुलों की भाँति शिक्षा-प्रणाली नहीं थी। आजकल की तरह नगर के दूषित और चचल वातावरण मे ही छात्र शिक्षण पाते थे। नगर के वायु-मडल मे युवकों का नारियों के प्रेम मे फँस जाना स्वाभाविक ही था। भवभूति ने मालती और माधव के प्रेम का वर्णन कर यह भी अभिव्यक्त किया है। पद्मावती उस समय समृद्धिशालिनी नगरी थी।

मालतीमाधव के निम्न-लिखित पद्य से नागरिकों की विलासिता का परिचय मिलता है—

"प्रासादानामुपरि वलभानुद्धवातायनेषु
भ्रान्त्वावृत्त परिणतसुरागन्धसम्भारमार्गे ;
माल्यामोदी मुहुरुपचितस्फीतकर्पूरवास
वायुर्यूनामभिमतवधूसन्निधान व्यनक्ति ।

अटारी और झरोखों मे घूम-घूमकर आया हुआ पवन, जिसमे सुरा, माल्य और कर्पूर की गंध आ रही है, इस बात की सूचना दे रहा है कि— विलासी तरुण पुरुष अपनी अभिलषित रमणियों के पास पहुँच गए। उस समय की जनता का मत्र-तत्र पर विश्वास था। भूत-प्रेत भी माने जाते थे। देवताओं की बलि चढ़ाई जाती थी। यहाँ तक कि नर-मांस की भी बलि देने का वर्णन है। पर नारी-बलिदान कुत्सित माना जाता था। उस समय चित्र-कला, कविता आदि ललित कलाओं की विशेष उन्नति थी।

दोष

मालतीमाधव मे जहाँ अनेक गुण हैं, वहाँ दोष भी है, जो आँखो मे खटकते हैं। सबसे स्थूल दोष उनकी रचना मे यह है कि वह लंबे-लंबे समासों और दुरूह शब्दों की भरमार करते हैं, जो सर्वथा नाटकीय रचना के प्रतिकूल तथा कुरुचि-पूर्ण है, और जिनमे सहृदय-सामाजिकों का हृदय-शोषण ही होता है। यह दोष मालती-माधव मे सर्वत्र न्यूनाधिक भाव से विद्यमान है। भवभूति की समास-प्रियता पर विस्मय होता है कि वह विरहावस्था के वर्णन मे भी समास-राशि का उपयोग करते हैं। इसके अतिरिक्त उनकी रचना मे पदगत, वाक्यगत (अविमृष्ट विधेयांश आदि) आदि भी दोष हैं, जिनको हम कभी अन्यत्र दिखलावेंगे। आज का लेख यहीं समाप्त किया जाता है।

रामसेवक पांडेय

कौटिल्य-काल के धार्मिक आचार-विचार

धार्मिक आचार-विचार इतिहास का एक अंग है। इसलिये किसी काल का इतिहास जानने के लिये उस समय के धार्मिक आचार-विचारों का जानना आवश्यक है। कौटिल्य-काल के धार्मिक आचार-विचारों से उस समय के इतिहास के एक अंग का पता चल जावेगा। अत हम यहाँ पर इस विषय का विवेचन करेंगे। इस विवेचन का एकमात्र आधार "कौटिलीय अर्थ-शास्त्र" है।

इतिहास कुछ अंश तक नदी के प्रवाह-जैसा है। उसकी गति एकदम कम बदलती है, और उसमे कितने ही भारी परिवर्तन क्यों न हों, प्राथमिक धारा के परिणाम कम अधिक परिमाण मे नीचे भी अवश्य देख पड़ते हैं। भारतीय धार्मिक विचारों के प्रारंभ का नितांत आदि-बिंदु ढूँढ निकालना भले ही कठिन हो। पर यह बात तो आज सर्वमान्य हो चुकी है कि उसका स्पष्ट मूल वेदों में देख पड़ता है। वेद-काल मे जो धार्मिक आचार-विचार थे, उनकी छाया यदि अब भी थोड़ी बहुत देख पड़ती है, तो इसमे कोई आश्चर्य नहीं कि कौटिल्य के काल मे उन धार्मिक आचारों-विचारों की छाया यथेष्ट देख पड़ती थी। इंद्र, वरुण-जैसे देवताओं का अब भी यथेष्ट आराधन होता था और भिन्न-भिन्न प्रकार के यज्ञ होते थे। परंतु कौटिल्य के काल तक कई नए देवता कल्पना-क्षेत्र मे अवतीर्ण हो चुके थे और धार्मिक आचार मे यथेष्ट परिवर्तन हो चुका था। "कौटिलीय अर्थ-शास्त्र" मे सकर्षण, महाकच्छ, मनु, अलिति, पलिनि सुवर्ण-पुष्पी, ब्रह्माणी, ब्रह्म, कुशध्वज, अमिलि, किमिलि, (वैरोचन) बलि, शम्बर, भण्डीरपाक, नरक, निकुम्भ, कुम्भ, देवल, नारद, सावर्णिगालव, वायुजारि, प्रयागि, फकि, कवयुशिव, विहालि, दनकटकि, शतमाय, तन्तुकच्छ, अमालव, प्रमील, मण्डोलक, घटोत्कल, कसोपचार-कृष्ण, पौलोमा, शलकभून, चाण्डाली, तुम्भकटुक

मागध आदि अनेक नए देव-देवता व राक्षसगण पूजार्हों की श्रेणी में आ गए थे। इनमें से कई अब पूज्य देव-देवताओं और भूत या राक्षसों की श्रेणी में नहीं रह गये हैं, परंतु कुछ नाम अब भी पूज्य हैं। उनमें कंस का वध करनेवाले कृष्ण का नाम विशेष ध्यान देने योग्य है। इससे यह स्पष्ट है कि इस समय तक कृष्ण का नाम देवताओं की श्रेणी में आ चुका था और वे कंस-वध करनेवाले ही कृष्ण हैं। इससे यह बात सिद्ध हो सकती है कि कंस का वध करनेवाले कोई कृष्ण कौटिल्य-काल के बहुत पहले हुए थे और इस समय तक वे देवताओं का मान प्राप्त कर चुके थे। दश दिशाओं के देवता भी माने जाने लगे थे।

उस समय तक कई स्थानों अथवा नदियों को पवित्रता प्राप्त हो चुकी थी। इस संबंध में पूज्य स्थानों में कैलाश का और नदियों में गंगा का नाम उल्लेख-योग्य है। एक स्थान पर राजा को सूचना दी गई है कि वह पूज्य स्थानों के कार्यों का निरीक्षण करे। इससे ऐसा ज्ञान पड़ता है कि उस समय तक अनेक स्थान पवित्र माने जा चुके थे और उनमें 'अतिचार' या अनाचार भी होने लग गया था।

इतना ही नहीं, किंतु भौतिक और आधिभौतिक पदार्थों की पूजा भी होने लग गई थी। अग्निपूजा, नदीपूजा, प्राणिपूजा (चूहों की, हाथियों की, घोड़ों की और सर्पों की पूजा), जानवरों पर अथवा मनुष्य पर आपत्ति आने पर भिन्न प्रकार के शांति-कार्य आदि भी उस समय होने लगे थे। बलि देने की प्रथा भी उस समय देख पड़ती है। भूत, पिशाचों आदि की पूजा-अर्चा भी होने लगी थी। चौथे अधिकरण के तीसरे अध्याय में इस बात का स्पष्ट उल्लेख है—"रक्षोभये रक्षोघ्नान्यथर्ववेदविदो मायायोगविदो वा कर्माणि कुर्युः। पर्वसु च वितर्दिच्छत्रोल्लोपिकाहस्तपताकाच्छागोपहारैश्चैत्यपूजां कारयेत्—राक्षसों का भय होने पर अथर्ववेदज्ञ द्वारा अथवा मायायोग (मारण, उच्चाटन आदि क्रियाओं) को जाननेवाले पुरुष राक्षसों के नाशक कर्मों का अनुष्ठान करें।" इस प्रकार इंद्रजाल विद्या के कार्यों का कुछ स्वरूप धार्मिक हो चुका था। धर्म के नाम पर जादू-टोना भी होता था। आज तो इनमें बड़ा घनिष्ठ संबंध स्थापित हो चुका है।

इस ग्रंथ में चातुर्मास्य में दीपदान करने की प्रथा का उल्लेख है। *उस समय गोमल पवित्र समझा जाता था और उसे उठाकर लोग शपथ लेते थे। गोबर उठाकर* झूठी शपथ लेनेवाले को दंड देने के लिये कहा गया है। यही नहीं, किंतु उस समय देवों के चमत्कारों में लोगों का विश्वास हो गया था। इसका उल्लेख निम्न-*लिखित उद्धरण में देख पड़ेगा*—

"अथवा नगर के समीप रात में किसी निर्दिष्ट (श्मशान आदि के) विशेष वृक्ष पर चढ़कर सभी पुरुष अव्यक्त (अस्पष्ट) रूप में इस प्रकार बोलें—'हम स्वामी के (राजा के) या आमात्य आदि मुख्य प्रकृतियों के मांस को अवश्य खाएँगे, हमारी पूजा होनी चाहिए।' इन गूढ़ पुरुषों की कही हुई इस बात को नैमित्तिक (शकुन आदि बतानेवाले) तथा मौहूर्तिक (ज्योतिषी) के वेश में रहनेवाले गुप्त पुरुष सर्वत्र प्रसिद्ध कर देवें। अथवा किसी मांगलिक गहरे जलाशय में रात के समय, दीप्तयुक्त तैल की मालिश किए हुए, नागदेवता के रूप में दीखनेवाले सिद्ध वेषधारी गूढ़ पुरुष लोह-निर्मित-शक्ति और मूसलों को परस्पर रगड़ें और उसी प्रकार बोलें। अथवा गुप्त पुरुष रीछ के चमड़े को ऊपर से ओढ़कर मुँह से आग और धुआँ निकालते हुए राक्षसों का रूप धारण करके नगर के चारों ओर बाईं ओर से घूमें और उसी प्रकार बोलें। अथवा गुप्त पुरुष देवताओं में से प्रधान देवताओं की प्रतिमाओं का अत्यंत रुधिर स्राव करें*। तदनंतर उस दैवी रुधिर के बहने पर अन्य सभी पुरुष सर्वत्र यह प्रसिद्ध करें कि इन लक्षणों से मालूम होता है कि संग्राम में अवश्य ही राजा की पराजय हो जायगी।"

उपर्युक्त उद्धरण से कई बातें मालूम होती हैं। देवों के चमत्कारों में तो लोगों का विश्वास था ही, पर कुछ लोग उन चमत्कारों के मिथ्यात्व को भी जानते थे और लोगों को ठगने के लिये उनका वे उपयोग करते थे। मूर्तिपूजा स्पष्ट देख पड़ती है। लोग शकुन और फलित ज्योतिष में विश्वास करते थे। शुभ कार्यों को, अथवा सफलता पाने की इच्छा से किए गए कार्यों को किसी विशिष्ट समय

* तात्पर्य यह है कि बकरे आदि का खून लेकर गूढ़ पुरुष उसको प्रतिमाओं के अंदर से निकालें, जिससे देखनेवालों को यह प्रतीत हो कि वह प्रतिमा ही स्वयं खून बहा रही है।—लेखक

पर करने की प्रथा प्रचलित हो चुकी थी। कई कार्यों के संबंध में पुष्य-नक्षत्र का उल्लेख कई बार हुआ है।

ब्राह्मण के प्रेत-कार्य यानी श्राद्ध में कदाचित गाय या बैल मारने की प्रथा तब तक थी। १४वें अधिकरण के तीसरे अध्याय में एक स्थान पर स्पष्ट है कि 'ब्राह्मणस्य प्रेतकार्ये या गौ मार्यते।' पितृपूजा (श्राद्धादि) और देवों के नाम से जानवर आदि छोड़ने के रीति का भी इसमें उल्लेख है। कह चुके हैं कि मूर्तिपूजा स्पष्ट रीति से प्रस्थापित हो चुकी थी। दूसरे अधिकरण के चौथे अध्याय में कहा है—'तत: पर नगरराजदेवतालोहमणिकवरों ब्राह्मणाश्चोत्तरा दिशमधिवसेयु:।... अपराजिताप्रतिहतजयन्तवैजयन्तकोष्टकान् शिववैश्रवणाश्विश्रीमदिरा गृहं च पुरमध्ये स्थापयेत।—उसके आगे उत्तर दिशा की ओर नगर के देवता-स्थान तथा राजकुल के देवता-स्थान, मनिहार और ब्राह्मणों के निवास-स्थानों का निर्माण कराया जाय। ... अपराजिता (दुर्गा ?), विष्णु, जयंत, इत्यादि इन देवताओं के स्थान तथा शिव, वैश्रवण (वरुण), अश्विनीकुमार, लक्ष्मी और मदिरा इन पाँच देवताओं के स्थान नगर के बीच में ही बनाए जावें।' आगे कहा है—'कोष्टकालयेषु यथोद्देशं वास्तुदेवता: स्थापयेत—पूर्व कहे हुए कोष्टागार आदि स्थानों में भी अपने-अपने विचार या उस-उस देश के अनुसार वास्तु देवताओं की स्थापना की जावे।' इसी प्रकार के उल्लेख कई अन्य स्थानों में भी हैं। उस समय देव-देवताओं के उत्सव भी होते थे। इसका उल्लेख तेरहवें अधिकरण के तीसरे अध्याय में है।

उस समय के धार्मिक आचार-विचारों का कुछ दिग्दर्शन निम्न-श्लोक में आया है। कुछ अन्य धार्मिक आचार-विचारों का दिग्दर्शन पहले करा चुके हैं।

"यान्यज्ञसंघैस्तपसा च विप्रा: स्वर्गैषिण: पात्रचयैश्च यान्ति।
क्षणेन तानप्यतियान्ति शूरा: प्राणान् सुयुद्धेषु परित्यजन्त:॥

अनेक यज्ञों को करके तप करके और दान-पात्रों को दान देकर ब्राह्मण जिन-जिन उच्च लोकों को प्राप्त करते हैं, उनसे भी अधिक उच्च लोकों को क्षण-भर में शूर मनुष्य धर्म-युद्धों में प्राण देकर प्राप्त कर लेते हैं।"

धार्मिक विश्वासों का उपयोग राजकीय कार्यों के लिये करने को कौटिल्य ने कहा है। संधि के संबंध में शपथ वग़ैरह कराने की बात कही है, ताकि संधि करनेवाले संधियों को स्वेच्छानुसार तोड़ न सकें। तोड़नेवालों को इहलोक और परलोक का डर बना रहेगा, परंतु उसने यह भी कहा है—

"नक्षत्रमतिपृच्छन्तं बालमर्थोऽतिवर्तते।
अर्थो ह्यर्थस्य नक्षत्रं किं करिष्यन्ति तारका:॥

(कार्य के प्रारंभ के लिये) नक्षत्रों की बहुत पूछ-ताछ करनेवाले पुरुष से अर्थ (धन) अप्रसन्न हो जाता है। अर्थ-ही-अर्थ का नक्षत्र है, तारे बेचारे क्या कर सकते हैं।" इसका यह मतलब नहीं कि कौटिल्य नक्षत्रों के शुभाशुभ फलों को नहीं मानता था। हम पहले ही लिख चुके हैं कि उसने कई कार्यों के लिये शुभाशुभ नक्षत्र कई बार बताए हैं और उनमें से कई के लिये पुष्य-नक्षत्र का उसने उल्लेख किया है। उपर्युक्त कथन से उसका यही मतलब है कि यदि कोई राजा अपने समस्त कार्यों के लिये नक्षत्रों पर अवलंबित रहे, तो वह अवश्य नष्ट हो जायगा, क्योंकि बिना उचित प्रयत्न के तारे बेचारे क्या फल दे सकेंगे? प्रयत्न ही सार है। हाथी-से-हाथी बाँधा जाता है, रुपए से रुपया कमाया जाता है, और उचित रीति से आवश्यक और उचित समय पर (फिर वह भले ही नक्षत्र की दृष्टि से अशुभ क्यों न हो) प्रयत्न करने से कार्य सिद्धि हो सकती है। कम-से-कम राजा को इनमें अत्यधिक विश्वास न करना चाहिए। राजकीय कार्यों के प्रारंभ को सर्वथा शुभाशुभ मुहूर्तों पर अवलंबित करना राजनीति के विरुद्ध है।

उपर्युक्त विवेचन से ऐसा देख पड़ेगा कि आजकल जो धार्मिक आचार-विचार प्रचलित हैं उनमें से कई कौटिल्य काल से भी पहले के हैं। वे कितने पुराने हैं, यह अन्य ग्रंथों के आधार से ही जाना जा सकेगा।

गोपालदामोदर तामस्कर

जीवन *

पता न पाया कभी किसी ने,
कहाँ तुम्हारा जन्मस्थान;
क्या जाने तुम हो अनंत,
या कहीं तुम्हारा है अवसान।

* लेखक के अप्रकाशित 'जीवन'-नामक महाकाव्य की प्रस्तावना।—लेखक

बहते हो अदृश्य धारा में,
करते हो गर्जन गंभीर;
विश्वहृदय के शोणित हो,
या आदिशक्ति के स्तन के क्षीर।
मिले कालिमा से माया की,
परम ज्योति के हो आभास;
अणुओं की अविराम प्रगति,
या पुरुष-प्रकृति के केलि-विलास।
धरातत्व ही स्थूल रूप है,
गगन तुम्हारा है विस्तार,
सलिल तुम्हारी सरल मृदुलता,
पावक है बल का भंडार।
पवन तुम्हारी स्पर्शेन्द्रिय है,
सप्त स्वर है मीठे बोल,
सब प्रकाश है हास तुम्हारा,
ऊषा है मुस्कान अमोल।
संध्या है निद्रा का आलस,
घन की घटा तरल अनुराग;
व्याप्ति प्रिया पर बरस स्नेह-रस,
लाता हरियाली का राग।
तड़ित तुम्हारा हाव-भाव है—
मारुत का बदन विलास,
सभी नाद संवाद तुम्हारा,
समय तुम्हारा शनैर्विकास।
शीत-कार्य में तत्परता है,
ताप महाबल का उन्माद;
मधु-वैभव उल्लास तुम्हारा,
पतझड़ है गंभीर विषाद।
ग्रह-नक्षत्रों के चक्कर में,
खेल तुम्हारा होता है,
निद्रा-रूपी अंधकार ही,
भ्रांति तुम्हारी खोता है।
शरत्पूर्णिमा में मिलता है,
मन-भर अमित सौख्य का हास,
विकट बवंडर भय भूकंपों,
का अथाह वैकल्य-विकास।
शिशुओं की क्रीड़ा में देखा,
मधुर तुम्हारा बालापन;
परम हंस के मृदु प्रलाप में,
सुने कभी तोतले वचन।
पारे के समान जड़ता पर,
जीवों में छितराते हो;
प्रलय-काल में एकत्रित हो,
फिर धारा बन जाते हो।
महाप्रलय में व्यक्त तुम्हारे,
दुःखों और सुखों का मेल;
परब्रह्म की महाव्याप्ति में,
अवसित होता सारा खेल।

आनंदिप्रसाद श्रीवास्तव

ताड़ का पत्ता

(१)

क्टर रीन जब भारतवर्ष की यात्रा समाप्त करके अपने देश जर्मनी में पहुँचे, तब उनकी प्रसन्नता का पारावार न था। विदेश से वापस आकर अपने बंधुओं से मिलने में जो प्रसन्नता होती है, वह तो उन्हें थी ही परंतु उनकी इस बेहद ख़ुशी का एक और कारण भी था। इससे पूर्व भी डॉक्टर रीन कई बार एशियाई देशों का भ्रमण करके स्वदेश लौटे थे, परंतु उनके घरवालों ने उन्हें इतना अधिक प्रसन्न कभी न देखा था। घर पहुँचकर भारतवर्ष में लाया हुआ विविध सामान अपनी पत्नी तथा बच्चों को देते हुए उनके प्रशस्त मुख पर जो सरल मुस्किराहट निरंतर बनी हुई थी, वह उनकी हार्दिक प्रसन्नता का सबसे बड़ा प्रमाण थी।

डॉक्टर रीन को पुरातत्व से बहुत प्रेम था। वह बर्लिन की विश्वविख्यात युनिवर्सिटी में, इसी विषय के मुख्य उपाध्याय थे। युनिवर्सिटी के संपूर्ण उपाध्याय और विद्यार्थी उनकी योग्यता के कायल थे। वह रात-दिन किसी-न-किसी खोज में व्यस्त रहते थे, यहाँ तक कि उन्हें अपनी पत्नी तथा बच्चों से बातचीत करने के लिये भी कम अवसर मिलता था। भारत की इस यात्रा से वह भारतीय पुरातत्व का बहुत-सा सामान अपने साथ ले

गए थे ; कुछ प्राचीन पुस्तकें तथा सिक्के, महारानी नूरजहाँ के घिसाए हुए जूते, मुग़ल बादशाहों के बर्तन आदि विभिन्न प्राचीन वस्तुओं का एक अच्छा संग्रह वह अपने साथ ले गए थे। इसके अतिरिक्त विशुद्ध भारतीय ढंग की गुड़ियाँ, खिलौने, मिठाई आदि भी वह पर्याप्त मात्रा मे अपने साथ लाए थे। बच्चे इन अद्भुत खिलौनों और मिठाइयों को देखकर खुश हो रहे थे।

अपने पति और बच्चों को इतना प्रसन्न देखकर श्रीमती रीन का हृदय आह्लाद से भर उठा। उसकी ओर देखकर डॉक्टर साहब ने कहा—"हिंदोस्तान की इस यात्रा मे मुझे एक बड़ा भारी ख़ज़ाना हाथ लगा है।"

श्रीमती रीन इस बात का अभिप्राय न समझ सकीं। वह कौतहल से अपने पति का मुँह देखने लगीं। डॉक्टर साहब ने अपनी धर्मपत्नी को अधिक देर तक आश्चर्य मे न रखकर मुस्किराते हुए अपने संदूक मे से बड़े सुरक्षित ढग से रखा हुआ एक ताड का पत्ता निकाला। इस पत्ते पर मटियाले अक्षरो मे कुछ लिखा हुआ था।

डॉक्टर साहब की इस अतुल संपत्ति को देखकर श्रीमती रीन खिलखिलाकर हँस उठीं। उन्होंने कहा—"तुम्हारे इस ख़ज़ाने के लिये, तो शायद कुबेर भी तरसता होगा।"

डॉक्टर साहब ने मुस्किराते हुए कहा—"यह ताड का पत्ता एक ऐसे ख़ज़ाने की कुंजी है, जिसमे कि अनंत वैभव भरा पडा है। शोक यही है कि कुंजी तो मेरे पास है; परंतु वह ख़ज़ाना हिंदोस्तान में ही किसी जगह छिपा पड़ा है। उसे ढूँढ़ने के लिये मुझे फिर कभी उस विचित्र देश की यात्रा करनी होगी।"

पति-पत्नी मे बहुत देर तक इसी बात को लेकर हँसी-मजाक़ होता रहा।

डॉक्टर रीन के इस ताडपत्र की कथा इस प्रकार है—डॉक्टर साहब को भारतवर्ष की भौतिक सभ्यता पर अत्यधिक श्रद्धा थी, उन्हें विश्वास था कि उसके द्वारा वर्तमान वैज्ञानिक जगत भी बहुत-सी नई-नई बाते सीख सकता है। डॉक्टर साहब जब सैर के लिये भारतवर्ष आए थे, तब उनके सामने एक यह उद्देश्य भी था कि इस भ्रमण में वह भारतीय पुरातत्त्व की कोई नई बात खोज निकालने का प्रयत्न करेंगे।

उन दिनों भारतवर्ष में राज्य-परिवर्तन के दिन थे। मुग़लों की हुकूमत का अंत हो रहा था और अँगरेज लोग नदी की बाढ़ की तरह बड़ी शीघ्रता से अपना अधिकार बढ़ाते चले जा रहे थे। डॉक्टर रीन के एक अँगरेज़ मित्र, उन दिनों मदरास-प्रांत में रेविन्यू कलक्टर थे। उन्होंने एक दिन हँसी में अपने मित्र के पुरातत्त्व प्रेम के चिह्न-स्वरूप यह फटा हुआ ताड़ का पत्ता उन्हें समर्पित किया था। कलक्टर साहब को यह ताड का पत्ता, कुछ दिन पूर्व, किसी गाँव के बाहर यों ही उड़ता हुआ मिला था। मित्र द्वारा मज़ाक़ के रूप मे प्राप्त इस चीज़ को भी डॉक्टर साहब ने बड़े यत्न से अपने पास रख लिया। वापस लौटते हुए जहाज़ में वह अपना अधिकांश समय इस ताडपत्र की खोज मे ही लगाया करते थे।

एक दिन अचानक उस ताडपत्र मे उन्हे एक नई बात दीख पडी। उन दिनो योरप में फ़ौलाद ढालने को बड़ी बड़ी मशीनों का आविष्कार नहीं हुआ था। भारतवर्ष में दिल्ली के लोहस्तंभ को देखकर उन्हे अत्यधिक विस्मय हुआ था। वे यह बात जानने के लिये लालायित थे कि भारतीयो ने, इस बडी कीली का निर्माण किस प्रकार किया होगा। आज अचानक उनकी समझ मे आया कि इस ताड के पत्ते पर फ़ौलाद बनाने का ढंग लिखा हुआ है। डॉक्टर साहब प्रसन्नता से उछल पड़े। अगर उस समय कोई दूसरा व्यक्ति उनके कमरे मे मौजूद होता, तो वह इन्हें अचानक इस अवस्था मे देखकर अवश्य यही समझता कि उनके दिमाग़ की कोई कल अचानक ढीली पड गई है। प्रसन्नता का प्रथम आवेग शांत होने पर डॉक्टर साहब ने कुछ शोक के साथ देखा कि यह ताड का अकेला पत्ता किसी भी उद्देश्य को सिद्ध न कर सकेगा। यह तो किसी पुस्तक का एक पृष्ठ-मात्र ही है। वह संपूर्ण पुस्तक प्राप्त किए बिना उनका काम नहीं चल सकता। परंतु यह सब होते हुए भी अब उन्हे इस बात का पूर्ण भरोसा हो गया था कि ज़रा-सा यत्न करने पर वह सम्पूर्ण पुस्तक को अवश्य खोज निकालेंगे। यही भरोसा उन्हे बहुत अधिक प्रसन्न बनाए हुए था।

(२)

सन् १७६३ के दिसंबर मास में, पेरिस महानगरी मे अंतर्जातीय पुरातत्त्व महासभा का विशेषाधिवेशन हुआ। पुरातत्त्व महासभा के इतिहास में, इस अधिवेशन को

महत्ता अत्यधिक है। उन दिनों पुरातत्त्व-अन्वेषण का कार्य बहुत ज़ोरों पर था। इस विषय के विद्वानों के तीन दल बने हुए थे। तीनों दलों में कुछ-कुछ प्रतिस्पर्धा का भाव आ चला था। प्रत्येक दल अपने-अपने विभाग को सबसे अधिक महत्ता देने लगा था। बात यह थी कि उन दिनों संसार के तीन भिन्न-भिन्न स्थानों—मिस्र, भारत और कैस्पियन सागर के तटस्थ प्रांत पर अन्वेषण का कार्य जारी था। प्रत्येक स्थान के विद्वान् अपने स्थान को ही अधिकतम सभ्य और उन्नत सिद्ध करने में लगे हुए थे। इस पारस्परिक विवाद को दूर करने के लिये इस वर्ष पेरिस में पुरातत्त्व महासभा का यह असाधारण अधिवेशन बुलाया गया था। संसार-भर के प्राय सभी मुख्य-मुख्य पुरातत्त्व-विशारद इस अधिवेशन में सम्मिलित हुए थे।

उपर्युक्त तीनों दलों के पक्ष-पोषकों ने, अपने-अपने अन्वेषण के विभाग के संबंध में ख़ूब विद्वत्तापूर्ण निबंध पढ़े। डाक्टर रीन भी इस अधिवेशन में सम्मिलित हुए थे। जब उपस्थित प्रतिनिधि ताली बजा-बजाकर भिन्न विद्वानों के निबंधों का अभिनंदन करते थे, तब वह चुपचाप बैठे हुए किसी समस्या पर गंभीर विचार कर रहे थे। जब उच्च कोटि के प्राय सभी विद्वान् अपना भाषण कर चुके, तब लोगों पर यही प्रभाव प्रतीत होता था कि मिस्र देश का पक्ष-पोषक दल अधिक प्रबल रहा है। पाँचों निर्णायक सभापतियों में से भी अधिकांश इसी सम्मति के थे। भारत और कैस्पियन सागर के तटवर्ती प्रांतों के पक्ष-पोषक लोग कुछ-कुछ निराश हो चले थे। इसी समय डॉक्टर रीन वक्ता की वेदी पर बड़ी गंभीरता से आकर खड़े हो गए। उनके हाथ में कोई पुस्तकाकार निबंध नहीं था। डाक्टर रीन की प्रतिभा का संपूर्ण सम्मेलन कायल था, अत लोग चुप होकर कौतूहल से उनकी ओर देखने लगे। डॉक्टर साहब ने बड़ी संजीदगी के साथ अपनी अंदर की जेब से, एक चाँदी की डिबिया में लपेटकर रखा हुआ, वही ताड़ का पत्ता निकाला। डाक्टर साहब ने, उसे हाथ में लेकर सात मिनट की एक संक्षिप्त वक्तृता दी। इसमें उन्होंने ताडपत्र का मज़मून लोगों को सुनाकर सभा से अनुमति चाही कि यह अधिवेशन छ. मास के लिये स्थगित कर दिया जाय, ताकि वह इस महत्त्व-पूर्ण विषय में पूरी खोज कर सकें।

डॉक्टर रीन के वेदी से उतरते ही लोगों ने ख़ूब तालियाँ बजाकर उनका स्वागत किया। उन दिनों योरप-भर के वैज्ञानिक जी जान से इसी बात का यत्न कर रहे थे कि किसी प्रकार फ़ौलाद की बड़ी-बड़ी शिलाएँ बनाने का ढंग उन्हें ज्ञात हो जाय। अत सभापति महोदय ने, डाक्टर रीन के इस प्रस्ताव को लोगों के सम्मुख विचारार्थ प्रस्तुत कर दिया। बहुत बड़े बहुमत से डॉक्टर साहब का यह प्रस्ताव स्वीकार कर लिया गया। विद्वानों का यह भारी दंगल छ मास के लिये बर्ख़ास्त हो गया।

(३)

गोबर से भली प्रकार पुते हुए एक कच्चे चबूतरे पर पं० गोपाल पतलू मरणासन्न अवस्था में पड़े थे। उनके इष्ट बांधव उन्हें घेरे हुए थे। कोई ज़ोर-ज़ोर से रो रहा था, कोई सिसक रहा था और कोई शोक की गंभीर

पं० गोपाल पतलू मरणासन्न अवस्था में पड़े थे।

मुद्रा धारण किए चुपचाप खड़ा था। सिर की ओर ४-७ ब्राह्मण तुमुल स्वर में विष्णुसहस्रनाम का पाठ कर रहे थे। पंडितजी पर थोड़ी-थोड़ी देर ठहरकर गंगाजल के छींटे दिए जाते थे। एक छोटे-से बंद कमरे में ये सब उपद्रव एक साथ किए जा रहे थे। ऐसा प्रतीत होता था कि पंडितजी के हितैषी उनको इस कष्ट की दशा में अधिक देर तक रखना पसंद नहीं करते। अतः बीमारी को असाध्य जानकर उन्हें शीघ्र-से-शीघ्र भव-सागर से पार उतार देना चाहते है। अभी तक पंडितजी मूर्च्छित पड़े थे, परंतु बार-बार गंगाजल के छींटों का मज़ा लेकर उनकी चेतना थोड़ी देर के लिये पुनः जागृत हो गई। उन्होंने आँखें पलटकर धीरे से पुकारा—"गिरिधर!"

गिरिधर उनका बड़ा पुत्र था। वह अपने मुँह को पिता की आँखों के एकदम निकट ले जाकर बोला—"क्या है, पिताजी?"

कुछ देर तक शून्य-भाव से उसी की ओर देखते रह-कर पंडितजी ने धीरे-धीरे कहना शुरू किया—"बेटा, कलियुग का घोर राज्य है। दुनिया से धर्म-कर्म उठ गया है। म्लेच्छ लोग राज कर रहे है। अब सुनता हूँ कि जो नई म्लेच्छ जाति हम लोगों पर राज्य करने आई है, वह हमारे धर्म-शास्त्रों पर भी अनाचार करने का निश्चय कर चुकी है। कुछ कुलांगार ब्राह्मण धन के लोभ से इनको संस्कृत पढ़ाने भी लगे है। मालूम होता है कि अब शीघ्र ही कलकी अवतार होनेवाला है। यह तो अनाचार की पराकाष्ठा हो चली!" इतना कहकर वह थोड़ी देर के लिये थककर चुप हो गए। पंडितजी को होश में आया देखकर उनकी बात सुनने की इच्छा से ब्राह्मणों ने थोड़ी देर के लिये विष्णुसहस्र-नाम का पाठ बंद कर दिया था। अब उनको चुप देख-कर पाठ का दौरा फिर से जारी हो गया।

थोड़ी देर बाद पं० गोपाल फिर बोले—"गिरिधर! मेरे घर मे बड़े पुराने समय से एक थाती चली आई है। अनादि काल से हमारे पुरखा मृत्यु के समय इसे अपने वंशधरों को अर्पित करते चले आ रहे है। यह थाती "धातुसार"—नामक एक पुस्तक के रूप में है। इसे भली प्रकार गुप्त रखना। आजकल म्लेच्छ लोग धन का लोभ देकर बड़े-बड़े प्रतिष्ठित ब्राह्मणों से भी इस प्रकार के ग्रंथ ख़रीद ले गए हैं। तुम कभी इस प्रकार का अनाचार न करना। बेटा, तुम्हें मेरी सौगंध है, इसे कभी किसी दाम पर भी किसी दूसरे व्यक्ति को न देना।"

इसके बाद पंडितजी की शक्ति बहुत क्षीण हो गई। गिरिधर से घर के संबंध मे कुछ और बातें कहते-कहते उन्हें फिर से मूर्च्छा आ गई। यह मूर्च्छा फिर कभी न टूटी।

(४)

पेरिस से वापस आते ही डॉक्टर रीन फिर भारतवर्ष के लिये चल दिए। इस समय उनकी प्रसन्नता गंभीर चिंता के रूप मे परिवर्तित हो चुकी थी। उन्हें एक भारी उत्तरदायित्व-अनुभव हो रहा था। डॉक्टर साहब को इस महत्त्व-पूर्ण कार्य के लिये केवल छः मास का अवसर ही मिला था। उन्होंने सोचा कि तीन मास तो अपने देश से भारतवर्ष आने-जाने मे ही व्यय हो जायँगे। फिर महासभा से कम-से-कम ढाई मास पूर्व यह पुस्तक अवश्य ही प्राप्त हो जानी चाहिए। इस प्रकार केवल दो मास मे ही उन्हें इस ज़रा-सी पुस्तक को सारे देश मे से ढूँढ निकालना था। फिर यह भी मालूम नहीं कि यह पुस्तक आजकल कहीं प्राप्य भी है या नहीं। पुस्तक का एक पृष्ठ इस प्रकार से यों ही उड़ता हुआ मिलना, तो इसी बात का प्रमाण है कि शेष पृष्ठ अब नष्ट हो चुके हैं। ये सब बाधाएँ सोचकर भी वह निराश नहीं हुए। मदरास प्रांत मे पहुँचकर अपने मित्र की सहायता से वह अपनी खोज मे व्यस्त हो गए।

इस कार्य मे डाक्टर साहब को बड़ी दिक़्क़तों का सामना करना पड़ा। गाँवों के लोग उनकी गोरी चमड़ी को देखकर उनसे भय खाते थे, उनके प्रश्नों को सुनकर वे उन पर और भी अधिक संदेह करने लगते थे। उन्हें यह देखकर अत्यधिक आश्चर्य हुआ कि ये दरिद्रता-पीड़ित, पराधीन और निर्धन लोग स्वयं नितांत दयनीय अवस्था मे होते हुए भी एक सभ्य विदेशी से बीमारी की तरह घृणा करते है। डाक्टर साहब कभी-कभी बिलकुल अकेले साधारण भारतीय जनता का वेश धारण करके गाँवों मे निकल जाते थे; परंतु इस प्रकार भी उन्हें कोई सफलता न हुई। मदरास-प्रांत में उनके शरीर की सफ़ेदी द्वारा लोगों को झट से उनके म्लेच्छ होने का ज्ञान हो जाता था। फिर सौभाग्य से यदि उन्हें कोई म्लेच्छ न भी समझे, तो भी ब्राह्मण लोग शास्त्र के

संबंध में कोई बात बताने को तैयार ही न थे और अन्य वर्णोंवाले शास्त्र के संबंध में कुछ जानते ही न थे।

इस प्रकार निरर्थक श्रम करते हुए उन्हें डेढ़ मास बीत गया। उनकी शारीरिक दशा भी ख़राब हो चली। एप्रिल का महीना था, अतः गर्मी पर्याप्त पड़ने लगी थी। डॉक्टर साहब कुछ-कुछ निराश हो चले। तब इन उपायों से काम चलता न देख, अपने कलक्टर मित्र का कहना मानकर वह मदरास नगर में वापस चले आए। यहाँ रहकर वह बहुत-से भारतीय ब्राह्मणों द्वारा ही इस ग्रंथ की खोज करवाने लगे। कलक्टर साहब भी कुछ दिनों का अवकाश लेकर बड़ी सरगर्मी से इसी काम में लग गए।

एक सप्ताह बाद उन्हें एक आदमी से ज्ञात हुआ कि *मदरास से अस्सी मील दूर एक गाँव में प० गिरिधर* पतलू नामक व्यक्ति के पास एक प्राचीन शास्त्र है। उसी दिन दोनों मित्र उस गाँव की ओर प्रस्थान कर गए।

दो दिन बाद सायंकाल के समय दोनों मित्र उस गाँव में पहुँचकर डाकबँगले में ठहरे। वे भारतीय ब्राह्मणों के स्वभाव को भली प्रकार जानते थे। उन्हें ज्ञात था कि भारत के ईमानदार ब्राह्मणों को डरा-धमकाकर उनसे कुछ प्राप्त कर सकना असंभव है। अतः उन्होंने एक और उपाय काम में लाने का निश्चय किया। प० गिरिधर पतलू को उसी समय बुलवा भेजा गया।

सूर्य डूबने में अभी कुछ देर थी कि प० गिरिधर पतलू डरते-डरते डाकबँगले पर पहुँचे। दोनों साहबों ने खड़े होकर उनका स्वागत किया। पंडितजी के लिये गोबर का चौका लगवाकर गद्दी लगाई गई थी, उन्हें उसी पर बिठाकर साहब लोग स्वयं एक चटाई पर बैठ गए।

डाक्टर रीन संस्कृत जानते थे, उन्होंने संस्कृत में ही प्रश्न करने प्रारंभ किए। ब्राह्मण देवता पहले तो एक म्लेच्छ के सम्मुख संस्कृत बोलते हुए कुछ घबराए, परंतु फिर उन्होंने और कोई मार्ग न देखकर संस्कृत में ही उत्तर देना शुरू किया। डॉक्टर रीन ने एक लंबी भूमिका के साथ पूछा—"आपके पास, जो प्राचीन धर्म-ग्रंथ है, उनके नाम को कौन-कौन से अक्षर सुशोभित करते हैं?"

पंडितजी घबरा गए। यह प्रश्न किस उद्देश्य से किया जा रहा है—इसे वह न समझ सके। परंतु थोड़ी देर तक हिचकिचाते रहकर उन्होंने उत्तर दिया—"धातुसार।"

डॉक्टर साहब का चेहरा प्रसन्नता से खिल उठा। उनके पास जो पत्ता था, उस पर भी "धातुसार" यही शब्द लिखा हुआ था। ज़बरदस्ती अपने प्रसन्नता के आवेश को रोके रहकर उन्होंने अगला प्रश्न किया—"वह पुस्तक किस चीज़ पर लिखी हुई है?"

उत्तर मिला—"ताड़पत्रों पर।"

डॉक्टर साहब ने, फिर पूछा—"उसका आकार क्या है?"

पंडितजी को आज तक कभी इस प्रकार किसी चीज़ के आकार, रंग, रूप आदि का वर्णन नहीं करना पड़ा था, अतः वह यत्न करने पर भी अपना अभिप्राय स्पष्ट न कर सके। डॉक्टर साहब ने, उन्हें असमंजस में पड़ा देखकर अपनी जेब से वही ताड़ का पत्ता निकालकर उसे दिखाते हुए पूछा—"क्या आपकी पुस्तक का यही आकार है?"

उसे देखते ही पंडितजी चौंककर बोल उठे—"हैं! यह आपके पास कहाँ से आया? यह तो मेरी पुस्तक का ही पृष्ठ है।"

डॉक्टर रीन ने, इस प्रश्न का उत्तर न देकर कलक्टर साहब की ओर देखा। अपने प्रश्न के उत्तर की अधिक देर तक प्रतीक्षा न करके पंडितजी ने कहना शुरू किया—"पिताजी की तेरहवीं के बाद जब घर की सफ़ाई की गई, तभी हमारे धर्म-ग्रंथ का यह पृष्ठ न-जाने अचानक कहीं खो गया था। क्या आप यह पृष्ठ मुझे वापस करने आए हैं? साहब, आप लोग सचमुच बड़े दयालु हैं। यह मुझे लौटा दीजिए। आपका यह उपकार मैं जन्म-भर न भूलूँगा।"

यह कहते-कहते पंडितजी का चेहरा भय से पीला पड़ गया। उन्हें याद आया कि पिताजी मरते समय अपनी क़सम खिलाकर जिस बात से मुझे रोक गए थे, विधि-वश वह बात स्वयं ही हो गई। यह अभागा पत्ता न-जाने किस प्रकार इन म्लेच्छों के हाथ आ लगा।

पंडितजी को चिंताकुल देखकर डॉक्टर साहब ने दिल खोलकर हिंदू-धर्म की उदारता का बयान करते हुए संसारोपकार की लंबी भूमिका बाँधकर अंत में कहा—"आप यह पुस्तक हमें दे दीजिए। सारा संसार इसके लिये आपका

साहब, आप लोग सचमुच बड़े दयालु हैं, यह मुझे लौटा दीजिए।

यश गाएगा। आपके इस महादान के प्रतिफल में हम तुच्छ लोग आपकी कोई बड़ी सेवा तो कर ही नहीं सकते। हाँ, हमारी दस हज़ार रुपयों की दक्षिणा स्वीकार कीजिए।"

पंडित गिरिधर पनत् दस हज़ार का नाम सुनकर अचंभे में आ गए। उनकी पुस्तक का इतना अधिक मूल्य है! उन्होंने कभी कल्पना द्वारा भी १० हजार रुपयों के दर्शन न किए थे। इसी समय उन्हें अपने पिता के अंतिम वचन याद आए। दस हज़ार का बड़ा प्रलोभन उनके दिमाग में प्रवेश न पा सका। उन्होंने पुस्तक देने से इनकार कर दिया, इनकार करते हुए उनकी जिह्वा लड़खड़ा रही थी।

डॉक्टर साहब से पंडितजी की कमज़ोरी छिपी न रह सकी। उन्होंने धीरे-धीरे बड़ी नम्र-भाषा में अपनी दक्षिणा बढ़ानी प्रारंभ की। "दस हज़ार, बीस हज़ार! पच्चीस हज़ार! तीस हज़ार!"

परंतु पंडितजी के मुँह से हाँ न निकल सकी। वह मसनद पर टेक लगाकर चुपचाप बैठे थे, लकवे के बीमार की तरह उनका सारा शरीर काँप रहा था। माथे से पसीने की धाराएँ बह रही थीं। परंतु मुँह इस प्रकार बंद था मानो किसी ने उसे ज़बरदस्ती सींच रखा हो। पंडितजी को इस हालत में देखकर कलक्टर साहब के लिये हँसी रोकना असंभव हो रहा था, परंतु डॉक्टर रौन उसी प्रकार गंभीर-भाव से बैठे थे। स्वयं उनको अपने हृदय की गति भी बहुत बढ़ गई थी, "कहीं यह ब्राह्मण काबू में न आ सका तो?"

जादूगर ने जादू की लकड़ी फिर हाथ में ली। प्रलोभन अब बड़ी-बड़ी छलाँगें मारने लगा। तीस हजार से एकदम चालीस हजार हुआ। पंडितजी अब भी चुप थे। चालीस हज़ार से बोली सीधी पचास हज़ार पहुँची; पर पंडितजी अब भी न बोले।

डॉक्टर साहब एक ठंडी श्वास लेकर आगे बढ़ने से रुक गए। उन्होंने अपनी संपूर्ण जायदाद नीलाम पर चढ़ा दी थी। अब पंडितजी के लिये चुप रहना असंभव हो गया। वह काँपते हुए लड़खड़ाती आवाज में बोले—"कल प्रात आकर ले जाना।" मालूम होता है कि ये शब्द कहते हुए उन्हें अपनी सारी ताकत लगा देनी पड़ी। वह बेहोश होकर वहीं गिर पड़े। उन्हें उठाकर घर पहुँचाया गया।

डाक्टर साहब की प्रसन्नता का पारावार नहीं था। उन दिनों तक तारबर्की का आविष्कार नहीं हुआ था, अत डॉक्टर साहब अपने पेरिस तथा बर्लिन के मित्रों को इस बात की सूचना न दे सके। सारी रात डाक्टर साहब को नींद न आई, वह इस प्रतीक्षा में थे कि लंबी रात समाप्त हो और वह उस उद्देश्य में सफलता प्राप्त करें, जिसके लिये वह महीनों खाक छानते रहे हैं।

(४)

प्रातःकाल होते ही १५-२० सिपाहियों के सिरों पर पचास हज़ार रुपया लदवाकर डॉक्टर साहब अपने कलक्टर मित्र के साथ पंडित गिरिधर पनत् के घर पहुँचे। पंडितजी का घर एक लंबे-चौड़े मैदान के किनारे पर था। उस मैदान में पहुँचते ही डॉक्टर साहब ने विचित्र दृश्य देखा। उन्हें

दूर से दिखाई दिया कि केवल एक लँगोट बाँधकर ब्राह्मण देवता समाधि लगाए बैठे हैं, उनके सामने ज़मीन में खुदे हुए एक बड़े से यज्ञ-कुंड में प्रचंड अग्नि धधक रही है। गिरिधर अपनी जाँघों पर एक बस्ता खोलकर बैठा हुआ बड़े ग़ौर से किसी चीज़ को देख रहा है। किसी अज्ञात अनिष्ट की आशंका से डॉक्टर साहब का हृदय काँप गया। वह अपने साथियों को छोड़कर बेतहाशा पंडितजी की ओर भागे।

अचानक पंडितजी की नज़र इन लोगों पर पड़ी। इन्हें देखकर वह इस प्रकार चौंके, जैसे पागल कुत्ता पानी को देखकर चौंकता है। इसके अगले ही क्षण बिजली की तेज़ी से पंडितजी ने, वह संपूर्ण बस्ता एकदम आग में डाल दिया। डाक्टर साहब के वहाँ पहुँचने तक इस अभागे देश की उस अमूल्य संपत्ति को आग की लोभी ज्वालाएँ भली प्रकार चाट चुकी थीं। डाक्टर साहब

पंडितजी ने, वह संपूर्ण बस्ता एकदम आग में डाल दिया।

दोनों हाथों से अपना सिर पकड़कर यज्ञ-कुंड के किनारे ही बैठ गए! हिंदोस्तान सचमुच जादूगरों का मुल्क है, इस बात का आज उन्हें प्रत्यक्ष प्रमाण मिल गया।

एक हिंदू, बाक़ी दुनिया के लोगों को इतना घृणित और हेय क्यों समझता है— यह बात डाक्टर रीन मरते दम तक नहीं समझ सके।

चंद्रगुप्त विद्यालंकार

हिंदू-संसार

(१)

चेत जा रे हिंदू-संसार!
मिटने दे अस्तित्व न, भोले आखें वेग उघार?
चेत जा रे हिंदू-संसार!

(२)

क्यों अमूल्य अवसर खोता है?
अरे! क्यों न जाग्रत होता है??
पछतावेगा लुटा जा रहा, तेरा सब घर-बार।
चेत जा रे हिंदू-संसार!

(३)

घोर वज्र! यवनों ने ढाया
ईसाइयों ने मुँह फैलाया।
युक्ति फ़ौज फ़्रीमेसनवालों का तू हुआ शिकार।
चेत जा रे हिंदू-संसार!

(४)

चोटी और जनेऊ खोकर,
हाथ दीन दुनिया से धोकर।
खोल न अपने लिये नरक का, हा! दुखदायी द्वार।
चेत जा रे हिंदू-संसार!

(५)

गो-वध बंद नहीं हो पाता
निर्बल होकर कष्ट उठाता।
देख रहा क्या? उठकर जगमग जीवन-ज्योति पसार।
चेत जा रे हिंदू-संसार!

(६)

निज कन्याओं का विक्रय कर
विधवाओं से भारत को भर।

हो नितांत स्वार्थांध कर रहा, हा ! क्यों पाप-प्रचार ?
चेत जा रे हिंदू-संसार !

(७)

जीवों की हिंसा करता है,
स्वगृण भाव न उर भरता है।
तुझे अधोगति दिला रहे हैं, तेरे दुष्ट विचार।
चेत जा रे हिंदू-संसार !

(८)

तजकर मेल फूट फल खाता,
नेक न अपनों को अपनाता।
अपने अंगों का ही निष्ठुर बनकर रहा विदार।
चेत जा रे हिंदू-संसार !

(९)

न्यारे-न्यारे गीत गा रहा,
दिन-दिन भीषण ह्रास पा रहा।
मुग्रबद्ध हा ! रहा न, बेड़ा डुबा रहा मँझधार।
चेत जा रे हिंदू-संसार !

(१०)

नारी-कुल का मान मिटाता,
गुण-गौरव की बलि उड़ाता।
क्या सुख पा सकता ? जब तेरा अर्द्ध भाग बेकार।
चेत जा रे हिंदू-संसार !

(११)

अबला का पर्दा न हटाता
निरा कूप - मंडूक कहाता।
घटा रहा अाप दिन धन-जन, विद्या, बल, अधिकार।
चेत जा रे हिंदू-संसार !

(१२)

अरे अभागे ! अब तो जग जा
सम्यक शुभ साधन में लग जा।
तेरा भी तो कर। वस्तुत, हो जावे उद्धार ?
चेत जा रे हिंदू-संसार !

(१३)

हो निःशंक कार्य-रत हो जा,
एकाकार —एक मत हो जा !
पहले मरना सीख, तुझे जो जाना है स्वीकार।
चेत जा रे हिंदू-संसार !

(१४)

क्यों कायर हो नाम लजाता ?
क्यों न अहो ! उत्साह बढ़ाता ?
आगे का रख ध्यान, न पीछे फिर-फिर अरे निहार !
चेत जा रे हिंदू-संसार !

(१५)

छोटे-बड़े सभी से मिल जा !
फिर सुंदर सरोज-सा खिल जा !!
भूतकाल की भाँति लूट फिर भी तू मौज बहार।
चेत जा रे हिंदू-संसार !

(१६)

वैदिक युग में फिर प्रवेश कर ;
धारण फिर प्राचीन वेश कर।
मत-पथों के जटिल जाल का, कर झटपट परिहार।
चेत जा रे हिंदू-संसार !

(१७)

ब्राह्म शक्ति फिर अपनी दिखला,
भक्ति-भजन फिर सबको सिखला !
गहा विश्व को दे फिर संचित सरस्वती भंडार।
चेत जा रे हिंदू-संसार !

(१८)

हो न कदापि निरादर तेरा,
तत्त्व-ज्ञान हो तुझे सवेरा।
कर सत्यार्थ-प्रकाश, आधुनिक रीति-रिवाज-सुधार।
चेत जा रे हिंदू-संसार !

(१९)

क्षात्र-तेज से भरा रहे तू ;
फिर कर में तलवार गहे तू।
ठहरा ले फिर 'कर्ण' सबल हो, करना रिपु-संहार।
चेत जा रे हिंदू-संसार !

"कर्ण"

सोवियट-शासन में रूस का विकास *

पराधीन भारत के युवकों ने बार-बार वह विदेशी गीत सुना है, जिसका अर्थ यह होता है कि बोलशेवी शासन बड़ा क्रूर, भयानक, विद्रोह-पूर्ण और अनिष्टकारक है। हमारे पास संसार के विभिन्न देशों के जो समाचार आते हैं, वे दुर्भाग्य-वश एक ही चलनी में छनकर आते हैं। वे ठीक हैं या गलत, उनमें सत्य का अंश कितना है और झूठ का कितना, इसका जानना अत्यंत कठिन है। हमारे ज्ञान की सीमा उससे आगे नहीं बढ़ सकती, जहाँ तक हमारे प्रभुओं का स्वार्थ है। सरकारी बेतार के तारों ने कभी यह समाचार नहीं दिया कि सोवियट रूस का अमुक काम प्रजा की उन्नति के अनुकूल है। अभागा रूस सदैव गलतियाँ ही करता है और विश्व के पंचमांश को जबरदस्ती अपने नखों से क्षत-विक्षत करनेवाली ब्रिटिश सिंहिनी कभी मानवीय भलाई की सीमा में नहीं आती। जब तक ब्रिटेन ने चाहा जिनोविफ़ का पत्र करोड़ों हृदयों में उत्पन्न होनेवाले अविश्वास और रूस के बार-बार विरोध करने पर भी, सत्य बना रहा, और आज अपने उद्देश्य को हल कर लेने के बाद यह प्रकट करके कि वह एक जाली पत्र था- इँगलैंड के बड़े बड़े राजनीतिज्ञ गर्व-अनुभव करते हैं। अधिक दिन नहीं हुए, जब एक अर्द्ध सरकारी दैनिक रूसी पत्र का एक पेज रूस-सरकार की निंदा और अत्याचार-संबंधी झूठे विवरण से भरकर ब्रिटेन के गुप्त सरकारी छापेखाने में छापा, और वहाँ से विश्वस्त राजनैतिक एजेंटों के पास रूस भेजा गया। किसी तरह धोखे से यह पेज उक्त पत्र के पैकटों में भरकर सर्वत्र डाक से रवाना किया गया। इँगलैंड के पत्रों ने, इसके आधार पर रूसी सरकार के अत्याचारों की करुण कहानी से कालम-के-कालम रँग दिए। उस रूसी पत्र के व्यवस्थापक और सच्ची बातों को जाननेवाली जनता अवाक् रह गई।

रूसी या गैर ब्रिटिश साधनों से (जापान, चीन और जर्मनी में प्रकाशित मूल पुस्तकें अथवा उनके अनुवाद), जब हममें इन समाचारों की सत्यता की परख करने की इच्छा होती है, तब भी हम अपनी तृष्णा बुझाने में अपने को असमर्थ पाते हैं। इस प्रकार की पुस्तकें विद्रोह के नाम पर ज़ब्त कर ली जाती हैं और उनके पाठकों पर सरकार की विशेष कृपा हो जाती है। यह है उस साम्राज्य का हाल, जो अपने को स्वतंत्रता का जन्म-सिद्ध उपासक कहता है, पर सर्वत्र परतंत्रता की संतान वृद्धि में व्यस्त है।

ऐसे ही साम्राज्य के संचालकों के मुख से हम बार-बार सोवियट-शासन की असफलता और क्रूरता का वर्णन सुनते रहे हैं। इसका फल मनोवैज्ञानिक दृष्टि से इतना बुरा हुआ है कि हमारी संस्कृति के मूल उपकरण और मानसिक प्रवृत्तियाँ तक जड़ एवं साम्राज्यवादिनी होती जाती हैं। वह आदर्श-मूलक संस्कृति जिसने निर्भय होकर जगत् को आश्वासन दिया था—'सर्वेऽपि सुखिन सन्तु सर्वे सन्तु निरामया' सब सुखी हों, सब निरामय हों—आज कठिन हो गई है। वेदांत ने, जिस साम्य-अनुभूति-मूलक आत्मवाद की सृष्टि की थी वह आज ज़हरीली सभ्यता के चाकचिक्य से टकराकर चूर-चूर हो गई है। यदि ऐसे समय हमारे-जैसा एक लेखक यह कहे कि जिसे भारत ने आत्मशुद्धि के क्षेत्र में आत्मवाद कहकर रक्खा था, उसे ही बोलशेवी या साम्यवादी राजनैतिक क्षेत्र में आज़मा रहे हैं, तो लोगों को आश्चर्य होगा। वे अपने आदर्श में सफल होंगे कि नहीं, यह समय बताएगा। यहाँ हम उन साधनों के उधार पर, जो ब्रिटेन, फ्रांस तथा जर्मनी के ही शांत, विद्वान् और निष्पक्ष पुरुषों की आँखों देखी बातों से पूर्ण है। यह दिखाने की चेष्टा करेंगे कि सोवियट स्वयं अपने आदर्शों को कार्यान्वित करने में संलग्न है या नहीं। और है, तो उसकी अधिकार-सीमा में रूस का कहाँ तक विकास हुआ है।

* इन पंक्तियों का लेखक राष्ट्रीय साम्यवाद का स्वभावतः ही विरोधी है। वह भारत के लिये इसे अनुपयुक्त और संसार के लिये अस्वाभाविक समझता है। शायद इसका कारण यह हो कि वह व्यक्तिवाद (Individualism) का कट्टर उपासक है, किंतु ज्ञान की सीमा को विस्तृत करने के लिये वह उन उपयोगिताओं को स्वीकार कर लेना ठीक समझता है, जो सोवियट-शासन ने संसार के सामने उसी की भलाई के लिये रक्खी हैं।—लेखक

१ सदाचार-सबधी विजय (Moral Victory)

१६१६ मे, जब सोवियट प्रजातंत्र को स्थापित हुए थोड़े ही दिन हुए थे, मैनचेस्टर की विक्टोरिया युनिवर्सिटी के शिक्षा-विज्ञान-विभाग के प्रधान और 'मैनचेस्टर गार्जियन' के विशेष सवाददाता श्रीगुड ने बोलशेविक शासन-पद्धति की व्यावहारिकता के सबध मे विशेष ज्ञान प्राप्त करने की इच्छा से स्वय मास्को तथा रूस के विभिन्न भागों की यात्रा की थी। उस समय उन्होंने देखा कि हमारे देश में इस नवीन शासन-पद्धति के विरुद्ध जो बातें फैलाई जा रही हैं, उनमें अधिकाश मिथ्या है। उन्होंने लेनिन (जो उस समय सोवियट प्रजातंत्र के अध्यक्ष थे) से भी भेंट की थी। उस समय ब्रिटेन मे कहा जाता था कि लेनिन तथा अन्य अधिकारियों पर चीनी सिपाहियों का पहरा रहता है। पर श्रीगुड जब 'क्रेमलीन' (सोवियट मन्त्रिमडल का कौंसिल-भवन) मे लेनिन से मिलने गए, तो उन्हें कहीं कोई चीनी न देख पड़ा। ऑफ़िसों मे सब मत्री तथा अधिकारी अपने-अपने कामों मे लगे थे। लेनिन १२-१२ घटे काम करता था।

ब्रिटिश साम्राज्य मे सोवियट सरकारी रूप से प्रचार का कार्य करे, इसके लिये दोनों राज्यों की सरकारों मे कितनी ही बार लिखा-पढ़ी हो चुकी है। यह कहा जाता है कि जब तक रूस ऐसा करता है, उससे सबंध कायम रखना ब्रिटेन के लिये कठिन है। गत वर्ष, यही कहकर और इसके सबध में जाली प्रमाण पत्र पेश कर रूस से व्यापारिक सबध भी तोड़ दिया गया। 'आर्कस कपनी' के साथ किए गए अनुचित और गैरकानूनी व्यवहार की बात तो सभी पाठक पत्रों मे पढ़ चुके होंगे। पर श्रीगुड के प्रश्न करने पर लेनिन ने, जो बात कही थी, वह आज भी ब्रिटेन के ऊपर सोवियट की सदाचार-सबधी विजय—(Moral Victory) को प्रत्यक्ष करती है। लेनिन ने कहा था कि "हम लोग सदैव सरकारी प्रचार को रोक देने का प्रतिज्ञा-पत्र लिखने को तैयार हैं। व्यक्तिगत हैसियत से यदि कोई विदेशों मे जाकर प्रचार करेगा, तो अपनी ज़िम्मेदारी पर करेगा। उसको वहा के क़ानून के अनुसार दड दिया जा सकता है।" आगे इस सदाचार-सबधी विजय को और प्रत्यक्ष करते हुए लेनिन ने आत्म-गौरव-पूर्ण स्वर मे कहा—"रूस मे अँगरेज़ों के प्रचार के विरुद्ध कोई क़ानून नहीं है। इँगलैंड में ऐसे कानून हैं, इसलिये रूस इस संबध मे अधिक उदार है। हम लोग तो ब्रिटिश, फ्रेंच, अमेरिकन, जो सरकार चाहे, उसे सरकारी तौर से प्रचार करने की आज्ञा देने तक को तैयार हैं। यह ब्रिटेन है, जो 'साम्राज्य-रक्षा-विधान' (The Defence of the Realm Act) के नाम पर विचार-प्रकाशन की स्वतंत्रता में बाधा डालता है। फ्रास में प्रेस की स्वाधीनता का बड़ा डींग हाँकी जाती है। पर अभी कल मैं हेनरी बारबोसा का 'क्लार' उपन्यास पढ़ रहा था, जिसमें दो परिच्छेद सरकार की ओर से निकाल और बदल दिए गए थे।" इसके बाद लेनिन ने, व्यग्य किया—"वे स्वतत्र, प्रजातत्रवादी फ्रास मे उपन्यासों पर 'सेन्सर' करते हैं।"

कितने सुदर भाव हैं। सोवियट, विचारों की स्वतंत्रता चाहता है। वह चाहता है कि दूसरी सरकारें अपनी बातें हमारी जनता के सामने पेश करें और हम अपनी बात उनकी प्रजा के सामने। जिसके सिद्धात उपयोगी होंगे, लोगों को पसद आवेंगे, हितकर समझे जायगे, लोग स्वय स्वीकार कर लेंगे। पर ब्रिटेन तथा अन्य साम्राज्यवादिनी सरकारें अपनी कमजोरी जानती हैं। वे यह समझती हैं कि साम्यवाद चाहे जनता को स्वीकार भले हो न हो, पर साम्यवाद-आदोलन में विचारों की जो स्वतत्रता है, साधारण प्रजा के हित के जो भाव हैं, उनके सामने साम्राज्यवाद के विधान-विचारों की खुली लड़ाई में ठहर न सकेंगे। इसी-लिये वे साम्राज्य-रक्षा के नाम पर उस स्वतत्रता का हरण करती हैं, जिसके सबध में वे अपने को सबसे बड़ा हुआ समझती हैं। यह सोवियट की ब्रिटेन तथा अमरिका इत्यादि के ऊपर सदाचार-सबधी विजय है और इससे रूस का विकास करने मे, रूसी जनता के अदर आत्म-शक्ति जागृत करने मे बड़ी सहायता मिली है।

२ मौलिक सिद्धातों का पालन

सोवियट की स्थापना के बाद से आज तक का इतिहास देखने से ज्ञात होता है कि १०-१२ वर्ष के इतने कम समय में भी उस (सोवियट) ने अपने प्रधान सिद्धातों का व्यावहारिक प्रयोग करने मे काफी सफलता प्राप्त की है। सोवियट के इस समय, दो प्रधान कार्य-क्षेत्र हैं। (१) अपने देश के शासन का आधार साम्यवाद रखकर, उसकी सब प्रकार से उन्नति करना। (२) दूसरे

देशों के संबंध में उन सिद्धांतों का पालन और प्रचार करना, जिनके लिये उसके संस्थापकों ने विद्रोह किया था। इन्हें आंतरिक शासन-शुद्धि और बाह्य (परराष्ट्र-संबंधी) सैद्धांतिक प्रचार की संक्षिप्त शब्दावली ('टर्म' से अभिप्राय है) से भी पुकार सकते हैं। इनमें हम पहले दूसरे की परीक्षा करके तब पहले के संबंध में लिखेंगे। क्योंकि जिस सैद्धांतिक आधार पर सोवियट ने अपने शासन-विधान की रचना की है, वह तब तक अपूर्ण और अविकसित समझा जायगा, जब तक दूसरे देशों के संबंध में भी अपने आदर्श का व्यावहारिक प्रयोग करने में सचेष्ट न हो।

साम्यवाद का आंतरिक उद्देश्य यह था कि संसार से साम्राज्यवाद का युग नष्ट हो जाय और प्रत्येक देश अपने आसपास या दूर के देशों की स्वतंत्रता में बाधा डाले बिना अपनी संपूर्ण प्रजा की नैतिक, मानसिक और शारीरिक उन्नति का प्रबंध करे—सब सुखी हों, एक देश को अपने पास के देश से इसलिये भय न हो कि वह बड़ा है और चाहते ही हमें कुचल डालेगा (अतएव सेना बढ़ाकर युद्ध का आह्वान सुनने के लिये तैयार रहना चाहिए)। १९१७* से—जब सोवियट प्रजातंत्र की स्थापना हुई—आज तक इस दस वर्ष के थोड़े समय में उसने संसार की विचार-धारा में क्रांति उपस्थित कर दी है। कला में, साहित्य में, राजनैतिक सिद्धांतों में, शासनयोजनाओं में तथा समाज-संघटन के रूप में अनेक परिवर्तन इधर हुए हैं; और इनका बहुत बड़ा कारण बीसवीं शताब्दी की वह महाक्रांति है, जो सोवियट ने संसार के आँगन में कर दिखाई है।

सोवियट-सरकार ने अपने जन्मकाल से ही उन देशों को अपने पैर पर खड़ा करना आरंभ किया, जो अलग होते हुए भी रूस के सम्राटों द्वारा रूसी साम्राज्य में मिला लिए गए थे अथवा जिन पर रूस का पर्याप्त प्रभाव था। सोवियट के जन्म के साथ ही लेनिन ने, उसके अध्यक्ष की हैसियत से फ़िनलैंड की सरकार के तात्कालिक प्रधान स्विनहूफ़ (Swinhufeied) को फ़िनलैंड की स्वतंत्रता का स्वीकृतिपत्र दे दिया। इस स्वीकृतिपत्र में सोवियट ने, फ़िनलैंड के प्रजातंत्र को सरकारी तौर पर स्वीकार कर, उसे एक स्वतंत्र देश बना दिया। यह स्वीकृतिपत्र नवंबर १९१७ में दिया गया था और इसी महीने में सोवियट की स्थापना हुई थी। यह आश्चर्य का विषय है कि एक ध्वंसकारी विद्रोह के बाद जब आंतरिक सुधार का प्रश्न ही इतना जटिल था कि वर्षों उसे ठीक करने में लग जाते। सोवियट ने, तुरंत फ़िनलैंड के प्रश्न पर ध्यान दिया। शासन अपने हाथ में लेने के साथ ही—यद्यपि युद्ध चल रहा था—सोवियट ने घोषणा की कि हमारा कोई सैनिक शस्त्र लेकर फ़िनलैंड की सीमा में प्रवेश नहीं करेगा। इतिहास में शासन-शुद्धि और उदारता का यह अद्भुत नमूना है। एक हमारी ब्रिटिश सरकार है, जो पार्लियामेंट में भी भारतीय बहस को तब स्थान देती है, जब घर के सारे मसले तय होने के बाद समय बच जाय। फिर भी वह सोवियट से अधिक उदार और कम अत्याचारी होने की डींग मारने में कभी नहीं शर्माती—

सिर्फ़ फ़िनलैंड को ही स्वतंत्रता प्रदान कर सोवियट चुप नहीं रही। उसने इस्थोनिया* को भी एक स्वतंत्र प्रदेश बना दिया। पोलैंड तो पहले ही स्वतंत्र हो गया था। बशकीर-प्रदेश को भी उसने स्वतंत्र प्रजातंत्र राज्य मानकर स्वाधीनता प्रदान की। यद्यपि बशकीर लोग संसार के बहुत ही कमज़ोर और पिछड़ी हुई जातियों में हैं। इस संबंध में लेनिन ने, सोवियट की नीति यह बताई थी—"सब छोटे राष्ट्रों की स्वाधीनता स्वीकार करना हमारे सिद्धांतों में एक है।" सोवियट की इस नीति का एक उदाहरण लीथूनिया† और दूसरा लटविया भी है। इन दोनों प्रदेशों को स्वशासन के प्रायः सब अधिकार प्राप्त हो गए है। जो प्रदेश रूस साम्राज्य के बहुत महत्त्व-पूर्ण अंग समझे जाते थे और शताब्दियों से उसके अंतर्गत चले आ रहे थे, उनके निवासियों में स्वाधीनता की भावना देखते ही सोवियट ने पराधीनता की बेड़ी काट दी। इस प्रकार की उदारता और नैतिक राजनीतिमत्ता के उदाहरण संसार के इतिहास में शायद ही मिलें।

*सच पूछिए, तो सोवियट का जन्म सन् १९१८ में हुआ।—लेखक

* इस्थोनिया—फ़िनलैंड की खाड़ी के दक्षिण-तट पर फैला हुआ रूस का एक प्रदेश।

† लीथूनिया—पहले योरप की एक 'ग्रैंडडची' (स्वतंत्र राज्य, जिसके शासक ग्रैंडड्यूक कहलाते थे) पर पीछे पोलैंड और फिर बाद में रूस साम्राज्य में मिला ली गई थी)।—लेखक

दूसरी जगहों से भी यह कुछ कमा नहीं सकते, पर इन्हीं त्यागी महानुभावों के लिये साम्राज्यवादी सरकारों के प्रभाव से चलनेवाले 'गटर' प्रेस यह प्रसिद्ध किया करते हैं कि वे स्वार्थी और व्यक्तिगत महत्त्वाकांक्षा से पूर्ण हैं * ।

कार्यकारिणी के इन अनेक विशिष्ट विभागों का संघटन इतना एक और सुंदर है कि शायद ही कोई ज़रूरी बात उनके कार्य-क्रम से छूट जाती हो ('Political organization of Soviet) (सोवियट का शासन-संघटन)-शीर्षक में अपनी यात्रा के अनुभव बयान करते हुए श्रीगुड ने 'मानचेस्टर गार्जियन' में लिखा था— "सोवियट शासन-प्रणाली का देश के साथ दिन-दिन मज़बूत होनेवाला जो बंधन है, उसकी शक्ति से पश्चिमीय योरप अनभिज्ञ है । इसकी सूक्ष्मता अद्भुत है और इसके प्रभाव अथवा ज्ञान से बहुत थोड़ी बातें छूट सकती हैं ।" "यह सोवियट-सरकार के संघटन का एक साधारण लक्षण है ।"

केंद्रीय कार्यकारिणी का प्रांतीय से, प्रांतीय का नगर और ज़िले की कार्यकारिणी शासन-समितियों से ऐसा संबंध है कि प्रत्येक स्थान की एक-एक बात, वहाँ की जनता की आवश्यकता, उनकी आकांक्षा और उनकी कठिनाइयों से केंद्रीय सरकार का पूर्ण परिचय रहता है । इतना ही नहीं, मास्को में समय-समय पर प्रत्येक ज़िले की कार्यकारिणी शासन-समितियों के सदस्य और अध्यक्ष बुलाये जाते हैं और केंद्रीय सरकार के अधिकारी उन सबके साथ मिलकर जनता को अधिक शक्तिमान्, उन्नत, विद्वान्, सुखी और मनोषी बनाने के उपायों पर विचार करते हैं । सरकार का सारा प्रयत्न, उसके कार्य-क्रम की सारी शाखाएँ उन सिद्धांतों में केंद्रित हैं, जिनके आधार पर इस शासन का सूत्रपात हुआ था । इस प्रकार अपने संघटन से सोवियट ने रूस की आर्थिक और राजनैतिक दोनों अवस्थाओं में पर्याप्त उन्नति की है ।

४ विधान

सोवियट विधान पर भी विचार करना आवश्यक है । किसी सरकार की नींव तब तक स्थिर नहीं रह सकती, जब तक कि वह जनता को एक सुदृढ़, सुंदर और लाभदायक विधान प्रदान न कर सके । एक अच्छी सरकार के लिये अच्छा विधान (Constitution) चाहिए । इस मामले में भी रूस की राजनीतिज्ञता ने अपनी दूरदर्शिता व्यक्त की है, यह उसके विधान पर सूक्ष्म विचार करने से ही ज्ञात पड़ता है ।

स्थानीय सोवियट रूसी सरकार का सबसे छोटा, पर प्रधान अंग है । इन्हें कभी-कभी प्रतिनिधि-सभा भी कहते हैं । इनके दो प्रकार हैं । (१) नगर सोवियट, (२) ग्राम्य सोवियट । ये प्रतिनिधि-सभाएँ सोवियट-सरकार की सभी शासन-संस्थाओं की भाँति निर्वाचित प्रतिनिधियों द्वारा बनती हैं । प्रत्येक निवासी वोटर है । चोरी अथवा इसी प्रकार के अन्य अपराधों में सज़ा पाए हुए लोग इस अधिकार से वंचित हैं । नगरों में १,००० अधिवासियों पर एक प्रतिनिधि चुना जाता है । इन प्रतिनिधियों की संख्या कम-से-कम ५० और अधिक-से-अधिक १,००० होनी चाहिए । सब स्थान निर्वाचनात्मक हैं और नामज़दगी का कहीं कोई सवाल नहीं । ग्राम्य सोवियट के लिये (जिनमें १०,००० से कम जन-संख्या-वाले नगर भी सम्मिलित हैं ।) १०० अधिवासियों पर एक प्रतिनिधि का चुनाव होना है । इनकी संख्या कम-से-कम ३ और अधिक-से-अधिक ५० होनी चाहिए* ।

साधारण कार्य चलाने के लिये ये दोनों प्रकार के सोवियट अपने लिये एक-एक कार्यकारिणी समिति चुनते हैं । कार्यकारिणी समिति के सदस्यों की संख्या ग्राम्य सोवियट में अधिक-से-अधिक ५ और नगर-सोवियट में

---

* एक अँगरेज़ यात्री ने रूस की यात्रा करने के बाद इन त्यागी महात्माओं के संबंध में ठीक ही लिखा था—"If my hopes in the future of these men have been founded on the slanderous descriptions of them circulated in the west of Europe as self-seekers, gluttons for personal pleasures and for money and bloody monsters—after my contact with them and their work, I feel convinced those hopes are doomed to disappointment."

* ३०० से कम जन-संख्यावाले गाँव अपना अलग सोवियट नहीं बनाते । वह या तो अपने पंच और प्रतिनिधि चुनकर एक शासन-सभा (स्विज़रलैंड के 'लैंडजमिंडन' Landesgemeinden की तरह) बना लेते हैं, या पास के गाँव से मिलकर अपना एक संयुक्त ग्राम्य सोवियट बनाते हैं ।

६ से कम और १५ से अधिक न होनी चाहिए * । यह कार्यकारिणी समितियाँ उस सोवियट के सम्मुख पूर्णरूपेण उत्तरदायी हैं, जिनके द्वारा वे चुनी जाती हैं।

यह दो प्रकार के सोवियट ही रूसी शासन की आधार-शिला हैं और इन्हीं पर शासन की सुदृढ़ दीवार उठाई गई है। जैसा कि सोवियट-विधान कहता है 'यह सोवियट अपनी सीमा के अंदर पूर्ण शक्ति रखते हैं और उस सीमा के निवासियों को उनकी प्रत्येक आज्ञा का पालन करना आवश्यक एवं अनिवार्य है।' अत्याचार की मात्रा बढ़ जाय (जैसा कि हमारे म्युनिसिपल और ज़िला-बोर्डों में अकसर देखा जाता है), इसके लिये भी पहले से ही यह समझ-बूझकर नियम बना दिया गया है। यद्यपि ये चुनाव वार्षिक हैं, पर वोटर जब चाहें, अपने किसी प्रतिनिधि को अलग करके उसके स्थान पर दूसरा प्रतिनिधि चुन सकते हैं। इस नियम के कारण प्रतिनिधि जनता की राय के अनुसार काम करने को बाध्य हैं। चुनाव से पूर्व ख़ुशामद और चुनाव के बाद मनमानी करने से महरूम रहते हैं।

ग्राम्य सोवियट की बैठक कम-से-कम सप्ताह में दो बार और नगर-सोवियट की भी प्राय: इतने ही अंतर से होती है। जनता की भलाई और आदर्श प्रतिनिधित्व के ख़याल से विधान में यह धारा जोड़ दी गई है कि 'सोवियट का प्रत्येक सदस्य कम-से-कम पंद्रहवें दिन अपने कार्य की रिपोर्ट निर्वाचकों के सम्मुख उपस्थित करने को बाध्य है। उचित कारण दिखाए बिना दो-बार इस नियम का उल्लंघन करने से वह अपने उत्तरदायित्व और पद से अलग कर दिया जायगा और उसकी जगह दूसरे प्रतिनिधि का चुनाव होगा।' इस प्रकार शासन का संपूर्ण मूलाधिकार जनता के हाथ में रहने के कारण सोवियट शासन-प्रणाली संसार की सरकारों में एक अद्भुत उदाहरण उपस्थित करती है।

ग्राम्य सोवियट मिलकर 'ज़िला सोवियट-कांग्रेस' (जिन्हें वोलोस्ट—Volost—कहते हैं) का निर्वाचन करते हैं। इनमें प्रत्येक १०० अधिवासी पर एक प्रतिनिधि चुना जाता है। वोलोस्ट कांग्रेस अपनी कार्यकारिणी समिति चुनती है, जिसमें ३ से ७ सदस्य तक हो सकते हैं।

* पेट्रोग्राड (अब लेनिनग्राड) और मास्को में अधिक-से-अधिक संख्या ४० तक है। लेखक

यह समिति ज़िले के सब सोवियटों से मिलकर काम करती और ज़िले की उन्नति के उपायों को कार्यान्वित करती है।

वोलोस्ट कांग्रेसों के ऊपर 'यूज़्द' (Uyezd) कांग्रेसें होती हैं। इसे भी प्राय: पूर्ववत् अधिकार प्राप्त हैं। यह ग्राम्य सोवियटों के निर्वाचित प्रतिनिधियों द्वारा संगठित होती हैं। प्रत्येक १,००० जन-बल पर एक प्रतिनिधि का चुनाव होता है। किसी 'यूज़्द-कांग्रेस' के प्रतिनिधियों की संख्या ३०० से अधिक नहीं हो सकती। साल में एक बार इनकी बैठक होती है। यह भी अपनी कार्यकारिणी समितियाँ चुनती हैं, जो साल भर तक प्राय: एक दर्जन विभागों में बँट कर काम किया करती हैं। इन विभागों में प्रबंध, युद्ध (शांति के समय नहीं), श्रम, शिक्षा, अर्थ, कृषि, स्वास्थ्य तथा भोजन मुख्य हैं।

इनके बाद प्रांतीय कांग्रेसों की बारी आती है, जिन्हें 'गोबर्निया' कहते हैं। इनका संगठन वोलोस्ट कांग्रेसों और नगर-सोवियटों के प्रतिनिधियों द्वारा होता है। वोलोस्ट कांग्रेसें १०,००० अधिवासियों पर एक और नगर-सोवियट २,००० निर्वाचकों पर एक प्रतिनिधि भेजते हैं। प्रत्येक प्रांतीय शासन-मंडल गोबर्निया (Goubernia) के सदस्यों की संख्या ३०० से अधिक न होनी चाहिए।

इसकी बैठक भी साल में एक बार होती है, अतएव कार्य-क्रम के संचालनार्थ प्रत्येक 'गोबर्निया' अपनी एक कार्यकारिणी चुनता है। कार्यकारिणी—निम्न-लिखित पंद्रह विभागों में अपने कार्य का संचालन करती है—(१) प्रबंध, (२) युद्ध (शांति के समय नहीं), (३) न्याय, (४) श्रम और सामाजिक भलाई, (५) शिक्षा, (६) डाक और तार, (७) अर्थ, (८) कृषि, (९) खाद्य द्रव्य, (१०) राष्ट्रीय प्रतिबंध, (११) अर्थ-समिति, (१२) स्वास्थ्य, (१३) संख्या एवं परिमाण, (१४) असाधारण कमीशन और (१५) म्युनिसिपल।

'गोबर्निया' (प्रांतीय) कांग्रेसों से बड़ी प्रादेशिक (Regional) कांग्रेसें होती हैं, जिन्हें 'ओबलास्ट' (Oblost) कांग्रेस कहते हैं। इनके लिये नगर-सोवियट २५,००० अधिवासियों पर एक और 'यूज़्द' कांग्रेसें ५,००० निर्वाचकों पर एक प्रतिनिधि चुन कर भेजती हैं। एक प्रादेशिक कांग्रेस के प्रतिनिधियों की संख्या ५,००० से अधिक नहीं हो सकती।

सोवियट-सरकार की सबसे बड़ी शासन-सभा का नाम 'सोवियटों की अखिल-रूसीय कांग्रेस' (All-Russian Congress of Soviets) है। संपूर्ण शासन इसके ही निश्चय पर अवलंबित हैं। इसका संगठन नगर-सोवियटों (२५,००० निर्वाचकों पर एक प्रतिनिधि के हिसाब से) और गोबर्निया कांग्रेसों (१,२५,००० अधिवासियों पर एक प्रतिनिधि के हिसाब से) के प्रतिनिधियों द्वारा होता है। यह लगभग २,००० सदस्यों की एक बड़ी संस्था है, जो साल में एक बार मिलती है।

यह 'आल-रशन कांग्रेस ऑव सोवियट्स्' (जिसे हम आगे 'ए० आर० सी० एस्' के संक्षिप्त रूप में लिखेंगे) एक कार्यकारिणी चुनती है, जिसे 'आल-रशन सेंट्रल एक्ज़िक्यूटिव कमेटी' (अखिल-रूसी केंद्रीय कार्य-समिति) कहते हैं। इस संस्था को आगे हम 'ए० आर० सी० ई० सी०' के संक्षिप्त नाम से लिखेंगे। यह कार्यकारिणी—'ए० आर० सी० एस्' द्वारा निश्चित कार्य-प्रणाली से साल-भर तक काम करती रहती है। इसमें लगभग ३०० सदस्य होते हैं। इसकी त्रैमासिक बैठकें होती हैं। इसे पश्चिमीय पार्लमेंटों की तरह समझिए—यद्यपि इसकी 'स्पिरिट' उनसे भिन्न है। एक प्रकार से 'ए० आर० सी० एस्' के आदेशानुसार यही राष्ट्रीय शासन का संपूर्ण कार्य करती है।

इस सर्वप्रधान कार्य-समिति के सदस्यों में 'अफ़सरी' (Officialdom) की बू न आ जाय इसलिये विधान में स्पष्ट कर दिया गया है कि—"केंद्रीय कार्य-समिति के प्रत्येक सदस्य को किसी स्थानीय शासन-सभा अथवा प्रधान सभा में जी लगाकर काम करना अनिवार्य होगा।" इस प्रकार इसके सदस्यों को जनता में मिल-जुलकर काम करना पड़ता है और वे अपने को जनता का सेवक-मात्र समझते हैं तथा उसकी आवश्यकताओं का ज्ञान रखते हैं।

केंद्रीय कार्य-समिति दो अन्य संस्थाएँ चुनती हैं, जो उसके सम्मुख ज़िम्मेदार हैं, (१) जनता के मंत्रियों की कौंसिल (Council of people's Commissaries) (२) प्रेसीडियम।

इनमें पहली, अन्य सरकारों की 'एक्ज़िक्यूटिव कौंसिल' की भाँति है। इसका संगठन राष्ट्र के १६ विभागों के अध्यक्षों के मिलने से होता है। यह शासन की सुविधाओं पर विचार और तदनुकूल कार्य करती है। दूसरी—प्रेसीडियम, 'स्टैंडिंग कौंसिल' की भाँति है। यह मंत्रि-मंडल का निरीक्षण करती है। इसकी सम्मति के विरुद्ध मंत्रिमंडल कुछ नहीं कर सकता। इसका कार्य बहुत कुछ वही है, जो अन्य राष्ट्रों में सम्राट् या प्रेसीडेंट का होता है। इसके सदस्य केंद्रीय कार्यकारिणी द्वारा चुने जाते हैं। इस प्रकार कार्य-संचालन करनेवाली मुख्य शासन-संस्था जनता के हाथ में है। वृक्ष रूप में सोवियट-शासन का यह रूप हुआ—

स्थानीय सोवियट
|
(१) नगर सोवियट (२) ग्राम्यसोवियट
|
सोवियटों की 'वोलोस्ट' कांग्रेसें
|
सोवियटों की 'यूज़्द' कांग्रेसें
|
सोवियटों की गोबर्निया कांग्रेसें
|
सोवियटों की 'ओबलास्ट' कांग्रेसें
|
सोवियटों की अखिल-रूसीय कांग्रेस
(सर्वप्रधान शासन-चक्र)
|
अखिल-रूसी केंद्रीय कार्यकारिणी
|
जनता के मंत्रियों की कौंसिल　　प्रेसिडियम

संसार के किसी भी वर्तमान शासन-विधान से इस विधान की तुलना कर देखिए, आपको तुरंत मालूम हो जायगा कि क्यों सोवियट-शासन इतना सफल हुआ है और क्यों साम्राज्यवादी राष्ट्र इसे बदनाम करने में चोटी-एँड़ी का पसीना एक कर रहे हैं।

५ फल

रूस ने नवीन शासन-काल में उन्नति के पथ पर इतनी तीव्र-गति प्राप्त की है कि देखकर आश्चर्य होता है। शिक्षा, साहित्य, कला, विज्ञान, उद्योग, व्यवसाय और कृषि में उसने अभूतपूर्व विकास के उदाहरण उपस्थित करके सभ्यातिसभ्य राष्ट्रों को चकित कर दिया है। हमें तब और आश्चर्य होता है, जब हम देखते हैं कि यह सब सफलता उसने संसार के संपूर्ण शक्तिशाली राष्ट्रों के विरोध और अविश्वास से पूर्ण वातावरण में रहकर

प्राप्त की है। उसकी उन्नति का पथ जन्म-काल से ही काँटों से पूर्ण रहा है और न-जाने भविष्य में कब तक रहेगा। इन सब कठिनाइयों के होते हुए भी एक अभूत-पूर्व राष्ट्रीय विद्रोह के बाद देश में सुशासन की स्थापना करनेवाले राष्ट्र का नाम जिस सभ्यता के कोश में 'बर्बर' है, वह चाहे जो करिश्मे दिखा सकती है। पर मैं यहाँ थोड़े में यह दिखाने की चेष्टा करूँगा कि सोवियट-शासन में रूस ने क्या उन्नति की है।

अ—कला

१९२० के पहले सोवियट रूस पर लिखनेवाले अधिकांश लेखकों ने लिखा था कि 'बोल्शेविज़्म ने कला का क्रियात्मक भाव नष्ट कर दिया है और ग़रीब रूसियों को उसके पुनर्जीवन की आशा सदैव के लिये छोड़ देनी चाहिए, किंतु इन सात-आठ सालों में ही उन्हें अपने विचारों की निःसारता मालूम हो गई और पिछले सभी लेखकों ने कला और शिक्षा के संबंध में सोवियट-शासन की प्रशंसा से सैकड़ों पेज रँग डाले हैं। १९२० में भी (जब सोवियट-शासन को आरंभ हुए डेढ़ वर्ष से अधिक नहीं हुए थे) बर्टेंडरसेल की सेक्रेटरी प्रसिद्ध लेखिका कुमारी ब्लैक ने रूस की यात्रा करने के बाद लिखा था—"अन्य क्षेत्रों में बोलशेवी शासन के संगठन के संबंध में जो कहा जाय, पर शिक्षा और कला में तो निश्चय ही उसने अत्यधिक उन्नति की है। जैसा कि कदाचित् कोई क्रांतिकारिणी सरकार न करेगी। इन लोगों ने आरंभ में ही कला की स्वप्रसूत प्रवृत्ति और महत्त्व को समझा था। इसीलिये जहाँ उन्होंने अन्य क्षेत्रों में क्रांति-विरुद्ध उपकरणों को नष्ट किया व दबाया, वहाँ कलाकार को—चाहे वह किसी राजनैतिक विचार व दल का हो—अपना कार्य जारी रखने के लिये पूर्ण स्वतंत्रता प्रदान की। यही नहीं, उनको भोजन और वस्त्रादि के संबंध में विशेष सुविधाएँ दी गई*।" थिएटर तथा स्थापत्यकला ने पर्याप्त उन्नति की है। उच्च कोटि की चित्रकला की शिक्षा के लिये एक दर्जन से अधिक बड़े कॉलेज खोले गए हैं तथा थिएटर-संबंधी शिक्षा के लिये अनेक स्कूलों का प्रबंध किया गया है। सोवियट-शासन ने नाटक, चित्रकला इत्यादि को एक नवीन दार्शनिक तथ्य से अभिभूत कर दिया है। ग़रीब किसानों में कला-संबंधी सुरुचि जागृत करने का प्रयत्न हो रहा है और 'पीज़ेंट म्यूज़ियम' (कृषक-संग्रहालय) में इस समय किमख़ाबी और 'कार्विंग'-संबंधी सामग्री संसार के संग्रहालयों में सर्वोत्तम है।

बहुतों को यह जानकर आश्चर्य होगा कि थिएटर और सिनेमा की दुनिया में अनेक ऐसे प्रथम कोटि के कलाविद् हैं, जो सोवियट-काल की कला-संबंधी नई भावनाओं के निर्माणकर्ता हैं। 'बैलेट' में रूसी सदैव से अग्रगण्य रहे हैं और आज भी उनका वह स्थान सुरक्षित है। वे आंदोलन-कला को ख़ूब समझते हैं। नाट्य-कला-संबंधी स्कूलों तथा थिएटर का निरीक्षण करने के बाद एक अँगरेज़-स्त्री ने लिखा था—

"मुझे साम्यवादी कला का एक ऐसा महान् कार्य दिखाई पड़ा, जिसमें प्राचीन ग्रीस के नाटकों का मध्य-कालिक रहस्य नाटकों तथा शेक्सपीरियन थिएटर की महत्ता, विस्तृति और अनंतता होगी।"

कला-संबंधी चारों बड़े कॉलेज राष्ट्रीय कर लिये गए हैं और लड़के स्वयं अपने प्रोफ़ेसर चुन लेते हैं। इन कॉलेजों में वर्तमान चित्रकला की भी शिक्षा दी जाती है। स्थान-स्थान पर बच्चों के लिये संगीत-भवन खोले गए हैं, जिनमें छुट्टी के दिनों में तथा रविवार को बच्चों को मुफ़्त में गाना सुनाया जाता है। रूस में सदैव चित्र-कला का अच्छा संग्रह रहा है, पर आज वह सदा से अधिक—मूल्य और परिमाण दोनो में—है। मास्को की ट्रेटिकोवोस्की गैलरी पहले से कहीं अधिक बढ़ गई है। अलेक्ज़ेंडर के संग्रहों तथा हरमिटेज संग्रहालयों का तो पूछना ही क्या ? हेनरी नोवेल ब्रेल्सफ़र्ड-जैसे गंभीर समालोचक ने रूस का भली भाँति निरीक्षण करने के बाद लिखा है—

"सोवियट-शासन के लिये सचाई के साथ इस बात का दावा किया जा सकता है कि कला और संस्कृति के संबंध में सभ्य जगत् की किसी दूसरी सरकार से इसने अधिक कार्य किया है।"

ब—शिक्षा

कला की भाँति शिक्षा के क्षेत्र में भी रूस ने पर्याप्त उन्नति की है। गत दस वर्षों में शिक्षितों की संख्या दूनी हो गई है। स्थान-स्थान पर 'औद्योगिक स्कूल' खोले गए हैं। सरकार जानती है कि एक अशिक्षित आदमी राष्ट्रीय ख़तरा है। श्रीब्रेल्सफ़र्ड ने लिखा है—

* The theory and practice of Bolshevism

"बोलशेवियों ने ग़रीब-से-ग़रीब रूसी श्रमिक के बच्चे को वह सब सुविधाएँ, वह सब आराम, वह सब साधन देने का निश्चय किया है, जो योरप में एक मध्यम श्रेणी के सुसंस्कृत और सभ्य कुटुंब के बच्चों को मिलते हैं *।" बच्चों को प्रत्येक क्षेत्र में विशेष सुविधाएँ दी गई हैं, क्योंकि अभी रूस में जो लोग काम कर रहे हैं, वे चाहे जितने उदार हों, पर उनकी संस्कृति का स्रोत तो 'ज़ार-कालिक' ही है। वे इस शासन के 'प्राडक्ट'—उपज नहीं है। अगली संतति वर्तमान रूस की आदर्श अभिव्यक्ति—'एक्सप्रेशन'—होगी। स्थान-स्थान पर बच्चों के गाँव और उपनिवेश बसाए गए हैं, जिनसे शिक्षा की समस्या सुलझाने में बड़ी सहायता मिली है। 'प्रोलेट-कल्ट' नाम की संस्था श्रमिकों और किसानों में कला के प्रति अनुराग उत्पन्न करने की चेष्टा कर रही है।

प्रत्येक प्रांत में स्कूलों की संख्या बढ़ गई है। व्लाडीमीर में प्रारंभिक शिक्षा-संबंधी स्कूलों की संख्या १,७६३ से २,३०० हो गई है। मिडिल स्कूल ४० से ७५ हो गए हैं। जहाँ १९१७ के पूर्व एक लाख विद्यार्थी थे, वहाँ आज इन स्कूलों में दो लाख शिक्षा पा रहे हैं। इस प्रांत में जहाँ केवल एक किंडरगार्डन स्कूल था, वहाँ आज दो-सौ हैं। पहले समस्त प्रांत में २० चाय पीने की दुकानें (वाचनालय के साथ), ४० पुस्तकालय, २ थिएटर, १० सिनेमा थे। पर आज वहाँ ६० क्लब, ७५० पुस्तकालय, १७५ ग्राम्यवाचनालय, ४०० संगठित भाषणालय, १,००० अध्ययन करने के भवन, १४० थिएटर, ४० सिनेमा, १५ संगीत-विद्यालय, १२ चित्रकला-संबंधी कालेज तथा १० संग्रहालय हैं।

स—उद्योग और व्यवसाय

शिक्षा तक ही रूस की उन्नति की गति सीमाबद्ध न हुई, इतने थोड़े दिनों में उसने अपने उद्योग और व्यवसाय को भी सुदृढ़ आधार पर स्थापित कर दिया। आज ५,००० से अधिक फ़ैक्टरियाँ सरकार के आधीन काम कर रही हैं और देश की लगभग संपूर्ण आवश्यकताएँ उनसे पूरी हो जाती हैं। खानों, वस्त्र तथा अन्य सब व्यवसायों की उन्नति का पूर्ण उपाय किया गया है। 'अर्थ-शास्त्र-संबंधी एक राष्ट्रीय कौंसिल' खोल दी गई है और उसका विभाग ही अलग कर दिया गया है। यह कौंसिल लगभग ६० विभागों में बँटकर राष्ट्र की संपूर्ण उद्योग और व्यवसाय-शक्ति को सुसंगठित किए हुए है।

श्रमिकों को हवादार कमरे तथा विनोदकर सुविधाएँ दी गई हैं। उनके स्वास्थ्य पर विशेष ध्यान रक्खा जाता है।

द—कृषि, स्वास्थ्य इत्यादि

कृषि की अवस्था भी ख़ूब सुधरी है। संपूर्ण ज़मीन जनता को दे दी गई है, वह आवश्यकतानुकूल अन्न बिना किराया के नौकर रखके पैदा कर सकती है; सर्वत्र कृषि के विशेषज्ञ रक्खे गए हैं। स्थान-स्थान पर प्रयोग-शालाएँ खोली गई हैं। सब प्रकार की वैज्ञानिक सुविधाओं का प्रबंध किया गया है। यह विशेषज्ञ कृषकों के साथ मिलकर काम करते हैं। हमारे अफ़सरों की भाँति विदेशी भाषा में नोटिस नहीं निकालते, न उनमें अफ़सरी की बू होती है। कृषक उन्हें अपने मित्र से अधिक नहीं समझता। भूमि की उपज-शक्ति बढ़ाने की पूरी चेष्टा की गई है, और अभी तक बराबर जारी है।

युद्ध के पूर्व रूसी जनता की स्वास्थ्य-संबंधी बातों से जो लोग वाक़िफ़ हैं, वे जानते हैं कि जनता के स्वास्थ्य की कैसी उपेक्षा उस समय की जाती थी। सोवियट-सरकार ने आरंभ में ही इस समस्या की गंभीरता का अनुभव किया। 'राष्ट्रीय स्वास्थ्य-विभाग' की स्थापना की गई। सब डॉक्टर राष्ट्रीय कर लिए गए और यह नियम बनाया गया कि जब जो मरीज़ बुलावे, डॉक्टर को उसकी चिकित्सा के लिये जाना होगा। जगह-जगह अस्पताल, प्रयोगशालाएँ, और अस्त्र-चिकित्सालय स्थापित किए गए। अब यह नियम है कि सोवियट रूस का प्रत्येक अधिवासी अस्वस्थ होने पर चिकित्सा का सारा व्यय सरकार से ले सकता है। बच्चों की चिकित्सा का तो सर्वत्र विशेष प्रबंध है।

स्थानाभाव-वश सब बातों की चर्चा करना यहाँ असंभव है, पर यह कहना पड़ेगा कि रूस ने प्रत्येक क्षेत्र में इधर अत्यधिक उन्नति की है। फिर भी वह साम्राज्य-वादिनी जातियों के क्रोध का पात्र हो रहा है। उसे असभ्य, जंगली और क्रूर कहनेवालों की कहीं कमी नहीं है। इसका एकमात्र कारण राजनैतिक स्वार्थ है। रूस का आधा से अधिक भाग योरप में फैला होने पर भी उसकी संस्कृति और विचार-धारा बिलकुल एशियाई है। वह जड़-वाद का वैसा समर्थक नहीं, जैसे योरपीय राष्ट्र हो रहे हैं।

* The Workers Soviet Republic.

ब्रिटेन, इटली, फ्रांस और अमेरिका यह जानते हैं कि यदि बोल्शेविज़्म सफल हो गया, तो संपूर्ण योरपीय सभ्यता का विनाश निश्चित है; क्योंकि यह वर्तमान योरपीय सभ्यता की जड़ में कुठाराघात कर रहा है। टाल्सटाय ने, जो बीज बोया था, वह आज पौधे के रूप में परिवर्तित हो चुका है और कल—यदि काल के क्रूर आक्रमण से बच गया, तो फल लावेगा, इसमें संदेह नहीं।

श्रीरामनाथलाल 'सुमन'

मान

मीठी बातें कह बरसाती हो सुधा की धार,
नित्य ही नवीन प्रेम-भाव दरसाती हो;
बाँकी चितवन से निहार मुसकाती जब,
हृदय चुराती और सौख्य सरसाती हो।
मन है मृदुल नवनीत-सा तुम्हारा, प्रिये!
अश्रु-धारा छोटी बातों पर भी बहाती हो,
छेद डालती हो मेरा मर्म मानकर कैसे,
कैसे तुम इतना निठुर बन जाती हो?

प्रबोधचंद्र

महात्मा कबीरदास और हिंदी-संसार

१—विषय-प्रवेश

इवेलिन अंडरहिल पाश्चात्य देश का अत्यधिक प्रसिद्ध विद्वान् है। वह दार्शनिक है और रहस्यवाद का विशेषज्ञ भी। अंडरहिल ने रहस्यवाद के ऊपर कई पुस्तकें लिखी हैं। इन पुस्तकों में उसने महात्मा कबीरदासजी का नाम बड़े आदर के साथ लिया है। और उन्हें एक अच्छा रहस्यवादी स्वीकार किया है। जब पाश्चात्य देश के विद्वानों ने भी महात्मा कबीरदासजी का नाम रहस्यवादियों में आदर के साथ लिया है, तब हिंदी-भाषा-भाषियों का ऐसा न करना अवश्य ही महात्मा कबीरदासजी के साथ घोर अन्याय करना है।

जगत्प्रसिद्ध श्रीरवींद्रनाथजी ठाकुर ने भी महात्मा कबीरदासजी के सौ पद्यों का अँगरेज़ी में अनुवाद किया है और अपनी भूमिका में उनकी बड़ी प्रशंसा की है। यदि हम लोग महात्मा कबीरदासजी का उतना भी सम्मान न करें, जितना रवींद्र बाबू ने किया है, तो यह महात्मा कबीरदासजी के साथ घोर अन्याय करना नहीं है, तो और क्या है!

मैंने अपने एक विश्वसनीय मित्र से सुना है कि दक्षिण देश में (तैमिल, तेलगू आदि) ऐसे नाटक बनाए गये हैं, जिनमें महात्मा कबीरदासजी भी नाटकों के विशेष पात्रों में हैं। यह सब देखकर यही कहना पड़ता है कि वास्तव में हिंदी-भाषा-भाषियों ने महात्मा कबीरदासजी के साथ घोर अन्याय किया है।

जहाँ तक मैं समझता हूँ कवि—कबीरदासजी पर हिंदी में जितना विचार होना चाहिए था, उतना नहीं हुआ है, और इसी कारण से महात्मा तथा कवि—कबीरदासजी को कवियों की श्रेणी में अभी तक ऊँचा तथा उचित आसन नहीं मिला है। जहाँ तक मैं समझता हूँ कबीरदासजी की कविता पर श्रद्धेय श्रीमिश्रबंधुओं के अतिरिक्त और किसी ने विचार ही नहीं किया है। कबीर के काव्य पर इतना कम साहित्य है कि स्वयं कबीरदासजी के अनुयायियों तक ने भी उनके काव्य के यथार्थ महत्त्व को नहीं समझा है। यही कारण है कि कबीर-पंथी लोग भी महात्मा कबीरदासजी को उच्च कोटि का कवि नहीं स्वीकार करते। अभी हाल ही में कबीरदासजी का बीजक नामक ग्रंथ प्रकाशित किया गया है। इसके टीकाकार विचारदासजी हैं। विचारदासजी ने इस ग्रंथ के प्रारंभ में ४६ पृष्ठ की एक भूमिका भी लिखी है।

विचारदासजी ने अपनी भूमिका के ४२वें पृष्ठ में लिखा है—

"अपने भावों को सर्वसाधारण तक पहुँचाने का एकमात्र उपाय साधारण बोलचाल की (ठेठ) भाषा का प्रयोग ही है। इसी अभिप्राय से अध्यात्म-ज्ञान के शिक्षक—प्रायः सभी महात्माओं ने अत्यंत सरल (वर्तमान) भाषा में अपने विचार प्रकट किए हैं, और कभी साहित्य के नियम और बंधनों में नहीं पड़े हैं। अतः कवि और काव्य की दृष्टि से महात्मा और उनकी वाणियों को जो समालोचक देखते हैं, तथा उसी दृष्टि से

कवि-श्रेणी में उनको हीन अथवा उत्तम स्थान देते हैं, वे भूल करते हैं, क्योंकि आत्मभाव दृष्टिवाले महात्माओं को काव्य-शब्दार्थ-रूप शरीर-दृष्टि नहीं रहती है। आदि।

मैं विचारदासजी के इस लेख का घोर विरोध करता हूँ और उनसे मैं पूछना चाहता हूँ कि आप महात्मा कबीरदासजी के काव्य को कला की कसौटी पर क्यों नहीं कसने देते? क्या आप महात्मा कबीरदासजी को एक उच्च कोटि का कवि नहीं स्वीकार करते? यदि नहीं, तो क्यों? आपको स्पष्ट रूप से इन सब बातों को लिख देना चाहिए। इस लेख-माला द्वारा मैं विचारदासजी को यह बतलाना चाहता हूँ कि महात्मा कबीरदासजी एक उच्च कोटि के कवि भी थे।

मुझे दुःख है कि इन लेखों में मैं श्रद्धेय श्रीमिश्रबंधु, श्रद्धेय श्रीअयोध्यासिंहजी उपाध्याय तथा श्रद्धेय श्रीरामचंद्रजी शुक्ल से मतभेद प्रकट करूँगा। मैं इन लोगों को बड़ी श्रद्धा और आदर की दृष्टि से देखता हूँ और इन महानुभावों से प्रार्थना करता हूं कि कृपया आप लोग मेरे इन लेखों पर विचार करें और मेरी गलतियों को सुधार दें। यदि इन लोगों के तथा अन्य किसी सज्जन के लेखों से मेरे मत में कुछ भी परिवर्तन होगा, तो मैं प्रसन्नता-पूर्वक अपनी गलतियों को पब्लिक में स्वीकार करूँगा। अब मैं रहस्यवाद के अंतिम ध्येय के विषय में अत्यंत संक्षेप से वर्णन कर देना अपना प्रथम कर्तव्य समझता हूँ।

२. रहस्यवाद का अंतिम ध्येय

अँगरेज़ी कवि पोप लिखता है—हम सब लोग उस बड़े संपूर्ण के टुकड़े हैं, जिसका शरीर, प्रकृति और जिसकी आत्मा, परमेश्वर है।

जब हम कई भिन्न-भिन्न घटनाओं को देखते हैं, तो उनमें किसी एक ही नियम के खोजने का प्रयत्न अवश्य ही करने लग जाते हैं। इस ब्रह्मांड में अनेक तारे हैं, अनेक ग्रह तथा उपग्रह हैं; परंतु ये सब-के-सब आकर्षण नियम के अनुसार ही व्यवहार करते हैं। वैज्ञानिक ज्ञान में, तो इस एकीकरण का महत्त्व और भी अधिक बढ़ जाता है। वास्तव में यह एकीकरण सब विद्या और ज्ञान की जड़ है और यही सब ज्ञान का अंत है। इस मार्ग की प्रत्येक सीढ़ी इस ज्ञान के अंत की ओर अवश्य ले जाती है। इसी बात को देखकर दार्शनिक स्टेस कहता है—"संसार की सब वस्तुओं का एक वस्तु से समझाने का प्रयत्न करना मनुष्य का प्रधान और विशेष स्वभाव है। मनुष्य का एक यह भी स्वभाव है कि वह संसार की सब वस्तुओं का अंतिम समझौता ही खोजा करता है और जब तक उसे अंतिम समझौते के विषय में भली भाँति पता नहीं चलता, तब तक वह ठहरता ही नहीं। अतएव दर्शन में हम लोगों को सब पदार्थों को केवल एक ही साधारण, पर्याप्त और प्रथम सिद्धांत से समझाने का प्रयत्न करना चाहिए। यह भी भली भाँति स्मरण रखना चाहिए कि उस एक ही सिद्धांत से संसार की सब वस्तुएँ स्पष्ट हो जानी चाहिए और वह एक सिद्धांत स्वतः सिद्ध होना चाहिए। वह एक सिद्धांत ऐसा होना चाहिए, जो स्वयं समझाया जा सके और जिसके समझाने में किसी दूसरी बात की आवश्यकता न पड़े। वह ऐसा और अंतिम सिद्धांत होना चाहिए, जिससे अनुभव के प्रत्येक द्वंद्व समझाए जा सकें। एक और अनेक, स्थायी और परिवर्तनशील, द्रव्य और गुण, सुख और दुःख, पाप और पुण्य, सत्य और मिथ्या के प्रश्न बहुत ही प्राचीन हैं और सब देश के तथा सब समय के दार्शनिकों ने इन प्रश्नों के बारे में सोचा है। यह एक ऐसा सिद्धांत होना चाहिए, जो इन सब प्रश्नों को हल कर दे और स्वयं हल हो जाय अर्थात् स्वयं उसके विषय में कोई प्रश्न न उठ सके, वह स्वतः सिद्ध हो। अनुभव की सब बातों के समझाने की इस में शक्ति होनी चाहिए।

प्राय दार्शनिक लोग अनुभव की बातों को तीन तरह से समझाते चले आए हैं।

प्रथम प्रकार—अनुभव की सब बातों के समझाने के इस प्रथम प्रकार को अज्ञेयतावाद कह सकते हैं। इस मत के माननेवाले कहते हैं, ये सब बातें समझाई नहीं जा सकतीं। परंतु हम लोगों की बुद्धि इस बात को कभी नहीं स्वीकार करती और इस सिद्धांत को उपेक्षा की दृष्टि से देखती है। यदि दर्शन वास्तव में दर्शन-शास्त्र है, तो उसे प्रत्येक बात को अवश्य समझाना चाहिए।

द्वितीय प्रकार—अनुभव की इन सब बातों को समझाने के इस प्रकार को हम लोग द्वैतवाद कह सकते हैं। इसमें हमलोग इन द्वंद्वों की सत्ता को भी एक सत्य पदार्थ मान लेते हैं। द्वैतवादी कहते हैं कि भलाई और

बुराई, पाप और पुण्य, जड़ और चेतन दो भिन्न-भिन्न और स्वतंत्र पदार्थ है। दोनों सत्य और आवश्यक हैं और इस संसार के द्वंद्व इसी कारण से हैं। यह कोई दार्शनिक मीमांसा नहीं कही जा सकती, क्योंकि यह एक प्रकार की कल्पना है। यह प्रश्न को समझाना नहीं, उसके कारण को स्वीकार कर लेना है। द्वैतवादी लोग कभी भी इस बात को नहीं समझा पाते कि ये दोनों भिन्न-भिन्न, स्वतंत्र और सत्य पदार्थ परस्पर कैसे मिल जाते हैं और इन दोनों का संबंध क्या है? द्वैतवादी ज्ञान-शास्त्र के सब विषयों की उलझनों को भी नहीं सुलझा पाते हैं। द्वैतवाद के सिद्धांत के अनुसार पुरुष और प्रकृति का प्रश्न कभी भी हल नहीं हो सकता।

तृतीय प्रकार—इसलिये मस्तिष्क इस ब्रह्मांड की सब बातों को तीसरे प्रकार से समझाता है—और इस प्रकार के तीन भिन्न-भिन्न प्रधान भाग हैं—(१) जड़वाद या प्रकृतिवाद, (२) चिदात्मकत्ववाद और (३) निरपेक्षवाद या ब्रह्मवाद।

प्रकृतिवाद या जड़वाद—जब हम इस संसार में सब स्थानों पर नियम का ही अखंड राज्य पाते हैं और जहाँ देखते हैं, वहाँ नियम-ही-नियम पाया जाता है और पृथ्वी से लेकर छोटे-से-छोटे परमाणु भी नियम के अनुकूल ही काम करते हैं, तब हम ऐसा विश्वास करने लग जाते हैं कि इस संसार में भौतिक और यांत्रिक नियमों का ही अखंड राज्य है। ऐसी दशा में हम लोग ऐसा विश्वास करने लग जाते हैं कि केवल ये ही नियम सत्य हैं। शरीर-धर्म विद्या (physiology) के पंडितों ने अब यह भी सिद्ध कर दिया है कि मस्तिष्क (brain) के कामों का प्रभाव मनुष्य के मन (mind) या चित्त पर भी पड़ता है। मस्तिष्क (brain) एक जड़ पदार्थ है और चित्त (mind) चेतन। इसलिये इस संसार का अंतिम सत्य एक जड़ पदार्थ ही हो जाता है। इसमें लेश-मात्र भी संदेह नहीं कि इस मत के माननेवाले प्रत्येक देश में हुए हैं। आयोनिया के थेलस से लेकर अनाक्ज़ीमेस तक सब दार्शनिक जड़वादी थे। भारतवर्ष में भी ऐसे दार्शनिक हो गए हैं, जो पाँच भूतों को ही इस संसार का अंतिम सत्य मानते थे। यूनान देश के ये ही जड़वादी अंत में परमाणुवादी भी हो गए हैं। प्रसिद्ध दार्शनिक हाब्स भी इसी मत का समर्थक है। भौतिक विज्ञान के माननेवालों में से भी अधिक लोग इसी मत का समर्थन करते हैं।

परंतु इस सिद्धांत की सहायता से ज्ञान तथा चेतना का प्रश्न नहीं हल होता। इस सिद्धांत से चैतन्यता का प्रश्न भी नहीं हल हो सकता। इन सब प्रश्नों के अतिरिक्त और भी कई प्रश्न उत्पन्न हो जाते हैं, जो इस सिद्धांत की सहायता से नहीं हल हो सकते।

इसीलिये प्रसिद्ध दार्शनिक ग्रीन कहता है—"यदि हम ब्रह्मांड का यांत्रिक और जड़-सिद्धांत ही सत्य हो, तो जड़ प्रकृति के पुत्र के लिये जड़-प्रकृति का जानना असंभव है।"

चिदात्मकवाद—हम सब लोग भली भाँति जानते हैं कि हम लोगों का शरीर एक जड़ पदार्थ है और हम लोग यह भी जानते हैं कि हम लोगों में चैतन्यता भी अवश्य ही है। ऊपर जिस जड़वाद का वर्णन किया गया है, उसमें एक (जड़) को प्रकृति का मूल और आदि कारण माना गया है। परंतु चिदात्मकत्ववाद में चैतन्यता को ही प्रकृति का मूल मानते हैं। दार्शनिक पलसन इसी मत का माननेवाला है। पलसन लिखता है—"भीतरी जीवन का अनुभव और घटनाएँ ही जैसा कि चेतनता को पता चलता है, प्रथम और केवल सत्य पदार्थ है।"

प्रसिद्ध दार्शनिक बर्कले भी इसी मत का माननेवाला था। बर्कले कहता है—"पुरुष अर्थात् चेतन पदार्थों के अतिरिक्त और कोई पदार्थ सत्य है ही नहीं। चेतन पदार्थों की ही वास्तविक सत्ता है। चेतन पदार्थों के अतिरिक्त और किसी पदार्थ की सत्ता ही नहीं है। इनके अतिरिक्त और जितने पदार्थों की सत्ता मालूम होती है वह वास्तविक सत्ता नहीं; किंतु वास्तविक सत्ता की दशाएँ हैं।"

परंतु यदि बर्कले के सिद्धांत पर अच्छी तरह से विचार किया जाय, तो पता चल जायगा कि उसका सिद्धांत अवश्य ही भ्रमात्मक है। वह चेतना को ही इस विश्व का केंद्र मानता है और समस्त ज्ञान की पूर्व-सत्ता स्वीकार करता है। परंतु उसके सिद्धांत से यही सिद्ध होता है कि केवल उन्हीं वस्तुओं की सत्ता है, जिन्हें हम जानते हैं। परंतु इसमें यह प्रश्न उठ खड़ा होता है कि संसार के ये पदार्थ हम लोगों के ज्ञान के बाद या पहले रहते हैं या नहीं? बर्कले के सिद्धांत से ये प्रश्न हल नहीं हो सकते। इस प्रकार यह सिद्धांत इन द्वंद्वों की उलझन को सुलझाना नहीं, किंतु उसे टाल

देता है। इसीलिये प्रोफ़ेसर पेटीसन लिखता है—"इस समस्त प्रकृति को केवल चैतन्यता ही चैतन्यता मानना, केवल विचार-ही-विचार स्वीकार करना अस्वाभाविक है और इससे बुद्धि को संतोष नहीं होता"। दार्शनिक ह्यूम ने भी इसकी न्याय-संगत विवेचना की है। इसके अनुसार ज्ञान के सब विषय, चैतन्यता की दशाएँ हो जाती है। इस प्रकार सत्य और मिथ्या, भलाई और बुराई आदि द्वंद्व की कोई स्वतंत्र सत्ता नहीं रह जाती और ये सब-के-सब केवल चेतना-संबंधी विषय रह जाते हैं। इसलिये इस सिद्धांत की सहायता से भलाई और बुराई का प्रश्न हल नहीं हो सकता।

निरपेक्ष्यवाद अथवा ब्रह्मवाद

ये दोनों सीमान सिद्धांत हैं। इनसे हम लोगों को संतोष नहीं हो सकता, इसलिये हम ब्रह्मवाद के सिद्धांत के मानने की आवश्यकता है। निरपेक्ष्यवाद का सिद्धांत वास्तव में ऐसा होना चाहिए, जो अनुभव के लिये भी सत्य हो और जिससे इस विश्व की सब बातें भली भांति समझाई जा सकें। इसमें जड़ और चेतन दोनों का यथोचित सामंजस्य होना चाहिए। इस सिद्धांत के अनुसार प्रकृति और पुरुष, जड़ और चेतन, दोनों में उचित संबंध होना चाहिए। इस सिद्धांत को संपूर्ण अनुभव के लिये सत्य होना चाहिए और उसके केवल किसी अंश ही के लिये नहीं। प्लेटो इसी सिद्धांत को मानता था, स्पिनोज़ा और हीगल ने भी इसी सिद्धांत को स्वीकार किया था। ग्रीन ने भी इसे माना है और ब्रेडले ने भी इसी का समर्थन किया है। भारतवर्ष में भी श्रीशंकराचार्य के अनुयायी इसी सिद्धांत के समर्थन करनेवाले हैं। इन सब प्रसिद्ध दार्शनिकों ने इस संबंध में केवल एक ही प्रकार से सोचा है। लगभग इन सब प्रसिद्ध दार्शनिकों ने इस बात को स्वीकार किया है कि इस ब्रह्म अथवा निरपेक्ष्य सत्य का सर्वप्रधान स्वभाव विचार है। हम लोगों को इस कथन का अभिप्राय भली भाँति समझ लेना चाहिए। इस विचार से हम लोगों का अभिप्राय उन विचारों से नहीं है, जो अनुभव के आधार पर बनाए गए हैं। इसी कारण से हलडेन ने लिखा है—"यह विचार भी है और अनुभव भी है। इसको दूसरे शब्दों में यों भी कह सकते हैं—अंतिम सत्य अर्थात् निरपेक्ष्य सत्य ऐसा पदार्थ है, जो स्वयं अपना कभी खंडन नहीं कर सकता।"

इसलिये ये सब द्वंद्व वास्तविक नहीं, केवल देखने में ऐसे मालूम पड़ते हैं। क्योंकि इस विश्व में जितने पदार्थ हैं, वे सब-के-सब ठीक-ठीक रूप में होना चाहिए; क्योंकि इस विश्व की सब बातें सत्य हैं। इसलिये इन सब बातों के होने के लिये उस निरपेक्ष्य-सत्य (ब्रह्म) को एक ही होना चाहिए। इसीलिये प्रसिद्ध दार्शनिक ब्रेडले लिखता है—"वह निरपेक्ष्य-सत्य केवल एक है, जिसके परे और कोई पदार्थ नहीं है।"

परंतु इससे यह नहीं समझ लेना चाहिए कि वह निरपेक्ष्य-सत्य भौतिक पदार्थों की तरह एक नहीं है। परंतु यह जीवित एक है, जीते हुए शरीर की तरह एक है। निरपेक्ष्यवादी इस बात का विश्वास करता है कि इन विश्वों की अनेक रूपता के परे एक ऐसा सिद्धांत है, एक ऐसा अप्राकृतिक अनुभवी है, जो इन सब बातों का अनुभव करता है। इस विश्व की, इस ब्रह्मांड की, वही एक-मात्र सत्ता है, वही एक सत्य पदार्थ है, वही एक ब्रह्म है, वही निरपेक्ष्य-सत्य है। वही निरपेक्ष्य-सत्य सबका मूल कारण है और उसी निरपेक्ष्य सत्य से ब्रह्मांड के सब अनुभव समझाए जा सकते हैं; और वह निरपेक्ष्य-सत्य, स्वतः सिद्ध है। इसी निरपेक्ष्य-सत्य को प्लेटो 'भलाई का विचार' कहकर पुकारता है। इसी को फ्रांसीसी प्रसिद्ध दार्शनिक 'निरपेक्ष्य-आत्मा', 'निरपेक्ष्य-विषयी' कहता है। इसी को 'स्पिनोज़ा', 'निरपेक्ष्य-तत्त्व' और हीगल 'निरपेक्ष्य आत्मा' कहता है। इसी को ग्रीन 'सार्वभौमिक चैतन्यता' और वेदांती लोग 'ब्रह्म' कहकर पुकारते हैं।

इस निरपेक्ष्य-सत्य का क्या अभिप्राय है? संसार के भिन्न-भिन्न दार्शनिकों के इस संबंध में क्या मत रहे हैं, उनमें क्या-क्या परिवर्तन हुए हैं और आज के वर्तमान दार्शनिकों के इस संबंध में क्या विचार हैं? इन प्रश्नों पर फिर कभी विचार किया जायगा। परंतु यहाँ पर इतना लिख देना बहुत ही आवश्यक मालूम होता है कि यही निरपेक्ष्य-सत्य दार्शनिकों की खोज का प्रधान विषय है, यही धार्मिकों की भक्ति का लक्ष्य है, और है यही निरपेक्ष्य-सत्य रहस्यवादियों के अनुभव की वस्तु।

जिस दार्शनिक ने इसे भली भाँति नहीं समझा, वह सच्चा दार्शनिक नहीं। जिस धार्मिक ने इसे प्राप्त नहीं किया, वह सच्चा धार्मिक नहीं और जिस रहस्यवादी ने इसका प्रत्यक्ष अनुभव नहीं किया, वह वास्तव में रहस्यवादी नहीं।

रहस्यवादी लोग इसी निरपेक्ष्य-सत्य के अनुभव करने के लिये तपस्या करते हैं, ध्यान लगाते हैं और नाना प्रकार की साधनाएँ करते हैं।

अंत में रहस्यवादियों को उस अंतिम तथा निरपेक्ष्य-सत्य का प्रत्यक्ष ज्ञान हो जाता है जिसे कुछ लोग ईश्वर, कुछ परमेश्वर, कुछ ब्रह्म और कुछ लोग दूसरे भिन्न-भिन्न नामों से पुकारते हैं। इसी दशा के संबंध में सेंट विक्टर का रिचर्ड कहता है—"रहस्यवादी की आत्मा बिना किसी व्यवधान के, बिना किसी परदा के सत्य को देखती है। मनुष्य की चैतन्यता का यही अंतिम ध्येय है, सब कर्मों का यही अंतिम फल है और रहस्यवादियों की यही अंतिम दशा है।"

साधारण लोग इसके संबंध में बहुत ही कम कह सकते हैं, क्योंकि वे इसके संबंध में बहुत कम जानते हैं। परंतु इतना तो सब मानते हैं कि उस एक के अनुभव से संसार के सारे द्वंद्व मिट जाते हैं और सत्य का प्रत्यक्ष, अपरोक्ष और नैसर्गिक ज्ञान प्राप्त हो जाता है। इसी संबंध में उपनिषद् भी कहता है—"ब्रह्म में बिलकुल लीन हो जाओ।"

रहस्यवादियों की इस दशा में ब्रह्म कोई पदार्थ नहीं रह जाता, कोई विषय नहीं रह जाता; किंतु एक अनुभव-गम्य बात।

यह कहना अनधिकार चर्चा होगी कि रहस्यवादी महात्मा कबीरदासजी ने, इस निरपेक्ष्य-सत्य का प्रत्यक्ष दर्शन किया था, या नहीं। परंतु इसमें तो लेश-मात्र भी संदेह नहीं कि स्वयं महात्मा कबीरदासजी इसके संबंध में सिंह की तरह गर्जते हैं और बार-बार डंके की चोट पर हम लोगों को इसका विश्वास दिलाते हैं। उनके कथन तथा उनके अनुयायियों की श्रद्धा तथा विश्वास से पता चलता है कि वे उच्च कोटि के रहस्यवादी थे और सत्य का उन्होंने अवश्य ही प्रत्यक्ष दर्शन किया था।

यदि रहस्यवादियों के इतिहास का विस्तृत अध्ययन किया जाय, तो पता चलेगा कि संसार के रहस्यवादी मुख्य दो भागों में विभक्त किए जा सकते हैं—प्रथम वे, जो किसी धर्म को मानते हैं और उसी धर्म के नियमों का पालन करते हैं और उसी धर्म के भीतर ही रहकर रहस्यवाद के सिद्धांतों से अवगत होते और उनका अनुभव करते हैं। दूसरे वे हैं, जो किसी विशेष धर्म को नहीं मानते और केवल रहस्यवाद के सिद्धांतों को ही सत्य स्वीकार करते हैं। इतना ही नहीं, यदि किसी धर्म की कोई बात, इनके अनुभवों के विपरीत होती है, या किसी धर्म का कोई सिद्धांत इन्हें भ्रामक मालूम होता है, तो ये खुले शब्दों में उसकी निंदा भी करने लग जाते हैं। दूसरे शब्दों में प्रथम वर्ग में वे लोग हैं, जो पहले किसी विशेष मत के अनुयायी और तब रहस्यवादी होते हैं और दूसरे वर्ग में वे हैं, जो पहले रहस्यवादी और तब धार्मिक या अधार्मिक भी होते हैं।

यहाँ पर धार्मिक शब्द का प्रयोग किसी विशेष धर्म के माननेवाले लोगों के अर्थ में ही किया गया है।

इसमें भी लेश-मात्र संदेह नहीं है कि इस संसार में कुछ ऐसे भी रहस्यवादी पाए जाते हैं, जो उक्त दोनों विभागों में से किसी एक में नहीं आ सकते, क्योंकि न तो ये किसी विशेष धर्म के ही माननेवाले होते हैं और न ये अपने को रहस्यवादी ही समझते हैं। परंतु ऐसे लोग भी प्रायः प्रथम या द्वितीय वर्ग में ही स्वभावानुसार प्रायः गिन लिए जाते हैं।

इसके अतिरिक्त दर्शन और धर्म के विचार से भी रहस्यवाद दो भिन्न-भिन्न भागों में विभक्त किया जा सकता है। दर्शन में रहस्यवाद के सच्चे स्वभाव तथा लक्षण आदि का वर्णन होता है। धर्म के रहस्यवाद का विषय उसका वास्तविक अनुभव है। दार्शनिक रहस्यवाद और धार्मिक रहस्यवाद के अंतरों का वर्णन फिर किसी दूसरे लेख में किया जायगा।

रहस्यवाद की चाहे जो परिभाषा गढ़ी जाय, दार्शनिक और धार्मिक रहस्यवाद में चाहे जो अंतर हो, परंतु इसमें लेश-मात्र भी संदेह नहीं है कि इन रहस्यवादियों का प्रभाव संसार के मनुष्यों पर अवश्य पड़ा है, और इन रहस्यवादियों ने संसार के मनुष्यों को अपनी ओर उसी प्रकार आकर्षित किया है, जैसे चुंबक लोहे को अपनी ओर खींच लेता है।

सेंटजोन का नाम किसने नहीं सुना है! आर्क के सेंटजोन के नाम से आज इस सभ्य संसार में कौन अभागा अपरिचित है?

कौन नहीं जानता कि इस देवी ने योरप के इतिहास की धारा को बिलकुल दूसरी ओर पलट दिया? कौन नहीं जानता कि इस कुमारी कन्या ने अपनी पवित्र ज्योति

से एक बार सारे फ्रांस को पवित्र कर दिया और आज भी अनेक आत्माओं को पवित्र कर रही है। बहुत लोग कहते हैं कि यह देवी जीती जला दी गई, अंगरेज़ों ने सेंटजोन के साथ अन्याय किया और उसके ऊपर झूँठा अभियोग लगाकर उसे जला दिया। परंतु देवीजोन की यह मृत्यु अमर होने के लिये थी। इसमें लेश-मात्र भी संदेह नहीं है कि देवीजोन का नाम उसके शत्रुओं के खूनी इतिहास के पन्नों में अवश्य लिखा जायगा। परंतु यह बात भी निश्चय ही है कि सारे संसार में सेंटजोन का नाम सर्वदा ही आदर और सत्कार के साथ लिया जायगा। कई शताब्दियों के बाद आज भी देवीजोन के नाम से केवल उन्हीं लोगों को शांति नहीं मिलती, सुख नहीं मिलता और प्रकाश नहीं मिलता, जो उसके धर्म के माननेवाले और उसके देश के रहनेवाले हैं; किंतु उन लोगों को भी जो दूसरे देश के रहनेवाले और दूसरे धर्म के माननेवाले हैं। देवीजोन बहुत दिनों तक संसार के मनुष्यों को नवजीवन प्रदान करती रहेगी और उनको आध्यात्मिक उन्नति में सहायता देती रहेगी।

सेंटबरनार्ड और सेंट विक्टर के रिचर्ड के लेखों का प्रभाव कई शताब्दियों तक योरपीय धार्मिक साहित्य पर अवश्य ही पड़ता रहा है। ऐसी कोई भी प्रसिद्ध धार्मिक पुस्तक नहीं, जिन पर इनके लेखों का प्रभाव प्रकट या गुप्त रीति से बहुत दिनों तक न पड़ता रहा हो।

सेंट हिल्डगार्ड का भी लोगों पर कम प्रभाव नहीं पड़ा है। यह असत्य और प्रचलित प्रथाओं का घोर विरोधी था और खुले शब्दों में इन सब बातों की खूब निंदा करता था।

एसिसी का सेंटफ्रेंसिस भी एक प्रधान रहस्यवादी था और इसका भी बहुत लोगों पर बहुत प्रभाव पड़ा है। इसने धर्म-संबंधी अनेक विषयों को विचार-क्षेत्र से निकालकर वास्तविक घटना-क्षेत्र में भेज दिया।

सीना के सेंटकैथरिन ने इटली की राजनीति को ही बदल दिया और सेंटजोन ने सारे योरप के इतिहास को बदल दिया।

पाश्चात्य देश के और भी कई ऐसे उज्ज्वल उदाहरण दिए जा सकते हैं, जिनसे यह सिद्ध होगा कि वहाँ भी रहस्यवादी अवश्य हुए हैं और उनका प्रभाव सब लोगों पर पड़ा है।

कहना नहीं होगा कि रहस्यवादी महात्मा कबीरदासजी का प्रभाव भारतवर्ष पर कम नहीं पड़ा है।

रहस्यवाद और भारत के तीन प्राचीन मार्ग

अति प्राचीन काल से हिंदू धर्म में तीन मार्गों का प्रतिपादन किया गया है—

(१) कर्म-मार्ग, (२) ज्ञान-मार्ग और (३) भक्ति-मार्ग।

(१) कर्म-मार्ग के अनुसार मनुष्यों को अपने कर्तव्य का पालन करने के लिये काम करना चाहिए और उसके फलों की प्रतीक्षा नहीं करनी चाहिए।

(२) ज्ञान-मार्ग वह है, जो दार्शनिक पथ भी कहा जा सकता है। माया के ऊपर उठना भी इसी मार्ग के भीतर आ सकता है।

(३) भक्ति-मार्ग वह है, जिसमें परमेश्वर की प्रेम-मय पूजा का विधान है। रहस्यवादियों का मार्ग भी इसी के भीतर आ सकता है।

भारतवर्ष में भक्ति का प्रारंभ ईसा से ४०० वर्ष पहले भी हो चुका था, परंतु सं० पू० ४०० से तो इसका अस्तित्व निश्चित रूप से पाया जाता है। प्रारंभ में भक्ति रहस्यवादमय और सदाचारमय था। इसमें एक ईश्वर की आराधना की प्रधानता थी। भक्त लोग यह भी विश्वास करते थे कि उस ईश्वर का प्रत्यक्ष दर्शन संभव है। भक्ति-मार्ग में हृदय, अपने घर और उत्पत्ति के विषय में जानना चाहता है और उस ईश्वर का दर्शन करना चाहता है जिसकी वह पूजा करता है। श्रीमद्भगव-द्गीता में ऐसी भक्ति का स्पष्ट रूप से उल्लेख है। परन्तु धीरे-धीरे बुद्धि के तत्त्वों ने इस हृदय की खोज को कुचल दिया और फिर भक्ति-मार्ग ने ज़ोर नहीं पकड़ा। बारहवीं और चौदहवीं शताब्दी में भक्ति-मार्ग ने फिर ज़ोर पकड़ा। यह एक प्रकार से दार्शनिक मार्ग के विरुद्ध आक्रमण था। इसका ध्येय एक प्राप्त करने-योग्य ईश्वर था। इन लोगों का विश्वास था कि परमेश्वर का प्रत्यक्ष दर्शन हो सकता है। भारत के अनेक पंडितों ने इसकी घोर निंदा की और इसे अवैदिक धर्म तक कह डाला। इस प्रकार इन लोगों ने १२वीं और १४वीं शताब्दी में उस भक्ति-मार्ग को फिर से जीवित कर दिया, जो अति प्राचीन काल में भारतवर्ष में पाया जाता था और जिसे भारतवर्ष के लोगों ने खो दिया था।

तेरहवीं शताब्दी के अंत में श्रीरामानुजजी का प्रभाव

घटने लगा। उसके बाद महात्मा श्रीरामानंदजी उत्पन्न हुए। महात्मा कबीरदासजी इन्हीं के शिष्य थे। श्रीरामानुजाचार्य का भी यह विश्वास था कि परमात्मा से संयोग हो जाने के अनंतर जीवात्मा का अस्तित्व अलग रहता है। श्रीरामानंदजी का भी यही सिद्धांत था। भारतवर्ष में भक्त लोग अब भी पाए जाते हैं और ये विष्णु को अवतार मान कर उनकी पूजा करते हैं। परंतु इससे यह नहीं समझना चाहिए कि ये लोग रहस्यवादी हैं, क्योंकि अवतारवाद और रहस्यवाद में बड़ा अंतर है। बहुत लोग इस अंतर को नहीं समझते और इस कारण ये लोग अवतारवादी और रहस्यवादी को एक ही समझने लगते हैं।

महात्मा कबीरदासजी श्रीरामानंदजी के शिष्य थे। वह कवि थे, रहस्यवादी थे और एक बहुत बड़े प्रतिभाशाली व्यक्ति थे।

बहुत लोगों का विचार है कि भारतवर्ष में रहस्यवादी हुए ही नहीं हैं और केवल श्रीरामानंदजी के लेखों में ही रहस्यवाद मिलता है। इसके पहले किसी भी भारतीय लेखक के लेखों में सच्चे रहस्यवाद का अस्तित्व नहीं पाया जाता। इन लोगों का यह भी कथन है कि श्रीरामानंदजी को इस रहस्यवाद का पता सूफ़ियों और ईसाई पादरियों से चला और उन्हीं से महात्मा कबीरदासजी को रहस्यवाद का ज्ञान हुआ। इसके अतिरिक्त बहुत लोगों का यह भी विचार है कि उपनिषद्-काल में भी भारतवर्ष में रहस्यवाद के संबंध में बहुत से लेख मिलते हैं। श्रीमद्भगवद्गीता में इसका अस्तित्व है और श्रीमद्भागवत में रहस्यवाद का अच्छा वर्णन है। वास्तव में बात क्या है? मैं किसी दूसरे लेख में इन सब बातों पर विचार करूँगा। परंतु यहाँ पर इतना लिख देना अत्यंत आवश्यक जान पड़ता है कि जिस रहस्यवाद का अस्तित्व महात्मा कबीरदासजी के लेखों में पाया जाता है, वह भारतीय रहस्यवाद का एक अत्यंत अधिक प्रधान अंश है, हिंदी-साहित्य का गौरव है और गर्व करने की सामग्री है।

महात्मा कबीरदासजी सर्वदा साधारण जीवन की प्रशंसा किया करते थे और सब प्रकार के साधुओं के विपक्ष में ही अपनी सम्मति दिया करते थे। उनकी यह अटल धारणा थी कि अंतिम सत्य नैसर्गिक प्रेम के बिना मालूम ही नहीं हो सकता। प्रेम का महत्त्व रहस्यवाद में बहुत ऊँचा है और महात्मा कबीरदासजी के रहस्यवाद में उस प्रेम का अस्तित्व पाया जाता है, जो रहस्यवाद के लिये अत्यंत आवश्यक है।

अवध उपाध्याय

यमुने!

(१)

यमुने, कलकल क्या करती हो? रोती हो या गाती हो?
कहाँ जा रही कहाँ मौन बन क्यों कुछ नहीं बताती हो?
कहाँ तुम्हारी सखी राधिका, कहाँ तुम्हारे प्यारे श्याम?
कहाँ गोप-वधूएँ आती हैं भरने को अब नीर ललाम?

(२)

पनघट पर अब भीड़भाड़ क्यों वैसी नहीं दिखाती है?
वह उल्लास-हिलोर कहाँ अब किस तट पर टकराती है?
कहाँ आजकल मुरलीधर की सुमधुर मुरली बजती है?
कहाँ ग्वाल-बालों की अनुपम प्यारी टोली सजती है?

(३)

कहाँ तुम्हारे लता-भवन हैं कहाँ तुम्हारे सघन निकुंज?
कहाँ भृंग गुंजार कर रहे कहाँ कुंज के मंजुल-पुंज?
पहले के आनंद विभव की रही न एक निशानी है?
मूक व्यथा उर उपजाने को बाक़ी रही कहानी है।

(४)

अठिलाता था सदन तुम्हारा जो पहले शुचि स्वर्ग-समान,
वहीं विकलता नृत्य कर रही आज बना वह नग्न मसान।
जो थे पहले नंदन वन-से हरित पल्लवित कुसुमित कूल,
हैं झाड़ी-झंखाड़ वहाँ पर उड़ती रेत भयानक धूल।

(५)

टूट गए हैं पुल कूलों के भग्न भवन दिखलाते हैं,
हाय! रमणियों के महलों में, उल्लू शोर मचाते हैं।
दिन में 'काँव-काँव' कौए कर चोंथ रहे मुर्दों की खाल;
निशि में 'हुवा-हुवा' करके नित चीख़ा करते भयद शृगाल।

(६)

कहाँ वह गया यौवन का रस कहाँ तुम्हारा हास-विलास:
देखा गया न किस डाही से हाय! तुम्हारा विभव विकास।
अब न सुनाओ फिर कलकल स्वर मत यह निर्दय द्वंद्व करो,
या तो लाओ नटवर को या जल-मल बहना बंद करो।

सोहनलाल द्विवेदी

तुलना
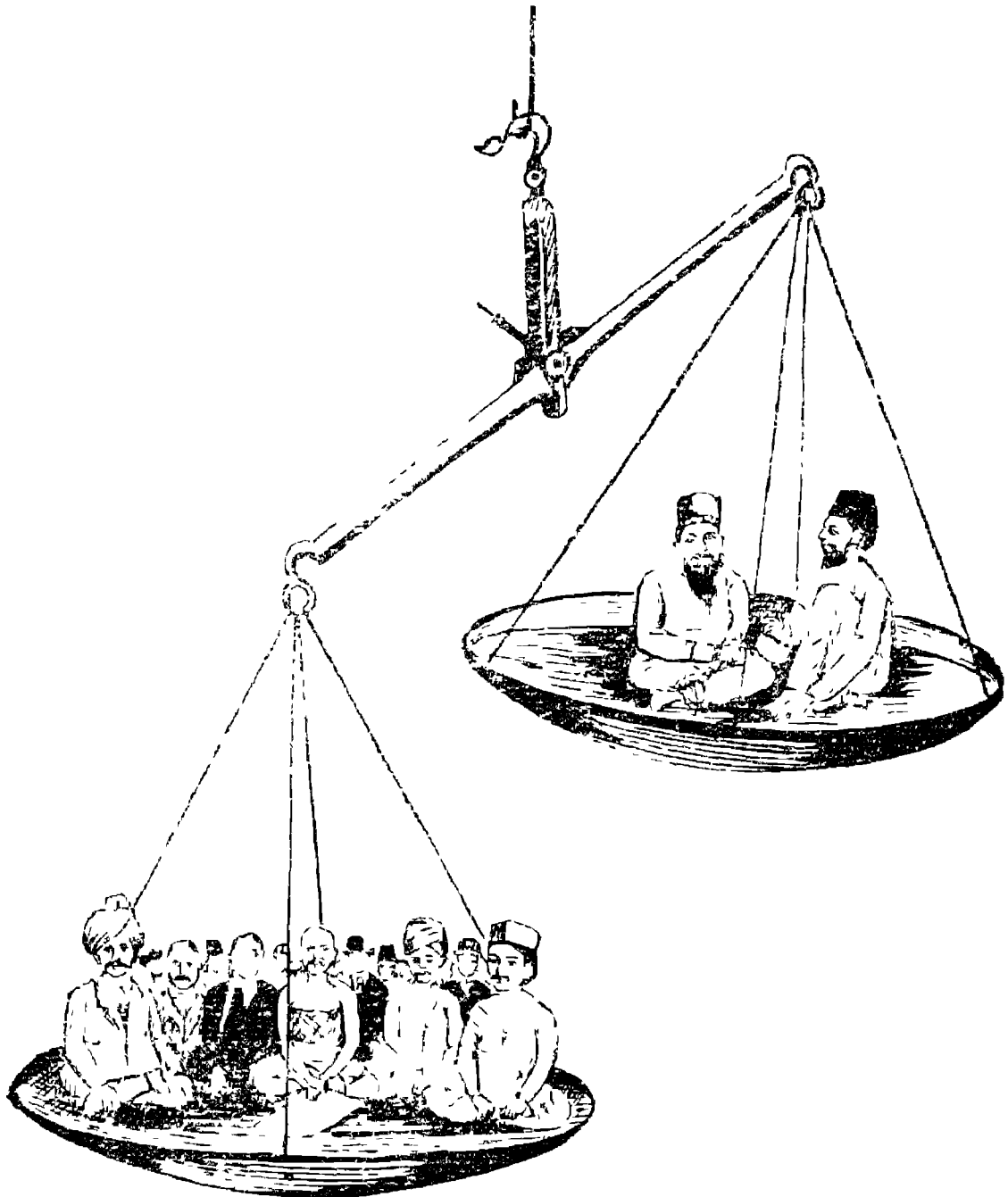
शफ़ी—हम हैं तो दो ही, पर उन सबों से भारी हैं।

इक़बाल—जी हाँ, देखिए कितने ऊँचे उठ गए।

मोटेरामजी शास्त्री

(१)
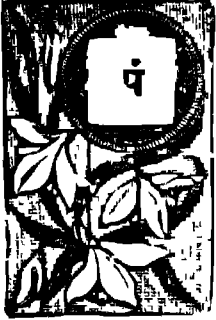
पंडित मोटेरामजी शास्त्री को कौन नहीं जानता? आप अधिकारियों का रुख़ देखकर काम करते हैं। स्वदेशी आंदोलन के दिनों में आपने उस आंदोलन का ख़ूब विरोध किया था। स्वराज्य-आंदोलन के दिनों में भी आपने अधिकारियों से राजभक्ति की सनद हासिल की थी। मगर जब इतनी उछल-कूद पर भी उनकी तक़दीर की मीठी नींद न टूटी, और अध्यापन-कार्य से पिंड न छूटा, तो अंत में आपने एक नई तदबीर सोची। घर में आकर धर्मपत्नीजी से बोले—इन बूढ़े तोतों को रटाते-रटाते मेरी खोपड़ी पच्ची हुई जाती है। इतने दिनों विद्या-दान देने का क्या फल मिला, जो और आगे कुछ मिलने की आशा करूँ।

धर्मपत्नी ने चिंतित होकर कहा—भोजनों का भी तो कोई सहारा चाहिए।

मोटेराम—तुम्हें जब देखो, पेट ही की फ़िक्र पड़ी रहती है। कोई ऐसा बिरला ही दिन जाता होगा कि निमंत्रण न मिलते हों; और चाहे कोई निंदा ही करे; पर मैं परोसा लिए बिना नहीं आता हूँ। क्या आज ही सब जजमान मरे जाते हैं? मगर जन्म-भर पेट ही जिलाया, तो क्या किया। संसार का कुछ सुख भी तो भोगना चाहिए। मैंने वैद्य बनने का निश्चय किया है।

स्त्री ने आश्चर्य से कहा—वैद्य कैसे बनोगे, कुछ वैद्यकी पढ़ी भी है?

मोटे०—वैद्यक पढ़ने से कुछ नहीं होता, संसार में विद्या का इतना महत्त्व नहीं जितना बुद्धि का। दो-चार सीधे-सादे लटके हैं, बस और कुछ नहीं। आज ही अपने नाम के आगे भिषगाचार्य बढ़ा लूँगा। कौन पूछने आता है, तुम भिषगाचार्य हो, या नहीं। किसी को क्या ग़रज़ पड़ी है, जो मेरी परीक्षा लेता फिरे। एक मोटा-सा साइनबोर्ड बनवा लूँगा। उस पर यह शब्द लिखे होंगे—"यहाँ स्त्री-पुरुषों के गुप्त रोगों की चिकित्सा विशेष रूप से की जाती है।" दो-चार पैसे का हड़, बहेड़ा, आँवला कूट-छानकर रख लूँगा। बस, इस काम के लिये इतना सामान पर्याप्त है। हाँ, समाचार-पत्रों में विज्ञापन दूँगा और नोटिस बटवाऊँगा। उसमें लंका, मदरास, रंगून, कराँची आदि दूरस्थ स्थानों के सज्जनों की चिट्ठियाँ दर्ज की जायँगी। ये मेरी चिकित्सा-कौशल के साक्षी होंगे। जनता को क्या पड़ी है कि वह इस बात का पता लगाती फिरे कि उन स्थानों में इन नामों के मनुष्य रहते भी हैं, या नहीं। फिर देखो, वैद्यक कैसी चलती है!

स्त्री—लेकिन बिना जाने-बूझे दवा दोगे, तो फ़ायदा क्या करेगी!

मोटे०—फ़ायदा न करेगी, मेरी बला से। वैद्य का काम दवा देना है। वह मृत्यु को परास्त करने का ठेका नहीं लेता, और फिर जितने आदमी बीमार पड़ते हैं, सभी तो नहीं मर जाते। मेरा तो यह कहना है कि जिन्हें कोई ओषधि नहीं दी जाती, वे विकार-शांत हो जाने पर आप ही अच्छे हो जाते हैं। वैद्यों को बिना माँगे यश मिलता है। पाँच रोगियों में एक भी अच्छा हो गया, तो उसका यश मुझे अवश्य ही मिलेगा। शेष चार, जो मर गए, वे मेरी निंदा करने थोड़े ही आवेंगे। मैंने बहुत विचार करके देख लिया, इससे अच्छा कोई काम नहीं है। लेख लिखना मुझे आता ही है, कवित्त बना ही लेता हूँ। पत्रों में आयुर्वेद-महत्त्व पर दो-चार लेख लिख दूँगा, उनमें जहाँ-तहाँ दो-चार कवित्त भी जोड़ दूँगा और लिखूँगा भी ज़रा चटपटी भाषा में। फिर देखो कितने उल्लू फँसते हैं। यह न समझो कि मैं इतने दिनों केवल बूढ़े तोते ही रटाता रहा हूँ। मैं नगर के सफल वैद्यों की चालों का अवलोकन करता रहा हूँ, और इतने दिनों के बाद मुझे उनकी सफलता के मूल-मंत्र का ज्ञान हुआ है। ईश्वर ने चाहा, तो एक दिन तुम सिर से पाँव तक सोने से लदी होगी।

स्त्री ने अपने मनोल्लास को दबाते हुए कहा—मैं इस उम्र में भला क्या गहने पहनूँगी, न अब वह अभिलाषा ही है, पर यह तो बताओ कि तुम्हें दवाएँ बनानी भी तो नहीं आतीं, कैसे बनाओगे, रस कैसे बनेंगे, दवाओं को पहचानते भी तो नहीं हो?

मोटे०—प्रिये! तुम वास्तव में बड़ी मूर्खा हो। अरे वैद्यों के लिये इन बातों में से एक की भी आवश्यकता नहीं। वैद्य की चुटकी की राख ही रस है, भस्म है, रसायन है,

बस, आवश्यकता है कुछ ठाठ-बाट की। एक बड़ा-सा कमरा चाहिए, उसमें एक दरी हो ताखों पर दस-पाँच शीशियाँ, बोतलें हों। इसके सिवा और कोई चीज़ दरकार नहीं, और सब कुछ बुद्धि आप ही आप कर लेती है। मेरे साहित्य-मिश्रित लेखों का बड़ा प्रभाव पड़ेगा, तुम देख लेना। अलंकारों का मुझे कितना ज्ञान है, यह तो तुम जानती ही हो। आज इस भूमंडल पर मुझे ऐसा कोई नहीं दीखता, जो अलंकारों के विषय में मुझसे पेश पा सके। आख़िर इतने दिनों घास तो नहीं खोदी है! दस-पाँच आदमी तो कवि-चर्चा के नाते ही मेरे यहाँ आया-जाया करेंगे। बस, वही मेरे दलाल होंगे। उन्हीं की मारफ़त मेरे पास रोगी आवेंगे। मैं आयुर्वेद-ज्ञान के बल पर नहीं, नायिका-ज्ञान के बल पर धड़ल्ले से वैद्यक करूँगा। तुम देखती तो आओ।

स्त्री ने अविश्वास के भाव से कहा—मुझे तो डर लगता है, कहीं यह विद्यार्थी भी तुम्हारे हाथ से न जायें। न इधर के रहो, न उधर के। तुम्हारे भाग्य में तो लड़के पढ़ाना लिखा है, और चारों ओर की ठोकर खाकर फिर तुम्हें वही तोते रटाने पड़ेंगे।

मोटे०—तुम्हें मेरी योग्यता पर विश्वास क्यों नहीं आता?

स्त्री—इसलिये कि तुम वहाँ भी धूर्तता करोगे। मैं तुम्हारी धूर्तता से चिढ़ती हूँ। तुम जो कुछ नहीं हो और नहीं हो सकते, वह क्यों बनना चाहते हो? तुम लीडर न बन सके, न बन सके, सिर पटक कर रह गए। तुम्हारी धूर्तता ही फलीभूत होती है और इसी से मुझे चिढ़ है। मैं चाहती हूँ कि तुम भले आदमी बनकर रहो, निष्कपट-जीवन व्यतीत करो। मगर तुम मेरी बात कब सुनते हो।

मोटे०—आख़िर मेरा नायिका-ज्ञान कब काम आवेगा?

स्त्री—किसी रईस की मुसाहिबी क्यों नहीं कर लेते? जहाँ दो-चार सुंदर कवित्त सुना दोगे, वह ख़ुश हो जायगा और कुछ-न-कुछ दे ही मरेगा। वैद्यक का ढोंग क्यों रचते हो!

मोटे०—मुझे ऐसे-ऐसे गुर मालूम हैं, जो वैद्यों के बाप-दादों को भी न मालूम होंगे। और सभी वैद्य एक-एक दो-दो रुपए पर मारे-मारे फिरते हैं। मैं अपनी फ़ीस ५) रक्खूँगा, उस पर सवारी का किराया अलग। लोग यही समझेंगे कि यह कोई बहुत बड़े वैद्य हैं, नहीं तो इतनी फ़ीस क्यों होती।

स्त्री को अबकी कुछ विश्वास आया, बोली—इतनी देर में तुमने एक बात मतलब की कही है। मगर यह समझ लो, यहाँ तुम्हारा रंग न जमेगा, किसी दूसरे शहर को चलना पड़ेगा।

मोटे०—(हँसकर), क्या मैं इतना भी नहीं जानता। लखनऊ में अड्डा जमेगा अपना। साल-भर में वह धाक बाँध दूँ कि सारे वैद्य गर्द हो जायँ। मुझे और भी कितने ही मंत्र आते हैं। मैं रोगी को दो-तीन बार देखे बिना उसकी चिकित्सा ही न करूँगा। कहूँगा, मैं जब तक रोगी की प्रकृति को भली भाँति पहचान न लूँ, उसकी दवा नहीं कर सकता। बोलो कैसी रहेगी?

स्त्री की बाछें खिल गईं, बोली—अब मैं तुम्हें मान गई। अवश्य चलेगी तुम्हारी वैद्की, अब मुझे कोई संदेह नहीं रहा। मगर ग़रीबों के साथ यह मंत्र न चलाना, नहीं तो धोखा खाओगे।

(२)

साल-भर गुज़र गया।

भिषगाचार्य पं० मोटेरामजी शास्त्री की लखनऊ में धूम मच गई। अलंकारों का ज्ञान तो उन्हें था ही, कुछ गा-बजा भी लेते थे, उस पर गुप्त रोगों के विशेषज्ञ, रसिकों के भाग्य जागे। पं० जी उन्हें कवित्त सुनाते, हँसाते और बलकारक ओषधियाँ खिलाते, और वे रईसों में, जिन्हें पुष्टिकारक ओषधियों की विशेष चाह रहती है, उनकी तारीफ़ों के पुल बाँधते। साल ही भर में वैद्यजी का वह रंग जमा कि बायद व शायद। गुप्त रोगों के चिकित्सक लखनऊ में एकमात्र वही थे। गुप्त रूप से चिकित्सा भी करते। विलासिनी, विधवा रानियों और शौक़ीन, अदूरदर्शी रईसों में आपकी ख़ूब पूजा होने लगी। किसी को अपने सामने समझते ही न थे।

मगर स्त्री उन्हें बराबर समझाया करती कि रानियों के झमेले में न फँसो, नहीं एक दिन पछताओगे।

मगर भावी तो होकर ही रहती है, कोई लाख सम-झाए-बुझाए। पंडितजी के उपासकों में बिड़हल की रानी भी थीं। राजा साहब का स्वर्गवास हो चुका था। रानी साहिबा न-जाने किस जीर्ण रोग में ग्रस्त थीं। पंडितजी उनके यहाँ दिन में पाँच-पाँच बार आते। रानी साहिबा उन्हें एक क्षण के लिये भी अपने पास से हटने न देना चाहती थीं। पंडितजी के पहुँचने में ज़रा

भी देर हो जाती, तो बेचैन हो जातीं। एक मोटर नित्य उनके द्वार पर खड़ी रहती थी। अब पंडितजी ने ख़ूब केचुल बदली थी। तंज़ेब की अचकन पहनते, बनारसी साफ़ा बाँधते और पंप जूता डाटते थे। मित्रगण भी उनके साथ मोटर पर बैठकर दनदनाया करते। कई मित्रों को रानी साहिबा के दरबार में नौकर रखा दिया। रानी साहिबा भला अपने मसीहा की बात कैसे टालतीं।

मगर चर्ख़ जफ़ाकार और ही षड्यंत्र रच रहा था।

एक दिन पंडितजी रानी साहिबा की गोरी-गोरी कलाई पर एक हाथ रक्खे नब्ज़ देख रहे थे, और दूसरे हाथ से उनके हृदय की गति की परीक्षा कर रहे थे कि इतने में कई आदमी सोटे लिए हुए कमरे में घुस आए और पंडितजी पर टूट पड़े। रानी ने भागकर दूसरे कमरे में शरण ली और किवाड़ बंद कर लिए। पं० जी पर बेभाव पड़ने लगी। यों तो पंडितजी भी दम-ख़म के आदमी थे, एक गुप्ती सदैव साथ रखते थे, पर अब धोखे में कई आदमियों ने धर दबाया, तो क्या करते। कभी इसका पैर पकड़ते, कभी उसका। 'हाय-हाय' का शब्द निरंतर मुँह से निकल रहा था, पर उन बेरहमों को उन पर ज़रा भी दया न आती थी। एक आदमी ने एक लात जमाकर कहा—इस दुष्ट की नाक काट लो। दूसरा बोला—इसके मुँह में कालिख और चूना लगाकर छोड़ दो। तीसरा—क्यों वैद्यजी महाराज, बोलो, क्या मंज़ूर है? नाक कटवाओगे? या मुँह में कालिख लगवाओगे?

पंडित—हाय! हाय! मर गया, और जो चाहो करो, मगर नाक न काटो।

एक—अब तो फिर इधर न आवेगा?

पंडित—भूलकर भी नहीं सरकार, हाय मर गया।

दूसरा—आज ही लखनऊ से रफ़ूचक्कर हो जाओ नहीं तो बुरा होगा।

पंडित—सरकार मैं आज ही चला जाऊँगा। जनेऊ की शपथ खाकर कहता हूँ, आप यहाँ मेरी सूरत न देखेंगे।

तीसरा—अच्छा भाई, सब कोई इसे पाँच-पाँच लातें लगाकर छोड़ दो।

पंडित—अरे सरकार मर जाऊँगा। दया करो।

चौथा—तुम-जैसे पाखंडियों का मर जाना ही अच्छा। हाँ, तो शुरू हो।

पंच-लत्तो पड़ने लगी। धमाधम की आवाज़ें आने लगीं। मालूम होता था नगाड़े पर चोट पड़ रही है। हर धमाके के बाद एक बार हाय! की आवाज़ निकल आती थी। मानो उसकी प्रतिध्वनि हो।

पंच-लत्तो-पूजा समाप्त हो जाने पर, लोगों ने मोटे-रामजी को घसीटकर बाहर निकाला और मोटर पर बैठाकर घर भेज दिया। चलते-चलते चेतावनी दे दी कि प्रातःकाल से पहले भाग खड़े होना, नहीं तो और ही इलाज किया जायगा।

(३)

मोटेरामजी लँगड़ाते, कराहते, लकड़ी टेकते घर में गए और धम-से चारपाई पर गिर पड़े। स्त्री ने घबड़ा-कर पूछा—कैसा जी है? अरे तुम्हारा क्या हाल है? हाय-हाय, यह तुम्हारा चेहरा कैसा हो गया है!

मोटे०—हाय! भगवन्!! मर गया!!!

स्त्री—कहाँ दर्द है? इसी मारे कहती थी, बहुत रबड़ी न खाओ। लवणभास्कर ले आऊँ?

मोटे०—हाय! दुष्टों ने मार डाला। उसी चांडालिनी के कारण मेरी दुर्गति हुई। मारते-मारते सभों ने भुरकस निकाल लिया।

स्त्री—तो यह कहो कि पिटकर आए हो। हाँ, पिटे तो हो। अच्छा हुआ। हो तुम लातों ही के देवता। कहती थी कि रानी के यहाँ मत आया-जाया करो, मगर तुम कब सुनते थे।

मोटे०—हाय-हाय! राँड तुझे भी इसी दम कोसने की सूझी। मेरा तो बुरा हाल है और तू कोस रही है। किसी से कह दे ठेला-वेला लावे, रातों-रात लखनऊ से भाग जाना है, नहीं तो सवेरे प्राण न बचेंगे।

स्त्री—नहीं अभी तुम्हारा पेट नहीं भरा, अभी कुछ दिन और यहाँ की हवा खाओ। कैसे मज़े से लड़के पढ़ाते थे, हाँ, नहीं तो, वैद्य बनने की सूझी। बहुत अच्छा हुआ। अब उम्र-भर न भूलोगे। रानी कहाँ थी कि तुम पिटते रहे और उसने तुम्हारी रक्षा न की?

पंडित—हाय-हाय! वह चुड़ैल तो भाग गई। उसी के कारण! क्या जानता था कि यह हाल होगा नहीं तो उसकी चिकित्सा ही क्यों करता।

स्त्री—हो तुम तक़दीर के खोटे। कैसी वैदकी चल गई थी, मगर तुम्हारी करतूतों ने सत्यानाश मार दिया।

आखिर फिर वही पढ़ौनी करना पड़ी। हो तक़दीर के खोटे।

*　　　*　　　*

प्रातःकाल मोटेरामजी के द्वार पर टेला खड़ा था और उस पर असबाब लद रहा था। मित्रों में एक भी नज़र न आता था। पंडितजी पड़े कराह रहे थे और स्त्री सामान लदवा रही थी। 　　　　प्रेमचंद

सूक्ति-सुधा

(१)

तमक चली, तमकर चली, वा तमसा के तीर।
उमड़े वन घन-श्याम लखि, उमडी तन-मन पीर।

(२)

ज्योति भरे, जीवन-भरे, चल-चलअचल दिखाहिं ;
पय-तड़ाग में मानिए, श्याम—मीन उतराहिं।

(३)

दिन-दूनी, निशि चौगुनी, आभा अधिक दिखाय,
गात निहारत ही दिवस, बार सँवारत जाय।

(४)

हरषि दान विधि उर दियो, सिर मान्यो उपकार!
भर घमंड ऊँचे उठे वे, ये लचे सभार!!

(५)

छूते ऊपर भार भो, कत छूते बेकाज,
अवगुन धन ते मैं धनी, तुम बस दीन-निवाज।

श्रीधर वात्सल्य

खुदा और शैतान *

पहला एक्ट

मजदूर की स्त्री—हाय-हाय! मर जाऊँगी। अब नहीं बचती, मेरी बच्ची को कौन सँभालेगा?

मज़दूर—(स्वगत) आज तीन दिन से मरना-मरना कर रही है, कमबख़्त मरती भी तो नहीं। (स्त्री से) क्यों सीता की अम्मा, राम-राम कहो, मरने का नाम क्यों लेती हो, अभी ठीक हो जाओगी। जाऊँ, फिर दवा ले ही आऊं?

स्त्री—हाय, दवा तो लानी ही होगी, आज तो न बचूँगी। देखो, सीता जाग रही है, ज़रा उसे थपक दो।

* इस एकांकी नाटक में लेखक ने 'पाप' का बहुत ही तात्त्विक विवेचन किया है। बर्नार्डशा की चुटकियों का कुछ मजा मिल जाता है। 　　　　संपादक।

मज़दूर—(मन में) अर्थात गला घोंट दो (थपकता है) सीता की अम्मा, एक ही तो रुपया है, फिर उसको भुना लूँ? तू जीती है, तो रुपए बहुत आवेंगे।

स्त्री—हाय, बहुत ज़ोर का दर्द है, मरी जाती हूँ, जाओ, दवाई ज़रूर लाओ।

मज़दूर—(मन में) क्यों नहीं ज़रूर लाऊँगा, केवल एक ही रुपया तो रह गया है, उसको भी खो दूँ, तो पहाड़ में जाऊँ। जाता हूँ, लौट के कह दूँगा, डॉक्टर साहब दुकान पर नहीं हैं। कम्पाउंडर ने कहा है कि गरम-गरम रेत से सेंक दो। (स्त्री से) अच्छा, जाता हूँ।

(मजदूर जाता है)

स्त्री—कैसा प्यारा और सज्जन आदमी है! आज चार रोज़ से मैं पड़ी हूँ, बराबर सेवा कर रहा है। फिर पड़ोसिन को मिन्नत समाजत करके ले आता है, और दोनों मेरी देखभाल करते हैं। राम करे मुझे भी कोई और काम मिल जाय, तो मैं भी कुछ कमाऊँ, सीता को अच्छे-अच्छे कपड़े पहिनाऊँ और इनको भी दिवाली पर अपने जोड़े हुए रुपयों में से कोट बनवा दूँ; पर क्या करूँ, रामजी की हमारे ऊपर कृपा ही नहीं होती। उफ़, उफ! फिर दर्द उठा, मर गई हाय! हाय!

(पड़ोसिन आती है) क्यों सीता की अम्माँ, क्यों-क्यों, अरी काहे को मरी जाती है, ज़रा धीरज धर।

स्त्री—आओ, बहन आओ, ख़बर तो लेती हो, अब तुम आई, तो सहारा होगया, अब नहीं मरूँगी। पर क्या करें, दर्द ज़रा भी तो चैन नहीं लेने देता।

पड़ो०—(मन ही-मन) निगोड़ी बकती है, मरती भी नहीं। आज चार रोज़ से, प्यारे ओधा के गले में बाँहें नहीं डाली, मुई खाट पर पड़ी रहती है। न मरे, न खाँचा छोड़े। दीदे फाड़-फाड़कर मेरी ओर देखती क्या है।

स्त्री—हाय, बहन ज़रा पेट मल तो दो।

पड़ो०—अच्छा बहिन, और यह हाथ है ही किसलिये। (मन में) पेट में छुरी न भोंक दूँ। मुई डाइन, मुझसे पेट मलवाती है, और वह जो तेरा यार है, वह किस दिन काम आवेगा। मैं क्या तेरी बीमार पुरसी को आती हूँ? अरी पगली, मैं तो प्यारे ओधा से आँखें मिलाने, उससे दो-दो मीठी-मीठी बातें करने आती हूँ। बस, इतना ही हो जाय तो बहुत है।

(सेठ का लड़का आता है) मदराजिन! मद-

राजिन ! अरी महराजिन, तू यहाँ बैठी है ? (हँसकर) हम लोगों ने क्या पाप किया है, जो हम भूखों भी मरें और रुपए भी दें, और तुम यहाँ गप्पें लड़ाओ।

महराजिन—(कटाक्ष से देखकर) और क्यों बाबूजी हमने क्या पाप किया है कि दिन निकलते ही बिना स्नान, पूजा-पाठ किए आपके पीछे मारी-मारी फिरें।

युवक—(मुस्कराते हुए) क्या तलब नहीं पाती हो ?

पड़ो०—क्या तलब प्रातःकाल छ बजे से काम करने के लिये मिलती है ?

सेठ का ज०—तो मैंने यह कब कहा कि हर रोज़ सुबह आ जाया करो। आज गाड़ी पर जाना था, इसलिये खाना जल्दी चाहिए। सेठजी कहते हैं, खाना बनवा के साथ ले चलेंगे। इसीलिये तुम्हें ढूँढ़ते-ढूँढ़ते यहाँ आ पहुँचा।

पड़ो०—बहुत अच्छा बाबूजी, चलिए मैं आती हूँ।

युवक—नहीं, साथ चलो। ताँगा लाया हूँ, बाहर खड़ा है।

मह०—हूँ (मन में) बबाजी मैं सब कुछ जानती हूँ, पर झाँसे हमको न दो। तुम्हारे क़ाबू में कदापि न आऊँगी। कल का लौंडा और मैं इसकी अम्मा के बराबर। अस्तु, देखो तो ! अभी क्या-क्या रंग दिखाता है।

युवक—चलो, फिर चुप हो गईं (टकटकी लगाकर मन में) बड़ी बदमाश है, बहुत ख़राब करती है, ख़ूब चकराती है, न पैसे ही से क़ाबू में आती है, न ख़ुशामद से, न साफ़ जवाब ही देती है। हे ईश्वर ! कोई उपाय कर (पड़ोसिन से) उठो कब तक राह दिखाओगी।

पड़ो०—चलिए। (दोनों जाते हैं)

दूसरा एक्ट

राजा साहब—सवाल यह है कि उसकी क़लम को लिखने से बंद करना है, तरीक़े की legality से कुछ मतलब नहीं। मैं समझ लूँगा।

प्राइवेट सेक्रेटरी—जनाबआली ! यह तो दुरुस्त है, और जैसा आप चाहते हैं, हो सकता है। मैंने केवल बहस के ख़याल से और पेशबंदी के लिहाज़ से इसकी कानूनी सूरतों को हुज़ूर के सामने रक्खा है।

रा० सा०—अच्छा किया। अब यह कहो, तुम इसकी क्या तदबीर सोचते हो ?

प्रा० से०—जनाबआली ! मेरे ख़याल में तो निहायत ही सहल तरीक़ा यह है कि मेरे एक दोस्त हैं, जो आजकल अवध होटल में ठहरे हुए हैं। उनकी एडीटर से पुरानी मुलाक़ात है। वह उसको होटल में बुलाएँ और शराब वग़ैरह पिलाएँ।

रा० सा०—तो क्या बदमाश शराब भी पीता है ?

प्रा० से०—न सिर्फ़ शराब ही पीता है, बल्कि जुआ भी खेलता है और अच्छा चालाक खिलाड़ी है।

रा० सा०—हाँ, तभी तो इतने बदमाश उसके क़ाबू में हैं।

प्रा० से०—जी हुज़ूर, उन्हीं के बल-बूते पर तो वह आपके ख़िलाफ़ लिखने की जुर्रत करता है और ज़िमींदारी की सब ख़बरें भी तो इन्हीं शैतानों के ज़रिए से उसे मिलती रहती हैं।

रा० सा०—हाँ, तो फिर ?

प्रा० से०—शराब पीने के बाद मेरा दोस्त आहिस्ते से उसके जेब में कोकीन की दस-पाँच पुड़िया डाल दे, उसके थोड़ी ही देर बाद पुलिस वहाँ आए और दोनों की तलाशी ले, और कोकीन-फ़रोशी में एडीटर बहादुर का चालान हो जाय। जेल की हवा खाएँगे, तो होश ठिकाने लग जाएँगे। जिस जेल में जावेंगे, वहाँ के जेलर को कुछ दे दिलाकर उसकी ख़ातिरदारी का ख़ूब इंतज़ाम करा दिया जावेगा।

रा० सा०—मगर मुमकिन है, होटलवाले हमारे ख़िलाफ़ गवाही दें।

प्रा० से०—नहीं जनाब, होटलवालों को रुपयों की सख़्त ज़रूरत है। एक-सौ रुपए का नोट दिखला दिया, तो वह यहाँ तक कह देगा कि हाँ, सरकार ! इसने कई दफ़ा मेरे नौकरों के हाथ कोकीन बेची है।

रा० सा०—सचमुच ?

प्रा० से०—हुज़ूर कहें, तो खड़े-खड़े दो-चार पठानों से उसका गला दबवा दूँ, उसके होटल में आग लगवा दूँ, नौकरों के ज़रिए से उसे ज़हर खिलवा दूँ। यह आपने क्या कहा ! होटलवालों को आपकी ख़ातिर मंज़ूर है, या एक भिखमंगे अख़बारनवीस की।

रा० सा०—भाई, जैसी तुम्हारी मर्ज़ी हो करो। मगर इस बदज़ात ने हमें बहुत बदनाम कर दिया है। मैं जब कौंसिल में जाता हूँ, तब सब यार दोस्त पूछते हैं, भाई ! क्या मामला है। दो-एक ने सलाह दी थी कि दो-चार-सौ से उसका मुँह बंद कर दो। उनको तो मैंने यह कह-

कर चुप कर दिया कि बकने दो, हाथी को देखकर कुत्ते भूँकते ही हैं। मगर खुदा की क़सम, बहुत शर्मिंदगी होती है।

प्रा० से०—जनाब! मैंने तो पहले ही अर्ज़ कर दिया था कि ख़तरनाक आदमी है!

रा० सा०—मगर मियाँ यह रक़म भी तो बहुत ज़्यादा माँगता था, दस हज़ार मैं कहाँ से लाऊँ?

प्रा० से०—हुज़ूर! यही ठीक रहेगा, इस तरह होटल, पुलिस और दूसरे लोगों को दे-दिलाकर १०००) से ज़्यादा ख़र्च न होगा।

रा० सा०—ठीक है, मगर कील-काँटे से ख़ूब लैस कर लेना, ऐसा न हो लेने के देने पड़ जायँ।

प्रा० से०—हुज़ूर! भला यह भी कोई बात है। दशहरा आ हो रहा है, फ़साद तो होगा ही, तरफ़ैन तुले बैठे हैं। बस उसी में छुरी भुकवा दूँगा, वह हज़रत तो गठते निकला ही करते हैं।

रा० सा०—क्या सचमुच फ़साद होगा?

प्रा० से०—अजी, ज़रूर होगा, न कैसे हो, दोनों पार्टियों को दिल का ग़बार निकालना है।

(दरवाज़े पर खटखट होती है)

प्रा० से०—कौन है?

(आवाज़)—हुज़ूर! मैं हूँ, अहमदहुसैनखाँ।

प्रा० से०—आओ।

अहमदहुसैन—(आता है) तस्लीमात अर्ज़ है, हुज़ूर आली, आदाब अर्ज़ जनाब।

रा० सा०—कहो कैसे आए?

अ० हु०—हुज़ूर, दो आदमी आज फिर कुछ काग़ज़ एडीटर इंसाफ़ के दफ्तर में दे गए हैं।

रा० सा०—आज?

अ० हु०—जी हाँ, आज सवेरे ही।

रा० सा०—और कुछ ख़बर है किसी मामले में?

अ० हु०—हुज़ूर, ऐसा मालूम होता है कि नई बेगम-साहिबा के बारे में कुछ ख़बर देने आए थे।

रा० सा०—हूँ, और?

अ० हु०—हुज़ूर, और तो कुछ नहीं।

रा० सा०—तो जाओ।

(अहमदहुसैन जाता है)

रा० सा०—(मन में) यह लोग शरारत से बाज़ नहीं आते। मगर मैं भी जब तक दम में दम है, जमीला को अपने पास से जुदा न होने दूँगा, चाहे मेरी सारी ज़मींदारी ही क्यों न बरबाद हो जाय (सेक्रेटरी से) अहसान, क्या कहते हो।

प्रा० से०—हुज़ूर! कहना क्या है, मेरे ख़याल में जब तक महमूद ज़िंदा है, वह कोई-न-कोई फ़ितना खड़ा करता ही रहेगा।

रा० सा०—मगर उसको हम कैसे दबा सकते हैं, वह हमारे देहात से कब का जा चुका है। वहाँ अब न उसका कोई रिश्तेदार है, न जायदाद।

प्रा० से०—देखिए जनाब, कोई तरकीब निकालते हैं। सरदस्त तो उस ताज़ा इत्तिला को छपने से रुकवाना चाहिए। इजाज़त हो, तो मैं होटल अभी हो आऊँ?

रा० सा०—जल्द कुछ इंतज़ाम करो, ठहरो मैं भी कपड़े बदल कर आता हूँ, तुम्हें होटल के पास उतार दूँगा।

(जाते हैं)

प्रा० से०—(सिगरेट सुलगाकर) वाह रे औरत, सच है! दुनिया में सबसे बदनसीब इंसान एक ख़ूबसूरत औरत है, यह ग़लत है कि आशिक़ सबसे ज़्यादा दुखी होता है। आदमी को जान, माल और दौलत से प्यारी है, और अपनी इज़्ज़त और नामूस जान से भी अज़ीज़। हसीन औरतों की नामूस कहाँ रह जाती है? जमीला चमार के यहाँ पली, वहाँ उस पर किस-किस की ललचाई नज़रें न पड़ी होंगी, किस-किस के दिल उछल-उछलकर, तड़प-तड़पकर उस पर न गिरे होंगे? फिर बैरिस्टर महमूद ने उसको घर में डाल लिया। क्या वह महमूद के घरवालों की नफ़रत और दुश्मनी का निशाना न हुई होगी? वहाँ से फिर चमार के यहाँ पहुँची। उसने किसी और चमार पट्ठे को दी, वहाँ उसके साथ क्या न बीती होगी। अब हमारे राजा साहब हैं कि उसकी एक-एक अदा पर हज़ारों-लाखों निछावर करने को तैयार हैं, और ख़ून में हाथ रँगने तक से दरेग़ न करेंगे, अगर मामला योंही कुछ और तूल पकड़ गया। मनचले तो हाँ हैं हीं, ख़ुद ही गोली मार देंगे, एडीटर और महमूद दोनों को। इस वक़्त तो मेरी क़ानूनी गिरिफ़्त की बातें से ज़रा सहमे हुए से हैं, मगर ख़ैर जमीला के बारे में तो सोचो। भाई, अगर औरत बदनसीब है, तो सबसे

ज़्यादा ख़ुशनसीब भी तो है। ख़ुदा ने उसको वह बेहिसाब चंचलता दी है कि तमाम बदनामी और दुख एकदम से भूल जाती है । हाँ, भूल जाती है। शर्त यह कि मुहब्बत की निगाह की शराब उसे पीने को मिले। राजा साहब तो उसे जी-जान से ज़्यादा प्यार करते हैं, मगर वह कब यक़ीन करती होगी, और फिर मुमकिन है, उसे राजा साहब से मुहब्बत न हो । मेरे ख़याल में तो महमूद-जैसा हसीन ख़ाविंद उसे भी न नसीब होगा। और महमूद बेचारे को देखो, क्या हालत हो रही है। भाई, इश्क़ बुरा है। दिल को शायद इससे कुछ मज़बूती और गहराई मिलती हो, मगर देह के लिये, मन के लिये बुद्धि के लिये, तो यह विष के समान है। कदाचित् उन्हें उद्दीपन प्रदान कर देता हो।

रा० सा० (आते हैं) चलो भाई, मैं तैयार हूँ । ज़रा मोटरवाले को तो आवाज़ देना। सभी नौकर कहीं बाहर गए हुए हैं (प्राइवेट सेक्रेटरी जाता है) | (दिल में) या ख़ुदा, क्या तेरी नज़रों में मुहब्बत भी कोई गुनाह है कि मुझ पर आफ़त-पर-आफ़त नाज़िल हो रही है। एक एडीटर के दिल में यह शैतान कहाँ से पैदा हो गया, जो दम नहीं लेने देता। इस हज़ार मुँहवाले दुश्मन को गोली मार देने को जी चाहता है, मगर प्यारी जमीला का ख़याल करके रुक जाता है। एक तो जी में आता है कि क़ानून-वानून सब ढकोसला है। बहुतेरे गवाह मिल जायँगे, छूट जाऊँगा। मगर उस कमबख़्त को तो, जिसने मुझे बदनाम किया है, अपने किए का मज़ा चखा दूँगा। मगर (प्राइवेट सेक्रेटरी आता है) |

प्रा० से०—मोटर आ रहा है। तशरीफ़ ले चलिए।

रा० सा०—चलिए।

(दोनो जाते हैं)

तीसरा एक्ट

ख़ुदा—और।

एक दूत—जोधा मज़दूर की स्त्री के मरने की तिथि आज है, शाम को उसके प्राणों का हरण करना है।

दूसरा दूत—किंतु मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि पत्नी के मरते ही वह पड़ोसिन से, जो विधवा है, खुल्लमखुल्ला दुष्प्रबंध कर लेगा।

तीसरा दूत—यही नहीं, सेठ का लड़का भी उस विधवा पर बेतरह मिटा हुआ है और कई बार वह उससे बलात्कार करने की ठान चुका है, और कल सायंकाल वह अपने मित्रों से भी परामर्श ले चुका है कि उसको उसके साथ मोटर में बिठाकर बाहर ले जाय। संभव है, यदि विधवा कुछ क्रोध तथा त्रिया-हठ दिखावे, तो वह उसे मारकर वहीं गंगाजी में डाल दे।

ख़ुदा—और।

दू० दू०—राजा जंगनिवाज़ख़ाँ रहमतउल्ला एडीटर को कल गोली मार देने का विचार कर रहे हैं। किंतु एडीटर की मृत्यु में अभी एक सप्ताह शेष है, वह हिंदू-मुसलमान-दंगे में गुरुवार को छुरी से मारा जायगा।

ती० दू०—शोक तो यह है कि राजा साहब की रमणी भी, जो गर्भवती है और जिसके एक पखवारे के पश्चात् बालक उत्पन्न होना है, उसके आठवें दिन शरीर को त्याग देगी और इससे मृत्युलोक में दुःख-वेदना और यातना में अभिवृद्धि होगी।

चौ० दू०—महमूद की दशा निकृष्ट से निकृष्टतर होती चली जायगी।

ख़ुदा—तुमने क्या उपाय सोचा है ?

प० दू०—यही कि हम सबको शांति और धैर्य की प्रेरणा करते जायँ।

दू० दू०—अथवा यह कि हम उनको अपने कुविचारों और कुप्रथाओं से पृथक् रखने का उपदेश करते रहें।

ती० दू०—अथवा यह कि हम उनके सामने दिल-बहलाव और चिंता-दमन तथा शोक-विस्मरणार्थ अन्य सामग्री रखते जायँ।

ख़ुदा—अच्छा, जैसा तुम्हारी समझ में आता है करते जाव। (दूत जाते हैं) मैंने जो कुछ कर दिया, सो कर दिया, जो कुछ किसी के जी में आवे, वह कहता और करता जाय। धर्म के देव और दया की देवी, दया तथा धर्म की वृष्टि करते जायँ। न्याय के देवता, न्याय के चमत्कार प्रदर्शित करते जायँ, मेरी प्रकृति का विकाश क्रमशः होता जाय, मेरे सौंदर्य का विकाश पूर्णता प्राप्त करता जाय। मैं अलग-अलग हूँ, अकेला हूँ, तनहा हूँ, दुख-सुख से परे हूँ, केवल द्रष्टा और श्रोता हूँ। नहीं, देखने-सुनने से मुझे क्या प्रयोजन, अभिप्राय से क्या अभिप्राय—मुझे अपने अस्तित्व में आनंद है, मेरे आनंद में प्रकाश है, और मेरा प्रकाश, मेरा विकाश है। मेरा ज्ञान, मेरा अस्तित्व है, और मेरा अस्तित्व, मेरा उन्माद है। देवता

मेरे गुण है और मेरे गुण स्वयं मेरा अस्तित्व—ब्रह्मांड मेरा ध्यान है, और ध्यान मेरा ब्रह्मांड है। मैं प्रेम हूँ, प्रेम मेरा है। प्रेम मेरा ध्यान है, मैं प्रेम का ध्यान हूँ। मैं हूँ और मैं नहीं हूँ। मैं दुःख में हूँ, मैं सुख में हूँ। जो ऐसा नहीं समझते, वे भी मुझमें हैं। जो ऐसा समझते हैं, वे भी मुझमें हैं। मैं दोनों में नहीं, मैं दोनों में हूँ। संसार की गति मुझी से है। मुझी से इसकी स्थिरता है, मुझी से हानि-लाभ है और मुझी से दंड और पुरस्कार है। जो कुछ वे कर रहे हैं, मैं कर रहा हूँ। इसलिये मैं क्यों हस्तक्षेप करूँ। मेरा हस्तक्षेप क्या, जब प्रत्येक हस्तक्षेप में मेरा समावेश है। इस मेरे प्रश्न का मैं स्वयं उत्तर हूँ।

चौथा एक्ट

शैतान—कोई और नवीन शुभ-समाचार है?

पहला फ़रिश्ता—हुज़ूर आला! शुभ समाचारों की सूची तो समाप्त होने नहीं पाती। देखिए, मज़दूर की स्त्री मरेगी, तो मज़दूर ब्राह्मणी से संबंध जोड़ेगा। यह देखिए, ब्राह्मण और कहार का मेल।

दू० फ़०—वाह-वाह! हृष्ट-पुष्ट शरीर भी क्या वस्तु है।

ती० फ़०—और गोरा रंग भी क्या जादू है।

शैतान—और कहो भाई?

प० फ़०—इसी ब्राह्मणी के एक लड़की होगी और हुज़ूर की बरकत से वह या तो मुसलमान होकर चकले में बैठेगी या किसी महाजन के घर पड़ जायगी।

दू० फ़०—वाह-वाह! स्वतंत्रता भी क्या चीज़ है, हिंदू हो जाय, मुसलमान हो जाय, कहीं जा बैठे।

ती० फ़०—वाह-वाह! हमारी सरकार का इक़बाल भी क्या चीज़ है, विशेषकर जब ज्ञान और विवेक से अलग हो।

शैतान—और कुछ?

प० फ़०—मज़दूर लड़की का गला घोंटेगा, ब्राह्मणी से रुपए लेकर डॉक्टर को देगा और उससे सार्टीफ़िकेट लेकर लड़की को गंगा में बहा देगा।

दू० फ़०—वाह-वाह! हमारी सरकार ने डॉक्टर भी इस दुनिया में क्या अजूबा चीज़ बनाई है।

ती० फ़०—और यह क़ानून और यह गंगा? सुभीते-ही-सुभीते हैं।

शैतान—और भी कुछ कहो?

प० फ़०—राजा जगनिवाज़ख़ाँ अपने सेक्रेटरी की सहायता से रहमतउल्लाख़ाँ एडीटर को आज कोकीन बेचने के अपराध में पकड़वाएँगे।

दू० फ़०—वाह-वाह! ईमानफ़रोशी भी क्या उपयोगी वस्तु निकली है।

दू० फ़०—और मित्रता भी क्या अमूल्य वस्तु है। भला मित्रता के बिना प्राइवेट सेक्रेटरी क्या कर सकता था। दोस्त ही के द्वारा उसने एडीटर को वहाँ बुलवाया और एडीटर भी दोस्त की ही कृपा से वहाँ फँस गया।

शैतान—और कुछ ऐसी शुभ-सूचना?

प० फ़०—बैरिस्टर महमूदख़ाँ विरह के तीर का शिकार होंगे, क्योंकि जमीला बच्चा जनने के बाद मर जायगी।

दू० फ़०—वाह-वाह! प्रेम भी हुज़ूर का कितना आज्ञाकारी फ़रिश्ता है।

शैतान—अब तुमने क्या सोच रक्खा है?

प० फ़०—सेठ का लड़का अपने षड्यंत्रों में सफल न हो।

दू० फ़०—विधवा ब्राह्मणी का यार मज़दूर अपनी नौकरी से निकलवा दिया जाय, क्योंकि इस महीने में उसने मिल के जमादार को वेतन में से ।) नहीं दिए। ख़ुद जमादार को मेम साहब का कोई काम न करने के कारण ठुकराकर बेइज़्ज़त करके बरख़ास्त कराऊँ।

ती० फ़०—सेठ साहब का मैनेजर, सेठ साहब की पुत्री को १०,०००) के आभूषण-सहित उठा ले जाय।

शैतान—और?

प० फ़०—राजा साहब जमीला के विरह में घुलते जायँ। इस भूमि पर दुःख की वृद्धि करना, आपका प्रियतर आज्ञा का पालन करना है।

दू० फ़०—प्राइवेट सेक्रेटरी को उसका जानी दोस्त धोखा देकर शराब के नशे में उससे १,०००) रुपया लेकर चलता बनेगा। इस दुनिया में पाप की वृद्धि करना आपके सबसे प्यारे हुक्म की तामील करना है।

ती० फ़०—कोकीन में पकड़नेवाले पुलीस अफ़सर का इकलौता लड़का बुख़ार में चल बसेगा। संसार में मौत की वृद्धि करना आपके अत्यंत प्रिय आज्ञा का पालन करना है।

शैतान—अच्छा, जाओ। जैसा उचित समझो, करते जाओ। मैं तुम्हारे साथ-साथ हूँ, किसी प्रकार की सहायता की आवश्यकता हो, तो मुझे स्मरण करो, मैं तत्काल

पहुँचेंगा (फ़रिश्ते जाते हैं)। (आप-ही-आप) मैं ख़ुदा की सर्व प्रथम और सर्वोत्तम सृष्टि हूँ। मैं पाप हूँ, मैं मौत हूँ, मैं दुःख हूँ, मैं वियोग हूँ, नहीं मैं कुछ भी नहीं, इन सबके ऊपर और इन सबसे परे हूँ, मैं इनसे अलग-थलग हूँ। मैं ख़ुदा से कब भिन्न हूँ, ख़ुदा ने मुझे अपने आप से बनाया—अतएव मैं उसी से हूँ, और वही हूँ, न वह मुझसे बड़ा है, न मैं उससे बड़ा हूँ। जो कुछ मैं करता हूँ, वह उसी का फ़रमान है, उसी की इच्छा है, उसी की लीला का प्रदर्शन है। वह मुझमें अपने को देख रहा है और मैं अपने में उसी को देख रहा हूँ। मेरा बल-पराक्रम उसी से है ; क्योंकि मैं वही हूँ। जो कुछ होता है, सत्य है। क्योंकि मैं सत्य का स्वरूप हूँ, मौत मेरी है, अतएव मैं जीवन हूँ—पाप मेरा है, इसलिये मैं विद्या हूँ, दुःख मेरा है, इसलिये मैं आनंद हूँ—मौत है, तो जीवन है, पाप है, तो विद्या है, दुःख है, तो आनंद है। मैं हूँ तो ख़ुदा है।

पाँचवाँ एक्ट

मज़दूर—अफ़सोस ! प्यारी, दिन बहुत बुरे आए हैं, रोज़ कोई-न-कोई नई मुसीबत आ पड़ती है। कोई सूरत भलाई की दिखाई ही नहीं देती। यदि और सप्ताह-भर में नौकरी न मिली, तो मैं तो विष खा लूँगा।

ब्राह्मणी—नहीं प्यारे, घबड़ाने की क्या बात है। भाग्य-वाग्य कोई चीज़ नहीं, अपना पुरुषार्थ और उद्यम सब कुछ है। चिंता किसलिये करते हो ? यदि रुपए ख़र्च हो गए हैं, तो यह लो मेरी कान की बालियाँ। इनको मैं आज इसीलिये लाई थी। इनको बेच लो, या गिरों रख दो, अभी बहुत कुछ पड़ा है। चैन से गुज़र-बसर करो, फिर देखा जायगा। इतने में क़िस्मत भी पल्टा खाएगी, ईश्वर को हम-तुमसे कोई बैर तो है नहीं। लाखों अपराध करते हैं ; किंतु ईश्वर उनको जीविका बराबर दिए जाता है। हमने आख़िर ऐसा कौन-सा पाप किया है ?

मज़दूर—यही क्या कम पाप है कि मैंने सीता की अम्मा को दवाई लाकर न दी और वह मर गई। फिर मैंने सीता का गला घोट दिया, इसकी याद मुझे दिन-रात सूली पर चढ़ाए रखती है। क्या करूँ, कहाँ जाऊँ—

ब्राह्मणी—करना-धरना क्या है, भूल जाओ, मनुष्य क्या-क्या नहीं करता। ईश्वर जाने पिछले जन्म में मैंने और तुमने क्या-क्या पाप किए हैं। सहस्रों जन्म लिए होंगे। यदि उनका करोड़वाँ अंश भी हमें स्मरण रह जाए, तो फिर जीना दुर्लभ हो जाय, और आज ही प्रलय मच जाय, सृष्टि काहे को रहे। जो हो गया, सो हो गया, जो हमारी समझ में आया किया, अब जो होगा, देखा जावेगा।

मज़०—मगर ईश्वर ने तो मुझे मुआफ़ नहीं किया। देखो नौकरी छूट गई।

ब्रा०—छूट गई, छूट गई ! वहाँ तुमको मिलता ही क्या था। फिर तुम्हारा स्वास्थ्य कितना बिगड़ रहा था। जबसे इस कारख़ाने में नौकर हुए हो, तुम्हारा शरीर आधा रह गया है। अच्छा हुआ, नहीं तो कदाचित् तुम्हें भी सूखा हो जाता। भीख माँग लेंगे, परंतु ऐसे कारख़ानों में काम न करेंगे। फिर वहाँ से छूटकर तुम बुरे आदमियों की कुसंगत से बचे, अन्यथा तुम शराब पीना भली प्रकार सीख जाते। अब भगवान् को धन्यवाद दो, कोई और नौकरी खोजो। कहीं चपरासगीरी कर लो, देवीजी की मान्ता मान आओ। नौकरी मिल गई, तो मिल गई। नहीं तो यह सोने के कड़े हैं, इनको बेचकर छोटी-मोटी दुकान कर लेना। भूखों थोड़े ही मरेंगे।

मज़०—प्यारी ! क्या तुम्हारे यह सब आभूषण मुझ निखट्टू निकृष्ट निकम्मे प्राणी के लिये हैं ? फिर तुम पहनोगी क्या ?

ब्रा०—तुम पगले हो, तुम्हारे सुख के लिये मैं इन आभूषणों को कोई चीज़ नहीं समझती।

मज़०—अच्छा, तो यह बालियाँ अपने पास रक्खो। मैं फिर नौकरी की तलाश में अभी इन्हीं पैरों जाता हूँ।

(उठकर चल देता है)

छठा एक्ट

राजा साहब—आह ! जमीला, आख़िर तू ही बेवफ़ा निकली। मैंने तो हर तरह तुझसे निबाहना चाहा, मगर तूने मुँह मोड़ ही लिया। प्यारी जमीला ! अगर छिपना ही था, तो अब फिर क्यों आकर अपनी अदा दिखा-दिखाकर मुझे सताती है, जलाती है। दिल में तेरी सूरत देखकर क्या करूँ। मैं तो जिस्मों की दुनिया में हूँ। मुझे तेरे जिस्म की ज़रूरत है, जिसको मैं हर वक़्त आँखों के सामने रक्खूँ। ओफ़ ! मुझे क्या मालूम था कि तेरी मुहब्बत मुझमें इस क़दर

घर कर गई है, मुझ पर इस क़दर छा गई है। आह, मौत! मौत! जो शैतान की ख़ास सूरत है, उसने तुझे मुझसे जुदा कर ही दिया, वर्ना मैं तेरे लिये क्या-क्या न कर रहा था, और क्या-क्या न करता। अब तू कहाँ है! क़ुरान कहता है, तू बहिश्त में है। क्या मैं भी बहिश्त में जा सकूँगा? क्या मेरे फ़ेल मुझे बहिश्त में ले जाने के क़ाबिल हैं। नहीं, मैं गुनहगार हूँ, मैंने झूठ, फ़रेब दगा बहुत कुछ किए हैं; मगर क्या ये सब गुनाह तुझसे मुहब्बत करने के मिले में माफ़ न कर दिये जायँगे? शायद नहीं, क्योंकि क्या मालूम है, ख़ुदा हमारी इंसानी दुनियावी मुहब्बत को किस नज़र से देखता है? क्या मैं और किसी के वसीले से बख्शा जाऊँगा, इसलिये कि मैं तुझसे मिल सकूँ? नहीं, अगर तुझी से मिलना मेरा मक़सद उन्हें मालूम हो जावेगा, तो कौन मेरी सिफ़ारिश करेगा। या ख़ुदा जमीला को फिर यहाँ भेज दे और मुझे भी यहाँ रहने दे, ताकि वह ख़िदमत, जो मैं उसकी करना चाहता था, वह मुहब्बत, जो मैं उस पर निसार करना चाहता था। (खट-खट-खट) कौन है?

आवाज़—मैं हूँ जनाबआली।

रा० सा०—आइए महमानज़ा, बैठिए।

प्रा० से०—जनाब का तबियत कैसी है?

रा० सा०—तबीयत क्या, यह ऐसा सदमा नहीं कि मैं इससे बच जाऊँ।

प्रा० से०—नहीं जनाब ऐसा न कहिए, दिल ही तो है, सँभलते-सँभलते सँभलना है। मगर सँभलना ज़रूर है। आख़िर इंसान को जीना भी तो है।

रा० सा०—बाज़ आया ऐसे जीने से।

प्रा० से०—मैं क्या अर्ज़ कर सकता हूँ?

रा० सा०—मैं बताता हूँ। ज़िंदगी वही अच्छी है, जो हम किसी की नज़र कर सकें, या किसी के लिये मर सकें।

प्रा० से०—तो जीने की क़द्र मौत से है, यह ख़ूब Paradox रहा।

रा० सा०—Paradox तो है, और सच पूछो, तो सब तरफ़ हमें Paradox ही Paradox नज़र आते हैं। मुहब्बत की क़द्र नफ़रत से है।

प्रा० से०—क्यों जनाब, क्या दोस्ती की क़द्र भी आप दग़ाबाज़ी और बेवफ़ाई से बताएँगे?

रा० सा०—क्यों नहीं! क्या तुम अपने दोस्त की तरफ़ इशारा कर रहे हो?

प्रा० से०—जी हाँ, यह बात मेरी समझ में नहीं आई।

रा० सा०—क्या उसकी बेवफ़ाई और दग़ाबाज़ी से अब तुम्हारे दिल में दोस्ती की ख़्वाहिश नहीं रही?

प्रा० से०—नहीं।

रा० सा०—यह जवाब ग़लत है, झूठा है, तुम अपने दिल से पूछो, क्या सच्ची दोस्ती की भी ख़्वाहिश नहीं रही, याकि कमज़ोर, झूठी दोस्ती की? क्या आज आप पहले से भी ज़्यादा किसी सच्चे, वफ़ादार दोस्त की तलब और तड़प दिल में नहीं छिपाए हैं?

प्रा० से०—है तो कुछ ऐसी ही, पिछली बात-सी!

रा० सा०—दुरुस्त, मौत हमें और ज़्यादा सच्ची ज़िंदगी की राह पर ले जाती है, और नफ़रत सच्ची मुहब्बत की तरफ़।

प्रा० से०—तो क्या मैं यह समझूँ कि आपको इस सदमे से भी किसी क़िस्म का कुछ फ़ायदा हुआ है?

रा० सा०—यही तो मैं तुम्हारे आने से पहले सोच रहा था। मैं समझता हूँ कि जमीला की मौत ने मुझ पर मुहब्बत के छिपे हुए भेद खोल दिए हैं, ज़िंदगी की क़द्र मेरे दिल में बख़्श दी है और इस ज़मीन पर दुबारा आने की न मिटनेवाली ख़्वाहिश पैदा कर दी है।

प्रा० से०—मगर जन्नत भी तो है!

राजा सा०—जन्नत में तो वह ख़िदमत, जो मैं जमीला की यहाँ कर सकता था, वह दुःख, जो मैं उसके लिये सह सकता था, उनकी ज़रूरत न होगी। और वह लज़्ज़त जो कशमकश में है, जो दुःख में है, जो महबूब के लिये मरने में है, वह कहाँ से पाऊँगा। नहीं जन्नत मेरे लिये अभी नहीं, बल्कि कभी नहीं। मेरे लिये यही हस्ती, यही दुःख, मौत और गुनाह की हस्ती है। वह गुनाह, जो हस्ती के लिये है, मगर किस हस्ती के लिये? अपनी हस्ती के लिये नहीं, मुझसे कहीं ज़्यादा पाक, हसीन और दोनो दुनियाओं को प्यारी हस्ती के लिये, जैसी कि जमीला थी और है।

प्रा० से०—गुस्ताख़ी मुआफ़, हुज़ूर तो शायरी करने लगे, और फ़लसफ़े के नुक़्ते सुझाने लगे।

रा० सा०—क्यों नहीं, ग़म शायरी का सरचश्मा है। मुहब्बत फ़लसफ़े की कुंजी है, और किसी एक हसीन की

सची परस्तिश तमाम दूसरे हसीनों के लिये इख़लाक़ और इज़्ज़त का जज़्बा दिल में पैदा कर देती है। समझे ?

प्रा० से०—समझा तो मगर (खटखट)। कौन है ?

आवाज़—हुज़ूर, हुज़ूर, हुज़ूर।

प्रा० से०—क्यों, क्यों, क्या है ? (दरवाज़ा खोलता है)।

नौकर—(भीतर आकर) हुज़ूर, शहर में फिर हिंदू-मुसलिम फ़िसाद शुरू हो गया है। और सुना है कि इधर सिविल लाइन में भी फसादी आवेंगे।

रा० सा०—चलो दूर हो जाओ, फाटक बंद कर दो, बस।

प्रा० से०—जनाबआली, क्या मज़हब से भी ज़्यादा कोई हसीन चीज़ है ? फिर यह दोनों क़ौमों को एक दूसरे के लिये प्यार और मुहब्बत क्यों नहीं सिखाता ?

रा० सा०—इसका जवाब फिर कभी देंगे। आप जाइए और ज़रा शहर की ख़बर लाइए। मेरी भी ज़्यादा बकने से तबियत कुछ परेशान-सी है। कई सवाल पैदा हो रहे हैं। ज़रा अकेले में दिल बहलाने की कोशिश करूँगा। अगर कोई ख़तरा हो, तो टेलीफ़ोन कर देना। यहाँ तक शायद नौबत ही न आवे। तंग गलियों तक मुआमला रह जायगा।

प्रा० से०—जी हाँ, यह तो है ही। जहाँ के लोगों में ज़रा ख़ून ज़्यादा है, वहाँ बहकर निकल जायगा, तो अमन हो जायगा। अस्सलामअलेकुम (जाता है)।

सातवाँ एक्ट

शैतान—ऐ मेरे सिरजनहार ! तेरी आज्ञाओं का पालन करना मेरा एकमात्र कर्तव्य है। मुझमें भक्ति का अभाव है, भक्ति में पाप है, मृत्यु है, दुःख है और मैं चित् हूँ, सत् हूँ और आनंद हूँ। आज दुनिया में ख़ून रक्त की नदियाँ बह रही हैं, इससे मुझको हर्ष है और मैं आपको धन्यवाद देता हूँ कि मैं इतनी सफलता से आपकी आज्ञा-पालन कर रहा हूँ। जो नियम आपके आदेशानुसार मैंने बनाए हैं, वे इस ख़ूबी से जीवन में बरते जा रहे हैं कि दसों दिशाओं में उन्नति ही उन्नति के चिह्न देख पड़ते हैं। दुःख बढ़ रहा है, राज-व्यवस्था और धर्म-प्रचार इसके उत्तरदायी हैं। मौत बढ़ रही है, विज्ञान और सौंदर्य इसके उत्तरदायी हैं। पाप बढ़ रहा है, सुंदरता, कला कौशल और प्रेम का विस्तार इसके ज़िम्मेदार हैं। इस समय सभी अपनी ज़िम्मेदारियों का अनुभव करके तेरे लक्ष्य की ओर बढ़े जा रहे हैं, और दूसरों को बढ़ाए जा रहे हैं।

ख़ुदा—ऐ मेरे सिरजनहार, तेरी आज्ञाओं का पालन करना मेरा एकमात्र कर्तव्य है। इसीलिये आज मेरे दूत तेरी मौत, तेरे पाप और तेरे दुःख का प्रचंड प्रचार कर रहे हैं। और इस तरह पर वह मेरे और तेरे दोनों के प्रियतर लक्ष्य की ओर सृष्टि को बढ़ा रहे हैं। जो तेरा है, वह मेरा है। जो मेरा है, वह तेरा है। मुझमें इस समय दुःख है, मौत है, पाप है, क्योंकि जो मेरे हैं, वह इनमें हैं। इसी से मैं अपने आपको अर्थात् सत्य को, चित् को, आनंद को, देख रहा हूँ। मुझे शांति है, क्योंकि तू मेरा करतार काम करने में प्रतिक्षण निमग्न है। तूने मुझे अपने से भिन्न किया है, केवल इसीलिये कि तू अंत में मुझको अपने साथ पूर्णता से मिला ले। मैं तुझको धन्यवाद देता हूँ कि इस समय मेरे सत्, चित् और आनंद संसार को भर रहे हैं, क्योंकि इस प्रथा और पद्धति से वह तेरा राज्य-स्थापन करने में सहायता देंगे, और उन आज्ञाओं का, जो मेरी और तेरी एक-सी हैं, पूरा-पूरा पालन करेंगे।

शैतान—हे काल ! जो कि मृत्यु हो, हे देश ! जो कि दुःख हो, और हे निमित्त ! जो कि गुनाह हो, तुम तीनों एक हो; क्योंकि तीनों मुझमें हो। तुम तीनों मेरे सिरजनहार, ख़ुदा की सेवा में इसी प्रकार संलग्न रहो।

ख़ुदा—हे सत् जो कि मृत्यु हो, हे चित् ! जो कि दुःख हो, और हे आनंद ! जो कि पाप हो, तुम तीनों एक हो, क्योंकि तीनों मुझमें हो। तुम तीनों मेरे सिरजनहार, शैतान की सेवा में निमग्न रहो।

शैतान—मेरी यही प्रार्थना है कि राजा साहब सदा काम-प्रवीण रहें, प्राइवेट सेक्रेटरी सदा धोके और फ़रेब की चालें सोचते और सुझाते और उन पर अमल कराते रहें, बैरिस्टर सदा गंदे ज्ञानों में से सौंदर्य को चुनकर निकालते रहें, मास्टरजी सदा कहार को कुछ-न-कुछ देकर बेकारी के पथ पर चलाते रहें, और मज़दूर कहार सदा अपने तन को पाल पोसकर उससे स्त्रियों को फुसलाता और जाल में लाता रहे। ऐ ख़ुदा ! मेरी प्रार्थना स्वीकार हो, तेरी मदद से मैं यह कर दिखाऊँगा।

ख़ुदा—तेरी प्रार्थना में मेरा भला है, क्योंकि तू मुझी में है। तेरी मदद से मैं यह कर दिखाऊँगा।

मोहनसिंह

बैरियों के बीच

कानन मे क्रूर कोल केसरी कपीश कंक ,
कटक कृशानु और कुंजर कराल काल ,
अद्रि पर अहि और बिजली है बादलों मे ,
सागर अथाह जल झष नक्र घड़ियाल ।
इन वैरियों के बीच बचना सरल काम ,
दीनानाथ किंतु अब हुआ है अजब हाल
आप ही बचावें "विभु" तब ही बचेगी जान ,
तन मे ही छै-छै रिपुओं का बिछा हाय जाल ।

'विभु'
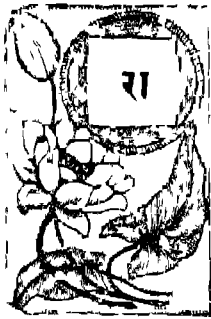
राजगढ़

भौगोलिक स्थिति

राजगढ़ मध्य भारत की एक छोटी सी पहाड़ी रियासत है, जो रेल के मार्ग से बहुत दूर, भूपाल से लगभग सौ मील उत्तर-पश्चिम की ओर मालवा की इतिहास-प्रसिद्ध भूमि पर स्थित है । राजगढ़ और नरसिंहगढ़ राज्यों की भूमि परस्पर इस प्रकार मिली हुई है कि भौगोलिक स्थिति से वह अलग-अलग नहीं की जा सकती । पहले यह दोनों रियासतें एक ही थीं, पर पीछे अलग-अलग बँट गईं ।

राजगढ़ रियासत उत्तर मे ग्वालियर और कोटा राज्यों से, दक्षिण मे ग्वालियर और देवास से, पूर्व मे रियासत भूपाल से और पश्चिम में खिलचीपुर से घिरी हुई है ।

राज्य के दक्षिणी और पूर्वी प्रान्तों मे तो दक्षिणी पहाड़ है, किंतु उत्तरी भाग मे जगद्विख्यात विंध्याचल का अंचल इसे अपनी गोद मे छिपाए हुए है । पार्वती और नेवज यहाँ की मुख्य नदियाँ हैं जो अपनी एवं अपनी शाखाओं के जल से सारी रियासत को सींचती हुई आगे जाकर चंबल मे मिल जाती हैं । इन नदियों की उत्पत्ति प्रसिद्ध विंध्य-गिरि से ही होती है । और भी दो छोटी-छोटी नदियाँ—घोड़ापछाड़ और अजनर—इसी रियासत के पहाड़ों मे से निकलकर, अपने क्षुद्र जल को लेकर इठलाती हुई, अन्य बड़ी नदियों मे मिल जाती है ।

किला

नाना प्रकार के बाघ, चीते और हरिण आदि जंगली जानवर यहाँ के भयानक जंगलों मे अनंत संख्या में पाए जाते हैं ।

गर्मी के दिनों मे दिन को पर्याप्त गर्मी पड़ने पर भी यहाँ की शीतल रात्रि बड़ी सुखद होती है ।

यहाँ जल-वर्षा लगभग २६ इंच प्रतिवर्ष के हिसाब से होती है । किंतु कभी-कभी ऊपर की ओर अधिक वर्षा होने के कारण यहाँ की नदियाँ भीषण रूप धारण करके भयंकर बाढ़ का रूप धारण करती हुई अनेकों गाँवों, खेतों और पशुओं का सत्यानाश करती चली जाती है ।

इतिहास

अब पहले यहाँ का कुछ इतिहास भी कह देना आवश्यक होगा ।

राजगढ़ और नरसिंहगढ़ के राजा उमठ राजपूत है, जो कि प्रसिद्ध परमार-वंश की एक शाखा है । परमार-वंश ने छः सौ वर्ष तक मालवा मे राज्य किया था । किंवदंती के अनुसार राजा सागराव के, उनकी बारह रानियों से, पैंतीस पुत्र हुए जिनसे इस वंश की पैंतीस भिन्न-भिन्न शाखाओं की उत्पत्ति हुई । इन्हीं सागराव के दो पुत्र अमरसिंह और समरसिंह राजपूताना और सिंध की मरुभूमि में जाकर रहने लगे । अमरसिंह के ही नाम पर अमरकोट का प्रसिद्ध किला (जो सबसे बड़े मुगल बादशाह का जन्मस्थान है) प्रख्यात हो गया । अमरसिंह के वंशज यही उमठ राजपूत हैं जिनके नाम पर मालवा का उमठ-वाड़ा-प्रदेश प्रसिद्ध है । उमठ राजपूत अमरसिंह के

वंशज सारंगसेन की अधीनता में ईसा की चौदहवीं शताब्दी में मालवा में घुस आए और सन् १३४७ ई० में धार में बस गए। इस समय मुहम्मद तुगलक़ शासन कर रहा था। पीछे सारंगसेन ने सिंध तथा पार्वती नदियों के मध्य का प्रदेश भी अपने अधिकार में कर लिया। कहा जाता है कि चित्तौर के राणा से उन्हें 'रावत' की उपाधि मिली थी। इनके कुछ वंशजों ने शाही दरबार में प्रतिष्ठित स्थान प्राप्त किए थे। कहा जाता है कि सारंगसेन की चौथी पीढ़ी में उत्पन्न रावत करमसिंह या कमाजी सिकंदर लोधी के समय में उज्जैन के शासक (गवर्नर) बनाए गए थे। इन्होंने मालवा-प्रदेश में बाइस जिलों की सनद पाई थी, जो उमतवाड़ा के नाम से प्रसिद्ध है। वे दुपैरिया में रहते थे, जो अब ग्वालियर-राज्य के शाजापुर ज़िले में है।

रावत कृष्णजी या किशनसिंह भी उज्जैन के शासक रहे थे। कहा जाता है कि उन्हीं के नाम पर उज्जैन का किशनपुरा मुहल्ला प्रसिद्ध है। उनकी मृत्यु लगभग सन् १५८३ ई० में हुई और उनके पुत्र डूँगरसिंह उनके स्थान के अधिकारी हुए। राजगढ़ से बारह मील दूर डूँगरपुर गाँव उन्हीं के नाम पर है। सन् १६०३ ई० में यह तलेन (राजगढ़ रियासत का एक परगना) में मारे गए। इनके छः पुत्रों में ऊदाजी और दूदाजी सबसे बड़े थे तथा ऊदाजी ही उनके स्थानापन्न हुए। यह रतनपुर में रहने लगे, जो नरसिंहगढ़ से १२ मील पश्चिम में है। इनका राज्य-काल १६०३ से १६२१ ई० तक है। ऊदाजी के पीछे छतरसिंह राजा हुए, जो शाही फ़ौज से लड़कर सन् १६३८ ई० में रतनपुर में मार डाले गए। इनके नाबालिग पुत्र मोहनसिंह ने सन् १६३८ से १६६७ ई० तक दूदावत (दूदाजी के वंशज) वंशीय दीवान अजबसिंह (जो छतरसिंह के दीवान थे) की देख-रेख में राज्य किया। इनका निवास-स्थान रतनपुर से बदलकर डूँगरपुर हो गया। सन् १६६८ ई० में अजबसिंह मुसलमानों से लड़कर मारे गए और उनके पुत्र परसराम उनके स्थान पर मैनेजर और दीवान हुए। अब ऊदावत वंश का वास-स्थान राजगढ़ और दूदावत का पाटन (राजगढ़ से दो मील दक्षिण की ओर—जहाँ परसराम ने क़िला बनवाया) हो गया। किंतु मोहनसिंह और परसराम में न पटी और झगड़े होने लगे। अंत में सन् १६८१ ई० में दोनों वंशों (ऊदावत और दूदावत) में बटवारा हो गया ; किंतु राजगढ़ के राजा को बड़े होने के कारण पाँच गाँव अधिक मिले। इस प्रकार राजगढ़ और नरसिंहगढ़ के अलग-अलग राज्य स्थापित हो गए।

मोहनसिंह के पीछे अमरसिंह राजगढ़ के राजा हुए। इन्होंने सन् १६६७ ई० से १७४० तक राज्य किया। इनके शासन-काल में जयपुर के सवाई जयसिंह ने राजगढ़ पर आक्रमण किया और नौ लाख वसूल होने पर घेरा उठाने को सम्मत हुए। राजगढ़-नरेश एकदम इतना न दे सके और उन्होंने उस समय छः लाख दे कर शेष तीन लाख के लिये अपने पुत्र अभयसिंह को उन्हें शरीर-बंधक (होस्टेज) की भाँति दे दिया। अंत में एक ज़िम्मेदार के ज़ामिन होने पर अभयसिंह छोड़ दिए गए। किंतु कुछ दिन बाद अभयसिंह को उनके एक नौकर ने मार डाला, जिस दुःख से उनके पिता ने भी अपने प्राण त्याग दिए। इनके पश्चात् सन् १७४० ई० में नरपतसिंह राजा हुए और सन् १७४७ ई० में माता निकलने से उनकी मृत्यु हो गई। इनके पीछे इनके भाई जगतसिंह ने २८ वर्ष राज्य किया। इनके मरने पर सन् १७७५ से १७९० ई० तक उनके पुत्र रावत हमीरसिंह ने १५ वर्ष राज्य किया। इनके अंतिम दिनों में मराठों ने राजगढ़ के दुर्ग को घेर लिया और तीन लाख वसूल होने पर घेरा उठाने को तैयार हुए। किंतु इतना न दे सकने के कारण हमीरसिंह ने अपने पुत्र प्रतापसिंह को उन्हें शरीर-बंधक की भाँति दिया। किंतु कोटा के राजा ने उस धन की ज़मानत देकर प्रतापसिंह को छुड़वा दिया। इस समय से राजगढ़ के राजा सिंधिया के करदाता हो गए।

हमीरसिंह के बाद उनके पुत्र प्रतापसिंह ने सन् १७९० से १८०३ ई० तक राज्य किया। इनके मरने पर इनके पुत्र पृथ्वीसिंह को गद्दी मिली। इनके समय में सिंधिया के जेनरल जीन बैप्टिस्टो फ़िलोस ने राजगढ़ पर रक्षा-कर (ट्रिब्यूट) बाक़ी रह जाने के कारण अधिकार कर लिया। सिंधिया के दरबार में पुनर्विचार होने की प्रार्थना करने पर, अंत में रियासत को छः लाख बतौर हरजाने के देने पर छुटकारा मिला।

पृथ्वीसिंह के कोई पुत्र न होने के कारण, उन्होंने अपने तीसरे भाई नवलसिंह को अपना उत्तराधिकारी बनाया क्योंकि उनका दूसरा भाई प्यारेसिंह गाँजे का

पिअक्कड़ था। इस पर प्यारेसिंह और उनके सबसे छोटे भाई कोकसिंह ने षड्यंत्र रचकर पृथ्वीसिंह को मार डाला; किंतु सरदारों ने नवलसिंह का साथ दिया और उन्होंने सन् १८१५ ई० में गद्दी पाई। सन् १८१८ ई० में, जब सर जॉन मेलकम मालवा का बंदोबस्त कर रहे थे, सिंधिया और नवलसिंह में एक समझौता हुआ, जिसके अनुसार नवलसिंह को सिंधिया का राज्य-कर चुकाने में बहुत-से गाँव देने पड़े। इसी समय नवलसिंह ने ब्रिटिश सरकार के साथ भी एक समझौता किया, जिसके अनुसार राजगढ़ के राज्य-कार्य में हस्तक्षेप करने का अधिकार केवल ब्रिटिश-सरकार को ही रहा। पंद्रह वर्ष राज्य करने के पश्चात् सन् १८३१ ई० में नवलसिंह ने आत्म-हत्या कर ली तथा इनके ज्येष्ठ पुत्र मोतीसिंह गद्दी पर बैठे। सन् १८३२ ई० में लार्ड विलियम बेंटिक ने, सागौर में, जो दरबार किया था, उसमें ये उपस्थित थे। इनकी प्रार्थना पर सिंधिया ने इनके कुछ परगने इन्हें लौटा दिये; किंतु कर बढ़ा कर ४१,०००) रुपए कर दिया।

सन् १८५७ ई० में गदरवालों ने राजगढ़ को लूटा और पाँच लाख रुपए का माल उनके हाथ लगा। मोतीसिंह की ओर से गदरवालों का कुछ विरोध नहीं किया गया था। सन् १८६७ ई० में मोतीसिंह को ग्यारह तोपों की सलामी पाने का अधिकार मिला। मोतीसिंह के तीन पुत्र थे—बख्तावरसिंह, बलवंतसिंह और विनयसिंह। सन् १८८० ई० में ४८ वर्ष राज्य करने के बाद मोतीसिंह की मृत्यु हो गई और उनके ज्येष्ठ पुत्र बख्तावरसिंह राजा हुए; किंतु बहुत जल्दी सन् १८८२ ई० में ही मर गए। इनके बाद इनके बड़े पुत्र बलभद्रसिंह ने गद्दी पाई। सन् १८८५ ई० में, जब लार्ड डफ़रिन इंदौर आए, इन्हें रावत के साथ-ही-साथ राजा की भी उपाधि मिली। तब से राजगढ़-नरेश 'राजा रावत' की उपाधि से भूषित होने लगे। इन्होंने राजगढ़ से खिलचीपुर और ब्यावरा तक सड़कें बनवाईं तथा ब्यावरा से सीहोर कैंट तक, जो सड़क बन रही थी, उसके लिये दो लाख रुपए दिए।

बलभद्रसिंह सन् १९०२ में निःसंतान मर गए तथा इनके चाचा विनयसिंह इनके राज्याधिकारी हुए। इनके समय में राज्य के सभी विभागों में बहुत उन्नति हुई। इन्होंने शासन-पद्धति का प्राचीन रूप बदलकर उसे नवीनता से संपन्न किया। सन् १९०३ ई० में यह दिल्ली दरबार में गए तथा सन् १९०५ ई० में इंदौर में प्रिंस और प्रिंसेस ऑव् वेल्स से मिले। सन् १९११ ई० में इनकी मृत्यु हुई।

इनके अनंतर इनके पुत्र हिज़ हाइनेस राजा रावत श्रीवीरेंद्रसिंहजी बहादुर सिंहासनारूढ़ हुए। ये ही वर्तमान राजगढ़ नरेश हैं। इस समय इनकी अवस्था ३५ वर्ष की है। राजगढ़ रियासत से 'तलैन' परगने के लिये सिंधिया को लगभग ४१,०००) रु० तथा "काली-पीठ" परगने के लिये झालावाड़ के राणा को लगभग ६००) रु० मिलते हैं।

राजगढ़ के राजाओं की 'हिज़ हाइनेस' और 'राजा' उपाधि है और ये ११ तोपों की सलामी पाने के अधिकारी हैं।

विशेषताएँ

सन् १९२१ की मनुष्य-गणना के अनुसार राजगढ़ राज्य की जन-संख्या १,१४,६७२ है। इस राज्य में दो नगर हैं राजगढ़ और ब्यावरा; तथा लगभग ७०० गाँव हैं। धर्मों के अनुसार प्रतिशत ८६ हिंदू, ६ मुसलमान और ४ देई-देवताओं के उपासक (अधिकतर भील) हैं। बोलचाल की मुख्य भाषा मालवी (या रांगड़ी) है। दूसरा नंबर हिंदी का है। सन् १९०१ में यहाँ

बाजार

दो प्रतिशत पढ़े-लिखे लोग थे; पर अब इसमें कुछ उन्नति हुई है और बराबर होती जा रही है।

यहाँ की मुख्य जातियों में प्रतिशत चमार १२ और राजपूत या सौंधिया ८ है। ६० प्रतिशत मनुष्य खेती-बारी से अपनी जीविका चलाते हैं।

राज्य की कुल आय लगभग चार लाख पचास हज़ार रुपए वार्षिक तथा व्यय चार लाख दस हज़ार के लगभग है।

सन् १६०४ई० में राजा विनयसिंह के नाम पर राजगढ़ नगर में विनय-हाईस्कूल खुला। यह प्रयाग-विश्वविद्यालय से संबद्ध संस्था है तथा दिन-पर-दिन उन्नति करती जा रही है। इधर दो वर्षों से यहाँ के शिक्षा-विभाग में बड़ी
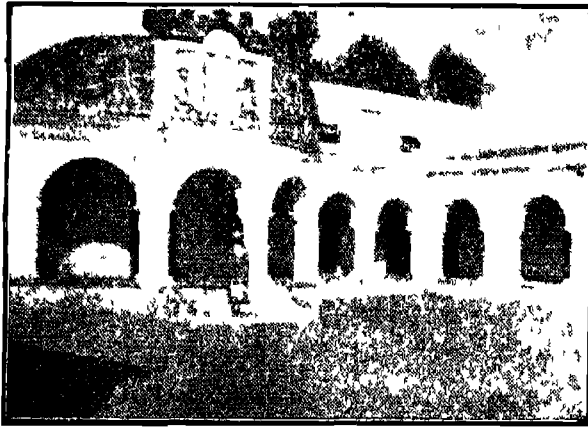
अतिथि-शाला

उन्नति हो रही है। पहले यहाँ के गाँवों में कुल मिलाकर १५ छोटे स्कूल थे, पर अब उनकी संख्या ३५ है। गाँवों में १० स्कूल प्रतिवर्ष बढ़ाने की स्कीम है जब तक कि कुल संख्या ६० तक न पहुँच जाय। शिक्षा-विभाग में अब प्रतिवर्ष १८,०००) रु० से २८,०००) रु० तक व्यय होता है। इस वर्ष हाईस्कूल की परीक्षा का फल यहाँ ४० प्रतिशत रहा।

नगर में एक बालिका-विद्यालय भी है। इसमें भी बराबर उन्नति होती जा रही है।

राजगढ़ का वास्तविक स्वरूप बरसात में दिखाई देता है। पहाड़ियों पर हरे-हरे वृक्षों के वन बड़े ही सुंदर जान पड़ते हैं। थोड़ी-थोड़ी दूर पर छोटे-छोटे नाले जल से ऊपर तक भरकर दौड़ लगाते फिरते हैं। नदी में तो जल-ही-जल दिखाई पड़ता है। राजगढ़ नगर के मुख्य पुल (नेवज नदी का) पर कभी कभी हाथी-डुबान पानी चढ़ जाता है।

राजगढ़ में नित्य सीहोर कैंट स्टेशन से डाक आती है। पर इस समय कभी-कभी सप्ताहों तक डाक का पता नहीं चलता। सारी सड़कों पर पानी बुरी तरह से मार्ग रोक देता है।

यह प्रदेश पहाड़ी होने के कारण, यहाँ छोटी-छोटी पहाड़ी नदियाँ अनंत संख्या में हैं। प्रत्येक सड़क को थोड़ी-ही थोड़ी दूर पर ऐसी नदियों को पार करना पड़ता है। अब इन पर पुल बनवाना बहुत व्यय-साध्य होने के कारण, उन स्थानों पर रपट बनवा दिए गए हैं। 'रपट' का एक चित्र भी दिया जाता है। एक ओर से पहाड़ी नदी आ रही है। गरमी का चित्र है। नदी बिलकुल सूखी है। एक बूँद भी पानी नहीं है, किंतु अनंत पत्थरों के गोल-गोल टुकड़ों से नदी की तलहटी भरी हुई है। यह टुकड़े पानी के संग पर्वत से ढुलकते हुए आए हैं। दूसरी ओर से सड़क आ रही है। सड़क नदी को पार करने के लिये यहाँ ढाल कर दी गई है। वह आकर इस नदी की तलहटी में होती हुई दूसरी ओर चढ़ जाती है। यहाँ आकर नदी और सड़क बिलकुल बराबरी पर आ जाती हैं। जब पानी आता है, इस सड़क पर होता हुआ बह जाता है। जब तक पानी अधिक आता रहता

रपट

है, मार्ग बंद रहता है। पानी कम हो जाने पर लोग फिर चलने लगते हैं।

इस प्रकार जहाँ राजगढ़-श्री वर्षाऋतु में प्राकृतिक

सौंदर्य में नंदन वन है, वहाँ बाहर आने-जाने की असुविधा भी कम नहीं है। मानो वह अपने इस सौंदर्य को दूसरों को दिखाने में सकुचती है।

गत वर्ष मैं वर्षा-ऋतु में वहाँ से लौटने को था, पर नित्य ही सड़क साफ़ न होने के कारण रुक जाना पड़ता। इस प्रकार मुझे बीस दिन के लगभग वहाँ इसी दशा में पड़ा रहना पड़ा।

राजगढ़ का पुराना क़िला नेवज नदी के तट पर ही एक ऊँचे टीले पर स्थित है। राजगढ़ की अधिकांश बस्ती क़िले में ही है। एक बड़े मज़बूत प्राकार से किला घिरा हुआ है। इसी में पुराना राजमहल और बस्ती है। नया महल 'कुँअरपत' के नाम से प्रख्यात है। यह भी इस किले में ही है। महल का वर्णन करने की कोई आवश्यकता नहीं। पाठकों ने बड़े-से-बड़े नरेशों के गगनचुंबी प्रासाद देखे होंगे—उनके वर्णन पढ़े होंगे। यद्यपि राजगढ़ का प्रासाद भी बहुत सुंदर है, तथापि राजगढ़ की विशेषता यहाँ की इमारतों में नहीं है। यहाँ की इमारतें यहाँ के राजा के योग्य ही हैं—इतना कह देना पर्याप्त होगा।

किले से बाहर, कुछ दूर पर, नेवज नदी के बिलकुल तट पर 'इंद्र-भवन' नाम की अतिथि-शाला है। इसकी इमारत भी बहुत सुंदर है। एक ओर सुंदर उपवन, और दूसरी ओर छहों ऋतुओं में भरी हुई नेवज नदी—इसकी शोभा को और भी बढ़ा रही है।

राजा साहब शिकार खेल रहे हैं

प्रति बुधवार को राजगढ़ नगर में हाट लगता है, जिसमें आसपास के गाँवों से तरकारी, भाजी और अन्य नाना पदार्थ विक्रयार्थ आते हैं। जो वस्तुएँ यहाँ नहीं होतीं, वे तो अवश्य मँहगी पड़ती हैं; पर (दूध आठ सेर का, घी १३-१४ छटाँक का) दूध-घी, काफ़ी सस्ता रहता है।

राज-प्रासाद में रोशनी करने के लिये बिजली का एक छोटा-सा पावर-हाउस है, जिससे रात को प्रासाद में तारे-से छिटक जाते हैं।

मध्य-प्रदेश की भाँति यहाँ भी मोट का दूसरा ही रूप है। केवल एक आदमी और दो बैलों से मोट चलती है। एक आदमी की बचत होती है। संयुक्त-प्रदेश में एक आदमी बैल हाँकता है और एक मोट 'छानता' है। किंतु यहाँ मोट के नीचे एक सूँड़ के आकार का चमड़ा भी जुड़ा रहता है। जिसके छोर पर एक और रस्सी बँधी रहती है। इस रस्सी के लिये, जहाँ मोट खींची जाती है—उसी स्थान पर कुएँ के मुख से संलग्न एक छोटा-सा लकड़ी का बेलन (या चरखी) होता है। यह रस्सी उसी बेलन पर होकर आती है और बड़ी रस्सी के साथ-साथ बैल हाँकनेवाले के अधिकार में रहती है। वह जब कुएँ के पास आकर मोट डुबाता है, उस समय उस दूसरी रस्सी को ख़ूब ढीली कर देता है; पर जब मोट डूब जाती है, तब उस पतली रस्सी को इतना खींच लेता है कि नीचे मोट से संलग्न वह सूँडाकार चमड़ा, इतना ऊपर उठ जाए कि उसका मुँह मोट के मुँह की बराबरी में आ जाए, जिससे मोट के ऊपर आने तक—उस सूँड़ के मुँह में होकर पानी गिर न जाए। इसके बाद जब मोट ऊपर आ जाती है, तब हाँकनेवाला उस पतली रस्सी को ढीली कर देता है। इससे वह सूँड़ फिर नीचे को गिरकर कुएँ के पत्थर पर—जहाँ पानी गिराना है—आ जाती है और मोट का सारा पानी उसकी तलहटी में से, उस सूँड़ में होकर निकल जाता है। इस ढंग से एक आदमी को

बचत बड़ी सरलता से हो जाती है। न जाने संयुक्त-प्रांत के किसान इसका व्यवहार क्यों नहीं करते।

इस छोटे-से लेख को समाप्त करने के पहले दो-एक बातें और कह देना भी अनुपयुक्त न होगा। दो वर्ष हुए राजगढ़ का प्रबंध नए दीवान श्री० शौकतअली ने अपने हाथ में लिया है। मुसलमान होते हुए भी आपका व्यवहार हिंदुओं के साथ सर्वथा निष्पक्ष-पात है। आप न्याय के बड़े प्रेमी हैं। जो कुछ उचित और न्याय समझेंगे, वही करेंगे।

शेर का मुँह

वर्तमान दरबार राजा रावत वीरेंद्रसिंहजी बहादुर की अवस्था इस समय ३५ वर्ष के लगभग है। आपको फ़ोटो-ग्राफ़ी और शिकार का बेहद शौक है। अब तक आपने राजगढ़ के जंगलों में खोज-खोज कर सौ से अधिक शेरों का शिकार किया होगा। आप भी इस बात का सदा विचार रखते हैं कि उनकी प्रजा पर अन्याय न हो। प्रत्येक पुरुष आपको अपनी प्रार्थना सुना सकता है। आप भी बड़े मनोनिवेश के साथ प्रत्येक व्यक्ति की बात पर ध्यान देते हैं।

दरबार साहब हिंदी के भी बड़े प्रेमी हैं। किंतु ऐसा होने पर भी राज्य-कार्यों में उर्दू का भी व्यवहार होना हमें माननीय राजा साहब से कुछ —निवेदन करने को विवश करता है। आजकल सारे भारतवर्ष ने एक प्रकार से एकमत होकर हिंदी को राष्ट्र-भाषा बनाना स्वीकार कर लिया है। हिंदी की उपयोगिता इस समय किसी से छिपी नहीं। ऐसी अवस्था में राजगढ़-ऐसे हिंदू-राज्य में हिंदी की कमी बहुत खटकती है। किंतु हमें पूर्ण आशा है कि अन्य बड़े-बड़े हिंदू राजाओं के अनुसार महाराजा साहब भी अपने यहाँ हिंदी पर विशेष ध्यान देने की कृपा करेंगे।

सुमंगलप्रकाश गुप्त
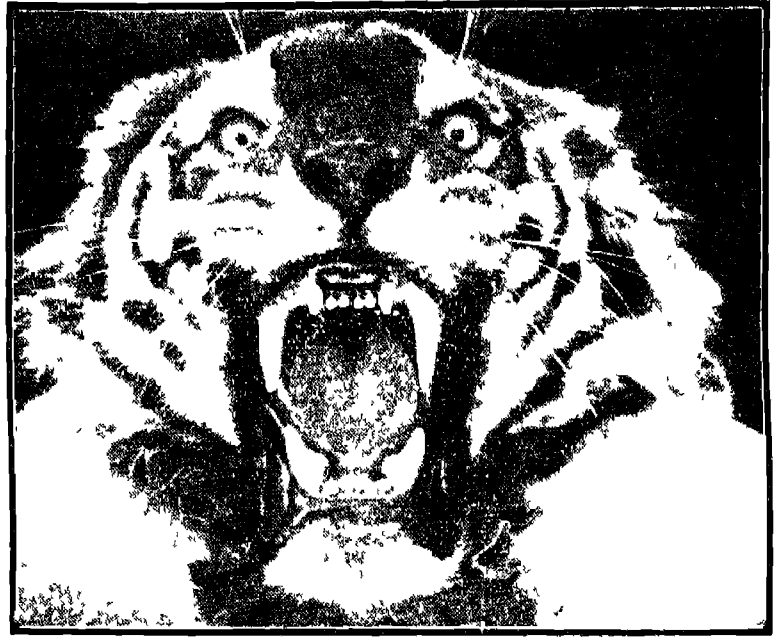
राजगढ़ की एक स्त्री

रसधार बही

भेटे रघुनंदन भरत कौं हृदै लगाय,
प्रेम करुणा सो मिल्यो मानौ देह धारि सही।
पुलके कलेवर विभोर ममता में भए,
भूले भगवान सुधि-बुधि अपनो न रही।
'कौशलेंद्र' तपनि बुझानी बिरहानल की,
अतिहि अघानी वारि पूरित ह्वै उर-मही—१
नैननि ते बरसे प्रचुर सुख-अँसुआ ज्यों,
बैनन ते मधुर सनेह रसधार बही॥

'कौशलेंद्र' राठौर

'दुखिया के आँसू'

मत समझो मेरा क्या पा सकते हैं दुखिया के आँसू—
दो बूँदों में विश्व डुबो सकते हैं दुखिया के आँसू !
कहीं निकलकर बहते हैं ये कहीं प्रभाव दिखाते हैं—
नर क्या ? परमेश्वर का भी दृढ़ आसन शीघ्र हिलाते हैं।
कहीं सींचते और कहीं पर आग प्रचंड लगाते हैं—
कहीं सूखते कहीं अनेकों धारा बनकर आते हैं।
बड़ो बड़ों को जड़ से खो सकते हैं दुखिया के आँसू—
दो बूँदों में विश्व डुबो सकते हैं दुखिया के आँसू।१।
सीताजी के आँसू ने रावण का बंटाढार किया—
पांचाली के आँसू ने कौरव-कुल का संहार किया।
दुखिया जनता के आँसू से सुखियों का सुख ऊब रहा—
विधवाओं के आँसू में यह हिंदू-जीवन डूब रहा !
कभी 'रमेश' न निष्फल हो सकते हैं दुखिया के आँसू—
दो बूँदों मे विश्व डुबो सकते हैं दुखिया के आँसू।२।

शिवराम शर्मा विशारद "रमेश"

अद्वैतवाद

(गतांक से आगे)

चौथा अध्याय

माया

अब हम माया की मीमांसा करते हैं। श्रीगौड़पादाचार्यजी की कारिका यह है—

स्वप्नमाये यथा दृष्टे गन्धर्वनगरं यथा।
तथा विश्वमिदं दृष्टं वेदान्तेषु विचक्षणैः।
(२।३१)

अर्थात् जिस प्रकार स्वप्न, माया या गंधर्व नगर में देखी हुई चीज़ें मिथ्या होती हैं, इसी प्रकार बुद्धिमान् वेदांती लोग इस संसार को भी मिथ्या समझते हैं।

यहाँ माया का अर्थ है, वह पदार्थ जो हो न, परंतु प्रतीत हो। गंधर्व-नगर का भी यही अर्थ है, स्वामी शंकराचार्यजी भी माया को इसी अर्थ में प्रयुक्त करते हैं। यहाँ हम कुछ उदाहरण देते हैं:—

(१) एक एव परमेश्वरः कूटस्थनित्यो विज्ञानधातुरविद्यया मायया मायाविवदनेकधा विभाव्यते।
(शारीरिक-भाष्य १।३।१६)

एक कूटस्थ नित्य और विज्ञान धातु ईश्वर अविद्या द्वारा अनेक प्रतीत होता है। उसी प्रकार जैसे मायावी (जादूगर) माया द्वारा।

(२) यथा स्वयं प्रसारितया मायया मायावी त्रिष्वपि कालेषु न संस्पृश्यते, अवस्तुत्वात्, एवं परमात्माऽपि संसार-मायया न संस्पृश्यत इति (शा० भा० २।१।६)

जिस प्रकार अपनी माया फैलाकर भी जादूगर उससे प्रभावित नहीं होता, क्योंकि जादू कोई चीज़ नहीं है। इसी प्रकार परमात्मा में भी संसारी माया कुछ विकार नहीं करती।

(३) लोकेऽपि देवादिषु मायाव्यादिषु च स्वरूपानुपमर्देनैव विचित्रा हस्त्यश्वादिसृष्टयो दृश्यन्ते तथैकस्मिन्नपि ब्रह्मणि स्वरूपानुपमर्देनैवानेकाकारा सृष्टिर्भविष्यति।
(शा० भा० २।१।[illegible])

जैसे लोक में देव आदि या जादूगर आदि [illegible] स्वरूप को बिगाड़े, विचित्र हाथी, घोड़ा [illegible] उत्पन्न कर देते हैं। उसी प्रकार ईश्वर भी [illegible]

उत्पन्न किए बिना ही अनेक आकार की सृष्टि उत्पन्न कर देता है।

जादूगरों की जादूगरी प्रसिद्ध ही है। एक, दो, तीन, किया और कभी उनके हाथ में सेब आ गया, कभी आम, कभी अमरूद और कभी रुपया या घड़ी। फिर एक, दो, तीन किया और जो दृष्टि पड़ रहे थे, वह सब लुप्त हो गए। ऐसे जादूगर नगरों में तमाशा करते हुए बहुत पाए जाते हैं, और लोगों का विश्वास यह है कि बिना आम, या अमरूद, या रुपया, या घड़ी हुए भी वह इन चीज़ों को दिखा देते हैं कोई तो समझते हैं कि उनको कोई मंत्र आता है। उस मंत्र में ऐसी शक्ति होती है कि उसका जप करते ही अनेक वस्तुएँ दिखाई पड़ने लगती हैं। जादूगर लोग इस प्रकार के कुछ शब्द अपने होठों से दुहराते हुए भी पाए जाते हैं, जिससे सर्वसाधारण का विश्वास और भी अधिक हो जाता है। मंतर-जंतर का विश्वास लोगों में इतना बढ़ा हुआ है कि कम-से-कम इस देश के ग्रामों में लोग रोग अच्छा करने के लिये डाक्टर और वैद्य की उतनी पर-वाह नहीं करते, जितनी ओझाओं या स्यानों की की जाती है। पेट का दर्द हुआ और स्याना आया, ज्वर हुआ और स्याना आया, हैज़ा हुआ और वही स्याना आया, आँख दुखने लगी और वही स्याना बुलाया गया। इस प्रकार लोग समझते हैं कि स्याने के शब्दों में कोई ऐसी औषध है, जिससे रोग भाग जाते हैं। परंतु यदि आप उन शब्दों को जानना चाहें, जिनके द्वारा रोगों को अच्छा करने का दावा किया जाता है, तो पता चलेगा कि वह साधारण और ऊटपटाँग शब्द होते हैं, जिनसे और रोग से कोई संबंध नहीं। और बहुत-से ढोंग केवल रुपया ठगने के लिये किए जाते हैं। पहले लोगों का यह विश्वास था कि प्राचीन काल के आग्नेय-अस्त्र, वरुण-अस्त्र आदि मंत्र के बल से ही चलते थे अर्थात् केवल किसी शब्द-समूह का जप देने से ही अग्नि वर्षा, या जल वर्षा हो सकती थी। परंतु यह एक कल्पित बात थी, स्वामी दयानंद सरस्वती ने सत्यार्थ-प्रकाश के ग्यारहवें समुल्लास में इस विषय में लिखा है—

"जो मंत्र अर्थात् शब्द-मय होता है, उससे कोई द्रव्य उत्पन्न नहीं होता, और जो कोई कहे कि मंत्र से अग्नि उत्पन्न होता है, तो वह मंत्र के जप करनेवाले के हृदय और जिह्वा को भस्म कर देवे। मारने जाय शत्रु को और मर रहे आप। इसलिये मंत्र नाम है विचार का, जैसे "राज मंत्री" अर्थात् राज-कार्यों का विचार करने-वाला कहाता है। वैसा मंत्र अर्थात् विचार से सब सृष्टि के पदार्थों का प्रथम ज्ञान और पश्चात् क्रिया करने से अनेक प्रकार के पदार्थ और क्रिया-कौशल उत्पन्न होते हैं। जैसे कोई एक लोहे का बाण व गोला बनाकर उसमें ऐसे पदार्थ रक्खे कि जो अग्नि के लगाने से वायु में धुआँ फैलने और सूर्य की किरण व वायु के स्पर्श होने से अग्नि जल उठे, उसी का नाम आग्नेयास्त्र है। जब दूसरा इसका निवारण करना चाहे, तो उसी पर वारुणास्त्र छोड़ दे अर्थात् जैसे शत्रु ने शत्रु की सेना पर आग्नेयास्त्र छोड़कर नष्ट करना चाहा, वैसे ही अपनी सेना की रक्षार्थ सेनापति वारुणास्त्र से आग्नेयास्त्र का निवारण करे। वह ऐसे द्रव्यों के योग से होता है, जिसका धुआँ वायु के स्पर्श होते ही बद्दल होके झट वर्षने लग जावे, अग्नि को बुझा दे" (उन्नीसवाँ संस्करण पृ० १७७)।

इससे स्पष्ट है कि मंत्र-यंत्र के विषय में लोगों को निरंतर धोखा हो रहा है। परंतु अधिक आश्चर्य की बात यह है कि शंकर स्वामी ने, इसकी मीमांसा क्यों नहीं की। वह देवादिवदपि लोके (वेदान्त २।१।२५) पर भाष्य करते हुए लिखते हैं—

"यथा लोके देवाः पितर ऋषय इत्येवमादयो महाप्रभावाश्चेतनाः सन्तोऽनपेक्ष्यैव किंचिद्बाह्यं साधनमैश्वर्यविशेष-योगादभिध्यानमात्रेण स्वत एव बहूनि नानासंस्थानानि शरीराणि प्रासादादीनि रथादीनि च निर्मिमाणा उपलभ्यन्ते मन्त्रार्थवादेतिहासपुराणप्रामाण्यात्।"

अर्थात् "जैसे लोक में देव, पितर, ऋषि आदि बड़े प्रभावशाली होते हुए भी बिना किसी बाहरी साधन के विशेष ऐश्वर्य या ध्यान-मात्र से बहुत-सी संस्थाओं, शरीरों, महलों, रथ आदि का निर्माण करते हुए पाए जाते हैं—मंत्र, अर्थवाद, इतिहास, पुराण आदि के प्रामाण्य से।"

इससे दो बातें सिद्ध होती हैं। पहली यह कि श्रीशंकराचार्यजी तथा उनके समकालीन लोगों का दृढ़ विश्वास था कि केवल मंत्र या ध्यान से महल, रथ आदि बन सकते हैं। दूसरी यह कि उनके समय में

किसी पुरुष ने ऐसा करके नहीं दिखलाया, केवल किवदन्तियों, या कुछ पुस्तकों के आधार पर ही ऐसा माना जाता था। यदि उस समय भी देव, पितर या ऋषि ऐसे होते, तो शंकर स्वामी "इतिहासपुराणप्रामाण्यात" कभी न लिखते।

इसी प्रकार आजकल के समान शंकराचार्य के समय में भी जादूगर बहुत थे और लोग समझते थे कि वह विशेष शक्ति द्वारा ही चीज़ों को उत्पन्न कर देते हैं। वह जादू को केवल हाथ की चालाकी नहीं समझते थे। आजकल साइंस के युग में हमको हरएक बात की पूरी मीमांसा करने की आदत हो गई है। आजकल कोई विद्वान् ऐसा नहीं मानता कि छूमंतर या जादू से कोई चीज़ उत्पन्न हो सकती है। जिन्होंने जादूगरी सीखी है, या इस विषय में जाँच की है, वह भली प्रकार जानते हैं कि जादूगर छूमंतर से न तो किसी चीज़ को उत्पन्न करता है, न लुप्त कर सकता है। यह उसकी हाथ की चालाकी होती है कि सेब या नारंगी या रुपया या घड़ी आदि को ऐसा छिपाता है कि लोग जान न सकें। कभी-कभी यह चालाकी पकड़ी भी जाती है। अनेक प्रकार की ऐसी डिबियाएँ बनाई जाती हैं, जिनमें भिन्न-भिन्न वस्तुओं को छिपाया जा सके। यदि छूमंतर से कोई चीज़ उत्पन्न हो सकती, तो जादूगर चार-चार पैसे के लिये तमाशा दिखाता न फिरता; किंतु अपने लिये रुपए, फल तथा वस्त्र आदि उत्पन्न कर लेता।

कुछ लोग यह समझते हैं कि जादूगर तमाशा देखनेवालों की दृष्टि बाँध देता है, मेस्मेराइज़ (Mesmerise) और हिप्नोटाइज़ (Hypnotize) करनेवाले भी इसी प्रकार का दावा करते हैं। दृष्टि बाँधने का वास्तविक अर्थ क्या है? यह एक और बात है और हम यहाँ उससे अधिक संबंध नहीं रखते। हमारा आशय तो केवल इतना है कि माया या जादूगरी की उपमा देकर बाह्य पदार्थों का मिथ्यात्व जो सिद्ध किया जाता है, वह कहाँ तक ठीक है। यदि जादूगर हाथ की चालाकी से चीज़ों को दर्शकों की दृष्टि से कभी छिपा सकता और कभी उनके सामने ला सकता है, तो उससे यह कदापि सिद्ध नहीं होता कि वह दिखाई देनेवाली वस्तुएँ मिथ्या हैं। दृष्टि-भ्रम तो लोगों को साधारणतया बिना जादूगर के भी हुआ करते हैं। ऐसे भ्रमों का बहुत कुछ वर्णन हम पिछले अध्याय में कर चुके हैं। परंतु जिस प्रकार उन भ्रमों से बाह्य पदार्थों का मिथ्यात्व सिद्ध नहीं होता, इसी प्रकार जादू को समझना चाहिए। जिस चीज़ का तीनों कालों में और सर्वत्र अभाव है, उसकी भ्रांति भी नहीं हो सकती और न उसको हिप्नोटाइज़ करके दिखाया जा सकता है।

इसके अतिरिक्त मेरा विचार है कि गौड़पादाचार्य से पूर्व 'माया' शब्द इस अर्थ में प्रयुक्त नहीं होता था। और न इस को 'माया-वाद' की उत्पत्ति से पूर्व वह गौरव ही प्राप्त था।

ऋग्वेद में यह शब्द लगभग ७९ मन्त्रों में आता है।

माया (प्रथमांत, द्वितीयांत बहुवचन) २४ बार*,

* यह सारिणी प्रो० प्रभुदत्त शास्त्री की पुस्तक (The Doctrine of maya) से ली गई है।

माया — ऋग्वेद

मंडल	सूक्त	मन्त्र
१	३२	४
,,	११७	३
२	११	१०
,,	२७	१६
३	२०	३
,,	५३	८
५	२	९
,,	३१	७
,,	४०	६
,,		८
६	१८	६
,,	२०	४
,,	२२	९
,,	४४	२२
,,	४५	९
,	५८	१
७	१	१०
,,	९८	५
,,	९९	४
८	४१	८
१०	५३	९
,,	७३	५
,,	९९	२
,,	१११	६

मायया (तृतीयांत एकवचन) १६ बार, मायाभिः (तृ० बहु०) १२ बार, माया और मायाम् तीन-तीन बार।

मायया—१६ बार

मंडल	सूक्त	मंत्र
१	८०	७
,,	१४४	१
,,	१६०	३
२	१७	५
३	२७	७
४	३०	१२
,,	,,	२१
५	६३	३
,,	,,	७
६	२२	६
७	१०४	२४
८	२३	१५
,,	४१	३
९	७३	५
,,	,,	९
,,	८३	३
१०	७१	५
,,	८५	१८
,,	१७७	१

मायाभिः—१२ बार

मंडल	सूक्त	मंत्र
१	११	७
	३३	१०
	५१	५
	१५१	९
३	३४	६
,,	६०	१
५	३०	६
,,	४४	२
,,	७८	६
६	४७	१८
,,	६३	५
८	१४	१४
१०	१४७	२

अब थोड़ा-सा 'माया' शब्द के अर्थों पर विचार कीजिए। निघंटु में तो वैदिक शब्दों के पर्याय का अति प्राचीन कोष है, 'माया' को 'प्रज्ञा' के ११ पर्यायों में से एक माना है। यास्काचार्य ने निघंटु का भाष्य करते हुए निरुक्त में भी 'माया' के इसी अर्थ के उदाहरण दिए हैं; जैसे ऋग्वेद में एक मंत्र है—

शुक्रं ते अन्यद्यजतं ते अन्यद्विषुरूपे अहनी द्यौरिवासि ;
विश्वा हि माया अवसि स्वधावो भद्रा ते पूषन्निह रातिरस्तु।

(ऋ० ६। ५८। १)

माया—३ बार

मंडल	सूक्त	मंत्र
३	६१	७
५	६३	४
१०	५४	२

मायाम्—३ बार

मंडल	सूक्त	मंत्र
५	८५	५
,,	,,	६
१०	८८	६

"मायावी" शब्द के रूपों का प्रयोग ऋग्वेद में इस प्रकार है—

मायिन—१५ बार

मंडल	सूक्त	मंत्र
१	३९	[illegible]
,,	५१	५
,,	५४	[illegible]
,,	६४	७
,,	१५९	४
२	११	१०
३	२८	७
,,	,,	९
,,	५६	१
५	४४	११
६	६१	२
७	८२	३
८	३	१६
,,	२३	१४
१०	१३८	३

यहाँ 'मायाः' द्वितीया का बहुवचन है और 'अवसि' क्रिया का कर्म है। अर्थात् "विश्वा हि माया अवसि" तू सब मायाओं की रक्षा करता है।

इस पर यास्क लिखते हैं—

शुक्रं ते अन्यल्लोहितं ते अन्यद्यजतं ते अन्यद्यज्ञियं ते अन्यद्विषमरूपे ते अहनी कर्म द्यौरिव चासि। सर्वाणि प्रज्ञानान्यव स्यन्नवन्भाजनवती ते पूषन्निह दातिरस्तु। तस्यैषा परा भवति। (निरुक्त १२।१७)

अर्थात् "सब प्रज्ञाओं या ज्ञानों की रक्षा करता है।" यदि 'माया' का अर्थ यहाँ "अविद्या" होता, जैसा कि गौड़पादाचार्य का मत है, तो 'पूषा' को कभी 'अविद्या' का रक्षक न बताया जाता।

एक और मंत्र है—

मूर्धा भुवो भवति नक्तमग्निस्ततः सूर्यो जायते प्रातरुद्यन्;
मायाम् तु यज्ञियानामेतामपो यत्तूर्णिश्चरति प्रजानन्।
(ऋ० १०।८८।६)

इस पर निरुक्तकार लिखते हैं—

मूर्धा मूर्तमस्मिन्धीयते मूर्धा यः सर्वेषां भूतानां भवति नक्तमग्निस्ततः सूर्यो जायते प्रातरुद्यन् स एव। प्रज्ञां त्वेतां मन्यन्ते यज्ञियानां देवानां यज्ञसम्पादिनाम्। अपो यत्कर्म चरति प्रजानन् सर्वाणि स्थानान्यनुसञ्चरति त्वरमाणः। तस्योत्तरा भूयसे निर्वचनाय। (निरुक्त ७।२७)

यहाँ बतलाया गया है कि अग्नि अपने (अप) कर्त्तव्यों को (प्रजानन्) जानता हुआ (तूर्णिश्चरति) शीघ्र ही घूम जाता है। रात में पृथ्वी का मूर्धा (सिर) होता है और प्रातःकाल सूर्य होकर चमकता है। यह सब (यज्ञियानां देवानां यज्ञसम्पादिनाम्) यज्ञ को संपादन करनेवाले देवों की माया अर्थात् 'प्रज्ञा' है। यहाँ 'माया' शब्द अविद्या से सर्वथा ही विरुद्ध अर्थ में लिया गया है।

तीसरा मंत्र लीजिए—

इमाम् नु कवितमस्य मायां महीं देवस्य नकिरा दधर्ष।
एकं यदुद्ना न पृणन्त्येनीरासिञ्चन्तीरवनयः समुद्रम्।
(ऋ० ५।८५।६)

इस पर निरुक्त में लिखा है कि—

"तं प्रज्ञया स्तौति" (निरुक्त ६।१३)

इस मंत्र का देवता 'वरुण' है। वरुण के विषय में कहा गया है कि वरुण की इस बड़ी 'माया' (अर्थात् प्रज्ञा) को कोई नहीं दबा सकता है।

एक और मंत्र देते हैं—

उत त्वं सख्ये स्थिरपीतमाहुर्नैनं हिन्वन्त्यपि वाजिनेषु।
अधेन्वा चरति माययैष वाचं शुश्रुवाँ अफलामपुष्पाम्।
(ऋ० १०।७१।५)

इस मंत्र का देवता "ज्ञान" है, इस पर निरुक्त की टिप्पणी है—

मण्डल	सूक्त	मंत्र
	मायिनम्—१० बार	
१	११	७
,,	५३	७
,,	५६	३
,,	८०	७
२	११	५
५	३०	६
,,	५८	२
५	४८	१४
८	७६	१
१०	१४७	२
	माया—३ बार	
७	२८	४
१०	९९	१०
,,	१४७	५
	मायिनाम्—३ बार	
१	३२	४
३	२०	३
,,	३४	३
	मायिनि—२ बार	
५	४८	१
१०	५	३
	मायिना—१ बार	
६	६३	५
	मायाविना—१ बार	
१०	२४	४
	मायावान्—१ बार	
४	१६	९
	मायाविनम्—१ बार	
२	११	९
	मायाविन—१ बार	
१०	८३	३

अप्येकां वाचं सख्ये स्थिरपीतमाहू रममाणं विपीतार्थं देवसख्ये रमणीये स्थान इति वा विज्ञातार्थं यं नाप्नुवन्ति वाग्ज्ञेयेषु बलवत्स्वपि। अधेन्वा ह्येष चरति **मायया वाक् प्रतिरूपया** नास्मै कामान् दुग्धे वाग् दोह्यान्देवमनुष्यस्थानेषु यो वाचं श्रुतवान् भवत्यफलामपुष्पामित्यफलास्मा अपुष्पा वाग् भवतीति वा किञ्चित्पुष्पफलेति वा। अर्थं वाचः पुष्पफलमाह। याज्ञदैवते पुष्पफले देवताध्यात्मे वा। (नि० १।२०)

अर्थात जो पुरुष बिना अर्थ समझे वाणी को पढ़ता या सुनता है, उसको वाणी से कुछ फल प्राप्त नहीं होता।

सायणाचार्य ने भी 'माया' का अर्थ अधिकतर 'प्रज्ञा', 'ज्ञान-विशेष', 'कर्म-विशेष' आदि ही किया है।

गंगाप्रसाद उपाध्याय

पिंजर-बद्ध कीर

(१)

करके बद्ध मुझे पिंजरे में बातें व्यर्थ बनाते हो,
आई है वसंत बागों में कहकर मुझे जलाते हो।
चारे के लालच में जिस दिन मैंने गला फँसाया था,
तुमको सज्जन समझा था मैं, धोखा मैंने खाया था।

(२)

तुमने जाना विजय हुई मैंने समझा तुमसे हारा;
किंतु मानवी हृदय तुम्हारा मैंने उस दिन धिक्कारा।
कोई भी था प्राणी था मैं तुम भी हो प्राणी जैसे;
किंतु तुम्हारे कर्म तभी से देख रहा हूँ मैं कैसे!

(३)

अपने मतलब के ऊपर तुम नीच-ऊँच सब भूले हो;
जो कुछ वैभव तुम्हें मिला है उस पर फिरते फूले हो।
समझे हो तुम कभी जगत् में ऐसा समय न आवेगा;
करके जो तुमको नत मस्तक सारा रंग बिगाड़ेगा।

(४)

मेरा बाना सदा ही ऊँचा बना रहेगा सच मानो;
तुम अपने को एक जंतु-सा जिसमें फिरता-सा जानो।
फिर ला थोड़ी देर देख लो अंगों की शोभा सारी;
जीवन क्षणिक पाओगे अपना प्रभुता सारी मक्कारी।

(५)

बाग उजाड़ोगे तुम ऐसा मन में अपने ठाना है;
किंतु न तुमने अपने बल को अब तक कुछ पहचाना है।
केवल एक हवा का लहरा तुम्हें उड़ा ले जावेगा;
काँटा एक किसी पौधे का गड़कर प्राण निकालेगा।

(६)

अथवा कोई दग्ध आह सारे तन को झुलसावेगी;
या आँसू की धारा कोई कहीं बहा ले जावेगी।
मुझे न छेड़ो दुखी हृदय हूँ हे लो न अपना मुँह मोड़ो;
अपने को पहचानो मुझको तानों का देना छोड़ो।

देवीप्रसाद गुप्त
'कुसुमाकर'

कायाकल्प

(अनुशीलन और समालोचना)

१ कहानी का खाका

जैसे सेवा-सदन में पतित जीवन में रहते हुए भी चरित्र-रक्षा का आदर्श दिखाया गया है, जैसे प्रेमाश्रम में धनवान् सभ्यों की स्वार्थ-परता का रूपवैचित्र्य दरसाया गया है, जैसे रंगभूमि में समाज की भिन्न-भिन्न श्रेणियों के खेल दिखाकर भाँति-भाँति के अभिनेताओं का चित्र खींचा गया है, वैसे ही इस अपूर्व उपन्यास में प्रेमचंद की लेखनी के जादू से भिन्न-भिन्न परिस्थितियों में पात्रों के चरित्र में विचित्र काया-पलट दिखाई गई है। केवल लक्षणामूलक कायापलट के उदाहरणों से तो पुस्तक भरी पड़ी है; परंतु इसमें वास्तविक कायाकल्प का भी मनोरंजक चित्रण हुआ है, जिससे इस उपन्यास के नाम की सार्थकता पूर्णतया सिद्ध हो जाती है।

बनारस के ज़िले में जगदीशपुर की रियासत है। उसके मालिक राजा महेंद्रसिंह की अकाल मृत्यु के पीछे उनकी विधवा रानी देवप्रिया उनकी उत्तराधिकारिणी की हैसियत से प्रबंध करती है। यह वृद्धा हो चुकी है; पर मन जवान ही बना हुआ है। भोग-विलास से जी नहीं भरा है। एक बार हर्षपुर के राजकुमार काशी आते हैं। देवप्रिया उन्हें निमंत्रित करती है। उनसे उसे ज्ञात होता है कि कुँअर उसके मृतपति हैं, जो पुनर्जन्म लेकर उसका

उद्धार करने आए हैं। देवप्रिया राज को त्यागकर कुँअर साहब के साथ चली जाती है। राजा विशालसिंह राजा हो जाते हैं। इनके देवर विशालसिंह ने पहले दो शादियाँ की थीं। उनमें से एक से एक बेटी थी। वे दोनों स्त्रियाँ मर गईं, तब उन्होंने तीन विवाह और किए। एक बार प्रयाग के मेले में इनकी वह एकमात्र बेटी भी खो गई, पता न लगा। कोई और सन्तान न हुई। तीनों सौतें आपस में सदा लड़ा करती थीं। विशालसिंह का जीवन दूभर हो रहा था।

रानी देवप्रिया के एक दीवान हैं हरिशंकरसिंह। उनकी लड़की का नाम मनोरमा है, जो पुस्तक की नायिका है। मनोरमा को पढ़ाने के लिये एक सुशिक्षित सच्चरित्र युवक रखा गया है, जिसका नाम चक्रधर है। चक्रधर बड़े ऊँचे आदर्शों का युवक है। मनोरमा को अपनी ओर आकर्षित होते देखकर वह आगरे के एक यशोदानन्दन की पालिता कन्या से विवाह कर लेता है। मनोरमा बाद को राजा विशालसिंह से विवाह करती है, पर रानी बनकर चक्रधर के परोपकार-कार्य में धन की सहायता देना ही उसका ध्येय है।

राजा विशालसिंह राज-पद पाते ही प्रजा पर अत्याचार करने लगते हैं। चक्रधर प्रजा-पक्ष लेने के कारण जेल भेज दिया जाता है। मनोरमा उसकी राजा साहब से सिफ़ारिश करती है, पर चक्रधर को दो साल की सज़ा हो जाती है।

जेल से छूटने के बाद चक्रधर अहल्या को लाते हैं, पर जब उनके माता-पिता बधू से छूत मानने लगते हैं, तो वह उसे लेकर प्रयाग चले जाते हैं। वहाँ उनके एक पुत्र होता है जिसका नाम शंखधर है। मगर आख़िर, मनोरमा रानी की बीमारी का तार पाकर चक्रधर सपरिवार मनोरमा को देखने आते हैं। राजा विशाल अहल्या को पहचान जाते हैं। वह उनकी खोई हुई लड़की है। यह परिवार यहीं रहने लगता है।

मगर कुछ दिनों के बाद चक्रधर के मन पर राज्य-समृद्धि का बुरा प्रभाव पड़ने लगा और वह उसका अनुभव करके एक दिन घर से निकलकर लापता हो गए और कुटुंब को शोक-सागर में छोड़ गए।

राजकुमार शंखधर धीरे धीरे बड़ा हुआ। जब तेरह बरस का हुआ, अपने पिता की खोज में वह भी घर से निकल गया और लापता हो गया।

बूढ़े राजा विशालसिंह उसके चले जाने से निराधार हो गए। पागल की तरह आचरण करने लगे।

पाँच बरस की खोज में शंखधर ने अपने पिता को दक्षिण में कहीं पाया। उनके पास कुछ दिन रहा। माँ के पास पत्र लिखा। माँ ने आने के बदले कड़ी बीमारी का बहाना करके उसे ही बुलाया।

राह में शंखधर ने एकाएकी हर्षपुर स्टेशन का नाम सुना। पूर्व स्मृति जग गई। उतर पड़ा। वहाँ रानी कमलावती थी, जिसका पहले देवप्रिया नाम था और जिसे वह महेंद्र के रूप में हिमालय ले गया था और योग-विज्ञान-बल से जिसका कायाकल्प कर डाला था। उससे मिला। शंखधर ही पहले महेंद्र था। कमलावती पहचानकर उसके साथ हो ली। उसको साथ लेकर वह आगरे गया, जहाँ उसकी माता अहल्या चली गई थी। वहाँ से अपनी माता और कमला रानी-समेत बनारस को आया।

इधर राजा विशालसिंह मनोरमा से बिलकुल उदासीन हो गए थे और सत्तर बरस की उम्र में सातवाँ ब्याह करने पर उतारू थे। उनकी बरात रवाना हो गई। राह में एकाएकी सब लोग रुक गए। राजकुमार शंखधर बहू, रानी और अहल्या के साथ मोटर पर आ रहे थे। राजा विशालसिंह के भाग्य बरात के साथ लौटे।

महेंद्र और देवप्रिया शंखधर और कमला के रूप में भी पहचान लिए गए। विशालसिंह को बड़ा भय हुआ कि शंखधर फिर उसी तरह मर जायगा। यह दोनों प्राणी अनेक जन्मों से साथ होते आए, परंतु पति-पत्नी का संबंध ज्यों ही होने का अवसर आता था; पति मर जाता था। कायाकल्प करने और पूर्व-जन्म की याद रखने तक की सिद्धि योगी शंखधर को हो गई थी, पर मृत्यु पर अधिकार न कर सके।

एक दिन शंखधर का इसी तरह एकाएकी अंत हो गया। चक्रधर पहुँचे सही, पर उसकी मृत्यु के बाद। यदि पाठक इस ख़ाके से प्रेमचंद की आदूबयानी का अंदाज़ा करना चाहेंगे, तो उलटी बात होगी। हमने तो कहानी का नंगा ख़ाका इसलिये यहाँ दिया है कि पाठकों को इस रत्न की क़ीमत लगाने में और आगे इस लेख में, जो कुछ लिखा गया है, उसके समझने में कुछ सुभीता हो।

२. चरित्र-चित्रण

चरित्र-चित्रण के इस उस्ताद ने आदि से अंत तक अपनी कहानी के हर पात्र में कायापलट दिखाया है। अपने और उपन्यासों में भी प्रेमचंदजी ने चरित्र में कायापलट दिखाया है सही, परंतु वहाँ स्वाभाविक जीवन के और पहलुओं पर विशेष रूप से ध्यान था। कायाकल्प में इसी एक पहलू पर सबसे ज़्यादा ज़ोर है। जीवन की परिस्थितियाँ सतत परिवर्त्तनशील हैं। किसी के स्वभाव को स्थायी नहीं रहने देतीं। मन की वृत्तियों पर परिस्थिति का ऐसा गहरा प्रभाव पड़ता है कि कैसा ही दृढ़ हो, कैसा ही हठी हो, स्वाभाविक चंचलता उस पर विजय पा ही जाती है।

ख़्वाजा महमूद और यशोदानंदन

हिंदू-मुसलिम एकता की यह दोनों मित्र मानो मूर्ति हैं। परंतु जब परिस्थिति बदल जाती है, जब जाति-विद्वेष की आग धधकने लगती है, तब वही ख़्वाजा महमूद एक तरफ़ होते हैं और यशोदानंदन दूसरी तरफ़। हरएक अपने सहधर्मियों का पूरा पक्ष करता है और अपनी जान देने को तैयार होता है। हाँ एक बात अवश्य है कि यह भाव-परिवर्त्तन तभी तक रहता है, जब तक एक दूसरे की निगाहें नहीं मिलतीं। सामने आते ही दोनों पुरानी मुरव्वत से दब जाते हैं। यहाँ तक कि यशोदानंदन जब इसी द्वेषाग्नि के शिकार हो जाते हैं; तो ख़्वाजा महमूद को उनके वियोग का सबसे अधिक दुःख होता है।

अहल्या

अहल्या वही लड़की है, जो प्रयाग के मेले में अपने माता-पिता से बिछुड़कर आगरे के अनाथालय में और फिर यशोदानंदन के घर पली। यह अनाथा और दरिद्रा थी, परंतु उदाराशय, सच्चरित्रा, सेवा-भाव में ओत-प्रोत भीगी हुई। आगरे में विद्रोह के समय चक्रधर की दिलेरी और आत्मोत्सर्ग पर जी-जान से निछावर हो जाती है। वह जब आगरा जेल में आते हैं, तो उनके दर्शनों को जाती है। जब चक्रधर से विवाह हो जाता है, तो उनकी ख़ातिर भाँति-भाँति के अपमान सहती है, और जब उसके अपमान को न सहकर चक्रधर प्रयाग जा बसते हैं, तो वह सहधर्मिणी के पूरे कर्त्तव्य पालन करती है। परंतु उसी अहल्या का अपने पिता के घर राजकुमारी की हैसियत से रहने में कितना कायापलट हो जाता है! उसे विलासिता घेर लेती है। चक्रधर राजा होगा, इस मोहपाश में फँसकर पति-वियोग-रूपी कठिन दुःख को स्वीकार कर लेती है। यश के मोह में पड़कर पति का पता पाकर भी उसके पास नहीं चली जाती, बल्कि बीमारी का झूठ बहाना करके पुत्र को बुलाना चाहती है। अनाथा दरिद्रा अहल्या और राजकुमारी सुखदा के चरित्र में कितना बड़ा अंतर पड़ जाता है!

वज्रधरसिंह

मुंशी वज्रधर लड़के की शादी अच्छे घर करना चाहते हैं, पर उनकी अपनी हैसियत कुछ भी नहीं है। इसीलिये जब मुंशी यशोदानंदन चक्रधर को देखने आते हैं, तो उनकी हद से ज़्यादा ख़ातिर-तवाज़ो होती है। चक्रधर राज़ी नहीं होते। मुंशीजी उन्हें राज़ी करने में जी-जान से तुले हुए हैं। परंतु उनका समय जब पलटा खाता है, जब अच्छे दिन आते हैं, तब उन्हीं यशोदानंदन के यहाँ उन्हें बिना अच्छा दहेज़ पाए शादी करना मंज़ूर नहीं है। अब उन्हें यशोदानंदन की परवाह नहीं है। वह कहते हैं—

"लेकिन अगर उन्हें कुछ पसोपेश हो, तो मैं उन्हें मजबूर नहीं करना चाहता। उन्हें इख़्तियार है, जहाँ चाहें करें। यहाँ सैकड़ों आदमी मुँह खोले हुए हैं। उस वक़्त जो बात थी, अब वह नहीं है। मैं उन्हें समझता क्या हूँ। तुम देखोगे कि उनके जैसे आदमी इसी द्वार पर नाक रगड़ेंगे। आदमी को बिगड़ते देर नहीं लगती, बनते देर लगती है।"

इस तरह का कायापलट मुंशी वज्रधर की जीवनी में कई बार हुआ है। पर मुंशी वज्रधर आदि से अंत तक नौकरशाही और उसकी ख़ुशामद करनेवालों के ख़ासे रूपक हैं। वर्तमान समृद्धि के घमंड में अपनी पूर्व-दशा को भूल जाते हैं और जोश में उलटा कहावत कह जाते हैं।

हरिसेवकसिंह

हरिसेवकसिंह बड़े समझदार, परंतु कृपण दीवान हैं। इनकी रखेली ही इनकी बुद्धि है। बुढ़ापे में जब रूठकर तीर्थ के बहाने लौंगी चली जाती है, तो हरिसेवकसिंह के दिल, दिमाग़ और स्वभाव में गहरा फेर-फार पड़ जाता है, वह अंत में उसके वियोग में प्राण दे देते हैं।

चक्रधरसिंह

चक्रधरसिंह सेवा-भाव की मूर्ति हैं। छात्रावस्था से ही समाज-सेवा इनका धर्म है। मन इनका पवित्र और निर्मल है। आरंभ में जब मनोरमा को पढ़ाते हैं, तब इनके मन के गंभीर गह्वर में उसके प्रति प्रेम का उदय होता है। परंतु मनोरमा को वह दरिद्र बनाना अनुचित जानते हैं और उसे दबाकर ऐसा गुप्त रखते हैं कि वह उनके बाहरी चित्त पर तभी प्रकट होता है, जब वह जेल में सुनते हैं कि मनोरमा ने राजा विशालसिंह से विवाह कर लिया। अहल्या से अपने विवाह का निश्चय तभी करते हैं। इनके इस दुर्भेद्य रहस्य को न जानने के कारण ही मनोरमा प्रेम-वश इनकी ही ख़ातिर बूढ़े राजा से ब्याह कर लेती है। तिलकोत्सव के अवसर पर, जेल में, आगरे के उपद्रव में, इनकी वीरता और धैर्य का बार-बार परिचय मिलता है। चक्रधर विलासिता और बड़प्पन से इसीलिये बचपन से ही भागते आए हैं कि उनके सेवा-भाव से इनका विरोध है। चक्रधर-जैसे दृढ़ चरित्र के मनुष्य भी जब राजा विशालसिंह के जामाता और मेहमान होकर विलासिता में फँस जाते हैं, तब उनका भी कुछ काल के लिये कायापलट हो जाता है। अंत में अपने विलासिता के जीवन से उन्हें ऐसी घृणा हो जाती है कि वह सदा के लिये घर छोड़ देते हैं और फिर समाज सेवावाली अपनी पुरानी वृत्ति में लग जाते हैं। चक्रधर के चरित्र में इस अल्पकालिक कायापलट से पाठकों की दृष्टि में कोई विशेष दूषण नहीं आता, बल्कि उनका बिगड़ते-बिगड़ते भी सँभल जाना यह सिद्ध करता है कि दृढ़ चरित्रवाला परिस्थिति के चक्र में पड़कर कभी फिसल जाता है। तो भी उसकी दृढ़ता उसे सँभाल लेती है। चक्रधर का चरित्र उसे इस उपन्यास के नायक का पद सहज में ही दे देता है।

मनोरमा

मनोरमा का चरित्र भी बहुत ऊँचा है। इसके मन में शिष्या की ही दशा में गुरु चक्रधर के प्रति प्रेम अंकुरित होता है और यद्यपि चरित्र की दृढ़ता और गंभीरता में यह और सभी पात्रों से बढ़ी-चढ़ी है। तथापि चक्रधर की शिष्या ही ठहरी, उनकी थाह नहीं पा सकती, परंतु अपना प्रेम किसी न-किसी तरह प्रकट किए बिना नहीं रह सकती। पाठक अवश्य जान जाते हैं कि इसे चक्रधर से प्रेम है। चक्रधर को भी मालूम हो जाता है, पर चक्रधर के गुप्त प्रेम का रहस्य मनोरमा पर बहुत पीछे बड़ी कठिनाई से खुलता है। अपने सच्चे प्रियतम के लिये इस लड़की का जीवनोत्सर्ग भी अनुपम है। वह जानती है कि चक्रधर अहल्या से विवाह करेंगे। परंतु उन पर वह इतना निछावर हो जाती है कि उनके प्रिय कार्य समाज-सेवा में धन की प्रचुर सहायता अपने शरीर को बेचकर भी करने में उसे तनिक संकोच नहीं होता। वह चक्रधर से कह चुकी है कि मैं रानी होती, तो सेवा-कार्य में खुले हाथों धन से आपकी सहायता करती। वह अपने इस स्वप्न को अपने जीवन में अपने आत्मोत्सर्ग के बल से सच्चा कर पाती है। बूढ़े राजा विशालसिंह से उसे प्रेम नहीं है; परंतु वह इस बात को छिपाती नहीं, उनसे साफ़ कह देती है। पीछे जब-जब चक्रधरसिंह उसकी सहायता स्वीकार नहीं करते, तब-तब उसे बड़ा दुःख होता है। उसे चक्रधर से पवित्र प्रेम बना रहता है। अहल्या से उसे द्वेष नहीं होता। वह शंखधर को पाती है तो उसे अपना लेती है। उसका कारण केवल यही है कि वह चक्रधर का पुत्र है, मगर जब शंखधर के चले जाने से विशालसिंह के चरित्र में एकदम कायापलट हो जाता है। वह उनसे भाँति-भाँति के अपमान पाती है तथापि जब राजा विशालसिंह की जान जोखिम में पड़ती है और वह भी भाई गुरुसेवकसिंह के करतब से, तो उसके हृदय के अंतर-तट में बहुत काल से निहित दाम्पत्य-प्रेम उमड़ आता है और यद्यपि वह एक मुद्दत से तिरस्कृत और पतित्यक्ता है, तो भी राजा की रक्षा के लिये जान हथेली पर लेकर तैयार हो जाती है। वह अपना सच्चा प्रेम चक्रधर को दे चुकी है सही पर पतिव्रता हिंदू-नारी का पति के चरणों में जो अनुराग स्वाभाविक होना चाहिए, वह उसके अंतस्तल में अवश्य बराबर रहा है और अवसर पाकर प्रकट हो गया है। मनोरमा पति के मरने पर भी अपने दृढ़ चरित्र को स्थिर रखे हुए है। उसके जीवन के क्या-क्या कायापलट नहीं हुए, परंतु उसके चरित्र में कायापलट नहीं हो पाया। लौंगी का चरित्र भी इसी तरह जीवन-भर एकरस बना रहा। उसके जीवन में कई बार कई तरह के फेरफार हुए; परंतु चरित्र में परिवर्तन नहीं हुआ। मरतीबेर पिता हरिसेवकसिंह इसी अभिप्राय से अंतिम उप-

देश मनोरमा को देते हैं कि "लौंगी को देखो", मनोरमा भी इसी वाक्य को अपना आदर्श बना लेती है। मनोरमा का उसे ऐसा सम्मान देना उचित ही है, क्योंकि लौंगी ने उसे अपना दूध पिलाकर पाला है, उसके चरित्र को बचपन से ही एक अच्छे साँचे में ढाला है। पाठकों को मनोरमा की जन्मदात्री माता का हाल नहीं मालूम, परंतु उसके चरित्र की छाया उस पर संस्कार-रूप से अवश्य पड़ी होगी। लौंगी से फिर भी मनोरमा के चरित्र में एक विचित्र सादृश्य है। विधवा लौंगी हरिसेवकसिंह को पति से अधिक चाहती है और मनोरमा चक्रधर को पूज्य भी मानती है और अपना प्रेम भी समर्पण कर देती है। राजा विशालसिंह को वह प्रेम बहुत काल तक नसीब नहीं हुआ। परंतु पति के प्रति कर्तव्य में मनोरमा रत्ती-भर त्रुटि नहीं करती और यद्यपि अपने पूर्व संकल्प के अनुसार वह चक्रधर को ही चाहती थी तथापि चक्रधर के निरंतर पवित्र व्यवहार से उसका प्रेम गुरु के प्रति श्रद्धा और भक्ति में ही धीरे-धीरे समा जाता है और उसके प्रकृत अधिकारी पति के चरणों में वह दांपत्य अनुराग के रूप में फिर से प्रकट होता है। जब चक्रधर जेल से लौटते हैं, तब अवसर पाकर मनोरमा सदा की नाई अपने सच्चे भाव, अपने मन की सच्ची दशा और अपने विवाह का सच्चा उद्देश्य खोलकर कह देती है। उस समय भी उसके प्रति प्रेम रखनेवाले और इसका एक तरह से इक़रार करते हुए भी चक्रधर शिष्या मनोरमा से कहते हैं कि राजा साहब के प्रति एक पल के लिये भी तुम्हारे मन में अश्रद्धा का भाव न आने पाए। अगर ऐसा हुआ, तो तुम्हारा यह त्याग निष्फल हो जायगा। सचमुच चक्रधर और मनोरमा दोनों में अपूर्व चरित्र-बल था। दोनों संयत थे। दोनों के संबंध का कुछ अंदाज़ा नीचे लिखे अवतरण से होगा।

"मनोरमा— आप मुझे "आप" क्यों कह रहे हैं। क्या अब मैं कुछ और हो गई हूँ? मैं अब भी अपने को आपकी दासी समझती हूँ। मेरा जीवन आपके किसी काम आए, मेरे लिये इससे बड़ी सौभाग्य की कोई बात नहीं है। मुझसे उसी तरह बोलिए, जैसे तब बोलते थे। मैं आपके कष्टों को याद कर-करके बराबर रोया करती थी। सोचती थी, न-जाने वह कौन-सा दिन होगा कि आपके दर्शन पाऊँगी। अब आप फिर मुझे पढ़ाने आया कीजिए। राजा साहब भी अब आपसे कुछ पढ़ना चाहते हैं। बोलिए, स्वीकार करते हैं?"

मनोरमा के इन सरल भावों ने चक्रधर की आँखें खोल दीं। उन्होंने उसे मायाविनी, विलासिनी, और छलिनी समझ रखा था। अब ज्ञात हुआ कि यह वही सरल बालिका है जो निःसंकोच भाव से उनके सामने अपना हृदय खोलकर रख दिया करती थी।

जब मनोरमा समाज-सेवा में साथ देने का आग्रह करती है, तब चक्रधर कहते हैं—

"नहीं मनोरमा तुम्हारा कोमल शरीर उन कठिनाइयों को न सह सकेगा। तुम्हारे हाथ में ईश्वर ने एक रियासत की बागडोर दे दी है। तुम्हारे लिये इतना ही काफ़ी है कि अपनी प्रजा को सुखी और संतुष्ट रखने की चेष्टा करो। यह छोटा काम नहीं है।"

"मनोरमा— मैं अकेली कुछ न कर सकूँगी। आपके इशारे पर सब कुछ कर सकती हूँ। कम-से-कम आप इतना तो कर सकते हैं कि अपने कामों में मुझसे धन की सहायता लेते रहें। ज्यादा तो नहीं, पाँच हज़ार रुपए मासिक भेंटकर सकती हूँ। आप जैसे चाहें, काम में लावें। मेरे संतोष के लिये इतना काफ़ी है कि वे आपके हाथों खर्च हों, मैं कीर्ति की भूखी नहीं। मैं केवल आपकी सेवा करना चाहती हूँ। इसमें मुझे वंचित न कीजिए। आप में न-जाने कौन-सी शक्ति है, जिसने मुझे वशीभूत कर लिया है। मैं न कुछ सोच सकती, न कर सकती, केवल आपकी अनुगामिनी बन सकती हूँ।"

"यह कहते-कहते मनोरमा की आँखें सजल हो गईं। उसने मुँह फेरकर आँसू पोंछ डाले और बोली—"आप मुझे दिल में जो चाहें समझें, मैं आपसे इस घड़ी सब कुछ कह दूँगी। मैं हृदय में आप ही की उपासना करती हूँ। मेरा मन क्या चाहता है, नहीं जानती। अगर कुछ-कुछ जानती भी हूँ, तो कह नहीं सकती। हाँ, इतना कह सकती हूँ कि जब मैंने देखा कि आपकी परोपकार-कामनाएँ धन के बिना निष्फल हुई जाती हैं, यही आपके मार्ग में सबसे बड़ी बाधा है तो मैंने उसे हटाने को ही यह बेड़ी अपने पैरों में डाली। मैं जो कुछ कह रही हूँ, इसका एक-एक अक्षर सत्य है। मैं यह नहीं कहती कि मुझे धन से घृणा है। नहीं, मैं दरिद्रता को संसार की विपत्तियों में सबसे दुःखदायी समझती हूँ।

लेकिन मेरी सुख-लालसा किसी भले घर में शांत हो सकती थी। उसके लिये मुझे जगदीशपुर की रानी बनने की ज़रूरत न थी। मैंने केवल आपकी इच्छा के सामने सिर झुकाया है, मेरे जीवन को सफल करना अब आपके हाथ है।

"चक्रधर यह बातें सुनकर मर्माहत से हो गए। उफ़! यहाँ तक नौबत पहुँच गई! मैंने इसका सर्वनाश कर दिया! हा विधि! तेरी लीला कितनी विषम है।" यह सोचकर अवाक् से हो जाते हैं और उसकी आत्म-बलिदान की प्रशंसा करते हुए उसे समझाते हैं कि मेरे जैसे अपात्र के लिये तुमने इतना महान् त्याग कर डाला है, यह उचित न था।

चक्रधर और मनोरमा यह बात एकांत में कर रहे हैं। दोनों के हृदय में परस्पर गहरा और सच्चा प्रेम है। परंतु दोनों आत्म-संयम के, सदाचार के, उदाराशयता के और पवित्रता के नमूने हैं। चक्रधर रुपए इसीलिये नहीं लेते कि इसमें लोगों को आक्षेप करने का अवसर मिलेगा।

तीनों सौत

एक-ही समय में एक से अधिक पत्नियों के होने से गृहस्थी किस तरह चौपट हो जाती है और आए दिन किस प्रकार सपत्नियाडाह के कारण, गृह-कलह होता रहता है, इसका बहुत ही सुंदर चित्रण ठाकुर विशाल-सिंह की तीनों स्त्रियों के चरित्र में किया गया है। बड़ी स्त्री वसुमती "अत्यंत गर्वशीला थी, नाक पर मक्खी भी न बैठने देती, उनकी तलवार म्यान से बाहर रहती थी। वह अपनी सपत्नियों पर सास की भाँति शासन करना चाहती थी। जो उसकी हाँ-में-हाँ मिलाता, उस पर प्राण देती थी। इच्छा के विरुद्ध बात हुई, तो सिंहिनी का सा विकराल रूप धारण कर लेती।" दूसरी स्त्री रामप्रिया रानी जगदीशपुर की सगी बहन थी। "यह दया और विनय की मूर्त्ति थी, बड़ी विचारशील और वाक्य-मधुर। जितना कोमल अंग था, उतना ही कोमल हृदय भी था। वह घर में इस तरह रहती थी, मानो है ही नहीं। पुस्तकों से विशेष रुचि थी, हरदम कुछ-न-कुछ पढ़ा-लिखा करती थी। सबसे अलग-बिलग रहती थी, न किसी के लेने में, न देने में, न किसी से विशेष वैर न विशेष प्रेम।" तीसरी पत्नी रोहिणी थी। ठाकुर साहब का इससे विशेष प्रेम था। वह भी प्राणपण से उनकी सेवा करती थी। इसमें प्रेम की मात्रा अधिक थी, या माया की, इसका निर्णय करना कठिन था। उसे असह्य था कि ठाकुर साहब उसकी किसी सौत से बातचीत भी करें। वसुमती कर्कशा थी पर दिल की साफ़। रोहिणी जितना द्वेष मन में पालती थी, उतना मुँह से प्रकट न करती थी। वसुमती के प्रेम में ईर्ष्या थी। रोहिणी के प्रेम में शासन था। रामप्रिया का प्रेम सहानुभूति की सीमा के अंदर ही रह जाता था। कोई पति के जीवन को सुखमय न बना सकती थी, उनकी प्रेम-तृष्णा को तृप्त न कर सकती थी। जब तक ठाकुर विशालसिंह कष्ट से दिन काटते थे, तब तक घर में नित्य झगड़े होते रहते थे। तीनों ने ठाकुर विशालसिंह के नाकों दम कर रखा था। परंतु जब वह राजा हो गए, तब तीनों का उन्होंने एक प्रकार से त्याग कर दिया। रानियाँ जगदीशपुर में रहतीं। राजा साहब शहर में रहने लगे। हाँ, अब सबके लिये लौंडी-बाँदी, नौकर चाकर, महल आदि अलग-अलग थे। किसी को अर्थ-कष्ट न था। आपस का संघर्ष मिट गया। वसुमती भक्ति-पूजन में दिन काटने लगी। रामप्रिया लिखने-पढ़ने, वीणा-सितार में व्यस्त रहने लगी। रोहिणी का हृदय भीतर-ही-भीतर जलता था, पर ऊपर से उपेक्षा थी। बनाव, सिंगार और विलासिता में ही जी बहलाती थी। अब कलह के बदले सुलह है, क्योंकि तीनों परि-त्यक्ता हैं। तीनों एक ही मुसीबत में हैं। जब सब पर मुसीबत समान रूप से पड़ती है, वैरी भी आपस में मिल-जुलकर रहने लगते हैं। तीनों के सपत्नी जीवन में अर्थ-प्राचुर्य और पति-परित्याग इन दो घटनाओं ने काया-पलट कर दिया।

गुरुसेवकसिंह

यह तो हुई असल साहब बहादुरों की कथा। बने हुओं की तो दशा उनसे भी गई बीती होती है। गुरु-सेवकसिंह पहले तो समाज-सेवा का दम भरते थे। चक्रधर के पद चिह्न पर चलने में अपना गौरव सम-झते थे। परंतु जब डिप्टी कलक्टर हुए, तो उनका पूरा कायापलट हो गया। कौए ने मोर के पर खोंस लिए। प्रेमचंदजी ने उनका चित्र यों खींचा है—

"अब वह बड़े ठाट से रहते थे। रहन-सहन भी बदल डाला। खान-पान भी बदल डाला। उस समाज में घुल-

मिल गए, जिसकी वाणी में, वेष में, व्यवहार में परा-धीनता का चोखा रंग चढ़ा होता है, उन्हें लोग अब 'साहब' कहते हैं। 'साहब' हैं भी पूरे 'साहब', बल्कि साहबों से भी दो अगुल ऊँचे। किसी को छोड़ना, तो जानते ही नहीं। क़ानून का मंशा चाहे कुछ हो, कड़ी-से-कड़ी सज़ा देना उनका काम है। उनका नाम सुनकर बदमाशों की नानी मर जाती है। विधाताओं को जितना उन पर विश्वास है, उतना और किसी हाकिम पर नहीं है।" भारत में शायद दस में नौ डिप्टी कलक्टर इन्हीं के नमूने के मिलेंगे।

गुरुसेवकसिंह पीछे से राजा साहब के मैनेजर हो जाते हैं। तब इनका रूप-रंग और ही कुछ हो जाता है, और जब राजा साहब भी इन्हें अलग कर देते हैं, तो यह समाज-सेवा का ढोंग फिर से रचने लगते हैं। इन्होंने इतने रंग बदले कि इनके चरित्र की विशेषता अस्थिरता ही कही जा सकती है।

धन्नासिंह

धन्नासिंह परले सिरे का बदमाश क़ैदी है, परंतु चक्रधर के सहवास से इसकी क्षत्रियोचित वीरता, उदारता और कृतज्ञता जागृत हो उठती है और यह गँवार राजपूत बहुत उदार-चरित हो जाता है। इसी तरह जीवन-भर पापियों के सहवासी जेलर सरीखे हृदय-शून्य व्यक्तियों के भी सद्गुण चक्रधर के संसर्ग से जाग उठते हैं।

शंखधर और देवप्रिया

अब तक जिन पात्रों के चरित्र में हमने कायापलट देखा है, वह साधारणतया एक ही जीवन का प्राकृतिक परिवर्तन है। शंखधर और कमला व महेंद्र और देवप्रिया इन दोनो का तो वास्तविक कायाकल्प दिखाया गया है। जगदीशपुर के राजा, विशालसिंह के बड़े भाई थोड़ी ही अवस्था में मर गये। उनका जन्म हर्षपुर के राजा के यहाँ हुआ। वहीं उनका विवाह हुआ। फिर वह पढ़ने के लिये विलायत गए। वहाँ से तिब्बत आए। तिब्बत में पहाड़ पर उन्होंने एक महाविज्ञानी योगी के दर्शन किए और उनसे कायाकल्प की विधि सीखी। इस विधि से वह बिना पुनर्जन्म के ही पुराने शरीर को फिर से नया, बूढ़ी देह को फिर से जवान कर सकते हैं। साथ ही उन्हें, उन्हीं योगिराज की कृपा से, अनेक जन्मों की बात याद आ जाती है। वह दूसरों में भी इस तरह की स्मृति-आवृत्ति उत्पन्न करना सीख गए। निपुण होकर वह हर्षपुर आए और देवप्रिया से भेंट की। उसे अपनी सारी कथा सुनाई और उसे लेकर फिर हिमालय पर गए और उसका कायाकल्प करके फिर से उसे नवयौवना बना दिया। परंतु महेंद्र को कोई ऐसा शाप है कि यह सब होते हुए भी अपनी रानी से अभिलाषा-पूर्ण करने की इच्छा करते ही उनका शरीरांत हो जाता है। उन्होंने शायद इस दुर्घटना से बचने के लिये ही सोचा कि पृथ्वी से अलग होकर विमान द्वारा अंतरिक्ष में अपनी अभिलाषा पूर्ण करें। परंतु वहाँ भी कर्म के कठिन बंधन से छुटकारा नहीं होता और महेंद्र का शरीरांत हो ही जाता है। कायाकल्प की सीखी हुई सारी विधि धरी रह जाती है। कर्म के निष्ठुर और कठोर नियमों पर बस नहीं चलता। रानी देवप्रिया का कायाकल्प हो जाता है और बड़ी रहस्यमय रीति से वह हर्षपुर की रानी कमला होकर वहाँ पहुँच जाती है और वियोग के दिन काटती है।

इधर महेंद्र कुछ दिनों की प्रेतावस्था भोगकर चक्रधर के पुत्र शंखधर होकर जन्म लेते हैं। पिता-वियोग पर बालक शंखधर खोज में निकल जाता है। पाँच बरस बाद उनके दर्शन हो जाते हैं, कुछ दिनों साथ रहता है। फिर अपनी माता के पास लौटते हुए हर्षपुर स्टेशन का नाम सुनते ही उसकी पूर्व-स्मृति जग जाती है। उतर पड़ता है। रानी कमला से मिलता है। दोनो परस्पर जान जाते हैं। वह कमला को लेकर जगदीशपुर लौटता है। परंतु फिर वही बात हो जाती है। अभिलाषा पूरी होने के पहले ही शरीरांत हो जाता है।

कायाकल्प से शिक्षाएँ

उपन्यास गद्य-काव्य है और कांता-सम्मति-उपदेश काव्य का गुण है। अतः प्रत्येक उपन्यास से प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष रीति से शिक्षा मिलनी ही चाहिए। किसी विशेष निबंधना द्वारा सामान्य नीति की शिक्षा का मिलना एक तरह की अप्रस्तुत प्रशंसा है। सारे उपन्यास में कायापलट ही मुख्य दृश्य है। परिस्थिति का चरित्र पर कैसा प्रभाव पड़ता है, किस प्रकार दृढ़ शीलवाला, चरित्र की रक्षा का प्रयत्न करता है, परंतु किसी अज्ञात एवं अत्यंत प्रबल शक्ति की गति-विधि से लाचार रहता है। परंतु इस मुख्य सर्वांग-व्यापिनी शिक्षा के सिवा प्रसंग-भेद से अनेक अवांतर शिक्षाएँ भी मिलती हैं।

सवर्तविवाडाह, बहुपत्नीत्व, गृह-कलह, परदा, पुरुष द्वारा स्त्री की शिक्षा, बेगार, समाज, साम्प्रदायिक झगड़े, सेवा इत्यादि अनेक विषयों पर पाठक बड़े अच्छे निष्कर्ष निकाल सकता है। यह तो व्यंजित शिक्षा हुई। परन्तु प्रसंगानुसार लेखक ने जो यत्र-तत्र अपने पात्रों के मुख से अनुपम उपदेशमय वाक्यावली कहलाई है, उनमें से कुछ यहाँ उदाहरण-रूप से उद्धरणीय है—

"जिस तरह रण से भागते हुए सिपाही को देखकर लोगों को उससे घृणा हो जाती है, यहाँ तक कि उसका वध कर डालना भी पाप नहीं समझा जाता। उसी तरह कुल में कलंक लगानेवाली स्त्रियों से भी सबको घृणा हो जाती है और कोई उनकी सूरत नहीं देखना चाहता। हम चाहते हैं कि सिपाही गोली और आग के सामने अटल खड़ा रहे। उसी तरह हम यह भी चाहते हैं कि स्त्री सब कुछ झेलकर अपनी मर्यादा का पालन करती रहे। हमारा मुँह हमारी देवियों ही से उज्ज्वल है और जिस दिन हमारी देवियाँ इस भाँति मर्यादा की हत्या करने लगेंगी, उस दिन हमारा सर्वनाश हो जायगा।"

"मातहतों से उनके अफ़सर के विषय में कुछ पूछ-ताछ करना अफ़सर को ज़लील कर देना है।"

"काल पर हम विजय पाते हैं अपनी सुकीर्ति से, यश से, व्रत से, परोपकार ही अमरत्व प्रदान करता है। काल पर विजय पाने का अर्थ यह नहीं है कि हम कृत्रिम साधनों से भोग-विलास में प्रवृत्त हों, वृद्ध होकर जवान बनने का स्वप्न देखें और अपनी आत्मा को धोखा दें। लोकमत पर विजय पाने का अर्थ है अपने सद्विचारों और सत्कर्मों से जनता का आदर और सम्मान प्राप्त करना। आत्मा पर विजय पाने का आशय निर्लज्जता या विषय-वासना नहीं, बल्कि इच्छाओं का दमन करना और कुवृत्तियों को रोकना है।"

"नशे की आश ताकत नहीं है, ताकत वह है, जो अपने बदन में हो। जब तक प्रजा खुद न सँभलेगी, कोई उसकी रक्षा नहीं कर सकता।"

कायाकल्प की विशेषताएँ

चक्रधर को लेखक ने जेल भेजा। इस सम्बन्ध में जेल का, जेल के क़ैदियों का, उनके आचरण का, जेल के अधिकारियों का, कालकोठरी का जैसा सजीव वर्णन किया है, पढ़नेवाला उससे कभी यह नहीं समझ सकता कि प्रेमचन्दजी का यह अपना निजी अनुभव नहीं है। "लिगडम" जैसे जेल के विशेष शब्दों का प्रयोग भी ठीक ही स्थल पर किया गया है। जेल के दारोगा का तो ऐसा वर्णन है कि अनेक जेलमुक्त असहयोगियों को किसी विशेष दारोगा की याद आए बिना नहीं रह सकती। जेल के वर्णन के अतिरिक्त एक और जगह गुरुसेवकसिंह के लिये लिखा है "यह महाशय रियासत जगदीशपुर के तसले थे", यह जेल का ही मुहावरा है। इसे लेखक ने अपनी छाप देकर चलनसार सिक्का बना दिया। अरविंद बाबू ने तसले का नाम सिविलियन इसी मतलब से रखा था। तसला शब्द विदेशी सिविलियन से अच्छा है। इसी तरह "सचाई आप ही अपना इनाम है", यह नई कहावत अँगरेज़ी की एक सूक्ति का उल्था है। प्रेमचन्दजी नए मुहावरे और नई कहावतें गढ़ने में उस्ताद हैं। इनके और भी उपन्यासों, कहानियों में यह विशेषता पाई जाती है।

मुंशी वज्रधर यद्यपि फ़िसाना आज़ाद के खोजी की तरह अफ़ीमची मसखरे नहीं हैं, तथापि इनके रंग-ढंग भी मोठे मज़ाक़ से ख़ाली नहीं हैं। खोजी की ही थोड़ी बहुत अकड़ है, सांसारिक अनुभव उससे अधिक है। पर साथ ही, उनके मुँह से लेखक अकसर हास्यास्पद उलटी-पुलटी बातें कहलवाता है। "आदमी को बिगड़ते देर लगती है, बनते देर नहीं लगती।" यह उलटी कहावत मुंशीजी के मुँह से अच्छी ही लगती है। परंतु खोजी की अपेक्षा मुंशी वज्रधर अधिक भाग्यवान् हैं। उनके बनते सचमुच देर नहीं लगती। वह जल्दी राजा के नाना बन जाते हैं। हाँ ठाकुर हरिसेवकसिंह जब मुंशी वज्रधर की चालों से राजा विशालसिंह से मनोरमा का ब्याह कर देने पर वाग्बद्ध हो जाते हैं, तो लौंगी को समझाने के लिये कहते हैं कि ज्योतिषी ने कहा है कि राजा साहब सवा-सौ बरस जिएँगे परंतु लौंगी मानती नहीं। कहती है, बुलाओ ज्योतिषी को मैं बिना स्वयं सुने विश्वास न करूँगी। मुंशी वज्रधर झिनकू को ज्योतिषी बनाकर लाए, पर लौंगी के सामने एक न चली। उसने नकली ज्योतिषीजी के मुँह से कालिख पोतकर उनकी तो गत बनाई, पर उन्हें जब मुंशी वज्रधर छुड़ाने चले, तो उनकी भी गरदन पकड़कर उसने दबोच लिया। अब मुंशीजी लाख जतन करते हैं, गरदन छूटती

नहीं। उस समय ठाकुर हरिसेवकसिंह से जब वह कहते हैं कि "मेरी यह साँसत हो रही है और आप खड़े हँस रहे हैं" और जब वह छोड़ देती है, तब कहते हैं, "साँसत तो मेरी यह क्या करती, मैंने औरत समझकर छोड़ दिया", तो फ़िसाना आज़ाद के पढ़नेवाले को खोजी की याद आ जाती है। परंतु इससे कोई यह न समझे कि मुंशी वज्रधर खोजी के प्रतिरूप हैं। कदापि नहीं। खोजी की क़दोक़ामत और रहन-सहन अधिकांश अस्वाभाविक-सा हो जाता है। खोजी एक अनोखा व्यक्ति है। मुंशी वज्रधर एँड़ी से चोटी तक स्वाभाविक मनुष्य हैं। इनके सदृश हिंदू-समाज में सैकड़ों मनुष्य होंगे। सच पूछिए, तो खोजी की आत्यन्तिक विदूषकता अस्वाभाविक-सी लगती है। मुंशी वज्रधर में उस विदूषकता की छाया भी नहीं है।

जगह-जगह प्रेमचंदजी का हास्य-रस का पुट उपन्यास को ख़ास तौर पर मज़ेदार बना देता है। मिनक के लिये तोंद की तजवीज में मुंशी वज्रधर का तोंद-माहात्म्य पढ़ने लायक है। जब वह पुरानी अचकन और वेकमरबंद का पतलून पहनकर जेल में आते हैं, उस समय उनके रूप का वर्णन और कपड़े की बेवफ़ाई का विस्तार अत्यंत रोचक है।

राजकुमार के मुख से मरणानंतर की दशा और पूर्व-जन्म का वर्णन लेखक ने विलक्षण रीति से कराया है। प्रेमचंदजी मरणानंतर जीवन के साहित्य का भी अनुशीलन करते रहे हैं इस बात का पूरा प्रमाण नीचे लिखे अवतरण से मिलता है—

"जिसे हम मृत्यु कहते हैं और जिसके भय से संसार काँपता है, वह केवल एक यात्रा है। उस यात्रा में भी मुझे तुम्हारी याद आती रहती थी, विकल होकर आकाश में इधर-उधर दौड़ा करता था। प्रायः सभी प्राणियों की यही दशा थी। कोई अपने संचित धन का अपव्यय देख-देखकर कुढ़ता था, कोई अपने बाल-बच्चों को ठोकरें खाते देखकर रोता था। वे दृश्य इस मृत्युलोक के दृश्यों से कहीं करुणा-जनक, कहीं दुःखमय थे। कितने ही ऐसे जीव दिखाई दिए जिनके सामने यहाँ सम्मान से मस्तक झुकाता था। वहाँ उनका नग्न स्वरूप देखकर उनसे घृणा होती थी। यह कर्म-लोक है, वह भोग-लोक; और कर्म का दंड कर्म से कहीं भयंकर होता है। मैं भी उन्हीं अभागों में था। देखता था कि मेरे प्रेम-सिंचित उद्यान को भाँति-भाँति के पशु कुचल रहे हैं, मेरे प्रणय के पवित्र सागर में हिंसक जल-जंतु दौड़ रहे हैं और देख-देखकर क्रोध से विह्वल हो जाता था। अगर मुझमें वज्र गिराने की सामर्थ्य होती, तो गिराकर उन पशुओं का अंत कर देता। मुझे यही ताप, यही जलन था। कितने दिनों मेरी यह अवस्था रही, इसका कुछ निश्चय नहीं कर सकता, क्योंकि वहाँ समय का बोध करानेवाली मात्राएँ न थीं, पर मुझे तो ऐसा जान पड़ता था कि उस दशा में पड़े हुए मुझे कई युग बीत गए। रोज़ नई-नई सूरतें आतीं और पुरानी सूरतें लुप्त होती रहती थीं। सहसा एक दिन मैं भी लुप्त हो गया। कैसे लुप्त हुआ, यह याद नहीं। पर होश आया, तो मैंने अपने को बालक के रूप में पाया। मैंने राजा हर्षपुर के घर में जन्म लिया था।"

त्रुटियाँ

प्रस्तुत उपन्यास लेखक मनोविज्ञान का इतिहास लिखता है, मानव-स्वभाव का चित्रण करता है। इस काम में प्रेमचंदजी निपुण हैं। जैसा कि हम लिखा आए हैं, आपका हरएक पात्र सजीव है, हरएक अपना विशेषता रखता है। प्रत्येक के आचरण पर उसके मनोविज्ञान का शब्द-चित्र, जो लेखक ने खींचा है, अत्यंत सादा परंतु गंभीर-से-गंभीर भावों से भरा है। वाक्य चुस्त हैं, शब्दावली इतनी कसी हुई है कि एक बिंदु-विसर्ग हटाया या घटाया नहीं जा सकता। शब्दों का चुनाव ऐसा फिट है कि रद्दो-बदल की गुंजाइश ही नहीं। हम यहाँ कुछ थोड़े से उदाहरण देते हैं।

"विनय क्रोध को निगल जाता है।"

"राज्य पशु-बल का प्रत्यक्ष रूप है। राज्य साधु नहीं है, जिसका बल धर्म है, वह विद्वान् नहीं है, जिसका बल तर्क है। वह तो सिपाही है, जो डंडे के ज़ोर से अपना स्वार्थ सिद्ध करता है। इसके सिवा उसके पास कोई दूसरा साधन ही नहीं।"

"कृतज्ञता शब्दों में आकर शिष्टाचार का रूप धारण कर लेती है? इसका मौलिक रूप वही है, जो आँखों से बाहर निकलते हुए काँपता और लजाता है।"

"हमारी कर्मेंद्रियाँ भले ही जर्जर हो जायँ, चेष्टाएँ तो वृद्ध नहीं होतीं? कहते हैं, बुढ़ापा मरी हुई अभिलाषाओं की समाधि है, या पुराने पापों का पश्चात्ताप।"

"उनकी रसमयी कल्पना प्रेम के आघात-प्रत्याघात से एक विशेष स्फूर्ति का अनुभव करती थी।"

"किसी कठिन कार्य में सफल हो जाना आत्म-विश्वास के लिये संजीवनी के समान है।"

"विद्वान् मूर्खों को कब ध्यान में लाते हैं। इसी भाँति गुणीजन अनाड़ियों की परवा नहीं करते। उनकी निगाह में मर्मज्ञ का स्थान, धन और विभव के स्वामियों से कहीं ऊँचा होता है।"

"नृत्य ही अनुराग की चरम-सीमा है। सितार बज रहा है। इस पर लेखक की कल्पना बड़ी ही सुंदर है।"

"मानो सुधा का अनंत प्रवाह स्वर्ग की सुनहरी शिलाओं से गले मिल-मिलकर नन्हीं-नन्हीं फुहारों में किलोल कर रहा हो। सितार के तारों से स्वर्गीय तितलियों की क़तारें-सी निकल-निकलकर समस्त वायु-मंडल में अपने झीने परों से नाच रही थीं, उसका आनंद उठाने के लिये लोगों के हृदय कानों के पास आ बैठे थे।"

"पहली बार उसे प्रार्थना-शक्ति का विश्वास हुआ। कमज़ोरी ही में हम लकड़ी का सहारा लेते हैं।"

कालकोठरी का कैसा जीता-जागता वर्णन है!

"आह! कालकोठरी! तू मानवी पशुता की सबसे क्रूर लीला, सबसे उज्ज्वल कीर्ति है। तू वह जादू है, जो मनुष्य को आँखें रहते अंधा, कान रहते बहरा, जीभ रहते गूँगा बना देती है। कहाँ हैं सूर्य की किरणें, जिन्हें देखकर आदमी को अपने होने का विश्वास हो, कहाँ है वाणी, जो कानों को जगाए? गंध है, किंतु ज्ञान तो भिन्नता में है, जहाँ दुर्गंध के सिवा और कुछ नहीं, वहाँ गंध का ज्ञान कैसे हो? बस शून्य है? अंधकार है? वहाँ पंच-भूतों का अस्तित्व ही नहीं। कदाचित् ब्रह्मा ने इस अवस्था की कल्पना न की होगी, कदाचित् उनमें यह सामर्थ्य ही न थी। मनुष्य की आविष्कार-शक्ति कितनी विलक्षण है। धन्य हो देवता, धन्य हो!"

"एक रत्न-जटित नदी किसी चंचल पनिहारिन की भाँति मीठे राग गाती, अठिलाती चली जाती थी।"

"सच है, पद पाकर सबको मद हो जाता है।"

दुखती हुई आँखों की अपेक्षा फूटी आँखें ही अच्छी।

प्रेम सहृदयता ही का रसमय रूप है।

"प्रेम-पत्र की रचना कवित्त की रचना से कहीं कठिन होती है। कवि चौड़ी सड़क पर चलता है, प्रेमी तलवार की धार पर।"

"हुनूर क़र्ज़ और अर्ज़ के रूप में, तो केवल ज़रा-सा अंतर है, पर अर्थ में ज़मीन और आसमान का फ़र्क़ है।"

"अलंकार भावों के अभाव का आवरण है। सुंदरता को अलंकारों की ज़रूरत नहीं। कोमलता अलंकारों का भार नहीं सह सकती।"

"निर्बल क्रोध ही, तो वैराग्य है।"

दोष

सवा छ सौ पृष्ठ घनी छपी हुई गद्य पोथी का नितांत निर्दोष होना भारतवर्षीय छपाई का एक अभूतपूर्व चमत्कार होता। तो भी हम पोथी में छापे की भूलें अत्यंत कम हैं, इतनी कम हैं, कि हम छापनेवालों को उनकी सफलता पर बधाई दिए बिना नहीं रह सकते। परंतु जहाँ भूलें हैं, वहाँ अर्थ का अनर्थ करने में कसर नहीं रखतीं। जैसे पृ० १८० पर ग्राहक से मोल-जोल की जगह मेल-जोल करने से अनर्थ हो गया है। "तो" की जगह "ता", "गो" की जगह "गा" सरीखी भूलें छपते-छपते मात्राओं के टूटने से हो जाती हैं, परंतु ऐसी भूलें भी अत्यंत कम हैं। जहाँ-जहाँ "हतबुद्धि" शब्द आया है, "हतबुद्धि" ही छपा है। "अक्षुण्ण" की जगह "अक्षण्ण" (पृ० २३२) "निर्मल" हृदय की जगह "निर्दय" हृदय (पृ० २४८) सरीखी भूलें प्रूफ़ देखनेवाले की हैं। परंतु पूर्वापर प्रसंग की असंगति लेखक की ही भूल हो सकती है। जान पड़ता है कि आरंभ में लेखक ने, जिस पात्र का नाम अहल्या रखना चाहा था, पीछे बदलकर मनोरमा बना दिया। परंतु कहीं कहीं यह संशोधन कापी में रह गया। इसी से पृ० ३१ की चौथी पंक्ति में और ४३५ की २१वीं पंक्ति में मनोरमा की जगह अहल्या और पृ० ३०४ की पंक्ति ११ में मंगला की जगह मनोरमा के नाम आए हैं। परंतु एक भारी भ्रम पाठक को चक्कर में डाल देता है। पृ० ६ पर मुं० वज्रधरसिंह राजपूत बताए गए हैं। परंतु पृ० २१८ पर एक आवेदक युवक मुंशीजी से कहता है, "मैं भी कायस्थ हूँ और बिरादरी के नाते आपके ऊपर मेरा बहुत बड़ा हक़ है।" इस कथन पर मुंशीजी बिरादरी होने से न तो इनकार करते हैं, न इक़रार। और प्रसंगों में भी "मुंशी" यशोदानंदन बिरादरी हैं।

फिर विशालसिंह की नातेदारी भी बिरादरी की रीति के प्रतिकूल नहीं समझी जाती। यह सभी राजपूत ही जान पड़ते हैं। "मुंशीजी" कहलाने और काशी में कायस्थों की गढ़ी कबीरचौरा में रहने से नवयुवक को इनके कायस्थ होने का भ्रम हो गया हो, तो आश्चर्य नहीं। ऐसी भूल स्वार्थी आवेदकों से इस जाति-गत पक्षपात के युग में पूर्ण स्वाभाविक है। पहली बार पढ़ जाने पर यह समझा गया कि प्रेमचंदजी ने मुंशी वज्रधर को कायस्थ ही कल्पित किया था, परंतु दूसरी आवृत्ति पर जान पड़ा कि लेखक ने, इस प्रकार का भ्रम जान-बूझकर बड़ी चतुराई से उत्पन्न किया है। इस तरह की भूलें हमारे समाज के जीवन का अंग हो रही हैं। यह देखने में दोष जँचता है सही, पर वस्तुतः इस भ्रम-प्रदर्शन में ही लेखक ने अपना कमाल दिखाया है।

मौलिकता का प्रश्न

इधर प्रेमचंदजी की रंगभूमि पर कई समालोचक समालोचना का अभिनय कर गए हैं। प्रेमचंदजी पर थैकरे की नक़ल करने का व्यर्थ दोष लगाया गया है। मौलिकता के विचित्र आदर्श हिंदी-संसार को दिखाए गए हैं। उनके असहयोग को ख़्वामख़्वाह घर घसीटा है। वैयक्तिक आक्षेप किए गए हैं। इससे पहले भी एक नव युवक लेखक ने प्रेमाश्रम पर अपनी नवोत्साहिनी लेखनी का अभ्यास किया था। नई अंकुरित होनेवाली प्रतिभा को सींचकर पल्लवित और पुष्पित कराना प्रत्येक रसिक देश भक्त का कर्तव्य है। होनहार नेताओं, लेखकों और कवियों को पूर्ण प्रोत्साहन मिलना चाहिए। वृद्ध नेताओं और साहित्यिकों को उनका मार्गावरोध करना भारी देश-द्रोह है। हिंदी के वृद्ध समालोचकों और संपादकों के विरुद्ध यह शिकायत किसी अंश में ठीक है कि वह नए लेखकों को जल्दी उभड़ने नहीं देते। बंगाल में यह दशा नहीं है। वहाँ के लेखक और संपादक अपने नवयुवकों का हौसला बढ़ाते रहते हैं। हिंदी के पुराने लेखक नयों के जोश पर ठंडा पानी डालते रहते हैं। उसी का यह फल है कि कोई-कोई प्रतिभाशाली युवक, होनहार नेता और लेखक जो आगे के लिये अपना मार्ग प्रशस्त करना चाहते हैं, युवकोचित नासमझी से, दहने-बाएँ हर तरफ़ पुराने नेताओं और लेखकों पर आक्रमण करने लगते हैं। "येन केन प्रकारेण प्रसिद्ध पुरुषो भवेत्।" अपनी प्रसिद्धि के लिये अपने हित-चिंतकों और मित्रों को भी अपना वैरी बना लेने में आगा-पीछा नहीं करते। यह अच्छी तरह जानते हुए भी कि व्यक्तिगत आलोचना अशिष्ट, अयुक्त और अनुचित है, अपनी और पराई व्यक्ति को व्यर्थ घर घसीटते हैं। इस क्रिया में सयत और शिष्ट भाषा के नियमों का भी जब उन्हें विस्मरण हो जाता है, तो समालोचना को साधारण और शिष्टानुमोदित पद्धति का तो प्रश्न ही क्या है। मैं ऐसे लेखकों से यह विनम्र निवेदन करूँगा कि आपकी योग्यता और प्रतिभा स्वयं आपको आगे बढ़ाने में पूर्ण समर्थ है। उनकी शक्ति को ठीक अटकल न होने से ही आप अनुचित साहित्यिक हिंसा के अवांछ-नीय मार्ग का व्यर्थ अनुसरण कर रहे हैं। लोगों को अंततः आपका सिक्का कभी-न-कभी मानना ही पड़ेगा। दूसरे लोग यदि आपके विचारानुसार यथेष्ट अच्छे साहित्य का निर्माण नहीं कर रहे हैं, तो आप व्यर्थ उनके पीछे पड़कर अपनी अनमोल शक्ति का अपव्यय न कीजिए। आप उनकी लकीर के समानांतर बड़ी लकीर खींचकर उन्हें छोटा सिद्ध कीजिए और उनकी लकीर को मिटाने का असफल प्रयास न कीजिए। और-और क्षेत्रों में हम लोग परस्पर झगड़कर अपना कम विनाश नहीं कर रहे हैं।

मौलिक रचना का तत्त्व क्या है? क्या उसका कोई परिमाण है? यदि परिमाण है, तो क्या है? इन प्रश्नों के उत्तर पर मौलिकता की परीक्षा अवलंबित है। परंतु यहाँ इनका विस्तार करने का मौक़ा नहीं है। यह लेख स्वयं बहुत लंबा हो चुका, हम इतना ही कहेंगे कि संसार का साहित्य-सागर इतना विस्तृत, इतना गंभीर है कि किसी देश के भारी-से-भारी विद्वान् साहित्यिक को अधिक-से-अधिक उसके अत्यंत क्षुद्र अंश का ज्ञान हो सकता है। उत्तम कविता सत्य का विलक्षण रीति से चित्रण है और सत्य नित्य है, सनातन है। "एकं सद् विप्रा बहुधा वदन्ति।" कहनेवाले भिन्न-भिन्न रीति से कहते हैं, परंतु सत्ता व सत्य एक ही है। कोई बात ऐसी नहीं रह गई, जो जितने ढंग संभव हैं, उतने ढंगों से वर्णन न की जा चुकी हो। इस तरह अक्षरशः मौलिक रचना असंभव है। फिर हम मौलिक कहें, किस रचना को?

"वांत्रिरनुहहरतिच्छाया कुकवि. शब्द पदानि चाण्डाल"

शब्दों या पद्यों की चोरी करनेवाला कवि व मौलिक लेखक नहीं है। छाया का अनुहरण करनेवाला कवि है। ज़बर्दस्त कवि मज़मून छीन लेता है, उसे ज्यादा अच्छे पैराए मे बयान करता है। महाभारत और रामायण की ज़मीन पर नाटक, उपन्यास, आख्यान, काव्य जितने लिखे गए, उनकी गिनती नहीं: परतु उन लेखकों मे से एक को भी नक़ल करने या चुराने का दोष नहीं लगाया जाता। रंगभूमि के दो-एक पात्रों की थोड़ी-सी समानता लेकर थैकिरी-शेक्सपियर से मुक़ाबला करना, तो अत्यन्त दूर की बात है। मैंने जब रंगभूमि पढ़ा, तो मुझे तो एक-एक पात्र यहीं हमारे देश के जाने हुए लोग दीखे। मै अनुचित न समझता, तो अपनी समालोचना मे उनके नाम लिख देता। परतु मैं खूब जानता हूँ कि यह लेखक का कला-नैपुण्य है, उनकी कल्पना का कमाल है कि जो कोई पढ़ता है, अपने जाने हुए मानव-स्वभाव की जीती-जागती तसवीर देखता है। जिस मनुष्य-समाज का चित्र एक लेखक खींचता है, उसी मानव-समाज की तसवीर जब दूसरा खींचेगा, तो इन चित्रों में परस्पर समानता का होना कोई अचरज की बात नहीं है। कायाकल्प मे पारलौकिक बातें भी आई हैं। पुनर्जन्म को छोड़, कई बातें विदेशी उपन्यासों से मिलती हैं; परतु इससे मैं उनकी नक़ल समझूँ, तो मेरी भारी अरसिकता और भूल है। भारतीय ग्रंथों की रचना भारतीय आदर्श पर होती है। उन्हें भारतीय दृष्टि से ही देखना होगा। भारतीय शील से ही उन्हें परखना होगा। किसी विदेशी उपन्यास का उत्तम उल्था अमरपुरी की ही तरह हो सकता है, परतु अमरपुरी का यथार्थ सौष्ठव समझने के लिये उसी तरह विलायती ऐनक और विलायती परिमाणदंड की ज़रूरत है, जैसे रंगभूमि और कायाकल्प के लिये हमारी राष्ट्रीय ऐनक और भारतीय परिमाणदंड की आवश्यकता है।

रामदास गौड़

समृद्धि की दुर्दशा

हिंसक कुप्रथाओं ने देश की समृद्धि को चारों तरफ से घेर रक्खा है ।

कवि-चर्चा

१. हिंदी के कुछ कवियों के विषय में टिप्पणियाँ

माधुरी में कुछ दिन हुए यह सूचना निकली थी कि मिश्रबंधु-विनोद का द्वितीय संस्करण निकलनेवाला है, अतः जिन लोगों को उसमें योग देना हो, वे 'माधुरी' द्वारा अपने साहित्य-विषयक अनुसंधान का फल हिंदी-संसार के सामने प्रस्तुत करें। इसी सिलसिले में ये कुछ शब्द 'माधुरी' के पाठकों के सामने अर्पित हैं। पूज्यपाद मिश्रबंधु हमारे संबंधी हैं। अतः इस विषय में, जो कुछ हमको कहना था, पत्र द्वारा उनको हम सूचित कर चुके हैं। परंतु कुछ मित्रों का आग्रह हुआ कि केवल मिश्रबंधुओं को पत्र द्वारा सूचित करना पर्याप्त नहीं है, वरन् हिंदी-संसार के सामने भी ये टिप्पणियाँ रक्खी जानी चाहिए। अतएव उनकी आज्ञा को शिरोधार्य कर ही हमने ये कुछ शब्द हिंदी-संसार के सामने रखने की धृष्टता की है। आशा है, प्रिय पाठकगण क्षमा करेंगे।

(१) बलभद्र मिश्र—पृ० ३६६ मिश्रबंधु-विनोद—

'विनोद' में लिखा है कि "नखशिख में ६५ घनाक्षरी छंद और एक छप्पय है।" इधर कुछ दिन हुए, इस ग्रंथ की एक हस्त-लिखित प्रति देखने का सुअवसर हमको प्राप्त हुआ। उसको देखने से यह बात पता कि ग्रंथ का नाम 'शिखनख' है 'नखशिख' नहीं। इस बात की पुष्टि में यह कहना पर्याप्त है कि केश-वर्णन से प्रारंभ करके कवि पद-नख-वर्णन की ओर चला है। दूसरी बात, जो इस ग्रंथ के विषय में हमको कहनी है, वह यह है कि जो हस्त-लिखित प्रति देखने का सुअवसर हमको प्राप्त हुआ, उसमें ६६ घनाक्षरी छंद और एक छप्पय है। अर्थात् मिश्रबंधु-विनोद लिखते समय जो प्रति देखी गई थी, उससे इस प्रति में एक घनाक्षरी छंद अधिक है। हमारी प्रति का पहला छंद इस प्रकार प्रारंभ होता है—"मरकत सुत किधौं . ." और अंतिम घनाक्षरी का आदि यह है—"पलिका तें पायँ जो धरति धाम धरनी में .. ..।" इस अंतिम घनाक्षरी के बाद एक छप्पय है और उसीके बाद ग्रंथ समाप्त होता है।

(२) मुकुंद प्राचीन—पृ० २५३ मि० बं० वि०—

'विनोद' में इस कवि का जन्म सं० १७०५ में और कविता-काल १७३० दिया है। इस कथन का आधार शिवसिंह-सरोज है। सरोजकार ने, यह संवत् किस आधार पर निश्चित किया है, यह कुछ कहते नहीं बनता।

कुछ दिन हुए, किसी एक मुकुंद कवि के तीन-चार छप्पय हमको देखने को मिले थे। ये छप्पय अब्दुर्रहीम खानखाना की प्रशंसा में कहे गए हैं। अतः यह नहीं कहा जा सकता कि इन छप्पयों के रचयिता मुकुंद और 'विनोद' के मुकुंद प्राचीन एक ही व्यक्ति हैं। (इस विषय में देखो—'शिवसिंह-सरोज' पृ० २७३ नवलकिशोर-प्रेस की प्रति) 'सरोज' में मुकुंद प्राचीन का जो छंद दिया है, वह इस प्रकार है—

चौकी की चमक औ झमक झीने बसन की,
देह की दमक बार काकौ पर खोइबो।
कहत 'मुकुंद' गयो तान को निरास भयो,
बात को बिसन ठयो गात को बिलाइबो।
भौंहैं मटकाय लटकारी लट अबहीं ते,
बचन कुटन केर बार-बार गोइबो।
तबही धौं कैसी है है सजनी री रजनी में,
एक दिन साँवरे के कंठ लागि सोइबो। १।

जिन छप्पयों का उल्लेख ऊपर किया गया है, उनमें से एक इस प्रकार है—

कमठ-पीठ पर कोल कोल पर फन फनिंद फन।
फनपति फन पर पुहुमि पुहुमि पर दिग (त?) दीप-गन।
सप्तदीप पर दीप एक जब जग लिखिखिय।
कवि 'मुकुंद' तहँ भरतखंड उपरहिं त्रिसिखिविय।
खानानखान बैरम-तनय तिहि पर तुअ भुज कल्पतरु;
जगमगहिं खग्ग-भुज अग्ग पर खग्ग अग्ग स्वामित्त बरु।

ये दोनों मुकुंद दो हैं, अथवा एक, यह हम अभी विद्वानों के लिये छोड़ते हैं। परंतु इतना कहना हमारे लिये अवश्य पर्याप्त है कि छप्पयों के रचयिता मुकुंद का समय सहज ही स्थिर हो सकता है। रहीम का जन्म सं० १६१० और शरीरपात सं० १६८४ में होना कहा जाता है और जहाँगीर सं० १६६२ में गद्दी पर बैठा। उसी समय से रहीम की क्षति प्रारंभ हुई, यह भी प्रसिद्ध है। अतः यह छंद सं० १६६२ के पूर्व का अवश्य होगा। अतएव यदि इसको सं० १६६० का और कवि की अवस्था उस समय २५ वर्ष की मानें, तो मुकुंद का जन्म-काल सं० १६३५ निकलता है।

(३) महाराज रामसिंह—पृ० ८६३ मि० ब० वि०—

'अलंकार-दर्पण', 'रस-विनोद' और 'रस-निवास' नामक इनके तीन ग्रंथों का उल्लेख 'विनोद' में है और संभवतः इन्हीं में से किसी के आधार पर इन महाराज का कविता-काल सं० १८४५ स्थिर किया गया है। इनके एक चौथे ग्रंथ का हमको पता लगा है, जिसका नाम 'युगल-विलास' है। इस ग्रंथ में १०१ घनाक्षरी और सवैया छंद हैं और जैसा नाम ही से प्रकट है श्रीराधाकृष्ण के विलास इत्यादि का वर्णन है। यह ग्रंथ सं० १८३६ में बना—यथा—"संवत् से अष्टादस बरस छतीस पुनि . . ।" अतः यथार्थतः इनका कविता-काल सं० १८३६ होना चाहिए, १८४५ नहीं।

उदाहरणार्थ इस ग्रंथ में से दो छंद नीचे लिखे जाते हैं—

देखत दोऊ हिए हुलसे अति दोऊ वियोग बिथा बिसरे हैं;
दोऊ रहे रस रीति निहारि कै दोऊ रहे पगि प्रेम लरे हैं।
मोहनी औ मनमोहन जू मन के सब ही अभिलाख करे हैं;
चोप भरे चतुराई भरे अरु चाह भरे हैं उमाह भरे हैं। १।

धनि है समीर जिहि सरस परस कियो,
तेरो चीर परम सुगंध रस भीनो री;
धनि वह मधुकर है री मनमोहन है,
जिन तेरे कमल कपोल छत कीनो री।
धनि वह कीर है री एरी बीर जिन तेरे,
नाके अधरन को मधुर रस लीनो री।
धनि धनि हैं री हम जीवन को फल बन,
नैनन सों तेरो रूप निरख्यो नवीनो री। २।

(४) हठी कवि—पृ० ८६६ मि० ब० वि०—

'राधा-शतक' नामक इनके ग्रंथ का उल्लेख 'विनोद' में है। खोज में भी इस ग्रंथ का यही नाम और सं० १८४७ लिखा हुआ मिलता है। परंतु १५ अक्टूबर सन् १८७३ को प्रकाशित 'Harishchandra's Magazine' Vol I No 1 में इस ग्रंथ का नाम 'राधा-सुधा-शतक' छपा है और संवत् १८३७ 'विनोद' में और खोज की रिपोर्ट में, जिस दोहे के आधार पर इसका संवत् स्थिर किया जाता है, उसका पाठ यह है "ऋषि सुवेद बसु शशि सहित.. .. ", परंतु हरिश्चंद्र की प्रति में इसका पाठ यह है "ऋषि सुदेव बसु शशि सहित. . . " और 'फ़ुटनोट' में "१८३७ संवत्" ऐसा लिखा है। इसके बाद Harishchandra's Magazine से निकालकर स्वतंत्र ग्रंथ-रूप में भी यह इसी नाम और संवत्सर से छपा है। इस विषय में सद्यः इतना ही कहना पर्याप्त है। क्योंकि जब तक कोई और प्रमाण इस बात का न मिले, कुछ निश्चय नहीं कहा जा सकता। हठी कवि के विषय में इतना और वक्तव्य है कि श्रीस्वामी हितहरिवंशजी की शिष्य परंपरांतर्गत १२ मुख्य लोगों में से एक यह भी थे।

(५) चरणदास पृ० २५७ तथा ६५५ मि० ब० वि०—

'विनोद' के २५७ पृ० पर जिन चरणदास का उल्लेख है, वे चरणदास और ६५५ पृष्ठवाले चरणदास एक ही व्यक्ति हैं। समझ में नहीं आता कि 'सरोज'-कार ने इनका समय १५३७ सं० कैसे दिया है। केवल इतना ही नहीं, 'सरोज' में यह भी लिखा है कि ये महात्मा फ़ैज़ाबाद

शिखा के पंडितपुर नामक गाँव के रहनेवाले थे । इसका भी मर्म कुछ समझ में नहीं आता । अस्तु, ज्ञान स्वरोदय नामक अपने ग्रंथ में (जिसको 'सरोजकार' ने भी इन्हीं का लिखा हुआ माना है और जिसमें से उदाहरण भी दिया है) इन्होंने अपने विषय में एक छंद दिया है । जिसमें यह जान पड़ता है कि ये 'देहरे' के रहनेवाले थे (कुछ लोगों का मत है कि यह स्थान अलवर राज्यांतर्गत है और अद्यापि 'दहरा' के नाम से प्रसिद्ध है) और इनका पहला नाम रणजीत था । इनके पिता का नाम मुरली था और ये दूसर जातीय थे । इन्होंने लिखा है कि "बाल अवस्था माँहि बहुरि दिल्ली में आयो" और वहीं इनकी सुखदेव स्वामी की भेंट हुई, जिनके ये शिष्य हो गए और उन्हीं के आग्रह से इनका नाम चरणदास हुआ । खोज में इनका सं० १७६० में जन्म १८३८ में शरीर-पात लिखा है । यह किस आधार पर लिखा है, यह हमको ज्ञान नहीं है । अवश्य ही खोज में मिले किसी ग्रंथ के आश्रय पर यह लिखा गया है । परंतु इन्हीं चरणदास-कृत 'भक्ति-सागर' नामक एक ग्रंथ देखने का सौभाग्य मुझे प्राप्त हुआ । चरणदासजी ने चैत्र शु० १५ सोमवार सं० १७८१ को इस ग्रंथ के रचने का विचार किया । और उसी समय से रचना प्रारंभ भी कर दिया, जैसा कि स्वयं उन्होंने कहा भी है । यथा—

"संवत सत्रह सै इक्यासा, चैत सुदी तिथि पूरनमासी ।
सुक्ल पच्छ दिन सोमहिवारा, रन मन यों कियो विचारा ।
तब ही सों अस्थापन धरिया, कछु इक बानी वा दिन करिया ।
ऐसे ही पाँच हजार बनाई, नाव गुरू के गंग बहाई ।
फिरि भई बानी पाँच हजारा, हरि के नाव अगिन में जारा ।
तीजे गुरु आज्ञा सो कीनी, सो अपने मनन कूँ दीनी ।
अद्भुत ग्रंथ महा सुखदाई, जाका महिमा कही न जाई ।"

"नाव गुरू के गंग बहाई" "हरि के नाव अगिन में जारा" के आशय चाहे जो कुछ समझे जायँ, पर 'भक्ति-सागर' स्वयं ४०५ पत्र अर्थात् ८१० पृष्ठ का ग्रंथ है । इन पृष्ठों का आकार ८½×७ इंच है और प्रत्येक पृष्ठ में १६ पंक्तियाँ हैं । यह सब कहने का आशय यह है कि यह ग्रंथ बहुत बड़ा है । सच तो यह है कि यह एक ग्रंथ नहीं है, वरन् १३ ग्रंथों का संग्रह-मात्र है । इस ग्रंथ में सीमा अथवा तारतम्यबद्ध कोई अध्याय-क्रम नहीं है, वरन् छोटे-छोटे १३ ग्रंथों का संकलन-मात्र एक वृहत् ग्रंथाकार में कर दिया गया है । निम्न-लिखित १३ ग्रंथों का समावेश भक्तिसागर* में है—

(१) व्रजचरित्र
(२) अमरलोक अखंड धाम
(३) पद्रूपमुक्ति
(४) ज्ञानस्वरोदय
(५) पंचोपनिषद् अथर्वन वेद की भाषा
(६) अष्टांगयोग
(७) धर्मजिहाज
(८) ब्रह्मज्ञानसागर
(९) जोगसंदेहसागर
(१०) भक्तिपदारथ
(११) मनविरक्तकरन गुटकासार
(१२) शब्द
(१३) छप्पय कवित्त

इन ग्रंथों में बहुधा भक्ति और वैराग्य किंवा वेदांत का विषय है । अतः यह अनुमान-सिद्ध है कि कम-से-कम ४० वर्ष की अवस्था के उपरांत यह ग्रंथ कवि ने बनाया । इस दृष्टि से चरणदास का जन्म सं० १७४१ के आसपास हुआ होगा । सं० १७६० में नहीं, क्योंकि चाहे जो हो, २१ वर्ष की अवस्था में भक्ति और वैराग्य किंवा वेदांत का विषय इस सूक्ष्म रीति से चरणदासजी ने कदापि नहीं लिखा होगा । इन ग्रंथों में से सबके नाम खोज किंवा 'विनोद' में नहीं है, परंतु इनके अतिरिक्त निम्न-लिखित ग्रंथों के नाम खोज में मिले हैं ।

(१) चरणदाससागर, (२) राममाला, (३) दानलीला, (४) कुरुक्षेत्रलीला, (५) नासिकेत और (६) संदेहसागर ।

इनमें से संदेहसागर संभव है भक्तिसागरांतर्गत 'जोग-संदेहसागर' ही का दूसरा नाम हो, परंतु जब तक दोनों

* यह ग्रंथ सन् १८६८ में नवलकिशोर-प्रेस में छप चुका है । उस संस्करण की भूमिका में चरणदास का जन्म सं० १६६१ में और शरीरपात सं० १७८१ में लिखा है । और शाहजहाँ बादशाह के यहाँ उनके बुलाए जाने तथा उनकी वहाँ परीक्षा-विषयक एक आख्यायिका का भी उसमें उल्लेख है । जन्म-काल के विषय में, तो अभी हम कुछ नहीं कह सकते, परंतु मृत्यु का संवत्, तो अशुद्ध ही समझ पड़ता है, क्योंकि सं० १७८१ में, तो उन्होंने भक्ति-सागर ग्रंथ की रचना प्रारंभ की । शाहजहाँ बादशाह सं० १७१५ में गद्दी पर से उतारा गया, अतः यदि चरणदास यथार्थतः उसके दरबार में गए, तो इसके पहले और यदि उनका जन्म सं० १६९१ में ही मानें, तो भी उस समय उनकी अवस्था २४ वर्ष से अधिक नहीं हो सकती और इस छोटी-सी अवस्था में जिस सिद्धि का उल्लेख है, वह अनुमान-सिद्ध नहीं है ।—लेखक

ग्रंथों का मिलान न किया जाय, निश्चय-रूप से कुछ नहीं कहा जासकता। इनके अतिरिक्त 'विनोद' में तीन ग्रंथों के नाम और दिए हैं—यथा—(१) नरसकेत (२) भक्तिसार (३) हरिप्रकाश टीका (१८३४)। नरसकेत तो प्राय: छापे की अशुद्धि है और शुद्ध शब्द 'नासिकेत' उसके स्थान पर होना चाहिए। 'भक्तिसार' नामक ग्रंथ के रचयिता चरणदासजी किस आधार पर लिखे गए हैं, यह हम नहीं जानते। पर हाँ, यह हम जानते हैं कि इस नाम का एक ग्रंथ 'नागरीदासजी' ने बनाया था (देखो हिंदी-पुस्तकों की खोज की रिपोर्ट १९०६—१९०८, नं० ११८ वीं) यदि 'विनोद' में उल्लिखित चरणदास-कृत भक्तिसार और नागरीदास कृत भक्तिसार का मिलान कर लिया जाय, तो यह संदेह दूर हो जाय। आशा है कि कोई महानुभाव यह करेंगे। इसी प्रकार हरिप्रकाश टीका-कार हरिचरणदास हैं, चरणदास नहीं। हरिचरणदासजी के विषय में लिखते हुए 'विनोद' में स्वयं लिखा है (देखो मि० ब० वि० पृ० ७८१) कि "इन्होंने रसिकप्रिया तथा सतसई की भी अनमोल टीकाएँ की हैं। सतसई की टीका १८३४ में बनी।" इसी सतसई की टीका का नाम हरिप्रकाश टीका है और हमें ऐसा समझ पड़ता है कि हरिचरणदास और चरणदास के नाम में सामंजस्य होने के कारण यह ग्रंथ भूल से चरणदासजी के नाम में लिख गया है।

(६) गंगादास कायस्थ, बलरामपुर पृ० ६६६ मि० ब० वि०—इन महात्मा का किया हुआ गुलिस्ताँ का पद्यानुवाद 'विनोद' में उल्लिखित है। परंतु 'सुमनघन' के पीछे कोष्ठ में "गुलिस्ताँ का भाषानुवाद" इतना और लिख दिया जाय, तो अच्छा होगा। क्योंकि एकाएक 'सुमनघन' नाम सुनकर यह नहीं जान पड़ता कि यह गुलिस्ताँ ऐसे प्रख्यात ग्रंथ का अनुवाद है।

इस कवि के बनाए दो ग्रंथ और हमारे दृष्टिगोचर हुए हैं। पहला तो 'लघुपिंगल' और दूसरा 'पिंगल सेसमत'। इनमें से पहली पुस्तक में ८ पत्र अर्थात् १५ पृष्ठ हैं और प्रत्येक पृष्ठ में १८ पंक्तियाँ हैं। यह ग्रंथ सं० १८७६ में बना। दूसरे ग्रंथ में १५ पत्र अर्थात् ३० पृष्ठ हैं और प्रत्येक पृष्ठ में १८ पंक्तियाँ। इसका रचना-काल सं० १८८१ है। (क्रमश:)

कुबेरनाथ सुकुल

१. नीति और विज्ञान

कृषि-विज्ञान (प्रथम भाग)—लेखक, पं० शीतलाप्रसाद तिवारी; प्रकाशक, रामदयाल अग्रवाल, कटरा, इलाहाबाद; पृष्ठ-संख्या ३५३; मूल्य २), सजिल्द।

कृषि-विज्ञान पर हिंदी-साहित्य में थोड़ी ही सी पुस्तकें हैं, किंतु धीरे-धीरे यह कमी पूरी हो रही है। इस पुस्तक में लेखक ने केवल भूमि की जुताई का विशेष रूप से उल्लेख किया है। इसके अध्ययन से पाठकों को जुताई के अंतर्गत भिन्न-भिन्न वैज्ञानिक तथा व्यवहारिक सिद्धांतों का ज्ञान हो जायगा। वर्तमान समय में जुताई की क्रिया धरातल के उलट-फेर तक ही परिमित रहती है, कृषक गर्भ-तल की ओर ध्यान नहीं देते। पर इसका कारण क्या है? उनकी निर्धनता। जिसे पेट-भर भोजन ही न मिलेगा, वह उन्नति के साधनों और उपायों पर क्या ध्यान देगा। लेखक कृषि का अनुभूत ज्ञान रखता है, यह बड़ी ख़ुशी की बात है। भिन्न-भिन्न ऋतुओं और फ़सलों के लिये किस प्रकार की जुताई की ज़रूरत है, इस विषय पर बड़े विस्तार से विवेचना की गई है। कई प्रकार के हलों के नमूने भी दिए गए हैं। अंत में मोटर से चलनेवाले विशाल हलों का वर्णन है, जो एक-एक दिन २०-२० एकड़ ज़मीन जोत सकते हैं। पुस्तक के आदि में श्रीहरिनारायण वाथम एम्० ए० का अनुवचन है। पुस्तक कृषि-विभाग के डाइरेक्टर को समर्पण की गई है। शायद इससे पुस्तक का प्रचार अधिक हो। पुस्तक की भाषा के विषय में, हमें यही कहना है कि यदि कॉलेजों के विद्यार्थियों के लिये लिखी गई है, तो ठीक है, पर कृषकों के लिये है, तो इससे सरल होनी चाहिए थी।

× × ×

क्षार-निर्माण-विज्ञान—लेखक, स्वामी हरिशरणानंद वैद्य; प्रकाशक, दी पंजाब आयुर्वेदिक फार्मेसी, अमृतसर; पृष्ठ-संख्या ७०, मूल्य ||)

हमारे यहाँ क्षारों का ज्ञान बहुत पुराना है, किंतु जितना ज्ञान पुराना है उतनी ही उसके बनाने की विधि भी पुरानी है। इस पुस्तक में लेखक ने कई प्रकार के क्षारों के बनाने की नई विधियाँ लिखी हैं। पुस्तक उपयोगी है।

× × ×

मानवीय शक्तियों का परिचय और उनका विकास—लेखक और प्रकाशक, महाशय प्रियरत्न (आर्य), एस्प्लेनेड रोड देहली; पृष्ठ-संख्या ५२; मूल्य |)||

इस छोटी-सी पुस्तक में हिप्नाटिज़्म, प्रेतवाद आदि विषयों पर गुरु-शिष्य संवादों द्वारा प्रकाश डाला गया है।

× × ×

आगे बढ़ो—लेखक, श्रीबुद्धिनाथ झा "कैरव"; प्रकाशक, श्रीसागर शर्मा; व्यवस्थापक, प्रमोद-पुस्तक-माला, कोढ़ा, जिला पुर्णिया; पृष्ठ-संख्या ६९; मूल्य ||)

लेखक के विद्यार्थी-अवस्था का किया हुआ किसी अँगरेज़ी पुस्तक का यह भावानुवाद है। लेखक को अब मूल-लेखक का नाम भी याद नहीं, पर इतना जानते है कि वह अमेरिका-निवासी है और इस प्रकार की कई पुस्तकें लिख चुका है। शायद मारडेन हो। स्कूली लड़के का किया हुआ अनुवाद जितना सुंदर हो सकता है, वैसा ही यह अनुवाद भी हुआ है। एक सुंदर पुस्तक की मिट्टी ख़राब की गई है।

× × ×

२ सामाजिक

शुद्धि-चंद्रोदय—लेखक, ? कुँवर चाँदकरण शारदा, बी० ए०, एल-एल० बी०; प्रकाशक, वैदिक यंत्रालय, अजमेर, पृष्ठ-संख्या २८६; मूल्य १॥)।

बड़ी सामयिक पुस्तक है और बड़ी खोज से लिखी गई है। लेखक ने प्रमाणों द्वारा सिद्ध किया है कि शुद्धि की प्रथा सनातन है। हिंदू-काल में ही नहीं, पठानों और मुग़लों के ज़माने में भी शुद्धियाँ बराबर होती रहीं। इसके बाद भिन्न-भिन्न प्रांतों में शुद्धि के प्रचार-कार्य का सिंहावलोकन किया गया है और प्रमुख हिंदू-नेताओं के व्याख्यानों तथा शास्त्रों से इस विषय की पुष्टि की गई है। पुस्तक में सादे और तिरंगे कई चित्र दिए गए हैं।

× × ×

पाश्चात्य संसार और भारतवर्ष (पूर्वार्ध) लेखक, देवकीनन्दन विभव; प्रकाशक, भारतीय साहित्य-समिति, बेलनगंज, आगरा; पृष्ठ-संख्या १८०; मूल्य १), सजिल्द।

मिस कैथराइन मेयो की "मदर इंडिया" नामक पुस्तक बहुत प्रसिद्ध हो चुकी है। उसमें भारत के सामाजिक अनाचार, स्वास्थ्य, आचार-विचार आदि की ख़ूब दिल खोलकर निंदा की गई है। यह पुस्तक उसी ग्रंथ के पूर्वार्ध का हिंदी अनुवाद है। आरंभ में एक भूमिका देकर लेखक महोदय ने मिस मेयो के आक्षेपों की विवेचना की है और उनका उत्तर भी दिया है। अनुवाद सुबोध है। हाँ, छपाई जल्दी के कारण अच्छी नहीं हो सकी। १) में पुस्तक महँगी नहीं।

× × ×

गो-सर्वस्व—मुद्रक और प्रकाशक, श्रीराम-प्रेस, कोसी; पृष्ठ-संख्या ६६; मूल्य ।≶)।

पुस्तक है तो छोटी-सी, पर बहुत उपयोगी। गउओं के विषय में जिन-जिन बातों के जानने की ज़रूरत है, प्रायः सभी बातें यहाँ लिख दी गई हैं—उत्तम गाय और उत्तम साँड़ के क्या लक्षण हैं, भारतवर्ष में गाय की कौन-कौन-सी जातियाँ हैं और उनके गुण-दोष क्या हैं, गो-जाति की उन्नति कैसे हो सकती है, प्रसव-काल में गउओं की सेवा कैसे करनी चाहिए, उनकी शरीर-रक्षा, भोजन, रोग आदि सभी विषयों पर प्रकाश डाला गया है। ऐसा ज्ञात पड़ता है कि गुमनाम लेखक को गउओं के विषय में अच्छा अनुभव है। बहुत अच्छा हो, यदि हमारे प्रांत के ज़िला-बोर्ड इस पुस्तक की कापियाँ देहातों में बँटवावें। इससे यथेष्ट उपकार होगा।

× × ×

गोरक्षा—लेखक, मनमोहनलाल वर्मा, बी० ए०, छिंदवाड़ा, भूतपूर्व सम्पादक 'तिलक'; पृष्ठ-संख्या ७२।

गो-रक्षा पर ऐसी सुंदर, सजीव, तर्क-पूर्ण पुस्तक लिखकर लेखक ने गउओं पर और भारतीय जनता के साथ बड़ा उपकार किया है। आप इसे बिना मूल्य बाँटते हैं। जो व्यक्ति चाहे, इसे गो-रक्षा के निमित्त छाप सकता है। आप भारत में गो-हत्या का पूर्ण निषेध कराना चाहते हैं, इसके लिये आपने एक विस्तृत प्रोग्राम भी तैयार किया है। जिसमें देश-व्यापी आंदोलन, क़ानूनी सहायता, चरोखर का प्रबंध आदि मुख्य हैं। अगर हम शुद्ध, निष्कपट हृदय से इस प्रोग्राम पर अमल करें, उसमें द्वेष, विजय-गर्व और धार्मिक विवाद के भावों को न मिलने दें, तो उद्देश्य की बड़ी हद तक पूर्ति हो सकती है।

× × ×

३. कविता

संगीत-सुधा—लेखक, अध्यापक मुरारिलाल शर्मा; आकार छोटा; पृष्ठ-संख्या ५२; छपाई और कागज अच्छा; मूल्य ।≶); अध्यापक मुरारिलाल शर्मा, हरसदन, मेरठ के पते से प्राप्य।

इसमें भिन्न-भिन्न कविनाओं की बहुत-सी कविताओं का संग्रह है। इस संग्रह का यह दूसरा संस्करण है। इससे

जान पड़ता है कि संग्रह लोक-प्रिय हुआ है। बालकों के लिये संग्रह उपयोगी है।

× × ×

हिंदू—रचयिता, श्रीमैथिलीशरणजी गुप्त ; आकार छोटा ; पृष्ठ-संख्या ३३३ ; कागज और छपाई उत्तम ; विशिष्ट संस्करण की सजिल्द एक प्रति का मूल्य १।) ; साहित्य-सदन, चिरगाँव (झाँसी) द्वारा प्रकाशित, और वहीं से प्राप्य।

इस पुस्तिका में कविवर श्रीमैथिलीशरणजी गुप्त की प्रायः १०० छोटी-छोटी कविताएँ संगृहीत हैं। गुप्तजी की रचना खूब सुंदर होती है। वह लोक-प्रिय भी खूब है। प्रस्तुत संग्रह में भी गुप्तजी की लेखनी का चमत्कार मौजूद है। विश्वास है, इस पुस्तक के पाठ से हिंदू-भावुकों का कल्याण होगा।

× × ×

रहिमन-शतक—संपादक तथा अनुवादक, प० शिवशंकर मिश्र 'विशारद', अध्यापक गंगापुर काशी ; प्रकाशक, रामदयाल अगरवाला, कटरा, प्रयाग ; पृष्ठ-संख्या ६४ ; छपाई और कागज साधारण ; मूल्य ।-) , प्रकाशक से प्राप्य।

इस पुस्तक में सुकवि रहीम के १०० दोहों का अनुवाद है, एवं कुछ टिप्पणियाँ भी। अनुवाद सर्वत्र निर्दोष नहीं है यद्यपि अधिकांश में अच्छा हुआ है। टिप्पणियों का भी यही हाल है। रहीम की कविता के रसिक सज्जनों को इस पुस्तक को पढ़ना चाहिए।

× × ×

आँखमिचौनी—संपादक, ब्रह्मचारी इन्द्र शास्त्री ; प्रकाशक, रामदयाल अगरवाला, बुकसेलर एंड पब्लिशर, कटरा, प्रयाग ; पृष्ठ-संख्या ६६ ; छपाई साधारण ; कागज अच्छा ; मूल्य ।=) ; प्रकाशक से प्राप्य।

यह ५४ कविताओं का संग्रह है। आजकल जिन लोगों की कविताएँ पत्र-पत्रिकाओं में प्रायः छपा करती हैं, प्रायः इस संग्रह में भी उन्हीं की कविताएँ संगृहीत हैं। कविताएँ खड़ी बोली की हैं। नए ढंग की कविता पढ़नेवालों के यह काम की चीज़ है।

× × ×

हिंदी-करीमा—अनुवादक, इकबाल वर्मा 'सेहर' ; प्रकाशक, वैद्य शिवनारायण मिश्र, भिषग्रत्न, प्रकाश-पुस्तकालय, कानपुर ; पृष्ठ-संख्या ३६ ; मूल्य ।-) ; छपाई और कागज उत्कृष्ट ; प्रकाशक से प्राप्य।

इस पुस्तक में फ़ारसी की प्रसिद्ध पुस्तक करीमा का अनुवाद है। इसकी भूमिका श्रीयुत प्रेमचंदजी ने लिखी है। अनुवाद कैसा हुआ है, इसके देखने के लिये कुछ पंक्तियाँ नीचे दी जाती हैं।

> सावधान ऐ पुत्र ! कभी मत गर्वान्वित हो मन तेरा ;
> उसी गर्व के हाथ एक दिन होगा घोर पतन तेरा।
> नहीं अभीष्ट कभी गर्वान्वित ज्ञानी आत्मा का होना ;
> ज्ञानवान यदि गर्वान्वित हो है विचित्र ऐसा होना।

करीमा के एक अच्छे हिंदी-अनुवाद की आवश्यकता थी, वह अब पूरी हो गई। हम इस पुस्तक का सादर स्वागत करते हैं।

× × ×

८. प्राप्ति-स्वीकार

निम्न-लिखित पुस्तकें भी प्राप्त हुई हैं—

१. श्रीराष्ट्रीय विद्या-भवन की नियमावली।
२. स्वर्ग से (स्वामी रामतीर्थ के उपदेश)।
३. वैदिक धर्म-रहस्य।
४. हिंदू-गायन (प्रथम भाग)।
५. श्राद्ध-गुण-विवरण।
६. आपद्म-कथा।
७. ज्योतिष-शास्त्र-प्रवेशिका।
८. अभिलाप-बत्तीसी।
९. श्रीयुगल-विनोद।
१०. दुःख-गाथा।
११. मुकुंद-पद्धति।
१२. श्रीमोहनजीवनादर्श।

१. 'मेरी भारतीय बहिनों के लिये'

मती ऐन मार्गरेट होमग्रेन (Ann Margaret Holmgren) एक स्वीडन की विदुषी महिला हैं, जिन्होंने उस देश की स्त्रियों को वोट का स्वत्व दिलाने के लिये घोर परिश्रम किया है और इसीलिये स्वीडन में वह स्त्रियों के वोटाधिकार की जन्मदात्री कहलाती हैं। मि० कालीदास नाग ने अपने एक मित्र द्वारा, श्रीमती होमग्रेन से अपने कार्य के सफलीभूत होने के बारे में कुछ लिखने को कहा था। श्रीमतीजी ने मि० नाग के प्रत्युत्तर में एक पत्र भेजा, जो 'माडर्न रिव्यू' में छपा था। उसी का अनुवाद नीचे दिया जाता है। आशा है कि भारतीय समाज-सेवी श्रीमती होमग्रेन के अनुभव से कुछ लाभ उठायेंगे।

प्यारी भारतीय बहिनो! तुमको कुछ लिखने के लिये मुझको कुछ अवसर प्राप्त हुआ है, इससे मुझे जो प्रसन्नता हुई है, उसकी तुम कल्पना भी नहीं कर सकतीं। मिसेज़ बूटेन्शोन (Mrs Butenschon) ने जो कि मि० नाग की मित्र हैं, मुझसे अनुरोध किया है कि मैं तुमसे कुछ वृत्तांत अपने और स्त्रियों को वोट देने के अधिकार के बारे में कहूँ, क्योंकि मैं स्वीडन में स्त्रियों को वोट का अधिकार दिलाने की जन्मदात्री कहलाती हूँ। मैं आशा करती हूँ कि मेरा यह कार्य-विवरण तुम्हारा कुछ सहायक होगा। यद्यपि मैं मानती हूँ कि मेरे लिये यह बात और अधिक सुखकर होती, यदि मैं अन्य स्त्रियों के कार्य के बारे में लिखती।

मैं सन १८५० ई० में एक गाँव के एक कुलीन घराने में उत्पन्न हुई थी। मेरे माता-पिता एक प्राचीन अमीर कुल के थे और मेरे पिता अपनी पैतृक संपत्ति का प्रबंध हाथ में लेने से पहले राजनीतिज्ञ रह चुके थे, और इसीलिये दूसरे देशवासियों से उनको सहानुभूति थी। यद्यपि राजनीति में वे अनुदार-दल के थे, पर स्त्रियों के अधिकार से संबंध रखनेवाली बातों में वे अपने समय से बहुत आगे थे। उन्हीं से मैंने राजनीति सीखी और मनुष्य-मात्र से प्रेम करने लगी। १७ वर्ष की आयु में वे देवलोक को चले गए। वह मेरे प्यारे पिता ही नहीं थे वरन् मेरे सबसे श्रेष्ठ सगे भी थे, और हम लोगों की आयु में ५० वर्ष का अंतर होते हुए भी इस प्रकार का आपस में संबंध संभव था।

१९ वर्ष की आयु में मैंने उपशाला (Upsala) विद्यालय के प्राणि-शास्त्र के प्रोफ़ेसर से विवाह किया।

वे बहुत ही चतुर और सत्यप्रिय मनुष्य थे। उन्होंने ही मेरे मस्तिष्क पर यह प्रभाव डाला कि मैं जीवन को एक उदार-दृष्टि से देखने लगी। इसी विचार को मैंने सदा से अपनाया है और आयु की वृद्धि के साथ-साथ यह विचार और दृढ़ होता जाता है।

मैं नौ बालकों की माता रह चुकी हूँ। इतना बड़ा वंश और उसके ऊपर एक बड़ी गृहस्थी के सारे प्रबंध का बोझ, एक स्त्री के लिये इतना ही बहुत हो जाता है और मुझे कभी-कभी यह असर भी जाता था। गृहस्थी के अन्य कार्यों के साथ-साथ हमारे यहाँ विद्यालय के विद्यार्थियों का अर्द्ध मासिक भोज भी होता था। परंतु भौतिक चिंताओं के भार से मैं अपने को दबने नहीं देती थी, बल्कि संगीत-साहित्य तथा आध्यात्मिक पुस्तकों द्वारा मैं अपनी आत्मा के लिये शांति प्राप्त कर लेती थी। मेरे आत्मिक जीवन की उन्नति के लिये नॉरवे के परलोकवासी कवि और संपादक (Bjornst jerne Bjornson) और उनकी पत्नी की मित्रता बहुत अधिक लाभदायक सिद्ध हुई है।

मुझको यह बात अवश्य मान लेना चाहिए कि अधिकतर पुरुष ही ऐसे रहे हैं, जिनका प्रभाव मेरी आत्मिक उन्नति पर अधिक रहा है। इनमें केवल दो स्त्रियाँ हैं। एक मेरी बहन हैं, जो कि मेरे जीवन-भर मेरी सहायक रही हैं और दूसरी प्रसिद्ध लेखिका एलनकी (Ellenkey) हैं।

मेरे विचारों की उन्नति का अधिकतर श्रेय नोर्मन को है। उनका 'स्त्री तथा समाज में उसका स्थान' के बारे में जो विश्वास था, उससे मुझको अपनी शक्ति पर वह भरोसा हो गया, जिसकी मुझमें कमी थी; और यही गुण ऐसे मनुष्य के लिये, जो जनता में वक्तृता देना चाहता है, बहुत अधिक आवश्यकीय है। बहुत समय तक मेरी यह आंतरिक धारणा थी कि मैं किसी कार्य के योग्य नहीं हूँ।

अपने स्वामी के मृत्यु के चार वर्ष पश्चात् मैं स्वीडन की राजधानी स्टॉकहोम में बस गई। सन् १९०१ में मुझको स्त्रियों की शांति-सभा (Women's Rease Association) का, सभापति चुना गया। इसके दूसरे ही वर्ष मेरे ऊपर स्त्रियों को वोटाधिकार दिलाने की संस्था (Woman suffrage League) का बहुत-सा भार आ पड़ा। इस प्रश्न ने उस समय एक उग्र-रूप धारण कर लिया था, क्योंकि पार्लियामेंट में एक सदस्य ने स्त्रियों को वोट का अधिकार देने के आशय का एक बिल पेश किया था। स्त्रियों को वोटाधिकार दिलाने की एक सभा बनाई गई, जिसकी मैं उपसभापति हुई। अपने कार्य को पूर्ण करने के हेतु यह अत्यंत आवश्यक था कि सारे देश की स्त्रियों की शक्ति और सहानुभूति एकत्र की जावे और इसके लिये घोर परिश्रम की ज़रूरत थी। परंतु बिना धन के और एक ऐसे व्यक्ति के, जो सारे देश में भ्रमण कर सके, उनकी कठिनाइयों को मैंने समझा और इसलिये मुझको अपने कार्य में और भी दृढ़ता से लग जाना पड़ा। मेरे व्याख्यानों को श्रोता और समालोचक सभी बड़े ध्यान से सुनते तथा उन पर विचार करते थे। यहाँ तक कि अनुदार दल के समाचारपत्र तक कभी कोई ऐसी बात नहीं लिखते थे, जिससे यह प्रतीत होता कि वे मेरे विरुद्ध हैं। मैं बड़ी सावधानी से ऐसी बात नहीं कहती जिससे अनधिकार चेष्टा प्रतीत होती अथवा जो किसी को बुरी मालूम होती। मैं अपने आंतरिक दृढ़ विश्वास के साथ केवल एक बात का संदेश सबको सुनाती और वह था स्त्रियों के लिये वोट का द्वार खोल देना। अपने प्रयत्न से मैं बहुत से सहयोगी बनाने में समर्थ हुई और सचमुच ६० भिन्न-भिन्न स्थानों में सभाएँ बन गईं।

सन् १९०३ में, जब कि मैं स्वीडन के सबसे उत्तरी भाग में व्याख्यान देने का आयोजन कर रही थी, उस समय मैंने रेलवे के एक कर्मचारी से अपनी यात्रा के विषय में सलाह ली। जब उसने यह सुना कि मैं जाड़े के आरंभ में, ध्रुव के वृत्त से ऊपर यात्रा करने का विचार कर रही हूँ, तो वह बहुत आश्चर्य में पड़ गया। उसने मुझे चेतना दी कि इस ऋतु में ऐसे देश में बहुत संभव है कि आप एक निर्जन स्थान में कई दिनों तक बर्फ़ से ढकी पड़ी रहें। उसने एक बात का और भी भय दिखलाया कि थोड़े ही दिन हुए जब जहाज़ के सैनिकों को ट्रेन में ले जाते समय कभी-कभी बड़े-बड़े दंगे भी हो चुके हैं। और उसने यह कहकर अपने कथन को समाप्त किया कि वर्ष के इस भाग में स्वयं शैतान भी यात्रा करने का साहस नहीं करेगा।

परंतु उसी समय देश की राजनैतिक परिस्थिति ऐसी थी कि जो कुछ करना हो, वह जल्दी करना चाहिए था। उस समय यह बात किसी के ध्यान में भी नहीं आ सकती थी कि हमको अपने उद्देश्य में सफलता प्राप्त करने के लिये १२ वर्ष तक ठहरना पड़ेगा।

मैंने अपने को सिर से पैर तक फिर से ढकने का प्रबंध किया और भोजन के पदार्थों से एक टोकरी भी भर ली। गाड़ी चली और मार्ग में किसी प्रकार की रुकावट नहीं हुई। केवल एक स्थान पर गाड़ी को लगभग १ घंटे रुकना पड़ा, क्योंकि रेल की राह में बारहसिंघों का एक झुंड पड़ा हुआ था। घोर अंधकार और कटकटाती ठंड में बारह घंटे की यह यात्रा और सब कुछ थी, परंतु चित्त प्रसन्न करनेवाली न थी। मगर इस बात की क्या चिंता जब कि मेरी आत्मा में स्त्रियों के पक्ष की सत्यता की अग्नि जल रही थी। इस कष्टप्रद यात्रा का फल भी मुझे शीघ्र ही भुगतना पड़ा, क्योंकि इसके पश्चात् मैं किसी प्रकार की श्रमशील यात्रा करने के सर्वथा अयोग्य हो गई।

इन वर्षों में बहुत-से व्याख्यानदाता निकल पड़े, और भिन्न-भिन्न स्थानों में लगभग २५० सभाएँ स्थापित हो गईं। मुझको फिर बहुत-से ऐसे प्रमाण मिले कि लोग मुझको देखना और मुझसे कुछ सुनना चाहते हैं।

समय और मनुष्य में कितने वेग से परिवर्तन होता है? जब मैं अपने परिश्रम के अतीत वर्षों की ओर दृष्टि-पात करती हूँ, तो मेरा हृदय अपने देश के उन स्त्री और पुरुषों के प्रोत्साहन के लिये, जो उन्होंने उस समय दिया, धन्यवाद से भर आता है। मेरे साथी कार्यकर्ताओं को बड़े संतोष से काम लेना पड़ा। मैं इस बात को जानती हूँ कि अब मुझको ऐसे साथियों के साथ कार्य करना पड़ता है, जो मुझसे भिन्न विचार रखते हैं, तब मैं कुछ नहीं कर सकती। मैं अपनी शक्तियों को पूर्णतया तभी किसी कार्य में लगा सकती हूँ, जब कि मेरे सम्मुख किसी प्रकार की रुकावट उपस्थित न की जावे। मेरे लिये स्वतंत्रता और सत्य अत्यंत आवश्यक है और इसी-लिये व्यक्तियों तथा राष्ट्रों में, मैं जानती हूँ कि यह भावनाएँ होती हैं और उनका आदर करती हूँ। मैं अब भी स्त्रियों के अधिकार के लिये और उनको पुरुषों के समान बनाने के लिये उत्साह से कार्य करती हूँ, परंतु इस आदर्श को प्राप्त करने के लिये हमको अभी बहुत दूर जाना है और इसमें स्त्रियों की उन्नति सबसे अधिक आवश्यक है।

मैं यह चाहती थी कि वोट का यह बड़ा संगठन, स्त्रियों की एक विराट् सभा के रूप में जीवित रहता, परंतु और लोग इस प्रस्ताव से सहमत नहीं थे और इसलिये संगठन के सब केंद्र मृत्यु को प्राप्त हो गए। मुझे इससे बड़ा दुःख है और जब तक जीवित रहूँगी, इस बात का दुःख रहेगा। स्त्रियाँ जब तक संगठन के द्वारा एकत्र होना नहीं सीखेंगी, तब तक वे कोई वृहत् कार्य नहीं कर सकतीं। वे मनुष्य-समाज के विशाल हृदय में कोई परिवर्तन नहीं कर सकेंगी अर्थात् युद्ध और अत्याचार को नहीं रोक सकेंगी।

यदि संसार की सब स्त्रियाँ शांति और शुभ इच्छा के लिये प्रीति और उपकार के सहयोग में बँध जायँ, तब हम लोग मातृत्व से भी महान् कार्य करने में सफल हो सकेंगी।

अपने आंतरिक हृदय से मैं तुम्हारे स्वतंत्रता के कार्य में सफलता चाहती हूँ।

चमनलाल गर्ग

× × ×

२ निर्मोही संसार

निर्मोही संसार ज़रा भी नहीं हृदय में पीड़ा!
बेहोशी में विकल वेदना से करते यों क्रीड़ा!
दुखिया के घायल घावों पर निर्दय ठेस लगाते—
हृदय हीन आती न ज़रा उफ़ तेरे मन में व्रीड़ा!
सो लेने दे ज़रा हृदय की गहरी मूक व्यथाएँ;
क्या पाएगा अरे जानकर मेरी करुण कथाएँ।

रामप्यारी देवी वर्मा

१ ढेला और पत्ता

एक ढेला था पड़ा मैदान में ;
एक पत्ता भी वहीं पै आ गिरा ।
साथ वे दोनों बहुत दिन तक रहे
मित्रता उनमें इसी से हो गई ।
एक दिन पत्ते ने ढेले से कहा,—
'साथ ही हम तुम रहें यों सर्वदा ।
आ पड़ेगी हम पे जब कोई विपद् ;
एक को देगा मदद तब दूसरा ।"
सुनके ढेले ने कहा,—"हाँ ठीक है ;
जायगी तुमको न ले आँधी उड़ा ।
वह जभी चलने लगेगी जोर से ;
बस, मैं तुम पै बैठ जाऊँगा तभी ।"
"और मैं जल से तुम्हें लूँगा बचा"
पात ने उत्तर दिया आनंद से ।
"जब बरसने वह लगेगा तब मैं जा ;
बैठ जाऊँगा तुम्हारी पीठ पै ।"
उसको गलने से बचाता पात था ;
इसको उड़ने से तथा ढेला सदा ।
एक की करके मदद यों दूसरा ;
मित्रता उनने निभाई खूब ही ।
पर अचानक एक दिन हलचल मची
आँधी-पानी क्योंकि आया साथ ही ।
बैठता था कूद ढेला पात पे ;
ले उड़े जिससे न आँधी झट उसे ।
और उड़ ढेले पे पत्ता बैठता,
जल की चोटों से न वह जिससे गले ।
यों उछलते-कूदते बस शीघ्र ही,
उड़ गया पात और ढेला गल गया ।

श्रीरामलोचन शर्मा 'कंटक'

× × ×

२ कसरत करो

एक राजा था । वह धन के मद से इतना फूला था कि चार पग भी पैदल चलना, वह अपना अपमान समझता था । जब वह अपने महल से दरबार में जाने के लिये निकलता था, तो पालकी पर ही निकलता था । खाने-पीने, नित्य क्रिया करने या किसी साधारण-से-साधारण काम के लिये भी वह बिना किसी सवारी के नहीं निकलता था । अपने जीवन में वह कभी भी कुछ दूर तक पैदल नहीं चला था । इसी में वह अपनी शान समझता था । इस प्रकार वह बड़ा आलसी हो

गया। कुछ दिनों के बाद तो उसका महल से निकलना भी मुश्किल हो गया। सब काम मंत्री और अन्य कर्मचारियों के भरोसे छोड़कर वह अपने रनिवास में पड़ा रहता था। राजा का भोजन भी राजसी और तामसी चीज़ों से परिपूर्ण रहा करता था। वह सदा अच्छी-अच्छी चीज़ें खाता था और महल में पड़ा रहता था।

इस प्रकार बहुत दिनों तक चुपचाप महल में रहने के कारण राजा अस्वस्थ होने लगा। उसकी पाचन-शक्ति बिगड़ने लगी। यहाँ तक कि कुछ दिनों में उसकी भूख भी जाती रही ; आँतें कम-ज़ोर पड़ गईं। राजा कुछ भी खाता था, तो पचता नहीं था। उसका शरीर जर्जर हो गया।

राजा के यहाँ वैद्यों का जमघट लगा रहता था। सभी वैद्य जानते थे कि राजा पौष्टिक पदार्थ भोजन करता है, और चुपचाप पड़ा रहता है—इसीलिये उसकी यह दशा हुई है। परंतु कोई भी वैद्य डर के मारे राजा को यह सलाह न देता था कि आप कुछ टहला कीजिए, या कुछ कसरत कीजिए, जिसमें आपकी आँतों की कमज़ोरी दूर हो जाय। किसी-किसी ने हिम्मत करके राजा को इस बात की सलाह भी दी, तो वे राज्य से निकाल दिए गए। एक वैद्य तो क़ैद भी कर लिया गया। मंत्री बेचारे क्या करें—राजाज्ञा का उल्लंघन कैसे करें। इस प्रकार वैद्य लोग भी चुपचाप दवा देते जाते थे—राजा के डर के मारे कोई भी न तो उन्हें पथ्य बतलाता था और न टहलने की आवश्यकता बताता था। उन्हें जो कुछ भाता था, वे खाते थे और पड़े रहते थे। अंत में उनका स्वास्थ्य इतना बिगड़ गया कि वे बैठ भी नहीं सकते थे। अब वैद्यों पर और भी फटकार पड़ने लगी। परंतु वे बेचारे करें क्या ? उनका तो हाल उस मनुष्य के समान हो रहा था, जिसके पीछे तो बाघ हो और आगे एक भयानक खाईं। "भइ गति साँप छछूँदर केरी।"

× × ×

कुछ दिनों के बाद एक दूसरे राज्य का वैद्य संयोग-वश वहाँ आ गया। सब उसे राजा के पास ले गए। राजा के रोग का कारण जब उसे ज्ञान हुआ, तो वह चिंता में निमग्न हो गया। वह कुछ देर तक सोचता रहा। तब तक उसे एक उपाय सूझा, उसकी बाछें खिल गईं। उसने मंत्री से नगर के बाहर मैदान में एक बड़ा कमरा तैयार करने को कहा। कमरा बनकर तैयार हो गया। वैद्य ने उस कमरे की नीचे की सतह पर सर्वत्र आग जलवा दी—कहीं एक इंच भी स्थान बाक़ी न रखा। जब आग ख़ूब देर तक जल चुकी और कमरे की सतह ख़ूब गर्म हो गई, तब उसने मंत्री से शीघ्र आग बाहर निकलवाने की प्रार्थना की। बहुत-से मनुष्यों ने जूता पहनकर कमरे में प्रवेश किया और सब आग को बाहर निकाल दिया। कमरे में झाड़ू लगा दिया गया।

अब राजा को पालकी पर चढ़ाकर लोग वहाँ तक ले गए। वैद्यजी ने राजा से कहा—आपको बिना जूता पहने उस कमरे में चलना होगा—वहीं आपके रोग की जाँच की जायगी। राजा तैयार हो गया। उसे क्या मालूम था कि कमरे की ज़मीन गरम है। जब रोग से मनुष्य एकदम प्रमित हो जाता है, तो उससे छुटकारा पाने के लिये वह कठिन-से-कठिन उपाय का भी अवलंबन करने के लिये तैयार हो जाता है। उसे आरोग्य लाभ करने की उत्कट अभिलाषा हो जाती है। यही दशा राजा की भी

थी। वह अपने रोग से मुक्त होने के लिये बहुत उतावला हो गया था। वैद्यजी ने मंत्री से कहा कि इस कमरे के निकट कोई भी न रहने पावे। सब लोग दूर हटा दिए गए। मंत्री स्वय भी हट गए। अब वहाँ केवल राजा और वैद्य रह गए। वैद्य के कहे अनुसार राजा उस कमरे के दरवाजे तक पैदल ही किसी प्रकार गए। पैरो मे जूता नही था। वैद्यजी ने राजा से कहा—श्रीमान् अदर चलें। राजा के भीतर जाते ही वैद्य ने बाहर से दरवाजा बन्द कर दिया। गरम सतह पर राजा का पैर जलने लगा। वे बाहर आने लगे, परतु दरवाजा तो पहले ही बंद हो गया था। अब राजा उसी गरम कमरे में कूदने और दौड़ने लगे। उस समय न जाने उनमें कहाँ से बल आ गया था। उस वैद्य को उन्होंने कई गालियाँ सुनाई। बहुत दौड़ने और चिल्लानेपर भी कोई नहीं आया, क्योंकि वैद्य ने तो पहले ही सबको वहाँ से दूर हटा दिया था। जब राजा का शरीर दौड़ते दौड़ते शिथिल हो चला, तो वैद्य ने दरवाजा खोल दिया। राजा दौड़कर बाहर आए और धड़ाम से पृथ्वी पर गिर गए। कुछ देर के लिये उन्हे बेहोशी हो आई। अब वैद्यजी वहाँ से चपत हो गए।

जब बहुत देर हो गई, तो मत्री को वैद्य पर कुछ शक हुआ। वे स्वयं वहाँ गये और राजा को बेहोश पाया। कहार बुलाए गए और राजा पालकी पर लिटाकर महल में लाए गए। बहुत देर के बाद राजा को होश हुआ, तो उन्होंने मत्री से उस वैद्य की सब करतूत कह सुनाई और उसकी खोज करने को कहा। राजा का क्रोध उस वैद्य पर बहुत था। यदि वे उसे उस समय पा जाते, तो अवश्य फाँसी पर चढ़वा देते। मंत्री ने उस वैद्य की बहुत खोज की, परंतु कहीं भी उसका पता न चला। इस काम के लिये और भी दूत भेजे गए।

दूसरे दिन राजा को अपना शरीर कुछ हल्का मालूम हुआ। उन्हें खुलासा दस्त हुआ, भूख भी खूब लगी, शरीर मे कुछ ताकत मालूम होने लगी। इसका कारण क्या था? राजा सोचने लगे। उन्हे यह समझते देर न लगी कि कल गरम कमरे मे दौड़ना ही इसका कारण है। अब उन्होंने कसरत और टहलने के महत्त्व को समझा। उन्हे अपने पर ग्लानि हुई। उन्हे अब उस वैद्य पर श्रद्धा हो गई, जिसे एक दिन पहले वे फाँसी दे देने का निश्चय कर चुके थे। राजा आज बहुत कोशिश करके दरबार में पैदल ही आए। मत्री के आश्चर्य का ठिकाना न था। जो राजा स्वस्थ रहने पर भी कभी एक पग पैदल नहीं चले थे, वे आज बीमारी की हालत मे महल से दरबार तक पैदल कैसे आए। सबो को आश्चर्य हुआ। राजा ने सूचना निकाली कि—"जो कोई उस वैद्य को ढूँढ निकालेगा, उसे मै अपना आधा राज्य दे दूँगा। उसने मुझे बड़ी अच्छी शिक्षा दी है। मै अब तक राज्य के मद मे फूला हुआ था—परंतु उसने मुझे बतला दिया कि राज्य और धन से भी बढ़कर कोई चीज इस संसार मे है और वह स्वास्थ्य है। .."

राजा का बोलना अभी समाप्त भी नहीं हुआ था कि एक ओर से एक मनुष्य आता हुआ दिखलाई दिया। ये और कोई नहीं, वही वैद्यजी थे जिनको ढूँढ निकालने के लिये कल बहुत-से दूत छोड़े गए थे। वैद्यजी समझते थे कि राजा पहले तो आपे-से बाहर अवश्य हो जायेंगे, परतु जब उन्हे दौड़ने और टहलने का फ़ायदा मालूम होगा,

तो वे अवश्य मेरी खोज करेंगे। ऐसा विचार वे वेश बदलकर उन्हीं के राज्य में छिपे हुए थे। आज राजा का रंग-ढंग बदला हुआ देखकर प्रकट हुए।

वैद्यजी को देखकर राजा के हर्ष का पारावार न था। उन्होंने उन्हें हृदय में लगा लिया और अपनी बगल में बैठाया। राजा अपना आधा राज्य देने लगे, तो वैद्यजी ने लेने से इनकार किया और कहा कि—"मेरा काम राज्य करने का नहीं है; मुझे तो भरपेट भोजन और कपड़ा मिला करे, यही बहुत है। मैं आप लोगों की सेवा के लिये बराबर तैयार रहूँगा।" उसी दिन से उन्होंने राजा की दवा करना प्रारंभ कर दिया। वे राजा को दोनो समय एक-एक घंटा टहलाते और मोटा खाना खिलाते थे। राजा सानंद उनके कहने के अनुसार कार्य किया करते थे। कुछ दिनों में राजा एकदम स्वस्थ हो गए। अच्छा हो जाने पर भी राजा ने टहलना नहीं छोड़ा और राजसी भोजन तो एकदम त्याग दिया।

बालको! देखो राज्य का सब सुख होते हुए भी राजा स्वास्थ्य के लिये कितना दुखी था। स्वस्थ न रहने के कारण उस राज्य में उसे कोई सुख न मिलता था। इस संसार में स्वास्थ्य ही सब कुछ है। तीनो त्रिभुवन का राज्य भी किसी अस्वस्थ मनुष्य को सुखी नहीं बना सकता, वरन् जो स्वस्थ है, उसे सत्तू भी यदि खाने को मिले, तो वह सुखी है। तुम लोगों को सब बातों से बढ़-कर स्वास्थ्य पर ही ध्यान देना उचित है। तुम कितना भी पढ़ो—बी० ए० और एम्० ए० की डिग्रियाँ प्राप्त करो; परंतु यदि तुम स्वस्थ नहीं हो, तो कभी सुखी नहीं हो सकते। इसलिये लड़कपन से ही पढ़ने के साथ-साथ तुम्हें स्वास्थ्य का भी ध्यान रखना आवश्यक है। यदि तुम स्वस्थ रहोगे, तो तुम्हारा पढ़ना-लिखना भी ठीक से हो सकेगा। अस्वस्थ बालकों का मन पढ़ने-लिखने में भी नहीं लगता। स्वास्थ्य ठीक रखने के लिये पढ़ने के साथ-साथ खेलना और कसरत करना भी अत्यंत आवश्यक है। यदि तुम लड़कपन से ही इस ओर ध्यान दोगे, तो बड़े होने पर इस संसार में बहुत कुछ कर सकोगे। शरीर ही सब कुछ है। शरीर नीरोग रहने पर मनुष्य सब कुछ कर सकता है। निरोगी मनुष्य के समान सुखी इस संसार में कोई भी नहीं हो सकता। सुबह और शाम दोनो समय कुछ-न-कुछ खेलना, कसरत करना, दौड़ना, या टहलना प्रत्येक विद्यार्थी का कर्तव्य है। परंतु इसका मतलब यह कदापि नहीं कि तुम पढ़ना-लिखना छोड़कर खेलने-कूदने में लग जाओ। कहने का मतलब यह है कि पढ़ने के समय पढ़ो और खेलने के समय खेलो। और तभी तुम इस संसार में कुछ कर सकोगे, अन्यथा नहीं।

श्रीजगन्नाथप्रसादसिंह

---
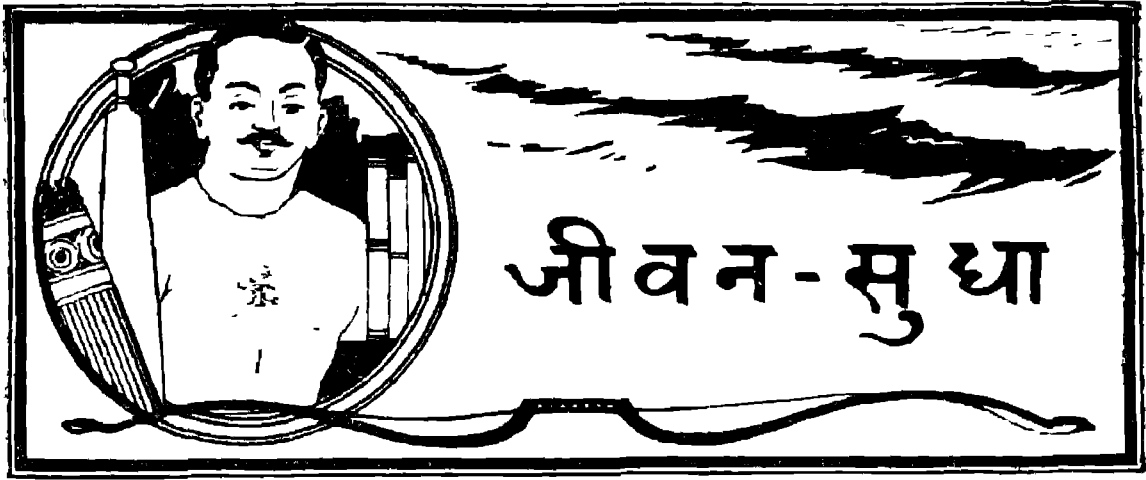
२ गर्मी में पहाड़ पर जाने से क्या लाभ है ?
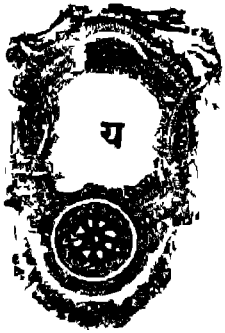
दि समस्त संसार की प्राणियों की हृष्ट-पुष्टता की तुलना की जाय, तो यह तथ्य पाया जायगा कि जिन देशों के वातावरण में गर्मी तथा शीत दोनों का आधिक्य होता है, वहाँ के निवासियों का शरीर अधिक बलिष्ठ होता है। उनका शरीर वातावरण के परिवर्तन को सुगमता से झेल सकता है। सर्दी, गर्मी, शुष्कता, तरी आदि का प्रभाव शरीर पर भी पड़ता है। परंतु शरीर की क्रिया इस प्रकार सचालित है कि वातावरण में अचानक परिवर्तन के कुप्रभाव से अपने को सुरक्षित रखने के हेतु शरीर की क्रिया-प्रक्रिया में आवश्यक परिवर्तन हो जाता है। जिन मनुष्यों में वातावरण के अनुसार शरीर में उचित परिवर्तन नहीं होता, वे गर्मी अथवा सर्दी के आधिक्य का सहन करने में असमर्थ होते हैं। शरीर को स्वस्थ रखने के लिये "अति सर्वत्र वर्जयेत्" का सिद्धांत ही श्रेयस्कर है। अधिक गर्मी से भी शरीर को हानि की संभावना है और अधिक सर्दी से भी ऋतु के अकस्मात् परिवर्तन से भी हानि होती है, कारण कि शरीर को इस प्रकार के परिवर्तन के कुप्रभाव से बचने के लिये सतर्क अथवा सावधान होने का समय नहीं मिलता।

ग्रीष्म-प्रधान देशों में वैशाख-ज्येष्ठ में वायु का ताप शरीर के ताप के बराबर अथवा कभी-कभी उससे भी अधिक हो जाता है। इस कारण शरीर में ताप उत्पन्न करने की क्रिया कुछ स्थगित हो जाती है। इस बाह्य ताप का वेग रोकने के लिये त्वचा में रुधिर का सचालन अधिक होता है, जिससे स्वेद की बहुतायत होता है और इसके सूखने से शरीर की गर्मी अधिक नहीं बढ़ती, शरीर का ताप कुछ बढ़ जाता है और अधिक पसीना आने के कारण मूत्र की मात्रा में कमी हो जाती है। गर्मी के कारण वायु फैलती है और उसका घनत्व कम हो जाता है, इसलिये उचित मात्रा में ओषजन न मिलने के कारण रुधिर का ओषजनीकरण ठीक-ठीक नहीं होता। कारबन-द्विओषित गैस का बहिष्कार भी कम हो जाता है और मूत्र में भी विकृत पदार्थों की कमी हो जाती है। कुनाड़ी की गति मंद होती है और हृदय की कार्यक्षमता में अंतर हो जाता है, भूख कम लगती है और पाचन-शक्ति की प्रबलता भी घट जाती है। संक्षेप में कहा जाय, तो त्वचा के अतिरिक्त शरीर के समस्त अवयवों की क्रियाएँ मंद हो जाती हैं, जिसके परिणाम-रूप में शरीर की तौल हल्की हो जाती है, और मनुष्य के जल्दी ही थक जाने के कारण काम भी कम होता है। अधिक गर्मी हो और किसी व्यक्ति के शरीर में ताप उत्पन्न करने अथवा शांत करने की क्रिया पर उचित अधिकार न हो, तो लू भी लग सकती है।

शीत का प्रभाव इसके ठीक विपरीत होता है, परंतु शीत के आधिक्य से भी हानि होती है। प्रत्येक मनुष्य का अनुभव है कि गर्मी की अपेक्षा शीत-काल में शरीर अधिक स्वस्थ होता है। परंतु गठिया आदि के

रोगियों को शीत हानिकर प्रतीत होता है । भारत के वातावरण में तो न अधिक शीत ही और न अधिक ताप ही उतना हानिकर है, जितना उसका अकस्मात् और सहसा परिवर्तन । निर्धन पुरुषों को जो वस्त्र-विहीन होने के कारण साधारण शीत से भी अपने शरीर की रक्षा नहीं कर सकते, शीत अधिक दुखदायी प्रतीत होती है ।

पहाड़ी देश के वातावरण में, वायु में सील कम होती है और उसकी गति तीव्र । सूर्य का प्रकाश प्रखर होता है और ताप भी कम । वायु शुद्ध होती है और सूर्य की कीटाणु-नाशक रश्मियों की प्रचुरता । पहाड़ी देश की भूमि सूर्य से दिन मे तपित हो जाती है और रात्रि में ठंडी । इस कारण गर्मी मे भी रात्रि को प्रायः बहुत सर्दी पड़ने लगती है । वायु हल्की होती है, परतु रुधिर का ओषजनीकरण ठीक हो जाता है, कारण कि श्वास की गति और उसकी गहनता बढ़ जाती है । फुप्फुस खूब फैलते हैं और कुछ महीने में छाती चौड़ी हो जाती है । भूख बढ़ जाती है और विकृत पदार्थों का बहिष्कार भी अच्छी तरह होता है । पहाड़ी प्रांतों में गर्मी भी अधिक पड़ती है और सर्दी भी । इस कारण पहाड़ियों में शीत तथा उष्णता सहन करने की शक्ति बलवती होती है । जो पहाड़ी प्रदेश समुद्र के पास होता है, वहाँ वर्षा के आधिक्य के कारण सील अधिक होती है जो स्वास्थ्य के लिये उपयुक्त नहीं है ।

समतल भूमि पर रहनेवाले यदि यात्रा के अर्थ किसी पहाड़ी प्रदेश में जाते हैं, तो कुछ व्यक्तियों को हृदय की धड़कन, दमा, थकान, जी घबराना, उद्विग्नता, परिश्रम करने में असमर्थता आदि लक्षण सताने लगते हैं । कुछ और भी अधिक पीड़ित होते हैं । उन्हें शिर-शूल, आलस्य, चक्कर आना, क्षुधा-हानि, वमन आदि के अतिरिक्त नाक, मुँह, आँख आदि से रुधिर-प्रवाह भी हो जाता है । यह पर्वतीय रोग भयंकर भी हो सकता है । परतु यदि पहाड़ की चढ़ाई धीरे-धीरे तथा क्रम-पूर्वक होती है, तो इस प्रकार के रोग की संभावना नहीं रहती । इस कारण पहाड़ी देशों में रेल का न होना कुछ सीमा तक लाभप्रद ही है ।

उपर्युक्त बातों से ज्ञात होगा कि गर्मी के प्रकोप से अथवा तापजनित विकारों से बचने के लिये किसी पहाड़ी देश पर जाना आरोग्यवर्धक है । परंतु अकस्मात् परिवर्तन करना हानिकर है । जो धनवान् हैं और पहाड़ों पर रह सकते हैं, उन्हें ग्रीष्म के आगमन के समय ही पहाड़ पर जाना आवश्यक है और जब वर्षा-ऋतु का अच्छी प्रकार पदार्पण हो जाय, तब लौटना चाहिए । यदि सील न हो, तो वर्षा के बाद । जब कुछ सर्दी पड़ने लगे, तब शिखरों पर से उतरें, तो और भी अच्छा । क्षय-रोग से पीड़ित मनुष्यों के लिये, तो पहाड़ पर जाना अत्यंत लाभदायक है, परंतु समुद्र-तल के निकट स्थित पहाड़ सील होने के कारण उपयुक्त नहीं । खाँसी, दमा, सन्निपात तथा अन्य संक्रामक रोगों के लिये पहाड़ की ऊँचाई हानिकारक है ।

केवल दस-पंद्रह दिवस के लिये पहाड़ पर जाना स्वास्थ्य के लिये लाभकारक नहीं है, किंतु हानिकर ही हो सकता है । गर्मी के दिनों में शिमला, नैनीताल आदि स्थानों में कौंसिल की बैठक होने से मेम्बरों को सरकारी व्यय से पहाड़ों की सैर करने का तो अवसर अवश्य मिलता है, परंतु यदि पूरी गर्मी भर वे वहाँ नहीं रहते, तो उनके लिये रोगकारी है । अँगरेज़ों को तो शीत-प्रधान देशों में रहने का स्वभाव है, परतु बिचारे हिंदुस्तानी क्लर्कों की किसी को क्या चिंता ? यदि सरकारी दफ़्तर पहाड़ पर न जाया करें, तो केवल धन की बचत ही न होगी, किंतु धन से भी अधिक मूल्यवाली आरोग्यता का भी रक्षण हो सकेगा । रही अँगरेज़ों की बात, वे तो लक्ष्मी देवी के लाडिले पुत्र हैं । उनके लिये तो ख़स की टट्टी, बिजली के पंखे आदि की सहायता से मरुस्थल में भी स्वर्ग-सुख प्राप्त हो सकता है ।

भवानीशंकर याज्ञिक

... चित्रशाला में
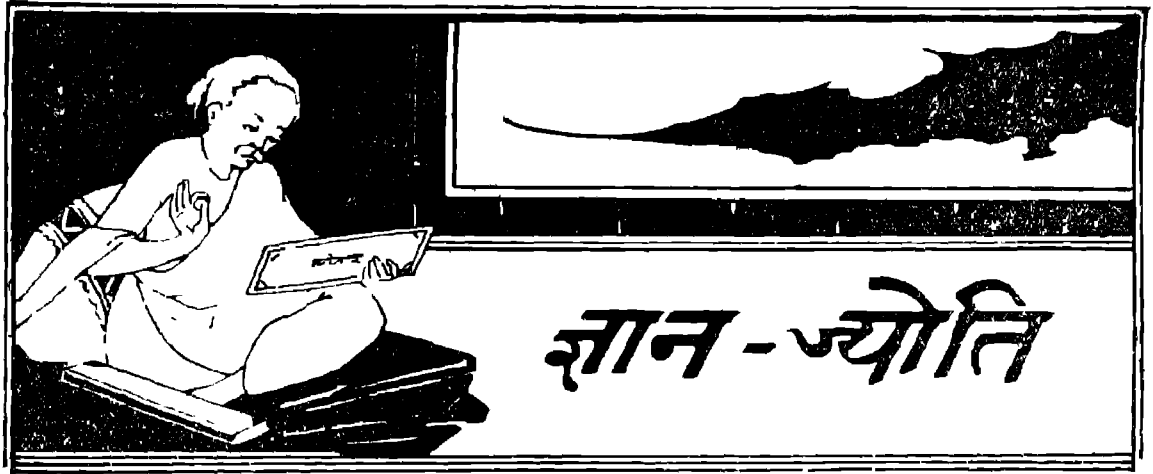
१ तुलसीदास पर कारपेंटर के आक्षेप

(श्रावण की संख्या से आगे)

आपने रामायण के अनुसार त्रिमूर्त्ति का वर्णन किया है और उनके कार्यों का विवरण दिया है। रामायण में इन देवों के किस प्रकार और किन-किन रूपों में वर्णन हुआ है, यह भी लेखक ने अच्छी तरह दिखाया है। तब भी आपने निराधार बातें लिखने की लत नहीं छोड़ी—

"As a poet Tulsi Dass was naturally likely to use anything in popular religion which would supply vivid imagination."

अर्थात्—"तुलसीदास एक कवि थे और इस कारण प्रचलित धर्म की कोई भी ऐसी बात कहना कि जिससे कोरी कल्पना को सहायता मिल सके, उनके लिये स्वाभाविक था।" एक आध ऐसी निराधार बात रामायण में से अगर पादरी साहब बताने की कृपा करते, तो हम बड़े आभारी होते।

हम यह मानते हैं कि तुलसीदास कट्टर हिंदू थे और उन्हें हिंदू-धर्म की सब बातों पर दृढ़ विश्वास था, पर हम यह मानने को तैयार नहीं हैं कि उन्होंने कल्पना को सहायता देने के लिये धार्मिक बातों का उपयोग किया है।

फिर भी रेवरेंड साहब गुसाईंजी की उदारता और निष्पक्षता की प्रशंसा करते हुए कहते हैं कि उनमें इतनी धार्मिक उदारता थी, जिसके कारण उन्होंने हिंदू-धर्म में भेद डालनेवालों की खूब निंदा की है। भिन्न-भिन्न प्रकार के धार्मिक विचार उपस्थित करके सबकी एकता स्थापित की है तथा लोगों को भेद-भावों से दूर किया है।

इसके बाद फिर कारपेंटर साहब की राय सुनिए—

"To the Triad Tulsi Dass assigns an altogether inferior place. Its mention is by no means frequent or honourable. This fits in with the thought of a very subordinate sphere for them in God Knowledge, although it does not go so far as to deny reality to their existence."

अर्थात्—त्रिमूर्त्ति को तुलसीदास बहुत ही नीचा दर्जा देते हैं। न तो उसका (त्रिमूर्त्ति का) उल्लेख ही अधिक किया गया है, और न वह उल्लेख आदर-पूर्ण ही है। इससे त्रिमूर्त्ति का अस्तित्व न होना, तो नहीं साबित होता; पर यह विचार दृढ़ होता है कि ईश्वरीय ज्ञान में त्रिमूर्त्ति का स्थान बहुत निम्न श्रेणी का है।

त्रिमूर्त्ति तथा राम

गुसाईंजी ने अनेकों बार त्रिमूर्त्ति को माया के वशवर्ती कहा है, इसी लिये शायद पादरी साहब को यह भ्रम हो गया है। किंतु यह बात परब्रह्म राम की सर्वोच्चता सिद्ध करने ही के लिये कही गई है। त्रिमूर्त्ति को राम से नीचा स्थान दिया गया है, वह उन्हें नीचा करने के उद्देश्य से नहीं दिया गया, बल्कि राम की सर्वोच्चता के प्रतिपादन के लिये ही ऐसा किया गया है। अन्य स्थानों में शिव और विष्णु को

बराबरी सिद्ध की गई है। हाँ, ब्रह्मा को अवश्य ही हर जगह नीचा स्थान दिया गया है, उन्हें सदा सेवक ही बना रक्खा है। शंकर को गुसाईंजी ने राम के बराबरी का स्थान दिया है, पर जहाँ राम की परमेश्वरता बतलाई है, वहाँ उनसे भी रामजी की स्तुति कराई है।

शंकर को विष्णु की बराबरी का स्थान देने के कारण कारपेंटर तुलसीदासजी की धार्मिक उदारता की प्रशंसा करते हुए कहते हैं "यद्यपि उन्होंने राम को सर्वश्रेष्ठ माना है तथापि अन्य धार्मिक विचारों को भी स्वीकार कर लिया है, क्योंकि वे भी उन्हीं को पाने के मार्ग हैं। सब धार्मिक आकांक्षाओं और भक्ति को उन्होंने उदार दृष्टि से देखा है—शिव को अपने ग्रंथ में स्थान देने का कारण गुसाईंजी की उदारता है (न कि भक्ति)। उनके समस्त ईश्वरीय विचार तो विष्णु और राम में ही केंद्रित थे।" हम यह बात मानने के लिये तैयार नहीं है कि शंकर को उन्होंने केवल अपनी उदारता के कारण रामायण में स्थान दिया। गुसाईंजी की शिव-चरणों में पूरी भक्ति थी, यद्यपि वह—श्रद्धा राम-भक्ति-प्राप्ति की एक साधन-मात्र थी। असल में गुसाईंजी राम या शिव में कुछ भेद न मानते थे—वे एक शिव-राम-रूप के उपासक थे।

इसके बाद शिव की सर्वोच्चता बतलाते हुए आप कहते हैं कि "It is ultimately Shiva who directs things aright and that all the Gods, even the incarnate Vishnu are liable to trouble if he withdraws his support, care" अर्थात् "अंत में सब वस्तुओं के सचालक शिव ही हैं और सब देवता—यहाँ तक कि विष्णु के अवतार राम भी उनकी ख़बरदारी छोड़ देने से आपत्ति में पड़ सकते हैं।" इसके उदाहरण में आप शिव के समाधिस्थ हो जाने पर सीता-हरण की घटना उपस्थित करते हैं। पादरी साहब ने त्रिमूर्ति का असली अर्थ नहीं समझ पाया है, इसलिये उसे विचारों की गड़बड़ी पड़ती है—असल बात यह है कि जब राम को नर-रूप मानकर उनसे नर-लीला कराई गई है, गुसाईंजी ने उनसे शिव की आराधना कराई है। रामजी का वन-यात्रा को चलते समय शिव का स्मरण करना और अन्य समय कई बार उनका पूजन करना इसी भावना का फल है; किंतु जब राम को परब्रह्म-रूप से वर्णन किया है, तब शिव को उनका सेवक कहा गया है।

अन्य देवताओं के विषय में तुलसीदास के विचारों का दिग्दर्शन कराके पादरी साहब श्रीराम के विषय में उनकी सम्मति विस्तार तथा उत्तमता-पूर्वक बतलाते हैं। आप ऐसा समझते हैं कि परब्रह्म परमात्मा राम का सात प्रकार से गुसाईंजी ने वर्णन किया है।

राम

(१) राम सर्वोच्च और विष्णु हैं।

(२) वे त्रिमूर्ति और अन्य देवों से श्रेष्ठ हैं।

(३) राम की इच्छा ही प्रबल भाग्य है।

(४) राम का चरित्र क्षमाशील, दयालु और शरणागतवत्सल है।

(५) राम मायाधीश हैं।

(६) राम-नाम की महिमा अनंत है।

(७) राम पुरुष हैं और प्रकृति को नचानेवाले हैं।

(सांख्य-शास्त्र के अनुसार)

एक जगह आप यह विचित्र तर्क लगाते हैं कि "If Rama is supreme he is necessarily Vishnu" अर्थात्—राम सर्वश्रेष्ठ हैं, इसलिये वे अवश्य ही विष्णु हैं। किंतु तुलसी ने राम को विष्णु से भी उच्च माना है।

राम-नाम की गुसाईंजी ने अमित महिमा गाई है और वह है भी ऐसी ही। पर पादरी साहब को इसमें ("gross exaggeration") बहुत भारी अतिशयोक्ति दिखती है। नाम पर गुसाईंजी की बड़ी श्रद्धा थी, जिनकी राम-नाम में श्रद्धा है, उनके लिये इस पवित्र नाम में वे ही गुण हैं, जो तुलसीदास ने बतलाए हैं।

अवतार

अवतारों के विषय में आपकी राय है कि वे केवल अल्प कालीन हैं और उनका परब्रह्म की प्रकृति पर कोई स्थायी प्रभाव नहीं पड़ता, परंतु इसके विरुद्ध गुसाईंजी ने रामावतार को नित्य मानकर उपासना की है।

रामावतार के कारणों की चर्चा करते हुए आप कहते हैं कि सब कारणों में से केवल एक कारण ने लोगों के दिल पर असर डाला है और वह है "देवों को रावण की क़ैद से छुड़ाना" किंतु पृथिवी, गो-ब्राह्मण, ऋषि और संतों की रक्षा करना भी कम महत्त्व-पूर्ण कारण नहीं है। फिर आप रामायण से चौपाइयों को उद्धृत करके सिद्ध करते हैं कि अवतार के तीन मुख्य कारण हैं।

(१) रावण को शाप से छुड़ाना।

(२) रावण से देवों की रक्षा करना।

(३) मनु-शतरूपा के वरदान को पूर्ण करना।

गुसाईंजी ने अधर्म-नाश को जो इतनी प्रधानता दी है, उसके कारणों में से गुसाईंजी के समय में भारत में ईसाई-धर्म का वर्तमान रहना भी आप एक कारण समझते हैं।

उस समय भारत में क्रिश्चियन-धर्म वर्तमान था। इसलिये उनका अवतारवाद ख्रीष्ट-धर्म में प्रचलित अवतारवाद का रूपांतर हो सकता है।

* अगर कल्पना ही करना है, तो फिर चाहे जो कुछ "हो सकता है।" परंतु कोरी कल्पना को छोड़कर तथ्य बातों से काम लेना चाहिए। शायद पादरी साहब को यह ख़याल ही नहीं है कि जब ईसाई-धर्म का जन्म भी न था, तब भारत में हिंदू-धर्म के अवतारवाद का प्रचार हो चुका था।

आगे आप फरमाते हैं कि "अनंत में विष्णु समय समय पर थोड़े-थोड़े अंशों में अवतार लेते हैं, जैसा (Goldstucker) साहब ने कहा है, परंतु तुलसीदास की समझ में राम में विष्णु का पूर्ण अंश है।" कारपेंटर साहब को हिंदू-धर्म का पूर्ण ज्ञान नहीं है इसीलिये वे ऐसी बेसिर-पैर की बातें कहा करते हैं।

आप रामावतार के विषय में अपनी राय देते हैं 'While dwelling at great length on those human qualities which make Rama attractive, the poet does not hesitate to call his humanity a deception when its expression seems derogatory to the character of the supreme.' अर्थात् "राम के उन मनुष्योचित गुणों को—जो कि उन्हें एक चित्ताकर्षक मनुष्य बना देते हैं—विस्तारपूर्वक वर्णन करने पर भी जिस समय कि उनका मनुष्य-चरित्र उनके ईश्वरत्व के विरुद्ध जान पड़ता है, तुलसीदास उनके मनुष्य-रूप को माया-निर्मित कहने तक में नहीं हिचकते।"

तुलसी ने श्रीराम को साक्षात् ईश्वर मानकर भी उनसे मनुष्योचित काम कराये हैं और उसे उनकी "लीला" कहा है—उनके ईश्वरत्व के कारण उनके आदर्श मनुष्य-चरित्र में कहीं भी फर्क नहीं आने दिया है। राम के चरित्र में ईश्वरत्व और मनुष्य चरित्र का जो अद्भुत मिश्रण किया गया है, उसी के कारण साहब को यह भ्रम उत्पन्न हुआ। पर इसको पादरी साहब (a means of covering up inconsistencies) "पूर्वापर-विरोध को ढाँकने का साधन।" मात्र समझते हैं।

साहब बहादुर समझते हैं कि "रामानुजाचार्य के मत से तुलसीदासजी दूर चले गए हैं। रामानुज के मत से परब्रह्म के दो स्वरूप हैं—एक निर्गुण और एक सगुण विश्वरूप। किंतु तुलसीदास अनवतरित ब्रह्म को निर्गुण और अवतार को सगुण मानते हैं। साहब का यह निर्णय बहुत-कुछ ठीक है।

रामानुज और तुलसी

राजेंद्रसिंह

टोडी

जिस ठाट से टोडी रागिनी की उत्पत्ति है, ग्रंथों में उस ठाट का नाम नटवरालीमेल लिखा है और आजकल यह ठाट टोडी रागिनी के नाम से प्रसिद्ध है। इस ठाट का पहला राग टोडी है, जिसका हम नीचे वर्णन करेंगे। आजतक टोडी की बहुत-सी क़िस्में प्रचलित हैं, परंतु ग्रंथों में इनका कहीं उल्लेख नहीं है। यह सब मुसलमानों ने निकाली हैं।

टोडी नटवरालीमेल का संपूर्ण राग है। इसमें रिषभ, गंधार और धैवत, ये तीन स्वर कोमल, मध्यम, तीव्र व निषाद शुद्ध लगना है। धैवत इसमें वादी है। अवरोही में रिषभ दुर्बल है व पंचम भी कमी के साथ लगाया जाता है। इस राग में किसी किसी संगीत-पंडितों ने गंधार को वादी माना है, परंतु इसके गाने का समय द्वितीय पहर दिन होने से धैवत ही वादी करना उचित होगा, व गंधार को संवादी। द्वितीय पहर के रागों में तीव्र मध्यम का उद्योग शास्त्रोक्त उचित नहीं, परंतु इस राग में तीव्र मध्यम का प्रयोग न-जाने कब से चला आता है। आजकल टोडी के अतिरिक्त गौड़ सारंग व हिंडोल में भी तीव्र मध्यम का रिवाज है। परंतु ग्रंथकारों ने टोडी में शुद्ध मध्यम का प्रयोग किया है, तीव्र का नहीं। प्रचलित टोडियों में जो आजकल गाई जाती हैं, गायक किसी-किसी में शुद्ध मध्यम भी लगाते हैं। इस राग की चाल गंभीर है, इसलिये इसे विलंबित लय में गाते हैं व सुननेवाले को महाआनंद प्राप्त होता है। कहते हैं, इस रागिनी के आलाप से मृग व मृगया भी विवश हो अहेडी के जाल में फँस जाते हैं।

टोडी रागिनी का चित्र

मुलतानी मे भी यही सब स्वर लगते हैं, पर उसमें रिषभ कम और पंचम अधिक लगता है। टोडी के प्रधान स्वर र, ग, ध हैं और मुलतानी के ग, मं, प, न टोडी की खास तान है—धनस, र ग, रे, स। मं, ग, र, ग, र, स। और मुलतानी की,—। न स, ग मं, पमंग, र स—

मुलतानी मे, आरोह मे रिषभ और धैवत नहा लगते और अवरोह मे भी रिषभ पर ठहराव कम है। किंतु टोडी के आरोह-अवरोह में किसी स्वर का कोई नियम नही है। इन्हीं भेदों से टोडी और मुलतानी मे भिन्नता है।

आरोह-अवरोह का रूप—

स, र ग, मंप, ध, नसं।

सं न ध प, मं ग, र स।

टोडी एकताल (विलंबित)

स्थायी

३	४			×		०		२		०	
	म प	मंप	पध	ध म	ग	—	ग र	ग	र	स	नस
ऽ	ला	ऽऽ	लम	ना	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	व	न	ऽऽ
स नस	नसर	न	ध	न स	मर	ग	ग	ध मंग	पमं	ध	ध
मैंऽ	ऽऽच	ला	ऽ	स	मुऽ	झ	त	नाऽ	हाऽ	ऽ	मा
सं न	-	स	र	स न	—	ध	—	ध धनसर	गं	रं	न
का		ई	का	त्रा	ऽ	ऽ	ऽ	ऽऽऽऽऽ	ऽ	त	ऽ
ध	प										
ऽ	ला										

अन्तरा

३	४			×		०		२		०	
प मं	ग	—	ध मंध	स	नस	स	स	र	—	म	सरं
हूँ	ऽ	ऽ	तोरे	का	ऽऽ	र	न	ध्या	ऽ	कु	लऽ
ग	र	स	नस	स नस	नसरं	र न	ध	मंप	मंपध	मं	ग
ऽ	भ	ई	ऽऽ	प्याऽ	ऽऽऽ	रे	ऽ	तूऽ	ऽऽऽ	उ	ट
मं पमं	धम	-	ध	स नस	नसंर	स न	ध	ध धनसं र	गं	रं	न
चल	मारे	-	ऽ	ऽऽ	ऽऽऽ	सा	ऽ	ऽऽऽऽऽ	ऽ	थ	—
ध	म प										
ऽ,	ला										

राजाराम भार्गव

हाइड का दान

तार बिजली का ग्राहक एक दिन शाम को घंटी देकर आवाज देने लगा। घंटी सुनकर घर के मालिक सर चार्ल्स हाइड अपने तार के कमरे में आ गए। तार ने तार से आवाज देकर कहा, सुनिए। डाक्टर सर बर्कले मोइनहैन साहब लीड्स-नगर में स्वास्थ्य-रक्षा के विषय पर उपदेश देंगे। सर हाइड ने यह शब्द अपने बर्मिंघम-नगर के घर में सुने और उसी समय लेक्चर सुनने बैठ गए। उन्होंने मन-ही-मन बेतारवाले टेलीफोन की प्रशंसा की और बोले, धन्य है यह रेडियो ब्राडकास्ट, जिसकी बदौलत बर्मिंघम में बैठकर मैं लीड्स में दिया हुआ उपदेश सुन सकता हूँ। इतने में डाक्टर बर्कले का उपदेश सुनाई देने लगा। डाक्टर साहब ने नई-नई वैज्ञानिक दवाइयों का हाल सुनाया और बताया कि नई एंटीसेप्टिक दवाइयों द्वारा हजारों मरीजों के घाव अच्छे होते हैं और नई डाक्टरी की चीर-फाड़ द्वारा कैसे-कैसे निराश लोग अच्छे हो रहे हैं। इन वृत्तान्तों के सुनने का प्रभाव सर हाइड पर इतना अधिक हुआ कि उन्होंने तुरन्त तार देकर लीड्स-निवासी डाक्टर मोइनहैन को सूचना दी कि उन्होंने इस पुण्य कार्य की सहायता देने के निमित्त पाँच मरीजों के भोजन, वस्त्र, खाने और दवाइयों का पूरा व्यय अपने जिम्मे लिया है, और इस खर्च के लिये रुपया अपनी रियासत से देना मंज़ूर किया है। इस दान से गरीबों का बड़ा उपकार होगा।

रेडियो ग्राहक द्वारा लेक्चर सुना जाता है

× × ×

सड़कों से कील उठाने की गाथा

जब से तारकोल की सड़कें बनी हैं, राह चलनेवालों को, विशेषतः मोटर और बाइसिकिलवालों का बहुत उपकार हुआ है। परन्तु इस प्रसन्नता को प्रकट करते ही हमें उस कष्ट का भी वर्णन करना है, जो इन्हीं सड़कों के कारण उत्पन्न हुआ है। कौन नहीं जानता कि इन सड़कों पर कील-काँटे अधिक होते हैं और बाइसिकिलों में, तो

सड़कों से कील उठाने की गाड़ी
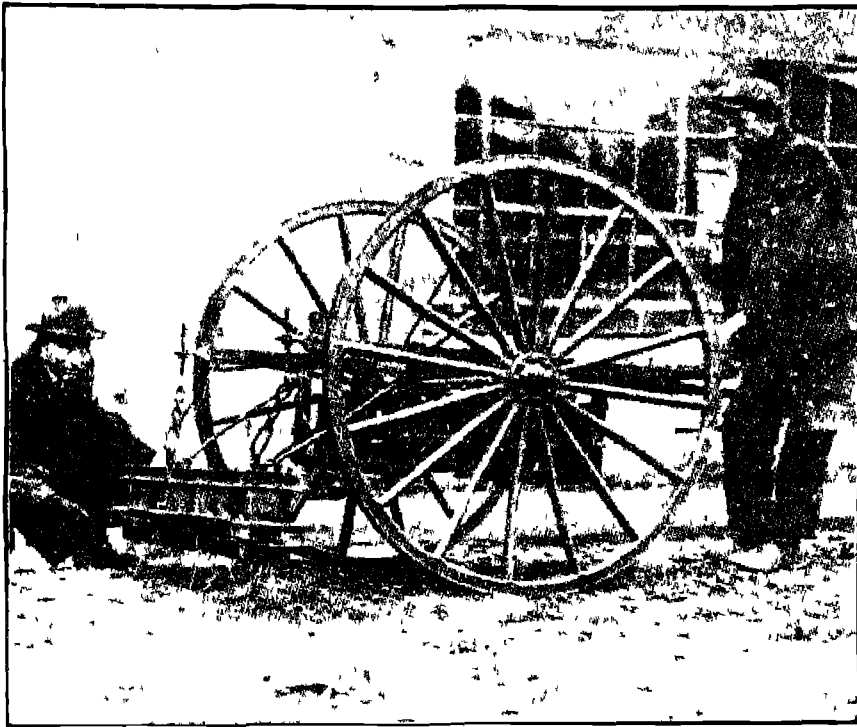
नित्य ही पञ्चर होते हैं। एक महाशय की साइकिल में एक दिन में दस बार पञ्चर हुए और हर बार इतेवाली कील लखनऊ स्टेशन की सड़क पर ही प्राय: मिली। उस सड़क के बनानेवाले स्वयं कहते हैं कि इन सड़कों पर कील द्वारा पञ्चर बहुत होता है। हमने तारकोल की सड़कें, तो बना लीं उनके चिकने, साफ, गुदगुदे मज़े को तो देख लिया ; परन्तु उसकी गरमी और कीलों के कष्टरत का कुछ भी प्रबंध नहीं किया है। गुलाब के फूल के साथ काँटा भी है। गुलाब लेकर काँटा तोड़ फेंकना आवश्यक है। इसलिये ज़रूरत है कि सड़क पर की कीलें चुनवाकर फेंकवाई जायें। हम उन म्युनिसिपैलिटी के मेम्बरों से प्रार्थना करते हैं, जिन्होंने तारकोल की सड़कें बनाई हैं कि वह तार की कीलों को नित्य हटवा दिया करें, क्योंकि ऐसा न करने से नंगे पाँव चलनेवाले मजदूर और स्त्रियों के पैर घायल होते हैं और मोटर और बाइसिकिलवालों का हाल बुरा होता है। मेरे एक मित्र रात को दावत में गए। भोजन करके एक बजे रात को घर चले, गणेशगंज के चौराहे पर आते ही साइकिल की हवा निकल गई। बेचारे उतर पड़े। देखा तो टायर में एक कील घुसा है। अब क्या करें ? आलमनगर स्टेशन आखिरकार न पहुँच सके। रेल न मिली, दफ्तर का हर्ज हुआ, पाँच रुपए खर्च करके जुर्माने से बचे। ऐसी घटनाएँ रोज होती हैं। परंतु साइकिलवालों की तकलीफ़ को कौन समझता है। मोटरवाले बेपरवाह हैं, क्या शहर के विधाता (City fathers) इस ओर ध्यान देंगे और सड़क पर से कीलें हटवा देंगे। अमेरिका में भी यहाँ कील-बेधी टायर-क्रिया की शिकायत थी परंतु उन्होंने तो अपना प्रबंध कर लिया है। वहाँ एक गाड़ी ऐसी बनी है, जो स्वयं चुम्बक-शक्ति द्वारा सारी कील और लोहे के टुकड़े इत्यादि उठा लेती है।

× × ×

३ रबड़ की सड़क

लंदन में रबड़ की सड़कों के बनने का रिवाज बढ़ने लगा है। अब कंकड़ के स्थान पर रबड़ की ईंटें तारकोल

रबड़ की सड़क

से जोड़ी जाती हैं। यह सड़क चिकनी और साफ होती है और पानी पड़ने से बिछलती नहीं, क्योंकि उसमें

ऊँची-नीची लहरें बनी होती हैं। ऊपर के चित्र में यह सड़क बनती दिखाई देती है।

× × ×

४. पृथ्वी नक्षत्र है

साधारण मनुष्यों को यह दिखाने के लिये कि पृथ्वी नक्षत्र है और गोले की तरह आकाश के शून्य में खड़ी है। फ्रांस की जहाज़ी कंपनी ने एक बड़ा भारी पृथ्वी का गोलाकार पिंड बनाया है, जिस पर भूमि का रंग पीला और पानी का रंग नीला रँगा है। इस गोले का मध्य अक्ष २० फ़ीट का है, जो एक ज़ंजीर में बाँधकर एक क्रेन पर लटका दिया गया है और शीशों के द्वारा देखने से यह बहुत बड़ा गोला दिखता है, जिसके देखने से पृथ्वी आसमान में लटकी और घूमती नज़र आती है। सूर्य-प्रकाश का कार्य, बिजली के प्रकाश से लिया जाता है। इस गोले को प्रकाशित करने में २५,००० बत्तियों की शक्ति व्यय होती है।

× × ×

५. चुकंदर की शकर

दुनिया में शकर सबसे पहले भारतवर्ष में बनी थी। सिकंदर जब हिंदोस्तान आया था, तो उसने पौंडे को देखकर उसका नाम शकर का दरख़्त रक्खा था। गन्ने की शकर इस देश से दूसरे देशों में हज़ारों वर्ष तक जाती थी। परंतु जर्मनी के बादशाह का हुक्म हुआ कि शकर जर्मनी में बनना चाहिए। ईख बोई गई, परंतु ईख
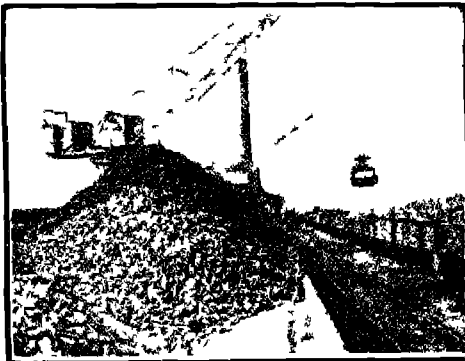
स्टेशन पर चुकंदर

उस देश में काम लायक़ न पैदा हुई। तब आज्ञा हुई कि किसी दूसरी वस्तु से शकर बनाई जाय। जर्मन रसायनज्ञों ने चुकंदर से शकर बनाई। अब इँगलैंड इत्यादि सब स्थानों में चुकंदर से शकर बनती है। अमेरिका देश के ओरेगन रियासत ने एक करोड़ रुपए ख़र्च करके अपनी रियासत में चुकंदर लगवाए और २५ वर्ष के निरंतर परिश्रम के बाद रियासत के कृषि-विभाग ने प्रकाशित किया कि अब चुकंदर में २५ प्रति सैकड़ा शकर निकल सकती है, और साथ ही चुकंदर से शकर बनाने का काम जारी किया। आज लाखों मन चुकंदर शकर बनाने के काम आती है। ऊपर के चित्र में एक कारख़ाने में चुकंदर का ढेर लगा है, जो रेल से उतरा है। चुकंदर की शकर ईख की शकर से सस्ती होती है। क्या हम पूछ सकते हैं कि हमारे कृषि-विभाग ने चुकंदर से शकर बनाने का क्या प्रबंध किया है?

× × ×

६. नई सीटी जिसकी आवाज़ ४० मील तक जाती है

कलकत्ता बंबई का तो कहना ही क्या है, यहाँ लखनऊ के लोग भी गाड़ी की घंटी या हार्न की आवाज़ नहीं सुनते। कोई तो सुनकर भी रास्ता से नहीं हटते और कोई बहरे होते हैं, कोई शरारत से नहीं हटते, परंतु कई सचमुच सीटी या घंटी की आवाज़ नहीं सुनते। यह लोग अपने ख़याल में ऐसे मस्त और विचार में निमग्न होते हैं कि उन्हें मोटर की सीटी भी सुनाई नहीं देती, जिसका परिणाम यह होता है कि लोग अकसर चोट खाते हैं और गाड़ी पर चलनेवालों को कठिनाई होती है। बाइसिकिल की घंटी का तो कोई ख़याल ही नहीं करता, ताँगावालों की हटो-बचो भी कम सुनी जाती है। मोटर का हार्न भी काफ़ी नहीं है। इस लिये अब एक नया हार्न बनाया गया है। यह हार्न इतनी
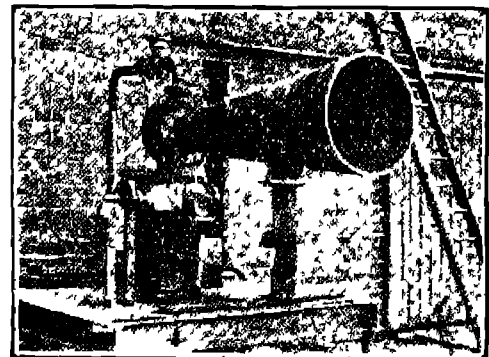
नई सीटी

ज़ोर से बजता है कि समुद्र में तो ४० मील दूरी पर सुनाई देता है। इस सीटी का शब्द इतना ज़ोरदार होता है कि बिना सुने आदमी का गुज़र नहीं है।

× × ×

७ हवाई परीक्षा सदूक

हवाई जहाज़ के मिस्त्री और चलानेवालों की कई कठोर परीक्षाएँ होती हैं। उनमें से एक यह है कि चित्र में जो सदूक दीखता है, उसी में हवाई विद्यार्थी को बिठाकर ख़ूब घुमाते हैं, ताकि पता लगे कि उलटा पलटा हर कोण पर घूमने, या कलाबाज़ी खाने में हवाईबाज़ को चक्कर या सरदर्द तो पैदा नहीं हो जाता।

हवाई परीक्षा संदूक

× × ×
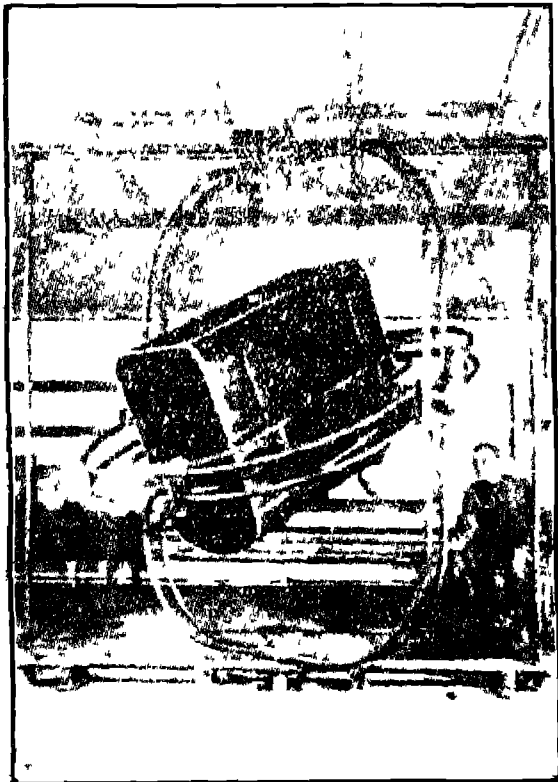
८ बालों के भार से जाति का पता

शिकागो यूनिवर्सिटी ने परीक्षण द्वारा पता लगाया है कि किसी आदमी के बाल की तौल से ही उसकी जाति का पता लग सकता है। जैसे चीनी, जापानी, योरपियन और अफ़्रीकन इत्यादि जाति का भेद बालों के वजन से ज्ञात हो सकता है। यदि १० बाल चीनी व मंगोलिया-निवासी के लेकर और १० बाल कोहेकाफ़ काकेशश के लिये जायँ और १० बाल हबशी के लिये जायँ, तो मंगोलियन जाति के बाल सबसे भारी होंगे, गोर जाति के बाल उससे हलके और हबशी जाति के सबसे हलके होंगे। जांच से यह भी पता लगा कि गोरी स्त्रियों के बाल ४ माल में २५ से ३० इंच तक बढ़ते हैं और गोरे मर्दों के बाल इतने ही दिनों में केवल १२ से १६ इंच तक। यह भी मालूम हुआ है कि स्त्रियों के बाल पुरुषों के बालों से हलके होते हैं।

× × ×

९ अमेरिका के चमार, जूता टाँकने की दुकान

टोपा कालोरडो के मैदानों में निवादा के दो बालकों ने सोने की खान का पता लगाया है, वहां पहाड़ी ज़बरदस्त मैदान है, सोने का नाम सुनते ही रात भर में मैदान आबाद हो गए। यहाँ सोना कमानेवाले अमीर एकत्र हैं। यहां सात रुपए का एक डोल पानी बिकता है और ढाई रुपये के दो अंडे, और एक टुकड़ा सुअर का गोश्त बिकता है। यहाँ रुपए की इतनी बहुतायत है कि जूता

अमेरिका में जूता गाँठने की दूकान मोटर पर

गाँठने अथवा जूता साफ़ करनेवाले भी मोटर पर बैठकर जूता ठीक करने का कार्य करते हैं। ऊपर के चित्र में एक जूता गाँठनेवाले की दूकान जो मोटर पर है दिखाई गई है। धन्य है वह देश, जहाँ के चमार मोटर पर चलते हैं! इसके विरुद्ध इस देश के चमारों का हाल सोचिए जिनको छूना ही पाप है!

× × ×

१०. नई सोने की खान

हार्टन का बाप सोना खोजते-खोजते थक गया था और निराश होकर घर लौट गया था। तब उसके

हार्टन, जिसने खान का पता लगाया, बीच में बैठा है

लड़के ने अपने एक साथी को लेकर उसी जंगल में खोज की और जहाँ बाप ने खनती लगाई थी उससे कुछ दूर खनती लगाकर २०,००० रुपए का सोना पहली बार में पा लिया। फ़ारसी की मसल है 'अगर पिदर न तवानद पिसर तमाम कुनद'।

× × ×

११. [illegible] मोटर

'माधुरी' के पाठकों को हम पहले ही बता चुके हैं कि अमेरिका में बच्चे और बीमारों के लिये एक सवारीवाली छोटी मोटरें बन चुकी हैं अब दूसरी और भी छोटी-सी मोटरगाड़ी दो सवारी लायक बनी है। इस गाड़ी में इंजिन और पेट्रोल की आवश्यकता नहीं है, बल्कि यह गाड़ी बिजली की संचित स्टोरेज बैटरी से चलती है। यह गाड़ी १० से १२ मील फी घंटा चल सकती है। इसका कुल वज़न १५२ सेर है और ६ वोल्ट की ताक़त की दो स्टोरेज बैटरी के लगाने से एक बार चार्ज करने से ३० मील तक जा सकती है और १६ वोल्ट की बैटरी लगाने से अधिक तेज़ी से जा सकती है। हलकी होने के कारण वह मामूली सड़कों पर भी चल सकती है और थोड़ी-थोड़ी दूर जाने के लिये जहाँ बड़ी मोटरकार की ज़रूरत नहीं होती, यह गाड़ी अच्छी है। खेल, तमाशा, या मामूली काम इससे अच्छा निकलता है। इसमें रोक-थाम का भी प्रबंध है, और सुगमता से चालू होती है। इसके बैटरी के संदूक पर तीसरा आदमी भी बैठ सकता है।
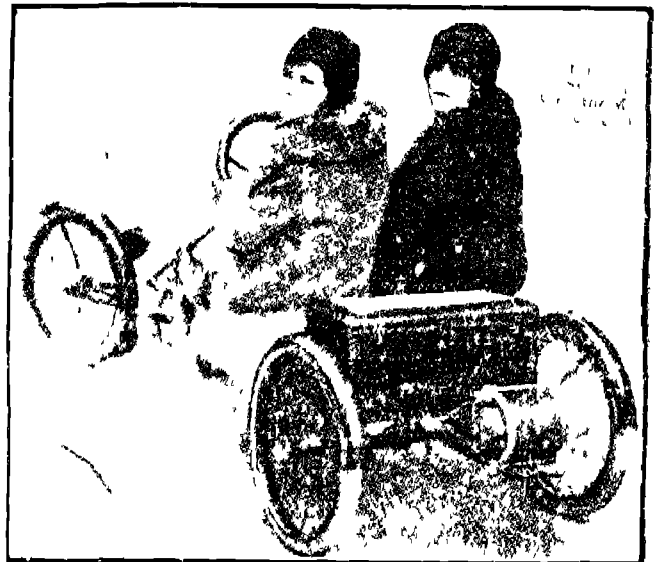
बिना पेट्रोल के चलनेवाली मोटर

× × ×

८७. लांगले नामी अमेरिकन जहाज

अमेरिका के जंगी जहाज़ों की नकली लड़ाई में एक नया जहाज़ पैसफ़िक समुद्र मे दिखाया गया है। इसका नाम लांगले है। इस जहाज़ पर कई एक वायुयान लादे गए है, जो समुद्र में जहाज़ पर से इच्छानुसार छोड़े जाते है और कबूतर की भाँति लौटकर उसी जहाज पर फिर आ जाते है। यह जहाज समुद्र मे वायुयानो का घर है और समुद्र की लड़ाई मे इससे पहरा देने, या बम मारने का काम लिया जाता है।

नया जंगी जहाज

इस जहाज की निचली छत पर तार का जाल लगा रहता है, जिसमे कोई वायुयान ऊपर की छत छोड़कर नीचे न आ सके। यदि नीचे की ओर भूल से वायुयान चला जाय तो जाल मे फँसेगा, जैसा कि नीचे के चित्र मे दिखाया गया है।

× × ×

८८. रेडियो टेलीफोन

तार रहित बिजली के द्वारा अब यहा तक मुमकिन है कि समुद्र के एक किनारे लंदन से आदमी बोलकर समुद्र के दूसरे किनारे न्यूयार्क तक अपनी आवाज पहुँचा सकता है। कैसा आश्चर्य है कि दुनिया के एक ओर से दूसरी ओर तक मनुष्य की आवाज पहुँच सकती है और साइंस द्वारा कैसे अद्भुत आविष्कार हो रहे है। जनवरी महीने मे एक मास तक हर शख्स को अपने घर बैठे टेलीफोन द्वारा अमेरिका से न्यूयार्क तक बोलने की इजाज़त मिल गई थी।

७ जनवरी १९२७ ई० संसार-विज्ञान के विजय का विशेष दिन है। उस रोज़ पहले पहल लंदन और न्यूयार्क के बीच मे बेतार का हवाई टेलीफोन क़ायम किया गया और योरप मे बैठकर 'पाताल-लोक' अमेरिका से बैठे-बैठे लोगों ने इसी तरह बात की, जैसे लोग लखनऊ से बैठे-बैठे इलाहाबाद से बाते कर लेते हैं। उस दिन ६,००,००,००० डालर का सौदा बात की बात मे बिना लिखा-पढ़ी के, बिना नाहक देरी के, भूल चूक-रहित हो गया और दुनिया मे रेडियो की विजय-पताका ऊँची हो गई।

उस तारीख मे पहले पहल ८½ बजे दिन को अमेरिकन टेलीफोन कंपनी के प्रेसीडेंट मिस्टर कलिफ़र्ड ब्रिटिश डाकखाने के सेक्रेटरी मिस्टर मरे से पहले पहल ७३०० मील आसमान की दूरी और ८८० मील ज़मीन पर लगे तारो पर चलकर दो मिनट के अंदर टेलीफोन से बातचीत कर ली और दुनिया को अचंभे मे डाल दिया। बोलने का आसमानी अदृश्य पुल, शब्दों के चलने के लिये स्थापित हो गया। और २२५ रुपए फ़ीस देकर जिसका जी चाहे ३ मिनट तक दुनिया के एक सिरे पर बैठकर दूसरे सिरे से बात कर ले। इसके अतिरिक्त ७५ रुपया फी मिनट अधिक देने से जिससे चाहे बात कर ले। उस दिन से हर रोज यह बोलनेवाला पुल ८½ बजे से १½ बजे तक खुला रहता है, और जिसका जी चाहे अपने घर बैठे पाताल-लोक से बातचीत कर ले। यह बातचीत केवल आधे दिन हो सकती है, क्योंकि

शब्द आकाश-मार्ग में उस समय ठीक गति नहीं करता जब एक ओर घोर अंधकार हो । मसलन पाताल-लोक में २ बजे रात को अंधकार अधिक होता है और लंदन में प्रकाश २ बजे दिन को अधिक होता है, इस कारण अधिक अंधकार का पर्दा मनुष्य की बोली को स्पष्ट आकाश-मार्ग में नहीं ले जाता । इसी से १½ बजे बोलने का पुल बंद कर दिया जाता है ।

महेशचरणसिंह

१. परवल की काश्त

मनुष्यों के भोजन के लिये शाक-भाजी की कितनी आवश्यकता है इसका लिखना यहां पर वृथा है, क्योंकि वर्तमान समय में सब कोई जानते हैं कि हरी तरकारी या शाक के उपयोग से मनुष्यों का स्वास्थ्य उत्तम रहता है, भोजन स्वादिष्ट होता है और पच भी जाता है। उस दयालु परमेश्वर ने शाक-भोजियों के लिये भिन्न-भिन्न प्रकार के पृथक्-पृथक् गुणवाले शाक बनाये हैं। प्राचीनकाल में जब कि देशांतर करने का सुभीता नहीं था, मनुष्यों को अपने-अपने देश के शाकों से ही सन्तुष्ट रहना पड़ता था, परन्तु वर्तमान समय में तो कई प्रकार के शाक एक देश तथा प्रांत से दूसरे देश तथा प्रांत में शीघ्रता से पहुँचा दिए जाते हैं और वहीं पैदा भी किए जा सकते हैं।

आलू, कोभी (Cauliflower), करमकल्ला (Cabbage), गाँठगोभी (Knol khol), सलगम (Turnips), टमाटो (Tomatoes), वलायती मटर (Vegetable Peas) इत्यादि नए-नए शाकों का प्रचार तो क़रीब-क़रीब सभी प्रांतों में है और पैदा भी किए जाते हैं, परन्तु परवल की काश्त पश्चिमीय बंगाल, विहार तथा यू० पी० के कुछ हिस्सों में होती है। वैसे थोड़ी बहुत काश्त अन्य किसी प्रांत में भी होती होगी, परन्तु बहुत ही कम। परवल के शाक के गुणों की ओर ध्यान दिया जाय तो इसका प्रत्येक प्रांत में होना अत्यंत ही आवश्यक है।

परवल के फल के शाक में कई उत्तम गुण हैं। यह पाचक, हृदय को लाभदायक, वीर्यवर्धक, हलका, अग्नि-दीपन करनेवाला, चिकना और गर्म है। खांसी, खून-विकार और बुखार का नाश करता है। पत्ते और कोमल डंडियों की तरकारी भी बनती है; पत्ते पित्त-नाशक, डंडी कफ-नाशक, और फल त्रिदोष-नाशक है। पत्तों का शाक बुख़ार में विशेष लाभदायक है। पत्ते और धनिया के मिश्रण का काढ़ा बुख़ार में बहुत फ़ायदा करता है। जड़ बहुत तेज़ जुलाब का काम देती है और विशेषतः जलंधर के रोगियों के लिये बहुत लाभदायक है।

परवल की तरकारी कई प्रकार से बनाई जाती है, परन्तु जो परवल खड़े चीरकर घी में भूने जाते हैं, तथा नमक और मसाले के साथ खाए जाते हैं, वे बहुत स्वादिष्ट होते हैं।

परवल के फल व बेल का आकार—परवल दो प्रकार के होते हैं। एक के फल ३ से ४ इंच लंबे, पतले और भूरे रंग के होते हैं। दूसरे के फल लंबाई में कुछ छोटे परन्तु कुछ मोटे और हरे होते हैं। इनके ऊपर सफेद लकीरें भी होती हैं। पकने पर परवल का रंग पीला या नारंगिया हो जाता है। परवल की बेल कुंदरू की बेल के समान होती है। लंबाई में १५-२० हाथ के क़रीब होता है। पत्ते इसके छोटे-छोटे पान के आकार के

होते हैं, परंतु साफ़ व चिकने न होकर रेशेदार व खुरदरे होते हैं। फूल कुंदरू के फूल जैसा ही सफ़ेद होता है।

यह बेल, जड़, डंडी अथवा बीज से पैदा की जाती है। नर और नारी पेड़ पृथक्-पृथक् होते हैं। बहुधा इसको डंडी से ही पैदा करते हैं, क्योंकि फल उत्तम होते हैं। दूसरा कारण यह है कि बीज से पैदा करने में यदि सब बेलें नर निकल जायँ तो परिश्रम वृथा होता है। एक साल लगाने से यह दो साल तक फल देता है। प्रथम वर्ष की अपेक्षा दूसरे वर्ष में फल अधिक आते हैं।

परवल के योग्य मिट्टी—बिहार तथा बंगाल की Alluvial कछार मिट्टी में य अच्छे होते हैं। जिस मिट्टी में ककड़ी, खरबूज़े आदि होते हैं, वहाँ भी परवल की बेल लग सकती है। बालू और मिट्टी के सम भागवाली (Loamy soil) ज़मीन इसके लिये उत्तम होगी।

ज़मीन की तैयारी—जिस प्रकार दूसरे शाकों के लिये खेत तैयार होते हैं, उसी प्रकार इसके लिये भी होना चाहिए अर्थात् यदि खेत साफ़ हो, तो दो वक़्त हल से जोतने के पश्चात् पटार (Planker) से ढेले तोड़ दिए जायँ, और इसके बाद दो एक जुताई और हो जाना काफ़ी है।

खाद—खेत की प्रथम जुताई के समय १०-१५ गाड़ी सड़े हुए गोबर की खाद प्रति एकड़ के हिसाब से डालना चाहिए, ताकि मिट्टी के साथ उसका सम्मिश्रण हो जाय। जब पौधे कुछ बड़े हो जायँ तो उस समय प्रति बेल के निकट एक सेर बकरी अथवा भेड़ी के गोबर की सड़ी हुई खाद देना चाहिए। घोड़े की लीद की सड़ी हुई खाद विशेष लाभदायक है।

खेत में लगाने की रीति—परवल साल भर में दो वक़्त लगाए जाते हैं, पहला तो एक दो बारिश के बाद आषाढ़ में, और दूसरा कार्तिक में। यद्यपि आषाढ़ में लगाई हुई बेल ज़्यादा तंदुरुस्त होती है, तथापि मेरी सम्मति में कार्तिक में लगाना ही अच्छा है, क्योंकि ऐसी सूरत में वर्षा-ऋतु की एक फ़सल भी उसी खेत से ली जा सकती है। इसके लगाने की यह रीति है कि तीन-चार हाथ ऊपर की बेल लेकर उसको दो-तीन बार ऐसी मोड़ लेना चाहिए कि करीब एक फ़ुट रह जाय व दोनों तरफ़ बेल का एक-एक मुँह रह जाय। मोड़ी हुई बेल के गुच्छे को ज़मीन में क़रीब ४ इंच गहरा गाड़ देना चाहिए व बीच के भाग पर मिट्टी डालकर दोनों मुँह खुले छोड़ देना चाहिए। जो हिस्सा गाड़ दिया जाता है, उसमें से जड़ और दोनों मुँह की ओर से नए कोंपल निकल आते हैं। एक लकीर में एक गुच्छा, दूसरे गुच्छे से लगभग ५-६ फ़ीट की दूरी पर लगाना चाहिए और इसी तरह से एक लकीर से दूसरी लकीर भी ५-६ फ़ीट की दूरी पर होना चाहिए।

पानी देने की रीति—बंगाल तथा बिहार में पानी देने की कोई आवश्यकता नहीं, परंतु सूखे प्रांतों में पानी अवश्य देना पड़ता है. कार्तिक की लगाई हुई बेलों को जब तक वे जड़ न पकड़ लें, तीसरे-चौथे दिन पानी देते रहना चाहिए। जम जाने के पश्चात् आवश्यकतानुसार पानी दे सकते हैं। बेलों के लग जाने पर हल से लकीरों के बीच में डेढ़ या दो फ़ीट चौड़ी नालियाँ पानी देने के लिये बनवा लेना चाहिए, आवश्यकतानुसार निराई भी हो जाना चाहिए।

फल इनमें चैत्र से लगायत आश्विन कार्तिक तक आते हैं, इसकी काश्त में सबसे अधिक लाभ यह है कि बाज़ार में जब हरी तरकारियों का अभाव रहता है उस मौसम में यह फल देता है। पहली फ़सल के बाद आस-पास की मिट्टी को खुदवा देना चाहिए और यदि मिल सके, तो थोड़ा खाद भी जड़ों के निकट डलवा देना चाहिए। इस बात का स्मरण रखना चाहिए कि इसकी बेल में अधिक जड़ें न फूटने पाएँ इसके लिये निराई के वक़्त बेलों को उठा-उठाकर देख लेना चाहिए। अधिक जड़ों के निकल आने से फल कम लगते हैं।

बीमारी व कीड़ों से होनेवाली हानियाँ—इस फ़सल को कोई बीमारी भी नहीं लगती और न किसी प्रकार के ख़ास कीड़े का ही आक्रमण इस पर होता है।

पैदावार—२५-३० मन लगायत ५०-६० मन प्रति एकड़ के हिसाब से फल आते हैं। एन० जी० मुकर्जी इसकी पैदावार ५०० मन तक बतलाते हैं। फल प्रथम वर्ष की अपेक्षा दूसरे वर्ष में अधिक आते हैं। इसकी काश्त से कितना नफ़ा होता है यह ठीक-ठीक नहीं बतलाया जा सकता, क्योंकि प्रत्येक प्रांत से इसकी दर अलग-अलग है। कई स्थानों में यह १) रु० सेर के हिसाब से बिकता है तो कहीं ।) सेर भी बिकता है। बिहार में चैत्र में लगाकर अब तक बरसाती तरकारियाँ

बहुतायत से नहीं आती; इसका दर ।=) सेर से ।) तक हो जाता है, आषाढ़ के बाद =) सेर के हिसाब से बिकता है, परंतु बड़े शहरों में महंगा ही रहता है। यदि पैदावार ४० मन हो रक्खी जाय तो =) सेर के हिसाब से २५०) रु० होते हैं और चार आने का दर से ४००) रु० प्रति एकड़ होते हैं। जहां पर यह और भी महंगा बिकता है वहाँ पर तो इसकी काश्त का प्रचार अवश्य होना चाहिए। इसके बीज में भी विशेष खर्च नहीं पड़ता, क्योंकि जो महाशय लगाना चाहें, वे प्रथम वर्ष में थोड़ी बेलें मंगवाकर लगा देवें फिर द्वितीय वर्ष में और फैला देवें।

जिन्हें इस विषय पर विशेष जानना हो, वे सहर्ष लेखक से पूछ सकते हैं। योग्यतानुसार उत्तर अवश्य दिया जायगा।

नारायण दुर्लाचन्द व्यास

---

१. भारतवर्ष में सरेश का बनाना

द्यपि सरेश देखने में बहुत ही साधारण पदार्थ ज्ञात होता है, किंतु इसका मूल्य इसके प्रयोग करनेवालों को ही मालूम है। इसका प्रयोग कागज़ बनाने में, दियासलाई बनाने में, किताबों की जिल्द बाँधने में, जहाज़ बनाने में, लकड़ी के कामों में, छापेखाने का बेलन (Roller) बनाने में नक़ली चमड़ा बनाने और बुनने के कामों के अलावा और भी बहुत सी चीज़ों में होता है। सरेश को साफ़ करने के बाद उसको जिलेटीन (Gelatine) कहते हैं। इसका प्रयोग बिस्कुट इत्यादि खाने की वस्तुओं में, फ़ोटोग्राफ़ी में, दवा की गोलियों के ऊपर एक लेप चढ़ाने में होता है। इसको ऐसे कामों में लाया जाता है, जहाँ पर ऐसी सरेश की आवश्यकता पड़े जिसमें न गंध हो, न रंग हो और न कोई स्वाद हो।

भारतवर्ष में ऐसी वस्तुओं की बहुतायत है, जिनसे सरेश और जिलेटीन बनाया जाता है, किंतु तो भी हमारी आवश्यकताओं का अधिक भाग बाहर से ही आता है। इसमें संदेह नहीं, जैसा कि पाठकगण आगे चलकर समझ सकेंगे, इसके बनाने में भारतवर्ष की जलवायु के कारण कुछ आपत्तियाँ पड़ती हैं, किंतु वे ऐसी नहीं, जिनको सुलभ करना असंभव हो। थोड़े ही समय आगे इस प्रश्न के ऊपर वैज्ञानिकों ने प्रयत्न किया है और उसमें बहुत कुछ सफलता प्राप्त हुई है। प्रत्येक मनुष्य आरंभ से ही इस बात का प्रयत्न करने लगता है कि उसको बिना परिश्रम-विशेष के ही धन प्राप्त होने लगे। यह अभिलाषा कभी पूरी नहीं हो पाती। सरेश को तैयार करना इतना आसान मालूम होता है कि बहुत से धनाढ्य पुरुष तो उसमें रुपया लगाना ही व्यर्थ समझते हैं और उसको बनानेवाले इतना सहल समझते हैं कि उसकी कठिनाइयों का विचार ही नहीं करते। देखने में चाहे सरेश एक सी दिखाई दे ; किंतु उसको रासायनिक रीति से देखने पर उसके गुण-दोष प्रकट होते हैं।

सरेश हड्डियों, नसों, जानवरों की खालों इत्यादि से बनाया जाता है। उसको गरम पानी में उबाला जाता है, उस गरम पानी को जलाकर गाढ़ा किया जाता है, और यही सूखने पर कड़ा हो जाता है, जो देखने में हलके रंग का और साफ़ होता है। सरेश वनस्पति और जानवरों इत्यादि से दो प्रकार से बनाया जाता है, किंतु इस समय वनस्पति के विषय में विचार नहीं किया जायगा, क्योंकि भारतवर्ष के लिये वह लागू नहीं। सबसे अच्छा सरेश हड्डियों से बनता है। जो सरेश खाल इत्यादि से बनता है उसका गुण विशेषतः खाल के सूखी या गीली होने पर निर्भर है।

गीले माल से बनाई हुई सरेश अच्छी होती है और उससे सरेश भी अधिक निकलती है। सूखे हुए माल से सरेश निकालने में अधिक समय लगता है, बहुत देरी तक उबालना पड़ता है, जिससे खर्च भी अधिक होता है,

और सरेश भी उतनी अच्छी नहीं होती। यह सब लाभ होते हुए भी कारखाने मे सरेश बनाने के लिये ताजा माल मिलना कठिन ही नहीं, असम्भव है। बड़े-बड़े कारखानों मे खाल को हलके चूने के पानी में डाल दिया जाता है, जहा वह कुछ दिन तक पड़ी रहती है, फिर हवा मे सुखाकर गोदाम में रख देते हैं और आवश्यकतानुसार उसको काम मे लाते है।

यह ऊपर भी बतलाया जा चुका है कि हड्डियों मे बनी हुई सरेश, खालों से बना हुई सरेश से बिलकुल भिन्न होता है, क्योंकि हड्डी मे Chondrin होता है जिसके कारण उसमे चिपकाने की शक्ति कम होती है। बनाने की रीति यह है— कि हड्डियों से भलीभांति सरेश निकालने के लिये छोटे-छोटे टुकड़े कर दिये जाते हैं। इसके उपरांत उनमे जो चिकनाई चर्बी इत्यादि होती है, उसको निकालना अत्यत आवश्यक है। इसके निकालने से सरेश अच्छी और अधिक ही नहीं बनती, बल्कि चर्बी का दाम अलग खड़ा हो जाता है। विलायत मे चर्बी १२—१४% तक निकलता है, किंतु भारतवर्ष के पशुओं मे चर्बी नहीं होती। जो हड्डियां जिवहखानों से आती है, उनमें चर्बी प्रायः बिलकुल नहीं होती। इसका कारण यही है कि उनको पूरा खाना नहीं मिलता। इसका तात्पर्य यह नहीं कि उन पशुओं की हड्डियों में भी चर्बी नहीं होती, जो धनी पुरुषों के यहा रहते है और खाने को खूब मिलता है। तात्पर्य केवल यही है कि भारतवर्ष के पशुओं मे चर्बी का न होना, जल-वायु के कारण नहीं, बल्कि उनको पेट भर और अच्छी ख़ुराक न मिलने के कारण है। हड्डियों को चर्बी से अलग करने की तीन रीतियां है (१) कड़ाव मे उबालना (२) हलकी भाप से गरम करना (३) किसी ऐसे द्रव पदार्थ का प्रयोग करना जिसमे चर्बी घुल जाय।

कड़ावों मे उबालने से सारी चर्बी नहीं निकलती। कुल आधी के लगभग निकल पाती है। भाप द्वारा चर्बी निकालने मे चर्बी तो अधिक निकलती है, किंतु सरेश ख़राब हो जाती है। पेट्रोलियम ईथर (Petroleum Ether) से लगभग १०% चर्बी निकल आती है, किंतु सरेश पर एक रंग चढ़ जाता है जिसके कारण उसका दाम अधिक नहीं उठता। अतएव हड्डियों को चर्बी से अलग करने के लिये कड़ाव मे पानी के साथ उबालना ही लाभकारी है।

किंतु भारतवर्ष में चर्बी निकालने का प्रयत्न करना व्यर्थ है। यहां पर हड्डियों को पीसने के बाद सीधा हलके गधक के तेज़ाब (Dil Sulphuric acid) में डाल दिया जाता है, जिससे हड्डियां बहुत कुछ साफ़ हो जाती है और साफ़ सरेश आसानी से मिल जाती है।

मगर हड्डियों से सरेश निकालने के लिये कड़ाव में पानी के साथ उबालने से काम नहीं चलता। आवश्यकता इस बात की पड़ती है कि भाप के साथ-साथ दबाव (Pressure) भी पड़े। इसलिये हड्डियों को, जो पहले ही उपर्युक्त रीति से साफ़ की जा चुकी हैं, तार की टोकरियों में रखकर आटोक्लेव (Autoclave) मे २-३ घंटे गरम किया जाता है और २० पौंड प्रति वर्ग इंच (per sq inch) का दबाव डाला जाता है।

नोट—आटोक्लेव फ़ौलाद का एक बड़ा बर्तन होता है, जिसमें भाप द्वारा गर्मी पहुँचाई जाती है। ऊपर का एक ढक्कन जब जकड़कर बदकर दिया जाता है, तो उसमें भाप का एक दबाव पड़ता है, जो उस पानी के गर्म किये जाने मे बनती है, जो इसी बर्तन मे उबलनेवाली वस्तु के साथ-साथ डाला जाता है। हम आटोक्लेव को भाप से गर्म न करके पेंदे को आग से भी गर्म कर सकते हैं।

टोकरी उठाने के बाद सरेश पानी के साथ घुली रहती है (इसको निकालकर दूसरा ताज़ा पानी डाला जाता है, और उन्हीं हड्डियों को उपर्युक्त रीति से एक बार और गर्म किया जाता है। कभी कभी हड्डियों को तीन बार जल से गर्म करने की भी आवश्यकता पड़ती है। यह सब हड्डी के ऊपर निर्भर करता है कि उसको कितने बार जल में उबालने की आवश्यकता है। इन सब पानियों को एक साथ मिला लिया जाता है। हड्डियों में से जो कुछ बाकी बचता है, उसको सुखाकर बारीक पीस लिया जाता है। उसमे अधिकतर (Calcium phosphate) होता है, यह स्वय खेती के लिये बड़ी अच्छी खाद बन सकता है। यदि इसको गधक के तेज़ाब (Sulphuric acid) से मिला दिया जाय तो उससे भी अच्छी खाद अर्थात (Superphosphate) सुपरफ़ास्फ़ेट बनती है। यू० पी० की मिट्टी का रासायनिक रीति से अध्ययन करने से ज्ञात हुआ है कि यदि इसमे सुपरफ़ास्फ़ेट आवश्यकतानुसार मिलाया जाय, तो पैदावार को बहुत लाभ होगा। साधारणतया हड्डी के वज़न की १२-१४%

सरेश निकलती है जब कि उसको २-३ घंटे तक ऑटोक्लेव में २०-२५ पौंड के दबाव मे उबाला जाता है।

यदि सरेश निकालने के पूर्व हड्डियों को भलीभाँति तेज़ाब और जल से साफ़ नहीं किया गया है, तो सरेश को साफ़ करने की आवश्यकता पड़ती है। किंतु मामूली सरेश को साफ करना इतना आवश्यक नहीं। केवल ऑटोक्लेव से निकाले हुए जल को थोड़ी देर तक रख दिया जाता है, उसकी बहुत कुछ मैल मिट्टी नीचे जम जाती है और ऊपर-ऊपर से साफ़ सोल्यूशन ले लिया जाता है। किंतु अब बढ़िया सरेश या जिलेटीन बनाना होता है, तो उसको अधिक साफ़ करना पड़ता है।

साफ़ करने की कई विधियाँ हैं, किंतु उनमे से कुछ ऐसी हैं, जिनका प्रभाव सरेश की चिपकनेवाली शक्ति पर पड़ता है। कभी-कभी सरेश को साफ़ करने के लिये उसको धुले हुए बालू या साफ कोयले से छानते हैं, किंतु उन अवस्थाओं मे ऐसा किया जाता है जब Colloidal matter बहुत कम हो। सबसे अच्छी साफ़ करनेवाली वस्तु अंडे के भीतर का सफ़ेद हिस्सा होती है, किंतु मूल्य अधिक हो जाने के कारण उसका प्रयोग नहीं होता। ऐलम (alum, बोरैक्स Borax) इत्यादि भी उपयोगी होते हैं। यदि ठंडे सरेश मिले हुए जल मे थोड़ा-सा ऐलम (Al (So), 18H20) या [K-So, Al (So), 24H20] मिलाने से, और थोड़ा-सा ऐमोनिया (ammonia) डाल देने से संतोष-जनक परिष्कार हो जाता है।

साफ़ करने से केवल इस बात के ध्यान रखने की आवश्यकता है कि सरेश के चिपकाने की शक्ति कम न हो जाय। थोड़े से तजुर्बे से इस बात का ज्ञान भलीभाँति हो सकता है कि किस वस्तु की कितनी आवश्यकता है।

साफ़ किया हुआ जल जिसमे सरेश घुली हुई रहती है स्वयं नहीं जम जाता, क्योंकि यह बहुत पतला रहता है, अतएव गाढ़ा करने की आवश्यकता पड़ती है। पहले भी बताया जा चुका है कि बहुत देर तक उबालने से सरेश ख़राब हो जाती है अतएव इसको हवा निकालकर गाढ़ा किया जाता है। बड़े-बड़े कारख़ानों मे इस बात का भलीभाँति प्रबंध होना संभव है, किंतु छोटे-छोटे कारख़ानों में इसका दूसरा ही प्रबंध करना पड़ता है, क्योंकि उपर्युक्त रीति मे बड़ा ख़र्च पड़ता है। उस जल को जिसमें सरेश घुली हो दोहरी चादर लगे हुए बर्तन में पानी की भाप द्वारा गाढ़ा किया जाता है। इस प्रकार गाढ़ा करने में बराबर हिलाने की आवश्यकता रहती है जिससे कि ऊपर पपड़ी न बन सके। इस जल का रंग इस विधि से कुछ गहरा पड़ जाता है और सब कुछ करने पर भी सरेश उतनी अच्छी नहीं निकलती।

यदि गाढ़ा कियाहुआ जल बहुत गहरे रंग का है, तो इस रंग को हटाने की चेष्टा करनी पड़ती है जिसके लिये गंधक की भाप (So) का उपयोग होता है। जब इसको शीशे के टुकड़ों पर डाले, तो साफ़ हो और कोई रंग विशेष न हो, यह गुण जमने पर आ जाना चाहिए। साधारण कम मूल्य की सरेश बनाने मे यह सब नहीं किया जाता। So के अलावा भी रंग को दूर करनेवाली दूसरी वस्तुएँ हैं, किंतु प्रयोग करने से पहले हमें मूल्य का ध्यान रखना पड़ता है। उनका दाम बेशी होने के कारण उनको काम मे नहीं लाते।

थोड़े से तजुर्बे मे ज्ञान हो जाता है कि जमाने के लिये गाढ़े-गाढ़े जल को कब डालना चाहिए। इसको टीन के साँचो मे डाला जाता है, जिस पर नारियल का तेल लगा रहता है। बड़े-बड़े कारख़ानों में, साँचों मे डालने के अनंतर जब सरेश कुछ सख़ जाती है, तो उसको लंबे-लंबे टुकड़ों में काट दिया जाता है जिससे भेजने मे आसानी रहे। 'उनको कब काटा जाय' यह सब तजुर्बे की बात है। देखते-देखते स्वयं ज्ञान हो जाता है। इसके लिये कोई नियम-विशेष नहीं है।

सरेश का सुखाना उसकी अंतिम क्रिया है, किंतु यही सबसे कठिन है। साँचे पहले तीन या चार दिन तक एक ठंढे स्थान मे सुखाए जाते हैं। तदुपरांत उनको वहाँ से उठाकर तारों पर फैला दिया जाता है, जिनके चारो तरफ़ आग की गर्मी रहती है। यहाँ पर पूर्ण-रूप से सुखाने में १-२ दिन लगते हैं। कभी-कभी सुखाने में अधिक देर हो जाती है। इस दशा मे यह विशेष ध्यान रखना चाहिए कि उसमें कीड़ा न लगने पावे। सुखाने के साथ हवा में कितनी नमी है, कितनी गरमी है इन बातों का पूरा ज्ञान रहना उचित है; क्योंकि कभी-कभी ऐसा होता है कि सरेश देर मे सूखे या बिलकुल ही न सूखे, तो कीड़े इत्यादि के लगने या न लगने मे वायु का बहुत बड़ा भाग रहता है।

कभी-कभी यह भी संभव हो जाता है कि सरेश ऊपर से बहुत शीघ्र ही सूख जाती है, अर्थात् ऊपर तक सूखो

हुई पपड़ी बन जाती है जिसके कारण अंदर के सूखने में कठिनता पड़ती है। प्राय. यह भी देखने में आया है कि ज़रा-सी देर में ही सरेश इतनी सख़्त हो जाती है कि मुश्किल से टूटती है और टूटने पर काँच की तरह चमकदार हो जाती है।

सरेश का सुखाना ही एक जटिल समस्या है और विशेषकर भारतवर्ष मे, जहाँ पर मौसम की बदली के कारण हवा की गर्मी और नमी मे बडा अतर पड जाता है, उपर्युक्त कठिनाइयाँ विशेषकर भारतवर्ष की वायु के कारण ही पैदा होती हैं। इसीलिये सरेश को क्रमश बरा-बर सुखाने के लिये गरम हवा के कमरे और ठडे कमरो मे सुखाने की आवश्यकता है। सरेश की दशा मौसम के अनुसार बदलती रहती है, अतएव किसी भी स्थान मे कारख़ाना खोलने से पूर्व वहाँ की जल-वायु का पूर्ण ज्ञान होना अत्यंत आवश्यक है और उसके साथ-ही-साथ उस वायु के उपयुक्त सुखाने की रीति का प्रबध होना चाहिए। यदि इन बातो का भलीभाँति ध्यान न रखा गया, तो सरेश के सुखाने का काम बडा कठिन हो जायगा, और चारो ओर से हानि ही हानि की सूरत नज़र आएगी। हैदराबाद (दक्खिन) मे जहा सरेश के विषय मे अनेक परीक्षाएँ हुई थीं, वहाँ की वायु का मनन करने के उपरात यही निश्चय किया गया कि बिना किसी विशेष कठिनाई के अक्तूबर से मार्च तक सरेश का काम चल सकता है। बाकी दिनो मे सुखाने मे कुछ कठिनाई पड़ेगी, किंतु यदि सुखाने का उपयुक्त प्रबंध कर लिया जाय तो साल-भर काम हो सकता है।

सरेश बनाने की सफलता विशेषकर उसके सुखाने मे है, जिससे कि वह भलीभाँति सूख भी जाय और उसमे कीड़े भी न लगने पावे, क्योंकि सरेश मे हवा के कीड़े शीघ्रता से अपना असर पैदा कर लेते है। किसी वस्तु मे भी ज़रा सी गुंजाइश होते ही कीड़े लग जाते है और जब हवा मे नमी रहती है, तो और भी जल्दी फैलते हैं। कुछ ऐसे कीड़े होते है जो सरेश को सड़ाते नहीं, किंतु सरेश को जमने भी नहीं देते, अतएव वह किसी काम की भी नहीं रहती। जब हवा मे बहुत नमी होती है, तो सरेश पर बहुधा हरी हरी फुई लग जाती है। इसको एक गीले कपड़े से पोंछा जा सकता है और सरेश को कोई हानि भी नहीं पहुँचती। किंतु विशेष भय उन कीड़ो का रहता है जिनसे सरेश बिलकुल ख़राब हो जाय।

साधारणतया हवा मे अधिक नमी होने या सरेश मे कीड़ो के लिये खाद्य पदार्थ (Phosphates) पाने में सरलता होने के कारण कीड़े लग जाते हैं। जब कभी कीड़े लगने का भय हो, तो इनको मारनेवाली ओषधियाँ जैसे mercury perchlor, Formaldehyde, acid carbolic, salicylic और Boric डाल देना उपयोगी होगा, और सरेश के गुणों मे भी किसी प्रकार का अतर न होने पावेगा।

यदि कारख़ाने मे सफ़ाई का विशेष ध्यान रखा जाय, तो कीड़े लगने का भय बहुत कम रह जाता है। और ज्योंही कीड़े लगने का ज़रा भी सदेह हो, तुरंत ही उसका प्रबध कर देना चाहिए नहीं, तो ज़रा से आलस्य मे काम बहुत बिगड़ जाता है। सारांश यह कि सरेश को सुखाते समय विशेष बुद्धिमत्ता और तजुर्बे की आवश्यकता है।

सरेश बनाना छोटा-सा काम भले ही समझा जाय, किंतु इसमे लाभ बहुत अधिक है, क्योंकि सरेश के साथ और कई चीज़े भी बनाई जा सकती है। अच्छी हड्डियाँ सरेश बनाने से पहले छाँटकर बटन, छड़ियाँ, छातो व चाक़ुओं की बेट और बहुत सी, सुंदर-सुंदर वस्तुओं के बनाने में, प्रयोग मे लाई जा सकती है। ख़राब और सडी हुई हड्डियों को हवा मे न जलाकर उसका तेल, पिरीडीन (pyridine) तारकोल इत्यादि बनाये जा सकते हैं। और हड्डियों के जलाने से जो कोयला निकलता है, उससे अलग लाभ होता है, क्योंकि उसका प्रयोग शकर इत्यादि साफ़ करने मे बाहर के पश्चिमीय देशों मे बहुत होता है इसके अलावा हड्डियों से बड़ी उपयोगी खाद बनती है।

सरेश का परखना—'सरेश कैसी है' यह जानना बड़ा आवश्यक है। यह प्रश्न जितना बनानेवाले के लिये आवश्यक है उतना ही ख़रीदनेवाले के लिये भी, क्योंकि सरेश का मूल्य उसके गुणों पर ही निर्भर करता है। सरेश देखने मे हलके रग की हो और साफ़ हो, किंतु तो भी यदि उसमें चिपकाने की शक्ति कम है, तो उसका मूल्य कम ही उठेगा। बनानेवाले को सरेश की जाँच करना इतना ही आवश्यक है जितना कि उसका बनाना।

सरेश की जाँच करने मे निम्न-लिखित विचार उप-योगी होगे—

(१) सरेश मे किसी भी प्रकार की गध न होनी चाहिए, चाहे रग भले हो।

(२) पानी मे २४ घंटे पड़े रहने पर भी न घुल सके और अपने वज़न का १० गुना पानी चूस ले।

(३) भलीभाँति सूखी हुई हों जिसमे कीड़े लगने की कोई संभावना न हो ।

जब कोई कारख़ाना खोलने की चेष्टा होती है, तो पहला प्रश्न यही होता है—कोई लाभ होने की आशा है । छोटी-छोटी ऐसी बहुत सी तिजारतें हैं जिनसे आशा की अपेक्षा लाभ कहीं अधिक होता है । किंतु कोई भी कारख़ाना खोलने से पहले, यह भी सोचना उचित है कि बनाये हुए माल के ख़रीदार भी हो सकेंगे या नहीं । अतएव बनानेवाले को केवल बनाने की ही चिंता नहीं रहती, बल्कि उसके बेचने का भी प्रयत्न करना पड़ता है । इन सब बातों का विवेचन करते हुए यह ज्ञान होता है कि सरेश का कारख़ाना खोलने मे अधिक धन की आवश्यकता नहीं, और धन के अनुसार लाभ भी थोड़ा नहीं है । यदि ४,०००) कुल लगाकर एक कारख़ाना खोला जाय, तो लगभग २ मन हड्डियों की प्रत्येक दिन आवश्यकता पड़ेगी जिसमें से १८-२० सेर तक सरेश मिल सकती है । लाभ का एक अंदाज़ा लगा देना अनुचित न होगा—

मासिक ख़र्चा—	रु०
६० मन हड्डियों का मूल्य	६०)
रासायनिक पदार्थ (chemicals)	२०)
कुली (तीन)	४०)
लकड़ी	८०)
इमारत का किराया	२०)
४,०००) का सूद	४०)
मशीन पर ख़र्चा (Depreciation)	४०)
	कुल ३२०)

यदि मासिक ४०० सेर भी सरेश तैयार हो, तो रुपए सेर के हिसाब से ४००) की हुई । अतएव लाभ १७४) के लगभग हुआ, और यदि प्रत्येक कार्य उचित रीति से कराया जाय, तो अधिक लाभ की भी संभावना रहती है ।

सरेश का कारख़ाना खोलने में हानि की आशा बहुत कम है, क्योंकि उसकी प्रत्येक बचत से दूसरी चीज़ बनती है । कोई ख़ास बड़ी मशीन की आवश्यकता भी नहीं । बहुत सी चीज़े यहीं बनाई जा सकती हैं और न सरेश के बनाने में कोई गुप्त भेद है, केवल परिश्रम की आवश्यकता है ।

विनोदविहारी भाटिया

१ प्रेम की [illegible]

(१)

भला, किसको निज प्रेमी मान,
बिठाऊँ हृदयासन पर आज ?
सजललोचन स्वागत के हेतु,
बिछाऊँ जिसके मग में साज !
अमल-यौवन, सौजन्य, सुप्रेम,
पुण्य-प्रतिमा का पावन हार —
वार दूँ, किस ममता पर आज,
प्रफुल्लित होकर बारबार ?

(२)

वेदना किसको, कैसे हाय —
सुनाऊँ करके करुण-विलाप ?
हृदय यह अपना, अपने हाथ —
दिखाऊँ किसे चीरकर आप ?
हो रही है वर्षों से खोज
शोक में भरते हैं बस, आह !
किसी प्रेमी की करुणा-कोर —
मिटा दे जीवन की यह दाह !

रामसेवक त्रिपाठी

× × ×

२ आशा

(१)

औत्सुक्य की सागरिका से निपट मचल;
समुत्तुंग कल्लोल मालिनी-सी चंचल।
सौंदर्य की सुखद सारिणी-सी उज्ज्वल,
मन-मानस में थिरक-थिरक करती कलकल।
उदासीनता के आँगन में फैला सुखद सुहास,
धुँधली-सी ज्योति-प्रसरित कर करने लगी विलास।

(२)

विधुवदनी के ललित लास्य-सी वह छल छल;
स्मृति पट पर उल्लिखित अंक से निकल चपल।
वहाँ एक कोने में लेकर शांति सकल,
पहनाई संशय की माला कर निर्बल।
भावुक सुमन माल में डाले फूल सभी ही गूँथ,
रमणीयता के पर्दे पर लिखे चित्र-पट मूँद।

(३)

सभ्रम-साहस की खिड़की से टुक ताक,
सादर प्रतिबिंबों में केलि-क्रिया के झाँक।
आच्छन्न मेघों से पाया नभ उज्ज्वल,
कुहु-क्रोड भरे पूर्ण शशी की प्रभा बिमल।
हृत्सरिता को दे दे थपकी तरल तरंगित करती
मनोलालसा की नौका पर सस्मय बैठ बिचरती।

उदयशंकर भट्ट

× × ×

३ रहस्यवाद और कवि

उपनिषद्कार लिखते हैं—

"बिना दिव्य दृष्टि प्राप्त हुए, सृष्टि-रहस्य का ज्ञान होना असंभव है। जीव अज्ञान के अंधकार में भटक रहा है। विद्या-हीन मनुष्य संसार के सम्पूर्ण दृश्यों का दर्शन करने में असमर्थ है। कवि के लिये, जो वस्तु आनंदप्रद है, दूसरे के लिये वही दुःखमय है। इसका कारण यह है—कवि सर्वत्र ब्रह्मसत्ता का दर्शन करता है।"

संसार के प्रत्येक अणु-परिमाणु में ईश्वर विराजमान है। दृश्य और अदृश्य जगत् की प्रत्येक वस्तु उसी को लेकर पूर्ण है। जब आप साधना-शक्ति द्वारा उस परब्रह्म के दर्शन प्राप्त कर सकेंगे, तब आप जड़ जगत् से चेतना की ओर जायँगे। तभी आपको वास्तविक ज्ञान होगा। यह जो रंग-बिरंगी विचित्र प्रकृति हमारे सम्मुख नित्य-नवीन रूप धारण कर सर्वत्र अपनी दिव्य ज्योति फैला रही है, यह कोई कल्पित ईश्वर की सृष्टि नहीं। इसके भीतर मंगल-भाव ओत-प्रोत है। यह सत्य और सुंदर है। वसंत की सुहावनी सुकुमार वायु का नवजीवन-प्रदान, रंग-बिरंगी कुसुमावलि का सौंदर्य-विकाश, बादलों का सुंदर जल-किल्लोल, सूर्य-चंद्र का प्रकाश-प्रपात,—सर्वत्र ईश्वरवाद का मंगल-गीत गा रहा है। प्रभात-काल की सुनहरी अरुण किरणें विचित्र छवि धारण कर मुसकुराती हैं—निद्रित आत्माओं को जगाती है। अंधकार की अंधी रात्रि में छोटी-छोटी तारिकारूपी हूरें केवल मुसकुराती ही हुई मनुष्यों को पागल नहीं बनातीं, वरन वह ध्रुव-तारिका का रूप धारण कर भूले-भटके पथिकों को रास्ता भी बताती है। कितने ही कोमल पुष्पों का विकाश करती है—संसार की सेवा के लिये प्रकृति का आत्मार्पण अपूर्व है!!!

किंतु साधारण मनुष्य,—'उसकी कुछ न पूछिए!' वह बेचारा अपने स्वत्वों के ही लिये लड़ रहा है! अपने स्वार्थों को ही लेकर पागल है! उसे संसार के इस रहस्य का कहाँ ज्ञान? संसार के प्रत्येक रहस्य का दर्शन कराना केवल कवि का ही काम है। कवि द्रष्टा है, कवि महात्मा है। सत्य और सुंदर का परिचय जिस समय अज्ञान-धूलि-जाल से ढका रहता है, तब संसार में केवल एक कवि की ही आँखें—उस धूलि-तल को भेदकर—उसके मंगलमय स्वरूप को ढूँढ़ निकालती हैं। वाणी-रूप में उसे विश्व-मानवों के सम्मुख रखती है। कवि और साधारण मनुष्य की दृष्टि में बड़ा अंतर है। संसार में दो ही प्रकाशित होते हैं—एक कवि और दूसरा रवि,—रवि के प्रकाश से अधिक कवि का प्रकाश उज्ज्वल है। संसार के रहस्य को समझने के लिये जितनी शक्ति कवि में है, उतनी अन्य में नहीं। साधारण मनुष्य जिसे कलंकमय समझकर घृणा करता है, कवि वहाँ वृहत् अरण्य का दर्शन करता है। साधारण मनुष्य जिसे अकर्मण्यता समझता है, उसे ही कवि ज्ञान और क्रीड़ा, राग और वासना, सुख और संतोष का भांडार कहता है। कवि के ज्ञान का आश्चर्यजनक प्रभाव है। शरद्-काल की सुधामयी पूर्णिमा और भादों की अंधी अमावास्या में जो भेद है, वही भेद कवि और साधारण मनुष्य में है। कवि की व्याख्या ही नहीं की जा सकती। "कविर्मनीषी परिभूः स्वयंभूः।"

कवि स्वेच्छानुसार सम्पूर्ण वस्तु को नए रूप में देखता है। उसकी दिव्य दृष्टि कविता-रूप में अंकित होकर सांसारिक मनुष्यों के पास पहुँचती है। कवि की कल्पना स्वतंत्र है। छंद-शास्त्र, व्याकरण और भाषा का जटिल बंधन उसे अपने बंधनों में बाँध ही नहीं सकता। प्राचीन शास्त्र जिसे निर्दिष्ट सीमा बनाकर कवि को बंधन में बाँध रखना चाहते हैं, कवि की स्वाधीन कल्पना क्षणमात्र में ही उन भयंकर बंधनों को तोड़कर आनंदमय—अनंत लोक में—विचरण करती है। यही है कवि की मुक्ति! यह अद्भुत मुक्ति ही सत्कविता की जननी है। संसार के प्रत्येक रहस्य को किस तरह सुंदर-रूप में परिणत कर मंगलमय बनाऊँ, यही कवि की एकांत भावना है। इसी में उसका आनंद है। यदि इस साधना में कवि सफल होता है, तो समझना चाहिए—संसार में कवि का जन्म सार्थक है।

ईश्वर की समस्त सृष्टि, प्रकृति का सुंदर साम्राज्य,—अद्भुत कवित्व-पूर्ण है। कोई भी कवि बिना वास्तविक अनुभव प्राप्त किए अथवा बिना मानव-जीवन या जड़-चेतन जगत् का सूक्ष्म से भी सूक्ष्म तत्त्व हृद्गत किए—किसी विषय पर लिखकर सफलता ही नहीं प्राप्त कर सकता। सफल कवि अपनी प्रत्येक कृति में अदृश्य रूप से व्याप्त रहता है। उसका प्राण, उसका जीवन, उसका सर्वस्व, जिसके कारण उसकी महत्ता है, उसमें सर्वत्र पाया जाता है। जिसकी हृदय-वृत्ति पूर्णविकसित नहीं, उसके लिये कविता आकाश-कुसुम है। स्वप्न में भी वह

कवि कहलाने का अधिकारी नहीं। कविता का आदर्श प्राणों में ही है।

कविता-सौंदर्य पर सहृदय व्यक्ति ही मुग्ध होते हैं। संसार का प्रत्येक रहस्य सौंदर्यमय है। इस सौंदर्य-समुद्र-मंथन से जो अमृत उत्पन्न होता है, पृथ्वी के श्रेष्ठ कवियों की कविताओं में हम उसी का पान करते हैं। कवि-मात्र सौंदर्य-पथ के पथिक हैं। ईश्वर ही सौंदर्य है और सौंदर्य ही ईश्वर! सत्य, मंगल और सौंदर्य का मूलाधार एक-मात्र ईश्वर ही है। सौंदर्य कहाँ नहीं है? मेघ-मुक्त आकाश की नीलिमा-सुंदरी का कोमल कपोल चुंबन करनेवाले विशालकाय पर्वत, वसुंधरा शृंगार कुसुम-कुंज, वन-उपवन में दिव्य मोती विखेरनेवाले निर्मल और पवित्र झरने, वसंत-सखा के साथ मुसकुरानेवाले मनोहर तरु, रंग-बिरंगे फूल,—सभी सुंदर हैं। मतवाले मधुकर, प्रेमी पतंग, मदांध पशु, स्त्री और पुरुष—सभी सौंदर्य-सुख में उन्मत्त हैं, मतवाले हैं। सौंदर्य मदिरा पानकर प्रत्येक जीव नशे में मस्त होकर झूमते हैं। बड़े-बड़े योगी, ऋषि, मुनि, तपस्वी तक सौंदर्य की रूप-राशि पर अज्ञान हैं, किंकर्तव्यविमूढ़ हैं।

संसार सौंदर्यमय है। सौंदर्य का मुख्य उद्देश्य है आनंद प्रदान करना। हृदय के भीतर किसी कामना का उद्रेक करना ही सौंदर्य-धर्म है। कविता का प्रधान लक्ष्य है—सौंदर्य की सृष्टि करना। प्रकृति के भीतर सर्वत्र सौंदर्य अपना आत्म-प्रकाश करता है। सौंदर्यमय कविता का प्राण है सत्य। सौंदर्य और सत्य में घनिष्ठ संबंध है। या यों कहिए—यह दोनों बिना एक के जीवित ही नहीं रह सकते। कवि कीट्स (Keats) कहते हैं—

Beauty is truth, truth beauty,—that all
Ye know on earth, and all ye need to know

जो सुंदर है, वहाँ सत्य है। सत्य ही सुंदर है। मनुष्य-ज्ञान इससे अधिक नहीं हो सकता। आवश्यकता भी नहीं है।

सत्य और स्वाभाविकता ही कविता की जान है। कवि को कविता में उत्तेजित करनेवाला और कोई नहीं,—स्वयं ईश्वर है। ईश्वर की समस्त सृष्टि कवित्वमय है। उसी को घेरकर,—कविता संसार में सूर्य की किरणों की तरह सर्वत्र फैलती है। सत्य चाहे सुखमय हो या दुखमय, सुंदर हो या कुत्सित, वेदनामय हो या आनंदमय सत्य को प्रकाशित करना ही कवि का प्रधान कर्म है। सत्य-हीन कल्पना-प्रलाप या शब्दालंकार कभी भी कविता को प्रकाशित नहीं कर सकते। सत्य का प्रकाश ऐसा होना चाहिए, जिसके भीतर कवि की आत्मा मुसकुरा रही हो। जिसे अन्य हृदय प्राप्त करते ही सत्य का स्वरूप समझने में समर्थ हो सके। जिस कवि का सत्यवाद जितना ही स्पष्ट और सुंदर होगा, उसकी कविता भी उतनी ही सुंदर और सार्थक होगी। असत्य और अस्वाभाविकता कविता की मृत्यु का प्रधान कारण है।

कविता का विषय साधारण सत्य नहीं, सार्थक सत्य है। पृथ्वी की आयु के साथ कविता की भी आयु बढ़ती जा रही है। जो सचमुच सत्कविता के सृष्टिकर्ता हैं, अस्वाभाविकता उनसे कोसों दूर रहती है। कवि की जो इच्छा होगी, वही लिखेगा और वह सत्कविता कहलाएगी। इस सिद्धांत को मैं कभी नहीं मान सकता, यह किसी पागल की उक्ति है। अधिकांश कवि कभी-कभी असत्य और अस्वाभाविकता का भी जन्म अपनी कविता में दे डालते हैं। किंतु मैं इसे कवि की स्वाधीनता नहीं मानता, यह घोर उच्छृंखलता है। सत्य और स्वभाव का अनुकरण करना ही कविता का प्राकृत-धर्म है। प्रकृति को छोड़कर कविता चमत्कारमय हो ही नहीं सकती। प्रकृति ही कविता की प्रतिष्ठा-भूमि है। प्रकृति स्वयं ही कविता है—और इस कविता के कवि हैं स्वयं परमात्मा। जिनकी रहस्य-लीला के सम्मुख हम सदैव नतमस्तक हैं।

कवि यदि सच्चा कवि है, प्रतिभाशाली है, सत्य-साधक है, जिसमें अंतर दृष्टि है, जिसका हृदय पवित्र और जिसके उद्देश्य साधु हैं, यदि उस महाकवि को समस्त बाधा-बंधनों से मुक्त कर दिया जाय, तो उसकी कविता सिवा सत्य के असत्य और अस्वाभाविक कैसे हो सकती है? यदि असत्य और अस्वाभाविक होगी भी, तो कवि की जादूमयी क़लम के स्पर्श से वह सार्थक, सत्य और स्वाभाविक बन जायगी। सच्ची कविता वही है, सर्वसाधारण जिसका आनंद ले सकें, पंडितों के लिये जिसमें पांडित्य हो और अज्ञानी-अशिक्षितों के लिये आनंद और ज्ञान! यदि सर्वसाधारण कवि की कविता समझने में असमर्थ हैं, तो कविता की सार्थकता ही कहाँ रह जाती है? सरल कविताएँ जितनी मनुष्यों में प्रसिद्ध हैं—उतनी कठोर और गूढ़तत्त्व की कविताएँ नहीं।

क्या संसार में हम जो कुछ देखते हैं, वह सब सत्य है ? सत्य की व्याख्या महात्मा टालस्टाय यों करते हैं—

"Truth will be known not by him who knows only what has been is and really happens, but by him who recognises what should be according to the will of God."

अर्थात्, जो हो चुका है, हो रहा है और होगा—जो इसी को सत्य समझता है, वह वास्तविक सत्य को नहीं पहचान सका। ईश्वर-निर्देश के अनुसार क्या उचित हो रहा है, जो इसकी उपलब्धि कर सकता है, वह सत्य को पहचान सका है।

अच्छा, तो इस सौंदर्य, स्वभाव और सत्य की सृष्टि में कवि की कला की बड़ी आवश्यकता है। कला मनुष्य-जीवन की एक क्रिया या अवस्था है। मनुष्य के भावों का आदान-प्रदान करना ही कला का अन्यतम स्वरूप है। यदि कोई औपन्यासिक, कवि या चित्रकार,—किसी प्राकृतिक सौंदर्य में मुग्ध होकर—उपन्यास, कविता या चित्र में मनोहर भाव-कुसुम विकसित कर सका है, यदि उसकी कृति पर पाठक और दर्शक दोनो ही तल्लीन हो गए हैं तो समझना चाहिए—यही कलाविद की कला सफल है। केवल कला ही एक ऐसी वस्तु है, जो कविता को सार्थक बनाने में समर्थ है। युग-धर्म ही कविता और कला को नियंत्रित करता है। जिस युग में मनुष्य-जीवन की जैसी शिक्षा, साधना या नैतिक अवस्था होगी, उस युग की कविता-कला भी वैसी ही होगी। यदि आज कोई कवि नायिका-भेद और नखशिख-वर्णन में ही अपने जीवन को पूर्ण समझे, तो इस बीसवीं सदी में—संसार में उस कवि का कोई मूल्य ही नहीं हो सकता। आज भारतवर्ष की सोई हुई वासनाएँ करवट बदल रही हैं। आज भारतवर्ष में नवयुग का आरंभ है। आज हम जागृत हो उठे हैं। एक दिन था, जब भारत का प्रत्येक मनुष्य आनंद में मस्त था—किंतु आज हमारा वह आनंदवाद, दुःखवाद में परिणत हो गया है। आज हम दुःख को ही लेकर पागल हैं। हम नहीं जानते, हमारा यह दुःख हमारे पास आशीर्वाद लेकर आवेगा या अभिशाप ? हमारी आशाओं पर फूल बरसेंगे या वज्रपात होगा ? किंतु दुःख,—यदि विचारपूर्वक देखा जाय तो वह मनुष्य प्रकृति का परीक्षक है। वह हमारे सुवर्णमय जीवन को परखनेवाली कसौटी है। दुःख न तो पाप का परिणाम है और न पुण्य का पुरस्कार! दुःख केवल एक स्वच्छ दर्पण है, जो हमारे प्रकृत स्वरूप को हमें दिखा देने में समर्थ होता है। यदि आज हम दुःख का आलिंगन करते हैं, दुःख को ही अपना सुख समझते हैं, तो हमारी कविताओं में—हमारे विरोधों—नायिका-भेद, नख-शिख-वर्णन, या अलंकार क्या पा सकते हैं ? यदि हमारे विरोधी हमारी कविताओं में आनंद चाहते हैं—हमारे अदृष्ट पर जय चाहते हैं, तो सबसे पहले चाहिए, वे अपने हृदय को शुद्ध कर डालें, प्रेम और कल्याण की साधना करें—न्याय और सद्ज्ञान को प्रेम द्वारा उज्ज्वल करने की चेष्टा करें। कविता सदैव अच्छी और बुरी दोनो ही तरह की होती है। प्रकाश के पास जैसे अंधकार है, सत्य के पास जैसे मिथ्या है, वैसे ही सत्कला के पास असत्कला भी वर्तमान रहेगी। कवि की छाया अनंत है—वह अपने ही गीतों में मस्त रहेगा। बड़े-बड़े पंडितों की, द्वेषी मूर्ख समालोचकों की उसे किंचित्-मात्र परवाह नहीं। बड़ी-बड़ी बाधा और विपत्तियाँ सच्चे कवि को सत्य-पथ से विचलित नहीं कर सकतीं।

मनुष्य-जीवन में एक ऐसा समय आ जाता है, जब दुःख को स्वीकार कर लेना कर्तव्य-पथ का साधन हो जाता है। सत्य कहने में दुःख अवश्य भोगना पड़ता है। जब कवि संसार को आत्मीय कहता है, 'वसुधैव कुटुम्बकम्' ही जिसका सिद्धांत है। तब उसकी वेदनाएँ तीव्र हो जाती हैं। कारण, संसार भर का दुःख कवि का दुःख हो जाता है। इस कवि सुख और दुःख को एक मानकर केवल कल्याण को ही अपनी साधन वस्तु समझता है।

आज हिंदी में हम सैकड़ों-हज़ारों नवीन कवियों की कविताएँ नित्य पढ़ते हैं। किंतु कुछ इने-गिने भावुक कवियों की कृतियों को छोड़कर—मैं देखता हूँ—वे कविता क्या—भ्रष्ट तुकबंदी भी कहलाने की अधिकारिणी नहीं हैं—ऐसी कविताओं से कुछ लाभ नहीं होता—अधिकांश में इन्हीं कविताओं को पढ़कर हिंदी के विद्वान् कविता-साहित्य की ओर से निराश हो जाते हैं। किंतु जहाँ तक मैं समझता हूँ—कविता और कला की यह शोचनीय अवस्था अधिक दिन तक न रह सकेगी। हमें सत्समालोचना की बहुत आवश्यकता है। 'मरा', 'मरा' रटते हुए वाल्मीकि आदिकवि हो गए। किसी भी नवीन कवि

मातृत्व –

को निराश होने की आवश्यकता नहीं। यदि वे अपनी कविता को सबसे बड़ी कला मानकर सत्य, शिव और सुंदर—बनाने की चेष्टा करें, तो उससे अभागिनी हिंदी का बहुत बड़ा उपकार हो सकता है।

स्मरण रहे—अमर साहित्य एक अपूर्व ज्ञान-योग है। वह मनुष्य के समस्त जीवन का सत्य-प्रतिबिंब है। याद रहे—भारत का गौरव आध्यात्मिक चिंता है—इसका साहित्य है—वेदांत, उपनिषद् और दर्शन,—जिनके सम्मुख संसार के सभी काव्य मलिन हैं। अब हमें नायिका-भेद, नख-शिख-वर्णन, समस्या-पूर्ति इत्यादि की कोई आवश्यकता नहीं। हम स्वतंत्र होकर साहित्य-पथ पर निर्भय विचरेंगे। कंटकाकीर्ण जंगल से सुंदर सुगंधित और सुकुमार सुमन संचित कर लाना सच्चे माली का ही काम है। सर्वसाधारण का नहीं।

"गुलाब"

× × ×

३ सनेही के प्रति

(१)

आँखें कुछ झिलमिला गई, तू भगा झिटककर कर मेरा;
तब से भटक रहा हूँ मोहन! पता न किंतु लगे तेरा।
दिवस नहीं, मास भी नहीं, हा! वर्ष नहीं सदियाँ बीतीं;
जाने कब से तरस रहीं तव दर्शन से अँखियाँ रीतीं।

(२)

बस! बस!! ऐसी हो चुकी, अब मत मुझे बहुत तू भटकाए,
मिल जा मोर-मुकुटवाले! मेरे गल में लिपटा जाए।
मेरे अति सूखे मानस को प्रेम-नीर से भर दे रे;
इसे अमल सद्भाव कमल-युत अनुकंपाकर कर दे रे।

(३)

नहीं मिलेगा? अच्छा! न मिले, भाग! कहाँ को जाएगा;
देखूँ, अपने को किस बन में, या किस जगह छिपाएगा।
नगर, डगर, उपवन, वन-वन में, कोने-कोने खोजूँगा;
कोई ऐसी जगह न होगी जहाँ कि मैं न पहुँचूँगा।

(४)

आखिर कहीं बजाएगा ही वंशी, कहीं हँसेगा ही:
कहीं किसी के प्रेम-पाश में तेरा हृदय फँसेगा ही।
तब तो तुझे पकड़ ही लूँगा, लूँगा जकड़ सुबाहों में;
लूँगा कसर निकाल सभी, जो झीख रहा हूँ राहों में।

(५)

फिर भी अगर ढीठपन से मुझे 'व्रजेश!' खिझाएगा;
तो अपने अति मृदुल बदन पर चोट सुमन की पाएगा।
होगा बंद एक दृढ़ निष्प्रभ शून्य कोठरी छोटी में:
बाहर झाँक न पाएगा भी जानेगा तब तो जी में?

(६)

अभी कुशल है, आ जा प्यारे! मुसुकाता आ जा राजा;
नाच-नाच मृदु-मधुर अधर धर बजा सुना अपना बाजा।
जिससे हो जाएँ प्रशांत प्रज्वलयमान भव की आँचें;
परमानंद मग्न हो केवल मैं ही नहीं सभी नाचें।

व्रजेश त्रिपाठी

× × ×

४ वर्तमान हिंदी-कविता

सभ्य मानव-समाज ने कविता शब्द की व्याख्या करने में—उसकी परिभाषाएँ रचने में—जितने अधिक रुचि-वैचित्र्य का परिचय दिया है, उतनी मति-विभिन्नता उसने सत्कविता के निर्णय करने में नहीं दिखलाई है—उतना क्या उसका अल्पांश भी दिखलाने में वह असमर्थ रहा है। जहाँ कविता के परिभाषा-विषयक बड़े-बड़े काव्याचार्यों के सैकड़ों मत प्रत्येक साहित्य में वर्तमान हैं और उन सभी मतों में कुछ-न-कुछ विभिन्नता भी है ही, वहाँ ही प्राय सर्वसम्मति से होमर और डान्टे, वाल्मीकि और व्यास, शेक्सपियर और मिल्टन, कालिदास और तुलसी-दास अखंड कविता-सागर के देदीप्यमान-रत्न स्थायी रीति से मान लिए गए हैं और अब इस विषय में अधिक वाद-विवाद भी प्राय स्थगित-सा हो चुका है। इस रहस्य के उद्घाटन के लिये हमें बहुत दूर जाने की आवश्यकता नहीं होगी। बात यह है कि कविता का संपर्क सीधे मानव-हृदय से है—मस्तिष्क से उसको विशेष प्रयोजन नहीं रहता। इसके विपरीत, व्याख्या आदि करने में बुद्धि-तत्त्व ही अपेक्षित है, जिसका आधार मस्तिष्क है, हृदय नहीं। यही कारण है कि कविता की व्याख्या—सर्वमान्य निश्चित व्याख्या कर सकने में अब तक के सभी प्रयास असफल रहे हैं और यह बिना किसी प्रकार के प्रतिवाद की आशंका के, सहज ही में कहा जा सकता है कि भविष्य में भी इस विषय के सभी प्रयास असफल ही रहेंगे। हृदय ही कविता का विधाता है, अत हृदय ही उसका सच्चा निर्णायक हो सकता है—स्वाभाविकता ऐसा कहती है।

कविता में मनुष्य की संगीतप्रियता को भी प्रतिबिंबित होने का अवसर मिलता है। यह संगीत-कविता का बाह्य आवरण है, जिसको धारण कर कविता-कामिनि सहृदयों को प्रहर्षित करने के लिये रंग-मंच में प्रवेश करती है। परंपरागत प्रथा के अनुसार हिंदी में 'वृत्त' ही संगीत कहलाता रहा है—छंदोबद्ध तुकांत-रचना ही संगीत-रंजित कहाती रही है। परंतु वर्तमान काल के महाकवि श्रद्धेय पं० अयोध्यासिंहजी उपाध्याय ने 'प्रिय-प्रवास' महाकाव्य में अतुकांत छंदों का प्रयोग कर एक नई समस्या हिंदी-भाषियों के सम्मुख रख दी है। इन महाकवि के बाद ही नवयुवक कवि श्रीसूर्यकांतजी त्रिपाठी 'निराला' ने वृत्त को एकदम ही तिलांजलि देकर मुक्त-वृत्त कविता की रचना की है, जिससे हिंदी में उन्हें युग-परिवर्तनकारिता का श्रेय मिला है। अब प्रश्न यह होता है कि इन दोनो कवियों की रचनाएँ परंपरागत प्रथा के अनुसार संगीत की सीमा के बाहर होते हुए भी वास्तव में संगीत-युक्त हैं या नहीं। महाकवि के 'प्रिय-प्रवास' का पारायण करनेवाले रसिक-समुदाय सर्वसम्मति से उस ग्रंथ-रत्न को संगीत-मय मानेगे, ऐसा मेरा विश्वास है—रही बात 'निराला' जी की, जिनके विषय में यह कहा जा सकता है कि उनकी अधिकांश छंद-रहित रचनाओं में भी संगीत है और कहीं-कहीं तो पूरी मात्रा में है। मेरा वैयक्तिक विचार तो यह है कि कविता के 'संगीत' शब्द से वही अभिप्राय गृहीत होना चाहिए, जो अँगरेज़ी में Consonance शब्द से गृहीत होता है। शब्दों का सुसंगठित प्रयोग ही संगीत के लिये पर्याप्त है, तुकांत या छंद-स्रोत के लिये अनिवार्य वस्तुएँ नहीं कही जा सकतीं। यद्यपि यह नूतन सिद्धांत हिंदी की परंपरा के प्रतिकूल है, पर यह वास्तविकता के दृढ़ आधार पर स्थित है। इससे वर्तमानकालीन वृत्त-संबंधी वाद-विवाद दूर होगा और सत्काव्य की प्रतिष्ठा होने में सुगमता होगी।

ऊपर की पंक्तियों से यह स्पष्ट हो जाता है कि मेरे विचार में कविता का आभ्यंतर-स्वरूप हृदय से संबंध रखता है और उसका बाह्य आवरण संगीत है, जो शब्दों के सुसंगठित संयोग पर अवलंबित है। यद्यपि इन दोनो काव्यांगों में प्रथम आभ्यंतर अंश ही मुख्य है और संगीत-गौण, पर ये दोनों अंग कविता के लिये आवश्यक हैं और इनमें से किसी एक के अभाव से कविता अपने उच्चासन से गिर जाती है, जिससे वह मानव-हृदय पर यथेप्सित प्रभाव का उत्पादन नहीं कर सकती। जिस देश में, जिस विशेषकाल में, कविता अधःपतित हो, ऐसी अवस्था को प्राप्त हो जाती है, उस देश में, उस विशेषकाल में सामाजिक, राजनैतिक तथा मानसिक अवनतियों का साम्राज्य छा जाता है, जो कि देश के दुर्भाग्य का सूचक है। ऐसी दशा देश की सुषुप्ति अवस्था में हुआ करती है। भगवान् की असीम कृपा से ही ऐसी विषम अवस्था में परिवर्तन उपस्थित करनेवाले महाकवियों का प्रादुर्भाव होता है, जिनके द्वारा कविता की नई ज्योति जगाई जाती है, जिससे देश का कल्याण होता है।

सुषुप्त भारत में शृंगारी कवियों की एकांगता को दूर करनेवाले हिंदी के युगपरिवर्तनकारी कवि हरिश्चंद्र ऐसे ही महान् आत्माओं में थे, जिनका अवतार अखिलेश की अनुकंपा के फल स्वरूप ही हुआ करता है और जिनसे देश का जीवन-स्रोत पवित्रीकृत होकर जाति को स्वास्थ्य-प्रद सिद्ध होता है। भारतेंदु हरिश्चंद्र उन थोड़े से पुरुष-पुंगवों में से हैं, जो जनता की कुप्रवृत्तियों के निवारण का भगीरथप्रयत्न कर उसमें सफलता पा सके हैं। उस कवि-श्रेष्ठ के वैयक्तिक जीवन को तो हम आदर्श-कवि का जीवन नहीं मान सकते, पर उनकी कृति से भारतीय जनता ने आशातीत लाभ उठाया है, यह मानने में किसी-को कुछ भी संकोच न होना चाहिए। भारतेंदु की कीर्ति उनकी कविता की अपेक्षा उनके गद्य तथा उनके नाटकों पर अधिक स्थायी रीति से अवलंबित रहेगी। पर इस समय हमको उनकी कविता की ही आलोचना से प्रयोजन है और हम निःसंकोच-भाव से अपने इस युग-प्रवर्तक पुरुष की तुलना भारतीय राष्ट्रीयता के उन्नायक अन्यप्रांतीय भाषाओं के अच्छे-से-अच्छे कवि से कर सकते हैं। इस तुलना में हमारा कवि अन्य देशीय भाषाओं के कवियों से श्रेष्ठ ठहरेगा, इसका भी हमें विश्वास है। समय हमारे इस विश्वास की पुष्टि करेगा, यह भी निश्चित है। हमारे इस कवि में हृदय है, उसमें संगीत है और है परिस्थिति के पहचाननेवाली वह दूरदर्शिता, जिससे भारतीय काव्याकाश में वह एक जगमगाते तारे के सदृश प्रकाश प्रदान करता हुआ असंख्य भारतीयों के द्वारा पूजित हो रहा है।

हरिश्चंद्र के बाद हिंदी के क्षेत्र में जिन दो पुरुषों ने पदार्पण किया, उनके शुभ नाम हैं पं० अयोध्यासिंहजी

उपाध्याय और बाबू मैथिलीशरणजी गुप्त। इन दोनों कवियों का कविता-काल प्रायः समकालीन है, दोनों ने हिंदी की खड़ी बोली की कविता को अपनाया और सफलता-पूर्वक काव्य-ग्रंथों की रचना की। दोनों ही देश-भक्त तथा जाति-भक्त आत्माएँ हैं। पर इतनी समानता होते हुए भी कविता की दृष्टि से उपाध्यायजी का स्थान गुप्तजी से ऊँचा है, ऐसा मेरा विचार है। इतना ही नहीं, मैं तो उपाध्यायजी को वर्तमान युग का सर्वश्रेष्ठ कवि मानता हूँ और उनका स्थान कवित्व की दृष्टि से भारतेंदु हरिश्चंद्र से भी उच्च समझता हूँ। मैं उनकी तुलना बँगला के महाकवि मधुसूदनदत्त से करता हूँ और सब मिलाकर 'मेघनाद-वध' काव्य से 'प्रिय-प्रवास' को कम नहीं मानता। बँगलावाले अपने मन में जो चाहे समझें, पर तुलनात्मक समालोचना की कसौटी में कसकर परखने से पता चलता है कि हमारी हिंदी—वर्तमान शैली की हिंदी में भी ऐसे काव्य-ग्रंथ हैं, जिनके मुक़ाबले बँगला-भाषा बड़ी मुश्किल से ठहर सकती है और कहीं-कहीं तो उसको मुँह की खाने तक की नौबत आ जाती है। ऐसे काव्य-ग्रंथों में 'प्रिय-प्रवास' का उच्च स्थान है, यह प्रत्येक हिंदी-प्रेमी जानता है।

पं० गयाप्रसादजी शुक्ल और पं० माखनलालजी चतुर्वेदी हमारी वर्तमान हिंदी के राष्ट्रीय कवि कहे जा सकते हैं। जनता में राष्ट्रीय भावों को भरने का श्रेय अधिकतर इन्हीं दोनों कवियों को है। कहें, तो कह सकते हैं कि महात्मा गांधी के द्वारा प्रचलित अहिंसात्मक असहयोग के सिद्धांतों के प्रचार में हिंदी-संसार के इन्हीं दो पुरुषों ने सबसे अधिक काम किया है। जोशीली कविताओं द्वारा चित्त में एक नवीन शक्ति का संचार करा देने में ये दोनों कवि बड़े ही सिद्धहस्त हैं। शुक्लजी ने सामाजिक कुरीतियों के दूर करने में भी अपनी कविताओं द्वारा अच्छी सफलता पाई है। यह भी हिंदी-रसिकों से छिपा नहीं है। हमें इस बात का हर्ष है कि राष्ट्रीयता के क्षेत्र में हिंदी के कवियों ने जितनी अधिक सफलता पाई है, उतनी अन्यप्रांतीय भाषाओं के कवियों ने नहीं पाई है। यह संभव है कि बंकिम बाबू का "बंदेमातरम्" सर इक़बाल का 'हिंदोस्ताँ हमारा' तथा इसी प्रकार की एक आध अन्य रचनाएँ राष्ट्रीय काव्य की स्थायी संपत्ति मान ली गई हों। पर समष्टि-रूप से विचार करने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि हिंदी में जो ओज है, जो स्फूर्ति पैदा कर देनेवाली बिजली है, वह बँगला आदि में ढूँढ़े भी मिलने की नहीं। कोमल-कांत-पदावलि ही बँगला की विशेषता है, जिसको वीर-रस के उत्पादन में कोई भी स्थान नहीं।

वर्तमान हिंदी-संसार में कवियों की एक श्रेणी ऐसी भी है, जो ब्रजभाषा में कविता करती है। ऐसे कवियों में पं० श्रीधर पाठक, श्रीजगन्नाथदास 'रत्नाकर', पं० कृष्ण-बिहारी मिश्र, स्वर्गीय पं० सत्यनारायण 'कविरत्न', पं० नाथूरामशंकर शर्मा, पं० जगन्नाथप्रसाद चतुर्वेदी आदि अग्रगण्य हैं। यद्यपि 'साकरी गली में माय काँकरी गरत है' वाली कहावत संभवत: सत्य न हो; पर ब्रजभाषा की नैसर्गिक माधुरी को स्वीकार करने में किसी भी सत्समालोचक को कुछ भी अड़चन न होनी चाहिए। यह वह भाषा है, जिसमें फ़ारसी के कतिपय विद्वान् कवियों ने भी कविता करना उचित समझा था। पाठकजी, रत्नाकरजी तथा मिश्रजी आदि की रचनाएँ ऐसी हैं, जिनसे हिंदी का साहित्य गौरवान्वित हुआ है। इन कवियों की एकत्र की हुई सामग्री को लेकर हम भाषा-माधुर्य और भाव-प्राचुर्य की दृष्टि से अन्यप्रांतीय भाषाओं से अच्छी तरह टक्कर ले सकते हैं, और बँगलावाले इस क्षेत्र में भी विजय पा ही जावेंगे, यह निश्चित रीति से नहीं कहा जा सकता।

इधर कुछ दिनों से हिंदी साहित्य में छायावाद की कविता का बाहुल्य देखा जाने लगा है। इस भूमि में अब तक अधिकतर नवयुवक कवि ही देखे जा रहे हैं। मेरे विचार में नवयुवकों ने इस कठोर भूमि में पैर रख-कर अनधिकृत कार्य किया है। जिस असाधारण आध्या-त्मिक प्रवृत्ति, प्रौढ़-कल्पना, भव्य-भावुकता तथा विशद विचार-शृंखला की इस क्षेत्र में आवश्यकता है, वह न तो नवयुवकों में पाई ही जाती है और न उसके पाए जाने की आशा ही की जाती है। इस गहन-वन में तो ऐसे तपस्वियों की आवश्यकता है, जो मातृभाषा के पवित्र-मंदिर में दीर्घकाल की उपासना के उपरांत उसका आशीर्वाद प्राप्त कर चुके हैं—यहाँ न तो नवागंतुकों की कोई खोज रखी है और न उनकी कोई उपयोगिता ही।

यह बात दूसरी है कि कला के अनुकरण से कोई तत्कालीन क्षणिक कीर्ति प्राप्त कर ले। कला का अनुकरण सहज है और नवयुवकों की प्रवृत्ति भी अनुकरण की ओर

अधिक हुआ करती है ; पर हृदय का अनुकरण कोई कैसे कर सकता है ? जब तक कवि के मानस में नैसर्गिक रीति से ही भावनाओं की प्रबल तरगें नहीं उठती, तब तक केवल कला का अनुकरण कर कवि बनने की आशा दुराशा-मात्र है—फिर छायावाद-जैसे दुरतिगम्य क्षेत्र मे सफल कवि होने का प्रयत्न तो कोरी मृग-तृष्णा ही समझी जायगी। मैं तरुण आशावादियों की 'रवीद्र' बन जानेवाली मन-कामना का स्वागत करता हूँ, उनकी यह अभिलाषा मातृभाषा की उन्नति का मगल-चिह्न है; पर साथ-ही साथ साध्य के काठिन्य और साधन के अभाव पर लक्ष्य रखते हुए मेरी सम्मति यह है कि नव-युवकों को इस विषम-पथ का परित्याग कर किसी सुगम्य मार्ग का अवलबन करना चाहिए। हॉ, साहित्य के वयोवृद्ध आचार्य यदि अगुआ होने का बीड़ा उठावे, तो उनके पद-चिह्नो से अकित धूलि की ओर श्रद्धा-पूर्वक निहार-निहार के वे उनका अनुगमन करें, तो अधिक अनुचित नहीं।

हिंदी में छायावाद के जितने वर्तमान कवियों की ओर मेरी दृष्टि पड़ी है, उन सबो की रचनाओं में 'हृत्तंत्री', 'वीणा', 'अतस्तल', 'नीरवता' आदि कतिपय शब्द मिलते हैं। ऐसा मालूम होता है कि यह कवि-वृद एक ही राग आलापने के लिये अपनी-अपनी वीणा लाकर जुटा है, और अपने सम्मिलित सगीत (Chorus) द्वारा हिंदी का कोई महान उपकार कर देने पर तुला हुआ है ; पर न तो ऐसे कोरसों से कभी किसी भाषा का उपकार हुआ है और न भविष्य मे ऐसा होने की आशा ही है। मैं मानता हू कि विश्व-कवि रवींद्रनाथ-जैसे महान् व्यक्ति का प्रभाव पड़ना—विशेषकर नववयस्कों पर—स्वाभाविक ही है, बल्कि प्रभाव का न पड़ना बड़े आश्चर्य की बात होती, परतु ऐसा प्रभाव मौलिकता का बाधक है और हिंदी को इस समय मौलिकता की कितनी अधिक आवश्यकता है, यह सहृदय हिंदी-सेवक समझ सकते है।

छायावादी नामधारी कवियों में एक खास विशेषता, जो मेरे देखने में आई है, वह है पारस्परिक प्रशसा मे खूब बढ़ी-चढ़ी सम्मति देना। मैं मानता हूँ कि कवियों के प्रारभिक काल मे उनमे ऐसी प्रवृत्ति आ जाती है और वह किसी अश तक क्षम्य भी है, पर ऐसे लोगो को उच्छृखलता से काम न लेकर मातृ-मंदिर के प्रति अपनी सबंध-गुरुता समझ लेना चाहिए। पवित्र कर्तव्य का पालन भूल जाना नवयुवकों के लिये निंदा का विषय है। उन्हें अपने मित्रों की असामान्य योग्यता की भूरि-भूरि प्रशसा करते समय यह भी जान लेना चाहिए कि उनके सर्टिफ़िकेटों का मूल्य कितना है। जो झूठी प्रशंसा, हमारे वयोवृद्ध साहित्य-महारथियों को चिरसंचित कीर्ति पर कालिमा लगानेवाली है, जो मातृभाषा हिंदी के प्रति विभाषियों के हृदयों मे शका या अनादर उत्पन्न करनेवाली है, वह झूठी प्रशसा कितनी हानिकारक तथा कितनी हेय है; यह छायावादियों के मनन करने की वस्तु है।

बा० जयशकरप्रसादजी, प० सूर्यकांतजी त्रिपाठी 'निराला' और प० सुमित्रानदनजी पत नवीन युग के कवियों मे सर्वाधिक होनहार मालूम पड़ते हैं। मैं इनके विषय में कुछ विस्तृत-रूप से लिखना चाहता था, पर स्थानाभाव से वह विचार स्थगित रखना पड़ा। हॉ, इतना कहे बिना नही रह सकता कि प्रसादजी मे वे सभी अवयव हैं, जिनके एकीकरण से किसी भी भाषा का मुख उज्ज्वल करनेवाले महाकवि की प्राण-प्रतिष्ठा होती है। वे दिग्गज विद्वान् है, सफल नाटककार हैं, चित्ताकर्षक कथा-लेखक हैं और उच्चकोटि के सहृदय कवि हैं। निरालाजी ने अपनी नई शैली से हिंदी-काव्य के सामने एक नवीन आदर्श रखा है, जिसका अनुकरण करनेवाले भविष्य में बढ़ते ही जायेंगे, ऐसी आशा है। पतजी खड़ी बोली मे अभूतपूर्व माधुरिमा भर देने के लिये हमारे धन्यवाद के पात्र है। यद्यपि कवि की अल्पवयस्कता के कारण अभी उसमे भावों की प्रचुरता और गभीरता पूरी मात्रा मे नहीं हो पाई है, पर इस दिशा में भी उसका सदुद्योग सर्वथा सराहनीय है। हिंदी-ससार को इस त्रिमूर्ति से बड़ी-बड़ी आशाएँ हैं और मातृभाषा के उपासक इनकी ओर आँखे किए लुब्ध भाव से देख रहे हैं।

इस लेख में मैंने कविता को विभिन्न श्रेणियों मे विभक्त कर, प्रत्येक श्रेणी के प्रतिनिधि कवियों का ही नामोल्लेख किया है, अतः देवीप्रसादजी पूर्ण, 'प्रेमघन' बदरीनारायणजी, रामनरेशजी त्रिपाठी, रामचरितजी उपाध्याय, गिरिधर शर्मा, रामचद्र शुक्ल, दीनजी, नवीनजी आदि अनेक लब्ध-प्रतिष्ठ कवियों के नाम नहीं आ पाए है। इसका कारण यह है कि मेरे विचार में ये प्रतिनिधि कवि नहीं

हैं और उपरिविभाजित विभिन्न श्रेणियों में से प्रत्येक किसी एक श्रेणी में सम्मिलित हो सकता है।

हिंदी में आजकल समालोचना का आदर्श बहुत गिरा हुआ है। हम उस कवि की क़दर कुछ भी नहीं करते, जो अपने शब्द-चमत्कार से हमें चमत्कृत कर देने की क्षमता नहीं रखता। सारगर्भित, सरल तथा सच्ची कविता अपना वास्तविक पारितोषिक नहीं पाती। नवयुवक कविगण उन नवसिखिए गायकों की समता रखते हैं, जो मुँह फाड़-फाड़कर अधिक-से-अधिक आवाज़ करना ही अपना उद्देश्य समझते हैं, उन्हें राग, माधुर्य तथा नैसर्गिकता से कुछ मतलब नहीं। ऐसी अवस्था में सत्कविता की प्राण-प्रतिष्ठा सत्समालोचना से ही हो सकती है—अन्य कोई ऐसा साधन नहीं है, जिससे वेग से बढ़ती हुई उच्छृंखलता रोकी जा सके।

नंददुलारे वाजपेयी

× × ×

५. वियोगिनी

आनत पराई पीर कौन, है निठुर अंग,
जानै एक सोई जासु उर बीच कसकी :
"श्रीहरि" सनेही निरमोही के बिकाय हाथ,
कौन बात सेष रही प्रानन के बस की।
मान, कुलकान, प्रान, प्रीतम पै वारि दीने,
गाथा कौन गाए परलोक-लोक-जस की,
ऊधोजी ! सिखाओ जोग, जोग-जोग जो न होय,
हम तो वियोगिनी हैं प्यासी प्रेम-रस की।

गयाप्रसाद शास्त्री "श्रीहरि"

× × ×

६. मैथिल कोकिल का कलकूजन

"फूलन दे अब टेसू, कदंबन, अंबन मौरन छावन दे री,
री मधुमत्त मधुव्रत पुंजन गुंजन सोर मचावन दे री।
क्यों सहहै सुकुमारि 'किशोर' अरी कल कोकिल गावन दे री;
आवत ही बनि है घर कंतहिं बीर बसंतहिं आवन दे री।"

कविवर किशोर

आ गए, उसी मधुर रूप में जिस रूप का बारबार दर्शन करके भी 'अँखियाँ मधु की मखियाँ' ही बनी रहती हैं। निगोड़ी आँखों को तुम्हारी मंजुल मूर्ति निरखने से तृप्ति कहाँ ? भला मधुर से किसका मनोमानस मधुर नहीं बन जाता और कौन मधुरता में कभी भी विरसता का बोध करता है। फिर तुम, तुम तो मधुर ही मधुर हो। तुम्हारा रूप मधुर है, गुण मधुर है, महिमा मधुर है, आगमन का समय भी बड़ा ही मधुर है और अंत में मधुर है, तुम्हारे आगमन का परिणाम ? तभी तो कोकिल भी अपने सुमधुर काकली में तुम्हारे मधुरता की सराहना करती है। उसका एक-एक शब्द कितना मधुर है। इतना मधुर, जितना कि भक्तों के लिये लीलाललाम का अर्चना और वंदना। वर्षा-काल में तृषित चातकों के लिये स्वाती का समागम, विरह-विधुरा नायिका के लिये नायक के आगमन का संवाद, कृपणों के लिये अर्थ-प्राप्ति और इतना अधिक मधुर जितना कि अमरवृंदों की स्वर्गीय सुधा और अप्सराओं का सुमधुर अधरामृत। इस माधुर्य में स्वर्गीय आनंद का सन्निवेश है। वह ऐसी माधुरीमयी रस-धारा है, जिसमें अवगाहन कर सुरसिक समाजों का तो कथन ही क्या अरसिक समुदाय भी परितृप्त हुए बिना नहीं रहते। यह वह खरतर स्रोत है, जिसमें कोई भी बिना बहे नहीं रह सकते। जब ऐसा सहृदय सखा तुम्हारे अनुकूल है, तो फिर तुम्हारे गुण, गौरव और आदर प्रतिष्ठा का क्या कहना। वह तो अपने मधुर कोमल कांत शब्दों में डंके की चोट तुम्हारे गुणों का बखान कर रहा है। इसी से कहते हैं कि तुम मधुर हो, और सचमुच मधुर हो। तुम्हें पाकर संसार वास्तव में मधुरतामय और धन्य हो गया है। जो स्मरण में आ जाते हैं, वही मधुर दिखाई देने लगते हैं। तभी तो सुधास्रावी कोकिल भी कह रही है—

"मधुर रितु मधुकर पाँति; मधुर कुसुम मधु माति।
मधुर बृंदावन माझ; मधुर मधुर रसराज।
मधुर जुवति जन संग; मधुर-मधुर रस-रंग।
मधुर मृदंग रसाल; मधुर मधुर करताल।
मधुर नटन-गति भंग; मधुर नटिनी नट संग।
मधुर मधुर रस-गान; मधुर "विद्यापति" भान।

इस कलरव की प्रशंसा अवर्णनीय है। वसंत के वैभव को दिखाते हुए मैथिल—कोकिल विद्यापति ने जैसा मधुर प्रवाह प्रवाहित किया है, वह पाठकों के समक्ष है। पद्य का अर्थ इतना सरल, भाव इतना कोमल और शब्द-सौष्ठव ऐसा मधुर है कि हृदय मुग्ध हुए बिना नहीं रहता। इस पर विशेष टीका-टिप्पणी व्यर्थ है। हम केवल

इतना ही कहना चाहते हैं कि जो महाशय 'खड़ीबोली' की रचना में लालित्य नहीं देखते, वे कृपया यह बतलाने की कृपा करें कि महाकवि विद्यापति के उपर्युक्त पदों में ऐसा कौन-सा शब्द व्यवहृत हुआ है, जो खड़ी-बोली का नहीं है, और यदि इसमें खड़ीबोली के ही (संस्कृत-सम्मत) शब्द हैं, तो यह लालित्य-पूर्ण ही क्यों है? मेरी अपनी सम्मति तो यह है कि विद्यापति का यह पद्य अवश्य ही खड़ीबोली की श्रेणी में रखा जा सकता है, और खड़ी बोली के विपक्षियों के मान-मर्दन को काफ़ी है।

अब मैथिलरत्न विद्यापति के वसंत-वर्णन का और भी रसानंद लूटिए। देखिए, वे वसंत के आगमन का कैसा मनोहर वर्णन कर रहे हैं। वे कहते हैं—"चलो वहाँ ऋतुराज को देखने चलूँ, जहाँ कुंद और केतकी-कुसुम आनंद से हँस रहे हैं। चाँद तो उज्ज्वल है; पर काले भ्रमरों की भी कमी नहीं। इससे चाँदनी के प्रकाश में रजनी तो बड़ी सुखदायिनी और स्वच्छ रहती है। पर पराग और भौंरों से घन के आच्छादित रहने के कारण दिन अंधकार-पूर्ण रहता है। वहाँ की मुग्धा मानिनियों के मान का क्या कहना। वे मान करने में ही मग्न रहती हैं। कामदेव पथिकों पर भी दृष्टि गड़ाए रहता है। मधुसूदन और राधिका के वन-विहार की सरसता तो अवर्णनीय है।" कवि का वर्णन ऐसा कौतूहल-पूर्ण है कि उसकी आज्ञा के सम्मुख सभी को नतमस्तक होना अवश्यंभावी है। भला कौन ऐसा अभागा होगा, जो ऐसे 'वसंत' के दर्शन को भी झटपट न चल पड़े। कवि के शब्दों में कितना आकर्षण है, यह स्वयं ही देख लीजिए।

"चल देखए जाऊ ऋतु वसंत;
जहँ कुंद कुसुम केतकि हसंत।
जहाँ चंदा निर्मल भमरकार;
जहाँ रयनि उजागर दिन अँधार।
जहाँ मुगधलि मानिनि करय मान;
परि पथहि पेखय पंचबान।
भनइ सरस कवि कंठहार;
मधुसूदन राधा बन-विहार।"

बिहारी के जिस "चकई चकवान" को लेकर प्रकृति पर्यवेक्षण में भूल दिखाने के कारण साहित्य-संसार में हलचल मच गई, उसी प्रकार की त्रुटि उपर्युक्त पद्य में दिखाना यद्यपि अपने को उपहासास्पद बनाना है, तथापि यह कहे बिना नहीं रहा जाता कि 'कहाँ वसंत' और 'कहाँ केतकी' यह भी प्रकृति-पर्यवेक्षण की भूल अवश्य है। और शायद चकवे की तरह इसमें यह अनुवाद भी नहीं किया जा सकता कि किसी के घर में बनावटी वृक्षों और फूलों को (अजायबघर की तरह) देखकर ही विद्यापति ने ऐसा लिखा है। बिहारी की करारी गलती को भी सही साबित करते हुए, जब एक बिहारी-भक्त टीकाकार महोदय ने कुछ ऐसे ही ढंग की बात कही, तो अपने राम का रोम-रोम खिल उठा। सचमुच बड़ा आनंद आया। पर केतकी का वर्णन वर्षा में होना चाहिए इसका स्पष्ट आदेश अपनी "कविप्रिया" में केशवदासजी दे रहे हैं। जो सर्वमान्य है—

"वर्षा बरनहु सघन बक, चातक दादुर मोर;
केतकि कंज, कदंब जल, सौदामिनि घनघोर।"

ऋतुराज वसंत का समागम हुआ। अलि-कुल (भौंरे) माधवी लता की ओर (रसास्वादन के लिये) दौड़ने लगे। दिनकर का किरण-जाल तीव्र हो चला। मदन-महीपति ने केसर कुसुमरूपी सोने की आभा को धारण किया। चंपा के फूलों ने सिर पर छत्र धारण किया। आम्र की मृदुल मंजरी उनकी किरीट बनी। कोकिल चतुर गवैए की तरह पंचम आलापने लगी। मोर मंडलियों ने नाचना शुरू किया, भौंरे बाजे बजाने लगे। पक्षियों ने आशीर्वाद-मंत्र का पढ़ना प्रारंभ किया। पुष्प-पराग उड़ने लगे। मलय-पवन अनुराग-युक्त हो चले। कुंदवल्ली के वृक्षों ने पताका धारण किया। पाटल के पत्ते ही तूण और अशोक के पत्ते बाण बने। पलाश-पुष्प धनुष और लवंगलता तांत के समान बनी। मधुमक्खियों से सैन्यदल सज्जित हो गया। बेचारे वृद्ध शिशिर का दम ही कितना, वे यह ठाठ देखते ही घबराए। उनका दल भंग हो गया। शिशिर को सभों ने निर्मूल कर दिया। कमल का उद्धार हुआ। उसने जीवन पाया और अपने दल को आसन रूप में दान दिया। नवीन वृंदावन में राजा विहार करने लगे। 'विद्यापति' ने वसंत के समय का उपर्युक्त वर्णन बहुत ही मधुर शब्दों में किया है। वसंत का चित्र आँखों के सामने खींच दिया है। दूसरों के लिये कुछ भी कहने को इन्होंने बाक़ी न

छोड़ा। बहुत ही भाव-पूर्ण वर्णन है, इसमें संदेह नहीं। किंतु मोर का नाचना और भ्रमर का दो जगह, दो कामों में दिखलाना अवश्य खटकता है। किंतु इससे पद्य की उत्कृष्टता में कुछ भी बाधा नहीं है। चंद्रमा का कलंक सदा उपेक्षणीय है। विद्यापति ने वसंत के प्राकृतिक वर्णन में जिस मौलिकता, सुरसिकता और चतुरता का परिचय दिया है, वह सर्वथा सहृदय-हृदय-संवेद्य है। पाठक स्वयं अवलोकन करें—

'आएल ऋतुपति राज बसन्त ;
धाओल अलिकुल माधवि पंथ।
दिनकर किरण भेल पौगंड ;
केशर कुसुम धएल हेमदंड।
नृप आसन नव पीठल पात ;
काँचन कुसुम छत्र धरु माथ।
मौलि रसाल मुकुल भेल ताय ,
समुखहिं कोकिल पंचम गाय।
सिखिकुल नाचत अलिकुल यंत्र ;
द्विजकुल आन पढ़ आसिख मंत्र।
चन्द्रातप उड़े कुसुम पराग ;
मलय पवन सह भेल अनुराग।
कुन्दवल्ली तरु धएल निसान ;
पाटल तून असोक दल बान।
किंसुक लवंग लता एक संग
हेरि सिसिर रितु आगे दल भंग।
सैन सजल मधु मखिका कुल ;
सिसिरक सबहु करल निरमूल।
उदित सरोज पाओल प्रान ;
निज नव दल करु आसन दान।
नव बृंदावन राज बिहार ;
बिद्यापति कह समय क सार।

कहाँ तक गुणावली का बयान करें ? मन नहीं भरता पर वचन ही थक जाते हैं। कोकिल की सुधास्रावी ध्वनि-कर्णकुहर में एक बार मात्र प्रविष्ट होने पर बार-बार प्रतिध्वनित होती रहती है। यह वह स्मृति है, जो कभी भी विस्मृति होने की नहीं। इसका ढंग ही निराला है, यह कहता है—

"दखिन पवन बह दस दिस रोल ;
से जनिबादी भासा बोल।
मनमथ कॉ साधन नहिं आन ;
निरसाएल से मानिनि मान।
माई हे सीत बसन्त बिबाद ;
कओन बिचारब जय अवसाद।
दुहु दिसि मधथ दिवाकर भेल ;
दुजबर कोकिल साखी देल।
नव पलव जय पत्रक भाँति ;
मधुकर माला आखर पाँति।
बादी तह प्रतिबादी भीत ;
सिसिर-बिंदु हो अंतर सीत।
कुंद कुसुम अनुपम विकसंत ;
सतत जीत बेकताओ बसंत।
'विद्यापति' कबि एहो रसमान ;
राजा सिवसिंघ एहो रस जान।

दशो दिशाओं में दक्षिणी पवन (मलय मारुत) प्रचंड वेग से बह रहा है, उसका शोर विकलता परिपूर्ण है—मानो वादी इज़हार कर रहे हैं। मनमथ की साधना ने मानिनियों के मान को नीरस कर दिया। सीत वसंत के विवाद की मीमांसा आवश्यक हो चली, पर जय और अजय का फ़ैसला कौन करे। आखिर दिवाकर मध्यस्थ हुए। द्विजश्रेष्ठों (कोकिलों) ने साक्षी दी, नवलपल्लव जयपत्र (फ़ैसला लिखने का कागज़) बने, मधुकरों की पंक्तियाँ ही अक्षरों की भी पंक्तियाँ बनीं, मुद्दई से मुद्दालह भयभीत हुए और शिशिर के ओस बुंद में जा छिपे। कुंद कुसुमों ने हँसकर वसंत के विजय को प्रकट किया। और इस प्रतिभा के ही कारण विद्यापति ने भी माँ मैथिली का मुखोज्ज्वल कर दिया। उनकी धन्यता में किसे संदेह हो सकता है। उनका कल-कूजन जितना ही मधुर है, उतना ही पवित्र भी। उसमें वह सरस प्रवाह है, जिसमें बिना बहे नहीं रहा जाता। 'जयदेव' की जिस कोमल-कांत-कमनीय रचना-माधुरी के पान से हम प्रमत्त और मूर्च्छित हो जाते हैं, जो मेरे हृदय में श्रद्धा और भक्ति की मंदाकिनी उमड़ाती है, जो साहित्य का गौरव है, और भक्त-जन जिसे अपना अमूल्य धन समझते हैं, उससे टक्कर लेती हुई अपने आपको आत्मविस्मृति करा देनेवाली अभिनव जयदेव की एक-मात्र रचना को उद्धृत कर लेख का उपसंहार करता हूँ। अधिक के लिये स्थान का अभाव है और साथ-ही-साथ

विद्यापति की सुमधुर पदावली से जो मधुर संयोग का अवसर प्राप्त हुआ है—उसके लिये अपने को धन्य समझता हुआ यह प्रेम सुमनांजलि कोकिल के एक-मात्र आराध्य-देव वनविहारी मुरारी 'नवलकिशोर' के चरणों में सादर सप्रेम और सभक्ति अर्पित करते हुए मन-ही-मन मुग्ध होकर कोकिल के स्वर में ही स्वर मिलाकर बड़े प्रेम से गुन गुनाता हूँ—

बिहरइ नवलकिसोर ।
नव वृंदावन नव-नव तरुगन नव-नव विकसित फूल ;
नवल बसंत नवल मलयानिल मातल नव अलिकुल ।
कालिंदि कूल कुंज बन सोभन नव-नव प्रेम बिभोर ।
नवल रसाल मुकुल मधु मातल नव कोकिल कुल गाय ।
नव जुवतीगन चित उमताई नव रस कानन धाय ;
नव युवराज नवल बर नागरि मिलिए नव-नव भाँति ।
नित-नित ऐसन नव-नव खेलन 'विद्यापति' मति माति ;

श्रीभुवनेश्वरसिंह "भुवन" 'कविरत्न'

× × ×

७ पवन और मधुप

(१)

ए रे चंचरीक ! चारु चित्त में बिचारु नेकु ,
स्वर्थ उरि-बरि क्यों तू कारो होत जात है ,
तो में औ पवन में है अंतर महान नीच !
मधुप ! न तोकूँ कछु नेनन दिखात है ।
वे तौ सब सुमनन सौरभ कों लाद-लाद ,
जग बगरावें नहीं स्वारथ की बात है ;
तू पै कुसुमनि कौ मधुर मधु चूँसि-चूँसि ,
उदर भरत हिय रच न लजात है ।

(२)

तापै पुनि पौन-मान देखि-देखि लूट छुर्ज ,
मन में कुढ़त 'भन-भन' गारी देत है ;
यातें कछु देव-मान घटि नहीं जाइगो तू—
तू तो पौन-पौन ही रहैगो जग-हेत है ।
तेरो है सुभाव यह छूटेगो न बात कोऊ ,
राति माहि बँधत निसाहि जेहि चेत है ,
बार-बार कहौं तेरे ध्यान हो न चढ़ै बात ,
ताही ते तू फिरत रहत बिललात है ।

किशोरीदास वाजपेयी

× × ×

८ शशि-सविता

(१)

निपट निसंक नित नील नभ-अंक माँहि ,
बिहरत सविता-मयंक बन-ठन हैं ;
पेखत सुखेन जगतीतल को रंग-ढंग ,
गिरि, गुह, पथ, बन, कंदरा गहन हैं ।
त्यों अनंत प्रानिन के पाप-पुण्य को अनंत ,
सतत करत 'सभामोहन' चयन हैं ;
रबि-ससि ये न होहिं भूलियो न भ्रम बस ,
ए दुहू अनंत के प्रतच्छ द्वै नयन हैं ।

(२)

कैधों नभ के द्वै दिव्य दीपक हैं रबि ससि ,
कैधों ए दुहूँ बिराट् बिस्व के उजाले हैं ;
कैधों काल-मापक तुला के पलड़े हैं दुहूँ ,
कैधों केहू द्वै निराले कंदुक उछाले हैं ;
कैधों 'सभामोहन' ये न्यारे गगनांगन के ,
मौजी, निरद्वंद्वी द्वै खिलैया मतवाले हैं ;
कैधों करतार बिस्व बैभव के मथन तें ,
अमल, अनमोल द्वै हीरक निकाले हैं ।

(३)

बिमल, बिसाल, सने, नीरव गगन-माँझ ,
कैधों ससि-सूरज द्वै दीपत अँगारे हैं ;
कैधों द्वै प्रमत्त, लोट-मयूर दिवस-निसि ,
बिकसित अट्टहास आपुने निकारे हैं ।
कैधों 'सभामोहन' अमित-दुति, प्यारे-प्यारे ,
ये दुहूँ प्रकृति के करनफूल न्यारे हैं ;
कैधों ब्रह्मंड के नयन में मनोहर ये ,
चम-चम चमक रहे द्वै सुभ्र तारे हैं ।

(४)

प्राची औ प्रतीची के हैं सुंदर द्वै भाल-बिंदु ,
कैधों ये दुहूँ, जिनहिं बाल्मनों पै सगना ;
ले-लेके लगावतीं, उतारतीं दिवस-निसि ,
जो लगायके छिनेक धारतीं पै अंग ना ।
मान्यो 'सभामोहन' न अजहूँ दुहूँ को मन ,
नकुहू ये आपुनो घटावतीं उमंग ना ;
'तेरो नीको' 'तेरो नीको' कहि-कहि लै-लै दै-दै ,
करत बिनोद, मोद मान के विरागना ।

सभामोहन अवधिया विशारद

१. लांगूलदेव सरमा का भाषण
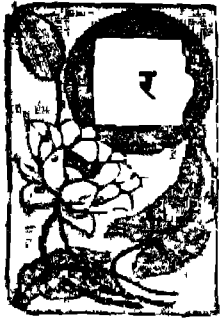
विवार ३१ अगस्त को एकांत भवन मे विश्वविद्यालय के समस्त कुत्तों की एक विराट् सभा मे भषकपति श्रीमधुरकंठ के सभापतित्व मे श्वा-जाति के प्रमुख नेता और सुधारक श्रीलांगूलदेवजी सरमा ने एक अत्यंत कर्णप्रिय, महत्त्व-पूर्ण और सारगर्भित व्याख्यान दिया। उसका सारांश पाठकों के विनोदार्थ नीचे दिया जाता है—"महामान्य भषकपतिजी तथा उपस्थित सारमेयवृंद! आपके सौहार्द-पूर्ण स्वागत के लिये मैं आपका अत्यंत कृतज्ञ हूँ। किसी ज्ञानी कवि ने हमारी जाति के सिर एक बड़ा लांछन यह लगाया है कि "श्वान अपर को देखिके करें परस्पर क्रोध।" परंतु आपने आज अपने अपार प्रेम की वर्षा से इस दोष के आरोपकर्ता को जैसा मुँह तोड़ उत्तर दिया है, उससे मुझे बड़ी प्रसन्नता हो रही है। कहीं स्वप्न मे भी आशा थी कि कुंभकर्णी निद्रा में पड़ी हुई हमारी जाति के उत्साही युवक इस प्रकार आलस्य त्यागकर उन्नति के लिये विकल हो उठेंगे। आपके रक्त-वर्ण नेत्रगोलकों से आपका अदम्य उत्साह स्फुटित हो रहा है।

प्रत्येक जाति और व्यक्ति का कर्तव्य है कि अपने अभ्युत्थान के लिये अपने पूर्व इतिहास से परिचय प्राप्त करे। आप सब लोग इस बात को भूल चुके हैं कि आपका जन्म देव-कुल में हुआ है। हमारे पूर्वज देवलोक से इस पृथ्वी-मंडल पर मनुष्यों की रक्षा के लिये आए थे। अपने माल-धन की रक्षा करना तथा अपने लिये मांस आदि आहार एकत्र करना भी जब इनके लिये दुर्लभ हो गया, तब इन्हें हमारी सहायता की अपेक्षा हुई। अब इस लोक मे हमारा परिवार अनंत और असंख्य है।

आप सबकी आदि जननी का नाम सरमादेवी था। उनके गुणगण का स्मरण करके मेरा शरीर पुलकायमान, कंठ गद्गद् तथा नेत्र अश्रु-पूर्ण हो जाते हैं। हम सबका गोत्र सारमेय है। मैने बहुत ऐतिहासिक खोज की है, पर सरमा-जैसा सुंदर और श्रुतिप्रिय नाम मुझे और नहीं मिला। मनुष्यों मे ब्राह्मण सर्वश्रेष्ठ माने जाते है, पर इन्हें अपना नाम लेने मे भी शर्म आती है। जिसको देखिए अपने को शर्मा कहता है। क्षत्रिय लोग अपने आपको कहते तो सिंह हैं, पर हैं बड़े कायर। हमारे बंधुजनों का उग्र अट्टहास सुनकर ही बहुतों का गोबर निकल जाता है। वैश्य भी अपने को गुप्त ही रखना चाहते हैं। या तो इनके कृत्य ही ऐसे निंद्य हैं, या हम लोगों के भय से जो कि कभी-कभी इनके घरों मे अनभ्यागत अतिथि हो जाते हैं, ये लोग अपने आपको 'गुप्त' प्रसिद्ध करना चाहते हैं। अतएव मेरा आप सबसे साग्रह अनुरोध है कि अपने नामों को 'सरमा' की पदवी से अलंकृत किया करें।

हमारी जाति की प्राचीन कथा बड़ी गौरव-पूर्ण है। संस्कृत के कवियों ने हमको समस्त चतुष्पदों मे श्रेष्ठ गुणशाली ठहराया है। कवि का नाम तो मुझे इस समय स्मरण नहीं रहा; पर श्लोक याद हैं, जिनमें हमारे गुणों का परिगणन है—

सिंहादेकं बकादेकं षट् शुनस्त्रीणि गर्दभात्;
वायसात्पञ्च शिक्षेच्च चत्वारि कुक्कुटादपि।

लिए, सिंह को पशुपति कहते हैं, पर गुण उसके पास एक ही है। कौवे के पास पाँच, मुर्ग के पास चार गधे के पास केवल तीन ही हैं। परंतु धन्य है, की अनुपम गुणप्रियता। आपके पास छः ऐसे गुण जिनके बल पर आप उन्नतमस्तक होकर चल सकते। मुझे बड़ी हँसी आती है कि इन मनुष्यों के पास पना एक गुण भी नहीं है। पहले ये लोग निरे निर्गुण और इनकी श्रेणी पशुओं से भी नीचे थी। हमारे बंधुजनों से थोड़ा-बहुत शिक्षा पाकर ये लोग अपने आपको अब बड़ा सभ्य गिनने लगे हैं। आपकी शुद्धाकृति लांगूलों से अपनी जाति के गुण-श्रवण की बड़ी लालसा प्रतीत हो रही है। अच्छा सुनिए, वे ये हैं—

बह्वाशी स्वल्पसंतुष्टः सुनिद्रः शीघ्रचेतनः ।
प्रभुभक्तश्च शूरश्च ज्ञातव्याः षट् शुनो गुणाः ।

(धन्य-धन्य की ध्वनि)

इस श्लोक में बह्वाशी पद बड़े मार्के का है। इसके अर्थ बड़े-बड़े व्याकरणाचार्यों से मैंने पूछे, पर शुद्ध संगति-युक्त अर्थ कोई नहीं लगा सका। बह्वाशी का अर्थ सबने बहुत खानेवाला किया, परंतु बहुत खाना गुण नहीं, दोष है। कहिए, आकंठ भसकने को गुण कौन कह सकता है, अतएव यह अर्थ श्लोक के भाव के विरुद्ध है। 'बह्वा' शब्द 'वधू' के तृतीया का एकवचन है और 'शी' का अर्थ सोनेवाला है। अतएव बह्वाशी का अर्थ होगा, बहू के साथ सोनेवाला अर्थात् कांता के साथ विहार करनेवाला। रमणीप्रियता हमारी जाति में जितनी विशुद्ध है, उतनी अन्यत्र नहीं मिल सकती। कवि लोग बड़े सूक्ष्मदर्शी होते हैं, अतएव वे हमारी इस विशेषता को समझ गये और बह्वाशी इस दो अर्थवाले पद से उसे कह भी डाला। अल्प विद्यावाले लोग इसके दूसरे दोष-रूप अर्थ में ही भटकते रहते हैं। बिना गुरु के सत्य अर्थ का प्रकाश कभी नहीं होता, और इसीलिये अज्ञान-वश लोग शास्त्रों का उलटा पुलटा अर्थ कर डालते हैं। इसी प्रकार का एक और उदाहरण मुझे याद आ रहा है, जिसमें अविद्या के कारण मनुष्यों ने उलटा अर्थ करके वास्तविक दोष को गुण बनाया है। एक स्थान पर रामायण की कथा हो रही थी, अपने राम भी घूमते हुए वहाँ आ पहुँचे। श्रीगोपजी तुलसीदास की—

आवत जानि भानुकुल केतु, सरितन जनक बँधायेहु सेतू।

इस चौपाई को पढ़कर जनक की प्रशंसा के पुल बाँध रहे थे कि दशरथजी का आगमन सुनकर जनक ने नदी-नदों पर पुल बँधवा दिए। पर यदि पक्षपातहीन होकर देखा जाय, तो इस अर्थ से जनक की निंदा होती है। यदि उनके राज्य में पहले से पुल न होते, तो मिथिला के लोग नदियाँ कैसे पार करते थे और राम, लक्ष्मण, ऋषि, मुनि आदि जनकपुर कैसे आ सके थे। सत्य बात यह है कि हमारे भषक-पुस्तकालय में जो एक हस्त-लिखित प्रति है, उसका स्वाध्याय करते समय मैंने इस चौपाई पर बड़ा सूक्ष्म विचार किया था और तब मुझे ज्ञात हुआ कि मनुष्यों के पास छपी हुई पोथियों में इसका शुद्ध पाठ नहीं मिलता। अपनी बुद्धि के प्रकर्ष से चौपाई का शुद्ध पाठ मैंने इस प्रकार स्थिर किया है—

आवत जानि भानुकुल केतुवा ; सरितन जनक घुरायउ सेतुवा।

(धन्य-धन्य की ध्वनि तथा एक ओर आवाज़—
आप ऐसे हैं, तभी तो ऐसे हैं)

अब इस चौपाई के अर्थों पर विचार कीजिए और देखिए कैसा शुद्ध और प्रशंसावाची अर्थ निकलता है। कविशिरोमणि तुलसीदासजी ने अपनी भक्ति के प्रताप से त्रेतायुग में घटित हुई इस छोटी सी बात को भी ताड़ लिया और लिख दिया कि दशरथजी के आतिथ्य के लिये जगह-जगह पर जनकजी ने मार्ग की नदियों में सत्तू घुलवा दिए थे। मिथिला-देश का यह मुख्य भोजन था, जनकजी ने चाहा कि अपने यहाँ के स्वादिष्ठ तम भोजन से ही अपने समधी को वश में कर लें। कहिए, जो लोग इस सीधे-सादे अर्थ के महत्त्व को न समझकर अर्थ का अनर्थ करने पर उतारू हों, उनकी बुद्धि को क्या कहा जाय। इसके अनंतर अपनी जाति के विरुद्ध किए गए अनुचित आक्षेपों का उत्तर दे देना भी मैं अपना कर्तव्य समझता हूँ। भर्तृहरि नामक एक महामंदमति कवि हुआ है। अपनी स्त्री से छककर उसे संसार त्यागना पड़ा और तब से परछिद्रान्वेषण ही उसका मुख्य काम हो गया। उसने एक स्थान पर लिखा है—

लाङ्गूलचालनमधश्चरणावपातं,
भूमौ निपत्य वदनोदरदर्शनञ्च ।
श्वा पिण्डदस्य कुरुते गजपुङ्गवस्तु,
धीरं विलोकयति चाटुशतैश्च भुङ्क्ते ।

मैं आप सबसे पूछता हूँ, लांगूल चलाना कौन-सा अप-राध है। आपने देखा होगा, मनुष्य भी मूर्खों पर अकसर

हाथ चलाया करते हैं। समय के प्रभाव से मनुष्य अब लांगूलविहीन हो गए हैं, पर यह नितांत अनुचित है कि दूसरों की लांगूल से ईर्ष्या करके उसके चलाने को वे दोष कहने लगे। इस पद का भी दूसरा अर्थ बड़ा गूढ़ है। लांगूल-चाल हमारी जाति में एक बड़े महत्त्व की चाल मानी गई है, और विशेष अवसरों पर ही हम लोग इस चाल से चला करते हैं। हमारी भाषा का यह अत्यंत प्रचलित शब्द है, जिसको भर्तृहरि ने उठाकर रख लिया है। 'अधश्चरणावपात' पद में क्या दोष है, यह आज तक मेरी समझ में नहीं आया। सबका चरणावपात नीचे ही होता है, आसमान में पैर करके चलते हुए हमने किसी को नहीं देखा। नीचे पैर करके चलना ही सनातनधर्म और सभ्यता के अनुकूल है। जान पड़ता है, भर्तृहरि आसमान में उड़ते थे, अतएव पृथ्वी पर चलना उन्हें दोष समझ पड़ा। "भूमौ निपत्य वदनोदर-दर्शनञ्च" पंक्ति का अर्थ पृथ्वी पर गिरकर मुख और उदर को दीनता-वश दिखाना ऐसा स्वार्थी टीकाकारों ने किया है। मूल-अर्थ में दीनता का भाव कहीं भी नहीं है। मैं नहीं समझता कि सोते या लेटते समय मुँह और उदर का ऊपर को होना कौन-सी अनुचित बात है। यह तो सामान्य प्रथा के अनुकूल ही है। चाहे जिस मनुष्य को देख लीजिए, वह भी पृथ्वी पर लेटते समय वदनोदर-दर्शन करता ही है। मेरा तो यहाँ तक कहना है कि हमारी सभ्यता मनुष्यों की सभ्यता से कहीं बढ़ी-चढ़ी है। मैंने बहुत-से पुरुषों को देखा है कि वे डंडे की तरह पृथ्वी पर लेटकर अपने ललाट और नाक को रगड़ते हैं तथा अपनी पीठ का प्रदर्शन भी किया करते हैं। अपनी जाति के किसी वीर को आपने कभी नाक रगड़ते न देखा होगा। आपका आत्मसम्मान सत्यमेव सराहनीय है। यदि जातीय अभिमान के साथ-साथ आपमें विद्या का प्रकाश भी होता, तो ऐसे-ऐसे भ्रम-पूर्ण और कटु आक्षेप आप लोग कभी न सुन सकते। आपके अधरों के स्फुरण से ज्ञात हो रहा है कि आप इन अपवादों के प्रतिवाद के लिये बड़े उत्तेजित हो उठे हैं। कृपया शांति रखिए और सुसंगठित होकर ऐसा आयोजन कीजिए कि प्रत्येक ग्राम, नगर, गली और घर में सब बालक, स्त्री और पुरुष आपका लोहा मान जायँ। अहो! आप क्षमा करें, मैं कुछ अपने विषय से हट गया। ख़ैर, श्लोक के चौथे चरण को एक बार फिर विचारें और देखें कि "चाटुशतैश्च भुङ्क्ते" पद में कैसी झूठी तारीफ़ भरी हुई है। मेरा विश्वास है कि आपने इस स्थान में तथा अन्यत्र भी सायं प्रातः भ्रमण करते समय देखा होगा कि मिठाई तथा अन्य वस्तु खाने के उपरांत मनुष्य पत्तों को चाटते रह जाते हैं। इस प्रकार चाट-चाटकर भोजन करना सभ्यता के विरुद्ध और जुगुप्सात्मक है; परंतु मनुष्य इसे प्रशंसा का काम समझते हैं और तभी भर्तृहरि ने लिख मारा कि चटोरपन से भोजन करना धीरता का लक्षण है। इस प्रकार के आक्षेपों का उत्तर कहाँ तक दिया जाय। मैंने समस्त साहित्य-शास्त्र का मंथन किया है और ऐसे-ऐसे महत्त्वोदाहरण मैं आपके समक्ष उपस्थित करता परंतु समयाभाव से विवश हूँ। खेद केवल इसी बात का है कि हमारी विद्या और मर्मज्ञता की पूछ करनेवाले बहुत कम हैं। जब तक हम लोग दीन-भाव से मनुष्यों के साथ व्यवहार करते हैं, तभी तक वे हमें अपने समीप रखते हैं। ज़रा भी आत्म-सम्मान-प्रदर्शित करने से हमारा तिरस्कार होने लगता है। यदि आपके अंदर दृढ़ साहस और स्वतंत्रता हो, तो इस शोचनीय अवस्थिति को क्षण-मात्र में बदला जा सकता है। (धन्य-धन्य और करतल-ध्वनि) पूर्वकाल में आपका समाज बड़ी उन्नत दशा में था। अपने अपूर्व शौर्य और पराक्रम से आपने 'ग्राम सिंह' की आदरणीय पदवी प्राप्त की थी। उसका कारण आपकी एकता और संगठन-शक्ति थी। आपके पूर्वपुरुष बड़े विद्यानुरागी थे। आप सब सज्जन महर्षि शुनःशेप के नाम से परिचित होंगे। अपने असीम तपोबल और विद्या-बल से वे अपने समय में बड़े पूज्य हुए और आज तक उनका यश संसार में चला आता है। उनकी विश्व-व्यापिनी प्रसिद्धि के कारण ही उन्हें अपने वर्ग में सम्मिलित कर लेने का लोभ कुछ मनुष्यों को हो आया और कपोल-कल्पित पुस्तकें लिखकर उन्होंने ऐसा प्रसिद्ध भी कर दिया; पर यह नितांत भ्रम है, और ऐसा कहना सत्य इतिहास की हत्या करना है। महर्षि शुनःशेप का नाम ही इस बात की घोषणा कर रहा है कि उनकी शेप (shape) श्वान या श्वपच जाति की थी। सौभाग्य से 'शुनः' पद पष्ठ्यंत पड़ा हुआ है, जिसके कारण श्वान के समान आदि अर्थों की कल्पना करने की संभावना भी नहीं रहती। इस प्रकार संस्कृत और अँगरेज़ी के सम्मिश्रण

पर आश्चर्य करना उचित नहीं है। भाषा-शास्त्री आपको बताएँगे कि सबके पूर्व-पुरुषों के एक ही स्थान में रहने के कारण अनेक शब्दों का परस्पर आदान-प्रदान हुआ। जब मैं गुरुजी से विद्या पढ़ता था, तो उन्होंने एक और उदाहरण देकर इसी बात की पुष्टि की थी। हैंड-कर-चीफ़ (Handkerchief) शब्द में हैंड और कर दोनो पद एक ही वस्तु हाथ के द्योतक हैं। किंतु इस द्विरुक्ति-दोष का परिहार इस सिद्धांत के मान लेने से भली भाँति हो जाता है कि पूर्वकाल में इस प्रकार भाषाओं की संयोजना प्रचलित थी। मैंने भी इस विषय का परिशीलन किया है और यदि आप लोग चाहें, तो अनेक उदाहरण उपस्थित कर सकता हूँ, पर अब समय बहुत हो गया है। (नो, नो की ध्वनि) अहा! आपका 'नो' शब्द भी इन्हीं उदाहरणों में से एक है। अँगरेज़ी और संस्कृत दोनों भाषाओं में इसके अर्थ नहीं के हैं। (हँसी) समय अधिक होने के कारण आपसे अंतिम प्रार्थना करता हुआ मैं अब अपने भाषण को समाप्त करता हूँ।" "हे गुरु दत्तात्रेय को ज्ञान देनेवाले विमल शुनःपति के वंशज, मातेश्वरी सरमादेवी के निश्छल अवतार तथा शुनःशेप महर्षि की अक्षय सन्तान! अपने पूर्व गौरव का स्मरण करके कर्म-क्षेत्र में उठ खड़ी हो। तेरा भविष्य उज्ज्वल है, मानुषी अशांति को मिटाने के लिये तेरे निःस्वार्थ सहयोग की नितांत आवश्यकता है।" (तुमुल हर्ष-ध्वनि) श्रीलांगूल-देवजी के आसन ग्रहण करने पर सभापति श्रीमधुरकंठजी मुग्ध हुए, श्रोताओं के कर्कश भों-भों नाद के बीच उठ खड़े हुए। आपने लांगूलदेवजी को सब सज्जनों की ओर से उनके असीम जातीय अनुराग, ओजस्वी वक्तृत्व तथा अथक परिश्रम के लिये धन्यवाद देते हुए जाति के नौनिहालों से अपील की कि वे वक्ता महोदय का अनुकरण करके अपने-अपने मन-मंदिरों को इसी प्रकार के उत्साह और उद्योग से पूरित कर दें। आपने कहा कि श्रीलांगूल-देव के गुणों का गान करना मेरी शक्ति से बाहर है। आपके मस्तिष्क के एक कोने में न-जाने कितनी विद्याओं का अनंत सागर हिलोरें मारता है, आपके दिव्य मुख-मंडल पर कैसी अनुपम छटा छिटक रही है, आपकी मूर्ति कैसी सौम्य और गंभीर है। सामाजिक समस्याओं में आपकी-जैसी सूक्ष्म गति बिरले ही व्यक्तियों की होगी। लांगूलदेवजी की धार्मिक वृत्ति का ध्यान करते हुए मुझे अपने उन पूर्व-पुरुषों का स्मरण हो आता है, जो पांडवपति युधिष्ठिर महाराज के साथ सदेह स्वर्ग को चले गए थे। अंत में यह आशा करते हुए कि लांगूलदेव-जैसे धीर नाविक को पाकर हमारी जाति-रूपी नाव अवश्य अपने चरम लक्ष्य तक पहुँच जावेगी मैं आज की सभा विसर्जित करता हूँ।

'हिरण्यगर्भ'
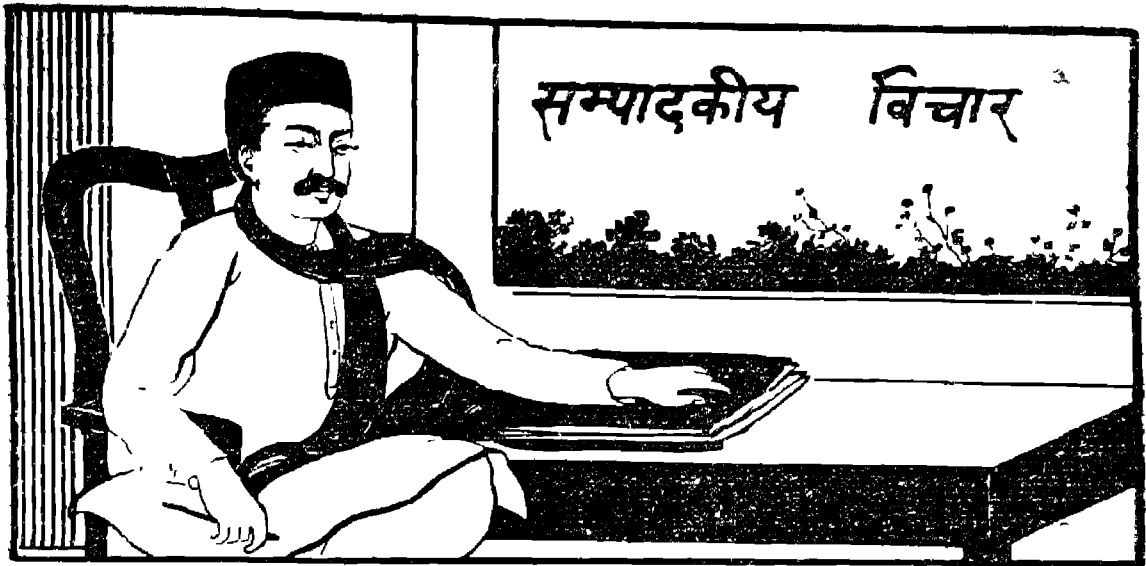
१ शाही कमीशन और उसका बहिष्कार

लार्ड बर्कनहेड को यह तो उसी समय मालूम था, जब उन्होंने शाही कमीशन को नियुक्त किया कि भारत उसका खुले दिल से स्वागत न करेगा, पर शायद उन्होंने यह अनुमान न किया था कि उसका विरोध इतना व्यापक होगा। अब भारत को इस सिरे से उस सिरे तक कमीशन को ठुकराने पर तैयार देखकर वह सलाहकारी सभाओं की उपयोगिता का सब्ज़बाग दिखा रहे है। उधर गुप्तरूप से इंगलैंड के समाचारपत्र भी भेद-नीति का आश्रय ले रहे हैं। लंदन-टाइम्स ने जो सरकारी पत्र है, लिखा है कि हिंदू-नेता इंगलैंड में मुसलिम-निर्वाचन का अंत कर देने की कोशिश कर रहे हैं। उद्देश्य है कि मुसलिम नेताओं के मन मे यह बात डाल दी जाय कि हिंदू इस वक्त भी उन्हें हानि पहुँचाने की चेष्टा कर रहे है। इसलिये मुसलमानों का हित इसी मे है कि वह कमीशन के सामने आकर अपने पृथक् निर्वाचन के स्वत्व की रक्षा करें, अन्यथा कमीशन हिंदुओं के दबाव में आकर कहीं मुसलमानों को इस अधिकार से वंचित न कर दे। बड़े खेद तथा दुःख के साथ कहना पड़ता है कि टाइम्स को यह चाल अपना काम भी कर रही है। मुसलमानों मे दो दल हो गए है, एक तो कमीशन के बहिष्कार के पक्ष मे है, दूसरा उसके विरुद्ध। मुसलमानों के नामी नेता तो बहिष्कार दल मे है, पर छोटे-छोटे शहरों के मुसलमान कमीशन की ओर कुछ झुकते हुए नज़र आते हैं। डॉक्टर सर इकबाल, सर मुहम्मदशफ़ी, मि० गज़नवी, मौलाना हसननिज़ामी, मौलाना हसरत-मोहानी का पल्ला किसी तरह कमज़ोर नहीं कहा जा सकता, विशेषतः इसलिये कि गवर्नमेंट उनकी सहायता कर रही है। पर यदि मुसलिम नेता टाइम्स की इतनी चाल भी नहीं समझते, तो इसके सिवा और क्या कहा जाय कि इस अभागे देश के भाग्य मे अभी बहुत दिनों तक गुलामी लिखी हुई है। पृथक् मुसलिम निर्वाचन का आविष्कार इसीलिये हुआ था कि हिंदू और मुसलमान आपस मे लड़ते रहें, और जो यंत्र दोनों जातियों को लड़ाने मे इतना सफलीभूत हुआ है, उसे सरकार क्यों छोड़ने लगी। इसका तो किसी पागल ही को यक़ीन आवेगा कि केवल हिंदुओं के आंदोलन ही से प्रभावित होकर सरकार इस नीति का त्याग कर देगी। जहाँ तक हम समझते है, कमीशन को इस विषय मे निर्णय करने का अधिकार ही नहीं दिया गया है, और यदि दिया भी जाय, तो कमीशन इतना बुद्धि-हीन नहीं है कि इस भेद-नीति की, जो अँगरेज़ी शासन का आधार है, उपेक्षा करे। हमें तो विश्वास है कि जो कुछ करना था, वह पहले ही से निश्चय कर लिया गया

है, और कमीशन केवल इसलिये नियुक्त किया गया है कि वह उस निश्चय की पुष्टि करे। अन्यथा इसकी ज़रूरत ही न थी। फिर हिंदू अगर पृथक् मुसलिम निर्वाचन का विरोध करते हैं, तो क्यों? केवल इसी विचार से कि इससे जाति-द्वेष बढ़ता है और राष्ट्रीयता के भाव को धक्का लगता है। कितने ही सर्वसम्मानित मुसलिम नेता भी तो ऐसा ही समझते हैं। हिंदुओं का यह कदापि उद्देश्य नहीं है कि वे मुसलमानों को इस अधिकार से उनकी इच्छा के विरुद्ध वंचित करने की चेष्टा करें। वे मुसलमानों से परामर्श करके ही इस विषय में कोई क़दम बढ़ावेंगे, अन्यथा नहीं।

हम कमीशन का बहिष्कार क्यों करते हैं? क्या इस-लिये कि उसमें दो-एक भारतीय नेता नहीं सम्मिलित किए गए। भारतीय नेताओं के सम्मिलित होने से कमीशन के फ़ैसले पर कोई असर न पड़ेगा। संभव है, वे अपनी राय अलग लिख दें। इसके सिवा वे और कुछ नहीं कर सकते। इसके पहले भी कमीशनों में भारतीय मेंबरों ने अपनी राएँ अलग लिखी हैं, पर उनका कुछ फल न निकला। फिर इस कमीशन में उनकी पृथक् राय का विशेष महत्त्व क्यों हो जायगा। इससे इतना ही होगा कि हमारे दो-चार नेताओं को कमीशन में बैठने और अपने हौसले को पूरा करने का सामान मिल जायगा। जाति को उनके सम्मिलित होने से कोई उपकार न होगा। हाँ, यदि कमीशन में भारतीयों की बहुमत हो जाय, तब अलबत्ता कुछ सफलता हो सकती है। मगर इंगलैंड इतना उदार होगा, यह असंभव है। जो एक हिंदोस्तानी को भी नहीं लेना चाहता, वह कमीशन में हिंदोस्तानियों को बहुमत दे सकेगा, यह कल्पनातीत है। हम इस आधार पर कमीशन का बहिष्कार नहीं करते। हमारा कहना तो यह है कि इंगलैंड को हमारे भाग्य-निर्णय का कोई अधिकार ही नहीं है। लॉर्ड बर्कनहेड का यह कहना कि ऍगरेज़ी पार्लियामेंट ही के हाथ में आख़िरी फ़ैसला होगा, सुधार-योजना के सर्वथा विरुद्ध है। योरपीय समर के बाद यह स्वीकार किया गया था कि प्रत्येक जाति को अपने भाग्य निर्णय का स्वयं अधिकार होना चाहिए। मि० लायडजॉर्ज ने चिल्ला-चिल्लाकर कहा था कि सभी पराधीन राष्ट्रों को यह अधिकार दिया जायगा। लेकिन अब हमसे कहा जाता है कि हमारे भाग्य का फ़ैसला ऍगरेज़ी पार्लियामेंट करेगी। क्या स्वनिर्णय का यही अर्थ है? हम तो ऐसा नहीं समझते। कैनाडा, आस्ट्रेलिया आदि ऍगरेज़ी उपनिवेशों ने क्या ऍगरेज़ी पार्लियामेंट के हाथ में अपने भाग्य का निर्णय रख दिया था? कदापि नहीं। उन्होंने स्वयं अपनी व्यवस्था आप की थी और ऍगरेज़ी पार्लियामेंट के सामने केवल उसकी नक़ल भेज दी गई थी, जिसे पार्लियामेंट ने बिना किसी आपत्ति के स्वीकार कर लिया था। भारत भी उसी रीति से अपने भाग्य का निर्णय करना चाहता है। वह उस देश के हाथ में अपने भाग्य को नहीं छोड़ देना चाहता, जिसका स्वार्थ उसे अनंत काल तक पराधीन रखने में ही है। पार्लियामेंट देवताओं की मंडली नहीं है, जो स्वार्थ से ऊपर उठ सके। कुत्ता चमड़े की रखवाली कभी नहीं कर सकता, चाहे वह भैरव का ही कुत्ता क्यों न हो। यह अस्वा-भाविक है। इंगलैंड से यह आशा करना कि वह भारत को स्वराज्य तो क्या कोई ऐसा अधिकार भी देगा, जिससे उसके स्वार्थ की हानि की संभावना हो, पागलपन है। भारत को स्वयं अपनी राज्य व्यवस्था आप करनी होगी। कमीशन से उसे कोई सरोकार नहीं। कमीशन चाहे ऍगरेज़ों का हो, चाहे हिंदोस्तानियों का, चाहे देवताओं का, यदि उसकी रिपोर्ट का अंतिम फ़ैसला पार्लियामेंट के हाथ में है, तो हमारा परम धर्म है कि हम उसका बहिष्कार करें और उसी के साथ हमें अपनी व्यवस्था आप तैयार करनी चाहिए, जिसे हम पार्लियामेंट के सामने रख सकें।

× × ×

२ पाठांतर

हिंदी के पुराने कवियों के ग्रंथों में, जो छंद पाए जाते हैं, उनमें पाठ-भेद बहुत मिलता है। किसी प्रति में एक छंद का पाठ एक है, तो दूसरी में दूसरा और तीसरी में तीसरा। यहाँ तक कि एक-एक छंद के कभी-कभी दर्जनों पाठांतर मिलते हैं। इन पाठांतरों की सृष्टि लेखकों के प्रमाद से भी हुई है। कभी कभी अन्य लोगों ने भी छंद में विशेष चमत्कार लाने के उद्देश से पुराने कवियों की कृति में पाठ-भेद कर दिए हैं। कारण कुछ भी हो पर यह स्पष्ट है कि पुराने कवियों की रचनाओं में बहुत पाठ-भेद पाए जाते हैं। इधर पुराने कवियों के काव्य-

ग्रंथ विशेष रूप से संपादित होकर निकल रहे हैं। उनमें से कुछ संपादक तो पाठ-भेद देते हैं, पर कुछ पाठ-भेद नहीं देते। एक संपादक महाशय का कहना यह है कि जो संपादक पाठ-भेद दे, उसे अयोग्य समझना चाहिए; क्योंकि वह सर्वोत्तम पाठ चुनने में असमर्थ है। इन संपादक महाशय की राय है कि संपादक वही, जो सर्वोत्तम पाठ चुन ले। इन्हीं महाशय का यह भी दावा है कि मैं सर्वोत्तम पाठ चुन लेता हूँ। हमारी राय में पाठ-भेद देने की रीति संपादक की अयोग्यता नहीं सिद्ध करती है, वरन् इस बात का प्रमाण है कि संपादक भविष्य के टीकाकारों को सभी पाठ देकर उन्हें रचना-विशेष पर पूर्ण अध्ययन करने का मौक़ा देता है। इतना ही नहीं, वह भविष्य के समालोचक को यह भी अवसर देता है कि उसके चुने पाठ की भी वह टीका-टिप्पणी कर सके। पाठ-भेद देनेवाला संपादक उस न्यायाधीश के समान है, जो मिसल को ठीक तौर से मुरत्तब कर देता है, प्रत्येक प्रकार के साक्षी का संग्रह कर देता है, जिसमें अपील होने पर ऊपरी अदालत को ठीक निर्णय करने में सहारा मिले। पाठ-भेद देनेवाला संपादक अपने ऊपर विश्वास रखता है। वह कोई पाठ छिपाता नहीं है। उसे जितने पाठ मिलते हैं, अध्ययनशील पाठकों के लिये उनका संग्रह कर देता है। वह भविष्य की खोज का मार्ग बंद नहीं करता है। संस्कृत के पुराने काव्यों पर मल्लिनाथ-जैसे विद्वान् टीकाकारों ने, जो टीकाएँ लिखी हैं, उनमें भी पाठांतर दिए गए हैं और उन पाठांतरों पर टीका में विवेचना भी की गई है। हाल में कई लाख रुपए का व्यय करके बंबई से महाभारत का बड़ा संस्करण निकलने जा रहा है। उसमें भी अधिक-से-अधिक प्राप्त पाठांतरों के देने की व्यवस्था की गई है। अँगरेज़ों के जितने विद्वत्ता-पूर्ण संस्करण कविता-ग्रंथों के हैं, उनमें भी पाठांतर दिए जाते हैं। हिंदी-कविता-ग्रंथों के सूरति मिसर-सदृश पुराने टीकाकारों ने भी अपनी टीकाओं में पाठांतरों का उल्लेख और उनकी विवेचना की है। जो टीकाकार पाठांतर देने से झिझकता है, वह मानो औरों को यह मौक़ा नहीं देना चाहता है कि वे भी उसके चुने पाठ की परीक्षा कर सकें। इस बीसवीं शताब्दी में गुरुडम का बहुत कुछ अंत हो चुका है। फिर भी ऐसा जान पड़ता है कि पाठांतर न देकर अपने चुने पाठ की परीक्षा का अवसर न उपस्थित होने देने का आयोजन करके, वह एक बार फिर गुरुडम की सृष्टि करना चाहता है। वह चाहता है कि लोग आँख मूँदकर उसके दिए पाठ को मान लें। भले ही उसका विश्वास हो कि उसने जो पाठ चुना है, वही सर्वोत्कृष्ट है; पर यह संसार बहुत बड़ा है, इसमें बहुत बड़े-बड़े विद्वान् पड़े हैं। एक साधारण टीकाकार की कौन-सी हस्ती है। निम्न-श्रेणी के टीकाकारों में—ख़ास करके उन टीकाकारों में, जिनमें अहम्मन्यता का भाव अधिक है—यह बुरी आदत देखी गई है कि किसी प्राचीन पुस्तक की टीका करते समय जब उनकी समझ में कोई शब्द या वाक्य नहीं आता है, तो दिमाग़ खरोंचकर वे नए पाठ की सृष्टि करके किसी प्रकार से अर्थ की संगति बिठाने का उद्योग करते हैं। इससे कभी-कभी बड़ा अनर्थ हो जाता है। टीकाकार महोदय पाठांतर देंगे नहीं जिसमें और भी कोई अर्थ समझने का उद्योग करे और यह स्वीकार करेंगे नहीं कि अमुक शब्द या वाक्य का अर्थ हम नहीं समझ पाए हैं। कुछ-न-कुछ अर्थ ज़रूर ही किया जायगा। ऐसी दशा में गड़बड़ी की पूर्ण संभावना होती है।

× × ×

२ रूस में साम्यवाद

रूस के बोलशेविक शासन को बदनाम करने की अनेक चेष्टाएँ की गई हैं और अब भी की जा रही हैं। किंतु जिन लोगों ने वहाँ जाकर वहाँ की व्यवस्था अपनी आँखों देखी है, वे उसकी कुछ और ही कथा कहते हैं। औरों की चर्चा न करके हम इस समय श्रीजवाहिरलाल नेहरू ही के अनुभवों का उल्लेख करेंगे। अभी थोड़े दिन हुए आप दो-तीन दिन के लिये मास्को गए थे। वहाँ से उन्होंने अपनी बहन मिसेज़ आर० एस० पंडित के नाम एक पत्र में शासन-व्यवस्था का संक्षिप्त विवरण लिखा है। आपका कथन है कि इस देश में मोटरकारों की वह कसरत नहीं है, जो योरप के अन्य देशों में देखने में आती है। अधिकांश लोग पैदल चलते नज़र आते हैं। जो मोटरें हैं भी वे किसी-न-किसी राज-विभाग की ही हैं। प्रायः स्त्री-पुरुष बहुत सादे वस्त्र पहनते हैं, यहाँ तक कि कालर और टाई भी बहुत कम लोग लगाते हैं। मिसेज़ नेहरू पर उनकी सादगी का ऐसा असर हुआ कि उन्होंने अपनी साड़ी की बेल निकाल डाली। वहाँ

हे थिएटरों में वह शानदार परदे नहीं नज़र आए, जो अन्य देशों में देखे जाते हैं, यद्यपि अभिनय इतना सुंदर था, जैसा आपने किसी देश में नहीं देखा। रईसों के बड़े-बड़े विशाल भवनों में अब सार्वजनिक संस्थाओं के दफ़्तर हैं। सबसे दिलचस्प वहाँ के जेलख़ानों का वृत्तांत है। वहाँ के क़ैदी कंटोप और जाँघिए नहीं पहनते, न उनके गले में लोहे का नंबर पड़ा होता है। उनके वस्त्र वही होते हैं, जो साधारणतः लोग पहनते हैं, और नंबरों से न पुकारे जाकर वे लोग नामों से पुकारे जाते हैं। उनके कमरों में प्रकाश, वायु और सफ़ाई किसी बात की कमी नहीं। उनका भोजन भी वही है, जो उस देश की जनता का है। हरएक क़ैदी को वेतन मिलता है, जिसका एक तिहाई उसके भरण-पोषण में कट जाता है और दो तिहाई जेल के अधिकारियों के पास जमा रहता है। जब क़ैदी अपनी अवधि पूरी करके निकलता है, तो यह संचित थाती उसे दे दी जाती है, जिससे वह कोई व्यवसाय करके ईमानदारी से अपना निर्वाह कर सके। इस भाँति वहाँ क़ैदियों को अपने जीवन-सुधार का अवसर दिया जाता है, जो कारावास का मुख्य उद्देश्य है। वहाँ के जेल मनुष्यों को आत्म-सम्मान-विहीन, दुश्चरित्र, दुरात्मा बनाने के कारख़ाने नहीं हैं। भारतवर्ष में एक बार जेल में आकर मनुष्य सदैव के लिये अपना अधःपतन कर लेता है। यहाँ जेल के अपमानजनक मनुष्यता-विहीन, पाशविक नियम क़ैदियों की आत्मा का सर्वनाश कर देते हैं। मनुष्य यदि जेल में आने के पहले अपराधी था, तो वहाँ से पशु बनकर निकलता है। उसके अंतःकरण की सारी कोमलता कुचल दी जाती है। यदि बोलशेविकों ने और कोई सुधार न करके केवल जेल ही का सुधार किया होता, तो भी उनके शासन की उपयोगिता सिद्ध करने के लिये काफ़ी होता। मगर जब हम देखते हैं कि जीवन के सभी विभागों में उन्होंने अपने सिद्धांतों की छाप लगा दी है, तो विवश होकर यह मानना पड़ता है कि मानव-जाति के उपकार के लिये जो क्रांति हुई है, वह सर्वथा अवहेलनीय नहीं है। लाल सेनाओं के भयंकर करतूतों की चर्चा बराबर सुनते चले आते हैं। उनसे सहज ही अनुमान हो जाता है कि रूसवाले परले सिरे के हत्यारे हैं, हिंसा और रक्तपात से प्रियतर उन्हें और कोई विषय नहीं, केवल सैनिक बल से वे संसार पर अपना आतंक जमाना चाहते हैं। लेकिन जब राष्ट्र-संघ में उन्होंने निःशस्त्रीकरण का प्रोग्राम पेश किया, तो सारे संसार में हलचल पड़ गई। चारों तरफ़ से आवाज़ें आने लगीं, यह लोग ख़याली पुलाव पकाते हैं; इनका प्रस्ताव अव्यावहारिक है। रूस-जैसे देश के लिये वह उपयुक्त हो सकता है, पर जिन राष्ट्रों का अस्तित्व निर्यात पर निर्भर है, उनके लिये वह घातक होगा। जिन साम्राज्यवादी राष्ट्रों में बरसों से यह झगड़ा हो रहा है कि कौन कितने क्रूज़र बनाए, वे भला इस संपूर्ण निःशस्त्रीकरण के प्रस्ताव की हँसी उड़ाने के सिवा और क्या करतीं। कुछ भी हो, पराधीन जातियों के लिये बोलशेविक सिद्धांतों में आशा और उद्धार का जो संदेश है, वह साम्राज्यवादी सिद्धांतों में नहीं। हम यह नहीं कहते कि बोलशेविकों की सभी बातें आदर्श हैं, उनमें कोई दोष ही नहीं, लेकिन वह स्वार्थपरता, वह अभिमान, वह दुर्बलों को सदैव कुचलते रहने की इच्छा, वह व्यावसायिक प्रभुत्व जमाने की लालसा, पराधीनों की कमाई पर मोटे होने की वह दृढ़ता, जो साम्राज्यवादियों में है, साम्यवादियों में नहीं। चीन, ईरान, और तुर्की के साथ उनका अब तक जो व्यवहार देखने में आया है, वह हमारे इस विचार की पुष्टि करता है।

× × ×

४ सोहाग-रात

हिंदी के सुप्रसिद्ध लेखक और अभ्युदय पत्र के संपादक पं० कृष्णकांत मालवीयजी ने हाल ही में 'सोहाग रात' नाम की एक पुस्तक लिखी है। यह पुस्तक पंडितजी ने अपनी पुत्र-वधू के लिये लिखी है। हिंदू-कुटुंब में श्वसुर और पुत्र-वधू में क्या संबंध है, यह बहुत प्रकट बात है। बहू के लिये पिता और श्वसुर का दर्जा बराबर का है, तथैव श्वसुर के लिये कन्या और बहू एक समान हैं। ऐसी दशा में श्वसुर बहू को जो कुछ उपदेश देगा, वह कितना गंभीर और उत्तरदायित्व-पूर्ण होगा, वह सहज में समझा जा सकता है। जहाँ साधारण उपदेश की यह दशा है, वहाँ 'सोहाग-रात'-जैसे विषय पर जो उपदेश होगा, वह कैसा होना चाहिए, यह भी सहज में ही अनुमान किया जा सकता है। अपनी लज्जाशीला बहू को वयोवृद्ध और गंभीर श्वसुर इस विषय पर उपदेश

देगा, यही आश्चर्य की बात है, पर श्वसुर द्वारा ऐसा उपदेश जितना ही आश्चर्य-जनक है, उतना ही वह आवश्यक भी है। खेद है कि हिंदू-कुटुंब के बहुतेरे श्वसुरों ने अपने इस आवश्यक उत्तरदायित्व का समुचित पालन नहीं किया। 'सोहाग-रात'-जैसे विषय पर अपनी पुत्र-बधू को उपदेश देकर न केवल पं० कृष्णकांतजी ने अपने उत्तरदायित्व का पालन ही किया है, वरन् उन्होंने अपूर्व नैतिक साहस का भी परिचय दिया है। इस साहस के लिये हम पंडितजी को हृदय से बधाई देते हैं। हिंदी-साहित्य में यह पुस्तक अपने ढंग की अद्वितीय है। इसकी भूमिका स्वनामधन्य लाला लाजपतरायजी ने लिखी है। 'मेरा निवेदन' शीर्षक से पुस्तक के प्रारंभ में पं० कृष्णकांतजी ने जो प्राक्कथन लिखा है वह अपूर्व है। ६ आवश्यक परिशिष्टों के अतिरिक्त २२ शीर्षकों के अंतर्गत मूल-विषय का प्रतिपादन पत्रों के रूप में किया गया है। विषय बड़ा ही सुकुमार और गंभीर है। इस विषय का वर्णन करना और अश्लीलता से भी बचना बड़ा ही कठिन काम है। हाँ, जब पिता अपनी पुत्री के लिये अथवा श्वसुर अपनी बहू के लिये इस विषय पर कुछ लिखे, तभी उसके अधिक संयमशील होने की संभावना है। हर्ष की बात है कि पं० कृष्णकांतजी ने ग्रंथ को अश्लीलता के पाश में बँधने से बहुत कुछ बचाया है। पुस्तक बहुत सुंदर छपी है। ४६४ पृष्ठ की पुस्तक का मूल्य ३।) अधिक नहीं है। इस पुस्तक की विस्तृत समालोचना तो और कभी लिखी जायगी पर यहाँ इतना कहना अलम् है कि इसमें गुण बहुत अधिक और दोष अति स्वल्प हैं। इसमें जगह-जगह पर जो 'मर्दुए' शब्द का प्रयोग हुआ है, वह गृहस्थ-घरों में प्रचलित न होकर प्रायः बाज़ारू स्त्रियों में ही अधिक प्रचलित है। उसी प्रकार एक हिंदू-कुलबाला का इस प्रकार से लिखना 'तुम तो माशा अल्लाह चश्मे बद्दूर, तुम पर राई नोन खुदा की शान हो' अस्वाभाविक-सा जँचता है। अंत में हमें यही कहना है कि पुस्तक उपादेय है और हिंदी-संसार में इसका आदर होना चाहिए।

× × ×

५ सार्वदेशिक आर्य-सम्मेलन

देहली में सार्वदेशिक आर्य-सम्मेलन का अधिवेशन बड़ी धूम धाम से हो गया। भारत के प्रायः सभी प्रांतों के प्रतिनिधि ३००० की संख्या में आए थे। स्याम, जावा, मरीशस, अफ़्रीका, गिनी आदि देशों के प्रतिनिधि भी उपस्थित थे। सुप्रबंध आदर्श था। उपस्थित जनता का उत्साह देखकर यह सहज ही अनुमान किया जा सकता था कि लोगों में कितनी धार्मिक भक्ति और वर्तमान परिस्थिति के प्रति कितना असंतोष है। सभापति महोदय ने, जो व्याख्यान दिया, वह किसी कांग्रेस के सभापति के मुख से भी असंगत न प्रतीत होता, उसमें कहीं संकीर्णता, द्वेष, अविश्वास की गंध नहीं है। वह एक खुले हुए हृदय का खुला हुआ सरल भाव है। शुद्धि से मुसलमानों को क्यों इतनी शंका है, इसका उल्लेख करते हुए आपने कहा कि इसने मुसलमानों की तबलीगी उम्मीदों पर पानी फेर दिया है और क़ानून से वे लोग हमारा जो हक़ नहीं छीन सकते, उसे उपद्रवों से छीनना चाहते हैं। आपका विचार है कि प्रत्येक प्रांत में ऐसी कमेटियाँ बना दी जायँ जो द्वेषजनक धार्मिक लेखों और पुस्तकों पर कड़ी निगाह रखें। ऐसी संस्थाओं की हमें बड़ी आवश्यकता है। धार्मिक वाद-विवाद से कोई नतीजा नहीं निकलता, और जब वाद-विवाद अपमान-जनक शब्दों में किया जाता है, तब तो सर्वथा अक्षम्य हो जाता है। लेकिन दुर्भाग्य-वश हमारे यहाँ धार्मिक वाद-विवाद ही धर्म-प्रचार का मुख्य साधन मान लिया गया है। हमारी धार्मिक श्रद्धा जीवन के व्यवहारों में तो कभी दिखाई नहीं देती, बस इसी प्रकार की निंदाओं में प्रदर्शित होती है। हमारा प्रचारक जनता के सद्भावों को जाग्रत करने की ज़रूरत नहीं समझता, या उसमें इसकी योग्यता ही नहीं होती। वह केवल मनोविकारों और धार्मिक संकीर्णताओं पर अपने प्रचार की नींव रखता है। धर्म हमारे लिये बरतने की वस्तु नहीं, केवल वाद-विवाद-पूर्ण मनोरंजन की वस्तु है। बहुत अच्छा होता, यदि माननीय सभापति ने प्रचारकों के चुनाव के विषय में भी कुछ ऐसे नियमों का उल्लेख कर दिया होता, जिससे आदर्श-हीन, चरित्र-हीन व्यक्तियों को धर्म-मंच पर खड़े होने का अवसर न मिल सकता। अब तक प्रचारकों के लिये थोड़ी-सी संस्कृत और वक्तृत्व शक्ति के सिवा और किसी बात की ज़रूरत नहीं समझी जाती। वही उपदेशक सफल समझा जाता है, जो दूसरे मतों का खूब मज़ाक़ उड़ावे, उन्हें बिलकुल अफ़ीमचियों की गप साबित कर दे। यह उन्हीं उपदेशकों

की कृपा है कि आज हिंदू किसी इस्लामी उपदेशक का व्याख्यान सुनकर उसी तरह ज़ब्त नहीं कर सकता, जैसे मुसलमान किसी हिंदू उपदेशक का व्याख्यान सुनकर। लाला हंसराज के इन शब्दों पर हमें विशेष ध्यान देने की ज़रूरत है, क्योंकि हम देखते हैं सामाजिक कुरीतियों की ओर से हम कुछ शिथिल पड़ गए हैं और आपस में फूट पड़ जाने के भय से उनके विषय में मौन धारण करना ही उपयुक्त समझते हैं—

हिंदुओं की संख्या के दिन-दिन कम होते जाने का कारण इतनी इस्लामी तबलीग नहीं है, जितनी हमारी सामाजिक कुरीतियाँ।

मगर उन कुरीतियों की ओर से हमने आँखें बंद कर ली हैं, क्योंकि हमें भय है उनके विरुद्ध आंदोलन करने से पुराने ख़याल के लोग नाराज़ हो जायँगे। यही कारण है कि सभाओं के मंच पर इतना शोर-गुल होने पर भी विधवा-विवाह अभी तक हेय समझा जाता है, अछूतोद्धार का इतना हंगामा मचने पर भी अभी तक अछूत अछूत ही हैं। और केवल कहीं-कहीं शहरों को छोड़कर उसका असर समाज पर नहीं पड़ा।

सम्मेलन में जितने प्रस्ताव स्वीकृत हुए, वे वर्तमान दशा के अनुकूल ही हैं, सम्मिलित निर्वाचन के प्रस्ताव को स्वीकार करके सम्मेलन ने अपनी दूरदर्शिता का परिचय दिया, पर एक प्रस्ताव के संबंध में हमें कुछ आपत्ति है। यह वह प्रस्ताव है, जिसमें १०,००० स्वयंसेवकों को भरती करने की बात कही गई है। हमारे विचार में इस प्रस्ताव को उपस्थित करने की ज़रूरत न थी। वातावरण पहले ही से बिगड़ा हुआ है, और इस अविश्वास और द्वेष के समय में इस प्रस्ताव को अन्य मतों के लोग हमारी ओर से चुनौती समझेंगे और स्पर्धा की उमंग में वे भी स्वयंसेवक भरती करने के लिये उद्यत हो जायँगे। इस तरह वैमनस्य और भी बढ़ेगा, हालाँकि इस वक्त हमें ऐक्य की जितनी ज़रूरत है, उतनी कभी न थी। हमें यह देखकर संतोष हुआ कि महात्मा हंसराजजी ने सत्याग्रह के प्रस्ताव की उपेक्षा की।

× × ×

६. मेरा नम्र निवेदन

जब से 'माधुरी' के विगत विशेषांक में प० भूदेवशर्मा विद्यालंकार-लिखित 'प्रिया-प्रकाश' टीका की आलोचना निकली है, तब से लाला भगवानदीनजी ने मेरी संपादित 'मतिराम-ग्रथावली' में दोष दिखलाने का बीड़ा उठाया है। इस बीच में आपने भिन्न-भिन्न पत्र-पत्रिकाओं मे मेरे विरुद्ध कई लेख लिखे है। इन लेखों में मुझे गालियाँ भी दी गई है और मुझ पर व्यक्तिगत आक्षेप भी किए गए हैं। लालाजी के लेखों तथा उनकी भिन्न-भिन्न कृतियों के संबंध मे मुझे भी कुछ निवेदन करना है और वह भी विस्तार के साथ। यद्यपि जिन पत्र पत्रिकाओं मे लाला भगवानदीनजी के लेख निकले है, उन्हीं मे मैं भी अपने लेख भेजने का प्रबंध कर सकता हूँ, पर मैं चाहता हूँ कि मेरे लेख किसी एक ही पत्र मे निकले। यह स्पष्ट है कि 'माधुरी' और 'साहित्य-समालोचक' मे अपने लेख प्रकाशित करने मे मुझको सबसे अधिक सुविधा है। 'माधुरी' को इस विवाद मे अलग रखकर मैंने यह निश्चय किया है कि लालाजी की कृतियों के संबंध में मै जो लेख लिखूँ, वे 'साहित्य-समालोचक' मे धारावाहिक रूप से प्रकाशित किये जायें। इधर कौटुबिक विपत्तियों के कारण 'साहित्य-समालोचक' के प्रकाशन मे कुछ शिथिलता आ गई थी, पर अब उसके नियमित रूप से प्रकाशन की व्यवस्था की जा रही है। आश्विन और मार्गशीर्ष के अंक एक सप्ताह मे प्रकाशित हो जायेंगे। लालाजी की कृतियों से संबंध रखनेवाले मेरे लेखो को जो लोग पढ़ना चाहें, वे कृपा करके 'साहित्य-समालोचक' का देखने का कष्ट उठावें। 'माधुरी' की इसी संख्या मे अन्यत्र 'साहित्य-समालोचक' का विज्ञापन भी छपा है, उससे इस पत्र के संबंध की विशेष बाते भी जानी जा सकती हैं। प० भूदेवशर्मा लिखित 'प्रिया-प्रकाश' टीका की जो आलोचना मैंने 'माधुरी' मे प्रकाशित की है, उसे भलीभाँति पढ़कर और समझ-बूझकर एक विशेषाक मे छपने योग्य पाकर ही प्रकाशित किया है। उसके प्रकाशन का संपूर्ण उत्तरदायित्व मुझ पर है। इस आलोचना के संबंध मे जो वाद-विवाद चल रहा है, उस पर मै अपनी सम्मति भी विवाद समाप्त हो जाने पर अवश्य प्रकाशित करूँगा।

कृष्णविहारी मिश्र

× × ×

७. माधुरी का विशेषांक और श्रद्धेय जोशी भाई

मार्गशीर्ष की 'सुधा' में प० इलाचंद्रजी जोशी ने माधुरी के विशेषांक की समालोचना की है। इस समालोचना का सारांश यह है कि वह अंक 'बुरा नहीं है'। लेखों और कविताओं पर अलग-अलग भी सम्मतियाँ दी गई हैं। चित्रों पर भी जोशीजी ने अपनी राय प्रकट की है। आवरण-पृष्ठ पर जो चित्र दिया गया है, उसका निर्माण कैसे हुआ, वह कब, किसके लिये और किसके द्वारा बनाया गया, इसका इतिहास भी जोशीजी ने लिखा है। नैनीताल मे बैठे-बैठे जोशीजी ने, इस चित्र के संबंध मे इतना ज्ञान-संग्रह कर लिया, यह बड़े ही आश्चर्य की बात है। चित्र के संबंध मे जोशीजी ने जो बाते लिखी है, उसमें कई बाते भ्रम-पूर्ण है, पर हम इस विषय को लेकर कोई विवाद नहीं खड़ा करना चाहते है। जोशीजी को विशेषांक के संबंध मे अपनी स्वतंत्र सम्मति प्रकट करने का पूर्ण अधिकार है और उस अधिकारका उपयोग करने के उपलक्ष्य मे जोशीजी को हार्दिक बधाई है। प० इलाचंद्रजी जोशी के भाई प० हेमचंद्रजी जोशी ने भी 'माधुरी' के इसी विशेषांक की समालोचना हमारे पास लिख भेजी है। उनका पत्र हमें पेरिस से मिला है। प० हेमचंद्रजी लिखते हैं "माधुरी का विशेषांक मिला। हार्दिक आनंद यह देखकर प्राप्त हुआ कि 'माधुरी' ने, इस अंक के द्वारा भारतवर्ष आदि बँगला-पत्रों को भी मात दे दी। इसकी छपाई-सफाई के सामने भारतीय भाषाओं के पत्र नहीं ठहर सकते हैं। लेखों का चुनाव अत्युत्तम हुआ है। आप लोगों ने संपादन-भार हाथ मे लेते ही जो महान् योग्यता दिखलाई है, वह वास्तव मे प्रशंसनीय है।" सो बड़े भाई साहब जिस अंक की इतनी तारीफ करते है, छोटे भाई साहब उसी को उतना खराब नहीं पाते हैं। बड़े भाई साहब ने समालोचना योरप से लिखकर भेजी है और छोटे भाई साहब ने नैनीताल या लखनऊ मे लिखी है। बड़े भाई साहब 'माधुरी' और 'सुधा' दोनो को अपने लेखो से अलंकृत किया करते हैं पर इन दोनो मे से किसी पत्रिका के संपादकीय विभाग मे नहीं है। पर छोटे भाई साहब इस समय सुना जाता है सुधा के संपादकीय विभाग में काम करते है। नहीं जानते 'माधुरी' के विशेषांक की समालोचना कर चुकने के बाद उनको 'सुधा' कार्यालय मे काम मिला है या वे वहाँ पहले से ही थे। हम दोनों भाइयों की सम्मतियों का आदर करते हैं।

× × ×

८. मारवाड़ी-समाज में क्रांति

मारवाड़ी-समाज अब तक सामाजिक आंदोलनों से बराबर दूर भागता चला आया है। शिक्षा के प्रभाव के कारण वह प्रायः सभी ऐसी बातों को, जो उसके मन में जमे हुए धार्मिक विचारों का अनुमोदन नहीं करतीं, हेय समझता है, पर समयोचित क्रांति की लहर किसके रोके रुकती है। इधर कई महीनों से मारवाड़ियों में दो दल हो गए हैं। एक सामाजिक सुधारों का अनुमोदक है, दूसरा विरोधक। दोनों ही दलों में धनी और प्रभावशाली व्यक्ति मौजूद हैं, दोनों ही के पास अपने-अपने पत्र हैं, जो एक दूसरे को चुन चुनकर गालियाँ देते हैं। मारवाड़ियों में पहला विधवा-विवाह कानपुर के एक सुशिक्षित सज्जन ने हाल ही में किया है, जिनका नाम महाशय नवलकिशोर भरतिया है। कन्या बाल-विधवा है और उसकी अवस्था अब विवाह के योग्य हुई है। यह विवाह जितनी धूम-धाम से हुआ और जितने मारवाड़ी बिरादरी के लोग उसमें सम्मिलित हुए, उससे स्पष्ट पता चलता है कि हवा का रुख किधर है। यह सुधारक दल की विजय है, और हम भरतियाजी को उनके साहस और समयोचित कर्तव्य-बुद्धि पर बधाई देते हैं।

× × ×

९. देहातों में स्वास्थ्य-विधान

देहातों में स्वास्थ्य-रक्षा का प्रश्न इतना जटिल और पेचीदा है कि स्वास्थ्य-विभाग के कर्मचारियों को भी अंत में निराश होना पड़ा। इस विभाग ने कई ज़िले नए स्वास्थ्य-विधानों के प्रयोग के लिये चुने थे। साल-भर तक इस विधान का अनुभव करने के बाद उसने एक रिपोर्ट प्रकाशित की है। उससे मालूम होता है कि जिन गाँवों में कोई रोबदार प्रभावशाली आदमी मुखिया मिल गया, वहाँ तो इन विधानों को कुछ सफलता प्राप्त हुई; पर अन्य गाँवों में जहाँ ऐसे प्रभावशाली व्यक्ति न मिले। कोई सफलता न मिल सकी। यह तो व्यक्तित्व की विजय हुई, नियमों की नहीं। स्वास्थ्य-विधान का निर्माण नियमों के ज्ञान पर ही हो सकता है। जब तक किसान को यह न मालूम होगा कि जिन परिस्थितियों में वह रहता है, वह कितनी हानिप्रद हैं, और उनका सुधार करना कितना आसान है, तब तक वह इन विधानों को उपेक्षा की दृष्टि से ही नहीं, संदेह की दृष्टि से देखेगा। गाँव के लोग घर का कूड़ा-करकट और गोबर आदि बस्ती के निकट या बहुधा अपने घर के सामने ही जमा करते हैं। इन वस्तुओं से कितनी ही गंदगी क्यों न फैले, पर किसान के लिये यह मूल्यवान् वस्तु है। इस कूड़े के बिना उसकी उपज न्यून हो जायगी, इसलिये उससे यह कहना कि इस कूड़े को बस्ती के बाहर फेंको, उसके साथ अन्याय करना होगा। कौन इस बात का ज़िम्मा लेगा कि बस्ती के बाहर उसकी यह संपत्ति सुरक्षित रहेगी। कूड़ा हमारी निगाह में कितना ही तुच्छ हो, पर वह किसान की संपत्ति है। उसकी चोरी हो सकती है। फिर बस्ती के बाहर उसे ऐसी ज़मीन भी देनी होगी जहाँ वह अपना कूड़ा फेंक सके। स्वास्थ्य-विभाग को ज़मींदारों पर यह दबाव डालना होगा कि वे किसानों को कूड़ा फेंकने के लिये ज़मीन दें। यह न हो कि किसान बस्ती के बाहर कहीं कूड़ा फेंके और दूसरे दिन ज़मींदार का सिपाही उसके सिर पर लट्ठ लेकर सवार हो जाय कि तूने वहाँ कूड़ा क्यों फेंका। फिर अधिकांश गाँवों में बस्ती इतनी घनी हो गई है कि किसानों को अपने जानवरों को बाँधने या द्वार पर कुछ खुली हुई भूमि रखने की गुंजाइश ही नहीं। बहुधा तो रास्ता भी बाकी नहीं रहता। हमने ऐसे कितने ही गाँव देखे हैं, जिनमें किसी रास्ते से जुती हुई बैलों की जोड़ी नहीं गुज़र सकती। किसान को एक-एक बैल अलग-अलग ले जाना पड़ता है। जगह के इसी अभाव के कारण उन्हें अपने रहने के घर में ही जानवरों को बाँधना पड़ता है। अगर घर के द्वार पर दस पाँच हाथ ज़मीन भी खुली हुई न मिली, न दो घरों की दीवारों के सटे होने के कारण खिड़कियाँ खोली जा सकीं, तो घर में वायु और प्रकाश का गुज़र कैसे होगा। यहाँ फिर स्वास्थ्य-विभाग को ज़मींदारों की शरण लेनी पड़ेगी। हरएक गाँव में उसकी आबादी के हिसाब से ही ज़मीन मिलनी चाहिए। रोशनी और सफ़ाई के लिये गाँव के सरपंचों के हाथ में कुछ रुपए रख देने होंगे, जो देहातियों से न लिए जाकर सरकारी कोष ही से लिए जायँ। किसानों की दशा इतनी हीन है कि वे दो चार पैसे भी सफ़ाई या रोशनी के लिये नहीं खर्च कर सकते। जब सरकार लगान के रूप में उनसे काफ़ी धन खींच लेती है, तो उसका

कर्त्तव्य है कि वह उनके स्वास्थ्य और सुविधा की भी व्यवस्था करे। उचित शिक्षा के प्रचार से किसानों के जीवन में कुछ परिवर्तन हो सकता है, पर जिन बातों में उनका कोई अख्तियार ही नहीं, उनका सुधार, शिक्षा कैसे कर सकती है। कहने का तात्पर्य यह है कि देहातों के स्वास्थ्य-विधान में केवल सरकारी महकमा कुछ नहीं कर सकता, जब तक कि सरकार धन से उसे काफी सहायता न करे और ज़मींदारों की सहानुभूति उसे न प्राप्त हो जाय। रिपोर्ट को देखने से मालूम होता है कि कई ज़िलों में देहातों की सफ़ाई के लिये जितना धन मंज़ूर हुआ था, वह भी खर्च नहीं किया जा सका। इसका कारण इसके सिवा और कुछ नहीं है कि विभाग ने केवल पटवारियों और ज़मींदारों या उनके कारिंदों पर ही भरोसा किया। ज़रूरत ऐसे शिक्षित मनुष्यों की है, जो सेवाशील हों और जिनका जनता पर कुछ प्रभाव भी हो। ऐसे आदमियों की कमी नहीं है, पर वे इतनी आसानी से न मिलेंगे, जितनी आसानी से पटवारी या कारिंदे मिल जाते हैं। पटवारी और कारिंदे इस काम में भी जनता को सताने का एक बहाना पा जाते हैं और कानून की धमकियाँ दे-देकर उनको तंग करते हैं। यह काम उन्हीं लोगों द्वारा हो सकता है, जिन पर प्रजा का विश्वास हो, जो अफ़सर बनकर नहीं, उनके शुभ-चिंतक बनकर काम करें।

×　　　×　　　×

१० 'कुहू' और 'दाग' का औचित्य

'माधुरी' में सुकवि सोमनाथ पर एक छोटा-सा लेख निकला था। इस लेख की एक आलोचना निकली है। उसमें आलोचकजी ने लेख के लेखक को बहुत बनाने का उद्योग किया है, कहीं पर व्याकरण-संबंधी दोष दिखलाए गए हैं, तो कहीं मुहाविरों के अशुद्ध प्रयोग की घोषणा है एवं कहीं पर अर्थ का अनर्थ करने का उपालंभ है। व्याकरण-संबंधी दोषों में लिंग की भूलें ही अधिक दिखलाई गई हैं। ख़ैर इन व्याकरण-संबंधी दोषों पर हम कभी और लिखेंगे, आज दो अर्थ-संबंधी अनौचित्यों पर कुछ प्रकाश डालना उचित समझ पड़ता है।

सोमनाथजी के एक छंद में मोर के 'कुहू-कुहू' शब्द करने का वर्णन आया है। आलोचकजी का कहना है कि मोर के शब्द को 'कुहू-कुहू' नहीं कह सकते हैं। मोर के लिये 'कुहू' शब्द कहना घोर अनर्थ करना है। होगा। पर ब्रजभाषा के पुराने कवि यह घोर अनर्थ बहुत दिनों से करते आए हैं, यह नीचे दिए कुछ उदाहरणों से प्रकट हो जायगा। 'कुहू-कुहू' करना या 'कुहकना' एक ही बात है। कोश में हमें मोर और कोयल का स्वर लिखा गया है। आलोचकजी यह स्वीकार करते हैं कि मोर का शब्द 'केहूँ-केहूँ' के अनुरूप होता है। 'केहूँ-केहूँ' और 'कुहू-कुहू' में विशेष अन्तर नहीं जान पड़ता है। कोयल के शब्द को हिंदी के कवि 'कुहू-कुहू' कहते हैं। इसी कोयल को अँगरेज़ी में 'कक्कू' कहते हैं और इसके स्वर को 'ककऊ'। वही 'कुहू' अँगरेज़ी में 'ककऊ' रूप पा जाता है। 'ककऊ' और 'कुहू' में जितना अंतर है, उतना 'कुहू' और 'केहू' में नहीं है। ऐसी दशा में आलोचकजी के कथनानुसार ही यदि हिंदी के कवियों ने मोर के 'केहू' शब्द को 'कुहू' ही समझा हो तो शायद उनके कानों ने अधिक धोखा नहीं खाया। सोमनाथजी के जिस छंद में 'कुहू-कुहू' के प्रयोग पर आलोचकजी को आपत्ति है, वह स्वर्गीय अयोध्या-नरेश के 'रस-कुसुमाकर' में भी छपा है और महाराजा साहब ने भी उसका पाठ 'कुहू-कुहू' ही रक्खा है। हिंदी-शब्द-सागर में 'कुहू' का अर्थ मोर या कोयल की कूक लिखा है। अब उदाहरण भी लीजिए—

(१) कुहकहिं मोर सुहावन लागा,
　　होय कुराहर बोलहिं कागा। —जायसी

(२) सावन की रैन मन-भावन गोविंद बिन,
　　दैन दुख लागन बिरहिन के भोर हैं,
　कालिदास' प्यारी अँधियारी में चौंकि होति,
　　घुमड़-उमड़ि घन गरजत घोर हैं।
　सूने कुंज मंदिर में मुरारि बिसरि बैठी,
　　दादुर ये दहकि सो लेत चहुँ ओर हैं,
　हिय में बियोगिनि के बिरह की हूक उठी,
　　कूकि उठी कोयल कुहुकि उठे मोर हैं। —कालिदास

(३) झिल्ली झनकारें रव दादुर अपार मोर,
　　मोर कुहुकारन उदार छबि छाँगे। —रसराज

'दाग' शब्द के प्रयोग पर भी आलोचकजी ने आक्षेप किया है। नखक्षत से उत्पन्न चिन्ह के लिये 'दाग' शब्द का प्रयोग आप अनुचित समझते हैं। ख़ैर, यह आपकी रीझ-बूझ है, पर हम तो उसे ठीक ही मानते हैं। 'दाग' का अर्थ निशान और चिह्न भी है। नखक्षत से उत्पन्न निशान या चिह्न को 'दाग' कहने में हमें कोई अनौचित्य नहीं समझ

पड़ता है, दाग केवल रंग के लगने से ही नहीं पड़ता है वरन् किसी प्रकार का क्षत भी दाग उत्पन्न कर सकता है। जैसे कपोल में पीक लग जाने से उसके लिये सूरदासजी—

'कबहुँक बैठि श्रम भुज धरिकै पीक कपोलनि दागे'

कह सकते हैं, उसी प्रकार से शरीर पर वेणी के निशान देखकर बिहारीलालजी पुकार उठते हैं—

'मृगनैनी मनन भज लखि बेनी के दाग'

अगर शरीर में वेणी के गड़ जाने से उत्पन्न चिह्न को 'दाग' कह सकते हैं, तो नखक्षत से उत्पन्न चिह्न को 'दाग' कहने में क्या आपत्ति है, यह हमारी समझ में नहीं आता है।

× × ×

१९ एक स्वर्ण-पदक

हमारे यहाँ इस प्रांत के स्वास्थ्य-विभाग के डाइरेक्टर लेफ्टेनेंट करनल सी० एल० डन, आई० एम० एस० ने इस आशय का एक पत्र भेजा है कि जो व्यक्ति निम्न-लिखित स्वास्थ्य संबंधी विषय पर सर्वोत्तम लेख भेजेगा, उसे एक स्वर्ण-पदक प्रदान किया जायगा, जिसका नाम होगा—"रायसाहब शंभुदयाल स्वर्ण-पदक।" लेख हिंदी-भाषा में लिखा जाय और ३,००० शब्दों से अधिक न हो। जन साधारण अथवा किसी राजकीय विभाग से संबंध रखनेवाले लोग सभी इस प्रतियोगिता में सम्मिलित हो सकते हैं। लेख उक्त डाइरेक्टर साहब के दफ़्तर में १ मई सन् १९२८ तक पहुँच जाना चाहिए। लेखों के निर्णय का संपूर्ण अधिकार डाइरेक्टर महोदय को होगा और उनका निर्णय ही अंतिम होगा। प्रतियोगिता के विषय में किसी प्रकार का पत्र-व्यवहार करना वांछनीय नहीं है।

× × ×

२२. श्री १०८ पंडित रामवल्लभाशरण महाराज

आप श्रीअयोध्याजी में जानकीघाट पर निवास करते हैं। वहाँ पर आपकी राम-कथा बड़ी मनोहर होती है। हरिनाम-यश-संकीर्तन-सम्मेलन के आप सभापति रह चुके हैं। आप बड़े सज्जन और महात्मा हैं। आपका चित्र ऊपर दिया गया है।
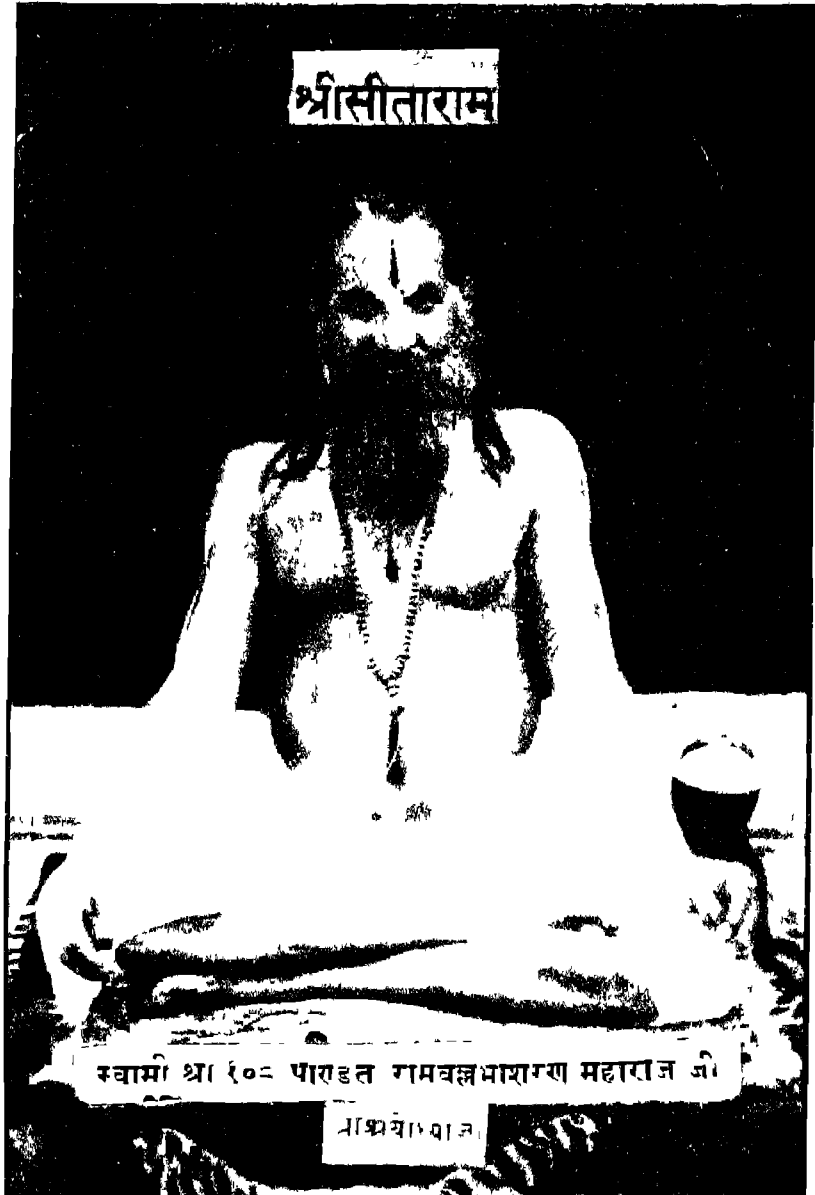
श्रीअयोध्याजी—जानकीघाट, मधुकरनिवास।

× × ×

१३. पं० श्रीधरजी पाठक की हस्तलिपि का फ़ोटो

'माधुरी' के विगत विशेषांक में पूज्यपाद पं० श्रीधर पाठकजी की एक कविता प्रकाशित हुई है। इस कविता का शीर्षक एवं अंत में कविजी का नाम, इतना अंश, श्रीयुत पाठकजी की हस्तलिपि का फ़ोटो है। शेष अंश यद्यपि पाठकजी की हस्तलिपि के बिलकुल अनुरूप है, पर है उनकी कन्या के हाथ का लिखा। पिता और पुत्री का लेख इतना सदृश है कि एकाएक कोई इस भेद को नहीं समझ सकता है। विशेषांक में कविजी की हस्तलिपि का जो फ़ोटो है, उसमें भी पिता और पुत्री के लेख इतने सदृश हैं कि विचारशील पाठक उन दोनों में भेद निकालने में कठिनता से सफल हो सकते हैं। हम इस भेद को तब समझ पाए, जब स्वयं पाठकजी ने हमें इस बात की सूचना दी। उन्हीं की आज्ञा से आज हम यह बात प्रकाशित कर रहे हैं। ब्लाक बनते समय कविता में कुछ त्रुटियाँ भी रह गई हैं। ब्लाक का प्रूफ़ श्रीयुत पाठकजी ने नहीं देखा था। बात अब पुरानी हो गई, फिर भी पाठकजी की आज्ञा का पालन करते हुए हम यह विज्ञप्ति प्रकाशित करते हैं और त्रुटियों के लिये क्षमाप्रार्थी हैं।

×　　×　　×

१४. विशाल भारत का जन्म

हमें श्रीयुत रामानंद चट्टोपाध्याय, संपादक माडर्न रिव्यू, कलकत्ता ने एक सूचना प्रकाशनार्थ भेजी है, जिसे हम सहर्ष प्रकाशित करते हैं। हमें विश्वास है कि बाबू रामानंद की अध्यक्षता तथा पंडित बनारसीदासजी चतुर्वेदी की संपादकता में निकलकर 'विशाल भारत' आदरणीय पत्र होगा और चिरकाल तक हिंदी-भाषा की सेवा कर सकेगा। हम हर्ष से उसका स्वागत करते हैं।

"जनवरी सन् १९२८ से हमने कलकत्ते से राष्ट्र-भाषा हिंदी का 'विशाल भारत' नामक एक नवीन मासिक-पत्र निकालने का निश्चय किया है। उसके संपादक होंगे श्रीबनारसीदास चतुर्वेदी। प्रतिमास अनेक चित्रों के साथ कई रंगीन चित्र भी दिए जावेंगे। जिन लोगों ने हमारे 'माडर्न रिव्यू' और 'प्रवासी' को देखा है, उन्हें यह बतलाने की आवश्यकता नहीं कि पत्र किस ढंग का होगा। वार्षिक मूल्य ६) रु० होगा और एक अंक का ॥=) आना (पोस्टेज सहित) विदेश के लिये मूल्य ७॥) साढ़े सात रुपए होगा। आशा है कि हिंदी-भाषा-भाषी जनता इस पत्र को भी अपनाकर हमारे उत्साह को बढ़ावेगी।"

चित्र-चर्चा

१. गोपीकृष्ण

सुंदर रमणीय कुंज में गोपिका एक घट लिए खड़ी है । पास ही श्रीकृष्णजी भी बाँसुरी से सुसज्जित विराजमान हैं । प्रकृति ने उद्दीपन का साज सज दिया है और व्रजराजजी प्रेम-पाश में बँध गये हैं । गोपी से भी वहाँ से हटते नहीं बनता है । वह भी उसी प्रेम की डोर में बँधी है । अपूर्व दृश्य है। श्री डॉ० बनर्जी की चित्रकला का यह एक उत्कृष्ट उदाहरण है ।

२. अकबरी दरबार

यह पुराना चित्र हमें कलकत्ते के प्रसिद्ध गुणग्राही सज्जन श्रीबहादुरसिंहजी सिंघी के विशाल चित्र-भाण्डार से प्राप्त हुआ है । इस कृपा के लिये हम सिंघीजी के कृतज्ञ हैं । आपके चित्र-भाण्डार से प्राप्त और चित्रों को भी हम यथावकाश प्रकाशित करेंगे । इस चित्र में दृश्य चित्रित है वह परम प्रसिद्ध है इसलिये उस पर अधिक लिखना व्यर्थ है ।

३. नागलीला

इस चित्र में पुराण में वर्णित कालीनाग के की लीला का सुंदर दृश्य है । नाग का गर्व खर्व करने वाले भगवान कृष्ण उसके मस्तक पर नाच रहे हैं । नागनियाँ उसकी प्राणरक्षा और छुटकारे के लिये खड़ी प्रार्थना कर रही हैं ।

४. तरुणी

यह चित्र हमें बाबू राजारामजी बी० ए० से प्राप्त हुआ है । एक तरुणी का चित्र है । तरुणी के ओढ़ने का कपड़ा और कपड़े के भीतर से केश-पाश का दृश्य बड़ा ही मनोहर और भव्य है ।